



हिन्दी

# विश्वकोष

एकविंश भाग

वसुम ( सं० स्त्री० ) घनिष्ठा नक्षत्र ।

वसुमरि ( सं० लि० ) धनपूर्णा ।

वसुमाग—एक प्राचीन कवि ।

वसुभूत ( सं० पु० ) एक गणघर्षका नाम

वसुभूति ( सं० पु० ) १ एक वैश्यका ना

मीकामें दुरवृक्ष २ एक ब्राह्मणका नाम । ( मनु २।३२

( कथावारे

वसुधृषान ( सं० पु० ) १ सप्तर्षिके मिथुन<sup>०</sup> ३३।२०६ )

वसुधृषके एक पुत्रका नाम । एक ध्यापि । २

वसुधृष ( सं० लि० ) धनयुक्त, धर्मवान् ।

वसुधृषी ( सं० स्त्री० ) वसुधि धनरत्न

इति वसु-मनुष्य-कोषः । १ पृथिवी । २

वृत्त । इसके अन्वयेक अरण्यमें तपण और

वसुधृषीवति ( सं० पु० ) वसुधृषावतः पतिः

राजा । पृथिवीवति,

वसुधृषा ( सं० स्त्री० ) वसु धनरत्न

माया तम धातु । वसुधृषाका माया वा

वसुधृषा ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक मन्

नाम । वसुधृषा

वसुधृष ( सं० लि० ) वसु धनरत्न

वसुधृषा ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक वर

धर दिशामें है ।

१०।१०।१६ )

एक ध्यापि । २

सत्यवत्याः

पत्नीका एक

गण होते हैं ।

पृथिवीवति,

वसुधृषा

धनवती ।

वसुधृषा

वसुधृषा

का नाम जो

वसुधृषा—एक बौद्ध ध्यापय । ये महापाल जाकारे  
अन्तर्गत वैभाषिक संप्रदायक थे । इनका निवास  
काश्मीरके पश्चिम अरणापरायत देश कहा गया है ।

वसुधृषा—शु गणितधर्मोप एक अति प्रबल पराक्रमी राजा  
काश्मीरके माधविकानिमित्त नाटकसे जाना जाता है,  
कि ये सुप्रसिद्ध वैदिकनागप्रवर्णक तथा अश्वमेधयज्ञ  
कारी अग्निमित्तके पीता थे । ये ही यज्ञक अश्वको रक्षाके  
लिये नियुक्त किये गये थे । इन्होंने सिन्धुनदीके तीर  
पथनोंको पराजित करके जयधी प्राप्त की थी । इनकी  
ही वीरतासे पाटलिपुत्रमें अश्वमेधयज्ञ सुमंगल्य हुआ  
था । इनके अन्तसे ही सौ वर्ष पहले इस महावीरका  
अस्त्युत्पन्न हुआ ।

वायुपुराणोप राजपूत महाहरममें लिखा है, कि  
प्राचीनकालमें वसु नामक एक राजा थे । ये ब्राह्मण  
वंशीय थे । इनको पीरता तथा पीरप सिन्धुनदीमें विख्यात  
था । राजपूतके पक्षमें इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था ।  
इस यज्ञमें इन्होंने श्राविक, महाराष्ट्र, कर्णाट, कौकिल, सिंदग  
प्रभृति कई एक देशोंमें घेरे हुए सुमंगल्य, सुगोम तथा वैद  
विद्वान्सारण दक्षिणातर ब्राह्मणोंको बुलाया था । इन  
सोनोंके मोक्षके नाम मोक्षे लिये ज्ञाते हैं—१ वसु,  
२ अश्वमेध ३ कीर्तिरत्न, ४ धर्म, ५ दारिद्र्य, ६ गीतम,



वसुतेन (स० पु०) कर्णपात्र ।  
 वसुतेन—एक कवि ।  
 वसुस्थानी (स० स्त्री०) वसुधा धनानां स्थली । कुशिरकी  
 पुरी, अरुका ।  
 वसुहस (स० पु०) वसुदेवकी पुत्र एक पादपका नाम ।  
 वसुहह (स० पु०) वसुधा वीतीनां हह इय । यक्षयुद्ध,  
 अगस्तका पेड़ ।  
 वसुहहह (स० पु०) वसुहह प्रार्थं हम् । वक्षयुद्ध,  
 अगस्तका पेड़ ।  
 वसुहोम (स० पु०) १ इह होम जो वसुके वद्वेशसे  
 किया जाता है । २ पुरावानुसार अङ्गदेशक एक राजाका  
 नाम ।  
 वसुह (स० स्त्री०) १ साम्बर मवण । २ वक्षयुद्ध, अगस्त  
 का पेड़ ।  
 वसुह (स० स्त्री०) १ घणामिसापी, धनको इच्छा करने  
 वाला । (पु०) २ अतिचरीय एक सुन्दरपा अधिका  
 धम् ।  
 वसुधम् (स० स्त्री०) महाधनवान्, वड़ा वीरधर्मद ।  
 वसुधती (स० स्त्री०) वसुधती, पूरती ।  
 वसुधा (स० स्त्री०) धनेच्छा, धनकी कामना ।  
 वसुधु (स० स्त्री०) धनेच्छा, धनकी कामना करनेवाला ।  
 वसुध (स० स्त्री०) १ पान पदु ना हुआ, मिला हुआ,  
 प्राप्त । २ जो बुका किया गया हो, जो हाथमें आया हो,  
 छप्य । (पु०) ३ उदय देवो ।  
 वसुधी (स० स्त्री०) १ बुद्धता कर्तव्यकी क्रिया, दूसरीसे  
 कपया पैसा या वस्तु लेनेका काम । २ बाकी निकला  
 या बाहता हुआ कपया लेनेका काम ।  
 वरह (स० पु०) वरह-भाषे धम् । अर्थव्यपसार्थ ।  
 वरहय (स० पु०) वरुणे इति वरह गती बाहुमकात्  
 अयन् । एकहायण वरह, बहैला बरुहा ।  
 वरहवती (स० स्त्री०) वरहय एकहायणो वरहः, तेन  
 गोपते इति नी-स्त्रिप् ङीप् । चिरमवृत्ता गायो, वरुणे गाय ।  
 इसके वृषका शुभ सिद्धोपनाशक, लर्पण और बरुहर  
 नामा ग्वा है ।  
 वरुहराटिका (स० स्त्री०) वरुहर ।  
 वरुह (स० पु०) वरुहयते अर्थात् वरुहते इति वरुह

कर्मणि धम् । १ छाग, पक्षरा । (स्त्री०) २ वसु देवी ।  
 वस्तिक (स० स्त्री०) कृत्वा स्रवण, बनाया हुआ ममक ।  
 वस्तकर्ण (स० पु०) वस्तस्य छागस्य कर्णादिति । पञ्चोव  
 ष्ठेक्षे अस्त्यत्येति वस्तकर्णं अर्शं भावित्वाच् । शाक  
 पूस, साण्डूका पेड़ ।  
 वस्तगन्धा (स० स्त्री०) वस्तस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः ।  
 यह जिसकी गंध बहरै-सी हो ।  
 वस्तमोहा (स० स्त्री०) वस्तं छागं मोक्षयतीति शुभं पिच्छं  
 अच् । अज्ञमोहा ।  
 वस्तव्य (स० स्त्री०) वस-तव्य । यासाहं, वासके योग्य ।  
 वस्तव्यता (स० स्त्री०) वस्तव्यस्य भावा तव्यं हाप् ।  
 वस्तव्यका भाव या धर्म, वास ।  
 वस्ताम्बी (स० स्त्री०) वस्तस्येव अज्ञमत्याः, गौरादि  
 त्वाच् ङीप् । छागजसिद्धय । पर्याय—बुधगन्धापया,  
 मेयात्की, बुधयत्किरा, अज्ञाम्बी, योदकी । शुभ—कडु, कास  
 दोषनाशक, गर्जजनक और शुक्रवर्धक । (राजनि०)  
 वस्ति (स० पु० स्त्री०) वसति सुनादिकप्रभ, वस  
 (वस्तिव्य । अण् ३।१७३) इति ति । १ नामिका अयो  
 माय, पेड़ । २ मन्त्राशय, पेशावकी चौकी । ३ वस्तिसदृश  
 यक्ष, पिच्छकारी । वैद्यकीं वस्तिविधिना विषय अर्थात्  
 पिच्छकारी हैनेको प्रणाली इस प्रकार विधी है—  
 वस्ति दो प्रकारकी होती है, अनुवासनवस्ति और  
 निकृष्टवस्ति । इन दोनों प्रकारकी वस्तिधर्मों स्पष्ट  
 द्वारा जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे अनुवासन  
 वस्ति तथा क्वाय दुग्ध और तैल द्वारा जो वस्ति प्रयोग  
 किया जाता है, उसे निकृष्टवस्ति कहते हैं । वस्ति  
 द्वारा (शुगादिके सुनाशय द्वारा) प्रयोग करना होता  
 है, इस कारण इसकी वस्ति कहते हैं ।  
 म हावस्ति अनुवासनवस्तिहा मेवमात्र है । इसकी  
 मात्रा दो वा एक पल है । कक्ष व्यक्तितोष्णानिसम्प्य  
 व्यक्तित तथा जिनके केवल वायुमवल है, वे अनुवासन  
 वस्तिके उपयुक्त हैं । कुष्ठरोगी, मीह्ररोगी, स्फुलकाय और  
 बरुह्ररोगीके सिधे अनुवासनवस्ति उपकारी नहीं है ।  
 अश्लीर्णरोगी, रम्भाह्ररोगी, तुष्णारोगी तथा क्षोय,  
 मूष्णं, अर्बुचि, मय, श्वास कास और क्षयरोगाह्वन्त  
 व्यक्तिके पक्षमें अनुवासन और आस्थापन ये दोनों दो  
 प्रकारकी वस्ति प्रशस्त हैं ।

सुवर्णादि धातु, वृक्ष, घांस, नल, दन्त, शृङ्गाप्र वा मणि आदि द्वारा नल प्रस्तुत करना होगा। घमि-प्रयोगमें पहले छः वर्षके रोगोंके लिये ६ उँगलीका, ७ वर्षसे १२ वर्ष तकके लिये ८ उँगलीका, १२ वर्षसे ऊपर रोगियोंके लिये १२ उँगली लम्बा नल बनाना होगा। उस नलका छेद यथाक्रम मूँग, कलाय और बेरके बीजके बराबर होगा। उसका गोदुमाकार होना आवश्यक है। नलका मूँग भाग गोदुमाकार बना कर मुँहकी धार क्रमशः सूक्ष्म करना होगा।

मृग, छाग, शूकर, गो अथवा महिलाकी मूत्रकोष घमि द्वारा वस्तिकार्य करना होगा। सभी प्रकारकी घमि को कपायादि द्वारा गंजित कर लेना होगा। उसका मृदु, मिनघ्र अथवा दृढ़ होना आवश्यक है। घ्रणमें जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसका नल श्लक्ष्ण और आठ अंगुल, परिणाहमें शूघ्र पत्रोकी नलिकाके समान तथा छेद मूँगके बराबर बनाना होगा।

वस्तिके अच्छी तरह प्रयुक्त होनेसे शरीरका उपचय, वर्णकी उत्कर्षता, बल और आरोग्य तथा परमायुकी वृद्धि होती है। शीत और वसन्तकालमें दिनको स्नेह-वस्ति तथा प्रीष्ण, वर्ण और शरत्कालमें अनुवासन-वान्तका प्रयोग न करे। क्योंकि एक समय स्नेहभोजन और अनुवासन दोनों प्रकारके स्नेह सेवित होनेसे मत्तता और मूर्च्छा होती है तथा अत्यन्त कक्षद्रव्य भोजन करके भी अनुवासन करना उचित नहीं, करनेसे बल और वर्णका हास होता है। अतएव सुचिकित्सकको चाहिये, कि सिन्धु द्रव्य भोजन करा कर अनुवासन वस्तिका प्रयोग न करे।

वस्तिका प्रयोग करनेमें पहले माताके ऊपर विशेष लक्ष्य करना होगा। क्योंकि हीनमात्रामें वस्तिकी प्रयोग करनेसे कोई फल नहीं होता तथा अधिक मात्रा होनेसे भी आनाह, क्लान्ति और अतीसार रोग उत्पन्न होता है।

अनुवासनवस्तिकी श्रेष्ठ मात्रा ६ पल, मध्यम मात्रा ३ पल और हीनमात्रा २ पल है। जिस स्नेह द्वारा घमि-प्रयोग करना होगा, उस स्नेहके साथ सोयाँ और सैन्धवका चूर्णको पूर्ण मात्रा ६ माशा, मध्यम मात्रा ४ माशा तथा हीनमात्रा २ माशा है।

चिरेचनके बाद वस्तिप्रयोग करनेमें ७ दिनके बाद तथा शरीरमें बलोपचय होनेमें आहार करा कर सायंकालमें अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना होगा। अनुवासनक्रिया करनेमें रोगोंके शरीरमें नल लगा कर कुछ उष्ण जल द्वारा स्नान करना और पाँच भोजनके बाद भी पदम टहलना होगा। इसके बाद वायु, मूत्र और मलत्याग होनेमें स्नेहवस्तिका प्रयोग हितकर है।

जिस समय स्नेहवस्तिका प्रयोग करना होगा, उस समय रोगीको धारें फगट मुलावे। पाँचै उसकी धारें जांच फैला कर और दाहिने जाघ मिकुडा का गुह्यदेशमें स्नेह मुक्षण करे। अनन्तर चिकित्सक घमिसे मुँह को सूत्र द्वारा बांध कर बायें हाथसे उसका मुँह पकड़े और दाहिने हाथसे गुह्यदेशमें योजना करके मध्य वेगसे पीड़न करे। तीस मात्रा काल इसी प्रकार पीड़न करना होगा। दूसरे समय कभी भी पीड़न करना उचित नहीं। वस्तिप्रयोगके समय जंभाई करना, खांसना, और हिचकना आदि मना है।

इस प्रकार स्नेह अन्तःप्रविष्ट होनेसे एक स्त्री बापय उच्चारण करनेमें जितना समय लगे, उतना समय रोगीको उत्तानभावमें मोना चाहिये। पहले जो मात्रा और कालका विषय कहा गया है, उसका विषय इस प्रकार स्थिर करना होता है—अपनी जाघ पर उँगली मटका कर हाथ घुमा कर उस जगह लानेमें जितना समय लगता है, उतने समयको एकमात्रा कहने हैं अथवा आँग्रके एक धार मूँदने और खोलनेमें या गुरुवर्णका उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयका नाम मात्रा है।

अच्छी तरह घमिप्रयोग होनेसे घमिघोर्य मारे शरीरमें बहुत जल्द फैल जाय, इसके लिये चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगीकी दोनों जाघ और बाहुकी तीन धार आकुञ्चन और तीन धार प्रसारण करे। इसके बाद रोगीके करतल, पदतल और कटिदेश इन नय स्थानोंमें हस्त द्वारा आघात तथा कटिदेश पकड़ कर शय्या पर तीन धार निक्षेप करे। दो पाणि द्वारा भी पूर्ववत् शय्या पर आघात करना होगा। इस प्रकार निरुहण कार्य-

सम्बन्ध होनेसे रोगीको सुखशान्ति पर ध्यान करा कर नौहं हानेको कोशिश करनी चाहिये।

अनुपासन क्रियाके बाद यदि बिना उपद्रवके वायु बार मलके साथ स्नेह बहुत जल्द निकल आये, तो इस व्यक्तिको अनुपासनक्रिया अच्छी तरह हुई है, ज्ञानमा होगा। इस प्रकार स्नेह निकलनेसे यदि भूष मातृम पडे, तो सार्यकारमें सुमिद अन्न या लघुद्रव्य चिन्तना होगा। दूसरे दिन रोगीको उष्ण अन्न वा घनिये और सौंठका काढ़ा बना कर पिन्तना होगा। इस नियमके अनुसार ३, ७, ८ वा २ बार स्नेहवस्तिका प्रयोग कर पीछे निरुहवस्तिका प्रयोग करे।

पहले जो वस्तिप्रयोग किया जाता है उसके द्वारा मूला जय और यक्षुण स्निग्ध होता है। दूसरे बार शिरोगत व गु विनष्ट होती है, तीसरी बार ल और बर्पाको उत्क र्णा, चौथी बार रस, पाँचवीं बार रक्त, छठी बार मांस, सातवीं बार मेद, आठवीं बार अस्थि तथा नवमीं बार वस्तिप्रयोग द्वारा मज्जा स्निग्ध होती है। अठारह दिन पचाविधि वस्तिप्रयोग करनेसे शुद्धगत दोष प्रशमित होता है। प्रति अठारहवें दिनमें जो व्यक्ति नियमपूर्वक वस्तिक्रिया करता है वह हाथीके समान मलबान्, घोड़े के समान वेगबान् और बैपताके समान प्रभावशाली होता है।

दशना और वायुका प्रकोप रहनेसे प्रति दिन स्नेह वस्तिका प्रयोग करे, किन्तु अन्याय्य स्थानोंमें अग्निमाण्ड होनेकी आशङ्कासे तीन दिनके अन्तर पर वस्तिप्रयोग वर्तव्य है। उदा व्यक्तिपोंको अग्रमात्रामें दीर्घकाल तक स्नेह प्रदान करनेसे जिम प्रकार कोई अग्नि नहो होती, इसी प्रकार स्निग्ध व्यक्तियोंको अग्रमात्रामें निरुह वस्तिका प्रयोग करनेसे भी कोई अयकार न हो कर विरत उपकार होता है।

वस्तिप्रयोग करनेसे यदि वह बाछी तरह मोतर पुन कर प्रयोग करने हो बाहर निकल आये, तो पुनर्बार पूर्वमात्रामें मज्जा मात्सामें प्रयोग करे।

घमन विरेचनदि द्वारा यदि शरीरको शोधन न कर क अनुपासनवस्ति प्रयोग किया जाय तो इस स्नेहके महके साथ संयुक्त हो कर बाहर न निकलनेसे शरीर

की अयसधता उद्वारमान, शूल प्रवास तथा पक्काशपमें शुष्क अवस्थित होता है। येनो ह्रासतमें निरुहवस्ति अथवा तोष्ण औषधके साथ तोष्णक वस्तिक का प्रयोग करे। वायुका अनुकीमकारक मलशोधक, अयस स्निग्ध कारक विरेचन तथा तोष्ण नस्य भी इस मज्जरामें प्रशस्त है।

स्नेहवस्तिके नहो निकलनेस यदि कोई उप-द्रव न हो, तो ज्ञानमा आविष, कि रुस्तामें प्रयुक्त हो वह न निकलेगा। मतएव इस समय किसी प्रकार प्रतीकार को चेष्टा न करने चाहिये। एक दिन रातको अवेष्टा करनी होगी, यदि उसमेंसे स्नेह न निकले, तो संशोधक औषध द्वारा दोषको शान्ति करे। किन्तु स्नेह निकालने के लिये फिरसे स्नेहका प्रयोग न करना होगा, करनेसे विशेषे धनिय होता है। गुलश्च परएड पृतिकरश्च, मज्जूस कलुण, शतमूली मिष्टी और काकजकूा प्रत्येक एक एक, औ उकृ, तीसी बेर और कुलपो, दो दो एक, एवं एक साथ मिक्का कर चार द्रोण अससे मिद करे। पीछे एक द्रोण ( ३४ सेर ) रोप रइते उठार कर उससे १६ सेर तैलपाक करे। कसकायं औषधनोयगणकी औषध प्रत्येक एक पत्र करक ग्रहण करे। इस तैलसे यदि अनुपासन वस्तिका प्रयोग किया जाय, तो सभी प्रकारके वातमरोग विनष्ट होते हैं।

अनुपयुक्त नबादि द्रव्य द्वारा वस्तिक्रियाके दोषसंभेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, इन कारण बिद्येन सावधान हो कर वस्तिक्रिया करे। स्नेहपाससे आहापादि की जो व्यवस्था है, इनमें जो वस्ती व्यवस्थाक अनुसार रखे।

निरुहवस्ति—निरुहवस्ति कारणमन्म अनेक प्रकारकी है। यह दोष और वातुमीको घषाश्याममें स्थापन करती है इस कारण इसका एक नाम आश्यापन है। निरुह वस्तिको धेष्टमात्रा १। प्रथम ( हाई सेर ), मध्य मात्रा १ प्रथम ( दो सेर ) और हीममात्रा डेढ़ सेर है।

जो व्यक्ति अत्यन्त क्रिग्ध, उरिद्ध रोपमग्न, उदा स्तुरोगाक्रान्त रुज तथा उद्वारमान, बनि दिक्का, भर्त्, कास, श्वास, शुष्क रोग, शोष अतोसाद, घिसचिका, कुष्ठ, मनुमेद और अमाश्रादि रोगामिन्त व्यक्ति अथ गर्भपती स्त्रीको आश्यापन प्रयोग न करे।

जो व्यक्ति चानध्याधि, उदाघर्त, पातरक्त, विपमज्वर, मूर्च्छा, लृण्णा, उदर, आनाह, मूत्ररुच्छ, अपमरी, वृद्धि, अस्कृद् र. मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अग्नपित्त तथा हृद्गोगा क्राव्त हैं, वे यथाविधान निरुहवस्तिका प्रयोग करें।

वायु, मल और मूत्र पणित्यागके बाद स्नेहार्पण और उष्ण जलमें स्नान करा कर क्षुधित अवस्थामें दो पहरको चरके मध्य रत यथायोग्य निरुहणका प्रयोग करें। निरुहवस्ति अच्छी तरह प्रयोजित होनेसे मुहूर्त्तकाल तक जब बाहर न निकले, तब तक उत्कट भावमें बैठा रहे यदि मुहूर्त्तकालके अन्तमें भी वहिर्गत न हो, तो शीघ्रक औषध वा क्षाण, मूत्र, अण्ड और सैन्धव द्वारा फिरसे निरुहवस्तिका प्रयोग करें।

कफ, पित्त, वायु और मल क्रमान्वय वहिर्गत हो कर शरीर जब हल्का हो जाता है, तब उसे सुनिरुह कहते हैं तथा जिसके वस्तिवेगकी अहताके कारण मल निःसारण न हो कर मूत्ररोग जड़ता और अरुचि उत्पन्न होती है, उसको दुर्निरुह कहते हैं। आस्थापन और स्नेहवस्तिका अच्छी तरह प्रयोग होनेसे वस्ति द्वारा प्रक्षिप्त औषध निःसारण, मनमनुष्टि, देहकी रिनग्धता और व्याधि प्रशमन होती है। इस नियमसे दो बार, तीन बार या चार बार यथापयुक्त विवेचना करके पण्डितोंको निरुहवस्ति-का प्रयोग करना चाहिये।

निरुहवस्ति वायुरोगमें उष्ण स्नेहके साथ एक बार, पैत्तिक व्याधिमें उष्ण दुग्धके साथ दो बार तथा शैथिक रोगमें उष्ण, कषाय, कटु और मूत्रादिके साथ तीन बार प्रयोग करें। उक्त प्रकारसे निरुहवस्तिका प्रदान कर पैत्तिक व्याधि सम्पन्नको दुग्ध, श्लैश्मिक व्याधिसम्पन्नको यूप और वायुरोगसम्पन्नको मांसरसके साथ भोजन करा कर पीले अनुवासनप्रयोग करना होता है।

सुकुमार, वृद्ध तथा धालकोंके लिये नृदुवस्ति इतत कारक है। इन्हें तीक्ष्णवस्तिका प्रयोग करनेसे उनके बल और परमायुका हानि होता है। पहले उत्पलेजन वस्ति, मध्यमें शोषहर वस्ति तथा पश्चात् संगमनीय वस्तिका प्रयोग करना उचित है।

उत्पलेजनवस्ति—परण्डवीज, यष्टिमधु, पिप्पली, सैन्धव, घब तथा ह्युषा फलके कलक द्वारा जो वस्तिप्रयोग

किया जाता है, उसे उत्पलेजन वस्ति कहते हैं। शोषहर वस्ति—शतमूली, यष्टिमधु, त्रिदश तथा इन्द्रजी इन सब द्रव्योंको कांजी और गोमूत्रके साथ मिला कर जो वस्ति-प्रयोग किया जाता है, उसका नाम शोषहर वस्ति है। संगमनीय वस्ति—प्रियंगु, यष्टिमधु, मुस्तक और रसांजन, इन्हें दुग्धके साथ मिला कर जो वस्ति प्रयोग किया जाता है, उसे संगमनीय वस्ति कहते हैं। लेखनवस्ति—त्रिकला के काथ, गोमूत्र, मधु तथा यवशरके साथ उपणादि गणका नूर्ण प्रक्षेप दे कर उसमें जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसको लेखनवस्ति कहते हैं।

वृंहणवस्ति—वृंहण द्रव्यके कषाय और जीवनीय-गणके कलकके साथ छत और मांसरस मिला कर उससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसका नाम वृंहणवस्ति है।

विच्छिन्नवस्ति—भूमिकुमाण्ड, नारंगी, बहुशरक तथा शाहमली पुष्पके धंकर इन सब द्रव्योंको कृयके साथ सिद्ध कर मधु और रक्त मिला जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे विच्छिन्नवस्ति कहते हैं। छाग, मेघ और कृष्णसार इनका रक्त ग्रहण करना होता है। इसकी मात्रा बारह पल अर्थात् डेढ सेर है।

निरुहवस्तिका स्नेह बनानेका विधान—पहले २ तोला सैन्धक और ४ पल मधु एक साथ मिला कर पीछे ६ पल स्नेह, २ पल कलक द्रव्य, ८ पल पत्राथ तथा ४ पल प्रक्षेप-का द्रव्य इन्हें एकत्र मथ कर उससे निरुहवस्ति प्रदान करें। उक्त प्रणालीसे प्रस्तुत सामग्रीका परिमाण कुल २४ पल होगा।

घातजन्य रोगमें ४ पल मधु और ६ पल स्नेह, पित्तज रोगमें ४ पल मधु और ३ पल स्नेह तथा कफज रोगमें ६ पल मधु और ४ पल स्नेह द्वारा निरुहवस्तिका प्रयोग करें।

मधु तैलवस्ति—परण्डवीज ८ पल, मधु और तैल दोनों मिला कर ८ पल, शलूका आध पल तथा सैन्धव आध पल इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एक काष्ठलण्ड द्वारा अच्छी तरह घोंट कर जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे मधुतैलवस्ति कहते हैं। इस वस्ति द्वारा मेद, गुल्म, कृमि, प्लोहा, मल और उदाघर्त नष्ट होता तथा शरीर

उपचित बल, धर्म, शुक्र और अग्नि को वृद्धि होती है।

पापनवस्ति—मधु, घृत और दुग्ध प्रत्येक २ पक तथा इष्या और सैन्धव प्रत्येक २ तोला छे कर अच्छी तरह घंटे। इससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे पापनवस्ति कहते हैं।

युक्तरधोवस्ति—परपत्र मूलका काय, मधु सैन्धव, बज्र तथा पिप्पली इन सब द्रव्योंको पकृत कर उससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे युक्तरधोवस्ति कहते हैं।

सिद्धवस्ति—पद्ममूलका काय, सैन्ध, पिप्पली, मधु, सैन्धव तथा यक्षिमधु इन सबको पकृत कर जो वस्ति प्रयोग किया जाता है, इसको सिद्धवस्ति कहते हैं।

निकृष्टवस्ति प्रयोगके बाद उष्ण जलमें स्नान करे, दिनको न सोये और अश्लील जलक वस्तु न खाये।

उत्तरवस्ति—उत्तरवस्तिनल १२ अंगुल लम्बा होगा तथा उस नलके मध्यदेशमें एक कर्मिका (गोकर्पादिबन्ध) बनी होगी। नलका अग्रभाग मासती पुष्पके वृत्तको तरह तथा छेद देखा होगा चाहिये, कि इसके मध्य हो कर एक सरसी निकल सके।

पचीस वर्षसे कम उमरवाली व्यक्तिके लिये स्नेहकी मात्रा ३ तोला तथा उससे ऊपरवायिके लिये ८ तोला बतलाई गई है। रोगीको पहले आर्यायन द्वारा शोषण करके स्नान कराये। पीछे तृप्तिके साथ मोहन करा कर आसन पर घुटना टेक बैठाये। इसके बाद स्नेहसिक्त शङ्काका द्वारा पहले मन्वेपन करके पीछे घृतप्रसिक्त नल निकूके मध्य धीरे धीरे प्रवेश कराये। १ अंगुल प्रविष्ट होनेसे वस्तिपीड़न होगा। पीछे नलको धीरे धीरे श्वाहर कर सेना होगा। अनन्तर स्नेह प्रत्यागत होने से स्नेहवस्तिके विधानानुसार किया करनी होगी।

क्रियाके लिये द्वा अंगुल लम्बा तथा कनिष्ठांगुलिके समान डोरा बना कर नल प्रस्तुत करे। उसका छेद मू गके बराबर होगा। इसक अपप्यपयमें तार अंगुलका तथा मूलहृच्छ्रुमें उसकी तरह सूक्ष्म नल प्रस्तुत करके २ अंगुल भर प्रवेष्ट करा कर वस्ति प्रयोग करे। बाबर्डी क मूलहृच्छ्रु रोगमें एक अंगुलका नल काममें लाये। चिकित्सक क्रियाकी योगिमें सूक्ष्म नल धीरे धीरे प्रवेश कराये, पर जिससे वह क्षमिपत न हो, इस पर बिन्दव

ध्यान रहे। नलको आकृति माकड़ी पुष्पके वृत्तके समान होनी चाहिये। गर्ताशय शोषणके लिये स्नेह दो पक तथा मूलहृच्छ्रुके लिये एक पकका प्रयोग करे।

क्रियाकी उत्तरवस्ति प्रयोग करनेमें पहले उष्ण भावमें सुखा कर दोनों घुटने उठा कर वस्ति प्रयोग करे। इस उत्तरवस्तिका यदि पहिनिासरण न हो, तो पुन बाँर संशोचक द्रव्यके साथ वस्ति प्रदान करे। अथवा योगिमार्गमें मूलनिासरण अथवा रिन्ध संशोचक द्रव्य संयुक्त हृद नलवस्ति का प्रयोग करे।

वस्तिक्रिया द्वारा किसी स्थानमें बाह्य उपस्थित होनेसे हीरा वृत्तके पत्राथ और शीतल जल द्वारा फिरसे वस्तिका प्रयोग करे। वस्ति प्रयोग द्वारा पुष्पके शुक्रशोष तथा क्रियाके भाग्य बंध विमल होती है। किन्तु प्रमेह रोग, काल्प व्यक्तिको कभी भी उत्तरवस्तिका प्रयोग न करे। (मात्र० पूर्व०) निरुद्ध शब्द देते।

वस्तिक (सं० पु०) पिचकारी।

वस्तिकर्म (सं० पु०) लिङ्गेन्द्रिय, गुदेन्द्रिय आदि मार्गों में पिचकारो दैनेकी क्रिया।

वस्तिकर्मार्थ (सं० पु०) वस्ति कर्मणा तंकोचनवाया र्थेन आख्या, वस्तिरोगमें एवाक्य प्रयुक्तार्थकरत्वात् तथात्त्वं। भरिष्ट वृक्ष, रोठेका पेड़।

वस्तिदुष्प्रवृत्तिका (सं० स्त्री०) मूत्रामात रोग भेद। इसका लक्षण—श्व द् तबेगसे पथगमन, परि भ्रम, अमिघात और पीड़न द्वारा मूत्राशय अपने स्थानसे ऊपरको उठ कर गर्भकी तरह स्थूल हो जाता है, तब शूल, स्पन्दन और बाहके साथ धोड़ा धोड़ा मूल निकलना है। नाभिक अयोदेशमें पीड़न करनेसे चाराबाहिककपमें मूल निकलने लगता है तथा रोगी स्वस्थता और हर्षेदन द्वारा पीड़ित होता है। मूत्रामात रोगमें ये सब लक्षण दिखाई देनेसे इसे वस्तिदुष्प्रवृत्तिका कहते हैं। इस रोगमें प्रायः वायुकी ही अधिकता रहती है। यह शूल और विषकी तरह भयङ्कर होता है। इस रोगके उत्पन्न होते ही चिकित्सकको चाहिये, कि बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करे। इस रोगमें पिच्छाधिक्य होनेसे बाह, शूल और विषमें होता है। अफकी अधिकता होनेसे वैश्वकी गुच्छा



और जोध, स्निग्ध, मफेद साथ साथ गाढा मूत्र निकलता है।

वस्तिकुण्डलिका रोगमें यदि वस्तिका मुखरन्ध्र कफ कर्तृक आवृत अथवा वस्तिमें पित्त जमा हो जाय, तो उसे अस्वास्थ्य समझना चाहिये। यदि इस रोगमें वस्तिका मुखरन्ध्र कफ कर्तृक आवृत और वस्तिमें मध्य वायु कुण्डलीभूत हो कर न रहे, तो रोगकी साध्य समझना चाहिये। वस्तिमें मध्य वायुके कुण्डलीभूत हो कर रहनेमें रोगीको पिपासा, मोह और श्वास उपस्थित होता है।

( भागप्र० मूत्राघातवेगाधिक )

वस्तिविल ( स० क्ली० ) वस्तिद्वार, मूत्रद्वार।

वस्तिमल ( स० क्ली० ) मूत्र।

वस्तिवात ( स० पु० ) एक मूत्ररोग। इसमें वायु विगड कर वस्ति ( पेडू ) में मूत्रको रोक देता है।

वस्तिशोष ( स० क्ली० ) प्रत्यङ्गविशेष, पेडूका ऊपरी भाग।

वस्तिशूल ( स० क्ली० ) वस्तिवेदना, पेडूमें दर्द होना।

वस्तिशोधन ( स० क्ली० ) १ मदन फल, मैनफल। २ मदन वृक्ष, मैनफलका पेड़।

वस्तु ( स० स्त्री० ) वसतीति वस् ( वसेस्तुत् । उण् १।७६ ) इति तुन् । १ द्रव्य, चीज । २ वह जिसका अस्तित्व हो, वह जिसको सत्ता हो, वह जो सचमुच हो । जैसे,—डर कोई वस्तु नहीं । ३ पदार्थ । नैयायिकोंके मतसे परिदृश्यमान जगत्में दो प्रकारकी वस्तु होती हैं—भाव और अभाव । लेकिन वेदान्तदर्शनके अनुसार जगत्में वस्तु एक ही सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ही वस्तु है । ब्रह्मके सिवाय और वस्तु नहीं है । अज्ञान आदि जड-समूह अवस्तु है । ( वेदान्तसार ) ४ कार्य । ५ अर्थ । ( कुमार० ५।६५ माल्लनाथ ) ६ इतिवृत्त, वृत्तान्त । ७ सत्पात । ८ सत्य । ९ नाटकका कथन या आख्यान, कथावस्तु । नाटकीय कथावस्तु दो प्रकारकी कही गई है—अधिकारिक जिसमें नायकका चरित्र हो और प्रासङ्गिक जिसमें नायकके अतिरिक्त और किमीका चरित्र बीचमें आ गया हो । नाटक देखो ।

वस्तुक ( स० क्ली० ) वस्तु संज्ञायां क्व । वास्तुक जाक, वयुआ नामका साग ।

वस्तुकी ( स० क्ली० ) वस्तुक गौरादित्वात् ङीप् । वास्तुक जाक, वयुआ नामका साग ।

वस्तुजान ( स० पु० ) १ किसी वस्तुकी पहचान । २ मूल तथ्यका बोध, सत्यकी जानकारी, तत्त्वज्ञान ।

वस्तुनः ( स० अव्य० ) यथार्थतः, सचमुच, असलमें ।

वस्तुन्ता ( स० स्त्री० ) वस्तु भावे तच् टाप् । वस्तुका भाव या धर्म, वस्तुत्व ।

वस्तुधर्म ( स० पु० ) वस्तुका धर्म, वस्तुत्व ।

वस्तुनिर्देश ( स० पु० ) मद्ग्लाचरणका एक भेद जिसमें कथाका कुछ आभास दे दिया जाता है ।

वस्तुपाल ( स० पु० ) मुगल्लके एक प्रसिद्ध जैन-कवि ।

वस्तुवल ( स० क्ली० ) वस्तुका गुण ।

वस्तुभाव ( स० पु० ) वस्तुका धर्म या रूप ।

वस्तुभेद ( स० पु० ) वस्तुका प्रकार ।

वस्तुवाद ( स० पु० ) यह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें जगत् जैसा दृश्य है, उसी रूपमें उसको सत्ता मानो जाती है । जैसे—न्याय और वैशेषिक । यह सिद्धान्त अद्वैत-वादका विरोधी है जिसमें नामरूपात्मक जगत्की सत्ता मानो जाती ।

वस्तुविचार ( स० पु० ) वस्तुका गुण निर्धारण ।

वस्तुविचर्त्त ( स० क्ली० ) वेदान्तके मतसे याधार्यका विचर्त्त ।

वस्तुशक्ति ( स० स्त्री० ) वस्तुकी शक्ति ।

वस्तुनामन ( स० क्ली० ) वस्तुनिर्णय ।

वस्तुशून्य ( स० स्त्री० ) द्रव्यहीन ।

वस्तुस्थापन ( स० क्ली० ) भोजयाजीतमें वस्तुका रूपान्तर करना ।

वस्तूपमा ( स० स्त्री० ) उपमालद्वारभेद ।

वस्त्य ( स० क्ली० ) वस-किन् वस्तिर्धासस्तस्यां साधु वस्ति इति यत् । ( त्रय साधुः । पा ४।४।६७ ) गृह, घर, वसनेकी जगह ।

वस्त्र ( स० क्ली० ) वस्यते आच्छाद्यते अनेनेति वस आच्छा-दने ष्ट्रन् ( सर्वाद्यन्वः ष्ट्रन् । उण् ४।१५८ ) परिधानादि-के उपयुक्त कार्पाससूत्रादि प्रस्तुत वस्तु, कपड़ा । पर्याय—आच्छादन, वासस्, चेल, वसन, अंशुक, ( अमर ) सिचय, प्रोत, लकक, कर्पट, ग्राटक, कणिपु, ( जटाधर )

वासन, द्विष्य, छात्र, वास । (इम्बरल्लो) धर्मशास्त्रकार मृगुने वल्कली परिधानविधिसे सम्बन्धमें कहा है, कि विकसत अर्थात् काष्ठ जगाये बिना, उसरीयहीन, आधा भगा वा बिलकुल नया हो कर कोई भीत या स्वार्थ कर्म न करना चाहिये ।

परिधानके बाहर यदि काष्ठ भगा रहे, तो वह आसुरी प्रथा हो जाती है, इन कारण सम्पूर्ण संतनकच्छ होना हो उचित है । "परीधानाद्बहिः कृता निवन्धा टासु ही मयेत् ।" (स्मृति) बीषायनके मतसे बाई और, पूछ और नामि इन हीन स्थानोंमें हीन कक्ष हैं, इन हीन कक्षों को ठीक करके जो प्राज्ञान बल पहनते हैं वे शुचि होते हैं ।

प्रमेताका कहना है, कि जो ब्रह्म नामिदेशमें पहननेसे योगों घुटने तक मटकता है, इसका नाम अन्तरोप है । यह वस्त्र उत्तम है । यह अच्छिन्म होना आवश्यक है ।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, "दशा नामो प्रयोजयेत् । नभ्यात् कर्मणि कञ्चुकीति । उत्तरोपधारणं चोपवीतवत्" अर्थात् दशा वा ब्रह्मका प्राप्तभाग नामिदेशमें धोस दे । कञ्चुकी हो कर अर्थात् किसी प्रकारका अ गच्छा पहन कर कोई विहित कर्म न करे, कर्मकांडीन उपवीतवत् पबिब इत्तरीय धारण करे ।

पूर्वोक्त मृगुके वर्णनानुसार मातृम होता है, कि सामीकी दो दो वस्त्र अर्थात् परिधेय और उत्तरीय धारण करना चाहिये ।

वस्त्रधारणके गुण—निर्गल वस्त्र पहननेसे कामो दीपन प्रसंसाजाम, दीर्घायु ब्रह्मस्मीनाज तथा आरम प्रसाद होता है । इससे शरीरको शोभा बढ़ती और पहननेवाला सम्बन्धमार्गमें जाने लायक होता है ।

स्नानके बाद कपड़े से शरीरको अच्छी तरह मलना चाहिये । इससे श्वेतकी कान्ति लुप्त होती है तथा श्वेतके अनेक कण्डुबोप जाते रहते हैं । सामी प्रकारका कोपेय वस्त्र अर्थात् पट्टवस्त्र वा उत्तर-वस्त्र अथवा धिब वस्त्र और रत्नवस्त्र शीतकर्ममें पहनना उचित है । क्योंकि इससे बात और दृष्टेयभेष्य प्रशमित होता है । पविल सुशीलकायाय वस्त्र पिलहर दे, इसलिये उसे शोभकानमें पहना उचित है । यह वस्त्र जितना

हो हठका होगा उतना ही अच्छा है । शीतातपनिवारणमें शुद्धवस्त्र ग ठो शुभद है और न उष्ण ही है । येमा वस्त्र सर्वांमं व्ययहार करना होता है । मनुष्यको मैला कपड़ा कामी न पहनना चाहिये । इससे कण्डु और कृमि उत्पन्न होते हैं तथा वह स्थानिकर और सदमोभाष्य दर है ।

व्यययोगमें यस्त्रादि वर्धन एकान्त शुभमद है । कन्या, शुद्धवस्त्र-परिधायी गौर वण संखल छोटे छोटे लङ्केको, छत्र, वर्णन, विप और चामिय तथा शुद्धवर्णके पुण्य, वस्त्र और अपबिन्न भादेपनको लज्जमें देखनेसे आयु आरोम्य तथा बहुविध छाम होता है । (भास्य शरीरस्थान ६ अ०)

नववस्त्र शास्त्रानुसार दिन वैश कर पहनना होता है । अशास्त्रीय दिनमें पहननेसे अशुभ होता है । ज्योति स्तस्त्रमें लिखा है, कि अपने जगन्मन्त्रमें और अनुराधा, विशाखा, हस्ता, चित्रा आदि कुछ विहित नक्षत्रोंमें तथा बृहस्पति, शुक्र और बुध दिनमें वा किसी वरसवमें नया वस्त्र पहनना चाहिये । (श्रोतिल्लवण)

दिन न वैश कर जिस किसी दिनमें नया वस्त्र पहनने से नाना प्रकारका अमङ्गल होता है, विहित दिनमें नया वस्त्र पहननेसे उसका विपरीत फल अर्थात् मङ्गलसाम अदृश्यम्भावो है । कर्मलोचनमें लिखा है, कि रविवारको नया वस्त्र पहननेसे अन्व घन सोमवारको व्रथ तथा मङ्गलवारको नाना क्लेश होता है । फिर विहित दिनमें अर्थात् बुध बृहस्पति और शुक्रवारमें नव वस्त्र पहननेसे यथाक्रम प्रभूत वस्त्र छाम बिधा और वित्त ममागम तथा नाना प्रकारका योगसुख, प्रमेद और शण्यालाग होता है । इन्हे छोड़ कर शमिपारको नववस्त्र कदापि न पहनना चाहिये, पहननेसे रोग, शोक और क्लेश हमेशा हुआ करता है ।

मंडित वस्त्रको क्षारसे परिष्कार करना उचित है । फिर यह क्षार भी दिन कुविन वैश कर काममें छाना होता है । क्योंकि निषिद्ध दिनमें क्षार मिलानेसे वस्त्र स्वामीके सात कुछ दण्ड हो जाते हैं । वस्त्रमें क्षार मिलानेके निषिद्ध दिन ये सब हैं, शनि और मङ्गल, पृथी और द्वापमी तथा धाव्यदिन ।

पराहमिदिरकी बृहत्संहितामें लिखा है, कि वस्त्रक

सभी कोणोंमें, देवनाओंका तथा उसके दशान्त और पाशाशान्तमें नरगणका वास है। अवशिष्ट तीन अंगोंमें निशाचरगण वास करते हैं। नया वा पुराना कपड़ा यदि काली, गोबर वा कीचडसे लित हो अथवा छिन्न, प्रदग्ध वा रफुटिन हो जाय, तो सुपुष्ट, शुभ वा अशुभ फल अल्प, अल्पतर वा अधिक होनेकी सम्भावना है। उत्तर वस्त्र इस प्रकार होनेसे भी उक्त शुभाशुभ फल हुआ करता है। वस्त्रका जो भाग राक्षसाधिकृत है, वह उक्त प्रकारका होनेसे रोग वा मृत्यु होती है। मनुष्य भाग वैसा होनेसे पुत्रलाभ तथा तेजकी वृद्धि एव देवभाग वैसा होनेसे भोगकी वृद्धि होती है। किन्तु प्रान्त भाग यदि वैसा ही हो, तो अनिष्ट होनेकी ही विशेष सम्भावना है।

वस्त्रके देवाधिकृत छिन्न अंगमें यदि कद्दू, पन्व, उन्क, कपोत, काक, कव्याड, गोमायु, खर, उद्र वा सपे तुल्य आकार दिखाई दे, तो पुरुषको मृत्युके समान भय उपस्थित होता है। वस्त्रके राक्षसाधिकृत छिन्न अंगमें छल, ध्वज, स्वस्तिक, वर्द्धमान, श्रीवृक्ष, कुन्द, अश्विज और तोरण आदिका आकार दिखाई देनेसे थोड़े ही दिनोंमें पुरुषोंके लक्ष्मालाभ होता है।

मनुष्य जब नववस्त्र पहनते हैं, तब चन्द्र अश्विनी नक्षत्रगत होनेसे प्रभूत वस्त्रलाभ, भरणीगत होनेसे अपहरण-भय, कृत्तिकागत होनेसे अग्निभय तथा रोहिणी गत होनेसे उन्हें अर्थसिद्धि होना है। इसके सिवा मृगशिरामें मूषिकभय, आद्रा नक्षत्रमें प्राणहानि, पुनर्वसुमें शुभागमन तथा पुष्या नक्षत्रमें धनलाभ होता है। अश्लेषामें विलोप, मघामें मृत्यु, पूर्व-फल्गुनीमें राजभय तथा उत्तर-फल्गुनीमें घनागम होता है। हस्तामें कर्मसिद्धि, चित्रामें शुभागम, स्वाती नक्षत्रमें शुभसौख्यकी प्राप्ति तथा विशाखामें जनप्रियता होती है। अनुराधामें सुहृत् समागम, ज्येष्ठामें वस्त्रक्षय, मूळामें जलप्लावन तथा पूर्वाषाढामें नाना रोग उत्पन्न होते हैं। उत्तराषाढा नक्षत्रमें मिष्ट अन्न, श्रवणामें नेत्ररोग, धनिष्ठामें धान्यलाभ और शतभिषामें विपकृत महाभय उपस्थित होता है। पूर्वभाद्रपदमें जलभय, उत्तर-भाद्रपदमें पुत्रलाभ और रेवतीमें रत्नलाभकी सम्भावना है।

जो उल्लिखित नक्षत्रमें नववस्त्र पहनने हैं, उन्हें उक्त फलाफल हुआ करता है। किन्तु नक्षत्रोंके गुणवर्जित वा अमङ्गलहर होनेसे भी ब्राह्मणकी आज्ञासे उन सव नक्षत्रोंमें नववस्त्र परिधान इष्टफलप्रद होता है। इसके सिवा राजाओंका दिया हुआ वा विवाह विधिलिख्य वस्त्र भोग भी सुफलप्रद माना गया है, कहनेका तात्पर्य यह कि विवाहमें, राजसम्मानमें तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे गुणवर्जित अग्रगस्त नक्षत्रमें भी नववस्त्र पहना जा सकता है। (वृहत्स० ७१ अ०)

वस्त्र दान करनेसे अशेष फल दाना है। शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि वस्त्रदायककर्त्ता चन्द्रलोकमें जाने है।

जो ब्राह्मणोंको उत्तम वस्त्र दान करने हैं, अन्तमें उनके पथ मुर्त्तलिन-श्रीतल तथा वस्त्र भी गन्ध परिपूर्ण होने हैं।

अग्निपुराणके यम और अर्मिलोपाख्यानमें इस वस्त्रदानका पुण्यमाहात्म्य लिखा है; विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर नहीं लिखा गया।

सर्वदेवदेवोंकी पूजामें वस्त्रदान आवश्यक है। किन्तु किस पूजामें कौन वस्त्र विहित वा निषिद्ध है, शास्त्रानुसार वह जान कर यदि देवाद्देवसे दान किया जाय वा उस पहन कर पूजा की जाय, तो प्रकृत पूजाका फललाभ होता है।

अग्निपुराणके क्रियायोग नामक अध्यायमें लिखा है, कि टुकूल, पट्ट, कर्पापेय' बालकल और कापांस आदि प्रिय और सुखकर अच्छे अच्छे वस्त्र द्वारा विष्णुकी पूजा करना होती है।

किन्तु इस विष्णुपूजामें नील, रक्त वा अपवित्र वस्त्र पहनना निषिद्ध है। पूजक यदि नील, रक्त वा अन्यान्य अपवित्र वस्त्र पहन कर विष्णुपूजा करें, तो शास्त्रशासनसे उन्हें अपराधी होना पड़ता है। उस अपराधका विशेष विशेष प्रायश्चित्त कहा गया है। वह प्रायश्चित्त करके पूजक निरपराध वा निष्पाप हो सकते हैं।

बराहपुराणमें भगवान्ने स्वयं कहा है, कि जो व्यक्ति नील वस्त्र पहन कर मेरी पूजा करता है, उसे अन्तमें पांच सौ वर्ष तक कृमि हो कर रहना पड़ेगा। किन्तु इस अपराध जोघनका प्रायश्चित्त है। वह प्रायश्चित्त सिर्फ

आश्रायणमयत है। आश्रायण करनेसे ही वह व्यक्ति उक्त पाप या अपराधसे मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार रक्त वस्त्र पहन कर मो विष्णुपूजादि करना निषिद्ध है। उक्त वराहपुराणमें वृमरी उग्रह लिखा है, कि रक्त वस्त्र पहन कर विष्णुपूजा करनेसे उल्लसला स्थियोंके जो रक्त मोक्षण होता है उस रक्तसे किताबू हो कर उक्त पूजाकर्ता पशुइ वय तक नरकमें बानस करना पड़ेगा। इस अपराध-शोधनका प्रायश्चित्त है—सप्तत्य दिन एकहाद, तीन दिन आयुमक्षण तथा एक दिन जलाहार।

काला वस्त्र पहन कर मो विष्णुपूजादि नहीं करनी चाहिये। करनेसे पूजाकर्ता पहले पांच वय तक पून हो कर जन्म मना पड़ेगा, पीछे कोई काष्ठमहाक बीट, उसके बाहू बीटद बर्ष तक गारावत धानिका भोग करना होगा। इस जन्ममें उक्त व्यक्तिका सित पारावत हो कर किसी प्रतिष्ठित विष्णुविग्रहके पास हो बानस करना पड़ेगा। इस अपराधका प्रायश्चित्त है सात दिन तक याबक भक्षण तथा तीन रात निर्फे तीन जभतुपिच्छ भोजन। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने हीसे उसका पाप दूर होवे।

अपीत वस्त्र पहन कर विष्णुपूजादि करना मना है। इसमें भा अपराध है। अपराधाका उन्मत्त हाथी, ऊँट, गधे, गीबू, घोडे, साकू और मृगयोनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार सात जन्मके बाहू भगवने मनुष्य योनि छाम हीनेसे बह विष्णुमक्त और गुणह हागा। इसीसे उसका अपराध जाता रहैगा। किन्तु इस जन्ममें ही इस प्रकार अपराध-भोचनका प्रायश्चित्त है। भक्ति मुक्त हो कर उसका मनुष्यता करना पड़ेगा। इसका प्रायश्चित्त है तीन दिन याबक भोजन और तीन दिन पिपपाक भोजन। इसके सिवा तीन दिन कणमहू हो कर तथा तीन दिन पायस जा कर बिठाना होगा। प्रायश्चित्त द्वारा पापस्य होने हीसे मुक्तिका पथ उन्मुक्त हो जायगा।

दूसरीका वस्त्र पहन कर मो विष्णुकी पूजा भादि नहीं करनी चाहिये। करनेसे अपराधी होता पड़ता है। इसका ही बर्षों इस अपराधके फलसे इक्षीस बर्ष तक मृग योनिका भोग करना होता है। पीछे एक जन्म रुगडा

उर कर सूर्य और कापत हो कर समय व्यतीत करना होगा। किन्तु इस अपराधसे मुक्ति पानिका प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त करते जामें विष्णुमें अटल भक्ति हो, घोडा भोजन करे। माघ मासके शुक्लपक्षीय द्वाद्शीक दिन क्षान्त, दास्य और क्षिनेन्द्रिय भायसे अनन्यप्रमस विष्णुप्यानमें मग्न हो ज्ञानाय पर अहत्याण करे। पीछे जब रात नीत जाय और सूर्य उदय हों तब पञ्चगव्य खा कर अचिरात् सर्व किचिपसे मुक्त होंगे।

दशाश्वित वस्त्र पहनने की ही विधि है। दशाश्वित वस्त्र अर्धैष है, वह धर्म कर्ममें उपयुक्त नहीं होता। वद्विद्यैय प्रतिग्रह करने पर इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। हारीत कहते हैं, कि "मनिवासोपवादीनां प्रतिग्रहैर्नाविभारपहतं जपेत्।" "अष्टसहस्र अष्टोत्तरसहस्र मिति।" (शुक्तिरत्न)

काष्ठिकापुराणमें लिखा है—कपास, कम्बळ, वरकळ और कौपेयज, ये सब वस्त्र देयोद्देशसे समस्तक पूजा करनेके उरसर्ग करेगे। किन्तु जो वस्त्र दशाश्वित, मलिन, शीर्ष, लिभ, परकीय, मृत्तिकदृष्ट, सूचीविक, व्ययहृत, बेश युत, अपीत किंवा झेष्मा तथा मूलादि द्वारा कृपित हो, बैसा वस्त्र देयोद्देशमें किंवा देव वा पैतृ कर्म उपलक्षण जान करना उचित नहीं। प्रस्तुत ये सब वस्त्र इन सब स्थानोंमें धरज्जल करना ही कर्त्तव्य है।

उक्त पुराणमें दूसरी उग्रह लिखा है—उत्तरीय इतरा र्शंग, निचोल, मोद्घेलक और परिधान नामक पञ्चविध वस्त्र विना सिनारि किये हुए व्यवहार या दान करनेकी विधि है, किन्तु जन्मसुमनिर्मित वज्र, नीशार (मसहरी), भातवर्त, र्शंवातक (स्थियोंको खोलीक कपड़े) एवं कृप अर्थात् वस्त्रमुह, ये सब कपड़े सिनारि किये जाने पर मो कृपित नहीं होते।

इसके अतिरिक्त पताका और अज्जादिमें सिनारि किये हुए कपड़े ही व्यवश्यक हैं।

मिग्न मिग्न देयताकी पूजाके कपड़े मिग्न मिग्न होते हैं। किस देयताको कौन वस्त्र देना होता है, उसके सम्बन्धमें काष्ठिकापुराणमें इस तर्ह लिखा है—

एकवर्ण कौपेय वस्त्र महादेवीको देना प्रशस्त है, इसी तर्ह पीतधर्म कौपेय वस्त्र वासुदेवीको, लाल कम्बळ

शिवको एवं विचित्र चित्रयुक्त वस्त्र सब देवदेवियोंको अर्पण किया जा सकता है। इसके अलावे सूती कपडा भी सभी देवताओंको चढाया जा सकता है। जो कपडा बिल्कुल ही लाल रंगका हो, उन्हे वसुदेव तथा शिवको अर्पण करना निषिद्ध है। नील और रक्तवर्णमिश्रित वस्त्र सर्वत्र ही निषेध माना गया है। देव और पौत्रकर्मोंमें विघ्न व्यक्ति उसे बिल्कुल ही व्यवहारमें नहीं लावेगा। जो विघ्न हो कर भी प्रमाद्वश नील और रक्तवर्ण वस्त्र विष्णुकी पूजामें समर्पण करेंगे, उन्हें उस पूजाका कोई भी फल प्राप्त न होगा। विचित्र वस्त्र नील वर्ण होने पर, वह एकमात्र महादेवी-देवीको चढाया जा सकता है। इनके सिवाय दूसरे किसी भी देवताके उद्देशमें अर्पण करना निषिद्ध है। द्विपदके मध्य जिस-तर्ह ब्राह्मण हैं एवं देवताओंके मध्य जिस तरह वासव हैं, उन्ही तरह भूपणोंके मध्य वस्त्र ही प्रधान है। वस्त्रके द्वारा लज्जा निवारण होती है, वस्त्र पापोंको नाश करनेमें समर्थ होता है, वस्त्र द्वारा सर्वसिद्धि प्राप्त होती है एवं वस्त्र चारों फलोंका देनेवाला है।

आसन, वसन, शय्या, जाया, अपत्य और कमण्डल ये कई एक वस्तुएं अपने ही द्वारा पवित्र रक्षी जा सकती हैं। ये सब चीजें दूसरेके हाथोंमें पडनेसे ही अपवित्र हो जाती हैं। कपडे यदि कुछ धोये गये हों, वा स्त्रियोंके द्वारा साफ किये गये हों, किंवा धोवी द्वारा धोये गये हों और जब वे कपडे सुखनेके लिये दक्षिण पश्चिमकी ओर पसार गये हों, तब उन्हें अर्थात् ही समझना चाहिये अर्थात् इस तरह कपडे अपवित्र ही रह जाते हैं।

( कर्म्मलोचन )

धोये हुए कपडे पूर्व-उत्तरकी ओर पसारना चाहिये, पश्चिम वा दक्षिणकी ओर पसार कर सुखाये गये कपडे फिरसे धोये जाने पर पवित्र होते हैं।

प्रचेता कहते हैं, कि विघ्न व्यक्ति अपने हाथसे ही कपडे धो कर किसी धर्मकार्यमें व्यवहार करेगे। धोवी से धोये गये कपडे वा बिल्कुल ही अर्थात् वस्त्रसे कभी धर्मक्रिया नहीं करेंगे। किन्तु दूँ, पुत्र, मित्त, फलत्त, अन्यान्य स्वजाति, वन्धुवान्धव वा भृत्य-र्थात् वस्त्र अपवित्र नहीं होता।

स्नान करनेके बाद मस्तकके जलापनयनके लिये ढीला ढाला साफा बाँधना चाहिये। स्यूत, दाघ, मूर्पिको-त्कीर्ण, जीर्ण तथा दूसरेका वस्त्र पहन कर धर्मकार्य नहीं करना चाहिये।

झानो लोग किंचित् रक्तवर्ण, अत्यन्त रक्तवर्ण, नीलवर्ण, मलपूर्ण वा दशाहीन वस्त्रोंका त्याग करेगे।

किन्तु आचाररत्नमें लिखा है, कि अमावाचस्थामें दशाहीन वस्त्रसे भी धर्मकर्म किया जा सकता है।

दूसरोंके पहने हुए तथा लाल, मलिन वा दशाहीन कपडेका व्यवहार निषेध है। केवल ज्येष्ठ वस्त्र ही यत्नके साथ धारण करना चाहिये। शक्ति रहते जीर्ण वा मलिन वस्त्र कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये।

स्नान करनेके बाद अङ्गिन्न वस्त्र धारण करना चाहिये। अर्थात् कपडेके अभाव रहने पर शन शौम, आचिक, नेपालदेशीय कम्बल किंवा योगपट्ट धारण करेंगे। मोटा मोटी बात यह है, कि इन सब कपडोंमेंसे किसी एक कपडेके पहन कर द्वितीय वस्त्रधारी होना पड़ेगा। अर्थात् कपडा पहन कर नित्य नैमित्तिक क्रिया करनेमें कोई फल नहीं होता एवं अर्थात् कपडा पहन कर दान करनेसे भी निष्फल होता है।

स्नान करनेके बाद तर्पण घिना किये हुए ही गीले कपडेका जल निचोडना नहीं चाहिये। जावालिन कहते हैं, कि तर्पणके पहले जो व्यक्ति स्नानके गीले कपडेका जल निचोडता है, उसके पितृगण देवताओंके साथ निराश हो कर चले जाते हैं।

स्नान करनेके उपरान्त भीगे हुए कपडेसे जो व्यक्ति मल वा मूत्र त्याग करेगा, वह तीन बार प्राणायाम करके फिरसे स्नान करने पर शुद्ध होगा। गोला कपडा सर्वथा पहने रहना निषेध है। आठ वस्त्र भी सात बार वाताहत करनेसे शुद्ध हो जाता है।

सक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी एवं श्राद्धके दिनमें वस्त्रनिष्पीडन वा धारयुत वस्त्र धारण करना निषेध है।

वस्त्रक ( स० क्ली० ) वस्त्र, कपडा।

वस्त्रकुट्टिम ( स० क्ली० ) वस्त्रनिमित्त कुट्टिममिय। १ छत्र,

छाता । यत्नस्य कुट्टिमं क्षुद्रगृहं । २ यत्ननिर्मितं गृहं, नेमा ।

यत्नकुल—शिक्षाभिवृद्धि-वर्णितं राजमेव ।

यत्नगृह (स० ह्री०) यत्ननिर्मितं गृहं । यत्ननिर्मितं शाळा, नेमा । पर्याय—पटयास पटमय, दुग्ध, स्थल ।

यत्नप्रिय (स० पु०) यत्नस्य प्रियः । नाभो, नाङ्गा, इन्द्रारवम् ।

यत्नपर्ययी (स० स्त्री०) यत्ननिर्मिता पर्ययीव । वाद्य यत्नप्रियेण, एक प्रकारका बाजा ।

यत्नस्थान (स० लि०) परिपुत्र वास, यत्नागृह ।

यत्नद (स० लि०) यत्नदानकारी, कपड़ा देनवाला ।

यत्नदा (स० स्त्री०) कपड़ा देनेवाली ।

यत्नदानकथा (स० ह्री०) वासदान कपड़ा देना । यह कथा पुण्यजनक है । सूर्य और चन्द्रग्रहणमें अन्न और वस्त्र दान करनेसे ये कुण्ड छाने होते हैं ।

यत्ननिर्मोचिक (स० पु०) यत्नभोतकारी, घोषी ।

यत्नप (स० पु०) १ एक भाषिका नाम । (मातृ १११।१५) २ एक शोध । इसका नाम पुराणमें 'यत्नापय क्षेप' मिलता है । यह आम कलका गिरनार है जो शुद्धरातमें है । ३ दैवत, ऊन तथा सब प्रकारके घस्तीको पहचानने और उनके भाव आदिका पता रखनेवाला राजकुमधारो ।

यत्नपम्पुल (स० पु०) कोलकम् ।

यत्नपरिधान (स० ह्री०) १ वेशसज्जा । २ कपड़ा पहनना ।

यत्नपुस्तिका (स० स्त्री०) यत्ननिर्मिता पुस्तिका पुस्तिका ।

यत्ननिर्मित पुस्तिका, कपड़े का पुस्तिका ।

यत्नपूत (स० लि०) यत्न द्वारा परिष्कृत, कपड़े से छाना हुआ ।

यत्नवेश (स० स्त्री०) यत्न द्वारा वेशित ।

यत्नवन्ध (स० पु०) नाथी ।

यत्नमयन (स० पु०) कपड़े का बना हुआ घट, नेमा ।

यत्नभूयन (स० पु०) १ पटयान । २ रत्नाञ्जन । ३ साङ्ग-च्छद वृक्ष ।

यत्नभूयना (स० स्त्री०) यत्नस्य भूयणं रागो यस्याः । मञ्जिष्ठा, मञ्जीठ ।

यत्नमयि (स० पु०) तस्कर, चोर ।

यत्नयुगल (स० ह्री०) परिष्कृतय, जोड़ा कपड़ा ।

यत्नयुगिन् (स० लि०) युगलवस्त्रधारो, जो कपड़ा पहननेवाला ।

यत्नयुग्म (स० ह्री०) यत्नस्य युग्मं । यत्नयुग्म जोड़ा कपड़ा ।

यत्नयोनि (स० स्त्री०) यत्नस्य योनिरुत्पत्तिकारणं । यत्नोत्पत्तिकारण, सूत आदि विससे कपड़ा बाना जाता है ।

यत्नरङ्गा (स० स्त्री०) केशवर्तकी ।

यत्नरञ्जक (स० पु०) कुसुम वृक्ष ।

यत्नरञ्जन (स० पु०) रामयतोति राज-जिष्-सुपुट् यत्नानां रञ्जनः । कुसुम वृक्ष ।

यत्नरञ्जनी (स० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मञ्जीठ ।

यत्नरागपूत (स० पु०) नील होचकसोस ।

यत्नवत् (स० लि०) यत्न अस्त्यर्थं मनुष्यं मस्य व । यत्नवशिष्ट ।

यत्नविलास (स० पु०) यत्नेण विलासः । कपड़ा द्वारा विलास, उत्तम यत्न पहन कर गर्व करना ।

यत्नवेश (स० पु०) यत्नगृह, नेमा ।

यत्नवेशन (स० ह्री०) यत्नस्य वेशनं । कपड़े का पहननेमा ।

यत्नवेशित (स० लि०) यत्नेण वेशितः । यत्न द्वारा भाष्यार्थित ।

यत्नागार (स० पु०) १ यत्नगृह, नेमा । २ कपड़े का दूकान ।

यत्नाञ्जल (स० ह्री०) कपड़े का एक छोटा ।

यत्नास्त (स० पु०) कपड़े का नागें कोना ।

यत्नास्तर (स० ह्री०) मन्थन् यत्नः । अपर यत्न, दूसरा कपड़ा ।

यत्नापधरीक्ष (स० ह्री०) एक प्राचीन और पवित्र तीर्थ स्थान । महामारतमें यह स्थान 'यत्नाप' कह कर उक्त है । इसका वर्तमान नाम गिरनार है । यहाँ भव और अज्ञानी की मूर्ति विराजित हैं । (१० मीस २४) कान्दक आगर भीर प्रतामलरश्मि इस शीतका माहात्म्य वर्णित है ।

उत्तमन्त नेमा ।

यत्नापहारक (स० पु०) कपड़ा बुननेवाला ।

वस्त्रापहारिन् ( सं० पु० ) वस्त्रापहारक देखो ।  
 वस्त्रार्द्ध ( सं० क्ली० ) वस्त्रका अर्द्धांश ।  
 वस्त्रार्द्धं प्रावृत ( सं० त्रि० ) अर्द्ध वस्त्राच्छादित ।  
 वस्त्रावकर्त्त ( सं० पु० ) वस्त्रखण्ड, कपडेका टुकडा ।  
 वस्त्रिन् ( सं० त्रि० ) १ वस्त्रयुक्त, जो कपडा पहने हुए हो । २ उज्ज्वल ।  
 वस्त्रोत्सर्पण ( सं० क्ली० ) वस्त्रत्याग, कपडा छोडना ।  
 वस्न ( सं० क्ली० ) वस निवासे आच्छादने वा ( धाप्रवत्य-  
 व्यतिभ्यो नः । उण् ३।६ ) इति करणादी यथायथं न ।  
 १ वेतन । २ मूल्य । ३ वसन । ४ द्रव्य, चीज । ५ धन ।  
 ६ प्रभृति, आदि । वस्त्रे आच्छादयति शरीरमिति कर्त्तारि  
 न । ७ त्वक्, वल्कल, छाल ।  
 वस्नक ( सं० क्ली० ) कटीभूषण, कण्ठनी ।  
 वस्नसा ( सं० स्त्री० ) वरनं चर्म सीव्यति वस्न-सिय उ,  
 स्त्रियां टाप् । स्नायु ।  
 वस्निक ( सं० त्रि० ) वस्नेन जीवति ( वस्नक्यविक्रयाट्ठन  
 पा ४।४।३३ ) वस्न-ठन् । वस्नद्वारा जीविकानिर्वाहकारी,  
 नौकरी कर अपनी जीविका चलानेवाला ।  
 वस्न्य ( सं० त्रि० ) वस्नं मूल्यं तदर्हति यत् । मूल्याहं,  
 मूल्यके योग्य । "जरतो वस्न्यस्य नाह विदामि" ( ऋक्  
 १०।३४।३ ) 'वस्न्यस्य वस्नं मूल्यं तदर्हन्व' (सायण)  
 वस्फ ( सं० पु० ) प्रशंसा, स्तुति । २ गुण, सिफत । ३  
 विशेषता ।  
 वस्मन् ( सं० क्ली० ) वस्त्र ।  
 वस्य ( सं० त्रि० ) १ धनवान् । २ सौन्दर्यशाली । ३ मूल्य-  
 चान् । ४ यशःशाली ।  
 वस्यइष्टि ( सं० स्त्री० ) जीवनप्राप्ति । "पतन्ति वस्यइष्टये"  
 ( ऋक् १।२।१४ )  
 वस्योभूय ( सं० क्ली० ) बहुधन । ( अथर्व १६।६।४ )  
 वस्त्रि ( सं० अव्य० ) क्षिप्रभावसे ।  
 वस्त्र ( सं० पु० ) १ दो चोर्जोंका आपसमें मिलना, मिलन ।  
 २ सयोग, मिलाप, विशेषतः प्रेमी और प्रेमिकाका  
 मिलाप ।  
 वस्त्रन्त ( सं० पु० ) उपगुप्तके पुत्र मिथिलाके एक राजा-  
 का नाम । ( भाग० ६।१३।२५ )

वस्त्रो ( सं० स्त्री० ) १ अति सुन्दर, बडा खूबसूरत । २  
 प्रशंसाके योग्य ।  
 वस्त्रोक्तसारा ( सं० स्त्री० ) वस्त्रोकेपु रत्नाकरेपु सारा । १  
 इन्द्रपुरी । २ इन्द्रनदी । ( भारत ३।१८।१०१ ) ३ गङ्गा ।  
 ४ कुवेरपुरी । ( भारत ७।६५।१५ ) ५ कुवेरनदी । ( हम )  
 वस्त्रवाड—वम्बई प्रेसिडेन्सीके सौराष्ट्र प्रान्तस्थ एक  
 छोटा सामन्त राज्य । अभी यह छोटे छोटे अंशोंमें  
 विभक्त हो गया है । राजस्व बीस हजार रु० है जिसमेंसे  
 ७६६ रु० अगरेज सरकारको देना पडता है । इस  
 सम्पत्तिके मध्य चार गाँव प्रधान हैं । भू परिमाण ६८  
 वर्गमील है ।  
 वहङ्कित ( सं० त्रि० ) १ ककुदलेहनकारी, कुचूबड चारने-  
 वाला । ( पु० ) २ वृष, बैल, साँढ ।  
 वह ( सं० पु० ) वहति युगमनेनेति वह ( गोचरसञ्ज्ञेति ।  
 पा ३।३।१६ ) इति अपत्ययेन साधु । १ वृषस्कन्ध प्रदंश,  
 बैलका कंधा । वहतीति वह-अच् । २ घोटक, घोडा ।  
 ३ वायु । ४ पथ, मार्ग । ५ नद । ( त्रि० ) ६ वाहक, बोझ  
 उठा कर ले जानेवाला ।  
 वह ( हिं० सर्व० ) १ एक शब्द जिसके द्वारा दूमरे  
 मनुष्यसे बातचीत करने समय किसी तीमरे मनुष्यका  
 संकेत किया जाता है, कर्त्तृकारक प्रथम पुरुष सर्वनाम ।  
 जैसे,—तुम जाओ, वह आता है । २ एक निर्देशकारक  
 शब्द जिससे दूरकी या परोक्ष वस्तुओंका संकेत करते  
 हैं । जैसे,—यह और वह दोनों एक ही हैं ।  
 वहत ( सं० पु० ) वहतीति वह-अतच् । १ वृष, बैल । २  
 पान्थ, मार्ग ।  
 वहतान्त्री ( सं० स्त्री० ) छागलाक्षी क्षुप । वैद्यकमें यह पीघा  
 कटु तथा कासरोगनाशक और शुकवर्द्धक कहा गया  
 है । इसका पर्याय—वृषगन्ध्रा, मेपान्त्री, वृषपत्रिका ।  
 वहति ( सं० पु० ) वहतीति वह- ( वहि-वस्थित्तिभ्यश्चित् ।  
 उण् ५।६० ) इति अति । १ वायु । २ गो, गाभी ।  
 ३ सन्निव ।  
 वहती ( सं० स्त्री० ) वहति बाहुलकात् डीप् । नदी ।  
 वहतु ( सं० पु० ) वह ( क्रोधिवहोश्चतुः । उण् १।७६ )  
 इति चतु । १ पथिक, घटोही । २ वृषम, बैल । ३ दहेज ।  
 ४ विवाह । ( त्रि० ) ५ वहनकारक, ढानेवाला ।

वहन (सं० ह्री०) उद्यतेऽनेनेति वह-करणे ऋट् । १ डोड, तरेवा बेडा । २ शीव कर अथवा सिर या कंचे पर साह कर एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना । ३ ऊपर छेता, उठाना । ४ कंचे या सिर पर छेगा । ५ लम्बेके नौ मार्गोंमेंसे सबसे नौवेका मार्ग । (त्रि०) ६ बाहर, दोनेबाह्य ।

वहनमङ्ग (स० पु०) १ टूटो हुई नाथ । २ वहननिवृत्ति । वहनीय (स० त्रि०) १ वह मनीयर । १ उठा या खींच कर ले जाने योग्य । २ ऊपर छेने योग्य ।

वहन्त (स० पु०) वहति चातीति यह (तुमूवहिवीति) । उष्य, १।२।२८ इति श्रप् । १ बायु । उरुले इति क्मणि श्रप् । २ बाहक ।

वहम (स० पु०) १ बिना स बन्धक शिष्टका किसी बात पर जाना, मिथ्या धारणा, झूठा जवाब । २ झम । ३ धर्यकी शंका, मिथ्या सदेह, फलसूक्त शक ।

वहमी (स० वि०) १ वृथा स देह द्वारा उत्पन्न, झम श्रय । २ वहम करनेवाला जो अथ सदेहमें पड़े, किसी बात में समझमें जो व्यव मल्ला बुरा मोचे । ३ झूठे जवाब में पडा रहनेवाला ।

वहम् (स० पु०) उद्यतेऽनेनेति यह वाह्यकात् मरुध् । १ नौका, नाव । (त्रि०) २ डूढ़, मज्जत ।

वहसगन्ध (स० ह्री०) वहसा प्रसुरो गन्धो यस्य । शम्बर चम्बन ।

वहसक्तसु (स० पु०) वहसक्ति प्रभुराणि चसु नोच पुत्राण्यस्य । मियट्टुनो, मिट्टासीगो ।

वहनत्पम् (स० पु०) वहसा दुहास्त्वचा वरुच्छं यस्य । श्वेत छोध सफेद छोध ।

वहसा (स० स्त्री०) वहलानि प्रभुराणि पुण्यानि सन्त्यस्या इति, अर्थे भावित्वाच् । १ शत्रुपुत्र । २ स्थूलीसा, बड़ो इहाययो । ३ शीपक रागकी एक रागिनीका नाम ।

वहशत (स० स्त्री०) १ अ गलोपन, असम्पत्ता, वर्धरता । २ पागलपन, बाबसापन । ३ उग्ररूपन ४ विकल्पता, प्रवराहट । ५ बरावनापन । ६ शिष्टके अ बसना, मधीरता । ७ वहस पहन या रौतक न होना, सञ्जापन, उदासी ।

वहशी (स० त्रि०) १ अ गलमें रहनेवाला, अ गलो ।

२ असम्पत् । ३ जो पाबत् न हो, जो भावियोंमें रहना न जानता हो । ४ मज्जनेवाला ।

वहाँ (हि० अर्थ०) उस जगह, उस स्थान पर । जैसे— यहाँ का प्रयोग पासके स्थानके लिये होता है, जैसे ही इस शब्दका प्रयोग दूरके स्थानके लिये होता है ।

वहा (स० स्त्री०) वहतीति यह अच् टाप् । नदी ।

वहाबो (स० पु०) मुसलमानोंका एक सम्प्रदाय जो अशुभ वहाब नस्लीका जलाया हुआ है । अशुभ वहाब शरके नस्द् नामक स्थानमें पैदा हुआ था । यह मुहम्मद साहबके सन्ध्यापदकी अशोकार करता था । इन मठके अनुयायी किसी ब्याक या स्थानके लिये प्रतिष्ठा नहीं करते । अशुभ वहाबने अनेक मसजिदों की रचना की थी। अशुभ वहाबने अनेक मसजिदों की रचना की थी। अशुभ वहाबने अनेक मसजिदों की रचना की थी।

वहाबकी तीर्थ-फौज डाला और मुहम्मद साहबकी शपथ को मो तोड़ कर फेक देना चाहा था । इस मठके अनुयायी शर और फारसमें अधिक हैं ।

वहिर (स० अर्थ०) जो अ दर न हो, बाहर । हिन्दीमें इस शब्दका प्रयोग अनेके नदी होता, समस्तकाममें होता है । जैसे—यहिराव, वहिरावर, वहिरावर इत्यादि ।

वहिरावर (स० पु०) वहिरावरों चरतीति चर-ट । कुलीर, क कडा ।

वहिराव (स० पु०) बाहरका जातकता ।

वहिराव (स० अर्थ०) १ बाहरता । २ वहिरामनुष्य । वहिराव (स० त्रि०) बाहरमें अस्थित । वहिराव (स० त्रि०) वहिराव, बाहरकी ओर । वहिराव (स० त्रि०) अबाहोपतेऽप्येति अय घो-क, अय स्याता सीपा । १ अयस्थित । २ क्यात, प्रसिद्ध । ३ मास । ४ हलचहन ।

वहिराव (स० ह्री०) वहति द्रव्याप्येति वह (अशुवादिभ्य इणेनी) । उष्य, ३।२।२। इति हल । नौका, नाव ।

वहिराव (स० ह्री०) वहिराव अर्थे बन् । अस्मान, नाव, अहास ।

वहिराव (स० पु०) टूटो हुई नाथ ।

वहिराव (स० त्रि०) वहलशील ।

वहिनो (स० स्त्री०) नौका, नाव ।

वहिराव (स० पु०) १ शरीरका बाहरीभाग, वहका बाहरी हिस्सा । २ दरवाजा । ३ अगम्यक ब्याक, कड़ी बाहर



से आया हुआ आदमी । ४ वह जो किसी वस्तुके भीतरी तत्त्वको न जानना चाहता हो । ५ वह मनुष्य जो अपने ढल या मंडलीका न हो, वायवा आदमी । ६ पूजामें वह कृत्य जो आदिमें किया जाय । ( त्रि० ) ७ वहिमन्त्रभी, ऊपर ऊपरका, बाहरका । ८ अनाद्य प्रकीय, फालतू । ९ जो स्वरूप न हो, जो भीतरीतत्त्व न हो ।

वहिरङ्गता ( सं० स्त्री० ) वहिरङ्गका भाव या धर्म ।

वहिरङ्गत्व ( सं० क्ली० ) वहिरङ्गता देखो ।

वहिरन्ते ( सं० अव्य० ) वहिर्माणमें, नगरके बाहरके प्रान्तमें ।

वहिरगल ( सं० पु० ) दरवाजेके बाहरका अरगल ।

वहिरर्थ ( सं० पु० ) बाह्यभाव ।

वहिरिन्द्रिय ( सं० स्त्री० ) १ कर्मेन्द्रिय । २ बाह्यकरण भात, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय ।

वहिरगत ( सं० त्रि० ) १ जो बाहर गया हो, निकला हुआ, बाहरका । २ शरीरके चमड़े पर स्फोटकादिका आविर्भाव या रोगविशेषका उन्मेष ।

वहिरगमन ( सं० क्ली० ) किसी कामके लिये घरसे बाहर जाना ।

वहिरगामिन् ( सं० त्रि० ) बाहर जानेवाला ।

वहिरिगिरि ( सं० पु० ) पर्वतके अपर पार्श्वका जनपद ।

वहिरिर्गहं ( सं० अव्य० ) घरके बाहर ।

वहिरिर्गाम् ( सं० अव्य० ) गांवके बाहर ।

वहिरिर्देश ( सं० पु० ) १ विदेश । २ बाहरका स्थान । ३ अज्ञात स्थान । ४ द्वार, दरवाजा ।

वहिरिर्द्वार ( सं० क्ली० ) वहिःस्थ द्वारं । तोरण, बाहरी फाटक, सडर फाटक ।

वहिरिर्द्वारप्रकोष्ठक ( सं० पु० ) वहिरिर्द्वारस्य प्रकोष्ठकः । घरके द्वारका बाहरी प्रकोष्ठ, पर्याय—प्रथाण, प्रथण, अलिन्द ।

वहिरिर्ध्वजा ( सं० स्त्री० ) डुगा ।

वहिरिर्निसारण ( सं० क्ली० ) वहिरिर्गमन, बाहर जाना ।

वहिरिर्भव ( सं० त्रि० ) बाह्य प्रकृति ।

वहिरिर्भवन ( सं० क्ली० ) १ वहिरागमन, बाहर होना । २ बाहरका घर ।

वहिरिर्भाव ( सं० त्रि० ) बाह्यभाव ।

वहिरिर्भूत ( सं० त्रि० ) वहिस्-भू-क्त । वहिरिर्गन

वहिरिर्भनस ( सं० त्रि० ) १ बाह्य । २ मनके बाहर ।

वहिरिर्भुग् ( सं० त्रि० ) वहिरिर्वाह्यविषये भुग्ं प्रणता यस्य । विमुत्र ।

वहिरिर्वाता ( सं० क्ली० ) १ तीर्थगमन या विदेशयात्रा । २ युद्धार्थगमन, लडाईके लिये जाना ।

वहिरिर्वात ( सं० क्ली० ) वहिरिर्वाता देखो ।

वहिरिर्वाति ( सं० त्रि० ) बाहरमें वद्ध या उस अवस्थामें रक्षित ।

वहिरिर्वाग ( सं० पु० ) १ दृष्टयोग । २ एक ऋषिका नाम ।

वहिरिर्लम्ब ( सं० पु० ) रेखा-गणितमें वह लम्ब जो किसी क्षेत्रके बाहर बढ़ाए हुए आधार पर गिराया जाता है ।

वहिरिर्लापिका ( सं० स्त्री० ) कोई ऐसा टेढ़ा वाक्य या प्रश्न जिसका उत्तर बनलानेके लिये श्रोतासे कहा जाय, पहली । पहलियाँ दो प्रकारकी होती हैं । जिनके उत्तरका शब्द पहलीके वाक्यके अन्दर ही रहता है, वे अन्तर्लापिका और जिनके उत्तरका पूरा शब्द पहलीके अन्दर नहीं होता वे वहिरिर्लापिका कहलाती हैं ।

वहिरिर्लक्षिन् ( सं० त्रि० ) बाहरमें अवस्थित ।

वहिरिर्वासस् ( सं० क्ली० ) अङ्गना ।

वहिरिर्वािकार ( सं० पु० ) १ बाह्यभावका वैपरीत्य । २ विद्वताङ्ग । ३ उपदेश ।

वहिरिर्वािसि ( सं० स्त्री० ) वह जिसकी बाह्य द्रव्य ही आकृष्टि या वाद्य पदार्थ ही कर्म ही ।

वहिरिर्वाेदि ( सं० स्त्री० ) १ वेदिका वहिरिर्देश । २ यावन्तोय वेदिका वहिरिर्माण ।

वहिरिर्वाेदिक ( सं० त्रि० ) वेदिके वहिरिर्देशमें निष्पन्न ।

वहिरिर्वाेसन ( सं० क्ली० ) १ लाभपट्ट, २ घरके बाहर या गुरुजनके अन्तरालमें दत्त कुकर्मादि ।

वहिरिर्वाेसनिन् ( सं० त्रि० ) १ उच्छृङ्खल युवक । २ लंपट ।

वहिरिर्वाेचर ( सं० पु० ) वहिर्वाेचरतीति चर-ट । १ कर्कट, केकड़ा । ( त्रि० ) २ वहिर्वाेचरणशील ।

वहिरिर्वाेक ( सं० त्रि० ) बाह्य, बाहरका ।

वहिरिर्वाेकरण ( सं० क्ली० ) १ बाह्येन्द्रिय, बाहरकी इन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पाँच कर्मेन्द्रियां । मन या अन्तःकरणको भीतरकी इन्द्रिय कहते हैं । २ विताडन, डर करना ।

बहिष्कार (स० पु०) विताडन दूर करना।  
 बहिष्कार्य (सं० लि०) १ स्थापनोपयोगी, छोड़नेके लायक।  
 २ ताडनीय।  
 बहिष्कुरीशर (स० पु०) कर्षट, केकड़ा।  
 बहिष्कृत (सं० लि०) १ विताडित बाहर किया हुआ।  
 २ परित्यक्त, स्थापना हुआ, अलग किया हुआ। ३ पादा रूपसे प्रदर्शित।  
 बहिष्कृत (सं० स्त्री०) बहिष्कार।  
 बहिष्कृत्य (स० लि०) पवित्ररूपवर्जित, जो शास्त्र बधित धर्म-कर्ममें अथवा पश्चादि क्रियामन्वयानमें अपने समामसे निषिद्ध या स्वाधिकाररहित हो।  
 बहिष्क्रिया (स० स्त्री०) धर्मकर्मका बहिष्कार।  
 बहिष्गन् (स० अर्थ०) बाहरस्थित बाहरमें।  
 बहिष्ग (स० लि०) यहूतारवाही अधिक भार उठाने काका।  
 बहिष्पर (स० स्त्री०) गालपरमेन्द्र, शरीरका एक प्रकारका कपड़ा।  
 बहिष्पाकार (स० पु०) दुर्गाका बाहरी प्राचीर।  
 बहिष्पाप (स० पु०) १ अयोग्य। २ अयस वायु।  
 ३ प्राण तुल्य प्रिय वस्तु। ४ अर्थ।  
 बहिष् (स० अर्थ०) धारा।  
 बही (हि० अर्थ०) उम्मी न्याय पर उसी अग्रह। जब वहाँ जम्बू पर जोर होता है, तब 'ही' लानेके कारण उस का यह रूप हो जाता है।  
 बही (हि० अर्थ०) १ उस दुर्गीय व्यक्तिकी ओर निश्चित रूपसे संबोधित करनेवाला सधनाम जिसके सम्बन्धमें कुछ कहा जा चुका हो पूर्वोक्त व्यक्ति। जैसे—यह बही आदमी है जो बल आया था। २ निर्दिष्ट व्यक्ति, अर्थ बही। जैसे—जो पढ़े बही पढ़ूँगेगा बही इनाम पायेगा।  
 बहायस (स० लि०) भति विपुल।  
 बदीव (स० पु०) १ गिरा, रक्तवाहितो गाड़ियोंका एक धर्म। २ स्नायु। ३ मांसधेनी पुद्दा।  
 बहुराज—बाँकुटा जिम्माक अलगत एक प्राचीन स्थान।

यह बाँकुटा नगरमें १२ मील दूर वारिकेश्वर नदीके दक्षिणे तट पर अवस्थित है। यहाँके मियेश्वरका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मन्दिर नाना प्रकारके शिल्पाचारतुर्पणके साथ परचरोंका बना है। मन्दिरस्थ शिवलिङ्ग देखनेसे यहाँ शैवधर्मको प्रधानता अनुभूत होत पर भी मन्दिरगतस्थ उल्लेख जैनमूर्तियोंको निरीक्षण करनेसे मालूम पड़ता है, कि प्राचीनकालमें यहाँ जैनधर्मका विद्येय प्राबुल्व था। इस समय उस समय दायके प्रतिष्ठित मन्दिर तथा मठादिकी दीवारोंका चिह्न तक बिलुप्त हो गया है, सिर्फे यत्नपूर्वक रखी हुई उनकी मूल प्रतिमूर्तियाँ बर्तमान मन्दिरोंकी दीवारोंमें लगाई गई हैं। इनके अलावे मन्दिरगतमें दशमुक्ता तथा गणेश का मूर्तियाँ भी हैं।

इस मन्दिरके सामने एक, चारों कीर्णों पर चार पक्ष अन्य तीन दिशाओंमें सात छोटे छोटे मन्दिर सुन स्तित हैं।

बहुरक—स न्यायो सम्प्रदायवेद। सूत्रसंहितामें कुटी लक्ष, बहुरक दस तथा परमहंस नामक चार प्रकारके स न्यासियोंका विवरण दिया गया है। बहुरक साँव वायिकामय स न्यास धारण करनेके बाद ही बन्धु पुत्रादि का परित्याग करके सिद्धार्थ द्वारा अपने मौयिका चलायगे। ये एक गुरुस्थके घरका मात्र प्रद्वय नहीं कर सकते, उन्हें सात गुरुस्थोंके गुरुमें सिद्धा लेनी होगी। योपूछन बजाकी डेरों द्वारा पद तिष्ठ शिष्य, गुरुपूजापत्र, कीर्ण, पत्रपत्रु गान्धापत्रम कन्धा पात्रुका, स्रत, पावतधर्म, सूधा, पक्षिणा, रुद्राक्षमाला योगपत्र, बहिर्वास जलित तथा ह्याप ये प्रद्वय कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त वे सारे शरीरमें मन्मथेपन पथं त्रिपुण्ड्र, निगा तथा यज्ञपदान धारण करेंगे। ये वेदाध्ययन तथा देयताराधनामें रत हो कर पय सर्वज्ञा वेदुकी बातोंका परित्याग करके अपने इष्टदेवकी शि ता में मूल रहेगे। सम्बन्धाक समय इष्ट गायत्रीका जप करके अपने धर्मोचित त्रिपालुष्ठान करना चाहिये।

बहुरक लोग स न्यासियोंक सबकार्य पूर्य देयता महादेवकी हो उपासना किया करते हैं। निरपन्नाल

गौचाचार तथा अभिध्यान करना उन लोगोका प्रधान कर्त्तव्य है। वे वाणिज्य, काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, दर्प प्रभृतिके वशवर्त्ती न होवे, क्योंकि इससे उनके आचरित धर्ममें व्याघात पहुँच सकता है। वे चातुर्मास्यका अनुष्ठान किया करते हैं। इस सम्प्रदायके सन्त्यासिगण मोक्षामिलायी होते हैं। मृत्युके बाद इन सन्त्यासियोंकी मृतदेहको जलमें मसा देते हैं।

वहेड़ क ( सं० पु० ) विभोतक वृक्ष, वहेडेका पेड़।

वहेलिया—उत्तर-पश्चिम भारतवासी व्याध जाति। पौराणिक किम्बदन्तीके अनुसार नापितके औरस द्वारा अग्नि-चारिणी अहोरिनके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई है। षड्गाल की दुसाधजातिके साथ इन लोगोका खान पान चलता है एवं ये दोनों जातियाँ परस्पर एक मूलवृक्षकी विभिन्न शाखा कह कर अपना परिचय देती हैं, किन्तु वाम्नायक में सामाजिक विवाहादि बन्धनसे आवद्ध नहा है। कोई कोई वहेलिया अपनेको फारसी जातिका दल धतलाने हैं एवं पश्चिमाञ्चलके वहेलिया लोग भीलजातिसे अपनी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

इस श्रेणीके वहेलिया लोग अपना पक्ष समर्थन करनेके लिये कहते हैं, कि उन लोगोके आदि पुरुष सुविस्थित वाल्मीक वन्दा जिलेके चित्तकुट पर्वतरा परित्याग करके अपने दलबलके साथ इस देशमें आ कर बस गये। उस दिनसे वे लोग उसी अञ्चलमें व्याधवृत्ति अवलम्बन कर वास करते थे। भगवान् कृष्णने मथुराधाममें उन लोगोको वहेलियाके नामसे अभिहित किया। मिर्जापुरवासी वहेलिया लोग कहते हैं, कि श्रीरामचन्द्र पञ्चवटामे वास करनेके समय एक स्वर्णमृगको घूमते देख कर भ्रमसे उस रावणानुचर मारीचरूपी मायामृगके पोछे दाड़े। जब मारीचकी छलनासे सीता हरी गई, तब भगवान् श्रीरामचन्द्र क्रोधोन्मत्त हो कर इधर उधर घूमने हुए अपने दोनों हाथोंको बार बार मलने लगे। उससे शीघ्र ही हाथोंके चमड़ेसे मैल बाहर हुआ। उसी मैलसे मनुष्यरूपी एक वीर पुरुष पैदा हुआ, भगवान् रामचन्द्रने उसे अपना सहयोगी शिकारीरूपमें नियुक्त किया। उसीके वंशधर पीछे वहेलियाके नामसे विख्यात हुए।

मिर्जापुर, बगइच, गोरखपुर, प्रतापगढ प्रभृति

स्थानोंमें इन लोगोके पागी, श्रीरामस्तव, चन्देल, लगिया, रुषिमया, धली, भोगिया प्रभृति स्वतन्त्र दल हैं। पूर्वाञ्चलके वहेलियोंके मध्य वहेलिया, चिडियामार, करील, पुर्वीया, उत्तरीया, हजारी, बरेलीया श्रीग तुर्कीया एवं मूल वहेलियोंके मध्य कोटिहा, बाजधर, सूर्यवंश, तुर्कीया और मासकाम प्रभृति विभिन्न उतियोंके अनुमार विभाग निर्दिष्ट है। अयोध्याके वहेलियोंके मध्य रघु-वशी, पाशिया तथा करीला नामक तीन शाखा विभाग देखे जाते हैं। ये लोग आपसमें पुत्र तथा कन्याओंके आदान प्रदान कर सकते हैं।

सामाजिक श्रेण वा शपराध विचारके लिये उन लोगोके मध्य एक पचायत है, "साक्षी" उपाधिधारि एक व्यक्ति इस समाजे नभापति रहते हैं। 'साक्षी' समाजके प्रधान प्रदान व्यक्तियोंके साथ अग्निचार वा इस पायके लिये जिम्मे रसणी तो वहकाने एव जानीय वा सामाजिक नियमादि उलघन करनेके अपराधोका दण्ड विधान किया करते हैं।

पितृकुल वा मातृकुलका वाद दे कर ये लोग परस्पर विभिन्न शाखाओंके साथ पुत्रकन्याका विवाह करते हैं। जिस वंशमें वे लोग एक पार पुत्रका विवाह करते हैं, उन वंशकी कुटुम्बिता जितने दिनों तक स्मरण रहती है उतने दिनों तक उस वंशमें कन्याका विवाह नहीं करते। कोई व्यक्ति दो वदनोंको एक साथ पत्नीरूपमें ग्रहण नहीं कर सकते, एक पत्नीका मृत्युके बाद सालोके साथ शार्दी कर सकते हैं। खोके कन्या वा रोगप्राप्तने अयोग्य हो जाने पर पचायतके आदेशमें वद व्यक्ति फिर दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है। कुंवारी बालिकाके किसी नायकके साथ घृणित प्रेममें आसक्त हो जाने पर उसके पिता मानाको धर्थ दण्डसे दण्डित होना पडता है एवं जानीय लोगोको भोज खिलाना पडता है।

ब्राह्मण तथा नाई आ वार विवाह सम्बन्ध ठीक करते हैं। साधारणतः कन्याको जादी सात आठ वर्षकी अवस्थामें ही होती है। विवाह सम्बन्ध ठीक हो जाने पर उसे तोड़नेका कोई उपाय नहीं रहता। निधनार्प सगाई मतानुसार फिर विवाह कर सकती है, किन्तु वे

किसी घृत पत्नीके स्वामीके साथ ही प्रथमतः विवाह कामके वाध्य होती है।

रमणीके गर्भवती होने पर ठम गृहणी कोइ पुत्रा वा गृहणीको एक पैसा वा एक मुठ्ठी चाकण ठम गर्भवती रमणीके मरणकसे छुमा कर काहूवीरकी पूजाके निमित्त भयग रण देता है। स्त्रिकागारमें धमारिन घाई भा कर प्रसव कराती है एवं भयजान शिशुका नाहाफड़ेव करक पुत्रादि घटक बाहर गाइ देती है। गृहस्थ स्त्रिकागारके सामन विष्णुवृण्ड इत्यादि रण कर भूतबोनिका प्रकोप निवारण करता है। ये लोग पधारोति अत्यास्य स्वातोप उष घणोंकी तरह स्त्रिकागृहक भयभयवर्णयोप कार्य मशान्द करत है। जन्मक उठे दिन पछी पूजा होती है। इस दिन प्रातःकालमें प्रसूतिके स्नान करने पर धमारपत्नी स्त्रिकागार परिक्रमण करव जमी जाती है। इसके बाद हजामिन भा फर प्रसूतिके आग्रहकीय कार्य करत मगता है। १२ दिनमें बरही पूजा पध्यक्त हजामिनको स्त्रिकागारमें रहना पड़ता है। इस रात्र स्नान तथा मन्त्रपाठक बाद प्रसूति और मातःशयनक शुद्ध हो कर अपने परिवारक साथ बाहार विहारसे प्रसूत होत है। इस दिन ज्ञाति कुटुम्बकी मोक्ष किलाया जाता है।

इसलोगोंक विवाहकी प्रथा अधिक अंशमें अत्यास्य निरुप धीणियोंकी प्रणय मिलनी हुन्ती है। विवाहम पर कन्या सुप्या हांगी वा नहाँ यह विवाह गृहस्थका मंगलजनक होगा वा नहीं, इत्यादि बातें सामर्थसे पता लगाया जाता है। जब सब मङ्गल मङ्गलपूर्ण होब भउने हैं, तब मङ्गलके पिताक हाथमें कुछ रू कर विवाह की बात पकी की जाती है। वहेसियोंमें दोमा प्रघासे विवाह होता है। इसम विवाहकी रात्र पत्नी हामि पर निर्धारित दिनस आठ दिन पदती हो कन्याकी घरके घर आना पड़ता है। घोडा घूम घाम होता है। विवाहक तीन दिन पदते मण्डप निवार चिया जाता है। मण्डपके ओर मध्यभागम लाङ्गणक काष्ठवृक्ष यशदण्ड शीर फटी का घम बांध कर उनक नीचे ओकछी, मूमन्, जौता, फलसा प्राणति पस्तुव मन्त्रा कर रबी जाती है। इस रात्र सत्यवाक समय 'मदमगर' होता है। विवाहक पदके

दिन 'मतपाम' होता है, जिसमें भारतीय लज्जनका मोक्ष चिया जाता है।

विवाहके दिन घर शीर फरके बाट स्नान करके नाना धेशभूपासे सुमन्त्रित होता है एवं सङ्घ्याक समय थोड़े पर नयार हो कर ग्रामके कई स्थानोंमें परिस्रमण करने के बाद घर लौट जाता है। इसक बाद विवाहकाल रूप नीव होत पर परवा गरके मन्दिर से जात है एवं घर और कन्याक एक मगह बैठ जाने पर कन्याके पिता भा कर दोनोंकी 'पांश-पूजा' करते हैं। इसके भन्तर ये पुत्रा से कर 'कन्यादान' करते हैं और धर कन्याकी मांगमें 'से बुरदान' करता है। इसके पोछे घर और कन्याकी बान्नेमें 'गेठ वण्यन' करव दोनोंकी मंथपके मध्य वंङके चारों ओर पाँच बार घुमाते हैं। इस समय उपस्थित रमणियाँ उन दोनोंको देह पर मुहाका साथ धीटनी रहती है।

इसके बाद घर और कन्या कोहदरघर जाती है। यहाँ घरकी नानो तथा पत्नीसाम्ना नाना प्रकार की ह स्त्री गमाक किया करती है। इसके पीछे ज्ञाति कुटुम्बोंका मोक्ष होता है।

विवाहके बाद काहूवीर और निमग परिवारकी पूजा होती है। शीघे दिन घर और कन्या हजामिनके साथ किसी निरुपस्थली मङ्गलय पर जाती है एवं 'पवित्र ब्रह्म पूण कलम' और 'वण्यनवार' मङ्गलमें निक्षेप करके स्नान करता है। इसके बाद घर लौटनेके समय रास्तेमें ग्रामक निरुपस्थली पोषकक नीचे ये दानों पितृपुत्रोंक उहेगसे पूजा करती है।

गृहपुत्राण उपस्थित होने पर ये लोग मुमूर्षुको गृह क बाहर से मात और उनक सुपमें गंगाजल, कर्षी तथा तुक्सीके पत्ते रखते हैं। दिन समय ये सय वस्तुव नहीं मिलती इस समय बूढी और मकर आदि मिष्टान्न देते हैं। सुत उपस्थिते शयानमें खा कर स्नान करत है इसक बाद ठस सुत देइका मजोव कण्डे पहना कर पिता पर रखते है। काइ निरुपस्थाय म्माक सुभावनि देता है। काइरम ममान हांग पर स्नान करव ये लोग घर लौट भ से हैं एवं नीम और अम्लिका ध्वज करत है। दूसरे दिन पंडित भा कर हजामक जात परदृष्टकी शालीमें

एक जलपूर्ण कलस वंपडा देते हैं। इस रोज स्वजातिके भोज खिठाना पडता है। उसे 'दूधका भान' वा 'दूधभान' भोजन कहते हैं। १० दिनके बाद अगोचान्त समय स्वजातिमडलों एक पुष्करिणीके तीर पर एकत्र होते हैं। वहा सप्त कोई नव केशवि मुंडन कराते है एवं स्नानादिसं निवृत्त हो गिण्ड दान करके शुद्ध हो जाते हैं।

बालवीर और परिहारके अलावे मुसलमानोंके पीर एवं हिन्दुओंकी देवदेवियोंकी मा अत्यन्त भक्तिके साथ नियमानुसार पूजा करते हैं। ग्रामके ब्राह्मण लोग गृह-कर्ममें उन लोगोको पुराहिता करते हैं। नागपचमी, दशमी, ऊजरी तथा और फगुआ पर्वमें वे लोग बहुत आनन्द प्रकाश करते हैं। विस्वाचका रोगके अविष्टाता देवता हरदेव लालका पूजामें अवैद्यावासा चहेलिया लोग बकरा, शूकर प्रभृति पशुओंका बलि प्रदान करते हैं। वे लोग बकरेका मास ता खाते हैं, किन्तु शूकरका मास नहीं खाते।

बह्नि ( सं० पु० ) बहति धरति हव्य देवार्थमिति बह-नि (बह्निश्च विवृति । उष् ४।५२ । र चित्रक, चीता । २ भद्रातक, मिलावाँ । ३ निरुक्त । (राजनि०) ४ रेक । (त्र) ५ अग्नि । हादश बहिके नाम यथा—जातवेदम, कर्मपाप, कुम्भुम, दहन, गोपण, तर्पण, महाबल, पिटर, पतग, स्वर्ण, अग्नाथ और भ्राज । अन्यत्र उक्त दशविध बहिके नाम जैसे—जृम्भक, उद्दीपक, विभ्रम, अम, गोभन, आवसध्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, अन्वाहार्य और गार्हपत्य, किसी किसी मतसे दशविध बहिके नाम यथा—भ्राजक, रजक, क्लेदक, स्नेहक, धारक, वन्धक, द्रावक, व्यापक, पावक और श्लेषक ।

उक्त शरीरस्थ दश बह्नि उद्दिगणके ढोप तथा दुष्य स्थानसमूहसे चलान रहते हैं। ढोप अर्थसे वात, पित्त और कफ एवं दुष्य अर्थसे सप्त धातु हैं।

"बह्या दोषदुष्येषु संज्ञाना दश देहिनः ।

वातपित्तकफा दाया दुष्याः स्युः सप्त धातवः ॥"

(सायनातिकक)

कूर्मपुराणमें बह्नि वा अग्निके विषयमें इन सब निषिद्ध कर्मोंका उल्लेख है। यथा—अशुचि नवस्वामे अग्नि परि

चरण तथा देव या ऋषिका नाम कीर्तन नहीं करना चाहिये। विजयपुर्य अग्निलग्नन वा अग्निनी अधोदिक् में स्थापन, पाँव द्वारा परिचालन एवं मुखकी हवामे प्रज्वालन नहीं करेंगे। अग्निमें अग्नि निक्षेप नहीं करना चाहिये एवं जल ढाल कर अग्नि बुझाना भी निषिद्ध है। विजयपुर्य अशुचि अवस्थामें मुठमें फूँट मार कर अग्नि प्रज्वलित करनेका चेष्टा नहीं करेंगे। हस्तद्वारा अपनी जलाई हुई अग्निका स्पर्श नहीं करना चाहिये एवं वस्त्र समय तक जलमें वाम करना भी निषिद्ध है। सूर्य वा हाथके द्वारा अग्निनी घूमित वा अपक्षित नही करेंगे ॥

ब्रह्मवेवर्त्तपुराणमें पहिली उत्पत्ति ६म तरह लिखी है। ज्ञानकने सूतने पूछा—महाभाग आपके मुखमें कई एक कथार्थ सुन चुका ह। मेरी यहुन कुछ इच्छा पूरी हो चुकी है। इस समय मेरी इच्छा बहिकी उत्पत्ति सुननेकी हो रही है, कृपया आप मुझसे वहाँ कथा करें। सूतने कहा—जिम् नमय सृष्टिका विस्तार हुआ, उस समय एक दिन ब्रह्मा, अनन्त और महेश्वर ये तीनों देवताओंमें श्रेष्ठ जगत्पति विष्णुके साथ साक्षात् करनेके लिये श्वेतद्वीपमें गये। वहाँ जा कर वे सभामें हरिके सामने बैठे, उस समय हरिके शरीरसे कई एक सुन्दरी कामिनियाँ उत्पन्न हुईं। वे सब नाचती हुई मधुर स्वरसे विष्णुकी लीलागाथा गान करने लगीं। उनके विपुल नितम्ब, कठिन स्तनमण्डल, सम्मिल मुग्रप देव कर ब्रह्माका कामदेवने मताया। पितामह किसी तरह भी मनःसंयम नहीं कर सक। उनका वार्ध स्वल्पित हो गया। उन्होंने गर्मसे बरस द्वारा मुझ ढक किया। पीछे

\* "नाशुदाऽग्निं परिवर्त्त न देशान् कीर्त्तियेदपो न ।

न चाग्निं लघयेदीमान् नापदध्यादधः क्वचित् ॥

न चैनं पादतः कुर्व्यात् मुखेन न धमेद्बुधः ।

अग्नीं न निक्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशामयेत्ताया ॥

न बह्निं मुखनिःश्वसेज्ज्वलियेन्नाशुचिवुधः ।

स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशेन्नापु सु चिर वसेत् ॥

नापाक्षिपेन्नोपेधमेन्न सूर्येण च पायिना ।

मुखेनाग्निं समिन्नातं मुखादग्निरजायत ॥"

(कौर्म उपवि० १५ अ०)

अब संगीत समाप्त हुआ तब प्रश्नाने उस पत्रके साथ प्रतप्त बीरको हीराणावम प्रेरण किया। उस हीराणवने गीत हो एक मुख्य पैदा हुआ, वह मुख्य प्रयत्नसे देवाय माभ हो रहा था। वह तेजसा बासक प्रश्नाकी गोदमें आ बैठा, प्रश्ना उस समय ममाक मध्य बहुत ही लज्जित हुए। इस घटनाके कुछ ही क्षणके बाद अन्नपति वरुच क्रोधोन्मत्त हो कर उस समामे उपस्थित हुए एवं उस बासकको प्रश्नाको गोदसे छीन लेनेका बघत हुए। यह बासक भयभीत हो कर दोनों हाथोंसे प्रश्नाको पकड़ कर रोने लगा। अगद्विधाता उस समय लम्बाक यशोभूत हो कर कुछ भी बोल न सके। अघर वरुच बासकको पकड़ कर वड़े क्रोधसे बौंच रहे थे। अन्तमें उन्होंने (वरुचन) बासकको समाके मध्य पटक देनेकी विद्या को, किन्तु उस से वे भाप हो चुर्चलको तरह गिर गये एवं प्रश्नाका कोप दृष्टिसे बन्दे उस समय मूढघत् मूर्च्छित होना पडा। उस समय महादेवने अमूढदृष्टिसे वरुचका बचाया। ईश्वर्य हा कर वरुचने कहा—यह बासक अजस पैदा हुआ है। सुतरां यह हमारा पुत्र है। हम अपने पुत्रको ल जा रहे हैं, इसमें प्रश्ना क्यों बाधा डाल रहे हैं? इस पर प्रश्नाम पिण्डु और महादेवकी सम्शोधन करक कहा—यह लड़का मेरो शरणमें आ गया है और रो रहा है, सुतरां हम शर पागत भीत बासकका हम किस परिधाय करे? जो शरणमें आये हुए मुख्यकी रक्षा नहीं करता, यह मूर्ख अथ तक चन्द्रमा और सूर्य साकाशमें स्थित रहते हैं, मर तक नरककी यातना भोगता है। दोनों पक्षको बात सुन कर सईतएवम मधुसूदन हँस कर बोले—प्रश्ना कामि निषेक रम्य नितम्बविग्रह देख कर कामातुर हुए थे। उससे उनका धार्य पतित हुआ था उस धार्यकी अर्द्धमि लखाक बशाभूत हो कर हीराणावक निर्वाह अलम के क दिया। उससे हम बासकको उत्पत्ति हुए हैं, सुतरां यह बासक गर्मानुसार प्रश्नाका हो मुख्य पुत्र हुआ। किन्तु शास्त्रानुसार यह बासक वरुचका भी क्षेत्रज गीण पुत्र है। महादेव बासक—बिद्या और धोमिके सम्भवानुसार शिष्य और पुत्र दोनों हो समाप्त हैं, येना हो यदोन गाया है। अतः वरुच ही इस लड़के को बिद्या तथा मन्त्र दात देये। बासक वरुचका शिष्य दाये। यह बासक प्रश्नाका

पुत्र तो है ही। सिर्फ इतना ही नहीं, मगधान् पिण्डु बासकको बाहिका जकि देवे। यह बासक सब वस्तुओं को भस्म करनेमें समर्थ होगा, किन्तु वरुचने प्रमादस इसकी प्राणिक क्षीण पड़ जायेगी।

इसके बाद शिष्यके आदेशस पिण्डुने बहिके दाहि का शक्तिदान किया। वरुचने बिद्या मन्त्र तथा मने हर रत्नमासा दो एवं वामकका गीर्धम उन्न कर बार बार उसका मुद्र श्रुमने लगे। (अध्याय ११० म०)

बहि या अग्निदाद नियारणबचामे मत्स्यपुराणमें लिखा है कि सामुद्रिक सैन्धव, जो भीर विजयीक द्वारा अज्ञो मिहोसे जो घर सोपा जायगा यह घर कमा नहीं जलेगा।

“असुर सैन्धवना विपुङ्गवा प मृत्पिका।

तपामुसित वधेरम माम्भिन्द्रप्रभये नृव ह”

(मत्स्यपुर० राज० ११३ म०)

अग्निकी विद्वानि बाधा अन्की शान्तिक सम्बन्धमें लिखा है, कि जिन राजाक राज्यमें इ धनके समावसे अग्नि मन्त्रो तरह प्रज्ज्वलित न हाये अथवा इ धन मन्त्र्य होन पर मो अन्त्रो तरह न जले उन राजाका राज्य शत्रुओंके द्वारा पीडित होता है। अहाँ एक मान गि वा अर्द्धमास पय्यान्त अन्नके ऊपर कोई वस्तु अकती रहता है अथवा अहाँ प्रासाद तोरुण्यहा, राजगृह वा देवायतन, ये सब अग्निद्वय होत है, यहाक राज्यक विनाश होनका मभ रहता है। इनके अतिरिक्त जो स्थान विद्युद्गनि द्वारा द्वय होता है, वहाँ भा राज्यम उपस्थित हाता है। अहाँ बिना अग्निके पुर्खा पैदा होते देख पडे, वहाँ मो अल्पत भयको समावना मगधको आहिये एवं अग्निके सिवाय किसी स्थान पर विस्तुक्ति व दृष्टिपोचर होना भा अशुभ तथा भयका लक्षण है।

राज्यमें ये मभ अग्निविद्वानि उपस्थित होने पर पुराहित द्युसमार्दित भावसे क्रिदात्र उपयास करक हीर दृष्टोद्भव समिन् सर्वप तथा घृतक साथ प्राद्वणोंका सुवण, गो, यत्र भीर भूमिदान करैने, पेसा करलसे अग्निविद्वानि अजित पाप परगमित हो जाता है।

अग्निमसमूहक मन्त्र मुख्य अग्नि तीन है, जैव—गाह परप, वृक्षिपान्नि और आहबभोय, शेष तीन उपसद् हैं।

“ गार्हपत्यो दक्षिणाग्निस्तथैवाश्वनीयकः ।  
पतेऽग्नयस्त्रयो मुख्याः शेषाभ्योपषदस्त्रयः ॥”

( अग्निपु० )

जय एक ओर वह्निकर और दूसरी ओर ब्राह्मण रते, तब उनके बीच ही कर गमन करना निषेध है ।

“द्वौ विप्रौ वह्निविप्रौ च दम्नत्यागुं कथिष्येयां ।

ह्येषां च न गन्तव्यं ब्रह्महत्या पदं पठे ॥” ( कर्मलोचन )

तिथ्यादित्त्वयं मा लिखा ऽ, यथा—“नाग्निं ब्राह्मण-  
योवन्तरा अपेयात् नान्योर्न ब्राह्मणयोर्न गुरुर्नाप्येव  
नुषया तु अपेयात् ।” इसके द्वारा दो ओर अग्नि गहन पर  
वाच हो कर गमन करना निषिद्ध है, यह भी जाना  
जाता है ।

गर्हपत्यपुराणमें अग्निस्तम्भनक सम्बन्धमें इस प्रकार  
लिखा है,—मनुष्यकी चरवी ले कर उसके साथ जाँक  
पीसे । पीछे उसे हाथमें लगानेसे उत्तमरूप अग्नि-  
स्तम्भन होता है । शिमूलका रस गंधके सूत्रमें मिला  
कर अग्निगृहमें फे कनेसे अग्निस्तम्भन होता है । वायसी-  
का उदर ले कर मण्डूककी चरवाके साथ गाला बनाये,  
अन्तमें उसे एक साथ अग्निमें प्रयोग करे । इस प्रकार  
प्रयोग करनेसे अच्छा अग्निस्तम्भन होता है । मुण्डितक  
( लौह ), वज्र, मिर्च और नागर ( मोथा ) चवा कर  
जल्द जल्द जिह्वा द्वारा अग्नि लेहन का जा सकता है ।  
गोरोचना और भृङ्गराजका चूण घाके साथ निम्नांक मन्त्र  
उच्चारण कर पान करनेमें उससे दिव्य अग्निस्तम्भन  
होता है । मन्त्र यथा—

‘धौ अग्निस्तम्भनं कव ।’ ( गर्हपु० १८६ अ० )

६ कृष्णके एक पुत्रका नाम जो मिलाविदासे उत्पन्न  
हुआ था । ( भागवत १०।६।१।१६ ) ७ रामका सनाके  
सेनापति एक बन्दरका नाम । ८ तुर्वसुके पुत्रका नाम ।  
( हरिवंश ३२।११० ) ९ कुकुरवशा एक यादवका नाम ।  
( भागवत ६।२५।१६ )

वह्निकर ( सं० क्लो० ) १ विद्युत्, बिजला । २ जटराग्नि ।  
३ चकमक, पथरी ।

वह्निकरी ( सं० स्त्री० ) वह्निं श्रेहस्थवह्निं करोतीति  
ठ ट, डीप् । धात्वोश्वरी, घोका फूल ।

वह्निकाष्ठ ( सं० क्लो० ) वह्निवत् दाहकं काष्ठं । दाहागुर्व ।

वह्निकुण्ड ( सं० पु० ) अग्निकुण्ड ।

वह्निकुमार ( सं० पु० ) भुवनपति देवतागणसे एक ।

वह्निकोण ( सं० पु० ) अग्निकोण, दक्षिण पूर्वकोण ।

वह्निकम्ब ( सं० पु० ) वह्निना वह्निस्पर्शयोगेन दहनं  
गन्धो यन्मय । यक्षधूम ।

वह्निकर्म ( सं० पु० ) वह्निं कर्मं यन्मय । घंश, घाँस ।

वह्निकृद ( सं० स्त्री० ) अग्निशाला ।

वह्निकृत्का ( सं० स्त्री० ) वह्नेरिव चक्रं भावर्त्तयन्  
चिद्गुणयत् । कलिहारी या कलिघारी नामका वृक्ष ।

वह्निकृत् ( सं० क्लो० ) अग्निजिम्ब, आगकी लपट ।

वह्निकजाया ( सं० स्त्री० ) स्याहा । स्वाहा देवी ।

वह्निकज्वाला ( सं० स्त्री० ) वह्नेर्ज्वालित्वं दाहकत्वात् ।  
भानकीवृक्ष, धवका पेड़ ।

वह्निकतम ( सं० वि० ) अधिकतर उज्ज्वल, निर्गुण  
दीप्तिशाली ।

वह्निकद ( सं० दि० ) वह्निं ददातीति दा-क । अग्नि  
दायक ।

वह्निकदम्ब ( सं० क्लो० ) १ अग्निदाघरोग । ( लि० )  
१ अग्निदग्ध, आगमें नला हुआ ।

वह्निकदमनी ( सं० स्त्री० ) दमयति प्रागयतीति दम-णिच्  
ल्यु, ततो डीप्, वह्नेर्दमनी, अग्निदग्धरुग्णप्रशमन  
कारित्वावस्थास्नथात्प्रम् । अग्निदमनीधूप, गोश्या ।

वह्निकदीपक ( सं० पु० ) वह्निं दापयतीति दीप-णिच् ष्वुल्  
वह्नेर्दीप- इति वा । कुसुमवृक्ष ।

वह्निकोपिका ( सं० स्त्री० ) वह्नेर्जाठरानलस्य दीपिका उत्ते-  
जिका । अजमोदा ।

वह्निकाम ( सं० पु० ) १ चित्रतरुक्ष, चाँतेका पेड़ । २  
मल्लानक, भिलावा ।

वह्निकानक ( सं० लि० ) अग्निका प्रकोपनाशक ।  
वह्निकनिर्मयना ( सं० स्त्री० ) अग्निमन्थ वृक्ष, आगमन्त ।

वह्निकी ( सं० स्त्री० ) वह्निं दहत् कान्तिं नयतीति नी-  
नोरादित्वात् डीप् । जटामासी ।

वह्निकनेत्र ( सं० पु० ) अग्निनेत्र, गुस्साके समय लाल  
आँसे ।

वह्निकपुराण ( सं० क्लो० ) अग्निपुराण । पुराण देवा ।  
वह्निकुष्पा ( सं० स्त्री० ) वह्निकव दाहकं रक्तवर्णं वा पुष्प-  
मस्याः, डीप् । धातकीवृक्ष, धवका पेड़ ।





न्त्यनेनेति वह ( वक्षं करण्य । पा ४।१।१०२ ) इति यत् ।

२ शकट, गाडी ।

वहन्युत्पात ( सं० पु० ) अग्निका उत्पात ।

वह्य ( सं० क्ली० ) वह्न्य देखो ।

वह्यक ( सं० पु० ) वाहक, उठा कर ले जानेवाला ।

वह्यशीवन् ( सं० लि० ) वाहने प्रयाना । दोला पर सुलाया या लेटाया हुआ ।

वह्ये शय ( सं० लि० ) वह्यशीवन् देखो ।

वांश ( सं० लि० ) वंशस्पायं वंश-अण् । वंशसम्बन्धी ।

वांशभारिक ( सं० लि० ) वंशभारं हरति वहति आवहति वा वंशभार ( नद्धरति वहत्पावहति भाराद्वादिभ्यः । पा ५।१।५० ) ठक् । वंशभारहरणकारी वा वहनकारी ।

वांशिक ( सं० पु० ) वंशीवादनं शिल्पमरपेति वंश ठक् । १ वंशीवादनक, वह जो वासुरी बजाता हो । भारभूतान् वंशान् हरति वहति आवहति वा ( पा ५।१।५० ) ठक् ( लि० ) २ भारभूत वंशहारक या तडाहक । ३ वंश-कर्त्तक, बाँस काटनेवाला ।

वांशी ( सं० स्त्री० ) वंशलोचना ।

वाक्किटि ( सं० पु० ) वारो जलस्र किटिः शूकरः । गिशु मार, सूँस ।

वासुध ( सं० क्ली० ) लवङ्ग, लौंग ।

वासदन ( सं० क्ली० ) वारो जलस्र सदनम् । जलाधार ।

वा ( सं० अश्र्य० ) वा क्विप् । १ विकल्प या सन्देहवाचक शब्द, अथवा । २ उपमा । ३ वितर्क । ४ पादपूरण । श्लोक-वचनामै कोई अक्षर कम पडनेसे च, वा, तु, ही शब्द द्वारा उसे पूरण करना होता है । ५ समुच्चय । ६ स्वार्थ । ७ निश्चय । ८ सादृश्य । ९ नानार्थ । १० विश्वास । ११ अतीत ।

वाहदा ( अ० पु० ) वादा देखो ।

वाहन ( अ० स्त्री० ) शगव, मद्य, सुरा ।

वाइस चान्सलर ( अ० पु० ) विश्वविद्यालयका वह ऊँचा अधिकारी जो चान्सलरके सहायतार्थ हो और उसकी अनुपस्थितिमें उसके सारे कामोंको उसीकी भाँति कर सकता हो ।

वाइसराय ( अ० पु० ) हिन्दुस्थानका वह सर्वप्रधान

ग्रामक अधिकारी जो सम्राट्के प्रतिनिधि स्वरूप यहां रहता है, वडा लाट ।

वाक् ( सं० क्ली० ) १ वाक्य, वाणी । २ सरस्वती । ३ बोलनेकी इन्द्रिय ।

वाक ( सं० लि० ) वक्त्रमेटमिति वक् ( तस्येदम् । पा ५।३।२० ) इत्यण् । १ वक्त्रसम्बन्धी, बगलोंका । ( क्ली० ) ( तस्य समूहः । पा ५।२।३७ ) इति ऋण् । २ वक्त्रसमूह, बगलोंका समूह । ( पु० ) वक्त्रस्यावयवो विकारो वा अण् । ३ वक्त्रका अवयवविशेष । ४ वाक्य । ५ वेदका एक भाग ।

वाकई ( अ० वि० ) १ डीक, यथार्थ, वास्तव । ( अश्र्य० ) २ सचमुच, यथार्थमें, वास्तवमें ।

वाक्या ( अ० पु० ) १ कोई बात जो घटित हो, घटना । २ वृत्तान्त, समाचार ।

वाका ( अ० पु० ) १ होनेवाला, घटनेवाला । २ स्थित, खडा, प्रतिष्ठित ।

वाकारकृत् ( सं० पु० ) गोवप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम । ( संस्कारकौ० )

वाकिन ( सं० पु० ) एक ऋषिका नाम । ( पा ५।१।१५८ )

वाकिनो ( सं० स्त्री० ) तन्त्रके अनुसार एक देवीका नाम ।

वाक्किफ ( अ० वि० ) १ जानकार, दाता । २ धानको समझने बूझनेवाला, अनुभवो ।

वाक्किफकार ( अ० वि० ) कामको समझने बूझनेवाला, जो अनाडी न हो, कार्याभिज्ञ ।

वाकुचिका ( सं० स्त्री० ) बकुची ।

वाकुची ( सं० स्त्री० ) वातीनि वा वायुस्त कुचनि सट्टो-चयति पूतिगन्धित्वात्, कुच क, गौरादित्वात् डीप् । वृक्षविशेष, बकुची, Psoralea Corylifolia । संस्कृत पर्याय—सोमराजी, सोमवह्नी, सुबह्लिका, सिता, सिता-वरी, चन्द्रलेखा, चन्द्रो, सुप्रभा, कुष्ठहन्तो, पूतिगन्धा, बलगुला, चन्द्रराजी, कालमेयो, त्वग्जदोपापहा, काम्बोजी कान्तिदा, अवलगुजा, चन्द्रप्रभा, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्णफला, सामा, पूतिफली, कालमेयिका । वैद्यकके मतसे इसका गुण—फट्ट, तिक्त, उष्ण, कृमि, कुष्ठ, कफ, त्वग्दोष, विपदोष, कण्डू और त्वज्जूनाशक । ( राजनि० ) भावप्रकाशके मतसे गुण—मधुर, तिक्त, कटुपाक, रसा-यन, विष्टम्भ, कचिकर, श्लेष्मा और रक्तपित्तनाशक, रश्म,

हृद्य भ्राम, कृष्ट, मोद उपर और इमितागत। इसका  
पद-विक्रमपदक बहु, बुद्ध बच और वाचुनागक,  
केन्द्रका द्वितकर इति भ्राम, काम, मोघ, भ्राम और  
वाचुनिकागक। ( ५०५० )

वाचन ( सं० स्त्री० ) वक्तुलभ्योऽस्मिन्नि वक्तुम् ( लभ्येन्म् । वा  
५।३।१०० ) इत्यण । वक्तुम् वाच ।

वाचावाच ( सं० स्त्री० ) कर्त्तव्यवचन वाचनीय ।

वाचोवाचय ( सं० स्त्री० ) १ परस्पर वचोवाचयन वाच  
नीय । ( Dialogue ) २ वाच्यपर लक्ष । ३ लक्ष विद्या ।  
छान्दोग्योपाख्यानप्रश्नोत्तरने मतानुसारोमे मगमो जित  
जित विद्यामोक्ष जाता होमेका वाच करो थी, उनमे  
'वाचोवाचय विद्या मो थी ।

वाचसद ( सं० पु० ) वाचा बसदः । वाचय द्वारा बसद  
वातवा भवदः ।

वाक्ता ( सं० स्त्री० ) वाक्क अनुसार एक प्रकारका  
पत्नी ।

वाक्ता ( सं० पु० ) वाचि वीत्रुक्त वाचये कार शुक्तिव्य  
स्वात् । इवात्मन गामा ।

वाक्केलि ( सं० स्त्री० ) वाचा केलि । वाचय द्वारा वदि,  
वातका कीटा ।

वाक्कमा ( सं० स्त्री० ) वाक्केलि देना ।

वाक्काम ( सं० स्त्री० ) वाचय और वस्तु ।

वाक्कयवच ( सं० पु० ) वाचा वचनः । १ बहुत बातें  
बानीयाना, बातें बानीय लेख सुदोरो । २ मङ्ग  
मदिवा ।

वाक्कल ( सं० स्त्री० ) वाचा कलम् । स्वावगावक अनु  
साध एक कल । यह तोल प्रकारका होता है—वाक्कल  
नामान्ना कल और इत्यकार कल । जब कलक साधारण  
व्यय बर हृद्य वचनमे वुमहै वल द्वारा समिप्रोत कार्यम  
अथ कार्यकी वचना उमे वचन व्ययमे इत्यवक विद्ये  
वा ज्ञानी है लक्ष वाक्कल वहा ज्ञानी है । उमे वचना  
वहा—'बद वनाच लक्ष वचन है' अर्थात् लक्ष वचन  
वाचा है । इसका प्रतिवाही अदि वर कार्य अगामि वि  
हय वाक्कल वाचय व स्वाभि मे वचन है, और बद—'मी  
वचन वर है' अथ हा ना है ।' लो वद वाक्कल शाना ।

इय २२२ रगो ।

वाक्कलामिध ( सं० स्त्री० ) जो हर बातमें एककी बात  
करते हैं ।

वाक्कयव ( सं० स्त्री० ) वाचय और वच ।

वाक्किय ( सं० स्त्री० ) वाक्कयवुर्त वाक्कयन लेख ।

वाक्कपु ( सं० स्त्री० ) वाचा वदु । वाक्कल, वाग्मा, वाग  
करनेमे वस्तु ।

वाक्कपुता ( सं० स्त्री० ) वाक्कपु भाये तल टाप । वाक्कपु  
का नाय वा घर्मे वाक्कपुय ।

वाक्कपति ( सं० पु० ) वाचा पतिः । १ वृद्धव्यति । २  
विष्णु । ३ अतपय पचन वदु वाचय, निर्दोष वात ।

वाक्कपतिराज ( सं० पु० ) १ सुप्रसिद्ध कवि इत्येके पुत्र ।  
२ राजा यजोवर्माके भागिन थे । इन्होंने प्राज्ञमे गीतबदो  
( गीतवच ) नामक वाक्कयी रचना की है । ये भवमुक्ति,  
समसामयिक थे । ३ माणवका एक परमार राजा जो  
मीयवका पुत्र था । इस नामका एक और राजा  
हुआ है ।

वाक्कपती ( सं० स्त्री० ) वाक्कपति विरचित ग्रन्थ । ( ०१०  
श्लो ५३११ )

वाक्कपय ( सं० स्त्री० ) वाक्कपतिव्य । ( अथ १५२ )

वाक्कय ( सं० स्त्री० ) वाक्कयवचनोपयोगी वात कहनेक  
उपयुक्त ।

वाक्कया ( सं० स्त्री० ) वाक्कपु । ( एतदेवा २१७ )

वाक्कवाक्य ( सं० स्त्री० ) वाचा वृत्त वाक्क्यं । अमिध  
वाक्कयाधारण वाक्कयी बहोवता । यह मात प्रकारके  
व्ययमोद अन्तगण एक व्ययक है ।

इत्येक लक्षण—

'वेगजातिवृत्तवादीवचना'वृत्तमुपम् ।

वदन्तः प्रसिद्धार्थं वाक्कवाक्यं लुक्वचनम् ।

( वाक्कवचन )

इत्यादिमां वाक्कवाक्यव्यय मुने, उच्यतेवाच्ये भागान् ।  
मनुष्यवचन तदुपयुक्त वचनिकृत्यार्थं उच्यतेवाच्ये  
वाच्यं तदुपयुक्तव्ययं उच्यते । ( ०१००० )

इंग, ज्ञानि और वृत्तवादीवचन इत्येक वचन जो  
निश्चय वाक्कय प्रयोग विद्या जाता है, उमे वाक्कवाक्य  
वचन है । जिया जो वाक्कय प्रयोग वचना अतिव करो  
उमे वाक्कय प्रयोग वचनमे वाक्कवाक्य होना है । उपयुक्त

भाषामें गाली गलौज करनेका नाम ही वाक्पाठ्य है। यह निष्ठुर, अश्लील और तीव्र तीन प्रकारका होता है।

वाक्पाठ्य अपराध दण्डनीय है। जब कोई अनुचित गाली गलौजका प्रयोग करे, तब राजा उसका दण्ड विधान करे। याज्ञवल्क्यने कहा है—सत्य, असत्य वा श्लेष किसी भी भाषामें सवर्ण और समगुण व्यक्तिके प्रति यदि न्यूनानां ( हस्तादि रहित ) वा न्यूनैन्द्रिय ( चक्षु-कर्णादि रहित ) एवं रोगी कह कर गाली देनेसे राजा उसका साठे तैरह पण दंडविधान करे। मां वा बहिन का लक्ष्य करके गाली देनेसे गाली देनेवाला बीस पण दंडका अपराधी होगा। अपनेसे निवृष्ट व्यक्तिके प्रति पूर्वोक्त गाली गलौज करनेसे उक्त दंडके आधेका भाग होगा, परस्त्री तथा अपनेसे उत्कृष्ट व्यक्तिके प्रति भी उक्त प्रकारसे गाली देने पर गाली देनेवाला दूने दंडका अपराधी होगा।

परस्परके वादविवादमें ब्राह्मणादि वर्ण एवं मूर्धा वसिकादि जातियोंकी उच्चता नीचतानुसार दंडकी कल्पना कर लेनी होगी। ब्राह्मणोंके प्रति क्षत्रियके गाली गलौज करनेसे उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट होनेके कारण दो गुने एवं उच्चवर्ण होनेके कारण उसके भी दो गुने, इस प्रकारसे चार गुने दंड अर्थात् पचीसकी जगह सौ पण दंडका विधान करना चाहिये। वैश्यके इस प्रकार गाली-गलौज करनेसे शूद्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होनेके कारण दो गुने एवं उच्चवर्ण होनेके कारण उसके भी दो गुने दंडका अपराधी होगा। शूद्रके इस प्रकार गाली गलौज करनेसे जिह्वाछेदनादि दंडकी विधि है। नीच वर्णोंके प्रति इस प्रकार कुवाक्य प्रयोग करने पर अर्द्धार्द्धहानि क्रमसे दण्डविधान होगा। ब्राह्मण यदि क्षत्रियको गाली देवे, तो उसका आधा दंड, वैश्यके प्रति इस तरह गाली देनेसे चौथाई एवं शूद्रके प्रति इस तरहका आचरण करने पर बारह पण दंडका विधान करना चाहिये।

समर्थ व्यक्ति यदि वाक्य द्वारा समर्थ व्यक्तिकी भुजा, गर्दन, नेत्र प्रभृति छेदन करनेको धमकी दे कर गाली देवे, तो उसे सौ पण दंड मिलना चाहिये एवं अशक्त व्यक्तिकी इस प्रकार कुवाक्य कहने पर वह दण्ड पण दंड-

का अपराधी होगा। सुरापायो ( जरावयोर् ) इत्यादि पातित्यसूत्रक गाली देनेसे मध्यम माहस दण्ड, शूद्रयात्री इत्यादि उपपातकसूत्रक गाली देनेसे प्रथम माहस दंड, वेदतयवेत्ता, राजा और देवताको गाली देनेसे उत्तम साहस दंड, जातिममूहके प्रति गाली देनेसे मध्यम माहस दंड एवं ग्राम और देशका उल्लेख करके गाली देनेसे प्रथम माहस दंडका विधान करना चाहिये।

( याज्ञवल्क्यम. २ अ० वाक्पाठ्यप्र० )

वाक्पुण्य ( सं० क्ली० ) वाक्यन्त्य पुण्य, गृभापित वाक्य, मीठा वचन।

वाक्प्रलाप ( सं० पु० ) प्रलापवाक्य।

वाक्प्रवन्ध ( सं० पु० ) अपनी चिन्तोद्भूत रचना।

वाक्प्रवटिपु ( सं० पु० ) कथनेच्छु, वातचीत करनेको इच्छा करनेवाला।

वाक्प्रियत ( अ० स्त्री० ) परिष्ठान, जानकारी।

वाक्य ( सं० क्ली० ) उच्यते ति वच-ण्यत् ( भजोः-रुधिययतोः । पा ७।३।५२ ) इति कृत्वं शब्दसंप्रान्तवान् ( वचोऽशब्दसंज्ञायाम् इति निषेधो न ) वह पदसमूह जिसमें श्रोताको वक्ताके अभिप्रायका बोध हो। सुप् और तिङन्तको पद कहते हैं, 'सुप् तिङन्त' पद' जिस पदके अन्तमें सुप् और तिङ् रहता है, शब्दके उत्तर 'सुप्' अर्थान् सु, औ आदि विभक्ति एवं धातुके उत्तर तिप्, तस् आदि विभक्ति होती है। यह सुप् और तिङन्त ही कर पदसमुदाय वाक्य कहलावेगा। साहित्य-दर्पणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

'योग्यता, आकांक्षा और आसक्तिशुक्त पदसमूहकी वाक्य कहते हैं। जिस पदमें योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति नहीं है, वह वाक्यपदवाच्य नहीं होगा। वाक्य और महावाक्यके भेदसे यह दो प्रकारका है।' रामायण, महाभारत और रघुवज आदि महावाक्य एवं छोटा छोटा पदसमूह वाक्य है। जैसे—'शून्य वासगृह' इत्यादि एक वाक्य है, महावाक्य नहीं।

किसीको भी अप्रिय वाक्य नहीं कहना चाहिये। किसी प्राणीकी हिंसा न करे और न कभी झूठ बोले। वैष्णवके मतसे पापण्ड, कुकर्मकारी, चामाचारी, पञ्चरात्र तथा पाशुपत मतानुवर्तियोंकी वाक्य द्वारा धमना करना उचित नहीं।

शुभाशुभ शक्य—ओ वाक्य सर्वा वा अथर्गच्छी  
सिद्धिके लिये बोला जाता है और ओ वाक्य सुननेसे  
इहलोक और परलोकका मंगल होता है, उसीको शुभ  
वाक्य कहते हैं। राग, द्वेष, काम, दुष्ण आदिक दश  
में हो कर ओ वाक्य कहा जाता है, जिस वाक्यके सुनने  
या कहनेसे निरयका कारण होता है, बड़ा अशुभवाक्य  
कहलाता है। कभी पेसा अशुभवाक्य न सुनना चाहिए  
और न बोझना चाहिए। वाक्य बिशुद्ध, सुमिष्ट, मृदु या  
छलित होनेसे सुन्दर नहीं होता, जो वाक्य सुननेसे  
अविधाका नाश होता है, संसारकमेज दूरीभूत होता है  
एव जो सुननेसे पुण्य होता है, यही सुन्दर वाक्य है।

वाक्यकर (स० पु०) एकका वात दूसरेसे कहनेवाला,  
दूत। (त्रि०) २ बचनमाधो, बाते बनानेवाला।

वाक्यकार (स० पु०) रचनाकार।

वाक्यगमित (सं० स्त्री०) वाक्यपूर्ण, वह जो सुन्दर पदादि  
द्वारा बना हो।

वाक्यग्रह (सं० पु०) अर्थग्रहण।

वाक्यता (सं० स्त्री०) वाक्यका भाव वा धर्म।

वाक्यपूरण (सं० स्त्री०) वाक्यका समाप्त होना।

वाक्यप्रबोधन (सं० पु०) अनुहावाक्य।

वाक्यप्रबोधनात् (सं० भव्य०) आदानुसार।

वाक्यप्रताप (सं० पु०) कट्टिकि, पठ्य या कट्ट वाक्य।

वाक्यप्रलाप (सं० पु०) १ असम्बन्ध वाक्य, बेवगानकी  
बात। ५ धामिद।

वाक्यप्रसारिन् (स० त्रि०) १ वाचाम बोलेनेमें ठेक।  
२ धामिबिस्तारकारी बात बढ़ानेवाला।

वाक्यमेह (स० पु०) मोमांसाके एक ही वाक्यका एक ही  
कालमें परस्पर विपक्ष अर्थ करना।

वाक्यमाळा (सं० स्त्री०) वाक्यसहरो वाक्यसमूह।

वाक्यशेष (सं० पु०) १ कथाबसतान। २ वाक्यका शेष।

वाक्यसयम (सं० पु०) वाक्सयम पाठतिरोध।

वाक्यसयोग (स० पु०) वाक्यका मिलन, वाक्यशेजना।

वाक्यसङ्कीर्ण (स० पु०) वाक्यमाळा।

वाक्यस्रर (स० पु०) शतकी आवाज, बोलनेका शब्द।

वाक्यवाप्याहार (स० पु०) कट्टनेमें तक।

वाक्यार्थ (स० पु०) कट्टनेका मम।

वाक्यार्थोपमा (स० स्त्री०) वाक्यार्थका सादृश्य।

वाक्यवाक्यहार (स० पु०) वाक्यकी शोभा वाक्यच्छटा।

वाक्यैकवाक्यता (स० स्त्री०) मोमांसाक अनुसार एक  
वाक्यको दुम्हरे वाक्यसे मिला कर उसके सुस गत अर्थ  
का बोध कराना।

वाक (स० स्त्री०) सामन्द्।

वाक्य (स० त्रि०) एक पद्य, बहू सम्बन्धी।

वाकसयम (स० पु०) वाचा सयम। वाणीका सयम,  
अन्यथा वात न बहना, अर्थ बातें न करना।

वाक्यसङ्ग (स० पु०) वाक्यग्रह।

वाक्यसिद्धि (स० स्त्री०) वाच्यकी सिद्धि अर्थात् इस  
प्रकारकी सिद्धि या शक्ति कि जो बात सु हसे निकले वह  
ठीक पड़े।

वाक्यस्मम (स० पु०) वाक्यस्तम्भन, वाक्यरोध कर  
देना।

वागतात (स० पु०) असीत वाक्य, बोली हुई बात।

वागन्त (स० पु०) वाक्यका शेष।

वागपहारक (स० पु०) १ पुस्तक-धोर। २ निविद्धवाक्य  
पाठकारी।

वागर (स० पु०) वाचा इत्यसि गच्छतीति अत्र अत्र।  
१ वारक। २ शाण, सात। ३ निर्णय। ४ वृक, भेड़िया।  
५ सुमुहु। ६ परिउत। ७ निमय निदर।

वाग्वि (स० स्त्री०) तलवारकी तरह तीक्ष्णवाक्य।

वाया (स० स्त्री०) वचना, समाप।

वागान (सं० त्रि०) वाचि भाशावाक्ये भाद कण्ठ इव  
मर्मच्छ वृत्त्यात्। भागा दे कर निराज करनेवाला,  
मासुरैमें रख कर पीछे भाषा होने वाला, विभासप्रतापी।

वागाजमि (स० पु०) बुद्धव्य।

वागीज (स० पु०) वाचामोशः। १ पृष्ठकपति। २ प्रज्ञा।  
३ धाम्ये, कवि। (त्रि०) ४ वक्ता अथवा बोधनेवाला।

वागाज—व्यापसिद्धानाङ्गतक रचयिता

वागाशोच—एक प्रसिद्ध शैव धर्माचार्य। ये कथाम्  
तायक वाक् मरक अयिकारी दूर। इतका पूव नाम रङ्गा  
चार्य या रघुनाथचार्य था। १३४४ ई०में इनका मृत्यु  
हु। स्मृत्पथसागरमें इनकी धर्मव्याख्या कार्कित है।

वागीश्वर्य (स० स्त्री०) वागीश्वर्य माय। १। वाक्यपति  
का माय वा धर्म, उत्तम वाक्य।

वागीशमट्ट—दशालकारमञ्जरी और मङ्गलवाङ्कके रचयिता ।

वागीशा ( स० स्त्री० ) वाचामांशा । सम्बन्धी ।

वागीश्वर ( स० पु० ) वाचामीश्वर इव । १ मञ्जुश्रीय  
वोषिसन्ध । २ जैनविशेष । ३ बृहस्पति । ४ ब्रह्मा ।

( वि० ) ५ वाक्पति, अच्छा बोलनेवाला ।

वागीश्वर—१ मानसनाहरके प्रणेता । २ मङ्गलके समसाम-  
यिक एक कवि । ३ एक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता ।

वागीश्वरकीर्त्ति ( स० पु० ) एक आचार्यका नाम ।

वागीश्वरमट्ट—काव्यप्रदीपाद्योतके प्रणेता ।

वागीश्वरी ( स० स्त्री० ) वाचामीश्वरी । सम्बन्धी ।

वागीश्वरदत्त—पारस्करगृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता ।

वागुनी ( स० स्त्री० ) सोमगङ्गी, वाकुची ।

वागुञ्जार ( स० पु० ) एक प्रकारकी मछली ।

वागुण ( स० पु० ) १ कर्मरङ्ग, कर्मगण । २ वै गण, माटा ।

वागुत्तर ( स० स्त्री० ) वक्त्रुणा और उत्तर ।

वागुरा ( स० स्त्री० ) वानोति वा गतिवन्धनयोः ( मद्गुरा  
द्वयम् । उष्ण १, ४० ) इति उरञ् प्रत्ययेन गुणागमेन च  
साधु । मृगोंके फंसानेका जाल ।

वागुरि ( स० पु० ) एक प्रसिद्ध जिलगवित् ।

वागुरिक ( स० पु० ) वागुर्या चरन्तीति वागुरा ( चरति ।  
पा ४, ४५८ ) इति टक् । मृगव्याध, हिरण फंसानेवाली  
जिकारी ।

वागुलि ( स० पु० ) पानदान, डिब्बा ।

वागुलिक ( स० पु० ) राजाशोक वा संघक जिमका  
काम उनको पान खिलाना होता है, नवाम ।

वागुल ( स० पु० ) एक प्रकारकी मछली ।

वागुयम ( स० पु० ) प्रकृत बला, विश्व वाग्मी ।

वागुयान ( स० पु० ) नदीय जिलाम्थ ग्रामभेद ।

( त्रिर्वाश० पा १६ )

वागुण ( स० पु० ) १ वाक्पफल । २ अर्हत्त्वभेद ।

वागुद ( स० पु० ) वाचा गोदने क्रोडनीवेति गुद-  
क्रोडाया क । एक प्रकारका पक्षी । मनुस्मृतिमें लिखा  
है, कि जो गुड चुराता है, वह दूसरे जन्ममें वागुद पक्षी  
होता है ।

वागुलि ( स० पु० ) वाचा गुडिति रक्षन्तीति गुड ( क्षुण्-  
धात् क्ति । उष्ण ४, १६८ ) इति इन्, स च कित् । ताम्बूली,  
राजाशोक वा खवास जो उनको पान खिलाना है ।

वागुलिफ ( स० पु० ) वाग्भुलि मयार्थे क्व ।

वागुमि र्गता ।

वाग्जाल ( स० स्त्री० ) वागेव जालमिति रूपककर्मधा० ।  
वातोंकी लपेट, वानोंका आडम्बर या भ्रमण ।

वाग्दम्बर ( स० पु० ) वाक्पच्छटा, वानोंकी लपेट ।

वाग्दण्ड ( स० पु० ) वागेव दण्डः । मला सुरा कदने-  
का दण्ड, मार्गिक दण्ड, हाँट उपट ।

वाग्दत्त ( स० वि० ) वाचा दत्तः । वाग्प द्वारा दत्त,  
मुँहमें दिया हुआ ।

वाग्दत्ता ( स० स्त्री० ) वाचा दत्ता । वह कन्या जिसके  
विवाहकी बात किसीके साथ उद्धार, जा चुकी हो, कबल  
विवाह सम्झार होनेका धापी हो । पूर्वकालमें प्रथा  
थी, कि कन्याका पिता जामाताके पास जा कर कहना  
था, कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा । आज कल इस  
प्रकार तो नहीं कहा जाता, पर वरच्छा या फालदानकी  
रीति चढ़ाया जाता है ।

वाग्दण्डि ( स० वि० ) वाचि दण्डि इव । मितभाषी,  
धोडा बोलनेवाला ।

वाग्दल ( स० स्त्री० ) वाचा दलानिव । श्रोत्राधर, थोड़ा ।

वाग्दान ( स० स्त्री० ) वाचा दानं । वाक्पदान, कन्याके  
पिताका किसीसे जा कर यह कहना कि मैं अपनी कन्या  
तुम्हें दूँगा । वाग्दानके पहले कन्याकी मृत्यु हो  
जानेसे सब वर्णोंका एक दिन अर्घोच होता है, किन्तु  
वाग्दानके बाद अगर कन्याकी मृत्यु हो जाय, तो वानोंकुल  
अर्थात् पितृ और भक्तृकुलमें तीन दिन अर्घोच होगा ।  
लेकिन आज कल वाग्दान न रहनेसे विवाहके पहले तक  
कन्याकी मृत्यु होनेसे एक दिन अर्घोच मानना होता है ।

वाग्दुष्ट ( स० वि० ) वाचा शुद्धेऽपि चरनुनि अशुद्धरूप  
त्वाद्दुर्वाचयेन दुष्टः । १ परुषभाषी, कटुभाषी । २ अमि-  
शत, जिसे किसीने प्राप दिया हो, जिसे किसीने कासा  
हो । मनुभाष्यकार मेघातिथिके मतमें परुष और मिथ्या-  
वादीको वाग्दुष्ट कहने हैं ।

'वाग्दुष्टः परुषभाषी अमिशत इत्यन्वये' ( कुल्लुक )

'वाचा दुष्टः परुषानृतभाषी' ( मेघातिथि ), आडकर्ममें  
वाग्दुष्ट ब्राह्मण वर्जनीय माना गया है ।

प्रायश्चित्तचिन्तकमें लिखा है, कि वाग्दुष्ट व्यक्तिकी



योग, न्यायकणिकाविधिविवेकटीका, न्यायतत्त्वाचलोक, न्यायरत्नटीका, न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, सामती या शारीरकभाष्य विभाग आदि ग्रन्थ लिखे। सायणाचार्यने सर्व दर्शनसंग्रहमें, वर्द्धमानने न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाशमें तथा जङ्गमिश्रने वैशेषिक सूत्रोपस्कार ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत किया है। ८६८ श्रममें इनका न्यायसूचीनिबन्ध शेष हुआ। भवदेवभट्ट और हरिवर्मदेव देखो। ४ भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थके एक टीकाकार।

वाचस्पत्य (सं० त्रि०) १. षडस्पतिक मत्तम्भन्धोय वाचस्पतिं देवपुरोहितमनुजात वाचस्पत्यः। २. पुरोहित-कर्मकर्त्ता। "वृद्धस्पतिर्हं वै देवानां पुगादितस्तमन्वन्वे मनुष्यराक्षा पुरोहिता इति ब्राह्मणे वृद्धस्पति यः मुभृत विभर्त्सति मन्त्रग्यवृद्धस्पतिपदस्य ध्याद्यनात्।"

(महाभारत १३ पर्व नीलकण्ठ)

वाचा (सं० स्त्री०) १. वाक्य, वचन, शब्द। २. वाणी। वाचाट (सं० त्रि०) कुत्सित वद् भाषते इति वाच् (आलजा ट्वे बहुभाषिणि। पा ७।२।१२५) इति आटच्। १. वाचाल। २. बक्ती, बकवादी।

वाचापत्र (सं० क्ली०) प्रतिज्ञापत्र।

वाचावद् (सं० पुं०) प्रचिक्षावद्, वचन देनेके कारण चिबज, वादेमें बंधा हुआ।

वाचावन्धन (सं० पुं०) प्रतिज्ञावद् होना।

वाचाग्मभन (सं० क्ली०) १. कथाका आरम्भ। २. वांग-लम्बन।

वाचाल (सं० त्रि०) बहु कुत्सितं मामने इति वाच् (पा ५।२।१२५) इति आलच्। १. वाक्पटु, बोलनेमें तेज। २. बकवादी, अर्थ बकनेवाला।

वाचालता (सं० स्त्री०) वाचालस्य भावः तल् टाप्। १. बहु-भाषिता, बहुत बोलनेवाला। ३. वातचीतमें निपुणता।

वाचाविरुद्ध (सं० त्रि०) वाड् नियमनशील।

वाचावृद्ध (सं० त्रि०) १. वाक्यमें बड़ा, जो वातचीतमें पक्का हो। (पुं०) २. चौदह मन्वन्तरके अनुसार देव-गणभेद। (विष्णुपुं०)

वाचस्तेन (सं० त्रि०) मिथ्यावादी, झूठ बोलनेवाला। (श्रृक् १०।५७।१५)

वाचिक (सं० त्रि०) वाच् टक्। १. वाणी सम्बन्धी। २. वाणीमें क्रिया हुआ। ३. मन्केतमें कहा हुआ। (पुं०) ४. अभिनयका एक भेद जिसमें केवल वाक्यविन्यास द्वारा अभिनयका कार्य सम्पन्न होता है।

वाचिकपत्र (सं० क्ली०) वाचिकस्य मन्देशस्य पत्रम्। १. लिपि। २. सम्पाद पत्र।

वाचिकहारक (सं० पुं०) वाचिकस्य मन्देशस्य हारकः। १. लेखन। २. दूत।

वाची (सं० त्रि०) १. वाक्ययुक्त। २. सूचक, प्रकट करनेवाला, बोध करानेवाला। यह शब्द सामान्य समस्त पदमें दन्तमें आनेमें वाचक और विधायकका अर्थ देता है। जैसे,—पुरुषवाची=पुरुषवाचक।

वाचोयुक्ति (सं० त्रि०) वाचि वाक्ये युक्तिर्यस्य। १. वाग्मी। (स्त्री०) वाचो वचसो युक्तिः (वाग्दिक् पर्यङ्गयो युक्तिदृष्टहेतु। पा ६।३।२१) इतिस्म्य वार्त्तिकोपेत्वा पठ्या अलक्। २. वाक्यसे युक्ति बनाना।

वाचोयुक्तिपटु (सं० त्रि०) वाचो युक्तौ वाक्दृशित-न्याये पटुः। वाग्मी।

वाच्य (सं० त्रि०) उच्यते इति वच् ण्यन्, वचोऽशब्द-संज्ञाया इति न कुत्यं। १. कुत्सित। २. होना। ३. बच-नाई, कहने योग्य। ४. अभिधेय, अभिधा द्वारा जिसका बोध हो, शब्दसंकेत द्वारा जिसका बोध हो। जिस शब्द द्वारा बोध होता है, उसे 'वाचक' और जिस धन्तु-या अर्थका बोध होता है, उसे 'वाच्य' कहते हैं। (क्ली०) वच्-ण्यत्। ५. अभिधेयार्थ। ६. प्रतिपादन। वाच्यार्थ देतो।

वाच्यता (सं० स्त्री०) वाच्यस्य भावः तल् टाप्। वाच्यत्व, वाच्यका भाव या धर्म।

वाच्यलिङ्ग (सं० त्रि०) विशेषपदका अनुगत। विशेषण पदमें व्याकरणके नियमानुसार पूर्वपदको वाच्य और लिङ्गका अनुगत होता है।

वाच्यलिङ्गक (सं० त्रि०) वाच्यलिङ्ग संज्ञाचिक्षित।

वाच्यलिङ्गत्व (सं० क्ली०) वाच्यलिङ्गका भाव।

वाच्यायन (सं० पुं०) वाच्यका गोत्रापत्य।

(तैत्ति०ष० ५।३।२।३)

वाच्यार्थ (सं० पुं०) मूल शब्दार्थ, वह अभिप्राय जो शब्दोंके नियत अर्थ द्वारा ही प्रकट हो, संकेत रूपसे

लियर शब्दोंका नियत अर्थ। अमिषा, क्लृप्ता और व्यङ्गना ये तीन शब्दोंका शब्दकी भावी जाती है। इनमेंसे प्रथमके मिषा और सबत्र आचार 'अमिषा' है, जो शब्द संकेत में नियत अर्थका बोध कराती है। जैसे,—'कुन्ता' और 'मली' कहनेसे पशुभियोग और वृद्ध विद्येयका बोध होता है। इस प्रकारका मूल अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है।

रचरचित देखो।

वाच्यवाच्य (सं० पु०) मन्त्री बुरो या कहने ग कहने योग्य बात। जैसे,—इसे वाच्यवाच्यका विचार नहीं है।

वाच्य (सं० स्त्री०) १ दूत, जो। २ पत्र। ३ मन्त्र। ४ वादि, ब्रह्म। ५ संवत्स। ६ बल। (पु०) ७ शत्रुपक्ष, वाच्यमेंका पक्ष जो पीछे लगा रहता है। ८ शत्रु, आवाज। ९ वस्त्र, पत्रक। १० बैग। ११ मुनि।

वाच्य (सं० पु०) १ उपदेश, शिक्षण। २ धार्मिक व्याख्यान। ३ धार्मिक उपदेश, कथा।

वाच्यकर्म (सं० लि०) शक्तियुक्त कर्मकारी।

वाच्यकृत्य (सं० स्त्री०) वह कार्य जिसमें बस या शक्तिका भावश्यक हो।

वाच्यमन्त्र (सं० लि०) शक्तिहीन मन्त्र।

वाच्यकठर (सं० लि०) हरिकठर, धृतगर्भ।

वाच्यकृत् (सं० लि०) शक्तिप्रकारकारी।

वाच्यकृति (सं० स्त्री०) शक्ति, क्षमता।

वाच्यकृत्या (सं० स्त्री०) अन्नप्रयोग, शक्तिशायिनी।

वाच्य (सं० लि०) वाच्य अर्थात् वाच्य-क। अन्वयात्। 'मन्वाय वाच्यदा युवं' (शुक् १।१।१५) 'वाच्यदा वाच्यस्य अन्वयस्य दातारो' (राज्य)

वाच्यदायन् (सं० लि०) अन्नदाता।

वाच्यदायत् (सं० स्त्री०) एक सामका नाम।

वाच्यद्रविणस् (सं० लि०) अन्न और घनयुक्त।

(शुक् ५।१।३६)

वाच्यपति (सं० पु०) १ अन्नपति। २ अग्नि।

(शुक् ५।१।३६)

वाच्यपत्नी (सं० स्त्री०) १ अन्नरक्षिणी। २ धेनु।

वाच्यपत्य (सं० लि०) अन्नपत्य'। (शुक् ६।१।२१)

वाच्यपेय (सं० पु० स्त्री०) वाच्यमर्न पूतं वा पेयम

भेति। एक प्रसिद्ध पत्र जो सात धौत यक्षोंमें पाँवना है। कहते हैं कि जो वाच्यपेय पत्र करते हैं, उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है।

वाच्यपेयक (सं० लि०) वाच्यपेय सम्बन्धा।

वाच्यपेयिक (सं० पु०) वाच्यपेय रक्षाय पुत्रादि भावश्यकोय श्य।

वाच्यपेयो (सं० पु०) १ घर पुरुष जिन्में वाच्यपेय पत्र किया हो। २ प्राणियोंको एक इपाधि जो कात्यकुष्ठोंमें होती है। ३ अत्यन्त कुलीन पुरुष।

वाच्यपेयस् (सं० लि०) अन्न द्वारा शक्ति, अन्नयुक्त।

वाच्यप्य (सं० पु०) एक गोलाकार श्युधि। इनके गोलेके छेग वाच्यप्यापन कहलाते हैं।

वाच्यमहस (सं० लि०) १ अन्न द्वारा क्षेत्रणी, बड़ा दौलतमन्द। (पु०) २ इन्द्र।

वाच्यमन्त्रोय (सं० लि०) अन्मोत्पादनसम्बन्धी।

(उत्पत्त्या ५।१।१५)

वाच्यप्रसव्य (सं० लि०) अन्मोत्पादनोय।

वाच्यपन्थु (सं० पु०) बन्धुति।

वाच्यबो (सं० लि०) वाच्यी देहा।

वाच्यमर्म्म (सं० लि०) जिससे अन्न या बन्धुका मरण हो।

वाच्यमर्म्मोय (सं० स्त्री०) एक सामका नाम।

वाच्यभृत् (सं० स्त्री०) एक सामका नाम।

वाच्यभोदिन् (सं० पु०) वाच्य भुक्ते इति जिनि। वाच्यपेय याग है।

वाच्यभर (सं० लि०) इयिर्लेतयापनका मर्त्ता।

वाच्यरत्न (सं० लि०) १ उत्तम अन्नयुक्त। २ श्वसु।

(शुक् ५।१।३२)

वाच्यरत्नायन (सं० पु०) सामशुभमर्त्ता अत्यन्त।

(देवेय १।२१)

वाच्यवत् (सं० पु०) एक गोलाकार श्युधि। इनके गोलेके छेग 'वाच्यवत्तायनि' कहलाते हैं।

वाच्यवत् (सं० लि०) १ बन्धुकारी। (शुक् १।१।३३) २ अन्नयुक्त। (शुक् १।२।०६)

वाच्यवत् (सं० पु०) पुराणानुसार एक श्युधि नाम।

वाच्यवत् (सं० पु०) १ वाच्यवत्तायन गोलेमें रहण्य पुरण्य।



२ एक ऋषि जिनके पुत्रका नाम "नचिकेता" था और जो अपने पिताके क्रुद्ध होने पर यमराजके यहां चला गया था। वहां उसने उनसे ज्ञान प्राप्त किया था।

वाजश्रवा (सं० पु०) १ अग्नि। २ एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

वाजश्रुत (सं० त्रि०) वह व्यक्ति जो धन द्वारा विन्यात हो।

वाजस (सं० क्ली०) एक सामका नाम।

वाजसन् (सं० पु०) १ शिव। २ विष्णु। ३ वाजसनेय शाखाभुक्त।

वाजसनि (सं० पु०) १ अन्नदाता। २ सूर्य।

वाजसनेय (सं० पु०) १ यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम। इने याज्ञवल्क्यने अपने गुरु वैशम्पायन पर क्रुद्ध हो कर उनकी पढाई हुई विद्या उगलने पर सूर्यके तपसे प्राप्त की थी। मत्स्यपुराणके अनुसार वैशम्पायनके शास्त्रमे वाजसनेय जान्वा नष्ट हो गई। पर आज कल शुक यजुर्वेदकी जो संहिता मिलनी है, वह वाजसनेयसंहिता कहलाती है। २ याज्ञवल्क्य ऋषि।

वाजसनेयक (सं० वि०) वाजसनेय जान्वाधरायी।

वाजसनेयसंहिता (सं० स्त्री०) शुक यजुर्वेद।

यजुर्वेद देखो।

वाजसनेयिन् (सं० पु०) वाजसनेयेन प्रोक्त वेदमस्त्यस्येति इति। यजुर्वेदी।

वाजसानि (सं० स्त्री०) १ संप्राम, युद्धस्थल। (ऋक् १।३५।१२) २ अन्नलाम। (ऋक् १।४३।६)

वाजसाम (सं० क्ली०) एक सामका नाम।

वाजसन् (सं० त्रि०) वाज संप्रामं सरनि खु-क्विप्। संप्रामसरण, युद्धमें जाना।

वाजस्रजाश्र (सं० पु०) वेण राजाका नाम। (विष्णुपुराण)

वाजस्रव (सं० पु०) वाजश्रव देखो।

वाजिकेश (सं० पु०) जातिविशेष। (मार्क० पु० ५।८।३७)

वाजिगन्धा (सं० स्त्री०) वाजिनो घोटकस्य गन्धोऽस्त्यस्यामिति, अच् टाप्। अश्वगन्धा, असगध।

वाजिन (सं० त्रि०) शब्दित, शब्द किया हुआ।

वाजिनन्त (सं० पु०) वाजिनां दन्त-इव पुपं यस्य।

वायक, अडूस।

वाजिदन्तक (सं० पु०) वायक, अडूस।

वाजिदंष्ट्र (सं० पु०) एक असुरका नाम। यह केंजीका पुत्र था।

वाजिन (सं० पु०) वाजो वेगोऽस्त्यस्येति राज इन्। १ घोटक, घोडा। वाजः पक्षोऽस्त्यस्येति। २ वाण। ३ पक्षी।

४ वसाक, अडूस। वाजति गच्छतीति वाज-णति। (दि०) ५ चलनविशिष्ट, नटनेवाला। ६ अश्वविशिष्ट, अश्वयुक्त। वाजः पक्षोऽस्त्येति। ७ पत्रविशिष्ट।

वाजिन (सं० स्त्री०) १ शाम्पिनामस्तु, फटे हुए दूधका गानी। वैद्यकमे इसे क्विक्वर तथा तृष्णा, टाह, रक्तपित्त और उ्वरका नाशक लिखा है। २ हाथि। (पु०) ३ अर्थ।

वाजिना (सं० स्त्री०) वाजिन्-टीप्। १ अश्वगन्धा, अमगंध। २ घोटकी, घोडा। पर्याय—घडवा, वामी, प्रसूता, आर्त्तवी। ३ मत्स्य दूधका गुण—रक्त, अश्व, लवण, दीपन, लघु देहदर्थील्पकर, बलकर तथा कान्तिवर्द्धक। टहाका गुण—मधुर, कषाय, कफपाडा और मूर्च्छादीपनाशक, रक्त, वानवर्द्धक, दीपक और नेत्रदीपनाशक। श्लोका गुण—कटु, मधुर, कषाय, धोडा दीपन, मूर्च्छानाशक, गुरु और वानवर्द्धक।

वाजिनोवत् (सं० त्रि०) अन्न या वलविशिष्ट।

वाजिनोवसृ (सं० त्रि०) वाजिनोवत्, अन्न या वल-विशिष्ट।

वाजिनेय (सं० पु०) वाजिनोपुत्र, भगद्वाज।

वाजिपृष्ठ (सं० पु०) वाजिनः पृष्ठमिव आकृतिरस्येति। १ अम्बानवृक्ष। २ घोड़ेकी पीठ।

वाजिव (अ० वि०) उचित, ठीक, मुनासिब।

वाजिधी (अ० वि०) उचित, ठीक, मुनासिब।

वाजिवुल्-अदा (अ० वि०) १ वह रकम या धन जिसके देनेका समय आ गया हो, वह रकम जिसका दे देना उचित हो या जिसे देनेका समय पूरा हो गया हो। (पु०) २ ऐसा धन या रकम।

वाजिवुल्-अर्ज (अ० पु०) वह धर्म जो कानूनो बन्दो-बस्तके समय जमींदारों और काश्तकारोंके बीच गाँवके रिवाज आदिके सम्बन्धमे लिखा जाती है।

वाजिवुल् वसूल (अ० वि०) १ जिसके वसूल करनेका

वक्तु भा गया हो। (पु०) ० येना धन वा रक्षम् ।  
 वाग्निम (स० ह्रीं०) अग्निनी ब्रह्मज्ञ ।। सूर्य० २३६ )  
 वाग्निमज्ञ (स० पु०) वाग्निनिर्मोक्षते इति भस्म कर्मणि  
 धम् । बणक, बना ।  
 वाग्निमोक्षण (स० पु०) वाग्निनिर्मोक्ष्यत इति शुद्ध कर्मणि  
 ष्युट । शुद्ध, सु ग ।  
 वाग्निमत् (स० पु०) परोक्ष परवत् ।  
 वाग्निमेघ (स० पु०) अम्बुमेघ ।  
 वाग्निमेघ (स० पु०) कालमेघ ।  
 वाग्निरात्र (स० पु०) १ विष्णु । २ ऋषीश्वर ।  
 वाग्निबाह्य (स० ह्रा०) सन्धोमेघ । इसक प्रत्येक करण  
 में २३ अक्षर होते हैं जिनमें १ वा और २३वा अक्षर  
 लघु तथा बाकी शुद्ध होता है ।  
 वाग्निविद्या (स० स्त्री०) १ अम्बुध, पीपल । २ घोड़े की  
 विद्या ।  
 वाग्निशुक्ल (स० पु०) अम्बुमारुत, कनेरका पौध ।  
 वाग्निशाखा (स० स्त्री०) वाग्निदां शाखा शुद्ध । अम्बुशाखा,  
 अक्षयल ।  
 वाग्निशिखा (स० पु०) १ मगयाजके एक अक्षरका नाम ।  
 २ एक नामका नाम ।  
 वाग्निस्मैयक (स० स्त्री०) वाग्निस्मैयक ।  
 वागी (स० पु०) वाग्निसेवा ।  
 वागीकर (स० स्त्री०) १ वागीकरण रसायन प्रस्तुतकारो ।  
 २ मौलिक क्रिया या व्याप्यामादि कीशमप्रवर्तनकारो ।  
 वागीकरण (स० ह्रीं०) अवागी वा औप क्रियामेऽनेनिति क  
 ष्युट, अमृततज्ञाये चिन् । यह आयुर्वेदिक प्रयोग जिनस  
 मनुष्यमें शीघ्र शीघ्र पु सुस्त्वकी शक्ति है । इसक रक्षण—  
 “अस्व्यं पुत्रं कुर्वीत वाग्निवत् सुत्वकम् ।  
 वाग्निशरणमल्पान् मुनिभिर्मित्रान् बरेत् ॥”  
 ( भाष्य० वागीकरणार्थि० )  
 जिस द्रव्यका सेवन करनेसे मनुष्य अम्बुके समान  
 सुतलसुत होना है अर्थात् जिन क्रियाके द्वारा घोटके  
 समान रति शक्ति बढ़ती है उसे वागीकरण कहते हैं ।  
 फलदायक जिसको रतिशक्ति अल्प तथा अतिरिक्त ही  
 सदयासादि दुष्क्रियाके द्वारा दीन हो गई है, उसे वागी  
 करना शीघ्र सेवन करना विद्येय है । शरीरक अल्प

शुद्ध पातु ही श्रेष्ठ है तथा यह पातु शरीर पोषणकी एक  
 मात प्रमाण है, सुतरां इन पातुकी घटती होनेसे जिससे  
 यह पातु बढ़े, उम्बु उपाय करना सर्वांगीभाषसे उचित  
 है । नहीं तो शुद्धता क्षय होनेसे सभी पातुका क्षय हो  
 कर अकालमें शरीर लघु हो जानेकी पूरी सम्भावना है ।  
 इसलिये भी वागीकरण औषधादिका सेवन करके शीघ्र  
 शुद्धको पूर्ण करना निताम्य प्रयोजन है ।  
 साधारणता—घो, दूध, मांस आदि पुष्टिकर साधार  
 अल्पयुक्त परिमाणमें सेवन करनेसे वागीकरणका प्रयोग  
 बहुत कुछ सिद्ध होता है । जो सब वस्तु मधुर रस,  
 स्निग्ध, पुष्टिकरक, वस्त्रक की भीर वृत्तिजनक हैं, यही  
 साधारणता दूध या वागीकरण कहलाती है । मियतना  
 तथा अनुरक्त सुन्दरी युवती रसको ही वागीकरणकी  
 प्रथम उपादान है । मायप्रकाशमें लिखा है, कि ह्रैष्य  
 अर्थात् ह्रीयता (सुतलशक्तिशालि) होने पर वागीकरण  
 औषधका सेवन करना होगा है, इसलिये वागीकरण  
 के पहले ह्रैष्यके लक्षण, स तथा भीर निदानकी बात  
 कहो जाती है ।  
 मानव जब सुतलक्रियामें भासक हो जाता है तब  
 उसे ह्रीय कहते हैं । ह्रीयका मात ह्रैष्य है । यह ह्रैष्य  
 सात प्रकारका होता है । इसके निदान भावि इन प्रकार हैं  
 अथ, शीघ्र शीघ्र क्रियादि द्वारा अथवा अल्प सेवन करने  
 दिवा अनिमित्त अथवा शरीरके साथ सम्भोग करनेसे  
 मनकी प्रीति न हो कर पर अनुत्पत्ता पड़ जाती है ।  
 इसन मित्रको लसेजना शक्ति जाती रहता है इसको  
 नाम मानस-ह्रैष्य है ।  
 अतिरिक्त बहु, अल्प, लक्षण और उष्ण द्रव्य सेवन  
 करनेसे पित्तकी वृद्धि हो कर शुद्ध पातु क्षय हो जाती  
 है । इससे जो शिखर उष्णता रहित हो जाना है,  
 उसे पित्त ह्रैष्य कहते हैं । जो बलिक वाशाकरण  
 औषध सेवन न करके अतिरिक्त मैथुनासक्त होता है,  
 उसे मा शुद्धक्षय हेतु ह्रैष्य उत्पन्न होता है । अस्वपाय  
 शक्ति अल्पपरत कामातुर होने पर अगर मैथुन करके शुद्ध  
 योग धारण करे, तो उम शुद्ध स्तब्ध शीघ्रक कारण  
 ह्रैष्य रोग होता है । अगमने ही ह्रैष्य होने पर वागी  
 करना शीघ्र सेवन करनेसे कई फल नही होता । शीघ्र

वाहिनी गिराच्छेद हेतु जो क्लेश्य उपस्थित होता है, वह भी असाध्य है।

साध्य क्लेश्य रोगमें हेतुके विपरीत कार्य करना उचित है, कारण निदान परिवर्तन ही सध तरहकी चिकित्सामें उत्तम है। पीछे उमें वाजीकरण औषध सेवन करना चाहिए।

मानवगण अच्छी तरह काया प्रोधन कर १६ वर्षके बाद ७० वर्ष तक वाजीकरण औषध प्रयोग करे। अधि शुद्ध प्ररीरमें वाजीकरण औषधका सेवन करना उचित नहीं, उससे प्रगेर का नाना तरहका अनिष्ट हुआ करता है। विशुद्ध प्ररीरमें वाजीकरण औषध ग्रहण करनेसे गतिप्रतिबन्धन बढ़ती है।

बिलासी, अर्थगाली और रूपर्यावनसम्पन्न मनुष्योंके तथा बहु-स्त्रीवाचोंके वाजीकरण औषध सेवन करना कर्त्तव्य है। बृद्ध रमणेच्छु, मैथुनके कारण श्रृंषण, प्रकीर्य और अहमशुक्र विनिष्ट प्रकियोंके पत्रं जिसकी इच्छा स्त्रियोंका प्रिय होनेकी है, उनके लिये वाजीकरण औषध हितकर तथा प्रीति और बलवर्द्धक है।

नाना प्रकार सुषकर, आहारिय और पानीय, गीत, रमणीय वाक्य, स्पर्शासुख, तिलकादि चारिणी रूपर्यावन सम्पन्ना कामिनी, श्रवणसुखकर गीत, ताम्बूल, मद्य, मास्य, मनोहर गन्ध, चित्रित रूपदर्शन, उद्यान पत्र मनका प्रीतिकर द्रव्यसमूह मानवोंका वाजीकरण कहलाता है।

सर्षमाधिक, पारदमर्म और लौहचूर्ण मधुके साथ पत्र हरीतकी गिलाजतु और विडङ्ग कीके साथ इक्कोम दिन तक चादनेसे अस्सो वर्षका वृद्ध भी जवानकी तरह स्त्रीप्रसङ्ग कर सकता है। गुडञ्जका रम, गोधा हुआ अन्न, लोय, इलायची, चीनी और पिपलीका चूर्ण इन सबोंको मधुके साथ चादनेसे एक सौ स्त्रीसे सम्भोग किया जा सकता है। जीवित बड़डेवाली गायके दूध द्वारा गेहूँका चूर्ण, चीनी मधु और चीके साथ पायस बना कर खानेसे बृद्ध व्यक्ति भी रति-प्रकिसम्पन्न होता है। थोड़ा अम्बुमधुर अधि ८ सेर, चीनी २ सेर मधु आध पात्र, सोंठ ८ माणा, श्री आध पात्र, मिर्च ४ माणा और लौंग आध छटाक पकत्र करके साफ कपड़े से छाने।

पीछे उसमें कम्बूगे और चन्दन मिला कर अगुरु द्वारा धूपित करके कपूरके योगसे उसे सुगन्धित कर ले। इस तरह रमाला प्रस्तुत कर सेवन करनेमें उत्तम वाजीकरण होता है। मकरेश्वरने अपने सेवनके लिये यह वाजिकार किया है। यह रतिप्रिय सुगन्धायक तथा कामानि-सन्दीपक है।

गोखरु शोज, कौकिलाक्ष बीज, अश्वगन्धा, जनमूली, नागमूली, शुक्रजिम्बीबीज, र्याष्टमधु, पिष्टवन और बन्धा एक साथ चूर्ण कर घीमें भूत कर दूधमें सिद्ध करे। पीछे उसे चीनीके साथ मोदक तैयार कर अग्निके बलानुसार खानेसे उत्तम वाजीकरण होता है। सत्र वाजीकरण औषधोंका मात्र ले कर यह बनाया गया है, इसलिये यह सध वाजीकरणोंसे श्रेष्ठ है। यह औषध बनानेमें चूर्णमें आठगुना दूध, चूर्णके बराबर बीतथा सत्रके बराबर चीनी देनी होती है। इस तरह जो मोदक तैयार होता है, उसे रतिवर्द्धक मोदक कहते हैं।

गोधा हुआ अन्न ४ भाग, गोधा हुआ रांगा २ भाग तथा पारदमर्म १ भाग, इन्हें एकत्र पीस कर सत्रपरिमाण कृष्णधुम्बुरका चूर्ण मिलाना होगा। पीछे उसमें ठारचीनी, इलायचा, नेत्रपत्र, नागकेसर, जातिफल, मत्स्य, पीपल, सोंठ, लौंग और जातीपत्र प्रत्येकका २ भाग अच्छी तरह चूर्ण कर एकत्र मिलावे। इस मिश्रित सभो चूर्णोंके साथ दो गुनी चीनी मिलानी होगी, इसके बाद घृत और मधुके साथ पीस कर मोदक बनावे। यह मोदक अग्निके बलानुसार सेवन करनेसे जीव ही आनन्द बढ़ता और अनेकों कामिनीयोंके साथ सम्भोग करनेकी सामर्थ्य होता है।

बकरेका अण्डकोष या कन्दुपका अण्डा पीपल और सैध्वके साथ मिला कर घीमें भूत कर खानेसे अत्यन्त वृध्य होता है।

दक्षिणो सुपायोका स्रण्ड पण्ड करे, पीछे इस स्रण्डके जलमें सिद्ध कर जब सुलागम हो जाय, तो उसे निकाल कर सुखा ले। अच्छी तरह सुख जानेके बाद उसे चूर्ण कर कपड़े से छान ले। यह चूर्ण ५१ सेर, ८ गुना दूध और आध सेर घीमें पाक करके इसमें ५६ सेर चीनी डाल दे। जब पकवम सिद्ध हो जाय, तब

इस प्रकार है। पीछे इसमें निम्नोक्त चूर्ण मिला दे।  
 यह चूर्ण त्रिवे—रत्नापयो, पीतलपत्र, पीपल, जातोपत्र,  
 नीर जातोपत्र भास्विपयत्र सत्रपत्र, हारण्योकी सौंद्र,  
 लमकी जड़, पथरपूर मोषा, सिपया, चंदासाजन  
 गतमूत्री, श्राफिश्या, द्राक्षा, केरिन्दास बीज, गोशुक्रबीज,  
 गृह्णी, विण्डवजूर, क्षीरा घनिर्वा, पट्टिमपु पामोफल,  
 मोरा, कृष्णतारा, अमरावण, वाज्रकोप अरामोनी, सौंद्र,  
 मैथी, मूमिबुध्वाएक, ताम्बूली अमरांघ, बचूर, तागके  
 गर मरिच, निपाल बीज, गज्जविण्यो पञ्चबीज श्वेत  
 चम्पू, रत्नचम्पू, स्यंग इग मरुके प्रत्येकका चूना भाय  
 पाय। अतःतर इसमें परीका भस्म रांगा मोसा,  
 मेहा अण्ड, वन्दूकी भीर बचूरका चूर्ण दोड़ो मात्रामें  
 मिला कर यह मोर्क तैयार करे। अग्निमें पलानुसार  
 मात्रा सिद्ध कर मयन करणा उपचित है। शुद्धाग मयन  
 अच्छी तरह परिपाक होने पर आगारक पहले वह मयन  
 करना चाहिये। इसमें अन्तान्त्रि, बल, बीर्य और काम  
 वृद्धि होता है एवं वायु पथ तब और शरीरकी वृद्धि हो  
 कर अत्यन्त समान मैतुनसम होता है।

इस तरीकेसे रतिपल्लवपूगपाक प्रस्तुत करके सुरा,  
 पुष्करबीज, वासु मूर्वावक, दिङ्गुल बीज और समुद्र  
 फेन प्रत्येक भागों ताका पय पत्रका छिलका भापा  
 छराक वयं मय चूर्णोंका अर्थात् म गंगका चूर्ण मिला कर  
 जो मोर्क बनाया जाता है, इस कामेश्वरमोर्क कहते  
 हैं। यह बहुत अच्छा बाजोकरक है।

सुपक कामका रस १४४ एक मन बीरसेस सर, बीकी  
 ८ गद, पून ४ गद, सौंद्रका चूर्ण १ गद, मरिच ३३ भाय  
 रीर, पीपल ३। एक पाक भीर तम १३ मेर इन मरुकेको  
 पत्र कर सिद्धीके बरतनमें पाक करे। पाक करनेक  
 समय मधोभीति आलोहन करना होता है। प्रथम यह  
 पाका हो जाय, तब उमें भीषे उजार कर इसमें घनिता,  
 जीरा, हरीतकी, चिना भाय, हारकाता, पायलायुन,  
 भाग्यरुद, इयावकाका राजा सपहु और जातीशुपर  
 प्रत्येकका चूना भाय पाय डाल है। हठ्या हो जान  
 पर उमें फिर एक बार मयु मिला है। मोहन करभक  
 करने अग्निमें वमानुसार मात्रा सिद्ध कर इसका सयन  
 करना होता है। इसमें चरुणा आदि अनेक प्रकारक राग

प्रशमित होते तथा बल और बीर्यकी वृद्धि हो कर अत्यन्त  
 समान मैतुनसम होता है। यह अति उत्तम बाजीकरण  
 है। इसका नाम भास्वराक है। अग्निगय इन्द्रियमेधनादि  
 द्वारा गिज्ञतकी उत्तेजना कम यह जाने पर गोशुक्रगुणों  
 बढाके मयमें पाक करे। पीछे इसमें मयु मिला कर  
 मयन करनेमें रोग बहुत ज़रूर शाराम होता है।

निलका मेस ३४ मर, बज्रचार्य रत्नचम्पू अणुठ,  
 कृष्णाणुठ देवदाद, सत्यकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, कुंग, बाग शर  
 इक्षुमूत्र, कपूर मृगनामि, लताकरमूरी, कुकुम रक्त  
 पुननता, जातोपत्र जागीवत्र, लघुहु बड़ो और छोटी  
 इयावकी, वाकन्यापत्र, पूषा, तैजपत्र भाग्यरुद, गरीरन,  
 लमकी जड़, जटामोसा, हारखोना, पूनचूर्ण, शैलज,  
 नागरमोषा, शैशुका, सिंधु, तारपिन, गुग्गुलु भाक्षा,  
 लमी पूनी, पयका पून शाना मञ्जिष्टा, तगरवादिक्क  
 तथा गोम इन मरुके प्रत्येकका भाय तोसा थार गुमें अय  
 में पयाविधान पाक करे। यह तेज शैद्यमें सगामने भस्मा  
 पायका एक भा शुद्धपिपयम गुषाकी तरह निर्याका शिव  
 दाना है। सास कर चरुणा करी मगर यह मेस सगाये  
 तो इसका वाक्यापन बूट हो जाय। इसको चम्पूनादिनेक  
 कहते हैं।

रामयून पीपल, चिना रीर, बहेटा, पट्टयत्र, मरिच,  
 गडि, मैगय, रक्तरोहितक, दली, द्राक्षा कृष्णतारा,  
 दरिद्रा वाटदरिद्रा भासल्यो, बिबहु, वाकन्यासीनी  
 देवदाद, पुनर्नवा घनिर्वा लक्ष्ण भममनास, गोपक,  
 पूषदाक, पदार और पीरणकी जट परधेक दर पाय  
 और हरीतकी ३८ मर इन मरुकेका पत्र कर जो मन  
 अन्नमें पाक करे। हरीतकी अच्छी तरह सिद्ध होने पर  
 इसमें मयु है। पीछे ताम दिन पीपल दिन और दम  
 दिनमें फिर इसमें मयु टाकना दाना। इस तरह जब  
 हरीतकी दूढ़ हो जाय तब मांसे बरतनमें इस मयुपूग  
 कर रये। इस मयुपूग हरीतकीके मयभयन चम्पूनादिमें  
 कहा है, कि यह लोभय भाग्य बजा आदि ताना प्रकार  
 के रोग बूट होने में एवं वनवाय पट्टिन हो कर रागी  
 प्रत्येक सुखसम होता है।

शुद्धागिषा भाय भाय सर और पून ३३ रीर भायक  
 मयमें पाक करे। पीछे जब यह पाका हो जाय, तब बरी

उतार ले। नदनन्तर उक्त बीजका छिलका उत्सम्पूर्णमे पीस कर उसको गोली बनावे और उसे घीमें पाक करके दो गुनी चीनीमें छोड़ दे। पीछे उसमें निकाल कर मधुमें यह गोली डुबो कर रख दे। यह ढाई तोला सुबह और शाममें खानेसे शुरुआती तरलता नष्ट करके शिश्नकी उत्तेजना बढ़ाती और घीडेकी तरह रतिशक्ति उत्पन्न करती है। इसका नाम वानरी चटिका है।

आकारकरभ, मोठ, लवंग, कुंकुम, पोपल, जानी फल, जानीपुष्प, रक्तचन्दन प्रत्येकका चूर्ण आध छटाक तथा अहिकेन आध पाव इन सबोंको एकत्र कर मधुके साथ एक माशा भर रातमें सेवन करनेसे शुकस्तमित हो कर अत्यन्त रतिशक्ति बढ़ती है।

( भावप्र० वाजीकरणवि० )

वामदण्ड लिखा है, कि विषयी वाजीकरणयोगसमूह व्यवहार करे, कारण इस वाजीकरण औषधका सेवन करनेसे तुष्टि, पुष्टि, गुणवान् पुत्र एवं सदा आनन्द बढ़ता है। इससे वाजा अधात् अश्वके समान सुगतक्षमता पैदा होती है। इसलिये इस योगका नाम वाजीकरण हुआ है। इससे खियोंके वर्ण चूर्ण होते तथा प्रेमी उनके अतिशय प्रिय हो जाने हैं। यह योग देहका बलवर्द्धक, धर्मकर, यशस्करो तथा आयुवर्द्धक होता है। जो निर्बल हो गया है, अथवा रोग जोकादिके द्वारा जिमका शरीर जोर्ण हो गया है, उसे शरीर क्षयकी रक्षाके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना निहायत जरूरी है। वृद्ध व्यक्ति भी वाजीकरणयोग प्रयोग कर शरीरकी सामर्थ्य तथा बहु स्त्रीमें स भोग करनेकी शक्ति लाभ करते हैं।

चिन्ता, जरा, व्याधि, क्लेशजनक कर्म, उपवास तथा अतिरिक्त स्त्रीसङ्गमादि द्वारा देहका शुकक्षय होता है। इस कारण देहका बल और शुकक्षय निवारणके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना विधेय है। जिमसे पुगवको स्त्री-सङ्गम-विषयमें अश्वकी तरह शक्ति और अतिशय शुक उत्पन्न होता है, उसे वाजीकरण कहते हैं।

यदि अतिरिक्त स्त्रीसङ्गम किया जाय अथवा वाजीकरण औषध सेवन न किया जाय, तो ग्लानि, कम्प, अवसन्नता, क्रशता, इन्द्रियदीर्घत्व, उदर, शोष, उच्छ्वास, उपदंश, उदर, अर्ण, धातुकी क्षीणता, वायुप्रकोप, क्लेशता,

धरजमद्ग और स्त्रीकी अप्रियता यह सब घटना घटती है। इसलिये इन सबोंका उपक्रम होनेसे वाजीकरणका सेवन करना नितान्त आवश्यक है।

जो सब द्रव्य मधु, गिन्ध्र, आयुष्मन्, धातुपोषक, गुरु और चित्तका आह्लादजनक है, उन्हें दूध या वातीकरणयोग कहते हैं। उदको घीमें भून कर दूधमें सिद्ध करके चीनीके साथ खानेसे रतिशक्ति बढ़ती है। शनमूली दो तोला, दूध एक पाव, जठ एक तैर, श्रेय एक पाव यह पीनेमें भी रतिशक्ति वृद्धि होती है। शूट सिमुलका मूल और तालमूला एकत्र चूर्ण कर घी और दूधके साथ व्यवहार करनेसे वाजीकरण होता है। भूमिकुम्भाण्डके मूलका चूर्ण, घी, दूध या यतडुम्बुरके रसके साथ खानेसे वृद्ध व्यक्ति भी युवाकी तरह सामर्थ्यवान् होता है। आमलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें मान बार भावना दे कर घी और मधुके साथ सेवन करके पीछे आध पाव गायका दूध पीनेमें वीर्य बढ़ता है।

अत्यन्त उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, गर्भ, क्षाम, जारक वा अधिक लवण खानेसे वीर्यभी हानि होती है। सुतगा वाजीकरणयोग सेवन करनेके समय यह सब द्रव्य बहुत सेवन न करे। पोपलका चूर्ण, सैन्धव, लवण, घी और दूधमें सिद्ध करके दोनों कोष खानेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। बिना भूमीका तिल वारके अण्डकापके साथ सिद्ध कर दूधमें एक बार भावना दे। पीछे उसे खानेसे अधिक परिमाणमें रतिक्षमता उपजती है। भूमिकुम्भाण्डका चूर्ण भूमिकुम्भाण्डके रसमें भावना दे का घृत और मधुके साथ मक्षण करनेसे रतिशक्ति बढ़ती है। आमलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें भावना दे कर घी और चीनी या मधुके साथ सेवन करने पर अस्मी वर्षका वृद्ध भी युवाके समान रतिशक्ति सम्पन्न होता है। भूमिकुम्भाण्डका मूल और यतडुम्बुर एकत्र पेपण करके घी और दूधके साथ खानेसे वृद्ध भी तरुणत्वको प्राप्त होता है। आमलकीके बीज और छत्राक बीजका चूर्ण मधु, चीनी और धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे शुकक्षय नहीं होता। शतमूली और करैजामूलका चूर्ण अथवा सिर्फ करैजामूलका चूर्ण दूधके साथ खानेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। यष्टिमधु चूर्ण २ तोला घी और मधुके साथ

सेवन कर वृष पौषसे अतिशय शीघ्र वृद्धि होती है। गोक्षर बोज, छटाक, शतमूली, भास्कुशी बोज, गोपधरबी और बोजब द्वा मूल इन सबोंका पूर्ण अन्निक बला-मुसार उपयुक्त मात्राम रतको सेवन करनेसे अतिशय रतिक्षमता उपजती है। सचमांस वा मछली खास कर पोडिया मछली घीमें भून कर रोत्र धामिसे जोसङ्गम करनेसे कमजोरो नहीं मालूम पड़ती।

शतमूलीपूर्ण ५२ सेर, गोक्षर बीज ५२ सेर, सुपुषी ५१॥ सेर, गुमज ५३० छटाक, मेलाशूर्ण ५४ सेर, घितामूल पूर्ण ५१। सेर, तिल तण्डुल ५२ सेर, मिला कर त्रिष्टु वृषण ५२ सेर, बीनो ५८०० सर, मधु ५३॥ छटाक, धी ५२० छटाक, मूमिहुमाएडका चूर्ण ५२ सेर, एकत्र करके घृतमापकमें रचना होगा। इसकी मात्रा २ लोका है। इसका सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग और बुरा दूर हो कर बल और धीर्य तथा इन्द्रियशक्ति बढ़ती है। इसका नाम त्रसिंहपूर्ण है।

इसके सिवाय गोधूमामघृत, वृद्धश्वान्वादि घृत, गुग्गुलुमाखक, वृषच्छतायरोमोदक, रतिबल्लमोदक, कामा म्लसन्धीपनमोदक, क्षारमशोषक कर्दवा चक्र, मन्मथाक्षरस, मकरकषत्ररस, कामिनीपद्मजल, हृष्याशु कामधेनु, छल्लामोह पण्पायूरस, स्वर्ण सिन्दूर, सुसुन्दरी गुडिका, पल्लवसारसैम, ध्योगोपाकृतैक, मृतसञ्जीवनीसुत, वृषमूलादि और मदनमोदक आदि भीषण सेवन करनेसे बन्ध और शीर्षादि बर्धित हो कर उद्यम बाजीकरण होता है। इन सब भीषणोंकी प्रस्तुत प्रणाली उन उन शास्त्रों और मैन्यरत्ननामकीके बाजीकरणका विचारमें लेंको। इनके मन्त्राद्ये उपजमङ्गलधिकारमें जिन सब योग और भीषणादिका वर्णन है, वह सब भी वाजीकरणमें विधेय प्रगस्त है। अश्वान्वा घृत अमृतप्राश घृत, भीमदानाम्पमोदक, कामिनी वषैम, कदवचन्द्रोदय और वृषाम्पमोदय, मकरकषत्र, सिद्धसुत, कामशोषक, सिद्धशान्मलीकन्द्य, पञ्चशर, त्रिष्टकघामोदक रसाद्या पम्बुआदि सैक पुत्रपम्बा, पूर्णबन्द और कामाग्नि सन्धीपन आदि भीषण भी बाजीकरणमें विधेय फल म्द है।

आतोपन, भागोभर, पोपक, क कोक, मासुफल, इयामा

सता, कदफल, भनक्तमूल, भाग्य, पच, कसूर यमि मस्तकी, इरामासी, शिमूलमूल, धी फूल, बटकी, गोक्षु-धोज मेयी, शतमूली, भास्कुशी बीज, छटाक बीज विडधय, चतुरा बीज, पच, कुन्द, उल्फक केशर, पष्टिमधु अवन, शायफन, मूमिहुमाएड, तालमूली, कड़की, प्रियंगु, शीबक, श्वपक, सोंठ, मरिच त्रिफला, [इलायची, गुग्गुलु, घनिर्वा, तोपचीनो, हिङ्गलबीज, उपज्ज भाकरकरा, बाळा कर्पूर, कुकुम, मृगनाभि, मन्त्र, सोता, चांदी, सोसा, रंगना, लोहा, होरा, ताँबा मुका, रसमिन्दूर, हरि ताल इन सबोंक प्रत्येकका सामभाग तथा इनकी शीमन्नी भर मङ्गला पूर्ण और सर्वसामरिका अर्थक चीनी, शीमी के बराबर मधु घोड़ा जल, इन सबोंको एक साथ मन्त्र अग्निमें खेदके समान पाक करना होगा। पीछे इसमें घोड़ा धी मिलाता होगा। यह भीषण उत्तम बाजीकरण होता है। इसका सेवन करनेसे वेदकी पुष्टि और बल बीर्यादिकी वृद्धि होती है। स्वेच्छ वा यपनोमि यह सुफर भीषण निकाली है, इसलिये इसका नाम मोकरवा है।

यह सब बाजीकरण भीषण सेवन करनेके बाद उप-युक्त परिमाणमें वृष और ठपका जल पी कर प्रफुल्लविच से इन्द्रियगाकास्ता रसका रमणोच साध रतिबोद्धा करनेसे तनिक भी घातु वैपग्य उपस्थित नहीं होता। जो नारो सुक्या युवती, सुमक्षणसम्भवा, वयस्था और सुविज्ञिता होती है उसे वृषवसा कहते हैं।

शरक, सुधुत, वामट, हारोतसंहिता गान्धि वैद्यक ग्रन्थोंमें बाजीकरणाधिकारमें इस योगका सभी विषय लिखा है। अधिक हो जानेके मयसे वहाँ पर कुम नहीं लिखा गया। जिन सब ग्रन्थोंसे रत्नकी वृद्धि होती है, उन सबोंको वृष्य वा बाजीकरण कहते हैं।

जिन सब भीषणोंस शुकुतारव्य विनष्ट होता है, उनका सेवन करने पर भी बाजीकरणनिया सम्पन्न होती है।

बाजीकार्य (स ० ह्यो ०) बाजीक्रिया, बाजीकरण।  
 बाजीविद्या (स ० ह्यो ०) सुरतगकितृषिकी विधि।  
 बाजेध्या (स ० लो ०) यशकी वांति।  
 वाच्य (स ० पु ०) वाचक्य गीतापत्यं वाच (गर्गाग्निने।  
 वम्। पा ४।१२०४) इति यम्। वाचका गीतापत्य।

वाज्जेय ( सं० लि० ) वज्र (सख्यादिभ्यो ढञ् । पा ४।२।५०)  
इति ढञ् । वज्रका अद्भुतभव, वज्र पतनके स्थान पर वाम  
करनेवाला ।

वाञ्छनीय ( सं० लि० ) १ चाहनेवाला । २ जिसकी इच्छा  
हो ।

वाञ्छा ( सं० स्त्री० ) वाञ्छनमिति वाञ्छि इच्छाया गुरोश्चेत्यः  
टाप् । आत्मवृत्तिगुणविशेष, चाह । पर्याय—इच्छा,  
काञ्छा, स्पृहा, रंहा, तुष्ट, लिप्सा, मनोरथ, काम, अन्ति-  
लास, तर्प, आकाञ्छा, कान्ति, अग्रचय, दोहद, अभिलाष,  
रक्त, रुचि, मति, दोहल, छन्द । सिद्धान्तमुक्तावलीके  
अनुसार वाञ्छा नामक आत्मवृत्ति दो प्रकारकी होती  
है । एक उपायविषयिणी, दूसरी फलविषयिणी । फल  
का अर्थ है—सुखकी प्राप्ति और दुःखका न होना । 'दुःखं  
माभूत् सुखं मे भूयात्' हमें दुःख न हो एवं सुख हो,  
ऐसी फलविषयिणी जो आत्मवृत्ति है, उसे फलविषयिणी  
वाञ्छा कहने ह । इस फलेच्छाके प्रति फलज्ञान  
ही कारण है एवं उपायेच्छाके प्रति इष्टसाधनताज्ञान  
कारण है, इष्टसाधनताज्ञान न होनेसे वाञ्छा नहीं हो  
सकती । इष्टसाधनताज्ञान अर्थात् मेरा यह कार्य अच्छा  
होगा यह ज्ञान न होनेसे कार्यकी प्रवृत्ति हो ही नहीं  
सकती । हर कामके पहले ही इष्टसाधनताज्ञान हुआ  
करता है ।

वाञ्छित ( सं० लि० ) वाञ्छ-क्त । अभिलषित, इच्छित, वाहा  
हुआ ।

वाञ्छिन् ( सं० लि० ) वाञ्छनीय वाञ्छ णिनि । वाञ्छनीय,  
अभीष्ट ।

वाञ्छिनी ( सं० स्त्री० ) वाञ्छनीया नारी । पर्याय—लज्जिका,  
फलतूलिका ।

वाट ( सं० पु० ) वट्यते वेष्ट्यते इति वट-वञ् । १ मार्ग,  
रास्ता । २ वास्तु, इमारत । ३ मण्डप । वटस्थेदमिति  
वट-अण् । ( लि० ) ४ वट-सम्बन्धी । ( स्त्री० ) ५ वरण्ड ।

वाटक ( सं० पु० ) वृद्ध, घर ।

वाटघान ( सं० पु० ) १ एक जनपद । यह काश्मीरके  
नैऋतकोणमें कहा गया है । नकुलके दिग्विजयमें इसे  
पश्चिममें और मत्तरपुराणमें उत्तरदिगामें लिया है ।

२ ब्राह्मणी माता और वर्णब्राह्मण या कमहीन ब्राह्मणसे  
उत्पन्न एक संकर जाति । ( मनु १०।२१ )

वाटमूल ( सं० लि० ) वटमूल सम्बन्धी ।

वाटर ( सं० स्त्री० ) वटरी. कृत ( नृद्राममावटरपादपादम् ।  
पा ४।३।११६ ) इति अण् । वटर कर्त्तृक कृत, चोर वा  
गठ कर्त्तृक कृत ।

वाटर ( अ० पु० ) पानी ।

वाटरप्रूफ ( अ० वि० ) जिस पर पानीका प्रभाव न पड़े,  
जो पानीमें न भोग सके ।

वाटर वर्क्स ( अ० पु० ) १ नगरमें पानी पहुंचानेका  
विभाग, पानी पहुंचानेकी कलका कार्यालय । २ पानी  
पहुंचानेकी कल, जलकल ।

वाटरशूट ( अ० स्त्री० ) पानीमें कूद कर तैरनेकी क्रीडा,  
जलक्रीडा ।

वाटरशूटिंग ( सं० स्त्री० ) वाटरोपिडा 'शूटिंग' का  
पार्थिववाचिवत् मध्यपदलोपः । पथरोधक शूटिंग ।

वाटिकपि ( सं० पु० ) वटाकोरपत्यं पुमान् वटाकु (वाह्या-  
दिभ्यश्च । पा ४।१।२६ ) इति इञ् । वटाकुका गोला-  
पत्य ।

वाटिका ( सं० स्त्री० ) वट्यते वेष्ट्यते प्राचीगदिगिरिति  
वट वेष्टने संज्ञायामिति ण्वुल् टाप्, अत इत्वं । १ वास्तु,  
वाटी, इमारत । २ बाग, बगीचा । ३ हिंशुपत्ती ।

वाटी ( सं० स्त्री० ) वट्यते वेष्ट्यते इति वट वेष्टने वञ्,  
गौरादित्वात् ङीप् । १ वटपालक, धीजवृक्ष । २ वस्तु,  
इमारत, घर ।

भवन निर्माणके सम्बन्धमें ग्राहकोंमें विशेष विशेष  
विधान है, उनके प्रति विशेष ध्यान रखते हुए निर्माण  
करना चाहिये । कारण जिस स्थान पर वास करना  
हो, उस स्थानके शुभाशुभके प्रति ध्यान रखना सर्वतो-  
भावसे विधेय है । पहले वाटीका स्थान निरूपण करके  
शल्योद्धारप्रणालीके अनुसार उस वाटीका शल्योद्धार  
करें । शल्योद्धार किये बिना वाटी तैयार नहीं करना  
चाहिये । दैवज्ञ यथानियम भूमि खोद कर शल्यका  
अनुसन्धान करे । यदि उस वाटीमें पुरक परिमिति  
भूमि खोद कर भी शल्य नहीं पाया जाय, तो उस वाटीमें  
मिट्टीका घर बनायें । उसके नीचे शल्य रहने पर भी

कोई दोष नहीं, किन्तु जिस मण्डल में प्रामाद का निष्पान करना हो उस स्थानको ओहसेस ब्रह्म तक्ष जल न निकल आये तब तक जलव शैलना होगा। यदि जल परिष्कृत होने परम्पगत जलव दिवाइ न दे तब वहाँ प्रामाद सेवार करन से काइ दोष नहीं है। देवज अण्ड्य तरह गणना करके देखेगे, कि जलर किम स्थान पर है, गणना द्वारा स्थान निकलन करके लोइना भारतम करेगे।

उत्तरभार पयाती नयोदर शधमें देला।

गृहारम करने पर गृहलामोक भगमें यदि भतिजप गुडसलद वैशा होये तो ममभना चाहिये, कि हममें शय्य है। उम समय चिरमे जलवाइवारको पया करती चाहिये।

“यथास्मैति क्यपुः। सताम्पे वरि जलन।

अप्ये ल्पन्नेषण प्रातारे भन्नेऽपिग ॥”

(श्लोकित्तल)

जहाँ हाथमे माप कर घा बनानका प्रथा है वहाँ बहुलाय मलयगुणिके अग्रभाग पर्यन्त हाथ मान लेना होता है। ‘वाटी प्यवस्थाइस्तोप्यत्रकतोयुगक्रम मध्य गाङ्गुष्या प्रपर्यगः।’ (श्लोकित्तल)

प्रपनके समूचे स्थानमें देवताओंका छोटा छोटा मपिहार है। उनमें मङ्गलम माग प्रतीका, बोन माग मनुष्योंका शरद माग गण्यर्षोंका एवं घार माग देवताओंका स्थान निर्दिष्ट है। इन सब भागोंको विपर करके प्रनका ओ निर्दिष्ट भग हो, उनमें गृहादि नहीं बनाना चाहिये। मनुष्यका ओ बोन भाग निर्दिष्ट है, उसमें घर बनाना चाहिये इस स्थान पर बनाये गये गृहादि मङ्गलदायक होते हैं। मण्डपक कानमें भनमें वा बोनमें घर बनाना उचित नहीं कारण यह है कि भवन अति मप्रभुम भूमिपखरक कोभेमें गृहादि निर्माय काने न पनहामि, अन्तमें बनानम पुत्रमर्षोंका भव एवं शायम पर बनानेसे सार्थनामा हा जाता है।

इसके पूर्व एवं उत्तरकी भूमि अमगा दानया होने चाहिये, इहाँ देवी विगाओसे है। कर अन्न निजका करीग दक्षिण और पश्चिमकी भूमि निज करला उचित नहीं। बायाक पूर्वका ओर अमगा निज भूमि रहनेसे दूदि, उत्तरका ओर होनेसे घन धाम एवं पश्चिमकी भूमि

दायकी होनेसे घन दानि ओर दक्षिणमें लोचो भूमि रहने से गुरुप होतो है, अतएव दक्षिण ओर पश्चिमकी भूमि भूय कर ओ छामकी नहीं करनी चाहिये।

मकानके पूव अटवृक्ष दक्षिणमें उनुम्बर, पश्चिममें पीपल और उत्तरमें लव वृक्ष रीपना चाहिये। इन चारो विगाओ में इन चार तरहक वृक्षोंका रीपना शुभ है। इनक भतिरिक्त इस भूमिमें अग्रीव, पुग, पनस आन्नक, चेतकी जाती, मरोज, तगरपल, मल्लिका भारियम, कडली और पाटका वृक्ष लगावेसे गृहण्योंका मङ्गल हाता है। इन सब वृक्षोंके रोपनेमें विगाका नियम नहीं है। ये सुविधानुसार हर एक विगामें लगाये जा सकन हैं। दार्द्रिम, अग्रीव, पुत्राग, विनर और कजर वृक्ष शुभजनक हैं, किन्तु इसमें रक्त पुष्पका वृक्ष कदारि लगाता न चाहिये यह वृक्ष अमंगलकारक है। इसके अवाये शीता सर्पायु जिस वृक्षमें दुप बढ़ता हो वह पुस, अँटकी वृक्ष और शायन्मि वृक्ष रोगना उचित नहीं, कारण शीरा यम अगालेन पशुका मय एवं गालवकि वृक्षन गृहविषुडे दानकी सम्भावना रहती है।

अननमण्डपक किम स्थानमें कीनमा वृक्ष रीपना विहित या निषिद्ध है, कीन कीन वृक्ष रहनेम आर किम किम वृक्षक निषिद्ध गिचित या जिना सन्भावन कानेमे केमा शुभाशुभ होता है तथा किम विगामें अन्न रहने मे संनग होता है एवं अन्नक द्वार गृहादिक प्रमाण और मनुष्यादिके सम्बन्धमें प्रशुपुत्राणमें इन मण्ड उल्लेख जिया गया है—

भूमिगणाय कन्ने हैं—गृहण्योश्च प्रधममि मारिवन का वृक्ष रहनेमे संगल होता है। यदि यह वृक्ष गृहक रीगानकीजमें या वृक्षका ओर रहे, ना पुत्र लाभ हाता है। तदगत्र रसग (आध वृक्ष) गव प्रकारम मङ्गलार्थे आर मनेहर होता है। यह वृक्ष पूर्व आर उत्तरम गृहण्योंका मण्यति लाभ हातो है। इनक भतिरिक्त विन्व पनस अन्नार और बदरी वृक्ष पादोक पीठेकी ओर रहनेसे पुत्रज्य होत है एवं दक्षिणकी आर रहनेसे ये घन प्रदान करने हैं। अङ्गुल, दाहिच कर्ना और आघातक (आमशा) वृक्ष पूर्वकी ओर रहनेमें पशुज्य लेने है एवं दक्षिणमें रहनेम मिजवा संनग बढ़ता है। शुभाक वृक्ष



दक्षिण तथा पश्चिमकी ओर रहनेसे धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त होती हैं, ईजानकाणमें होनेसे सुख प्राप्त होता है एवं इसके अलावे ये वृक्ष किसी भी स्थानमें रहनेसे मंगलकारक होते हैं। मकानके सभी स्थानोंमें चण्यक वृक्ष रोपा जा सकता है; यह वृक्ष गृहस्थानों मंगल करनेवाला है। इनके अतिरिक्त अलावु, कृमण्ड, मायाशु, मुकाभुक, खजूर, ककैटा, वास्तुक, कारपेल, वास्तुक और लताफल ये सब वृक्ष शुभप्रद हैं। मकानमण्डपमें रोपे जाने के लिये ये सभी वृक्ष प्रशस्त हैं।

इनके अलावे कितने ही अशुभ वृक्षोंके नाम भी उल्लेख किये जाते हैं, यथा—किसी प्रकारका जंगला वृक्ष ग्राम तथा मकानमें नहीं रहने देना चाहिये। वटवृक्ष शिविर के पास रोपना उचित नहीं; इसमें चोरोका भय रहता है। वटवृक्षके दर्शन करनेसे पृण्य होता है, यह वृक्ष नगरमें लगाना चाहिये। जम्बूवृक्षमें धन और प्रजाका निश्चय क्षय होता है, इस लिये यह वृक्ष शिविरमें लगाना विष्कूल ही निषेध है, किन्तु हाँ नगरमें रहनेमें विशेष क्षति नहीं। मूल बात यह है, कि यह वृक्ष ग्राम वा जहरमें रोपना निषिद्ध नहीं है, वर डोक ही है। वाटीके सम्बन्धमें जो विष्कूल ही निषिद्ध है, अभिष्ट व्यक्ति उसका त्याग करने। खजूरका पेड़ मकानमें रोपना निषिद्ध है, ग्राम वा नगरमें यह वृक्ष लगातेसे हानि नहीं। इन स्थानोंमें यह वृक्ष लगाये जा सकते हैं। चना और धान मंगलप्रद हैं। ग्राम, नगर तथा शिविरमें इधुवृक्षका होना बहुत ही मंगलजनक है। अशोक और हगतका वृक्ष ग्राम तथा नगरमें रोपनेसे मंगल होता है। मकानमें आवलेका पेड़ लगाना अशुभ है।

मकानके पास कदम्व वृक्ष नहीं लगाना चाहिये, किन्तु मकानमें यह वृक्ष रोपना शास्त्रमें शुभजनक कहा गया है। इसके अतिरिक्त मूली, सरसों जाक भी नहीं लगाना चाहिये, ऐसा ही प्रवाद है, किन्तु शास्त्रमें इसका विधि निषेध नहीं देखा जाता।

इस प्रणालीसे वृक्षादि लगा कर, पहले नागशुद्धि स्थिर करके तब गृहादि निर्माण करना चाहिये। नाग वास्तु प्रमाण गत द्वारा वाम पार्श्वमें जयन करता है, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक मासमें पूर्वकी ओर,

अग्रहण, पौष और माघ मासमें दक्षिणकी ओर, फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मासमें पश्चिमकी ओर एवं ज्येष्ठ, आषाढ और श्रावण मासमें उत्तरकी ओर शिग करके जयन करना है। गृहारम्भ कालमें यदि नागका मन्तक पीटा जाय, तो मृत्यु होता है, पृष्ठमें रोपनेमें पुत्र और नायकोंका नाश होता है एवं जया पाउनेमें धन क्षय होता है। किन्तु नागके उदर प्राप्तमें क्रांतिमें सभी तरहसे मंगल ही मंगल होता है, इसलिये लोगोंका गृह-निर्माणके समय नागशुद्धिकी ओर धन्यही तरह ध्यान देना चाहिये।

गृहका मुग पूर्व, पश्चिम, उत्तर वा दक्षिण जिन ओर हो अर्थात् गृहका प्रधान दरवाजा जिस ओर किया जाय उसीके अनुसार पूर्व वा उत्तरादि सुग स्थिर करके नाग शुद्धिका निर्णय करना चाहिये।

गृह-निर्माण करनेके समय ईजान काणम देवता का घर, जन्तिकेणम रसाईनर, नैऋतिकेणम जय-नागार एवं वायुकेणम धनाचारका निर्माण करना चाहिये।

नागशुद्धि होने पर भी सभी महानेमें घर नहीं बनाना चाहिये, ज्योतिषैक मास, पक्ष, तिथि तथा नक्षत्र आदि निर्णय कर भवन-निर्माण करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये। वैशाख मासमें गृहारम्भ करनेमें धनरत्न लाभ होता है, ज्येष्ठ मासमें मृत्यु, आषाढमें धनरत्न एवं श्रावण मासमें गृहनिर्माण करनेसे वाञ्छन तथा पुत्रका प्राप्ति होती है। भाद्रपद मासमें घर बनाना अशुभ है, आश्विनमें गृह निर्माण करनेसे पत्नीनाश, कार्तिक मासमें धनसम्पत्तिलाभ, अग्रहण मासमें अरुवांरु, पौष मासमें चोरप्रा भय, माघमासमें अग्निभय, फाल्गुन मासमें धन-पुत्रादिका लाभ एवं चैत्रमासमें गृह निर्माण करनेसे पीडा होती है। इस नियमसे मासका निर्णय करके नागशुद्धि देयनी होती है। शुक्लपक्षमें गृहारम्भ वा गृह-प्रवेश काला चाहिये। शुष्ण पक्षमें गृहारम्भ वा गृहप्रवेश करनेसे चोरोका भय रहता है। भाद्रपद आश्विन तथा कार्तिक मासमें उत्तर मुखका, अग्रहण, पौष और माघ मासमें पूर्वमुखका, चैत्र और वैशाखमासमें दक्षिण मुख का, ज्येष्ठ, आषाढ तथा श्रावण मासमें पश्चिम मुखका

एह भारम्भ करना चाहिये । इन सब मदीयोंमें इन सब विशांभोकी भागशुद्धि रहती है । घाटाके प्रधान एह विषयमें इन तरह भागशुद्धि का निर्णय करना चाहिये । अथवा इनमें इस तरहकी भागशुद्धि न देखने पर भी काम चल सकता है । इसमें किसी किन्हीं का मत है, कि यदि दिन उत्तम पाया जाय एवं खम्भ लारादि शुद्ध रहे, तो गृहारम्भमें मासका शेष नहीं लगता ।

मैत्र शुभ, वृहस्पति और शनिवारके विशुद्धवास में ( अर्थात् जिस समय शुभ शुक्रके वायव्यपूर्यास्तप्रतिष्ठ कामशुद्धि न रहे ) शुद्धपक्षमें युग्माभिजादिविषयपरिहृत विषकी उत्तरपूर्यातो, उत्तराषाढा, उत्तरमाद्रपद, रोहिणी, पुष्या, आर्द्रा, अनुराधा हस्ता, निहा स्वाति धनिष्ठा, शनभिया, मूला, अश्लेषा, शैवती, मृगशिरा तथा ध्रुवणा महत्त्वमें वज्र, शूल व्यतीपात, परिघ, गण्ड अतिगण्ड और विष्कुम्भक अतिरिक्त शुभयोग शुभतिथि तथा शुभ करणमें गृहकाय धारणा किया जा सकता है । तिथि, मद्रा, अश्लेषा मासकाया प्रभृति आ साधारण कार्यमें निषिद्ध हैं उन्हें भी देखना होगा । तिथिके सम्बन्धमें एक विशेषता यह है, कि पूर्णिमासे छे कर अष्टमी पर्यन्त पूर्व शुभका, नवमीसे छे कर अतुर्दशो पर्यन्त उत्तर-पूर्वका, अमावस्यासे छे कर अष्टमी पर्यन्त पश्चिम मुखका तथा नवमीसे छे कर शुक्ल अतुर्दशी पर्यन्त दक्षिण मुख का शुद्ध भारम्भ नहीं करना चाहिये । यह अत्यन्त निषिद्ध है ।

जिम्होके काष्ठ द्वारा गृहद्वार तथा ऋपाट तैवार नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है । होरिवृत्तोज्ञप दाक, (अर्थात् जिस वृत्तसे छासा या गौंद निकलता हो) जिस वृत्त पर चिह्निया वास करती हो ओ वृत्त मीचीसे उन्मूल कर गिर गया हो वा जिस वृत्तमें भाग लग गई हो, वेसे वृत्तका काष्ठ गृहमें लपाना उचित नहीं । इसके अलावे हाथों द्वारा मन्त्र, लक्षणमन्त्र शैत्य तथा शिवालयोत्पन्न शमशानजात शिवायचिह्नित काष्ठ मी गृहकार्यमें परजनीय हैं । कदम्ब, निम्ब, बिमोवकी, प्लश और शाकम्भरीवृक्षके काष्ठ मी गृहकार्यमें प्रयोग नहीं करना चाहिये । इन सब वृक्षोंके अतिरिक्त माल या सान्भूइस द्वारा गृहाधिके कार्य अशुभ किथे जा सकते हैं ।

शुद्धमण्डपमें अथ मिट्टीका घर बनाया हो, तब जिस स्थान पर घर बनाया है उस स्थानके ईशानकोणसे कारोगरका चारो ओरोंमें चार स्तूपे गाड़ने चाहिये । किन्तु जिस स्थान पर ईंटका मकान बनाया हा, वहाँ अग्निकोषमें स्तम्भ अड़ा करना पड़ता है । इस प्रकार स्तम्भ वा मूल दोनों ही स्थानों पर यथाविधान पूजादि करना आवश्यक है ।

गृहस्थोंको मकानमें कचूतर, मयूद, शुक और सारिका पक्षी पोसना चाहिये । इन पक्षियोंसे गृहस्थोंका मंगल होता है ।

मकानगण्डपमें हाथीकी हड्डी एवं घोड़ेकी हड्डीका रहना अशुभजनक है । किन्तु अन्वय्य अस्तुधोकी हड्डी रहनेसे अमंगल होता है । बन्दर, मनुष्य, गाय, गधे, कुत्ते बिल्ली से इ कि वा सूअर इन सब जस्तुधोकी हड्डियां अमंगल-कारक होता है ।

शिविर वा वासस्थागक ईशानकोणमें पोछेकी ओर भयवा उत्तरकी ओर अल रहनेसे मंगल होता है इनके अलावे और किसी ओर अल रहनेसे अशुभ फल होता है । अग्निहोत्रिक गृह वा निजगत निर्माय करणके समय उसको अम्बाई चौटाइ समान न करे । गृहके अंकोन होनेसे गृहस्थांक घनका भाग अथवा अम्मा पो है । गृहकी अम्माइ अधिक चौड़ाई कमकी अथवा कम होना ही उचित है । अम्माई चौड़ाई कमो वेगी करनेके समय मायक परिमाणम जिससे शून्य न पड़े इसका ध्यान रहना चाहिये अर्थात् उनके मायके परिमाण दश, बीस तीस न हो । कारण इसमें यदि शून्य पड़ेगा तो गृहस्थोंके शुभ फलके समय मी शून्य ही था उपस्थित होगा ।

गृह वा अहारदीयाराके दरवाजेकी अम्माई तीम हाथ एवं चौड़ाई कुछ कम अथवा दो दोमैसे शुभ होता है । गृहके ठीक अथवा अथवा द्वारा निर्माय करना उचित नहीं । घोड़ा स्यूनाधिक होनेसे ही मंगल होता है ।

कोकोन शिविर अथवा अथवा होनेसे ही मंगलजनक होता है । सूर्योप शिविर अमंगलकर है । शिविरके मध्यभागमें तुलसीका पीया शेषना उचित है, उससे धन पुत्र और कन्या प्राप्त होती है, शिविरके

स्वामीको पुण्य होता है एवं हृदयमें हृग्भक्तिका संचार होता है। प्रातःकाल तुलसीवृक्षके दर्शनसे स्वर्णदान करनेका फल प्राप्त होता है। जिधिर वा वासस्थानके मध्य निम्नोक्त पुष्पादि द्वारा उद्यान तैयार कर लेना कर्त्तव्य है; यथा—मालती, यूथिका, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन, चकुल, और अपराजिता। शुभाशुभ पुष्पोका उद्यान पूर्व तथा दक्षिण की ओर लगाना चाहिये। इससे गृहस्थोंका शुभ-समा-गम अवश्यम्भावो है।

गृहस्थ लोग मोलह हाथ ऊंचा गृह एवं धीम हाथ ऊंचा प्राकार तैयार नहीं करें। इस नियम-के व्यतिक्रमसे अशुभ फल मिलता है। मकानके निकट बहई, तेली वा मोनार प्रभृतिके बसाना ठीक नहीं। दूरदर्शी गृहस्थ यथासाध्य ग्राममें भी इन लोगोंको बसने न देगे। जिधिरके निकट ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऊंचे शूद्र, गणक, भट्ट, वैद्य किवा मालीको ही बसाना चाहिये।

जिधिर या किलेकी खाई भी दाथकी होनी चाहिये एवं जिधिरके पास ही रहनी चाहिये। उसकी गहराई दश हाथसे कम होना ठीक नहीं। इसके द्वारा सांकेतिक होना जरूरी है। ऐसा सांकेतिक द्वारा बनना चाहिये जो जल और लिये अगम्य, किन्तु मित्रोंके लिये सुगम हो।

शास्मली, तिन्निडी, हिन्ताल, निम्ब, सिन्धुवार, ऊड़ू-भर, खुन्तू वट किवा परंड, इन सब वृक्षोंके अतिरिक्त और सब वृक्षोंके काष्ठ जिधिरमें लगायेगे। वज्रहत वृक्ष जिधिर वा वासस्थानमें रखना उचित नहीं, उससे स्त्री, पुत्र और गृह सभीका नाश हो जाता है।

( द्रव्य ० पु० कृष्णजन्मखं० १०२ अ० )

नया मकान तैयार होने पर वास्तु याग करके उसमें प्रवेश करना चाहिये। वास्तु यागमें आममर्थ होने पर यथाविधान गृहमें प्रवेश करना सुकिसंगत है।

वास्तुयागका विषय वास्तुयाग शब्दमें देखा।

वृत्तवत्त्वमें गृहप्रवेश करनेकी विधि इस प्रकार निर्दिष्ट है:—गृहारम्भमें जिम तरह पूजादि करनी पड़ती है, गृहप्रवेशमें भी उगो तरह करनी चाहिये।

शुभ दिनमें जिस दिन गृहमें प्रवेश करना हो, उस

दिन गृहस्वामी प्रातःकाल प्रातःस्नान तथा स्नानादि समापन करके यथाजित् ब्राह्मणको काञ्चनादि दान करे। इसके बाद गृहप्राङ्गणमें द्वारके सामने एक जलपूर्ण कुम्भ स्थापन करना चाहिये। इस कुम्भके गालमें दधि लगा कर ऊपर ब्राह्मणपत्र और फल पुष्पादि रखना होता है। गृहस्वामी नये वस्त्र तथा पुष्पाद्यादिसे भूषित हो कर एव पत्नीको बाईं ओर ले कर उस कुम्भके मन्त्र पर ध्यानसे भरा हुआ रूप रवे। इसके बाद गोपुच्छ स्पर्श करके नये गृहमें प्रवेश करें।

पीछे सामर्थ्य होने पर यथाविधान गृह प्रवेशोक्त पूजादि स्वयं करें। अममर्थ होने पर पुरोहित द्वारा पूजादि करावे। व्यवहार है, कि इस समय गृहर्षी नये गृहमें प्रवेश करके नये पात्रमें दूध उधारती है, यह दूध उबल कर गृहमें गिर जाता है।

गृहप्रवेशमें पूजापद्धति—पुरोहित मन्त्रिवाचन करके संकल्प करें। ॐ अग्नेत्यादि नवगृहप्रवेशनिमित्तिक चाम्तुद्रोपोपगमन कामः वाग्तु पूजनमहं करिष्ये। इस तरह संकल्प और तन्सूक्त पाठ कर यथाविधि घट-रथापनादि करके स्वामी पूजा करें। शालग्रामकी भी पूजा की जा सकती है। पहले नवगृह तथा गणेशादिकी प्रणवादि नमोन्त द्वारा पूजा करके निम्नोक्त देवगणकी पूजा करनी चाहिये। 'ॐ गणेशाय नमः' इत्यादि रूपसे पूजा करनी होती है, पीछे इन्द्र, सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, शनीश्वर, राहु, केतु, और इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद क्षेत्रपाल समूह, क्रूरग्रहसमूह तथा क्रूर भूत समूहको पूजा करेगे। ॐ क्षेत्रपालेभ्यो नमः ॐ भूत-क्रूरग्रहेभ्यो नमः ॐ क्रूरभूतेभ्यो नमः इस तरह पूजा करनी पड़ती है। इसके पश्चात् ब्रह्मा वास्तुपुरुष, शिखी, ईश, पृथ्वी, जयन्त, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, अग्नि, पूषा, वितथ, प्रइतश्रव, यम, गन्धर्व, मृग, पितृगण, दीवारिक, सुमीत्र पुण्यदन्त, वरुण, शेष, पाप, रोग, अहि, मूष्य, विश्वकर्मा, भल्लाट्, श्री, त्रिति, पाप सावित्त, विवस्वत इन्द्रात्मज, मित्र, वर, दुराजयक्ष्मन्, पृथ्वीशर, ब्रह्मण, चरकी, विदारो, पूतना, पापराक्षसी, स्कन्द अर्चना और पिलगिञ्जकी पूजा करके 'ॐ नमस्ते बहुरुपाय विष्णवे

परमात्मने स्वाहा' मन्त्र द्वारा विष्णुकी पूजा की जाती है। इसका बाद शीघ्रास्तुत्रेण और पूज्योकी करनी होती है।

इस प्रकार पूजा करने के लक्षणोंके विधि द्वारा शास्त्र होम करना पड़ना है। इसके उपरान्त दक्षिणाण्ड तथा मण्डित्रावधारणादि करके कार्य शीघ्र करना चाहिये। पीछे ब्राह्मणमोक्षण तथा समर्पण होने पर आरतीय कर्म नाविके मोक्षण करना चाहिये।

बाटीदीर्घ (स० पु०) वाट्यां वास्तुभूमि दीर्घा मर्षोच र्वात्। इत्थन्वृक्षः।

वाट्य (स० स्त्री०) मृष्ट यव, मुत्रा हुमा जी।

वाट्यैव (स० पु०) एक राजाका नाम।

(राजवर० ० १३/१)

वाट्य (स० स्त्री०) वाट्यालक बला भरियारा।

वाट्यक (स० स्त्री०) मृष्ट यव मुत्रा हुमा जी।

वाट्यपुष्प (स० स्त्री०) १ मन्दन। २ कुट्टुम कसर।

वाट्यपुष्पिका (स० स्त्री०) वाट्यपुष्पी बन्ना।

वाट्यपुष्पी (स० स्त्री०) वाट्य वाट्यां माधुवेष्टमीयं वा पुष्प यस्याः गीराभरवात् ङीप्। वाट्यालक बन्ना, बीजबंद।

वाट्यमरु (स० पु०) यवमरुद्विरेय विना भूमि या छिन्नकके बले हुए मीका मंड। एक भाग बले हुए मीके शीशे शीशुने पानीमें पकानेसे वाट्यमरु बनता है। वैद्यकमें यह इस्का दधिकर दोषन हृद्य तथा पिच्छ, श्लेष्मा वायु और आमाशुनाशक कृता गया है।

वाट्या (स० स्त्री०) वट्यने धिष्टे इति वट-वेष्टने ष्यत् यद्वा वाट्यां वास्तुपदेशे दिता, वाटो यत् टाप्। वाट्या मरु, बीजबंद।

वाट्यायनी (स० स्त्री०) श्वेत वाट्यालक, सफेद - बीजबंद। (बालकृ० ५ म०)

वाट्याल (स० पु०) वाटीं भक्तनि भूयत्योति भक्त-भ्रज्। वाट्यालक बीजबंद।

वाट्यालक (स० पु०) वाट्याल एक लार्घे कन्, वाटीं समति भूयत्योति भक्त-ष्युल वा। १ भरियारा, बीज बंद। पर्याय—शीतपात्री वाट्या, मन्त्रावनी, बन्ना, वाटा, विन्दय, वाट्याली वाटिका। २ पीतपुष्पबन्ना, पीला बीजबंद।

वाट्यालिका (स० स्त्री०) लघु वाट्यालक, छोटा भरियारा।

वाट्याली (स० स्त्री०) वाट्याल गीरावित्वात् ङीप्। वाट्यालक, बीजबंद।

वाट्य (स० पु०) भावनामनेकार्यत्वात् बाट्य-वेष्टने माये षम्। वेष्टन, बैठन।

वाट्यमीकार (स० पु०) बट्यमीकारवर्णशेष एक वेदाक्षरण का नाम। (अमर्षा० १३३)

वाट्यमाकार्य (स० पु०) वाट्यमीकारवर्णोद्भवः। (वा ५।१ १५१)

वाट्य (स० पु०) वाट्य यद्वास्तुत्कानं याति प्राप्नोति वाट्य-या-क। १ ब्राह्मण। बट्यवाप्यां, घोटव्यां जाना बट्यवा-भण। २ बट्यवानल। पर्याय—भीष्मै स यर्षाक भण्यन्ति बट्यवामुक्। ३ वट्यवाममुद्, घोडियोंका मुद्। (ति०) ४ वट्यवा-सम्बन्धो।

वाट्यवर्ष (स० स्त्री०) उत्तरमें स्थित एक गाँव। (वा ५।१ १०५)

वाट्यवहरण (स० स्त्री०) घोडों के कर मागना।

वाट्यवहारक (स० पु०) वट्यवा भणहरणकारी, वह जो घोडों सुराता हो।

वाट्यवहार्य (स० स्त्री०) वट्यवाहन कीलवांसका कार्य।

वाट्यवामि (स० पु०) १ समुद्रके उत्पत्ती भाग। २ समुद्री भाग वह भाग जो समुद्रमें दिखाई देती है।

वाट्यवामितम (स० पु०) म्यौल्याधिभारमें उत्तीपच विहीन। इसके बमानेका तरीका—विशुद्ध पारा, गंधक, तर्वा और इरताल इनका बराबर बराबर भाग ले कर साकक दूधमें एक दिन मद्धन करके गुजा भरकी गोली बनाये। यह औषध मनुके माघ नादनेसे ह्योत्प्रेरण प्रशमित होता है।

वाट्यवानल (स० पु०) वट्यवानल वाट्यवामि।

वाट्यवैय (स० स्त्री०) वट्यवा (तपादिभ्यो ङ्)। वा ५।१ १५० इति ङ्। वट्यवानल, वट्यवा-सम्बन्धी।

वाट्यव (स० स्त्री०) वाट्यवार्ता समुद्र (ब्राह्मणमानव -वाट्यवम्)। वा ५।१ १५१ इति समुद्रार्थे यत्। वाट्यव समुद्र घोडियोंका मुद्।

वाट्ययोपुत्र (स० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम। (शतपथभा० १५।१।५१)

वाट्टीत्स ( सं० पु० ) वाट्टीत्सका पुत्र । (राजतर० ८।१३८)  
 वाड्बलि ( सं० पु० ) एक ऋषिका नाम । (पा ६।३।१८६)  
 वाढ्मू ( म० अथ० ) अलम, वम बहुत हो चुका ।  
 वाढविक्रम ( सं० त्रि० ) अतिप्रकृतिसम्पन्न, बड़ा बल-  
 वान् ।

वाण पु० ) वाणः शब्दस्तदव्यास्नीति वाण अच् । १  
 अस्त्रविशेष । धनुर्वेदमें इसका चित्रण लिखा है, कि वाण  
 किस तरहका अच्छा होता है और उसमें शुद्ध किया जा  
 सकता है, पहले रीत्यनुसार धनुष तैयार कर पीछे वाण  
 तैयार करना चाहिये । सुलक्षणान्वित शरोक्त अग्रभागमें जो  
 लोहेका फला होता है, उसे वाण कहते हैं । वाण लोहेका  
 बनता है । शुद्ध, वज्र और दान्त आदि कई तरहके लोहा  
 होते हैं, इनमें बड़ा और शुद्ध लोहेसे ही अस्त्र तैयार किये  
 जाते हैं किन्तु वाण शुद्ध लोहेका बने तो अच्छा होता  
 है । इस शुद्ध लोहेमें कई तरहका फला तैयार होता है ।  
 जिस फलाने तेज (घार), तीक्ष्ण और क्षतग्रहित बनाना  
 हो, तो उसमें वज्र लेप करना चाहिये । फला पक्ष प्रमाण  
 विशिष्ट बना कर पीछे लक्षणाक्रान्त शरमें जोड़ना पड़ता  
 है । यह फला कई तरहके होने हैं । आरामुख, क्षुरप्र, गो  
 पुच्छ, अर्द्धचन्द्र, सूच्यप्रमुख, भाला मद्दश, वत्सहन्त,  
 द्विभल्ल, कर्णिक और काकतुण्ड इत्यादि बहुत तरहके नाम  
 और विभिन्न देशोंमें विभिन्न प्रकारके फला तय्यार  
 किये जाते हैं ।

फलके आकारगत जो वैलक्षण्य विषय निर्दिष्ट हुआ  
 है, वह केवल दिखानेके लिये नहीं, उससे कितने ही काम  
 होते हैं । आप्मुख नामक वाणसे मर्मभेद किया जाता है,  
 अर्द्धचन्द्रवाणसे प्रतिस्पर्द्धी योद्धाका शिर काटा जा सकता  
 है और आप्मुख तथा सूत्रप्रमुख वाणसे ढालको फाड़ा  
 जा सकता है । कार्मुक फालनेके लिये क्षुरप्र वाण,  
 हृदय विद्ध करनेके लिये भल्ल ( भाला ) और धनुषका  
 गुण और आनेवाले शरोंको फालनेके लिये द्विभल्ल नामक  
 वाण प्रशस्त है । काकतुण्डाकार फलासे तीन अंगुल  
 परिमित लौह विद्ध किया जा सकता है और लौह  
 कण्टकमुखवाणसे तीन अंगुल गहरा घाव किया जा  
 सकता है ।

फला प्रस्तुत करनेके समय उत्तम रूपसे पानी देना

पड़ता है । फालने मारने आदि वाणने कार्योंके लिये  
 उपयुक्त बहुत तरहके फला तय्यार कर उसमें अस्त्रविधा-  
 के अनुसार पानी देना पड़ता है । पानीमें ही अस्त्रोंके  
 सुन्दर धार और वे मजबूत होने ह । फलामें पानी देने-  
 का तरीका बड़े शारङ्गधरने इस तरह बताया है—उत्तम  
 औषध लेप कर जिस तरह फल पर पानी देनेका विधान  
 है, उसी विधानके अनुसार पानी चढ़ा कर फला तय्यार  
 किया जाये, तो उसमें दुर्भेद्यलौह भी काटा जा सकता  
 है । पीपल, नमक (सेन्धा) और कुड ये सब अच्छा तरह  
 गोमूत्रमें मिला कर फला पर लेपना चाहिये । इस  
 लेप कर फलाकी आगमें गर्म कर देना चाहिये । पीछे  
 जब यह लाल हो जाये, तो आगसे निकाल ले और लज्जई  
 दूर हो जाने पर फिर उचित ही अवस्थामें तेलमें डुबा दे ।  
 इस प्रणालीसे पानी चढ़ाने पर बहुत अच्छा वाण  
 तय्यार होता है ।

दूसरी तरकीब—सरसों और गहद अच्छी तरह पीस  
 कर फला पर लेप कर उसे प्रज्वलित अग्निमें डाल दे ।  
 जब आगमें उस पर मोरपंखकी तरहका रंग दिखाई दे,  
 तब आगसे इसे निकाल जलमें डुबा देनेसे यह फला  
 बहुत तीक्ष्णधारयुक्त और मजबूत होता है ।

वृहत्संहितामें लिखा है, कि घोड़ी, ऊँटनी तथा  
 हथिनोके दूधसे पानी चढ़ाने पर फलाकी धार तेज होती  
 है । सिवा इसके मछलोके पित्त, हरिणीका दूध, कुतिया  
 का दूध और बकरीका दूध द्वारा पानी चढ़ाने पर उस  
 वाणसे हाथीका सूँड भी काटा जा सकता है । कन्दकी  
 गोंद, हुडुश्टङ्गका अङ्गार, क्यूतर और चूहेका विट इन  
 सबोंको एकमें मिला कर पोसना चाहिये फिर फलामें  
 लेप कर आगमें तपा देना चाहिये । बीच बीचमें इस  
 पर तेल दिया जाय, तो और अच्छा हो । ऐसा करनेसे वाण  
 तेज धरवाला और मजबूत होता है । इस तरह लोहेसे  
 पानी चढ़ा कर वाण तैयार करना चाहिये । यह वाण  
 जिस शरमें चढ़ाया जाता है, उसका वृत्तान्त इस तरह  
 लिखा है—

शर ( तृणविशेष ) बहुत मोटा या बहुत पतला न  
 होना चाहिये । यह खराब भूमिमें पैदा हुआ न हो,  
 उसमें गिरह या गांठे न हों, पका हुआ गोल और पीले

र गफा होना चाहिये । उपयुक्त समयमें शर तीव्र कर उसमें फलक या वाण पिरो देना चाहिये, गतिवाला या लम्बा शर बाणक लिये उपयुक्त नहीं होता । कड़ा, गोल और बच्छी भूमिमें उत्पन्न मकड़ी हो तार निर्माणकी लिये उत्तम होती है । अवापिक्य सुजापिक्य और लावापिक्य भूमिमें जो शर उत्पन्न होता वह उतना बड़ा नहीं होता और पुला हुआ होता है । जहाँ घुप अधिक होती हो और जहाँ थोड़ा बहुत बालू मो हो, वहाँका उत्पन्न शर बहुत उत्तम होता है । इस तरहका दो पीने दो हाथ लम्बा शर कमिष्ठा इग्लीक समान मोटा होना चाहिये । यह शर बहो देड़ा हो तो कम सोया कर देना चाहिये । ऊपर जो परिमाण शरका छिन्ना गया उमम कम या अधिक न हो । सुषिष्य बाँया हाथसे बाहमें बन्धे तब सुषिष्य दो हाथ होता है । एतन् इदं तीरकी मनुष्य धनुष पर लड़ा कर कामो तक उसे कोल सक्ता है । शर अधिक लम्बा होनेसे की धर्ममें असुविधा होती है । उसे इनकी गति ठीक नहीं होती ।

वाण किसी लक्ष्य स्थान पर ही छोड़ा जाता है । छोटा हुआ वाण यदि लक्ष्यस्थल पर न आ इधर उधर चला गया, तो यह व्यर्थ हुआ । वाण इधर उधर न जाय इसलिये छोण वाणोंमें प.स्रयोंके पाँच या पन् जगते ये । पर जोइसैने वाण सोये अपने लक्ष्यस्थानको ही आयेगा, देड़ा मेड़ा नहीं आयेगा ।

कौमा इस भाग मत्सङ्ग, बगुला गृह और कुरी (टिड्डी) पक्षीका पर इसक लिये उत्तम होता है । प्रत्येक शरमें समान्तर पर चार पर बाँधना चाहिये । ये पर आ अ गुल परिमाण हों, किन्तु विशेषता यह होनी चाहिये धनुष पर गढ़ालेवाले वाणक जसमें १० अ गुल परों और बैणक धनुषक बाणम ६ अ गुल परोंको जोड़ना करनी होगी । यह जोड़ना तांत या मजबूत सूतेसे होनी चाहिये ।

इस तरहके परबाई शरक. नोक पर फन्ना बड़ाया जाता है, वही तो यह सुझावयोगी नहीं होता । जिस शरका अग्रभाग या नोक मोटा हाता है, यह खां ज्ञातीय शर कहा जाता है और जिसका पिछला भाग मोटा होता

है, उसको पुष्य ज्ञातीय और जिसका मध्य और पाश्चात्य दोनों भाग एक समान होते हैं वह शर मनु सक ज्ञातीय कहा जाता है । गारी ज्ञातिका शर बहुत दूर तक जाता है और पुष्य ज्ञातिका शर दूरके लक्ष्यको मेट करता है और मनु सक ज्ञातिका शर अथल लक्ष्य मेवके लिये उपयुक्त है ।

जो वाण सर्वसौहम्य अर्थात् जिसका सब मध्य अक्षोका हो, उसे नाराज कहते हैं । शरके वाणमें जैसे चार पर संयुक्त रहता है । जैसे ही इस नाराजवाले वाणमें पाँच पर जोड़े जाते हैं । ये शर वाणसे कुछ मोटा और लम्बा होगा । समो इस नाराज वाणको खया नहीं मकई है । सिवा इसके लघुनामिक वाण लम्बाकार वल्गसे छोड़ा जाता है । यह पहाड़ या किमी ऊँचे स्थानसे भीखेकी ओर छोड़नेमें उपयुक्त होता है ।

मनीचाल देना ।

२ मन्मन्त्र वाणमन्त्र । यह मन्त्र जो जानते हैं, ही मनुष्य पक्षी पशु, वृक्ष, लता आदिकी विविध प्रकारसे युक्त है सक्ते हैं । किन्तु वाण मन्त्रका कोह मो शास्त्र विचार नहीं देता । यह केवल शुभकारणवा हो प्रचलित मान्य होता है । वाणमन्त्र छोड़ा भी जाता है और रोका भी जाता है । परनाका वाण कर देना ।

वाणकिक ( सं० पु० ) एक श्रुतिका नाम । (लंकारकोटरी) वाणमन्त्र—आपसमें मरकारक वाण निक्षेपक्य युद्ध । इसमें एक आत्मी मन्त्र प्रयोग करना है और दूसरा उसके विरुद्ध शक्ति-सम्पन्न मन्त्र प्रयोग कर कम मन्त्र का प्रभाव लक्ष्य कर बाधना है । जो इस मन्त्रमें धन्यस्त और प्रयोगपादश्री हैं वे युद्धा बहकाने हैं । इस देशमें साधारणता सपेरे हो इस वाणमन्त्र का धम्याम करते हैं । बहुत जगद भीम ज्ञातिके हिन्दू और मुसलमान ने यह मन्त्र सीखते हैं ।

सपेरे जिस वाणमन्त्रका प्रयोग करते हैं इनमें दूसरों के लक्ष्य करनेका मन्त्र धम्य है । बहुतेरे फलमें लक्ष्य युद्धको लक्ष्य हो मन्त्र द्वारा उसे लक्ष्य कर बाधते हैं । हाथमें सरसो और पून से कर मन्त्र पढ़ कर जिस मन्त्र प्रेत वस्तु पर कि की जाती है, वही वस्तु या युद्ध लक्ष्य कर लक्ष्य हो जाता है । सपेरेमें इनकी शक्ति है कि ब

वाण मार कर शवके मुखसे भा खून तक निकाल सकता है।

इस वाणखेलकी तरह मारण, स्तम्भन, वज्राकरण, उच्चाटन आदि विषयके भी मन्त्र हैं। भीतिहत्या देवों। वाणगद्गा ( सं० स्त्री० ) एक नदी। लोमशतीर्थ पार कर यह नदी बह चली है। कहते हैं, कि राक्षस राज रावणने वाणकी नौकमें हिमालय भेद कर इस नदीको निकाला था।

वाणगोचर (सं० पु०) वाणका निदिष्ट गतिस्थान (Range of an arrow)।

वाणचालना ( सं० स्त्री० ) वाणप्रयोग। धनुष और तीर योगमें लक्ष्य वस्तु वेधनेका कौशल वा प्रणाली। पाश्चात्य भाषामें इस नौक्येय प्रथाको Archery कहते हैं। वैशम्पायनोक्त धनुर्वेदमें इसका विषय विस्तार पूर्वक लिखा है। धनुर्वेद देवों।

ऐतिहासिक युगको प्रारम्भावस्थामें, जिस समय इस देशमें बानेयाह्नका ( नालिकादि युद्धयन्त्र Canon ) विशेष प्रचार नहीं था, यहा तक कि, जिस समय लोग लौह द्वारा फलकाटि निर्माण करना नहीं सीखा था, उस समय भी लोग बंगलंड ले कर धनुष, शरखड ले कर इपु एवं चक्रमशी द्वारा शरकी जलाका तैयार करने में अभ्यस्त थे। हम लोग इतिहास पाठने एव प्राचीन नगर वा ग्रामादिके ध्वंसावशेषमें आदिम जातिके इस अस्त्रके बहुतसे निदर्शन पाते हैं। इस समय भी कई एक देशके आदिम तसम्य जातिके मध्य यह प्रथा विद्यमान है। पीछे जब उन सब जातियोंके मध्य सम्बन्ध लोकाका विस्तार होने लगा, तबसे वे सम्भ्य-समाजकी अनुकरण कर इस युद्धास्त्रकी उन्नति करके वाणनिर्माणके विषयमें एवं उसके चलानेके अपूर्व कौशल प्रदर्शन करने में समर्थ हुए थे।

प्राचीन वैदिक युगमें हम लोग वाणप्रयोगके प्रकृत निदर्शन पाते हैं। सुसम्भ्य आर्यगण वज्र अनाथ्य जातिके साथ निरन्तर युद्धकार्यमें व्यापृत थे, भारतवासी उसी आर्य जातिकी सन्तान धनुष, इपु प्रभृति अस्त्र योगसे जिस तरह युद्धकार्ये परिचालना करती थी,

ऋग्वेदमहितामें उनके भूरि भूरि प्रमाण पाये जाते हैं(१)। आर्य और असुर ( दम्पु वा राक्षस )के संघर्षकी कथा जो उक्त महाप्रथमें वर्णन की गई है, उसका ही अविष्टन चित्र पौराणिक वर्णनामें भा प्रतिकल्पित(२) देखा जाता है।

रामायणीय युगमें राम-रावणके युद्धके समय एवं भारतय युद्धमें कुरु पांडवके मध्य भीषण वाण युद्ध हुआ था, केल्ल मानव जगत्में ही नदां देवजगत्में भी वाणका व्यवहार था। स्वर्ग पशुपति पाशुपत अस्त्रने परिष्ठाभित थे( )। देवसेनापति कुमार कान्तिकेयने धनुर्वाण धारण करके अशुरोंका संहार किया था। पुराणमें अग्नि, घृण, विष्णु, प्रह्ला प्रभृति देवताओंके अपने अपने निर्दिष्ट प्रिय वाणोंका उल्लेख पाया जाता है(४)। राम-रावणके युद्धमें

(१) शृक् ५५२, ५५ और मुजम एवं ६२, २७, ४६, ४० सूक्तमें शृष्टि, वागी, धनु, इपु प्रभृति धनुर्वाण उल्लेख है।

(२) शृक् १।११, १२, २१, २४, ३३, १००, १०३, १०४, १२१ प्रभृति सूक्त आलोचना करनेसे इन्द्रादि कर्त्तृक धनुर्वाणके नाशकी जो कथा पाई जाती है, वृषसंहार, शरकावय, बन्धक निवन, मुर-नाश, त्रिपुर-दाद, मधुकैटभादि विनाश उसका विभाग भाग है।

(३) लिंगपुराण और महाभारत। महादेवने अर्जुनकी धीरतासे प्रसन्न हो कर कर्ण और निवान कवचादि निधनेके निमित्त उक्त अस्त्र दान किया था।

(४) विभिन्न श्रेणियोंके वाण अर्थात् उनकी भेदगतिके विभिन्न रूपकी होती हैं। वर्त्तमान समयमें कर्द चन्द्र, घोषाकार, त्रिफलक वा बहुशोक आकारयुक्त वाण भोल, सथालोक मध्य एवं प्राचीन राजवर्गोंके मज्जागारमें परिलक्षित होते हैं। पुराणमें जो कृष्णवाण द्वारा अग्निवाण काटनेकी कथा है, अधिक समय यह इस तरहके विभिन्न फलकका गुण ही होगा। उस समयके वेदवर्ग स्थिरलक्ष्य तथा सिद्धरस्त वे एवं वे एक वाणका प्रयोग देखते ही उसके विपरीत अर्थात् प्रत्याखान समयक अन्न प्रयोग करना जानते थे अथवा वे सब वाण मन्त्रसिद्ध वे वा यादवा स्वयं प्रक्षेप काष्ठमें उसे मन्त्रपूतः करके प्रयोग करते थे, ऐसा भी कहा जा सकता है।

हम सब देवाधिष्ठित वायुका बहुत प्रयोग किया गया था। राक्षसका मृत्युवाण इस प्रेयोका अर्थकाररूप कहा जा सकता है। दुष्प्रस्तादि राक्षसगण वाण छे कर शिकार करते थे(१)। सूर्यर्षशमरीय महात्मा एतुने वाण छे कर फारसवालों पर विजय प्राप्त करनेके अभिप्रायसे गमन किया था। रामायणके अन्दर बसिष्ठ और विष्णुमित्रके युद्धमें शक जाद्विक भार पवन जातीय बोधा भी ये इसकी कथा है। यह कहना व्यर्थ है कि वे इस समय युद्धमें धनुर्बाण भी व्यवहार करते थे।

महामारतमें लिखा है, कि श्रोणाचार्यसे पांडवोंने वाण बचानेकी शिक्षा पाई थी। एकसभ्य द्राणाचार्यको मूर्ति बना कर ज्यो मध्यबसायसे गुठको शिक्षा भय इरण करने लगा। वाणविद्यामें पाठ्यशिक्षा छान करनेके बाद वह गुठ द्राणको इक्षिवा देनेके लिये तैयार हुआ। गुठने उसको अनुसुत शिक्षा-कीशक देय उसके दाहिने हाथकी दुर्दांगुलि मारंगी। और बासक एकलभयने गुठको सु हमांगा इक्षिवा ई कर अपने महत्त्वकी रक्षा की।

महामारतीय इस विवरणको पढ़नेसे मन्सुम होता है, कि उस समय राजपरिवार, साधारण जनसमाज या सभी क्षत्रियोंको वाण शिक्षा प्राप्त करना प्रधान कर्त्तव्य हो गया था। तादृक निघन कार्त्तमें भी रामचन्द्रके वाणसे मारोच राक्षसका मड्डा बना जाना, द्रौपदीके लज्जभरतमें अक्रन्द पयसे अहंन द्वारा मछको का मैन मेहन, कुम्भरुपितामह महामति मोषका शर शयग निर्माण प्रभृति पौराणिक आख्यानोंमें वाण बखाने का चरम दृष्टान्त है।

इसके बाद भी हिन्दू राज्ये तौर धनुष छे कर युद्ध करते थे। सिक्खरके मारताक्रमणके समय युद्धक्षेत्रमें सहस्रों तीरन्दाओंको अवतारण देखी जाती है। मार्व-इ-अक बरीमें लिखा है कि मुगल-सम्राट् अकबरशाहके अजा-

गारतमें मिन्न मिन्न प्रकारके तीर, तूपीर तथा धनुष थे। इस समय बल्क और तोपोंका बिरोध प्रचार होनेक कारण वाण द्वारा शत्रुओंके संहार करनेकी आवश्यकता बहुत कम हो गई; किन्तु फिर भी ऐसा नहीं कह सकते, कि इस समय तीरन्दा बिल्कुल ही नहीं रहे। तब भी रजतुर्मन् राजपूतवीर, मीळ एवं मोळ प्रभृति कुक्षय असम्भ्य शक्तिर्ष तीरधनुष द्वारा रणक्षेत्रमें शत्रुओंका नाश किया करते थीं।

अप्रैमो अर्थिकारतमें भी संघाल जग तीर धनुष द्वारा युद्ध करते थे। उनको वाण शिक्षा अनुसुत, छश्य स्थिर और सुनिश्चित एवं संहार अयदिह्य था। सुसुर बनाम राक्षसे अशतापोंका छश्य करके वै जग भी वाण छोडते थे, इससे शत्रुके मरनेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता था। इस समय इस विद्याका पूरा हास हो जाने पर भी "संधाओंका काँड़" जनसाधारणके दरवमें वाणशिक्षाकी पराकाष्ठा जगा देता है।

सिर्फ मारतधर्ममें ही नहीं, एक समय यूरोपीय पारवात्य जगत्तमें भी इसका प्रयेध व्यवहार था। प्राचीन मोक जाति तीर-धनुष छे कर युद्ध करती थी। प्राचीन यवन लोग (Jonian) भी हाथमें धनुर्बाण धारण किये रणक्षेत्रमें विचार्य इत थे। वै जग प्राचीन मोस या हेर्बिनसुवासियोंकी अन्धतम शाखा कहे जाते थे। कार्वेजिनोय योयू-ए-ए सुबिक्पाठ रोमकगण, हज, गय और मादहाळ प्रभृति धर्म्बर जातिर्षा यहाँ तक, कि सुशिक्षित अ प्रेश जातिक आदिपुत्र्य एवं इगलैएडक आदि निवासी घुडन जोग भी वाण बखानेमें बिरोध पारदर्षी थे। उन देशोंका इतिहास ही इसका साक्षी है रहा है।

पारवात्य जगत्की सुप्रायोन प्राक और रोमन जातियोंके अम्युल्यानके पहले असीरीय (Assyrians) एवं शक (Scythians) जातियोंके मध्य घेडे जीते जानेवाले रथ पर चढ़ कर युद्ध करनेकी रीति थी। इस समय भी वहाँके सुबुद्ध वासदागणरथ प्रस्तरफनहादि में वायुपूर्ण तूपीरम बन्न रथादिका चित्र अंकित देखा जाता है। असीरीय जातिकी वाण-विद्याका पूणप्रमाय उनको कीलकपा (Onchocorn) वर्णमाला द्वारा अयसधि

(१) महाकवि काँड्वार प्रभृतिके अल्पनाटकधर्ममें तीर धनुषके व्यवहारका उल्लेख देखा जाता है। उनके द्वारा मनु मान होता है, कि इन वन कर्षकोंके समयमें राजे मरतने लय तीर धनुष छे कर शिकार खेला करते थे एवं उनके सेन्य विमानमें प्रयेध तीरन्दा बसेन थी।



की जाती है। अनुमान होता है, कि उन लोगोंके प्राण थे; इसीलिये उन लोगोंने वाणके अप्रकीलकका अनुकरण करके अपनी अक्षरमाला तैयार की थी।

प्राचीन मित्रराज्यमें भी तीरधनुषका अभाव नहीं था। कालदीय, वाविलनीय, पार्थीय, गक, बाहिक और प्राचीन फारसी जातियोंके मध्य वाणास्त्रका बहुत प्रचार था। सुनरा अनुमान हाता है, कि अति प्राचीन-कालमें धनुष और वाण युद्धके प्रधान अस्त्र गिने जाते थे एवं जनसाधारणको उसकी विशेष यत्नसे शिक्षा दी जाती थी।

वाणजित् ( सं० पु० ) विष्णु ।

वाणतूण ( सं० पु० ) वाणाधार, तूणीर, तरकज ।

वाणधा ( सं० पु० ) तूणीर, तरकज ।

वाणानासा ( सं० स्त्री० ) एक नदीका नाम ।

वाणनिवृत्त ( सं० लि० ) वाणान्त्रसे मित्र ।

वाणपञ्चानन ( सं० पु० ) एक प्रसिद्ध कवि ।

वाणपथ ( सं० पु० ) वाणगोचर ।

वाणपाणि ( सं० लि० ) वाणास्त्र द्वारा सुसज्जित ।

वाणपात ( सं० पु० ) १ वाणनिक्षेप, वाण फेंकना ।  
२ दूरत्वपरिमापक, वह जिससे दूरी निकाली जाय ।

वाणपातवर्त्तिन् ( सं० लि० ) अदूर अवस्थित, पासमें रहनेवाला ।

वाणपुद्गा ( सं० स्त्री० ) वाणका अग्र और पुच्छभाग ।

वाणपुर ( सं० स्त्री० ) वाणगाजकी राजधानी ।

वाणभट्ट ( सं० पु० ) एक सुप्रसिद्ध कवि ।

वाणमय ( सं० लि० ) वाण द्वारा समाच्छन्न ।

वाणमुक्ति ( सं० स्त्री० ) वाणव्युति, किसी वस्तु पर निशाना करना ।

वाणमोक्षण ( सं० स्त्री० ) वाणमुक्ति देखो ।

वाणयोजन ( सं० स्त्री० ) १ तूणीर, तरकज । २ धनुषकी ज्यामें वाण लगा कर निशाना करना ।

वाणप्रस्थ ( सं० स्त्री० ) आश्रमाचारविशेष ।

वाणप्रस्थ देखो ।

वाणरसी ( सं० स्त्री० ) वाराणसीका अपभ्रंश ।

वाणराज ( सं० पु० ) वाणासुर ।

वाणरेखा ( सं० स्त्री० ) वह रेखा या क्षत जो वाणके लगनेसे हो ।

वाणलिङ्ग ( सं० स्त्री० ) स्थावर त्रिवलिङ्गमेव । नर्मदाके किनारे ये सब लिङ्ग पाये जाते हैं । लिङ्ग गण्यं देतो ।

वाणमाल ( सं० स्त्री० ) वाणागार, आश्रमशाला ।

वाणवर्षण ( सं० स्त्री० ) वाणवृष्टि, वृष्टिके समान वाण गिरना ।

वाणधवार ( सं० पु० ) एक प्रकारका अंगरक्षा, लौह-अस्त्र ।

वाणमन्थान ( सं० स्त्री० ) लक्ष्य करके वाणयोजना ।

वाणसिद्धि ( सं० स्त्री० ) वाणके सहारे लक्ष्य मेव करना ।

वाणसूता ( सं० स्त्री० ) उषा ।

वाणहन् ( सं० पु० ) १ वाणारि । २ विष्णु ।

वाणावली ( सं० स्त्री० ) १ वाणोंकी आयली, तीरोंकी कतार  
२ श्लोकोंका पञ्चक, एक साथ बने हुए पाँच श्लोक ।  
३ तीरोंकी लगातार वर्षा ।

वाणि ( सं० स्त्री० ) वण-णिच् इन् ( सर्वधातुभ्यश्च । उण् ४।११७ ) इति इन् ; वयन, घोना । पर्याय-व्युति, व्युति ।  
२ वाप दण्ड ।

वाणिज ( सं० पु० ) वणिज्-पर्य्ये-अण् । १ वणिक्, वनिया । २ वाडवाणि ।

वाणिजक ( सं० पु० ) वाणिज देवो ।

वाणिजकविष ( सं० लि० ) वाणिजकाना विषयो देशः ( मैरिक्पाद्येषु कार्यादिभ्यो विषत्प्रकृतौ । पा ४।२।१५ ) इति विधल् । वणिक्का स्थान, वाणिज्यस्थान ।

वाणिजक ( सं० पु० ) वाणिज देवो ।

वाणिज्य ( सं० स्त्री० ) वणिजो भावः कर्म वा वणिज्-भ्यञ् । वैश्य-वृत्ति, क्रय-विक्रयका कार्य । पर्याय-मत्प्रा-नृत, वाणिज्य, वणिक् पथ । ( जटाधर )

ज्योतिषमें लिखा है, कि वाणिज्य या व्यापार का आरम्भ किसी शुभ दिनको करना चाहिये । अशुभ दिनको वाणिज्य आरम्भ करने पर घाटा या नुकसान होता है। भरणी, अश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्व फल्गुनी और पूर्वाषाढा आदि नक्षत्रोंमें वस्तु-वेचना ठीक है; किन्तु खरीदना ठीक नहीं। रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, ध्रुवणा और स्वाति आदि नक्षत्रोंमें खरीदना शुभ और वेचना अशुभ है। ( ज्योतिषास० )

इस तरह शरीरने वैयक्तिक सहाय्य रख कर कारोबार करने में बचोरीदार सम्मति होती है।

हाय, गोरक्षा और वाणिज्य वैयक्तिकी वृत्तियाँ हैं। वैयक्तिकी वृत्तियोंसे अपनी जीविकाका निर्वाह करे। किन्तु ब्राह्मण पर सब विपणु उपस्थित हो अर्थात् सब लोगोंको जीविका निर्वाह नहीं कर सके, तब वह वाणिज्य वृत्तिले ही अपनी जीविका खला सकती है। ब्राह्मण को आपणु काष्ठमें किस वृत्तिका अवसम्भन करना चाहिये, इसमें सम्भवमें मनुने लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी धर्मनिष्ठामें व्याघात उपस्थित होने पर निविद्य वस्तुओंको त्याग वैश्यकी वाणिज्य-वृत्तिले अपनी जीविका खला सकेगे।

निविद्य वस्तुएँ—सब तरहके रस, तिल, अस्तर, सिद्धाम्ब, नमक, पशु और मनुष्यका बेचना बहुत मना है। कुसुमादि प्रायः रंगे काष्ठ रंगके सूतेसे बने सब तरहके वस्त्र, शन और अतनी "तन्तुमय वस्त्र, मेड़के" पैर के बने कर्मठके आदिका बेचना भी मना है। जड़, शऊ, विप, मौंस, सोमरस, सब तरहके गण्य द्रव्य, कृष, इदी, मोम घी, तैल, शहद, गुड़ और कुञ्ज ये सब चीजें बेचनी न चाहिये। सब तरहके बन्ध पशु, विशेषतः गजादि वृषु, अंशुपिच्छत शुक, अश्वान्दि सिवा इसके मघ और काह, अपय्या आदि कर्माँ मी न बेचना चाहिये। तिल विपयमें विशेष पकी है, कि कामकी आशास तिल बेचना उचित नहीं। किन्तु अर्थवैद्य की हुई तिलको बेचनेमें कोई दोष नहीं। (मनु १० म०)

ब्राह्मण और क्षत्रिय इन सब वस्तुओंको छोड़ वाणिज्य कर सकेगे। ये दोनों जातियों आपसमें मिल कर एक साथ वाणिज्य कार्य आरम्भ करें और अपने यदि कोई प्रतारणा करे या किसीके ध्यान न देनेसे वाणिज्यमें हस्ति हो, तो राजा उसको दण्डका विधान करे।

महर्षि याज्ञवल्क्यमें लिखा है—जो सब बणिक् एक साथ मिल कर व्यवसाय करें (जैसे आज कल डिमिटेड कंपनी प्रतिष्ठित होता है।) उसमें जिसका जैसा भाग होगा उसको अनुसार उसको पाडा नफा सहना होगा। इन हिस्सेदारोंमें यदि कोई निविद्य कामकी करे या

बह पैसा काम करे जिसमें व्यवसायमें हानि हो तो उसे ही ठम क्षत्रिकी पूर्ण करनी होगी। यदि कोई विपणु की दुहाई दे, तो वह साधारण सामाजिक दण्डों में प्राणिकी अधिकारी होगा। राजाकी आज्ञा से कर व्यवसाय आरम्भ करना होगा। राजा ही बेचनेवाली शोकका मुख्य निर्धारित करता है। इनोच्छिपे उसको पररूपमें सामाजिक २० भागका एक भाग दिया जाता है। राजा जिस चीजको बेचनेको मनाई करे वह और राजोचित चीजें, बेचने पर यह छे लेगा।

यदि बणिक् वाणिज्य करते समय शुद्धक वस्तुनाक छिपे पण्यद्रव्यके परिमाण विपयमें छूट गेके, शुद्धक द्रव्य स्थानसे छठ जाये और बिवादास्पद द्रव्य खरीदे वेके, तो उसे पण्यद्रव्यकी अपेक्षा अन्तुना दण्ड होगा। वाणिज्य करते समय किसी हिस्सेदारको मृत्यु हो जाय तो उस समयमें जिसका जो धन रहेगा राजा उसके वचोपकारीको दिला देगा। इसमें जो ठगेगा वह कामसे बञ्चित कर दिया जायेगा।

राजा पण्यद्रव्यके प्रकृत मूल्य तथा प्राणिक किराया भादि कर्षका हिसाब कर वस्तुका मुख्य निर्धारित करे जिससे खरीदने और बेचनेवाले दोनोंकी हस्ति न होने पाये। राजा अच्छी तरह जांच पड़ताक कर चीजोंका मुख्य निर्धारित करे। राजाके निर्धारित मूल्यस हो बणिक् मिलव कोशे बेचा करे। बणिक् खरीदनेवालेसे मूल्य में कर चीज उसे न दे तो उसके रुपयेका मूल्य शोध कर या उस वस्तुको बेच कर जो काम हा, उस कामके साथ उसे कराद्वारका शुकाता होगा। वैशो खरीदवारके प्रति यह नियम है। यदि वह खरीदवार विदेशी हो, तो खरीदो चीज बिदेशीमें छे जा कर बेची जाने पर यहाँ जो काम होता, उसका हिसाब शोध कर विदेशी खरीदवारको उसे देना पड़ेगा।

बेचनेवालेके हने पर भी यदि खरीदनेवाला माम नहीं छेता, फिर भी खरीदवार तथा राजोपद्रव्यके वह मघ हो जाये, तो खरीदवारका ही माळ मघ होता है। बेचनेवाला इस माळका हिस्सेदार नहीं। वेचनेक समय यदि बेचनेवाला खुरी चीजको अच्छी कर कर बेचे, तो वैशो हुई चीजकामसे नूने कामके दण्डका वह अधिकार

होता है। खरीददार माल खरीदनेके बाद मालका दाम कम हुआ है या अधिक या बेचनेवाला माल बेच चुकने पर मालका दाम अधिक हुआ है या नहीं यह न जान कर मालके खरीद फोरेक्टके सम्बंधमें दुःख प्रकट न कर सकेगा। यदि वे करें, तो उस खरीद-फोरेक्ट किये हुए मालके दामके छठवां अंशके दण्डाधिकारी होंगे।

जो वणिक् राजनिरूपित मूल्यसे कम और अधिक जान कर और गुह्य वांछ कर लोगोंके कष्टकर मूल्यकी वृद्धि करे, तो राजा उनको उत्तम साहस दण्डका विधान करे और जो देगान्तरसे आये हुए मालको हीन मूल्यमें लेनेके लिये रोक रखे या एक मूल्य ग्रहण कर बहु-मूल्य पर बेचे तो भी उनका उत्तम साहस दण्ड होगा। जो व्यक्ति वजन करनेके समय डण्डोंमें कम तीले, तो उसको दो सौ पण दण्ड होगा। आंघ्र, घृत, तैलादि लेह द्रव्य, नमक कुंकुमादि गन्ध, धान, गुड़ आदि चीजोंमें मिलावटी चीज बेचने पर बेचनेवालेको सोलह पण दण्ड होगा।

मालका खरीदना, बेचना तथा एक देशकी उपजी हुई चीज दूसरे देशमें भेजना या दूसरे देशसे मंगाना हमीको व्यवसाय कहते हैं। प्राचीन कालमें इन्हीं नियमों का पालन कर भारतमें कारोबार होता था।

( याज्ञ० सू० २ म० )

वहुत पुराने समयमें भागत या पणियाई महादेशके सभी भूखण्डोंमें या यूरोप आदि देशोंमें भी एक बेरोक वाणिज्य-प्रवाह प्रवाहित होता था। केवल स्थलपथमें या समतल मैदानमें ही व्यवसाय नहीं चलता था। भारतीय वणिक् उस उच्चाल तरङ्गपूर्ण समुद्रकी छाती पर और नदीवक्ष पर बड़ा या छोटी नावोंकी सहायतासे जातीय थोवृद्धिके मूल-वाणिज्यको फैलाया था। श्वर जिम नरह वे दक्षिण समुद्रके पूर्व और पश्चिम भूभागोंमें आते जाते थे, वैसे ही वे वनसङ्कुल मयावह गिरि-संकटोंको पार कर या बड़ी पर्वतश्रेणीको पार कर मध्य-पणिया और वहांसे यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरोंमें जाते थे। वे अपनी चीजोंको बेचते तथा आवश्यक विदेशी चीजोंको खरीद कर लाते थे।

हिरोपोतस्, प्रावो, फ्लिनी आदि यूनानी ऐतिहासिकोंकी विवरणीसे मालूम होता है, कि एकमात्र लाल समुद्रसे भारतीय वणिक् यूरोपमें माल ले जाते थे। द्रव-नगर कायम होनेसे पहले गरम मसाला, औषध और अन्यान्य माल पूर्व-भारतसे उक्त पथसे भेजा जाता था। वणिक्गण जहाज लाद भारत महामागरको पार कर घोंरे घोंरे लालसागरमें पहुँचते थे और क्रमसे आर्सिनो (Suez) बन्दरमें जहाजसे माल उतार लेते थे। वहांसे दल वांछ कर ये पैदल चल कर भूमध्यसागरके किनारे पर अवस्थित (Cassow) कासी नगरमें पहुँचते थे। ये कासी नगर आर्सिनो बन्दरसे १०५ मीलकी दूरी पर अवस्थित था।

स्ट्रावोने लिखा है, कि वाणिज्यकी सुविधाके लिये सहज और सुगम रास्ता निकालनेमें भारतके वणिक् सम्प्रदायको दो शर रास्ता बदलना पड़ा था। सुप्रसिद्ध फगासी-स्थपति M de Lsseps सन् १८६९ ई०में सत्र ओर रास्ता फैलानेके लिये स्वेज नहर काट कर प्राच्य और प्रतीच्य वाणिज्यका सुयोग संघटन कर गये हैं, बहु गताब्द पहले मिस्त्रराज सिसोस्टिसने उस रास्तेका सूत्रपात कर डाला था। वे लालसागरके तटसे नीलनदीकी एक शाखा तक खाल कटवा कर उसी रास्तेसे पण्यद्रव्य ले जानेके लिये बहुतसे जहाज बनवाने थे। किन्तु किसी कारणसे इस कामसे उनका जी हट गया।

इसके बाद प्रायः ईस्वोसन् १०००के पहले इस्राएल पति सलोमनने वाणिज्य विस्तारके लिये लालसागरके किनारेसे एक और पथ खोल कर उसी पथसे जहाज द्वारा पण्यद्रव्य ले जानेकी सुविधा की थी। उनके वाणिज्य जहाज ओफिर (सौवीर) और तार्सिस नगरसे केवल सोना, चाँदी और बेगकिमती पत्थर ले कर इजि-ओनगोवाकी राजधानीमें जाते थे। इसवाणिज्यसम्बद्धसे उनकी बहुत कुछ थोवृद्धि हुई थी। उनके प्रासादमें चाँदीका इतना असवाव था कि जिसकी गिनती तक

• Solomon king of Israel, made a navy of Ships in Evgion-geber, which is beside Eloth on the Shove of the Red Sea in the land of Edom (1 Kings X 26)

नहीं हो सकती थी। इनका पानदान और डाल मोने का बना था।

ग्रीक भौतिकीकी वर्णनाने जाना जाता है कि थोफिर (सीबेर) जनपद भारतका तटकाळपरिसर कोई एक बन्दर था। तासिसगात्री अहास तीन वर्ष पर इतिमोनगोबार छोड़ आते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर मिन्न मिन्न स्थानोंमें वाणिज्यके कारण रास्तेमें ठहरते आते थे। पूर्वसब अहास प्रधानतः सोना, चांदी, हाथी-दाँत, अपे नामक बन्दर और मोर आदि लाते थे। तासिसके इस दूरत्वको देखनेसे मात्स्य होगा है, कि यह स्थान सम्भवतः मलका, सुमात्रा, यप और यपिओ द्वीपके पास न था, क्योंकि ऐसा होनेसे अक्षय ही वनमानुस बिचार् पड़ते तथा उस वाणिज्ययात्राके विवरणमें उस धरनाका समावेश कर साधारणकी दृष्टि आकर्षण करते। इसलिये अनुमान होता है कि पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जके अशुभ मन्त्री थे।

इस समयके बणिक्की मति प्राचीन बणिक् लोग भी अरब उपसागरको पार कर मालबाक उपकुलरुप मुगिरिस बन्दर पहुँचते थे। इस समुद्रयात्रामें उन्हें सिरक ३० दिन लगते थे। मेसोपोटेमिया, पारस्य उपसागरके किनारे रहनेवाली आकास जाति तथा फनिक बणिक् लोग बहुत दिनों तक इस पथसे पूर्व देशों वाणिज्यकार्यका परिचालना करते थे। इन सब बणिक्कीके साथ वाणिज्य करनेके लिये भारतीय बणिक् इस समय इस पथसे मिलापजय तक आते थे।

सूरको राहसे मो ये भारतीय बणिये बहुत दूर पकिवन तक आते थे। वे एक बांध कर वाणिज्य द्रव्य ऊँचकी पोड पर छाड़ कर एक स्थानसे दूसरे स्थानको आते थे। इस वाणिज्य-यात्रामें वे सब कमो कमी स्थानीय सर बार्तोंको मोत कर वे देश सुद सेते और सूडका माल ले कर आगे बढ़ते थे। इस कारण उन्हें विभिन्न नगरमें विभिन्न पथोंका अक्षम्वन करना पड़ता था। बाइबिल धर्मग्रन्थके फ्रिक्वायेक (Beckel) विभागमें तथा हिरमी (Levi C. h) को विवरणमें अफ्रिकाके रैगिस्तानमें, अरब-पथियाके तुपमद्विडत प्रायद्वीप तथा विभिन्न गिरि

संबन्धीका पार कर भारतीय बणियोंकी वाणिज्य यात्राकी बात लिखा है।

रोमन सम्राट् अगस्टसक राजत्वकालमें भीसास गेसियसने प्राच्य वाणिज्यका विषय उल्लेख कर लिखा है कि अरवा बणिक् लोग एक विस्तृत सनावाहिनीके समान दक्षवर्ध हो कर यूरोपके प्रतीक्ष्य जनपदोंमें आते थे। इस सबको यह वाणिज्ययात्रा बणिक् लोगकी सुविधाके अनुसार तथा पौनिक अलके अनुसार होती थी। एक दक्ष एक नियत समयमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको रवाना हो कर राहकी सराय या बहिपेमें ठहरता था ठीक इसी समय दूसरी ओरसे और एक दस बणिक् आ कर एक साथ मिल जाता था। बणिक्की का यह सम्मेलन उन लोगोंकी भारतमहाका एकमात्र उपाय था, ऐसा कहा जा सकता है।

एक समय दो बणिक् दल घेनसे निकले। एक दल इद्रामौतसे ओमान द्वीग परिचालित हो कर पारस्यो पसागरके पल्ले पर पला आया और दूसरा दल इद्राम पूम कर अाकसागरके किनारे पैदा पड़ता। यहाँसे यह दल दो बजोंमें बट कर एक गाजा नगरकी ओर और दूसरा दूसरे पथसे इमरकस नगर चला गया। घेन से पैदा पैदा आनेमें करीब ३० दिन लगते थे। यूनानी ऐतिहासिक आथेनाडोरसकी वर्णनामें बणिक्कीकी मिन सब सरायोंका उल्लेख है, इत्यायक और इद्राहिमक समय वे सब वाणिज्य ससृष्टिसि पूर्ण थी, ऐसा अनुमान होता है।

बणिक्सम्प्रदायके इस तरह जाने बानेसे मायाहित

\* Having arrived at Bactria, the merchant ship then descends the Icarus as far as the Oxus and thence are carried down to the Caspian They then cross that sea to the mouth of the Cyrus (the Kur) where they ascend that river and on going on shore are transported by land for five days to the banks of the Phasis (Rion) where they once more embark, and are conveyed down to the Buxide. (Pliny;

( Maadit ) जातिका कर्मक्षेत्र विशेष रूपसे परिवर्द्धित हुआ था। क्योंकि उन्होंने वाणिज्यसम्प्रदायको ऊँट भाड़े कर, उन्हें पथ दिखा कर, उनका रक्षक हो कर अथवा उन लोगोंके साथ मिलकर वाणिज्यका पर्यालोचना करके मोटी रकम पाई थी। कालक्रमसे इस खुशका वाणिज्यमें बड़ा गडबड़ी हो गई। राष्ट्रविप्लव या प्राकृतिक परिवर्तनसे वह विपर्यय घटा था। इस पथमें जितने समृद्धि शाली नगर वा वाणिज्यकेन्द्र थे, देवसंयोगसे वे सभी श्रांभ्रष्ट तथा नगर जनहीन हो गये और उसका वाणिज्य समृद्धिका भी हानि हो गया। आज भी हीरानके आम-पास बलुई प्रान्तरमें मरुसागरके तौरवर्त्ती मरुदेशम तथा राइवेरियस झोलक मारिकटस्थ ऊँचे स्तम्भों, मन्दरादि तथा रडूमञ्चोंने प्राचीन गौरवका निदर्शन जग रखा है।

पेट्रासे दमस्कस जानेके रास्तेमें उत्तर सीमान्तमें पामिरा, फ्लाडेलूफिया और ट्रेकापोलिजके नगर मिलते हैं। ग्रीक और रोमन जातियोंके अभ्युत्थान काल में पेट्रामे वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति थी। एथेनोडोरस् लिखते हैं, कि धीरे धीरे वह नष्ट हो कर मरुभूमिमें पर्यवसित हो गया। सैकड़ों वर्ष तक इस रूपमें रहने पर भी उसकी फाँटियाँ गिरकुल ही लुप्त नहीं हुई। इस समय भी स्थान स्थान पर उन सब ध्वस्त स्तूपोंके रतम्व तथा प्रासादादि विद्यमान हैं, जो भ्रमणकारियोंके हृदयमें प्राचीन वाणिज्यगौरवकी क्षोणस्मृति उद्बोधन करते हैं। यह पेट्रा नगर उत्तर-पश्चिम एशिया तथा यूरोपीय वाणिज्यका केन्द्रस्थान था। दक्षिणाञ्चलसे समागत वाणिज्य-सम्प्रदाय यहाँ आ कर उत्तर देशीय वाणिज्यसे अपना पण्यद्रव्य बदल कर लौट जाता था।

शक्तिशाली रोमसाम्राज्यके अधिस्तान होने पर वाणिज्यका हानि हो गया एवं उसके साथ साथ क्रमसे लालसागरोपकूल और अरबका वाणिज्य-पथ छोड़ दिया गया। इसके कई शताब्दोंके बाद जिस समय जेनेवा वासियोंने पुनः वाणिज्यके उपलक्ष्ये जहाज द्वारा समुद्र-में आना जाना आरम्भ किया, उस समय यह पथ उन लोगोंके गमनागमनकी सुविधाक लिये गृहीत हुआ।

— मानव और यूरोपमें फिर व्यापार चलने लगा। उस

समय पश्चिम-भारतका पण्यद्रव्य जल तथा स्थल पथ से नाँका और ऊँटों द्वारा मिन्युनदसे हो कर हिमालय तथा काबुलको पार्वत्य अधित्यकाभूमिमें आ कर क्रमसे समरकन्द पहुँचता था। यहाँ तक, कि मलका हीपजात द्रव्य भारतसमुद्र, बंगोपसागर, इसके बाद गंगा और यमुना नदीसे होते हुए एवं उत्तर-भारतके अगम्य पथको पार करके समरकन्दमें आता था। समरकन्द उस समय महान-समुद्रशाली तथा वाणिज्यका केन्द्र था। यहाँ भारत, पारस और तुर्कके प्रधान प्रधान वाणिज्य एकत्र हो कर अपने अपने देशीय पण्य ढेर फेर करत थे।

यहाँसे ये सब चीजें जहाज द्वारा कारापीयसागरके दूसरे पारस्थित अट्राप्यान् वन्दरको भेजी जाती थीं। अट्राप्यान् वन्दर बलगा नदीके मुहाने पर अवस्थित रहनेके कारण पण्यद्रव्य अन्यत्र ले जानेमें बड़ी सुविधा होती थी। यहाँसे सभा चीजें फिर नदीकी राहसे रेड्जान प्रदशान्तर्गत नोवोगरोद नगरमें लाई जाती थीं। यह नगर वर्त्तमान निज्नी नोवोगरोद नगरमें बहुत दक्षिणमें अवस्थित था।

नोवोगरोदसे इन सब चीजोंको कई मील खुशकोकी राहसे ले जाते थे। इसके बाद डान् नदीके किनारे पहुँच कर उन द्रव्योंकी छोटी छोटी नाँकाओं पर लाद कर जेनेवा वाजोफूसागरके किनारे काफा तथा य्यूजोसिया वन्दरमें ले जाते थे। काफा वन्दर उस समय जेनेवावासियोंके अधिकारमें था। यहाँ वे लोग गलीयस् नामक जहाज द्वारा आते थे एवं भारतीय पण्यद्रव्य ले कर अपने देशको लौट जाते थे। पीछे वे उन सब वस्तुओंको यूरोपके नाना स्थानोंमें विक्री करनेके लिये भेज देते थे।

अर्मेनियन सम्राट् कामोडीटरके राजत्वकालमें एक और वाणिज्य पथका आविष्कार हुआ था। उस समय वाणिज्य जर्जियाके मध्य हो कर भी कास्पीय सागरके किनारे आत तथा वहाँसे पण्यद्रव्य जलपथ द्वारा कालासागर तौरवर्त्ती त्रिघिजन्द वन्दर ले जाते थे। पीछे वहाँसे वह सब द्रव्य यूरोपके नाना स्थानोंमें भेजे जाते थे। उसी समय भारतीय वाणिज्यके लिये अर्मेनियोंके साथ

भारतवासियोंका विशेष सम्बन्ध हो गया। एक अर्धनियत सम्राट् इस समय बाण्ड्य-युग सुगम करनेके लिये कास्पीयसागरसे कालासागरके किनारे तक १२० मील लम्बी एक नहर खुदवाने पर बाध्य हुआ, किन्तु यह काम श्रेय होते न होत वह एक गुप्तकारके हाथ मारा गया। इससे यह महत्त्वपूर्ण कार्यमें परिप्लव न हो सका।

इसके बाद बिनिसवासी बणिक बाण्ड्य क्षेत्रमें उतरे। ये लोग भारत बानिक लिये सबसे सुगम रास्ता निकाल कर अति शीघ्र यूफ्रेटिस नदी होते हुए भारत आये।

बिनिसवासी बणिक लोग भूमध्यसागर पार हो कर अफ्रीकाके निपसोराखमें जा कर पैदल चिकाना आलेखी बन्दर आते थे। पीछे यहाँमें वे लोग युफ्रेटिस तीर यहाँ बीरनगर आ कर पण्ड्य बचेते थे। यहाँ लोकाके सद्गारे तिमिस नदीके किनारेके बगदाद नगरमें से आते थे। बगदादमें पुनः नावमें आद कर वह सब द्रव्य तिमिस द्वारा बसरा नगरमें एवं पारस्पोपसागररूप इम्मु अ होयमें आते थे। इम्मु (Ormus) उस समय दक्षिण-पश्चिमा का सर्वप्रधान बाण्ड्य-बन्दर था। यहाँ पाश्चात्य बणिक गण सदैवमात मकम्म, सूती कपड़ा और अण्डरपर द्रव्यके बड़े पूर्वेदेशमात गद्य मसाला, औषध और बहुमूल्य प्रकार आदि से ज्ञाया करते थे।

बिनिसवासी बणिकोंको प्राच्यबाण्ड्यमें पिच्छस्य अर्धमात्रा होती देख यूरोपकी वृत्तों जाति भी ईर्षान्वित हो उठी तथा इसी तरह पुर्तगीज लोग भारतीय बाण्ड्यका अग्रगामी होनेके लिये बहुत बेटाके बाद १५ वीं शताब्दी शीर्षमें अन्तर्गत अन्तरीय घेर कर दक्षिण भारतके कालिङ्ग बन्दरमें आ गये। इस पक्षसे पाश्चात्य बणिकोंका प्रायः चार सक्ती तक भारतके साथ बाण्ड्य करके अन्तर्गत राजा सखीमान और टापर पति हिरामके प्रवर्तित साखसागर पथका अनुसरण करना पड़ा। इस

पथसे अन्तर्गत लोकीक बाद भारत और यूरोपके बाण्ड्यकी धीरे धीरे वृद्धि होने लगी है।

पुर्तगीजोंने इसमात्रा अन्तरीय भूम कर भारतमें आने के समय अफ्रीकाके पूर्व उपकूल पर समुद्र राग्य और नगर देख कर उन सब स्थानोंमें बाण्ड्यकार्य उपनिवेश स्थापन किये। उस समयसे बहुत पहलेसे यहाँ पश्चिम भारतमें सिन्धुपदेशीय और कच्छवासी हिन्दू तथा अरबी और फारसी उपनिवेश स्थापन कर बाण्ड्य कार्यकी देखभाल करते थे।

पुर्तगीज द्वारा अफ्रीकाके दक्षिण समुद्र हो कर भारत जानेका पथ खुल जानेसे। बिनिस और कैनोयावासी बणिकोंके सिर पर वज्राघात हुआ; कारण अन्तर्गतसे अन्तर्गत पथमें बिभिन्न देश हो कर जानेसे बहुत खर्च पड़ता था, इस लिये इससे पण्ड्यकार्य मूल्य मो बहुत अधिक लगता था। धीरे धीरे पुर्तगीज लोग पारभात्य बाण्ड्यके प्रधान परिपालक हो गये। इस पर वैदेशिकके प्रति विद्वेष प्रकृत तथा समुद्रपथ पर अन्तर्गत एकान्तियत जमानेकी इच्छाकर पुर्तगीज यहाँके हिन्दू और अरब बणिकों पर अत्याचार करने लगे।

आपसके द्रव्य और प्रतियोगितासे शत्रुता दिन पर दिन बढ़ती ही गई। पुर्तगीज तिमिरल छोड़ कर लोरो डकैती करने लगे। वे लोग समुद्रपथसे वृत्तों वृत्तों बणिकोंका सर्वैक लूटने लगे। सभी सराङ्कित हो गये। अन्तर्गत प्राय तथा सम्पत्ति जानेके मयसे अरबी और भारतीय बणिक वैदेशिक बाण्ड्य-यात्राकी खलाङ्कित से अपने अपने स्थान पर लौट जानेकी बाध्य हुए। साथ ही साथ भारतीय बाण्ड्य-यात्रा खर्च हो कर पारभात्य सब अन्तर्गत हो गया।

यूरोपीय बणिक इस प्रकार अफ्रीका उपकूलमें बाण्ड्य करनेके लिये आ कर उस देशके बाण्ड्यवासियोंकी शक्ति और सुख बढ़ानेमें जिस तरह परम्परा हो अपनी अर्ध पिपासा शक्ति करनेकी अन्तर्गत हुए थे, उसी तरह वे लोग अन्तर्गतको कोषान्तरमें पड़ कर अपने समस्त सम्पत्ति लूटते हुए। उनके प्रतियोगी अन्तर्गत, फ्रांसोसी, जर्मन और डेनमार्क बणिकोंकी प्रतिद्वन्द्वितासे अन्तर्गत यह अन्तर्गत बाण्ड्य प्रतियोगि अन्तर्गत नष्ट हो गई और

• इगमैयरेके महाकवि रोषनीयके Merchant of Venice प्रथम आलेखीबन्दरकी उपदिकी कथा एवं अन्तर्गत किन्तुके "Paradise lost" अन्तर्गत ईर्ष और भारतके अन्तर्गत उल्लेख है।



पञ्जाबसे काश्मीर हो कर पारकम्ब कासमर और कोनाधिकन मूयान राजधर्म देशीय बणिक् विस्तृत बाणिज्य करते हैं। ये लोग मसूतसर और आनन्दपुरसे पणवद्रथ संधार करके उत्तर-पश्चिमामिसुख हिमालय पर्वत छांब कर तथा काङ्गड़ा और पालमपुर हो कर लेह प्रदेशमें पहुँचते हैं। यहाँ पणवद्रथ छात्रिनें पहाड़ों बकरा और मोर गायके भन्नावा और कोई पान-वाहन नहीं है। मजूरैज सरकार इन पयसे राजकार्यको परिवालनाको सुविधाके लिये लखरसे काम छेती है। १८६७ ई०में लेह नगरमें एक म प्रेज राजकर्मचारी नियुक्त हुआ। उसने बाणिज्यकी वस्तिके लिये उलो माल पमानपुरमें एक मैना सपाया। यह मैना बचनक जगता है, जिसमें पारकम्बानो सैकड़ों बणिक् भाते हैं। साधारणता दक्षिण अफगानिस्तानकी पाबा जाति गुहेरी स कटके पोबिन्दा खोग, बुर्किस्तानकी पराखा जाति तथा पारकम्बके करियाकास गाय बड़ इरसाइसे वहाँ बाणिज्य चलाते हैं। उनके मुकने हर साल नये नये पर्यटनक विषय, विभिन्न जाति और नगर तथा रास्तेके नामा बडेछोको कथा सुनो जाती है। अफगानिस्तानके प्रधान बाणिज्यकेन्द्र काबुल, कम्ब हार और हिराद नगर हैं। इन तीन स्थानोंसे यूरोप फारम और बुर्किस्तानक साध भारतका बाणिज्य चलता है। बोकारा और जोरानका देश, किर्मात और कोकम्बका पश्चिम प्रधानता उक्त तीन स्थानोंमें जाता है। यूरोपाय बनिधे अपने अपने देशोंका वस्त्र तथा भारतीय बनिधे मोर और मसाला से कर वहाँ आपसमें अद्वक बद्रक छेरे हैं। मार्बाइहा समतल प्रान्तर तथा उजबक सामन्त राज्योंको मतिकम कर बणिक् दूक उत्तरपश्चिमामिसुख यामियाम्, रैसमाबायें और कुम्बुज जातिक अधि हुन प्रदेशोंमें जा कर यूरोपोय बणिक् दूक बद्रकसानको बुनो और कोकबा उपत्यकाका वैतुर्य (Lapi lastuli) नामक मूल्यवान् प्रस्तरका संप्रद करनेमें लग जाता है। पहाड़ें बड़ अक्सात, जाकसाठेंस, मामु इरिया और सैर-इरिया नामक चार नदियोंके निकटवर्ती समतल मू मायमें जाता है। बोकारा राजधानीसे वास्फ और समर कम्बमें बाणिज्य चलता है।

सोमान्तबनीं नगर हो कर बर्षे पथ पर गुरहीकी रास्ते दूत राज्यमें भाया करते हैं। कोइ कोई दूक यहाँसे पारकम्ब हो कर पश्चिम चीनमें, कोई मलेव होते हुए फारस तथा कोई काबुल और पेशावर पथस भारत भाया करते हैं।

काबुलके पश्चिम बोकाराका पथ—यह पथ यामियाम्, शोधान, बोमारो, हिर्बाक्, इतराक, सुमतान, कुन्म, शानस, किर्बिफ फार्ब और कापें हो कर चला गया है। बोकारा का विस्तीर्ण ज्ञानिज्यका भाग छेमेके लिये समरकम्ब, कोकम्ब और उरसकम्बका बणिक्दूक हमेशा वहाँ जाता आता है तथा काबुलसे बड़ फिर यह सब पथ छे कर पेशावर, कोहाद, डेरान्साइमर्न और मजूर मिलेमें जाता है। कैबर, तातार भावधाना और गण्डास गिरिपथ हो कर पश्चिमदेशकी सब दिशाओंस बणिक् पेशावरमें तथा कोहादसे धुक और कूरम नशको उपत्यका छे कर दूसरे रास्तेसे पणवद्रथ छे जाते हैं। मोमाम पहाड़को रास्तेसे डेरान्साइमर्न हो कर जिविस्तानमें पहुँचते हैं। इस प्रकार कुलु हो कर कोकम्बमें मसूतसर हा कर पारकम्बमें तथा पेशावर और हजारा हो कर बजौरमें पणवद्रथका कारवार हुआ करता है।

हिन्दुस्तान तिब्बत नामक मूयान राजधर्म ज्ञानक मुख्य रास्तेसे वहाँका बाणिज्य चलता है। पञ्जुङ्ग नामक स्थानमें शतदूतनरी इस पथको पार कर चली गई है। तिब्बतके अन्तर्गत गारतोकनगरमें बर्षमें दो बार बड़े बड़े मेले लगते हैं। इस मेलेमें मन्त्रा, निपाक काश्मीर और हिन्दुस्तानके बहुतेरे बनिधे पणवद्रथको खरोत्र विद्याक लिये जाते हैं। इनके मलाका चटबाकराज्यके अन्तर्गत मोळनपाद, माना और मोतिसंस्ट तथा कुमायू के अन्तर्गत बवान, धर्म और ओडर गिरिसकट हो कर घोड़ा बहुत बाणिज्य चलता है।

कुमायू, विविमित, पीरो, मङ्गोव, गोडा, वन्तो और गोरखपुरसे बणिक् निपाकराज्यमें जा कर पणवद्रथ चला करते हैं। काठमाण्डू राजधानीसे दो पहाड़ों रास्ते हिमालय पार कर ब्रह्मपुत्र (सप्तस्यू नदी) की उपत्यकामुनि तक पहुँच गये हैं। इन पथोंसे मा निपाक





भागवपुर जिलेमें उस समय चावल एक रुपयेका ३६० सैर बिकता था। १२०० बोधे जमीनमें कपास बोई जाती थी। तबसे बुननेके लिये १२८५ बीर सुती कपड़ा बुननेके लिये ७२७१ कर्से चलते थे। गोरखपुरमें १७५६०० बीरसे धारका कच्चा कट दिन बिताती थी। वहाँ १११४ कर्से चलते थे। सालमें २०० से ४०० तक नाये बर्बाई जाती थीं। सिबा इसके वहाँ तमक बीर खीनीके फिलने ही कारकाये थे। विनाशपुरमें ३३००० बोधेमें पट्टया २४००में कपास, २४०००में ऊप, १५००० बोधेमें मोल, बीर १५०० बोधेमें मुम्बाकू बोई जाती थी। इस जिलेमें १३ छाकसे अधिक नाये बीर वेस थे। ऊके धारनेकी विषयाये और गुरखणोंकी औरते सुता कात कर साल भरके कर्षोंकी छोड़ कर ११५०००० क्रा उपार्जन करते थे। ५०० सी पर ११म व्यवसायी बर्षमें १२००००) कपा करने थे। कपड़ा बुननेवाले सालमें १३०००००) रुपयेका माम तैयार करते थे। मालवहकी मुसलमानिनोंमें इस्तकारी का विशेष प्रचलन था। सुत और कपड़ोंमें नामा हरहकी र गाई करके मो बहुतेरे अर्क जोजिका निर्बाह करते थे। पुर्जिया जिलेमें खिया प्रतिबर्ष ३०००००) रुपयेकी कपास क्रीद कर जो सुत कातती थी यह बाजारमें १३०००००) रुपयेकी बिकता था। १५०० कर्षोंमें ५३०००) रुपयेका कपड़ा तैयार होता था। इसमें सिन्धो प्रायः डेढ़ लाख कपास लफा उठाते थे। निवा इसके १०००० कर्षोंमें मोटा कपड़ा बुन कर से ३२४०००) रुपयेका लफा करते थे। सखरखी, पीठा आदिके मो व्यवसायकी व्यवस्था बहुत अच्छी थी।

इपारा यह उन्नत व्यवसाय किस तरह धीरे धीरे विलुप्त हुआ था यह निम्नलिखित राजनिम्नके इतिहासकी सामोबना करनेसे साफ होर पर मात्स्य हो जायेगा।

ममवारसी केडिको नामकी छोटकी पहले बिजायनमें बहुत एतनी होती थी। सन् १६६६ ई०में इंग्लैण्डमें कपड़ा तय्यार करनेकी पहला कारकाया जोला गया। सन् १७०० ई०में इस गिल्डकी उन्नतिके लिये भारत वर्षीय केमिका छोटकी भामवनी बन्ध कर दी गई। वहाँकी पायसीयामेवहने एक कानून बना भारतीय छोड पर प्रति वर्गीय पर अन्त्याज डेढ़ भागा कर लगा दिया। इसके साथ ही मन्दाक लिये मो भामवनी पर कर बांधा गया था। दो वषके बाद विजायती मुजाहोंके कहने सुनने पर वहाँकी सरकारने कडिकोंका कर सुता बढ़ा दिया। सन् १७२० ई०में विजायतमें केडिकोंकी भामवनी कर्तई बन्ध कर दी गई और बाजारमें इसका सेवा जाना बन्ध कर दिया गया। यह कानून जारी किया गया, कि जो भारतकी कडिको बेबेगा, उस पर दो सी रुपये चुर्माना होगा और जो इसका व्यवहार करेगा, उस पर पचास रुपये चुर्माना होगा।

Francis Carnac Brown had been born of English parents in India and like his father had considerable experience of the cotton industry in India. He produced an Indian charka or spinning wheel before the Select Committee and explained that there was an oppressive Mpturfa tax which was levied on every charka on every house, and upon every implement used by artisans. The tax prevented the introduction of sawgins in India — India in Victorian Age, P 185

उप समके विद्युत्की सुताये कपड़ेका माड बुनना नहीं चलते थे। वे इस विधाके मात्सीय विशेषज्ञ बन्धोच मुजाहोंके हीन थे।

• Useful Arts and Manufactures of Great Britain p 369

• कुछकोके सुकरी सुन बाण है, कि इस देशमें विजायती सुता व्यवसन करनेके लिये कम्पनीने लोकोका सुत कालेवाली औरतेके कर्षे सुकरी दिये थे। एपान्शिओने कर्षों पर सुकरी कर लगा दिया गया था। मालमें कम्पनीका व्यवसाय था रहा है यह सुन कर बीरते प्राधान्यमें कर्षों हुआ रहती थी। यह व्यवसाय यदि व्यव न हो वे न हो, किन्तु सुकरी कर ल्यायित करनेके लो एन्डिस्तमें बहुतेरे प्रमाय मिलते हैं क्या —

इसमें तरह अन्यान्य मालों पर भी कर लगाया गया था। नीचेकी फिहरिस्त देख कर आपकी आँखें खुल सकती हैं।

घृतकुमारी (धीम्धार) सैकडे	७०)	ने	२८०)
हींग	२३३)	"	६२२
पल्लव	१५०)	"	२६६)
काफी	१०५)	"	२७३)
मिर्च काली	२६६)	"	४००)
चीनी	६४)	"	२६३)
चाय	६)	"	१००)
कश्मल	८४॥८)		
चटई	८४॥८)		
मन्सलिन	३०॥॥)		
केलिका	८५)		
कपाम	प्रतिमन		१५)
सूती कपडा	सैकडे		८१)
लाह	"		८१)
रेगम	"		२॥॥ ४) सेर

इसके बाद रेगमी वस्तुकी आमदनी लण्डनमें कतई बन्द कर दी गई। यदि कोई वह आमदनी करता था, तब अफसर उस मालको बाजारमें आने नहीं देने थे। तुरन्त ही वह माल जहाज पर चढ़ा कर भारत लौटा दिया जाता था।

इस कम्पनीकी कोठीमें देशी जिल्हों बलपूर्वक पकड़ कर या पेशवा दे कर काम करने पर बाध्य किये जाने लगे। फलतः देशी कारखानोंको नुकसान होने लगा। उस पर देशी माल पर उल्लिखित ऊँचा कर लगानेसे यहाँका जिल्हपशाण्ड्य क्रमशः लुप्त हो गया। इस तरह कोणालने भारतीय जिल्हका चिनाज साधन किया गया और युनोपीय वणिक् राजजतिक प्रभावसे इस देशमें विलायती मालकी आमदनी करने लगे। सन् १७६४ ई०में जिन भारतमें १५६ पीण्डमें अधिक विलायती सूती कपडेकी आमदनी नहीं हुई थी, सन् १८०६ ई०में उसी भारतमें १ लाख १८ हजार चार सौसे अधिक पीण्डका कपडा आया था। उस समयमें क्रमशः भारत-वर्षमें विलायती मालकी आमदनीकी अधिकता होने लगी। किन्तु विलायत और अन्यान्य देशोंमें भारतीय

मालकी रफ्तकी उत्तरोत्तर कम होने लगी। निम्नलिखित फिहरिस्तमें मालूम हो जायेगा, कि देशी जिल्हकी अवनतिवा वोग किस तरह प्रखल हो उठा था।

विलायतमें जानेवाले भारतीय मालका हिमायत इस तरह है—

रुई	१८१८ ई०	१२ १२४ गांठ।
"	१८०८ "	४१२५ "
कपडा	१८०२ "	१४८१७ "
"	१८२६ "	४३३ "
लाह	१८०४ "	१६६०७ मन
"	१८०६ "	८२५१ "

अन्यान्य मालोंकी कमी होने पर भी नील और रेगम की रफ्तकी इस समय बढने लगी थी। उन्हींके साथ-साथ गुकनर शुल्हके लिये विलायतमें रेगमी वस्तुकी प्रतिपत्ति बहुत कम होने लगी।

सन् १८१३ ई० तक एकमात्र इंग्लैण्डकी कम्पनी ही भारतमें माल आमदनी और रफ्तकी किया करती थी। इसी सालमें इंग्लैण्डके सभी वणिक् भारतीय व्यवसायको हाथमें करने पर उद्यत हुए और क्रमसे बाजार पर अधिकार कर बैठे। अंततः भारतका बाजार विलायती मालसे भर उठा। सन् १८२६ ई०में कुल प्रायः ६५॥॥ लाख पाउण्ड या साठे छ. करोड़ रुपयेका माल भारतमें आया था। भारतीय जिल्हविश्रान्तकी नष्ट करनेके लिये कम्पनी पुर्योक्त उपायोंका अवलम्बन कर ही जान्त न हुई, वरं उसने भारतमें देशी जिल्ह पर कडा कर बैठा दिया था। लार्ड वेल्लिकके जमानेमें विलायती कपडा भारतमें सैकडे २॥॥ कर दे कर बेचा जाता था, किन्तु इस भारतमें यदि भारतीय अपने पहननेके लिये कपडे तय्यार करे, तो उन्हें सैकडे १७॥॥ रुपये कर देना पड़ता था। चमडेकी वनी देशी वस्तुओं पर अफसर १५) फी सदी कर वसूल करते थे। देशी चीनी पर विलायती चीनीकी अपेक्षा ५) अधिक कर देना पड़ता था। इस तरह भारतके २३५ तरहकी विभिन्न वस्तुओं पर अन्तर्वाणिज्यविषयक कर (Inland duties) बैठाया गया था। प्रायः ६० वर्ष तक इस तरह ऊँचे दरसे कर प्रदान करने पर बाध्य किये जानेसे

भारतीय शिष्य और व्यवसाय बहुत बढ़े ही दिनोंमें खोपट हो गया ।

इसी तरहके व्यवसायसे धीरे धीरे विदेशोंमें भारतीय प्रायकी रफ्तकी काम होने लगे। अमेरिका, जैनामार्क स्पेन, पुर्लनाम मरोच द्रोप और पशिषाबपटके अन्धकार्य प्रयोगों के साथ भारतीय शिष्य-वाणिज्य-सम्बन्ध प्रायः लुप्तसा हो गया । सन् १८०१ ई०में इस देशसे अमेरिकाको १३६३३ गांठ कपड़ा भेजा गया था । सन् १८२६ ई०में यह रफ्तकी घट कर बहुत ही कम हो गई अर्थात् २५८ गांठ मात्र ज्ञाते छया । सन् १८०० ई० तक हर वर्ष जैन मार्कमें अत्यधिक १४५० गांठ कपड़ा भेजा जाता था । किन्तु सन् १८२० ई०के बाद इस देशमें १५० गांठ कपड़े के अधिक नहीं गया । सन् १८६६ ई०में भारतसे पुर्लनाममें ६०१४ गांठ कपड़ा भेजा था । सन् १८२५ ई०के बाद १००० गांठसे अधिक कपड़ा वहाँ भेजा जा न सका । सन् १८२० ई० तक मरच और फाटन सागरके किनारोंके प्रदेशोंमें ४ हजारसे ६ हजार तक गांठें भारतसे भेजी जाती थी । किन्तु सन् १८५५ ई०के बाद इस प्रांतमें २००० गांठोंसे अधिक कपड़ा भेजा न जा सका । महम्मद रैजा जिके जमानेमें बहूनी लुगाई अपने देशके छः करोड़ आरामियों को कपड़ा पहना कर प्रतिवर्ष १५ करोड़का कपड़ा बिदेशों को भेजते थे । इस समय वर्षमें वे ३ मालका भी मात्र भेज नहीं रहे हैं । ऊपरके विवरणसे महत् हो दृष्टान्तूम किवा जा सकता है, कि अद्यत्ति भारतीय शिष्य वाणिज्यको नष्ट करनेमें कैसी प्रवृत्त चेष्टा कायी ।

१८वें सदीके अन्तमें १७औंशतके अर्थनोतिक अभाव वाणिज्यके प्रसारकी दृष्टिको चेष्टा करी गयी । जब तक भारतका शिष्य-व्यवसाय नष्ट नहीं हो गया तब तक वे इस चेष्टासे बिरल न रहे । सन् १८३६ ई०में भारतके अन्तर्वाणिज्य कर उठा लिया गया । उस समय देशो शिष्य-व्यवसायियोंकी रैह रक्षानुष्ठान हो गई थी । अब फिर इनमें सिर उठाया करनेकी ताकत न रह गयी । इसके बाद रैल निराड कर साथ तथा भाग्य साधारणोंका व्यवसाय भी खोपट किया गया । प्रायोंमें मो बिदेशी मालोंको पट्ट कर ज्ञानेसे देशका वारिष्ठ्य दिनों दिन बढ़ने लगा ।

विक्रयत राजनोतिष्ठ धूमिभि भारतीय वाणिज्यकी कामीकी और खस्य कर कड़ा था कि भारत ही खचरमुमि में अधिकताने शस्य उद्यम होने पर और नाना प्रकारके वाणिज्य द्रव्यको प्राप्ति हो सुविधा होने पर मो यथार्थमें इस समय बरिद्ध भारतका दिनोदिन अर्वाभाय बढ़ रहा है । सौभाग्योंके अधिक बरिद्ध न होने पर भी, उनक वाणिज्य शक्ति-परिचाक्रमका पूर्णता अभाव दिखाई देता है । कमताः मात्र भारतका वाणिज्य इस तरह अयमत हो रहा है । नीचे उनका ही वाक्य उद्धृत कर दिया जाता है—

India is a country of unbounded material resources, but her people are poor Its characteristics are great power of production, but almost total absence of accumulated capital. On this account alone the prosperity of the country essentially depends on its being able to secure a large and favourable outlet for its superfluous produce But her connection with Britain and the financial results of that connection compel her to send to Europe every year about 20 millions' worth of her products without receiving in return any direct commercial equivalent. This excess of exports over imports is, besides the return for the foreign capital which is invested in India including under capital not only money, but all advantages which have to be paid for such as intelligence strength and energy on which good administration and commercial prosperity depend From these causes, the trade of India is in an abnormal position preventing her receiving the full commercial benefit which would spring from her vast material resources

सन् १६०६ ई०के पट्टबिच्छेदके समयसे भारतमें विशेषकर बङ्गालमें स्वदेशीका जोरों पर आन्दोलन आरम्भ हुआ । उस आन्दोलनमें भारतके पुराने शिष्योद्धारको बहुत अधिक चेष्टा की । बङ्गालके इस आन्दोलनसे भारत

वर्षमें वाणिज्य-संसारमें हलचल मच गई। इस आन्दोलनमें भारतके जिल्लोत्थानका बड़ा सहारा मिला। तबसे त्रितीं दिन करघे और चाखेका प्रचार बढ रहा है। इस समय देशके लोग खहरसे प्रेम करने लगे जाने हैं। फलतः खहरका प्रचार तथा देशी चीजोंका वाणिज्य बढने लगा है। कितने ही हिन्दुस्तानी पुंजीपति अस रघु धन लगा कर कलकारखाने खोले हुए हैं। इस समय देशी कद कारखानेमें ताता कपडोंका आगमना अधिक माल तैयार कर रहा है। इसमें लोहेके नमाल तैयार होने हैं। इस तरह भारतीय जिन्य वाणिज्यकी उन्नति पर मे धीरे धीरे शुरुआती हो रही है। अभी तक विदेशी राज्य कायम रहनेसे जिस तरह भारत जिल्लोन्नति कर सकता है। फिर इनने अभी तक जो कुछ उन्नति की है, वह एक परतन्त्र राष्ट्र लिये कम नहीं और यह आशा है, कि समयका परिवर्तन हुआ है। इस नये युगमें नये उत्साहसे लोग देशीकी बनी चीजों पर ममता प्रकट करने तथा उन्हें खपाने लगे हैं; किन्तु तब तक देशी चीजोंका प्रसार और उसकी वृद्धि अभी नहीं बढ सकती जब तक खिलाफतकी तरह भारतमें भी खिलाफती बलोंकी आसन्नता से रोपनेकी चेष्टा भारत-सरकारकी ओरसे न हो।

वाणिज्यद्वय ( सं० पु० ) वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देशके प्रतिनिधि रूपसे दूसरे देशमें रहता और अपने देशके व्यापारिक स्वार्थोंकी रक्षा करता हो, कान्सल।

वाणिज्या ( सं० स्त्री० ) वाणिज्य टाप अमिघानात् स्त्रीत्वं वाणिज्य, तिजारात।

वाणिनी ( सं० स्त्री० ) वण शब्दे णिनि, टोप्। १ नर्त्तकी। २ छेक, सूराव। ३ मत्त स्त्री। ४ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ३, ४, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १५ वीं लघु और बाकी गुरु होते हैं। इसका लक्षण "नजम जरैर्यदा भवति वाणिनी गयुषतीः" ( छन्दोमञ्जरी )

वाणी ( सं० स्त्री० ) वाणि वा टोप्। १ सरस्वती। २ वचन, मुंहसे निकले हुए सार्थक शब्द। ३ वाक्यशक्ति। ४ स्वर। ५ वागीन्द्रिय, जोष, रसना।

वाणीकवि—वाणीकारिकके रचयिता।

वाणीकृत लक्ष्मीधर—एक प्राचीन कवि।

वाणीचि ( सं० स्त्री० ) वाप्रूपा म्नुति, वाक्यरूपा म्नुति। ( श्रृंक् ५।७।१४ )

वाणीताय—जामविजयकाध्यके प्रणेता।

वाणीयन ( सं० लि० ) वाक्य सद्गण।

वाणीवाट ( सं० पु० ) नर्क।

वाणीदिलाम्—१ पद्यावलीभूत एक कवि। २ पराजय-टीकाके रचयिता।

वाणैय ( सं० पु० ) वाणगजसम्बन्धीय अन्न या द्रव्य विशेष।

वाणेश्वर ( सं० पु० ) शिवलिङ्गभेद। वाणेश्वर देवो।

वात ( सं० पु० ) वातोति वा-क्त। १ पञ्चभूतके अन्तर्गत चतुर्थभूत, वायु, हवा। प्यायं—गन्धवद् वायु, पयमान, मथासल, पवन, स्वर्गन, गन्धघात, मरुत्, आशुग, श्वसन, मानरिश्वा, नभस्यन्, माकन, अनिल, समीरण, जगत्प्राण, समीर, मदागति, जीवन, पृषदश्व, तन्म्यो, प्रभञ्जन, प्रधावन अनयस्थान, धूनन, मोहन, स्वग। गुण—जडताहर, लघु, शीतकर, रक्ष, सूक्ष्म, सजानक, मनोक्कर। माधु-र्यान्नमक्षण, साम्रकाल, अपराह काल, प्रत्यूपकाल और अन्नजोषी काल ये सब समय क्रापेत हुआ करते हैं। वायु गन्ध देता।

२ वैद्यके अनुमार शरीरके अन्दरकी घट वायु जिसके कुपित होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते हैं। शरीरमें इसका स्थान पक्षाजय माना गया है। कहते हैं, कि शरीरकी सब धातुओं और मल आदिका परिचालन इसीसे होता है आर श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इन्द्रियोंके कार्योंका भी यही मूल है। वातव्याधि देखो।

वातक ( सं० पु० ) वात एव चञ्जलः इवाथे कन्, यद्वा वात इरोतीति क् अन्धेभ्योऽपीति ड। अशनपर्णी।

वातकण्टक ( सं० पु० ) एक प्रकारका वातरोग। इसमें पाँवकी गाँडोंमें वायुके घुसनेके कारण जोड़ोंमें बड़ी पीड़ा होती है। यह रोग ऊँचे नाचे पैर पडने या अधिक परिश्रम करनेसे होता है। इसमें बार बार रक्तमोक्षण करना आवश्यक है। रेडीका तेल पीने और सूई द्वारा दग्ध करनेसे भी यह रोग प्रशमित होता है।

वातकफहर ( सं० पु० ) वह उबर जो वातश्लेष्मके प्रकोपसे होता है।

वातकर्मन् ( सं० स्त्री० ) वातस्य कर्म । मरुत्क्रिया, वर्धन, पादना ।

वातकमाकल ( सं० पु० ) वायुका हिलास ।

वाताकम् ( सं० लि० ) वातोऽतिशयितोऽस्त्यस्येति वा ।

वायविकताम्ना कुक्ष । प ३।५२२ इति इति कुक्ष ।

वातरोधयुक्त, जिन वातरोग हुआ हो, जो वातरोगही पोहित हो ।

वातकी ( सं० स्त्री० ) शैतानिकावृक्ष, ओल त्रिबुवारका पोषा ।

वातकुण्डलिका ( सं० स्त्री० ) वातेन कुण्डलिका । सूत्राघात रोगमेव, एक प्रकारका मूलरोग । इसमें वायु कुण्डलका

कार हा कट वेदुमं, घूमता रहता है, रोगको पेशाव करनेमें पोहा होतो है और बूद बूद करके पेशाव उतरता है ।

मूलवृच्छका रोग यदि मनुष्य कुपट्ट करके कबा बन्युए जाता है, तो यह उग्रव्रत होता है । मृषागत रेखा ।

वातकुम्भ ( सं० पु० ) वातस्य कुम्भइवा । गजकुम्भका मयीगाम ।

वातकेतु ( सं० पु० ) वातस्य केतुरिच । पूछ, गर्द ।

वातकेलि ( सं० स्त्री० ) वात-सुपे मादे घन, वातेन सुकेन कलियुक्त । १ कसाकाप, सुन्दर मज्जाप । २ विद्गन्धत इत, उपपतिके दाँतोंका इत ।

वातकोपन ( सं० लि० ) वातस्य कोपनः । वातकोपक वायुधर्क, जिसस वायु कुपित होतो है ।

वातकष ( सं० पु० ) वातकिक गोतमें उत्पन्न पुष्य ।  
( प ५।१।११ )

वातस्रोम ( सं० पु० ) वातेन क्षमिता । वायु द्वारा आम्ने कृत ।

वातसुखा ( सं० पु० ) रोगविश्व । पर्याय—वात्वा, पिच्छस-स्फोट, वामा, वातयोगित, वातदुहा ।

वागज्जीकुश ( सं० पु० ) वातव्याधि रोगाधिकारमें एक प्रकारकी रसीपथ ।

वातगवह ( सं० पु० ) वातेन गवहा । वातज गवहवहरीय । इसमें गलेची नसें कासा वा आक और कही हो जाता है और बहुत दिनमें परती है ।

वातगवहा ( सं० स्त्री० ) एक नदीका नाम ।  
( एमर० ७६६५ )

वातगामिन् ( सं० पु० ) वातेन वायु वा सह गच्छतीति गम ( गमि ) पत्ता ।

वातगुग्गुल ( सं० पु० ) १ वातुल, पागल । वातेन जाता गुग्गुल । २ एक प्रकारका गुग्गुलरोग जो वातक मकोपसे होता है । बंधकक अनुसार औषिक मोक्षण करने, कबा अन्न जार्न, पल्लवात्सं छड़ने, मसूमूल रोकनी या जयिक विरेचनादि जेमें तथा उपवास करनेसे यह रोग होता है ।

इसके लक्षण—वातगुग्गुल कम्मे छोटा और कम्मा बढ़ा होता है, जो नाभि, बर्हिस् वा पार्श्वदिमें इधरसे उधर रंगता सा जान पड़ता है । इन रोगमें मस और अपानवायु रुक जातो है जिससे गवहोप और मुखरोप उत्पन्न होता है ।

जिससे यह रोग होता है, उसका शरीर सखिवा या कास है । आता है । कमी कम्मा बढ़ो पीड़ा होता है । यह पीड़ा प्रायः मोक्षण पश्चेक बहू खाकी पेठ होने पर घट जाता है । यह रुहद्रव्य, कपाय, तिक और कट्टरसे युक्त द्रव्यका संवन करनेसे जो साधारणतः परिवर्धित होता है ।

इसको चिकित्सा—वातगुग्गुलमें इतल कामिक जिये परेका तेल या दूधक साय इरोतको पोना अथवा स्निग्ध स्वेदना होगा । कलिकासार २ माथे, कुट २ माथी तथा कतको अटाकी हार ३ माथी इत सबको

रैत्राण तेलक साप पानेसे वातद्वय गुग्गुल शाम हो म्हा मित होता है । इस रोगीको तित्तिर, मोर, मुर्गा, बगुला और बचक बिड़ियाक मासका शोरवा तथा धी और साठो चावलका मात कामिक जिये देना होगा ।

( भाष० ) गुग्गुलरोग देखा ।

वातगोवा ( सं० लि० ) वायु द्वारा रहित ।

वातम ( सं० लि० ) वातं हन्ति इन-इक् । १ वातनाशक, वातरोगमें उपकारक । ( पु० ) २ वातस्वरमें मधुरात्मक छबण द्रव्य । ( सुश्रुत पू० ५१ ७० )

वातमो ( सं० स्त्री० ) १ शालपपर्ण । २ अन्धमन्वा, अंस गर्भ । ३ शिगुडो क्षुप । ( एमर० )

वातवक्र ( सं० स्त्री० ) १ उवोतिपका एक योग । इदत्सं दिवामि किष्वा है, कि आपादो पूर्णिमाक दिन अब सूर्येव अस्त होते हैं, तब आकाशस पूर्वी वायु पूर्वी समुद्रकी तरंगोंको कवा करे घूमता घूमती अन्धसूर्यकी किरणोंक

अभिघात द्वारा बढ़-होता है, उस समय समस्त पृथ्वी हेमन्तिक और वासन्तिक ऋतुओंसे परिपूर्ण होती है। इस दिन भगवान् सूर्यदेवके हृदय जाने पर अंगर मलय-पर्वतके शिखर हो कर अग्निकोणकी वायु चलती है, ता अग्निवृष्टि होता है। इस दिन सूर्यास्त समय नैऋत कोणकी वायु चलनेसे अनावृष्टि होती तथा इसी लिये अकाल पड़ता है। इस समय पश्चिम ओरसे हवा बहनेसे पृथ्वी शस्यजालिनो तथा राजाशयि युद्ध-विग्रह होता है। वायश्च वायु बहनेसे सुवृष्टि और पृथ्वी शस्य जालिनो तथा उत्तर वायु बहनेसे जमीनेमा ही फल हुआ करता है। (बृहत्संहिता २७ अ०)

वातङ्गिनो (सं० पु०) वात्सङ्ग, वैगन।

वातचटक (सं० पु०) तित्तिर, तीतर पक्षी।

वातत्रोविन (सं० त्रि०) वायु द्वारा प्रेरित।

(शृक् १५८,४)

वातज (सं० त्रि०) वातेन जायते जन ड। वातकृत, वायु द्वारा उत्पन्न।

वातजव (सं० पु०) वायुका वेग या गति।

वातजा (सं० स्त्री०) वायुसे उत्पन्ना।

(अथर्व ११२,३)

वातजाम (सं० पु०) एक जाति। (भारत भोग्गपर्व)

वातजित् (सं० त्रि०) वात जायति जि क्किप्, तुगागमः वानघ्न, वातनाशक।

वातजूल (सं० त्रि०) वात्याघिताडित।

वातेजूति (सं० पु०) एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम।

वातज्वर (सं० पु०) वातेन ज्वरः। एक प्रकारका ज्वर। इसके पूर्व रूप और निदानादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—वातजनक क्रियाके द्वारा वायु आमाशयमें जा कर जठराग्नि को बाहर कर देता है, उस समय इसके साथ मिल कर यह ज्वररोग उत्पादन करता है। इस ज्वरके आनेके पहले न्यून जमाई आती है।

इसके लक्षण—वातज्वरमें विषमवेग उत्पन्न होता है अर्थात् कभी कम या कभी अधिक हो जाता है। वात ज्वरमें गला, होंठ और मुँह सूखते हैं, नींद नहीं आती, हिचकी आती है, शरीर रुखा हो जाता है, सिर और देहमें पीडा होती है, मुँह फीका

हो जाता है और रुद्ध हो जाता है। यह ज्वर कभी कम और कभी बढ़ जाता है। सुश्रुतने कितने ही लक्षण निर्दश क्रिये हैं। चरकसंहितामें इसके और भी लक्षण कहे गये हैं जैसे,—वातज्वरमें तरह तरहकी वातवेदना, अतिट्टा, जावमें दात गड़नेकी मो वेदना, कान फड़फड़ाना, मुँहमें कपाय रस जान पडना, शरीरकी अवसरता, दाढ़ी हिलना, सूखा खाँसी, ठन्ढी, रोमाञ्च होना, दाँत सिडासिड करना, भ्रम, भ्रम, मूत्र और दोनों आँखोंका लाल हो जाना, प्यास लगना, प्रलाप और शरीर रूखापन आदि।

विषमवेग आदि असमभाव जानना होगा। चाम्भरने कहा है, कि इस ज्वरमें रोमाञ्च होता, शरीर कंपता, दात सिर सिडता, हिचकी आती, और धूपका इच्छा होता है। दोष आमाशयमें घुस कर अग्निमान्द्य करता है, पीछे खंदसह और रसवह प्रणाली आच्छादन करके ज्वर लाता है, इसलिये वातज्वर होनेसे उपवास करना नितास्त जरूरी है। वातज्वरमें ७ दिनों तक उपवास करना चाहिये। (भावप्रकाश) ज्वर शब्दमें विशेष विवरण देखा। वातएड (सं० पु०) एक गोतृकार ऋषिका नाम। इनक गोतृवाले वातएड कहलाते हैं। (पा ४,११,१२)

वातएड (सं० पु०) वातएड ऋषिके गोतृमें उत्पन्न पुरुष। (पा ४,११,०८)

वातपथायनो (सं० स्त्री०) वातएड ऋषिके गोतृमें उत्पन्न स्त्री।

वाततूल (सं० स्त्री०) वातेन उड्डायमान तुलं। महीन तागा जो कभी कभी आकाशमें इधर उधर उड़ता दिखार् पड़ता है। यह एक प्रकारकी बहुत छोटी मकाड़ियाका जाल होता है जिसके सहारे वह एक पेड़से दूसरे पेड़ पर जाया करती है। इसीको बुढ़ियाका तागा कहते हैं। इसका पर्याय—बृद्धसूत्रक, इन्द्रतूल, प्रावाहास, वंश कफ, मरुध्वज। - (शरावली)

वातत्राण (सं० स्त्री०) वह पदार्थ जो वायु रोक सके।

वातत्विप् (सं० त्रि०) वायु द्वारा दौतियुक्त।

(शृक् ५,१५,३)

वातध्वज (सं० पु०) वातो वायुध्वजो यस्य। मेघ।

वातनाडी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रोग, एक प्रकारका

नासूर त्रिममें वायुके प्रकोपसे दंतकी उड़ने नासूर हो जाता है। इसमेंसे एक सहित योब निकला करता है और शुभमेही मो पोडा होती है।

वातनामन ( सं० पु० ) वायु । ( लघपयः १५५५१ )

वातनाशन ( सं० लि० ) वात नाशयतीति नामिन्-स्यु ।

वातनाशक, वातघ्न, त्रिममें वात दूर हो ।

वातपच ( सं० लि० ) वायु द्वारा मन्दाहित ।

वातपद ( सं० पु० ) मरुत् पद, ध्वजा, पताका ।

वातपति ( सं० पु० ) शलाघ्नित राजाका पुत्र । ( हरिवंश )

वातपत्नी ( सं० स्त्री० ) दिक्, दिशा । ( अथ २१०५ )

वातपर्वण्य ( सं० पु० ) एक बहुत रोग । इसमें कमी मीमि

और कमी भाले घसनेसे बड़ी पोडा होती है ।

वातपालित ( सं० पु० ) गोपालित । ( बय्य १५४ उन्मत्त )

वातपाण्डु ( सं० पु० ) वातेन पाण्डुः । यह पाण्डुरोग

ओ वानके प्रकापमे होता है ।

वातपित्त ( सं० स्त्री० ) वायु और पित्त ।

वातपित्त ( सं० लि० ) वायु और पित्त विकार ।

वातपित्तघ्न ( सं० लि० ) वातपित्त हन्ति ह्ये क । वात

पित्तनाशक । ( सुश्रुत सूत्रपा० ४१ न० )

वातपित्तघ्न ( सं० लि० ) वातपित्त घ्नत इ । वायु और

पित्तसे उत्पन्न । वायु और पित्त क्षुपित हो कर ओ

सब राम उत्पन्न होन है बहो वातपित्तघ्न है ।

वातपित्तघ्न शूत्र ( सं० स्त्री० ) वातपित्तघ्न शूत्र । यह शूत्र

रोग वा हस्त ओ वातपित्तके हानिसे होता है ।

शूत्रगत इत्य् वेत्ते ।

वातपित्तश्चर ( सं० पु० ) वातपित्तघ्न उचरः । यह चर

ओ वातपित्तसे होता है, जहां वायु और पित्त क्षुपित हो

कर चर लगता है । इसका पूर्वकप—वायु और पित्त-

चर ५ आहार, बिहार और सवन द्वारा बर्जित वायु

पित्तक साथ आमाशयमें जा कर कोटकी अग्निकी

बाहर निकाल देतो तथा उसको क्षुपित करके चर उत्पा

दन किया करती है । वातपित्तश्चर होनेके पहले पात

श्चर और पित्तश्चरक सब पूर्वकप प्रकाशित होत हैं ।

कृत्तव्य—इस चरमें विपासा मूच्छा, झम, दाह, अनिद्रा

शिथिलताका कष्ट और सुबशीय, बमि, रोमाञ्च, अरुचि,

अप्यकार्य प्रविष्टकी तरह दोष प्रस्थिमें वेदना तथा

दुर्मम्य । वातपित्तश्चरक रोगाओ पाँचवे दिवस भीषण

देनो चाहिये । ( वातप्रकाश चररोगा प० ) चर शब्द देतो ।

वातपुत्र ( सं० पु० ) १ महापूर्व, बिट । माम । ३ अनुमात्र ।

वातपू ( सं० लि० ) वायु द्वारा पवित्रीकृत ।

( मय्य १८५३० )

वातपोष ( सं० पु० ) वात वातरोगं पुष्पति हिनस्ताति

सुष मण् । पकाश ।

वातप्रकृति ( सं० लि० ) वातप्रधाना प्रकृतिर्वैत्य । वायु

प्रकृति, जिसकी प्रकृति वायु प्रधान हो । मानवकी सात

प्रकारकी प्रकृतियाँ हैं । जिसकी प्रकृति वायुप्रधान है,

उसको वातप्रकृति कहते हैं । इसक व्यत्यय इन तरह हैं ओ

मनुष्य आमरणशील, अन्धकशक्तिविशिष्ट, हस्त और पदच्छु-

द्रिन्, कृश, अस्वस्थ वाक्पच्ययो, कृत्त एव स्वप्नावस्थामें

आकाशगामी होता है, यहाँ वातप्रकृति कष्टदाता है ।

सर्वभ्यापी, आगुफारी बलवान्, अत्यकोपन स्वातन्त्र्य

तथा बहु रोगप्रद बहु सब गुण वायुमें सर्वथा विद्यमान

है, इसलिये वायुमें समी होय अपेक्षाकृत प्रबल है ।

वातप्रकृति मनुष्य प्रायः दो दोषो कुमा करता है ।

उसके बाल और हाथ पैर फटे हुए होते हैं और वह कुछ

पीडा होता है । वह ठण्डक पसन् नहीं करता तथा वह

बज्रस, अय्यमेघाघो, सदा सन्निर्गमिचिच, अन्धधनयुक्त,

अधः कप, अरुणायु, वाक्प शीघ्र और गतुगद स्वर्गविशिष्ट

होता है । यह अतिगप चिन्तासो सङ्गोप, हास्य, मृगया

तथा पापकर्मरत रहता है । वातप्रकृति मनुष्यको अम्ल

और मज्जणरस तथा तण्य द्रव्य बढ़ा प्रसन्ध होता है । वह

अन्धा और पुत्रला पतका होता है । इसक अक्षमक समप

पैरका मद्, मद्, शब्द होता है, उमका किसी विषयमें डुकुना

नहो रहता तथा वह अतिशयिष्य हाता है । वह मूर्खक

प्रति सङ्कल्पबहार करता जिनवोंका मिय होता तथा इन्हें

बहुत सन्तान होती हैं । उसकी अग्नि तत्र और कुछ

पीमे, योम टैकी तथा मूलकको मीमो मी होती है ।

वह स्वप्नमें पहाड़ और पेट पर कदता या कदामें

गमन करता है, सामिक पक्क उसकी भाले धाड़ा खुदो

रहती है ।

वातप्रकृति व्यक्ति अयशस्वी, दुर्मरक घनके मिये

वातर, शीघ्र श्रेयो और चोर होता है । कुशा, गादक,



ऊँट, गोधनी, मूसी, कौआ तथा पेनक (उल्ल) ये सब वातप्रकृति हैं। (भावप्र०) जो मनुष्य उक्त लक्षणोंसे युक्त होता है, वही वातप्रकृति कहलाता है।

वातप्रकोप (सं० पु०) वायुका आघिषय, वायुका बढ़ जाना। इसमें अनेक प्रकारके रोग होते हैं।

वातप्रवल (सं० त्रि०) वायुप्रधान, जिसमें वायु अधिक हो।

वातप्रमी (सं० पु० स्त्री०) वातं प्रमिमीते वाताभिमुखं गच्छतीति वात-प्र-मा माने (वातप्रमीः। उण् ४२) इति ई प्रत्ययेन साधुः। १ वातमृग, हिरण। २ नकुल, नेवल। ३ अश्व, घोडा। (त्रि०) ४ वायुवत् वेगगामी, हवाके समान चलनेवाला। (ऋक् ४।१५।७)

वातप्रशमनी (सं० स्त्री०) वातस्य प्रशमनी। आरुक्, आलू-बुखारा।

वातफुल (सं० पु०) वायु द्वारा प्रफुल्ल या स्फोत।

वायुफुल्लान्त्र (सं० स्त्री०) वातेन फुल्लं विकसितं यदन्त्रं तत्। १ फुल्लुकुस। २ वातरोग। ३ उदराग्मान। (भूरिप्र०)

वातवलास (सं० पु०) एक प्रकारका वातज्वर।

वातवहुल (सं० त्रि०) १ धान्यादि। २ जहा हवा ग्युब चलती हो।

वातव्रजस् (सं० लि०) वातव्रजाः। वायुके समान जल्द जानेवाला। (अथर्व १।१२।१)

वातमज (सं० पु०) वातमभिमुखीकृत्य अजति गच्छतीति वातमज्ज (वातशुनीति कशद्वेजवेत्तुदजहातीना उपसल्यमान। पा ३।२।२८) इत्यस्य वात्तिकोक्त्या यश्, (अर्द्धिप्र-जन्तस्य मुम्। पा ३।३।६७) इति मुम्। १ वातमृग, जिघरकी हवा हो उधर मुझ करके दौडनेवाला मृग।

वातमण्डली (सं० स्त्री०) वातस्य मण्डली। वात्या, बबडर।

वातमृग (सं० पु०) वाताभिमुखगामी मृगः। वात-प्रमी, जिघरकी हवा हो उधर मुझ करके दौडनेवाला मृग।

वातयन्त्रविमानक (सं० स्त्री०) वायु द्वारा चालित यन्त्र-विशेष। (Airwheel)

वातरहस् (सं० त्रि०) वात इव रहो यस्य। वायुके समान चलनेवाला।

वातर (सं० लि०) १ वायुयुक्त, हवादार। (पु०) २ ऋटिका।

वातरक्त (सं० स्त्री०) वातदुषितं रक्तं यत्। रोगविशेष। इस रोगके निदान, लक्षण और चिकित्सादिका विषय वैद्यकशास्त्रमें इस तरह लिखा है,—अतिरिक्त लक्षण, अम्ल, फट्ट, क्षार, स्निग्ध, उष्ण, अपक वा दुज्जर द्रव्य भोजन; जलचर वा अनूपचर जोवका सूखा या सडा मास भोजन; किसी जीवका मास अधिक परिमाणमें भोजन; कुलथा, उडद, मूल, संम, इक्षुरस, दहीका पानी, मद्य आदि द्रव्य-भोजन, संयोगविरुद्ध द्रव्य-भोजन, पाया हुआ भोजन पाक न होने पर फिर खा लेना, क्रोध, दिनमें सोना और रातमें जागना—इन सब कारकोंसे तथा हाथी, घोड़ या ऊँट आदि पर चढ़ कर बहुत घूमना आदि कारणोंसे रक्त विदग्ध हो कर दूषित हो जाता है। पोछे जब यह रक्त कुपित वायुके साथ मिल जाता है तब वातरक्त रोग पैदा होता है। यह रोग पहले पैरके तल्ले या हथेलीसे शुरू हो कर धीरे धीरे समूचे शरीरमें फैल जाता है।

वातरक्तके लक्षण—वातरक्तरोग होनेके पहले अत्यन्त पसीना निकलना या पसीनेका बिलकूल रुक जाना, कहीं कहीं काला दाग और स्पर्शगत्तिका लोप, किमी कारण धन किसी स्थान पर श्वेत होनेसे उसमें अत्यन्त वेदना, सन्धिस्थानोंको गिथिलता, आलस्य, अवमन्नता, कहीं कहीं फुंसियोंका होना तथा जाघ, छाती, कमर, कंधा, हाथ, पैर और सन्धियोंकी सूई गड़ने से वेदना, फट जानेको-सी यातना, भारधोत्र स्पर्शगत्तिकी अल्पता, कण्ठ तथा सन्धिस्थानोंमें बार-बार घेदनाकी उत्पत्ति आदि लक्षण पहले दिखाई पडते हैं।

वातरक्तके दूसरे दूसरे लक्षण—इस रोगमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे दोनों पाँवोंमें अत्यन्त शूल, स्पन्दन तथा सूई चुसानेकी-सी वेदना होती है। रक्ष अथच काले रंगकी सूजन पैदा होती जो सर्वदा घटनी बढ़ती रहती है। उंगलियोंकी सन्धियोंकी धमनियां सिकुड़ जाती हैं। शरीरमें कंपकंपी पैदा होती है, स्पर्शगत्तिका हास हो जाता है। पडी वेदना होती है। टाँक पा कर यह रोग और बढ़ जाता है।

रकाघिषय वातरक्त रोगमें ताप्रवर्ण सूजन पैदा होती

हैं उसमें खुजलाहट, झेड़खाप, अतिशय दाह और सूखि-  
लेपबत् वेदना होती है तथा स्निग्ध और उष्णद्रव्या द्वारा  
इस पीड़ाको शांति नहीं होती।

चित्तको अचिक्ताके कारण यह रोग होमेसे दाह मोह,  
पसीना निवृत्तना सूर्क्षा, मलता, और दुष्पा रोगी है।  
सूत्रन ह्रमेसे पातना, सूत्रन कांस और दाहयुक्त, स्फोट  
पाक और उष्णविशिष्ट होती है।

अगर बर्फकी ज्यादातेके कारण यह रोग पैदा हो तो  
शरीर आर्द्रबर्मे द्वारा आर्द्र होनेको तरह मान्य होता  
है। दोनों पांश युक्त, स्पर्शात्मिकको मर्यादा तथा शोथ  
स्पर्शात्, खुजलाहट और घोड़ी घोड़ी वैदना होती रहती  
है। दो अथवा तीन रोगोंको अचिक्ता रहनेसे उनके सब  
मिले हुए अक्षण वैच पड़ते हैं।

रोगों गौर्षिके असावा और अगोंमे मी वातरक्त रोग  
उत्पन्न होता है, किन्तु विर्यैय कर यह पांशमें मी हुआ  
करता है। कमो वमी यह रोग रोगों हाथोंमे मी होता  
है। इस रोगका प्रकोप होने ही प्रतिहार करना जरूरी है।  
श्रीमद्दमका प्रतिविद्यान अगर नहीं किया जाय तो यह  
कुपित पुण्यकारके विषके समान घोर घोर सख्ये शरीरमें  
फैल जाता है।

वातरक्त होनेसे ये सब उपद्रव होने हैं,—मभिद्रा  
अक्षि, आस मांसपक्व, शिरोवेदना, मोह, मलता,  
अथवा दुष्पा उदर, सूर्क्षा, द्विषनी, पञ्चगुना पिसर्प  
मानसक, सूखीवेपबत् वेदना, सप्त ह्रम, अग्निमयोज  
देहान्न स्फोटक दाह, मर्ममह तथा अर्जुदोषवत्।

इस रोगका माध्यासाध्य—वातरक्त रोगी अगर  
उपद्रवके उपद्रवसे आक्रान्त हो किंवा उपद्रव न रहने पर  
तो अगर सिर्फ मोह पैदा हो तो यह वातरक्त रोग  
असाध्य होता है। वातरक्त रोगीके सब उपद्रव न हो  
कर थोड़ा होनेसे वह वायु तथा उपद्रवविहीन वातरक्त  
रोग माध्य है। एषरोगमनुभूत तथा एक वर्षसे कम  
अन्नक छोटे बच्चेको होनेसे साध्य, द्विदोषप्रमित वातरक्त  
वायु एवं शिरोपक्व वातरक्त रोग असाध्य होता है।  
यदि वातरक्तके रोगीके पदोंमे से कर घुटने तकका  
घामड़ा विदीर्ण हो कर मवाद बहता हो एवं उपद्रवको  
पोहासे बल और मांसका दान्न हो जाय तो इस रोगको

साध्य ही समझना चाहिये। इसलिये इस रोगको  
बधित चिकित्सा करना चाहिये।

वातरक्तकी चिकित्सा—वातरक्तके रोगीके दोष  
तथा एकाग्रकी विवेचना करके स्नेह प्रयोग एवं अधिक  
परिमाणसे रक्तमोक्षण करना उचित है। किन्तु जिससे  
इस रोगीको वायुवृद्धि न हो, उस पर विशेष ध्यान देना  
चाहिये। जिस वातरक्त रोगीमें असन अधिक हो तथा क्षत  
स्थानमें सूई सुमानीकी वैदना-सी माहूम पड़े, तो बोक  
द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये। थोड़ी वैदना खुजलाहट  
और कम्पयुक्त वातरक्तमें तुम्मी छगा कर रक्तमोक्षण कराने  
की विधि है। अगर यह रोग एक स्थानसे दूसरे दूसरे  
स्थानोंमें फैल जाय, तब शिराविद्य तथा क्षतस्थानको  
अच्छी तरह हाथसे निबोड कर रक्त मोक्षण करना  
होता है।

इस रोगमें शरीर यदि सुबल हो जाय तो रक्तमोक्षण  
कराना ठीक नहीं। आताधिक्य रक्तपित्तमें रक्तमोक्षण  
निषेध है, कारण इस अवस्थामें रक्तमोक्षण करनेसे वायु  
की वृद्धि होती है, जिससे सूत्रनको अचिक्ता शरीरकी  
स्तम्भता कम्य, वायुसे पैदा होनेवाली निरामग अघाधि  
जुर्झंशता एवं अम्याय बातरोग उत्पन्न हो जाता है।  
यदि रक्तमोक्षणक समय अच्छी तरह रक्तप्राय न हो कर  
कुछ शेष रह जाय तो अन्न प्रभृति पातरोग उत्पन्न होनेको  
सम्भावना रहती है यहाँ तक कि इससे मृत्यु भी हो  
जाती है। अतएव शरीरके इस वृषित रक्त यथोपयुक्त  
प्रमाणानुसार बहा देना उचित है। इस रोगके रोगीको  
विरिजन और स्नेह प्रयोग करके स्नेहस युक्त वा दक्ष विरे-  
क द्रव्य द्वारा बारंबार वस्ति (विचकारी) प्रयोग करे।  
वस्तिद्रव्यको तरह इसको कोई दूसरी उष्ण चिकित्सा  
नहीं है। उष्ण अर्थात् धर्म और मांसाश्रित वातरक्त रोगमें  
प्रसेपन, अम्यङ्ग परिपेक और उष्णद्रव्य पुनटिस द्वारा  
एवं गर्भोर अर्थात् घाल्वाश्रित वातरक्त रोगमें विरेजन,  
स्थापन तथा स्नेह पान द्वारा चिकित्सा होता है।

पाताधिक्य वातरोगमें घृत तैल, सर्षी और पान  
द्वारा, मर्दन वा पिचकरोके प्रयोग द्रष्टव्य एवं उष्ण प्रसेप  
द्वारा चिकित्सा करनेको विधि है। गेहू का आटा,  
बकरोका घूष और घृत, इन तीनोंको अच्छी तरह मिला  
कर वा घूषके साथ तीसी पीस कर अथवा पैदोके बाम

धरुने द्रवमें पीस कर प्रलेप करनेसे वातरक्त आराम होता है। अथवा भूसी निकाला हुआ तिल द्रवमें पीस कर प्रलेप करनेसे बहुत लाभ पहुँचना है। जनसुन्दी, मोथा, मुलैठी, जोजवन्ड, पियालफूल, बैंगर, घृत, भूमिकुण्डमाण्ड और मिसरी, इन सबोंको एक साथ पीस कर लगानेसे भी यह रोग आराम होता है। रास्ता, गुलंच, मुलैठी, बीजवन्ड, गोयबली, जोवक, ऋषभक, दूध और घृत, ये सब द्रव्य एक साथ पीस कर उक्त प्रकारके मधुके साथ मिला कर प्रलेप देनेसे रोग शीघ्र अच्छा होता है।

पञ्चतिलादि घृत घान तथा अत्यन्त विरेचन द्वारा वातरक्त प्रशमित होता है। सूदु द्रव्य द्वारा परिपेक, लहसुन एवं उष्ण द्रव्यके परिपेकसे कफाधिक्य वातरोगमें बहुत लाभ पहुँचना है। इस रोगमें तैल, गोमूत्र, जगव और शुक्त द्वारा परिपेचन करनेसे उपकार होता है। आल मरनों पीस कर प्रलेप करनेसे वातरक्त की वेदना कम होती है। नहिजन और वरुणपृक्षकी छाल छालमें पीस कर प्रलेप देनेसे भी वेदना कम हो जाती है। अमगंध और तिलचूर्ण एवं नीमकी छाल, आकन्द, यशस्वर और तिलचूर्णका प्रलेप देनेसे भी इस रोगमें बड़ा फायदा पहुँचना है।

इनके निवा लाङ्गली, गुडिका, बलाघृत, पिण्डनैल, पादपक घृत, जतावरी घृत, ऋषभ घृत, गुडुचि घृत, महागुडुची घृत, अमृतादिघृत, जन हादि तैल, महापिण्ड तैल, महापट्टमक तैल, खुजाकपकतैल, गुडुच्यादि तैल, अमृताद्वय तैल, मृणालाद्य तैल, घुम्तूगध तैल, नागबला तैल, जोवकाद्यमिश्रक, बलातैल, जतपाक, पुनर्नवागुगुलु, जर्करासम गुगुलु, अमृता गुगुलु, चन्द्रप्रभागुडिका, कैरोरिक गुगुलु और योगसारामुत आदि औषध बड़ी फायदेमंद हैं। इन सब औषधोंको प्रस्तुत प्रणाली उन्हीं द्रव्योंमें देना। मात्रप्रकाशमें वातरक्त रोगाधिारमें भी इनका विशेष विवरण लिखा है।

सैन्टमारम्प्रहमे वातरक्त चिन्दिमाधिकारमें— लाङ्गली, लाङ्गली, वातरक्तान्तक रस, नालसम्प, महातालेश्वर रस और विश्वेश्वर रस नामक औषधोंका विधान है। ये सब औषध रोगमें विशेष उपकारी हैं।

इस रोगमें पथ्यापथ्य—दिनमें पुराने चावलका भात, मूंग या चनेकी डाल, कट्टी तरकारी, परदल, गुल्म, केला, करेली, कद्दीमा आदिकी तरकारी, हिलमोचिनाका नाग, नीमका पत्ता, श्वेत पुनर्नवा और पलता इस रोगमें फायदेमंद हैं। रातमें राठी या पुठा तथा पूर्वोक्त सब तरकारियां तथा घोडा दूध पीना उचित है। जलपातमें मिर्गोया चना पानसे वातरक्तमें बड़ा फायदा पहुँचना है। व्यञ्जन शीघ्र पका करके खाना उचित है, कच्चा शी अथवा पचा सके तो प्या सक्ते हैं, जिन सब द्रव्योंसे नून साफ होता और वायु दूर होतो है, उनका सेवन इस रोगमें नितान्त प्रयोजन है, क्योंकि ये बड़े उपकारी होते हैं। इस रोगमें विष्कर ( चींचने से जाने चुगनेवाले ) और प्रन्दुद ( चींचने से तोड़ कर खानेवाले ) पक्षीका मांस मांसरसके लिये दिया जा सकता है। घेताश, जतावरी, वाम्तुक, उपोदिका और चुवर्चला जाक शीघ्र भून कर पूर्वोक्त मांसरसके साथ दिया जा सकता है। इसमें जी गेह और साठी चावलका भात भी दे सकते हैं।

निषिद्ध द्रव्य—नया चावल, जिनके खानेसे महजमें पत्र सके वैसा द्रव्य, मछली मांस, जगव, मटर, गुड, दही, अधिक दूध, तिल, उडद, मूली, लाग, जस, कद्दीमा आलू, प्याज, लहसुन, लालमिर्च और अधिक मोठा ये सब भोजन तथा मलमूत्रादिका वेगरोध अग्नि या रोटका ताप सेवन, व्यायाम, मैथुन, क्रोध और दिवा निद्रा आदि इस रोगमें विशेष अपकारी हैं। इन सब निषिद्ध फलोंके करनेसे रोग बढ़ता है। जिन सब द्रव्योंके खानेसे वायु और रक्त दूषित होता है, वे सब द्रव्य वर्जित हैं।

चरक, सुश्रुत, अरिसंहिता, वाग्भटके लघु आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रोगके निदान और चिकित्सा आदिका विवरण विशेषरूपमें वर्णित है। विषयाधिक्यके मयसे यहा कुछ नहीं लिखा गया।

वातरक्तघ्न ( स० पु० ) वातरक्त रोगविशेष हन्ति हनदक। कुकुम्बुस।

वातरक्तान्तकरस ( स० पु० ) वातरक्तान्तकारमें रसीपथ विशेष। इसके बनानेकी तरकीब—गंधक, पारा, लोहा, अन्न, हरताल, मैसिल, गुगुलु, शिलाजतु, विडंग,

त्रिकण विषट्, मोमस्य, पुर्नैतया चिना और श्वेदार,  
 बाह्यदिद्रा, श्वेन वापराजिना इन सबको बराबर बराबर  
 भाग में कर लिपय्या-सीर मूद्गास्य इनको स्व रसमें या  
 काष्ठमें ठान तीन बार मायना ही कर चने भरका गोपी  
 बनानो होगी। इसका अनुपात मोमके पत्ते या फूल  
 या छालका रस तथा घाघ मोन्या घो है। यह औषध  
 संधन करनेसे सभी उपद्रवयुक्त वातरोग प्रगमित  
 होता है। (रसेन्द्रवाल्ले वातरक्तोपश्लेषः)

वातरक्तारि (स० पु०) वातरक्तस्य अतिप्रसिद्धः ।  
 १ पिस्तघ्नोमता, गुडूच । २ गुणक । (त्रि०) ३ वात  
 रक्तनाशक ।

वातरक्त (स० पु०) वातेन वायुना रक्तो यस्य निरन्तर  
 चमत्करवाक्यं तथास्य । अश्लेषाश्लेष पीपलका वेष्ट ।  
 वातरक्त (स० स्त्री०) वातस्य रक्तं, वायस्य रस्यो या  
 श्रोती ।

वातरथ (स० पु०) वातो वायुरथो यस्य । १ श्लेष ।  
 (निघण्टु०) वातो रथो प्रायको यस्य । (त्रि०) २ वायु  
 प्रकाशक ।

वातराज (स० पु०) एक मुनिका नाम ।  
 (भृक् २०१२६।२)

वातराज (स० पु०) वातेन वायुजनित रोगेण वायनि  
 शब्दात्वात् इति ई शब्दे ह्यु । १ अमल पुण्य । २ लिप्यथोत्र  
 पुण्य, निराम्या आदमी । ३ चाण्ड । ४ करपात्र चमपहस्तु,  
 सीदा । ५ कुट । ६ पर स क्रम । ७ मरुत्सु, मीघा वेष्ट ।  
 वातराज (स० स्त्री०) छोटा नामका घण्टाजालानिसे  
 उदराल एक प्रेतमूर्त्ति ।

वातरक्त (स० पु०) वातस्य रूपेण मृषते रथ घम् ।  
 १ वातुस्य, वायस्य । २ उल्कास्य घूम, रिजवत । ३ एकघनु,  
 इन्द्रघनु ।

वातरक्त (स० पु०) १ विद्यास्यनामो वायु । 'वातरक्तैः  
 सुषारिण्यवातेरवधान्' (शिवर) 'वातरक्तवान् अत्रतो  
 इनाह वृत्तादोतीत्यम' । (मैत्रेय) २ वायु । वाता  
 श्लेष विरथ वायुकारो एक प्रकारको चमट्ट की पीली ।  
 'वातरक्तो मन्वापर कामा लक्ष्मण वातयेष्ट इति  
 वीशा वडालि वाक्त्रमथ वातवगान् वेष्टः । मायः  
 वेष्ट वतिमापये इति वायुः ।' (भा०वपः)

वातरक्तम् (स० त्रि०) वातमृषिष्ट रैतो यस्य । तिस्रके  
 शुक्रमें वातभाग अधिक परिमाणमें हो । (रत्न० १)  
 वातरोग (स० पु०) वातजनितो रोगः । वायुजनित  
 रोग, वायुरोग । पर्याय—वातघ्नाधि यलातद्रु, अनि  
 मास्य । (रात्रि०)

वातरोगिन् (स० त्रि०) वातरोगोऽवस्थप्येति वातरोग  
 इति । वातरोगायुक्त, जिसे वातरोग हुआ हो, वातकी ।  
 वातरोहिणी (स० स्त्री०) वातरोगमेद् । इसमें जीम पर  
 बाईं ओर बट्टिके समान मोम डमर आना है और डमर  
 गम्य रुद्ध हो जाता है । इसमें रोगीको ब्रह्मा कष्ट होता  
 है । इस रोगमें रक्त भूम कर होने अमकमें मले तथा  
 विशिष्ट रज्ज्वाग्नेह द्वारा वात वात कुली करे, पैसा  
 करनेसे यह रोग रुद्ध भागम देा जाता है ।

वातरोग रुद्ध देतो ।  
 वातरि (स० पु०) काठ और मोदेका बना हुआ पाय ।  
 वातल (स० पु०) वात कातीति ला-क । १ घणक  
 पत्ता । (त्रि०) २ वायुवर्द्धक वायकारक ।  
 (मुद्रत सू० ५६ प०)

वातममण्डली (स० स्त्री०) वात्या, बर्षवर ।  
 (म प्रथम)

वातमा (स० स्त्री०) १ योगिवागमेद् । योगि बर्षज  
 स्तस्य तथा शुक्र और सूचोविद्वन्म वैतनायुक्त होनेसे  
 होने वातमा कहते हैं । इस रोगमें वातवेदना बहुत  
 अधिक होती है । अनियमित आहार और विहार करनेसे  
 वायुवृत्ति हो कर यह रोग होता है । येनिर्णय देको ।  
 २ समझा बटाकात्ता । (अवदत्)

वातवन् (स० त्रि०) वातो विपत्तेऽस्य मनुष्य मध्य व ।  
 घाघणत, हवादार ।

वातवन् (स० पु०) वातवन् अतिक मोक्षमें उत्पन्न पुण्य ।  
 (पद्यलिप्यः २११।६)

वातवर्ष (स० पु०) वातरुधि, वाय और वृष्टि ।  
 वातवन्नि (स० पु०) मूलाघात रोगविरोध  
 मूलाघात रुद्ध रोगो ।

वातविहार (स० पु०) वातस्य विहारः । वातरीगथा  
 विहार ।

वातविहाति (स० त्रि०) वातविहारोऽवस्थान्ति इति ।  
 वातविकारयुक्त ।

वातविध्वंसनरस ( सं० पु० ) वातव्याधिरोगाधिकारमें रसौषधविशेष । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा १ भाग, अम्रसत्त्व २ भाग, काँसा ३ भाग, माश्रिक ४ भाग, गंधक ५ भाग, हरताल ६ भाग एकल रेडो तेलके साथ ७ दिन मर्दन करके गोली बनावे तथा तिलकी चुकनीका लेप दे कर थालुकायन्त्रमें धारह प्रहर पाक करे । इसमें घाद रसो भरकी गोली बनावे । अनुपानके साथ सेवन करनेसे शरीरके सर्वाङ्गकी घेदना, आधमान, अनाह आदि नाना रोग प्रशमित होते हैं ।

( रसेन्द्रसारस० वातव्याधिरोगाधि० )

वातविपर्यय ( सं० पु० ) सर्वंगताक्षिरोग ।

वातपर्याय शब्द देखो ।

वातविसर्प ( सं० पु० ) वह विसर्परोग जो वायुके विगड़ जानेसे होता है । इसमें वातज्वरकी तरह चेदना, शोथ, स्फुरण, सूत्रीवेध, विदारण और रोमहर्ष होता है ।

विसर्परोग शब्द देखो ।

वातवृष्टि ( सं० लो० ) वातवर्ष, वायु और वृष्टि । वायु कोणसे वादल उठनेसे वायु और वृष्टि दोनों ही होता है । वातवेग ( सं० पु० ) वातस्य वेगः । १ वायुका वेग ।

२ घृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम ।

वातवैरी ( सं० पु० ) वातस्य वैरी । १ वातादवृक्ष, वादामका पेड़ । ( त्रि० ) २ वायुका शत्रु ।

वातव्याधि ( सं० पु० ) वातेनि जनितो व्याधिः । वात-जनित व्याधि, वातरोग । वायुकी अधिकतासे यह रोग उत्पन्न होता है, इसलिये इसका नाम वातव्याधि है । इस रोगके विषयमें वैद्यकशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—सर्वप्रथम इस रोगकी नामनिर्वाहके सम्बन्धमें लिखा है, कि किसी किसीका मत है, कि वातको ही वात व्याधि वा वातजनित व्याधिको वातव्याधि कहते हैं । वातको ही यदि वातव्याधि कहा जाय एवं यदि वातजनित रोगको ही वातव्याधि कहें, तब तो वायुके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले किसी प्रकारके ज्वर प्रभृतिरोगको भी वातव्याधि कह सकते हैं । इसकी मीमांसा यही हो सकती है, कि विकृत वा फलेजदायक समानाधिकरण विशिष्ट असाधारण वातजनित रोगोंको ही वातव्याधि कहते हैं । जब

वायु कुपित हो कर विकृत हो जाता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है ।

इस रोगका निदान-कषाय, कटु और तिक्तसयुक्त द्रव्य भोजन, अपरिमित भोजन, जागरण, वायुविशेष द्वारा जलसम्भारण, अमिघात, परिश्रम, हिमसेवन, अनाहार, मैथुनप्रयुक्त धातुक्षय, मलमूत्रादिका वेगघात, काम-वेग, शोक, चिन्ता, मय, क्षतप्रयुक्त अत्यन्त रक्तमोक्षण, अत्यन्त मांसश्रय, अनिश्चित चपन, अत्यन्त विरेचन, तथा आमदोषप्रयुक्त न्रोतका अवरोध, इन सब कारणोंसे, वर्षाकालमें दिन या रातिके तृतीय प्रहर शेषभागमें जाये हुए द्रव्य अत्यधिक जीर्ण होनेसे एव जीतकालमें वायुका प्रकोप होता है । इन सब कारणोंसे कुपित बलवान् वायु शारीरिक शून्यगमे श्वेतसमूहको पूर्ण कर सर्वाङ्गिक अथवा किसी एक अङ्गका आश्रय ले कर नाना प्रकारके वातरोग उत्पादन करती है । वायुविकार अपरि-संख्येय हैं, सुतरां वातव्याधि भी अनेक प्रकारकी है ।

इन सब वातव्याधियोंके पृथक् पृथक् नाम हैं, यथा—शिरोग्रह, अल्पकृमता, अत्यन्त जृम्भा, हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, गड्गदत्व, मिनमिनत्व, मूकत्व, वाचालता, प्रलाप, रसज्ञानामिभ्रता, वाधिर्य, कर्णनाद, स्पर्शागतत्व, अर्द्धित, मन्यास्तम्भ, वाहृशोष, अववाहृक, विश्वची, ऊर्ध्वघात, आधमान, प्रत्याधमान, वातप्योला, प्रतिप्योला, तूणी, प्रतितूणी, अग्निवैष्ण, आटोप, पार्श्वशूल, तिक शूल, मुहमूलण, मूत्रनिग्रह, मलगाढ़ता, मलकी अपवृत्ति, गृध्रसी, कलाय लज्जता, खञ्जता, पङ्गुता, क्रोष्टुशीर्षक, खली, वातकण्ठक, पादहर्ष, पादवाह, आक्षेप, दण्डक, कफपित्तनुबन्ध आक्षेप, दण्डापतानक रोग, अमिघातके लिये आक्षेप, अन्तरायाम और शहिरायाम, धनुस्तम्भक, कुशुक, अपतलक, अपतानक, पक्षाघात, त्रिलाङ्ग, कम्प, म्त्तम्भव्यथा, तोद, मेद, स्फुरण, रीक्ष्य, कार्श्य, क्राभार्य, शैत्य, लोमहर्ष, अङ्गमर्द, अङ्गविभ्रंश, शिग-संकोच, अङ्गशोष, भीरुत्व, मोह, च्लचिञ्चता, निद्रानाश, स्वेदनाश, बलहानि, शुक्लक्षय, रजोनाश, गर्भनाश तथा परिश्रम ये कई प्रकारकी वातव्याधियां निर्दिष्ट की गई हैं । यह रोग बहुत कष्टदायक होता है ।

इस रोगका साध्यासाध्य—समी प्रकारकी वात-

व्याधिर्वा विरोध कष्टसाध्य होती है। रोग उत्पन्न होने के साथ ही साथ यदि इसको यथाविधि चिकित्सा न की जाय तो, यह रोग प्रायः असाध्य हो उठता है। पक्षाघात (लकवा) प्रभृति वातव्याधियोंके साथ बिसर्प, दाह, मत्स्यन्तयैवना मलमूलका निरोध, मूर्च्छा, अदक्षि तथा मन्दाग्नि वा शोथ, स्पर्शशक्तिका क्षोभ, न मर्मग, कम्प, बहुराप्यान प्रभृति उपद्रव मिश्र जाये एवं रोगीके बल और मांसका ह्रास हो जाय तो आरोग्यव्याप्तको आशा प्रायः रहती ही नहीं।

साधारणता मज्जा, कृष्ण और कर्करसयुक्त द्रव्य सेवन मस्य और हृष्यक्रिया निद्रा, शुद्धरस्य भोजन रौद्रसंवन, चम्पिक्रिया स्वेद, सन्तर्पण, अग्निर्द्धा शरत्, काष्ठ अम्पकू एवं संमर्द्धन प्रभृतिसे कुपित वायु प्रशमित होता है, सुवर्त इनसे वातरोगीको बहुत लाभ पट्ट पता है।

पक्षाघातके लक्षण—कुपित वायु शरीरका अर्द्धांश प्रवृत्त करनेके उत्तम शिवा तथा स्नायुसमूहको शोषण एवं सन्धिबन्धनोंको शिथिल करके शरीरक बाये वा बाहिरी भागका एक पक्ष अथात् बाँध, पाश्र्व पक्ष तथा अंधाधिको पक्ष कर डालती है। इस रोगसे शरीरका आधा भाग किसी प्रकारके कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है एवं कुछ कुछ स्पर्शक्रानादियुक्त रहना है,—ऐसे रोगको पक्षाघात कहते हैं। यह पक्षाघात रोग पित्तसंघट्ट वायु कर्तृक बोध होता है और शरीर आरोग्य मान्य पड़ता है। कर्क वायुकर्तृक पक्षाघात होनेसे कृष्ण साध्य तथा हुसरै शोथ अर्थात् पित्त और कफका संश्लेष रहनेसे साध्य एवं इसमें यदि धातुसंश्लेषका उपद्रव रहे तो रोग असाध्य हो जाता है। गर्मिणी, सूचिकामस्त, बालक, वृद्ध, स्नायु एवं त्रिसका रक्त क्षय होता है, इन सबोंको पक्षाघात रोग होनेसे असाध्य हो जाता है फिर जब पक्षाघात रोगीको वैद्यना विद्वुक्त ही माक्ष्म न पड़े, तब भी रोग असाध्य हो उठता है।

इस रोगमें बहव कर्वाण पर्यन्तका मूक बीजवन्ध और अटामाली, सब मिया कर है तोड़े, अल आय संघ, दीप भाय पाव हीन एक माशा और सेन्धा कर्क एक पाटा इन सबोंका काढ़ा बना कर पीनेसे अकटा

रोग दूर होता है। इस रोगमें प्रम्विक्रान्ति तैल और मापापि तैलका मर्दन बड़ा उपकारो है।

सर्वाङ्ग वातके लक्षण—सारे शरीरमें ध्यान वायु कुपित हो कर इडकुडल तथा मम्पूर वर्त पैदा कर देता है। गाठोंमें दर्द और प्रकम्पन पैदा होती हैं। ऐसी वातव्याधिसे वातनाशक तैल सारे शरीरमें मलमेसे शोष उपकारो होता है।

कारणविशेषसे यह कई तरहकी होता है। उदात्त वायु कुपित हो कर पित्तक साथ यदि मिश्र जाये, ता दाह, मूर्च्छा, घ्रम, और पक्षाघट पैदा होती है। यह उदात्तवायु कफस मिल जाये, तो पसीना रुक जाता। शरीर रोमाञ्चित हो कर शांति बोध होता और अग्निमाध्य रोग उत्पन्न हो जाता है। प्राणवायुके पित्त द्वारा आवृत्त होने पर भी और अन्न, कफ द्वारा आवृत्त हो, तो दुर्बलता वैदकी अवस्थाता, आसक्त्य और मुद्गेकिका हो जाता है। समान वायु पित्त द्वारा आवृत्त होने पर पसीना अधिक आता, दाह पिपासा और मूर्च्छा और कफ द्वारा आवृत्त होना पर मलमूलको रुकावट और शरीर रोमाञ्चित होता है। अपानवायु पित्तसंयुक्त होने पर अन्न, उष्णता, और मूत्रका रंग साक्ष्य हो जाता है। कफसंयुक्त होने पर वैदक नाचले हिल्लेमें मारोपन और शीत माक्ष्म होती है। ध्यानवायु पित्तसे मिश्र जाने पर अन्न, पक्षाघट, गात्रविषीय, और कफसे मिश्रने पर शरीरको स्तम्भता, कम्परोय, शूल और सूजन होती है। पित्त संयुक्त वातमें पित्तनाशक और रससंयुक्त वातमें वात हनेधनाशक चिकित्सा करनी वञ्चित है।

रसादि पाण्ड वातके लक्षण—कुपितवायु रसघातुके (रसघातुका अर्थ यहाँ त्वक् समभवा चाहिये) आश्रय करने पर पर्म क्ल वा लुकुचित, स्पर्शानामाभ, चर्मश, कासा रंग और कासरंगका हो जाता है। शरीरमें सूई के लूनेका सा दर्द और सातों स्थानोंमें वृत्त हो जाता है।

यदि कुपितवायु लूनेसे का मिश्र, ता अत्यन्त दर्द, साध्य, वैदकी विचर्षता कृशता, अदक्षि, और शरीरमें फोड़े उत्पन्न होते हैं और मोहन करने पर शरीरमें स्तम्भता होती है। कुपित वायुके मांसका आश्रय कर लेनेपर वैदकी मारोपन, और स्तम्भता, तर्वातके काये

तथा मुक्के मारनेकी तरह दर्द होता है और निश्चल हो जाता है।

कुपित वायु यदि मैदाधातुमें मिल जाये तो मासगत वायु सा लक्षण होता है। विशेषता यह है, कि शरीरमें फोड़ा होता और थोड़ी वेदना होती है।

कुपित वायु अस्थिका यदि आश्रय ले, तो अस्थि और उंगलियाँके पर्वोंमें वेदना, शूल, मासक्षय, बलह्रास तथा अनिद्रा होती है और शरीरमें हमेशा दबे रहता है। कुपित वायु यदि मज्जामें आश्रय करे तो ऊपर जैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं और यह किसो तरह आराम नहीं होता।

कुपितवायु वीर्यगत होनेसे वीर्य जल्द गिरना है या स्तम्भन करता है। स्त्रियोंके आमगमेपात या गभे शुष्क होता है। शुक्रकी विकृति होती रहता है।

त्वक्गत वायुरोगमें स्नेह मर्दन और स्वेद प्रयोग विशेष उपकारी है। रक्तमें प्रवेश किये वातरोगमें शातल अनुलेपन, विरेचन, रक्तभाक्षण, मासाश्रित वातमें विरेचन और निकृहविषित प्रदान, अस्थि आर मज्जागत वातमें देहके भीतर और बाहर स्नेहका प्रयोग विशेष उपकारक होता है। शुक्रगत वायुके प्रगमनके लिये मनका प्रसन्नता, सम्पादन और हृदयप्राहो अन्न पानीय, बलकारक और शुक्रजनक द्रव्य सेवन करना उचित है।

स्थानविशेषको वातव्याधिका विषय कहा जाता है। दुपितवायु कोष्ठसमूहमें यदि अवस्थान करे तो मलमूत्र को गेकता है और बध्न, हृदरोग, गुल्म, अश (ववासार) और पार्श्वशूल पैदा करता है। आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, उद्भ्रक और फुस्फुस इन्हीं सर्वोंको कोष्ठ या कोठा कहते हैं। इन्हीं कोठोंमें समाई हुई वायुका ऊपरो निदान बतलाया गया है। इसका प्रत्येकका लक्षण कहते हैं।

आमाशय आश्रित वातमें दुपित वायु आमाशयमें समा जाने पर हृदय, पार्श्व उदर और नाभिदेशमें वेदना, तृष्ण, उद्गार-बाहुल्य, विषुचिका (हैजा) खासी, कण्ठ-शोष और दमा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नाभि और स्तन इन दोनोंके बीचके स्थानको अमाशाशय कहते हैं।

आमाशयगत वायुमें पहले लंघन, पीछे अग्निदासि कारक और पाचक-औषध और वमन या तीक्ष्ण विरेचन

लेना चाहिये। भोजनके लिये पुरानी मूंगकी दाल, यव और साठी चावलका भात हितकर होगा। गन्ध तृण, हरी तकी, सोंठ और पुष्करमूल सब मिलाकर २ तोले, जल आधसेर, शोष आध पाव, वित्तव, गुडूच, देवदार और सोंठ-ये सब मिलाकर दो तोले, जल आध सेर, शोष आध पाव, अतिविपा, पीपल और विट्त्वण—ये सब दो तोले, जल आध सेर, शोष आध पान—यह तीन प्रकारके काढ़े आमवा में विशेष उपकारो होने हैं। सिवा इनके चिरैता, इन्द्रयव, आकनादि, फुटकी, आतश्च और हरीतकी (यौंगी) इन सब द्रव्योंमें प्रत्येक आध आध तोला मिला कर—अच्छी तरह चूर्ण कर, इस चूर्णका आध तोला ले कर गर्मपानीसे सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे आमाशयगत वायु विदूरित होता है। यह औषध छः दिन तक खाना चाहिये। ये औषध एक साथ न कूट पीस कर दूसरी रीतिसे भी सेवन की जा सकती हैं। इस प्रत्येक आध तोला औषध को अलग अलग छः दिनों तक सेवन किया जा सकता है। यदि ऐसा करना है अर्थात् पृथक् पृथक् सेवन करना हो तो पहले दिन वमनको दवा ले कै कर लेना चाहिये। इसके दूसरे दिनसे दवा लेना आरम्भ करना आवश्यक है। पहले दिन चिरैताका, दूसरे दिन इन्द्रयव, तीसरे दिन आकनादिका चूर्ण क्रमसे सेवन करना उचित है। यह छः दिनों तक सेवन करना पडता है, इससे पट्करण योग्य भी कहते हैं।

पक्वाशयगत वायुके लक्षण—दुपित वायु जब पक्वाशयमें पहुँच जाती है, तो पेटमें 'गड गड' शब्द होने लगता है, दबे, वायुको क्षुब्धता मूत्ररुच्छ्र, मलमूत्रकी रुग्धता (रुकावट), आनाह, और स्थानमें दर्द होता है। इस वातव्याधिमें अग्निवृद्धिकारक और उदरावर्तनाशक क्रिया करनी होगी। इसमें स्नेहचिरैचन भी हितजनक है। उदरगत वातमें क्षार और चूर्णादि अग्नि प्रदीपक द्रव्य भी सेवनीय हैं। काख या कुक्षिगत वातमें सोंठ, इन्द्रयव और चिरैताका चूर्ण जरा सुमसुमा (कुछ गर्म) जलके साथ सेवन करना चाहिये।

गुह्यगत वातके लक्षण—गुह्यगत वातमें मल और घातकर्मोंका अवरोध, शूल, उदराग्मान, अशमरो (पथरी) और शर्करा (चीनी) उत्पन्न होती है और जंघा

उद, बिक, पादर, अश और पोडमें बेदना उत्पन्न होती है। इस रोगमें अत्रावर्तकी तरह चिह्नितसा करना चाहिये।

11 हृद्गत वातको उपशमन करनेके लिये मिषा (काली)का चूर्ण और गुग्गुलु सुपसुमा जसके साथ मधेरी सेवन करना चाहिये इससे हृद्गत वायु बिगड़ जाती है। देवदाह भीर सौंठ समभागसे पोस कर सहने प्रायक उन्मादके साथ पाम करनेसे हृद्गत वातको वेदना दूर होती है।

धोताविगत वातके लक्षण—दुपित वायु कर्ष्य भावि इन्द्रियोंमें या जिस किमी इन्द्रियमें रहती है उन इन्द्रियक धोतावदौष कर इसका कार्य मष्ट कर देती है। सुतरां वह इन्द्रिय विकल होती है। धोतावि इन्द्रियोंमें ममाह हूर वायुमें बायुनाशक सांधा रण क्रिया और स्नेहप्रयोग अल्पक, अजगाहन स्नान, मर्दन और आडेपन प्रयोग करना चाहिये। निराशोमें गर्दे हुरे बायुके लक्षण—दुपित वायुके निराशोमें बाधय करने पर सिराशोमें वेदना, स कोन और चरिरा पाम (पुष्टगत) अगतरायाम (कोडनत) लक्ष्मी और कुञ्जरोग हुआ करता है। इन बातमें र्नेहमर्दन, उपनाह (पुक्रटिम) आडेपन और रक्तमोक्षण विधेय है।

सन्धिगतका लक्षण—उब पुष्ट वायु सन्धिमें समा जाती है तब सन्धियोंका अघन होना शूल (बर्त) और शोष हो जाता है। इनमें अमिकर्म स्नेह और पोकरिसका प्रयोग बिनकर होगा। बीरेको अक, पीयूक और गुग्गु इन सबोंको समभाग से कर पीलना चाहिये। इसके दो तोडे नित्य सेवन करनेसे सन्धिगत वायु नाराज हो जाती है।

इन व्याधियोंमें हनुस्तम्भ बर्द्धित, भाक्षेय, पक्षाघात (अकवा) और अघतागक रोग यथा समय बडे यज्ञसे चिकित्सा करनेसे इन रोगोंका कोई रोगी नाराज हो जाता है किन्तु बहुत नाराज नहीं हो होते। बलवान् व्यक्तियों में यह रोग यदि हो और उसमें कोई उपश्रव न हो, तो यह रोग साध्य होता है। विसर्प, बाह, वेदना, मलमुखाचरोच, मूर्च्छा अरुचि और अग्निमान्द्य द्वारा पीडित और मांस बलक्षण होने पर अकवाके रोगी या बलरोगीको जोवन को देना पड़ता है। घृसन, चतुर्दशमें कर्णोद्धानका ममाह

अकृमक, कम्प अत्राप्यान और अल्पगत वेदना ये सब उपद्रव होने पर वातरोगीका पचना कठिन है।

वातव्याधिकी सामान्य चिकित्सा—वातव्याधिमें तैल मर्दन ही एकमात्र औषध है। मावादि तैल महा मावादि तैल, मध्यम-नागरयण तैल और महानारायण तैल इन रोगका अति उत्तम औषध है। मिषा इसके रास्नादि वाड़ा, महाकोयराजगुग्गुलु छहसूत बरुन, रसोनादक, धातरिरस भादि औषधियां भी उपकारते हैं। रोगीके बलाबल, अग्निदीप्ति भादि देख कर औषध और तैल—इन दोनोंका व्यवहार करना कर्ष्य है।

(मासमं बलव्याधि)

मैयस्वरत्नापनीमें वातव्याधि रोगाधिकारमें निम्न लिखित तैल और औषध निर्दिष्ट हुए हैं।—**गव्यामम्ब** अत्रमहसूतपिण्ड **अदीकशाङ्गुगुग्गुलु** स्वल्पविष्णुतैल **मध्यमविष्णुतैल**, **पूदक्षिष्णुतैल**, **नारायणतैल** मध्यम **नारायणतैल** **मिषावचरीक** **हिमसागरीक**, **बायुछाया** **सुरेन्द्रनीक**, **महानारायणतैल**, **महावल तैल**, **पुणराज** **प्रसारिणीतैल** **महाकुक्कुटपर्मान्नीक** **नकुम्भीक**, **माप** **तैल**, **अववमापतैल**, **एरुनापतैल** **महामापतैल** **निरा** **मियमहामापतैल**, **कुम्भप्रसारिणी तैल**, **रुतगतिका** **प्रसारिणी तैल**, **पराङ्गशक्तिनामहाप्रसारिणी तैल** **अष्टाशक्तिनामहाप्रसारिणी तैल** **मिश्रातोप्रसारिणी तैल**, **महाराजप्रसारिणी तैल** **अव्वनाम्बुसापन महा** **सुगन्धितैल**, **अक्षोबिमासतैल**, **नकुम्भीकपुत छाग** **कापपूत** **एदष्यागापपूत**, **अतुमुम्बरस** **चिरतामणि** **अतुमुम्बरस**, **योगेश्वरस** **रसराजरस**, **एदघ्रातचिस्तामणि**, **और** **वक्षारिष** **भादि औषध तैल** और **पूत अमिहित** हुए हैं। मिषा इसके छोटे छोटे विविध घोष और पाचन भा वि विषय भी लिखे हुए हैं।

(मैयस्वरत्नां वातव्याधि)

रसेश्वरत्नारण्यमें इस रोगके लिये निम्नलिखित औषध निर्दिष्ट हुए हैं। **शिशुणापरस**, **वाताङ्कुश** **एदघ्रातगजाङ्कुश**, **महाबालगजाङ्कुश**, **वातनागजरस**, **धातरिरस**, **अग्निसारिरस**, **वातकल्पजरस**, **अध्वानम्बरस**, **चिरतामणिरस** **अतुमुम्बरस** **अक्षोबिनामन्स**, **अलीकखटो पिण्डोरस** **कुम्भविभोरस**, **गोतारिरस**,



वातविध्वंसी रस, पलासादिवटी, दशसारवटी, गगनादिवटी, सर्वाङ्गसुन्दर रस, तारकेश्वर और चिन्ता मणिरस । (स्मेन्द्रवाररस वात व्याधिरेणाधि०)

चरक, सुश्रुत और वाग्भट प्रभृति वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रोगका निदान और चिकित्सा आदिका विषय विशेषरूपसे लिखा हुआ है। विस्तार भयसे यहां उनका पृथक् रूपसे लिपिबद्ध किया न गया।

पथ्यापथ्य :—वातव्याधिमें स्निग्ध और पुष्टिकर भोजनादि नितान्त उपयोगी हैं। दिनको पुराने चावलका भात, भूंग, मटर और चनेकी टाट, कचई, सुगरी, रेहु आदि मछलियोंका जोरवा, रंहुंका मुण्ड, बकरेका मांस, गुल्डर, परवल, अरई आदि तरकारियां, मद्यपान, अंगूर, दाडिम, पका हुआ मोठा आम आदि फल भी खाया जा सकता है। रातको पुड़ी या रोटी, मोहनभोग (इलका)। सवेरे गायकी धारका दूध पीना अच्छा है।

वर्जितकर्म—गुरुपाक, तोषणवीर्य, रूपा, अम्लजनक द्रव्य भोजन, ध्रमजनक कार्य-सम्पादन, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, निरन्तर बैठे रहना, आतपसेवा, इच्छाप्रतिकूल कार्यादि, मलमूत्र वृष्णा, निद्रा और भूख आदिका वेग धारण, रात्रिको जागरण और मैथुन अनिष्टकारक है।

उरुस्तम्भ और आमवात भी वातरोगमें माना गया है। इस लिये इन दोनों रोगोंके निदान और चिकित्सादिका विषय भी यहां लिखा जाता है—

उरुस्तम्भ रोगका निदान—अधिक शीतल, उष्ण, द्रव्य, कठिन, गुरु, स्निग्ध वा सूखा पदार्थ भोजन, पहलेका किया हुआ भोजन जब तक पचे नहीं, तब तक ही फिर भोजन, परिश्रम, शरीरका परिचालन, दिनको सोना और रात्रिजागरण, आदि कारणोंसे कुपितवायु, श्लेष्मा, और आमरक्तयुक्त पित्तको दुपित कर उसमें अवस्थित होने पर उरुस्तम्भ रोग उत्पन्न करता है।

इसके लक्षण—इस रोगमें उरुस्तम्भ, शीतल, अचेतन भाराक्रान्त, और अत्यन्त वेदनयुक्त होता है और उठना बैठना सुशकल हो जाता है। इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, अङ्गवेदना, रत्नमित्य—अर्थात् शरीरमें रींगे वख

के स्पर्शका घ्न न होना, आलस्य, कै, अगन्धि, उच्चर, पैरकी अवसन्नता, स्पर्शगकिका नाश और कष्टसे सञ्चालन, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

उरुस्तम्भ होनेके पहले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, रत्नमित्य उच्चर, रोमाञ्च, अगन्धि, कै और जघा और ऊपर में दुर्बलता आदि ये हो सब पूर्वरूप दिखाई देते हैं।

इस रोगके अग्रिष्ठ लक्षण—इस रोगमें दाह, सूई चूमनेकी-सी वेदना, कसा आदि उपद्रव हंतें हैं। ऐसा होने पर रोगीके जीनेकी आशा नहीं रहती। चिकित्सा—जिन क्रियाओं द्वारा कफकी शान्ति होती है, अथवा वायुका प्रकोप अधिक न होने पाये, उरुस्तम्भमें वेने ही चिकित्साकी जरूरत है। फिर भी रुक्ष क्रिया द्वारा कफको शान्त कर पीछे वायुको शान्त करना चाहिये। पहले स्वेद, लंघन और रुक्ष क्रिया करना कर्त्तव्य है। अधिक रुक्षक्रिया द्वारा वायुके अधिक कुपित हो जानेसे निद्रानाश आदि उपद्रव उठ खड़े होने पर स्नेह स्वेद आदिका व्याहार करना चाहिये। डहर करझाका फल और सरसों या अश्वगन्धा, आकन्द, नीम या देवदारुका मूल या दन्ती, इन्दुरफानी, रारना और सरसों या जैत, राम्ना, सहिजनकी छाल, चन्, गुडूचो और नीम ये द्रव्योंमें कोई एक योग गोमूत्रके साथ पीस कर उरुस्तम्भमें लेप करना होगा। सरसोंका चूर्ण और नोनी मिर्च मधु (सहद) के साथ मिला कर या घतुरेके रसमें पीस कर गरम गरम प्रलेप करना चाहिये। काले घतुरेकी जड़ चेंडाफल, लहसुन, काली मिर्च, कालाजोरा, जैतका पत्ता, सहिजनकी छाल और सरसों इन सब दवाओंको गोमूत्रके साथ पीस गरम कर प्रलेप करनेसे इस रोगका शान्ति होती है।

त्रिफला, पीपल, मोथा, कटकी इनका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कटकी, इन दो चीजोंका चूर्ण आध तोला गहदके साथ सेवन करनेसे उरुस्तम्भ आराम होता है। पीपलामूल, मेला और पीपल,—इसका काढा बना कर इसमें मधुका छीटा दे कर पीनेसे भी यह रोग दूर होता है। मल्लातर्कादि और पिप्पल्यादि पाचन, गुञ्जा-भद्रस, मष्टकद्वरतैल और महासैन्यवादि तैल आदि औषध भी उरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग की जा सकती हैं।

आमवातके निदान और सङ्ग—एक साथ दूध और मछलीका विरुद्ध भोजन, स्निग्धान्न भोजन, अधिक मैथुन, व्यायाम, नेत्रा, अन्नकोड़ा, अग्निमान्द्य, और रसनागमनशून्यता आदिमें अपक माहण रस आमवातपरीक्षणसिद्धिस्थल, आदि कफरोगानमें यापु सञ्चन और कुपित ही आमवात उत्पन्न करता है। व्यावहारिक वातमें इस रोगकी वायुरोग कहते हैं। अङ्गसर्वण, अचक्षि, तृण्य, आस्रस्य, देहका भारीपन, उदर, आरिवाक और सूजन ये कई आमवातके साधारण लक्षण हैं। कुपित आमवातके उपद्रव—आमवात कुपित होने पर सब रोगोंकी अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है और उस समय हाथ, पैर, गिर, गुच्छ, कटि, ज्ञानु उठ और सन्धिस्थानोंमें अत्यन्त वेदनायुक्त सूजन पैदा होती है। और जो इस समय कुछ आम (आम) जिन जगहोंमें रहता है, उन स्थानोंमें विच्छेदके अङ्कको तरह वेदना, अग्निमान्द्य, मुख पाकसे झल गिरना, अस्ताहृत्तानि, मुहका फोषापन, दाह, अधिक मूलम्राय, कानमें द्रव और कठिनता, दिक्की मित्रा, रातकी अग्नित्रा पिपासा, कै घ्नम, हृदय वेदना, मलमरता, शरीरकी अकृता उदरमें शब्द और आनाह आदि उपद्रव होते हैं। वातज आमवातमें शून्यत् वेदना वैलिक गामदाह और शरीरमें साभिमा और कफजमें मीनि कवर्णके निचोटीकी तरह अनुभव भारी पन और सुखसाहट ये ही सब लक्षण विकार देते हैं। दो या तीन दोषोंके संमिश्रणमें ये सारे लक्षण मिले हुए विकार देते हैं।

चिकित्सा—पीड़ाकी प्रथमावस्थाओं उत्तम रूपस चिकित्सा करना आवश्यक है। नहीं तो कष्टसाध्य या असाध्य हुआ करता है। बाह्यकी पुटकी गर्म कर इससे वर्णको जगह से कना चाहिये। कपासका बीज कुञ्जपा तिल औ, छाल परदेकी जड़, मसोना पुनर्नवा, शनपोत्र—इन सब औषध या इनमें जोही मिल जाये, उस को हूट कर मट्ट में मि गा कर दो पुटकी तैवार करनी हीमी। एक हाथीमें मट्टे दे कर एक बहुरेरे छिद्रवायि डबनेसे हाथी डक कर मुह पर छेप देना होगा। पोछे मट्टेसे मरी हाथी अग्नि पर बहाकर डबने पर एक एक पुटकी गर्म करनी होगी, इस मार्ग पुटकी से कने पर

आमवातका वर्ण दूर होता है। इस से कफा गम शीकरसेक है। छलक, सहि अनेकी छाल मोनी मिट्टी गोमूत्रमें पोस कर इसका छेप करनेसे आमवातकी पीड़ा शान्त होती है। अथवा सोयां थच, सोंठ गोबक परुषछाल, पोवा बीजबन्ध पुनर्नवा कचूर, गन्धमायुक्त, और का फल और हींग—इन सब औषधोंको मट्टेके साथ पोस कर गर्म करके छेप करना। काला जोर पोपल नाटा बीनका गुग्गु, सारि बराबर माग छे कर मद्रकके रसमें पोस गर्म पर प्रलेप देनेसे शीघ्र पीड़ा शान्त होती है। तीन कांड्यसोत्र, गोंद, लमक मिना कर डबकी जगह छगानेसे वर्ण दूर होता है।

शिता, कटकी, आकतादि इन्द्रयव, मातरक और गुलज्ज अथवा ईबदार, वस मोधा, सोंठ और हरीतकी इनका समभाग पोस कर गरम जलक साथ हर रोज पीनेसे आमवात नष्ट होता है। कपूर, सोंठ, हरीतकी, थच, ईबदार, मातरक और गुलज्ज मिठा हुआ २ तोले मल भाष संर, शैष साथ पाव यह काड़ा पानसे आम वातका दोष दूर होता है।

पुनर्नवा, पुरही, मेरेरुडा और बनतुलमो या सूची मुन्नी, सहि जन और पारिजातका काड़ा बना कर सेवन करनेसे आमवात दूर होता है। रैडीकी जड़ दूधमें पका कर चाटने या गोमूत्रके साथ शुग्गुल पानेस बड़ा उपकार होता है। सोंठ, हरीतकी और गुलज्ज मिठा हुआ २ तोले, अल भाष संर, शेष भाष पाव—इस काड़े में घोड़ा शुग्गुल डाल कर घोड़ा गरम रहे तब पीनेसे कम्मर, नाथ, ऊठ और पीठकी वेदना दूर होती है। द्विग १ माग, चम्य २, निरःप्रबल ३, सोंठ ४, पीपल ५, मगरैसा ६ तथा पुकरको जड़ ७ माग इन सबीका मूर्ण गरम जल के साथ पीनेसे आमवात शीघ्र ही निराहृत होता है। इनक असाधे द्विहादिचूर्ण, पिप्पलायचूर्ण, पदराधचूर्ण, रसीनादिःप्राय रास्तापञ्चक, उट्यादि, रास्तापञ्चक, पुनमवादिचूर्ण, अमृताधचूर्ण, अनन्नुपादिचूर्ण, नमोतक चूर्ण, शुक्लाध्याकपूत, शुपटीपूत, काश्चिपदपलपूत मृदुवेरापपूत, इन्डुपूत, पान्थनारपूत, महाशुक्राणुपूत, अन्नमोत्रादि प्रसारणीसेह, कण्ठशुक्रो, रसोनपिण्ड, प्रसारणीसेह, त्रिपञ्चसुसाधनीन, सैन्धवादिसेह, एहत्

सैन्धवादि तैल, खलपप्रसारिणीतैल, दशमूलाद्यतैल, मध्यम-  
रास्नादिकाथ, महारास्नादिकाथ और रास्नादशमूल  
आदि औषध इस रोगमें, बड़ी फायदेमद हैं ।

( भागप्र० आमवातरोगाधि० )

वातव्याधि रोगोक्त कुञ्जप्रसारिणी और महामाप  
आदि तैल भी इसमें विशेष उपकारक हैं ।

मैपञ्चरत्नावलीके इस रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध  
दी हुई हैं, जैसे—रास्नादि दशमूल, रास्नानमक, रास्ना-  
पञ्जक, वैश्वानरचूर्ण, अजमोदाद्विचटक, आमगजन्दिमोदक  
रसोनपिण्ड, महामोनपिण्ड, वातारिगुगुलु योगराज-  
गुगुलु, वृद्धयोगराजगुगुलु, बृहद्वैश्ववाद्यतैल, द्वितीय  
सैन्धवाद्यतैल, आमवातारिवाटिका, आमवातारिस,  
आमवातेश्वरगम, त्रिफलादिलोह, विडङ्गादिलोह, पञ्चा  
ननरमलौह, वातगजेन्द्रमिंह और विजयमैरवतैल आदि  
और विविध मुष्टियोग समिहित हैं ।

( मध्यरत्ना० आमवातरोगाधि० )

पध्वापट्टय—दिनमें पुगना चावल, कुल्थी, उडद,  
मूग, चना और मसूरको डाल, परबट, डुवर, मानकचू,  
करैला, साहजन, वैगन, अटरक आदि तरकारी, बकरी,  
कबूतर आदिके मासका जूप, जिनना या पचा सके  
उतना घी, अम्ल और मट्ठा आहार करे । रातमें रोटी या  
पुडी और यह सब तरकारी सेवनोय है । स्नान जितना  
कम करे, उतना ही अच्छा है । नितान्त ही स्नानका  
आवश्यक होनेसे गरम जलमें स्नान करना होगा । वायु  
का प्रकोप अधिक होनेसे नदीमें स्नान या नेतेके प्रति  
कृत्र तैरना उपकारी है ।

निषिद्ध कर्म—कफजनक द्रव्य, मछली, गुड़, दही,  
उडद और बहुत मीठा खाना, मन्मूत्रादिका वेगघारण,  
दिवानिद्रा, रात्रिजागरण और ठढक विशेष अपकारी है ।  
ज्वर रहने पर धन खाना बन्द कर हलका पदार्थ खाना  
चाहिए ।

हामिधार्पेयिक मतसे चिकित्सा ।

यह रोग साधारणतः तीन प्रकारका है—(१) पक्वूट  
( Acute Rheumatism ) या तरुण और फडिन । (२)  
सब-पक्वूट ( Sub acute ) या अप्रबल । (३) क्रानिक  
( Chronic ) या पुराना । पहले या दूसरे प्रकारके रोग

सहजमें आगम हो जाते तथा तीसरे प्रकारका रोग  
कष्टदायक होता है, यह सहजमें नहीं छूटता ।

तरुणवात ( Acute rheumatism )

तरुण और फडिन या पक्वूट वातरोगमें ( Acute  
Rheumatism ) एक घा उमसे अधिक प्रस्थिमें विशेष  
प्रकारका प्रदाह उत्पन्न होता है । सभी मंथिया एक  
घार या कम कमसे आक्रान्त होती है । इससे प्रबल-  
ज्वरमें सभी लक्षण मौजूद रहते हैं । इसलिये इसका  
दूसरा नाम—रूमेटिक फियर ( Rheumatism fever )  
है ।

डा० प्राउट ( Dr Prout ) का कहना है, कि पसीने  
द्वारा चमड़ेसे लाकटिक एसिड बाहर होता है । कभी  
कभी शरीरकी हालतमें यह बहुत अधिक निकलता है ।  
उस समय शरीरमें ठंढी हवाके लगनेसे उक्त पमिड  
बाहर नहीं निकल सकता तथा उसका उत्तेजनाके लिये  
प्रान्थिकारका म्युखावा विधानसमूह प्रदाह स्वन हुआ करता  
है । बहुतेरे इस मनकी मानते हैं ; किन्तु राक्षा द्वारा  
लेहमें उक्त प्रकारका एसिड नहीं पाया जाता, अथवा वह  
पेरिटोनियम काटरमें इल्लेक्ट करनेके समय यथा सेवन  
करनेके पीछे प्रबल वातरोगके सभा प्रधान उपसर्ग  
( पेरिकार्डाइटिस और पण्डोकार्डाइटिस आदि पीडा )  
प्रकाश करता है, किन्तु उससे भी सभी सम्थिया प्रदाह-  
युक्त नहीं होती । डा० ह्यूटर ( Dr Hueter ) कहते  
हैं, कि रक्तस्रावमें एक प्रकारका सूक्ष्म उद्विज्य प्रवेश  
करता है तथा उसकी उत्तेजनाके कारण पण्डोकार्डाई-  
टिस और गाठोंमें जलन होता है । डा० डकवर्थ और  
चार्लोट साहव ( Dr Duckworth and Charcot ) का  
मत है, कि किसी किसी मनुष्यकी एक साधारण शारी-  
रिक प्रकृति होती है जिससे रूमेटिजम् या गाउट रोग  
उत्पन्न होता है । डा० हचिनसन ( Dr Hutchinson ) का  
कहना है, कि गीत या ठढक लगनेसे सब गाठोंसे एक  
प्रकारका काट्यारेण प्रदाह पैदा होता है ।

यह पीडा कभी कभी कुलगत अर्थात् पितृपुरुषोंसे  
मिल जाती है । सबरात्र १५से ले कर ३५ वर्ष उम्र  
वाले व्यक्तियोंको यह पीडा होते देखी जाती है । नाना  
कार्यवशात् पुरुष तथा दृग्नि लोग सर्वथा इस रोगसे

भावात्त एवम् । कदा कदा शलकीको भी यह पीड़ा  
 हुआ करती है । न अधिक ठंडा न अधिक गरम दृग्मि  
 या भीमो अग्रहमें वास करने शारीरिक अस्वस्थता और  
 मनःकष्ट एवम् तथा प्रागे हालो गाँठमें जोट लगनेमें यह  
 रोग उत्पन्न होनेको सम्भावना रहती है ।

पत्नीना निद्रासते समय शीत लगने, ईर तक मींगा  
 कपड़ा पहन कर रहने और अनियम आहार करनेसे यह  
 रोग घर बढता है । शीर्ष रोकन अथवा बर्षाको हमेशा  
 स्तन पिछाने, किन्ती कारणवश टनूने क्लिपाका छीप होन  
 (जेई क्लॉर्डेड फिबरमें) और अधिक अङ्गु हिलाने  
 बुझानेसे यह रोग हो सकता है ।

शारीरिक परिवर्तनमें बड़ी बड़ो गाँठोंने फाइब्रोसि  
 रस् और माइनोवियम् विधानमें प्रदाहक बिह देणे ज्ञाने  
 हैं । माइनोवियम् विधान धारकित और स्थूल तथा  
 पही ती सभा रक्ततालियां स्फात होन देखो ज्ञानो है ।  
 प्रथिमें निम्न वरम निरम् और कमा कमा मबाद रहता  
 है तथा उमक शोच काटिसे अज्ञत हो सकता है । निद्रा  
 को मब अग्र १०० निरम् द्वारा स्फोत होता है । इन्पिचडा  
 भ्यतरमें बिरोधनः मालमकि ऊपर स्तर स्तरम फाइब्रिन  
 देखा जाता है । पेटिकाडाइरिन्, पण्डाहाडाइरिन्, माइ  
 जोडाडाइरिन्, मेनिज्जाइरिन् तथा कमी कमी प्युरिन  
 और भ्यूमानियके सक्षप भीजूद रहने है । लूनमें पैनी  
 फाइब्रिन उत्पन्न होता है तथा उममें अभावता सहस्र  
 अ गका लोसत अ ग फाइब्रिन रहता है, किन्तु इस पाड़ा  
 में बह डिगुण रहता है । लून खुस पर काँबके गिमानमें  
 रखनेसे इन पर गावर्हा चरती या डेलके समान प्रसाई  
 यह जाती है ।

साधारण लक्षण—मज्जाघर जोन और कण द्वारा  
 पीडा शुरू हो कर पाठे उतर जाता है । अमहा गरम तथा  
 पत्नीमें मरा रहता है, कमी कमी उस पर फुन्सियाँ होते  
 देखो जाती हैं । पत्नीमें एक प्रकारकी कड़ी गन्ध निक  
 लती है गाँठमें पैरना होनेसे रोगोका मुख मस्तिन और  
 कष्टकर जाता है । नाडा तेज्जन बसता है । प्याम  
 अधिक मरता है, मूत्र कम हो जाता है, शोम  
 मित्तस भर जाती है, मय बढ हा जाता है, अनियरता तथा  
 कमी कमी प्रकाय आदि लक्षण वर्त्तमान रहने हैं । मूत्र

रोडा और माल होता है, उसके मयक्षीयमें अधिक इहरे  
 दल पाया जाता है । कमा कमी मामाम्य पलबुनेन रहता  
 है । उत्ताप एक सप्ताह तक बढ कर पीछे कम हो जाता  
 है, किन्तु प्रातःकाममें स्वप्न विराम देखा जाता है । बहुत  
 अग्रह तापमान १०० से १०४ तक, कमी कमी ११० से  
 ११२ तक हो सकता है । उत्ताप मधि होनेसे समी लक्षण  
 अत्यन्त गुणर हो जाते हैं । रोगी बड़ा दुर्बल है। जाता  
 है और अस्थिरता तथा शोच बीनमें कल्पता है । कजागः  
 अधिक प्रलाप और अम्याम्य विकारोंके समी लक्षण उप  
 न्धित होत हैं, अन्तमें ऑरिडिम रक्तप्राघ उन्नामय या  
 भ्रामकृत द्वारा मृष्ट्य हुआ करती है । इन्पिचडा माक्रान्त  
 होनेसे रोगोरा काडिपेट् स्थानमें अन्वयम्पता और  
 पैरना माद्रूम होती है ।

सन्नाथर अंधा बड़ुमी, गुलर और मजिबन्धकी समी  
 मग्नियीं माक्रान्त होती है, किन्तु दूसरी दूसरी प्रथियां भी  
 पाडित होता है । कमाग बहुत सन्धियोंमें ही प्रदाह  
 उत्पन्न होता है । कमी कमी एक सन्धिका अन्तन बुर  
 होती और दूसरी सन्धिका अन्तन बढ जाती है । हमेशा दोनों  
 पार्श्वों की समी सम सन्धियाँ एक साथ माक्रान्त होने  
 देखो जाती हैं । पाडित सन्धि स्फोत, उत्तस, पैरना  
 युक्त तथा लघाद मिये होती है । जारो पार्श्वोंक विधान  
 स्तिरमक द्वारा स्फोत तथा बर्षाका अमडा अशुमीसे  
 बर्षानेम पस जाता है । अङ्गु दिखाने बुझानेसे पैरना हातो  
 है । पैरना कनकन तथा समक समय पर यह पैसो अमहा  
 हो जाता है, कि रागो बिह्ला कर रोम लगता है ।  
 सन्धिके अधिक कर्तान होनेसे मी कमी पैरना कम हो  
 जाती है ।

सर्वदा पण्डोहाडाइरिन्, पेटिकाडाइरिन् निमो  
 निपा तथा प्युरिसि उपस्थित होने हैं । स्वीकी अथस्ता  
 पुदुयमें अधिक पेटिकाडाइरिन् इण्डियोघर होता है ।  
 कारण अथान पुरुप हमेशा कष्टकर वययमाय अकमज्जन  
 करता है । कदा कदा पेटिटोनाइरिन्, मेनिज्जाइरिन्,  
 कारिया, मेस्तिमाइरिन्, अन्वयाभमिया, कण्डाटाइरिस  
 या आरटाइरिन् देणे ज्ञाने हैं । परथिमा मार्टिकटिया  
 पर्यंत्रा आदि अमरीमोमी मा इण्डियोघर हाता है । प्रति  
 दिन इन्पिचडाको परीक्षा करनी उचित है । मूत्रक हमेशा

हृत्पिण्डसे आक्रान्त होता है। इससे अनुमान होता है, कि हृत्पिण्डके वाल्वके ऊपरका फाइब्रिन चूर्ण उपच्छत्राकारमें चल कर मस्तिष्कमें आवृत्त होनेसे कोरिया उपस्थित हो सकता है। साधारणतः बालकों को कोरिया हुआ करता है। बालक और युवकके शरीर में खास कर सभी सन्धियोंके पास छोटा छोटा अर्बुद पैदा होता है एव व्रीच वीचमें वह अदृश्य हो जाता है।

अधिकांश रोगी आराम हो जाता है, किन्तु किसी न किसी आन्तरिक यन्त्रमें विशेषतः हृत्पिण्डके छेद में कुछ परिवर्तन जरूर रह जाता है। यह रोग फिर हो सकता है। क्रमशः सभी सन्धियाँ मजबूत और विकृत होते देखी जाती हैं तथा कभी कभी इन सब स्थानोंमें शूलवत् वेदना होती है।

गाउट, परिसिप्ल्यास, पायिमिया, इनफ्लुएन्जा, ट्रिचिनोसिस, हिलोपसि फिवर और डेड् गुज्वरके साथ इस रोगका सम्बन्ध होता है। पहले पीडाके साथ पृथक्ता पीछे वर्णनीय होता है। परिसिप्ल्यास तथा डेड् गुज्वर की तरह शरीरमें पित्त उछल आता है। ट्रिचिनोसिस रोगमें अत्यन्त दुर्बलता, उदरामय और विकारके सभी लक्षण जल्द ही उपस्थित हो जाते हैं। रिलापिसि फिवरमें रोगी वार वार आक्रान्त हुआ करता है। पायिमिया पीडासे नाना स्थानोंमें फुसियाँ निकल आती हैं तथा इनफ्लुएन्जामें सर्दी होती है।

यह रोग उसे ६ मसाह तक रोगीको कष्ट देता है।

प्रबल वातरोग प्रायः आरोग्य होता है, किन्तु उच्चापकी अधिकता, प्रलप, आक्षेप, अचैतन्य, हृत्पिण्ड वा फुस् फुस्की अनेक तरहकी पीडा और विकारके दूसरे दूसरे लक्षण मीजूद रहनेसे गुरुतर कष्ट जाता है। इसकी गतिके मध्य कोरिया उपस्थित होनेसे रोग प्रायः साघातक होता है।

रोगीको फलालेन अथवा दूसरा कोई गरम कपडा पहननेका परामर्श देना आवश्यक है। पीडित अङ्ग तकिये पर स्थिरतासे रखना चाहिये। शरीरमें किसी तरहकी ठण्डी हवा न लगावें। हृत्पिण्डकी परीक्षा करनेके लिये अंगरक्षे में एक छेद रखना उचित है तथा उससे हो कर हर रोज एथेस्कोप द्वारा आघात सुने। प्यास बुझानेके लिये कैमनेड, चार्लिवाटर अथवा वर्फ दे। उच्चाप दूर करनेके

गरजसे उक्त बाध किवा टर्किंस वायु उच्चाप एवं अधिक रहनेसे वेट पैकिंग अथवा केल्ड बाध व्यवहार करे।

पहुँतोंका कहना है, कि स्यालिसिन् स्यालिसिलिक एसिड किंवा स्यालिमिलेट अब सोडा १०से २० ग्रैन की मात्रामें ३४ घंटे पर देनेसे बड़ा फायदा पहुंचता है। किन्तु पीडाकी सभी अवस्थाओंमें उसका व्यवहार नहीं किया जाता। विकारके सभी लक्षण रहने अथवा हृत्पिण्ड आक्रान्त होनेसे उससे उपकार नहीं, बल्कि अपकार हो सकता है। उच्चाप अधिक रहनेसे तथा व्याधि सामान्य रहनेसे उक्त औषध सब तरहकी वेदना और उच्चाप निवारण करती है सही, पर कहीं कहीं उतना फायदा नहीं पहुंचाना। ब्रिस्टल नगरके रहनेवाले १० स्पेन्सर (Dr. Spencer) ने १५ ग्रैन स्यालिसिलिक एसिड, २ डाम लाइकर एमोनिया साइट्रिस तथा १॥ ग्रैन एकट्राक्ट ओपिआइ जलके साथ मिला कर ३४ घंटे पर गाठकी जलनमें व्यवहार कर फल लाभ किया है। कितने चिकित्सक ज्वर या दर्द मिटानेके लिये दूसरी दूसरी अवसादक औषध, जैसे—एकोनाइट्, डिजिटेलिस, एण्टिपाइरिन और मेरेट्रिया आदि व्यवहार किया करते हैं; किन्तु यह औषध पड़े सावधानीसे प्रयोग करना उचित है। इस रोगमें क्षार औषध बड़ी फायदेमद होती है। उनसे पीडाश सम्बन्धी लवण विशेषतः वाइकार्बन्, माइट्रास, नाइट्रास और आइबो-डिड् तथा फस्फेट या वेनजयेट आव एमोनिया विशेष फलप्रद है। कभी कभी नेवूके रूमसे भी फायदा पहुंचता है। वेदनामें अफीम और मर्फिया व्यवहार करना चाहिए। अन्यान्य औषधोंमें ट्राइमिथिमाइन् इरुथियन, टिं अर्गट् और टि एकटिया रेमिमोसा विशेष उपकारी है। ज्वर कुछ कम होने पर कुनाइन दे सकते हैं। पहले रक्तमोक्षण और पारदघटित औषध प्रयोग होती थी, अभी उस आसुरिक चिकित्साका प्रचलन एकदम नहीं देखा जाता। कोई कोई कलबुसाई दिया करते हैं। कलेजेमें वेदना होनेसे उसका व्यवहार करना एकदम मना है। पीडा कठिन और विकारयुक्त होनेसे उत्तेजक औषध तथा सुरा दी जा सकती है। यथानियम उपसर्गादिकी चिकित्सा करना आवश्यक है।

कोई कोई बिजिटसक फून्को हुई गाँठमें जोक लगाने को सज्जह देने हैं; किन्तु उसको उतनी भावश्यकता नहीं। पीड़ित स्थानमें आईडर या पारिपेट्रेड फोमोस्टेशन करे। बेडेडोना या भोपिभाई लिमिनेटर्ड मर्टन अथवा अनाम या बेडेडोनाका पोस्त्रिज्म देनेसे बहुत लाभ पहुँचता है। बाद कोई पीड़ित गाँठके स्वासिडिनेट भाव सोडा डोसलसे निगोठे रहनेका परामर्श देते हैं। दूसरे दूसरे व्ययकार इसका ऊपर बेडडकामसे देनेको कहते हैं। पीडाके कम हो जाने पर गाँठके ऊपर छारकर पपिसपाडिक्स्सा डेप किंवा एमोनियाकम्पन्डर द्वारा देना चाहिये। गाँठमें अधिक मवादुपैदा हो जाने पर प्लिस्वेटर द्वारा इसे बहा देना उचित है। ज्वर तथा वेदनाके कम हो जाने पर कम्बिवर आयुष तथा टिं टिक बरबहार करे।

**अथक बलरोग ( sub acute rheumatism )**

इस वातरोगमें एक या दो गाँठें बहुत दिन पर्यन्त आक्रान्त रह जाती हैं। कुछ कुछ उबरके लक्षण भी वर्तमान रहते हैं। प्रथम परिचरित या बिह्वन नहीं होता। एक सामान्य कारण या बर भी वेदना बढ़ जाती है। रोगको स्वास्थ जिस तरह रहना चाहिये इससे और भी घट जाता है। अथक वातरोगकी बिजिटसक ममान इसमें जीपय भादिको वरास्था करनी चाहिये।

**पुष्पा बलरोग ( Chronic Rheumatism. )**

सबराबर घुड़डोबा हो यह वराधि होता है। यह कमी कमी लक्षण वातरोगके परिणामक फलसे उपस्थित होता है। इसमें समो गाँठ मोटी करी हो जाती है तथा रोगको चलने फिरनेमें बड़ा बर्दा होता है। रातमें तथा शीत और सर्पाक समय यह वेदना और इसके समो लक्षण दिनाइ पड़ते हैं। जमा कभी बूद अकिलोरी गाँठें बिह्वन हो जाती हैं, उस गाँठवाल ( RheumaticGout ) कहते हैं।

इस रोगमें शरीरमें ठण्डा लगाना उचित नहीं। फलासिन भादि गर्म व्ययहा पदना आवश्यक है। गर्म या टर्बिस बाध तथा गर्धक, नमक और क्षार भादि मिले अमन स्थान कराना चाहिये। पीड़ित प्रथि पर कोई उष्

कक या एनोडाइन जीपय ( काम्तर भोपिभाई वेडेडोना या एकोनाइड लिमिनेट ) माडिश कराना उचित है। आम्पत्यरिक्त जीपयॉमसे पोड शी आइमोडिड, कम्बि भार भायक, फेरि आइमोडाइड, गुंयक, साज्रा, टिं एक् टिना रिसमोसा और गोयिभ भादि प्रयोग करते योग्य हैं। समय समय पर गाँठ पर विल्टर किवा टिं आइमडिन्का प्रसेप बिचा जाता है। एमन्नाष्ट्रम एमोनिया कम्प या मार्किथेरियल ग्लाडर द्वारा गाँठ पर पट्टी बांधनी चाहिये। गाँठ पर व्ययक लगा कर बस पर फलातेड वेडेडर जीपयैले वेदना कम हो जाती है। कमी कमी अचिराम ताडित शीत देनेसे और शरीरको माडिश करनेसे बड़ा फायदा पहुँचता है। रोगको बोल बीजधं घुमने फिरने का परामर्श देना चाहिये। यूरोपोय बिजिटसक डोग छारीगेड, मिभिच भादि घातु मिबा हुआ अल पीनेको अनुमति देते हैं।

**पेशिक बल ( Myalgia or muscular rheumatism )**

पेशीके क्षिपापिकरके बाद अथवा शीतक वायु संस्पृष्ट होनेसे पेशिक घात उत्पन्न होता है। यह रोग प्रायः कृपक और पुर्बल स्त्रियोंका रोग करना है। रातमें अथवा इयत् यह पीडा शुरू हो जाती है। पीड़ित पेशीमें वेदना और बाइएला रहती है, छुने अथवा बिभावे हुनासे यह बढ़ता है। अथानीमें अथापके भाय वेदना भी बढ़ती है। कमी कमी पेशीमें स्पन्दन या आक्षेप उपस्थित होता है। रोगी पीड़ित अङ्गको स्थिरमायस रक्ता पसन् करता है। कहीं कहीं पीड़ित पेशीको धीरे धीरे बचानेस आराम मास्तूम पड़ता है। उदरक सब लक्षण नहीं रहते; किन्तु अमिन्ना और वेदनासे रोगी पीडा सुम्न पड़ जाता है। कबेजे पर आघात नहीं पहुँचता। पीड़े दिना तक प्रथम व्यवस्था रहती है। ठणक वाद पुराना हो जाता है। अथक व्ययहा में अथाप छुनेसे यदना घट जाती है सही पर सर्पाकाल में वायु लगनेसे यह फिर बढ़ जाता है। यह पीडा बार बार हो सकती है।

करी कदा इसक विधिय नाम है। शिरकी पेशी रोगाकारण होनेसे कफेनेडिजना ( Cephalodinia ) ; गलेके पेशी रोगाकारण होनेसे टॉर्टिकोलिस ( Torticollis )

या राइनेक् (Wryneck), पीठकी पेशी रोगाक्रान्त होनेसे डर्गोडिनिया (Dorsodynia); कमर पेशीमें रोगाक्रान्त होनेसे लम्बेगो (Lumbago) तथा पजरकी पेशी रोगाक्रान्त होनेसे प्लुरोडिनिया (Pleurodynia) कहते हैं। इनमेंसे कितने ही विषयोंकी विस्तार रूपसे आलोचना करनेकी जरूरत है।

कमो कमी वायु पजरके नाचेकी पेशी तथा हृष्टर कष्टेल्स् पेकुरोराहम और सेरेल्स् मंगनन आदि मांस पेशी आक्रान्त होती है। निःश्वास प्रश्वामर्ग तथा खाँसने या हिचकी आनेके समय उसको वेदना बढ़ जाती है। कमो कमी प्लुरिस्मके साथ टनका ब्रम हो सकती है। किन्तु प्लुरिसिमें उबरके लक्षण और मर्दन (Friction) मौजूद रहते हैं। समय समय पर जोर खाँसी होनेसे यश्वारोगाके समान दोनों पजरमें पाडा होता है।

लम्बेगो—इसमें पजरको एक दगलमें थोड़ा दोनों दगलमें हमेशा बन कर वेदना होती रहता है। रोगीको उठने बैठनेमें बड़ा दर्द होता है। वह बक्र हो कर चलता है। बवानेले तथा बहुत जगह उत्तापसे वेदना होती है।

राइनेक्—इसमें सर्वदा मन्तक-चालक पेशी आक्रान्त होती रहती है। रोगीका कंधा एक ओर टेढ़ा हो जाता है और हिलाने झुलानेसे वेदना होती है। इनके अलावे कमी कभी प्लाएटर फोसिया, डायफ्राम् और चशुगालककी पेशी भी आक्रान्त हो सकती हैं।

तरुणावस्थामें पीठकी स्तिरतासे रगनी चार्डप। प्लुरोडिनियामें आक्रान्त पार्श्व एक दुसरे टिकि प्लाएटर द्वारा ग्रुप करे। लम्बेगो पीठामें एम्प्लाप्लूम फेरि द्वारा ग्रुप करके उसके ऊपर फलानेल्का वैडेज बांध कर रखना उचित है। दूसरे दूसरे तरीकेमें माष्टर्ड प्लाएटर, तार्पिनका सेक अथवा पापहेड् फोमेण्टेयण विधेय है। शुष्क उत्तापसे वेदना बढ़ती है। कभी कभी कोमलतासे मलनेसे उपकार होता है, लम्बेगो पीठामें मर्फियाका इंजेक्शन करनेसे दर्द कम हो जाता है। क्रोष्ट-परिष्कारके लिये आभ्यन्तरिक विरैचक औषध देना उचित है उसके बाद पीठाणी वाइकाय या आइओडिड अथवा मोडि सालिमिलेट सेवन तथा रातको अफीम दे पसीना निकालनेके लिये उष्ण पानी और वाष्पस्नान

(Vapour bath) कराया जाता है। कहीं कहीं भीगा या सूखा चार्पिं और जोक लगानेमें फायदा होता है।

रोग पुराना हो जाने पर क्रोराइड आयु पमोनिया, पीठाणी आइओडाइड, गोथेकम्, मैजमन, आर्सेनिक, नाना प्रकारके वाल्कम्, कल्चिकम्, टि एक्टिया रेनिमोसो तथा मेजेरियन आदि व्यवहार करनेको विधि है।

पुराने रोगमें प्रदाहान्वित स्थान पर टिं आइओडिन, डिट्टर, अनेक प्रकारकी मारिशण, ताडित सूत तथा करिगान्म (Corriagan's) लौहपात्र आदि मंलन किया जाता है।

गनरियामें होनेवाला वातरोग (Gonorrhoeal Rheumatism)

प्रमेह रोगाक्रान्त व्यक्तिको एक प्रकारका वातरोग होता है। डा० गैरोड् (Dr Garrod) ने उसे पाश्चिम्यरके समान पीडा बतलाया है, किन्तु डा० हचिन्सनने (Dr. Hutchinson) उसे प्रकृत वातरोग कहा है।

घुटनेमें यह रोग अधिक देखा जाता है; किन्तु दूसरी दूसरी स्थानियाँ भी पीडित होती हैं। प्रदाहजनित लिम्फ और मिरम् निकलता है। पीठिन सन्धि देखनेमें रफ्त, चमकोली तथा आकृष्ट होता है, कभी कभी उससे मवाद भी निकलता है। यह पीडा हमेशा होती रहती है और सन्धिके बीचमें मध्यस्थ लिगेमेण्ट और फाटिलेज क्षत होनेसे सभी स्थानियाँ विकृत दिवाई पड़ती हैं। कभी कभी अंगसंचालनमें रोगीको उसमें फाक्चुरपरीका अनुभव होता है। समय समय पर अचलसन्धि (Anchyllosis) उपस्थित होती है।

साधारण लक्षणोंमें प्रारोरिक अस्वस्थता, दुर्बलता इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। इस पीडाके भोगकालमें एण्डोकार्डाइटिस, पेरिकार्डिटिस तथा प्लुरिसि उपस्थित हो सकते हैं। एण्डोकार्डाइटिस होनेसे प्रायः एण्डोकार्डियममें क्षत होता है।

घुटना आक्रान्त होनेसे उसे मार्केट्टर क्लन वाइके (Mc Intyres splint) ऊपर रख कर फोमेण्ट करना चाहिये। प्रमेह रहने पर पहले उसे आराम करनेकी औषध प्रयोग करना उचित है और रातमें डोभर्स पावडरका प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी दुर्बल हो तो पहले जराब पीछे पीठाणी आइओडिड तथा घात-





छोटी सन्धियोंका वात या गाउट (Gout)

छोटी सन्धियोंमें यह एक प्रकारका विपजनित प्रदाह है। इस पीडामें खूनमें यूरिक एसिडका आधिक्य दिखाई देता है तथा पीडित सन्धियोंमें यूरैट आब सोडा संचित होता है। इस रोगका दूसरा नाम पोडाग्रा (Podagra) है।

उक्त व्याधिके निदानके विषयमें चिकित्सकोंके मिनन् मिनन् मत हैं। डा० गाड (Dr Garrod)का कहना है, कि इस पीडामें लहमें यूरिक एसिडका भाग ज्यादा रहता है तथा वह नियमितरूपसे दग्ध न हो कर सन्धियोंमें जमा हो जाता है। रामायनिक परीक्षा द्वारा स्थिर हुआ है, कि पीडित व्यक्तिके खून, मूत्र, क्लिस्टरके रस तथा कभी कभी उदरी रोगजनित सिरममें उक्त यूरिक एसिड पाया जाता है। फिर दूसरी श्रेणीके चिकित्सक, विशेषतः डा० ओर्ड (Dr. Ord) और डा० ब्रिस्टो (D Bristow) कहते हैं, कि विधान-विशेषकी खराबीके कारण वहां पहले यूरैट आब सोडा उत्पन्न होता है तथा वहांसे रक्त संचालित हो कर कर्णके और अन्यान्य कार्टिलेजोंमें संचलित हो जाता है।

यह एक कौलिक पीड़ा है। ३० वर्षसे ज्यादा उम्र वाले व्यक्तिके ही यह पीड़ा होती है। कभी कभी एकको छोड़ दूसरे व्यक्तिके यह पीड़ा धर लेती है। कई जगहमें तो यह देखा जाता है, कि उसका विपात्मक पदार्थ पातु रक्त द्वारा परिचालित होता है। अर्थात् जिस व्यक्तिके यह पीड़ा होगी उमके पोतेकी अपेक्षा नाती ही अधिक आक्रान्त होने हैं। बहुत अधिक मास खानेसे और गराव पीनेसे, मैथुन करनेसे आलसी मनुष्यके ठंडे देशमें रहनेसे, या भीगा कपड़ा पहननेसे और थोड़ी उमरमें शादी करनेसे यह रोग धर सकता है।

कभी कभी अधिक ज्वारीक या मानसिक परिश्रम करनेसे शरीरमें विशेषतः पसीना चलनेके वरत ठण्डी हवा लगनेसे, गाठमें चोट लगनेसे, बेगी खानेसे तथा क्रोध, शोक, अतिशय उल्लास इत्यादिसे यह भी रोग उत्पन्न होता है।

कभी कभी पांवके अंगूठे गाठ विशेषतः मेटटोर्सो फेलेट्रिफल (Metatarso Phatangeal) प्रदेश आक्रान्त होता है। उस समय वह देखनेमें फुटा हुआ और

लाल होता है। कहीं कहीं दूसरी दूसरी सन्धियोंमें भी प्रदाहके चिह्न रहते हैं। पहले सन्धियोंके कार्टिलेजके उपरी-विभागमें यूरैट आब सोडा सूक्ष्माकारमें संचित होता है; पीछे वहांके लिगेमेंट और साइनोवियल विधानोंमें क्रमशः सञ्चित और संगृहीत होता है तथा उसी लिए सभी संधियां मजबूत और विकृत देखी जाती हैं। कभी कभी सभी टोफाई चमड़ेके विदीर्ण करके बाहर निकल पड़ते हैं। समय समय पर कर्ण, नासिका, लेरिंस और श्रावकी पपनियों पर ऐसा पदार्थ देखा जाता है। मूत्रपथ सफाई और प्रदाहयुक्त होता है तथा उसके स्थान स्थान पर टोफाई बाहर होता देखा जाता है।

गाउट प्रधानतः दो प्रकारका है, जैसे (१) नियमित या रेगुलर (Regular) तथा (२) अनियमित या इररेगुलर (Irregular or non-articular)

नियमित गाउट पीड़ा अकस्मान् आरम्भ हो जाती है। पीड़ा आरम्भ होते ही पाकागयमें अग्निकी अधिकता, छातोमें दाह, यकृतकी क्रियामें व्यतिक्रम, इत्कर्म, शिरमें दर्द, शिरका घूमना, दृष्टिकी वैलक्षण्य, आलस्य, स्वभावका परिवर्तन, अनिद्रा, स्वप्नदशन, पैरको पेशोंमें कम्प, दमेकी तरहका कष्ट, अधिक पसीना आना, थोड़ा मूत्र और मूत्रमें अधिक गन्धगी देखी जाती है। कभी कभी रोगके पहले या रोगके समय, मूत्रमें पल्चुमेन पाया जाता है। फिर किसी किसी स्थलमें ये सब लक्षण नहीं भी दिखाई देते और रोगीके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्यके विषयमें भी कोई विशेष विलक्षणता नहीं दिखाई देती। केवलमात्र एक या दो सन्धियोंमें कुछ अस्व-चञ्चना मालूम होती है।

कभी कभी तो रातके अन्तिम समयमें अर्थात् रात २से ५ बजे तक पैरके अंगूठेमें दर्द उत्पन्न होता और बढ़ने लगता है। किसी किसी स्थानमें यही गाठ चारम्बार आक्रान्त होने देखी जाती है। फिर कई बार अन्यान्य छोटी सन्धियां भी पीडित होती हैं। हाथ पैरका बड़ी सन्धियां कभी कभी आक्रान्त होती हैं। इसकी चेदना जलन, फटने और चुभनेकी तरह होती है और दिनमें कम और रातको बढ़ती है और शीघ्र असह्य हो जाती है। बलवान् व्यक्तियोंमें रोगयन्त्रणा अधिक होती

सिरमें सञ्चित होनेसे सन्धिवां फूट जाती, वहाँका चमड़ा छाछ, उल्लत और चमकोछा तथा मसै फँस जाती और फूटा हुआ स्थानमें स गुन्नी धवानेसे दब जाता है। अञ्जन कम होनेसे रक्क बसकित होता दिखाई देता और वहाँ सूख पेश हो जाती है।

शोथ और कम्पके साथ पोडा भारम होतो है। शरीर गर्म और पसीनेसे तरबतर हो जाता है किन्तु प्रबल घात रोगकी तरह अल्पजिक पसोना नहीं दिखाई देता है। मूत्र पोडा काटे रंघना और वह गुरेटस द्वारा परिपूर्ण हो जाता है। क्मावतः २४ घण्टेमें ८ ग्राम यूरिक ऐसिड मूत्रके साथ बाहर निकलता है। ऐसा मान्य होता है कि गठिया घातरोगमें यूरिक ऐसिड अधिक गिर रहा है, किन्तु घास्तपमें न्यामाजिककी अपेक्षा अधिक नहीं गिरता। म्यूरेक्सिड (Murexid) परीक्षा द्वारा यह निर्णय किया जाता है। सिधा इसके, मूत्रमें अधिक परिमाणमें गुलाबी रध या सूजोंकी तरह गन्धरो होतो है। माताछाल उबर होता है। अन्याय्य क्षरणमें रोगीको अनिद्रा बस्थिरता, हृषामान्य, पियासा, कोष्ठबद और पैरमें कपकपी दिखाई देती है। पाकाण्य और यक्यूही क्रियामें व्यतिक्रम हो जाता है। अन्तमें पसीना, बदरामय या अलक्ष्य मूत्रत्यागके बाद उबर और वेदनाका सम्पूर्णरूपमें शक जाता है। चार पाँच दिन अथवा दो चार सप्ताहमें व्याधिही मानित देकी जाती है। पोडा बर्षके अन्तमें फिर पैदा हो जाती है। रोग यदि अर्ध पकड़ सेता है, तो बर्षमें दो या तीन बार भां हो सक्ता है।

इस तरह वारंवार और पदार्थपक्रमसे रोग होने पर पोडा पुरातन हो जाती और पीडित सन्धि दुर्ब विचरित और बिचल हो जाती है। वहाँका चमड़ा बे शमी और नीली चमकियोंसे बिर जाता है। सब सन्धियोंमें पूरेद भाव छोडा सञ्जन हो मिहीवत् हो जाता। उनकी चकणोन प्रा टोफार्ड (Tophal) अस्थिज स्फोटित हड्डीका फूटना कहेते हैं। अन्तमें चमड़ा फर कर छल उत्पन्न हो जाता है और वहाँसे पोसा पदार्थ बाहर निकलता रहता है। कमी कमी भाजे, काल और नाकके कार्टिकेसोमिं टोफार्ड सञ्चित होता है। सदा कालके पिउले मागमें हो

यह दिखाई देता है। वहाँ पहले एक अलञ्जला फोडा उत्पन्न होता है पीछे वह फर जाता और बससे घुपरी तरह एक शुद्ध रस निकलता है। इस प्रकार २५ फुग्मिवां हो जाती है और रसक गाढ़ा होने पर माछाकी गुटिकांनी दिख ई देती है। अथिरु इस बात रोगमें पीडित होने पर शरीर जोणं शीर्षे और दुर्बल तथा पापण्डु वर्णका हो जाता है। इसके साथ ही हृत्कन्य और पेगिर्गोक स्पन्दन भादि प्रसूय मौजूद रहते हैं। समय समय पर सोममें बाँत किरकिटाणा और सामान्य उबर होता है। मूत्रमें पखसुमेन रहता है; किन्तु इसका भापेक्षिक गुह्य अपेक्षा छल स्पून होता है। पीडित व्यक्तिको वेद पीतपर्णिका (आर्टिकेरिया) अठणिका (परिघमा), पामा (एक्जिमा) और विचरिघा (सोरापेनिस्) भादि बर्षरोग होते हैं। किसी किसी रोगीका नाक पदार्थपक्रमसे नित्य उल्लत और छाल होत देकर जाता है।

अनियमित या अत्यान्वराधी बात।

गठिया घात रोग गठिमें दिखाई न दे कर शरीरके अन्याय्य स्थानोंमें आक्रमण करता है, इससे इसके स्थानान्तरणको बात कहते हैं। यह दुस्त (suppressed) और आन्व्यतरिक (Retrocedent) मेदसे वा तरहका है। गठिमें बातके अक्षण सामान्य भावने रह कर अन्याय्य स्थानोंमें प्रकाशित होने पर वह दुस्त हो कर स्थान बिचर (Metastasis) द्वारा अन्याय्य स्थानोंमें सञ्चाशित होता है। इसके रिटोसीडिक्ट गाउड करते हैं।

इससे स्नायुपकडी यदि आक्रान्त हो तो शिरमें बर्षे, शिरका घूमना मुगी और कंधक पी भादि बस्थित हो जाती हैं। कमी कमी मेनिङ्गाइटिस् या संस्थास रोग दिखाई देता ही है। अन्याय्य क्षरणोंमें कई तरहके स्नायु शूल, दाघ पैरकी कष्टरक पत्र पो या अलक्षता बर्णमान रहती है। कमी कमी कटि स्नायु शूल (Sciatica) वस्थित हो जाता है।

पाकपक्ष आक्रान्त होने पर पाकाशयक निरर मन्त्र बाशिपिक वेदना अस्थित की और समय समय पर दुर्बल छता और हिमाहुका पिड दिखाई देता है। कमी-कमी भोजन करनेमें भी कष्ट होता है, कहीं कहीं अलक्ष्य और

उदरामय दिखाई देता है। समय समयमें यकृतकी क्रियामें बाधा उपस्थित होती है और उसमें वसा उत्पन्न होता है। गले और जिह्वामें अनेक परिवर्तन देखे जाते हैं। विशेषता यह होती है कि जीभके भीतर दृढ़ हो जाता है।

हृत्कम्प और हृत्पिण्डके स्थानमें अस्खलन्ता और समय समय मूर्छा और शरीर उण्डा हो जाता है। हृत्पिण्डका स्पन्दन रुमी तो अति मृदु और उदर उदर और कमा तेजीके साथ होता और अनियमित होता है; नाडी अत्यन्त दुर्बल और क्षीण रहती है। किसी किसी जगह चक्षुःशूल (Angina Pectoris) पीड़ा उपस्थित होती है। तरुण वातरोगमें हृत्पिण्डके भीतर जो मत्र परिवर्तन होते हैं उसमें जैसे नहीं होते। किन्तु दृष्टेष्टमें सादा दाग और चालूमें प्राचीन प्रदाह या अपकृष्टताके चिह्न मौजूद रहते हैं।

उमा, गुरुक खांसी और कभी कभी एम्फिसिमा आदि क्वासी रोग भी हो सकते हैं। श्लेष्मामें यूरिक एसिडकी सूक्ष्म कणिकायें दिखाई देती हैं। कभी कभी हिचकी आती है।

मूत्रयन्त्रमें पूर्ववत् नाना विकृति उपस्थित होती है। सिवा इसके प्राचीन सिस्टाइटिस और मूत्रमें पत्थर भी आता है।

चमड़ेमें पुगना एक्जिमा, सोरायैसिस, आर्टि-फेरिया, मुराडगो और एक्नो आदि चर्मरोग और कमा कमा गडराइटिस या दृष्टिमें बाधा उपस्थित होती है।

रूमाटिज्म और रूमाटिक आर्थाइटिसके साथ इस रोगका भ्रम हो सकता है। विशेष विवेचनाके साथ इसका अन्वेषण करना आवश्यक है।

गठिया वातरोगकी प्रबल अवस्थामें कभी कभी मृत्यु भी हो जाता है। किन्तु भीतरी यन्त्रोंके आक्रान्त होने पर विपद् आनेकी सम्भावना रहती है। चारम्बार या पथर्यापक्रमसे या कीलिक भावसे होने पर शरीर धीरे धीरे जीर्ण होता है। मूत्रयन्त्रमें पुराना प्रदाह रहने पर पीड़ा कठिन समझना चाहिये।

रोगके चारम्बार आक्रमणकी अवस्थामें रातके एक मृदु विरेचन घटिका (पिल कलसिन्थके ३ ग्रैन और कैलमेल २ ग्रैन) दे कर दूसरे दिन सबेरे विरेचनार्थ सेना

और सख्ता प्रयोग करनी चाहिये। इस पीडाका विशेष औषध कल्चिकम् है। यह वाइकार्बोनेट या एसिटेड आव पीटास अथवा कार्बोनेट आव लिथियाक साथ मिला देना उचित है। उबर रहने पर उक्त दवायें लाइकर एमो-निया एसिटेडसके साथ देना उचित है। उताप अधिक रहने पर एण्टोफेब्रिन, एण्टोपाइरिन या फेनासिटिन खल मातामें व्यवहार करना चाहिये। कभी कभी सेलिसि लेट या चमोडासे उपकार होता है, पाइपेरिजाइन तो विशेष उपकारी है। चमड़ेकी क्रिया वृद्धि करनेके लिये गर्म जल पीया और गर्म जलसे स्नान किया जा सकता है। वेदना निवारणके लिये अफीम और मर्फियाका प्रयोग करना चाहिये। निद्राके लिये पारय्याल्लिहाइड या सालफोनाल्लु विशेष उपकारी है। पहले लघुपाक आहार देना चाहिये। रोगीके दुर्बल होने पर शौरवा दुग्ध आदि बलकारक द्रव्य और घोड़ी ब्राण्डी (गराव) देना जरूरी है। पोटै या बियर मद्य (गराव) देना मना है। आक्रान्त सन्धिषोमें ओपियाई, वेलेडेना या एकोनाइट, लिनिमेण्ट मल कर फलालेन (कपडा) द्वारा ढाक कर रखना चाहिये। रक्तमोक्षण करना उचित नहीं, किन्तु कभी कभी क्लिष्टर सालानसे उपकार होता है। प्रदाह कम होने पर भी वाण्डेज बाधना उचित है। क्योंकि उससे गांठोंकी सूजन कम हो जाती है।

विरामकी अवस्था अथवा पुरानो पीडासे-रोगीको सदा फलालेन पहनने, नियमित आहार और व्यायाम करनेका परामर्श देना चाहिये। कभी कभी इसके द्वारा भी रोग आरोग्य होता है। अधिक मास, चीनीकी कोई चीज, गराव या फल खाना अच्छा नहीं। मांसमें सेह और पक्षीका मांस व्यवहार किया जा सकता है। कुछ लोग शाक-सब्जीके व्यवहार करनेका परामर्श देने हैं। क्लारेट, मोजल या सेरो थोड़ी मातामें दी जा सकती है। अथवा चाय या काफीका सामान्य रूपसे व्यवहार किया जा सकता है। इससे उपकार ही होता है। बहुत जगहोंमें साधारण नमकी जगह सेन्वा नमकके व्यवहारसे फायदा होता है। सादा साफ जलका व्यवहार करना चाहिये। सोडावाटर पीना कतई मना कर देना चाहिये। चमड़ेकी क्रियाकी वृद्धि करनेके लिये रक्तिम या गर्म जलमें शरीर

पौंड्र छेनेका तखका स्नान (Hot Bath) बरदाया जा सकना है। गिरास्तर किसी विषयकी चिन्ता या रातका जागना भयका नहीं। जहाँ बायुका परिवर्तन नहीं होता वेस गर्म प्रदेशमें रहनेसे विशेष फल लाभकी आशा रहती है। बिरामके समय कार्बोनेट आफ पोटास या लिथिया के साथ प्रारमम् भयवा एकप्लूम् क्लोचिकाइ दिलमें तीन बार सेवन करनेके लिये दिया जा सकता है। अन्याय्य बाँधनेमें कुमारन टो या इलपपूजन सिनकोना क्रीड पटिन बाँधना नार्सेनिड, गोवकम, पोरागो भाएरोगोडिड या आमिड, पैड्यापिड भाय पमोनिपा, फल्कड भाय सीडा या पमोनिपा, आस्ट्रेट भाय पमार्म निम्बूडा रस और विविध घातप जरु व्यवहार्य है।

पोड्रन गाँवों पर एनाडाइन सोडोमिएट मरुता और पुताने वर्टमें पट्टी बाँधना उचित है। स्नान होने पर कार्बोनेट आफ पोटास या लिथियाके सेवासनमें कपडे का एक टुकड़ा मीठा कर कम पर परनेसे फायदा पहुँचता है। पोडाक सन्धिलयसको छोड़ कर किमी सम्पत्तर पत्रमें जामे पर सगियरुप्यमें उलैत्रक सिन्डो मेंबर मरुता उचित है। मस्तिष्क आढास्त होने पर हयर, मन्ध, कन्डर, इत्यादि व्यवहार किये जाते हैं। कभी कभी गाँवमें ट्राय या पट्टी बाँधने पर उपकार होता है।

आमाश्व वातरीगमें मनसापत्र भ्रमयुक्तपमें सङ्क कर इनका रस प्रादायुक्तमीठ पर मलनेसे उपकार होता है। कभी कभी बेरको लकड़ी या आकम्प-सकड़ीकी भाग जला कर उस स्थान पर से कनेसे फायदा होता है। आकका पत्ता या कपमवा पत्ता से ङ्क कर सूको हुई गाँठ पर बाँधनेसे गाँठकी सूजन कम होती है। ऐसे स्थलमें कोई कोई गोड़ावाली गाँठ पर तारवीनका टीक, कपूर सरसों का तेल या कोई लिगिमेस्ट मस कर लमक मिठे हुए कपूरके हर परकी टुकड़ा टुकड़ा कर बाँधनेकी सहाद हैनी है। इसमें गाँठका मरिचिन बिहन एक परिप्लन हो जाता है और पोडा कुछ कम हो जाती है। गन्ध भायुम्बिकाका पत्र ज्वरमें पला कर उमकी भागस सेँकने से रस रोगमें विरुध फल मिश्रता है।

वातज्वर (सं० पु०) अग्नि।

वातशोथ (सं० ह्यो०) वातस्य शोथमिव। वस्ति, पेडू। वातशूल (सं० ह्यो०) वह शूलरोगो वातसे होय -। शूल उग्र रेकी।

वातशोणित (सं० ह्यो०) वातज्ज शोणितं बुधरक पथ। वातरोग। वातरक उग्र रेको।

वातशोणितिव् (सं० जि०) वातरका रोगी, सिले वातरक रोग हुआ हो।

वातश्लेष्मज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर। वात और कफयुक्त आहार तथा पिहार द्वारा बायु और कफ बद्धित हो कर आमाश्वमें जाती है। पीछे यह दूषित वायु और कफ कोष्ठको अग्निको बाहर ला कर उग्र उत्पादन करती है। वातश्लेष्म ज्वर होनेके पहले वातज्वर और कफज्वरके समी पूर्ण लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस ज्वरमें शरीर मीठा कपड़ा पहननेके समान मालूम पृथमेद अर्षान् प्रशियनेचना, निद्रा शरीरकी शुयता गिरायेडा प्रतिश्याय, खाँसी, अधिक पसोना, सम्ताप तथा उबरका मध्यम घेग होता है

विशेष विवरण उग्र-श्लेष्ममें देलो।

वातमज्ज (सं० पु०) वातस्य सत्ता उच् समासात्त। वायुमत्रा अग्नि हुताशन। (माधव ई।१।२१)

वातसङ्ग (सं० पु०) वातरोग।

वातसह (सं० जि०) वातं वातजनितरोगी सहते मह अच् १ अरवन्त वायुयुक्त, वायुरोगमस्त। २ वायुपेग सहन करनैवामा।

वातसार (सं० पु०) विद्रयपूत, बेलडा पेडू। (वेपकलि०)

वातसारधि (सं० पु०) वातः सारधिः महायो वस्य। अग्नि।

वातस्कन्ध (सं० पु०) वातस्य स्कन्ध इव। आकाशका यह भाग जहाँ बायु चलती रहती है।

वातस्तमनिका (सं० ह्यो०) चिध इमयो।

वातसन (सं० जि०) वात एव सना शफो पत्य। शभि। (सूक् ५।१।१)

वातहत (सं० जि०) वातेन हतः। १ वायु द्वारा हत।

२ वायुम वायुके-कोपसे जिम्नकी बुद्धि ठिकाने न हो।

वातहनवरमम् (सं० ह्यो०) वैतवरमंगल रोगमज्ज। इसकी लक्षण—जिन मेजरोगमें वैतवाक भाग या वेदता न हो क

वर्त्मसन्धि-विश्लेषप्रयुक्त निमेष उन्मेषरहित होता है तथा अशक्तताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे वातहत-वर्त्म कहते हैं। नेत्ररोग शब्द देखो।

वानहन् (सं० लि०) वात हन्तीति हन् क्प्। वातघ्न, वातनाशक औषध।

वातहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, वातस्य हरः। वात-नाशक।

वातहरवर्ग (सं० पु०) वातनाशक द्रव्यसमूह। जैसे—महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके परएड, दो प्रकारके घच, दो प्रकारकी निगु एडी तथा हींग।

वातहुडा (सं० स्त्री०) १ वांत्या। २ पिच्छिलस्फोटिका। ३ योपित्, औरत।

वानहोम (सं० पु०) होमकालमें मञ्जालित घायु।

(शतपथब्रा० ६।४।२।१)

वाताख्य (सं० स्त्री०) वात-आख्या यस्य। वास्तुभेद। पूर्व और दक्षिणकी ओर घर रहनेसे उसको वाताख्य वास्तु कहते हैं। यह वाताख्य वास्तु गृहस्थोंके लिये शुभप्रद नहीं है, क्योंकि इससे कलह और उद्वेग होता है। २ वात आख्यासे युक्त, वातनामविशिष्ट।

वाताट (सं० पु०) वात इव अटति गच्छतीति अट्-अच्। १ सूर्याश्व, सूर्यका घोडा। २-वातमृग, हिरना।

वाताण्ड (सं० पु०) वातदूषितौ अण्डौ यस्मात्। मुररु रोगविशेष, अंडरोगका एक रोग जिसमें एक अंड चलता रहता है।

वातातपिक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रसायनका भेद।

वातातीसार (सं० पु०) वातजन्यः अतीसारः। वायुजन्य अतीसार रोग। अतीसार रोग देखो।

वातात्मक (सं० पु०) वात अःत्मा यस्य, कप् समा-सान्तः। वातप्रकृति।

वातात्मज (सं० पु०) वातस्य आत्मजः। वायुपुत्र, हनुमान्, भीमसेन।

वाताटमान् (सं० लि०) वातरूप प्राप्त।

(युक्तयजुः १६।४६ महीधर)

वाताद (सं० पु०) वाताय वाननिवृत्तये अद्यते इति अद् घञ्। फलवृक्षविशेष, बादामवृक्ष (Prunus amygdalas) यह बादाम फल, मिष्ट और वनबादामके भेदसे तीन

प्रकारका होता है। पर्याय—वातघैरी, नेत्रोपमफल, वाताप्र गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, वातघ्न, शुरुकारक, गुरु। मज्जा-का गुण—मधुर, कृप, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विकारके लिये विशेष उपकारक है। (भाष्यप्र०) बादाम देखो।

वाताधिप (सं० पु०) वातस्य अधिपः। वायुका अधि-पति।

वाताध्वन् (सं० पु०) वाताय वातगमनाय अधरा। वातायन, फरोवा।

वातानुलोमन (सं० लि०) वातस्य अनुलोमनः। वायुका अनुलोम करना, वायु जिमसे अनुलोम हो उमका उपाय करना, घातुओंके ठीक रास्तेसे जानेका अनुलोमन कहते हैं।

वातानुलोमिन् (सं० लि०) वातानुलोम अस्त्यर्थे इनि, वायुका अनुलोमयुक्त, जिनको वायुकी अनुलोम गति होनी है। (सुभूत पु०)

वातापह (सं० लि०) वातं अपहन्ति हन-क। वातघ्न, वातनाशकारक।

वातापि (सं० पु०) एक असुरका नाम। यह असुर हृदकी घमनी नामकी पत्नीसे उत्पन्न हुआ था। अगस्त्य ऋषि इसे ला गये थे। (भागवत०) इस असुरने दूसरे कदममें चिप्रचित्तिके औरस और सिंहिकाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था। (मत्स्य० ६ अ०, अग्निपु० काश्यपीय वन) महाभारतमें लिखा है, कि वातापि और वातापि दो भाई थे। दोनों मिल कर ऋषियोंको बहुत सताया करते थे। वातापि तो भेड़ बन जाता था और उसका मांस वातापि उसे मार कर ब्राह्मणोंको भोजन कराया करता था। जब ब्राह्मण लोग खा चुकते, तब यह वातापिका नाम ले कर पुकारता था और वह उनका पेट फाड़ कर निकल आता था। इस प्रकार उन दोनोंने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनोंके घर आये। वातापिने वातापिको मार कर अगस्त्यके खिलाया और फिर नाम ले कर पुकारने लगा। अगस्त्यजीने डकार ले कर कहा, कि वह तो मेरे पेटमें कभीका पच गया। अब उसकी आज्ञा छोड़ दे। इसी प्रकार अगस्त्यने वातापिका सहार किया। (भारत वनप० ६७-६८ अ०)

अपत्यका प्रणाममन्त्र—

“बलाधिर्मन्त्रो वै न वातापिन्ध निपुण्डत ।

उग्रः शेषिया येन समेष्मस्तवः प्रतीयत ॥”

२ शृण्व शरीर । “वाताये पौन इतव” (शृक् १।१८०।८)

वातापिहित् ( सं० पु० ) वातापि ह्येद्योति ह्यप् विभक् ।  
अगत्य मुनि ।

वातापिन् ( सं० पु० ) वातापि नामक अक्षर ।

वातापिपुर—प्राचीन बालुक्यटाञ्ज पुलिकेस्लीकी राजधानी ।  
आज कल इसे वादामी कहते हैं । वादामी बन्द रहेवा ।

वातापिसूत्रन ( सं० पु० ) वातापि सूत्रे इति सूत्र षणु ।  
अपत्यक ।

वातापिहित् ( सं० पु० ) वातापिं हन्ति इत्त विभक् ।  
अगत्य ।

य ताव्य ( सं० लि० ) १ वायुपूर्ण । ( पु० ) २ तन्क,  
अन । ३ सोम । ( शृक् ६।६३।५ ताव्य )

वातापिन्धम् ( सं० पु० ) वायुजनित मेहरोग, वायुके  
कारण धाकका आना । इस रोगमें आँकोंमें सूई धुमने  
की-सी बिदना होती और उनसे घीतल अक्षुष्काव तथा  
रोगीके शिरमें झूल और रोमाञ्च होता है ।

( मानस० मेहेतेगाधि० ) नेत्ररोग रेषो ।

वाताञ्ज ( सं० स्त्री० ) वायुसे सन्ताडित मेघमाला ।

वाताम ( सं० पु० ) वादाम ।

वातामीया ( सं० स्त्री० ) धातेन प्रसूत धामोद्धो यस्याः ।  
कस्तूरी ।

वाताय ( सं० स्त्री० ) पत्न देवका पत्नी ।

वातायन ( सं० स्त्री० ) घातस्य अवनं यमनागमनप्रामी ।

१ पवास, कुरोका । ( पु० ) वातस्यैव अयमं यतिर्वत्य ।

२ वायु, मोहा । ( पि० ) ३ अलिभवे गोहृसे इत्यप । ये  
शृक् १०।१६८ सूक्तके मन्त्रप्रथा अदि ये । ४ अकके गोहो  
त्यम । ये शृक् १०।१६६ सूक्तके मन्त्राण्य अदि ये । ५

रामापत्यक अनुसार एक नगरका नाम ।

वातावनोय ( सं० पु० ) वातायन-प्रवर्तित देवकी एक  
लाका ।

वातायु ( सं० पु० ) घातमवते इति अय बाहुमकात् षण् ।  
हरिण, हिरन ।

वातारि ( सं० पु० ) वानभ्य वानरोगस्य अरिः । १ परपद

पुत्र, रैङ्ग । २ शतमूली । ३ पुत्रदाता नामकी अता । ४  
शैकालिका, मिगुण्डो । ५ ययाती, अन्नवायन । ६ भार्गी  
मारंगी । ७ सुन्दो, गूर । ८ विडङ्ग वायपिङ्गु । ९ गूरप,  
त्रिमोहन्य मोल । १० महातक, मिमर्बा । ११ अणुका  
अणुका अता । १२ शतावरी, सतावर । १३ प्रवेत मिगुण्डो  
सफेद सिंहाक । १४ पीत मोघू पीलो मोघ । १५ शुद्ध  
रसोन, सफेद अहसुन । १६ तिवक वृक्ष । १७ पूषुशिरव  
शपोपक, अहित परपद, सफेद रैङ्ग । १८ नीलपद, नील  
का पीषा,

वातारि ( सं० पु० ) मुक्कट्टि और प्रणाधिकारोगमें औषध  
विशेष । प्रस्तुतप्रजाको—पारा १ भाग, गणक २ भाग  
सिफसा ३ भाग, वितामूक ४ भाग, गुग्गुल ५ भाग, इन्हें  
रैङ्गोके सेहके साथ घेर कर गोली बनाये । अनुपान—  
सोड और रैङ्गके मूत्रका काढ़ा या अदरकका रस और  
तिमतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ  
पर रैङ्गोका तेल लगा स्नैद प्रदान करे । पीछे विरेचन  
होमिसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य मोजन कराये । इससे हृदि  
रोग प्रशमित होता है ।

( मैकभरतना० मुक्कट्टि और प्रणाधि० )

वातारिगुग्गुलु ( सं० पु० ) १ वातधाधि रोगाधिकारमें  
औषधविशेष । २ आमबात रोगाधिकारमें औषधविशेष ।  
प्रस्तुतप्रजाकी—रैङ्गोका तैल, गणक, गुग्गुल और  
त्रिफला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक  
मास तक छगाछार प्रातःकालमें तप्यजलके साथ सेवन  
करनेसे आमबात कटिभूक और पक्वता भादि माना  
प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

( मैकभरतना० आमबातोरगाधि० )

वाताप्य ( सं० स्त्री० ) घात द्वारा पानी पोषण ।

( शृग मन्त्र ताव्य १।१२।१८ )

वातारितपुत्रा ( सं० स्त्री० ) विडङ्ग । ( राकनि० )

वातामी ( सं० स्त्री० ) वानक्य आली यत्न । पाल्य, वायु ।

वाताश ( सं० पु० ) वातप्रशान्ति म्य षण् । पवननाश  
वायुका पीला ।

वाताशिन ( सं० स्त्री० ) वानप्रशान्ति अश-निनि ।  
पवननाशिन, हवा पो कर रदनेवासा ।

वाताशय ( सं० पु० ) वान इव शीघ्रगो अशयः । कुम्भो

अश्व। पर्याय—हयोत्तम, -जात्य, अजानेय। ( शिका० )  
वाताष्टीला ( सं० - स्त्री० ) वातेन अष्टीला । वातव्याधि  
रोगविशेष । यदि नामिके नीचे अष्टीला ( मोल पत्थर )  
सदृश कठिन गाठ उत्पन्न होँ तथा वह गाठ कभी सचल  
और कभी निश्चल भावमें रहे तथा उर्ध्वायतनविशिष्ट  
उन्नत और मलमूत्रका अवरोधकारी हो, तो उसे वाताष्टीला  
कहते हैं । इस रोगमें गुण्म और अन्तर्विद्रिधिको तरह  
चिकित्सा करना होता है । वातव्याधि देखो ।

वातासह ( सं० त्रि० ) वात वातजनितरोग आसहते इति  
आसह अच् । वातुल, वायुप्रधान ।

वातान् ( सं० क्ली० ) वातेन असु । वातरक्त वातरक्त  
रोग ।

वाताहत ( सं० त्रि० ) वायुताडित ।

वाति ( सं० पु० ) वाति गच्छतीति वा ( वातिर्नित् । उण्  
५।६ ) इति अति । १ वायु । २ सूर्य । ३ चन्द्रमा ।  
'वातिशक्तिन्सोमोः' ( रभय )

वातिक ( सं० पु० ) वाताढागतः वात उच् । १ वायुज  
व्याधि, वायुने उत्पन्न रोग । ( क्ली० ) वात ( वातपित्त  
श्लेष्मन्व्यः शमनकोपनयोर्व्यसंख्याने । पा ५।१।३८ ) इत्यस्य  
वार्त्तिकोक्त्य उच् । २ वायुका शमन और कोपन  
व्य । ( त्रि० ) ३ वातिक रोगाक्रान्त, अर्थ वकने  
वाला, वाचाल ।

वातिकवण्ड ( सं० पु० ) वातिकपण्ड, वह जिसके अग्नि-  
दोषसे-म ङकोय नष्ट हो गया हो ।

वातिकप्रिय ( सं० पु० ) अमलचेतस, अमलचेत ।

वातिकरक्तपित्त ( सं० क्ली० ) वायु जन्य रक्त पित्त ।

वातिकपण्ड ( सं० पु० ) वातिकेन पण्डः ।

वातिकखण्ड देखो ।

वातिग- ( सं०-पु० ) वातिं वायुं गच्छतीति गम ड ।

१ मण्डा, अण्डा, वैगन ( त्रि० ) २ घातुवाद्गो । ( मेदिनी )

वातिगम- ( सं० पु० ) वातिं वायुं गमयति प्रापयतीति  
गम-अच् । वार्त्तिकु, वैगन ।

वातिङ्गन ( सं० पु० ) वार्त्तिकु वैगन ।

वातीक ( सं० पु० ) पश्चिमिदेश, एक प्रकारका छोटा पक्षी  
इसके मांसका गुण—लघु, मीतल, मधुर और कषाय ।

( सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ व० )

वातीकार ( सं० पु० ) वातकर । ( अथर्व ६।८।२० )  
वातीकृत ( सं० त्रि० ) वातयुक्त । ( अथर्व ६।१०।६३ )  
वातीय ( सं० क्ली० ) वाताय वातनिवृत्तये दिनः वात उ ।  
काञ्जीर, काजी ।

वातुल ( सं० पु० ) १ वात्या, हवा । ( त्रि० ) २ वायु-  
प्रधान । ३ उन्नत, वाचला ।

वातुलानक ( सं० पु० ) एक नगरका नाम । ( राजतरङ्गिणी )

वातुलि ( सं० स्त्री० ) तरु-तुलिका, वाटुर ।

वातूक ( सं० पु० ) मत्स्यविशेष, एक प्रकारको मछली ।

वातूल ( सं० पु० ) वाताना समूहः ( वातादूकः । पा ५।२।४२ )

इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या उल, यद्वा वाताः सन्त्यस्मिन्निति

वात ( सिन्ध्याग्निभ्यश्च । पा २।६।७ ) इति ल्य 'वात दन्तवलेति

उड्' यद्वा वातानां समूहः वातं न सहते इति वा

( वातान् समूहे च, वातं न सहते इति च । पा ५।२।११२ )

इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या उलच् । १ वात्या, हवा । ( त्रि० )

-२ वायुप्रधान । ३ उन्नत, वाचला ।

वातूलतन्त्र—एक प्रसिद्ध तन्त्रशास्त्र । यह वातूलागम,  
वातूलशास्त्र, वातूलोत्तर वा आदिवातूलतन्त्र, वातूल-  
शुद्धागम वा वातूलसूत्र नामसे प्रसिद्ध है । श्वेतादित्ते  
इस तन्त्रका वचन उद्धृत किया है ।

वातू ( सं० पु० ) वातीति वा-तृच् । वायु, हवा ।

वातेश्वस्तीर्य ( सं० क्ली० ) एक नोर्यका नाम ।

वातोत्थ ( सं० त्रि० ) वातज रोग ।

वातोदर ( सं० क्ली० ) वातेन उदर । वातजनितोदर रोग  
विशेष । इसमें हाथ, गींव, नाभि, कांल, पसलो, पेट,  
कमर और पीठमें पीड़ा होती है, सूखो छाँसी आती है,  
गरोर भारी रहता है, अंगोंमें ऐंठन होता है और मलका  
अवरोध हो जाता है । पेटमें कभी कभी गुडगुड़ाहट भी  
होती है और पेट फूला रहता है । पेट टोंकनेसे चेसा  
शब्द निकलता है, जैसे हवा भंगे हुई मजक टोंकनेसे ।

( भावप्र० उदररोगाधि० )

वातोदरिन् ( सं० त्रि० ) वातोदररोगो ।

वातोने ( सं० त्रि० ) वातमुणयति उण् अण् । वायुहीन ।

वातोना ( सं० स्त्री० ) गोजिहाशुप. गाभी नामको घास ।

( राजनि० )

वातोपधृत ( सं० त्रि० ) वातकषिपत । ( ऋक् १०।६।१७ )

बातामी ( सं० स्त्री० ) ग्याह अस्तौका एक वर्ण। इसमें मगण, भगण, तपण और अस्तमें दो गुण होते हैं।

वातोन्मज ( सं० स्त्री० ) वातन उन्नयनः । वाताधिक, वायुप्रधान । ( पु० ) २ एक प्रकारका सन्निपातवृत्त । इसमें रोगीकी श्वास, जैसी जल नीर सूच्छा होती है तथा यह प्रलाप करता है। इसकी पम्सियोंमें जोड़ा होता है, यह जैसाई अधिक होता है और उसके मुँहका स्वाद कसेना रहता है। यह वातोन्मज उन्नत बहुत मया नक होता है। श्लेष विरल्य वर इन्में देवे।

वार्य ( सं० स्त्री० ) १ वायु सम्बन्धीय । २ वायुमय । ( हृत्पत्रा १६।१६ )

वार्या ( सं० स्त्री० ) वार्यानां समूहः । वार ( वाञ्छिभ्यो वः । पा ४।३।५६ ) इति य द्विवां टाप् । वार्यसमूह ।

वार्य ( सं० पु० ) वरस भण् । १ श्रुयिमेद्, गोल-यव-सक श्रुयि । ( ङी० ) २ साममेद् ।

वार्यक ( सं० ङी० ) वर्यानां समूहः वर्य ( गौरीभ्योऽङि । पा ४।३।३६ ) इति कुम् । १ वर्य-समूह । ( अवर ) वर्यक श्रुयिमिति वर्यक मय । २ वृत्तसम्बन्धी, इन्द्रयव सम्बन्धी ।

वार्यस्य ( सं० पु० ) वर्यसमी श्रुयिका गोत्रापत्य । यह एक प्रसिद्ध वैवाकर्य और आचार्य थे । ( वैश्व० प्रति० १०।२१ ) श्रुक् १०।४५ सूक् और शुक्रपत्रा १।५।२८ मन्त्रमें इनका उल्लेख है।

वार्यसमीप ( सं० स्त्री० ) वार्यसमी सम्बन्धीय । ( हृत्पत्रा १।१।१५ )

वार्यसिक ( सं० पु० ) श्रुयिती ।

वार्यस्य ( सं० पु० ) वर्यस्यपचनकाष्ठ, बछटा बाँधनेका सूत्र ।

वास्तव्य ( सं० पु० ) वर्यस्य एक श्राद्धे श्रुयः । १ रस विरीय, यह श्लेह को पिता वा माताक इन्में संततिके प्रति होता है। वर्यस्यस्य मावाः वर्यस्य श्रुयः । ( ङी० ) २ श्लेह, प्रेम ।

साहित्यमें ब्रह्म तरह वायव्य-वायिकके रतिमायके वर्णन द्वारा श्रुत रस माना जाता है वसी तरह कुछ लोग माता पिताक रतिमायके विभाव, अनुभाव और संभावो सहित वर्णनको वास्तव्य रस मानते हैं। परन्तु

यह सर्वसम्मत नहीं है। अग्निबाशि भाग वास्तव्य रतिके सिधा और प्रकारके रति मायको 'माय' ही मानते हैं।

वास्तव्यशाक ( सं० पु० ) वरस शाकासम्बन्धीय ।

वार्यस ( सं० पु० ) वर्यसके गोत्रापत्य । ( ऐतरेयब्रा० ६।२५ )

वार्यसी ( सं० स्त्री० ) वार्यस्य शाकासे उरपच स्त्री ।

वार्यसीपुत्र ( सं० पु० ) १ आचार्यमेद् । ( हृत्पत्रा १।५।१।११ ) २ नायित, नार्ह ।

वार्यसीपुत्रीय ( सं० पु० ) वार्यसीपुत्रके शाकाध्यायी व्यक्तिके मात ।

वार्यसीमाचर्यवीपुत्र ( सं० पु० ) आचार्यमेद् । ( हृत्पत्रा १।५।१।१० )

वार्यसीय ( सं० पु० ) वैदिक शाकामेद् ।

वार्यसीवर्य ( सं० स्त्री० ) वर्यसीवर्य सम्बन्धीय । ( पा ४।३।६१ )

वार्यस्य ( सं० पु० ) वर्यस्यगोत्रापत्य वरस ( वर्यारिभ्यो वः । पा ४।३।१०५ ) इति वः । १ श्रुयिद्वियेय वरसका गोत्रापत्य । वास्तव्यगोत्रके ५ प्रवर हैं—बीर्ष, अयन, भार्गव, आमशम्भ और आप्नुवत् । वास्तव्यगोत्रकी श्रुयस्य और अथर्वप्रतिशास्त्रमें इसका उल्लेख है। २ एक उद्योतिर्बिद् । हेमाद्रिने इनका उल्लेख किया है।

वार्यस्यगोत्रक ( सं० पु० ) श्रुयिद्वियेय ।

वार्यस्यापन ( सं० पु० ) वर्यस्यगोत्रापत्य युवा, वरस व्यञ्जु ततो मुनि फक् । १ श्रुयिद्वियेय । पयाय—मत्तनाग, पक्षिस्त्वामी । २ कामसूत्रके रचयिता ।

न्याय शब्द और कामशास्त्र शब्द देखो ।

वार्यस्यापनीय ( सं० स्त्री० ) वार्यस्यापन इत कामसूत्र ।

वाद ( सं० पु० ) वद प्रञ् । १ पयार्थबोधेभ्यु वाचय, वह वात-प्योत जो किसी तरहके निर्णयक निये हो। 'वाद' श्राव्यके सोलह प्रकारोंमें द्वावर्णा प्रकार्य माना गया है। सब किसी बातके सम्बन्धमें एक कहता है, नि वद इम प्रकार है और दूसरा कहता है, कि नहीं, इस प्रकार है और दोनों अपने अपने पक्षका युक्तियोंको सामने रखते हुए कथोपकथनमें प्रवृत्त होते हैं, तब यह कथोपकथन 'वाद' कहलाता है।

उत्पत्तिर्पय वा विप्रय अर्थात् दूसरेका पराजयक उद्देश्य



न्यायानुगत वचन परम्पराका नाम कथोपकथन है। यह कथोपकथन तीन प्रकारका है—वाद, जल्प और वितण्डा। जय-पराजयके लिये नहीं, केवल तत्त्वनिर्णयके उद्देशसे जो बात-चीत होती है उसका नाम वाद है। वादमें वादी और प्रतिवादी दोनोंके तत्त्वनिर्णयकी ओर ही लक्ष्य रहते हैं। इसमें दोनों अपने अपने कथनको प्रमाणों द्वारा पुष्ट करते हुए दूसरे प्रमाणोंका खण्डन करते हैं। इसमें सिद्धान्तका किसी तरह अपलाप नहीं किया जाता तथा यह पञ्च-अवयवसे युक्त होता है। फलतः वीतराग अर्थात् अपनी जय वा प्रतिपक्षकी पराजयके विषयमें अमिलापशून्य व्यक्तिकी कथन ही वाद है। तत्त्वनिर्णयके प्रति लक्ष्य न रख कर प्रतिपक्षकी पराजय तथा अपनी जयके उद्देशसे जो बातचीत होती है उसका नाम जल्प है। जल्पमें वादी और प्रतिवादी दोनों ही अपने पक्षका समर्थन और पर-पक्षका खण्डन करते हैं। अपना कोई भी पक्ष निर्देशन न करके, केवल दूसरेके पक्ष खण्डनके उद्देशसे जो कथोपकथन होता है उसका नाम वितण्डा है।

जल्प और वितण्डामें प्रतिपक्षकी पराजयके लिये छल, जाति और निग्रहस्थानका उद्भावन किया जा सकता है। परन्तु वादमें वह नहीं हो सकता। केवल तत्त्वनिर्णयके लिये हेतुभासा तथा और भी दो एक निग्रहस्थानका उद्भावन किया जा सकता है। जो तत्त्वनिर्णय वा विजयके अमिलापो सर्वजनसिद्ध अनुभवका अपलाप नहीं करते, जो श्रवणादिमें पटु हैं, कथनके उपयुक्त व्यापारमें उक्ति-प्रत्युक्ति आदिमें समर्थ अथवा कलहकारी नहीं हैं, वे ही कथनके अधिकारी हैं। फिर जो तत्त्वज्ञानेच्छु हैं, उचित बात बोलते हैं, प्रतिमाशाली हैं और युक्तिसिद्ध अर्थ स्वीकार करने हैं, जो प्रतारक नहीं हैं तथा प्रतिपक्षका तिरस्कार नहीं करते, वे ही वादके अधिकारी हैं। वादमें सभाकी अपेक्षा नहीं, जल्प और वितण्डामें सभाकी अपेक्षा है। जिस जनतामें राजा वा कोई भी क्षमताशाली व्यक्ति मध्यस्थ रहते हैं उस जनसमूहका नाम सभा है।

कथन वा ग्राह्यीय विचारप्रणाली इस प्रकार है। पहले वादा प्रमाणोपन्यासपूर्वक अपने पक्षका स्थापन कर

उसमें सम्भाव्यमान दोषका खण्डन करे। प्रतिवादी अपने अज्ञानादिको दूर करनेके लिये अर्थात् वे वादीकी बातको अच्छी तरह समझ सके हैं, यह दिखलानेके लिये वादीके मतका अनुवाद कर दोष दिखलाने-हुए उसका खण्डन तथा प्रमाणोपन्यासपूर्वक अपने मतका स्थापन करे। इसके बाद वादी प्रतिवादीके कथनोंका अनुवाद करके अपने पक्षमें प्रतिवादी द्वारा दिखलाये गये दोषोंको उद्धार कर प्रतिवादीके स्थापित-पक्षका खण्डन करे। इस नियमके अनुसार वादी और प्रतिवादीका विचार चलता रहेगा। आखिरमें जो इस नियमका उल्लङ्घन करते हैं अथवा अनवसरमें अर्थात् जिस समय परपक्षमें दोष दिखाना होता है उस समय न दिखला कर, दूसरे समयमें दिखलाते हैं, वे भी निगृहीत अर्थात् पराजित होते हैं।

इस नियमके अनुसार विचार करके जयलाभ करने-हीसे वाद होगा ऐसा नहीं, सिद्धान्तित विषय उक्तनियमके अनुसार प्रमाणादि द्वारा सिद्धान्त होनेको ही वाद कहते हैं।

इसका तात्पर्य यदि और भी विशदरूपसे किया जाय, तो यह कहा जा सकता है, कि परस्पर विजिगीषु न हो कर केवल प्रकृत विषयका तत्त्वनिर्णय करनेके लिये वादी और प्रतिवादीका जो विचार हो उसको वाद कहते हैं। प्रमाण और तर्कद्वारा अपने पक्षका समर्थन और पर-पक्षका खण्डन कर सिद्धान्तके अविरोधी पञ्चावयवयुक्त होनेवाली वादी और प्रतिवादीकी उक्ति और प्रत्युक्तिकी वाद कहते हैं। यहाँ यह जड्का हो सकती है, कि वादी और प्रतिवादी दोनोंके वाक्य किस प्रकार प्रमाण-तर्कादिविशिष्ट हो सकते हैं? इसका उत्तर यही है, कि ग्राह्यने जिन्हें प्रमाण, तर्कादि बतलाया है उन्हींके अनुसार वाक्योपन्यास करना होगा, इच्छानुसार वाक्य प्रयोग करनेसे काम नहीं चलेगा।

यदि मनुष्य भूलसे प्रमाणाभास, तर्काभास, सिद्धान्त और न्यायाभासका प्रयोग करे, तो भी विचारके वादत्वकी हानि न होगी। वादविचारके सभी अधिकारी नहीं हैं। जो प्रकृत तत्त्वनिर्णयेच्छु, धार्थ्यवादी, वञ्चकादि दोषशून्य, प्रकृत उपयोगी वाक्यकथनमें समर्थ हैं, जो न समझ सकने पर भी सिद्धान्त विषयका अपलाप नहीं करने

तथा मुक्तिविषय विषयको लोकार करते हैं, वे हो वाक् विचारके अधिकारी हैं। परन्तु मेरी उक्त भोगी इस कथामें मनुष्य यदि प्रमाणादि कद कर प्रमाणांमामादि का प्रयोग करे, तो वाक् नहीं होगा। तत्त्वनिर्णयके लिये वाक्-प्रतिपाद ही वाक्मस्त्रयका उद्भव है तथा अपने प्रसङ्गों में कद-करतेके लिये हेतु और उदाहरणका अधिक प्रयोग मुक्तियुक्त होनेके कारण वाक् विचारको जगद अत्रयको अधिकताका साक्षरं युगा है। उदाहरण वा उदाहरण अत्रयका प्रयोग नहीं करनेसे अत्रय अत्रय सिद्ध नहीं होता, इसीसे सूत्रमें पञ्चाक्षय अत्र-निर्दिष्ट-द्वारा है। पञ्च अक्षय अत्रके अत्र पञ्चका न्यून परिहार द्वारा है, पञ्चाक्षयकी अधिकता होनेसे इसमें दोष न हो कर अत्र अत्र ही होता। सूत्रका अर्थ है कि पञ्चाक्षयवस्तुके अत्र अत्र द्वारा हेतुमात्रका निराश तथा निरालोचनविरोधी अत्र-द्वारा अत्रयमात्रका ही निराश। किंच यथा है।

वाक् ( सं० श्लो० ) वाक्पठोति अत्र विच-पुम् । १ वाच कर, वाक्ता ब्रह्मणेवाका । २ वक्ता । ३ तर्क वा शास्त्रार्थ करनेवाका, वाद-विवाद करनेवाका ।

वाक्पठु- ( सं० पु० ) शास्त्रार्थ करनेमें पढ़, वाद करनेमें पढ़ ।

वाक्पठ ( सं० पु० ) साक्षु अत्रि-वाक्त्रोक् ब्रह्मणेकी कथानी ।

वाक् ( सं० श्लो० ) अत्र विच-पुम् । १ वाच वाक्ता । २ वाक्ता ब्रह्मणे ।

वाक्पठ ( सं० श्लो० ) वाक्पठ-सायें अत्र, वाच वाक्ता ।

वाक्पठ ( सं० पु० ) वेदका साक्षिका तन्निर्णय ब्रह्मणे की लक्षणा ।

वाक्पठि-संग्राह प्रवेशके अन्तर्गत ससिम् अत्रके अत्रवर्ति-वाक्पठका एक बड़ा शब्द । यथा प्राचीनत्वक निर्देशन स्वरूप कुञ्ज-रहाडाके विद्यमान हैं ।

वाक्पठिवाक् ( सं० पु० ) शास्त्रोप विषयोंमें दोषीवाक्ता कथोपकथन, बहस ।

वाक्पुम् ( सं० पु० ) वाक् शास्त्रीय विषय पुम् । वाक्-विषयमें अत्र अत्रय अत्रय, शास्त्रीय अत्रय ।

वाक् ( सं० पु० ) वक्तात् वक्तात्कार्वाण्यपत्नीकत्वम्, वक्तर

अण् । १ कार्वाण्ये त्रिभिः वक्त्रादि, कथामके सूत्रका कथना । वक्तर अत्रय अण् । २ कार्वाण्ये वक्तर, कथामका पेड़ । ३ वक्तर वक्तर वेत्ता पेड़ ।

वाक्पठ ( सं० पु० ) अत्रय वक्तर, वक्तरका पेड़ । वाक्पठ ( सं० श्लो० ) तर्क वा मीमांसामें विद्युत् ।

वाक्पठ ( सं० श्लो० ) वक्तरवत् अत्रयवत्पणा वक्तर-अण् ततश्चाण् । कार्वाण्ये वक्तरवत्पणा वक्तर-अण्, सूत्रपुम्, वक्ती, सन्तुपुम् ।

वाक्पठय ( सं० पु० ) वक्तरपण्ये वक्तरिकाअत्रे विषयतीति वक्तरयण अण् । व्यासदेव, वेदव्यास । व्यासदेव हेतु ।

वाक्पठयि ( सं० पु० ) वाक्पठयणस्यापत्यमिति अत्रयार्थे एम् । १ व्यासके पुत्र शुक्रदेव । वाक्पठयण पथ व्यास एम् । २ अत्रयदेव ।

वाक्पठि ( सं० पु० ) वाक्पठयणके पिता । अत्रय नाम वैद्यवत् अत्रयमें प्रायः लक्ष्मण है ।

वाक्पठि ( सं० श्लो० ) वक्तरं विनोति अत्रयें वक्तरं वक्तरं वक्तरं वेद माननेवाका ।

वाक्पठ ( सं० श्लो० ) मनुष्यिका-श्रितो मनु, सुलेडी । वाक्पठो ( सं० श्लो० ) एक नदीका नाम ।

वाक्पठ ( सं० पु० ) तर्क, बहस ।

वाक्पठिन् ( सं० पु० ) वाक् वक्तरि अत्र यिनि । एक 'जिन्'का नाम । पार्थिव-मार्हत ।

वाक्पठिन् ( सं० पु० ) शाब्दिक अत्रय, बहस ।

वाक्पठय ( सं० श्लो० ) १ अत्रयकार करना । २ तर्क-करना । वाक्पठय ( सं० पु० ) अत्रयवर्णिका एक नगर ।

( म० अत्रयवर्ण )

वाक्पठ-१ अत्रयवर्णके अत्रयवर्ण एक ग्राम । ( म० अत्रयवर्ण-अत्रयवर्ण ) २ अत्रयवर्णके अत्रयवर्णके अत्रयवर्ण एक अत्रयवर्णका नाम । वाक्पठय ।

वाक्पठ ( सं० पु० ) १ अत्रयवर्ण वाक्पठय । २ अत्रयवर्ण, वक्तर ।

वाक्पठय ( सं० श्लो० ) अत्रयवर्णके अत्रयवर्ण, वक्तर । वाक्पठय ( सं० श्लो० ) अत्रयवर्णके अत्रयवर्ण, वक्तर ।

वाक्पठ ( सं० श्लो० ) अत्रयवर्णके अत्रयवर्ण, वक्तर ।

वादायन ( सं० पु० ) वादम्य गौत्तापत्यं ( अश्वदिम्यः फञ् ।  
पा ४।१।११० ) इति फञ् । वादकं गौत्तापत्य ।  
वादाल ( सं० पु० ) मत्स्यमेद, सहस्रद्रा नामक मच्छली ।  
वादि ( सं० त्रि० ) वादयति व्यक्तमुच्चारयति वद णिच्  
( शक्तिवपियजाति । उण् ४।१२४ ) इति इञ् । विद्वान् ।  
वादिक ( सं० त्रि० ) तार्किक ।  
वादित ( सं० त्रि० ) निनादित, वजाया दृशा ।  
वादितव्य ( सं० क्ली० ) वद णिच् तव्य । वाद्य, वाजा ।  
“गोनेन वादितव्येन नित्य मामनुशास्यति ।”

( भारत १३।६६७ श्लोक )

वादिल ( सं० क्ली० ) वाद्यते वद-णिच् ( भूवादिगृन्थो  
णियञ् । उण् ४।१७० ) इति णिन् । वाद्य, वाजा ।  
वादिलवत् ( सं० त्रि० ) वादिल अस्त्यर्थे मनुप् मस्य व ।  
-वाद्य मट्टग, वाजेकी तरह ।  
वादिन् ( सं० त्रि० ) वदतीति वद-णिनि । १ यका,  
बोलनेवाला । २ किसी बातका पहले पहल प्रस्ताव  
करनेवाला, जिसका प्रतिवादीकी ओरसे खण्डन होता  
है । ३ फरियादो, मुद्दई । जो राजद्वारमें पहले पहल  
नालिज करता है, उसे वादी और जिसके विरुद्ध नालिज  
की जाती है, उसे प्रतिवादी कहते हैं ।

वादिमीकराचार्य—आचार्य्यमसति और संततिरदनमालिका-  
के रचयिता ।

वादिर ( सं० क्ली० ) वदरी सट्टग सूदम फलवृक्षे, घेरके  
समान छोटे फलवाले पेड़ ।

वादिराज् ( सं० पु० ) वादिषु वक्तृषु राजते इति राज-  
क्विप् । मञ्जुघोष ।

वादिराज—१ जैनमत-खण्डन और भगवद्गीता-लक्षाभरण-  
के प्रणेता । २ भेदोर्जावन, युक्तिमल्लिका और विवरण-  
त्रण नामक तीनों ग्रन्थके रचयिता । ३ सारावली नामक  
ध्याकरणके प्रणेता ।

वादिराजतीर्थ—तीर्थप्रबन्धकाव्य और रुक्मिणीजविजय-  
काव्यके रचयिता । १३३६ ई०में इनका देहान्त हुआ ।

वादिराजपति—श्लोकत्रयस्तोत्रके रचयिता ।

वादिराजशिष्य—रामायण-संग्रहटीकाके प्रणेता ।

वादिराजस्वामी—१ भृगोलके रचयिता । आनन्दतीर्थकृत  
महाभारततात्पर्यनिर्णयके प्रणेता ।

वादिवागेश्वर ( सं० पु० ) एक प्राचीन कवि । शेषानन्दने  
इनका श्लोक उद्धृत किया है ।

वादिज ( सं० त्रि० ) साधुवादी ।

वादिश्रीवल्लभ—अभिधानचिन्तामणिटीकाके रचयिता ।

वादी ( सं० पु० ) वादिन् उगो ।

वादीन्द्र—१ एक प्रसिद्ध दार्शनिक । चिन्तनभट्टने इनका  
उल्लेख किया है । २ कविकर्षट्टिकाकाव्यके प्रणेता ।

वादीन्द्र ( सं० पु० ) वादिनां इन्द्रः । वादिराज, मञ्जुघोष ।

वादीभसिंह—एक जैन पण्डित । इन्होंने गद्यचिन्तामणि  
नामक ग्रन्थ लिखा है ।

वादीश्वर ( सं० पु० ) वादिनामोश्वरः । वादिराज, मञ्जु-  
घोष ।

वादुलि ( सं० पु० ) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम ।

( भारत १३ पर्व )

वाद्य ( सं० क्ली० ) वादयन्ति ध्वनयन्तीति वद-णिच्-  
यत् । १ यन्त्रवादन, वाजा बजाना । २ वादित, वाजा ।  
पर्याय—आतोद्य । यह वाद्य चार प्रकारका होता है—तन,  
आनन्द, शुपिर और घन ।

बिना तालके गानकी शोभा नहीं होती, गानकी पूर्णता-  
के लिये त लकी आवश्यकता है, यह ताल वादितसे उत्पन्न  
हुआ है ; इसलिये वाद्य प्रति श्रेष्ठ है । फिर यह वाद्य  
तन, शुपिर, आनन्द और घन भेदसे चार प्रकारका है ।  
वाद्योंके मध्य तन्तोगत वाद्यको तन, बंजी प्रभृतिके  
शुपिर, चर्मविनदके आनन्द एवं तालादिको घन कहते  
हैं ।

तत वाद्य यथा—अलाचनी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघु-  
किन्नरी, विपञ्ची, बलुकी, ज्येष्ठा, चित्रा, ज्योषवती, जया,  
हस्तिना, कुञ्जिका, कूर्मी, शारङ्गी, परिवारिनी, त्रिजवी,  
शतचन्द्री, नकुलीष्ठी, ढंसयी, औडम्बरी, पिनाकी, निवन्त्र,  
शुष्कल, गङ्गा, चारणहस्त, रुद्र, गरमण्डल, कपिलास,  
मधुस्यन्दी और घोणा प्रभृति तन्तोगत वाद्ययन्त्रको तत  
वाद्य कहते हैं ।

शुपिर वाद्य यथा—बंजी, पारी, मधूरी, तिसिरी,  
गङ्गा, काहल, तुरही, मुरली, बुका, गृद्धिका, स्वरनाभि,  
सिंगा, कापालिक, बंजी और चर्मबंजी प्रभृति शुपिर  
वाद्य है ।

मानवबाध यथा—सुरज, परज, दंडा, बिम्बक, कर्णबाध, मज, मन, सट्टा, सावडा, सिपस्य करट, कमर, मेरो, कुइका, हुइका, मनस सुरडी, पड्डी, बुइकी, दीरिडशाडी, डमर घुमुकी, मइइ, कुपइली, तड गुनामा, रज, अमिघट, तुमुमुमी, रज कुइकी, वडुँर और उपगङ्ग प्रभृति मानव-बाध कह्यते हैं।

काव्यप्रबंध अर्थात् कलात्मक प्रभृतिभेद मन कहते हैं। पुराणमें किसी दुर्ग धरनाका अन्वयन करके संगीत सामोहरकार लिखते हैं कि उचित्यो और सत्यनामा प्रभृति श्रेष्ठ्यकी भाँट पररामियोंके विवाहकालमें ये बातें प्रकारके वाद्य एक साथ बजाये गये थे। इन बातों प्रकारके वाद्यके मध्य वैभवाओंके तब, गण्यकोंके सुविर, वास्तोंके आनन्द एवं किन्नरोंके मनबाध थे। किन्तु मग-पान्दभीष्टानुपूर्वी पर अन्तार छे कर ये बातें प्रकारके वाद्य इस प्रत्यक्षबनमें छे आये, तबसे ये वाद्य पृथकीमें प्रवर्द्धित हैं।

विष्णुमन्त्रमें ये सब वाद्य बजानेसे विष्णु सम्पुष्ट हो कर अनिमित्त फल प्रदान करते हैं; इसलिये विष्णुमन्त्र में प्राता और सन्ध्याके समय इन सब वाद्योंका बजाना उचित है। शास्त्रमें जो विष्णुशब्द अमिहित है, वह केवल उपसङ्घ है। विष्णु शब्दसे समी वैभवाओंका बोध होता है; अतः सब वैभवाओंके मन्त्रमें उसी तरह बाजा-बजानेकी विधि है।

शिवमन्त्रमें षड्ज (कांस्य निर्मित करडाळ), धूर्जमन्त्रमें शङ्ख, दुर्गामन्त्रमें बशी तथा मातुरो बजाना निषेध है एवं विरंचिके मन्त्रमें ङाक और छस्तीके मन्त्रमें घट्टा नहीं बजाना चाहिये। यदि कोई बाधादि करनेमें असमर्थ हो, तो ये घट्टा बजा सकते हैं, कारण घट्टा सब वाद्योंका अक्षय बतलाया गया है।

बाध सङ्गीतका एक प्रधान अङ्ग है। गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनोंके एकत्र समावेशको ही संगीत कहते हैं। कुछ लोग गीत और वाद्य इन दोनोंके संयोग ही संगीत कह गये हैं। उनके मतानुसार गीत और वाद्य ही प्रधान हैं, नृत्य इन दोनोंका अनुयायी है। कोई कोई तो गान वाद्य और नृत्य प्रत्येकको ही संगीत

कहते हैं। कारण, वाद्याभावसे गान और नृत्य शोभा नहीं पाते।

यह बाध फिर तानके अधीन है, बे-ताड बाधादि लोगोंके सुखदायक न हो कर केवल क्रोधप्रद होत है। वह तान फिर विधात्मक अर्थात् काळ (क्षणदि) क्रिया (ताडकी घटना), मान (दोनों क्रियाओंके मध्य विधाम) नामक तीन विभागोंके समाभय हैं। तान शब्दसे व्युत्पत्तिगत अर्थसे इसकी सार्थकता प्रतिपन्न होती है। प्रतिष्ठार्थक वाक्य 'तड' धातुके बाद भू प्रत्यय द्वारा तान शब्द निष्पन्न होता है। इससे बोध होता है, कि गान, वाद्य और नृत्य ये तीनों जिसके द्वारा प्रतिष्ठित होते हैं, उसे ही तान कहते हैं। काळ, मार्ग (गति-पथ) क्रिया, अंग, प्रह, आति, कडा, रूप, पति और प्रस्तार ये दशों तानके प्राणखण्ड हैं। इन दशों प्राणात्मक तानके मानवैवादी व्यक्तिको ही संगीत प्रवीण कह सकते हैं। बे-ताड मानवैवादी व्यक्तिको संगीत विषयमें सूत कहलैसे भी अर्थयुक्ति नहीं होती। जिस तरह साधारण लोका बिना कर्ण (पतवार) को सहायता के बिपद्यके सिवाय कमी सुपधगामिनी नहीं हो सकते उसी तरह बे-ताड गाना मानव प्रदान करनेक बड़े कर्ण कट्ट ही होता है।

ताडके दस प्राणात्मागत 'कस' मात्रा नामसे अमिहित होता है। इस-मात्राके पाँच मेरू हैं, यथा—अणुद्रु, द्रु, छद्रु, शुद्र और प्लुद्र। इनके सांकेतिक नाम—अणु, द, छ, ग और प। इन्हें छिपियव करनेके समय—, ०, १, १, १, इस प्रकारसे लिखना होता है—। एक सी पद्यपत्र अपर्युपरिमावसे रज कर सूँ द्वारा गाँपमें मितना समय लगता है, उसे क्षय कहते हैं। एक क्षयमें अणु द्रु वा अणु, दो क्षयमें द्रु वा द, दो द्रुयमें (चार क्षयमें) छद्रु वा छ, दो छद्रुमें (आठ क्षयमें) शुद्र वा ग एवं तीन क्षयमें (बारह क्षयमें) प्लुद्र वा प होगा। किसी किसी संगीतक पंडितने पाँच छद्रु अर्णोंके उच्चारण समयके एक क्षयमात्रा बतलाया है एवं तदनुसार ही अणुद्रुतादि मात्रा काळ निर्दिष्ट किया है।

इन सब मात्राओंके विभिन्न प्रकारके बिन्याससे बहुसंख्यक तानोंको उत्पत्ति हुई है। उनमें कठिपय

तालोंके नाम तथा माताओंके विन्यास नीचे दिखलाये गये हैं। ताल प्रथमतः 'मार्ग' और 'देशी'भेदसे दो प्रकारका है। ब्रह्मादि देवगण और भरताडि संगीतविदुगण देवदेव महादेवके सामने जो संगीत प्रकाश करते थे, उसे मार्ग एवं भिन्न भिन्न देशके रीत्यनुसार तत्तद्देशवासियोंके चित्त जिसके द्वारा आरुप और अनुगंजित होते हैं, उसे संगीत कहते हैं। इस तरह संगीत दो प्रकारके होनेके कारण ताल भी दो प्रकारके हैं।

संगीतविशेषमें सुनिपुण व्यक्ति ही गायक या नर्तकके अननिराकरणनिमित्त कांस्यनिर्मितघनवाद्य 'अर्थात् 'करताल' वा 'मजोरा' आदिके आघात द्वारा ताल बता देते। तालमें सम, अतीत और अनागत—ये तीन प्रकारके ग्रह हैं। एक साथ गान और ताल आरम्भ होनेसे उसे समग्रह, गीतारम्भके पहले तालके आरम्भ होनेसे अतीतग्रह एवं गानारम्भके बाद तालके आरम्भ होनेसे अनागतग्रह कहते हैं। क्रियाके समय सामान्य सामान्य विश्रामको लय कहते हैं। लय द्रुत, मध्य और विलम्बित भेदसे तीन प्रकारका है। अति शीघ्रगतिको द्रुत, उसकी दूनी धोमी गतिको मध्य एवं मध्यापेक्षा दूना धोमी गतिको विलम्बित लय कहते हैं। इन तीनों प्रकारकी लयको फिर समा, स्रोतोवहा और गोपुच्छा, ये तीन प्रकारकी गतिया है। आदि, मध्य और अन्तमें एक ही समान रहनेको समा, जलके स्रोतकी तरह कभी द्रुत और कभी मन्दगतिसे गाये जानेको स्रोतावहा एव द्रुत, मध्य और विलम्बित, इन तीनों ही भावोंमें गाये जानेको गोपुच्छा गति कहते हैं। सरुहन श्लोकादिमें जिहाके विश्रामस्थानको जिस प्रकार यति कहते हैं, उसी प्रकार तालके लय प्रकृतिनियम भी यति नामसे अभिहित हैं।

वाद्यमें ताल, यति और लय जिस प्रकार आवश्यक हैं, मातानिरूपणमें भी इनकी वैसी ही आवश्यकता है। माताकी समताकी रक्षा नहीं होनेसे संगीतका पद भंग हो जाता है उस संगीतकी कोई मर्यादा नहीं। इस कारण शिक्षार्थीको विशेषरूपसे माताके ऊपर ध्यान रखना चाहिये। मनुष्यकी नाडीकी गतिके परिमाणसे अर्थात् एक आघातके बाद विरामान्तमें फिर आघातके

समय तक १ माता धर कर ले जा सकते हैं। इस तरह एक एक आघातको एक माता काल स्थिर कर उसीका दीर्घ प्लुत करके एक, द्वि, त्रि प्रभृति माताकाल निर्दिष्ट होता है। घटिकायन्त्रके समविरामान्तर आघात ले कर भी माताका निरूपण हो सकता है। हमारे देशके कोई कोई गायक और वादकगण अपनी अपनी इच्छाके अधीन अर्थात् अपने स्वर और हाथोंके वजनके अनुसार काल स्थिर कर लेते हैं।

गायक और वादक एकमात्रा काल मान कर जो समय स्थिर करेंगे, द्विमात्रा काल स्थिर करनेमें उम्मी निर्दिष्ट एकमात्रा कालका दीर्घ करना होगा। ये त्रिधा चतुर्मात्रामें उम्मी तरह तिगुणा वा चौगुणा समय घेर लेंगे। उसी तरह ८ मात्राओंका एकत्रित करनेसे एक मार्ग होता है। हिन्दु तालमें कितनी मात्राएँ अर्थात् कितनी मात्राओंमें एक एक ताल होता है, वह तालविशेषके पर्यायसे जाना जाता है। तालके समान विभागोंका नाम लय एवं लघु गुरु निर्देशका नाम प्रश्न है। संगीतके छन्दकी तरह तालका भी पद है। इस पद वा गिराके चार भेद हैं, यथा—वियम, सम, अतीत और अनाघात। इनके मध्य फिर विराम, सुहर्ष, अणु, द्रुत, लघु प्लुत, अधवा अणु, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत, विराम और लघुविराम ये सात अङ्ग हैं।

मार्ग और देशी, इन दोनों तालोंके मध्य पहले मार्ग, इसके बाद देशी तालके नाम और माताविन्यास प्रदर्शित किये जाते हैं।

मार्गताल ।

चञ्चत्पुट, चाचपुट, पट् पिनापुत, सप्तकेष्टाक और उद्वपट, ये पाँचों मार्गताल पहले युष्माक्रमसे देवदेव महादेव के सद्योजात, वामदेव, ईशान, अघोर और तत्पुरुष, इन पाँचोंके मुखसे उत्पन्न हुए। ये पाँचों ताल देवलोकमें ही व्यवहृत होते हैं।

मार्गताल ।

संख्या	तालके नाम	मात्रा संख्या	मात्रा-विन्यास
१	चञ्चत्पुट	८	६६६६
२	चाचपुट	६	६॥६
३	पट् पिनापुत	१२ वा १४	६६६६६ वा ६६॥६

संख्या	कारके नाम	मातासंख्या	माता-विन्द्यास	संख्या	कारके नाम	माता संख्या	माता-विन्द्यास
३	सगरके छाक	१	११११	३५	अप	६ वा ८ वा ०३	१३१००६ वा १३१००६
५	अनुपद	३	११११	३६	वज्रमाखी	०	००००१००६
	देखी वाम			३७	ईसनाद	८	१५००६
६	भावि वा रास	१	११	३८	सिंहनाद	८ वा ३	१३११५वा १३११५
७	द्वितीय	३	००१	३९	कुक्कुट	३	००१
८	तृतीय	१३	०१ वा ००१	४०	सुरकुडीक	२ वा ६	००१०० वा ००११५
९	चतुर्थ	२३	१०	४१	शरमयीक	३ वा २३	११००० वा १०
१०	पञ्चम	१	००	४२	सिंहमन्त्र	३२	१३११५०००६३
११	शिखाकुपीक	११	११११११	४३	ब्रिमजू	३	१३१३ वा १११
१२	द्वयप	३	००६	४४	रङ्गमरण	३	१११३१
१३	सिंहचिकन	१६	१३१११११११	४५	मञ्जक	८ वा ५ वा १५१	१३१३१११११०० वा ११११११११००
१४	रतिनीक	६	१३१३ वा १०००००००	४६	मुद्रितमञ्ज	८	११११११
१५	सिंहकोक	२३	१०००	४७	मञ्ज	८	११११११
१६	कल्प	० वा ५	००६१ वा ००६	४८	कोकिलमिथ	६	११११
१७	धीरप्रियम	४	१००६	४९	मिःसावक	२ वा १	११ वा ००
१८	रंग	४	००००६	५०	राजविद्यायद	४	१३००
१९	श्रीरङ्ग	८	१३१११	५१	अथमङ्गल	८	११११११ वा १३११११
२०	अचारी	१५	००१००१००१००	५२	मस्तिकामोद	४	११००००
			१००१००१००१००	५३	विजयापण	८	११३१३१
२१	प्रत्यङ्ग	८	१३१३	५४	कीड़ा वा अरुच	मिःसावक १	००
२२	यतिमन्त्र	२	००१	५५	अथरी	८	१३१३ वा १३१३
२३	राजनीक	४	१३१	५६	मकरदण्ड	४	००१
२४	ईमलीक	५	११	५७	कीर्ति	१० वा ९	१३१३१ वा १३१३३
२५	वर्षानिगम	४	००१३	५८	श्रीकीर्ति	३	१३१३
२६	मिमिगम	६ वा १३	१३१ वा १३०	५९	प्रति	२ वा ३	१०० वा १३०
२७	राजश्यामलि	८ वा ५१	००११००६ वा ००१०१३	६०	विजय	६ वा ८	१३१३ वा १३१३
२८	रङ्गोद्योत वा रङ्गोद्योत	१०	१३१३१३	६१	विश्रुमाखी	६	१००००३
२९	रङ्गमदीयक	१०	१३१३३	६२	मम	२ वा ३३	१०० वा ११०००
३०	राजताक	१२	१३००६१३०	६३	मन्त्र	३	१००३
३१	रपण	५	१००१	६४	मस्तिका	५ वा ९	१००६ वा १३१३१
३२	मिथ	१०	००००००००००	६५	दीपक	०	०१०१३ वा ००१३३३
			००००१३०००६३	६६	अदीपक	४	१३
३३	अनुपद	३	११००६	६७	डेखिका	३	१३३ वा १३३
३४	सिंह विप्रोक्त	२४	१३१३३३३३३३				







वाद्यभारुड ( सं० क्लो० ) वाद्यं वादनीयं भारुडं । वाद-  
नीय पात्र, मुरज आदि वाजे ।

वाद्ययन्त्र ( सं० क्लो० ) यन्त्रविशेष । यह सांगीतका एक  
अंग गिना जाता है। इसे मुख और हाथसे बजाना  
पड़ता है। अति प्राचीन कालसे ही आर्यसमाजमें  
वाद्ययन्त्र तथा यन्त्रवादनका व्यवहार चला आता है।  
आर्यगण वाद्यसांगीतकी उच्चतर स्वरतरंगमें उन्मत्त हो  
उठते थे, केवल युद्धमें ही नहीं, वे सासारके सुखमय  
निकेतनमें बैठ कर वाद्ययन्त्रके सुमधुर शब्द और शब्द  
विन्यासमें भी अपनेको आनन्दसागरको अगम्य जल राशि  
में डुबो देते थे। ऋग्वेदसहिताके ६।४७।२६-३१ मन्त्रमें  
युद्धदुन्दुभिकी कथा है। "यह वाद्य उच्च स्वरसे विजय-  
घोषणा करनेवाला पञ्च सैनिकोंका बलवर्द्धनकारी था।  
यह दुन्दुभि सष व्यक्तियोंके निकट घोषणा करनेके लिये  
नित्य उच्च रव किया करती थी।"

इन सष उक्तियों द्वारा जान पड़ता है, कि आर्यगण  
दुन्दुभि वाद्यके शब्दसांगीतसे युद्ध करनेके लिये उत्फुल्ल  
हो उठते थे। उक्त शब्द उन लोगोंको बलप्रदान करना  
था। इससे अनुमान होता है, कि उस प्राचीन वैदिक  
युगके आर्य लोग वाद्यसांगीतकी शक्तिसे किस तरह  
विमोहित होते थे एवं वे उस समय वाद्यविशेषके ऐक्य  
तानवादनमें कैसे पारदर्शी थे। वैदिकयुगके बाद  
ब्राह्मण और उपनिषद्युगमें आर्योंके अन्दर वाद्ययन्त्रका  
विशेष प्रभाव था। यागयज्ञादिमें शंखघटाओंकी आवाजों  
से दर्शा दिशाएं गूँज उठती थीं। रामायणीय और  
महाभारतीय युगमें हम लाग रणभेरी, दुन्दुभि, दमामा  
प्रभृति अनेक सुपिर और आनन्दयन्त्रका उल्लेख देख  
पाते हैं। ये वाद्ययन्त्र उस समय एक साथ बजाये जाते  
थे, इसमें सन्देह नहीं।

राजा युद्धिष्ठिर जिस समय इन्द्रप्रस्थके राजसिंहा  
सन पर विराजमान थे, उस समय भारतमें वाद्ययन्त्रका  
बहुत आदर था—उस समय राजकन्याएं तथा सम्भ्रान्त  
स्त्रियां गीत, वाद्य और नृत्यकी शिक्षा ग्रहण करती थीं।  
विराट्राजके राजभवनमें शृहन्नला वेशमें अर्जुनका नृत्य-  
गीतकी शिक्षा-प्रदान करना ही उसका यथेष्ट प्रमाण है।

पुराणसे जाना जाता है, कि एकमात्र सरस्वतीदेवी

ही वीणा बजानेमें समर्थ थीं। महर्षि नाम्द वीणा बजा वज्र-  
कर हरि-नाम लेते तो थे, किन्तु उनका वह वाद्य राग,  
ताल तथा लयमें पूर्णरूपसे व्यक्त नहीं होता था। इस  
सम्बन्धमें इस तरहकी एक कहावत है—नारदमुनिके मनमें  
अभिमान था, कि वे संगीतशास्त्रमें विशेष पारदर्शी थे।  
उनके उस अभिमानको तोड़नेके लिये एक दिन भगवान्  
विष्णु नारदको साथ ले कर भ्रमण करनेके छलसे देव  
लोकमें जा उपस्थित हुए। नारदने बड़ा पर कई एक  
हस्तपदादि भन्न नरनारियोंको देख कर दुःखित चित्तसे  
उनकी उस करुण दशाका कारण पूछा। - इस पर उन  
लोगोंने जवाब दिया—“हम लोग देवादिदेव सृष्ट राग  
रागिणी हैं, नारद नामक एक ऋषिके अममय पञ्च  
अशास्त्रमतसे रागरागिनी आलाप करनेके कारण हम  
लोगोंकी यह शोचनीय दशा हो गई है।” नारदने उस  
समय भगवान्की छलना समझ कर नाना प्रकारसे  
भगवान्की स्तुति करते हुए वहासे प्रस्थान किया।

इस कहावतमें जो कुछ भी हो, किन्तु वास्तविकमें  
साधना नहीं होनेसे वाद्यसांगीत ठीक नहीं होता, यह  
अच्छी तरह समझा जाता है।

हम लोगोंके देशका वीणायन्त्र ही सर्वप्राचीन है। यह  
यन्त्र सरस्वतीदेवी और नारदमुनिके अत्यन्त प्रिय  
था। समय पा कर वीणाके आकारमें परिवर्तन हुआ  
और उसीके साथ साथ उसके नाममें भी हेर फेर  
हुआ। यह स्वरवीणा भी कहलाती है। स्वरवीणा नाना  
प्रकारकी होती है, उनमेंसे जिसमें एक तार रहता है,  
उसे एकतंत्री, दो तारवालीकी द्वितंत्री, तीन तारवाली-  
को त्रितंत्री कहते हैं। दिल्लीके पठान सम्राट् अलाउद्दीन-  
की सभाके पारस्य देशीय असाधारण संगीतशास्त्रविद्वाने  
इस त्रितंत्री वीणाका नाम सितारा रखा। सप्ततारयुक्त  
वीणाका नाम परिवादिनी है। तुर्कोंके खड द्वारा जो  
वीणा बनाई जाती है, उसे कच्छपी कहते हैं, यह इस  
समय 'कच्चुया सितार' कहलाती है। इसी तरह सप्ततंत्री  
युक्त वीणा भी है।

भारतके ऐतिहासिकयुगमें भी वाद्यदिका यथेष्ट  
परिचय मिलता है। प्राचीन नाटक प्रभृति ग्रन्थोंमें उसका  
उल्लेख है। केवल भारतमें ही नहीं, मध्य-एशियाखंडके

सुप्रसन्न मनोवीर्य, कासवीर्य प्रभृति राज्यवासी भी महानन्दने महोरसवादिमें वाद्य बजाने थे। उस समय भी देवमन्त्रितमें शङ्ख बज्जा तथा वशी प्रभृति वाद्य बजानेको रोति थी। कुरानमें वाद्य बजानेका उल्लेख महा है, येना ज्ञान कर सुमनसमानोंसे सिरीय तथा पारम्पका पुरातन संगीत मद्य कर ज्ञाना था, किन्तु पीछे अमोका हाकल अन्न रसीइके बस्ताइसे फिर गाने बजाने की प्रतिष्ठा हुई। इनकी मूरतुक बाद् बलीकागण जितने ही विज्ञासमिप होते जाते थे, उतना ही गान और वाद्य की उन्नति होती जाती थी।

संगीतोत्सवाही राजाओंमें भारतक मुगलममज्राद् मज्जरताइकी सर्वश्रेष्ठ आसन विधा जा सकता है। वे राज्यशासनके समय युद्धविग्रह तथा व्यवस्थाप्रणयनमें निरन्तर छोन रहने पर भी संगीतके अनुगोमनमें यथेष्ट समाग्र प्रकाश करते थे। उनकी समामें सुविधवात गायक गोपाक नायक, सिवां तानसैन - भृति विद्यमान थे। कहते हैं, कि दोपक गानमें गमा मद्य हो ज्ञानक बाद् तानसन सहनारं विचार करक रागरागिनियोंका आभास करते थे।

भारतवागिनियोंकी तरह प्राचीन यूनानियोंकी भी यही धारणा थी, कि देवगण ही संगीतविधा और वाद्य यन्त्रके सृष्टिकर्ता हैं। इसीलिये उन लोगोंमें एक एक देवनाको उनके मिय एक एक वाद्ययन्त्र दे कर सजा रखा है। शिवके हाथमें त्रिपाण, विष्णुके हाथमें शंख, सरस्वतीके हाथमें वीणा तथा ब्रह्मके हाथमें वंशी एवं अन्त्याय दिन्दु देव-बैबियोंके हाथोंमें त्रिस तरह मित्र मिल्ल वाद्य यन्त्र परिचोमित देने जाते हैं। इनकी तरह यूनानियोंके मित्रमा मरुकी प्रभृति देवनाओंके हाथोंमें वाद्ययन्त्र विद्यमान हैं।

येना कहा है कि एक समय नीलनदमें बाढ़ आनेसे एक बार ही बहुसंख्यक मछलियां और कछुए जिनारे की मुमिम आ गये। उनमेंसे एक कछुपका मांस खव पीरे पीरे गन् गया तब भी पृथग्लिध पर कुछ नस शुक्ररूपसे विद्यमान थीं। एक दिन वरुण देव (Mercury) नदीके जिनाईक्षणम कर रहे थे मरु म्मान् उसी कछुपकी पीठ पर उनका पाँव पड़ गया।

पाँवके आघातसे तद्भ्रमन्तारम्य शिराओंसे एक सुन्दर स्वर उत्पन्न हुआ। उस समय मरुकी उस उठा कर बजाने लगे, उसीसे ज्ञायर (Jyr) नामक प्रथम वाद्ययन्त्रकी सृष्टि हुई। उसी ज्ञायर यन्त्रका अनुकरण करके परिवर्तिकाळमें हार्प (Harp) एवं इसके बाद माना प्रकारके तारयुक्त यन्त्रोंका आविष्कार हुआ। सिंगा बहुत पहलेसे ही प्रचलित था। मै स बा गोच सो गको कोबला करके बजानेकी रीति इस समय भी प्रायः सभी देशोंमें देखी जाती है। तार्थिका बना हुआ रामसिंगा इस श्रु गवाघसे स्तम्भ है।

प्राचीनकालमें भारतकी तरह मित्रराज्यमें भी सि गा एवं एक प्रकारक डाकका पूरा प्रचार था। मित्रदेशीय क्षेत्र इनके अलावे ज्ञायर तथा एक प्रकारकी बंशो भी बजाते थे। हिमोपेद्राके समय भी मित्रमें गीत वाद्यय का यथेष्ट समाग्र था, किन्तु अब यह देश शैमनों क अधिकांशमें खडा गया, तब राजपुत्रोंकी आजासे गीत वाद्यय बन्द कर दिये गये। पश्चिमाक मध्ययुद्धों बाबिजन राज्यमें तथा प्राचीन पारस्यमें विज्ञासिताकी बढ़तीके साथ साथ गानवाद्ययकी विरथी उन्नति हुई। यहूदी लोग जिस समय यूनानक अधीन मित्र राज्यस भ ग खड़े हुए उस समय उन क्षेत्रोंमें वाद्यवादि का अभाव नहीं था। किन्तु उनके वाद्ययन्त्रोंकी आबाज उतनी अच्छी नहीं होती थी।

इस समय समाजके श्रु अभाव न होनेके कारण मर्क्यदा ही युद्धविग्रह उपरिचयन हुआ करता था। इस कारण उस समयक गानवाद्यय कयम अंशमाकी प्रभृति का उत्तेजित करनेबाछे होते थे। इसीलिये मरुयेदक पठ मंडलके ४४थे सूत्रमें तुम्बुमिके वसप्रदान करनेवाला वाद्यय बजा गया है। उस समय योञ्जागण जिन्य तरह मयंकर देशमूर्यमें सुसंज्ञित हो कर मोपय्य मूर्ति धारण करत थे, उनके वाद्यय यन्त्र भी उसी तरह मयागन इत्यु करते थे। इतिहासक पढ़नेसे पता चलना है, कि कार्ये शोय और हानिबल आमाके युद्धमें (क्र० पू० २०२ अन्त में) ८० हार्थियोंके साथ शैमनोंकी पद्धति करनके मिये अग्रसर हुए, इस समय रोमनोंन इस तरह मयहुद अरोरव किया था, कि सब हाथी मयसात हो कर

इधर उधर भाग गये। मिकण्डरके समय यूनानी गीत वाद्योकी बड़ी उन्नति हुई थी। स्वयं मिकण्डर पार्थि पोलिसके राजसिंहासन पर बैठ कर गानवाद्य सुना करने थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राचीन यूनान और रोमनोंमें बहुत पहलेसे ही वाद्य-वादनकी प्रथा चली धानी थी। उसके बाद धीरे धीरे मारे पाश्चात्यजगत्में वाद्ययन्त्रोंका आरंभ होने लगा। उनमें इटलीराज्यमें इस कलाविद्युयाकी सर्वापेक्षा विशेष उन्नति हुई।

रोमन-कवि टाइटस् लुक्रेटियस् केरखने ईसाके जन्मसे ५८ वर्ष पहले "डि रेम नेदुरा" नामक स्वरचित ग्रन्थमें वाद्ययन्त्रकी उत्पत्तिके विषयमें एक अद्भुततरव प्रकाश किया है। वह पौराणिक कथाओंमें विदकुल ही स्वतंत्र है और उन्हे कविको स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही कह सकते हैं।

कवियोंके सुकोमल काव्यकल्पनाकी बात छोड़ कर पाश्चात्यदेशके धर्मशास्त्र वाइविलमें भी वाद्ययन्त्रके इतिहासके सम्बन्धमें दो एक बातें देखी जाती हैं। वाइविलमें लिखा है, कि वाया आदमके बादकी सातवीं पीढ़ीमें जुबालने सबसे पहले वाद्ययन्त्र ले कर पृथ्वी पर अवतार लिया। इस समय वीणा और वंशी—इन दोनों का उल्लेख पाया जाता है। फलतः नलिका और तन्तु, ये ही दोनों वाद्ययन्त्र सर्वप्रथम व्यवहारमें लाये गये। इसके बाद इन्हीं दोनों यन्त्रोंके द्वारा नाना प्रकारके वाद्य यन्त्र बनाये गये और इस समय भी बनाये जा रहे हैं।

हिरोदोतासकी धारणा है, कि पाश्चात्य यहूदियोंने इजिप्टवासियोंने वाद्ययन्त्र बनानेकी शिक्षा प्राप्त की थी। प्लेटो शिक्षाके बहाने इजिप्ट गये थे। वे स्वयं इजिप्टसे अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंके व्यवहार देख आये थे। ग्रुम साहबने इजिप्टके प्राचीन थेबिस शहरके ध्वसाशेषमें वीणाका चित्र देखा था। यह इसका एक विजिष्ट प्रमाण है, कि प्राचीन इजिप्ट वासी वाद्ययन्त्र-निर्माण करनेमें अत्यन्त पटु थे। गठनमें, आकारमें तथा साजसजामे वह वीणा आधुनिक गिटारोंकी वीणाके क्रिया प्रकार बुरी नहीं कही जा

सकती। इजिप्टके भिन्न भिन्न कीर्तिस्तरणोंमें नाना प्रकारके वाद्ययन्त्रोंके चित्र हैं। ये सब निदर्शन इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं, कि प्राचीन समयमें इजिप्टमें वाद्ययन्त्र निर्माणकी यथेष्ट उन्नति हुई थी।

ऐतिहासिक एमेनियसने वैयिक उद्भवके विस्तृत विवरणमें एक जगह लिखा है, कि इस उद्भवमें भिन्न भिन्न वाद्ययन्त्र ले कर छः सौ वाद्यकर उपस्थित हुए थे।

हिब्रु इतिहासमें भी प्राचीन वाद्ययन्त्रका उल्लेख है। मूसा जिन समय भगवानके प्रेममें मग्न हो कर गान गाते थे, उस समय भक्त रमणों मिरियम एवं उसकी सहचरी रमणियाँ "टैम्बुरिन" (Tambourine) नामक वाद्ययन्त्र बजा कर नृत्य करती थीं। टैम्बुरिनकी विवरण पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि हमारे देशमें प्रचलित खड़की और टैम्बुरिन—दोनों एक ही प्रकारके वाद्ययन्त्र थे। यहूदियोंके प्रत्येक उरसवमें वाद्य वादनका व्यवहार था, किन्तु आश्चर्यका विषय यह है, कि पुरोहित लोग ही वंशपरम्परासे वाद्यकरका काम करते थे। सलोमनके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय दो लाख वाद्यकर तथा गायक इकट्ठे हुए थे। किन्तु अंग्रेज ऐतिहासिक इस संस्थाकी आस्था संस्थापन नहीं कर सके। एक हिब्रु लेखकने लिखा है, कि प्राचीन समयमें हिब्रुओंके देवमन्दिरमें ३६ प्रकारके वाद्ययन्त्र रखे जाते थे। राजा डेभिड् सय प्रकारके वाद्ययन्त्र बजाने थे।

ग्रीकोंके वाद्ययन्त्रके इतिहासके सम्बन्धमें कई प्रबन्ध और पुस्तकें पाई जाती हैं। इस सम्बन्धमें वायनचीनोका (Blanchini) ग्रन्थ ही सर्वापेक्षा अधिक प्रामाणिक है। प्राचीन ग्रीक लोग शहनाई और वंशी प्रभृति वाद्ययन्त्र बड़े प्रेमसे बजाया करते थे। ग्रीकदेशमें दोतार, त्रितार और सितार प्रभृति वाद्ययन्त्रोंका भी यथेष्ट प्रचार था। कितने ही लोग फ्लुट वाद्यमें प्रवीण थे। डेमनने पेरिक्ल्स और सकेटिगको फ्लुट बजानेकी शिक्षा दी थी, किन्तु श्रीमती नेमियाका वंशीके स्वरसे सारा यूनान विमुग्ध हो गया था। अन्तमें डेमेट्रियम पोलियोकोटन उसकी वंशीका तान सुन कर इस तरह मन्त्रमुग्ध हो पड़े थे, कि उसके नाम पर उन्होंने एक

मन्त्र बनाया था। पिवनगरके संगीतज्ञ पण्डित इस मोनियसके पञ्चरत्नसमाप्तमें लगभग १ हजार रुपये खर्च हुए थे।

रोमन भोगीनि प्रीकोंसे जिस तरह शिवा विज्ञानादिकी शिक्षा प्राप्त की थी संगीत सम्बन्धमें भी वे ७ भागियोंके वैसे ही झुकी थे। रोममें त्रयङ्गाक, सि ग्गा प्रभृतिका भी पूरा प्रचार था। रोमन संगीतज्ञ सिद्रमियसके प्रथममें तमतरंग बाजेका उल्लेख है। छेकाने इस प्रथममें बरिच वम नामक इरमोनियमका भी उल्लेख किया है।

प्रभोच्य देशमें लू प्रोच्य देशकी वा ग्वाटरहोई शताब्दी पर्यन्त वाद्ययन्त्रकी सविशेष उन्नतिका उल्लेख किया नहीं जाता। बर्धमान आरगन (Organ) युक्तानिर्वाक उच्चतरंग वा हार्मोनिकन यन्त्रका विकासनाम है। यह आरगन (Organ) लू प्रोच्य देशकी शताब्दीमें भी इसाहोके गितापरमें बजाये जाने थे किन्तु उस समय इसकी वनावट बर्धमान आरगनकी तरह सुन्दर न थी।

ये सब वाद्ययन्त्र धीरे धीरे किस तरह समर्थन संगीतके सिम्न सिम्न बहूँके पूरक हुए थे यह वाद्य मन्त्रीतकी भाङ्कोचना किये बिना अच्छी तरह समझमें नहीं आ सकता। उल्लिख देखो।

गान वाद्य और कूरय—इन तीनोंकी ही सङ्गोत कहने हैं। इनमें वाद्य ही एक प्रधान बहूँ है। किन्तु यह वाद्य फिर यन्त्रके अर्थात् है, इस कारण भारतीय मन्त्रीत शास्त्रमें वे कर यहाँ किन्ते ही विषयोंका उल्लेख किया जाता है। वाद्ययन्त्र प्रधानता "तत" "अवनत" वा "आनत" "शुचि" और "घन", इन चार भागोंमें विभक्त हैं। जो सब वाद्ययन्त्र तन्त्र अर्थात् पीठल और छोटेके बने तार अथवा तन्तु (तार)के सहयोगसे बजाये जाते हैं उन्हे "तत" यन्त्र कहते हैं जैसे—वीणादि। सिम्न सब वाद्ययन्त्रोंके मुख बर्धमानत अर्थात् धमड़ेसे आच्छादित रहते हैं वे "आनत" यन्त्र कहलाते हैं जैसे—मृडगादि। जो यन्त्र बाँस वाठ धातुओंके बने होते हैं एवं जो मुखसे पूर्ण कर बजाये जाते हैं उन्हे "शुचि" यन्त्र कहते हैं, जैसे—धनी नादि। जो सब यन्त्र कर्म प्रभृति धातुओंसे बनाये जाते हैं एवं जिनसे बाधमें ताल दिया जाता है उनका नाम "घन" यन्त्र है,

जैसे—करताकादि। इन चारों प्रकारके वाद्ययन्त्रोंमें 'तत' यन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है और बहुत संख्यामें विभक्त है। इसका स्वर बढ़ा हो सुमधुर होता है किन्तु इसके ध्वनिमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है। पहले "तत" और इसके बाद अवनतवादि यन्त्रोंके विषय यथाक्रमसे वर्णन किये जाते हैं।

तलकम्न ।

मासापिनो, प्रद्युवीणा, किन्तरी, विषञ्जी पल्लरी, ज्येष्ठा, बिन्ना, घोषवती, त्रया, इस्तिका, कुर्मिका, कुन्ना, सारङ्गो, परिवादिनी किन्तरी श्वेततंकी, लकुञ्जोष्ठो, तंसरी मोडन्तरी, पिताक, निरंग, पुष्कल गदा, चारणहस्त यद् घोषा, खरमंडल कपितास मधुस्यन्धी, घना, महठीघोषा, रङ्गनी शारदी वा मारव, सुन्नाम्न वा सुरसो, खर शृङ्गार, सुरवहार, नाईन्धर घोषा भरत वीणा, तुम्बुद घोषा कात्यायन घोषा, प्रसारणी, इसरात्र, माधुरी वा माधुरा, भलाय सारङ्गो मीन सारङ्गो सारिन्ना एकतंकी वा एकतारा, गोपीयन्त्र मानन्महरी और मोघञ्ज इत्यादि यन्त्र "तत" कहलाते हैं। संस्कृत संगीत-शास्त्रमें कितनेके तो सिर्फ नाम और कितनेके आकार आदिका भी वर्णन है। इन सब यन्त्रोंके आकारादि लक्षण; यहाँ वर्णन किये जाते हैं।

पिताक ।

पिताकके आकारादिके देखनेसे मालूम पड़ता है, कि मनुष्यकी प्रथमावस्थामें संगीतकी प्रवृत्ति बमबती होने पर सर्वप्रथम पिताककी ही सृष्टि हुई इसके बाद मानव जातिकी सम्पत्ताकी दृष्टिके अनुसार सिम्न सिम्न आकार के तलकयन्त्रोंका आधिकार हुआ होगा। पिताक देखनेमें ठीक स्या-पुष्क धनुषके समान होता है। बाहिरी हाथकी मधुरी द्वारा इसकी तारमें आघात करके यह यन्त्र बजाया जाता है। यदि हाथके अक्षयाधिक दबावके कीमत्त से इसमें ऊँचा मोचा स्वर निकाला जाता है।

एकतंकी वा एकतारा ।

एक छोटे बहूँका लुनीकांश काट कर बकरेके लम्बे दांत उस कटे हुए मुखको आच्छादित करना होता है एवं इसमें सार वाठ अथवा परिचिदात्ता तथा डेढ़ हाथ लम्बा एक बाँसका डहड़ा उस कड़ूके अण्डेसे संयोजित

कर उनके मस्तककी ओर दो तीन अंगुल नीचे एक छेदवाली खूंटी लगाई जाती है। इसके बाद लोहेके तारका एक मिरा उससे एवं दूसरा मिरा उस वांसके डंडेके निचले हिस्सेसे जोड़ना पड़ता है। ततयन्त्रके निचले हिस्सेमें जिस स्थान पर तार जोड़ा जाता है, उसे पन्थी कहते हैं। पहले कहे गये चमड़े पर हाथी दात वा उमीके समान और किसी दूसरे दृढ़ पदार्थका धना हुआ एक तन्त्रासन रहता है। उसके ऊपर भागमें तन्त्र स्थापन एवं अपने कण्ठस्वरके अनुसार श्रांघ कर नायक उभे अपने दाहिने कन्धे पर रखना है। इसके बाद अपने दाहिने हाथकी तर्जनीसे आघात दे कर इस वाद्ययन्त्रको बजाता है। यह यंत्र बहुत प्राचीन है। मालूम पड़ता है, मनुष्यकी सभ्यताके प्रथम सृष्टिपातमें ही पिनाकके बाद इस यंत्रकी सृष्टि हुई होगी। इस यंत्रमें सिर्फ एक तन्त्र लगाया जाता है, इसीलिये लोग इसे एकतन्त्री वा एक तार कहते हैं। प्राचीनकालमें सभी संगीत ध्वजमायी इस यन्त्रको व्यवहारमें लाने थे। पीछे सभ्यताके साथ अपेक्षाकृत उत्कृष्ट ततयन्त्रोंकी सृष्टि होनेके कारण आधुनिक सभ्यतमात्र उस यन्त्रको व्यवहारमें नहीं लाते। इस समय सिओपजीवी लोग ही इसका व्यवहार करते हैं।

बलापिनी ।

बलापिनीमें ६ मूठ लम्बा एक रक्तचन्दनका डंडा लगा रहता है। उस डंडेके अप्रभागमें एक तुम्हा एवं निम्न भागमें एक वृक्षदाकार तारियल फलफा खोल लगा रहता है। इस यन्त्रमें लोहे आदि किसी धातुका तार नहीं लगाया जाता, सिर्फ पट्टर वा कपासके तीन सूते व्यवहारमें लाये जाते हैं। उन तीनों सूतोंको मन्द्र, मध्य और तार खरमें आच्छ कर एवं अपने वक्षस्थलसे लगा करके नायक दाहिने हाथकी अनामिका और मध्यमा अंगुलीके आघातसे तथा बाँये हाथकी अंगुलियों की सहायतासे इस यन्त्रको बजाते हैं।

मन्त्री बीणा ।

प्राचीन संगीतशास्त्रमें जाना जाता है, कि ततयन्त्रमें महती बीणा अति पुरातन तथा सर्वप्रधान है। महापि नारद सर्वदा इस बीणाका व्यवहार करते थे; इसलिये कोई कोई इसे नारदी बीणा भी कहते हैं।

संगीतशास्त्रमें जो ब्रह्मबीणाका उल्लेख देखा जाता है, मालूम होना है, उसी ब्रह्मबीणाका नाम समयके परिवर्तन होनेसे महती बीणा पड़ गया होगा। इस बीणामें एक वांसका डंडा लगा रहता है। स्वरकी गम्भीरताके लिये उस डंडेकी दोनों ओर दो तुम्हे एवं मध्यस्थलमें स्वरस्थान रहता है। उस स्वरस्थानमें उन्नीससे छे कर बीस पर्यान्त कठिन लौह ( इस्पात ) निर्मित सारिकाए विन्यस्त रहती हैं, ये सब सारिकाए डंडेके ऊपर मोम द्वारा बँटाई रहती हैं। उन्हीं सारिकाओंमें प्रकृत विकृत दाईं सतक स्वरस्थान निर्दिष्ट रहता है अर्थात् प्रत्येक सारिकामें पड़जादि प्रकृत-विकृत स्वर निम्नता है। इस यन्त्रकी सात खूंटियोंमें धातुओंके बने सात तार जुड़े रहते हैं। उनमें तीन तो लोहेके बने होते हैं और चार पीतलके। लौह-निर्मित तारोंको पक्का तार एवं पीतल निर्मितको कच्चा तार कहते हैं। लोहेके तीनों तारोंमें एकको नायकी अर्थात् प्रधान तार कहते हैं। इस तारको मन्द्रसतकका मध्यम कर यन्त्रके तार बांधनेकी रीति है। दूसरे दो तारोंमें एकको मध्यसतकका पड़ज और एक तारसतक करके बाधना होता है। पीतलके चारों तारोंमें एकको मन्द्रसतकका पड़ज, दूसरेको पञ्चम, तीसरेको मन्द्रसतकके निम्न सतकका पड़ज और चार्की चौथे तारको उसका ही पञ्चम करके बांधना होता है। इस यन्त्रको बाँये हाथकी तर्जनी और मध्यमांगुलीसे प्रत्येककी सारिकाओंका सञ्चालन करते हुए दाहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमांगुली ड्रांग बजाता होता है, किन्तु इन दोनों अंगुलियोंमें अंगुलिस्ताना पहन लेना पड़ता है। दाहिने हाथकी कनिष्ठांगुली स्वरयोगके लिये बीच बीचमें व्यवहार की जाती है, एवं बाँये हाथकी कनिष्ठांगुली भी इसी तरह सुरसयोगके कारण बीच बीचमें व्यवहृत होती है। बीणाका स्वरमाधुर्य श्रवणसुखकर होता है। संगीतका यावर्ताय स्वरकीजल बीणामें प्रकाशित होता है। यह बीणायन्त्र नमयके हेर फेरसे तथा टेजसेट ३ किसी किसी अंशमें विभिन्न आकार धारण करनेके कारण भिन्न भिन्न नामसे विख्यात हो गया है।

कुर्मी वा कच्छपी बीया ।

कच्छपीबीयाका कोल कच्छपवृक्षकी तरह बिपटे कद्दू द्वारा बना रहता है । इसप्रिये इस कच्छपी बीया कहते हैं । इस बीयाका अर्थात् सर्वज्ञ हो प्रायः बार फोटकी होती है । किन्तु कोर कोर इसकी अर्थात् ग्यादा कमी मो कर दिया करते हैं । आकारमें कुछे बड़ी होनेसे रागका आलाप एवं छोटी होनेसे गत् बजानेमें अधिक सुविधा होता है । कच्छपीकी अर्थात् बार फोट होने पर उसकी पत्तीसे प्रायः सात अगुल ऊपर तन्नासन पय प्रायः साढ़ तीन फीट ऊपर तन्तु स्थापन करलकी विधि है । परिमाणमें बार फोटकी कमी पेशी होनेसे उसको अनुसार तन्नासन एवं तन्तु स्थापन करना होता है । मातृम पड़ता है, प्राचीनकालमें कच्छपी बीयामें सिर्फ तीन तार लगाये जाते थे इसी कारण कच्छपी बीया सेतार वा सितारके नाममें भी विख्यात है । पारस्य भाषामें 'से' शब्दसे तीन सख्याका बोध होता है, सुतरा सेतार वा सितार शब्दमें तीन तागविशिष्ट पत्रका बोध होता है । किन्तु इस समय कच्छपीमें तारकी अगह पाँच या सात तार लगाये जाते हैं । कच्छपीमें जो पाँच तार लगे रहते हैं उनमें दो तो मोह निर्मित एवं एवं तीन पोतल निर्मित कच्चे तार रहते हैं । मोहनिर्मित दो तारोंक मध्य एकको मन्द्रसप्तक क मध्यम और दूसरेकी उसका हा पञ्चम करके बाँधना होता है । पोतलक भी हुए तीन तारोंके मध्य दो तारोंको मन्द्रसप्तकक पड़इ एवं एकको मन्द्रसप्तकके निम्न सप्तकका पड़इ करके बाँधनेकी विधि है । सात तार विशिष्ट कच्छपीमें बार मोह और तीन पोतलक तार रहते हैं उनमें मोहके दो एवं पोतलक तीन तारोंकी पूर्वांक नियमसे बाँध कर तीदनिर्मित श्रेय दो तारोंसे एककी मध्यसप्तकका पड़इ एवं दूसरेको इम सप्तकका पञ्चम करके बाँधना होता है । इन दोनों तारोंका' बिकारा करते हैं । कच्छपीक इदिक ऊपर स्वरमथानमें सप्तह बीर्थात् कठिन धातु निर्मित सारिकाप तौट द्वारा ढूढ़ताम बंधे रहती हैं, इनक द्वारा मन्द्रसप्तकक पड़इसे तार सप्तकके मध्यम वर्ध्याथे दुर्ग सप्तक स्वर संगमन रहते हैं । उक्त सप्तह सारिकाभो के मध्य एकस मन्द्र

सप्तकका कोमल निपाद् एकसे मध्य सप्तकका तीव्र मध्यम स्वर पाया जाता है, अन्याप्य विद्वत् स्वरको आश्चर्यकता होने पर उन उन सारिकाभो को इदिक ऊर्ध्वबीधोभावमें उठा कर तथा झुका कर कोमल और तीव्र कर देना पड़ता है । कच्छपी बीया वज्रानेके समय पत्रक पिछे दिखेको वादक अपने सामने रख कर तुम्बेको बगलकी दाहिने हाथके कब्जेसे अच्छी तरह दबा कर एवं उदिका बाँधे हाथ द्वारा त्रकसे पकड़े रहता है । इसके बाद दाहिने हाथकी तर्जनी द्वारा तन्नासन एवं सारिकाभोसे मध्यस्थ शून्य स्थानमें आघात करने पर बाँधे हाथकी तर्जनी तथा मध्यमांगुली द्वारा जिस समय जिस स्वरकी आश्चर्यकता होती है उस समय इम सारिकाके ऊपरका तार दबा कर ऐसा स्वर बिकासा जाता है । कच्छपी बीयामें भी काष्ठकक तथा देशमेखस नाम और आकार धारण कर लिया है ।

निलती वा निलती बीया ।

जित्तकीक अक्षरपदार्थादि प्रायः कच्छपीक समान हो होते हैं, विशेषता इसकी ही है, कि इसका कोल कद्दूका न हो कर काठका बना रहता है । इसमें सिर्फ तीन तार व्यवहृत होते हैं । उन तीनों तारोंमें एक मोहका पका और पोतलके दो कच्चे तार रहते हैं । मोहके तार को तापकी अर्थात् प्रमाण तार कहते हैं, उसे मध्यसप्तक क बीधमें बाँधना जाता है । पोतलके तारोंके मध्य एकको मन्द्रसप्तकका पड़इ एवं दूसरेको मन्द्रसप्तकके निम्नसप्तक का पञ्चम करके बाँधना होता है । जित्तगामें भी कच्छपी की तरह सप्तह सारिकाप रहती हैं एवं उनक द्वारा ही इदिक सप्तक स्वर निष्पन्न होत है । इसके धारण तथा वज्रानेको प्रणाली कच्छपीक समान है ।

निलती बीया ।

प्राचीन समयमें किन्नरीका आल गारियलकी माला से बनाया जाता था, किन्तु इस समय उमक बरुई वृद्धा कार पक्षियोंके शिब्य या चौको प्रभृति धातुओंसे तैयार किया जाता है, किन्तु इस स्वरमें किसी तरहका अन्तर नहीं आता । किन्नरीमें सिर्फ पाँच तार व्यवहार किये जाते हैं । पाँचोंतारोंमें कच्छपीके जो जो तार जिस जिस स्वरमें आशय करमेंकी विधि है, इसक तार भी उन्हीं

धातुओंके बने होते हैं एवं उसी प्रकार स्वरोंमें आवृद्ध रहते हैं। इसका आकार अपेक्षाकृत अधिक छोटा होता है, सुतरां इसमें मूर्च्छनाविहीन सामान्य सामान्य रागों की गत् अच्छी तरह बजाई जा सकती है। इसका आकार छोटा होनेके कारण अत्यन्त मृदु एवं श्रवणसुषुप्तदायक होता है। इस यन्त्रकी वादन क्रिया क्रच्छपीकी तरह ही होती है। इस यन्त्रके नाम और आकार भी समरभेद तथा देशभेदसे नाना प्रकारके हो गये हैं।

#### विष्वक् वीणा

विष्वक्की आकार प्रायः किन्नरीके आकारके समान ही होता है। अन्तर सिर्फ इतना ही है, कि इसका खोल द्विधात्रिका न हो कर तिनलकीका बना होता है। इसका अवयव, धारण, स्वर बन्धन तथा वादनक्रिया किन्नरीके समान ही होती है।

#### नादेश्वरवीणा

वेह्ला और सितार इन दोनों के मेलसे नादेश्वरकी उत्पत्ति हुई है। मालूम होता है, यह आधुनिक यन्त्र है। इसका खोल वेह्लाके खोलकी तरह एवं हंडा, सारिका, तारखलया तथा तारबन्धन-प्रणाली सितारकी अनुरूप होती है।

#### रुद्रवीणा

रुद्रवीणाके खोल और डंडा एक अखण्ड काठके बने होते हैं। इसका खोल बकरेके चमड़ेसे मढ़ा रहता है। इस यन्त्रमें भी हस्तिदन्तादि कठिन पदार्थका बना एक तन्त्रासन रहता है। रुद्रवीणामें किसी प्रकारके धातु-निर्मित तार व्यवहृत नहीं होते। उनके बदले इसमें दूरी तार व्यवहार की जाती है। उन तारोंमें एक मन्द्र-सप्तकके पडजमें, एक गार्धार, एक पञ्चम, एक मध्यसप्तकके पडजमें, एक ऋषभ और एक पञ्चमस्वरमें बांधी जाती है। रुद्रवीणामें सारिका नहीं रहती। इस यन्त्रकी बाधे कन्धे पर रख कर बड़ी मछलीकी चो इटा बाधे हाथ की तर्जनीमें सूतेसे बांध कर उसीके द्वारा स्वरस्थानमें संघर्षण करते हुए दाहिने हाथके अंगूठे और तर्जनी में एक त्रिकोणाकार कोई कठिन पदार्थ धारण कर तारों में आघात करते हैं; इस तरह इनकी वादनक्रिया निर्धन होती है। इसकी वादनक्रियामें महती वीणादिसे कुछ

अधिक परिश्रम और स्वरज्ञानकी आवश्यकता है, क्योंकि इसमें सारिका विन्यास न रहनेके कारण आनुमानिक स्वरस्थानमें संघर्षण करके पडजादि स्वर-निकालना पड़ता है। विशेष स्वरबोध न रहने पर इसका बजाना कठिन है, इसीलिये मालूम पड़ता है, इसके बजानेवालोंकी संख्या अधिक देखी नहीं जाती।

रुद्रनी वीणा।

रुद्रनीवीणा महतीवीणाके समान होती है, अन्तर इतना ही है, कि इसका डंडा बाँसका न हो कर काठका बना रहता है और आकारमें महती वीणाकी अपेक्षा यह कुछ छोटा होता है। इसके दोनों पार्श्वमें दो कद्दू रहते हैं। इसके तारोंकी संख्या सात है। सारिकाओंकी संख्या एवं तारबन्धनादि फच्छपीके समान होते हैं।

गारदी वीणा वा शरद।

गारदी वीणाके डंडेमें ले कर गोल तक रुद्रवीणाकी तरह एक लकड़ीके टुकड़ेसे बने होते हैं। इसका डंडा ऊपरकी ओर पतला एवं नीचेकी ओर खोलके पास चौड़ा रहता है। डंडेकी भीतरका ऊपरी भाग इस्पात आदि धातुओंसे मढ़ा रहता है। इसका खोल बकरेके पतले चमड़े से आच्छादित रहता है। इसमें सारिकाएँ नहीं रहती। छः खूंटियोंमें सिर्फ छः तार लगी रहती हैं। किसी किसी गारदीवीणामें तारोंके बदले पीतल प्रभृति धातुओंके बने तार भी व्यवहारमें लाये जाते हैं। वाद्यक अपने अपने इच्छानुसार ही इस यन्त्रमें तार वा तार लगाते हैं। उन तारों वा तारोंके मध्य एक मन्द्रसप्तकके पञ्चम, दो मध्यसप्तकके पडज, दो मध्यसप्तकके मध्यम एवं एक पञ्चमस्वरमें बांधा जाता है; किन्तु विशेष विवेचना करके देखनेसे बोध होता है, कि छः तारोंकी जगह चार ही तारोंसे इस यन्त्रका कार्य चल सकता है, क्योंकि इसमें दो दो तार सम स्वरमें लगी रहती हैं। उक्त छः खूंटियोंके अलावे इस यन्त्रकी बगलमें सातसे छे कर ग्यारह पृथक् अन्त्यान्व खूंटिया होती हैं। उनमें पीतल आदि धातुओंके बने तार लगे रहते हैं। इन तारोंके 'पार्श्व-नन्त्रिका' या 'तरफ' कहते हैं। पार्श्वतन्त्रिकाएँ इच्छाधीन स्वरमें आवृद्ध रहती हैं। इन तारोंमें आघात करनेकी आवश्यकता नहीं होती, प्रधान तारोंमें आघात करनेसे

ही ये पार्श्वतन्त्रिकाए न्म कारित और प्रमित हो कर  
 एवकी गम्भीरता प्रकाश करती हैं। इस यन्त्रकी  
 धारणा और वाक्प्रणाली रुद्रबोणाके धारण तथा  
 वाक्प्रणालीके समान है, सिर्फ विरियता यह है, कि  
 रुद्रबोणा दैव्य हाथकी तरङ्गनीमें मछलीका जो इटा बाँध  
 कर एक उमके द्वारा तारों या तारोंमें आघात करके  
 बजाया जाता है और इसके बजायेमें दैव्य हाथकी कानि  
 छान्दि बार उ गलियाँ व्यवहृत होती हैं। इसके बजायेमें  
 मछलीका जोर उ उ गलियों बाँधनेकी आवश्यकता  
 नहीं होती। यंगलमें इस यन्त्रका अधिक प्रकार नहीं  
 है। परिश्रम वैशेष लोग ही आवश्यकत इसका प्रय  
 हार करते हैं। सुमरुमान राजाओं के राजत्वकालमें  
 इसका बड़ा मार्य था।

सुरबहार।

अनुभूतका जोस कद्रुद्धा बना होता है। इसमें  
 एक कठिन पदार्थका तन्त्रासन तथा काठका बना एक  
 डंढा रहता है। उस डंढेका ऊपरों माग जोड़ेके एक  
 पतल अक्षरें मढ़ा रहता है। सरकी गम्भीरताक सिध  
 इस यन्त्रके ऊपरों मागमें और एक कद्रुद्धा बना रहता है।  
 इस यन्त्रकी दू टिरीमें तीन पीतलके और तीन सोहे  
 क तार व्यवहृत होते हैं। उन तीन पीतलके तारोंमें एक  
 मद्रुमनकके पङ्कजमें, एक गांधार, एक पंचम एवं सोहेके  
 तीन तारोंमें एक मद्रुमनकके पङ्कज और दो पंचम स्वरमें  
 बाँधे जाते हैं। इस यन्त्रमें सारिकाए नहीं रहनीं। इसकी  
 धारण और वाक्प्रणाली रुद्रबोणाकी धारण और वाक्प्र  
 णालीके समान होती है। यह यन्त्र और यन्त्रोंकी अपेक्षा  
 आधुनिक ज्ञान पटवा है। मान्य होता है, कि महती  
 कच्छवी की रुद्रबोणाके संयोगसे इस बोणाको उत्पत्ति  
 हुई है।

सुरबहार।

अगर मूल गार करके देना जाय, तो सुरबहार की  
 कच्छवी कीमा वाक्प्रणाली एक ही यन्त्र है। सिर्फ अन्तर  
 इसका है, कि सुरबहारक डंढेमें और एक अकड़ोका टुकड़ा  
 लगा रहता है तथा उसमें बड़े एक छोटा छोटा गू टिरी  
 लगी रहती है एवं उन सब छोटा छोटा गू टिरीमें  
 पीतलक तार बाँधे रहते हैं। इन तारोंको वाक्प्रणाली

इच्छाके अनुसार ही बाँध होता है। इन तारों पर आघात  
 करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती, प्रधान तारके  
 आघात करनेसे ही ये शब्द उठते हैं। इसमें और एक  
 विशेषता यह है, कि कच्छवी बोणामें एक ही तन्त्रासन  
 व्यवहार होता है और इसमें दो। इन दोनों तन्त्रासनोंमें  
 एकका आकार दूसरेकी अपेक्षा कुछ छोटा होता  
 है। यह छोटा तन्त्रासन प्रधान तन्त्रासनसे प्रायः एक  
 बाहिष्ठ ऊपर रहता है, उसके ऊपर उक्त पीतलके अम  
 मान तार लगे रहते हैं। सुरबहारका आकार कच्छवी  
 की अपेक्षा कुछ बड़ा होनेके कारण इसका लर ऊ या  
 और अधिक क्षण स्थायी होता है। सुरबहारकी तार  
 कक्षा, सारिका विन्यास, धारण तथा वाक्प्रणाली  
 कच्छवीके समान ही होती है। यह एक आधुनिक यन्त्र  
 है। ज्ञान पटवा है, कि एक सौ वर्षसे पहले यह यन्त्र  
 नहीं था।

मरुतीया।

मरुतीया बहुत हाथका यन्त्र है। यह स्पष्ट है, कि  
 रुद्रबोणा कीरकच्छवी कीजाके मेलसे इसकी उत्पत्ति हुई  
 है। क्योंकि इसका कोष्ठ तो रुद्रबोणाके समान अकड़ोका  
 बना रहता है, किन्तु डंढा, गू टिरी, तारसंख्या, स्वर  
 बन्धन, सारिकाविन्यास तथा धारण और वाक्प्रणाली  
 कच्छवी कीजाकी तरह होती है। इसमें विशेषता इनकी  
 हो है, कि इसका एकमात्र भागकी तार छोड़ेका बना  
 होता है, दूसरे दूसरे अग्रधान तार घातुओंके बने नह।  
 शीते बन्धन इनकी अग्रह तार ही व्यवहृत होती है।

गुम्बु कौया।

इस कीजाका जोस कद्रुद्धा बना होता है। इसमें  
 एक काठका डंढा, बार गू टिरी और मद्रुद्धा काठका  
 बना एक तन्त्रासन रहता है। इस बोणामें दो कोहेके  
 और दो पीतलके सिर्फ बार तार व्यवहृत होने हैं। इन  
 चारों तारोंमें कोहेके दो तार मद्रुमनकके पङ्कज,  
 पीतलका एक मद्रुमनकके पङ्कज और एक पञ्चम स्वरमें  
 बाँधा जाता है। इस यन्त्रका डंढा द्वाहिने हाथका बना  
 मिका और अगूहेसे पङ्कज कर एवं मद्रुमनगुकीमें आघात  
 है कर इसकी वाक्प्रणाली समान होता है। इसमें सारि  
 काए नहीं होती एवं जो तार इस स्वरम आघात रहता ६



उसके अतिरिक्त और कोई दूसरा स्वर प्रकाशित नहीं होता। पीनलका वह तार जिसे मन्द्रसप्तकका पञ्चम करके बांधनेकी रीति है, किसी किसी रागके गानेके समय वह मध्यम स्वरमें भी बांधा जा सकता है। यह यन्त्र गानेके समय केवल गायकके स्वरविभ्रामके लिये ही व्यवहृत होता है, इसके अलावे अन्यन्तरूपसे कभी बजाया नहीं जाता। किसी किसी देशमें इस यन्त्रमें छाने ले कर दश पर्यन्त तार एवं पचीसने ले कर सैतालीम पर्यन्त सारिकाप विन्यस्त रहती हैं। मान्द्रम पडता है, उन देशोंमें इसकी वादन प्रणाली तथा व्यवहार स्वतन्त्ररूपमें होता है। कहा जाता है, कि यह यन्त्र पहले तुम्बुरुग भ्रवर्न बनाया था, इसीलिये इसका नाम तुम्बुरुगीणा पडा है।

कात्यायन गीणा।

कात्यायन गीणाके नाम, उत्पत्ति तथा निर्माताके नामके सम्बन्धमें नाना प्रकारका दावे कही जाती है, किन्तु हम लोकोक्त विचारसे कात्यायन ऋषिने ही पहले इसका निर्माण किया था, इसमें मन्देह नहीं। वे इस यन्त्रमें एक सौ तार व्यवहार करते थे, उसीके अनुसार वह यन्त्र पहले शततन्त्री नामसे निरुघात था, किन्तु आधुनिक कात्यायन गीणामें सौ तारकी जगह सर्वत्र बाईसने ले कर तीस पर्यन्त तारोंका ही व्यवहार देखा जाता है। वे सब तार लोहेके बने होते हैं और उनकी लम्बाई प्रायः दो हाथकी हानी है। इस यन्त्रको एक हाथ लम्बे और आध हाथ चौड़े एक लकड़ीके सन्दुकमें गूँटियों द्वारा आवद्ध करनेकी रीति देखी जाती है। जिम् यन्त्रमें बाईस तार बाँधे रहते हैं, उन बाईस तारोंके ऊपरके प्रथम सात तार मन्द्रसप्तकके पडजसे ले कर निषाद पर्यन्त, द्वितीय सात तार मध्यसप्तकके पडजसे ले कर निषाद पर्यन्त, तृतीय सात तार तारसप्तकके पडजसे ले कर निषाद पर्यन्त एवं बाईसवां तार तारसप्तकके पडजस्वरमें बाँधे जाते हैं। कुछ लोग प्रथम तीन तारोंमें ण्क मन्द्रसप्तकमें पञ्चम, धैवत, निषाद, चौथेसे ले कर दशवें तकके सात तार मध्यसप्तकके पडजसे ले कर निषाद पर्यन्त, अथारहवेंसे सतरहवें तकके तार तारसप्तकके पडजसे ले कर निषाद पर्यन्त एवं अठारहवेंसे ले कर

बाईसवें तकके तार तारसप्तकके उच्च सप्तकके पडजसे ले कर पञ्चम पर्यन्त स्वरमें बाँधते हैं। इसके बजानेके समय इस यन्त्रको समतल स्थानमें रखते हैं; इसके बाद दोनों हाथोंमें दो त्रिकोणाकृति कोई कठिन पदार्थ धारण करके अत्यन्त सावधानीके साथ इसे बजाते हैं। इसका स्वर बहुत ही मोटा होता है। जिम् यन्त्रमें तीस तार रहते हैं, उसके बाईस तार तो पूर्वोक्त नियमसे ही बाँधे जाते हैं और बाकी तार गायक आवश्यकतानुसार कोमल एवं तीव्र स्वरमें बाध लेते हैं।

प्रसारणी गीणा।

एक पांच तारवाली कच्छपी गीणाके डण्डेकी षडल-में और एक तीन तारवाला छोटा डण्डा लगा कर प्रसारणी गीणा बनाने हैं। इस यन्त्रके प्रधान डण्डेमें सोलह और छोटे डण्डेमें सोलह, इस प्रकार इसमें बचीस सारिकाप विन्यस्त रहती हैं। प्रधान डण्डेमें बाँधे पांच तारोंमें दो मन्द्रसप्तकके निम्नसप्तकके पडजमें, दो मध्यम और एक एक पंचम स्वरमें एवं छोटे डण्डेके तीन तारोंमें एक मन्द्रसप्तकके पडज, एक मध्यम और एक पञ्चम स्वरमें आवद्ध रहते हैं। महती गीणादि अन्यान्य यन्त्रोंमें बाईस तक स्वर पाये जाते हैं, किन्तु प्रसारणीमें साढ़े तीन सप्तक स्वर निकलते हैं। इसकी वादन-प्रणाली अन्यान्य यन्त्रोंकी वादन प्रणालीके समान नहीं होती। यह यन्त्र किसी समतल स्थान या गोदमें रख कर बास की एक छडीसे आघात करके बजाया जाता है। उस आघातके साथ साथ बाँधे हाथके अंगूठेसे दबा कर एवं सारिकाओंके ऊपर संघर्षण करके प्रत्येक स्वर निकालना पड़ता है। यह यन्त्र आधुनिक है।

स्वरगीणा।

स्वरगीणा यन्त्र बहुत प्राचीन है। इसका खोल कद्दू-का बना होता है। इसमें एक लकड़ीका डण्डा लगा रहता है। यह यन्त्र रुद्रगीणासे बहुत कुछ मिलता जुलता है। विशेषता सिर्फ इतनी ही है, कि रुद्रगीणाका ध्वनिकोप अर्थात् खोल चमड़ेसे मढ़ा रहता है और यह ध्वनिकोप चमड़ेके बदले लकड़ीका एक पतली तख्तीसे आच्छादित रहता है। इसमें चार तार व्यवहार किये जाते हैं। ये चार एक मन्द्रसप्तकके पडज, एक

पञ्चम और दो मध्यसप्तकके पञ्चममें बांधे जाते हैं ।

तारकी

सारङ्गी की प्रति प्राचीन यन्त्र है, कहते हैं, कि छद्मक राजा राजपूत पहले पहल इसकी सृष्टि की थी । यह यन्त्र बहुत प्राचीन समयमें ही अविद्युत नाम और आकार से भारतवर्षमें लसा भा रहा है ; किंतु दूसरे दूसरे देशोंमें यह यन्त्र आकारादिमें कुछ भिन्न बहल कर निम्न निम्न नामसे बिलयात हो गया है । इस यन्त्रके रोस और डंडे एक ही छज्जोके बने होते हैं । इसका रोस लकड़ों द्वारा और डंडा पतले काएकसक द्वारा मड़े रहते हैं । डंडेके दोनों पार्श्वमें दो दो करके चार चूटियां रहती हैं ; उन चूटियोंमें चार तांत बांधे रहती हैं । डंडे की बगलमें कई एक अग्रभाग तारकी चूटियां रहती हैं । पूर्वोक्त चार तांतोंमेंसे एक मध्यसप्तकके पञ्चम, एक पञ्चम दो मध्यसप्तकक पञ्चम करके बांधे जाते हैं । इसमें सारिकाभोंका व्यवहार नहीं होता । यह यन्त्र अगुल्यादिके द्वारा बजाया नहीं जाता, वरन् अभ्यपुच्छवय एक धनुहीस बजाया जाता है । धनुहीके संचालनके साथ साथ तंतुओंमें बांधे हाथकी कनिष्ठादि चार उंगलियों के अगले भागसे संवयण करके स्वर निकाले जाते हैं । इस यन्त्रकी मधुर इतनी कोमलकण्ठी श्रियोक्त स्वरकें अनुकूल होती हैं । यदि एक घरमें यह यन्त्र बजाया जाय और पासक दूसरे घरमें कोई सुरकुटो छी गाल करे, तो बति स्वरकें व्यक्ति भी दोनोंके स्वरकी पृथक्ता जन्दी अनुभव नहीं कर सकते ।

इमर

इमरारका समूचा अंग एक ही काष्ठकण्डका बना होता है । इसका कोस प्रायः सारङ्गीके जोसके समान और डंडा सितारके डंडेके समान रहता है । पाँच तार धाँके निस्तारके तांग जिस धातुके बने होते हैं वय जिस स्वरमें बाँधे रहते हैं, इमरारके पाँचों तार भी उसी धातुके बन होते हैं तथा उसी स्वरमें बाँधे रहते हैं । अन्तर सिर्फ इतना ही है कि इसमें धातुके इच्छानुसार पीतलके कई एक अग्रभाग तार छगी रहते हैं । उन अग्रभाग तारोंका स्वर बध्पन भी धातुके इच्छापोत रहता है । धातु इसयन्त्रकी सरल भावने लडा करके पंच

बाँधे हाथसे पकड़ते हैं, इसके बांधे हाथसे धनुही पकड़ कर संचालन करते हुए इसकी भाव्य क्रिया निष्पन्न करने हैं । इसकी सारिकाभोंके ऊपर बाँधे हाथकी तर्जनी और मध्यमाँगुली सञ्चालन करके प्रयोगानुसार समी प्रकारके स्वर निकाले जाते हैं । इस यन्त्रका नायकी तार दो प्रभावनाः बजाया जाता है और दूसरे दूसरे तार स्वरमयोजनके लिये व्यवहृत होते हैं । यह यन्त्र भी प्रायः सारङ्गीकी तरह श्रियोक्त गानके माधुर्य्य-सम्पादनके लिये ही व्यवहृत होता है । कभी कभी यह स्वतंत्रभावसे भी बजाया जाता है । यह भी एक आधुनिक यन्त्र है ।

मायूरी ।

विशेष विवेचना कर देखनेसे मायूरी कोह स्वतंत्रत यन्त्र नहीं कहा जा सकता, इसतर यन्त्रमें जोपट्टेके मुक पर एक काठका बना मयूरका मुक लगा देनेसे ही मायूरीयन्त्र बन जाता है । इसके आकारादि तथा वादन क्रिया इसतरके समान ही होती है ।

अभातारंगी ।

अभातारंगी सारंगीका ही एक अंग है । इन दोनोंमें अन्तर यह है, कि मार गो लकड़ीके एक कुकड़से बनाया जाता है और इसका विच्छन्ना भाग काठका न हो कर एक कीर्पाकार बहूका बना होता है । इसी कारण इसे अभातारंगी कहते हैं । परबातुबसों अभातारंगीके अतिरिक्त अगुल्या अंग प्रत्यंग काठक बने रहते हैं । इसकी मधान ताँत, अग्रधान ताँत, स्वरबध्प नादि सब कुछ सारंगीके समान ही होते हैं, सिर्फ धातु-अवालांमें कुछ अन्तर ही पड़ता है । सारंगीकी जिस तरह गोदमें सरलभावसे धातु करके बजाना पड़ता है, इसे उस रूपमें पडा करके पकड़ना नहीं पड़ता ; वरन् इसकी पशोकी ओरसे इसे कण्ठे पर स्थापन कर पंच बाँधे हाथकी हथेली और अगुठे द्वारा पकड़ कर अगुल्या उ गलियोंके अग्रभाग इसकी तंतुभाँक ऊपर संचालन करके स्वर निकालना पड़ता है । मूढ बात यह है, कि अभातारंगी आधुनिक बेहलोकी रीति से बजाई जाती है ।

मीनसारंगी ।

इसतरा और मीनसारंगी एक ही यन्त्र है, अन्तर

मिर्फ इनका ही है, कि इसरारका खोल और डंडा दोनों ही काठके बने होते हैं। इसके पिछले चोखले ले कर डंडेके अप्रभाग तक एक दीर्घाकार, किन्तु पतले पतले अठावृका बना रहता है। इसके अगले और और अंग प्रत्यंग, तार, अप्रधान तार, चादनप्रणादी इत्यादि इसरारके अनुरूप होती हैं। इस यन्त्रके मूलप्रान्तमें एक काठकी बनी मछलीका मुप आवड रहता है, इसीलिये इसे मीनसारंगी कहते हैं।

स्वरसंग।

परसंग यन्त्र अप्रधान ताररहित इसरारका नामान्तर मान है। स्वरसंगकी वनावट तथा चादनक्रिया विल्कुट इसरारकी तरह होती है। यह यन्त्र बहुत नया है।

सारिन्दा।

सारिन्दाके सभी अवयव एक टुकड़े अथवाएड काठके बने होते हैं। इसके ध्वनिकोपका कुछ अंग चमड़ेसे मढ़ा होता है और उस चमड़े पर एक तन्त्रासन खड़े दलमें बधा रहता है। इसमें किसी भी धातुका बना हुआ तार वा तान व्यवहन नहीं होता। घोड़ेकी पूँछके बने हुए तीन तार लगाये जाते हैं। उन तीन तारोंमेंसे दोको मध्यसनरु पड्ज और एकको पञ्चम करके बांधना होता है तथा कढ़ूकी सारंगीकी तरह कंधे पर रख और बाएँ हाथमें पकड़ कर एक घोड़ेकी पूँछके बालसे बंधे हुए धनुहीमें बजाना होता है। बहुतरे लोग इसका निर्णय नहीं कर सके हैं, सारिन्दा और सारंगी इन दो यन्त्रोंमें कौन किसके अनुकरण पर बना है, किन्तु दोनों यन्त्रोंका आकार देखनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है, कि सारिन्दाका अनुकरण कर सारंगी बनी है। क्योंकि मनुष्यकी सभ्यताकी उन्नतिके साथ साथ जिस प्रकार बहुतसे यन्त्र कमणः उन्नत होने गये हैं, उन्नी प्रकार यह भी हुआ है। इस यन्त्रका सभी सभ्यसमाजमें व्यवहार नहीं होता। फकीर आदि मिश्रुक मनुष्यके दरवाजे दरवाजे इसकी बजा और गीत गा कर भीष माचते हैं।

गापीयन्त्र।

करीब डेढ हाथ लम्बा गाँडदार एक पतला बासका डंडा हो। उसकी गाँडकी ओर छः सान अद्गुल अचिकुन

भावमें रख कर ऊपरका आधा भागका फाट कर अलग कर दिया जाये, बाका आधे भागकी फिर दो बलानेके आकारमें बना कर उसमें दोनों ओर रुटे हुए हाथ भर लम्बे एक कढ़ू, वा काठका चोख बांध दिया जाये। पीछे उसके ऊपरी भागकी चमड़ेसे ढरू कर उस चमड़ेके ठीक मध्यभागमें एक लोहेके तारका एक छोर घड़ और दूसरा छोर पगडण्डके अचिकुन या जमे गडो हुई खूँटीमें योजित करना होता है। यन्त्रपगडभागकी दाहिने हाथकी तर्जनीको छोड़ बाका चार उँगरीयोंमें पकड़ कर तर्जनीसे बजाना होता है। इसमें केवल एक स्वर निकलता है। परन्तु बजानेवाले कौशलपूर्वक यन्त्रधारक चार उँगरियोंके सहोत्र और प्रसारणसे उस एकमात्र स्वरकी ऊँचा नीचा कर सकते हैं। सभ्य यन्त्रोंमें इस यन्त्रकी गणना नहीं की जाती। भीष मांगनेवाले इसे बजा कर दरवाजे दरवाजे गान करने और अपनी जोबिका चलाने हैं।

धान्द लहरी

धान्द लहरीकी गोपीयन्त्रके खोलकी तरह प्रायः साथ हाथ खोलके ऊपर चमड़ेमें मढ़ देना होता है। उस चमड़ेके ठीक मध्य भागमें एक तान बधी होती है। तातके इस प्रान्तको चर्माच्छादित एक छोटे वरतनमें संबद्ध करके यन्त्रके खोलके बाईं बगलमें जारमें डवाने है। छोटे वरतनको बाएँ हाथमें पकड़ कर दाहिने हाथसे एक लकड़ीकी सलाईसे उस तन्तुमें आघात करने हीमें आवाज निकलती है। बाएँ हाथके विन्चावकी प्रमी बेगी हीसे सुरकी नीचा और ऊँचा किया जाता है। यह यन्त्र भी मिर्फ भीषमगे व्यवहार करते हैं।

मारदू।

मारदू यन्त्र त्रिशूठकी तरह नोकदार इस्पातका बना होता है। इसके दोनों बगलें कुछ मोटी होती हैं, मध्य भाग में एक शूलकी नोककी तरह बहुत पतला पत्तर रहता है। यन्त्रके बाएँ हाथमें पकड़ कर दूबने हाथकी तर्जनीसे बजाते हैं। किन्तु खरकी ऐरीरकाल स्थायी करनेके लिये आघातके साथ साथ बड़े जोरसे मुँहसे श्वास लेना होता है। इसमें केवल एक स्वर रहता है। किन्तु बजानेवाले उस पतले पत्तरकी जडमें थोड़ा मोम लगा

नर स्वर्गो ऊँचा मोचा कर सकते हैं। यद्यपि इन वस्त्रोंके स्वर्गमें उतनी मयुरता नहीं है, तथापि येन्यताम यावत्नके साथ बजाये जानेसे नरक भी नहीं लगता।

मन्त्र वा मानद-मन्त्र।

पट्ट वा नागा मङ्गल वा मावृत्, हुङ्गुल, भावरद, जयद, रक्षा बमक, बका, कच्छुमी, टुळी, सिखली, टिरिडम, कुम्भुमि मेरो, निःमाल, गुम्बकी, टमची, मण्ड, नरबुद्ध, पणव कुण्डलो वाध्याद्य, शर्कर, मट्ट, मृदङ्ग वा पौन तबला, शैलक, डोल, काड़ा जगन्नाथ, तामा, हामा, टिडारा, मोड्याद भीर पुट्टक ये सब वस्तु भयनद वस्तुमें गिने जाते हैं। उन सब वस्तुओंके केवल नाम दिये गये हैं उनके आकारादि मनुज प्रथमें भी नहीं देखे जाते भीर न इनका व्यवहार ही बिकार देता है। मन्त्रा भयनद यत्न मन्त्र वाहिरार्थिक, प्राय, सामरिक भीर माङ्गल्य इन पाँच भेदोंमें विभक्त होते हैं।

पट्ट वा नागा।

पट्टका आकार छोटे भीर बड़ेके भेदमें दो प्रकारका होता है। दोनों प्रकारके पट्टके रोल मिट्टीके बन होते हैं। बड़े पट्टका मुह चौड़ा होता, तलदेश क्रमशः सूक्ष्म है; कर जोपाकारमें परिणत हो गया है। इस न तका मुह मीठे बमङ्गने महा होता है। छोटा पट्ट वक्रमें कुछ गोल होता है। इसके भी आच्छादनादि बड़े पट्ट जैसे होते हैं परन्तु इनमें पत्ताके पर भादि भक्त बस्तु नाबद्ध रहती हैं। यह वंन प्रायः काड़ा नामक एक कुम्भरे वृत्तक साथ बजाया जाता है। बजाने वाले वंनकी रस्सीस बंध कर गलेमें लटका लेते भीर दोनों हाथमें ही छोड़ी ले कर उस बजाते हैं किन्तु बड़ा पट्ट इन प्रकार बजाया नहीं जाता। उसे शमीन पर रग दो वंनके टिकारा नामक वस्तु साथ बजाते हैं। वसी वसी युद्ध-विजिताभीक मन्त्रानार्थ गृहप्रवेशके समय टाचाको वाट पर बजाने हुए भी देखा जाता है। पट्ट यहिर्दार्थिक भीर अति प्राचीन वस्तु है।

मर्ल।

मानद वंनके मरु मङ्गल ही सर्वश्रेष्ठ है। मङ्गलका नाम मरु मन्त्रक वद्वय भादि लक्ष्मिपौका बना देता है। इनमें खेती लक्ष्मी हो शक्य भण्डा है। शाल

मन्त्र लक्ष्मीके बने हुए मङ्गलकी इच्छा मो गम्भीर, रमणीय भीर बंध होती है। मङ्गल अक्षर भाष हाथ लम्बा भीर बाईं ओरका मुह बाहर लटक उ गजोका होता है। बाहिनी ओरका मुह उससे एक या भाष उ गजो कम भीर मध्य भाग मुहसे कुछ लम्बा होता है। छः महासे बन्दके बमङ्गने दोनों मुह मङ्गल होते भीर ये बमङ्गकी घड़ीसे परस्पर संघातित रहते हैं। उन घड़ियोंमें हस्तिदन्त मध्या भीर किसी कठिन वस्तुके बने हुए भाट गुल्म आवद्ध होते हैं। स्वर्गको ऊँचा भीर मोचा करनेके लिये उन गुम्बोंको छोड़के हाथोंसे संघातित कर लेते हैं। वस्तुके बाहिने मुहके ठीक बीचमें मरु, गेह मिट्टी, गेहूँका भाँटा या चिडडा, इन सब पदार्थोंके मन्त्रमें मिला कर लगभग चार म सुल मर गोल मोटा छेप बना देते हैं, बाईं ओर छेप नहीं लगाया जाता है। इन वस्तुको गोबमें रखा कर बजाया जाता है। मङ्गलको ही मन्त्र मृदङ्ग वा पञ्चाषड कहते हैं। संघाल भादि मन्त्रक जातियां इसी जातियां बजा बजा कर गीतादि करने हैं, यह मङ्गल वा माङ्गल कहलाता है। यह वस्तु सम्प वस्तुमें गिला जाता है भीर दोनों हाथसे इसे बजाते हैं तथा यह घु, पञ्चादि उष्णक गीतक साथ सहित हुआ करता है।

मुर।

मुर मन्त्रके समान, पर बसल कुछ छोटा होता है। इसका बायां मुह भाट उ गजो भीर दाहिना मुह साठ उ गजो चीन्ना होता है। इसकी लम्बाई एक हाथसे कुछ अधिक होती है। बजानेवाले रस्सीसे इसकी गलेमें लटका कर बजाते हैं। इसकी बाह ओर भी मसालिका छेप रहता है।

मुर।

मृदङ्ग वस्तु बहुत प्राचीन है। पुराणमें लिखा है, कि जब सिपुरागि महादेवमें देवताओंके अत्रेय अति दुर्वास निपुरागुरको युद्धमें मार कर बड़े आनन्दमें ताण्डवनृत्य नारदा क्रिया इन समय अनुरक शरीर स निन्दते हुए कथिरते समराङ्गकी भूमि सिद्ध दो कर्ममें परिणत हो गई थी, उन वदमस वृष्टि कर्ता पणवोनि प्रदाने मृदङ्गका मेघक, चमन नाच्या

वनी, गिरासे चर्मसंयोजक रज्जु और अस्थिने गुल्म बना कर गणनायकको महादेवके नृत्यमें ताल देनेके लिये प्रदान किया था। नणेजने उस मृदङ्गको बजा कर महादेव के नृत्य और देवताओंके हर्षको बढ़ाया था। इस यन्त्र का प्रदान अङ्ग मेखड़ा ही है जो मिट्टीका बना होता है। आधुनिक मेखड़ा ही प्रकृत मृदङ्गसद्वारूप है। विशेषता इतनी ही है, कि ब्रह्मसुष्ट मृदङ्ग गुल्मयोजित था, मेखड़ेमें गुल्म नहीं रहता। इस यन्त्रके दोनों मुँहमें लेप रहता है। इस यन्त्रका केवल कोर्लनादिमें व्यवहार होता है।

तरला।

तथला आधुनिक मृदङ्गका अनुकरणमात्र है। यह यन्त्र दो भागोंमें विभक्त है, एक भागका ढाँचा मृदङ्गके जैसा ढाँचा बना होता है, दूसरा मिट्टी वा किसी धातुका। लकड़ीके भागको दहिना या तवला और मिट्टीके भागको बायाँ या डुग्गी कहते हैं। दोनों भाग पर सरेस आड़िकी बनी हुई स्याहीकी गोल टिकिया अच्छी तरह जमा कर चिकने पत्थरसे घोटी जाती है। दाहिनेसे उच्च मधुर और बायेंसे गम्भीर नादस्वर निकलता है। यह चमड़ेके फीतेमें जिने बद्धी कहते हैं कम कर बांध दिया जाता है। इस बद्धी और कूडके बीचमें काठको गुल्लिया रख दी जाती है। इन गुल्लियोंकी सहायतासे तथलेका स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाने या उतारने हैं। डुग्गी या बायाँ कभी कभी अकेला ही बजाया जाता है, पर तवला कभी भी नहीं।

ढोलक।

ढोलकका मेखड़ा लकड़ीका बना होता है। इसमें दोनों मुँह पर थलला चमड़ा चढ़ाया रहता है। चढ़ाने समय चमड़ेको मियाँ कर एक वासको गोल कमाचीमें इस तरह लपेटने है कि यह कमाची चमड़ेसे आवृत हो कर ढोलकके मेखड़े पर आ कर चिपक जाती है। इसी कमाचीमें दोनों ओर डोरी लगा कर बस देते हैं। इस डोरीमें लोहे वा पीनलकी छोटी छोटी कड़ियाँ पहनाई रहती हैं। इन कड़ियोंको चढ़ानेसे ढोलक तन जाना और उतारनेसे उतर आता है। इस ढोलकके दोनों मुँहका ध्यास प्रायः एक समान ही रहता है। किन्तु इसका मध्य भाग अपेक्षाकृत कुछ मोटा रहता है। रामायण गान तथा मेहिनी रागरागिनियोंमें भी यह व्यवहृत होता है।

दम्फा।

भारतीय सब यन्त्रोंको अपेक्षा हफ्फेका आकार बड़ा है। इसका भी मेखड़ा लकड़ीका बना होता है। दोनों मुख समग्रामविशिष्ट और चमड़ेमें छाया हुआ रहता है। दोनों ओरके चमड़े गून या चमड़ेकी चौड़ी डोरीसे कसे रहते हैं। इसका एक ही मुख दोनों हाथमें लकड़ीमें बजाया जाता है। इस यन्त्रकी जोभा बढ़ानेके लिये बजानेवाले इसमें पश्चियोंके पर लगाने हैं। बजानेवाले मोटी रस्सीमें यन्त्रको बांध लेते और गलेमें डाल कर पूर्वोक्त रीतिमें बजाया करते हैं। यह यन्त्र देवोत्सवों या पर्वोपलक्ष्यमें ही अधिक व्यवहृत होता है। बङ्गालमें इसे ढाक कहते हैं। यह बहुत प्राचीन वाजा है। कारण, रामायणो युद्धके समय यही वाजा बजा था। रामायणमें इसका विस्तारित भावमें उल्लेख पाया जाता है। इसकी ध्वनि बहुत कर्कश होती है।

ढोल।

ढोलका आकार ढोलककी तरहका है। फिर भी इसका आकार उससे कुछ बड़ा है। इसके बायें मुँह पर एक मसाना लेपा हुआ रहता है। इसे डोरीमें बांध कर गलेमें झुका कर दाहिने हाथसे ताल देने और बायें हाथसे एक मोटी लकड़ीसे बजाते हैं। यह ढोल विवाहादि उत्सवोंमें व्यवहृत किया जाता है। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि यह ढोल ही सम्भ्रतावृद्धिके साथ ढोलकके रूपमें परिणत हुआ है।

काडा।

काड़ेका भी मेखड़ा लकड़ीका ही होता है। इसके एक ही मुख रहता है। वह भी पिछले भागकी अपेक्षा बहुत चौड़ा रहता है। चमड़ेको डोरीसे बांधा रहता है और चमड़ेसे ही छाया हुआ रहता है। इसे रस्सी बांध कर गलेमें झुका लेते हैं। ये दाहिने हाथसे बेंत द्वारा बजाते और बायें हाथसे ताल ठोकते हैं। किन्तु केवल काडा कभी नहीं बजता, छोटे नक्कारे तथा जगफफके साथ ही उत्सवोंमें बजता है।

जगफफ।

इस वाजेका मेखड़ा मिट्टीका बना रहता है। यह अपेक्षाकृत बड़ा और गहरे ढकनेकी तरहका होता है।

का छाया हुआ समझा खुनकी खोरी या बमबड़े की  
 जैसे कसा जाता है। सीम्प्य बढ़ानेके लिये इस बाजेमें  
 नर्पाक पर जोड़े जाते हैं। रस्सीमें बांध कर भोग  
 बजाते हैं। दोनों हाथोंमें लकड़ों से कर उनसे ही  
 गया जाता है। इसके साथ छोटे नकारेका गी ब्यवहार  
 है। उरसबाँ, विशेषता मुसलमानी पर्वोंमें इसका  
 अधिक ब्यवहार होता है।

तारा ।

तासा ईकमेंमें उरगुंके जगन्मरको तरह है। विशेषता  
 है कि छात्रनीका बमझा कुछ अपेक्षाकृत मोटा होता  
 है। यह जगन्मरके साथ बजता है। इसके बजानेका  
 जगन्मर जगन्मरको तरह ही है। बिबाहादि उरसबाँमें  
 अधिक ब्यवहार होता है।

नीलन ।

इसका आकार नकारेकी तरह होता है। बंधक  
 बजनेमें कुछ बम होता और यह पतले बमबड़ेसे छाया  
 रहता है। दरवाजे पर नकारेकी तरह दोनों हाथोंसे छोटी  
 छोटी लकड़ियोंसे बजाया जाता है।

बममा ।

नीलनको तरह ही इसका आकार और नीलनके  
 उपकरणों से ही यह तय्यार होता है। विशेषता यह है  
 कि नीलन बाजेको अपेक्षा इसका मुल बौद्धा और इसका  
 बमझा कुछ मोटा होता है। बमामा भी नीलनके साथ  
 ही बजता है। बमामा पहले युवक बाजेमें शामिल था।  
 जोड़पाई ।

जोड़पाई और कुछ नहीं पर डोलके ऊपर दूसरा  
 छोटा डोमल झाड़ा रहता है। इससे छोटे डोलसे उध  
 और बड़े डोलसे निगन बर निकलता है। जब जैसे  
 स्वर निधानकेको भावप्रकता होती है, तब जैसे ही  
 शोल पर भाषात किया जाता है। यह बाजा पहले प्रायः  
 ब्रह्मसमई दिया जाता था। अब उमका प्रचार बहुत कम  
 हो गया है। या वे कहिये कि अब इस बाजेका लोग ही  
 हो गया है।

बमरु ।

इसके बहुत पुगता बाजा है। ईशदेव महारिब हमनी  
 बजाते थे। किन्तु इन समय तो सपेरे या भासु या

बमर नवानेबाजोंका बाजा बन रहा है। इसका दोनों  
 मुह चौड़े होते हैं और बीचमें पतला रहता है। यह  
 मूठमें परक कर बजाया जाता है। इसकी छयाई भी  
 बमरुकी होती है और बमरुकी शैलीसे इसका दोनों  
 मोरके बमरुके कसे रहते हैं। बमरुकी खोरीमें पर  
 शीशेकी मोठा बंधी रहती है। बमरुके हिलाने दुसलनेसे  
 यह बजता है। यह बाजा बड़ा बिमोहक है। इस बाजे पर  
 भी खोगोंका अधिक ब्यान भाकवित होता था।

भुरक ।

पुरवकके दोनों मेकड़े छोटे नकारेके समान होते हैं।  
 ये मेकड़े मिहोक बने होते हैं। इनमें सिर्फ परकता मुल  
 कुछ अधिक चौड़ा होता है। इन दोनों मेकड़ेक मुलमें  
 इस प्रकार कीशरुमें बमरुके मड़े जाते हैं, कि एकसे बम  
 और दूसरेन नावस्वर निकलता है। जिससे नावस्वर  
 निकलता है, उसका बमरुके ममासेका रहता है। यह  
 दोनों हाथोंके भाषातम बजाया जाता है। इसे रोजन  
 औरनोक साथ बजाते हैं।

शुभिकन ।

जो सब यन्त्र छिद्रयुक्त होते हैं उन्हें शुभिरयन्त्र  
 कहते हैं। यह यन्त्र मुकल पूक मार कर बजाया जाता  
 है। बंशी, पार, पायिका मूरली, मधुहारी, काहला,  
 सिगा, रणसिंगा, रामसिंगा शङ्खु भुङ्की, बुका स्वर  
 नादि, अलापिक, बर्मेसंगो, सञ्जलघशी, रोजनकीकी  
 गहनार्थ कलम, तुरदी, मेरो, गोमुक्को तुबड़ो तथा पेशु  
 प्रभृति यन्त्र शुभिरयन्त्रके अन्तर् गिने जाते हैं। बड़े  
 पुष्पका विषय है, कि इनके अघिकाशके नाम ही पाये  
 गये हैं, बाकातादिका कोई बिह भी परिलक्षित नहीं  
 होगा। शुभिरयन्त्र प्रयातः बंशी काहल, सिगा और  
 शङ्खु इन चार जातियोंमें विभक्त है।

बंजी ।

यह यन्त्र पहले गोडाकार, नरन एवं गांडदीन बर्म  
 का ही बनाया जाता था, इसीचिये इसका नाम बंजी  
 पड़ा। मनुष्यकी सम्पत्ता पृथिके साथ साथ गैर,  
 बन्धनादि बाध। सुवर्ण प्रभृति धातु और हाथोंके दान  
 से भी यह चिह्न विचार होने लगा है। किन्तु इसके नाममें  
 कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। बंजीके मध्यका छिद्र

कनिष्ठागुलिकी परिधि की अपेक्षा अधिक होना ठीक नहीं, यह आठ अंगुल से ले कर एक हाथ तक लम्बी होता है। इसका शिरोभाग प्रायः घन्द तथा अधोभाग खुला रहता है। हापर युगमें श्रीकृष्ण जो वंशी बजाते थे, लोग उसे ही मुरली कहते हैं। वंशीके ऊपरोभागसे प्रायः तीन अंगुल नीचे जो अपेशाकृत एक बड़ा छिद्र रहता है, उसका नाम फुत्काररन्ध्र या फूंकनेका छिद्र है। फुत्काररन्ध्रके प्रायः चार अंगुल नीचे वेष्की गुठलीके बराबर छः स्वरके छिद्र होते हैं। वंशीके दोनों हाथोंके अंगूठे और तर्जनीके मध्यभागसे एकड़ कर दोनों हाथोंकी अनामिका, मध्यमा और तर्जनी, इन छः उंगलियोंके द्वारा इसकी वादन-क्रिया निरपन्न की जाती है। फुत्काररन्ध्रमें फूंक कर एवं पूर्वोक्त छः स्वरके छिद्रों पर उक्त अंगुलियों का आवश्यकतानुसार संचालन करते हुए वादक अपने इच्छानुसार गाना बजाते हैं। यह यन्त्र श्रीकृष्णका बड़ा प्यारा था, इसलिये कई व्यक्ति तो उन्हें ही इसका निम्नांता बताते हैं। इस समय यह यन्त्र भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न आकारमें बदल कर अनेक नामसे विख्यात हो गया है। जो कुछ भी हो, किन्तु भारतवर्ष में ही पहले पहल इसकी सृष्टि हुई, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

सरल वंशी।

सरलवंशीके आकारादि प्रायः मुरलीके समान ही होते हैं, विशेषता केवल इतनी ही है, कि मुग्लोके फुत्काररन्ध्रमें फूंक फूंक कर स्वर निकाले जाते हैं और इसके फुत्काररन्ध्रमें न फूंक कर वंशीके खुले शिरःप्रान्तकी ही मुखसे फूंक कर स्वर निकालते हैं। इसके फुत्काररन्ध्रसे वायु निर्गत होती है, इसलिये इस छिद्रकी फुत्काररन्ध्र न कह कर वायुन्ध्र कहना ही युक्तिसंगत है। मुरली जिस प्रकार बकभावसे पकड़ी जाती है, यह उस प्रकार पकड़ी नहीं जाती। इसे सरलभावसे ही पकड़ कर बजाते हैं, इसीलिये यह सरलवंशीके नामसे विख्यात है। इसकी वादन-प्रणाली मुरलीके समान ही होती है।

जयवंशी।

जयवंशी सरलवंशीसे बिल्कुल मिलती जुळती है;

किन्तु इसमें वायुन्ध्र नहीं होता। इसकी और सरलवंशीकी वादन प्रणाली एक-सी होती है। यदि कुछ अन्तर है, तो इतना ही, कि इसे मुखके एक पात्रमें बकभावसे पकड़ कर बजाना होता है।

कनम।

कलमका आकार बहुत कुछ करचीके कलमके आकारसे मिलता जुळता है, इसीलिये यह कलमके नामसे विख्यात है। इसकी लम्बाई अन्यान्य वंशीयोंकी अपेक्षा कुछ छोटी होती है, किन्तु स्वरछिद्रादि वंशीके बराबर ही होते हैं। यह यन्त्र सरलवंशीकी रीतिसे ही बजाई जाती है। इन दोनोंकी वादन-प्रणालीमें अन्तर यह है, कि सरलवंशी फूंक कर बजाई जाती है और इसके शिरःप्रान्तकी दोनों ओटोसे पकड़ कर बजाने हैं। इसके मुख भागमें एक टोटा-सा नल रहता है बजानेके पहले उस नलकी मुपके धूँकसे तर कर लेना पड़ता है।

रोशनचीकी।

रोशनचीकीका आकार देखनेमें धतूरेके फूलके समान होता है। इस यन्त्रका ऊपरी भाग रोखले काठका बना होता है और नीचला भाग पीनट आदि धातुओंका। किसी किसी रोशनचीकीका सारा अंग लकड़ोका ही बना रहता है। इसकी लम्बाई वंगालमें प्रायः एक हाथसे अधिक नहीं होती, किन्तु काजी, लखनऊ आदि प्रान्तोंमें यह वंगालकी रोशनचीकीकी अपेक्षा कहीं बड़ी होती है। इसके मुखमें एक नल लगा रहता है। वादक उस नलको अपने मुखमें ले कर बजाते हैं। इस यन्त्रका आकार जितना लम्बा होगा, आवाज उतनी ही नीची होगी। रोशनचीकी खुरदकके साथ बजाई जाती है।

शहनाई।

शहनाई और रोशनचीकी दोनोंके ही आकारादि सभी विषयोंमें एक-से होते हैं, केवल स्वरकी सामान्य पृथक्ताके कारण भिन्न भिन्न नामसे विख्यात हैं। ये दोनों यन्त्र एक ही रीतिसे बजाये जाते हैं। रोशनचीकीका स्वर शहनाईकी अपेक्षा कुछ ऊँचा होता है। इन दोनों यन्त्रोंमें अन्तर यह है, कि रोशनचीकी खुरदक वा ढोलकके साथ बजाई जाती है और शहनाई ढोलकके साथ।

वेणु ।

वेणुयन्त्र वेणु अर्थात् बाँसका बना होता है । इसी क्रिये इसका नाम वेणु पड़ा होगा । इसकी बनावट बंधी जातीय सभी प्रकारक यन्त्रोंकी अपेक्षा बड़ी होता है । इस यन्त्रमें एक तरफ छः और दूसरी तरफ एक छिद्र होता है । इसकी वायुन प्रणाली स्वतंत्र है । बादल इस यन्त्रकी किंबद्वि बहभाषसे पकड़ कर पर्व मुककी कुछ टेढ़ा कर, आहिस्ते आहिस्ते फूक कर बजाते हैं । फुरकार के तारतम्यानुसार नागा प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र बहुत आसानीसे बजाया जाता है । प्रबोष वाद्यक इससे बहुत ही मधुर स्वर निकाल सकते हैं ।

सिंगा ।

गाय, गदिय आदि स्त्रमे सो गवांछे पशुओंके सो गसे यह यन्त्र तैवार किया जाता है । यह वाद्ययन्त्र बहुत प्राचीन है । यहाँ तक, कि यह शुपिर यन्त्रका भादि यन्त्र कहा जा सकता है । भूत मायन भवानीपति शंकर सर्वदा इस यन्त्रका व्यवहार करते थे । एक पशुओंक मिंगक पतसे मागम एक छोटा सा छेद करके, उसमें मुह लगा कर इस बजाते हैं ।

रवसिंगा ।

रवसिंगाका आकार बहुत बड़ा होता है । यह यन्त्र पीतलादि धातुओंसे तैवार किया जाता है एवं मुकसे फूक कर बजाया जाता है । रणक्षेत्रके मध्य सैनिकोंक कोलाहलमें पशुयन्त्र द्वारा जिस समय सैनिकोंको प्रेरणाहित, आह्वान अधना किसी प्रकारका इशारा करने की सम्भावना रहता है, उसी समय यह यन्त्र व्यवहृत होता है । इसकी मंत्रिकेनिक ध्वनिसे द्वारा सेना अपने सेनापतिका अनिप्राय आसानीसे समझ लेती है । यह यन्त्र रणक्षेत्रमें बजाया जाता है, इसी लिये यह रवसिंगा कहलाता है ।

रामसिंगा ।

रामसिंगा मी धातुका बना हुआ एक बहुत बड़ा कुण्डलाकार यन्त्र है । इसका व्यास रवसिंगाकी अपेक्षा बड़ा होयैक कारण इसका स्वर मी उसकी अपेक्षा बड़ी गम्भीर होता है । यह यन्त्र रवसिंगाकी वायुन-प्रणालीसे ही बजाया जाता है । यह यन्त्र वेणुयन्त्रप्रकारक मही इसकादिमें अधिक व्यवहृत होता है ।

दुषी ।

दुषीका बनावट सीधा जाता है । यह पीतलकी बना होती है । यद्यपि इसका द्वारा सैन्यमास्त्राहादि भेद कार्य सम्पन्न नहीं जाता, तथापि रणक्षेत्रमें ही इसका व्यवहार होता है । कमा कमा यह नीवतकामैम मो बजाई जाती है । इसका गकार रवसिंगेस कुछ छोटा होता है । यह यन्त्र रवसिंगेको वायुन प्रणालीसे बजाया जाता है ।

मेरी ।

मेरीका दूसरा नाम दुग्धुमि है । यह वेणुमें ही बहुत कुछ वृद्धोक्षणयन्त्रके समान होता है । इस यन्त्रक मकके भीतर एक और तब इस कौशिकसे घुसाया रहता है कि बजानेके समय हाथके सख छत द्वारा हमसे नागा प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र प्राचीन समयमें युद्धयन्त्रमें ही गिना जाता था । किन्तु इस समय नीवतके बजानेके बाद यह यन्त्र बजाया जाता है ।

शङ्ख ।

शङ्ख दूसरे वर्गोंकी तरह मनुष्योंके हाथका बनाया यन्त्र नहीं है । यह एक प्राकृतिक यन्त्र है । समुद्रमें शंख नामक एक प्रकारका जानवर होता है । प्रकृति ने उसके आच्छाद्मोकोपकी इस ढल्लिसे तैवार कर रखा है, कि लोग उसके ऊपरी भागमें मिक एक छोटा सा छिद्र करके बाजा बना लेते हैं । शंख बहुत प्राचीन यन्त्र है । यह इस समय केवल मंगल कार्योंमें ही बजाया जाता है, किन्तु प्राचीनकालमें युद्धके समय ही इसका अधिक व्यवहार होता था । इस यन्त्रके मुकमें एक अगुल प्रमाण छेद करना पड़ता है । इस यन्त्रक बजानेके लिये उम्मी छेदमें पूरा ताकतसे फूकना पड़ता है । यह यन्त्र जितनी ताकतसे फूका जाता है, ध्वनि मी उतनी ही ऊँची होता है । प्राचीन कालमें मनुष्य पूरे बलवान होते थे इसलिये उस समयके लोगीक शंखकी आवाज बड़ी गम्भीर होती थी । यहाँ तक कि उस समयके पादोंके शंखकी गम्भीर ध्वनिले लोगोंका बसेजा कार्य रहता था ।

वित्ति ।

आधुनिक दुषीका यह छेद वित्तिनेक नामसे विख्यात



थी। इस यन्त्रमें तिनलाऊ व्यवहृत होता है, इसलिये इनका नाम तित्तिरी पडा होगा, क्योंकि तित्तिरी शब्दमें तिनलाऊका किञ्चित् आशाम मालूम पडता है। तिनलाऊके निचले हिस्सेमें दो नल लगे रहते हैं। उन दोनों नलोंमें ६ स्वर छिद्र रहते हैं। तिनलाऊके ऊपरी भागमें एक छोटा-सा छिद्र रहता है, उम्मी छिद्रमें फूँक कर यह यन्त्र बजाया जाता है। किन्तु लोग इसे सुत्रसे न बजा कर नाकसे बजाते हैं। प्राचीन कालमें ऋषि लोग अलावूके बटले मृगके चमड़ेसे यह यन्त्र तैयार करते थे। उन समय यह तित्तिरी यन्त्र चर्मचंगीके नामसे विख्यात था। इस यन्त्र में जो दो नल लगे रहते हैं, उनमें एकसे सुर भरा जाता है और दूसरेके द्वारा दृष्ट्यानुसार स्वर निकाला जाता है।

#### घनयन्त्र।

झाँकर घड़ी, काँसी, घटा, छोटी घड़ी, नूपुर, मजीरा, करताली, पट्टताली, रामकरताला और सप्तशराय ना जलतरंग इत्यादि यन्त्र घनयन्त्रमें गिने जाते हैं। ये सब बल लोहे, जामे, काच प्रभृति धातुओंमें तैयार किये जाते हैं, किन्तु इनके नामसे ज्ञात होता है, कि प्राचीन कालमें ये यन्त्र लोहेके बने होते थे; कारण यह है कि लोहेका दूसरा नाम घन है एवं इस धातुसे तैयार होनेके कारण ही यदि इनका नाम घन रखा गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। जो कुछ भी हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि घनयन्त्र बहुत प्राचीन है, यद्यत्कि धातुओंके आविष्कारके समयसे ही इसका व्यवहार होता आ रहा है। घनयन्त्रके अधिकांश ही स्वनासिद्ध हैं, केवल मजीरा, करताली, काँसी और पट्टताली अथवा तबके साथ बजाई जाती हैं।

#### झाँकर।

झाँकरका आकार नहरों धालीसे बहुत कुछ मिलना जुलता है। इसका किनारा ऊँचा और समतल होता है। इसके किनारेमें दो छिद्र होते हैं। उन दोनों छिद्रोंसे हो कर एक डोरी बंधी रहती है। वादक उस डोरीको बाँध हाथसे पकड़ कर इस यन्त्रको झुलाने हुए दाहिने हाथसे एक पतला डंडे द्वारा आघात करके इसे

बजाते हैं। प्राचीन कालमें यह यन्त्र किमी भी धातुमें क्यों न तैयार किया जाता हो, किन्तु इस समय यह प्रायः सर्वत्र ही काँसेका बनाया जाता है। झाँकर बहुत प्राचीन यन्त्र है। इनका माओ इसका झाँकर नाम ही दे रहा है। इस यन्त्रमें केवल भाँ भाँ जल निकलता है, इसीलिये यह यन्त्र झाँकरके नामसे विख्यात है। यह यन्त्र पहले दूरानादि कार्योंमें व्यवहृत होता था, किन्तु इस समय यह केवल देवताओंके उत्सवोंमें ही बजाया जाता है। किमी किमी स्थानमें यह झाँकर पहलाना है।

#### घड़ी।

घड़ी कानेकी बनी होती है। इसका आकार गोल और कुछ मोटा होता है। इसके किनारेमें एक छिद्र रहता है। उस छिद्रमें एक डोरी बंधी रहती है। वादक उस डोरीको बाँध हाथसे पकड़ कर अथवा किमी ऊँचे स्थानमें लटका कर दाहिने हाथमें एक लकड़ीके धुँडै-ने यन्त्र पर आघात करके इसको वादनकिया निरूपण करते हैं। यह यन्त्र देवताओंकी आरतीके समय तथा दूराना, संवाद स्थापन एवं समर्थके निरूपणार्थ व्यवहृत होता है। समर्थनिरूपक घडाका आकार कुछ बड़ा होता है।

#### काँसी।

काँसी देखनेमें प्रायः झाँकरके समान ही होता है। इसके किनारेमें भी एक छिद्र रहता है जिसमें एक डोरी बंधी रहती है। वादक उस डोरीको बाँध हाथमें पकड़ और दाहिने हाथसे एक छोटे लकड़ीके डंडे द्वारा यन्त्र पर आघात करके बजाते हैं। यह यन्त्र ढका, डोल इत्यादि आनन्द यन्त्रोंके साथ बजाया जाता है।

#### घटा।

घट्टेका आकार काँसेके कट्टेरेको तरह गोल होता है। इसके मरतक पर एक दण्ड रहता है, उस दण्डके मूल-भागका कुछ अंश यन्त्रमें जुड़ा रहता है तथा उसमें एक छिद्र और उस छिद्रके साथ एक दीर्घाकार सोलकपिण्ड लोहागुणोपक द्वारा आवद्ध रहता है। दण्डका बाँध हाथसे पकड़ कर सञ्चालन करनेमें ही वादनकिया निरूपण होती है। यह यन्त्र देवपूजाके समय ही व्यवहृत होता है।

सुरपरिष्ठा वा सुधर ।

सुधर पोलशक बना होता है । इसका आकार छोटा वक्रुल जैसा, पर लोण-या होता है । मोतारमें बहुत छोटी मोमकी गोली रहती है । कुछ सुधुकरघोंका एक माप रस्सीमें बांध कर पांचमें पटमना होता है । चलते वा गाब करने समय उसमें एक प्रकारकी बल्लुद ध्वनि निकलती है ।

नूपुर ।

नूपुर बंसेना बना होता है । इसकी बनायट कुछ टेढी होती है, इसकेमें यह बहुत कुछ पात्रैवक जैसा लगना है । इसका मोतर भी चुंघरुकी तरह छोटी छोटा सीसेका गोबिवा रहती है । यह प्रायः नाण्डकमृत्पर्यै ही लय हट होता है ।

मन्दिरा ।

मन्दिरा वा मन्दीप कंसिकी बनी हुई छोटी छोटी कने रिशोकी जोड़ी है । उनके मध्यमें छेद होता है । इन्हीं छेदोंमें डेगा पहना कर बगकी सहायतामें एक बटोरीमें दूमरी पर घोट दे कर सङ्गीतके साथ ताल देने हैं । यह एक सूदूर, लक्ष्मी और डेसक आदि यानत्र बाजोंके साथ ताल देनेके लिये व्यवहृत होता है । इसका बूझा नाम जोड़ी भी है ।

उरताञ्जी ।

पद्यपथ मनुष्य गोबाकार बंसेना बना हुआ पथमा समतल यन्त्र करताली कहलाता है । यह एक तरहकी दो करताली होती है । इसका मध्यभाग कुछ उठा होता है । इसका बीचमें छेद रहता है, उस छेदमें रस्सी बंधी होती है । रस्सीको व गलीमें लपेट कर दोनों करताली दोनों हाथों बजाई जाती हैं । यह एक यानत्रय एक साथ बजाने होता है ।

पट्टाली ।

पट्टालीको हिन्दुओं बट्टाली और बट्टानामें पार लानी कहते हैं । यह बट्टिनसोद (इम्पान) में बना जाती है । इसकी सम्भाई भाषा बिनहन है वेद हल में दो गदो, पोल गोस और वेद मननस मल्लयबसे शोरी लोग्ण अथवाग हम्पाः सूदम होता है । बजाने समय बार परतासियां एक साथ बजाने होता है । दोनों दधेसी

पर वा दो पट्टालीयां रख कर व गलीमें बजाने हैं । इसका बजाना बहुत बट्टिन है, इस कारण इसका बजानेवाले बहुत कम मिलते हैं । येकपमान-यादकके साथ इसका वाद्य सुन्दर मासूम होता है ।

यमकरताञ्जी ।

करताञ्जीमें कुछ बड़े यन्त्रका राम करताञ्जी कहते हैं । इसके बादन आदि मन्पाण्य विषय करताञ्जीके समान होत हैं ।

पल्लवाव वा जलपट्ट ।

यह यन्त्र प्रायः सृष्टिचालमं कास्यादि घातु अथवा एक एक पङ्गादि सतस्वरविशिष्ट और अनुसृत्यात्मक पदार्थके बने हुए सात सराय या हृदयनसे बनाया जाता था, इस कारण इने सतसराय कहते थे । पीछे जब उसके बदले बीनी मिट्टीके सात बटोरीमें भायवकता तुमार मल डाल कर सात स्वर मिला देनेकी प्रथा आदिप्लुत हुई, -भीस यह सतसराय नामके बदलेमें अल्प लक्ष्म कहलाने लगा है । अभी सात बटोरीयां व्यवहार न हो कर जिनसे ढाई सतक स्वर पाये जायें उतने ही बटोरीका वाचना केबनेमें आता है । यह यन्त्र बजानेक समय बादक उन बटोरीको अर्द्धघन्नाकारमें सजा कर रखते हैं और दोनों हाथोंसे दो छोट्टी मुद्गर, बण्ड वा मकड़ोके मायात द्वारा उन बटोरीको बजाते हैं । इसमें शब्दनुसार गतादि बजाये जाते हैं, इस कारण यह यत् स्वतासिद्ध यन्त्रमें गिता गया है । इसका वाद्य सुननेमें बहुत मसुर होता है, किन्तु बिना अन्पासके बजानेसे यह अथवमसुर न हो कर अथवमशु होता है ।

इसक मिया भारतपर्यमें और भी अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोका प्रबन्धन देखा जाता है । इन यन्त्रोंमें काह प्राचीन दो व लौक, संयोगसे, काई वैशैजिक पंरविशेषक अनुकरण पर और काई प्राचीन और मायुनिक दो यन्त्रों व समिधयम उरताञ्जी हुआ है ।

गिन्नाबिधान का उन्नतिके साथ साथयूरोपयन्त्रमें अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोका भी उदयति हुइ है तथा उन लये आविष्कारके साथ ही उनका संशुद्ध और उन्नति हो ती जा रही है । यहाँ उन सब यन्त्रोंका विशय परिचय न देकर बसल कुछ यन्त्रों नाम और उनक इतिहास दिये जाते हैं—

एक्ट्रियन—सबसे पहले चीनदेशमें इस यंत्रका प्राच्यार होता था। वर्तमानकालमें जर्मनी और फ्रांसमें भी यह यंत्र बनाया जाता है। सन् १८२८ ई०में इटलैण्डमें इसका प्रचार हुआ।

इथोलियनहार्प—यह जान्त्व तन्तुविजिष्ट एक प्रकारकी वीणा है। अरगन नामक यंत्रनिर्माता मुप्रसिद्ध फादर क्वरने इसका आविष्कार किया। यह यंत्र वायुप्रवाहसे ही बजाया जाता है।

वैन-पाइप—यह बहुत पुराना वाद्ययंत्र है। हिब्रू और प्रोफीमें इस यंत्रका बहुत प्रचार था। आज भी स्काटलैण्डके हाइलैण्डमें यह प्रचलित है। डेनमार्क नारवेवामी पहले इस यंत्रको स्काटलैण्ड ले गये। इटली, पोर्लैण्ड और दक्षिण फ्रांसमें भी इस यंत्रका यथेष्ट व्यवहार देखा जाता है।

वैससुन—काष्ठनिर्मित एक प्रकारका वाद्ययंत्र है। मिष्टर हवाण्डेनने इस यंत्रका इटलैण्डमें प्रचार किया। यह फ्रैंक कर बजाया जाता है।

विगल—पहले जिकारी लोग इस वाद्ययंत्रका व्यवहार करते थे। अभी सामरिक-वाद्ययंत्रके अन्तर्भूक्त हो कर इस यंत्रकी बड़ी उन्नति हो गई है।

काष्टानेटस—मूर और स्पेनियार्ड इस छोटे यंत्रकी बजा कर नाच करते हैं। यह एक तरहका डो पोटा बाजा है।

फनमार्दिना—१८२६ ई०में प्रोफेसर हिट्टोनने इस यंत्रका आविष्कार कर अपने नाम पर इसको रजिस्ट्री की।

क्वेत्रियन—एक प्रकारका तर्की वाद्यविशेष। तुर्कीकी नपेया इसका जन्म स्थल माना जाता है।

क्वेत्रियोन्ट—एक प्रकारकी वंजी। १७वीं सदीके शेष भागमें डनर नामक एक जर्मन मञ्जीनविद्वाने इस यंत्रका आविष्कार किया। सन् १७७६ ई०में इटलैण्डमें इसका प्रचार हुआ।

मिथ्रल—इताल्व यह बहुत प्राचीन यंत्र है। पण्डित जैकोफतका कहना है, कि साइरेनीवेदीने इस यंत्रका आविष्कार किया। येना यूरोपवासियोंका विश्वास है कि तुर्क और चीनमें अच्छा करताल मिलता है। भागतवर्षमें बहुत पहलेंसे इस यंत्रका प्रचार है।

ड्राम—ढाक वा डंका। ग्रीसवासियोंके मतसे

वेकमवेदने इसका आविष्कार किया था। इजिप्ट और यूरोपमें इसका यथेष्ट प्रचार है। आज भी युद्धमें डंकेका व्यवहार होता है।

गीटर—तन्तुविजिष्ट वाद्ययन्त्र। स्पेनदेशमें इस वाद्ययन्त्रका उद्भव हुआ और वहाँ इसका यथेष्ट प्रचार है। किसी समय यूरोपमें इस यंत्रका इतना अधिक प्रचार था, कि अन्यान्य वाद्ययन्त्रोंकी विक्रीमें अल्पवत्त बाधा पहुचनी थी। गीटरमें छः तार रहते हैं। मितारकी तरह यह बजाया जाता है।

हार्मनिका—कुछ काचके ग्लासोंसे इस प्रकारका वाद्ययन्त्र बनाया जाता था। अभी इसका व्यवहार एक तरहसे लोप हो गया है।

हरमोनियम—बहुतोंका ख्याल है, कि यह वाद्ययन्त्र यूरोपमें आविष्कृत हुआ है; किन्तु यथार्थमें ऐसा नहीं है। यूरोपवासियोंके इसका नाम सुननेके बहुत पहले चीन देशमें इसका प्रचार था। पेरिस नगरके डिवेन नामक एक व्यक्तिने ही पहले पहल इसकी उन्नति की।

हार्प—वीणा, बहुत प्राचीन यंत्र है। इसका इतिहास पहले लिखा जा चुका है। १७६४ ई०की फ्रांसकी राजधानी पेरिस नगरवासियोंमें सिर्वाष्टियन एवार्डेने इसकी बड़ी उन्नति की।

हार्डिगार्डो—तागविजिष्ट वाद्ययंत्र। जर्मनीमें इस यंत्रका आविष्कार हुआ। दक्षिण यूरोपके अधिवासी इस यंत्रको बजाता बहुत पसन्द करते हैं।

हार्पि-सिकर्ड—बड़े बड़े पियानोफोर्टकी तरह वाद्ययंत्रविशेष। पियानोके पहले इसका बहुत प्रचार था। किन्तु पियानो यंत्रके आविष्कारके बादसे इसका प्रचार घट हो गया है। १६वीं सदीके पहले भी यह यंत्र विद्यमान था। १७वीं सदीमें इटलैण्डमें इसका प्रचार हुआ था।

फनाजि ओ लेट—यह फ्यूट जैसा वाद्ययंत्र है। इसका स्वर बहुत तीव्र होता है। अभी इसका व्यवहार बहुत कम होता है।

फ्रञ्च हार्व—यह यंत्र भी फ्रैंक कर बजाया जाता है। फ्लूटकी तरह इसमें छेद नहीं होते, इसकी ध्वनि फ्रैंक पर ही निर्भर करती है।

फेटन ड्राम—यह डंके जैसा होता है और तावेसे बनाया जाता है।

शुभम हायै—यह बालकांक खेलनेका वाचपत्र है ।  
 श्युट—यह गारद या सिगार भादि जैसा वाच-  
 पत्र है । मितारकी तरह बजाया जाता है । अति  
 प्राचीन समयमें यह पत्र प्रचलित था । प्राचीनतम  
 अंगरेज-कवि चकारके प्रथम इस वाचपत्रका उल्लेख है ।  
 गीटारक प्रथमके बाद श्युटका व्यवहार प्रचल गया है ।

झायर—तारबिगिष्ट वाचपत्र जो मंत्र पढी वाचपत्र  
 मन्त्रसे प्राचीन है । इतिवृत्तक अष्टियासिधोमिं प्रशङ्क  
 है, कि पृथिवी निमायके है। हज़ार वर्ष पीछे मन्त्रोद्देश्ये  
 इस पत्रकी सृष्टि की । परिष्कारसके प्रथम इस पत्र  
 का उल्लेख किया जाता है । प्रासक्यासिधोमिं इतिवृ  
 यासिधोमिं इस पत्रका व्यवहार मोक्षा है । पहले ज्ञायर  
 लोग तापेंसे बनाया जाता था । इसके बाद श्युटके  
 एक तार और बढ़ा दिया । पाछे आर्किपमने एक तार,  
 कोमरने एक तार और सङ्कोषक पाँचवनेमिं एक और तार  
 बढ़ा कर साधारकी सप्तवनेमिं परिवर्तन किया । पाश्चो  
 यमने इसमें एक और तार जोड़ दिया था । म्यारद  
 तापेंका ज्ञायर माँ दैकनेमिं जाता है । श्युनाईमिं  
 दानिगमी नामक एक वाचपत्रके निर्माताके घोड़ेके  
 शिरकी हड्डीके सार्थमें एक ज्ञायर बनाया था ।

मो पय—इसका दूसरा नाम इटवप है । यह मूल  
 पत्र कर बजाया जाता है । इसकी आवाज मीठी और  
 बहुत स्पष्ट होती है ।

अकि पहाइड—सन् १८४० ई०में यह वाचपत्र भाबि  
 पट्टन हुआ । मनेट नामक पत्रकी उद्यतिके सिधे इस  
 पत्रकी सृष्टि हुई थी ।

अरगाम—पाश्चात्य प्रदेशमें जितने प्रकारक वाचपत्र  
 हैं अरगाम उनमें सबसे बड़ा और प्रधान है । बहुत दिन  
 हुआ इस वाचपत्रकी सृष्टि हुई है । इसकी प्राचीन  
 इतिहासका पता नहीं लगता । इस ज्ञातिके पत्रमें  
 आइरेलैण्ड काव्यमें 'मोडक प्रेम' नामक पत्रका उल्लेख  
 मिलता है । उन्होंने लिखा है, कि सेवट सेसिता  
 इसका आविष्कारक था । यूरोपीयनोंक उगासना मन्त्रमें  
 यह पत्र रखा जाता है । यह पत्र सबसे पहले गिरजा  
 कर्मचारियोंक हुआ था इसका व्यवहार प्रचलित है ।  
 कुछ देशक रहन है कि सन् १७०० ई०में पोग मिटासिधोमिं  
 गिरजाघरमें इस पत्रका व्यवहार प्रचलित किया । फिर

कि सोका कहना है, कि प्रीचराज क्यूरोनियसने ७५१ ई०में  
 एक अरगाम पत्रके राजा वेपिनको प्रदान किया । उन्होंने  
 भी इस कविग्न पत्रके सेवट-कर किनो गिरजाघरमें रखा ।

आर्सेमनके शासनकालमें यूरोपके अधिकांश नगरके  
 गिरजाघरमें ही अरगामका व्यवहार प्रचलित हुआ । ११वीं  
 सङ्कोक पहले तक इसकी उन्नति उन्नति नहीं हुई थी ।

११वीं सङ्कोके शेष भागमें ही अरगामकी आबोका  
 चलना शुभ हुआ । इस समय में उद्भविक गिरजाघरों में जो  
 अरगाम रखा गया था उसमें १६ आबियां थीं । इसके बाद  
 से आबोकी संख्या बढ़न और उसकी उन्नति होमे लगी ।  
 द्वितीय बाल्लूक राजस्यकाल तक भी इङ्ग्लैण्डमें अरगाम  
 नहीं बताया गया था । इस समय पूर्वतन इसाईयोंके  
 प्रादुर्भावसे गिरजाघरमें सङ्कोक-माधुर्वादि विद्युत  
 हुए । किन्तु उसका बाद होसे इङ्ग्लैण्डमें फिर अरगामका  
 व्यवहार होने लगा । इस समयसे आङ्ग्लैण्ड शिष्योमिं  
 अरगामका बनाना आरम्भ किया । अभी आङ्ग्लैण्डकी बनाये  
 हुए अरगामका बहुत आदर है । यूरोपके निम्नलिखित  
 स्थानोंमें बड़े बड़े अरगाम देखनेमें आत है । हावसेनका  
 अरगाम १०३ फुट ऊँचा और ५० फुट चौड़ा है । इसमें  
 ८००० आदर स्ये है । १७३८ ई०में मूररने इस अरगाम  
 का बनाया था । रवाट्टमने भी प्रायः उसी तरहका  
 एक अरगाम है । उसमें तो नगरक पत्रमें ५३०० आदर है ।  
 इङ्ग्लैण्डक वेनिचम टाउनहालमें, मिन्चय प्रासादमें, रायल  
 मन्चमें इसमें तथा अलेक्जण्ड्रा प्रासादमें आर्सेमनोप  
 बड़े बड़े अरगाम हैं ।

पैण्डवन पादप—यह प्राचीन वाचपत्र है । यूरोपीय  
 यून नामक देशताने इसका आविष्कार किया, इस कारण  
 यह पत्र उन्होंने नाम पर पुकारा जाता है ।

पियानो फर्टि—'पियानो' शब्दका अर्थ कोमल और  
 'फर्टि' का अर्थ उच्च है अर्थात् जिस पत्रसे कोमल और  
 उच्च दोनों प्रकारक ध्वनि निकलन है उसका नाम पियानो  
 फर्टि है । १५वीं सङ्कोके पहले माँ इस प्रकारका पत्र  
 प्रचलित था, इसके बहुतसे प्रमाण भी मिलते हैं । दान  
 सिगर कुंघाएवई, गारजिनल भादि पत्र इसी जातिके  
 हैं । पलिहाथेयक समय पारसियान पत्र प्रचलित  
 हुआ । इसके बाद हर्षेयिकका नाम भी उदात्तैय,  
 ईडन, मोजार्ड और स्कालोरीके प्रथम मिलता है ।

इस प्रकार यह यन्त्र धीरे धीरे परिवर्तन हो कर उन्नत आकारमें बनाया जाता था। सन् १७१६ ई०में प्रह्वन पियानोफर्टि आविष्कृत हुआ। पेरिस नगरके मारियम नामक एक वाद्ययन्त्र-निर्माणकारीने सबसे पहले यह यन्त्र निर्माण किया। यही पियानोकी प्रथम उन्नति है।

इसके बाद फ्लोरेन्सनिवासो क्रिष्टोफली द्वारा इस यन्त्रकी बहुत उन्नति हुई थी। इसी समयसे यह यन्त्र पियानोफर्टि कहलाने लगा। १७६० ई०में लण्डन प्रहरके जुस्या नामक एक व्यक्तिने तथा जर्मनीके सिलवरमैन नामक एक दूसरे व्यक्तिने पियानो फर्टि बना कर उसका व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया। फ्रान्स देशमें सिवाष्टियन पवाडे इस यन्त्रकी बड़ी उन्नति कर गये हैं। यह सन् १८०६ ई०की बात है। उनके मनीजे पियारी पवाडे ने १८२१ ई०में लगायत १८२७ ई० तक पियानो यन्त्रकी बड़ी उन्नति की है। मि० हैनकाक दण्डाय नाम पियानोके निर्माता है। इसके बाद साउथवेलने इस प्रकारके यन्त्रकी उन्नति की। ये ही कैविनेट पियानोके आविष्कर्ता हैं। अभी सारे यूरोपमें, इंग्लैण्ड और चापेनाकी प्रणालीके अनुसार बनाये गये, दो प्रकारके पियानो प्रचलित देखे जाते हैं। किंतु फ्रान्सके सिवाष्टियनकी निर्माणप्रणाली अभी सर्वोको पसन्द आई है। पियानो फर्टि यूरोपीय समाजमें अभी बहुत प्रचलित है। प्रायः सभी धनियोंके घरमें यह यन्त्र देखा जाता है।

सरपेण्ट—नलाकार प्राचीन वाद्ययन्त्रविशेष।

टैम्बुरिन—यह खजनीकी तरह एक प्रकारका प्राचीन वाद्ययन्त्र है। इसका विवरण पहले लिखा जा चुका है।

वाद्योलिन—बेहला। किस समय बेइलेकी सृष्टि हुई,

उमरा पता लगाना कठिन है। कुछ मनुष्य कहते हैं, कि यह आधुनिक वाद्ययन्त्र है। फिर किसीका कहना है कि प्राचीन कालमें ही बेहला प्रचलित था। बेइलेकी उत्पत्ति करनेके लिये यूरोपमें विशेष चेष्टा हुई है। किंतु कोई भी कृतकार्य न हो सका। क्रिमीनर अमाता और ट्रेडियो अग्निम इन दो वाद्ययन्त्रोंके निर्माणमें बेइलेकी बनावटकी ऐसी उन्नति की है जैसी उन्नति पाछे और किसीने भी नहीं की।

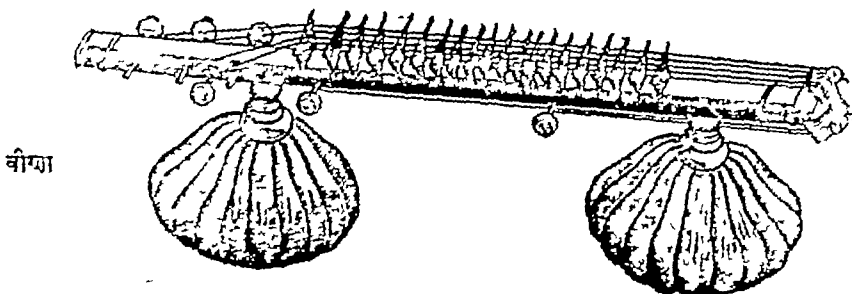
धाकोलिन खंटी—यह भी बेइले जैसा एक यन्त्र है। आकार और तारविन्यासमें बहुत काम अन्तर है।

उक्त भारतमें और यूरोपीय यंत्रोंको छोड़ कर पृथिव्याके अग्रान्य देशोंमें और भी अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्र प्रचलित देखे जाते हैं। मिस्रदेश, सिलेफन, टैम्बुराल, ड्राम्पेट, नुरही, और जिन्नर आदि और भी अनेक प्रकारके यूरोपीय वाद्ययन्त्र हैं। विषय बहुत जानेके भयसे उन सब का उल्लेख यहां नहीं किया गया।

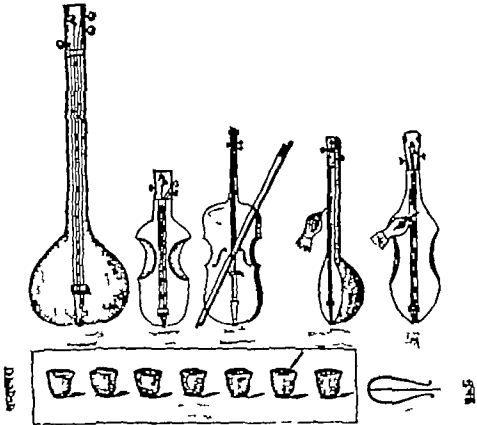
इस देशमें जलतरङ्गको तरह एक वाजेका प्राचुर्य हुआ है। इसकी बाँडारमें लगने लगे कई फांचके टुकड़े सूतसे पिरो कर एक छोटे बक्समें रखे जाते हैं। उन फांचके एक एक टुकड़े पर एक लकड़ीकी नेत्रसे व्याघ्रात करनेसे ऊँचा और नीचा स्वर निकलता है। इसका स्वर जलतरङ्ग वाजेको तरह कोमल और सुमिष्ट है। कभी कभी फांचके बदले स्वगानुमत धातव पात व्यवहृत होता दिखाई देता है।

ऐसे बक्समें विभिन्न स्वरोंका तार गाथ कर कानून नामका एक वाजा तय्यार किया जाता है। इसका 'वादनकीशाल' या बजानेको चतुरता प्रशंसाई और इसकी स्वरलहरी हृदयग्राही है।

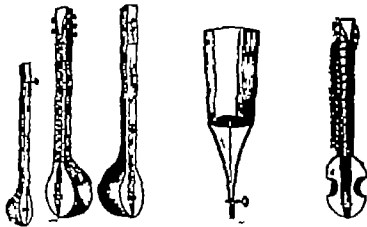
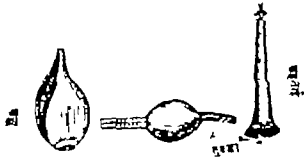
भारतीय वाद्ययन्त्रचित्र।



वीणा



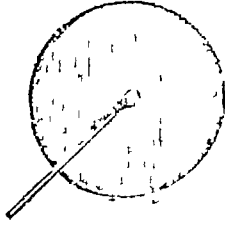
ऊपरके वाले से १ सन्तूर, २ सारङ्ग, ३ वेदिका, ४ सुखायन, ५ तारद



पञ्चमस्तु विनाय, २ बाण, ३ वेदीयन, ४ सारङ्ग



घण्टा



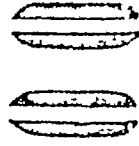
घाँघर



मंजीरा



करताल



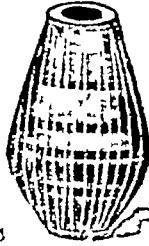
पट्टाली



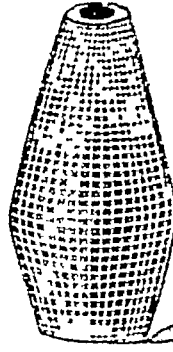
पृदङ्ग



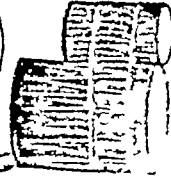
बासा



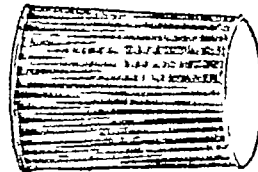
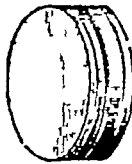
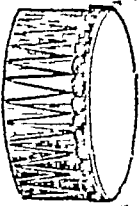
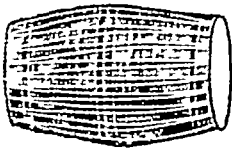
तयला



खोल

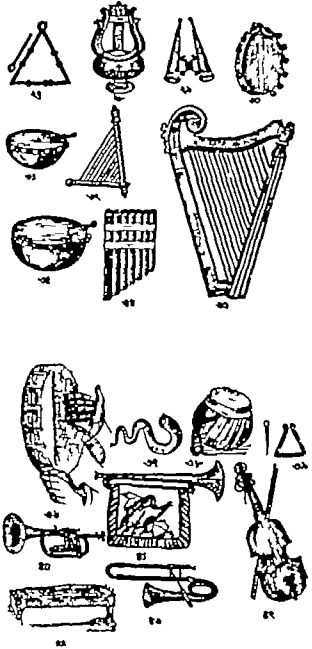
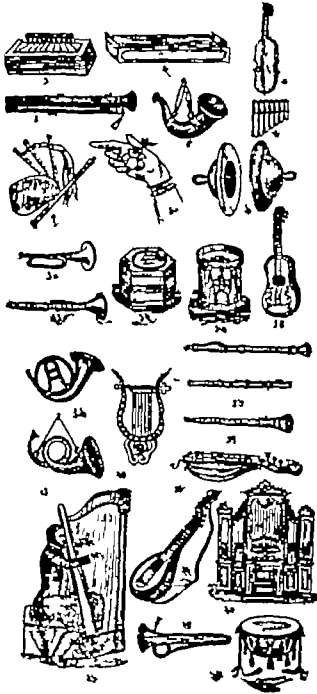


जोडपारि



ऊपरसे १ ढोलक, २ डमरू, ३ नकारा, ४ जगभम्प, ५ खंजडी, ६ मादल ।

यूरोपीय वाद्ययन्त्र



१ एकविंशति । २ युक्तियन्त्रार्थं । ३ डेनर, यह  
 शबल भासका है । ४ वाद्युल । ५ हाथद समेत विगल ।  
 ६ पारिहयन पाद्य । ७ शिगपाद्य । ८ काष्ठनेटस ।  
 ९ यमसिपेस्ट सिम्बल । १० ह्यारियून । ११ ह्यारिओनद ।  
 १२ क्लमार्दिना । १३ शाम । १४ गिट्टर । १५ फेन्सिओ  
 सेट । १६ पन्दूट । १७ हदयव कीर ओबी । १८ दाडीगाडी ।  
 १९ फेन्स-ईर्न । २० सायर । २१ हाथोई हर्न । २२ ल्युट ।  
 २३ अर्गात । २४ ओकोफ़ोडी । २५ क्लमहाम । २६ हार्प ।

२७ हून्सरो तरहका द्रायकुक । २८ सायर । २९  
 हर्न वाद्ययन्त्र । ३० अगम्य नामक भाकारका  
 पाय । ३१ गङ्ग नामक मानद यन्त्र । ३२ एक  
 प्रकारका हार्प । ३३ कानूनको तरह यन्त्र । ३४ वृहदा  
 कारगङ्ग । ३५ वैयिश्यन बड़ा पाद्य । ३६ टैम्बुरिन ।  
 ३७ सारपेस्ट । ३८ डेमेतेम । ३९ द्रायकुक और रद्द ।  
 ४० कर्नेट यन्त्र । ४१ द्रायकुक । ४२ भाओकिङ्ग ।  
 ४३ द्रामन । ४४ खोनोमिटर । यह हून्सरो तरहका  
 जिथर है ।



वाध—विहति, वाधा । अत्रादि० आत्मने० सक० लट् । लट् वाधते । लोट् वाधता । लिट् दोषे । लुङ् अत्रादिप्र ।

"न्या विद्याम्यतां नाम स्तन्वन्ति यदि वाधते ।

न तथा वाधते स्तन्वन्ति यथा वाधति वाधते ॥" (उट्ट)

प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्य एक दिन काँश्याम-को न पहचान कर पारुषाका रुद्राग बना का ले गये थे । पालकी टोते होने जब कालिदास धर गये, तब राजा ने उत्तरे कहा था, 'ये मूर्ख ! यदि प्र वेवे कुछ बड़ मान्यम होता हो, तो थोड़ा विश्राम कर लो ।' कालिदासने राजा-के आत्मनेपदा वाध वातुके अममहत परमपत्र प्रयोगसे दुर्गम हो कर कहा था, कि 'वा प्रति' इस शब्द-प्रयोगने मुझे जैसा कष्ट दिया है, वैसा कष्ट मेरे कवेने नहीं हुआ है ।

वाध ( सं० पु० ) वाधनमिति वाध भावे प्रञ् । १ प्राति-वन्धक, व्याघात । २ नैयायिकोंक मतसे साध्याभाववत् पक्ष, साध्यका अभावविनिष्ट पक्ष ।

वाधक ( सं० लि० ) वाधते इति वाध ण्वुल् । १ वाधा-जनक, रोक्नेवाला । ( पु० ) २ क्षीरोगविशेष, सन्तान न होना वा उसका प्रतिबन्धक रोग । स्त्रियोंके जो रोग होनेसे सन्तान नहीं होती अथवा सन्तान उत्पन्न होनेमें बाधा पैदा होता है उसी रोगको वाधक रोग कहते हैं । स्त्रियोंके यह रोग होनेमें यथाविधान उसकी चिकित्सा करना उचित है ।

वैद्यमें इससे लक्षणदिका विषय इस प्रकार लिखा है—रक्तमात्र, पट्टी, अक्षु और जलकुमार—ये चार प्रकारके वाधक रोग हैं । ऋतुकालमें ये चार प्रकारके वाधक उत्पन्न होते हैं । जो सन्तानका कामना करते हैं, वे यदि मुख्य उपदेशानुसार इन सब वाधकोंकी पूना, निःसारण, स्थापन, बलिदान और जपादिका अनुष्ठान करें, तो उनका सन्तान-प्रातिबन्धक चिनष्ट होगा ।

रक्तमात्रोंके टापमें वाधक रोग होनेसे कमर, पैरू ढगल और स्तनमें वेदना हाता है तथा ऋतु ठाक समय पर नहीं होता, कमा एक मासमें, कमा दो मासमें होता है । किन्तु इस ऋतुमें गर्भ नहीं होता ।

पट्टावाधक रोगमें ऋतुके समय आँव, हाथ और धोनिमें बहुत जलन होती तथा जो रक्तस्राव होता है उस

में गल मिली रहती है ; गर्भोंके भीतर दो घाव ऋतु और योनिप्रदेश मटिन या लाल होता है । इसमें सो सन्तान उत्पन्न नहीं होता ।

अट कुश-वातक रोगमें ऋतुके समय उद्वेग, देहकों गुग्गता, अतिशय रक्तस्राव, नामिह अत्रोत्सर्ग शूत्र, ऋतुका नाश वा तीन चार महानेके अन्तर पर ऋतु होता है । शरीर दुबरा तथा हाथ पाँवमें जलन होती है ।

जलकुमार वाधकरोगमें शरीर सूब जाना, थोड़ा रक्तस्राव होता, गर्भ नहीं रहने पर भी गर्भकी तरह अनुभव होता तथा हमेशा वेदना होता, बहुत दिनोंके बाद ऋतु होता और शूत्र रहनेसे शूत्र तथा दोनों स्तन भारी हो जाते हैं । इसमें भी गर्भ नहीं रहता है ।

स्त्रियोंके ये चार प्रकारके वाधकरोग उत्पन्न कष्टदायक हैं, इस कारण इस रोगके उत्पन्न होने ही गायत्रानुसार इसके प्रतिकारका उपाय करना उचित है ।

डाकृगी मतसे वाधक वेदना डिम्बमोर्निया ( Dysmenorrhoea ) कहलाती है । यह व्याधि सधारणतः तीन प्रकारकी है—(१) स्फुरितजिक वा स्नायवीय (२) कनजेष्विव वा प्रदाहक, (३) मेकानिकेक वा रक्तस्रावके अवरोधका वाधाजनित । यह वाधा अनेक कारणोंसे उत्पन्न हो सकती है—जरायुके भीतर मुखके सट्टोच अथवा जरायुके श्रीवादेशके सट्टोच अथवा जरायुके वायुमुखके अवरोधानव्यत रक्तस्रावमें वाधा हो सकती है । जरायुकी स्थानप्रणताक कारण भी वाधक-व्याधा हुआ करती है । इसका साधारण लक्षण—पृष्ट, कटि, ऊरु, जरायु और डिम्बाधारमें असह्य वेदना उपास्यत होता है । इस वेदनामें किसी किसीका मूर्च्छा भी आ जाता है । ऋतुके कुछ दिन पहलेसे, किसी किसीको ऋतुके समय यह व्याधा आरम्भ होती है । सार्धवस्राव बहुत थोड़ा होता, उसमें फेतयुक्त रक्त मिला रहता है । आधकाग स्वयमे ही बड़े कष्टसे काला जमा हुआ रक्त स्रग्दाकारमें बाहर निकलता है । विविमिषा, केशुप्रेष उद्ग, श्वान और शिर-पाडा आदि भी इस लक्षणक अन्तर्गत हैं ।

अमेरिकन चिकित्सक इस व्याधाके दूर करनेके लिये निम्नलिखित औषधोंका व्यवहार करते हैं—

वमहृदिवा ययुनारीसी ५ ग्राम, मुनाई भाई ५ ग्राम गरम प्रब १ पाइड ।

अब तब पत्नी का निकले तब तब प्रत्येक माघ घंटे के बाद यह औषध एक क्वाचो मात्रासे देना चाहिये ।

पेटमें पाठमें खीर तममें गरम अन्नका स्थैर देना रहन अच्छे है । इसमें क्या दूर होती है । दिन सब औषधोंके नाम ऊपर लिखे गये हैं उनमें सभी प्रकारकी पाचक क्या दूर होती है । किन्तु वैदिक आम्बुवकी उरगिके लिये दूधरे दूधरे औषधोंका व्यवहार प्रयोज्य नोय है । इनके मिया कुताइत अनिन्न-यमिन्न पाएना रिक्त-यमिन्न, मैमिमिन कमम्मा, हाएयो कामपाएट आन सोडा और साम्बुव काइयोघर भायम आदि व्यवहार करनेका विधान है । यौगैयिक चिकित्सक इस रोगके अन्नक्यामेरमें अत्याय्य औषधोंके साथ साथ निम्न लिखित औषधोंका व्यवहार किया करते हैं—

एरुडिया, इया सिपरिट काम ओपियो, पवन नाश्रम यमिमोनिन यपिन, वयुडिय क्लोरल, कानाविस और कानाविन टातम, कार्बन टेट्राइड, मैमिमिनिउडिन गामिगिरैमिक्स पराश मोमाइड पायसीदिसा मारयेन रती, मेकिरेयन एडिपाएरिन, सेमिकम नासो, हाइ ड्रामटिम सोबाई सेमिमिन्स तथा चारपार्मम मुजिफो लिपम् । इन सब औषधोंमें प्रत्येक औषध यथायोग्य मात्रामें अन्नके साथ या अत्याय्य औषधोंके साथ बाधक घेदनामें व्यवहृत होता है ।

होमियोपैथिकके मतसे घेदेडोना कालकरिया कार्ब, कालमिळा गिरमिमिगा, कानावम, नाकसममिका, पालसे टिका मिविया, स्लकर पाइफाएरम घोरक्स और मेतमिमिनम आदि औषध ससयके अनुसार भाष घंटे या एक घंटेके अन्तर पर व्यवहृत होती हैं ।

मस्तिष्कक उपद्रवमाथायमें—बेडोडोबा, गरुड मात्रा जानुमें प्रमलबन्ध घेदनामें और स्तनक पुये रहने पर—जाककरिया कार्ब, अमे हूप एलकायमें तथा बोयनेमें असमय हाने पर—काममिळा, डिस्टिरियाकी तरह मारीय होने रहन पर—सिममिफिलवा, स्तनके फुल्ले और गिर चकराने पर—कोनायम उदरव्यथा घोट और कमरसे दृशु भिस्तर्ककी तरह देना दोन पर—नाकस

ममिका ; अत्यन्त अघामि रोगिणोंके स्थिर नहीं रह सकने तथा अत्यन्त अमहा होने पर—गारमेदिना पेटमें दुर्ग मान्म हाने पर मिगियाका व्यवहार किया जाता है । अल्पमिमिनम द्वारा क्या बहुत उदर मध हागे है । होमियोपैथिक चिकित्सामेगना मक्षण क्ल कर उपयुक्त औषध निर्लेय करके औषध देना उचित है । इस जोड़ामें गरम अलकी से क देने और गरम अन्न विमावित बहुत उदरकार होता है ।

बहुम दिनस इस रोगमें बाधरोगमें उवडकम्प ( *Abroma augustum* L O Sterculiaceae ) नामक वृक्षकी छाल २० ग्रोन गोलमिर्कका म्यून २० ग्रोन प्रति दिन सेबनायं व्यवहृत होनी लगा है । सी नाम इस औषधका व्यवहार करनेसे रोग मारोय्य होता है तथा बाल्य रोग भी इससे जाता रहता है । अरायुमें महुदादि होनेसे बिना अमोयकारके इसकी ठोक ठोक चिकित्सा नहीं होती ।

वापन ( सं० ह्री० ) बाध-व्युट् १ पीड़ा, कष्ट । २ प्रति बन्धक, यह जो टाकता हो । वापने इति बधि व्युट् । ( जि० ) ३ पीड़ाका, कष्ट देनेवाला । ४ प्रतिबन्धक; रोकनेवाला ।

बाधक ( सं० ह्री० ) वध्याभा भाषा कर्म वा ( प्रायश्चित्तिके बोधकनेदुगागारिम्सम् । पा ४।१।२६ ) इति अम् । वधु का मग या धर्म ।

वाधक ( सं० ह्री० ) वधु रुद्धार्था बुध । वधुमम्यधीय । ( पा ४।१।२८ )

पाधा ( सं० ह्री० ) बाध टाप् । १ पीड़ा कष्ट । २ निषेध, मनाही ।

बाधावत ( सं० पु० ) धानावतका प्रामादिक पाठ । वाधुव ( सं० ह्री० ) विपाह ।

वाधुल ( सं० पु० ) गोरप्रयर्षक म्दिवेत् । ( संस्कारकोट्टी )

वापू ( सं० पु० ) १ बहिन नायका बाई । २ गौर, नाय ।

वाधुन ( सं० पु० ) वाधार्थमेद । वाधुय ( सं० जि० ) वधुयत् । ( मू० १०, ८४१४ )

वाधल (सं० पु०) ऋषिमेत्र, एक गौत्रकार ऋषिका नाम  
वाधलेय (सं० पु०) वाधुत्रके गोत्रापत्य ।  
वार्धाल (सं० पु०) वाधुत्रके गोत्रापत्य ।

( भाष्य० श्रौ० १२।१०।१० )

वाध्रीणम (सं० पु०) वाध्रीणन गींटा नामक उष्णु ।  
वाधुश्व (सं० पु०) वध्राश्वकुलमें उत्पन्न धनि ।

( ऋत् १०।६।१४ )

वान (सं० क्ली०) वा तृगुट । १ स्युति धर्म, सीतेका  
काम । २ ऋट, चट्टाई । ३ गति, चाल । ४ जलसंप्लुत  
वातोर्मि, पानीमें लगनेवाला धागुका कींका । ५ सुइद्र ।  
६ सौरभ, सुगंध । ७ गोदुग्धवान तपशीर, गायके दूधसे  
बनाया हुआ तोखुर । ( गार्गी ० ) वै शोषणे कः, 'ओदि  
तश्चेति नत्वं' । ८ सखा फट । ९ वाना (त्रि०) १० शुक्र,  
सूया । वनम्येदमिति वन अण । ११ वनसम्पन्नी ।

वानक्रीणाश्रये (सं० त्रि०) वनक्रीणाश्रयो ( नदादिभ्यो टन् ।  
पा ४।० ६७ ) इति ढक् । वनक्रीणाश्रयो सम्पन्नी ।

वानवण्ड (सं० पु०) वग्गवयनयन्त्र, नाँत वह लक्ष्मी  
जिसमें वाना लपेट कर बुना जाता है ।

वानप्रस्थ (सं० पु०) वनप्रस्थे जातः अण् । १ मधुक  
वृक्ष, महुणका पेड़ । २ पलाय वृक्ष । ( वैश्वसूक्तमाता )

३ आश्रयमेव—यद् मानव जीवतका तोसरा आश्रय  
है । मानव जीवनके ब्रह्म-वर्षा गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और  
सत्यास पे ही चार आश्रय हैं । पहले ब्रह्मवर्षा, पीछे  
गार्हस्थ्य इसके बाद वानप्रस्थ आश्रय धारण करना  
चाहिये । जो नियमानुसार ब्रह्म-वर्षा तथा गार्हस्थ्य आश्रय  
का आश्रय न ले सकें हों, उनका वानप्रस्थ आश्रयका  
आश्रय न लेना चाहिये ।

जो पुत्र उत्पन्न करनेके बाद वनमें जा बटोर फलोंका  
आहार कर ईश्वरकी आराधना करता है, वही वानप्रस्थ-  
वाश्रमी कहा जाता है ।

वानप्रस्थ-आश्रमीके धर्मके सम्बन्धमें गरुडपुराणके  
४६वें अध्यायमें लिखा है—भूगयन, फल मूलाहार,  
स्वाध्याय, तपस्या और न्यययुक्त मन्विभाय ये कई वन  
धर्मियोंके धर्म हैं । जो वनमें रह कर तपस्या करते हैं,  
दे-दोह-गर्भे यजन, होम करने हैं और जो नियत ही  
स्वाध्यायमें रत रहते हैं, वे ही वनवासी तपस्वी हैं । जो

तपस्यामें अपने शरीरको अत्यन्त कष्ट बना कर सदा  
ध्यानधारणामें तत्पर रहते हैं, वैसे ही संन्यासी वान-  
प्रवाश्रमी नामसे विख्यात हैं ।

आश्रम-धर्मके सम्बन्धमें गरुडपुराणके १०० और  
२१५वें अध्यायमें, वामनपुराणके ६४वें अध्यायमें  
और कूर्मपुराणमें थोड़ा बहुत उल्लेख दिखाई देता है ।  
विषय बढ जानेके कारण हम यहाँ इन सबको उद्धृत  
करनेमें असमर्थ हैं ।

इस समय हम तोसरे आश्रम-वानप्रस्थके सम्बन्धमें  
भगवान् मनुने क्या कहा है, उमें उद्धृत कर देते हैं—  
स्नातक द्विज विश्विके अनुस्वार गृहस्थधर्मका पालन कर  
बुद्धने पर जिनेन्द्रिय भावसे तपस्या और स्वाध्याय आदि  
नियमोंका पालन करते हए प्रास्त्रानुसार वानप्रस्थ धर्म-  
का अनुष्ठान करे । जब गृहस्थका चमड़ा ढाला तथा शिथिल  
हो जाता है, वान प्रक जाते हैं, पुत्रके भी पुत्र हो जाते हैं  
तब उनके लिये अरण्यका ही आश्रय लेना उपयुक्त  
है । वे चावल, गव आदि सभी प्रास्य आहार, गो,  
अश्व, शय्यादि सभी परिच्छेद त्याग कर पत्नीकी रक्षा-  
का भार पुत्र पर सपुर्त कर या उमें अने साथ ले कर ही  
वन चले जाय । श्रौत अग्नि, गृह्य अग्नि और अग्निका  
परिच्छेद-स्रक् स्रुवादि उप रणोंका ले कर वे प्रामसे वन-  
में जा पर रहें । वे पाछे नावार या तिरनोके चावल तथा  
अरण्यमें पैदा होनेवाले शाक, मूत्र, फलसे वहाँ विधि  
पूर्वक पञ्च महायज्ञका अनुष्ठान करे । वनवासके समय  
शृगादि चर्म या तृणवहलको पहन कर सायं प्रातः  
स्नान और सदा जटा रखाये, टाढी, मूत्र, नख, केगादि  
बढाये रहें । वे अपने भोजनकी सामग्रियोंमें पञ्चमहायज्ञके  
अंतर्गत बलि दें, यथासाधर भिक्षुओंको भोग दे और  
आश्रममें आये अन्धान या अतिश्रियोंको भी उसी जल  
फल मूल आदिमें सन्तुष्ट करे ।

वानप्रस्थ-आश्रमीको सदा वेदाध्ययनमें तत्पर  
रहना चाहिये । जीतातप आदिका सहै और परोपकारी,  
संयतचित्त, सदा दानी, प्रतिप्रहानरत और सब जाचोंमें  
दया रखें । गार्हपत्य कुण्डस्थित अग्निके आहवनीय कुण्ड  
में और दक्षिणाग्नि कुण्डमें अवस्थानका नाम चितान है ।  
इसमें जो होम या अग्निहोत होता है, चैतानिक अग्निहोत

होम कल्पिता है। यामप्रकृष आश्रमो वह वैतानिक भक्ति होब या होम करे और उस पर्यक अक्षर पर दृगपीर्य नाम वाग भा करे। नक्षत्रवाग अथशस्त्रेधि, घातुर्मान्य, उलगायण और हस्तिनावन वाग भी विधिपूर्वक समाधान करे। सिवा इनके ये यमस्त और शरत्कामोक्त मुनिजन सेधित पवित्र शस्त्रात्म स्वयं वृत्त कर छे भाधे और इस से पुरोहाग और अथ तदपार करे। इसी पुरोहाग और अथ हाग विधिपूर्वक अलग अलग वागक्रिया समाप्त करे। इस पवित्र वनजात इन्दिसे श्वेताभौका होम करे और जो हवि बाकी बचे, उनोको वानप्रस्थाश्रमो भोजन करे और उनको यदि नमक पानेकी इच्छा हो तो ये स्वयं नमक तद्व्याज कर जा सकने हैं। सिवा इसके ऊम और श्वेदके शाक पवित्र वाग्जगत पुत्र मूक और फण और इन फणोंमे उत्पन्न स्वेद मो भोजन कर सकने हैं।

इस आश्रमवासे व्यक्तिको निम्नलिखित वस्तुओं का मक्षण नियेष है—मनु मान् मूमिजात छत्रक ( इक्षु मुला ) मून्तुन ( माखामें पैदा होने वाला एक तरहका शाक ) शिम्बू ( बाहिल्ल प्रदेशका पवित्र शाक ) और इन्दिभातक फल। यदि मुनिजनयोग्य अथ अथवा शां सूत्र वा फण वा जोर्ण वन्न भादि परसेमे संश्रित हो तो इन सब वस्तुओं का ये प्रति आश्रम महोत्सव होत है। यदि कोई जोतो दुः मूमिका जग्न दे, तो ये इन कदापि मक्षण न करे अथवा अथाने अथिक पोडित होन पर मो वमी मो प्रायोष्य शाकफलमूत्रादिका आहार न करे। पानप्रकृष अथि अनाक कथ अथन वाये अथवा काल एक फल कि भोजन करे वा पान्तरमे कूर्ण कर कथा ही भोजन करे अथवा अथने वातो से ही अथन मूमलका काम निशाने अथान् कथ ही अथ जाये। केवल एक बार भोजन करनैवायक फलादायी वाचम भादिका मध्यय करे वा महीनेके आरक वा छः महीने वा एक वर्ष तक भोजन करने आवश्यक है एक समय शस्त्रादि सञ्चय कर सकने हैं। शक्ति अन्नुसार अथन बटोर कर शामका वा दिनको भोजन करे अथवा अथुर्वाचिक भोजन अथान् एक दिन उपवास कर दूसरे दिन रातका भोजन अथवा अथमवाकिक

अथान् तीन दिन उपवास कर चौथे दिन रातको भोजन करे। अथवा ये आश्रमावय प्रतानुसार शुद्धपक्षमें तिथियों के सम्पानुगतसे एक एक प्रास कम और कृष्णपक्षमें एक एक प्रास बढ़ा कर भोजन कर सक.गे अथवा पक्षके अन्तमें अमावास्या और पुणिमाके दिन सिद्ध पवान् भोजन करे वा अथपक्षयर्मेविधिप्रतिपादनके अन्त में केवल पुष्य, मूल और फल द्वारा अथवा अथपतित कामक फल द्वारा शक्ति निर्वाह करे। मूमि पर अथर अथर डोस अथवा एक जगह एक पैरसे अथर अथ वा वमी आसन अथवा कर बैठे वा अथान् आसनले उठ कर अथर अथर घूम फिर कर दिन बिताये। वानप्रस्थाश्रमी प्रात मथवाह और सायंकाल—तीन समय स्नान करे। शीतकालमें शरीर और अना जग्न कर तथा ऊपरका सूक्ष्मउत्पाप—इन पाँच उपायोंका सञ्चन करते हुए दिन बिताये। वर्षाकालमें अथी वृष्टिकी धारा पड़ती हो, वही कड़े हो कर और आठमें भोगा वन्न पहन कर रहे। इसी तरह तपस्यामें उत्तरीतर श्रुति करते रहे। शैका मिक रानाके वाद पितृभोक और श्वेदभोकका तर्पण और अमन तपस्या कर देहको सुखाये। वैदानिक शास्त्रविधि सब द्योतामिको आत्मामी आरोग्य कर अथिगुन्य और गुरुगुन्य है कर मीनयन धारण क वाद फण मूल भोजन कर समय अथिवाहित करे। ये किन्ना अथनकर विषयमें विचन न छागये और न तो सम्भोगादि हो कार्प्य करे। मूमिशब्दा पर शयन करे, यामस्थानगमतागुण्य बने और अथनी छायामें रहे, फण मूक अथ न मिसे, तब धनवान् गुरुअथ अथानियों न प्राण रक्षाक विधे आठ मांग कर छाये। इस सिद्धाक अथानमें मो प्रामथ्य पहपुटमें, मिटोर्क अथनमें वा टायने मिद्धा से वनमे वान कर केवल आठ प्रास भोजन करे।

ब्राह्मण वानप्रस्थाश्रमो इन सब तथा शस्त्रावय विषयोंके प्रतिपालनक बाद आत्ममाधनाके छिगे उग नियर्वादि विविध भूतियोंका अथान करे। ब्रह्मर्षी अथिगण्य, परिवात्रक ब्राह्मणगण और तो कथा गुरुअथ आत्मज्ञान तथा तपस्याश्रुति और अथरश्रुतिके विधे उप नियर्वादि अथिनी ही सेवा किया करते हैं। येना करते

करने यदि किसी अप्रतिविधेय रोगसे आक्रान्त हों, तो उन्हें देह न गिरने तक जलवायु भक्षण कर योगनिष्ठ हो ईशानकोणके स्मरलक्ष्यसे जाना चाहिये। महर्षियोंके अनुष्ठेय नदीप्रवेश, भृगुप्रपतन, अग्निप्रवेशन या पुर्वकथित उपायोंसे शौकहीन और अश्वीन त्रिप कलेशरको परिश्रम कर ब्रह्मलोकमें पुजित होते हैं। वे मृत्यु न होने पर स्वप्न तरह दानप्रस्थाश्रममें जीवनेके तामरे भामकी विना पर चतुर्थाश्रममें स्वप्नपर परिश्रम कर स्वप्नाशाश्रमका अनुष्ठान करे। अन्तर्ध आश्रमका विवरण स्वप्नाशाश्रम शब्दमें देवे। ( मनु० १।३३ )

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है, कि ब्रह्मचर्य और गार्हपत्याश्रम जानने पर पुत्र पर पत्नीका भार दे वनमें जा कर दानप्रस्थाका अवलम्बन करना चाहिये। यदि उनकी पत्नी उनके साथ ही वन जानेका विशेष आप्र प्रकाशित करे, तो उनको उनके साथ लेनेमें जरा भी मद्धोच न देना चाहिये। उन समय वनमें उनको स्थिरब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टमैशुनशुभ्य हो कर वनमें रहना होगा। वनमें जाने समय वे तानि और गृहानि ले जाना आवश्यक है।

इन आश्रमों पर विना जोते हुए चेतोंके शस्त्र ( नीवार अर्थात् तिस्रोंके चावल आदि ) से शक्ति की तृप्ति करनी चाहिये। यही नहीं इसमें ही अपना उदर पालन तथा देव, पित, अतिथि, भूत और आश्रममें आये श्रमयोगियोंकी तृप्ति भी करनी होगी। दानप्रस्थावलम्बनी नख, जटा और दाही रगाने रहे और सदा वातमोपासनामें निरत रहे। वे भोजन और वजनार्थके लिये एक दिन, एक मास, छः मास अथवा एक वर्ष तककी सामग्री रग सकते हैं। कमी भी इससे अधिक सामग्री वे नहीं रख सकते। यदि एक वर्षमें अधिक सामग्री एकत्र कर ली गई हो, तो उसको आश्विन महानेमें बर्ज कर डालें। इस आश्रममें दर्पशुभ्र, त्रिकालरतायी, प्रतिग्रह और याज नादिविमुख, वेदाभ्यासस्त, फटमृदादि दानशील और प्रत्येक क्षण सब जीवोंके हितानुष्ठानमें नियुक्त रहे। वे अपने दानोंमें धानकी भूमिको लुडार्वे फालकशापी ( अर्थात् समय पर पकनेवाले फलका भोजन करनेवाला ) अग्निपकापी, कश्मकुट्टक ( अर्थात् चावल आदि अपने छाट या कुटपीस लेनेवाला ) हो कर रहे। उनको श्रौत और

स्नाते रीति और भोजनानि कर्मफल रनेह आदि द्वारा सम्पन्न करना होगा। वे अन्य स्नेह अर्थात् पृत आदि उपग्रह न कर सर्वेसे वा प्रवापतिवा वनानुष्ठान पर दिन दिताये गे। उनका स्वपदार्थानुसार पर पक्ष या एक मास पर भोजन करना चाहिये अथवा वे दिन भर निराहार रह कर रातको भोजन करें। रात्रि समय भूमि पर सो रहे। प्रयत्न, विवति, उपवेशन आदि कार्य अथवा योगाभ्यासमें ही सारा दिन बिताये। श्रावणमासमें पञ्चाम्नाके बीचमें रह कर वर्षाके समय वर्षाका धारासे भोजन रह कर और जाड़ेके दिनोंमें भीगे वस्त्रोंका थोड़ा कर दिन बिताने हुए उन्हें शक्तिसे अनुसार तपका अनुष्ठान करना चाहिये।

कई मनुष्य पाटा चुनाये या अन्य प्रकारसे पष्ट दे, वनके प्रति भी दानप्रस्थका भी रोग नहीं और जो चन्दन आदि लेपन करे या किसी तरहकी सेवा करे उसके प्रति अनुष्ट होना भी उचित नहीं। दोनोंमें समान व्यवहार करना उचित है। "न च हर्षया वा न च घिग्म-धो वा"के अनुसार हर्ष शोक प्रकट न करना चाहिये।

यदि कोई दानप्रस्थो मनुष्य अग्निदेयनमें अस्मर्थ हो, तो अपनेसे अग्निका उत्ताप हटा दे और वृक्षके नीचे रह कर थोड़े फल मूल सेवन करे। इसके अलावामें जितनेसे प्राण रक्षा हो सके, रस सञ्चय आदि न होने पावे, इसी अनुष्ठानमें पड़ोसी किसी अन्य कुटीके अधिवासी दानप्रस्थाश्रमोंसे भीख मांग कर लाये। यदि यह सम्भव न हो सके तो ग्रामसे भिक्षा करके केवल आठ प्रास तीनावलम्बन करके भोजन करना चाहिये। अनुप जमनीय कोई रोग हो जानेके वायुमौजो हो कर जब तक प्राण गिर न जाय ईशानकोणकी ओर चलते रहना चाहिये।

दानमन्तर ( स० पु० ) जैनमतानुसार देवगणभेद ।  
 वानर ( स० पु० स्त्री० ) वा विकलितो नरः यथा धानं वने भव फलादिकं रातीति रा क । १ स्वनामख्यात पशु, वा तुल्य नर, वन्द्य । पर्याय—कपि, प्रवङ्ग, छवग, शाखा-मृग, बलीमुख, मर्कट, कीश, वनोक्त्, मर्कटव, प्रवङ्ग, प्रवग, पठवङ्गम, प्रवङ्गम, गोलाड गुल, फपिथास्य, दधि-शोण, हरि, तरुमृग, नगाटन, भस्पा, भस्पास, कर्लाप्रय, किथी, शालावृक ।



पियु, लेप्टा—मर्कट, चानुर सुहं: अङ्गरेती—Mouhey.

प्रधानतः वानर जट्टस्य इम जोवर्गके पूछनाले या जिना पूछनाले लाल मुह पशुओका बोध होना है। उयो कि इम जातिके काले सुख हनुमान् और प्रचन मिन्द्र रन की अपेक्षा उज्ज्वल और लाल रंगकी सुखपाल वानर जाति लैसुर आदि विभिन्न श्रेणियों ने परिमाणन है। दक्षिण और पश्चिम अफ्रिकाके निर्जन ज्ञानतमें लैसुर प्रभृति भौषणदर्शन वानरो का और भारतमें काले मुहके हनुमानो का अभाव नहीं है।

प्राणितत्त्वविदों ने वानर जातिके प्रारम्भकाल के आलोचना कर स्थिर किया है, कि भौगोलिक अवस्थाके अनुसार उनकी प्रारम्भिक गठन प्रणाली भी स्वतन्त्र है। पृथ्वीके पूर्वी गोलार्द्धमें अधान् अफ्रिका, अरब, भारत जापान, चीन, लद्दा और भारतीय द्वीपोंमें जो वानर देने जाते हैं उनका देहकी हड्डा अत्रिका पार्श्वक्य निर्देश कर उन्होंने इन देशोंके वानरोंको Catarrhinae और पश्चिम गोलार्द्ध—अर्धान् उष्ण प्रधान देशमें और दक्षिण अमेरिकाके वानरोंको Platyrrhinae दो बड़े विभागोंन विभक्त किया है।

पहली प्राचीनके वानरोंका नाक लम्बी, अप्रसृतो, टेढ़ी, और मोटी होती है। इनके दांत प्रायः मनुष्योंकी तरह हैं—अर्धान् ३२ दांत हैं।

पूर्व पृथ्वीवासी इन वानरोंको फिर तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। १ Ape जाति, २ प्रकृत लाल मुह और सपुच्छ वानर जाति और ३ बहुत (Baboons) जाति। अफ्रिकाके शिम्पाजी और गोरिला जाति वानरोंका और सुमात्राके औरङ्गा (वनमानुस)—ये विना पूछने हैं। इनमें हिन्दू चीन राज्यों, मलयप्रदेश, सिन्धु, बङ्गाल, आसाम, मिस्रिया, तनासगिम और भारतीय द्वीपसुल्लवासी गीबों (Gibbon) जातीय वानरोंकी गणनाकी जा सकती है।

बहु प्राचीन कालसे यह वानर सभ्य-समाजमें परिचित है। हिन्दू यूनानी, रोमन तथा भारतीय आर्य (हिन्दू) विभिन्न श्रेणियोंके वानरोंका हाल जानने थे। यूनानी और रोमन अफ्रिकाके वानरोंके चित्र और इति

हास मन्तीमंति जानने थे। हिन्दूमें वानरकी 'कोक' कहते हैं, संस्कृतमें 'कपि' इन दोनों प्रयोगोंमें यथेष्ट स दृश्य दिवाइ देता है। जट्टविद्याका धृति विपर्यय करने पर और भी मालूम होना है, कि संस्कृत कपि, दक्षिणोपिय Ceph, हिन्दू Ceph, यूनानी Kephos या Kepos और परसी Keph या Keph, लैटिन Cephus जट्ट सन्मन्वगेद्योगित और समान ग्रन्थबोधक हैं अतएव अनुमान होता है, कि बहुत प्राचीनकालमें भारतीय कपि मध्यएशिया हो कर पश्चिम देशोंमें गये थे। सिन्धु (लद्दा) के कको, ताम्बालक कागू और तलगू कोंडाके साथ कपि जट्टका कई सामान्य न करने पर भी 'क' अक्षरके म्बरानुसार ये कपिही अण-म्भूत वद्वन करनेमें समर्थ हुए हैं। ताम्बाल भाषामें कोंगुके साथ उत्तर मिलेविम द्वीपके एरद्वारका बहुत मेल दिवाइ देता है।

प्राणितत्त्वविद् सार्वेल आलेमने पूर्व-भारतीय द्वीपसुल्लवा पश्चिमण कर वानरोंकी भाषामें वानरके ३३ नाम समझ किये हैं। साधारणकी जानकारोंके लिये हम कई नाम उद्धृत कर रहे हैं। किन्तु इनके साथ हिन्दू, संस्कृत, यूनानी, लैटिन आदि भाषाओंमें वही नामोंका जरा भी सादृश्य नहीं है।

वानरका नाम	स्थानका नाम
अरक	मारेडा (आम्यरना)
बाद	सांगुर, सियाउ
बलडधितम्	उत्तर मिलेविम
बोहेन	मेनादा
बुडेन	बड्डार
बुडे	वीटन
केंशी	कानारया
नेलुती	निराम्
कंस	अम्बलव
कंसो	कजेली
कुरङ्गा	उत्तरमिलेविम
लेधी	मानवेला
लेक	नेओर गह निरम्
मेहराम	आलफुग, आलयागो

बानरों के नाम	स्थानों के नाम
मिवा	सुनु और बर्निवो द्वीप
तिबोर और बंटेला	गिळोले
मूमिनवत्	मचप
मोम्बे	बाङ्ग
नांक	गम्पी गिळोले
रोकी	बीटब सिडेविस
यवा	डोरिक और सपबना
मन्जावर	वृक्षिय सिडेविस
सिया	लियाङ्ग ( न ययना )
फाकिस	वर्हई ( मिरम )

भारतवासी बानरों का विशेष माहुर करते थे। रामा पक्ष के युगमें रामानुजर हनुमान्, नीम बानर, बानरराज शक्ति और सुभोब, गय, राम्भुवान् मादि रामकर्म के सिगापतियों के नाम पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन प्राचीन युगमें भार्य लोग बानरों के हाज विशेषरूपसे ज्ञान थे। मगधात् रामकर्मको बानरोंमें सहायता को थो इससे हिन्दुओंके हृदयमें इन बानरोंका बड़ा माहुर और मक्ति है। इस समय भी देशमें बारी और हनुमान्कोकी पूजा होती है। हनुमान्कोको प्रस्तर-सूक्तिर्पा प्रायः सभी जगह मौजूद हैं। पृन्वान, मयुर, काशो मादि पक्षि तोषोहीमें असंख्य बानर देखे जाते हैं। यह हिन्दुओं द्वारा ही पाए गये हैं। किसीने कभी बानरोंका विनाश करनेको हठ्ठा नहीं की और न चेना करना चाहिये।

महाभारतके युगमें कुन्हेकेके सुदक्षिणमें सर्वप्रथम घोडा पशुपारो अर्जुनके रथ पर बविध्वज ही कहता था। मगगान् कृष्ण इसके सारथी थे। हनुमान् इस रथ रक्षाके लिये ध्यस्तदेशमें बैठे हुए थे। इसी कारण कविके प्रति येमी मक्ति और धृष्ट हिन्दुओंमें विचार देते हैं। मिवा हमक बीडोंके प्रमाखसे जीवदि नाकी समाति ही बानरोंकी रक्षाका अग्रतम कारण कहा जा सकता है। शारीक फलोका गज पक्षोको से कर गगना और योजन पाने पर फिर भीडा हैना या पाङ्क कर फेक हैना, ये सब उत्पान बानरों द्वारा होते हैं। कभी कभी तो येसा भी सुना गया है, कि बंधोको

ये गोल्में से कर पेडो पर चढ़ जाते हैं। केवल भारत ही नहीं, मिस्रमें भी प्राचान मिस्रवासियों द्वारा बानर पूजित होते थे।

सुनते हैं, कि नबदाय ( नदिया ) के राजा महाराज श्रीकृष्णबन्धुपाने गुप्ति गाडे से बानर पकल कर कृष्णनगर में महाभूमपामसे मपने पासे हुए बानरका विधाह किया था। इस विधाहमें उन्होंने तपस्वीप गुतोपाङ्का, बडा और शाश्विपुरक डल समयक ब्राह्मण-परिचर्योंको आमन्त्रित किया था। इस विधाहो/सवमें बनहा डेङ्ग लाब रुपया व्यय हुआ।

इस देशमें कितने ही मिषमंथे बानरोंका जेल दिखा कर मोक मांगा करते हैं। सरकस या व्यापामशास्त्रोंमें भी इनकी तमाही दिखाये जाते हैं। निम्नलिखित तमाही इनके द्वारा दिखाये जाते हैं—गाडो बकाना, कोबकाम सार्डस का काम, मृत्यकाल्य और व्यापाम-कीडा मादि। पक्षतका किसी बड़े दरारको पार करनेके लिये ये आपसमें जुड़ कर गुप्त तटवार कर छिठे तथा इस पर सभी पार भी हो जाते हैं। उल्ल-परिभम भारतके दुम्नामन मादि स्थानोंमें एक एक बन्दर-बडमें एक बीर अर्थात् एक पुख्य बानर और पचास बानरो या खोबानर रहते हैं। कभी कभी हा मिन बानर दुर्घोंमें परस्पर विरोध भी उपस्थित हो जाता है। इन समय दोनों बीरके अग्रगामी बीर लूह मारत-मारी काटा-काटो करने लगते हैं। कबरा दल मरने यहाँ काबल मारम्भ हो जाता है। अन्तमें जो बीर कमजोर होता है वह हार कर भाग जाता है। किसी दल के बारक भाग जाने या युद्धमें मारे जाने पर युद्धको हार खोत मानो जाती है। जब एक दलका बीर मर जाता या भाग जाता है, तब उस दलको शानरिया विधेता बानरके अधोन हो जाता है। इस तरह विधेताका दल बढ़ जाता है।

समतल प्राणसे हिमाजकके पूर्व ११००० फीट ऊँचे स्थानों पर जो ये निचरण करते देखे गये हैं। Presb. the Schestaceus जातिक बानर इससे ऊँचे तुपाराच्छन्न स्थान पर एक पक्षत दूसरे पक्ष पर कूदते देखे गये हैं। बानर जब सामक घनमें आसक्त दुर्घोंकी शाखा-मशा काबो पर कूदते रहते हैं, तब मादुम होता है कि सावन मादुको सुदिको चढ़ो जमी हुई है।



वानरोंके दो तीन सन्तान एक साथ होते हैं। इन सन्तानोंको ये वृक्षकी शाखाओं पर ही पैदा करते हैं। प्रसवके समय जब गर्भका शिशुसन्तान जरा भी गर्भसे बाहर निकलता है, तब यह माताके मनके अनुसार दूसरी गाम्ना या डालको पकड़ लेता है और वानरो धीरे धीरे पीछे हट कर दूसरी शाखा पकड़ लेती है। उस समय शिशु डालमें झुलने लगता है। इसके बाद वानरी आ कर अपने प्यारे बच्चेको गोदमें उठा लेती है और स्तनपान कराती है। यदि इस समय कोई मनुष्य उसको भगानेकी चेष्टा करे तो वानरी गोदमें शावकोंको ले कर एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर या एक छतसे दूसरी छत पर कूद जाती है। याचनाय माटे फल और पंथोकी पत्तियां इनकी आद्य वस्तु हैं। पालित वानर मात, रोटी, दूध आदि भी खाते हैं, पर उतने चावसे नहीं, जितने चावसे फल आदि। पका केला खाना इनको बड़ा ही पसन्द है।

वानरोका हत्या करना महापाप है। इससे वानरोके मारने या मरवानेकी चेष्टा करनेवाले व्यक्ति पापीष्ट गिने जाते हैं। इस पापका प्रायश्चित्त ब्राह्मणको एक गो दान कर देना है। २ दोहेका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें १० गुरु और २८ लघु होते हैं।

वानरकेतन ( सं० पु० ) अर्जुन । ( भारत १४ पर्व )

वानरकेतु ( सं० पु० ) १ अर्जुन । २ वानरराज ।

वानरप्रिय ( सं० पु० ) वानराणां प्रियः । क्षीरवृक्ष, खिरनो-  
का पेड़ ।

वानरदारमाहृत्य ( सं० क्लो० ) स्कन्दपुराणके अन्तर्गत  
पूनामाहात्म्यविशेष ।

वानरराज ( सं० पु० ) वानराणामक्षिणोव अश्रिणी यस्य ।  
१ वनछाय, जङ्गली बकरा । २ अशुभाश्रविशेष, एक प्रकारका पेना घोड़ा । ( जयदत्त )

वानराघात ( सं० पु० ) लोभ्रवृक्ष, लोघका पेड़ ।

वानरास्य ( सं० पु० ) जातिविशेष ।

वानरी ( सं० क्लो० ) वानरस्य स्त्री टोपू । मर्कटी, बन्दरकी  
माता । २ श्राग्निम्बा, केवांच ।

वानरोवटिका ( सं० क्लो० ) वाजीकरणाधिकारमें वटिकी-  
पत्रविशेष । प्रस्तुतप्रणाली--आद्य सेर केवांचके वीजको पहिले चार सेर गायके दूधमें पाक करना होगा। पीछे पाक

करते करते जब यह गाढ़ा हो जाय तब उसे नीचे उतार कर छिलकेको निकाल कर अच्छी तरह पीसना होगा। इसके बाद छोटी छोटी गोलियां बना कर घांमें पाक करके दूनी चीनीमें डाल देना होगा। जब वे सब गोलियां चीनीसे अच्छी तरह लिप्त हो जायं, तब उन्हें ले कर फिर मधुमें छोड़ देना होगा। यह गोली प्रति दिन ढाई तोला करके सवेरे और शामके सेवन करनेसे शुकको तरलता नष्ट तथा गिण्तकी उत्तेजना अधिक होती है तथा चोड़के समान रनिशक्ति पैदा होती है। वाजीकरण औपचममें यह बड़ी बहुत लाभदायक है। ( भावप्र० वाजीकरण रोगाधि० )

वानरेन्द्र ( सं० पु० ) वानराणां मिन्द्रः । सुग्रीव ।

वानरेश्वरनोर्य ( सं० क्लो० ) तोर्थविशेष ।

वानरोवोज ( सं० क्लो० ) शुकशिशो वीज, केवांचका  
बीया ।

वानल ( सं० पु० ) कृष्ण वर्चरक, काली वनतुलसी ।

वानव ( सं० पु० ) जातिविशेष । ( भारत माण्डवर्ष )

वानवासरु ( सं० लि० ) वनवास-वासो जाति विशेष ।

वनवासिक ( सं० लि० ) वनवासक तथा कादम्ब देखो ।

वनवासिका ( सं० क्लो० ) सौन्दह माताओंके छन्दों या  
चाँपाईका एक भेद । इसमें नवों और बारहवों माताएं  
लघु पडती हैं।

वनवासी ( सं० क्लो० ) एक नगरका नाम । कादम्ब देखो ।

वानवास्य ( सं० पु० ) वनवासी राजपुत्र ।

वानसि ( सं० पु० ) मेघ, वादल ।

वानस्पत्य ( सं० पु० ) वनस्पती भवः वनस्पति ( दित्य-  
दित्यादित्येति । पा ४।१।८५ ) इति पय । १ पुण्यजात  
फल्गुवृक्ष, वह वृक्ष जिसमें पहले फूल लग कर पीछे फल  
लगते हैं। जैसे, आम, जामुन आदि। वनस्पतीनां  
समूहः दित्यदित्येति पय । ( क्लो० ) २ वनस्पतिका  
समूह । ( काशिका ) ( लि० ) ३ वनस्पतिसे उत्पन्न ।  
( शुक्लसं० १।१४ )

वाना ( सं० क्लो० ) वटिका पक्षी, बटेर ।

वानायु ( सं० पु० ) वनायु देशवासी जातिभेद । यह  
देश भारतवर्षके उत्तर पश्चिममें अवस्थित है ।

वानायुज ( सं० पु० ) वनायु देशविशेषे जायते इति  
जन-श्रु । वनायुदेशोत्पन्न घोटक, वनायु देशका घोड़ा ।

बानिक (स० लि०) यन्त्रमन्त्रयोप ।  
 बानीय (स० पु०) शैवसंस्तक, केवदा मोया ।  
 बानीर (स० पु०) १ देवमन्त्र, वेत । २ याज्ञग्युप, जलवेत । पर्याय—सूतपुण्य, शाबाल, जलवेतस, व्याधिपात, परिष्वाय, नाशेय, जलसम्भव । गुण—तिष्ठ, शिथिल, श्लोषण, प्रणशीपण, पिच्छाश्रु शीर कपतोप नाशक, स प्राही शीर कपाय । (सबन्धि०) ३ प्रसरुह, पाकृष्ण पेड ।  
 बानीरक (स० ह्री०) बानीर इय प्रतिरुति इपायें कम् । मुञ्जपत्र, सूत्र ।  
 बानीरज (स० ह्री०) १ कुशीपत्र, कुट । (पु०) २ मुञ्जा, सूत्र ।  
 बाभेव (स० ह्री०) बने जले भवे बन-इम् । शैवसंस्तक, शैवरी मोया ।  
 बाभ (स० पु०) वन-कर्त्तृणि क । यमन की हुई वस्तु इन्दीने निकरुओ शोत्र ।  
 बाभ्ताद् (स० पु०) बाभ्तमसीति मद्-भण् । कुम्भर, कुत्ता ।  
 बाभ्तगिम् (स० पु०) बाभ्तमभ्रति अश गिनि । १ वाभ्ताद्, कुत्ता । (लि०) २ यमनमोगी, इन्दी बानि वाला ।  
 बाभ्तके किये प्राहण कमी भी बाभे कुल शीर गोजका परिचय न में । जो बाभ्तके किये भयने कुम्भ या गोशकी धरासा करत हैं, पण्डितोंने इन्दी 'बाभ्ताशो' कहा है ।  
 बाभुने किन्ना है, कि औ प्राहण भयने धरासे स्रष्ट होते हैं ये बाभ्ताशो (यमनमोगी) श्वाहासुम्भ प्रोच होते हैं ।  
 बाभित (स० ह्री०) वम किन् । वमन, की ।  
 बाभित्ता (स० ह्री०) कटुकी, कुट्टी ।  
 बाभित्तम् (स० पु०) बाभित कथति इ-किप् लुच्च् । मद्भन्त्र, मैनकसका पेड । (लि०) २ यमनकारो इन्दी करलैवाला ।  
 बाभित् (स० लि०) बाभित् इति वा-ज । यमन कारक, उबटो कर्त्तव्याला ।  
 बाभित्ता (स० ह्री०) कटुकी कुट्टी ।  
 बाभित्तोयानो (स० ह्री०) शीरक, शीरा ।

बाभित्तम् (स० पु०) बाभित् हरतीति इ-किप् । शीर कटुका धूस, मैनकसका पेड ।  
 बाभन्त (स० पु०) बभन्तका गोबावत्य ।  
 (भाष०श्री० ११।१।२)  
 बाभ्या (स० ह्री०) यानार्त्तं समूह इति वन-यत्-टाप् । यनसमूह ।  
 बाप (स० पु०) वप-वभ् । १ वपन बोला । २ मुञ्ज । इत्यतेऽस्मिन्निति वप भयिकरये भम् । ३ शैव, जेत । (पा ५।२।१६ सूत्र-मह शीरोक्तिः)  
 बापक (स० लि०) वप गिच् प्लुच् । यमनकारयिता, बोज बोनेवाला ।  
 बापक्य (स० पु०) बापाय यमनाय इण्डः । वपनाय इण्ड, कपडा बुतनेकी इरती । पर्याय—दीमा, येनन्, येम, बापक्य । (भरत)  
 बापन (स० ह्री०) वप-गिच्-न्पुद् । बोज बोला ।  
 बापनि (स० पु०) गोकमपवर्त्तक श्रयिमिद् ।  
 (स वकारशुद्धी)  
 बापस (फा० वि०) छीटा हुआ फिरा हुआ ।  
 बापसी (फा० वि०) १ शीटा हुआ या फेरा हुआ । (ह्री०) २ छीटनेकी क्रिया या भाव । ३ किसी शी हुई वस्तुको फिर छेने या छी हुई वस्तुको फिर देखैका काम या भाव ।  
 बापातिनामैव (स० ह्री०) साममैव ।  
 बापि (स० ह्री०) इत्यते पधाश्चिक्रमपामिति वप (वति वपि वपि वपि वपि वपि । उच्य ५।१२४) इति इम् । बापो, छोटा जहाजय ।  
 बापिका (स० ह्री०) बापि स्थायें कम्-टाप् । बापो, बाबली ।  
 बापित (स० लि०) वप विच्-क । १ बोजावृत्त बोया हुआ । २ मुण्डित मूषा हुआ । (ह्री०) ३ धाम्य विशेष, बोमारो धान ।  
 बापो (स० ह्री०) बापि इदिकाराविति ह्रीप । जमा जवपिरेव । औ जम्होन दिग्में जहामय द्युवबाते हैं उन्दी स्वर्गमात्र होता है ।  
 बापोकाजम्भे लिटा है, कि बापोका जव गुण, कटु क्षार (सवपार) पिच्छबद क तथा कफ शीर पापुनागा होता है ।

वापी खनन करनेमें पहले दिशाको स्थिर करना होता है। अग्नि, वायु और नैऋतकेणमें वापी नहीं खुदवाना चाहिये। अग्निकेणमें खुदवानेसे मनस्ताप, नैऋतमें क्रूरकर्मकारा, वायुकेणमें बल और पिस्तनाज आदि विविध अनिष्ट होने हैं। अतएव उन सब दिशाओंका परिहास कर अन्य दिशामें वापी खुदवाना चाहिये।

वापी, कूप और तडागादि खुदवा कर उसकी यथा विधान प्रतिष्ठा करनी होती है। अप्रतिष्ठित वापीके जलसे देवना और पितरोंके उद्देशमें श्राद्ध तर्पणादि नहीं किये जाते। इसी कारण सबसे पहले उसकी प्रतिष्ठा करनेका कर्तव्य है। जो वापी आदि खुदवा कर उसकी प्रतिष्ठा कर देता है उसे इस लोकमें यश और परलोकमें अन्त नवर्गलाभ होता है।

वापीक—एक प्राचीन कवि।

वापोढ (सं० पु०) वापीं जहानीति हान्त्यामे क, पाने वापीजलवर्चनादन्य तथात्पम्। चातक पक्षी, पर्षाहा। वापुमट्ट—उत्सर्जनोपकर्मप्रयोगके प्रणेता। ये महादेवके पुत्र थे।

वापुरघुनाथ—एक महाराष्ट्र मन्त्रि। ये धारराजके मन्त्री थे (१८१० ई०)।

वापुहोल्कर—एक महाराष्ट्र सेनापति (१८१० ई०)।

वापुय (सं० लि०) वापुमान्, शरीरविशिष्ट। "वृक्षः कृणोति वापुयो माध्वी।" ( ऋक् ५।७।४) वापुयः वपु-मान्। (सायण)

वाप्या रावल—मेवाडराज्यके स्थापनकर्ता। बलभी राज्य-ध्वंसके समय राजा जनकसेनके वंशधर उधर उधर मारे मारे मरने लगे थे। राजा जिलादित्यके वंशधर प्रहादित्यने उधर प्रदेशमें एक छोटा-सा राज्य बसा लिया था। फाल्गुनके प्रभावसे उस समय प्रहादित्यके वंशमें एक तीन वर्षका बाल न वाप्या ही जेय रह गया। इसके पिता नागादित्यके आधीनताप्रिय भोलोंने मार डाला था। इस प्राचीन वंशका लोप हुआ चाहता था, क्योंकि तीन वर्षके बालक वाप्याकी रक्षा करनेवाला कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता था।

वाप्याके पूर्वपुरुष जिलादित्यकी प्राणरक्षा कमला नामकी एक ब्राह्मणीने की थी, यह बात इतिहासके

पाठोंमें लिखी नहीं है। कमलाके ही वंशधर इस राजवंशके पुरोहित थे। उन्होंने राजकुमारके ले कर गाडेर नामक किलेमें आश्रय लिया। यहांके यदुवंशी भोलोंने उन्हें आश्रय दिया। जब पुरोहित ब्राह्मणोंका वधा रहनेमें भी शक्ता हुई, तब वे वहांसे बालकको ले कर पराशर नामक स्थानमें गये। यह स्थान त्रिकूटपर्वतके सवन वनमें था। उमा त्रिकूटपर्वतकी तलहटीमें नागेन्द्र नामक एक ग्राम बसा हुआ था। वहां शिवोपासक ब्राह्मण रहते थे। उन्हींके श्वासे वाप्या मर्पा गया। राजकुमार निर्भय हो कर वनमें विचरने लगा।

वाप्या रावल तलहटीमें एक ब्राह्मणके यहां गो चराया करता था। उस प्रदेशके राजा एक सोलड्डी क्षत्रिय थे। वहा साधनका भूतन बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। राजकुमारी अपनी मखियोंके साथ उस दिन वनमें पधारीं। परन्तु भूलसे उनके पास रस्सी नहीं आई थी, वे झूठा डालती तो कैसे? उसी समय अचानक वाप्या रावल वहां चला गया। उन लोगोंने उससे रस्सी मांगी। वाप्या बड़ा ही चञ्चल तथा हंसोड था। उसने कहा, मुझसे विवाह करो, तो मैं रस्सी ला दूँ। एक और तमाशा शुरू हुआ। उन कन्याओंके साथ राजकुमारके विवाहकी विधि चर्ची जाने लगी। गांठ बांधो गई। क्या उस समय किर्माने यह समझा था, कि यह नकली विवाह ही किसी समय असली विवाह होगा।

सोलड्डी राजकुमारी जब ध्याहने योग्य हुई, तब सोलड्डीराज षडे चिन्तित हुए। उन्होंने घर डूढ़नेके लिये देश विदेश मनुष्य भेजे। परन्तु इसी समय एक पेसी घटना हुई जिससे सबको चकित होता पड़ा। एक ज्योतिषीने राजकुमारोंका जन्मपत्र देव कर कहा, कि इसका विवाह हो गया है। सोलड्डीराजके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। राजाको पिछली वाने अर्थात् विवाहकी घटनाकी खबर लगी। इसकी खबर कुमार वाप्याको भी लगी। अतएव राजकुमार डरके मारे बालीय और देव नामक दो भोल बालकोंको साथ ले विजनवनमें चले गये।

उन दिनों चित्तौड़में मौर्यकुलके राजा मान राज्य करते थे। वाप्या उनका भांजा होता था। यह बात

वाप्याकी सामग्री थी। अतएव अपने साधियोंको साथ में कर वाप्या वहीं पहुँचे। राजाने बड़े भाँवरसे उनको रत्ना और धनसा सोमस्त बनाया। इससे पहलके सामग्रीको बड़ी ईर्ष्या हुई। यहाँ तक कि एक समय जब शत्रु भीम चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब वन सामग्रीके साक ही बह दिया कि जिसका भाँवर करते ही उसी को मङ्गलक लिये मन्त्रो। वाप्याने इस उद्गाहमें ब्रह्मनाम किया।

राजा मानसे तिरहटन सामग्री इसी चिन्तामें भगे थे, कि कोई भच्छटा सरकार मिये, तो इस चित्तौड़का सिंहासन दे दे और राजा मानको पञ्चयुत कर द'। अन्तमें सामग्रीमें धाँगा ही को इस कामक मिये स्थिर किया। वाप्याने भी इस कार्यमें अपनी सम्मति दे दी। इसीको स्वार्थ कहने हैं। आज वाप्याने अपने आश्रयदाता मामाक उपकारका बीसा सुन्दर बरदा दिया।

पञ्चम बनेमें अचिर मउरुवा होने पर वाप्या राबल चित्तौड़का गम्य भयेम पुत्रोंका म कर सुरासन बसे गये। यहाँ इन्होंने बहुत सा सुखलमान स्त्रियोंन ब्याह किया था।

बीरकजारी महाराज वाप्या रापयने एक ही वर्षकी पूरो आयु पाइ थी। इन्होंने काश्मीर ईराक, ईरान सुराम और काफरितान आदि देशोंकी जोना था और इन इन देशोंक राजासोंकी बन्ध्याओं को ब्याहा था। इन्हें ३० पुत्र उत्पन्न हुए थे।

वाप्य (सं० द्वा०) वाप्या भव मिति मापो (दिगाम्बो-यत् । वा १।१।४४) इति यत् । १ कुट्टीवप कुट्ट। (ममर) २ जालिवापयभिव, बोवारी धान। ३ धापीभव जम, वाप्यको वाप्या । इसका शुभ—बानरमैयनाशक क्षार, कडु और पिचबडकै। यप पयत् । ४ वपयोव । होने योग्य।

य पयक्षार ( म० द्वा०) मामुद्र मषण। (शत्रुनि०)

वामट ( म० पु०) १ वैद्यमदिनाके प्रणेता। २ श्राव्य इप्यनिषण्टुवार, वामट।

वावागा भौमल—एक प्रदागण्ड मत्वार । ये प्रमिद्ध मशागण्डवशरो िबाओके प्रतितामह थे।

वावासाहव—गिवाओके बेमाके प भ्राता पाट्टोजाक वीक

वे तद्धोरके सिंहासन पर अविष्ठित थे। इनकी मृत्युके बाद इनकी परनी सियालभाईने १०३० से १०४० ई० तक राज्य किया।

वाम् ( सं० पु०) १ गस्ता । २ स्तोता ।

वाम (सं० द्वा०) वा (मर्सी स्त्र सु द्रु स पुत्राणि । उष्य १।१६) इति मन् । १ धन । ( पु० ) २ कामदेव । ३ हर, महादेव । ४ कुप, स्तन । ५ मद्राके गर्भसे उत्पन्न भीहण्यके एक पुत्रका नाम । ( भागवत १०।६।१७ ) ६ अश्वीनके एक पुत्रका नाम । ७ यम्रमाके एकके एक पोढ़े का नाम । ८ अक्षरोंका एक वर्णपूत । इसके प्रत्येक वर्णमें सात अणव और एक वणव होता है। इमे मङ्गरो, मकरन्द और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकारका सबैवा ही है । ९ वास्तूक ।

(सि०) वामति वम्यते वैति वम् ठङ्गिणे (व्यतिष्ठिबन्धने न्यो षा । वा १।१।४५०) इति ष । १० वस्य, सुन्दर । ११ मतिकूय, जिज्ञासक । १२ वननीय, वासनीय । १३ कुटिल टेडा । १४ पुष्ट, नीच । १५ जो भच्छटा न हो, सुटा । १६ मध्य, वृत्तिथ या बाहिनेका छछटा, बायाँ । द्विजको वयि दाधसे ब्रह्मपान वा मोक्षन नहीं करना चाहिये। बाये हाथमे ब्रह्मपान बडा कर भी जलपान करना अधिक नहीं ।

। नि वामरस्तेनाद्दृष्टय विदेहवपय वा बधम् ।  
नर । मोक्षेत्तुपल्लवम माप्यु रेवा तमुन्मुनेत् ॥  
( इ० पु० १५ म० )

अ्योतिषको प्रश्नगणनामे वाम और इक्षियमेव्से शुभाशुभ फलाफलका तारतम्य कहा है।

वामक ( सं० सि०) १ वाम सम्बन्धीय । ( द्वा० ) २ अङ्क मङ्गु का एक मेह । ( विष्णुसौर्षी ५६।२० ) ३ बौद्धप्रणोंक अनुसार एक कथयली ।

वामकक्ष ( सं० पु० ) एक गोलकार इयिका नाम । इनके गोलक छोण वामकक्षायथ करे जात थे ।

वामकक्षायण ( सं० पु० ) वामकक्षके र्धनोत्पन्न एक ऋषि का नाम । ( वसवध्या० ७।१।२।२१ )

वामकक्षवत्सल—एक लक्षका नाम ।

वामकृष्ट ( स० पु० ) जातिमेह । ( वंश ८ )

वामकृष्ट ( स० द्वा० ) वामके म्वातम्न ।

वामतन्त्र ( सं० स्त्री० ) तन्त्रविशेष ।

वामता ( सं० स्त्री० ) वामस्य भावः तन्त्रं ताप् । प्रति-  
कूलत्व, वामत्व, वामका भाव या धर्मा ।

वामतीर्थ ( सं० स्त्री० ) तीर्थभेद । ( बृहन्नीलतन्त्र २० )

वामवक्त ( सं० पुं० ) व्यक्तियेद । ( कथसरित्सागर ६८ २५ )

वामदत्ता ( सं० स्त्री० ) नक्षत्रीभेद ।

( दशमस्कन्ध ११० ६६७ )

वामदृश ( सं० स्त्री० ) नामा मनोहरा दृक् दृष्टिर्यस्या ।

सुन्दरी नारी, श्वदसूत आगत ।

वामदेव ( सं० पुं० ) वाम पय देवः । १ जिय, महादेव ।

( भारत १, १, २४ ) २ गीतमयोदसम्भूत ऋषिभेद, गीतम  
गोत्रीय एक वैदिक ऋषि । यह ऋग्वेदके चौथे मण्डलके  
अधिकांश सूक्तोंके मन्त्रद्रष्टा थे । ३ दशमस्कन्धके एक मन्त्रीका  
नाम ।

वामदेव—एक अथर्वहारविदु । हेमाद्रिने परिशेषाखण्डने  
इतका उल्लेख किया है । २ एक ऋषि । ३ सुनिमत-  
मणिमाला नामक एक दार्शनिकके प्रणेता । ४ वर्षा  
मञ्जरी नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता । ५ पश्योत्त  
विवेकके प्रणेता ।

वामदेव उपाध्याय—१ आह्निकसंश्लेष और गृहार्थदीपिका  
के रचयिता । लाला शबकुल नामक अपने प्रतिपालक  
की प्रार्थनाके अनुसार इन्होंने आह्निकसंश्लेष लिखा ।

२ श्राद्धचिन्तामणिदीपिका और स्मृतिदीपिकाके  
रचयिता ।

वामदेवमहाचार्य—स्मृतिचन्द्रिकाके प्रणेता ।

वामदेवमहिता—एक प्रसिद्ध तन्त्रग्रन्थ । श्रीगमने इमकी  
टीका लिखी है । इस ग्रन्थमें बटुकभैरवपूजापद्धति और  
गायत्रीरूपका विशेष वर्णन है ।

वामदेवगुह्य ( सं० पुं० ) शैवमतभेद । ( सर्वदर्शनसहिता )

वामदेवी ( सं० स्त्री० ) १ सावित्री । २ दुर्गा ।

वामदेव्य ( सं० स्त्री० ) १ वामदेवमन्त्रश्रीय । ( पुं० ) २

ऋग्वेदके १०।१२.७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा अहोमुचके पितृपुरुष ।

३ बृहद्बुधके पूर्वपुरुष । ४ मूर्धन्वनके पितृपुरुषभेद ।

५ राजपुत्रभेद । ( भारत समाप० ) ६ एक ग्रन्थकर्ता ।

७ शालमलहोपम्य पर्वतभेद । ( भाग० ५।२०।१० ) ८ कल्प-

भेद । ९ सामभेद ।

वामध्वज—न्यायकुसुमाञ्जली टीकाके प्रणेता ।

वामन ( सं० पुं० ) वामयति वमति वा मर्दामति उम-णिच्

ल्यु । १ दक्षिण दिग्भङ्ग । ( भागवत ५।२०।२६ ) २ महाप्रज-

पुत्रता । ३ अङ्गोद्वृद्ध । ( नेटिनी ) ४ हरि, विष्णु । ५ जिय,

महादेव । ६ एक तरङ्गा शोभा । ७ दनुके पुत्रका नाम ।

८ एक तरङ्गा सर्प । ९ नरकवर्जाय पश्चिमिणः । ( भागवत

५।१०।१।१० ) १० हिरण्यवर्माका पुत्र । ( हरिवंश २५३ ६ )

११ कौञ्जहोपम्ये अन्तर्गत एक पर्वतका नाम । कौञ्ज होपमे

कौञ्जपर्वत ही प्रधान है । इस पर्वतका दम्भका नाम वामन

पर्वत है । १२ एक तीर्थका नाम । यह तीर्थ सर्व पापनाशक

है । इस तीर्थमें स्नान, दान और ध्यानादि करनेमें सब

तरङ्गके पापोंका विनाश होता है । १३ महापुराणमें अन्व-

तम, वामनपुराण । देवीभागवतके मन्त्रमें इस पुराणकी

श्लोकसंख्या दश हजार है ।

भगवान् विष्णुके अवतार वामनदेवकी लीला इस

पुराणमें वर्णित है । पुराण पद लेना ।

१४ विष्णुका अष्टम अवतार । जब यमकी हानि और

वधर्मकी वृद्धि होती है, तब भगवान् धरणी पर अवतार

लेते हैं । देवपति बलिने स्वर्ग-राज्यका अधिकार कर देव-

ताओंको निर्वासन दण्ड दिया था । इस बलिके दमन

करनेके लिये भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण किया

था । वामनमें लिखा है कि राजा परीक्षितने शुकदेवसे

पृच्छा,—हे ब्राह्मण ! भगवान् विष्णु किस कारण वामन

रूपमें अवतर्ण हुए और दीन मनुष्यकी तरह बलिके पाप

तीन पैर भूमिकी याचना कर और उसे प्राप्त करके भी

उन्होंने किस कारणसे उसको वांछा था ? इन सब

वातोंको पूर्णरूपसे समझानेकी कृपा कीजिये । मुझे

इन सब बातोंके जाननेके लिये बड़ा कौतुहल हो रहा है ।

क्योंकि पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरका भ्रिया मांगना तथा निर्दोष

बलिके वाधना कोई महज प्रयत्न नहीं है ; वर आश्चर्य-

जनक है । आप विशेषरूपसे इस प्रश्नका उत्तर दे कर

मेरे सन्देहको दूर कीजिये !' श्रीशुकदेवजीने राजा

परीक्षितके इस प्रश्नके उत्तरमें कहा था,—देव-

राज बलि इन्द्रको जीत कर स्वर्गके इन्द्र हो गये । देवता

अनाथका तरह बलि द्वारा वितान्द्रित हो कर चारों ओर

भागने लगे । इन्द्रमाता अदितिको इस बातसे बड़ा

कह हुआ। उन्होंने कातरकरमें भगवान् करवसे कहा था,—मगवान् ! सपरशो-पुत्र देहमें हमारी भी और स्थानको भ्रष्टकरण कर दिया है। भाप हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। शकुन्तोनि हमें निर्वासित कर दिया है। भाप ऐसा बचाव कीजिये, जिससे मेरी पुत्र फिर अपने स्वामीको पा जाये। अदितिने इस तरह करने पर प्रजापति करवपने विस्मित हो कर कहा कि अहो ! विष्णु-भाषाका किता मसीम प्रभाव है ! यह मगव् स्नेहा वद है। आत्मा मित्र मोतियक देह हो कहाँ है ? फिर प्रकृति किता आत्मा हो कहाँ है ? मत्रे ! कौन किसका पति, कौन किसका पुत्र ? केवम मोह ही इस बुद्धिका एकमात्र कारण है। तुम आदिबक भगवान् वासुदेव की उपासना करो। बही तुम्हारा मङ्गल करिये। दोनोंके प्रति ये बड़े ब्याप्तु रहते हैं। भगवान्की सेवा समोप है। निचा इनके और किसी तरहसे कुछ फल नहीं हो सकता। इस समय अदितिने पूछा कि किस प्रकारसे उनकी आराधना करने होगी ? इस पर करवपने कहा था, देवि ! फाल्गुन मासमें शुकुलपक्षमें १२ दिनों तक पयोधत करते, येवा करनेसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो पुत्ररूपमें जन्म से कर तुम लोगो से इस दुःखको दूर करेगे।

अदितिने करवपसे इस जनका अनुष्ठान करनेका आदेश पा कर बैसा किया। कुछ दिन बीतने पर शिवमता अदितिने भगवान्को गर्भमें धारण किया। इसके बाद मात्रपत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशका अनादि भगवान् विष्णुने भयणा नक्षत्रके प्रथमांश अमिञ्जित मुहूर्त्तमें जन्म लिया। इस दिन च द्रमा भवण्याक्षरत्तमें वास करते थे। अश्विनो प्रभृति सभी नक्षत्र तथा देव गुरु बृहस्पति शुक्र प्रभृति प्रवृत्त मो अगुह्य रह कर शुभापह हुए थे। इस तिथिके दिनके मध्यभागमें भगवान्ने जन्मग्रहण किया था। इसीदिने हम द्वादशोका नाम पित्रपादाद्वगो है। वामनदेवक मूर्तिष्ठ होते ही मङ्गल कुम्भमि प्रभृतिना तुमुक शब्द दोनों छगा। अत्तराये इर्षित हो कर नाचने लग्ना। अदिति परम पुरुषको लक्ष्मीय पोषमावासे देह धारण कर गर्भमें जन्म ग्रहण करते देह साश्चर्याम्बित और सशुद्ध हुईं। करवप

नी आश्चर्याम्बित हो कर जप जप शब्द उच्चारण करने लगी। अथक ज्ञानरूप भगवान्की सेवा मनुमुत है। उन्होंने प्रमा, मूषण अन्न द्वारा प्रकाशमान देह धारण की थी। सहसा उनी देहने तदकी तरह वामनकुमारकी मूर्ति धारण कर ली। महाविषोनि हमो वामनरूपमें मय चित्त देह स्तव करना आरम्भ किया। करवपने विधिपूर्वक जातकर्म सल्कार काव्य कर अपनयन संस्कारसे संस्कृत किया। इस उगतयनके समय सूर्यदेव सावित्री और बृहस्पति ऋष्यसूतपाठने मृत्यु रूप और करवपन उनको मेकसा पहाया। वामनरूपी वामनपतिको पृथ्वीम हृण्णा मिम, सोमने बृह्ण, माताने कौपीन, सर्गने उन्न, ऋष्याने कमण्डलु सप्तर्षीने कुण्ड और सरस्वतीने अक्षमाला पहाया। वामनउचक उपलिपत होने पर वसन्तातने उनको मिहागल और ह्यव अम्बिकाने इनको गिष्ठा की। इस समय वामनदेवने सुना, कि देहपरात्र बहिन मन्थमेय रकता मनुष्ठान किया है। उस समय वामनदेव प्राद्वप्य रूपमें मिष्ठा मांगनेके लिये इसके पास गये। समुन्ना बल उनमें मौजूद था। सुतराँ इनके लक्ष्मिसे प्रत्येक पक्ष पर पृथ्वी कायने लगी। तर्कान्तरके उचर तट पर भृगु कच्छ नामक क्षैतमें बलिग पुरोहित और ग्राह्यपनि भष्ट यह आरम्भ किया था। भगवान् वामनदेव यहाँ पहुँचे। भगवान्की तेजप्रमा देख कर सब स्तम्भित हो गये।

माया वामनरूपधारी हरिके कटिदेशमें मूर्त्तकी कर धनी हृण्णाजिनमय उचरीय यक्षोपवीतबन बाण कण्ठे पर नियशित, मन्त्र पर जटा और इनको देह छोड़ी देख भृगुपण उनक तेजसे अमिमूत हो उठे। उन समय बलिने उठ कर भगवान् वामनदेवका पैर धो कर उनसे पिनमयुक्त बचनोंमें कहा "ग्राह्यण ! भावक आनमें कोई कष्ट ता नहीं हुआ ? आ। भाषा दीजिये भावका मैं क्या उपकार कर सकता हूँ ? भाप ब्रह्मर्षीकी मूर्त्तमती तपस्या है। भावक व आपनस हमारा विमुक्त परि एत हुआ और कुल ही पवित्र हुआ। भावकी जो इच्छा हा बही मांगिये। अनुमान होता है, कि भाप कुछ वांननेक लिये हो आये है। भूमि, स्वर्ण, उचमीसम वासस्थान, मिष्टान्न, समुद्रजालो प्राप्त आदि जो कुछ आपरपद हो आद्या दीजिये, मैं उसका वासन करूँ।"

भगवान्‌ने वलिके वाक्य पर सन्तुष्ट हो कर कहा:—  
तुमने अपने कुलके अनुसार ही यह विष्टाचार  
दिखाया है। तुम्हारे कुलमें किसीने किसी ब्राह्मणको  
दान देनेका कह पाछे उमसे इन्कार नहीं किया है।  
इसके बाद वामनदेवने कहा, दैत्यराज ! मैं और दूसरा  
कुल नहीं चाहता। मैं अपने इस पैरमें तीन पैर नाप कर  
भूमि चाहता हूँ। तुम दाता हो और जगत्के ईश्वर हो।  
जिनना आवश्यक हो, विद्वान् व्यक्तिको उतना ही मांगना  
चाहिये।

उस समय वामनके इस तरह कहने पर राजा वलिके-  
कहा,—“आपका वाक्य वृद्धकी तरह है, किन्तु आप बालक  
मालूम होने हैं, अतएव आपको बुद्धि मूर्खकी तरह है।  
क्योंकि स्वार्थके विषयमें आपको ज्ञान नहीं है। मैं  
तैलोक्यका ईश्वर हूँ। मैं एक द्वीप मांगने पर दे सकता  
हूँ। किन्तु आप इतने शोध हैं, कि मुझको सन्तुष्ट कर  
तीन पैर भूमि चाहने दें। मुझको प्रसन्न कर दूसरे  
पुरुषमें प्रार्थना करनेका जरूरत नहीं रहती। अतएव  
उस वस्तुकी जाप प्रार्थना करें जिससे आपके वृद्ध-  
सत्ताका काम मजेमें चल जाये।”

उस समय भगवान्‌ने कहा,—“राजन् ! तैलोक्यमें जो  
कुछ प्रियतम अभीष्ट वस्तु हैं, वे सभी अजितेन्द्रिय पु-  
ष्को तुम पर नहीं सकती। जो व्यक्ति तीन पैर भूमि  
पा कर सन्तुष्ट नहीं होने, नववर्षविशिष्ट एक द्वीप  
लाभसे भी उसको आशा पूरी नहीं होनी। तब वह  
सातो द्वीपोंकी कामना करने लगता है। कामनाकी  
शक्ति नहीं है। पुत्राणामें मैंने गुना दे, कि वेणु, गद  
आदि राजे सप्तद्वीपक शशिश्वर हो कर पंच यावनीय  
अर्थ, कामना योग करने भी विषययोगकी तुष्णासे  
रहित नहीं हो सके। सन्तुष्ट व्यक्ति इच्छाप्रप्त वस्तुको  
भोग कर सुखसे रहता है, किन्तु अजितेन्द्रिय व्यक्ति  
त्रिलोक प्राम हाने पर भी सुखी नहीं होता।”

उस समय वामनदेवकी बात सुन कर राजा वलि  
हंसने लगे और उन्होंने “लीजिये” यह कह  
कर भूमिदान करनेके लिये जलका पात्र हाथमें ले लिया।  
किन्तु सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्यने विष्णु-उद्देश्यको समझ  
कर वलिके कहा—“वलि ! यह साक्षात् विष्णु हैं। देव-

ताओंके कार्त्तव्यसाधनके लिये कश्यपके औरत तथा  
अदितिके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं। तुम अपनी लाई हुई  
विपद्को देख नहीं रहे हो। इनको दान देना स्वीकार  
कर तुम लाभ नहीं उठाओगे। दैत्यों पर महाविपद्  
उपस्थित है। माया वामनरूपी भगवान् विष्णु तुम्हारा  
स्थान, जेश्वर्य, धन, तेज, यज्ञ विद्या आदि सब अण-  
हरण कर इन्द्रको प्रदान करेगे। विश्व इनकी देह  
है, ये तीन पैरोंसे तीनो लोकों पर आक्रमण करेगे।  
तुम्हारा स्वर्ग नष्ट हुआ। इन वामनदेवके एक पैरसे  
पृथ्वी, दूसरे पैरसे स्वर्ग और इस विजालदेहसे गगन-  
मण्डल व्याप्त होगा। तीसरे पैरके लिये तुम क्या दोगे ?  
तुम्हारे पास कुछ नहीं रहेगा। यदि नहीं दोगे, तो  
तुम अपनी प्रतिष्ठा नष्ट होनेका दीपी बन कर नरक  
जाओगे। जिस दानसे अर्जुनापाय बिलकुल नहीं रह  
जाता, वह दान यथार्थ प्रशंसार्ह नहीं है। श्रुतिमें भा-  
लिया है, कि स्त्रीविलासके समय प्राण संकट उपस्थित  
होने पर हास्य-परिहासन विवाइके समय वरके गुण  
वर्णन करनेमें, जीविकावृत्ति का रक्षाके लिये और गो  
ब्राह्मणकी रक्षाके लिये झूठ बोलनेमें दोष नहीं होता,  
अतएव इस प्राण संकट के समय झूठ बोल कर भी अपनी  
देह बचाओ। इससे तुम्हारा अनिष्ट नहीं होगा।”

राजा वलि शुक्राचार्यकी इस बात पर जरा गौर कर  
कहने लगे, “आपने जो उपदेश दिया वह सर्वथा  
सत्य है, जिससे किसी समयमें अर्थ, काम, यज्ञ आदिमें  
व्याघात उपस्थित न हो, गृहस्थोंका यथार्थ धर्म है।  
किन्तु मैं प्रहादका पाँत हूँ। दूंगा कह कर मैंने जिस-  
को बात दी है, अब सामान्य वृद्धोंकी तरह मैं ब्राह्मणको  
कैसे न दूंगा। पृथ्वीने कहा है, कि झूठे आदमीके सिवा  
मैं सब किसीका भार सह सकता हूँ। ब्राह्मणके  
ठगनेमें मुझे जैसा भय हो रहा है, नरक, दरिद्रता,  
सिंहासनच्युत या मृत्यु होनेसे भी वैसा भय नहीं  
होगा। अतएव मैंने जब एक बार देना स्वीकार किया  
है, तो मैं स्वयं अपनी जवानके उलट न सकूंगा।”

शुक्राचार्यने वलिकी बात पर नाराज हो कर यह  
जाप दिया, कि “तुम मूर्ख हो कर पाण्डित्याभिमानके  
कारण मेरी आश्राकी अवहला करने हो, इसलिये

तुम निरुद्ध भविष्यमें भोग्य हो जाओगे।" शुद्ध शुद्धाचार्यके शापसे भी बलि विरहिण न हुए और अपने सत्यधर्म पर अटल रहे। इसके बाद इन्होंने वामनको भूमिदानका सङ्कल्प पड़ा। पञ्चमान बलिने वामनदेवके चरणोंको धो कर उस जलको गिर पर धारण किया। इस समय स्वर्गके देवता इसकी मूर्ति मूर्ति प्रशंसा कर पुण्य-गृष्ट करने लगे।

देवता देवता वामनदेवका शरीर आश्चर्यरूपसे बढ़ गया। गुणत्रय इसी कारणके अन्तर्गत थे। अनपन्न पृथ्वी, आकाश, दिक्-वर्ग, विरार, समुद्र, पशु, पक्षी, नर और देवतागण सभी रूपमें भविष्यिण थे। यन्त्रिने देवता, कि विष्णुमूर्ति हरिके चरणोंके जोके रसा तन, दोनों चरणोंमें पृथ्वी, अङ्गुलुगुणमें पर्वतधोपो पुत्रोंमें पक्षिगण और अरुण्यमें मन्त्रण, असन्तमें म धवा, शुद्धमें प्रजापति, वितन्त्रमें आप और धनुषरगण, नामि देवतामें आकाश, लोकमें सातो समुद्र, बहुरूप्य पर सभी तारे, हृदयमें धर्म, स्तनद्वयमें श्रुत और सत्य, मनमें यज्ञ और ब्रह्माख्यधर्म कमला चिराय रही है, यह देव राजा बलि स्तम्भित हुए।

उस समय मगवान् वामनने एक पैरसे पृथ्वी, शरीर से आकाश और बाहु द्वारा विश्वमबद्ध पर आक्रमण किया। इनके बाद उन्होंने दूसरा पैर फैलाया, इस पैर में स्वर्ग जरा मर ही हुआ। कि तु तिसरे पैरके सिधे सब कुछ न बचा। दूसरे चरणने ही क्रमसे जनलोक तपो लोक आदि लोकों पर आक्रमण कर सत्यलोक पर प्रभुत्व जमाया। देवताओंने उनका यह भयङ्कर रूप देख कर इनको स्तुति करने आरम्भ की।

क्रमसे विष्णुने अपने बिल्लारके घोर घोर क्रम कर दिया और फिर अपना पूरु रूप धारण किया। असुरों ने वामनके इस रूपको मायाजान समझ कर महायुद्ध करनेका आयोजन किया। कि तु राजा बलिने उनका मना कर कहा, कि तुम लोग युद्ध न करो शास्त हो। समय हम लोगोंके सिधे अच्छा नहीं है। काकको अग्नि क्रम करनेमें काँ सप्रय नहीं हुआ है। बलिकी बात सुन कर शिव विष्णुके पार्ष्णीके भयसे रसातलमें पुन जाते पर तीपार हुए।

इस समय वामनदेवने बलिसे कहा, कि तुमने मुझ को तीन पैर भूमि दान की है, दो पैरों यह सब कुछ हो गया। अब तीसरे पैरके सिधे भूमि कहाँ है धी। इस समय मैंने तुम्हारे सब विषयों पर आक्रमण कर लिया। फिर तुम अपने लोभित पापकी पूरा न कर सके। अतः अब तुमको इस पापसे नरकम जाना होगा। अतः तुम शुद्धाचार्यकी आज्ञा से नरकका रास्ता पकड़ो।

मगवान्के इस पाप पर बलिने कहा,—मैंने जो कुछ कहा है, उसे पूरु कर्मो न होने तु गा। आप अपने तीसरे पैरको मेरे मस्तक पर पर दे। मगवान्ने बलिको हम तरहस निग्रह कर उसका बांध दिया। बलिकी यह दुर्दशा देख प्रह्लाद भा कर मगवान्को स्तुति करने लगे।

बलिको पक्षी विष्णुवाबद्धि पतिको बांध हुआ देख डर कर कहने लगे—मगबन्, आपने बलिका सत्य हरष कर लिया। अब इनकी पाशमुक्त कीजिये, बलि निरुद्धोत्त शैलिक उगयुक्त नहीं। बलिने अकारतमाबसे आपको समुची पृथ्वी दान कर दी है। अपने बाणधरसे जिन सब लोकोंको जीता था, उन सबको आपके हवाफे किया। जो सामान्य पुरुष हैं, वे भी आपको चरण-पूजा कर उतमा गति काम करते हैं और बलिने तो आपने चरणोंमें अपना सर्वश्र भरण कर दिया। इनकी पेतो दशा न होनी चाहिये। इनसिधे आप इनको मुक्त करें।

मगवान्ने बलि पक्षीसे कहा—मैं जिस पर दया दिखाता हूँ, उसका अर्थ छोनता हूँ। क्योंकि अर्थसे ही ममताक उत्पत्ति होता है। इसी ममताक कारण मानवो और मेरो सबका होता है। जीवात्मा अपने कर्मके कारण पराधीन हो कर ह्यमिच्छेद भादि दोषियोंका परिह्रमण कर अन्तमें मानपयोगि पातो है। इस समय यदि अर्थ, कर्म योगन, रूप विद्या, वैश्वर्य वा धन भाविले गर्बित नहीं होता तो उसके प्रति मेरो दया हुई है, ऐसा समझना होगा। जो मेरे अटल हैं वे धन सब बस्तुओं द्वारा विमुक्त नहीं शिवे। इस शिवधेद कीर्त्तियर्धन बलि ने, दुर्दशा मायाको जीत किया है और कुछ वा कर भी वह मुग्ध नहीं हुआ, विलहिन हुआ है, स्वानघ्न हो कर बांधा गया है हाथु द्वारा बांधा गया है, अर्धत द्वारा परिष्क और शुद्ध श्राप निरहृत और अमिश्रत



हुथा है, फिर भी बलिने सत्यधर्म नहीं छोड़ा है। अनप्य बलि परम भक्त और सत्यवादी है। अनप्य को स्थान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, मैंने बलिको वही स्थान दिया है। बलि सावर्णि मन्वन्तरका इन्द्र होगा। जिनने दिन यह मन्वन्तर नहीं आता, उतने दिनों तक वह विश्व कर्मा द्वारा निर्मित सुतलमें वास करे। मेरी दृष्टि रहनेसे आधिष्ठाधि, श्रान्ति, तन्द्रा, पराभव और भौतिक उत्पत्ति वहा कुछ भी न होगी। इसके बाद धामनदेवने बलिने कहा, तुम अपने जानियालोके साथ देवतादुर्लभ सुतलमें जाओ। तुम्हारा मङ्गल हो। इस स्थानमें तुमको कोई पराभव नहीं कर सकेगा। मैं स्वयं वहां रह कर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। बलि इसके श्रावण सुतलमें गये। धामनदेवने स्वयं इन्द्रको प्रदान किया। इस तरह धामनने अदितिकी वासना-पूर्ण की थी।

(भागवत ८।१४-२४ ष०)

वामनपुराणके ४८वें अध्यायसे ५३ अध्याय तक भगवान् वामनदेवके अवतार और लीला वर्णित है। स्थानाभावके कारण यहाँ उद्धृत किया न गया। केवल इसमें एक विशेष बात यह है, कि भगवान् वामनदेवने पहले धुन्धुके तीन पैर पृथगेईमाग उल्लको निगृहीन किया। पीछे बलिके यक्षमें जा कर उनके सर्वास्त्रको उन्होंने हरण किया और इन्द्रको प्रदान किया।

वामनमूर्तिकी रचनाके सम्बन्धमें हरिमक्तिविलासमें इस तरह लिखा है,—

इस मूर्तिकी दोनों मुजाओंका आयतन त्रिगोलक, वक्षःस्थल चिमनीर्ण, हाथ पैर चतुर्थांग, मस्तक दृढत्, ऊरुद्वय और मुप्रप्रदेश आयासविहीन, कटि मोटी (पश्चाद् भाग) पाश्वे और नाभि भी मोटी होगी। मोहनार्थ वामनदेवकी मूर्ति ऐसी ही होनी चाहिये।

बड़े सङ्कलने नम्य भक्तिके साथ वामनमूर्ति तैयार करनी चाहिये। यह मूर्ति पीनगात्र, दण्डधारी, अर्धयज्ञोपवीत, दूर्वाद्वयश्याम और कृष्णाजिनधारी होगी।

(त्रि०) वामयतोति वम-णच् ह्यु। १३ अतिक्षुद्र।

पार्थाय—न्यड, नीच, क्षर्व, ह्य, अनुध, अनायत।

(नटाधर)

वामन—एक प्रसिद्ध कवि। यह काश्मीरराज जयापीडके मन्त्री थे। (राक्षसकृष्णी ४।४६६)

श्रीरस्वामी, अभिनव गुप्त और धर्म्माम्नी इनकी कताई हुई कवितादिका उल्लेख किया है। सायणाचार्यने धातुवृत्तिमें इन्द्रे वैयाकरण, काव्यरचयिता और सज्जन-प्रतिपालक कहा है। अधिष्ठातविद्याधर व्याकरण, काव्यालङ्कारसूत्र और वृत्ति तथा काशिकावृत्ति नामक कुछ ग्रन्थ इन्हींके कताये हुए हैं।

ठीक ठीक यह कहा जा नहीं सकता, कि सूत्रपाठ, उणादिसूत्र और लिङ्गसूत्रके रचयिता वामन आचार्य और उक्त कवि एक व्यक्ति थेवा नहीं। शेषोक्त व्यक्तिके पञ्जिका और जैनेन्द्रका मत उद्धृत किया है।

वामन—कुछ प्राचीन ग्रन्थकार। १ उपाधिर्न्यायसंग्रहके रचयिता। २ पादिरगृह्यसूत्र-कारिकाके प्रणेता। ३ ताजिकतन्त्र, ताजिक सारोद्धार, वामनजातिक और स्त्री-जातक नामक कुछ ज्योति-शास्त्रोंके रचयिता। ४ वामन-निघण्टु वा निघण्टु नामक ग्रन्थके प्रणेता। ५ वामन-कारिका नामक व्याकरणके प्रणेता। ६ बलिकथागाथाके रचयिता। हेमाद्रि-परिश्रेय-श्लोकमें इसका उल्लेख मिलता है। ये वत्सगोत्रीय थे। वासुदेव, कामदेव और हेमाद्रि नामक तीन पण्डित इनके योग्य पुत्र थे। ७ एक प्रसिद्ध मामासाशास्त्रवेत्ता। चार्लिसिंहने इनके मतकी प्रथानता दिगलाई है।

वामन—१ चट्टलके अन्तर्गत एक ग्राम। (मविष्णुब्र० ल० १।१३३) २ त्रिपुराराज्यकी राजधानी अमृतोलासे १ योजन पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। (देशवर्ती)

३ विशालके अन्तर्गत एक ग्राम। (मविष्णु ब्र० ल० ३।१५३)

वामन आचार्य करञ्ज कविसार्धर्म्माम्—१ प्राकृतचन्द्रिका और प्राकृतपिङ्गलटीकाके रचयिता। २ प्रतिहारसूत्रभाष्य आदि ग्रन्थोंके प्रणेता प्रसिद्ध पण्डित वरदराजके पिता। वामनक (सं० पु०) क्रीडल्लोपका एक पर्वत। (लिङ्गपु० ५।३।१४)

वामनश्वेत—भोजके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान। (मविष्णुब्र० ल० २।१।६)

वामनकाशिका (सं० स्त्री०) वामन रचित काशिकावृत्ति। वामनजयादित्य (सं० पु०) काशिकावृत्तिके टीकाकार। वामनत्व (सं० स्त्री०) वामनस्य भावः त्व। वामनता, वामनका भाव वा धर्म, अति क्षुद्रता, नीचता।

शामनतंत्र—एक तंत्रप्रणय ।

शामनतंत्र—संस्कृतप्रकाशके प्रणेता ।

शामनतंत्र—एक कवि । नामक है ।

शामनतंत्रज्ञा ( सं० खी० ) शामनतंत्रका द्वादर्शीग्रन्थ विशेष । नामांतरांतरक है ।

शामनतंत्रज्ञा ( सं० खी० ) शामनतंत्रका द्वादर्शीग्रन्थ । अथवा द्वादर्शीमें कर्त्तव्य शामनतंत्रका मतविशेष । द्वादर्शीके दिन शामनतंत्रके उद्देश्यसे पट प्रत करना होता है, इस कारण इसको शामनतंत्रज्ञा कहते हैं । हरिमठि विद्यासमें इस प्रतका विधान इस प्रकार लिखा है—

अथवा द्वादर्शीके पहले पचाशोके दिन निरन्तर उपवासो रह कर यह प्रत करना होता है । साद्रामकी शुद्धा द्वादर्शीको अथवा द्वादर्शी कहते हैं । अतएव पारश्वरिवरान पचाशोमें उपवासो रह कर यह प्रत करना उचित है । द्वादर्शीके क्षय होने पर पचाशोकी रातको या दूसरे दिन द्वादर्शीको शामनतंत्रकी पूजा करे । सोम, बार्ही, तांबा या बांस—इसमेंसे किसी एकका पाल बना कर ताम्रकुण्ड स्थापन करे तथा बाई बगल छतरो, लडाऊ, बांसकी मण्डी छड़ी, अक्षत और कुण्ड रखना होता है । अथ पुष्प, फल, घृण, नामा प्रकारके नैवेद्य, मोक्षोन्मय और शुद्धोन्न आदि द्वारा शामनतंत्रकी पूजा करनी होती है । भृत्य-गोवादि द्वारा रात्रिजागरण करना आवश्यक है । पहले शामनतंत्रकी अर्घ्य दे कर पीछे पूजा करना होता है । इस अर्घ्यमें कुछ बिरियता है, वह यह कि सफेद नारियलके पानीसे अर्घ्य देवे ।

इसके बाद दोनों पादमें मत्स्यकी, दोनों जानुमें कुर्मकी शुद्धमें बराहकी, नामिमें दुर्लिककी, ब्रह्मास्पदमें शामनकी, दोनों कक्षमें परशुरामका, दोनों मुखाधोमें रामकी, मस्तकमें छत्रकी और सार्धद्विमें बुद्ध तथा ब्रह्मकी अर्चना करनी चाहिये "ओ मरुत्याय नमः पादयो" इत्यादि क्रमसे पूजा करना होगा । इसके बाद "ओ सर्वभ्यो आयुष्यो नमः" कह कर समो आयुषकी पूजा करना चाहिये । पीछे विद्यागनुसत् मन्त्र पढ़ कर आवाय और विद्यागन्धो दान दे देना आवश्यक है । उन्हे मी रुद्ध रूप मन्त्र पढ़ कर मन्त्र करना उचित है ।

इसके बाद प्रतकारो दक्षिणुद्ध युग परतोस कर पहले

द्विजातियोंको मोक्षन कराने, पीछे हनुमान्चरीके साथ भाव मोक्षन करे । शामनपुराण और भावप्योत्तरपुराणमें इस मतविधिका वर्णन है ।

प्रशुद्धयत्तपुराणमें लिखा है, कि द्वादर्शीके दिन बहुत सबेरे नदीसङ्गम पर जा कर संकटा करना होगा । इनको पीछे एक माशा सोनेसे या शकिके अनुसार शामनतंत्रकी मूर्ति बनानी चाहिये । उस मूर्तिको कुम्भके ऊपर सुवर्ण-पात्रमें रख कर पीछे स्नान करा उसकी पूजा करे ।

अर्घ्य देनेके बाद ब्राह्मणको छत्र, पादुका, गो और कमलकुण्ड वान करना होता है । रात्रिकाद्यमें नृत्य गीतादि द्वारा रात्रिजागरण करना उचित है । द्वादर्शीमें ब्राह्मणको मोक्षन करा कर भाव पारण करे । द्वादर्शीके रहते हो पारण करना उचित है ।

शो विधिपूर्वक इस प्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें समी प्रकारका सुख सीमायु मात होता है । जो पिता माताके उद्देश्यसे यह प्रतफल अर्पण करते हैं, वे कुलजाता हो कर विदुष्यसे उन्नत होते हैं । इस प्रतक करने वाले इतिहासमें जा कर ७३ पुण्य प्राप्त करते हैं और पीछे इस पुण्य पर ब्रह्म दे कर राजा होते हैं ।

( हरिमठि १२ वि० )

शामनपुराण ( सं० खी० ) अष्टादश पुराणोंमेंसे एक पुराण । पुराण हनु देवो ।

शामनतंत्र—निराकारसमहायके एक गुण । ये रामचन्द्र मन्त्रके शिष्य और हनुमान्मन्त्रके गुण थे ।

शामनतंत्र—हृदयद्वारा कर और शरीरद्वारा कर नामक अग्नि घातके प्रणेता । यह परम्यगोतीय कोपट्टि-यज्ञके पुत्र और बरहामिचित्तके पीत थे ।

शामनतंत्रशायन—शुभायचरित्र और शुकुमारभूषण नामक भावके प्रणेता ।

शामनतंत्र ( सं० खी० ) शामनतंत्र काज्ञिकावृत्ति ।

शामनतंत्र ( सं० खी० ) शामनतंत्रका मतम् । शामन द्वादर्शीमत ।

शामनतंत्रहरजन्मविषय—दाक्षिणात्यके एक राजा ।

शामनतंत्रहराज—एक विद्वान् । भाव दाक्षिणात्यमें राज्य करते थे ।

शामनतंत्र ( सं० खी० ) वैदिक स्तीतयेत् ।

वामनस्थली—वन्धुईप्रदेशके काठियावाड विभागके अन्त-  
र्गत एक प्राचीन जनपद । इसका वर्तमान नाम वन्धुलि  
वा वनस्थली है । जूनागढसे यह ८ मील दूर पडता है ।  
यहाँके लोग आज भी एक स्थानको वामनराजका प्रामाद  
बतलाने हैं । उक्त वामनराजकी राजधानी अथवा वामना-  
पतारके पवित्र तीर्थक्षेत्रसे इस स्थानकी प्रसिद्धि स्वीकार  
की जा सकती है । एक समय यहां राजा प्राहरिपुकी  
राजधानी थी । मरुत्तपुराणान्तर्गत प्रभासन्नएडमें भी  
इस प्राचीन देशकी स्मृद्धिका परिचय मिलता है ।

वामन स्वामिन् ( सं० पु० ) एक प्राचीन कवि ।

वामना ( सं० स्त्री० ) एक अपमरका नाम ।

वामनाचार्य ( सं० पु० ) आचार्यभेद, एक विद्यात टोका-  
कार ।

वामनानन्द—कोकिलारहस्य और श्यामला-मन्त्रसाधन  
के प्रणेता ।

वामनिका ( सं० स्त्री० ) १ खर्वाकारा स्त्री, वीनी स्त्री ।

२ स्कन्दानुचरमातृभेद, स्कन्दकी अनुचरी एक मातृकाका  
नाम ।

वामनी ( सं० स्त्री० ) १ खर्वा स्त्री, वीनी स्त्री । २ घोडकी,  
घोडी । ३ एक प्रकारका योनिरोग ।

वामनोरुन् ( सं० लि० ) मर्दन द्वारा सङ्कोचित, जो मल  
कर छोटा किया गया हो ।

वामनीति ( सं० पु० ) धनका नेता । ( शृक् ६।४७७ )

वामनीय ( सं० लि० ) वक्र, टेढा ।

वामनेत्र ( सं० स्त्री० ) वर्णन्यासे वामं नेत्रं स्पृश्यं येन ।

१ दीर्घ ईकार । २ वामलोचन, बाईं आँख ।

वामनेत्रा ( सं० स्त्री० ) लुचरो स्त्री, नूवसूत औरत ।

वामनेन्द्र स्वामो ( सं० पु० ) आचार्यभेद । ये तत्त्वबोधनी-  
के प्रणेता छानेन्द्र मन्त्रनाके गुरु थे ।

वामनोपपुराण—उपपुराणभेद ।

वाममोज् ( सं० लि० ) वामं भजने भज-ण्वि । धन-  
सागो ।

वामभृत् ( सं० स्त्री० ) इष्टकामेद, यज्ञकुण्ड बनानेकी एक  
प्रकारकी ईंट । ( शतपथब्रा० ७।४।२।१५ )

वाममार्ग ( सं० पु० ) वामः मार्गः । वामाचार, वेदविहित  
दक्षिण मार्गके प्रतिकूल तान्त्रिक मत जिसमें मद्य, मांस,  
धूमिचार आदि निषिद्ध बातोंका विधान रहता है ।

वाममाली ( सं० पु० ) सहायद्विवर्णित राजभेद ।

( सखा० ३।१।३० )

वामरथ ( सं० पु० ) एक गोत्रकार ऋषिका नाम । इनके  
गोत्रवाले वामरथ्य कहलाने थे ।

वामरथ्य ( सं० पु० ) वामरथके गोत्रापत्य ।

( वा ४।१।१५१ )

वामलूर ( सं० पु० ) वाम यथा तथा लुनातीति लु बाङ्गल  
कात् रक् । वलमाक, डीमकका भीटा ।

वामलोचन ( सं० स्त्री० ) वामनेत्र, बाईं आँख ।

वामलोचना ( सं० स्त्री० ) वामे चारुणी लोचने यस्याः ।  
स्त्रीभेद, नूवसूत औरत ।

वामजिव ( सं० पु० ) कथासंगित्सागरवर्णित व्यक्तिभेद ।

वामवेधशुद्धि ( सं० स्त्री० ) वामे प्रतिकृन्ने यो वेधस्तद्वि-  
षये शुद्धिविशोधन, वा वामेन विपरीतेन वेधेन शुद्धिः ।

ज्योतियोक्त चन्द्रशुद्धिविशेष । इस वामवेध-शुद्धिका  
त्रिषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—जिसको जो राशि  
है उस राशिमें द्वादश, चतुर्थ और नवम गृहस्थित चन्द्र-  
के विरुद्ध होने पर भी यदि शुक, ग्रानि, मङ्गल, बृहस्पति  
और रवियुक्त गृहसे सप्तम गृहमें हों, तो वामवेधशुद्धि  
होती है । इसमें विरुद्ध चन्द्र भी शुभफलदाता होते हैं ।  
फिर वे विरुद्ध चन्द्र, शुक, ग्रानि, कुज, बृहस्पति और  
रवियुक्तमें दशम, पञ्चम और अष्टम गृहमें घास करते  
तथा अपनी राशिसे यथाक्रम अष्टम, पञ्चम और द्वितीय  
गृहगत हो कर भी शुभफलदाता होते हैं ।

वामा ( सं० स्त्री० ) वामति सौन्दर्यं इति वम उवलादित्वा  
दण्, टाप्, यद्वा वामति प्रतिकूलमेवार्थं कथयति वा वामैः  
कामोऽस्त्यस्या इति अशी आदिस्वाद्च् । १ सामान्या स्त्री,  
स्त्रीमातृ । २ दुर्गा । ३ दश अक्षरोंके एक घृत्तका नाम ।  
इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण और भगण तथा  
अन्तमें एक गुरु होता है ।

वामाक्षि ( सं० स्त्री० ) वामाक्षि । १ वामचक्षु, बाईं  
आँख । २ दीर्घ ईकार ।

वामाक्षो ( सं० स्त्री० ) वामे मनोहरे अक्षिणी यस्याः, पच्-  
समासान्तः डोप् । १ वामलोचना, सुन्दर स्त्री । २ दीर्घ  
ईकार ।

वामाचार ( सं० पु० ) वामो-विपरीतो वेदविरुद्धो वा  
आचारः । तन्त्रोक्त-आचारविशेष ।

पञ्चनख ( मघ, माघ, मन्व्य, मुद्रा और मैपुन ) इस पञ्च मकार और लपुण (रजमला खाके रज) द्वारा कुप खाको पूजा तथा वामा हो कर परमात्मिकी पूजा करनी होती है। इससे वामाचार होता है। जो वामाचारो हो, ये इमी विधानमे कार्पादि करें। प्रह्लादवर्षपुराणके प्रकृतिखण्डमे लिखा है, कि जो इन आचारके अनुसार असेगे उग्ये नरक होगा।

चारों वेदमें पशुमास प्रतिष्ठित है अर्थात् वेद विहित आचार वा वैदिक आचार ही तान्त्रिक मतसे पञ्चाचार है तथा वामादि जो तीन आचार हैं वे दिव्य और और माघमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् वामादि जो आचार है वे दिव्य और वीराचार हैं। माघादीमें वेदाचार भोग्य हैं। वेदाचारसे वैष्णवाचार तथा वैष्णवाचारसे शैवाचार, शैवसे ब्रह्मिणाचार, ब्रह्मिणसे वामाचार वामसे सिद्धास्ता आर और मित्रात्मने कौमाचार भोग्य हैं।

वामाचारके मतसे मघादि द्वारा देवीको अर्चना करना होनी है सती, पर यह सबको मिय उचित नहीं है। प्राण्य वामाचारो हो कर देवीको मघमास न अर्पायें और न स्वर्प लेवन करें।

कुपखाको पूजा, मघ मासादि पञ्चनख और लपुण का व्यवहार वामाचारके प्रधान लक्षण है। मघाद् दान और सैव्य वामाचारिणोंका प्रधान कर्त्तव्य है। इस के बाद वामासक्या हो कर परमात्मिकी पूजा करना होती है, नहीं करले सिद्धिदाम नहीं होता।

रातका छिप कर कुक्किया और दिनको वैदिक क्रिया करनेका विधान है। वामाचारो कीलगाय विनकप पुण्य, प्राणकप धूप, तेजोरूप होय धायुरुप वामर आदि कल्पित उपचार द्वारा आध्यात्मिक साधना करना है। इनका नाम अष्टपार्श्व है। परब्रह्म-वेद इस अष्टपार्श्वका प्रधान लक्षण है। नरक रहते।

अष्टपार्श्व साधनमें प्रवृत्त वीराचारो वा वामाचारो मघमासादि मघवतीकी अर्चना करते हैं। कुपार्णवमें येसे साधकका देवीका मिय कहा है। यहाँ तक, कि कुल शास्त्रकारोंने सभीको मघमास द्वारा पूजा करतीकी विधि दी है,—

“रावे च वैष्णवे शाखे वीरे च गठदर्याने।

बीडे पाशुपत शक्ति मते वज्रायुसे तथा ॥

हरदशमखण्डान्तर्बेदिकादिषु पाव ति।

निग्राह्यि तवाग्नाथ पूजन विघ्नम भवेत् ॥”

( कुशाघर )

कुमार्यावमें यह भी लिखा है, कि सुरा शक्तिसरूप, मांस विन्ययरूप और उस शिवशक्तिके मछ स्वर्प और स्वरूप हैं ०।

इस ईगमें वीराचारो साधारणताः एक बना कर उपासना करते हैं। चक्रनिर्माणकी प्रयासी इस प्रकार है—साधकगण चक्रकारमें वा भेषोक्तमसे अथवा अथवा शक्तिके साथ छत्राटमें धर्मनका प्रसेप दे कर पुण्यकमसे मीर-मीरको मावमें पीठें। वे ब्रह्मव्यपिण्यत किमो स्त्री को साक्षात् काकी समक कर मघमासमे साध उसको पूजा करे। कौसी स्त्रीको इन प्रकार पूजा करनी होता है, तन्ममें यों लिखा है—

“अती कलाकिनी वेभ्या रजको नापिपायना।

ब्राह्मणी मूत्रकन्या च तथा गेवाहकन्यका ॥

माहाकरस्य कन्या च नराह्न्याः प्रकीर्तिता।

विद्योपे रघपुता सर्वा एव कुशाहना ॥

स्वर्षोपनसम्भ्या शोक्तोमाम्भ्याकिनी।

पूजनीया अयत्नेन ततः तिष्ठिर्नैर्दुष्टवम् ॥”†

( प्रस्तावनापत्र १२ परस )

० तन्की वह अन्त्या ईर्ष्या-अनाशा कादिविधमें मा है। शाक काम जित प्रकार द्विषेका मात और शक्तिका मघ नरक है जो प्रकार रोमन कैवलिक ईर्ष्या लागेने मो शैत्य-नृपके रहके मघ लकार विना है।

† देवतान्ममें पचशाकी, बकनी, बीडे, रजकी आदि चोठ प्रकारकी कुकुरिणोका उल्लेख है। निरकारतन्मप्रकार करना है, कि व लव इन्द्र वपकिषक नरो हैं, उलक मिष्टान विद्या कार्याकुलनेके गुणशक्त हैं।

० “पञ्चनख लपुण्य/पूजनेन कुकुरापिण्यम् ।  
वामाचरो मनेचय वामा मूला वमर् ५५५ ॥”  
( वायव्यमेरुचण )  
† “मघ मासमे मन्व्यस्य मुद्रामैपुनमेव च ।  
नकरावगन्धेन महागणकमारुम् ॥” ( रामायणहृत् )  
Vol. XXI, 28

चक्रगन परंपुरप ही उन सब कुलस्त्रियाँके पति हं, कुलधर्मसे विवाहित पति पति नहीं हैं। पूजाकालके सिवा अन्य समयमें परंपुरपको हृदयमें स्थान न दें। पूजाके समय वेश्याकी तरह सबको परितोष करना उचित है।

साध्यात् कालीम्बुरुपा ऊपर कही गई कुलनारीकी पूजा करके वामाचारी मथादि शोधन कर पीते हैं। प्राणतोषिणीतन्त्रमें लिखा है, कि ललाटेमें सिन्दूरचिह्न और हाथमें मदिगसस्य धारण कर गुरु और देवताका ध्यान करने हुए उसे पान करे, सुरापात्रको हाथमें पकड़ कर नद्वन भावमें मद्यपात्रकी इस प्रकार वन्दना करनी होती है।

“श्रीमद्वैश्वशेषप्रविलम्बचन्द्रापूतप्रावितम्  
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीमुरगणैः विद्वैः समाराधितम्।  
बानन्दार्णवक महात्मकमिदं भुक्तान् विख्यदाभृतम्  
वन्दे श्रीप्रमथं कराम्बुजगतं पात्रविशुद्धिप्रदम् ॥”

(श्यामारहस्य)

इस प्रकार विशेष विशेष मन्त्रोंद्वारा पात्र धार पालकी यत्नता करके पात्र मद्य ग्रहण करना चाहिये। जब तक इन्द्रियां चञ्चल न हो जायें, तब तक पान करता रहे। पीले चक्रादिके कल्याण और उनके विपक्षके विनाशके उपदेशसे प्रान्तिस्तोत्रका पाठ कर कुलक्रियाका अनुष्ठान करना होता है। इनके वाट आतन्दोलेनास।—कुलार्णवके ५५ अङ्गमें यह लिखा है। विसनार हो जानेके समयमें वे नव मुहूर्तादिगुप्त नहीं लिखे गये। घोराचारी देखो। वामाचारिन् (सं० श्री०) वामाचारः अस्त्यर्थे इति। वामाचारशुक्ल, जिह्वाम्नि वामाचार अवलम्बन किया है। वामापीडन (सं० पु०) पीलुवृक्ष, पीलूका पेड़। वामावर्त्ता (सं० त्रि०) वामेन आवर्त्ताः। १ वामदिक्से आवर्त्तनयुक्त, जो किर्मा वस्तुकी बाईं ओरसे आरम्भ

की जाय। २ जिसमें बाईं ओरका घुमाव या संवरो हो। ३ जो बाईं ओरसे चला हो।

वामावर्त्तफला (सं० पु०) ऋद्धि। (वैष्णवनि०)

वामावर्त्ता (सं० स्त्री०) आवर्त्ताकी लता।

वामिका (सं० स्त्री०) वामा ग्यार्थे फल चापि अत इत्य। चण्डिका।

वामिन् (सं० त्रि०) १ वमनशील, उल्टी करनेवाला।

२ उद्विग्नशील, उगलनेवाला। ३ वामाचारी।

वामिनी (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष। इसमें गर्भाणय से छः सात दिन तक रजसा म्बाव होता रहता है। इसमें कभी पीडा होती है, कभी नहीं होती।

वामियान्—अफगानिस्तानकी सीमा पर अवस्थित एक शैलमाला। चीनपरिव्राजकने यहां इस नामके एक नगर और उस नगरमें अनेक बौद्धमूर्तियोंका उद्घोष किया है।

वामिल (सं० त्रि०) वाम इत्यच्। १ दाम्भिक, पाखण्डी।

२ वाम, बायाँ।

वामी (सं० स्त्री०) वाम-टीप्। १ शृगाली, गीठडी।

२ बडवा, बोडी। ३ रासभी, गद्दी।

वामीयमाप्य (सं० स्त्री०) माप्यप्रत्ययेद्।

वामेतर (सं० त्रि०) वामादितरः। दक्षिण, बाएँका उल्टा।

वामेरु (सं० त्रि०) सुन्दर ऊरुविशिष्ट।

वामेरु (सं० स्त्री०) वामी सुन्दरी ऊरु यस्याः (संहितना फलक्षणवामादेश्च। पा १।४।७०) इति ऊङ्। नारीविशेष, सुन्दरी स्त्री।

वाम्नी (सं० स्त्री०) एक वैदिक ऋषिकन्या।

(पञ्चविंशति १४६।२८)

वाम्नेय (सं० पु०) वाम्नीके अपत्य।

वाम्य (सं० त्रि०) १ वमनीय, वमनयोग्य। (शाङ्ख्यधरसहिता)

२ वामसम्बन्धीय। (साहित्यदर्पण) (पु०) ३ वामदेव-ऋषिके एक घोड़ेका नाम।

वाघ्र (सं० पु०) १ वघ्रके गोवापत्य। २ सामनेद्-वाघ्रडि—यशोग जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

(मवि०अ०त० ११।३८)

वाय (सं० पु०) १ वयन, वुनना। २ साधन।

वायक (सं० पु०) वायतीति वै-ण्वुल। १ समस्त देव।

२ तन्तुवाय, जुलाहा।

\* "वामामोक्तपति, शम्भुरवामोक्तपतिर्गुरुः।

० पतिः वृद्धजायारच न पतिश्च विवाहितः ॥

विवाहितपतित्यागे दूषण न कुलान्धने।

विवाहितं पतिं नैव त्यजेद्द्वैदोक्तमस्मि ॥”

(निश्चरतन्त्रः)

बायत ( सं० पु० ) बायतके पुत्र । रामा पाशुपुत्र इनके अग्रपुत्र थे ।

बायती—पश्चिम बङ्गवासी मित्रभेषोको एक जाति ।  
[ इस जातिके लोग अक्सर बूनेका व्यवसाय किया करते हैं । बायती बेलो ।

बायति ( सं० पु० ) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली ।  
*Pseudotroplus tankree.*

बायतएक ( सं० पु० ) बायस्य एकः यद्वा बायतेऽनेति बाय, वाय एव एकः । बायतएक, जुआहोकी टरकी ।

बायल ( सं० स्त्री० ) पिप्लकविशेष, यह मिठई या एकभान ओ बैबपूजा या विवाहादिक क्रिये बनाया जाय ।

बाबनिक ( सं० पु० ) एक श्रमियुक्त । ( तल्लानोमुटी )

बायतएक ( सं० स्त्री० ) जुआहोके करमेकी बी या बंभी ।

बायसपाङ्क—मन्त्राक्षरदेशके कडावा त्रिलास्यगत बायस

—वाह तालुका सहर । यहाँ प्रगतलकके विश्वमसकर

रायल्लामोका एक प्राचीन मन्दिर और शिखरिण है ।

बायब ( सं० स्त्री० ) बायोरप बायु-अण । बायुसम्बन्धीय ।

बायबी ( सं० स्त्री० ) १ अक्षरपरिचमविक्रु अक्षर-परिचमका कोना । २ कार्तिकके अनुषर एक मासमे ।

( मरत १५५ १७ )

बायबीय ( सं० स्त्री० ) बायुसम्बन्धीय । जैसे—बायबीय परमाणु ।

बायस्य ( सं० स्त्री० ) बायुर्द्वैवतास्येति बायु- ( बायु-वि-कनयो क्त् । पा ७।१।११ ) इति यत् । १ बायुसम्बन्धीय ।

२ बायुस्येति बायुसे बना हुआ । ३ जिसका दैवता बायु हो । ( पु० ) ४ यह कोण या दिशा जिसका अभिपति बायु हो, पश्चिमोत्तर दिशा । ५ चौबीस हजार छा सौ क्मोकारमक बायुपुराण । यह अठारह पुराणोंमें एक है । पुराण ब्रह्ममें विस्तृत विवरण बेलो । ६ एक अक्षरका नाम ।

बायस ( सं० पु० ) बायते इति च य गानी । ( बन्ध ) उच्य-

-१।१२० ) इति असत्, सध्वं चित् । १ बायुसूत, अण

का वेद । २ धीयान, सरल निर्गम । ३ काक बीजा ।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि अदणक ह्येनो नामकी परनो

से ब्रह्मयु और सन्नाति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

इसी ब्रह्मसे काककी उत्पत्ति हुई ।

काकके एक पक्षु-मत्त होनेका कारण मूर्खिहपुराणमें

इस प्रकार लिखा है—जब बिलकूट पर्वत पर राम और

सीता दोनों रहते थे, उस समय एक दिन एक कौयेने

सीताके स्तनमें खींच मारी थी । स्तनसे एकका बहना

देख कर रामचन्द्रने कौयेका बघ करनेके लिये ऐशिकास

फेंका । वह कौवा इन्द्रका पुत्र था, इसलिये वह ब्रह्मके

मारै इन्द्रके पास भाग गया । यहीं उसने अपना

अपराध स्वीकार कर प्राणमिस्रा मांगी । इस पर इन्द्र क्रोध

रूपाय न देन देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास गये

और इस कौयेको प्राणदान देनेकी प्रार्थना की । रामचन्द्र

ने कहा, मेरा अन्न निष्कल होनेकी वहाँ, इसलिये वह

अपनी एक धाँक दे दे। कौवा रामो हो गया और

वह घाय्य एक भाँक नष्ट करके ही स्थिर हुआ । तभीसे

कौवाकी सिर्फ एक धाँक है । ( नरसिंहपुराण ४३ अ० )

पूरकपिप्लकदानके बाद काकके उद्देश्य बाल देनेकी

होती है । काक धर्माधर्मका साक्षी है तथा पिप्लकदानादि

का विषय यमकोटमें जा कर यमराजसे कहता है ।

नयाक धाँकके बाद भी काकके उद्देश्ये बलि देनेकी

प्रथा है । काकचरित मालूम होने पर मृत, भविष्य और

वर्तमान विषय जाने जा सकते हैं ।

विशेष विवरण काठ इन्द्रमें बेलो ।

( स्त्री० ) २ बायससम्बन्धीय ।

बायसबहु ( सं० स्त्री० ) १ काकबहु, अकसेनो ।

२ गुआमूत, घु मधीकी मूत ।

बायसतन्तु ( सं० पु० ) १ इन्द्रके दोनो ओड़बा नाम ।

२ काकमुडिका, कीमाडोटी । ३ कौयेकी डोटी ।

बायसतोर ( सं० स्त्री० ) एक नगरका नाम ।

बायसविद्या ( सं० स्त्री० ) बायससम्बन्धीय विद्या, काक

चरित ।

बायसाह्नो ( सं० स्त्री० ) बायसेल बायते इति अद्-कर्मणि अद्-कोप् । १ महाक्योतिमती सता । २ काकमुएडो, कीमाडोटी ।

बायसागतक ( सं० पु० ) वैबक, उच्छ ।

बायसागतित ( सं० पु० ) बायसस्य अर्थात् शत्रुः । वैबक, उच्छ ।

बायसाहा ( सं० स्त्री० ) बायसस्य बाहा नाम पर्याय ।

१ काकनामा, सफेद लाल घुंघुची । २ काकमात्री, मकोय ।

वायसी ( सं० स्त्री० ) वायसानामियमिति तत्प्रियत्वात्, वायस व्रण-टीप् । १ काकोडुम्बरिका, छोटी मकोय जिसमें गुच्छोंमें गोलमिर्चके समान लाल फल लगते हैं ।

२ महाज्योतिष्मती लता । ३ काकतुण्डी, कौशाठोंडी । ४ श्वेत गुञ्जा, सफेद घुंघुची । ५ काकनङ्गा, मांसी । ६ महाकरञ्ज वडा कंजा ।

वापसावल्ली ( सं० स्त्री० ) करञ्जवल्ली, लताकरञ्ज ।

वायसीशाक ( सं० स्त्री० ) शाकविशेष, काकमात्रीका शाक ।

वायमेशु ( सं० पु० ) वायसानामिशु रिच प्रियत्वात् । ज्ञाज, कास नामकी घास ।

वायसोलिका ( सं० स्त्री० ) वायसोली स्वार्थे कन्, टाप् । १ काकोली, मालकंगनी । २ मधुली, जलमें उत्पन्न होनेवाली मुलेठी । ३ महाज्योतिष्मती लता । ४ पत्र-शाकविशेष ।

वायसोली ( सं० स्त्री० ) वायसान् ओलण्डियतीति ओलण्डि-वन्धेपे 'अन्येष्वपि दृश्यते' इति ड शकन्धादि रणान् अन्व लेण । काकोली, मालकंगनी ।

वायु ( सं० पु० ) यातीति वा गतिगन्धनयोः ( कृवापानिमिस्य-दिनाभ्यशुभ्य उण् । उणा० १।१ ) इति उण् ( आतायुक् चिवा कृताः । पा ७।३।३३ ) इति युक् पञ्चभूतके अन्तर्गत भूतविशेष, पवन । पर्याय—श्वसन, रपशील, मातरिश्वा, मदा गति, पृथग्भव, गन्धवह, गन्धवाह, अनिल, आशुग, समीर, मारुत, मरुत्, जगत्प्राण, ममोगण, नभस्वान्, वात, पवन, पवमान, प्रभञ्जन ( वसर ) अजगत्प्राण, ग्धवास, वाह, घृलिध्वज, फणिप्रिय, वाति, नभःप्राण, मोनिकान्त, स्वकम्पन, अक्षति, दम्पलक्ष्मा, शसीनि, आवक, हरि । ( शब्दरत्नावली ) वास, सुखाज, मृगवाहन, सार, चञ्चल, विहग, प्रकम्पन, नभःस्वर, निश्वासक, स्तनून, पृपतां-पतिः । ( नटावर )

वेदान्तके मतानुसार आकाशसे वायुकी उत्पत्ति है । जब भगवान्ने चराचर जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा प्रकट की, तब पहले आत्मासे आकाशकी, आकाशसे वायुकी, वायुसे अग्निकी, अग्निसे जलकी और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई ।

"तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशा-  
द्वायुः चायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते"  
( श्रुति ) वायु पञ्चभूतमें दूसरे है और आकाशसे उत्पन्न  
हुई है, इसी कारण इसके दो गुण हैं—गर्भ और स्पर्श ।

प्राण, अपान, समान, उदान और ध्यान ये पञ्चवायु  
हैं । ऊर्ध्वगमनशील नासाप्रस्थानमें अवस्थित वायुका  
नाम प्राण, अधोगमनशील पायु वादि स्थानमें स्थित  
वायुका नाम अपान, सभी नाडियोंमें गमनशील समस्त  
शरीरस्थायी वायुका नाम ध्यान, ऊर्ध्वगमनशील कण्ठ-  
स्थायी उत्क्रमणशील वायुका नाम उदान, पीत अन्न  
जन्मादिके समीकरणकारी वायुका नाम समान है ।  
समीकरणका अर्थ परिपाक अर्थात् रस, रुचिर, शुक्पुरी-  
पादि करना है । हम लोग जो सध वस्तु खाते हैं, एकमात्र  
वायु ही उन्हें परिपाक करती है ।

सात्याचार्यगण नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और  
धनञ्जय नामक और भी पांच प्रकारकी वायु स्वीकार  
करते हैं । उद्विगणकारी वायुका नाम नाग, चक्षु उन्मी  
लनकारी वायुका नाम कूर्म, क्षयाजनक वायुका नाम  
कृकर, जृम्भनकारी वायुका नाम देवदत्त और पोषणकारी  
वायुका नाम धनञ्जय है । वैदिक वाचार्योंने प्राणादि  
पांच वायु स्वीकार की है सही, पर नागादि पांच वायु  
उक्त प्राणादि पांच वायुमें अवस्थित है, इस कारण पञ्च-  
वायु स्वीकार करने हीसे इन सब वायुकी सिद्धि हुई है ।

यह प्राणादि पञ्च वायु आकाशादि पञ्चभूतके रजः-  
अंशसे उत्पन्न हुई हैं । प्राणादि पञ्चवायु पञ्चकर्मेन्द्रिय  
के साथ मिल कर प्राणमय कोप कहलाती हैं । गमना-  
गमनादि क्रियाम्बभाव होनेके कारण इस पञ्चवायुको  
रजः-अंशका कार्य कहने हैं । भावापरिच्छेदमें लिखा है,  
कि अपाकज और अनुष्ण शीतस्पर्श वायुका धर्म है ।  
यह तिष्ठगमनशील तथा स्पर्शादिलिङ्गक है अर्थात्  
स्पर्श द्वारा इसे जाना जाता है । गर्भ, स्पर्श, धृति और  
कम्प द्वारा वायुका अनुमान किया जाता है अर्थात् विजा-  
तीय स्पर्श, विलक्षण शब्द तृणादिकी धृति और शाखादि-  
के कर्म द्वारा ही वायुका ज्ञान होता है ।

जिस वस्तुमें रूप नहीं, स्पर्श है, उसका नाम वायु  
है । पृथिवी, जल और तेज वस्तुमें रूप है, आकाशादि

बस्तुमें स्वर्श नही है, इस कारण ये वायु नही हैं। वायु दो प्रकारकी है नित्य और अनित्य। वायवीय परमाणु नित्य और तद्विमल वायु अनित्य है। अनित्य वायुके भी फिर तीन भेद हैं, शरीर, इन्द्रिय और विषय वायुकोरूप ज्योत्स्ना शरीर वायवीय है। अन्नतवायु अन्न-संश्लिष्टके शोथल स्वर्शको अभिव्यक्त करती है, रश्मिन्द्रिय भी स्वर्श माहकी अभिव्यक्त है, अतएव यह वायवीय है। शरीर और इन्द्रियको छोड़ कर बाकी सभी वायुका साधारण नाम विषय है। अणुद्रव्यमात्र ही पृथिवी, जल, मैत्र और वायु इन चार भूतोंसे योद्धा बहुत सम्बन्ध रखता है। तथा यह चार भूतोंके अणुद्रव्यका आरम्भक वा सम वायुकारण है।

शब्दके आश्रय द्रव्यका नामका आकाश है। शब्दमें एक अधिकरण वा आश्रय अवश्य है, वही आकाश कह जाता है। शब्दको उत्पत्तिक विषय वायुको अपेक्षा रहने पर भी वायुशब्दका आश्रय नही है। क्योंकि, वायुका एक विशेष गुण स्वर्श है। यह स्वर्श वायु द्रव्यमात्रो है अर्थात् वायु अब तक रहती है, तब तक उसमें स्वर्शगुण भी रहता है। किन्तु शब्द वैसा नही है। वायु रहते हुए भी शब्द नष्ट हो जाता है। वायुके विशेष गुण स्वर्शके साथ वैसी बिलक्षणता रहनेके कारण शब्द वायुका विशेष गुण नही है। शब्द यदि वायुका विषय गुण होता तो स्वर्शको तरह यह भी वायु द्रव्यमात्रो हो सकता था।

परमाणु रूप वायु नित्य है, यह पहले सिद्धा सा सुका है। अणुद्रव्युक्त आरम्भके स पागले पहले पवनपरमाणुमें कर्मको उत्पत्ति होती है। सभी पवनपरमाणुके परस्पर स योगसे द्वाणुकारिकर्ममें महाशब्द वायु उत्पन्न होता है तथा अनन्त कल्पमान हो कर आकाशमें अवस्थित रहती है। तिर्यग्गमन वायुका स्वभाव है। इस समय येस हूसरे किमी भी द्रव्यकी उत्पत्ति नही होती जिसस वायुका वेग प्रतिहन हो सके। वायुको स्विके पोछे इसी प्रकार भायु वा ज्योवी परमाणुमें कर्मको उत्पत्ति हो कर द्वाणुकारिकर्ममें महाशब्द संसिद्धराशि उत्पन्न होती तथा वायुवेगसे कल्पमान हो कर वायुमें संश्लिष्ट रहती है। (न्याय०) वैशेषिकदर्शनकार कहते हैं—“स्वर्श क्ल क्लु”—(५५१)

अणुद्रव्यमत्तने वायुके अक्षयमें सिद्धा है—“स्वर्शोत् विशेष गुणकमानाधिकरण विशेषगुण कमानाधिकरण भावितमत्त वायुव्यप्यम्।”

अर्थात् पदार्थकी जिस भावितमें स्वर्शगुणके सिद्धा अर्थात् गुणोंके अक्षयमात्राधिकरणविशिष्ट विशेष गुणका समानाधिकरणभावितमत्त विद्यमान है, वही वायु है। महर्षि कणादने केवळ स्वर्शगुण द्वारा ही वायुका अक्षय सिद्ध किया है। महर्षि कणादने वायुसाधनप्रकरणमें सिद्धा है—“स्वर्शान्च वायो।”—(६१११)

अणुद्रव्यमत्तने वैशेषिकसूत्रोपस्कारमें सिद्धा है—“क्व पत् अणुद्रव्यविक्रान्त अनुष्णीकम्ते।”

अर्थात् “स्वर्शश्च” शब्दके अन्तमें जो “च” कार है वह प्रकार अनुष्णयके अर्धमें व्यवहृत हुआ है। इसमें शब्द, धृति और कण इन तीनोंके भी वायुव्यपणके अन्तर्गुण सम्भन्धना होगा। शब्दस्वर्शयत् वेगवत् द्रव्या मिधातनेमित्तक है, शब्दसन्धति वायुका एक अक्षय है। उच्चैः आघातसे भेदोंसे जो शब्द निकलता है उसका वह शब्दसन्धान वायु ही अक्षय है। आकाश में सुगन्धकादि विद्युत अवस्थामें धलमान रहता है, वह भी वायुके अस्तित्वका परिचायक है; यही धृतिका उदाहरण है। इस प्रकार वायुको अस्तित्वके सम्बन्धमें कल्प भी एक अक्षय है। वायुके सम्बन्धमें वैशेषिक दर्शनके द्वितीय अध्यायके प्रथम भाषिकर्म बहुत गहरो मासिकाता को गर् है।

सांख्यदर्शनके मतसे शब्दतन्मात्र और स्वर्शतन्मात्र से वायुको उत्पत्ति हुई है इस कारण वायुके दो गुण हैं,—शब्द, और स्वर्श। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसका गुण पाता है तथा इसमें भी एक विशेष गुण रहता है। वायुका विशेष गुण स्वर्श है तथा शब्दतन्मात्र स हुआ है, इस कारण शब्द और वायुका गुण जानना होगा। सांख्यकारिकके माध्यमें गौड़पादने सिद्धा है—

“शब्दतन्मात्राकारात् स्वर्शतन्मात्राद्वायु स्वतन्मात्रात्तेन। एतन्मात्रात्वात् गन्धकल्पात् पृथिवी एव पञ्चमः परमद्रव्यः पञ्चमामता न्युत्पद्यते।”

किन्तु पाचक्यविभिन्न कहते हैं—



“शब्दतन्मात्रसहितात् त्वर्शतन्माशब्द वायुः—शब्दस्पर्शगुणः ।”  
इत्यादि ।

साध्यकारिका—

“सामान्यकरणवृत्तिप्राणायाः यायव. पञ्च ।” २६ सूत्र ।

इस सूत्रके भाष्यमें गौडपादमुनिने पञ्चवायुके क्रिया-  
सम्बन्धमें संक्षेपतः बहुअर्थप्रकाशक अनेक बातें कही हैं ।

पुराणमें लिखा है, कि वायु ४६ है । ये सभी श्रद्धितिके  
पुत्र हैं । इन्हे इन्हे देवत्व प्रदान किया । यह वायुदेव-  
की वाह्य और अन्तर्मेदमे दश प्रकारकी है । जैसे—प्राण,  
अपान, व्यान, समान, उदान, नान, कूर्म, रुक्म, देवदत्त  
और धनञ्जय । इन दश प्रकारकी वायुके कार्य पृथक्  
पृथक् हैं । जैसे, प्राणवायुका कार्य—वर्हिर्गमन, अपान-  
का कार्य—अधोगमन, व्यानका कार्य—आकुञ्चन और  
प्रसारण, समानका कार्य—अमित पीनादिका समान-  
नयन, उदानका कार्य—ऊर्ध्वानयन । ये पाँच वायु  
शान्तर हैं अर्थात् ये शरीरके भीतरमे काम करती हैं ।  
नागादि पाँच वायु बाह्य हैं अर्थात् शरीरके बाहरी भागमें  
काम करती हैं । जिस क्रिया द्वारा उद्गार कार्य सम्पन्न  
है उस वायुका नाम नाग है । इसी प्रकार उन्मीलनकारी  
वायुका नाम कूर्म, श्रुधाकर वायुका नाम रुक्म, जृम्भण  
करका नाम देवदत्त तथा सर्ध्व्यापी वायुका नाम धन-  
ञ्जय है । ( भागवत ) मत्त शब्दमें पौराणिक विवरण देखे ।

भावप्रकाशमें लिखा है—वायु, पित्त और कफ ये  
तीन दोष हैं । इनके विह्वल होनेसे देह नष्ट होता है ।  
अधिकृत अवस्थामें रहनेसे शरीर सुस्थ रहता है ।

वायुका स्वरूप यथा—वायु अन्यान्य दोष, धातु और  
मल आदिके प्रेरक है अर्थात् इन्हे दूसरी जगह भेजते  
हैं । फिर यह श्वाशुदारी, रजोगुणात्मक, सूक्ष्म, रक्ष्म,  
शीतशुण्ययुक्त, लघु और गमनशील भी है । अन्यान्य  
वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखा है, कि अधिकृत वायु द्वारा उत्साह,  
श्वास, प्रश्वास, चेष्टा ( कायिक व्यापार ), वेग, प्रवृत्ति,  
धातु और इन्द्रियांकी पटुता तथा हृदय, इन्द्रिय और  
चित्तधारण ये सब क्रिया अशुद्धी तरह सम्पादन होती  
है । यह रजोगुणात्मक, सूक्ष्म, शीतशुणात्मक, लघु  
गतिशील, गर, मृदु, योगवाही और सयोजक द्वारा  
भी प्रकारकी होती है । यह तेज और सोमके साथ संयुक्त

होनेसे जीतजनक होती है तथा देहीतपाटक सामग्रियोंकी  
विभक्त कर भिन्न भिन्न आकारमें यथायोग्य स्थान पर  
पहुंचती है, इस कारण तीन दोषोंमें वायुको ही प्रधान  
कहा है । पकाशय, कटी, मषिय, म्रोन, अस्थि और  
एशैन्द्रिय हैं, उनमेंसे पकाशय प्रधान स्थान है ।

एकमात्र वायु पित्तकी तरह नामभेद, स्थानभेद  
और क्रियाभेदमे पाँच प्रकारकी है । जैसे—उदान, प्राण,  
समान, अपान और व्यान । स्थान और क्रियाभेदसे  
एक ही वायु उन सभ पृथक् पृथक् नामोंमें पुकारी गई  
है । कण्ठ, हृदय, अनाशय, मलाशय और समस्त शरीर  
इन पाँच स्थानोंमें यथाक्रम उदान, प्राण, समान, अपान  
और व्यान ये पाँच वायु रहती हैं । जो वायु श्वास  
प्रश्वासके समय ऊर्ध्वगामी होती है और अर्थात् शरीरसे  
निकलती है, उसे उदानवायु कहते हैं । उदानवायु द्वारा  
वाष्यकथन और मूर्च्छित आदि क्रिया-निर्वाह होती  
है । इसकी विकृति होनेसे वेदमें रोग उत्पन्न  
होता है ।

श्वास प्रश्वासके समय जो वायु देहमें प्रवेश करती  
है उसका नाम प्राणवायु है । इस वायु द्वारा त्वाई हुई  
वस्तु पेटमे घुसती है, यही जीवनरक्षाका प्रधान कारण  
है । किन्तु इस वायुके दूषित होनेसे प्रायः शिक्का ( हिचकी )  
और श्वास आदि रोग हुआ करते हैं ।

जो वायु आमाशय और पकाशयमें विचरण करती  
है उसका नाम समानवायु है । यह समानवायु अन्नके  
साथ संयुक्त हो कर उद्गस्थित अन्नकी परिपाक करती  
है तथा अन्नके परिपाक होनेसे जो रस और मलादि  
उत्पन्न होता है उसे पृथक् करती है । किन्तु यह समान  
वायु यदि दूषित हो, तो इससे मन्दार्गन, अतिसार और  
गुल्म आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

अपानवायु पकाशयमें रह कर यथासमय वायु,  
मल, मूत्र, शुक्र और आत्मेवको नीचे ठेलता है । इस  
अपानवायुके दूषित होनेसे वस्ति और गुहादेश संश्रित  
नाना प्रकारके कठिन रोग, शुक्रदाप और प्रमेह तथा  
व्यान और अपानवायुके कुपित होनेसे जो सब रोग हो  
सकते हैं वे सब राग उत्पन्न होते हैं ।

सर्वदेहचारी व्यानवायु द्वारा रसवहन, घर्म और

इस प्रकार तथा गमन उपशेयण उपशेयण नियम और उभयेय  
ये पांच प्रकारकी वेष्टनमें निर्वाहित होती हैं।

शरीरपरिचर्याकी प्रायः सभी क्रियायें स्थानवायुमें  
संभव्य हैं अर्थात् प्रायः सभी क्रिया स्थानवायु  
द्वारा सम्पन्न होती हैं। इस वायुकी प्रमुख्यतम, उद्बलन,  
पूर्ण, विरचन और धारण ये पांच प्रकारकी क्रियायें हैं।  
इसके विपरीतमें प्रायः सर्वशरीरगत रोग उत्पन्न होते हैं।  
उक्त पांच प्रकारकी वायुके पदार्थ कुपित होनेसे शरीर  
निरुपेय हो बिगड़ होता है।

वायुका कार्य—सभी आशयमें आमाशय इष्टेष्माका,  
पित्ताशय पित्तकी और पक्वाशय वायुका अवस्थिति  
स्थान है। ये तीन शेष शरीरमें सर्षभ और सर्वदा  
उपस्थित रहते हैं। इन तीन शेषोंमें वायु शरीरके सभी  
घातुओं और भस्मदि पदार्थोंको आश्रित करता है तथा  
वायु द्वारा ही उल्माह, भ्वास प्रम्यास, वेद्य वेग आदि  
और इन्द्रियों कार्य सम्पादित होते हैं। वायु समावृत्ता  
ऊरु, सूक्ष्म, शीतल, लघु गतिशील आशुकारी, लर, सूक्ष्म  
और योग्यवाही है। सन्निवृत्त श, अङ्गप्रत्यङ्गादिका विशेष,  
सुदृग्गौरादि आघात वा शूककी तरह अथवा सूचीदिवकी  
तरङ्ग, बिद्यारणकी तरह अथवा रज्जु द्वारा बन्धनकी तरह  
वेदना, स्वर्गादिना, अङ्गीति भयसंभवा, मत्स्यमूर्त्तिका  
भेतिर्गम और शोषण, अङ्गमङ्ग गिणदिका सङ्कोच,  
रोमाञ्ज, कर्ण ककशाता अविद्यरता, सच्छिद्रता, रसादिका  
शोषण स्वयन्दन, स्तम्भ, कषाय-स्वाद तथा स्वाय वा नदण-  
वर्षता, ये सब वायुका कार्य हैं। शरीरमें वायुके बिगड़ने  
से ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

वायुप्रदोष और शान्ति—वायु बर्षों बिगड़ती है और  
किस उपायमें वायुका प्रदोष शान्त होता है, इसका  
विषय वैद्यक प्रथममें यों लिखा है,—फलवान् शोषके साथ  
मत्स्युद, अतिरिक्त व्यायाम अधिक मीथुन अल्पतम मृदप  
पत्र, ऊँचे स्थानसे गिरना, तेजसे चमत्ता पीड़न या  
आयोनप्रति, मोघना तीरना, रातको जागना, शोक होना,  
क्षिप्तप करना, घोड़ेकी सवारो पर बहुत दूर तक जाना  
मत्स्युद, अधोपायु शुक, बमि उद्धार, दिक्ता और आमूका  
वेग रोहना कडुमा ताता कसीमा, रुका, टम्का और  
हृदा पदार्थ तथा सूजा जाम, सूजा मांस, बोधी काई,

उद्धारक, सींवा और तित्री खावल, मुग मसूर, भरहर  
और जिम आदि पत्राय खाना उपयाम, विषमाशन,  
अजोर्ण रहने मोक्षण, पूर्णस्रुत, मीषागमकाल, मुकाभतका  
परिप्राककाल, अग्राहकाल तथा वायुप्रवाहका समय ये  
सभी वायु प्रथापके कारण हैं।

पुनर्त्तवादि स्वीहपान, स्वीप्रयोप, अङ्गुबमन,  
विरचन अनुवासन, मसूर, बामन, म्रवण और उष्णद्रव्य  
मोक्षण, सिद्धस्वङ्ग वृद्धादि द्वारा वेष्टन, मयपशुब,  
इगसूत्र काण्डिका प्रसेक, वैदिक और गौडिक मद्यपान  
परिपुर् मांसका रसमोक्षण तथा सुख अल्पता आदि  
कारणोंसे वायुकी शान्ति होती है।

वायुका गुण—अल्पतम सूक्ष्माञ्जनक, विष्य  
पर्णाञ्जनक और स्तब्धताकारक, वाह पित्त, स्वीद, मृच्छा  
और विषासामाजक है, अपवात अर्थात् वायुगुण स्थान  
इसका विपरीत गुणयुक्त है। सूक्ष्मञ्जनकवाप अर्थात् मन्त्र  
मन्त्र शोथन वायु मोक्षकाहसे शरत्काल तक सेवनीय  
है। परमाणु और भारोपके लिये सर्वदा वायुगुण  
स्थानमें रहना चाहिये।

पूर्वदिशाकी वायु—गुण उष्ण स्निग्ध, रक्तद्रव्यक,  
विदाही और वायुबर्धक, आन्त और क्षोषकक व्यक्तिके  
लिये हितजनक आनु अर्थात् मध्यमवर्षोंकी मधुरताबर्धक  
सबभरस, अमिष्यव्दी तथा रवग शोष, भर्ष, विष, कुमि  
संजिघात, उबर, भ्वास और आमवातजनक है।

दक्षिण दिशाकी वायु—स्नादिष्ट रक्तपित्तनाशक, मधु,  
शीतबीर्य, बलकारक वायुके लिये हितकर, यह शोष  
शरीरका वायुको बढ़ानेवाली नहीं है।

पश्चिम दिशाकी वायु—शीतल, शोषक, बलकारक,  
अधु वायुबर्धक तथा मेद, पित्त और कफनाशक है।

उत्तर दिशाकी वायु—शीतल, स्निग्ध आर्वाचिरोहितो  
की विदायप्रदायक, इष्टर सुख व्यक्तिके लिये बल  
कारक मसूर और सूक्ष्मोर्ण है।

अग्निकोणकी वायु—सूक्ष्मञ्जनक और रुक्ष, मीक्षत  
कोणका वायु अविदाही वायुकोणकी वायु तिकरस  
ईशाबकोणकी वायु कटुरम विहरणवायु अर्थात् सर्व  
व्यापी वायु परमाणुक लिये अहितकर तथा प्राणियोंके  
लिये रोगजनक है। इसलिये विभवावायुका सेवन न करना  
चाहिये, करनेमें स्वास्थ्यको हानि होता है।

पंखेकी वायु—दाह, स्वेद, मूर्च्छा और श्रान्तिनाशक है, ताड़के पंखेकी वायु त्रिदोषनाशक, बासके पंखेकी वायु उष्ण और रक्त-पित्तप्रकोपक, चामर, बरख, मयूर और वेतके पंखेकी वायु त्रिदोषनाशक, सिन्ध और हृदयग्राही है। जितने प्रकारके पंखे हैं उनमें वही पंखे अच्छे माने गये हैं।

सर्वव्यापी, आशुकारो, पलवान्, अल्पकोपन, स्वातन्त्र्य तथा बहुरोगप्रद ये सब गुण वायुमें हैं, इस कारण वायु सभी दोषोंसे प्रयत्न है। वायुविकृतिका लक्षण—घात प्रकृतिके मनुष्य जागरणशील, अलक्षणाविशिष्ट, हस्त और पद स्फुटित, कुश, द्रुतगामी, अत्यन्त वाक्पण्ययो, लक्ष तथा स्वप्नावस्थामें आकाशमें घूम रहा है, चेमा मालूम होता है।

चाभटका कहना है, कि घातप्रकृति मनुष्य प्रायः दो दोषात्मक धर्मात् वापयुक्त होने हैं। उनके केश और हाथ पैर फटे और कुछ कुछ पाण्डुरवर्णके हो जाते हैं। वात-प्रकृतिके मनुष्य ज्ञानद्वेषी, चञ्चलच्युति, चञ्चल स्मरणशक्ति, चञ्चलबुद्धि, चञ्चल दृष्टि, चञ्चल गति और चञ्चल कार्य विशिष्ट होते हैं। ऐसे मनुष्य किसी व्यक्तिका भा विश्वास नहीं करने, मन सदा सन्दिग्ध रहता है। ये अनर्थाक वाक्य-प्रयोग किया करते हैं। ये धोड़े घनी, जटा सन्तान, अल्प कफ, अल्पायु और अल्प निद्रा विशिष्ट होने हैं। इनका वाक्य क्षीण और गद्गद स्वरयुक्त और टूटा होता है अर्थात् कण्ठसे निकलते समय वाक्य टूट फूट कर निकलते हैं। ये प्रायः नारितक, विलासपर, सङ्गीत, हास्य, मृगया और पापकर्ममें लालसान्वित होते हैं। मधुर, अम्ल और लवण रसविशिष्ट और उष्णद्रव्य भोजन इनको प्रिय है। ये दुबले पतले और लम्बे होते हैं। इसके चलनेमें पैरका गद गद शब्द होता है। किसी विषयमें इनकी दृढ़ता नहीं रहती और ये अजितेन्द्रिय होते हैं। घातप्रकृति व्यक्ति सेवा करने योग्य नहीं, क्योंकि ये नोकरीके प्रति सत् व्यवहार नहीं करते। इनकी आँखें खर, जरा पाण्डुरंगकी, गोलाकार, चिकनाकारकी तरह दिखाई देती हैं। निद्राके समय इनकी आँखें बन्द रहती हैं और स्वप्नावस्थामें ये पर्वत और वृक्ष पर आरोहण करते तथा आकाशमें विचरण करते हैं।

ये यज्ञोद्भूत, परश्रीकातर, शीघ्र कोपनस्वभाव, शीघ्र, उनको पिण्डका रूपकी ओर पिकी रहती हैं। कुत्ता, म्यार, ऊँट, गृध्रिनी, चुहिया, कौशा और उल्लू भी घातप्रकृतिके होते हैं। (भाव. ०)

चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थमें भी वायुका विशेषरूपसे गुण वर्णन किया गया है। विषय बड़ जानेके कारण उनका उल्लेख नहीं किया गया।

वायुके सम्बन्धमें दार्शनिक विचार।

निरक्तिका कथना है—“वायुध्वनिर्वैतैर्वा स्यादुनि कर्मणः।” निरक्तिभाष्यकार कहते हैं—“सततमसौ वाति गच्छति।” इसके द्वारा मान्य होता है, कि जो सतत गतिशील है, वही वायुके नामसे प्रसिद्ध है।

उपनिषद्में जगत्सृष्टि की धारोचनानमें वायुका विषय आलोचित हुआ है। तैत्तिरीय उपनिषद्के ब्रह्मानन्दवहो-में लिखा है—

‘तस्माद्वा पतस्मादातम आकाशः समुद्रभूतः’ (ब्रह्मानन्दवहो १.२) अर्थात् उन अनन्त परमात्मसे सृष्टिमान पदार्थके अकाराशरूप सर्वनाम रूपका निर्वाहक शब्द गुणपूर्ण आकाशको उत्पत्ति हुई है।

इसो आकाशसे वायुको उत्पत्ति हुई है। जहां क्रिया है, वहां ही गति है। (Motion) है, क्योंकि क्रियाके शब्द हेतु कम्पन (Vibration) उत्पन्न होता है। कम्पनका प्रतिरूप ही गति है। गतिहेतु स्पर्श है। वह अनन्त लक्ष्यक पदार्थ, सक्रिय हो कर भी शब्द और स्पर्श पूर्ण है। इसमें शब्द और स्पर्श दोनों ही हैं। जहां आकाश (Space) है वहां ही ज्ञानसत्ताक्रिया-जनित शब्द और स्पर्श है। इसीसे श्रुतिमें कहा है—  
“आकाशाद्वायुः”

इस बातका ऐसा तात्पर्य नहीं, कि वायुकी (Motion) गति पहले न थी। यह बात कही जा नहीं सकती, कि यह किस कारण पदार्थ और आकाश इसका संमुत्पादक है। समग्र ही अप्यक्त सत्वमें लीन था। इस अव्यक्तसे ही व्यक्त जगत्का विकास है। वेदान्तमें इसका प्रमाण है, सांख्यदर्शनमें भी है और तो क्या श्रीमद्भागवतमें अति स्पष्टरूपसे उसका उल्लेख है।

यूरोपीय विज्ञानमें भी यह सिद्धान्त स्थिर हुआ है।

परिहतप्रवर दृष्ट-स्वेम्सरने अपने First Principle नामक ग्रन्थमें लिखा है—

An entire history of any thing must include its appearance out of the Imperceptible and its disappearance into the Imperceptible."

यह अर्थात् वायु नियत परिणामों बता कर वैज्ञानिक मतमें माया नामक अमिहित है। फिर इसका परिणाम-प्रवाह निरप होसके मार्गव मथमें यह मन्त्रामसे अमिहित हुआ है। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि वायु अन्य पदार्थ है। अर्थात् क्रियाशास्त्रिणी जति ९, यहाँ हो गति है। शक्ति जैसे अनन्त है, गति भी वैसे ही अनन्त है। अनादिद्वारासे कम्पनका कमी भी विद्यमान नहीं। अथवा प्रकृतिमें जो निहित अवस्थासे सुप्तशक्ति (Potential energy) रूपमें अवस्थित था, क्रियाके उपक्रममें यही कर्मशक्तिरूपमें (Potential energy) प्रकाशित हुआ।

इस अवस्थामें गति वा कम्पन वा स्पर्शकी उत्पत्ति हुई। अनन्त आकाशमें (Atmosphere) अनन्त रहते हुए इस गतिका अवस्थान और प्रवाह विद्यमान है। प्राकृतिक विज्ञानविद्व पदार्थोंका कहना है, कि वायुस्य प्रथमप्रकारिके सिम्न सिम्न अवस्थामें भी इस प्रकारका कोई पदार्थ अवश्य विद्यमान है। प्रति प्रवाह में प्रति कम्पनमें तालका प्रमाय (Rhythm) अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। ताल क्रममें ही मानो इस कम्पनका अन्तप्रवाह वर्तमान है। इसी विषये मृतिते कहा है—

"उत्पत्तिर्वा विरक्तमर्थात्" (उत्पत्त्या)

यह उसी विम्ब छन्द है। यही छन्द मूर्धन्य अन्त रोस मार तथा स्वर्गसोक है।

"मन्त्रान्वा प्रमायन्वा । प्रतिमन्त्रान्वा ।"

(गुरुसबहुरैवहित्ता)

गतिगुरुवमान मूर्धन्य मितकण्ड्यः अन्तरीक्षलोका प्रतिमन्त्रान्वा तथा मूर्धन्यः प्रतिमितकण्ड्यः है।

"हृत्प्रेम्भ एव प्रथममेवद्विष्व" अन्तरीक्ष—वायवरीय ।

अर्थात् यह विम्ब वदहे छन्द दासु विवर्तित हुआ है।

जो गति ताल तालमें नृत्य करती है, यही छन्द है। यही छन्द विम्ब-विवर्तनका कारण है। स्वेम्सरने इसीको Rhythm of motion कहा है। यह वायुका ही परिणाम है। अर्थात् गति कहा है—

"वायुना वै गीतमसुने वायव्य लोकाः परत लोकाः सर्वाण्य च सूतानि सम्प्रदानि मन्वित ।"

अर्थात् ही गीतम् ! यह वायु स्वाम्भूय है। गति जिस प्रकार मूलमें प्रथित रहती है, उसी प्रकार समस्त मृत वायुसुक्तमें प्रथित है।

अन्तर्गतिते भी यह स्वीकार किया है, कि जैसे—

"वहिर विम्ब अगद्वर्ष" पाय एवति निवृत्तम् ।

मन्त्रान् वन्मुपय वपद्विदुर मन्वास्ते मन्वित ।" (१ वती)

अर्थात् यह समस्त अगत् प्रायस्वरूप अन्तसे निवृत्त और कम्पित होता है। यह अन्त अन्तवर्षकी तरह मयानक है। उसी प्रकार अन्ते जो जानते हैं, वे अन्त होते हैं।

यहाँ पर 'एवति' अर्थ कम्पित है। वैज्ञानिक दर्शनके मतेसे वायुविज्ञानका यह कम्पनारमक (Vibratory) अन्त बहुत मयानक है। अगत्के समस्त पदार्थ कम्पनमें (Vibration) अवस्थित है। कहते हैं, कि इस कम्पनमें कम्पनके आरम्भरूप अन्तको उपलम्पि होती है, अर्थात् आरम्भमें इसका मूल किया है—

"कम्पनात्" (वेदमन्त्रार्थम् २।१।१४)

इस वायु वा कम्पन वा गति शक्ति ही समी जोष परिणामको प्राप्त होते हैं। हार्वैट स्वेनसारने भी यह बात स्वीकार की है। जैसे—

'Absolute rest and permanance do not exist. Every object no less than the aggregate of all object undergoes from instant to instant some alternation of state. Gradually or quickly it is receiving motion or losing motion'

यह विम्बविम्बरी वायु वा कम्पन ही (Vibration) अन्त (Evolution) वा वस्तु-अन्त (Involution) का कारण है। यह अगत् आरम्भ और तिरोमावकी निरप प्रतिमा है। यह आविर्भाव और तिरोमाव जिस

देवतस्वप्ने संघटित होता है, वही वेदका वायु देवता है।  
श्रुतिमें कहा है—

“वायुर्यमेका भूतन् पृथिव्या रूपं रूपं पृथिरूपे दग्धम् ।  
एकस्त्वथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं पृथिरूपे वद्विधम् ॥”

(कठ ५।१०)

अर्थात् जिम् तरह एक ही वायु भुवनमें प्रविष्ट हो कर अनेक वस्तुभेदोंमें उसी प्रकारकी ही गई हैं, उसी तरह एक ही सर्वभूतकी अन्तरात्मा अनेक वस्तुभेदोंमें उसी प्रकारकी हैं तथा सभी पदार्थोंके वाहर भी है। इससे वायुकी विश्वविमारिता प्रमाणित हुई।

इस वायुसे अग्नि उत्पन्न होती है। जैसे श्रुतिमें कहा है—

“वायोरग्निः”—तैत्तिरीय उपनिषत् ब्रह्मानन्दवल्ली १।३।

वायुमें ही अग्निही जो उत्पत्ति होती है वैज्ञानिक युक्तिसे भी इसका समर्थन किया जा सकता है। बिना अक्सिजनके दहन-क्रिया असम्भव है। पाश्चात्य विज्ञानके मतसे अक्सिजन वायुका एक प्रधान उपादान है। फिर वायुको यदि गति ( Motion ) कहा जाय, तो जो हमने हम लोग अग्निकी उत्पत्तिकी प्रमाण पाते हैं।

हावर्ट स्पेन्मरने लिखा है—

“Conversely, motion that is arrested produces under different circumstances, heat, electricity magnetism and light \* \* We have abundant instances in which arises as motion ceases” First Principle, p 198.

यह वायु सर्वदा अग्निके साथ संयुक्त रहती है। जैसे—

“स तेधात्मानं व्याकुर्वतादित्यं द्वितीयं वायुं तृतीयम् ।”

बृहदारण्यक उपनिषत् ।

अर्थात् अग्नि, वायु और आदित्य एक ही पदार्थ त्रिधा हो कर पृथिवी, अन्तरोक्ष और ध्रुवोत्तरेमें अधिष्ठित हैं।

वायु अग्निका तेज है, इसका भी प्रमाण मिलता है। जैसे—

“वायुर्वा, अग्नेस्तेज तस्माद्वायुरग्निं मन्वेति ।”

अतः प्रमाणित हुआ, कि वायु और तेज ये दोनों शक्ति सर्वदा एक साथ संयुक्त हैं। यह वायु और

अग्नि त्वाकाशमें ही प्रतिष्ठित हैं। छान्दोग्यश्रुतिमें लिखा है—

“सर्वाणिऽन इमानि भूतान्गाशादेव समुत्पद्यन्ति आशान् पृत्यन्तं वन्त्याशान्। एतेभ्यो ज्वायन्ताकाशं परायणान् ॥”

आकाश ही से सब भूतोंकी उत्पत्ति हुई है इसे पाश्चात्य वैज्ञानिक भी मानते हैं।

वायुविज्ञान गद्यमें दिव्यत विवरण देना।

वायुक ( सं० पु० ) वायु स्वार्थे कन् । वायु, हवा वायुकेतु ( न० स्त्री० ) वायु केतुध्वजो वाहनं वा यस्याः धृति, प्रल ।

वायुकेज ( न० स्त्री० ) वायुयत् चलनरश्मि, जिनकी विरुद्ध वायुके समान तेज हो ।

वायुकोण ( न० पु० ) परिमोचन दिशा ।

वायुगण्ड ( सं० पु० ) अजीर्ण ।

वायुगुल्म ( सं० पु० ) वायुना वृत्त गुल्म इव । १ घात-चक्र, ध्वंजर । २ वायु रोगभेद । वायुके कुपित होनेसे ज्वर गुल्मरोग उत्पन्न होता है, तब उसे वायुगुल्म कहते हैं।

इसका लक्षण—रुस, अन्नपानाद्य, विषम भोजन अत्यन्त भोजन, बलवान्के साथ युद्ध आदि विरुद्ध चेष्टा, मलमूत्रादिका वेगधारण, जोकप्रयुक्त मनःश्रृंण, विरेचनादि द्वारा अत्यन्त मलमूत्र और उपवास इन सब कारणोंसे वायु कुपित हो कर वायुजन्य गुल्म उत्पादन करता है। यह गुल्म घटना बढ़ता और सारे पेटमें फिरता रहता है। कभी इसमें दर्द होता और कभी नहीं भी होता है। इस गुल्मरोगमें मल और अधोचात संकट, गलशोथ उपस्थित होता है। इस रोगीका शरीर श्याम वा अरुणवर्णका हो जाता है। हृदय, कुक्षि, पाशुं, अङ्ग और शिरमें चेतना होती है। खाया हुआ पदार्थ ज्वर पत्र जाता है, तब इस रोगका उपद्रव और भी बढ़ता है। पीले भोजन करनेसे उसकी प्रान्ति होती है। यह रोग रुक्षद्रव्य, कषाय, तिक और कटुरसयुक्त द्रव्य खानेसे बढ़ता है। ( माधवनि० गुल्म-रोगाधि० )

गुल्मरोग रुद्ध देखा ।

वायुगोप ( सं० स्त्री० ) १ वायुरक्षक, वायु जिसकी रक्षक हो ।

वायमस्त ( सं० वि० ) वायुना प्रस्ता । वायु रोमा  
 श्रमस्त ।  
 वायुम ( सं० सि० ) वायु जन ह । वायु से उत्पन्न ।  
 वायुमबाह ( सं० पु० ) सतार्थमेसे एक ।  
 वायुमब ( सं० झो० ) वायोर्मावा एव । वायु का भाव या  
 धर्म, वायु का गुण । वायु, रेखा ।  
 वायुवाद ( सं० पु० ) वायु वा हीर्ष्यते इति वृ उप् । मेघ,  
 वायु ।  
 वायुविशु ( सं० खो० ) वायुकोण, परिचमोत्तर दिशा ।  
 वायुशील ( सं० लि० ) वायुफुलिन ।  
 वायुशैव ( सं० लि० ) वायुशैवता-सम्बन्धीय ।  
 वायुशैवत ( सं० लि० ) वायुशैवता-मस्य भण् । वायुशैवताक,  
 त्रिसदा मन्दिष्ठाती शैवता वायु हो ।  
 वायुशैवत्य ( सं० लि० ) वायु शैवता-स्यम् । वायुशैवत ।  
 वायुभारण्य ( सं० झो० ) वायु का वेग रोकता ।  
 वायुनिष्प ( सं० लि० ) वायु ना निष्पत्ता । वायुमस्त ।  
 वायुपय ( सं० पु० ) वायु ना पय्या पय् समसागता ।  
 वायुमनागमनका पय, हवा भागै जागैका रास्ता ।  
 वायुपुत्र ( सं० पु० ) १ चतुमात् । २ नीम ।  
 वायुपुर ( सं० झो० ) वायो पुरं । वायुकोक ।  
 वायुपुतल ( सं० झो० ) अठारह पुराणमिस एक ।  
 पुत्राय शब्द देखा ।  
 वायुफल ( सं० झो० ) वायुना फलति प्रतिफलताति  
 फल भष् । १ इन्द्रवज्र । वाया फलमिव । २ करवा,  
 मोडा ।  
 वायुमस ( सं० लि० ) वायु मंसोऽस्य । वायु, भस्मक,  
 जो वायु पान करते हो ।  
 वायुमक्ष्य ( सं० पु० ) वायुमंसोऽप्येति । १ सप,  
 साप । ( लि० ) २ वातमसक हवा पानेपाटा ।  
 वायुमूति ( सं० पु० ) एक भवपत् । ( ऐनहरिच य ११ )  
 वायुमात्र ( सं० पु० ) वायु मोंऽत्रोऽस्य । १ वायु मसक,  
 सर्वे । ( लि० ) २ वायु मसक, वायु मात्रमात्रो ।  
 ( माय ७, ४, २१ )  
 वायुमण्डल ( सं० पु० ) आकाश ब्रह्म वायु, प्रवाहित होतो  
 है । भस्मिकल देना ।  
 वायुमन् ( सं० लि० ) वायु मस्त्वयं मनुष् । वायु  
 विनिष्प, वायुपक ।

वायुमय ( सं० लि० ) वायु संश्लेषे मयत् । वायुमयक ।  
 वायुमकल्पि ( सं० खो० ) सञ्चितविस्तरकं मनुसात्  
 देक कल्पिका नाम ।  
 वायुवहा ( सं० खो० ) १ वायुमय्य पीडा । २ वायु  
 मय्य चक्षुषोऽङ्ग ।  
 वायुरोपा ( सं० खो० ) रात्रि, राते ।  
 वायुकोक ( सं० पु० ) १ वायुवीच कोक वायुमंस्यन्धोय  
 कोक । २ आकाश ।  
 वायुवर्त्मक ( सं० झो० ) वायोर्वर्म । आकाश ।  
 वायुवाद ( सं० पु० ) वायुना उद्यते इति बहु धेजू धूमं,  
 धूमं ।  
 वायुवाहिनो ( सं० खो० ) वायु, यदतीति बहु निनि,  
 ऊप् । वायुसञ्चारिणी शिरा, ये शिराप निनसे हवा  
 सञ्चारिते हिनो है ।  
 वायुविज्ञान—इस नद-नदी-नगर-अरण्यदि समांकीर्ण मृत  
 पारतो परिणो परत बन्धुसूट्य-मह-नक्षत्रादि-कञ्चित  
 कनन्त आकाशमे हम जो एक महाशून्य हैकते है क्या यह  
 वास्तवमे महाशून्य है ? हमारा मोतो कञ्चि चाह आ  
 कह, किन्तु सूक्ष्म विज्ञानदृष्टिसे देखने पर यह मालूम  
 होता है, कि इस जगत्मे शून्य नामका कोई पदार्थ नहीं  
 है । प्रकृतिमे स सारमे कही मो शून्य नहीं छोड़ा है,  
 प्रकृति वास्तवमे शून्यका शिर-शब्द है । प्रिसे हम  
 मोरो दृष्टिसे शून्य कहते है, यह मा शून्य नहीं, वायु  
 पूर्ण है । एक कांचको नलिका देखनेमे शून्य दिखाई  
 देतो है, किन्तु यह मा शून्य नहीं । क्योंकि जब इसमे  
 मक भर दिया जाता है, तब इससे वायु बाहर निकल  
 जातो है यह हम मालिसे देखते है । हमारी जहाँ तक  
 दृष्टि बाढ़ सिकता है, उससे बहुत दूर तक आकाश  
 मण्डल वायुमण्डलसे भरा हुआ है । यह वायुमण्डल  
 वा भागोमे विभक्त है । ऊपरमे स्थिर वायु है,  
 उष्णवायुमण्डली कमीदेशसे इस म शका कुछ मा परि  
 परांन नहीं होता । नाथेमे उष्णवक पारवत्तक साध  
 साय वायुमण्डलके बहुतेरे परिवर्तन मकर भाते है ।  
 इस वायुमण्डलके पारवत्तक मशका मपक्षा  
 मपरिवत्तक मशका पारवत्तक बहुत आयक है ।  
 इस विशाल वायुमण्डलके, वायु मा शून्य नामका

कोई पदार्थ नहीं है, विश्वव्यापी ईथर (Ether) अनन्त आकाशमें व्याप्त है। ईथर होनेसे ही जगत् सूर्य प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है और सूर्यकिरण भी उत्पन्न हो रही हैं। इस विज्ञान विश्व-प्रज्ञाएडमें शून्यका पूर्णतः अभाव है। जो हो, वायु विज्ञान ही हमारा आलोच्य विषय है। पाश्चात्य-विज्ञानकी विविध शाखायें वायुविज्ञानकी आलोचनासे भरी हुई हैं। ज्योतिर्विज्ञान, रसायनविज्ञान, शब्दविज्ञान (Acoustics), उष्मिति विज्ञान, (Hygrometry), वायु-प्रचापादि विज्ञान (Pneumatics), वृष्टि-तूफानका विज्ञान (Meteorology), शरीरविषय विज्ञान (Physiology), स्वास्थ्य विज्ञान (Hygiene) और तापविज्ञान (Thermology) आदि बहुतेरे विज्ञानोंमें वायु-विज्ञानका तत्त्व बहुत कुछ विद्युत हुआ है। हम स क्षेत्रमें उसके सम्बन्धमें यहां कुछ आलोचना करने हैं।

ऊंचाई।

इस वायुमण्डलकी ऊंचाईका अन्दाजा लगानेमें वैज्ञानिकोंने बड़ा परिश्रम किया है। किसी समय इसकी ऊंचाईका अन्दाजा ४५ मीलके लगभग लगाया गया था, किन्तु इसके बाद स्थिर हुआ कि, वायुमण्डलकी ऊंचाईका परिमाण १२० मील है। परन्तु चिधुवप्रदेशके लघुध्रुवभागमें लघु स्थिर वायु इसकी अपेक्षा और भी ऊंचाई पर है। वहा इसका परिमाण दो सौ मीलसे कम न होगा। ज्योतिर्विज्ञानसे वायुमण्डलकी ऊंचाई का निर्णय करनेमें वधेष्ट साहाय्य मिला है।

भारिषत।

परीक्षासे वायुके भारीपनका भी अन्दाजा किया गया है। एक काचकी नलिकासे वायु निकालनेवाले यन्त्र द्वारा वायु निकाल लेने पर वजन करनेसे जो तौल होगा, वायु भरी हुई नलिकाकी तौल उससे भारी हो जायेगी। मछली जैसे जलराशियोंमें तैरती फिरती है और उसको ऊपरका गुत्त्व मालूम नहीं होता, उसी तरह मानव समाज भी वायुके क्षेत्रमें विचरण कर रहा है, इससे उसका गुह्यभार अनुभव करनेमें वह समर्थ नहीं।

रङ्ग।

कवियोंने आकाशकी अनन्त नीलिमाके शोभा-माधुर्यका वर्णन किया है। आकाशका यह रंग वायुका ही रङ्ग है। दूरके पर्वतों पर जो नीलिमा दिखाई देती है, वह भी वायुका रङ्ग ही है। दक्षिण या उत्तर-पश्चिम या पूर्व चाहे जिधर तुम दूरको ओर देखो उधर ही घन नीलिमा-माधुर्य तुम्हारे नेत्रोंमें प्रतिभात होगा, यह भी वायुका रङ्ग है। यही देख कर कुछ लोग कहते हैं, कि वायुका रङ्ग नीला है। किन्तु इसके सम्बन्धमें कितने ही वैज्ञानिकोंकी फहरना सुनी जाती है। कुछ लोगों का मत है, कि वायुका कोई भी रङ्ग नहीं; वर वह घोर अन्धकार-पूर्ण है। धूमयानमें जो व्यक्ति सुदूर आकाशमें विचरण करने हैं, वे दूर देशमें काला रङ्ग देखते हैं। इससे कुछ वैज्ञानिक फहरना करने हैं, कि वायुवीच परमाणुकी विचरणतासे सब रङ्गोंका अभाव दिखाई देता है। इसीलिये लघुतम स्थिर वायुप्रदेशमें सब रङ्गोंके अभावमें काला ही रङ्ग दिखाई देता है। आकाशमें जो नीला रङ्ग दिखाई देता है, वह घनाभूत वायुमें सौरकिरणके नीले रङ्गका प्रतिफलनमात्र है। सौरकिरण जब घनवायुकी ओर कर पृथ्वीकी ओर आगे बढ़ती है, तब उसकी नीली ज्योतिः वायुके स्तरमें नीला रङ्ग प्रतिफलित करती है। किसीने विश्लेषण प्रणालीसे (Spectrum analysis) इसके सम्बन्धमें बहुतसे तथ्य प्रकाशित किये हैं। वायुमें जलीय वाष्प मिला रहता है, इस वाष्पको भेद कर सौरकिरण वायुमण्डलमें नाना वर्णवैचित्र्य प्रकट करता है। जलीय वाष्पजनित वर्णवैचित्र्य ही इसका कारण है। समुद्र और आकाशकी नीलिमाके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने दो रङ्गोंका निर्देश किया है। एक नीला, दूसरा चक्रवाल रेखाके किनारे पीला वर्ण या रङ्ग वायुवीच पदार्थकी नीलिमाकिरण प्रतिफलन ही (Reflection) आकाशकी नीलिमाका कारण है। वायुराशिका आलोक प्रेरणा (Transmission of rays) पीले वर्ण या रङ्गका कारण है। वायुमण्डलके रङ्गोंकी परीक्षा करनेके लिये सास्योर (Saussure) नामक एक वैज्ञानिक पण्डितने साइनोमिटर (Cyanometer) और डायफोनोमिटर (Diaphonometer) नामक दो यन्त्र आवि-

बहार क्रिये है। इनसे वायुमण्डलक रङ्गकी सजाई हो सकती है।

वायुकी इस नीलिकाके सम्बन्धमें वैज्ञानिक धरोन विज्ञाने किस्ता समय अच्छी तरह गवेषणा का यो। ओपाइ शकृतमयमें बंधोपक उपकरण लिका है—

“ननु इधियवकभाकायामिति कथं प्रतीतिरोतिथियेच मिद्विदमहस्तां विशदक्यापामुपमग्नालपामिमानात् । कथं तर्हि माननम इति प्रतीतिरिति खनन, सुमरोवक्षिण विशामाकस्य स्थिनस्येन्द्रानाममशिकरस्य प्रमासाकतां तथामिमानात् । यत् सुदुर गच्छय वदुः परावर्चमान लबहुकयोनिकामाकवयत्तायामिमानं जनयतीति मर्तं तदुक्तम् । पिङ्गवसारनयनामपि तथामिमानात् । इह दानो क्पाधिकमात प्रत्ययात् विक्त्वाभयोरपि क्पाइ घट्टकमिति खेन समवायेन पूर्वाववाहोनां तल्लक्षणं स्पोक्यत्वात् । ननु सम्बन्धाभारैवापि इहेदानो क्पात्यस्त । न इत्यपि प्रतातः सवधाटी विक्त्वाभयोः ।”

५५, १ म भा० द्वितीय अध्याय ।

वायुकी नीलिकाके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ब्रह्मण्ड उपकरणमें प्रयत्न करने का कारण यह है, कि वायुशाश वाशी निक प्रत्यक्षके विषयामून नहीं। किन्तु वायुका कर कोटार कर छेने पर यथात् “वायुका रङ्ग नीला है” यह बात लोकार करने पर यह बार्थनिक प्रत्यक्षका विषय हो जाता है। इससे उपलकार प्रथममें सिद्धागत किया गया है, कि आकाशमें आ लोमादि रूपक अस्तित्वकी प्रताति होती है, यह आकाशादिका रङ्ग नहीं, निवायतः समुच्चय यता या विवदतः किन्ती तरहस हां नमः प्रभूति प्रथके रूप भादि नहा रह सक्ते, फिर मा जिस वर्णकी उप धर्मिय होती है यह धारित प्रतीतिमात्र है। शकृतमयने इस धारितको दूर करनेके लिये बहुतेरे यक्तियोंकी जह तारणा की है। समुद्र नीर वायुशाशमें इस ओ नीलिका रंजन है, यह नीलमा वस्तुगत नहीं। यह उक्त पदार्थद्रव में सीपकरणाक नीलवर्ण प्रतिफलनसम्भूत वर्णमात्र है। यदि यह वस्तुस्थ होता, तो स्याम्यस्वरस्य वायुशाशको नीर घट्टक समुद्रजलकी इस नील वर्णका ही रंजने है। आकाशकी नीलमा कबिकी बयनाकणी भाकीमें ओ धनोभूत सौम्यव्यंका विषय प्र स्थित हुआ, इर्थाविक

धीर वैज्ञानिकोंको सूक्ष्म दृष्टिके लोम प्रकाशमें यह सौम्यव्यमयो कबिर्पित शोभाउदा सम्पूर्णरूपसे विस्तृत हो जाती है।

वायुका रासायनिक लक्षण ।

प्राच्य पण्डितोंने वायुको पञ्चभूतोंक अन्तर्गत एक भूत माना है। पाश्चात्य पण्डित बहुत दिनों तक इसको भूत ही मानते थे। इस आज मा वायुको भूत ही लोकार करन रे। किन्तु यह भी पक्य है, कि हमारे शास्त्रकारोंका बताया भूतपदार्थ नीर पाश्चात्य पण्डितोंका बताया मूलपदार्थ (Element) एक नहीं। पाश्चात्य वैज्ञानिक बहुत दिनों तक हमारे इस पञ्च महाभूत Element नामसे पुकारा हो जाता था, किन्तु पाश्चात्य रसायन शास्त्रमें इस समय प्रमाथित हुआ है, कि स्थिति, अप, महत् नीर व्योम—ये मूलपदार्थ या “एलिमेण्ट” नहीं हैं। किन्तु इस व हमारे शास्त्रीय ‘भूत’ नामधेय संज्ञाक परिवर्तन को आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि पाश्चात्य पण्डित इस समय एलिमेण्टमें जो समझते हैं, हमारा भूत शब्द वैसे पदार्थका वाचक नहीं। इस समयके पाश्चात्य रासायनिक पण्डितोंका कहना है, कि वायु अज, पूरणी मूल पदार्थ नहीं बर ये मूल पदार्थके संयोगस तत्पार होने हैं। अग्नि आज भी पदार्थ नहीं है, यह रासायनिक मूल पदार्थका क्रियापक्षविशेष है। विश्लेषणो क्रियाकी अति सूक्ष्म प्रयासो द्वारा ओ पदार्थ किसी वुमरो अति न पदार्थसे किसी तरह विभिन्य नहीं किया जा सकता, बहो पदार्थ इस समय मूलपदार्थक नामसे परिचित हैं। इस समय मूल पदार्थकी संख्या अकरसे भी बढ़ गई है। फिर हालक रसायनविद पण्डितोंने परमाणुलक्षणमें एक युगांतर उपस्थित कर वर्त्तमान रसायनविज्ञानक मूल पदार्थ निर्णय-विभागमें महाविच्छेद उपस्थित कर दिया है। वर्त्तमान विज्ञान अब इस सिद्धान्तकी ओर धमनर हो रहा है, कि ये सब मूल पदार्थ एक ही मूल पदार्थके अन्तर्धानरमात्र है।

ओ हो, अब तक यह सिद्धान्त स्थापित नहीं होता तक तक हमें इसी वर्त्तमान रासायन-विज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार हो करना होगा। यूरोपक वैज्ञानिक युगके प्रारम्भसे अब तक वायुक रासायनिक लक्षण सम्बन्धमें



आलोचनाये होनी आ रही हैं, तोचने उनका हम संक्षेपमें इतिहास देगे।

वायुके उपादान विभ्लेपणका इतिहास।

वायु पहले यूरोपमें भी मूल पदार्थ ही मानी जाती थी। सन् १७३० ई०में फ्रान्सीसी रासायनिक पण्डित जॉर्ज (Geanray) ने देखा, कि दोन और सोमा खुली वायुमें जलानसे उनका भारीपन बढ़ जाता है। यह देख उसके मनमें एक चिन्तक उत्पन्न हुआ। उसने स्थिर किया, कि आकाशका वायुमें ऐसा कोई पदार्थ है, जो उन धातुओंके जलानके समय उनके साथ मिल जाता है और इस सम्मेलनके फलमें इनका गुरुत्व बढ़ जाता है। उसने यह स्पष्टतः निणय नहीं किया, कि यह पदार्थ क्या है।

इसके बाद सन् १६७४ ई०में मैरी सामक एक अङ्ग्रेज रसायनविद् पण्डित वायुकी रासायनिक परीक्षा में प्रवृत्त हुआ। इसने परीक्षा करके देखा, कि वायुमें दो तरहके वायु (Gas) मिले हुए हैं। इन वायुओंके गुणागुणके सम्बन्धमें भी उसने परीक्षा का थी। उसका विश्वास हो गया था, कि इन दो वायुओंमें एक जीवन धारणके अनुकूल और दूसरा प्रतिकूल है।

१८वीं सदीके पहले भागमें भी इन दोनों वायुओंका नाम थाविच्छेदत हुआ न था। उस समयके रसायन-ज्ञानमें वायुविभ्लेपणके बहुतेरे प्रमाण हैं। डाक्टर प्रिष्टलान वायुके इस वायुका नाम Dephlogistated air रखा था। डाक्टर शालेने (Scheele) इस वायुको Empyrean air भी कहा है। कन्डरसेट (Conorcet) ने इसको सूक्ष्ममें Vital air कहा था। सन् १७७४ ई०की १ली अगस्तको डाक्टर प्रिष्टलीने सबसे पहले इसका विशेष विचरण प्राप्त किया। सन् १७७६ ई०में आधुनिक रसायनके जन्मदाता सुविख्यात फ्रान्सीसी रसायनविद् पण्डित लामोयाजय (Lavoisier) ने इस पदार्थका अक्सिजन (Oxygen) नाम रखा।

डाक्टर प्रिष्टलीने मटिया सिन्दूर जला कर इससे अक्सिजन पदार्थ अलग किया। मटिया सिन्दूरको पाञ्चात्य वैज्ञानिकोंने Plumbum Rubrum या

संक्षेपमें Red lead नाम रखा है। किन्तु सन् १७७२ ई०में वैज्ञानिक पण्डित रावरफोर्डने वायुसे नाइट्रोजन अलग किया था। नाइट्रोजन हो पहले Phlogisticated air नामसे प्रसिद्ध था। पण्डित रावरफोर्डने रुद्ध वायुमें फस्फरम् नामक मूल पदार्थको जला कर वायुस्थित नाइट्रोजनको अक्सिजनसे पृथक् किया। फस्फरम् जलने समय वायुस्थित अक्सिजनके साथ मिल जाता है। किन्तु नाइट्रोजनके साथ फस्फरमके उस सम्मेलनका कोई सम्बन्ध नहीं। अतः रुद्धवायुमयपात्रमें फस्फरम् जलने समय अशुद्ध-मात्र नाइट्रोजन ही अवशिष्ट रह जाता है।

लामोयाजयने जन्म प्रणालीमें इन दो पदार्थोंका विभ्लेपण किया है, उनका प्रतिक्रिया लिखी जाती है— एक बन्द फ्लाचके बरतनमें कुछ थोड़ा-सा पारा रख कर कई दिनों तक लगातार उसमें गर्मी प्रदान कर उसने देखा, कि पारेका रंग जटे तथा यह चूर्णाकार (धूल-कण)के रूपमें हो गया है और पालस्थित वायुका वजन एकपञ्चमात्र कम है। इन लाल चूर्ण पदार्थोंको यह पद फ्लाचके बरतनमें रख उसमें उत्ताप देनेमें प्रवृत्त हुआ। इसके फलसे उससे एक वायुका उद्गम हुआ। यह वायु परीक्षा कर देखा गया, कि उसमें दहनक्रिया विगणरूपसे बढ़ गई है। लामोयाजयने सबसे पहले इस पदार्थको अक्सिजन नामसे अर्थात् कह दिया। अक्सिजन यूनानी भाषाका शब्द है। Ocus का अर्थ अम्ल या पण्ड और Gen उत्पन्न करना जो अम्ल उत्पन्न करता है, उसीका नाम अक्सिजन है। लामोयाजयका विश्वास था, कि यही पदार्थ अम्ल उत्पादनका मूल कारण है। किन्तु इस समयकी कोजसे यह धारणा लुप्त हो गई है। अब इसका प्रमाण मिलने लगा, कि ऐसा एसिड बहुत है, जिनमें अक्सिजन नहीं है। दूसरी शेर क्षार पदार्थोंमें (Alkalies) भी अक्सिजन टिक्राई दे रहा है।

अब इसकी धारणा की जायेगी, कि किस तरह लामोय जयने इसका विभ्लेपण किया था। पालस्थित वायुके अक्सिजनके साथ पारा उत्ताप द्वारा मिल कर लोहितवर्ण चूर्ण पदार्थ (Red oxide of Mercury)

इस्पादन करता है और पात्रमें नाइट्रोजन बाकी रह जाता है। बहुत अधिक उष्णतासे यह काइनिबण पदार्थ विच्छिन्न हो कर फिर यह पात्र और अक्सिजन वाष्प—रूब हो पदार्थोंमें परिणत हो जाता है। अक्सिजन अलग करनेका उपाय इस तरह है—

सुम एक बालके नळमें रूड अकसाइड भाव मरकुरी नामक पदार्थको एक बर इमे गर्म करो। थोड़ी देरके बाद एक बत्ती जला कर उस इस तरह जुभा दो कि उसके मुह पर अम्लव्युत्सिक्क मीसूव रहे। इस लोकरर बत्तीका भाग नळमें घुसेइव ही यह जळ बढेगा। इसका कारण यह है, कि उक्त रूड अकसाइड भाव मरकुरी उष्णताके फलसे पात्र और अक्सिजन वाष्पमें विशिष्ट हो जाता है। अक्सिजन गैसमें जलमेवाकी शक्ति बहुत प्रबल है। अतएव इसमें अम्लकणाका संयोग होने ही यह जोटींसे जळ उठता है।

परमिथिन वा प्राचीन विज्ञान्त।

अब नाइट्रोजनकी बात करी जायेगी। पहले ही कहा गया है कि सन् १७७१ ईमें एडिनबराके सुचिक्यात वैज्ञानिक डाक्टर रावरकोउने नाइट्रोजन पदार्थको वाष्पमें अलग किया। उन्होंने इसका Mephitic air नाम रखा। इसक बाद डाक्टर प्रिचमीने इसका Phlogisticated air नाम रखा। वायुसे नाइट्रोजन निचालनेके बहुतेरे उपाय हैं। यहाँ उन सबोंका बखूब करना अमानसिक बोध होता है। जो हो, १८वीं सदीके रसायनविज्ञानमे जो सब पदार्थ वायुके इस्पादन कहे जाते थे, उनकी एक किहरिस्त नीचे ही जाती है—

१ डिपब्रॉमिनेटेड एयर वा अक्सिजन।

२ फ्लॉजिफिकेटेड एयर वा नाइट्रोजन।

३ नाइट्रस एयर वा नाइट्रिक अकसाइड।

४ डिपब्रॉमिनेटेड नाइट्राम एयर वा नाइट्रास अकसाइड।

५ इनफ्लेमेबल एयर वा हाइड्रोजन।

६ फिक्सड एयर कार्बोनिक् एमिड।

७ अम्लके छालत एयर वा आमोनिया।

वायुके उपादानके निम्नमें आधुनिक विज्ञान्त।

इस समय ये नाम छोड़ दिये गये हैं। रसायन

विद्याविद् परिद्वतोंने अनेक उपायोंसे वायुराशिका उपादान विश्लेषण कर इसका परिमाण स्थिर किया है। मात्र कमके परिद्वतोंने वायुके जिन उपादानों और परिमाणोंका प्रकाशन किया है, उनकी किहरिस्त नीचे दी जाती है—

अक्सिजन २०.९१

नाइट्रोजन ७७.९५

असोय वाष्प १.१०

कार्बोनिक् ऐनहाइड्राइड ०.०४

सिवा इनके ओजोन (Ozone) नाइट्रिक एसिड, प्रमोविया कार्बोरेटेड हाइड्रोजन और प्रथान प्रथान गहरकी वायुमें साबफास्टेड हाइड्रोजन और सभफ्यूरेस एमिड दिखाई देने हैं। सिवा इनके तट्ट तरबूके उद्येय यान्त्रिक पदार्थ (Volatile organic matter), रोगोत्पादक बीज (Pathogenic Germs) और माइक्रोब (Microbe) वायुमें उड़ते किले हैं।

अमिनव ग्लूब पदार्थ।

सिवा इनके बिगुड घापीं इन समय और जो किले ही मूल; पदार्थ बाधिरुत हुए हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानविद् लार्ड राले (Lord Raleigh) और यूनिवर्सिटी कॉलेजके रसायनशास्त्रक अन्वेषक विलियम रामसे (William Ramsay) इन दोनों वैज्ञानिक परिद्वतोंने प्रभूत अथ अन्य और पूर जांच पड़ताम कर वायुमें पांच अमिनव ग्लूबपदार्थोंको देखा है। जैसे—आर्गन (Argon) हेलियम (Helium), नोबन (Neon), क्रोप्टन (Crispton) और खीनन (Xenon) ये पांच पदार्थ बाधपीय हैं।

वायुमें हाइड्रोजन।

१८वीं सदीके रसायनिक परिद्वत यह जानते थे कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु ये हाइड्रोजन नाम नहीं जानते थे। इस समय कोई यह खूब कर नहीं कहना था, कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु सुचिक्यात ग्यारमोस्ती परिद्वत गास्टे (Gautier) ने बहुत परीक्षा करके निर्णय किया है कि हाइड्रोजन नामक ग्लूबपदार्थ चिखुवायस्था में सदा वायुमें विद्यमान रहता है। प्रति ह्य इमार

भागमें दो भाग हाइड्रोजन मिलता है। अध्यापक उद्योग-  
नै इस सिद्धान्तका समर्थन किया है।

शुद्ध वायुका गुणत्व।

उपरोक्त किस्मिन्को देखनेसे मान्य होता है, कि  
अक्सिजन और नाइट्रोजन—ये दो मूलपदार्थ ही वायुके  
प्रधान उपादान हैं, कार्बोनिक् एसिड और जलीय वायु  
आदिके परिमाण देशभेद और समयभेदसे परिवर्तन-  
शील हैं। आमानिया, सालकारिस्टेट, हाइड्रोजन और  
माल्प्यूरन्स एन्टिप आदिका परिमाण भी देश और काल  
भेदसे परिवर्तित होते रहते हैं। किन्तु अक्सिजन और  
नाइट्रोजनके परिमाण तथा अनुपातमें कोई व्यक्तिक्रम नहीं  
दिखाई देता। विज्ञानविद् पण्डित वायट (Biot) और  
आरागेयोने (Arageo) विशुद्धवायुके गुणत्वके सम्बन्धमें  
ज्ञान पड़नाल कर स्थिर किया है, कि मध्यवर्ती उष्णता  
में (Temperature) एकसौ क्यूबिक फुट शुद्ध वायुका  
वजन ६१ ग्राममें कुछ अधिक है। यह जलकी अपेक्षा  
८१६ गुना गुरुता है। वर्षाके जलमें अक्सिजनकी मात्रा  
अधिक परिमाणमें रहती है।

वायुके समुद्रमें अक्सिजन और नाइट्रोजन मिले हुए  
रहते हैं। इसको रासायनिक सम्मिश्रण या Chemical  
Combination कहते हैं। वायुमें स्थित अक्सिजन और  
नाइट्रोजनका सम्बन्ध घेसा दृढ़ नहीं है। प्रयोजन होनेसे  
सहसा एक दूसरेमें अलग हो सकता है। इस तरह सहज  
और सहसा विस्फ्लेषण प्रक्रिया सम्भावित न होने पर  
हय्यु हाग कई अत्यन्तव्यक्त प्रयोजनोंकी सिद्धि नहीं  
होती। हम इसकी पीछे आलोचना करेंगे।

अक्सिजन और नाइट्रोजनका विस्फ्लेषण।

वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजन—ये दो प्रधानतम  
उपादान हैं। इन दोनों उपादानोंके पृथक् करने तथा उनके  
परिमाण निर्देश करनेके जो उपाय हैं उनके सम्बन्धमें  
दो शब्दों यहाँ कहा जातो हैं। वायुके अक्सिजन और  
नाइट्रोजनका परिमाण निर्णय करनेमें 'यूडियोमिटर'  
(Eudiometer) नामक नलिकायन्त्र इसका प्रधान सहा-  
यक है या यों कहिये, कि वायुके परिमाण-निर्णय करनेके  
लिये हो इस यन्त्रकी सृष्टि हुई है। इस यन्त्रमें एक  
निर्दिष्ट परिमाणसे वायु ले निर्दिष्ट परिमाण हाइड्रोजनके

साथ मिला कर तड़ित द्वारा वायुको संयोगसाधन  
करना होगा। इस परीश्रामे वायुमण्डलको अक्सिजन  
हाइड्रोजनके साथ मिला कर जलवायुकारमें परिणत होता  
है। जो वाकी रहता है, वही अतिरिक्त हाइड्रोजन और  
नाइट्रोजन है।

इस परीक्षाका फल निकालनेके लिये निम्नलिखित  
प्रणालीका अवलम्बन करना चाहिये।

$$F = \frac{v + v - v}{2}$$

v—का अर्थ वायु जिस परिमाणसे ली गई थी।

I  
v—का अर्थ जिस परिमाणसे हाइड्रोजन लिया  
गया था।

II  
v - का अर्थ रासायनिक सम्मेलनके बाद जो मिला  
हुआ वायु वन गया था।

F—का अर्थ फल।

यदि ५० क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुके साथ ५०  
क्यूबिक सेण्टिमिटर हाइड्रोजन मिला कर तड़ित सञ्चाल-  
नके बाद ६८.६ क्यूबिक सेण्टिमिटर वाकी रहता है,  
तो समझना होगा कि ३१.५ क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुने  
जलायाकार घातण कर लिया। किन्तु दो परिमाण  
हाइड्रोजन और एक परिमाण नाइट्रोजन मिलानेसे जल  
उत्पन्न होता है।

$$\frac{31.5}{2} = 15.75$$

१ परिमाण अक्सिजन १०.४६।

२ परिमाण हाइड्रोजन २०.६२।

५० क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुमें यदि २०.४६  
अक्सिजन हो, तो एक सौ अंशमें २०.६२ होगा। अनपक्ष  
वायुमण्डलमें सैकड़ें २०.६२ अक्सिजन और ७६.०८  
नाइट्रोजन है। ओजोन द्वारा वायुका अक्सिजन  
सैकड़ें २३ और नाइट्रोजनका परिमाण ७७ भाग पाया  
जाता है।

वायुके अक्सिजन और नाइट्रोजनका परिमाण  
निर्णयके लिये और भी उपाय हैं उनमें एक उपाय  
यह है—

एक छोटे योनिमित्र बरतन पर एक डुन्डवा फस्फोरस रख कर एक जमपूर्ण चौड़े पात्र पर रखिये । इसके बाद समान रूपसे छः भागोंमें विभक्त दोनो मोर खुले मुँहकी बीतकके आकारका एक काँचका बरतन एक पोस्टीव पात्रको ढाँकते हुए इस तरहमें रखना चाहिये, कि पात्रका एक घा हा हो जलमें डूबा रहे । पात्र पर जो एक काग मग्रा रहेगा, इसके नीचे पीतककी साँकल इस तरहसे सजकती रहेगी, कि उसके दूसरे छोर पर फस्फोरसको झू मके । काग निकाल कर पीतककी साँकल होपके प्रकाशमें गर्म कर इसके द्वारा फस्फोरसके टुकड़ोंसे घुमा देना चाहिये और काम मजबूतोंसे बन्द कर देने पर गर्म साँकलके लवहसे फस्फोरस जल उठेगा और काँचका पात्र सदा धूप से भर आयेगा जब बरतन उल्टा होगा तब आप देखेंगे, कि जल ऊपर घब कर बरतनके द्वितीयार्ध पर अधिकार किये हुए है और अन्तके चार अंश जाम्बो पड़े हैं ।

फस्फोरस पात्रस्थित वायुका भाग भाग अक्सिजनके साथ मिश्रणसे जो सादा धूप के आकारका एक पदार्थ उत्पन्न होता है, यह फस्फोरस ट्राइऑक्साइड ( Phosphorus Trioxide p 20) नामसे अभिहित होता है । यह जलमें गलनेवाला है अतएव योही जो हैतमें बरतनमें रहे जलके साथ मिश्र करके पसिडरूपमें अवस्थान करता है । जो बहुतव वाष्प है, यह बरतनके चार अंशों पर अधिकार कर लेता है । परीक्षा करने पर यह वाइड्रोजन मायूम हा सक्त है ।

इसी परीक्षासे यह भी प्रमाणित होता है, कि ४ आयतन ( Volume ) नाइट्रोजन और एक आयतन अक्सिजन है । देखा जाता है, कि नायुमें जो सब ठपा हान हैं, उनमें नाइट्रोजन और अक्सिजनका भाग जो सबविष्टा अधिक है अतएव वायुका रूप और धर्मके सम्बन्धमें ज्ञानता हो, तो उनके प्रमाण प्रधान उपादानों के रूप और धर्मको समझना करना चाहिये । इसके लिये अक्सिजन नाइट्रोजन कार्बोनिक् एमिड जम्बो वाष्प और हाइड्रोजन आदि पदार्थोंके सम्बन्धमें किमिक् विस्तार रूपसे सामोचना की जाती है ।

-अक्सिजन ।

आविष्कारका विवरण प्रकाशित कर दिया है । प्रिण्टा, जिसे, सामोवाज्मोय आदि परिश्रमोंमें अस्त बातकी आसो जन की है, कि किस तरह वायुसे अक्सिजन और नाइट्रोजन पृथक् किया जाता है । रसायनविज्ञानमें मूकपदार्थोंका जो संश्लिषिड है उसमें अक्सिजन अणुओंमें ० अणुमें विहित है, यह एक मूलपदार्थ है, इसका पारमाणविक गुणरव—१६ है । वायुके मापारण तापमें ( Temperature ) और दबावमें अक्सिजन वायुवायवयामें अवस्थान करता है ।

अक्सिजनका मापकरण ।

हमने पहले ही कहा है, कि डाक्टर प्रिण्टोने इसको डिफ्लेगिन्टिफेड एयर ( Defflogentiated air ) कहा था । डाक्टर शिल्ले ( Scheel ) एम्पिरियल एयर ( Empirical air ) कहा था । सुबिकवात क्लरुनेटक मतसे इसका नाम मिडल एयर या प्राणवायु होना चाहिये । सामोवाज्मोय ही इसके रस पर्यमाण नामक आविष्कार है । हमारे शास्त्रकारके मतसे इसका नाम होना चाहिये विष्णुपदामूम अम्बरपीम्य ।

अक्सिजन उत्पदन प्रथाओं ।

अक्सिजन गैस उत्पादन प्रथाओंके सम्बन्धमें पहले दो-एक प्रजासिधियोंका चिन्तन कराया गया है । वैज्ञानिक कई प्रजासिधियोंसे अक्सिजन उत्पन्न करते हैं । (१) मैग्नेजिआइड-अक्साइड नामक पदार्थको जलत करते करते जब वह भास हो जाता है तब उससे ट्रायमैग्नेजिड ट्रेटक्साइड और अक्सिजन वाष्प उत्पन्न होते हैं ।

(२) साधारण क्लोरेट आव पोटाससे जो अनेक समयमें अक्सिजन गैस उत्पन्न किया जाता है । क्लोरेट अब पोटास गर्म करनेसे यह बिहल हो कर क्लोराइड अब पोटाशियम और अक्सिजन वाष्प उत्पन्न कर देता है ।

(३) क्लोरेट अब पोटासके साथ मैग्नेजिड ट्रायअक्साइड या सुल्फा शालु मथवा काँचका पूर्ण मिश्रण कर गर्म करनेसे बहुत घेडे समयमें ही अधिक परिमाणमें अक्सिजन गैस प्राप्त होता है । तप्यार करनेकी प्रथाको इस तरह है—

चौथाई भाग अक्सेनिज डाई अक्साइड मिला कर रिस्टर् नामके एक यन्त्रमें रखना होगा। एक नलाकार वाष्प चाही नलसंयुक्त काग द्वारा इसका मुँह उत्तमरूपमें बन्द करना होगा। इसके बाद इस रिस्टर् यन्त्रको एक आधार-दण्डमें जोड़ कर इसके ठीक नीचे स्पीरिट लैम्प जला देना होगा। गर्मा पाते ही अक्सिजन गैस उत्पन्न होने लगेगा। यह गैस सप्रद करना हो, ता जलपूर्ण गमला या यूमेटिड्रफ नामक यन्त्रविशेषका व्यवहार करना होता है। परिष्कृत भयंकर पाचकी पोतलको गमले या यूमेटिड्रफ जलसे पूर्ण कर उसके ऊपर अघो सुगी रखनी होगी। अक्सिजन निकलना धारम्भ होने पर वाष्पवाहिका नली घेतलके मुँहके नीचे धरने ही कुछबुद्ध करके इसमें वाष्प प्रविष्ट होगा, जब घेतलका मध्यका जल यादर निकल जायेगा, तब पाचके कागसे घेतलका मुण उत्तमतासे बन्द करना होगा। एक तरहका गोंद तैय्यार कर उसे बन्द करना चाहिये। गोंद - दो भाग मोल और एक भाग नारियलका तेल मिला देनेसे तैय्यार होता है। घेतल व्यवहार करनेसे पहले उस कागको इसी गोंदमे डुबा लेना चाहिये।

(४) उष्णताके साहाय्यसे गंधकामु-विश्लिष्ट करके भी अक्सिजन पाया जा सकता है।

(५) तडिनु सघोगसे जल विश्लिष्ट करके भी अक्सिजन उत्पन्न होता है।

अक्सिजनका सम्मेलन।

अक्सिजन मुक्तावस्थामें पलूरिनके सिवा प्रायः सभी मूलपदार्थों के साथ मिला रहता है। यह अन्यान्य पदार्थों के साथ मिल कर तीन तरहके यौगिक पदार्थ उत्पन्न करता है। जैसे—अक्साइड, एसिड और अलकोहल। ऐसे कई पदार्थ हैं, जो अक्साइडमें कम और एसिडमें कुछ अधिक परिणत होते हैं। अझार फस्फोरस, क्रोमियम आदि इसी जातिके पदार्थ हैं।

अक्सिजनका स्वरूप।

अक्सिजन गैस रङ्गहीन, स्वादहीन और गंधहीन है। यह नेत्रोंसे दिखाई भी नहीं पड़ता और यह बहुत खच्छ है और हाइड्रोजनकी अपेक्षा १६ गुना भारी है।

साधारण वायुमें जैसे स्थितिस्थापकता आदि-गुण

दिखाई देने हैं, वैसे ही अक्सिजनमें भी स्थितिस्थापकता आदि गुण मौजूद हैं। जीवनकी क्रियाओंके निर्वाहके लिये अक्सिजनकी बड़ी आवश्यकता है। साधारण वायुकी अपेक्षा अक्सिजन अधिकतर दीर्घकाल तक जीवन रक्षाके लिये उपयोगी है। इसीलिये इसका दूसरा नाम प्राणवायु या Vital air है।

पृथ्वीकी वायुसे अक्सिजन बहुत भारी है। एक-सी क्यूबिक इंच परिमित अक्सिजन वाष्प मध्यम परिमित ताप और दबावसे ३४ ग्रैनकी अपेक्षा भी वजनमें अधिकतर भारी होता है। उस अवस्थामें पृथ्वीकी वायुका वजन ३१ ग्रैनसे जरा अधिक है। अक्सिजन गैस जलमें कुछ द्रवणीय है। इसकी स्वकीय व्यापकता-परिमाण-स्थानके घन गुणा अधिक व्यापकता स्थानविशिष्ट जल में अक्सिजन द्रवित हुआ करता है। इसके ऊपर प्रकाशकी कोई क्रिया नहीं। अन्यान्य वाष्पोंकी तरह उष्णतासे अक्सिजन फैलता है। विजलीके प्रभावसे भी इसके गुणमें कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। शीटप तथा प्रचाप (दबाव)-से इसके नम्र या कठिन नहीं बनाया जा सकता। अक्सिजन आज भी मूलपदार्थमें ही परिगणित होता है। किन्तु कुछ लोग इस विषयमें सन्देह करते हैं। आज कलके वैज्ञानिकोंका कहना है, कि जिस सिद्धान्तसे पहले परमाणुके अविभाज्य समझा जाता था, वह सिद्धान्त अस्मत्क है। प्रत्येक परमाणुकी वैद्युतिक क्षुद्रतम पदार्थ (Electron) समष्टिमात्र है। वर्तमान रसायनविज्ञानमें जिन सब मूलपदार्थोंका उल्लेख किया जा चुका है, उनमें हाइड्रोजन सर्वापेक्षा लघुपदार्थ है। हाइड्रोजनके मान पर ही अन्यान्य मूल पदार्थों का मान निर्णयित हुआ है। इस समय परीक्षासे मालूम हुआ है, कि इस हाइड्रोजनका एक परमाणु उल्लिखित वैद्युतिक पदार्थ (Electron)-के एक हजार परिमित पदार्थोंकी समष्टि और नेगेटिव या विद्योसंज्ञक वैद्युतिक शक्तिपूर्ण है। यद्यपि ये परमाणु नेत्रोंसे दिखाई नहीं देते, किन्तु इनके अस्तित्वका प्रमाण अकाष्ठ्य और अखण्ड है।

अक्सिजनका विस्तार।

जगत्में जितने मूलपदार्थ हैं, उनमें अक्सिजन सर्वत्र

ही सुन्दर है। भूवायु की उत्पत्ति इसका नौ-का  
 ८ अंश वायु में आरका एक अंश सिन्धिका, एक और  
 पत्तिभोमिनाम आधा अंश बिद्यमान है। सिन्धिका  
 एक और एमिभोमिना—ये तीन ही पदार्थ पृथ्वी के  
 प्रधानतम उपादान हैं। प्राणियों की प्राण-रक्ताके लिये  
 अक्सिजन की निरव आवश्यकता है। मनुष्यमय भगवान् ने  
 इसीके लिये अगत्के सब अंशोंमें इस प्रयोजनीय पदार्थ  
 का समावेश कर रखा है। अतस्त भूवायुमें नाइट्रोजनके  
 साथ अक्सिजन मिश्रित भावसे पड़ा हुआ है। उच्चतु  
 अगत्के अन्वयत् अक्सिजनकी प्रचुरता दिखाई देती है।  
 अणुप्राण सृष्ट अणु फिर्षीका उच्चमिडुअणुके आर्द्र अन्त-  
 स्तन्त्रको पार कर उससे अक्सिजन का चला है और अणुओं  
 के प्राणिकोके उपादान अक्सिजन सञ्चय और वितरण  
 कर प्राणियोंका हितसाधन करता है। इससे उच्चमिडु  
 रास्यका भा परम उपकार होता है। कार्बोन उच्चमिडुके  
 जीवनीयाय है। भूवायुमें आ कार्बोनिक एसिड सञ्चित  
 होता है, परराशयितनीत अक्सिजन द्वारा वह कार्बो  
 निक एसिड बिच्छिष्ट हो कर उच्चमिडुका कार्बोन द्वारा  
 परिपुष्ट करता है। उच्चमिडु प्राणिरास्यमें कार्बोनिक  
 अक्सिजनके इन तरह आदान-प्रदान द्वारा बिम्बनियन्ता  
 क बिम्बकायमें सुष्ठुप्राय मितवधिता और निरतिशय  
 सुन्दर बिधान दिखाई देता है।

पढ़ते ही कहा गया है कि फ्रांसीसी परिदल  
 जामोयाजीवने इस पदार्थका अक्सिजन नाम रखा है।  
 Oxy एक दूतानी दन्ध है। इसका अर्थ अम्ल है—  
 Genao अर्थात् 'मैं उल्पादन करता हूँ' एन दो पदोंसे  
 Oxygenc शब्दकी उत्पत्ति हुई है। यह अम्लवत्पदार्थक  
 है। इससे जामोयाजीवने इसका अक्सिजन नाम रखा  
 था। इस समय इसका येला नाम रबनेक कई कारण  
 थे। अङ्गार वा गन्धक उच्च वायुमें असाभैसै एक तरह  
 के वायवीय पदार्थकी सृष्टि होगी है। अङ्गार वा गन्धक  
 दहन जलित वायु अम्लमें प्रकीर्ण होता है। इस अम्लका  
 अम्लसार होता है। इसीलिये जामोयाजीवने उच्च वायु  
 कीय पदार्थकी अक्सिजन वा अम्लजन नाम रखा।  
 किन्तु इसक बाद डेरी (Davy) फोर्दरिने पदार्थकी  
 पराक्षा आरम्भ कर देता कि हाइड्रोजेनिक वासु

अत्यन्त तीव्र अम्ल पदार्थ है। फिर भी, इसमें कण  
 मात्र भी अक्सिजन महा है। फिर दूसरी ओर सोडियम  
 और पोटेशियम आदि पदार्थ अम्लजन वा अक्सिजन  
 के साथ मिश्र कर जिन सब यौगिक पदार्थोंकी सृष्टि  
 करते हैं, उन सब पदार्थोंमें अम्लकाय विद्यमान हो महा  
 रहता। उच्चै इसमें तीव्रसारका ही स्वाद मिश्रता है।  
 अतएव अक्सिजन नामकी व्युत्पत्तिगत अर्थ ले कर  
 बिचार करने पर यह जिस पदार्थक बाणरूपमें ध्यव  
 हत हुआ है, उसक विषयका पदार्थ मात्र इस नामसे  
 प्रकट नहीं होता। प्रत्युत यह प्राप्तिका ही उल्पादक है।  
 अक्सिजनमें अम्लकी शक्ति।

अक्सिजन अग्निका अधिष्ठाको-वृद्धता है। अक्सिजन  
 के बिना 'अम्लन क्रिया' अममभव हो जाती है। इसीलिये  
 पाश्चात्य विद्वानमें किसी समय अक्सिजन अग्नियायु  
 (Fire air) नामसे पुकारा जाता था। यथकतो अम्लकृपा  
 अक्सिजनके स्पर्श करती ही और भी अम्ल उठती है। जो  
 सब पदार्थ साधारणतः अम्लक कहें जाते हैं, उनमें यदि  
 अक्सिजनका स्पर्श हो जाये, तो वह अम्लमें क्षायक हो जाते  
 हैं। जोहा अब अग्निके अम्ल कर छात्र हो जाता है, तब  
 इसमें अक्सिजन गैस सृष्टि होगी पर फीह भी अम्ल उठता  
 (अर्थात् निकल आता) है। अक्सिजन गैसमें अम्ल कल्फोरस  
 अम्लता है, तब उस अग्निका जो प्रकाश होता है, वह  
 अम्लका हो जाता।

अक्सिजनका गैस न रहने पर कुछ भी नहीं जमता।  
 कोयला ही हो या किरासन तेल हो—इनमें कोई भी बिना  
 अक्सिजनके महा अम्ल सक्रता। हाइड्रोजन वाष्प बाह्य,  
 किन्तु बाहक महा। तुम हाइड्रोजनस मरो बोतल लीये  
 मुझ करक रखा और इसमें अम्लता हुई बत्तीका संयोग करो  
 तो वह तुरन्त ही बुझ जायगी। किन्तु हाइड्रोजन  
 वाष्प बोतलक मुझी प्रमादोन शिक्षामि अणुतो रहेंगा।  
 हाइड्रोजनस मरो बोतलमें एक कोयलाका मुसकने पर  
 पदार्थका बुझ जाती है। इसका कारण यह है, कि  
 हाइड्रोजन बाहक पदार्थ नहीं। किन्तु की अग्निके  
 पदार्थ अक्सिजनस मरो बातलक मुझी प्रवेग कराते ही  
 यह अम्लकर प्रकल वेगसे अम्ल उठता है।

अब प्रश्न यह है, कि अक्सिजन स्वयं बाह्य पदार्थ

है या नहीं? इसके उत्तरमें केवल यहो कहना है, कि अक्सिजन नद्वज ही दाह्य नहीं है। किन्तु यदि हाइड्रोजन वाष्पपूर्ण किसी कांचके पात्रमें एक नलके द्वारा अक्सिजन वाष्प टुका कर इसमें अग्निसंयोग कर दिया जाये, तो नलके मुहमें अक्सिजनका वाष्प जलता रहेगा। अतएव स्वल्प-विशेषमें अक्सिजन दाह्य पदार्थोंकी क्रिया और हाइड्रोजन दाहककी क्रिया प्रकट क्षमता है। विग्न-लिखित पगशास्त्री द्वारा अक्सिजनकी दाहिक शक्तिका मिद्धान्त किया जा सकता है—

(क) एक टैडे सुतके ताम्र (तांबे)के तारमें छोटी मोमवत्ता बसा कर उसे जला अक्सिजनपूर्ण बोतलमें प्रवेश करानेमें यह वत्ता जलता ही रहेगा।

(ख) जलती हुई वत्ता बुझा देने पर जब तक उसकी नाक पर अग्नि स्फुल्लिङ्ग मौजूद है तभी तक अक्सिजनकी बोतलमें प्रवेश करनेमें वत्ता फिर जल उठेगी।

(ग) तारमें शय्य दीपके प्रकाशमें लोहितोत्पन्न कर कोयलेके एक टुकड़ेको अक्सिजनपूर्ण बोतलमें यदि डुबा दिया जाये, तो वह कोयलेका टुकड़ा उड्डवल प्रकाश और स्फुल्लिङ्ग देता हुआ जलता रहेगा।

(घ) तुम लम्बे वैट्टाले एक कलुलमें (Deflagrating spoon) गन्धक जला कर अक्सिजनकी बोतलमें डुगा हो। गन्धक धीगनी रङ्गका आलोक प्रकाशित कर जलता रहेगा।

(च) पूर्वोक्त पात्रमें छोटा एक टुकड़ा फस्फोरस रख कर अक्सिजनपूर्ण बोतलमें डुबा देनेसे दृष्टिको चका चौंध पैदा करनेवाले प्रकाशके रूपमें यह जलने लगता है और उस बोतलमें श्वेत धुआं सञ्चित हुआ करता है।

(छ) भेगनेमियम धातुका एक तार दीपशिक्षामें गर्म कर अक्सिजन पूर्ण बोतलमें डुबा देनेसे विचित्र आलोक प्रकाशित होता है और तार जलने लगता है।

(ज) घड़ीके स्प्रिङ्गकी एक ओर दृषीभूत गन्धक लगा देने पर अग्निसंयोग करनेमें यह जलने लगता है, किन्तु घड़ीका स्प्रिङ्ग नहीं जलता। इस समय यह जलता हुआ स्प्रिङ्गमुख अक्सिजनकी बोतलमें डुवानेसे प्रबल तेजीके साथ स्प्रिङ्ग जलने लगता है और उससे लाहितवर्ण गलित लौहचूर्ण चारों ओर फैल कर सुन्दर दृश्य उत्पन्न करता है।

जीवदेहमें अक्सिजनकी क्रियाके सम्यग्धमें बहुतेरे प्रयोजनार्थ जानने लायक विषय हैं। फिजियलजी (Physiology) या शरीरतत्त्वमें इसके सम्यग्धमें विस्तार पूर्वक गवेषणाके साथ आलोचना की जायगी। निम्न-प्रबन्धमें वायुका प्रयोजन और परिवर्तन, रक्तसंशोधनमें आर दैहिक नाप उत्पादनमें (Oxydation) और दैहिक शक्तिके उत्पात्तिसाधनमें और देहोपादान आदि गठन और ध्वंसकार्यमें अक्सिजनका प्रभुत्व और उसकी प्रक्रियाको बड़ा ही विशेष रूपमें आलोचना की जायेगी।

ओजोन (Ozone)

ओजोन (Ozone) अक्सिजनकी ही एक पृथक् मूर्ति है या यों कहिये, कि यह घनीभूत अक्सिजन है। तीन आयतन अक्सिजनके घनीभूत हो वे आयतनोंमें परिणत होने पर इसका धर्म अक्सिजनकी तरह नहीं रहता। उस समय इसमें एक तरहकी बू आती है। यज्ञ गानके समय वायुराजिस एक तरहकी बू आती है। यह ओजोनका ही बू है।

प्रस्तुतव्याप्तो।

सिमेन साइडने ओजोन प्रस्तुत करनेके लिये एक प्रकारका नल तैयार किया है। इस नलमें अक्सिजन प्रविष्ट कर नलके पीछरी ओर प्रवर्तनकुण्डलके साथ जोड़ दिया जाता है। इससे तडित्स्फुल्लिङ्ग उत्पादन करने पर नलके दूसरे मुहमें ओजोन निकलने लगता है। ओजोन है या नहीं—इसको परीक्षा कर देखनेके लिये पोटाशियमका एक टुकड़ा आइओडाइड श्वेतसारके द्रवणमें भोंगा कर नलमें निकले वाष्पके साथ घुमानेसे यह टुकड़ा नीले रङ्गका हो जाता है।

२। फस्फोरस वायुमें खुला रखनेसे ओजोन प्रस्तुत होता है।

तुम एक चौड़े सुतवाली बड़ी बोतलमें थोड़ा जल रखो, उसमें फस्फोरसका एक टुकड़ा इस ढंगमें रखो कि इसका अलगगमात्र जलमें ऊपरी भागको स्पर्श कर ले। इसके बाद कांचके कागमें बोतलका मुह बन्द कर दो। इस समय ओजोन तैयार होने लगेगा।

ओजोनका रूप और घनत्व।

ओजोन बिना रङ्गका अदृश्य वायवीय पदार्थ है।

इसको बृहत् भारी में रक्खे हो मिट्टा का बुका है। तद्वि-  
पन्न-परिष्कारणमें भी इसी प्रकारका आश्रय होता है।  
यह अक्सिजनमें २५ गुना भारी है। समथिक पृथिव्य  
धीर शैल्य द्वारा यह तरल अवस्थामें परिवर्तित हो सकता  
है। इसके वासावर्तिक लक्षण सम्बन्धमें इसके  
पहले ही लिखा जा चुका है। कार्बोनिफ एमिड रोममें  
इसका अस्तित्व महा रहता। नगर की अपेक्षा छोटे छोटे  
गर्तोंकी वायुमें अधिक भोजन रहता है। आश्रयन  
आकाशका विष शोषण या निषेध होता है। कुछ  
सैरियोंका कर्ता है कि यह सैरिया धीर हीजेक  
वीज्युमोहराजा करता है। इस समय विविधता  
विषाणमें भोजनका व्यपहार बहुत हीने लगा है। कुछ  
जैवोंका मत है कि आकाशका र गमोका इसी भोजन  
क कारण हो चुका है।

नाइट्रोजन (Nitrogen)

वायुका और एक उपादान नाइट्रोजन है।  
वायुगणिते आइट्रोजनका परिमाण सबसे अधिक  
है। यह ५/३२ ही कहा गया है, कि पाँच भाग  
वायुमें एक भाग अक्सिजन और बाकी चार भाग  
नाइट्रोजन है। पाकृत जगत्में नाइट्रोजनका परिमाण  
अल्पधिक है। प्राणिकगण्य भाव इसका संरक्षक  
धनि प्रयोक्तोय है। इमोसिधे मनुष्यमय विधाताने  
वायुमण्डलीका ३३ भाग केवल इस धूलपदार्थ द्वारा  
हो पूर्ण कर रखा है। अण्डसाक्षिक पदार्थक (Albumin)  
मध्यमें नाइट्रोजन ही प्रयोगन उपादान  
है। जीव और उद्भिजन्तगणमें नाइट्रोजन प्राणिकगणमें  
संरक्षक कर रहा है। अस्मिन्न पदार्थोंमें नाइट्रोजन  
बहुत अधिक नहीं मिलता है। इनमें केवल स्रोतमें  
यह मुख्यपदार्थ दिनाह होता है। नाइट्रोजन मिश्रण  
पदार्थोंमें नाइट्रिक एमिड और आयोनिबाका मिश्रण  
आवास संरक्षकः सुमिधे विज्ञां होता है।

मौलिक नाइट्रोजन मिसमें (५.० एक अणुपरिमाण)  
पाका जाता है वायुमें यह पदार्थ पृथक् किया जा  
सकता है। अक्सिजन जैसे दहनकर्मक मनुष्य है,  
वैरी नाइट्रोजनका घन नहीं है इसलिये मृदिकापर्यं सुनि-  
धमके साथ सम्मन हो रहा है। वायुमें यदि शुद्ध

अक्सिजन रहता, तो अति द्रुतगतिसे दहनकार्य  
सम्भन होता। येना होमेम हमारा रसाह बनाने तथा  
दोष जमाने आदिवा वाह कार्य सम्भन नहीं होता।  
लकड़ो या कोयलेमें आगका संयोग करने पर वह सुरंत  
जलमें प्रगता है। प्रदोष प्रकृत्यन करत हो इस  
की बन्तो जल जाता। हम सोय लकड़ो या पत्त आदि  
वाद्य पदार्थका निरापय्य व्यपहार नहीं कर सकते थे।  
सूयके पर्यं जग स्वरा करत ही यह मन्म हो जाता।  
हम वायुके साथ आ अक्सिजन प्रदोष करते हैं यह हमारे  
बैहके सुख मयव्य पर मृदु वादनका कार्य सम्भन  
करता है। इसके फलस ताव धीर वैदिक शक्तिवा उद्भव  
होता है। यदि वायुमें नाइट्रोजन न रहता मयक अक्सि-  
जन ही रहता, तो जीवनी शक्तिकी क्रिया किसी तरह  
शुद्धताक साथ सम्भन नहीं होती। आदिवा शक्ति  
विशिष्ट अक्सिजनक साथ अधिक मात्राम नाइट्रोजन  
विमिश्रित रव अक्सिजनकी सहायिनी शक्तिका निवसित  
किया गया है। प्रकृति का यह विधान विम्वज्जो कानमयो  
मदागिक मनुष्यमयी लोभाका उरज्यसतने मिर्वातन है।

नाइट्रोजनका लक्षण और कार्य।

नाइट्रोजन अदृश्य वायव्योय पदार्थ है। इसमें  
स्वायं वर्ण या गन्ध नहीं है। रेगनैष्ट (Regnault) ने  
कहा है कि वायुकी शुद्धतामें इसका आवेष्टिक गुण्य  
०.००२ है। जनपय यह वायुकी अपेक्षा लघुतर है।  
एक मिटर परिमित नाइट्रोजनका गुण्य १.२५ ग्राम है।  
एक भाग जलमें १.४८ भाग नाइट्रोजन प्रबोधुन हो सकता  
है। पहले ही कहा गया है कि १७७२ ई०में रदाए  
फोर्से नाइट्रोजन नाइट्रोजनका आविष्कार किया। इसका  
ओर पाँच वर्ष बाद प्रयोग १७७५ ई०में फ्रांसीसी  
डाक्टर लामोपात्रोय डाक्टर रकारफोउने मिश्रण विधर  
किया था। जलम पदके कहा गया है कि विम तरह  
नाइट्रोजन वायुके अक्सिजनसे अलग किया जा सकता  
है जिस तरह नाइट्रोजन उष्णन होता है।

नाइट्रोजन दाह पदार्थ नहीं है। नाइट्रोजनम साथ  
निवा बुक जानो है। इसका किना तरहका विवजनक  
काम नहीं कि भा यह जीवन रक्षाक संरक्षकमें भी  
साक्षात् भाषय चौर साहाय्य नहीं करता। तासावर्तिक



परिष्कृत नाइट्रोजनको तरल अवस्थामें परिष्कृत करनेमें भी समर्थ हूए हैं। साधारण अवस्थामें ताप या तड़ित आदि द्वारा नाइट्रोजनको किसी तरहकी विकृति या परिवर्तन नहीं होता। किन्तु निर्दिष्ट उच्चतर ताप (Temperature) वोरण मेगनेसियम, मेग्नाडियम और टिटालियम आदि मूलपदार्थों इसके साथ मिल कर नाइट्रोजन रूपमें परिष्कृत हो जाते हैं। साधारणतः अक्सिजनके साथ भी नाइट्रोजन मिल सकता है। उच्चताप देने पर भी मित्राघटन नहीं होती। किन्तु इसमें धीरे धीरे तड़ित् स्फुलित् प्रविष्ट कर देने पर इन दो गैसोंमें परमाणु पृथक् होने लगते हैं।

साधारण और रासायनिक विमिश्रण।

वायुराजिमें अक्सिजन और नाइट्रोजन मिले हुए रहते हैं। निम्नलिखित परीक्षासे यह मालूम होता या प्रमाणित होता है।

१—जमी दो वायवीय पदार्थों में रासायनिक सम्मेलन होता है, तभी उच्चताप उद्भूत होता है और उत्पन्न पदार्थों का आयतन उत्पादक पदार्थोंमूहके आयतनसे पृथक् हो जाता है। वायुनिहित अक्सिजन और नाइट्रोजन-इन दोनों गैसोंका जो निर्दिष्ट प्रमाण है, इन दो गैसोंका वह परिमाण किसी पात्रमें मिला देने पर यह सब प्रकारकी वायु की तरह कार्य करता और वैसे ही परिलक्षित भी होता है। किन्तु इस मित्राघटके फलसे तापोत्पत्ति या आयतनका परिवर्तन दिखाई नहीं देता। इसका यह एक प्रमाण है, कि वायु रासायनिक (Chemically) भावसे मिला हुआ पदार्थ नहीं है।

२—एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थका रासायनिक सम्मेलन होनेसे परमाणु गुरुत्व सरप्राके अनुपातके अनुसार ऐसी मित्राघट होती रहती है। ऐसे अनुपातोंके मित्रा किसी तरह ऐसी मित्राघट नहीं होती। किन्तु वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजन जिस परिमाणमें रहता है, उससे पारमाणविक गुरुत्व सरप्राके किसी तरहका अनुपात दिखाई नहीं देता। अतएव वायु राजिमें अक्सिजन और नाइट्रोजनकी जो मित्राघट है, वह रासायनिक सम्मेलन नहीं है।

३—रासायनिक सम्मिलित पदार्थों के विश्लेष करने-

में उनके उपादानोंमें कोई पृथक्ता नहीं दिखाई देती और न इनके परिमाणके अनुपातमें ही कोई व्याघात उपस्थित होता है। किन्तु वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजनका परिमाण सब समय एक परिमाणमें दिखाई नहीं देता। अवरथासे परिमाणमें विभिन्नता देखी जाती है। वायु यदि रासायनिक विमिश्रणका फल होती, तो इस तरहके उपादानके परिमाणमें भी अनुपातका पार्थक्य परिलक्षित नहीं होता। अतएव सिद्धान्त हुआ है, कि वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजनका जो सम्मेलन देखा जाता है, वह रासायनिक सम्मेलन नहीं है।

नाइट्रोजन और आर्गन।

प्रोफेसर रामजे और लार्डे रैलेने वायु राजिकी परीक्षा करके इसमें 'आर्गन' नामका एक अविभक्त मूल पदार्थ प्राप्त किया है। वायुमें अक्सिजन मिला कर इसमें स्फुजित् तड़ित् प्रविष्ट कर देने पर अक्सिजन और नाइट्रोजन रासायनिक भावसे मिल जाते हैं; लेकिन किसी एक पदार्थकी कमी रह जाती है, वह है आर्गन। इसका आणविक गुरुत्व ४० है। आर्गन और किसी मूलपदार्थसे नहीं मिलता। वायुमें जितना नाइट्रोजन रहता है, उसमें सैकड़े एक भाग आर्गन है। इसके स्वरूप, प्रभाव और प्रतिपत्तिके सम्बन्धमें विशेष कुछ मालूम नहीं हुआ।

नाइट्रोजनकी प्रयोजनीयता।

नाइट्रोजनकी एक प्रयोजनीयता अगले पहले लिखी जा चुकी है अर्थात् अक्सिजनकी दाहिकाशक्तिके जगत्के प्रयोजनीय कार्योंमें सयमित रहनेके निमित्त नाइट्रोजनका बहुत प्रयोजन है। यदि नाइट्रोजनके भूमिमें रहे तो जमीन को उत्पादिका शक्ति प्रवर्द्धित होती है। किन्तु इसकी प्रयोजनीयताके सम्बन्धमें रसायनशास्त्रविद् परिष्कृत अब भी सविशेष अभिज्ञता प्राप्त नहीं कर सकें हैं। उद्भिद्मूह साक्षात् सम्बन्धमें नाइट्रोजन प्रदान नहीं कर सकता। दहनक्रिया वा निश्वास-प्रवास क्रियाके साक्षात्-सम्बन्धमें इसकी अपनी कोई क्रिया दिखाई नहीं देती। केवल अक्सिजनका क्रिया संयमन ही इसका प्रधान कार्य सिद्ध हुआ है। अक्सिजनके साथ नाइट्रोजनके

बूटे दूसरा किसी मूलपदार्थके वायुराशिमिं विमिश्रित रहने पर उसमें विष क्रियाशील आशङ्क रहती थी। हम जो सख वास्तविक नाइट्रोजनमय पदार्थ (Nitrogenous Organic matter) देख रहे हैं, हममें संशय नहीं, कि वायुका नाइट्रोजन ही उन सब पदार्थोंकी पुष्टि करता है। साधारणतः हम जगतमें जो कुछ द्रव्य होता है उस दहनक्रियाके समय नाइट्रिक एसिडका उत्पन्न होती है। कह तो कह सकते हैं, कि वायुराशिमिं तड़ित् शक्तिकी क्रियामे जो नाइट्रिक एसिड उत्पन्न होता रहता है। यह नाइट्रिक एसिड आकाशके आमोनियाक साथ विमिश्रित हो जाता है तब नाइट्रिक भाव आमोनिया मस्तुत होता है।

असमंजस आकृति कल्पबिम्बने परीक्षा कर देखा है, कि नाइट्रोजन गैस और जल एकत्र कर नाइट्राट भाव आमोनियामें परिणत होता है। यह अक्षिजजनन स यो स बहुत अल्प नाइट्रेट भाव आमोनियामें परिणत होता है। यह नाइट्रेट पृथिके साथ जमीन पर गिरता है। उसी संयोगमें तड़ित्बुके सूक्ष्म नाइट्रेट संज्ञित होता है। तड़ित्बुके द्वारा नाइट्रेट पदार्थ प्रदूषण करता है। पूर्वोक्त प्रणालीसे जो नाइट्रेट उत्पन्न होता है, उसका वैज्ञानिक नाइट्रिकेजन् (Atmospheric altribent on) कहते हैं। इसका द्वारा उद्भिद्भु जगतका जो अणुकार होता है वह सहज ही अनुभव होता है।

कार्बोनिड एसिड।

वायुका एक दूसरा उपादान—कार्बोनिड एसिड है। तड़ित् और आगत्य पदार्थके दूधवायरोप अङ्कार नामसे प्रसिद्ध है। हम अङ्कारको रासायनिक ङोग कार्बोन नामसे पुकारते हैं। कार्बोन या अङ्कार एक मूल पदार्थ है। हीरा आफाइट हम अङ्कारका दूसरा रूप है। वायुका जलानेसे अक्षिजजनके साथ मिला कर कार्बोनिड एसिड उत्पन्न होता है। भूमिमिं अमान अन्तत अङ्कार की प्राप्ति मीमूह है। अङ्कारके सखरथम यह हमारा और कुछ नहीं कहना है। कार्बोनिड एसिड गैस वायुका एक उपादान है। सुतर्ग उसीकी आसोबना प्रयोगशील है।

कार्बोमन मक्काइड। (Carbonmon oxide)

कार्बोन और अक्षिजजन मिला कर दो प्रकार योगिक गैस उत्पन्न करने हैं। कार्बोन गैस अक्साइड और कार्बोनिडइड अक्साइड। थोड़ी हवा या वायुमें कार्बोन जला देने पर उसमें सममावसे अक्षिजजन मिला कर कार्बोन गैस अक्साइड गैस उत्पन्न होता है। धुँडमें पत्थर कापना जलानेके समय यही गैस उत्पन्न होता है। यह गैस शोथ-शिक्षा फैला कर जलता है। इसमें एक भाग अक्षिजजन और एक भाग कार्बोन विष मान रहता है। इसीविधे इसका सांकेतिक चिह्न C O है। यह वायु स्वादगन्धहोन है। फिर यह अनुभव मी है और असमें गलनेवाला मी नहीं। दूध होनेके समय इसमें नीलो छपट निकलती है। हम समय वायुमं अक्षिजजन वा कर कार्बोन इड अक्साइडमें परिणत होता है। इस ही परीक्षा यह है कि कार्बोन गैसका दूधवायु शोथमें एक जलती हुई बत्ती घुसा देने पर बत्ती तुलत ही बुझ जाती है। किन्तु बत्तीके मुँह पर उक्त बाध्य जलता रहता है।

यह वायु अत्यन्त विषमय है। सोमसे शरीरमे प्रवेश करने पर शरीरमे पीडा स्नायवीय सुबलता और सहादोभता होती है और मा कया—इससे मृत्यु तक हो जाती है। घरमें कापना या लकड़ी जला और बियाडो बन्ध कर सोने पर कार्बोन गैसकाइडके प्रभाव से मृत्यु तक हो सकती है। कह जगहोमे ऐसी मृत्यु हो जानेके समाचार मिसे है। हम देशमें सूतिका पुरमें भाग दखनेकी प्रथा दिखाई देती है। किन्तु सब किसो को हम बातका ध्यान रकना चाहिये, कि बियाडी बन्ध कर कापना या लकड़ीके जलानेमे मृत्यु तक हो सकता है। क्योंकि यह वायु कमो कमी बियाका मी काम होता है।

कार्बोन-बाइ-मक्साइड (Carbon Di-Oxide)।

जो हो इस समय हम वायुके कार्बोन अक्साइड (या साधारण नामसे कार्बोनिड एसिड)के विषयमे कुछ कहने। इसका दूसरा नाम कार्बोन भाग अक्साइड है। १७७५ ई०में लामोवाजीवने द्वारा जलानके समय कार्बोनिड एसिडका आबिष्कार किया था। इसक वल्लि सख

१७५.७ ई०में डाक्टर एलेफने (लाइमस्टोन) चूनेके पत्थरमें इसका अस्तित्व आधिष्कार किया और इनका Fixed air नाम रखा। इसका पायमाणविक गुणत्व ४४ है। विज्ञान वायुमें इसका परिमाण बहुत कम हो जाता है—२५०० भाग वायुमें एक भाग कार्बोनिक् डाइ अक्साइड साधारणतः देखा जाता है स्थानभेदसे इसके परिमाणका न्यूनाधिक्य भी हुआ करता है।

उत्पत्ति।

शहरकी वायुमें कार्बोनिक् एसिड गैसका परिमाण अधिक है। मनुष्य प्रश्वास, पदार्थदहन (Combustion), (Putrefaction) और उत्प्रेचन (Fermentation) नाना प्रकार कार्यो द्वारा वायुराशिमें अनवरत कार्बोनिक् एसिड गैस सम्मिलित हो रहा है।

श्वसक्रिया और कार्बोनिक् एसिड गैस।

पीछे यह हम अच्छी तरह समझाये गे, कि श्वसक्रियामें श्मि तरह कार्बोनिक् एसिड तैयार किया जाता है। यहाँ केवल इतना कह ग्वने हैं, कि मनुष्यकी देहके भीतर भी अद्धार पदार्थ विद्यमान रहना है। उसी अद्धार-पदार्थके साथ अक्सिजनका संयोग होनेसे हां एक तरहकी मृदुदहनकी क्रिया (Oxidation) आरम्भ होना है। इसके फलमें कार्बोनिक् एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है। प्रश्वासमें यह वाष्प निकल कर वायुमें मिल जाता है। निम्नलिखित परीक्षासे यह साफ मालूम होता है, कि निश्वास और प्रश्वास वायुमें कार्बोनिक् एसिडके परिमाण किस तरह न्यूनाधिक्य हैं। दो बोतलोंमें साफ चूनेका जल रविये। खड और लकड़ीका नल बोतलोंमें इस तरहसे लगा दीजिये कि नरुके द्वारा श्वास लेने पर एक बोतलके बीचसे आकाशकी वायु प्रवेश कर सकती हो और नलसे श्वास-त्याग करने पर दूसरी बोतलके बीचसे प्रश्वास वायु निकल सकती हो। इस तरह नलसे कई बार श्वास लेने और छोडने पर दिखाई देगा, कि बोतलमें बाहरकी वायु प्रविष्ट हुई है और उसका चूना मिला हुआ जल बहुत कम परिमाणमें घुला हुआ है। किन्तु जिसमें निश्वास-परित्याग किया गया, उसमें स्थित जल दूधकी तरह घुल गया है। कार्बोनिक् एसिड गैसके स्पर्शसे चूनेका जल घुलता है। जिस घरमें बहु-

संख्यक लोग एकट्ठा रहने हैं, उस घरका दार बन्द कर देनेसे उसमें अधिकतर कार्बोनिक् एसिड गैस उत्पन्न होता है। साफ चूनेका जल घरमें रख कर उसकी परीक्षा की जा सकती है।

दहनक्रिया।

अद्धार या तट्टघटित पदार्थ वायुमें दग्ध होने पर उसका अद्धारज वायुस्थित अक्सिजनके साथ मिल कर कार्बोनिक् एसिडमें परिणत होता है। दहनक्रियाके आधिक्यसे कार्बोनिक् एसिडके उत्पादनके परिमाणकी वृद्धि होती है।

पचन क्रिया।

जीव जन्तु तथा उद्भिज्ज पदार्थमात्रमें ही न्यूनाधिक परिमाणसे अद्धार मौजूद है। ताप और आर्द्रता पचनक्रियाके सहायक हैं। इन सब पदार्थोंके पचनके समय कार्बोनिक् एसिड उत्पन्न होता है। कब्रस्थान और जलीय भूमिकी ऊपरी वायुमें कार्बोनिक् एसिड वाष्प अधिक परिमाणमें (प्रति दश हजार भागमें सत्तर भागसे नब्बे भाग तक सञ्चित होता है) डूनेसे या मोहरीसे जो दुर्गन्ध वाष्प उठता है, उसके प्रति दश हजार भागमें २००से ३०० भाग कार्बोनिक् एसिड वाष्प विद्यमान रहता है। समय समय पर यह विषाक वायु डेन साफ करनेवालोंको मृत्युका कारण बन जाती है। पुराने कुपमें भी कई कारणोंसे कार्बोनिक् एसिड गैसकी अधिकतावश कुपके साफ करनेवालोंको मृत्यु होते देखी गई हैं।

उत्प्रेचन (Fermentation)।

गुड, यवादि अन्न और अंगूरका रस—पकनेके समय कार्बोनिक् एसिड गैस उत्पन्न होता है। जराय तैयार करनेवाले कारखानेमें भी कार्बोनिक् एसिड गैसका परिमाण अधिकतासे दिखाई देता है।

धर्म।

कार्बोनिक् एसिड अदृश्य वर्ण और गन्धविहीन वाष्प है। यह दाहक नहीं और न टाह्य ही है। यह अपरिचालक है। जलती हुई वत्तीसे इसकी परीक्षा की जा सकती है। कार्बोनिक् एसिड गैससे परिपूर्ण एक बोतलमें एक जगती हुई वत्तीको घुसेडने पर वह बुझ

जायेगी और न वाष्प ही जलेगा। कार्बोनिज एमिड गैस अग्निशाका बुझानेमें परम सहायक है। इसीलिये यह कच्ची कहीं कानकी भाग बुझानेके लिये व्यवहृत हुआ है। यह वाष्प वायुकी अपेक्षा भारी है। यद्यपि यह अद्रव्य है, तथापि इसको एक पात्रसे दूसरे पात्रमें भना यास हो डाला जाता है। रसायनविद्ग जिम्नखिजित प्रक्रियासे इसकी परीक्षा करते हैं। पहले तो यह एक कार्बिक पात्रका लगन स्थिर कर लेते हैं। पीछे वह पत्रके पर एक कर उसमें कार्बोनिज एमिडसे भरी शाशी जो डाल देते हैं। यद्यपि अद्रव्य काश्चको देख न सकना, किन्तु यह दिखाई देगा, कि इसक भारी लगनस पकड़ा मोथा हो गया।

प्रस्तुत प्याली।

सफेद कच्चीके साथ या मार्बलके साथ सलफ्यूरिक या हाइड्रोक्लोरिक एमिडन क्रियाविषयन-यन्त्रविधीयस काबो निज एमिड गैस उत्पन्न होता है। कार्बोनिज गैस आराम से ह्योरसक मय कार्बोसमयमें परिणत होता है। इसी समय कार्बोनिज एमिड उत्पन्न होता है।

कार्बोनिज एमिडकी अस्त्य।

कार्बोनिज एमिड कठिन, तरक और वाष्पकोय पदार्थ है। यह लोग अस्त्यभोमिं दिखाई देता है। कारण होरकी ३० डिग्री तापमें कार्बोनिज एमिड तरक अस्त्यभो मी परिणत होता है। तरक कार्बोनिज एमिड चर्चोहोन या रजुराहत है, जसमें और कहीं पदार्थमें अस्त्यभोय है। किन्तु यह इधर, अस्त्यभोहक वादससफाएक आय कार्बोनि, तापूया और ताएपन सेममें मिश्रित होता है। मिश्रित कार्बोनिज गैस चिकीर्ण होते होत अस्त्यभो शोनम हो जाता है। इस अस्त्यभोमं कार्बोनिज एमिड गुवार को तरह कम जाता है।

पाणोय कार्बोनिज एमिड रजुरविहीन है। कुछ लोग कहन हैं कि इसमें अस्त्यभोय और अस्त्यभोय है। आभासिक अस्त्यभोयस यह अस्त्यभोय द्रवोमूत हो जाता है। किन्तु निश्चित अस्त्यभोय अधिक कितना प्रकार प्रयासे हो शोपित नही होता। प्रयाप दूर हो जान पर गैस कम स निकरनी समय बुदबुद दिखाई देता है। सोडावाटर या सेमनेहवाटरका कोलनैक समय इसो कारण बुदबुद दिखाई देता है। कार्बोनिज एमिड पोमिस कार्बो मय

कार नही होता; फिर भी निश्चित वाष्पके साथ मिस कर इसक आघात करने पर शोयननाशकी भयङ्कर भाशङ्का हो सकती है। कार्बोनिज एमिड गैससे दीपक बुक जाता है। इसक लिये जलते हुए दीपकस परीक्षा को जा सकठी है, वाष्पमें कार्बोनिज एमिडका मात्रा अधिक है या नही किन्तु इस परीक्षा पर ही निर्भर रही रहना चाहिये। जिस वायुमें सुन्दरता पूर्वक अस्त्यभोय निर्वाहित होती है, उस वाष्पक आभाससे भी अस्त्यभोयता नाता तरकको पीडा और तो क्या सूत्यु तक होती देखो गई है। यवदीपक 'डपास' उपत्यका और मेयससक मिश्रतवर्ती गेटामिककी उप त्यकामें और गैसिस प्रसियामें पीडके निकट बहुत कार्बोनिज एमिड गैस उत्पन्न होता है।

हमने यहां वायुके तीन उपादानोंके सम्बन्धमें निश्चित आलोचना की। इसक बाद वायुमें मिश्रित हुई एक वस्तुको आलोचना करना आवश्यक प्रतीत होता है। वह पदार्थ—अल्योय वाष्प है। वायुमें अल्योय वाष्प मिसा रहता है। इसलिये मेच, रूधि, कुदरे भास्की उत्पत्ति होती है। किन्तु यहाँ इस पदार्थको आलोचना करनेसे पहले मानव देहमें वायुका अस्त्यभोय और कार्बोनिज एमिड क्या क्या काम करते हैं उसका बोझी आलोचना करनी जरूरी है। अतएव आकसजन, नाइटाजन और कार्बो निज एमिडके तरकोंका सल्लु क करनैक बाद ही यहां देहमें वायुके सम्बन्ध विचार प्रसङ्गका उल्लेख करना चाहिये। अतः पहले इसक सम्बन्धमें आलोचना कर पाछे अस्त्यभोय वाष्पक (Aqueous vapour) सम्बन्धमें आलोचना को जायेगी।

मानवदेहमें वायुकी कितना।

मनुष्यकी देहक प्रधान उपादानोंमें एक राशिनी बात पहले उल्लेख करनेको जरूरत है। यह शोपितराशि ही तरकक पयमें औरक देहदाज्यमें बिचरण करती है—घनमी (Arter) यधमें और शिरा (Ven) यधमें। घनमीका एक उस्त्यभोय कोहित शिराका एकउत्पन्नम मात्रा है। परीक्षा करक देखा गया है, कि घनमीक और शेरिक एकक इस वयन पार्थक्यका एकमात्र कारण—

अक्सिजन और कार्बोनिक एसिड गैस है। शिराके रक्तमें अक्सिजन कार्बोनिक एसिडका (कार्बोहाइड्रेटका वाष्प) बहुत अधिक है। कार्बोन—अणु। अणु का लो रक्तका है, अतएव शिराका रक्त भी कार्बो है।

यह बात निश्चय है, कि समूची देहमें यह वायवीय पदार्थ विचरण कर देहका ताप संरक्षण और पुष्टि-साधन कर रहा है। देहका प्रत्येक गठन-उपादान ही अक्सिजन ले रहा है। कार्बोनिकके साथ अक्सिजन मिल कर देहमें दहनक्रिया सम्पादन कर रहा है। इसमें कार्बोनिक एसिड और तापका उत्पादन होती है। प्रति दिन ही देहके मोतर ये कार्य हो रहे हैं। दैहिक पदार्थ वायु, शिराके अक्सिजनको ग्रहण करनेके लिये दुर्मिष्ट द्वारा पोषित श्लेष्माकी तरह या विरहिणी ब्रजवालाओंकी तरह हमेशा व्याकुल रहता है। फिर भी, देहप्रकृति कार्बोनिक एसिड तथा देहके क्षयप्राप्त पदार्थोंका वहिकार करनेके लिये प्रस्तुत रहती है। देहके श्रुद्रम अवयव (Tissue) रक्तकी स्नाहितकरणसे अक्सिजन संग्रह करते हैं। धालकी तरह वारोक वारोक घमनियोंके प्राचीरको सेट कर रक्त के हिमोग्लोबिनके अक्सिजन दैहिक रसमें (Lymph) और छोटे छोटे देहोपादान कोषमें प्रविष्ट होते हैं। ऐसी जगहों पर क्षयप्राप्त यान्त्रिक पदार्थोंमें संश्लिष्ट अक्सिजन कार्बोनिकके साथ मिल कर तापोत्पादन करता है। अक्सिजन कार्बोनिकके साथ मिल जानेसे ही कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है। शिशु या दैहिक उपादानविशेषस्थित कार्बोनिक एसिड रस (Lymph)के बीचसे हो कर कैंजिकाके प्राचारको सेट कर उसके रक्तमें पहुँच जाता है। समग्र दैहिक उपादानमें अक्सिजन और कार्बोनिक एसिडका यह जो आदान-प्रदान होता है—यही अन्तरोण श्वासक्रिया (Internal respiration या Tissue respiration) नामसे विख्यात है। इसकी प्रक्रियाके संक्षिप्त मर्म इस तरह हैं,—वायुस्थित अक्सिजन फुस्फुसके वायु कोषमें प्रविष्ट होता है और इसके प्राचीरको पार कर शैरिक रक्तके हिमोग्लोबिन पदार्थके साथ सामान्याकारमें मिल जाता है। यह मिला हुआ पदार्थ अक्सिहिमो

ग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) नामसे प्रसिद्ध है। यह अक्सिहिमोग्लोबिन शिशु पदार्थमें प्रविष्ट होने पर इसका अक्सिजन पृथक् हो जाता है। इस अवस्थामें गैस समझा जा नहीं सकता, कि अक्सिजन नित्य ही शिशुस्थित कार्बोनिकके साथ मिल कर कार्बोनिक एसिडका उत्पादन करेगा और ऐसा सिद्धांत भी समझीन नहीं, कि हाइड्रोजनके साथ मिल कर नित्य ही वह जलमें परिणत होगा। मासपेशियोंमें कभी कभी अक्सिजन संरक्षित अवस्थामें विद्यमान रहता है। यह सञ्चित अक्सिजन शिशुमें विद्यमान रहनेके कारण शिशु नाइट्रोजन गैसके संपर्कमात्रसे पेजिया कृञ्चित हो जाती है और इस अवस्थामें भी कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होता है। एक मेटकके शिशु नाइट्रोजन भरी बेलनमें कई घण्टे तक गैसमें भी उमकी जीवनी क्रियामें जरा भी आघात उपस्थित नहीं होता और उम समय भी उमकी पेशियोंमें कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होता रहता है।

प्रश्नाद्य-परिचयक ताप।

यह महज ही समझमें आता है, कि प्रश्नाद्य वायुमें कार्बोनिक बहुत अधिक रहता है। हम निश्चामके जो वायुग्रहण करते हैं और प्रश्नाद्यके समय जो वायु छोड़ते हैं—इन दोनों तरहकी वायुके उपादानके विनिर्णायक दो सूत्रिया टी जाती हैं।

निश्चामकालान वायुके उपादानोंका परिमाण—

अक्सिजन	१०.८४	(सेकंडा)
नाइट्रोजन	७६	
कार्बोन डाइ-अक्साइड	०.०४	
जलीय वाष्पका परिमाण	वहा नहीं दिया जाता।	
प्रश्नाद्यकालीन वायुका उपादानका परिमाण—		
अक्सिजन	१६.०३	
नाइट्रोजन	७६.०२	
कार्बोन डाइ-अक्साइड	३.३ से ५.५	

इस सूचीमें स्पष्ट मान्य होता है, कि कार्बोनिक एसिडका परिमाण प्रश्नाद्यवायुमें कितना अधिक है। सम्भवतः वायुमें नाइट्रोजनके परिमाणकी बहुत कम ओसत से वृद्धि हो सकती है। इसके साथ जान्त्व पदार्थका

संविद्यमान मो परिवर्तित होना है। सुनरी देना जा रहा है, कि लाइटोसोन वैदमें प्रयोग करके समय मो जिस भीसतमें प्रयोग करना है, सीटैतिक समय मा उन्नी भीसत से ही बाहर निकलता है। इसकी पिघेर कई सति पृथि नहीं होती। वायुमें इन समय भागमें क्विगटन डिस्त्रिबाम और भीसत प्रयुति पांच प्रकारके भविमय मूलपदार्थ भाविष्ठन हुए हैं। ये लाइटोसोन कल्पयुक्त हैं। भविमयन और कार्बोनिक् एमिडमें ही परिवर्तन प्राप्ताय परि लक्षित होता है। प्रथम वायुमें भविमयन ५ भाग कम होता और कार्बोनिक् एमिड ४ भाग बढ़ता है। प्रथम वायुमें किड्रिन् एनोमिया एक्किड्रिन् हाइड्रोसोन और बहुत सामान्य कार्बोनिक् हाइड्रोसोन मो विपाई देता है। निम्बाम, प्रथम और कार्बोनिक् एमिडक इस पार्थीय विचारस समकमें आता है, नि प्रथमसक साथ जिस आसतसे पार्थीनिक् एमिड निष्कमता है, निम्बाम उमनी अपेक्षा अधिरुत भविमयन प्रदण करता रहता है।

कुम्फुसके भीनरी बावरीय परार्थका परिमाय ।

वैज्ञानिक अनुसन्धिरसुधीन इसक सम्बन्धमें यथेष्ट विचार किया है कि हम निम्बामके साथ नामिका और मुक्त वायु द्वारा भ्राम नमक पदसि जो वायु कुम्फुसक कोवमें प्रदण करती है, उम बायवोय परार्थमें किस प्रकार परिवर्तन जाता है। उनका कथन है, कि वायुका कमाय यह है कि यह सब किसी पात्रविरेपमें बाध होता है तब उक्त पात्रमें वायुका प्रचाय पड़ता है। पारन् समन्वित एम्बिस्टीक साहाय्यसे यह प्रचाय नाया जा सकता है। कुम्फुसक भीतर सब वायु समा जाती है, तब कुम्फुसकोय वायुकायमें स्थित तरल उक्त साथ उम वायुका भविमयन और कार्बोनिक् हाइ अक्साइड संघान उपस्थित होता है।

हमारे प्रथमसक समय कुम्फुसक वायुराजि बिलकुल बाहर नहीं निकल जाती। वायुकायमें यथेष्ट वायु मञ्जित रहती है। इन वायुको पात्रवाक्य-विज्ञानमें Residual air नाम रखा गया है। (इसक सम्बन्धमें और नी कई बातें हैं वे इसक बाद विचार देंगे।) प्रथमसक बायवोय पदार्थका जो परिमाण निर्णय किया गया है,

इस मिश्रणके अनुसार कुम्फुसके सतर्हित वायुका परिमाण और परिवर्तन नहीं जाना जा सकता है। कुस कुसके सम्बन्धमें वायुकेपस्थ वायु कुम्फुसमें भाये शैतिक रक्तके संस्था और संघर्षमें किम रूपमें प्रवर्तित होता है, इसक विनिर्णयक विषये भायुनिक वैज्ञानिकोंने एक प्रकार कुम्फुस नल (Lung-catheter)की सृष्टि की है। यह नल मति नममाय है। यह बहुत आसामोसे वायु मलीम प्रवेश करा दिया जा सकता है। इसक साथ बहुत पतनी रबडीकी नली सुदो रहता है। कुम्फुस पर यह फुल आती है। यह छाटी वायु मलीमें प्रविष्ट करा कर इस यन्त्रके साहाय्यमें कुम्फुसक निम्न प्रवेशक वायुकायकी वायुकी मो इसके द्वारा बाहर लाई मय वृषन् कर परोक्षा की जा सकती है। इसा तरह क्योडर पविष्ट करामें आसकिपाम कई व्याघात उपस्थित नहीं होता। सुविध्यात सर्जन अव्यापक गाममोमें एक कुत्तेक कुम्फुसकी वायुका विश्लेषण किया था। इसमें मालूम हुआ था कि इसमें कार्बोनिक् हाइ अक्साइडका परिमाण था—सैकड़े १८। किन्तु प्रथमसका वायुमें ठोक इसी समय कार्बोनिक् हाइ अक्साइडका परिमाण था—सैकड़े २८ भागमात्र। भविमयनक परिमाणक सम्बन्धमें यह सिद्धांत हुआ है कि प्रथमसको वायुमें सैकड़े १६ भाग भविमयन रहनेस कुम्फुसक सम्बन्धरक्त भविमयनका परिमाण होगा—सैकड़े १० भागमात्र।

प्राक्काल्य शरीर-विषय माल्ख भायुनिक परिष्कृतोनि इस बात पर पूर्ण रूपन विचार किया है कि न्यूमैटिकस, (Pneumatics) और हाइड्रोस्टैटिकस (Hydrostatics) विज्ञानके नियमावलीमम जोबदेहके शोषितसंस्था और शोषित संघर्षसे बायवोय भविमयन और कार्बोनिक् हाइ अक्साइडका परिवर्तन होता है। पविष्टतमबर हकमलीमें अपने किजीभोलसो कामक सम्बन्धमें इसक सम्बन्धमें कुछ आमास दिया है। किन्तु इन समय मो इन सब विषयोंका सुमिद्योक्त नहीं हो सका है।

रफमें भविमयन ।

उम्मुक्त वायुमेंइसमें भविमयनका जो प्रचाय है, कुस कुसके वायुकोपस्थित भविमयनका प्रचाय उसको अपेक्षा कम है। किन्तु शैतिक रक्तमें भविमयनका जो प्रचाय

रहता है, वायुकोषके अक्सिजनका प्रचाप उसका अपेक्षा अधिकतर है। अतएव वायुकोषस्थ अक्सिजन शैरिक रक्तगणोंमें प्रवेश करता और रक्त हिमोग्लोबिन या रक्त कणोंमें मिल जाता है। इस मिले हुए पदार्थका अक्सि हिमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) नाम पड़ा है। ऐसा अवस्थामें रक्तके दूसरे पदार्थको (Plasma) अधिकतर अक्सिजन ग्रहण करनेकी सुविधा प्राप्त होती है। फिर दूसरे पक्षमें रक्तका प्लजमा पदार्थमें यदि अक्सिजनका प्रचाप अधिक हो, तो आर टिशुमें यदि कम हो, तो रक्तके प्लजमा पदार्थसे दैहिक टिशुमें अक्सिजन प्रचापित होता है। अक्सिजनरक्त प्लजमामें दैहिक रस (Lymph) रससे टिशुमें उपस्थित होता है। इस अवस्थामें अक्सि हिमोग्लोबिनसे अक्सिजन निकलने हो जाता है। इस तरह हिमोग्लोबिन अक्सिजनको तो फरमा मालिन और धिप हो जाता है।

रक्तमें कार्बोनिक एसिड।

देहकी जिम जगह वायवीय पदार्थका प्रचाप अधिकतर है, उसी जगह कार्बोनिक एसिड अधिक मात्रामें उत्पन्न होता है। दैहिक टिशुगणोंमें ही कार्बोनिक एसिड अधिक मात्रामें परिलक्षित होता है। यह टिशुमें पहले देहके रसमें (Lymph), वहांसे रक्त, वहांसे फुफ्फुस और वहांसे पृथक् हो वायुकोषमें उपस्थित हो कर प्रथम स्तरके साय कार्बोनिक एसिडके रूपमें बाहर निकलता है।

गोणितराजिका शोणितकणाय (Corpuscle) और प्लजमा पदार्थमें विभक्त करने पर शेषोक्त पदार्थमें ही कार्बोनिक एसिडका परिमाण अधिकतर दिखाई देता है। वायु निकालनेवाले किसी यन्त्रमें रक्त रखनेसे दिखाई देता है, कि उससे वायवीय वायुगणोंमें बुदबुदाकारमें बाहर आती है। इसमें किसी तरहका क्षाण प्रभाव एसिड द्रव्य मिलानेमें भी इससे फिर कार्बोनिक एसिड बाहर न हो। किन्तु प्लजमा पदार्थसे अधिकतर कार्बोनिक एसिड बाहर निकलता है। फिर भी इसमें प्रायः सैकड़ों ५ भाग कार्बोनिक एसिड रह जाता है। फस्फोरिक एसिडकी तरह तीक्ष्ण एसिड न मिलानेसे प्लजमासे निःशेषित रूपसे कार्बोनिक एसिड निर्मुक्त नहीं होता।

लेहिन रक्तकणा रक्तके प्लजमा पदार्थमें सम्मिश्रित करनेमें भी फस्फोरिक एसिडकी तरह कार्य करती है। अतएव इसका द्वारा भी प्लजमाका कार्बोनिक एसिड अंश बाहर हो सकता है। इसालिये कुछ लोगोंका कहना है, कि अक्सिहिमोग्लोबिनमें एसिडका घर्म है। एक सौ भाग शैरिकरक्तमें (Venous blood) 80 भाग कार्बोनिक एसिड है। पेशाब या मूत्रमें सैकड़ों ७ भाग कार्बोनिक एसिड दिखाई देता है।

स्वायन्दिय का विवरण।

प्राचीन पाश्चात्यचिकित्सा विज्ञानविद्व पण्डितोंका विश्वास है, कि नाक और मुँहमें वायुनलीकी राहसे वायु फुफ्फुसमें वायुकोषमें पहुँच जाती और द्रवित रक्तका शुद्ध कर देती है। फुफ्फुसमें रक्तका अपरिष्कृत पदार्थ अक्सिजनको महायतासे दूर हो जाता है। अतः फुफ्फुस ही तापोत्पादनकी एकमात्र स्थली (थैला) है। किन्तु इसके बाद वैज्ञानिक गवेषणामें प्रमाणित हुआ है, कि शैरिक रक्त फुफ्फुसमें प्रविष्ट होनेमें पहले भी इससे यथेष्ट परिमाणमें कार्बोनिक एसिड मिला रहता है। इससे नये अनुसन्धानका पथ फल गया। अनुसन्धितम् वैज्ञानिकोंने देखा, कि रक्तमें भी अक्सिजन या मृदुदहनक्रिया सम्भवती है। वे यह भी समझ गये हैं, कि देहके अन्यान्य स्थानोंके तापोंसे फुफ्फुसका ताप अधिक नहीं। वे सब देख कर उन्होंने सोचा, कि रक्तमें ही मृदु दहनक्रिया सम्भव होती है। देर न लगी, कि उनके अपनी भूल सूझ पड़ी। उन्होंने जब स्थिर किया है, कि समग्र देहकी धातु या टिशुमें ही यह मृदुदहनक्रिया (Oxydation) निरपन्न होती है। इन्होंने परीक्षा कर देखा है, कि रक्तके बिना भी जीवदेहमें यह क्रिया कुछ देर तक चल सकती है। एक मेढककी देहसे रक्त शोषण कर इसका धमनियोंमें यदि लवणजल भर दिया जाय और उसको विशुद्ध अक्सिजनके वायुमें रखा जाय, तो भी उसका दैहिकपरिष्करणक्रिया (Metabolism) कुछ देर तक अव्याहत रह सकती है। उसकी देहमें रक्त न होने पर भी अक्सिजन और कार्बोनिक एसिडके आदान और परित्याग प्रक्रियामें कुछ देर तक कोई भी व्याधान उपस्थित नहीं होता।

इसोक्रिये आधुनिक शरीररक्षण परिकल्पने मतसे केवल कुम्कुससंक्राम्य श्वासक्रिया एकमात्र श्वासक्रिया कह कर अभिहित नहीं होती। देहके भीतर प्रति मुहूर्त प्रति उपादान आधुनिकी प्रतिक्रियाओं को श्वासक्रिया कह रहे हैं, देह-मज्जित उस गूढ़ रहस्यको उद्घाटनके लिये पाश्चात्य परिकृत मानवदेहमें धामुक्रियाक सम्बन्धमें बहुत गवेषणा कर रहे हैं। यदि सच्ची देहमें इसी तरह श्वासक्रियाका उद्देश्य संसाधित न होता, तो वैनिक कार्य किसी तरह सुदुर्लभ रूपसे परिचालित होनेकी सम्भावना न थी। देहमें प्रति मुहूर्तमें इतना अधिक कार्बोनिज एसिड संचित होता है और अक्सिजनका इतना अधिक प्रयोजन होता है, कि क्वछ कुम्कुसीय श्वासक्रिया पर निर्भर करने पर किसी प्रकार भी वैनिक कार्य निरापेक्ष से निर्वाहित नहीं होता। सुतरां ऐसा नहीं, कि श्वास क्रिया कहलैसे केवल श्वासघनकी तांसवेशीकी क्रियाक प्रभावसे कुम्कुमक मनुष्यक और प्रसारण जलित बाहरी वायुका प्रवृत्त और कुम्कुमाय वायुको परिव्याग क्रिया मात्रको समझना होगा।

श्वासक्रियाकी सहा आधुनिक विज्ञानमें लूब थोडे अर्धमें व्यवहृत हो रही है, इससे पहले भी इसकी भावीकना की जा चुका है। समग्र देहव्यापिनी श्वासक्रिया या शरीर रिसपिरेशन (Tissue Respiration) क सम्बन्धमें विशेष आभास दे कर अब कुम्कुसीय श्वास क्रिया (Pulmonary Respiration)के सम्बन्धमें आलोचना को जाती है।

श्वासक्रिया क्रम।

मुकके भीतरके पुच्छेशीय क्यान फेरिक्स (Pharynx) नामसे प्रसिद्ध है। इसक साथ नाक भीर सुषका भी स योग है। सुतरां इन दोनों पथोंसे ही इसमें वायु प्रविष्ट होती रहती है। इसके निम्नभागमें ही ग्लेटिग रहता है। ग्लेटिग जिह्वाके निम्नभागमें अवस्थित है। ग्लेटिग फेरिक्सका ही निम्नभाग है। यहाँ वायुक जाँकपा पथ है। उसक सामने एक ढगाट रहता है। इसका नाम—ए०, पी० ग्लेटिग है। यह ठूढ़ परदा है। इसके लिये ही लैरिक्स (Larynx) या कलठनाली है। इसके लोथेका नाम ट्रेकिया है। ट्रेकिया उपासिधवत् पदार्थ

प्राप्त गठित है। यथा यह कठिन है। गल्लके रूपरफा कुछ अथ ट्रेकिया नामसे प्रसिद्ध है। इस ट्रेकियाके अधोभागमें ही वायुनाली या ब्रोङ्कस (Bronchus) है। ब्रोङ्कस ट्रेकियाकी एक शाखा है। ट्रेकियामें ही शाखाओं में विभक्त हो कर कुम्कुममें प्रवेश किया है। ये हमारे अन्तः उपशाकाओंमें भी विभक्त हैं। इस तरह छोटे छोटे उपशाका Bronchioles नामसे अभिहित हैं। ये सब छोटे छोटे उपशाकाये क्रमशः सूक्ष्म होते होते अन्तर्गमे इनफन्डीबुलाम (Infundibulum) नामक सूक्ष्म वायु प्रवाहिकामें परिणत हुई हैं। इसको सम्याई एक इञ्चके तीस भागका केवल एक भाग है। ये सब छोटी छोटी वायुप्रवाहिकाय कुम्कुममें बहुसंख्यक कोषोंमें विभक्त हुई हैं। ये सब कोष जाखबेगोली (alveoli) या बाए कोष कहलाते हैं। इन बाए कोषोंके साथ प्रपरिष्कृत श्रोणित-कैमिका समूह प्रनिष्ठ रूपसे संसृष्ट है। इन् विषयसे कुम्कुसीय घननाक साथ जो अपरिष्कृत शैरिक रक्तशिश कुम्कुमके निम्नतम कैमिकामें सञ्चल होती है। कार्बोनिज एसिड आदि सपुक्त इस रक्तशिशके साथ इन सब बाएकोषोंकी वायु सहज ही संसृष्ट होती है। ये शानो भीरसे वाएकोषोंकी बाएके साथ आदान प्रदान कार्य सम्पन्न करते हैं।

कुम्कुममें बाक्वीक पदार्थका अग्रत प्रवाह।

इस इनका इच्छेक कर चुक है, कि शोहित या श्राक श्रोणितरुजा अक्सिजन प्राप्त करनेके लिये प्रभावित रहती है। रक्तकणिकाकी भीर (Haemoglobin) अक्सिजन श्राकण हाता है। वायुकोषोंके भीर शैरिकरक्तसे पूर्ण कैमिकास्थित रक्तमें कार्बोनिज एसिडका मात्र अधिकतर है।

दूमरी भीर वायुकोषमें अक्सिजनका भाग अधिकतर है। वायुकोष पदार्थके प्रकापके नियमानुसार शैरिकरक्तमें अक्सिजन अधिक मात्रासे प्रविष्ट होगा है। इस समय शैरिक रक्तके अर्धसंप्राप्त पदार्थनिहित कार्बोनिज एसिड में परिणत होता है। रक्तक साथ भी कार्बोनिज एसिड मिच्छा रहता है। यह कार्बोनिज एसिड रक्त वाहिनोम वायुकोषमें प्रेरित होता है। अक्सिजन हिमोग्लोबिनके साथ सम्मिश्रित हो कर शोचित राशिका



समुज्ज्वल बना देता है तथा इनके कार्बोनिक् एसिडको माताको यथासम्भव हास कर देता है, सूक्ष्मतम यान्त्रिक पदार्थ जो वायुकोषमें प्रेरित होता है। इस तरह रक्त परिष्कृत हो फुफ्फुसाय गिराके पक्षसे हृत्पिण्डके बायें प्रकोष्ठमें उपस्थित होता है। चक्षुरी धमनाके पथमें सारे शरारमें संचालित होता है और देहका टीशु या मौलिक धातुसमूह भी अक्सिजनवाद्यन्त्र-रक्त स्रोतसे अपने अपने प्रयोजनानुसार अक्सिजन प्रदण और कार्बोनिक् एसिड परित्याग क्रिया करता है। इस तरह घमनीको जाखा और उपशापा, क्षुद्रतर जापा और क्षुद्रतम शाखा परिष्करण कर अन्तमें यह रक्त कैजिकाके संयोगमुखमें क्षुद्रतम, क्षुद्रतर, क्षुद्र, बृहत् और बृहत्तम गिरापथसे प्रणय करने करते हृत्पिण्डके दक्षिण पक्ष-संयुक्त दो बृहत् गिरामें पतित हो अन्तमें हृत्पिण्डके दाहने पक्षमें प्रवेश करता है। इस अवस्थामें इसमें अक्सिजनका अंश बहुत कम और कार्बोनिक् एसिडका भाग बहुत अधिक बढ़ता रहता है। हृत्पिण्डसे फिर प्राणम्वरूप अक्सिजन प्राप्तिके लिये और जीवन-सहायक कार्बोनिक् एसिड गैस परित्याग करनेके लिये यह रक्त-राशि अति व्याकुलतापूर्वक फुफ्फुसके वायुकोषमय त्वक्क मथलमें आ कर वायुके लिये मुंह फैलानी है। तुषारपातसे जीतार्त्त पथिक जैसे सौरकिरण पा कर नयजीवन प्राप्त करता है, ये सब शैरिक रक्त भी अक्सिजन स्पर्शसे जैसे ही समुज्ज्वल और प्रफुल्ल हो जाते हैं। इनका कालापन दूर होता है। कार्बोनिक् एसिडके प्रभावसे (इनके विपादमें गिरी हुई) विषण्ण देह अक्सिजन प्राप्त कर विस्पर्शसे विमुक्त होता है और प्रत्येक रक्तकणा यथार्थमें प्रफुल्ल (Fatter) और समुज्ज्वल हो उठती है।

अक्सिजनकी मिश्रता।

हम सबसे पहले कह चुके हैं, कि अक्सिजन रक्त कर्णिकासे (हिमोग्लोबिनसे) मिलते ही तुरन्त उससे गले लग कर मिश्रता कर लेता है। इससे मिल कर यह दूसरी एक मूर्त्ति धारण करनेकी चेष्टा करता है। मानो इसकी मिलनाकी इतिथी होगी ही नहीं। इस युगल मिलनमें मानो केवल सम्भोगगीत है; किन्तु

मथुराकी चिरहृद्यथित विद्योगिनिद्योका विपादसे भरा पद तान नही। किन्तु यह धारणा म्रममूलक है। अक्सिजन मिलके सङ्गमें मुखा होनेकी अपेक्षा स्वजातिकी बलवृद्धि करके ही अधिकतर मुग्नी होता है। हिमोग्लोबिनका अक्सिजन जब टीशुमें अक्सिजनका प्रचाप कम देवता है, तभी इस मिश्र हिमोग्लोबिनका साथ छोड कर टैडिक रमकी (Lymph) आनन्दतरङ्गमें बहता हुआ टीशुमें जा मिलता है। हिमोग्लोबिन तब इस चिरबञ्जल, अनन्त सुहृद् मित्रके विद्योगमें स्थान और विषाण्ण हो जाता है और इस मित्रको लो कर धीरे धीरे गिराके अन्धकारगर्भमें डूब जाता है।

त्वक्का साधक्रिया।

हम पहले ही कह आये हैं, कि दैहिक टीशु द्वारा भी श्वासक्रिया अच्छी तरह निर्वाहित होती है। फलतः जरा जांच करने पर मालूम होगा, कि हमारी सारी देह ही मानो मञ्चित कार्बोनिक्-परिहार और अक्सिजन-प्रदण करनेके निमित्त निरन्तर चेष्टा कर रही है। दिन रात हमारे देह राज्यमें इस आदान-प्रदानका विपुल आयोग और महान् व्ययमाय चल रहा है, जिसे हम देवने भी नहीं। भीतरी उगादान और फुफ्फुसवन्त—इन दोनोंकी बात छोड देने पर भी दिपाई देता है, कि हमारी देहके बाहरी त्वक्काजी भी इस व्यापारमें सदा व्यसन है। त्वक्में भी वयेष्ट कैजिका नाडी विद्यमान है। वायुकोषमें जिस तरह परिब्रलियम नामकी चहार-दीवारी है। त्वक्में उसी जातिकी भिल्ली बत्तेमान है। किन्तु त्वक्की भिल्ली फुफ्फुसकी भिल्लीकी अपेक्षा अधिकतर मोटी है। फुफ्फुसकी भिल्ली बहुत पतली है। सुतरां फुफ्फुसकी अपेक्षा चर्ममें बहुत जल्द स्पर्श करने पर भी त्वक्की रक्तधारामें वायु देहसे पहुँचती है। इस कारण फुफ्फुस द्वारा जितने समयमें ३८ भाग कार्बोनिक् एसिड बहिष्कृत होता है, त्वक् द्वारा उतने ही समयमें एक भाग केवल कार्बोनिक् एसिड बाहर निकलता है। किन्तु जलीय वाष्प निकलनेका चौड़ा पथ त्वक् ही है। फुफ्फुससे जिस औसतसे जलायवाष्प बाहर निकलता है, त्वक्के जलीय वाष्पके निकलनेका औसत उससे दुगुना है। साधारणतः त्वक्पथसे प्रायः

एक सेरके अन्धाज्जलीय वायु निकलता है। देहका वायवतन, उदात्त और वायुको शीतानताको न्यूनाधिकताक अनुसार जलोप वायुके निरुधनका भी तारतम्य विचार होता है।

**फुफ्फुसका वायु-आवन।**

प्रतिश्वासमें प्रायः पौत्र मी घन सखिमिटर वायु फुफ्फुसमें जाता है और फुफ्फुसके मध्यस्थित वृत्ति वायुसे मिलती है। इससे कार्बोमिक पमिबका माग अधिक हो जाता है। प्रश्वासके द्वारा वृत्त वायुका सब अंश बाहर नहीं निकल पाता। अतएव प्रत्येक वायुके निश्वासमें वायु फुफ्फुस मध्यस्थित वृत्ति वायुके दश भागके एक भागके साथ मिल जाती है। अतएव आठ से दश बार तक श्वासक्रिया करने पर फुफ्फुसकी वायु विशेषीण है। यदा हमारे योगशास्त्रके प्राणायाम प्रणालीके अन्त सुक्ष्मतरंगों पर सुक्ष्म रूपसे विचारने की शक्यता है। प्राणायाम प्रणालीमें बहुतेरे सुक्ष्मतरंग निहित हैं।

**वायुके वायुकी कमी और उरका अत्युप कथ।**

मनुष्य वायुके समुद्रगर्भमें बसता है। हमारे देहके प्रत्येक अंगस्थ स्थानके हिस्सावसे प्रायः साढ़े सात सेर वायुमण्डलका वायु (दाबाय) (Pressure) है। अतः सारे देह पर वायुमण्डलके वायुका परिमाण ३० से ४० हजार पाउण्ड है। एक पाउण्ड वायु सेरका होता है। इसका हम सींग उर भा अनुभव नहीं करते, कि हमारे चारों ओर इतना वायुका वायु है। मछली जैसे जलगर्भ में वास कर जलके भारकी परबाह नहीं करती, कुप से जलसे मरा पड़ा भी जलके समय जैसे जलक नीतरके घड़ेका भार मासूम नहीं होता, किन्तु जलक बाहर जब पड़ा कीक जाता है, तब घड़ेमें मरे जलका भार मासूम होता है वैसे ही हम वायुके समुद्रमें विषरण कर रह हैं और वायुके भारकी उपलब्धि नहीं कर सकत। वायु मण्डलीका यह वायु हमारे देहके द्विप अन्त्यासबजता प्रयोजनीय हो गया है। प्रस्तुत इस वायुकी कमी होने पर हम लोगोंको अनुसंधिषा होती है।

वायुमण्डलका प्रभाव कम होने पर मानवदेहकी केशिकाओं और श्लेष्मिक चिह्नोंमें रक्षाधिक्य हो जाता

है। इससे पर्माधिक्य, रक्तशाय और श्लेष्मास्रावण हो सकते हैं।

(२) केशिकाओंके कार्य शैथिल्य निरूपण इष्ट स्थान, घनश्वास और श्वासरुद्ध हो सकता है।

(३) वायुका वायु कम होने पर जलमें अम्लजनन की मात्रा भी कम हो जायेगी। अल्प परिमित अम्लजन प्रद्वय कर देहको यथार्थ कार्बोमिक एसिड बाहर करनेकी पूर्ण सुविधा नहीं मिलती। इससे देहमें कार्बोमिक एसिड विय मश्रित होता है और हममें बहुत तेरे अम्लजन होते हैं।

(४) अम्लजननको कमोसे मेगस स्नायुका मूलदेश उच्छ्रित होता है और इससे विबमिया और वमन उपस्थित होता है।

(५) वायुमण्डलके हासमें वैदिककालसे शोणित प्रवाह बाहरकी ओर आकृष्ट होता है, मस्तिष्कका रक्त प्रवाह-हास होता है, इसके फलसे सूक्ष्म होत्र वृष आदि नाना प्रकारके दुर्लक्षण विचार होते हैं।

**वायुका वायुधिन्य और अत्युप कथ।**

वायुके वायुकी अधिकतासे भी बहुत अनुपकण होता है। उच्च स्थानमें जैसे वायुका वायु कम हो जाता है। भूगर्भमें, समुद्र नीचे कानों या गहरे कुप में वायु का वायुधिन्य होता है। इन सब स्थानोंमें प्रति वर्गद्वय परिमाण स्थानमें वायुमण्डलकी ३०१० पाउण्ड वायु हो सकता है। वायुधिन्यसे एक रक्तमूल्य होता है। पसोता बन्व होता, श्वासक्रिया कम हो जाती, निश्वास सहज और प्रश्वास त्याग करनेमें क्लेश होता है। निश्वास और प्रश्वासके विरामका समय सुदीर्घ हो जाता है। फुफ्फुसका वायवतन बहुत, पेशाबकी वृत्ति और हृत्पिण्ड की धीरे कार्य करने लगता है। वायुका वायुधिन्यमय स्थानमें वास करना जिनका अन्धास है, उनमें सहसा ऊपर उठ जाने पर उनकी देहके एकमे एक एक एक वायु उपस्थित होता है। नाक मु हल रक्तशाय हो सकता है। स्नायुमण्डलकी रक्तव्यताबशातः पसारात (सर्ज्या) रोग भी उपस्थित हो सकता है अम्लजनन हमारे लिये बहुत ही हितकर है। किन्तु परिमाणाधिक्य होने पर इससे भी हमारा जीवन नष्ट हो जाता है। अत्यन्त वायु

प्राप्त घनीभूत अक्सिजनके सैकड़ों भाग रक्तमें जोषण होने पर देहमें धनुष्ट्रका तरह रोग उत्पन्न होता है और उसमें मृत्यु भी हो जाती है ।

देहमें कार्बोनिक् एमिडके बढ़नेके कारण—

( १ ) पेजी क्रिया—मांस पेजीके अधिक सञ्चालित होने पर कार्बोनिक् एमिडकी वृद्धि होती है ।

( २ ) श्वेतसार जालीय पदार्थ अधिक परिमाणमें खोजन करने पर प्रश्वामकी अधिक मात्रामें वृद्धि होती है ।

( ३ ) तीस वर्षकी उम्र तक कार्बोनिक् एमिडकी मात्रा बढ़ती है । पचास वर्षकी अवस्थाके बाद क्रमशः इसकी मात्रा कम होने लगता है । स्त्रियोंका आर्त्तव-शोषण कुछ कम अर्थात् पैतार्त्स वर्षकी अवस्थामें कार्बोनिक् एमिडका परिमाण ह्रास होने लगता है । पुत्रकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रश्वाममें कार्बोनिक् एमिड व्यत्ययः कम रहता है ।

( ४ ) ज्वररोगके समय प्रश्वाममें कार्बोनिक् एमिडकी मात्रा बढ़ जाती है ।

( ५ ) शैत्यमें श्वाम-क्रियाकी वृद्धिके साथ साथ कार्बोनिक् एमिड भी अधिक परिमाणमें बाहर निकलता है ।

( ६ ) दिनमें प्रचुर परिमाणमें कार्बोनिक् एमिड बाहर निकलता है । रातको क्रमशः कम होता है । अन्तमें आधी रातकी इसकी मात्रा बिलकुल कम हो जाती है ।

( ७ ) बारबार प्रश्वामके समय प्रत्येक प्रश्वाममें कार्बोनिक् एमिडकी मात्रा कम रहने पर भी यह श्वास अधिक मात्रामें निकलता है । इसमें ऐसा न समझना होगा, कि दोशु पदार्थमें अधिक परिमाणसे यह श्वास उत्पन्न होता है । वास्तविक बात यह है, कि प्रश्वाम जितना घन घन निकलता है, उसके साथ प्रत्येक बार उतना ही कार्बोनिक् एमिड निकलता है । सुतरां मूल बात यह है, कि मात्राकी अधिकता होती है ।

( ८ ) आहारके आध्र घण्टे बाद कार्बोनिक् एमिडकी मात्रा बढ़ती है । यह वृद्धि केवल आहार द्रव्यके ग्रहण-जनित होती है ।

वायवीय उपादानका व्यापारिक नियम यह है, कि उन्मुक्त अवस्थामें वे इनके परिमाणके अनुपातका साम्यसंरक्षण करने रहते हैं । मान लीजिये, कि चारो-मिटरमें पारटके द्वारा वायुका चाप ७६० मिलिमिटर है । वायुनाजिमें अक्सिजनका परिमाण एक पञ्चमांग है । इसके प्रचापका अनुपात भी उक्त ७६० मिलिमिटर परिमाणका एक पञ्चमांग है, अविजिशांग प्रचाप नाइट्रोजन जनित है ।

फुफ्फुसमें वायवीय उपादानके अनुपातका साम्यसंरक्षण ।

उन्मुक्त वायुमें कार्बोनिक् एमिडका प्रचाप बहुत कम है । किन्तु फुफ्फुसमें कार्बोनिक् एमिडकी मात्रा अधिक है । प्रागुक्त प्राकृतिक नियमके अनुसार अक्सिजन वायुनाजिमें अनुपातिक साम्यसंरक्षणके निमित्त सर्वत्रही प्रस्तुत रहता है । जहां अक्सिजनकी मात्रा कम रहती है, दूसरे स्थानोंसे अक्सिजन अपने स्वजातियोंकी अनुपातिक मात्रा संरक्षण करनेके लिये उन्मी और दौड़ता है और बाहरी वायु फुफ्फुसके भीतर प्रवेश कर अक्सिजनका स्थानीय अभाव पूर्ण कर देती है । यह है प्रकृतिका एक महामद्दल विधान ।

अक्सिजन और कार्बोनिक् टाइ अक्सिडके २४ घण्टेके बाद ।

प्रातःवयस्क व्यक्ति २४ घण्टेमें श्वासक्रियामें दश हजार ग्रेन परिमित अक्सिजन ग्रहण करता है । २४ घण्टेके परित्यक्त कार्बोनिक् एमिडमें ३३०० ग्रेन या १८ तोला अद्धार रहता है । देहमें प्रति २४ घण्टेमें प्रायः पचास १८ तोला अद्धार कार्बोनिक् एमिडके आकारमें निकल जाता है । इस तरह फुफ्फुसके पथमें जलीय वाष्पाकारमें जो जल बाहर निकलता है, उसका परिमाण भी नाहके चार छटाकै है । वयस, भ्रूवायुका प्रचाप और स्त्री पुढ्याःद मेडमें इस परिमाणमें न्यूनाधिक हुआ करता है । अल्पवयस्क व्यक्तिकी देहमें जिस परिमाणसे अक्सिजन गृहीत होता है, उसकी तुलनामें बहुत कम परिमाणसे कार्बोनिक् एमिड बाहर निकलता है । बालक बालिकाओंकी अपेक्षा अधिक मात्रामें कार्बोनिक् डाइ-अक्साइड परित्याग करते हैं । वहिर्वायुकी उष्णता हासनियन्धनसे देहका ताप कम होने पर कार्बोनिक् डाइ-अक्साइडकी मात्रा भी कम हो जाती है । बाहरके तापकी

दृष्टिसे देहका उष्णता बढ़ जाने पर इस गैसकी मात्रा भी बढ़ जाती है। फिर दूसरी ओर बाहरकी वायु जरा भी शीतल हो और उसमें यदि वैदिक उष्णतापत्रा ह्रास न हो, तो अधिक मात्रामें कार्बोनिक् एसिड परिस्पष्ट होता है। वायुमें सैकड़ों ०८ भाग कार्बोनिक् एसिड उत्पन्न होने पर यह असुखकर हो जाता है और सैकड़ों एक भाग कार्बोनिक् एसिडमें यह विषयक हो उठता है।

राशिक्रियामें वायवीय पदार्थोंका निम्नत्व ।

शरीर पदार्थोंके साथ वायवीय पदार्थोंका समिन्धन होने पर कई छोटी छोटी क्रियायें विचार्य देने लगती हैं। यहाँ फुल्फुसीय रक्तमें आकारगीय वायुके संस्पर्शी और आश्रयके फलसे वायवीय पदार्थों में परस्पर आदान-प्रदान क्रियामें जो परिवर्तन होता है उसका समग्रणमें बहुत थोड़ा आलोचना करते हैं। हमारे रक्तके साथ अधिक जन और कार्बोनिक्-डाइ-अक्साइडका जो सम्बन्ध है सबसे पहले उसका उल्लेख किया गया है। यहाँ रक्तके हिमोग्लोबिनमें अधिकजन आइए होता है। दूसरी ओर प्रथमा पदार्थके (NaHCO<sub>3</sub>) कार्बोन अक्साइडका बहुत थोड़ा रासायनिक सम्बन्ध है। और यह सम्बन्ध जो बहुत शिथिल है। वायुमध्य प्राप्त रक्त रथ कर उसमें जरा उष्णता देने पर ही वायवीय पदार्थ पृथक् हो जाते हैं। इस समय फुल्फुसके भीतर एकका कुछ परिवर्तन सापित होता है या नहीं इसके सम्बन्धमें जरा आलोचना करके देखा जाये।

फुल्फुसके रक्षाघारमें अग्ररिष्ठत रक्त भी प्रवाहित होता है। इन सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर रक्षाघारके दोनों पारर्षीमें ही वायुकोष (Alveolar cells) दिखाई देता है। रक्षाघारका रक्त कार्बोनिक् एसिडसे पूर्ण है। फिर वायुकोषकी वायुमें अधिकजनका परिमाण अधिक है। कार्बोनिक् एसिड रक्तके साथ मिला हुआ रहता है। प्रवाप और उष्णताके सिवा इनसे उच्च श्वासके बिन्दुप्र होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं। इन बातोंको आलोचना करनेके पहले तरल पदार्थोंके साथ गैसका जो सम्बन्ध है, उसके बारेमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। कुछ वायुमें विद्युत् जल रक्त निर्दिष्ट परिमाणसे हाप देने पर निर्दिष्ट परिमाणसे वायु जलमें

मिल जायगी फिर वायुके अर्ध आयतन जलमें यदि निर्दिष्ट परिमाणसे वायु सङ्कुचित की जाय, तो जो जल उसी परिमाणसे वायुकी ही आत्ममात्र करेगा। वायुका आयतन सीगुना अधिक होनेसे वह भी इस निर्दिष्ट परिमाणसे अधिक जलमें मिल न सकेगा।

शैरिक रक्तवायुकोषक पार्श्वस्थ कीशिकामें पहुँचनेके समय उसका हिमोग्लोबिनमें अधिकजन नहा रहता। इसका कार्बोन डाइ अक्साइड अधिक मात्रामें विद्यमान रहता है। पूर्वकी यन्त्रोंके गन्धोवादान या टीगुसे शैरिक रक्त कार्बोन-डाइ अक्साइडमें प्रवेश कर जाता है। इधर वायुकोषके प्राचोरके साथ इस अग्ररिष्ठत रक्षाघारके प्राचोरमें सटे रहनेसे वायुकोषके अधिकजन प्रणयनमें इनकी वधेष्ट सुविधा होती है। वायुकोषकी वायुमें सैकड़ों वरा भाग अधिकजन रहता है। कुल क फुल्फुसकी पटीला कर देखा गया है, कि उसमें सैकड़ों २८ भाग कार्बोन डाइ अक्साइड रहता है। इस समय प्रश्नासवायुमें कार्बोन डाइ अक्साइडका परिमाण सैकड़ों २८ भाग परिलक्षित होता है। डाल्टेनने (Dalton) तरल और वायवीय पदार्थोंके सघात सम्बन्धमें त्रिस नियमका आविष्कार किया है, उसके अनुसार अनुमान किया जा सकता है, कि इस अवस्थामें अधिक जन रक्तमें प्रविष्ट होगा और उसके प्रवापसे कार्बोन डाइ अक्साइड वायुकोषमें जा उपस्थित होगा। हम और भी इस पर सूक्ष्मरूपमें विचार कर रहे हैं। फुल्फुसमें सैकड़ों १० भाग अधिकजन रहेगा, अधिकजनके प्रवाप का परिमाण ७६ मिमिमीटर है। पनीस मिमीमीटर प्रवापमें ही हिमोग्लोबिनमें अधिकजन पृथक् हो जाता है। उसकी तुलनामें अधिकजनका चाप यहाँ अत्यन्त अधिक है। किन्तु शैरिक रक्तका हिमोग्लोबिन स्वभावता ही अधिकजनवहीन (Reduced) है। अब स्पष्टतः अनुमान किया जा सकता है, कि इस अवस्थामें दृष्टि सुचित मध्यमिकी तरह या सांनिपातिक उपरसे सुचित रोगोंके अर्थ वापके तरह रक्तके हिमोग्लोबिन अधिकजनको आत्ममात्र करनेकी चेष्टा करेगा ही करेगा। किन्तु सधु वायु निम्नतामें सुहित होने पर बात लक्षण है। उसमें अधिकजन कम रहता है। फिर फुल्फुसमें इसकी

मात्रा और भी कम हो जाती है। इस अवस्थामें व्यक्ति-जनका प्रवेशलाभ असम्भव हो जाता है। कार्बोन डाइ-अक्साइडका विनिमय नियमके सम्बन्धमें आज भी कोई अच्छा सिद्धान्त नहीं हुआ है। अबमें पहले फुल्फुसीय कैथोडर द्वारा क्लेके फुल्फुसमें कार्बोन डाइ-अक्साइडके परिमाणकी परीक्षाके सम्बन्धमें जो लिखा गया है, उससे मालूम हुआ है, कि क्लेके फुल्फुसकी वायुमें सैकड़ों ३८ भाग कार्बोन डाइ-अक्साइड विद्यमान रहता है। फिर इथर हर्नपिण्डके दक्षिण पक्षके अपरिष्कृत रक्तमें स. कार्बोन अक्साइडका परिमाण प्रायः सैकड़ों तीस भाग है। जब तक वायुकोषका कार्बोन-डाइ-अक्साइडके परिमाणके साथ फुल्फुसीय रक्ताधारका कार्बोन-डाइ-अक्साइडमें पूर्ण समता नहीं होती, तब तक रक्ताधारसे कार्बोन डाइ-अक्साइड वायुकोषमें प्रविष्ट हो नसकती है। फलतः इसके सम्बन्धमें आज भी विशुद्ध सिद्धान्त रियर नहीं हुआ है। अध्यापक गायजी (Arthur Gungie M D'F R S.)का अनुमान है, कि वायुकोषका प्राचीर सूक्ष्मादपि सधमतम होने पर भी कार्बोन-डाइ-अक्साइड क्षरण करनेमें सम्भवतः उसकी यथेष्ट क्षमता है। वायुकोषके प्राचीरकी इस जीव-शक्तिके (Vital power) स्वीकार न करनेसे केवल डाल्टनके उद्भावित प्राकृत नियमके ऊपर निर्भर करने पर फुल्फुसके कार्बोन डाइ-अक्साइडकी विनिमय धारणाकी विशेष वास्तुविधा हो सकती है। और तो क्या इसके द्वारा इस उद्भक्तिका आज भी सङ्ख्यात्मक स्थापन करना असम्भव हो उठता है।

श्वास-क्रियाका प्रकार।

फुल्फुसमें वायुग्रहण करनेकी क्रिया—निश्वास नामसे अभिहित और फुल्फुसमें वायु छोड़नेको प्रश्वास कहते हैं। नाक या मुँह—ये दोनों ही वायुग्रहण और छोड़नेके पथ हैं। इनमें एकके रुक जाने पर भी दूसरेसे श्वासकी क्रिया चलती रहती है। शरीर-विचित्र-शास्त्रविद्व पण्डितोंने वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार फुल्फुस सम्बन्धीय वायुका प्रकारभेद किया है। फुल्फुसीय वायुके परिमाणभेदसे ही यह प्रकारभेद निर्णीत हुआ है।

प्रातःवयस्क लोगोंके फुल्फुसमें चौबीसो घण्टे जो वायु

आती जाती है, उसकी समष्टि हेचिम साइवक मन्से ६ लाख ८० हजार घनइञ्च है। मारनेटके मन्से ४ लाख घनइञ्च है। अमेरिकाके डॉक्टर हेयरके मन्से ६ लाख छियामी हजार है। किन्तु श्रमने इसका परिमाण दुगुना हो सकता है। हेयर साहबका कहना है, कि श्रम-जीवियोंके फुल्फुसमें २४ घण्टेमें ६५,६६८३६० घनइञ्च वायु आती जाती है।

निश्वास-प्रकार।

निश्वास प्रश्वास या श्वासाक्रिया जिस तरह सम्पन्न होती है, वक्षप्राचीर जिस तरह विलोडित होता है, किम-किम ग्रासपेगीके प्रभासमें यह कार्य होता है,— इन सबका वृत्तान्त "श्वासाक्रिया" शब्दमें विस्तारित रूपसे दिया गया है। यहां जिन क्रियाओंमें वायुका संश्रवण है, वही लिखना जायेगा। प्रश्वासकी अपेक्षा निश्वास अल्पकाल स्थायी है। निश्वास और प्रश्वासमें जरा-सा विराम है। यह विराम बहुत अनपेक्षित स्थायी है। किसी किसी व्यक्तिमें आज भी यह विराम अनुभूत नहीं होता। मुँह बन्द रहने पर नाधारण नाकसे ही यह वायु आती जाती है। नाकके दोनों छिद्रोंसे एक साथ ही वायु नहीं बहती। पवन-विजय खरोटपमें इसके सम्बन्धमें विशेष आलोचना दिखाई देती है। योगशास्त्रके किमी-किमी ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख है। नासारन्ध्रमें जो प्रश्वास वायु निकलती है, उसका विशेष नियम है। किसी निर्दिष्ट समय तक दाहने और निर्दिष्ट समय तक बायें नाकसे प्रश्वास वायु प्रवाहित होती रहती है। "स्वरोदय" शब्दमें इसके सम्बन्धमें चिन्तारपूर्वक आलोचना देखना उचित है। वक्ष प्राचीरकी वायुके नापनेके लिये एक तरहके एक यन्त्रका आविष्कार हुआ है, इसका नाम थोराकोमिटर (Thoracomete) या छेथोमिटर (Stethometer) वक्षप्राचीर विलोडन (Movement) नापनेके लिये भी एक प्रकारका एक यन्त्र निकला है। इसे छेथोग्राफ (Stethograph) न्यूमोग्राफ (Pneumograph) कहते हैं।

श्वास वायुकी सख्या।

विश्रामके समय प्रति मिनट १६ से २४ बार श्वास वायु प्रवाहित होती है। हृत्स्पन्दनके साथ इसका एक

आनुपातिक सम्बन्ध है। एक बार श्वासक्रियाके समयमें बार बार हृत्स्पन्दन होता है। श्वासवायुकी गतिकी समता सदा स्थिर नहीं रहती। वायुको छोटेछोटेसे (Outlet) इसका पत्र नियम दिखलता है। उगका करता है—

वर्ग	मिटर	बार
१ वर्षकी उम्रमें	१ मिमटमें	४४
५ " "	" "	२६
१५ से २० तक	" "	२०
२० से ३० तक	" "	१६
३० से ५० तक	" "	१८१

- (१) परिभ्रमसे श्वासवायुक्रिया घन घन होती है।
- (२) तापकी वृद्धि होने पर मो श्वासवायुकी क्रिया घन घन होती है।

(३) बार्ट (Bert) ने प्रमाणित किया है कि घू पायुका प्रताप जितना बढ़ेगा, श्वासक्रियाका घुलन उतना ही कम होगा। किन्तु इससे निद्रवासकी घमरीरता (Depth) बढ़ जायगी।

(४) भूय उगते ही श्वासक्रियाकी कमी ही जाती है। मोहन करने समय और करनेके बाद प्रायः एक घण्टा तक श्वासक्रिया बढ़ती है। इसके बाद यह घटती रहती है। मोहन न करनेसे श्वासक्रियाकी वृद्धि नहीं होती। श्वासवायुकी गति बहुत थोड़े समयक निये स्वेष्मनुसार मात्रा पधारसे प्रपलित ही जा सकती है।

अन्तराशुके विना वायवीय श्वासके निम्नवत्का पत्र।

जिस वायुमें अधिकमत्रका अभाव है, वैसी वायुके नियेषणसे श्वासाश्रय होता है। कार्बोनिक पत्रिककी मात्रा बढ़ने पर यह बिपण्य क्रिया करता है। इससे मायाशयता मादकता उपपन्न दिवकी क्रिया प्रकाशित होती है। किन्तु अधिकमत्रका अभाव न रहने पर इनके द्वारा श्वासरोध हो सकता है। किन्तु कार्बोनिक अम्लना इह मयदुर विप है। कोषलेक गैसमें यह विप प्रचुर परिमाण दिखार देता है। जिस घटमें वायु अमीका पत्र नहीं रहता द्वार वा जपाटाई रन् रहती है, पेश घटोंमें रहनेवालीकी कायलेक घु यमें मिल कर यह बिप श्रयण

बिपण्य उपस्थित करता है। यह विप श्रयणें घुम कर रक्तके हिमोग्लोबिनमें मिले अधिकमत्रको चर कर जाता है। घुलन अधिकमत्रका अभावके कारण श्वािक्रियाके निये विषम विपलित लक्ष्य हो जाती है। एक ओर कार्बोनिक पत्रिककी वृद्धि दूसरी ओर अधिकमत्रकी कमी—ये दोनों श्वािक्रियामें घोरतर प्रतर्प इत्यादन कर जीवनशक्ति को विताहित कर देती है।

वायुमें विशेष परिमाणसे नाइट्रोजन वलमान रहता है। इस नाइट्रोजनका अभाव होने पर यदि हाइड्रोजनसे इस अभावकी पूर्तिकी जाये और उसमें यदि अधिकमत्र घूरी मात्रामें मौजूद हो तो उसके द्वारा मो श्वािक्रिया निर्वाहित हो सकता है। सलफरिटेड-हाइड्रोजन अहित कर पर्याप्त है। इससे रक्तसंगोषण क्रियामें व्याघात उपस्थित होता है। नाइट्राम अम्लनाइड मयदुर मायक विप है। अधिक मात्रामें कार्बोनिक आइ अम्लनाइड मय फ्यूरम मीर अम्लान्य पत्रिक धाप्य, श्वास्-क्रिया गियाइ के निये एकाल अनुपयोगी है। श्वास क्रियाक सम्बन्धमें अम्लान्य विषय प्रशाम क्रियामें श्रुती।

स्वास्थ्य मीर वायु।

स्वास्थ्यके साथ वायुका श्रिता पत्रिक सम्बन्ध है, और किसी वस्तुक साथ वायुका पैसा सम्बन्ध दिखार नहीं देता। जीवनरक्षाक सिप वायु चितता मायशयनीय है, इसका परिचय हम पहले ही श्रुत हैं। इन वायुके वृषित होने पर हमने मो अनुपकार होता है, उसका अनुभव सहज ही होता है।

वायु वृषित होनेका फल्य।

कई कार्योंमें वायु वृषित हो सकता है। वायवीय उपादानोंमें कार्बोनिक अम्लनाइड, अम्लनाय वायु, मायो निवा, सलफरिटेड, हाइड्रोजन आदिक अधिक मात्रमें मिल रहने पर वायु स्वास्थ्यक निये एकाल अनुपयोगी हो जाती है। प्रत्यासमें हम मो वायु छोडन ही श्रयणें वायु रानि घुलनर क्लस कार्बोनिक आइ अम्लनाइड द्वारा वृषित हो जाती है। स्वाभाविक वायुरागिमें लीरुके १०००० भागमें ४ भाग मात्र कार्बोनिक पत्रिक विद्यमान रहता है। किन्तु प्रयागमत्यक वायुमें कार्बोनिक पत्रिकका परिमाण १०००० भागम प्रायः तीन या न बार मो

भाग है। इस तरह प्राणिजगत् नित्य वायुराशि की कार्बोनिक् एसिड द्वारा दूषित कर देता है। किन्तु प्रकृतिके सुन्दर विधानसे उद्भिद्जगत् इन् विषयन्तु वायवीय पदार्थको अपने कार्योंमें व्यवहृत कर वायुराशिके विषयके भारसे मुक्त कर देता तथा उसे निमल बना देता है। अबसे पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है, कि कार्बोनिक् एसिडमय वायु निषेवणसे क्या अपकार होता है।

प्रश्वामसे परित्यक्त तरह-तरहके यान्त्रिक पदार्थ (Organic substance) द्वारा वायुराशि दूषित हो जाती है। विशुद्ध कार्बोनिक् एसिडको अपेक्षा प्रश्वाम त्यक्त कार्बोनिक् एसिड अधिक अपकारण है। क्योंकि उसमें यान्त्रिक पदार्थ मिला रहता है। फलरुत्तेकी काली काष्ठरोकी घटना यदि सत्य हो, तो कहना होगा कि उन आठमियोंका मृत्युका एकमात्र कारण वन्द कोठरीमें बहुतेरे आठमियोंके प्रश्वाम परित्यक्त कार्बोनिक् एसिडमय वायुका ग्रहण ही है। आर्ट्रिजिज युद्धके अन्तमें जिन ३०० कैदियोंमें २६० कैदियोंकी मृत्यु हो गई थी, वह भी इसी कारण हुई थी। ऐसी कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता है। फलतः प्रश्वाम परित्यक्त वायु मधुकर विषमय पदार्थ है, इस बातका ध्यान समीको रखना चाहिये। किसी घरमें यह वायु मश्रित हो, तो वह घर दुर्गन्धमय हो जाता है। यदि उस घरके लोगोंको उम्र दुर्गन्धका अनुभव न हो, तो न सही, किन्तु बाहरसे आये दूसरे आठमीको उस दुर्गन्धका अनुभव भी हो जाता है। वन्द घरमें बहुतेरे मनुष्योंका एकत्र अचस्थान बडा हो अहितकर है। सिवा इसके कार्बोन-अक्साइड, कार्बोन डाइ-सल्फाइड-आमोनियम सल्फाइड, नाइट्रिक और नाइट्रिक एसिड, धुएँ का नील, धूल, एपिथेलियामकोष, उद्भिद्सूत्र, उल, रेशमसूत्रय वालूकणा चायकी धूलि, लोहरूणा और नाना प्रकारके जोवाणुओं द्वारा वायु दूषित होता है। दहनक्रिया, प्रश्वाम, पयः-प्रणालीका वाष्पोद्गम, वाणिज्यके ढव्यादिकी आवर्जना आदि उक्त सब प्रकारोंसे वायुके दूषित होनेका मुख्य कारण है।

शहरकी वायुके दूषित होनेके कारण।

कलकारखानेका धुआँ और आवर्जना, वाणिज्य पदार्थका

आवर्जना, तम्बाकूका धुआँ, पत्रन और उत्सेचन-क्रिया (Putrefaction and Fermentation) वस्तुयोंकी विशुद्धता। आवर्जना और मैलागाड़ी, मिट्टीसे भर दिये गये तालाबके ऊपरी भूमिसे विषवायुका निकलना, पैखाना, पयः-प्रणालिया मोरीकी विशुद्धता, गोजाला (गोसार), ग्वाल-पाडा, पशुविषयस्थान, बाजार, मेहतरोका डिपो, गोम्स्थान जलीयभूमि, कारखाना, ( जैसे मोडेके कारखानेसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड, ताप्रेके कारखानेसे मलफ्यूरिक, और मलफ्यूरम एसिड और आर्सेनिकता धुआँ, ईंटोंके पत्ताचे और मोमेण्टके कारखानोंमें कार्बोन मन्फसाइड वाष्प, शिरोप और अस्त्रि-गद्दारके कारखाने और गोसार से प्रचुर परिमाणसे यान्त्रिक अरगैनिक् (Organic) पदार्थ, रबडके कारखानेसे कार्बोन-डाइ-सल्फाइड प्रभृति नाना प्रकारकी विषमय वायु निकला करती है।) जामुक संग्रह, मलिनवस्त्रसंग्रह समूहके कारखाने और ध्वजमाय, वस्त्र आदिके रंगनेके घर, गिल्टों करनेके कारखाने, राज पथकी धूलि आदि कारणोंसे शहरकी वायु दूषित होती रहती है। इसके बाद रोगजीवाणुओं (pathogenic germs) से वायुके दूषित होनेका सदा डर बना रहता है। शहरके गेमाँके प्रशासने भी वायु दूषित होती रहती है। इन सब कारणोंसे वायु दूषित होती और उसी वायुके निषेवणसे नाना प्रकारके रोग देहमें उत्पन्न हो जानेके कारण शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। और तो क्या इस दूषित वायुसे मधुप्रमाणनाशक रोग भी उत्पन्न होने हैं। वायुमें दोदुल्यमान कई तरहके रोगोत्पाटक हजारों पदार्थ भरे पड़े हैं। उन सब पदार्थोंको नेत्रोंसे न देखने पर भी हम इनके प्रभावसे नाना तरहके खाँसीके रोगोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं। प्रत्येक गृहस्थको इस बातका ध्यान रखना चाहिये, जिससे इन सब दूषित पदार्थोंसे वायुराशि दूषित न होने पाये।

जलीय वायु।

वायुमें और भी एक पदार्थ दिवाई देता है—उसका नाम है जलीयवाष्प। वायुमें स्थान और जलभेदसे अल्पाधिक परिमाणसे जलीयवाष्प मिला रहता है। सूर्योत्तापसे जल वाष्परूपमें परिणत होता है। यह वायुराशिमें मिला रहता है।

जलोय वायुका प्रमाय ।

डाक्टर वासटनका कहना है, कि कार्बनडोयके ११५ जिभोके तापसे प्रति मिमटर ४ ५४४ ग्रेन जल वाष्पमें परिणत होता है । सूक्ष्मो तापसे ओ जल वाष्प बन जाता है, मात सहजमें ही उसकी परीक्षा की जा सकती है ।

अजोय वायुको उत्पत्ति ।

जलके साथ तापका कर्ना हो इन बायोटेपसिडा पर मात्र कारण है । अम्लिके ताप, सूक्ष्मके ताप ईदिक ताप भूमिक अम्बुकरिपित ताप आदि द्वारा विविध प्रकार के जलोय वाष्प उत्पन्न हो कर वाष्पकर्ममें परिणत होते हैं । प्रत्याववायुके द्वारा भी वायुमें जलोय वाष्पको मात्रा बढ़ जाती है । तबकमें ही ईदिक जलोय वाष्प वाष्पकर्ममें बाहर हो कर वायुसे मिल जाता है । सफाई, कोसल और कई तरहके दोषोंके जलोय वाष्प भी जलोय वाष्पको उत्पत्ति होता है । समुद्र तथा तामाव आदि जलोयवायु इन प्रकार जितना जल निर्यात वाष्पमें परिणत हो आकाश में उड़ जाता है, उमकी आलोचना करने पर विस्मित होना पड़ता है । वैज्ञानिकोंने अनुमानिक गणनाय विस्तार किया है २,०५, २,००,०० ००,००,० ( २ कोर ५ मय २ अर्ब ) मल जल वाष्प कर्ममें पूर्या पर गिरता है । सिवा इसके बरोडों मल जल गिगिर, तुषार छिन्न तुषार, गिगिर, कुदरे आदिमें परिणत होता है । विस्तार विपुल आकाशका वायुरागिमें वाष्प कर्ममें इतना अधिक जल रहता है । इनमें स्पष्ट मनोत होता है, कि निर्यात पृष्ठासे एक वर्षे मल और प्रति घन्टेमें २,११,११६,८९९ मल जल वायुरागिक साथ वाष्पकर्ममें मिल जाता है । सूक्ष्म-फिल्टर ही इन जलकल्पकका प्रधानतम हेतु है । वृद्धि, गिगिर, तुषार, गिगिर, कुदरे आदिका मूल कारण यह जलोय वाष्प है । वाष्प वायुत स्थातापेक्षा अनातुल रूपाममें अधिक परिमाणसे उत्पन्न होता है । जिस जलसे वाष्प उत्पन्न होता है, उसका निर्यात और यदि उष्ण वायु प्रवाहित होगी, तो उससे ओष्र शोष वाष्प उत्पन्न होता है । गभीर वाष्पकी अपेक्षा छिछमें पावने बहुत मजद बाष्प उत्पन्न होता है । वायुके साहाय्यसे भी वाष्प उत्पन्न होता है । जल और वायुकी उष्णता बराबर होतसे जलकी अपेक्षा वायु—१५ तापगसे अधिक शीतल

होतसे वाष्पकर्ममें वयिष्ठ वाष्प उत्पन्न होती है । वायु वाष्पमें परिपूर्णरूपमें सिक जाती पर भी वाष्पकर्ममें व्याघात उपस्थित होता है ।

शीतकर्ममें वायु बहुत शुष्क होती है । इसीलिये शीतकर्ममें बहुत वाष्प उत्पन्न होता है । प्राग्मवायुको उष्णता हो अधिक परिमाणसे वाष्पकर्म होनेका कारण है । किन्तु इस समयमें वायुरागि जोत शून्यमें उत्पन्न वाष्परागिक द्वारा परिसिक्त रहती है, अतएव वायुमें अधिक वाष्प मिश्रित हो नहीं सकता । इसीलिये जलोय वाष्प शोकासमें जितने सूक्ष्म है, प्रोथकासमें बनना नहीं सूक्ष्मते । इसी तरह शीत-जलोय वाष्प वर्षामें वृष्टिकर्म गिरता है । हमें आकाशमें इन जलोय वाष्पके विविधरूप दिखाई देते हैं जैसे—मेष वृद्धि, गिगिर, छिन्न तुषार और गिगिर आदि । जलोय वाष्पकी बात कहने पर इन सब बातोंकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है ।

कुदरा ।

परसे कुदरेकी बात लिखी जाती है । वाष्पताप पेक्षा लिखि इसके सरलरूपमें बहुमल आसोबनाये की है । ऊपर मागमें ओ जलोय वाष्परागि वायुको स्पष्टतामें वाष्प उष्णता है, उमकी स्पष्टतामें कुदरा कहने हैं । कुदरे और एषिम घोड़ा हो मार्यकण है । आकाशके ऊपरी स्तरमें ओ घनाभूत वाष्परागि संभरण करता है, उसीको मेष कहते हैं । कुदरे ओ मेष ही नहीं किन्तु यह धुनागके अर्ध निकट हो सखिन हाता है, कुदरा धुनाग मल विन्दुकी (Aqueous Spherules) समर्थ है । यह सब असविन्दु इतने छोटे हैं, कि बिना अणुबीजकके दिखाई नहीं देते । जिस कारणसे गिगिरकी उत्पत्ति होती है, उसका विपरीत हेतुमें ही कुदरा उत्पन्न होता है । आर्द्र मूलागका तापमानकी (Temperature) ठन्मंलन वायु रागिके उष्णतामानकी अपेक्षा कुछ अधिक होनेसे कुदरेकी उत्पत्ति होती है । आर्द्र और अपेक्षाकृत अधिक उष्ण मूलागसे उद्भूत जलोय वाष्प निकलने शीतल वायुके कारणसे घनीभूत होता है और छोटे छोटे असविन्दुओंमें परिणत होता है, वही कुदरा है । कुदरेके उत्पत्तिके लिये दो अर्थकार्य प्रयोक्तव्य हैं । ऊपरकी वायुपणिकी



अपेक्षा पृथिवीके पृष्ठदेशका तापधिक्य अथवा वायुगति की आर्तता इन्हीं दो अवस्थाओंके रहनेमें कुहरेका उत्पत्ति अवश्यम्भावी है। सुसो पेलटियर (P. Liger) तडिन्नाक्तिके साथ कुहरेका सम्बन्ध विविधोप पर दो प्रकारके कुहरेका नाम लिख गये हैं। जैसे—रेजिनाम (Resinous) और मिट्रियस (Vitrious)। इन दोनों नामोंके कुहरेके दो प्रकारके उल्लेख दिग्दर्श देता है, विषय बढ़ जानेके कारण यहाँ सब विषयोंको आलोचना नहीं की गई। मिथा इसके सूखे कुहरे (Dry fog) के सम्बन्धमें भी वैज्ञानिक आलोचना देयी जाता है कि इसके साथ जलीय वाष्पका कोई सम्बन्ध नहीं। यह एक प्रकारके धुएँ के मिथा और कुछ नहीं है।

मेघ।

इसके बाद मेघके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। सूर्यका एक नाम सहस्रांशु भी है। सहस्रांशु सहस्रकर किरा कर तड़, तड़ी, समुद्र और अन्यान्य नदी जलाशयोंका जल शोषण किया करते हैं। यह शोषित जलराशि वाष्परूपमें ऊपर उठती है। जलराशि जिनता ऊपर उठती है, उतना ही वह अधिकतर जलवायु के साथ संगृह्य होती है। १८००० फीट ऊँचाईपर वायुका शैत्य वर्णके शैत्यकी तरह अनुभूत होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि इस शीतल वायुके स्पर्शसे जलीय वाष्प घनीभूत हो कर मेघके रूपमें परिणत होता है। किन्तु यह मत सर्वोत्तम नहीं। जलवायु जैसे कुहरेका कारण है, वैसे ही वह मेघका भी कारणस्वरूप है। मेघोंके ऊँचे उठनेके कई कारण हैं। यथा—वायुकी जीतोष्ण-मानता, आर्तता, अतु और समुद्र या पर्वतका सामोथ। मुख्यतया मेघ सृष्टिमें दो ही या तीन ही गज ऊँचाई पर विचरण करते हैं। फिर श्वासके समान शुभ्र अत्रमाला भूपृष्ठमें चार-पाँच मील ऊपर विचरण करती है।

मेघोत्पत्तिकी विवरण।

भूभाग या समुद्रादि जलाशयसे उत्ताप वज्र जलीय वाष्प ऊपर उठता है। अन्तमें आकाशके किन्सी स्थलकी वायुराशि इसी जलवाष्पमें पूर्णरूपसे परिपिक (Satu-

rate) हो जाती है। इनके बाद भी यदि नीचेसे वाष्पोद्गम होता रहे, तो वायुराशि पूर्णरूपसे आर्त होती है। उदाहरणार्थ घनीभूत होता और मेघरूपमें परिवर्तित होता है।

मेघका नामकरण।

सुविध वैज्ञानिक पण्डित मि० होवर्डने (Howard) मेघके प्रकारोंके और नामकी प्रणयना की है। उच्चतर गगनपटलें फागशुभ्र परिच्छिन्न जो मेघदाय उठना फिरता है, वह सिरस (Cirrus) नामसे अभिहित है। इस तरहका मेघ प्रचल वायु या आघात पूर्वलक्षण प्रकाशक है। दूसरे प्रकारका मेघ क्यूमुलस (Cumulus) नामसे विदित है। इसका प्रौढिक मेघ भी कह सकते हैं। ये मेघ भा शुभ्र हैं। ये पर्वतकी तरह आकाशमें विचरण करते हैं। दूसरे मेघका नाम स्ट्रेटस (Stratus) है। इस तरहके मेघ घनीभूत हैं। ये आकाशमें अनु-प्रस्थ भावसे स्तर-स्तरमें विचरण करते हैं। उपत्यका, जलाशय प्रभृतिमें कुण्ठा या कुण्ठा उठ कर इस तरहके मेघोंकी सृष्टि करता है। इन तीन तरहके मेघोंके मिथा पाश्चात्य वैज्ञानिक लोगोंने मेघोंके और भी यहूनेरे नाम वतनाये हैं। जिन मेघोंकी जलधारासे धनुषाका तापित अद्गु सुशोतल होता है, वह प्रकृष्टण स्निग्धमधुर श्यामल वासिष्ठ पटल निम्नम नामसे विख्यात है।

मेघविन्दु।

मेघविन्दु या कुहुरा जिजिगविन्दुकी तरह घना जलमय नहीं है, वह साधुनके बुदबुदकी तरह शून्यगर्भ है। वह जब वृष्टिमें परिणत होता है, तब उसकी गर्भशून्यता नष्ट होती है। उस समय वह जलमय हो जाता है। मास-मेघमें वायुराशिकी शैत्योष्णता-मानमें जो पार्थक्य होता है, उसके अनुसार मेघविन्दुके आकारमें भी पार्थक्य होता है। अगस्त महीनेमें यूरोपमें इसका आकार बहुत छोटा होता है। उस समय उसका परिमाण—एक इञ्चा '०००ई अंशमात्र है। दिसम्बरमें इसका आकार बड़ा दिखाई देता है। उस समय इसका परिमाण एक इञ्चके—'००१५ अंशमें परिणत होता है।

मेघमें सौदामिनी।

मेघके तडिन् सन्बन्धमें प्राचीन वैज्ञानिक पण्डितोंमें

मेम (Lame), पेकरै (Pecqueral) और पेचरियर (Peltier) आदि पण्डितोंने गवेषणापूर्ण आलोचना की है। आकाशमें पतङ्ग उड़ा कर परिहृतगण प्राचीन समयमें भी इसके सम्बन्धमें अनेक तथ्य ज्ञान सक थे। आंध्यावासे मेघके साथ तड़ित्तुकी अति घनिष्टता है। हम विषय बढ़ जानेके भयसे और अज्ञासङ्गितताके कारण यहां उन सब विषयोंकी आलोचना करना अनुमङ्गल नहीं समझते।

मेघ और विद्युत् प्रवेश।

विद्युत् प्रवेशक साथ मेघोंका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। उष्णमण्डलके बीचका प्रश्न सूर्यके उदायसे अधिकतर उत्पन्न होता है। उत्तम भूभाग और अम्लभागसे अधिक मात्रामें अम्लीयवाष्प आकाशके उच्चस्तरमें उठ कर घनीभूत होता है। यह यहां बहुत समय तक अवेज्ञा कृत स्थिर रहता है, इससे भूभाग सूर्यके प्रथम उदायमें कुछ देर तक बचा रहता है। अन्ततः अज्ञातकारणसे अम्लीयवाष्पोग्रहण परिमाण कुछ कम हो जाता है। इस तरह विद्युत् प्रवेश जीवोंके रहने कायक रहता है।

मेघका कार्य।

केवल धारा बरसा कर पृथ्वीको शीतल कर देना मेघका इहेत्य नहीं है। मेघ द्वारा सूर्यका ताप और मीथानाभोग्रहणका हास होता है। जीवजगत्के जिये यह भी अवस्थापे प्रयोजनीय है।

मेघका कल्पना।

आकाशमें जब कौन मेघ किस तरहका द्विपाई होता है, इसका फीमा कम होता है, हमारे पराशरसंहिता आदि शास्त्रोंमें तथा घाघ और दुर्दोंके पद्यनोंसे इनका बहुत विवरण मध्यम होता है। पारबाल्य वैज्ञानिक गण भी इसके सम्बन्धमें कुछ कुछ अनुसन्धान कर चुके हैं। यथा—

सिरस—किसी आकाशमें अल्पवस्तु रूपर इस जातिक रजतगुप्त अक्षोंकी द्वाइत ईशने पर जानना होगा, कि शत्रु हो आकाशमें परिवर्तन होगा। मोक्षकाशमें यह शक्ति दार्शनिक पूव अल्पवस्तु ध्वजित करता है। गीतकाशमें इन जातिक मेघ ईशनेस यह जान लेना चाहिये कि शीघ्र ही गणिक आकाशमें पुषारवात होगा। इस मेघक

साथ प्रायः ही बह्नि पश्चिम और बह्निवाली वायुके प्रवाहका सम्बन्ध है। इस वायुके संस्पर्शसे सिरस मेघ क्रमशः घनीभूत होता, वायु भी क्रमशः आर्द्र हो जाती है, इसके बाद ध्वजित होता है।

सिरोबभ्रुमूलस—यह मेघ तापोद्भयका परिधायक है।

इस तरहका मेघकन-विचार यूरोपीय वैज्ञानिकोंकी गवेषणाके अन्तर्भूत है। किन्तु इसके सम्बन्धमें भारतीय पण्डितोंकी गवेषणा ही अधिकतर समीचीन है।

सन् १८६१ ई०में म्यूनिख (Munich) नगरमें एडर मैशनल मिटिरीऑलिकल क्लब वसमें स्थिर हुआ, कि मेघ साधारणतः पाँच भागोंमें विभक्त है। जैसे—

(क) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करलैवाले मेघ (Very high in the air)।

(ख) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करलैवाले मेघ (At a medium height)।

(ग) मूयुष्टके निकटवर्ती मेघ (Lying low or near earth)।

(घ) वायुके उच्च प्रवाहस्तरस्थ मेघ (In ascending current of air)।

(च) आकाश परिवर्तनोग्मुष्प वाष्प (Masses of vapour changing in local)।

मेघ वाष्पके घनीभूत इत्यमान अवस्थायाक है। दो कारणोंसे वाष्प घनीभूत हो कर मेघके रूपमें परिणत होता है।

(१) वायुका स्तरविशेष गिशिरवत् शीतल हो कर तत्स्थानीय अम्लोय वाष्पोंको श्रुताधिक परिमाणसे साम्प्य अग्रहाकारमें (Stratus) परिणत कर सकता है।

(२) अथवा आर्द्र वायुराशि शीतल अम्लोय वाष्प राशियोंमें प्रविष्ट हो कर इनको गिदितिम मेघमें (Cumulus) परिणत कर सकता है।

मेघरश्मिबिह्व गण्डितोंमें मेघोंको प्रायः चार भागोंमें विभक्त किया है। इनका नाम नीचे विवरण पहले दो भिन्ना जा चुका है। यहां कल्प यहो पदव्य है, कि

१ ट्रेटस मेघ सुदीर्घ और आकाशमें चक्रवाल्की तरह (Horizontally) स्तर स्तरमें अवस्थान करते हैं।

(२) क्यूम्यूलस मेघ पर्वताकार है। इनका वषण लुपारवत् घनीभूत है।

(३) सिरस (Cirrus) मेघ आकाशके अत्युच्च प्रदेशमें क्षात्रकुसुम-स्थानकी तरह अवस्थान करते हैं। इनका वायु सर्वापेक्षा अल्प परिमाणसे घनीभूत है। इनके मिश्रणसे और भी अनेक प्रकार उत्पन्न होनेवाले मेघोंके नाम लिखे गये हैं। जैसे—सिरोक्यूमलस, ट्रेट-क्यूलस निरोट्रेटस इत्यादि।

(४) निम्बस (Nimbus) मेघ वृष्टि धारावर्षी हैं। यह मेघ अन्यान्य मेघोंसे भृष्टसे बहुत निकट विचरण करनेवाला है।

अब तक मेघोंके अर्थात् अथ अवस्थानमेघसे जो श्रेणी-विभाग किया गया है, अब उनकी उच्चताके सम्बन्धमें साधारणतः जा सिद्धान्त स्थापित हुआ है, नाचे वह प्रकाशित किया जाता है।

(५) पूर्वोक्त चिह्नित मेघश्रेणी साधारणतः १०००० ऊँचे पर विचरण करती हैं। सिरस, सिरो ट्रेटस और सिरोक्यूमलस मेघ इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

(६) चिह्नित श्रेणी मेघ ३०००से ६००० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। जैसे सिरोक्यूमलस और सिराट्रेस।

(७) चिह्नित मेघमानाकी ऊँचाई १००० से २०००० गज तक है। ट्रेटक्यूलस और निम्बस इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

(८) उच्च वायु स्तरमें विचरणशील मेघोंकी मिति प्रायः १४०० गज ऊँचा और निचरकी ऊँचाई ३००० से ५००० गज है। क्यूलस और क्यूम्यूलस मेघ इसी श्रेणीके हैं।

(९) मेघगठनोन्मुख वायु १५०० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। ट्रेटस इसी श्रेणीका है।

वायुके साथ मेघ वृष्टि आदिका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। वायुका ताप, वायुका अथ ऊर्ध्वस्तर विचरणशील वायुकी गतिता और उष्णताके साथ मेघ वृष्टि आदिका बहुत घनिष्ठता है। अतएव वायुविज्ञान-लेखमें इन

सब विषयोंकी आलोचना अतीव प्रयोजनीय है। मेघमालाका जो श्रेणी-विभाग किया गया, उसके सम्बन्धमें आज भी कोई विशेष तथ्य निरूपित नहीं हो सका है। इसके सम्बन्धमें आज भी मिट्रियलजीविद (Meteorologist) परिदृष्टीने यथेष्ट विवेचना करनी आरम्भ की है, कि किस नियमसे और किस प्रणालीसे आकाशमण्डलमें मेघमाला गठित होती है। मेघके साथ वायुका और वायुकी गतिके सम्बन्ध विचारमें एक तरहके वैज्ञानिकोंका चिन्त आकृष्ट हुआ है। अतः आज ये किसी पक्षे सिद्धान्त पर नहीं पहुँचे हैं। साधारण कृषक या किसान और मल्लाह भी जब मेघ देय नृकान वृष्टिका अन्दाजा लगा लेते हैं, तब यह निश्चय ही, कि वैज्ञानिक विशेषरूपसे आलोचना करने पर किसी उत्तम सिद्धान्त पर पहुँचेंगे। नाचे इसके सम्बन्धमें कुछ साक्ष्य मर्मा दिया जाता है—

(१) ट्रेटस मेघको देख कर समझना होगा, कि ऊर्ध्वगमनशील वायुका प्रवाह बहुत कम है।

(२) क्यूम्यूलस मेघ ऊर्ध्वगमनशील वायुप्रवाहके प्रवाहका परिचायक है। भृष्टका ऊपरी भाग गरम हो कर अपने ऊपरकी वायु ऊर्ध्वकी ओर उठता है। उसी वायु के प्रभावसे आकाशका मेघ ऊपर चढ़ता रहता है। मेघस्तर गरम हो कर भी अपने ऊपरकी वायुको ऊर्ध्वकी ओर परिचालित कर सकता है। फलतः वायुराशि अत्यन्त घनीभूत होनेसे उसमें सीरकर इस तरहसे गोपित होता है, कि सब जलीयकणोंको पार कर सूर्यकिरण भृष्ट पर पतित नहीं हो सकती है। यह विकीर्ण न हो ऊपर वायुराशिको उत्तम करते हैं। निम्नभाग और भृष्ट स्निग्ध छायामें शीतल होता है। क्यूम्यूलस मेघ देख कर यह भी अनुमान होता है, कि आर्द्र वायुराशि किसी पर्वत या प्रतिबन्धकयोग्य पदार्थकी ओर प्रवाहित हो रही है। चाहे जिस तरह षण न हो, वायु जितनी ही ऊर्ध्वगामी होगी, ऊँचे स्थानके कम प्रचापमें वायुराशि उतनी ही चारों ओर फैलता जायेगा। वायु जितनी फैलता है, उसके अनुसार वह शीतल भी हुआ करता है।

थर्मोडायनामिक्स (Thermodynamics) का ताप विज्ञानमें इस विषय पर यथेष्ट आलोचना की गई है।

वायुको यह शैत्य वृद्धि शीतल वायु समिभजनमित नहो है । तापविकारणवशात् मा नही, मधवा ऊदुष्णदेशको स्वभाव शीतताके कारण भी नही है । इस शैत्य-प्राप्तिका हेतु स्वतन्त्र है । सन् १८२६ ई०में वैज्ञानिक पण्डित एसपाइनै (Esajy) ताप विज्ञानका नियम आविष्कार किया है, उससे मासूम होता है कि तापकार्प्यरूपसे विमिश्रित होता रहता है । वायुप्रवाह निर्दिष्ट परिमाणसे ऊपर उठने पर शीतल होता है और उसके फलसे वायुमें मिश्रित जलीयवाष्प घनीभूत होता है । मेष गठनके समय तापगतिमें प्रच्छन्नभावसे विमिश्रित रहता है । मेषयुक्त वायुक निम्नगामी होने पर इनमें प्रच्छन्न ताप प्रकाशित होता है । इनमें विकीरण द्वारा वायुपृष्ठिसे मूत्र कम मात्रांमें ताप कम हो जाता है । वृष्टि होनेके समय यदि वायुका प्रच्छन्न ताप कम न हो, तो ठक वायुके भरो गामी हो जाने पर मृगुष्ट पर अन्याय उष्ण वायुका प्रवाह अनुभूत होता है । दिनके प्रकर सूर्योत्तापमें और शुष्क वायु प्रवाहमें अनेक समय मेष गठित होते न होते हो वाष्पीभूत हो जाता है । इसी वायुको नवावायु कहते हैं । किन्तु वायुके भार्द हाने पर इस वायु राशिमें सूर्योत्तापमें जो परिवर्तन होता रहता है, वह परिवर्तन आंको संवहनके अनुभूत है ।

वायुके जलाय वाष्पका विरत विवरण प्रकाशित करने पर वृष्टि शिला और जिशिरराशिको बात विस्तृत रूपसे लिखनेको पड़ेगी । किन्तु यहाँ उसका स्पानामान है । इन वन विषयोको उन उन अध्यायो अन्वयमें देखा ।

हाइड्रोमिटरसमी और हाइगोमीटरी ।

वायुके जलीयवाष्पक सम्बन्धमें जो सविस्तार आलोचना ईक्षता चाह उनको आदिपे चि वे हाइड्रोमि रियरसमी (Hydrometeorology) और हाइगोमीट्री (Hygrometry) के सम्बन्धमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंका पाठ करे । हाइड्रोमिटरसमी विज्ञानम वृष्ट्या, मेष, पृष्टि, तुषार, जिशिर, शिला न दिका विसृत विवरण लिखा हुआ है । हाइड्रोमिटरसमी वृष्ट्य शब्दमें जो इस विज्ञानके सम्बन्धमें आलोचना ईक्षता चाहिये । हाइ गोमिटर (Hygrometer) यन्त्र द्वारा वायुपृष्ठीक

विधिष भवदवागत जलीयवाष्पकी स्थितिव्यापकता आदिका परिमाण कर इसके सम्बन्धमें आलोचना करना ही हाइगोमीट्री नामक विज्ञानका उद्देश्य है । इन दोनों विज्ञानोंमें वायुके जलीयवाष्प सम्बन्धीय विविध तत्त्व जाने जा सकते हैं । वायुतिक मेटेपरलजी (Meteo- rology) सम्बन्धीय ग्रन्थों में भी इसके सम्बन्धमें बहू सेरे सूक्ष्म तत्त्व लिखे जा रहे हैं । सिवा इसके ह्यार मेटेल्समी (Climatology) सम्बन्धीय ग्रन्थोंमें वायुके जलीय वाष्पका कुछ कुछ विवरण लिखा गया है । जल्लनके मिट्टियरजिकल आफिसस जो इस विषयके बहुतेरे ग्रन्थ लिख रहे हैं । सन् १८८५ ई०में वैज्ञानिक पण्डित फेरैडेने Recent Advances in meteorology नामक जिस ग्रन्थकी रचना की है, उसमें भी इस विषय के अनेक वायुतिक सिद्धान्त ज्ञाने जा सकते हैं ।

इसने सेबके भारद्गममें कहा है, कि वायुमण्डल नाइ ट्रोजन, अक्सिजन, जलीयवाष्प, कार्बो'निक एसिड गैस, आमोनिया, आरगन, नियन, हेलियम, क्रिप्टन और निरि तशय कम मात्रांमें हाइड्रोजन और हाइड्रो-क्वॉरिय पदार्थ का एक मिश्रण पदार्थ है । इसमें नात्रा प्रकारक बीजाणु और धूमि आदि भी उबती फिटता है । किन्तु ये सब पदार्थ वायुके अङ्गीय नहीं । वायुके इन सब उपादान पदार्थोंमें जलीय वाष्पकीका पर्यमाण विरच्छन्न है । देश, काल और तन्त्रता आदि मेषसे जलीय वाष्पका यथेष्ट तारतम्य हो जाता है । सिवा इसके अन्याय्य उपादानों में यैसा तारतम्य नहीं होता । हमने पढ़खे हो कहा है,—कि वायुमें

अक्सिजन	२३.१६ भाग
नाइट्रोजन और आरगन	७६.७७ भाग
कार्बो'निक एसिड	४ भाग
जलीय वाष्प	अनिर्दिष्ट
आमोनिया और अन्याय्य वायु पदार्थ	०.०१

मात्रांमें विद्यमान हैं । इनने अब तक इन सब उपादानोंमें आक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बो'निक एसिड और जलीय वाष्पके सम्बन्धमें आलोचना छो है । वायुमें जो आर्गन (Argon) नियन (Neon), हेलियम (Helium) और क्रिप्टन (Krypton) नामके नवाविष्कृत मूल

पदार्थ हैं, उनके सम्बन्धमें कोई घात नहीं कही गई है। फलतः इनके गुणादिके सम्बन्धमें अब भी कोई विशेष तथ्य मालूम नहीं हुआ है। आर्गेन और नियन - इन मूल पदार्थोंको सन् १८९५ ई०में वैज्ञानिक पण्डित राउले और रामसेने आविष्कृत किया था। सन् १८९८ ई०में पण्डित रामसेने और ट्रेमर्सने क्रिस्टल नामक नये आविष्कृत मूल पदार्थोंको खोज की थी। अभी तक इन पाँच मूलपदार्थों के सम्बन्धमें कोई भी विशेष तथ्य नहीं मालूम हुआ है। अम्लजनका अणुसंख्या १६, नाइट्रोजनका १४, हाइड्रोजनका १ और आर्गेनके अणुसंख्या परिमाण १६.६ है। डेनर (Denier) यद्यपि अन्यान्य वायवीय पदार्थोंसे अधिकतर घटक करनेमें समर्थ हुए हैं, किन्तु इनके गुणोंके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं सक है। सुतरां इनके सम्बन्धमें आज भी कोई बात लिखनेके उद्युक्त तथ्य नहीं मालूम हुआ है। हम यहाँ आमोनियाकी बात लिख कर वायुके उपादान व्यवस्था रूप और धर्म आदिके सम्बन्धमें अपने प्रस्तावनाका उपसंहार करेंगे।

आमोनिया एक उग्र गन्धयुक्त वर्णहीन अदृश्य वायु है। विशुद्ध वायुमें आमोनियाका परिमाण बहुत कम है। देश तथा मास वायुमें एक भागसे अधिक आमोनिया नहीं रहता। नाइट्रोजन और हाइड्रोजन सश्लिष्ट जीवज पदार्थ पच जाने पर उससे आमोनिया वाष्प उत्पन्न हो कर वायुके साथ मिल जाता है। कौयला जलनेके समय भी यह उत्पन्न होता है। मोगी, श्वसनाधि, श्वा जलाश्रुतिमें ही यह वाष्प उत्पन्न होता है। उद्गमजन्तुमें आमोनियाकी आवश्यकता नहीं है। ये अपना देह पृष्ठीके अथवा वायुके आमोनियासे नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। वायुमें सल्फाइड हाइड्रोजन आदि धार भी जो एक वायवीय पदार्थ अत्यन्त अल्प परिमाणसे प्रती कना विमिश्रित अवस्थामें देखे जाते हैं। इनके विस्तृत निरूपण प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं। इससे यह विषय छोड़ दिया जाता है।

प्राकृत विज्ञान और वायु।

हमने वायुके सम्बन्धमें रसायन-विज्ञान और शरीर विषय विज्ञानके विषयमें सविस्तार रूपसे आलोचना की है। प्राकृत विज्ञानमें वायुके सम्बन्धमें कई विशेष आलोचना

विषय हैं। वे सब निम्न शीघ्र जटिल और उच्च गणितज्ञानगम्य हैं। विशेषतः इनकी अनेक बातें माधारण पाठकोको हृदयङ्गम नहीं हो सकतीं। ऐसे विविध कारणोंसे हम अत्यन्त संक्षेपमें वायु सम्बन्धीय प्राकृत विज्ञानके कई विषयोंकी आलोचना कर इस प्रस्तावना उपसंहार करेंगे। जो इनके सम्बन्धमें सविस्तर विवरण जानना चाहें, उनको श्रेजी भाषामें लिखित मेटियरलोजी (Meteorology) और प्नेमेटिक्स (Pneumatics) आदि ग्रन्थोंमें कई विशेष तथ्य मिल सकते हैं। यहाँ और कई विषयोंका उल्लेख किया जाता है।

वायुमण्डलकी सीमा।

वायुमण्डलकी सीमा निर्धारित नहीं हो सकती। उद्देश्य पदार्थविमुक्त आकाशमें कितनी दूर तक फैला हुआ है, इसके सम्बन्धमें प्रबन्ध प्रारम्भमें यद्यपि हमने कुछ जिक्र किया, फिर भी, सूक्ष्म चिन्ताशील वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त यह है, कि सूर्य, चन्द्र और बहुदूरवर्ती तारा मण्डलमें भी वायवीय पदार्थकी गतिविधि विद्यमान है। फिर हमारे उपभोग्य वायुमण्डलके उपादान और अन्यान्य ग्रहादिके वायुमण्डलके उपादान अवश्य ही स्वतन्त्र और पृथक् हैं। इसका प्रमाण मिलता है, कि हमारे सम्भोग्य वायुमण्डलकी ऊपरी सीमा एकसी मीलसे भी अधिक दूरी पर है। बहुदूरवर्ती नक्षत्रालोक-प्रतिफलन, अरण्योदयालोक तथा प्रजापालाक और सुदूरवर्ती पतितउल्काका आलोक देख कर वैज्ञानिक उद्योतिर्विदोंने स्थिर किया है, कि सैकड़ों मीलोंने ऊपर भी यह वायुमण्डल विद्यमान है। उसके ऊपर भी जो अति सूक्ष्म वायुमण्डल है, प्रोफेसर आर एम् उडवार्डने सन् १९०० ई०के जनवरी महीनेमें "Science" नामक मासिक पत्रमें उसके सम्बन्धमें तनिक वैज्ञानिक आभास दिया है। इसका सारांश है। मृष्ट्रमें अनुभूत न होनेका कारण यह है, कि यह सूक्ष्म स्थितिसाम्यमें (dynamical equilibrium) अवस्थित है।

प्ल्यूमेटिक्स (Pneumatics) या वायुगुण-विज्ञानमें वायुके गुण या धर्मको विस्तृत आलोचना हुई है। वायु गुण-विज्ञान प्रत्यक्ष चण्डे, मेटियट और चार्ल्स आदि वैज्ञानिकोंकी वायवीय वायु परीक्षाकी सूक्ष्म कौशलराशि

अतोष वायुद्वय और गयेयणा या ज्ञानका परिचय प्रद शिंत हुआ है ।

वायुमण्डलके शैतोप्यना मान इत्यादिना विवरण ।

वायुमण्डलके शैतोप्यना-मानके (Temperature) सम्बन्धमें बुचन (Buchon) आदि वैज्ञानिकोंने बहुतोरी गवेषणा कर अगतके प्रत्येक कण्डका विवरण संग्रह किया है और मानचित्रके साथ प्रकाशित किया है । बोम यान प्रयुक्तिके साहाय्यमें इन विषयका निर्णय हुआ है । इसक सम्बन्धमें इस समय यथेष्ट गवेषणा चल रही है । सन् १९०० ई०क जनवरी महीनेमें प्रकाशित होनेवाली (Met Jet) एक मानिक पत्रिकामें सूक्ष्म गयेयणापूर्ण एक अणुवैय प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है । अतोय वायु प्रचारक सम्बन्धमें भी इन तरहको स्थानीय किदरिस्त और मानचित्रके साथ विवरणी प्रकाशित हो रही है । बारोमिटर यन्त्रके साहाय्यसे जगत्के मिश्र मिश्र भ मकी वायुके मासिकके सम्बन्धमें भी बहुतोरी विवरण संयुकीत हो रही हैं । इसक द्वारा मेघ, दृष्टि, वृकान और इसक विपरीत भाकागकी निर्मलता आदि विनिर्णयकी यथेष्ट सुविधा है । इस यन्त्रके सम्बन्धमें इसके बाद आगे चलना की जायेगी ।

वायु प्रचार ।

वायुका प्रचाप भारी और समान भागसे मौसू है । ऊपरसे भी जेन वायुराशिका वायु बड़ रहा है, नीचेकी ओरसे भी हमका वायु वैसे ही ऊपरकी उठना है । निम्नमुख (Downward) वायु अक्षेपक नामसे और ऊर्ध्वमुख (Upward) वायु उल्लेखक नामसे परिचित है । इन प्रचापका अस्तित्व परीक्षासे प्रमाणित किया जा सकता है । पहले अक्षेपक वायुकी परीक्षा प्रदर्शित हो रही है—

दोनों मुख खुले एक चौड़ी काँचकी लालिआक एक मुखकी रबड़की बहरसे बन्ध कर और ठन एक रस्कीसे रबड़की बहरको मछी तरह बाँध देना चाहिये, जिससे दृग्मन न पाये । पीछे दूसरे मुह पर मोम लगा कर वायु निकालनेवाले यन्त्रके छेद पर ललिकाकी मजबूती से बँटा देना चाहिये । उस यन्त्रके सञ्चालन करनेसे नमसे वायु निकलती रहेगी । अतएव बाहरकी वायु

राशिका अक्षेपक वायु रबड़की बहर पर पड़नेसे यह नलके भीतर इमित हो जायेगी । इस यन्त्रके अधिक समय तक खानू रहने पर वायुके वापसे रबड़की बहर फट जायेगी ।

निम्नलिखित परीक्षा द्वारा वायुके उल्लेखक वायु का विषय जाना जा सकता है । एक काँचका ग्लास जलमें भर कर रखा जाये । एक कागजका छोटा टुकड़ा इसक मुह पर इस तरह रखा जाये, कि हम कागज और जलके बीच कुछ भी वायु न रह जाये । कागजका टुकड़ा अगुलियोंसे अरा बंधा कर ग्लासको जदरीसे उल्टा दिया जाय, किन्तु ऐसा करके पर भी ग्लासका जल कागजको छेद कर गिर न सकेगा । दूसरा कारण, ग्लासके नीचे वायुराशिका उल्लेखक वायु है । कागजको विस्तृति ४ वर्गइञ्च होने पर ३० सेर परिमित उल्लेखक वायुचाप कागजको ग्लासके मुखमें उठता है । क्योंकि, माघ सेर जलका भार ३० सेर वायु प्रचापकी तुलना एकान्त भक्तिगुणकर है । किन्तु किन्नी प्रकार जल और कागज में वायु प्रविष्ट होने पर यह अक्षेपक और उल्लेखक वायु परस्पर प्रतिद्वन्द्व होगा । सुतराँ ग्लासका जल अतिरिक्त भारके कारण कागजके साथ अघातित होगा ।

वायुमचापमें इस नियमावजम्बनसे कई तरहके इन्द्रजालका कोणुक भी दिखाया जाता है । सहस्रछिद्र धड़के जल छानेकी पदना भी सहज ही सम्पन्न होती है । धड़के निम्नदेशमें बहुछिद्र रहने पर भी यदि अक्षेपक वायुका वायु बन्ध कर दिया जाये अर्थात् धड़का जलमें बुधा रहने पर ही यदि हमका मुह अछी तरहसे बन्ध कर दिया जाये या पहले हीसे हमके मुखमें एक डकना गोंदसे बन्ध कर दिया जाय और उस डकनेमें एक छिद्र किया जाय और जलसे ऊपर उठानेसे समय मयुकोके सहारे छिद्र बड़ रूपसे बन्ध कर दिया जाये, तो हमके मोथेक सहस्र छिद्रमें भी जल नहीं गिरेगा । परीक्षा द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि भारी और ही वायुका वायु समसंस्थित भावसे विद्यमान है । वायु निकालनेके यन्त्र द्वारा एक टोकक फ्लासतमें वायु निकलने पर और उसके भीतर वायु प्रवेश करनेका कोई

उपाय न रहने पर बाहरकी वायुके चापसे कनस्तरका पार्श्व शब्दके साथ भीतरकी ओर धम जायेगा।

वायुको तरल बनाना (The Liquefaction of gases)।

वायुको तरल बनानेके लिये बहुत दिनोंमें चेष्टायें हो रही थीं। किन्तु अक्सिजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजनको पाश्चात्य प्राचीन वैज्ञानिक किसी तरह इस अवस्थामें ला न सके। इसलिये इनको नित्य नाष्प (Permanent-gas) कहा जाता था। सुविख्यात वैज्ञानिक फाराडेने (Faraday) प्रमाणित किया है, कि वायुके २७ परिमित प्रचापसे और ११० डिग्री ग्रेटयोष्णतामानसे भी उक्त ये तीनों वायुय पदार्थ तरल नहीं हुए। वैज्ञानिक पण्डित नेटर (Natterer) वायुमण्डलके ३००० परिमित प्रचापमें भी साफल्य लाभ नहीं कर सके। सन् १८७७ ई०में सुपण्डित कैल्लेट्टे (Kallétt) और पिकेट्टेने (Pictet) इस विषयमें पहले पहल सफलता प्राप्त की। पिकेट्टेकी परीक्षणसे अक्सिजनके घाणने वायुका आकार धारण किया था। किन्तु पिकेट्टेने अक्सिजनको जलवन् तरल बनाया था। इसके बाद व्रब्लेस्की (Von Wroblewsky) और ओल्जेवोस्की (Olszewsky) अक्सिजन, नाइट्रोजन और कार्बोनिक् एसिडको तरल बनानेमें समर्थ हुए हैं। प्रोफेसर डेवारने (Dewar) इसके सम्बन्धमें परीक्षायें कां ह। तर्लोकृत वायु जलवन् तरल हो जाती है। यह जलकी तरह स्वच्छ है और इसको जलकी तरह एक पात्रसे दूसरे पात्रमें ढाला जा सकता है। यह अत्यन्त शीतल, बर्फसे भी ३४४°Cके परिमाणसे भी शीतल है। तरल वायु इनती शीतल है, कि बर्फकी उष्णता भी इसको सख्य नहीं होती। बर्फमें तरल वायु संरक्षित होने पर यह 'फट फट' कर चूरती रहती है। अलकोहल आदि तरल पदार्थ पहले किसी तरह कठिन अवस्थामें परिणत नहीं किये जा सकते थे। किन्तु तरल वायुके संस्पर्शसे ये सब पदार्थ भी अब कठिन हो जाते हैं। इसकी इतनी अधिक शीतलता मनुष्योंके लिये भी असह्य है। जहां तरलवायु संस्पृष्ट होती है, वह स्थान अग्निवत् भुलस जाता है। जोवदेहमें अति शैत्य और उष्णताकी क्रिया प्रायः एक ही तरहकी दिवाई देती हैं।

वायुका तरल बनाना इस समयके वैज्ञानिकोंका एक अद्भुत आविष्कार है। पहले तरलतासाधनमें बहुत धन खर्च होता था। इस समय अपेक्षाकृत कम खर्चमें ही वायुकी तरलता साधित हो गयी है। आशा है, कि इससे मनुष्यके कितने ही काम हाने।

वायुकी धृति।

वायुमण्डलके अनेक उच्च प्रदेश तक धूलिराशि परिलक्षित हाने है। इस समयके वैज्ञानिकोंने परीक्षा कर स्थिर किया है, कि वायुमें धूलिकणामूह है। इसीलिये वायुमण्डलमें जलवायु वापर सञ्चित हो कर मेघकी उत्पत्ति हो सकती है। वायुराशिमें दिखाई देनेवाली धूलिकणा ही जलवायु वापर विन्दुकी विश्रामाधार है। यह विश्रामाधार न रहनेसे मेघोत्पत्ति असम्भव हो जाती। धृष्टके साथ साथ धूलिकणा गगनमण्डलसे गिर पडती है, इसमें वायुराशि निर्माण हो जाती है।

वायु और शब्दविज्ञान।

शब्दकी गति वायु द्वारा साधित होती है। वायु शब्दका परिचालक है। वायु न रहनेसे हम कोई शब्द सुन नहीं सकते। सन् १७०५ ई०में वैज्ञानिक पण्डित होक्सबी (Hawksbee) वायुके साथ शब्दका यह सम्बन्ध यन्त्रादिके साहाय्यसे परीक्षा कर सुनिश्चान्तमें उपनीत किया। उनके यन्त्रके साथ एक घण्टाघटिका यन्त्रके घण्टे की तरह लटकता है। इस यन्त्रके साथ एक धातव नल संयुक्त रचना होता है। वह नल कानके साथ इस भावसे जोड़ दिया जाता है, कि कानमें वायु प्रवेश न कर सके। वायु निकालनेवाले यन्त्रसे उम यन्त्रकी वायु निकाल कर उसमें घण्टेका शब्द करने पर शब्द सुनाई नहीं देता। फिर इसमें वायुप्रवेशके अनुरातसे शब्दकी स्फुटताका तारतम्य होता है। परीक्षा कर देखा गया है, कि वायुके प्रचापके न्यूनाधिकवश शब्द-श्रुतिका भी न्यूनाधिक्य होता रहता है। जितना ही ऊपर चढ़ा जाये, वायुका प्रचाप उतना ऋघु होता जाता है। प्रचापको लघुताके अनुसार शब्दकी स्फुटताकी भी उसी परिमाणसे कमी होती रहती है। लघुतर वायु चापविशिष्ट स्थलोंमें अति निकटवर्ती तोपकी गज्जन या पटाखेके शब्दकी तरह सुनाई देती है।

यन्त्रविद्येयों संबद्ध वायु के कम्पन (Vibration of air) द्वारा अनेक तरहके वायुयन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। बंशी, शङ्ख, सिगा, तुम्ही और अन्योप्य बहुतेरे वायुयन्त्रोंका सृष्टि हुई है। इन सब यन्त्रोंके मध्यस्थित वायु राशि ही शब्दउत्पादनको कारण है। यन्त्रके बाँस काष्ठ या पीतल आदि केवल शब्द उत्पन्न करने परिये सतत सहायमान है। शब्दविज्ञानमें वायुके इस कृतिरूपके सम्बन्धमें बहुत गणितशास्त्र और गणित प्रक्रियासाध्य सिद्धान्त विचार्ये जाते हैं। गैस हायड्रोजन एक तरहका अत्युत्तम वायुयन्त्र है। जोबड़े ही गैस या हाइड्रोजन गैस, इस वायुयन्त्रका धारक है। यन्त्र इस तरहसे बना है, कि उसके ग्लासतन्त्रिकायों गैस एक कर वह गैस प्रकटित कर देने पर उससे जो वायु प्रवाहित होती है, उससे ही यन्त्रमें अत्युत्तम गीतिकाश्रित उठा करती है। इन तरहके वायुयन्त्र अर्थात् में *Stagnant flame* के नामसे विख्यात है। केवल यन्त्रयुक्त वायु वाह धारण ही इस शब्दका उत्पादन है।

वायु शब्दको प्रथम परिचयार्थक है। जम्बूद्विपमें मी प्राचीन परिचित इसकोके पदानुसार अनुसरण कर इसके सम्बन्धमें बहुतेरी परोक्षार्थों को हैं। जम्बूद्विप दिग्दर्शनमें तापन इन्डोनेशियामें शब्दके सम्बन्धमें जो व्याख्या की थी, उसमें उन्होंने इसकोके प्रस्तुत किये हुए यन्त्रकी तरह एक यन्त्रके साहाय्यसे वायुके साथ शब्दका सम्बन्ध बहुत सुन्दररूपमें दिखानाया है। एक वायु निकालनेवाले यन्त्रके अन्तर्निर्मित आधार पर एक धरती एक वायु निकालनेवाले यन्त्र द्वारा उभको वायु निकालते हैं, इस अवस्थामें इनके बीचके धरती को यथेष्ट रूपसे दिकाने पर भी कोर शब्द सुनाई गता है। इनके बाद उन्होंने इनको हाइड्रोजन वायु से भर दिया। हाइड्रोजन वायु वायुकी अपेक्षा १५ गुणा लघुतर है। इससे बहुत परतके बाद ओद्युर्वा इसका गति अत्यन्त शब्द सुन सके। फिर वे इनको वायुयुक्त कर प्रस्ता बजाने लगे, ओद्युतागम बहुत निकट आन लगा कर भी कोर शब्द सुन न सके। इसका बाद अब वे अन्य अन्य वायु प्रविष्ट कर कर प्रस्ता दिनामें लगे, तब वायुके घनत्वको वृद्धिके अनुपातों

शब्द कम्पन ही परिलक्ष्य रूपसे श्रुत होने लगा। इसी किये ही महर्षि कणाद शब्दके साथ वायुका जो प्रतिपद सम्बन्ध है, हजारों वर्ष पहले इस सिद्धान्तको सूत्राकारमें संस्थापित कर गये हैं।

वायुका अस्तित्व अनुभव और प्रमाण।

वायु हमारे आँसोंसे दिखाई न देने पर भी हम इसके अस्तित्वको कई तरहसे अनुभव करते हैं। हम वायुके प्रवाहसे समझ सकते हैं कि हवा बह रही है। हमारी देहमें जब वायु स्थरी करती है, तब अनायास ही हम समझ जाते हैं। सरोवरको मृदुल बीजिमात्रामें—मसुत्र की उच्चतर तरङ्गमें—ऊष्णकालमें समस्त सरोवरोंके सुको मम पत्तके किरण आह्वानमें और प्रकटकर प्रमत्तके भीम भयङ्कर सृष्टिद्वारा अल्पकालमें—सर्वत्र ही वायुका अस्तित्व परिलक्षित होता है। अन्य जड़ पदार्थोंमें जिस तरह प्रतिरोधिका शक्ति है वायु लघुतर होने पर भी जैसे ही हममें प्रतिरोधिका शक्ति है; परिचायिका शक्ति भी है। वायु अमल शक्तिसामीप्य और इसका गुण भी अमल है। मानवीय विज्ञान अमो इसका वैश्याम भी ज्ञानमें समर्थ नहीं हुआ है।

वायुपदार।

पहले ही कहा गया है कि वायुमें तरल पदार्थक सब तरहका धर्म विद्यमान है। इसीलिये उसको तरल पदार्थों में गणना होती है। जिस नियमसे तरलपदार्थकी गति नियन्त्रित होती है, वायु भी कई अंशमें उसी नियमके अधीन है। किन्तु प्रमेय इतना ही है, कि अम्याप्य तरल पदार्थोंमें अम्लकार्यण अपेक्षाकृत हृदय है, किन्तु वायुमें वह अम्लकार्यणशक्ति बहुत लघु है। इसी कारणसे वायु अम्याप्य तरल पदार्थोंको अपेक्षा सहज ही स्फीत होती है; अम्याप्य तरल पदार्थमें हृदयताजग पैसी स्फीति न होती।

तरल पदार्थका साधारण एक धर्म यह है, कि यह सर्वत्र ही समोच्चता सम्पन्न करता है। किन्तो कारण बल इस समोच्चतामें बिन्दन होनेसे वह सामागिक धर्मा लुप्त एक बार आन्वोहित हो कर फिर समोच्चताकी रक्षामें परतशोच होता है। फिर यह शीतसे संकुचित और तापसे स्फीत या विचित्रित होता रहता है। घातव



बृह पदार्थापेक्षा मरल पदार्थमें ही उष्णताजनित वृद्धि अधिक परिमाणसे दिग्बाई देती है। वायु तरल पदार्थों में अति सूक्ष्म है। इसीलिये प्रीष्ममें वह स्फीत होती है।

वायु स्वभावतः स्थिर भावसे पृथ्वीपृष्ठ पर सर्वात् फैली हुई है। यदि किसी कारणसे किसी प्रदेशमें सूक्ष्म ताप अधिक हो, अथवा दावानल या अन्य किसी कारण-वश वह प्रदेश अधिक उत्तम हो, तो शेषोक्त प्रकारसे वह तुरत ही स्फीत हो कर पार्श्ववर्तों वायुकी अपेक्षा बहुत हल्की हो जानी है। वायुधर्मके अनुसार वह ऊपर उठने लगती है। फिर प्रथमोक्त नियमके अधीन दूसरे दिक्स्थित शीतल और स्थूल वायु लघुवायु द्वारा परित्यक्त स्थानको पूर्ण कर्त्ती हुई उसी ओरको दौड़ती है। इस तरह उपर्युक्त दो स्थिर वायु निरन्तर सञ्चालित हो कर मन्द वायु, घुर्णितवायु (ववण्डर) और आंधी आदि उत्पादन करती रहती हैं।

वायु प्रति घण्टेमें आध कोस भ्रमण करती है, किन्तु यह गति हम उपलब्धि नहीं कर सकते। जो वायु प्रति घण्टे २ या २½ कोस भ्रमण करती है, उसका नाम मन्द वायु है। चोकोन एक हाथ परिमित स्थानमें यह वायु जिस वेगसे आहत होती है, उसका भार एक छटाँक वजनके अनुरूप है। प्रति घण्टेमें जो वायु ५½ कोस अतिक्रम कर सकती है, उसका नाम तेजो वायु है। यह वायु विशेष तेजोवन्त होनेसे घण्टेमें १०।१५ कोस तक जा सकती है। उस समय उसके वेगका परिमाण चौकोन एक हाथका ३४ सेर होता है। सामान्य आंधी प्रति घण्टे पचीस या तीस कोस तक चली जाती है। इस समय उसके वेगका परिमाण प्रायः १२ सेर तक होता है। तूफान या आंधी सब समय एक समानसे नहीं आती। इस कारण इसके सम्बन्धमें कोई साधारण नियम निरूपित नहीं हो सकता, जो कहा गया, वह सामान्य आंधीके लिये स्थूल अनुमान है।

पृथ्वीके सुमेरु और कुमेरु (North and South Pole) केन्द्र अत्यन्त शीतल हैं। उक्त स्थानद्वयसे जितने निरक्ष वृत्त या विषुवरेखाकी ओर अग्रसर हुआ जाता है, उतने ही प्रीष्मकी अधिकता उपलब्धि होती है। इस कारण दोनों केन्द्रोंसे निरक्षवृत्ताभिमुख दो वायु प्रभावित होती है।

फलतः निरक्षवृत्तके सन्निकट उत्तम वायु ऊपर उठ कर ऊँचाईकी शीतल वायुसे मिल कर शीतल हो कर फिर केन्द्रमें आई वायुका स्थान पूर्ण कर्त्नेके लिये केन्द्रकी ओर दौड़ती है। इस तरह पृथ्वीके सन्निकट केन्द्रसे निरक्षवृत्ताभिमुख दो वायुका प्रवाह और आकाशके ऊदुर्ब्वदश हो कर इस तरहके दो वायु प्रवाह निरन्तर निरक्षदेशमें केन्द्राभिमुख गमन करता है। इस वायु-प्रवाह-चतुष्टयकी कभी निवृत्ति नहीं होती। इसीसे इसको 'नियतवायु' कहते हैं।

सुमेरु केन्द्रसे इस नियत वायुका जो प्रवाह परिचालित होता है, उसकी गति उत्तरमुखी है। किन्तु प्रत्यक्ष दृष्टिसे वह विशेष दृष्टिगोचर नहीं होना चरं ऐसा मालूम होता है, कि ईशानकोण या अग्निकोणसे ही यह वायु आई है। क्योंकि पृथ्वीको स्वभाविक गति पूर्वकी ओर है और उसका वेग बड़ा प्रबल है। यह प्रायः १ हजार ज्योतिषी क्षीमस्थानमें व्याप्त हो कर प्रति घण्टेमें परिभ्रमण करती है।

अपर्याप्त आंधी आते रहने पर भी वायु कभी एक सी या सवा सी कोससे अधिक स्थानमें परिभ्रमण नहीं कर सकती। इससे सुस्पष्ट रूपसे समझमें आता है, कि उत्तर या दक्षिण ओरने आंधी उठ कर चलनेसे पृथ्वीके सम्बन्धमें उसकी गति ऋजु नहीं रहेगी और निरक्षवृत्त देशके लोग उस आंधीको ईशान या अग्नि कोणसे आई हुई समझेंगे। पहले कही हुई नियत वायुका वेग आंधीके वेगकी अपेक्षा बहुत हल्का है। अतः वह पृथ्वीकी अवस्था और गतिके अनुसार स्वभावतः ही ईशान और अग्निकोणागत होता है। इस वायु द्वारा समुद्रपथसे वाणिज्य जहाजके आनेमें विशेष सुविधा होता है। इससे मल्लाह इसके णज्य-वायु (Trade winds) कहा करते हैं।

सूर्योत्तापसे जलकी अपेक्षा स्थल भाग ही अधिक उत्तम होता है। सुतरां पृथ्वीके जलाकीर्ण भागसे जिस भागमें स्थल अधिक है, उसी स्थानमें अधिक उष्णता अनुभूत होती है। पृथ्वीकी अवस्थाके अनुसार हम जान सकते हैं, कि निरक्षवृत्तकी दक्षिण ओरकी अपेक्षा उत्तर ओर ही स्थलका भाग अधिक है। इसीलिये निरक्ष वृत्तका स्थान अधिक गर्म नहीं मालूम हो कर उसके

सात अंश उत्तर अक्षिण रेखा तथा उपरि उक्त है। इस स्थानक दोनो पार्श्वों में प्रायः ५ अंश परिमाण स्थान वायु द्वारा उन्नत हो कर ऊपर आया करता है और उस स्थानको संपूर्ण करनेके लिये पूर्वोक्त वाणिज्यवायु प्रवाहित होती है। किन्तु पूरबीको गतिको बढतासे उस की गति सो धक हो जाती है। इस स्थानक रहनेवाले लोग यह खदख हो प्रत्यक्ष नहा कर सकने सको, किन्तु निरक्षरुक्तके उत्तर १०से २५ अंश तक पूरबीक उत्तर भागके स्थानमें और निरक्षरुक्तक २ अंशसे २३ अंश मध्यवर्ती स्थानोंमें दक्षिण भागकी वाणिज्य वायु प्रवाहित होती रहती है।

इन दो वायुमण्डलोंके मध्यवर्ती स्थानोंमें नियत हो वायु ऊर्ध्व गमन करती रहती है। पूरबीक निकट यह वतने सुल्पाद रूपसे अनुभूत नही होती। इन सब स्थानों में सदा ही निर्यातका हो अनुभव होता है। केवल बीच बीचमें इन स्थानोंमें मयाजक मांधी (Cyclone) उठती देखी जाती है। महात् इस स्थानकी निर्वात और अग्निधर वायुमण्डल (Belt of Calms) कहते हैं। अटलांटिक महासागरके बसका यह स्थान Doldrums के नामसे प्रसिद्ध है।

समूची पूरबी यदि अलमय होती तो इस वाणिज्य वायुका प्रवाह मध्यम समान रूपसे अनुभूत हो सकता था। किन्तु मूमागको अग्निधर और पर्वतादि-वायुमण्डल देशभागमें यह विशेष अनुभूत नहा होता। कबल महा समुद्र गर्भमें ही यह दिखाई देता है।

भारतमहासागरके उत्तर पश्चिम और पूर्व भाग मूमि द्वारा घेरिण है। विशेषतः हिमालय पर्वतश्रृंखला महासागरके रूपमें अगने उत्तर बहुत स्थानोंमें उन्नत हो कर राउरी इहेक कारण उत्तरका वाणिज्यवायु उस उन्नत कर हो रह जाता है, एकर नो आ सकती अर्थात् विप्राणकी पार नहीं कर सकती। इसी कारणसे भारत समुद्रमें उक्त वाणिज्य वायुका आग तक प्रचार नही हुका है। इसक बदले इस देशमें और एक तरहकी वायु प्रवाहित होता है। यह प्रथम ६ महोन अग्निचोकसे और पिछरे ६ महोन वायु-कोणसे प्रवाहित होती है। इसकी मानसून (monsoon) वायु कहते हैं। वास्तवसे वीत तक

आग्नेय वायु (northwest monsoon) और वैशाखसे आग्नेय तक वायु (South-east monsoon) प्रवाहित होती है।

समुद्रमें यह वायु अनुभूत होनेस पहले स्थलभागमें हो इनका प्रचार अधिक रहता है। इसी कारणसे आग्नेय मानसूनका अन्त होनेस बहुत पहले इस फासुल महासागरमें ही मन्ध्यानिष्ठ उपमोग किया करते हैं। प्रत्येक मौसमी वायुका प्रारम्भ होनेके समय विपरीत दिशाकी ओरसे आये वायुमण्डलके सघातस प्रायः अत्यन्त मांधी, घृष्ट और सूफान आता है। निरक्षरुक्तके दक्षिण १० अंश तक मीनमी वायु शीतकालमें वायु-कोणसे और प्रोणकालमें अग्निचोकसे प्रवाहित होती है।

उत्तर वाणिज्य-वायुका सो मण्डल निर्दिष्ट हुका है, उसके उत्तर वायु सर्षदा मीनतसे प्रवाहित होती है। इसी कारणसे बर्हाक सब स्थान "मीनत वायु मण्डल" के नामसे विख्यात है। दक्षिण-वाणिज्यवायु मण्डलके दक्षिणमें वायु सर्षदा वायु-कोणसे प्रवाहित होती है इससे यह वायुमण्डल नामसे परिचित है।

वायुमण्डलके सम्बन्धमें ऊपर जो कहा गया यह वायुका साधारण नियम समझना चाहिये। एकमात्र यह महासमुद्रमें दो दिशाई देता है। पर्वत मध्यमूमि, बल अत्यन्त और अगराधिकी बाधा या महापतासे स्थान विशेषमें वायुका प्रकृतिकी कइ बिसस्यताये दिखाई देती है। यहां इनका विशेष विवरण देना अनावश्यक है। अरबकी मध्यमूमिमें नियम नामी एक प्रकारकी प्राणाशासिका उन्नत वायु प्रवाहित होती है। अफ्रिकाकी अग्नी शीरी सहारा मांधी मध्यमूमिमें और अग्नीय देशकी वायुका मय मूमिमें सो इन तरहकी उन्नत वायु अत्यन्त होती है।

समुद्रके बिनारे दिनमें समुद्रम मूमिकी ओर और रातमें मूमि म समुद्रकी ओर हथेगा वायु बहतो रहती है। इसका कुछ विरोध कारण नहा। सूर्योदयमें अलका अवेसा स्थल हो शीघ्र उन्नत होता है। इसीमये मूमिकी वायु उन्नत हो ऊपर उठने लगती है और समुद्रकी शीतल वायु उस स्थानकी पूर्ण करनेके लिये उस ओर हीउता है। रातकी अगकी अवेसा स्थल भाग हो उन्नत शीतल होता है। अतः

दिनके विपरीत रातको भूभागका वायुप्रवाह समुद्रकी ओर दौड़ता है। इन दोनों वायुप्रवाहोंका नाम 'समुद्र-वायु' और भूमिवायु है। समुद्रतटके सिवा अन्यत्र वायुका यह प्रवाह अनुभूत नहीं होता।

स्थूल पदार्थोंपर आहत लोचकी तरह वायु भी प्रत्यावर्तनशील है, इसी कारण वायुप्रवाह पर्वत या किसी प्राचीर आदिसे आहत होने पर वहांसे प्रत्यावर्तन कर पहले जिस दिशासे प्रवाहित हुआ था, उससे ठीक दूसरी ओरको चला जाता है। विपरीतकी ओर इस तरह दो वायुप्रवाहोंके परस्पर आहत होने पर बवण्डर या घूर्णितवायु उत्पन्न होती है। सिवा इसके कोई एक स्थान हठात् वायुशून्य हो जाने पर उस स्थानकी पूर्ति करनेके लिये चारों ओरसे जोरसे वायुका आगमन होता है इसलिये भी घूर्णितवायु उत्पन्न होती है। घूर्णित-वायुकी उत्पत्ति आकाशमण्डलमें विद्युत् सम्पर्कीय अन्य किसी नैसर्गिक कारणसे भी हो सकती है। घूर्णितवायु अक्षपरिस्तरविजिष्ट होने पर "धूलिध्वज" या बवण्डरके नामसे विख्यात होता है, यह भूतकी हवाके नामसे भी प्रसिद्ध है। इस वायुकी धूलिराजिमें कभी कभी पत्ते आदि स्तम्भाकारमें परिणत हो जाते हैं। पञ्जाब प्रदेशमें प्रीष्मकालमें नित्य ही बवण्डर आदि धूल भूकण्ड दिव्याई दिया करने हैं। उत्तर-पश्चिमभारतमें कई जगह प्रीष्मकालमें लू चलती है।

यह घूर्णितवायु घूमते घूमते कभी ऊपर कभी नीचे आया करता है। इसके घूर्णितमण्डलकी परिधिका परिसर अधिक होनेसे प्रायः ही एक स्थानमें अग्रगमन हुआ करता और कभी कभी इसके द्वारा विस्फयजनक घटना भी हो सकती है। एक बार एक छोटे बवण्डरने एक घोवीके पसारि हुए कितने कपड़ोंको कई सहस्र हाथ दूर पर फेंक दिया। लण्डनमें एक बार घोवीने कुछ कपडा सुखानेके लिये पसागा था, एक छोटे बवण्डरने भीषण वेगसे इन कपड़ोंको ले जा कर गिरजेके शिखर पर छोड़ दिया।

सामान्यतः इस वायुका वेग अत्यन्त प्रबल नहीं होता है। किन्तु इसकी क्षमता उतना सामान्य नहीं है।

यद्यपि हम जानते हैं, कि बड़ी बड़ी अट्टालिकायें भी

इसके द्वारा नष्ट हो जाती हैं। वेष्टिण्डज डीपमें यह वायु एक बार ऐसा भयङ्कर हो उठी थी, कि उसके परिणामावसे शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। कभी कभी नगरों पर होती हुई यह वायु जब प्रवाहित होती थी, तब मकानोंको ईंटें उखाड़ कर फेंक देती थी। एक नौ हाथसे अधिक चौड़ा और कई फीस लम्बा एक चर्म निम्माण कर दिया था। सुना जाता है, कि घूर्णितवायु द्वारा कई पोखरे और तलावोंके घाटोंको ईंटें भी उखड़ जाती हैं। बमु'एडाहापस्थ दुर्गकी वप्र-भूमिसे कई बार इस वायुके प्रभावसे प्रकाण्ड-प्रकाण्ड तोपें भी उड़ गई थी।

एक बार कलकत्तेके निकट 'धापा' नामक स्थानमें यह वायु उत्थित हुई था। यह बेलियाघाटा होता हुई कटकसे दक्षिण बेंगिया-पोखरकार्य बाठ कोस तक गई थी। चौड़ाईमें प्रायः आध पाच कोस थी। इसमें उसकी घर, छार, पृथ्वी जो कुछ मिले, उमने सबका मूलाच्छेद कर दिया था। इसी वायुसे प्रिसेप-साहसके मकानसे २० मनसे भारी लोहेके टुकड़े उड़ गये थे। ईटके दने स्तम्भ टूट कर दूर पर जा गिरे थे। अधिक दिनकी वात नहीं १६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें बङ्गालमें ऐसा दो घूर्णित वायु प्रवाहित हुई थी। पहले मेघना नदीके गर्भसे उठ कर ढाका नगरके प्रसिद्ध नवाबके घरका उठा कर समुद्रगर्भमें डुबा दिया था। पश्चिम बङ्गालमें ईष्टिण्डिया रेलपथके नलहटी स्टेशनके निकट एक गुड्स ट्रेन इस वायुसे उड़ कर रेल लाइनसे बहुत दूर पर जा गिरी थी।

इस वायुका मण्डल यदि सैकड़ों फीसका होता है, तो उसे आंधी कहा करते हैं। आंधी चाहे किसी तरहकी बर्षों न हो, वह घूर्णित वायु या बवण्डर ही है। आंधी सदा ही बहती रहती है। इसके सामने जो चीज पड़ती है, उसकी गति भी उसीकी तरह हो जाती है। घूर्णनका मण्डल छोटा और बड़ा भा हो सकता है। किन्तु सबकी स्थूलगति प्रायः एक ही तरह है। इसीसे इसको वातावर्त्ता कहते हैं। आंधी जिस ओर चाहे जा नहीं सकती। चन्द्र सूर्यकी गति जिस प्रकार स्थिर नियमसे होती है, आंधी भी इसी तरह एक

जलचक्रणोप नियमकी अपेक्षा है। निम्नतमकी उत्तरकी समी भाषियां पूर्वसे उत्तर और पश्चिम हो कर धूमती धूमती उत्तरकी ओर मग्नर होती हैं और निम्नतमकी दक्षिण ओर भाषियां उठती हैं, यह पश्चिमसे उत्तर और पूर्व हो कर धूमती धूमती दक्षिणकी ओर प्रस्थान करती है। इस तरह जितनी भाषियां जागे चल कर मध्यलाकारमें परिणत हो जाती हैं, किन्तु अब तक ओ भाषियां होक पड़ोई जगमें कोई भी दूसरीद तरईसि भाई नही देखो गई।

वायुगतिका ज्ञान महाहोको बड़ा काम देता है। क्योंकि इसको द्वारा यह ज्ञानपास ही भाषी तूफानसे नाग जहाज और अपना प्राण बचाते हैं। जितनी ही इसी विधाके बहसे भाषीमें जातमस्ता करते हुए बहु दिनसाध्य पपको छोड़े ही दिनमें तप कर लेते हैं। एक बार एक जहाज श्रोपुरीयाम जगजाघ पात्रियोंको से कर बङ्गापसागरर आ रहा था। कप्तान को असाबधानीसे भाषी या तूफानमें पड़ गया। महा जहाजको बचानेके लिये पात्रियोंको समुद्रगर्ममें डाल देने पर बाध्य हुए थे। सन् १६०२ ई०में इसी तरह एक जहाज आपानी पात्रियोंको से कर कककसे र गूमकी ओर आ रहा था। बङ्गोपसागरकी पार करते न करते अचानक उसको तूफानका सामना करना पड़ा। फलतः यह दक्षिण समुद्रमें ताहित हो कर भारतमहासागरके माडा गार्वर द्वीपक निकट आ पड़ आ था।

रथचक्रके धूमतीके समय इसकी परिधिका वेग नामि देशकी अपेक्षा अधिक द्रुत होनीका अनुमान होता है। किन्तु बायुके पूर्वानुके समय ठाक उसका विपरीत फल प्रत्यक्ष क्रिया जाता है। तूफान या भाषीके मजबूतकी परिधि जिस दिशा धूमती है, उसके मध्यभागमें इसको अपेक्षा गुन्तर वेग मालूम होता है। इसीलिये भाषीके समय अहाँ इसका मध्यभाग उपलब्ध होता है, वहाँ मयङ्कर उपद्रव मच जाता है।

बातावर्षका व्यास सब जगह एक समान नहीं रहता। यह दक्षिण प्रदेशमें ७५ सी कमी कमो बरा सी कोस तक व्यापमान हो कर यह भाषी प्रवाहित हुई है। भारतसमुद्रमें ३५ सी कोसोंमें खात हो कर साय

भाषी भाषा करती है। चीनसमुद्रमें इसका यह व्यास सङ्कीर्ण हो कर एक-सी या डेढ़-सी कोसका हो जाता है।

वातावर्षकी गतिके विषयमें कोई स्थिरता नहीं। प्रति घण्टा से ५० ज्योतिषी कास तक तूफान समय कर सकता है।

तूफानके मूमाग पर प्रवाहित होनेसे पथत दूर, मकान, चहारदीवारीसे तक जगनेके कारण इसकी गति धीमी पड़ जाती है।

समुद्रमें घेसी कोई बाधा न होनेसे भाषी बहुत दूर तक समय क्रिया करती और वहाँ अपने धर्म तथा कल्याण का प्रचार क्रिया करती है। इसी कारण महाद समुद्रमें तूफानके धर्म निरूपण करनेमें जैसा अवसर पाते हैं स्थल से लोग बेसी सुविधा नहीं पाते। रेडफिज्ड, टोप, पिचि टन और मरे भाई यूरोपीयगण विशेष यत्नस वाता वर्षके धम निरूपणमें कृतकाय हुए थे।

समुद्रके जिस स्थानसे वातावर्ष प्रवाहित होता है, उस जगहकी जम्बाराशिममें जैसा भाषीका जोर रहता है उस दिशावसे कमी कमी २०-२५-५० हाथ तक ऊँचो उड़र उठती है। कमी कमी तो इनके पुगुना तीगुनी ऊँचा तरंगे उठा करतो है। इन उठो हुई तरंगोंको हम खाई, ता वातावर्षाच्छोक कह सकते हैं। जहाजके लिये यह बहुत हानिकारक है।

इसके आरों ओर जो तरङ्गायित उड़का क्षात उत्पन्न होता है उनको वातावर्षक्षोत कहते हैं। जसके इस लम्बावसे परिचित रहना प्रत्येक महाहका काम है।

पूर्वोक्त समी दिखसोंमें वातावर्ष हुआ करता है। किन्तु बङ्गोपसागर, मरीच द्वीपक निकटके भारतसमुद्र, चीनसमुद्र आदिमें इसका जैसा प्रकोप देखा जाता है, वैसा और कहीं दिखाई नहीं देता। इसी कारण उक्त कई स्थानोंको भूगोच्छ्र ज्ञानकार वातावर्ष मरडल कहते हैं।

वातावर्षके समय मुद्दुद्दु मेषगर्जन, विधुत्त विकाश और प्रचुर वारिषयण होता है। इससे मालूम होता है, कि विधुत्तके साथ वातावर्षका कुछ न कुछ सम्बन्ध है।

जिस घूर्णितवायुमें घूर्णितध्वज उत्पन्न होता है, वह समुद्रमें प्रवाहित होने पर ऊपर जलको उठा कर जल-स्तम्भ उत्पन्न करता है। समुद्रमें जहा जलस्तम्भ उत्पन्न होता है उसके ऊपरी भागमें मेघ रहता है। पहले प्रबल घूर्णितवायु उपस्थित होकर वहाका जल आलोटित करता है और चारों ओरकी तरफ़ उस स्थानके मध्य भागमें द्रुतवेगसे पहुँचती है। उससे प्रसृत जल और जलाय वाष्प ग्रीव ही रात्रिकृत होता और वाष्पमय एक शुण्डाकार स्तम्भ उत्पन्न हो कर ऊपरकी उठने लगता है। मेघसे भी एक शुण्ड गिकल कर उसमें मिल गया है, ऐसा ही अनुमान होता है। जहा दोनों शुण्डोंका संयोग होता है, उसका विस्तार दो तीन फीटसे अधिक न होता। सुना जाता है, कि जब शुण्डाकार स्तम्भ दिखाई देता है, तब आवाज होती है।

सब जलस्तम्भ समानरूपसे लम्बे नहीं होते। इनकी लम्बाई लगभग १७५० हाय तक हुआ करती है। इसका पार्श्वदृश जैसा घना दिखाई देता है, वैसा मध्यभाग नहीं दिखाई देता। इससे मालूम होता है, कि यह शून्य गर्म अर्थात् पौला है। यह स्तम्भ प्रायः एक ही जगह स्थिर नहीं रहता। वायुकी गतिके अनुसार उसी ओर चला जाता है। यदि उसका ऊपरी भाग और अधोभागका वेग समान न रहे, तो क्रमशः वह विच्छिन्न हो जाता है। उस समय उसमें जो वाष्पराशि रहती है, वह छिन्न-भिन्न हो कर या तो वायुमें मिल जाती या समुद्रमें बरफ़के रूपमें गिर कर मिल जाती है। इसका यह भी निश्चय नहीं, कि यह कब तक रहता है। कभी कभी तो यह उत्पन्न होने ही बिनष्ट हो जाता और कभी एक घण्टा तक भी स्थायी रहता है। जलस्तम्भ देखो।

वायुमयदलके विविध तथ्यपरिज्ञापक यन्त्र।

वायुमण्डलके जातोणतामानानिर्णय, आर्द्रता पथ्या-वेक्षण, वायवायु गुरुत्व और चाप निर्णय, वायु प्रवाहका दिशानिर्देश, इसकी गतिविधिका निर्णय, वृष्टि और तुषार सम्पातका परिमाण-निर्णय, मेघका प्रकारभेद, परिमाण और गतिनिर्देश आदि यन्त्रों पर व्यावहारिक मिट्टेरैयलजी विज्ञानकी उन्नति निर्भर कर करती है। १५५३ ई०के प्रारम्भसे ही यूरोपमें कितने ही मनीषियोंने

इस विषयमें मन लगाया। यूरोपीय सहज ही वाणिज्य-प्रिय है। जलपथरी वाणिज्य करने पर मेघ, वृष्टि, आंधी, तूफान, वायुकी गति आदिका परिज्ञान विशेष प्रयोजनीय है। सन् १५५३ ई०में टस्कानोंके प्रोएड ड्यूक द्वितीय फार्दिनेण्डने वैज्ञानिक पण्डित लुइगी पण्टानरोंके (Luigi Antinori) तत्वावधानने इटलीमें इसके सम्बन्धमें एक फार्म्यविभाग खोला। इसके बाद १६वीं शताब्दीमें जगत्के सब खण्डोंके तथ्यसंग्रह करनेका विद्यालय आयोजन हुआ, उस समय इसके सम्बन्धमें और विषयों पर उत्तम गवेषणा हुई थी। रातिकालमें सौरपार्थिव तापका विकिरणातिशय, दिवाभागमें सौरकिरण-विकिरणाधिक्य, नभोमण्डलकी ज्योतिर्मय दृश्यायला, वायु-स्तरकी धूलिक्रणा और उसका रासायनिक उपादान आदि बहुनेरे विषयों पर गवेषणा करनेके निमित्त नाना प्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार आवश्यक हो गया। इसी अभावको पूर्त्तिके लिये ही वैज्ञानिकगण विशेष परिश्रम और बुद्धिकौशलसे कई वर्त्तमान यन्त्रोंका आविष्कार किया है। यहा अतीव प्रयोजनीय तथा प्रधान प्रधान यन्त्रोंको नामावली दी जाता है—

(१) थर्मोमिटर (Thermometer) वायुके उत्ताप और शैत्यका परिमाण नापनेके लिये ही इस यन्त्रको खूबि हुई है।

(२) बारोमिटर (Barometer)—इस यन्त्रमें वायुका भारित्व निर्णित होता रहता है। किन्तु इसके द्वारा बहुत बारी मालूम होती है। इससे मेघ, वृष्टि और आंधी तूफानके सम्बन्धमें अनेक तथ्य मालूम हो सकते हैं। जिन सब तरल पदार्थोंका गुरुत्व विनिर्णित हुआ है, उनके किसी पदार्थसे ही यह बारोमिटर तैयार हो सकता है। जल, ग्लिसरिन और पारद अनेक समय बारोमिटरके बनानेमें व्यवहृत होते हैं। किन्तु पारा ही इसके बनानेमें साधारणतः व्यवहृत होता है। सन् १६४३ ई०में गेलिलिओका छात्र टेरोसेन्ला (Torricelli) ने बारोमिटरका आविष्कार किया। एनिरायेड बारोमिटर (Aneroid Barometer), चाटर बारोमिटर और ग्लेसटिन बारोमिटर नामसे तीन प्रकारके बारोमिटरोंका उल्लेख दिखाई देता है।

(३) एनिमोमिटर (Anemometer) — इस यन्त्रसे वायुको गति मापो जा सकतो है। टाकर सिरेव (Dr Land) और बाकर रविन्सन (Dr Robinson) निर्मित एनिमोमिटर वर्तमान समयमें प्रचलित है।

(४) हायग्रोमिटर (Hygrometer) — इस यन्त्रसे वायुको आर्द्रताका परिमाण स्थिरोक्त होता है। स्कोवाकहो फार (Schwachholder) या स्वेनसनके (Swenson) प्रस्तुत किये यन्त्र ही इस समय व्यवहृत हो रहे हैं।

(५) रैनगेज (Rain gauge) — इस यन्त्रसे वृष्टिका परिमाण निर्जोत होता है। तुपारपाठके परिमाण निर्णय करनेके लिये मो पेसा यन्त्र है।

(६) एयरपम्प (Air pump) — वायु निकालनेका यन्त्र। इस यन्त्रसे वायुपूर्ण पात्रको वायु निकाली जाती है।

(७) इवापोरिमिटर (Evaporimeter) — उद्भूत वाष्प परिमाणक। इस यन्त्रसे उद्भूत वाष्पका परिमाण स्थिरोक्त होता है।

(८) सनसाइन रिकार्डर (Sunshine Recorder) — इस यन्त्रसे सूर्यकिरणका परिमाण निर्जोत होता है। जार्जेन साइड इस यन्त्रको उद्भूति कर फोटोग्राफिक सनसाइन रिकार्डर नामक एक यन्त्रका आविष्कार किया।

(९) नेफोस्कोप (Nephoscope) — मेघ और अन्ध्याय घनीभूत वाष्पकी गतिनिर्णयके लिये इस यन्त्रका व्यवहार किया जाना है। मारमिन (Marin) साहबका बनाया यन्त्र ही प्रसिद्ध है।

(१०) डस्ट काउण्टर (Dust counter) वायुको घूर्णिसंख्या निर्णायक यन्त्र। एडेनबर्गके मिशर जॉन एरकिन (John Aitkin) इसका आविष्कारक हैं।

इसका निया प्राकृतविज्ञानके परोक्षार्थ और मो अनेक यन्त्र वायुमण्डलके विविध तत्त्व जाननेके लिये व्यवहृत होते हैं।

वायुवेग (सं० पु०) वायुवेगः। वायुका वेग वायुकी गति वायुवेगमास (सं० स्त्री०) वायुगघरी मगिमी या सहो दत्त।

वायुगर्मा—आन्धर्म्ये (बैनरि० १५६।१०)

वायुप (सं० पु०) मरुत्पविशेष, कालवस नामकी मछली।

शुष्प—पृथक् अन्वकारक, मधुर और धातुबद्धक।

वायुमन्त्र (सं० पु०) पापो सखा (रामार्ः शक्तिव्यम्। पा १।४।६१) इति वृष्। अग्नि, भाग। (मठ)

वायुसन्त्र (सं० पु०) वायुः सखा यस्य इति बिप्रदे ट्व समासामाका। (मन्त्र जो। पा ४।१।६१) इति अनडा देश। अग्नि, भाग। (मठ)

वायुसूत्र (सं० पु०) वायो सूत्रा। १ वायुपुत्र हनुमान्। २ मास।

वायुस्तरम् (सं० पु०) वायु देश वायु स्थान। जहां वायु रहतो हो।

वायुदन् (सं० पु०) एक श्रुति ओ मङ्गल श्रुतिक सुतोय पुत्र थे। इनका अन्वृत्तान्त इस प्रकार है—मङ्गल श्रुति एक बार सरस्वतीमें स्नान कर रहे थे। वहां उनको सर्पाङ्ग सुन्दरो एक नन्द स्त्री स्नान करतो हुए दिखाई दीं। इसे देख कर उनका वाग्म्य स्थापित हो गया। उस देवको उन्होंने एक धड़ में रखा, रक्तने ही वह सात भागोंमें विभक्त हो गया और उनमें वायुवेग वायुबन्ध, वायुदन्, वायु मण्डल, वायुजाम, वायुरेता और वायुचक्र नामक सात महवि उत्पन्न हुए।

वायुहान (सं० स्त्री०) वायुशून्य, गारोन्वायुच प्रमायने रवित।

वायोबस (सं० स्त्री०) बयोघस (इन्द्र) स्मरघोष। (कल्पा भी० ४।५।१५)

वायोबिधिक (सं० पु०) धयो अर्थात् पहावियपक विधा की आन्वयना करगेबामा।

वाट्य (सं० पु०) वट्यपुत्र, मरुत्पद्यवा। (शुक् १।५।११)

वाट्यमिमूत (सं० स्त्री०) वायुना अभिमूतः। वायुप्रभत्, वायु प्रात अभिमूत वायुरोगी।

वाट्यास्पद (सं० स्त्री०) वाट्यानाकारि सञ्जालव्यप/वत्। आकाश।

वारंट (अ० पु०) अदालतका एक प्रकारका आज्ञापन। इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह काम करनेका अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे वह अथवा करनेमें असमर्थ हो। यह कई प्रकारका होता है, जैसे—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशो, वारंट रिहाई आदि।

वारंट गिरफ्तारी (अ० पु०) अदालतका एक आज्ञापन। इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरुषको पकड़ कर अदालतमें हाजिर करे।

वारद नलाणी (अं० पु०) अदालतका एक आजापत्र । इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह अधिकार दिया जाय, कि वह किसी स्थानमें जा कर वहाका अनुसन्धान करे।

वारद रिहाई (अं० पु०) अदालतका एक आजापत्र । इसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारीको वह इजाजत और हक मिले कि वह किसी आदमीको जो जेल, हवालत या गिरफ्तारीमें हो मुक्त कर दे; या किसी माल या सम्पत्ति को, जो कूचे हो या किसीके तस्वाजधानमें हो, मालिकको लौटा दे।

वार (सं० पु०) आग्यनि विधये वेति वृ णिच्, अच्, वृ-वञ्च् वा । १ मसूद, राजि, डैग । २ डार, डरवाजा । ३ हर, मद्रादि । ४ कुन्ववृक्ष, लटनीर । ५ अण । ६ सूर्यादि वा नर, दिन दिवस । सूर्यादिके दिनको वार कहते हैं। वार ७ हैं—रवि, सोम, मङ्गल बुध, बृहस्पति, शुक और शनि । सावन दिनकी तरह वारकी गणना होती है। सूर्योदयसे वारका आरम्भ मानना पड़ेगा। अर्थात् आदि निर्दिष्ट आदि कार्य सूर्योदय होनेसे ही होते हैं। सूर्योदयसे कुछ पहले यदि किसीकी मृत्यु या जन्म हो, तो उसे सावनानुसार पूर्वदिन मानना होगा। सूर्योदयके बाद हीसे वह दिन लेना हाता है।

नव आदि प्रहरोंके भोग्य दिन ही उन सब नामोंसे पुकारे जाने हैं अर्थात् रविग्रहका भोग्य दिन रविवार पहचाना है। इसी प्रकार रवि आदि सात ग्रहोंके भोग्य दिन सात हैं, अतएव वार भी सात हुए हैं। इन सात वर्गमें सोम, शुक, बुध और बृहस्पति ये चार वार शुभ और बाकी तीन अशुभ हैं। इसलिये शुभ वारमें शुभ कर्म किया जा सकता है तथा अशुभ वारमें मङ्गलजनक कार्यमात्र ही निषिद्ध है। इन सब वारोंके दिवा और रात्रि भागके मध्य जो एक निर्दिष्ट अशुभ समय है उसे चारवेला और कालवेला कहते हैं। दिवा भागमें जो निर्दिष्ट अशुभ समय है उसे चारवेला और रात्रिकालके अशुभ समयको कालवेला कहते हैं। यह निर्दिष्ट समय इस प्रकार है—रविवारका चतुर्थ और पञ्चम यामाद (दिवामानके साठ भागमेंसे एक भाग) चारवेला तथा इसी प्रकार सोमवारका द्वितीय और सप्तम यामाद, मङ्गलवारका षष्ठ और द्वितीय यामाद, बुधवारका

तृतीय और पञ्चम यामाद, बृहस्पतिवारका सप्तम और अष्टम यामाद तथा शनिवार प्रथम, षष्ठ और अष्टम यामाद चारवेला है। चारवेलामें एक भी शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। यह सभी कार्योंमें निन्दित है। कालवेला—रविवारके रात्रिकालका षष्ठ यामाद, सोमवारका चतुर्थ यामाद, मङ्गलवारका द्वितीय यामाद, बुधवारका सप्तम यामाद बृहस्पतिवारका पञ्चम यामाद, शुकवारका तृतीय यामाद तथा शनिवारका प्रथम और अष्टम यामाद निन्दनीय है अर्थात् रात्रिकालमें यह सब समय छोड़ कर शुभ कार्य करना उचित है। इस कालवेलाके कालरात्रि भी कहते हैं। इन चारवेला और कालवेलामें यात्रा करनेसे मृत्यु, विवाह करानेसे वैधव्य और व्रतानुष्ठानसे ब्रह्मघ्न होता है। अतएव इस समयमें सभी शुभ कर्मोंका परित्याग करना उचित है।

मारसंप्रहर्षके मतसे स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शनके समय वारके अनुसार फल होता है :—

‘यादित्यं विधया नारी सोमे चैव पतिव्रता ।

वेण्या मष्टमारं च ध्रुवे सीमागमेव च ॥

बृहस्पती पतिः श्रीमान् शुक्ले पुत्रवती मन्त्रे ।

रनी बन्ध्या तु विद्याया प्रथमस्त्री रजस्वला ॥’ (मथुरेश)

रविवारमें विद्यया, सोमवारमें पतिव्रता, मङ्गलवारमें वैश्या, बुधवारमें सीमागमवती, बृहस्पतिवारमें पति श्रीमान्, शुकवारमें पुत्रवती और शनिवारमें बन्ध्या होती है।

काष्ठीप्रदीपमें प्रति वारका फलाफल लिखा है। रविवारमें जन्म होनेसे जातबालक धर्माधी, तार्क्ष्यपूत, सहिष्णु, प्रियवादी और अल्प द्रष्टमें घनी होता है। सोमवारमें जन्म होनेसे कामी, स्त्रियोंके प्रियदर्शन, कामल वाक्यसम्पन्न और भोगी; मङ्गलमें क्रूर, साहसी, क्रोधा, कपिल अथवा श्यामवर्ण, परदारानामो और कृपिकर्मी-नुरक्त; बुधवारमें बुद्धिमान्, परदारपरायण, कमनीय शरीरवाला, शास्त्रार्थमें पारंगामी, नृत्यगीत प्रिय और मानी; बृहस्पतिवारमें शास्त्रवेत्ता, सुन्दरवाक्यविशिष्ट, शान्तप्रकृति, अतिशय कामी, बहु पोषणकर, दृढ़ बुद्धिसम्पन्न और दयाल; शुकवारमें जन्म होनेसे कुटिल, दीर्घजीवी, नीतिशास्त्रविशारद और स्त्रियोंका चित्तहारा

तथा शनिवारमें अन्न होनेसे बहू दीन हुआ, कलहमिय, मुबरोगो और दूध/सुकुग होता है।

कनिष्ठशेषतिथिमें मासके हिसाबसे चार ज्ञानका संकेत दिया गया है। यह चारगणना संकेत, शकाब्द सन् वा अद्याब्द आदिसे हो निकालित हो सकती है। नीचे चार निर्णयक कुछ उपाय दिये गये हैं।

शकाब्दक अनुसार चारगणना—जिस शकाब्दके जिन मासके जिस दिनका चार ज्ञानना हो उस शकाब्दको अक्षुम्भ्यामें उस शकाब्दक अक्षुम्भ्या अक्षुर्धाश आह है। पीछे उसमें निम्नलिखित मासाङ्क और उस मासको दिनसंख्या तथा अतिरिक्त योग कर आ योगफल होगा उसका उसे भाग है। भागशेष और रह जायगा बही चारसंख्या होगा। यदि भाग शेष १ रहे तो रविवार और यदि २ रहे तो सोमवार ज्ञानना होगा इत्यादि।

यदि शकाब्दका अक्षुर्धाश पूर्णाङ्क न हो कर भागाङ्क हो, तो उस भागाङ्कके बख्खेमें १ मानना होता है, जैसे—१०१६ है, इसका अक्षुर्धाश ४४१३ होता है, येसा न मान कर उसक बख्खे ४५० मानना होगा, फिर जिस शकाब्दका भागाङ्क न हो उस शकाब्दके केवल भाद्रका ३ और आश्विनका २ मासाङ्क लेना होगा, नहीं तो पार्श्वमिलित भाद्र और आश्विनका पूर्णमिदिष्ट मासाङ्क जोड़ कर गणना करनेसे अक्षुमें नहीं मिलेगा। गणनामें यदि कमो भूक जाये, तो १ बार ६ इत्थे अक्षु निरवय मिल जायेगा।

मासङ्क

०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
०	३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०

उदाहरण—१०१६ शकाब्दका ३१वीं शैतका दिन बार पड़ेगा। यहाँ पर शकाब्द संख्या १०१६ और

- ० "कल्पतरुनेत्र शृङ्खलेषु शृङ्खल्यु विपुलबुगल्यक मतिष्ठत्पारु-शु-शङ्खम्। बुगतरुपलमयी वल्ले विद भाषे ६५५५५५५५५ भादोर्भाषोरे ॥"

उसका अक्षुर्धाश ४५० है। अतएव शकाब्द १०१६ + उसका अक्षुर्धाश ४५० + मासाङ्क ६ + दिनङ्क ३१ + अतिरिक्त २ = १२८८, इसमें ७का भाग देने पर भागशेष ६ रहता है, सुतरां १०१६ शकाब्द ३१वीं शैतको शुक्रवार पड़ेगा।

सम्बन्धी हिसाब-गणना—शकाब्दकी तरह सन्में गो सन्का अक्षुर्धाश मासाङ्क दिनङ्क और अतिरिक्त जो आह है। पीछे पूर्वीक क्रियाके अनुसार चार ज्ञाना जायेगा। किन्तु जिस सन्में ४१ भाग देने पर १ बाधा रहता है (जैसे १२८१, १२८५ इत्यादि) उस सन्क भाद्रमासमें ६ और आश्विनमें २ मासाङ्क जोड़ना होगा।

उदाहरण—१२८४ मासको ३१वां शैतका कौन बार पड़ेगा? सन् १२८४ + उसका अक्षुर्धाश ३२१ + ६ दिनङ्क ३१ अतिरिक्त = १६४१ इसमें ७का भाग देने पर भागशेष ६ रहता है, अतएव उत्तर हुआ शुक्रवार।

- जन्तरी—० य गरीओ सालको संख्या भी
- फरवरी—१ उसका अक्षुर्धाश तथा पार्श्व मिलित
- मार्च—२ मासाङ्क दिनङ्क और अतिरिक्त ३
- अप्रैल—३ अक्षु जोड़नेसे आ भागफल होता है,
- मई—४ उसमें साठका भाग है। भागशेष
- जून—५ जो रह जाय उसमें रविवारके गणना
- जुलाई—६ करके जो बार पड़ेगा है उसी बारक
- अगस्त—७ स गरीओ वर्षक उसे भाग है, यदि शेष
- सितम्बर—८ कुछ न बचे, तो उस वर्षका फरवरी
- अक्टूबर—० मास सिप्-द्वार होता है अर्थात् यह
- नवम्बर—१ मास १८ दिनक बख्खे २१ दिनका
- दिसम्बर—२ होगा। उक्त सिप्-द्वार वर्षमें मार्चसे

दिसम्बर तक चरा मासमें अतिरिक्त ३ जोड़ना नहीं पड़ेगा।

उदाहरण—स गरीओ १८०१ ई०की २३वीं मार्चका कौन बार पड़ेगा? अक्षुर्धाश १८०० + अक्षुर्धाश ४०० + मासाङ्क ३ × दिनङ्क २० + अतिरिक्त ६ = २२८३, उसमें साठका भाग देने पर शेष ३ रहता है अतएव उस दिन मङ्गलवार पड़ेगा।

० भाषट्प, हाँकनेवाली यक्षु। ८ इस। ६ काळ, बराग अथवा, जैसे—चारवार। १० नवीं या सप्तमका किनाट।



११ घाण, तीर । १२ मदिरा-पात्र, मद्यका प्याला ।  
१३ निवारण, रोक । १४ जल, पानी । १५ पित्त । १६  
कालाकेश । ( मूक् २।४।४ ) १७ वारी, लींवा । १८ पृष्ठ ।  
( ति० ) १९ वरणोप । ( मूक् २।१२।३ )

वार ( सं० क्ली० ) वारयति वियते वेति वृ णिच् किय् ।  
१ जल, पानी । २ सुसज्जित भावमें अवस्थान, टाटवाट  
दिखाना ।

वार—एक प्राचीन कवि ।

वारक ( सं० ति० ) वारयति वृ णिच्-णुल् । १ निवारक,  
निषेध करनेवाला । ( क्ली० ) २ कष्टस्थान, चढ़ रवान  
जहा पीड़ा हो । ३ वाला, सुगन्धवाला, एक सुगन्धित  
लुण । ( पु० ) ४ अश्व, घोड़ा । ५ अश्वमेद, एक प्रकारका  
घोड़ा । ६ अश्वगति, घोड़ेकी कदम ।

वारकन्यका ( सं० स्त्री० ) वारनारी, वेश्या, रखी ।

वारकिन् ( सं० पु० ) वारकोऽस्तवस्येति इति । १ प्रसि  
वादी, शत्रु । २ समुद्र । ३ चित्ताश्व, लडाईका घोड़ा ।  
४ पर्णजोषी, पत्ते प्या कर रहनेवाला तपस्वी ।

वारकी ( सं० पु० ) वारकिन् देखो ।

वारकीर ( सं० पु० ) वारे अवसरे कीलति बध्नाति कीतु-  
कार्यं रज्ज्वा प्रेम्ना वा कीलक, लस्य रत्वम् । १ श्यालक,  
साला । २ वारप्राही, मारवाही, बोक होनेवाला । ३ हारी,  
हारपाल । ४ घाडघ, घाडवानि । ५ यूका, जू । ६ वेणि  
वेधनी, वेणी बाधनेकी छोटी कंधी । ७ यडाश्व, लडाई-  
का घोड़ा ।

वारगडि—चम्पारनके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

( भविष्य-ब्रह्मण्ड० ४२।२२१ १३१ )

वारङ्ग ( सं० पु० ) पक्षी, चिडिया ।

वारङ्ग ( सं० पु० ) वाग्यतीति वृ अङ्गच ( सवृश्चोर्द्धद्विरव ।  
उष् १।१२१ ) इति धातोर्द्धङिः । १ जङ्ग, वा छुरिकादिक  
मुष्टि, तलवार छुरी बादिकी मूठ । २ अंकुडके आकार  
का एक औजार । इससे चिकित्सक अस्थिविनष्ट शल्य  
निकालते थे । ( सुश्रुत )

वारट ( सं० क्ली० ) वृ अटक् । १ क्षेत्र । २ क्षेत्रसमूह

वारटा ( सं० स्त्री० ) वास्ट टाप् । चरटा, हंसी ।

वारण ( सं० क्ली० ) वृ णिच् ल्युट् । १ प्रतिषेध, निवारण ।  
२ बन्धन । ३ निषेध, मनाही । ४ हस्त द्वारा निषेध,

हाथसे रोकना । ( पु० ) वारयति परवलमिति वृ-ल्यु ।  
५ हरता, हाथी । ६ चर्म, कवच, बखतर । ७ अंकुश ।  
८ हरिताल । ९ कृष्णाशिश्या, काला सीसम । १० पारि-  
भद्र । ११ श्वेतकूटज मृक्ष, सफेद कोरैयाका फूल ।  
१२ छप्पय छन्दका एक मेट । इममें ४१ गुरु, ७० लघु,  
कुल १११ वर्ण वा १५२ मात्राएं होती हैं अथवा ४१  
गुरु, ६६ लघु, कुल १०७ वर्ण वा १४८ मात्राएं  
होती हैं ।

( ति० ) वार-रण अच् ; वारि जले रणति चरतीति ।

१३ जलजात, समुद्रोज्ज्व । १४ प्रतिषेधक, रोकनेवाला ।

वारणकणा । सं० स्त्री० ) गजपिप्पली, गजपोपल ।

वारणकृच्छ्र ( सं० पु० ) कृच्छ्रभेद । इममें एक महीने  
तक पानामें जीका मत्त खोल कर पीना पड़ता है ।

वारणकेशर ( सं० पु० ) नागकेशर ।

वारणपिप्पली ( सं० स्त्री० ) गजपिप्पली, गजपोपल ।

वारणप्रतिवारण ( सं० स्त्री० ) १ कर्मादि हाग जीतल,  
रक्षणोपयोगी, कवचविशिष्ट । ( पु० ) २ गजरक्षण, हाथीकी  
रक्षा करना ।

वारणवनेज शास्त्री—अमृतमृति नाम्ना प्रक्रियाकौमुदी-  
व्य.श्याके प्रणेता ।

वारणवल्लभा ( सं० स्त्री० ) कदली, केला ।

वारणवृषा ( सं० स्त्री० ) वारणान् पुष्पातीति पुष-कः  
पृषोदरादित्वान् यस्य वः । कदली, केला ।

वारणशाला ( सं० स्त्री० ) हस्तिशाला, फीलघाणा ।

वारणसाहय ( सं० क्ली० ) गजसाहय, हस्तिनापुर ।

वारणसां ( सं० स्त्री० ) वरणा च असी च नदीद्वयं तस्य  
अदूरे भवा । ( अदूरभवश्च । पा ४।२।७० ) इत्यण् डोप्,  
पृषोदरादित्वान् साधुः । वाराणसी, काशी ।

वारणस्थल ( सं० क्ली० ) रामायणोक्त जनपदभेद ।

( रामा० २।७।३८ )

वारणा ( सं० स्त्री० ) वारण टाप् । कदली, केला ।

वारणानन ( सं० पु० ) गजानन, गणेश ।

वारणावत ( सं० क्ली० ) महाभारतोक्त एक प्राचीन नगर ।  
यह हस्तिनापुरसे ले कर गङ्गाके किनारे तक विस्तृत था ।  
यहाँ पर दुर्योधनने पाण्डवोंको जलानेके लिये लाक्षागृह  
बनवाया था । भीम उस गृहको जला कर माता और

प्राताभोध साथ उद्येशमें गङ्गा पार कर गये। कुछ लोग इसी बरनामके भासपास मानते हैं और कुछ लोग इयाहाबाद् मिलेके इ द्विपा नामक स्थानके पास।

भारणावतक ( सं० लि० ) भारणावतसम्बन्धीय, वारणावनवामी।

भारणाह्वय ( सं० पु० ) वारणाह्वय, इस्तिनापुर।

वारणीय ( सं० लि० ) वृ-णिच्-अनीयर्। १ प्रतिपेय योग्य।

वारणेश्वर ( सं० पु० ) उत्कण्ड हस्ती, सुन्दर हाथी।

वारतन्त्र ( सं० पु० ) वरतन्त्रक गोलापत्य।

वारतन्त्रचोय ( सं० पु० ) वरतन्त्ररचिन। ( पा ४१११०२ )

वारवीय ( हि० ओ० ) वैश्या, यह शब्द केवल वर्धमें प्रयुक्त होता है।

वारव ( सं० स्त्री० ) वरव-अण्। धर्मवन्धनी।

वारवक ( सं० लि० ) वरवार्ज-अव, वरवार्जसम्बन्धीय।

वारव् ( हि० पु० ) वारव, मेघ।

वारवत ( सं० स्त्री० ) वृष्टिमा कोई सीवण या शोचनीय कावह। २ मार काट-रंगा फसाव्। ३ घटना सम्बन्धी समाचार।

वारवण ( सं० पु० ) वीरायिक जनपदभेद, इमे पाठपाल मी कहते हैं।

वारव ( हि० स्त्री० ) निछावर वसि। यह शब्द केवल वर्धमें प्रयुक्त होता है।

वारवा ( हि० लि० ) १ निछावर करना उन्मार्ग करना। ( पु० ) २ उन्मार्ग, निछावर।

वारवाने ( सं० स्त्री० ) वारवार्जना वैश्या।

वारविकल्पिको ( सं० स्त्री० ) वारवारी, वैश्या।

वारवार ( हि० पु० ) १ नदी आदिका यह किनारा और यह किनारा द्वार पार। ( अथ ) २ इम किनारे से उम किनारे तक। ३ एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तक, एक बगलसे दूसरे बगल तक।

वारवाशि ( सं० पु० ) वीरायिक जनपदभेद।

वारवाप्य ( सं० पु० ) वारवार्जि वेत्तो।

वारवम् ( सं० स्त्री० ) प्रतिवारका शुभाशुभ निर्देश। सोम शुक्र और बुधस्वतिवार समो कामीमें शुभ है, किन्तु शनि, रवि और मङ्गलवारका किसी किसी कामक निषे

शुभ बतलाया है। रात्रिका भूमिपक, रात्राको वात्रा रात्र कार्प भीर रात्रार्थन तथा अन्निकार्प आदि रविवारको ही प्रगस्त है। गेहानिघण्ट सेनापतियोंका राजाहा वाजन भीर पुण्यामियोंका इष्ट इत्यादि पञ्च प्रचारके व्यापाम आहार गण्य इत्यादि तथा खोरीका जम मङ्गल वारको ही शुभ है।

स्थापन करना वा कार्य समाप्त करना, पुण्यकर्मादि करना यहप्रवेश हाथीकी सवारी, घोड़ेकी सवारी, ग्रामप्रवेश तथा मगर भीर पुण्यप्रवेश शनिवारको ही शुभ कहा गया है।

वारकेर ( हि० स्त्री० ) १ निछावर वसि। २ यह रूपया पैसा से। बुद्धा या बुद्धिदिनके सिद्ध परसे घुमा कर शोम तियोंका विद्या जाता है।

वारबाण ( सं० पु० स्त्री० ) वार वारणीय वाणं वरमात्। कञ् क्, वञ्जतर।

वारवुपा ( सं० स्त्री० ) वारवुपा वेत्तो।

वारमासीय ( सं० पु० ) वार मासके अनुष्ठेय कार्य, वार मासकी अवस्था।

वारमास्या ( सं० स्त्री० ) वारमासीय वेत्तो।

वारमुको ( सं० स्त्री० ) वारवार्जना, वेत्तो।

वारमुबया ( सं० स्त्री० ) वारेपु वैश्याससुहेपु मुण्या अण्। भेद वारवार्जना। ( भागवत० ११११३८ )

वारम्मार ( सं० अथ० ) पुना पुना, फिर फिर।

वारविठम्ब ( सं० लि० ) प्रतिपेयके योग्य, निवारण करने लायक।

वारविता ( सं० पु० ) वारवति बुभौतगिति वृ षिच् नृच्। वति स्वामि।

वारवुपयो ( सं० स्त्री० ) वैश्या, रंबी।

वारवोपित् ( सं० स्त्री० ) वारवारी, वैश्या।

वारवम् ( सं० लि० ) वरवञ्चि अण्। वरवञ्चिप्रणय।

वारव—एक पाकीन कृत्वा प्राप्त। ( विविधप्रणय )

वारवमा ( सं० स्त्री० ) वार वारोति वा-क्। १ वरवा, रंधिया कोड़ा। २ राजहन्नी। ३ कर्को, कमा।

वारवीक ( सं० पु० ) वरवार्जना मूय, वनकस।

वारवक—एक छोटा नदी। यह ईदम्ब पर्यंतसे निरन्तो है। इसका बहुमान नाम वारव को है।

वारवत्या ( सं० स्त्री० ) महाभारतके एक नदीका नाम ।  
 वारवत् ( सं० त्रि० ) पुच्छविशिष्ट, जिसके पूँछ हो ।  
 ( शृक् १२७१ )  
 वारवन्तीय ( सं० स्त्री० ) सामभेद । ( तैत्तिरीयसं० ४।५।८।१ )  
 वारवधु ( सं० पु० ) वेश्या, रडो ।  
 वारवाणि ( सं० पु० ) वारं शब्दसमूहं घणने इति घण-शृण् ।  
 १ वशीवाद्क, वशी वजानेवाला । २ उत्तम गायक ।  
 ३ धर्माध्यक्ष, न्यायाप्राज्ञ, जज । ४ सवत्सर । ( स्त्री० )  
 ५ वेश्या । ६ वेश्याओंमें श्रेष्ठ ।  
 वारवाणो ( सं० स्त्री० ) प्रधान वेश्या ।  
 वारवाण्य ( सं० पु० ) वारवाण्य देखो ।  
 वारवाल ( सं० पु० ) काश्मीरका एक अपहर ।  
 ( राजतर० १।११ )  
 वारवामि ( सं० पु० ) महाभारतके अनुसार एक जनपदका नाम । ( भागवत भाष्य २।४४ ) पाश्चात्य भौगोलिक सिग्निने Baroush नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है ।  
 वारवास्य—वाग्वाति देखो ।  
 वारवलासिनी ( सं० स्त्री० ) वारान् विलासयतीति वि लसि च्-र्णनि-ङोप् । वेश्या, रडो ।  
 वारवेला ( सं० स्त्री० ) दिनका वह यामाद्ध जिसमें शुभ-कार्य निपट वताया गया है । प्रतिघार दिनको दो वार-वेला और रातको एक कालवेला निर्दिष्ट हुई हैं । दिनके प्रथम यामाद्धको कुलकवेला या वारवेला और द्वितीय यामाद्ध को भा वारवेला कहते हैं ।  
 वार शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।  
 वारवत् ( सं० स्त्री० ) दैनन्दिन व्रतकर्म ।  
 वारसुन्दरी ( सं० स्त्री० ) वारवलासिनी, वेश्या ।  
 वारसंवा ( सं० स्त्री० ) १ वेश्यावृत्ति । २ वेश्यासमूह ।  
 वारखो ( सं० स्त्री० ) वेश्या, रडो ।  
 वारानिधि ( सं० पु० ) वारा जलाना निधिः, अलुक्-सं० । समुद्र ।  
 वारा ( हि० पु० ) १ मूर्च्छाकी वचन, किफायत । २ लाभ, फायदा । ३ इधरका किनारा, वार । ( वि० ) ४ किफायत, सस्ता । ५ जो निछावर हुआ है, जिसने किसी पर अपने-का उत्सर्ग किया हो ।  
 वाराङ्गना ( सं० स्त्री० ) वेश्या, रडो ।

वागटकि ( सं० पु० ) वागटकके पुं अपत्य ।  
 वाराटतीय ( सं० त्रि० ) वराटक महाविश्वरूप इति छ ।  
 वराटक-मन्मन्धीय ।  
 वाराणसी ( सं० स्त्री० ) वरणा च अमी च, तयोर्नघोरदूरे नवा ( भदूरभवश्च । पा ४।२।७० ) इति अण्-ङोप्-पूर्वा० ।  
 काशीधाम ।  
 "वरणासी च नग्री द्वे पुण्ये पापहरे उभे ।  
 तयोरन्तर्गता या तु सैव वाराणसी स्मृता ।"  
 अर्थात् वरणा और असी इन दो पुण्यप्रदा और पापहरा नदियोंके बीच जो स्थान अवस्थित है वही वाराणसी है, मोक्षदायक काशी है । हिन्दू, जैन और बौद्ध इन तीनों सम्प्रदायके निकट काशी तीर्थस्थान समझी जाती है । इनमेंसे हिन्दुओंके निकट यह सर्वप्रधान तीर्थस्थान कह कर प्रतिष्ठ है । काशी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।  
 इस स्थानमें जिन प्रकार अति प्राचीन कालसे ब्राह्मणोंके निकट प्राधान्यलाभ किया है उसी प्रकार बुद्धदेवके अभ्युदयके समयसे बौद्धोंके समागम पर बौद्धजगत्में भी किया था । वाराणसीके अन्तर्गत प्राचीन ऋषिपत्तन वर्त्तमान सारनाथमें आज भी उस सुप्राचीन बौद्धकीर्तिका निदर्शन देखनेमें आता है । मिट्टीके नाचेमें दो हजारवर्षसे अधिक पुराने स्थापत्यशिल्प तथा सम्राट् अशोक, सम्राट् कनिष्क और कनिष्कके अधीन पूर्वभारतीय क्षत्रपोंकी जो सब शिलालिपियां निकाली गई हैं, उनसे प्राचीन भारतके पूर्वगीरव और प्राचीन इतिहासके अनेक अतीततत्त्व जाने जाते हैं ।  
 वाराणसीपुर—वाङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक नगर ।  
 ( भविष्य ब्रह्मसं० १।३।३ )  
 वाराणसीश्वर—चोरशैवसिद्धान्तके प्रणेता ।  
 वाराणसीहृद—पुण्यतायाहृदभेद । ( योगीनीतन्त्र ६।१२ )  
 वाराणसेय ( सं० त्रि० ) वाराणसी ढक् ( नद्यादिभ्यो ढक् । पा ४।२।६७ ) वाराणसी-जात ।  
 वारान्यारा ( हि० पु० ) १ इस पक्ष या उस पक्षमें निर्णय, किसी ओर निश्चय । २ भङ्कट या भङ्गडेका निबटेरा, चले आते हुए मामलेका खातमा ।  
 वारालिका ( सं० स्त्री० ) दुर्गा ।  
 वारावस्कन्दिन् ( सं० पु० ) अग्नि ।

वारासन् ( सं० ह्री० ) १ वरामन् । २ ब्रह्मापार ।  
 वाराह ( सं० सि० ) वाराहक्येतिमिति अण् । १ बरह  
 सम्बन्धीय । २ वाराहमिहिर प्रत सम्बन्धीय । वराह  
 कर्ण्ये अण् । ( पु० ) ३ वराह, शूकर । ४ महापिण्डीतक  
 पूस । ५ रूपमन्तदृष्ट, काको मैनाका पूस । इसका गुण—  
 वमनमें प्रशस्त कटु, तिक्त, रसायन तथा कफ, हृद्योग,  
 आमाशय और पक्षाग्रयणोपक । ६ अरुचेतस, पालीक  
 किनारे होनेवाला बेंत । ● वरामेद । ( अ० १५० १५१ )  
 वाराहक ( सं० सि० ) वाराह-कम् । १ वाराहसम्बन्धी ।  
 ( पु० ) २ प्राणहर कोरमेद् प्राण केनेबाजा एक प्रकार  
 का कोड़ा ।

वाराहकम् ( सं० पु० ) वाराही कम् । वाराही रेखो ।  
 वरहक्षेत्र—द्विमासस्य वैवस्थानमेद् ।

( विमलम् ० ३५११८ )

वाराहार्थ—तार्थविधेय । वाराहार्थमाहारण्यम् इस  
 का विवरण आया है ।

वाराहवक्त्रा ( सं० ह्री० ) वाराहोक्त्वद्, असर्गण ।  
 वाराहपुत्र ( सं० ह्री० ) पुत्रेद् । अर्धस्वमात्र कुम्भमें जो  
 पुत्र विद्या जाता है उस वापहपुत्र कहते हैं ।

वाराहपुत्रमावना ( सं० ह्री० ) अष्टपल्लव मावना ।  
 वाराहपुराण ( सं० ह्री० ) अठारह पुराणोंमेंसे एक महा  
 पुटाण । पुण्य रेखो ।

वाराहार्थी ( सं० ह्री० ) अष्टोपुस ।

वाराहा ( सं० ह्री० ) वाराह-काप् । १ ब्रह्माणी आदि  
 भात मायुकाओंमेंसे एक । द्वेजीपुराणमें लिखा है, कि  
 वापहा वराहदेवका शक्ति है । हरिक अथकप यक्षवाह  
 रूप धारण करने पर उसको शक्ति मी वाराहीरूप  
 धारण किया था । ( अण् )

वाराहपुराण्यतिमें इस वाराहा देवका इस प्रकार  
 ध्यान लिखा है—

वाराहस्यिदो इति इन्द्राह उवमुक्त्वात् ।  
 शुभरा शुभभा शुभो वराहा हा मगान्यम् ॥”  
 ( वरुन्तम्बकेपु० )

बहुमरतम्बमें वाराहोसहस्रनामस्तान तथा व्द  
 यामरुमें वाराहान्वाक टिप्पणी है ।

२ योगिनीविधेय । पूजाक समय इन सब योगिनी  
 १०८ २२१ ६०

की मू वार ( स्वर्णजस-वाल )-में स्नान करानेकी व्यवस्था  
 है ।

३ एक प्रकारका महाकम् । इसे हिन्दुओं में गैठो, मराठी  
 में वाराहीकम्, तेलगूमें मैलताडिकेह, ब्राह्मणिकेह,  
 और बम्बईमें कुकरकम् कहते हैं । बहुतेका चरना है, यह  
 अनुपदेशमें उत्पन्न होता है । इसके कर्ण्य ऊपर सुभर  
 के वामो के समान दीप होते हैं इसका आकार माया  
 शुद्धी केकी के समान होता है । पत्तियाँ केंडोको, बड़ो  
 बड़ी तथा अनीदार होती हैं । अन्निके मतसे यह कम्  
 अशोण्य और वातगुणमनाशक ; राजवृद्धमक मत्तम  
 हृद्येपान्, पिच्छन् और बलवर्धक तथा राजनिर्वपटके  
 मतसे तिष, वृद्ध, विष, पिच, कफ कुष्ठ, मूह और फूमि  
 नाशक, शूल्य, वल्य और रसायन माना गया है ।

४ महीपयविधेय । ५ शुद्धमृमिडुप्याय विभारिण्य,  
 विवारीकम् । ६ वृद्धवारक, विघारा नामक क्षुप । ●  
 मियंगु । ८ वाराहकास्ता । ९ इयामा पत्तो ।

वाराहीकम् ( सं० पु० ) वाराही रेखो ।

वाराहीतम्—एक प्राचीन महातम् । महाशक्ति वाराहीक  
 नामानुसार इस तम्बका नाम पड़ा है । इस तम्बमें  
 बौद्ध जैनादि तम्बोंका भी उल्लेख है ।

वाराहीय ( सं० ह्री० ) वाराहमिहिर रचित वृहत्सन् हिता  
 सम्बन्धीय ।

वारि ( सं० ह्री० ) वारयति वृषामिति वृ णिच् इम् ( वधिष  
 विभक्तिरिभ्यवितिहिनिस्रकवादिभारिण्य इम् । उण् ५।१२५ )  
 १ जक, पानी । २ तरल पदार्थ । ३ तारक्य, तरलता ।  
 ४ ह्रीवेर । ५ वाक्का, सुगन्धवाक्का । ( ह्री० ) ६ बायो  
 सरलता । ७ गजवन्धन, हाथीके बांधनेकी अंशरी आदि ।  
 ८ गजवन्धनमृमि, हाथीके बांधनेका रूपान्, काम  
 काना । ९ बन्धि, कैदी । १० छोटा कलमा या गगरा ।  
 ( सि० ) ११ वरजोय । ( शुक्लपत्र ० २१।११ )

वारि—तीर्युकक अमर्गत एक नयान । ( भविष्य ब्रह्मवक् )  
 वारिकण ( सं० पु० ) समुद्रकेल ।

वारिकुपूर ( सं० पु० ) इन्धन्य सरम्प, द्विजसा मछली ।

वारिकुम्भ ( सं० पु० ) शूद्रार ५ सिंघाडा ।

वारिकुम्भक ( सं० पु० ) शूद्रारक, सिंघाडा ।

वारिकृति ( सं० पु० ) अमीका, जौक ।

वारिकोल ( मं० पु० ) कच्छप, कलुषा ।

वारिगर्भोदर ( मं० त्रि० ) मेघ, वादल ।

वारिचन्द्र ( मं० पु० ) कुम्भिका, सिंघाटा ।

वारिचर ( मं० पु० ) वारिपु चरतीति चर ट । १ मत्स्य,  
मछली । २ शङ्ख । ३ शङ्खनाभि । ४ जलचर जन्तु-  
मात्र ।

वारिचामर ( सं० ह्री० ) शैवाल, सेवार ।

वारिज ( मं० त्रि० ) वारिणि जायते इति वारि जन-ड ।

१ जटजमात्र । ( ह्री० ) २ द्रोणीलवण । ३ पद्म, कमल ।

४ गौरमुवर्ण, रंग सोना । ५ लवण । ६ मत्स्य  
गच्छली । ७ शङ्ख । ८ शङ्ख, घोंघा । ९ कपर्दीक,  
कीटो ।

वारिजाक्ष—विष्णुका अथतारभेदः । यद् अथतार राम  
कृपादि दशावतारभेदे भिन्नं ह्ये । ब्रह्माण्डपुराणके अन्त  
र्गत प्रधानकुमुदचन्द्रिकाके उत्तरप्रगडमे इनका चरित  
विग्रहरूपसे वर्णित है—

गौड सारम्भन कुलमें धीकण्डके श्रीगंससे यमुना  
देवीके गर्भमें वारिजाक्ष अवतीर्ण हुए । उनकी पत्नी का  
नाम उवालिनी था । यथासमय उनके राध्य और  
मौजोर नामक दो पुत्र हुए । उनके जीवनकी अन्यान्य  
अलौकिक घटनाओंमें तदनुष्ठित "द्वादश वारिणिक सत्र"  
उल्लेखनीय है । इस यज्ञमें सैकड़ों यति, सिद्ध और  
लंगामी पधारे थे । उनमेंसे गौडब्राह्मणकुलोद्भूय और  
निधयपरम्पराक्रमसे भवानन्द सरम्भती, सच्चिदानन्द  
सरम्भती, जिवानन्द सरम्भती, रामानन्द सरम्भती और  
भवानन्द सरम्भती भी आये हुए थे । इनके सिवा त्रिपिड  
जातिके यति गङ्गाचार्य, भीमाचार्य, शाभ्याचार्य, राम-  
चन्द्राचार्य और केशवाचार्य आदि गौडाचार्योंका भी  
शानमन हुआ था ।

वारिजाक्ष तपःलोकेमें वास करते हैं । वे दृमरी  
तरासे परम वैष्णव शिवरूपमें कल्पित हैं । वैकुण्ठ  
विहारी विष्णुसे वे भिन्न हैं ।

वारिजात ( मं० त्रि० ) १ वारिज, जलमे उत्पन्न होने-  
वाला । ( पु० ) २ शङ्खनाभि । वारिज देवो ।

वारिजीवक ( मं० त्रि० ) १ जलचर, पानीमें रहनेवाला ।

२ जलमे जो जीवन धारण करता है । ( वृहत्संहिता )

वारिन ( मं० त्रि० ) निवारित, जो रोक़ा गया हो ।

वारित्तर ( सं० ह्री० ) उग्रीर, रम ।

वारित्तरकर ( मं० पु० ) १ मेघ, वादल । ( त्रि० ) २ वारि-  
शोषणकर्ता, जल चूमनेवाला ।

वारिति ( सं० स्त्री० ) जलमें होनेवाली एक प्रकारकी  
धापत्र ।

वारिता ( मं० स्त्री० ) वारिणग्रायते इति त्रै-ड । छत्र,  
छत्रो ।

वारिद ( मं० त्रि० ) वारि दशतीति वा-क ( शालो-  
ऽनुषङ्गो कः । पा ३।०।३ ) १ जलदाना, वर्षा देनेवाला ।

( पु० ) २ मेघ, वादल । ३ मुम्तर, मोघा ।

वारिद्र ( सं० पु० ) चातक पक्षी, पपीहा ।

वारिधर ( मं० पु० ) धरतीति धृ-अच् वारिणो धरा ।  
मेघ वादल । २ भद्रमुस्ता, नामरमोघा । ( वैयकनि० )

वारिधानी ( सं० स्त्री० ) जलपात्र । ( कयासरिम्भा० )

वारिधापयन्त ( मं० पु० ) ऋषिभेद ।

( भाग्यलायने चण्ड० १२।१४।५ )

वारिधार ( मं० पु० ) मेघ, वादल ।

वारिधार ( मं० स्त्री० ) वारिणो धारा । जलधार ।

वारिधि ( सं० पु० ) वारिणि घोषन्तेऽस्मिन्निति धा  
( कर्मव्यधिकरणे च । पा ३।३।२३ ) इति धि । समुद्र ।

वारिनाथ ( सं० पु० ) वारीणा नाथः । १ यक्ष । २ समुद्र ।  
३ मेघ ।

वारिनिधि ( सं० पु० ) वारीणि निधायन्ते धत्वेति नि धा-  
कि । समुद्र ।

वारिप ( सं० त्रि० ) वारि पिबति पा-क । जलपायिमात्र,  
जल पी कर रहनेवाला ।

वारिपथ ( मं० पु० ) वारीणां पन्थाः । जलपथ ।

वारिपथिक ( सं० त्रि० ) वारिपथेन गच्छतीति वारिपथ  
( उत्तर पथेनाहतम्च । पा ५।१।७७ ) इत्यत्र 'आहूत प्रकरणे  
वारिजङ्गलकान्तरपूर्वाद्दुपसंस्थान' इति वार्त्तिकसूत्रात्

उक्त् । १ जलपथगामी, जो जलपथसे जाता हो । २ वारि-  
पथसे आहूत, जिसे जलपथसे बुलाया गया हो ।

( काशिका )

वारिपर्णी ( सं० स्त्री० ) वारिणि पर्णान्यस्याः, वारिपर्ण  
( पाककर्षणार्थापुण्येति पा । ४।१।६४ ) इति ङीप् । १ कुम्भिका,

असकुम्भी । २ पातोकी काह ।  
 वारिपासिका ( सं० स्त्री० ) वारोणि पासयति सूर्यरश्म्या-  
 धिम्यो रसतीति पासि ण्युच्-त्वाप्, अत इत्वं । कस्य  
 ङिका, आकाशमूत्रो, सि पाशा ।  
 वारिपूर्वा ( सं० स्त्री० ) वारिपूर्वा, असकुम्भी ।  
 वारिपूरुषो ( सं० स्त्री० ) वारिपूरुषा पूरुषो । वारिपूर्वा,  
 असकुम्भी ।  
 वारिप्रवाह ( सं० पु० ) वारिणा प्रवाहः । निर्भर ।  
 वारिप्रसादन ( सं० स्त्री० ) वारिणा प्रसादनं । कनककण्ड,  
 निर्गन्धी । यह अक्षयं देनेसे अक्ष निमेष हो जाता है ।  
 वारिचक्र ( सं० पु० ) वारि परिपुर्वो चक्र इव । प्राचीना  
 मरुत, अक्ष भाँबका ।  
 वारिचक्रा ( सं० स्त्री० ) वारिचक्र रेखो ।  
 वारिचक्राही ( सं० स्त्री० ) वारिचक्रा प्राज्ञो । अक्षम्राज्ञो  
 क्षय ।  
 वारिमलवदिका ( सं० स्त्री० ) अश्वीर्जाधिहारका औषध  
 विधेय । प्रस्तुत प्रयासो—वारि और गन्धकम सीपवार को  
 हुई कजली, भवरक, गुणद्वका पास बिड़ङ्ग और मिर्च  
 प्रत्येक समान भाग छे कर अत्रकके रसमें मिलावे ।  
 बायें एक माटोको गाली बनावे । इसका सेवन करनेसे  
 अश्वीर्जोरोग दूर होता है । ( रत्नसो० )  
 वारिमज ( सं० स्त्री० ) वारिणे वैज्ररुद्राप मजति प्रमजतीति  
 मू-अच् । १ शंठीऽङ्गन, सूत्र्या । ( जि० ) २ जनजात  
 भाव ।  
 वारिमूमि—सर्गमूमिकं अस्वर्गत इयानमेव ।  
 ( भविष्य ब्रह्मण० ५०।११२ )  
 वारिप्रसि ( सं० पु० ) वारि मसिरेच इयामताजबक यन्म,  
 सज्जमेघस्येव हृत्पञ्चमैस्वात् तथाह । मेघ । ( ङिका० )  
 वारिमान ( सं० स्त्री० ) पाचनार्दिमें अरुका परिमाण,  
 किस पाचनमें कितना अन्न देना चाहिये उसका  
 ज्ञानात्रा ।  
 वारिमुच ( सं० पु० ) वारिमुञ्जतीति मुच-किय् । मेघ,  
 वादम ।  
 वारिमूर्ती ( सं० स्त्री० ) वारिणि मूर्त्तयस्याः पाकण्यं  
 पञ्चैति । पा ४।१।१४ इति ङोप् । वारिपूर्वा, असकुम्भी ।  
 वारिपण्ड ( सं० स्त्री० ) असपण्ड, फीभारा ।

वारिर्वा ( हि० स्त्री० ) जिष्ठावर, बलि ।  
 वारिरथ ( सं० पु० ) वारिरु रथ इव गमनसाधनत्वात् ।  
 मेखक वेडा ।  
 वारिराजि ( सं० पु० ) वारोर्णा राशपो पत्त । १ समुद्र ।  
 वारोर्णा राशिः । २ मलराशि, अक्षसमूह ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) वारिणि रोहति ज्ञायते इति चह  
 ( शुभशुभाभीकिय कः पा १।१।१५ ) इति क । १ कमल,  
 पद्म । ( जि० ) २ अक्षजात, अन्नसे उत्पन्न ।  
 वारिचाम्ब ( सं० पु० ) वारिणि लोमानि यस्य पद्मा वारि  
 क्षाग्नि यस्य । बरुण्य ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) वारिरुक्त चक्र यस्मात्, तत्  
 सेवने मुने अक्ष निष्ठाव्यक्तघातः । प्राचीनामरुतक  
 असकुम्भी ।  
 वारिचक्र—१ भासामने अस्वर्गत एक न्याय । ( भविष्य  
 ब्र० १।११ ) २ कोषविहारके उत्तरमें अवस्थित एक  
 बड़ा परगना ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) जिनमें अक्षकोन एक सक्, बाँध ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) कर्महृत् करी दा ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) अमका वर्ण पातोका रण ।  
 वारिचक्रमा ( सं० स्त्री० ) विद्यारो मुः कुण्डला ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) अक्षचक्रकारी, अक्ष छे जाने  
 वाला ।  
 वारिचक्रो ( सं० स्त्री० ) कारचक्रो, करीका ।  
 वारिचक्र ( सं० स्त्री० ) सुग धवामा ।  
 वारिवास ( सं० पु० ) वारि समीपे वासाऽस्य पद्मा वारि  
 मध्युपिताग्न्याविक्रम वासयति सुगण्यि करोतीति वास  
 भण् । शीष्णिक, कछवार ।  
 वारिवाह ( सं० पु० ) वारि महतीति वह ( कर्मवय्य् । पा  
 ३।२।१ ) इति वण् । १ मेघ, बाधक । २ सुस्तक मोघा ।  
 वारिवाह सद्योदिविजित एक राजाका नाम ।  
 ( धर्मा० १।१।१५ )  
 वारिवाहक ( सं० पु० ) असबहनकारी वह जो अन्न छे  
 जाता हो ।  
 वारिवाहन ( सं० पु० ) बाहयतीति वाह ष्यु वारोर्णा  
 वाहनः । मेघ, बाधक ।  
 वारिवाहिन ( सं० स्त्री० ) असबहनकारी ।

वारिविहार (सं० पु०) वारिणि विहारः । जलविहार जल क्रोडा ।

वारिण (स० पु०) वारिणि सागरजले गेने इति शो-ड । विष्णु ।

वारिणात्र (सं० क्लो०) वारिविषयक ग्रात्रं । ग्रात्र-भेद । इस ग्रात्रमे यद् ज्ञान होता है, कि किस स्थानमें कैसा वृष्टि होगी और कब कब होगी । गर्गमुनि-ने चारो वेद और उनके अङ्गों से मार उद्घृष्ट कर यह ग्रात्र बनाया है । तिथि, नक्षत्र, मास, दिन, लग्न, सुहृत्त और शुभयोग आदि तथा पूर्णपक्ष माममें बुध और बृहस्पति देवनेसे जहा देवागमन होता है, वायु यज्ञों जा कर उड़ती है । पाछे उसीमे मेघादिके स्थान के कारण वारिका ज्ञान होता है ।

वारिजरोपिका (सं० क्लो०) जलजिरिका पेड ।

वारिशुक्ति (सं० क्लो०) जलशुक्ति, मीप ।

वारिन् (सं० पु०) १ दायभागी पुत्र्य, दाय्या । २ वह पुत्र्य जो किमाथी नृत्युके वाद उसको सम्पत्ति आदि-का म्यामी और उसके ऋण आदि का देनदार हो ।

वारिसम्भव (सं० क्लो०) वारिप्रधानदेशेषु सम्भव उत्पत्तिर्यस्य । १ लवद्ग । २ मीवीराज्ञान, सुग्मा । ३ उजोर, नस । ४ यावनालगर, मङ्गा, जुशार । ५ कृमिजद्ग । ६ श्रीखण्ड चन्दन । ७ रामगर एक प्रकारका सरकण्डा । ( त्रि० ) ८ जलजानमात्र, जो कुछ जलमें हो ।

वारिसात्म्य (सं० क्लो०) दुग्ध, दूध ।

वारिमार (सं० पु०) भागवतके अनुमार चन्द्रगुप्तके एक पुत्रका नाम ।

वारिन्त (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद । २ जनभेद ।

( भारत समाप० )

वारि । सं० क्लो० ) वार्यतेऽनयेति वृ णिच् ( वरि वरि यजि राजि वजि यदि इनि राजि वादि वारिभ्य इच् । उष् ४।१२४ ) इति इज् वा डीप् । १ गजवन्धनी, हाथीके बांधनेकी जड़ी । २ कलसी, छोटा गगरा ।

वारार (सं० पु०) वार्या गजवन्धनमृशामिदतीति इट-क । हस्ती, हाथी ।

वारोन्ट (सं० पु०) वारोणामिन्टः । समुद्र । ( हेम )

वारकेरी ( हिं० क्लो० ) किसी व्यक्तिके ऊपर कुछ

द्रव्य या धोर कोई वस्तु चुमा कर इसलिये छोड़ना या उत्तमर्ग करना जिसमें उसकी सब बाधाएं दूर हो जायें ।

वारीज (सं० पु०) वारोन्ट देखो ।

वार (सं० पु०) वारयति रिपुनिति वृ-णिच् वाहुलकाद्-उण् । विजयकुञ्जर, विजयदस्ती जिस पर विजय पताका चलती है ।

वारु—वर्ह देखो ।

वारुज (सं० पु०) गौरसुवर्ण ग्राह ।

वारुड (सं० पु०) १ अन्तर्गत्या, मरण खाट । २ अरथी, वह टिकटा जिस पर मुर्देको लेटा कर ले जाते हैं ।

वारुड (सं० पु०) घरुड सम्बन्धीय । ( पा ५।४, ३६ )

वारुडक (सं० क्लो०) वरुड जाति सम्बन्धीय ।

वारुडकि (सं० पु०) वरुडके गोत्रापत्य ।

वारुण (सं० क्लो०) वरुणो देवतास्येति वरुण अण् । १ जल, पानी । २ जतनिपानक्षत्र । ३ उपपुराणविशेष । ( देवीभागवत १।३।१५ ) ४ भारतवर्षके खण्डविशेष ।

( भिन्नुपुराण २।३।६ )

पाश्चात्य भौगोलिकोंने Burraon प्रदेशमें इस स्थान-का उल्लेख किया है । इसका वर्तमान नाम वरणास्क है । आज भी देव नामक स्थानके निकट इस प्राचीन जन पदका धर्ममाचरण दिख ई देता है । ५ एक अम्बरा नाम । ६ वरुण वृक्ष, वरुणा नामका पेड । ७ स्तुतीभेद, एक प्रकारका थूहर । ८ हरिताल, हरताल । ९ लाक्षादि तैल । ( त्रि० ) १० वरुण सम्बन्धीय ।

वारुणक—सहादि वर्णित राजभेद । ( क्लो० २।७।३८ )

वारुणकर्मन् (सं० क्लो०) वारुण जलसम्यग्धि कर्म । जला जय म्रननादि, कृत्रां, पोखरा, बावली आदि जलाशय बनवानेका काम । यह वारुणकर्म ज्यानिपोक उत्तम दिन नक्षत्र आदि देख कर करना होता है ।

वारुणतार्थ (सं० क्लो०) तार्थभेद, वरुणतार्थ ।

वारुणप्रवासिक (सं० क्लो०) वरुण प्रवास यत्र सम्य-न्धीय ।

वारुणात्मजा (सं० क्लो०) मघ, शराव ।

वारुणि (सं० पु०) वरुणस्यापत्यं पुमान्, वरुण इच् । १ अगस्त्य मुनि । २ वसिष्ठ । ( भारत १।६।७ ) ३ विनताके

एक पुत्रका नाम । (मार्त ११६५५०) ४ श्रुत्यु । ५ सद्यस्मि  
वर्णित एक राजाका नाम । (रामा० २०११८) ६ एक जन  
पदका नाम । ७ इ तैत्ति ह्ययो । ८ वाहन वृक्ष, वाहनका  
पेड़ ।

षाडशी ( म० स्त्री० ) षडणस्यैव ( तत्त्वेर्दं । प ५११२२० )  
इत्यण् ङोच् । १ सुत, शराव । कइ प्रकारकी महिलाका  
नाम षाडशी है । जैसे—पुनर्नवा ( गृहपूरना )को पीस  
कर बनाई हुई, ताट या लसूरक रससे बनी हुई, साठी  
घालकर खायाकर और हड़ पीस कर बनाई हुई ।

मनुने लिखा है, कि द्विज यदि भ्रजानपूर्वक षाडशी  
महिला पीये तो उसको फिरसे उपनयन-संस्कार द्वारा  
बिधुव हो लेना चाहिये परन्तु ज्ञानपूर्वक पान करनेसे  
इसका मरणक बाद प्रायश्चित्त करना होता है ।

( मनु ११ १५० ) मय स्रष्ट इषो ।

२ महिलाका अघिष्ठाज्ञा देवी । ३ षडणकी स्त्री, षव  
जाती । ( मरुत० २५६६ ) ४ एक नदीका नाम ।  
( रामा० २००१२२ ) ५ षडिषम दिना । एक  
एक दिनाके एक एक अघिषति है । पश्चिम दिशाक  
अघिषति षडण है, इसीसे पश्चिम दिशाका नाम षाडशी  
हूमा है । ६ उपनिषद् विद्या जिसका उपदेश षडणने  
किया था । "भानश्चैन जाठानि मोबलित भानल्लं मात्स्यमि  
संविशास्वोति" "सीया मार्गवा षाडणो विद्या ।"

( तैत्तिरीयोपनि० १६ )

७ षाडशी कावाचिशेष, घोड़ेको एक भास । ८  
शतमिया नक्षत्र । ९ षडवृक्षा, गांवर वृक्ष । १० ललाय  
व्यात वृक्ष । कोकुक ईशमें इसे करवीरणी कहते हैं ।  
११ हस्तिनी, हथिया । १२ इन्द्रवाडणो ऋता, इन्द्रका  
बेव । १३ मृग्यामलका सुई आबछा । १४ महावृक्षी,  
नागधेय । १५ पृग्यावनके एक कदम्बका रस जो षडणकी  
हृयास बलरामकोक छिये निकला था । १६ कदम्बक पत्र  
हूप फलोंसे बनाया हुआ मद्य ।

१० एक वर्ष जो उस समय माना जाता है जब श्वेत  
महीनेकी कृत्त्य ज्योतिषीको शतमिया नक्षत्र पड़ना है ।  
षाडणका अर्थ शतमिया नक्षत्र है । श्वेत मासकी  
कृत्त्य ज्योतिषीको दिन शतमिया नक्षत्र होनेसे उस  
दिनको षाडण्य कहते हैं । यदि उस कृत्त्य ज्यो

इशमें शतमिया नक्षत्रका योग न हो, तो भी यह तिथि  
षाडणी कहलाती है । नक्षत्रका योग होनेसे तो यह भी  
भी पुण्यवर्ध होता है । इस दिन यदि शनिवार पड़े तो  
उसे महाषाडणी और इस शनिवारमें यदि कोई शुभ  
योग हो, तो इसे महामहाषाडणी कहते हैं । यह षाडणी  
श्रुतिगत पुण्य तिथि है इस कारण इस तिथिमें स्नान  
और दान करनेसे भरोय पुण्य होता है । षाडणी और  
महाषाडणीमें पशोपना यह है, कि षाडणी तिथिमें  
गङ्गास्नान करनेसे भी सूर्यग्रहण काकोन गङ्गास्नानका  
फल, महाषाडणीमें गङ्गास्नान करनेसे कोटि सूर्यग्रहण  
काकोन गङ्गास्नानका फल तथा महामहाषाडणीमें स्नान  
करनेसे त्रिकोडिकुलका अकार होता है । षाडणीमें नक्षत्र  
योग हो प्रधान है । शास्त्रमें लिखा है कि अथ गामिनी  
तिथि हो भाद्रपणीय है, किन्तु यह अथवाशो यदि अथय  
दिन अथय हो तथा जिस दिन नक्षत्रका योग पड़ता हो  
उसो दिन षाडण्य होगी । उध्व था अम्तागामिनी होनेक  
कारण कोई विशेषता न होगी । यहा तक कि, यदि रात  
को भी यह नक्षत्र पड़ता हो, तो उसी समय षाडणी  
स्नान होगा । फल नक्षत्रानुसार षाडणी स्थिर करनी  
होती है । यदि नक्षत्रका योग न हो, तो तिथिके सम्बन्धमें  
जो व्यवस्था है, उनीक अनुसार हागी ।

षाडणीमें गङ्गास्नान करते समय षाडणी, महा  
षाडणी महामहाषाडणी जिस बार जैसा योग हो उसका  
उन्मेष कर सकुम्ब करके स्नान करना होता है । शत  
मिया नक्षत्र बिता कर अथोको कमी भी रनाम न करना  
चाहिये करनेसे भी दुर्भाग्य होती है । गुरु, वैश्व और श्रुति  
के छिये मो ज्योतिषी, पृथीया और इममीमें स्नान करना  
निषिद्ध है, किन्तु यह काम स्नानपर है, षाडणीस्नान  
निषिद्ध नहीं है ।

षाडणीमें गङ्गास्नान करनेका सकुम्ब इस प्रकार  
है—श्वेत मासि कृत्त्येवक्ष ज्योतिषी तिथौ 'षाडण्य'  
'महाषाडण्य' 'महामहाषाडण्य' ( जिस बार जैसा योग  
हो ) गङ्गाया स्नानमह करिये कामना जैसी इच्छा हो,  
कर सकते हैं, पर सकुम्बके विद्यामानुसार नामपीतादि  
का उन्मेष करना होगा ।

षाडणी—तीत्युक्तक अन्तर्गत एक नदीका नाम ।

( मणिस्मृत्य ५८१२८ )



वारुणीवल्लभ ( स० पु० ) वारुण्या वल्लभः, वारुणी वल्लभा यस्येति वा । वरुण ।

वारुणीश ( स० पु० ) वारुणीपति, वरुणा ।

वारुणेश्वरनीर्थ ( स० क्ली० ) तोर्थभेद ।

वारुण्ड ( स० पु० क्लृ० ) वृ उण्ड । १ साँपोंका राजा ।

२ नाँसेकपाव, नावसे पानी निकालनेका बरतन । २

कर्णमल, कानका मैरु । ४ चेतमल, आँवका कोचड ।

वारुण्डा ( स० ग्रा० ) वारुण्ड गौर्गादृत्वान् डाप् ।

हारगिण्डा, देहटो, दहलाज ।

वारुण्य ( स० वि० ) वरुण वा वारुणां सम्बन्धाय ।

वारुह ( स० पु० ) अग्नि, आग ।

वारेन्द्र ( स० पु० ) नारुडङ्गान्तपोत एक प्रसिद्ध जनपद और वहाँके अधिवासी ।

वारेन्द्र नाम अथवा उम स्थानके अधिवासियोंके साथ जो सामाजिक योनिसम्बन्धमें आवृत्त हुए, वे ही वारेन्द्र कहलाये । त्रिगिजयप्रकाशमें लिखा है—

पञ्चानदीके पूर्वी कलासमें ले कर ब्रह्मपुत्रके पश्चिम तक अनेक नद-नदियोंमें युक्त वारेन्द्र नामक एक देश है । यह देश पञ्चम योजन विस्तृत एवं दमकुशादिसे भर्य है । यह उपग्रहके निकट तथा मलदके दक्षिणमें अवस्थित है । यहाँ अथवा नामक एक छोटी नदी सर्वदा प्रवाहित होता है । यहाँ ही इन्द्र द्वारा पर्वतोंके पर काटे गये थे । यहाँ बहुत सख कायस्थोंका वास है । ये कायस्थ लोग ब्राह्मणोंका मन्त्रित्व करते हैं । स्थान स्थान पर द्विजातिगजे राज्य करते हैं । यहाँके अधिवासी प्रायः मद्यही शक्ति जल-जन्तुओंको खा कर जीते हैं । यहाँकी जन साधारण देवीभक्त अथवा विष्णुभक्त हैं ।

फिर भविष्य-ब्रह्मखण्डमें लिखा है—

पञ्चानदीके पूर्वभागमें एक जलमय देश है । वह वारेन्द्रके नामसे विख्यात है । वह देश सर्वदा अनाजसे हराभरा रहता है । इस कलियुगमें वारेन्द्रके प्रायः सभी अधिवासी जिवभक्त तथा मद्य-मासमें लीन हैं ।

३३वाँ अक्षांशके प्रथम भागमें प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाज लिखते हैं—गंगाके किनारे लक्ष्मणावती राज्यके दो भाग हैं, उनमें पश्चिमाञ्च 'राल' (राहु) के नामसे एवं पूर्वाञ्च 'वरिन्द' (वारेन्द्र) के नामसे

विख्यात है । पश्चिमाञ्चमें 'लखनौर' (लक्ष्मणनगर) और पूर्वाञ्चमें 'देवकोट' अवस्थित है ।\* त्रिगिजयप्रकाश, भविष्य ब्रह्मखण्ड और मिनहाजकी वर्णनाने जाना जाता है कि वर्तमान मालदह, दिनाजपुर, राजमाही, बाकुडा और पाचना, ये कई एक जिलेका अधिकांश भाग एवं रंगपुर और मैदानमिहका बहुत कुछ अंश वारेन्द्र कहलाता है ।

जो कुछ भी हो, किन्तु उत्तरमें कोचगाउय, दक्षिणमें गन्दा, पश्चिममें महानन्दा और पूर्वमें करतोया, इनके बीच की भूमि वारेन्द्रभूमि वा वारेन्द्र कहलाती है । यहाँ प्रवाद है, कि उत्तर सीमा हिमालयके पाददेश पर्यन्त निर्दिष्ट होने पर भी करतोया नदी भी जो शाखा पश्चिम मुखा हो कर वर्तमान दिनाजपुर शहरके मध्यभागमें होता हुई महानन्दाके साथ मिल गई थी, उस नदीके दक्षिण तीरस्थ सभी देश वारेन्द्रदेशके अन्तर्गत हैं । किन्तु ही तो वारेन्द्रको पश्चिम सीमा काशीनदी बताने हैं । काशीनदी तो पश्चिम सीमा निर्दिष्ट करनेसे मगधका आयतन छोटा हो जाता है । पूर्वीक नदियोंके द्वारा उसके दोनों तीरस्थ स्थानके अधिवासियोंको भाषा तथा आचार व्यवहार और वेग-भूपासों भी पृथक्ता सूचित होती है । वर्तमान पूर्णिया जिलेका रुणगंज महकुमा महानन्दा नदीके बीच एक द्वीपमें अवस्थित है । इस महकुमेके अधिवासियोंकी भाषा उनके पूर्वके पड़ोसी दिनाजपुर जिलेके अधिवासियोंकी भाषाके समान हो है । पूर्णिया जिला जिस अगले आरम्भ होता है उस अंशके साथ इनको भाषादिकी पृथक्ता अश्लोकन करनेसे पूर्णतया प्रमाणित होता है, कि प्राचीन समयमें वारेन्द्र देशका सीमाप्रतिष्ठ गृह रहस्य वर्तमान था। फलतः दिनाजपुर जिलेके पश्चिमी अंशकी भाषा बंगला हिन्दी मिश्रित है । पूर्णियाकी भाषा विशुद्ध मागधी नहीं है ।

\* Raverty's Tabakat-i-Nasiri, P. 555-86 मिनहाजने जिन्हें पूर्व और पश्चिम कह कर उल्लेख किया है, उन्हें ही दक्षिण और उत्तर मानना होगा ।

† Hunter's Statistical Account of Purnia.

पद्यानन्दी उत्तरकी ओर क्रमसे किसक गइ हैं। वत्स  
मान नदिया किलेक कुप्रिया नामक स्थानक प्रास्तभागमें  
ओ गङ्गा नामक नदी प्रवाहित होता है, वह भी एक  
समय पद्यानन्दीकी धारा थी। वत्समान बागडोक उत्तर  
दिक् स्व भनेक स्थानसे हो कर यहां तक कि पश्चिममें  
सागरयो तोरन्ध नयद्यापसे छे कर पूर्वकी ओर प्रतावा  
द्विरके यशोर नगरमें भी उत्तर भागमें होती हुई  
मेनयहाय राजाभोक समय एक विशाल नदी प्रवाहित  
होगी थी, इस प्रवेदाकी भवस्या निरीक्षण करलैस हो  
अच्छी तरह जाना जाता है। और तो क्या—इस समय  
भी यहांके कई एक निम्नस्थान 'पद्याओ कादा' के नामसे  
परिचित हैं।

करतोया नदीको ओ शाखा दिनाजपुर किलेकी  
बाज यो नदीके साथ मिली थी, वह भीर मूक करतोया  
नदी मङ्गरेडा शासनके प्रारम्भ कागमें परलान तिरुता  
या किलोताके तीव्र वेगजाकी होमके कारण लुप्तप्रायः  
हो गई है। दिनाजपुर प्रदेशमें पर्यतसे निकल कर कई  
छोटा छोटी नदियाँ बाह्यो नदीमें मिलती हैं। काठ  
चरुने से सब नदियाँ दक्ष एवं महात्म्या नदीके पूर्वाभि  
मुखो शाखामें विस्तृत प्रायः हो गई हैं। एक समय  
पारेन्द्र देश भाग्यो करतोया तथा महात्म्याकी  
शाखा प्रजासामोमें सुशामित था। प्राचीन विस्तृत  
तथा विचरन्त जनपदोंका मन्नाकरेय उन सब  
नदियोंक तीरवर्ती स्थानोंका भाग दिख रहा है। इस  
समय ओ देवोके महात्मान मन्धमें अस्याय्य पत्रित नदियों  
के साथ बाह्यो भीर करतोयाका नाम दिया जाता है।  
बाह्यो भीर करतोया से होतो हो नदियाँ पहले समुद्र  
के साथ मिलती थीं।

पारेन्द्र देशका नामकरण किस प्रकार हुआ, इसक

सम्बन्धमें जोग नामा प्रकारकी बातें कहा करते हैं।  
कोई कोई अनुमान करते हैं, कि एक समय पौष-नारायणी  
महायोगमें पाठ उपाधिधारी बारह राजे भारतवर्षके  
विभिन्न प्रदेशों से इस प्रदेशमें आये। किन्तु पयको  
दुर्गमताके कारण रास्तेमें ही योगदा समय व्यतीत हो  
गया, तब उन राजाओंने मयिष्यम भाषेबाळे महायोगकी  
प्रतीक्षा करनेके लिये करतोया नदीके तीरवर्ती कई  
स्थानोंमें पास, राज्यस्थापन एवं राजधानीका निर्माण  
किया। क्योंकि बारह राजाओंने यहां राज्य स्थापन किया  
था इसका नाम वार-+इन्द्र=पारेन्द्र पडा। यहांकी  
स्थानीय किम्बदन्ती इसका ही समर्थन करती है। किन्तु  
यह सिवाय बिडकुल हा भद्रास्त नहीं माना जा सकता।  
पारेन्द्रके कुलाचार्योंका कहना है कि 'परिन्दा' (राज  
शाहाके पश्चिम) नामक स्थानमें प्रद्युम्न नामक व्यक्ति  
के नामानुसार प्रद्युम्नेश्वर नामधारी इतिहरणी मूर्ति  
स्थापित हुई और परैन्द्रशूक द्वारा शासित देश 'पारेन्द्र'  
नामसे पुकारा गया है।

अन्य पक्ष कलिङ्ग पुण्ड्र और गौड़ आदि देश नाम  
की उल्लेखी जङ्गमें जैठ राजाभोक नाम पर इन देशोंका  
नामकरण हुआ था, वैसे ही परैन्द्रशूक नाम पर पारेन्द्र  
देशका नामकरण हुआ होगा। जो हा, राठ और परेन्द्र  
इन दो नामोंका अत्यधिक प्रचलन ब्रह्माजम बौद्ध और  
हिन्दू राजाभोक मसलमें दिनाइ देता है।

सुप्रसिद्ध गौड़ महात्म्या काट्ट देशक प्रतिष्ठ पश्चिम  
ओर अवस्थित है। एक समय गङ्गा और महात्म्याई इस  
नगरको घेर रखा था। येमा मान्य होता है, कि कालक  
प्रभावसे गङ्गाकी गति प्रवर्तित हो कर महात्म्याका कुछ  
अंश पलन होनेके कारण इस मन्नागराकी ओर पारेन्द्र  
देशका ह्व मानो घूर पर आया गया है। गौड़-महात्म्यरीच  
सिया वर्तमान मालख दिनाजपुर, राजगादा और  
बाकुडा किलेमें दिन्दू भीर बौद्ध राजाभोक कार्त्तिकेक  
मन्नाकरेय विद्यमान है। माकद किलेक रोमालापुर

० महात्म्य विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें करतावा  
माहत्म्य वर्णित हुआ है। करतोया शब्द एको। देवोको भूदा  
क स्तान मन्धमें मान भी और करतावाका नाम है। "भाष्यो  
पारती महा करतोया कल्लो" बुद्धमन वाक्यके इन्द्रेण इयिषवा  
भीर इयत्त वाक्यके रङ्गपुरके विवरण प्रथममें करतोवाको उल  
लम्पकी भवत्या किन्नी हुई है।

\* Cunningham & Archaeological Survey of India  
Vol. xv

† विष्णुपुराण।

नामक स्थानमें लक्ष्मणमेतकी बनाई एक दीर्घिका या तालाब, दिनात्रपुर जिलेके गङ्गारामपुरमें महीपालदीघि नामकी अमानुषिक कौर्त्ति और राजसाही जिलेके थाना मन्दा और सिंढा आदि पलायमें षडे बडे बडे जलाशय और वाकुडा जिलेके भीतर थाना श्वेतनालके अधीन नान्दइठ तालाब और थाना शिवनलके अधीन गगाकी दीघि या तालाब ( कहा गया है, कि गगाङ्कके नाम पर यह तालाब है। इसका अपभ्रंश शब्द गशा है ), नाना स्थानोंमें कितने ही तालाब पोखरे आदि, थाना सेरपुरके अन्तर्गत राजवाडी नामक स्थानमें सेन राजाओंकी अन्तिम राजधानीकी खाई आदि और जिला पवनाके थाना रामगञ्ज और प्रगना मयमनसाहीके अन्तर्गत नीमगाछी नामक स्थानमें जयसागर तालाब मौजूद हैं। वाकुडा जिलेके तीन कोस उत्तर करतोयातट पर ही महाम्थानगढ \* नामक जो स्थान है, चीनपरिव्राजकके वर्णनानुसार वही पोण्डवर्द्धन नामक प्राचीन नगर है। फलतः वर्त्तमान ऐतिहासिकोंने भी उसका समर्थन किया है। गढडस्तम्भ या बडल नामक प्राचीन प्रस्तरस्तम्भ-लिपि इसी जगहमें ही वर्त्तमान है। उक्त महारथान और मङ्गलवाडीके सिवा योगोका भवन, श्वेतनाला, देवीकोट, देवस्थान, विराट्, नीमगाछी, भवानीपुर, थालता, चैत्रहाटी, शुम्बी, कालीगाँ आदि बहुतरे जनपद घाँटों और हिन्दुओंके राजत्वकी विगतमृति विवोधण कर रहे हैं।

वेन राजाओंके समयसे ही बङ्गालके ब्राह्मण और जायस्थ और नया शाखाके लोग वारेन्द्र विशेषणसे परिचित हो रहे हैं। मुसलमानोंके शासनकालमें

\* यह स्थान काकजोल या राजमहलसे ६०० लीया १०० मीन पूरव ओर अवस्थित है। चीनपरिव्राजकने पोण्डवर्द्धन नाम आगतन ४००० ली या ६६७ मीलका अनुमान किया है। वरेन्द्र दे. के आयतनके साथ भी पोण्डवर्द्धन देश समान ही है। महानन्दा, पद्मा, और करतोया नदियोंकी प्राचीन गति पर ध्यान देना चाहिये। वर्त्तमाना पटना कभी भी पोण्डवर्द्धन नहीं हो सकवा

Cunningham's ancient Geography of India  
p. 19c 450.

राजा गणेश स्वाधीन हुए थे, वे भा वारेन्द्र देशवासी थे। भवानीपुर, थालता, चैत्रहाटी आदि स्थानोंकी प्राचीन देवसेवा मुसलमानोंके समयमें कुछ समयके लिये लुप्त-सी हो गई थी। भवानीपुरकी महामाताका विषय स्वतन्त्ररूपसे लिखा गया है। सुकते हैं, कि ये सब सेवाये' फिर राजा मानसिंहके अमलमें आरम्भ हुईं। इन सेवाओंका भार कई संन्यासियोंके हाथमें अर्पित था, पीछे सातैलकी जमींदारी संगठित होने पर वह भार सातैलके राजाके हाथ चला आया। सातैल शब्द देखो। जब सातैलकी जमींदारी नाटोरके राजाके हाथमें आई, तब नाटोरके राजा रामजीवनरायने इन सेवाओंका भार ग्रहण किया। सातैलके राजाके वनाये मन्दिरादि पुराने होने पर नाटोरकी प्रतामरणिया रानी भवानी और राजा रामकृष्णने नये सिरेसे तय्यार कराया था। नाटोरकी सम्पत्ति नीलाम हो जाने पर थालता और चैत्रहाटी आदिकी सेवा किसी दूसरे आदमीके हाथ गई। ऐसा सुना जाता है, कि उक्त देवताओंकी पूजाका मन्त्र खतन्त्र था। दुर्गात्सव आदि सारे पर्व ही इन देवताओंके सम्मुख मनाये जाते हैं। उक्त थालता नामक स्थान प्रगने भातुरिया तथा कुशुम्बी और वाँकुडा और राजसाही जिलेकी सीमा पर अवस्थित है। राजसाही जिलेके सिंढा थानेके भीतर और शान्ताहारसे वाँकुडा जिलेमें जो रेलपथ गया है, उस पथके तालोड एंशनसे ३।४ मील दूर पर अवस्थित है। थालताकी देवसेवा जिस समय आरम्भ हुई, सम्भवतः उस समय नागर नदी थालताके नीचे ही प्रवाहित हो रही थी। नागर और तुलसीगङ्गा आदि करतोयाकी शाखाये' हैं। थालतेश्वरी महामाताकी मूर्ति एक हाथ लम्बी है। श्री मूर्ति सदा-सर्वदा ब्रह्मावृता रहती है। पुरोहित या पुजारीके सिवा दूसरा कोई ब्रह्म उतार और चढा नहीं सकता। थालतेश्वरीके व्यवहार करनेके लिये रौप्य पादुका रहती है। पुरोहित वंशमें जिष्यानुक्रमसे महामाताकी पूजाकी पद्धति और मन्त्र आदि सिखाया जाता है। गत दो वारके भूँडोलके कारण सातैलके राजाके दिव्ये हुए श्रीमन्दिर एक कालीन ध्वंसप्राप्त और नाटोर राजाका मन्दिर भी बहुत पुराना और वासयोग्य हो गया

है। महामताजी पुराके बाहरी भागोंमें एक मोर कामोद्दह नामक बहुत बड़ा जलाशय और दूसरी मोर एक बहुत बड़ा बाई है। पुरीके बीचमें महामताक मन्दिरके पीछे की मोर कस्बिकुम्हको जड़में एक 'साधतयेवो' खड्गतरा है। कहा गया है, कि सारैलक राजा रामछ्म यही साधना करते थे। बहुत परलेसे ही प्रति दिन मछली मांस खादि विविध भोगोंका नियम था। जबसे २२ वष पहले सेबा एत राय पतमाजी राय बहादुरके मछली मांसक भोग और बलिदानकी प्रथा रोक देने पर मो धामलैभ्यतेकी पुश्ता नागिक मत्तम ही मगन होती ह।

उक्त भोगमाछी नामक स्थानके निकट बैज्ञप्रदा नामक स्थानमें जो बृगमुना मूर्ति प्रायः तीन हाथ लम्बे एक परएर पर खुदा हुई है। येसी जनश्रुति है, कि यह सुरएय राजा द्वारा स्थापित है। भोगमाछी नामक स्थान बिटाइके दक्षिण गोबर न होने पर भी वहाँ जपयाम नामक पराक्रम्य राजाने जयसागर नामक पोखरा खुद पाया और बहुतेरे मन्दिर बनवाय थे। उनक द्वारा उक्त बृगमुना मूर्तिको स्थापना कौन सा विचिन्तता होगा। परा वागिक प्रयाज अनुसार मछला मांसक भोगका नियम आज भी बर्तमान है।

जिसा वपना, पाता कारमोहरके निकट सारैल बिलक बाबु भार रुद्ध माले पा नहाक दिनारै सारैलको राजधानीकी नासिका मूर्ति। उक्त जिसक धर्म कुमाईक अधीन शरमाक नामधरा द्वारा स्थापित कालिका मूर्ति। जिसा राजशाहाक धामे बाघमारक अन्तगत राजा रामा नामक स्थानमें तादिरपुरक भीमिक जमींदारों द्वारा स्थापित श्रीमूर्ति और दिनाजपुरको कालिका मूर्ति भादि शाक्तप्रभावहाल ही बहुतेरा देवमूर्तियों और देव स्थान इस प्रदेशमें बर्तमान है।

राजा भवनाने नादोरेनै मवानापुर जामेके लिये एक चौड़े राजपथका निर्माण कराया। इस राजपथक बीच बाकमें ई हक बांधवा मलावरीय, स्थान स्थानको एक शानक पोखरे भादि मात्र इस राजपथके निचट किमो स्थानमें रामोका हाट नामका एक स्थान भी बर्तमान है। सानेवरा रामो मरणवना भार नादोरे रामो मवानो हाथ निम्न राजपथ "राकोका जङ्गल" नामसे

परिचित था। मुसलमान राजसवकालमें राजशाहीके शारयाद अन्तर्गत ओ एक राजपथ मुम्बा सरपुरकी मोर भार बहसे र गपुरवे भासाम प्रदेशमें जानेके लिये बना था, ७ इन समय यह विलुप्त हो गया है। इन सब राजपथोंक सिवा मोमक जङ्गल नामक राजपथका भन्ना पथीय स्थान स्थान पर दिखाइ देता है। निचट उष्ट देता।

बाई और हिन्दू राजसवकालमें एक प्रधान राजाक अधीन कई सामन्त राजे रहते थे, जामा स्थानोंका राजधानियों के मन्तव्यय देखनेसे उस बातका परिचय मिलता है। पाल उपाधिधारी बाह्ये राजाने पौषकारापथीक ज्ञानक लिये जा कर दस देगमें उपनिवेश स्थापित किया हो या नहीं किया हो मयथा पञ्चपाण्डवोंक आभयदाता बिटाइ दन एक राजा दो वा न हो, बारैन्दकी मेसगिब सबस्था और वर्तमान मन्तव्ययपूर्व विविध स्थानोंक प्रति दृष्टिपात करनेसे मालूम होता है कि एक वा न वद छोटे छोटे राजाओंका समर्पसी वारैन्द गजित हुआ था।

इस स्थानमें मिछे प्राचीन ताजरासन और गिला-निवियोंसे मालूम होता है, कि इसी सनकी छोटी गताहरी तक यह स्थान गुप्तमछारोंक अधीन था। उनक अधीन बल उपाधिधारी सामन्तराजे राज्य करत थे। पाल राजाओंका प्रभाव नष्ट करके इसीसनको दृगोंक शताब्दीमें यहां कियरा प्रभाव देता। ईयसीकी कीर्तियां वारैन्दके स्थान स्थानमें पाइ जाती हैं।

येसा सुना जाता है, कि मुसलमानोंने बगान पर अधिकार कर कई जमीनोंकी सृष्टि की। येसा प्रभाव है कि तादिर उला बाईक नामानुसार तादिरपुर प्रगनका और एस्कर बाईक नामानुसार लम्कपुर भादि प्रगनो का नाम हुआ है। यह भी सुना जाता है, कि पगनो व समय लम्क बाईका जामोर पठाक उलता जिम्मे पर थी। पाछे पठा नदीकी गति बदल कर इस प्रगनका कुछ भेग पठाक दक्षिण दिनारे हो गया है। इस तरह जमीन प्रया प्रचलनके समय वारैन्द देगमें ज्ञा जमींदार था यह राजा गणेशक नामसे हा विद्यमान था येसा विशेषरूपसे प्रमाणित होता है। नरोत्तमपिनाम भादि

वैष्णवग्रन्थमें भी विभिन्न जमींदारोंके नाम प्राप्त होने हैं। नरोत्तम शाकुरके पिता चेतरी अञ्चलके प्रतापशाली जमींदार थे। पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्य भागमें ब्राह्मण जातिमें ताहिरपुर सातैल और पुष्टिया आदि और काण्ठस्थ जातिमें दिनाजपुर और चर्द्धनकोठीके जमींदार क्षमताशाली थे। सातैलकी जमींदारीके विलुप्त होनेके साथ नाटोरकी जमींदारोंकी सृष्टि हुई। इस प्रदेशमें खूंडी जातिके दुबलहाडीकी जमींदारी भी बहुत पुरानी है।

मुसलमानोंके शासनमें पहले ही वारेन्द्र देशमें बहुतेरे लोग पूर्ववर्द्धकी ओर भाग गये थे। पहले कभी कभी महामारोंमें बहुत लोग मर जाते थे। सन् ११७६की महामारीसे जनसङ्घातका हास होने लगा। इसके बाद कितने ही स्थानोंमें मलेरियाका प्रकोप देखा गया।

हिन्दू और बौद्ध-शासनके प्राचीन जनपदोंमें कई स्थानोंका विवरण दिया जा चुका है। अब पहाडपुर, योगीका भवन, आमाई, घाटनगर, दिवोरदीघी, क्षेत्रनाला, देवीकोट, देवरधान और मुसलमान राजत्वकालकी द्वितीय राजधानी हजरत पाण्डुआका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

#### पहाडपुर।

आत्रेयी नदीतटके पत्नीतलासे दश बीज पुरव और प्रसिद्ध महास्थानगढ़से प्रायः पन्द्रह कोस पश्चिम, जमालगढ़का डूमरी ओर और दार्जिलिङ्ग रेल-पथसे दो कोस पश्चिम पहाडपुर अवस्थित है। बुकानन साहब पहाडपुरको "धालोंका भीटा" कहते थे।

बाहरकी ओर प्रायः पन्द्रह सौ फीट समकोण बड़े एक घेरेके मध्यस्थलमें ८० फुट ऊँचा मिट्टीका एक स्तूप है। इस स्तूपको खुदवाया गया था। इससे बहुत पुराने समय अर्थात् ५वींसे ७वीं शताब्दीके हिन्दुओंके स्थापत्य और भास्कर्यका उज्ज्वल निदर्शन निकला है।

#### योगीका भवन।

घमुना नदीके किनारे पहाडपुरसे ४ कोस पश्चिम—उत्तर पश्चिम कोणमें, मङ्गलवाडीके इसी परिमाणसे दक्षिण पश्चिम कोणमें योगीका भवन अवस्थित है। यहाँ अर्द्धप्रोथित गुहायुक्त एक आश्चर्य मन्दिर है। इसीलिये यह योगीगुहा या योगीकी गुफा नामसे परिचित

है। घुमानने कहा है, कि अष्टालिङ्ग के अन्वय-शेषमें जो मन्दिर दिखाई देगा है, वह राजा देवपालका वास्तुमान है। इन स्थानके लोग भी इसे राजा देवपालकी छती कहते हैं। इस मन्दिर पर किभी तरहकी लिपि दिखाई नहीं देती। महास्थानमें यह ४ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। प्रवाद यह है, कि गुहामें महास्थानमें जानेके लिये एक मुद्गा है, इसमें एक जिवन्दिङ्ग है। प्रवेश-पथके राहिनो और बाईं ओर तुम्सी और विलयदेवी है। नगमुण भागमें योगीके रहनेका आश्रम है। गुहाके दक्षिण दो छोटे छोटे मन्दिर हैं। इनमें एक मन्दिरमें जिवन्दिङ्ग स्थापित हुआ है और दूसरेमें ब्रह्मन्दिङ्ग। इस श्रेणीके लिङ्ग मूर्तिके चार मुण्ड दिखाई देने हैं। किन्तु इनके पांच मुख का रहना सम्भवे। गुहाके मन्दिरकी बाहरी लम्बाई ३ फीट ७ इंच है। एक चतुर्भुज विष्णुमूर्ति है। मिया इसके एक शिशुको गोदमें ले कर एक भग्न स्त्री-मूर्ति है। वेष्ट मेरुटका रहना है, कि यह मायादेवी बुद्धकी गोदमें लिये गडा है। मायादेवीका इस तरह शायित मूर्ति दृष्टिगोचर नहीं आता। क्षेत्रनाला या चैननालमें इस तरहका एक मूर्ति है।

#### बमाई या धर्गा।

योगभवनन प्रायः डेढ़ कोस दक्षिण पश्चिम दूर पर यह स्थान अवस्थित है। पूर्व-पश्चिममें यह एक मालसे भा अधिक लम्बी है। कई पाँपरे और भास्करकार्य दिखाई देने हैं। अमारीके डेढ़ मील उत्तर पश्चिम घुन्दावन नामक स्थानमें कई प्रतिमूर्तियाँ और एक सुन्दर "अष्टशक्ति"-मूर्ति है। जिवतलामे विष्णु आदिका मूर्तियाँ विद्यमान हैं। श्रेणीके स्थानमें चैत महानेमें एक मेला होता है।

#### घाटनगर।

आत्रेयी तटके पत्नीतलासे १२ मील पश्चिम, दक्षिण-पश्चिममें यह स्थान अवस्थित है। इस स्थानके चारों ओर प्राचीन ईंटें दिखाई देती हैं। यहाँ दो छोटी-छोटी मसजिदें हैं। इस स्थानमें एक मील दक्षिण पश्चिम स्थानीय जमीन्दारों द्वारा स्थापित ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वरकी भग्न मूर्तियाँ विद्यमान हैं। जमीन्दारोंकी कचहरी भी ऊँचे स्तूप पर पुरानी ईंटोंसे बनाई गई है।

#### दिवोर दीघी।

घाटनगरसे नौ मील दूर पर दिवोरदीघी नामका

पुष्ट सरोवर है। यह समस्तपुष्पाय है। यह प्रायः १२०० फीट होगा। इसमें १२ फीट गहरा झर खता है। इसके बीचमें पत्थरका एक सभ्वा स्तम्भ है। यह अठक ऊपरसे १० फीट लम्बा है। सुना है, कि यैशासक प्रकर उताप से अठक सूख जाने पर इस स्तम्भ पर खुदी हुई लिपि दिखाई देती है। युक्तानका अनुमान है कि अरबने एक हजार वर्ष पहले घोवर राजाने इसे खुदवाया था।

यह कहनेको आश्चर्यकरता नहीं कि रामचरित वर्णिन कियेराज्य दिग्बोकके नामानुसार यह 'दिबोर शीघी' का नाम हुआ है।

**केनाक ।**

यह साधारणतः 'क्षेत्रनाथ' के नामसे पुकारा जाता है। दिनात्रपुरसे बांकुड़ा तक बड़े राजप्रथम दिनात्रपुरसे ३० मील दक्षिण-पूर्व और बांकुड़ासे २४ मील उत्तर पश्चिम में यह स्थान अवस्थित है। यहाँ बांकुड़ा जिलेका एक थाना है।

यहाँ प्राचीन ईंटोंका स्तूप, पुष्ट अनाशय और पाषाण प्रतिमूर्ति विद्यमान है। यानेके दक्षिणमें अवस्थित मिट्टीके स्तूप पर १२ फीट लम्बा और २ फीट चौड़ा एक मन्दिरका मन्दापद्वार दिखाई देता है। यहाँ एक पुस्त्यमूर्ति पीपलक रूखकी अष्टमें अर्दाबछाहित अक्षरणा में और १ फुट १० इञ्च ऊँची और ११ इञ्च चौड़ी चतुर्भुजा विष्णुमूर्ति है। सिवा इसके यहाँ प्रायः १ फुट १० फीट लम्बा एक आश्चर्य छोमूर्ति मन्दापद्वारमें धरने बायी हाथका तर्जिया बना कर बाई बगलमें बैठे हुए है। इसके निचट ही एक सुन्दर शालक छिटा हुआ है। इस मूर्तिके शीर्षस्थान पर एक सभो जमर टुण रहो है और पैरों और कुमरी दासा धरण सेवा कर रही है। इसके बाहिन हाथमें एक पुष्प और गिर पर गणेशादि देवताओंके छोटे छोटे बिम्ब हैं। शम्पाके भीषे फूल फर्शीस मरी डालो रहो है। इसके पाददेशमें देवतागार शर्मि व्योहित लिपि है।

यानेके उत्तर कुछ दूर पर एक घोघरैक निचट महा देवताका एक मान मन्दिर है। यहाँ आठ प्रधान मूर्तियाँ हैं। एक तो पहलें लिम्बो स्त्रीमूर्ति' इसके साथ नव प्रयोग बिम्ब भी दिखाई देता है। यह मूर्ति २ फीट ३

इञ्च ऊँची और १ फुट ऊँची है। दूसरी हरगौरीकी मूर्ति है। आठ मुञ्जाके हर गौरीका शुभ्यन कर रहे हैं। तीसरी मूर्ति ३ फीट ऊँची चतुर्भुज विष्णुमूर्ति है। चौथी छोटी एक मूर्ति पैठाई गई है। धेष्टमाकेटने इसके भीड़ कहा है। सौभाग्यवशतः एक प्रतिमूर्तिके निम्नदेशकी मग उगरीठमें देवतागारमें बुद्धवृक्षका कुछ अंग दिखा है। जैसे—

"ओ घर्गहेतुप्रभवाहेतु" इत्यादि।

क्षेत्रनाथके ६-७ मील उत्तर पूर्व ओर नादियाय दागो नामक एक पोखरा है। इसके बाधमें एक ईंटकी बनी शोबार है।

**देवीकोट ।**

पुरनवा नदीके पूर्व-तट पर देवीकोट नामका एक प्राचीन दुर्ग स स्थापित है। यह स्थान पाण्डुभाके ३३ मील उत्तर पूर्व तथा दिनात्रपुरके दक्षिण पश्चिम ओर गौड़के प्राचीन दुर्गके ७० मील उत्तर और उत्तर-पूर्वशाम अवस्थित है। एक समय यह देवाकोट नामक बहुत बड़ा एक जनपद था। इस समय भी नदीके किनारे प्रायः तीन मील स्थानमें इसका सिद्ध दिखाई देता है। कहते हैं, कि यहाँ बाण राजाशा चुगे था। दिबरी मन् ६०८म ६२४ तक व्यासुदीनन राजत्व किया था। इसक समयमें लक्ष्मणायनीने देवीकोट तक एक बाँड़ा राजपथ बना था।

जिस स्थानमें देवीकोट अवस्थित है, उस प्रदेशका पहलें "देवीकोट महलपोष" नाम था।

देवीकोटक दुर्गके अशमें तीन लार्वा हैं और ये बृह मृगय प्राचीरस परिवेष्टित हैं। जिसको लोग कुग कहते हैं, वह निर्विड अङ्कलस परिवृण है। उममें मनुष्य का आना असम्भव है। गड़का आयतन प्रायः २००० फीट समस्तपुष्कोण है। दुर्गके दक्षिण पश्चिम कोणस सुमत्तान शङ्करी मसजिद् है। इसके निचट हा और और अमृत नामक दो कुएँ हैं। मान्य होता है, कि यह स्थान और पूर्ववर्णित महास्थान एक ही रूपस हिन्दू गौरवसे विद्यमान हुआ है। यहाँ श्रीपुष्ट और महास्थानमें श्रीपुष्टइष्ट विद्यमान है।

देवीकोटके उत्तर प्रायः १००० फीट समस्तपु

कोण मृतप्राचोरसे घिरा हुआ और उसके उत्तर भी इसी तरहका मृतप्राचोर है। ये दोनों बड़ी नहरके रूपमें दिखाई देते हैं। उत्तर ओरके घेरमें उत्तर-पश्चिम कोणमें साबाघचारिका मसजिद है। बुकानन और कनिहामने स्थिर किया है, कि यह मसजिद किसी हिन्दू-मन्दिरके ध्वसा-शेष पर ही बनी थी। इस स्थानमें ही कनिहाम साहबने कई पत्थर आर ईंटों पर खोदित हिन्दू शिल्प देखा था। पुनर्भवा नदीके दूसरे पारमें पीर वहाउद्दीनकी मसजिद है।

गढवेष्टित स्थानकी लम्बाई प्रायः एक मील है। इसके दक्षिण ओर ब्रमदमा या छावनी है। इस छावनीसे दो बाधविशिष्ट पथ पूर्वकी तरफ दोहाल-दीघी और काला-दीघा नामक सरोवरके निकट गया है। पूर्वके दीघाके पूर्वपश्चिमका लम्बाई देख कर इसे कनिहाम साहब मुसलमानोंका बनाया समझते हैं। किन्तु यह युक्तिसंगत नहीं, हम शोषोक प्रकारके जलाशय हिन्दुओंके बनाये कई जगहोंमें देखते हैं।

कालादीघी नामक सरोवरकी लम्बाई चार हजार फीट है और चौड़ाई आठ सौ फीट है। प्रवाद है, कि वाणासुरकी पत्नी काली गनीके नामानुसार इस सरोवरका नाम रखा गया है। ये दोनों जलाशय देवीकोटके किलेसे एक मीलकी दूरी पर अवस्थित हैं।

दोहाल-दीघीके उत्तरी तट पर अताउद्दीनका 'अस्ताना' है। यहा जो मसजिद है, उसकी एक ओर कन्नगाह और दूसरी ओर किवल (नमाज पढनेका स्थान) है। इसकी भित्तिका मूल पत्थरसे जुडा हुआ और इसका शीर्षदेग ईंटोका बना है। इसके गाल या दीवारमें चार स्थानोंमें खुदी हुई फारसी लिपि दिखाई देनी है। पहली लिपिमें कैफ़ीयासका नाम हिजरी सन् ६६७ सालकी १ली महरम तारीख; दूसरी लिपिमें गिया सुद्दीनका नाम और हिजरी ७५६, तीसरी लिपिमें सम-सुद्दान मुजफर शाहका नाम और ८६६ साल लिखा गया है। चौथी लिपि गुम्बजके घुसनेके पथमें है। इसमें अल्लाउद्दीन हुसैनके राजत्वकालका साल ६१८ हिजरी लिखा है।

देवस्थाली।

इसको साधारणतः देवथाला कहते हैं। यह भी एक

हिन्दू निवास है। दिनाजपुरके बड़े राजपथके सन्निकट पाण्डुआसे १५ मील उत्तर यह अवस्थित है। यहां कई छोटे छोटे जलाशय हैं। यहांके हिन्दू मन्दिरके पत्थरों और ईंटोंसे एक मसजिद तय्यार हुई है। इसकी दीवारमें जो लिपि खुदी हुई है, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। इसमें वारवकशाहका नाम और हिजरी सन् ८६८ साल खुदा है। मसजिदकी प्रदक्षिणामें कितने ही हिन्दूस्तम्भ दे। यहां भी एक वासुदेवकी मूर्ति है। प्रवाद है, कि ऊपा-हरणके समय श्रीकृष्णने सपारिपद यहां कुछ दिनों तक अवस्थान किया था।

हजरत पाण्डुआ।

पाण्डुआ मुसलमानोंकी राजधानी बनी थी। इससे इसके साथ हजरतका विशेषण जोडा गया। पाण्डुआके नामकरणके सम्बन्धमें लोगों की ऐसी धारणा है, कि जत्र पाण्डव अज्ञातवासके लिये निकले थे, तब यहां आ कर एक वर्ष तक उन लोगोंने निवास किया था, इसीसे इस स्थानका नाम पाण्डुआ पडा। किन्तु वास्तवमें यह ठीक नहीं।

पाण्डुआके दक्षिण बड़े बड़े कई जलाशय विद्यमान हैं। सिवा इनके हिन्दू-मन्दिरोंके भग्नावशेषके चिह्न आदिना मसजिद, एकलवखा गुम्बज और नूरकुतव आलम प्रभृति दृष्टिगोचर होते थे।

फिरोज तुगलकके आक्रमणसे इलियासशाहने पाण्डुआसे भाग एकडाला नामक स्थानमें जा कर राजधानी स्थापित की थी। इलियासशाहके पुत्र सिकन्दरशाहने हिजरी ७५८से ७६२ तक राजतय किया। इस जगह रह कर इसने एक बड़ी भारी मसजिद तय्यार कराई थी। गौड-नगरकी राजधानीके बदलनेके बादसे ही पाण्डुआ क्रमसे श्रीहोन होने लगा।

नूरकुतव आलमकी मसजिद साधारणतः छः हजारों नामसे परिचित है। कुतवसाहबकी सेवाके लिये इतनी भूमि वादशाह द्वारा दी गई थी। क्लकमेन साहबका कहना है, कि ये प्रसिद्ध आ-ला-उल हकके पुत्र हैं। यह ८५१ हिजरीमें इस धराधामको छोड कर परलोक पधारी। इसकी बगलमें एक अट्टालिका है। कहते हैं, कि यह अट्टालिका महम्मद प्रथम द्वारा बनवाई गई थी। इसके

बनानकी ८५३ दिवसकी २४ दिनदिख तारीख तिथी है। कनिहम साहबका कहना है, कि यही नूरकुतब माखमका असली गुणग्रह है।

नूरकुतबके छहजारीके जरा उत्तर सोना मसजिद है। इसमें किंगि बरकोर्ण है, इससे मालूम होता है, कि मुकद्दसाह द्वारा ६६० दिवसमें यह निर्मित हुई है। इसके बनानेवालेने अपने पूर्वज नूरकुतबखानमक नामक अनुसार इनका नाम कुतबशाही नामजिद रखा है।

एकतकला गुम्बज सोना मसजिदके कुछ उत्तर और दिनखपुरके भीर जामेवाले पथमें है। मालूम होता है, कि इसके निर्माणकार्यमें एक लाब रुपया खर्चे हुआ था। इससे इनका एकलकला नाम पड़ा। इसकी ईंठों पर भी हिन्दू-जिगिषवीं द्वारा बना प्रतिमूर्ति स्थापन स्थानमें दिखाई देती है।

मादिना मसजिद केवल पाण्डुमोंमें ही नहीं, हिन्दू-बहुदेव मरमे एक आश्वर्यको सामग्री है। इसकी खम्बाई प्रायः हांसी हाथ और चौड़ाई डेढ़ सौ हाथ होगी। इसक परपथमें हिन्दू मूर्तियोंसे खुरा हुआ फाद कार्ण दिखाई देता है। ७७० दिवसो ६ खम्बको (सन् १३६६ ई०की १४वीं फरवरीकी) इसप्रास शाहके पुत्र सिकन्दर शाहने इसको तटपार करवाया। इसमें जहाँ नमाज पढ़ा जाता है, उसके सामने ही अरबी मापामें कुरानकी भाषने खुरी है।

इसके अलावे सत्तारिम घर 'मिदन्दरकी मसजिद' नामका मकान भीर कई मज्जालिकामोंके सिद्ध हैं। पाण्डुना रेको।

बाँकुड़ा शहरके १२ मील उत्तर 'बग्गाई' नगरका मनापथेर दिखाई देता है। इस स्थानका वर्तमान नाम वहाँका भाषाक अनुसार 'बाँकुमुना' हुआ है। इस चाँद मुना प्रामके निकट सोहराई मोरार नामक दो बिले हैं। चिन्नीको बौद्गाई कुछ कम होने पर भी सामान्य नहीं। पर हैब कर अनुमान होता है कि पहले यह चाँद नदी गम था। मोरार बिलक बोधमें परादेवीका सिद्ध है। प्रयाद है, कि बिलमें जाने जायेके लिये एक समय ईंठोंका बनावक पथ था। जो दो बिलक किनारे पर पुराकी ईंठोंके टुकड़े पाये जाते हैं। कहते हैं, कि ये सब

कीर्तियाँ चाँद सींदागरकी है। बाँकुड़ा मखलके कुछ गंधी भपनेको चाँद सींदागरके भीर कुछ बासबनिवा के लंगपर बतकाने हैं। चारैन्द्रजमे गंध वणिक् एक समय बनी कहलाते थे। जयपुरका हैबस्टेगनसे डेढ़ मील पश्चिम बेवाभापका नामक स्थानम गंध-वणिक् जागीर राजीवमोचन मण्डल मुर्शिबाबादक सठपगरी तरह पनी था। १६वीं शताब्दीके प्रथम भागमें राजीवलोचन मण्डलकी मृत्यु हुई। येलाभाबनाक द्वाजग-गिष मन्दि इस ब्यक्तिक पेयर्पका परिचय प्रदाण कर रहे ५।

२ गौडवज्जवासी ब्राह्मण भोपीमेद ।

परेन्द्रमूममें आदिवास होमके कारण चारैन्द्र नाम हुआ। चारैन्द्र भीर राष्ट्रीय ब्राह्मण कुन ग्रन्थको गढ़ कर हमें ब्राह हुआ है, कि ३५४ तक आदिशाका अम्बुदपकाय है। इस समय उन्में कर्मात्रस सागिक ब्राह्मण खानका वेरा की। उनके भामम्बलस शानिद्वयगोत्रस द्विरीश मरदाखगोत्रस मेवातिथि कश्यपगोत्रस गोनराय, वास्वगोत्रस सुधानिधि भीर सावणगोत्रस सीमरि ये पाँच धर्मरत्ना गौडमरदलमें भाये। चारैन्द्रक कुलका का कहना है, कि ये पञ्च महात्मा आदिशूकक यज्ञको पूरा कर लक्ष्य लौट गये। धगाळम लौट माग पर वहाँके जागेनि इन लोगोंत प्रावशिवल करलैको कहा, कि हेतु इन लोगोंने उत्तरमें कहा, कि वेदवेदांगशास्त्रविदा की प्रावशिवल करलैकी आवश्यकता नहीं। इस दोनो बलोंमें मयदुर संघर्ष उपस्थित हुआ। उस समय ये पाँचों ब्राह्मण अत्यन्त क्षापित हो कर गाडवगम आदि शूको समामें लौट भाये। गाडवधपने इन ग मुहस सब हास ज्ञान कर बडे आदरसे ग गाक किनारैक निकट ही पाववपुक् मूमिमें इन लोगोंकी बसाया।

आदिशूकके यज्ञमें भाये पाँचों विदोंक बहुदेरे पुबामें क्षितोगके बामोदर, ग्रीरि, बिरोधर, गन्दर और महारावण ये पाँच, मेवातिथिक आदर्य, गौतम भाषर, रत्न गिर्य बुर्गा, रवि भीर जगि य माठ। चोतरागक पुपेज, बस, भागुमिध भीर सुधानिधि ये चार; सुधानिधिक घरा घर भीर छान्दक ये हाँ भीर सामरिक स्थान, दिहगम पराशर भीर महेश्वर चार पुनी क हो नाम पुत्र प्रदा हू



दियाई देने हैं। यह नहीं मालूम होता, कि इन सब पुत्रों में कौन बड़ा और कौन छोटा है।

महैजमिथके निर्दोष कुलपञ्जिका में लिखा है, कि शिवी-शके पुत्र दामोदर वरेन्द्र देजमें बम्बेके कारण वारेन्द्र जीरी दाक्षिणात्य, विश्वेश्वर वैदिक, जङ्गल पाण्ड्यात् और महुनारायण राठ्ठे कहलाये। कुलीन सबर देवों।

इधर वारेन्द्र कुलपञ्जिका में महुनारायण, धर्माधर, ज्येष्ठ, गीतम और पराशर ये पांच ही वारेन्द्र या वारेन्द्र ब्राह्मणों के वीजपुरुष नहें जाते हैं जोर राठाय कुलपञ्जिका में महुनारायण, दक्ष, वेदगम, श्रीधर्य और छान्दड—ये पांच मसुग्य राठाय ब्राह्मणोंके प्रसिद्ध वीजपुरुष हैं। वारेन्द्रकुलपञ्जिकासे और भी मालूम होता है, कि वारेन्द्र पञ्चवीजपुरुषकी निचला पीढा में भी कोई वारेन्द्र और कोई राठाय नामसे परिचित हुआ।

सर्वसाधारणका विश्वास है, कि राजा बहलालसेनके समयमें ही वारेन्द्र ब्राह्मणोंमें १०० गात्रों स्थिर हुई। किन्तु हम प्राचीन कुलग्रन्थोंके और पालराजोंके इतिहाससे जान सकें हैं, कि बहलालसेनने सैकड़ों ग्राम प्राप्त कर वारेन्द्र ब्राह्मणोंसे सांसां गात्रोंको उत्पत्ति हो गई थी। धर्मपाल षोण्डवर्द्धन पर अधिकार कर लेनेके बाद महुनारायणके पुत्र शारिगार्जा शोक्ताकी धामसार गात्र दान किया। वारेन्द्र कुलग्रन्थोंमें महुनारायणके पुत्रने ही पालराजने सर्वप्रथम ग्राम प्राप्त किया था, इससे ये शारिगार्जा नामसे पुकारे जाते थे। शारिगार्ज्य महुनारायणके पुत्रकी तरह इस वर्णके बहुतेरे मसुग्य पालराजोंसे ग्राम प्राप्त और उनका मन्वित्य कर गये हैं। पालराजोंकी जिला-लिपियों तथा ताम्रलिपियोंसे इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। पालराजदक देवों।

शारिगार्ज्यगोत्रकी तरह अन्यान्य गोत्र भी षोड पालराजोंसे लगभग लाभ करनेसे वञ्चित नहीं थे। और तो क्या—सेनवशक अशुभ्यके कुछ समय बाद तक इस श्रेणीके ब्राह्मण पालराजोंसे ग्राम पाते रहे। वारेन्द्र कवि कश्यपगोत्राय चतुर्भुजके वनाये 'हरिचरित' काव्यमें उनके पूर्वपुरुष स्वर्णरेशके करज ग्राम पानेकी बात लिखी है।

षोड-प्रभावकालमें यहांके ब्राह्मणोंने षोड तान्त्रिक धर्मका आश्रय लिया था और उसके फलसे वैदिक

संस्कारकी तिलाञ्जलि दे दी थी। राजा बहलालसेनके पित विजयसेनने वारेन्द्र पर अधिकार कर यहां फिर वैदिक मार्ग प्रवर्तनका चेष्टा की थी।

वास्तविक महाराज विजयसेनने कुण्डू-ष्टि-यज्ञकी समाधा करनेके लिये यहुनेके वैदिक ब्राह्मणोंको बुला कर गौडराज्यमें प्रतिष्ठित किया। उन्हीं वैदिक ब्राह्मणोंके यत्नसे यहांके षोडतान्त्रिक वारेन्द्र मन्तानोंने फिर हिन्दू-समाजमें प्रवेश कर पाया था। किन्तु वैदिक-धर्म प्रवृत्त करने पर भी यहांके ब्राह्मण षोडतान्त्रिकताको पूर्णरूपमें छोड़ न सके थे। उनके प्रभावसे राजा बहलालसेन भी तान्त्रिकधर्मातुरक्त हो गये थे। इस तान्त्रिकता-प्रचारके लिये ही गौडाधिप बहलालने कुलमठ्यादाको स्थापना का और नाना देगोंमें तान्त्रिक वारेन्द्र ब्राह्मणोंको भेजा था। वारेन्द्र ब्राह्मणोंको चेष्टासे षोडतान्त्रिक हिन्दूतान्त्रिक समाजमें मिल गये हैं।

पढ़ले हो लिखा गया है, कि राजा बहलालसेनने १०० गात्रों ब्राह्मणोंको स्वीकार कर लिया। वारेन्द्र ब्राह्मणोंके प्राचीन कुलग्रन्थोंमें इस गात्रों नामसे मतभेद दिखाई देता है। नीचे उन १०० गात्रों नामोंको उद्धृत कर दिया जाता है।

कश्यपगोत्रमें—मैत्र, भाडुडी, करज, बाल्यष्टिक, मसुग्रामो ( मतान्तरसे मोघा ), राणीदाटी, ( मतान्तरसे बलिहारां या राणीदाटी ), मोडालो, किरण ( किरणी ), वीज, कुज, सनी ( मतान्तरसे स्थवी या सरग्रामो ), सुत्तु, ( मतान्तरसे सहग्रामो ) कट या कटि ( मतान्तरसे चिदांफटा ), बेलग्रामो ( मतान्तरमें गङ्गाग्रामो ), घोष ( मतान्तरसे चम या बलग्रामो ), मध्यग्रामो ( मतान्तरसे पाण्ड्यर ), मटग्रामो और भटग्रामो—यह १८ गात्रों हैं। सिवा इनके फिर किसी किसी कुलग्रन्थोंमें अशुकोटि और आधर्वाज गात्रोंका भी उल्लेख देखा जाता है।

शारिगार्ज्य गोत्रमें—सद्रवार्गाच, साधुवार्गाच, लाहिडी चम्पटी, नन्दनवासा, कामेन्द्र, सहररी, ताडोयाला, विशी, मत्स्यासी, बम्प ( मतान्तरसे जम्बू ) सुवर्णतोटक, पुसला ( पुपाण ) और बेलुडा १४ हैं।

वात्स्य गोत्रमें—सर्जामनी, सोमकाली, महुगाली, कामकाली, कुडमुईल ( कुडम्ब ), भाडुयाल, सेतुक ( मता-

स्वल्प प्रकृत), आम्रबन्धो सिमली (मताम्तरसे शीत  
कर्मो) घामाली (मताम्तरसे विनाया) तानुपी (मता  
म्तरसे ताकड़ो) बरमप्रामो, देवली, मित्राली, कुकुर  
पोएडबर्भो, वोडुप्रामो, भुतकटो, नसप्रामो, माइरी,  
बाम्प्रामो बाकीइय, पोएड्काळी कालिन्दा, चतुरावन्धी  
(मताम्तरसे सातर्वां)—ये २४ हैं।

भरझांभयोत्तमै—माइर, नाइली (नाइयाल),  
बामुपी, राइ, रतनावली, उषरको, गोच्छासी (बाबएडो)  
छाल, शाकटी (मताम्तरसे ताकड़ो), सिम्भीबहाम  
(सिहाल), साइयाल खेबगामी, इपियाल (मता  
म्तरसे कटी), पूनि, काछटी लम्पीप्रामो, गोप्रामो, निखटी  
समुद्र, यिपली, शृङ्गुर्जा (या पञ्चुरी) दोसोत्करा,  
गोस्वाछगो (गोसाकाक्षी)—ये २४ हैं।

सावर्णगोत्तमै—सिंदियाल, पाकडी (पापुडी),  
शृङ्गी, मैवडी उजुनी, पुकड़ो, तलवार, सतक, नाप्रामो  
(मताम्तरसे कलापेपी) मैपुटी (मताम्तरसे छेचुरी)  
क्याको, मुदुरो, पञ्चयटी, नएडबटी, निकड़ो, समुद्र,  
केमुप्रामो, पयप्रामो पुनरक, और पुनराशरी—ये २० हैं।

३ वारेन्द्र कायस्थ वारेन्द्रदेवनामो कायस्थ भेणीमेव  
इस समय जिस स्थानको हम लोग वारेन्द्र समझते हैं।  
यही स्थान भाद्रि गौडमएडके नामसे प्रसिद्ध था।  
अतः भाद्रि गौडीयकायस्थ कहते पर वारेन्द्रवासो कायस्थ  
समझना चाहिये।

वारेन्द्र कायस्थोंक पास डाकुर नामका एक पर्व  
है। इस प्रणयक पहलेसे मान्य होता है, कि यदुनम्ब  
नामक एक मनुष्य इसक रचयिता हैं। भाद्रिपुरके समय  
ओ वरं कायस्थ भाये थे। उर्दमि त्रिपयमें कुषञ्ज  
नगरवासो कुम्भो कायस्थ काशीवासो ओ कुलमण्यको  
रचना की इसीके आचार पर यदुनम्बने अपने प्रणयको  
रचना की है। इससे समझमें आता है, कि यदुनम्बके  
आदर्शका एक और 'डाकुर' प्रणय था। उर्दमि इस डाकुर  
आदर्शको बहुत बड़ा प्रणय कहा है।

उक्त डाकुर प्रणयमें लिखा है, कि बहसालेन डोम  
करवा छाने और अनावरणाय ज्ञातिवोक अनावरणोय  
करनेक सिध प्राप्तय और इरवारी बहु चिन्मवास्वित हूय।  
बन्दासकी कौतान्यमप्योदा अमितब सावरी मूय होने पर

किसीको नया कुम्भो बनाया गया और बिस्तीकी कुली  
नता छान भी गई। बिरेपतः पुनक बन्दे कुम्ब कन्यागत  
करमेका आदेश दिया गया। यदुनम्बने लिखा है, कि  
वैदिक प्राज्ञाणेन, वारेन्द्र कायस्थानि और यैवोनि इम  
अमितव कौतान्यको गवी महण किया।

द्वेष और वैदिक देवो।

भृगुनम्बी नामक एक राजमन्त्रीने ब्रह्मसमेगको इन सब  
असामाजिक कार्योंसे विरत होनेके लिये उपदेश दिया।  
ब्रह्मस भृगुनम्बीके दुष्टागत और प्रमाण प्रयोगको बात  
सुन कर महा क्रोधित हो उठे। जोध ही राजमन्त्री भृगु  
नम्बीको कीर्त्त करनीकी आज्ञा दो। आज्ञा पचाविधि  
मानो गई। भृगुनम्बी जेल भवनमें छोड़े गये। यहाँसे वह  
भाग निकले अत इन्हीं देवकोटवासो बटाघर और  
कर्कट भाग नामके दो पराकृष्ट मूर्त्याधिधारियोंका  
आश्रय ग्रहण किया। ईशकोट वर्तमान विनासपुर  
जिसेके अन्तर्गत है। बटाघर और कर्कट भागके  
साहाय्यसे वास, लक्ष्मी, चाकी, भाग, सिंह इय और वृक्ष  
इन सातघरोंसे समाज गठित हुआ। नरसुम्बर अर्थात्  
नामक एक बटाघर कायस्थ भृगुनम्बी परिवर्तानि निगुण  
था। उक्त व्यक्तिने भृगुनम्बी और मुरानि चाकिने 'मद  
कुल' इतको कहा था; किन्तु बटाघरभागने उनका  
वहिनकार कर दिया।

यदुनम्बक डाकुर पाठसे प्रतीयमान होता है, कि  
पठावस्थानक समय पद्धति भाद्रि पर विचार कर वारेन्द्र  
समाज संगठित हुआ। वासयशक विवरणमें हरिपुर,  
नागडा और गुधि—इन तीन स्थानोंक नामका उल्लेख  
है।

डाकुरमें दामबशक प्राचीन समाजस्थान—वाकी  
प्राय साधुवासी मन्त्री मेशान दापो विपण्यन्  
शोपको, पावना मानश्री, कजुमाझीगा, मेरपुर माजि  
बाद्रि और धर प्राय लिखे हुए हैं।

उक्त डाकुर-वर्णित लक्ष्मोर्वशक ये सब समाजस्थान  
हैं—बन्दा, पोताजिया मधुनिमा राशिपारि धामध,  
विपमिया, नएडापुर साधुवालो दिवपमार, रदिमपुर,  
मजिबह, महिमापुर, चंद्रिया, कानडा, डामपुडा, मडग  
रोदाका, देवपुड, सिंहडगा मेहेपुर, क उगाछा, अमार

गांध और आरपाड़ा। इनमेंसे बल्लार, कलिआदि, खामरा, माधुगाली, महिमापुर, वैद्युनिया, इरतजा, देवगुद, मेहेरपुर, केंडागाली, कमरगाँव और आरपाड़ा, इन सब स्थानों में बहुत दिनोंसे वारेन्द्र कायस्थोंका काम नहीं है। अभी तकाना स्थानोंमें उन सब समाज-प्राणियोंके नाम देखे जाते हैं।

वादिगणके समाज—मरिया, बाजुरम, मीर, जामला हेरज, अष्टमुनिगा, मेवोवाटी, केंचुआडागा, गोविन्दपुर, मिक्करपुर ( बहादुरपुर ), चण्डीपुर, गजरा, दुर्लभपुर, प्रथमनगर, देवगजपुर, रामदिया, वासुदिया, दिलपनार, ग्युनाथपुर। इनके सिवा चाचकिया समाजका चाकि भी इन समाजमें देखा जाता है।

नागवंशके उदाहर और कर्कट नागके पिता शिव नाग देवमोदमें राज्य करते थे।

शेता नाग जिन समय यशोर जिलेके शोलकूपामे आये थे, उसी समय वारेन्द्र कायस्थसमाज संगठित हुआ। मशाराज प्रतापदिव्यके पतनके बाद हीसे शोलकूपामे शिव उदय हुआ है। अत्याचारमें पीड़ित हो मित्रने प्रायण-नायक शोलकूपामे राज गये।

टाकुर-पणित नागवंशके समाजस्थान—शोलकूपा, मरप्रम, वागडली, हरिहरा, रामरगर, काटापुत्रनिया, पावराट, मालजंग, मिट्टा, गाडादक नन्दनगाली, फते उल्हापुर पन्नामवाटी फिलगड, सुडका, मान्दिकाखो, चवडा, उदियार, आलियापाडा, गड्ढापाडा, नरणिया, मिन्दिया और आठाना।

कशानिया व्यामदिव्यके उंगसे किसी क्रिमोने वारेन्द्र समाजमें प्रवेश किया। मिहका प्राचीन समाज—इरतजा, मरकानिया, जेसाकान्डी, परीझिनदिया, चोंया और उधुनिया।

देवगणमें प्रारम्भिके बुधदेव और कुठदेव वारेन्द्र पर्योमें गिने गये। देवगणके समाज ये सब हैं—कर्ण-चर्ण, चरधानमोना, नारागुनिया, काकदह, चिथलिया, चरिया, नाडाग और बड़नकोटी।

दक्षमें बटप्रासी और काउनाड़ी दक्ष ही मूल हैं। नाउनाड़ी दक्षवंशके समाज—रुपाट और सेखुपुर।

समाज गठनकालमें भृगुनन्दी आदि सात घर वारेन्द्र-

के माताजिह कायस्थरूपमें गिने गये थे। दास, नन्दी और चाकी ये तीनों सिद्ध घर एक से हैं। कहते हैं, कि दोनों नागको भृगुनन्दीने सिद्धपद देना चाहा था, किन्तु नागोंने नहीं लिया, इस कारण सबोंने सिद्धतुल्य कर कर उनका प्रचार किया। नाग साध्यश्रेणीभूक्त हो कर गौरवान्वित हुए हैं। नागके बाद सिद्धघर, इसके बाद देवदत्तघर अर्थात् सिद्ध ३ घर प्रथम भाव, नाग द्वितीय भाव, सिद्ध तृतीय भाव और देवदत्त चतुर्थ भाव, इस प्रकार सातों घरके भावोंका निर्णय हुआ था।

समाजबद्ध इन सात घरोंको छोड़ कर पीछे और भी कितने घर संगृहीत हुए थे।

वारेन्द्र-उग्रवासी घोष, गुह, रक्षित, मित्त, सेन, कर घर, चन्द्र, रहा, पाल आदि उपाधिधारी कायस्थ भी अपनेको वारेन्द्र कहते हैं।

इन सत्तरह घर कायस्थोंमें सिद्ध, घोष, मित्त और कर उत्तरराष्ट्रीय; नन्दी, रक्षित, गुह, घोष और चन्द्र बङ्ग तथा सेन और देव दक्षिण-राष्ट्रीयसे आनेका प्रमाण मिलता है। अवशिष्ट रक्षित, घर, राहा, रुद्र, पाल, काम और प्रारिद्धल्य दास ये सात घर किस श्रेणीसे वारेन्द्रमें आये, उसका प्रमाण नहीं मिलता।

वारेन्द्र-कायस्थोंका आचार-व्यवहार अति पवित्र है। जिन्होंने उपनयन-संस्कार ग्रहण किया है उनका आचार व्यवहार ब्राह्मण जैसा है। पुत्रके जन्म लेते ही सूतिकाघरमें तलवार रखना और अन्न-प्राशनके समय चरुपाक आदि क्रियायें आतव्यवहारकी और विवाहमें कृष्णण्डिका आदि आये सदाचारके परिचायक हैं। बङ्गदेशीय कायस्थ जातिकी चार श्रेणियोंके आचार-व्यवहारमें थोड़ा बहुत अन्तर दिखाई देता है सही, पर मूलमें कोई अन्तर नहीं है। स्थानभेद और दीनता ही इस पृथक्ताका कारण है।

वारेन्द्र कायस्थोंके विवाहमें पर्यायकी जरूरत नहीं होती। पहले बङ्गीय ब्राह्मण घटकका काम करते थे। पीछे वारेन्द्र-कायस्थोंने भी घटकका काम करना शुरू किया। यदुनन्दन भी वारेन्द्र-कायस्थ थे। देवीदास झाँ आदिके समयमें एकता हुई पीछे बहुत दिन तक समस्त समाजकी फिर एकता नहीं हुई।

आज कल राजसाही, मालवह पायना, बांडुडा, दिनाजपुर, रङ्गपुर, नदिया २४ परगना, वजोर और मुर्शिदाबाद जिलेमें प्रायः सभी जगह बारैन्द्र-कावस्थोका वास है।

पारैन्नी (स० स्त्री०) देशबिहीन, पारैन्द्रदेश। अभी यह देश राजशाही विभागके अन्तर्गत है।

वाकवपिड (स० पु०) वृकवपिडके पु अर्थव्य।

वार्कप्रादिक (स० पु०) वृकप्रादिके गोत्रापत्य।

वार्कजम्भ (स० पु०) १ वृकजम्भके गोत्रापत्य। २ वृक सामका नाम।

वार्कवन्धविक (स० पु०) वृकवन्धु (वेत्त्ववर्धवन्धु । वा ४।१।२।६) इति अर्थवार्थे उक्त्। वृकवन्धुका गोत्रज।

वार्कलि (स० पु०) वृकमाका गोमज।

वार्कलेय (स० पु०) वृकमाका गोत्रज। २ वार्कमाका गोत्रज।

वार्कवञ्ज (स० पु०) वृकवञ्जिका गोत्रापत्य।

वार्कान्णोपुत्र (स० पु०) वार्कान्णिके।

(रतपयना० १।४।१।३१)

वार्क्या (स० स्त्री०) ब्रह्मसे होनियाका ज्योतिषीमादि मक्षण कर्मा।

वार्हो (स० पु०) वृक्षाणां समूहा इति वृक्ष-तल्प समूहा । (वा ४।२।१७) इति ऊष् । १ वन। २ वृक्षकी छायाका वना हुआ वस्तु। लि०) ३ वृक्ष समूहकी वा वृक्षका वना हुआ। वृक्षसमूहकी शिपयिद्रुकी पूजा करनेसे विचलताम होता है।

वार्हो (स० स्त्री०) एक मुनिवन्ध्या। ये तपस्वि प्रधान मय ता आदि द्वा भार्योकी सदधर्मिणी हुई।

(सतय ६।१६।१२५)

वार्हो (स० स्त्री०) वृक्षान्यापत्य स्त्री, वृक्ष अणु-द्वीप। वृक्षम उल्पय वृक्ष अणुवपत्तो।

वार्होका वृक्षका नाम मारिया था। यह वृक्ष मुनिके औरतसे प्रभोका नामकी अन्तराके गर्भमें रह कर पीछे वृक्षमें उल्पय हुई थी। इनका विवरण विष्णुपुराणमें इस प्रकार आया है—

पूर्यकाममें एक समय प्रचेतागण घोर तपस्या कर

रहे थे। ऐसी अवस्थित अवस्थामें वृक्षोंमें पृथिवीकी घेर लिया, मिथर देविप उपर वृक्ष ही अन्नर आमं जगा। प्रजाकी सखा घोर घोर घरेने छगो। इस समय प्रचेतागण क्रुद्ध हो कर ब्रह्मसे बाहर निकसे। क्रोधक मारे उनमें मुबसे वायु और अग्नि आविर्भूत हुई। वायु ने वृक्षोंकी सुखा दिया और अग्निने अन्ना जाला। इस प्रकार वृक्षका रूप होमें लगा।

अधिकारण वृक्ष रूप हो गये। घोड़े से बच गये। इसी समय राजा सोमने प्रचेताओंसे ज्ञा कहा, 'भाप सोम क्रोध न करें, वृक्षोंके साथ भाप लोगोंकी एक सन्धि हो जानी चाहिये।' सोमक अनुरोधसे प्रचेताओंने वृक्ष कन्या मारियाकी भार्यारूपमें प्रवृत्त कर वृक्षोंके साथ मेल कर लिया। इस वृक्षोत्पत्त कन्याका अन्तवृक्षान्त इस प्रकार है—पुराणालमें कण्डु नामक एक वैश्विद्रु मुनि थे। ये ग्रामतीक क्लिारे तपस्या करते थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेक सिधे इन्द्रन प्रभोका नाम्नी एक परम सुन्दरी अन्तराकी बहा भेजा।

अन्तराने भा कर मुनिकी तपस्यामें बाधा डाली। मुनिने उसक माग सी बर्ष तक विहार किया। मन्त्र कन्तरामें रह कर ये दोनों विहार करते थे। सी बर्षक वाक् अन्तराने इन्द्रक निकट जानेकी इच्छा प्रकट की, विश्वु मुनिने ज्ञानेका अनुमति न दी। पीछे सी बर्ष और उसके साथ विहार किया।

प्रचेताओं क मारियाकी प्रवृत्त करनीक समय राजा सोमने उनसे कहा था यह कन्या भाप लोगों की वंश बढ़िंनो हागो। मेरे अर्द्ध तैज और भाप लोगों क अर्द्ध तैजसे मारियाक गर्भमें वृक्ष नामक गजावति अन्त प्रवृत्त करेगे। (विष्णु ०१।१५।२२)

इस प्रकार कण्डु अग्निमें सैबद्धो वय तत्र अन्तरा क साथ विहार और विविध विषयो का भोग किया। अन्तराने इन्द्रालय जानेकी आज्ञा मांगी, विश्वु न मिली। आविर्भमें मुनिक शापमय अन्तराकी अर्द्धीक वाम रचना पड़ा। इन दोनों का वय प्रेमरस दिनों दिन बढ़ने लगा।

एक दिन मुनि अन्त हो कर कृदासे बाहर निरग। अन्तराने पूछा—बहा ज्ञाते है ? मुनि बोधे 'मिये'। सन्ध्या

पासनाके लिये जाता हूँ, नहीं जानेसे क्रिया लोप हो जायगी।' अप्सराने हंस कर कहा, 'इतने दिनों के बाद तुम्हारा धर्मक्रिया करनेका समय आया। इतने दिन जो बीत गये, क्यों नहीं सन्ध्यापासना की?' मुनिने उत्तर दिया, 'वाह! तुम तो सबेरे हम नदीके किनारे आँट हो और पीछे मेरे आश्रममें घुसी हो। अभी सन्ध्याकाल उपस्थित है। इसमें उपहासकी क्या वान है?'

अप्सरा बोली, 'मैं यहाँ सबेरे आई हूँ मही, पर समय बहुत बीत गया। कितने वर्ष चले गये।' मुनिने पुन व्याकुल हो कर पूछा, 'तुम्हारे साथ मैंने कितने दिनो तक रमण किया?' अप्सराने कहा, 'तीसों सात वर्ष छः मास तान दिन।'

अप्सराके सुपसे वह सन्ध्यापासना कर मुनिको बहुत आत्मन्यानि हुई। मुनि अपनी आत्माको दारदार धिक्कारने हुए वाले, 'हाय! मेरी तपस्या नष्ट हो चुकी, बुद्धि माग गई, मैं लोक साथ नीच दुर्गामें पहुँच गया। इस प्रकार मुनि बहुत समय तक आत्मनिन्दा करने लगे। ह्रींके प्रेममें फँस कर कर्त्तव्यगंधमें नष्ट हो गये, यह सोच कर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और आखिर उस अप्सराको विदा किया। अप्सरा काप रही थी, मुनिके जो क्राधका पारावार न था, पर मुनिने उसे शाप नहीं दिया। उन्होंने अपनी अवाधय इन्द्रियका ही दोष दिया था।

जो हो, अप्सरा चली गई, किन्तु मुनिके भयसे उसके शरीरमें वेशुमार पन्याना आने लगा। जब वह शून्य मार्गसे जा रही था, तब एक ऊँचे वृक्षके तरुणपल्लवमें उसने अपना पर्माना पीछे लिया। ऐसा करनेसे मुनिके तेजसे जो उसे गर्भ रह गया था, वह गर्भ लोमकूप हो कर स्वेद-जलाकारमें निकल गया। पीछे अप्सराके स्वेदसे सिक हो वहाके सभी वृक्षोंने गर्भ धारण किया। इसी गर्भसे मारिया नामक नारीरत्नको उत्पत्ति हुई।

वृक्षोंने यह नारीरत्न दे कर प्रचेताओं का क्रोध शान्त किया था। (विष्णु पु०)

वाच्य (स० त्रि०) १ वृक्षसम्बन्धीय (ह्रौ)। २ वृत्ति, घेरा।

वार्च (स० पु०) वारि चरतीति ड। इस।

वार्चलीय (स० त्रि०) वर्चल सम्बन्धीय।

वाज (स० पु०) पद्म, फल।

वाड (अ० पु०) १ रक्षा, दिक्काजत। २ किमी विशिष्ट कार्यके लिये घेर कर बनाया हुआ स्थान। ३ अस्पताल या जेल आदिके अन्दरके पृथक् पृथक् विभाग। ४ नगर-में उनके महलके आदिका समूह जा कितनी विशिष्ट कार्यके लिये अलग नियत किया गया हो।

वाडर (अ० पु०) १ वह जो रक्षा करता है, रक्षक। २ जेल आदिके अन्दरका पहरदार।

वार्णक (स० पु०) लेखक।

वार्णपय (स० पु०) वर्णकका गोत्रज।

वार्णव (स० त्रि०) वर्णु नदी-सम्भव, वर्णु नदीसे उत्पन्न।

वार्णवक (सं० त्रि०) वर्णव न्यार्थकम्। वर्णु नदी सम्भव।

वार्णिक (स० त्रि०) वर्णलेखन शीलसम्भव वर्ण-ठम्। लेखक।

वार्च (सं० त्रि०) वृत्तिरन्त्यग्येति (प्रकाशान्ती वृत्तिभ्यो षः। पा ५।२।१०१) इति ण। १ निरामय, आरोग्य। २ वृत्तिशाली, कामकाजी। (ह्रौ०) ३ असार।

वार्चक (सं० पु०) १ पश्चिमिण्ये, बटेर। इसके मांसका गुण—अग्निवर्द्धक, शीतल, उच्चर और त्विदोपनाशक, रोचक, शुक्र तथा घलवर्द्धक। २ वार्चकी, भंटा।

वार्चन (सं० त्रि०) वर्चनीभव।

वार्चान्तवीय (सं० पु०) १ वरतन्तु-सम्बन्धीय। २ वेदकी एक शाखा।

वार्चमानिक (सं० त्रि०) वर्चमान सम्बन्धीय।

वार्ता (सं० स्त्री०) वृत्तिरस्या अस्त्येति (प्रकाशान्ती-वृत्तिभ्यो षः। पा ५।२।१०१) इति ण ततप्राप्। १ भगवती, दुर्गा। देवीभगवती वर्चन तथा धारण करती हैं, इस कारण उनका वार्ता नाम पडा है। २ वृत्ति, जीविका। ३ जनश्रुति, अफवाह। ४ वृत्तान्त, संवाद। ५ विषय, मामला। ६ कथोपकथन, बातचीत। ७ वैश्यवृत्ति जिस्के अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद है। वैश्यकी वार्ता द्वारा जीविका निर्वाह करनी चाहिये। ८ संसारका आध्यात्मिक संवाद।

वक्ररूपी धर्मने जब वार्ताके सम्बन्धमें प्रश्न किया,



वार्त्तिकहारक, संज्ञादवाहक ।

वार्त्तिकहर्त् ( स० पु० ) वार्त्तिकहर, दूत ।

वार्त्तिक ( स० क्ली० ) वृत्तिप्रस्थसूत्रविवृतः तल साधुः  
वृत्ति ( कथादिभ्यश्च । पा ४।४।१०२ ) इति उक्त् । १  
किसी ग्रन्थके उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थोंको स्पष्ट  
करनेवाला वाक्य या ग्रन्थ । इसका लक्षण—

जिस ग्रन्थमें उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ स्पष्ट  
होता है, उसका नाम वार्त्तिक है, अर्थात्  
मूलमें जो विषय कहा गया है, उसे स्पष्ट करनेसे  
मूलमें जो नहीं कहा गया है, उसे परिष्कृत वा व्युत्पा-  
दित तथा मूलमें जो दुरुक्त अर्थात् असङ्गत कहा गया है  
उसका प्रदर्शन तथा ऐसे ही स्थानोंमें संगत अर्थ निर्देश  
करना वार्त्तिककारका कर्तव्य है ।

कात्यायनका वार्त्तिक पाणिनीयसूत्रके ऊपर, उद्योत-  
करका न्यायवार्त्तिक वात्स्यायनके ऊपर, मट्टकुमारिकका  
तन्त्रवार्त्तिक जैमिनीयसूत्र तथा शबरस्वामीके भाष्य  
के ऊपर रचा गया है । फलतः वार्त्तिकग्रन्थ सूत्र और  
भाष्यके ऊपर ही रचा जाता है ।

वृत्ति, भाष्य आदि ग्रन्थ मूलग्रन्थकी सीमा अतिक्रम  
नहीं कर सकने अर्थात् भाष्यकार आदिको सम्पूर्णरूपसे  
मूलग्रन्थके मतानुसार ही चलना होता है । किन्तु  
वार्त्तिककार सम्पूर्ण स्वाधीन हैं । भाष्यकार आदिकी  
स्वाधीन चिन्ता ही नहीं सकती । किन्तु वार्त्तिकके  
लक्षणोंके प्रति ध्यान देने हीसे ज्ञात होता है, कि वार्त्तिक  
कारकी स्वाधीन-चिन्ता पूर्णमात्रामें विकाश पाती है ।  
वार्त्तिक ग्रन्थ देखनेसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि वार्त्तिक-  
कारने कई जगह सूत्र और भाष्यका मत खण्डन करके  
अपना मत सम्पूर्ण स्वाधीन भावमें प्रकाश किया है ।

वार्त्तिककारने स्वाधीनभावसे अपना जो मत प्रकाश  
किया है, एक उदाहरण देखने हीसे उसका पता चल  
जायगा, वार्त्तिककारकी स्वाधीनताका एक उदाहरण  
नीचे दिया जाता है । मीमांसादर्शनमें पहले स्मृतिशास्त्र-  
का प्रामाण्य संस्थापन किया गया है । पीछे वेदविरुद्ध  
स्मृति प्रमाण है वा नहीं, इस प्रश्नके उत्तरमें दर्शनकार

जैमिनिने कहा है कि 'विरोधे त्वनपेक्ष' स्यादसति एतु-  
मानम् अवश्य ही यह प्रश्न जैमिनिका उठाया नहीं है,  
भाष्यकारने उस प्रश्नको उठा कर उसके उत्तर स्वरूप  
जैमिनिके सूत्रकी व्याख्या की है । भाष्यकारकी व्याख्या-  
का इस प्रत्यक्ष श्रुतिके साथ विरोध होनेसे स्मृतिवाक्य  
अनपेक्षणाय है अर्थात् स्मृतिवाक्यकी अपेक्षा न  
करनी चाहिये । करनेमें उसका अनादर होगा । प्रत्यक्ष  
श्रुतिके साथ विरोध नहीं रहने पर स्मृतिवाक्य द्वारा  
श्रुतिका अनुमान करना संगत है । अर्थात् श्रुति  
स्वतन्त्र प्रमाण है । स्मृति पारंपरिक अर्थात् पुस्तक  
वाक्य है, अतएव स्मृतिका प्रामाण्य मूल प्रमाण सापेक्ष  
है । पुस्तकका वाक्य स्वतःप्रमाण नहीं है । पुस्तकवाक्य-  
का प्रामाण्य दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा करता है । क्योंकि  
पुस्तकने जो ज्ञान लिया है, वही दूसरेकी बतानेके लिये  
वे शब्द प्रयोग वा वाक्यरचना करते हैं । अतएव इस-  
से स्पष्ट जाना होता है, कि जैसे ज्ञानमूलमें शब्द प्रयुक्त  
हुआ है, वह ज्ञान यदि यथार्थ अर्थात् ठीक हो, तो तन्मू-  
लक वाक्य भी ठीक अर्थात् प्रामाण्य होगा । वाक्य  
प्रयोगके मूलभूत ज्ञान अयथार्थ अर्थात् भ्रामात्मक होने-  
से उसके अनुबलमें प्रयुक्त वाक्य भी अप्रामाण्य होगा ।  
स्मृतिकर्त्ता आप्त है, उनका माहात्म्य वेदमें कीर्तित है ।  
वे लोग मनुष्यको प्रतारित करनेके लिये कोई बात न  
कहेंगे, यह असम्भव है । इस कारण उन लोगोंकी  
स्मृतिका मूल भूतवेदवाक्य समझा जाता है । उन लोगों-  
ने वेदवाक्यका अर्थ स्मरण कर वाक्यकी रचना की है,  
इसीसे उसका नाम स्मृति रखा गया है । स्मृतिवर्णित  
विषय अधिकांश अलौकिक है अर्थात् धर्मसम्बन्ध, पूर्वा-  
नुभव स्मरणका कारण है क्योंकि अनुभूत पदार्थका  
स्मरण ही नहीं सकता । मुनियोंने जो स्मरण किया है,  
वह पहले उन्हें अनुभूत ही गया था, इसे अवश्य स्वीकार  
करना पड़ेगा । वेदके सिवा अन्य उपायसे अलौकिक  
विषयका अनुभव एक तरहसे असम्भव है । अतएव स्मृति  
द्वारा श्रुतिका अनुमान होना असंगत है । स्मृतिकारोंने  
जो स्मरण किया है वह वेदमूलक नहीं है, वेदपर्यालो-  
चना करने हीसे इसका पता चल सकता है ।

अष्टकाकारं स्मार्त्तं हि, किन्तु वेदमें उसका बन्दोबस्त है। मन्त्राशयका स्मृत्वाता और प्रथा अर्थात् पालोप शास्त्राकी प्रतिष्ठा आदि स्मृति एक कर्मिका आभास भी वेदमें देखा जाता है। भाष्यकारक मत में मन्त्राशयजनन, प्रथाप्रतिष्ठा आदि कर्म नृपाय है। क्योंकि इनसे मनुष्यकी मन्त्राई होता है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसलिये मन्त्राशयाविका स्मृत्वाता धर्मार्थ नहीं, लोकोपकारार्थ है। लोकोपकारार्थ अवश्य धर्मार्थ होगा। स्मृति वर्णित बहुतेरे नियमोंकी वैश्वमूलकता अब स्पष्ट देखी जाती है तब स्मृतिक को मन्त्र मूलोत्पन्न वैश्ववाच्य हम लोगोके दृष्टिकोण पर नहीं होते, उनका भी अनुमान करना सर्वथा समीचीन है। अथवाक करते समय धारण सिद्ध हुआ है वा नहीं—यह जाननेके लिये धरतलसे दो एक आवस्य निष्कास कर व्हाते हैं। हाथ से व्हाते पर अब बह सिद्ध हुआ ज्ञान पड़ता है, तब लोग अनुमान करते हैं, कि सभी आवस्य सिद्ध हो चुक, क्योंकि सभी आवस्य एक ही समय आँच पर बढाये गये हैं। उनमेंसे एक सिद्ध होने और दूसरेके सिद्ध न होनेका कोई कारण हो नहीं रह जाता। इस युक्तिका शास्त्रोप नाम स्यात्सोपमाकल्प्याय है। प्रथम स्वयम्भवे भी बहुत-सी स्मृतिर्वा वैश्वमूलक हैं, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, इससे स्यात्सोपमाकल्प्यायके अनुसार सभी स्मृतिर्वाकी वैश्वमूलकताका अनुमान किया जा सकता है।

इस बातका दार्शनिकीमें अच्छा तरह प्रमाणित कर दिया है, कि अनेक वैश्वान्वाय विभक्त हुए हैं, जो विभुन हो गए हैं, वे पहले अवश्य थी अतः वैश्ववाच्यमूलक जो सब स्मृतिर्वा प्रजात हुई हैं उनका मूलोत्पन्न वैश्ववाच्य अव न दिखारि देनेके कारण इस उन सब स्मृतिर्वाको अप्रामाण्य कहा कह सकते हैं।

किन्तु जो सब स्मृतिर्वा प्रत्यक्ष धृतिविकृत हैं, भाष्यकारक मतानुसार वे अप्रामाण्य हो गए। क्योंकि वैश्वमूलक होनेके कारण ही स्मृति प्रामाण्य है। वैश्वविकृत स्मृति वैश्वमूलक हो नहीं सकती परन्तु वैश्व विपरीत होती है, इसलिये वह अप्रामाण्य है। सब पृथिये तो स्मृतिक मूलरूपमें धृतिका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। कारण, प्रत्यक्ष धृतिविकृत अनुमान ही नहीं सकता। वैश्वविकृत स्मृतिके कुछ उदाहरण मांग

कारने विचाराये हैं उनमेंसे एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। उद्योगिद्योग यागमें मन्त्रों नामक मन्त्रवर्षमें एक उद्युम्बर वृक्षकी शाखा गाड़नी होती है। उस शाखाको स्पर्श कर उदाया नामक श्रुतिविकृत सामगान करें, ऐसी धृति है। उद्युम्बरकी शाखाको कपड़ेसे पूर्णतः ढक देये, ऐसी भी एक स्मृति है, यह स्मृति उक्त वैश्वविकृत है। क्योंकि, शाखाको पूर्णतः कपड़ेसे ढक देने पर उद्युम्बरकी शाखा पर उपस्पर्श होना अर्थात् उद्युम्बर शाखासे संयुक्त पत्तिका स्पर्श हो सकता है सही, पर उद्युम्बर शाखाका स्पर्श नहीं हो सकता। उद्युम्बरकी शाखाका स्पर्श करने पर सम्पूर्ण शाखाका वैद्यन नहीं हो सकता। अतएव सर्ववैद्यन स्मृति प्रत्यक्ष धृतिविकृत है, इसलिये यह अप्रामाण्य है। आपत्ति हो सकती है, कि पूर्वानुमय नहीं रहने पर स्मृति वा स्मरण ही नहीं सकता, सर्ववैद्यन वैश्वविकृत है, अतः सर्ववैद्यनके विषयमें पूर्वानुमय होनेका कोई भी कारण नहीं। फिर, पूर्वानुमयके बिना स्मरण असंभव है। भाष्यकारने इसके उलटमें कहा है, कि किसी श्रुतिविकृत लोभयजता वस्तु प्रत्यक्ष करके लिये शाखाको पूर्णतः ढकवेद्यन कर दिया था, स्मृतिकर्ताने यह देख ज्ञानमें एक सर्ववैद्यनको वैश्वमूलक समक सर्ववैद्यन स्मृति का प्रणयन किया है।

दार्शनिक प्रथममें माप्यगन्ध व्याख्यात और समर्पित होने पर भी दार्शनिककार माप्यकारके इस सिद्धान्तको असङ्गत समक कर दूसरे सिद्धान्त पर पहुँचे हैं। उनका कहना है, कि यह अच्छी तरह रिचर हो चुका है, कि सभी स्मृतिर्वा वैश्वमूलक हैं। ऐसा कोई भी एक स्मृतिवाच्य प्रत्यक्ष धृतिविकृत होने पर भी यह वैश्वमूलक नहीं, सोमादि मूलक है, यह किस प्रकार सिद्धान्त किया जा सकता है। सभी वैश्ववाच्य ज्ञाना शास्त्राभिर्वा प्रकीर्ण हैं। एक पुरुषका सभी वैश्वशास्त्राभोका पदना बिल्कुल असम्भव है। कोई कई शास्त्रावें और दूसरे अन्वयण कई शास्त्रावें पढ़ते हैं। यह भी सोचनेकी बात है, कि सभी वैश्ववाच्य धर्मामुद्धान्तके क्रमानुसार नहीं पढ़े जाते। उन्म पचार एक जगह पर धर्मामुद्धान्तक अनुसंधान उदाका सुप्रचार हो सकता था। साक्षात् तारबन्धमें प्रचारित धर्मामुद्धान्तक उद्योगी वैश्ववाच्य धार्मिकीकी अवश्य वदने नोत है। इसका अनिश्चित



तथा धर्मानुष्ठानके क्रमानुसार अपरिपठित वेदवाक्योंका विरलप्रचार देना कर भविष्यमे इनके विलुप्त हो जाने की आशङ्कासे परमकारुणिक स्मृतिकारोंने वेदवाक्यगत आख्यानादि अंगोंका छोड़ वेदवाक्योका अर्थात् मूल न करके स्मृति प्रणयन की है।

उपाध्याय स्वयं कोई वेदवाक्य उच्चारण न करके भी यदि कहें, कि अर्थ वा विषय अमुक शास्त्रमें वा अमुक स्थानमें पढ़ा जाता है, तो आत अर्थात् सज्जन और हितापदेष्टा उपाध्याय पर पूर्ण विश्वास रहनेके कारण शिष्य उसीकी ठीक समझ लेते हैं। उसी प्रकार स्मृतिवाक्य द्वारा भी वैसे ही वेदवाक्यका अस्तित्व विवेचित होना युक्तिमङ्गल है। मीमांसकके मतसे वेद नित्य हैं, किसीके भी बनाये नहीं हैं। अध्यापक परम्पराके उच्चारण वा पाठ द्वारा अर्थात् कण्ठ, तालु आदि स्थानोंमें आम्बन्धरोण वायुके अभिघातसे जो ध्वनि उत्पन्न होता है उसी ध्वनि द्वारा नित्य वेदकी केवल अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार न्याय के मतसे चक्षुरादिके सम्बन्धविशेष अर्थात् सम्बन्धविशेष द्वारा नित्य मोत्यादि ज्ञानिकी और आलोकादि द्वारा घटादिकी अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार मीमांसकके मतसे कण्ठ, तालु आदि स्थानोंसे उत्पन्न ध्वनिविशेष द्वारा नित्य वेदका अभिव्यक्त होना असङ्गत नहीं हो सकता। अध्यापक वा अध्येताकी ध्वनिविशेष द्वारा जिस प्रकार वेदकी अभिव्यक्ति होती है, स्मृतिकर्त्ताओंके स्मरण द्वारा उसी प्रकार वेदकी अभिव्यक्ति होगी, इसमें जरा भी संदेह नहीं। स्मृतिकर्त्ता भी एक समय शिष्योंको पढ़ाते थे, उस समय भी उनके उच्चारणसे वेदकी अभिव्यक्ति होती थी, संदेह नहीं। तब फिर उनके स्मरणसे क्या अपराध किया है, कि उससे वेदवाक्यकी अभिव्यक्ति न होगी? अतएव ध्वनिविशेष द्वारा अभिव्यक्त वेद और स्मृतिकर्त्ताओंके स्मरण द्वारा अभिव्यक्त वेद दोनों ही समान हैं, इनमें जरा भी तारतम्य वा बलाबलभाव नहीं हो सकता।

स्मृत्यर्थश्रुति अर्थात् जिस श्रुतिका अर्थ स्मृत हुआ है, वह श्रुति और पठित श्रुति ये दोनों ही समान बलके हैं। इनमें एक दूसरेकी बाधा नहीं दे सकता। स्मृतिशास्त्र में कोई एक स्मृति यदि आद्योपान्त अवैदिक होती, तो

शिष्ट लोग कभी भी उसका व्यवहार नहीं करते। केवल दूसरी दूसरी वैदिक स्मृतियोंका ही व्यवहार होता है। अवैदिक स्मृतिका त्याग होता है। यथार्थमें कोई भी स्मृति अवैदिक नहीं है। सभी स्मृति कठ और मंत्रापीठ आदि शास्त्रपरिचिष्टि श्रुतिमूलक हैं, ऐसा देखनेमें आता है। इस पर वार्त्तिककार यह भी कहते हैं कि जब सभी स्मृतिशास्त्र वेदमूलक हैं, तब उनमेंसे एक वाक्य जिनका मूलभूत वेदवाक्य हम लोगोंके दृष्टिगोचर नहीं होता, वह वेदमूलक नहीं है। हमें यह कहनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, कि यह अन्यमूलक अर्थात् भ्रान्तिमूलक वा लोभमूलक है। जो नैयायिकमन्य प्रत्यक्ष अर्थान् अर्थात् परिष्कृत श्रुतिविरुद्ध होने हीसे किसी स्मृतिवाक्यको अप्रामाण्य कह कर उपेक्षा वा परित्याग करने हैं, कालान्तरमें उनके उपेक्षित स्मृतिवाक्यकी मूलभूत शास्त्रान्तरपठित श्रुति जब उनके श्रवणगोचर वा द्रानगोचर होगी, तब उनकी मुक्कान्ति कैसी हो जायेगी? इसमें संदेह नहीं, कि उस समय वे अवश्य लज्जित हो जायेंगे, केवल वही नहीं, जो अपने ज्ञान हाँके पर्याप्त समझते हैं अर्थात् उनसे बड़ कर दूसरा कोई नहीं है, ऐसा जिनका खयाल है उन्हें पर पदमें लज्जित होना पड़ता है। उनकी बाधाबाध व्यवस्था भी अव्यवस्थित हो जाती है। क्योंकि वे अपना परिष्कृत श्रुतिविरुद्ध कह कर एक समय जिस स्मृतिवाक्यको अप्रामाण्य सादित करते हैं, पहले उन्हें यदि अपने अपरिष्कृत स्मृतिवाक्यकी मूलभूत शास्त्रान्तर पठित श्रुति मालूम हो जाय, तो उसी स्मृतिवाक्यको उन्हें फिरसे प्रामाण्य वा अवाधित मानना पड़ेगा।

वार्त्तिककारने और भी कहा है, कि भाष्यकारने जो उदुम्बरको शाखाकी सर्वादिष्टनस्मृतिको श्रुतिविरुद्ध बताया है, वह युक्तिसंगत नहीं है। शाखायनि-ब्राह्मणमें प्रत्यक्ष पठित श्रुति ही उसका मूल है। औदुम्बरोप ऊर्द्ध्वाभाग और अधोभागका पृथक् पृथक् चम्बु द्वारा वेष्टन करे, ऐसी प्रत्यक्षश्रुति शाखायनि-ब्राह्मणमें मौजूद है। वार्त्तिककार केवल इतना ही कह कर चुप नहीं हुए, इन्होंने श्रुतिको उद्धृत करके दिखला दिया औदुम्बरोपवेष्टन स्मृति यदि श्रुतिमूल है, तो वह किसी भी मतसे सर्गश्रुति द्वारा वाधित नहीं हो सकती। क्योंकि दोनों ही जब श्रुति हैं

अर्थात् सामान्य ब्रह्मके हैं, तब कौन किसको बाधा दे सकती है ?

इश्वरीयसामान्य योगमें जो द्वारा होम करे, घान द्वारा होम करे, पेसी जो भुति है। यहाँ जो भीर घान दोनों ही प्रत्यक्षभूतिबोधित है। इस कारण जो भीर घानका चिह्न स्वयसम्मत है। इच्छानुसार जो या घान इनमेंसे किसी एक द्वारा होम करने हीसे योगसम्पन्न होगा। इसी प्रकार प्रकृतस्वप्नमें भी भीतुम्बरोपेयन भीर भीतुम्बरोपार्ण करना, इन दोनों विषयको परस्पर विरुद्ध समझने पर भी जो भीर घानको तरह दोनोंका चिह्न है ऐसा सिद्धांत करना ही भाव्यकारको उचित था। वेद्यन स्मृतिको बाधित कहना युक्तिसंगत नहीं है। वेदमें यदि चिह्न विरुद्ध न रहता, तो स्वर्णभूति विरुद्ध होनेके कारण वेद्यन स्मृति अनादरणीय होने पर भा हाँ सकता था। किन्तु वेदमें सेकड़ों अगह विरुद्धा केननें भावा है। इनका हो कहना पर्याप्त होगा, कि चिह्नकी अगह कर्मरूप परस्पर विरुद्ध है, अतएव अरणी परिज्ञातभूतिके माध विरोध होनेसे वेद्यनस्मृतिका मरामाण्य सिद्धांत करना एकदम असङ्गत हुआ है। वस्तुतया किन्तु महान स्वप्नमें विरोध भा नहीं होता। क्योंकि, कबळ वेद्यन तो स्वर्णभूतिके विरुद्ध नहीं हो सकता। स्वर्णयोग्य हो तोन उ गमी मर स्वान छोड़ कर भीतुम्बरोप उच्च भाग का स्वर्ण करना हो जानन है। 'सर्वा भीतुम्बरो वेद्यनि तस्या' सूत्रकार ऐसा नहीं करते। 'भीतुम्बरो परित्येयि तस्या यही सूत्रकारका वाक्य है। यहाँ परि शब्दका अर्थ सर्वसांग है अर्थात् उच्छ्वससांग और अयोभाग इन दोनों भागों का वेद्यन करना ही सूत्रकारके वाक्यका तात्पर्य है। समो स्थानका वेद्यन करना उसका अर्थ नहीं है। वाञ्छित भाग भीतुम्बरोप होनेो भाग वेद्यन करते हैं सहा, पर कल्पन्य प्रदेश वेद्यन नहीं करते।

वार्तिककारका कहना है, कि सर्ववेद्यन वाक्य सोम मूत्रक भाव्यकारका कहना सङ्गत नहीं है। क्योंकि मन्त्रोको वेद्यन न करके कबळ मूत्र और अग्रभागको वेद्यन करनेमें कोई इति नहीं। फिर, यह भी सोचनेकी बात है, कि भीतुम्बरोप साक्षात्स्वर्ण कितना तरह सम्भव नहीं होता, क्योंकि पहले हुआ द्वारा भीतुम्बरोप वेद्यन

करनेकी विधि है, पोछे कुशवेद्यन भीतुम्बरोपको ब्रह्म द्वारा वेद्यन करना होता है। वाञ्छित भाग ऐसा ही किया करत है। यद्यवेद्यन ही सोममूत्रक होनेके कारण मरामाण्य हुआ, कुशवेद्यनको लोममूत्रक नहीं कह सकते।

भाव्यकारको ऐसा सिद्धांत करना भी उचित नहीं, कि तद्वाग भाविका उपदेश दृष्टार्थ है, धर्मार्थ नहीं। क्योंकि, वेदमें जिसे कर्त्तव्य बताया है वही धर्म है, यह त्रिमितिको उक्ति है। इस बातको भाव्यकार भी अलोकार नहीं कर सकते। दृष्टार्थ होने हीसे धर्म होगा, इनका कोई भी कारण नहीं। प्रत्युत तत्काल निष्पत्तिके लिये पञ्चाङ्गिका अग्रहणन, पूर्णके लिये तत्काल वेद्यन भावि दृष्टार्थो दृष्टार्थ कर्म वेद्विहित होनेके कारण धर्मरूपमें माने गये हैं। वार्तिक प्रभूति विरुद्धवाची भा वेद्विहित अदृष्टार्थ कर्ममें भी दृष्टार्थताकी कमाना करती है। अतएव चाहे दृष्टार्थ हो चाहे अदृष्टार्थ, वेदमें जिसे कर्त्तव्य कहा है, वही धर्म है। वार्तिककारने इस प्रकार अनेक हेतु विचारते हुए भाव्यकारके मतका अग्रहण किया है। उन्होंने भाव्यकारका मत पण्डन करने त्रिमिति-सूत्रका वृत्तको तरहसे धर्म लगाया है।

ये कहते हैं, कि अब यह स्थिर हुआ, कि भूति भीर स्मृतिमें विरोध नहीं है विरोध रहनेसे यह भूतिस्वप्नके विरोधरूपमें ही पर्याप्तसित हागा, दोनों भूतिके विरोधकी अगह विरुद्ध होता है, अर्थात् मिन्न मिन्न भूतिप्रतिपादित मिन्न मिन्न कथनोंमें इच्छानुसार किसी एक कर्मका अनुष्ठान करने हीसे अनुष्ठाना चरि तार्थ होते हैं। तब अर्द्ध प्रत्यक्ष परिदृष्ट भूतिमें तथा स्मृति में मिन्न मिन्न कथोंका कल व्य कहा गया है, यहाँ भी कोई एक अनुष्ठेय अग्रहण होगा। उस अवस्थामें प्रयोग या अनुष्ठानके नियमके लिये अनुष्ठानात्मिके भाव्यक हिमेषिकामें त्रिमिति कहा है, कि धीत भीर स्मार्त्त पश्चात् परस्पर विरुद्ध है। त्रिमिति धीतपश्चात्का अनुष्ठान होगा। धीतपश्चात्के माध विरोध न रहने पर स्मार्त्त पश्चात् धीतपश्चात्की तरह अनुष्ठेय है। स्मृतिकार जाकालने कहा है—

‘वृत्तिरिति चिन्तितं च’ (विश्वकोशम्) ।  
‘वृत्तिरिति चिन्तितं च’ (विश्वकोशम्) ।

श्रुति श्रीरामसुतिका प्रयोगे श्रुति ही गुरुतरा  
हे । श्रुतिरोगना नगर रत्नात्तपशायं वेदिकप्रदायं  
नरः अनुष्ठय हे । येना न्यपयथाका प्रकण यत हे नि  
नलो परप्रत्यक्षता अपेक्षा मुद्रप्रवत्त पर निरपद विद्यमान  
दाने हे । स्मृतिरु सृष्ट मुद्र ज पान्तर (पिप्रर्षण) श्रुति  
हे परप्रत्यक्ष ताते पर ना अनुष्ठाना अथवा प्रत्यक्षश्रुति  
पर श्रुत्य निरप कानेको यत्न हे । श्री श्री  
दान दाना ही प्रवत्त श्रुतिविहित हे, अनन्य विद-  
हित हे । कांश्च अनुष्ठाना यत्न वननेषु तत्र श्रुतिम् केच  
ही या केच दानने स्वयथा यागानुष्ठान वने ही वसमे  
तिम प्रहार दोष नहीं होता तथा प्रहार प्रवृत्तस्थानमें  
श्रुति वा स्मृति एत दानने किमी पदका अनुष्ठान  
जात्याहृत्मा हीने पर भी केच श्रुतिप्रदायका अनु  
ष्ठान कानेके कुट भी दोष नरा ही नकना । प्रत्य  
श्रुति विहितमुद्रक, दृग्गी तस्मै दवाया काके वाचिक  
काने यत्न ही विपर दिया है, कि एत मुद्र द्वारा प्रदर्शित  
स्मृतिके अर्थमें प्रानापय नहीं है, यही स्मर्यन्त वृत्ति है ।

एत प्रकार वाचिककाने कई रोग मा रोगना मत  
साधन करके अथवा मन समर्थन दिया है तथा कही  
कही के मुद्रही मा एतदत कानेके राज नहीं श्रुति है ।  
न्यायवाचिक दवाय उद्योगकाने श्रुति ही एत प्रकार साधन  
आवसे अथवा मन प्रमाण दिया है । वाचिक प्रवृत्तना  
ही इमी प्रकार व्याख्यान मत हेने है ।

( पु० ) वृत्तिप्रयोगे वेद वा वृत्ति / अत्र श्रुतिप्रवृत्त  
एत १ वा एत ६० ) एत १ वृत्तिअव्ययनकारं, वृत्ति या  
आचारप्रवृत्तका अव्ययन कानेवाया । वृत्ति साधु  
रिति वृत्ति । २ वा १३०० ) इति एत १ ।  
३ वृत्तवृत्तिम विपुण । ४ प्रवृत्तिरु, चर, दूत । ५ वेदय  
जति । ६ वाचिकप्रवृत्त, इति । ७ वाचिक, प्रियत ।

वाचिककार ( मं० पु० ) वाचिकं करोतीति अन् ।  
वाचिकप्रत्यक्षे प्रयोगे ।

वाचिकमुद्र ( मं० पु० ) वाचिकं करोतीति वृत्ति  
मुद्रकम् । वाचिककार ।

वाचिका ( मं० पु० ) वाचिक-टापु । पत्नीविशेष, इति  
पक्षी ।

वाचिकान् ( मं० पु० ) वाचिके ।

वाचिकेष्ट ( मं० पु० ) वाचिकेष्टय विन् ( वाचिकेष्ट ) ।

वाचिकेष्ट ( मं० पु० ) मुद्रक इत्ययथायथं पुनान् मुद्रक  
अन् । १ अनुष्ठान । २ इत्यन् ( वि० ) मुद्रक-  
नान्प्रयोगे । ( मं० पु० १३००३१ )

वाचिकेष्ट ( मं० पु० ) वाचिकेष्ट ।

वाचिकेष्ट ( मं० वि० ) मुद्रकनानपे विहित ।

वाह ( मं० पु० ) वाह जट इत्यादीति शब्द । १ मय,  
वाहत् । ( वि० ) २ जलवाहा

वाह ( मं० पु० ) वृत्तवाहा, वृत्तवाही । २ वाह-  
विश्वः । ३ वृत्तवाह्यो जट । ४ वाहती । ५ वृत्तिरु । ६  
जट । ७ वाहयत् । ८ वेदम । ९ नीतु से मत्त परका  
श्रुतिना शोभती गीति ।

वाह ( मं० पु० ) वाहति, वाहते इत्यादीति वृत्त अन्  
मत्त मेवाकान्तरुष्टानान्वाह्यम् । १ वृत्तिरु, वृत्तवा ।  
( पु० ) वाह इत्यने इति वृत्त ( वृत्तिप्रयोगे वा प्रयोगे )  
५ ३३०० ) इति वा । २ मैदानन्त्या, वृत्तवा ।

वाह ( मं० पु० ) वृत्तवा गोत्रापर्य । वृत्तवापर्ये विदा-  
मन्त्या । ( मं० पु० २०४ ) इति वृत्त । वृत्तवा गोत्रा-  
पर्य ।

वाहक ( मं० पु० ) वृत्तवा मसृ । ( गोत्रापर्य ) ३१० ।  
वा १३३३ । इत्यन् 'वृत्त-वृत्ति' वाचिकानः वृत्त । १  
वृत्तवापर्य, वृत्तमसृ । वृत्तम्य भावः करोतीति ततोऽर्थादि-  
त्वात् वृत्त । वृत्तका भाव या म, वृत्तवा । ( वि० ) ३ वृत्त-  
वृत्त ।

वाहक ( मं० पु० ) वाहकमेव वाहक्य चतुर्वर्णा-  
दिवान्, आर्थे अन् । वृत्तवापर्य, वृत्तवा । पर्याय-वर्द्धक  
वृत्तम्य, रथाव्ययम् । २ वृत्त, वृत्तवा ।

वाहक्य ( मं० पु० ) वृत्तवत्तक । गोत्रापर्य, इत्यन् ।

वाहक्येति ( मं० पु० ) वृत्तवत्तक गोत्रापर्य ।

वाहनी ( मं० पु० ) इत्यन् ।

वाहोप ( मं० पु० ) वाहोप्य गोत्रापर्य । इति वाचिकानः ।  
वा १३३०० ) इति वाहक । वाहका गोत्रापर्य, वृत्तका  
गोत्रज ।

वाहिक ( मं० पु० ) वाहिकानि वाचिके इति वा-  
चिक । मसृ ।

वाङ्मय ( सं० श्लो० ) वाङ्मयी समुद्र मवतीति भू भव् ।  
श्रोत्रोत्सवण ।

वाङ्मयि ( सं० पु० ) वाङ्मयिक पूर्वोद्धारवित्तात् कळोपाः ।  
वाङ्मयिक, बहुवचनिक व्याज्य खेनेशाला, सूक्ष्मोर ।

वाङ्मयिक ( सं० पु० ) बहुवचनं प्रथमं वृत्तिः तां प्रथम्यतोति  
( प्रथम्यति यत् ) । पा ५।४।३ ) इति ङक । 'वृत्तं वृत्तुपि  
भाषा वचनभ्याः इति वारिंशोक्तं वृत्तुपिमावाः । वृत्तिशोवी  
सूक्ष्मोर । पर्याय—कुसोदक, वृद्धव्याज्य वाङ्मयि  
कुसोद, कुसोदक । ( शम्भरत्ना० )

आ सामान्यतमं चान् वाङ्मयि कृतं कर भाषिक  
मूलभवेन देता हे उस वाङ्मयिक कहत हैं । वाङ्मयिक  
व्यक्तिका ह्यम कव्यय नियुक्त करना उचित नहा ।

व्याज्य इच्छानुसार नही छे सकत, केनेसे दृष्टनीय  
होना पडता हे । शास्त्रमें वृत्ति या व्याज्य सेनेका निर्दिष्ट  
निघम हे । पाङ्गवचनपरिहाताम छिन्ना हे, कि र्भयो  
वाङ्मयमें सेकड़े पीछे भ्रमता मागमें एक माग माह्यारी सू  
क्ष्मोर आ व्याज्य र्भयक नही हे उसमें प्राङ्गण क्षतिप, शेष  
भीर शूद्र इन चार वर्णोंसे यथाक्रम सेकड़ पीछे सी माग  
में दो माग, तीन माग, चार माग भीर पांच माग अर्थात्  
प्राङ्गणको सी पण कर्ज देने पर उनसे प्रतिमासमें दो  
पण, क्षतिपसे तीन पण इत्यादि क्रमसे सू लेव ।

शो वाणिज्यक छिये दुर्गम न्यायमें जाते हैं, से सेकड़े  
पीछे पीस माग सू हे । अथवा समा वर्णोंकी  
वाङ्मय, कि से समी जातिको अणके समय अपनी अपनी  
निर्दिष्ट वृत्ति हे । बहुत दिनका अण रत्ने पर, फिर  
बीष बोधमें सू नही छेन पर सू कहाँ तक बढ़ सकता  
हे, उनका शेष इत प्रकार छिन्ना हे,—आ, पशु अर्थात्  
गाय भाङ्गि यदि कर्जमें ला जाय तो उनका सू उठना ही  
बड़ेगा मिलना बछड़ेका मूल्य होगा, रस अर्थात् घृत  
पिन्नाविका सू सूक्ष्मपतं भाठ गुना बढ़ेगा । बज्र,  
पाण्य भीर सुवर्णका गुना, तिशुना भीर पौशुना सू  
होगा । वाङ्मयिक अर्थात् सूक्ष्मोरको इसी निघमसे  
सू छेना वाङ्मये । ( शम्भरत्न ७० २२० )

मनुज ( ८ म ) वृत्तिके विषयमें देना हा विद्या  
हे—ब्रह्मण या महाजन यदि साधुभोका भाषार स्मरण  
कर बन्धकरहितकी जगद प्रतिमानमें सेकड़े पीछे दो

पण सू ले, तो उने पापी नहा होना पडता सूक्ष्मोर  
महाजन इसी प्रकार अपना वाचिक समक कर वर्णानु  
सार प्राङ्गण अणोमें सेकड़े पीछे दो पण क्षतिपसे तीन  
पण, शेषसे चार पण भीर शूद्रने पांच पण सू माहवारी  
के दिनाबसे छे सकता हे ।

एक मास, दो मास या तीन मासक करार पर यदि  
भीर कर्ज छे भीर साल भर बीत जाये, तो महाजनको  
उचित नही कि उनसे करारसे अधिक एक पैसा भी सू  
छये । अथवा ठसे अशास्त्रोप सू छेना भी वृत्तिके गत  
नही हे । अक्रवृत्ति काळवृत्ति अर्थात् मूलपतसे वृत्ती  
अधिक वृत्ति, वारिता ( विषयमें पड कर अण जो सू  
देना कर्ज करत हे ) तथा कारिकावृत्ति अर्थात् बलि  
शय पीङ्गवादि द्वारा लम्ब वृत्ति से आती प्रकारकी वृत्ति  
विशेष निम्नित हे । यदि प्रतिमास सू न सं कर असक  
भीर सू एक साध छेना पावे, तो वह मूलपतक वृत्तसे  
अधिक नही छे सकता । ( मनु ८ म० )

मगवाच मनुने कहा हे, कि सूक्ष्मोरका भव नही  
जाना वाङ्मय, जामेस विद्या ज्ञानके समान पाप होता  
हे क्योंकि उसका गण निष्ठा सङ्ग ही ।

समी शास्त्रोंमें वृत्तिनायोंका निम्नित कहा हे, विरो  
पता प्राङ्गणक छिये यह देपावह भीर पातित्वजनक  
हे ।

वाङ्मयिक ( सं० पु० ) वृत्तिशोवी, सूक्ष्मोर ।

वाङ्मयो ( सं० श्लो० ) अधिक व्याज पर कर्ज देना ।

वाङ्मय्य ( सं० श्लो० ) वाङ्मयेर्भा, वाङ्मयि पणम् ।  
वाङ्मय्यक, अणको अधिक व्याज पर देनेका व्यवसाय ।  
यह निम्नित काय हे ।

वाङ्मय ( सं० श्लो० ) वाङ्मयः समुद्रस्येवमिति वाङ्मयि ङम् ।  
श्रोत्रोत्सवण । ( पाणिनी० )

वाङ्म ( सं० श्लो० ) वृत्तं इवमिति वङ्मि ( परम्योऽम् । पा  
१।१।२५ ) इति भमम् । चम रङ्ग, चमकेको बन्दी ।

वाङ्मणस ( सं० पु० ) वाङ्मोण्य भासिकास्येति ( भम् भाषि  
कवाः व शानो म्य वात्पुत्रात् । पा ५।४।१८ ) इति भञ्  
नसङ्गिणस्य ( पूर्वपदत् उक्तानामग । पा ८।४।३ ) इति  
जलम् । १ पशु विशेष, गी हा । गवहार सेतो । २ छाग,  
मेरु, यह बधिया बकरा जिसका रग सफेद हो भीर,

जिसके कान इतने लम्बे हों कि पानी पीते समय पानीसे छू जाय। इस प्रकारका बकरा हथ और कथमें प्रथम नोय है। उ एक प्रकारका पक्षी। इसका शिर लाल, गंठा नीला और पैर काले और पंख सादा होता है। प्राचीन कालमें इस पक्षीका बलिदान विष्णुके उद्देशसे होता था। इसके मानसे यदि पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध किया जाय, तो वे अत्यन्त वृत्त होते हैं। इसके सिवा वाङ्मय नामक एक और भी पक्षी है जिसका पैर, शिर और नेत्र लाल तथा बाकी अङ्ग काला होता है।

“रक्तवादी रक्तशिवा रक्तचक्षुर्विहङ्गमः।

कृष्णवर्णो न च तथा पक्षी वाङ्मयानामो मनः”

( म, कर्णपडेयपु० )

वाङ्मय ( सं० पु० ) वाङ्मय नामिका यस्य, नामायाः नसादेशः। १ गण्डक, गैडा। २ पञ्चविशेष।

वार्धन ( सं० पु० ) वारि जले भट इव। १ कूर्मभार, घडियाल। २ जिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वार्धन ( सं० क्लो० ) वर्धनां समूह वर्धन् ( भिक्षादिभ्यो षण् । पा ४।२।३८ ) इति षण् । वर्धनसमूह।

वार्धन ( सं० क्लो० ) वर्धनो अभिजनोऽस्य ( तदीशतानुर-वर्धनोत्थादि । पा ४।२।६४ ) इति ङक् । वर्धनी जिस का अभिजन या वंश है।

वार्धिकायणि ( सं० पु० ) वर्धिका गोत्रापत्य ( वाकिनादीनां कुक्च । पा ४।२।१५८ ) इति वर्धिकायणि कुक्चागमश्च । वर्धिका गोत्रापत्य।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वर्धिकाय भावः कर्म वा ( पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक् । पा ४।२।२८ ) इति यक् । वर्धिका भाव या कर्म।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वर्धिका समूहः वर्धिकाय षण् । वर्धिकायसमूह।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) वाः वारि मुञ्चतीति मुञ्च-क्विप् । १ मेघ वादल। २ मुहक, मोथा।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वारि प्यञ् । १ वारि-सम्बन्धो, जल सम्बन्धो। वृद्ध-सम्बन्धो ( शृङ्खलायत् । पा ३।२।२४ ) इति प्यञ् । २ वरणीय, ऋत्विज् । ३ निवारणीय, जिसका निवारण हो सके। ४ जिसे धारण करना हो, जिसे रोकना हो।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) निवारित, जो रोकना गया हो। वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) जलाजय। ( भाग० १२।२।६ )

वार्धिकाय ( सं० पु० ) जल अर्थः ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वार्धिका उद्भव उदात्तार्धिकाय । १ पद्म, कमल। ( क्लो० ) २ जलजातमात्र, पानीमें होनेवाला।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) जलजातः ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वार्धिका अर्थः अवरधानं यस्य । जलिका, जोंक।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) वार्धिका राजिकाय । समुद्र।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) वार्धिका अर्थः अवरधानं यस्य । वार्धिका, नाव, वेडा।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) नीलोमशिका, नीले रंगको मक्खनी। वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वार्धिका सम्बन्धि।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वार्धिका-स्वार्थे कन् । वार्धिका सम्बन्धो।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) साममेदः ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वार्धिका जिज्ञा श्राद्धपायिवादि-न्वान् समासः। वरका, ओला।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) १. वर्धिका सम्बन्धीयः । २. वर्धिका सम्बन्धीयः।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वर्धिका-स्वार्थे कन् । पुराणानुसार पृथगेके दश भागोंमेंसे एक भागका नाम जिसे सुद्युम्नने विभक्त किया था।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) वैदिक आचार्यभेदः।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) वैदिक आचार्यभेदः।

वार्धिकाय ( सं० पु० ) आचार्यभेदः।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वृषभ-अण् । आज, अंजसम्बन्धो। ( उण् १।२१ )

वार्धिकाय ( सं० पु० ) गोत्रभेदः।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वृषभ-स्त्री । अण् ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वृषभ-स्त्री । अण् ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वृषभ-स्त्री । अण् । वृषभ-स्त्री । अण् । वृषभ-स्त्री । अण् ।

वार्धिकाय ( सं० क्लो० ) वृषभ-स्त्री । अण् । वृषभ-स्त्री । अण् । वृषभ-स्त्री । अण् । वृषभ-स्त्री । अण् ।

वार्धसि (स० स्त्री०) सुपत्न्याः भगवत् इत्युच्यते (वाहा रिम्बन्ध। वा ५।१।१६) इति छम् । सुपत्न्योका भगवत् ।  
 वार्धशतिक (स० लि०) वर्षशतसम्बन्धोप ।  
 वार्धसहस्रिक (स० लि०) सहस्र वर्षसम्बन्धीय ।  
 वार्धक्य (स० लि०) वृषाकपि सम्बन्धीय ।  
 वार्धगिर (स० पु०) अरुणमन्त्र द्रव्य वृषागिरकमुत् ।  
 वार्धवर्ण (स० पु०) वर्षवर्णके भगवत् ।  
 वार्धहर (स० स्त्री०) साममेद ।  
 वार्धिक (स० स्त्री०) वर्षासु जातमिति वर्षा (क्रीम्बन्धकृ । वा ५।१।१८) इति ठक् । १ ज्ञापयामाणा, वनफलोत्पत्ती तरह एक प्रकारकी कृता । २ धूना धूप । (लि०) वर्षी भवाः वर्षा (काचम् ठक् । वा ५।१।११) इति छम् । ३ वर्षी सम्बन्धी । ४ जो प्रति वर्षी होता हो, साखाना । ५ वर्षा का लोखन, वर्षाकालमें होनेवाला ।  
 वार्धिकी (स० स्त्री०) वर्षासु महा वर्षा ठक् लोप । १ ज्ञापयामाणा कृता । २ वर्षासमय मत्स्यकामेद, वर्षामें होनेवाला बैलेका फूल (Jasminum sambac) । इम्बन्ध । गुण—शोथल, हृद्य, सुगन्ध, पित्तनाशक कफ, पात विरफोड और कृमिहोपना इक । (रत्नमि०) १ स पूषके नैष्ठिकमें जो चहों सब गुण पाये जाते हैं । ३ कासबीज, भोगरा ।  
 वार्धिक्य (स० लि०) वार्धिक इत्यम् ।  
 वार्धिका (स० स्त्री०) वार्धिका जिम्मा (वाक्यार्थिवार्थिता सुपर्वकानं उच्यते इत्यम् । वा ५।१।१०) वाक्यार्थिवार्थिवत् समासाः । वृषोद्वारादिवात् शस्य वा । करका भोज्या ।  
 वायुक (स० लि०) वायुं क्त्वायं प्त्य । वर्षाजगोळ, करसनेवाला ।  
 वार्धिक्य (स० पु०) वृषिक्यके पुत्र उपरत्तुत, अरुणमन्त्र द्रव्य एक श्रुति ।  
 वायुर्ष (स० लि०) वृषिके योग्य ।  
 वार्ध (स० पु०) वृषिकर्ष, इत्यम् ।  
 वार्ध (स० पु०) वृषिक्यकम् ।  
 वार्धिक (स० पु०) वृषिक्यकस्य गोत्रापरत्यं वृषिक (विराट्मोठ्यम् । वा ५।१।११) इति अण् । वृषिकके गोत्रापरत्य ।  
 वार्धिवृष (स० लि०) वृषिक्यकके भगवत्सम्बन्धी ।

वार्धोय (स० पु०) वृषिक्यक शस्यमूत्र, धीरुणकम् ।  
 वार्ध्य (स० पु०) इत्यम् ।  
 वार्धज (स० लि०) वर्षासम्बन्धी ।  
 वार्धवर्ण (स० पु०) वर्षावर्णके गोत्रापरत्य ।  
 वार्धस (स० स्त्री०) वृषस्याः फलमिति (वृषादिमोठ्यम् वा ५।१।१६) इति अण्, विधानमामर्ष्यात् तस्य फलेन लुक् । वृहती फल, वही कटाईका फल ।  
 वार्धद्रव्य (स० पु०) वृषद्रव्यस्यापरत्य पुमान् वृषद्रव्य-अण् । १ जरासन्ध । वृषद्रव्येभ्यमिति अण । (लि०) २ जरासन्ध-वाजसम्बन्धी ।  
 वार्धद्रधि (स० पु०) वृषद्रव्यस्यापरत्य पुमान् वृषद्रव्य-इम् । जरासन्ध ।  
 वार्धद्विर (स० पु०) १ वह मनुष्य जो बिना किसी पुरस्कार या दैतनके किसी वार्धमें अपना इच्छासे योग दे स्वीकृतासेबक । २ वह सिपाही जो बिना दैतनके अपनी इच्छासे कीजने सिपाही या ककसरका काम करे, बल्लम देर ।  
 वास (स० पु०) १ केश । २ वासक । वास देलो ।  
 वासक (स० पु० स्त्री०) वास-कम् । १ परिचार्य बाल्य, कटुप्य । २ मशुरीयक, मशूरी । ३ गन्धद्रव्यपिशिप्य, वासकद्रव्य, वासक एव स्थायं कम् । ४ शिशु, वासक । ५ अकृता, मूर्खता । ६ हृष्यवाक्यि घोड़की तुम । ७ इस्तिवाक्यि हाथीकी तुम । ८ हीरैर, सुगन्धवाला । ९ केश, वासक ।  
 वासक्य (स० पु०) १ वासक्यस्य मुनि । इनकी मन्था ६० इत्रार हैं । २ वासक्यक टम मरुतनके सुकनेम् ।  
 वासकैन (स० पु०) माता पिता, मां वाप ।  
 वासधि (स० पु०) वासाः केशाः धीमेदज्ज वास प्रा कि । कशयुक साङ्गूळ, तुम, पूछ । २ वासम ।  
 वासपिपिप (स० पु०) समते मृग ।  
 वासपाशवा (स० स्त्री०) वासपाशे केशसमूहे सायु तल सायुरिति प्त्य । सीमन्तिकारिप्यत स्वर्णादि रचित पाटिका, एक प्रकारका सोनेकी मांगदाका जिसे छिवां मांग पर पहनती हैं । २ वासपाशरिप्यत मणि ।  
 वासवन्धु (स० पु०) १ केशवन्धु, कृदा वार्धना । २ वासक आदिवा इत्यम् ।

बालम्पदेश ( सं० पु० ) जनपदभेद ।

बालव ( सं० पु० ) वच आदि ग्यारह करणोंमेंसे दूसरा करण । यह करण शुभ करण है । शुभकार्योदि इस करणसे किये जा सकते हैं । इस करणसे यदि किसीका जन्म हो, तो वह बालक कार्यकुशल, स्वजनपालक, उत्तम सेनापति, कुलशीलधृक्, उदार और बलवान होता है । (कोष्ठीप्र०)

बालवर्ति ( सं० स्त्री० ) बालनिर्मिता वर्ति, बालोंकी बनी हुई वस्ती ।

बालवाय ( सं० स्त्री० ) वैदूर्यमणि, लहसुनिया ।

बालवायज ( सं० स्त्री० ) वैदूर्यमणि ।

बालव्यजन ( सं० स्त्री० ) बालस्य चमर पुच्छस्य बालेन वा निर्मितं व्यजनं । चामर । पर्याय—रोमपुच्छ, प्रकीर्णक । (हेम)

बालहस्त ( सं० पु० ) बाला हरत इव मक्षिकाटोना निया रक्तवात् । १ बालधि, पूंछ, द्रम । ( वि० ) बालाना केजाना हस्तः समूहः । २ केजसमूह ।

बालसेविक ( Bolshevik )—बालसेविज्म नीतिक्रा परिपोषक । Russian Social Democrat party के मतका और पीछे उनके कार्यो का नाम बालसेविज्म रखा गया है । किन्तु इस मतकी उत्पत्ति और उसकी परिपुष्टि केवल रूसमें ही हुई थी, सो नहीं । यह यूरोपीय साम्यवदीकी ही एक शाखा ।

आधुनिक बालसेविक मतवादकी उत्पत्तिका विषय कहनेमें सबसे पहले मार्क (K. Marx) और एङ्ग्लेमके (F Engels) १८४७ ई०के Communist manifestoका उल्लेख करना आवश्यक है । उन लोगोंकी इस घोषणाको चरम साम्यवादियोंने मन्त्रवत् स्वीकार कर लिया है, तथा रूसमें साम्यवादकगणतन्त्र (a Communist republic) को प्रतिष्ठित करनेके लिये इस घोषणाने रूस बाल सेविक के निकट पथप्रदर्शकका काम किया है । इसके बाद एक दूसरे रूसविप्लवीका नाम उल्लेखनीय है । जिनके कार्यकलाप और प्रयत्नसे इस मतवादीकी नींव और भी मजबूत हो गई थी उनका नाम था बाकुनिन (Bakunin) । राजतन्त्र और आर्इन्धो से शत्रुवत् समझते थे । अच्छे बुरे का विचार न करके राजतन्त्र और आर्इन्धो से छेड़ छाड़

करना ही उनके जीवनका मूलमन्त्र था । इसी समय फ्रान्स देशमें Syndicalism का प्रचार हुआ । इस प्रकार उपरोक्त तीन प्रकारके मतवादके एकत्र मिलनेसे बालसेविज्म के तीन प्रधान आदर्श ( निम्न श्रेणी द्वारा समाज अधिहार, विप्लव खड़ा करनेकी शक्ति तथा छोटे दलमें प्रतिनिधि चुनना ) संगठित हुए । १९१७ ई०के प्रजा सभा मतोंकी अपेक्षा करके इसी मतकी काममें लानेकी तैयारी करने लगी । १९१७ ई०से जब बालसेविकगण रूसमें शक्तिशाली हो रहे थे, तभीसे उनका मत साम्यवाद (Communism) कहलाने लगा है ।

मार्ककी गतानुयायी निम्न श्रेणीमें प्रतिनिधि चुननेके लिये जारके शासनकालमें ही The Russian social Democrat party का संगठन हुआ । लगभग १९०३ ई० को इसके दूसरे अधिवेशनमें यह दल फिर दो भागोंमें विभक्त हो गया । पहला दल बालसेविक या सुदृढ़ दल और दूसरा मैन सेविक या गीणदल नामसे प्रसिद्ध हुआ । बालसेविक दलमें सदस्योंकी संख्या २६ और मैन सेविक दलमें सिर्फ २५ थी । १९१० ई०के बाद ये दोनों दल फिर एक साथ न मिले । १९१२ ई०में लेनिन (Lenin) के नेतृत्वमें बालसेविकोंने प्रोग्रैमेटिकमें पुराने दलको न मान कर 'हम लोग ही मालिक हैं' इस प्रकाश घोषणा कर दी । इस पर मैनसेविक दलने जब उनके साथ छेड़घानो की, तब इन लोगोंने 'सभी प्रकारके प्रजातन्त्रको दूर कर अभी सोवियट शासन पद्धतिका प्रचार करना होगा' यही स्थिर किया । इस जानन-पद्धतिका अर्थ यह है ज्यारी शक्ति सिर्फ एक गवर्नेटके हाथ रहेगी, उस गवर्नेटका प्रधान कर्म विप्लव खड़ा करना होगा और उसकी शासन-पद्धतिका देशके अन्यान्य दलोंकी अपेक्षा निम्न श्रेणीदल ही तनमनसे पालन करेगा । मैनसेविक दल एक प्रजातन्त्र-मूल शासनपद्धति चाहता है और कृषकोंके साथ मेल करना अपना कर्तव्य समझता है ।

१९०५ ई०के विप्लवयुगमें विप्लवी वर्मीसङ्घ ( Revolutionary workers' councils ) सबसे पहले बड़े बड़े कल कारखानोंमें दिखाई दिये और उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली । गत महायुद्धके पहलेसे

देकर युद्धके समय तक बामसेविकोंका विद्रुप  
कारो कार्यक्रमपर दिनों दिन बढ़ता गया। साम्य  
वादिबौद्धों (Communists) पद्धतिके अनुयायी  
वैदिकों तथा कम्युनिस्टोंमें बसन्तोपका बीज बोया  
गया। इसीके फलमें १९१७ ई०में द्वार गवर्नमेंटका  
पतन हुआ तथा केरेनकी ( Kerensky )के कुछ समय  
शासन करनेके बाद बालसेविकोंने पूरा अधिकार हासिल  
किया और एक नया शासनतन्त्र बनाया जिसका नाम  
रखा गया 'सोवियेट' ( Soviet ) का शासनपरिपद्  
द्वारा परिष्कृत शासनतन्त्र। अन्तन्त्र विपर्यय रुझ और  
गहरीया रुझनें देखो।

बामा ( सं० स्त्री० ) १ लनामक्यात औषधविशेष । २ इन्द्र  
ब्रह्मा और इषेन्द्रब्रह्माके मेषसे बने हुए उपजाति नामक  
सोमद्र प्रकारके फूलोंमेंसे एक । इसके पहले तीन बारणों  
में हो लगण्य, एक अणव और दो गूठ होते हैं तथा बीघे  
बारणमें और सत्र हो खता है, सिर्फ प्रथम पर्ण मधु  
होता है।

बामाक्षी ( सं० स्त्री० ) बाळा: केशाद्वय अक्षिसुगन्ध पुष्प  
यस्याः। ब्रह्मपुष्पा पुष्ट, एक पीया जिसका फूलोंमें बस  
बाँवके आकारके लगते हैं। पर्याय—मानसो दुर्गापुष्पो,  
ब्रह्मघातियो।

बामाय ( सं० स्त्री० ) १ केशाय । २ एक प्राचीन मान जो  
आठ रत्नका माना जाता था।

बामाप्रवीणिका ( सं० स्त्री० ) लताविशेष ।

बामि ( सं० पु० ) दाढी केहो जाता: पात्र इम् । कपि  
विशेष, किण्चिकाका बानर राजा जो मङ्गुका  
पिता और सुग्रीवका बड़ा भाई था। पर्याय बामो, बानर  
राज । विशेष विपर्यय बामि रुझनें देखो।

बाटिका ( सं० स्त्री० ) बाळा एव बाळ आर्घ्ये-कम् टाप्  
भग इत्वं । १ बाळा, बस्या । २ बालुका, बालू । ३ लर्ण  
मूषण, बाळा । ४ पत्मा, इयायथी।

बाटिकाअपविद्य ( सं० पु० ) बालिकाश्य वैश ।

( पा ४११५४ )

बाटिकायन ( सं० स्त्री० ) बाटिकमें होनेवाया ।

बाटिकविद्य ( सं० पु० ) पुनस्त्वकी कल्पासनातिके गर्नसे  
और मन्त्रु कभीत्सम् इत्यत्र साठद्वार अविशिरोप, बान

जिल अवि । प्रत्येक अवि बोल डीलमें म गूठके बराबर  
है। ( कर्मपु० १२ म० )

बामिद् ( सं० पु० ) पिता, बाप ।

बामिन् ( सं० पु० ) बाळ-एव इत्यसिधधानत्वेन विधमे  
यस्य बाल इति । १ इन्द्रके पुत्र बानरराज मङ्गुका पिता  
और सुग्रीवका बड़ा भाई । अमोघनीर्घ इन्द्रदेवके वीरों  
बामदेवमें गिरनेस इसकी इत्यसि दुई धामी नाम पड़ने  
का पही कारण है। बाळ देखो।

बाळा: कक्षा: सख्यस्य बाळ इति । ( सि० ) २ बाळ  
विशिष्ट ।

बामी ( सं० पु० ) बामिन् देखो।

बाम् ( सं० स्त्री० ) बळतेऽनैन वस-प्रापने वळ इण् । एक  
बालुक नामक गन्धद्रव्य ।

बालुक ( सं० स्त्री० ) बाळु रैव लार्घ्ये-कम् । १ पलबालुकं,  
एक गन्धद्रव्य । ( पु० ) २ पणिबाळु ।

बालुका ( सं० स्त्री० ) बालुक-टाप् । १ रैणुविशेष, बाळु ।  
पर्याय—सिकता, सिका, शीतक, सूक्ष्मशर्करा, प्रबाही,  
मदासूक्ष्मा, पानीयवर्णिका । गुण—मधुर, शीतक, सस्ताप  
और समतागक । ( राजनि० ) २ शाळा । ३ इस्त  
पादादि, हाथ पैर । ४ कर्कटी, ककड़ी । ५ कपूर, कपूर ।  
६ वैद्यकोल्य पद्मविशेष, बालुकापद्म ।

बालुकागड ( सं० पु० ) बालुकया: गडतीति तस्मात्  
क्षरति या बालुकागड पचाद्यच् । मत्स्यविशेष, एक  
प्रकारको मछली । पर्याय—सिताङ्ग ।

बालुकास्मिका ( सं० स्त्री० ) बालुकाबालना सक्षपो यस्याः  
कम् मत् इत्त्व । १ शर्करा, चीनी । ( सि० ) बालुका  
जालना यव । २ बालुकाय ।

बालुकाप्रमा ( सं० स्त्री० ) बालुकातामुष्णरैणुनां प्रमा  
यस्याः । एक तरकका नाम ।

बालुकापद्म ( सं० पु० ) औषध सिद्ध करनेका एक प्रकार  
का पद्म ।

बाजुघी ( सं० स्त्री० ) १ कर्कटीमेद्, एक प्रकारकी ककड़ी ।  
पर्याय—बहुकबा, स्निग्धफलता, सेककर्कटी, सेकवडा,  
कागिठका, मूखला । ( राजनि० )

बालुभरतोर्घ ( सं० स्त्री० ) तीर्थमेद् ।

बालुदु ( सं० स्त्री० ) कर्कटीमेद् एक प्रकारकी ककड़ी ।



वालुक (स० पु०) चलते प्राणान् हन्ति यः चल वध्रे ऊरु । विपमेद, एक प्रकारका जहर ।

वालेय (स० पु०) चलये उपकरणाय साधुः चलि (लुक्सिधवले षञ् । पा ५।१।१३) इति षञ् । १ रासभ, गडहा । २ दैत्यविशेष, बलिके पुत्र । दैत्यराज बलिके वाण आदि सौ पुत्र थे जो वालेय कहलाने थे । (अग्निपुराण) ३ जनमेजय वंशोद्भव सुतमस राजाके पुत्र का नाम । इनके पांच पुत्र थे, वे सभी वालेय नामसे प्रसिद्ध थे । (हर्षचरित ३१ अ०)

४ अङ्गावलकी, एक प्रकारका करंज । ५ चाणक्य-मूलक । ६ तण्डुल, चावल । ७ वितुक्ष वृक्षकी छाल । ८ पुत्र, बेटा । (त्रि०) ९ मृदु, कोमल । १० चालहित । ११ बलियोग्य ।

वालुक (स० पु०) चलकस्य चलकलस्य विकारः चलक (तस्य विकारः । पा ४।३।२४) इति अण् । चलक सम्बन्धी वस्त्र, धौमादि वस्त्र । शास्त्रमें लिखा है कि वालुक चुराने वाला बगलायोनिमें जन्म लेता है ।

वालुकल (स० त्रि०) चलकलस्यैव अण् । चलकल निर्मिन, छालका बना हुआ ।

वालुकली (स० स्त्री०) मदिरा, गौड़ी मद्य ।

वालाव्य (स० पु०) वल्लुगोलापत्यार्थे (गर्गादिभ्ये यञ् । पा ४।१।२०५) इति यञ् । वल्लुका गोलापत्य ।

वालमिकि (स० पु०) बलिके भवः बलिक इञ् । वालमीकि मुनि ।

वालमिकीय (स० त्रि०) वालमिकि (गर्गादिभ्यश्च । पा ४।१।२३८) इति ङ । वालमीकि-सम्बन्धीय ।

वालमीक (स० पु०) बलमीके भवः बलमीक-अण् । व्रीमक-से उत्पन्न मुनिविशेष, वालमीकि मुनि ।

वालमीकभूमि (स० स्त्री०) बलमीकपूर्ण देश ।

वालमीकि (स० पु०) बलमीके भव बलमीक इञ्, वा बलमीकप्रभवो यस्माद् वालमीकिरित्यसौ इति ब्रह्मवैवर्ती केः । भृगुवंशीय मुनिविशेष ।

ये प्रचेता ऋषिके वंशके अथःस्तन दग्धे पुरुष हैं । तमसानदीके तट पर इनका आश्रम था । एक बार ये तमसा नदीके निर्मल जलमें स्नान करनेकी इच्छासे अपने शिष्य मण्डाज मुनिके साथ वहां उपस्थित हुए । शिष्यको

ह नानादिषु वरके उपर्युक्त एक सुन्दर घाटवता और उन-को वहां ठहरनेका कह अपने निकटके वनमें शुभने लगे । ऐसे समय उन्होंने देखा, कि एक पापमती निपाटने अकारण किसी कामविह्वल क्रीञ्चको मार डाला । व्याध द्वारा आहत हो कर रक्तक फलेवर क्रीञ्च घरातल पर पड़ा छट पट रहा था, ऐसे समय चिरचिरद् व्यथाका अनुभव कर क्रीञ्च छाता पीट पीट कर रोने लगे । ये सब घटनायें देख महामुनि वालमीकिके मनमें दयाका उद्रेक हुआ । क्रीञ्चके दुःखसे दुःखित हो कर वालमीकिके बड़े कठोर वचनोंमें कहा,—“रे नीच निपाट ! तू कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि तुम इस कामविमोहित क्रीञ्चका अकारण वध किया ।” व्याधको इस तरह अभिशाप दे कर यह कान्त मनमें शिष्यके प न चले । वहा इन्होंने जा कर शिष्यसे सब बातें कहीं और यह भी कहा, कि शोकमन्त्र लहयसे मेरे बगल हाग पादबद्ध समाश्रम तन्त्रालययुक्त जो वाक्य निकला है, वह श्लोकरूपमें गण्य हो, अन्यथा न हो । यह सुन कर शिष्य अरुण भी परम आश्चर्यित हुए । पीछे गुरु-शिष्य सन्तुष्ट-चित्तसे तमसाके निर्मल जलमें स्नानाह्निक समाप्त कर आश्रमको ओर पचारे । आश्रममें जा कर वालमीकि अन्यान्य कथावार्तामें व्यस्त थे सही, किन्तु इनके हृदयमें श्लोककी चिन्ता जागरित थी । इसी समय सर्वलोक-पितामह पद्मयोनि ब्रह्मा वालमाकिके भेंट करनेके लिये इनके आश्रममें आ पहुँचे । उनको देख महामुनि वालमाकि-ने जीव ही उठ कर पाद्य-अर्घ्य-आसनमें उनकी यथाविधि पूजा की । ब्रह्माने इनके द्वारा समाहृत और पूजित हो कर इनके शिष्य हुए आसन पर बैठ-उनको भी आसन पर बैठनेको कहा । दोनों यथोपयुक्त आसन पर बैठ गये । अब इस समय ब्रह्मा आश्रमक प्रत्येक पुरुषकी कुशल पूछने लगे । महामुनि वालमीकि उनके प्रश्नोंका उत्तर देते जाते थे ; किन्तु इनके मनमें रह रह कर उस क्रीञ्चकी बात जागरित हो उठती थी । इनके मुंहसे एक बार निकल आया—“रे पापात्मा निपाट ! तूने अकारण क्रीञ्चको मार कर अपयज्ञ लिया ।”

वालमीकि ब्रह्माके समीप बैठ कर हृदयमें उन क्रीञ्च-क्रीञ्चके दुःखका स्मरण कर श्लोककी आवृत्ति कर रहे

ये। अर्थात् मुनिजी इस तरह लोकपरायण देख हुए  
 चित्तसे हाथमुक्कसे मीठे वचनोंमें उनसे कहा कि तुम्हारे  
 कहतेसे निकला यह वाक्य मेरे ही संकल्पसे हुआ है।  
 यह तुम निश्चय समझो। अनपेक्ष इस विषयमें भ्रमसे तुम  
 अपनी मजमें झोक न करो। तुम्हारा यह वाक्य ही  
 जगत्में शक्ति न कह कर प्रचारित हो। तुम इस श्लोकका  
 ही अर्थकरण कर शैलोक्तनाथ मगवान् रामचन्द्रका वाक्य  
 तोय करिह-वर्णन कर अन्तर कीर्तित्वापन करो। इस  
 जगत्में अब तक सूर्य्य, चन्द्र, नद, नदी, मह नक्षत्र  
 आदि विद्यमान रहेंगे तब तक जनसाधारणमें तुम्हारे  
 यह रामगुणगाथा (रामायण) समुत्सुक चित्तसे सुनी  
 जायेगी और पढ़ी जायेगी। अर्ग और मर्यामें तुम्हारा  
 नाम धरत होगा।

वितामह अर्थात् येना इनको उपदेश दे कर बहाने  
 जगत्दित हुए। इसके बाद सगुण वास्तविक विस्मय  
 सागरमें निमग्न हुए। इसके बाद तपोवन वास्तविकने  
 रामायण-रचनाने मन लगाया। पहले उन्होंने महर्षि  
 नारदके मुह इस रामचन्द्र का ससित जोरना सुनी थी।  
 किन्तु इनकी रामायणकी रचना करना थी। इससे  
 विशयरूपसे मगवान् रामचन्द्रकी जीवनी जाननी पड़ी।  
 ये इसके लिये समुत्सुक हो पूर्णको भोट मुह कर भासन  
 पर बैठे और आचमन कर हस्ताक्षरिपूर्वक नैत्र मूँद कर  
 ध्यानमग्न हुए। योगबलम राजा दशरथके दृष्टांतसे  
 से कर सीताके पाठाक प्रवेश तकको घटनासे यह मन  
 गत हुए।

इनके बाद महर्षिने इस वृत्तान्तको उन्मोचक कर  
 प्राण्य भावा और सुनचित पत्रिभ्यासमें विपिवह  
 दिया। यह हिन्दूको राजनीति धर्मनीति, अर्थनीति,  
 क्षमाजनीति आदिक आदर्शरूपके हैं तथा भाषातरबन्ध  
 आत्मदुर्गिक, विज्ञानबिद्घु धर्मनिरु, अध्यात्मनरूपधेता  
 योगी श्रद्धि आदिक लिये यह सर्वजनसुखम चितप्रसिद्ध  
 रामायण प्रणय है। महर्षिने पहले तो इसे उः कावड तक  
 पाँच सौ सर्गोंमें और २४ सहस्र श्लोकोंमें पूर्ण किया।

इसके बाद अयोध्यावाति रामचन्द्रके अन्धमेधव  
 यूपान्त, वास्तविकके नामसे दूसरे किसी आदर्शमे फिर  
 से सीतादेवीके निर्वासनमें आरम्भ कर उनके पातास

प्रवेश तक वर्णन किया है। यही सातवां काण्ड या  
 उत्तरकाण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

उक्त सप्तकाण्ड रामायण ही वास्तविकका प्रधान  
 परिचायक है और यह प्रणय-रचना ही इनके हृदय  
 बर्मा में प्रधानतम घटना है। पीछेके कुछ लोगोंने कहना  
 आरम्भ किया कि यह रामायण रामचन्द्रके मन्तारसे  
 बसतो सहस्र वर्ष पहलेकी रचना है। किन्तु इसका कुछ  
 प्रमाण नहीं। रामायण देखो।

श्रीरामचन्द्रकी आज्ञासे बृद्ध मुर्मल सारथिके साथ  
 महामति लक्ष्मणने गङ्गाक इस पार वास्तविकके आश्रमके  
 निकट सीतादेवीको निर्वासित कर दिया। उनकी रोदन  
 बननि सुन कर मुनिबासकोंने महामुनिस जा कर संवाद  
 दिया। ध्यानसे सब विषयोंको ज्ञान मुनि जा कर सीता  
 देवीको सांत्वना दे कर उनकी अपने साथ आश्रममें ले  
 भाये। सीतादेवी मुनिके आश्रममें रहने लगी। कुछ  
 ही दिनक बाद उन्होंने ही यमज-पुत्र उत्पन्न किये। एक  
 का नाम लव और दूसरेका कुश था। महर्षिने इन दोनों  
 मन्त्रानोंको पक्षके साथ शिक्षा दी। इन दोनों बच्चोंको  
 महर्षिने इस तरह घोषाके साथ ताळ लय सुन्दके साथ  
 रामायण गान करनेकी शिक्षा दी, कि उनके गान सुन  
 कर रामचन्द्रके अन्धमेधवमें भाये राजा, प्रजा सैव्य  
 सामन्त, धर्मि मुनि छोटे बड़े सना धर्मि विस्मित हो  
 उठे थे।

किन्तु अन्धके आधार पर किसी किनो भाषासागायक  
 करते अपने प्रणयमें महामुनि वास्तविकके "बस्तीके मय"  
 इस श्रुत्युत्पत्तिगत नामका बृहत्तर निगमलिखितरूपसे प्रकृत  
 किया है, कि तु वास्तविकके रचित मूल रामायणमें इसका  
 कोई निर्वाह नहीं मिलता। यह इस तरह है—

"भाप सर्वथ सर्वकपापी विमु है। भाप ही भवस्विति  
 की बात में क्या कह सहा है। भापके नामकी प्रतिमा  
 अपार है। भापके नामके प्रमाण-मिने अर्द्धर्षि पद्  
 प्राप्त किया है। मिने प्राण्यक भर जगत् जिया था सही।  
 किन्तु बुर्गायबशता विराठक घर रह कर मदा उनके  
 अनुकूप काष्ठीमें प्रकृत रहना था। एक गुत्रके गर्भसे  
 मेरे कई स शान उत्पन्न हुए। उनके भरभ पोष्य करने  
 के लिये अनयोवाय हो कर मुझे आरतवा धर्मोभाष श्याग

कर तत्कर कार्य आरम्भ करना पड़ा। एक दिन अपनी वृत्ति परिचालन करनेके समय कई ऋषियोंसे मेरा साक्षात् हुआ, उन पर मैंने आक्रमण किया। इस पर उन लोगोंने मुझसे पूछा, कि तुम इस घृत्निका क्यों अब लम्बन लिये हो? इस पर मैंने उत्तर दिया, कि अपने परिवारके पावन-पोषणके लिये। यह सुन कर उन्होंने कहा, कि तुम पहले अपने घर जा कर पूछ आओ, कि वे तुम्हारे इस पापमें भागी हो गे या नहीं। पीछे हम लोगोंके पास जो कुछ है, उसको तुम्हें दे जायेंगे। यदि तुमको विश्वास न हो तो तुम हम लोगोंको इस वृक्षमें बाध कर जाओ। ऋषिपितामहको सुन कर मैं घर गया और अपने परिवारवालोंसे पूछा, कि मेरे किये पापोंका भागीदार तुम लोग हो सकते हो या नहीं। परिवारके लोगोंने कहा "नहीं"। इससे मैं बहुत डर गया और दीडा ऋषियोंके पास आया। मैंने उन लोगोंसे बड़ी अर्ज मन्त्रते कां, कि आप लोग मुझे इस पापपङ्कसे निकालें। आप लोग ऐसा कोई पथ बतलायें, कि मैं इस पापसे निवृत्त होऊँ। उन्होंने बहुत सोच विचार कर मुझे 'राम' नाम जप करनेका उपदेश दिया। इस पर मैंने कहा, कि ऐसा करनेमें मैं अक्षम हूँ। फिर उन्होंने विचार कर एक सूखे वृक्षको दिखला कर कहा, कि देखो इस वृक्षको क्या कहते हैं, तब मैंने कहा, कि इसको 'मरा' कहते हैं। अच्छा तो तुम इमी वृक्षका नाम 'मरा' तब तक जपते रहो, जब तक हम लोग पुनः न आ जायें। मैंने ऐसा ही किया। बहुत दिनों तक ऐसा करते रहने पर यह नाम मेरी जवान पर जम गया। इस तरह सहस्र युग तक यह नाम जपते रहने पर मेरे शरीर पर बलमीक जम गया। ऐसे समय ऋषियोंने आ मुझको पुकारा। पुकार सुनते ही मैं उठा और उनके समीप पहुँचा। उन्होंने कहा, कि जब तुम्हारा बलमीकक भोतर फिर जन्म हुआ, तब तुम्हारा नाम बालमीकि हुआ, अब तुम ब्रह्मर्षिमें गिने जाओगे।"

बालमीकीय (सं० त्रि०) बालमीकि गहादित्वात् छ।

१ बालमीकि सम्बन्धीय। २ बालमीकिकी बनाई हुई।

बालमीकश्वर (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

बालभ्य (सं० क्ली०) बलभ-भ्यण्। बलभता, प्यार करनेका भाव या धर्म।

वाव (सं० अश्र्य०) यथार्थतः, दस्तुतः।

वावदूक (सं० त्रि०) पुनः पुनरतिशयेन वा चदति-चद यङ्-यङ् लुगन्त वावद धातु (उलूकादयश्च। उणा ४।४१) इति ऊक्, सर्वस्वेतु (२जजपदशाभिति। पा ३।२।१६६) इति बहुलवचनादन्यतोऽपि ऊक। १ अतिशय वचनशील, वाग्मी। पर्याय—वाचोयुक्तिपटु, वाग्मी, वक्ता, वचक्र, सुवचस्, प्रवाच्। (जटाधर) जो शास्त्रज्ञान-सम्पन्न तथा अतिशय युक्तियुक्त वचन बोल सकते हैं, उन्हें वावदूक कहते हैं। २ बहुत बोलनेवाला।

वावदूकत्व (सं० क्ली०) वावदूकस्य भावः त्व। वावदूकका भाव या धर्म, वाग्मिता।

वावदूक्य (सं० पु०) वावदूकस्य गोत्रापत्यं (कुर्वादिभ्यो यय। पा ४।१।१५१) इति ण्य। वावदूकका गोत्रापत्य।

वावय (सं० पु०) तुलसीविशेष।

वानरो (सं० स्त्री०) ववुरवृक्ष, ववूलका पेड़।

वावहि (सं० त्रि०) अत्यर्थं वहति यङ्, यङ् लुक्। वावह धातु-इञ्। अत्यन्त बहनकारी, देवताओंकी तृप्तिके लिये बहुत ले जानेवाला। "सप्तपश्यति वावहिः" (ऋक् ६।६।६) 'वावहिः देवानां तृप्तस्त्यन्तं वोढा' (सायण) वावान (सं० त्रि०) अ यर्थं वाति वा यङ्-लुक्-वावा-धातु क। पुनः पुनः अभिगमनकारी।

वावात् (सं० त्रि०) वावा तृच्। संभजनीय, बननीय। (ऋक् ५।१।५)

वावुट (सं० पु०) बहिल, नाव, वेडा।

वावृत्त (सं० त्रि०) वा वृत्त क। कृतवरण, जिसका चरण किया गया हो। (अमर)

वावैला (अ० पु०) १ विलाप, रोना पीटना। २ शोरगुल, हल्ला, चिल्लाहट।

वाश (सं० त्रि०) १ निवेदिन। २ क्रन्दनशील, बहुत रोनेवाला। (पु०) ३ वासक, अडूसा। वाशक देखो। ४ एक सामका नाम।

वाशक (सं० त्रि०) १ निनादकारी, चिल्लानेवाला। २ क्रन्दनशील, रोनेवाला। (पु०) ३ वासक, अडूसा।

वाशन (सं० त्रि०) १ नादकारी, चिल्लानेवाला। २ चह-चहानेवाला। ३ भिन भिनानेवाला। (क्ली०) ४ पक्षियोंका बोलना। ५ मक्षियोंका भिनभिनाना।

वाशां (स० स्त्री०) वाशपत्ने इति वाशा शब्दे (गुरोरथ इत्)। पा १।१।२०३ इति न स्त्रियां टाप्। वासक मङ्गुसा।

वाशि (स० पु०) वाशपते इति वाश (वसिधिविभक्तिविभक्तिविभक्तिविभादीति। उच्य ४।१.४) इति इत्। वसि, वाग।

वासिका (स० स्त्री०) वाशा स्वार्थे क्त्वा टाप् मत इत्वं। वासक, मङ्गुसा।

वाशित (स० क्ली०) वाश-शब्दे भावे क्। १ पशु पक्षी भाषिका शब्द। वाशुनामनेकार्थत्वात् वाश सुत्मी कर्त्वे क्। २ सुत्मीकृत, सुगन्धित विद्या इत्सा।

(ममदीक्षा स्वामी)

वासिता (स० स्त्री०) वास क् टाप्। १ स्त्री। २ करिणी, इयिनी।

वाशिन (स० स्त्री०) शब्दयुक्त, भाग युक्त।

वाशिष्ठ (स० स्त्री०) वशिष्ठस्येव ष्। १ वशिष्ठसम्बन्धी वशिष्ठका। (क्री०) २ एक उपपुराणका नाम। ३ एक प्राचीन तीर्थका नाम।

वाशिष्ठो (स० स्त्री०) वशिष्ठस्येवमिति अण् क्वाप्। गोमती नदी।

वाशी (स० स्त्री०) शब्दमेव, काष्ठपच्छन्न शब्दक।

(शुक् ८।२६।१)

वाशोमत् (स० स्त्री०) वाशी भरवर्षे मनुष्ये। वाशोयुक्त वाशोमत्कविशिष्ट। (शुक् ५।१७।२)

वाशुटा (स० स्त्री०) वाशुकेऽस्यामिति वाशु शब्दे (मन्त्र वाशुधिविभक्तिविभक्तिभाउरत्)। उच्य १।१६ इति उरक् टाप्। राज्ञि, राज। (उज्ज्वल)

वाश्र (स० क्ली०) वाशपतेऽस्मिन्मिति वाश्रु (स्वपितृविभक्तिविभक्ति)। उच्य २।११ इति रक्। १ मन्त्रि। २ कृत्यपथ, घोराहा। ३ विषस दिन।

वाष्य (स० पु०) वाषते इति वाष-क्लोटने (वन्धकित्त्वत्त्वं वाषकत्वं पर्यटना। उच्य ३।२८) इति प-प्रत्यये घञ् पत्वं निपातनात्। १ कोह, कोहा। २ अश्रु, भाप। ३ कण्टकारी मृदकरीषा। ४ इष्या भानम् ईर्ष्या भीरु भाई इत लीन कार्त्वीये अश्रु-मन्त्रित इत्या होता है। ५ भाप, भाप (Tapour, वाष्प देको

वाष्यक (स० पु०) वाष्य संज्ञायां क्त्वा। मारिय, मरसा नामका साग।

वाष्यमन्त्र - वरुणविशेष। वाष्यमन्त्र देको।

वाषिका (स० स्त्री०) वाष्य संज्ञायां क्त्वा टाप् मत इत्वं। द्विगुपत्तो। पर्याय—वारवी, वृष्टी, कबरी, पूषु टवक् पत्नी, वाषोका कर्षती। गुण—कटु, तीक्ष्ण उष्ण, क्षमि भीरु भक्ष्यमानाशक।

वाषी (स० स्त्री०) वाष्य गौरादित्वात् क्वाप् वाष्नी स्वार्थे क्त्वा टाप्। द्विगुपत्तो वाष्यका।

वाषीका (स० स्त्री०) वाष्नी देको।

वाषीयपोत—घामर। वाष्नीयवन्त्र देका।

वास (स० पु०) वसन्त्वाम्नेति वस निवासे (इत्)। पा १।१।२२ इति घञ्। १ गृह घर। वास्यते इति वास घञ्। २ धर, कवड़ा। घस माषे घञ्। ३ मधरघान, रहना।

वाणवर्षकोकमे लिखा है, कि घनो वेद्विद्ध ब्राह्मण, राजा, नदी भीर वैश्य ये पांच नहीं हैं, मनुष्यको वहाँ वास करना न चाहिये।

४ वासक, मङ्गुसा। ५ सुगन्ध, शू।

वासक (स० पु०) वासवतीणि वामि-शुभम्। १ स्वनाम प्रसिद्ध पुण्यशक घृष्ट, मङ्गुसा। इसे कश्चिद्धमं मङ्गुसा, माह सोगे भीर तीक्ष्ण मङ्गुसर, घण्टीके कहत हैं। संवृत पर्याय—वीरमाता, सिद्धी वासिका, वृष, मरकट, सिद्धास्य, वासिद्धलक वाशा, वाशिका, वृश, मरकट, वाशक वासा वास, वाशी, वैद्यसिद्धी, माणसिद्धी, वासका सिंहपत्नी सिंहका, मियरुमाता, वसादनी, सिंहमुनी, कण्ठीरवी, शिलकणी वासिद्धनी, नासा, पञ्चमुखा, सिंह पत्नी सुगेन्द्रापी। गुण—तिक्त, कटु, कास, रक्त, विरक्त, कामक, कफवैशद्य, रघर, भ्राम भीर क्षयनाशक। इत्यन्तु पुण्यका गुण—कटुपाक तिक्त, वासक्षयनाशक।

(रात्रि०)

घर्मेशाश्रमं लिखा है, कि मरुत्वतो पूजामे वासक पुण्य विशेष प्रशस्त है।

२ गालाङ्गविशेष, गालका एक म ग। शङ्करक मतसि मनोहर कल्प वास भीर मन्त्र नामक इसके चार मेह हैं। कीर विनोद बरह मन्त्र भीर कुमुदकी इसके मेह नामते हैं।

३ वासद, दिन। ४ शसक रागका एक मेह।

वासकर्णौ (सं० स्त्री०) यज्ञशाला ।

वासकसजा (भा० स्त्री०) वासके प्रियसमागमवासरे सज्जतीति सज्ज अच्-टाप्, यद्वा वामकं वासवेश्म सज्जतीति सज्जि अण्-टाप् । नायिकाभेदके अनुसार एक नायिका । जो नायिका नायकसे मिलनेकी तैयारी किये हुए घर आदि सजा कर और आप भी सज कर बैठती है उसे वामकसजा कहते हैं ।

जो नायिका वेशभूषा करके और घर आदि सजा कर नायककी वाट जोहती है उसीका नाम वामकसजा है ।

इसकी चेष्टा—मनोहासामग्री सक्षोपरिहास, दूती प्रश्नमामग्री विधान और मार्गल्लोकनादि ।

( गीतगोविन्द ६।८ )

यह वासकसजा सुरधा, मध्या, प्रौढा और परकीय नायिकाके भेदसे भिन्न प्रकारकी है ।

वासकसज्जिका (सं० स्त्री०) वासकसजा ।

वासका (सं० स्त्री०) वासक-टाप् वासक वृक्ष, अडस ।

वासकेट (अ० पु० स्त्री०) पत्र प्रकारकी छोटी बडी या कमर तककी कुरती । इससे सिर्फ पीठ, छाती और पेट ढकता है । इसमें आस्तीन नहीं होती, आगे और पीछेके कपडोंमें भेद रहता है । इसे कसनेके लिये पीछे वकसुयेदार दो बन्द होते हैं ।

वासगृह (सं० स्त्री०) वासाय गृह छे गृहमध्यभागे शयनगृहे च गृहान्तगृहे इत्येके निर्वातत्वात् गर्भाश्वान्गारं गर्भागारं । १ गर्भागारं । २ शयनागार, सोनेका कमरा । ३ अन्तःपुरगृह, रनिवास ।

वासगेह (सं० स्त्री०) वासगृह, मकान ।

वासत (सं० पु०) वास्यते इति वासु शब्दे बाहुलकात् अतच् । गर्दभ, गद्दा । (शब्दरत्ना०)

वासतामूल (सं० स्त्री०) सुगन्धिकृत ताम्बूल, खुशबूदार मसाला आदि डाला हुआ पान ।

वासतीघर (सं० स्त्री०) वसतीघरी नामक सरसन्धोय ।

वासतेय (सं० स्त्री०) वसती साधुरिति वसति (पश्यतिथि वसतिस्वपते ढंञ् । पा ४।४।१०४) इति ढञ् । वास-धोय, रहने लायक ।

वासतेयी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात ।

वामधृषि (सं० पु०) वसधृषका गोत्रापत्य ।

वामन (सं० षष्ठी०) वास्यते इति वासि-ल्युट् । १ धूपन, सुगन्धित करना । २ वारिधान्य, सुगन्धित धान । ३ वस्त्र, कपडा । ४ वास । ५ धान । ६ निक्षेपाधार । (त्रि०) ७ वसनसम्बन्धी, कपडेका । वसनेन क्रीतं वसन (शतमानविगतिकसहस्रवसनादण् । पा ५।१।२०) इति अण् । ८ वसन द्वारा क्रान्त, कपडेसे खरीदा हुआ ।

वासना (सं० स्त्री०) वासयति कर्माणा योजयति जीव-मनामीति वस-णिच्-युच्, टाप् । १ प्रत्याशा । २ ज्ञान । ३ स्मृतिहेतु, भावना, स्फकार । ४ न्यायके अनुसार देहात्मबुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार । ५ दुर्गा । (देवीपु० ४५ अ०) ६ अर्ककी स्त्री । (भागवत ६।६।१३) ७ इच्छा, कामना ।

वासनामय (सं० स्त्री०) वासना स्वरूपे मयट् । वासना-स्वरूप ।

वासनाह्वय (सं० पु०) नागबल्लोलता ।

वासन्त (सं० पु०) वसन्ते भवः वसन्त (सन्धिवक्षाद्यनुन क्षत्रेभ्याऽण् । पा ४।३।१६) इति अण् । १ उद्भ्र, ऊँट । २ कोकिल, कोयल । (राजनि०) ३ मलय वायु । ४ मुद्ग, मूंग । ५ कृष्णमुद्ग, काली मूंग । ६ मदन वृक्ष, मैनफल । (त्रि०) ७ अवहित, सावधान । ८ वसन्तोत्त, वसन्त ऋतुमे बोधा हुआ ।

(विद्वान्तकौमुदी)

वासन्तक (सं० स्त्री०) वसन्तस्येदमिति वसन्त-कन् । १ वसन्त-सम्बन्धी । वसन्ते उत्त (श्रीष्मवसन्तादन्यतरस्यां पा ४।२।४१६) इति युञ् । २ वसन्तोत्त, वसन्त ऋतुमें बोधा हुआ ।

वासन्तिक ((सं० स्त्री०) वसन्तमधीते वेद वेति वसन्त (वसन्तादिभ्य षक् । पा ४।२।५३) इति षक् । १ विदूषक, भांडू । २ नर्तक, नाचनेवाला । (त्रि०) वसन्तरथेद मिति (वसन्ताच्च । पा ४।२।२०) इति षञ् । ३ वसन्त सम्बन्धी ।

वासन्ती (सं० स्त्री०) वसन्तस्येयमिति वसन्त-अण्-डोप् । १ माधवीलता । २ गृथी, जूही । ३ पाटला, पाडरका वृक्ष । ४ कामोत्सव, मदनोत्सव । पर्याय—चैत्रा-

बनी, मधुसूक्त, सुप्रसन्न, कामसह वर्तनी। (मिका०)

५ गणिकादौ, गनियारी नामक कृष्ण। पर्याय—प्रह  
सर्षी, वसन्तजा, माधवी, महाजाति, शीतमहा मधु  
शुक्ला, वसन्तपुत्री। गुण—शोथल, हृद्य, सुरभि अम  
हृत्क, नन्मसोन्माद्वापक। (आमि०) ६ नवमस्तिका,  
नेवार। (माध०)

द्वितीया। वसन्तकालमें दुर्गादेवीकी पूजा की जाती  
है, इसीसे इनका नाम वासुदेवी पड़ा। शरत् और  
वसन्त इन दो ऋतुओंमें मगवती दुर्गादेवीकी पूजाका  
विधान है। शरत्कालकी पूजा अक्षाणुषा है, इसी  
कारण शरत्कालमें देवीका बोधन करने पूजा करनी  
होती है। शरत्काल देवताओंकी रात्रि है, इस कारण  
अक्षाणु है, किन्तु वसन्तकालकी पूजा कामबोधिन पूजा  
है, इसीसे—वासुदेवीपूजामें—केकीण बोधन नहीं है।

“मीनप्राणिविषय सर्वे शुचकपय नराधिप।

लज्जमी रहमी पावत् पूजयेदन्विकां तदा ॥

मविष्योत्तरम्—

सैवेमाधि सिते पक्षे लज्जन्मादिदिनपदे।

पूजयेद्विषयदुर्गां वरायनात् विकल्पत ॥”

सूर्यके मीनराशिमें जानेसे अर्थात् वैश्रमासमें सप्तमी  
से दशमी तक दुर्गादेवीकी पूजा करनी होती है। वैश्रकी  
शुद्धा सप्तमी हीस पूजाका आरम्भ है। यहाँ वैश्र  
शरत्से चान्द्रवैश्रतिथिका बोध होता है। मीनराशिमें  
सूर्यके जाने पर ही पूजा होगी ऐसा नहीं। चान्द्रतिथिक  
अनुसार मीन और मेष इन दोनों राशिमें सूर्यके जानेसे  
अर्थात् वैश्र और वैशाख इन दो मासोंके मध्य चान्द्र वैश्र  
शुद्धा सप्तमीसे पूजा करनी होगी। यह पूजा तिथिद्वय  
दोषसे चान्द्रमासानुसार होती है औरमासानुसार नहीं  
होती।

जो पद्याविधान प्रतिवर्ष वासुदेवी पूजा करते हैं,  
उप पुत्रीकानि स्तम्भ होत हैं तथा उनकी समा  
धमनाये पूरी होती है।

शारदीय दुर्गापूजाके विधानानुसार यह पूजा करनी  
होती है। पूजाम की विशेषता नहीं है, शारदीया पूजा  
त्रिस्त प्रकार अक्षरकयको है अर्थात् अमल पूजन, होम  
और बलिदान इन चार अक्षरकोंसे त्रिशिष्ट वासुदेवी

पूजाकी भी इसी प्रकार ज्ञानका होगा। इसमें भी  
अमल पूजन, होम और बलिदान उसी प्रकारसे होता  
है, जो विशेषता नहीं है। यह पूजा नित्य है, इसलिये  
सर्वोंको यह पूजा करने की चाहिए। यदि कोई सप्तमीसे  
पूजा न कर सके तो अष्टमी तिथिमें पूजा करे। अष्टमीमें  
असप्तम्य होनेसे केवल नवमा तिथिमें पूजाका विधान  
है। अष्टमीम आरम्भ करने पर उसे अष्टमी कल्प और  
नवमीतिथिमें पूजा करनेसे उस नवमी कल्प कहते हैं।  
सप्तमी अष्टमी और नवमी तिथिमें विधान रहेसे उनमें  
से किसी एक दिनमें पूजा कर सकते हैं, ये सब विधान  
वैश्रवसे वासुदेवीपूजामें सप्तमी, अष्टमी और नवमी ये  
तीन कल्प देखनेमें आते हैं।

इन पूजामें शारदीया पूजाकी तरह चण्डीपाठ करना  
होता है। पञ्चोक्त दिन सार्धकालमें विद्वत्पूजक मूलको  
आमस्य और प्रतिमाको अविधास कर रचना होता है।  
पुसरे दिन सप्तमी तिथिमें आमस्यगत विद्ययाशाको काट  
कर उसकी पद्याविधान पूजा करनी होती है। इस पूजामें  
और सप्तमी विषय शारदीया पूजाकी तरह ज्ञानने होगे।  
अष्टवैश्रवमें मिका है, कि पहले परमात्मा श्रीहृदय  
जब गोष्ठोरुषाममें राम करने थे, उस समय मधुमासमें  
ममलन हो कर अष्टीने ही पहले पहल मगवती दुर्गादेवीको  
पूजा की थी। पीछे विष्णुने मधुकीदम युद्धके समय देवाक  
शरण ली तथा उस समय अष्ट वैश्रव मगवतीकी पूजा  
की। तभीसे इन पूजाका प्रचार है।

इसके बाद समाधि वैश्रव और सुरध राशामें मगवतीकी  
पूजा की। इस पूजाक फलसे समाधिबैश्रवको निर्वाण  
और सुरध राशकी राज्यकाम हुआ था।

● एक प्रकारका छन्द। इन छन्दक प्रतिचरणमें १४  
अक्षर रहते हैं। ३ ● ८, २वां अक्षर लघु और बाकी  
अक्षर शुभ होते हैं।

वासुदेवीपूजा ( सं० ओ० ) वासुदेवी तदावया पूजा। वैश्र  
मासकी दुर्गापूजा।

“सैवे माधि सिते पक्षे नवमादि दिनपदे।

प्रायः मासमहादेवी दुर्गा मन्त्रका पूजयेत् ॥”

( माध० ७ परशु )

इस अष्टमी तिथिमें अर्थात् वैश्रमासकी शुद्धा अष्टमी

तिथिमें अन्नपूर्णा पूजाका विधान है। इस वासन्ती ऋष्यो  
तिथिमें भक्तिपूर्वक अन्नपूर्णादेवीकी पूजा करनेसे अन्न-  
कष्ट दूर होता है और अन्तकालमें स्वर्गकी गति होती है।  
वासपर्याय ( सं० पु० ) वासस्य पर्यायः। वासपरिवर्त्तन,  
दूसरी जगह जा कर रहना।

वानप्रामाद ( सं० पु० ) वासयोग्य राजभवन, रहने लायक  
महल।

वामभवन ( सं० स्त्री० ) वासस्य भवनम्। वासगृह,  
मकान।

वासभूमि ( सं० स्त्री० ) वासस्य भूमिः। वासस्थान।

वामगृष्टि ( सं० स्त्री० ) पक्षी बैठनेकी कमानों।

वामयोग ( सं० पु० ) वासाय सुगन्धार्थं युज्यते इति युञ्ज  
घञ्। १ चूर्ण। २ गन्धद्रव्य चूर्ण। इसमें वस्त्रादि  
सुगन्धित किये जाते हैं, इसीसे इसका वामयोग नाम  
पडा है।

वासर ( सं० पु० स्त्री० ) वासयतीति वस अच् ( अस्ति  
कमि भूमि वमि देवि वामिभ्यश्चिन्त्। उण् ३।१३३ ) इति  
भर। १ दिवस, दिन। २ नागविशेष। ३ विवाह, रातिका  
शयनगृह, वह घर जिसमें विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष  
सुहाग रातकी सोते हैं।

वासरकन्यका ( सं० स्त्री० ) रात्रि, रात।

वासरकृत ( सं० पु० ) दिनकृत, सूर्य।

वासरकृत्य ( सं० स्त्री० ) दिनकृत्य।

वासरमणि ( सं० पु० ) दिनमणि, सूर्य।

वासरसङ्ग ( सं० पु० ) प्रातःकाल।

वासरा ( सं० स्त्री० ) वासुरा देखो।

वासराश्रीग ( सं० पु० ) सूर्य।

वासरेश ( सं० पु० ) सूर्य।

वासव ( सं० पु० ) वसुरेव प्रक्षा घण्। १ इन्द्र। ( स्त्री० )  
२ धनिष्ठा नक्षत्र।

वासवज ( सं० पु० ) वासवाज्जायते जन ड। वासवपुत्र,  
अर्जुन।

वासवदत्ता ( सं० स्त्री० ) १ निधिरति वणिक्की कन्या।  
२ सुवन्धुरचित कथाप्रन्धविशेष। सुवन्धु देखो।

वासवदत्तिक ( सं० पु० ) वासवदत्ता सम्बन्धीय।

वासवद्विग् ( सं० स्त्री० ) वासवस्य या दिक्। वासव-

सम्बन्धीय दिक्, पूर्वा दिशा। इन्द्र पूर्वादिशाके अधिपति  
है, इसी कारण वासवद्विग्में पूर्वादिशाका शोध होता है।

वामवावरज ( सं० पु० ) वासवस्य अवरजः पश्वाज्जातः।  
इन्द्रके अवरज, इन्द्रके पश्वाज्जात, विष्णु।

वामवावास ( सं० पु० ) वासवस्य आवासः। वासवका  
नाचाम, इन्द्रका आलय।

वामधि ( सं० पु० ) वासवस्य अगत्यं पुमान् वासव-इत्।  
वासवपुत्र, अर्जुन।

वासवी ( सं० स्त्री० ) वसोरपत्यं स्त्री वसु-अण्-डोप्।  
व्यासकी माता, सत्यवती, मत्स्यगंधा।

वासवेय ( सं० पु० ) वासवीके पुत्र व्यास। २ वामवका  
अपत्येक।

वासवे ( सं० स्त्री० ) वासवस्य वेश्म। वासगृह, वास-  
घर।

वासवेश्वरीर्ष ( सं० स्त्री० ) तीर्थमेव।

वासम् ( सं० स्त्री० ) वस्यनेऽननेनेति वस आच्छादने ( वस्-  
णित्। उण् ४।२१७ ) इत्यनुत्, न च-णित्। वस्त्र, कपडा।  
शास्त्रमें दूसरेके परिश्रेय वस्त्र पहननेमें मना किया है।

( मनु ४।६६ ) वस्त्र शब्द देखो।

वाससजा ( सं० स्त्री० ) वासां गृहं सज्जयतीति सज्ज-णिच्-  
अण् टाप्। आठ प्रकारका नायिकायामेसे एक। अखण्डता,  
उत्कण्ठता, लक्ष्मी, प्रीतिमर्त्तृका, कलहान्तरिता,  
वाजसजा, स्वार्थीनमर्त्तृका और अभिसारिका यही आठ  
प्रकारकी नायिका हैं। वाससज्जा देखो।

वासा ( सं० स्त्री० ) वासयतीति वस-णिच् अच्-टाप्।  
१ वासक, अडूसा। २ वासन्ती, माधवी लता।

वासुकुम्भाण्डखण्ड ( सं० पु० ) रक्तपित्तदोगाधिकारोक्त  
श्लेष्मण्डविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—अडूसा-मूत्रकी छाल  
६४ पत्र पाकाशं जल १६ सेर, ५० पल कुम्भाण्डस्य, इन्हे  
२ सेर घामे भुनना होगा। पीछे मधु जैसा उसका रंग  
होने पर उसमें चीनी, अडूसाका काड़ा और कुम्भाण्डस्य  
ये तीनों द्रव्य डाल कर पाक करे। पाक हो जाने पर  
मोथा, आमलकी, वज्रलोचन, करञ्जी, दारचीनी, तेजपत्र  
और इलायची प्रत्येक द्रव्य २ तोला, पलवालुक, सोंठ,  
धनिया, कालीमिर्च प्रत्येक एक पल और पीपल ४पल डाल  
कर अच्छी तरह मिलावे और तब नीचे उतार ले। इसके

बाद ठंडा हो जाने पर उममें १ सेर मधु मिमा कर छोड़ दे। इसकी मात्रा रोगीके बलानुसार १ तोकामे २ तोला स्थिर करनी होगी। इसक चैवतमे कास, श्वास श्वास, दिक्का, रक्तपित्त हलोग, हृद्रोग, मन्त्रपित्त और पीतम रोग प्रगमित होने हैं। रक्तपित्ताधिकारकी यह एक उदरप मीघ है। (भैरवप्रस्ता १ रक्तपित्तोगाधि०)

वामाश्रय (सं० पु०) रक्तपित्तगायिकासुरोक्त औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—१०० सेर जलमें १०० घण्टे मद्धूमक मूलकी छाल डाल कर पाक करे। जब काढ़ा २५ मर रह जाय तब उममें १०० पल चीनी डाल कर फिर पाक करे। अनंतर उपयुक्त समयमें ८ सेर हरीतकी का गुण डालना होगा। इसके बाद पाक स्थिर होने पर २ पल पीपलका मूल तथा १ पल बरसीमो छोड़ कर नीचे उतार ले। उबड़ा होने पर १ मर मधु मिलावे। मात्रा रोगीके बलानुसार स्थिर करनी होगी। इसक मयमने रक्तपित्त, पात्र, श्वास और यक्ष्मा आदि काम रोग तप दाते हैं। (भैरवप्रस्ता १ रक्तपित्तोगाधि०)

वासालय (सं० पु०) वासल्य आगरा। वासयुद्ध, वाम श्वास। पर्याय—भोगयुद्ध श्वास, पर्याय, निरुद्ध। (विश्व०)

वामाश्रय (सं० पु०) धूमिषविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—मद्धूमकी छाल १ पल और मूय कुक मिला कर ८ सेर, जब १६ म शेष १६ मर उबड़के स्थिमे मद्धूमका पुण्ड ४ सेर, धी ४ सेर, इष्टे घृतपाकके नियमानुसार पाक करना होगा। घृतपाक शेष होने पर जब ठंडा हो जाय तब उममें ८ पल मधु मिलाया होगा। इसक मयमने रक्तपित्तोग प्रति शाप्र नष्ट होते हैं। (भैरवप्रस्ताधि० रक्तपित्तोगाधि०)

वामाश्रयतापनेत्र (सं० पु०) कामाधिकारोक्त कीनी पत्रविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—निर्मल १६ सेर, कांडे क विष मद्धूमका छाल १२३ मर मल ६४ सेर, शेष १६ सेर, क्षाल ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ मर, रक्त पित्त, गुग्गुलु, परबू, इगमूल और पट्टणारी प्रत्येक २५ मर मल ६४ मर, शेष १६ सेर, इष्टिका पानी १६ सेर बरसायें रक्तपित्त रोग, कृमि, धमनी, धमनीयानुमो पारकीने, इत्यादी, तेजस्य पापममूम मी प्रहामेद,

लिकट्ट, राम्ना, मुविडो, शैलज, कपूर, कुट्ट, दिक्काक मियंघु बड़ेका प्रत्येक १ पल, मल पाकके नियमानुसार इस तेजस्य पाक करता होगा। इस शैलकी मालिस करने से वास, उपर, रक्तपित्तपाण्डु आदि रोग ज्ञान रहत हैं। (भैरवप्रस्ता कामोगाधि०)

वासालय (सं० लि०) वसाति अनपद मगधयो।

वासालय (सं० पु०) वसाति अनपद।

वासालयिक (सं० लि०) विद्यागारमय।

(महामाल नेककठ)

वामाश्रय (सं० पु०) मयउद्ध औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मद्धूमकी छाल २ सेर, पाकके स्थिमे जल १६ सेर, शेष ४ सेर, नियमपूर्वक पाक करके काढ़ा तट्टपाक करे। पीछे छाल कर उममें एक सर चीनी मीर एक पाय धी मिमाके मीर फिरसे पाक करे। सेहवत् हो जाने पर एक पाय पीपलमूल डाल कर अच्छी तरह मिलावे। बादमें नीचे उतार कर उबड़ा होने पर १ सेर मधु मिलावे। यह शकसेह शक्यक्ष्मा काम, श्वास और रक्तपित्त आदि रोगनाशक माना गया है। (भैरवप्रस्ता कामाधि०)

(भैरवप्रस्ता कामाधि०)

यह औषध वासालयेद और घृष्टवामाश्रयेदक भेदसे दो प्रकारकी है।

वामाश्रय (सं० स्त्री०) हृत्तमूया। (वैष्णवि०)

वासि (सं० पु०) घस निवास (वति वति वति रात्रीति) उष् ५, १२४ इति प्रम। कुट्टारमेद, वसुला।

वासिना (सं० स्त्री०) वासैव स्वार्थे नञ् टाप् भत इत्यं।

वामर, मद्धूम।

वासित (सं० स्त्री०) वास्यते स्मेति घास क। १ यत वक्षीका शब्द। २ क्षानमात्र। (लि०) ३ सुतस्मीहृत सुपथित क्रिया हुआ। पर्याय—मासिन। ४ दधात, महाहर। ५ वज्रपेष्ठित, कपड़े से टका हुआ। ६ आश्री कृत पीला किया हुआ। ७ वप्युं पित, वामी। ८ पुरा तन पुराता

वासिना (सं० स्त्री०) वासयतीति वस निवासि निष् टाप्। १ स्त्रीमात्र। २ करिणा, हविनी। ३ कपूर शोकरके मतमे व्यापी उष्णता एक मर। उममें ६ गुक और ३३ मधुपर्ण होते हैं।



वासिन् ( सं० त्रि० ) वासकारी, वसनेवाला ।  
 वासिनो ( सं० त्रि० ) वासोऽस्या अस्तीति वाम इनि  
 डीप् । शुष्ककिण्डि, सूखी कठसर्पैया ।  
 वासिल ( अ० वि० ) १ प्राप्त, पहु चाया हुआ । २ मिला  
 हुआ, जो वसूल हुआ हो ।  
 वासिलात् ( अ० पु० ) वह धन जो वसूल हुआ हो, वसूल  
 हुए धनका योग ।  
 वासिष्ठ ( सं० त्रि० ) वसिष्ठेन कृतमित्यण् । १ वसिष्ठ-  
 सम्बन्धी । ( पु० ) २ कथित, रक्त । ३ वसिष्ठकृत योग  
 शास्त्रादि, योगवाशिष्ठ ।  
 वासिष्ठरामायण ( सं० क्ली० ) योगवाशिष्ठ रामायण ।  
 वासिष्ठसूत्र ( सं० क्ली० ) वसिष्ठरचित सूत्रग्रन्थ ।  
 वासी ( सं० स्त्री० ) वासयतीति वासि अच् गौरादित्वान्  
 डीप् । १ तक्षणी, वसूला जिससे बढ़ई लकड़ों को लाने  
 हैं । ( त्रि० ) २ वासिन देखो ।  
 वासीफल ( सं० क्ली० ) फलविशेष ।  
 वासु ( सं० पु० ) सर्वोऽत्र वसति सर्वनाम्नी वसतीति  
 वस-वाहुलकात् उण् । १ नारायण, विष्णु । २ परमात्मा,  
 श्रीनिवास । ३ पुनर्वसु नक्षत्र । ( उण् १११ उज्ज्वल )  
 वासुकी ( सं० पु० ) वसुकस्यापत्यमिति वसुक-इञ् ।  
 अहिपति, आठ नागोंमेंसे दूसरा नाग । पर्याय—सर्पराज ।  
 मनसा पूजाके दिन अष्टनागकी पूजा करनी होती है ।  
 वासुकेश ( सं० पु० ) वसुकस्यापत्यमिति वसुक ङञ् ।  
 वासुकि ।  
 वासुकेशस्व ( सं० स्त्री० ) वासुकेशस्य वासुकेशः स्वसा  
 भगिनी । मनसादेवी ।  
 वासुदेव ( सं० पु० ) वसुदेवस्थापत्यमिति वसुदेव  
 ( ऋष्यन्धकृष्णिकुरन्म्यञ्च । पा ४।१।१४ ) इति अण्,  
 यद्वा सर्वलासी वसत्यात्मरूपेण विश्वम्भरत्वादिति वस  
 वाहुलकादुण्, वासु, वासुष्वासी देवश्चेति कर्मधारयः ।  
 श्रीकृष्ण । पर्याय—वसुदेवभू, सन्ध, सुभद्र, वासुभद्र,  
 पद्मङ्गजित्, पद्मविन्दु, प्रशिनश्रृंग, प्रशिनमद्र, गदाप्रज,  
 मार्ज, वसू, लोहिताक्ष, परमाण्वङ्क । ( शब्दमाला )  
 वासुदेवकी नामनिरुक्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार  
 लिखा है :—

“मर्षदामो मरतन्व वसन्थयेति वै यतः ।  
 ततः म वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगोयते ॥”

( विष्णुपुराण १० अ० )

समी पदार्थ जिनमें वाम करने हैं तथा समी  
 जगद् जिनका वास है और जिनमें सर्वजगत् उत्पन्न होता  
 है तत्त्वदर्शियोंने उन्हींका नाम वासुदेव रखा है । विष्णु-  
 पुराणमें दूसरी जगद् भी वासुदेवका नामनिरुक्ति देखी  
 जाती है । ब्रह्मवैवर्तेपुराणमें लिखा है, कि वाम यथान्  
 जिनके लोमकूपनिकरमें समी विश्व अग्रियत हैं, वह  
 सर्वनिवास महान् विराट् पुरुष है, उसके देव अर्थात्  
 प्रभु परब्रह्म हैं, इन्हींमें समी घेद, पुण्ड्र, इनिहाम और  
 चार्त्तमिं वासुदेव नाम हुआ है :

“वामः भर्षनिगमस्य विश्वानि यस्य लोमसु ।

तस्य देवः परब्रह्म वासुदेव इतीरितः ॥

वासुदेवेति तन्नाम त्रैदेषु च चतुर्थु च ।

पुराणैस्त्वेतिहासेषु याथादिषु च दृश्यते ॥”

( ब्रह्मवैवर्तेपु० श्रीकृष्णार्जवम० ८२ अ० )

भाद्रकृष्णाष्टमी तिथिको भगवान् विष्णुने वसुदेवसे  
 देवकीके गर्भमें जन्मग्रहण किया ।

विशेष विवरण दृश्य जट्टमें देखो ।

वासुदेव मन्त्र और पूजादिका विषय तन्त्रसारमें  
 इस प्रकार लिखा है—

‘श्री तमो भगवते वासुदेवाय’ वासुदेवका यही षाडशा  
 क्षमन्त्र है । यह मन्त्र कलयनरूप है । इसी मन्त्रसे  
 वासुदेवकी पूजा करनी होती है । पूजा-प्रणाली इस प्रकार  
 है—पूजाके नियमानुसार प्रातःकृत्यादि पीठन्यास तक  
 कार्य समाप्त करके कराङ्गन्यास करना होगा ।

इसके बाद मन्त्रन्यास करना होता है । न्यास करने  
 के बाद मूर्त्तिपूजा न्यास और व्यापकन्यास करके वासुदेव  
 का ध्यान करना होता है । ध्यान इस प्रकार है—

“विष्णुं गारुडचन्द्रकोटिवदत् रश्मिं रथाङ्गं गदा—

मम्भोजं दधत शिताञ्जनिलयं कान्त्या जगन्मोहनम् ।

भावदाह्वारकुचवदनमहामौलि स्फुट कङ्कणं ॥

श्रीवत्साङ्गपुदार कौस्तुभवरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥”

इस प्रकार ध्यान करके मनसोपचारसे पूजा करनेके  
 बाद गृह्ण स्थापन करना होता है । पीठपूजा करके फिरसे

प्याय करे। पाछे भाबाइन और नियमपूर्वक पोड़ुगोय कारन पूजा करके पञ्च पुष्पाञ्जलि द्वारा भावरण और इयताकी पूजा करना होगी। श्रैमे—अलि नैमूज वायु और ईशान इन चार कोलोमें, इच्छम तथा पूर्वादि चारों दिशामें भी दृक्पाय लम, भी जितम स्वाहा, भी जित्तये वयट, भी वक्पाय कुं भी लल्लवाय वीपट, इस पञ्चाङ्गकी पूजा करके प्राग्वादि प्राक्तिके माघ वासुदेवादि और अश्रादिको पूजा पाछे इन्द्रादि और अश्रादिको पूजा करके पूर्वादि बिमर्जन तक समी कर्म समाप्त करती दात है। यह मन्त्र पुरश्चरण करनेमें बाह्य मान्य रूप और अघका उजाग होम करता होगा। (उत्तरनाम)

वासुदेव—१ सुप्रसिद्ध शकाधिय। उत्तर भारत इतक अघि कारमें था। उरुगमर्जन इनो।

२ वाराणसी अञ्चलके एक राजा। ये काशीके एक टोकाकार रामानन्धके प्रतिपालक थे।

३ एक प्राचीन कवि। गुमापिताबन्धो और युक्ति कर्णामूर्तिमें इनकी कविता उद्धृत हुई है। ये मरुण्ड वासु देव नामसे भी प्रसिद्ध थे। मदन वासुदेव नामक एक दूसरी कविका नाम मिलता है, ये मरुण्ड वासुदेवसे भिन्न थे।

४ एक वैद्यक ग्रन्थकार, वासुदेवानुभवक रचयिता, सेमाहित्यके पुत्र। रसराजबन्धो नामक वैद्यग्रन्थमें इनका मत उद्धृत हुआ है।

५ मूर्ध्निमकरन्धु टोकाके रचयिता।  
६ कात्यायनधौतसूत्रक एक प्राचीन टोकाकार। मन्त्र और रूपमहान इनका मत उद्धृत किया है।

७ हृत्विश्वोपिका नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता।  
८ कौशिकसूत्रपद्धति नामक अथर्ववेदोप संस्कार पद्धतिकार।

९ एक प्रसिद्ध ज्योतिषी, ज्ञानसुद्ध, मघनासा और धोरपरात्मक रचयिता।

१० कल्पवासा एक प्रसिद्ध कवि। इन्द्रादि त्रिपुर इतक समरतन सुषिष्टिरक्षित्रय और वासुदेवत्रिजय आदि काव्योंकी रचना की है।

११ धातुकारणक रचयिता। भाव नामसे नामसे भी प्रसिद्ध थे।

१२ स्वायररनायको नामक व्यायसिद्धान्तमञ्जरीके टोकाकार।

१३ व्यायसारण्यपञ्चिकाके रचयिता।

१४ पयोस्तावद्वि नामक स्मार्त्तग्रन्थक प्रणेता।

१५ एक वैद्यकग्रन्थ। माघशीय धातुपूर्तिमें इनका मत उद्धृत हुआ है।

१६ धीमद्रुमागवतके १०म स्कन्धकी सुधरञ्जिनी नामकी टोकाक रचयिता।

१७ वास्तुप्रदाय नामक वास्तु सम्बन्धीय ग्रन्थके रचयिता।

१८ शाङ्ग उपायमयुद्धसंग्रहक प्रणेता।

१९ धृतबोधप्रबोधिनीकी धृतबोधटीकाके रचयिता।

२० सारम्भतमसाद् नामक सारम्भन व्याकरणक टोकाकार।

२१ प्रमाकरमहक पुत्र कर्पूरमञ्जरीप्रदाग और पयोऽहममर्षनप्रकार नामक मोर्मासाग्रन्थके प्रणेता।

२२ द्वियेशी धीपतिके कनिष्ठ पुत्र भाष्यार्थव्यप्रमिता इतक रचयिता।

वासुदेव अचरित्—एक प्रसिद्ध मीमांसक, शारेम्भक शिष्य और महादेव धामपेयोके पुत्र। इनके नामसे हुए श्रीपाठशीय पशुप्रयोग पशुनृष्यपरिचर, प्रयोगवत्न, महात्मिनपनप्रयोग, बाष्पावनीय महात्मिनान्य, मोर्मासा पूज्यम्, पाञ्चिकमर्षव्य, साबित्तादि काठकथन मोम नागिका और वासुदेवर् सितकारिका आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

वासुदेव (सं० पु०) वासुदेव अणु तथा स्मार्त्त वद्। वासुदेव, धाहणवद्।

वासुदेव बहिवकचरसी—ताराविद्यामोक्ष नामक नागिक ग्रन्थक प्रणेता।

वासुदेवकन—अज्ञेयप्रदाग और कीर्त्यासक प्रणेता।

वासुदेवशास्त्रिन—१ वाक्कवसुशास्त्रिक प्रणेता। २ धाम मनातना नामक व्याकरणक रचयिता।

वासुदेव अकारिण इनो।

वासुदेव द्विवेदा—साहस्यनरुद्रोपक प्रणेता।

वासुदेवधिय (सं० पु०) इत्यमिय।

वासुदेवप्रियङ्गु ( सं० ख्री० ) वासुदेवस्य प्रियङ्गुः ।  
 प्रतावरी । ( सं० ख्री० ) २ श्रीकृष्णकी प्रियकारिणी ।  
 वासुदेवोपनिषद् ( सं० ख्री० ) उपनिषद्भूमेद् ।  
 वासुदेवमठ गालिगोव—उद्योगशुमीमांसाके रचयिता ।  
 वासुदेव यतान्द्र—वासुदेवमनन और विवेकमकरन्द नामक  
 वेदान्ति त ग्रन्थके रचयिता ।  
 वासुदेववर्गीग ( सं० ख्री० ) वासुदेवमक ।  
 वासुदेवजर्मा—वैद्यायनोर श्रीतप्राप्रचितचन्द्रिका और  
 मद्यस्त्रीके रचयिता ।  
 वासुदेवजाम्ना—रामोद्वक्तकाव्यके प्रणेता ।  
 वासुदेव सार्वभौम—नवद्वीपके एक प्रधान नैयायिक ।  
 १५० वर्षों में ये विद्यमान थे । कहते हैं, कि वासुदेवके  
 पिता महेश्वरविजयारद मठाचार्य एक स्मार्त्त पण्डित थे ।  
 वासुदेवने थोड़े ही दिनोंमें पितासे काव्य, अलङ्कार और  
 स्मृतिशास्त्र साख लिये थे । किन्तु इतनेसे इतनी  
 तृप्ति न हुई । वे न्यायशास्त्र सीखनेके लिये मिथिला  
 चले गये । उस समय मिथिला ही न्यायशास्त्र-शिक्षाकी  
 प्रधान स्थान समझी जाती थी । वासुदेवकी  
 यही इच्छा थी, कि वे मिथिलामें समस्त न्यायशास्त्रोंको  
 कण्ठस्थ कर नवद्वीपमें न्यायशास्त्रकी अध्यापना करें ।  
 उन्होंने गङ्गेजीवाधरायके चार खण्ड त्रिन्तामणि ग्रन्थको  
 आद्योपान्त कण्ठस्थ कर लिया । पीछे कुसुमाञ्जलि  
 सुब्रह्मण्य करनेके समय उनके उद्देश्यकी सवोंको पता चल  
 गया । फलतः वे कुसुमाञ्जलिको कण्ठस्थ न कर सके ।  
 उनके गुरु प्रसिद्ध नैयायिक पक्षधर मिश्र थे । गुरुसे  
 इन्होंने 'सार्वभौम'की उपाधि पाई । इसके बाद नव-  
 द्वीप आ कर इन्होंने न्यायका टोल खोला । रघुनाथ  
 गिरीमणि आदि इनके शिष्य थे । सार्वभौम मठाचार्य  
 ने नवद्वीपमें टोल खोला सही, पर नवद्वीपसे न्यायका  
 उपाधि नहीं मिलता थी । सार्वभौमके शिष्य रघुनाथ  
 गिरीमणिले पक्षधरको पगस्त कर नवद्वीपमें प्रधानता  
 स्थापन की । उसीके साथ साथ न्यायके उपाधिदानका  
 सूत्रपात हुआ ।

जयानन्दके चैतन्यमङ्गलमें जाना जाता है, कि महा-  
 प्रभु चैतन्यदेवके जन्मकालमें नवद्वीप पर मुसलमानोंने  
 घोर अत्याचार किया था । मुसलमानोंके उत्पीड़नसे

तंग आ कर बृद्ध विजयानन्द चाराणसी और सार्वभौम  
 मठाचार्य पण्डित सार्वभौम उद्योगमें जा कर रहने लगे ।

उन्कालमें जा कर सार्वभौम उद्योगपति प्रतापकृष्णके  
 समापण्डित हुए थे । महाप्रभु पुरीगाम जा कर सार्व-  
 भौमसे मिले । यहाँ उनके साथ सार्वभौमका शास्त्रार्थ  
 हुआ महाप्रभुके प्रभाव होने महाप्रसाद पर उन्हें विश्वास  
 हुआ । चैतन्यचरितामृतके सार्वभौमको मतसे चैतन्यदेव-  
 ने पदभुज मुर्त्ता दिव्यदर्श थी । तभीसे सार्वभौम  
 महाप्रभुका अवतार जान कर उनके शिष्य हो गये । वासु-  
 देवने सम्कृत भाषा में चैतन्यदेव का जो स्तर रचा है वह  
 आज भी वैष्णवसमाजमें प्रचलित है । इसके विवा इन्होंने  
 तत्त्वचिन्तामणिनामक एक "सार्वभौमनिहति" नामक  
 एक व्याकरणकी भी रचना की थी ।

वासुदेव मृत्प्रसिद्ध आडवन्दल वन्द्यके वंशमें उत्पन्न  
 हुए थे । केवल वासुदेव ही नहीं, इस वंशमें कितने  
 पण्डित जन्मग्रहण कर ब्रह्मादी नामको उद्भव कर  
 गये हैं । प्रसिद्ध भ्रातृदीपिकाकार दुर्गादास विद्यावागीश  
 महाशय सार्वभौम मठाचार्यके पुत्र थे ।

सार्वभौम वंशोंमें गोविन्द न्यायवागीशके वंशके लोग  
 आज भी नटिया जिले में आडवन्दों ग्राममें वास करते  
 हैं । गोविन्द न्यायवागीश वासुदेवसे कितनी पीढ़ी नीचे  
 थे, उनका पता आज तक नहीं चला है । गोविन्द न्याय-  
 वागीश नवद्वीपमें ही रहते थे । वे नवद्वीपपति राधकके  
 समापण्डित थे तथा उनसे एक हजार बीघा जमीन ब्रह्मो-  
 त्तम वा कर आडवन्दों ग्राममें आ कर बस गये । इस  
 ब्रह्मोत्तरका जो मन्द मिली थी उसकी तारीख १०६७  
 साल १११६ फाल्गुन है ।

वासुदेवसुत—पद्मचिन्तिका नामक ज्ञानिग्रन्थके रच-  
 यिता ।

वासुदेवसेन—एक प्राचीन बङ्गाय कवि । सद्भक्तिदर्शना-  
 मृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है ।

वासुदेवानुभव ( सं० पु० ) वासुदेवमें अनुराग ।

वासुदेवाश्रम—मोक्षार्थार्थद्वैतनिष्ठाके प्रणेता ।

वासुदेवन्द्र—एक प्रसिद्ध वैदान्तिक ग्रन्थकार । ये राम-  
 चन्द्र, ब्रह्मसमीक्षा आदि वैदान्तिक ग्रन्थ हैं । इनके बनाये  
 हुए अपरोक्षानुभव, आचार्यवृत्ति ( योग ), आत्मबोध,

श्राद्धसूचीका नामक अक्षरानुसूचकोबा, मन्त्रप्रकरण, महावाक्यविपर्यय विवेकमकरण्य भादि ग्रन्थ मिलते हैं।

उक्त वास्तुवेदग्रन्थे जिनमें अथवा नाम दिया कर गुरुके अनुबन्धी हा तदर्थेवाय और पौडगधर्म नामके दो छात्रे दार्शनिक ग्रन्थ लिखे थे।

वासुपूष्य (स० पु०) वास्तुमूर्तापण इव पुत्र्यः। जिन विशेष। जैन ग्रन्थमें वस्तुन विवरण देला।

वासुमद्र (सं० पु०) वास्तुवेद, श्रीहृण्य।

वासुमत (स० जि०) वस्तुमत सत्यम्भोय।

वासुगन्ध (स० स्त्री०) माममेद्र।

वासुग (सं० स्त्री०) १ श्लोकात्। २ करिष्ठी, हृषिणी। ३ राजि रात। ४ मूर्ति, जमीन।

वास्व (सं० स्त्री०) वास्वतम्भुदे इति वास वाहुमवात् इ। नाटकोंकी परिभाषामें स्त्रियोंके लिये स बोधनका शब्द।

वासोद (सं० जि०) वासो द्यातीति वा क। बस्त्रदाता, वस्त्रदान करनेवाला। श्रुत्येदमें लिखा है, कि बस्त्रदान कारो धर्म्युक्तोक्तो ज्ञाते हैं।

गीर्णवरा मयुक्त मन्त्र नारादाः एव।

(शुक्ल १।१००।२)

वासोमून् (सं० जि०) वासो विमर्शति मृ क्विप् तुञ् च। वस्त्रधारी।

वासोमुग (सं० स्त्री०) वस्त्रह्वय परिधेय वस्त्र और उच्छरोय।

वासीकल् (सं० स्त्री०) वामाव भोका स्थानं वासपूरः।

वासत (सं० पु०) छाग बकर।

वास्तव (सं० स्त्री०) वस्तुवेय वस्तु-अण्। पदार्थ प्रकृत, सत्य। प्रकृ ही वस्तु व प्रकृत सिवा सयो ब्रह्म पञ्चस्तु है। वस्तुका अर्थ और वस्तुका कार्य जगत् है। ये सब वस्तु वस्तुमें वृष्टक नहीं हैं। वास्तव शब्दके परमात्मा प्रकृत हो बोध होता है।

वास्तविक (स० पु०) वास्तव वस्तु-उक्। परमार्थ, सत्य, प्रकृत। २ वगार्थ, डाक।

वास्तवोपा (सं० स्त्री०) राजि, रात। यह दो शब्दक मङ्ग ले बना है, वास्तव+उपा। वास्तवका अर्थ सङ्घट्टे स्थान और उपाका अर्थ कामु ही स्त्री होता है अर्थात्

जिन समय वापिका सङ्घट्टे स्थानमें जायककी बात आती है उस समयको वास्तवोपा कहते हैं।

वास्तव्य (सं० जि०) यस्तानि वस (वस्तव्य कर्त्तरि णिष्ण)। पा १।१।६। कर्त्तरि णिष्णत्। १ वास्तकर्ता, बगनेवाला। २ वामयोग रहनकायक। (पु०) ३ वसति, गन्ने जगदी।

वास्तिक (सं० जि०) छागसमुद्र, बकरोंका मुड। (जि०) २ छागस र व बरेका।

वास्तु (सं० स्त्री०) १ वास्तु- २ वस्तुवा। (पानि०) (पु० स्त्री०) २ वसन्ति प्राणितो यत्न, वस निवास वस (भगते णिष्ण)। ण्य १।१००। इति मुद्र सप्त णिष्णत्। वृद्धवययोग्य मूर्ति धर वताने लायक जगद। पर्याय—विश्वम् पोट काटी वाटिका वृद्धपोतक। (कथारत्ना०) शुभनिवासयोग्य स्थान। (शुक्ल १।१५।६।)

वासुस्थानको वास्तु कहते हैं। वास करनेसे पहले वास्तुका शुभाशुभ स्थिर करके वास करना होता है। लक्षणवादि द्वारा इसका निर्णय करना होता है। कि कौन पशु शुभजनक है और कौन नहीं, यदि वास्तु शुभ हो तो वृद्धवयक पदवर्द्धन शुभ होता है। इस कारण सबसे पहले वास्तुका स्थान स्थिर कर लेना आवश्यक है। जो देवता स्थान प्रदण करत है वही देवता उस स्थानके अधिपति होते हैं। गोत्रे प्रकृता उस देवमय वृद्धवयको वास्तुपुत्ररूपमें कल्पना कर लेते हैं।

बराहसिद्धिको वृद्धवय जिनमें लिखा है—जगत्में जितने वास्तुपुत्र हैं वे पाँच भागोंमें विभक्त हैं। उनमें स पद्मा उत्तम दूसरा वहससे अथम और तीसरा अससे गो अथम है, इत्यदि।

सबसे पहले रजाक मङ्गलका परिमाण लिखा जाता है। राजपुत्र पाँच प्रकारका होता है। उनमेंस जिस की सम्बाध एक मी भाठ हाथ और बीड़में एक सी पै ताम दाघ होगा, वही शुद्ध उत्तम है। बाकी चार प्रकारक पुत्रोंका सम्बाध और बीड़में कमशा ८ हाथ कम होगा। प्रिस—२४—सम्बाध १२५ बीड़में १००; ३४—४०—११५ बी० ६२; ४५—४०—१०५ बी० ८४; ५५—४०—१५ बी० ८५ हाथ। सेनापतिके घरके मी

वही पान भेद हैं। उनमेंसे उत्तम गृहकी चौड़ाई ६४ हाथ और लम्बाई ७४ हाथ १६ उंगली। इसी प्रकार दूसरा—चौ० ५८, ल० ६७ ८। तृतीया—चौ० ५२, ल० ६०-१६। चतुर्थी—चौ० ४६, ल० ५३ १६। पंचमी चौ० ४२, ल० ४६ हाथ १६ उंगली। मन्त्रियोंके जो पान प्रकार के घर होंगे उनमेंसे प्रथम प्रकारकी चौ० ६० हाथ होगी। बाकी चारमें चार चार कम अर्थात् प्रथमक्रम ५६, ५२, ४८, ४४ होंगी। लम्बाईका परिमाण चौड़ाईमें उसका आठवा भाग जोड़नेसे स्थिर करना जाना है। जैसे—पहले घरकी लम्बाई ६७ हाथ १२ उंगली, उसे ६३० अंशकी ५८ हाथ १२ उ०, ४थेकी ५४१० और ५थेकी ४६ हाथ और १२ उंगली होगी। इन सच्चिवोंके घरकी लम्बाई और चौड़ाईका आधा राजमहिषियोंका घर होगा। युवराजके भी घर पांच प्रकारके होते हैं। उनमेंसे उत्तम घरकी चौड़ाई ८० हाथ और बाकी चारकी चौड़ाई ६ हाथ करके कम होगी। चौड़ाईका तिहाई भाग चौड़ाईमें जोड़ कर उन सब घरोंकी लम्बाईका परिमाण स्थिर करना होगा। सभी उत्तम गृहोंके परिमाणका आधा युवराजके छोटे भाइयोंका होगा। राजा और मन्त्रीके घरोंमें जो अन्तर होगा वही सामन्त और श्रेष्ठ राजपुरुषोंका गृहपरिमाण है। उत्तम क्रमसे चौड़ाई—४८, ४४, ४०, ३६ और ३२ हाथ। फिर उत्तम क्रमसे लम्बाई ६७ हाथ १२ उ०; ५१, ०; ४५ हाथ १२ उ०। राजा और युवराजके घरमें जो अन्तर होगा, वही कंचुकी, वैश्य और नृत्यगीतादि जाननेवाले व्यक्तियोंका गृह परिमाण जानना चाहिये। उत्तमादि क्रमसे लम्बाई जैसे—२८, ८; २६, ८, २४, ८, २२, ८, और २०, ८ उंगली। उसकी चौड़ाई, जैसे—२८, २६, २४, २२, २० हाथ। सभी अध्यक्ष और अधिकृत व्यक्तियोंका गृह मान, कोपगृह और रतिगृहके परिमाणके समान होगा। फिर युवराज और मन्त्रिगृहमें जो अन्तर होगा वही कर्माध्यक्ष और दूतोंका गृह परिमाण है। इसकी चौड़ाई २०, १८, १६, १४ और १२ हाथ तथा लम्बाई ३६, ४, ३५, १६, ३२, ४; २८, १६, २५ हाथ ४ उंगली होगी। देवळा पुरोहित और चिकित्सकके उत्तम गृहकी चौड़ाई ४० हाथ निर्दिष्ट है। वैसा गृह भी पांच

प्रकारके होते हैं, इस कारण अन्यान्य गृह यथाक्रम ४ हाथ कम होगा। फिर पडभागयुक्त चौड़ाईका मान ही उनका यथाक्रम देव्यमान (लम्बाई) होगा। पृथुत्वमान यथा—४०, ३६, ३२, २८ और २४ हाथ है; देव्यमान यथा—४६, १६, ४२, ०, ३७ १६; ३२ १६ और २८ हाथ है।

वास्तुगृहका जो विस्तार होगा वह यदि उच्छ्राय हो, तो शुभप्रद होता है। किन्तु जिन सब गृहोंमें भिन्न एक ग्राह्य है, उसकी लम्बाई चौड़ाईसे दूनी होगी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डालादि हीन जातियोंमें किम् जातिका वास्तुगृह पर क्रिया अधिकार है और उस गृहके व्यासका परिमाण कितना होगा, इसका भी विषय बराहमिहिरने इस प्रकार लिखा है,— ब्राह्मणादि चारों वर्ण और हीन जातिके लिये उत्तम वास्तु व्यासकी चौड़ाई ३२ हाथ होगी इस वत्तोससे तब तक ४ की संख्या वाढ देनी होगी, जब तक १६ न निकट जाये। इस समय ३२ में ४ वाढ देनेमें १६के न निकटने तक ५ अङ्क होने हैं; यथा—३२, २८, २४, २० और १६। यही पांचों अङ्क ब्राह्मण जातिके उत्तमादि वास्तुका पृथुत्व व्यास है तथा इन्हीं पांच प्रकारके वास्तुओं में उन सब जातियोंका अधिकार है। फिर ब्राह्मण जातिके द्वितीय वास्तुगृहके पृथुत्वमानकी संख्या २८में शेष १६ पर्यन्त ४ अङ्कोंमें क्षत्रिय जातिके लिये वास्तुका परिमाण और अधिकार कहा गया। तृतीय अङ्कमें वैश्यका, चतुर्थसे शूद्रका और पञ्चम अन्त्यज चाण्डालादि हीन जातिका वास्तुमान और उनका अधिकार निर्णय है। पृथुत्वका अङ्कद्वित्यास इस प्रकार है—

	उत्तम	मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण ३२	२८	२४	२०		१६
क्षत्रिय २८	२४	२०	१६		०
वैश्य २४	२०	१६	०		०
शूद्र २०	१६	०	०		०
अन्त्यज १६	०	०	०		०

इससे समझा गया, कि ब्राह्मण इस प्रकारके पृथुत्व व्यासयुक्त पांच गृहोंके, क्षत्रिय चारके, वैश्य तीनके, शूद्र

हाके और अत्यन्त एक प्रकारके गृहके अधिकारके थे।  
 पूर्वोक्त पृथुत्व मानमें यथाक्रम इतका दशांश भ्रष्टांश,  
 यद्वा भीरु चतुर्थांश जोड़ देनेसे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके  
 वास्तुमननका व्यासदीर्घ निर्णय होगा; किन्तु अत्यन्त  
 जातिके व्यवमानका जो पृथुत्व होगा वही दीर्घ माना  
 गया है।

उत्तम	मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण ३५४ ४८	१०११११२	२६११३६	२२	१०१४०४
क्षत्रिय ३१११२	२०	२५११२	१८	•
वैश्य २८	२३११६	१८८	•	•
शूद्र २५	२०	०	•	•
अत्यन्त १६	•	•	•	•

राजा और सेनापतिके गृहमें जो अन्तर होगा वही पौष  
 गृह और रतिगृहका परिमाण होगा। पृथुत्व—४४ ४२,  
 ४०, ३८, ३६, हाथ; दीर्घ— ६० ८, ५१६, ५४८, ५१८  
 और ४८ हाथ ८ उगली।

कोपगृह या रतिगृहके साथ सेनापति और चातुर्धर्म्य-  
 के वास्तुमानका अन्तरमान ही राजपुरुषोंके वास्तुगृहका  
 परिमाण होगा; अर्थात् राजपुरुष यदि ब्राह्मण हो तो  
 ब्राह्मण वास्तुके व्यासको सेनापतिके वास्तुमान व्याससे  
 घटा कर जो बचेगा उसीके अनुसार वे अपने पौष गृह  
 तैयार करें। राजपुरुषके क्षत्रिय होने पर उन्म वास्तु  
 मानको संशोपतिके वास्तुमानके द्वितीयाङ्कसे घटावे।  
 वैश्य होने पर तृतीयोपाङ्कसे तथा शूद्र होने पर चतुर्थोपाङ्कसे  
 वास्तुमान घटा कर अधिकारानुसार गृहादि निर्माण  
 करे।

पारण्य मूर्दांसिक्त और अम्बु भान्दि जातियोंके  
 गृह निर्माण स्थानमें अथन अपने परिमाणके योगका अर्धके  
 समान गृह होगा अर्थात् सङ्कर जाति जिन दो जातियोंमें  
 उत्पन्न हुए हैं उन दो जातियोंके गृहका पृथुत्व और दीर्घ  
 मान योग कर उनका अर्धकमानसे अपने अपने वर्णों  
 पर बनावे होंगे। सभी जातियोंके लिये अथन अपने परि-  
 माणके कम या अधिक वास्तुका परिमाण अधुनप्रद होता  
 है। परमाथ्य प्रवृत्तिकारण व्याप्यागार मन्नागार,  
 अग्निगावा और रविगृहोंका परिमाण इच्छानुसार किया  
 जा सकता है। किन्तु कोई भी गृह जो हाथमें अधिक

नहीं होता चाहिये वही शास्त्रकारोंका अभिप्राय है।

सेनापतिगृह और लृपगृहके व्यासगङ्को अन्तरमें  
 जोड़ कर उनमें फिर ७० जोड़ दे। पीछे उनमें यथाक्रम  
 १४ का भाग देनेसे जो भागफल होगा वही शास्त्र  
 अर्थात् घरका भीतरी परिमाण है। फिर इन दो विमलक  
 अङ्कोंमें १५ का भाग देनेसे अल्पिन्व अर्थात् शास्त्राधिकिके  
 परिमाणका योगानुगत अङ्कविशेषका परिमाण होगा।  
 यह राजाके लिये है। अन्य जातीय व्यक्तियोंके अन्तरी  
 शास्त्र और अल्पिन्वमान निकालनेमें राजा और सेनापति  
 के गृहके दोनों व्यासोंके योगफलमें अधिकारके अनुसार  
 सजातीय व्यासः घटा कर उसमें ७० जोड़ दे। पीछे  
 उसके भागे १४ और १५से भाग देने पर यथाक्रम शास्त्र  
 और अल्पिन्वका परिमाण मिलेगा।

पहले ब्राह्मणादि चारों वर्णोंका गृहव्यास २ इन्हादि  
 रूपमें कहा गया है उसमें यथाक्रम ४ हाथ १७ अंगुल  
 ४ हाथ ३ अंगुल, ३ हाथ १५ अंगुल, ३ हाथ १३ अंगुल  
 और ३ हाथ ४ अंगुल परिमाण शास्त्र बनावे जायगी।  
 फिर उन सब गृहोंके अल्पिन्वका परिमाण यथाक्रम ३ हाथ  
 १६ उगली ३ हाथ ८ उगली २ हाथ १८ उगली और  
 २ हाथ ३ उगली परिमित होगा।

पूर्वोक्त शास्त्रमानके निर्माणके बराबर अमान करने  
 बराबर छोड़ देना होगा। उन्म मूर्धिका नाम चाधिकी  
 है। यह चाधिकी यदि वास्तुमननके पूर्वभागमें रहे, तो  
 उसे 'मोषगाय' पश्चिमकी ओर रहनेसे 'साध्य' उत्तर व  
 दक्षिणकी ओर रहनेसे 'सावप्रम' और यदि बैसी बागि  
 का वास्तुमननका चारों ओर रहे तो 'सुचित' कहल है।  
 ये सब वास्तु शास्त्रकारोंके सूत्रित हैं अर्थात् इस प्रकारके  
 वास्तु शुभप्रद माने गये हैं।

उत्तम गृहका गिरना अतिता हाथ होगा उसके  
 लोहके भागमें ४ हाथ योग करनेसे योगफल ही उन्म  
 गृहका उच्छाय है। अर्जित चारों प्रकारका उच्छाय  
 हमसे अग्रजः प्राज्ञ भाग करके कम होगा। सभी गृहका  
 मोक्षदार्थ भाग ही मिलि या लोहका परिमाण स्थिर करना  
 होगा। किन्तु यह नियम इतक सख्त लिये है। लकड़ीके  
 घरका मिलि परिमाण बनानेवाले ही उच्छाय पर निर्भर  
 करता है।



महत्त्व हो प्रकारके हैं, एकांगीति पद और वास्तुपदिक पद। इनमें एकांगीति पद वास्तुमहत्त्वके सिधे पूर्वायतन दश रेखा और इसके ऊपर इतरायतन दश रेखा अङ्कन होनेसे एकांगीति काष्ठा होगी, इस एकांगीति पद वास्तुमहत्त्व में ४२ शिवता रहने हैं, जिनका पञ्चम अयतन इन्द्र सूर्य, सत्य, भृश और अन्तरीक्ष ये सब शिवता इज्ञान कोणसे वषाक्रम निम्नमागमें अवस्थित हैं। अग्नि कोणमें अग्नि है। इसके बाद क्रमानुसार निम्नमागमें पूजा वितथ, बृहन्सूक्त, वय, गन्धर्वा, मृङ्गराज और मृग मयस्थित हैं। मध्यकोणसे छे कर वषाक्रम पिता शैवारिक (सुप्रोच) इन्द्रमयस, पदथ वसुध शोय और राजपद्मा तथा मायुकोणसे छे कर क्रमशः तत, अमस्त वासुकि मत्ताय, सोम, मुक्त, अग्नि और इति ये सब शिवता विराजित हैं। मध्यस्थलकी नवकोष्ठामें प्रथा विराजमान हैं। प्रथाके पूर्व ओर अर्चना है। इसके बाद सबिना, विषलान्, इन्द्र मित्र राजपद्मा, शोय और भागवतस नामक शिवगण प्रस्थित क्रमसे एक एक कोष्ठके अन्तर पर प्रथाके चारों ओर अवस्थित हैं। भाग नामक शिवता प्रथाके ईशान कोणमें, सावित्र अग्नि काणमें, जय मीश तथाणमें तथा रुद्र वायुकोणमें विद्यमान हैं। भाग भागवतस पञ्चम, अग्नि और अग्नि ये सब अर्चना हैं। इस पञ्चममें पाँच पाँच शिवता विराजित हैं। ये सब शिवता पञ्चपदिक हैं, अवशिष्ट बाह्य शिवता द्विपदिक हैं किन्तु इनकी संख्या बीस है। फिर अर्चना आदि चार शिवता ओ प्रथाके चारों ओर विराजित हैं ये त्रिपदिक हैं। यह वास्तु पुत्र्य इशानकी ओर मस्तक रखने हैं। इनके मस्तक पर निम्नमुक्तमें अन्तम वर्शमान है। इनके मुखमें भाग स्तनमें अर्चना और बह्मत्त्वमें भागवतस विराजित हैं। पञ्चम आदि सभी वाह्यशिवता वषाक्रम वधु कर्ण, उत और अस्थायमें अवस्थित हैं। सत्य प्रभृति पञ्च शिवता मुखामें तथा इन्तमें सावित्र और साविता वर्शमान हैं। विनय और बृहन्सूक्त पार्श्वमें अउममें विषलान् तथा होत उठ दोनों आशु दोनों अङ्का और निकर इन सब अर्चनाओंमें क्रमानुसार अर्चना शिवता अवस्थित हैं। ये सब शिवता दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित हैं। चार पार्श्वमें ओ इन्ती प्रकार है। वास्तु

पुत्र्यक मेदस्थयमें शक्र तथा अयतन इन्द्रयमें प्रथा और चरणम पिता वर्शमान है।

अभी वास्तु पद वास्तुमहत्त्वका विषय लिखा जाता है। वास्तुपदिक वास्तुमहत्त्व बना कर उसके प्रत्येक कोणमें निर्देक भावसे रेखा अङ्कित करने होती है। इस वास्तुमहत्त्वक मध्यस्थ अन्तर्गममें प्रथा है। प्रथाके काणमय शिवगण अङ्कित हैं। यहिकोणमें अथ शिवता मय पद है इनमें उमदयवस्थ उन्नता साखे पद है। उक्त उन्नताओंसे ओ अवशिष्ट है ये द्विपद हैं। किन्तु इनकी संख्या बीस है। अर्थात् अज्ञानगत है अथान दोनों रेखाय मिली है यह स्थान तथा सभी कोष्ठाओक समतल मध्यस्थान इनके कार्यस्थल हैं। प्राञ्च वपदिपो को उम कमी भी पाञ्चित नहीं करना चाहिये। यह ममस्थान यदि अवधिष्ठ माण्ड, कोळ, स्तम्भ या शय्यादि द्वारा पीडित हो तो गुरुत्वात्मिक इन अङ्गीत पीडा अनिष्टाय है। अथवा गुरुत्वात्मिक शोतो हाथी से जो अङ्क कुतलाप से अर्थात् अग्नि को विकृति रहेगी। वास्तुके उम स्थानमें शय्य है ऐसा ज्ञानना होगा। शय्य यदि वाकमय हो, तो घनका नाश होगा। अविद्यज्ञात शय्य निकरमें वर पशुपाङ्का और रोगत्रय अय होता है। श्रीहमय होमेने शय्यमय तथा कपाल वा अशय्य होमेसे गुरुत्वका मृत्यु होती है। अङ्कार रहने से स्तंभमय तथा मम्म रहनेसे सुवेदा अनिष्टय हुआ करता है। मर्मस्थानस्थ शय्य यदि अर्ण वा रस्तके सिधा कोर दूतरा पदाथ हा, तो अशुभ है। अयमय शय्य वास्तु पुत्र्यका मर्मस्थान है अथवा आह कोर मी स्थानगत कर्षो न हो यह अर्थागमकी राक्षता है। और तो क्या, यदि इतिवस्तमय शय्य ओ मर्मस्थानगत हो, तो वह भी दोषका आकर वा वात है।

पूर्वोक्त एकांगीति पद वास्तुमहत्त्वका जिस कोष्ठमें रोग शिवता वसित हुआ है उमम अ कर वायु वर्षण येनाम हुनाजन विनयमे शाय सुक्यसे भूज अयलसे पूङ्क और अविधिते सुधाव पदना सुलदान करनेसे ओ पाँचपान अर्णा करेगा यह अति मर्मस्थान है। वास्तु गुरुता परिमाण जितना हाथ है उमकी अज्ञाना भाग दरनम प्रत्येक कोष्ठा जिनमें हाथकी होगा इसका आउतर्माग हो मर्मस्थानका परिमाण हागा।





मन्त्रोक्त, अग्निष्ट, बकुल, पद्मस्य शान्ति, भीरु शान्त वृक्ष लगा देना चाहिये। त्रिस पर भीषण वृक्ष वा छाता उदरप्रभ हो जो मधुर वा सुगन्ध तथा स्निग्ध, सम और अशुभिपर हो बड़ी मिष्ट उन्नत मानो गई है।

वास्तुक सामने मन्त्रीका घर रहनेस अटनाज धूल का घर रहनेस पुनहासि ईषकुल रहनेस उद्वेषेय तथा चतुष्पथ होनेस अक्षोक्षि वा अयज्ञ होता है। इसी प्रकार घरके सामन खैरवृक्ष ( जिस वृक्ष पर देवताका नाम है ) रहनेसे प्रदमय, बहमी - और उर्मिके कारण छोटे छोटे पड़के रहनेसे वि-द्व, गर्श मूमिक पक्ष होमे रहनेस पिपासा तथा कुर्माकार स्थान रहनेसे घननाश होता है।

प्रदक्षिण क्रमसे उत्तरादि पंचमूमि प्राङ्गणादि ज्ञातियों के लिये प्रशस्त है। अर्थात् उत्तरपंच मूमि प्राङ्गणके लिये, पूर्वनिम्न क्षत्रियके लिये, दक्षिणनिम्न वैश्यके लिये तथा पश्चिमनिम्नमूमि शूद्रके लिये प्रशस्त है। प्राङ्गण सभी स्थानोंमें बास कर सारें हैं किन्तु दूनरे दूनरे वर्णोंका अपने अपने शुभस्थानमें बास करना उचित है। घरके भीतर हाथ मर मर्या। चौड़ा पद गोरु गहवा जोड़ कर उसा मिट्टीसे फिर उसको भर दे यदि मिट्टी कम हो ज्ञाप तो उन पर बास नहीं करना चाहिये, करनेसे अग्निष्ट होता है। यदि मिट्टी समान हो तो सम पत्ता और यदि अधिक हो, तो उत्तम होता है। अथवा उन गहरेकी पानोस मर कर पद नीं करम चले पाछे फिर भीरु कर यदि देखे कि वह पानो घटा नहीं है, तो उन मूमिको अत्यन्त प्रशस्त समझना चाहिये। अथवा उस गहरेमें पद आडक अल डाल कर सी करम माने वह पीछे सोड कर अलको तोले। यदि वह ६३ पद हो तो स्थान शुभप्रद समझा जाता है। अथवा आम मून् पासमें चार शीव रव कर उरह गहरेक भीतर चारो कोनमें बास है। जिस कोनकी बसो आश्रक अछणो उस वर्णके लिये वह मूमि प्रशस्त है। अथवा उन गहरेमें श्वेत, रक्त, पीत और हृत्पय वा चार पुण्ड रव कर दूनरे दिन देखे, कि जिस वणका पुण्ड स्थान नहीं हुआ है उस ज्ञातिक लिये वह मूमि प्रशस्त है। इन सब परीक्षाओंमें स जिस परीक्षामें जिसका जो मरे उन्नत लिये वह

उन्नत है। सित, रक्त, पीत और कृष्णवर्णको मूमि यथा क्रम प्राङ्गणादि चारों वर्णके लिये शुभप्रद है। अथवा पून, रक्त मन्त्र और मधके सामन गाणधती मूमि यथाक्रम प्राङ्गणादि चतुर्धार्णिके लिये मङ्गलकर है। कुण्ड, शर, दुर्बा और काशयुत या मधुर, कपाय, अम्ल और कटुक स्थात् पतो मूमि यथाक्रम प्राङ्गणादि चारों वर्णके लिये शुभाप्रद है। गृहारमक पूर्ब सबसे पहले वास्तुमूमिमें हल खना कर धानका बीया बोये। पीछे वहाँ पर एक दिन रात प्राङ्गण और गौ को बसाये। अन्तर देवक द्वारा निर्दिष्ट प्रगल्भ काळमें गृहपति प्राङ्गणोंकी प्रशस्तित इस मूमि पर जा विविध भक्ष, दधि, अक्षत सुगन्धि कुसुम और घषादि द्वारा देवता प्राङ्गण और स्थपतिको पूजा करे।

गृहपति यदि प्राङ्गण हों तो वे अथवा मस्तरस्वरी तथा कर रैवाकी बसना करे। इस लय होमेसे वरहे पक्षस्पस शैश्व होमेसे उद्यदय, गृह होमेसे अथवा पाक्षस्पश कर जो व डालनक समय रैवा को बसना करना होगा। मधुर, मध्यमा वा तरुणो म गुल द्वारा रैवा शीघ्रको होगी। अथवा स्वर्ण मसि, रक्त मुक्ता दधि, फल, कुसुम या अक्षत द्वारा शीघी हुर रैवा शुभप्रद होती है। शक द्वारा रैवा लीचनेसे शक्राघात होस गृहपतिको मृत्यु, भीरु द्वारा लीचनेसे लघ्नमय मरम द्वारा अग्निमय, पुण द्वारा चौरमय तथा काष्ठ द्वारा रैवा लीचनेस राजगय होता है। रैवा यदि एक पाद द्वारा सिञ्चित या विरव हो, तो शकमय और बर्षेण होता है। बर्मे, अक्षर, अस्थि वा वृत्त द्वारा रैवा अक्षित होमेस गृहन्वामीका अमङ्गल होता है। अथवा क्रमसे यदि रैवा लीची ज्ञाप ता पीट प्रदक्षिणा क्रमसे ( अर्थात् वासमागसे आरम्भ करक क्रमशः दक्षिण भागमें जा रैवा लीची जाती है, उस प्रदक्षिण रैवा कदते है। अथवा अथवा मोर लीची हुर रैवा।। नाम गा प्रदक्षिण है) रैवाकी कथरता करनेस मंगलित होती है। इस समय बहोत बचन बोलना, धूष फेंकना अमङ्गलजनक है।

अथवा वास्तु मध्यवह उ रवादि (दूध)का विनय निला जाता है। स्थपति इस मय निर्वात वा मङ्गल वास्तुक मध्य मधेष्ट कर सभी निमित्त तथा गृहस्थामो किस



दान और पूजन करके दूसरे दिन मन्त्रों प्रदक्षिण करनेके बाद वृत्तछेदन करें। छिन्न मृत्तु यदि उभर या पूर्व दिशामें गिरे तो शुभ है। इसका बिपरीत होनेमें मशुम होता है। वृत्त काटने पर यदि उस ऊपर हुए स्थान का बर्णन बर्तुं तो यह शुभकर है तथा वही वृत्त पर बनानेके ल्यावक है। कारमके बाद यदि वृत्तका मार भाग पोला हो जाय, तो वृत्तके ऊपर गाया है, ऐसा जानना होगा। उसका वण मजोतीकी तरह हो जानस मेक, नामा होवसे सदैव म्याज होमस सरद, मू गका तरह होमस प्रस्तर, बगिन बर्णाका होमस मूहा तथा पद गकी तरह भासायुक्त होमस इसमें ब्रह्म है ऐसा जानना होगा।

वास्तुमन्त्रमें प्रवेश कर धारण गो गुण धनि गीर देवताओंके ऊपर भाग पर लहो मोना चाहिये मानिस मायमकमी अत्रसक होती है। वंश या मकड़ीका कड़ोक नीचे सोना उचिन नहीं। उत्तर गिरा पश्चिम गिरा, नम बा मारु धरण हो कर कमा मा मोना बड़ी चाहिये। मूह प्रवेशक समय मूहका तरह तरहके कुन्तसे सप्राये, बन्तवार लगाये असपूर्व कमस द्वारा मोमिन कर रहे धुव गाय और बनि द्वारा देवताओंक प्रति पूजा करें तथा प्राहाणोंक द्वारा मङ्गलकर्मन करायें। (बृहत्सं ५३ म०)

गद्यव्युपायमें वास्तुका विषय लक्ष्यमें इस प्रकार लिखा है—पुशारमक, पहले वास्तुमण्डलकी पूजा करनी होती है, इसमें गुरुमें काद विघ्नबाधा तथा पशुघना। वास्तुमण्डल एकाशीति पद हागा। उस मण्डलक ईगान कोयमें वास्तुदेवता मन्त्रक मीक्ष तमें पाद्य तथा वायु और अग्निहोयमें हस्तप्रवका बचनना करक वास्तुकी पूजा करै। सायासपूर याममन्त्र, पुन धाम बाणिज्य स्थान, जगत्, सुरी, वैशाख तथा मठक आरममजालमें वास्तुयाग और वास्तुपूजा भावश्यक है।

प्रथमतः मण्डलक कर्तव्यमें बलीस देवताओंका भाया इन और पूजन करके इतक मीतरा गाममें तरह देवताओं का भावाग्न और पूजन करना होता उक्त बलीस देव ताओंक नाम ये हैं—ईगान पञ्चव, अथव, इन्द्र, सूर्य सत्य, मृदु भाराज वायु पूर्वा, चित्रा, प्रदक्षिण, यम, गणपति, मृदु राजा मृग, विनुगन, दौवारिक मुमान पुत्र बरु, गजायाय, मसुर रीद पार, रोग, अतिमुक्क, मताद, सीम, सय, अग्नि और दिगि।

इसक बाद मण्डलक मध्य ईगान कायमें आप धनि कोयम सर्वाथ मेक्षतकोयमें जय और वायुकोयमें रुद इन बार देवताओंका पूजा करनी होगी। मध्यस्थ मत्र पदक मध्य मज्राका पूजा शोय करके वाद निभोक्त मण्डलकार अष्टदेवताओंका पूजा करना होता है। पूर्वादि बिजाभामें एकादिनामसे उन साठ देवताओंका पूजन करना कर्तव्य है। अष्टदेवताक नाम—अथमा सविता विषम्वान, विद्युपायाय, मित्र राजयक्ष्मा पूरुषी पर और अथयस इत मत्र देवताओंका योगकम प्रथमदि गमरकर करनक बाद पूर्ण दिशामें अग्निहोयमें, दक्षिण दिशामें मीक्ष तकोयम पश्चिम दिशामें वायुकोयमें, उत्तर दिशामें और ईगान कोयमें पूजा करे।

सुरीका निर्माण करमें भी पुरादिके निर्माणकी तरह एकाशीति पद वास्तुमण्डल करना होगा। इसमें घोड़ी विद्यवता है। वायुमण्डलक ईगानकोयसे छे कर मीक्ष तकोय तक तथा अग्निहोयसे वायुकोय तक मुक्त पात करके दो रेखायें खींचनी होंगी। इन रेखाओंका नाम यंश है। एकाशीति पद वास्तुमण्डलके कर्तव्यमण्डल प्रागिगत् पदके मध्य त्रिस पञ्चरत्नमें अदिति रिति, ईश पञ्चम्य भार अथव ये पञ्च देवता है, युगक एकाशीति पद वास्तुमण्डलमें भा बहा पञ्च देवताकी जगद अदिति, हिमपाव, अथव, तापिहा और कालिका इन पञ्चदेवको विघ्नवस्तु करना होगा। दूसरे सप्तविंशति या सप्तार्दस पदोंमें गणपति भादिसि छे कर मपरात्र पर्यंत आ सप्तार्दस देवता है उनका जगह किसा भी देवताका नाम बदलना नहा होगा। मूह और मासादनिर्माणमें इन बलीस देवताओंकी पूजा करना चाहिये।

वास्तुक सम्मुख भागमें वैशाख, अग्निहोयम पाकशाका, पूर्वादिशामें प्रवेशनिर्मपय और यागमण्डप, ईगानकोयमें पशुव्ययुक्त गणपुत्रालय, उत्तर दिशामें माण्डारगार, वायुकोयमें गाशाका, पश्चिमदिशामें पातावमयुक्त अलागार, मीक्ष तकोयमें समिपुदुश काष्ठादि का पुर और अग्रशासा तथा दक्षिण ओर सुन्दर अतिपिशासा बनाव। इसमें आसन, शय्या, पादुका अल, अग्नि, शोय आर योग धुरय रखे। समस्त पुरोंके

अथवाश भागको सजल बन्दगी पक्ष और पांच प्रदान के कुमुम हाग सुशोभित करना होगा ।

वास्तुमण्डलके पहिनांगमें चारों ओर प्राकार बनाये । उस प्राकारकी ऊर्चाई पांच हाग होगी । इस प्राकारमें चारों ओर वन-उपवन द्वारा सुशोभित करके विष्णुमण्डल निर्माण करे ।

प्रासाद निर्माणमें चतुःपाष्टि या चौंसठ पर वास्तुमण्डल करके उसमें वास्तुदशोकी पूजा करनी होगी । उस वास्तुमण्डलके मध्यगत चार परमें प्रया और नमस्समीपस्थ हा प्रतिपदमें अथवादि देवताओंकी पूजा करे । वास्तुमण्डलके ईशानादि चार कोणमें चार परमें एक एक वर्षरेखा खींच कर उसमें अक्षरभागमें विभक्त करे और प्रति कोणमें दो दो परके आठ पर बनाये । उन आठ परोंमें ईशानादि कोणमें आरम्भ कर जिनमें आदि देवताओंकी स्थापन करना होगा । उन नव देवताओंका तथा उनके पार्श्वस्थ दो प्रतिपदमें अन्यन्य देवताओंकी पूजा करना होता ।

इस प्रकार चतुःपाष्टिपर वास्तुमण्डल बना कर ईशानादि चार कोणोंमें चरका, चिटारी, घृतना और पावराक्ष्मी इन चार देवताओंका पूजा करे । पाष्टि पहिनांगमें ईशानादि और हेतुकादि देवता पूजा करने होगी । हेतुकादिगणके नाम ये हैं—हेतुक, त्रिपुरासुन्दर, अग्नि, वेनाल, वम, अग्निजिह, कालक, कराल और परवाद । पूजाके बाद ईशानकोणमें भौमकर, पातालमें प्रेतनायक और आकाशमें गन्धमाली तथा क्षेत्रपालकी पूजा करे । चारतुकी चौडाई जितनी होगी उससे लम्बाईका गुणा करे । यह गुणनफल हा 'वास्तुराशि' वास्तुक्षेत्रफल होगा । इस वास्तुराशिमें आठका भाग दे । भागशेष जो रह जायगा उसे 'थाय' कहते हैं । उस वास्तुराशिका द्बारा चार आठसे गुणा करने पर गुणनफल जो होगा उसमें सत्सईसका भाग दे । भागका शेष जो बचेगा उसका नाम वास्तुनक्षत्रराशि रखा गया है । अथ उस भागशेष वास्तुनक्षत्रराशिमें आठका फिर भाग दे । उसके हन शेषाङ्कको 'व्यय' कहते हैं । उस वास्तुनक्षत्रराशिको चारसे गुणा कर गुणनफलमें ६ का भाग दे । भागशेष जो बचेगा उसका नाम 'स्थिति' है । इस स्थिति अङ्क द्वारा ही वास्तु

मण्डलका भाग विभक्त होगा । यहा क्षेत्रफल अविश्व प्रथम है ।

उस वास्तुराशिमें आठसे गुणा कर गुणनफल जो होगा उसे 'विष्णु' कहते हैं । उस विष्णुअङ्कमें चौंसठका भाग देनेसे भागशेष जो बचेगा उसमें गृहस्वामीके भावन तथा पांचका भाग देनेसे भागशेष जो बचेगा उसमें गृहस्वामीके सरणता निर्णय होगा । इसी प्रकार प्रथम भाग, द्वय, त्रिगुण और सरणता निर्णय किया जाता है ।

वास्तुके तीर्थ या मोठमें गृह बनाये, पृष्ठमें नक्षत्र वास्तुदेवता निर्वाहार्थमें प्रतिपद करना तथा वास्तुशरीर सुशाना चाहिये । इसका अर्थव्याज होये । गृह और प्रासादके द्वार बनानेके नियम ये हैं—पूर्व, दक्षिण और वास्तुराशिमें अर्थात् आठ, आठपर, दक्षिण इन तीन कोणोंमें पूर्वकी ओर द्वार कर, उत्तरकी ओर पृष्ठ, दक्षिणकी ओर द्वार और पश्चिमकी ओर नक्षत्र तथा कर वास्तुशरीर सुशाने । एक नान मासमें दक्षिणकी ओर उत्तरहामी गृह बनाये ।

नक्षत्री वास्तुनामका विवर दिया जाता है । पश्चिम चतु और मकर राशिमें अर्थात् अश्लेषा, मीष और मार इन तीन मासमें प्राक्पूजा तथा द्वार दक्षिण, पृष्ठ पूर्व, क्षेत्र पश्चिम और पाद उत्तर रहना है । इसीप्रकारे उस समय पश्चिमकी ओर पृष्ठात् गृह बनानेका यहा है । कुम्भ, मीन तथा मेष राशिमें अर्थात् फाल्गुन, चैत्र और वैशाख इन तीन मासमें वास्तुनक्षत्रात् पश्चिममें, दक्षिण में पृष्ठ उत्तरमें कोठ और पूर्वमें पाद रहना है । उस समय उत्तरकी ओर दक्षिणहामी गृह बनाना उचित है । मृग, मिथुन और कर्कट राशिमें अर्थात् अश्लेष, आषाढ और श्रावण मासमें वास्तुनामका मन्त्रक उत्तरमें, पृष्ठ पश्चिम में, कोठ पूर्वमें और पाद दक्षिणमें रहेगा । इस समय पूर्वकी ओर पश्चिमहामी गृह बनाये । गृहका द्वार जितना लम्बा होगा उस आधा द्वारका विस्तार होना चाहिये । इस प्रकार अष्टउपविधिष्ट गृह बनाना कर्तव्य है । वास्तुनाम जिस मासमें जिन ओर पृष्ठ करके जाता है, उस मासमें उस ओर पृष्ठ शरीरके ऐसं आद्रतभूमिका निर्माण करे । जिससे आगनका जल जीव ही बाहर निकल जाये ।

घरका इगानकोय एव्य होनेसे पुत्रकी हानि होती है। इसी प्रकार दक्षिण पक्ष होनेसे वीर्यहीनता, अग्नि कोय पक्ष होनेसे अश्रम, आयुकोय पक्ष होनेसे पुत्र और सुवृत्तिसाम उत्तर पक्ष होनेसे राजसय तथा पश्चिम पक्ष होनेसे धीझ, अश्रम इत्यादि फल होता है। गृहक उत्तर और द्वार करनेसे राजसय, सामाननाश सन्निहीनता, शत्रुद्वि, घनहानि कङ्क पुत्रविनाश आदि माला प्रकारके अश्रम होते हैं।

अगो पूर्वद्वारी गृहका फल लिखा जाता है। गृहक पूर्व और द्वार बनानेसे अग्निमय, अश्रक कम्पाकाम, घन प्राप्ति, मानपट्टि परीकति, राज्यविनाश, रोग आदि फल हुआ करते हैं। गृहद्वार-निर्णय करनेके विषयमें इगानमे से कर पूर्व पर्यन्त दिग्भाग पूर्वदिक्, अग्निमे दक्षिण पर्यन्त दक्षिणदिक्, शैश्व से से कर पश्चिम पर्यन्त पश्चिमदिक् तथा आयुसे उत्तर पर्यन्त उत्तरदिक् कहलाता है। गृहके चार दिशाके आठ भाग करके द्वार पस्तुत करनेका फलाफल माना जा सकता है।

वास्तुमन्त्रके पूर्वमें योग्य, दक्षिणमें पाण्ड पश्चिम में स्ययोग, उत्तरमें गृहक और इगानकोयमें शाल्मली पुत्र लगाना चाहिये। इस विधिके अनुसार गृह और प्रासाद बनानेसे सबैविघ्न बिनष्ट होता है। (गर्वपु० ५३ प०) इसके असावा महस्यपुराय, अग्निपुराय, शैवीपुराय, युक्तिव्यतक, वास्तुकुम्बकी आदि प्रयोगों वास्तुक सम्प्रथममें विस्तार आच्छाचना दी जाती है। विस्तार और पुनर्दक्षि हो जानेके मयसे इनका अन्वेषण यहाँ नहीं किया गया। पर और प्राज्ञाद शब्द देना।

फिर अनेक प्राचीन प्रयोगों वास्तु-निर्माणकी प्रवाही सिधियद दुरे है। उनमें विश्वकर्मारचित विश्वकर्माप्रकाश और विश्वकर्माय शिदयशाश्रम मयदानबरेजिन मयशिदय और मयगत कार्यय और मरद्वारविन वास्तुत्व, बेलानम और सनयुक्तमाररचित वास्तुशास्त्र, मानयसार वा मानसार वस्तु, भारजत, मयराजितापृच्छा वा साम रकसेय, इयकार्यपञ्चराज, मोक्षत्रेय रचित समराजुजधुम पाद, स्वयंवाटावहन रचिन वास्तुमार वा राजपयसममरद्वार वा सङ्कलाधिकार, महाराज इयामसाह शङ्कर-रचित वास्तुशिरैमवि आदि मय इत्यमययोग है। इनके निपा

भाग, वास्तुपूजादि सम्प्रथममें भी अनेक संस्कृत ग्रन्थ दिने ज्ञाते हैं। यथा—

बनानाशङ्कर और कृपाराम रचित वास्तुचण्डिका, नारायणमह रचित वास्तुपुस्त्यविधि यादिकरैवकन वास्तुपूजनपद्धति, शाकश्रीय वास्तुपूजाविधि, वास्तुवेधका वास्तुप्रदीप, रामकृष्ण महद्वृत आश्वलायतगृहोक्त वास्तु शास्त्र, श्रीनरदाय वास्तुजान्तिप्रयोग दिनकरमहोकी वास्तुशास्त्रि, क्सासं रघुनन्दनका वास्तुयागतस्व दोहर मत्तका देवद्वाराम् वा वास्तुसौधय।

वास्तु ( अ० पु० ) १ सम्प्रथम, अथाव । २ विज्ञता । ३ अा और पुष्टका अनुचित संबंध । वास्तुक ( सं० श्लो० ) वास्तु पत्र वास्तुत्पार्थ कम् । १ शाकश्री, अथवा नामका साग । इमे अ परैश्रीमें Chenopodium album महाराष्ट्रमें अककत और कपौटमें अककरत्त कहते हैं।

भावप्रकाशके मतसे यह वास्तुक जात छोटे और बड़े पत्तके सेव्ये दो प्रकारका होता है। अककतके मतसे इसका रम पकाने पर अथु प्रमावमें कृमिगाशक तथा निपा, अग्नि और अककर है। क्षारयुक्त होनेसे यह कृमिघ्न, मधु, रुचिकर तथा अग्नि और अक, अक्षिकर माना गया है। राजनिघण्टुक मतसे इसका गुण मधुर, शीत क्षार इयक्षक, तिदाप्यर रोधन उवराज, अशौम तथा मल मुक्कगुधिकारक है। अग्नि सांघिताक मतक इसका गुण—मधुर, हृद्य तथा वात, पित्त और अशौमगत विषे हित कर।

२ शौषडाक । ३ पुनर्मवा, मद्दपूरमा । वास्तुकशाकट ( सं० श्लो० ) वास्तुकशाकशित । ( एकनि० ) वास्तुकाकार ( सं० श्लो० ) पट्टशाक, पाट वा पट्टयेका साग वास्तुदामिङ्ग ( सं० पु० ) तरन्वुवठता लक्ष्म । वास्तुकी ( सं० श्लो० ) विज्ञा नाक । वास्तुकदम ( सं० श्लो० ) वास्तुक आराममें करने योग्य अनुष्ठान । वास्तुप ( सं० श्लो० ) वास्तु पा क । वास्तुपति वास्तके अविज्ञाकी इवठा ।

प्रकारके कच्छपकी बलि होती है। जहां बकरेकी बलि नदी में बहा करके कमसे कम कच्छप बलि अवश्य होगी। मरने पाँडे उक्त कुम्भीर ही बलि दी जाती है। स्थानभेदसे इन पूजायें व जे गाजे तथा आमोद प्रमोद गूठ होते हैं।

कहीं कहीं वास्तुपूजा घरमें ही होती है। घरमें एक गृहोत्तरे वास्तुपूजा की कहते हैं। पहले हीसे निर्दिष्ट करने हैं। इसीमें प्रति वर्ष वास्तुपूजा होती है। वास्तुपूजाके मिन्तूर आदिसे सजाते और साधारण नियमसे नैवेद्यदि द्वारा पूजा करते हैं।

वास्तुयाग ( मं० पु० ) वास्तुप्रवेश-निमित्तकः यागः । वास्तु प्रवेश-निमित्तक यागविशेष । वास्तुयाग करके नवगृहमें प्रवेश करना होता है। यह यज्ञ करके गृहप्रवेश करनेसे वास्तुका शेष प्रजामित होता है, इसी कारण नव गृहमें जानेके समय वास्तुयग करना उचित है। वास्तुयागका विषय बहुत संशेषमें नीचे लिखा जाता है।

वास्तु मन्त्रध्याय सभी कार्योंमें वास्तुयाग करना होता है। नवगृहमें जाने समय एकांशोति पद वास्तुयाग तथा नवद्वारगृहप्रतिष्ठाके समय चतुःशष्टिपद वास्तुयाग विशेष है।

अशुभ दिनमें वास्तुयाग नहीं करना चाहिये, जलाशयकी प्रतिष्ठा या नवगृहप्रतिष्ठाके समय वास्तुयाग करनेका विधान है। अतएव ज्योतिषोक्त गृहप्रवेश या गृहाभ्युत्थानके दिनमें या जलाशयप्रतिष्ठोक्त दिनमें करना होता है। इसीद्वारे ज्योतिषमें वास्तुयागके दिनादिका पृथक्पृथक् उल्लेख नहीं है। दिनादिका विषय गृह और वाटो गच्छे हैं।

वास्तुयागविधान—प्रिल दिन वास्तुयाग करना होगा, उसके पूर्व दिन यथाविधान गृह्यामी और पुरोहित दोनों ही मद्यत हो कर रहे। वास्तुयाग करनेमें होना, आचार्य द्वारा और मन्त्र इत बार ब्राह्मणोंकी आवश्यकता है। अतः ये चारों ब्राह्मण मद्यत हो कर रहेंगे, घरमें जहा वास्तुयाग होगा, यहाँ एक घड़ी यनामी होगी। उस घड़ीको ऊँचाई एक हाथ और लम्बाई तथा चौड़ाई चार हाथ होगी। गीर्वाणमें घड़ीका लोच कर उस पर गृहप्रवेश करना होगा है। वास्तुयाग करनेके समय इसमें गृह्ये नवगृहप्रतिष्ठाका विधान है।

प्रिल दिन वास्तुयाग होगा, उस दिन मद्यत यजमान

प्राक्प्रत्ययान्ति करके पहले स्तम्भशासन और स कल्प करें। स्तम्भशासन तथा—ओं करारियेऽस्मिन् वास्तुशासनार्थमणि ओ पुण्याह मन्त्रोऽपिपु वस्तु ओ पुण्याह ओ पुण्याह ओ पुण्याह, यह कद कर लोग बार मन्त्र छोड़ना होता है। ओ कल्पयेऽस्मिन् वास्तुशासनार्थमणि ओ अस्मिन् व स्तोऽपिपु वस्तु ओ अस्मिन् ओ अस्मिन् ओ अस्मिन् वास्तुशासनार्थमणि ओ अस्मिन् मन्त्रोऽपिपु वस्तु ओ अस्मिन् ओ अस्मिन् ओ अस्मिन्। इसके बाद 'ओ अस्मिन्ने इन्द्रा' इत्यादि और पीछे 'सूर्या-क्षीमा यमा काका' मन्त्रका पाठ करें। और सामवेदी है ये सेगमें एतामं ब्रह्ममणिमित्यादि मन्त्र पढ़। इसके बाद सूर्यार्चन और गणपतवादि पूजा करके सर्वस्व करना होता है। जिस कोशामें संकल्प किया गया था, वह अन्न ईशानकोषामें फेंक कर वैश्वानर संकलनायुक्तका पाठ करना होता है।

द्वैतप्रतिष्ठा और मठप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें जो वास्तुशासन होता है, उसके संकल्पमें योहीसी पूषकता है। तिथ्यादिका बन्धन कर द्वैतप्रतिष्ठा होने पर "पतञ्जलस्य शमनद्वैतप्रतिष्ठार्थमनुवाच्यं", मठप्रतिष्ठा होनेसे पतञ्जलस्य शमनमठप्रतिष्ठार्थमनुवाच्यं सगणायित्यादि रूपमें सङ्कलन करना होता है।

इस प्रकार सङ्कल्प करके जो सब प्राद्वय पढ़ करेगे उनका वरण कर देना होगा। वरणकालमें पहले शुभता वरण करके पीछे अशुभता वरण करना होगा। शुभ वरणके बाद प्रद्वयवण प्रद्वयवणक बाद होतवरण, मावाच्यवरण और सर्वस्व वरण करना होगा। इस तीन वरण बाबतमें कुछ मो बिधेयता नहीं है, केवल होत वरणकी जगह होतुर्कर्म करवाय, मावाच्यवरणकी जगह 'मावाच्यार्थमनुवाच्यं सर्वस्वमह पुण्ये' इस प्रकार कहना होगा।

छठी इस प्रकार वरण करके पीछे पुत्रिभाय करे और अतिगण यथावित्यादि यह मन्त्र आरम्भ कर दे। कर्मकर्ता यदि पुरुष हो, तो पुत्रिभाय करना होता है, स्त्री होनेसे पुत्रिभाय नहीं होगा।

वास्तुशासनके छिपे ओ दिशि बनाई गए हैं उस दिशि पर ५ घट और १ शक्तिरूपम स्थापन करना होता

है। घट और ब्रह्मसकी मलसे भर कर इसके ऊपर पञ्चपल्लव तथा मन्त्रब्रह्म पल्लव और शक्तिपल्लवसे पञ्च रत्न डाल कर उसकी कपडोसे ढक देना होगा। पीछे होनाके पञ्चगव्यके पूषक पूषक मन्त्र द्वारा उसे शोधन कर निम्नोक्त मन्त्रसे कुजोषण देना होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

"ॐ देवस्य त्वा सपितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पुण्यो हस्ताभ्यां हस्तमाशु।" पीछे पञ्चगव्य और कुशोदरको एकत्र कर गायत्री पढ़नेके बाद वैश्वी पर सेक करना होता है। इसके बाद पशुक्रवाण्य, हीमन्तिक घाण्य, मुद्ग, गोधूम, श्वेतमय प, तिळ और यषमिश्रित मल द्वारा फिरसे वैश्वीको सेक करना होता है।

वास्तुशासनकी दिशि पर पाँच वर्षके न्यून द्वारा वास्तु मण्डलका मन्त्रुत करना होता है। उसी वास्तुमण्डलमें पूजा करनी होगी। दिशिकपूर्वाक्षमें मण्डल करनेकी जगह ईशानकोषसे से कर मण्डलके चारों कोशोंमें चार चौरक सूँडे मन्त्र पढ़ कर गाड़ने होते हैं।

इसके बाद अग्नि सपै आदिको मासमक बलि दे कर उन गङ्गे हुए चार चौरके सूँटोंके बीच वास्तुमण्डल बनाये। इस मण्डलके चारों कोशमें वक्षमाळासमन्वित चार कलस और बौद्धमें प्रद्वयवण स्थापन करे। इस प्रकार घटस्थापन करके पाशक घटमें नयप्रद्वयकी पूजा और पूर्वाधिक्यसे पुनः मूलादिको मासमक बलि देनी होगी। एक प्रचारसं बलि दे कर यथाविधान सामान्य अर्घ्य और न्यासादि करने होते हैं। इस समय भूत शुद्धिकरता आवाश्यक है।

अन्तर मण्डलमें ईशानादि पैतालीस द्वैतताओं तथा मण्डल चारोंमें रुद्रादि अष्ट द्वैतताओंका न स्थापन करते यथावधि इनकी पूजा करनी होती है। 'इग इहा मन्त्रमन्त्र इह तिष्ठ तिष्ठ अन्तयिष्ठान कुच मम पूजां गृहाण' इस प्रकार आवाहन करके पूजादि करनेका विधान है। यत्तु पाद्य ०० ईगाय तथा इस प्रकार पाद्यादि वप चार द्वारा पूजा करनी होती है।

ईगादि पैतालीस द्वैतता ये सब हैं—१ इग, २ पर्जन्य, ३ अयत्त, ४ शक्र, ५ मास्व, ६ सारय, ७ मृग, ८ शोमन्, ९ अग्नि, १० पूषन्, ११ यितय, १२ रुद्रस्य, १३ यम,



१४ गन्धर्व, १५ भृङ्ग, १६ मृग, १७ पितृगण, १८ दीवा  
रिक, १९ सुग्रीव, २० पुण्ड्र, २१ वरुण, २२ असुर,  
२३ जोष, २४ पाप, २५ रोग, २६ नाग, २७ विश्वामैत्र,  
२८ नल्लार, २९ यक्षेश्वर, ३० नागराज, ३१ श्री, ३२  
दिति, ३३ आप, ३४ आपवत्स, ३५ अर्यमन्, ३६ सावित्र,  
३७ सावित्री, ३८ विवस्वत्, ३९ इन्द्र, ४० इन्द्रात्मज,  
४१ मित्र, ४२ रुद्र, ४३ राजयश्मन्, ४४ धराधर और  
४५ ब्रह्मन् ।

स्कन्दादि अष्ट देवता—१ स्कन्द, २ विद्यारी,  
३ अर्यमन्, ४ पूतना, ५ जम्मक, ६ पापराक्षसी, ७ पिलि  
पिड्ड, ८ चरकी ।

इन सब देवताओंकी पूजाके बाद मण्डल मध्यस्थित  
ब्रह्मघटमें पश्चाद्विहित वासुदेव, लक्ष्मी और वासुदेव  
गणकी षोडशोपचारसे पूजा करनी होती है । इसके बाद  
धराकी और पीछे वास्तुपुरुषकी पूजा करनी होगी ।

अनन्तर ब्रह्मघटमें अक्षतचावल, विशुद्ध जल, स्वर्ण, रौप्य  
और पूर्वोक्त साठो धानका बीज डाले और उसके मुखमें  
प्रलम्बित रक्त सूत्रके साथ चर्दनी स्थापन करे । इस  
कुम्भमें चतुर्मुख देवताका आवाहन कर विशेषरूपसे  
पूजा करनी होती है ।

पीछे पञ्चकुम्भके पूर्वोत्तर ईशानकोणमें दधि अक्षतसे  
विभूषित शान्तिकलस स्थापन करे । उस कलसके मुखमें  
आम, पोपल, वट, पाकड़ और यक्षहूँकर ये पांच प्रकारके  
पल्लव तथा चरख दे कर उसके ऊपर नये ढक्कनमें धान  
और फल तथा कुम्भमें पञ्चरत्न छोड़ दे ।

उस कुम्भमें अश्वस्थान, गजस्थान, घलमीक, नदी-  
सङ्गम, हृद, गोकुल, रथ्य ( चत्वर ) इन सात स्थानों  
को मिट्टी भी डालनी होती है ।

इस प्रकार पूजादि करके होम करना होता है ।  
मण्डलके पश्चिम होताके समुल्ल भागमें हाथ भर लम्बा  
चीन्हा स्थण्डिल बना कर विरूपाक्ष जपके बाद कुण-  
ण्डिका करनी होगी । इस समय चरुपाक करना होता  
है । पीछे प्रकृत कर्मके आरम्भमें समिधको अग्निमें  
डाल कर मधुमिश्रित घृत द्वारा महाव्याहृतिहोम करना  
उचित है ।

इसके बाद सघृत, तिल, यव वा यक्षहूँकरके समिध

से पूर्वोक्त ईजादि धराधर पर्यन्त ४४ पूजित देवताओंमें  
से प्रत्येकको ओं ईजानाय म्याहा इम क्रमसे आहुति द्वारा  
होम करे और ओं ब्रह्मणे म्याहा इम मन्त्रसे एक सौ बार  
आहुति दे । इसके बाद पूर्वक्रमसे स्कन्दादि अष्टदेवता  
तथा वासुदेवादि ( लक्ष्मीभिन्न ) चतुर्मुख पर्यन्त षड्  
देवतामेंसे प्रत्येकको द्वा द्वा आहुति द्वारा होम करे ।  
पीछे घृतमधुमिश्रित पांच विवरफण द्वारा मन्त्र पढ़ कर  
होम करे ।

इसके बाद ओं अक्षये स्वष्टिभूते म्याहा इम मन्त्रसे  
घृत हांग होम कर पीछे महाव्याहृतिहोमपर्यन्त प्रकृत कर्म  
अमात्र कर उदीच्य कर्म करना होगा । इस उदीच्य कर्मके  
बाद बटलोपत्र पर पायसको ५३ भाग करके जलके छीटे-  
में '५३ पायसवलिः ओं ईजाय नमः' इत्यादि क्रमसे चरक  
पर्यन्त पूजित देवताओंको पायस दे । पीछे आचार्य पूर्व  
को और मुख कर बैठे हुए मन्त्रोंक यज्ञमानको मन्त्र  
पढ़ा कर शान्तिकलसञ्चिग जल हांग अभिषेक करे ।

शान्तिके बाद कर्करोके सूत्रयुक्त नाल द्वारा जल  
डाले और मण्डल वा वास्तुके अन्तिकोणमें हाथ भर  
लम्बे चीन्हे स्थानमें चार उंगली मिट्टी छोड़ गड़्ढा  
इनाचे और गोबरसे लिपपोत कर शुद्ध कर दे । पीछे  
आचार्य पूर्वामुक्ती बैठ चतुर्मुख ब्रह्माकी चिन्ता करे,  
बादमें वाद्यादिके साथ वास्तुमण्डलसे ब्रह्मघट उठा कर  
इस स्थान पर लावे ।

इसके बाद आचार्य घुटना टेक कर कुम्भके समीप  
बैठे और घटमें जल ले कर वरुणके उद्देशसे अर्घ्य  
प्रदान करे ।

पीछे कर्करोके जल, अर्घ्य जल और ब्रह्मघटके जल-  
से वह गर्त्त भर कर ओं इम मन्त्रसे शुक्ल पुष्प डाल दे ।  
इस पुष्पके दक्षिणावर्त्त होनेसे शुभ और वामावर्त्त होने-  
से अशुभ होता है । इसके बाद एक नई ईंट ले कर  
मन्त्रसे वहाँ पर गाड़ दे ।

उस गड्ढेमें पञ्चरत्न, दध्योदन् तथा शालि और  
बहिक धान्य, सूग, गोधूम, सपेंग, तिल और यव निक्षेप  
कर शुद्ध मिट्टीसे उसको पुनः भर देना होगा ।

इसके बाद आचार्य वास्तुमण्डलमें पूजित देव-  
ताओंको जल द्वारा मन्त्र पढ़ कर विवेर्जन करे ।

'मो हाम' इम प्रकार विमर्शन करक दक्षिणा दिनी होती है। पीछे पुन होता, आवाट्यो आदिको बरपकी दक्षिणा दे कर यह दक्षिणा उगरे ब देनी हागे। पीछे अष्टिद्रावधारण और वैगुण्यसमाधान करना होगा।

पहले लिखा जा चुका है, कि वास्तुपाग अतुल्यदि पद् और एकागोतिपद्के अन्तरे दो प्रकारका है। यह पद्धति कहा गई है यह अतुल्यदिपद् वास्तुपागविषयक है। एकागोतिपद् वास्तुपाग प्रायः इमा पद्धतिक अनु रूप है, केवल पञ्चाशत्तममें कुछ देवताओंको छोड़ और सभी प्रायः एकस है।

एकागोतिपद् वास्तुपाग प्रयोग—पूर्वोक्त नियमक अनुसार कल्पितवाचन सङ्गना आदि करके मण्डल करने के स्थानमें चार खुदे गाड़ने और मायमक बलि देनेके बाद पञ्चवर्ण पूर्ण द्वारा एकागोतिपद् वास्तुपागक अङ्कित करना होगा। मण्डलके पश्चिममें मायमक बलि देना विधान है।

इसमें शिवी आदि देवताओंकी पूजा करनी होती है। देवताक नाम ये हैं—शिवो, परमेश्वर अथवा कुम्भि, भोग्युध, सूर्य सरव, मृग, आकाश, वायु पृथ्वी त्रितप पृथक्, यम गणेश, मृगुटास मृग, पितृगण, दीकारिक, सुवोच पुण्डरीक, बभ्रुव असुर, शीघ्र, पाप, महि, सुक, महाद, मोम सर्प, अदिति दिति, अय, सावित्र, जय, उग्र, अर्धमान, सचिन् विबलवत् त्रिभुवाधिप, निज राजपदमेरु, पृथ्वीधर, भागवतस प्रह्लाद, बरणी विहारी, पूनमा और पापघातसी।

इस सब देवताओंकी पूजामें होम और पापसना प्रयाजन होगा है। मण्डल और देवतामें जो कुछ ब्रह्म है इमे छोड़ और सभी ब्रह्म पूर्वोक्त प्रजातिक अनु मार करने देंगे। इसी कारण इमक त्रिपथमें और कुछ नहीं लिखा गया। ईशादि चरकी पर्यन्त देवताक बर्णमें शिवो आदि पापघातसी पर्यन्त देवताकी पूजा होगी बन्, इनका ही प्रमेरु है। इसमें वास्तुदेवादि देवता की भी पहले ही तरह पूजा होगी है।

वास्तुपागका दिने पर पञ्चवर्णक भूर्ण द्वारा जो वास्तुमण्डल अङ्कित करना होता है वह अतुल्यदिपद् वास्तुपागमें एक प्रकारत और एकागोतिपद् वास्तु

पागमें मित्र प्रकारसे है। इन दोनों मण्डलोंका विषय यथाक्रम नीचे लिखा जाता है।

अतुल्यदिपद्वास्तुमण्डल—पूर्वोक्त पुराहित विधीके पूर्वोक्त मध्यम्यथमें मण्डल अङ्कित करे। (सूतमें सफेद कड़ोका दाग दे कर जो घर बनाया जाता है यह घर छोकर होता है) पहले हाग भर लाने कीजै स्थानके खातें पार्श्वमें हाथ भर लाने सूतमे चार हाग दे कर अतुल्यदिपद् मण्डल बनाये। उस सूतका मध्यस्थान निर्णय करके पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिणमें दो सरल रेखाओंके कोनसे ८ घर होंगे। पीछे मध्यरेखाक क्षेपण पार्श्वमें तीन तीन रेखा पूर्व पश्चिमकी ओर खींच कर छोकर उसी तरहकी और भी छः छः सरल रेखाये खींचे। ऐसा करनेसे पार्श्वरेखाके साथ पूर्व पश्चिममें ३ और उत्तर दक्षिणमें ३ सरलरेखा अङ्कित करने पर ६३ सतान घर बनेगे।

इसके बाद मण्डलके इशान और मूर्ध्वकोणस्थित दो घटोंक इशान और मूर्ध्व कोणकी ओर चक्रेका तथा वायु और अम्बिकोणस्थित घरमें वायु और अम्बिकोण की ओर चक्रेका काये। ऐसा करनेसे ४ भागके द्विभाजन ८ घर बनेंगे। ऊर्ध्वपर्यद् बलिमें यह भाग घर, एकपर्यद् बलिमें एक घर और द्विपद् बलिमें ऊपर नीचे दो घर तथा अतुल्यदिपद् बलिमें ऊपर नीचे दो और इसके पार्श्वको क्षेपे चार घर समझे जाते हैं।

पूर्वोक्तपूर्वोक्त शुद्ध, कृष्ण पीत, रक्त और घृष्ट इन पांच वर्णके पूर्णका से कर इशानकोणसे दक्षिणावर्त क्रमसे पूच, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर तक परिचालन करे। मण्डलके मध्य केबल २८ घर श्राव्य छोड़ देने होगा।

चिस द्विपदाका कौन घर है, उसका नाम तथा उस घरमें चिस वर्णका पूर्ण भोगा उसका विषय नीचे लिखा जाता है। उसी प्रणालीके अनुसार पूर्ण द्वारा यह मण्डल बनाता होगा।

ईशानोणस्थित घरक ऊपर बर्धा गमें ईश, शुद्ध, मण्डप मर्धान् ईशानमान रत्नवर्ण मण्डप (१०), उसक दक्षिण पार्श्वमें पञ्चम, पीत एकपर्यद् (३), उमके दक्षिण अय, घृष्ट, द्विपद् (४) शक, पीत एकपर्यद् (५)

भास्करा, रक्तवर्ण, एकपद ( ६ ) सत्य, शुक्र, द्विपद ( ८ ) भृश, शुक्र, एकपद, ( ९ ) अग्निकोणमें व्योम, कृष्ण, अर्द्धपद ( १० ), अग्नि, रक्त, अर्द्धपद ( १० ), पूषण, रक्त, एकपद । ( ११ ) वितथ, कृष्ण, द्विपद ( १३ ) गृह क्षत, श्वेत, एकपद, ( १४ ) यम, कृष्ण, एकपद ( १५ ) गन्धर्व, पीत, द्विपद ( १७ ) भृङ्ग, श्याम, एकपद, नैऋतकोणमें—मृग, पीत, अर्द्धपद ( १० ) पितृ, श्वेत, अर्द्धपद ( १० ) दीवारिक, शुक्र, एकपद ( २० ) सुग्रीव, कृष्ण, द्विपद ( २२ ) पुष्पदन्त पीत, एकपद ( २३ ) वरुण, शुक्र, एकपद ( २४ ) अमुर, कृष्ण, द्विपद ( २६ ), जोष, नानावर्ण, एकपद ( २७ ) वायुकोणमें—पाप, श्याम, अर्द्धपद ( १० ) रोग, श्याम, अर्द्धपद ( १० ) नाग, रक्त, एकपद ( २६ ) विश्वकर्मा, पीत, द्विपद ( २१ ) मल्लाट पीत, एकपद ( ३२ ) यज्ञेश्वर, शुक्र, एकपद ( ३३ ) नागगज, श्वेत, द्विपद ( ३५ ) श्री पीत, एकपद ( ३६ ) फिरसे ईगानकोणमें इति, कृष्ण, अर्द्धपद ( १० ) ।

इस प्रकार चारों ओरके चारों पात्र वर्णके चूर्ण देनेके बाद पूर्वा ओरके पर्जन्यके २ संव्यक पीतगृहके निम्नगृहमें आप, शुक्र, एकपद ( ३७ ) चार संव्यक जय, धूम्र, द्विपदके नीचे तृतीय पदमें आपवत्स, पीत, एकपद ( ३८ ) उसके दक्षिण ५ तथा ६ संव्यक गृहके नीचे चार चारोंमें अर्यामा, रक्तवर्ण, चतुष्पद ( ४२ ) ८ संव्यक सत्य, शुक्र, द्विपदगृहके नीचे सावित्री, शुक्र, एकपद ( ४३ ) ९ संव्यक भृशपदके नीचे सावित्र, रक्त, एकपद ( ४४ ) गृहक्षत, यम १४।१५ संव्यक घरके नीचे विषम्बन्, कृष्ण, चतुष्पद ( ४८ ) २० दीवारिक शुक्र, एकपदके नीचे इन्द्र, पीत, एकपद ( ४९ ) सुग्रीव २२ द्विपदके नीचे इन्द्रात्मज पीत, एकपद ( ५० ) पुष्पदन्त वरुण २३, २४ पदके नीचे मित्र, रक्तवर्ण, चतुष्पद ( ५४ ) अमुर द्विपदके नीचे राजशर्मा, पीत, एकपद ( ५५ ) २७ जोष, नानावर्ण, एकपदके नीचे रुद्र, शुक्र, एकपद ( ५६ ) मल्लाट, यज्ञेश्वर ३२, ३३ पदके नीचे धराधर, पीत, चतुष्पद ( ६० ) मध्यस्थलमें ब्रह्मा, रक्त, चतुष्पद ( ६४ ) ।

मण्डलक बाहर आठों दिशाओंमें पुत्तलिका बनानी होगी । ईगानकोणमें चरकी कृष्णा पुत्तलिकाकार । ( १ )

पूर्वमें स्कन्द पीत । ( २ ) अग्निकोणमें विश्वी कृष्णा । ( ३ ) दक्षिणमें अर्यमा रक्त । ( ४ ) नैऋतमें पुनमा कृष्णा । ( ५ ) पश्चिममें जम्भक कृष्ण । ( ६ ) वायुकोणमें पापराक्षसी कृष्णा । ( ७ ) उत्तरमें पितृपित्र कृष्ण ( ८ ) ।

उक्त प्रणालीके अनुसार चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डल बनानेमें पहले उम्मे कागज पर लिखे । पीछे उम्मे देल कर अङ्कित करनेमें बड़ो सुविधा होती है ।

एकाजीनिपद वास्तुमण्डल—चतुःषष्टि पद वास्तु मण्डलसे इनकी जो विशेषता है, नीचे उसीका उल्लेख किया जाता है । अतएव यह वास्तुमण्डल अङ्कित करते समय चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डलको एक बार देख लेना आवश्यक है ।

इस वास्तुमण्डलमें पूर्व पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें दश दश मंगल रेखा खींचे । प्रति पंक्तिमें नी के हिमाक्षसे ६ पंक्तिमें ८१ घर होंगे । इसके बाद पूर्वाश्वकर्षा पञ्चवर्णके चूर्ण ले कर ईगानकोणसे दक्षिणावर्त्ता क्रमसे घर पूर्ण करे । इसमें अर्द्धपद नहीं है ।

ईगानकोण गृहमें जियो, रक्त, एकपद ( १ ) उसके दक्षिण पर्जन्य, पीत, एकपद ( २ ) जयन्त, शुक्र, द्विपद ( ४ ) कुलिशाचुध, पीत, द्विपद ( ६ ) सूर्य, रक्त, द्विपद ( ८ ) सत्य, श्वेत, द्विपद ( १० ) भृश, पीत, द्विपद ( १२ ) आनाग, शुक्र, एकपद ( १३ ) अग्निकोणमें—वायु, धूम्र, एकपद ( १४ ) पूषण, रक्त, एकपद ( १५ ) वितथ, श्याम, द्विपद ( १७ ), गृहक्षत, श्वेत, द्विपद ( १९ ) यम, कृष्ण, द्विपद ( २१ ) गन्धर्व, पीत, द्विपद ( २३ ) भृङ्ग राज, श्वेत, द्विपद ( २५ ) मृग, पीत, एकपद ( २६ ) नैऋतकोणमें—सुग्रीव, श्वेत, एकपद ( २७ ) दीवारिक, कृष्ण, एकपद ( २८ ) पितृ, श्वेत, द्विपद ( ३० ) पुष्पदन्त, रक्त, द्विपद ( ३२ ) वरुण, श्वेत, द्विपद ( ३४ ) अमुर, रक्त द्विपद ( ३६ ), जोष, कृष्ण, द्विपद ( ३८ ) रोग, धूम्र, एकपद ( ३९ ) वायुकोणमें—पाप, रक्त, एकपद ( ४० ) अहि, कृष्ण, एकपद ( ४१ ) मुरग, श्वेत, द्विपद ( ४३ ) मल्लाट, पीत, द्विपद ( ४५ ) सोम, शुक्र, द्विपद ( ४७ ) सर्प, कृष्ण, द्विपद ( ४९ ) अदिति, रक्त, द्विपद ( ५१ ) और इति, श्याम, एकपद ( ५२ ) ।

इस प्रकार पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा चतुर्दिक् बेधित

इति च बाहू अथगिष्ठ उतनाम पतौर्त्तै पुर्वादिक्वपने इति च  
वचने अट्टिन करवा होना है ।

पर्यय पद्यवत्क मन्थ भाष, इयेन पद्यवत् ( ५३ )  
उत च वाचसंभ जवत्त द्विवत्क भाष भाषवत्त, गौर,  
पद्यवत् ( ५४ ) इत्येके इति च कुटिलामुप गृह्य सवत्  
पद्यवत्के भाष भवता, गायत्र्यवत्तं द्विवत् ( ५४ ) गृह्य  
द्विवत्क गोपे इत्युत्तम, पान पद्यवत् ( ५८ ) आकाश  
पद्यवत्क भाष भाषवत्त रत्त पद्यवत् ( ५९ ) गृह्यत,  
वत्, गायत्रं इत तान पतौर्त्तै भाष विषयवत् रत्त, द्विवत्  
( ६३ ) गृह्यत द्विवत्क भाष विषयवत्त पानवत्तं,  
पद्यवत् ( ६३ ) गृह्य पद्यवत्क गोपे उत, इयेन पद्यवत्  
( ६४ ) पुण्यवत्त वत्त, भाष द्विवत्क भाष द्विवत्  
गृह्य द्विवत् ( ६७ ) भाष द्विवत्क भाषे रात्रवत्तना पान  
पद्यवत् ( ६८ ) पान पद्यवत्क गोपे उत गृह्य पद्यवत्  
( ६९ ) भाषात्, गोप गद्य द्विवत्क भाषे पूष्यावत्,  
इयेन, द्विवत् ( ७२ ) मध्यवत्तक गो पतौर्त्तै द्विवत् रत्त  
वत्तं, मध्यवत् ( ८१ ) ।

इम प्रथम ८१ पद्य पुर्वा करण, मध्यवत्क बाहू वत्तौ  
होतमे पद्य पुनक्तिवाचो तस्य अट्टिन करे, इमान्वाणमे  
वत्तौ रत्तवत्तं । ( १ ) अतिगोपमे विद्यते इत्यवत्त  
( २ ) मध्यवत्तमे पुनवा इवावत्तं ( ३ ) पानुवत्तमे  
पानुवत्तना गौरवत्तं ( ४ ) ।

उक्त प्रथममे मध्यवत्त वत्त ८१ उतमे अट्टिनचित् इव  
तामोका पूषा वत्तना होतो है । बास्तीस्येतिष्ठाम्भयमे  
पद्यगोपिवत् बास्तीस्यवत्त वत्त ८१ उतमे बास्तीस्य  
वत्तै ।

बास्तीस्यवत्तमे विद्या है, कि यदि बास्तीस्यवत्त  
पद्य मध्यवत्त ल वत्तना वत्तं, तो भाषभाष गित्ता पद्य इत मद्य  
इवत्तामोका पुष्यादि करे ।

पद्य विद्या भाषवत्तं विद्ये ज्ञानका होना । उक्त  
प्रथममे मध्यवत्त वत्त ८१ उतमे बास्तीस्यवत्त वत्तना उचित है ।  
बास्तीस्यवत्त वत्तमे इत्यादि द्वारा मध्यवत्तौ पद्यवत्तं करे ।  
पुण्यवत्तं भाषे वत्तं द्वारा मध्यवत्तना भास्तीस्यवत्त  
वत्तना भाषवत्तै । इत प्रथम बास्तीस्यवत्त वत्तमे बास्तीस्य  
वत्तौ गौर वत्तं इत्ये है । ( ५३ ) ( ५४ )

बास्तीस्यवत्त वत्तमे गौर गृह्यवत्तं ज्ञान मद्य विद्यते  
५०१ XIL ८१

है उत च मनुष्यवत् गृह्य प्रयोग करवा होना है । गृह्य  
वत्तौ वत्त वत्त ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त भाष वत्तना भाष  
वत्त भाष ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त विद्या, वत्त  
विद्या द्विवत्त बास्तीस्य वत्त भाषवत्त मध्यवत्तौ वत्तौ  
वत्तौका पद्यवत्त होना है । मध्यवत्त वत्त ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त विद्यामः । बास्तीस्य  
वत्तवत्त विद्यामः बास्तीस्यविधि ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) पद्यवत्त भाषि ज्ञाने भाषवत्त  
गृह्यमे प्रयोग करण मध्यवत्त विद्ये ज्ञान है ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त भाष । बास्तीस्य  
वत्तवत्त भाष्य बास्तीस्यविद्याः । द्विवत्त भाषमे पान मध्यवत्त  
बास्तीस्यवत्त वत्तना मध्यवत्त भाष भाषवत्त है उत बास्तीस्य  
भाष्य वत्त है । विद्यामः वत्त ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त मध्यवत्त ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त विद्ये मध्यवत्त वत्त  
वत्त । ( ६१० ) ( ६११ )

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) मध्यवत्त गुण मध्यवत्त पद्य मध्यवत्त  
इत्यवत्त भाष्य । भाषवत्त वत्तना । पद्यवत्त—बास्तीस्य  
बास्तीस्य वत्त, पद्यवत्त विद्ये मध्यवत्त भाषवत्त वत्त  
भाष, मध्यवत्तौ । गुण—मध्यवत्त मध्यवत्त भाष, मध्यवत्त,  
मध्यवत्तनात्त मध्यवत्त उत मध्यवत्त, मध्यवत्तमे विद्ये  
मध्यवत्त, मध्यवत्त मध्यवत्त वत्त । ( मध्यवत्त )

बास्ती ( म० ६१० ) १ निमित्त विद्ये । २ इत्यु वत्त ।

बास्ती ( म० ६१० ) १ मध्यवत्तवत्तौ । २ मध्यवत्तवत्तौ ।

३ बास्तीस्यवत्तवत्तौ । वत्तना मध्यवत्त ( ६१० ) मध्यवत्तवत्त  
वत्त । ४ ५११ ( ६११ ) इति वत्त । ५ मध्यवत्त । ( ६११ )

३११ ( ६११ ) मध्यवत्तवत्तवत्त ( ५ ३ वत्त ) ५ ३ ३११ ( ६११ )  
इति वत्त । ५ मध्यवत्तवत्त ।

बास्तीस्यवत्त ( म० ६१० ) बास्तीस्यवत्त मध्यवत्त मध्यवत्तवत्त  
बास्तीस्यवत्त मध्यवत्तवत्त वत्त । इति विद्यामः मध्यवत्त  
वत्तवत्त वत्त मध्यवत्तवत्त मध्यवत्तवत्त वत्तना विद्ये मध्यवत्त  
इति विद्ये मध्यवत्तवत्तौ इत्यवत्तवत्त ५ ३ ३११ ( ६११ )  
२ मध्यवत्तवत्त । ( मध्यवत्त ३ ३ ३ ३११ ) ( ६१० ) मध्यवत्त  
वत्त, मध्यवत्त वत्तना मध्यवत्तवत्त । ( ६१० ) ( ६११ )

वास्तोष्पत्य ( सं० त्रि० ) वास्तोष्पति सम्बन्धीय, देवता-  
सम्बन्धीय ।

वास्त्र ( सं० पु० ) वस्त्रेण परिवृतो रथः वस्त्र ( परिवृतो  
रथः । पा ४।२।१० ) इति अण् । १ वस्त्रावृत रथ, कपड़े-  
से ढका हुआ रथ । ( त्रि० ) २ वस्त्रसम्बन्धी ।

वास्त्व ( सं० त्रि० ) वास्तुनि भवः वास्तु-अण ( गृह्यय  
वास्त्ववास्त्वेति । पा ६।४।१७७ ) इति उकारस्य घत्वेन  
निपातनात् साधु । वास्तुभव ।

वास्प ( सं० त्रि० ) वारि तिष्ठति स्था ड । जलरिश्त,  
जलमें रहनेवाला ।

वास्प ( सं० पु० ) १ ऊष्मा, गरमी । २ लौह, लोहा । ३ माप ।

रसायन और पदार्थविज्ञानमें वाष्प शब्द ऊँ  
अर्थों में व्यवहृत होता है । अङ्गरेजी विज्ञानमें गैस  
( Gas ), घीम ( Steam ) और वैपर ( Vapour ) कहने  
से जिस पदार्थका बोध होता है, हिन्दीका वाष्प भी  
उस पदार्थका बोध कराता है । हिन्दी भाषामें गैस, वैपर  
या घीम शब्दके बदले वाष्प शब्दका प्रयोग किया जाता  
है । वाष्प पदार्थ-निचयकी केवल एक अवस्था है ।  
तरल पदार्थ उच्चापके सहयोगसे वाष्परूपमें परिणत  
होता है । सोना, रूपा, ताँबा, लोहा आदि भी उच्चापसे  
वाष्पके रूपमें परिणत हो सकता है । इस तरहके अर्था  
में वाष्प शब्द अङ्गरेजी भाषामें गैस शब्दका अर्था-  
वाचक है । हम यहाँ केवल जलीय वाष्पकी बात ही  
कहेँगे ।

“वायुविज्ञान” शब्दमें जलीयवाष्पके सम्बन्धमें  
बहुनेरी बातें कही गई हैं । “वृष्टि” और “जिश्निर” शब्दों-  
में भी जलीय वाष्पों पर आलोचना की गई है । आर्ट  
घर घूममें फैलाने पर यह शब्द ही सूत्र जाता है । यह  
जिस जलसे परिपिक था, वह हमारा आँखोंके सामने  
देखते देखते गायब हो गया अर्थात् जल वाष्पमें परि-  
णत हो कर वायुमें मिल गया । प्रभातके समय किसी  
चौड़े मुखवाले बरतनमें थोड़ा जल रखनेसे दूसरे पहर  
देखा जायेगा, तो मालूम होगा, कि उस जलका परिमाण  
कम हो गया है । जलकी इस तरहकी परिणति अङ्गरेजी-  
में “वैपर” ( Vapour ) कही जाती है । सूर्यकिरणमें  
इस तरह नित्य कितने परिमाणसे जल वाष्पमें परिणत

होता है । “वायुविज्ञान” शब्दमें जलीय वाष्प प्रकरणमें  
उसका विस्तृत विवरण लिपिबद्ध किया गया है । जिस  
जलीयवाष्पसे अत्यन्त बन्ध आदि परिचालित हो रहे  
हैं, मनुष्यके अति प्रयोक्तनीय अत्यन्त कार्या रान दिन  
सम्पादित हो रहे हैं, यहा उनी वाष्प ( Steam ) की  
बात कही जायेगी ।

अग्निसन्नापसे जल लील उठता है । इस लीलने  
दुष्प जल पर जो जलीयवाष्प उठना दिखाई देता है, उसे  
समाने देना है । इसका ही नाम है घीम ( Steam ) ।  
इस जलीयवाष्पका धर्म ठीक वायव्य पदार्थके ( Gas )  
धर्मके अनुसार ही है । यह जलीयवाष्प खण्ड है ।  
आकाशकी अपेक्षाकृत गीतल वायुके सार्शसे जल वाष्प  
गति किञ्चित् घनोभूत हो जाती है, तब यह दिखाई देती  
है । इस वाष्पकी अन्नाधारण शक्ति है । इसके द्वारा  
अत्यन्त बन्ध परिचालित होते हैं, रेलगाड़ो, घीमर, पाट  
कल, मुग्गीकल, चटकल, कपडे धुनेकी कल, आटाकल  
आदि कितने ही कठ-कारखाने चलाये जाते हैं । यह  
वाष्प शक्ति ही इसका प्रधानतम हेतु है । इस जलीय  
वाष्पका प्रधान धर्म स्थितिस्थापकताविशिष्ट प्रचाप है ।  
यह वाष्प किसी आवृत्त पात्रमें सञ्चिन किया जाये तो  
उनी पात्रके सर्वांशमें ही उसका प्रचाप फैल जाता है ।  
घीम या जलीयवाष्पके इस धर्मसे ही एक प्रबलतर  
शक्ति उत्पन्न होती है । यह शक्ति यन्त्रविशेषमें परि-  
चालित कर जगन्के अनेक कार्य सम्पन्न हो रहे हैं ।

सारकिरणने ही जल वाष्पके रूपमें परिणत होता  
है । जिस नियमसे यह कार्य सम्पादित होता है, वह  
स्वाभाविक वाष्पोद्गम या ( Spontaneous evapora-  
tion ) नामसे अभिहित है । किन्तु अग्निके संयोगसे  
( by ebullition ) जो वाष्प ऊपर उठता है वही  
प्रतीच्य विज्ञानकी भाषामें साधारणतः घीम ( Steam )  
नामसे विख्यात है । तरलपदार्थ तापके मात्रानुसार  
स्फुटित होता है । पदार्थोंमें रासायनिक उपादानके  
पार्थक्यनुसार उनके स्फोटनाङ्कका ( boiling point )  
पार्थक्य होता है । जलके ऊपर प्रचाप, आकर्षणके  
परिमाण और उनमें अन्यान्य पदार्थोंके विमिश्रण आदि-  
के अनुसार स्फोटनाङ्कका निर्णय होता है ।

। पारणतः एवमपरिविष्ट जल १०२ डिग्री तापान्तरमें, परिविष्ट जल ११३ डिग्री तापान्तरमें, कार्बोनेट आब श परिविष्ट जल १३५ डिग्री तापान्तरमें और कार्बु रक्षित जल १०६ डिग्री तापान्तरमें कौंठता है ।  
 यूरोपी ससिमोकी परीक्षासे स्थिर किया है, कि माट्रु पर्यंत पर १८५ डिग्री तापान्तरमें जल उबकता यह पर्यंत समुद्रससे होत मास ऊंचा है। मुं सो दकी गजनामें देखा गया है, कि वेचिसबोका र्त पर मो १८५ डिग्री तापान्तरमें जल उबकने लगता । प्रते ५३६ फोटोकी ऊंचाईमें १८ डिग्री स्फोटनका तापतप्य होता है । वातवपान्तमें २१२ डिग्री तापान्तरमें गीर स्फासपात्रमें २१३ डिग्री तापान्तरमें स्फुटित होता है । पर किसो यात्रक सम्पत्तर भागमें कसई का देते पर इसमें २२० डिग्री स्थाप देस मो जल नहीं उबकता । नामक, बोतो और मग्नास्य पदार्थ सिधे हुए जसको उबालनेमें अधिक मात्रामें ताप देनेकी आवश्यकता है । भियेसिक, इथिलिक, प्रप्रिसिक और बुटिलिक मेथल ओ पल्कोहल हैं, उनके स्फोटनका मुं सिध गिस हैं । इनी लट्ट हाइड्रोकार्बन धैलोक, टेसिमोस आदि मो सिध सिध तापान्तरमें स्फुटित होते हैं । (जलीव वाष्पके सम्बन्धमें अन्वय विषय यासुबान, इदि और गिजिर, शम्पुमें देखा जाहिसे ।)

वाष्पयन्त्र (Steam Engine) - वाष्पक प्रगावसे बजा हुरं कछ ।

वर्तमान समयमें अधिकश पाठको न विधि न्यबोमें छोम-र्यञ्जल देये हो गे । इस समय हम हाटमें, घाटमें, पथमें, मैदानमें, नगरमें, पारतमें समो जगह पाग एञ्जिनका बहुत मचलन देल रहे हैं । किस समय दिस लट्ट किसके द्वारा सर्गप्रथम इस एञ्जिनका आविष्कार हुआ इस बात को ज्ञानवैक सिधे किसको कौनुहम न होगा? इस समय हम जिसे छोम एञ्जिन करते हैं, वह पहले पापर एञ्जिन नामन पुकारा जाता था । हिन्दी भाषामें छोम एञ्जिन या पापर एञ्जिन 'वाष्पयन्त्र' नाममें अभिहित होता है । क्योंकि संस्कृत भाषामें वाष्प शब्द ऊंचा और अन्वेषणार्थ होति है परित्यायक है । अग्निमग्नापमें अन्वेषणार्थ वाष्पका निष्कलना और स्रवण वात्रके संशोर्ण छिद्रवयम

इसे प्रथम पगसे बाहर निकालनेकी बात अति प्राचीन कालमें भी मागबमएजमीको माखुम थी । इससे १०० वर्ष पहले प्राचीन यूनान नगरीमें एक प्रकार वाष्पीय यन्त्र का वाटोप्रणाओकी बात प्राचीन यूरोपक वैज्ञानिक इतिहासमें लिखा है । मिस्र और रोमक प्राचीन इतिहासमें भी विविध प्रकारके वाष्पयन्त्रो का उल्लेख दिखाई देता है । किन्तु वाष्पयन्त्र द्वारा गतिक्रिया निम्नान्वित हो सकती है और यह हम गतिक्रियाका अति अष्टसाधन है, इण्टेरेडक मानियस बाप वाष्पदरके समयसे पहले किसोको विदित न था । सन् १६३३ ई० में उन्हीने एक छोटा प्रथम प्रयत्न किया इसका नाम "A century of the Nomes and Scantlings of Inventions" है । इस प्रथममें उन्हीने अन्वेषण वाष्पकी गतिक्रिया निम्नान्वितो शक्ति उल्लेख उन्हीके सबसे पहले ऊपर जल उठानेके सिधे एक वाष्पयन्त्रका आविष्कार किया । इसीसन्धी १७वीं शताब्दीके अन्तमें वाष्पीय यन्त्र साधनको सविशेष घेरा परिष्कृत होती है । इस समय फ्रांसिसो वैज्ञानिक सुप्रसिद्ध वेपिनने (Evipin) वाष्पयन्त्र की यथेष्ट उन्नति का । ये मारचामें नगरक गजितशास्त्रके अध्यापक थे । इस समय फ्रांसदेशम इनको तरदक सुविध पञ्जीनियर वूसर कोई न था । ये पिपल (Piston) और सिलिन्डर (Cylinder) आदिके सहयोगमें वाष्प यन्त्रका यथेष्ट उन्नति को ।

वेपिनके प्रवर्तिन छोम एञ्जिनमें अनेक सुविधां थीं । यह कमो मो कार्पोवयोगी नहीं हुर । उमास सेमरो नामक एक अङ्गरेजने ओ छोम एञ्जिन बनाया था, उसने ही सबसे पहले छोम एञ्जिनका व्यवहार जनसमाजमें प्रवर्तित हुआ । सन् १६१८ ई०में उन्हीने इसकी रजिस्ट्र करवाई । इन सब कलौ से जल ऊपर उठानेका कार्य लिया जाता था । इसके बाद कितने ही इन्जीनियर नामा प्रकारके छोम एञ्जिनका निर्माण किया है । किन्तु ये सब यन्त्र वैस प्रयोजनाय नहीं समके गये । सन् १७०५ ई०में वार्टमाउप निवासी न्यूकामेन नामक एक कार्वाकारने एक नए तरदक वाष्पयन्त्रका निर्माण किया । इस यन्त्रमें वापरराजि का पनीमून करनक सिधे अगिनक श्वाय बिहित हुआ

था। डाक्टर हुकने इस सम्बन्धमें न्यूकामनको यथेष्ट उपदेश प्रदान किया। इसमें पहले सिलिण्डरके बाहर शीतल जल डाल कर वाष्पराशि घनीभूत करनी होती थी। उसमें कण्टकी सीमा न थी, किन्तु सहसा निर्गमनाके हृदयमें एक बुद्धि आविर्भूत हुई। उन्होंने एक दिन एका एक सिलिण्डरके बीचमें शीतल जल "क्षेपण कर देखा कि उससे सहजमें ही और जल्दीसे वाष्प घनीभूत होता है। इससे वाष्पके शक्तिवर्धनकी अनेक सुविधायें हुईं। यह एंजिन "एटमस्फेरिक एंजिन" (Atmospheric Engine) नामसे अभिहित होता था। वेइस्टन, स्मीटन और अन्यान्य इंजिनियर इस यन्त्रकी बहुत उन्नत की। ईरवी सनकी १८वीं शताब्दीमें केवल जल ऊपर उठानेके लिये ही यह यन्त्र व्यवहृत होता था।

ग्रीम एंजिनकी उन्नति करनेवालोंमें जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे ग्लासगो नगरमें गणित-संक्रान्त यन्त्रादिका निर्माण किया करते थे। सन् १७६३ ई०में ग्लासगो युनिवर्सिटीके एक अध्यापकने उनके एक एटमस्फेरिक एंजिनका आदर्श मर्ममत करनेके लिये दिया। वाटने इस आदर्श यन्त्रको पा कर इसके द्वारा नाना तरहकी परीक्षा करनी आरम्भ की, उन्होंने देखा पिष्टन (Piston) के प्रत्येक अभिघातके लिये जिस हिसाबसे वाष्प खर्च होता था, वह सिलिण्डरके वाष्पकी अपेक्षा अनेक गुना अधिक था। वाटने इस विषयकी परीक्षा करनेमें जलके वाष्पमें परिणत होनेके सम्बन्धमें कई घटनाओंका सन्दर्शन किया। उन्होंने अपने गवेषणाफलमें विस्मित हो डाक्टर ब्लैकसे इस गवेषणाकी वार्ता कही। इस शुभ सम्मेलनके फलसे वाष्पयन्त्रके अभिनव उन्नतिका पथ प्रसारित हो उठा। इसी समयसे सिलिण्डरके गाथ कनडेन्सर (Condenser) नामक एक आधार संयोग किया गया। इसी आधारके साहाय्यसे वाष्प घनीभूत होनेका उपाय बहुत सहज हो गया। यह कनडेन्सर एक शीतल जलाधार पर संस्थापित कर वाटने वाष्प घनीभूत करनेका उत्तम बन्दोबस्त किया। जलाधारका जल गर्म होनेसे ही उस जलको फेंक शीतल जल दिया जाता था। इस प्रकारसे कनडेन्सर शीतल जलसे संस्पृष्ट

हो वाष्पराशिको सदा घनीभूत करनेमें समर्थ होता था। वाटने "एटमस्फेरिक ग्रीम एंजिनमें" और भी उन्नति की। उसके बाद इस विभागमें कार्टराइट (Cartwright) का नाम सुना गया। इनके द्वारा वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई है। कार्टराइटने ही पहले धातवपिष्टनका व्यवहार किया था। सन् १७२५ ई०में ल्यूयोवने हाई-प्रेसर एंजिनको (High pressure Engine) सृष्टि की। इसके बाद प्रोमर, रेल आदि यानोंके परिचालनके लिये गणितविज्ञानके साहाय्यसे प्रचुर तथ्य सङ्कलित कर एक अभिनवयुग प्रवर्तित किया गया है। वायलरके वाष्प तैयार करनेकी शक्तिके साथ वाष्पीययानकी गति और तन्निहित भारित्वका विचार करना आवश्यक है। सन् १८३५ ई०में काउण्ट डी पेग्वरने इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त संस्थापन किया। वाष्पयन्त्रके अवयवोंमें निम्नलिखित अवयव ही प्रधान हैं—

१—चुली और जलोत्तापपात्र (Furnace and Boiler)

२—वाष्पपात्र और सञ्चालनदण्ड (Cylinder and piston)

३ घनत्वसाधक और वायुनिर्माणयन्त्र (Condenser and air pump)

४ मेकानिज्म (Mechanism) इनमें प्रत्येकके बहुतेरे अङ्ग और उपाङ्ग हैं। बाहुल्यके डरसे इन सब नामोंका उल्लेख किया न गया।

ये सब वाष्पयन्त्र इस समय कितने ही प्रयोजनीय कार्योंमें व्यवहृत हो रहे हैं। रेल, प्रोमर वाष्पशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। मालूम होता है, कि अदूर भविष्यमें इलेक्ट्रिक रेल यन्त्र भी सभी जगह वाष्पीय रेल-यन्त्रका स्थान अधिकार कर लेगा। अभीसे ऐसा प्रतीत होता है।

वाष्पस्वेड (सं० पु०) गुल्बरोगमें निकलनेवाला पसीना।

वाष्पीयपोत—१७३७ ई०में जेनेथान हानने एक छोटी-सी पुस्तिकाकी रचना की। इस पुस्तिकामें उन्होंने प्रोमर प्रस्तुत करनेकी उपयोगिता विषय पर एक लेख लिखा था। किन्तु वर्षके बाद वर्ण धीत गये। इसके सम्बन्धमें

किस्तिने हल्मसेप-नदी किया। सन् १०८२ ई०में मास्किन डी० सुम्प ब्रोनोगान दानक प्रत्यावको चार्पनीन्वयीं परिपक्व करके प्रेषणी हूय। इन्हीं एक छोटी घीम बोर तय्यार कर मोननगोमें डाल एक अमिसय नाय चन्नानेकी चेष्टा की। किन्तु उनकी यह चेष्टा फलपती नहीं हुई। सन् १०८७ ई०में स्काटलैण्डके मन्तापातो डाइस जनदन निवासी मिष्टर मेट्रिक मिलरने एक पुस्तकमें एक घोषणा प्रचारित की कि वे घीम एजिनमें साहाय्यमे नाच बनायेंगे। इस एजिनके चक्के मो रहेंगे। वाणके बलसे बच्चा घुपने अगेगा और इसके फलमे नाच बसने लगेगा। विविधम सिमिटन नामक एक ठगण चयस्क इङ्ग्लियर द्वारा इन्होंने यह चक्क निर्धार कराया था। डाइसजनन भोजके निर्माण मलिछमे मिष्टर मिमरने इस तरह नाच चलायेका कीशाल दियाया।

- सन् १७८६ ई०में इन्होंने एक बड़े धाकारके घीमरमें यह चक्क सविधेजित किया। इस घीमरमें चक्केमें ७ मील पथ तय किया था। इसका बाद सन् १८०१ ई०में मिष्टर सिमि डमने एक घीमर तय्यार किया। यह घीमर झाडक नहरसे भाया जाया करता था। किन्तु झाडक नहरका किनारा पूर जानेके मयके कारण अधिकारियोंने रोक दिया।

अमेरिकाके एक इङ्ग्लियरने स्काटलैण्डसे घीमर बनानेकी कमानो मीय सन् १८०७ ई०में सबसे पहले हडसन नदीमें घीमर चलायेको चेष्टा की। सन् १८१२ ई०में इन्हीं घीमरका प्रचारित हुआ। पहले घीमर 'कमेट' नामस प्रसिद्ध हुआ था। मिष्टर हेनरीके इसके निर्माता थे इसमें जो वाणीय यन्त्र था, वह चार पीडेका बलवाला था। सन् १८२१ ई०में सप्टेम्बर्ने डिचे तक घीमर छाता आना जाना जारी किया गया।

सागर पार करनेके लिये इस समय मङ्गल मङ्गल घीमर तैयार किये जा चुके हैं। किन्तु सबसे पहले अमेरिकासे ही एक घीमर सागर पार कर लिबर्पुल भेजा था। इसका नाम था—'समाना'। अमेरिकाम लण्डन तक जाने में इस घीमरको २६ दिन लगे थे। इङ्ग्लैण्डके सर्वप्रथम समुद्रमार्गी वाणीय ब्राह्मणका नाम सिरियस (Sirius) था। सन् १८३० ई०में सिरियस स्पेडनमे १७ दिनमे

अमेरिकामें उपस्थित हुआ। इसके बाद नौवामी ब्राह्मण तय्यार हुए। इस समय लिबर्पुलसे अमेरिकाके श्युपार्क तक ही घीमर आते हैं। इनमें कई १० दिनमें ही पहुँच जाते हैं। सन् १८८२ ई०में बना "अलस्का" और "अरिसन" नामक घीमर लिबर्पुलसे सात दिनमें ही श्युपार्कमें पहुँच गये। अलस्का घीमर इस तरह सुन्दर रीतिरी परिचायित होता था, कि इसके आने जानेके निर्दिष्ट समयमें कमी पांच मिनटका भी फर्क नहीं पहुँचा था।

- वासपेय (स० पु०) नागेश्वर। (रत्नमाला)  
 वास्य (स० लि०) धाम-यत्। १ माच्छावनीय, टकले लायक। २ निवासनीय रहने लायक।  
 वास (स० पु०) दिन रोज़। वास बेनो।  
 वासकिटि (स० पु०) बाते अलस्य किटो। शुकर।  
 १ मिश्रमात्र सू स नामक जननम्।  
 वागमर (स० झी०) वारी बन्धय मन्। अजापार।  
 वाद (स० पु०) उद्यनेऽनेति यह करत यत्। १ श्रोतक घोडा। २ पृथ, बैल। ३ ग्रहिय मैसा। ४ वायु हवा। ५ घाट्ट। ६ प्राचीन काष्ठका एक तोल या मान। चार पल (८ तोला = १ पल)का एक कुडक, ४ कुडकका एक प्रस्थ ४ प्रस्थका एक भाडक, ८ भाडक की एक प्रीणा, २ प्रीणाका एक सूर्य, डेढ़ सूर्यकी एक नारी दो नारीकी एक गोणा और ४ गोणाका एक वाह होता है।

अमरीकाकार खामीक मतसे ४ भाडकका एक प्रीण १६ प्रीणकी एक नारी, २० प्रीणका एक कुम्भ और २० कुम्भका एक वाह माना गया है।

- प्रयाह। ८ साहन मवारा। (लि०) ६ बाहक, जाद कर या लीब कर से बसनेवाला।  
 वाह (फा० अर्थ०) १ पर्यासासूचक शब्द, चाम्यवाद। कमी कमी मर्यगत हर्ष प्रकट करनेके लिये यह शब्द बो बार भी आता है। जैसे, वाह, वाह, आ गये। २ बाह्यर्थ सूचक शब्द। ३ घृणाघोषक शब्द। ४ आत्मवसूचक शब्द।  
 वाहक (स० लि०) वहतीति यह पशुल। १ बहमकर्ता, बोख जाने या पीछेबनाना। (पु०) २ मारचि।



वाहकत्व ( सं० क्ली० ) वाहकस्य भावः त्व । वाहकका भाव या धर्म होनेका काम ।

वाहद्विपत् ( सं० पु० ) वाहानां घोटकानां द्विपत् शब्द । महिप, मैसा ।

वाहन ( सं० क्ली० ) वहत्यनेनेति वह करणे ल्युट् ( वाहन माहितात् । पा ८।४।८ ) इत्यत्र वहते ल्युटि धृद्विरिव सूत्रे निपातनात् इति भट्टोजिदीक्षिनोक्त्या निपातनात् धृद्धिः । हस्ती, अश्व, रथ और घोडादि यान हाथी घोडे रथ और पाटकी आदिकी सवारी । २ वाहक, होनेवाला ।

वाहनता ( सं० स्त्री० ) वाहनस्य भावः तल्-टाप् । वाहनत्व, वाहनका धर्म या कार्य ।

वाहनप ( सं० पु० ) वाहन पा क । वाहनपति ।

वाहनप्रहसि ( सं० स्त्री० ) वाहनको हानविषयक एक प्रणाली । ( ललितवि० १६६ पु० )

वाहनिक ( सं० लि० ) वाहनेन जीवति ( वेवनादिभ्यो जीवति । पा ४।४।१२ ) वाहन-ठक् । वाहन द्वारा जीविका निर्वाहकारी, बोझ ढो कर अपना गुजारा चलानेवाला ।

वाहनोय ( सं० लि० ) वह-णिच् अनोयर् । वहन करनेके योग्य ।

वाहरिपु ( सं० पु० ) वाहानां घोटकानां रिपुः । महिप, मैसा ।

वाहवाही ( फा० स्त्री० ) लोगोंकी प्रशंसा, स्तुति ।

वाहश्रेष्ठ ( सं० पु० ) वाहेषु वाहनेषु श्रेष्ठः । अश्व, घोडा ।

वाहस् ( सं० क्ली० ) स्तोत्र ।

वाहस ( सं० पु० ) उच्यते इति वह ( वहियुम्या णित् । उण् ३।११६ ) इति असच्, स च णित् । १ अजगर । "त्वाप्राः प्रतिश्रुत्कृष्टे वाहसः" ( तैत्तिरीयसं ५।५।१४।१ ) २ चारि निर्याण । ३ सुनिपण्णक, सुसनी नामका साग ।

वाहा ( सं० स्त्री० ) वह अजादित्वात् टाप् । वाहु ।

वाहावाहवि ( सं० अथ० ) वाहमिन्वाहुमिर्युद्धमिदं प्रवृत्तं । वाहुयुद्ध, हाथावाही ।

वाहिक ( सं० पु० ) वाहेन परिमाणविशेषेण क्रीतं वाह ( अस्मात्ते निष्कादिभ्यः । पा ५।१।२० ) इति ठक् । १ ढक्का, बड़ा ढोल । २ गोवाह, गाडी, छकडा । ( लि० ) ३ भारवाहक, बोझ ढोनेवाला ।

वाहित ( सं० लि० ) वह णिच्-क्त । १ चालित, चलाया हुआ । २ प्राप्त, प्राप्त किया हुआ । ३ प्रवाहित, बहा हुआ । ४ प्रतारित, धोखा पाया हुआ । ५ वञ्चित, टगा हुआ ।

वाहिता ( सं० स्त्री० ) वाहिनो भावः तल्-टाप् । वहनकारीका भाव या धर्म ।

वाहितृ ( सं० लि० ) वहनकारी, होनेवाला ।

वाहितृ ( सं० क्ली० ) गजकुम्भका अधोभाग ।

वाहिन ( सं० लि० ) वाह-अस्त्यर्थे इति । वहनकारी, होनेवाला ।

वाहिनी ( सं० स्त्री० ) वाहा वाहनानि घोटकादीनि सन्त्यस्यामिति वाह-इति । १ सेना । २ सेनाका एक भेद । इसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोडे और ४०५ पैश्ल होते थे । ३ नदी । ४ प्रवाहशीला ।

( मार्कण्डेयपु० ३८।२६ )

वाहिनीपति ( सं० पु० ) वाहिन्याः मेनायाः पतिः । सेनापति । वाहिन्याः नद्या पति । २ समुद्र ।

वाहिनोपति महापात्र भट्टाचार्य—नवदोपके प्रसिद्ध नैपायिक वासुदेव सार्वभौमके पुत्र । इन्होंने पद्मशरमिश्र रचित तत्त्वचिन्तामणि आलोचको शब्दालोकप्रिये नाम्नां टीका लिखी है । आप उत्कलपतिके प्रधान मन्त्री थे । वासुदेव सार्वभौम देखो ।

वाहिनोश ( सं० पु० ) वाहिन्याः ईशः । वाहिनीपति ।

वाहियात ( अ० वि० ) १ व्यर्थ, फजूल । २ बुरा, खराब ।

वाहिष्ठ ( सं० लि० ) बौद्धतम । ( शृक् ५।२५।७ )

वाही ( अ० वि० ) १ सुरत, ढोला । २ निकगमा । ३ बुद्धिहीन, मूर्ख । ४ आचारा । ५ बैठकानेका, बेहूदा ।

वाहीतवाही ( अ० वि० ) १ बेहूदा, आचारा । २ अंड-बंड, वेसिर पैरका । ( स्त्री० ) ३ अंड-बंड बाने, गाली गलीज ।

वाहु ( सं० पु० ) वाधने शत्रूनिनि वाध लोडने ( अर्त्ति-दशि कमीति । उण् १।२८ ) इति कु हकारादेशश्च । १ हाथके ऊपरका भाग जो कुहनी और कंधेके बीचमें होता है, भुजदण्ड । पर्याय—भुज, प्रचेष्ट, दोप, वाह, दोष । २ गणितशास्त्रमें त्रिकोणादि क्षेत्रोंके किनारेकी रेखा, भुजा । वाहुमूल ( सं० क्ली० ) वाहोर्मूलम् । भुजदण्डका आद्य

भाग, कौशल। पचाय—कक्ष, मुञ्जवाटर, शैर्भूम, पच्छिक, कक्षा।

बाहुल (सं० पु०) १ कार्षिक मास। २ स्वाकरणका अनुशासनविशय। पर्वर्गमें देखो।

बाहुस्य (सं० स्त्री०) बाहुस्य माया शयम्। आधिपत्य, अधिकता।

बाहुवार (सं० पु०) इतिधाम्नाक वृक्ष, बहेड़े का वृक्ष।

बाहुक (सं० पु०) उपदेशी मलराजा। अक्ष देखो।

बाहु (सं० लि०) वह्निमन्त्रधीय मन्त्रिसम्बन्धीय।

बाहुम (सं० पु०) आचार्यभेद।

बाहु (सं० स्त्री०) बाहुते ध्यायते इति वाहि उपपत्। १

याम, सवातो। वह-ववत्। २ वदनीय, ठठा या कौष कर से जाने योग्य। ३ वहि, बाहुर। ४ पुत्रक, समग।

बाहुद (सं० स्त्री०) बाहुदन्त। १ बाहु। २ बाहक, पादो, छकड़ा।

बाहुहापनि (सं० पु०) बाहुकाका गीतापत्य।

बाहुकी (सं० स्त्री०) अग्निपहुतिकोदभेद।

(सुभुक्त कस्तुर्या ८ म०)

बाहुत्व (सं० स्त्री०) बाहुत्व माया इत्य। बाहुहा माया वा धर्म।

बाहुपुति (सं० पु०) रसका संस्कारविशेष।

(रत्नवि० १ म०)

बाहुस्क (सं० पु०) बाहुस्कका वाक्तापत्य।

बाहुस्कपन (सं० पु०) बाहुस्कका गोलापत्य।

बाहुगतर (सं० लि०) १ भीतर भीर बाहुरका। २ भीतर भीर बाहुर।

बाहुगिन्द्र्य (सं० स्त्री०) बाहुगिन्द्रिय। बहिर्गिन्द्रिय, पार्श्वी बहिर्गिन्द्रिया। इन्द्रिय शब्दार्थ ही जितमेंसे ५ बाहुगिन्द्रिय, ५ अन्तरैन्द्रिय भीर मत उभयगिन्द्रिय हैं। कौशल, काम, नाक, शीम और त्वचा ये पाँच बाहुगिन्द्रिय तथा बाणी, हाथ, पैर, गुदा और वपुष्य ये पाँच अन्तरैन्द्रिय हैं। कौशल बाहिर् पाँच इन्द्रियोंका काम बाहु बिपयोंका श्रवण करना है, इसीसे इनको बाहुगिन्द्रिय कहते हैं।

(मायपरि०)

बाहुक (सं० पु०) १ देशभेद, बाहुक देश। २ कु कुम, देशर। ३ हि गु। ४ जोताहन, सुरमा।

बाहुक (सं० पु०) १ देशभेद। एक देश जो भारतकी उत्तर पश्चिम सीमा पर था। साधारणता आज कलके 'बलख' के भासपासका प्रदेश ही जिसे प्राचीन पारसी 'बहुत' और यूनानी 'बैक्ट्रिया' कहते थे, बाहुक माना गया है, परन्तु पाश्चात्य पुरातत्त्वविद् इसे आज कलके भारतपूर्वके बाहुर नहीं मानता चाहते।

२ बाहुकदेशज्ञात घोटक, बाहुक देशका जोडा। ३ एक गण्यपिका नाम। (हम्बरला०) ४ प्रतीपके एक पुत्रका नाम। (मारव ११५५५५) ५ कु कुम, देशर। ६ हि गु, हीग।

वि (सं० अर्थ०) १ निग्रह। २ निबोग। ३ पादपूर्ण। ४ निश्चय। ५ असहन। ६ हेतु। ७ अस्वाति। ८ विनि योग। ९ ईषर्ध। १० पतिमय। ११ शुद्ध। १२ मयमयन। १३ विज्ञान। १४ विद्येय। १५ गति। १६ भाष्टम। १७ पाठन। (शम्बरला०) उपसर्ग बिभेन म, परा भादि उपसर्गोंमेंसे एक उपसर्ग। मुख्य बोधदोकाकार दुर्गादासने इस उपसर्गके निम्नोक्त अर्थ लगाये हैं। पिशय, जैसे—विकराय, पिहीन। वैक्य, जैसे—विधिष। निषेय या प्रेपरोत्य। जैसे—विशय, विवृष्ट।

वि (सं० पु० स्त्री०) वाति गच्छतीति वा (वाते विन्म। डण् ३।१११) इति इण् सच जित। १ पत्नी, चिद्विया। (स्त्री०) २ मय, अनाह। (शुभ्रा० १५५, १५६) (पु०) ३ आकाश। ४ चक्षु, गैल।

विंदुर (हि० पु०) किसी पदार्थ पर दूसरे रंगक कमी हुए छोटे छोटे बिन्दु, सुवकी।

विंश (सं० लि०) विंशति पूरमे इदं, तिर्थाय। अन्तसे बीसक स्थान पर पड़नेवासा, बीसवाँ।

विंशक (सं० लि०) विंशत्या कौशः विंशति (मि कति मि व द्वांइकुन व श्यां। वा ५।१।१४) इकुन (मि कति तिर्थाय) वा ६।५।१४ इति निबोधः। विंशतिकोश, जो बीसमें शरोका गया हो।

विंशत (सं० लि०) बीस।

विंशति (सं० स्त्री०) द्वेषपरिमाणस्य पंक्ति विंशतीति निपातनात् सिद्ध। १ बीसकी संख्या। २ इसका सूचक लक्ष जो इस प्रकार लिखा जाता है—२०। (लि०) ३ जो गिनतीमें बीस हो।

विंशतिक (सं० त्रि०) सख्याया ऋन् स्यादाहोवैद्ये,  
विंशति विंशत्रया ऋन् सख्या आश्वा ऋन् स्यान्।  
विंशतियोग्य, वीमकी सखा।

विंशतितम (सं० त्रि०) विंशतैः पूरणः विंशति (विंशत्या-  
दिभ्यस्त्वदन्त्यत्वरस्या। वा १।०।१६) इति तमडागमः।  
विंश, वीमया।

विंशतिप (सं० पु०) विंशतिपाकः। विंशतिका  
अधिपति, वीम गाँवाँका मालिक।

विंशतिगत (सं० क्लो०) विंशत्याः गत। विंशति गत,  
वीस साँ।

विंशतिसाहस्रि (सं० क्लो०) वीस हजार।

विंशतीज (सं० पु०) विंशत्याः ईजः। विंशतिका  
अधिपति।

विंशतीजिन् (सं० पु०) विंशत्याः ईजो, ईज निनि।  
वीस ग्रामका अधिपति।

विंशत्यधिपति (सं० पु०) विंशत्याः अधिपतिः।  
विंशतिपति, वीस ग्रामका अधिपति।

विंशद्वाह (सं० पु०) रावण (रामायण ७।३०।१४)

विंशिन (सं० पु०) विंशति ग्रामेन अधिभूत। १ विंशति  
ग्रामपति, वीस गाँवाँका मालिक। २ विंशति, वीसकी  
सख्या।

विंशोत्तरी दशा (सं० स्या०) ज्योतिष्योक्त दशाष्टक।  
इस दशामें प्रहोरा १२० वर्ष तक भोग होता है। इसी  
से इसका नाम विंशोत्तरी दशा हुआ। इस दशास  
मानवजायनका शुभाशुभ फल निर्णय किया जाता है।  
दशा बहुत तरहकी होने पर भी इस कलिकालमें एक  
नाक्षत्रिकीके दशानुसार ही फल होता है।

“सत्ये लघुदशा प्रोक्ता तत्राथी योगिनीमता।

द्वाप हर्गोरीच कर्त्री नाक्षत्रिकी दशा ॥” (अथपुराणा)

इस नाक्षत्रिकी दशामें दो दशाये हैं—अष्टोत्तरी  
और विंशोत्तरी। भारतमें ये दो दशाये प्रचलित हैं।

पराशरस्मृतिसमें पञ्चोत्तरी, षाडोत्तरी आदि दशाओं  
का भी उल्लेख है, किन्तु इनका इस समय व्यवहार  
दिखाई नहीं देता। साधारणतः यहाँ पूर्वोक्त दशायाका  
ही व्यवहार देखा जाता है। अधिकतर ज्योतिर्विद्वद्दों  
अष्टोत्तरी मतसे गणना करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो

अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी दोनों मतोंका व्यवहार  
करते हैं।

युक्त प्रदेशके विन्ध्य पर्वतके पूर्वमें एकमान्त्र विंशो-  
त्तरी मतसे फल गणना की जाती है—या यों कहिये कि  
यहाँ अष्टोत्तरी मतमें गणना की ही नहीं जाती। हाँ एक  
दशा और भी यहाँ प्रचलित है। उसका नाम है—  
योगिनी दशा। इस दशाका कुछ कुछ व्यवहार यहाँ  
देखा जाता है।

बङ्गालमें अष्टोत्तरी मतका ही प्राबल्य है। इन दोनों  
दशाओंकी फलगणनामें कहीं कहीं फलका तारतम्य  
दिखाई देता है। ज्योतिषियोंका कहना है, कि इन दशाओं-  
के अनुसार जो फल निर्णय होगा, वह होगा ही होगा।  
ऐसी दशामें इसके व्यतिक्रम होनेका कारण क्या? इसके  
उत्तरमें उनका कहना है, कि अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी इन  
दोनों दशाओंमें जिसको जिस दशाके फलका अधिकार  
है, उसको उम्मी फलका भोग करना होगा। दूसरी दशासे  
उसका फल न होगा। कुछ ज्योतिषी तो गणना  
कार्यके भ्रमको ही फल व्यतिक्रमका कारण बताने हैं।

अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी—इन दो नाक्षत्रिकी दशा  
होने पर भी नक्षत्रोंका क्रम एक तरहका नहीं है। कृतिका  
नक्षत्रसे आरम्भ कर अभिजित्के साथ २८ नक्षत्रोंके तीन  
चार इत्यादि क्रमसे राहु प्रभृति ग्रहोंकी अष्टोत्तरी दशा  
होती है। किन्तु विंशोत्तरी दशा ऐसी नहीं है। यह दशा  
किसी एक विशेष नियम पर निर्भर कर प्रतिपादित हुई  
है। भगवान् पराशरने अपनी संहितामें इसका विशेष  
रूपसे उल्लेख किया है, किन्तु हम सक्षेपमें इसका कुछ  
परिचय देने हैं।

किसी निर्दिष्ट राशिका त्रिकोण अर्थात् पञ्चम और  
नवम राशिसे साथ आपसमें इनका सम्बन्ध हो, अर्थात्  
यह एक दम्परेका देवता हो—पराशरने अपनी संहितामें  
उक्त नियमसे राशियोंका दृष्टि सम्बन्ध निर्देश किया है,  
त्रिकोणम्य राशियोंके मतसे त्रिकोणम्य नक्षत्रोंके भी  
परस्पर सम्बन्ध है। नक्षत्रोंका मत्वा, २७में ३का भाग  
देने पर प्रत्येक भागमें ९ नक्षत्र होते हैं। अतः जिस  
किसी नक्षत्रमें नामावर्त्त और द्वाभिणावर्त्तक्रमसे जो  
जो नक्षत्र दशमें हैं, उन नक्षत्रोंका उस उस नक्षत्रका

निकाणस्य नक्षत्र ज्ञानना होगा। जैस कृत्तिका नक्षत्रस्य  
दक्षिणावर्षी और वातावरण गणनाम उत्तरफल्गुनी और  
उत्तराषाढा नक्षत्र वृषभ या क्रिकाय नक्षत्र होता है।

अतएव भव मास्यं हुआ, कि कृत्तिका नक्षत्रस्य साथ  
उत्तर-फल्गुना और उत्तराषाढा, कथन इन दोनों नक्षत्रों  
होकर विंशोत्तरी या वृष्टि-मन्थन्य रहनेमें कृत्तिका नक्षत्रमें  
जिस प्रहको दशा है, इन दो नक्षत्रोंके भा उन्ही प्रहोंको  
दशा होगी। कृत्तिका नक्षत्रम रविको दशाका उल्लेख है,  
अतएव इन दो नक्षत्रोंका भी रवि दशा ही जानना होगी।  
इसके परस्पर परस्परों तीन नक्षत्रोंमें चन्द्रको दशाका  
अधिहार है। २० नक्षत्रोंमें चन्द्र रोहिणी नक्षत्रमें भव  
स्थित रहने पर बहुत प्रसन्न रहता है। इसीलिये परा  
शरन रोहिणा नक्षत्रका ही चन्द्रक दशाक्रमक निर्देश  
किया है।

उक्त प्रकारके नियमसे ही प्रत्येक तीन तीन नक्षत्रमें  
मङ्गलार्द्र प्रहकी दशा कथित हुई है। विंशोत्तरी दशाम  
अष्टोत्तरी दशाका मत भूमिस्थित नक्षत्रस्य गणना नही की  
जती है और रविस कतु तक नक्षत्रके प्रत्येक तीन  
तीन नक्षत्रोंमें दशाधिकार अवस्थापित हुआ है। अष्टो  
त्तरी मनुसे कतुको दशा नही है। किन्तु विंशोत्तरी दशा  
क अनुसार कतुग्रहना दशा मानो जाती है। इस  
लिये ही अष्टोत्तरी दशाक क्रमक साथ इसका बहुत  
पाठक्य है।

विंशोत्तरी मतसे रवि आदि प्रहोंको दशा भोगदान  
अर्थात् महादशा इस तरह निर्दिष्ट हुई है रविकी महादशा  
का भोगकाल ६ वर्ष, चन्द्रका १० वर्ष, मङ्गलका ७ वर्ष,  
राहुका १८ वर्ष, बृहस्पतिका १३ वर्ष, शनिका १३ वर्ष,  
शुक्रका १० वर्ष, कतुका ७ वर्ष शुक्रका २० वर्ष कुल १२०  
वर्षमें दशाक भोगका अन्त होता है। इससे इसका नाम  
विंशोत्तरी हुआ है। परन्तु इसमें अष्टोत्तरी दशाका तरह  
नक्षत्र-स्वभावक अनुसार दशाका वर्ष विभाग कर भोग्य  
दशा निकालो नहीं जाता; इसमें प्रत्येक नक्षत्रमें ही पूर्ण  
दशाका भोगव्यय घर कर गणना करना होता है। इस  
समय मास्यं हुआ है, कि अद्यावत् और विंशोत्तरी दोनों  
मतसे ही रविस मनुस्य तत्र ये तीन दशाक्रम परस्पर एक्य  
है, इनके बादसे ही भविजन्य हुआ है। रवि और शुक्रक

दशाका भोग्यक्रम प्रहोंके दशावर्षोंको सख्या गो मित्र प्रकार  
की है।

विकासवर्षी पराशर मुनिने कलिक जोषाको भाग्य  
क्रमक पनाफलको जाननेके लिये एकमात्र प्रत्येकफल  
प्रद विंशोत्तरी दशाका विवेक किया है। यद्यपि अष्टोत्तरी  
और विंशोत्तरी आदि कई सांख्यिकी दशाके निर्णयकी  
सतन्त्रम व्ययस्था है तथापि पराशरके मतसे इस कलि  
कालमें विंशोत्तरी दशा ही फलप्रद है। सुनरा दशा  
बिचारमें फलफल निर्णय कर देखनेसे विंशोत्तरी मतसे  
ही देखना भावप्रद है। इस दशाका बिचार करनेसे  
महादशा अथदशा और प्रत्येकदशाको निकाल कर उन  
के सम्बन्धम बिचारपूर्वक फल स्थिर करना होता है।

किस किस नक्षत्रमें किस प्रहकी दशा होता है, उस  
का नियम इस तरह निर्दिष्ट हुआ है। पहले ही कहा गया  
है, कि कृत्तिका नक्षत्रमें इन दशाका आरम्भ होता है।  
कृत्तिका उत्तरफल्गुनीनक्षत्रमें रविकी दशा होती है, उसका  
भोग्यकाल ६ वर्ष है रोहिणो हस्ता और ध्रुवणा नक्षत्रमें  
चन्द्रका भोग्यकाल १० वर्ष, सुगमिरा चित्रा और धनिष्ठा  
नक्षत्रमें मङ्गलका भोग्यकाल ७ वर्ष, आर्द्र, स्वाति और  
शतभिषा नक्षत्रमें राहुका भोग्यकाल १८ वर्ष, पुनर्वसु,  
विशाखा या पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें बृहस्पतिका भोग्यकाल  
१३ वर्ष, पुष्या अनुराधा या उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें शनिका  
भोग्यकाल १३ वर्ष, भरणीया अश्लेषा या रेवती नक्षत्रमें शुक्र  
का भोग्यकाल १० वर्ष, मघा मूला या भास्विनी नक्षत्रमें  
कतुका भोग्यकाल ७ वर्ष है। पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढा  
और मरणा नक्षत्रमें कतुका भोग्यकाल २० वर्ष हुआ  
करता है।

इन महादशाओंका निर्णय कर पीछे अन्तदशा  
का निश्चय करना चाहिये। आतकका जन्म समय स्थिर  
कर तदहासिक नक्षत्र का जितना दण्ड गत हुआ है,  
उसका ठाह कर इस दशा भोग्यवर्षका भाग कर  
शुक्र भोग्यकाल निर्णय करना होता है। नक्षत्रमान  
साधारणतः ३० वृत्त है। एक मनुष्यका कृत्तिका नक्षत्र  
में ३० वृत्तके समय जन्म हुआ। कृत्तिका-नक्षत्रमें  
रविकी दशा होती है, उसका भोग्यकाल ६ वर्ष है। यदि  
समूचा कृत्तिका-नक्षत्रमें अर्थात् ३० वृत्तमें ६ वर्ष भाग

हो, तो ३० दण्डका कितना भोग होगा ? इससे स्पष्ट समझमें आता है, कि नक्षत्रमानके अर्द्धसमय ध्यतीत होने पर जन्म हो, तो रविकी दशाका भी अर्द्धकाल (३ वर्ष) भुक्त हुआ है और बाकी अर्द्धकाल भोग्य है। इस तरह भुक्त भोग्य स्थिर कर दशाका निरूपण करना होगा।

निम्नोक्त रूपसे अन्तर्दशा निकालनी चाहिये।  
विंशोत्तरी मतकी अन्तर्दशा—

वर्ष मास दिन	वर्ष मास दिन
रविकी महादशा ६ वर्ष	र, वृ, ०। ६। १८
नक्षत्र ३, १२, २१।	र, श, ०। ११। १२
र, र, ०। ३। १८	र, बु, ०। १०। ६
र, च, ०। ६। ०	र, के, ०। ४। ६
र, म, ०। ४। ६	र, शु, १। ०। ०
र, रा, ०। १०। २४	सर्वयोग ६ वर्ष।

चन्द्रदशा १० वर्ष	मङ्गलदशा ७ वर्ष
नक्षत्र ४, १३, २२।	नक्षत्र ५, १४, २३।
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
च, च, ०। १०। ०	म, म, ०। ४। २७
च, म, ०। ७। ०	म, रा, १। ०। १८
च, रा, १। ६। ०	म, वृ, ०। ११। ६
च, वृ, १। ४। ०	म, श, १। १। ६
च, श, १। ७। ०	म, बु, ०। ११। २७
च, बु, १। ५। ०	म, के, ०। ४। २७
च, के, ०। ७। ०	म, शु, १। २। ०
च, शु, १। ८। ०	म, र, ०। ४। ६
च, र, ०। ६। ०	म, च, ०। ७। ०

कुल १० वर्ष।	कुल ७ वर्ष।
शुक्रकी महादशा १८ वर्ष	बृहस्पतिकी महादशा १६ वर्ष
नक्षत्र ६, १५, २४	नक्षत्र ७, १६, २५
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
रा, रा, २। ८। १२	वृ, वृ, २। १। १८
रा, वृ, २। ४। २४	वृ, श, ६। ६। १२
रा, म, २। १०। ६	वृ, बु, २। ३। ६

वर्ष मास दिन	वर्ष मास दिन
रा, बु, २। ६। १८	वृ, के, ०। ११। ६
रा, के, १। ०। १८	वृ, शु, २। ८। ०
रा, शु, ३। ०। ०	वृ, र, ०। १०। १८
रा, र, ०। १०। २४	वृ, च, १। ४। ०
रा, च, १। ६। ०	वृ, म, ०। ११। ६
रा, म, १। ०। १८	वृ, रा, २। ४। २४

कुल १८ वर्ष।	कुल १६ वर्ष।
शुक्रकी महादशा १६ वर्ष	बुधकी महादशा १७ वर्ष
नक्षत्र ८, १७, २६	नक्षत्र ६, १८, २७
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
श, श, ३। ०। ३	बु, बु, २। ४। २७
श, बु, २। ८। ६	बु, के, ०। ११। २७
श, के, १। १। ६	बु, शु, २। १०। ०
श, शु, ३। २। ०	बु, र, ०। १०। ६
श, र, ०। ११। १२	बु, च, १। ५। ०
श, च, १। ७। ०	बु, म, ०। ११। २७
श, म, १। १। ६	बु, रा, २। ६। १८
श, रा, २। १०। ६	बु, वृ, २। ३। ६
श, वृ, २। ६। १२	बु, श, २। ८। ६

कुल १८ वर्ष।	कुल १७ वर्ष।
केतुकी महादशा ७ वर्ष	शुक्रकी महादशा २० वर्ष
नक्षत्र १०, १६, १	नक्षत्र ११, २०, २
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
के, के, ०। ४। २७	शु, शु, ३। ४। ०
के, शु, १। २। ०	शु, र, १। ०। ०
के, र, ०। ४। ६	शु, च, १। ८। ०
के, च, ०। ७। ०	शु, म, १। २। ०
के, म, ०। ४। २७	शु, रा, ३। ०। ३
के, रा, १। ०। १८	शु, बु, २। ८। ०
के, वृ, ०। ११। ६	शु, श, ३। २। ०
के, श, १। १। ६	शु, वृ, २। १०। ०
के, बु, ०। ११। २७	शु, के, १। २। ०
कुल ७ वर्ष।	कुल २० वर्ष

इन कोष्ठोंमें जिस प्रहकी महादशा देखनी हो देखी जा सकती है। महादशा और अन्तर्दशा ठोक हो जाने पर प्रत्यम्बर दशाका निरूपण करना होता है। महादशा, अन्तर्दशा और प्रत्यम्बर दशा स्थिर कर फल विचार करना होगा।

महादशा और अन्तर्दशा ठोक कर उस पर फल निरूपण करना होता है। इस महादशाका फल विचार करने पर कुण्डलकी प्रदोकी अवस्थितिका ज्ञान रहना आवश्यक है। प्रदोके शुभाशुभ स्थानमें अवस्थान और आपत्तमें दुष्टिसम्बन्ध और भाषितरवादि होय भादि देख करके तब फल निरूपण करना चाहिये, नहीं तो फलका वैकल्पिक विचार देता है।

विद्योत्तरी दशाके मतसे रवि भादि प्रदोकी महादशा इस तरह कही गई है—रविकी महादशामें चौर्य, मनका बद्रोग, औपाये ज्ञानबर्त्से मय, यो और भूस्वनाश, पुत्रद्वारादिके मरणगोचरमें बन्धेश, शुद्धजन और पितृ नाश और नैऋत्योद्वा भादि अशुभ फल होते हैं।

चन्द्रकी महादशामें—मन्त्रसिद्धि, स्त्री सम्बन्धमें धन-प्राप्ति, नाना तरहके गन्धद्रव्य और भूयर्षोकी प्राप्ति और बहुत धनागम प्रसूति विविध सुख होता है। इस दशामें केवच घातजनित पीडा होती है।

मङ्गलकी महादशा—मल, अग्नि, मू, बाह्य, सैप्य, नृपबन्धन भादि नाना तरहके असुखायसे धनागम, सर्भदा विचारक और उद्भरपीडा, मोषाङ्गना संघन, पुत्र, वार, वस्तु और शुद्धजनके साथ विरोध रहता है।

राहुकी महादशा—सुख, विस्त और स्थाननाश, बन्धन और पुत्रादिका वियोगपुत्र, परदेशवास, सबके साथ निवत विचारकी दृष्टा प्रसूति अशुभ फल होते हैं।

शुक्रस्पतिकी महादशा—स्थानकी प्राप्ति, धनागम, पानबाह्य काम, चित्तशुद्धि, वैश्वर्ष्य प्राप्ति, ज्ञान और पुत्र-द्वारादि विविध प्रकारसे सुख सोमाय होता है।

शनिकी महादशा—अम, गर्भ, ऊट, बुद्धाङ्गना, पत्नी और कुपान्य काम, पुत्र, धाम और अज्ञापित्तमे अर्ष्य काम, मोष कुलका भाषितरव, मोषसङ्ग, श्रद्ध स्त्री समलगम प्रसूति फलसाम होते हैं।

बुधकी महादशा—सुख, वस्तु और मित्रोंसे धनाङ्गन,

कीर्ति, सुख, सत्कर्म सुवर्ण भादि काम, व्यवसायसे उन्नति और वातपीडा होती है।

शुक्रकी महादशा—बुद्धि और विवेकनाश, नाना प्रकारकी व्याधि, पापकार्यकी दृष्टि, सदाश्लेश भादि नाना प्रकारके अशुभ फल होते हैं।

शुक्रकी महादशा—सो पुत्र और धनसाम, सुख, सुगन्ध, माष्य भक्ष, भूयस्साम, पानादि प्राप्ति, राजतुल्य यशोलाभ इत्यादि विविध प्रकारका सुख होता है।

रवि भादि प्रदोकी महादशाका फल इसी तरह निर्दिष्ट हुआ है। किन्तु इनमें विशेषता है। ऐसा न सम्बन्धना चाहिये, कि रविकी दशा होने हो करार दशा होगी और चन्द्रकी दशामें सदा मङ्गल ही होगा। फिर रवि साधारणता करार फल देखेबाळा है और चन्द्र बन्धना। रविकी महादशा माने पर यह देखना चाहिये, कि बुद्धिमानगत है या नहीं? और उसका भाषितरव होय है या नहीं? यदि बुद्धिमानगत और भाषितरव होय हुए हो, तो उच्छरूपसे अशुभफल होता है। फिर, रवि यदि शुभ स्थानाधिपति और शुभस्थानमें स्थित हो, तो उच्छ प्रकारसे बुरा फल न हो कर शुभ फल होता है। चन्द्र स्वामाधिक शुभफलदाता होने पर भी यदि बुद्धिमान गत हो कर भाषितरव होयसे विचार देता हो, तो उससे शुभफल न हो कर अशुभफल ही हुआ करता है।

इस तरह अन्तर्दशा कालमें जिस प्रहका जो मिल है, उसके मिलके साथ मिळे रहने पर शुभफलदाता और शल के साथ मिळे रहने पर अशुभ फलदाता हुआ करता है। प्रदोका विचार कर और जो सब सम्बन्ध कहे गये हैं, उनका विचार कर फल निर्णय करना चाहिये।

प्रदोका शुभाशुभ फल उनकी दशामें ही हुआ करती है। जो प्रह राजयोगकारक है, उसी प्रहकी दशामें राजयोगका फल होता है। जो प्रह मार्केश होता है, उसी प्रहकी दशामें मृत्यु होती है। सुगर्भ जो कुछ शुभाशुभ फल है, वे सभी दशाके समय ही भोग हो जाते हैं।

कलिकाळमें एवमात्र विद्योत्तरी दशा ही प्रत्यक्ष फलदा है। पराशरने अपनी संहितामें यह विशेष मान्य प्रतिपादन किया है और दशा विचारपनाही

विषयमें विविध प्रणालियोंके विषय पर उपदेश दिया है। सुतरा वि शोचतरी दशा विचार करने पर एकमात्र पराशरसंहिताका अवलम्बन ही विचार करनेमें उचित रूपसे विचार किया जा सकता है। अष्टात्तश महादशाकी विचारप्रणाली विंशोत्तरीके समान नहीं, पूर्णरूपसे विभिन्न है। कुछ लोग एक नियमसे दोनों दशाओंका विचार करते हैं। किन्तु इसमें फलका तात्पर्य दिग्राह्य होता है। ऐसी दशामें समझना होगा, कि विचारप्रणालीमें भ्रम है।

फिर जो ग्रह दुःस्थानगत है अर्थात् पृष्ठ, अप्तम और भाद्रपत्य है, वे दोनों दशाओंमें अशुभ फलप्रद होते हैं। विशेष भावसे विवेचना कर दशा विचार करना चाहिये। नहीं तो प्रति पद पर फलका भ्रम हो सकता है। विंशोत्तरी दशा विचार करने पर पराशरसंहिताको अच्छी तरहसे पढ़ लेना चाहिये, उसीके तात्पर्यके अनुसार विचार करना उचित है। दशा पर विचार करने समय महादशा, अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा इन तीनोंके सामने रख इनके सम्बन्धमें अवस्थान और आविपन्य देख कर तब फल निर्णय करना उचित है। पराशरवि शोचतरी दशा ही एकमात्र फलप्रदा है, किन्तु यह भी कहना ठीक न होगा, कि अष्टोत्तरी दशाका फल ठीक नहीं होता।  
पराशरसंहिता देवो।

विहङ्गन्यासा ( स० खी० ) मेढकका विकृत प्रद्व।

विक ( स० छी० ) सद्यःप्रभूता गौश्रीर, तुरन्तकी व्याई गौका दृष।

विकडूट ( स० पु० ) गोशूर, गोखरू।

विकडूटिक ( स० लि० ) विकडूट मश्वन्त्रीय।

विकडूट ( स० पु० ) बदरी सदृश सूक्ष्म फलका वृक्ष, एक प्रकारका ज गला पेड़। इसे फटाई, किकिणी और बंज भी कहते हैं। लम्कृत-पर्याय—खादुवण्टक, सुवावृक्ष, ग्रन्थिल, व्याघ्रपात्, ध्रुग्वारु, मधूपर्णी, फण्टपाट, बहुफल, गोपघण्टा, सुवाट्ट म, मृदुफल, इन्दकाष्ट, यज्ञोप व्रतपादप, पिण्डार, हिमक, पूत, किङ्किनी, वैकडूट, वृत्तिदूर, फण्टकारो, किङ्किरो, सुगदारु। (जटाधर)

इस वृक्षके पत्ते छोटे छोटे और डालियोंमें काटे हाने हैं। इसके फल बेरके आकारके तथा पकने पर मीठे होते हैं, लेकिन अधपकी हालतमें खटमीठे होते हैं।

यज्ञोंके लिये सुवाट्टमीकी लकड़ीके बनानेका विधान है। इनका फल लघु, बीपन जी पावक तथा कमल और लीलाका चाणक माना गया है।

विहङ्गता ( स० गी० ) अनियता।

विहङ्गतीमुषी ( स० ति० ) दण्डकयुक्त मुष्प्रिण्डि, जिसमें सुंठ पर काटे होते हैं।

विकच ( स० पु० ) विगतः कर्त्तुं यम्य केशशून्यत्वात्, यद्वा प्रिण्डिः, कच्चो यम्य प्रभृतकेशत्वात्। १ क्षपणक। २ केतु, ध्रुजा। ३ केतुग्रह। इनकी संख्या ३५ है। ये नृहस्पतिके पुत्र माने जाते हैं। इनमें शिवा नहीं होती। वर्ष मकर होता है और ये प्रायः दक्षिण दिशामें उदय होते हैं। इनके उदयका फल अशुभ माना जाता है। ( ति० ) विकचति विकचतीति विकचञ्च। ४ विकचिन, गिला दुगा। विगतः कच्चो यम्य। ५ केशशून्य, जिसमें बाल न हों।

विकचा ( स० गी० ) महाप्राणिका, गारुडमुण्डी।

विकचालम्बा ( स० गी० ) दुर्गा।

विकच्छ ( स० गी० ) विगतः कच्छो यम्य। १ कच्छरहित, विना कच्छके विकच्छ है। पर अर्थात् दिना काष्ठ लगाये काटे गी धर्मकार्य नहीं करना चाहिये। किन्तु मृत्युव्यागके समय विकच्छ होना ही कर्त्तव्य है, नहीं तो काष्ठके दाहिने या बाई ओरमें पंजाब करनेमें वह यथा-काम देवता वा पितृमुग्धमें पतित होता है।

२ जिसके दोनों ओर तराई या क्यार न हो, जिसके किनारे पर टलउल या गोली जमीन न हो।

विकच्छप ( स० लि० ) कच्छपशून्य।

( रुपावर्ति ६११३५ )

विकट ( स० पु० ) विकटति पपरक्तादिक वर्पतीति विकट पचाथच्। १ विस्फोटक। ( मन्दरान्ता० ) २ साकु-वण्डवृक्ष। ( राजनि० ) ३ त्वामलता। ( वैश्वनि० ) ४ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ( भारत १६७६६ ) वि- ( मप्रोदश्व कटन्। पा ५।२६ ) इति कटच्। ( लि० ) ५ विशाल। ६ विकराल, भयंकर। ७ बरु, टेढा। ८ कठिन, मुश्किल। ९ दुर्गम। १० दुस्साध्य। ११ दन्तुर, दंतुला।

विकटग्राम ( स० पु० ) नगरभेद।

विकटस्व (स० झो०) विकटस्व भाव विकट-स्व ।  
 विकटका भाव या धर्म, विकटता ।  
 विकटनितम्बा (स० स्त्री०) विकट नितम्बी यस्याः ।  
 विकट नितम्बयुक्ता स्त्री, विकटाल शूतब्रह्मिणी औरत ।  
 विकटमूर्ति (स० लि०) उदर-आकृतियुक्त, मयङ्कुर  
 भाकारवासा ।  
 विकटवदन (स० पु०) १ दुर्गाके एक अनुवरका नाम ।  
 २ भीषण मुख, मयङ्कुर मुख ।  
 विकटवर्गन् (स० पु०) एक राक्षसपुत्र । (रघुसुन्दर)  
 विकटविषाण (स० पु०) समरमृग ।  
 विकटशृङ्ग (स० पु०) समर मृग । (बैद्यकी०)  
 विकटा (स० स्त्री०) विकट-राप् । बुद्धदेवकी माता  
 मायादेवीका नाम । यह बौद्धदेवी थी । पर्याय—  
 मरीचि त्रिमुक्ता, वज्रहासिका, वज्रवाराही, गौरी, पोलि  
 रया । (विष्णु०)  
 विकटाक्ष (स० पु०) एक असुरका नाम । २ घोर दर्शन,  
 विकटाल मूर्ति ।  
 विकटानन (स० पु०) १ भीषणवदन, उदराना केहरा ।  
 २ घृतराष्ट्रके पुत्रका नाम ।  
 विकटाम (स० पु०) एक असुरका नाम । (शिव ३)  
 विकटक (स० पु०) विविधः कष्टको यस्य । १  
 यबास, शबासा । २ स्वनामख्यातकृत्, विकटक ।  
 गुण—कषाय कटु, उष्ण, रुचिप्रद, शीघ्र, कफहारक,  
 बलरक्त विधायक । (रात्रि०)  
 विकटकपुर (स० स्त्री०) १ एक नगरका नाम । २  
 वैकुण्ठ ।  
 विकटपत्नी (स० स्त्री०) विकटपत्ने इति विकटस्य त्रयाणां  
 भाषे ऋषुः । १ मिथवाश्रमाया, कूटी प्रशंसा । (लि०)  
 विकटपत्ने आरामानिगिति विकटस्य-ऋषुः । २ आरम-  
 रक्षायाकारो, ऊपरो प्रशंसा करनेवाला ।  
 विकटयना (स० स्त्री०) विकटस्य जिन् मुञ्चुं याप् । आरम  
 श्लाघा, मपत्नी वच्चा ।  
 विकटया (स० स्त्री०) विकटस्य शब् याप् । श्लाघा,  
 आरमप्रशंसा ।  
 विकटियन् (स० लि०) विकटियन् श्लोत्रमस्य वि-कथ  
 (वीर्यकथनस्य-यम्) । पा ३।२।१३ इति धितुन् । विक  
 टयाकारो, मपत्नी प्रशंसा करनेवाला ।

विकथा (स० स्त्री०) १ विशेष कथा । (पा ४।४।१०२)  
 २ कुतिसत कथा । (मेघ)  
 विकट्ट (स० पु०) धात्वभेद । (हरिव ३।२।२० श्लो०)  
 विकटिकटिक (स० स्त्री०) सामभेद । कही कही 'विक  
 विकटिक' भी लिखा जाता है ।  
 विकपाल (स० लि०) कपालविषयुक्त । (हरिव ३)  
 विकम्पन (स० पु०) १ राक्षसभेद । (भाग० ६।१०।१८)  
 (स्त्री०) विकम्प-ऋषुः । २ अतिशय कम्प ।  
 विकम्पित (स० लि०) विकम्प-क्त । अतिशय कम्पित,  
 बहुत चञ्चल ।  
 विकम्पित् (स० लि०) विकम्प मिति । कम्पययुक्त,  
 विशेषरूपसे कम्पयविशिष्ट ।  
 विकर (स० पु०) विकीर्यन्ति हस्तपदादिकममेति विक  
 (श्वोष्) । पा ३।१।५० इत्यर्थः । १ रोग व्याधि । २  
 तलवारके ३२ हाथो मेंसे एकका नाम ।  
 विकरण (स० स्त्री०) व्याकरणको प्रत्ययकी एक शंखा ।  
 विकरणो (स० स्त्री०) त्रिमुकशब्द से युक्ता पेड़ ।  
 विकरार (स० वि०) व्याकुल, बेचैन ।  
 विकराठ (स० लि०) विशेषण करार । मयातक,  
 भीषण, उदराना ।  
 विकराठता (स० स्त्री०) विकराठस्य भाव तल-राप् ।  
 विकराठका भाव या धर्म ।  
 विकराकमुञ्च (स० पु०) मकरभेद ।  
 विकर्ण (स० पु०) १ कर्णक एक पुत्रका नाम । २ दुर्घो  
 धनक एक भाईका नाम । यह कुतसीतकी लड़ाईमें मारा  
 गया था । (माल १।२।७।४) ३ एक सामका नाम ।  
 ४ एक प्रकारका बाण । (लि०) विगतौ कर्णौ यस्य ।  
 ५ कर्णोद्विह, जिसके कान न हों ।  
 विकर्णक (स० पु०) १ प्रविष्टपर्णभेद एक प्रकारकी  
 गडियन । २ शिबका आङ्गि नामक गण ।  
 विकर्णरोमन् (स० पु०) प्रविष्ट पर्णभेद गडियन ।  
 विकर्णिक (स० पु०) सारसत देश, काश्मीर देश ।  
 (हेम)  
 विकर्णो (स० पु०) १ एक प्रकारकी ईंट, जिससे बच्चरी  
 बेदी बनाई जाती थी । २ एक सामका नाम ।  
 विकर्षण (स० पु०) विशेषण वर्णनं दत्तय विम्बवर्ण



यन्तत्त्वोदितत्वात्स्य तयात्वं । १ सूर्या । २ अर्कवृक्ष, अकवन ।

विकर्त्ता (सं० त्रि०) १ प्रलयकर्त्ता । "तं हि कर्त्ता विकर्त्ता च भूतानामिह सर्वाङ्गः ।" ( भाव वनपत्रे ) २ अतिकारक, अनिष्ट करनेवाला । ३ दमन द्वारा विकृतिसम्पादन । ४ निग्रहकारक ।

विकर्मन् (सं० क्लो०) वि विकृद् कर्म । १ विकृद् कर्म, विकृद्वाच्यार । ( त्रि० ) वि विकृद् कर्म यस्य । २ विकृद् कर्मकारो, दुराचारी ।

विकर्मन्वृत् (सं० त्रि०) विकर्म विकृद् कर्म करोतीति कृ-क्लिप् तुक्च । निपिद् कर्मकारी । मनुमे लिप्त्वा हे, कि निपिद् कर्मकारियोंको गयाही नहीं लेनी चाहिये । ऐसे लोगोंको गयाही अप्राप्त है ।

विकर्मन्वृत् (सं० त्रि०) विकर्मणि विकृद्वाच्यारे निष्ठतोति स्या क । धर्मगात्र नुमार वह पुरुष जो वेदविकृद् कर्म करता हो, वेदके विकृद् वाच्यार करनेवाला ध्यांक ।

विकर्ष (सं० पु०) विकृष्यतेऽर्सा इति यद्वा विकृष्यन्ते पर प्राणा अनेनेति वि-कृष्य-घञ् । १ वाण, तीर । विकृष्य मावे घञ् । २ विकर्षण, खींचना ।

विकर्षण (सं० क्लो०) वि कृष्य ल्युट् । १ आकर्षण, खींचना । २ विभाग, हिस्सा ।

विकल (सं० त्रि०) विगतः कलोऽव्ययकध्वनिर्थास्य । १ विह्वल, व्याकुल । २ असम्पूर्ण, अरिडन । ३ हासप्रसन्न, घटा हुआ । ४ कलाहीन । ५ अन्वाभाविक, अनेसर्गिक । ६ असमर्थ । ७ रहित । (क्लो०) ८ कलाका पण्डितमाग, कलाका साठवाँ भाग, विकला ।

विकलता (सं० स्त्री०) विकलस्य भावः तल् टाप् । विकलका भाव या धर्म, वैचैनी ।

विकलपाणिक (सं० पु०) विकलपाणिर्यस्य कन् । स्वभावतः पाणिहीन, जन्मसे ही जिसके हाथ नहीं हैं ।

विकला (सं० स्त्री०) विगतः कलो मधुगलापो यस्याः, ऋता तु स्त्रिया मीनिद्वविहितत्वात् । १ ऋतुहीना स्त्री, वह स्त्री जिसका रजोदर्शन होना बंद हो गया हो । २ कला का साठवाँ अंश । ३ बुधग्रहकी गतिका नाम । ४ समयका एक अत्यन्त छोटा भाग ।

विकलाद् (सं० त्रि०) विकलानि अङ्गानि यस्य । न्युनाद्,

जिसका कोई अंग टूटा या गगाव हो । जैसे—लगा, लंगटा, फाना, गजा आदि ।

विकलस्य (हि० पु०) एक प्रकारका प्राचीन राजा । यह चमडेसे मढ़ा जाता था ।

विकलित (सं० त्रि०) १ व्याकुल, वैचैनी । २ दुःखी, पीड़ित ।

विकल्पी (सं० स्त्री०) विगता कला यस्याः गौरादित्वात् टोप् । ऋतुहीना स्त्री, वह स्त्री जिसका रजोदर्शन होना बंद हो गया हो ।

विकल्पेन्द्रिय (सं० स्त्री०) विकल्पानि इन्द्रियानि यस्य । १ जिसकी इन्द्रिया वजमे न हो । २ जिसको कोई इन्द्रिय पराश्र हा अथवा विलुप्त न हो ।

विकल्प (सं० पु०) विकृद् कल्पनमिति वि-कृष्य घञ् । १ भ्रान्ति, जम, धोखा । २ कल्पन । ( मेटिनी ) ३ विपरीत कल्प, विकृद् कल्पना ४ विविध कल्पना, नाना भानिसे कल्पना करना । ५ विभिन्न कल्पना विशेष, इच्छानुयायी कल्पनाविशेष ।

स्मृतिशास्त्रमें यह विकल्प दो प्रकारका माना गया है, एक ध्यवस्थित वा व्यवस्थायुक्त विकल्प और दूसरा ऐच्छिक वा इच्छानुयायी ।

स्मृतिशास्त्रके मतसे आकाङ्क्षा पूर्ण होने पर विकल्प होता है । जिसमें दो प्रकारकी विधिया मिलता हों उसे व्यवस्थायुक्त कहते हैं । यथा 'दर्शयौषोमास यागमे यव द्वारा होम करे, ब्राहि द्वारा होम करे' इसमें दो प्रकारकी श्रुतिया देखनेसे आती है । यदा यव और ब्राहि इन दोनोंके ही प्रत्यक्ष धृतिबोधित होनेके कारण यव और ब्राहिका विकल्प हुआ । इच्छानुसार यव या ब्राहि इनमेंसे किसी एक द्वारा होम करने हासे याग सम्पन्न होगा । यही इच्छा विकल्प है । इस प्रकार विकल्पाको जगह दोनों कल्प परस्पर विकृद् मालूम होते हैं, किन्तु स्थिरचित्तमे यदि विचार किया जाये, तो दोनोंमें कोई विकृद्ना नहीं है । क्योंकि किसी एक विधिके अनुसार कार्य करने हासे कार्यकी निडि होती है । अतएव इसको इच्छा-विकल्प कहते हैं । स्मृतिमें लिखा है, कि इच्छाविकल्पमें ८ दोष हैं ।

ब्राहि द्वारा याग करे और यव द्वारा याग करे, ये दोनों

विधियाँ इनमें से किसी एकका पक्ष अवलम्बन करनेसे  
 -कार-कार बोध होता है अतएव दोनों पक्षों में कुछ-८ बोध  
 हुए । यथा—प्रमाणत्वपरिचयाग और अप्रामाण्यप्रसङ्गान,  
 प्रामाण्योद्घातन और प्रामाण्यहानि, आदि के लिये चार  
 कुछ-८ बोध हुए । जहाँ-जहाँ प्रोहिद द्वारा वाग-कारनेसे  
 प्रतीत बधप्रामाण्यका परिचयाग होता है और अप्रतीत  
 पक्ष अप्रामाण्यका परिकल्पन होता है तथा परिचयक  
 पक्ष प्रामाण्यका उद्घातन और स्वीकृत पक्ष अप्रामाण्यकी  
 हानि होती है । इस प्रकार चार-चार करके ८ बोध हुए ।  
 सिद्धो विधियों हैं, जहाँ उन सब विधियोंका अनुष्ठान  
 करना शोता है वहाँ व्यवस्थित विकल्प हुआ करता है ।  
 व्यवस्थित विकल्पकी अगह एकको बाद-दे कर एकका अनु  
 स्थान करनेमें काम-नही-बसेया, सबोका अनुष्ठान करना  
 हा,पठ-या ।

एवमर्थनाक-लिये विविध कल्पित होने हैं इस कारण  
 विशय है । इच्छा विकल्पमें ८ बोध हैं यह आशङ्का कर  
 दो विधियों उपवास करे, जहाँ येभी विधि हैं यहाँ-इच्छा  
 विकल्प नहीं होगा व्यवस्थितविकल्प होगा ।

कषाकारणके मतमें भी एककाय एक अगह-इ-गा,  
 धूमरो अगह-नही-होगा, येना जो विद्याम हैं उसे विकल्प  
 कहते हैं ।

६ पात-लक्षणक मतस विकल्पितमेव । प्रमाण  
 विपर्याय, विकल्प, मित्रा और स्मृति ये पाँच विकल्पी  
 पक्ष हैं । वस्तु नहीं रहने पर भी शब्द-ज्ञानमाहात्म्य  
 निबन्धन जो हृत्ति-होती है, उसका नाम विकल्प है ।  
 चैतन्य-पुरुषका स्वरूप है, यह एक विकल्पका उदाहरण  
 है । क्योंकि पुरुष चैतन्यस्वरूप है, अर्थात् चैतन्य-निर  
 पुरुष एक ही पक्षों है । अतएव चैतन्य और पुरुषका  
 धर्मधर्मिभाव वस्तुगत्ता नही है । अथच चैतन्य पुरुषका  
 स्वरूप इसी प्रकार धर्मधर्मिभावे अव्यक्त होता है ।  
 मिथ्याज्ञानका नाम विपर्याय है शुक्ति या सोपनें रजत  
 बुद्धि-विपर्यायका उदाहरण है । शिक्षण-दर्शन होने पर  
 -सकासाधारणके लिये हो रजतबुद्धिवाचित प्रतीत-होनी  
 है । अचितका निबन्धन हो जानेसे उसका द्वारा फिर  
 किन्ती भी रूपका व्यवहार नहीं होता, विकल्पकी अगह  
 धर्मसाधारणका वाचबुद्धि-विम-बुद्ध नहीं होगी, विद्यार

निपुण सुविधियोंकी ही वाचबुद्धि होती है । फिर वाचबुद्धि  
 होने पर भी उसका व्यवहार विलुप्त नहीं होता । विप  
 र्याय और विकल्पक इस सूत्रमें-मेवके प्रति-दृश्य-रचना  
 करण्य है । पात-अत्ममें-लिखा है, धास्तुके स्वरूपकी अपेक्षा  
 न करके केवल शब्द-अन्वय-ज्ञानानुसार जो एक प्रकारका  
 वाच-होता है उसीकी विकल्पवृत्ति-रहते हैं । दे-इच्छाका  
 कल्प-यहाँ पर-इच्छाका स्वरूप जो-चैतन्य है, उसकी  
 अपेक्षा न करके-वेच-इच्छा और-कल्प-यम-जो-मेव-होता-है  
 वही विकल्पवृत्ति है ।

● अवाप्तर-कल्प । ८-देवता । ९-अर्थात्-ज्ञानमेव ।  
 जहाँ-तुल्यव्यविशिष्टका-आतुरोपुक्त-विरोध-होता-है-यहाँ  
 विकल्प-अज्ञान-हुआ-करता-है । १०-वैधायिक-मतसे  
 ज्ञानमेव, प्रकार-रूप-विप-वता-मे-ज्ञान । (न्याय-०) ११  
 वैधायिक । १२-वैधायिक-मतस-समये-व-पौकी-अ-ग्राज  
 क-ज्ञान-अर्थात्-व्याधि-होनेके-पहले-शरीरमें-वापोंका-जो  
 -ज्ञान-वृत्ति-हुआ-करती-है, उसकी-व्युत्पादिक-कल्पनाका  
 नाम-विकल्प-है । १३-समाधिमेव-साधक-व-रक-समाधि  
 और-निर्मिकल्पक-समाधि ।

विकल्पक (स०-पु०) विकल्प-स्वार्थ-कल्प ।  
 विकल्प-देशो ।

विकल्पन (स०-हो०) विकल्प-समुद् । विविध-कल्पन ।  
 विकल्पनीय (स०-लि०) विकल्प-अतो-व- । विकल्प-वै,  
 विकल्पक-योग्य ।

विकल्पवत् (स०-ति०) विकल्प-अस्वयं-मनुष्य-म-स्य-व ।  
 विकल्पयुक्त, विकल्पविशिष्ट ।

विकल्पमम (स०-पु०) न्याय-दर्शनमें-२४-आतियोगसे  
 एक । इसमें-बाह्यके-लिये-गये-दृष्टान्तमें-अन्य-धर्मकी  
 योजना-करने-हुए-साध्यमें-भी-इसी-धर्मका-भारोप-कर-  
 के-वादीको-सुक्ति-मिथ्या-अप-ज्ञ-विद्या-ज्ञाता-है ।

विकल्पसमाप्ति (स०-सो०) आतादि-शोयोकी-मिथित  
 अवस्थामें-प्रत्येक-अ-शाशकी-कल्पना-करना ।

विकल्पानुपपत्ति (स०-पु०) पक्षान्तरमें-अनुपपत्ति ।  
 (वर्-वर्तन-१२/१२६)

विकल्पसाह (स०-वि०) विकल्प-स-जिनकी-उच्यते-हो ।  
 (वर्-वर्तन-१२/१००)

विकल्पित (स०-लि०) विकल्प-व-व-व । १-विविध-कल्पमें

विकल्पित, जिसकी कल्पना कई तरहसे की गई हो ।  
२ सन्निवृत्त, जिसके सम्यग्ब्रह्ममें निष्कल्प न हो । ३ विभा-  
षित, चमकता हुआ । ४ अनियमित, जिसका कोई  
नियम न हो ।

विकल्पित् ( सं० त्रि० ) विकल्प-इति । विकल्पयुक्त,  
विकल्पविशिष्ट ।

विकल्प ( सं० त्रि० ) वि कल्प-यत् । विकल्पनीय, विकल्प-  
के योग्य ।

विकल्प ( सं० त्रि० ) विगतः कल्पपो यस्य । पापरहित,  
निष्पाप, जिसमें पाप न हो ।

विकल्प ( सं० पु० ) जातिभेद । ( भारत भोग्यवर्ष )

विकल्प ( सं० त्रि० ) क्वचरहित, क्वचरशून्य, विना  
क्वचरके ।

विकल्पिक ( सं० त्रि० ) सामभेद । कहीं कहीं द्विक  
विकल्पिक और विकल्पिक भी देखा जाता है ।

विकल्प ( सं० त्रि० ) क्वचररहित । ( एतरेयब्रा० ७, २७ )

विकल्प ( सं० त्रि० ) वि कल्प-वत् । विकल्पी, खिलने-  
वाला । २ विसरणशील । ( भरत )

विकल्प ( सं० त्रि० ) विकल्पतीति वि-कल्प-अच्-टाप् ।  
१ मञ्जिष्टा, मञ्जोठ । ( अमरटी० राधु० ) २ मांसरोहिणी ।

( रात्रिनि० )

विकल्प ( सं० त्रि० ) वि कल्प-वत् । विकल्प ।

( भरत )

विकल्प ( सं० पु० ) विकल्पतीति वि-कल्प-अच् । चन्द्रमा ।

विकल्प ( सं० त्रि० ) वि कल्प-यत् । प्रस्फुटन, फूटना,  
खिलना ।

विकल्प ( सं० त्रि० ) विकल्पतीति वि-कल्प-अच्-टाप् ।  
मञ्जिष्टा, मञ्जोठ ।

विकल्पित ( सं० त्रि० ) वि कल्प-यत् । प्रस्फुटित, खिला  
हुआ । पर्याय—उज्जृम्भित, उज्जृम्भ, स्मित, उन्मि-  
षित, विजृम्भित, उद्वुड, उद्विडुर, भिन्न, उन्मिन्न,  
हस्तित, विकल्प, विकल्प, आकाश, फुल, सफुल्ल, स्फुट,  
उद्वित, दलित, दीर्घा, स्फुटित, उत्फुल्ल, प्रफुल्ल ।

( रात्रिनि० )

विकल्प ( सं० त्रि० ) विकल्पतीति वि कल्प-गता ( स्थे-  
मायविकल्पं वत् । पा २।१।१७५ ) इति वत् । १ विकल्प-  
शील, खिलनेवाला । पर्याय—विकल्पी ( पु० ) २ एक  
काव्यालङ्कार । इसमें पहले कोई विशेष बात कह कर  
उसकी पुष्टि सामान्य बातमें की जाती है ।  
विकल्प ( सं० त्रि० ) विकल्प-इति । रक्तपुनर्नवा,  
लाल गद्दपूरना ।  
विकल्प ( सं० पु० ) अपिभेद ।  
विकल्प ( सं० त्रि० ) काकुटशून्य, जिसके कूबड न हो ।  
( पा १।५।१४८ )  
विकल्प ( सं० त्रि० ) विगता कांक्षा यस्य । आकांक्षा-  
रहित, इच्छाका अभाव ।  
विकल्प ( सं० त्रि० ) १ विसंवाद । २ इच्छाभाव,  
आकांक्षाहीन ।  
विकल्प ( सं० त्रि० ) कामनाशून्य, निष्काम ।  
विकल्प ( सं० पु० ) वि कल्प-यत् । १ प्रकृतिका अन्यथा  
भाव, किसान चम्पुका का, रङ्ग आदि बदल जाना ।  
पर्याय—परिणाम, विकृति, विक्रिया, विकृत्या । प्रकृति-  
का दूसरी अवस्थामें बदलनेका नाम विकल्प है । दूध  
जब दहीमें बदलता है, तब उसको विकल्प कहते हैं ।  
इसी प्रकार सोनेका कुण्डल, मिट्टीका घड़ा ।  
साख्यदर्शनके मतसे यह जगत् प्रकृतिका विकल्प है ।  
प्रकृति विकृत हो कर जगत् रूपमें परिणत हुई है । परि-  
दृश्यमान जगत् का मूल प्रकृति है । जब जगत् का नाश  
होगा, तब सिर्फ प्रकृति ही रह जायगी । सत्त्व, रजः  
और तमोगुणको साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है ।  
विकृति और प्रकृति इन्हीं के ।  
द्रव्यका रूप ही प्रकृति है, उसके दूसरी अवस्थामें  
बदलनेका नाम विकल्प है ।  
२ वैद्यकके मतसे रोग ।  
धातुसाम्यका नाम प्रकृति है, धातुका विषमता होने-  
से उसको विकल्प कहते हैं । यही विकल्प रोग कह-  
लाना है । धातुकी विषमता नहीं होनेसे व्याधि नहीं  
होती । धातुकी साम्य अवस्थामें प्रकृति जिस प्रकार  
रहती है, धातुकी विषमतामें उस प्रकार नहीं रहती और  
प्रकारकी हो जाती है । ( चरक सप्रस्था० ६ अ० ) ३ मत्स्य,  
मछली । ४ निरुक्तके चार प्रधान नियमोंमें एक । इस-  
के अनुसार एक वर्णके स्थानमें दूसरा वर्ण हो जाता

६। ५ वाप ही समति, अराबो । ६ शोप, पुरारि ।  
 ● मनको वृत्ति या प्रकृति । ८ अग्रय, हानि ।  
 विकारद्वय ( सं० झा० ) विकारस्य भावः एव । विकारका  
 भाव वा धर्म ।  
 विकारमय ( सं० लि० ) विकारव्यकृते मयद् । विकार  
 लक्षण ।  
 विकारवत् ( सं० लि० ) विकार मस्त्वर्थे मनुष्य मस्य वा ।  
 विकारयुक्त, विकृत ।  
 विकारिता ( सं० खा० ) विकारिव्यो भावा लक्ष-टाप ।  
 विकारित्य, विकारका भाव वा धर्म ।  
 विकारित् ( सं० लि० ) वि-रु-णिति । विकारयुक्त,  
 विकारविशिष्ट ।  
 विकारो ( सं० लि० ) १ विकारयुक्त त्रिसमे विकार हो ।  
 २ श्रोत्रादि मनोविकारोमे युक्त, बुद्ध भासनाभावा ।  
 ( पु० ) ३ माह स बहसतेमिस एक स बहसरका नाम ।  
 विकार्य ( सं० लि० ) वि-रु-णवत् । १ विकृतिमात्र प्रथम ।  
 २ व्याकरणिक कर्मकारकमेद् । व्याकरणक मतसे कर्म  
 कारक तीन प्रकारका होता है, निर्बन्धन्य, विकार्य और  
 प्राप्य । विकार्य कर्मक फिर दो भेद हैं, प्रकृतका उच्छे  
 दक और प्रकृतिका गुणान्तराभायक । यथा—'काष्ठ  
 भस्म करोति' काष्ठ भस्म करता है, यहाँ पर प्रकृतका  
 ( काष्ठका ) उच्छेद् होनेक कारण 'प्रकृतिका उच्छेदक'  
 विकार्य कर्म हुआ । 'सुवर्णं कुण्डल करोति' सोनेका  
 कुण्डल बनाता है, यहाँ पर प्रकृति ( सुवर्ण ) कृपातरित  
 हो जानेके कारण 'प्रकृतिका गुणान्तराभायक' विकार्य  
 कर्म हुआ ।  
 विकार ( सं० पु० ) विद्वः कार्यान्वहः कावः । १ श्व  
 पैतादिकर्मा विद्व काव, ऐसा समय जब हैवकार्य  
 या विद्वकार्य कर्मका समय बीत गया हो साय कावका  
 समय । इस कावमे श्व और पैतु कर्म निविद्य बताया  
 गया है, इसास इसकी विकार बहते हैं । पर्याय—  
 साय, दिनान्त, सायाह, सायम्, उदसय, विकारक ।  
 २ अतिकाल, श्व ।  
 विकारक ( सं० पु० ) विकारक वचकार्य कम् । विकार  
 साव काव ।  
 विकारिका ( सं० खो० ) बिबाता काडी यवा, कन् दापि

मत इत्क । ताप्रो, मलयङ्को, इससे काव मान का हाग  
 होता है, इसासे इनकी विकारिका कहते हैं ।  
 विकाश ( सं० पु० ) वि काश-नीनी प्रज् । १ प्रकाश ।  
 २ प्रसार, फैलाय । ३ भाकाश । ४ विपमगति । ५  
 प्रस्तुदन, बिडाना । ६ एक काव्यालङ्कार, इसमें किसी  
 वास्तुका विना निप्रका आधार छोड़े अल्पवत् विकसित  
 होना वर्णन किया जाता है । किसी वस्तुकी वृद्धिके  
 विधे उसके रूप आदिमें उचरोत्तर परिवर्तन होना ।  
 ( लि० ) निर्गम, एकात् ।  
 विकाशक ( सं० लि० ) वि काशयति वि-काश क्यु ।  
 १ प्रकाशक । २ विकाशन ।  
 विकाशन ( सं० झा० ) वि काश क्युद् । प्रकाश, प्रस्तु  
 दन, पिडना ।  
 विकाशित् ( सं० लि० ) विकाशोऽस्वास्तीति विकारा  
 होन । विकाशशोत्, सिद्धमेवासा ।  
 विकाशित् ( सं० लि० ) विकाप अस्पर्ये इति । विकाश  
 शोत्, सिद्धमेवासा ।  
 विकास ( सं० पु० ) विक-स प्रज् । १ विकाश सिद्धना ।  
 २ प्रसार, फैलाव । ३ एक प्रसिद्ध पावनात्त सिद्धात्त ।  
 इसके आचार्य आर्गिन नामक प्रसिद्ध प्रार्थियज्ञानयेत्ता  
 हैं । इस सिद्धात्तमें कहा है, कि मापुनिक समस्त सृष्टि  
 और उसमें पाये जानेवाले जीव अन्तु तथा पृष्ठ आदि  
 एक ही सूक्ष्मत्वसे उचरोत्तर निकलते हैं । ४ किसी  
 पदार्थका अल्पप्र हो कर अल्प या भारमसे मिश्र भिन्न  
 रूप प्राप्त करत हुए उचरोत्तर बढ़ना, लमशा उन्नत  
 होना ।  
 विकास ( हि० खो० ) अराव प्रमोमने होनेवाली एक प्रकार  
 की वास । इक्षका पतिषां वृषकी मांति पर कुछ बढ़ी  
 होनी हैं । श्रीवाय इस बढ़ घायसे बाते हैं ।  
 विकासन ( सं० झा० ) वि कस-क्युद् । प्रकाशन, प्रस्तुदन,  
 पिडना ।  
 विकासना ( हि० लि० ) १ विकसित होना, सिद्धना ।  
 २ प्रकट होना, आदिर होना ।  
 विकामिता ( सं० खो० ) विकसितो भावः लक्ष् टाप ।  
 विकामीना भाव या धर्म, विकाशन ।  
 विकिर ( सं० पु० ) विकिरति मृत्तिकादाय् मोमनायैमिति

वि क विशेषे 'इगुपधेति' क। १ पक्षो, चिडिया। २ कृप, कृषा। विकीर्यन्ते इति विक-वज्र्थे क। पूजाकालमें विप्रोत्सारणार्थं क्षेपणीय तण्डुलादि, वह अक्षत चाराल जो पूजाक समय विघ्न आदि दूर करनेके लिये चारों ओर फेंका जाता है। पूजाके समय जिससे भूत आदि विघ्नवाधा उपस्थित न कर सकें, इसलिये मन्त्र पढ़ कर अक्षत चारों ओर फेंकना होता है। इसीको विकिर कहते हैं।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि लाज (लावा), चन्दन, सिद्धार्थ, भरुम, दुर्वा, कुश और अक्षत ये सब विकिर कहलाते हैं तथा भूनादि द्वारा होनेवाला विघ्नसमूहके नाशक है। (तन्त्रसार)

४ अग्निद्रग्धादिका पिण्ड। श्राद्धकालमें अग्निद्रग्धाके उद्देशसे जो पिण्ड दिया जाता है उसका विकिर कहते हैं। पिनादिका पिण्ड जिस प्रकार हस्तके पितृताथ द्वारा देना जाता है, इस अग्निद्रग्धाका पिण्ड उस प्रकार नहीं देना होता है, इसी कारण इसका विकिर नाम पडा है।

जिनके यथाविधान टाहनादि सस्कार नहीं होते तथा जिनके श्राद्धकर्ता कोई नहीं हैं उनके उद्देशसे यह विकिरपिण्ड दना होता है।

(कृ०) ५ जलविशेष। नदी आदि स्थानोंके निकट जो बालुकामयी भूमि रहती है और उस भूमिको खोदनेसे जो जल निकलता है उसे ही विकिर कहते हैं। यह जल शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, लघु, तुवर (कसैला), स्वादिष्ट, पित्तनाशक और अल्प कफवर्द्धक माना गया है।  
६ क्षरण, गिरना।

विकिरण (स० कृ०) विक्र लघुट्। १ विशेषण, इतर उधर फेंकना। २ विहसन। ३ विज्ञापन। (पु०) ४ अकर्तृक्ष, मदारका पेड़।

विकिरिट (स० त्रि०) विविध घातादि उपद्रवनाशक, नाना प्रकारके उपद्रव नष्ट करनेवाला।

विकिष्क (सं० पु०) प्राचीनकालका वृद्धियोंका एक प्रकारका गज। यह प्रायः सवा दो हाथ या ४२ इञ्चका होता था।

विकीरण (सं० पु०) अकर्तृक्ष, लाल मदार। (भावप्र०)

विकीर्ण (स० त्रि०) विकीर्यन्ते स्मिति वि-कृ-क।  
१ विशिष्ट, चारों ओर फैला या छितराया हुआ।  
प्रसिद्ध, मगहर। (कृ०) ३ ग्रन्थिपर्णमेद, गट्टियन।  
४ स्वरके उच्चारणमें होनेवाला एक प्रकारका दोष।

विकीर्णक (ग० कृ०) विकीर्ण-कन्। १ ग्रन्थिपर्णमेद, गट्टियन। (त्रि०) २ विशिष्ट, इधर उधर छितराया हुआ।

विकीर्णका (स० खी०) ग्रन्थिपर्णमेद।

विकीर्णफलक (स० पु०) रत्नाकर्तृक्ष, लालमदारका पेड़।  
विकीर्णरोमन (स० कृ०) विकीर्णानि रोमाण्यास्मान्ति।  
स्योनेयक, एक प्रकारका सुगन्धित पौधा।

विकीर्णसंज्ञ (स० कृ०) विकीर्णमिति संज्ञा यण्य।  
न्योनेय, एक प्रकारका सुगन्धित पौधा।

विकुक्षि (स० पु०) इक्ष्वाकुराजके घडे लड़केका नाम।  
(त्रि०) २ कुक्षिज्ञान, जिसका पेट फूटा या आगेको निकला हुआ हो, तांदवाला।

विकुक्षिक (स० त्रि०) कुक्षिज्ञान, तांदवाला।

विकुज (सं० त्रि०) कुज भिन्न। मङ्गलवार भिन्न।

विकुजरवान्दु (स० त्रि०) कुज, रवि और इन्दु भिन्न;  
भङ्गल, रवि और चन्द्र भिन्न धार।

विकुण्ट (सं० त्रि०) १ कुण्टारहित, कुज धारवाला, कुन्ड या भुधराका उलटा। (पु०) २ वैकुण्ट। खिया टापू।  
३ विष्णुकी माता।

विकुण्डन (सं० पु० कृ०) १ कुण्टारहित, तेज धार।  
दौर्बल्य, कमजोरी।

विकुण्डल (स० त्रि०) कुण्डलरहित, जिसके कुण्डल न हो।  
विकृत्सा (स० खी०) विशेषरूपसे निन्दा।

विकुम्भ (स० पु०) कनकगृक्ष, धनुरेका पेड़।

विकुम्भाण्ड (स० पु०) घाद्वजास्त्रोक्त अपदेवतामेद।

विकुर्वण (स० कृ०) विस्मयजनक व्यापार।

विकुर्वाण (स० त्रि०) विकुरुने इति विकृ शानच्।  
१ हर्षमाण। २ विकृतिप्राप्त।

विकुर्वित (स० त्रि०) पालि विकुर्वणम्। विस्मयजनक व्यापार, अभावनीय घटना।

विकुल (स० पु०) विकसतीति विकस रक्। (वी रवेः।  
उण् २।१५) उपधाया उत्पन्न। चन्द्रमा।

विकृत ( सं० पु० ) १ घटनी बोली । २ मयुमन्मोका गुण गुण मध्य ।

विकृतन ( सं० क्ला० ) विरोधरूपम कृतन रूप आरगे आवात्र करना ।

विकृतन ( सं० क्ला० ) पाश्चैत्यदि । ये आतात ।

विकृतिका ( सं० स्त्री० ) विकृत भष् साधो क मत् इत्यर्थ । नामिकर, नाक ।

विकृष्ट ( सं० स्त्री० ) मत्तारम, सुन्दर ।

विकृत ( सं० स्त्री० ) पि ह क । १ बोमरस महा या कुकूप हो गया हो । २ रागयुक्त, बोमार । ३ अर्धकृत, अमन संस्कार न हुआ हो, विगढ़ा हुआ । ४ अज्ञानिहोन । ५ अपूर्ण अपूर्ण । ६ विद्रोही अराजक । ७ अनामायिक असाधारण । ८ मायावी ।

( क्ला० ) ६ विकार । बोमरसकी इच्छा रहते हुए भी जो अज्ञान, मान और इर्ष्यादिदशाः न बोमा ज्ञाप पर श्रेष्ठा द्वारा अक हो जाय, परिणतमे उसीका नाम विकृत रवा है ।

, १० प्रमयादि साठ संवत्सरोंमेंसे चौबीसवाँ संवत्सर । अविष्यपुराणमें लिखा है, कि विकृत वर्षको प्रजा प्रपीडित प्याधि और शोकयुक्त होती है तथा अधिक पाप करनेके कारण इनक गिर, अग्नि और वज्रमें पीडा होती है ।

बोमरसके समय अथ अज्ञानके कारण मुहसे एक भी शब्द न निकले और मुह विकृत हो जाय, तब यह अल दूर होगा ।

११ दूसरे प्रजापतिका नाम । १२ पुराणानुसार परिवल राक्षसके पुत्रका नाम ।

विकृतित्य ( सं० क्ला० ) घटनरथ भावाः तब । विकृतक माध या धर्मा, विकार ।

विकृतदंष्ट्र ( सं० पु० ) विधापरविशेष । (कमातरिका० ७७।६) ( स्त्री० ) २ विकृतदंष्ट्रायुक्त, अमनक दृष्टि बड़े बड़े और कुदप ही ।

विकृतदृष्टि ( सं० पु० ) पाश्चैत्यदि ये आताती ।

विकृतस्वर ( सं० पु० ) यह स्वर जो अपने निवत स्थानसे दूर कर हमने धुतियों पर जा कर बदरता है । मन्त्रोत नाममें १२ विकृत स्वर माने गये हैं यथा—अयुक्त पञ्चम अच्युत पञ्चम, विकृत पञ्चम, साधारण गान्धार, अन्तर

गान्धार अयुक्त मध्यम, अच्युत मध्यम, त्रिधुति मध्यम] केजिक पञ्चम, विकृत धैवत केजिक त्रिपाद और बाद सो त्रिपाद ।

विकृष्टा ( सं० स्त्री० ) एक योगिनीका नाम ।

विकृति ( सं० स्त्री० ) वि ह लिच् । १ विकार । २ रोग । ३ इच्छा, अण्डा । ४ मत्तादि । सावयोक विकृति ।

सावयवरोम लिखा कि मूल प्रकृति अविद्यत है अर्थात् किसीका विकार नहीं है यह स्वस्वभावस्थायी हो लगनी है । सत्त्व रज और तमोगुणका साम्यावस्थाका नाम तो प्रकृति है । महादि सात है अर्थात् महात् अह दूर और पञ्च तन्मात्र ( शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध तन्मात्र ) ये सात प्रकृति विद्यत हैं । जब प्रकृति अण्ड रूपम परिणत होता है तब पञ्च प्रकृतिके बंधो ७ विकार होत हैं । मूल प्रकृतिस हा ये सात विकार होत हैं इस कारण इन्हें प्रकृति विकृति कहते हैं । फिर १६ अक्षर विद्यत अर्थात् विकार पञ्चधातेन्द्रिय, पञ्चधर्मन्द्रिय और मन ये स्यात् इन्द्रिय और पञ्च महाभूत ये १६ अक्षर विकार हैं अहङ्कारसे स्यारद इन्द्रिय और, पञ्चतन्मात्रसे पञ्च महाभूत उत्पन्न होत हैं ये १६ प्रकृति विकृति अह दूर और पञ्चतन्मात्रसे उत्पन्न होती हैं इस कारण इन्हें अक्षर विकृति कहते हैं । पुरुष प्रकृति भी नहीं है और विकृति ही है । यह प्रकृति और विकृतिसमें अन्तर है ।

सावयवक मनसे प्रकृतिके दो तरहके परिमाण हुआ करते हैं, स्वरूप परिमाण और बिरूप परिणाम । स्वरूप परिमाणमें प्रमयावस्था और विकृत परिणाममें अण्डवस्था है । योडा गौर कर देलमेंसे मान्द्रम हाता है, कि सभी जागतिक तत्त्वोंको चार धेजोमें विभक्त किया जा सकता है । कोह तत्त्व तो कवल प्रकृति ही है अर्थात् किमीकी भी विकृति नहीं । काह तत्त्व प्रकृति विकृति हैं अर्थात् उभयात्मक हैं उनमें प्रकृति धर्म जो है और विकृतिधर्म ज्ञी, अनपय ये प्रकृति विकृति हैं । कोह कोह तत्त्व अक्षर विकृति है अर्थात् किमी तत्त्वकी प्रकृति मदी है । फिर कोह तत्त्व अनुभवारमक है, प्रकृति भी नहीं है और न विकृति हा है । ये चार धेजो छोड कर और किमी प्रकारका तत्त्व देखीम नहीं आता ।

प्रकृति शब्दका अर्थ उपादानकारण और विकृति का

अर्थ कार्य है। इस जगत्का जो उपादान कारण है उसका नाम प्रकृति है। इस प्रकृतिस्वरूप उपादान कारणसे जगत् रूप जो कार्य हुआ है वही विकृति वा विकार है।

मूल प्रकृति अर्थात् जिससे जगत्की उत्पत्ति हुई है, जिसका दूसरा नाम प्रधान है, किसी भी कारणसे उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि मूल प्रकृति कोई कारण जन्म होनेसे उस कारणकी उत्पत्तिके प्रति भी दूसरे कारणकी अपेक्षा करती है, फिर उसकी उत्पत्तिके लिये अन्यकारणकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर कारणका कारण निर्देश करनेमें अनवस्थादोष होता है। अतएव मूल कारण अर्थात् प्रकृति किसी अन्य पदार्थसे उत्पन्न वस्तु नहीं है। वह जो स्वतः सिद्ध है उसे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अतएव यह सिद्ध हुआ, कि मूल प्रकृति अविकृति है, वह किसीकी भी विकृति नहीं।

महत्तत्त्व, अहङ्कारतत्त्व और पञ्चतन्मात्र ये सात तत्त्व प्रकृति-विकृति हैं अर्थात् वक्ष्य प्रकृति भी हैं, विकृति भी हैं। कोई तत्त्वकी प्रकृति और कोई तत्त्वकी विकृति है। महत्तत्त्व मूल-प्रकृतिके उत्पन्न है, अतएव वह मूल प्रकृतिकी विकृति है तथा महत्तत्त्वसे अहङ्कार-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण वह अहङ्कारतत्त्वकी प्रकृति है। उक्त प्रकारसे अहङ्कारतत्त्व महत्तत्त्वकी विकृति है, फिर उससे पञ्चतन्मात्र और ग्यारह इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण उसको पञ्चतन्मात्र और ग्यारह इन्द्रियोंकी प्रकृति कहते हैं। पञ्चतन्मात्र भी उन्नी प्रकार अहङ्कार-तत्त्वकी विकृति है तथा उससे उत्पन्न पञ्चमहाभूतकी प्रकृति है। पञ्चमहाभूत और एकादश इन्द्रिया किसी भी दूसरे तत्त्वकी उपादान-कारण वा आरम्भक नहीं होतीं। इस कारण ये केवल प्रकृति हैं, किसीकी भी विकृति नहीं।

पुरुष अनुभवात्मक है अर्थात् किसीकी प्रकृति (कारण) भी नहीं है और न विकृति (कार्य) हा है। पुरुष कूटस्थ है अर्थात् जन्यधर्मका अनाश्रय, अविकारी और असङ्ग है। पुरुष किसीका कारण नहीं हो सकता। पुरुष नित्य है, उसकी उत्पत्ति नहीं है, इसीलिये कार्य भी नहीं हो सकता। अतएव पुरुष अनुभवात्मक है।

“मूलप्रकृति विकृत हो कर जगत् रूपमें परिणत हुई

है। इसमें चादियोंका मतभेद देवनेमें आता है। परिणाम-वादो साख्याचार्योंको इस उक्तिको विवर्त्तवादी वैदान्तिक आचार्य स्वीकार नहीं करते। वे लोग प्रकृतिकी विकृति-से यह जगत् सृष्ट हुआ है, इस परिणामवादको स्वीकार न कर कहते हैं, कि यह ब्रह्मका विवर्त्तमात्र है। विवर्त्त और विकारका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

किसी वस्तुकी सत्ताके साथ उसकी जो अन्यथाप्रथा (अन्यरूप ज्ञान) है वही विकार है। फिर किसी वस्तुमें विकृत वा आरोपित द्रव्यमें, (जैसे सर्पमें प्रकृति (रज्जु)की सत्ताका न रहना जान कर उसका (आरोपित द्रव्य वा सर्पका) जो प्राण होता है उसका नाम विवर्त्त है। इसका तात्पर्य यह, कि परिणामवादियोंके मतसे कारण ही विकृत वा अवस्थान्तरको प्राप्त हो कार्याकारमें परिणत होता है। अतएव कार्यरूप वस्तु है, कार्यज्ञान निर्वास्तुक नहीं है।

विवर्त्तवादीयोंके मतसे कारण अविकृत हो रहता है, अथच उसमें वस्तुगत्या कार्य न रहने पर भी कार्यकी सिर्फ प्रतीति होती है। दुग्धकी क्षिप्रभावापत्ति आदि-परिणामवादका दृष्टान्त रज्जुमें सर्पप्रतीति आदि विवर्त्त-वादका दृष्टान्त है। वैदान्तिकोंका कहना है, कि जिस प्रकार सर्प नहीं रहने पर भी रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रपञ्च वा जगत्के नहीं रहने पर भी ब्रह्ममें प्रपञ्चकी प्रतीति होती है। रज्जुमें सर्प प्रतीतिके कारण जिस प्रकार इन्द्रियदोष है, उसी प्रकार ब्रह्ममें प्रपञ्चप्रतीति का कारण अनादि अवियारूप दोष है। रज्जुमें प्रतीयमान सर्प जिस प्रकार रज्जुका विवर्त्त है, ब्रह्ममें प्रतीयमान प्रपञ्च भी उन्नी प्रकार ब्रह्मका विवर्त्तमात्र है। यथार्थमें प्रपञ्च नामकी कोई वस्तु ही नहीं है।

इस पर साख्याचार्यगण कहते हैं, कि रज्जुमें सर्प प्रतीति होनेके बाद यदि तूव ध्यानसे सोचा जाय, तो मालूम पड़ेगा, कि वह सर्प नहीं, रज्जु है। अतएव रज्जुमें सर्पप्रतीति भ्रमात्मक है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु प्रपञ्चके सम्बन्धमें इस प्रकार भ्रमात्मक ज्ञान कभी भी नहीं होता। अतएव प्रपञ्चप्रतीतिको भ्रमात्मक नहीं कह सकते। इस युक्तिके अनुसार साख्याचार्यगण विवर्त्तवाद-से अश्रद्धा दिखलाते हुए परिणामवाद (विकारवाद)के

पक्षपाती हुए हैं। घोडा गौर कर सोकनेसे मादूम पड़ेगा कि परिणामभाषमें कारण है, कारण मिल नहीं है कारण व्यवस्थान्तरमात्र है। सुग्ध दधि रूपमें, लणं कुर्यच्छरुप में, मिट्टी घट रूपमें और तण्डु पद रूपमें परिणत होता है। अतएव क्षयि, कुण्डल घट और पट पथाक्रम सुग्ध, सुवर्ण मिट्टी और तण्डुसे वस्तुगत्या मिश्र नहीं है।

अतएव ऐसी प्रतीति होती है, कि अगत् प्रकृतिका विकार या काय है। विकार वा कार्यरूप अगत् सुखदुःख-मोहात्मक है, इसलिये उसका कारण भी सुखदुःखमोहात्मक है, यह सङ्ग्रहमें जाना जाता है। (कल्पतरुमें) विशेष विवरण प्रकृति, परिणामकार और वेदान्तरक्षणमें देको। बिहृतिपद (स० लि०) बिहृति अस्तयर्थे मुदुप्। बिहृति विशिष्ट, जिसमें विकार हो।

बिहृतीदर (स० लि०) १ बिहृति उच्चविशिष्ट, तीव्रघाटा। (पु०) २ राससमेह। (रामायण १।२।११)

बिहृति (स० लि०) १ विशेषरूपसे कर्षित अच्छी तरह मोटा हुआ। २ अर्द्ध, कोषा हुआ।

बिहृत् (स० लि०) बिहृतेय कृत्; बि-हृत्-क। भाइय, कोषा हुआ।

बिहृत्काल (स० पु०) बिहृत् काल। बिहृत्काल, सब दिन।

बिहृत् और (स० पु०) एक प्रकारका छोटा चक्रदार दर बाजा। यह प्रायः ऊपर तक ऊंचा और ऊपरसे बिन्दुक लुका हुआ होता है। यह बाजों आदिसे बड़े दरबाजोंके पास ही इसलिये लगाया जाता है कि आधमी तो था जा सके पर पशु शादि न जा सके।

बिहृत् (स० लि०) विगतः केशो यस्य। १ केशवर्जित केशरहित, गंजा। २ जिसके बाळ झुटे हों। (पु०) ३ एक प्राचीन श्रविका नाम। ४ पुच्छस तारा। ५ एक प्रकारका मंत्र।

बिहृत्ती (स० स्त्री०) विगतः केशो यस्यः कृत्। १ केशवर्जित, गंजा औरत। २ मही (पूज्य) कृत् शिवकी पत्नीका नाम। ३ एक प्रकारकी राहसी या पूतना। ४ परवर्ति, कपड़े की बत्ती।

बिहृत् (स० पु०) वृकासुरका पुत्र। कश्चिदपुराणमें लिखा है, कि वृकासुरके कोक और बिहृत्क नामक दो

पुत्र थे, अगवानने कश्चि अवतार ले कर दोनोंका बध किया। (कल्पपुराण २१ म०)

बिहृत् (स० पु०) १ अक्षकी पीड़ा। कोय रेशो (लि०) पीड़ित।

बिहृत् (स० लि०) बिहृत् रेशो।

बिहृत् (स० लि०) विगतः कोयो यस्य। १ कोयरहित, कोय या म्यानसे निकसी हुई। २ आच्छादनरहित, जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण या आच्छादन न हो।

बिहृत् (स० पु०) बिहृत् इति कायति शश्यायुते किं। १ विद्यायक, हाथीका बधा।

बिहृत्ोरिया— इङ्ग्लैण्डकी स्वनामवन्धु अमीश्वरी और भारतवर्षकी सम्राज्ञी। भारतवर्षमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं, जो बिहृत्ोरियाका नाम न जानता हो। इङ्ग्लैण्डके इतिहासमें ऐसे बहुत कम शासकोंका नाम देखा जाता है, जिनका बिहृत्ोरियाकी तरह प्रसिद्धि काम को हो। इया, सविष्णुता श्यायपरता, उदारता आदि जिन गुणोंसे मनुष्य सुख्याति प्राप्त कर अगत्में ऊपर रहते हैं, उन सब गुणोंका बिहृत्ोरियामें अभाव न था। इस कारण प्रायः सारी पूज्यी पर समी जातिवाँ इन्हे अशक्तों द्वारासे बैकनी थीं। भारतवासियोंको इनसे जो उपकार हुआ है, वह आज तक उनके हृदयपटल पर अंकित है। उसके लिये वे आज भी महारानीका छत्राकी दृष्टिसे देखते हैं।

सन् १८१२ ई०के २४ को मईको इनका जन्म हुआ। इनके पिता इङ्ग्लैण्डके राजा ३रे जार्जके पुत्र थे। इनकी माता बहुत बुद्धिमती था। जिससे बिहृत्ोरिया मविष्यमें एक हीनहार महिला बन, इस ओर प्राताका विशेष ध्यान रदता था। उनका जो शिक्षाके गुणस भागी बन कर बिहृत्ोरियामें अच्छी सुख्याति अर्जन की थी।

बचपनमें बिहृत्ोरिया अण्डलकें बन्धिन इन प्राप्तद्विं पितामाताके साथ सादृश्यी तौर पर रहती थी, अपना समय जैन कूर्में बिताया करती थी। यहाँ एक दिन अक्ष इन्हे मारूम हुआ कि कुछ दिन बाद ये इङ्ग्लैण्डकी राजा होगा तमोसे इन्हेमे पड़ना सिक्का आरम्भ कर दिया। मठारह वर्षको उमरमें ही ये बिहृत्ोरिया विद्यायिमे पार वर्तिनी हो गई थी।



सन् १८३९ ई०की २०वीं जूनको विक्टोरियाके चाचा इंग्लैण्डके राजा—४थे विलियमका देहान्त हुआ। उस समय विक्टोरिया केन्सि'टन प्रासादमें निद्रादेवीकी गोदमें सुपसे सो रही थी। बहुत सवेरे कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति वहां पहुंचे और उन्होंने विक्टोरियामें कहा, कि अभी वे समग्र प्रेट ब्रिटेनकी अर्धाश्वरी हुईं। रानी विक्टोरियाके जीवनका यह एक स्मरणीय दिन है।

सन् १८४० ई०में अपने चचेरे भाई युवराज अल्बर्टके साथ इनका विवाह हुआ। अल्बर्टने प्रायः बीस वर्ष तक रानीको शासनकार्यमें सहायता की थी। १८६१ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

सन् १८५८ ई०को जब भारतवर्षमें सिपाही विद्रोहका अवसान हुआ, तब भारतका कुल शासनभार ईष्ट इण्डिया कम्पनीके हाथसे विक्टोरियाने अपने हाथमें ले लिया। यह उनके शासनकालकी एक मुख्य घटना है। इस समयमें कम्पनीके शासनका अन्त हुआ और तभीसे गवर्नर जनरल भारतवर्षके राज-प्रतिनिधि हुए हैं तथा वह पद वाइसराय एण्ड गवर्नर-जनरल (Viceroy and Governor-General) नामसे प्रसिद्ध हुआ। सन् १८५८ ई०की १ली नवम्बरको विक्टोरियाने भारतवर्षमें एक घोषणा प्रकट की। वह घोषणा भारतकी 'मैग्ना चार्टा' (Magna charta of India) नाममें प्रसिद्ध हुई। उसका सभी भाषाओंमें अनुवाद हुआ तथा भारतवर्षके प्रत्येक जिलेमें वह जेरदार घरोंमें पढ़ा गई। उस घोषणाके अनुसार जिन्होंने उक्त चार्टरमें भाग लिया था, उन्हें छोड़ बाकी सभीको अपना अपना अधिकार लौटा दिया गया। उस घोषणामें यह भी लिखा था, कि भारतवासियोंकी जाति और धर्म पर किसी प्रकारका आक्षेप न किया जायेगा, प्राचीन रीति-नानिमें छेड़-छाड़ न होगा तथा सभी जातिके लोगोंका योग्यतानुसार सत्कारा नौकरीमें समान अधिकार रहेगा। इसी महान् उदारताके कारण वे भारतवर्ष तथा भारतवासियोंकी चिरस्मरणीय हो गई है।

१८७७ ई०की १ली जनवरीको दिवसोंमें एक बड़ा दरवार हुआ था। उस दरवारमें आप 'भारतकी सम्राज्ञी' घोषित हुईं। १८८७ ई०में महारानी विक्टोरियाके शासन-

कालका पचासवा वर्ष पूरा हुआ। इस उपलक्षमें समस्त ब्रिटिश साम्राज्यमें स्वर्णजुवली मनाई गई। भारतवर्ष भी इस महोत्सवमें शामिल होनेसे वञ्चित न रहा। इसके दस वर्ष बाद १८९७ ई०में महारानीके शासनकालका जब साठवां वर्ष पूर्ण हुआ तब बड़ी धूम-धामसे 'हीरक जुवली' मनाई गई। इंग्लैण्डके इतिहासमें इतने अधिक समय तक और किसीको राज्य करनेकी शान दिखाई नहीं देती।

महारानीके राजत्वका अन्तिम समय बड़ी ही अशान्तिसे बीता। एक तो पुत्रशोक, उस पर दक्षिण अफ्रिका आदि स्थानोंमें घोर विप्लव, इससे वे बहुत चिन्तित रहा करती थीं।

६४ वर्ष राज्य करनेके बाद १९०१ ई०की २२वीं जनवरीको महारानी विक्टोरिया इस घराघामको छोड़ परलोक सिधारीं। उनकी मृत्यु पर केवल इंग्लैण्ड ही नहीं, समस्त ब्रिटिश साम्राज्यने शोक प्रकट किया था। Frogmore Mausoleum में ४थी फरवरीको उनकी लाश दफनाई गई।

महारानी विक्टोरियाके इस सुदीर्घ शासनकालमें प्रेट ब्रिटेनमें बहुत परिवर्तन हुआ था। १८४० ई०के पहले छः पेंसिले कम्पमें कहीं भी चीठी नहीं भेजी जाती थी। किंतु उनके शासनकालमें सर रोडैण्डहिलके यत्नसे सिर्फ १ पे समें चीठी आने जाने लगी।

विक्टोरियाके राजसिंहासन पर बैठनेके पहले विलायतमें गरीबोंके पढ़नेका कोई खास स्कूल न था, कैदखानेकी संख्या अधिक थी, किन्तु जवसे विक्टोरिया गद्दी पर बैठी, तबसे बहुतसे स्कूल खोले गये और कैदखानोंको संख्या बहुत घटा दी गई। उनके शासनकालमें ही विलायतमें रेलगाडाका प्रचार हुआ। इन्हीं सब कारणोंसे विक्टोरियाका नाम चिरस्मरणीय है।

विक्टोरिया (४० खो०) १ एक प्रकारकी घोड़ागाड़ी। यह देवनेमें प्रायः फिटिनसे मिलती जुलती, पर उससे कुछ छोटी और हलकी होती है। इसको प्रायः एक ही घोड़ा खींचता है। (पु०) २ एक छोटे प्रहका नाम जिसका पना ईण्ड नामक एक यूरोपियनने सन् १८५०में लगाया था।

विक्रम (स० पु०) वि-क्रम-वम् । १ शौचगतिशय, शौर्य या शक्ति की अधिष्ठाता । पर्याय—अनिशकितता शौर्य, वीरत्व, पराक्रम, सामर्थ्य शक्ति, साहस । त्रियेयव क्रमतोनि वि-क्रम वम् । २ बिष्णु । ३ अग्नितमाल । ४ पादविष्टेय । (राम० १।१।२०) ५ विक्रमादित्य राजा । विक्रमादित्य देवो । ६ चरण, पैर । ७ शक्ति, ताकत । ८ स्थिति । विक्रमास्थितिः प्रतिस्व क्रमः महा प्रलयः । (स्वामी) ९ प्रमथादि साठ स वरसठमिसैं चौद हवाँ स वरसर । इस वर्षमें समी प्रकटक शस्य उपलब्ध होते हैं और पृथ्वी उपद्रवमुक्त होती है । किन्तु अक्षय, मधु और वायुद्रव्य म हवा विकृत है । १० स्वनामधेयता कविविशेष । इन्होंने नैमिषत नामक एक कवचकाव्य लिखा है । ११ वरसप्रपुत्र । (मार्कण्डेयपु० ११०।१) १२ पक्षिको गति । १३ खडग, रंग । १४ आक्रमण, चढ़ाई । (शिव०) १५ भ्रेष्ट, उत्तम ।

विक्रम-१ कामरूपमें प्रवाहित एक नदी । (भ०भद्रस० १।६।६) २ आसामके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । (१९।४०) ३ पूर्व बङ्गाका एक प्राचीन ग्राम । (१५।५३) ४ कुशाक्षीय के अन्तर्गत एक पर्वत । (विष्णु० १।३।०)

विक्रमक (सं० पु०) कात्तिकेवन्दे एक गणका नाम । विक्रमकशरो (सं० पु०) १ पाटलिपुत्रके एक राजा । २ अष्टौमङ्गलपरिणत इक्षविको एक राजा । ३ सूङ्गाक इक्षराजके मन्त्री । (कथासरिट्)

विक्रमकशरोत्तर (सं० पु०) उबराधिकारोक्त भीमपक्षियेय । प्रस्तुन प्रजासो—शरित ताछ १ तोला, रीप्य २ तोला, कसकी २ तोला और काठविप १ तोला, इनमेंसे पड़से ताछ और रीप्यको धाँप्यो ठरठ मद्द न कर एकज मिमाये । पोछे इसमें बज्जली और विप मिमा कर लोडूके मूयको छामके रससे २१ बार भावना है और बाइमें १ रसोकी गोभी बनाये । इसका सेवन करनेसे समी प्रकारके स्वर लय होत है ।

विक्रमचरित (सं० ज्यो०) विक्रमादित्यका चरितवियपक ग्रन्थमें है ।

विक्रमचरि—कुमायू के एक राजा, इरिवाँके पुत्र । ये प्रायः १३३३ ई०में विद्यमान थे ।

विक्रमचोख—एक महापराक्रमी चोख राजा, परब्रह्मदेवके

पुत्र । अनेक ताम्रशासनो और शिखामिणियोंसे तथा 'विक्रमचोखन इला' नामक तामिल ग्रन्थसे इन चोख-राज का परिचय मिळता है । शेषांश ग्रन्थमें लिखा है, कि इन्होंने केर, पाण्ड्य, माळव सिहल और बोकुण्यपतिको परास्त किया था । परम्पराराज तोण्डैमान, श्रेष्ठिपति काङ्कवन, सुङ्गवचमङ्कीक अधिपति बल्लम भमस्तपाल, वरसराज बाणराज, सिगर्त्तराज, चेद्विपति और बन्दिङ्गपति इनके महासाम्राज्य गिने जाते थे । इनक प्रधान मन्त्रीका नाम था कण्णन वा कृण्ण । विक्रमचोखने १११२ स ११२० ई० तक चोखराज्यका शासन किया । आप शैव थे ।

२ एक दूसरे चोख राजा । ये विक्रमवद्र नामस से परिचित थे । इनके पिताका नाम राजपरैण्डु था । आप १०५० शकमें कोतमरबलका शासन करते थे ।

३ पूर्ववाङ्गुण्यवशीय एक राजा । विक्रमण्य (स० ज्यो०) वि-क्रम वसुद् । विशेष, कर्म रत्नना ।

विक्रमहङ्ग (स० पु०) पाटकोपुत्रक एक राजा । (कथासरिट्)

विक्रमवैव (सं० पु०) अन्नपुरसहा दूसरा नाम । विक्रमपट्टन (सं० ज्यो०) बिनमस्य पट्टन । उच्चयिनी नगरी ।

विक्रमपति (सं० पु०) विक्रमादित्य ।

विक्रमपाण्ड्य—पाण्ड्यवंशीय एक राजा । मयुराईम इनकी राजधानी थी । वीरपाण्ड्यके मारे जाने पर कुमारेण्डुङ्ग चोखकी सहायतासे आप मयुराके सिंहासन पर बैठे थे । यह १२वीं सदीके मध्यभागकी घटना है ।

विक्रमपुर (सं० ज्यो०) बिनमस्य पुर । बिनमपुरी, उच्चयिनी ।

विक्रमपुर—बङ्गाळ-टाकाके जिल्लाका एक बड़ा परगना । टाकानगरसे १२ मील दक्षिणसे यह परगना शुक हुआ है । इनके पूर्व इच्छामती और मेघना नदी इसके पश्चिम बूड्डीगङ्गा, उत्तर अलामपुर परगना तथा इसके दक्षिणमें कीर्त्तिलाशा नदी प्रवाहित है रही है । टाका जिल्लेमें यह परगना बड़ा ही उपजाऊ और शस्यशायी है । यहाँ अधिक परिमाणमें धान ऊख, कपास, पान सुपारा

निम्न, नरह तरफकी शाक मन्जो और बहुत तरहके फल उत्पन्न होने हैं। परगनेके पूर्व अग्रमें भिटा या डोह हैं, इस अग्रमें बहुत उद्यान हैं। बीच बीचमें सरोवर और कम चौड़ी ब्रिजादि दिग्बाई देती हैं। पश्चिम अंग नीचा है। यहां ६ कोस तक जमीन नललागढ़के वन से परिपूर्ण है और सब समय जलसे डूबा रहता है।

ठाका जिलेमें विक्रमपुर परगनेमें ही घन वस्तिया और जनसंख्या अधिक हैं। इस संख्यामें अधिकांश हिन्दू हैं। हिन्दुओंमें ब्राह्मण ही अधिक हैं।

द्विजयप्रकाश नामक एक प्राचीन सस्कृत ग्रन्थमें लिखा है—

ठाकेश्वरीके पूर्व ८ कोस दूरी पर और इच्छामती नदीके किनारे सुवर्णग्राम अवस्थित है। इदिलपुरके उत्तर, ब्रह्मपुत्रके पश्चिम, गङ्गाके दक्षिण और पषानदीके पूर्व विक्रमपुर अवस्थित है। विक्रम नामक राजाकी यहां राजधानी होनेसे इस स्थानका नाम विक्रमपुर हुआ। पूर्वकालमें अर्द्धोदय योगके समय राजाने कल्पतब हो कर इच्छामती नदीके किनारे स्वर्णदान किया था। इस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको और दीनदत्तियोंको बहुत धनरत्न दान दिया था। विक्रमपुरमें बहुतेरे ब्रिहानोंका वास है। यह स्थान परतालराजके प्रमोदस्थानके नामसे विख्यात है। विक्रमपुर बहुत प्राचीन स्थान है। ऐसा जाना जाता है कि उज्जयिनीके इतिहासप्रसिद्ध सम्राट् विक्रमादित्यने यहां आ कर अपने नामको चिरजीवी करनेके लिये यह नगर बसाया था। वही आदि विक्रमपुर कहलाता है। विक्रमादित्य नामक और किसी अन्य राजा द्वारा यह नगर बसाया गया होगा; किन्तु उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्य द्वारा पूर्व बंगालमें आ कर नगरका बसाना युक्तिसंगत धोधन नहीं होता। फिर भी, विक्रमपुर नाम तो अवश्य ही प्राचीन है। पालवंशीय राजाओंके समय यह बहुत अच्छा नगर गिना जाता था। उसके पहलेका कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ, जिलालिया या नास्रलियामें इसका उल्लेख नहीं। पालोंके अधिकारके समय विक्रमपुर नगरमें सुप्रसिद्ध बौद्ध तान्त्रिक दोषड्डर श्रंशान अतीशने जन्मग्रहण किया था। कुछ लोग इस प्राचीन स्थानको रामपाल और कुछ लोग सासार

कहते हैं। किन्तु प्रथम स्थान विक्रमपुर परगनेमें रहने पर भी वह आदिविक्रमपुर नगर कीन है। इसका कोई ठोक निराकरण नहीं कर सकता। इच्छामती नदीसे तीन मील दूरी पर और फिरद्वीजाजारके पश्चिम सुप्राचीन रामपालका धर्मसावशेष मीजूड है। पाल और सेनवंशीय राजाओंके अधिकारके समय समस्त पूर्व-बङ्गाल और उत्तर बङ्गालके अधिकांश स्थान विक्रमपुरके अन्तर्गत थे। सेनवंशीय महाराज इतीजामाधवके समय विक्रमपुरको प्राचीन राजधानी चन्द्रद्वीपमें हटाई गई। इस समय भी चन्द्रद्वीपकी दक्षिणी सीमा तक प्रवाहित समुद्र तकका स्थान विक्रमपुरमें आ गया था।

रामपालके बल्लालभवनका विशाल धर्मसावशेष कोई ३००० वर्गफुट चौड़ा भूमिमें पड़ा हुआ है। पूर्वतन राजप्रासादका कुछ भी अंग नहीं, केवल ऊंचा टीला है और उसकी बगलमें प्रायः २०० फुट विस्तृत ऊंचा मैदान है। इसको पार कर एक रास्ता आया है। इस विध्वस्त बल्लाल-भवनमें किसी मकान आदिका चिह्न न होने पर भी इसके चारों ओर बहुत दूर तक ईंटोंकी ढेर और प्राचीर या चहारदीवारी खोज पड़ती हैं। यहांसे बहुत ईंटें ले कर निकटके कितने ही लोगोंने मकान बना लिये हैं।

इन धर्मसावशेषके निकट ही अग्निकुण्ड नामका एक बृहत् कुण्ड है। कहा जाता है, कि पहले वैद्यराज बल्लालके आत्मीय स्वजनोंके और बादकी स्वयं उन्होंने यहां ही अपना देह विसर्जन को थी।

इस धर्मसावशेषमें 'मीठा पोखर' नामक एक सरोवर है। सुना जाता है, कि इसी सरोवरमें राजाबल्लाल और उनके आत्मीय स्वजनोंका देहावशेष रखा गया था।

इसके एक कोस दूर पर थावा आठम पीरका दरगाह और मसजिद है। कहते हैं, कि वैद्यराज बल्लालके साथ इसे पीरका युद्ध हुआ था। बल्लालकी पृथगुके दाद यह पीर ही पहले पहल मुसलमान काजोंके रूपमें बल्लाल भवनका शासन करता था। बल्लालभवनका 'मीठापोखर' सरोवर जैसा हिन्दुओंके लिये पवित्र है, वैसे ही वहांके मुसलमानोंके लिये थावा आठमका दरगाह और मसजिद भी पबक है। रामपाल देखो।

रामपालके सिद्धा इस परगनेमें केदारपुर नामके स्थान में इन्द्र मीमिकोंके अत्यन्त खारवा और केदाररायका सुभद्रा ध्वंसायशेव गङ्गा और मीघनाक संगमक निकट का मठ वैकनैकी बीज है।

किरक्रीबाजार इच्छामती नदीके किनारे पर बसा हुआ है। नबाब सायफा काँके जमानेमें सन् १६६३ ई० में कई पुराणाओं किरक्री भाराकानी राजाको त्याग कर मोगलसेनापति हुसेनबेगका पक्ष छे यहाँ रहने लगे। इसीसे यह स्थान किरक्री बाजार नामसे प्रसिद्ध है। एक समय यह स्थान कस्बाके रूपमें था, किन्तु इस समय एक सामान्य छोटा गाँव सा दिखाई देता है।

किरक्रीबाजारके प्रायः तीन माल दक्षिणमें इच्छामती के किनारे और एक प्राचीन स्थान है। यहाँ मीरजुमनाने एक बीबीन किन्ना बनवाया था। उस प्राचीन दुर्गके मन्नायशेवमें कितनी ही ईंटे और घाट हैं। पहले मोगलोंके जमानेमें यहाँके भाइमें शुद्ध घाट कर वसूल किया जाता था। इस समय क्करके महीनेमें यहाँ एक मेला लगता है। यह १५ दिनों तक चलता है। इस मेलेमें पूर्वबङ्गालके बहुतैरे पासो भाँटे हैं। इसमें पूर्व बङ्गालके बस्त्रयोंका व्यापिकप होता है।

विक्रमवाहु (सं० पु०) सिंदहके एक राजा।

विक्रमराज (सं० पु०) राजा विक्रमादित्य।

विक्रमशोक (विक्रमशिक्षा)—पालराजाओंके समय मगध को हूंसो राजधानी। आज कल इसे शिक्षा कहते हैं। यह वर्तमान बिहार प्रदेशके मध्य बिहार महकमेसे प्रायः ३ कोस दूर पर राजपुर जगैके रास्ते पर अवस्थित है। बौद्ध पालराजाओंके समय यह स्थान बहुत समृद्धिवाली था। अनेकों मठ और स्तूपाराम शोभा दे रहे थे। पर आज इनका नाम निशान तक भी नहीं है। कबल दो एक प्राचीन बौद्धमूर्तियाँ उस हीय स्थितिका परिचय दे रही हैं। यहाँका राजा आज भी बिहार मरमें प्रसिद्ध है।

धर्मपालके पंशुमें विक्रमशोक नामक एक बोरपुत्रने जन्म लिया। कुछ लोग कहते हैं, कि इन्हींके नामा सुत्तार विक्रमशीम राजधानीका नाम पड़ा होगा। इन्हीं विक्रमशीकके पुत्र पुत्रराज इत्यर्थके आधारमें यह दर प्रसिद्धबिभीङ्गामिलने रामचरित भाद्रि काव्योंकी रचना की।

विक्रमसाही—बासियरके तोमरवंशीय एक राजा, मान साहीके पुत्र। भाप १६थी सत्रीमें विधमान थे।

व्यापिकर देखो।

विक्रमसिन्धु—सिन्धुवंशीय घेखदुर्गके एक सामन्त राजा। २५ चाहुएइराजके पुत्र। ११०२ शकमें भाप कछबुरि पति सङ्गमके भगोन विसुकाइ प्रवेशका शासन करते थे।

विक्रमसिंह—एक पराक्रान्त कच्छप्रपातवंशीय राजा, ब्रिजपालके पुत्र। अश्वितीय जैनपरिचरत शान्तिपेयके पुत्र विजयकोर्ति इनके सभा परिचरत थे। पुत्रकुन्दसे ११४५ संवत्में इतकीर्ण इनकी शिक्षादिपि पाई गई है।

विक्रमसिंह—बृणराजवंशीय मेवाड़के एक प्रसिद्ध राजा। समरसिंहके पूर्वपुत्र्य। उमरीर देखो।

विक्रमादित्य (सं० पु०) मोक्षविशेष। प्रस्तुत प्रजाको—पहले २० गुण्यफलको घुनमें पाक कर पोछे इन फलोंको निकाल कर बीस पल काँइमें डाल दे। इसके बाद ताज सूकी, सुर गो, सोड प्रत्येक ४ तोला, मातोफल ककोल, खसंग प्रत्येक २ तोला, मासता, कुसिन्न, कबाब, करमत्तक प्रत्येक १ तोला, इन्हें एकत्र कर मोक्ष बनाये। प्रति दिन यदि १ तोला मोक्ष और एक घुनपक्व आमककी सेवन करे, तो पातुहीनता, अमिमाण्ड, सभा प्रकारके तैब्रोग, कास, भ्वास, कामला और बीस प्रकारके ममेद अति शोभ नष्ट होते हैं।

विक्रमादित्य (सं० पु०) क्षत्रामप्रसिद्ध नरपति। ये बिक्रमार्क नामसे भी विख्यात हैं। इस नामके बृहस्पक नृपति विभिन्न समयोंमें उत्पन्न हो कर राज्यशासन कर गये हैं। इनमें संवत्सत्पर्वर्षिक विक्रमादित्यकी ही बात पहले कहेते। इन नृपतिके सम्बन्धमें धवाद् वा किन्न दक्षिणोंके व्यापार पर कितनी ही छेपछोते कितनी ही भाँटे छिन्ना हैं, पहले हम इन्हींकी आलोचना करते हैं।

कासिदासके ज्योतिर्विदामरण नामक ग्रन्थमें लिखा है—

“श्रीविक्रमार्क भृतिस्मृति विचारविचार्य पण्डितोंसे समाकीर्ण एक ही अस्तोमे अपिक देशोंसे समन्वित भारतवर्षके सम्पूर्ण माकड वैशक राजा हैं। महाबागी बर उच्च, अशुभ मणि, अशुद्ध, मोगीयापरायण सिद्धोपनइति

घटकर्पूर और अमरनिह आदि सत्यप्रिय वराहमिहिर, श्रुतसेन, वादरायण, मणित्य, कुमारसिंह आदि महा महा पण्डित लोग और मिवा इनके धन्वन्तरि, क्षपणक, चेताल, भट्ट, घटकर्पूर, कालिदास आदि कवि महाराज विक्रमार्क नृपतिकी सभामें विराजमान थे। इन १६ देवग सत्य पण्डितोंके सिवा महाराज और भी १०८ नरपतियोंसे समावृत हो कर सभामण्डपमें विराजमान होते थे। इन लोगोंके सिवा १६ ज्योतिषी और १६ आयुर्वेदविशारद चित्रकलाकामाभिषि भिषक प्रवर भवदा इनके समीप बैठते थे। भट्ट ( माट ) और चड्डिन ( चेडावार ) भी अपने अपने कार्योंमें प्रवृत्त हो सभाके समीप खड़े रहते थे। करोड़ों सिपाही सभाको घेर सभा मण्डलको रक्षा करते थे।

इन दिग्विजयी राजा विक्रमार्कके किसी स्थानमें यात्रा करने समय बहत्तर कोस तक सैन्य खड़ी रहती थीं। इनमें तीन करोड पैदल, दश करोड सवार ( हाथी, घोडे आदिके सवार ), चौतीस हजार तीन सौ हाथी और चार लाख नावे इनके साथ साथ रहती थीं। ये दिग्विजय कर जब लौटे थे, तब लोग इनको अत्युन्नत द्राविड वृक्षका एकमात्र परशु, लाटाटवीकी दावागिनी धलवहङ्ग-भुजङ्गराजके गरुड, गौडसमुद्रके अगस्त्य, गर्जित गुर्जर-राजकरिके हरि ( सिंह ), धारान्धकारके अर्यमा ( सूर्य ), कम्बोजाम्बुजके चन्द्रमा समझे थे अर्थात् परशु, दवागिनी, गरुड, अगस्त्य, सिंह, सूर्य और चन्द्र ये जैसे क्रमसे वृक्ष, वन, भुजङ्ग, समुद्र, हस्तो, अन्धकार और पन्नके ध्वास के प्रति नियत कारण होते हैं। उन्होंने भी वैसे ही द्राविड, लाट, वङ्ग, गौड़, गुर्जर, धारानगरी, कम्बोज आदि इन देशोंका ध्वास साधन किया।

इससे राजा विक्रमार्कके शौर्यवीर्यगुणका ही चिन्ता होता है। इनमें केवल ये गुण ही नहीं थे, वरं इन्द्रका तरह अन्वण्डप्रताप गुणसे, समुद्रकी तरह गाम्भीर्य गुणसे, कल्पतरुकी तरह दानके गुणसे, काम-देवकी तरह सौन्दर्य गुणसे, देवताओंके शिष्टान्त गुणसे और दुष्टका दमन, शिष्टताका पालन आदि सभी गुणोंसे गुणवान् थे। उनका प्रधान निदर्शन यह है, कि अरयुष्म, अति दुर्गम, असह्य पर्वतशिखर पर चढ़

कर चढ़ाके अधिपतियोंको जीत लेते थे। इस पर यदि वे अवनत मन्तक हो कर उनको अधीनता स्वीकार करने थे, तो वे अनायाम ही उनको उनका राज्य लौटा देते थे। मिवा इसके मणिमुक्ता, वाञ्छन, गो, क्षय, गज आदिका दान उनके निम्नके कार्योंमें परिगणित था।

महापुरा उज्जयिनी इन विक्रममहिष्णु महाराज विक्रमार्ककी राजधानी थी जो शकेश्वर कम्बोजाधिपतिकी तमूल संग्राममें पछाड़ उसे कैद कर अपनी राजधानीमें ले आये थे, फिर इज्जतके साथ उन्को उम्को छोड़ भी दिया था; जिन्होंने संग्राममें पञ्चनवप्रमाण शकोंके पराजित कर कलियुगमें पृथ्वीमें शकाब्दका प्रवर्तन किया, जिनके राजत्वकालमें अचान्तिकाकी प्रजामण्डली सुग-समृद्धिकी अन्तिम सीमा तक पहुँच चुकी थी, एवं जिनके समयमें नियत वेदविहित कर्मोंका अनुष्ठान होना था, शरणापन्न जीवोंको मोक्षप्रदायिनी महाकाल महेश्वरोंगती उन अचान्तिकी विक्रमार्ककी जय करें। ( ज्योतिषि० )

ज्योतिषिदाभरणमें जिन विक्रमादित्यका कथा वर्णित है, वे ही विक्रमसावत्सरके प्रवर्तक प्रसिद्ध हैं। वेताल-पचीसी और सिंहासनवतीसीमें उनके सम्बन्धमें बहुतैरी अलौकिक कथाएँ लिखी हैं, किंतु सब कथाएँ आर-ध्योपन्यास ( चहारदशेश )की तरह चित्कारक होने पर भी उनके मूलमें ऐतिहासिक सत्यताका अंग नहीं प्रतीत होता। ज्योतिषिदाभरणमें विक्रमादित्यका जो उज्ज्वल विशेषण दिखाई देता है, उक्त उपाख्यान ग्रन्थोका सार कहे, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वेतालपचीसी और सिंहासनवतीसीका भारतवर्षमें इतना प्रचार अधिक है, कि यहाका बधा भी विक्रमादित्यके नामसे परिचित है।

वेतालपचीसी और सिंहासनवतीसीके कथाओंका

\* सिंहासनवतीसी या विक्रमचरित किसीके मतसे वररुचि, किसीके मतसे सिद्धसेन दियाकर, किसीके मतसे कालिदास, किसीके मतसे रामचन्द्र शिव अथवा क्षेमद्वार मुनि द्वारा विरचित है। इसी तरह मूल वेतालपचीसी पुस्तक भी किसीके मतसे क्षेमेन्द्र, किसीके मतसे जम्भलदत्त, किसीके मतसे बल्लभ, किसीके मतसे शिवदास और किसीके मतसे कथासार-सागरके रचयिता सोमदेव

भारतकी प्रायः सभी देशी भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। किन्तु आछोचना करने पर ये ऐतिहासिक ग्रन्थ कोई सात आठ सौ वर्षसे अधिक पुराने न होंगे। इसी तरह ज्योतिर्विद्यामरणकारका मिश्रासने अपनेको विक्रमादित्यक समसामयिक होनेका परिचय देनेकी चेष्टा की है सही, किन्तु मात्स्य हुआ है, कि यह ग्रन्थ सन् १२वीं सदीकी रचना है। सुतरां इन आधुनिक ग्रन्थों पर निर्भर करके ही विक्रमादित्यका इतिहास जिज्ञाना समोचन नहीं होगा।

उपातिर्विद्यामरणकारने जो कई उज्ज्वल नक्षत्रोंका परिचय दिया है उन महात्मनाओंके सम्बन्धमें मेरा कहना है, कि ये विक्रमादित्यके समसामयिक ही थे और इसमें मां सन् ६ है, कि वे जोग परस्पर एक समयके थे या नहीं। पुस्तकपाले बौद्ध भवत्सुके एक शिक्षात्रिपि भाषितकृत हुई थी। उस शिक्षात्रिपिके पङ्क्तियाँ बिल किरस साहबके मठमें यह १२वीं शताब्दीकी लिपि है इनमें कामिदासके समासद् भीर नवरत्नका भी उल्लेख है। यह भी हो सकता है, कि सम्भवतः इस तरहको किसी लिपि और प्रवासे ही पिछले काळमें विक्रमादित्यकी समा और उनके नवरत्नकी बात प्रचारित हुई होगी।

हयप रचित है। मूक वाच यह है, कि विद्यामरणकी भीर वेदात्मनीकी इन दोनों पुस्तकोंके रचयिताके मम तथा ठारीका ठीक पता नहीं है। किन्तु वेदात्मनीकी भाषा को देखने या इस बातका कई पुस्तकोंमें उल्लेख करने पर अनुमान होता है, कि यह रचनाकी मम ठार्येव का ही होगा। क्योंकि इनकी बनाई पुस्तक कथाविरचितमारी भाषाके इस वेदात्मनीकी भाषा बहुत कुछ भिन्न ही होगी है। इसके बाद अनुमान बुद्धिपुत्र नहीं कहा जायेगा। यह गोमरेव मठ सन् १२वीं शताब्दीमें कारमीमें उद्भव हुए थे। उपातिर्विद्यामरणके रचयिता काश्मिराके भी शो समवेर रोनेका अनु मान किया जाता है। उन्में मन्ने मन्थका मरम्भ कास कश्मिराकार ३० है या २४ विक्रमव १४ सिक्के पर उनके मन्थमें "कका मरम्भानिपुगो (४४५) निनो ह्यो मान" इत्यादि बचनेसे ४४५ तक और 'मन्था' मरम्भमिदिरि मरै' इत्यादि उक्ति द्वारा भी उनका नाम पक्का पता है। मरम्भमिदिरि वेको।

मानवमें प्रबाध है, कि राजा विक्रमादित्यने पितासे राज्यधिकार नहीं पाया था। उनके वैमान्य व छाता मर्यादा सौतेले माह मरुतु हरि हो मानवका शासन करने थे। किसी समय मरुतु हरिके साथ विक्रमादित्यका मनोमालिण्य हुआ, इससे विक्रमादित्य अत्यन्त क्षुब्ध हो मासव छोड़ कर लड़े गये और तीन दोन मेयमें गुप्त रात और मासवाके नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर कुछ दिनोंके बाद मासवमें ही छौट आये। इस मरुतु हरि स्वपत्नीकी पुत्रविरिहतासे विरक्त हो कर राजभोग त्याग कर जङ्गलमें लड़े गये। उन्होंने बाबा मारकनायात्रीके शिष्य हो कर योगमें मन लगाया वेसो अवस्थामें विक्रमादित्यको राज्यका भार लेना पडा। राजा होनेके बाद विक्रमादित्यने भारतवर्षके कितने ही प्रदेशोंको जीत कर अपना राज्य विस्तार किया।

उद्भूत ग्रन्थ निम्न और प्रवासे हमें जिन कवियों तथा पद्यकारोंका परिचय मिलता है, वे विभिन्न समयके मात्स्य होते हैं। नरसिंह मरुतु हरि मादि उल्लेख वेको।

पारशास्य परिष्ठत जोग काश्मिराके नवाये रघुवंशमें 'द्वय' शब्द देख कर अनुमान करते हैं, कि द्वयके मधि कारकाळके बादके वे काश्मिरास हैं। उनक मतसे गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तके समय श्रुद्धीय ५वीं शताब्दीमें द्वयोंने भारत पर आक्रमण किया था। इसी तरह विक्रमादित्यके सम्बन्धमें भी ये कहते हैं, कि ज्योतिर्विद्यामरणक मठमें या स वत्के प्रारम्भानुसार विक्रमादित्य श्रुद्धीय पूर्व प्रथम शताब्दीके मनुष्य कहे जाते हैं सही, किन्तु हम जोग वेसा लोकार करनेमें असमर्थ हैं। क्योंकि प्रथम अर्थके समकालीनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। और तो क्या, जो विक्रमस वत् प्रचलित है, वह श्रुद्धीय ३ठी शताब्दी तक इस नामसे प्रचलित नहीं था। इस समयके पूर्ण यह अर्थ 'मासवगणसिन्धुवत्' कह कर ही प्रयित था। और ता क्या यह अर्थ इस समय १६० तक प्रचलित रहने पर भी ३१४ विक्रमस वत्के (३५३ श्रुद्धीय पहले) विक्रमाद्यादित्य कोई शिलात्रिपि, तात्र शासन या प्राचीन ग्रन्थ नहा मिले हैं। बौधपरिमात्रक इयुपान सिंघादिके भारतभ्रमण-काळमें शिलादित्य मासवका राज्य करते थे। इनके पिताका नाम था—

हर्षविक्रमादित्य। बहुतेरे मनुष्यों का विश्वास है, कि इन विक्रमादित्यने अपने राज्याभिषेकान्तवक के समय अपने दसवीं वर्षे पहलेके प्रचलित मालवके 'विक्रमाब्द' नामसे चलाया होगा। इन विक्रमादित्यके नमयमें मालवमें याद्यतीय विद्याविद् मनोपियोंके आग्रिर्भावसे उनका राजत्वकाल भारतमें स्वर्णयुग कहा जाता था।

पाश्चात्य पण्डितोंने कालिदास या विक्रमादित्यके सङ्ग्रहमें ऊपरमें जैना मत प्रकाशित किया है, वह समीचीन नहीं समझमें आता। रघुवर्गमें हूण शब्दका प्रयोग देव कर उनकी ५वीं या ६ठीं शताब्दीका मनुष्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि खृष्ट पूर्ज १ लो शताब्दीमें प्रचलित ललितविस्नार नामक संस्कृत बौद्धग्रन्थमें 'हूण' शब्दका प्रयोग देखा जाता है। इससे खोकार करना होगा, कि ईशाके पूर्वा १ शताब्दीम हूण जाति भारतीयोंने लिपो न थी। इस समय तक आग्रि-पकृत खृष्टीय ६ठीं शताब्दीके पूर्ववर्ती किसी जिला लिपिमें विक्रमार्कका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसमें और पूर्ववर्ती लिपिमें मालवके उल्लेख रहनेसे फिर इसके सिवा अन्य कोई मजबूत प्रमाण न मिलनेसे हम इनका खृष्टीय ६ठीं शताब्दीका मनुष्य कहनेमें असमर्थ हैं।

कालिदास देखो।

भारतवर्षमें नाना समयमें बहुतेरे विक्रमादित्य राज्य कर गये हैं और उनमें प्रत्येककी राजमभासे प्रसिद्ध प्रसिद्ध सैकड़ों कवि पण्डित अधिष्ठित हो कर भारतवर्षमें उज्ज्वल कर गये हैं। इन सब विक्रमादित्योंका परिचय नासे देते हैं।

१ विक्रमादित्य।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें लिखा है, कि कलियुगके ३००० वर्ष वीत जाने पर यह विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे। इस समय ५०३० वर्ष कलिका वीत गया है। ऐसे स्थलमें अबसे २०३० वर्ष पहले अर्थात्— प्रायः १०० वर्ष ई०के पूर्वा पहले विक्रमादित्यका जन्म मानना होगा। खृष्टीय १०म शताब्दीके प्रसिद्ध सुसलमान

ऐतिहासिक धलधरुर्जाने लिखा है, कि "विक्रमादित्यने शकरराजके विरुद्ध युद्धयात्रा की। उनके मयमें शकाधिप पहले तो भाग गये; किन्तु धनमें वह सुतान और लोनीके दुर्गके बीच कटर नामक स्थानमें उनके द्वारा पकड़े और मार डाले गये।"

जिस स्थानमें शकाधिप विक्रमादित्यके द्वारा मार डाले गये, वह देग या जनपद पाणिनिके अष्टाध्यायी ग्रंथ सिक्न्दरके मयमें मालव या माली नामसे प्रसिद्ध था। इन स्थानमें विक्रमादित्यके अभ्युदयके बहुत पहलेसे ही शकाधिपत्य चला आता था। खृष्टीय ४थी शताब्दीमें यहासे शक प्रभाव मिट गया। ( शक, सुतान, शाक-दीपी आदि शब्द देखना चाहिये )।

आदि मालव या सुतानसे ४थी शताब्दीके पहलेमें ही जब शकाधिकार लुप्त हुआ तब विक्रमादित्य उसके बावके समयके कभी नहीं कहे जायेंगे। उन्होंने शकोंको जीत कर मालवमें जो अश्व जारी किया वही मालवगणाब्द या विक्रमसंवत् नामसे मशहूर हुआ। शकाधिपतिके पराजय और सहार करनेमें ही विक्रमादित्य 'शकारि' उपाधिसे विभूषित हुए थे। सभी संस्कृत पाचोन कोषोंमें और भारतके सर्गत शकारि कहनेसे विक्रमादित्यका ही बोध होता है।

उक्त मालवके अधिवासी माकीदन बीर सिक्न्दरके अभ्युदयकालमें प्रबल पराक्राम गिने जाते थे। सिक्न्दर और उनके अनुवर्ती यवन और शक राजाओंके पुनः पुनः आक्रमणसे उक्त स्थानके योद्धा और अधिवासी कुछ हीनबल हो गये थे। प्रवादके अनुसार मालूम होता है, कि राजा विक्रमादित्यने उत्तराधिकारसूत्रमें पितृराज्य लाभ नहीं किया। उन्होंने अपने भाग्यबलसे तथा प्रतिभा के बलसे मालवके अधिवासियोंको एकत्र कर सबोंको हराया था। उन्हींके उत्साहसे मालवके अधिवासी अवन्ती देशमें बस गये। अवन्तिकामें मालव जातिके आ कर बस जाने पर ही अवन्तिकाका नाम मालव हो गया है और पञ्चनद अर्थात् पञ्जाबके अन्तर्गतका आदिमालव जनपद भी मानो विलुप्त हुआ। अवन्तीकी राजधानी उज्जयिनीमें विक्रमादित्यका अभिषेक और मालवजातिकी

प्रतिष्ठाके समयमें 'विक्रमसंवत्' या 'मालवगणपञ्च' या मालवेण संवत् प्रचलित हुआ।

प्रबन्धविस्तारमणि, हरिसूत्रकी भावार्थकटीका और शैलोक के तपागणपथावलासे ज्ञाना जाता है, कि वीर निर्वाणक ३३३ वर्ष बाद पाण्डिताचार्य, सिद्धिसेन विवाकर और चोर-निर्वाणक ४३० वर्ष बाद (इसके ५३ वर्ष पहले) संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य भाविर्भूत हुए थे। उन्होंने उच्चयिगोके शकराजको हरा कर सिंहासनारोहण किया।

शैलोकों कावकाचार्य कथामें लिखा है, कि शक्यवंश भी जैन-धर्मका इत्यादवाता और अनुयायी था। उनके समयमें ही मालवमें विक्रमादित्यका जन्म हुआ था। उन्होंने शक्यवंशका ध्वंस किया। उनका राज्य विकार ससुद्धिसे पूर्ण और गौरवजनक हुआ। उन्होंने अपने नामसे संवत् प्रचलन और सारे राज्यके अधिवासियों को ध्यानसंमुख किया। कुछ दिनों क बाद ही फिर शक्य राजा पैदा पड़े। उन्होंने विक्रमादित्यके वंश का वध किया था। नवविक्रमादित्यक १३५ वर्ष की उमिर पर उसके बड़ेमें उस शक्यवंशमें शक्यवंश प्रवर्तन किया। शैलाचार्य सुन्दरपाध्याय द्वारा रचित

कल्पसूत्र टीकामें देखा जाता है, कि राजा विक्रमादित्य शक्य वंश के लिये गये, वहाँ सिद्धिसेन विवाकरने उनके जैनधर्ममें बोधित किया। सिद्धिसेनके वध वंशसे विक्रमादित्यने संवत्सरका प्रचलन किया। इससे पहले वीर-स मत्सरका व्यवहार हो था।

पह मालवमें नहीं होता, कि विक्रमादित्यने कितने दिनों तक राज्य किया। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यशासन किया था और इसलिये उनके संवत्सर-प्रवर्तन तथा मालवमें कर समाज संस्कारोंको सुविधायें प्राप्त हुई थी; किन्तु यह नहीं मालूम होता, कि दीर्घकाल तक शासन करनेके बाद उनके सिंहासन पर उनका कोई वंशधर बैठा था या नहीं, क्योंकि इनके एक वर्षमें ही उच्चयिगोका राज्यासन पर शक्योंका कब्जा हो गया था।

शकराज ३ और शक्यवंश के।

विक्रमादित्यके वंशजोप और शक्यधिकार हो जाने पर मालवयाने अधिवासों अपने ज्ञातीय संवत्सरको बहुत दिनों तक चला नहीं सके। इसकी कौथी शताब्दी के आरम्भ तक शक्यधिकार पूर्ण रूपमें विद्यमान था।

२ विक्रमादित्य।

श्रीनपरिभाषक धूपान सिवाहू भारत समय काव्यमें लिख गया है, कि कुछ निर्वाणके सुहृद वर्षमें धारणतो-राज्यमें विक्रमादित्य नामका एक बड़ा ब्याहृत राजा था। वह नित्य गरीब और असहाय लोगोंको प्यार साभेना सिखा बख्ता था। उसके मत्पथिक वामसे बजाना लाली शैलोकके मपसे कापाप्यहने एक दिन राजासे कहा, कि राजकीय शून्य हो जाने पर इसमें धन जालनेके लिये जो मणिकर कर लगाया जायेगा, उस करमारसे इच्छि प्रजा कथ पायेगी। शक्यके लिये जापकी प्रथ सा होगी सही, किन्तु जाप अपने मन्त्रियोंको दुष्टिमें गिर जायेगी। राजा विक्रमादित्यने कोपाप्यहकी बात पर ध्यान नहीं दिया और

● मालवसे भाविर्भूत विभिन्न समयकी तिथिप्रमाणोंमें 'मालव कल्प' 'मालवेण संवत्सर' और 'मालवगणपतिवत्सल्प' इत्यादि नाम पाये जाते हैं। जैसे—

(१) मालवगणपतिवत्सल्पका बाले कृतकल्पसे।

किन्तुवत्सल्पेन्द्रात् शक्यो वेम्बकल्पने ॥

(कल्पवत्सल्पकी कृतकल्पसे।)

= ४८१ मालवकल्प = ४३३ ई.। (Pict's Gupta King's page 88)

(२) "संवत्सरवैवर्तिः सपञ्चनत्वागच्छे।

सक्यमन्त्रियेयानां मन्त्रिणं पुञ्जके इत्थं ॥",

कल्पवत्सल्पे। (Indian Antiquary, Vol XIII p 162)

(३) मालवकाव्यप्रवृत्तौ कल्पवत्सल्पेन्द्रात्सुवेत्सल्पे मन्त्रियेण— (Archaeological Survey of India, Vol. ९ p. 33)

४३ ४३१ -१

● "किञ्चिदेन विक्रमादित्येण माया राजा प्रतिबोधितः भीष्मिणं वानिन्याद्विक्रमादित्येण राजा संवत्सरं प्रवर्तयामास पूर्वसु भी वीरसंवत्सरमावर्तयत्।" (कल्पवत्सल्पकी)



ज्ञानका काम वैसे ही जारी रखा। इसके बाद मनोहित नामके एक बौद्धाचार्यने अपने हजामकी एक लाख रुपय मुद्रा दान की है। इस दानके विषयमें विक्रमादित्यका मालूम हुआ, कि दर्यावश ही बौद्धाचार्यने ऐसा किया है, इस पर उन्होंने नाना तरहके छलका आश्रय ले कर उसको बहुत तरहसे तड़किया। उससे मनोहितके मनमें बड़ी चोट लगी और इसके लिये ही उनकी मृत्यु हुई। इस घटनाके कुछ ही दिन बाद विक्रमादित्य ने अपना राज्य खो दिया। इसके बाद जो राजा हुआ, उसका सभामें मनोहितके शिष्य चमुवन्धु विशेषरूपसे सम्मानित हुए थे।

अध्यापक मोक्षमूलरने उक्त विक्रमादित्यको उज्जयिनी-पति गिलादित्य प्रतापगोलके पूर्ववर्ती विक्रमादित्यका शोना खोकार किया है। फार्गुसन और मोक्षमूलरके मतसे सन् ५३० ई०में उक्त विक्रमादित्यका राज्यवसान हुआ था। किन्तु यह मत हम समीचीन नहीं समझते। चीन-बौद्धशास्त्र-मतसे ईसासे ८५० वर्ष पहले बुद्धका निर्वाण हुआ। सुतरां चीनपरिव्राजकके इस मतसे श्रावस्तीराज विक्रमादित्यको ईसाकी दूसरी और तिसरी शताब्दीका मनुष्य कहा जा सकता है। ५वीं शताब्दीमें पाण्डित्याजक फाहियान भारत परिदर्शनके लिये आया था। इस समय उसने श्रावस्तीका ध्वंसावशेष देखा था। इससे भी प्रमाणित होता है, कि श्रावस्तीकी समृद्धिके समयमें अर्थात् ईस्वीकी ४थी शताब्दीके पूर्व ही विक्रमादित्य वर्तमान थे। ऐसे स्थलमें ईसाके ६ठी शताब्दीके उज्जयिनीपति हर्षविक्रमादित्यको श्रावस्ती-पति विक्रमादित्यके साथ अमित-कल्पना नहीं की जा सकती। चीनपरिव्राजक हियोनसियांगने ७वीं शताब्दीमें मालवमें आ कर गिलादित्यका विवरण संग्रह किया था। वह मालवपति और श्रावस्तीकी दूसरी समझते थे।

३ विक्रमादित्य।

गुप्तवंशीय प्रथम चन्द्रगुप्तने शकोंकी हरा और उत्तर

भारतकी जीत कर विक्रमादित्यकी उपाधि प्रदण की। शकार विक्रमादित्यकी तरह उन्होंने भी सन् ३३६ ई०में एक नया संवत्सर चलाया था। फलतः वही पेटिहा शिकोंकी दृष्टिमें गुप्तकाल या गुप्तसंवत् कहा जाता है। गुप्तवंशक इतिहासमें वह नाम चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध है। नेपालकी लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवीके साथ उनका विवाह हुआ था। सम्भवतः नेपालियोंकी सहायतासे वे उत्तर भारतके अयोध्या हुए थे। मालूम होता है, कि इसी कारणसे उनके चलाये सिक्के पर उनके नामके साथ कुमारी 'कुमारदेवी' तथा 'लिच्छवी' का नाम दिखाई देता है।

गुप्तवंशके श्लो।

उक्त 'कुमारदेवी' के गर्भमें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके औरससे समुद्रगुप्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने बाहुबलसे वित्तराज्यके बाहर सारे आर्यावर्त और दक्षिणात्यके अधिकांश पर अधिकार कर लिया था। उनके ही प्रबल प्रतापसे शक-प्रभाव बहुत कम हो गया था। उनकी गिलालिपिने मालूम होता है, कि मालवराज भी उनके समयमें प्रबल थे, किन्तु गुप्तसम्राट्की अधीनता खोकार करने पर बाध्य हुए थे। शकाधिकारकालमें मालवके अधिवासी गिर उठनेका सुवचन पा सकते हैं। इसी कारण उनकी जातीय अङ्कित्ति कोई गिलालिपि नहीं पाई जाती। गुप्ताधिकारके विस्तारके साथ मालवमें बहुतेरे पराक्रान्त सामन्तराजे दिखाई देने थे, वे गुप्तसम्राट्की अधीनता खोकार करने पर भी शौर्यबोधमें बहुत होत न थे। उनकी जो गिलालिपियां पाई गई हैं, उनमें उनके जातीय अङ्कित्ति का निर्दशन 'मालवसंघत्' का प्रयोग किया गया है। अब तक मालवाभद्रप्रापक जितनी गिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं, उनमें विजयगढ़की स्तम्भलिपि ही बहुत प्राचीन है।\* सम्भवतः इसके कुछ समय पहले ही मालववासियोंके फिर जातीय जीवनका अन्त्य हुआ था।

४ विक्रमादित्य।

सम्राट् समुद्रगुप्तके औरस और दत्तादेवीके गर्भसे

\* Max Muller's India what can it teach us p. 289

† Beal's Si-Yu Ki, Vol. II p. 261.

\* Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, p. 253.

५

२१ चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ। ५ मी विताकी तरह दिग्बिज  
 ज्यो थे। ये बड़े सेइन्धी, विचक्षण भूमिनेता, सुरासक  
 और पतम धार्मिक थे। संमुद्रगुप्तने उत्तर और दक्षिण  
 भारत जय किया था। पर उनके मरने ही प्रायतःप सोमा  
 के कर राजाओंने गुप्तवंशकी भूमिनेता बल्लोकार कर दी।  
 २५ चन्द्रगुप्तने गद्दी पर बैठी ही एक और गङ्गापारका यक्ष-  
 मूर्तिका और कुमरी और सिन्धु नदीका सप्तमुख बिद्योर्ण  
 कर बागियोंका इमन किया था। मालवमें शाकाधिकारके  
 शेष होने पर भी उस समय तक सुवर्ण वर्धमान काठिया  
 वाड़में शकसत्तपयण बहुत पराक्रान्त थे। गुप्तसम्राट  
 २१ चन्द्रगुप्तने मालव और गुजरात होते हुए भरव समुद्र  
 की बांधिमाका विज्ञोमित कर शकसत्तपोंको मुझमें नष्ट  
 कर दिया। ये शकसत्तपोंके उच्छेद् कासमें ३८८ से ४०१  
 ई० तक बहुत वर्ष तक महासमरमें क्रिस थे। इस कारमें  
 उन्होंने क्रिस तरह असाधारण बोरहकका परिचय दिया  
 था बोरोंने उससे विमुक्त हो कर उनके 'विक्रमादित्य'  
 भाष्यासे विमूषित किया था। धास्तविक इस  
 चौथे विक्रमादित्यक हाथसे ही शकसत्तपकुल  
 एक ही बार नष्ट हुआ था। इसके बाद भारतके इति  
 हासमें और शकराजाओंका नामोनिशान भी नहीं  
 मिलता। इस चौथे विक्रमादित्यके समयमें गुप्त  
 साम्राज्य रतनी दूरमें फैला था, कि पाटलिपुत्रमें रह कर  
 सारे साम्राज्य पर शासन करना कठिन हो गया था।  
 इस कारण उन्होंने अयोध्यामें अपनी राजधानी हवाई।  
 किन्तु फिर भी, पाटलिपुत्र (पटना) की महासमृद्धि  
 और जनताकी पूर्वमें कमी नहीं हुई। इन समय चीन  
 परिव्राजक फाहियान गुप्तसाम्राज्यको देख कर उज्ज्वल  
 भाषामें उनका परिचय दे गया है।

५ विक्रमादित्य ।

राजतरङ्गिणीके पढ़नेने मालूम होता है, कि  
 काश्मीरमें प्रवरसेनके उगुहपसे पहले इसविनामें  
 विक्रमादित्य नामसे एक राजा राज करते थे। ये पूर्व  
 विक्रमादित्यके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। उन्होंने  
 शक-सत्तपोंको पराजय कर सारे भारतवर्ष पर अधिकार  
 कर लिया। ये असाधारण सुहृन्मान, जानी और  
 गुणियोंका भावयन्तान थे। इनकी समामें मातृगुप्त

नामक एक विगन्तविभूत कवि अयवधान करते थे।  
 मातृगुप्तके सम्प्राप्य साधारणगुणका परिचय पा कर राजा  
 विक्रमादित्यने इसको काश्मीर राज्य प्रदान किया। इन  
 विक्रमादित्यके पुत्र प्रतापशील शिलादित्य हैं। चीनपरि-  
 ब्राजक ह्यूनसियाङ्ग लिख गया है, कि उनके मालवामें  
 उपस्थित होनेसे ३० वर्ष पहले यहाँ शिलादित्य प्रयत्न  
 प्रतापसे राज्य करते थे। पुराविद् फाग्युसन और  
 अक्षयापक मोहम्मदके मतसे एक विक्रमादित्यके नाम  
 पर ही यथार्थमें संवत् प्रवर्तित हुआ। उनके यथार्थ अयु-  
 क ३०० वर्ष पहलेसे उनकी अश्वगणना बरमे लगी। किन्तु  
 हम पाश्चात्य परिश्रुतोंके इस मतको समीचीन नहीं कह  
 सकते हैं। (१ विक्रमादित्यके सम्बन्धमें आलोचना  
 प्रथम)

पाश्चात्य परिश्रुतोंके मतसे ५३० ५४० ई०में ही  
 विक्रमादित्यका राज्यात्म है।

६ विक्रमादित्य ।

सातवी सन्धीके प्रारम्भमें काश्मीरमें भी विक्रमादित्य  
 नामक एक पराक्रान्त नृपति राज करते थे। उनके पिता  
 का नाम रणादित्य था। उन्होंने पश्चिमीर नामक एक  
 शिबलिङ्गकी प्रतिष्ठा की थी। इनके प्रथ और गल्लन  
 नामके दो मन्त्री थे। प्रथने अपने नाम पर प्रथमठ और  
 गल्लनने अपनो पक्षी रक्षापक्षोंके नाम पर एक विहार  
 बनवाया था। विक्रमादित्य ३५ वर्ष राज्य भोग कर  
 अपने कनिष्ठ धामादित्यको राज्य दे गये। काश्मीर देखो।

७ विक्रमादित्य ।

षाहामीक प्रसिद्ध प्रतीक्य बालुबर्षशर्मा विक्रमादित्य  
 नामके एक पुरातने जन्मग्रहण किया था। ये बोर  
 पर २१ पुष्किकशोके पुत्र और प्रतीक्य बालुबर्षन के  
 प्रथम विक्रमादित्य कहलाते हैं। उनक और नाम हैं—  
 सत्पाभय और रत्नसिंह। प्रायः सन् ६५५ ई०में इनका  
 अस्तिपेठ हुआ था। पुष्किकशीकी मृत्युके बाद पल्लव,  
 चोल, पारहक और करवने बिद्रोह गया दिया था।  
 और तो क्या पल्लवपति परमेस्वरके ताजशासनसे मान्दम  
 होता है, कि उनके मयसे विक्रमादित्य पढ़ने मागने पर  
 बाध्य हुए थे। किन्तु उन्होंने थोड़े ही दिनोंक बाद  
 शत्रुओं पर गामन स्थापित कर विक्रमादित्य नामका  
 अर्थ सार्थक किया। ( बालुबर्ष शब्द ६२५ )

## ५ विक्रमादित्य ।

प्रतीच्य चालुक्यराज विजयादित्यके पुत्र और एक विक्रमादित्यका नाम पाया जाता है। ये प्रतीच्य चालुक्य वंशके २२ विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। ७३३मे ७४७ ई० तक धादामीके सिंहासन पर ये अधिष्ठित थे। उनके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने राजपद पर अधिष्ठित होने ही अपने पितृवैरी पल्लवपति नन्दीपोत-वर्माके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। तुद्राक नामक स्थानमें दोनों ओरमे युद्ध हुआ। पल्लवपति हार कर भागे। युद्धजयके साथ विक्रमादित्यने मणिमाणिक्य, हाथियों, घोड़ों और रणवाद्ययन्त्रों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने काञ्चीपर आक्रमण किया सही, किन्तु इस प्राचीन तीर्थस्थानको उन्होंने नष्ट नहीं किया। परं वहाके दोम दरिद्रों और ब्राह्मणोंको बहुत धन प्रदान किया था और राजसिंहेश्वर और अन्यान्य देवाल्योंका जीर्णोद्धारसाधनपूर्वक इसे स्वर्णमण्डित कराया था। इसके बाद चोल, पाण्ड्य, केरल और कलभ्रके साथ वे सग्राममें लिस हुए; इसके बाद उन सभीने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। उन्होंने हैहयवंशी वी राज-कन्याओंका पाणिग्रहण किया था। उनमें ज्येष्ठा लोक महादेवीने (कलादगी जिलाके अन्तर्गत पट्टडकल नामक स्थानमें) लोकेश्वर नामसे शिवमन्दिर और कनिष्ठा त्रैलोक्यमहादेवीने त्रैलोक्येश्वर नामसे दूसरे एक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। इन छोटी गानोंके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले कीर्तिवर्मा राजा विक्रमादित्यके उत्तराधिकारी हुए। यह विक्रम शैव थे, फिर भा इन्होंने जैन-देवालयका साक्षार और विजय पण्डित नामक एक जैनाचार्योंको शासन-दान किया था।

## ६ विक्रमादित्य ।

प्राच्य चालुक्यवंशमें दो विक्रमादित्यके नाम मिलते हैं। इनमें एक 'युवराज' उपाधिसे विक्रमित थे। यह युवराज विक्रमादित्यके पुत्र प्रथम चालुक्य भीम और चालुक्य भीमके पुत्र २२ विक्रमादित्य हैं। युवराज विक्रमादित्यके भतीजे ताडपके अन्यायपूर्वक बालक विजयादित्यको गान्धर्वयुत कर चालुक्यराज ग्रहण करने पर शैवोक्त विक्रमादित्यने फिर उसको हरा कर सिंहासन

पर अधिकार कर लिया। उन्होंने ८४७ शकाब्दमें २१ मास मास चालुक्यराज भोग किया था। चालुक्य वंशो।

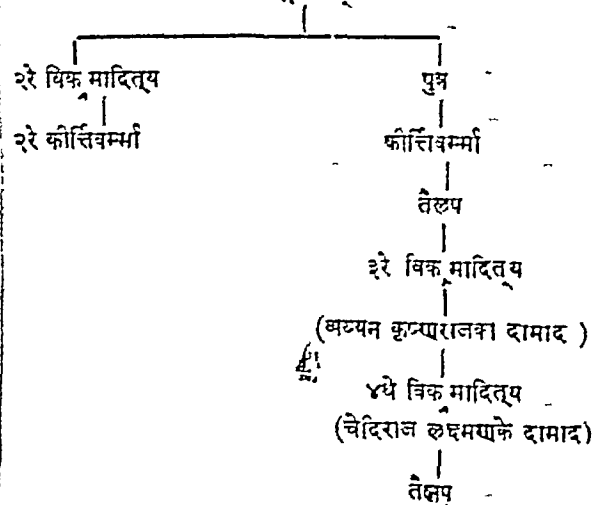
## १० विक्रमादित्य ।

६३० शकाब्दके ताम्रशासनमें प्रतीच्य चालुक्य वंशमें ताम्रशासनदाताका एक विक्रमादित्य नाम आया है। ये राजा सत्याश्रयके भतीजे (उसके भाई दृग्यर्माके पुत्र) ही उत्तराधिकारी हुए। कुछ लोग इन नृपतिको प्रतीच्य-चालुक्यवंशके पांचवें विक्रमादित्य कहते हैं।

किन्तु प्रकृतत्वविद् भाण्डारकर इनको पूर्वान्त चालुक्य-वंशीय न कह कर दूसरा शाखाके और पिछले प्रतीच्य चालुक्यवंशके १५ विक्रमादित्य कहते हैं। उनके मतसे ६३० शक (१०८ ई०) में राजाका अभिषेक हुआ। इनकी ६४६ शकमें सुटी ताम्रलिपिसे मालूम होता है। उन्होंने इमिलपतिको पराजित, चैरोका प्रभाव स्वर्ध और सप्त-कोट्टणका सर्वस्व अपहरण कर उत्तरकी ओर कोल्हापुरमें खैमा लडा किया। ६६२ शकके तक उनके राजत्वका उल्लेख पाया जाता है।

५ विक्रमादित्यके प्रस्तावमें प्रतीच्य चालुक्यवंशीय २२ विक्रमादित्यका परिचय दिया गया है। इन २२ विक्रमादित्यके भ्रातृवंशमें २२ और ४थे विक्रमादित्यका नाम मिलता है। जैसे—

## विक्रमादित्य



३२ और ४थे विक्रमादित्यका विशेष परिचय न मिलनेके कारण विशेष नहीं लिखा गया।

— इस विक्रमादित्यके पितामह तैत्तिरीयने मासबन्धे राजा मुञ्जका पराजित और निहत किया। उस समय भोज राज बालक थे। भोजधरितमें लिखा है, कि भोजने कथान हो कर राजशासन आरम्भ किया। एक दिन अमितममें मुञ्जेकी अन्तिम प्रशाका चित्त देख इसके मनमें प्रतिशोध देनेकी इच्छा बस्यती हुई। फलतः भोजने वधुतेरे सामान्तीके माहात्म्यसे चातुर्व्यपत्तिकी भी मुञ्जेकी ही दशा कर दी। डाक्टर भाग्यारकरके मतसे उनसे पहले ही तीसप को मृत्यु हुई थी। सुतर्प उक्त प्रथम विक्रमादित्यने भोजके हाथसे मासबन्धीमा स परण की है०।

११ विक्रमादित्य ।

चातुर्व्यपत्तशर्म और भी एक प्रथम पराजित राजा हो गये हैं। ये पूर्वोक्त विक्रमादित्यके सुता अपसिंहके पौत्र सीमाभर भाहवमण्डके पुत्र थे। कवि विद्यापति बिह्वलचित्त विक्रमादित्यधरितप्रथममें इस नृपतिकी कीर्तनीके सम्बन्धमें इस तरह लिखा है—

उनके पिताका नाम भाहवमण्ड था, जे लोक्यमण्ड मो इनका दुसरा नाम है। ये बड़े और पुदय थे और इन्होंने बहुत देशों पर अधिकार किया था। किन्तु इतने बैमब यीरवका अधिपति होने पर भी और अपरवामाभमें इनका चित्त बिपण्य था। ये राजपाट परित्याग इस काभार मन्त्रियों पर सौंय पुत्रमासिके लिये पलोक साथ शिवकी आराधनामें मग्न हुए और होमनि कठिन साधना की। एक दिन प्रातःकाल राजा जे लोक्यमण्डके प्रमातृपुत्रके समय यह देवबाणी सुनो कि "तुम्हारे" कठिन तपश्चर्यासि मित्रकी प्रसन्न हुए हैं। महादेवक वरसे तुम्हें तीन पुत्र होंगे। इनमें मध्यम पुत्र हो शीर्ष्यं वीर्ष्यं प्रमाभमें और गौरवमें अनुप्य और अविनाय होगा। पार्वतीपति शङ्करका भाशोर्वाइ विफल नहीं हो सकता। यथासमय इनको पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। इस लङ्कका नाम सीमाभर रखा गया, इसका दुसरा नाम था मुञ्जैद्रमण्ड। इसके बाद राजाको फिर गर्भ हुआ। इस बार इनको गर्भावस्थामें बड़े आश्चर्यजनक स्वप्न दिखाई

दिये गये। मन्त्रकार विद्यापति बिह्वलने इस विवरणको विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। जो हो, अच्छे शुभसूच्य और शुभ-सन्तर्पमें ये पैदा हुए। इस पुत्रका असत्कारणरूप स्थापण्य और देहइपोति देख नृपतिने उसका नाम विक्रमादित्य रखा। इनके और भी बहूतेरे नाम पाये जाते हैं— जैसे विक्रमणक, विक्रमणकक्षेत्र, विक्रमलागलन, विक्रमादित्यदेव, विक्रमार्क, सिन्धुवनमल्ल कञ्जिबनम और परमाद्विराय। इसके बाद जे लोक्यमण्डको तृतीय पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अपसिंह हुआ।

विक्रमादित्यके शान्त्वर्षीको पैदा कर सबका चित्त आकृष्ट होता था। उनका यह रूपभावधमय शैशव ईहमें असत्कारण विक्रमके बिह्वलित्वा देते थे। शैशव क्रीड़ांमें ही इसके मारी वीरवका परिचय पाया जाने लगा। ये राजईतोंक पीछे पीछे बौद्ध हुए उनको पकड़ने में मग्न होने थे।

विह्वलबद्ध सिंहमावकके साथ खेल करते थे। बाह्य कालमें ही इन्होंने घनुषिंघा आदिकी शिक्षा ग्रहण की। सरस्वतीकी कृपासे काव्यादि शास्त्रोंमें भी उनको पथेष्ट ज्ञान था।

इस तरह उन्हींने घनुषेई आदि विविध विद्याशिक्षा में विक्रमादित्यका बाधपकाळ होता। यौवनमें पदापीन करते ही इनकी समरकी प्रवृत्ति कमशः बस्यती हो उठी। नृपति जे लोक्यमण्डके पुत्रको सुयरात्रपद् पर अभिषिक्त करनेको इच्छा प्रकट की। किन्तु विद्याविनय सभ्यन्न विक्रमादित्यक जेता भार् सीमाभरके रहते उक्त पद् पर विक्रमका अधिपति होना नितान्त असङ्गत था। पेला ही इन्होंने प्रयास मो किया। उन्हींने स्पष्ट हो कहा, कि इस पद् पर मेरा अधिकार नहीं। इसके पदमात्र अधिकारी मेरे ऊँचे माइ दा हैं। उनक पिताने कहा,—“भूतमावन मयानीपतिक विधानानुसार और जगमनसुक्तादिके प्रमाण स योवरात्म्यपद्का सुहृदाइ ही अधिकार सिपर है। किन्तु विक्रमादित्य हम असङ्गत और असमीची न प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए। राजाने पहले सीमाभरका ही पुत्र राजपद् पर अभिषिक्त किया। किन्तु इनका चित्त विक्रमादित्यक प्रति आसक्त था। यद्यपि विक्रमादित्य सुयरात्र पद् पर अभिषिक्त न हुए, तथापि ये राजा काव्यं

या सुवराजदे प्राप्तिमें ही अपना समय बिताने थे।  
आह्वयमहले कन्याणनगरीकी प्रतिष्ठा की।

विक्रम पिताकी आज्ञासे देग जीननेके काममें प्रवृत्त हुए। उन्होंने युद्धमें वानवार चोल राजाओंको परास्त किया; सोनेकी लूट मचा दी और मालवपतिको सिद्धा स्न पर पुनः बँटाया। और तो क्या, वे दूरके गोंड और कामरुप तक मेनावाहिनियोंको ले कर आगे बढ़े थे। मिहल या लट्टाका राजा उनके भयमें वनमें भाग गया था। उन्होंने मलयपर्वतके चन्दनवनका ध्वंस कर दिया और केरलके राजाको मार डाला। उन्होंने असीम विक्रम प्रकाश कर गंगाकुण्ड, बेर्गा और चक्रकोट आदि प्रदेशों पर अधिकार जमा लिया।

विक्रमादित्य इन राज्योंको जीत कर अपनी राजधानीको लौटे। उन्होंने कृष्णातटीके तट पर आ कर बहुतेरे अगान्तिरर लक्षण देखे। विघ्न-गान्तिके लिये उन्होंने यही करनीया नदीके किनारे ही पूजापाठ द्वारा गान्ति कराई। अर्थात् पूजा समाप्त हो न होने पाई थी, कि राजधानीसे एक आशमीन आ कर मगर दी, कि आपके स्नेह भाजन पिता इस घराबामसे कृच कर गये। पिताकी मृत्युकी बात सुनते ही विक्रमकी बड़ा ही कष्ट हुआ। उन्होंने "हा पिता! हा पिता!" कह कर रोदन करना आरम्भ किया। किसीकी सान्त्वना पर वे गान्त न हुए। क्या जाने वे अपनी आत्मश्रुत्या कर ले इस डरसे चतुर कर्मचारियोंने उनके निकटसे हथियारोंको हटा लिया। किन्तु पाछे उनका शोक प्रगमित होने लगा। इसके बाद ही उन्होंने करनीयाके जलसे पिताकी अन्त्येष्टि किया की। इसके बाद अपने जेठे भाईके शोक-हरण करनेके लिये विक्रमादित्य अपनी राजधानी बलराण नगरको चले। स्नेहवत्सल सोमेश्वर स्नेहपत्रयज्ञ हो कर छोटे भाईको ले अपने दक्षमें गया। दोनों भ्राताओंने बहुत दिन तक प्रतिपूर्वक राजकार्य चलाया था। विक्रमादित्य यद्यपि शौर्यशौर्य तथा राजकार्यमें बुद्धिमान थे, तथापि अपने जेठे भाईको वे राजाकी तरह मानते थे। किन्तु पाछे सोमेश्वरके हृदयमें एकपक दुर्मति उत्पन्न हुई। उससे वे अपने अनुज विक्रमके विद्वेषी बन गये।

चरम सीमा तक पहुँच गईं। और तो क्या,

उन्होंने विक्रमका प्राण संहार करनेका गुप्त पडयन्त्र किया। विक्रमादित्यने अपने और छोटे भाई जयसिंहके प्राणकी आज्ञासे षई भादमियों और छोटे भाईके नाथ राजधानीको परिन्याग किया।

सोमेश्वरकी पापगृन्नि इतने पर भी रहित न हुईं। उन्होंने इन पर आक्रमण करनेके लिये सैन्य भेजी। पहले तो विक्रमादित्य भाई द्वारा भेजा उस सैन्यके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए। किन्तु युद्धके लिये आई फौज बिना युद्ध किये फिर जाने पर राजी न थी। इससे बाध्य हो कर विक्रमादित्यको भाईके विरुद्ध अस्त्र धारण करना पडा। ममरक्षेत्रमें उतरते ही विक्रमके बलविक्रमके आगे उस फौजका टहरना कठिन हो गया। क्षणकालमें ही उस फौजको नष्ट कर दिया। जो बचे, जान ले कर भागे। इसके बाद विक्रमके बड़े भाईने कई बार सैन्य भेजी; किन्तु एक बार भी जयलक्ष्मी प्राप्त न हो सकी। इसके बाद उन्होंने युद्धमें चित्त हटा लिया।

इसके बाद फौजोंके साथ विक्रमादित्य तुङ्गभद्रा-नदीके किनारे आ पहुँचे। यह तुङ्गभद्रा नदी ही चालुक्य राज्यकी दक्षिणी सीमा थी। इसके दूम्मे पारसे ही चोलराज्य आरम्भ होता था। इस समय उन्होंने चोल-राजाओंके साथ युद्ध करनेके प्रयासी हुए। इसके बाद उन्होंने कुछ समय तक वनवाम नगरमें अवस्थान किया। यह स्थान भी चालुक्य राजाओंके अधिकृत था। कदम्ब राजाओंके प्रति इस स्थानका शासनभार अर्पित हुआ।

विक्रमादित्यकी यात्रासे मालवदेशके राजे डर गये। कौरुणके राजा जयकेतोने उपहोकर ले कर विक्रमादित्य से भेंट की। अनूपके राजा भी वश्यना स्वीकार कर विक्रमादित्य द्वारा बहुत उपरुन हुए। विक्रमादित्यके प्रबलप्रतापसे केरलके राजे मारे गये थे। इससे फिर विक्रमादित्यके आनेकी बात सुन कर केरलकी रानियां डर गईं।

चोलके राजाने विक्रमके प्रबल प्रतापके आगे युद्ध न करनेका ही इच्छा प्रकट की। उन्होंने पत्र लिख विक्रमादित्यमें मोह्य दिखाने हुए प्रार्थना का, कि आप मेरा पुत्रीसे विवाह करके यह सन्धन्ध दृढ़ कर लें। विक्रमादित्य फिर तुङ्गभद्रा तट पर लौट आये। यहां चोलराजने

आ कर उनसे मेंट की। यहाँ ही खोहराज कन्याके साथ विक्रमादित्यका विवाह हुआ। चौड़े ही दिनक वायु खोहराजकी मृत्यु हो गई। इनके मरते ही खोहराज्य को प्रजा बिद्रोही हो उठी। विक्रमादित्यने खोहराज्यको राज्यमाने काञ्ची नगरीमें पहुँच कर बिद्रोहको दबाया इसक बाद अपने साठेको सिंहासन पर बैठा कर गङ्गा कुण्डको खोहराज्यमें मिला दिया। विक्रम एक महीने तक रह कर तुङ्गभद्राको सीट भाये। किन्तु खोहराज्यके विद्रोहियोंने अपने नये शासकको मार डाला। कन्या और गादापलोक बोध पूर्वा किनारेकी भूमि बेंगो देशके नामसे प्रसिद्ध था। वहाँ एक राजिग नामका राजा था। इसी राजिगने काञ्ची नगरी पर अधिकार जमा दिया।

जो हो, काञ्चीक सिंहासन पर राजिग बैठ गया। यह समाचार पाते ही विक्रमादित्यने इसका तुल्य बदला चुकानेका दृढ़ सङ्कल्प किया। किन्तु उन्होंने सुना था, कि इनक माई सोमेश्वरने राजिगको सहायता करनेका बचन दिया। माईको इन साजिमको बात सुन कर विक्रमादित्यको बड़ा गुस्सा हुआ। उन्होंने बड़े माईको युद्ध से निरुत्त होनेको सलाह देकी। सोमेश्वर विक्रमादित्यके विक्रमको जानते थे। इनकी बात मान कर कुछ देरके लिये वे युद्ध करनेसे विरत हो गये और समय तथा सुविधाकी प्रतीक्षा करने लगे। विक्रमादित्यके माईकी समीचीन सलाह सही थी। किन्तु भी, उन्होंने माईके साथ युद्ध करना उचित न जाना। सोमेश्वरक हृदयमें सद्बुद्धि उत्पन्न न हुई। सप्तस्नेहका मञ्जार भी नहीं हुआ। उन्होंने छिप कर विक्रमादित्यके विरुद्ध राजिगको सहायता देना आरम्भ किया। अन्तमें विक्रमने स्वप्नमें देखा, कि संहारनैप महादेव महादहक वेदनें सोमेश्वरको परास्त कर राजा प्रदण कर लेनेक लिये उनको भाँड़ दे रहे हैं। इन स्वप्नक भाँड़ पर प्रमत्त हो विक्रम बड़ा घोरता के साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। इन युद्धमें राजिग हार कर भाग गया और सोमेश्वर कीर्त कर लिये गये।

युद्धके अन्त हो जाने पर विक्रम तुङ्गभद्रा तट पर सीट भाये। विक्रमने सोचा, कि सोमेश्वरको मुक्त कर दिया जाये किन्तु उसी राजको उद्देशे ने फिर स्वप्न देखा। स्वप्नमें फिर वदनें भाँड़ दिया कि, तुम सोमेश्वरको कीर्त रख कर ही राज्य पर अधिकार कर को।

विक्रमादित्य महादेवकी बातको टाल न सक। उन्होंने राज्यमार प्रदण किया। इसके बाद उन्होंने अनेक देशों पर अधिकार कर लिया। छोटे माई जयसिंह पर यमवास्त नगरका भार दे कर य अपने कन्यापथ नगर छोड़ भाये।

इसके बाद करहादापिपतिको कन्या स्वयम्बर चम्पलेश्वरके साथ विक्रमादित्यका विवाह हुआ। इसी विवाहक उत्सव और भोगविभोगमें बसन्त और प्रोषण कास बोल गया। किन्तु जगत्स कुल भी चिरहयापी नहीं है। विक्रमके इस सुखसम्भोगको छिन्न भिन्न करनेक लिये इनके माम्याकाशमें काली घटा घिर आई। इनका लहर मिल्को, कि इनका वह पिय सहोदर माई, जिसको वह अपने पुत्रसे भी बड़ कर स्नेह करते थे, जिसको बड़े माईके मार डालनेके डरसे उन्होंने अपने साथ एक मत्तको पुतली बना रखा था, जिसको बनवास नगर का राज्यमार ली पा था, बहो पिय सहोदर आज उनक विरुद्ध अल उठानेके लिये तत्पारा कर रहा है। यह प्रजाको पोकित कर अर्थसंग्रह और सहायता प्राप्त कर लिये द्रविडराजक साथ मित्रता स्थापित कर रहा है। और तो क्या—विक्रमको फौजमें भेदनीति अर्थात् फूट डालनेकी गटसे हो चारकी अपनी रायमें मिला कर अपना काम बना रहा है। इनका विष्मत्सुखले यह भी पता लगा कि जयसिंह कन्यापथी नहीं ही और फौजोंक साथ अमसर हो रहा है। इसल विक्रमादित्यका चित्त बिचलित हो उठा। उन्होंने सोचा कि क्या उस स्नेह मय छोटे माईसे मुक्त युद्ध करना पड़ेगा? ठोक लहर मानेक लिये उन्होंने व्याकुल हो कर एक गुनघर मेठा। गुनघरमें आ कर पृथक् बाईको सीट मा हृद किया। उन्होंने इन तरहक कुरकार्यासे अलग रहनेके लिये पहलू ज्ञाताको बहुत समझा बुझा कर एक पत्त लिया। किन्तु इनका कुछ भी फल न हुआ।

अपनि इनके विक्रमक ऐस व्यवहारस और भी घमण्ड हो गया। अर्धनिद्र शरत्कालमें फौजा के साथ कन्यापथीक किनारे आ कर प्रजा पर अत्याचार करने लगा। अन्तमें जयसिंहने विक्रमादित्यको अवमानना पृथक् एक पत्त लिखा। इन पर भी विक्रमका रोष जाग

रित नहीं हुआ। वे नीरवताके साथ भाईके इस अपमानजनक बातोंको सहन करने रहे। इधर जय सिंहकी स्पृहा दिनों दिन बढ़ने लगी। उस समय विक्रमादित्य घाघ्य हो कर युद्धक्षेत्रमें आ पहुँचे। तब भी उन्होंने छोटे भाईको युद्धसे विरत होनेका उपदेश दिया, किन्तु वह मदान्वय जयसिंहने किसी तरह उनकी बात नहीं मानी। अब युद्ध अनिवार्य हो उठा। किन्तु प्रबल पराक्रान्त विक्रमादित्यके प्रबल प्रतापके सामने जयसिंह और उसकी फौजोंका ठहरना कठिन हो गया। फौजें भाग खड़ी हुईं। जयसिंह कैद कर लिया गया। विक्रमादित्यने इस अवस्थामें भी उन पर दयाका व्यवहार किया। वे युद्धके अन्त होने पर राजधानामें लौट आये।

इसके बाद विक्रमादित्यके राज्यमें कोई उपद्रव नहीं हुआ। उनके राज्यमें अकाल या लोकापीडा भी न हुई। उन्होंने अपने अनुरूप पुत्र और यथेष्ट धनसम्पत्ति पा कर परम सन्तुष्ट हुए। दरिद्रोंके प्रति उनकी असीम दया थी उन्होंने धर्मशाला और शिवमन्दिर अपने नामसे प्रतिष्ठा कराई। उनकी असंख्य कीर्तियोंमें विष्णु कमलाचिलासीका मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मन्दिरके सम्मुख एक विशाल सरोवर बना था। इसके चारों ओर बहुतेरे देवमन्दिर और सुरभ्य हर्म्य आदि पूर्ण विक्रमपुर नामक एक विशाल नगरकी प्रतिष्ठा हुई थी।

इस तरह दीर्घकाल तक सुख शान्तिसे जीत जाने पर फिर चोलराजने विद्रोहभावालम्बन किया। विक्रमादित्यका उन्हें दण्ड देनेके लिये काञ्ची नगरीको जाना पड़ा। इस युद्धमें भी अन्य समयकी तरह हार कर सभी भाग गये। इस बार काञ्चीनगरी पर अपना कब्जा जमा कर कुछ दिनों तक वहा रह कर विक्रमादित्य फिर कल्याण लौट आये। इसके बाद शान्तिसे दिन बिताने लगे।

विक्रमकी अन्तिम अवस्थामें पाण्ड्य, गोवा और कोंकण के राजे, यादवपति होयलस विष्णुवर्द्धनकी अधिनायकतामें एकत्र हो कर सर्वाने चालुक्यराज्य पर आक्रमण किया। विक्रमादित्यने 'आच' नामक एक सेनापतिकों उन सबोंके विरुद्ध भेजा। रणसिंह 'आच'ने होय-

लको दमन कर गोवा पर अधिकार कर लिया, लक्ष्मणको भागने पर बाध किया। पाण्ड्यके पीछे फौज बढ़ाई, भलपोंको हराया और कोंकणराजको कैद किया। सिवा इनके उन्होंने कलिङ्ग, वङ्ग, मरु, गुर्जर, मालव, केसे और चोलपतिको चालुक्यपतिके अधीन बनाया था। विक्रमादित्य केवल दयावान, शौर्यवान और अनुलपेश्वर्य गाली हो नहीं थे, वरं स्वयं विद्वान् और अतिशय पण्डितानुरागी थे। काश्मीरके सुप्रसिद्ध ऋषि घियापति विष्णु विक्रमादित्यके समापण्डित और राजकी थे।

विह्वल देखो।

जो मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र आज भी भारतमें प्रधान श्मार्त ग्रन्थके नामसे परिचित है, चालुक्यराज इन विक्रमादित्यकी सभामें विद्वानेश्वर उस मिताक्षरकी रचना कर विख्यात हुए थे। विज्ञानेश्वर देखो।

कल्याणके सिंहासन पर विक्रम ५० वर्ष तक अधिष्ठित थे। उन्होंने अपने अधिकारमें प्रकाशका प्रचलन बन्द कर उसके बदलेमें चालुक्य-विक्रम वर्ष चलाया था। यह अक्ष १२७ शक फादगुनी शुक्ला पंचमीको आरम्भ हुआ। चालुक्य-नृपतिको मृत्युके बाद यह अक्ष उठा दिया गया।

विक्रमादित्यकी मृत्युके बाद १०४८ शक उनके पुत्र ३रे सोमेश्वरने पितृराज्यको प्राप्त किया।

१२ विक्रमादित्य।

दक्षिणापथके अन्तर्गत गुत्तल नामक सामन्त राज्यमें विक्रमादित्य नामसे तीन राजे राज्य करने थे। उनमें १ले व्यक्ति गुत्तलके ३रे राजा महोदेवके पुत्र ई०सन्की १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें मीजुद थे। २रे व्यक्ति उक्त जनपदके ६ठे राजा गुत्तलके पुत्र थे इनका दूसरा नाम आइवादित्य था। वे ११८२ ई०में विद्यमान थे। इसके बाद ३रे व्यक्ति ८वे नृपति जोशिवेवके पुत्र हैं। गुत्तलके इन ३रे विक्रमादित्यकी ११८५ शक (१२६२ ई०)में उत्कीर्ण शिलालिपि है। इस लिपिसे मालूम होता है, कि वे देवगिरिके यादवराज महादेवके अधीन सामन्त थे।

१३ विक्रमादित्य।

दक्षिणापथके चाण राजवंशमें भी एक विक्रमादित्यका जन्म हुआ था। इनका दूसरा नाम विजयवाहु था। इनके पिताका नाम प्रभुमेरुदेव था। वे बड़े प्रजारक्षक और १२वीं शताब्दीमें मीजुद थे।

१४ विक्रमादित्य ।

मेवाङ्कक बण्णराज बंधोय एक राणा । राणा संग्राम सिहक पुत्र विक्रमादित्य नामस (बिष्णव ये सही), किन्तु यह नामक गुणक पूणता भणोय ये । सन् १५६१ विक्रमो या १५३५ ई०में इन्होंने मेवाङ्कके सिंहासन पर आरोहण किया । इनकी अनुकरणीयता और प्रजापीडनसे सभी इससे नाराज रहते थे । इसका यह गुण्य-गौरव धारो भोर फेन गया । फलता गुजरातके सुळतानने मेवाङ्क पर चढ़ाई कर दी । बिठौर-रक्षा करनेक क्रिये बहुतोंने जोवन डरसगे किया । किन्तु सामन्ताको चेष्टा और हुमायू के भानेकी चबर पा कर सुळतानकी दाख न गयो । वह भयभासा मुह बना कर झोट गया । इस दाखन वैदेशिक आक्रमणसे शोध बधा । किन्तु उतका उम लमाच किसी तरह शांति न हुआ । उन्नी एक सप्ता के बोच अपने पिताके जोबनदाता ब्रह्मदेवके करोमचौद् का अपमान कर दिया । इस पर सामन्तोन उसको राज्य च्युत कर पनवार बहादुरको सिंहासनाफङ्क कराया ।

१५ विक्रमादित्य ।

बङ्गालके अग्नितीव धोर प्रतापादित्यक पिताका नाम विक्रमादित्य ही । बङ्गल कुसुमग्राममें वर्णित है, कि गुह बंशमें रामचन्द्रका जन्म हुआ । यह माय-परोक्षाने क्रिये वाचिष्यकेन्द्र सप्तमाममें चाड़े भाये । यहाँ रामचन्द्रके तीन पुत्र हुए—भवानन्द शिषानन्द और गुणानन्द । कुछ दिनके बाद सौम्याम्पक्रमसे रामचन्द्र गौड़ दरबारमें किसी उच्च पद पर अर्पित हुए । इनकी चूल्गु पर भवानन्दने अपने पैरुक पद पर अविकार किया । भवानन्दके मोहति तथा शिषानन्दके ज्ञानकीवाङ्मन एक एक पुत्र हुए । श्रीहरि और ज्ञानकीने छोड़े ही समयमें नाना भाषाओं तथा अन्ध शस्त्रमें निपुण बन गया । छङ्कुरपन से ही दोनों गौड़राज्यके पुत्र बयाजिद् और वाउदके साथ केसते थे । यकोवृद्धिके साथ साथ इनकी परस्पर मित्रता सुझुङ्क हुई । सभी मित्रताके कारण जब बाबर गङ्गे पर बैठा तब उन्नीने आहरिको 'विक्रमादित्य' और ज्ञानकोबल्लभ को 'वसन्त राय'का शिषाव दे कर अपने प्रथम मित्रो बना किये । दोनों आर्योंके बजोगल गौड़राज्यमें सुभ्र कुमा स्थापित हुए और गौड़राज्यकेयकी भी यथेष्ट

वृद्धि हुई । उसीके साथ बाबरकी खाचीन होनेको इच्छा भी बखबरी हुए । कुछ ही दिनके बाद इसने दिल्लीके बादशाहकी अधीनता तोड़ खाचीन हो जानेकी घोषणा कर दी । बादशाहको अगह अपने नामका फत्वा पाठ करनेका आदेश दिया । इसको दृष्ट देखके क्रिये मोगल याहिनियां दिल्लीसे बढी । युद्धका आयोजन देख कर विक्रमादित्यने वाउदके कडा, कि इस अशांतिके समय कसानेको कही सुरक्षित स्थानमें धर देना चाहिये । इस परामर्शके अनुसार चत्रानेमें जा बहुमुल्य धनरत्न सोना चाँदी हीरा मवाहर धा, सब नाशमें छाड़ कर यशोहर स्थानमें पहुँचा दिया गया । इधर मोगल पठानोंमें भोर तर कई युद्ध हुए । अन्तमें बाबरु कैद कर लिया गया । नारा गौड़-बङ्ग फिर एक बार दिल्लीके बादशाहके शासनान होना । राजा रोडरमछका ही अधीनतामें शाही फौज आई थी । राजा रोडरमछने देखा, कि विक्रमादित्य और ज्ञानकीवल्लभ ये दोनों चतुर और कुशली हैं, इससे उन्होंने इन दोनोंको ही ऊँचा पद दिया । इनकी कार्य कुशलता पर मुग्ध हो कर बादशाहसे उनकी समदे शिष्टबा से, इसी समयक बससे विक्रमादित्यको यशोहर क पश्चिम गङ्गासे ब्रह्मपुत्रके किनारे तक फेसी हुई जमाखारो प्राप्त हुई । प्राचीन यशोहरमें उनके बहुतेरे राज प्रामाद सने । नानाविध पुण्यजनक काय करक यह गौड़ चङ्गमें बिबयात हुए । विक्रमादित्य राज्यकार्यके उपखण्ड्य में गौड़में हो रहते थे किन्तु उनक माई वसन्तराय या उनके पुत्र प्रतापादित्य यशोहरक राजप्रासादमें रहते थे ।

सन् १५४५ ई०में जो महाभारो हुई था, उसमें गौड़ राजपानी भासुद्र और अनगुल्य हो गई । इस पर विक्रमादित्यने गौड़ या अत्यान्ध अगहासे मनुष्यका बुना कर यशोहरमें बन्द बसावा था । प्रा.पादित्य यन्त्र लेलो ।

विक्रमादित्यचरित ( स० ह्यो० ) विक्रमचरित ।

विक्रमार्क ( स० पु० ) विक्रमादित्य देखो ।

विक्रमिद् ( स० पु० ) विक्रम देखो ।

विक्रमो ( स० पु० ) १ बिष्णु । २ सिद्ध, शेर । ( कि० )

३ अतिशय शक्तिविशिष्ट, विक्रमवासा, पराक्रमी । ४ विक्रमसम्भवी, विक्रमका । श्रुते,—विक्रमी संवत् ।

विक्रमोपाख्यान ( स० ह्यो० ) विक्रमस्य उपाख्यान । विक्रमचरित ।



विक्रमोर्वशी ( स० स्त्री० ) कालिदासप्रणीत एक नाटक ।

कालिदास दंतो

विक्रय ( स० पु० ) विक्रयणामिति वि-क्री अष् (एच पा ३३ ५६) विक्रयणक्रिया, मूल्य ले कर कोई पदार्थ देना, बेचना । संस्कृत पर्याय—विपण, विपनन, पणन, व्यचहार, पणाय ।

मनुष्य समाजमें क्रयविक्रयका काम बहुत दिनोंसे चला आ रहा है । प्राचीन शास्त्रकारगण इस सम्बन्धमें अनेक बालोचनाएँ कर गये हैं । क्रयविक्रयके विषयमें बहुतसे विधिनिषेध भी शास्त्रमें देखे जाते हैं । मूल्य दे कर अथवा 'मूल्य दूंगा' ऐसा कह कर जो द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसे क्रय और मूल्य पा कर अथवा कुछ दिनके करार पर जा द्रव्य दूसरेको दिया जाता है उसे विक्रय कहते हैं ।

कात्यायनने कहा है, कि क्रेता वा खरीदारने कोई वस्तु खरीदी, पर उसका मूल्य न दे कर वह दूसरी जगह चला गया, ऐसी अवस्थामें विपक्ष अर्थात् पै तालीस दिनके बाद ही उसका मूल्य बढ़ेगा और विक्रेता यदि वह वृद्धित मूल्य लेवे, तो अशास्त्रीय नहीं होगा ।

इमीलिये बृहस्पतिने कहा है, कि गृह, क्षेत्र वा अन्य किसी मूल्यवान् वस्तुके क्रयविक्रयके समय लेख्यपत्र प्रस्तुत करे और वह पत्र 'क्रयलेख्य' कहलायगा ।

मनु कहते हैं, कि यदि कोई द्रव्य क्रय वा विक्रय करके क्रेता वा विक्रेता दोनों किसीके भी हृदयमें दुःख हो जायें, तो वे दश दिनके भीतर उस द्रव्य वा मूल्यको वापस ले लें । इस व्यवस्थामें क्रेता और विक्रेता दोनोंको ही सममत होना पड़ेगा ।

याज्ञवल्क्यके मतसे एक दिन, तीन दिन, पाच दिन, दश दिन या आध मास वा एक मास तक वीज, रत्न और स्त्री पुरुष आदि क्रय-पदार्थकी परीक्षा चल सकती है । किन्तु इस निर्दिष्ट परीक्षाकालके पहले यदि क्रय वा खरीदा हुई वस्तुमें कोई दोष दिखाई दे, तो विक्रेताको वह वस्तु लौटा देवे तथा क्रेता भी उसका मूल्य वापस पायेगा । कात्यायनका कहना है, कि दिनादोष देखे खुने जाँ वस्तु खरीदी गई है, किन्तु पीछे उसमें दोष निकाला गया, ऐसी अवस्थामें विक्रेताको वह वस्तु लौटा

देना होगी, किन्तु पूर्वोक्त परीक्षाकाल बिना देनेसे काम नहीं चलेगा । बृहस्पतिके मतसे क्रय वस्तुकी स्वयं परीक्षा करे, दूसरेसे करावे, इस प्रकार परीक्षण और बहुमतसे होनेसे वह वस्तु खरीद कर पीछे विक्रेताको लौटा नहीं सकते । ऐसी दृशामें विक्रेता उसे वापस लेनेमें बाध्य नही है ।

इस क्रय-विक्रयके सम्बन्धमें नारदने कुछ विशेष बात कहा है जो इस प्रकार है । कोई वस्तु मूल्य दे कर खरीदी गई, पीछे वह अच्छी वस्तु न रहने अथवा अधिक मूल्य होनेके कारण क्रेताको पसन्द न आई, ऐसी हालतमें खरीदी हुई वस्तु उसी दिन अविच्छिन्न अवस्थामें विक्रेताको लौटा देवे । उस दिन न लौटा कर यदि दूसरे दिन लौटावे तो विक्रेता मूल्यका तीसवा भाग रख कर बाकी लौटा देगा । तीसरे दिन वह वस्तु लौटानेसे वह दूसरे दिनके प्राप्य मूल्यांशका दूना पायेगा ।

याज्ञवल्क्यने कहा है, कि मूल्य दे कर कोई वस्तु खरीद गई, परन्तु विक्रेतासे मांगने पर भी वह वस्तु न मिली । पीछे राजकोय वा दीवघटनासे वह वस्तु नष्ट या घराब हो गई । इस अवस्थामें वस्तुकी जो कुछ हानि होगी वह विक्रेताको ही पूरे करनी पड़ेगी । इसके लिये क्रेता दोषी नहीं है ।

नारदने कहा है, कि विक्रेता अपना सौदा बेच कर यदि पीछे क्रेताको न दे और निर्धारित समयके भीतर वह उपहत, दग्ध वा अपहत हो जायें, तो वह अनिष्ट विक्रेताका ही होगा, क्रेता उसका दायी नहीं है । किन्तु विक्रेताके वह वस्तु देने पर भी यदि क्रेता उमे न ले और चला जाय, तो वह अनिष्ट क्रेताको ही घहन करना पड़ेगा ।

अब विक्रयध्यापारमें निषेधविधिकी बालोचना करनी चाहिये । ध्यासने कहा है, कि एक धातिगोत्रका अविभक्त स्थावरसम्पत्ति बेचने वा डानादि करनेका अधिकार एक को नहीं है । इसमें सर्वोकी मन्नाह लेनी पड़ेगी । सरिण्ड धातिवर्ग विभक्त अथवा अविभक्त भी कथों न हो, स्थावर सम्पत्तिमें सबोंका समान अधिकार है । इस अवस्थामें एक व्यक्ति दानविक्रगादि ध्यापारके सम्पूर्ण अनधिकारी है । दायतस्त्वमें लिखा है, कि यदि आपन् काल आ जायें,

तो एक व्यक्तिको मो स्यावरमभ्यति बेचनेका अघि कार है।

इस सम्बन्धका विस्तृत विचार भाषासना और मोमांसा दायमाण तथा मिताहरणमें लिखा या बुझा है। इसलिये एक जालक मवसे यहाँ पर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

प्राक्समें वर्णमेवले प्रभ्यविशेषका विकल्प निविद्ध बताय गया है। मघमांस बेचनेसे शूद्र उसी समय पतित समझा जायेगा, यही स्मृतिका मत है। काठिकापुराणमें लिखा है, कि शूद्रको मनु वर्ण, सुरा खाका और मांसको छेद और सभी प्रकारको वस्तु बेचनेका अधिकार है।

मनुने कहा है कि प्राण्यक स्त्री, ब्राह्मण और क्षत्रिय ये तीन वस्तु बेचनेसे तुरत पतित होता है। क्षीर अर्थात् दूध बेचनेसे तीन दिनके भीतर ही प्राण्यकको शूद्रमें गिनती की जायेगी।

पत्रके अन्तमें लिखा है, कि जो गाय बेचता है उसे गायके शरीरमें जितने रुपये हैं उतने ही हजार वर्ष गोष्ठमें कृमि हो कर रहना पड़ता है।

मनुने गवारद्वेषे अष्टाध्यायमें कहा है, कि आरमविकल्प तथा लडाग, उद्यान, उपवन, स्त्री और अपत्य आदि विकल्प-कार्य उपपातकमें गणनीय है।

विकल्पक (सं० पु०) विक्रो-पुच्छ । विक्रोठा, बेचने वाला।

विकल्पक (सं० स्त्री०) विक्रो क्युद्ध । विकल्प, विक्री।

विकल्पक (सं० स्त्री०) विकल्पक पत्र । विकल्पक पत्र, यह पत्र जिसमें यह लिखा है कि अमुक पदार्थ अमुक व्यक्तिके नाम इतने मूल्य पर बेचा गया।

विकल्पिक (सं० पु०) विक्रोपे जावतीति विकल्प (वत् क्रि-विक्रयता ठक् । पा ४।४।११) इति ठक्, यद्वा विक्रो (क्रि-वत्) । उच्छ् २।४४ इति इक्त् । विक्रोठा, बेचने वाला।

विक्रपो (सं० स्त्री०) विक्रोप्यातीति विक्रो पिति । विकल्प कर्ता, बेचनेवाला । (पाठशकपठ ० २।१७३)

विकल्प (सं० पु०) (विक्रोपे) । उच्छ् २।४४ कस गती बाहु ३४ गृह्ये चोत्पाया, वर्णविक्रय पुनदायायां बहुवचनान् रैकादेशा । अद्गमा । (उच्छक)

विकल्पक (सं० स्त्री०) विकल्पक । १ विकल्पक मणि । (उच्छक) २ विकल्पकतार विष्णुके द्वितीय पार्श्वीय द्वारा मन्थरीक्ष बाह्यमण । ३ सिंह, शेर । ४ इन्द्रियासके एक पुत्रका नाम । (इति श ३।५८) ५ पुराणानुसार कुवलयाम्बके पुत्रका नाम जिसका मग महान्तसाके गर्भसे हुआ था । (मार्हणवेवपु० २।५८) ६ व्याकरणमें एक प्रकारको संघि जिसमें घिसर्ग अविह्वल हो रहता है । ७ एक प्रकारकी मणि । ८ अल्पेका इग । ९ साहस, हिम्मत । १० एक प्रकारका भावक वेव पदार्थ । (जि०) ११ विकल्पशास्त्र, वैजली, प्रतापी । १२ जिसको कान्ति नष्ट हो गई हो ।

विकल्पिता (सं० स्त्री०) विकल्पन-ताप् । १ वत्साराभी छतां, गुच्छक, विष्णोय । २ अग्निमग्गुच्छ, अरणी । ३ अयस्ती । ४ मूर्धिराणिना । ५ बराहकान्ता । ६ आदित्यमका अङ्गुल । ७ अयराजिता । ८ एक प्रकारका, छास सत्राम् । ९ इ मयपो लता ।

विकल्पिता (सं० स्त्री०) विकल्पिता । १ अम्बको एक गति, घोड़ेको सरपट आना । पर्याय—पुमायित । २ पार्श्विक्षेप, कर्म बढाना । ३ गति, आना । ४ विकल्पक बल । ५ बोरता, शूरता, बहादुरी ।

विकल्पिक (सं० पु०) विक्रोप्यातीति विक्रो पितुम् । विक्रोठा, बेचनेवाला ।

विक्रिया (सं० स्त्री०) विकल्पमिति विक्रि (कृत् वच्) । पा १।१।१०० इति श टाप् । १ विकार, प्रकृतिका अन्यथा भाव । विकल्प होनेवाली क्रिया । आदित्यवर्षजमें लिखा है, कि भाष्यकाराधिकार निर्विकार चित्तमें नायिका या नायकको बैच जो प्रथम मनुष्या उदयन होता है वैसे विक्रिया कहते हैं ।

२ किन्तो विक्रियाविकल्प होनेवाली क्रिया ।

विक्रियोपमा (सं० स्त्री०) उपमाविकारमेव । इसका अर्थ—जहाँ उपमानक विकार द्वारा साम्य अर्थात् तुलना होती है—अर्थात् जहाँ प्रकृतिके विपत्ति द्वारा समता होती है या उपमेवका उपमान विद्यत होता है वहाँ पर विक्रियोपमा होगी ।

उदाहरण—इह तन्विक्रि । तुम्हारा यह कर्म अद्द विचले उरहोर्के तथा पद्यमर्मके बहुपुत्रकी तरह है ।

यहां पर उपनामभूत चन्द्रचिह्न और पद्मगर्भ ये दो प्रकृतियाँ हैं, इनसे उत्कीर्ण और उद्घृत होनेके कारण बटनकी विकृति हुई है। इसी प्रकार प्रकृतिकी समता होनेसे विक्रियोपमा अलङ्कार हुआ है। इस तरह प्रकृतिकी विकृति द्वारा जहा समता होगी वहाँ यह अलङ्कार होगा।

विक्री ( दि० स्त्री० ) १ वेचनेकी क्रिया या भाव, विक्रय।

२ वह धन जो वेचने पर मिले।

विक्रोड़ ( स० पु० ) त्रिविध क्रीडा।

विक्रीयासम्प्रदान ( स० स्त्री० ) विक्रीय न सम्प्रदानं श्लेषे यत्न। अष्टादश विवादोंमेंसे एक। इस विवाद वा व्यवहारके सम्बन्धमें वीरमित्रोदयमें इस प्रकार लिखा है—नारद कहते हैं, कि मूल्य ले कर कोई वस्तु खरीदो गई, पर खरीदारको वह न दी गई, इसीका नाम विक्रीयासम्प्रदान है और यही विवादपद कहलाता है।

प्रधानतः पण्यद्रव्य दो प्रकारका है, स्थावर और जङ्गम। इन दो प्रकारके पण्यकी क्रय-विक्रय विधि ६ प्रकारकी है। यथा—गणित, तुल्यममय, क्रियान्वित, रूपसम्पन्न और श्रीयुक्त। पण्य-क्रयविक्रयके व्यापार-मये छः प्रकारकी विधियाँ निर्दिष्ट हैं। इनमेंसे जो गिन कर खरीदा जाता, उसका नाम गणित है अर्थात् संख्यायोग्य, यथा कसूक फलादि— तराजू पर जो वजन किया जाता है, उसे तुल्यम कहते हैं, यथा—द्वैत-चन्द्रनाडि। मय अर्थात् माप लेने योग्य, यथा—पवादि। रूपसम्पन्न अर्थात् रूपयुक्त वस्तु, यथा—पण्यद्रव्यानां प्रभृति। श्रीयुक्तका अर्थ दीर्घमान है,—पसरानादि।

विक्रीताने पण्यका मूल्य लिया, क्रेताने यह पण्य मागा, पर विक्रीताने न दिया। ऐसी हालतमें यदि वह स्वयंपण्य हुआ, तो विक्रीताको उसकी क्षति पूरी करनी होगी अर्थात् विक्रय करनेके बाद उस वस्तुका यदि उपयोग किया जाय, तो उसकी पूर्ति कर देनी होगी। फिर यदि वह जङ्गम हुआ, तो क्रियाफलके साथ क्रेतोको पण्य देना होगा। क्रियाफलका अर्थ—दोहनादि सम्भन्ध चाहिये।

किन्तु इस व्यवस्थाको तभी काममें लाना चाहिये, जब

पण्यकालकी अपेक्षा पण्यदानकालमें यदि पण्य अधिक मूल्य पर बाजारमें बिके। परन्तु क्रयकालकी अपेक्षा उस समय पर वह पण्य कम दाममें बिकता हो, तो वर्तमान मूल्यके हिसाबसे पण्य लौटा कर उसके साथ साथ क्रयकालिक वर्द्धित मूल्य क्रेतोको देना पड़ेगा। फिर यदि उस समय पण्यमूल्य समानभावमें भी रहे, तो भी खरीददारको कुछ सूद लगा कर देना होगा। यही हुई शास्त्र व्यवस्था।

याज्ञवल्क्यने कहा है, कि क्रेतो या खरीददार देणा न्तरमे आ कर यदि माल खरीदे, पर विक्रीतासे माल मागने पर भी न मिले, तो खरीददारको देणांतर जा कर वह माल वेचनेमें जो लाभ होता, उसी लाभके हिसाबसे विक्रीता क्रेतोको माल लौटा देनेके लिये बाध्य है।

धर्मशास्त्रकार विष्णुने ऐसी हालतमें विक्रीताको दण्ड देनेका व्यवस्था दी है। उनके मतसे राजाको चाहिये, कि वे विक्रीतासे सूद समेत प्रसूल कर क्रेतोको देवे। इसके अलावा उसे एक सौ पण दण्ड भी देवे। विक्रीताके सम्बन्धमें जो व्यवस्था कही गई है उसे अनुनापहोत वृत्तिस्मय विक्रीता विषयमें ही जानना होगा। किन्तु जहाँ विक्रीता अपना माल वेच कर उम्मी समय अनुनापहोत वह माल क्रेतोको न दे और जो क्रेतो माल खरीदनेके बाद अनुनाप हो कर उसे न ले, तो ऐसी हालतमें क्रेतो विक्रीता दोनोंको ही द्रव्यमूल्यका दण्डवां भाग नुकसान सहना होगा। किन्तु क्रेतो विक्रीताके मध्य ऐमा अनुनाप यदि दण्ड दिनके बाद हो, तो फिर मूल्यका दण्डवां भाग किसीको भी नहीं देना पड़ेगा।

वह पण्य या माल दोहन या बाहनयोग्य हो, तो फिर उक्त व्यवस्था काममें न लाई जायेगी। वैसी हालतमें दण्ड दिनके मध्य अनुनाप उपस्थित होनेसे दण्डवां भाग नुकसान सह कर वह अपना द्रव्य या मूल्य वापस पायेगा। दण्ड दिनके बाद अनुनाप करना अनुचित है। क्योंकि उस समय द्रव्य वा मूल्य वापस पानेकी व्यवस्था नहीं है।

विक्रीताके निकटमे माल खरीद कर क्रेतो यदि उसे प्रदण न करे और वह माल नुकसान हो जाय, तो जिस हा दोष साबित होगा उसको वह क्षति देनी

पढ़ेंगी। जहाँ क्लेताने मास खरीद कर विक्रतासे मांगा नहीं और विक्रताने भी नहीं दिया इपर भोरोक उपग्रहमे मास नष्ट हो गया, तो क्लेता और विक्रता दोनों हीकी समान हानि होगी। यही देयकमहका मत है।

नारकना कहना है, कि द्रव्य क्रीदनेके बाद क्लेताकी अनुताप हुआ, क्लेताके देने पर भी वस्तु नहीं लिया। ऐसी हाबतमें विक्रता यदि वह द्रव्य दूसरेके हाथ बेच जाये, तो उसका कोई धपराय न होगा।

जो विक्रता पहले क्लेताकी निर्दोष वस्तु बिक्रा कर पीछे धाकाकीसे बन्क हाथ दोपयुक्त वस्तु बिक्रय करे और तैा विक्रता एकके हाथ मास बेच कर पीछे उसक अनुताप उपस्थित नहो होने पर भी दूसरेके हाथ बेच जाये, तो दोनों ही हाबतमें विक्रता ही अपराधी है। इस अपराधक दृष्टिकरण विक्रता क्लेताको कुना मूल्य देवे, साथ साथ बिनय भी दिखाये।

रूपर जो नारकना व्यवस्था कही गई, पृष्ठस्परित यादवव्यय भादि धर्मशास्त्रकारगण सो इस व्यवस्थाको समर्थन कर गये हैं।

इसके अभावा पृष्ठस्परितमे कहा है, कि विक्रता यदि मत्त, उन्मत्त, मीत, अज्ञाधान वा अज्ञ व्यवस्थामे अधिक मूल्यका द्रव्य कम मूल्यमे दे जाये तो क्लेताको पर छोडा देना उचित है।

क्लेता 'मास खरीदूंगा' ऐसा कह कर बसा गया, उसका मूल्य नहीं दिया और न पीछे समय पर नारादने क छिपे भाया तो विक्रता क्लेताको वह मास दे वा न दे, इसकी पुनो है, उसे कोई हानि न होगा। जहाँ क्लेता पकी बात करके विक्रताके हाथ कुछ मूल्य दे घमा गया; किन्तु निविष्ट समयक मध्य यह क्षेम नहो जाया तो विक्रता उस मासको दूसरेके हाथ बेच सकता है।

विक्रण (स० लि०) विक्रणक। निष्पुट, निर्वय निष्पुट।

विक्रोत (स० लि०) विक्रोतानि विक्रु-वृत्। कलबिक्रय कर्ता, बेचनेवाला। पर्याय—बिक्रयिक, बिक्रयो, बिक्रयक।

विक्रोदित (स० लि०) विक्रोद भाये क। २ विविध

कोडा नामा प्रकारके रोम। (लि०) २ विविध कोडायुक्त जिनसेम तरह तरहके खेल हों।

विक्रोत (स० लि०) विक्रु क। कृतविक्रय, जो बेच दिया गया हो।

विक्रोतव्य (स० लि०) विक्रो-तव्य। विक्रयाई, बेचने योग्य।

विक्रोय (स० लि०) विक्रोयते इति विक्रो (बभो क्)। पा १।१।६० इति यत्। विक्रययोग्य द्रव्य, बिक्रनेवाला। पर्याय—पाणितव्य, पणय।

विक्रोता (स० पु०) विक्रोटे देवो।

विक्रोत्र (स० पु०) विक्रुश घम्। पिष्टन शब्द।

विक्रोत्रयित् (स० लि०) विक्रुश लृच्। विक्रोत्र कारक।

विक्रोप्यु (स० लि०) विक्रुश-वृच्। विक्रोत्रकारी।

विक्रोय (स० लि०) विक्रुवते इति विक्रु-यवाद्यच्।

१ पिष्टल, येवैन। २ शिवश। ३ चक्रक। ४ इन्द्रजान्त।

५ कातर। ६ मीय, मीन। ७ उपहत। ८ अक्षधारणा समर्थ। ९ कर्षण्यकार्षण्यनिर्णयमें असमर्थ। १० किंकर्तव्य

विष्पु। ११ व्याकुलता। १२ अहता। १३ उदासीनता।

१४ स्राग्य।

विक्रयता (स० ली०) विक्रयस्य भावः लल-वाप्। विक्रु बन्ध, येवैन।

विक्रावित (स० लि०) विक्रुव युक्त, येवैन।

विक्रिप्ति (स० ली०) विक्रिप्तिच्। १ अभाविका पाक। २ द्रवोमाव। ३ भाद्रता।

विक्रिग्न (स० लि०) विक्रिप्ति-क। १ जरा द्वारा जोर्ण,

जो पुराता हो जामेके कारण सट या गल गया हो।

२ जोर्ण, पुराता। ३ भाद्र गोडा। (मेदिनी)

विक्रिग्न (स० पु०) बिक्रय युक्त।

विक्रिप्त (स० लि०) बिक्रय रूपस ज्ञान्य बहुत घका हुआ।

विक्रिष्ट (स० पु०) विक्रिष्ट घम्। १ भाद्रता, गोला

पत्त। २ नामारोग, नाकनी एक बीमारी।

विक्रिश (स० पु०) बिक्रय ज्ञान्य, गारो तपस्वीक।

विक्रित (स० लि०) विक्रि-स्यक। १ बिक्रय रूपस हस्त, कुतो

तरह प्राप्त। २ भाषातप्राप्त, जिनमे चोट छगी हो।

३ अविष्ट, बन्ध बन्ध किया हुआ।

विक्षय ( मं० पु० ) वैयक्तिके अनुसार एक प्रकारवा रोग,  
जो अधिक मद्य पान करनेमें होता है।  
विक्षर ( मं० पु० ) विशेषरूपसे क्षरण।  
विक्षाम ( म० क्ली० ) विशेष क्षमता।  
विक्षार ( सं० पु० ) विजिष्ट लक्ष्यवेध। ( वैसिरीयवा०  
१।१।११ )  
विक्षाघ ( मं० पु० ) विक्षरणमिति वि- झ्र- ( वीक्षुश्रवः।  
पा ३।३।५ ) इति घञ्। १ शब्द, आवाज। २ काम,  
चासी।  
विक्षिणनक ( मं० त्रि० ) विविध पापध्वंसकारी अग्नि  
आदि। ( शुक्ल्यब्रुः १६ ४६ )  
विक्षित् ( मं० त्रि० ) निवासी, बसनेवाला।  
विक्षिप्त ( सं० त्रि० ) वि-क्षिप क्। १ त्यक्त, जिसका  
त्याग किया गया हो। २ कम्पित, कंपा हुआ। ३ प्रेरित,  
भेजा हुआ। ४ फेंका या छितराया हुआ। ५ व्याकुल,  
घबराया हुआ। ६ जिम्मा का दिमाग ठिकाने न हो, पागल।  
( क्ली० ) ७ चित्तगृन्निधिशेष। पातञ्जलदर्शनमें लिखा  
है कि चित्तवृत्तिका निरोध करनेमें योग होता है। वह  
चित्तवृत्ति पाच प्रकारकी है, क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकप्र  
और निरुद्धावस्था। यह निरुद्धावस्था ही समाधिके लिये  
उपयोगी है अर्थात् एकप्र और निरुद्धावस्थामें ही योग  
होता है, क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्तावस्थामें समाधि नहीं  
होती।  
रजोगुणका उद्रेक हो कर चित्तका जो चञ्चलावस्था  
होती है, उसका नाम क्षिप्तावस्था है। इसमें चित्त क्षण-  
मात्र भा स्थिर नहीं रह सकता, एक विषयमें दूसरे  
विषयमें झमक करता रहता है। इस समय चित्त बाह्य  
विषयमें आनन्द हा कर सुषुप्तदुःखादिका भोग करता है।  
रजोगुण ही चित्तको उन सब विषयोंमें प्रेरण करता है।  
द्वैत्यदानवादिके चित्तकी ही क्षिप्तावस्था होती है।  
तमोगुणके उद्रेकेसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान नहीं  
रहता तथा चित्त क्रोधादिके बजोभूत हो विरुद्ध कार्यादि  
करने लगता है। इसका नाम मूढावस्था है। यह अवस्था  
रात्रम और पिशाचादिके चित्तशैतलमें उदय होता है।  
विक्षिप्तावस्था—इस अवस्थामें सत्त्वगुणकी प्रव-  
लताके कारण चित्त दुःपसाधन साधुविगर्हित कर्मों का

परित्याग कर सुषुप्तावस्थाभूत सज्जनमेवित्त आत्मोत्कर्ष-  
जनक व्रतपूजादि सत्कार्यमें अनुक्त होता है। यह  
अवस्था जनसाधारणके चित्तमें उत्पन्न नहीं होती,  
देवता आदिके चित्तमें उत्पन्न होता है। इसी मूढ  
अवस्थासे विक्षिप्त अवस्था श्रेष्ठ है, रजो और तमोगुण  
ही चित्तमें निक्षेप उपस्थित करता है। अतएव विक्षि-  
प्तावस्थामें सत्त्वगुणके प्रवृत्त होनेसे चित्तका विक्षेप कुछ  
उभ हो जाता है। रजो और तमोगुण सत्त्वगुणमें परा-  
भूत हो अवस्थान करता है।

चित्त रजोगुण द्वारा अभिभूत हो नाना प्रकारकी  
प्रवृत्तिसे बाह्य हो कर उसीके अनुसार कार्य करता है।  
भाग्यवजन, यदि किसीके चित्तमें सत्त्वगुणका उदय  
हो, तो उसमें लेगमात्र भी दुःख नहीं रहता। इसी  
प्रकार विक्षिप्तावस्था भी योगको उपयोगी नहीं है। योग-  
भाष्यमें लिखा है,—

“विक्षिप्त्वे चेतसि विक्षेपोपसर्दनीभूतः समाधिर्नयोगपक्षे वर्तते।”

( योगभाष्य १।२ )

इसमें सत्त्वगुणकी कुछ प्रबलता रहने पर भी  
रजस्तमोजन्य चित्त-विक्षेप एकदम तिरोहित नहीं होता,  
अतएव इस अवस्थामें भी योग नहीं होता है।

इस विषयमें भाष्यकारने कहा है, कि चित्त त्रिगु-  
णात्मक है, रजोगुणके समुद्रेक वा अधिकताके कारण  
उन सब विषयोंमें परिचालित चित्तकी अत्यन्त अस्थिरा-  
वस्था वा तदवस्थ चित्तका नाम क्षिप्त है। तमोगुणकी  
समुद्रेकजनित निद्रावस्था वा तदवस्थ चित्तको मूढ  
कहते हैं। क्षिप्त और मूढ अवस्थामें योगकी किसी  
प्रकारकी सम्भावना नहीं। क्षिप्त अवस्थाने कुछ  
विशेषयुक्त चित्तका नाम विक्षिप्त है। विक्षिप्त चित्तकी  
कदाचित् गतिरता होनेके कारण उस समय जपिक वृत्ति  
निरोध हो सकता है नहीं, पर वह वृत्तिनिरोध  
केशादिका परिपन्थो वा निवारक नहीं होता, अतएव  
विक्षिप्तावस्थामें योग नहीं होता। पातञ्जल देखो।

विक्षिप्तक ( सं० पु० ) वह मृत शरीर जो जलाया या गाढ़ा  
न गया हो, बलिक यों ही कहीं फेंक दिया गया हो।

विक्षिप्तता ( सं० स्त्री० ) विक्षिप्त या पागल होनेका भाव,  
पागलपन।

विज्ञान (सं० पु०) एकार्क वृक्ष, मशरुका पेड़ ।  
 विज्ञान्या (सं० पु०) दुग्धिका, दुग्धा ।  
 विशुद्ध (सं० लि०) मतिशुद्ध बहुत छोटा ।  
 विशुद्ध (सं० लि०) शुद्ध, जिसके ज्ञानमें क्षीम उत्पन्न हुआ हो ।

विज्ञान (सं० ख्या०) एक छायाका मान ।  
 विशेष (सं० पु०) विशिष्ट पदम् । १ प्रेरण, इतर उपर के कला । २ रसाय, छोटना । ३ विशेषण इतर उपर दिमाना । ४ कल्पन, यत्नराहद । ५ प्रसारण, फैलाना । ६ मञ्जानन इत्नेको क्रिया । ७ मय डर । ८ राजस, कर । ९ धनुषकी डोरो खोजना, चिन्ता पढाना ।  
 १० मनका इतर उपर मट्टराना, इन्द्रियोंको पशम न रक्कना । ११ प्राचीनकालका एक प्रकारका मय । यह के क कर पढाया जाता था । १२ संज्ञाका पढाव, छावनी । १३ बाधा, बिघन । १४ सङ्घटन मतसे घुसका एक मेद । १५ एक प्रकारका रोग । पातञ्जलदर्शनके मतमें विश्वविशेषके कारण है । इन ६ कारणों द्वारा विश्व-विज्ञान होता है ।

‘एवाविस्त्वान्मर्षनयमादास्त्वविरतिप्रान्तिररनाजम्भुमि कल्पनास्थितिश्चिचिचिच्छेतेऽन्वरावता’ ।

(पाञ्चन्य १।२५)

‘व्याधि, स्थाय संशय, प्रमाद, भावक्य अतिरति, स्मृतिदर्शन, अव्ययमूर्तिकरव ये हो नी विश्वविशेष तथा योगक अन्तराय अर्थात् चिन्मन्त्ररूप हैं । योगम्बास काठमें ये सब विश्वविशेष उपस्थित होते हैं, इसमें योग नष्ट नहीं होगा ।

‘इन सब कारणोंसे मनकी एकाग्रता नहीं होती, परन्तु सबदा विश्वविशेष हुआ करता है । शरीरगत पातपित्तदि धानुकी विषमता हमें ये हो शरीरमें उन्नतदि रोग उत्पन्न होने हैं इनका नाम व्याधि है । किन्ती किसी कारण वग विश्व अकर्ममय हो जाना है, येमें विश्वकी अकर्म पपताको हो स्थान कहते हैं । उपायव्ययन ज्ञानका नाम संशय है । योग साधन करनेसे कलमिच्छि हागी वा नहीं येमें अनिश्चयघानको संशय कहते हैं । समाधि साधनमें उदासोचनाका नाम प्रसाद है अर्थात् मिच्छिके विषयमें इतने अव्ययसाधनपूर्वक उदासोचनाका परि

स्थान नहीं करनेसे योग साधन नहीं होता । शरीर और विश्वकी गुस्ताको भावक्य कहते हैं अर्थात् जिस कारण से शरीर और विश्वके गुष्ठ हमेंस योगसाधनमें मन नहीं लगता वही भावक्य शब्दवाच्य है । विषयमें इतने मन संयोगको अतिरति और शुद्धिहासिमें उन्नतवादि क ज्ञानको स्मृतिदर्शन कहते हैं । शुद्धिवा (सोप) में जिस प्रकार उन्नतकी स्मृति होती है, उसा प्रकार अय रिणामर्शियोंक विषयसुखको महान सुख समक कर स्मृति होती है, किसी कारणवज्ज समाधिकी उपयुक्त मूर्तिको अर्थात् नाम अक्षयमूर्तिकरव है । उपयुक्त स्थान नहीं मिलने पर योगका साधन कदापि नहीं होता, उदां तदा योगसाधन करनेसे तद्व तद्वकी चिन्मबाधाये उपस्थित होता है । उन्नतस्थानम मनको अतिरतिनाम मनवस्थितपर है, स्थानविशेषमें मानसिक अस्तित्वोप हुआ करता है ।

ये सब विश्वविशेष योगक अन्तरायरूप हैं । इनके रहनेसे योग नहीं होता । पुनः पुनः एकत्रबाध्यास द्वारा ये सब चिन्मविशेष नष्ट होने हैं । (पातञ्जलदर्शन)

विशेषण (सं० ख्यो०) विशिष्ट पदम् । विशेष, ऊपर अधवा इतर उपर के कनेको क्रिया । २ बिसामे या पटरका इत्नेकी क्रिया । ३ धनुषकी डोरो या जैकी क्रिया । ४ विघ्न हाया ।

विशेषज्ञिपि (सं० ख्यो०) शिपिमेद, एक प्रकारकी लैक प्रयासी ।

विशेषज्ञिकि (सं० ख्यो०) विशेषण शक्ति । मायाशक्ति । वैश्वस्तक मतमें मञ्जानकी सावरण भीर विशेष नामकी दो शक्तियां हैं । वेरन्त बन्ध देना ।

विश्लेष (सं० लि०) विशिष्ट-वृत्त । विशेषकारक ।

विश्लेष (सं० पु०) विशुद्ध-पदम् । १ मञ्जानम, दिमाने या पटरका इत्नेकी क्रिया । २ विशारण फाटनेकी क्रिया । ३ क्षीम, दुःख । ४ संघटन, मेल । ५ मनकी चञ्चलता । ६ मय डर । ७ चित्तोद्भ्रान्ति । ८ उन्नत, अचिक्ता । ९ अर्थात् उदासोचना । १० भीरुपण्य उन्नतपडा । ११ हाथीको छापीका एक पार्श्व या भाग ।

विश्लेषण (सं० पु० ख्यो०) १ विशारण, फाटना । २ विश्लेषण मतमें बहुत अचिक् क्षीम उत्पन्न होना या करना ।

विश्रोमो ( स० लि० ) विश्रुमणिनि । विश्रोमकारक,  
दुःख उत्पन्न करनेवाला ।

विष ( स० लि० ) विषय निपातनात् यलोपः । गत-  
नासिक, विना नाकवाला ।

विषण्डिन् ( स० लि० ) विषण्ड-णिनि । विषण्डकारक,  
दो टुकड़े करनेवाला ।

विषनन ( स० क्ली० ) खनन, मोदना ।

विषनस् ( स० पु० ) प्रह्ला ।

विषहा ( स० पु० ) गण्ड ।

विषाट ( स० पु० ) विषाद-अच् । विशेषरूपसे खादक  
वा मक्षक । ( ऋक् १०३८५ )

विषादितक ( स० पु० ) वह मृत्न शरीर जिसे पशुओंने  
खा डाला हो ।

विषानम ( स० पु० ) वैषानम मुनिभेद ।

वैषानम देखो

विषाना ( स० स्त्री० ) जिह्वा, जीम ।

विषार्यध ( द्वि० स्त्री० ) कडवा या जहरकी-सी गंध ।

विषु ( स० लि० ) विगता नामिका यस्य बहुलवचनात्  
नामिकायाः स्तुः । गतनासिक, विना नाकवाला ।

विषुर ( स० पु० ) १ राक्षस । २ चोर ।

विषेद ( स० लि० ) द्विधाकृत, दो भागोंमें बाँटा हुआ ।

( भागवत १।१७।२१ )

विष्य ( स० लि० ) विगता नासिका यस्येति बहुव्री ।  
( व्यञ्च । पा ५।४।२८ ) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या नासिकायाः  
स्यः । गतनासिक, जिसकी नाक न हो, नकटा ।

विष्यक्त ( स० लि० ) वि-रप्या-क्त । प्रसिद्ध, जिसे सब  
लक्षण जानने हों ।

विष्याति ( स० स्त्री० ) वि-रप्या-क्तिच् । प्रसिद्धि, प्रोहरत ।

विष्यापन ( स० क्ली० ) वि-रप्या-णिच् ल्युट् । व्याख्यान,  
प्रसिद्ध करना ।

विष्य ( स० लि० ) विगता नासिका यस्य, खः खश्च  
वक्तव्या इति नासिकायाः स्य खश्च । १ अनासिक,  
विना नाकवाला । २ छिन्ननासिक, नकटा ।

विगण ( स० पु० ) विपक्ष, शत्रु ।

विगणन ( स० क्ली० ) विगण-ल्युट् । १ ऋणमुक्ति, कर्ज  
चुकाना । २ हिसाब लगाना, लेखा करना ।

विगत ( स० लि० ) वि-गम-क्त । १ प्रभारहित, जिसकी चमक  
आदि जाती रही हों । पर्याय—निष्प्रभ, अराक, धीत ।  
२ रहित, विहीन । ३ गतसे पहलेका, अन्तिम या धीते  
हुपने पहलेका । ४ जो कहीं उधर उधर चला गया हो ।  
५ जो गत हो गया हो, जा धीत चुका हो । जय यद् शब्द  
योगिक अवस्थामें किसी सप्ताके पहले आता है, तब इसका  
अर्थ होता है—“जिसका नष्ट हो गया हो ।” जैसे,—विगत  
उत्तर = जिसका उत्तर उतर गया हो । विगतनयन =  
जिसकी आँखें नष्ट हो गई हों ।

विगतश्लोक ( स० लि० ) विगता श्लोकेय इति बहुव्रीही  
कप्रत्ययः । श्लोरहित, श्लोत्रप्र ।

विगतभय ( स० लि० ) विगतं भय यस्य । निर्भीक,  
चेडर ।

विगतरागध्वज ( स० पु० ) वीजाचार्यभेद ।

विगतश्लोक ( स० लि० ) विगतः श्लोके यस्य बहुव्री ।  
श्लोकहीन, जिसके कोई श्लोक न हो ।

विगनस्पृह ( स० लि० ) स्पृहाहीन, निस्पृह ।

( गीता ३ अ० )

विगतसूतिका ( स० स्त्री० ) पुनः पुनरासंच दर्शन पर्यन्त  
प्रसूति । ( सुश्रुत शारीर १० अ० )

विगता ( स० लि० ) १ जो विवाह करनेके योग्य न रह  
गई हो । २ जो पर पुरुषसे प्रेम करता हो ।

विगतासंच ( स० स्त्री० ) विगतं आसंचं रजो यस्याः बहु-  
व्रादि । पंचपन वर्षकी वह स्त्री जिसका (मासिकधर्म)  
रजोदर्शन होना बन्द हो गया हो । पर्याय—निष्कली,  
निष्कला, किष्कली, निष्कला, विकली, विकला ।

( शब्दरत्ना० )

विगताश्लोक ( स० पु० ) वाङ्मय, वीतश्लोक ।

विगति ( स० स्त्री० ) दुर्देश, खराबी ।

विगतोद्धय ( स० पु० ) एक बुद्धका नाम ।

विगट ( स० पु० ) विविध शब्दकारी ।

विगदित ( स० लि० ) चारों ओर प्रचारित ।

विगन्तव्य ( स० पु० ) १ विगमनीय । २ त्यागयोग्य ।

विगन्ध ( स० लि० ) १ गन्धहीन, जिसमें किसी प्रकार-  
की गंध न हो । २ दुर्गन्धित, बदबूदार ।

विगन्धक ( स० पु० ) इङ्गुदीवृक्ष ।

विगन्धि (सं० लि०) १ गण्यहीन। (झी०) २ गण्यहीन  
पुस।

विगन्धिका (स० स्त्री०) १ हनुया, हाऊबेट। २ अज  
गंवा, तिन्नपन।

विगम (स० पु०) वि गम (प्रहृष्टमिरिकामरथ। पा  
१।१५८) इति म्। १ नाश। २ मोस। ३ प्रस्थिति,  
थळा ज्ञाना। ४ लिप्यसि अन्त, आतमा। ५ क्षाम्ति,  
सदनशीलता।

विगमचन्द्र (स० पु०) वीक्षणत्रयुक्तमेव। (तान्नाय)

विगर्मा (स० स्त्री०) विगतगर्मा, जिसका गर्भपात हो  
गया हो।

विगर्ह (स० पु०) वि गर्ह म्। निम्बा, शिकोपल।

विगर्हण (सं० स्त्री०) वि-गर्ह वयुद्। १ निम्ब, शिका  
पन। २ भालसं, डाँट, फटकार।

"इध्मे व मरतो ईध्मे वसुदेवविगर्हणम्।"

(हरिश्च १६।२६)

विगर्हणा (स० स्त्री०) वि गर्ह-णच् डाप्।

विगर्हण देहा।

विगर्हित (स० लि०) वि-गर्ह-क्त, विरोधिय गर्हित।।

१ विरोधयोगसे गर्हित, जिसी डाँट या फटकार बतलाई  
गई हो। २ निन्दनीय कारक। ३ निषिद्ध।

विगर्हिन् (स० लि०) वि-गर्ह-जित। विगर्हकारक,  
निम्बकारक।

विगर्ह (स० लि०) वि गर्ह-यत्। १ निम्बायोग्य,  
निम्बयोग्य। २ मरहनायोग्य, डाँटने उपरान्तके योग्य।

सौर्विक वा शास्त्रोप निदन्त्यके माय वषेवर्णमदि  
छाया ओ बात कही जाती है, उसे विगर्हकवा कहते हैं।  
पर्व करके बाणवपयोगकी शास्त्रमे निम्बा की है, इस  
कारक पत्र एक कर ओ बात कही जाती है, वही विगर्ह  
कवा है।

विगर्हता (स० स्त्री०) विगर्ह-क्य भावाः लङ् डाप्।  
विगर्हका भाव या धर्म।

विगमित (स० लि०) विरोधिय गयित। १ स्खलित,  
ओ गिर गया हो। २ ओ बह गया हो, ओ थू कर या  
उपक कर निकल गया हा। ३ जिघ्रिष, डीखा वडा  
हुवा। ४ विगर्हा हुमा।

विगाङ् (स० लि०) विगाङ्गते स्मेति वि-गाङ् क।  
१ स्नात, नद्याया हुमा। २ प्रगाङ्, बहुत अधिक।

३ प्रीङ्, अच्छी तरह बढ़ा हुमा। ४ कठिन, संकट।

विगाधा (स० स्त्री०) आर्ष्या छन्का एक मेव। इसके  
विषम पदोंमें १२, दूसरोंमें १५ और चौथोंमें १८ मात्राए  
होती हैं और अन्तका वर्ण गुक होता है। विषमगण्योंमें  
अण्य नहीं होता, पंद्रहवें वक्का छटा गण एक अण्यका  
मान लिया जाता है। इसे विगाहा और बहुगीति भी  
कहते हैं।

विगाल (सं० स्त्री०) विरह्य गाल परम्पे। निम्बा।

विगाम् (सं० स्त्री०) विविध प्रकारका गमन।

(शुक् १।१५५)

विगाह (स० लि०) वि-गाह म्। १ विगाहमान, सर्पल  
व्यापित। २ अथवाहनकर्ता, स्नान करनेवाला। (झी०)

३ अथवाहन, स्नान। ४ विमोहन, मथना।

विगाहन (स० स्त्री०) वि-गाह-वयुद्। अथवाहन, स्नान।

विगाहमान (सं० लि०) वि-गाह शालम्। १ अथवा  
हनकारी, स्नान करनेवाला। २ विमोहनकर्ता, मथने  
वाला।

विगाह्य (स० लि०) वि गाह-यत्। १ विगाहनयोग्य,  
स्नान करने लायक। २ विमोहन योग्य मथने लायक।

विगिर् (सं० पुं०) विगिर् पक्षिमेव।

विगोल (सं० लि०) वि-नी क। निम्बित, गर्हित।

विगीति (सं० स्त्री०) १ निम्बा। २ एक प्रकारका छन्।

विगुण्य (सं० लि०) विपरोतो गुण्ये यस्य। १ गुण-यी-रोस्य  
विशिष्ट। २ गुणरहित, जिसमें कोई गुण न हो। ३ बिहृत,  
कारक। ४ सुख, बारीक।

विगुणता (सं० स्त्री०) विगुण्यस्य भावा लम् डाप्। विगुण  
का भाव या धर्म।

विगुण्य (सं० लि०) प्रुदु, म्यादा।

(भाष्यज्ञानन पद्यभू ५।१।१०)

विगुङ् (सं० लि०) विरोधिय गुङ्, वि-गुङ् क। १ गर्हित।  
२ गुप्त।

विगुह्य (सं० लि०) १ विमदविषयोमृत। २ हतविच्छेद,  
असंग किया हुआ।

विगाहा (दि० स्त्री०) विगाधा नामक छन्।

विगाधा देवी।



विग्न (सं० लि०) विज क। १ भीत। २ उद्विग्न।  
 विग्र (सं० लि०) १ गतनासिक, नक्टा। २ मेघावो।  
 विग्रह (सं० पु०) विविध सुख दुःखादिकं गृह्णाति इति विग्रहः (ग्रह  
 अच्, यद्वा विविधैर्दुःखादिभिर्गृह्णाते इति विग्रहः (ग्रह  
 घृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) इति अप्। १ शरीर।  
 २ युद्ध, लड़ाई। ३ निरोधमात्र, कलह। ४ विभाग।  
 ५ वाक्प्रमेद, समासवाक्य। समासमें जो वाक्य होता है,  
 उसे विग्रह वा व्यासवाक्य कहते हैं। इसका दूसरा नाम  
 विस्तार भी है। बोणा गक्षिणा ग्रहः ग्रहण। ६ विहङ्ग,  
 पक्षी। ७ देवमूर्ति। धातु वा पापाणादिसे देवताओंको  
 जो मूर्ति बनाई जाती है, उसे विग्रह कहते हैं। ८ विशेष  
 ज्ञान। ९ प्रहार, आघात, चोट। १० नीतिके छः गुणा-  
 मेंसे एक, विपक्षियोंमें फूट या कलह उत्पन्न करना।  
 ११ विप्रिय, अप्रिय, कटु। १२ विस्तार, चौड़ाई।  
 १३ दूर या अलग किया हुआ। १४ आकृति, शकल। १५  
 श्रद्धा, सजावट। १६ साध्यके अनुसार कोई तत्त्व।  
 १७ गवका एक नाम। १८ स्कन्दक एक अनुचरका  
 नाम। १९ अवान्तरकटर। (माग्यत २।१०।४७)  
 २० विशिष्टानुभव।  
 विग्रहण (सं० क्लो०) १ विशेषरूपसे ग्रहण, चुन लेना।  
 २ रूप धारण करना, शकलमें आना।  
 विग्रहपालदेव (सं० पु०) पालवशाय एक राजा।  
 पाक्षराजवंश देखो।  
 विग्रहराज (सं० पु०) काश्मीरके एक राजपुत्र।  
 (राजतर० ६।३३५)  
 विग्रहवन् (सं० लि०) विग्रह-अस्त्यर्थे मनुप् मस्य व।  
 विग्रहांवांशष्ट, विग्रहयुक्त।  
 विग्रहाचर (सं० क्लो०) विग्रहमावृणोति आ वृ अच्।  
 पृष्ठ, पीठ।  
 विग्रही (सं० लि०) वि-ग्रह-इति। १ लड़ाई भगड़ा करने-  
 वाला। २ युद्ध करनेवाला। ३ युद्ध-विभागका मन्त्री या  
 सचिव।  
 विग्रहीतय्य (सं० लि०) वि-ग्रह-तय्य। विग्रहके योग्य,  
 लड़ाई भगड़ा करने लायक।  
 विग्राह (सं० क्लो०) विग्रहविपयीभूत, जिसके साथ युद्ध  
 हो सके।  
 विग्राह्य (सं० लि०) विग्रहविपयीभूत, जो इस योग्य हो  
 कि उसके साथ लड़ाई की जा सके।

विग्राव (सं० लि०) वि-विच्छिन्ना ग्रावा यस्य।  
 विच्छिन्नग्राव, जिसका गला अलग हो गया हो।  
 (शृक् ७।१०।४।२०)  
 विग्रापन (सं० क्लो०) विमर्षकरण, षष्ट देना।  
 विग्रटन (सं० क्लो०) वि-घट-ल्युट्। १ विग्रलेप, मांगो-  
 जक अगोको अलग अलग करना। २ अघात, नोडना  
 फोडना। ३ प्रियेष्ट, नष्ट करना। ४ विकारा, निलना।  
 विघटिका (सं० स्त्री०) विभक्ता घटिका यया। समपका  
 एक छोटा मान, घड़ोफा २३वाँ भाग।  
 विघटित (सं० लि०) १ जिसके मांगोजक अंग अलग  
 अलग किये गये हों। २ जो नोड फोड डाला गया हो।  
 ३ नष्ट, बरबादी।  
 विघट्ट (सं० क्लो०) १ वंग, रांगा। २ विघट्टन, निलना।  
 विघट्टन (सं० क्लो०) वि-घट्ट-ल्युट्। १ विग्रलेप, मांगोजक,  
 अंगको अलग करना। २ अभिघात, पटकना, ३ सञ्चाल-  
 न, गडना, हिलाना डुलाना। ४ नौलना।  
 विघट्टिन (सं० लि०) वि-घट्ट-क। १ सञ्चालित,  
 चलाया हुआ। २ विद्ध, छेद हुआ। ३ मवित, मथा  
 हुआ। ४ अभिहित, कहा हुआ। ५ विश्लेषित, अलग  
 किया हुआ। ६ विक्रान्त, खुला हुआ। ७ नष्टप्राप्त।  
 विघट्टिन् (सं० लि०) वि-घट्ट-इति। विघट्टकाक,  
 अलग करनेवाला।  
 विघ्न (सं० क्लो०) वि-हन (करणेऽप्योविधुप्। पा ३।३।८२)  
 इति अप् घनादेशश्च। १ आघात करना, चोट पहुंचाना।  
 २ एक प्रकारका बहुत बड़ा हर्षाडा, घन। ३ इन्द्र।  
 विघ्नर्षण (सं० क्लो०) वि-घृप्-ल्युट्। अच्छी तरह गडने या  
 घिसनेकी क्रिया।  
 विघ्ननिन् (सं० लि०) विशेष रूपसे हत्याकारक, नाश-  
 कारी। (शृक् ६।६०।५)  
 विघ्नस (सं० क्लो०) विशेषेण अघते इति वि अट् (उप  
 सगेऽदः। पा ३।३।५६) इति अप् (षष्ठोश्च। पा २।४।३८)  
 इति घसादेशः। १ सिक्क, मोम। (पु०) २ वह अन्न  
 जो देवता, पितर, गुरु वा अतिथि आदिके खाने पर बच  
 जाये। ३ आहार, भोजन।  
 विघ्नसागिन् (सं० लि०) विघ्नस अघनाति अज गिनि।  
 जो प्रातः और सायंकाल पितृ नो ह, देवता और अतिथियों

को अत्रान्तर कर स्वयं अथगिष्ट अन्न मोक्षण करते हैं।  
 विद्यात (सं० पु०) विशेषतः हननमिति वि-हल घण्ट।  
 १ व्याघात, विद्य, बाधा। २ आघात, चोट। ३ विनाश।  
 ४ निष्कमता, सफल न होना। ५ विघ्नस्त तोड़ना  
 फोड़ना।  
 विघातक (सं० वि०) १ व्याघातक, विघ्न डालनेवाला।  
 २ आघातकारो, चोट पहुँचानेवाला। ३ विनाशक, हत्या  
 करनेवाला।  
 विघातन (सं० क्लो०) वि-हल-क्युट्। १ विनाश, हत्या  
 करना। २ आघात, चोट पहुँचाना।  
 विघातो (सं० लि०) १ विचारक, रोकनेवाला। २ घातक  
 हत्या करनेवाला। ३ बाधादायक बाधा डालनेवाला।  
 ४ मद्य। ५ बघाहन, मना किया हुआ। ६ अस्त, गहस  
 गहस दिया हुआ।  
 विघ्णिका (सं० स्त्री०) मातिका, नाक।  
 विघ्णन (सं० पु०) बाधों मोर घुमाना अक्षर देना।  
 विघ्न (सं० लि०) रसेपेन। (शुक् ३५५-४६)  
 विघ्न (सं० पु० क्लो०) विह्वल्येऽनेनेति वि हल कः, पश्ये क-  
 विघ्नम्। पा ३।३।५८) १ व्याघात, अङ्कन, खनन।  
 संस्कृत पर्याय-अन्तराय प्रत्युह। (अमर) २ अक्ष  
 पाककथा। (उष्णभिक्षु)  
 विघ्नक (सं० लि०) विघ्नक, बाधा डालनेवाला।  
 विघ्नकर (सं० लि०) विघ्न करतीति विघ्न क-ट। विघ्न  
 कर्ता, विघ्न करनेवाला।  
 विघ्नकर्त्ता (सं० लि०) विघ्नकर, बाधा डालनेवाला।  
 विघ्नकारी (सं० लि०) विघ्न कर्त्ता शोभ्यमान्येति, क-विभिः।  
 १ चोटकारण। २ विघातो बाधा उपस्थित करनेवाला।  
 विघ्नहन (सं० लि०) विघ्न करीत नि विघ्न ह-चिउप्।  
 विघ्नहारी। पुरुषोत्तमदिनामें मित्रा है, कि काक यदि बाँह  
 मोरने प्रतिशोभ गतिमें शब्द करता हुआ असा जाये,  
 तो वाक्यमें विघ्न उपस्थित होता है।  
 फिर दूसरा अण्ड बिना है, कि कृत्वा यदि दान  
 मोक्ष न्य भोट बाटे, तो वैश्वामित्रको विघ्नोक्षण प्राप्त  
 होता है। विघ्न भोट छोड़ कर यदि बह मुह बाटे, तो  
 परीसे हुए मोक्षणमें भी बाधा पहुँचती है।

(द्वारा ० पृ६।१०)

विघ्नजित् (सं० पु०) विघ्ननायक, गणेश।  
 विघ्ननायक (सं० पु०) विघ्न ना नायका विघ्नोभ्यारत्वात्।  
 गणेश।  
 विघ्ननायक (सं० पु०) विघ्नना नाशक। गणेश।  
 विघ्ननाशन (सं० पु०) नाशयतीति नाशनः विघ्नना  
 नाशना, पशुतोत्। गणेश।  
 विघ्ननि (सं० पु०) गणेश।  
 विघ्नपिप (सं० क्लो०) यबहल यवापु, ज्रीकी पीसी।  
 विघ्नराज (सं० पु०) विघ्नना राजा, इ तत्।  
 गणेश।  
 विघ्नवत् (सं० लि०) विघ्नविशिष्ट. विघ्नयुक्त।  
 विघ्नविनायक (सं० पु०) विघ्नना विनायक। गणेश।  
 विघ्नहस्त (सं० पु०) १ गणेश। (लि०) २ विघ्नहर्त्ता,  
 विघ्न हर्नेवाला।  
 विघ्नहार (सं० पु०) १ गणेश। (लि०) २ विघ्नहारक।  
 विघ्नधिप (सं० पु०) गणेश।  
 विघ्नान्तक (सं० पु०) विघ्ननामरतक। विघ्नकर गणेश।  
 विघ्निन (सं० लि०) विघ्नो ज्ञानोऽस्य तारकादिसकारितक्।  
 ज्ञानविघ्न, जिनके विघ्न उपस्थित हुआ हो।  
 विघ्नेश (सं० पु०) विघ्ननामीश्वर। गणेश।  
 विघ्नेशवाहन (सं० पु०) विघ्नेशस्य वाहन। इ तत्। महा  
 मूर्ति, गणेशका वाहन, गृहा।  
 विघ्नोत्तम (सं० पु०) गणेश।  
 विघ्नोभर (सं० पु०) विघ्ननामीश्वर। गणेश।  
 विघ्नोत्तमकाष्ठा (सं० स्त्री०) विघ्नोत्तमस्य गणेशस्य  
 काष्ठा प्रिया। तन्पुत्रोत्तमोऽस्य प्रागभ्यस्तात्। स्थित  
 पूर्वा, सफेद दूध।  
 विघ्न (सं० पु०) अम्भानुर चोड्केवा गुरुर।  
 विघ्नचित (सं० लि०) यबदाया हुआ।  
 विघ्नचित (सं० पु०) १ मन्त्रिकादेश एक प्रकारकी  
 अमेका। २ दमनक वृक्ष, हीमेका पेड़।  
 विघ्नक (सं० लि०) १ अक्षान। (पु०) २ पुराणानुसार  
 एक राजबका नाम।  
 विघ्नहण (सं० पु०) विघ्नपेय अन्ते चर्मादिमुपविगतोति  
 वि-व्यह (अनुरातोत्तरक हकारो। पा ३।३।५८) इति

कर्त्तरि युच् । १ पण्डित, विद्वान् । ( त्रि० ) २ निपुण, पारदर्शी । ३ नानार्थदर्शी । "विचक्षणः प्रथमना-  
पृणन्" ( ऋक् ४।५।१२ ) 'विचक्षणः रिविधं द्रष्टा'  
( सायण ) ४ क्षानी, विद्वान् । ५ दक्ष, कुशल ।

विचक्षणा ( सं० स्त्री० ) विचक्षण टाप् । नागदन्ती ।

( राजनि० )

विचक्षस् ( सं० पु० ) वि-चक्ष ( चक्षेनेहूनं चिञ्च, उण्  
४।२३२ ) \*ति अस्ति । उपाध्याय, शिक्षक ।

विचक्षुस् ( सं० लि० ) विगत प्रत्यक्षितेऽपि वरतुनि शयगतं  
नञ्चु र्वस्य । १ विमनाः, उद्विन्नचित्त, उदाम् । विगने नष्टे  
चक्षुषो यस्य । २ विगतचक्षुः, जिसकी आंख नष्ट हो गई  
हो । ( पु० ) ३ वृष्णिव श्राय एक योद्धा ।

( हरिवंश १४।१६ )

विचक्षुतु ( सं० पु० ) महाभारतोक राजभेद ।

विचक्षुर ( सं० त्रि० ) विगनानि चत्वार्यस्य ( अचक्षुरधिकतुर  
सुचक्षुरेत्यादि । पा ४।४।७७ ) इति अप् समासान्त । विना  
चारके ।

विचक्ष्त्र ( सं० लि० ) विगतश्चाद्रो यत्र । चन्द्रहोन, चन्द्र-  
रहित ।

विचक्ष्त्रा ( सं० स्त्री० ) रात्रि, रात ।

विचक्ष्त्रा ( सं० स्त्री० ) रात्रि ।

विचक्ष्य ( सं० पु० ) वि-चि-अप् । १ अन्वेषण, जाच पड  
नाल करना । २ एकत्रीकरण, इकट्ठा करना ।

विचक्ष्यन् ( सं० क्ली० ) विशेषेण चयनं वा वि चि ल्युट् ।  
अन्वेषण, जाच-पडताल करना । २ एकत्रीकरण, इकट्ठा  
करना ।

विचक्ष्यिष्ठ ( सं० लि० ) अतिशय नाशक ।

विचक्ष्र ( सं० लि० ) वि चक्ष-अप् । विचक्षण, धूमना  
फिरना ।

विचक्ष्रण ( सं० क्ली० ) वि-चक्ष-ल्युट् । धूमण, पर्यटन  
करना । २ चलना ।

विचक्ष्रणीय ( सं० लि० ) वि-चक्ष-अतोयर् । विचक्षणयोग्य,  
धूमण करने लायक ।

विचक्ष्रन्ता ( हिं० क्लि० ) चलना फिरना ।

विचक्ष्रिचका ( सं० स्त्री० ) विक्षेपेण चर्च्यते पाणिपादस्य  
त्वंक् विदायतेऽनया इति चर्चा तर्जने ( रोगालयाया यद्ग्ल् )

पहुल्यम् । पा ३।३।१०५ ) इति ण्युल् टाप्, टागि अत इत्वं । १  
रोगनिशेष, प्रार्थि । पर्याय—फच्छु, पाम, पामा । लक्षण—  
श्यामवर्ण कण्डुयुक्त बहुस्नायुशील जो पीडा हाथ-पैरमें  
उत्पन्न होती है उसे विचर्षिका कहते हैं । किसी किसी-  
का मत है, कि विचर्षिका और विपादिका दोनों एक ही  
रोग हैं, केवल नामका प्रभेद है । फिर कोई कोई कहते हैं,  
विचर्षिका रोग हाथमें और विपादिका रोग पैरमें होता  
है । फिर किसीके मतानुसार विपादिका विचर्षिकासे  
भिन्न है । दधेली और तलवा जब बहुत दर्दमें साथ फट  
जाता है, तब उसे विपादिका कहते हैं ।

इस रोगमें भावप्रकाशोक पञ्चनिम्बकादलेह विशेष  
उपकारी है । कुष्ठरोग उत्पत्ति ।

विचर्षिका रोग स्वल्पकृष्टमें गिना जाता है, अतएव  
यह रोग महापातकज है ।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि महापातकी महापातकके  
कारण नरकभोगके बाद जन्म ले कर महापातकके चिह्न-  
स्वरूप रोग भोगता है । महापातकज रोग होनेसे महा-  
पातकका प्रायश्चित्त करने पर धर्मकर्मका अधिकारी होता  
है । अनप्य विचर्षिका रोगो महापातकी है, ऐसे धर्म  
कर्ममें अधिकार नहीं है ।

बृहत्संहितामें लिखा है, कि अग्निके कारण भूमि-  
कम्प होनेसे विचर्षिका रोग उत्पन्न होता है । २ छोटो  
कुंसां ।

विचर्षी ( सं० स्त्री० ) विचर्षिका रोग । ( सुयु० उ )

विचर्षाण ( सं० त्रि० ) चर्षाहीन ।

विचर्षणि ( सं० त्रि० ) विविध द्रष्टा, विविध दर्शनकारी ।

"यं देखसोऽथवा स विचर्षणिः" ( ऋक् ४।२६।५ ) 'विचर्षणि-  
र्विविधं द्रष्टा' ( सायण )

विचल ( सं० त्रि० ) वि-चल अप् । १ अस्थिर, चञ्चल ।

२ जो धरापर हिलता रहता हो । ३ स्थानसे हटा हुआ ।  
४ प्रतिज्ञा या सङ्कल्पसे हटा हुआ ।

विचलता ( सं० स्त्री० ) १ विचल होनेकी क्रिया या भाव,  
चञ्चलता । २ धवराहट ।

विचलन ( सं० क्ली० ) वि-चल-ल्युट् । १ कम्पन । २ स्थलन ।

विचलित ( सं० लि० ) वि-चल-क्त । १ पतित, गिरा हुआ ।

२ अस्थिर, चञ्चल । ३ प्रतिज्ञा या सङ्कल्पसे हटा हुआ,  
दिगा हुआ ।

विचार (सं० पु०) विद्येयन कर्त्तव्यं यदाचार्यनिर्णयं ज्ञानं विचारं यत् । १ वह जो कुछ मनमें खोना जाय अथवा सोच कर निश्चित किया जाय, किसी विषय पर कुछ सोचने या सोच कर निश्चय करनेकी क्रिया । २ वह बात जो मनमें उत्पन्न हो, मनमें उठनामो कोर बात, भावना, क्वाल । ३ तत्त्वनिर्णय, मुक्तदमैकी सुनवाई और पैसना यचार्यनिर्णय, निर्णय, मोर्मासा, सन्निध्य विषयमें प्रमाणादि द्वारा अर्थ परीक्षा । किसी सन्निध्य विषयका तत्त्व निर्णय करनेमें प्रमाणादि द्वारा संदेह दूर करके जो यचार्य तत्त्व-निर्णय किया जाता है, उसे विचार कहते हैं । यचार्य-तक, निर्णय, गुणा, यर्था, संकषा, विचारणा, अर्थ्यन, शक्यान, विचारण, विचारक, अर्थ, अर्थ, ऊह, वितक य, प्रणिधान, समाधान । ( अठार )

४ भाष्योक्त अक्षयपिरीय । मुक्तियुक्त वाक्य द्वारा यहाँ अर्थार्थका साधन होता है, उस विचार कहते हैं ।

( तात्पर्य १/१०० )

मन्नादि धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि राजाको चाहिये कि ये पक्षपातभूय हो कर पादो और प्रतिवादीका विवाद सुन कर उचित विचार करे । यदि स्वयं न कर सके तो प्रतिनिधिको नियुक्त करे । उसीसे यह काय होगा । विवादादिषु मन्नादि शास्त्रमें व्यवहार नामस उद्धेय दिया है । राजा व्यवहारका निर्णय करनेके लिये मन्त्रपाकुशम मन्त्रियोंके साथ धर्माधिकार समा (विचार सय) में प्रवेश करे । ये यहाँ पर बड़े तन्त्रसे उठ बा बैठ कर विचारार्थ करे । राजा जिन सब विषयोंका विचार करेगा, वे अठारह प्रकारके धर्मो धर्मो हैं । इस कारण इन का अठारह व्यवहारपद नाम पड़ा है । अठारहानि निर्णय प्रत्यामिक्कय, सम्भूयमसुरधान इत्यादिनादि, धैतना धाम, सन्निध्यवतिकम अयविक्रयानुगत, स्वामिपात्र विचार, मोर्माविचार वाक पादयय इण्डवाक्य, स्नेय, गार्हस, मोर्लोअरण, मोपुण्यधर्मोयमाय और धूत ये अठारह पर-व्यवहार अर्थात् विचार्य विषय हैं । यही सब है कर विचार उपविष्ट होता है । राजा धर्मका आश्रय है कर इन सब विषयोंका विचार करे । राजा यदि स्वयं ये सब कार्य न करवा सक, तो विद्वान् ब्राह्मण को इसमें नियुक्त करे । इन विद्वान् ब्राह्मणका तीन

सम्बन्धि साय धर्माधिकारणसामने प्रथम कर बैठ कर विचार करना चाहिये ।

जिस सामने शुक, यजुः और सामवेदेका येम तीन साम्य ब्राह्मण रहते हैं, इस सामाके ब्राह्मणमा कहते हैं । विद्वानोसे पारितुस्त इस सामां यदि अभ्याय विचार दो, तो सभी समासदू पतित होते हैं । विचारकेके सामने यदि अधर्म कर्त्तक धर्म और मिथ्या कर्त्तक सत्य नष्ट हो, तो विचारकगण विनष्ट होते हैं । शी मनुष्य धर्म का नष्ट करता है धर्म भी उसको नष्ट कर शक्यता है । अतएव धर्म अतिरमणाय नहीं है । धर्मका आश्रय ले कर निरपेक्ष भावमें विचार करना उचित है ।

अभ्याय विचार करनेसे जो पाप होता है, उसका ४ भागोंमेंसे एक भाग मिथ्याभिधोगीर्षा, एक भाग मिथ्या साक्षोत्रे, एक भाग कुछ समासदृष्टा और एक भाग राजाका प्राप्त होता है । किन्तु जिस सामने भ्याय विचार होता है यहाँ राजा निष्ठाप रहते हैं तथा सम्भगण भी पापभूय होते हैं ।

राजा शूद्रको कभी भी विचारकार्यमें नियुक्त न करे । वैदिकी धार्मिक ब्राह्मणका यदि अभाव हो, तो शुभदीन ब्राह्मणको विचारकार्यमें नियुक्त कर सकते हैं । यदि शूद्र सर्वशास्त्रवेत्ता और व्यवहारार्थशुद्ध भी क्यों न हो तो भी इस विचारकार्यमें नियुक्त न करे । जिस राजाका सामन शूद्र धर्माधर्मका विचार करता है, उसका राज्य अति शीघ्र विनष्ट होगा है ।

राजाके धर्मोसन पर बैठ ईशकपादोको प्रणाम कर स्थिरचित्तम विचार करना चाहिये । ये अर्थ और धर्म क्षेत्रोंके समक कर धर्म और अधर्मके प्रति दृष्टि एक ब्राह्मणादि धर्माधर्ममें बाड़ी प्रतिवादीके मारी कार्य हैले । राजा विचारक समय वाश और प्रतिवादीका मनोभाव जाननेका कोशिश करे । आकार, इच्छित गति, वेद्य, कथावाचा तथा गेह और सुख विचार द्वारा भाव्योका मनोमत भाव जाना जाना है । मनयय इनके प्रति मर्क्य रचना आपश्यक है ।

विचारार्थो हो कर यदि कोई राजाक निरट उपस्थित ही, तो राजा माफो द्वारा उसका मथा मर्क्या निर्णय करके विचार करे । यहाँ माफो नहीं रहता है, यहाँ शयन

द्वारा उसका निर्णय करना होता है। ( मनु ८ अ० )

याज्ञवल्क्यस्मृतिसहितामे लिखा है, कि राजा लोभ शून्य हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं विचार करें। मीमांसा व्याकरणादि तथा वेदशास्त्रमें अभिज्ञ, धर्मशास्त्रविद्वु धार्मिक, सत्यवादी तथा जो शत्रु और मिलमें पक्षगतशून्य हैं, राजा उन्हीं सब ब्राह्मणोंको तथा यणिकोंको समासद धर्यावें। अनिवार्य कार्य वशतः राजा यदि स्वयं स्वभावे न जा सकें, तो वे एक सर्वधर्मज्ञ ब्राह्मणको चढ़ा भेज दें। पूर्वोक्त समासद्वयगण लोभ अथवा भयवशतः धर्मशास्त्रविद्वु वा आचार-विद्वु विचार करें, तो पराजित व्यक्तिको जो दण्ड हुआ है, राजा उन विचारकोंमेंसे प्रत्येकको उसका दृता दण्ड दें।

विचारक विचारकालमें साक्षी प्रमाणादि ले कर विचार करें। वादी और प्रतिवादी इन दोनों पक्षमें यदि गद्वाही ली जाये तो जिसका घोट ज्यादा हो उसी पक्षको जीत होंगे, दोनों पक्षमें यदि समान मनुष्य हों, तो जो अधिक गुणवान् है उन्हींको वात प्राह्य है। साक्षिगण जिसकी लिखित प्रतिष्ठाको सत्य बनलाने हैं, वह जयी होता है और जिसकी लिखित प्रतीक्षाके विपरीत कहने हैं उसकी पराजय होती है। कुछ साक्षी यदि एक तरह कहें और अन्य पक्षीय वा स्वपक्षीय दूसरे दूसरे अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति अथवा बहुन-से लोग दूसरी तरह माक्ष्य प्रदान करें, तो पूर्वसाक्षी कूटसाक्षी होंगे। विवादमें पराजित व्यक्तिको जो दण्ड होगा, राजा कूटसाक्षीको उसका दृता दण्ड दें। ब्राह्मण यदि कूटसाक्षी हो, तो राजा उसे राज्यमें निकाल बाहर करें।

राजा साक्षा प्रमाणादि ले कर धर्मशास्त्रानुसार विचार करने। अधर्म विचार करनेसे वे पापभाग्य, इस लोभमें अपयज्ञी और पत्तोऊमें निरयगामी होते हैं। (याज्ञवल्क्यस० २ अ०) विशेष विवरण व्यवहार शब्दमें देखो। विचारक ( सं० पु० ) विचार-णिच् ण्वुल्। १ मीमांसा कारक, विचार करनेवाला। २ न्यायकर्त्ता, फैसला करने वाला। ३ नेता, पथ प्रदर्शक, ४ गुप्तचर, जासूस।

विचारकर्त्ता ( सं० पु० ) विचार कृ तृच्। १ वह जो किसी प्रकारका विचार करता हो। ( वह जो अभियोग आदि

सुन कर उसका निर्णय करता हो, न्यायाधीश।

विचारण ( सं० पु० ) १ वह जो विचार करना जानता हो। २ वह जो अभियोग आदि का निर्णय या निपटारा करता हो।

विचारण ( सं० क्लो० ) विचार-णिच् ल्युट्। १ विचार, मीमांसा। २ चिन्तन, संग्रह। ३ सत्त्वधर्म श्रापनिवृत्त-कृत-जानन्तपरिशिष्ट ग्रन्थमें गोपीनाथ तर्काचार्यने पैसा लिखा है—

किसी न किसी अंशमें एक धर्मशिशिष्ट पदार्थमें जो अनेक प्रकारका विपरीत तर्क चित्तर्क उपस्थित होता है उसे संग्रह वा विचारण कहते हैं। यह तीन प्रकारका माना गया है। पहला, विशेष धर्मके ऊपर लक्ष्य न करके किसी एक धर्मका सामग्रस्य देख एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका संग्रह, जैसे परिस्पन्दन वा चक्रगति आदि न देख कर केवल लम्बाई आदि आकृतिगत सद्गता देख कर ही रज्जुमें सर्प का संग्रह होता है, यह रज्जु है वा सर्प ? दूसरा, वस्तुगत्या किसी प्रकारके धर्मका उपलब्ध दृष्ट-गोचर न हो कर हा दूसरे पदार्थमें संग्रह उपस्थित होता है, जैसे गद्य नित्य है वा अनित्य ? तीसरा, कोई एक असाधारण धर्म देख कर भी 'कहीं कहीं' चित्तर्कको कारण हो जाता है, जैसे गन्ध पृथिवीका असाधारण धर्म है, यह जो क्षितिके सिवा और कोई पदार्थ नहीं है, इसका विद्वेषरूपसे अनुसन्धान न करके संग्रह होता है, कि क्षिति नित्य है वा अनित्य ? अथवा गन्धाधिकरण नित्य है वा अनित्य ?

३ पर्यायन करना, घूमना फिरना। ४ पर्यायन कराना, घुमाना फिराना।

विचारणा ( सं० स्त्री० ) विचार-णिच् युच् टाप्। १ विचार, विवेचना। २ मीमांसाशास्त्र। ३ घूमने फिरने या घुमाने फिरानेकी क्रिया या भाव।

विचारणीय ( सं० त्रि० ) विचार-णिच् अनियर्। १ विचार्य, विचार करनेके योग्य। २ सद्भिन्न, जिसे प्रमाणित करनेकी आवश्यकता है। ( क्ली० ) ३ शास्त्र। विचारना ( हि० क्लि० ) १ विचार करना, सोचना। २ पृथक् करना। ३ पता लगाना, ढूँढना।

विचारपति ( हि० पु० ) वह जो किसी बड़े न्यायालयमें

बेड कर मुकदमों भाविके फैसला करता हो न्यायाधीश ।  
 विचारभू ( स० स्त्री० ) विचारारम्भ, अद्यावत ।  
 विचारवित्तव्य ( स० स्त्री० ) विचार गिण्य-तन्म्य । विचार  
 जीव, विचारके योग्य ।  
 विचारवाद् ( स० पु० ) वह जिसमें सोचने समझने या  
 विचारनेकी अच्छी शक्ति हो विचारजीव ।  
 विचारशक्ति ( स० स्त्री० ) वह शक्ति जिसकी सहायतासे  
 विचार क्रिया जाय, सोचने या मसला सुटा पहचाननेकी  
 शक्ति ।  
 विचारशास्त्र ( स० स्त्री० ) मामांशाशास्त्र । मीमांसा देखो ।  
 विचारशील ( स० पु० ) वह व्यक्ति जिसमें किसी विषयको  
 सोचने या विचारनेकी अच्छी शक्ति हो, विचारवान् ।  
 विचारशीलता ( स० स्त्री० ) विचारशील होनेका भाव  
 या धर्म बुद्धिमत्ता ।  
 विचारस्थल ( स० पु० ) १ वह स्थान जहाँ किसी विषय  
 पर विचार होता हो । २ न्यायालय, अदालत ।  
 विचारार्थस ( स० पु० ) वह जो न्याय-विभागका प्रधान  
 हो प्रधान विचारक ।  
 विचारार्थममगम ( स० स्त्री० ) विचारके लिये विचार  
 गतिपौका एवम् समायेग ।  
 विचारालय ( स० पु० ) वह स्थान जहाँ अभियोग  
 भादिका विचार होता हो न्यायालय कहहरी ।  
 विचारविद्या ( स० स्त्री० ) १ प्राचीनकालका यह शास्त्री  
 जो घरमें बसी हुए फल पौधोंकी रस भास तथा इनो  
 प्रकारके और काम करती थी । २ वह स्त्री जो अभि  
 योग भादिका विचार करती हो ।  
 विचारित ( स० स्त्री० ) विचार न ज्ञातऽस्त्य इति विचार  
 ( तद्वत् संज्ञाव तारकादिभ्य इत्च् । पा ५।२।३६ ) इत्च्  
 वि चर षिच् क् । १ विवेचित, जिस पर विचार किया  
 जा चुका हो । पर्याय—विगम, वित्त । ( अमर ) २ जो  
 धर्मो विचारार्थीन है, जिस पर विचार होनेको हो ।  
 विचारा ( स० स्त्री० ) विचार करने, जिज्ञेऽस्त्य विचार  
 जिति । १ विचारकर्ता, जो विचार करता है । २ विचारक  
 कर्ता जो एपर एपर चलता हो । ३ जिस पर धर्मके  
 लिये बहुत बड़े बड़े मार्ग बने हैं, जैसे पृथ्वी । ( पु० )  
 ४ अथर्वके एक पुस्तका नाम ।

विचार ( स० पु० ) अज्ञानक एक पुस्तका नाम ।  
 ( भागवत १०।६।१६ )  
 विचार्य ( स० स्त्री० ) वि चर षिच् यत् । विचारणीय,  
 जिस पर विचार करनेकी आवश्यकता हो ।  
 विचार्यमाण ( सं० स्त्री० ) वि चर षिच् ज्ञानच् । विचार  
 णीय, विचार करनेके योग्य हो ।  
 विचार्य ( स० स्त्री० ) वि च्छ मण् । अभ्यस्त, भला  
 राम ।  
 विचार्यन ( स० स्त्री० ) विशेषेण चारुत वा वि च्छ  
 षिच्-स्फुट् । विशेषरूपसे चारुत, अच्छी तरह हटाना  
 या खाना । २ नष्ट करना ।  
 विचारिण् ( स० स्त्री० ) वि च्छ जिति । विचरन्ती,  
 च्छत् ।  
 विचारण ( स० स्त्री० ) वि-चरन् ष्यत् । विचारणीय,  
 विचलनके योग्य ।  
 विचि ( स० पु० स्त्री० ) वैयक्तिक ज्ञानानि पूर्यगिच कश्चैति  
 विच्य ( श्वात्वात् कित् । उच्य ४।१।१६ ) इति इन् मस्य कित् ।  
 चोचि तरङ्ग, सहर ।  
 विचिचिरसन ( स० स्त्री० ) विचिचिरसा, सन्देश ।  
 विचिचिरसा ( स० स्त्री० ) विचि चित्तमनमिति वि चित्  
 सन् म राप् । १ सन्देश अभिष्यय । २ वह सन्देश  
 जो किसी विषयमें कुछ निश्चय करनेके पहले उत्पन्न  
 हो और जिससे बुर करके कुछ निश्चय किया जाय ।  
 विचिकोचित ( स० स्त्री० ) परहितेष्ययुक्त ।  
 विचित् ( स० स्त्री० ) विचिच्यन्ति वि चित् क्विप् ।  
 विचैक द्वारा ध्यानकारी । ( शुक्लब्रह्म ४।२४ )  
 विचित ( स० स्त्री० ) वि च-क् । अग्निष्ट, जिसका  
 अभ्ययण हो चुका हो ।  
 विचिति ( स० स्त्री० ) १ विचार, सोचना । २ अनु  
 सम्धान शोधपद्धताय ।  
 विचित्त ( स० स्त्री० ) १ अथैत वैशेष्य । २ जिसका  
 चित्त ठिकाने न हो, जो अपना कर्तव्य न समझ सकता  
 हो ।  
 विचिचि ( स० स्त्री० ) १ वैद्वेगी । २ वह अबस्था  
 जिसमें प्रमुग्धका चित्त ठिकाने न रहे ।  
 विचित्य ( स० स्त्री० ) अनुसन्धेय, विचार्य ।

विचित्र (सं० त्रि०) विशेषेण चित्रम् । १ कर्तु र्वर्णविशिष्ट, जिसमें कई प्रकारके रंग हों । २ जिसमें किसी प्रकारकी विलक्षणता हो, विलक्षण । ३ रम्य, सुन्दर । ४ जिसके द्वारा मनमें किसी प्रकारका आश्चर्य उत्पन्न हो, विस्मित या चकित करनेवाला ।

( पु० ) रौच्यमनुके एक पुत्रका नाम । ( मार्कण्डेय-पु० ६४३१ ) ६ अशोकवृक्ष । ७ निलकण्ठ । ८ भूर्जवृक्ष, भोजपत्र । ९ अर्धालङ्कारविशेष । यह अलङ्कार उस समय होता है, जब किर्मा फलको सिलिके लिये किसी प्रकारका उलटा प्रयत्न करनेका उल्लेख किया जाता है । उदाहरण—

उत्पन्निके लिये प्रणाम करता है, जीवनके लिये जीवन त्याग करता है, सुखके लिये दुःखभोग करता है, इसलिये सेवकके सिवा और कौन मूर्ख है ? यहां उत्पन्निके लिये प्रणाम या नम्र होना तथा सुखके लिये दुःखभोग और जीवनके लिये प्राणत्याग अभिलषित फलसिद्धिके लिये विरुद्ध विषयोंका वर्णन हुआ है, इस कारण यहां विचित्रालङ्कार हुआ । जहां ऐसे विरुद्ध विषयका वर्णन होगा, वहा यह अलङ्कार होना है ।

विचित्रक ( सं० पु० ) विचित्राणि चित्राणि यस्मिन्, बहु-प्रोद्गी क्तम् । १ भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका वृक्ष । ( राजनि० ) २ तिन्त्रकवृक्ष । ३ अशोकवृक्ष । विचित्र स्वार्थे कन् । ४ विचित्र ।

विचित्ररथ ( सं० त्रि० ) विचित्रा कथा यत् । आश्चर्य-कथानुक्त, विचित्र बातोंसे भरा हुआ ।

विचित्रना ( सं० स्त्री० ) विचित्रस्य भावः तल् टाप् । १ विचित्रता भाव या धर्म । २ रगविरंगे होनेका भाव ।

विचित्रदेह ( सं० पु० ) विचित्रा देहा यस्य । मेघ, बादल । २ नाना वर्णदेह, रंगविरंगा शरीर । ३ आश्चर्य शरीर । विचित्ररूप ( सं० त्रि० ) विचित्र रूपं यस्य । आश्चर्य रूपविशिष्ट, आश्चर्यरूप ।

विचित्रवर्षीन् ( सं० त्रि० ) विचित्रं वर्षति वृष-पिति । आश्चर्य वर्षणशील, अतिवर्षी ।

विचित्रवीर्य ( सं० पु० ) विचित्राणि वीर्याणि यस्य । चन्द्रवंशीय राजविशेष, ज्ञान्तनुराजके पुत्र । महाभारतमें लिखा है, कि कुरुवंशीय राजा ज्ञान्तनुने गङ्गासे विवाह

किया । गङ्गाके गर्भसे भीष्म उत्पन्न हुए । एक दिन राजा ज्ञान्तनु सत्यवतीके कालावण्य पर मुग्ध हो गये । भीष्मको जब पिताका अभिप्राय मालूम हो गया, तब उन्होंने आज्ञाचन ब्रह्मचार्यकी प्रतिप्रा कर सत्यवतीसे पिताका विवाह करा दिया । सत्यवती गन्धकाली नामसे प्रसिद्ध थीं । सत्यवतीको विवाहसे पहले ही पराशरसे गर्भ रह चुका था और उससे द्वैपायनका जन्म हुआ था । पीछे ज्ञान्तनुने उन्हें चित्राङ्ग और विचित्रवीर्य नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । चित्राङ्ग तो छोटी अवस्थामें ही एक गन्धर्व द्वारा मारा गया था, पर विचित्रवीर्यने बड़े होने पर राज्याधिकार पाया था । इसने काशिराजकी अम्बिका और अम्बालिका नामकी दो कन्याओंके साथ विवाह किया । किन्तु थोड़े ही दिनों बाद निःसन्तान अवस्थामें ही इसकी मृत्यु हा गई । विचित्रवीर्यके निरसन्तान मर जाने पर जिससे ज्ञान्तनुका वंश लोप न हो, इस उद्देश्यसे सत्यवतीने अपने पहले पुत्र द्वैपायनकी सुलाया और उसे विचित्रवीर्यकी विधवा स्त्रियोंके साथ नियोग करनेकी कहा । तदनुसार द्वैपायनने धृतराष्ट्र और पाण्डु नामके दो पुत्र उत्पन्न किये थे ।

( मा त आदिप० ६५ )

विचित्रवीर्यसू ( सं० स्त्री० ) विचित्रवीर्यस्य सू प्रसूर्जनी । सत्यवती ।

विचित्रशाला ( सं० स्त्री० ) घट स्थान जहां अनेक प्रकारके विचित्र पदार्थोंका संग्रह हो, अजायबघर ।

विचित्रा ( सं० स्त्री० ) विचित्रं नानाविध वर्णमस्त्यस्या इति अर्थे आविस्वाद्च् स्त्रियां टाप् । १ सृगैर्नाक, सफेद इन्द्रायण । २ एक रागिणी । इसे कुछ लोग मीरव रागकी पांच स्त्रियोंसे एक और कुछ लोग त्रिवर्ण, बरारी, गौरी और जयन्तीके मेलसे बनी हुई संकर जातिकी मानते हैं ।

( त्रि० ) ३ विचित्रवर्णविशिष्ट, रंग विरंगा ।

विचित्राङ्ग ( सं० त्रि० ) विचित्राणि अङ्गानि यस्य । १ मयूर, मोर । २ घ्याघ, वाघ । ३ आश्चर्य शरीर ।

विचित्रान्त ( सं० स्त्री० ) सेचरिका, पिचड़ी ।

विचित्रापीड ( सं० पु० ) विद्याधरविशेष ।

( कथावर्तिषा० ४५११५ )

विचित्रित ( सं० त्रि० ) विचित्र यस्य जातमिति तारका-

द्विबाहिनम् । १ नानावर्णयुक्त, रंग-विरंगा । २ बाह्यधर्म  
 अन्तः ।  
 विचित्रतम ( सं० द्वि० ) चिन्ता करना, मोचना ।  
 विचित्रतमोय ( सं० द्वि० ) वि चिन्तित मनीषर् । विचित्रि  
 तम्य, जो चिन्ता करने या सोचने योग्य हो ।  
 विचित्रता ( सं० स्त्री० ) विशेष प्रकारसे चिन्ता साथ  
 चिन्तार ।  
 विचित्रित ( सं० द्वि० ) १ विशेष रूपसे चिन्तित । २ वि  
 शेष चिन्ताके विषयोभूत ।  
 विचित्रितवृत् ( सं० द्वि० ) विचित्रता ।  
 विचित्रित्य ( सं० द्वि० ) वि चिन्तित पत् । १ विचित्रतमोय,  
 जो विशेषरूपसे चिन्तन करने या सोचनेके योग्य हो । २  
 जिसमें किसी प्रकारका समूह हो सम्पत् ।  
 विचित्रयमान ( सं० द्वि० ) वि चिन्तित-गालम् । जो  
 चिन्तित होता है चिन्तना चिन्तार किया जा रहा है ।  
 विचित्रवृत् ( सं० द्वि० ) वि-चि शब्दार्थ व्याप्यं पत् । विष  
 यनकारी संग्रह करनेवाला ।  
 विचित्रक ( सं० पु० ) प्राजद्वर कोटमेव सुभुनके भद्रुमार  
 एक प्रकारका जटोरुका कोश ।  
 विचो ( सं० स्त्री० ) विचि (कश्चिकारादिनि) स्त्रीप् । तरङ्ग  
 लहर ।  
 विचोरिन् ( सं० द्वि० ) वीरहीन बन्धरहित ।  
 विचूर्पण ( सं० द्वि० ) घबघूलन, बन्धी तरह घूर करना ।  
 विचूर्णित ( सं० द्वि० ) बघबघविचरित, जो घूर घूर  
 किया गया हो ।  
 विचूर्णोम् ( सं० स्त्री० ) चूर्णोम् ।  
 विचूर्णन ( सं० द्वि० ) चूर्णाधारा ।  
 विचुत् ( सं० स्त्री० ) विमुक्त, जिससे मुक्तिदान किया गया  
 हो । ( सूक् १५५।१ )  
 विचेतन ( सं० द्वि० ) १ अचेतन, बेहोश । २ विवेकहीन,  
 जिससे भस्ते भूरेता ज्ञान न हो ।  
 विचेतवित् ( सं० द्वि० ) अज्ञान, अज्ञेय ।  
 विचेता ( सं० पु० ) विचेतवृत् से जो ।  
 विचेत् ( सं० द्वि० ) अज्ञेय, अज्ञान ।  
 विचेतव्य ( सं० द्वि० ) वि चि-तम्यत् । विषयमोय, जो  
 पृथक् पृथक् गावर्मे एक एक कर संग्रह किया जाय ।

विचेतस् ( सं० द्वि० ) विगतं चिद्वद् वा चेतो पश्य ।  
 १ विगतचित्त, जिसका चित्त ठिकाने न हो । २ चिद्वद्  
 चित्त, बुद्धचित्त । पर्याय—दुर्गमस्, अन्तर्गमस्, विमगस् ।  
 ( इम )  
 ३ विगिद्य ज्ञान हेतुभूत जिससे विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न  
 हो । ४ विगिद्य ज्ञान, जिससे किसी विषयका विशेष ज्ञान  
 हो । ५ अज्ञान, बेहोश । ६ दुष्ट, पापी । ७ पूर्व, वेदकृत ।  
 विचेय ( सं० द्वि० ) वि चि-यत् । विषयमोय अन्वयेय  
 करनेके योग्य ।  
 विचेद्य ( सं० द्वि० ) १ वैद्यारहित जिसमें किसी प्रकारकी  
 चोद्या न हो, जो हिंसता शोभता न हो । २ चिद्वद् वेद्या  
 शीम, जो चिद्वद् चोद्या करता हो ।  
 विचेद्यन ( सं० स्त्री० ) चिद्वद् वेद्या । पीडा भाङ्गिसे बुरी  
 वेद्या करना, इधर उधर भोटना, तड़पना ।  
 विचेद्या ( सं० स्त्री ) बुरी या बराब वेद्या करना, मुह  
 बनाना या हाथ-पैर पटकना ।  
 विचेद्यित ( सं० द्वि० ) विशेषेण चोद्यितं गतिर्यस्य ।  
 १ विगत । विशेषेण चोद्यितः इति । २ (व्येय  
 चोद्यायुक्त । विगतं चोद्यितमस्तीति । ३ वेद्याशून्य ।  
 ४ अन्वेषित । ( बली० ) वि-चेद्य-भाषे लः । ५ विश्वेय  
 चोद्या । ६ विचलन भङ्गपरिचलन । ७ व्यापार, क्रिया ।  
 विच्छन्नक ( सं० पु० ) सुनिपयन्नक शाक, सुसतीका  
 साग ।  
 विच्छन्न ( सं० पु० ) १ प्रासाद, महल । २ मन्दिर, ईश  
 क्तप ।  
 विच्छन्नक ( सं० पु० ) विशिष्टशब्दोऽभिप्रायोऽन्न,  
 विशिष्टशब्दानिर्मितो वा इति वि च्छन्न साध कम् ।  
 ईशान्य ईशमन्दिर । अमरदोकार्मे अरतन लिखा है,  
 कि दो या तीन लठिका जो प्रकान बनाया जाता है, उसे  
 विच्छन्नक कहते हैं ।  
 विच्छन्नस् ( सं० द्वि० ) १ छन्दोहीन । ( स्त्री० ) २ छन्दो  
 मूलमेव ।  
 विच्छर्त् ( सं० पु० ) समूह राशि ।  
 विच्छर्त्क ( सं० पु० ) विच्छन्नक से जो ।  
 विच्छर्त्का ( सं० पु० ) वमन, की, बकरी ।  
 विच्छत् ( सं० पु० ) वेतसजना, वे लकी लता ।





विभक्ति (स० श्लो०) पदु बोधक ।  
 विभय (स० पु०) विभ्रम भावै अर्थ । १ अय, ज्ञोत, पपत्रयका उदटा । दिग्दर्शनं इत शब्दका अर्थहार लो लिङ्गमे होता है । २ अर्जुन । अर्जुनके अनेक नाम हैं तिनमेंस एक नाम विभय है । महाभारतक विराट् वर्षमे लिखा है, कि विराट्पञ्चकुमार उत्तर सब गो पक्षाके निचे कीरबोके साथ युद्ध करतै गये, तब अर्जुन बृहन्नलादपमै इनके सारथी रूप ये । कार्यगति देख कर दृष्टान्ताने उत्तरको अपना परिचय है दिया । उत्तरने अर्जुनके समो नामोंकी सार्थकता पूछो । अर्जुनने अपनेभिन्नास्य नामोंकी उत्पत्तिका परिचय है कर इत विभय नामका ऐसा अर्थ अगया है,—“मैं रणभुगई अन्नसेनाओंके संग्राममें जाता हू, किन्तु बिना ठहरे परास्त किये मीटता नहीं हू, इसीनिचे सबोंने मेरा नाम विभय रखा है ।”

विभवात विभय-जाटकर्मै बड़ी हो सार्थकताके साथ अर्जुनके विभय नामका उल्लेख देखनेमें आता है ।  
 १ इजोमये तोषणकरके पिता । २ दिनचर्यामे श्रुतों के शुद्धबर्तनमें एक । ५ विमान । ६ यम । ७ कश्चित्के पुत्र । (कश्चित्पुराण ११ न०)

८ मैत्रवर्धनीय कश्यपपुत्र । ये काशीराज नामने विभवात थे । प्रसिद्ध काण्डवचन इन्होंने ही अगवाया था । कामिकापुराणमें लिखा है, कि सुमतिके पुत्र कश्यप और कश्यपके पुत्र विभय थे । विभयने राजा हो कर प्रथम प्रजापते पार्ष्णिबोको परास्त किया । भारतीय समो राज्य इनके हाथ आयी । पीछे इन्हे भाईगले इन्होंने मी योजनबिस्तृत काण्डवचन प्रस्तुत किया । इसी वनको अग्निको वृत्तिके लिये अर्जुनने अगवाया था । १ विष्णुके एक अनुचरका नाम । (कश्चित्पुराण ६० अ०)

१० शुद्धके एक पुत्रका नाम । ११ अयक एक पुत्रका नाम । १२ सङ्घक एक पुत्रका नाम । १३ अयद्रवके एक पुत्रका नाम । १४ आर्यवर्धनीय एक राजा । १५ सि इयमे आर्यवर्धनीयवर्षक एक राजकुमार । निर्वर्षय इव इलो । १६ शुभ सुहृत्समेद । १७ साठ स वत्समें पहला स वत्सर । १८ मोक्षन करना, अन्ना । १९ एक प्रकारका छन्द । यह कश्यपके अनुसात-सर्वेयका अन्वयण इ नामक मेह है ।

विभयक (स० लि०) विभये कुण्डला विभय-कम् । विभिता, सदा ज्ञोतमैवासा ।

विभयकण्टक (स० पु०) विभये कण्टक इव । विभय विभनकारो, विभयमे बाधा हैनेवासा ।

विभयकुञ्जर (स० पु०) विभयाय यः कुञ्जरः । १ राजकाञ्च इन्तो, राजाकी सवारोका हाथी । २ युद्धइस्ती, छडाईके मैदानमें जानेवाला हाथी ।

विभयकेतु (स० पु०) १ विभयध्वजा, अयपताका । २ राजपुत्रमेद ।

विभयक्षेत्र (स० श्लो०) १ विभयकण्ड । २ उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।

विभयगढ़—युद्धप्रदेशके अन्नगढ़ विस्तारगत एक कृषि प्रधान नगर । भूपरिमाण ३१ एकड़ है । यह जहाँ यह शहरसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । यह स्कूल डाकघर और एक प्राचीन पुर्ण है । इनके सिवा कर्नल गार्डनका स्तुतिस्तम्भ भी दिखाई देता है ।

विभयगुप्त—पूर्वाङ्गके एक प्रसिद्ध कवि । पद्मापुराण वा मनसाकी पीबालो रच कर ये पूर्वाङ्गमें बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं ।

विभयकम्प—बन्तीयके राजमेद । कबीर देवो ।

विभयकक (स० श्लो०) विभयाय ककम् । ज्योतिषीक ककविशेष । इस शकके अनुसार नामोच्चारण करनेसे अय पराजयकी उपलब्धि होती है । नामोच्चारणका क्रम इस प्रकार है—आस प्रवेशकानमें अन्नम इव वर्ण (प, फ, ब, म, म, म, म, म, र, ई उ ऊ ऋ ॠ ऋ, ए, ए, ऐ, ओ, औ) वा अरके साथ घोषसङ्घर्षण (ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ढ, ट, ढ, न, म, म) का नाम उच्चारण करनेसे अय और आसनिर्गमकानमें अन्नमसङ्घर्षण (प, य, र, म, ड, ) तथा अयोपम इववर्ण (क, ख, ग, छ, ट, ठ, ठ, थ, प, फ, श, ष, स)का नाम उच्चारण करनेसे पराजय होती है । (अरधठअवधपत्तोरि०)

विभयचूर्ण (स० श्लो०) अर्ध रागडा एक मापव । प्रस्तुत प्रणामो—सौंड, पीयूष इत्यादि मिश्र वासुदेवी यज्ञहार, इन्द्रिया, दाहद्विन्द्रिया, अर्ध, विरायता, इन्द्रय विताका मूल, विभयक, मोयी, यज्ञवचन, योपममूल येससौंड और यमानो इन सब द्रव्योंको मथ्ठो तरह चूर्ण कर समाग

भागमें मिलावे और यथायोग्य मात्रामें सेचन करे, तो अर्घ्य दोगका उपकार होता है। (चक्ररत्न)

विजयच्छत्र (सं० पु०) विजयस्य छत्रो यन्मात् । १  
एक प्रकारका कल्पित हार जो दो हाथ लंबा और ५०४ लडियोंका माना जाता है। कहते हैं, कि ऐसा हार केवल देवता लोग पहनते हैं। चार हाथ लंबा और १००८ लडियोंकी मुक्ताकी मालाको इन्द्रच्छत्र कहते हैं। २ पाँच सौ मोतियोंका हार।

विजयद्विण्डिम (सं० पु०) जयद्वका, प्राचीनकालीन एक प्रकारका बड़ा ढोल जो युद्धके समय बजाया जाता था।

विजयतीर्था (सं० स्त्री०) तीर्थामेदः।

विजयदण्ड (सं० पु०) १ सैनिकोंका वह समूह अथवा सेनाका वह विभाग जो सदा विजयी रहता ही। २ सेनाका एक विशिष्ट विभाग जिस पर विजय विग्रह-रूपसे निर्मात्र करता है।

विजयवत्त (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित नाटक मेदः।

विजयदशमा—विजयादशमी देखो।

विजयदुर्गमि (सं० पु०) जयद्वक, वह बड़ा ढाल जो युद्धके समय बजाया जाता है।

विजयदुर्ग—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलान्तर्गत एक वाणिज्यप्रधान बन्दर। यह अक्षा० १६° ३२' तथा देशा० ७३° २३' पू०के मध्य रत्नगिरि नगरसे ३० मील दक्षिणमें अवस्थित है। भारतसे पश्चिम उपकुलमें ऐसा सुन्दर और चराबहाने बन्दर कहीं भी नहीं देखा जाता। समीप अतुल्य विधायक जय दक्षिण-पश्चिम मौसुमी वायु बहती है, तब इस बन्दरमें बड़े बड़े जहाज लगर डाल कर रहते हैं। दुकान आदिका लक्षण न दिखाई देने पर वैसे सब जहाज स्वच्छन्दपूर्वक उपकुलके मध्यमें ही लङ्कर डालते हैं।

यहां भी मक-सोंगेके अनेक प्रकारके खिलौने और अलङ्कारादि बनानेका एक बड़ा कारखाना है। वर्तमान कालमें उन सब द्रव्योंका विशेष आदर न रहनेके कारण स्थानीय शिल्पकी अववृत्ति हो गई है। अमलीवा-सूत्र धरमण अत्रके अभावमें ऋणो होते जा रहे हैं। नगरके

वाणिज्यको छोड़ शुल्क (Customs) विभागका सामुद्रिक वाणिज्य ले कर यहां प्रति वर्ष १२ लाख रुपये मालकी आमदनी और १५ लाख रुपये मालकी रफतनी होती है।

बन्दरका दक्षिण भाग पूर्व गिरगात्र हो कर समुद्र-पथमें खुल रहा है। इस पथके गिरगर पर मुसलमान राजाओंने एक दृढ़ दुर्ग बनाया है। हीट्टणप्रदेशमें ऐसा सुरक्षित दुर्ग एक भी नजर नहीं आता। दुर्गके पार्श्वदेशमें प्रायः १०० फुट नीचे एक पहाड़ी भरना बहता है। वल भरनेसे पण्यद्रव्यादि लानेकी बड़ी सुविधा है।

दुर्ग बहुत पुराना है। विजापुरराजवंशके अम्बुदय-से इस दुर्गके जाणमंस्कार और कलेवरकी वृद्धि हुई। इसके बाद १७वीं सदीके मध्य भागमें महागद्गति गिवाजीने इस दुर्गको सुदृढ़ करनेके अभिप्रायसे इसके चारों ओर तीन पंक्तियोंमें चहारदीवार खड़ी कर दी तथा बहुतसे गोपुर वा तोरण और दुर्गमकान्त अन्यान्य अट्टा लिकादि भी बनवा दी थीं। १६६८ ई०में दसगुलपति अश्रियाने यहां अपने उपकुल भागका राजधानी बसाई थी। उस समय अश्रियाका आधिपत्य उपकुल भागमें ३०से ६० मील तक फैल गया था।

१७५६ ई०में दुर्गवासियोंने अङ्गरेज नौसेनाके हाथ आत्मसमर्पण किया तथा वनाल क्लाइवने बड़े गौरवसे नगर और दुर्ग पर अधिकार जमाया। उन्नीसवीं अन्तिम समयमें अङ्गरेजोंने दुर्गका नार पेशवाके हाथ सौंप दिया था। इसके बाद १८२८ ई०में समस्त रत्नगिरि जिला जय घुटिशगवमें एटके हाथ आया, तब दुर्गाध्यक्ष अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करनेकी बाध्य हुए। विजयदेवी (सं० स्त्री०) राजपत्नामेदः।

त्रिजयदशमी (सं० स्त्री०) द्वादशीमेदः। विजया देखो।

विजयनगर—मन्दाज प्रदेशके बेल्लरी जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। सभी यह ध्वंसस्तूपमें परिणत एक बड़ा ग्राम समझा जाता है और अक्षा० १५ २०' ३० तथा देशा० ७६° ३२' पू०के मध्य फैला हुआ है। यह बेल्लरी नदीसे ३६ मील उत्तर-पश्चिम तुङ्गभद्रा नदी के किनारे अवस्थित है। यहां पहले विजयनगर राजवंशकी राजधानी थी। आज भी नगरके दक्षिण कमलापुर और आनगुण्डी तक प्रायः ६ मील विस्तृत स्थानमें उसका ध्वंसावशेष

विद्यमान है। परबर्षोंकालमें विजयनगरके राजे भान गुरद्वीमें ही अपनी राजधानी उठा ली गयी।

१५३६ ई०में बहामनराज्य शके अयायतनके बाद हरि हर और कुङ्ग नामके दो भारयोमें हाफ्फो नगर बसाया। १५३६ ई०में ताम्रिकोटके युद्धके बाद उनके वंशधरोंने इमशा प्रमाणाभिव्यक्त हो कर इस स्थानकी बड़ी उन्नति की। पीछे प्रायः एक सदी तक ये लोग यथाशक्त भान गुरद्वी, बन्दूर और चन्द्रगिरिमें अपनी शासनशक्तिको अत्युत्तम एक राजकार्य करते रहे थे। इसके बाद बिजापुर और गोलकुण्डा राज्य शके अत्युत्तम पर विजातीय दोनों शक्तियोंमें घोर स्पर्ध उपस्थित हुआ और उसीक फलसे आन्ध्र विजयनगर राज्य शका अयायतन हुआ।

प्रायः दार्द सदी तक इस हाफ्फोनगरमें राजपाठ स्थिर रख कर विजयनगरके राजोंने इसका क्षेत्रफल बढ़ाया तथा ये कितने ही प्रासाद मन्दिर और मनोहर सीधामामाओंस इसकी शोभित्ति कर गये हैं। यह समृद्धि देख कर पाश्चात्य सूत्रणकारी Edwards Barbesa और Caesar Pre dericने लिखा है, कि इस प्रकारका अनन्य और वाजित्य समृद्धिसे परिपूर्ण नगर उस समय बहुत कम स्थानोंमें आते थे। वेगुसे होता, चीन अमेकशमिद्रिया और कुलावर स रैगम तथा मलबारस कर्पूर, मुगलानि, पोपल और नखन अथिक परिमाणमें यहाँ माये जाते थे। मोडर क शक्तिरुप विद्या है, "मिने अनेक देश और अनेक राज्य प्रासाद देने हैं, किन्तु विजयनगरराज प्रासादक साध इनकी तुलना नहीं हो सकती, इस प्रासादक की प्रवेश द्वार हैं। गहले ऋष तुम राजप्रासादकी ओर आभोगे तब तुम्ह सनापति और मनादम कर्णक रक्षित पांथ द्वार देखनेमें आयेगे। इन पञ्चद्वारकी पार करनेमें इनक भातर पुनः अयेझाहन बार छोटे द्वार मिलेंगे। इन द्वारों पर अति बलिष्ठ दरवान पहरा देते हैं। एक एक द्वार पार कर भीतर प्रवेश करनेसे सुसज्जित और सुविन्तुन प्रासाद देखनेमें आयेगी।" इनके वर्णनानुसार जाना जाता है, कि यह नगर चारों ओर प्रायः २४ मील विन्तुन है। नगरको रक्षाक मिये सोमान्तभागमें बहुतमे प्राचीन कहे हैं।

१८०९ ई०में मि० जे जेसनकने इस नगरको पूर्ब Vol. XXI. 78.

तन चवत्त कोर्षियोंका महत्त्व देख कर लिखा है, कि आज भी यहाँ शैल सब मनायदेव पड़े हैं। उन्हें देख कर यह अन्त्याजा नहीं भगयाया जा सकता, कि ये सब अद्भुत लिखायें किस कार्यमें व्यवहृत होती थी। पर हाँ, उनके स्थापत्यशिल्पकी पराकाष्ठाका अर्थ मय कर मत ही मत इन शिल्पियोंकी कार्य कुशलताकी प्रशंसा बरनी होती है। उन अद्भुतलिखायोंमें जैसे बड़े बड़े प्रस्तरकण्डे गड़े हैं, वैसे और कहीं भी दिखाई नहीं देते। कमलापुरके निकट प्रस्तर निर्मित एक अक्षप्रणाली और उसके निकट एक सुन्दर अद्भुतिका है। यह अद्भुतिका स्नानागारकी तरह प्रतीत होती है। इसके दक्षिण एक मन्दिरमें रामायण वर्णित अनेक दृश्य उत्कीर्ण देखे जाते हैं। राजप्रासादक अन्त्युत्तम क हस्तशाला, दरबारगृह और विद्यामण्डप आज भी उनके कार्यरत्नापका परिचय देन हैं। भान राज प्रासादादि तथा मन्दिरक अनेक स्थानोंको बर्षोंक लोगोंने उपेक्षे सोमस लोच खाया है।

इसक सिवा राजप्रस्तःपुर और मङ्गलमूर्ति आज भी सुस्पष्टरूपमें दिखाई देती हैं। अगह अगह ऊँचे ऊँचे प्रस्तरस्तम्भ विद्यमान हैं। उनमेंसे ४१। फुटका एक अक्षस्तम्भ और ३५ फुटकी एक शिबमूर्ति विशेष उच्चैल नोय है। शनिेश्वर परवरके ३० फुट ऊँचे तथा ४ फुट चौड़े और मा कितने प्रस्तर कण्डे प्राचीर और घरकी दीवारमें संलग्न दिखाई देते हैं। किन्तु ये सब किम उद्देशस संलग्न क्रिये गये थे उसका आज तक पता नहीं पड़ा है।

राजप्रासादम प्रायः १ पाव दूर लड़के किनारे एक विशुमन्दिर ह। यह आज भी कालके कचरस गए नहीं हुआ है। यह मन्दिर भी शनिेश्वर परवरके बना है। उस में शिवशक्तिसम्बन्धित और मा कितने स्वम्भ लहे देने जाते हैं।

इ म्फोनगरमें आज भी बहुत-सी शिलालिपियाँ उत्कीर्ण विद्या देती हैं। उनमें विजयनगर-राजवंशका कर्त्तिक्याप अद्भुत हुआ है। विधानगर २५०।

यहाँ मनि क्य एक मेका लगता है।  
विजयनगर—१ दिनाशपुर निकिके अन्त्यगत एक परगना।  
२ राजशाही जिलेक गोदागढ़ी पानक अयोन एक

प्राचीन बडा ग्राम। इसका दूसरा नाम विजयपुर भी था; यहा गौडाग्रिप विजयसेनने राजधानी बनाई थी।

विजयसेन देखो।

विजयनगरम् ( विजयानाग्राम )—मन्त्राज प्रेमिडेन्सोके विजयापटम जिलेभी एक बहुत बडी जमोन्दानी। दक्षिण भारतमे ऐसी प्राचीन और प्रतिपत्तिशाली जमोन्दारी और दूसरी नहीं हैं। इसका भू परिमाण प्रायः २६४ वर्ग मील है। अबसे तीस वर्ष पूर्व इसकी जनसंख्या १८५६५८ और अक्षा० १७° ५६ और १८° १६' ३० तथा दशा० ८३° १७' और ८३° ३६' पूर्वके मध्यमें है।

यहाके सत्वाधिकारी महाराज पशुपति आनन्द गजपतिराज (१८८८ ई०) राजपूतवंशसम्भूत थे। वंश आस्थाधिकासे जाना जाता है, कि इस वंशके आदि पुरुष माधववर्माने १५६१ ई०में सगन्धर्व आ कर कृष्णानदीके उपत्यकादेशमें एक राजपूत उपनिवेश स्थापन किया। धीरे धीरे इस वंशने बडी ख्याति प्राप्त की और बहुत दिनोंसे इस वंशके लोग गोलकुण्डाराज सरकार के सहकारी सामन्तरूपसे गण्य होने लगे। सन् १६५२ ई०में इस वंशके पशुपति माधववर्माने नामक एक व्यक्ति विशाखपत्तनके राजाके अधीन आ कर काम करने लगे। इसके बाद इस वंशके लोगोंका पीढी दर पीढी इस राज वंशसे सम्बन्ध चला आया और युद्ध आदिमें विशेष सहायता दे कर इन्होंने बहुत प्रतिपत्ति लाभ की। इन्होंने वंशधर सुप्रसिद्ध राजा गजपति विजयरामराज फ्रान्साको सेनापति चुननेके मित्र थे। इन्होंने अपने भुजबलमें धीरे धीरे कई सम्पत्तियों पर अधिकार कर अपनी सम्पत्तिका कलेव्र पुष्ट किया। उस समयसे यह पशुपतिवंश उत्तम सरकारीके एक महाशक्तिशाली राज वंशमें परिगणित है।

पेद् विजयराम राजने प्रायः सन् १७१० ई०में अपने पिताके सिंहासन पर आरोहण किया। सन् १७१२ ई० में इन्होंने पोतनूरसे राजपाट स्थानान्तरित कर अपने नाम पर इस स्थानका नाम विजयनगरम् रखा था। इस के बाद अपनी राजधानी सुदृढ़ करनेकी इच्छासे ये कुछ दिनोंके लिये एक दुर्ग निर्माण करनेमें व्यस्त हुए। इसी समयमें धीरे धीरे नाना स्थानों पर अधिकार कर इन्होंने

अपने राज्यकी वृद्धि की। सन् १७५४ ई०में इन्होंने पहले त्रिकाकोलके फौजदार जाफरखानी खाके साहाय्य करनेके लिये उनसे मित्रता कर ली। किन्तु पाछे उनका यह ख्याल हुआ, कि इस मित्रताकी अपेक्षा यदि फ्रान्सीसी सेनापति चुनौक साथ मित्रता की जावे तो विशेष लाभ होनेकी आशा है। यह सोच कर इन्होंने फौजदारसे मित्रता भङ्ग कर फ्रान्सीसियोंके साथ मित्रता कर ली। इन्होंने अपने पुराने शत्रु बच्चिलीके सामन्तराजकी अपने नये मित्र फ्रान्सीसियोंकी सहायतामें मार कर अपना पुराना बदला चुकाया था, किन्तु इस विजयका बहुत दिनों तक ये आनन्द उपभोग कर न सके। विजयके तीन रातके अन्त होते न होने ये बच्चिलीके गुप्तघातकोंके हाथ मारे गये थे।

राजा पेद् विजयरामके उत्तराधिकारी आनन्दरामने छिट्टान्वेषणमें तत्पर रह कर अपनी बुद्धिके दोषसे पितृपदार्थित राजनीतिक मार्गको तिलाञ्जलि दे समैन्य भागे बह विद्यालपत्तन पर आक्रमण और अधिकार कर उसको अङ्गरेजोंके हाथ समर्पण किया। उस समय विशाखपत्तन फ्रान्सीसियोंके हाथमें था। यह सन् १७५८ ई०को घटना है।

बङ्गालसे सेनापति फोर्डके समैन्य वहाँ पहुँच जाने पर उनके साथ राजा आनन्दरामने राजमहेन्द्री और मछलीपट्टनकी ओर अपनी विजययात्रा पूरी की। पीछे वहासे लौटने पर यह कालके मुंहमें पतित हुए। उनके दत्तकपुत्र नाथालिग विजयरामराज राजपद पर प्रतिष्ठित हुए, किन्तु वे कुछ दिनों तक अपने वैमातेय भ्राता मोतारामराजके तस्वावधानमें रहे। मोताराम चतुर, उच्छृङ्खल तथा सचेप्रासी थे।

सन् १७६१ ई०में इन्होंने पालाकिमडो राज्य पर आक्रमण किया। त्रिकाकोलके समीप साहाय्यकारी महाराष्ट्रसेनाके साथ पालाकिमडोराज पराजित हुए। इसके बाद इन्होंने सदलबल राजमहेन्द्राकी ओर अग्रसर हो कर उस पर भी अधिकार कर लिया। इस तरह विजयनगरम् राज्य थोड़े ही दिनोंमें बहुत बढ गया। वस्तुतः इसी समय विजयनगरम् सामन्त राज्यके धनीत पशुपतिराजवंशके शासनाधीनमें जयपुर, पालकोण्डा और

धन्याय १५ बड़ी बड़ी जमींदारियोंका कार्य सञ्चालन न होता था। उन उन स्थानोंके अधिकांसी विजयनगर पर्यन्त ही अपने राजा मानते थे।

सीताराम विद्येय दुइता, मनोयोगिता तथा कुशलता के साथ राजकार्य किया करते थे। वे नियमितरूपसे ३ साहस रुपये वार्षिक वेतनस्वरूपसे थे और भङ्गुरेयकम्पनी के महा राजसकल विचारते थे। उनकी यह राजसकल इमानिये थी, जिससे वे कम्पनीसे धन्याय सुविधाओंकी प्राप्तिके साथ साथ युद्ध के पारम्य सामन्तोंकी पशमें भागिके लिये भङ्गुरेयसेनाका महायता वा मन्के। यथार्थमें हमो जगपसे पशुपतिमन अपनी ककल और कम्पनी के जगमपवाकाके मसुपन रकनेमें समर्थ हुए थे।

राजा सीतारामने इस समय गिरीरोध प्रमुत्त परिपालित किया था। यह उनके ज्ञाता राजा विजयवराहको मसहा हो उठा। केवल उन्हीको नहीं बरं कितने ही सामन्त वा सरदारोंको भी यह मसहा हो गया। इन लोगोंने कम्पनीसे प्रार्थना की कि राजा सीतारामने पदव्याग कर दिया जाये और राज्यकार्य बलानेके लिये जगमपवराहको इन पर आकृष्ट कराया जाये किन्तु राजा सीताराम बड़ी श्रद्धासे राज्यकार्य समाप्त न कर रहे थे और कम्पनीके छोटे बड़े कर्मचारो उनसे सम्पुष्ट थे। इससे उन लोगों का प्रार्थना मसहा हुए।

महामान्य कोर्ट भाव बिरेकुर्न इङ्ग्लैण्डमें बैठ कर यहाँका कम्पनीके कर्मचारियों पर जो दोषारोपण करते थे, उनमें कोई फल नहीं होता था। फलतः कम्पनीके कर्मचारियों पर रिम्बन लेनेके अमिवांगमें कई मामलों कावर हुई। इन पर कोर्ट भाव बिरेकुटस महामान्य कब नैर सर टि एगोडकी और कौन्सिलके दो सरूपोको स्थानान्तर मेजने पर बाध्य हुए। यह सन् १७८१ ई०की घटना है।

सन् १७८४ ई०में बिशाकरान जिलेका यथार्थ विवरण संदर करनेके लिये एक 'सार्किटकमिटा नियुक्त हुई। उसने पूरे तीसरे विवरण तद्वार कर डारैकुर्नके पास भेजा। हमने उसमें निष्का था, कि विजयनगर पर राज और उनके सामन्तों के पास परब १२ सहस्रसे या अधिक फौजे हैं। मसब है, कि किस्ती समय कम्पनीके

लिये यह विपद्का कारण बने। यह विवरण पडनेस यहाँके अधिकांशियोंकी बन्धु भाँलें खुलीं। बिरेकुर्नने सीतारामराजको कुछ दिनोंके लिये राज्यसे अलग किया। किन्तु सन् १७९० ई०में फिर सीतारामने विजयनगरमें आ कर अपना पद ग्रहण किया। इस बार भी पहलेकी तरह इन्होंने उद्यतम राजकार्यो, साधारण प्रशासनिक तथा सामन्तोंकी भी गिरातन करना आरम्भ किया। फलतः इनका राजयोग कठिन हो गया। सन् १७९३ ई०में कम्पनीके अधिकांशियोंने इनको मद्राज में आ कर रहनेकी आज्ञा दी। इस समयसे विजयनगर के इतिहासस इनका नाम बिसुप्त हुआ।

पूर्व वर्णित नवाकिंग राजा विजयवराहकी नवा जगा बोल गई मर के बानिग हो गये थे। इतने दिनों तक वे सीतारामके मयसे एक तरहसे जङ्गलकी तरह दिन बिता रहे थे। उनके हृदयमें राज बलानेकी कोई शक्ति हो न था। वे सर्ववृशों से और इनमें सीताराम को तरह राजकार्य बलानेकी शक्ति न रहनेके कारण वे जमीन्दारोंका काम उद्यततसे चला न सके। फलतः कम्पनीको नियमित समय पर पेशकस् दिया न गया। इसलिये उनकी सम्पत्ति बाकी मालगुजारोमें फँस गई। श्रम्यमार तथा राज्यकी गहबडीने राजकार्यदिका भाग बिगड़ गया। कम्पनीने रुपयेकी बसुकीके लिये 'सम्भन' जारी किया। राजाने इस मसोहत कर दिया और भङ्गुरेयके विरुद्ध युद्धकी तैयारी करने आरम्भ कर दो। इस समय उन्हीं स्पष्ट हा कहा था, कि मैं क्षोभित रह कर यदि पशुपतिराजव सको तरह राज्य शासन न कर सका, तो इनमें एक भाइयका तरह रण क्षेत्रन बोरको तरह मवरव मर सकूंगा।

सन् १७९४ ई०की १०वीं जूनका कर्नल प्रेण्डर गार्डने पञ्चमाम् नामक स्थानमें राजा विजयवराह पर आक्रमण किया। राजाने एक घण्टे तक मसज्जाका सामना किया, किन्तु उनकी फौज अधिक देर तक नहीं टिक न सका। वे तितर बितर हो कर भाग लड़े हुए। इस युद्धमें स्वयं राजा विजयवराह तथा कई सामन्तारो मारे गये थे।

राजा विजयवराहके मरनेके बाद पशुपतिराजर्षिक

भाष्याकाश बदल गया। किन्तु १८वीं शताब्दीमें चार-चार परिवर्तन होनेके कारण पशुपतिराजवंशके ऐतिहासिक प्रधान्य परिवर्द्धित हुआ। इस राजवंशके अधीन राज्य और उसके अधीन नामन्तोंका शामिल भूभाग एकत्र वर्त्तमान विजयनगरम् जिलेके बराबर थे। इस विस्तीर्ण भूभागके गामरु राजा भी अधीन कर-राज्यकी शर्तसे सत्त्वान् थे।

इस राजवंशके सर्वप्रधान व्यक्ति मीर्जा और मान्य सुल्तान नामसे सम्मानित होते थे। वे यथार्थमें विजयनगर राज्यके अधीन थे। किन्तु बलदर्पसे पुष्ट हो कर वे उस क्षिपयमें विशेष लक्ष्य नहीं रखते थे। जब विजयनगरराज अपने प्रभु विजयवर्धनपतिके साथ साम्राज्य करने जाते तब महामान्य इण्डिया कम्पनी उनके सम्मानके लिये १६ सम्मानसूचक तोपोंको मन्तामी दागती थी। १८४८ ई०में यह तोप मर्यादा कर १३ हो गई। वंशके सम्मानस्वरूप वे आज भी राजदत्त उपाधि भोग करने आते हैं।

वर्त्तमान समय यह जमीन्दारी चिरस्थायी बन्दोवस्त के अधिकारभुक्त होनेसे उसके राजस्वका कुछ परिवर्त्तन हुआ है सहो, किन्तु यथार्थमें इस राज्यवंशकी वंशगत मर्यादाका विशेष लाघव नहीं हुआ है। सन् १८६२ ई०में अंग्रेज गवर्नमेंटने उनका सत्त्व स्वीकार कर फिर राजोपाधि दान की और साधारण जमीं दारकी अपेक्षा उच्च-सम्मानका अधिकार दिया है।

नृत राजा विजयरामराजके नाबालिग पुत्र नारायणवावूने पद्मनाभके युद्धके बाद स्वराज्यसे भाग पार्वत्य जमीन्दारोंका आश्रय ग्रहण किया। उनको ले सामन्तोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोहबुद्धि प्रज्वलित करनेकी चेष्टा की। अंग्रेजोंने पहले ही यह समाचार पा कर यथासमय उनका प्रतिकार किया था। इसके बाद अंग्रेजोंके साथ राजाकी ओरसे सन्धिकी बात चलने लगी। राजाने स्वयं अंग्रेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। उस समय अंग्रेजोंने उसके सत्त्व और स्वाधिकारकी अभ्युपगम कर उनको एक सनद दी थी। इस समयसे पार्वत्य सरदार फिर राजाके अधीन न रहे। अंग्रेजसरकारने उनका शासनभार अपने हाथमें रखा। इस समय विजय-

नगरका कुछ अंग अंग्रेज कम्पनीने जग्न कर उसे "हादिली जमीन" नामसे निर्दिष्ट किया।

इस तरह विजयनगरम्की जमीन्दारीका आयतन बहुत कम हो गया। अंग्रेजोंने उस पर पेगकम् दुगुना कर दिया। राजाको ६ लाख रुपया मान्यता पेगकम् देना कष्टसे स्वीकार करना पड़ा था और इसी सूत्रमें उनको कुछ ऋणजालमें फँसना पड़ा। सन् १८०२ ई०में यहा चिरस्थायी बन्दोवस्त हुआ। उससे यह देखा गया, कि उस समय यह जमानदारी २४ परगने मात्र ११५७ प्रायोंमें विभक्त थी। उस समय इस तालुकेशा राजस्व ५ लाख नियत थी।

राजा विजयरामके पुत्र नारायण वावूने सन् १७६४ ई०में राज्यविकार किया और सन् १८४५ ई०में काजीग्राममें परलोकियाला की। उस समय उनकी सम्पत्ति विशेषरूपसे ऋणप्रसन्न थी। उनके राज्यकालके प्रायः अर्द्ध समयसे अंग्रेज गवर्नमेंटने उनके ऋण परिशोध करनेके लिये स्वहस्तमें शासनभार ग्रहण किया। उनके परवर्त्तो उत्तगाधिकारी राजा विजयराम गजपतिराजने पूर्णरुत ऋणके परिशोधनके लिये ७ वर्ष तक पेत्री व्यवस्था जारी रखी। अन्तमें सन् १८५२ ई०में मिष्टर क्रोजियरसे उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया और वे स्वयं कार्य परिचालन करने लगे। इस समयसे इस विजयनगरम् राज्यकी श्रीवृद्धि हुई है और राजस्व भी प्रायः २० लाख रुपया वसूल होने लगा है।

राजा विजयराम गजपतिराज एक उच्च शिक्षित, मशगल और अन्तःकरणके अच्छे व्यक्ति थे। वे जिस रूपसे राजकार्य परिचालन और प्रजाओंका शासन करते थे, उस तरहसे भारतके अग्रगण्य स्थानोंके देशी राजाओंमें कोई भी उनके समकक्षी न हो सके। वह यथार्थ ही उस उच्च पदके उपयुक्त पात्र थे। सन् ८६३ ई०में बड़े लाट की व्यवस्थापकसभा (Legislative Council of India) के सदस्य मनोनित हुए। सन् १८६४ ई०में अंग्रेजोंने उनके आचरणों पर प्रसन्न हो कर उनको 'महाराज'की उपाधि और 'हिज हाइनेस (His Highness)'का सम्मान प्रदान किया। इसके बाद वे K. C. S. I की उपाधि से विभूषित किये गये। सन् १८७७ ई०में महारानी

बिक्रीरिपाको-नोपनामें ( Imperial Proclamation )  
 उनका भारतक सर्वप्रधान सरकारीका ध्येयमें शामिल  
 किया गया और उनक सम्मानक-लिये १३ तोपों की  
 सम्मानी खोला गई । इस भोगीके सरकार वरि किन्नी  
 कारणसे-बाइसरायक समाप भाये तो बाइसराय भी  
 उनके यहाँ जाने पर-वाध्य होने यह उनके सम्मानक ही  
 लिये था ।

- राजा विजयराम गजपतिराजके समय राउबकी  
 घोषितमें वही उल्लिखित हुई । यह उनको उच्चाधिकारक फल  
 है । पहाड़ रास्ता, पुल, मण्डपताल और नगरक मन्दाप  
 विषयोंकी उन्नतिके अनेक कार्यमें उन्होंने मम लगाया  
 था । उन्होंने अपने राजत्वमें वाराणसाधाममें, मन्दाप  
 नगरमें, कच्छराममें और सात ममुवपारक इन्डोइसके  
 छापन नगरमें खनसाधारणक कई दिनकर कार्योंमें अपने  
 दानधर्मका विशेष परिचय दिया था । इस समय मा उन  
 स्थानोंमें उनका उद्गता जमा दानशोभताको बहुतसे  
 कोर्त्तियां बिधामाई हैं । इन सब कार्योंके लिये इन्होंने  
 प्रायः १० लाख रुपये खर्च किये । सिवा इस एकमक  
 उन्होंने मने समय दानव्य माइद्वार और शिक्षा विभागका  
 १ लाख रुपया दान किया था ।

सन् १८०८ ई०में महाराज विजयराम गजपति राज  
 की मृत्यु हुई । इसक बाद उनक पुत्र भानुवाराज पितृव्य  
 पर अवधिष्ठित हुए । सन् १८८१ ई०में उनक सम्मानाथ  
 उनकी महाराजनी उपधि दी गई । सन् १८०४ और  
 १८१२ ई०में वे मन्दाप व्यवस्थापकसमाक और सन्  
 १८८८ ई०में बड़े कारकी व्यवस्थापकसमाके सम्प  
 निर्वाचित हुए । सन् १८८० ई०में वे K. C. I. E. और सन्  
 १८१२ ई०की २४री मईको G. C. I. E. उपधिसे विभू  
 वित हुए । दिनांक सुगम बादशाहने विजयनगरमन्दाप  
 को एक बहुत अन्वो उपधि दी थी - 'महाराजा साहब  
 मीरकान सुपक बद्रीदाल फय्द-फरमावो मोकमेसाल  
 महाराजा मीर्जा माय सुलतान हुक बहादुर' । सन् १८६०  
 ई०में मन्दाप-सरकारने राजाको वंशानुक्रमिक-राज्योपाधि  
 प्रदान की । सन् १८१० ई०म भानुवाराजका जन्म हुआ ।

राजा भानुवाराजकी मृत्युके बाद राजा यशुपति विजय  
 रम राजगढ़ पर बैठे, किन्तु यह बाइसक थे । इसस समय

कार्यमार कोर्ट भाग-बाइसके हाथ आया । स्वयं  
 मीर्जा माया सुलताना साहबा श्रीमहा राजसखी देव  
 देवो श्रीमहबबरावोभ्यो महाराजा नाशाकिम पुत्रकी भोरसे  
 विजयनगरम्का राज्यकाय देवतो थी । सन् १८०४ ई०में  
 आप बाकिम हुए- फलतः आपने समी राज्यकायका भार  
 अपने हाथमें लिया है । आप बड़े योग्य तथा धार्मिक  
 हैं । आपका नाम है-मीर्जा राजा प्रापशुपति अमक  
 नाटयन गजपतिराज माया सुलतान बहादुर हुक ।

राजसखी बसुमाकी सुविधाओंके लिये यह जमीन्दारी  
 ११ तालुकोंमें बाँट दी गई है । निम्नके स्थानोंमें अनेक  
 सरकारकी जैसी शासनव्यक्ति है, उसी तरहकी शासन  
 पद्धति इनकी जमीन्दारीमें भी है ।

इन जमीन्दारीमें प्रायः ३० हजार पट्टापर प्रजा और  
 १० हजार-कोर्त्तियां प्रजा हैं । पहाँ प्रायः २०५,००० एकड़  
 जमीनमें हथ खला कर खेता की जाती है । जलसे सीखी  
 भूमिकी मात्रगुजारा ५से १०-कषय तक प्रति एकड़ है  
 और साधारण भूमि २५-प्रति-एकड़ है । आसोन वर्ष  
 पहले इस तालुकका धार्मिक राजस्व १० लाख रुपया  
 मन्दाप होता था । इस समय प्रायः १८ लाख रुपया  
 वसूल होता है । पहाँके अधिपानो साधारणता सेठगु  
 दिव्य है । विजयनगरम् और बिमलापलन नामसे दो  
 नगर तथा कई अधिपान प्राणोंमें पहाँका बाजिय  
 व्यता है ।

२ मन्दाप प्रेमिडेन्सीके विजयनगरम् जिलेका  
 विजयनगरम् जमीन्दारीका तालुक या उपविभाग । मू  
 परिमाण २३६ वर्गमील है । १८१ गाँव और जिलेका  
 सदर ठे कर यह उपविभाग गठित हुआ है ।

३ एक जिलेकी विजयनगरम् जमीन्दारीका प्रधान  
 नगर । यह विमलापलन ३६ कोन उत्तर पश्चिममें अथ  
 स्थित है तथा अक्षांश १८° ३०' और देशांश ८३° २५' पूर्व  
 बीच विस्तृत है । पहाँ राजप्रासाद, उपनिर्मित अकिम,  
 उावो और सिनियर अस्तिष्येड कमकुतका सदर  
 आफिस है । अर्द्धको जनसंख्या प्रायः ५० हजारक लग  
 लग है । - १५० -

नगर-पूब सुगठित है । पहाँके मकानोंकी छतें या  
 तो टाँसुर हैं या समतल हैं । वर्तमान भारत-संघाद् युव



राज रूपसे हम नगरमें परिदर्शनके लिये गये थे। उनको उम वदनागो सृष्टिके लिये चर्चाएक वाचनकी प्रतिष्ठा हुई है। राजा विजयराम गजपतिके लिये दूध टाउनहाल और अस्यान्य राजकीय अट्टालिकाओंसे नगरनी शोभा बढ़ रही है। मन्दाजके देगीय 'पिटल सैन्य' का एक बड़ा घाँस आया करता है। यहाँके गिरजेमें जो धर्मशास्त्रक (Chaplain) रहते हैं, उनको मासमें दो बार रविवागोंको विमलीपत्तन और चिन्ताकोल भ्रमण करना पड़ता है। यह स्थान बहुत प्यारप्यत्र है।

हम नगरमें एक गिरज कालिज ही, जिसका कुलअर्च राजदरबारसे मिलता है।

विजयनन्दन ( सं० पु० ) इक्ष्वाकुवंशीय राजकीश्वर-दर्शय—जय।

विजयनाथ—महामायाधाय नामक ज्योतिर्मन्थके पंच-यिता।

विजयनागरणम्—मन्दाजप्रदेशके निम्नवर्ती 'जिलास्तगत नानगुणेते तालुकका एक नगर। यह नानगुणेते सदर-से ५ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

विजयन्त ( सं० पु० ) इन्द्र।

विजयन्ती ( सं० स्त्री० ) प्राणोजाक। ( वैदिक-वि० )

विजयपण्डित—ब्रह्मापाके एक सर्वप्रथम महाभारत-अनुवादक तथा राष्ट्रधर्मके एक प्राचीन कवि। विजय पण्डितका भारत-तात्पर्यानुवाद 'विजयपाण्डवकथा' नाम से प्रसिद्ध है।

विजयवारा ( सं० स्त्री० ) १ सैनाकी ग्रह पताका जो अंगके समय फहरा जाती है। २ विजयसूचक कोई चिह्न।

विजयपर्व ( सं० स्त्री० ) ग्रहणा रोगको एक औषध। 'प्र-उम-प्रपाठो—२ तोले चारको जयन्तीके पत्ते, रेंडीके मूले, लहसुन और फाकमाचोंके रस द्वारा आनुपूर्विक साधना दे कर परिशुद्ध करे। पीछे २ तोला आमलसा मन्थक ले कर कुच-पूर्ण कर और पीछे भृङ्गराजके रसमें डुबो कर कडी घूपमें सुपाँले। तीन बार इस प्रकार सुपानके बाद उसे अग्निमें धवीभूत कर बडी तेजासे चारोंक कपड़ेमें छानले। इसके बाद उस पारमें जलित 'पैप', गीय और तिल अन्धेक दो तोला मिला कर उक

मन्थकसे साथ अच्छी तरह घोंटे और कजली बनावे। पीछे उम कजलीको एक लोहेके बर्तनेमें रख कर बेरकी लकड़ीको आग पर रख दे। जब वह अच्छी तरह गल जाय, तब गोबरमें लिये हुए एक कंलेके पत्ते पर ढाल दे। पेसा करनेसे वह पर्यटाकार अर्थात् पाटलीकी तरह होगा। उसीको 'विजयपर्व' कहते हैं। ग्रहणा, अय, कुष्ठ, अर्ग, शोथ और अजाण रोगमें इसका व्यवहार किया जाता है। व्यवहारका नियम इस प्रकार है—प्रथम दिन दो रत्ती इस पर्वटोका सुपारीके जलके साथ सेवन करना होता है। पीछे दिन प्रति दिन एक एक रत्ता बढ़ा कर जिस दिन बारह रत्ती पूरी हो जायेगी, उसके दूसरे दिन से फिर प्रति दिन एक एक रत्ती घटानो होगी। इस औषधका दिनके चौथे दण्डमें सेवन करना होता है। पीछे अवस्थानुसार दिनमें ३४ बार करके सुपारीके पानीके साथ सेवन कर सकते हैं। पर्याप्यकी व्यवस्था—औषध सेवनके तीसरे दिनसे मासका जूस और घृत-दुग्धादि व्यवस्थेय है। काले रंगकी मछली, जलजपक्षी। विदग्धपक्षी (तेल वा जिस किसी तरह हो मुना हुआ पदार्थ), केला, मूली, तेल और तेलकी बघारी हुई तरकारी आदि खाना मना है। सोसम्मोग और विधानिद्रा भी वर्जनीय है। ( रसेन्द्रसार० ग्रहणरोग )

विजयपाल ( सं० पु० ) १ एक प्राचीन संस्कृत कवि। ये राजानक विजयपाल नामसे प्रसिद्ध थे। २ एक राजा। आप १०१६ सम्वत्में विद्यमान थे ॥ ३ एक पराक्रान्त चन्देलराज जो १०३७ ई०में मौजूद थे।  
—चन्द्राभेय राजवंशके।

विजयपुर ( सं० स्त्री० ) भविष्यप्रसन्नदण्डवर्णित चन्द्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। 'विजयनगर' देखो।  
विजयपूर्णिमा ( सं० स्त्री० ) विजयादशमीके उपरगत पड़नेवाली पूर्णिमा, आश्विनकी पूर्णिमा। इस पूर्णिमामें हिन्दूमात्र ही बडे उन्साहसे लक्ष्मीकी पूजा करते हैं। यद्यपि प्रति मासमें वृहस्पतिवारको या और किसी शुभ दिनकी लक्ष्मीपूजा करनेका विधान है और उसीके अनुसार बहुतरे व्यक्ति पूजा भी करते हैं; परन्तु धनरक्षाधिपति कुधरेसे उक्त पूर्णिमाके दिन पूजाकी थी, इसी कारण लोग धनरक्षकी आशासे उसी दिन तनमनसे लक्ष्मीदेवीकी पूजा

किया करते हैं। सभी मनुष्य अपनी अपनी व्यवस्थाके अनुसार पूजाका आवाहन करते हैं। जो पत्नी हैं, वे प्रतिवृत्ति बना कर अपनी पट्टमें चिह्नित कर देवीका पूजा करते हैं। प्रायः सभी जनसाधारण रूपके जो पोट पर चिह्नित माताको पूजा किया करते हैं। जो हो इस दिन ब्राह्मणसभे कर अष्टासक पर्जन्य लोहमाता की आराधनाके लिये व्यस्त रहते हैं, इसमें ब्रह्मा मो सम्बन्ध नहीं। पूजाके दिन गृहकर्ता वा कर्मका सारा दिन मिरभुः(अपवासके) बाद पूजाके अन्तमें नारियलका जल पो कर आरण्य और चतुष्टोत्रादिमें सारी रातः बितानी पड़ती है। क्योंकि, येलो प्रसिद्धि है, कि उस दिवस रातको मन्मते ब्रह्मा था,—('नारिकेलजल पालना को आगतिः मन्मतेषु') 'नारियलका जल पो कर आत्र कौन जया हुआ है? मैं उसे घनरज दूंगी' घनाध्यसः(कुबेरमें भी इसी दिन उक्त व्यवस्थामें रह कर पूजा को पो।) अश्वमेधी, इस दिन ऐसा कहा था। इस कारण उस दिवसको 'ब्रह्मा' और इस दिनको कस्मीपूजाको 'कोजागरी कस्मी' पूजा कहते हैं। पूजा तथा अन्त्येष्ट्य आदि निसर्गविका विकरण को बाधना अन्तमें देखो।

विज्ञानप्रवृत्ति (सं० १०) कवि भोहरपरिकर अष्टासकः।  
 मेहः। इसमें राजा विजयसेनका कीर्तिकथा वर्णित है।  
 विज्ञानमाग (सं० पु०) १, २, ३, ४।  
 विज्ञानमैत्रेय (सं० १०) आसपातरोगमें, अथवाहार्म पक्षीक। प्रस्तुत प्रजाती—पारा, पन्धक, मैतसिक और हरिताकः प्रत्येक द्रव्य २ तोला से कर चर्ममें पोसे। पीछे उससे एक अण्ड सूक्ष्म पत्र किस कर दे। जब वह सूख जाय, तब बत्तीकी तरह ऊँच दे। इसका बाद इस बत्तीको तैलाक करके उसके निम्न भागमें एक पात्र रख कर अण्डवर्धनको प्रवर्द्धित करे तथा बहो कमरा बसोक मिश्रण न हो जाने तक फिरसे पारि पीरे तक देता रहे। वह तैल पकने पर नीचेके बरतनमें टपक कर जमा हो जायेगा। इस तैलको मासिक करनेसे प्रकल धेनु, एकान्तात तथा बाहुकल्प आदि विविध आतरोग प्रशामित होती है। यह तैल रूपके साथ ३६ पिन्डुमज्जा में भी पात्र किया जाता है।  
 विज्ञानमैत्रेय (सं० पु०) १ अस्तोगनी एक औषध।

प्रस्तुत प्रजाती—पारा, पन्धक, खोदा, जिय, मगरक, हरिताक, बिड़कू मोषा, हसावधो, पोषकसूक, नागिभ्य, सोंठ, पोषक, काकोनिर्ध, भ्रमरको, इरीतको, बड़ेका, चिठामुन, आश्रित अमपासवीर्य, प्रत्येक द्रव्यका पूर्ण एकएक तोला तथा गुड़को तोला, इतने एकत्र मिला कर मध्यो तरह महुँन करे। पीछे इसकीको गुठलीके समान इसकी पर एक गोली प्रति दिन प्रातःकाकर्म सेवन करनेसे फल, भास, अज्ञान और अस्वास्थ्य रोग जाने रहते हैं।

२ कुष्ठरोगनी एक औषध। प्रस्तुत प्रजाती—ठूण्ड्य पातित पन्धमें सप्त दोषनिमु क पारेको मन्धपूत कर मिहोके कडाहमें तथा कुम्भारखके रस वा तैनादिके साथ खोलापन्धमें मात बार परिशोधित पारेसे दूनी इतनाक तथा कैचत सुस्तकके रस और बिस्टोके रसको युक्ति पूरक है कर पारे और इतनाकसे दूनी पकासकी मसम देवे। अनन्तर बिस्टोके रसमें सबको बुवा कर पीसत के रसमें पुना उसे माप्युत करे। पीछे बहो सावधानी से शासकी मरकतोकी औषधमें औषोस पहर तक पाक करे। ठण्डा होने पर काँचके बरतनमें उसे रख छोड़े। मधु और जल नारियल जिह्नुमाकवाप वा मधु और मोषेके रस करेक बार रत्तीसे छे कर प्रति दिन एक एक रत्ती करके बढ़ावे। इसमें वातरक, आम, सब प्रकारके कुष्ठ, भ्रमरपिच, विस्कोट, मसूरिका और मर रोग नष्ट होते हैं। इसमें मण्डो, मांस, दही, साध, कड़ा और साममिर्चा जाना मना है।

विज्ञानमन्त्रिगङ्गा—राजपूतानाक भरतपुर राज्यान्तर्गत एक प्राचीन मण्ड। यहाँ भरतपुरके पुतले राजे वास करते थे। आज ऊँच यह बिस्टोर्ण ध्व सावशेषमें परिवर्त हो गया है।

विज्ञानमहुँन (सं० पु०) विज्ञापय महुँन। डका, प्राचीन का तथा एक प्रकारका डोल।

विज्ञानमल (सं० पु०) एक राजाका नाम।  
 (यकवर ० ७१११)

विज्ञानमाली (सं० पु०) एक बणिकका नाम।  
 (कपाल ० ७२१२५)

विज्ञानमिह (सं० पु०) कवनामिपति एक सामन्तराजका नाम। (यकवर ० ७१११)

विजययात्रा ( स खी० ) वह यात्रा जो किसी पर किसी प्रकारको विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की जाय।

विजयरक्षित—माधवनिदानके प्रसिद्ध टोकाकार।

विजयगुप्त ( स० पु० ) अजीर्णरोगकी एक औषधि। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और सीसा प्रत्येक ८ तोला ले कर एक साथ मिलावे, पीछे ८ तोला गन्धक डाल कर तब तक मर्दने करे, जब तक उसका रङ्ग कजली सा न निकल आये। इसके बाद यवक्षार, माचोक्षार और मोहागोहा लावा प्रत्येक ८ तोला तथा दशमूला (घिबलमूल, पिठवन, छोटी कटाई, बड़ो कटाई, गौबरू, बेल, सोनायाडा, गंभारि, गनियारी और पाडा) और सिद्धिचूर्ण, प्रत्येक ४० तोला मिला कर पहले उक्त दशमूलके स्वाथमें भावना दे पीछे यथाक्रम चिनामूल, भृङ्गराज और सहिजनके मूलकी छालके रसमें पृथक् पृथक् भावना दे कर एक मिट्टीके बरतनमें रखे और ऊपरसे मुँह बन्द करके एक पहर तक घुटाङ्कक विधानानुसार पाक करना होगा। पाछे शीतल हो जाने पर उमस औषधि निकाल कर अदरकके रसमें उसे घोटना होगा। तीन या चार रत्ता भर औषधि पानके रसके साथ सेवन करनेसे अजीर्ण रोग जाता रहता है।

विजयगणधर—एक प्रसिद्ध नैपायिक। असम्भवपत्र शत-काटिमण्डन, यद्रूपविचार आदि संस्कृत-पुस्तिकाये इनकी उपाई हुई है।

विजयराजपट्ट—मध्यप्रदेशके जधवलपुरका एक भूभाग। उत्तर उत्तर और पूर्वमें रेवा तथा पश्चिममें मुखारा तहसाज और राजाराज्य पड़ता है। भू परिमाण प्रायः ७५० वर्गमाइल है। पहले यह स्थान एक सामन्तराजके अधीन था। विपदा विद्रोहके समय राजवंशधरोंके बागों होने पर उनका राज्य जप्त हुआ। यह भूभाग कृषिके लिये प्रधान है। यहाँ लोहा पाया जाता है।

विजयराज—गुजरातके चालुक्यवंशीय एक राजा, बुद्धधर्म-राजक पुत्र। ये ३६४ कलचूरी सम्वत्में राज्य करते थे।

विजयराम आचार्य—१ पाण्डवपेटिका और मानसपूजन नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। ये चतुर्भुजाचार्यके शिष्य थे। २ मन्तरजाकर नामक नास्तिक ग्रन्थके रचयिता।

विजयलक्ष्मी ( स० खी० ) विजय एव लक्ष्मी। विजयवंशी अधिष्ठात्री देवी, जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयवन् ( स० खी० ) विजय अन्त्यर्थे गतुप् मस्य व। विजययुक्त, विजयी।

विजयधर्मा ( स० पु० ) एक प्राचीन संस्कृत कवि।

विजयधर्म ( स० पु० ) विद्याधरभेद।

( कथास० २५।२६२ )

विजयशक्ति—एक पूर्वतन चन्देलराज। चन्द्राप्रय देवो।

विजयशाल ( स० पु० ) वह शक्ति जो वराहर विजय करता है, सदा जीतनेवाला।

विजयश्री ( स० खी० ) विजय एव श्रीः। विजयलक्ष्मी, विजयकी अधिष्ठात्री देवी जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयसप्तमा ( स० खी० ) विजयाख्या सप्तमी। विजया-सप्तमी, रचिदारयुक्त शुक्ला सप्तमी। ( हरिभक्तिवि० )

विजयसागर ( स० पु० ) एक प्रकारका बड़ा वृक्ष। इसकी लकड़ी औजार बनाने और इमारतके काममें जाती है। लिखारदेवो।

विजयसिंह—१ मारवाड़-जोधपुरके एक राजा। ये महाराज वरुणसिंहके पुत्र थे। जब महाराज वरुणसिंहने विपश्य वस्त्र पहन कर प्राण त्याग किया, तब उनके पुत्र विजयसिंहकी उम्र बीस वर्ष की थी। इस समय यद्यपि दिल्लीके बादशाहकी प्रभुता दुर्बल हो गई थी, तथापि विजयसिंहने प्रचलित रातिके अनुसार दिल्लीके बादशाहके समीप अपने अभिप्रेक्षा संवाद भेजवाया। दिल्लीके बादशाह इस पर बड़े प्रसन्न हुए। इसी प्रकार भारत के सभी प्रधान प्रधान राजाओंने उन्हें मारवाड़की अधिपति सहर्ष स्वीकार किया। मारवाड़के मेरोठ नामक स्थानमें विजयसिंहका अभिषेक हुआ था। महाराज विजयसिंह वहासे जा कर मेरतामें अशौचनिवृत्त होने तक रहे।

इनको राज्यच्युत रामसिंहसे बहुत दिनों तक युद्धमें लिप्त रहना पड़ा था। अन्तमें बहुत परिश्रमके बाद रामसिंहकी आज्ञा पर पानी फिर गया और विजयसिंह मारवाड़के सर्वसम्मत अधीश्वर हुए।

२ कलचूरिबंशीय एक राजा तथा गणकर्णिक पुत्र। ३  
 हर्षपुरीयाण्डके एक प्रसिद्ध शैलाचार्य। इन्होंने बहुत-से  
 जैन-ग्रन्थों को टीका लिखी। इनके शिष्य प्रसिद्ध चन्द्र-  
 सूरि थे।

विजयसिंह—सिंहवंशीयके प्रथम आर्य राजा। महावंश  
 नामक पाणि इतिहासमें विष्णु द्वै, कि बङ्गापिणक औरस  
 से कलिङ्गराजकन्याके गर्भसे सुव्यवकी (सूर्यवंशी) नाम  
 की एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उर्वो उयो उसकी  
 उन्न चढ़तो गई ल्यो ल्यो उसको सुभेच्छा मी बढ़तो  
 गई। यहाँ तक कि उसने एक दिन पुत्रका परित्याग कर  
 उसभेद्यमें सार्धयाहके साथ मगधकी ओर प्रस्थान कर  
 दिया। काल (राजवंश)के अङ्गुलमें एक सिंह उन  
 पथिकों पर दूट पड़ा। राजकुमारीको यहाँ छोड़ समी  
 ज्ञान से कर मागे। सिंहने राजकन्याको से कर मगधी  
 गुहामे प्रवेश किया। सिंहके सहवाससे राजकन्याक  
 गर्भ बढ़ गया। यथासमय एक पुत्र और एक कन्या  
 उत्पन्न हुई। पुत्रका नाम सीहवाहू (सिंहवाहू) और  
 कन्याका नाम सोहसोवकि (सिंहधोवसो) रखा गया।

सिंहवाहू विजयमें सिंहसे प्रतिपासित हो गामे चक्र  
 कर राजद्वेषका अभिपति हुआ। उसने बड़े लड़केका  
 नाम विजय और गंभोलैका सुमित्रा (सुमित्र) था। विजय  
 भ्याध्व और प्रजापोक तथा उसके साथो भा नाथ  
 प्रवृत्तिक थे। राजवंशमें जनसाधारण विजयक भ्यपदार  
 पर बड़े बिगड और सर्वांगे मिल कर सिंहवाहूक प म  
 मयना बुझड़ा राया। इस प्रकार तीसरे बार पुत्रक धिक्क  
 अभिपोग उगस्थित होमे पर राजपतिमे विजयक और  
 उसके साथियोंके साथे गिरफ्तो मुक्या नाय पर  
 बिडा समुद्रमें फेंक देमेका हुक्म दे दिया। विजय और  
 जेनके साथ सी अनुचरोमे लदा हुआ अहाज महासमुद्र  
 में जा मगा। एक नुसरे महाजन्म उन लामोका म्ना  
 और सोसरे अहाजसे उनक बानबध मो मिले। अहां  
 पुत्रा का अहाज मगा, गह नागद्वीप, अहां लिवो का मगा  
 यह मेदेद्र और अहां विजयका अहाज मगा यह रूपान  
 सुन्दाररूपहन (सुपाररूपसन) कहलाता था। सुपारं  
 रक्षमें अधिवासियों की प्रभुताके मयने विजय : मगना

अहाज से पुत्रा बहोसे खोला हुए। इस बार वे साधुपणी  
 मे उठरे। किस दिन विजय एक ज्ञापने पढ़ से ये, इसी  
 दिन बुद्धका निर्वाण (५७३ ई०क) पड़ल हुआ। इस  
 समय साधुपणोक्षोपमें वसिष्ठोका राजा था। विजय बड़े  
 मोहस और कौशभमे पक्षिणीरानी कुबेयिको वशीभूत  
 कर साधुपणोके अधोभ्यर हुए। विजयक पिता सिंहवाहू  
 ने सिंहका बध किया था, इस कारण उनके य शपथरण  
 'साहल' (सिंहल) कहलाते हैं। विजयसिंहक साधुपणो  
 क्षीपमें राजा करमे लगी, इस कारण वह द्वीप 'सोहल'  
 (सिंहल) नामसे प्रसिद्ध हुआ।

विजयने सिंहलपति हो कर पाण्ड्यराजकन्यास विवाह  
 करना चाहा और इसा बड़ेशसे यहाँ एक दूत भेजा।  
 सिंहलाभिपती प्राचता पर पाण्ड्यराजने अपनेको कन्याको  
 लहे बलपण कर दिया। इस पाण्ड्यराजकन्याक साथ  
 भीक नरनारी सिंहल जा कर बस गये थे।

विजयकी दुयावत्पामों कोई पुत्रसन्तान न होनेक  
 कारण उन्होंने अपने छोटे भाई सुमित्रक पास राज्यग्रहण  
 करनेक लिये समाचार भेजा। इस समय सुमित्र राजद्वेष  
 क अभिपति थे। उनक कई पुत्र मो थे। उन्होंने बड़े  
 भाईका अभिप्राय सुन कर अपने छोटे लड़क पाण्डुवास  
 को सिंहाल भेज दिया। इसके बड़ा पदु चतसे पहले ही  
 विजय ३८ वर्षा राज्य करकेक बाद इस मोकस चक्र बसे  
 थे। पाँडे वासदेव ही गजसिंहासन पर अभिषिक्त  
 हुए।

विजयसेन—गाडके समय शीव एक प्रबल पराक्रमल और  
 प्रबल राजा। शैमन्तसनक औरससे यगोदादेवोके गर्भमे  
 इनका जन्म हुआ। इन्होंने अपने बाहुबलसे नाम्य  
 देश राघव परबैन और धीर भादि महावीरो का दर्प  
 शूर्प तथा गीक, कामरूप और कबिकूपतिका परास्त  
 किया था। भास्त्रिय वा धर्षयिदु ग्राहणोमे इनसे इतना  
 मचुर घन पाया था, कि इससे उन लोकोका विजयोमे,

० महाजन्मे कि दलका इत प्रकार नामकरण कियत होमे  
 पर भी उनके बहुत पदल को यह स्थान सिंह नामने प्रथक  
 का, अस्माप्रासे इका प्रमाय भिन्ता हैं। नि इह रेता।

नागरिकोंसे मुक्त, मरकत, काञ्चनादि अलङ्कार पहन्ने सोखे थे। विजय बहुत-से यज्ञ भी कर गये हैं। उन्होंने गगनचुम्बी प्रद्युम्नेश्वर ( हरिहर ), मन्दिर और उसके सामने एक जलाशयकी प्रतिष्ठा की तथा देवसेवाके लिये एक सौ सुन्दरी बालाप' नियुक्त कीं। सेनराजवंशमें विस्तृत विवरण देखो।

विजया ( सं० स्त्री० ) १ तिथिविशेष। यह तिथि विजयातिथि नामसे प्रसिद्ध है। दशमीहृत्य-दुर्गापूजा और विजया दशमी शब्द देखो। २ पुराणानुसार पार्वतीकी एक सखीका नाम जो गौतमकी कन्या थी। ३ विश्वामित्र द्वारा आराधित विद्याविशेष। विश्वामित्रने इस विद्याकी उपासना का थी। अन्तमें ताड़का आदि राक्षसोंके संहारके लिये उन्होंने यह विद्या रामचन्द्रको सिखाया था।

४ दुर्गा। (हेमचन्द्र) देवीपुराणमें लिखा है, कि दुर्गाने एक समय पद्मनाभक एक दुर्गसिद्ध असुरराजका संहार किया था, इसलिये तमीसे वे इस जगत्में विजया नामसे प्रसिद्ध हुई। ५ यमकी स्त्रीका नाम। ६ हरान्तकी, हर्। ७ वच। ८ जयन्ती। ९ शोफालिका, तिगुंडा। १० मञ्जिष्ठा, मजोठ। ११ शमामेढ, एक प्रकारको शमी। १२ गनियारी। १३ स्थावर विपके अन्तर्गत माला वपमेढ। १४ साविन्ध्य गिरिजा। १५ मैरवा चट्टी। १६ दन्तीवृक्ष। १७ श्वेतवच, १८ नीली वृक्ष। १९ विजयन्द। २० नीलदूर्वा, नीली दू। २१ मादकद्रव्यावशेष, सिद्धि, भांग। स स्रुत पर्याय—कैलासविजया, मद्गा, इन्द्रासन, जया। (शब्दच०) चौरपत्नी, गङ्गा, चण्डला, अजया, आनन्दा, हर्षिणी। गुण—कटु, कषाय, उष्ण, तिक्त, वातकफघ्न, संप्राहो, वाकप्रद, वल्य, मेघनाशका धार श्रेष्ठ द्रापन। (राजनि०) भाष्यप्रकाशके मतसे यह कुण्डलाजक भी माना गई है। राजवल्लभने इस विजयाके गुणक सरपथ्रमें एक सुन्दर कवित्वपूर्ण व्याख्या का है—

“जाता मन्दरमन्थनाञ्जलिनिधौ पीयूषरूपा पुरा  
श्रेष्ठोक्ते विजयप्रदेति विजया श्रीदेवराजप्रिया।  
लोकानां हिष्काम्यया क्लितितले प्राप्ता नरैः कामदा  
सर्वात्पुत्रविनाशहपञ्जनी यैः सेविता सदा ॥”

(राजवल्लभ)।

२२ बृहज्जाम्बूद्वाराके अन्तर्गत द्वादशीविशेष। ब्रह्मपुराणमें लिखा है, कि शुरुपक्षीय द्वादशीके दिन श्रवणा नक्षत्र पटनेसे यह दिन अति पुण्यजनक होता है तथा यही द्वादशी विजया कहलाती है। इस पुण्य तिथिके दिन स्नान करनेसे सर्वातीर्थ स्नानका फल तथा पुत्रा अर्चनासे एक वर्षाप्यापिनी पूजाका फल प्राप्त होता है। इस दिन एक बार जप करनेसे सहस्र बार जप करनेका फल होता है तथा दान, ब्राह्मणभोजन, होन, स्तोत्रपाठ अथवा उपवास सहस्र गुणमें परिणत होते हैं। इस विजया द्वादशीका माहात्म्य सचमुच बड़ा ही चमत्कार है। इस तिथिमें व्रत करनेकी विधि है। हरिमक्तिविलासमें इस द्वादशीव्रतकी विधि इस प्रकार देखनेमें आती है—पहले गुणको प्रणाम कर पाछे सङ्कल्प करे। इस सङ्कल्पका एक विशेष मन्त्र है। जैसे—

“द्वादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि।

भोक्ष्ये शिविद्विमानन्तं शरणां मे भवाञ्जुत ॥”

इसके बाद घटी सीपवीन कण्डस स्थापन करे। उस फलसके ऊपर ताम्र या वैष्णव पात्र रखना होगा और उसके ऊपर उपास्यदेवको स्नान करा कर स्थापन करना होगा। यह देवमूर्ति सोनेकी होगी तथा इसके हाथमें शर और शार्ङ्ग रहेगा। पाँछे देवप्रतिमाको सुन्नचन्दन, सुन्नचन्दन तथा पादुका और छत्र आदि चढ़ाने होंगे।

अर्घ्यदानके बाद यथाशक्ति धूप और नैवेद्य चढ़ावे। नैवेद्यके सम्बन्धमें कहा है, कि प्रधानतः घृतपक नैवेद्य हो चढ़ावे। इसके बाद उस रात्रिको जाग कर विनावे। दूसरे दिन सवेरे स्नान कर देवार्चनाके बाद पुराञ्जलि दान करे।

इसके बाद देवोद्देशसे पुनः अर्घ्यदान और उनका सन्तोषविधान तथा पाँछे ब्राह्मणभोजन और पारण आचरण, यही विजयाव्रतकी विधि है।

हरिमक्तिविलासके मतसे भाद्रमासके बुधवारका यदि यह विजयाव्रत किया जाये, तोः माहात्म्यसुलनामें यह सभी व्रतोंसे श्रेष्ठ होगा, इसमें सन्देह नहीं।

२३ सहदेवकी स्त्री। सहदेवने महाराज-धृतिमानकी कन्या विजयाको स्वयम्बरमें व्याहृत था। उनके गर्भसे

एक-पुत्रके अग्रम-सिया जिसका नाम सुहोत था ।

( महाभारत १/१५/८० )

२४ पुत्रवर्धनीय भूमगुप्तकी स्त्री । भूमगुप्तने विजया नाम्नी वासाई-बलिनीका पाणिप्रदहण किया । इस विजया के-कर्मसे सुहोत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

( पराशरपत्र १/१५/१३ )

२५ एक-योगिनीका नाम । २६ वर्धमान अप्सरसिंधीकोके दूसरे-आई-एकी माताका नाम । २७ ब्रह्मकी एक कन्या का-नाम । २८-श्रीकृष्णकी माताका नाम । २९-ब्रह्मको पताका परकी एक कुमारीका नाम । ३०-प्राचीनकालका एक बड़ा शैला । ३१-एक मातामोंका एक-मासिक छत्र । इसमें अक्षरोंका कोई नियम नहीं होता। और इनके-अन्तमें 'रगण-रचना मति मधुर' होता है । ३२-एक बणिच-पुत्र । इसके-प्रत्येक-कारणमें भाठ-बण होती है तथा अन्तमें-कमु और-गुह अथवा नगण भी होता है । ३३-काश्यायके-एक-अभिन्न-क्षेत्रका-नाम । ३४-मन्त्राग्रमन्त्रके एक-गिरिसङ्घ-का नाम । ३५-सद्गोविन्दके-लिङ्गको-हूँ-एक नदी का नाम। ( ब्रह्मसिद्ध )

विजया एकदशी ( स ०-श्री ० ) १-आश्विन मासके शुक्ल-पक्षकी एकदशी। २-काम्युज मासके कृष्णपक्षकी-एक-दशी ।

विजयादशमी ( स ०-श्री ० ) १-आश्विनकी-शुक्लादशमी । उस-नक्षत्री तिथिमें 'मगबलो पुषाई'बोका विजयोरसय होता-है, इसीसे-इसको-विजयादशमी कहते हैं । इस दिन 'राधा'कीको-विजयके-सिये-यात्रा-करनेकी-बिधि है । 'यह-बाबा-दशमी-तिथिमें-करनी-होगी। यदि-कोई-राधा-दशमी-का-वस्त्र-हूण-कर-एक-दशी-तिथि-की-यात्रा-करे, तो-म्यान-भरके-मीचर-बसकी-क्यों-भी-जीत-न-होगी। यदि-कोई-अपे-यात्रा-करनेमें-अशक-हों, तो-आड़ू-पादि-मन्त्र-शुद्ध-की-यात्रा-कर-रखे ॥ कहने-ना-सात्य-यह, कि-विजयादशमी-तिथिमें-ही-अपनी-बा-कहू-पादिकी-अग्रशय्या-सामा-करनी-आदि-है ॥

दशमी-तिथिमें-देवीकी-सधा-बिधि-पूजा-करके-बलि-दान-नहीं-करना-आदि-ये,-करनेसे-यह-राष्ट्र-नष्ट-हो-जाता-है ।

इस-तिथिमें-भी-राजनके-अन्न-दान, मो-तथा-गोशयके

स्तमोप-भूमि-पर-अन्न-द्वैका-शुभ-है । इस-सम्बन्धमें-कुछ-विशेषता-है । यह-यह, कि-शुभ-स्थानमें-अन्न-द्वैकनेसे-मङ्गल-और-अशुभ-स्थानमें-द्वैकनेसे-अमङ्गल-होता-है । पद्म, गो, गज, बाजा-और-महोरग-आदि-शुभ-स्थानोंमें-द्वैकनेसे-अङ्गुठ-तथा-गमन, अक्षिप, आद्य, सुप, सोम-और-तुषादि-अशुभ-स्थानोंमें-द्वैकनेसे-अशुभ-होता-है । यदि-अशुभ-अन्न-दा-सर्वा-हो, तो-देव-ब्राह्मणका-पूजा, सर्वोपधि-अन्नदान-और-शान्ति-करना-आवश्यक-है ।

प्रथा-है, कि-इस-दिनकी-यात्रा-करनेसे-साल-भर-कीर-कोई-यात्रा-नहीं-करनी-होती । यही-यात्रा-समी-स्थानोंमें-शुभ-होती-है । यह-कारण-है, कि-बहुतेरे-भाग-देवी-निरञ्जनके-बाद-उस-दिन-पर-बैठ-पुर्गा-नाम-उप-कर-जाता-करते-हैं ।

पुर्गारिस-उप-वर्तिमें-विजयादशमाह-उत्पत्तिका-विषय-इस-प्रकार-लिखा-है :-

"मार्गमा-बोवने-देवी-मुनेने-अने-अने,  
"हो-उप-मना-संपुत्र-युवने-वितन्मि-॥" ( विष्णुसूक्त )

मार्ग-नक्षत्रमें-देवीका-बोधन, पूजा-नक्षत्रमें-नक्ष-पञ्चक्र-पदैय, पूर्वाषाढा-और-उत्तराषाढा-नक्षत्रमें-पूजा-तथा-अथवा-नक्षत्रमें-देवीका-विसर्जन-करना-होता-है । विजयादशमाहके-दिन-अथवा-नक्षत्र-पक्षमें-विसर्जनक-सिये-बहुत-अच्छा-है । उस-दिन-यदि-अथवा-नक्षत्र-न-पड़े, तो-केवल-दशमी-तिथिमें-विसर्जन-करना-उचित-है । इस-तिथिमें-पूर्वाह्न-कालके-घर-अन्तमें-देवीका-विसर्जन-करना-है । विसर्जनमें-बदलनका-परिवाग-करना-कदापि-उचित-नहीं ।

विजयादशमाह-प्रयोग-—इस-दिन-प्रातःकालमें-प्रातः-हत्यादि-करके-आसन-पर-बैठे । पीछे-आचमन, सामा-ध्याय, गणेशादि-द्वैका-पूजा-तथा-मूलशुद्धि-और-स्था-सादि-करे । इस-बाद-मगबनी-पुर्गाई-का-भों-बड़ा-उत्सव-मापुका-इत्यादि-सर्वा-संघान-कर-विशेषार्थ-स्थापन-तथा-फिरसे-स्थान-करे । बादमें-शाकिक-अनु-सार-देवीको-पूजा-करनी-होती-है । पूजाके-बाद-देवीका-स्तवपाठ-करके-प्रदक्षिण-करना-होगा । अन्तमें-पद्मु-पिताम-और-विचिदकादि-तथा-मोक्षोत्सर्ग-करके-म-रती-आदि-प्रणाम-करके-का-विधान-है ।

किसी किसी देशमें वासी मान, कञ्चूके सागका घंट तथा चालिताका खट्टा देवीको भोग लगाया जाता है। इसके बाद हाथ जोड़ कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना होता है—

“ओं विधिहीनं भक्तिहीनं क्रियाहीनं यदचित्तम् ।

साङ्गं भवतु तत् सर्वं त्वत्प्रसादान्महेत्तरि ॥”

इसके बाद देवाके अङ्गमें जितने आवरण देवता है। उनको स्मरण कर घड़ेमें थोड़ा जल डाल ‘ओं दुर्गे दुर्गे श्रमम्’ ऐसा पढ़ें ।

अनन्तर देवीके दक्षिण-पश्चिम क्रोणमें एक त्रिकोण मण्डल बनावे। नवघटके मध्य एक घट उस मण्डलमें रत्न सहारमुद्रा द्वारा एक पुप लेवे और “ओं निर्माल्य वामिन्यै नमः श्रीं चण्डेश्वर्य्यै नमः” इस मन्त्रसे समस्त निर्माल्य घटके ऊपर रख कर पूजा करे। इसके बाद ‘ओं स्फैं चण्डिकायै नमः’ इस मन्त्रसे पूजा करके देवीका दक्षिण चरण पकड़ मन्त्रपाठ करना होगा।

इसके बाद एक मिट्टा वा ताबेके बरतन पर दर्पण रखे और घड़ेका जल उस बरतनमें डाल टपण विस्मर्जन करे। वह टपेणयुक्त पात्र देवीके सामने रखना होता है। उस पात्रके जलमें देवीका पादपद्म देवनेका नियम है। उस जलमें देवीके पादपद्मका दर्शन कर देवीको प्रणाम करना होता है।

मन्त्रपाठ कर देवीका घट उठा लावे और उसके जल से पल्लव द्वारा मन्त्रपाठ करे तथा सभीको शान्तिजाल और निर्माल्य पुप द्वारा देवताका आजीर्वाद देवे। इस शान्ति और आजीर्वाद द्वारा सभीके कार्यमें जाय और मङ्गल होता है।

इस प्रकार देवीका विस्मर्जन करके नाना प्रकारके गीत वाद्यादिसे साथ देवीप्रतिमा को नदीमें विस्मर्जन करे।  
(दुर्गात्सवपद्धति)

देवी विस्मर्जन के बाद बड़ों को प्रणाम और छोटीको आजीर्वाद तथा आलिङ्गन करना होता है।

विजयादित्य—१ प्राच्य चालुक्यवंशीय कुल राजे। चालुक्य देखो। २ दक्षिणापथके वाणराजवंशीय कई एक राजे।

विजयाधिराज—कच्छपशातवंशीय एक राजा। ११०० सवन्में ये विद्यमान थे।

विजयानन्द—एक विख्यात परिडित। इन्होंने क्रियाकलाप, धातुवृत्ति और काव्यादर्शको टीका लिखी है।

विजयानन्द (सं० पु०) १ वैद्यकमें एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेकी तरकीब—एक भाग परि और दो भाग हरतालको मन्त्रपूत कर मिट्टीके बरतनमें रखे। पीछे उसके ऊपर दोनोंके बराबर पलाशमसम दे कर बरतनके मुँहमें लेप लगाये और चाँबीस पहर पाक करे। ठंडा होने पर उस पारेको ले कर काँचके बरतनमें सावधानीसे रखे। इससे श्वित्रराग और मधु प्रकारका कुष्ठरोग दूर होता है।

२ सगीतमें तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।  
विजयार्क—कोल्हापुरके एक अधिपति। प्रायः ११५० ई०में ये विद्यमान थे।

विजयार्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।  
विजयालय—नवीं सदीके एक प्रसिद्ध चोलराज।

विजयावटिका (सं० स्त्री०) प्रहणोगीकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—२ तोला पावा और २ तोला गन्धक ले कर कजली बनावे। पीछे उसमें सोना, रूपा, ताँबा, प्रत्येक २ तोला मिला कर उसे अदरकके रसमें छोड़ दे। अनन्तर उसमें दूना कूटनके छिड़केकी मसम मिला कर अच्छी तरह घोंटे और चार रत्तीकी गोली बनावे। एक एक गोली प्रति दिन बकरीके दूध या कूटजकी छालके काढ़े के साथ सेवन करे। पीछे फिर मध्याह्न भोजनके समय इसको दो रत्तों ले कर दधिमिश्रित अन्नके प्रथम प्रासके साथ खावे। इस भोजनकालकी मात्रा प्रति दिन एक एक रत्ती बढ़ा कर जित्त दिन दण रत्तों पूरी हो जाय, उसके दूमरे दिनसे फिर एक एक रत्तों करके घटावे इसका पथ है समूची मसूर ढालका जूस और बारिभक्त (गरम भात जलमें मिगो कर ठंडा किया हुआ)।

विजयावटी (सं० स्त्री०) श्वासरोगकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—णारा, गन्धक, लोहा, विप, अदरक, विडङ्ग, रेणुफ, मोथा, इलायची, पोपलमूल, नागकेजर, त्रिफुट्ट, लिफला, ताँबा, चिता और जयपाल प्रत्येक समान भाग संग्रह करे। पीछे उसमें दूना गुड मिला कर गोली बनावे। इससे श्वास, काम, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिका, प्रहणीदोष, शूल, पाण्डु, आमय और हस्तपदादिके दाह आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

विजयामसनी ( स० स्त्री० ) विजयाभय सप्तमी । पञ्चित  
श्लोतिपत्र अनुसार किसी मासक शुद्ध पक्षकी चतु  
सप्तमी को रविवारको पक्ष । इस सप्तमी तिथिमें दान  
करनेसे विद्वैत फल हुआ करता है ।

विजयिद्वि ( स० स्त्री० ) विरोधेय जेठु शोचमस्य वि जि  
(वि-विभिभोति । पा ३।२।१५) इति इति । १ छिस्तन  
विजय प्राप्त की हो, विजय करमेबासा, सोतनेबासा ।  
( पु० ) २ मनु न ।

विजयिन ( स० स्त्री० ) विजिन्, ऐसा भोजन जिनमें अधिक  
रस न हो ।

विजया ( स० स्त्री० ) विजयिद्वेत्नी ।

विजयान्तर यन्त्र—एक प्रसिद्ध मिस्र न्यायिक । ज्ञानम्  
- तारतम्यार्थं न्यायानुसंधी भामोदयाका, व्यासनाथं बित  
ताहर्ष्यसिद्धिदाके 'चन्द्रकोशाहृतन्यायविबटण' ओर  
'अण्यकगोळ वे टका' भाषि प्रणय इनक रखे है ।

विजयेश्वर ज्ञानी—बकमीमासक रक्षयिता ।

विजयेश ( स० पु० ) १ शिवका एक नाम जो विजयके  
प्रद देवता माने जाते हैं । २ काङ्गारक एक सिद्ध शीब  
त र्थ । इनका वर्तमान नाम विजयार है ।

विजयेश्वर ( स० पु० ) विजयेश देखो ।

विजयैकादशा ( स० स्त्री० ) एकादशमेद्वि भास्विन मास  
क शुद्धा एकादशी और एक शुभकी छापणा एतद्वागो ।

विजयान्तक ( स० पु० ) विजयान्तकसत्र । १ यह उत्सव  
जो किसी प्रकारको विजय प्राप्त करने पर होता है ।

२ यह उत्सव जो भास्विन मासक शुद्धपक्षकी दशमीको  
होता है विजयाष्टमाको होमेवासा उत्सव । इतिमल्लि  
बिभासक मन्त्रसे विजयान्तकी दिन विजयान्तक करना  
होता है । इस उत्सवका विधान इस प्रकार लिखा  
है, कि रत्नाकुपालक धीरामचन्द्रको राजदेशमें विभूषित  
करके रथ पर बैठा कर शमीवृक्षके नये छेद जाना होगा ।  
यहाँ विभिपूर्वक पूजादि कर धारामचन्द्रको और शमी  
वृक्षको पूजा करके मन्त्र पढ़ना होता है ।

( इतिमल्लि० १५ वि० )

विजय ( स० स्त्री० ) विजयता जरा यस्मै । १ उत्तरार्द्ध  
सिन्धु जटा या बुढ़ापान आया हो । २ नवान, नया ।

( स्त्री० ) ३ शुष्क ।

विजया ( स० स्त्री० ) ब्रह्मकोरुणी एक नदीका नाम ।

विजयार्क ( स० स्त्री० ) विशय प्रकारके शोभाशोभा, अत्यन्त  
आभाशोभा । "पुत्र मत्त क्लेशं विजय रोमोति वे ।"

( महाभाष्य )

विजय ( स० स्त्री० ) विगतं जडं मन्मात् । १ मत्तार्थ  
जन या वर्षाका समय सूना । २ जटाका न होना  
पानीका अभाव । ३ विजय ।

विजयका ( स० स्त्री० ) बहयुगाक, बंधु या येच नामका  
साग ।

विजयार ( स० पु० ) विरपेय जडमत् । १ सब फुट  
भारतक तरईकी उत्तरदिशि बाँध करना, व्यर्थकी बहुत  
सो बचना । २ किसी सख्त या मडे माइनाके सम्बन्ध  
में होपपूर्ण जूडा बाँधे कहना ।

विजयक—विजय पत्र, विष्णुक ।

विजयका—विजयका नामना लोकोक्ति ।

विजयाप्तपहम् (विजयाप्तपहम्) मन्त्राज प्रोसिद्धेसीके अन्त  
गंत म म ज भाष्यकन एक जिजा । पा असा० १० ( ५ ) से  
२० ७ व० और देशा० ८१ ८७ से ८४ ३ पू०क लगनवा है ।  
अंगुट और विजयनगरका भूमिमाप मिला कर इसका  
भूगणनाय १०२२२ बगनाक है । स्थानका भाष्यतन  
भाट जनसंख्याक हिसाबसे यह जिजा मन्त्राजम प्रोसिद्धेसी  
क अन्त्याय प्रोसिद्ध है । इसका जनसंख्या तीन  
लाखसे ऊपर है ।

इसकी उत्तरी सीमा पर गङ्गाजिजा और बिहार  
उत्तरीके देशांतर, पूर्वी सीमा पर गङ्गा और बङ्गाल  
सागर, दक्षिणी सीमा पर बङ्गालसागर और गोवाजरी  
जिजा और पश्चिमी सीमा पर मध्यदेश अपरिच्छिन्न है ।  
१७ जमीन्दारियों, ३० सत्वाधिकारियों की भूमिमापों  
और गोमकुण्ड, सर्वसिद्धि और पाककुण्ड नामक तीन  
सरकारी तालुकों को छे कर यह जिजा गठित है । इस-  
का प्राचीन नाम विशयाप्तपहम् है और विशयाप्तपहम्  
नगर्त्तमे ही जिजेकी अन्त्याय प्रतिष्ठित है ।

यह जिजा मन्त्राज प्रोसिद्धेसीक उत्तर अश्वि समुद्री  
पक्ष पर अवस्थित है ।, इतहासमें यह देशभाग उत्तर  
सरकार ( Northern Circars ) नामसे विधिपत्र है ।  
पूर्वाभिनाय बङ्गालसागरकी नावजडरा हा और उत्तरे



उपकरणमें श्यामल गृध्राजिधिमण्डित पर्वतमाला वहाके सौन्दर्यको दिख छटा विकिरण कर रही है।

मन्द्राजसे छामर या रेळपथसे इस समय विजागापट्टम् में आया जाता है। पहले छामरमें आनेके समय मल्लरी-पत्तनको पार कर कुछ दूर आ जाने पर छीमरसे निकट हो डलफिननोज नामक पहाडका शिखर दिखाई देने लगता था। पहाडसे आध मोलकी दूरी पर पोर्टे आफिम-के घाट पर छामरसे उतगना पडना है।

इस घाट पर पोर्टे आफिमकी इमारत और उसके उत्तरका ओर एक पवतशुद्ध पर विभिन्न धर्मोंके तीन मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे एक मुसलमान फकीरका समाधि-मन्दिर है। साधारणका विश्वास है, कि बङ्गोप-सागर पर इस दरगाह साहबका सम्पूर्ण आधिपत्य है। वहाका प्रत्येक व्यक्ति ही समुद्रयात्रासे लौटने पर यहां रीष्यनिर्मित चिराग जलाता है। भक्त लोग दरगाहके सामने प्रति शुक्रवारको चिराग जला दिया करते हैं। सिवा इनके जहाजोंके मल्लाह समुद्रपथसे आने जानेके समय तीन बार निशान उठा कर और गिरा कर उनका सम्मान करते हैं।

पर्वतकी ये सब कोर्चियां और इनके साथकी अट्टालिकाये समुद्रपथसे देखने पर बड़ी ही प्रीति उत्पादन करती हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि इसके सिवा डलफिन-नोज पार कर चुकने पर विजागापट्टम्के प्रवेश पथकी समूची उपकूलभूमिका प्राकृतिक सौन्दर्ये अतीव रमणीय और चित्ताकर्षी है।

इस दरगाहके पश्चिम हिन्दुओंके वेङ्कटस्वामीका मन्दिर है। वहाके हिन्दू वणिकदलने बहुत अर्थ व्यय कर तिरुपति स्वामीका अनुरक्षण कर उक्त मन्दिरको तय्यार करके उसमें देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा कराई थी। तोसरे पहाडके सर्वपश्चिममें रोमन कैथलिक ख्रिष्टानोंका प्रतिष्ठित गिरजा है। प्रकृति द्वारा यह स्थान नानामनोहर साजोंसे सजित रहने पर भी इसका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं। पूर्वघाट पर्वतमालाकी एक शाखाने इस जिलेके उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिममें प्रसृत हो कर जिलेको दो असमान भागोंमें विभक्त कर दिया है। उनमें अपेक्षाकृत बड़ा अथ पर्वतमय और छोटा अथ समतल है।

पार्श्व-प्रदेशमें अवस्थित ऊंचे गिरिशिखर समुद्र-पृष्ठसे साधारणतः ५००० फीट ऊंचे हैं। इन सब पर्वत-मालाओंके दोनों ओरके ढालूदेशमें नाना जातीय फल मृत् और शाकसब्जोंका लतापत्ता और स्थान स्थानमें लम्बे लम्बे वृक्षोंका समूह दिखाई देता है। पर्वतके उपत्यका देशमें घासकी अच्छी और सुन्दर काटिया हैं।

पूर्व-वर्णित पर्वतश्रृंखला इस जिलेकी प्राकृतिक धाराकी अववाहिका बन गई है। पूर्ण ओरको जलराशि घारे घारे पर्वतगोत्रसे बह कर एक एक नानामानोंके कामें बङ्गोप-सागरमें मिल गई है। पश्चिमका पर्वतगोत्रविधीत जलराशि इन्द्रवती, जयन्ती और चित्तूर नदी द्वारा गोदा वरी नदीका कलेवर पुष्ट करता है। फिर जयपुरके उत्तर भागमें और एक अववाहिका दिखाई देती है। इसका कुछ जल महानदीमें और कुछ गोदावरीमें गिरता है। महानदीकी अनेक शाखा प्रशाखाओंमें लेल नामक शाखा ही सबसे बड़ी है। इसका उत्पत्तिस्थान यही जिला कहा जा सकता है।

पूर्वघाट-पर्वतमालाके पश्चिम ओर जयपुरके चिस्तृत सामन्त राज्यका अधिकांश अवस्थित है। इसके पश्चिम अंगोंमें पहाड और जङ्गल ही हैं। पर्वत पर जिन उपन्यदा भागमें इन्द्रवती प्रवाहित हुई है, वह उपत्यका बड़ी ही उपजाऊ है। जिलेके उत्तर और उत्तर-पश्चिममें कन्द और शबर जातिका वास है। यह दोनों जातियां पहाडी ही हैं। जिलेके उत्तरी किनारे पर नीमगिरी नामक शैल विराजित है। इसका सबसे ऊंचा शिखर समुद्रपृष्ठसे ४६७२ फीट ऊंचा है। इन सब पर्वतशिखरोंके बीचों-बीच ही उपत्यकाये हैं। ये सभी उपत्यकाये निम्न-वर्ती घाट पर्वतमालासे १२३० फीट ऊंची हैं। नानामानि विधीत जलराशि पश्चिमपूर्वामिमुक्त समुद्रमें गिरती हैं। इसी जल-प्रणालीसे चिका मोल और कल्लिपत्तनके पादसे प्रवाहित दो नदियोंकी उत्पत्ति हुई है।

घाटमालाके दक्षिण पूर्व भागमें बङ्गोपसागरके किनारे तकका समूचा स्थान प्रायः समतल है। समुद्र-जलमिक और नदीमालाविच्छिन्न यह भूमि प्रचुर प्रत्य शांतिनी और समधिक उर्वरा है।

पार्श्ववर्ती गङ्गाम जिलेके विमलीपत्तन और कल्लिप-

पत्तन नामके दो नगरोंकी उत्पत्ति कोशोंकी रफ्तमी कृतके  
 क्रिये बन्दर प्रतिष्ठित करनेके कारण इस स्थानके अधि  
 कांसियोंके कामकी प्रत्याशामें गत २० वा ३० वर्षके बीच  
 दुगुणे उत्साहसे इस स्थानको शिल्पशास्त्रो बना रका है ।

यहाँकी सब जगह कृषिपरिचालन इत्यादि प्राण्यक्षेत्रोंसे  
 परिपूरित है । कहीं कहीं तम्बाकू और ईलकी श्याम शिर  
 मरिचकत बिल्लीर्ण उद्यानमात्रा परिशोभित हैं । बंजम  
 लसुदोपकूलवर्ती क्षेत्र इधर उधर गण्डरीयमात्स्यो परि  
 विष्णु हैं । इस शैत्यस्थिक किस्ती एक शिखर पर ल्याप्य  
 याम बनानेकी चेष्टा हुई थी, किन्तु विजागापट्टमे वहा  
 भाग्नी ज्ञानेका पथ न रहनेके कारण यह चेष्टा कार्यमें परि  
 पान न हुई ।

ऊपर पर्यतोपरिष्ठ वनमात्राकी जैा बात कही गई,  
 उसका कुछ अंश अमरीकीकी ईक-रेकमें और कुछ अंश  
 बर्माके जमीन्दारोंके पत्तने सुचक्षित है । उत्तरमें पाक  
 कुख्या शैलमात्रा पर, दक्षिण पश्चिममें गोलकुख्या शैल  
 शिखर पर और सर्वनिष्ठि ताम्रकके उपकूलभागमें सर  
 कार द्वारा रक्षित वनमात्रा दिखाई देतो है । प्रयपुरी,  
 विप्रयनगरम्, योगोयकमीपुरम्, गोमकुख्या, सर्वसिखि  
 और पार्वतीपुर ताम्रकके वनमें नामाज्ञातोय वृक्ष उत्पन्न  
 होते हैं । सर्वसिखि ताम्रकके तृष्याच्छादित मरुमप  
 प्राण्तरमें जो मरु गुह्य उत्पन्न होते हैं यह केवल जलानेकी  
 सकृदो तृष्या पशुमोंने लिये चारके काममें भाते हैं । यहाँ  
 गुग्गुलु बांस, जाल भागान महुँन, इरीतकी (छोटी हर्से)  
 भाँबला भादि भावश्यकोय वृक्षोंकी बर्मी नहीं हैं ।

बर्तमान विजागापट्टम जिहा तिल्लु इतिहासके प्रथम  
 काखमें प्राचीन बधिङ्गुराज्यके अन्तमुक्त था । कुछ दिनों  
 के बाद प्राच्य ब्राह्मणवंशके एक राजाने यह स्थान  
 अधिकार कर यहसे इत्तोरके निकटवर्ती दो नगरों राज  
 पाट प्रतिष्ठित किया । इसके बाद उन्होंने यहाँसे उडा कर  
 गजमहेन्द्रीमें अपनी राजधानी कायम की । गजामसे  
 गोदावरीक किनारे तक समुद्रतीरवर्ती भूमिभागमें एक  
 समय जैा राजशासन प्रतिष्ठित था, इस जगह भी उम  
 राज्यशासनका कोई व्यक्तिगत नहीं हुआ । यह जनपद  
 किसी समय उड़ोसेके गजपति-राजवंशक और किसी  
 समय वैडिङ्गनाके अध्याभूतोंके शासनमें परिचालित हुआ

था । अतएव उक्त दो राजवंशोंके इतिहासमें इस प्रदेशका  
 इतिहास विशेषरूपसे उल्लिख्य है ।

अपेक्षाकृत पिछले समय दाक्षिणात्यके बाह्यी राज  
 वंशके सुसलमान राजा श्री महामर्ने उड़ोसेके सिद्धा  
 सन पर किसी राजकुमारको वैठानेकी चेष्टा करनेक उप  
 लक्ष्में पुष्करकारणरूप वनसे अण्डरप्यकी और राजमहेन्द्री  
 को पाया था । इसके बाद बाह्यी राजवंशके अध्यापतनके  
 कारण राज्य मरनें प्रोर विप्लवका उत्पन्न हो गई । इस  
 समयमें उड़ोसेके राजा अ इन सब स्थानों पर फिर कब्जा  
 कर लिया । किन्तु अधिक दिन तक इसका यह उपभोग  
 न कर सक । कुम्भगजाहोरराज इमादिमने इन सब प्रदेशोंको  
 तो जीता ही था परं इसके साथ साथ उन्होंने उत्तरमें  
 बिदाकोळ तक समग्र देश अधिकार कर अपने राज्यमें  
 ठाढ़े मिला लिया था ।

सन् १६८० ई०में दाक्षिणात्यका प्रसिद्ध गोलकुख्या  
 राज्य मुगल बादशाह औरङ्गजेबने हस्त लिया । यह  
 मुगल साम्राज्यका नाममात्र अधिकारमुक्त होने पर भी  
 यथापूर्वमें मुगल यहाँ सुशासनका विस्तार नहीं  
 कर सके । वे यहाँ केवल सामयिक प्रमुक्त स्थापित कर  
 सके थे । उन्होंने इन प्रदेशोंको जमींदार और सामरिक  
 सरदारोंको बँट दिया था । अथर्व विजागापट्टम् बाद  
 शाहके शासनमें था । सन्न द्वा प्रतिनिधि यहाँका  
 शासन करता था । यह प्रतिनिधि बिदाकोळमें रहता  
 था ।

ईसवी सन्की १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें अङ्गरेजोंने  
 प्रथम विजागापट्टनमें बन्दर स्थापित किया । सन् १६८९  
 ई०में बङ्गालके प्लाङ्ग पर बाङ्गाहके साथ अङ्गरेजो  
 कम्पनीका मनोमामिष्य बन्धित हुआ । इस कारण यहाँके  
 सुसलमान प्रतिनिधिये कम्पनीके कर्मचारियोंको किर कर  
 इनको कोठोको छुट मिला और बर्माके अधिपतासी अङ्ग  
 रैजोंको मार डाला । किन्तु दूसरे वर्ष गोलकुख्या सूराके  
 अन्तर्गत मद्राज मछलीपट्टम् मध्यमम् विशाखपत्तन  
 भादि समुद्रके किनारोंके प्रसिद्ध बन्धुधैमें बे-रोक वाणिज्य  
 करनेके लिये बाङ्गाहको अोरसे समापति शुद्धिकार  
 भादि अंग्रेज कम्पनीको आदेशपत्र मन्त्रन किया । इसक  
 लिये सन् १६९२ ई०में शुद्धिकार भादि अङ्गरेज-कम्पनी

को अपनी सशक्तिकी रक्षा करनेके लिये विजागपत्तन बन्दरमे किले बनानेकी आज्ञा दे दी। अंग्रेजोंने धाहरा जत्तुओंके आक्रमणसे रक्षा पानेके लिये एक सुदृढ किला बनाया था।

मुगल-शक्तिके अवनान होनेके बाद 'उत्तर मरकार' प्रदेश ईदरावादके निजामके हाथ आया। निजामने राज्यशासन और राजस्वकी वसूलीके सम्बन्धमें पहलेकी अपेक्षा अनेक सुधारसुधारये की थीं। उनके अधिकारके समय राजसहेन्द्रो और श्रीकाकोलमें एक सुम्लमान राजकर्मचारी रहता था।

प्रथम निजामकी मृत्युके बाद ईदरावादका सिद्दासना अधिकार लेकर उत्तराधिकारियोंने विरोध उपस्थित हुआ। फ्रान्सीसियोंने सलाघत्तजङ्गकी ईदरावादके सिंहासन पर बैठानेका विशेष उद्योग किया था। इस उपकारके कारण सलाघत्तजङ्गने उन लोगोंके हाथ मुम्बई नगर, इलौरा, राजमोटा और श्रीकाकोल नामक चार सरकारोंकी दे डाला। मन् १७५३ ई० में फ्रान्सीसी-सेनापति महावार बुगाने सलाघत्तजङ्ग इस विषयका एक फरमान पाया था। इसके कुछ दिनोंके बाद मन् १७५७ ई० में युजी वर्णाट्ट विभागके गवर्नर हुए। इस समय उनका हाथवाले युद्धो, बन्दिगाना विख्यात अवरोध स्रष्टित हुआ। इस युद्धमें फ्रान्सीसी सैन्यने जिस रणचातुर्य और वरतका प्रदर्शन किया था, वह उस स्थानके हिन्दुओंके हृदय पर गहरी रेखा जमा गई। वे इस मयावह कण्डो राज मा नहीं भूटे हैं और गानके रूपमें गाते हैं।

इस समय सरकार श्रीकाकोलके सम्प्रान्त हिन्दु सान-सेना विजयनगरम्क सिद्दासन पर गजपति विजय रामराज कर जमान थे। फ्रान्सीसी सेनापति मुसेा बुगाने साथ उनका मदुभाव था। हिन्दुनरपतिके प्रति उल्लास या पुरस्कारस्वरूप उन्होंने अति अल्प राजस्व निर्धारित कर राजा गजपति विजयरामको श्रीकाकोल और राजमोटा सरकार अर्पित कर दी।

इस समय विजयनगरम्गजके साथ बन्दिगाना रङ्गरावकी धरती जत्तुना जाग उठी। विजयनगरम्गज जत्तुका शय्य करनेके लिये फ्रान्सीसी-सेनापतिसे अनुरोध किया। इसपर अकस्मात् एक दुर्घटना हो गई। रङ्गरावकी

भेजा एक फौजने फ्रान्सीसियों पर आक्रमण कर दिया; किन्तु यह सफल नहीं था। रङ्गरावका उद्देश्य नहीं था, कि फ्रान्सीसियों पर आक्रमण किया जाये, इस घटनाके कारण फ्रान्सीसी स्वतः उनके विरोधी हो उठे। यह विजयनगरम्गजका मौका मिल गया। उन्होंने फ्रान्सीसियोंकी सहायतामें एक फौज भेज कर बन्दिगाने, पार्श्वद्वय दुर्ग पर आक्रमण किया। क्रमशः यह बागड बढता गया। नगरके रणक्षेत्र उन्मूलित और भाषण दृश्यमें परिणत हुआ। फिर भा रङ्गराव और उनके अनुचरोंमें फ्रान्सीसियोंके पतन होने पर राजा नहीं हुए। किन्तु अंतमें देखा गया, कि पवड जत्तुसैन्यके साथ थोडा सेना लेकर लडना और विजयनगरका आश्रय करना पड़ा है। यह सोच विचार कर वे सब अपना अपनी स्त्रियों और बालकका अपने हाथमें हथपा कर तलवार लेकर रणक्षेत्रों उतरे। फ्रान्सीसी सैन्यने रङ्गरावको आश्रय देनेकी बात कही थी, किन्तु उन्होंने जत्तुके सामने-से भागनेका अपेक्षा युद्धमें मर जाना ही उचित समझा और भाषण मारकाट करने करने युद्धक्षेत्रमें वे काम आये। रङ्गरावके लडते नाथालिग पुत्रने इस भाषण हत्या काण्डमें रक्षा पाई थी। राजाका कोई विजयामो नौकर बालकको लेकर भाग गया। राजा रङ्गराव ही रणक्षेत्रमें पतित देख उनके चार विभक्त नौकरोंने राज-जीवनका प्रतिशोध लेनेकी प्रवृत्ति की। ये चारों गुरी रातकी निश्चयकी अदृश्यमें निकल कर विजयनगरम्के राजाके गिरिमें घुसे और उनकी मांग कर गुप्त भावसे लौट आये।

उपरोक्त रूपमें श्रीकाकोलकी सामन्यवस्था स्थिर कर सेनापति बुगाने विजागपत्तनमें आ कर अद्वारेजोकी कोठा पर अधिकार कर लिया। किन्तु फ्रान्सीसी अधिक समय तक फलभोग नहीं कर सके। बङ्गाल में यह संवाद पहुंचने पर लार्ड क्लाइवने १७५६ ई० में एक सैन्यदलके साथ वहां कर्नल फोर्डको भेजा। फोर्ड उत्तर-सरकारों उपस्थित हो विजयनगरम् राजके साथ मिल गया। उक्त राजाने अपने पिताके प्रति फ्रान्सीसियोंकी मिलतासे विरक्त हो कर फ्रान्स लियेके हाथमें उक्त राज्य विच्छिन्न कर लेनेके लिये पहले हीने अंग्रेजोंको बुला

लिया था । इस वर्षको २०वीं अक्टूबरको फोर्डने विभागापट्टम् भा कर विजयनगरम्को फोर्डको साथ मिळ कर फ्रान्सोसियोंके विरुद्ध युद्धयात्रा की । गोदावरी जिसे में छोरतर संघर्ष हो आयेके बाद फ्रान्सोसी सेना पराजित हुई, अ प्रदेश समाप्तिते मछरीपल्लन युग पर अधिकार कर लिया । इस समय हैदराबादके निजामने मछरीपल्लनके पारो और कई प्रदेश एव इतिहासा कम्पनीको दान किये । उत्तर सरकारमें फिर फ्रान्सोसी अधिकार प्रसिद्धित न हो सका, इसके द्विधे उनको उन्हीने ताकीद कर दी ।

सन् १७५५ ई०में नाद ह्दारने विलीके सन्धिमें कर मागेक अनुसार उत्तर सरकार प्रदेशका अधिकार प्राप्त किया । सन् १७७८ ई०में निजामके साथ अंग्रेजोंको एक सन्धि हुई । इनकी शतके अनुसार समय उत्तर सरकारविभागा निरिरोध अंग्रेजोंक हाथ आ गया । अतः अन्त्या प्रदेशोंके साथ इसी समय विभागापट्टम् जिम्मा एव इतिहासा कम्पनीको राज्य सीमामें मिला किया गया ।

इस जिम्मेके आयेक्य ताताम्का अयधीर्गण इतिहास विजयनगरम्के सीमावर्कके साथ अधिकतर संनिष्ठ है । इस समय इस स्थानके राजसवगणे ही इन प्रदेशोंके सवमय कर्ता रह कर दक्षिणारयमें हिन्दूराजगणिका प्राध्याप्यस्थापन किया था । राजसूता सोतारामराज और दावान शम्भुवाघराजके राष्ट्रविद्भवकर कुचकमें पड़ कर कोर्टे भाव इरैकरले सन् १७८१ ई०में मद्रासके गवर्नर सर डामस् एमबेडजेको बाधक हो कर पकड़्युत किया था ।

सन् १७८४ ई०में मद्रास गवर्नरवेल्डके आह्वानुसार एक सर्किट कमिटी सगठित हुई । इसने उत्तर सरकारोंके देशकी अयन्त्या और आयक सवसयमें विरोध अनुसन्धान कर एहमें भी फाकोड सरकारके कासांतकोटा विभागक सवसयमें एक रिपोर्ट मेजो । इसमें एक विभागका नाम अश विभागापट्टम्में लिखा गया है, यह प्रायः ३ भागों में विभक्त देखा जाता है—१ गवामेस्ट्रेके तख्ताबघालमें रहित इतिहासी जमीन । २ विजया पट्टम् । ३ विभाग या इस गवर्नरके आगे मोरके ३३ छोटे-छाटे गाँव । ३

अन्ध, गोमकुपका, अयपुर और पाळपुरका सामक करद सामन्तराज्योंके साथ विजयनगरम्को अतीश्वारो ।

सर्किट-कमिटीको एक रिपोर्टमें विजयनगरका इस तरहका परिचय देने पर मो मद्राससरकारने उन समय इस पर हस्तक्षेप नहीं किया । इस समय विभागापट्टम्की मन्त्रिसभा और सरदारों द्वारा स्थानोय शानतकार्य परिचालित होता था । किन्तु १७९७ ई०में प्रादेशिक मन्त्रिसभाका ( Provincial Council ) विमोप हो जाने पर समय उत्तर-सरदार विभिन्न कमबर्दरमें विभक्त हो गया और नसामान विभागापट्टम् जिम्मा इस तरह तीन कमबर्दरीके भीतर आया ।

विजयनगरम्के मायहोन राजा विजयराम मरने माइ सोतारामके हत्यमें पड़ कर कठपुरकोडो तरह नाशन ये । पथर्षमें सोताराम ही राज्य करने थे । कमशा विजयरामका नाब लिंगाका समय बांठ गया । अब इनके बिल्लये यह भाव प्रबल हो उठा कि ये राज कायवका मार लय ल कर राज्य करेगे । उन्हीने अयना प्रबन्ध करना शुरु किया, किन्तु सोताराम उनके पथके करि बने । इसक फलसे राजा और सोताराममें विरोध को खूबि हुई । मद्रास-सरकारने दोनोंका विरोध मिटायेक छिपे दोनोंको मद्रासमें बुलाया । इसके बाद न जाने विबाद मिटा या नहीं ये गये या नहीं । किन्तु सरकारी पेशकस न देनेके कारण अंग्रेजोंका उन पर बड़ा तफाजा हुआ । एपर सुचायकसे राजपकार्य न चलनेके कारण उपदेदी कमी हो गई । राजा 'पिण्डस' दे न सके । उपदेकी कमी तथा राज्य सञ्चालनमें गड़बड़ी रहनेके कारण उनका बिल सदा बिल रहता था । ये कईबार तो अंग्रेजोंसे डाकमटोल कर रहे थे किन्तु अन्तमें उन्हीने अंग्रेजोंका विरहकार किया । कमता दोनों दलमें युद्ध अभिचार्य्य हो उठा । अंग्रेजोंने १७९६की दक्ष कर सेनेक इरादेसे एक फौज मेजो । एपर राजाको भी जबर मिली । राजा भी अयने साथो सामन्तोंके साथ रणक्षेत्रमें आ उडे । उन्हीने विजय नगरम् और मछरीपल्लनके बीच पल्लनमम् नामक स्थानमें आ कर अयना जेमा पडा किया । सेप्टेम्बर कर्नेल प्रेडरगाएने आक्रमण कर उनकी मार डाला ।

सारा किसना तमाम हुआ। यह सन् १८७४ ई०की १०वीं जुलाईको घटना है। इस घटनामें उनके कितने प्रिय कर्मचारियोंकी जानें गईं थीं।

मृत राजाके पुत्र नागायण वावू पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हुए। बहुत कठिनतामें उनकी पैतृक सम्पत्ति उनके हाथ आई। वह भी कुछ नहीं, जयपुर आदि पार्षत्य मर्दारोंके अधिकृत प्रदेशोंका शासनभार अङ्गरेजों ने अपने हाथमें रखा।

बङ्गालमें चिरस्थायी बन्दोबस्तमें कर वसूलीकी सुविधा देव सन् १८०२ ई०में उत्तर सरकार प्रदेशमें भी मन्दाज सरकारने वैसा ही व्यवस्था कराई अर्थात् वहाँ भी चिरस्थायी बन्दोबस्त हुआ। उस समय यह जिला १६ जमीन्दारियोंमें विभक्त था और इनका राजस्व ८०२,५८० रुपा निर्दाग्नि हुआ। मन्दाज सरकारने उस समयकी सरकारी जमीनको छोटी छोटी जमीन्दारियोंमें बांट दिया। इस तरह २६ जमीन्दारियोंके मिला कर विजागापट्टम् तथा कलेकुरीको सृष्टि हुई।

इस तरहके बन्दोबस्तमें राजा-प्रजामें बहुत असुविधा हुई। अंग्रेजोंके प्रति प्रजाका क्रोध दिनो दिन बढ़ने लगा। इसी मनोमालिन्यके कारण अंग्रेजोंके साथ पार्षत्य सामन्त राजाका अहरहः युद्ध हुआ था। अनेक युद्धोंमें अंग्रेजों सेना पराजित हुई। इस तरह विप्लव में ३० वर्ष गुजर गये। अन्तमें सन् १८३२ ई०को गङ्गामें एक भयानक विद्रोह खड़ा हुआ। अथ मन्दाज सरकार स्थिर न रह सकी। इस विद्रोहके उभन करनेके लिये एक फौज भेजी गई। जाज रसेल नामक एक अंग्रेज वहाँका स्पेशल कमाण्डर नियुक्त किये गये। उनके ऊपर ही विद्रोहके कारण अनुमानान करनेका भार दिया गया। उनके यह आशा दी गई, कि वे जा कर विद्रोहका उभन करे और जरूरत हो तो 'मार्शल ला' भी जारी कर दे' और ऐसा चेष्टा करें कि भविष्यमें वहा फिर ऐसा विद्रोह न होने पाये।

मिष्टर रसेलने कार्यक्षेत्रमें उतरते ही देखा, कि विजागापट्टम्के दो जमीन्दार ही इस विद्रोहके कारण हैं। यह देख कर उन्होंने देर न कर उन दोनोंको दण्ड देनेके लिये उन पर आक्रमण कर दिया। उनमें एक सरदार पकड़े गये

और दूसरे भाग गये। ऐसे समय पाठकुण्डाके जमींदार भी विद्रोही हुए। रसेल साहबने उनको भी दबाया।

इसके बाद मिष्टर रसेलके परामर्शानुसार डम जिन्डेकी शासन-व्यवस्थामें बहुत परिवर्तन किया गया। पार्षत्य करव जमीन्दारोंको सम्पूर्ण रूपसे जिलेके कलेकुरीके अधीन रखा गया। सन् १८३६ ई०में यह कानून जारी हुआ। इस कानूनके अनुसार डम जिलेका आठवा अंग शासित होने लगा। केवल प्राचीन हाविली जमीन तथा कुछ और स्थान डम एजेन्सियोंमें न रहनेके कारण त्रिकाकोलके सिविल और सेमन जज वहाँके विचारक हुए। सन् १८६३ ई० तक ऐसी ही व्यवस्था रही। इसके बाद विजयनगरम्, बबिली और गोलकुण्डा उक्त एजेन्सियोंके शासनसे बाहर कर दिये गये। ये सब ही डम समय पार्षत्य प्रदेश कहे जाते हैं।

डम परिवर्तनके बादसे ही यहाका विद्रोह बहुत क्रम हो गया। सन् १८४५ से १८४८ ई० तक गोलकुण्डेके पार्षत्य सरदारोंने अंग्रेजोंको विरोधरूपसे निर्यातन किया। सरकारने वहाँकी गनोंको मार कर उनको सम्पत्ति को जप्त कर लिया। सन् १८५७-५८ ई०में वहाँ भी एक बार विद्रोह हुआ था, किन्तु यह बहुत दूर तक न फैल सका अर्थात् शीघ्र ही दबा दिया गया। सन् १८४६-५० और १८५५-५६ ई०में राजा और उनके पुत्रके बीच विरोध होनेकी वजह जयपुर राज्यमें विद्रोह खड़ा हुआ। इस गृहविवादको मिटानेके लिये सरकारने हस्तक्षेप किया। अन्तमें अंग्रेज सरकारने घाटपर्वतमालाका ओरके चार तालुकोंको अपने हाथमें कर लिया। इस तरह जयपुर राज्यके बाप-बेटेका भगडा तय हुआ। पीछे जब राजाकी मृत्यु हुई, तब उनका लड़का तख्तानजीत था। इस समय सरकारने उन चार तालुकोंको उन्हें लौटा दिया। यह सन् १८६० ई० की घटना है। उस समय जयपुरकी शासनशृङ्खलाका विस्तार करनेके लिये एक अतिष्ठण्ट एजेण्ट और एक असिष्ठण्ट पुलिस सुपरिन्टेण्ट रखे गये। इस समय यह जयपुर इन दो अफसरोंके तत्वावधानमें शासित हो रहा है। दीवानों और फौजदारी अदालतों इन्हींके हाथमें है। सन् १८८६ ई०में गोदावरी जिलेके रप्पा प्रदेशमें एक विद्रोह उठा। यह घरे और

गुड्डे मले कीव कर मयपुर तक खया भावा । सरकारकी इसके दमन करलेमें यद्दी कोषा करनो पद्दी थी ।

विज्ञानगारम् राशयों मो बस समय कई राशयोंद उठ करे हुए थे। किन्तु ये शीघ्र ही दबा दिये गये ।

विज्ञानगारम् देखो ।

इस जिलेमें विज्ञानागारम् नगर, विज्ञानगारम् बम्बली पत्तन, अमकापट्टी, मालूर पार्श्वतीपुर पामकुण्डा विमकी पट्टम्, चासोमकोटा और म्बुखेर पुकोटा नामके बग नगर और प्रायः ८५२ ग्राम हैं । यहाँ कई वर्षोंके मनुष्योंका वास है । ईसाई और मुसलमानोंका भी समाय नहीं । किन्तु हिन्दुओंकी भाषायो ही अधिक है, यहाँको प्रदेशोंमें कम्ब, गाड, गड्ढा, कोइ प्रभृति जातियोंका निवास है । ब्रह्मिण भागमें बनिषा कम्बनोर, कम्बकापू, मतिवा और कोई नामक जातियोंके साथ उनके भाषागत विधेय पार्यथ्य नहीं । कम्ब जाति पहले नरबलि देतो थी । जिस बलसयमें यह नरबलि ही जाती थी, उस बलसयका नाम था—'मैरिबा' । पाककीबहाके डामूर्य देशमें गुप्तापुरके पूर्वभाग तक स्थानोंमें शवर ( सौर ) नामक और एक आदिम असभ्य जातिका बास है ।

विशेष बात उन जातियोंके स्वप्न विवरणमें देला ।

यहाँ भाषा जातिके अनाज पैदा होत हैं । बराह नदी, सारदा नदी और नागावली नदी तथा कोमरवोलू और कोरुकोसी नामकी नदियोंमें यहाँके क्षेत्रोंकी सिंचाई होती है । सिंचाई इसके उत्कृष्ट कार्याम यद्ध और मज्जासी वार बरतनीका बहुत बड़ा कारण होता है । अनेकापट्टा, पैकारापेटा, मज्जन्निरी, तुम्मी और अन्याय ग्रामोंमें १२० नरबलि सुनसे एक प्रकारका कपड़ा तयवार किया जाता है । यह 'पाङ्काम' नामसे प्रसिद्ध है । विशालपत्तन और विन्नाकोडमें मो इस तरहका और दूसरी तरहका कपड़ा तैयार होता है । लीबिया और डैबिय-क्याप (मिश्रको डकने का बस्त्र) जिलेके नामा स्थानोंमें बुना जाता है । विशाल पत्तनमें हाथो दान, मैसके मीय, शाहिकके कटि और चाकीके तरह-तरहके सिन्नी, अमडूर (गहने कामका) 'गुड्डोमाकी साममी तम्पार होती है । इसी शिष्यके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है । छककीकी सुन्नर-सुन्नर सुदाद आदि शिष्यका यहाँ समाज नहीं । फिर पास रत्नेका

पात्र, पर समाजेकी साममी आदि कई चीजें यहाँ तम्पार होती हैं ।

यहके स्थल और अल्पवयस यहाँके व्यवसायका धारिण्य होता था । इस समय रैय हो जानेसे कम्बकोसे लै मन्नाज तक व्यवसाय धारिण्यकी बहुत सुविधा हो गई है । विज्ञानागारम्के उधः प्ठमें सुपमित्त वसतेपर नामक स्थानमें स्वान्यवनाम है । यहाँ बित्तने ही गोरोंके रहनेके लिये वाममयन विन्नाई देते हैं । बसते देखो ।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग । मूरिमाण १४२ घर्ग मोस है ।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार 'मडूर' । यद् अक्षा० १३ ४२' ३०" तथा रेखा० ८३ १८' ५०" मध्य अवस्थित है । यह नगर मन्नाजस (रेलसे) ४८४ मोल पर और कन्नकत्तसे ५४६ मोस पर पडता है । इस नगरकी जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है और ७३४१ मकान हैं । जनसंख्यामें ३६३४६ हिन्दु और बाकीमें सब इतर जातिके लोग हैं ।

यहाँ शिक्षाओंकी भी कमी नहीं है । लोथे बरसोंके स्कूलिक निवा मूरै दरजेका कासेज (The Mrs A V Xaromagh Rao कासेज) हैं । इसमें लगभग ५०३ छक्के शिक्षा प्राप्त करते हैं । लोन हाई स्कूल भी है । दो वाजिकाभोके लिये मो हाई स्कूल है । एक रोमन केथ लिडों और दूसरा अण्डन मिशनरो सोसायटी द्वारा चलाया जाता है । सिबा इनके एक मिडिल स्कूल और एक अस्पताल भी है । सन् १८४४ ई०में विज्ञानगारम्के एक महाराजमें इनकी प्रतिष्ठा की थी ।

समुद्रके किनारे विज्ञानपत्तन बन्दर अवस्थित है । इनकी ब्रह्मिणी सोमा पर डबकिन-मोत्र नामक पर्यतम्बु और ठठरी सोमा पर सुपमित्त बन्देयरा का स्वास्थनिवास है । बन्दरपाटस कुछ उत्तर विशालपत्तन नगर अवस्थित है । यहाँके अधिष्ठात्री देवता विशाल या बलि केवल नामानुसार इस स्थानका नाम विशालपत्तन हुआ है । विशाल स्वामाका मन्दिर समुद्रगम में निर्माजत है । हिन्दु अधिवासी भाज भी योगके उपसर्गमें इस मन्दिर के निकट सागर स्नान किया करते हैं । विज्ञानपत्तनकी प्राचीन दुर्गसोमाक बाब ब्रिटिश अरकी बहालत, द्र जरी,

मजिस्ट्रेट कोर्ट, सब-मजिस्ट्रेट अदालत, मुंजिफी अदालत, पोष्ट एण्ड टेलिग्राफ आफिस और फ्लामग्राफ, गिरजा, चारूद और अस्त्रागार तथा छावनी मौजूद हैं। यहांसे पांच मील उत्तर समुद्रके किनारे वाल्देयार नामक स्थानमें बङ्गुरेजोंकी छावनी थी। इस समय वहां जिलेके हाकिम हो रहने हैं। यहां डिविजनल पब्लिक वर्कर्स, इंजीनियर्स आफिस और इष्टकोष्ट रेलवेकी हेड आफिस है।

यहां चार प्रसिद्ध देवमन्दिर हैं। पागोडा प्नीटमें कोंडण्डरामस्वामीका मन्दिर है। इसमें भगवान् राम लक्ष्मण और माता सीताकी मूर्ति विद्यमान है। प्रधान सङ्घकी बगलमें श्रोजगन्नाथस्वामीका मन्दिर है। गरुड पद्मनाभ नामक यहांके किसी वणिक्ने पुरुषोत्तमक्षेत्रके जगन्नाथदेवके मन्दिरकी तरह इस मन्दिरको तैयार कराया था। ईश्वरस्वामीके मन्दिरमें शिवमूर्ति प्रतिष्ठित है।

डरुफिननोज पहाडके ऊपर कुछ पक्के मकानोंका चिह्न है। पहले यहा एक छोटा किला था। इस समय उसके बदले वहां ए० वि० नरसिंहरावका फ्लामग्राफ खडा है। पहाडकी उपत्यकामें राजा जी, एन, गजपति-रायका पु'पोधान है।

यहांसे ४ मील दूर पर सिंहाचलके पूर्व-दक्षिण गात्रमें एक भरना है। यह पुण्यधारा एक तीर्थरूमें परिगणित है। यहा भी श्रमाधवस्वामीका एक मन्दिर है। देवताके नामसे यह धारा माधवधाराके नामसे प्रसिद्ध है। यहा नित्य ही वसन्तका आवास है। धाराके निकट हा एक गुहा दिखाई देती है। जनसंधारण का विश्वास है, कि इस गुहामें माधवस्वामी आज भी विद्यमान हैं।

किम्बदन्ता है, कि १४वीं सदीमें कुलोत्तुङ्गचोलने इस नगरको स्थापना की। कलिङ्ग विजयके साथ यह नगर मुसलमानोंके हाथ आया। जिलेका इतिहास देखो।

विजात (सं० त्रि०) विरुद्ध जाति जन्म-यस्य। १ जेजन्मा, जारज, वर्णमंकर, दोगला। ज्योतिषमें लिखा है, कि निम्न बालकके जन्मकालमें लग्न और चंद्रके प्रति वृहस्पतिकी दृष्टि न रहे अथवा रविके साथ चंद्र

युक्त न हो तथा पापयुक्त चंद्रके साथ रमिका योग रहे, वही बालक विजात होता है। द्वाइयो, छिनोया और सप्तमी तिथिमें रवि, शनि और मंगलचारमें तथा भग्न-पाद नक्षत्रमें अर्थात् कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तर फल्गुनी, चिन्ता, विशाखा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा और पूर्व-भाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे जातबालक जारज होता है। निथि, वार और नक्षत्रके एक साथ मिलनेसे उक्त योग हुआ करता है।

(पु०) २ सखी छन्दका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें ५-५-४ के विश्रामसे १४ मात्राएं और अन्तमें मगण या यगण होता है। इसकी पहली और आठवीं मात्राएं लघु रहती हैं। इसके अन्तमें जगण, तगण या रगण नहीं होना चाहिए।

विजाता (सं० स्त्री०) १ जारज लंडकी, दोगली। २ वह स्त्री जिसे हालमें संतान हुई हो, ज्ञाया।

विजाति (सं० त्रि०) भिन्न या दूसरी जातिका।

विजातीय (सं० त्रि०) रि मश्रां जानिमईने विज रि-छ। जो दूसरी जातिका हो, एक अथवा अपनी जातिसे भिन्न जातिका।

विजानक (सं० त्रि०) छान। (भारत १३ पर्व)

विजानि (सं० त्रि०) अपरिचित। (बर्थर्न ५ १७।२८)

विजनु (सं० पु०) तलवार चलानेके ३२ हाथोंमेंसे एक हाथ या प्रकार।

विजनुप् (सं० त्रि०) जनयिता। (शुक १०।७७, १ शायय)

विजापक (सं० स्त्री०) नामभेद। (पा ४।२।३३)

द्वैजानक देखो।

विजापयित् (सं० त्रि०) विजपकी घोषणा करनेवाला।

(कथावर्तिका० १३।५)

विजामन् (सं० त्रि०) विविधजन्मा, जिसका नाना प्रकारसे जन्म हुआ हो।

विजामात् (सं० पु०) गुणहीन जामाता, वह जमाई जो धृत-शीलवान् न हो। (शुक १।१०।२)

विजामि (सं० त्रि०) विविधज्ञाति, ज्ञानिविधेय।

(शुक १०।६।१२)

विजार (हिं० पु०) एक प्रकारकी मटिया भूमि। इसमें धान और कभी कभी चना भी बोया जाता है।

विज्ञात ( स० ख० ) वञ्चोक्त पद, धर्म या भाव, प्रसिद्ध ।

विज्ञापन् ( स० लि० ) ज्ञातपुत्र । ( भयम् ६।३।१६ )

विज्ञानन् ( स० लि० ) विज्ञानता, विज्ञानरक्षा, पैश करनैशाहा । ( मृच्छ ३।१।२३ )

विज्ञिगोप ( स० लि० ) विज्ञापना अस्त्यप्येति अर्थे आदि  
रथावप् । अयेषु विज्ञादो इच्छा करनबाया ।

( तिङान्तकीपुरी )

विज्ञिगोपा ( स० ख० ) विज्ञेनुमिच्छा पि जि सन् अ  
ज्ञिगो टापु । १ स्तोत्रपूरवामकितानिमक्त निम्दात्या  
गेच्छ, यह इच्छा ज्ञानक अनुभार मनुष्य यह आहता है  
कि मुक्त को यह न कह सक कि मैं माना पेट पालनेमें  
मनमथ हूँ । २ अथद्वार । ३ उद्वेग, उन्नति । ४ विज्ञप  
प्राप्त करनेका इच्छा ।

विज्ञिगोपावन् ( स० लि० ) विज्ञिगोपा विघतेऽप्य विज्ञ  
पाया मनुष्य मरुव बराम् । विज्ञिगोपाविभाग, जिस  
विज्ञिगोपा हो ।

विज्ञिगोपाविचरिन् ( स० लि० ) विज्ञिगोपा विचरिन्ता ।  
विज्ञिगोपावद् रक्षित जिसे विज्ञिगोपा नहीं है सिफ  
पेटको चिन्ता है । पर्याय—भाघ्न, भीरुरिक् ।

विज्ञिगोपिन् ( स० लि० ) विज्ञिगोपा अस्त्यप्य विज्ञि  
गोपा इत् । विज्ञिगोपावान्, विज्ञिगोपाविज्ञिगप ।

विज्ञिगोपाय ( स० लि० ) विज्ञिगोपा अस्त्यप्यिन् विज्ञि  
गोपा ( अन्तर्गतम् ) इति अनुवर्षु । पा ४।१।६० ) छ ।  
विज्ञिगोपा या जहाँ विज्ञिगोपा हो ।

विज्ञिगु ( स० लि० ) विज्ञेनुमिच्छुः वि जि सन् अ  
( अन्तर्गतम् ) छ । पा ३।२।१६८ ) । अयेषुतामोक्त विज्ञपनी  
इच्छा करनेवाला ।

विज्ञिगुना ( स० ख० ) विज्ञिगु होनेका भाव या  
धर्म ।

विज्ञिगुपुत्र ( स० ख० ) विज्ञिगु होनेका भाव या  
धर्म ।

विज्ञिगुद्विपु ( स० लि० ) विज्ञिगुद्विपु विज्ञ कपिपु इच्छुः  
वि-प्रद-विष्-सूत्र छ । ( अन्तर्गतम् ) छ । पा ३।२।१६८ ) ।

युद्ध करानेमें इच्छुः, जिसको युद्ध करानेकी इच्छा हो ।  
विज्ञिपटम ( स० लि० ) विज्ञिपटला अस्त्यप्येति अर्थे  
आदिवावद् । मोक्षनेच्छ, जानेका इच्छा करनेवाला ।

विज्ञिघासु ( स० लि० ) विहृष्टमिच्छुः वि हृष्ट-सन् अ  
( अन्तर्गतम् ) छ । पा ३।२।१६८ ) । १ विघासापरायण, जो  
विशेष प्रकारसे हान ( हँसा ) करनेका इच्छा करता हो ।  
२ विघनाशापीच्छु ।

विज्ञिपुसु ( स० लि० ) विप्रोतुमिच्छुः वि-प्रह सन्  
( अन्तर्गतम् ) छ । पा ३।२।१६८ ) छ । विप्रोच्छ, युद्ध  
मिनाया, युद्धको इच्छा करनेवाला ।

विज्ञिघसा ( स० ख० ) विशेषरूपसे ज्ञाननेको इच्छा ।  
( भाग० १।६ १६ )

विज्ञिज्ञामिनश्च ( स० लि० ) विज्ञिज्ञामिनोय, विज्ञिज्ञासा  
क योग्य ।

विज्ञिघसु ( स० लि० ) विज्ञिज्ञामाकारो, विशेष प्रकारसे  
ज्ञाननेका इच्छा करनेवाला ।

विज्ञिज्ञारूप ( स० लि० ) विज्ञिज्ञितश्च, जिज्ञासाके  
योग्य ।

विज्ञित ( अ० ख० ) १ मे ट, मुक्ताकात । २ आकुर भात्रि-  
का ३ गोको ऐकमेक मिथे जाता । ३ यह धन जो आकुर  
आदिको धानके उपलक्ष्य दिया जाय ।

विज्ञितर्षा बुक ( अ० ख० ) किस्ती मार्कान्तिक संख्या  
की यह पुस्तक जिसमें वहाँके धाने ज्ञानेय से अपना नाम  
और कमी कमी इस संख्याक सम्बन्धम अपना सम्मति  
जो किन्ते हैं ।

विज्ञितर्षा काड ( अ० पु० ) एक प्रकारका बकिया छोटा  
काड । इस पर ज्ञान अपना नाम पद और पता छपया  
सेते हैं और जब किन्तेसे मिलन ज्ञाने है, तब उसे अपने  
भाग्यमकी सूचना देनेके मिथे पहले यह काड बसके  
पास भेज देते हैं ।

विज्ञित ( स० लि० ) विदयेय जिता वा वि जि-क ।  
१ पराजित, जिस पर विजय प्राप्त की गई हो, जो ज्ञ त  
दिया गया हो । ( पु० ) २ घट प्रदेश जिस पर विजय  
प्राप्त की गई हो, जाता हुआ देश । ३ कोर्दे प्राप्त या  
प्रदत्त । ४ फलित ज्योतिषमें यह ग्रह जो युद्धमें किस्ती  
दूसरे ग्रहसे बलवंत कर्म होता है ।



विजितात्मा ( स० पु० ) शिवका एक नाम ।  
 विजितारि ( म० त्रि० ) विजितः पराभूतः अग्निं । १  
 जिसने अपने शत्रु को जात लिया हो । ( पु० ) २ एक  
 राक्षसका नाम । ( रामायण ६।३।१५ )  
 विजिताश्व ( स० पु० ) राजा पृथुक एक पुत्रका नाम ।  
 ( भागवत ४।६।१८ )  
 विजितासु ( स० पु० ) विजिता असवो येन । १ वह जिसने  
 प्राण जप किया हो । २ मुनिभेद । ( कथावर्तिता० ६।१।१०५ )  
 विजिति ( स० खो० ) वि-जि-क्तिन् । १ विजय, जीत ।  
 २ प्राप्ति । ( त्रि० ) ३ विजिल । ( अमरटी० रायमु० )  
 विजितिन् ( सं० त्रि० ) विजित, पगजित ।  
 ( ऐत०ब्रा० २।२१ )  
 विजित् ( स० त्रि० ) विज तृच् । १ पृथक्, भिन्न । २  
 भीत, डरा हुआ । ३ कम्पित, क पा हुआ ।  
 विजित्वर ( म० त्रि० ) वि-जि-करप् तुगागमः । विजय-  
 गाल, विजेता, जातनेवाला ।  
 विजित्वरत्न ( सं० क्लो० ) विजित्वरस्य माघ त्व । विजि-  
 त्वरका माघ, धर्म या कार्य, विजय ।  
 विजित्वरा ( स० खो० ) एक देवीका नाम ।  
 विजिन ( स० त्रि० ) विजिन् । ( अमरटीका रायमु० )  
 विजिल ( स० त्रि० ) १ ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस  
 न हो । पर्याय—पिच्छिल, विजायन्, विजिन, विजिल,  
 उज्जल, लालसाक, विजिलि, विज ड । ( शब्दरत्ना० )  
 ( क्ल० ) २ एक प्रकारका दवा ।  
 विजिलि ( स० त्रि० ) विजिन् ।  
 विजिहापा ( म० खो० ) विहत्तु मिच्छा वि-ह-सन् विजि-  
 हार्प अङ् टाप् । विहार करनेकी इच्छा ।  
 विजिहोषु ( स० त्रि० ) विहर्त्तु मिच्छुः, वि-ह सन्, विजि-  
 हाप-सन्गन्ताडु । विहार करनेन इच्छुक ।  
 विजिह्व ( म० खो० ) विशपेण जिह्वः । १ चक, कुटिल,  
 टेढ़ा । २ शून्य, खाला । ३ अप्रसन्न ।  
 विजावित ( स० त्रि० ) विगतं जावितं यस्य । मृत, मरा  
 हुआ ।  
 विजीप ( स० त्रि० ) जिस जय प्राप्त करनेकी इच्छा हो ।  
 विजु ( सं० पु० ) पक्षपालक, वह जो चिड़िया पालता हो ।  
 ( एतरेय आरण्यक १।१७ )

विजुल ( म० पु० ) शालमला कन्द । ( राजनि० )  
 विजुयो ( म० स्त्री० ) १ सह्यद्विवर्णित एक देवीका  
 नाम । ( सखा० ३०।५६ ) २ विजला देखो ।  
 विजृम्भ ( सं० पु० ) वि-जृ-म्भ-अच् । विजृम्भण, विकास ।  
 विजृम्भण ( सं० क्लो० ) निजृम्भ ल्युट् । १ क्रिया पडार्थ  
 का मुह खोलना । २ उदामी लेना, जंभाई लेना । ३  
 धनुषकी डोरा खींचना । ४ मीं सिक्कीडना ।  
 विजृम्भमान ( सं० त्रि० ) वि-जृ-म्भ जानच् । विकासमान,  
 प्रकाशशील ।  
 विजृम्भा ( सं० स्त्री० ) उदासी, जंभाई ।  
 विजृम्भित ( सं० क्लो० ) वि-जृ-म्भ-क्त । १ चेटा । ( त्रि० )  
 २ विकम्बर, विकसित । ३ व्याप्त । ४ जृम्भागुक्त ।  
 विजेतव्य ( स० त्रि० ) वि-जि-तव्य । विजयार्ह, जो  
 विजित करनेके योग्य हो, जो जीतनेके योग्य हो ।  
 विजेता ( सं० त्रि० ) विजेतृ देखो ।  
 विजेतृ ( सं० त्रि० ) वि-जि-तृच् । विजेता, जिसने विजय  
 पाई हो, जीतनेवाला, विजय करनेवाला ।  
 विजेन्य ( स० त्रि० ) दूरदेशमन, जो दूर देशमें हो ।  
 ( ऋक् १।११।५ )  
 विजेय ( म० त्रि० ) वि-जि-यत् । विजयार्ह, जिस पर  
 विजय प्राप्त की जानेकी इच्छा हो, जीता जानेके योग्य ।  
 विजेय ( सं० पु० ) विजय ।  
 विजेसार ( हि० पु० ) परुप्रहारका बडा वृक्ष जो सालका  
 एक भेद माना जाता है । यह पूर्वो भारत तथा बरमानमें  
 बहुत अधिकतासे पाया जाता है । इसकी लकड़ी बहुत  
 मजबूत होती है और खेनोके आजार बनाने तथा इमारत  
 आदिके काममें आती है ।  
 विजेसाल ( हि० पु० ) विजेसार देखो ।  
 विजेर ( हि० पु० ) १ विजोग देला । ( वि० ) २ निर्बल,  
 कमजोर ।  
 विजोपस् ( सं० त्रि० ) विजिष्टरूप सोम द्वारा प्रीणनकारी ।  
 विजोहा ( हि० पु० ) एक वृत्तका नाम । इसके प्रत्येक  
 चरणमें दो रगण होते हैं । इसे जौहा, विमोहा और  
 विजोहा भी कहते हैं ।  
 विज्ज ( सं० पु० ) राजभेद । ( राजत० ६।२०२७ )  
 विज्जन ( सं० त्रि० ) विजिल ।

विद्यनामन् ( सं० पु० ) रामी विद्या प्रतिष्ठित विहारमेद ।  
( रासत ८१३४४४ )

विद्यल ( सं० स्त्री० ) १ वायु, तोर । ( लि० ) २ विमिल ।  
( पु० ) ३ घाटपाठक, वाजपय । ( वेदार्थिन० )

विद्यरपुर ( सं० स्त्री० ) नगरमेद ।

विद्यरविदु ( सं० स्त्री० ) विदुष्यपुत्र देसो ।

विद्या ( सं० स्त्री० ) रात्रकण्ठामेद । ( रात्रक ६१३४४४ )

विद्याका ( सं० स्त्री० ) दर स्त्री कबिका नाम ।

विद्यिका ( सं० स्त्री० ) विदुषिका देसो ।

विद्यिल ( सं० लि० ) विमिल ।

विद्युत्त ( सं० स्त्री० ) १ सुदूर तक, दारकोबी । २ दृष्यता,  
सिमका । ( लि० ) ३ विच्छिन्न ।

विद्युत्ता ( सं० स्त्री० ) विदुष्य देसो ।

विद्युत्तिका ( सं० स्त्री० ) ऋतुका पो पहाड़ी नामकी  
जता ।

विद्योदा ( हिं० पु० ) विद्योदा देस ।

विद्य ( सं० लि० ) विद्येयिज ज्ञानाताति वि-का ( भाग्यम्भास-  
कर्म ) पा १।१।२३३ ) का । १ प्रबोध विषयस्य ज नो,  
विद्येयज । रचना पर्याय निपुण रूपमें देसो । २ परिच्छत,  
विद्यम् ।

विद्यना ( सं० स्त्री० ) १ विद्य दानिका भाय ज्ञानकारा ।  
२ सुद्विभक्त । ३ वा दृश्य, विद्यता ।

विद्यार ( सं० स्त्री० ) विद्यता देस ।

विद्यत ( सं० लि० ) ज्ञा बत काया या सु घत किया गया  
हो, ऋतलाया हुआ ।

विद्यति ( सं० स्त्री० ) १ जगत्माने या सुचित करनेकी  
क्रिया । २ विद्यार्थन, इत्यहात् ।

विद्यनिका ( सं० स्त्री० ) प्रार्थना, विद्येदन ।

विद्यय ( सं० लि० ) ऋतमाने या सुचित करमेक योग्य ।

विद्युद्वि ( सं० स्त्री० ) ऋतमानो ।

विद्युत्त ( सं० पु० ) वह व्यक्ति ज्ञा विज्ञान होने पर भा  
अपनकी विद्य बतलाता हा ।

विद्यार्थ ( सं० लि० ) विद्या-थ । १ जगत, प्रसिद्ध ।

२ विदित ज्ञान, ज्ञाना या समझा हुआ ।

विद्यार्थवै ( सं० लि० ) विद्यार्थ वार्थ येन सम्य वा । १  
जिसका शक्ति ज्ञान भी गद हो । २ जिसक द्वारा दूसरेको  
शक्तिका परिचय मिल गया हो ।

विद्यार्थव्य ( सं० लि० ) ज्ञा-ज्ञानने या समझनेक योग्य हो ।

विद्यार्थ ( सं० लि० ) विद्यार्थ देसो ।

विद्यार्थ ( सं० स्त्री० ) १ ज्ञान समझ । २ गण नामक ईष  
योनिमेद । ३ एक वस्त्रका नाम ।

विद्यार्थ ( सं० लि० ) विद्यार्थ ज्ञा ज्ञानता या समझता हो ।

विद्यार्थ ( सं० स्त्री० ) विदिय विदुष्य वा ज्ञान वि वा ल्युत् ।

१ ज्ञान । २ कर्म । ३ कार्मण कर्मकृशमता । ४ मोक्षका  
छोड़ मध्य (अर्थकामादि) उद्देश्यसे शिष्य तथा शास्त्रादि  
विषयक ज्ञान, मोक्षात्मिक मध्य अन्वयण घटपटादि विषयक  
तथा शिष्य और शास्त्रविषयक ज्ञान । विद्यार्थता और  
मातामयता: यही दो प्रकारका ज्ञान है ।

विद्येय और सामान्य इन दोनों पदार्थोंका हा जो  
अवबोध ( उपलब्धि ) है, वही विज्ञान और ज्ञान कहा  
जाता है । मोक्ष ( मुक्ति ) शिष्य ( विद्यादि ), शास्त्र  
( व्याकरणदि ), इन सब विद्येय ( सूक्ष्म ) पदार्थोंकी  
उपलब्धि तथा माधारण घटपटादि समो पदार्थको उप  
लब्धिको ही ज्ञान और विज्ञान कहा गया है । "ज्ञाना  
श्रुतिका" "सा पाठिता च विद्वान्नुदा श्रुति मयच्छति"  
"अध्याना निर्व्याप्यज्ञानात्कल्पव्याप्तम्" इत्यादि रूपानो मे  
विज्ञान और ज्ञान शब्द द्वारा मोक्ष भादि (विद्येय पदार्थों  
का अवबोध और "ज्ञानमस्ति समस्तस्य ज्ञतोविषय  
गोचर" "ये कश्चित् प्राणितो साक सर्व विद्वानितो मता"  
"घटत्वप्रकारकज्ञानम्" इत्यादि रूपानो मे इनक द्वारा  
साधारण पदार्थको उपलब्धि होती है तथा विश्वज्ञान,  
व्याकरणज्ञान घटपट विज्ञान इत्यादि शब्दोंका भी ज्ञान  
में व्यवहार है । फिर यह भी कहा जा सकता है, कि "गद  
रामम्" शब्द जिस प्रकार गदक और पक्षी मानका वाचक  
है, ज्ञान और विज्ञान शब्द भी इनो प्रकार ही अर्थात्  
मोक्षज्ञान और तद्विषयज्ञानकोचक है ।

कुर्मपुराणमें लिखा है, कि विद्यालानुसार शीघ्र  
प्रकारका विद्याभोदा पदार्थ अर्थ ज्ञान कर अयोग्यजन  
पूर्वक यदि धर्मबन्धक काये किया जाय, तो उन सब  
विद्याभोज कर्मका विज्ञान कहते हैं । अगर धर्मवार्धन  
निवृत्त होने पर इस कर्मको विज्ञान कह कर कहते ।  
५ भाषा वा अविद्या नामकी वृत्ति । ६ बौद्धमत  
कारमरूपज्ञान । ७ विद्येयकस आरमाका अनुभव ।



पुस्तकत्वयुक्तमे—“य एव विद्याममया” (२।१।१५) “योऽयं विद्य तमयाः पुरुषाः ।”

सैलितारयमे “अभ्येदोमे आरमा विद्याममया” (२ ४।१)

“कर्मणि विद्याममयश्च भारता” (मुपबृक्तमे १।२७)

“यत्तु विद्याममय मनसि” (४४ ३।१)

“एव हि विद्याममया पुरुषात्” (प्रानोप ० ४।६)

इत सब स्थानेमें कहीं विशिष्ट ज्ञान, कहीं प्रत्यक्ष ज्ञान कहीं अक्षयमनसिदिष्ट्यासनादिपूर्वक उपनिषद् ज्ञान अर्थमें विज्ञान शब्दका प्रयोग हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीताके टीकाकारोंमें इस शब्दके अनेक अर्थ लगाये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता १८वे अध्यायके ४२थे श्लोकके ज्ञान विद्याममयास्ति इत्यादि श्लोकके टीका में श्रीधरस्वामीने “विद्याममनुभवः” ऐसा अर्थ लगाया है। रामानुजने लिखा है, “परतत्त्वगततामापारम्परिरेप विषय—विद्यामम्”। शङ्कराचार्यने लिखा है “विद्यामं, कर्माकाण्डे कृतावीज्य, प्रवृत्ताकाण्डे प्रवृत्तमैकानुभवः।” मधुसूदन सरस्वतीने शङ्कराचार्यको व्याख्याको दो टोक बतकाया है। फिर दूसरे जगद चारीशानुभव ही विद्याम शब्दके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है।

अ गरीबोंमें जिन Science कहते हैं, अज्ञानमें उन्मोक्त नाम विद्या है और उन्मो अर्थमें हमका प्रयोग होता है जिन पदार्थ-विज्ञान रसायनविद्या, चिकित्सा विद्या ज्योतिषविद्या औषधिज्ञान उच्चरुविद्या इत्यादि। श्री मद्भगवद्गीताका ३वाँ अध्याय पढ़नेमें मालूम होता है कि पाश्चात्य भाषामें जिन श्रेणीके ज्ञानको Science कहते हैं भागवद्गीतामें उन्मो अज्ञानके ज्ञानको विद्या कहा है।

सुविख्यात फ्रांसीसी दार्शनिक पण्डित कामनेने (Comte) Inorganic तथा Organic Science कायव द्वारा ज्ञान विद्याम अन्तर्भूक्त निचे हैं, श्रीमद्भगवद्गीता में भी इन सबका समावेश है। उनमें ज्योतिष विद्याम भू विद्याम है, वायुवाय विद्याम उच्चरु-विद्याम, ज्योतिष विद्याम, औषधिज्ञान तथा इनके अन्तर्भूक्त तिलिपविद्याम विवर अत्रिजिप्त हुए हैं। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता में व्यवहृत विद्याम शब्द पाश्चात्यविद्यामके Science शब्दके प्रतिनिधिकारमें व्यवहृत हो सकता है। अतएव

श्रीतामै “राजस ज्ञान” पद मो “विद्याम” शब्दके अर्थमें व्यवहृत हुआ है जैसे—

“युक्तस्त्वेन द्व बहूजानं ननामाभात एवविषयान्।

वेधि त्व पु भूये त्व ज्ञानं विकि राजसम् ए” (२।१।२८)

भगवद्गीतामें विद्याम शब्द प्रायः सभी जगद ज्ञान शब्दके साथ व्यवहृत हुआ है। जैसे—“द्यामविद्याम तुपारमा” “ज्ञानं विद्यामममितम्” “ज्ञानं विद्याममस्ति काम्” इत्यादि। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी इन दोनोंका अर्थ समन्वित है ज्ञाना ज्ञाना है, जैसे—

“ज्ञानं परमगुणम पद्विज्ञानमनित्वम्।”

( १५ स्वल्प ६ म० )

इत सब अर्थानोंमें रामानुजाचार्यकी व्य तथा ही बहुत कुछ सङ्गत है अर्थात् ज्ञान शब्दका अर्थ भगवद्भिवयक ज्ञान तथा विद्याम शब्दका अर्थ निदिद्यत वा द्रव्यार्थविषयक विनिष्ट ज्ञान है—जैसे ज्ञान मो हमके अन्तर्गत है तिमिल रूद्रिप्राय अथक विनिष्ट ज्ञान ही मापुक्त विद्यामका अर्थ है। कोमन (Comte) कहते हैं—

We have now to proceed to the exposition of the system; that is to the determination of the universal or encyclopaedic order which must regulate the different classes of natural phenomena and consequently the corresponding positive sciences

श्रीमद्भगवद्गीताके इस ज्ञानविद्याम नामक अध्यायमें समस्त विश्वतत्त्व विद्यामके साथ विश्वैश्वरके ज्ञानका आभास दिया गया है। विश्वविद्यामको सूक्ष्मभक्तिगो महाशाक्तिकी रूपा रूप अध्यायमें उद्दिष्टित हुए हैं। इस अध्यायमें प्रम जित दिया गया है, कि समस्त विश्वतत्त्व एक अर्थे महाशाक्तिका मित्र मित्र प्रकाममात्र है।

इससे सापित होता है, कि सब प्रकारक प्रायः अज्ञान पदार्थ ही भगवद्भगवत्क मोनमोतमात्रमें विद्यमान है। प्रायः अज्ञान पदार्थसमूह मो इस अज्ञान शब्दके अर्थमें पर हा विद्यमान है हायैत एवेनमर मो पदो भाषारमर वात कहते हैं, जैसे—

Every Phenomenon is a manifestation of force

अर्थात् इस प्रगच्छका प्रत्येक पदार्थ ही शक्तिका अभिव्यक्ति मात्र है। फलतः यह त्रिष्वप्रगच्छ सर्वकारण श्री-भगवान्की अभिव्यक्तियोगी लीला तरङ्ग मात्र है। गीता का जो अंश उद्धृत हुआ, वह यथार्थमें ही विज्ञानका सार सत्य है। हार्चट स्पेन्सर कहते हैं—

"The final out-come of that speculation commenced by the primitive man is that the power manifested through out the universe, distinguished as material, is the same Power which in ourselves swells up under the form of consciousness.

श्रीकृष्णने और भी कहा है—

"मत्तः परतर नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वं मिदं प्रोतं सूत्रे मण्डिताम्बुध्नौ ॥"

स्पेन्सरने कहा है—

"Ever in prescnce of an Infinite and Eternal Energy from which all things proceed,

चण्डामें लिखा है—

"सैव विश्वं प्रसूयते ।"

वही शक्ति विज्ञानको सार और मूल सत्य है। स्पेन्सर आदि पाण्डित्यांक वचनके साथ हम लोगोंको जास्त्राय, जाक्या बहुत प्रमेद है। यूरोपाय इस श्रणाके वैज्ञानिक पाण्डित जो जगत्शक्तिको बात कहते हैं, वह केवल आर्चत प्रकृति- Cosmophysical) तथा चित् प्रकृति- (Cosmopsychical) शक्ति ( Energy ) मात्र है। हम लोगोंका विज्ञान ज्ञानमय पुरुषकी ज्ञानमयी महाशक्तिको बाह्य अभिव्यक्तिकी तरङ्गलाला दिशा कर शक्तिभावको पुष्ट करनेमें सहायक होता है। श्रीभगवद्गीताका उक्तियोंकी पर्यालोचना करनेसे स्पष्ट जाना जाता है, कि इसमें एक ओर जिस प्रकार Redistribution of Matter and Motion आदि वैज्ञानिक तत्त्वके मूत्र वाज । सूत्र मौजूद हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर भगवद्गीताके उद्घापक सारतत्त्वोंकी इसमें पूर्ण स्फूर्ति भा विद्यमान है। हम लोगोंके सांख्य और वैशेषिक आदि दर्शनानामें जो सूक्ष्म वैज्ञानिकतत्त्व हैं, उनका मर्म वैज्ञानिकतत्त्व शब्दमें लिखा जा चुका है।

कोमते ( Comte ) ने विज्ञानशास्त्रकी पहले Inor-

ganic and organic phenomena इन दो भागोंमें विभक्त किया है। गीतामें भी अपरा और पराके भेदसे दो प्रकारकी प्रकृतिका उल्लेख किया गया है। अपरा प्रकृति भूमि आप अनल अनल आदि तथा परा प्रकृति जीवभूता प्रकृति है।

कोमतेने विज्ञानको प्रधानतः ५ भागोंमें विभक्त किया है। जैसे—

१। ज्योतिर्विज्ञान ( Astronomy )

२। पदार्थविज्ञान ( Physics )

३। रसायनविज्ञान ( Chemistry )

४। शरीरविज्ञान ( Physiology )

५। समाजविज्ञान ( Sociology )

कोमतेके मतसे आधुनिक अन्यान्य बहुविध विज्ञान इन्हींके अन्तर्भूक्त हैं। किन्तु कोमतेने गणितविज्ञानको ही विज्ञानजगत्के सचप्रथम सम्मानार्ह बताया है।

वेकन, कोमते, हरवटे, स्पेन्सर और वेइन आदि पाण्डितोंने विज्ञानशास्त्रके श्रेणी विभागके सम्बन्धमें गहरी आलोचना की है। १८१५ ई०का प्रकाशित Encyclopedia Metropolitana नामक किसी ग्रन्थमें विज्ञानके चार मूलिक विभाग दिखलाये गये थे—

प्रथम विभागमें व्याकरण-विज्ञान, तर्कविज्ञान, अलङ्कारविज्ञान, गणितविज्ञान, मनोविज्ञान ( Metaphysics ), व्यवस्था विज्ञान ( Law ), नीतिविज्ञान और धर्मविज्ञान हैं। यहाँ पर हम लोगोंको अमरकोषकी लिखित "विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः" कथा याद आ जाती है। टीकाकारने लिखा है, "शास्त्र व्याकरणादि" अर्थात् व्याकरणादि शास्त्र भा विज्ञानराज्यके अन्तर्गत है।

द्वितीय विभागमें—मेकानिक्स, हाइड्रोस्टैटिक्स, न्युमाटिक्स, अर्किटिक्स और ज्योतिर्विज्ञान ( Astronomy ) हैं।

तृतीय विभागमें—माग्नेटिजम्, इलेक्ट्रीसिटी, ताप, आलोक, रसायन, शब्दविज्ञान वा आकुप्टिक्स ( Acoustics ), मिटियरलजो और ज्युडेसी ( Geodesy ), विविध प्रकारका शिल्प और चिकित्सा-विज्ञान भी इस विभागके अन्तर्गत है।

चतुर्थ विभागमें—इतिहास, जीवनी, भूगोल, अभिधान तथा अन्यान्य ज्ञातव्य विषय हैं।

१८२८ ई०को हाकूर निय आर्नेट (Dr Neil Arnot) ने अपने पदार्थ विज्ञान ग्रन्थमें विज्ञानक चार विभाग किये हैं। यथा—पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान ज्ञान विज्ञान और मनोविज्ञान। उन्हींमें गणित विज्ञानको भा जोमतिकी तरह सम्मानस्थान प्राप्त किया है। हाकूर आर्नेटमें वस्तुतत्त्वक मध्य खोलाविज्ञान मूलक ज्ञान विज्ञान (Mineralogy), भू विज्ञान (Geology) उद्भिज्ज विज्ञान (Botany), प्राणिविज्ञान (Zoology) और मानवशास्त्रक इतिहास (Anthropology) आदि का विवरण उल्लेख किया है। सभी पाश्चात्य विज्ञान शास्त्र शतशुद्धा गङ्गावबाहक तरह से बड़ी बारीकीसे जिज्ञास विधीक मानसमनके सामने विज्ञानराज्यके अनन्तत्वकी मादिमा और गौरव प्रकट कर रहा है। यहाँ तक, कि एक सिद्धिज्ञा विज्ञान ही अनेक शाखाओंमें विभक्त हुआ है। प्रत्येक विभागमें ही इस प्रकार विविध शाखा, उपशाखा और प्रशाखाके प्रसारमें यह विज्ञानमहोदय सभी अनन्तत्वकी गौरवकी विज्ञानतामें अपनी मादिमा उद्यो पित कर रहा है। वैज्ञानिकत्व उन्हीं विस्तृत विचार्य रहे।

- ८ प्रश्न। ६ भागमा। १० पाकाज। ११ निश्चया रिमका बुद्धि।
- विज्ञानक (स० वि०) विज्ञान स्वार्थे कञ्। विज्ञान। 'वाद्यार्थविज्ञानकग्रन्थवादी'। (हेम)
- विज्ञानकण्ड—ग्रन्थकर्त्ताभेद।
- विज्ञानकेयम (स० पु०) विज्ञानाकक। (क० इति० ४० ८१११)
- विज्ञानयोग (स० पु०) वैदिकके 'अनुमात ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि, विज्ञानमय कोम। कोय दोषो।
- विज्ञानमहीमुखो (स० स्त्री०) बोद्धममयोभेद।
- विज्ञानमा (स० स्त्री०) विज्ञानका माय या परम
- विज्ञानमैवर्ग (स० पु०) अद्भुतदृष्ट। (राजनि०)
- विज्ञानयोग (स० पु०) बुद्धभेद।
- विज्ञानपति (स० पु०) परम ज्ञानी।
- विज्ञानपाद (स० पु०) विज्ञानमेव पाद मर्क्य यस्य। वैदिकशास्त्रका एक नाम।
- विज्ञानमहादक (स० पु०) परम पदिकत।

विज्ञानमिस्र—एक प्रवाल दार्शनिक। ये बहुत सी उपनिषद् और दार्शनिकशास्त्र लिख कर लिखत हो उठे हैं। इनके लिखे ग्रन्थोंमें-के कठबन्नी के गद्य, सैन्तरीय ग्रन्थ मुण्डक, माण्डुक्य सैत्रय और श्वेताश्वर आदि उपनिषद् का आलोक नामक भाष्य, वद्वान्तलोक नामक बहुत सी प्रश्न उपनिषद्को समझोवनो इनके अतिरिक्त ईश्वर गोतामाध्य, पातञ्जलरसायनार्थिक या योगशास्त्रिक (शैवा सिद्धमायको शाका), भगवद्गोतादोका विज्ञानामृत या प्रज्ञावृक्षसूत्रध्यायना सांख्यसूत्र या सांख्यप्रवचनभाष्य, सांख्यकारिकास्य तथा उपदेशरत्नमासा प्रज्ञादर्श, योगसारसंग्रह और सांख्यसारवैदिक नामक बहुतसे दार्शनिक ग्रन्थ मिलते हैं। इन सब ग्रन्थोंमें सांख्य प्रवचनभाष्य ही विशेष प्रसिद्ध है। एन्हीं सांख्य सूत्रसिद्धार अनिबद्धमहका मत उद्भूत किया है। फिर महादेश सांख्यसूत्रसिद्धिमें विज्ञानमिस्रका मत उद्भूत हुआ है। ये योगसूत्रसिद्धिकार भावागणेशशक्तिके गुरु थे।

- विज्ञानमय (स० वि०) ज्ञानसक्य। (भागवत ११।२६।१८)
- विज्ञानमयकोष (स० पु०) विज्ञानमयस्वरूपकोष कोष ह्य आच्छादकत्वात्। इ मे निरूपो और बुद्धिवा समूह।
- विज्ञानमातृ (स० पु०) विज्ञान मातेय यस्य बहुमाहो कञ्। बुद्धका एक नाम।
- विज्ञानपति (स० पु०) विज्ञानमिस्र।
- विज्ञानयोगिन् (स० पु०) विज्ञानेवर हेनो।
- विज्ञानवत (स० वि०) ज्ञानयुक्त, ज्ञानी। (छन्दो० ३० ७, ८, ९)
- विज्ञानवाह (स० पु०) १ यह वाह या सिद्धांत जिसमें प्रश्न और आत्माकी एकता प्रतिपादित हो। २ यह वाह या सिद्धांत जिसमें कथक आधुनिक विज्ञानकी बातें हा प्रतिपादित या मान्यकी गई हों। ३ योगवाह।
- विज्ञानवादिन् (स० पु०) विज्ञानवादी वैदिकी।
- विज्ञानवादी (स० पु०) १ वह जो योगक मार्गका अनुसरण करता हो योगी। २ वह जो आधुनिक विज्ञान शास्त्रक पक्षपाती हो। विज्ञानक मतका समर्थन करने वाला।
- विज्ञानाकक (स० वि०) विज्ञानकेयम।

विज्ञानाचार्य ( स० पु० ) आचार्यमेव ।

विज्ञानात्मा—ज्ञानात्माके शिष्य । इनके रचे नागयणोपनिषद्, विवरण और श्वेताश्वतरोपनिषद् विवरण मिलते हैं ।

विज्ञानानन्त्यायतन ( स० ह्री० ) शौडमठमेव ।

विज्ञानामृत ( स० क्लृ० ) ज्ञानामृत ।

विज्ञानिक ( स० त्रि० ) विज्ञानमस्त्यस्येति विज्ञान इव ।  
१ जिसे ज्ञान हो, ज्ञानिजगत् । २ विज्ञ, पण्डित । ३ वं जा निक देखो ।

विज्ञानिता ( स० स्त्री० ) विज्ञानमस्त्यस्येति विज्ञान-इन्-तल्-टाप् । विज्ञानका भाव या धर्म, विज्ञानवेत्ता ।

विज्ञानिन् ( स० पु० ) विज्ञानी देखो ।

विज्ञानो ( स० पु० ) १ वह जिसे किसी विषयका अच्छा ज्ञान हो । २ वह जो किसी विज्ञानका अच्छा वेत्ता हो, वैज्ञानिक । ३ वह जिने आत्मा तथा ईश्वर आदिके स्वरूपके सम्बन्धमें शिष्य हो ।

विज्ञानाय ( स० त्रि० ) विज्ञानमभ्यन्था, वैज्ञानिक ।

विज्ञानेश्वर—एक आदिनाथ स्मार्त्त पण्डित । मिताक्षरा नामकी यज्ञप्रत्ययशुद्धिका लिख कर ये भारतवर्षियान हो गये हैं । मिताक्षराके अन्तमें पण्डितवर इस प्रकार आत्म-परिचय दे गये हैं—

पृथ्वी पर कल्याणके समान नगर न है, न था और न होगा । इस पृथ्वी पर विक्रमार्क सट्टन राजा न तो दया ही जाना और न सुना ही जाता है । अधिक क्या ? विज्ञानेश्वर पण्डितकी भी दूमरेके साथ उपमा नहीं दी जा सकती । ये तीन (स्वर्गके) कल्पतरुकी माति कल्प पर्यन्त स्थिर रहे । दक्षिणमें रघुकुल-तिलक रामचन्द्रका विरलन कीर्तिरक्षक सेतुबन्ध, उत्तर में शैलशिखर हिमालय, पूर्व और पश्चिममें उत्ताल तरङ्गसमाकुल तिमिरकान्तकुल महामुद्र, ये चतुःसोमा विच्छिन्न विस्तृत भूभागके प्रभावजाली राजाओंकी विनिमितमन्तकस्थित रत्नराजप्रभासे जिनके चरणयुगल नियत प्रभान्वित हैं, वे विक्रमादित्यदेव चन्द्रतारास्थिति काल पर्यान्त इस निखिल जगन्मण्डलका पालन करें ।

उक्त विक्रमादित्य ही प्रसिद्ध कल्याणपति प्रतीच्य चालुक्यवर्गीय त्रिभुवनमल विक्रमादित्य हैं । ये ईस्वा-सन ११वीं सदीमें विद्यमान थे ।

विज्ञानेश्वरके पिताका नाम था पद्मनाभ । उनका मिताक्षरा सम्पन्न भाग्यका प्रधान धर्मशास्त्रनिबन्ध कह कर प्रसिद्ध है । विशेषतः आज कल भी महाराष्ट्र प्रदेशमें मिताक्षराके मतानुसार ही सभी आचार और व्यवहार-कार्य सम्पन्न होने हैं । मिताक्षराके अलावा विज्ञानेश्वर अष्टावक्रटीका और विज्ञच्छायाभाष्यकी रचना कर गये हैं ।

विद्यापक ( स० पु० ) वह जो विद्यापन करता हो ; सम्-भक्ताने, वतलाने या जनलानेवाला ।

विद्यापन ( स० क्लृ० ) विद्या विच्-न्युट् । १ किसी बातको वतलाने या जनलानेका क्रिया, जानकारी कराना, सूचना देना । २ वह पत्र या सूचना आदि जिसके द्वारा कोई बात लोगोंका बतलाय जाय, इश्वर ।

विद्यापना ( स० स्त्री० ) विद्या विच्-न्युच्-टाप् । विप्लव करना, जतलाना, वतलाना ।

विज्ञपना ( स० स्त्री० ) कह कर या शिष्य कर किसी विषयका आवेदन करना, दरगस्त, रिपोर्ट ।

विज्ञानाय ( स० त्रि० ) विज्ञाप्य, जो वतलाने या जन-लानेके योग्य हो, सूचित करनेके योग्य ।

विज्ञापित ( स० त्रि० ) १ जो वतलाया जा चुका हो, जिसको सूचना दी जा चुका हो । २ जिसका इश्वर शिष्य जा चुका हो ।

विज्ञापिन् ( स० त्रि० ) जतलाने या वतलानेवाला, सूचना देनेवाला ।

विज्ञापित ( स० स्त्री० ) विद्या विच्-न्युच्-क्विन् । विज्ञप्ति देखो ।

विज्ञाप्य ( स० त्रि० ) वतलाने योग्य, सूचित करनेके योग्य ।

विज्ञेय ( स० त्रि० ) विद्या-यन् ( अचो यत् । पा ३ १ ६७ ) ।

विज्ञानेय, विज्ञानीय, जो जानने या समझनेके योग्य हो ।

विज्य ( स० त्रि० ) विगता ज्या यसमान् । ज्यारहित, जिम-में गुण न हो । 'विज्यं कृत्वा महाधनुः ।'

( रामायण ३:६:१० )

विज्वर ( स० त्रि० ) विगतः ऊवरो यरय । १ विगत ऊवर, उग्रमुक्त, जिसका ऊवर उतर गया हो, जिसका बुवार छूट गया हो । २ निश्चिन्त, बेफक, जिसे सब प्रकारकी चिन्ताओंसे छुटकारा मिल गया हो । ३ विगतशोक,

आ सब प्रकारके झूठों आदिसे मुक्त हो, जिते किसी प्रकारका शोक या संताप न हो ।

विश्वरा ( स० स्त्री० ) उच्चरद्विता, वह स्त्री जिसका उच्चर उतर गया हो । 'विश्वरा उच्चरया स्वका' । (हरण ४)

विश्वमार् ( स० स्त्री० ) कर्कश ।

विश्वामर ( स० स्त्री० ) वसु का गुह्यशेन भाँकका सादा नाम ।

विश्वोली ( स० स्त्री० ) भेणो, पकि ।

विट ( स० पु० ) घैटीति विट-क । १ कामुक, छंपद, यह जिसमें कामवासना बहुत अधिक हो । २ कामु कामुक, वह शै किन्हीं बेशपाका पार हो या जिसमें किसी घैस्याका रस लिया हो । ३ घूर्ल, आलाक । ४ साहित्यमें एक प्रकारका नायक । साहित्यदर्पणक अनुसार शै व्यक्ति विषय मोगमें अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर चुका हो मारी घूर्ल हो, फल या परिणामका एक ही भङ्ग देखता हो, वेगमूपा और बाँटे बलागैमें बहुत चतुर हो, यह विट कहलाता है । ५ एक पर्यतका नाम । ६ लवणमेद, साँबर लमक । ७ कदिरविशेष, एक प्रकार का शैर जिस दुर्गन्ध शैर में कहते हैं । ८ मृपिक, बूहा । ९ मातङ्ग वृक्ष, नारङ्गोका पेड़ । १० वातपुत्र ।

विटक ( स० पु० ) १ प्राचीन कालकी एक जातिका नाम । २ पुराणानुसार एक प्राचीन देश शै नर्मदा नदीके तट पर था । ३ शेटक, शेट्का ।

विटकारिका ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका पक्षी ।

विटकर्मि ( सं० पु० ) चुगना या चुनचुना नामका कीड़ा जो बच्चोंकी गुदामें उत्पन्न होता है ।

विटकु ( सं० पु० स्त्री० ) विरोधेय टुकुते सौषादिपु इति वि-टकु इत्यमि घञ् । १ कपोतपालिका, कर्तूरका वृक्षा, काबुक । सौषादिके प्रायसागमें काठका बना हुआ जो कर्तूरके वृक्षकी जगह होता है, उसे विटकु कहते हैं । ममरवीकामे भरतने सिद्धा है, कि पक्षीका यासामान ही विटकु कहलाता है । २ लवण कषा सिरा या स्वाम । ३ बड़ा ककड़ी । ( जि० ) ४ सुन्दर, मनो हर । ५ मज्जकूट, शोमित ।

विटकु ( सं० पु० स्त्री० ) विटकु पय न्यायं कम् । विटकु । विटकु ( सं० स्त्री० ) नगरमेद । (कामरित्वा० १५१३)

विटकु ( सं० पु० ) १ प्राचीन कालकी एक जातिका नाम । २ पुराणानुसार एक प्राचीन देश शै नर्मदा नदीके तट पर था । ३ शेटक, शेट्का ।

विटकारिका ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका पक्षी ।

विटकर्मि ( सं० पु० ) चुगना या चुनचुना नामका कीड़ा जो बच्चोंकी गुदामें उत्पन्न होता है ।

विटकु ( सं० पु० स्त्री० ) विरोधेय टुकुते सौषादिपु इति वि-टकु इत्यमि घञ् । १ कपोतपालिका, कर्तूरका वृक्षा, काबुक । सौषादिके प्रायसागमें काठका बना हुआ जो कर्तूरके वृक्षकी जगह होता है, उसे विटकु कहते हैं । ममरवीकामे भरतने सिद्धा है, कि पक्षीका यासामान ही विटकु कहलाता है । २ लवण कषा सिरा या स्वाम । ३ बड़ा ककड़ी । ( जि० ) ४ सुन्दर, मनो हर । ५ मज्जकूट, शोमित ।

विटकु ( सं० पु० स्त्री० ) विटकु पय न्यायं कम् । विटकु । विटकु ( सं० स्त्री० ) नगरमेद । (कामरित्वा० १५१३)

विटकु ( सं० पु० ) १ प्राचीन कालकी एक जातिका नाम । २ पुराणानुसार एक प्राचीन देश शै नर्मदा नदीके तट पर था । ३ शेटक, शेट्का ।

विटकारिका ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका पक्षी ।

विटकर्मि ( सं० पु० ) चुगना या चुनचुना नामका कीड़ा जो बच्चोंकी गुदामें उत्पन्न होता है ।

विटकु ( सं० पु० स्त्री० ) विटकु-मस्त्यर्थे तारकादित्वादि लक्ष् । मज्जकूट, शोमित ।

विटय ( सं० पु० स्त्री० ) वैदति शम्भायते इति विट । ( अट-विषयविशेषणा । उच्च ३१२५५ ) इति क मस्त्यर्थेन (नपात नात् साधु) । १ वृक्ष या छटाको नई शाखा, कौपल । पर्याय—विस्तार, स्वाम ।

( स्त्री० ) २ सुकवकसुजातए, स्नायु-मर्ममेद । वक्ष्णव तथा दोनों मुखोंक मध्य एक ठ गळीका बिटप नामक स्नायुमर्म है, इस मर्मके विट्ट होमेसे फ्यडता या शुष्क-की म्यपता हुआ करती है ।

( पु० ) विटाम् पातोति पा-क । ३ भाहित्य पत्त । ४ छतनार पेड़, काडो । ५ वृक्ष, पेड़ ।

विटपक ( सं० पु० ) पुष्ट, पाजी ।

विटपम् ( सं० मध्य० ) विटप-शब्च् । शाखामेद ।

विटपिन ( सं० पु० ) विटपः शाखाविरस्त्यस्येति विटप र्ण । १ वृक्ष, पेड़ । २ वरवृक्ष, बड़का पेड़ । ३ म डीरका पेड़ । ( जि० ) ४ विटपयुक, जिसमें नई शाखाएँ या कौपले निकलते हैं ।

विटपी ( सं० पु० ) विटम् पेको ।

विटपीशुग ( सं० पु० ) शाखासुर, व हर ।

विटपुल—एक कामशास्त्रकार । कुहमीमत-ग्रन्थमें इनका नाम उद्धृत हुआ है ।

विटमिष ( सं० पु० ) विटार्ता मिषः । १ मुद्गरवृक्ष, मोगरा नामक फूल या उसका पौधा । २ विटिका मिष ।

विटमूत ( सं० पु० ) महामारतके अनुसार एक मसुरका नाम ।

विटमाक्षिक ( सं० पु० ) विटमियो माक्षिकः । घातुविशेष, सोनामबन्धी नामका कनिष्ठ ग्रन्थ । पर्याय—ताय, नदीय, कामादि, तारारि । स्वर्णमाक्षिक देखो ।

विटसवण ( सं० स्त्री० ) विटसंज्ञक लवणम् । विट्-लवण, साँबर लमक ।

विटवत्समा ( सं० स्त्री० ) पारवी वृक्ष ।

विटवृष्ट—एक प्राचीन संस्कृत कवि । सुमामितावली ग्रन्थमें इनकी कविता उद्धृत हैकी जाती है ।

विटि ( सं० स्त्री० ) वटतीति विट-इत्, लष कित् । एक अश्वत्त ।



विट्कण्ठोपर ( सं० पु० ) वह जो लालचन्दनकी कण्ठा वाघता हो ।

विट् ( सं० क्ली० ) विड् लवण, साँवर नमक ।

विट्क ( सं० क्ली० ) विप, जहर ।

विट्कारिका ( सं० स्त्री० ) पक्षिविशेष । पर्याय—कुणपी, रोरोटी, गोकिराटिका, विट्सारिका । ( हारावली )

विटकुल ( सं० क्ली० ) विर्णा कुलं । वैश्यकुल, वैश्य ।

( भा०श०गृ० २।२।१ )

विट्खडिर ( सं० पु० ) विड् वृत् दुर्गन्धः खडिरः । एक प्रकारका खैर जिसे दुर्गन्ध खैर भी कहते हैं । पर्याय—धरिमेद, हरिमेद, असिमेद, बालस्कन्ध, धरिमेदक । इसका गुण—कषाय, उष्ण, सुख और दन्तपोडा, रक्तदोष, कण्डू विप, श्लेष्मा, कृमि, कुष्ठ, घ्रण और ग्रहनाजक । ( भावप्र० )

विट्घात ( सं० पु० ) मूत्राघात नामक रोग ।

विट्चर ( सं० पु० ) विवि विष्टाया चरतीति चरट । ग्राम्यशूकर, गाँवोंमें रहनेवाला सूअर ।

विट्ठल ( विट्ठल )—१ दार्जिणात्यके पण्डुरपुरस्थित विष्णुकी एक मूर्त्तिका नाम । पण्डुर देवों ।

२ छायानाटकके प्रणेता । ३ रतिवृत्तिलक्षण नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता । ४ सङ्गीतनृत्यरत्नाकरके रचयिता । ५ लेशवके पुत्र, स्मृतिरत्नाकरके प्रणेता । ६ चहग्रामके पुत्र । इन्होंने १६१६ ई०में कुण्डमण्डपसिद्धि और पीछे दुर्गापुरवदानविधि तथा १६२८ ई०में मुहूर्त्तकल्पद्रम और उसकी टीका लिखी । ७ वाट्माला नामक न्यायग्रन्थके रचयिता ।

विट्ठल आचार्य—१ एक ज्योतिर्विद्व । इन्होंने विट्ठलोपद्धति नामक एक उर्गातय प्रणयन किया । २ एक विख्यात पण्डित । इनके पिताका नाम नृसिंहाचार्य, पितामहका रामकृष्णाचार्य तथा पुत्रका नाम लक्ष्मीधराचार्य था । ये प्रक्रियाकीमुदीप्रसाद, अक्षयार्थनिरूपण, वैष्णवसिद्धान्तद्वीपिकाटीका आदि ग्रन्थ बना गये हैं । मट्टोजिदक्षिण ने अनेक जगह इनकी निन्दा की है । ३ क्रियायोग नामक योगग्रन्थके रचयिता ।

विट्ठलदास—मथुरानिवासी एक परमभक्त वैष्णव, बाला राजाके पुरोहित । यह कृष्णप्रेममें मत्त हो गृहकार्यका रित्याग कर सर्वदा एक निर्जन स्थानमें रहा करते थे ।

जब राजाको इसकी खबर लगा, तब वे अपने पुरोहितका प्रकृत चरित्र जाननेके लिये एक दिन पकादगीकी रातको अन्यान्य भक्त वैष्णवोंके साथ इनकी बड़े आदरके साथ अपने घर लाये । वहाँ मंजिलके ऊपर सवाँका बैठक हुई, बहुत देर तक वैष्णवोंके मीठे विविध कृष्णकथा तथा नामकर्त्तनादि चलने लगा । इसी समय विट्ठलदास प्रेमके आनन्दमें उन्मत्त हो नाचने लगे ; प्रेमोन्माद हो कर नाचते नाचते कुछ समय बाद पैर फिथल गया और वे छत परसे जमीन पर गिर पड़े । यह देख स्वयं राजा तथा वहाँ पर जितने थे, सभी हाहाकार करने लगे, किन्तु परमकारुणिक भगवान्की कृपासे उनके शरीरमें जरा भी चोट न पहुँचा । अब राजाके आनन्दकी सोमा न रही और उन्होंने बड़े श्रद्धास्थित हो उन्हें घर भेज दिया तथा उनकी जीवनयात्रा जिममें बिना उठे न घ्यनीत हो, उसके लिये उन्होंने वृत्ति नियत कर दी । इसके बाद विट्ठलदास वरको परित्याग कर पदले पाटघरमें रहने लगे, पीछे अपनी माताएँ अनुग्रहसे तथा श्रीगोविन्ददेवकी आशसे वे पुनः घर लौटे और यहाँ नियत वैष्णवसेवा करने लगे । इनके पुत्र रङ्गनाथ १८ वर्षकी अवस्थामें ही पिताके समान कृष्णभक्त हुए । उन्होंने भाग्यवगतः जमीनके नीचे एक परम रमणीय विग्रह मूर्त्ति और कुछ धन पाया था । इससे विट्ठलदास बड़े उल्लासित हुए और पितापुत्र मिल कर कायमनोवाक्य द्वारा अत्यन्त भक्तिपूर्वक विग्रहदेवकी सेवा करने लगे ।

विट्ठलदासकी कृष्णप्रेमोन्मत्तताका विषय भक्तमालमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन वे कौकिल-कण्ठों किसी नर्त्तकीके मधुर स्वरमें रासलीला संगीत सुन कर इतने प्रेमोन्मत्त हुए, कि उन्होंने गृहस्थित सभी बख्वालद्वारादिको उसे ला दिया । इतने पर भी वे सतुष्ट न हुए, आखिर उन्होंने रङ्गनाथको उस नर्त्तकीके हाथ सौंप दिया । सङ्गीतके बाद जब नर्त्तकी रङ्गनाथको अपने साथ ले चली, तब विट्ठलके बाह्यज्ञान उपस्थित हुआ । उन्होंने नर्त्तकीको प्रचुर अर्थ दे कर पुत्रको वापस मांगा । किन्तु पुत्रने अपनी असम्मति प्रकट करते हुए पितासे कहा, 'आपने जब मुझे कृष्णके उद्देशसे प्रदान कर दिया है, तब फिर प्रतिदानकी कामना करना आपके लिये नितान्त अनु-

चित है। इस पर विद्युत् लक्षित हो बैठे, नर्सीकी किरसे  
रङ्गरायका माय छे चली। रङ्गरायसे मन्त्रदाहिता  
राजकन्याको सब यह हाज मालूम हुआ तब वे वीड़ी  
भाइ बीर गुहदेवको मुक्तिके लिये इन्होंने नर्सीकोको पकड़  
लिया तथा पचासर्गम्ब पण करके नर्सीकोमे गुहमुक्तिको  
बामना की। विष्णु नर्सीकोमे राजकन्याका अमीम  
सौजन्य देख कर कुछ भी प्रश्न न किया और रङ्गरायको  
छोड़ दिया। राजकन्यामे भी अपने सौजन्यकी रक्षाके  
लिये मोक्षक्य अथङ्गुपादि उतार नर्सीकोको दे लिये और  
गुहदेवक साथ पर लीठी।

विद्युत शक्ति—१ सुप्रसिद्ध बहुभाषाचार्यके पुत्र, एक वैज्यव-  
मन्त्र और धार्मिक। कारणमीधाममें १५१६ ई०में  
इन्होंने जन्मग्रहण किया। परम पण्डित पिताक निकट  
वे नामा शास्त्रोंमें शिक्षित हुए थे। बहुभाषाचार्यको  
मृत्यु होने पर इन्होंने भी आचार्यपद ग्रहण किया  
तथा बड़े उत्साहसे विताका मत प्रचार करने  
लगे। इनके उपदेश पर इस्लाम और पश्चिम मारके  
बहुतेरे अनुभव इनके शिष्य हो गये, ये शिल्लमेंसे २५२ शिष्य  
प्रधान थे। इन २५२ शिष्योंका परिचय 'दो मी बाबन  
पाशा' नामक किन्ही ग्रन्थमें विरुत है। १५१५ ई०में  
विद्युत गोकुल आ कर बस गये। यहाँ ७० वर्षकी उम्रमें  
इन्होंने आधत लीला संहरण की। इनकी दो परमोक्त गर्म  
स गिरिधर गोविन्द बालहृदय, गोकुलभाय रघुनाथ,  
यदुनाथ और चतुर्वाम ये सात पुत्र उत्पन्न हुए।

विद्युत शक्तिन बहुतेसे संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना कर गये  
हैं। उनमेंसे अक्षरारारतभवकोश आर्या काव्यमैतियिष  
रण, छाप्येयमाभूत गोत्र, गोत्रगोविन्द, प्रथमाष्टपदोबिभूति  
गोकुलाष्टक जगन्नाथमीनिर्णय अन्नेरुटीका, प्रुषपद्,  
नामचन्द्रिका न्यासाईजयिचरण, प्रबोध, प्रेगामुक्तमाण्य,  
मन्त्रिहेतुनिलय, भगवत्स्वल्पकला, भगवत्प्रतापार्यय, भग  
वद्गीताहनुनिर्णय भागवतनरेशदायिवा भागवतनराम  
रक्षयान्तिनि मुञ्जकप्रपताष्टक यमुनाष्टपदी वसन्तपत्र  
राजमयमोनिर्णय, बहुभाष्यक विद्युत्प्रवचन विश्वेश्वरिणी  
भयदोहा, शिलापत्र, शृङ्गाररामचन्द्रक, परपद्मे, संवाम  
निर्णयविचरण समवयसोप, सर्वोक्तमन्त्रोक्त, सिद्धागत  
मुक्तावली अष्टमूर्तिबन, स्वामिनीस्तोत्र आदि ग्रन्थ  
लिखने हैं।

२ आर्यपण्यप्रवृत्तिके रक्षयिता।

विद्युत्प्रवृत्ति—प्रयतीर्णत प्रमाणप्रवृत्तिके रोककार।  
विद्युत्प्रिष—१ प्रधानज्योपटीका बीर करणाकरदृष्टि  
नामकी समरसारटोकाके रक्षयिता।

विद्युत्प्रिष—परधरपुरके प्रसिद्ध विद्योवा-वेधता।  
विद्युत्पण्य (सं० ज्यो०) विद्या पण्य। वैज्योके वैज्यकी  
धस्तु।

विद्युत्पति (सं० पु०) विद्या कन्यायाः पतिः। १ आमाता,  
वामाह। २ वैज्यपति।

विद्युत्पाठन—सुमिष पालमशाक-मेद। इसकी जड़ लाल  
कम्युक्त होती है। यह कम्य बहुत मीठा होता है। इसकी  
तरकारी रीथ कर काममें बड़ी अच्छी होती है। इसके  
पत्ते या साग उतने अच्छे नहीं होते। इस विद्युत्प्रस  
शर्कराज मिश्रण कर यूरोपीय विभिन्न देशवासी एक  
तरह दामिदार आनी तैवार करते हैं। इस तरह जो चीनी  
बनाइ जाता है, इस (Beet Sugar) या विद्युत्चीनी कहते  
हैं। आज कम भारतमें ईक या काजूरकी चीनीके बड़े  
विद्युत्चीनीका ही वाणिज्य अचिक है। कर्ण्य दको।

विद्युत्प्रिय (सं० पु०) १ शिशुमार या सू म नामक जल  
जस्तु। विद्या प्रिया। २ वैज्योका प्रिय।

विद्युत्प्रुत् (सं० ज्यो०) वैश्य और शूद्र।

विद्युत्प्रुत् (सं० पु०) सुप्रुत्क अनुसार एक प्रकारका शूल  
रोग। शूलोग देखो।

विद्युत्प्रुत् (सं० पु०) मसरोथ, वसिष्ठत।

विद्युत्सारिका (सं० स्त्री०) विद्युत्प्रिया सारिका। एक  
प्रकारका पत्ती।

विद्युत्सारो (सं० स्त्री०) विद्युत्सारिका, सारिकामेद।

विद्युत् (सं० पु०) वामी चक्र।

विद्युत् (विद्युत्)—गुल्मदेशके बालपुर जिलेका एक नगर।  
यह अक्षा० २६ ३०' उ० तथा देशा० ८० १६' पूर्वके मध्य  
कालपुर शहरसे १२ मील उत्तर पश्चिम गङ्गाक बाईने  
किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३ हजारसे ऊपर है।  
इस शहरके गङ्गा तट पर अति सुन्दर घाट, वैज्यमन्दिर  
और बड़ी बड़ी अष्टाधिकार्ये स्थाई हैं जिनसे यह स्थान  
बड़ा ही मनोरम दिखाई देता है। नदीके किनारे आ सब  
स्नान घाट है, उनमें प्रथमघाट ही प्रधान और एक प्राचान  
चार्यमें गिना जाता है।

प्रवाद है, कि ब्रह्माने सृष्टिकार्य समाप्त करके यहाँ एक अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञ-समाप्तिके बाद उनकी पादुकासे एक कौटा इस जगह गिरा और सोपान पर गड गया। तीर्थवाली इस जगह आ कर उस कटिकी पूजा करते हैं। प्रति वर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको यहा बड़ी धूमधामसे एक मेला लगता है; किमी किमी वर्ष तिथिके विपर्ययके कारण यह मेला अगहन मासमें लगता है।

अयोध्याके नवाव गाजी उद्दीन हिंदूके मन्त्री राजा दौकायेत् गयने बहुत रुपये खर्च कर यह घाट तथा उमके ऊपर घर बनवा दिया है। अन्तिम पेशवा बाजीराव यहा निर्वासित हो कर आये थे। नगरमें उनका प्रामाद आज भी विद्यमान है। उनके दत्तकपुत्र नाना साहबकी उत्तेजनासे कानपुर विद्रोहमें खडा हुआ।

नाना साहब देखो।

१८५७ ई०की १६वीं जुलाईको अङ्गरेज सेनापति हावलकरने इस स्थानको दखल किया। उसके आक्रमणसे बाजीरावका महल चूरचूर हो गया तथा नाना साहब भाग चले। पहले यहाँ बहुत लोगोंका धाम था। स्वानोय अदालत यहासे उठ जाने पर उनकी संख्या बहुत घट गई है। किन्तु ब्राह्मणोंकी संख्या पूर्ववत् है। अग्रिकाग ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थके पण्डा है। तीर्थस्थानके उपलक्षमें यहा बहुतसे यात्री आते हैं। इस नगरके पास ही गढ़ाकी एक नहर बह गइ है। शहरमें एक प्राश्मरी स्कूल है।

विड । सं० क्ली० । विडक । १ लवणविशेष, साँचर नमक । पर्याय—विडगन्ध, काललवण, विडलवण, ट्राविडक, पण्ड, रुनक, क्षार, आसुर, सुपाक्षय, खण्ड लवण, धूर्त, क्रावमक । गुण—उष्ण, दीपन, रुचिकर, वात, अजोर्ण, शूल, गुल्म और मेहनाशक । (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे—ऊर्ध्व-कफ तथा अधोवायुका अनुगोमकारक, दीपन, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष, रुचि ०, वसामा, विवन्ध, आनाह, विष्टम्भकारक और शूलनाशक । (भावप्र०)

२ विडङ्ग, वायविडग । (राजनि०)

विडङ्ग (स० पु०) रसजारणके निमित्त व्यवहार्य क्षार बहुल द्रव्यविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—

बैनी जाक, गेंडीमूलकी छाल, पीतघोषा, कडलीकन्द, पुनर्नवा, अडूसकी छाल, पलाशकी छाल, हीजलबीज, तिल, स्वर्णमाशिक, मूलक, जाकका फल, फूट, मूत्र, पत्र और काण्ड तथा तिलनाल, इन सब द्रव्योंको अलग अलग खण्ड करे। पीछे कुछ पीस कर जिलातक वा लपरमें इस प्रकार दग्ध करे, जिसमें क्षार अपरिष्कृत न हो जावे। बादमें बैनी जाकमें मूल जाकके काण्ड तक पन्द्रह प्रकारके क्षार तथा तिलनालके क्षार इन सब क्षारोंको समान भागमें ले कर सूत्रवर्गमें अर्थात् हाथी, ऊँट, घोड़े, गधे, भैंस, गाय, बकरों और भेड़ों इन आठ प्रकारके जन्तुओंके सूत्रमें अच्छी तरह झालोडित करे। कुछ समय बाद जब वह स्थिर हो जाय, तब ऊपरके सूत्ररूप निर्मल जलको साफ बागीक फण्डेमें छान ले। अनन्तर किसी लोहेके बरतनमें दाने रख धीरे धीरे आँच दे। जब उममेंसे बुदबुद और वाष्प निकलना दिखाई दे अर्थात् वह अच्छी तरह खोल रहा है तब प्लेमा मालूम दे, तब हीराकसाम, सौराष्ट्रसूतिका, पयक्षार, साचीक्षार, सुहागा, सौं, पीपल, मिर्च, गन्धक, चोनी, होंग और छः प्रकारके लवण, इन सब द्रव्योंका सूर्ण समान भागमें ले कर उक्त क्षारसमष्टिका चतुर्थांश उस खालने हुए जलमें डाल दे। पाक शेष होने पर अर्थात् जलका निहाई भाग शेष हो जाने पर उम उतार किसी कठिन बरतनमें भर सुँह घंट कर दे और सात दिन तक जमीनके अन्दर छोड़ दे। आठवें दिनमें वह पक क्षारजल जारणादि कार्यमें व्यवहार करनेके लायक होगा। उल्लिखित प्रक्षेपणीय द्रव्योंके अन्तर्गत सुहागेको पलाशद्रवकी छालके रसमें सौ बार भावना दे, पीछे उसे सुखा कर सूर्ण कर ले।

विडगन्ध । स० क्ली० । विडलवण, साँचर नमक ।

(राजनि०)

विडङ्ग (स० पु० क्ली०) विड आकाशे (विडादिम्यः कित् । उष् १।१२०) इति अङ्गच् स च कित् । १ (Embcha ribes, seeds of Embcha ribes) म्वनामस्यात औषध, वायविडंग । तैलङ्ग—वायुविडपुचेट्ट ; म्वई—वर्षट्टि, अम्वट, कार्कणाना, तामिल—वायविल । पर्याय—वेहल, अमोवा, चित्ततण्डुला, तण्डुल, क्रिमिघ्न, रसायन, पाचक,

मसक, वीसु, मोषा, तपसुसु, जस्तुधन, विजतपञ्चम, क्रिमि शङ्कु गार्म, कीचल, विडिङ्गा, क्रिमिदा, चिन्ता, तपसुला, तपसुलीयका, वातारितपञ्चमा, जस्तुधनो, मृगगामिनी, कीराओ, गह्वरा, कापाओ, बरासु, चित्तबोधा, जस्तुधनी । गुण्य—कद्रु, उज्ज, लघु, वातकफघोषा, अग्निमान्द्य, अरुचि, घ्नान्ति और कुमिद्वैपनाशक । (राजनि०) घोडा तिल, कुमि और विपनाशक । (राजक०) भावपकाश के मतसे—कद्रु, तोड़प, उज्ज, शूरा, अग्निवर्धक लघु, शूरा, आध्मान, बरर, स्वैषा कुमि और विवर्णनाशक । (भाजप्र०) (नि०) २ अमिष, ज्ञानकार ।

विद्युत्तैल (स० ह्यो०) वैमीपवशिरोप । प्रस्तुत प्रयाओ—सरसो तैल ४ स्र, गौमू १६ स्र, कर्करायं विड ग, गन्धक, मनाशिला मिळा कर एक स्र । तैलपाकक विधानानुसार यह तैल पाक करना होगा । यह तैल सिरमें मालिश करनेस समी ३ मर जाती है । (मैक्यरत्ना० इतिरोपनि०)

विद्युत्तुण्डितैल (स० ह्यो०) वैमीपवशिरोप । इसक बनानेको तरकीब—तैल ४ स्र, कर्करायं विडङ्ग, मिसे, अक्षयनको अद्रु, सोंठ, चितामूल, देवदाद, इलायची और पञ्चलपण मिळा हुआ १ स्र । तैलपाकक विधानानुसार यह तैल पाक करना होगा । यह तैल मालिश करने और पानेसे श्लोष (फोसपाप)-रोग विनष्ट होता है ।

(मैक्यरत्ना० श्लोषरोगनि०)

विद्युत्तुण्डितैल (स० ह्यो०) भावपशिरोप । प्रस्तुत प्रयाओ—सोडा ४ पञ्च, अबरक २० पञ्च, जिकफला प्रत्येक ७ पञ्च, जल ३६० पञ्च, शेष ४५ पञ्च । इस बचायमें सोडे और अबरकको पाक करे । इन सब द्रव्योंको छोड़े या लविक बरतनमें घोमी भाँच पर रख सोडेक इत्येसे भाओहन कर पाक करना होगा । जब पाक होय होय पर हो तब निम्नोक्त द्रव्य ठममें डाल दे । ये सब द्रव्य ये हैं—विडङ्ग सोंठ घनिया, गुलझरत औरा, पलाश पीत्र, मिर्षा पापक, गजपिपलमो, निम्बाप, जिकफला वृता मूल, इलायची र बोधा मूव पोपकका मूव, चितामूल मोषा और पृञ्चदारकबीत्र । इनमेंने प्रत्येक २ तोला ४ माशा और ८ रत्ता । माशा रोगीक बलाबलक अनुसार स्थिर करनेो हागी ।

इस औषधके सेवनसे आमधात, शोथ अग्निमान्द्य और हन्मीक रोग हात्त होते हैं ।

(मैक्यरत्ना० नाम्बानरोगनि०)

दूसरा तरीका—विडङ्ग, जिकफला, मोषा, पिपलमो सोंठ, मोरा और म गरीला, कुन मिळा कर जितना हो उतना बोधा इन्हे पकल मिश्रित कर यह औषध बनाओ हागी । इस औषधक सेवनसे प्रमेह रोग नष्ट होता है । इसको माशा रोगीक बलाबलक अनुसार और अनुपात दोषके बलाबलक अनुसार स्थिर करना होगा ।

(रतेन्द्रधार० प्रमेहोपनि०)

तीसरा तरीका—विडङ्ग हरीतकी आमलकी, बडेडा, देवदाद, वाबहरिद्रा, सोंठ, पीपल, मिर्षा, पोपकका मूल, कई चितामूल, ये सब द्रव्य समान भाग तथा उतने ही छोड़ेका एक साथ मिळा कर अष्टगुण गावके मूतमें पाक करे । पाक शेष होय पर २ तोलाको गोळा बनाये । इसका सेवन करनेसे पाण्डू और कामठ्या भादि रोग प्रशान्त होत है । (रतेन्द्रधार० पाण्डूरोगनि०)

विद्युत्तुण्डिरिप (सं० पु०) प्रथमोपाधिकरीक औषध शिरोप । प्रस्तुत प्रयाओ—विडङ्ग, पीपलमूल, रास्ता, कूटकी छात्र, इन्द्रपव आकनादि, पमवालुक, आम लकी, प्रत्येक द्रव्य ४० तोला छे कर ५१२ सर वा १२ मम ३२ स्र अक्षमें पाक करे । जब पाक हो कर होय ३४ स्र (१४४ स्र) रह जाय, तब नीचे उतार छे । टपका होने पर ठले छात्र कर घबफूडका चूर्ण २५ स्र, वाद कीना इलायची, तेजपत्र प्रत्येक १६ तोला, मिपगु रव काश्मण्डाल छेय प्रत्येक ८ तोला सोंठ, पीपल मिर्षा, प्रत्येक १ स्र, ये सब चूर्ण तथा मसु ३०० स्र इममें मिळा कर एक मास तक आरुत घृतमाहमें छोड दे । इसका सवन करनेसे विप्रति अमरी मेह उचस्तम, अष्टोका मगन्ध भादि रोग जाते रहते हैं ।

विद्युत्त्व (सं० पु०) विद्युत्त्व मपू । विद्युत्त्व, अनुकरण । विद्युत्त्वक (सं० नि०) विद्युत्त्वनि पि इत्य विष्कम्पु । १ विद्युत्त्वकारा, ठोक ठोक अनुकरण करतवाला, पूरा पूरा नकल करनेवाला । २ अनुकरण करण विद्वाने या अथमान करनेवाला । ३ निम्ना या परिग्राम करनेवाला । ४ प्रतापक, चूर्ण ।

विडम्बन ( सं० स्त्री० ) वि-डम्ब-ल्युट् । १ किसीके रंग ढंग या चाल ढाल आदिका ठीक ठीक अनुकरण करना, पूरी पूरी नकल करना । २ चिढ़ाने या अपमानित करनेके लिये नकल करना, भांडपन करना । ३ निन्दा या उपहास करना । ४ प्रतारण, टर्गो ।

विडम्बना ( सं० स्त्री० ) वि-डम्ब, णिच्, चुच्, टाप् । १ अनुकरण करना, नकल उतारना । २ किसीको चढ़ाने या बतानेके लिये उसकी नकल करना । ३ हंसी उड़ाना, मजाक करना । ४ डाटना डपटना, फटकारना । ५ प्रतारण, टर्गो ।

विडम्बनीय ( सं० त्रि० ) १ जो अनुकरण करनेके योग्य हो, नकल उतारने लायक । २ चिढ़ाने या उपहास करनेके योग्य ।

विडम्बित ( सं० त्रि० ) वि-डम्ब क्त । १ हनविडम्बन, निन्दा या उपहास किया हुआ । पर्याय—घसन, आकुल, दुर्गत ; ( रश्माला ) २ अनुगत, नकल किया हुआ । ३ बञ्चित, टर्गा हुआ । ४ दुःखित ।

विडम्बित ( सं० त्रि० ) वि-डम्ब इति । विडम्बकारी, विडम्बना करनेवाला ।

विडम्ब्य ( सं० त्रि० ) वि-डम्ब-यन् । १ उपहासार्थपद । २ विडम्बनीय, विडम्बनके योग्य ।

विडम्बित ( हिं० त्रि० ) १ धर उधर होना, तितर बितर होना । २ भागना, दौड़ना ।

विडम्बक ( सं० पु० ) विडाल पत्र स्यात् क्त, लस्य रः । विडाल, विह्ली ।

विडम्बना ( हिं० त्रि० ) १ तितर बितर करना, धर उधर करना, छितराना । २ नष्ट करना । ३ भागना, दौड़ना ।

विडाल ( सं० पु० ) विड-आक्षेपे ( तमिविनिविहोति । उक् १।११७ ) इति कालम् । १ नेत्रपिण्ड । ( मेदिनी ) = नेत्रों पर विशेष । ( भावप्र० ) ३ खनामर्यात पशु, विह्ली । पर्याय—तनु, मार्जार, वृषभशक, आम्बुभुक्, विराल ( विलाल ), वीताक्ष, नक्तञ्जरी, जाहक, विडालक, त्रिशंकु, जिहाप, मेनाद, सूत्रक, मृषिकाराति, जालात्रक, मायावी, दीप्तलोचन । ( राजनि० )

विह्लीकी बाघ आदि, मुर्गा गठन, पैरके पजे धोन हट्टो आदिके साथ बाघका विशेष सौम्यद्रव्य है । विह्लीकी बाघकी तरह तार लगा कर धौन उठल पर चूहेका शिकार भी करना है । यह देश भर पाठ्यान्व प्राणविदोंने सिद्धान्त किया है, कि यह खनाम प्रसिद्ध चतुष्पद जन्तु व्याघ्रजाति ( Felis Tigris ) के अन्तर्भूक्त है । इसीलिये ये विह्लीकी Felis Catus नामसे पुकारते हैं । इसी तरह हमारे देशमें भी यह "बाघकी मौसी" कहलाती है । बाघ शिकार पकड़ कर वृक्ष पर नहीं चढ़ सकता ; किन्तु विह्ली सुहृम शिकार लिये वृक्ष पर चढ़ जाता है । इसका यह गुण बाघके गुणसे विशेष है । इसीसे इनका नाम "बाघकी मौसी" हुआ है । किन्तु चाता, लफटवाधा आदि छोटे बड़ेके बाघोंकी वृक्ष पर चढ़ने देखा गया है । विह्लीकी बाघकी मौसीका पद कैम मिला ? इसके सम्बन्धमें अपने यहां एक विश्वदन्वी प्रचलित है ।

यह विह्ली जाति दो प्रकारकी है—प्राच्य या पार्लिन और जङ्गली । इन जगली विह्लीकी बनविहाट कहते हैं । फिर इस बनविहाटमें दो जानिया हैं । एक पार्लिन विहाटकी बन्धनेणा, दूसरी प्रकृत बनविहाट जाति । देश और वाकृति भेदसे पार्लिन विह्लीयोंमें कई भेद दिखाई देते हैं । इसलिये इनका खनख नाम रखा गया है । प्राच्य और प्रताच्य जगन्में जा सब विभिन्न जातीय पशु विह्ली नामसे परिचित हैं, नोचे उनके नाम दिये गये ।

जैसे—Civet Cat, Genet Cat, Marten Cat, Pole Cat इत्यादि । माडागास्कर द्वीपकी लेमूर जाति Madagascar Cat और आर्जेन्टिना द्वीपके बाघरवाही चर्मकोपयुक्त पशु Wild Cat नामसे प्रसिद्ध है । भारतमें 'सरामिन्दी शिल्ली' डरपोर खनामवाले और कुछ लाञ्जुक और बनविहाट अपेक्षाकृत उग्र खनामवाले होते हैं । ये Lynx ( Felis rufa ) जातिके हैं । मिस्र-देशमें जो सब नामोंविह्लीया ( Mummy cat ) देखी जाती हैं, उनके साथ वर्तमान L. Chus—Marsh cat, I. Calgulata और F. bubastes जातिका बहुत सौसादृश्य है । मिस्रदेशमें आज भी इन सब जातियोंको

पासतु और बङ्गाली चिन्चिवाँ बिल्लाई हैतो है। पासास, टैमिनिक और स्वातु मादि प्राणिकोंका अनुमान है, कि उक्त पासतु चिन्चिवाँ अपने वन्य ज्ञानीय जीवोंके सामयिक संगतिविरहितसे उत्पन्न है। फिर इनके परस्पर संसर्गसे पैसा एक नई विज्ञानजातिको उत्पत्ति हुई है।

इण्डोनेशियामें *F Sylvestrus* अथवाजिवाँमें *F lybica* और दक्षिण अफ्रीकामें *F Calica* नामसे तीन तरहके वनविज्ञान हैने जाते हैं। भारतमें साधारणतः ३ तरहके वनविज्ञान हैं, इनमें *F Chaus* जातिको पूछ *lynx* जाति की तरह है। इण्डोनेशियामें *F Ornata* or *torquata* और मध्यपश्चिमामें *F manal* श्रेणीके बहुतरे वन विज्ञानोंका बास है। मानवजीवमें (*Jale of man*) एक तरहको बिना पूछको बिल्ली है। इसका पिच्छा पैर बड़ा होता है। पश्चिमोत्तरी पासतु कियल विज्ञानों (*Creole cats*) अनेकाने छोटो हैं। चिन्तु इनका मुँह सूक्ष्म तरह की तरह है। पैरागुए राज्यकी बिल्लियाँ छोटी और दुबली पतली होती हैं। मलयद्वीपपुञ्ज, इण्डोनेशिया और ब्रह्म आदि प्रायः इनपक्षोंमें जो सब पासतु चिन्चिवाँ हैंको जानते हैं, उनकी पूछे सूझकार होती है और उनका अगला भाग गद्दीसा होता है। चीनदेशमें एक जातिकी बिल्ली है, उनका बाल बिखरे हैं। फारसका बिल्लियात मन्त्री अफ़्ग़ान बिल्लियाँ मध्यपश्चिमकी *F manal* से उत्पन्न हैं। भारतकी साधारण बिल्लियोंसे इनका जोड़ छानना है।

पूछको अत्यान्व रूपानो की अनेकाने पश्चिमके दक्षिण और पश्चिम अशो में ही विभिन्न ज्ञानीय चिन्चिवाँका बास है। विभिन्न ज्ञानीय भाषामें वन्य या पालित बिल्लियों पुंस या पुनी नामसे बिल्लियात है। पालित अर्थात् चिन्चिवाँ पुरुष वरतपूर्वक पालन करते हैं, उनमें जो किमी चिन्चिवाँ बिल्लियोंका नाम पुनी, मैनी पुनी सुना जाता है। कमा कमा शीघ्र पासा हुई बिल्लियोंको पासतु कुत्तो की तरह पुकारते हैं, किन्तु इस ज्ञानिका साधारण नाम बिल्लो ही है। विभिन्न भाषाओंमें इस जातिकी सजा—संस्कृतमें माझार, बंगालमें विज्ञान विरैल, पुनी, भोट कीट सोइवा—मि वि, शामिल—पानी, तमगु—

पिल्लो; फारसी—माइरा पुच्छक; अफगान—चिन्चिवाँ, तुर्क—पुच्छिक, कुर्द—पमिक, जिपुयानीय—विरजाग; अरब—चिह्न; अङ्ग्रेजी—*Cat, Pussy cat* इत्यादि।

पहिलेसे विभिन्न देशवासियोंमें बिल्लो पासतुकी रोनि बाल पड़तो है। केवल भारत ही नहीं, सुदूर पाश्चात्य भूखण्डोंमें भी आदरक साथ बिल्लियोंका पासतु जातो था। प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंको पढ़नेसे हम बिल्लो तथा उनका स्वभावका परिचय पाते हैं। ईसायन पूर्व शताब्दी पहलेके दक्षिण रामायण ग्रंथ (६।७३।११)में बिल्लियों पर चर्चा कर रहासोके मुद्ररक्षमें ज्ञानीका बात लिखी है। बिल्लोके उच्चम कर पूरेका शिकार करनेका बात भी हम उसी रामायणके छद्मकाण्डसे जानते हैं। मन्त्रिद्वयैवाकरण पाणिनिमें भी माझारमूचिककी निरवबिरोधिना मान कर हो समासवृत्तमें (पा २।३।६) 'माझारमूचिकम्' पदबिन्ध्याम किया है। बिल्लियोंको पूछोके शिकार करनेके समय क्यामनिष्ठकी तरह विनीत भावसे अवधान करती है। यह हैव भगवान मनुने (मनु ७।१६७) तदनुकूलिक मनुष्यको 'माझारमूचिकम्' शब्दसे समिहित किया है। कथक भारतवासी ही नहीं, प्राचीन यूनानी, रोमन और इटालियन भी बिल्लोके द्वारा बहूक मारे जानकी बात जानते थे। प्राचीनकालमें बिल्लो बहूक शिकारक वास्तुयका बिल्लिवाँत और क्षेत्रार पर बनाया जाता था। आरिष्टरखने बहू मारनेवाले जिन पालित पशुका उद्देश्य किया है, अत्यान्व रोलेखने उसीको वर्तमान श्येनवस्तु मार्शिन (*Marten foina*) नामक पशु कहा है। चिन्तु पशुधर्ममें बिल्लो मारनेवाले यह जाक सबै *Pole cat* या *Fou mart* हा मान्य मान है।

बुर्जिन्याम, तुर्क और सिपुनियाक अधिवासी बिल्लो की बड़े प्यार करते हैं, सिन्ध अधिवासी भी बिल्लियोंको बहुत बिल्लोमें प्यार करते माने हैं। काश्मिर प्रदेशमें या प्राचीन असीरिय प्रस्तर बिल्लोमें बिल्लियोंका चिह्न तब नहीं है। कहना न होगा कि वर्तमान यूरोपमें बिल्लियोंका एकान्त जमाव है। हमारे देशमें जैसे फारसकी अथवा बिल्लियोंको शीघ्र जोकन पासते हैं यूरोपमें कोई कोई भादमी शीघ्र हा बिल्लियोंका पासते

हैं। भारतमें ये फारसी विलिय्याँ उद्भवात्की वणिकों द्वारा भारतमें लाई गई थीं। वास्तवमें वे अफगानिस्तानसे ही इस देशमें आती हैं और "काबुली विल्ली" के नामसे पुकारा जाती है। लेफ्टेनाण्ट इरविनका कहना है, कि फारसमें ऐसी विलिय्याँ होती ही नहीं। अतएव इस "फारसी विल्ली" न कह काबुली विल्ली कहना ही उचित है। काबुली इस जातिकी विलिय्याँको रोपकी वृद्धि करनेके लिये उन्हें नित्य साबुनसे धोते सुखाते हैं।

हमारे देशकी विलिय्या विशेष उपकारा है। ये चूहोंको मार कर भूगादि नाना रोगोंसे देगवासियोंको मुक्त करना है। मछलीके काँटे भी विलिय्याँसे बेकार रहने नहीं पाते। फिर भी विलिय्याँ द्वारा उपद्रव भी कम नहीं होता। रसोई घरकी हंडिया फोड कर उसमें रखे हुए मछलीके टुकड़े बे खा जाती हैं। बच्चोंके लिये रखा हुआ दूध आदि गोरस भी इनके मारे धरने नहीं पाना। इसीलिये मनुष्यमात्र विलिय्याँ पर नाराज रहता है। बहुतेरे विल्ली देखने ही उन पर बिना प्रहार किये नहीं मानते। फिर जो कबूतर पालते हैं, वे विल्लीके एक भी कबूतरके प्राण सहार पर उसे मार डालनेकी ही फिक्रमें रहते हैं। हमने किसी किसोका इस दोषके कारण विल्लीको दो टुकड़े कर डालते देखे हैं। हिन्दूशास्त्रमें विलिय्याँकी हत्या करनेकी मनाही है। विल्लीकी हत्या करने पर महापातक होता है। यदि कोई विल्ली मार डाले, तो उसको शूद्रहत्यावत् आचरण करना पड़ेगा।

(मनु ११।२३१)

मनुम लिखा है, कि विल्लीका जूठा अन्न पाना नहीं चाहिये खानेमें ब्राह्म सुवर्चला नामक काथ जल पान करना होता है।

विलिय्याँकी हत्या नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसके प्रायश्चित्तके विषयमें प्रायश्चित्त-विवेकमें लिखा है, कि तीन दिन दुग्ध पान या पादकृच्छ्र करना चाहिये। यह अज्ञानसे हत्या करनेका है अर्थात् देवात् विल्ली मारनेका प्रायश्चित्त है। जान सुन कर विल्लियोंको मारनेसे बरह रात्रि कृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करना होगा। यदि इस प्रायश्चित्तमें कोई असमर्थ हो, तो उनको यथाशक्ति

दक्षिणाके साथ दो धेनु दान करना होगा। यदि वह भी असमर्थ हो, तो ४ कार्यापण दान करनेमें पापसे मुक्त हो जावेगा। खो, शूद्र, बालक आर वृद्धके लिये बर्द्ध प्रायश्चित्त ही विधेय है। विल्लियोंके वधमें जो पातक होता है, वह उपपानकमें गिना गया है।

बहुतेरे विल्लीको पृष्ठादेवाकी अनुचरी मानते हैं। बुद्धियोंके मुँहसे सुना जाता है, कि पृष्ठा देवीकी वाहन है; उसको मारनेसे पुत्र आदि नही होने और लाम यदि पेटमें चला जाय, तो यक्ष्मरोग या मसोका रोग होनेकी सम्भावना रहती है। अध्ययनके समय गुरु और शिष्योंके बीचसे विल्ली यदि पार हो जाये, तो उस समय दिन रात तक अध्ययन नहीं करना चाहिये। (मनु ४।१२६) अनाशुष्टिके समय यदि विल्ली मिट्टी के डूँठे दिखाई दे, तो शीघ्र ही शृष्टि होगी, ऐसा समझना चाहिये।

ग्राम्य कृषकाय विडालोंके चर्म संघर्षणने अधिकतर वैद्युतिक-शक्ति विकीर्ण होती है। प्रसिद्ध काबुल देशीय पजमबहुल विल्लियोंके चर्ममें ऐसा वैद्युतिक तेज विशेष कम नहीं। अन्यान्य विल्लियोंके चर्ममें अपेक्षाकृत कम तेज है। प्रवाद है, कि काली विल्लियोंकी हड्डो यदि मनुष्यके घरमें नाँचे दबी हो, तो वह शल्यरूपमें गिनी जाती है। इससे उन्न मनुष्यके घरमें कभी मङ्गल नहीं होता, वर उत्तरोत्तर विपद् आनेकी सम्भावना रहती है। मारणक्रियाके निमित्त बहुतेरे इस तरहकी काली विल्लीकी हड्डो शत्रुके घरमें गाड़ देते हैं। किन्तु इस आभिचारिक क्रियासे हिंसाकारकका ही अमङ्गल हुआ करना है। आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है, कि विल्लीकी विष्ठा जलानेसे कम्पञ्जरमें विशेष उपकार होता है।

पहले कहा जा चुका है, कि विल्लीका चेहरा वाघकी तरह है। किन्तु आकारमें ये छोटी होती है। साधारणतः मसूक और देहभाग ले कर इसकी लम्बाई १६" से १८" है और पूँछ १०से १२ इंच तक होती है। पैरके पंजोंमें पाँच नख रहते हैं। किसी किसी विल्लीकी नख-लंघना कम भी देखी जाती है। विल्लियोंके नखोंमें विष रहता है। नखकी सख्या कम होनेसे विषका बल भी कम

होता है। यदि यह किसाके किसी अङ्गमें अपने मजसे विद्यार्ण करे, तो उस स्थानमें विप अङ्क मायेगा। ऐसी रूपायें बर्दा एक तपे छोड़ेसे दाग देना चाहिये। ऐसा करने पर विपका भस्म मिट जाता है नहीं तो यह विप प्रबल हो उठता और घाय बङ्क जाता है। इससे यन्त्रपा मो बङ्क जानी है।

ये साधारणता ३, ४, या ५ शाबक पैदा करती हैं। इन शाबको के इन्तपदादि भवपथ रहने पर भी यह एक विपबन्धन हो विचार्ये होते हैं। केवल प्राण ही ज्योतिष्क का परिचायक रहता है। उस समय इनके शरीरमें जोम नहीं रहता। यदि इस मातिका पुण्य इन शाबको को देल सै, तो यह बड़े घट कर जाता है। इसीलिये विद्विठवा अपने गाबका को इतर इतर खुराती फिरती हैं। १ सुगन्धमाखार, सुरक बिमान। (ज्ञो०) ३ हरिताम। विद्यालक (स० ज्ञो०) १ हरिताम। (पु०) विद्याल एक स्वार्ये कम्। २ विद्याल, बिस्को। ३ नेत्र रोगको एक औषध।

'मेडाके बहिलो नेत्रे पश्मविपकिति।

तस्य माता परिषु ना मुखात्लेभेभमलवत् ॥'

(मात्रप० नेत्रोभाषि०)

नेत्रके पहिर्भागमें पक्षका परित्याग कर प्रलेप देनेको विद्यालक कहते हैं। इसकी मात्रा मुखात्लेपके समान होगी। मुखात्लेपको मात्राक सम्बन्धमें येना लिखा है, कि मुखात्लेप ही शीत मात्रा एक उ गन्धोका भीषार्द माग, मध्यम मात्रा तिहार्य माग और उच्चम मात्रा एक उ गन्धोका भर्दा ग है। यह लेप जब तक सूख न जाय, तब तक लगाये रजना होगा। सूख जाते ही उसे फेक देना उचित है। क्योंकि सूखने पर कममें कोई गुण नहीं रह जाता बल्कि यह धमड़ेका दूषित कर डालता है।

विद्यालकप्रलेप—मुमेडी, गेरुमिडो, सैन्धव, दाग इत्यादि और रसाञ्जन पै सब द्रव्य समान भाग से कर अवमं पोसे और नेत्रक पहिर्भागमें प्रलेप दे। इस प्रलेप से सभी प्रकारका मन्त्र रोग भाटोप्य होता है। रसाञ्जन का इरीतपी भयवा बिदरपथ या बच्च, हरिद्रा और सीड तथा गेरुमिडो द्वारा प्रलेप देनेसे भी सभी प्रकारके नेत्र

रोग निवृत्त होते हैं। (भाग्य० नेत्रभाषि० विद्यालकविधि) विद्यालपद् (स० पु०) १ दो तोलेका परिमाण। (ह्री०) २ माखारचरण, विद्यालका पैर।

विद्यालपद् (स० ज्ञा०) कर्पपरिमाण सोढह माशका एक मान।

विद्यालक (स० पु०) महाभारतक अनुसाण एक राजाका नाम जो महाराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें गया था। विद्यालो (स० आ०) १ बिद्यारोक्तम्। २ माखारी, बिन्सी।

विद्युत (स० ज्ञो०) वि बी-क्त। जगतिपियोय पसिवो की उद्यानका एक प्रकार।

विद्युल (स० पु०) वे लकी सता।

विद्युजस् (स० पु०) विपु ब्याप्तो, विप-क्षिपु, विट्-व्यापक भोजो मन्थ। इन्द्र। (मन्त्र)

विद्युजस् (स० पु०) विद् आक्रोशि शब्द श्रेयमसहित्पु भोजो यस्य। इन्द्र। (रिक्कोप)

विद्युगन्ध (स० ज्ञो०) विट्-विष्ठा इव गन्धो यस्य। विट्-लवण साधर भमक।

विद्युध (स० पु०) वापुष्यता ममरोध, कश्चित्त। (मापवलि०)

विद्युधान (स० पु०) मळमूत्रका अवरोध, पेशाव और पाबना रुकना।

विद्युज् (स० लि०) विपि विष्ठावां ज्ञान। विपु-ज्ज ३। विष्ठाज्जत, विष्ठा भाडिसे उत्पन्न होनेवाले कीड़े मकोड़े।

विद्युर्हसिंह (स० पु०) राजाण एक मन्त्राका नाम। (यन्त्र० ना० १४०)

विद्युर्गन्ध (सं० पु०) मलका अवरोध कश्चित्त। विद्युर्भङ्ग (सं० पु०) विद्युर्मेद, बहुत दस्त होने पर उच्चम।

विद्युर्भुङ् (सं० लि०) विप विष्ठां भुनक्ति, विप भुन-क्ति। विद्युर्भोजी, विष्ठा पानेवाले काड़े मकोड़े।

विद्युर्मेद (स० पु०) विद्युर्भङ्ग।

विद्युर्मेदि (स० वि०) विप विष्ठां मेत्तु जील यस्य। यह औषध या द्रव्य जो विरेकक हो दस्ताधर बीज या दूषा।



विट्-भोजिन् (सं० लि०) विणं विष्टा भोषतुं शूलं यत्र ।  
विट्-भुक्, विष्टा खानेवाला ।

विट्-भोजो (सं० लि०) विट्-भोजिन् श्रेयो ।

विट्-लवण (सं० क्ली०) विट्-लवणं, सांचर तमक ।

विट्-व्राह (सं० पुं०) विट्-प्रियो ब्राह्मः । प्राग्भृशकर,  
गावोर्मं रहनेवाला सूअर ।

विट्-वल (सं० पुं०) १ गोपक । २ निगादल ।

(पर्यायगु०)

विट्-विघात (सं० पुं०) एक प्रकारका मृत्यानराग ।  
उदावर्न रोगमें दुर्बल और रुक्ष व्याक्तरी विष्टा, कुपित  
वायुके द्वारा मृत्योत्त प्राप्त होनेसे वह रोगी उम नमय  
बड़े कष्टसे विट्-स सृष्ट और विट्-गन्धयुक्त मूहत्वाग  
करता है । रोगीकी इस अवस्थाको जाग्रदकारिने  
विट्-विघात कहा है । (भावनि०)

विट्-विभेद (सं० पुं०) विट्-विघातगोग ।

विणमार्ग (सं० पुं०) मलद्वार, गुदा ।

विणमूत्र (सं० क्ली०) विष्टा और मूत्र ।

वितस (सं० पुं०) वितं स प्रश्न । वनि स, मृग अथवा  
पक्षी आदिके फंसनेका जाल ।

वितण्ड (सं० पुं०) १ अर्गलमेद, अगरी । २ हस्ती,  
हाथी ।

वितण्डक (सं० पुं०) एक ग्रन्थकर्त्ताका नाम ।

वितण्डा (सं० स्त्री०) वितण्डयने विहन्यते परपक्षोऽन  
येति वि-तण्ड गुरोश्चेत्यः टाप् । १ दूसरेके पक्षको दवाते-  
हुए अपने मतकी स्थापना करना । (अमर)

कथा, वाद, जल्प और वितण्डा इन तर्कोंके  
कथा कहते हैं । गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार  
लिखा है—

“अप्रतिपक्षस्थापनहीनां वितण्डा ।” (गौतमसूत्रश्रुति १२।४४)

प्रतिपक्ष स्थापनाहीन होनेसे उसके वितण्डा कहते  
हैं । तत्त्वनिर्णय वा विजय अर्थात् वादिपराजयके  
उद्देशसे न्यायसङ्गत वचनपरम्पराका नाम कथा है ।  
कथा तीन प्रकारकी है, वाद, जल्प और वितण्डा । तर्कमें  
जय या पराजय ही कोई हर्ज नहीं, केवल तत्त्वनिर्णय-  
का उद्देश कर लेा सब प्रमाणादि उपन्यस्त होते हैं,  
असका नाम वाद है । तत्त्वनिर्णयके प्रति लक्ष्य न कर-

के प्रतिपक्षकी पराजय तथा अपनी जय मात्रके उद्देशसे  
जा कथा प्रवर्तित होती है, उमका नाम जल्प है । जल्पमें  
वादी प्रतिवादी दोनों ही अपने पक्षको स्थापन और पर-  
पक्षको प्रतिषेध करते हैं । अपना कोई भी पक्ष निर्दे-  
न करके केवल परपक्ष गण्टनके उद्देशमें विजिगीषु  
व्यक्ति जिस कथाकी प्रवर्तना करने है, उमका नाम  
वितण्डा है ।

जल्प और वितण्डामें प्रतिपक्षकी पराजयके लिये  
न्यायोक्त छल, जानि और निप्रहम्यानका उद्घावन  
क्रिया जा सकता है । वह कथा पेंचल तत्त्वनिर्णयके  
लिपे उपन्यस्त होती है, इस कारण उनमें सभाकी जङ्गत  
नहीं, किन्तु जल्प और वितण्डामें सभाकी जङ्गत होती  
है । जिस जनतामें राजा या कोई क्षमताशाली व्यक्ति  
नेता तथा कोई व्यक्ति मध्यस्थ रहते हैं, उमों जनताका  
नाम सभा है । वाद और न्याय देखो ।

२ व्यर्थका भगडा या कदा तुनी । ३ कच्चुका साग  
और कन्द । ४ गिलाहय गिलाजोत । ५ करषी ।  
६ दर्वी ।

वितत (सं० लि०) वि-तन-क्त । १ विस्तृत, फैला हुआ ।  
(क्ली०) २ चीणा अथवा उमसे मिलता जुलता हुआ  
और दोई वाजा ।

वितताध्वर (सं० लि०) यज्ञवेदोसम्बन्धी ।

(अथर्ववेद ६।६।२०)

वितति (सं० स्त्री०) वि-तन क्ति । विस्तार, फैलाव ।

वितत्करण (सं० क्ली०) लोगोंका अनिन्दित कर्म, वित-  
न्नापण ।

वितत्य (सं० पुं०) विद्वयके एक पुत्रका नाम ।

(भारत १३ पर्व)

वितथ (सं० लि०) १ मिथ्या, झूठ । २ निष्फल, व्यर्थ,  
वेफायदा ।

वितथता (सं० स्त्री०) वितथस्य भावः तल् टाप् । वितथ-  
का भाव या धर्म, मिथ्यात्व ।

वितथ्य (सं० लि०) वितथ यन् । मिथ्या, असत्य, झूठ ।

वितट्ट (सं० स्त्री०) वितनोतीति वि-तट् (जत्वादयश्च ।  
उण् ४।१०२) इति च प्रत्ययः । पञ्जापकी वितस्ता या  
श्वेलम नदीका एक नाम ।

वितनिवृ ( स० लि० ) वितनोति वि तन् वृत् । विस्ता  
रक, वीर्याभेदात् ।

वितनु ( स० लि० ) १ तनुवदित । २ भति सूक्ष्म ।

वितन्वत् ( स० लि० ) वितनोति वि-तन् शब्द । विस्तार  
कारक ।

वितन्तसाप्य ( स० लि० ) १, विशेषरूपसे विस्तार्य,  
स्तोत्र द्वारा बन्धीय । २ शशुभोका हिसक ।

वितनप ( हि० पु० ) १ वह जो किसी काममें कुशल हो,  
शुभलाभ, वृत्त । ( वि० ) २ घरवाया हुआ व्याकुल ।

वितनस ( स० लि० ) विगतस्तमो यस्य । १ तमोगुण  
रहित । २ अल्पकारदीन ।

वितनमन्त्र ( स० लि० ) विगतस्तमो यस्मात्, रूप समा  
साप्तः । १ अल्पकारदीन, जिसमें अल्पकार न हो ।  
२ तमोगुणरहित ।

वितर ( स० पु० ) वि-नु भप् । १ वितरण देना । ( लि० )  
२ विमण्डल, वृत्त किया हुआ । ३ विज्ञिष्टनर । ४ अल्पक,  
भक्तिभय ।

वितरक ( स० लि० ) वितरण करनेवाला, बाँटनेवाला ।

वितरण ( स० झी० ) वि-नु भावे ऋयुट् । १ दान करना,  
अर्पण करना देना । २ बाँटना ।

वितरणाधर्म ( स० पु० ) एक आचार्यका नाम ।

वितरम् ( स० अन्व० ) वितर देणो ।

वितराम् ( स० अन्व० ) और भी, इसक अन्वावा ।

( कल्पयाम० १।५।१२३ )

वितलि ( स० लि० ) ओ वितरण किया गया हो, बाँटा  
हुआ ।

वितक ( स० पु० ) वि-तर्क-धन्व । १ एक तर्कक उपरान्त  
होमवाला वृत्ता तर्क । २ सम्येह, व्यंग्य, शक । ३ अनु  
मान । ४ ज्ञानसूचक । ५ जर्णालङ्कारविशेष । सम्येह या  
वितर्क होने पर यह भङ्गकार होता है । यह निश्चयात्  
और अनिश्चयात्तमेसे दो प्रकारका है । जहाँ सम्येह  
निश्चय होता है, वहाँ निश्चयात्त वितक तथा जहाँ  
निर्णय नहीं होता, वहाँ अनिश्चयात्त वितर्क होता है ।

वितकण्य ( सं० झी० ) वि तर्कं ऋयुट् । वितर्क ।

वितर्कयत् ( स० लि० ) वितर्कः विभवेऽस्य वितर्कं गतुप्  
सम्प व । वितर्कपुष्क, वितर्कविशिष्ट ।

वितर्क्य ( स० लि० ) वि तर्कं यत् । १ वितर्कणीय,  
जिसमें किसी प्रकारके वितर्क या संदेहका स्थान हो ।  
२ अल्पाक्षर्यरूपसे दर्शनीय, जो देखनेमें बहुत पिल्लान  
हो ।

वितर्तुर ( स० ऋदी० ) परस्परव्यतिहार द्वारा तरण,  
बार बार जाना । ( अष्ट १।१०।२ )

वितर्हि ( स० ली० ) वि-तर्हं विस्तार्य ( लर्मवदुम्भ इन् ।  
उप् ५।१।१० ) इति इत् । वैदिका वेदा, मन्त्र ।

वितर्हिका ( स० ली० ) वितर्हि वैव स्वाधे कन् टाप् ।  
वैदिका, वेदी ।

वितर्हो ( स० ली० ) वितर्हि-रुदिकापदिति लोष् ।  
वेदी ।

वितर्दी ( स० ली० ) वैदी ।

वितर ( स० क्ता० ) विशोपेज तख । सात पातालों  
मेंसे तीसरा पाताल । देवोमागधतके अनुसार यही  
दूसरा पाताल है । बहते हैं, कि यह पाताल भूतमके  
अभोधिममें अभिष्टित है । सर्वेश्वरपूजित मगधाम् मन्थानो  
पनि हाटकेश्वर नामसे अपने पार्श्वोंके साथ इस पाताल  
में रहते हैं । प्रजापति ब्रह्माकी धृष्टि विशेषरूपसे सम्बद्ध  
पार्श्व भूतनाथ मन्थानोके साथ मिथुनीभूत हो कर यहाँ  
चिराज करते हैं । इनके बीचसे हाटक नामकी नदी  
बहती है जिसे हुताशन वायुके साहाय्यसे बरमित हो  
कर पीते हैं । यह पाल करनेके समय इनके मुँह  
से जल फुलकार निकलता है, तब इसमें हाटक नामक  
सोना निकलता है । यह ईश्वरोंका बड़ा मिय है । ईश्वर  
रमणियाँ उम मानेसे अन्धकार आदि बना कर बड़े धरन  
स उम पहनती हैं । पागल उप् देणो ।

वितकिन ( सं० पु० ) वितमलोको पारण करनेवाले,  
बद्धेप ।

वितस्त ( स० लि० ) तितस-न्व । १ उपज्ञान । "यैतस  
वितस्तं भवति ।" ( निरुक्त ३।५१ ) २ विस्तार देणो ।

वितस्तवत् ( स० पु० ) वितस्ता-न्वत्, संज्ञार्य-न्वत् ( या  
३।३ ) । वीर्य बज्जिभेत् । ( कपालविद्या० २।१५ )

वितस्ता ( सं० ली० ) पञ्चाक्षर अन्तर्गत नदीविशेष । इसे  
मात्र बस श्लेष्म कहते हैं । यह नदी वैश्वर्णित पञ्चनदी  
में एक है । श्रावैर्बके १०म अरण्यमें इसका परिचय है ।

"इम मे गङ्गे यमुने सप्तसि श्रुतुद्रि स्तोम सचता परुष्यया ।  
अचिक्रुन्वा मरुद्वृधे वितस्तयार्जिकिये श्रुगुह्या सुभोमया ॥

( ऋक् १०।३५।१ )

प्राचीनके निकट यह नदी विहत् वा वेहोन नामसे प्रचलित है। ग्रीक भौगोलिकोंने Hydaspes तथा रलेमीने Bidaspes शब्दमें इस नदीका उल्लेख किया है। ग्रामनपुराणके १३वें अध्यायमें, मत्स्यपुराण ११३।२१, मार्कण्डेयपुराण ५७।१७, नृसिंहपुराण ६५।१६ तथा दिग्विजयप्रकाशमें इस पुण्यनाया सखिनीकी उत्पत्ति और व्यवहारिका भूमिका वर्णन है।

वर्तमान भौगोलिकगण काश्मीर उपत्यकाके उत्तर-पूर्व क्रमशः सीमान्तउत्तरी पर्वतसे इस नदीकी उत्पत्ति वतलाते हैं। यह नदी पीछे दक्षिण पश्चिमकी ओर आ पीरपञ्जालमें निकली हुई एक दूसरी शाखा नदीके साथ मिल गई है। इसके बाद धीरगन्धर गतिमें पार्वत्यभूमिको भेद कर तथा उपत्यकावश विभ्रित हवावली होती हुई यह नदी श्रीनगर राजधानीके समीप बहती है। हुडकी तीरभूमिमें नदीका सौन्दर्य अपूर्व है, उसे देखनेसे मनमें जानन्द उमड आता है।

इसके बाद काश्मीर राजधानीको छोड़कर यह नदी निम्न उपत्यकाकी अपेक्षाकृत उच्चभूमिसे बह गई है। बलर हृदक निकट सिन्धुनद इसके कलेवरको बढ़ाता। पीछे वे देना नामे पीरपञ्जालके वारमला गिरिमिड्डके निकट द्रुतगतिमें बह गये है। यहा नदीका व्यास प्रायः ४२० फुट है। उत्पत्तिस्थानमें ले कर यहा तक नदीका विस्तार प्रायः १३० मील होगा। उनमें प्रायः ७० मील तक नावे आनी जानी है।

सुभाफगलाद नामक स्थानमें आ कर यह नदी क्षणगङ्गाके साथ मिल गई है। इसके बाद काश्मीरराज्य तथा अङ्ग्रेजाधिकृत हजारा और रावलपिण्डी जिलेके बीचमें होनी हुई पहाडी रान्तेमें बह ग' है। इस कारण यहा नदीका देना किनारा अधिक विस्तृत न हो सका है। पर्वतक ऊपर कहीं कहीं नदीके जलप्रपातके भया नरु स्रोतके कारण यहा नदीमें नावें ले जाना बिलकुल असम्भव हो गया है। हजारा जिलेके कोहला नगरमें इस नदीके ऊपर एक पुल बना है।

रावलपिण्डीके ४० मील पूर्व दङ्गली नगरको पार कर यह नदी अपेक्षाकृत समतल भूमि पर आई है तथा भेलम् नगरके नजदीक यह समतल मैदानमें बह गई है। नदीके मूलसे यहां तक इसका विस्तार प्रायः २५० मील होगा। दङ्गलीमें यहां तक नावें ले जाने खानेमें उतनी असुविधा नहीं है। इस नदीमें कभी कभी मयानक बाढ आ कर निम्न भूमिको पटाचित कर देती है। इस कारण कभी कभी नदीगर्ममें बालूका चर पड जानेसे छोटे छोटे डोप बन जाते हैं। नदीकी गडमें दोनों किनारोंकी जमीन बहुत उर्वरा हो गई है।

इस प्रकार जमीनको उर्वरा बना कर यह क्रमशः दक्षिणकी ओर गुजरात और शाहपुरके सीमान्त होतो हुई पहले शाहपुर और पीछे कन्नड़ जिलेमें घुम गई है। यहा नदीका व्यास पहलेसे कुछ बड़ा है तथा दो किनारे पर हो 'बडर' नामकी ऊँचा जमीन है। निम्ननगरके निकट ( अक्षा० ३१' २१' ३० तथा देशा० ७०' १२' ५० ) चन्द्रभागा इसके कलेवरको बढ़ाती है। यहा तक नदी की पूर्णगति प्रायः ४५० मील है। इस चन्द्रभागा और वितस्ताका मध्यवर्ती पुर्राय भूभाग जेच देखाव तथा वितस्ता और सिन्धुका पश्चिम भूभाग सिन्धुसागर देखाव कहलाता है।

इस नदीके किनारे श्रीनगर, भेलम्, गिण्डदादन खाँ, मियाँनी, सेग और शाहपुर नगर अवस्थित है। कनिहम क मतसे जलालपुरके समीप माकिदुनवीर अलेकसन्दरने इस नदीका पार किया था। उसीके ठीक दूसरे किनारे विलियतवालाका प्रसिद्ध रणक्षेत्र है। गिण्डदादन खाँक निकट भेलम् और चन्द्रभागाके सङ्गम पर इस नदीके ऊपर एक पुल है। विस्तृत विवरण हजारा, रावलपिण्डी, भेलम्, गुजरात, शाहपुर, कन्नड़ और काश्मीर शब्दमें देखो।

राजनिघण्टुके मतसे काश्मीरदेश प्रसिद्धा विन्मता नाग्नीनदीके जलका गुण—स्वादिष्ट, विदोषण, लघु, तत्त्वज्ञानप्रद, त्रितापहारक, जाड्यनाशक और शान्ति-कारक। वितस्ता-माहात्म्यमें इस पुण्यनायानदीका विवरण दिया गया है। हिन्दुशास्त्रमें वितस्ता तीर्थ-रूपमें गिनी जानी है।

वितस्ताख्य ( सं० क्री० ) महाभारतके अनुसार तक्षक

नागरा विद्यासस्थान । “काशमीरेश्वर्येय नागत्य मयनं  
 तद्वक्तव्यम् । वितस्ताश्चमिति क्यातम्” (भारत कल्प )  
 वितस्तादि ( स० पु० ) राक्षतरिणीक अनुसार एक  
 पर्यायका नाम । ( राक्षतर ११०२ )  
 वितस्तापुरा ( सं० स्त्री० ) १ नगरमेव । २ एक मिह  
 पवित्रत, टीका और परमार्थसारमक्षेय विद्वत्तक प्रणेता ।  
 वितस्त ( सं० पु० स्त्री० ) तस्य उपसेवे वितस्त ( नी  
 त्तो ) । उच्यते ५१८२ ) । १ इतना प्रमाण जिनना हाथक  
 व गूटे और उगमोको पूरा पूरा फैलानेमे होता ह  
 काळिक्य, विरता । २ बाह्य अनुसूक परिमाण ।  
 वितान ( सं० पु० स्त्री० ) वि-तान् पम् । १ मनु, पञ्च ।  
 २ पिस्ता, फैलाव । ३ बहोव्य, वञ्च व दोमा या येमा ।  
 ४ समूह, संप, जमाव । ५ सुशुभक अनुसार एक  
 प्रकारका वचन जो मिर परक भाषात या धाव भादि  
 पर बांधा जाता है । ६ मयनर, ध्वजाग । ७ पूजा  
 मन्त्र । ८ अग्निहात भादि कर्म । ९ एक प्रकारका  
 छन्द । १० एक वृक्षका नाम । इसक प्रत्येक धरणम  
 एक संगम एक मगण और दो गुण होते हैं । ( स्त्री० )  
 ११ मन्, धोमा । १२ शून्य धोमा ।  
 वितानक ( सं० पु० स्त्री० ) वितान एक स्थायं कम् । १  
 चन्द्राक्षर, वञ्च व दोमा या येमा । २ समूह, जमावका ।  
 ३ धन, संगति । ४ धनिया ।  
 वितानमूक ( सं० स्त्री० ) उगोर, मल ।  
 वितानमूक ( सं० स्त्री० ) वितानमूक मूल यस्य, बहु  
 ग्रीही कम् । उगोर, लम ।  
 वितानम् ( सं० स्त्री० ) वितान अस्यर्थे-मनुष्य मन्वय ।  
 वितानमुक, वितानविशिष्ट । ( वृमार० ७१२२ )  
 वितामस ( सं० स्त्री० ) १ जिसमं वामागुण न हो । ( पु० )  
 २ प्रकाश, उजामा ।  
 वितानित ( सं० स्त्री० ) वि-ताव-गुण् । विस्तृति कारक,  
 फौमायेवासा ।  
 वितार ( सं० पु० ) १ वृद्धवर्द्धिताक अनुसार एक प्रकारका  
 केतु या पुष्पक टारा । २ सारानुस्य, सारारहित ।  
 वितारक ( सं० स्त्री० ) वितार नामक मूत्र ।  
 वितारिन् ( सं० स्त्री० ) १ विस्तारकादी । २ उत्तोर्य ।  
 वितिमिर ( सं० स्त्री० ) विगत तिमिर, तिमिरशून्य  
 अन्वकारशून्य ।

वितिमिरा ( सं० स्त्री० ) श्योत्स्नामयो ।  
 वितिलक ( सं० स्त्री० ) विगत तिलक यस्यमात् । तिलक  
 शून्य, तिलकहान ।  
 वितिहोतर ( हि० पु० ) मलि ।  
 वितौगात ( हि० पु० ) व्यनोपत दोसो ।  
 वितापाता ( हि० पु० ) यह जो बहुत अधिक उपद्रय करता  
 हो पाजा, शरारती ।  
 वितान ( सं० स्त्री० ) १ उत्तोर्य दोसा । ( स्त्री० ) २ नितरण  
 दोसो । ३ व्यपघान ।  
 वितार्णतर ( सं० स्त्री० ) अधिकतर दूरगम, बहुत दूर गया  
 हुआ ।  
 वितुङ्गमाग ( सं० स्त्री० ) विगततुङ्गमागो यस्य । तुङ्ग  
 भागहीन तुङ्गमागरहित । प्रहो क एक तुङ्गमाग है, प्रह  
 गण्य इमी तुङ्गमागसे प्युत होकर वितुङ्ग होते हैं ।  
 जैसे—मेघरागि रविका तुङ्गस्थान है, मेघरागि ३० अंश  
 में विभक्त है, समस्त मेघरागि रविक तुङ्गहागल जो  
 उसका अंशविशेष ही रविका तुङ्गस्थान है, इस अंशसे  
 प्युत होने पर वितुङ्ग माग अर्थात् तुङ्गहीन होत है ।  
 वितुङ्ग ( सं० स्त्री० ) नीला धोया, दूतिया ।  
 वितुङ्ग ( सं० पु० ) मूलयोर्निवेशे । ( वैश्व० मार० १०१६ )  
 वितुङ्ग ( सं० स्त्री० ) वि-तुङ्ग-त् । १ शरियारो या  
 सुसम्ना नामक साग । २ शौबान सेवार ।  
 वितुङ्गक ( सं० स्त्री० ) वितुङ्गनिव र्थायं कम् । १  
 धाम्यक, धनिया । २ तुटधक, दूतिया । ३ कीवर्ष  
 सुस्तक क्वचद माया । ( पु० ) ४ आमलकी पुस ।  
 वितुङ्गका ( सं० स्त्री० ) मूयामलका मुद् भावका ।  
 वितुङ्गभूता ( सं० स्त्री० ) भूयामलको, मुद् भावका ।  
 वितुङ्गा ( सं० स्त्री० ) मूयामलको, मुद् भावका ।  
 वितुङ्गिका ( सं० स्त्री० ) वितुङ्गा म्वायं कम्-राप्-भन  
 रत्त । मूयामलका, मुद् भावका ।  
 वितुङ्ग ( सं० पु० ) सीधोर राजपुत्रमेव ।  
 ( भारत आदिपर्व )  
 वितुष ( सं० स्त्री० ) विगततुषो यस्यमात् । तुषरहित,  
 तुषहीन ।  
 वितुष ( सं० स्त्री० ) असतुष, आ सतुष न हो ।  
 विदुष ( सं० स्त्री० ) विगत लृपं यस्यमात् । लृपहीन,  
 अर्थात् लुण या वास भादि न होता हो ।

वित्तप्रक (सं० वि०) तृप्तिहीन, जो तृप्त या सन्तुष्ट न हुआ हो।

वित्तप्रता (सं० स्त्री०) वित्ततस्य भावः तल्-टाप्। वित्तप्र या असन्तुष्ट होनेका भाव या धर्म, तृप्तिहीनता।

वित्तृप् (सं० त्रि०) विगता तृप् यस्य। विगततृष्ण, तृष्णा-ने रहित, जिसे किसी प्रकारकी तृष्णा न रह गई हो।

वित्तृष् (सं० त्रि०) विगता तृष्णा यस्य। वित्तृष् ढंगो।

वित्तृष्ण (सं० त्रि०) विगता तृष्णा यस्य। तृष्णास्ये रहित, जिसे किसी प्रकारकी तृष्णा न हो, निम्पृष्ट।

वित्तृष्णता (सं० स्त्री०) वित्तृष्णस्य भावः तल्-टाप्। वित्तृष्णका भाव या धर्म, निम्पृष्टता।

वित्तृष्णा (सं० स्त्री०) विगता तृष्णा। विगततृष्णा, तृष्णाभाव, तृष्णाका न होना।

वित्तेश्वर (सं० पु०) एक ज्योतिर्विद्का नाम।

वित्तोय (सं० त्रि०) विगत तोयं जलं यस्मान्। तोय-हीन, जलविहीन।

वित्तोला (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक नदीका नाम।

(गजव० ८५६२२)

वित्त (सं० स्त्री०) विद्-क, वित्तो भोगप्रत्यययाः। (पा ८।२।५८) इति साधुः। १ धन, सम्पत्ति।

(वि०) विद्-क (नुदविदेति। पा ८।२।५६) इति नत्वाभावः। २ विचारित, मोचा या विचारा हुआ।

३ विज्ञान, जाना या समझा हुआ। ४ लब्ध, मिला या पाया हुआ। ५ विद्यात, प्रसिद्ध, मजहूर।

वित्तक (सं० त्रि०) विद्-क, म्यार्थे कच्। १ छान, जाना या समझा हुआ। २ वित्त देखो।

विन्नचास्या (सं० स्त्री०) धनाकांक्षिणी रमणी, वह स्त्री जिसे धन पानेकी इच्छा हो।

वित्तकाप (सं० स्त्री०) रुपये पैसे आदि रखनेकी थैली (Money bag)।

वित्तगोत (सं० त्रि०) १ धनरक्षक, धनकी रखवाली करनेवाला। २ कुवेरके मंडारीकी नाम।

वित्तजानि (सं० त्रि०) लब्धभार्य, जिमने मार्यालाभ किया हो।

वित्तद (सं० त्रि०) वित्तं ददाति दा-क। धनदाता, धन देनेवाला।

वित्तदा (सं० स्त्री०) कार्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। वित्तध (सं० त्रि०) धनकर्ता, धनकारी।

(शुकलघनु० ३०।१५)

वित्तनाथ (सं० पु०) वित्तस्य धनस्य नाथः पतिः। कुबेर-का एक नाम।

वित्तनिश्चय (सं० पु०) वित्तस्य निश्चयः। धन निश्चय, धनका निर्णय।

वित्तप (सं० त्रि०) वित्तं पाति गृह्णाति पा-क। १ वित्त-पति, धनरक्षक। (पु०) २ कुबेरका एक नाम।

वित्तपति (सं० पु०) वित्तस्य धनस्य पतिः। कुबेरका एक नाम। (मनु ५।६६)

वित्तपपुरी (सं० स्त्री०) १ नगरमेड। (कथावर्तिष्ठा० ६८।५६) २ कुबेरपुरी।

वित्तपा (सं० स्त्री०) वित्तनाथपुत्री।

वित्तपाल (सं० पु०) वित्तं पालयति पाल् थच्। १ कुबेरका एक नाम। (रामायण ७।११।२५) (त्रि०) २

वित्तपालक, धनरक्षक।

वित्तपेटा (सं० स्त्री०) १ रुपये पैसे रखनेकी पेटो। २ रुपये पैसे रखनेकी थैली।

वित्तपेटी (सं० स्त्री०) वित्तपेटा देखो।

वित्तमय (सं० त्रि०) वित्तं स्वरूपे मयत्। वित्तस्वरूप, धनस्वरूप।

वित्तमयी (सं० स्त्री०) वित्तमय देखो।

वित्तमात्रा (सं० स्त्री०) वित्तमात्रा परिमाणे। धनका परिमाण।

वित्तर्द्धि (सं० स्त्री०) वित्तमेव ऋद्धिः। धनरूप ऋद्धि, धनसम्पत्ति। (मार्कण्डेयपु० ८।५।३२)

वित्तवत् (सं० त्रि०) वित्तं विद्यतेऽस्य वित्त-मतुप् मस्य च। धनविशिष्ट, दौलतमन्द।

वित्तहीन (सं० त्रि०) धनहीन, दरिद्र, गरीब।

वित्ताल्य (सं० त्रि०) वित्तं आल्यः। वित्त द्वारा आढ्य। धनाढ्य, धनवान्।

वित्तायन (सं० त्रि०) वित्तार्थी।

वित्तायनी (सं० स्त्री०) धन चाहनेवाली स्त्री।

वित्तार—मन्द्राज प्रेसिडेन्सोके तजार जिलेमे प्रवाहित एक नदी। यह कावेरीकी क्षेत्रे शाखासे निकली है।

यद् अज्ञा १० ४६ २० ३० तथा देगा ०६ ७ ५० क  
मध्य पदो है। राजार नगरसे तान कोस उत्तर-पश्चिम  
हो कर यह समुद्रम गिरो है। इनक मुहाने पर नागर  
नामक द्विषात बन्दर अवस्थित है। यह अज्ञा १०  
४६ ४५ ३० तथा देगा ०६ ५४ ४५ ५० तक विस्तृत  
है।

निति (सं० स्त्री०) विद्विज्ज्। १ पिचार। २ काम  
माति। ३ सम्भाषना। ४ ज्ञान।

नितो (सं० पु०) विद्यानामोगा। कुषेर।

नितोभर (सं० पु०) विद्यन्व ईश्वर। कुषेर, घनपति।

नित्य (सं० स्त्री०) तत्परवदा भाव वा धर्म।

नित्य (सं० स्त्री०) विशेष रूपसे रपक।

नित्य (सं० पु०) विनाया अथवा अज्ञा पश्य (गोत्रिषावा  
तर्ज्जस्वति मीयत्वाद् अत्तम्। १।२।४८)। १ निर्द्वैत,  
बेदना। २ स्वप्नभेद। (राजतर० १।२।१)

नित्यगला (विद्यवाद्या) —अज्ञा प्रोतिशेमीके मन्दूर  
जिनेक क्वासी तालुके अन्तर्गत एक गण्डमाम। यहाँ  
धेनुदेभर स्वामीका एक प्राचीन मन्दिर है। यहाँ प्रति  
वर्ष महासमागोहम देवाहोम एक मेला लगता है।  
मुम्बाहोके पत्तने यहाँ कपड़े बिननेकी बहुत कुछ उन्नति  
हुई है।

नित्य (सं० स्त्री०) वि-तस् क्। अत्यन्त भीन।

नित्य (सं० पु०) वि-तस् घञ्। मोति हर, भय।

नित्य (सं० स्त्री०) वेला होनेका भाष।

नित्य (सं० स्त्री०) तनूकर्ता, क्षयकारो।

नित्य (सं० पु०) विद्वामे विवत् तां सनोति मन्त्रामे  
अच्छ। पृथग, वेन।

नित्यपत्तन—पुनःप्रदेशके इमाहाबाद जिलागतौ एक  
प्राचीन नगर। आज कल यह पिठा वा पिणा नामसे  
विख्यात है। यहाँ और इनक पासक बोरिया गाँवमें हिन्दू  
और शीठ धर्मके विद्वान्बन्धु बहूतने मन्त्र मन्दिर  
आदि बने जाते हैं। इनमेंम गुप्त सम्राट् कुमारगुप्तको  
प्रतिष्ठित एक प्रतिमूर्ति उल्लेखनीय है।

नित्य—पुनःप्रदेशक इमाहा जिलागतौ एक नगर। यह  
अज्ञा १६ २५ २० ३० तथा देगा ०६ ३६ २५ ५०  
इमाहासे रायबरेको जामेके रास्तेमें अवस्थित है। यह

राजे लोग समग्र इराहा परगनेक अधीश्वर थे। उन रागी  
ने इस विषय नगरमें ही अथवा राजपाट स्थापन किया  
था। यहाँ एक प्राचीन निपमन्दिर है।

विधान्या—पश्चिम भारतका एक प्रसिद्ध नगर। डा०  
कीर्ति इसे इटा जिलागत विमसय वा विमसन्द् हा  
अनुमान करते हैं। दूसरे प्रसन्नस्वविद्वक मनमें यहाँ  
सिन्धुनोरवर्षी बौद्धिक नगरो है। फिःस्नामै इन नगरो  
की समुद्रिका बात विज्ञो है। दूसरे दूसरे अनुमानम  
येतहासिकोंने इन तिलकम्ब तथा घानपरिभाषक पूषन  
सुर्यंग वि-सो पण प कह कर इतके किया है। यहाँ  
बौद्धमतकी चरकतीर्षिके बहुतसे निर्वाण हैं। सम्राट्  
कुमारगुप्तकी विधिक भाष विनत स्तम्भ मा यहाँ मौजूद  
है।

विद्यु (सं० पु०) अथ उरक्ष (अथः तम्भारण विष्णु।  
उष् १।४०) अथमपचलनयोः अस्मादुरक्ष विद्भुरति  
सम्प्रसारण घातोः। १ शौर शोर। २ राक्षस। ३ क्षय,  
नाश। (त्रि०) ४ अन्त घाङ्का कम। ५ अविन, दुःखित।

विद्यु (सं० स्त्री०) मत्तु त्रिमुक्ता मारा विरिणी, यह  
ज्या जिसका स्वामीम विवोग हुआ हो।

विद्युम्नि—पश्चिमा पद्मसमें रहनेवाली एक पटाड़ी  
जाति।

विद्यु (सं० स्त्री०) विष-वत् त्रियां टाप। गोत्रिङ्गा,  
गोमी।

विद्यु (सं० पु०) वेत्ति विद्यु विवप्। १ परिदत्त, विद्वान्।  
२ सुप्रबह।

विद्यु (सं० पु०) विद्यु क्। १ परिदत्त विद्वान्। ३ तिमक  
हृद्, तिमका वेह।

विद्यु (सं० पु०) विद्युत्तनेऽनन वि-वृत्त कश्चो घञ्।  
अपदेश।

विद्यु (सं० स्त्री०) दक्षिणादान, इतिपारदित।

विद्यु (सं० स्त्री०) वि-वृह-क्। १ नागर, रसिक,  
रमय। २ विपुत्र, अतुर, आनाक। ३ अना हुआ।  
(पु०) ४ परिदत्त, पट्ट। ५ रादिव सुय, कसा नामक घाम।

विद्युपता (सं० स्त्री०) विद्युपन्व भाषा तम् टाप।  
विद्युपता भाष वा घर्म पारिद्वय विद्वता।

विद्युपमापय—भीकरगोस्वामिहृत्त सताट्ट माहव। यह

नाटक १७४६ ई०में लिखा गया । इसमें राधाकृष्णकी लीला और प्रेमभाव वर्णित है ।

विदग्धवैद्य—योगजनक नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता ।

विदग्धा ( रा० स्त्री० ) विदग्ध-टाप् । वह परकीया नायिका जो होशियारीके साथ परपुरुषकी अपनी श्रौर धसुरक्त करे । यह दो प्रकारकी मानी गई है—वाक्-विदग्धा और क्रिया विदग्धा, जो स्त्री अपनी बातचीतके काजल से पर पुरुष पर अपनी कामवासना प्रकट करती है, वह वाक्-विदग्धा और जो किसी प्रकारके क्रिया कलापमें अपना माध प्रकट करती है, वह क्रिया-विदग्धा कहलाता है ।

विदग्धाजीर्ण ( स्त्री० स्त्री० ) अजीर्णरोगमेद । पित्तसे यह रोग उत्पन्न होता है । इसमें भ्रम, नृगा, मृच्छा, पित्तके काष्ण पेटके भीतर नाना प्रकारकी वेदना, वर्म, दाह आदि लक्षण दिखाई देते हैं ।

पथ—लघुराक द्रव्य, बहुत पुराना बारीक चावल लाविका माड, मूंगका जून्, हरिण, खरहा और लावा पक्षीके मासका जून्, छोटी मछली, जालिञ्च शाक, चैत्राग्र, चेतोगाक, छोटा मूली, लहसुन, सूर्य रोहड़ा, कच्चा केला, सहिजनका फल, पटोल, बतिया वैगन, जटामांसो, बला, ककरोल, करेला, कटाई, अमाटा, गध लिया, मेघशृङ्गी, नोनो साग, सुमनो साग, आंवला, नागंगी नावू, अनार, जी, पित्तपापडा, अम्लचेतस, विजौरा नोवू, मधु, मषलन, घा, मट्टा, काँजी, कटुनील, हींग, लवण, अदरक, यमाना, मिर्च, मैथी, धनियाँ, जीरा, मथोजात दधि, पान, गरम जल, कड़वा और तोता ।

अपथ—मन्मूदाटिका वेगधारण, भोजनका समय शीत जाने पर भोजन करना, बहुत भूखलगने पर थोडा खाना, लघु पदार्थका पाक नही होने पर भी फिरसे भोजन कर लेना, गतको जागना, जोणितस्त्राव, शमी-घान्य बडी मछली, माम, पोईकी साग, अधिक जल पाना, पिष्टक भोजन, सभी प्रकारका थालू, हालकी घ्याई गायका दूध, छेना, नष्ट दूध, बहुत गाढा दूध, गुड, जक्कर, ताडकी आंठीका गूदा, र्नेह द्रव्यका अत्यन्त निषेधन, अनेक प्रकारका दूषित जलपान करना, संयोगविरुद्ध ( जैसे शीर मछली आदि), देग और कालविरुद्ध ( उष्णमें

उष्ण, शीतमें शीत ) अन्नपानादि, आश्रानकारक और गुरुवाक द्रव्य तथा विरेचक पदार्थ खाना नना है । किन्तु मृदु विरेचक अर्थात् हगतका आदि इसमें उपकारो है ।

इसकी चिन्तना अतिमान्य गवदम देखो ।

विदग्धाभट्टाष्टि ( स० स्त्री० ) चन्द्ररोगविशेष, आँवोका पत्र प्रकारका रोग । यह बहुत खनिक गटाई पानसे होता है और इसमें आँवो पीलो पड जाती है ।

विदग्ध ( स० पु० ) राजकुम्भेद । ( भारत आदिपर्व )

विदग्ध ( स० पु० ) वेत्तनि विद ( कविदग्ध्यां टित् । उष्ण, ३११६ ) इति अथ, अच्-टित् । १ यागी । २ यक्ष । ( निघण्टु ३१७ ) ३ वैदिक कालके एक राजाका नाम ।

( ऋक् ५१३३६ ) ४ रुना । ( त्रि० ) ५ वेदितव्य, जो जाननेके योग्य हो । ( ऋक् ३१३७७ )

विदग्धिन ( स० पु० ) ऋषिभेद । ( ऋक् ५१०२११ )

विदग्ध ( स० त्रि० ) यगाई, यज्ञके योग्य ।

( ऋक् १६१२० )

विदग्ध ( स० पु० ) विप्रभेद । वैदग्धियवता ।

विदग्ध ( स० त्रि० ) दूषित धनयुक्त । ( ऋक् १६१६ )

विदग्ध ( स० पु० ) ऋषिभेद । वेदवृत्त देखो ।

विदर ( स० स्त्री० ) विदोर्धतीति वि दृ अच् । १ विश्व-सारक, ककारो । ( त्रि० ) २ विदोर्ण । ( पु० ) वि-दृ, ( ऋदोर्ण । पा ३।३।५७ ) इति अप् । ३ विदारण करना, फाड़ना । ४ अतिभय, बडा डर ।

विदर (विदार)—दाक्षिणात्यके निजामाधिपति हैदराबाद राज्यका एक नगर । यह अक्षा० १७ ५३' उ० तथा देशा० ७७' ३४' पु०के मध्य हैदराबाद राजधानीसे ७५ मील उत्तरपश्चिम मजोरा नदीके किनारे अवस्थित है । बहुतों का विश्वास है, कि प्राचीन विदर्भ देशही जवध्रुति आज भी विदर जवमें प्रतिध्वनित होती है । प्रतनतत्य-विदोर्की धारणा है, कि सारा वेरास्त्राज्य एक समय विदर्भराज्य नामसे उल्लिखित होता था । किन्तु उस समयकी विदर्भ राजधानी पाँडे लौकिक विदर ( विदर्भ ) प्रयोगमें 'विदर' प्राप्त हो कर थी वा नहीं, कह नहीं सकते ।

एक समय बालुणी राजाओंने इस नगरमें राजपाठ स्थापन किया था । १६वीं सदीके मध्य भाग तक इस

राजधानीमें रह कर उन्हींमें शासनसूत्र परिष्कारित किया। इस नगरके चारों ओर बिल्दुन प्राचीर है। अभी यह सम्पूर्ण मन्नाबस्थामें पड़ा है। प्राचीरके ऊपर एक स्थानके समक्ष पर २१ फुट समी एक कमल रबी हुई है। इसके सिवा नगरमें १०० फुट ऊँचा एक मिनार (minaret) तथा दक्षिण-पश्चिम भागमें कुछ समाधि मन्दिर आदि भी दृष्टिगोचर होते हैं।

धान्य पानादि बहानेक क्रिये यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यहाँके कारोगर ताँबे, सीसे, रौत और रंगोको एक साथ मिला कर एक अच्छी धातु बनाते हैं तथा कमी कमी उन सब धातोंक भीतर बे सुनइली या लहरकी कल्प कर देते हैं। अभी इस व्यवसायकी बहुत मज नति हो गई है। बेदार देको।

विद्यरथ (सं० स्त्री०) वि दृश्युत् । १ विद्यार, पाइना । २ मध्य और अन्त शब्द पहले रहनेसे सूर्य का अन्तप्रदहनक मोक्षक दोनो नाम समके जाते हैं अर्थात् मध्यविद्यरथ और अन्तविद्यरथ कहनेमें सूर्य और अन्तप्रदहनमोक्षक एका नामोंमेंसे पै दो नाम भी पड़ते हैं। प्रदहनक मोक्षकान में पहले मध्यस्थल प्रकाशित होने पर उसे 'मध्यविद्यरथ' मोक्ष कहते हैं। यह सुबाह दृष्टिप्रद नहीं होने पर भी सुमिस्रयद् है, किन्तु प्राजिकोका मानसिक कोपकारक है। फिर मुक्तिके समय सुहीतमहदलकी अग्नित सीमा में निर्मलता और मध्यस्थलमें अन्तकारकी अपिष्टता रहने पर उसे 'मन्तविद्यरथ' मोक्ष कहते हैं। इस प्रकार मुक्ति दोनो पर मध्यक्षेगका विनाश और अन्तक्षेप शक्य का क्षय होता है। (इष्टवर्षिका ५८१, ८६, १०) ३ विद्विचि रोम ।

विद्वर्म (सं० पुं० स्त्री०) विद्विषया वर्मा कुजा यक्ष, विगता वर्मा कुजा पत् इति या । १ कुएरजल नगर, आधुनिक बड़ा भागपुरका प्राचीन नाम ।

"विगता वर्मा बतः" इसकी व्युत्पत्तिमुखक किम्बदन्ती यह है, कि कुजाक भाषातसे अपने पुत्रको मृत्यु हो जाने से एक मुनिने भविष्याप दिया जिससे इस देशमें अथ कुजा नहीं उत्पन्न होता है।

कोई क ई कहते हैं, कि विद्वर्म देशका नाम बेदार है ।

विद्य नगर बेदारके अन्तर्गत है, इस कारण समस्त देश का 'विद्वर्म' नाम पड़ा है ।

२ स्वनामक्यात वृषधिरथ । ये म्यामघराजाके पुत्र थे। इनकी माताका नाम था शोष्या। कहते हैं कि इनी राजाक नाम पर विद्वर्म देशका नाम पड़ा था। कुजा, कथ, लोमपाद् आदि इनक पुत्र थे।

(भाष्यत ६१५११)

३ मुनिधिरथ । (हरिव १६३, ८५) ४ दामासूलगत रोगविशीर्य, दांतीमें खोट लगनेके कारण मसूदा फूटना या दांतोंका हिनना ।

विद्वमजा (सं० स्त्री०) विद्वमें जायते इति विद्वर्म जन इ ताप् । १ अगस्त्य ऋषिकी पत्नीका एक नाम । पर्याय—कौशोतकी लोफामुद्रा । (विद्यापट्टेय) २ इमयम्बीको एक नाम जो विद्वर्मके राजा भीमका कन्या थी। ३ रुक्मिणीका एक नाम ।

विद्वमराज (सं० पुं०) विद्वर्माणां राजा (राजाहठकलिम्ब शब्द । पा ५१५ ६१) इति समासान्तशब्द । १ दमपत्नीके पिता राजा भीम जो विद्वर्मके राजा थे। २ रुक्मिणीके पिता भीष्मक । ३ अम्पूरामायणके प्रजेता ।

विद्वर्मसुपू (सं० स्त्री०) विद्वर्मस्य सुपू रमणी । इमपत्नी । विद्वर्माधिपति (सं० पुं०) विद्वर्माजामधिपतिः । कुश्चिन् पति रुक्मिणीके पिता भीष्मक ।

विद्वर्मि (सं० पुं०) एक प्राचीन ऋषिका नाम । विद्वर्मोकीरिचिन्व (सं० पुं०) एक वैदिक भाषार्थका नाम । (उठपयक १५१, ५१२१)

विद्वर्म्य (सं० पुं०) कणाहोम सर्व, विना फनवाना सौप । (शाङ्गकल्प ५११८)

विद्वर्मिन् (सं० स्त्री०) सर्पवादीसम्मत ।

विद्वम (सं० पुं०) विषद्वितानि दमनि पश्य । १ एक काञ्चन, काक रंगका सोना । २ स्वर्णदिका अवयवविशेष । ३ पिष्टक, पीठी । ४ द्वाडिम्बवीर्य, अनारका दामा । ५ अना । ६ य शविहल पालविशेष, बसिका बना हुआ दौरा या और कोई पात्र । (स्त्री०) ७ विद्वमित, खिळा हुआ । ८ इमदान, विना इक्षका ।

विद्वल (सं० स्त्री०) १ मलने बजने या बहाने धातुकी क्रिया । २ दुर्बल दुर्बल या इधर उधर बटना, फाड़ना । विद्वला (सं० स्त्री०) १ विद्वल, निःसोप । २ पात्रकाम्या ।



विद्वलाज (सं० वली०) १ पक्वदात्रि, पकाई हुई दाल ।  
२ वह अन्न जिसमें दो दल हों । जैसे—चना, उड़द,  
मूँग, धरहर, मसूर आदि ।

विद्वलित (सं० त्रि०) १ मर्दित, जिसका अच्छी तरह  
दलन किया गया हो । २ रौंदा हुआ, मला हुआ ।  
३ विकसित । ४ विदारित, फाड़ा हुआ ।

विद्वलीकृत (सं० त्रि०) चूर्णित, टुकड़े टुकड़े किया  
हुआ ।

विद्वश (म० त्रि०) विगता दशा यस्य ( गोत्रियोरुसखर्जनस्य  
इति गोणत्वाद् ध्ववरम् । पा १।२।४८) दर्शावर्हान ।

विदा (सं० त्रि०) विद्व ज्ञाने ( विद्विदादिभ्योऽड् । पा  
३।१।२०५ ) इत्यड् टाप् । ज्ञान, बुद्धि ।

विदा (द्वि० स्त्री०) प्रस्थान, रवाना होना । २ कहींसे  
चलनेकी आज्ञा या अनुमति ।

विदाई (द्वि० स्त्री०) १ विदा होनेकी क्रिया या भाव, खल-  
नती । २ विदा होनेकी आज्ञा या अनुमति । ३ वह  
धन आदि जो विदा होनेके समय किसीको दिया जाय ।

विदाइ—भविष्यपुराण वर्णित शाकद्वीपिप्राज्ञाणोंका वेद-  
ग्रन्थ । आजकल यह वेन्दिदाइ नामसे प्रसिद्ध है । किसी  
किमी ग्रन्थमें "विदुइ" प्रामादिक पाठ भी देखा जाता है ।  
( भविष्यपु० १४ अ० )

विदान (सं० स्त्री०) विभाग कर देना ।  
(शतपथब्रा० १।४।८।७।१)

विदाय (सं० पु०) विगतो दायः साक्षात् करणादिरूप  
मृण येन । १ विसर्जन । २ दान । ३ गमनानुमति,  
जानेकी अनुमति, विदा । ४ प्रस्थान ।

विदायिन् (सं० त्रि०) विदातु शाल यस्य वि-दा-णिनि ।  
१ दानकर्ता, दान करनेवाला । २ नियामक, जो ठीक  
तरहसे चलाता या रगना हो । ( स्त्री० ) ३ विदाई देले ।

विदाय्य (सं० त्रि०) वेत्ता, जाननेवाला ।

विदार (सं० पु०) वि दृ घञ् । १ जलोच्छ्वास । २ विदा-  
रण । ३ युद्ध, समर ।

विदारक (सं० पु०) विद्वृणाति जलयानादीति वि दृ  
णुत् । १ वह वृक्ष या पर्वत आदि जो जलके बीचमें  
है । २ नदियोंके तलमें धनाया हुआ गड्ढा जिसमें नदीके  
खून पर भी पानी बचा रहता है । ( स्त्री० ) ३ वज्रधार,  
नासादर । ( त्रि० ) ४ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारण (सं० स्त्री०) वि-दृ-णिच् भावे ल्युट् । १ बीचमें  
अलग करके धो या अधिक टुकड़े करना । २ मार  
डालना, हत्या करना । ३ कनेर । ४ खपरिया । ५ भीसा-  
वर । ( पु० ) विदार्यते शतवाऽस्मिन्निति वि-दृ-णिच्  
ल्युट् । ६ युद्ध, समर । ७ जैनाके अनुसार दूसरोंके  
पापों या दोषोंकी घोषणा करना । ( त्रि० ) विदारयतीति  
वि दृ णिच् ल्यु । ८ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारि (सं० स्त्री०) विदारिका देसो ।

विदारिका (सं० स्त्री०) वि-दृ णिच् ण्युल्-टापि अत  
श्च । १ शालपर्णी । २ गंभारी वृक्ष । ३ विद्वारी रोग ।  
४ कटवी दूबी । ( स्त्री० ) ५ वृहत्संहिताके अनुसार  
एक प्रकारका ढाकिना जो घरके बाहर अन्निकोणमें  
रहती है । ( वृहत्सं० ५।३।८३ )

विदारिगन्धा (सं० स्त्री०) क्षपविशेष, शालपर्णी । अंग्रे जी-  
में इसे Hedysarum gangeticum कहते हैं ।

विदारिन् (सं० त्रि०) वि दृ-णिनि । विदारणकर्ता,  
फाड़नेवाला ।

विदारिणी (सं० स्त्री०) विदारिन् डीप् । १ काश्मरी,  
गंभारी । २ विदारणकर्ता ।

विद्वारी (सं० स्त्री०) विदारयतीति वि दृ-णिच् अच्  
गौरादित्वात् डीप् । १ शालपर्णी । २ भूमिकुष्माण्ड,  
भुईं कुम्हडा । पर्याय—क्षीरशुक्ला, इक्षगन्धा, कोष्ठी,  
विदारिका, स्वादुगन्धा, सिता, शुक्ला, शृगालिका, वृष्य-  
कन्दा, विडाली, वृष्यवल्लिका, भूकृष्माण्डो, स्वादुलता,  
गजेष्टा, धारिवहन्मा और गन्धफला । गुण—मधुर,  
शीतल, गुरु, स्निग्ध, अन्नपित्तनाशक, कफकारक, पुष्टि,  
धल और वीर्यवर्द्धक । ( राजनि० )

३ भावप्रकाशके अनुसार अठारह प्रकारके फंठरोगों-  
मेंसे एक प्रकारका फंठरोग । इसमें पित्तके विगडनेसे  
गले और मुंह पर लाली आ जाती है, जलन होती है  
और वद्वृदार नामके टुकड़े कट कट कर गिरने लगते  
हैं । कहते हैं, कि जिस करवट रोगी अधिक सोता है,  
उसी ओर यह रोग उत्पन्न होता है । गलरोग शब्द देखो ।

४ एक प्रकारका क्षुद्ररोग । इस रोगमें कक्षमें  
थोर वक्षणसन्धिमें भूमिकुष्माण्डकी आकृति जैसी  
काला फु सिया निकलती है । उसे विद्वारी वा विदारिका

कहते हैं। यह रोग निक्षेपसे उत्पन्न होता है तथा इसमें निक्षेपके समीपस्थ विद्यार्थी होते हैं।

इसको, चिकित्सा—इस रोगमें पहले ज्ञोक द्वारा एक प्रोक्षण करना उचित है। इसके एक क्षामे पर एक प्रयोग करके प्रणैरागको तरह चिकित्सा करना चाहिये।  
(भाष्य० पृ. ३०००००)

मन्वाह है कि इसके एकके निकटमेसे सगातार ० कुंसियां निकल आती हैं।

५ कर्णरोगमेद् । (शामट ० १० ७०) १ प्रमेह रोगकी एक पीड़का या कुंसी। (सुभ्रुप नि० १ ७०) ० सुवर्षका । ८ वाराहोक्तम् । १ क्षौरक कोमी । १० बामटोक्त गणविशेष । परएबमूळ मेपशुद्धी, इवेत पुनर्नवा, देवदाह, मुगानी, मापाजी, प्लवाच, शोषक, साक्षपान पिठबन, वृहती, कण्टकारी गोशूर, अनन्त मूक क्षौरह सप्तो हर्षे विद्याप्यादिगण कहते हैं। गुण— हृष्यका हितजनक, पुष्टिकारक बातपित्तनाशक तथा शोथ, शुष्म, गाक्षयैवना, ऊर्ध्वर्षास और कामप्रगमक।  
(शामट ० १० १५)

विद्यारोक्तम् (स० पु०) विद्यारो मुर्त कुम्हडा।  
विद्यारोग्या (स० स्त्री०) विद्यार्थी भूमिकुष्माण्डलेय गन्धी यस्याः । १ शाकपर्णी । २ सुश्रुतके अनुमाग शाक पर्णी, मुर्त कुम्हडा गोक्षर, चित्तवाह, गोपवल्ली, पिठबन, जलमूषी, अनन्तमूळ, शोषतो, मुगवन, वृहती कटकारी पुनर्नवा, परएबमूळ आदि भोपयिषोका एक गण । इस गणकी सा भोपयिषां वायु तथा पित्तकी नाशक और शोथ शुष्म, ऊर्ध्वर्षास तथा खांसो आदि रोगीनिं हितकर मानो जातो है।

विद्यारोग्यिका (स० स्त्री०) विद्यारोग्या।  
विद्यारोह्य (स० पु०) कुष्माण्ड और भूमिकुष्माण्ड, कुम्हडा और मुर्त कुम्हडा। (बैचरनि०)  
विद्याह (स० पु०) ककचपाद, ककसास, गिरसिट।  
विद्यासन् (स० स्त्री०) दसपु। उपस्ये वि-दस विनि। उपसपयुक्त।  
विद्याह (स० पु०) वि दह घम। १ पित्तक प्रकोपसे होनेवाली ज्वर। २ हाथ पैरों किंसो कारणसे होनेवाली ज्वर।

विद्याहक (स० स्त्री०) विद्याह स्वाधे बम्। १ जो विद्याह उत्पन्न करता हो। २ विद्याह देतो।

विद्याहपत् (स० स्त्री०) विद्याहो विघटोऽन्य मनुष्य मरुप ब। विद्याहपुक्त, जिसमें ज्वासा वा ज्वरन हो।  
विद्याहिन (स० स्त्री०) विद्याहतीति वि दह गिति। १ बाहजलक द्रव्य, वह पदार्थ जिससे ज्वरन पैदा हो। (स्त्री०) २ बाहजलक।

विदिक्षुक् (स० पु०) इन्द्रियाङ्ग पत्तो।  
विदित (स० स्त्री०) विदु क। १ अवगत ज्ञात, ज्ञाना हुआ। २ अर्थित। ३ अपगम। विदित ज्ञानमस्या स्तीति अर्थे भादित्वाच्। (पु०) ४ कवि। ५ ज्ञाना भय।

विदिध (स० पु०) १ पवित्रत विद्वान्। २ योगी।  
विदिश (स० स्त्री०) विदिशां विगता। दो दिशाओंके बीचका कोना। शैस—जनि या ईशान आदि। पर्याय— अयदिशु, प्रदिशु कोण।

विदिशा (स० स्त्री०) १ पुष्पाणुसार पारिपाक पर्यंतपाह स निकली हुई एक मद्योका नाम। (मार्क० पु० ५७१२०) २ वर्षमान मिश्रता नगरका प्राचीन नाम। मिश्रता हलो।  
विद्योगय (स० पु०) पद्माबिद्येय, सफेद बगडा।  
(कैलि० ० ५१६/२२/१)

विद्योपयु (स० स्त्री०) १ चिन्मय, देव। २ वीतिशून्य, आमाहीन।  
विद्योपिठि (स० स्त्री०) विगता दीपितया हिरणानि यस्य। निर्ममूळ, हिरण्यहीन।

विद्योपक (स० पु०) मन्वीपक, दीपा।  
विद्योष (स० स्त्री०) वि दु-क। १ बीचसे फाटा या विहा रण किया हुआ। २ मन्द, दृष्टा हुआ। ३ हत, मार जाटा हुआ।

विद्यु (स० पु०) वेत्ति सक्कामनेति विद बाहुलकात् कु। १ हाथोंके मस्तरके बीचका भाग। २ जोड़ेके कान के बीचका भाग।

विद्युत्तम (स० पु०) विद्यां ज्ञानिनां इत्तमः। १ सर्वज्ञ, वह जो सब बातों ज्ञानता हो। २ विष्णुका एक नाम।  
विदुर (स० स्त्री०) वेदितु शीघ्रमस्य विदु कुरच् (पिदि



बिम्बाराज का मनबलमें वृष्य हो रहा है, आज मुझे मरा भी नहीं नहीं आता अतएव त्रिमसे जमा मुझे कुछ धानत्व मिसे, येसे हा विपयका कपोवकथन करो ।' इसके उत्तर में स्वर्णवर्तकबन्दा महाप्राज्ञ बिदुरने जो कर्ममूलक नीति गर्न उपदेशवाक्य कइता आरम्भ किया, इसके शैव होते न होते रात बात गई । महाप्राज्ञमें यह प्रस्तावमूलक अर्थात् 'प्रज्ञागतरत्नाध्याय' नामसे वर्णित है । बिदुरने इस अर्थात्के मूरि मूरि सारगर्न उपदेश द्वारा स्वायच्छेषु घृतराष्ट्रक मनको बहुत कुछ तन्म कर दिया था, किन्तु ये सम्पूर्ण कृतकार्य न हो सक ये । घृतराष्ट्रने उनसे कहा, 'बिदुर ! मैं तुम्हारे अशेष सद्गुणिकपूर्ण उपदेशोंको हृदयङ्गन कर इसके मर्मामसे अच्छी तरह अवगत हो गया है, परन्तु इससे होगा क्या ? पुर्णोपनका अब क्याम आता है तब दुर्दि पढता का जाता है । इससे मैं अच्छी तरह समझता हूँ, कि ईशको अतिक्रम करना किसाका सा साध्य नहा, ईश हो प्रधान है, पुण्यकार निर्त्यक है ।'

इसके बाद स्वयं भगवान् भीष्मणके पृत रूपमें इस्तिनापुर आने पर पुर्णोपनने उचित आगत कर उद्देश अपने यहां निमग्नन किया । किन्तु भगवान् सहमत न हुए और बोले, 'दूतगण कार्य समाप्त करके ही मोक्षण और पूजा करते हैं अथवा लोगों के विपन्न होने या किस्तोंके प्रीतिपूर्णाक बनेल ये दूसरैका मन मोक्षण करते हैं मेरा कार्य सिद्ध नहीं हुआ, मैं विपन्न भी नहीं और न आप मुझे प्रतिपूर्णाक देते हो हैं, अतएव इस क्षेत्रमें सर्वज्ञ सामर्थ्यों परमधार्मिक न्यायपरायण विशुद्धात्मा महाप्राज्ञ बिदुरके सिवा और किसीके बहाँ मातिधय स्वीकार करना मैं अच्छा नहीं समझता ।' एतना कह कर ये बिदुरके घर चले गये । महात्मा बिदुर योगिजननुर्मन भगवान्को अपने घरमें पा कर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने कायमनवाक्यसे सर्वोपकरण द्वारा उनकी पूजा की और अति पबित विधिप सिद्धाच तथा पानीय द्रव्य उद्देशे प्रदान दिया ।

कुच्छेन युद्धक बाद पाण्डवोंने राज्य लाभ कर उत्तम स्वयं तक उसका उपभोग किया । उनमेंसे पन्द्रह वर्ष घृतराष्ट्रके मतानुसार उनका राज्य अस्तता रहा । इस समय भी महाप्राज्ञ बिदुर घृतराष्ट्रके मन्त्री रह कर बर्होंक आदेशानुसार धर्म और व्यवहारविपयक कार्य ईकत थे । महाप्राज्ञ बिदुरका सुनीति और सद्गुण्यवहारसे बहुत कम वर्षमें सामन्तराज्याओं द्वारा चित्तने विपकार्य सुमम्पन होते थे । उनके व्यवहारतत्त्व ( मामला मुक वया )को आलोचनाके समय उनसे अनेक भावद व्यक्त वर्णनमूल होते थे तथा किनने बर्धाई व्यक्ति सो प्राण धान पाते थे । शैवावस्थामें जो थे इसी प्रकार बिदुर नीतिक साध पन्द्रह वर्ष तक घृतराष्ट्रके मन्त्री रह कर आभिर उन्हीं के साथ वनको चल दिये ।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर घृतराष्ट्रसे मिलनेकी कामवासे उनक आद्यममें गये । उनके साथ विविध कथावकथनके बाद धर्मराजने उनसे पूछा, 'आपका मेरी माता कुन्तीका और उपेष्टमाता गांधारीका महात्मा प्राज्ञतम विदुवा बिदुर भावि समो द्रष्ट प व्यक्तियोंका धर्म कर्म किस प्रकार चलता है तथा तपोऽनुष्ठानकी उद्योत्तर दृष्टि होती है वा नहीं ?' उत्तरमें भगवराज घृतराष्ट्रने कहा, 'बस ! समी अपने अपने धर्मकर्ममें

पूजन किया । अपने और कोई आच्छेन न रहनेके कारण उनका दिना हुआ कैसा ही ने बड़े भावनेसे जाने भगे । एव समय बिदुर राजधाममें थे । उनको भगवत्के आज्ञाकी ऊपर अगते ही न परका मोर बोझे ।

पृथ्वी किंवदन्ती है, कि भगवान् जब बिदुरके घर गये, तब बिदुर दक्षिणपश्चिमः अन्य किरी आचछा प्रीना संभ्रद न कर लके और धर्ममें परल्लेठ रला हुआ का नामरका कया ना उलीच उन्होंने भगवानका अर्थिप्य लकार किया । भगवान भी परमभक्त बिदुरके विप हुए उठ कण्ठको का कर वरम कण्ठक हुए । भाके मो क्या पनी, क्या दक्षिण लमी सामन्तिक व्यक्तिके सिने जाये यवे स्थाय प्रत्यक्षे भावता वा नरहृष्यटा दिक्काले हुए करन है 'महात्मा । वर दि बिदुरके कयई भर्षाई यह आर वैठ नरहृष्यतिके योग्य नहीं ।'

० भक्तमात्र इत्यर्थमें लिखा है कि बिदुरकी अनुपस्थितिमें ही भगवान् उनके घर वचन दे । उनकी अने विशेषरूपने उनका



विदुष्यम् (स० लि०) चिदान्ति अस्यामिति विदुस्  
मत्तु। विदुष्युक्, पण्डितसमन्वित।

विदुष्यती (स० स्त्री०) पण्डिता स्त्री।

विदुस् (स० लि०) विद्वान्, पण्डित।

विदू (स० पु०) विदु इत्योके मस्तकक बोधका भाग।

विदूर (स० लि०) विशिष्ट दूर यस्य। १ अतिदूरस्थित,  
जो बहुत दूर हो। (पु०) ० बहुत दूरका प्रदेश। ३ एक  
देशका नाम। ४ एक पर्यायका नाम। कहत हैं, कि  
वैदूर्यमणि इसी पध्दतमें मिलती है। ५ मर्यादितेष।

वैदूर्य देखो।

विदूर्य (स० लि०) विदुरे गच्छताति गम्यते। अति  
दूरगता, बहुत दूर जायैवासा।

विदूर्य (स० स्त्री०) विदुरे पदमें जायते जन्यते। १  
विदूरपर्यंतजात रत्न, विदूर पर्यंतसे उत्पन्न वैदूर्य मणि।

२ (लि०) अतिदूरजात, बहुत दूरमें उत्पन्न होयैवासा।

विदूर्य (स० स्त्री०) विदूरस्य भाषा एव। विदूर होने  
का भाष, बहुत अधिक दूर होना।

विदूर्य (स० पु०) १ पुराणानुसार एक राजाका नाम।  
(गङ्गपु० ८० अ०) २ कुदसेन। (भारत १।६।१।६)

३ वृषिज्य शीघ्र एक राजाका नाम। इनके पुत्र शूर थे।

विदूर्यमि (स० स्त्री०) विदूरस्य भूमिः। विदूर नामक  
देश। कहते हैं, कि वैदूर्यमणि इसी देशमें होती है।

विदूरविगत (स० पु०) अन्त्यथ।

विदूरान्द्रि (स० पु०) विदूरनामकोऽद्रिः। विदूर पर्यंत।  
(अधपर)

विदुष्य (स० लि०) विदुष्यपति भारमात्मिति विदुष्य  
विष्णुपुत्र्। १ कामुक, यह जो बहुत अधिक विषयी  
हो। पर्याय—विदुष्य च्यलीक, पटप्रक, कामकेलि, पीठ  
केमि, पोठमह, मबिल, छिपुर, चिट, चाटुदु, वास  
लिक, केविकिम, वैदासिक प्रहासी, प्रीतिद। (देव)  
२ पानिष्क, यह जो नूमरोंकी निरक्षी करता हो।  
पर्याय—काम, रजक, भनोक, कूर, मूषक, बचटक, भाग  
मल्लिनास्य, परद्वेषी। (कन्दमणि)

३ चार प्रकारके नायकोंमेंसे एक प्रकारका नायक।  
पीठमह बिद, चेट और विदुष्यक पदों चार प्रकारके  
नायक हैं। यह अपने कीतुक भीर पट्टास भाविक

कार्य कामकेलियें सहायक होता है। इसे मांडू भी  
कह सकते हैं।

साहित्यवर्षणमें लिखा है, कि नाटकादिमें जो कुसुम  
वसन्तादिक नामसे तथा वसन्त वा उस श्रुतसम्बन्धीय  
किसी भी नामसे पुकारा जाता है और जिसकी क्रिया,  
हाव भाव वेशभूषा और बातचातसे खेगोक्त मनमें ह सी  
उत्पन्न होती हैं, सो अपने कौमलसे वा भावमियोंमें भगवद्  
कराता है, सो अपनी पेट मरना वा स्वाधसिद्ध करना  
पूव जानता है, वसीका विदुष्य कहते हैं। यह विदुष्यक  
तथा बिद, चेट भादि नायक शूङ्कार रसमें सहायक तथा  
मानिना नायिकाकी मनानेमें बहुत कुशल होते ५।

प्राचीन कालमें राजाओं और बड़ भावमियोंक  
मनोबिनीयके लिये इनक उत्पन्न इस प्रकारके मसखर  
रहा करते थे जो भनोक प्रकारके कीतुक करक वेबकूफ  
बन कर अथवा बात बतान कर खेगोका हँसाया करते  
थे। प्राचीन नाटक भादिमें भी इन्हें यथेष्ट स्थान मिला  
है क्योंकि इनसे सामाजिकका मनोरञ्जन होता है।

(लि०) ४ दूष्यकारक। (भागवत १।१।१)

विदुष्य (स० स्त्री०) विदुष्यपुत्र्। किसी पर विशेष  
रूपसे दोष छगानकी क्रिया, येन छगाना।

विदुष्यता (हि० कि०) १ सताना दुष्ण देना। २ दोष  
छगाना, दोषा ठहराना। ३ दुष्णा होना, पोड़ाका अनुभव  
करना।

विदुषि (स० स्त्री०) मरुत्कान, यह स्त्री जिस निर न  
हो। (पेटेल ३० १, १२९)

विदुष्य (स० लि०) विगतौ दृशी चक्षुपी यस्य। अन्ध,  
जिसे दिखाई न पड़े।

विदेव (स० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ विदेह।  
विदेह देखा।

विदेव (स० पु०) १ राजस। (अथर्व १।३।१५) २ यज्ञ।  
(अथर्व १।६)

विदेह (स० पु०) विप्रकष्टो देशः। अपने देशको छोड़  
कर दूसरा देश, परदेश।

विदेह (स० पु०) विगतो-वेदो वेदसम्बन्धो यस्य। १ राजा  
जनक। जनक देखा। २ प्राचीन मिथिला। (वर्तमान तिर  
हुत)का एक नाम। ३ इस देशके निवासी। ४ राजा  
निदिका एक नाम। निदि देखा।

(त्रि०) ५ कायशून्य, जो शरीरसे रहित हो। (भागवत ३।१०।७।२६) ६ पाटर्कोनिक देहशून्य, जिनके माना-पितृज पाटर्कोनिक शरीर न हो। देवताओंको विदेह कहा जाता है। पानञ्जलदशीनमें लिखा है—“भवप्रत्ययो विदेह-प्रकृतिलयाना।” (पातञ्जलसू० १।६६)

जो आत्मामें भिन्न अर्थान् जो आत्मा नहीं है उसको अर्थान् भूत, इन्द्रिय और प्रकृतिकी आत्मरूपमें उपासना कर्ता है उन्हे विदेह या देवता कहते हैं। इन सर्वोंको समाधि भवप्रत्यय अर्थान् अविद्यामूलक है।

वे लोग जो सिद्धिलाभ करने हैं, उसके लक्षमें अविद्याया रहती है। उसका समूल छेद या नाश नहीं होता। इसका तात्पर्य यह कि निराय समाधि दो प्रकारकी है, ध्यादादि उपायजन्य और अज्ञानमूलक। इनमेंसे उपाय जन्य समाधि योगियोंके लिये हेतु है। विदेह अर्थान् माना-पितृज देहरहित देवताओंकी भवप्रत्यय (अज्ञानमूलक) समाधि होती है। यह विदेह देवगण केवल संस्कार विशिष्ट चित्तयुक्त (इस चित्तमें किसी प्रकारकी वृत्ति नहीं रहती, चित्तका संस्कार होनेके कारण उसकी वृत्तियाँ तिरोहित हुई हैं, अतएव वह अचक्षुष दृश्य दीजभाव होनेमें साक्ष्यन हुआ है) हो कर मानो कैवल्य पदका अनुभूत पगते करते इसी प्रकार अपने संस्कार अर्थान् धर्मके परिण मकी गौणमुक्ति अवस्थामें विनाने हैं।

चौशीस जडतत्त्वके उपासकोंको ही विदेह और प्रकृति-लय कहा है। केवल विकार अर्थान् पञ्चमहाभूत और पद्माष्टज इन्द्रिय इन सोलह पदार्थोंमेंसे किसी एक-को आत्मा समझ उसको उपासना कर जो सिद्धिलाभ करने हैं उन्हींको विदेह कहते हैं।

प्रकृति शब्दमें केवल मूल प्रकृति और प्रकृति-विकृति (महन् अहङ्कार और पञ्च तन्माद्र) समझी जायेगी। उक्त भूत, इन्द्रिय और प्रकृतिके उपासक सिद्धिलाभ करके मुक्तकी तरह अवस्थान करने हैं। भाष्यमें “प्रकृतिलीनैर्कैवल्यपदमिधामवन्ति” प्रकृतिलीन विदेहोंका जो कैवल्य कहा है, उस कैवल्य शब्दसे निर्वाणमुक्ति न समझी जायेगी, गौणमुक्ति अर्थात् सायुज्य, स्नातोक्थ और मा मीप्य समझा जायेगा। इन मुक्त विदेहोंके स्थूल शरीर नहीं है, चित्तकी वृत्ति भी नहीं है, यह मुक्तिका

माटृश्य है। संस्कार है, चित्तका अधिकार है, यह मुक्तिका यन्त्र है, इसीलिये भाष्यकारने ‘कैवल्यपदमिव’, इस शब्दका व्यवहार किया है। इस शब्दमें किसी किसी क्रममें भेद और किसी क्रममें अमेद समझा जायेगा।

भोग और अपवर्ग ये दोनों चित्तके अधिकार हैं। आत्मनस्वर साधान्कार होने लिये अपवर्ग होता है। अनपय जय तक चित्त आत्मनस्वर साधान्कार न कर सके, तब तक चाहे जिस किसी अवस्थामें क्यों न रहे, अवश्य लौट आना पड़ेगा। विदेह जो प्रकृतियोंकी मुक्तिकी स्वर्गावरोप कहा जा सकता है। क्योंकि, इसीसे प्रच्युति है। परन्तु कालका न्यूनानिरेक मात्र है। स्वर्ग-कालमें अधिककाल सायुज्यादि मुक्ति रहती है तथा आत्मज्ञान लाभ कर निर्वाणमुक्तिलाभकी भी सम्भावना है। चाहे जिनता भी क्यों न हो, उक्त सभी अज्ञान मूलक है अर्थान् अनात्मको आत्मा जानना उसके सम स्थलोंमें है। इस कारण भगवान् शङ्कराचार्यने इमें गौण-मुक्तिके प्रति जग भी विश्वास न किया।

विदेहादिका मुक्तिकाल-विषय ब्रह्माण्डपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

इन्द्रियोपासकीका मुक्तिकाल दश मन्वन्तर, सूक्ष्म भूतोपासकीका सा मन्वन्तर, अहङ्कारोपासकीका हजार मन्वन्तर, बुद्धि उपासकीका दश हजार तथा प्रकृति उपासकीका मुक्तिकाल लाख मन्वन्तर है। ७१ दिव्य-युगका एक एक मन्वन्तर होता है। निर्गुण पुरुषको पानेसे अर्थात् आत्मज्ञान लाभ करनेसे कालपरिमाण नहीं रहता, तब फिर उन्हें लौटना नहीं पड़ता।

आश्चर्यका विषय है, कि विदेहोंका चित्त इस दीर्घ-काल प्रकृतिमें सम्पूर्ण लीन रह कर भी पुनः उक्त मुक्तिके बाद डोक पूर्वरूपकी धारण करता है। लयके पहले चित्त जैसा था, लयके बाद भी डोक वैसा ही होता है।

(पातञ्जलद०)

विदेहक (सं० पु०) १ पुगणानुसार एक पर्वतका नाम। २ एक वर्षका नाम। (शुभुष्यमा० १।२६२)

विदेहकूट—जैन पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

विदेहकैवल्य (सं० ह्यो०) विदेहं कैवल्यं कर्मधा०। निर्वाण

मोक्ष । शीघ्रमुक्तके देहावन्मानके बाध जो निर्वाणमोक्ष काम होता है, उसे विदेहके बन्ध कहते हैं । उसके प्राण उत्कण्ठत नहीं होते हैं, इस जगह ज्ञान हो जाते हैं । अर्थात् उससे मोक्ष काम होता है । मोग द्वारा प्रारण्य कर्मोंका हस्त होनेसे जीवन्मुक्त बन्धके वर्षमान शरीर पतन होनेके बाद जो निर्वाणमोक्ष काम होता है, उसे अस्तप्रवृत्त ममाधि कहते हैं ।

विदेहत्व (स० श्लो०) १ विदेह होनेका भाव या धर्म । २ मृत्यु, मौत, शरीरका नाश ।

विदेहपति—१ एक पाषाण आयुर्वेदविद् । पाग्लरने इन का उल्लेख किया है । २ विदेह नामके स्थानके अधिपति, जनक ।

विदेहपुत्र (सं० श्लो०) राधा जनककी राजधानी, जनकपुत्र । विदेहा (सं० श्लो०) मिथिला नगरी और उस प्रदेशका नाम ।

विदेहित् (सं० पु०) प्रज्ञ ।

विदोप (सं० श्लो०) वेपथिविद, जिसमें किसी प्रकारका वेप न हो, वेदेव ।

विदोह (सं० पु०) विशेषरूपसे देहाह ।

विद्य (सं० श्लो०) विद्यत स्मेति व्यपत् । १ छिद्रित, बीचमेंसे छेद दिया हुआ । २ हिस, फे का हुआ । ३ सद्गुण समान, सुख्य । ४ वाच्यित, जिसमें बाधा पड़ी हो । ५ ताड़ित भादन, जिसको थोटा लगे हो । ६ मेरित, मेधा हुआ । ७ बन्ध, टेढ़ा । (पु०) ८ ससिपात । (श्लो०) ९ सपोषणविशेष ।

विद्यक (सं० पु०) मृत्तिकाभेदकारी वस्त्रविशेष प्राचीन कालका एक प्रकारका वस्त्र जिससे मिट्टी छोटी जाती थी ।

विद्यकर्ण (सं० पु०) अरुणनादि ।

विद्यत्व (सं० श्लो०) विद्यका भाव या धर्म ।

विद्यपर्णो (सं० श्लो०) गुलजमेद (Pongamia globra) ।

विद्यमण (सं० श्लो०) यह सूत्रन जा शरीरक किसी अगमें कटिको मोरके गुमने या हट कर रह जाने से होता है । विद्या (सं० श्लो०) एक प्रकारका शूद्ररोग जिससे शरीरमें बहुत छोटी छोटी कु सियाँ निकलती हैं ।

विद्यि (सं० श्लो०) व्यय कि (प्रदिश्यावधिष्यतिविद्यिष्यति इत्यन्ति पुन्यतिपुन्यतीनां विद्यि व इति वन्मन्त्ररूपम् । पा १।१।१६) आघात करना मारना ।

विद्यन् (सं० श्लो०) विद्यत इति विद्-मनि (माथे) । १ ज्ञान । २ मोक्षार्थ ज्ञान, परमार्थ-ज्ञान ।

विद्यनायम् (सं० श्लो०) ज्ञान द्वारा व्याप्त या षाटकर्म, जो सब कर्मोंसे अलगत हो ।

विद्यमान (सं० श्लो०) विद् शानच् । वस्तमान, उपस्थित, मौजूद ।

विद्यमानता (सं० श्लो०) विद्यमान होनेका भाव, उपस्थिति, मौजूदगी ।

विद्यमानत्व (सं० श्लो०) विद्यमानरूप भाव त्व । विद्यमान होनेका भाव, उपस्थिति, मौजूदगी ।

विद्या (सं० श्लो०) विद्यतेऽसौ इति चिद् संज्ञायाम् व्यपत्, लिखां षाप् । १ दुर्गा । (उत्तररत्ना०) २ गणि-कारिका गणिवारी । ३ ज्ञान अर्थात् मोक्ष विषयमें बुद्धि । "मोक्षे षोडशान्म्" (अमर)

जिसके द्वारा परमपुरुषार्थका साधन होता है उसका नाम विद्युया है । यह विद्युया ब्रह्मज्ञानरूपा है । परमात्म ब्रह्मज्ञान ही पुरुषार्थसाधन है । विद्या द्वारा इस पुण्यार्थ का साधन होता है, इसीसे इसको ब्रह्मज्ञानरूपा कहा है ।

४ विद्याहनु शास्त्र । यह भठारद प्रकारका है । छः अङ्ग (शिक्षा अक्षर, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और निदह) चार वेद (साम, अथर्व, यजु और ऋग्वेद) मीमांसा व्याप, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गायत्र्यशास्त्र और ज्यैशशास्त्र यही भठारद विद्या है ।

मनु कहते हैं, कि नाचसे भा उसमा विद्युया प्रदण को आ सकतो है ।

"अह्मनाः शुभा विद्यामारदीतारारिषि ।  
अन्वयारि परं बने श्रीरक्ष बुष्क जारिषि ॥"  
(मनु १ अ०)

पुराणमें लिखा है कि आ वास्यकाकमें विद्युयाप्ययन नहीं करते, ये इन जगत्में पशुको तपद विचरण करते हैं । जो माता पिता अपने बालकोंको विद्युयाप्ययन नहीं कराते, वे गन्धुसका हैं । इसमें बगला जिस प्रकार जीमा नहीं पाता, उसी प्रकार विद्याहीन मनुष्य इस जगत्में नहीं शोभता ।



“माना शत्रुः पिता धेरी बालो येन न पाठितः ।  
न शोभते सभामध्ये ह समध्ये वक्तो यथा ॥”

(गरुडपु० ११० अ०)

विद्या रूप और धन बढ़ाती है, विद्या द्वारा मनुष्यका प्रिय होना है, विद्या गुरुकी गुरु है, विद्या परम धनुष्य है, विद्या श्रेष्ठ देवता तथा यश और कुलकी उन्नति करनेवाली है। चोर सभी द्रव्योंको चुरा सकता है, पर विद्याको कोई भी नहीं चुरा सकता। (गरुडपु० ११० अ०)

हितोपदेशमें लिखा है, कि विद्या विनय देती है अर्थात् मनुष्य विद्यालाभ करनेसे विनोत होते हैं। विनयसे पातृत्व, पातृत्वसे धन और धनसे धर्म तथा धर्मसे सुख होता है।

‘विद्या ददाति विनयं विनयाद्वाति पातृतां ।

पातृत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥”

(हितोपदेश)

जीव जिस किसी कार्यका अनुष्ठान करता है, उसका उद्देश्य सुख है, जिसमें सुख नहा है, वैसे कार्यका फायदा भी अनुष्ठान नहीं करता। यह सुख एकमात्र विद्या द्वारा ही प्राप्त होता है। अतएव सर्वोको उचित है, कि वे बड़े यत्नपूर्वक विद्युवाभ्यास करें। विशुद्ध चित्तमें अनन्यकर्मा हो गुरुके समीप विद्युवाभ्यास करना होता है।

धमशान्त्रमें लिखा है, कि बालकको उमर जब पाच वर्षकी होवे उसी समयसे उसको विद्यारम्भ करा दे। ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख कर विद्यारम्भ करना होता है। हरिजनन भिन्न कालमें, पष्टी, प्रतिपदा, अष्टमी, रिक्ता, पूर्णिमा और अमावास्या तिथि, जनि और मङ्गलवारको छोड़ कर उत्तम दिनमें विद्यारम्भ करे। ज्योतिषमें लिखा है, कि पुष्या, अश्विनी, हस्ता, स्वाती, पुनर्वसु, ध्रुवणा, घनिष्ठा, गतमिषा, आर्द्रा, मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, भरणा, मघा, विशाखा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद, चित्रा, रेवती और मृगशिरा नक्षत्रमें, उत्तरायणमें, शुक्र, बृहस्पति और रविवारको कालशुद्धिमें लगन का केन्द्र, पञ्चम और नवम शुभग्रहयुक्त होने पर अनाध्याय भिन्न दिनमें पाच वर्षक बालकको विद्यारम्भ करना चाहिये। विद्यारम्भ बृहस्पतिवारमें श्रेष्ठ तथा

शुक्र और रविवारमें मध्यम, जनि और मङ्गलवारमें अल्पायु तथा बुध और सोमवारमें विद्युवाहीन होता है।

इस प्रकार शुभ दिन देख कर दानदान गुरुमें विद्युवा रम्भ करना होगा। विद्युवाभी यदि विद्वान् गुरुके पास जा कर विद्युवाके लिये प्रार्थना करे तो गुरुको चाहिये, कि वे उसी समय उम्को विद्युवा दान करे, नहीं करनेसे उनका कार्यनाश होता है तथा अन्तमें उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती।

भगवान् मनुने कहा है, कि उत्कृष्ट धाज जिस प्रकार खारो जमीनमें नहीं बोया जाता, उन्ना प्रकार जहाँ धर्म या अर्थलाभ नहीं है अथवा तदनुकूल सेवाशुभ्रुपादि नहीं है, वहा विद्यादान करना उचित नहीं। जीवनोपायमें चाहे कितना ही कष्ट क्यों न होता हो, पर ब्रह्मवादी अध्यापकको चाहिये, कि वे अत्रात विद्या किसीको भी दान न करे, विज्ञेयनः अपातृत्वं तो उन्हें कभी विद्याबोज वाना ही नहीं चाहिये। विद्युवा प्राणणके समीप जा कर कहती है, कि “मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी यत्नपूर्वक रक्ष करना, अश्रद्धादि दोष दूषित अपातृके हाथ कदापि मुझे अर्पण न करना। ऐसा करनेसे ही मैं अत्यन्त धर्मवान् रहूँगी। जिसको सर्वदा शुचि, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी जानोगे, विद्यारूप निधि उसीको अर्पण करना।”

विद्युवादाता गुरु अतिग्रम माननीय होते हैं जो शिष्यको एक अधरकी भी शिक्षा देते हैं पृथिवी पर ऐसा द्रव्य नहीं जिससे वह ऋण परिशोध किया जावे।

पहले शास्त्रानुसार विद्युवारम्भ करके विद्याजिज्ञा करनी चाहिये।

हिन्दूशास्त्रमें विद्युवारम्भकी व्यवस्था इस प्रकार है—

बालकके विद्यारम्भके पूर्व दिन गुरुको चाहिये, कि वे यथाविधान सायत हो कर रहे। दूसरे दिन सबेरे गुरु और शिष्य दोनों स्नान करके नव वस्त्र पहने। गुरु प्रातः कृत्यादि करनेके बाद पवित्र स्थान पर पूजेकी ओर मुह करके बैठे पीछे आचमन करके स्वास्तिसाचन करें। इसके बाद तिल, तुलसी, हरीतकी ले कर सङ्कल्प करें। सङ्कल्प हो जाने पर शालग्राम शिला वा घटस्थापनादि करके वासनशुद्धि, जलशुद्धि और सामान्यार्घ करना होगा। पीछे गणेश, शिवादिपञ्चदेवता,

वादिखादि नवग्रह और इन्द्रादि देवदिव्यप्राप्तीकी पूजा करके विष्णु का ध्यान, पीछे विशेषार्थ और मनसाईवीकी पूजा कर ध्यानकी अन्तमें तीन बार विष्णुको पूजा करनी होगी। अनन्तर विष्णुको प्रणाम करके सङ्गोका ध्यान और पूजन करे। पीछे सरस्वतीका उपास करके पूजा करनी होगी है। 'पतत्पादुर्वं श्रीं सरस्वत्यै नमः' इस प्रकार पूजा करनेके बाद—

"श्रीं भद्रकाल्यै नमो मित्रं सरस्वत्यै नमो नमः।

वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यात्मनिम्ब एव च ॥"

इस मन्त्रसे तीन बार पूजा करे। इसके बाद शकत्या मुनार उग्र, सृजविद्यया और नवग्रहकी पूजा करनी होती है। अनन्तर बालक नामन पर बैठ और चन्द्रनाडि डेप कर पुष्पाङ्घ्रि द्वारा उक्त देवताओंकी पूजा करे।

पूजाके बाद बालक पश्चिमकी ओर मुह करके बैठे। गुद पूर्वमुख बैठे और 'श्रीं तत्सन्' उच्चारण कर शिखा अर्ध बा ताखरक नाडि पर बालकका हाथ पकड़ कर डोसे अकारसे छे कर सकार पर्यन्त सभी अक्षरोंको सिखाये तथा तीन बार उन अक्षरोंको पढ़ाये। इन प्रकार सिखना पढ़ना हो जाने पर बालक गुठको प्रणाम करे।

इसके बाद गुह दक्षिणमुख करके वक्षिणा ग्रहण और वादमें अष्टिद्रावधारण तथा वैशुपसमाधान करे। विद्यारम्भके दिन बालकको तिरामिय मोहन करना चाहिये। ( इत्यन्त )

मन्वादिशास्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मणादि तीनों पण उपनयन संस्कारके बाद गुरुपूजमें जा कर जीवन एव लघुयं माग विद्याशिक्षामें विचार्ये। गुरु शिष्यका उपनयन है कर पढ़े उसको अन्तुशोषान्त शीव शिक्षा हैथे तथा माध्या अग्निपरिधर्षा और सन्ध्योपासना भी सिखाये। अध्व यनकालमें शिष्य शास्त्रानुसार भाषमन करके इन्द्रिय संयमपूर्वक उक्तानिमुक्तमें प्रज्ञाङ्गि करके पवित्रवेगमें बैठे। ( अध्वयन कालमें हस्ताङ्गिमुदसे गुठके समोप बैठनेका नाम प्रज्ञाङ्गि है। ) वैशाख्यनके आरम्भ और अवसान कालमें शिष्यकी प्रतिदिन गुठक होनी चरुणोंका बन्दना करनी चाहिये। उक्तान दक्षिणहस्त ऊपर और उक्तान सामदक्ष्ण नीचे करके दक्षिण हस्त द्वारा गुठका दक्षिणबाद तथा सामदक्ष्ण द्वारा सामपद स्पर्श करना

होगा। गुठ अवहित त्रिलसे शिष्यको पाठ है। शिष्यके अध्वयन आरम्भ करने पर गुठ उसे 'अध्वयन करो' ऐसा कह कर पढ़ाना शुरू कर दे तथा नूनरी त्रिके छिये पाठ यहाँ तक रहा, कह कर पढ़ाना समाप्त कर दे। ब्राह्मण वैशाख्यनके आरम्भ तथा समाप्तिमें प्रणवका उच्चारण करे, क्योंकि आरम्भकालमें प्रणवका उच्चारण नहीं करनेसे अध्वयन धीरे धीरे नष्ट हो जाता है। अध्व यनकी समाप्तिमें प्रणवोच्चारण नहीं करनेसे पाठ पाद नहीं रहता। पवित्र कुशक आसन पर बैठ कर तथा दोनों हाथोंसे कुश पकड़ कर तीन बार प्रणायाम करनेके बाद प्रणवोच्चारणके योग्य होता है।

श्री ब्राह्मण उपनयन है कर शिष्यको यज्ञविद्यया और उपनिषद्के साथ समस्त वैशाख्यका अध्वयन कराते है, उन्हें भाषाए और जो जो विद्याके छिये वेदका पक्षेनामात्र अध्वया वेदाङ्गका अध्वयन कराते है, उन्हें उपाध्याय कहत है। अग्रमवाता और वेदवाता दोनों ही पिता है, किन्तु अग्रमवाताकी अपेक्षा वेदवाता पिता ही भेष्ट है। क्योंकि, द्वितीका द्वितीय वा अग्रजग्रम ही सर्वज्ञ शाश्वत है। वेदपाराग आचार्य सावित्री द्वारा पचाविधि जो अग्रम प्रदान करते है, वही अग्रम सत्य है। वस अग्रमे वाद और शरामरण नहीं है। वादे छोड़ा हो या बहुत, जो वेदज्ञान है कर उपकार करने है उस उपकारके कारण शास्त्रानुसार उन्हें गुरु जानना होगा। यह गुरु सभापेक्षा माननीय है। शिष्यको अन्तःकरणसे सुधुपादि द्वारा उन्हें परितृप्त करना चाहिये। उपनोत द्विज गुठकृष्णमें रहते समय वेदवातिको योग्य तपस्या करेगे। अनोन्व नाडि नामा प्रकारकी तपस्या द्वारा तथा विधिकोचित विविध प्रकारके साधिकादि प्रतानुष्ठान द्वारा उपनिषद्के साथ समस्त वैशाख्यपत्र करना द्विजातिवोका कर्तव्य है।

शिष्य जब गुठपूजमें रह कर वैद्विद्या सीने तब उसे कुछ नियमोंका पाठन करना होगा। विद्यार्थी प्रज्ञाचारी गुरुपूजमें इन्द्रिय संयम करके आरम्भगत अन्तुप वृत्तिके छिये निम्नोक्त नियमोंका प्रतिपालन करे। १ पवि दिन आन करके गुठमाहस देव ज्ञपि और पितृतर्पण, देव पूजा तथा सार्य और प्रातानमाधि द्वारा योग्य करे।

उन्हे' मधुमांसभोजन, गन्धद्रव्यानुलेपन, मालाघाति धारण, गुड आदि रस ग्रहण तथा स्नायुस्नान करना चाहिये। जो सब वस्तु स्वाभाविक मधुर हैं, किन्तु किसी कारण से श्लेष्म हो गई हैं तथा दधि आदिका भोजन उनको निवे निविद्ध है। प्राणीहिंसा, लैल द्वारा समस्त सर्वाङ्ग अक्षयन, फललादि द्वारा चक्षुःजन, पादुमा या उत्त घारण, काम, क्रोध, लोभ तथा नृत्य, गीत और वादन, ब्रह्मादिक्रीडा, वृथा बलह, देणचार्त्तादिज्ञा अन्वेषण, मिथ्या कथन, कुत्सित अभिप्रायसे स्त्रियोंके प्रति दृष्टि और दूम्बरेका यनिष्टाचरण, विद्यार्थी ब्रह्मचारिको इन सबसे अलग रहना चाहिये।

सभी ब्रह्मचारिको सर्वत्र एक साथ सोना चाहिये। हस्त सञ्चालन द्वारा रेतःपात करना उचित नहीं और कामवशतः रेतःपात करनेमें आत्मघ्नन मिलकुल नष्ट हो जाता है। यहाँ तक, कि यदि अकामतः ब्रह्मचारिके स्वप्नादि अवस्थामें रेतःस्खलन हो जाय, तो उन्हें उम्मी समय स्नान कर सूर्यदेवको अर्चना कर लेना चाहिये तथा 'पुनर्मासेतु इन्द्रिय' अर्थात् मेरा बाँध पुनः लौट आवे, इत्यादि वेदमन्त्र तान वार जपने चाहिये। जल, पुष्प, समिध, कुण्ड आदि जो कुछ गुरुको प्रयोजन हो उन्हें ला देना जिष्णुका कर्त्तव्य है। गुरुके लिये प्रति दिन भीषण माग कर लेना भी जिष्णुका एक कर्त्तव्य कथा है।

जिष्णु इस प्रकार कठोर ब्रह्मचर्याका अवलम्बन कर गुरुसे विद्वयाध्ययन करे। यदि वेदविद् ब्राह्मण गुरु न मिलने हो, तो ब्रह्मायुक्त हो कर दूम्बरे व्यक्तिसे भी श्रेयस्करो विद्वया लाभ कर सकने है। स्त्री, रत्न, विद्वया, धर्म, शौच, दिनवचन तथा गिर्यकार्य मर्षीसे सभी लाभ घर नरते या साव्य सकने है। ब्राह्मण ब्रह्मचारी आशुद्विकालमें अन्नक्षण अर्थात् ब्राह्मण भिन्न दूम्बरे वर्षामे यदि विद्वयभ्यास करे, तो कोई श्रेय नहीं। उतने दिनों तक पादप्रक्षालन और उच्छिष्ट भोजनादि भिन्न उन्हें अनुपपन्नादि द्वारा गुरुको सुश्रुषा करनी होगी।

जो जिष्णु गुरुको क्षायमनोवाक्यसे प्रसन्न रखता है, उसके प्रति विद्वया प्रसन्न रहता है। विद्वयाके प्रसन्न होनेसे सर्व सम्पद् लाभ होती है।

सन्ध्यायके दिन विद्वयाजिज्ञा नहीं करनी चाहिये।

प्रातःकालमें मेघिका गर्जन होनेसे उस दिन भी ग्राह्यको चिन्ता न करे, करनेमें श्रायु, विद्वया, यज्ञ और बलको हानि होती है।

माघ, फाल्गुन, चैत्र और वेशाख इन चार महीनोंमें यदि मेघ-नर्जन हो, तो पाठ बन्ध कर देना होता है। प्रति पक्ष और अष्टमी तिथि, त्रयोदशी और चतुर्दशीकी रात्रि तथा अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें पाठ निःपक्ष है। ये सब तिथियाँ अतथ्याय कहलाती हैं।

जितने प्रकारके दान हैं उनमें विद्वयादान सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। कन्या और जलाशय दानमें तथा राजसूयादि यज्ञमें जो फल होता है विद्वयादान उससे भी अधिक फलप्रद है। परमात्म विद्वयादानके प्रभावसे त्रिवलोककी गति होती है।

देवीपुराणके विद्वयादान नामक महाभाग्य फलाध्यायमें विशेष विवरण आया है। विस्मय हो जानेके भयसे यहाँ कुछ नहीं लिखा गया। सभी धर्मशास्त्रोंने एक स्वरसे स्तौति करी है, कि विद्वयादान सभी दानोंमें श्रेष्ठ है।

हेमाद्रिके व्रतपण्डितों लिखा है—जित सब विद्वयाओंका विवरण ऊपर दिया गया उनमेंसे प्रत्येक विद्वयाके एक एक अधिष्ठात्री देवता है। ऋग्वेदके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा, यजुर्वेदके वासुदेव, सामवेदके विष्णु, अथर्ववेदके महादेव, जिज्ञासे प्रजापति, कल्पके ब्रह्मा, व्याकरणके सरस्वती, निरुक्तके वरुण, छन्दके विष्णु, ज्योतिषके रवि, मोर्मासाधे चन्द्र, न्यायके वायु, धर्मशास्त्रके मनु, इतिहासके प्रजापति, धनुर्वेदके इन्द्र, वायुर्वेदके धन्वन्तरि, कलाविद्वयाके महोदेवी, नृत्यशास्त्रके महादेव, पञ्चगव्यके मद्रूपेण, पाशुपतक रुद्र, पातञ्जलके अनन्त, मारुतके कपिल, अथशास्त्रके धनाध्यक्ष और कलाशास्त्रके कामदेव हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंके अधिष्ठात्री देवता हैं।

श्रुतिमें विद्वयाके जो भेद बतलाये हैं, पराविद्या और अपराविद्वया। "यथा ब्रह्मावगमः स परा, यथाक्षरमधिगम्यते मा परा।" (श्रुति) जिम् विद्वयासे ब्रह्मज्ञान होता है, उसका नाम पराविद्वया है। ब्रह्मविद्वया ही पराविद्वया है। क्योंकि, ब्रह्मविद्वया वा ब्रह्मज्ञान होनेसे संसारनिवृत्ति होती है वा

अथर्वी अर्थात् मोक्षनाम होता है और सभी ज्ञेय वृत्त ज्ञेय हैं। अथर्व अथर्विद्वान् पराविद्वान् है। अथर्विद्वान् नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का शब्दराशि-प्रतिपादिन अथर्वविषयक विद्यापन हो पराविद्या है। यह पराविद्या अथर्वेदादि नामसे प्रसिद्ध शब्दराशि वा तत्प्रतिपाद्य विषयक ज्ञानसे भेद है।

अथर्वेदादि शब्दराशि वा तत्प्रतिपाद्य विषय अर्थात् कर्मका ज्ञान को विद्वान् तो है, किन्तु वह अपरा विद्वान् है। अथर्वविद्वान् कर्मविद्यामे अन्वेषण है। कर्मविद्वान् स्वयं स्वयन्त-कर्ममें अर्थात् उस समय फल नहीं देतो। कर्म का अनुष्ठान करनेसे इसका फल किसी दूसरे समय होता है। कर्मफल विनश्वर है; किन्तु अथर्वविद्वान् स्वतन्त्रमात्रमें उसी समय फलप्राप्तिरूपिण भा फल देती है, फिर भी यह फल विनाशो नहीं है। इस कारण अथर्वविद्वान् और कर्मविद्वान् अथर्वविद्वान् भेद है।

“तत्रापरा अथर्वेदा यदुभयैरे सामयेदोऽथर्वयेदुः शिक्षा कन्यो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो उयोतिरिति ।”

( मन्वोपनि० )

इसका तात्पर्य यह है, कि अथर्वेद, सामयेद, यदुभयैरे, अथर्वयेद, शिक्षा, कन्यो व्याकरण, निरुक्त छन्दो, उयोतिरिति इन सर्वोंका विज्ञान तथा तत्प्रतिपाद्य कर्मविज्ञान अपरा विद्वान् है।

५ वैश्वोक्तम् ।

विद्याकर धानपेयो—आचार्यपद्धतिके रक्षयिता। एतन्मन्वन्ते अर्थात् जन्तितत्पर्येण इतका धयन इच्छन् क्रिया है।

विद्याकर मित्र मैत्रिक—राससकायत्र टाकादार ।

विद्यागण्य ( सं० पु० ) बौद्धग्रन्थायकीविद्यो ।

विद्यागम ( सं० पु० ) विद्वानाका भागमः । विद्वानाका ।

विद्यागुरु ( सं० पु० ) वह गुरु जिससे विद्वान् मिलो हो पदानवाप्ता गुरु, शिक्षक ।

विद्यागृह ( सं० पु० ) वह स्थान अर्थात् विद्याशिक्षा वा आठो है, विद्यालय, पाठशाला ।

विद्याचक्रवर्ती—सम्प्रदायप्रकाशिको नामकी काव्यप्रकाश टीकाके रचयिता ।

विद्याचक्र ( सं० पु० ) विद्यागुरु ।

विद्यासुन्दर ( सं० पु० ) विद्वानाका विद्या विद्वान् (वन निरुक्तं सुन्दरती । का १।४।२६ ) इति स्वतन्त्र सुन्दरुप च । विद्वान्

द्वारा अर्थात्, वह जो विद्वान् द्वारा मगहूर हो, विद्वान् ।

विद्यातीर्थ ( सं० श्लो० ) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम । ( पु० ) २ तीर्थतीयकसारके रचयिता । ३ गङ्गाराचार्य सध्यायक शैली गुरु ।

विद्यातीर्थ शिष्य—श्रीयगुक्तिविशेषक रचयिता । ये ही सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य थे ।

विद्यालभ ( सं० श्लो० ) विद्वानाका साया लभ । विद्वानाका माभ वा धर्म ।

विद्यालक्ष—एक कवि । ये काव्यस्यजातीय तथा विश्वपुराण अथर्वित्यकी संगामी मीमांस्य थे ।

विद्यालक्ष ( सं० पु० ) मूर्त्तार्थक, मोक्षप्रदका पेड़ ।

विद्यादाता ( सं० श्लो० ) विद्यादात देवो ।

विद्यादातृ ( सं० श्लो० ) विद्वान् वदतीति वा लृप् । १ विद्वान् शिक्षा देनेवाला । २ पाँच विनाके अन्तर्गत एक पिता । अथर्वदाता, मयदाता पत्नीक पिता, विद्वान्दाता और अथर्वदाता ये पाँच पितृगण्य हैं ।

विद्यादान ( सं० श्लो० ) विद्वानाका दानम् । १ विद्वान् देना, शिक्षा देना । २ पुस्तक देना । विद्या दह देवो ।

विद्यादायाद ( सं० पु० ) विद्वानाका उत्तराधिकारी, शिष्य परम्परा ।

विद्यादास—अथर्ववासी एक वैष्णवकवि । १५१३ ई०में इनका ग्रन्थ हुआ था ।

विद्यादेवो ( सं० श्लो० ) विद्वान् अविद्यातो देवो । १ सरकतो । २ जैनियोंकी सोलह जिनदेवियोंमेंसे एक देवाका नाम ।

विद्यापन ( सं० श्लो० ) विद्वानाका अविद्यातो घन । विद्वान् ज्ञान उपार्जित घन । यह घन अविनाश्य है, जोर मो इसे बर्त नहीं सकता । इसको लोपार्जित घन कहते हैं ।

विद्यापण्य ( छात्रवृत्ति ) घन, मित्रपण्य ( विद्याहक समय प्रकाशुर सादिन प्राप्त ) घन तथा नास्तियन्पण्य ( गौराहित्य किशालप्य ) घन वायादा इ अर्थात् हिस्सेदार द्वारा चिमक नहीं होगा ।

पण रत्न कर जो घन प्राप्त किया जाता है अर्थात् किसी एक विषयकी मोर्मासा करीक छिपे विद्वान् अर्थक पाम अर्थात् हो बनसे कहा जाय “आप इस विषयको स्थिर कर वृत्तिये, मैं यह पण रत्नता है,

मीमांसा होने पर वह आपका ही होगा" इस प्रकार जो धन लाभ होता है वह धन विभागयोग नहीं है। शिष्य-से अध्यापनालये धन, पौरोहित्य कार्य करके दक्षिणादि द्वारा प्राप्त धन, सन्निध प्रश्नका उत्तर दे कर पाया हुआ धन, भ्रजानजंमन अर्थान् जान्नादिका धनार्थ नत्त वनला कर प्रतिग्रहलये धन, शिल्पकारादि द्वारा प्राप्त धन, इन सब धनोंको विद्वयाधन कहते हैं। या विद्वयाधन विभाज्य नहीं होता। दायादोंको इस धनमें हिस्सा नहीं मिल सकता। अपनी विद्वया बुद्धि प्रभाव से जो धन उपार्जन किया जाता है, वही विद्वयाधन है। वह धन विद्वान् व्यक्तिका निजस्य होगा।

विद्याधर ( सं० पु० ) १ एक प्रकारकी देवयोनि। इसका अन्तर्गत खेचर, गन्धर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं। २ मोल्ह प्रकारके रतिवस्त्रोंमेंसे एक प्रकारका रतिवस्त्र। इसका लक्षण—

"नार्वा ऊरुयुग धृत्वा कराम्बां ताडयेत् पुनः।

काम्येन्निर्मरं कामी वन्वो विद्याधरो मनः॥"

( रतिमञ्जरी )

३ एक प्रकारका अस्त्र। ४ विद्वान्, पण्डित।

विद्याधर—कई प्राचीन कवि। १ दायनिर्णय और हेमाद्रिप्रयोगके प्रणेता। २ श्रौताधानपद्धतिके रचयिता। ३ एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्रवेत्ता। दानमयूखमें इनका उल्लेख है। ४ इसका नाम चरितवर्द्धन। ये साधारणतः साहित्यविद्याधर नामसे ही परिचित थे। इनके पिताका नाम रामचन्द्र विपश्च और माताका नाम सीता था। चालुक्यराज विमलदेवके समय इन्होंने शिशुहितैषिणी नामकी कुमारम्बवटीका, साहित्यविद्याधरों नामकी नैराधायटीका, शत्रुवगण्डवायटीका, शिशुपालवधटाका तथा सायु अङ्गदमल्लके अनुरोधसे रघुवजटीका आदि ग्रन्थ लिखे। ५ एक कवि, लुल्लके पुत्र। ६ एक कवि, शुक्रदसुत्रधर्माके पुत्र।

विद्याधर—चन्द्रेलवजीय एक राजा। इनके पिताका नाम गण्ड और माताका नाम भुवनेश्वरी था।

विद्याधर—एक बौद्धधर्मानुरागी। श्रावस्तीकी शिलालिपि-से जाना जाता है, कि ये अजातशत्रु नगरमें बौद्धधर्मियोंके रहनेके लिये एक मठ बना गये हैं। इनके पिता जनक

नाथियुग ( गम्भीज ) राजगोपालके मन्त्री थे। विद्याधर-ने भी पीछे गोपालके वंशधर मठनका मन्त्रित्व किया था।

विद्याधरवाचार्थ—प्रसिद्ध तादिक आचार्य। तन्त्रसार-ने इनका उल्लेख है।

विद्याधरकवि—एक ग्रन्थकार। इन्होंने केलिहृदयकाव्य, गनिहृदय और एकादली नामक थलद्वाराग्रन्थ लिखे हैं। मल्लिनाथने विराताउज्जुनीयमे शैलीक ग्रन्थका उल्लेख किया है।

विद्याधरद्व ( सं० कृ० ) विद्याधरग्रन्थ भागः द्व। विद्याधरका भाग या धर्म।

विद्याधरपिटक ( सं० कृ० ) बौद्धपिटकभेद।

विद्याधरभञ्ज—उहीनाके भद्रवर्णय एक राजा, शिला-भञ्जदेवके पुत्र।

विद्याधरयन्त्र ( सं० कृ० ) विद्याधरनिधं यन्त्रं। औषध पाकार्ये वंशक यन्त्रभेद। इस यन्त्रका प्रस्तुत प्रणाली भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है—एक थालीमें पारा रख कर उस पर दूसरी थालीको ऊर्ध्वमुखी रख मिट्टी-से बालका जोड़ बंद कर दे। ऊपरकी थालीमें पानी भर कर दोनों मिली हुई थालियोंको पाँच पहर तक आग पर रख उतार ले। इसका बाट ठंडे होने पर उस यन्त्रसे रस निकाल ले। इस तरह जो यन्त्र तय्यार होता है, उसे विद्वयाधर यन्त्र कहते हैं।

विद्याधररस ( सं० पु० ) ज्वराधिकारोक्त औषधविशेष। पारा, गन्धक, तावा, सोंठ, पीपल, मिर्च, निसेाथ, दन्ती-बीज, घतूरेका बीज, अरुवनका मूल और काठघिय, समान समान भाग ले कर चूर्ण करे। कुल मिला कर जितना है उतना जयपालका चूर्ण उसमें मिलावे। पीछे उसे थूहरके दूध और दन्तीके काढ़ेमें यथाक्रम अच्छी तरह भाषना दे कर २ रत्तीकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे दस्त खुलासा उतरता है तथा सामज्वर, मध्यज्वर और गुल्मरोग आदि जाते रहते हैं।

दूसरा तरीका—गन्धक, हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, ताम्र, मैसिल और पारद समान भाग ले कर एक साथ मिलावे। पीछे पीपलके काढ़े और थूहरके दूध से यथाक्रम एक-एक दिन भाषना दे कर २ रत्तीकी गोली

बनाये। अनुपान मधु और गायका घृष है। इसके सेबमसे यह ल्प्लाहादि रोग नष्ट होते हैं।

विद्याधारा (स० स्त्री०) शूलरोगको एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—विडङ्ग मोषा, आँबना, हरे, बहेड़ा गुनझ, वर्णांमूक, गिलोय, जितामूक सोंठ, पोपल और मिर्च, प्रत्येक २ तोला, मादित लोहा ३२ तोला, अबरकको मस ८ तोला, इसपदाके रसमें जोषित हि गुणोत्प पात्र १३ तोला, माषित मन्धक २ तोला। पहले पात्र और पन्धकको ककरो बना कर इसमें लोहा और अबरक मिमाये। पीछे और दूसरे दुमरे म्थ मिला कर या भीर मधुके साथ ठले म्थी तरह घोट एक स्निग्ध माषकमें रके। पहले २ या ३ माशा गायक घृष या छेई पानोक साथ सेबन किया जाता है। पीछे मन्धकानुसार उसकी मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है। यह नाना प्रकारक शूल और अर्जपित्तादि रोगलाशक तथा परिणामशुध की यह एक उत्कृष्ट औषध है।

विद्याधरो (स० स्त्री०) विदुषाधर नामक देवताकी स्त्री।

विद्याधरोभूत (स० स्त्री०) अविदुषाधरो विदुषाधरोभूता। जो विदुषाधर हुआ हो। (कण्ठ० २५११६२)

विद्याधरेन्द्र (स० पु०) १ राजसेन, विदुषाधरक राजा। (राजतर० १११६८) २ कपीन्द्र, आम्बुबान्।

(महाभारत)

विद्याधरेश्वर (स० पु०) पुराणानुसार एक शिवकिङ्कका नाम। (कूर्मपुराण)

विद्याधाम मुनिस्थि—एक कवि। इन्होंने वर्णनत्रयदेश साहस्यपुलि नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

विद्याधार (स० पु०) पण्डित, विद्वान्। (महाभारत ४११२)

विद्याधारिन् (स० पु०) एक वृक्षका नाम। इसके प्रत्येक अणुमें चार मण्ड होते हैं।

विद्याधिदेवता (स० स्त्री०) विदुषाया अधिदेवता। विदुषाका अधिपति देवी सरस्वती।

विद्याधिय (स० पु०) १ विदुषा सिखानेवाला, गुरु। २ विद्वान्, पण्डित।

विद्याधियति—१ कवि रत्नाकरको उपाधि। धीमेन्द्रक

सुदुहितकर्ममें इनका परिचय है। २ एक दुमरे कवि।

विद्याधिराम (स० पु०) यह जो बहुत बड़ा पण्डित हो।

विद्याधिरात्र—एक अद्वितीय पण्डित थे शिवगुरुके पिता तथा उरुराधायके पितामह थे

विद्याधिरात्रतीर्थ—भाष्यमताकसम्बो एक संस्थाको। ये आनन्दीतीर्थ परबर्षों ७वें गुरु थे। इनका पूज नाम धा कृष्णमह। इनकी सिष्यो एक मगधराजाको योकी मिलती है। १३३२ ई०में इनको मृत्यु हुई। स्मृत्यपसागरमें इसका उल्लेख है।

विद्याधोशतीर्थ—बेङ्गालतीर्थके शिष्य। इनका पूर्णनाम मृत्सिद्धार्थ था। १५७२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

विद्याधोशयङ्क (स० पु०) पण्डित, विद्वान्।

विद्याधोश्यामी—एक पण्डित। स्मृत्यपसागरमें इनका उल्लेख है।

विद्याध्र (स० पु०) विदुषाधर नामको देवयोगि।

विद्याधनगर—दाक्षिणात्यम तुङ्गमद्रानदीके दक्षिने किनारे पर सिपठ एक प्राचीन प्रधान नगर। दाक्षिणात्यके प्राचीन इतिहासमें विदुषाधनगर बड़ा विख्यात और समृद्धिशाकी स्थान था।

पेरिहासिकी और पयडकेने इसका मिल्न मिल्न नाम रखा है। किन्तो समय विदुषाधनगर कहनेसे एक नामानुसार दाक्षिणात्यका एक सुविशाख साम्राज्य समझा जाता था।

इस विदुषाधनगरका प्राचीन नाम विजयनगर था। ११५० ई०में तुङ्गमद्राके दक्षिने किनारे राजा विजयवर्मने अपने नाम पर यह नगरो बसाई।

विजयनगरके मिल्न मिल्न नामोंको छे कर बहुत-सी कहानियां प्रकथित हैं। इसका दूसरा नाम "विदुषाधन या विदुषाधनु" भी है। जुनिज (Junia)का कहना है, कि राजा देवराय एक दिन तुङ्गमद्रा नदीके अरण्यमय प्रदेशमें शिकार खेलने गये। इस समय जहाँ प्राचीन विजयनगर का ऊँहडर पड़ा हुआ है, उस समय वहाँ घोर अँगल था।

वन्होंने वहाँ भा कर एक विश्वत घटना देकी। देवराय शिकारमें आ सब कुत्ते छे गये थे, उनक छोटो छोटो लरवाश द्वारा मारे जाने पर वे बड़े विस्मित हुए। यह दृश्य देख कर जब वे लौट रहे थे तब उन्होंने तुङ्गमद्राके किनारे एक लपकीकी देखा। उनका देक राजांने उनसे यह अज्ञ व और मलौकिक विवरण कह सुनाया। इनका

नाम माधवाचार्य था। माधवाचार्यने कहा—'इस अरण्य में ऐसा स्थान कहा है, क्या हमें दिखाने सकते हो?' राजा देवराय माधवाचार्यको अपने साथ ले उस स्थान पर पहुँचे। आचार्यने कहा 'राजा यह स्थान घडा रमणीय है। तुम यहाँ अपना राजप्रासाद और दुर्ग बनाओ। अगर तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारे वल्लभार्थके प्रभाव और चमकसे तुम्हारी जय जरूर हांगी।' देवरायने इनकी स्मृतिके लिये इस स्थानका नाम 'विद्युयाजन' या 'विद्युया जनु' रखा।

फेरिस्ताके अभिमतसे इस नगरका नाम 'विद्यानगर' है। फेरिस्ताका कहना है, कि १३४८ ई०में वरह्मणके निकटवर्ती स्थानवासी गादरदेवके पुत्र कृष्णनायक कार्णाटिकराज वेलनदेवके पास चूपकेने गये और उनसे कहा 'हमने सुना है, कि दक्षिणालयमें मुसलमानोंने धीरे धीरे अपना प्रभाव फैला लिया है, वहुनेरे मुसलमान यहा आ कर बस रहे हैं। हिन्दू साम्राज्यके नहम नहम करना ही उनका उद्देश्य है, इसलिये जल्द उन्हें विताडित कर देना नितान्त आवश्यक है।' वेलनदेवने यह सुनते हो देशके प्रधान प्रधान मनुष्योंके बुलाया तथा पहाडी प्रदेशमें निरायत्स्थान पर राजधानी स्थापित करनेका प्रस्ताव किया। कृष्णनायकने कहा 'यदि यह परामर्श स्थिर हो, कि हिन्दूमात्र ही मुसलमानोंके विरुद्ध लड़ें होंगे तब मैं सेनानायकका भार ग्रहण करने का प्रस्तुत हूँ।' प्रस्ताव कायम रह गया। वेलनदेवने अपने राज्यके सामान्य प्रदेशमें अपने पुत्र 'विजा' के नाम पर 'विजनगर' स्थापित किया। किसी किसी का कहना है, कि फेरिस्ताकी यह उक्ति अर्थोक्तिक और अलीक है। विजयनगरके स्थापनके विषयमें फेरिस्तामें जो लिखा है, वह तारीख और विवरण रायवंशावली तथा विद्युयारण्यके शासनमें वर्णित विवरणके साथ मेल नहीं खाता। पुर्तगाली पर्याटक विजयनगरको विजन्गा (Bisnaga) कहते थे। इटलीके पर्याटकोंने भी यह नगर देखा था। उन्होंने इसका नाम विजेनगेलिया (Bezengalia) रखा था। कनाडी भाषाके प्राचीन ताम्रशासनमें यह स्थान पहले आनगुंडी कहलाना था। संस्कृतमें यह इम्तिनावती नामसे प्रसिद्ध था। विजेन-

नगर और विद्युयानगर यह विजयनगरका ही दूसरा नाम है। १३३६ ई०में भुविष्यत महाप्रभावशाली सन्वामी माधवाचार्य विद्युयारण्यने प्राचीन विजयनगरके ध्वंसावशेष पर पुनः नगर प्रतिष्ठित किया। माधवाचार्य विद्युयारण्य संक्षेपतः 'विद्युयारण्य' नामसे परिचित थे। उन्हींके नामानुसार प्राचीन विजयनगर 'विद्यानगर' नामसे अभिहित हुआ।

विद्यानगरका वायुनिक परिचय।

आज कल यह विजयनगर नदी है, न यह जगद्विख्यात विद्युयानगर ही है। किन्तु उस प्राचीन महासमृद्धिशाली नगरका चिह्न आज भी विलुप्त नहीं हुआ है। इस विजयनगर वा विद्युयानगरका इतिहास लिखनेके पहले हमके वर्त्तमान नाम और अवस्थाका थोड़ा परिचय देना है। मद्राजके चेन्नै जिलेमें अभी हाम्पी नामक जो मण्डलपुरी एक नगर देखनेमें आता है, वह विद्युयानगरका स्मृतिचिह्नरूप आज भी विद्यमान है। हाम्पी तुङ्गभद्रा नदीके तट पर चेन्नैसे ३६ मील दूर उत्तर-पश्चिममें पडता है। इस ध्वंसावशेष मण्डलपुरीपरिमाण ६ वर्गमील है। आज भी यहा एक सालाना मेला लगता है। अभी हमपेट नगरमें एक रेलवे स्टेशन हो गया है। इस स्टेशनसे हाम्पी ६ मील दूर है। कमलपुर नामक एक सुप्रसिद्ध स्थान इस हाम्पी नगरके अन्तर्गत है। तुङ्गभद्राके दहिने किनारेसे कमलपुर तीन मील दूर पर अवस्थित है। कमलपुरमें लोह और चीनीका कारखाना है। यहा प्राचीन वहुनसे देवमन्दिरोंका भग्नावशेष आज भी देख पडता है। नरपति राजाओंके समय हाम्पी नगरी बडा समृद्धिशाली थी। नरपति राजाओंने हाम्पीमें वहुतसे सुन्दर सुन्दर देवमन्दिर बनवाये थे। भ्रमणकारिगण उन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष अभी भी देखने आते हैं। उनमेंने विरूपाक्ष, रामस्वामी, चिठीवा और नरसिंहस्वामीके मन्दिर सबसे श्रेष्ठ हैं। इनके अलावा अनेक मन्दिर और मण्डप टूट फूट गये हैं। विरूपाक्ष मन्दिरमें पञ्चावतीश्वर महादेव विराजमान हैं। कोई कोई कहते हैं, कि यह मन्दिर माधवाचार्य विद्युयारण्य स्वामीके समयका बना हुआ है। उनका उपासनास्थान और समाधि आज भी मौजूद है। यहाँ उनके

विश्व भोग शङ्कराचार्यो नामसे पुकारे जाते हैं। ये इस विष्णुवास्तु-मन्दिरके एक हिस्सेमें रहते हैं। गोपुर, शिबो मय और सामनेका मण्डप बहुत बड़ा और प्रकाशपूर्ण पत्थरका बना हुआ है। इसके सामनेकी विष्णुकुण्ड पुष्प तिली चारों ओर घनाइत पत्थरसे बनी हुई है। यहाँ धार्मिक त्योहारस्य होता है।

रामस्वामीका मन्दिर तुङ्गमद्राक तट पर अवस्थित है। इसके दूसरे किनारे श्वरपुत्र्य पर्वत है। रामस्वामीक मन्दिरसे आब मीस दूर तुङ्गमद्राके बाहिरी किनारे सुप्रसिद्ध विठोबा-मन्दिर विरासमान है। इसकी गठन और कार्य बहुत सुन्दर है। ठाण्णिकोटा युद्धके बाद पयल सेनाओंने विजयनगर ध्वंस कर यह इलाक्य लूट लिया था। उन्होंने धनके लोभसे मूलस्थानसे भ्रामूर्ति दूरमें फेंक कर मन्दिरकी मेझ तक तहस नहस कर डाली थी। आज कल बिदुलदेवकी भ्रामूर्ति शीब नहों पड़ती। मुसलमानोंके जुबलस भ्रामूर्ति अतहित हो गई है। प्राचीनकालकी गौरवकीर्तिक शेष सिद्धस्वरूप दुर्गाका मन्नाबरोय आज भी मीसुत है। दुर्गाके सम्बर राजमवनका मन्नाबरोय, मन्न देवालय, विचारालय इतिहासका और उद्गुणाकाके सिधाय और कुञ्ज भी बिल्कानहों पड़ता। वह विज्ञाक समुद्रिहासिनी नगरी अमी महाशमजानमें परिगणित हो गई है।

विजयनगरका पूर्ण इतिहास।

पूर्व हो कल भाये हैं, कि १५५० ई०में कृपति विजय स्वयंने विजयनगर बनाया। किन्तु १५५० ई०के पहले ही इन प्रदेशकी समृद्धिशासिका परिचय मिलता है। शीं स्वकीक प्रारम्भमें सखिमान नामक एक मुसलमान बनिधेने सबसे पहले यहाँका प्रशासक प्रकाशित किया। ये बसोरा नामक स्थानमें रहत थ। सखिमानने वल इरा राजाका नाम वन्देय किया है।

सखिमान और भी कहा है, कि चाफेक राजाका राज्य बतना बड़ा नदी था। वहाँकी त्रिपोंका शरीर जेसा सुन्दर था वैसे भारतमें भी कहो मा नहो। इन चाफेक राज्यके अलावा रहमी नामका और भी एक राज्य है। वहका राजाको काफी सना थी। ये पचास हजार हाथी के कर सङ्ग्राममें जात थे। इस देशमें सुनी

कपड़ा बड़ा सुन्दर और महीन तीपार होता था। अरबों प्रथके अनुबादक मुसो रैनो इन रहमी साम्राज्यको वाक्षिणात्यका सुप्रसिद्ध विजयनगर या विजयपुर बताने गये हैं।

अब विजयनगरके संस्थापक विजयस्वयंजकी पशा बलीक सम्बन्धमें थोड़ी आलोचना की जाती है। वाक्षिणात्यमें तुङ्गमद्रा नदीके उबरो तट पर आज कल जो आनगु जो राज्य विद्यमान है यही प्राचीन क्रिश्चिष्वा कहलाता है। शिमानिधि पद्मेसे माद्रुम होता है, कि अद्रप श्रीय मन्महाराज १०१४ ई०स से कर १०६६ ई० तक आनगु जोक राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित थे। ये अपने जन्मभूमि वाक्षिष्वासे वाक्षिणात्यमें प्रमथ करनके लिये भाये और विचोताक नियतिक्रमसे क्रिश्चिष्वामें अपने पराक्रमसे आनगुएकी राज्य शक्ति एक अमिनय मिलि कायम की। उनके तिमोभावके बाद १०६६ ई०में आनुक्य महाराज राजगद्दी पर बैठे और १११० ई० तक उन्होंने शासनकार्य चलाया। आनुक्य महाराजके तीन पुत्र हुए—विष्णुवराज विजयस्वयंज और विष्णुवर्धन। विष्णुवराजने कन्यापपुर जा कर एक स्वतन्त्र राज्य कायम किया। सबसे छोटे विष्णु बन्धुकी कोरे बात इतिहासमें नहीं मिलती। मन्धले विजयस्वयंज सबमुच विम्बधिभूतकीलि स्वनामपन्थ महापुरुष थे। इन्होंने ही पुष्पतोया तुङ्गमद्राके इधेने किनारे अपने नाम पर सम्मथतः ११५० ई०में विजयनगर नामक जगज्जिबयात नगर संस्थापन किया। ये १११० ई०में आनगुएकी पैतृक राजसिंहासन पर बैठे थे। विजयनगर बसामेके बाद ५ वर्ष तक ये ज्योयित रहे। इनके परलोक सिधारे पर ११५५ ई०में इनके पुत्र अन्नु वेम विजयनगरक सिंहासन पर बैठे। ११७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इसके बाद इनके पुत्र नरसिंह देव रायने उन्नी वर्ष सिंहासन पर बैठ कर ३७ वर्ष तक राज्य मोग किया। ये बहुत दिनों तक विजयनगरके सिंहासन पर प्रविष्ठित रहे, इसलिये मुसलमान लोग इनके नामके साथ उक्त राज्यका सम्बन्ध दृढ़ करनेके लिये विजयनगरकी 'नरसिंह' कहा करत थे। १२४६ ई०में ये करालकाखके मुघमें पतित हुए। बसो साब रामदेवराय



राजगद्दी पर बैठे। रामदेवरायने १२४६में ले कर १२७१ ई० तक राजत्व किया। इसका बाद उनके पुत्र प्रताप १२७१ ई०से १२६७ ई० तक विजयनगरके सिंहासन पर प्रतिष्ठित रहे। १२६७ ई०में प्रताप रायकी मृत्यु हुई। तदनन्तर उसी वर्ष उनके पुत्र जम्बूकेश्वर रायने राजत्व पर प्रतिष्ठित हो १२३४ ई० तक राज्य किया। जम्बूकेश्वरके कोई पुत्र न था। इनकी मृत्युके पाठ साने देशमें अराजकता फैल गई। इस समय माधवाचार्य विद्यारण्य ने 'शृङ्गेरी मठमें विजयनगर लौट कर वहां अपने नामानुसार विद्यानगरका प्रतिष्ठा की। रायवंशावलीमें यह विवरण लिया गया है। आनगुण्डीके वर्तमान राजाके पास आज कल भी यह वंशावली मिलती है।

#### विद्यानगर।

जो हो, हमलोग ११५० ई०से विजयनगरका इतिहास रपटरूपसे देव पाते हैं। किन्तु बहुत थोड़े दिनों में ही अनेक प्रकारकी आन्तर्निवृत्तिकासे विजयनगरकी अवस्था शोचनीय हो गई थी। १३३६ ई० में विजयनगरके भग्नावशेष ऊपर माधवाचार्य विद्यारण्यने विद्यानगर बनवाया। जिस प्रकार उनके द्वारा विद्यानगर स्थापित हुआ, यह कहानी बड़ी विचित्र है।

विजयनगरके ज्येष्ठ शासनकर्ता जम्बूकेश्वर राय १३३५ ई०में परलोक सिंघारे। इनके कोई वंशधर न थे, जम्बूकेश्वरकी मृत्युके बाद विजयनगरका राजसिंहासन नृपतिशून्य हो गया जिससे बहुत जल्द ही चारों ओर शेर अराजकता फैल गई। सौम्ये देशमें अज्ञान्तिकी आशय धक्का उठा।

इस समय दयामय श्रीभगवान्ने दक्षिणात्यमें हिन्दू राजत्वका मूल सुदृढ़ करनेके लिये हिन्दूराज्य विस्तारका एक अभिनव अद्भुत उपाय रचा। जम्बूकेश्वरकी मृत्युके बाद एक वर्ष बीतते न बीतते १३३६ ई०में माधवाचार्यने विजयनगरके सिंहासन पर यादवसन्तति नामक एक नया राजवंश प्रतिष्ठित किया। इस वंशके आदिपुरुष बुकराय थे। यहा माधवाचार्यका थोड़ा विवरण उल्लेख करना आवश्यक है।

माधवाचार्य परम पण्डित व्र ह्यण थे, किन्तु दारिद्र्य दशासे निष्पद्य हो कर वे धन पानेके लिये हाम्पी नगरमें

भुवनेश्वरीदेवीके मन्दिरमें शेर तपस्यामें लग गये। लौकिक देवीने उनको मनस्कामना पूर्ण न कर मन्त्रमें उन्हें आदेश किया—“तुम्हारी कामना इस जन्ममें पूरी न होगी, दूसरे जन्ममें तुम धनलाभ करोगे।” रत्नमें देवाका यह आदेश पा माधव उसी समय हाम्पीनगर परित्याग कर शृङ्गेरी मठ पहुँचे और वहा उन्होंने गन्यास लिया। अन्तमें वे इस मठमें जगद्गुरु विद्यारण्य नामसे प्रसिद्ध हुए। माधवाचार्य विद्यारण्य वेदभाष्यकार नायणके भाई तथा स्वयं सर्वज्ञात्मने सुपण्डित थे। यकिसर विरररर विद्यारण्य स्वामी म्दमं देना।

जो हो, माधवाचार्यने जब सुना, कि विजयनगरके राजा जम्बूकेश्वरके मरने पर समूचे देशमें शोषण अराजकता उपस्थित हुई है, सुमलमान लोग दक्षिणात्यमें अपना प्रभाव फैलानेके लिये प्रस्तुत हो रहे हैं तथा सनातन हिन्दुधर्मकी यथेष्ट ग्लानि हो रही है, तब माधव शृङ्गेरी मठके निभृत साधनपीठका परित्याग करके कन्नप्रष्ट प्रदकी तरह तीव्र गतिसे विद्यारण्यपूर्ण शिष्य आचारमय विजयनगरको ओर दौड़े। जिस सर्वज्ञात्मने भुवनेश्वरी देवीके पादमूलसे सत्र दिनोंके लिये विद्याय ले कर माधवाचार्य सुदूर शृङ्गेरीमठ पहुँचे थे, वे सत्रसे पहले आमिन नगर में उसी भुवनेश्वरीके मन्दिरमें आ कर प्रणत हो पड़े। देशकी रक्षाके लिये सर्वत्यागी सन्यासीने अपनी मोक्षसाधना त्याग करके मानाके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया। कितने दण्ड तथा अहर वीत गये, श्रीविद्यारण्यने देवीके चरणसे अपना सिर न हटाया। अन्तमें दयामयीने साक्षात् हो कर कहा, “अब तुम्हारी वासना पूरी होगी। तुम जब माधवाचार्य थे, तब तुम्हें धन प्राप्तिका दर नहीं दिया लेकिन अब तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है—तुम अब श्रीविद्यारण्य स्वामी सर्वत्यागी सन्यासी हुए, अब तुम्हारे इस अभिनव जीवनमें यह प्रार्थना पूरी हुई। तुम्हारे द्वारा अब विजयनगर क्रमशः श्रीसम्पन्न होगा।” विद्यारण्य स्वामीने शिर उठाया, इसी दिनमें उन्होंने विजाल विजयनगरका भार अपने कंधे पर लिया और साम्राज्यकी मलाईके लिये निष्कामभावसे जीवन समर्पण किया। १३३६ ई०में इस सर्वत्यागी सन्यासीके पवित्रतम नामसे ही धर्मसावशेष विजयनगरमें अतीव समृद्धिगाली विद्यानगर प्रतिष्ठित हुआ।

विद्युद्यारण्य स्वामीने विद्युद्यानगर स्थापित कर वंश वर्ष तक राजवशासन किया। इसके बाद ये सङ्कराज्य वंशको सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर भाय मन्त्री वन राज कार्ण चक्राने भगे। यद्यपि विद्युद्यारण्य स्वामीने वंश वर्ष तक स्वयं विद्युद्यानगरका शासन किया, तो भी ये राजा वा महाराज नामसे पुकारे न गये। सङ्कराज्य प्रथम हरिहर नरस्थापित विद्युद्यानगरक प्रथम राजा हुए। हरिहरके चार भाई थे—कम्प, बुद्ध, मारण्य और सुरण्य। ये सभी भाई समरपट्ट और अलि विश्वासी थे। हरिहरने इन सबों पर राज्यका दायित्वपूर्ण कार्यभार सौंपा था। इससे एक ओर राजकार्यकी जैमी सुदृढ़ता और सुव्यवस्था हुआ दूसरी ओर इनके भाई लोग भी विसी ही राज्यकी समीक्ष्यस्थाप ज्ञानमैत्री सुविधा समझ गये। विद्युद्यानगरक इतिहासमें प्रथम बुद्धका नाम चिह्नमिष्ट है। समरविद्या में बुद्धका असाधारण परिदृश्य था। ये समर विभाग के प्रधान कर्मचारी पद पर नियुक्त हुए। कृष्णापी और मेन्द्रुट अश्वमैत्री कम्प बन्धोबन्ध और जमीन जमापुष्टिका कार्यभार इनके हाथ पडा। मारण्य बद्धम राजाभोका प्रदेश अपने बख्कमै कर महिसुरके पश्चिमक चन्द्रगिरि अश्वमैत्री अक्षयान करके वहाँका शासन कराने भगे। हरि हरक एक पुत्र हुआ जिसका नाम पडा सोमन, किन्तु हरिहरके जीते ही सोमनकी मृत्यु हो गई और बुद्ध ही पुत्रराजक पद पर अभिषिक्त हुए।

किन्तु राजगुह माघबाधाय विद्युद्यारण्यका बिना सम्राट् अथि इस विशाल साम्राज्यका एक तुण भी स्थानान्तरित नहीं होता था। उनका परामर्श ही पाबो भाई पाबो पारुष्यके समान राजकार्ण करता थे। शृङ्गेरी मठके साथ विद्युद्यानगरका सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ हो गया था। शृङ्गेरीमठका एक अनुशासन पद्धतसे मालूम होता है, कि पाबो भाई और लङ्कके साथ हरिहरने शृङ्गेरीमठके गृह भोपाद् सशिष्य मारतोतीपका नौ गौन प्रदान किये। हरिहरने शृङ्गेरीमठके निवृत्त हरिहरपुर नामक एक पृथक् पृथक् स्थापन कर जेशबगट्ट नामक एक ब्राह्मणके एक गौव दान कर दिया। हरिहरके समय महिसुरका मन्त्रैक भग विद्युद्यानगरके मन्त्रमुक्त हुआ। हरि हरके हा नूनरे नूनरे राजा सम्राट् समझ कर मान्य

करते थे। फेरिस्ता पट्टनेसे ज्ञाना जाता है, कि हरिहरने हिन्दू राजाओंके साथ मित्र कर सिद्धो सुलतानके परारत किया था। इस युद्धमें जय प्राप्त कर वरङ्गल, वैश्वमिदि, होयसल, बनाना आदि दक्षिण अश्वमके राजाओं के शासित बहूतसे प्रदेश उनके कब्जेमें आ गये।

एक अनुशासन पद्धतसे पता चलता है, कि हरिहर ने नागरकएड तक अपना शासनप्रभाव विस्तार किया था। वर्तमान महिसुरका उत्तर पश्चिम अश ही नागर कबड नामसे प्रसिद्ध है।

“राजवंश” नामक विजयनगरकी राजवंशावलीके विवरणसे ज्ञाना जाता है, कि हरिहरने १३३६से छे कर १३५४ ई० तक राज्य किया। किन्तु औरका कहना है, कि १३५० ई० पर्यन्त ही उनका राजवकाल था। इनके मीतर बन्धोमें राज्य बढ़ानेक लिये यथेष्ट खेदा को थी। १३४४ ई०में समूचे दक्षिण एवसे उन्होंने मुसलमानोंको भगा दिया था। बोई बोई कहते हैं कि हरिहरका नूनरा नाम बुद्ध था।

सुक्रराय।

हरिहरकी मृत्युके बाद राजसिंहासन पर कीर्तन बैठे, इसको छे कर विस्तर मतमेव देना जाता है। हरि हरके एकछोते पुत्र उनका जीते ही मृत्युसुखमें पतित हुए थे। हरिहरके मरने पर उनके चार सहीवर भाई मौजूद थे, उनमेंसे कम्प हो बड़े थे। मि० क्यूबेकका कहना है, कि हरिहरके परमोक्तवासी दोमि पर कम्प ही राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे किन्तु असाधारण और बुद्धके उद्देश्ये विताडित कर भयन प्रभावसे ही सिंहासन अधिकार कर लिया। इन विवरणमें बहुत तक चितक है। फलतः हरिहरके बाद बुद्ध ही विद्युद्यानगरके शासन कर्ता हुए थे।

सुक्रराय ठोक बब सिंहासन पर बैठे, यह छे कर भी मतमेव है। फिलोका कहना है, कि १३५० ई०में फिर कोई कहते हैं कि १३५५ ई०में ये राजगद्दी पर बैठे थे। बुद्धके असाधारण गताप था—उपरोक्त प्रभावसे समूचा दक्षिणायव चरपता चला था। एक ताजशासनमें लिखा है, कि बुद्धके शासनकालमें चन्द्रमती प्रभु मरण्यामिनी थी मन्त्रादीकिनी मन्त्रादी कह न था, जगसाम्राज्यमें





विजयराय १म।

देवरायको अनेक पुण्यकीर्तिके चिह्न ऐतिहासिकोंने सप्रह किये हैं। देवरायके पाँच पुत्र हुए, किन्तु वे चार पुत्रको छोड़ परलोक सिधारे। छोटे लड़केको फेसे दुष्ट काजीने मारा, वह विवरण पहले ही लिख आया है। उनको खोका नाम था पम्पादेवी। पम्पाके गर्भसे विजयराय, भास्कर, मलन, हरिहर आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। विजयरायने १४४२ ई०से १४४३ ई० तक सिर्फ एक वर्ष राज्यभोग किया। इससे इनके समय कोई विशेष घटना न घटी।

देवराय २य।

विजयरायकी पत्नीका नाम नारायणाम्बिका था। नारायणाम्बिकाके गर्भसे विजयरायके दो पुत्र तथा एक कन्या जनो। इनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम देवराय था। इन्होंने १४४३से १४४६ ई० तक राज्य किया। देवरायके छोटे भाई पार्वतीराय १४२५ ई०में मृत्युमुखमें पतित हुए। उनको वहन हरिमादेवीके साथ सलुचतिप्प राजा का विवाह हुआ।

जिस समय द्वितीय देवरायने राज्यभार अपने हाथमें लिया, उस समय सारा दक्षिणात्य विद्यानगरके राजाके गानहनमें हो गया था। विजयनगरके राजवंश जातिवर्णानिर्विशेषसे प्रजापालन करने थे। उन लोगोंके शासनसे शिल्पसिद्धि आदिकी खूब ही उन्नति हुई थी। देवरायके चाचा वडे प्रभावशाली थे। उन्होंने महामण्डलेश्वर हरिहर राय नामकी ख्याति पाई थी। देवराय जब नावालिक थे, तब ये ही शासनकार्यकी देखरेख किया करने थे। बहुतसे ताम्रशासन और शिलालिपिमें इनके दानादिहा उल्लेख मिलता है।

फेरिस्ताने देवरायके साथ मुसलमान-पति अलाउद्दीनके भाई मद्दुमद् खाँका एक युद्ध-वृत्तान्त वर्णित है। फेरिस्ताका कहना है, कि देवराय अलाउद्दीनको सालाना कर देने थे। पाँच वर्ष तक उन्होंने कर नहीं दिया। पीछे वे देनेमें इन्कार चले गये। इस पर अलाउद्दीन बड़े क्रोध और देवरायका राज्य तहस नहस कर डाला। देवरायने अन्तमें वीस हाथी, काफी रकम तथा दो सौ नर्तकी उपहारकनमे दीं। १४४२ ई०में देवराय अपनी अवस्था पर

बड़े चिन्तित हुए। गुलबर्गके मुसलमानोंका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता देख उनके मनमें आतङ्कका सञ्चार हुआ। उन्होंने अपने मन्त्रों, सभासद और सभापण्डितोंको बुला कर कहा, "मेरे राज्यका परिमाण बाल्ही राज्यके परिमाणसे कहीं अधिक है। मेरी सेना, धनबल और युद्धका सामान मुसलमानान्ने ज्यादा ही होगा, कम नहीं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि फिर भी लडाईमें मुसलमानोंकी ही जीत हो रही है। इसका कारण क्या?" उत्तरमें किसीने कहा, कि मुसलमानोंके घुड़-मथार धीरे धीरे बहुत अच्छे हैं, हम लोगोंके जैसे नहीं हैं। किसीने कहा, कि मुलतानके तीरन्दाज बड़े निडर-हस्त हैं, हम लोगोंके जैसे तीरन्दाज नहीं।

सुन्नतुर देवराय अपने सेनादलकी कमजोरी देण सेन्यविभागमें मुसलमानोंसेना भर्ती करने लगे। उन लोगोंको जागोर मिली, उपासनाके लिये मसजिद बनवा दी गई तथा राज्य भरमें ढिठोरा पिटवा दिया गया, कि मुसलमानोंके प्रति कोई भी अत्याचार न कर सकेगा।

वे अपने सिंहासनके अप्रभाग पर अति सुसज्जित एक काठके बक्समें कुरानसरीफ रखते थे। उनका उद्देश था, कि मुसलमान अपने धर्मानुसार उनके सामने ईश्वरोपासना कर सकें। उन्होंने मुसलमानोंके लिये जो सब मसजिदें बनवा दी थीं, आज भी उन सब मसजिदोंका भग्नावशेष हाम्पा वा हस्तिनावती नगरमें दिखाई देता है। केवल देवराय ही नहीं, विद्यानगरके रायवण धर्ममतके सम्बन्धमें उदार थे। उन लोगोंके विपुल राज्यमें हिन्दू मुसलमान और जैन आदि बहुतसे लोग रहते थे। वे लोग प्रत्येक धर्मसम्प्रदायका आदर करते थे तथा सभी धर्मोंकी मर्यादा रखते थे। देवराय (२य) राजनीतिमें बड़े सुपण्डित थे।

पारस्यदून अब्दुल रजाकके लिखित विवरणसे जाना जाता है, कि देवरायका भाई देवराय और उनके दलबल को मार कर स्वयं सिंहासन पानेके लिये पडयन्त्र कर रहा था। एक दिन उसके भाईने सभासदोंके साथ देवरायको अपने यहां निमन्त्रण किया। मौका देख कर उस दुष्टने देवरायके बहुतसे सभासदोंको मार डाला और

भाबिर देवरायकी मी निमस्तरणाछयमें छे जा कर मारने का चेष्टा की। किन्तु देवराय टाड़ गये और निमस्तरणाछयमें न गये। पुर्णचने उसी जगह तलवारके मझारसे जग्ही जर्जरित कर दिया, ये सूतप्राय हो गये। उनका दुष्ट भाइ उन्ही मरा जान कर बछा गया। किन्तु मयवाणका छपासे देवरायको जान न गई। पाछे उन्हीने दूध मोईको उचित शिक्षा दी थी। अबदुलरजाक स्वयं विद्वानगर गये। इन्होंने यह भी कहा है, १४४३ ई०के शपमें देवरायक घडोर दान भायकने गुलबर्ग पर आक्रमण किया। इस घटनाक साय फेरिस्ता विद्वित घटनाका मेल देना जाता है। अबदुलरजाकका कहना है कि देवरायक मारैका पुष्ट चेष्टासे विद्वानगरमें जो पुर्णचटना घदी थी भडा उदीनकी भी यह संवाद मिळा था। इस समय देवराय को तंग करना सुबिधाजनक समझ कर उसने बाकी कर मांग मेजा। इस पर देवराय उच्छ्रित हो गये। दोनों की सोमा पर तुमुछ संग्राम छिड़ गया। अबदुलरजाकने कहा—दानभापक गुलबर्गमें प्रवेश कर बहुत-से बन्दियोंके साथ भीटे। फेरिस्ताका कहना है, कि देवरायने बाह्यनारायके मुसलमानों पर अनर्थक आक्रमण किया था। उन्हीने तुङ्गमद्रा पार कर मुद्रनका दुर्ग मोता, रायबुद्ध भादि स्थानों को दकळ करके लिये पुनो को मेजा। उनको सेताने बिजापुर पर आक्रमण किया और इन सब स्थानों की अवस्था शोचनीय कर डाली थी। इपर भडाठहोतने यह संवाद पा कर तेळिङ्गना, दौबताबाद और बेदारसे सेनासंग्रह कर मझमझाबाद मेजा। इस समय उसकी सुइसवार सेनाकी संख्या ५०००० और पदातिवकी ६०००० थी। जो मासके मोतर तीन तुमुछ युद्ध हुए—इन युद्धमें दानों पक्षकी महती हति हुई थी—द्विषुभोने पहले अवलाम किया था किन्तु भाबिर बाद अमानके आमातने देवराय का बड़ा लडका वमपुरकी सिपारा। इस शोचनीय घटनासे दिव्यसेना चितर बितर हो गई और मुद्रक दुर्गमें भाग खली। अगमें देवरायने मेल कर लिया।

अभी जो शासन और शासनसिधि भाबिच्छल हुए हैं उनसे जाता जाता है, कि खीरप्रताप देवराय महारायने

भारतवर्षके दक्षिण प्रायत तक अगमा शासनमनाय फैलाया था। मयुरा मिळिके तिघमळय भादि स्थानों में भी देवरायकी वेवकीरिंके बिद्ध विचारई देते हैं। देवरायने समग्र ब्राह्मणाय्य, भारतके दक्षिण प्रायत और पूर्वापि कूल पर्यन्त अपना राज्य फैलाया था। इनके समय विद्वानगरकी बहुत कुछ भीवृद्धि हुई थी—मुसलमानों को सामयिक कायमे नियुक्त कर इन्हीने मेलबल बढ़ाया था। देवरायके समय राजसूय भी बहुत बढ़ गया था। इन्हीने 'गजवेदकर' नामकी एक विशिष्ट उपाधि पाई थी। भाप अस्तामान्य बीर थे, फिर भी भापके हृदयमें यथेष्ट दया थी। उत्तरमें तेळिङ्गना और दक्षिणमें तञ्जोर पर्यन्त विस्तृत भूमामे भाप स्वयं परिस्रमण कर देशको अवस्था जानते थे।

फेरिस्ताने लिखा है, कि भडाठहोतन देवरायसे बाकी कर मांगा था। देवरायसे कर मांगना भडाठहोतन का क्या अधिकार था, यह ज्ञानना कठिन है। घरांमान ऐतिहासिक फेरिस्ताको इस उक्ति पर विश्वास नहीं कर सकते। फलतः इन्व्यानदीकी सोमासे कुमारिका अन्तरोप पर्यन्त जिनका शासनव्यवस्था परिवर्धित होता था, वे अपनेको मलाबहोतनका कर देना स्वीकार करे, ऐसा हो ही नहीं सकता। पर हाँ युद्धविमहमें परास्त होने पर कुछ अर्धदान करना असम्भव नहीं। देवराय मल्लिकार्जुन न और बिरुपास्य वंश को पुन छोड़ परलोकको सिपारी।

मल्लिकार्जुन।

द्वितीय देवरायकी मृत्युक बाद विद्वानगरके सिंहासन पर कौन अधिकार हुआ, यह छे कर प्राचीन ऐतिहासकों में बहुत मतभेद है। किन्तु अभी जो सब छात्रशासन और शिक्षासिधि भाबिच्छल हुई हैं, उनको आलोचना कर देना गया है, कि २० गिळालिपिमें अविश्वस्यदित भावमें लिखा है, 'देवरायकी मृत्युक बाद १४४६ ई०में उनके लडके मल्लिकार्जुन राजसिंहासन पर बैठे १४६५ ई० तक राज्य शासन किया। मल्लिकार्जुन विविध मामोंस पुकारे जाते थे—इमाडि बौद देवराय, इमाडि वेवराय, बीर प्रताप देवराय। भीरोछ पर जो मल्लिकार्जुनदेव है, उन्ही क नामानुसार इनका नामकरण हुआ। मिन्नामा

वर्तमानायक इनके प्रधान मंत्री थे। ये लोकायुक्त राजा थे। १४६४ ई०में इनके एक पुत्ररत्नने जन्मग्रहण किया। इस पुत्रके सम्बन्धमें कुछ विशेष बातें नही जानी जाती। मल्लिकार्जुन स्वधर्मनिरत थे, इनका दान भी अनुलनाय था। गयन प्रावर्लीमें मल्लिकार्जुनकी जगह रामचन्द्र राजका नाम देखा जाता है। सम्भवतः रामचन्द्रराय इन्हीं मल्लिकार्जुनका नामान्तर है। द्वितीय देवरायने जो लोकायुक्तग्रहण किया था। पहली स्त्री पल्लवा-देवाके गमने मल्लिकार्जुन और दूसरी सिंहलदेवासे विरूपाक्ष उत्पन्न हुए थे।

विरूपाक्ष ।

मल्लिकार्जुनके स्वर्गवार्मी होने पर १४६६से १४७८ ई० तक विरूपाक्षने विद्यानगरका शासनभार ग्रहण किया। अभी इस सम्बन्धमें बाह्य जिलालिपियाँ पाई गई हैं। मल्लिकार्जुन और विरूपाक्षने राज्यशासनके सम्बन्धमें कोई विशेष ऐतिहासिक घटना नहीं जानी जाती। इन दोनोंने कौन काम किया था, इनके समय प्रजाजी अवरथा ही कैसी थी, ये लोग किस प्रकार राज्य करते थे, इनके अधीन कौन कौन राजा किस किस प्रदेशका शासन करते थे, किस प्रकार इन दोनोंकी मृत्यु तथा किस प्रकार इनके वंशके बदले नये व्यक्तिने एकाएक राज्यमें प्रवेश कर राजसिंहासन पर अधिकार जमाया, इन सब घटनाओंका आज तक पता नहीं चला है। आज भी उन सब घटनाओंके ऊपर किसी प्रकारका ऐतिहासिक प्रकाश नहीं पडा है। १४६२ ई०में महम्मदशाह बाल्खनी के पेलगाँव छान लेने पर भी विरूपाक्षने दक्षिणकी ओर मसलीपत्तन तक अपना राज्य फैलाया तथा युसुफ आदिलशाहको बाल्खनी राज्यके विरुद्ध साहाय्य पहुँचाया था।

एक जिल लिपिमें स्पष्ट लिखा है, कि महाराजाधिराज राजा परमेश्वर श्रीश्री प्रताप विरूपाक्ष महाराजके शासन कालमें राज्य भरमें शान्ति और समृद्धि विराजती थी। इस समय राजतन्त्री नायकने अमर नामक सम्राट्के आदेशसे अग्रहार अमृतान्तपुरमें प्रसन्नकेगव देवमन्दिर के निकट एक गोपुर बनवाया था। १४७८ ई०में यह जिलालिपि लिखी गई। इस प्रकार और भी कितनी

जिलालिपियाँ द्वारा जाना जाता है, कि विरूपाक्ष रायने १४७८ ई० तक राज्यशासन किया। विरूपाक्ष ही सङ्गम वर्गीय राजाओंमें अन्तिम राजा थे। इसके बाद एक दूसरे प्रभावशाली पुरुषने विद्यानगरके राजसिंहासन पर अधिकार जमाया।

सङ्गमराजवंशकी उत्पत्ति ।

अभी हमने विद्यानगरके जिन सङ्गम-राजवंशके राजाओंके नाम और शासनका दान लिखा है, वे लोग किस वंशके थे, यह ले कर अनेक मतमें शिवाई देता है। कोई कोई कहते हैं, कि ये लोग देवगिरिके यादववंश-नम्बूत थे, फिर कोई वनरासाके कश्यपवंशसे ही इनको उत्पत्ति वतलाते हैं। एक दूसरे सम्प्रदायने एक अद्भुत आख्यान द्वारा इनका वंशनिर्णय कर रखा है। वे लोग कहते हैं, कि वरद्वल राजाओंके मेषपात्रक दो स्वयंश्रु जव आनगुण्डा ग्रामसे दक्षिण पश्चिमकी ओर जा रहे थे, नव माधवाचार्यने उन पर असीम कृपा बरसाई था। उन्होने अपने नाम पर विद्यानगर बसा कर हुषक वा हरिहरको विद्यानगरके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। किन्तु अभी जो एक जिलालिपि पाई गई है, उससे मालूम होता है, कि यादववंशसे ही सङ्गमराजवंशका आविर्भाव हुआ है।

नरसिंहराजवंश ।

विरूपाक्षकी मृत्युके बाद मल्लव नरसिंह विद्यानगरके सिंहासन पर बैठे। इन नरसिंहके साथ सङ्गम राजवंशका कोई भी सम्बन्ध न था। नरसिंहने अपने बाहुबलसे अनधिकार स्थानमें अपना प्रभाव फैला कर विद्यानगरके राजसिंहासन पर अधिकार जमाया। ऐतिहासिकोंने नरसिंहके पुत्र पुरुषोत्तम नामोत्प्रेष किया है। नरसिंहके पितामहका नाम तिमम, पिता महोका नाम देवका और पिताका नाम ईश्वर और माताका नाम बुक्कामा था। नरसिंहके और भी दो नाम हैं, नरेश और नरेण अथनीगल। इनकी दो स्त्रियाँ थीं निपाजोदेवी और नागलदेवी वा नागाश्रिका। कोई कोई कहते हैं, कि नागाश्रिका नरुकी थी। १४७८से १४८७ ई० तक नरसिंहने राज्यभोग किया। इसके बाद उनके प्रथम पुत्र धीर नरसिंहने १४८७से १५०८ ई० तक

विदुष्यानगरके सिंहासन पर बैठे थे। उनके सेनानायक रामराजने कर्जुंरु नाम कर यहांके दुर्गाध्यक्ष युसुक भाद्रिक सवोयकको समरमें परास्त किया, पाछे से दुर्गाको अधिकार कर कसहर (आगोखार) इधरमें कार्यमें करने लगे। इस समय धार नरसिंहदेवके वैभवाय भ्राता हण्यदेवराय उनके मन्त्राको कार्यमें नियुक्त हुए थे। हण्यदेवरायकी भसाधारण क्षमता थी। तसगुमायामें हण्यदेवका प्रशंसामुचक बहुत-सी कबिताए लेखी जाती हैं।

हण्यदेव राज ।

हण्यदेवकी एक कबितासे ज्ञाता जाता है, कि १३६५ ई०में हण्यदेव रायालुका जन्म हुआ। विदुष्यानगरके राजाओंके इतिहासमें हण्यदेवरायका नाम बहुत मिलता है। इन्होंने १५०३ से १५३० ई० तक प्रथम पराक्रम और अदम्य उत्साहसे राज्यशासन किया। इनके शासन के समय विदुष्यानगरकी समृद्धि बहुत बढ़ी दृढ़ी थी। हण्यदेवने उत्तरमें कटक पयस्त अपनी विजयपताका फाई रार्ह थी। इन्होंने डङ्गोसाके सुविषयात वैष्णव राजा प्रतापदत्त देवको कन्यास विवाह किया। १५१६ ई० तङ्गोसाराजके साथ इनकी ओ सन्धि हुई उससे डङ्गोसा राज्यकी इस्तिज सोमा कोम्पावकी विजयनगरकी उत्तर सोमा रूपमें निर्दिष्ट हुई। इन्होंने पहले द्रानिङ्गेशको अपने राज्यमें मिला लिया। महिसुरके बमाहुरके गङ्गा-राजने इनको अपोमठा लोकार की। इस युद्धमें शिब समुद्रका दुर्ग और भोरङ्गपट्टन इनके हाथ लगा। इनके बाद सारा महिसुर इनके अधिकारमें आ गया। १५१३ ई०में इन्होंने नेलोरेक उद्योगिदि प्रदेशमें अपनी गोदा बसाई। इसी स्थानमें हण्यालामोहा विग्रह ला कर इन्होंने विदुष्यानगरमें स्थापन किया। १५१५ ई०में इनके सेनानायक विम्व बरलुने गजपति शासनकर्ताके अधिकार कोरङ्गरीदू दुर्गको अधिकार किया। इसके बाद इस्तिज प्रांतके कितने दुर्ग इनके हाथ लगे थे। इस समय सारा पूर्वी उपकुल इनके शासनाधान हुआ। १५१६ ई०में इन्होंने हण्यानदीके उत्तर अपना शासन प्रमाय फैलाया। १५१८ ई०में इन्होंने आ अनुशासन लिख कर बेचोत्तर सम्पत्तिका प्रथम कर दिया वह पण्युटा तालुकाके वेहडाकनो ग्राममें, खोरमद्रदेवके मन्दिरमें,

धापट्टा नगरमें तथा विजयवाड़ाके कलकपुरी मन्दिरमें पाया गया है। १५२३ ई०में इन्होंने नरसिंहयुतिकी स्थापना की।

हण्यदेवरायने पच्छिममें हण्यो उत्तरमें श्रीशैल, पूर्वी में कोटबबाङ्ग, दक्षिणमें तञ्जापुर और मधुरा तक अपना राज्य फैलाया था। इन्होंने शासनकार्यमें मधुरामें नायक राज्य प्रतिष्ठित हुआ था। हण्यदेवने सखल और सैलङ्ग मापाकी उन्नतिके लिये बङ्गो सेना की थी। इनकी समा में मद्र द्विपञ्च परिदृष्ट करते थे। हण्यदेव इधर कीस धोर थे उधर उनकी मगवज्जति भी पधेष्ट थी। महाराज प्रतापसूत्रने वेण्णब ज्ञान कर इनके हाथ अपना कन्याको समर्पण कर दिया था। इसके सिवा उनकी और भी एक स्त्री थी। सिगमादेवीसे एक कन्याने जन्मग्रहण किया। हण्यदेव १५३० ई०में परलोकको लिये। मृत्यु के समय इन्हें एक मा पुत्र न था।

मन्थुय ।

हण्यदेव रायालुकी मृत्युके बाद मन्थुयतम्न रायालु विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। १५३० से १५४२ ई० तक इन्होंने राज्य किया। मन्थुय राय और हण्यदेव रायको से कर अज्ञुत मतमें देखा जाता है। एक ताम्र शासनसे माहूम हुआ है कि मन्थुय राय हण्यदेव राय के वैभवाभेय भाई थे। हण्यदेवके पिता नरसिंहने भोजि म्बिका नामकी एक और स्त्रीका पाणिग्रहण किया था। इस स्त्रीके गर्भसे नरसिंहके दो पुत्र उत्पन्न हुआ बसोका नाम मन्थुय था मन्थुयतेंद्र था। हण्यदेवके एक भी सन्तान न थी फिर एक दूसरी शिवास्तिविमें मिला है, कि मन्थुय तेंद्र हण्यदेवके पुत्र थे। १५३८ ई०में मन्थुयतेंद्रने कोएड बोडू तालुकमें गांवाळस्वामीका मन्दिर बनवा दिया था, शिवास्तिविसे यह बात माहूम होती है। मन्थुयतेंद्र १६ पार्सिक थे। वे अपने पूर्वपुत्र हण्यदेव रायालुकी तरह देवमन्दिर निर्माण, देवमतिष्ठ, प्राणियोंको ब्रह्मोत्तर ज्ञान आदि अनेक सत्कार्योंमें रुपये लब्ध कर गये हैं। इन्होंने तिनवेल्सी नगरमें अपना आधिपत्य फैलाया और कर्जुंरुमें दुर्ग बनवाया था।

हराशिव राय ।

१५४२ ई०में मन्थुयतेंद्रकी मृत्यु हुई। पीछे सराशिव



रायलु विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। सदाशिवके जेष्ठकालमें अच्युतका देहान्त हुआ था। अच्युतके साथ सदाशिवका कथा सम्बन्ध था, इस विषयमें भी बहुत मतभेद दिखाई देता है, फार्सीनगरकी एक प्राचीन लिपि से जाना जाता, कि बरदादेवों नामकी अच्युतकी एक रानी थी, उस स्त्रीके गर्भसे वेङ्कटाद्रि नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वेङ्कटाद्रिने अल्प काल तक राज्य किया था। उनकी मृत्युके बाद सदाशिव नामक उनके एक आत्मीयने राजसिंहासन पर स्थल जमाया। सदाशिव रङ्गनाथके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था तिमाम्बा देवी। इसन नामक स्थानमें जो प्राचीन लिपि पाई गई हैं, उसे देख कर मि० राइसने स्थिर किया है, कि सदाशिव अच्युतके पुत्र थे।

जो ही, सदाशिव जब तक बालीय न हुए थे, तब तक उनके मन्त्रियोंने राजकार्य चलाया था। इन सब मन्त्रियोंके मध्य रामराय सर्वप्रधान थे। रामरायको कुछ लोग रामराज भी कहते थे। रामराय सदाशिवको सर्वदा नजरबंदी रख कर अपना मतलब गाँठ लिया करते थे। सदाशिवके मामा तथा अन्यान्य सचिवोंको यह अच्छा न लगा और वे सबके सब रामरायके विरुद्ध प्रयत्न करने लगे। रामरायने अपनेको विपद्में घिरा देव कुछ दिनका अवकाश ले लिया। इस समय सदाशिवके मामा तिममराजने शासनभार अपने हाथ लिया। किन्तु उनके लोहशासनसे थोड़े ही दिनोंके मध्य प्रजा तन तग आ गई। यह देख सामन्त राजाओंने उनका काम समाप्त करनेकी साजिश की। तिममराजने इस समय विजयपुरके इब्राहिम आदिलशाहकी सहायता देना खोकार किया था। मुसलमानोंका प्राहुर्भाव देख कर सामन्तराज गुण-कुल दिन-अवनत मस्तकसे प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु मुसलमानोंके चले जाने पर ही सामन्तोंने तिममराजको राजप्रासादमें कैद रखा। तिममराजसे वह कष्ट सहा न गया और उसने आत्महत्या कर ली। इस घटनाके बाद रामराज पुनः सदाशिवके नाम पर विजयनगरका शासन-परिचालन कार्य करने लगे।

रामराज।

सदाशिव नाममात्रके राजा थे। फलतः रामराज ही

विजयनगरके प्रकृत राजा समझे जाने थे। सदाशिवके बाद ही नरसिंह राजवंशका नाम विलुप्त हुआ। इसके बाद रामराजका वंश विजयनगरके राजवंशके इतिहासमें देखा जाता है। यही रामराज मतो थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। रामराजके पितामह रामराज नामसे भी परिचित थे। इनके पुत्रका नाम श्रीरङ्ग था। श्रीरङ्गका एक दूसरा नाम था श्रीरङ्ग रामराज। श्रीरङ्ग भी मतो थे। तिममल वा तिममलाम्बिका देवीके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके तीन लड़के थे, बड़ेका नाम रामराज था। रामराज ही पितृसिंहासनके अधिकारी हुए। इनके एक भाईका नाम तिमम वा तिममल और दूसरेका वेङ्कट वा वेङ्कटाद्रि था। तिमम वा तिममल का हाल पाले लिखा जायेगा।

रामराजने आदिलशाहके साथ एक धार सन्धि की थी। किन्तु समय और नुविधा देव उन्होंने सन्धि तोड़ आदिलशाहके अधिष्ठित राज्यके कुछ अंशोंको अपने राज्यमें मिला लिया। परन्तु इसका परिणाम बहुत घराब निकला। अली आदिलशाह गोलकुण्डा, अहमदनगर और विदर्भ राजाओंके साथ मिल कर रामरायके विरुद्ध तालिकोटमें आ धमके। उन लोगोंने कृष्णा नदी पार कर दश मील दूर रामराजकी सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। सारी शक्तिके प्रदल आक्रमणसे भी चतुर रामराय बहुत देर तक युद्ध करते रहे थे, किन्तु आग्निर निरुपाय देख वे भाग चले। मुसलमान-सेनाने उनका पीछा किया। पादकी होनेवाले पादोंको छोड़ चम्पन हुए। वे बन्दी हो कर आदिलशाहके सामने लाये गये। आदिलशाहने उनका शिर काट डाला। १५६० ई०को तालिकोटमें यह घटना घटी थी। इधर मुसलमानों की सेनाके विद्वानगरमें प्रवेश करनेसे पहले ही सदाशिव रायलु पेन्नकुण्डाको भाग गये।

रामरायके पतनके सम्बन्धमें और भी एक वृत्तान्त सुननेमें आता है। कैशर फ्रेडरिक नामक एक पर्याटक तालिकोटा युद्धके दो वर्ष बाद घटना स्थलमें आये थे। उन्होंने लिखा है, कि रामराजकी सेनामें दो मुसलमान सेनानायकोंका विश्वासघातकतासे ही रामराजकी पराजय हुई थी।

विधानगर पृ ७।

बाहे रामरायका पतन किमी भी कारणसे हो, पर उनके पतनके साथ ही सुविशाख बिहुवाणगर ध्वस्त माय हो गया। रामरायका इत्यात्मबाध प्रचारित होनेके बाद हिन्दूना बायीं ओर भागने लगे ठिन्नु राजे बहुत डर गये, किमी किस्तोने पराक्रमशाली सुसन्मान शामन कर्त्ताओ का साथ दिया। १५५ ई०में सुसन्मानानि वयन प्रनायने, विद्रोह ठिन्नुओको तथा हिन्दूराजका पिम्बासघातक सुसन्मान-सेनाओ की सहायतामें विजय नगर पर आक्रमण कर दिया। इस समय पट्टवपि बिहुवा नगरकी परिधि ६० मीलसे कम होन होते २७ मील हा गई थी, मैा सी इसके राजपथ, उदुवाल, राजमासाद श्रेष मंदिर, नगर, हर्ष्यादि पार्श्ववर्ती अन्वाम्य राजाओ को राजधानीमें कई गुणोंमें श्रेष्ठ थे। सुसन्मानाने क्रमागत सवाष और जिर्घियाइसे द्वा माम आक्रमण और लूट कर विधानगरकी मयस्त शोभासम्पन्न और विपुल वैभवको विचरन् तथा समृद्धिशाली सीध्दर्थमय बिहुवाणगरको शमशानमें परिवर्त कर डाला। वैशाख्य होह दिये गये, मूर्त्तियाँ तोड़ दी गई, राज प्रमादको ध्वस्त कर घन श्लादि लूट लिये गये, हाट बाजार उठाइ बना दिया गया, अधिवासा स्त्रीपुरु छे कर भयने मानप्राणको रक्षाके विधे माग गये।

अन्वाम्य राजपथ।

अधुनका कहना है कि इसके बाद भीरकूक द्वितीय पुत्र निदमलने १५७४ ई०से १५७३ ई० तक राज्य किया। हिन्दु मि० स्पूवेनकी प्रथम पंशाबसीमें देखा जाता है, कि रामराजक दो पुत्र थे बड़ का नाम हण्याराज और छोटेका निदमराय था। हण्याराजने आनगुपडीमें अपनी राजधानी बनाई थी। उनके एक ही पुत्र न था। रामरायके अष्ट पुत्र रहत हुए भा कान्ण किस प्रकार राजगद्दी पर बैठा था, उसका कारण मान्य नहीं। निदमलकी वार शिवी था, येकूदराज, राघवासा, पद्मेसा और हण्याराज। निदमलने १५६७ ई०को पेशकृष्ण्डा में राजधानी प्रतिष्ठित की। इनके तीन पुत्र थे, भीरकू उर विनाओ निदमकश्य इर भोडेव और येकूटागि। भीरकूका शासनकाल १५७३ से १५९९ ई० तक

माना जाता है। निदमलक सिक्के कई मान राज्यशासन किया। इसके बाद १५८५ ई०के खोजाईस लगायत १६१४ ई० तक येकूटागिने राज्य किया। बिहुवाणगरके राजाओ की मायमक्षी अब जाती रही, तब इसके साथ साथ राजधानीके स्थानमें भी बहुत हीर पैर हुआ था। येकूटागि पेशकृष्ण्डास चन्द्रगिरिमें राजधानी उठा लाये। येकूटागिक बाद निम्नलिखित राजगण विजय नगरके राजा कह कर प्रसिद्ध थे।

नाम	ई०
भीरकू (२५)	१६१४ -
राम	१६२०—१६२२
भीरकू (२५) और येकूटाग्या	१६२३
राम और येकूटागि	१६२६—१६३६
भीरकू (४४)	१६३६—१६६५

इन सब राजाओ क नाम और शासनकालका समय विवक्तुल ठीक है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। हिन्दु भीरकूका शासनकाल १६३६ ई०के पूर्वमें आरम्भ हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। बयोदि शही भीरकूने १६३६ ई०में अगरेओ को मद्रासका बन्दर दिया था। इसके बाद हम और एक तरहका राजगण पाते हैं जो इस प्रकार है—

नाम	ई०
भीरकू	१६६५—१६७८
येकूटागि	१६७८—१६८०
भीरकू	१६८२
येकूट	१७०३
भीरकू	१७१६
महादेव	१७२४
भीरकू	१७३६
येकूट	१७३२
राम	१७३६
येकूटागि	१७४४
• •	• •
येकूटागि	१७६१—१७६३
दूसरे प्रथमे निम्न विवरण देखा जाता है, जिन—	
आरकू रायाणु	१५९७—१५८५

नाम	ई-
वेङ्कटपति देव रायालु	१७८५-१८१७
चिप्टेदेव रायालु (चल्लूर राजधानीमें)	१६५-१६७२
गानदेव रायालु	१६२७-१६३१
वेङ्कट रायालु	१६३२-१६७३
श्रीगुरु रायालु	१६४५-१६७४

इस प्रबंधमें हमने बाइके और किसी भी प्रायतन-  
 चर्चाका नाम नहीं लिया है। मधुराके राजा तिनमल्ल  
 परब लसे किन्न प्रहार विजयनगर राज्य चिल्लूर द्वारा  
 उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—तिरुमल्ल नायक  
 विजयनगरके राजा नरसिंहके विद्रोही हो उठे। उस  
 समय विशालनगरके राजाश्रीकी राजधानी चल्लूरमें  
 थी। जिशी, तज्ञाचूर, मधुरा और महिसुराके राजगण  
 उस समय भी विजयनगरके राजाको सर देने थे।  
 सोच दोनमें अनेक प्रकारके उपद्रोहजन द्वारा राजाका  
 सम्मान भी क्रिया जाता था। किंतु विद्रोही तिरुमल्ल  
 विजयनगरकी वशयता स्वीकार करनेकी प्रवृत्त न थे।  
 नरसिंह रायने तिरुमल्ल पर शासन करनेके लिये सेना  
 इकट्ठी की। तिरुमल्लको जब यह बात मालूम हुई, तब  
 उन्होंने त्रिखिगाडके साथ सेल कर लिया।

तिरुमल्ल बड़े ही घुट्टिल थे। उन्होंने नरसिंहरायको  
 पगसल करनेके लिये गोलकुण्ड के सुलतानके साथ  
 संधि की। नरसिंह जब मधुरामें तिरुमल्ल पर आक्र-  
 मण करने गये, तब गोलकुण्डके सुलतानने अच्छा सौंका  
 पा कर उसी समय नरसिंहके राज्य पर हमला कर दिया।  
 नरसिंह बंशपुत्र्य थे। वे तिरुमल्लको कश्मेमें करके  
 सेनाके साथ स्वदेश लौटे। पीछे उन्होने आतनायी सुल्-  
 तानको अच्छी जिज्ञा दे कर दे जाने निकाल बहाम किया,  
 किंतु दूसरे वर्ष सुलतानने बहुत सी सेनाके साथ वा  
 कर नरसिंहको हराया। नरसिंह हनोतमाह हो कर दक्षिण  
 देशके नायकोंके साथ मिठनेकी कोशिश करने लगे, किन्तु  
 कोई फल न हुआ। पीछे १ वर्ष ४ मास तक वे तज्ञाचूर  
 के उत्तरी जंगलमें छिा रहे। उस समय उनका अमात्य  
 और सेनाने, उन्हें छोड़ दिया था। नरसिंहने इसके बाद  
 महिसुराजका आश्रय लिया। इधर तिरुमल्ल अनेक  
 प्रकारकी घटनाओंमें पड कर सुमल्लभानोंकी अधीनता

स्वीकार करनेकी बाध्य हुए। तिरुमल्लकी निर्दुस्तितासे  
 तिन राज नारायण मधुरा गोलकुण्डपर सुलतानके  
 साथ पाया।

इसके बाद नरसिंह महिसुरा के लिये गोलकुण्डके  
 लिये स्वदेश लौट आये। उन्होंने फिर से नरसिंह पर  
 कुछ प्रदेशों पर आक्रमण जमाया तथा गोलकुण्डके  
 सेनानायकोंकी युद्धमें परास्त कर और भी कई प्रदेशोंका  
 उबार लिया। नरसिंह पर पराक्रमसे दांडिबान्ध्यासे पुनः  
 हिन्दुराजके शत्रुपुत्र्यता सम्भारना हो ली। किन्तु  
 ईशंपरायण तिरुमल्लका कटिपुत्रिये हिंदुराजका आजा  
 भी लुका देवाने व शने सेनाच्छत्र हो गया। तिरुमल्ल  
 के आसनत्रयसे गोलकुण्डके सुलतानने महिसुराके सेना  
 पतिकी अनुपस्थितिमें महिसुरापर पर आक्रमण कर  
 दिया। उसके फलसे विजयनगरका दि दराज्य सत के  
 लिये विध्वस्त हो गया। सच पूछिये, तो तिरुमल्ल ही  
 विजयनगर धर्मसके मुख्य दाण थे। इससे स्वदेश  
 और राजाविद्रोही निन्कारको धनिके सिधा कुछ भी  
 लाभ नहीं हुआ। तिरुमल्ल इसके बाद सुलतान द्वारा  
 विशेषरूपसे उतपीडित हुए थे।

ई. ई. १५७१

मि० स्प्येलेके मतसे पीछे वेङ्कटपतिने अर्धान् १७२३  
 ई०के बाद तिरुमल्ल राजाका नाम देवनेम आना है।  
 १८०१ ई०का १२वीं जुलाईको मि० मतनेने नरसिंहके  
 पाम आनगुण्डाके राजाश्री का कुछ विवरण देने हुए  
 एक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा—आनगुण्डाके वसामान  
 राजा ( १८०१ ई०में ) विजयनगर राजवंशके दीहि  
 है। इनके पूर्वपुत्र्योंने सुम्भामानोंसे दरगणप्रहरी और  
 निन्नलदुर्ग जागीरमें पाया था। १८०० ई०के आरम्भमें  
 ये लोग मुगलबादशाहको (२००००) ६० कर देने थे।  
 १६४६ ई०में जब ये दोनों स्थान मराठों के अधीन हुए  
 तब आनगुण्डाके राजाको दस हजार ६० तथा एक हजार  
 पचासिक और एक सौ छुट्टनवार सैन्य मराठाप्र शासन  
 प्रजाकी देना पटना था। १७८६ ई०में टं पू सुलतानने यह  
 जागीर जप्त कर ली। राजा तिरुमल्ल निजामराज्यमें भाग  
 गये तथा १७६१ ई० तक वे पलायक अवस्थामें वहां रहे।  
 १७६६ ई०में उन्होंने फिरसे आनगुण्डा पर चढ़ाई कर दी।

इन्द्रोने अङ्ग्रेजोंको मजीमना खोदने लगी। क्रिस्तु पाछे इन्हें बाध्य हो कर भागसुन्दरीका शासनमार निजामके हाथ सौंपना पड़ा। इसमें राजा निठमल निजामके वृत्तिमोगी, हुए। निठमलने १८०१ ई०से निजाम से वृत्ति पा कर १८२४ ई०को मानवलीला संवरण की। निठमलके दो पुत्र थे। पिताके मरनेसे पहले ही बड़े बड़े के एक कन्याको छोड़ इन झोकसे थल बने। छोटे का नाम और येकूटराजि था। विवादके पहले ही इनकी मृत्यु हुई थी। वे १८३१ ई० तक जीवित थे। निठमल की पौत्रोके गर्भमें तिरुमलदेव नामक एक पुत्र और छम्प्रीदेवाममा नामकी एक कन्या जल्मल हुए। तिरुमल १८३६ ई०को पञ्जरको प्राप्त हुए। निठमलके बड़ेकी तीन पुत्र और एक कन्या थी। प्रथम पुत्र येकूटरामराय न्य पुत्र छम्प्रीदेव राय, पाछे येकूमा नामकी एक कन्या और इसके बाद नरसिंह राजाका जन्म हुआ। नरसिंहने १८७० ई० में जन्मग्रहण किया। इसके एक वर्ष बाद बड़े भाईका और इसके भी एक वर्ष बाद दूसरे भाई छम्प्रीदेवराजका वैवाह्य हुआ। येकूटरामराय को कन्याको छोड़ स्वर्ग बानी हुए।

विद्यानगरकी वृत्ति।

प्रथमसन्निवा तुल्लुमद्रा नदीके बाहिनी किनारे उस महासमुद्रिगामी हिन्दू राजकोशिके विद्वान्स्वरूप विद्या नगरका कर्मनाथरोप आज भी विद्युवमान रह कर विद्वया भगवती प्राचीन गौरवमहिमाको धेवित करला है। श्री मङ्गिपारण्य मुनिके समयसे ही विद्वयानगरके विद्वय वैभवका स्वरुपात हुआ। उन शुभ समयमें ही इस विद्याल दाम्यका परिमाण अर्घ्यगौरव और राजसैमय दिनों दिन बढ़ता गया। विद्वयानगरके विद्याल वैभवकी बात सुन कर पारस्य और यूरोप भादि क्पानोंके विदे शीय पर्यटकरुणय यह विद्याल नगर देखनेको आते हैं।

गतमेरी गिरिमा-वासी तरह सुप्रसिध सुप्रह दुर्गे माका, कश्चिकित्त इन्द्रपुत्रीको मान करेबासे वैभव शोभासय विद्वय सुख्य राजमासाद नगर्में बहनेवाकी बहुत-सी जयमवाहिका, शार्धुसंसा भादि सुखरित श्रीविप्रद गण अर्घ्युवित नैवमन्दिर अगण्य शिशाधर्मकुल विद्वया मय, विविध कारकायलनित प्रतिहारीमद्वल्लाधिप्रिन

सुशोभित दक्षमण्डल विविध द्रव्यसे परिपूर्ण अगण्य मोक्षमुकरित पण्यशामा विलासिजनसुखलस्य सुख्य प्रमोदमयन, विदरित्शोभासय अतामद्वय विविध कुसुमराजिराजिन, मयुकरकरन्मिथ मनोहर पुषोद्वयान, कमलकुसुमकण्ठारपूर्ण सरोवर, सौषधेणीके मध्यवर्ती सरल और सुशीघ राजपथ, हस्तिशामा अश्वशाला, गोधावास, फलक बोमसे अयनत फलोद्वयान मन्त्र मयन, समामद्वय, धर्माधिकरण भादि विविध नागतोप वैभवो विद्वयानगर द्विसी समय अगतके प्रभान शहर्में गिना जाता था। हृष्णदेव रापालुका शासनकालमें विद्वयानगरको समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। इस समय पसयपत्तनम्मे से कर नागनपुर पर्यन्त विद्वयानगर शहर विस्तृत था। इसकी लम्बाई १४ मील और चौड़ाई १० मील थी, इनका रकबा एक सौ चामीन वर्गमील था तमाम धनी बस्तो नगर बानी थी। दूर दूर देशोंमें भाये हुए व्यक्ति, राजप्रतिनिधि और राजदूतगण विद्वयानगरमें आ कर अपना अपना कर्म किया करते थे। विद्वयानगरक शासनकर्त्ताका समरनिमाण बहुत ही बढ़ा अछा था। हजार हजार मनुष्य इस विद्यागर्में समी समय विद्वयुक्त होते थे। सुदक सामान अर्घ्यवा सजा कर रखे आते थे। कुली कमरत और विविध प्रकारके व्यापामकी अर्घाका मष्ट्या प्रथम था। विद्वयानगरमें इस समय जो सब पहलुपान दिखाई देंगे थे, भारतवर्धमें जैसे और कहीं भी न थे। फिर दूमरी ओर विविध विद्यासज्जनक कलाविद्वयाकी भी पर्येय अर्घा हुई थी। सुगायन, नसक और लक्षिकीका भी अभाव न था। इस समय विद्वयानगरमें विविध शिवाकर्षकी इज्जति हुई थी। हजारों मनुष्य शिवा कर्मोंको इज्जति कर-सुखसे जीविका निर्वाह करते थे। स्वापत्य कायमे भी हजारों मनुष्यकी होविवा पसली थी। अगण्य सौषसमाकीर्ण विद्यानगर हजारों व्यगति को जीविका प्रदान करता था, यह सदर्धमें अनुमान किया जा सकता है। नित्य अश्वहाय अश्व और समराल निर्माणके कारण कर्मकारो का खूब आदर होता था तथा उनको खूब उज्जति हुई थी। फिर विद्वयानगर हिन्दू राजाकी राजधानी होनेके कारण यहां पीरोहितपोषीजी माल्लनोंकी स बरा भी बहुत शान्ना था। उस समय पर

घर प्रतिदिन दान दद्यादि होते थे। मन्दिर मन्दिरमें देव-पूजा, भोग और आगतिकके मङ्गल वाद्यसे विद्यानगर गूँज उठता था। फिर दूमरी ओर इङ्गिनियमण पथ घाट और मचन आदि पर्यवेक्षण किया करते थे। ट्टी-फूटी इमारत और राजपथकी मग्मन होती थी। हाथी और घोड़ोंको विविध शिक्षा देनेके लिये नैकड़ों आदमी नियुक्त रहते थे। ये लोग स्नाधारण व्यवहार तथा सामरिक व्यवहारके लिये हाथी और घोड़ोंको उचित शिक्षा देने थे। राजकवि, राजपरिणत, राज-सभाकी नर्तकी तथा विविध शिक्षामें शिक्षित स्त्रियों मनुष्य विद्यानगरमें वास करते थे। नाना श्रेणियोंके सम्प्रान्त, सुशिक्षित, सङ्गज्जोत लोगोंके वासमें तथा नाना देशीय धनी वणिकोंके समागमसे विद्यानगरके समृद्धि दिनेदिन बढ़ती गई थी।

मि० स्प्यूलने लिखा है, कि १५वीं और १६वीं सदीको विद्यानगरमें जो सब यूरोपीय पर्यटक आये थे उन्होंने साफ साफ लिखा है,—“आयतन और समृद्धिमें विद्यानगर यथाधामें एक प्रधान नगर है। धन-गौरव और वैभवमहिमामें यूरोपका एक भी नगर विद्यानगरके जोड़का नहीं है।”

२। निकोले (Nicolo) नामक एक इटलीके पर्यटक १४२० ई०में विद्यानगर आये थे। इन्होंने अपने वृत्तान्तमें लिखा है, “अशेष मनुद्धिशाही विद्यानगर पर्वतमालाके अमेद्वय प्राचरके पाश्वर्कमें अवस्थित है। इस नगरकी परिधिका विस्तार ६० मील है। अन्नमेदो प्राचीनने पाश्वर्कत्तों पर्वतश्रेणियोंके साथ सम्मिलित हा कर इस विशाल नगरको सुदृढ दुर्गमें परिणत कर दिया है। नये इनार रणदुर्गद घोड़ा समरसाजमें स्नाना सजित रहते हैं। भारतवर्षके अन्यान्य राजोंकी अपेक्षा विद्यानगर (Bizengcha)के राजाका वैभव प्रभाव और प्रतिपत्ति बहुत अधिक है।”

३। १४४३ ई०में अबदुल रजाक नामक एक पारसी पर्यटक विद्यानगरमें आये थे। वे बहुत-सी राजधानियोंका विवरण लिख गये हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है, “विद्यानगर राज्यमें तीन सी बन्दर हैं। प्रत्येक बन्दर किसी अंशमें शक्तिशाली बन्दरसे कम नहीं है।

विद्यानगरराज्यके उत्तरी प्रान्तमें दक्षिणी प्रान्त जानमें तीन महीना लगता है। प्रतिदिन २० मीलके हिमावसे जाने पर तीन महीनेमें अर्थात् ६० दिनमें १८०० मीलका रास्ता तै किया जाता है।” कुमारिका अन्तर्गोपसे उड़ीमाकी उत्तरी सीमा तक अवश्य ही १८०० मील होया। किसी समय उड़ीसेके उत्तर प्रान्तसे कुमारिका अन्तर्गोप पर्यन्त विपुल भूभाग विद्यानगरके राजाके शासनाधीन था। कृष्णदेव रायलुके शासनकालमें सोलम विद्यानगर साम्राज्यकी ऐसी विशाल विस्तृति-की बात देखते हैं। तबपच राजाकी उक्ति अन्युक्ति नहीं समझी जाती।

अबदुल रजाक पारसके राजदूत थे। विद्यानगर-राधिपतिने बड़े आदरसे उन्हें अपने राज्यमें बुलाया था। अबदुल रजाकने दूमरी जगह लिखा है, “विद्यानगरके राजाका ऐश्वर्यप्रभाव सचमुच अतुलनीय है। इनके पर्वतके समान ऊँचे हजारने अधिक हाथी देख कर मैं विस्मित हो गया हूँ। इनकी सेन्यसंख्या ग्यारह लाख है। सारे भारतवर्षमें ऐसे प्रभावशाली राजा और कहीं भी देखे नहीं जाते। जगत्में इसके समान और कोई भी शहर है, ऐसा मैंने आज तक नहीं सुना है। राजधानीकी वनावट देखनेसे मालूम होता है, कि मानो सात प्राचीरसे वेष्टित सात दुर्ग हैं, जो क्रमविन्यस्तभावमें बनाये गये हैं। राजप्रासादके निकट चार विपुल पण्यशाला हैं। उनके ऊपर तोरणमञ्च पर दो श्रेणियोंमें मनाहर पण्यबोधिका है। पण्यशाला लम्बाई और चौड़ाईमें अति विशाल है। मणिकारोंके पास विक्रयार्थ जो सब हीरा, मरकत, पञ्चा और मोती मुक्के देखनेमें आया वैसी मणिमुकाको मैंने और कहीं भी नहीं देखा। राजधानीमें विक्रने पत्थरोंका धनी दहुत-सी नहर देख कर मेरे आनन्दका पारावार न रहा। विद्यानगरकी जनसंख्या सचमुच असंख्य है। शासनकर्त्ताके प्रासादके सामने टरुशाल-घर है। १२०० पहर रात-दिन यहा पहर देते हैं।” अबदुल रजाकने विद्यानगरका एक उत्सव अपनी आँखोंसे देख उसके सम्बन्धमें अति परिस्फुट और सरस विवरण लिपिवद्ध किया है। उसके पढ़नेसे विद्यानगरके ऐश्वर्यके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें जानी जाती हैं।

४। युनिट (Unit) नामक एक पुरागीत परिभाषकने लिखा है, कि यह विद्युद्योगवापिपतिन रायचूड युद्धमें यात्रा को, उस समय उनके साथ ७०३०० पदाति ३२६०० अम्बारोदो सेना तथा ५५१ गजारोदो सेना थी। विद्युद्योगवापि राजाधिराजके नीमपका कुछ भागास पाठकोंको इस पृष्ठावसे हो प्राप्त हो सकता है। उन्होंने यह भी कहा है, कि पदाति और अम्बारोदो सेनाक अंशाका ६८०० घुड़सवार और ५०००० पैदल सिपाहा राजाकी वृद्धराजा कार्य करते हैं। इन लोगों को राजाके वेतन मिलता है। इनके अंशाका २०००० अल्पपारो और ३००० दासधारी सेना हाथियोंकी प्रहरीरूपमें उपस्थित रहती है। इनके अम्बारोदोकी संख्या १६०० अम्बगिरक १०० और राजकोष (शस्त्रोका संख्या २००० है। २०००० पादकी राजकायके लिये हमेशा तैयार रहती है।

५। पित्र (Pace) नामक एक दूसरे पुरागीत पर्यावरण कहता है, "कृष्णदेव रायालुके दश लाख सुशिक्षित पदाति और ३५ हजार घुड़सवार सेना युद्धके लिये हमेशा सुसज्जित रहती है। इनसे राजासे वतन मिलता है। राजा इनसे जब चाह, तब युद्धके लिये भेज सकती है। बहुत दिनोंसे मैं इस प्रान्तमें हूँ। एक दिन राजा कृष्णदेव रायालुके समुद्रके किनारे एक युद्धमें १५०००० सना और ५० सैनिक कर्मचारा भेजे थे। इनमें घुड़सवार सेनाकी संख्या अधिक थी। राजा कृष्णदेव थोड़े ही दिनोंमें २० लाख सुसज्जित सेनाका संग्रह कर सकते हैं। इससे कोई सेना न समझे, कि ये राज्यको प्रजाशून्य करके ही सैन्यसंख्या बढ़ाते थे। विद्युद्योगवापि साक्षात्पकी अतिसंख्या इतना अधिक है, कि बीस लाख अनुपमक चले जाने पर भी कोई हर्ष नहीं। यह भी कहना अच्छा है, कि ये सब सैन्य राजके मिथारी या मधे शीक खरपाईं नहीं थे ये सभी प्रकृत और भीरुता-हसी घोड़ा थे।"

६। दुभार्चो बारवोसा (Duarte Barbosa) नामक एक पर्यावरण १५०६ से १५१३ ई०के मध्य तमामल घमण करते हुए यहाँ आये। उन्होंने लिखा है, "विद्युद्योगवापि आबादी बहुत असाह है। राजासादा सुहर और बड़े बड़े हैं। इस नगरमें बहुतसे धनिकोंका वास है। राज

पय बहुपान और वायुमेघन-स्थल बहुत छोटे छोटे हैं। सभी जगह जनता ठसालस मरो हुई है। व्यवसाय और वाणिज्य मालो अनन्त गौरवसे विद्युद्योगवापिमें धिराज कर रहा है। फोल्कलानमें ६०० हाथी और अल्पवृद्धमें २०००० घोड़े हमेशा मौजूद रहते हैं। राजाक वेतन मोगो १००००० (एक लाख) सना सूर्यका उपस्थित रहती है।"

७। सीजर फ्रेडरिक नामक एक पर्यावरणका कहना है, "मैंने बहुत सी राजधानियाँ देखी हैं, पर विद्युद्योगवापिसे राजधानी कहीं भी देखनेमें न आई।"

८। कास्तन हेडा (Casteo Heda) नामक एक पर्यावरण १५२३ ई०को विद्युद्योगवापिमें आये। ये कहते हैं, विद्युद्योगवापि पैदल सिपाही मध्यम अल्पवृद्ध हैं। वेसा जनता पूर्ण रूपान और कहीं भी देखनेमें नहीं आया। राजाके पाम एक लाख वेतनमोगो अम्बारोदो सैन्य और चार हजार गजसैन्य है।" इन सब विवरणोंसे विद्युद्योगवापिकी अगुल समृद्धिका परिचय पाया जाता है। १००००० पदाति, ३०००० अम्बारोदो और ४००० गजारोदो सैन्य सिर्फ विद्युद्योगवापिमें रक्षाके लिये ही नियुक्त रहते थे। राजाकी वैद्यशास्त्रके लिये ६००० सुशिक्षित सुसज्जित अम्बारोदो सेना हमेशा राजाक साथ घूमा करते थीं। राजाके अपने व्यवहारके लिये एक हजार घोड़े थे, राजमहिषियोंको सेवाव्ययके लिये मजिमुला क्लामरजसे लकिन १२००० भारी रहती थी। विदेशीय पर्यावरण अक्षरक देख कर यह ही राजमहिषी समझते थे। राजसरकारके नित्य प्रयोक्तोय कार्यव्यवहारके लिये जो सब लिपिकार, कर्मकार, राजक और अन्योय कार्यकारी रहते थे, उनको संख्या २००० थी। भृत्य-संख्याका पाठ्यावरण था। राजमहल में सिर्फ राजाके ही सी पावक हमेशा नियुक्त रहते थे। कृष्णदेवराय जब रायचूड युद्धमें गये थे तब २००००० नरते किन्तु युद्धक्षेत्रमें लाई गए थे। राजमहिषी, शासनकर्ता, सैन्याध्यक्ष आदि ऊँचे मोहके राजपुत्रोंकी संख्या २०० थी। इनके सहचर अनुचर वृद्धराज सैन्य सामान और वृद्धराजको सपना भी १००००० से कम न थी। जहाँ सैन्यसंख्या इतनी थी, वहाँ पादके सादर आधिक संख्या कितना हो सकता है, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

विद्यानिधानके लिये नाना प्रकारकी सङ्ग्रहादी और विद्यालय थे। चाण्डिय-व्यवसायकी उत्पत्ति के लिये विद्यानगरप्रियोने अच्छा प्रबंध कर दिया था। विलासी उपकरण व्यवस्थाके लिये भी उत्पत्ति अवश्य भागी है। विद्यानगरमें गिल्डवाणिय और कृषि का यथेष्ट उत्पत्ति हुई थी। राज्यकी समृद्धि और जनसंख्या की अधिकता का इसका अकाष्ट्य प्रमाण है।

इस विद्यालय नगरमें चार हजार सुन्दर और विपुल देवमन्दिर अर्चनावायने हमेशा मूँजा करते थे। इनके मिया धर्मचर्चाके लिये और भी कितने छोटे छोटे मन्दिर बनाये गये थे, उसकी शुभार नहीं। विद्यानगरके राजाकी पालकीका मर्यादा थी २००००। जब दूतनी पालकी हुई, नव पालकी होनेवालीकी संग्रहा कितनी हो सकनी है स्वयं अनुमान कर सकने है। विद्यानगरकी विद्यालय समृद्धि कविका कल्पना वा उपान्यासकारकी असार जलना नहीं है। इसकी प्रत्येक बात प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकारके सुदृढ़ प्रमाणके ऊपर प्रतिष्ठित है।

विजयनगर शब्द देखो।

विद्यानान्द—१ सुकवि। धोमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरणमें इनका उल्लेख है। २ एक वैयाकरण। भाष्यशर्मनि इनका नामोल्लेख किया है। ३ जैनाचार्यभेद। ४ अष्टमाहलीके प्रणेता। इनका अपर नाम पालकेशरी था।

विद्यानान्दनाथ—लघुपद्धति और सीमापरतनाकर नामक महामन्त्रके रचयिता।

विद्यानान्द निरन्ध—एक प्राचीन तन्त्रग्रन्थ। तन्त्रसारमें इन ग्रन्थका उल्लेख मिलता है।

विद्यानाथ—१ प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक अलङ्कार और प्रतापरुद्रकल्याण नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इन्हें कोई कोई विद्युर्वाग्धि भी कहा करते हैं। कवि ओखल्लक काकतीयवंशाय राजा २य प्रतापरुद्रके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। (१३१० ई०)। २ रामायणटीकाके प्रणेता। इन्हें कोई कोई तामिल कवि वैद्यनाथ कह कर सम्बोध करते हैं। ३ ज्योतिषशास्त्रके प्रणेता। ये श्रोतानाथ सूरिके पुत्र थे। इन्होंने राजा अनूपसिंहके अनुरोधसे एक ग्रन्थ लिखा था। ४ वेदान्तकल्पतरुमञ्जरीके प्रणेता।

विद्यानाथ कवि—दोआववासी एक कवि। इनका जन्म १६७३ ई०में हुआ था।

विद्यानिधि—१ शतलक्ष्मिकानामक नाटकके प्रणेता। २ एक विद्यालय न्यायशास्त्र। ये शतलक्ष्मिकानके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित थे।

विद्यानिधितार्थ—भाष्यमप्रदायक ग्याद्वे' गुप्त। ये रामचन्द्रतार्थके शिष्य थे। १३७७ ई०में गणपतिके मर्गे पर ये गद्दी पर बैठे। १३८४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। मृत्युर्थमापरमें इनका आर इनके शिष्योंका परिचय है।

विद्यानिवास—१ दालागाहण पदार्थके प्रणेता। २ सुप्रसिद्ध भोवटीकाके रचयिता। ३ नरहोवराभा एक विद्यालय पण्डित। ये भाष्यार्थके रचयिता प्रणेता विश्वनाथ तथा नरचरिन्तामणिदाधनिध्यायाय रचयिता कट्टके पिता थे। इनके पिताका नाम था भवान्त गिहान्तयागोश।

विद्यानिवास भट्ट चार्थ—मन्त्रनिर्माणशास्त्रके प्रणेता।

विद्यानुलोमालिपि (सं० ग्नी०) लिपिविदोष।

(उजिननिरर)

विद्यापति—विद्यालय ज्ञाहण पवि और धनेक ग्रन्थोंके रचयिता। इन्होंने उपयुक्त पण्डितनगरमें जन्मग्रहण किया था। इनके पूर्वपुरुष सबके सब विद्वान् और यज्ञशी थे। पूर्वपुरुषोंके धीजपुरुषने पुत्रपौत्रादिकममें इनकी वंशधारा लोचने लीसी बात है।

१ विष्णुशर्मा, २ हरविद्य, ३ धर्मादित्य, ४ देवादित्य, ५ चोरेश्वर, ६ जयदत्त, ७ गणपति, ८ विद्यापति ठाकुर, ९ हरपति, १० रतिवर, ११ रघु, १२ विश्वनाथ, १३ पीना श्वर, १४ नारायण, १५ दिनमणि, १६ तुलापति, १७ एकनाथ, १८ भाइया, १९ नानु और कनिनाल। नानुलालके पुत्र बनमाली और कनिनालके पुत्र चर्चरीनाथ हैं।

विद्यापति ठाकुरके पिता गणपति ठाकुर मिथिलापति गणेश्वरके एक परम मित्र और सम्बन्धित् महा पण्डित थे। गणपतिने स्वर्गीय राजाके पारलिक मङ्गलके लिये अपना रचित "गङ्गाभक्तिरत्नो" नामक ग्रन्थ उत्सर्ग कर दिया था। विद्यापतिके पितामह जयदत्त भी एक असाधारण पण्डित थे। 'योगेश्वर' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। जयदत्तके पिता चोरेश्वरकी उनके पण्डित्य गुण पर मिथिलापति कामेश्वरने यथेष्ट वृत्ति दी थी। चोरेश्वरकी वनाई हुई प्रसिद्ध 'चोरेश्वरपद्धति' के अनुसार आज भी मिथिलाके ब्राह्मण 'दशकर्म' किया करते हैं।

विद्युत्पातिके खेरे पितामह अण्ड अर महाराज हरिसिंह  
 शैवक महामहत्तव साधिविग्रहक ये । उद्दाने स्मृतियुक्त  
 कर' नामक ७ स्मृतिनिबन्ध रथे हैं । इसके सिवा वीरे  
 श्यक्त पिता शैवाहित्य, पितामह चर्माहित्य और ठनक  
 पिता हाराहित्य आदि मिलिडाका राजमणिकृत्य कर गये  
 हैं ।

विद्युत्पातिके प्रथम उलसाहदाता प्रतिपाठक ये  
 मिथिलावाञ्छ शिवसिंह शैव । अपने एक मैथिली पदम  
 उद्दाने शिवसिंहक काल और गुणका इन प्रकार परिचय  
 दिया है ।

"अनन्त रत्नकर कल्पव्य पारबाँ लक लसुर कर भगिन सदा ।  
 बँतकरी छति बेठा निजमो वार बरप्यै जाडसवी ॥  
 शैवसिंह न पुरमी लुहई अद्यातन मुगाम सक ।  
 हुहु सुगान निदौ भव लोभत लपनरीन जग भक ॥  
 रेलहुभो धुविमोको राजा वीरल मोक पुपय बोझिभौ ।  
 लपले गङ्गासिखलक्षेवर शैवसिंह सुगुर बलिमो ॥  
 एक रिस जवन ककक रक बलिमो एक रित ठौ अमदान कर ।  
 हुहुय बसति अनोरव पुरमो गरुड दाग शिवसिंह कर ॥  
 सुलककुसुम बाँझ रित पुरमो हुनुहि सुन्दर वार भू ।  
 बीरद्वय रेलनको करण गुणय सोम गगन यक ॥  
 बरम्मी भन्वैहि महात्मक राजसुभ भरभवेक बदा ।  
 पवित्रय वर बाचार बलाग्निम माचकको बरबान कदा ॥  
 विजयबाँ करार एहु पापए माण्ड मन मान्ड भयो ।  
 शिवाहन शिवसिंह बरहो उल्लेख विबरी गयो ॥"

उक्त पदका तात्पर्य यह है, कि २१३ अक्षय्याशुभमें अथवा  
 १३२७ शक्राण्डके कैलासासी वषा तिथि स्येष्टामहात्मके  
 बृहस्पतिको शैवसिंह ह सुत्पामकी सिधारै । उनक सर्ग  
 बानी होमि पर मा उनका राज्य शून्य नहीं हुआ । उनक  
 पुत्र शिवसिंह ह राजा हुए । शिवसिंह इनमें अपने बाहुबलस  
 सुसलमामो की तुल्यके समान तुच्छ ज्ञान कर पराक्त  
 किया । यवनराज ज्ञान छे कर माग यथा । ज्ञानमें हुनुमुनि  
 बजने सधी । शिवसिंह हक मस्तक पर पुष्परूप होमि जगो ।  
 विद्युत्पातिके कवि कहते हैं, कि वही शिवसिंह ह असो तुम  
 सोमोंक राजा हुए हैं । तुम जोग निर्मय हो कर बास  
 करो ।

राजा शिवसिंह इन प्रसन्न हो कर शरीर बिसयो वा

बिसयो नामक प्राप्त दिया था । यह प्राप्त ब्रह्ममान इर  
 भूजा अिडेक सीतामढ़ी महकमेके अधोन आरैल पर  
 गतेमें कमळा नबीके कितारे अचलित्य है । यहां कविकों  
 वंशघरो का आज कक बास नही हैं । असो ये जोग वार  
 पीड़ासे सोटाठ नामक एक वृन्दे प्राममें रहते हैं । बिसयो  
 नाम शैवके अयल्लभमें राजा शिवसिंह हक विद्यापतिको  
 जो ताग्रशासन प्रधान किया था, उसके नष्ट हो जानेसे पर  
 पत्तोकात्ममें और भा कितने जानी ताग्रशासन बनाये गये  
 हैं । इन ताग्रशासनो में मा २६३ अक्षय्याशुभ उक्ता जाता  
 है । वहुतेरे एहो ताग्रशासनो को मूक बतलाते हैं, पर  
 यह उनको भूक है ।

शिवसिंहकी परमो राजी पछिमा इ धो सो विद्युत्पा  
 पतिको बहुत उलसाह व सो थीं । इसी कारण विद्युत्पा  
 पतिके अनेक पत्रोंमें अछिमा देकोका नाम पाया जाना  
 है । उनको पद्यांशसे यह भी जाना जाता है, कि ये  
 गवास्तुरीन और नसिरा शाह नामक दो सुभलमान  
 राजाओंके सो कृपा प्राप्त थे । इसके सिवा उद्दानेमें रामी  
 बिन्हासर बाके भाइअसे 'शैवसर्पलहार' और 'गङ्गा  
 वाक्याबली' पीछे महाराज कीर्तिसिंहके अ देगस 'कीर्ति  
 छता' तथा महाराज शैवसिंहके शासनकालमें पुबराज  
 राममद्र (कानारावण)के उलसाहसे 'दुर्गान्धितरङ्गिणी  
 को रचना का है । विद्युत्पातिके किमी कितो पत्रों  
 उनको 'विद्विपट्टहार' उपाधि व की जाती है ।

पूर्वके प्रयोगके अन्वयात् विद्युत्पातिके रचित पुठय  
 परीक्षा दानबाक्यावली, वयहृत्य, विमामलार, गवास्तुरन  
 आदि अनेक संस्कृत प्रणय निरले हैं ।

ये सब प्र य आज सो निर्वाणामें प्रकथित हैं । इनको  
 मनोहर पद्यांशिमो मेंसे एक गोथे उद्धृत्य की जाती है—  
 क्त चतुरान्न मरि मरि कावठ, ननु वा आदि भवताना ।  
 दोरे जन्मि गुनि दोरे लमारत, वमार सारो समाना ।  
 अरथ पुत्र दित, बहल वगर तिष्ठ, गगन घगन मेक कम्दा ।  
 मुनि गज कुमुदिनो लरमो दोहर भम, मूलक मुक अरविन्दा ।  
 कमरबदन बभ्रय डुर लोचन, मबर मनुक निरमाये ।  
 लकन बरीर कसुम ह्रम छिरजिह्व, किम हई ह्यय पराजने ।  
 अनम अरधि हन रूप निहारक, नयन न छिरपिठ मेष्ठ ।  
 छेई मयुर पीस भव्यदि दनक, सुविषय पथि न मेष्ठ ।



ये चैतन्यदेवके पूर्ववर्ती चण्डिदासके सम्प्रदायिक थे। चैतन्यदेवके सम्प्रदायमें इनका पदावलिवाका वडा आदर है। चैतन्यदेव मो इन पदावलियों का वडा आदर करते थे। जा हो, विद्यापति बिहार प्रदेशके कवि और गायक हैं।

२ एक बंदुवक ग्रन्थकार, बंगालके पुत्र। इन्होंने १६८२ ई० में बंदुवक-ग्रन्थपद्धतिकी रचना की। इसका बनाव, हुआ चाक्रताज्ञन नामके बार एक ग्रंथ मिलता है।

विद्यापति विहङ्ग—कल्याणके चालुष्यराज विक्रमादित्यका सभाके एक महाकवि। विक्रमादित्यके चरित काव्य और चौरपञ्चाशिकाका रचना कर ये प्रसिद्ध हो गये हैं।

विक्रमादित्यके १८वें सर्गमें कविने अपना जैसा परिचय दिया है, उससे जाना जाता है, कि काश्मीरकी प्राचीन राजधानी प्रवरपुरसे डेढ़ कोस दूर खानमुख नामके स्थान है। वहा कुजेक गालज मध्यदेशी ब्रह्मण बंशमें कविने जन्मग्रहण किया। गोपादित्य नामके एक राजा यहा कार्य करानके लिये मध्यदेश ने इनके पूर्वपुरुष की काश्मीर लये। इनके प्रपितामह मुकिकलश और गितामह राजकुलश दोनों ही आग्निहोत्रा और वेदपाठमें विशेष पारदर्शी थे। इनके पिता ज्येष्ठकुलश भी एक वैशाङ्गण थे। उन्होंने महाभाग्यकी टीका प्रणयन की। इन्हीं माताका नाम नामदेवी था। छोटे भाई इष्टराम और आप दोनों ही कवि और पण्डित थे। विहङ्गने काश्मीरम हा लिखना पढ़ना सीखा था। प्रधानतः चारों वेद, महाभाग्य पयन्त व्याकरण और अलङ्कारशास्त्रमें इनकी अच्छी ब्युत्पत्ति थी।

लिखना पढ़ना समाप्त करके ये देशभ्रमण और हिन्दू राजाओंकी सनाम अपनी कविता और विद्यापति परिचय देनेके अभिप्रायसे घरसे निकले। पहले ये जन्मभूमिका परिषदाग कर यमुनातटमें होते हुए पवित्र तीर्थ मथुरामें पहुँचे। इसके बाद इन्होंने गङ्गाको पार कर कनोजमें प्रदार्पण किया। कनोजमें कई दिनोंका पथपर्यटन क्लेश दूर कर ये पहले प्रयाग और फँले बनारस आये थे। बनारससे फिर पूर्वदिशाको न जा कर इन्होंने

पश्चिमकी ओर जाता कर दी। इसी समय डाहलपति\* कर्णके साथ इनका परिचय हुआ। महावीर कर्णने इनका बहुत सत्कार किया। कर्णकी सभामें कविने बहुत दिन बिताया था। वहा इन्होंने ऋषिगङ्गाघरका परास्त किया और रामचरितायशयक नामके एक काव्य की रचना की। पश्चिम ये सीतापतिकी राजधानी अथाध्या जा कर कुछ दिन ठहरे थे।

कल्याणपति सोमेश्वरने कर्णको परास्त या विनाश किया था। पण्डिते कर्णकी सभाका परिस्थान कर कवि पश्चिम भारतकी ओर चल दिये। धारा और अणद्विल राजका राजसभाका समुद्र तथा सोमनाथके माहात्म्यने हा कविकी पश्चिमकी ओर अकृष्ट किया था। जो हो, दुर्भाग्यवशतः धारा नगरका दर्शन तथा धारापति पण्डितानुरागा भोजराजके साथ इनका साक्षात् नाम न हुआ। ये मालवके उत्तरमें होते हुए गुजरात चले गये। अणद्विलशास्त्री राजसभामें जायद इनको आदर नहीं मिला, मालूम होना है, इसी कारण कविने गुजरातीयांकी अभद्रताको समालोचना की। सामनाथका दर्शन कर आप दक्षिण-भारतकी ओर अप्रसर हुए तथा रामेश्वर तकके स्थानोंका आपने परिदर्शन किया।

रामेश्वर दर्शनके बाद ये उत्तरकी ओर आ कर चालुष्य राजधानी कल्याण नगरमें पहुँचे। वहा राजा विक्रमादित्यने इन्हें "विद्यापति" या पण्डित राजपद दे कर सम्मानित किया। मालूम होता है, कविने इस कल्याण राजधानीमें ही जीवनकी शेषवस्था बिताई थी।

विद्यापति विहङ्गकी जीवनी पढ़नेसे शत होता है, कि ११वीं सदीके तृतीय चतुर्थांशमें इनका साहित्य-जीवन और देशभ्रमण समाप्त हुआ। विक्रमादित्य विभुवनमल्ल १०७६ ई०में प्रायः ११२७ ई० तक कल्याणमें आधिष्ठित थे। इसी समयके बीच विद्यापतिकी कल्याणपुरमें आ कर रहना माना जायेगा।

विद्यापतिस्वामी—एक प्राचीन स्मार्त्त। स्मृत्यर्थसागरमें इनका मत उद्धृत हुआ है।

विद्यापुर (स० क्ली०) नगरमें। (भारतीय ज्योतिःशास्त्र)

विद्यामट्ट—एक पण्डित। इन्होंने विद्याभट्टरद्वित नामके

एक वैधकप्रणय प्रणयन दिया । निर्णयामृतमें अन्नाङ्क  
नाथने इनका मत उल्टेका किया है ।

विद्यामरण ( सं० श्लो० ) विदुषा-एव आभरणं । १ विदुषा  
एव आभरण, विदुषामूर्त्य । ( श्लो० ) विदुषा एव आभरणं  
पश्य । २ विदुषारूप आभरणविशिष्ट, विदुषाविभूषिण ।

विद्यामरण—अण्डनअण्डकानुपरोकाक प्रयेना ।

विद्यामूर्य—एक मसिख परिहृत । इनका प्रकृत नाम था  
बलरैव विदुषामूर्य । इहाँमें १७५५ ई०में उरुलिका  
बहारी डोका, ऐक्यर्षकाइमिनोकाय, सिदान्तरस नामक  
गोविन्दमार्णवडोका, गोविन्दबिठ्ठलबलोडोका, उम्प  
कोस्तुम मीर उसको डीका, पट्टणभक्तो, माणवत सख्त  
डीका, साहित्यकौमुदी और रूपगोत्वामिरचित स्वयमासा  
को डोका बिना ।

विद्य मृत ( सं० पु० ) १ विदुषापर । विदुषां विमर्शति भू  
क्षिप् । २ विद्याम् ।

विद्यामणि ( सं० पु० ) विद्या एव मणिया । १ विदुषारूप  
एव विद्या । २ विदुषापण ।

विद्यामय ( सं० श्लो० ) विदुषा-स्वरूपे मयत् । विदुषा  
स्वरूप, विदुषाप्रधान, जो पूर्ण परिहृत हो ।

विद्यामहेश्वर ( स० पु० ) शिवस्मिन्मनेत् ।

विद्यामाधव—सुहृदार्चनक एवविना ।

विद्यामार्ग ( स० पु० ) यह मार्ग जो मनुष्यको मोक्षको  
ओर ले जाय, भेष्य मार्ग ।

विद्यारण्य ( स० पु० ) माधवाधर्म । स न्यासाधम  
प्रहण करनके पाठे ये इस नामसे परिचित हुए ।

विद्यानगर और विद्यारण्य स्वामी देखो ।

विद्यारण्य गुरु—अङ्गुसप्तशतके श्वारहवें गुरु ।

विद्यारण्यतीर्थ—एक संन्यासी । ये विश्वेश्वरतले गुरु  
थे । इहाँमें सविस्तरक ग्रन्थ बनाया ।

विद्यारण्यस्वामी (अण्डगुह)—अण्डगुहमातृकगणी संन्यासि  
सम्प्रदायके श्वारहवें गुरु । ये पुण्यपाद विदुषामूर्त्यतीर्थ  
के ( ११२८ ११३३ ई० ) शिष्य थे । संन्यासाधम प्रहण  
करनेके बाद ये विद्यारण्यस्वामी या विद्यारण्य मुनिके  
नामसे परिचित हुए थे । सन् १३८० ई०में इनके पूर्व  
वर्ती स्वतीर्थ और १०वें गुरु मात्तो अण्डगुहतीर्थके  
( ११३३ १३८० ई० ) तिलोत्थाप होने पर ये अण्डुदी मरके

अण्डगुह धीविद्यारण्यस्वामी नामसे विख्यात हुए ।  
संन्यासाधम प्रहण करनेके बाद विजयनगर या विदुषा  
नगरराजवंशस आपका जैना मठस्थ था, संन्यासोके  
जोबनको येना घटना शिष्ट्य भासोवनाको नामप्रो है ।

संन्यासाधमाधमप्रहणक पहले इनका नाम माधवा  
थार्य था । शक्तिप्रारणके सुप्रसिद्ध शास्त्रविदु मद्राज  
गोमोय ब्राह्मण सायण इनके गिता थे । इनका माताका  
नाम श्रीमतीदेवी था । वैद्यमाध्याकर सायणाचार्य इनके  
कनिष्ठ भ्राता थे ।

गुह्यमन्त्रानन्दो तदपत्नीके सुप्रसिद्ध दास्योन्नयनके  
निष्ठर सप्त १।८१ शकमें ( १२६० ई में ) माधव  
का जन्म हुआ । पिताके अत्यापकागुणसे दोनों  
इति ब्राह्मणकुमार विदुषागिज्ञामें विरोध पाएशो हो  
उठे । साय हा दोनों भाई छोरे छोरे पूषक मालमे या  
एकयोगसे विदुषनिपदादिका भाव और ज्ञाना ग्रन्थ  
एवना करने लगे । संन्यासाधम प्रहण करनेके पहले  
माधवाचार्यमें आचार्यमाधव वा पराशर्यमाधव नामसे  
पराशरस्त्रुनिको व्याख्या, जैमिनोय न्यायमासाबिस्तर  
या अर्थकरणमासा नामसे प्रामोसासूत्रभाष्य, मनुस्मृति  
व्याख्यान, कालमाधवीय वा कालनिर्णय ग्रन्थहर माय  
बोध, माधवोपशोविति, माधवोप माण्य ( वेदान्त ), सुहृदार्  
माधवीय शङ्करार्थशय मयर्षटनसंग्रह और वेद्यभाष्यादि  
बई ग्रन्थोंकी रचना की । इन सब ग्रन्थो क अन्तिम  
भागमें माधवाचार्यमें अपने पिताके नाम और गोक  
भादिका उल्लेख दिया है० ।

दोहा सेनेक बादमें दो माधव प्रहण्योबिन संस्कारबज  
गुह्यमन्त्र नदीके किनारे नित्य आ धीर ज्ञानादिये निरूप  
हो दास्योके सुप्रसिद्ध मुनैश्वरों मन्त्रिमें ज्ञान धीर  
बर्दा देवीको सर्वथा करन थे । यौवनका उद्ग म धादिसा  
ने माधवाचार्यके हृदयको अच्छी तरह मथना आरम्भ  
किया । दारिद्र्य दुःखको सहने हुए शुद्ध ज्ञानाध्ययन  
इनको अच्छा न लगा । ये क्रमशः अर्चकामाशासे भविभूत  
हो उठे । विजयनगरवंशीय भानगुहको राजवंशका ऐश्वर्य

• अण्डर दुर्बलने व अण्डगुहकी उरकनियिज्ञामें विद्या  
रण्यके एवनाविषयमें विदुष गनेव्या पूर्वा बुक्ति प्रयतन की है ।

उनकी प्रशिक्षित करने लगा । वे परश्रीकातर हुए सही, किन्तु कर्मवज किसी दूसरी वृत्ति में लग गये और उससे ही उनको अच्छा फल प्राप्त हुआ ।

स्वयं पेश्वर्ष्यावान् होनेको आज्ञासे माधव इष्टदेवाके शरणापन्न हुए और देवोको तुष्टिके लिये बड़ा कठोरतासे तपःसाधना करने लगे । देवो भुवनेश्वरीने प्रसन्न हो कर कहा, "वत्स ! इस जन्ममें तुम्हारे धनप्राप्ति ही कोई आज्ञा नहीं । दूसरे जन्ममें मेरे प्रसादसे तुम अतुल सम्पत्तिके अधिकारी हो सकोगे ।"

देवोके वाक्य सुन कर माधवके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । उन्होंने संसारधर्मको तिलाञ्जलि दे कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया । सन् १३३१ ई०में वे अपनी जन्मभूमि हाम्प्यो नगरको छोड़ कर शृंगेरी की ओर चले और वहाँ पहुँच कर वहाँके सुप्रसिद्ध शङ्कर मठाधिकारी आचार्य-प्रवर विद्याशङ्करतीर्थक चरणों पर गिरे । उस व्याकुलचित्त भुवक माधवको ज्ञान्तिके प्रथमो देव विद्याताशने उनको स्थान दिया और उनको विद्याबुद्धिका प्राख्य देव द्याष्ट्रचित्तसे उनको शिष्य पद पर नियुक्त किया । माधवाचार्यने उसी वर्षमें संन्यासाश्रम ग्रहण किया था । इसके कुछ दिनोंक बाद विद्युयानार्थ सन् १३३३ ई०में परलोकप्रवासो हुए । इसके बाद माधवाचार्यके अग्रजत्तो शिष्य भारतोद्घरण जगद्गुरुकी गद्दी पर बैठे ।

इसो वर्षमें अर्थात् सन् १३३३ ३४ ई०में ही दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकका फौजनि टाश्रिणात्यके हिन्दू राजजगलक पेश्वर्यासे ईर्षान्वत हो पहले आनगुण्डा पर आक्रमण किया । नगर पर घेरा डलनेके समय हिन्दू और मुसलमानोंमें घोर सघर्ष उपस्थित हुआ । इस मापण युद्धमें विजयध्वजवजाय अन्तिम राजा जम्बुशेखर मारे गये । ये राजा निःसन्तान थे । बादशाह यह सोचने लगे, कि गद्दी पर किसको बैठाया जाये, राज परिवारमें ऐसा कोई वच्चा न था, कि उसे गद्दी पर बैठाते । मन्त्रोंने आ कर कहा, कि गद्दी पर बैठने लायक युद्धमें कोई नहीं बच्चा है । अन्तमें बादशाहने उसी मन्त्राकी राज्यभिदासन पर बैठाया । इनका नाम था देवराय । किम्बदन्ती है, कि राजा देवराय एक दिन शिकार

खेलनेके लिये तुङ्गभद्राके दक्षिणी किनारे ( जहाँ इस समय विजयनगरका स्वमायजेव पडा हुआ है ) भ्रम रहे थे । तेने समय उन्होंने ध्याना, कि एक मत्तगोज गजोसे आ कर वाघ और सिद्धजिकारी चुनौती देव भिक्षु और आहत कर रहा है । राजा अपने चुनौतीके इस तरह आक्रान्त होत देव बहुत चर्चित हुए और इस अद्भुत और नैर्मागिक घटना पर विचार करने लगे । इसी चिन्तामें गलत हा कर चर्चा लोग चले । रातमें उम नदीके किनारे उपाननामें रत गज ( माधवाचार्य ) भान्यासोसे सेंट हुई । उन्होंने इस घटनाका विवरण उम संन्यासोसे कह चुनाया और इसका गभार्थ स्वर पूठा । उस समय संन्यासाने राजाको उत्तर देव घटना हुई थी, उम स्थानका यतलानेके लिये कहा । राजाने भी संन्यासोको यह स्थान दिया गया । संन्यासोउम समय राजाने कहा, कि तुम इस स्थानमें निरा और राजप्रासाद निर्माण करो । तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित यह नगर धनधान्य और राजजातिके अन्याय्य राजध निर्वाका शीर्ष स्थान अधिकार करेगा । राजाने उस संन्यासोका आदेश पालन किया । शीघ्र ही वहाँ एक प्रासाद और राजकार्योपयोगी अट्टालिकाये तैयार कर दो गईं । राजाने संन्यासोके मतानुसार इस नगरका नाम 'विद्युयजन' रखा ।

✽ पुत्तगोज भ्रमणकारी Fernao Nuniz अन्दाज सन् १५३६ ई०में विजयनगरके राजा अच्युतरायका कमाने उपस्थित थे । उन्होंने अपने भ्रमणवृत्तान्तमें उपयुक्त घटनाका विवरण दिया है । उक्त किम्बदन्तीसे मालूम होता है, कि किसी संन्यासोके नामानुसार अस्त विजयनगर पुन. रूढ़न हा कर 'विद्युयजन' नामसे प्रसिद्ध हुआ है । विद्युयजन उच्च विद्यारण्यका अग्रज मालूम होता है, सम्भवतः विद्यारण्यनगर रूढ़नमें विद्यानगर हुआ है । नुनोनेके मतसे देवरायका पुन सुदृग्गय था । सुरकराने वज्जानके सोमान्त तक सारे उर्दसे पर अधिकार कर लिया था । विद्यानगरको ऐतिहासिक प्यर्षालोचना करनेसे मानुम होता है, कि ये बुक या १६वें देवराय प्रसन्न पराक्रान्त राजा थे । पुत्तगोज पर्वटके ऐतिहासिक घटनाओमें बड़ी गहराई मचा दी है । क्योंकि अपने ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है, कि बादशाह महम्मद तुगलकने सन् १२३० ई०म आनगुण्डी पर आक्रमण किया और

वृत्तों एक किम्वदन्तीसे जाना जाता है कि मुसम मामोंके युद्धमें मयुक्क राजा जम्बुकम्बर मारे गये। इस के बाद राज्याधिकारके लिये राजधर्म घोरतर विपक्ष उपस्थित हुआ। उत्तराधिकारियोंने भयसममें सिद्धान्त पानेके लिये निरन्तर युद्धमें मिस रह कर देशमें घोरतर विश्रुत्या पैदा कर दी। इसी मरामरुताके दुर्दिनमें विजयनगर मरुमूमिषके रूपमें परिणत हुआ।

शुद्ध रा मउमें रह कर जम्बूमिषी इस मयातक विपयु का बात स्मरण कर माघवाकावर्ष (विशुकारण्य पति) का इत्यप रो उठा। उनसे मय रहा न गया शाश्व हो वे श्रुद्धोसे म्नि। मातृमूमिमें पशुंयने ही विद्युवारण्यस्वामी मयनी इच्छेयोके मांम्वरमें गये और छात्रादि कर विवि पत्त देवीको मर्षमा करने लगे। उसक बाद देयामे उनको ध्यातमें दर्शन दे कर बहा,—“वरस। समय पूर्ण हुआ है। तुमने संसारधर्म त्याग कर संन्यास ग्रहण कर म्बान शोभन प्राप्त किया है। अतएव गार्हस्थ्य जम्बुक लिय यह तुम्हारा वृत्त जम्ब हुआ है। इस समय मेरे वर मस्रावस तुम मयुक्कसम्पत्तिके अधिकारो बन कर इस मय राज्याका पुनरुद्धार कर सनातन हिन्दू-धर्मका विस्तार करा।”

द्वैतका भाशीर्वाद् शिर पर धारण कर विद्युवारण्य स्वामीने शैबोक चरनीमें नियन्त्र किया, 'मा। मीं मर्ष के बिना कौसे मय राजवका उद्धार करू ? कौट कौसे घन हीन मजामण्डली मयका समृद्धि बढ सकतो है ?' उन समय द्वैतके भादैनसे स्वर्णको वृद्धि हुई। (मनमायारण का विश्राम है कि विद्युवारण्य स्वामीने धानबलम स्वर्ण वृद्धि की थी। सन्पासीको मर्षकी भावप्रवृत्ता नदी) केवल बुद्धका मजका बुद्ध दूर करनेके लिये ही ये मर्षा मय विद्युवारक' मिसा करते हैं। भात्र मा कितने ही म यु

पुत्र्य ऐसे ही मशीतिक शान्तिमयत्र होने जात हैं।) इतमर्षाल मजामण्डला स्वर्ण प्राप्त कर फिर एक बार घन माछा बन गई। ये मोग भयम भयम घर बना कर मातीय क्यमसाव बाणिज्य करने लगे भीर मगतको शोभा भीर मर्षुय बढान लगे। राज्याधिकृत या मरकागे मूमिमें जो सुपर्ण वृद्धि हुई यह उठा कर राजकोषमें एकत्र कर दिया गया। इस समय विजयनगरके मणय गोत्यके पुनय दारकी विस्ता दूर हुई। शीघ्र ही विजयनगर घन भीर शस्यसमृद्धिसे परिपूर्ण हो गया। इस समय विद्युवारण्य स्वामीने इस मगरका नाम माने नाम पर विद्युवातगर रखा। हायीक एक देवालयमें विद्युवारण्य स्वामीको उरकोर्ण इसके मन्मथका शिवालिङ्ग दिखाए गेती है। इस पर १२५८ शक ( १३३६ ई० ) खुदा हुआ है। सुतराँ इसक पूर्ण तथा जम्बुक प्रवरकी मृत्पुक बाद मरीच १३३५ ई० म उरहामे यह मगर म्धारित किया था। उरहामे भयने या भयत प्रतिनिधि द्वारा प्रायः १६ वर्ष तक विद्युवातगरका राज्य किया।

विद्युवारण्यका वैभक्तिने प्रमाभम शोष ही निरुपा मगर सुशामित और समृद्धिमयत्र हो उठा। वागमार्गा सुमारा विव्व विम माघवाकावर्षत तत्र घनमयम मल रहता नदी लाहा। विपयनेमवमिम्यु' संन्यासाकी तरह मन्दा परम तस्याधेयममे रत रह कर ज्ञानमयाज्ञा तियाई करना हा उनकी याँउा हुई। उरहो मे भयने मिय गिष्य बुद्धरुके हाथ राज्यमार भयण कर दिया। इसन ही विद्युवातगरमें संगमरज्यकी प्रतिष्ठा हुई। हायीकी शिवालिङ्गिने राजा बुद्धरायका पाद्बमस्तान होना दिखा है। कर्हो कर्हो उनका कुपर्वगोय मा मागा गया है।

राजा बुद्ध भीर विद्युवारण्यके मन्मथमे दाक्षि षारयमे कर किम्वदन्तिया प्रकलित है। इसन विद्युया रण्यका बहुत कुछ परिणय नियता है। यहाँ से प्रमयू कक्रम हो जानी है—  
(१) यहाँके तिकारे एक मुद्राम विद्युवारण्य बुद्ध नामक मगरका एक जाना था। इस तरह कई मने राबा की।

मन्थः १९ वप तः उर राजके वाप मुद्र किया। मुद्रिके मयमें संकषमिन्मालका मय हागा। उरको १२३० का मय १३२० मान ठिया बाप और उरमें १३ वर्ष मुद्रकाल कोइ दिया जाने, तो १३३२ ई० मया मन्मुद्ररका मृपुक्राष मा जाय है। मुद्रिको मयाय पूर सक्याय स्वृदेय मारने ममारक ठानि किया है।

मठको जगद्गुरु हुए। उन्होंने बराजक विजयनगरमें आ कर किसी राजवंशका सन्धान न पा कर उस बहोरके पुत्र बुक्कको ही राजसिंहासन पर बैठाया।

(२) योगी माधवाचार्यको विजयनगरमें बहुत गुप्तधन प्राप्त हुआ। उन्होंने कुरुवंशीय एक मनुष्यको यह धन दे दिया। इसी व्यक्तिने पाँछे एक नये वंशकी प्रतिष्ठा की।

(३) हुक्क और बुक्क नामक दो भ्रान्ता बरङ्गलके प्रतापव्रदेवके राजकोपाध्यक्ष थे। वे अपने गुरु विद्यारण्यके समीप शृङ्गेरी मठमें भाग आये और उनके प्रभावसे उन्होंने सन् १३६६ ई०में विजयनगर साम्राज्य स्थापित किया। हुक्क पहले और उनके बाद बुक्क राजा हुए।

(४) सन् १३३३ ई०में इवन बतूना भारतमें आये। उन्होंने विजयनगर राज्यस्थापनके सम्बन्धमें लिखा है, कि सुलतान महम्मदके भतीजे बहाउद्दीन शासनाय काम्पिलराजके यहाँ आश्रय लेने पर सुलतान उसको दण्ड देनेके लिये सदलबल अप्रसर हुए। यह काम्पिल दुर्ग तुङ्गभद्राके किनारे आनगुण्डोसे ४ फीस पूर्वमें अवस्थित है। काम्पिलराजने भोत हो कर बहाउद्दीनको निकटवर्ती एक सरदारके पास भेज दिया। इसी सूत्रसे आनगुण्डोराजके साथ मुसलमानी सेनाओंका युद्ध हुआ। राजा युद्धमें मारे गये और उनके ११ पुत्र कैद कर लिये गये। सुलतानने उन्हें मुसलमान बना लिये। सुलतानको आक्षासे आनगुण्डो राजमन्त्री देवराय वहाँके अधीश्वर हुए। इसके बादके विषय पर इवन बतूना और जुनिजकी अनेक बातें मिलती हैं।

(५) बुक्क और हरिहर (हुक्क) बरङ्गलराजके मन्त्री थे। सन् १३२३ ई०में बरङ्गलराज्य मुसलमानों काग तहस नहस होने पर वे घोड़ेकी सवारासे आनगुण्डोमें चले आये। यहाँ माधवाचार्यसे जान पड़ जान हो जाने पर उनके साहाय्यसे ही उन्होंने विजयनगरराज्यको स्थापना की।

(६) सन् १३०६ ई०में मुसलमानोंने बरङ्गल पर घेरा डाला। इसके बाद यहाँ मुसलमान शासनकर्ता नियुक्त हुआ। इस मुसलमान शासककी अधीनतामें

बुक्क और हरिहर काम करने थे। सन् १३१० ई०में द्वारसमुद्रके होयशल बहाल राजाओंके विरुद्ध प्रेरित मालिक जाफूरके साहाय्यार्थ और बुक्कके शासनकर्तामें उनको भेज दिया। यहा बहाल राजाओंसे पराजित हो कर ये दोनों भाई मरुतबल आनगुण्डो राज्यमें भाग आये। यहाँ एक गुहामें विद्यारण्य स्वामीसे उनका परिचय हुआ। साधुत्तमने विद्यानगर स्थापनामें उनको सहायता दी थी।

(७) उक्त दोनों भाई दक्षिणात्यके शासनकर्ता मुसलमानोंके अधीन काम करने थे। मालिककी मन्तृषिके लिये वाध्य हो कर उनके धर्मनैतिकविरुद्ध कितने ही कार्य करने पड़े। उनमें मनमें निर्वेद उपस्थित होने पर वे भाग कर पार्वत्य भूमिमें आये। उनके प्लमें यहा बहुत आदमी मिल गये। विद्यारण्यस्वामीके परामर्शसे वे यहाँ विजयनगर स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे।

(८) हुक्क और बुरत दोनों ही होयसल बहाल वृषणियोंके अधीनमें सामन्तगजे थे। राजादेशसे उनको आनगुण्डो और उसके समीपवर्ती प्रदेशोंमें भूमनेकी सुविधा मिली। यहाँ विद्यारण्यके साथ भेंट हो जाने पर उनके परामर्शसे विजयनगर राज्य तथा राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। कसोपर्यायक निरिदिन १४७४ ई०में भारतभ्रमण करने आये थे। उनका कहना है, कि बुक्क और हरिहर वनवर्माके कादम्बवंशसम्भूत हैं। विजयनगरमें ही उनका राजपाट था। उन्होंने उनकी "हिन्दूसुलतान कदम" कहा है।

उपर्युक्त किम्वदन्तियोंकी स्पष्टता आलोचना करने पर मालूम होता है, कि विद्यारण्य स्वामी शृङ्गेरी मठमें आचार्य होनेके बाद आनगुण्डो राज्यमें अराजकता देख कर ये तुङ्गभद्राके किनारे आ पहुँचे। यहाँ एक पर्वत गुहामें वे योगमाधन कर रहे थे। उन्हींकी कृपासे बुक्कराय और हरिहर विद्यानगर राज्यकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुए। यद्यपि शृङ्गेरी मठकी विवरणीमें और रायवंशावलीमें विद्यारण्यके द्वारा विद्यानगर प्रस्थापनकी बात लिखी है, तथापि यह स्वीकार करना होगा, कि उनके शत्रुद्वेषी राजा बुक्करायके उन्हींके परामर्शसे इस विस्तीर्ण राज्यका विशेष

रक्षताके साथ सासन किया था। इतिहासमें आज भी  
बुक्कराव और हरिहरका प्रभाव ज्ञापित हो रहा है।

विद्यानगरराज्य के देखो।

विद्यानगरके सङ्गमराज्य शकी सूचीमें पहले बुद्धराय  
पोंटे सङ्गमराज्य और इसके बाद इनके पुत्र हरिहर (१म)  
और बुक्क (१म) का नाम मिलता है। उक्त त किम्बदन्तियोंसे  
मालूम होता है, कि बुक्क या हरिहर पहले और बुक्क  
पोंटे राजा हुए। राज्य शकी सूचीमें भी हरिहर (१म)को  
सन् १३३६ ई०से १३५४ ई० और बुक्क (१म)को १३५४  
ई०से १३७७ तक विजयनगरका राज्यासासन करते देखा  
जाता है। सुतरां विद्यारण्यके शिष्य बुक्क हरिहरके  
भ्राई थे, इनमें कोई सम्भेद नहीं। पश्चिम शक्तिशाली बुक्क  
विद्यारण्यके शिष्य हो, तो इनको और उनके पुत्र संगम  
राजको एक वर्षमें ही काळराज्यमें फेंकने बिना देति  
वासिकभी सत्परसा ही हो नहीं सकती।

पहले ही कहा जा चुका है, कि विद्यारण्य ज्ञामी  
सन् १३३६ ई०में जयनगरकी स्थापना पूर्वक यतिपरममें  
वासित हुए। सन् १३३७ ई०में विजयनगर आ कर  
उस देश समगच्छा फिरसे संस्कार कर उन्हीं उसका  
नाम विद्यानगर रखा। इस समय इनकी उम्र प्रायः  
६३ वर्षकी हुए थे। सायु विद्यारण्यने नाममात्रकी आज्ञासे  
अपने नाम पर नगरकी स्थापना की थी, ऐसा अनुमान  
सुकि-सुक नहीं मालूम होता। बहुत सम्भव है, कि  
हरिहर और बुक्कने उनके प्रसाद और परामर्शसे राज्य  
प्राप्त किया था। इससे उन्हींमें मुख्य नाम पर ही  
इस नगरका नामकरण किया हो। बुक्क गण्यके  
बाद राजा हरिहर द्वितीयने १३७७ ई० तक राज्यशासन  
किया था।

पठकी सूचीके अनुसार विद्यारण्यज्ञामी १३३१सं  
१३८६ ई० तक संन्यास आश्रममें थे। सन् १३८० ई०में  
उनके सतीर्थ भारतीयोंकी मृत्यु होने पर १३८६  
ई० तक वे जगद्गुरु रूपसे प्रसिद्ध हुए। अपने शेष  
जीवनमें उन्होंने अपने त्रिप राज्याप्तिकी रक्षाके लिये  
हरिहर प्रथम, बुक्क प्रथम और हरिहर द्वितीयको परा  
मर्त्य दैत थे, इसमें सम्भेद करनेकी जरूरत नहीं।  
अक्षर्य ही यह लोकार करना होगा, कि वे सदा मन्त्री

रूपसे मन्त्रिसमामें प्रस्तुत नहीं करते थे। वे भीष्मके तो  
मर्ममें हो रहते थे और कभी कभी विद्यानगरमें  
जाते थे। काहीविलासशिष्य माधवमन्त्री भाई वृत्त  
५६ व्यक्ति इनके भाईरुस राज्यकावर्षको पर्यालोचना  
किया करते थे।

विद्यारण्य (स० पु०) विद्यारण्य, विद्युवा।

विद्यारण्य (स० पु०) विद्युवा। आरम्भ। वह स स्कार मिस्र  
विद्युवाकी पढ़ाई आरम्भ होती है। विद्या देखो।

विद्याराज्य (स० पु०) १ बौद्ध यतिमेव। २ विष्णुसूक्तिमेव।

विद्याराम—रसदार्पिकाक प्रणेता।

विद्याराशि (स० पु०) शिष्य।

विद्यार्थिन् (स० पु०) विद्युवामर्त्ययित्तु शीघ्रमस्य अर्थ  
जिति। छात्र, वह जो विद्युवा शिक्षाकी प्रार्थना करता  
हो।

विद्यार्थी (स० पु०) विद्यार्थिन् देखो।

विद्यालङ्कार महाभाष्य (स० पु०) १ संक्षिप्तस्वकारके प्रसिद्ध  
शेकाकार। २ सारसंमह नामक ज्योतिर्मन्थके रचयिता।  
३ विश्वमङ्गलपरिचय कर्णामृतक शेकाकार।

विद्यालय (स० पु०) विद्युवाया। विद्युवाशिक्षाया। भाष्यः  
स्थानं। विद्युवाशिक्षाका स्थान, पाठशाला।

प्राचीन भारतकी विद्युवाशिक्षाक स्थान पाठशाला  
या गुरुकुलस वर्तमान यूरोपाक प्रथाके शिक्षास्थान स्कूल  
(School) में बहुत सम्यक है। इस विद्यालयमें ज्ञान उच्च  
अधीकी शिक्षा ही जाती है, तब उसे विश्वविद्युवालय वा  
कॉलेज (University या College) कहते हैं। विद्युवालय  
वा कॉलेजका मकान कैसा होनेसे शिक्षा देनेमें  
सुविधा होती है तथा बाळक और युवकोंकी शिक्षायोग्य  
किन दिन वस्तुओंका रहना आवश्यक है, उच्चशिक्षाप्रथम  
वर्तमान पाठशालाक परिचयमें गहरी कोश करके उस  
विषयकी एक तामिका बनाई है। विद्युवालयके पुराहिका  
लोकस्थान निर्देश करने आज कल बहुतसे "School ball-  
ding" विषयक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। इन सब ग्रन्थों  
में वर्तमान प्रथासे परिचालित Boarding School  
Kindergarten School जाहिकी भा अथवा अक्षर्य  
देखी जाती है। विशेष विवरण स्कूल और विद्यालय  
ग्रन्थमें देखो।

विद्यावंश (सं० श्लो०) विद्युदाकी तालिका । जैसे—धनुर्विद्या, आयुर्विद्या, जिल्पविद्या, ज्योतिर्विद्या इत्यादि ।

विद्यावन (सं० त्रि०) विद्युदाम्बुन्येति विद्युदा-मनुप् मस्य व । विद्याविजिष्ट, विद्वान् ।

विद्यावल्लभरत्न (सं० पु०) रत्नोपविशेष । प्रस्तुत-प्रणाली-रत्न १ भाग, ताँबा २ भाग, मैनामल ३ भाग, हरताल १२ भाग, इन्हें एक साथ मिला कर करेलेकें पत्तोंक रत्नमें घटे । पीछे ताँबावत्क नध्यभागमें रत्न कर वालुका यन्त्रमें पाक करे । यन्त्रकें ऊपर रत्ने हुए धान जव फूट जायें, तब पाकका हुआ जानना चाहिये । इसकी मात्रा २ वा ३ रत्ता है । यह विषमज्वरनाशक माना गया है । इसके नेत्रन कालमें तैलाभ्यङ्ग और अन्न-भोजन निषिद्ध है ।

विद्यावागाज मट्टाचाय—न्यायलीलाचता-प्रकाशदाश्रिति-विशेकक रचयिता ।

विद्यावान् (सं० पु०) विद्वान्, परिणत ।

विद्याविद् (सं० पु०) विद्युदा वेत्ति विद् क्विप् । विद्वान्, परिणत ।

विद्याविनाद (सं० पु०) विद्यया विनोदा । १ विद्युदा हाग निन्नावनोदन । २ मस्कृत ग्राम्भविद् पंडितोंकी एक उपाधि । ३ निर्णयसिन्धुधृत एक स्मृतिनिबन्धकार । ४ भोजप्रयन्धधृत एक रवि । ५ देवोमाहात्म्य टाकाकार । ६ प्राकृतपद्यटाकाके प्रणेता । ये नारायणक पुत्र थे ।

विद्याविषद (सं० त्रि०) ध्यानके विपरीत, बुद्धिमें बाहर ।

विद्याविशारद (सं० पु०) विद्याविपुण, परिणत ।

विद्यावेदप्रन् (सं० श्लो०) विद्युदाया वेशम गृहं । विद्युदा-गृह, विद्युदालय, स्कूल ।

विद्याव्रत (सं० पु०) वह व्रत जो गुरुके घर रह कर विद्युदा-जिज्ञाके उद्देश्यमें धारण किया जाता है ।

विद्याव्रतस्नातक (सं० पु०) मनुके अनुसार गृहस्थभेद, विद्युदा और व्रतस्नातक गृहस्थ । जो गुरुके घर रह कर वेद समाप्त और व्रत असमाप्त करके अपना घर लौटता है, उसे विद्याव्रतस्नातक और जो व्रत समाप्त और वेद असमाप्त करके अर्थात् समूचा वेद बिना अध्ययन किये ही घर लौटता है, उसे व्रतस्नातक कहते हैं । वेद और व्रत दोनों समाप्त कर जो अपना घर लौटता है, वह विद्याव्रतस्नातक कहलाता है ।

विद्यासागर (सं० त्रि०) १ सर्वशास्त्रविन् । सागर जैसे सब रत्नोंका आधार है, वैसे ही सब विद्युदास्तोंका जो आधार है, वही विद्युदासागर कहलाता है । (पु०) २ एक छण्डनखण्डनायटाकाकार । ३ कलादीपिका नामकी भट्टिकाव्यटोकाके रचयिता । भरतमल्लिक और अमरकोष टाकामें रमानायने यह टीका उद्धृत की है । ४ महा-भारतके एक टोकाकार । ५ एक प्रसिद्ध बंगाली पंडित । ईश्वरचन्द्र देखो ।

विद्यास्नातक (सं० पु०) मनुके अनुसार वह स्नातक जो गुरुके घर रह कर वेदाध्ययन समाप्त करके घर लौटा हो

विद्युच्छब्द (सं० पु०) राक्षस ।

विद्युच्छिन्ना (सं० श्लो०) १ रथोवर विषके अन्दर मूल विष । २ एक राक्षसका नाम । (कथासरित्सा० २५।१६६)

विद्युजिह्व (सं० पु०) विद्युदिव चञ्चला जिह्वा यस्य । १ रामायणके अनुमार रावणके पक्षके एक राक्षसका नाम । २ एक यक्षका नाम ।

विद्युजिह्वा (सं० श्लो०) कार्तिकेयकी एक मातृकाका नाम ।

विद्युज्ज्वाल (सं० पु०) एक राक्षसका नाम ।

विद्युज्ज्वाला (सं० श्लो०) विद्युत् इव ज्वाला यस्याः । कलिकारी या कलियानी नामक वृक्ष ।

विद्युत् (सं० श्लो०) विशेषेण द्योतने इति विद्युत् (भ्राजभासेति । पा ३।२।१७७) इति क्विप् । १ सन्ध्या । (मेदिनी) विद्योतने या द्युत् क्विप् । २ तडित्, विजली । पर्याय—शम्पा, गतहृदा, हादिनी, पेरान्वती, क्षणप्रभा, सौभागिनी, चञ्चला, चपला, (अमर) वीगा, सांदग्नी, चिलमीलिका, सज्जू, अचिरप्रभा, अस्थिरा, मेघप्रभा, अगनि, चटुना, आचिररोचि, राधा, नीलाक्षना । (जटाधर)

यह विद्युत् चार प्रकारकी है । अरिष्टनेमिकी पत्नीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है । (विष्णुपु० ११५ अ०)

इन चार प्रकारकी विद्युत्तोंमें कपिलवर्णकी विद्युत् होनेसे वायु, लोहितवर्णकी होनेसे आतप, पीतवर्णकी होनेसे वर्षण तथा अस्तिवर्णकी विद्युत् होनेसे दुर्भिक्ष होता है । ३ एक प्रकारकी वीणा ।

४ उल्काभेद । बृहत्संहितामें लिखा है, कि विष्णु, अशनि, विद्युत् आदि उल्का अनेक प्रकारकी हैं । उनमें-

से तटतटभङ्गा बिद्युत् प्राणियोंको पचापक भय देते हुए भीव और इन्धनके डेर पर गिरती है।

यह इन्का अन्तरोक्ष हा ज्योतिःपदार्थ मानो जाती है। ज्योतिःशास्त्रमें विषय, इन्का, अग्नि, बिद्युत् और तारा ये पांच प्रकारके भेद किये हैं, इनमेंसे उन्काक अनेक भेद देखे जाते हैं। अग्नि नामक अन्न मनुष्य, गन्ध, अन्न, मूत्र, पाषाण, गृह, तट और पर्वतदि पर मोरसे शब्द करता हुआ गिरता है। पृथिवी पर गिरनेसे वह अणुकी तरह धूम कर इस अणुकी फाड़ देता है। बिद्युत् इन्का तट-तट शब्द करके प्राणियोंको भयभीत तो कर देती है, पर वह साधारणतः भीव और इन्धनके ऊपर गिरती है तथा उसी समय इसको अन्का देती है। बिद्युत्का आकार कुटिल और बिशाळ है।

बिद्युत् और अग्नि प्रायः एक ही है; किन्तु प्रकृति विरोधी प्रकृता निरूपण करके उनको दो विभाग निर्देश किये गये हैं। ज्योतिर्विज्ञानज्ञ उत्पत्तये अग्नि शब्दका अर्थ "अन्नवधनमुत्पादने दो वा" अर्थात् कर सन्नेहको दूर कर दिया है। अतएव इन्हे वर्तमान Meteorites या aerolites समझनेमें कोई आपत्ति नहीं देखी जाती।

बिद्युत् और अग्निका तुमरा भय मो है, उन्की अर्थमें साधारणतः उसका प्रयोग हुआ करता है। बिद्युत् के उत्पत्ति कारणक सम्बन्धमें भीपत्तिये कहा है, कि सूर्य ससुद्रमें बाङ्गर्षण नामकी अग्नि रहती है। इसी से धूममाळा निकल कर पवन द्वारा आकाश पथमें झाई जाती और इधर उधर विक्षिप्त होती है। पोछे सूर्यको किरण पड़नेसे अब वह उच्छ्वेत हो जाती है तब इसमेंसे ओ सब अग्निस्फुरिङ्ग निकलते हैं बहो बिद्युत् है। कभी कभी यह बिद्युत् अन्तरोक्षसे स्वकिण हो कर मू पृष्ठ पर गिरती है तथा अणुका बहुत अन्धि करती है। बिद्युत्प्रायक सम्बन्धमें उक्त प्र प्रकारका कहना है, कि वैद्युत् शक्तिमें अब मकस्मात् मित्रो भाई मिल जाती है, तब यह प्रतिबन्ध वा अनुकूल पवनके आघातसे आकाश में आस्थाकी तरह झमक करने लगती है। अन्काळमें गृधि पातके समय वह पृथिवी पर गिरती है तथा वर्षाकाल में धूयके नदी उठनेसे विद्युत्पात भी होने नहीं पाता।

पार्थिव, जलोप और विजसक भेदसे विद्युत् तीन

प्रकारकी है। एहत्स हितामे बिद्युत्सता, विद्युत्सामन् भादि शब्दोंका प्रयोग देखनेसे माळूम होता है, कि वह सब शब्द विभिन्न प्रकारकी बिद्युत्में ही आरोपित हुए हैं। उन्हे आधुनिक वैज्ञानिकको Stroums ramified, meandering भादि अनेक प्रकारका बिद्युत् (lightening) समझनेमें कोई भ्रम न होगा। विष्णुपुराण में (१।५) कपिला, अतिसोहिता, पोता और सिता नाम की चार प्रकारका बिद्युत्का उल्लेख है। श्रीधरस्वामीने लिखा है, कि तुफानके समय कपिला, प्रथम प्रीथकालमें अतिसोहिता, वृष्टिके समय पोता और तुमिस्तक दिन सिता नामको बिद्युत् दिखाई देती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतसे मेघ ही बिद्युत्का एकमात्र कारण है, किन्तु सभी अवस्थापक इसे माननेको धैर्य नहीं। परन्तु उन्होंने परीक्षा करके देखा है, कि समुद्र और स्थल भागकी ऊपरवाली वायुकी तड़ित् (Electricity) एक माहापन्न नहीं है किन्तु अलक वापी मूत होते ही इसमें तड़ित् दिखाई देती है तथा मेघकी अलकणामें वह बिद्यमान रहती है। आलकणके एकत्र और घनीभूत होनेसे वह अलकणामें परिणत होती है तथा उसका साथ आलक तड़ित् बिद्युत्के आकारमें दिखाई देती है। फिर आलकणका घनीभूत होनेमें धूळि कणाकी भी आवश्यकता होती है।

इन सब बिषयोंकी एक एककी पर्यालोचना करनेसे माळूम होता है, कि बिद्युत्की सम्भावनाके सम्बन्धमें आधुनिक ज्ञानके साथ प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी ठिकठी उतनी विभिन्नता नहीं है।

बिद्युत् और अग्नि एक नहीं है। उनके धातुगत अर्थस हा प्रकृता निरूपण को जा सकती। इयुत धातु होती अर्थमें बिद्युत् तथा संहति अर्थमें अग्निधातुसे अग्नि शब्द हुआ है। वैदमें अग्नि शब्दसे क्षीपणीय प्रस्तर समझा जाता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है, कि इन्द्रका यज्ञ पत्थर वा मोहिहा था। अग्नि शब्दसे हम लोग सिर्फ Globular lightning और lightning tubes or fulgurites समझा जाता है। रोषोक अर्थमें ही प्रसिद्ध अर्गैजो Thunderbolt शब्दका व्यवहार हुआ है।



निर्घात नामक एक और प्रकारका वैमर्शिक ध्यापार है। बृहत्-संहिताकारका कहना है, कि एक पवन दृम्भे पवनसे ताडित हो कर जब पृथिवी पर गिरता है, तब निर्घात होता है। उसका जव्व भ्रैव और जर्जर् है। उस अनिलसे उत्पन्न निर्घातके पृथिवी पर गिरनेमें मूर्तिदम्भ होता है। जिस निर्घातके गिरनेसे मारी पृथिवी काँप उठती है विचार कर देखनेमें मालूम होता है, कि यह 'a sudden clap of thunder' है। यह यथार्थमें वायुके सदमा आकुञ्चन और प्रसारणसे उत्पन्न होता है।

ज्योतिःशास्त्रमें प्रहरणार्थक चक्र के दो प्रकारके आकार बनलाये हैं। एक आकार विष्णुचक्रको तरह गोला और दूसरेका आकार गुणक चिह्न (X) जैसा है। उन्न देखो।

हम लोगोंका विश्वास है, कि मेघ जलीय वायुमें उत्पन्न होता है। वही मेघ जलजः प्रतीभूत हो कर आकाश-मार्गमें परिभ्रमण करता है। जब वह मेघ क्रियाशील वायुस्तरमें पहुँचना है, तब धीरे धीरे जीतल हो कर घना होता है और पाछे उसीसे वृष्टि होती है।

दृष्टि देखो।

जब ये सब मेघ एक जगह जम कर क्रमजः प्रतीभूत होने हैं और हठात् वृष्टि नहीं होती, तब उन मेघोंके आपसमें टकरानेसे अग्निस्फुलित्क उत्पन्न होता है। वही विद्युत् है। इस विद्युत्के अद्भुतस्पर्श करने ही उसी समय मृत्यु हो जाती है।

अनपढ़ लोगोंका विश्वास है, कि विद्युद्देवी स्वर्ग-वालाशोकें मध्य अनुगमा सुन्दरी है। मेघमें जब यह संसार अपकाराच्छन्न हो जाता है, तब वह देवशाला मेघकी आड़में रह कर अपनी कनिष्ठाङ्गुलीको सञ्चालन करती है। उसी उँगलीको शक्ति हम लोगोंको विद्युत् है।

अमेरिकावासी वैज्ञानिक एडिडन वेजामिन फ्राङ्कलिनने विशेष गवेषणा द्वारा यह स्थिर क्रिया है, कि विद्युत् (Lightning) और तड़ितालोक (electric spark) एक ही वस्तु है। वाडित देखो।

(पु०) ५ एक प्राचीन ऋषिका नाम। (त्रि०) विगता इत्युत्कान्तिरस्य। ई निप्रभ, जिसमें किसी प्रकारकी दीप्ति या प्रभा न हो। विशिष्टा धृत् दीप्तिरस्य।

७ विशेष दीप्तिशाली, जिसमें बहुत अधिक दीप्ति हो। (शुक् १२३।१२)

विद्युता (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, विजली। २ महाभारत-के अनुसार एक अप्सराका नाम। (भात १३ पर्य)

विद्युताक्ष (सं० पु०) १ वह जिसकी आग्नें विजलीके समान उज्ज्वल हों। २ कार्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

विद्युत्केज (सं० पु०) विद्युत् इव दीप्तिगालिनः फेजा यस्य। रामायणके अनुसार ऐनि नामक राक्षसका पुत्र। महामति हेतुने कालकी कन्या भयाने प्रियाह रिया जिसके गर्भसे विद्युत्केजका जन्म हुआ। विद्युत्केज-ने मन्थराको कन्या पौलोमीको प्याहा। इसी पौलोमी और विद्युत्केजने राक्षसोंके राजकी शक्ति हुई थी।

(रामायण उन्मरकाण्ड ७ अ०)

विद्युत्केजिन (सं० पु०) राक्षसराजभेद।

विद्युत् (सं० त्रि०) १ उज्ज्वल आलोकविशिष्ट, चमकीला रोजनीवाला। (पु०) २ विद्युत्का भाव या धर्म, विजली पन।

विद्युत्पताक (सं० पु०) प्रलयके समयके सात मेघोंमेंसे एक मेघका नाम।

विद्युत्पर्णा (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

विद्युत्पात (सं० पु०) विजलीका गिरना, वज्रपात।

विद्युत्पुञ्ज (सं० पु०) १ विद्युत्नुमाला। २ विद्युत्प्रभेद। (क्यामस्तिसा० १०८।१०७)

विद्युत्पुञ्जा (सं० स्त्री०) विद्युत्पुञ्जकी कन्या।

विद्युत्प्रम (सं० त्रि०) १ विद्युत्के समान प्रभाविशिष्ट। (पु०) २ एक ऋषिका नाम। (भात १३ पर्य) ३ एक दैत्यका नाम।

विद्युत्प्रभा (सं० स्त्री०) १ दैत्योंके राजा बलिकी पोतीका नाम। २ अप्सराओंका एक गण। ३ रत्नवर्ष नामक रक्षराजकन्या।

विद्युत्प्रिय (सं० त्रि०) विद्युत् प्रिया यस्य। १ जिसे विद्युत् या विजली अच्छी लगती हो। (कौ०) विद्युत् प्रियं, तदाकर्षकत्वान्। २ कांस्य धातु, कांसा नामक धातु या उसका कोई धरतन जिसकी ओर विजली जल्दी विचती है।



विद्रधि ( सं० पु० ली० ) १ शूक्रदोषमेद । ( सुवृत्त नि० )  
२४ व० ) २ रोगमेद, एक प्रकारका फोटा जो पेटमें होता  
है । पर्याय—विद्रग्ण, हृद्मन्धि, हृद्म्रण । ( राजनि० )

यह रोग वातज, पित्तज, कफज, शोणितज, शतज,  
और त्रिदोषजके भेदसे छः प्रकारका है । अल्पिममा  
श्रित वानपित्तकफादि जब विगड़ते हैं, तब ये धारे धीरे  
त्वक, मांस और मेरुको दृष्टि कर घेरनाशुक्त, गभीर-  
भावसे अन्तर्प्रविष्ट, गोल वा दीर्घाकार भयानक शोथ  
उत्पन्न करते हैं, इसीका नाम विद्रधि है ।

इनमें जो शोथ कृष्ण अथवा अदण, अत्यन्त कठोर  
और वेदनाशुक्त होता है, जिसका उद्गम और पाक देरीसे  
होता है तथा पाकके बाद जिससे तरल द्राव निकलता  
ह, वह वातज है । जो पके यष्टमरकी तरह, मधुज,  
ज्वर और दाहकारी है तथा जिसका अभ्युत्थान और  
पाक प्राय ही होता है तथा पकने पर जिसमें पीला स्राव  
निकलता है, वह पित्तज है ।

जो विद्रधि पाण्डुवर्णकी और शराय ( कृत्वाड ) की  
तरह हो कर बहुत देरासे निकलती है तथा पकने पर  
जिससे सफेद रंगका पीप निकलता है, जिसमें खुन्ला-  
हट आती और घोंघी वेदना रहती है तथा छूनेसे  
सपन और शीतल मालूम होती है, वह कफज है । त्रिदो-  
षज वा स्नान्निपातिक विद्रधिमें तरह तरहके रंग, वेदना  
और स्राव दिखाई देने हैं । इसके अभ्युत्थान और  
पकनेका कोई नियम नहीं है, जल्दीसे भी पक सकती है  
और देरासे भा । यह विद्रधि अममत्तल भूमिकी तरह  
ऊँची नीची होता तथा बहुत दूर तक फैल कर निकलती  
है ।

लकड़ी, ढेले या पत्थर आदिमें चोट खा कर अथवा  
खड्ग आदि शस्त्रादिमें घायल हो कर अथवा सेवन  
करनेसे वायु बहुत कुपित हो जाती है तथा पित्त और  
रक्तको दृष्टि कर डालती है । इस दुष्ट रक्त और पित्तसे  
ज्वर, दाह और तृष्णा उत्पन्न होती है । इसे शतज वा  
आगन्तुक विद्रधि कहते हैं । पित्तविद्रधिकी तरह यह  
कृष्णवर्ण, स्फीटकायुत, सज्जवर्ण, अत्यन्त दाह, वेदना  
और ज्वरशुक्त होती है । पित्तविद्रधिके सभी लक्षण  
दिखाई देनेसे उसको रक्तविद्रधि कहते हैं ।

मलद्वार, मूत्रनालिका अथवा भाग, नाभि, उदर, दोनों  
निन्द्री, दोनों प्रकामुतयन्त्र, पत्रोहा, यकृत, हृदय और  
श्रोमनाडी आदि स्थानोंमें उद्भिगत लक्षण विद्रधि देनेमें  
उभे वातज, पित्तजादि नामक अन्तर्विद्रधि या अन्तर्प्रण  
कहते हैं । परन्तु अन्तर्विद्रधिमें कहीं कहीं विशेष  
लक्षण दिखाई देने हैं । उसके मलद्वारमें उत्पन्न होनेमें  
अधोवायु रुद्ध, मूत्रनालके होनेमें मूत्रकी अल्पता और  
कृच्छ्रता, नाभिमें होनेमें त्विक्ता और गुदगुद शब्द, उदरमें  
हानेमें उदरभयति वा वायुका प्रसंग, कृच्छ्रमें होनेमें  
पीठ और मज्ज में अत्यन्त वेदना, दोनों प्रकामुतय  
वाश्रोमशून्य, पत्रोहामें होनेमें ऊर्ध्वश्रोमशून्य अथवा  
और सर्वाङ्गमें तीव्र वेदना, हृदयस्थ विद्रधिमें होनेसे  
दाहण शूल, यकृतमें होनेमें श्वास और तृष्णा तथा  
पत्रोमनाडामें विद्रधि होनेसे क्षण क्षणमें प्यास लगती  
है । यह विद्रधि किसी मरणस्थानमें श्रुद्ध वा पृष्टा-  
कारमें उत्पन्न हो कर वहा पक कर या न पक कर चाहे  
जिस किसी अवस्थामें पड़ें न रहे, भयानक कष्टदायक  
होती है । गुदगात्र द्रव्य, अतभ्यस्त अर्थात् जिसका  
कभी व्यवहार न हुआ हो वही पदार्थ तथा डेज, फाल  
और नशयोगविद्वद्ग वान्निपातिका व्यवहार, अति  
शुष्क वा अति क्षिन्नान्न भोजन, अति व्यथाय ( खो-  
सग ), अति आयाम, मञ्जुत्रादिका वेगधारण तथा  
विद्राहजनक भृष्टतैल या और किसी तरह भुजा द्रव्य  
मक्षण आदि कारणोंसे घातपित्तकफादि दोष पृथक् वा  
मिलित भावमें कुपित हो कर गुल्माकार वा बलमीहाकार-  
में उत्पन्न वा प्रसारित हो इस अन्तर्विद्रधिरोगको उत्पा-  
दन करते हैं ।

अप्रसूता वा सुप्रसूता स्त्रीके अहिताचार द्वारा  
दाहज्वरकारक घोर रक्तविद्रधि रोगकी उत्पत्ति होती  
है । फिर सुप्रसूता स्त्रियोंके प्रसवके बाद यदि अच्छी  
तरह रक्तप्राय न हो, तो उससे मधुमन्थ नामक रक्त-  
विद्रधिरोग उत्पन्न होता है । सात दिनोंके अन्दर यदि  
रोग न दवे, तो वह पक जाता है । ( खड्ग, त नि० १६ च० )  
अन्तर्विद्रधियोंके पक जाने पर पोच निकलनेके  
प्रकारमेवसे उनका साध्यासाध्य निर्णय किया जाता है ।  
नाभिके ऊपर अर्थात् वृक्षादिस्थानमें उत्पन्न विद्रधिकी

पीप यदि मुहमे निकले, तो रोगी नहीं बचता। लेकिन हृदय, नाभि और वस्ति (मूत्राणय) को छोड़ प्पीह होमादि स्थानोंमें यदि यह उत्पन्न हो तथा उससे पक्षी पर बाहरमें खोपकाइ किया जाय, तो रोगी बच भी सकता है। फिर नाभिके मोचे वस्तिको छोड़ अल्प स्थानमें होमेवासी विद्रधि यदि पक जाये और इसकी पीप मस्यहार हो कर निकले तो रोगी प्रायः ही बचता है। कहनेका तात्पर्य यह कि मर्मस्थान (हृदय नाभि आदि) निम्न अल्प होमेवासी विद्रधिमें यदि बाहरकी मोरसे शास्त्रपाल किया जाय तथा उसकी पीप आदि अघोमार्गमें निकले तो रोगीके बचनेकी सम्भावना है। वाह्य और आन्तरिक इन दोनों प्रकारकी विद्रधिके निरोपत्र या सांक्रियानिक होनेसे यह सम्भाव्य है। किस विद्रधिमें देह मोरस हो जाती, पेट फूट जाता, वमि, हिक्का, पुण्या अल्पान वेदना और उवास आदिका प्राहु मर्मा देखा जाता है वह भी असाध्य है।

**बिकिरसा**—सभी प्रकारकी विद्रधियोंमें पहले अमीकापातन, मूत्रबिरेचन लघुपथ्य और स्वेद दितकर है, केवल पित्तप्र विद्रधिमें स्वेद नहीं दे सकते। विद्रधि को अथक्नायस्थामें मज्जजोषको तरह जोषघादिका प्रयोग करे। वातविद्रधिमें वातघ्न (मज्जदाक प्रयुजिगण्य) द्रव्यको शिक्का पर पीस कर उसमें ज्वरी तैल और पुतना भी मिलावे। पीछे कुछ गरम रहते जोष स्थानमें मोटा छेप लगा दे। अथवा जो गेहूँ या मूगको बना प्रकार पीस कर और भी मिला कर मखेरे दे। पैलिक विद्रधि रोगमें अश्वगंध, धीरणसूक, मुलेठी और रक्तकन्दनको गायक नूपमे पीस भी मिला कर छेप लगावे। अथवा अमघिष पूनमिश्रित पक्ष्वाहस्य (पीपस, पर, गुलर, पाचड़ और खैल) का प्रयोग भी दितकर है। श्लैष्मिक विद्रधिमें ईरका चूर बासू मण्डूर और गोबर इन्हें गायक मूलमें पीस कर कुछ गरम करे। पीछे इसका प्रयोग देनेसे बहुत उपकार होता है। इनमूलीके कषायस या मर्मके अमस धा मिला कर कुछ गरम रहते जोष या अणक स्थानमें परिषेक करनेसे कुछ वर्ष जाता रहता है और तुल लाम दिखाई देता है। रक्त और भागमूत्र विद्रधिकी चिकित्सा पित्तप्र विद्रधिकी

तरह ही जाननी होगी। फिर रक्तकन्दन, ममीड, इन्दी, मुनेठी और गेहूँमिहो इन्हे नूपमें पीस कर प्रत्येक वेनेसे भी फायदा पहुंचता है।

पीपक, मगरैसा, ग्वालककड़ी और बौशातकी फस इनका क्याथ अथवा स्थितपुनर्नवा और बधपमूकका क्याथ पान करनेसे अनापिद्रधि नष्ट होती है। सैरकी मकड़ी मीबका, हरे, बड़ेका मोमकी छाक, कूटज और मुनेजे प्रत्येक समान भाग निसोच और परपकका मूल, उनमेंसे किसी एक भागका बीघाई भाग तथा मूमी निहाकी हूर मसूर, समान भाग से कर काड़ा बनावे। पाछे मासानुवायो पान करनेसे मज्ज विद्रधि आदि रोग जाते रहने हैं। सहिष्णक मूलके रसमें मधु तथा इसके काढ़ेमें हो ग और सैन्धव डाल कर प्रातःकाल पान करनेसे अन्तर्विद्रधिका नाश होता है।

**विद्राविका** (स० स्त्री०) सुष्ठु तक अनुसार एक प्रकार का छोटा फोड़ा जो प्रमेह रोगके बहुत दिनों तक रहनेसे कारण होता है। (सुष्ठु व नि० ६०)

**विद्राघिघ्न** (स० पु०) मोमाश्न हृल, सविज्ञतका पेड़।

**विद्राव** (स० पु०) विद्र वप्यमिति विद्रु म्प (श्रोत्रोप। पा ३।१।२०) १ पछायत मागता। २ बुधि, मज्ज। ३ मित्वा, शिफायत। ४ हरण, बहना। ५ यिनाश। ६ मय, डर। ७ व बीमाय विषयता। ८ पुत्र, काढ़ा। **विद्राव** (स० पु०) विद्रु धम्। १ शरण, बहना। २ व सोमाय, विषयता। ३ अहता।

**विद्रावण** (स० पु०) १ पसायन, मागता। २ विषयता। ३ गायना। ४ फाहना। ५ विनाशकारी वह जो नष्ट करता हो। ६ डहना। ७ एक वानवका नाम।

**विद्राविम्बी** (स० स्त्री०) कीबा डोटी।

**विद्रावित** (स० लि०) विद्र जिष्क क्। १ पछावित, मागा हुआ। २ अशीरुत विषयता हुआ।

**विद्रावी** (स० लि०) १ भागनेवाला। २ गमनेवाला। ३ फाड़नेवाला।

**विद्राव्य** (स० लि०) विताहित भगाया हुआ।

**विद्रावात्**—धंगालके मोमाकासी जिक्कासर्गन एक परगना और गाँव।

**विद्रिप** (स० लि०) १ छिद्रयुक्त, छेदवाला। २ श्रेष्ठ, भेदन करने योग्य। ३ कोमल, मुकायम।

विद्रुत ( सं० लि० ) वि-द्रु-क्त । १ द्रवीभावप्रस, पित्रया हुआ । २ गन्ना हुआ । ३ पलायित, भागा हुआ ।

४ पीडित । ५ भीत, डरा हुआ ।

विद्रुति ( सं० स्त्री० ) वि-द्रु-क्तिन् । १ भागना । २ गलना । ३ पित्रलना । ४ नष्ट होता ।

विद्रुधि ( सं० पु० ) वि-द्रु-धि देखो ।

विद्रुम ( सं० पु० ) विजिष्टो द्रुमः विजिष्टो द्रुवृद्धोऽन्त्य-  
स्येति वा द्रुमः । ( द्रुद्रुभ्यां मः । पा ५।२।१०८ ) १ प्रवाल,  
मूंगा । २ मुक्ताफल नामक वृक्ष । ३ किण्वलय, नवपल्लव,  
कौपल ।

विद्रुमच्छाय ( सं० लि० ) १ छायाहीन । ( लि० )  
२ वृक्षकी छाया । ३ मरुमार्ग ।

विद्रुमदण्ड ( सं० पु० ) प्रवालदण्ड ।

विद्रुमफल ( सं० पु० ) कुट्टुव नामक सुगन्धित गोंद ।

विद्रुमलता ( सं० स्त्री० ) विद्रुम इव लता । १ नलिका या  
नली नामक गन्धद्रव्य । २ प्रवाल, मूंगा ।

विद्रुमलतिका ( सं० स्त्री० ) विद्रुमलता स्वार्थे कन् टापि  
अत इन्द्रम् । नलिका या नली नामक गन्धद्रव्य ।

विद्रुमवाक् ( सं० स्त्री० ) विद्रुमफला ।

विद्रुल ( सं० पु० ) वेनसवृक्ष, वैतकी लता ।

विद्रोह ( सं० पु० ) वि-द्रु-ह यञ् । १ अनिष्टाचरण, किसी  
के प्रति होनेवाला वह द्वेष या आचरण जिससे उसको  
हानि पहुंचे । २ राज्यमें होनेवाला भारी उपद्रव जो  
राज्यको हानि पहुंचाने या नष्ट करनेके उद्देश्यसे हो,  
बलवा, बगावत ।

विद्रोहिन ( सं० लि० ) विद्रोहोऽन्त्यस्येति विद्रोह इति ।  
१ विद्रोहकारी, जो किसीके प्रति विद्रोह या द्वेष करता  
हो । - यानिष्टकारी, बागी ।

विद्रोहोत्सव—मरुस्वनीविलास नामक क्रोपकार ।

विद्रुजन ( सं० पु० ) विद्रुजन, पण्डित ।

विद्रुन् ( सं० पु० ) शिव । ( मग० १३।१७,८० )

विद्रुन्कल्प ( सं० लि० ) ईपदूनो विद्रुन्, विद्रुन्-कल्पम् ।  
१ ईपदू समाप्त विद्रुन् जिसे अध्ययन करनेके लिये  
थोड़ा बाकी हो । २ विद्रुन् सदृश, विद्रुन्के समान ।

विद्रुत्तम ( सं० लि० ) अमोयानिश्चयेन विद्रुन् विद्रुस्-

नमप् । १ वान विद्रुनोमिने जो सर्वश्रेष्ठ हो । २ अहि-  
नीय पण्डित । ३ यानिश्चये ।

विद्रुन् ( सं० लि० ) अयमनयोरतिशयेन विद्रुन् । दो  
विद्रुनोमिने जो अधिक विद्रुन हो ।

विद्रुन्ता ( सं० स्त्री० ) विद्रुयावन्ता, शत्रु अधिक विद्रुन  
होनेका भाव, पण्डित्य ।

विद्रुन्त ( सं० क्ली० ) विद्रुन्ता, शत्रु अधिक विद्रुन होनेका  
भाव ।

विद्रुन्देशीय ( सं० लि० ) ईपदूनो विद्रुन् विद्रुन्-देशीयम् ।  
विद्रुन्कल्प ।

विद्रुन्देश्य ( सं० लि० ) ईपदूनो विद्रुन् विद्रुन्-देश्यम् ।  
विद्रुन्कल्प ।

विद्रुम् ( सं० लि० ) वेत्तानि विद्रु शत्रु ( विदेः शत्रु-सु इति  
शत्रु-सुरादेशः । पा ७।३।३६ ) १ आत्मविन्, जो आत्मा-  
या स्वरूप जानता हो । २ प्राण, जिम्मे शत्रु अधिक  
विद्रुया पदो हो । ३ सर्वज्ञ, जो सब कुछ जानता हो ।  
( पु० ) ४ वैदुय, चिन्मिमक ।

विद्रुल ( सं० लि० ) जो छात या प्राप्त हो, जिसने जान  
या पाया हो ।

विद्रुन् ( सं० पु० ) विद्रुन् देखो ।

विद्रुप् ( सं० पु० ) विद्रुपेण द्वेष्टि वि-द्रुप्-क्तिप् । शत्रु,  
वैरी, दुश्मन ।

विद्रुप ( सं० पु० ) वि-द्रुप्-क । शत्रु, वैरी, दुश्मन ।

विद्रुपन् ( सं० पु० ) वि-द्रुप्-कन् । शत्रु, वैरी, दुश्मन ।

विद्रुष्ट ( सं० लि० ) वि-द्रुप्-क । विद्रुपभाजन, जिसके  
साथ विद्रुप या शत्रुता की जाय ।

विद्रुष्टता ( सं० स्त्री० ) विद्रुष्ट-तल् टाप् । विद्रुपभाजनता,  
विद्रुष्ट होनेका भाव ।

विद्रुष्टपूर्व ( सं० लि० ) पहले जिसके साथ शत्रुता की  
गई हो ।

विद्रुष्टि ( सं० स्त्री० ) वि-द्रुप्-क्तिन् । विद्रुप, शत्रुता,  
दुश्मनी ।

विद्रुप ( सं० पु० ) वि-द्रुप्-यञ् । शत्रुता, दुश्मनी ।  
पर्याय—वैर, विरोध, अनुशय, द्वेष, समुच्छ्रय, वैरता,  
द्वेषण ।

विद्रुपक ( सं० लि० ) वि-द्रुप्-ण्वल् । विद्रुष्टा, जो द्वेष  
करता है, शत्रु, दुश्मन ।

विद्वेषण (स० ह्य०) वि द्विप वमुद् । १ विद्वेष, र्वा ।  
 वि द्विप-विष्य वमुद् । २ तन्त्रक वमुत्कार एक प्रकार  
 की किया जिसके द्वारा दो भक्तियोंमें द्वेष या शत्रुता  
 उत्पन्न की जाती है। युद्धकाळमें शत्रुके नाखूनसे खोदो  
 हुई मिट्टी ला कर यदि मरुतून करके ढाहन करे, तो  
 शत्रु और उसके मित्र दोनोंमें कवह पैदा होगा है। फिर  
 गायके धूनमें घोड़े और मै सही विद्या प्राप्त कर उनमें  
 तथा दोनोंके रक्त द्वारा कीचके परसे श्मशानक्षय पर  
 शत्रु और उसके मित्र दोनोंके नाम बिभने होंगे। पोछे  
 प्राणायम अथवा खरहाकके बालोंसे उस पत्थरपट्टकी  
 भक्ती तख्त बांध कर एक कचये डकहनमें रख दे। पोछे  
 शत्रुके पितृदानके अन्तर्गत किसी स्थानमें गड़दा बना  
 कर उस पर पदचोणचक्र अङ्कित करे तथा उसमें "भो  
 नमो महामैत्रेयाय शत्रुरूपाय श्मशानवासिने अमुकामु  
 कर्षाविद्वेष प कुच कुच सुसुसुप हूँ हूँ फद्" यह महामैत्रेय  
 संबद्ध मन्त्र सिद्ध कर उसके ऊपर वह डकहन रख दे।  
 येना करनेसे निश्चय ही दोनोंमें विद्वेष उत्पन्न होता  
 है। मन्त्र किन्तुके समय "अमुकामुकोः"के स्थानमें  
 शत्रु और उसके मित्र दोनोंके नाम भागे पाछे बिन्न कर  
 इसके अन्तमें "पतवाः" इस प्रकार लिखना होगा। यह  
 भाभित्कारिक कर्म पूर्णमा तिथियुक्त शुनि अथवा रवि  
 पारमें, मध्याह्न काळमें, शीतमासमें सर्वाङ्ग प्रातःकाल-  
 कधि पसन्त गोप्य, धर्म, शरत्, हेमन्त, गिशिर इत्यादि  
 कर्मसे प्रत्येक दश दश वृत्त करके रातदिनमें जो छा  
 यशु परिभ्रमण करती है, उर्ध्वके प्रीत्यकाळमें, कर्कट या  
 तुला मन्तमें, हस्तिका नक्षत्रमें और दक्षिण दिशामें करना  
 होता है।

तन्त्रसारमें भी उक्त विद्वेषणकर्म तथा उसके सिवा  
 और एक प्रक्रियाका उल्लेख है। वह इस प्रकार है—  
 मन्त्रियुक्त हो कर संवत्त्रिंशत्स "शत्रुनीलममप्रसाम्।  
 श्वोमश्रीना महाबर्हा सुतसुरदिमदि नोम्। तिमोवना  
 महावर्षा सर्वांमरत्यमृपिताम्। कपालकृत्वाटस्ता  
 शत्रुपूर्वोपतिष्ठिताम्। शत्रुपानगतां श्वैर प्रेतमैत्रेय  
 धरिताम्। पसन्तो पितृहन्तारै सर्वनिष्ठिमहाजितोम्"  
 इस स्थानसे विविध फलपुत्र और छागादि उपहार द्वारा  
 पोद्गोवधारसे श्मशानकालीकी पूजा करे। बाह्ये

श्मशानकी भागसे चौर की लकड़ी खटावे तथा इसमें  
 "भो नमो मगवति श्मशानकालिके अमुके विद्वेष पव विद्वे  
 पव हन हन पव पव मय मय हू फद् स्वाहा" इस मन्त्र  
 से पढ़के कट्टु मीलमिश्रित निम्बवृक्ष द्वारा होम करे। पीछे  
 दश हजार परिमित तिल, जो शीत भातपतपुत्र द रा  
 होम करना होगा। होमके बाद उस मन्त्रका पुनः उक्त  
 मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर लेना होगा। इसके बाद 'अमुके'  
 के स्थानमें जिस शत्रुका नाम उल्लिखित हुआ है, उसके  
 अङ्गमें यदि पुनः वह मन्त्र पढ़ कर फे की जाय,  
 तो निश्चय ही विद्वेष प उत्पन्न होगा।

विलुप्त विवरय इन्द्रबाह्य गौर मीतिकविद्या शब्दमें देखो।  
 (जि०) ३ असीरज्य, सीरज्य या सररुतक विपरीत।  
 ४ विद्वेष्य, हिंसाकारी।

विद्वेषणी (स० ह्य०) वसूकम्पाविरेव । इसके पिता  
 का नाम वुसह और माताका नाम निर्माधि था। बलिनी  
 कोने अमुककाळमें एक अष्टाक्षरका श्लोक कर इसी निर्मा  
 धिका धर्ममें धारण किया। वुसहसे इसके १३ भोपण  
 सन्तान उत्पन्न हुई जिनमें ८ पुत्र और ८ कन्या थी।  
 जाठरी कन्याका नाम विद्वेषणी, द्वेषणी वा विद्वेषणी है।  
 यद्यो बड़ी निष्ठुरतासे प्राणीको हिंसा करती है। पुरुष या  
 स्त्री पर यदि इनकी बुद्धि पड़े तो शान्तिके लिये वृष  
 मयु और धृतसिक्त तिल द्वारा होम तथा शुभजनक  
 अथाप्य इष्टिकर्म (यागादि) करना उचित है। इन  
 भृङ्गरीकुटियानना विद्वेषिणोके वा पुत्र हैं। ये दोनों  
 भी मनुष्यके अपकारी हैं।

विद्वेषोर (सं० पु०) एक प्रथ्यधारका नाम।  
 विद्वेष्य (सं० जि०) विद्वेषकारी जो विद्वेष करता हो।  
 विद्वेषिता (सं० स्त्री०) विद्वेषित्य, विद्वेष्टोका माय या  
 धर्म, पुत्रनी।  
 विद्वेषिन् (सं० जि०) विद्वेषेण द्वेषोति वि-द्विप् विनि,  
 यथा विद्वेषोऽस्त्वस्येति विद्वेष इति । विद्वेषयुक्त  
 बेरी, पुत्रम।  
 विद्वेषा (सं० जि०) विद्वेष्यु देखा।  
 विद्वेष्यु (सं० जि०) विद्वेष्युत् । विद्वेषा, विद्वेष  
 करनेवाला।  
 विद्वेष्य (सं० ह्य०) १ बद्धोक्त, कंकाम । (जि०) २ विद्वेष

का पात्र या भाजन, जिसके साथ विद्वेष किया जाय।  
विध ( सं० पु० ) विध-क, अच् वा । १ विमान ।  
२ गजमध्य अन्न, हाथीके खानेका दाना । ३ प्रकार,  
भेद । ४ वेधन, छेद करना । ५ ऋद्धि, समृद्धि । ६ वेनन ।  
७ कर्म, कार्य । ८ विधान, विधि, नियम ।

विधली ( सं० स्त्री० ) ब्रह्माकी शक्ति, महामरस्वती ।  
विधन ( सं० पु० ) जिसके पास धन न हो, निर्धन, गरीब ।  
विधनता ( सं० स्त्री० ) विधन होनेका भाव, निर्धनता,  
गरीबी ।

विधना ( हि० कि० ) १ प्राप्त करना, अपने साथ लगाना,  
ऊपर लेना । ( स्त्री० ) २ वह जो कुछ होनेको हो, भवि-  
तथ्यता, होनी । ( पु० ) ३ विधि, ब्रह्मा ।

विधनीकृत ( सं० लि० ) जो निर्धन किया गया हो ।  
“दुष्टनेन विधनीकृतः” ( कथासरित्सा० २४(५८) )

विधनुक ( सं० लि० ) धनुर्धन ।

विधनुस् ( सं० लि० ) न्युतधनु ।

विधन्वन् ( सं० लि० ) जिसका धनुष नष्ट हो गया हो,  
खण्डित धनु ।

विधमचूडा ( सं० स्त्री० ) जिसका अग्रभाग वा चूडा धूम  
वा अग्निसंयुक्त हो ।

विधमन ( सं० पु० ) धौकनी या नल आदिके द्वारा हवा  
पहुँचा कर आग सुलगाना, धौकना ।

विधमा ( सं० स्त्री० ) वि धमा श तस्मिन् परे धमादेशश्च ।  
१ विकृत या विविध शब्दकारिणी । २ विकृतगमन-  
शोला ।

विधरण ( सं० पु० ) १ पकड़ना, रोकना । २ विधृति देखो ।  
विधर्तृ ( सं० लि० ) वि-धृ तृच् । १ विविध कारक ।  
२ विधारयिता, विधारणकर्त्ता । ३ विधानकर्त्ता, विधान  
या चिह्न करनेवाला ।

विधर्म ( सं० पु० ) १ अपने धर्मको छोड़ कर और  
किसीका धर्म, पराया धर्म । २ अपने धर्मको छोड़ कर  
दूसरेका धर्म ग्रहण करना जो पाँच प्रकारके अधर्मोंमेंसे  
एक कहा गया है । ( लि० ) ३ धर्मशास्त्रनिन्दित, जिसके  
धर्मशास्त्रमें निन्दा की गई हो । ४ गुणहीन, जिसमें  
गुण न हो ।

विधर्मक ( सं० लि० ) विधिप्र धर्मशास्त्र ।

विधर्मन् ( सं० पु० ) १ सुधर्मा, उत्तमधर्मयुक्त । २ रिधा-  
रक । ३ विधारण ।

विधर्मिक ( सं० लि० ) १ अधर्मिक जो धर्मशिरकार  
आचरण करता हो । २ निन्द्यर्मा, जो दूसरे धर्मका  
अनुयायी हो ।

विधर्मि ( सं० लि० ) १ धर्मभ्रष्ट, जो अपने धर्मके विपरीत  
आचरण करता हो । २ परधर्मावलम्बी, जो किना दूसरे  
धर्मका अनुयायी हो ।

विधवना ( सं० स्त्री० ) वैधव्य, पतिरहित्य ।

विधवन ( सं० स्त्री० ) वि-धू न्युट् । कम्पन, कौपना ।

विधवयापित् ( सं० स्त्री० ) विधवा पत्र योपित् भाषित  
पुंस्कन्वान् पु स्त्वम् । विधवा गत, गीत, वेग ।

विधवा देवी ।

विधवा ( सं० स्त्री० ) विगतो धनो वर्त्ता यस्याः । मृत-  
मर्त्तु, या स्त्री, जिस स्त्रीका पति मर गया हो । पर्वण्य—  
विश्वस्ता, जालिमा, रण्टा, यतिनी, यति । ( इन्द्रवज्रना० )  
धर्मशास्त्रमें हिन्दू विधवाके कर्त्तव्यकर्त्तव्यका विषय  
विशेषरूपसे वर्णित हुआ है ।

स्वामीकी मृत्युके बाद या उमका अनुगमन करे या  
ब्रह्मचर्याका अवलम्बन कर जायन अनिनाहित करे ।  
स्वामीका अनुगमन या ब्रह्मचर्य ये दोनों ही इच्छा  
विकर हैं अर्थात् इच्छानुसार इन दोनोंमें एक करना  
होगा । ब्रह्मचर्य शब्दका अर्थ—मैथुन और तारक्य आदि  
विवर्जन समझना होगा । “ब्रह्मचर्या उपस्थसंयमः”  
उपस्थ संयमका नाम ही ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचारिणी  
विधवाको स्मरण, हीत्तान, केलिप्रेक्षण, गुह्यभाषण आदि  
जाखोक्त अष्टाङ्ग मैथुन नहीं कलना चाहिये । ताम्बूट-  
सेवन, अभ्यञ्जन और फूलकी थालीमें भोजन, विधवाके  
लिये अवैध है । विधवाको दिनमें एक बार भोजन करना  
चाहिये । उसके पलङ्ग पर सोना उचित नहीं, यदि  
वह सोये, तो उसके स्वामीकी अधोगति होती है ।  
विधवाको किसी तरहके शत्रु आदिका व्यवहार न करना  
चाहिये । नित्य कुशतिलोदक द्वारा वह स्वामीका तर्पण  
करे । पुत्र और पौत्र न रहनेसे तर्पण अवश्य विधेय है ।

यदि पुनः भीरु पौत्र हों, तो तर्पण नहीं मो करलैसै धर्म सकता है । वैशाख, कार्तिक भीरु माघ मासमें विषया को विश्व नियमबन्दी हो कर गंगात्रिका ज्ञान, ज्ञान, तीर्थ यात्रा और सर्वदा विष्णुका नाम स्मरण करने रहना चाहिये ।

'काशीकण्ड'में विषयाके धर्म और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विषय इस तरह लिखा है—स्वामीकी मृत्यु होने पर यदि वह सती न हो सके, तो उसको उचित है, कि अपने परिवारकी रक्षा अपनी ज्ञान दे कर करे । क्योंकि, परिवार तब होनेसे इसका नरक सुनिश्चित है । परिवारहीन विधवा क पति और पिता, माता आदि सभी धर्ममें होने पर भी बर्हासै अयोग्यामा होते हैं । जो स्त्री पतिकी मृत्युके बाद पयानियम पातिव्रत्य धर्मका प्रतिपालन करती है, वह मृत्युके बाद फिर पतिसे मिल कर जगत्सुख भोग करती है । विषयाका मूढावस्थान पतिके अन्धकारका कारण होता है । इसलिये विषया मरदा मस्तक मुद्वन्द्वनकराती रहे । विषयाकी रात दिनमें एक बार ही भोजन करना चाहिये, दो बार नहीं । मित्रा, पशुराज या पञ्चमसका अयज्यजन या मासोपवासप्रत, आश्रायण, कृच्छ्र आश्रायण, पराक-प्रत या तसहस्रप्रत आश्रय करना चाहिये । अन्तमें दिन विषया सोचिन रहे, अन्तमें दिन यथाग्न, फल, शाक और कबक जल पान कर जीवनयात्रा निर्वाह करैगी ।

विषया यदि परम पर मोती है, तो वह अपने पतिके सुखकी इच्छामे समीन पर ही सोना उचित है । विषया को कर्मो उद्वेग और गण्य द्रव्य नहीं लगाना चाहिये । प्रतिदिन उसको अपने पिता और पितामहके उद्देश्यसे एक नाम भीरु पौत्रका उच्चारण कर कुश और तिळी एक छटा तर्पण करना चाहिये तथा उसे पवित्ररूप विष्णुकी पूजा करना आवश्यक है । इस सर्वव्यापक विष्णुका पतिकार्यमें ध्यान करना चाहिये । पतिकी जीवित्वावस्थामें विषया जिन भीमोंका प्यार करती थी, वे सब कोसै सदा ब्राह्मणको दान देती रहे । वैशाख, कार्तिक और माघ महौनेमें विषयाकी विशेष समयसे रहना चाहिये ।

ज्ञान, दान, तीर्थयात्रा, वारंवार विष्णुका स्मरण,  
Vol IXI 101

वैशाख महौनेमें अक्षय्यव्रत, कार्तिक महौनेमें वैश्वानर में पूतशीप दान, माघ मासमें धाम्य और तिळका बरसांग करना विषयाका एकान्त कर्त्तव्य है । सिवा इसके वैशाख महौनेमें वह अक्षय्यकी प्रतिष्ठा और देवताओं पर अक्षय्या, पातुका, व्यसन, छल, सुस्मयल, कर्पूर मिश्रित अन्न, ताड़सूत (पान), सुगन्ध पुष्प, कद तरहके अक्षय्य, पुष्पवाक, तरह तरहके पानीय द्रव्य, अ गूर आदि फल पतिकी मीतिके उद्देश्यसे सठ ब्राह्मणोंको दान दे ।

वह कार्तिक मासमें यथाग्न या एक प्रकारका अन्न भोजन करे । धृताक और वरवदी ज्ञाना नहीं चाहिये । इस मासमें वेक, मधु और फूलकी धाड़ोंमें भोजन बिल्कुल निषेध है । इस समय मौनावलम्बन करना ही उत्तम है । मौनी हो कर रहलैसे मासके अन्तमें प्रष्टादान, पात्रमें भोजन नियम करलैसै पूतपूर्ण कल्पि-यात्राज्ञान, भूमि श्रद्धा करलैसै अन्तमें श्रद्धादान, फल त्याग करलैसै फलदान, धान्य त्याग करलैसै धान्य या भेदु दान करना उचित है । वैशाख महौनेमें पूत शशीप दान आवश्यक कर्त्तव्य और सब दानोंसे ही यह दान भेदु है ।

माघ मासमें सूर्य दिखाई देने पर ज्ञान करना विषयाको कर्त्तव्य है । इसी तरह विषया नित्य ज्ञान कर यथासामर्थ्य नियमसंयमका पालन करे । इस मासमें ब्राह्मणों, संन्यासियों और तपस्वियोंको पक्वान्न, मिष्ठान्न और अन्नाद्य सुमिष्ट द्रव्य भोजन करायें । शीत निवारणमें लिये सूखी मकड़ोका दान, ऊँदहार मिर्ची या कुन्ता और हुपद्दा, मन्नीठ रंगसे र पा कपड़ा, ज्ञातीफल, लवंग छपा कर पानका बीड़ा, बिबिध कन्धक, निर्पातगृह, कोमक पातुका और सुगन्ध इन्द्रजित दान करलै चाहिये । वैशाखमें कृष्णागुठ आदि उपहार द्वारा पतिकी भगवान् प्राप्ति हों, ऐसा भावना कर वैश्वानर करनी चाहिये । इस तरह विविध नियम और प्रता का अनुष्ठान कर वैशाख, कार्तिक और माघ ये तीन महौने बिताने चाहिये ।

विषया स्त्री प्राण कष्टागत होने पर भी बैल पर न चढ़े और रोगीन चरु न पहे । मर्त्युत्तरपरा विषया पुत्रों से बिना पूछे कोई काम न करे । इस तरह दिन



विता कर विधवा भी मङ्गलरूपिणी होती है और उसको कहीं भी दुःख नहीं होता । फिर वह मरने पर पति लोक पाने है । (काशीव० ४ व०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि विधवा प्रतिदिन दिनके अन्तमें इविष्यान भोजन करे और सदा निष्णामा हो कर दिन बितावे । उत्तम कपड़े पहनना, गन्धद्वय, सुगन्ध तेल, माल्य, चन्दन, जङ्घा, सिन्दुर और धूपण विधवाके लिये त्थाज्य है । नित्य मलिन वस्त्र पहन कर नारायणका नाम स्मरण करना चाहिये । विधवा स्त्रीको चाहिये, कि वह एकान्त चित्तमें भक्तिमती हो कर नित्य नारायणकी सेवा, नारायणका नामोच्चारण और पुरुषमावकी धर्मपुत्र जान कर देवे । विधवाको भीडा भोजन या अर्थ सञ्चय नहीं करना चाहिये । वह पकादशां, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीगामनवमी और शिव-चतुर्दशीको निर्जल उपवास करे । अघोरा और प्रेता चतुर्दशीतिथिमें और चन्द्रसूर्यके ग्रहणके समय व्रष्टद्वय विधवाके लिये निषिद्ध है । सिवा इनके और अन्य भोजन करनेमें कोई दोष नहीं । विधवाके लिये पान और मद्य गोमांसके बराबर है । सुनरा विधवा इन वस्तुओंको न खाये । लाल शाक, मसूर, जम्बीर, पण और गोरु कद्दू भी खाना मना है ।

पलंग पर सोनेवाली विधवा अपने मृतपतिको अधोगति देता है और यदि यह यानवाहनोंका व्यवहार करती है, तो मय्य नरकगामिनी होती है । सुतरां इनका परित्याग करे । केशसंस्कार, गालसंस्कार, तैलाभ्यङ्ग, दर्पणमें सुपदर्शन, परपुरुषका मुषदर्शन, यात्रा, नृत्य, महोत्सव, नृत्यकारी गायक और सुवेगसम्पन्न पुरुषको कदापि देखना विधवाके लिये उचित नहीं । सर्वदा धर्म कथा श्रवण कर दिन बिताना चाहिये । (ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

स्वामीको मृत्युके बाद साध्वी स्त्री ब्रह्म त्र्यर्थ ब्रतावलम्बन कर दिन बिताये । यदि पुत्र न हो, तो भी एक ब्रह्मचर्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाती है । मनुमें लिखा है, कि पिताने जिसे दान या विताकी आज्ञासे भ्राताने जिसे दान किया है, उस स्वामीकी जीवितकाल तक सुधूपा करना और स्वामीकी मृत्युके बाद व्यभिचार आदि द्वारा उनका उल्लंघन न करना स्त्रीमात्रका कर्त्तव्य है ।

स्त्रियोंके विवाहके समय पुण्यदानाचनादि, स्वस्वयम् और प्रजापति देवताके उद्देश्यसे जो होम करना होता है, वह केवल दोनोंके मङ्गलके लिये किया जाता है ; किन्तु विवाहक समय जो सम्प्रदान किया जाता है, उसीमें ही स्त्रियों पर स्वामीका सम्पूर्ण स्वामित्व उत्पन्न होता है । तबमें स्त्रियोद्गी स्वाभिपन्नता ही उपायुक्त है । पति गुणहीन होने पर भी उसी उपेक्षा न कर देवताकी तरह सेवा करना कर्त्तव्य है । स्त्रियोंके सम्बन्धमें श्वासाके विना पृथक् यज्ञका विधान नहीं है और न स्वामीकी श्वासाके बिना व्रत और उपवास हो करना होता है । केवल पति सेवा द्वारा ही स्त्रिया स्वर्ग जाती हैं ।

स्वामी जीवित रहे या मर गया हो, साधवा स्त्री पतिलोक पानेकी कामना कर कभी उसका व्रतप्रत्याचरण न करे । पतिके मर जाने पर श्वेच्छापूर्वक मृत और फल हारा अरना जीवन क्षय करे । किन्तु कभी भी पतिके मित्रा परपुरुषका नाम तक नहीं ले । जब तक अपनी मृत्यु न हो, तब तक मैथुन, मद्य, मांस-वर्जित हो कर श्रेष्ठभिक्षु और नियमाचारी हो कर रहे । एकमात्र व्रतार्थ्यका पालन करना ही विधवाका धर्म है । विधवा वपुत्रा होने पर भी व्रतार्थ्यका पालन कर स्वर्ग जाती है । (मनु० ५ अध्याय)

मद धर्मशास्त्रोंमें इन बातोंका पुष्टि हुई है कि स्वामीकी मृत्युके बाद विधवा ब्रह्मचर्यका पालन कर जीवन बिताये । इस बातमें ननिक भी कोई विरोध दिगर्त नहीं देता ।

कुछ लोग कहते हैं, कि जो विधवा ब्रह्मचर्यका पालनमें असमर्थ है, उसके दूसरा विवाह कर लेनेम शास्त्र विरुद्ध नहीं होता । वे कहते हैं, कि "कली पाराशर-स्मृत" कलियुगमें पराशरस्मृति ही प्रमाणरूपमें प्राण्य है । अतएव पराशरने जो कहा है, उसका आशर करना इस युगमें लोगोंका कर्त्तव्य है । पराशरका मत है—

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पत्नी ।

पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

मृते भर्तृरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।

वा मृता क्षभते स्वर्ग" यथा वे ब्रह्मचारिणः ॥

विद्याः कोट्योऽद् कोट्यो च यानि क्षामानि मान्ते ।

वायत् का० वसुत् १।१ मत्परं वासुगन्तवि ॥”

( पदावर्तविद्या )

पतिके कर्तव्ये बलि ज्ञाने मर ज्ञाने, ज्ञीव होने, संसार त्याग करने, अथवा पतित होने पर स्त्रियोंको दूसरा विवाह कर देना चाहिये । ऐसी विधि है ।

जो स्त्री पतिके मर ज्ञाने पर प्रत्यावर्त्यका पाठन कर आयन बिना देतो है, वह मृत्युक बाद प्रत्यावर्त्यिकी तरह स्वगलाम करती है । जो स्त्री पतिवैधके साथ सती हो जाती है, वह मनुष्यक शरीरमें जी। साङ्गे तीन करोड़ तोय है इतने दिन तक स्वर्गमें बास करती है ।

पराशरस्मृतिके इस बचनके अनुसार विधवाओंकी तीन विधियाँ हैं । स्वामाक साथ सती होना, प्रत्यावर्त्य का पाठन करना तथा अन्य विवाह अर्थात् पुनर्विवाह जो विधवा सती होने और प्रत्यावर्त्य पाठन करनेमें असमर्थ है वही दूसरा विवाह कर सकती, समी नहीं । प्रत्यावर्त्यपाठन पाठन अतीव कष्टसाध्य है, सब के लिये सुगम नहीं है, अतः जो इसका पाठन न कर सके, उसका लिये ही पराशरने विवाहकी आज्ञा दी है । सब शास्त्रोंमें इस विधवाविवाहका निषेध रहने पर भी इस कजियुगविहित पराशरस्मृतिका ऐसा ही मत है ।

पूर्वोक्त पाथ आर्षाच्छक्रायम 'वज्रलापवसु नारोणां पतिरस्यो विधीयते ।" इस श्लोकशब्द अर्थसे दूसरा पति कर देनेको विधि है । यदि अन्य पत्रिका अर्थ पाठक छगावा आय, तो कहना होगा कि पराशरको इस आज्ञाका आशय पाठक नियुक्त करनेका है । क्योंकि स्त्रियाँ किसी समय मा अतस्त नहीं रहती । पाठकः । अर्थ ग्रहण करने पर सब धर्मशास्त्रोंसे पराशर का मत भी एक ही जाता है । इधर विधवा-विवाह निषेधक कई पाक्य भी शास्त्रोंमें देखे जाते हैं । उनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत करते हैं:—

“तदुपवागत्वोक्तः कथयत्तुदिवारणम् ।

द्विजान्प्रवचयत्तु कथावपमस्तथा ॥

देवोय ज्ञोपतिर्गुणैः पतेर्भवाः ।

सातादत्तं तथा शब्दे वाग्जलापामस्तथा ॥

एतावाप्येव कथायाः पुनर्दानं वरस्य च ।

दीर्घकालं प्रपश्यन् मरमेवावगोचकी ॥

महाप्रस्थानममन गोमेधस्य तथा मर्त्यं ।

इमन् परमैर्न च्छियुगे बर्षनाहुर्मनीषियः ॥”

( सुनन्वनभूत बृहन्नारदीय )

समुद्रयाज्ञा, कमरुजलुधारण, असवर्णाविवाह देवर द्वारा पुत्रोत्पादन, मनुष्यकमें पशुबध, आर्यमें मांस भोजन आनप्रस्थाबलन्यन, एक साधमोको कथादान कर उसी कथाको फिर दूसरैक हाथ दान करना और बहुत दिनों तक प्रत्यावर्त्य कजियुगमें वसिर्गत है ।

“वदन् प्रदीयते कथा इरस्तां चौरदयवभाक् ।

एतामपि हेतुं पुरति योवास्तेदर भाजनेव ॥”

( पाठकवचन विद्या १।१५ )

बाक्य द्वारा ही हो या मन द्वारा ही हो जब कथा एक बार प्रवृत्त हुई है, तब उसको हटाने करने अर्थात् दूसरैके साथ विवाह कर देनेसे यह कथादाता बोरका जी बच होता है, उसी बचसे स्पष्टित होगा । किन्तु जब पहले घरको अपेक्षा उत्तम घर मिल जाये, तब वाग्जला को चाहिये कि उस कथाको उसी उत्तम घरको ही प्रदान करे । इस बचनसे मालूम होता है, कि पहले किसी घरमें विवाहकी वज्रा बात हो चुकी हो और इसके बाद ही यदि अपेक्षाहृत उत्तम घर मिल जाय तो उस दास्यको तोड़ कर इसी उत्तम घरसे विवाह किया जा सकता है । किन्तु जिस कथाका विवाह दो चुका है, उसका पुनः दान किसी शास्त्रमें विवाह नहीं देता ।

और भी लिखा है:—

“यदिप्युतम्भाकर्णां कथयतां श्रियमुद्धरेत् ।

मन्यपूर्विकां कथां तपविषां बनीयसीम् ॥”

( पाठकवचन ० १।१।१५ )

अस्त्वचित प्रत्यावर्त्य द्विजाति नपुंसकतादि दोषयुक्ता, अनन्यपूर्वा ( पहले पाशाशरके साथ जिसका विवाह होनेको स्थिरता तक न हो और दूसरैको उपमुक्ता भी न हो, उसीको अनन्यपूर्वा कहते हैं ) कास्तिमती अस पिच्छा और वयाकनिष्ठा कथाको ग्रहण करे । इस बचन से मालूम होता है, कि अनन्य पूर्विका विवाह न होगा ।

इसके द्वारा वांग्दत्ता कन्याका विवाह भी निषिद्ध हुआ है। व्यामनहिता, वशिष्ठानहिता प्रभृति साहित्यांशोंमें भी अनन्यपूर्विकाका ग्रहण निषिद्ध है। विधवा स्त्री अनन्यपूर्विका, अनन्यपूर्विका नहीं है, विधवाका विवाह अब अशास्त्रीय है।

पारस्करगृह्यसूत्रमें लिखा है, कि गुरुगृहमे समा-वर्त्तनके बाद कुमारीका पाणिग्रहण करो। कन्याको ही कुमारी कहते हैं। अदत्ता कन्या ही कुमारी कहलाती है। जो एक बार दान कर दी गई, वह पुनः प्रदान नहीं की जा सकती। कुमारीदानको ही विवाह कहा जा सकता है। विवाहिताका फिरने दान विवाह कहला नहीं सकता। "अनेनमुपचाय क्रुमाय्याः पाणिं गृहीयात् त्रिपु-त्रिपुत्रादिपु।" (पारस्करगृह्यसूत्र)

"कन्याजब्धार्यः कथ्यते, 'कन्या कुमारी' इत्यमरः, 'कन्यावदस्यादत्तस्त्रीमातवचनेन' इत्यादि दायमात स्त्रीकाया आचार्य्यचूडामणिः। 'कन्यापदस्यापरिणीता-मानवचनेनात्' एति रघुनन्दनः। इत्यादि वचनैः कुमारी नामेव परिणये विवाहशब्दवाच्यत्व' नचूहायां।" मनुने लिखा है, कि कन्या एक बार प्रदत्त और ददानि अर्थात् दान भा एक बार होता है, यह दो बार नहीं होता। यन्मत्ति सल्लन द्वारा एक बार ही विभक्त होती है, इस तरह कन्याका दान भी एकबार ही होता है, द्वितीयवार नहीं।

सहृदशो निरतति सत्कृतकन्याय प्रदीयते।

सहृदाहुददानीति प्रीययेताणि सतां सकृत् ॥ (मनु ६।४७)

मनुग इम वचनके अनुसार भी कन्याको एक बार दान कर चुकनेपर फिर उसको दान नहीं करना चाहिये। अतएव दत्ताकन्याके स्वामीके मृत्योपरान्त उसका विवाह नही होता। और भी लिखा है—

"यस्मै दद्यात् पिता त्वेनात् प्राता धनुमते पितुः।

त श्रुपुन जावन्त ससित्तन्न न लभयेत् ॥

महृदार्थं स्वस्त्वयनं यज्ञस्वासां प्रजापतेः।

प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥"

(मनु ५।१५१-१५५)

"मृते भर्तारि स्वाध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।

स्वर्गं यगच्छत्पुत्रादि यथा तं ब्रह्मचारिणः ॥

धपत्यलोभात् वातु स्त्री भर्तारिगतिवर्त्ति।

सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोषश्च हीयते ॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीश्च न चायिस्व परिग्रहे।

न द्वितीयश्च साध्वीनां त्वक्तित् भर्तारिपदिश्यते ॥

पतिं हित्वा महृदं स्वमुत्कृष्टं या नियेयते।

निन्दोष वा भवेत्कनोके परपूर्वति चोच्यते ॥"

(मनु ५।१६०-१६३)

पिता या भ्रानाने जिसको दान किया है, साध्वी स्त्री उसीकी कायमनोवाक्यसे श्रुश्रूपा करे। उसकी मृत्यु हो जाने पर ब्रह्मचर्य्यका अवलम्बन कर दिन वितारये। इस ब्रह्मचर्य्यके गुणसे वह पुत्रहीना होनेसे भी स्वर्ग जायेगी। जो स्त्री सन्तानकी कामनासे स्वामीका अतिवर्त्तन कर व्याभिचारिणी होता है, वह इहलोकमें निन्दित और पतिलोकसे वञ्चित होती है। स्वामीके सिवा अन्यपुरुषसे उत्पन्न पुत्रस कोई भा धर्मकार्य नहीं होता। इस तरह के व्याभिचारसे उत्पन्न पुत्र शास्त्रके अनुसार पुत्र पदके योग्य नहीं।

मनुने विशेषरूपसे कहा है—'न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचित् भर्तारिपदिश्यते' अतएव विधवा स्त्रीका दूसरी बार पातग्रहण विवाहपदवाच्य नहीं। परपुरुषके उपभोग द्वारा स्त्री संभारमें निन्दनीय होता है और दूसरे जन्ममें श्रमालशोनिमें जन्म लेती है और तरह तरहके पापरोमोंसे आक्रान्त हो कर अत्यन्त पीडा भोग करता है। जो स्त्री कायमनोवाक्यसे सत्य रह कर स्वामीका अतिक्रम नहीं करती, वह पतिलोक पाती है। इससे विधवास्त्रीको पुनः विवाह करना कदापि विधिसङ्गत नहीं।

दोर्घकाल तक ब्रह्मचर्य्य, कमण्डलु धारण, देवसे पुत्रार्त्पादन, दत्ताकन्याका दान और द्विजातियोंका अस-वर्ण कन्याको पाणिग्रहण कलियुगमें निषिद्ध है। अर्थात् पहिले ये सब प्रचलित थे। 'दत्ताकन्याका दान' इस अर्थसे विधवाका विवाह निषिद्ध बतलाया गया है। धर्मशास्त्रमें और भी लिखा है, कि इम कलियुगमें दत्तक और औरस इन दो प्रकारके पुत्रोंकी व्यवस्था है। इसके सिवा और जो पुत्र होते हैं, वह धर्मकार्यके अधिकारी न होंगे। विवाह पुत्रके लिये किया जाता है। विवाहिता विधवाके गर्भसे उत्पन्न पौनर्भवका पुत्रत्व जय निषिद्ध हुआ, तब

विधवाका विवाह भी निषिद्ध है। विधवाने उलपन्न पुत्र जब पिता माताके धार्मिक कार्योंका अधिकारी नहीं, तब विवाहके प्रयोजनकी अस्तित्विस यह विवाह ही निषिद्ध समझता होगा। कल्पने दृष्टा और वाग्दत्ता दोनों तरहकी स्त्रियोंके विवाहको निषिद्ध किया है।

वाम्बुत्ता अर्थात् जिसके विवाहके लिये बात है ही गई, मनेदत्ता, जिसके विवाहकी बात मनमें मान ली गई है; छटाकीद्वकमङ्गला, जिसके हाथमें विवाह सूत्र बांधा जा चुका है; इदकस्वगिता अर्थात् जिसको दान दिया जा चुका है; पाणिपूहोतिका—जिसका पाणिग्रहण-संस्कार हो चुका हो अथवा कुशा पिडका मही हुई है; अग्निपरिताता—जिसकी कुशा पिडका हो चुकी हो। पुनमू प्रमया, पुनमूके गर्भमें जिसका अण्ड हुआ हो वे सब बर्जित हैं अर्थात् इनका पुनरा विवाह न होगा। यदि विवाह जाये ता पतिकुल भंग होता है।

कल्पने वाम्बुत्ता और दत्ता दोनोंका पुनर्विवाह निषेध किया है। सुतर्ष इतक बचनानुसार भी विधवाका पुनर्विवाह निषिद्ध है। विशेष निषेध 'निषा' शब्दमें है।

विधवापन (विं० पु०) विधवा होनेकी अवस्था, वह अवस्था जिसमें पतिके मरनेके कारण स्त्री पतिहोन हो जाती है, रङ्गाया अथवा।

विधवावेदन ( सं० झी० विधवाविवाह ।

विधवाभ्रम ( सं० पु० ) विधवाओंके रहनेका स्थान, वह स्थान जहाँ विधवाओंके पालन पोषण तथा शिक्षा आदि का प्रबंध किया जाता है।

विधम ( सं० पु० ) प्रज्ञा ।

विधस ( सं० झी० ) मण्डूच्छिष्ट भोग ।

विधा ( सं० स्त्री० ) विन्याहिय । १ अल, भाष । २ निब देतो ।

विधातय ( सं० स्त्री० ) १ विधेय, विधानके योग्य । २ कर्तव्य, करने योग्य ।

विधाता—भृगु मुनिके पुत्रका नाम । मेरुकी कन्या निवति से इनका विवाह हुआ था। विधाताके एक माण नामक पुत्र था। फिर माणके वेदशिरा और कवि नामक दो पुत्र थे।

विधाता ( सं० पु० ) विधमू देने।

विधातु ( सं० पु० ) विधा-तृप् । १ प्रज्ञा । ( अमर )

२ विष्णु । ( मातृ ११।१४।६४ ) ३ महेश्वर । ४ काम

देव । ( मेरुदेवी ) ५ मरिचा । ( राजनि० ) ६ विधानकर्ता

बनानेवाला । ७ दाता, देनेवाला । ८ सर्वसमर्थ ।

६ पिहितकर्मानुष्ठान, वह जो शास्त्रबिहित कर्मोंका अनु

ष्ठान करते हैं । १० निर्माता, बनानेवाला । ११ अथवा

करनेवाला, ठोक ठरहल अगानेवाला । १२ सृष्टिकर्ता,

जगत्की रचना करनेवाला । इन अद्वितीय शक्तिसम्पन्न

सृष्टिकर्ता अगरोश्वरकी मायामें समो ज्योय फँस हुए हैं ।

वे सृष्टिकर्ताके अतिविचित्र कार्यकलाप देख उनका

अथार्थ अथवा निरूपण नहीं कर सकते और अतिसमकी

तट्ट सत्यता पक्के रहते हैं क्योंकि वे (जोव) देखत हैं, कि

इस अगत्यप्रश्न कहीं तो तुल्ये पर्यंत (दायानिक द्वारा),

कीटसे सिंहशायल, मशकस गज शिशुसे महावीर पुत्र

तक बिभट होता है, कहीं सृष्टिक मण्डुक आदि बाघ,

मांजर भुङ्गज्जिन आदिकोंका विनाश करता है । कहीं

विद्वद् धर्मावलम्बी अग्नि और अन्नकी वाष्पके आकारमें

परिणत कर उसकी निर्मूलता सम्पादन करता है तथा

अपन नाशप शुष्क तृणादि द्वारा स्वयं बिभट होता है । यदि

विचार कर देखा जाय, तो इससे अधिक आश्चर्य और

कथा ही सचता है, कि एक जहमुनिने ही इस भूमद्वय

प्रापी सात समुद्रोंका जन पी छिया था ।

१३ मयम । ( जि० ) १४ मेधावी, विद्वान् ।

विधातुका ( सं० स्त्री० ) विभायिका, विधान करनेवाला ।

विधातुम् ( सं० पु० ) विधातुप्रज्ञानो भूतत्पत्तिरस्य ।

१ नाप्यनुनि । २ मरुते आदि ।

विधातापुम् ( सं० पु० ) विधातुरायुर्विधितकालपरि

माण यस्मात्, सूर्यक्रियां विना वरसरादिज्ञानासम्भवा

देवास्य तथास्यम् । १ सूर्य, वह जिनसे विधाताके

स्वयं पदार्थका आहित काळ परिमित होता है । इनकी

उत्पास्त क्रिया द्वारा सौरोंके वरसरादिका ज्ञान होता है

तथा उससे जीयका आयुर्काल निकाला जाता है, इसी

कारण सूर्यका विधातापुः नाम पड़ा है ।

२ प्रज्ञाकी उमर । चौदह मन्वन्तर अथवा मनुष्य

मानके एक कदरका प्रज्ञाका एक दिन, मानवीय तीन

सौ कल्पका ४२० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक मास (३० दिन)। इसी प्रकार ३६० कल्प, ५०४० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक वर्ष (१० मास) होता है। ब्रह्माकी परमायु सौ मन्वन्तर तक है, जिसमेंसे ५० वर्ष या आधा समय धीन चुका। वर्तमान ५१वां वर्ष और श्वेतवाराहकल्प आरम्भ हो कर उसके ६ मन्वन्तर बीत गये हैं। अभी वैद्यवत मन्वन्तर चलता है।

विधातो (सं० स्त्री०) विधा-तृच् डीप्। १ विधान करने वाली, बनानेवाली, रचनेवाली। २ व्यवस्था करनेवाली, प्रबन्ध करनेवाली। ३ पिप्पली, पीपल।

विधान (सं० क्ली०) विधा ल्युट्। १ विधि, नियम। २ करण, निर्माण, रचना। ३ करिकबल, उतना चागा जिनना हाथी एक वार मुहमे डालता है, हाथीका प्राप्त। ४ वेदादिशास्त्र। (मनु १।३) ५ नाटकाङ्गविशेष, नाटकमे वह स्थल जहाँ किमी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और दुःख प्रकट किया जाता है। ६ जनन, उत्पत्ति करना। ७ प्रेरण, भेजना। ८ आश्चाकरण, अनुमति देना। ९ धन, सम्पत्ति। १० पूजा, अर्चन। ११ शत्रुताचरण, हानि पहुँचानेका दावपेच। १२ ग्रहण, लेना। १३ उपार्जन, हाशिल। १४ विषम। १५ अनुभव। १६ उपाय, ढंग, तरकीब। १७ विन्यास, किसी कार्यका आयोजन, कामका होना या चलना।

विधानक (सं० क्ली०) १ व्यथा, क्लेश, यातना। २ विधि, विधान। (त्रि०) ३ विधानवेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला।

विधानग (सं० पुं०) विधान गायतीति गै-ठक्। पण्डित, विद्वान्।

विधानज्ञ (सं० पुं०) विधानं जानातीति विधान् ज्ञा क। १ पण्डित, विद्वान्। (त्रि०) २ विधानवेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला।

विधानशास्त्र (सं० क्ली०) व्यवस्थाशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, आर्हण।

विधानसंहिता (सं० स्त्री०) विधानशास्त्र।

विधानसप्तमी (सं० स्त्री०) माघशुक्लासप्तमी।

विधानसप्तमीव्रत (सं० क्ली०) सप्तमी तिथिमें कर्त्तव्य व्रत-विशेष। यह व्रत माघ मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे

आरम्भ कर पीपमासकी शुक्लामप्तमी पर्यन्त प्रति मासकी सप्तमी तिथिमें करना होता है। इस व्रतमें सूर्यपूजा और सूर्यागतवका पाठ करना कर्त्तव्य है। यह व्रत इन्नेमें रोग नष्ट होता है तथा सम्पत्ति लाभ होती है। यह व्रत मुख्य चान्द्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें करनेका विधान है।

इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है। व्रतके पूर्व दिन सयन हो कर रहना होता है। व्रतके दिन सुबेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन और मङ्गल्य करे। "ओं कर्त्तव्येऽस्मिन्विधानसप्तमीव्रतकर्माणि श्रीं पुण्याह भवन्तोऽधिभ्रवन्तु श्रीं पुण्याह" इत्यादि ३ वार पाठ करे। इसके बाद स्वस्ति और ऋद्धि तथा 'सूर्या स्तोमः' इत्यादि मन्त्रका पाठ कर मङ्गल्य करना होता है। जैसे—

"विष्णुमेव नत्सदोमघ माघे मासि शुक्ले पक्षे सप्तम्यान्तिधावारभ्य पीपस्य शुक्लं सप्तमीं यावत् प्रातःमासाय शुक्लसप्तम्या अमुकगोत्रः श्रीक्षमुकदेवजर्मा आरोग्यसम्पत्काम, अर्भाष्टनत्तत्फलप्राप्तिसामो वा विधानसप्तमीव्रतमह करिष्ये।"

इस प्रकार मङ्गल्य करके वैदिकानुसार सूक्त पाठ करे। पाठे शालग्रामशिला वा घटस्थापनादि करके सामान्यार्वा और आमनशुद्धि आदि करके गणेश, शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है। इसके बाद षोडशोपचार से भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करके उनका स्तव पाठ करे। प्रति मासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें इसी नियमसे पूजा करनी होता है। किन्तु प्रत्येक मासमें मङ्गल्य नही करना होता। प्रथम मासके मङ्गल्यसे ही सभी मासोंका काम चला जाता है।

यह व्रत करके वारहो महीनेमें वानह नियम पालन करने होते हैं। यथा—(१) माघमासमें अक्षयनके पक्षोंका सिर्फ अक्षर खाना होता है। (२) फाल्गुनमासमें जमीन पर गिरनेसे पहले ही जो भर पीली गायका गोबर खानेका नियम है। (३) चैत्रमासमें एक मरिचभक्षण, (४) वैशाखमासमें थोडा जल, (५) ज्यैष्ठमासमें पके केलेके बीचकी कणामाल, (६) आषाढमासमें यवपरिमित कुजमूल, (७) श्रावणमासमें अपराहकालको

अन्तर हविष्यान्व, (८) साद्रमासमें शुद्ध उपवास (६) माश्विनमासमें २॥ प्रहरक समय सिफ एक बार मयूर का अण्ड परिमित हविष्यान्व, (१०) कार्तिंक्रमासमें अर्द्ध प्रसूति मात्र कृषिजा कुम्भ, (११) अग्रहायणप्राममें पूर्वाह्न्य हो कर चायुमसूत्र (११) पीवमासमें अति अन्तर गन्धपूज मोक्षण । बारहों महोत्सैकी सप्तमीतिथिमें इसी प्रकार मोक्षण करनेका नियम है ।

व्रत खेप हो जाने पर ब्राह्मण मोक्षण और यथा विधान व्रतप्रतिष्ठा करना आवश्यक है । पीछे दक्षिणाश्व और अष्टिद्राघधारण करे । यह व्रत करनेसे सभी रोगोंमें मुक्तिप्राप्त किया जाता है तथा परलोकमें सुख सम्पन्न प्राप्त होते हैं । ( इत्यन्तर )

विधानिका ( स० अ० ) पृष्ठतो ।

विधापक ( सं० क्रि० ) वि धा ण्बुछ । १ विधानकर्ता, कार्य करनेवाला । २ निर्माता बनानेवाला । ३ व्यवस्था करनेवाला, प्रवर्ण्य करनेवाला । ४ जनक, उत्पादक । ५ कारक करनेवाला ।

विधाविन् ( सं० क्रि० ) वि धा णिनि । विधानकर्ता ।

विधार ( स० पु० ) विधापक वह जो धारण करता हो ।

विधारण ( सं० क्री० ) वि धा णिच् ब्युट् । १ विशेष रूपसे धारण करना । ( क्रि० ) २ धारक, धारण करनेवाला ।

विधारण ( सं० क्रि० ) विधिधारणकारी ।

( शुक्लसप्तः १०८२ माष्य )

विधारणितव्य ( स० क्रि० ) विशेषरूपसे धारण करनेक योग्य । ( प्रत्येपरि० ४१५ )

विधारणित् ( सं० क्रि० ) विधाकर्ता । ( निबन्ध १२१४ )

विधारा ( द्वि० पु० ) दक्षिण-भारतमें बहुतायतसे होने

वालों एक प्रकारकी कृता । इसका अर्थ बहुत बड़ा और इसकी शाखाय बहुत घनी होती है । इसको जालियों पर गुलाबके-से कटि होत है । इसके पत्ते तीन अंगुल लम्बे अष्टाकार और नौकरार होते हैं । जालियों के सिरे पर वामकरार पीछे फूलोंका गुच्छा होता है । वैद्वयकमें इसे पतम मयूर, मेघाञ्जनक, अग्निप्रदोषक, घानुपदक और पुष्टिदायक माना है । अण्डंदा, अमिद, क्षय, वातरक आदिमें इसे औषधी भाँति व्यवहारमें आते हैं ।

विधारण ( स० क्रि० ) विधारणशोच, धारण करने वाला ।

विधावन ( स० क्री० ) वि धा व ण्युट् । १ परवाखावन, पीछे पीछे दौड़ना । २ निम्नामिमुख गमन लोखेकी ओर जाना ।

विधि ( स० पु० ) विधति विद्यानि विम्बमिति । वय

विधामे विच इत् ( अणुपणत् कित ) उण ४।११६ ) १ ब्रह्मा ।

विधीयते सुखदुःखे भवेत्तेति वि धा कि ( उपसर्गे षोः कि ।

पा ३।३।६२ ) २ वह जिसके द्वारा सुखदुःखका विधान

होता है ; माग्य अद्भुत, लकड़ौर । ३ कव्य, प्रजापति,

इंद्र । ४ किसी शास्त्र या ग्रन्थमें लिखी हुई व्यवस्था,

शास्त्रोक्त विधान । ५ काष्ठ, समय । ६ विधान,

व्यवस्था । ७ प्रकार, क्रिस्म । ८ विधेय । ९ विष्णु ।

१० कर्ता । ११ गजमास, हाथीका कारा । १२ वैद्य ।

१३ अमासविषयका प्रायक, छः प्रकारक सूत्रलक्षणोंमेंसे

एक । व्याकरण तथा स्मृति भूति आदि धर्मशास्त्रों

में कुछ विधियोंका उद्देश्य है । उन सब विधियोंक

अनुबन्धों हो कर उन शास्त्रोंका व्यवहार करना

होता है । नीचे व्याकरणकी कुछ स्थूल विधियाँ

लिखी जाती हैं,—जो सब सूत्र अमास विषय

क प्रायक होते हैं अर्थात् जिस जिस सूत्रमें किसी वर्ण

की उत्पत्ति का भाव होता है तथा जिसमें सन्धि, समास

या किसी वर्णोत्पत्तिका नियम रहता है, वे छः प्रकारक

सूत्रलक्षणोंके अन्तर्गत विधिलक्षणयुक्त सूत्र हैं । श्रुते—

“वयि अत्” इस प्रकार सन्निवेश होने होसे इकारकी

अगह ‘य’ नहीं हो सकता, लेकिन यदि कहा जाय, कि

“अवर्णक पीछे रहनेक इकारकी अगह ‘य’ होगा” तभी

हो सकता है । इसविधि यही अनुशासन अमास विषय

का प्रायक हुआ । एक अगह हो सूत्रोंकी प्राप्ति रहनेसे

जिसका कार्य बहवाह होगा, वही नियम विधियुक्त सूत्र

है अर्थात् प्राप्तिस्थानमें जो विधि है, उसीका नाम

नियम है । सु ( सुप् ) विभक्ति पीछे रहनेस एक साधा

रण सूत्रक बल पर ही उत्पूर्वबर्त्ता सभी एक स्थानमें

विसर्ग हा सकता है । इस हिसाबसे यदि ऐसा विधान

रहै कि, “सुप्क पीछे रहनेस ‘स’, ‘य’ और ‘न’ की

अगह आत एकैके स्थानमें विसर्ग होगा” तो ज्ञानता

चाहिये, कि विभक्तिका 'सु' पीछे रहनेसे उमके पूर्व वर्त्तों 'स', 'प' और 'न' की जगह जात रेफ भिन्न किसी दूसरे रेफ स्थानमें (साधारण सूत्रके बल पर) विसर्ग नहीं होगा। जैसे,—इविस्-सु=इविःसु, धनुस्-सु=धनुःसु, सजुप्-सु=सजुःसु, अहन्-सु=अहःसु, किन्तु 'स' 'प' और 'न' की जगह जात रेफ नहीं होनेके कारण चतुर्-सु=चतुर्षु इत्यादि स्थलोंमें प्राप्ति रह कर भी (इस नियम सूत्रके प्राधान्यवशातः) विसर्ग नहीं होगा। एकका धर्म दूसरेके आरोप करनेका नाम अतिदेशविधि है, जैसे,—तिट् (तिप्, तस, भि आदि) प्रत्ययके पीछे 'इण' धातुके मध्यममें सूत्र होनेके कारण अन्तमें कहा गया कि, 'इण' धातुके समान "इक्" धातु जाननी होगी अर्थात् वरात् 'इण' धातुका तिटन्तपद जिस जिस सूत्रमें सिद्ध तथा जिस जिस आकारका होगा 'इक्' धातुका तिडन्तपद भी उसी उसी सूत्रमें सिद्ध तथा उसी उर्मा आकारका होगा। उदाहरण,—इण्=इ दिप् (लुङ्)=अगात्; इक्=इ दिप् (लुट्)=अगात्। ऋदाध्यायमें कहा गया "भ्रदादिविभक्तिके पीछे रहनेसे स्त्री और म्रू शब्दके धातुकी तरह कार्य होगा" अर्थात् धरान दी गई कि स्वरादि विभक्तिके पीछे रहनेसे 'ध्रौ' 'भ्रू' आदि धातुप्रकृतिक दीर्घ ईकार और दीर्घ ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दकी तरह यथाक्रम स्त्री और भ्रू शब्दका पद सिद्ध करेगा। उदाहरण श्री श्री=ध्रियौ। स्त्री-श्री=स्त्रियौ, यद्वा टानों ईकारके स्थानमें 'इप्' हुआ। म्रू-श्री=भ्रुयौ, म्रू-श्री=भ्रुवौ, शानों स्थलोंमें दीर्घ ऊकारकी जगह 'ऊव्' अर्थात् एक ही तरहका कार्य हुआ। विशेष विवरण अतिदेश शब्दमें देखो।

वैयाकरणके मतसे परवर्त्तों सूत्रमें पूर्वसूत्रस्थ पदों वा किसी किसी पदका उल्लेख न रहने पर भी अर्थ-विवृतिकालमें उसका उल्लेख किया जाता है, इसे अधि-कारविधि कहते हैं। यह सिंहावलोकित, मण्डुकप्लुन और गङ्गास्रोतके भेदसे तीन प्रकारका है। सिंहावलोकित (सिंहकी दृष्टिकी तरह) अर्थात् १म सूत्रमें,—"अकारके षट् आकार रहनेसे उसका दीर्घ होगा" यही कह कर २य सूत्रमें सिर्फ "इकारका गुण", ३यमें "पकारकी वृद्धि", ४थमें "टा-की जगह इन" इत्यादि प्रकारसे सूत्र विन्यस्त

रहने पर समझना होगा, कि प्रथममें चतुर्थं सूत्र पर्यन्त दीर्घ, गुण, वृद्धि, इनादेन जितने कार्य होंगे, वे सभी अकारके उत्तर आयेगे। इस सूत्रमें वैयाकरण नाम अधिकारविधि है; इसके बाद १म सूत्रमें यदि कहा जाय कि, "इकारके षट् अकार रहनेसे उस इकारकी जगह 'य' होगा" तो वह अधिकार मण्डुकप्लुन पर एक सूत्रमें बहुत दूर जा कर नष्ट जाता है, इसी कारण वैयाकरणोंमें उसका नाम "सिंहावलोकित" रखा है। जहाँ १म सूत्रमें,—"अकारके उत्तर टा रहनेसे उसका जगह इन होगा", २यमें "अ" र "प" पकारके षट् 'न' प' राना, ३यमें "म"के पीछे रहने पर धातुका होगा"। अर्थात् जिसके उत्तर 'म' रहेगा उसके स्थानमें आदार लागा) इस प्रकार दिग्गद्देनेसे वह अधिकारविधि "मण्डुकप्लुन" कहलाती है, क्योंकि यह मण्डुकी उद्वानश्री तरह प्रकृत दूर नष्टा जा सदा। फिर ऋदाध्यायमें १म सूत्रमें "ऋदके उत्तर प्रत्यय लागा" ऐसा उद्देश कर २य सूत्रमें ले कर वह ऋदाध्याय समाप्त होनेके बाद तन्पद वर्त्तों तद्विदाध्यायके शेष पर्यन्त यथाप्यस्य स्त्री वा स्त्रीके अधिक सूत्रमें जितने प्रत्यय होंगे, वह प्रत्यय सूत्रमें 'शब्दके उत्तर' इस बातका स्मरण नहीं रहने पर भी, ऋदके उत्तर ही होगा, धातु आदिका उत्तर नहीं होगा। यह अधिकारविधि गङ्गास्रोतकी तरह उत्पत्ति स्थानमें घेराकटोम मागमसूत्र पर्यन्त अर्थात् यहाँ प्रकरणके श्रेय तक अर्पिततमानाममें प्रकृत रहनेके कारण वैयाकरणोंके निकट यह गङ्गास्रोत समझा जाता है। वैयाकरणोंने इसके सिवा संज्ञा और परिभाषा नामक दो और सूत्रोंको बनला कर सूत्रसंस्थापन किया है। संज्ञा अर्थात् नाम, जैसे—व्याकरणके सिवा इनका अन्य शास्त्रमें व्यवहार नहीं होता, व्याकरणमें व्यवहार करनेका तात्पर्य है, सिके प्रथम सक्षेपके लिये; क्योंकि (अच् शब्दका प्रतिपाद्य) "अ वा इ ई उ ऊ ऋ ऋ ल् ल् प पे ओ औ" पीछे रहनेसे 'प' की जगह 'अप्' न होनेके कारण अच्के पीछे रहनेसे 'प'की जगह 'अय' होता है। ऐसा कहनेसे ही संक्षेप हुआ। व्याकरण-सूत्रके परस्पर विरोधभङ्गन और ग्रन्थके सक्षेपके लिये शाब्दिकीने कुछ परिभाषाविधिका निर्देश किया है।

१ म सूत्रमें 'अच्'के पीछे रहनेसे 'य' की जगह 'अय' 'म' ऐसा कद कद ४४ सूत्रमें "यकारके बाद अकार के उस अकारका लोप होगा" कहनेसे, वस्तुतः अक्षरसमूहमें दोनों सुनोंका परस्पर विरोध उपस्थित होता क्यों कि "हरे + अय" यहाँ पर अच् या खरबर्ण की भीतर उसके पहले एकार रहनेसे १ म सूत्रकी प्राप्ति अकारके पीछे अकार रहनेसे ४४ सूत्रकी प्राप्ति है। यादवतः यहाँ इदृशसे ही दोनों सुनों की प्राप्ति होती जाती है; किन्तु आचार्योंने इन दोनों सुत्रोंमें ऐसा भी न कहा, कि इससे दोनोंमें कोई एक बलवान् हो जाता है। ऐसे विरोधपरसमूहमें ही परिभाषाभिधेकी उत्पत्ति पड़ती है। इसकी मोर्मांसाके सिधे "तुल्यबल दोषे परं कार्य" अर्थात् व्याकरणके सम्बन्धमें "दोषीका बल सामान्य विचार है तैसी परवर्ती सुत्र ही कार्य ही होगा" तथा "सामान्यविरोधेप्योपिरोधेपिबिधिर्यत्रवात्" अर्थात् "बहुतसे विधियोंकी अपेक्षा पोछे विधयकी ही हो बलवान् होगी" इन दोनों परिभाषाओंके व्यवहार होनेसे परवर्ती सुत्र अर्थात् ऐयविधिका कार्य ही बलवान् होगा। परन्तु १ सूत्रमें विशेषता यह है, कि उसमें विधयोका उल्लेख है क्योंकि पूर्ववर्ती सूत्रमें समस्त खरबर्ण उ रेवदीका विषय और परवर्तीसूत्रमें सिर्फ एक खरबी पीछे रहनेका विषय है। फिर इस सम्बन्धमें श्याय है, "अक्षरव्यतिरिक्तविषयत्वं विशेषतश्च बहुतरविषयत्वं साम्यत्वं" अर्थात् जहाँ कम विधयोका निर्देश है, वहाँ विशेष और जहाँ अनेक विधयोका निर्देश है, वहाँ साम्यविधि जाननी होगी। व्याकरणमें ऐसा किसी भी भाषाविधियोंका व्यवहार है जिनमेंसे अक्षररूप, वहि, सावकाश, निरवकाश, आगम, आदेश, लोप, और पाठशुद्धि संबंधी प्रयोगयोग्य हैं।

मूर्ति अर्थात् शब्द वा धातुका भाष्य करने गुण, द, लोप, आगम आदि जो सब कार्य होते हैं, उन्हें अक्षररूपतया प्रत्ययका आश्रय छे कर जो सब कार्य होते हैं, उन्हें बहुविक्रियविधि कहते हैं। इन दोनोंका लोप होनेसे अक्षररूपविधि बलवान् होगी। एक हीतिकी ही आश्रय करके यदि इस प्रकार पूर्वोपर दो

कार्योंका सम्मम हो तो जो पूर्ववर्ती है उसे अक्षररूप-तर विधि कहते हैं तथा बही विधि बलवान् होती है। जैसे अच् अ ( सिद्ध १ म पु० १४० ) - अच् अ अ - अ ऊ - अ अमी 'अ' और 'अ' इन दो प्रकृतियोंमें पहलीकी जगह 'आर' और दूसरीकी जगह एकार होनेका सम्मम है, इस कारण इस अक्षररूपतर विधिबलसे पूर्ववर्ती अकारकी जगह 'आर' हो होगा। जिस विधिका विषय पहले कीर पीछे दोनों ही जगह है, उसे सावकाश और निरवकाश विषय कहल पढ़ते हैं, पीछे नहीं, उसे निरवकाश विधि कहते हैं। जिस विधिके अनुसार कोई वर्ण प्रकृति वा प्रत्ययकी मरु न करके उत्पन्न होता है, उसे आगम तथा जो वर्ण दोमोका उपपन्नो हो कर उत्पन्न होता है, उसे आदेश कहते हैं। इन दोनोंमें आगमविधि बलवान् है। सभी प्रकारकी विधियोंमें छापविधि ही बलवान् है। किन्तु छाप और खरबीश ( खर वणका आदेश ) इन दोनों विधियोंकी प्राप्तिके सम्बन्धमें यदि फिर विरोध हो, तो बही खरबीशविधि ही बलवान् होगी।

इसके सिवा खरबी प्रबलित वरसर्ग और अपवाद नामकी दो विधियाँ हैं। वे एक तरफसे सामान्य और विशेष विधिकी नामांतर मात्र हैं। अर्थात् "सामान्य विधिद्वरसर्ग" "विशेषविधिरपवाद" सामान्य विधि वरसर्ग और विशेष विधि अपवाद कहलाती हैं।

पूर्वमोर्मांसा नामक जैमिनिस्त्रके व्याख्याकर्ता गुण और प्रभाकरने विधिक सम्बन्धमें व्याकरणघटित प्रत्ययविका विषय इस प्रकार कहा है। भइका कहना है, कि विधिचिह्न, छोट् और उभ्यायि प्रत्ययका अर्थ है तथा उसका दूसरा नाम भावना है। अक्षरव शब्दी भावना और विधि दोनों एक है। प्रभाकर और गुण कहते हैं, कि विधिघटित प्रत्ययमात्र ही नियोगवाच्य है, इस सिधे नियोगका ही दूसरा नाम विधि है०।

\* महाश्रीश्याय के बटने मो पाणिनिने "विधिरिभ्यन्वया मन्यथापिच संमम्य मर्यनेपु सिद्ध" । ( पा ३।३।१६१ ) इव लुके महाभाष्यकी व्याख्यामें विधि शब्दका विशेषन अर्थात् नियोग देना अर्थ लगाया है। भाष्यकारने लिखा है, "विद्यन् वीच्यमो को विशेष" "विधिरिभ्यन्वयम्" "अचोच" नाम



"स्वर्गकामो यजेत" यह एक विधि है। यह विधि अर्थात् विद्वान् और समर्थ श्रोतृपुरुषोंको यागकरणक और स्वर्गफलक भावनामें ( उत्पादन विशेष ) प्रवृत्ति उत्पन्न करती है अर्थात् उसको स्वर्गजनक श्रानुष्ठानमें नियुक्त करती है। जो जो स्वर्गार्थी अथवा अधिकारी हैं वे सब याग करें तथा अपनेमें स्वर्गजनक अर्पण ( पुण्यविशेष ) उत्पादन करें। लक्षणका निरूपण यह है, कि जो वाक्य कामोपुरुषको काम्यफल लाभका उपाय बतला कर उन्में उन्की आनुष्ठानिक प्रवृत्ति पैदा करता है, वही वाक्य विधि है।

वाक्य वा पदमात्र ही धातु और प्रत्यय इन दोनोंके योगसे निष्पन्न होता है। वाक्य वा पदके एक देशमें

सत्कारपूर्विका व्यापारणा"। कियेने भाव्यकारधृत उक्त पाठ की ऐसी व्याख्या की है,—"विध्यधीयोरिति। उभयोरपि नियोगरूपत्वादिति पूनः। पेपामिति भूत्यादेः कस्याश्चित् क्रियाय, नियोजनमित्यर्थः। अधीष्टं नामेति गुर्वीदेषु पूज्यस्य व्यापारणमधीष्टमित्यर्थः। पूषद्वायी न्यायव्युत्पादनायी वा अर्थ मेदमाश्रित्य मेदेनोपादान विधिनित्प्रयादानां कृतम्। विधिरूपा हि सर्वान्वयिनी विद्यते।" दोनों जगह एक ही नियोगरूप व्यापार होने पर भी विधि और अधीष्टमें भेद यह है, कि विधि प्रेषण अर्थात् भूत्यादिको किसी कार्यमें नियोग करना। जैसे—"भवान् ग्राम गच्छेत्" व या तुम ग्राममें जायेगा या जाओगे। पूजनाय व्यक्तियोंके सत्कार करनेका नाम अधीष्ट है। जैसे—"भवान् पुत्रमव्यापयेत्" आप मेरे पुत्रको पढाये। इन दोनों ही जगह नियोग समझा जाता है, किन्तु पहले असत्कार और पाछे सत्कार पूर्वक, वस विरक्ति इतना ही प्रभेद है। अर्थात् प्रपञ्च ( विस्तृति ) अथवा नाना प्रकारकी न्यायव्युत्पत्तिके लिये ही आचार्यने मूल सूत्रमें विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण आदिका भेद बतलाया है। फलतः एक नियोगरूप विधि ही सर्वत्र अन्वित रहेगी अर्थात् विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट आदि सभी जगह साधारणतः एक नियोगार्थी ही समझा जायेगा। क्योंकि "इह भवान् भुञ्जीत" आप वहाँ भोजन करें, "भवानिहासीत" आप यहाँ बैठें, इत्यादि यथाक्रम निमन्त्रण और आमन्त्रणके स्थानमें भी प्रायः एक नियोगको छोड़ और कुछ भी नहीं देखा जाता।

जो लिटादि प्रत्यय योजित रहता है, वह प्रत्ययकी मुख्य अर्थभावना अथवा नियोग है। भावना शब्दका अर्थ उत्पादना है अर्थात् यह कुछ उत्पादन करनेमें प्रवृत्ति कराती है। भावना शब्दो और आधीक भेदसे दो प्रकारकी है। "यजेत" इस वाक्यके पदप्रथममें जो लिट् प्रत्यय है, [ यज्-नते ( लिट् ) ] उन्की अर्थ है भावना। अथवा "यजेत = भावयेत्" अर्थात् उत्पन्न करेगा। यह भावना आधी है अर्थात् प्रत्ययार्थ लभ्य है। इसके बाद 'कि' 'येन' 'कथं' अर्थात् क्या, किससे? किस प्रकार इस प्रकारकी आकाङ्क्षा वा प्रश्न उठने पर तत्पूरणार्थ "स्वर्गः, यानेन, आनन्दाधानादितिः" स्वर्गको यागके द्वारा इन सब प्रश्नोंका समाप्त अन्वित हो कर समाप्त वाक्य एक विधि समझा जाता है।

लिट्प्रयुक्त लौकिक वाक्य सुन कर भी ऐसा प्रतीति होती है, कि यह व्यक्ति मुझे इस वाक्यमें अमुक विषयमें प्रवृत्त होनेके लिये कहता है और मैं अमुक कार्यमें प्रवृत्त होता हूँ, यही इसका अभिप्रेत है। यत्नाका अभिप्राय उक्तुक्त निधिवाक्यमें लिटादि प्रत्ययका बोध है। अतः पथ वह सत्कारकामो है। फिर अधीष्टपेय वेदवाक्यमें वह शब्दकामो है, अर्थात् लिटादि शब्द ही उस श्रानुष्ठानको बतला देता है। यह शब्द समिता होनेके कारण शब्दों भावना नामसे प्रसिद्ध है। "स्वास्थ्यकारी प्रातर्भ्रमण करे" यह एक लौकिक विधिवाक्य है। यह वाक्य सुननेसे दो प्रकारका बोध होता है, एक प्रातर्भ्रमण स्वास्थ्यलाभका उपाय जो हम लोगोंका कर्त्तव्य है और दूसरा वक्ताका आशय—मैं प्रातर्भ्रमण कर सुस्थ हूँ। ऐसी दृष्टाने वाक्य वैदिक होनेसे कहा जाता है, कि प्रथम बोध अर्थ और द्वितीय बोध शब्दो है।

मूल वाक्य यह है, कि विधिका लक्षण जो जिस प्रकारसे क्यों न करें, सभी जगह अत्रासाध्य विषयमें प्रवर्त्तनका भाव दिखाई देगा, क्योंकि सभी स्थानोंमें विधिका आकार है,—'कुर्यात्' 'क्रियेत्' 'कर्त्तव्य' इत्यादि रूप।

मीमांसादर्शनकार जैमिनिके मतसे वेद—विधि, अथे-वाच, मन्त्र और नामधेय इन चार भागोंमें विभक्त है। उक्त दर्शनकारकी पूर्वमीमांसा नामक सूत्रके व्याख्या-

कर्त्ता गुरु मह मीर प्रमाकर इन तीन वाचाप्योनि अपने "बोद्धानास्तनोऽर्थाधर्मा" इस सूत्रोक्त शब्दके बन्धने विधि शब्दका व्यवहार और निम्नलिखित प्रकारसे उसका अर्थ तथा स्वकनिर्देश किया है। बोद्धानाप्रवर्त्तक वाक्य ; इसका दूसरा नाम है विधि और नियम। विधियीक लक्षण और प्रकारसे इस प्रकार है,—

प्रधान विधि—“स्वता फलहेतुक्रियाधायकः “प्राग विधिः” मो विधि भाषसे हो क्रिया और उसके फलका बोध करातो है अर्थात् जो स्वयं फलजनक है, वही प्रधान विधि है। जैसे, “यजेत स्वर्गकामाः” स्वर्गकामो हो कर याग करे। अपूर्व, नियम और परितंभ्यामेवसे प्रधान विधि तोन प्रकृतकी है। “अस्तस्ताप्राप्ती अपूर्वाविधिः” जहाँ विधि विहित कर्म किसी तरह निषिद्ध नहीं होता वहाँ अपूर्वाविधि जानलो होगे। जैसे “यहरहः सन्ध्यानुयासात्” दिनान्तर सन्ध्याको उपासना करे, यह उक्ति शास्त्र, इच्छा और न्यायसङ्गत है तथा किसी भी स्थानमें इस विधिका अतिक्रम नहीं देखा जाता अर्थात् यह निवर्त कराय्य है। “पक्षतोऽप्राप्ती नियमविधिः” कारणबशात् शास्त्र वा इच्छा आदिसे अप्राप्ति होनेसे बसको नियम विधि कहते हैं। जैसे, “अतो माप्यामुपेयात्” अणु काष्ठमें मायासिगमन करे, यहाँ शास्त्रता निवर्त विधान यद्यपि पर भी अर्थात् इच्छामात्रबलतः विहित कार्याकी अप्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह दोषावह नहीं है, क्योंकि उक्त प्रकारसे एक पक्षमें विधिकता विपर्यय होता है, इमोच्छेदे यह नियमविधिमें गिना गया है। “विधेय तदुपतिपक्षयोः प्राप्ती परितंभ्याविधिः” जो शास्त्रता तथा अनुरागबशात् मिळता है, वह परितंभ्या विधि है जैसे ‘प्रोक्षितं मांसं भुञ्जोत’ प्रोक्षित (यक्रीय मन्त्र द्वारा संस्कृत) मांस भोजन करे, यहाँ पर प्रोक्षित मांस भक्षणकी प्रवृत्ति शास्त्रता तथा स्वभावताः मांसमें अनुरक्त रहने होने हुआ करती है।

अङ्गविधि—“अङ्गविधिरनु स्वता फलहेतुक्रियाया कथमितयाकाऽनुसाया विधायकः” जिस विधिमें किस कारण क्रिया को ज्ञातो है वह ज्ञानलक्ष विधेय भावे भाव आकाङ्क्षा इतनी है उनको अङ्गविधि कहते हैं। यह अङ्गविधि काष्ठ, देश और कर्त्ताकी बोधकप्रमाण है। इस

कारण यह अनिपत्त है; “अङ्गविधिरनु कामदेतकर्त्तादि बोधकप्रमाण अनियम एव”। कहनेका तात्पर्य यह कि अङ्गविधिमान ही प्रधान विधिनी कथकारक वाचात् मूलकर्म की सहायक है। जैसे अग्निहोत्र यज्ञमें “मोहिभिर्यजेत” मोहि द्वारा याग करे, “इच्छता भुञ्जोति” इधि द्वारा होम करे, इत्यादि। अथास्तद क्रियाये अङ्गयाग या अङ्गविधि है। अङ्गविधि मो प्रधान विधिकी तरह अपूर्व, नियम और परितंभ्या मेवसे तोन प्रकारका है। क्रमशः उदाहरण, “शारदीय पूजायामग्र्यामुपबसोत्” महाप्रथमोप वष वाम करे, यह दुर्गापूजाका अङ्ग होनेके कारण अङ्गविधि है तथा यह पतङ्गशस्त्र है, अपनी इच्छा अथवा न्याया अनुसार किसी मत्से निषिद्ध नहीं हो सकता, अतएव अवरप करारम्भन तात्पर्य अपूर्वविधि है। “आद्ये भुञ्जोति पितृषुचितम्” आद्यशय मानन करे, यहाँ पर ‘आद्यशय भोजनक सम्बन्धमें इच्छानुसार जन्मा प्याघात हो सकता है, अतएव कारणबशात् एक पक्षमें अप्राप्ति होनेसे नियम विधि हुई। “पृथिव्याः मातरामग्नितान् विमान्” इधि आद्यमें प्राताकाष्ठमें बिमोको आमन्त्रण करे, यह परितंभ्या विधि है, क्योंकि यहाँ बिहित प्रातःकालके निमग्नन अथवा पार्ष्ण्यआद्यकी तरह उसक पहले दिनके सार्ध काष्ठका निमग्नन इन दोनोंको ही न्यायसङ्गत प्राप्ति हो सकती है। इस कारण प्रधान और अङ्गविधिक अन्तर्गत अपूर्व, नियम और परितंभ्याविधिका लक्षण इस प्रकार ठिका है—

“निभिरत्पन्तमशान्ती नियमा पात्रिके धति।

तत्र चान्यत्र च प्राप्ती परितंभ्या विधीकते ॥”

( विवरलापन )

किसी किन्ही मत्से सिद्धरूप और क्रियारूप मेवसे अङ्गविधि जो मागोंमें बिसक्त हुए है। द्रव्य और संख्या आदि सिद्धरूप हैं; अथशिशु क्रियारूप हैं। क्रियारूप अङ्ग दो प्रकारका है, सन्निपत्योपकारक और आरातुपकारक। सिद्धरूप अङ्ग (द्रव्यादि)के वह शस जो क्रिया की जाता है, वह सन्निपत्योपकारक है। “मोहोय मबद्धोति” “सोमममिपुणोति” इत्यादि वाक्योंमें मोहि और सोम द्रव्योंमें अथघात और अमिषय क्रियाका विधान है। जहाँ अङ्गविधिके द्रव्यादिका उद्देश नहीं देखा जाता, फिर

भी श्रद्धा में क्रियमाण विधायक है, वहाँ वह अद्भुत शारादुप-  
कारक पृथ्वीक मन्त्रिपटयोपकारक कर्म प्रधान कर्मका उप-  
कारक तथा प्रधान कर्म उमका उपकारक है। यह उप-  
कारक उपकार्य भाव वाप्यगम्य है, प्रमाणान्तरमध्य  
नहीं। शैवोक्त शारादुपकारक कर्मके स्वाद्य प्रधान कर्मका  
उपकार्य उपकारक भाव जो है, वह प्रकरणानुसार उन्त्य  
है। सीमासा देखो।

उत्पत्ति प्रधान और अद्भुतविधिका अन्य प्रकारमें  
पश्चिमाग दिग्वाह देता है, जैसे—उत्पत्ति, विनियोग, प्रयोग  
और अधिकार। इनमेंसे उत्पत्ति और अधिकार  
प्रधान विधिके तथा विनियोग अद्भुतविधिके अन्तर्भूत  
है। "कर्मरूपमात्त्वोधाकविधिकरूपचिद्विधिः" जो  
केवल ईश्वर कर्मकी बोधक है, वही उत्पत्ति विधि है।  
जैसे "अग्निहोत्रं जुहोति" "अग्निहोत्रहोमेनेष्ट" भावयेत्  
त्यक्त विधी कर्मणः करणत्वेनाययः' अग्निहोत्रहोम द्वारा  
अभीष्टित फलोत्पादन करे, इस उक्ति द्वारा अग्निहोत्र  
होम करना होगा, सिर्फ यही समझा गया, किन्तु इसमें  
किस फलकी उत्पत्ति होनी, इसका पता न चला, इस  
कारण वह उत्पत्तिविधि है। "कर्मजन्मफलसाधवणे  
यतो विधिगधिकारविधिः' कर्मजन्य फलसोपगतकी अय-  
बोधक विधिना नाम अधिकारविधि है। जैसे "स्वर्ग-  
कामो यजेत" स्वर्गकामी हो कर याग करे, यहाँ पर स्वर्ग  
के उद्देशसे यागकारीका क्रियाजन्य फलसोपवृत्त्य प्रति-  
पन्न होता है, अतएव यह अधिकारविधि है। "अद्भु-  
प्रधानमस्वच्छबोधका विधिर्विनियोगविधिः" जो अद्भु-  
कर्मका विधायक है, वह विनियोगविधि है। जैसे—  
"आहिमिर्जजेत" आदि द्वारा याग करे, "दध्ना जुहोति"  
आदि द्वारा होम करे, वे स्वयं क्रियाप्रधान अग्निहोत्रके अद्भु-  
पतलाये गये हैं, इस कारण वे विनियोगविधिमें निर्दिष्ट  
हैं। "अद्भुतानां कर्मबोधका विधिः प्रयोगविधिः" जिस  
श्रद्धासे वा जिन पद्धतिले साद्गुप्रधान यागादि कर्म क्रिया  
जाता है, वह प्रयोगविधि है अर्थात् अद्भुतमें किस प्रकार  
किस कार्यके वा कौन कार्य करना होगा, वह प्रयोगविधि  
द्वारा जाना जाता है।

न्यायके मतमें विधिकी लक्षण इस प्रकार है,—

"प्रवृत्तिः कृतिरेवात्र वा चेच्छ्रुतो याम्वा वा  
तद्विज्ञानं विषयस्तस्य विधिराजः शारंगोऽथवा ॥"

(सुमुभाञ्जलि)

विधिवाक्य सुत्र पर पढ़ते पेटा मादृम होता है, कि  
यह कृतिसाध्य है अर्थात् यान करने पर किया जा सकता  
है तथा उमसे अभीष्ट फल प्राणिकी नी विशेष मग्ना  
पना है, यह ज्ञान जो जानने में सब विधिविहितकार्य  
करनेकी प्रवृत्ति होती है। इस ज्ञानका विषय जो है  
अर्थात् कार्यत्व और इष्टसाधनत्व यही विधि है। यह  
प्राचीन मत है। अपने मतमें उम साधनताके ज्ञापक  
वास्त वाप्यको विधि कहा जाता है।

गदाधर मट्टाचार्योंने अपने तथा सीमांसक मतसे  
विधिना स्वत्व जो निर्णय किया है, वह इस प्रकार है—

"आश्रयत्वमन्वयेन प्रत्ययोपस्थापितेष्टसाधनत्वा-  
न्वितस्वार्थपरपदघटितजापयत्वं विधित्वम् ॥" सीमा-  
ंसकके मतमें,— "इष्टसाधनत्व" कृतिसाध्यत्वञ्च पृथक्-  
विध्यर्थः ॥" (गदाधर)

जिन वाप्यमें लिङ्गादि प्रत्यय द्वारा आश्रयत्वके  
मन्वयमें उपस्थापित तथा इष्टसाधनयुक्त और स्वार्थ  
पर (स्वोय अर्थात्पृथक्) पद विद्यमान रहता है वही  
विधि है। जैसे "स्वर्गकामो यजेत" यहा यज् = याग  
करना, लिङ्ग वा 'ईत' प्रत्यय = करणाश्रय, वृत्त्याश्रय,  
नेष्टा वा यत्नशील, दोनोंके योगसे अर्थात् 'यजेत' =  
यागकरणाश्रय, याग करनेके लिये फाटोये प्रति यत्नशील।  
यहा पर स्वर्गकाम व्यक्ति ही यागकरणाश्रय हुआ, अतएव  
प्रत्यय द्वारा इस गदाश्रयत्व मन्वयमें उपस्थापित हुआ  
तथा वह "स्वर्ग कामयते" स्वर्गकः कामना करना है, इस  
व्युत्पत्ति द्वारा अपने अपना अर्थप्रकाशक और स्वर्गप्राप्ति  
रूप इष्टसाधनतायुक्त होता है। अतएव "स्वर्गकामो  
यजेत" यह एक विधिवाक्य है। सीमांसकादिके मतसे  
इष्टसाधनता और कृति (यत्न) साधयत्वको पृथक् पृथक्  
विधि कहा गया है। जैसे "स्वर्गकामो यजेत" अर्थात् स्वर्ग-  
कामी बनो और याग करो, यह दोनों प्रकारकी विधि है।

१४ यागोपदेशक ग्रन्थ, वह ग्रन्थ जिसमें यागयज्ञादि  
का विषय विशेषरूपसे लिखा है। १५ अनुष्ठान।  
१६ नियम। १७ व्यापार। १८ आचार। १९ यज्ञ।

२० कक्षरा । २१ घाष्य । २२ अर्थात्प्रकारमेद् । "सिद्धस्यैव विधान यत् तामाहुर्विध्य स इतिम् ।" (ब०) किसी अगह सिद्ध विषयका फिरसे विधान होने पर वहां विधि अलग प्रकार होता है।

विधिपर (सं० लि०) कर्तोतीति कृ-अच् विधेः कर्त्त। विधिकारक, विधानकर्त्ता।

विधिहृत् (सं० लि०) विधि कर्तोतीति कृ-ह्रिप् तुगागमः। विधिकारक, विधानकर्त्ता।

विधिक (सं० लि०) विधिं ज्ञानातीति ङा-क। १ विधि दर्शी, विधिको ज्ञाननेयामा, ज्ञानलोक विधानको ज्ञानने वाला। २ रोति ज्ञाननेवाला।

विधित्व (सं० ह्रो०) विधेर्माणा ल्य। विधिका भाष या धर्मा विधान।

विधिस्त (सं० स्त्री०) विधानुमित्था वि धा-सन्-विधित्स भक् टाप्। विधान करनेकी इच्छा, विधान-प्रणयन करनेको अभिलाषा।

विधित्सु (सं० लि०) विधातुमित्थु वि धा-सन्-विधित्स समन्तात् ङ। विधान करनेमें इच्छुक।

विधिदर्शिन (सं० लि०) विधिं द्रष्टुं शोक्तमस्य दृश णिनि। सम्बन्ध, विद्यामयेत्ता। यथादि फार्ममें एक सम्बन्ध यह देखनेके लिये नियुक्त किये जाते हैं, कि होता आचार्य आदि ठोक ठोक विधिके अनुकूल कर्मा कर रहे हैं या नहीं।

विधिद्वय (सं० लि०) विधिना द्वयः। शास्त्रपिहित।

विधिदेशक (सं० पु०) विधिं दिशतीति दिग् ण्वृत्। विधिदर्शा, सम्बन्ध।

विधिपाट (सं० पु०) मूर्त्तगके चार वर्षोंमेंसे एक वर्ष। चारों वर्षों में हैं—पाट, विधिपाट, कृतपाट और अंड पाट।

विधिपुत्र (सं० पु०) विधेः पुत्रः। ब्रह्माके पुत्र, नारद।

विधिपुर (सं० पु०) ब्रह्माका डोहर, ब्रह्मलोक।

विधिपूर्वक (सं० लि०) विधिः पूर्वं गत्य कम्। ओ विधिके अनुसार किया जाय नियमपूर्वक।

विधिवाचित (सं० लि०) विधिना बोधितः। शास्त्रविधि द्वारा बताया हुआ शास्त्रमन्मत।

विधिपत्र (सं० पु०) विधिबोधित पत्र, वह पत्र जिसक करनेकी विधि है। जैसे—दर्शोपनिषत्।

विधियोग (सं० पु०) विधेर्योगः। विधानानुसार विधिके अनुसार।

विधिसोक (सं० पु०) ब्रह्मलोक, सत्यलोक।

विधिवत् (सं० अथ०) विधि इवाच्ये-वति। १ यथाविधि, विधिके अनुसार। कायदेके मुताबिक। २ जैसा चाहिये, उचित रूपसे।

विधिपथ (सं० लि०) विधिना पथः। नियमपथ।

विधिवयू (सं० स्त्री०) विधेर्ययूः। ब्रह्माकी पत्नी, सर स्वती।

विधिवाहन (सं० पु०) ब्रह्माकी सवारो, इस।

विधिवित् (सं० लि०) विधि धेत्ति विधि विद क्त्वि।

विधिज्ञ शास्त्रक, विधि ज्ञाननेवाला।

विधिशास्त्र (सं० स्त्री०) विधिकर्त्त शास्त्र। १ व्यवहार शास्त्र, आईन। २ स्मृतिशास्त्र।

विधिसार (सं० पु०) रात्रमेद् विधिसार।

(मागध १२।१५)

विधिलेख (सं० पु०) सिध-यम् सेध, विधिरश्च सेधत्व। विधि बीर लिपेय।

विधु (सं० पु०) विध्यति अनुसुरागिति व्यघ क्। १ विष्णु। २ ब्रह्मा। ३ कर्पूर, कपूर। ४ एक राजस का नाम। ५ आयुध। ६ वायु। (विक्रमसत्त ठया०)

विध्यति विरहिणं विध्यते बाहुनैति या व्यघ-ठाङ्गे (स-मिदि ऋषीति। उण् १।२४) इति क्। ७ अम्बुमा।

८ पापक्षामन पाप क्षुडानां। ९ जल खान। (लि०)

१० कर्त्ता। (शुक् १०।३५।५)

विधुक्षान्त (सं० पु०) संगीतका एक ताळ।

रथक्रान्त वेत्तो।

विधुग्राम—बहुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

(भविष्यत्सप्त० १५।४६)

विधुत (सं० लि०) वि धु-क। १ त्यक्त। २ कम्पित।

विधुति (सं० स्त्री०) वि धु क्ति। १ कम्पन, कांपना। २ विराहति, मिराकरप।

विधुदार (सं० पु०) अम्बुमाको स्त्री, रोहिणी।

विधुदिन। सं० स्त्री०) विधेर्दिनि। अम्बुमाका दिन, सोमवार।

विधुवन (सं० स्त्री०) वि धु गिध् स्फुट्-मुक् च धुणे वरादित्वात् ह्रस्वः। कम्पन, कांपना।

विधुना—युक्तप्रदेशके इटावा जिल्लान्तर्गत एक गण्डग्राम, विधुना तहसीलका सदर। यह गिन्द नदीके किनारे स्थित है। गाँवसे एक मील दूर नदी पर एक पुल है। ३४ इण्डिया रेलवेके आचाठवा स्टेशनसे गाँव तक गई एक पक्की सड़कसे यहाँका वाणिज्य चल्ता है। यहाँ एक प्राचीन दुर्गका खंडहर देखा जाता है। विधुन्तुव ( म० पु० ) विधु तुदति पीउयतीति विधु तुद (विषयमोलुदः । पा ३।२।३५) इति खस्-सुम् । चन्द्रमाकौ दुःख वेनेवाला, राहु ।

विधुपत्र ( म० पु० ) विधेः पत्र इव तत्सादृश्यात् । गडग, पांडा । विधुप्रिया ( म० स्त्री० ) विश्वेश्वरस्य प्रिया । १ चन्द्रमा की स्त्री, नेहणी । २ शुभदिनी । विधुमधु ( स० पु० ) कुमुदना फूल । विधुर ( म० स्त्री० ) विगताधूमरौ यस्मात्, समासे अ । १ वैश्वर्य, मोक्ष । २ कष्ट, दुःख । ३ वियोग, जुदाई । ४ शर्म होनेकी क्रिया या भाव । ( पु० ) ५ शत्रु, दुश्मन ।

( ति० ) विगता धूः कार्यमारो यस्मात् । ६ विकल, व्याकुल । ७ दुःखी । ८ असमर्थ, असक्त । ९ परि- त्यक्त, छोटा हुआ । १० विमूढ । ११ घबराया हुआ, डरा हुआ ।

विधुग्ता ( स० स्त्री० ) विधुर तल्-टाप् । विधुरका भाव, रोग ।

विधुन्व ( म० स्त्री० ) विधुग्ता, क्लेश । विधुगा ( स० स्त्री० ) विधुर-टाप् । १ रसाला । २ नागोंके पीछेवा एक स्नायु ग्रन्थि । 'जक र्द्धमर्माणि चतस्रे धमन्योऽष्टौ मातृका ह्ये कृकाटिके ह्ये विधुरे'

(सुश्रुत ३।६)

नागप्रजापति लिखा है, कि दोनों कानोंके पीछे नीचे आध आध अंगुलके विधुर नामक दो स्नायुमर्मा हैं। ये मर्मा वैदल्यकर हैं। इनके पीड़ित या खराब होनेसे श्रवण- शक्तिदा हास हो जाता है। २ काठर, व्याकुल, पीड़ित । विधुग्ता ( म० स्त्री० ) विधुर ताग्कादित्यादितच् । विग्- विह्वला, विह्वलानर ।

विधुगोष्ठ ( म० स्त्री० ) निस्पृष्ट ।

विधुलि—विन्ध्यपाटमूलस्थ एक ग्राम । ( मविषयब्रह्मख० ८।६४ )

विधुवदनी ( स० स्त्री० ) चन्द्रमाके समान सुकवाली स्त्री, सुन्दरी स्त्री ।

विधुवन ( म० स्त्री० ) वि धु ल्युट् कुटादित्वात् साधु । कम्पन, काँपना ।

विधृत् ( स० लि० ) वि-धृ क् । १ कम्पित, काँपता हुआ । २ हिलता हुआ, डोलता हुआ । ३ त्यक्त, छोड़ा हुआ । ४ इरीकून, हटाया हुआ । ५ निःसारित, निकाला हुआ, यहाँ किया हुआ ।

विधृति ( स० स्त्री० ) वि धृ-क्तिन् । कम्पन, काँपना ।

विधृन्न ( स० स्त्री० ) वि-धृ-णिच्-ल्युट् । कम्पन, काँपना । पर्याय—विधुवन, विधुन्न ।

विधूप ( म० स्त्री० ) धूपरहित । ( मार्क०पु० ५।१।६५ )

विधूम ( म० स्त्री० ) विगतौ धूमौ यस्मात् । धूमरहित, विना धूपका ।

विधूम ( स० लि० ) धूसरवर्ण, धूमिल या मटमैले रंगका ।

विधूरता ( स० स्त्री० ) विधूरस्य भावः तल् टाप् । विधु- रत्व, विधुरका भाव या धर्म ।

विधृत ( स० स्त्री० ) वि धृ क् । विशेषरूपसे धृत, आकांगन ।

विधृति ( स० स्त्री० ) वि धृ क्तिन् । १ विधारण । २ देवता ।

भागवतमें लिखा है, कि सभी देवता विधृतिके पुत्र हैं; इसलिये उनके नाम वैधृतय हुए हैं। एक समय जब वेद नष्ट हो गया था, तब उन्होंने अपना नेत्रोपल धारण किया था ।

( पु० ) ३ सूर्यावशीय एक राजाका नाम । विधृतिके पुत्र हिरण्यनाभ थे । ( भागवत ६।२।३ )

विधृष्टि ( स० स्त्री० ) प्रणाली, व्यवस्थित नियमादि ।

( शाब्दा० शू० ८।२।१३ )

विधेय ( स० स्त्री० ) वि-धा (अचो यत् । पा ३।१।६७) इति यत् ( ईत् यत् । पा ६।१।६५ ) इति अति ईन् । १ विधानके योग्य, जिसका विधान या अनुष्ठान उचित हो । २ जिसका विधान हो या होनेवाला हो, जो किया जाय

या क्रिया जानेवाला हो। ३ बचन या व्याहारे बशीभूत, कर्मीन। ४ जो नियम या विधि द्वारा जाना जाय, जिसके कर्त्तव्यता नियम या विधि हो। ५ वह (उप्य या वाक्य) जिसके द्वारा किसीक सम्बन्धमें कुछ कहा जाय। जैसे—“गोपाळ सज्जन है” इस वाक्यमें “सज्जन है” विधेय है, क्योंकि यह गोपाळक सम्बन्धमें कुछ विधान करता है अर्थात्-इसकी कोई विशेषता बताता है। श्राय और व्याकरणमें; वाक्यक दो मुख्य भाग माने जाते हैं—इहेत्य और विधेय। जिसके सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है, वह “इहेत्य” कहलाता है और जो कुछ कहा जाता है, वह “विधेय” कहलाता है।

विधेयता ( सं० स्त्री० ) विधेयस्य भावः विधेय तत्त्वात् ।  
१ विधानकी योग्यता या औचित्य । २ विधेयका भाव या धर्म, अपेक्षता ।

विधेयत्व ( सं० स्त्री० ) विधेय भावे ल्व । विधेयता, विधेय का भाव या धर्म ।

विधेयता ( सं० पु० ) विष्णु । ( मत्त १३।२४५८ )

विधेयविमर्ष ( सं० पु० ) विधेयस्य अविमर्षो यत् । साहित्यमें एक वाक्यश्रेण्ये। यह विधेय अशकी अप्रधान स्थान प्राप्त होने पर होता है। जो बात प्रधानता कहती है, उसका वाक्य-रचनाके बीच दना रहता। प्रत्येक वाक्यमें विधेयकी प्रधानताक साथ निर्देश होना चाहिये। ऐसा न होना दोष है। विधेय शब्दके समासके बीच यह मानैये या विधेयत्वरूपसे आ जाने पर माया यह दोष होता है। जैसे,—किसी बोलने विगत हो कर कहा—“मेरी इन व्यर्थ फुन्नी हुई बहोसे क्या।” इस वाक्यमें कर्त्तव्यताके अविमर्ष ही यह है, कि मेरी बहो व्यर्थ फुन्नी हैं, पर “फुन्नी हैं” के विशेषण रूपमें आ जानेस विधेयकी प्रधानता नही स्पष्ट होती। दूसरा उदाहरण—“मुझ रामानुजक सामने राक्षस क्या ठहरने।” यहाँ कहाया चाहिये था कि—“मैं रामका अनुज हूँ” तब रामके सम्बन्धमें उद्गमणकी विशेषता प्रकट होती।

विधेयिता ( सं० स्त्री० ) विधेयता, विधेयत्व ।  
( काम० नीति १६७ )

विध्यापन ( सं० स्त्री० ) १ अगिनसोपानक । २ बिक्रोतय ।  
( वायु ४२०।२२ )

विध्य ( सं० स्त्री० ) १ वेधने योग्य, छिदने योग्य । २ छिद्य, जिससे वेधना हो, जो छेदा जानेवाला हो ।

विध्यपराय ( सं० पु० ) विधिसदृश ।  
( भास्करायन शीत १।२०।१ )

विध्यपाश्र्व ( सं० पु० ) १ वह जो मध्यमे तरह किसी हुई विधिकान अनुसरण करता हो । २ विधिकान माध्य करनेवाला ।

विध्यानास ( सं० पु० ) एक अर्थात्कार । जहाँ योर अनिष्टकी सम्भावना दिखते हुए अनिष्टकापूर्वक विधिकी-कल्पना को जाता है, उसी अणु यह अक्षरकार होता है ।  
( शास्त्रिक १० परि० )

विध्य स ( सं० पु० ) विध्यस-यम् । १ विनाश नाश, बरबादी । २ उपकार । ३ यैर । ४ अक्षर । ५ घृणा । ६ बैमनस्य ।

विध्यसक ( सं० स्त्री० ) १ अणकारक, कुपई करनेवाला । २ अणमानकारी, अणमान करनेवाला । ३ अण सकार, नाश करनेवाला ।

विध्यसत ( सं० स्त्री० ) १ अणसकार, नाश करनेवाला । (श्लो०) २ अणस, नाश, बरबादी । ( विष्वा० १५०।२४ )

विध्यसित ( सं० स्त्री० ) विध्यसत विध्य-क । १ नष्ट किया हुआ, बरबाद किया हुआ । २ अणकारित, अणकार किया हुआ ।

विध्यसित् ( सं० स्त्री० ) विध्यसयित् शीघ्रमस्य विध्यसत् विनि । १ नाशकार, बरबाद करनेवाला । २ अणकारक विध्यसित् शीघ्र यस्य । ३ अणसशीघ्र ।

विध्यसत् ( सं० स्त्री० ) विध्यसत् क । १ अणकार किया हुआ, बरबाद किया हुआ । २ अणकार, अणकार किया हुआ ।

विनशित् ( सं० स्त्री० ) विनशित् शीघ्र यस्य । विनाशशीघ्र, जिसका नाश हो ।

विनशु स ( सं० पु० ) स्ताता, स्तवकार, वह जो स्तुति करता हो ।

विनशोत्तिस् ( सं० स्त्री० ) १ उद्वेगलकान्ति । २ विनय अतोपिका धामादिक पाठ ।

विनस ( सं० स्त्री० ) विनस क । १ अणकार, अणकार । २ अणकार देका पड़ा हुआ, यत् । ३ शिशिय, शिष्ट । ४ सङ्कुचित,

सिकुडा हुआ । ५ विनीत, नम्र । ( पु० ) ६ सुमीवकी  
सेनाका एक वन्दर । ७ शिव, महादेव ।

घिनतक ( स० पु० ) एक पर्वतका नाम ।

घिनता ( स० स्त्री० ) १ दक्ष प्रजापतिकी कन्या जो कश्यप-  
की स्त्री और गरुड़की माता थी । २ प्रमेहपीडकामेद,  
एक प्रकारका फोडा जो प्रमेह या बहुमूलके रोगियोंको  
होता है । जिस स्थान पर यह फोडा होता है, वह  
स्थान मुरदा हो जानेके कारण नील पड़ जाता है। सुश्रुत  
आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रमेहके अन्तर्गत इसको चिकित्सा  
लिकी है। यह प्रायः घातक होता है। इसमें अग बहुत  
तेजीके साथ सड़ता चला जाता है। यदि बढ़नेके पहले  
ही वह स्थान काट कर अलग कर दिया जाय, तो रोगी  
बच सकता है। ३ एक राक्षसी जो व्याधि लाती है।  
( महाभारत ) ४ एक राक्षसी जिसे रावणने सीताको  
समझानेके लिये नियुक्त किया था ।

( त्रि० ) ५ कुवड़ी या खड्ड ।

घिनतात्मज ( स० पु० ) १ अरुण । २ गरुड़ ।

घिनतानन्दन ( स० पु० ) विनवात्मज देखो ।

घिनताश्व ( स० पु० ) सुद्युम्नके पुत्रका नाम । ( हरिवंश )

घिनतासूनु ( स० पु० ) घिनतायाः सूनुः पुत्रः । १ अरुण ।  
२ गरुड़ ।

घिनति ( स० स्त्री० ) १ घिनय, नम्रता । २ शिष्टता, भद्रता ।

३ सुशीलता । ४ भुकाव । ५ निवारण, रोक । ६ दमन,  
शासन, दण्ड । ७ शिक्षा । ८ परिशोध । ९ अनुनय ।

१० विनियोग ।

घिनती ( स० स्त्री० ) घिनति देखो ।

घिनतेह—सिद्धलद्वीपकी राजधानी कान्दी नगरका उप-  
कण्ठस्थित एक गण्डप्राम । यहांके प्रसिद्ध दाघोवमें शाक्य-  
बुद्धकी वक्षोस्थि प्रोथित है। इसके अलावा यहां बौद्ध-  
कीर्तिके और भी बहुतेरे निदर्शन मिलते हैं।

घिनद ( स० पु० ) विशेषेण नदति शब्दायते पत्रफलादि  
नेति नदु-अच् । विन्याक वृक्ष, एक प्रकारका पेड़ ।

घिनदिन् ( स० त्रि० ) १ शब्दकारो । २ वज्रके शब्दके  
समान शब्द । ( भारत वनपर्व )

घिनमन ( स० स्त्री० ) १ नम्रीकरण, नम्र करना, भुक्ताना ।  
२ लक्षाना । ( सुश्रुत ७० ७ अ० )

घिनम्र ( स० स्त्री० ) १ तगरका फूल । ( त्रि० ) २ भुदा  
हुआ । ३ विनीत, सुशील ।

घिनम्रक—घिनम्र देखो ।

घिनय ( स० पुं० ) वि-नी-अच् । १ शिक्षा । २ प्रणति,  
नम्रता, आजिजी । घिनयगुण विद्यासे उत्पन्न हो कर  
सत्पात्रमें गमन करता है अर्थात् विद्वान् पुरुषने विनयी  
होनेसे ही उसे सत्पात्र कइते हैं । नन्तर अभावपन्न होनेसे  
धनप्राप्तिकी सम्भावना तथा उस धनसे धर्म और सुख  
होता है। विद्या रहनेसे ही जो केवल घिनय स्वयं था क  
वहां उपस्थित होती है सो नहीं, यह पूज्यताम वृद्धों तथा  
शुद्धाचारी वेदविद् ब्राह्मणोंके सत्कारमें सब दा नियुक्त रह  
कर सीलना होता है। इस प्रकार क्रमशः विनीत होनेसे  
सारी पृथिवीको भी वशतापन्न किया जाता है, इसमें  
जरा भी सदेह नहीं । यहां तक, कि राज्यस्रष्ट निर्वासित  
व्यक्ति भी घिनय द्वारा जगतको वशीभूत कर अपना  
राज्य पुनः प्राप्त कर सकता है। फिर जो इसके प्रतिकूल  
है अर्थात् जिसमें घिनय नहीं है वह चाहे कितना ही धनी  
क्यों न हो उसे राज्यस्रष्ट होगा ही पड़ता है।

३ प्रार्थना, घिनती । ४ नीति । ५ दला, धरियारा ।

( पु० ) ६ घणिक, वनिया । त्रिशिष्टो नयः नीतिः घिनयं ।  
७ दण्ड, शास्ति, सत्ता । त्रिशिष्ट नीतिके अवलम्बन  
पर इसका विधान हुआ करता है। परस्पर विवाद  
करनेवालोंमें पूर्ववर्त्ती यदि अधिक वाक्पाठ्योत्पादक  
हो तो भी अर्थात् उसके अत्यन्त अश्लील वादयादि  
कहने पर भी पूर्ववर्त्ती विवाद खड़ा करनेवालेके लिये  
कठोर दण्ड कहा गया है अर्थात् न्यूनाधिकरूपमें दोना-  
को ही दण्ड होगा, क्योंकि वहां पर दोना ही असत्कारी  
हैं। फिर यदि दोनों ही एक समय विवाद आरम्भ करे,  
तो दोनोंको समान दण्ड मिलेगा।

( त्रि० ) ८ क्षिप्त । ९ निभृत । १० विजितेन्द्रिय ।

विशेषेण नयति प्रापयतीति घिनयः । ११ विशेष प्रकार-  
से प्रापक । १२ पृथक्कर्त्ता । १३ घिनयो । घिनय-  
( शास्त्रज्ञान जन्य संस्कारसेद् ) युक्त । १४ इन्द्रिय संयमां,  
जितेन्द्रिय । ५ घिनति देखो ।

घिनयक ( स० पु० ) विनायक ।

घिनयकर्मन् ( स० स्त्री० ) १ घिनयविद्या । २ शिक्षा, ज्ञान ।

विनयप्राहिम् (स० लि०) विनय शुद्धातीति विनय-प्रद  
जिति । विधेय, बन्ध । 'विधेये विनयप्राहो बन्धने-  
स्थित भाष्यकाः ।' (भर)

विनयपञ्चोत्स (स० पु०) एक मुनिका नाम ।

(कथा० २२१२१)

विनयशा (स० ख०) विनयवत्प भाषा लच्छ्टाप । विनय  
का भाष या धर्म, विनय ।

विनयदेश (स० पु०) एक माचीन कविका नाम ।

विनयधर (स० पु०) पुरहित । (दिग्भा० २१।१०)

विनयन (स० लि०) १ विशेषरूपसे मयन । २ विनि  
मय ।

विनयपत्र (स० झो०) विनयसूत्र, दरखास्त ।

विनयपाल—सीकप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता ।

विनयपिटक—आदि बौद्धशास्त्रमेद । आदि बौद्धशास्त्र  
समूह तीन भागोंमें विभक्त है—विनय, सूत्र और अमि  
धर्म । ये तीनों शास्त्र विनयपिटक या तीन विद्या नामसे  
प्रसिद्ध हैं । इन तीन विद्यायें बुद्ध और बुद्धके उपदेश  
सूत्रक तरह आदिके सम्बन्धमें जो कुछ ज्ञानगैसायक  
विषय हैं, वे सभी संरक्षित हैं ।

बुद्धके अपने शिष्यमण्डली और उनके करार  
अर्थात् धर्मय या मिश्र धर्मक सम्बन्धमें जो उपदेश  
हो गये हैं, उन्हीं उपदेशोंका विनयपिटकमें समावेश  
किया गया है । किस तरह विनयपिटक सङ्गठित  
हुमा, इसके सम्बन्धमें ज्ञाना बौद्ध ग्रन्थोंमें ऐसी ही बात  
मिलती है—बुद्धके महापरिनिर्वाणक कुछ समय  
बाद उनके प्रधान शिष्य महाकश्यपने सुना, कि शारि  
पुत्रकी मृत्युके साथ ८०००० मिश्रुओं, मोक्षदायककी  
मृत्युके बाद ७०००० हजार मिश्रुओं और तथागतके  
परिनिर्वाणक समय १८००० मिश्रुओंमें श्वेत्याग किया  
है । इस तरह प्रधान प्रधान सब मिश्रुओंके श्वेत्याग  
करनेक बाद तथागतके उपदिष्ट विनय, सूत्र और मातृका  
या अमिधम फिर कीर्ति सिद्ध नहीं करता था । इस  
कारणसे बहुतेरे लोग ज्ञाना रूपसे शैवारोप करती हैं । इन  
गृह्यकोंका निदानके ज्येष्ठ महाकश्यपन निर्वाण स्थान  
इतिहासमें सचोका एकत्र करनेकी इच्छा प्रकट की ।  
किन्तु इसी समय स्थिति गबापतिक निर्वाणकाम करने

के कारण महाकश्यपने सोचा, कि प्रणयपति भ्रातृशत  
वर्षोंके एक अनुक मक हैं । उनकी राजधानी राजगृहमें  
एकत्र होनेस भोजन आदिकी तय्यारी उनके यहाँ हो  
सकेगी । इस विचारके अनुसार पांच सौ स्थिति राज  
गृहके निकटवर्ती पैमारोके सत्तपथो (सत्तपणी) गुहा  
में एकत्र हुए । इस महासभाके महाकश्यपके समापति  
हुए । उनके अनुमतिक्रमसे उपस्थित बुद्धोपदिष्ट विनय  
प्रकाश किया । उपालोक कहा, कि मिश्रुओंक लिये  
मगवाले विनय प्रकाश किया है । यह विनय ही मग  
पान्था उपदेश, यही धर्म, यही नियम है । परासिक,  
समातिदेश वृथानियत, शिशुनिसर्गोय प्राथश्चित्त, बहु  
शाशोय धर्म, सत्तापिकरय ये विशेष लक्ष्य हैं । उप  
सम्प्राज्ञाम या संघमें प्रवेश करनेकी योग्यता और  
अयोग्यता पापलोकार, निर्दोषता, मिश्रु क पाठनीय  
धर्म और पूजाकी विधि या विनयमें लिखिय है ।

उपस्थित और भान्ध, विनय और सूत्रक प्रवका करे  
जाते थे सही, किन्तु इसमें सर्वदेह नहीं, कि ज्ञान्याय  
स्थितिमें भी विनय और सूत्रसंग्रहमें साहाय्य किया था  
इसके बाद कालाशोकके राजत्वके समय पैशासोके  
बसिकाराम नामक स्थानमें ७०० मिश्रुओंमें एकत्र मिल  
कर फिर एक समाका आयोजन किया । इस समामें  
पश्चिम भारत और पूर्व भारतके मिश्रुओंमें यथेष्ट मत  
भेद उपस्थित हुआ था । बुद्धियुक्त सब मिश्रुओंमें कूट  
हो कर हलबन्धी कर ली । जो हो इस समामें भी विनय  
संपुरोत हुआ था ।

विद्वत् पक्षमें और एक महासंघकी योजना की ।  
इस समामें जो सब विषय पुरोत हुए थे, उनमें कितने  
हो का इस समामें खण्डन किया गया । इसी कारणसे  
महोशासक और महासर्वास्तिसादियोंके संकलित विनय  
के साथ महासाधिकारके विनयमें कुछ कुछ पाचयप  
विचार है ।

जो हो, साम्राज्य भरोकरक समय विनयपिटक यथा  
रीति लिखिय हुआ था यह हम विषयशोकी सामा-अनु  
शासन लियेसं जान सकते हैं । मोरक बुधयग्रन्थमें बार  
प्रकारके विनयोंका उल्लेख है । अंत—विनययस्तु,  
विनयविमङ्ग, विनयसूत्रक और विनयोत्तप्यय । ये सभी



पाली भाषामें लिखे गये हैं। भोट और नेपालसे महा-  
वस्तु नामक एक संस्कृत षोडश ग्रन्थका आविष्कार हुआ  
है। इस ग्रन्थके मुखवन्धके वाद "आर्य्यमहासाधिकानां  
लोकान्तरवादिना मध्यदेशिकानां पाठेन विनयपिट-  
कस्य महावस्तु आदि' वाक्य लिखा है—अर्थात् मध्य-  
देशवासो लोकान्तरवादी आर्य्य महासाधिकोंके पढ़नेके  
लिये विनयपिटककी महावस्तु आदि। इस तरह लिखा  
रहनेसे महावस्तुका भी लोग विनयपिटकके अन्तर्गत ही  
समझते हैं। किन्तु इस ग्रन्थमें विनयपिटकका प्रति-  
पाद्य विषय विवृत न होनेसे बहुतेरे इसको विनयपिटक-  
के अन्तर्गत मानन पर तय्यार नहीं हैं।

विनयमहादेवा—त्रिकलिङ्गके गङ्गवंशीय नरपति कामार्णव-  
की महिषी। ये वैदुन्ववशीय राजकन्या थीं।

विनयवत् ( स० त्रि० ) विनय अस्त्यर्थे मनुष्यस्य व।  
विनयाविशिष्ट, विनीत।

विनयवती ( स० स्त्री० ) वह स्त्री जो नम्र हो।

विनयवान ( स० त्रि० ) विनयवत् देखो।

विनयविजय—हर्मलघुप्रक्रियावृत्तिके प्रणेता तथा तेजपाल  
के पुत्र। ये जैनमतावलम्बी थे।

विनयशील ( स० त्रि० ) विनययुक्त, नम्र, सुशील, शिष्ट।

विनयसागर—एक पण्डित। इनके पिताका नाम भीम  
और गुरुका कल्याणसागर था। इन्होंने कच्छके भोज-  
राजके लिये भोजध्याकरण लिखा।

विनयसिंह—चम्पाके अन्तगत नयनी नगरके राजा।  
( मविष्य ब्र० ला० ५२।५५ )

विनयसुन्दर—किराताज्जुनीयप्रदीपिकाके रचयिता। ये  
विनयराम नामसे भी प्रसिद्ध थे।

विनयसूत्र ( स० स्त्री० ) बौद्धोंकी विनय और सूत्रविधि।

विनयसहस्रमति—उग्रचैकालिकसूत्रवृत्तिके रचयिता।

विनयम्य ( स० त्रि० ) विनये तिष्ठतीति स्था-क। आक्षा-  
कारी। पर्याय—विधेय, आश्रय, वचनस्थित, वश्य,  
प्रणय। ( हेम )

विनयस्वामिनी ( स० स्त्री० ) एक राजकुमारीका नाम।  
( कथासरि० २४।१५४ )

विनया ( स० स्त्री० ) चाटयालक, धरियारा।

विनयादित्य ( स० पु० ) काश्मीरराज जयापीडका एक  
नाम। ( राजतरङ्गिणी ४।५।१६ )

विनयादित्य—पश्चिम चालुक्यवंशीय एक राजा। पूर्वा-  
नाम—विनयादित्य मत्वाश्रय श्रीपृथ्वीवल्लभ है।  
इन्होंने ६६६ ई०में अपने पिता ६म विक्रमादित्यके सिंहा-  
सन पर आरोहण किया था। अपने राजत्वकालके  
ग्यारहमे १४ वर्षके बीच इन्होंने द्वितीय नरसिंह चर्म-  
परिचाटित पल्लवोंको और कलभ, केरल, ईदय, धिल  
मालव, चोल, पाण्ड्य आदि जानियोंको पदानत किया।  
ये उत्तर देश जीत कर मार्वभूमि या चक्रवर्ती राजा  
बन बैठे। सन् ७३३ ई०में इनका मृत्युमें बाद इनके पुत्र  
विजयादित्य राजा हुए।

विनयादित्य—होयसलवंशीय एक राजा। इन्होंने पश्चिम  
चालुक्यराज द्रष्टे विक्रमादित्यके अधोनस्थ सामन्तरूपसे  
कोंकण प्रदेश और मङ्गद्वयल, तलकाड और साविणल  
जिलेके मध्यवर्ती प्रदेशों पर शासन किया। ये गङ्ग-  
वंशीय कोट्टनविषर्माके समसामयिक थे। इस समय  
मैसूरका गङ्गवाडी जिला इनके अधिकारमें था। ये सन्  
११०० ई० तक जीवित थे। इनकी पत्नीका नाम केलेशल  
देवी था।

विनयितु ( स० पु० ) विष्णु। ( भारत १३।१४।६८ )

विनयितु ( स० त्रि० ) विनीत इन्। विनययुक्त, विनीत,  
शिष्ट, नम्र।

विनर्हिन् ( स० त्रि० ) १ सामगानसम्बन्धी। २ उच्च  
ग्रन्थकारी, बहुत गरजने या चिदलानेवाला।

विनयन ( हि० क्रि० ) विनयना देखो।

विनयन ( स० स्त्री० ) विनययति अन्वर्धाति सरस्वत्य-  
त्वेति, विनयन अधिकरणे ल्युट्। १ कुक्षक्षेत्र। वि-  
नयन भाषे ल्युट्। २ विनायन, नष्ट होना।

विनयधर ( स० त्रि० ) विनयन धरच्। अनित्य, मङ्ग  
दिन या बहुत दिन न रहनेवाला, नष्ट होनेवाला, ध्वंस-  
शील, अचिरस्थायी।

विनयधरता ( स० स्त्री० ) विनयधरस्य भावः तल् टाप्।  
विनयधरत्व, अनित्यता, अचिरस्थायित्व।

विनष्ट ( स० त्रि० ) विनयन क्त, ततो पत्वं तस्य  
ट। १ नाशाश्रय, नाशको प्राप्त, जो बरबाद हो गया  
हो, जिसका अस्तित्व मिट गया हो। २ पतित,  
जिसका आचरण विगड़ गया हो, भ्रष्ट। ३ मृत, मरा

दुमा । ४ इवित, जो विहृत या बराब हो गया हो, जो व्यवहारके योग्य न रह गया हो, जो निरुद्धा हो गया हो । ५ अतीत, जो बीत गया हो ।

विनष्टमेजस (स० जि०) विनष्ट शिरोयस्य । शिरोहोम, जिसका शिर नष्ट हो गया हो ।

विनष्टि (स० स्त्री०) वि-नश क्तिच् । १ विनाश । २ क्षोप । ३ पतन ।

विनम (स० जि०) विगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्व नमादेशः । गतनासिक, नासिकाहोम, जिसे नासिका न हो, बिना नाकका, नकटा । पर्याय—विम, विम, विनाशक ।

विना (सं० अर्थ०) वि (विनम्ना मानामेव च । पा ५।२।२०) इति ना । १ वरजम । पर्याय—पृथक्, अन्तरेण, अन्ते, द्विदक, नाना । ( मगर ) २ व्यतिरेक, छोड़ कर, अतिरिक्त, मिया । ३ अभावमें, न रहनेकी अवस्था में, बीत ।

(इषग विनामनामित्युदीपान्वतरत्वा । पा २।१।१२) पृथक्, बिना और नाना शब्दक योगमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है ।

विनाहृत (स० जि०) विना अन्तरेण हृतम् । त्यक्त, छोड़ा हुआ ।

विनाहृति (स० स्त्री०) त्याग, व्यतिरेक ।

विनागढ़—एक प्राचीन नगरका नाम ।

विनाट (स० पु०) अर्मेनाली, यैली । ( सत्यपत्रा० ५।१।१६ ) २ मद्य ।

विनाङ्कि (सं० स्त्री०) विगता नाङ्किा यया । एक पङ्क्ति का साठवाँ भाग, एक । ३७ गुण अष्टक अक्षरालय करनेमें जो समग्र लगता है, उस भाग कहते हैं । इस भागमें एक विनाङ्कि काल होता है ।

विनाङ्गी (सं० स्त्री०) विनाङ्कि नामक काष्ठमेव । ( बृहत्सं २ म० )

विनाय (सं० जि०) विगता नायो यस्य । विगतनाय प्रभुरद्विज, जिसका कोई रक्षक न हो, अनाथ । ( रामायण ५।१५।१५५ )

विनादिन् (सं० जि०) शब्दकारो । ( मत्त ६ वर्ष )

विनादिन (सं० जि०) १ अविद्यत । २ पुनरुद्दिष्ट । ( दिव्या ५४।१।१६ )

विनामव (सं० पु०) विना भू भूप् । १ विनाश । २ बिरह ।

विनामाव (सं० पु०) पृथक्त्वहीन वियोगविहोम ।

विनामाविन् (स० जि०) व्यतिरेक भावनाकारो, अवि मुक्त ।

विनामाव्य (स० जि०) विनामावयुक्त, जिसमें भाव न हो ।

विनाम (स० पु०) वि नम घञ् । १ नति, मुकाब, टेडा पत । २ किसी पीडा द्वारा शरीरका मुक्त जाना ।

विनायक (स० पु०) विशिष्टा नायका । १ युद्ध । २ गदह । ३ विघ्न, बाधा । ४ युद्ध । ५ गणेश । एकम्पुराण में विनायकक अवतारकी पर्याया लिखी है । गान्धेय भीरु जैव्याय ये दो विनायक गण हैं ।

शैवताकी पूजा किये जाने पर पहले विनायककी पूजा करनी होती है, बिना विनायककी पूजा किये कोई पूजा हो नहीं करनी चाहिये, कर्मसे वह सिद्ध नहीं होती तथा पूजाके बाद कुछ शैवताकी पूजा करनी पड़ती है ।

३ पीडस्थान विशेष । यहाँकी शक्तिका नाम रामा देवी है । ( देवीमाहात्म्य ५३।१०१ )

विनायक—बहुतेरे प्राचीन ग्रन्थकारोंके नाम । १ तिथि-प्रहरणके प्रयेता । २ मन्त्रज्ञोपक रचयिता । ३ विर द्विषो मन्त्रविनोक्के प्रत्ययनकर्ता । ४ वैदिकग्रन्थका प्रकाशके प्रयेता । ५ अन्वयपिङ्गलका एक नाम । ६ एक कवि । मोजप्रवचनमें इनका उल्लेख है । ७ पद्मपुराणक एकनाम । ८ शाङ्ख्यायनमहाब्राह्मणमाध्यकार गौविन्ध्यक युद्ध ।

विनायकचतु (स० पु०) गदङ्कवज्र, भीहृण्य ।

विनायकचतुर्थी (स० स्त्री०) माघ महासिकी शुद्धा चतुर्थी, गणेशचतुर्थी, इस दिन गणेशका पूजन और प्रत होता है। सरस्वती पञ्चमाङ्क पहलेका दिन विनायक चतुर्थी है। माद्रामसकी शुद्धाचतुर्थी भी गणेशचतुर्थी कहलाती है। यह प्रत करनेमें बड़ा पुण्य होता है। भनिष्योत्तरपुराण और स्कन्दपुराणमें विनायक प्रतका उल्लेख है। ( गणेशचतुर्थी रेखा )

विनायकपुर (स० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम । ( दिव्य ५१।१।१६ )

विनायकपाल—ध्रावस्तो और धाराणसीके एक नरपति तथा महाराज महेंद्रपालके द्वितीय पुत्र । ये अपने ज्येष्ठ और वैमान्य १म भोजदेवके बाद सिंहासन पर बैठे । इनकी माताका नाम था महादेवी । इन्होंने ईस्वीसन ७६१—७६४ तक राज्य किया । महोदय या फनीज राजधानीसे उनकी दूरी प्रशस्तिको देखनेसे घोष होता है, कि फनीज राज्य भी उनके कब्जेमें था ।

विनायकभट्ट—कितने पण्डितोंके नाम । १ न्यायकौमुदी-तार्किकरक्षाकी टीकाके रचयिता । २ भावसिंहप्रक्रिया नामक व्याकरणके प्रणेता । ये भट्टगोविन्द सूरिके पुत्र थे । भावसिंहके लिये इन्होंने उक्त ग्रन्थ रचा था । ३ अङ्गरेजचन्द्रिकाके प्रणेता । ये दुण्डिराजके पुत्र थे । १८०१ ई०में इनका ग्रन्थ समाप्त हुआ । ४ वृद्धनगरके निवासो नाथवभट्टके पुत्र । ये कौपितकीब्राह्मणभाष्यके रचयिता हैं । इन्होंने कालनिर्णय और कालादर्शका मन उद्धृत किया है ।

विनायकस्नानचतुर्थी (स० स्त्री०) चतुर्थीव्रतभेद ।

विनायिका (स० स्त्री०) विनायकस्य स्त्री, भार्याथी स्त्री । गरुडकी पत्नी ।

विनायिन् (स० त्रि०) वि नी (सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये । पा ३।१।७८) इति णिनि । विनयशील, विनयी ।

विनार—विशालके अन्तर्गत एक गाँवका नाम ।

(भविष्यव्रह्मस० ३६।१६१)

विनारुदा (स० स्त्री०) विना आश्रयं रोहतीति रुद-क, स्त्रिया टाप् । त्रिपर्णिकाकन्द । (राजनि०)

विनाल (स० पु०) नालघियुक्त । (भारत द्रोणपर्व)

विनाश (स० पु०) विनशनमिति वि नश घञ् । १ नाश, ध्वंस, अस्तित्वका न रह जाना, मिटना, बरबादी । २ लोप अदर्शन । ३ विगड़ जानेका भाव, खराब हो जाना, निरुत्पन्ना हो जाना । ४ हानि, नुकसान । ५ बुरी दशा, तथाहो ।

विनाशक (स० त्रि०) वि-नश-ण्डुल् । १ विनाशकर्त्ता, क्षय करनेवाला, संहारक । २ घातक, अपकारक, विगाड़नेवाला, खराब करनेवाला ।

विनाशन (स० पु०) १ नष्ट करना, ध्वस्त करना, बरबाद करना । २ संहार करना, बध करना । ३ विगाड़ना,

खराब करना । ४ एक असुर जो कालका पुत्र था ।

विनाशान्त (स० पु०) १ मृत्यु मरण । २ शेष, खतम् ।

विनाशित (स० त्रि०) नष्ट, बरबाद ।

विनाशिन् (स० त्रि०) वि-नश णिनि । १ विनाशक, नष्ट करनेवाला, बरबाद करनेवाला । २ बध करनेवाला, मारनेवाला । ३ विगाड़नेवाला, खराब करनेवाला ।

विनाशी (स० त्रि०) विनाशिन् देखो ।

विनाशोन्मुख (स० त्रि०) विनाशाय पतनाय उन्मुखं । १ पक्ष । २ नागोद्यत ।

विनासक (स० त्रि०) विगता नासा यस्य, बहुव्रीही कन् ह्रस्वश्च । गतनासिका, नासिकाहीन, विना नाकका, नकटा ।

विनासिका (स० स्त्री०) नासिकाका अभाव ।

विनासित (स० त्रि०) नासारहित, नकटा ।

(दिव्या० ४६६।१२)

विनाह (स० पु०) विशेपेण नह्यते अनेन वि नह (ह्रस्व । पा ३।३।२२) इति घञ् । वह आच्छादन या ढकनी जिससे कूर्पका मुँह ढका जाता है ।

विनिःसृत (स० त्रि०) वि निट् सृ क्त । विनिर्गत, बहिर्गत, निकला हुआ, जो बाहर हुआ हो ।

विनिकर्त्तव्य (स० त्रि०) काट कर नष्ट करनेके योग्य ।

विनिकार (स० पु०) १ लोप, क्षति, अपराध । २ विरक्ति, चेदना ।

विनिकृन्तन (स० त्रि०) विशेषरूपसे छेदा हुआ, काट कर नष्ट किया हुआ ।

विनिक्षण (स० क्लो०) विशेषरूपसे चुम्बन, वेधन या भेदन । (निकृत् ४।१८)

विनिक्षिप्त (स० त्रि०) वि नि-क्षिप् क्त । १ विनिक्षेपाश्रय, निक्षेप या फँका हुआ । २ परित्यक्त, छोड़ा हुआ ।

विनिक्षेप्य (स० त्रि०) वि-नि-क्षिप् यत् । विशेष प्रकारसे निक्षेप करनेके योग्य ।

विनिगड (स० त्रि०) शृङ्खल विरहित ।

विनिगडोक्त (स० त्रि०) निगडवियोजित ।

विनिगमक (स० त्रि०) दो पक्षोंमेंसे किसी एक पक्षको सिद्ध करनेवाला । विनिगमना देखो ।

विनिगमना (स० स्त्री०) १ एकतर पक्षपातिनी युक्ति, एक-

तत्पक्षपातः, सन्दिग्ध स्थलमें विविध युक्ति या प्रमाण प्रदर्शनपूर्वक विचार करके जिस एक पक्षकी निश्चयता को ज्ञाती है, उसीका नाम विनिगमना है अर्थात् दो पक्षोंके सम्बन्धरूपमें जिन सब युक्तियों या प्रमाणों द्वारा पक्षानु निर्णय किया जाता है, वैशेषिक वर्णनकार लोग उसीको विनिगमना करने हैं।

‘पञ्चदशतन्त्रे एकतरपक्षपातिनी मुक्तिर्विनिगमना ।’

(वैशेषिकदर्शन)

उक्त विनिगमना या एकतरपक्षपातिप्रमाणका अभाव होने पर बिदायको जगह दिसी दूसरी उपायसे कार्य करना होता है। जैसे किसी अनिर्दिष्ट सीमा बहिष्कृत प्रदेशमें सुपर्यादिकी कान उपपन्न होने पर वह काम किसकी सीमामें पड़ती है तथा उस पर किस व्यक्तिका अधिकार होगा यह विनिगमनामार्थमें अर्थात् किसी एकपक्षके विशेष प्रमाणमाध्यमें वैशेषिक व्यवहारमें (वैशेषिकके मतसे सम्पत्तिके बिचारानुसार) जिमागण अयोग्य होनेके कारण गुट्टिकापातादि अल्प उपाय सबल म्यत करके उनका विभाग करना होता है।

२ निश्चययोग्य । ३ सिद्धान्त नतोत्रा ।

विनिर्गूह्य ( सं० लि० ) गोपन, छिपावैवासा ।

विनिग्रह ( सं० पु० ) १ नियमन, यंत्रोद्घ प्रतिबन्ध । २ संयमन, अथवा किसी वृत्तिको दबा कर अथोल करना । ३ अवरोध, रुकावट । जैसे—‘मूहविनिग्रह ( शुभ्रु० ) ४ व्याघान पाषा ।

विनिग्रह ( सं० लि० ) अथवालाक्रमसे निग्रह करनेके उपयुक्त, निषेधके योग्य ।

विनिष्प ( सं० लि० ) १ नष्ट, बरबाद । २ गणित गुण किया हुआ ।

विनिद् ( सं० लि० ) विगतता निद्रा मुद्रया यस्य । १ उन्मी नित । २ निद्रारहित । ( स्त्री० ) ३ अन्धका पद संज्ञार जिससे अन्ध द्वारा निद्रित या मूर्च्छित व्यक्तिकी नींद या बेदोगी बूट होती है ।

विनिद्रक ( सं० लि० ) निद्रारहित, जिसकी नींद खुल गई हो आगरित ।

विनिद्रत्य ( सं० स्त्री० ) विनिद्रक्य भावः त्य । १ विनिद्रता भाव या धर्म प्रबोध, आगरत्य । २ निद्रारहितत्व ।

विनिष्पस्त ( सं० लि० ) ध्व सप्तम, ओ नष्ट हो गया हो । विनिनीयु ( सं० लि० ) विनेतुमिच्छुः वि-नी सन् ‘सता मासेति’ उ । विनय करनेमें इच्छुक, चिन्ती करने बाछा ।

विनिम् ( सं० लि० ) वि निम्-अच् । निम्नाकारक, शिका यत करनेबाछा ।

विनिन्क ( सं० लि० ) विनिन्क्यति निन्कि ण्युल् । बिशेष रूपसे निम्नाकारक, अल्पत निम्ना करनेबाछा ।

विनिन्दा ( सं० लि० ) अतिशय निम्ना ।

विनिन्वित ( ( सं० लि० ) लाञ्छित, जिसको बहुत निम्ना हुई हो ।

विनिग्निन् ( सं० स्त्री० ) वि निग्नि विनि । निम्नाकारक ।

विनिगतित ( सं० लि० ) अथास्तित ।

विनिपात ( सं० पु० ) विशेषेण निपतनं विन-यत घञ् । १ निपात, विनाश, बरबादो । २ घट, हरया । ३ अयमान, अनाद, नज़रसे गिरना । ४ देवादि अयन ।

विनिपातक ( सं० लि० ) वि नि पत णिच् ण्युल् । १ विनिपातकारो, विनाश करनेबाछा । २ संहारकर्ता । ३ अयमानकारो ।

विनिपातित ( सं० लि० ) १ निक्षित, फेंका हुआ । २ विशेषरूपसे विनष्ट । ( दिग्मा० ५१/१६ )

विनिपातिन् ( सं० लि० ) वि-णि पत-णिनि । विनिपात जोर, जिमागकारो ।

विनिर्वात् ( सं० स्त्री० ) विराम । ( दिग्मा० ५१/१६ )

विनिवारण ( सं० लि० ) विशेषरूपसे निवारण ।

विनिबह्य ( सं० लि० ) ध्व सक्कर, नाश करनेबाछा ।

विनिर्वाह्य ( सं० लि० ) ध्व सक्कारो ।

विनिमय ( सं० पु० ) वि नि मी अच् । १ परिहाय, परि यर्शन, एक वस्तु से बर बहनेमें दूसरी वस्तु देनेका व्यवहार, बदल बहल । २ अन्वय, गिरवी ।

विनिमेष ( सं० पु० ) निमेषराहित्य ।

विनिमय ( सं० लि० ) वि-नि यम-क । १ निवारित निध्द । २ हायत । ३ बह । ४ शासन ।

विनिमय ( सं० पु० ) वि नि यम घञ् । निवारण, निरोध, निषेध ।

विनिपुक्त ( सं० लि० ) वि-नि-पुक्-क । १ निषेधित,

किसी काममें लगाया हुआ । २ अर्पित । ३ प्रेरित ।  
 विनियोषत् ( सं० त्रि० ) वि-नि-युज्-वृच् । नियोगकारी ।  
 किसी काममें लगानेवाला ।  
 विनियोग ( सं० पु० ) वि-नि युज्-वृच् । १ किसी फलके उद्देश्यसे किसी वस्तुका उपयोग, किसी विषयमें लगाना, प्रयोग । २ किसी वैदिक कृत्यमें मन्त्रका प्रयोग । ३ प्रेषण, भेजना । ४ प्रवेश, घुसना ।  
 विनियोजित ( सं० त्रि० ) वि-नि युज्-णिच् क । १ विनियुक्त । २ अर्पित । ३ स्थापित । ४ नियुक्त । ५ प्रेरित । ६ प्रवर्तित ।  
 विनियोज्य ( सं० त्रि० ) वि-नि-युज्-णिच् यत् । विनिघोषार्ह, नियोगके उपयुक्त ।  
 विनिर्गत ( सं० त्रि० ) वि-निर्-गम-क्त् । १ निःसृत, बहिर्गत, जो बाहर हुआ हो । २ निष्क्रान्त, गया हुआ, जो चला गया हो । ३ अतीत, बीता हुआ ।  
 विनिर्गम ( सं० पु० ) वि-निर्-गम-ञप् । १ विनिर्गम, बहिर्गमन, बाहर होना, निकलना । २ प्रस्थान, चला जाना ।  
 विनिर्घोष ( सं० पु० ) वि-निर्-घुष-वञ् । विशेषरूपसे निर्घोष, घोर शब्द ।  
 विनिर्जय ( सं० पु० ) वि निर्-जि घञ् । विशेषरूपसे जय, पूरा फतह ।  
 विनिर्जित ( सं० त्रि० ) वि-निर्-जि-क्त् । विशेषरूपसे निर्जित, पराजित, पराभूत ।  
 विनिर्दहनी ( सं० स्त्री० ) वि-निर्-दह्-ल्युट्, स्त्रियां ङीप् । १ आरोग्यका उपाय, औषध । २ दहनकारिणी । ३ दहन कर्म द्वारा चिकित्सा । ( सुश्रुत )  
 विनिर्दोष्य ( सं० त्रि० ) वि निर्-दिश-यत् । विनिर्दिष्ट, विशेषरूपसे निर्दिष्ट ।  
 विनिर्धूत ( सं० त्रि० ) वि-निर्-धू-क्त् । दुर्दशाग्रस्त, जिसको हालत बड़ी बुरी हो गई हो ।  
 विनिर्बन्ध ( सं० पु० ) वि-निर्-बन्ध-घञ् । विशेषरूपसे निर्बन्ध, अतिशय निर्बन्ध ।  
 विनिर्बाहु ( सं० पु० ) वह जिसकी भुजा लडाईमें फट गई हो ।  
 विनिर्बाध ( सं० त्रि० ) विनिर्बाधेण निर्बाधितं भयं यस्य ।

१ भयरहित, भयशून्य, निर्भाय । ( पु० ) २ साध्यगण विशेष, स्वयोनिरभेद ।  
 विनिर्भाग ( सं० पु० ) वनपभेद ।  
 विनिर्गल ( सं० त्रि० ) विशेषेण निर्गलः । बहुत निर्गल या स्वच्छ ।  
 विनिर्माण ( सं० स्त्री० ) वि-निर्-मा ल्युट् । विशेषरूपसे निर्माण, अच्छी तरह बनाना ।  
 विनिर्मित ( सं० त्रि० ) विशेषरूपसे निर्मित, गूढ अच्छी तरह बना हुआ ।  
 विनिर्मिति ( सं० स्त्री० ) निर्-मा कि निर्मिति, विशेषेण निर्मितिः । विशेषरूपसे निर्माण, अच्छी तरह बनना ।  
 विनिर्मुक्त ( सं० त्रि० ) वि निर्-मुक्-क्त् । १ बहिर्गत, बाहर निकला हुआ । २ अनाच्छन्न, जो खुला हो या ढका न हो । ३ उद्धृत, बन्धनमें रहित, छूटा हुआ ।  
 विनिर्मुक्ति ( सं० स्त्री० ) १ उद्धार । २ मोक्ष ।  
 विनिर्मोक ( सं० पु० ) १ व्यतिरेक, अभाव । ( त्रि० ) विगता निर्मोको यस्य । २ निर्मोक रहित, बिना पहनावेका, चस्मरहित, परिधानशून्य ।  
 विनिर्मोक्ष ( सं० पु० ) १ निर्माणमुक्ति । २ उद्धार ।  
 विनिर्यात ( सं० स्त्री० ) वि-निर्-या ल्युट् । गमन, जाना । ( रामा० १।४।१२६ )  
 विनिर्वहण ( सं० स्त्री० ) ध्वसकर ।  
 विनिर्वृत्त ( सं० त्रि० ) वि निर्-वृत्-क्त् । सम्पन्न, समाप्त ।  
 विनिर्वर्त्तन ( सं० स्त्री० ) वि निर्-वृत्-ल्युट् । प्रत्यावर्त्तन, लौटना ।  
 विनिर्वर्त्तित ( सं० त्रि० ) वि-नि वृत्-क्त् । प्रत्यावर्त्तित, लौटा हुआ ।  
 विनिर्वर्त्तिन् ( सं० त्रि० ) विनिर्वर्त्तयति वि नि धृत्-णिनि । विनिर्वर्त्तनकारक, लौटानेवाला ।  
 विनिवारण ( सं० स्त्री० ) वि-नि-वृ णिच् ल्युट् । विशेषरूपसे निवारण, विशेष निषेध । ( रामायण ३।६।१२२ )  
 विनिवार्य ( सं० स्त्री० ) वि नि वृ ण्यत् वा । निवारणाहं, निषेधके योग्य ।

विनिश्चय (स० लि०) वि नि-श्च-क । १ निश्चिति  
विशिष्ट, क्षाम् । २ निरस्त । ३ प्रत्यागत ।  
विनिश्चयि (स० स्त्री०) वि नि-श्च-कित् । विधेयरूपसे  
निश्चित, निवारण ।  
विनिश्चय (स० स्त्री०) वि नि-श्च-णिच्-स्युट् । विधेय  
रूपसे निश्चयन, कथन ।  
विनिवेश (स० पु०) वि नि-विश्-भञ् । प्रवेश, घुसना ।  
विनिवेशन (स० स्त्री०) १ प्रवेश, घुसना । २ अधिष्ठान,  
स्थिति, पास ।  
विनिवेशित (स० लि०) वि नि-विश्-णिच्-क । १ प्रविष्ट,  
घुसा हुआ । २ अधिष्ठित, स्थापित, ठहरा या रिका  
हुआ । ३ घसा हुआ ।  
विनिवेशित् (स० लि०) १ प्रवेशकारी, घुसनेवाला ।  
२ वासकारी, रहनेवाला ।  
विनिश्चय (स० पु०) विनिर्णय, कृतनिश्चय, विधेय  
प्रकारसे निर्णय करना ।  
विनिश्चय (स० लि०) विशेष प्रकारसे निश्चय, स्थिर ।  
विनिश्चायिन् (स० लि०) १ निश्चायक । २ जिसकी  
मीमांसा हो चुकी हो । (कर्मव्यवहारे ४५१०)  
विनिश्चय (स० लि०) दोषनिश्चयपरिष्ठापककारी,  
जन्मो साँसे छोड़नेवाला ।  
विनिश्चय (स० लि०) कम्परहित ।  
विनिष्ठा (स० पु०) वि नि-निश्-यत्-भञ् । १ विशेष  
प्रकारसे पतन, मञ्जूलीन गिरना । २ भाषात, चाँद ।  
विनिष्ठा (स० लि०) वि निश्-पठ्-णिच्-यत् । निष्ठा  
धर्मके योग्य ।  
विनिष्पेय (स० पु०) वि निश्-पिप्-भञ् । १ पेयण  
पासना । २ पिनाश । ३ निपोड़न, निष्पेयण ।  
४ अतिशय घणपण ।  
विनिवेशित् (स० लि०) घसबासकारी ।  
विनिश्चित (स० लि०) वि नि-श्च-क । १ निश्चय,  
विश्वास, बराब । २ ब्राह्म, घोट लाया हुआ । ३ मृत,  
मरा हुआ । ४ सुप्त, तिरोहित ।  
विनीत (स० लि०) वि-नी-क । १ विलययुक्त, त्रिसर्गमें  
उत्तम शिक्षाका संस्कार और शिष्टता हो । २ शिष्ट, नम्र,  
व्यवहारमें अधोमता प्रकट करनेवाला । ३ त्रितेजिन् ।

४ संपत्ती । ५ विष्युत, पूर किया हुआ छोड़ा हुआ ।  
६ हत, ष्टे गया हुआ । ७ शिक्षित, सिखाया हुआ ।  
८ कृतव्यक्त शक्ति । ९ क्षित । १० पार्थिक, नीति  
पूर्वक व्यवहार करनेवाला । ११ साक सुपरा । १२ सुन्दर  
उत्तम । (पु०) १३ बभिक, बनिया, साङ् । १४ सुवहा  
मन्थ, शिक्षित मन्थ, सिखाया हुआ छोड़ा । पर्याय-  
साधुबाहो, सुष्ठुबाहनशौक । १५ पुनस्त्यक एक पुन  
का नाम । १६ इमनक, दौनेका पोधा । पर्याय—बाण्ट,  
सुनिपुन, तपोधन, गन्धोत्कट, प्रह्लाद, फलपत्रक ।  
विनीतक (स० पु० स्त्री०) विनीतसम्बन्धीय, वैनीतक ।  
विनीतता (स० स्त्री०) विनीतस्य भावः तस्-ञाप् ।  
विनीत होनेका भाव, नम्रता ।  
विनीतत्व (स० स्त्री०) विनीत होनेका भाव, नम्रता ।  
विनीतवेष (स० पु०) एक बौद्धाधार्मिक नाम । ये  
एक प्रसिद्ध नैयायिक थे ।  
विनीतवेष मागधत—एक प्राचीन कवि ।  
विनीतपुर—सिककिङ्कराज्यमें कटकविभागके अन्तर्गत  
एक नगर ।  
विनीतमति (स० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक  
व्यक्तिक नाम ।  
विनीतकवि—उत्तरभारतक ब्रह्मण जनपदवासी एक  
बौद्ध भ्रमण । इन्होंने ५८२ ई०में दो बौद्धग्रन्थोंका चीन  
भाषामें अनुवाद किया ।  
विनीतसेन (स० पु०) बौद्धमेद् ।  
विनीतमम (स० पु०) बौद्धमतिमेद् ।  
विनीति (स० स्त्री०) १ बिनय, सुशौक्यता । २ सम्मान ।  
३ सद्बुद्ध्यवहार ।  
विनीतम्बर (स० पु०) श्वमेद् । (अष्टविस्तर)  
विनीय (स० पु०) कटक । विनेय देखो ।  
विनीत (स० लि०) अतिशय मोठ । (रेय)  
विनीवि (स० लि०) नीतिरहित ।  
विनुकपटा—मन्द्राज में सिद्धेश्वरके गण्टूर शिक्षा एक  
तासुक । इसका मूलपरिमाण ६३६ वर्गमीठ है । इस  
तासुकके भीतर अग्निगुण्डुल योगशाला, बोग्गपल्ली,  
बिन्तलबेल्सु, दोण्डपाड, गण्डिगलमल, गण्डिपाड,  
गोकलकोण्ड, शुभमणमपाड, रनिमिड, ईवाक, कणुमसापुडो

कारमञ्जी, शीवर्ला, मदनश्रिवाडू, मुक्केलपाडू, मुन्नकलु  
रुन्जण्डला, पेदुकाञ्चर्ला, पलिकेळपालेम्, गेट्लुक्,  
रुन्नरम्, रेमिडिचर्ला, गानम्पुडो, गारीकोण्डपालेम्,  
गिरपुरम्, तलालविल्ल, तिन्मापुरम्, तिम्भवपालेम्, तिक्-  
पुरापुरम्, उस्मडिवम्, वई मङ्गुण्ड, वनाङ्गुण्ड, वेल्लुव,  
वेल्लुवुये और चनुगपालेम् आदि ग्रामोंमें प्रत्ननक्षक  
अनेक उपकरण मिले हैं। प्रत्येक ग्राममें ही प्रायः जिला-  
तंत्र उत्कीर्ण लिपिमाला और प्रस्नरप्राचीरमण्डित  
स्थान और स्मृतिस्तरम् दृष्टिगोचर होते हैं। किसी  
ग्राममें प्राचीन दुर्गोंका नान्वावशेष या प्राचीन मन्दिर  
विद्यमान हैं। यहा तावा और लोहा मिलते हैं। इस  
तालुकेकी जनसंख्या प्रायः ८२४६३ है। अक्षा० १५°५०'  
और १६°२४' उ० तथा द्रावि० ७६°३२' और ७६°५५' पू०-  
के बीच अवस्थित है।

इसमें सब मिला कर ७१ ग्राम हैं। इस तालुकेके  
प्रायः ७०००० मध्यम काली मिट्टी दिखाई देती है और कहीं  
कहीं छोटी छोटी पहाड़ी चट्टानें हैं। इसके उत्तर-  
पश्चिम भागमें जंगल हैं। इस तालुकेका राजस्व प्रायः  
१८०००० रु० वार्षिक है।

० विन्कुण्डा तालुकेका मन्दिर। इसकी जनसंख्या  
३२६६ है। यह नगर गोलगात्रमें अवस्थित है। अक्षा०  
१६°०' उ० और प्रायः ७६°४४' पू०के मध्य अवस्थित है।  
पत्तनम् ऊपर खिला है। इसके सम्बन्धमें अत्याश्चर्य  
उत्पन्न दिवनी वा विद्दन्तियां सुनी जाती हैं। कहते हैं,  
कि यह पर्वत समुद्रमें ६०० फीट ऊंचा है। ऊपर दुर्ग  
की रक्षाके लिये इसके प्रायः पर तीन श्रेणियोंमें प्राकार  
निर्मित हुआ है। इनके भीतर ही पूर्वमें जस्यभाण्डार,  
जल्का चदय्या आदि मौजूद हैं।

राजा वीर प्रताप पुत्रोत्तम गजपतिके ( १४६२-  
१४६६ ई० ) अधीनमें इस प्रदेशके शासनकर्त्ता सांगी  
गन्म नायडुने यह गिरिदुर्ग और उसके निकट एक  
मन्दिर निर्माण किया था। इस मन्दिरके नक्कासीका  
काम बहुत ही सुन्दर हुआ है। स्थानीय रघुनाथस्वामी-  
के मन्दिरमें एक जिलालिपि खुदी हुई है। इसका  
पेनिट्रामिक् गुणत्व बहुत ही अधिक है। विजयनगर  
राज शासनके समय पूर्व किनारे पर विजय करनेके समय

इस दुर्गको जीता था। गोलकुण्डाके अधीश्वर अह-  
दुल्ला हुतुवसाहवके राजत्वकालमें आउलिया रजान खां  
नामक एक मुसलमान शासनकर्त्ता १६४० ई०में यहांको  
बड़ी मसजिद बनाई थी। नगरके इधर उधर बहुतरे  
प्राचीन स्मृतिस्तरम् देखे जाते हैं।

पर्वतके पश्चिमके डालुप देशमें विन्कुण्डाका सर्व-  
प्राचीन दुर्ग अवस्थित है। कहते हैं, कि यह दुर्ग पहले  
पहल गजपतिवंशीय विश्वम्भरदेव द्वारा सन् ११४५ ई०में  
बना था। इसके बाद कुण्डवीडुर पोलीय वेमरेडुडीने  
उत्तका जॉर्णसंस्कार करया था। इस स्थानमें ही पर्वत  
नाममें जोड़ित दो प्राचीन जिलालिपियां दिखाई देती हैं।  
इसके कुछ नीचे पकॉनिडू गन्नमनोडूका प्रसिद्ध खिला  
मौजूद है। कहते हैं, कि इस दुर्गके प्रतिष्ठाताका नाम  
रेडु मरदार था। इस समय भी यहां जो राजप्रासादका  
ध्वंसावशेष है, उसको देखनेसे उस समयके बनानेवालों-  
की कारगरीका पता लगता है। अबसे कोई चार सौ  
वर्ष पहले इस दुर्गके पादमूलमें और एक किला बना था।  
यही पूर्णकथित गन्नम-नायडूका दुर्ग है। प्रायः ढाई सौ  
वर्ष पहले और एक दुर्ग निमित्त हुआ था। इसका  
प्राचीर और खाई आदि नगरके चारों ओर फैली हुई हैं।  
नर्सिस ह-मन्दिरका शिलाकलकोंसे मालूम होता है, कि  
सन् १४७७ ई०में सांगीगन्मने इसका मण्डप निर्माण  
कराया था। इस मण्डपके दक्षिण-पूर्व डाकवंगलेके  
निकट एक जिलालिपि दिखाई देती है। यह विजय-  
नगरराज सदाजिवके ( १५६१ ई० ) राजत्वकालमें  
कुमार कुण्डराजदेवका दिया दानपत्र है।

पर्वतके ऊपरके छोदण्डरामस्वामी और रामलिङ्ग-  
स्वामीका मन्दिर बहुत प्राचीन और शिल्पनैपुण्यपूर्ण  
है। इसमें प्राचीनत्वके निदर्शनस्वरूप अनेक कौत्तियां  
संयोजित हैं। मन्दिरगात्रमें जिलालिपि है। नगरके  
उत्तर-पश्चिममें एक हनुमानकी मूर्ति है। प्रवाद है, कि  
गोलकुण्डाके किमी मुसलमान राजाने इस मूर्ति-  
की प्रतिष्ठा की थी। नगरमें और भी किनने ही मन्दिर  
हैं। पर्वतके स्थान स्थानमें और भी कितनी शिला-  
लिपियां खुदी हुई दिखाई देती हैं। इनके प्राचीनत्वमें  
सन्देह करनेका कोई कारण नहीं।

विभुक्ति (स० स्त्री०) १ प्रसंसा । २ प्रमिष्टि और विभुक्ति नामक दो पद्यरूपा नाम ।

विभुद्ध (स० स्त्री०) विशेषकर कर्मवैगुण्य ।

(शुक् २।१।१)

विनेद (स० पु०) वि-नी-दृच् । १ परिचाळक, उप देश, शिष्टक । २ रात्रा, शासनकर्ता ।

विनेत्र (स० पु०) उपदेशक, शिष्टक ।

विनेमिदशन (स० स्त्री०) मर-रहित ।

विनेय (स० स्त्री०) वि-नी-यत् । १ नेतव्य । २ दण्डनीय । (पु०) ३ शिष्य, मन्त्रेवासी ।

विनेयकार्य (स० स्त्री०) दण्डकार्य ।

(दिग्भा० २।६।१६)

विनोक्ति (स० स्त्री०) मन्त्रद्वारविशेष । जहाँ किसी एक वचार्थको छोड़ कर दूसरे एक और वस्तुका सीधव या मसी छत्र मही होता अर्थात् जहाँ किसी एक वस्तुके अभावमें प्रस्तुत दूसरे वस्तुका वर्णनीय विषयमें हीनता वा श्रेष्ठता जानी जाती है, वहाँ विनोक्ति अमङ्कार होता है ।

इस अमङ्कारमें प्रायः बिना शब्दके तथा कदाचित् बिना शब्दार्थके योगसे अभाव सूचिन होता है । जैसे, "बिना सर्वाको अमीष्ट होने पर भी यदि उसमें बिलयका संभव न रहे, तो वह हीन अर्थात् निम्नीय समन्ध जाता है ।" फिर "दे राजेन्द्र ! भाषकी यह समा अमररहित होनेके कारण अति शोभासम्पन्न हो गई है ।" इन दोनों रूपमें यथाक्रम बिना विनयके बिधाको बोधना तथा बिना अम के समाको उच्यता वा श्रेष्ठता सूचिन होती है । "पक्षि होने कमी मा अग्निद्विषय नहीं देखो अग्निमाने मो अग्नि से कमी प्रकृत कमलता मु ह नहीं देखा अतएव दोनोंका हो अग्नि निरर्थक है ।" यहाँ बिना शब्दके अर्थयोगसे विनोक्ति अमङ्कार हुआ है । क्योंकि यहाँ पर स्पष्ट ज्ञाना जाता है, कि अग्निद्विषय दर्शन बिना पक्षिनीका तथा प्रकृतअमलक मुकुटर्शन बिना अग्नि (अग्नि द्वारा शोभा की) की उत्पत्तिकी बोधता बिनाई गई है ।

विनोद (स० पु०) वि-नुद-पच् । १ कीर्त्यक समाशा । २ मोहा, जैल कृत् क्षीना । ३ अपययन । ४ प्रमोद हंसो विलगो । ५ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका मातृकृत । ६ राजपुरुबिषय, मासाह । तीन हाय

अन्ना और दो हाय थोडा ३० द्वार और दो कोष्ठयुक्त पदको विनोद कहते हैं । (सुक्तकल्पवक)

विनोद्गद्य—गया जिज्ञासुर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

(अभिन्नव्यास० ३।१।२२)

विनोदन (स० स्त्री०) वि-नुद-पद्युट् । १ विनोद, आमोद प्रमोद करना, जैल कृत् करना । २ हास विहास या हसो विलगो करना । ३ मानम् करना ।

विनोदित (स० स्त्री०) १ हर्षित यस्य । २ कुन्दक युक्त ।

विनोदिन् (स० स्त्री०) १ आमोद प्रमोद करनेवाला, कुन्दक करनेवाला । २ जैल कृत् करनेवाला, कुहक बाजु । ३ जिसका स्वभाव आमोद प्रमोद करनेका हो, आनन्दी । ४ कोडाशोक, जैलकृत् या हंसो उद्धे में रहने वाला ।

विनोदिनी (स० स्त्री०) विनोदिन् देवी ।

विनोदी (स० स्त्री०) विनोदिन् देवी ।

विन् (स० पु०) १ अथसेनके एक पुत्रका नाम । २ पून राष्ट्रके एक पुत्रका नाम । ३ प्राप्ति, काम । ४ इन्द्र देवी । ५ विन्दु देवी । ६ पश्चिम वस्तुवासी एक जाति । (स्त्री०) ७ प्रापक । ८ दर्शक ।

विन्कि—पुष्पदेशके फनेपुर जिज्ञासुर्गत एक नगर ।

विन्मान (स० स्त्री०) १ प्रापनीय, पानेके योग्य । २ प्राप्ति, ग्रहण करनेके योग्य ।

विन्द्यादत्त—एक कवि ।

विन्दु (स० पु०) बिदि अथयके पाण्डुकापु । १ जन्म कण, वृत् । २ विन्दी, कुवकी । ३ रंगकी बिन्दी जो हाथीके मस्तक परशोभाके छिये बनाई जाती है । ४ द्युतसुतबिन्देय दूतिका छगाया हुआ स्तर । ५ दो मीलों के बीचकी बिन्दी । ६ रेखागणितके अनुसार बह मित का स्थान निवृत्त हो पर विभाग न हो सके । ७ अनुस्वार । सारदातिलकके मतसे,—सच्चिदानन्दबिम्ब परमेस्वर भी शक्ति, शक्तिये नाह तथा नाहसे विन्दुमनुभूत है ।

विन्द्यादत्तविमलत्त कल्पसु परमेस्वरत्त ।

आरीतकित्तवणे नारी गपदाङ्गुलमुद्रा ३०

कुम्भिकातम्बके मतसे,—



“आधीविन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिः समुद्रवा ।  
नादरूपा महेशानीचिद्रूपा परमा कला ॥  
नादाच्चैव समुत्पन्नः अर्द्धविन्दुर् महेश्वरि ।  
याद्द धितयविन्दुम्यो भुजङ्गी कुक्कुपहनी ॥”

विन्दु हा पहले एकमात्र था, उसके बाद नाद तथा नादसे प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है। त्रिद्रूपा परमा कला जो महेश्वरी है, वे ही नादरूपा है। नादसे अर्द्धविन्दु निकला है। आठे तान विन्दुमे ही कुक्कुण्डलिनो भुजङ्गी हुई है।

फिर क्रियासारमें लिखा है—

“विन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्पृष्टम् ।  
तयोर्योगे भवेन्नादस्ताम्यो ज्ञानास्त्रिगुणकयः ॥”

विन्दु हा शिवात्मक और बीज ही शक्त्यात्मक है। दोनोंके योगमे नाद तथा उनसे त्रिगुणिकी उत्पत्ति हुई है। ८ एक घृष्ट परिमाण। ६ शून्य। १० ग्लोका एक दोष या ध्रुवा। यह चार प्रकारका कहा गया है—आवर्त (गोल), चर्चा (लम्बा), आरक्त (लाल) और घव (जाँके आकारक)। १२ छोटा टुकड़ा, कण, कनी। १२ नृज या सरकंडेका ध्रुव।

(लि०) विद् ज्ञाने उः सुमागतप्रथं (विन्दुश्चिह्नं) । पा ३०।१६६) । १३ ज्ञाना, वेत्ता, जानकार । १४ दाता । १५ वेदितव्य, जानने योग्य ।

विन्दुघृत (न० श्लो०) उदर रोगकी एक औषध। प्रस्तुतप्रणाली—घो चार सेर, अकथनेका दूध १६ तोला, धूररका दूध ४८ तोला, हरीतकी, कमलाचूर्ण, श्यामालता, अमलतामरके फलकी मज्जा, ज्येष्ठ अषमजित्ताका मूल, नीलवृद्ध, निमोघ, कन्तोमूत्र और विनामूत्र, प्रत्येक ८ तोला ले कर कुछ चूर्ण करे। पीछे उक्त घृत तथा उसमें १६ सेर जल डाल कर एकत्र पाक करे। जग निःशेष हो जाने पर नीचे उनाह कर छान ले और एक मिट्टीके बरतनमें रख छोड़े। इस घृतके जितने विन्दु सेवन कराये जायगे उतनी बार बिरैचन होगा। इससे सभी प्रकारके उदरी तथा अन्यान्य रोग नष्ट होते हैं।

महाविन्दुघृत—वनानेका तगीका इस प्रकार है, घो २ सेर, धूररका दूध १६ तोला, कमला नीचूकी चूर्ण ८

तोला, मैत्रय ४ तोला, निमाथ ८ तोला, आंघलेका रस ३२ तोला, जल ४ सेर। घाँसी आंघमें पका कर पूरक अवस्थामें उनाह रने। पर्याहा और गुणरोगमें २ तोला सेवन किया जाता है। इससे अन्यान्य रोगोंका भी उपकार होता है।

विन्दुचित्रक (स० पु०) विन्दुभिरिन्द्रविशेषे चित्रक इव। मृगमेद, वह मृग त्रिभुज जगद पर गोल गोल सफेद बुंदिकिया होती है, सफेद चिनियोंका हिरन। विन्दुजाल (स० श्लो०) शिखरा चालम् । सफेद विन्दियोंका समूह जो हाथीके गणक और सूँड पर पनाथा जाता है।

विन्दुजालक (न० श्लो०) विन्दुनां चालकम् । हाथियोंका पञ्जर नामक रोग।

विन्दुतन्त्र (स० पु०) विन्दुश्चित्र तन्त्रं यस्य । १ तुरङ्गक। २ अश्व, चौपड़ आदियों यिमान, सारिकलक।

विन्दुतन्त्रः पुमान् शारिकतके न तुरङ्गके।

विन्दुतीर्थ—काशीके प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थका नामान्तर जहा विन्दुमाधवका मन्दिर है, पञ्चगङ्गा

विन्दुमाधव और विन्दुसग देखो।

विन्दुत्रिवेणी (न० श्लो०) गानेमें स्वर्गमाधनके एक प्रणाली। इसमें तीन बार एक स्वरका उच्चारण करके एक बार उसके बाटके स्वरका उच्चारण करते हैं। फिर तीन बार उस दूसरे स्वरका उच्चारण करके तामरे स्वरका उच्चारण करते हैं और अन्तमें तीन बार मानत्रे स्वरका उच्चारण करके एक बार उसके अगले स्वरके पहले स्वरका उच्चारण करते हैं।

विन्दुधारी—उत्कलवासी वैष्णवसम्प्रदाय विशेष। यह विप्रहस्तेवा, मच्छपदान और बङ्गालवासी अन्यान्य गौडीय वैष्णवोंके अनुष्ठेय सब धर्मानुष्ठान ही करते हैं। तिलकमेधाकी विभिन्नताके कारण ही इस सम्प्रदायका नाम विन्दुधारी पडा। इस सम्प्रदायके लोग ललाटकी दोनों भीतोंके बीचके कुछ ऊपर गोपीचन्दनका एक छोटा विन्दु धारण करते हैं।

विन्दुधारियोंमें ब्राह्मण, साइत, कर्माकार आदि जातियाँ हैं। इस सम्प्रदायके शूद्र जातीय लोग भेक ले कर सोरकापीन धारण कर सकने हैं। इसके बाद तीर्थ

पादार्थी बाहर हो कर मयद्योप, पुष्पावन आदि नाना स्थानोंका घ्रमण कर सौद करते हैं । सामप्रदायिक मत ग्रहण करनेके बाद जो इस तरह पादार्थी प्रवृत्त होते हैं, वे ही पद्यार्थमें वैष्णवपद प्राप्त कर शिवपूजा और मन्त्रीपदेशानाके अधिकारी होते हैं ।

ब्रह्मण विन्दुवादियों तो व्यवस्था कुछ और ही है । वे इस तरहकी तोर्षयाज्ञाकी आवश्यकता नहीं समझते । किन्तु जगद्गुरु प्रभृति विष्णुधारी साधारणताः इस तरहकी तोर्षयाज्ञा करते हैं और वे ही ब्रह्मणशुद्धादि जातिवर्गको मन्त्रदीक्षा देते हैं ।

सामप्रदायिक किन्तु व्यक्तिको मृत्यु होमेसे वे श्रावण देहको जमाने और बहानी मिट्टी छोड़ कर धूमरो जगद पर वैदी बना कर उस पर तुलसीका पूर रोपते हैं । मृत्युके दिन रातके समीप ये भोग भजन रचन कर रखने और वैदी प्रस्तुत होने पर इनके समीप एक पंखा और एक छाया रख दिया जाता है । नौ दिन तक अजीव मनाया जाता है । पहले दिन वे माघ धान्य करने हैं और इसके उपरान्तमें स्वसम्पत्तियों वैष्णव को आमन्त्रित कर मोहन कराते हैं । किसी प्राचीन और प्रवीण व्यक्तिको मृत्यु होने पर वे दाहके बाद सुतककी हड्डी निकाल कर मयनो वास्तु या इन्द्रास्तु भूमिमें गाड़ देते हैं और प्रति दिन दिनमें पुष्पबन्धन द्वारा उसको अर्चना करते हैं तथा सम्पत्ता उपलब्ध होने पर दीप भी जलाते हैं ।

विन्दुनाम—राजपुतानेके छोटा राज्यान्तर्गत शेरगढ राज्य के एक सामन्तका नाम ।

विन्दुपत्र (स० पु०) विन्दु पत्रे यस्य । मूखं पृष्ठ, मोक्षरत्नका पेड़ ।

विन्दुमति (स० स्त्री०) विन्दु मती देवो ।

विन्दुमनी (लं० स्त्री०) राजा शशिबिन्दुको कन्याका नाम ।

विन्दुमाघ—काशीको एक विष्णुमूर्ति । एक समय मगधराज अश्वमेध यज्ञसेवाके अनुमति पा कर काशी नगरीमें आये । वहाँ वे राजा शिवोदासको काशीसे निश्चय पत्रादिक लीयें कि श्रावणमें अवस्थान कर यज्ञतर्ष तोर्षको सहिमा प्रचार कर न्हे दे । इसी समय अग्नि विन्दु नामक एक ऋषिये अग्नि स्तम्भ द्वारा संतुष्ट किया । मगधजने इनके चर मांगनेके लिये कहा । इस पर ऋषि

बोले, 'हे मगधव ! माप सर्वव्यापी हैं सही, फिर भी सब जीवोंको विशेषतः मोक्षानिच्छाकी व्यक्तियोंकी मरुतके लिये माप इस पञ्चनक्षत्रीयमें अवस्थान करें तथा मेरे नामसे प्रसिद्ध हो कर मन्त्र और भक्तको मुक्ति प्रदान करें ।' ऋषिके वाक्य पर प्रसन्न हो कर श्रोविष्णुने कहा, 'तुम्हारा आधा नाम अपने नामक भागि छोड़ कर मैं विन्दुमाघव नाम प्रसिद्ध हो काशीमें वास करूँगा । सर्वगायनाशक यह पञ्चनक्षत्रीय आजसे तुम्हारे नाम पर 'विन्दुनीच' नामसे प्रसिद्ध हुआ । इस पञ्चनक्षत्रीयमें शैव स्नान और पितृका तर्पण कर विन्दुमाघवके दर्शन करते हैं, उन्हें फिर कसो भी गर्मवास परकथाका भोग नहीं करना होता ।' कार्तिक मासमें सूर्योदय कालमें ब्रह्मचर्यपरायण हो परि कोई विन्दुनीचमें स्नान करे, तो उसे पमका भय नहीं रहता । यहाँ भानुमास्य प्रथ, अमावसे कार्तिकीयत भयवा केवल ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर विशुद्ध बिसस कार्तिक मास रिताधि शीघ्रदान वा विष्णुरात्रा करनेसे मुक्ति पूर नहीं रहती । अथवा एकादशीको विन्दुनीचमें स्नान, विन्दुमाघवकी अर्चना और रात्रि जागृत्यर्पक पुराणमन्त्रादि करने से अममय नहीं रहता । ( अशील० ६० प० )

विन्दुर (स० पु०) किसी परार्थ पर धूमरे रणके अंगे रूप छोटे छोटे बिड़, बुद्धकी ।

विन्दुपत्रि (स० पु०) राजिमाससर्षविद्येय, एक प्रकार का सर्प ।

विन्दुरेवक (स० पु०) विन्दुविशिष्टा रेखा पत्र कम । पक्षिमेव, एक प्रकारकी चिड़िया ।

विन्दुख (स० पु०) अग्निचकृति कीर्तिशोष, अग्निवा नामका कीड़ा जिसके छूनेसे शरीरमें फफोले निकल आते हैं ।

विन्दुशासर (स० पु०) विन्दुपातरूप धासक । सन्ता नीररक्षिकारक सुक्रात दिग् ।

विन्दुमरस (स० स्त्री०) विन्दुनामक सग । पुराण्योक सरोवरविद्येय । मरक्यपुराणके मतसे इस विन्दुसारके चरर कैलास, तिब्ब और सभीपशिगिदि, इतिताजमय नीरगिरि तथा हिरण्यकृष्णविशिष्ट सुमहात् विष्णुपशिगप गिरि है । इसीके नामे काञ्चनसन्निभ एक बड़ा विष्य सर है, इसीका नाम विन्दुसर है । मगोरपने गङ्गाके

लानेके लिये इसी सरके किनारे तप किया था। गङ्गाजी इसी स्थानसे पूर्वकी धोर निकली हैं। मोमपादसे निकल कर यह नदी मात धाराओंमें विभक्त हो गई है। इनके किनारे इन्द्रादि देवताओंने अनेक यज्ञ किये थे। देवी गङ्गा अन्तरीक्ष, दिव और भूलोकमें आ कर शिवके अङ्गमें लिपट योगमायाने नंरुद्ध हो गई हैं। उगते समय गङ्गाजीके जितने विन्दु पृथिवी पर गिरे, वे इसी स्थान पर गिरे थे। उन्हीं विन्दुओंसे सरोवर बन गया और विन्दुसर कहलाने लगा।

“तस्या ये विन्दवः केचिद् क्षुब्धायाः पतिता सुविः।

कृतं तु तैर्विन्दु सरस्ततो विन्दुः” १। स्मृतम् ॥”

(मत्स्यपु० १२० अ०)

यही विन्दुसर ऋग्वेदमें सरपस् तथा अथो सरो-  
कूलहृद नामसे प्रसिद्ध है। हिमप्रलयके बाद यहाँ पर  
प्रथम शार्वर्य उपनिवेश रसाचा गया था।

शार्वर्य शब्द देखो।

विन्दुसर ( विन्दुहृद )—उड़ीनामें भुवनेश्वरक्षेत्रके एक  
प्राचीन सरोवरका नाम। उत्कलराज्य, कपिलसंहिता,  
खर्णाद्रिमहोदय, एकाधपुराण और एकाग्रनन्दिकाके इस  
विन्दुतीर्थका साहाय्य सविस्तार वर्णित है।

एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकालमें सावरके  
किनारे अग्निमालोंने प्रार्थना की थी, कि देवदेव मेरे तट  
पर वास करे। तदनुसार स्पर्णाकूट नामक गिरि पर  
कौस भर विस्तृत एकाग्र नामक वृक्षके नीचे शिवजी आ  
कर रहने लगे। उस लिवृक्षके उत्तर ४० घेनुकी दूरी पर  
शङ्करने अपने वीर्यप्रभावसे कुछ पत्थरोंको मोद निकाला।  
उनकी आक्षासे बहने लगे गहरा जलसे परिपूर्ण हृद  
बन गया। महादेवने पातालसे यह जल निकलता देव  
सभनागर, गङ्गादि नदी, मानस और अञ्जोदप्रमुप सरो-  
वर अर्थात् पृथिवी पर जितने नदनदी तोर्य हैं उनका जल  
ले कर उस जलमें डाल दिया। इस प्रकार सभी तीर्थों-  
के विन्दु पहा गिरने लगे। त्रिपयगा गङ्गा भी महादेव-  
के कमण्डलसे सी मुखसे गिरने लगी। स्वयं भगवान्ने  
इस हृदको बनाया था, इसलिये यह शङ्करवापी तथा  
शिवके सभी तीर्थोंका विन्दु इसमें मिलनेके कारण  
यह विन्दुसर नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

एकाग्र क्षेत्रमें या भुवनेश्वरमें जा कर तीर्थयात्रियोंको  
पतले इस विन्दुहृदमें स्नान करना होता है। स्नानमन्त्र—

“आदौ विन्दु हृदे स्नात्वा हृत्वा श्रीपुत्रोत्तमम्।

चंद्रचूड समाप्तोक्त्य चंद्रचूडो भवेन्नरः ॥”

( एकाग्रपु० २३ अ० )

एकाग्रकानन और सुानेश्वर मन्दिरमें अन्यान्य विवरण देखो।

विन्दुसार—शौच नरपतिभेद। विन्ध्यार देखो।

विन्ध्य ( सं० पु० ) विन्ध्य पर्वतका प्रामादिक पाठ।

( मार्क० पु० ५७।५२ )

विन्ध्यनृपक ( सं० पु० ) जातिविशेष।

विन्ध्यपत्न ( सं० पु० ) विश्वनाथ, बैलसोंठ।

विन्ध्यपत्नी ( सं० स्त्री० ) विन्ध्यपत्न देवी।

विन्ध्यस ( सं० पु० ) चन्द्रमा। ( भिष्म० )

विन्ध्य ( सं० पु० ) विन्ध्य पर्वत, पृथोदरादित्वात् मुम्।

१ पर्वतविशेष, विन्ध्यपर्वत।

यह पर्वत दक्षिण धोर अवस्थित है। भारतके उत्तर  
हिमालय और मध्यमें विन्ध्यपर्वत है। इन दोनोंके  
बीच चिनगन अर्थात् सरस्वती नदीकी छोड़ कुशक्षेत्रके  
पूर्वमें तथा प्रयागके पश्चिममें जो देश है, उसका नाम  
मध्यदेश है।

प्राचीन श्रुति इन तरह है, कि विन्ध्य पर्वतके पश्चिम  
दिग्भासी अगार मछली खाये, तो वे पतित समके जाते  
हैं। विन्ध्यगिरि देखो।

२ ध्याय, किगत।

विन्ध्यकन्दर ( सं० स्त्री० ) विन्ध्यस्थ कन्दरं। विन्ध्य-  
पर्वतका कन्दर, गुहा।

विन्ध्यकवास ( सं० पु० ) वीर्यभेद।

विन्ध्यकूट ( सं० पु० ) विन्ध्यके कूट माया कैतवं वा यस्य  
व्याजेन तस्यावनतीकरणस्य तथाह्वं। १ अगस्त्य  
मुनिका एक नाम।

अगस्त्यने लल करके विन्ध्यका दर्प चूर्ण किया था  
इसीसे उनका नाम विन्ध्यकूट पडा है। २ विन्ध्यपर्वत।  
विन्ध्यकेतु ( सं० पु० ) पुलिन्दराजभेद।

( कथासरित्सा० १२३।२८४ )

विन्ध्यगिरि ( सं० पु० ) मध्यभारतमें उत्तर-पश्चिम-विस्तृत  
एक पर्वत श्रेणी। इसने गङ्गाकी अववाहिका भूमि या

संहारमें आर्षावर्षासे द्वापिपालयको प्रायः सम्पूर्ण रूपसे विच्छिन्न किया है।

पुराणमें विष्णुपर्वतके सम्बन्धमें कई तरहको बातें लिखी हैं। देवगण पुराकालमें इसी शैलनिष्कर पर बिहार करते थे। इगल पूषक पड़नेसे मारुत होता है, कि इनकी यह विचरणभूमि उस समयमें तातो और तप्तहाक मध्यवर्ती सतपुराकी सुरम्य और सुदृश्य पहाड़ी या शैलभूमि हो विष्णुपर्वतक नामसे प्रसिद्ध थी। किंतु इस समय बंबल नर्मदाके उत्तरमें अवस्थित शाखा प्रजाकाशोमें विस्तृत पर्वतमाळा ही विष्णुशैल नामसे परिचित है।

देशीमाधवतमें लिखा है, कि यह पर्वत सभी पर्वतों में श्रेष्ठ और माननीय है। इसकी पीठ पर तरह तरहके दूधोके विराहित रहनेसे यह निविड बनके कामें परिप्लव हुआ है। बीच बीचमें इसके कुछ स्थान उता गुननिचय पुष्पमरते पूर्ण पुष्पकाङ्ग दिखाई देनेकी वजह वपन सद्गुण मनोरम दिखाई देते हैं। इस वनमें हरिण सुभय, अक्रुको भी स, बानर, करगोश गोदूङ्ग, बाघ, माछु मादि वनधर अतु तिमो'कमावसे विचरण करते हैं और शैव दानव, गणध और किन्नर इसके नन् और नदियोंमें स्नान करते हुए अन्नकोड़ा करते हैं।

एक दिन महर्षि नारदने विष्णुके पास आ कर कहा—  
हे अतुल्यप्रभावाशो विष्णु ! सुमेध गिरिकी समृद्धि देख कर मैं दग्ध रह गया हूँ। इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदि देवगण यही माना सुख भाग कर रह हैं। अधिक क्या कहूँ, स्वर्ग भगवान् विष्वात्मा गगनबिहारी मरुति मामो स रै प्रदो और नभ्रत्रके साथ इस पर्वतका परिभ्रमण किया करने हैं, इसादिपे यह भयनेको बड़ा और श्रेष्ठ तथा शक्ति यह कर गर्व करता है।

देवर्षिके मु इस स्वशक्ति सुमेधको ऐसी प्रशंसा सुन कर विष्णु र्वापरायण हो उठा। इसने अपनी कुटिल बुद्धिमें परिष्कृत हो कर सूर्यको गतिको रोक सुमेधक गर्वको नर्वा करनेकी चेष्टा की। इसमें अपनी भुवाकागो शृङ्गको ऊँचा कर अक्षांसाक्षात् रोक रखा। सृष्टदेव इसको पार कर जा न सके।

सूर्यका भाग जयदद होने पर दिव्यशोकेमें गड़बड़ा

मच गई। बिहगुम काष्ठनिर्णय नहीं कर सके। शैव और पितृदाप्य सम्पूर्णरूपसे बिलुप्त हुए। मूढ बात यह है, कि पूषको होमादि और आश्वतर्षणदि-गर्वात हुई। पश्चिम और दक्षिणके अधिबोली सदा राजिका ही अनुभव करने लगे। वृत्तरी मोर पूर्व और उत्तरके अधिबासी अधिक सुर्वोत्तापसे ज्वाला पाने लगे। कोर वृष, कोरे मरा, कोरे भयमरा हो कर तद्वपने लया। खातें तरफ हाहाकार मच गया। त्रिभुवनके हाहाकार को देख इन्द्र आदि देवगण इस अपद्रवकी शास्तिकी विन्ता करने लगे।

अन्तमें देवगण यज्ञाको अग्रमर कर कीलासमें शैवदेव महादेवके शरणापन हुए। उन्होंने महादेवजीम विष्णुकी उत्तरोत्तर उन्नतिको जर्ष्य करनेकी प्रार्थना की। महादेवने कहा—विष्णुपता बल लर्ष्य करनेकी क्षमता हम लोगोंनेसे किसीमें नहीं है। चलो, हम सभी वैकुण्ठनाथकी शरण लें।

देवगण सोचिये वैकुण्ठमें भापे और इन लोगोंने परम पिता भगवान् विष्णुका स्तव किया। इस पर सन्तुष्ट हो कर विष्णुने कहा, 'विष्णुसंसारका निर्माता देवी भगवतीके सेवक अतुल्य प्रभावाशो भगवत्पुत्रि इस समय श्री काशीधाममें अवस्थान कर रहे हैं। उनके सिवा और कोई विष्णुकी उन्नतिके बाधा नहीं डाल सकता।' तत्रनुमार देवगण काशीधाममें आ भगवत्पुत्रि आभयमें पचारी और उन्होंने उनको उपासिता मांगी। उन समय शोपमुद्रा पति भयोनिस्तम्भव यह महोमुनि कास्मैरवको प्रणि पात पर बाराणसीसे दक्षिणकी ओर चले। निमेष भरमें विष्णुके समीप आ उपस्थित हुए। मुनिवर भगवत्पुत्रो सामने पडे देख कर विष्णुने लूब भुक्त कर मानो पृथ्वीक कानोमें कुछ बहमा चाहता हो, भगवत्पुत्रो बण्डवत किया। भगवत्पुत्रने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—बरम ! तुम्हारे इस कुरारोह प्रस्तर पर आरोहण करनेमें मैं नितान्त अक्षम हो रहा हूँ। मैं अब तक लीट कर न आऊँ तब तक तुम इसी मापसे अवस्थित रहो। मुनिवरने विष्णुय प्रेमा कह दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। वे प्रोशैवकी हाते हुए मलयपाल या वहाँ आश्रय बना कर रहने लगे।

उस दिनसे विन्ध्यने और फिर करी शिर ऊंचा न किया।

इस मनुपूजित देवी भगवती भी विन्ध्यपर्वत पर आ विराजीं। उस समयसे वे विन्ध्यवासिनी नामसे पुजित हो रही हैं। (देवीभागवत १०।३ ७ अ०)

वामनपुराणमें लिखा है, कि स्वयं जाने पर इस पर्वतने यह कर सूर्यको गतिको रोक दिया। इससे सूर्यदेवने व्याकुल हो कर अगस्त्य ऋषिके होमावन्तान के समय जा कर उनसे कहा—हे कुम्भमय! विन्ध्यगिरिके प्रभावसे मेरे स्वर्ग जानेका पथ पूर्णरूपसे बन्द है। आप ऐसी व्यवस्था करे, जिससे मैं निर्विघ्न अपनी यात्रा तय कर सकूँ। दिवाकरके इस विनीत वाच्यको सुन कर अगस्त्यने कहा—मैं आज ही विन्ध्यगिरिको गत पस्तक करूँगा।

यह कह कर महर्षि दण्डकारण्यने विन्ध्यराजल चले गये और विन्ध्यसे बोले—देखो विन्ध्य! मैं तीर्थ यात्राको निकला हूँ। तुम्हारी इनकी ऊंचाईके कारण मैं दक्षिणकी ओर नहीं जा सकता हूँ। अतएव तुम आज नीचेकी ओर झुको। ऋषिके इस आज्ञासे विन्ध्यगिरिके निम्न शृङ्ग होने पर अगस्त्यने पर्वत पार कर दक्षिण ओर जा फिर धराधरसे कहा,—विन्ध्य! जब तक मैं तीर्थयात्रा करके न आऊँ तबतक तुम इसी तरह खड़े रहो। यदि तुम अन्यथा करोगे, तो तुमको मैं जाप दूँगा। यह बात कह कर ऋषि वहासे प्रस्थान कर देशके अन्तरीक्ष प्रदेशमें आये और वहां अपनी सहधर्मिणी लोपामुद्राके साथ चाम करने लगे। उस समय विन्ध्य मुनिकी लीटनेकी आगा परित्याग कर शापभवसे वैसे ही पड़ा रहा। देवी भी दानवदलनार्थ इस विन्ध्यगिरिके सर्वाच्च शृङ्ग पर अवस्थित हुई। अप्सराओंके साथ देव सिद्ध भूत नाग और विद्याधर आदि सभोंने एकत्र स्वस्तिवाच कर उर्गको अहर्निशि सन्तुष्ट किया और वे अपने भी दुःख शोकविचर्जित हो कर वहां अवस्थान करने लगे। (वामनपुराण १८ अ०)

काशीखण्डमें लिखा है, महर्षि नारद नर्मदा नदीमें स्नान कर ओंकारेश्वर महादेवकी पूजा कर विन्ध्य सङ्गीत पहुँचे। विन्ध्यके अष्टोपकरणनिर्मित अर्घ्य

हारा यद्यपिधि पूजा करने और कुशलप्रश्न पूछने पर मुनिवरने दीर्घ निश्चाम परित्याग कर कहा, कि विन्ध्य! इन पर्वतोंमें एक ग्रील मुझे ही एकमात्र तुम्हारी अब मानना करना है। यह पर्वे दुःखको दान है। और कई तरहकी घातें कर नाश वहांसे चले गये। अब विन्ध्यको मुझेमे पत्नी ईर्ष्या उत्पन्न हुई। विन्ध्यने असूया-परायण हो कर अपनी देहको ऊंचा किया और यहां तक ऊंचा किया, कि मुझेको प्रदक्षिणा सूर्य्य और नक्षत्र-गण न करने पाये। इस तरह सूर्य्यका गमनागमन बन्द हो जाने पर स्वर्ग मत्वे चारों ओर हाहाकार मच गया। देवोंके दृष्टे हो कर जगत्में ज्ञान्ति कैथानेका उपाय पूछने पर ब्रह्माने कहा, कि अगस्त्य ऋषिके सिवा इन्ने प्रतिकार करनेकी प्रत्याशा किसीमें नहीं है। अतएव तुम लोग शीघ्र उन विन्ध्येश्वरके अधिमुक्तक्षेत्रमें जा कर उन मितवचनके पुत्र महानपत्नी अगस्त्यके निवृत्त इत्थे लिये प्रार्थना करो।

ब्रह्माके इस परामर्शके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंने काशीमें जा कर अगस्त्यको विन्ध्यके उत्पानकी बात कही और प्रतिकारकी भी प्रार्थना की। इस पर अगस्त्य जीने भी तुरन्त इसके प्रतिकारके लिये विन्ध्यगिरिकी ओर प्रस्थान किया। विन्ध्यगिरिके अन्तल नृदृग मुनिका आना देख भयभीत हो कर अपने शरीरको अथनन कर विनम्र वचनोंमें कृपा, प्रभो! जाप प्रसन्न हो कर जो आज्ञा देगे, उसे पालन करनेमें मैं तन मन धनसे तत्पर हूँ। इस पर अगस्त्य मुनिने कहा—विन्ध्यगिरि! तुम साधु हो, मैं जब तक लौट न आऊँ, तुम इसी भावने खड़े रहो यह कह कर अपनी स्त्री लोपामुद्राके साथ गोदावरी तट पर अगस्त्य मुनि रहने लगी।

इन सब पौराणिक विवरणोंमें मालूम है, कि यह विन्ध्यगिरि एक समय बहुत ऊंचा था। इसके ऊंचे शिखर पर कोई चढ़ नहीं सकता था। इसीसे यह दानव यज्ञ किन्नरोंकी वासभूमिमें परिणत हुआ था। अकस्मात् विन्ध्यके हृदयमें ईर्ष्याकी तरङ्ग लहराई, इसने अपने शरीरको इतना बढ़ा दिया, कि सूर्य्यका मार्ग भी बन्द हो गया। सहसा अन्धकारले जगत् व्याप्त हुआ। विन्ध्यशैलको इस तरह आकस्मिक देहवृद्धि और सूर्य्य-

पत्थको रोक जगत्में अणुकारका राज्य करनेकी पुराण  
 कथित कथाओं पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि  
 एक समय विश्वपर्यन्तक इष्ट्यको मेत्र कर अन्तिगठित  
 प्रवपद्योनि मीर घूमराशिने निकरुण कर जगत्को  
 आच्छादित कर लिया था। यह सहज ही अनुमान  
 होता है, कि पुराणकी यह वर्णन आत्म व विरिह  
 अणुस्वातका परिचायक है और रूपक भावमें वही  
 पुराणोंमें वर्णित है। विभिन्न पुराणोंमें अणुस्वका  
 विभिन्न विद्याका ज्ञान प्रमाणित होता है। अणुस्वका  
 वास्तुकार्य गमन या अन्तरीक्षमें गोवाहरी तट पर या  
 मलयवाचसमें आद्यम निर्माणसे इस समस्त विश्व  
 पार्श्ववासी आर्योंका वास्तुशास्त्रमें उपनिवेशस्थापन  
 प्रसङ्गमसे वर्णित होना सूचित करता है। आधुनिक  
 भूतत्वविद्वानों में एक स्वर्से लोकार किया है कि  
 विश्वपर्यन्तके प्रस्तरस्तर और प्रशाखाओं पर विशेषरूपसे  
 पम्पिसेज करनेसे मालूम होता है, कि ये आभीपगिरि  
 क आवसात हैं।

प्राचीनकालमें यह शैलश्रेत भाषा नई नदियोंसे  
 परिनामित था और अनेक आर्य्य और अनार्य्य जाति  
 वहाँ वास करती थी।

पुराणमें विश्वरपादमें शिमा, पयोष्णी, निर्घिन्धवा,  
 ताप्ती मयूति कई नदियोंकी उत्पत्तिका उल्लेख दिखाई  
 देता है।

इन्धुमोंको द्विधमें ये नदियाँ पुष्यसंज्ञिका और  
 पुष्यतार्थ काम गण व वहाँ आर्योंका निवास न रहने  
 से ये नदियाँ कभी भी पुष्यसंज्ञिका नहीं कही जाती।  
 इस पर्वतको पीठ पर और नदीका तट तक दक्षिण  
 पार्श्वमें कितनी ही असंख्य आतिथीका वास है।  
 आज भी वहाँ भील जाति अनेक भादिम आतिथीका  
 वास है। मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है:—

“नक्षिणपारव ये शन्ने ये चोरोजर्मरदा।  
 मीसककल्प समोदेया सर्वारसोदेरीय ॥  
 कारवीरान्ध दुराष्ट्राय भावत्याम्पादुदे। तट।  
 इत्येते धरात्म्यान्व शानु शिन्वनिवाशिना ॥  
 द्विरजाम करुणाय केरकारपोत्क्रमे। तट।  
 तथमर्वा इत्यापारव मोडवा। किरीकन्वके। तट।

तेमन्धा। कोचकारचैव चैपुरा वैदिहस्तया ॥  
 दम्भुतास्तुम्भुकारय व पदको नेवपे। तट।  
 अन्ववास्तुकारय चोतिहोवा अणुस्वः ॥  
 एते जनयता सर्वे विश्वप्रभितापिना ॥”

(मार्कण्डेयपुराण ५७।५१-५५)

वामनपुराणमें भी इन स्थानोंको विश्ववक निम्न  
 मागमें अवस्थित रहना लिखा है। किन्तु एक प्रथम  
 दो एक स्थानोंका विपरीतता दिखाई देतो है।

(वामनपुराण १३ व०)

पुराण और स्मृत्यादि ग्रंथोंमें यह पर्वत मध्यदेश  
 और वास्तुशास्त्रकी सीमा निर्दिष्ट है। सुतराँ इसके  
 द्वारा उत्तर भारतके आर्य्य औपनिवेशिकोंके साथ  
 वास्तुशास्त्रके अनार्योंकी पारंप्रक रेखा विनिश्चित हुई  
 है।

“दिग्बद्धिन्मनोर्मन्व म् प्राविमयनादपि।  
 म्प्रकोष मयमात्र मन्ववेजः प्रकोटिर्वा।।  
 अणुस्वरात्तु ये पूर्वाक्षयुत्तरात्तु पन्थमत्।  
 तयो रेवत्तट सिन्धोरात्पार्वीरिभिरुद्धुधा ॥”

(वसुवर्षिणा ५।२१।२२)

मिथर जोम्बदम और मिथर मेडलिकेटमें विश्व  
 पर्वतके भूतत्वकी पर्यालोचना कर लिया है कि यह  
 पर्वतमाला वास्तुशास्त्रकी उत्तरी सीमा पर क्यात है।  
 यह मानो एक मित्रोणका मूलदेश है। पूर्व और पश्चिम  
 घाट पर्वतमाला इसके दोनों पार्श्व हैं जो भारतके पूर्व  
 और पश्चिम उपकूल होते हुए कुमारिका अल्पीयके  
 मिथर पर्वतपर मिले हैं। नीलगिरिका शिखर मानो  
 इस मित्रोणका शूङ्गात है। गुजरात और मालवके  
 बीचसे यह पर्वत घाट परसे मध्यभारतकी पाट कर राज  
 मद्रकके शाङ्गू व उपत्यका देश तक फैला हुआ है। यह  
 अक्षां २२ २५ से २४ ३० तक और देशां ७३ ३४  
 ८० ४५ पूर्वके मध्य अवस्थित है। इसके साधारण  
 ऊँचाई २५०० फीटसे ४५०० फीटके करीब है। किन्तु  
 कहीं कहीं इसके शूङ्गातकी ऊँचाई ५००० फीट तक  
 देको गई है।

पश्चिममें गुजरातसे पूर्व गङ्गाकी अपवाहिका देश  
 तक २२ से २५ सम-अक्षांशक बाध विश्वपर्वत गिरा

जित है। यह इस समय नर्मदाकी उत्तरी उपत्यकाकी सीमाक्षरमे विद्यमान है। इस पर्वतका अधित्यकादेश साधारणतः १५०० से २००० फीट ऊंचा है। किन्तु स्थान-स्थानमें कई शृङ्गोंने उन्नत मस्तकसे अवस्थित हो कर प्राकृतिक लौन्द्यकी एकताको भङ्ग कर दिया है। अक्षा० २२' २४' ३०" और देशा० ७३' ४१' ५०" में चम्पाने नामक शृङ्ग समुद्रवर्षसे २५०० फीट ऊंचा है। जामघाट २३०० फीट; भूपालका शैलशिखर २५०० फीट, त्रिन्द वाडा २१००, पचमारी ५००० (१), दोकगुड ४८००, पट्ट प्रद्धा और चूडादेव या चौडा-टू ५०००, अमलकण्टक अधित्यका ३४६३, लाजोशैलका लाला नामक शिखर २६०० फीट है ( अक्षा० २१' ५५' ३०" और देशा० ८०' २५' ५०" ) उक्त पर्वतके अक्षा० २१' ४०' ३०" और देशा० ८०' ३५' अंशमें २४०० फीट ऊंचा और भी एक शृङ्ग है।

पश्चिम भारतकी अधित्यका प्रदेशनियत मालव, भूपाल आदि राज्योंकी दक्षिणी सीमा पर प्राचीन स्वरूप यह पर्वतमाला खड़ी है और यही इसके पीछे भी है। सागर और नर्मदा प्रदेश इसके ऊंचे चूडान्तोंमें गिने गये हैं। इसके उत्तर भागकी अपेक्षा पश्चिम भाग कई सौ फीट ऊंचा है। विन्ध्य पर्वतकी पश्चिम सीमासे उत्तरकी ओर एक पर्वत श्रेणी वक्रमावसे राजपूतानेको पार करती हुई दिल्ली तक गई है। इसका नाम है अरावली की पहाड़ी। इसने पश्चिम भारतके मरुदेशसे मध्यभारत को अलग किया है।

इस समय हम विन्ध्यपर्वतको नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त देखते हैं। ये शाखायें एक एक अलग अलग नामसे परिचित हैं। पौराणिक युगमें विन्ध्यपर्वतके दक्षिणकी सतपुरेकी पहाड़ी भी विन्ध्य नामसे परिचित है। किन्तु इस समय केवल नर्मदाके उत्तरवर्ती विस्तृत शैलश्रेणी ही विन्ध्यनिरिके नामसे पुकारे जाती है।

विन्ध्यपर्वतका पूर्वांश एक विस्तृत अधित्यका प्रदेश है। इसके उत्तर और दक्षिणमें असंख्य शाखा-प्रशाखायें फैली हैं। दक्षिणकी इन शाखाओंमें उड़ीसाके विभिन्न उपत्यकायें विराजित हैं। उत्तरमें छोटा नागपुरकी अधित्यका भूमि है। यह ३००० फीट ऊंची है। पश्चिम में सरगुजाके निकट यह और भी ऊंची हुई है। हजारों

वागकी ऊंचाई १८०० फीट है, किन्तु पूर्वाञ्चलमें पारसी-नाथ पर्वतकी ऊंचाई ४५०० फीट है। इस पर्वत श्रेणीकी सर्व पूर्वासीमा मुंगेर, भागलपुर और राजमहलके निकट गङ्गातीर तक विस्तृत है। विन्ध्यपर्वतका जो अंश मिर्जापुरमें पडा है, वह विन्ध्यपर्वत नामसे प्रसिद्ध है। यह हिन्दुओंके लिये एक बहुत पवित्र तीर्थ गिना जाता है। विन्ध्यपर्वतकी ओर विन्ध्यचर देखा।

इस पर्वतकी शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त विभिन्न उपत्यका विभिन्न देशवासियोंकी आश्रयभूमि हो जानेके कारण ये राजकीय और जातिगत विभागकी सीमा करने निर्दिष्ट हुई हैं। इसी कारणसे समग्र विन्ध्यपर्वतका विवरण एकत्र समझ करनेकी सुविधा नहीं होती। इसका जो अंश जिम त्रिलेके वर्तमान है अथवा जो अंश जिम जातिके घामभूमिमें परिणत है, पर्वतका प्राकृतिक विवरण भी उन उन जातियों या जितोंके साथ पृथक् रूपसे लिखा गया है। प्राचीन साहित्य काव्यादि ग्रन्थोंमें इस विन्ध्यपर्वतके अंश विशेषता हो माहात्म्य वर्णित दिखाई देता है। मुगलोंके शासनकालमें राजकीय कार्य और दक्षिणात्य देशों पर आक्रमण करनेकी सुविधा होनेसे इस पर्वतके स्थानविशेषका परिचय इतिहासमें या राजकीय विवरणोंमें आया है।

भूतत्त्वके विषयमें, नर्मदातीरवर्ती विन्ध्यपर्वतकी पादभूमि पल्लतत्त्वविशेषके लिये जैसी आदरकी सामग्री और चित्र-कर्षणकारी है, भारतके अन्य कहीं भी ऐसा स्थान दिखाई नहीं देता। यहा विन्ध्यपर्वत पर बालुका प्रस्तरका जो स्तर और मिट्टा हुआ, भून्तर है (associated beds) वह अति आश्चर्य और विख्यात है, प्राकृतिक विपर्याय, रासायनिक क्रियासे और उल्लवायुके प्रभावसे इसके दक्षिण भागके प्रस्तर-स्तर अपूर्ण वैगुण्यको प्राप्त हुए हैं। नर्मदा उपत्यकाके मूलदेशसे होनी हुई क्रमसे पूर्वाकी ओर दौडती शोननदीकी उपत्यका तथा बिहार और गोरखपुर पर्वत मालामें भी ऐसा ही प्रस्तर दिखाई देते हैं।

भूतत्त्वविदोंने विन्ध्यपर्वतके प्रस्तरस्तर आदि पृथ्यायिक गठन पदार्थालोचना की है। पूर्व-पश्चिम सहसरामसे निमाच तक प्रायः ६०० मीलोंने और

दक्षिणमें भागदासे होगङ्गाबाद तक ३०० मीलोंमें फैले हुए प्रस्तरस्तरका जो एक पार्वत्य गर्भ (Rock basin) परिमण्डित होता है, मृगधरके उस स्तरसमष्टिको साधारणता Vindhyan Formation कहते हैं। इस विस्तीर्ण पार्वत्य-मृगधरके आरों और बलुई पत्थर (Sand stone)के स्तर पाये जाते हैं; उनके साथ निसिक या ट्रांज़िशन प्रस्तरका (Transition or gneissic rocks) कोई सीसाद्रूप नहीं है। किन्तु इसके पूर्व भागमें अवस्थित कुन्धेलकण्ड और शोण नदीके उपत्यकादेशमें उसके समान स्तरमें जो प्रस्तरस्तर हैं, वे विपरीत भावसे गठित हुए हैं। इन प्रस्तरस्तरोंके नीचे जो सव स्तर मृगमें प्रोथिन हैं, इनकी गठनप्रणाली भी स्वतन्त्र है; वह सब देव कर येजानिकतत्त्वकी बाधों चनाकी सुविधाके मिये भूतस्वविधिमें विन्ध्यपर्वतके समग्र स्तरोंको ऊँचा और नीचा (Lower and Upper Vindhyan) नामसे समिहित किया है। कानूँक, पारुनाड, सीमाका अथवाहिकाप्रदेश महानदी और गोशबरी विभाग, शोण प्रवाहित पार्वत्यभूमि और कुन्धेलकण्ड विभागके नीचेकी विन्ध्यधरोष्णीके पर्वतस्तर ही अधिक देखे जाते हैं। फिर शोण नर्मदाकी सीमा पर, कुन्धेलकण्डके सोमान्त पर, गङ्गातोरणको पार्वत्यभूमिमें ओरिआरभूमि सीमा पर ऊँचकांतन-विन्ध्य प्रस्तरस्तर का गठन देखे जाते हैं।

इसी ऊँचकांतन विन्ध्यपर्वतस्तरमें हीरा पाया जाता है। हीरा पानेकी चेष्टामें अनेक स्थानोंमें खान खोदी गई हैं और उनक मीनर पत्थरके छोड़ कर बड़ा हीरेका स्तर दिखाई नहीं दिया है। किन्तु रैबाराज्यके अन्तर्गत येस स्तरों (Rewasals) के नीचे बहुत कुछ हीरा मिला है। हारे निकामनेके मिये खानके अथि कारिधोने विशेष परिश्रम और सर्प नष्ट किया है। पन्ना राज्यके दक्षिण ऊपर-देवा बलुई पत्थर (Upper Rewa Sandstone) पहाड़के दानुप देशमें अथवा पर्वतकण्डोंमें और बड़ बलुइ चट्टानोंके निम्नस्तर विन्ध्यपर्वतस्तरसे कुछ उच्च पार्वत्य प्रदेशमें ऐसे कई हीरेको खाने खोही गई हैं। मीथ्य धातुको छोड़ अन्य धातुओंमें खानके काम करनेमें सुविधा नहीं है।

नर्मदा नदीके किनारे विन्ध्यपर्वतोंका सुप्रसिद्ध मर्मरपर्वत (Marble rocks) है। येसा उज्जवा मर्मर पर्वत भारतके और किसी स्थानमें दिखाई नहीं देता। मर्मरप्रस्तर देखो।

विन्ध्यचूल्क (स० पु०) विन्ध्यचूल्क देखो।  
विन्ध्यचूल्किक (स० पु०) विन्ध्यपर्वतके दक्षिणका प्रदेश। महाभारतके अनुसार यहाँ एक प्राचीन बंगली जाति रहनी थी।

विन्ध्यनिज्या (स० स्त्री०) विन्ध्ये विन्ध्यपर्वतसे निम्नता अवस्थानं यस्याः। विन्ध्यवासिनी दुर्गा।

विन्ध्यपर (स० पु०) विद्याधरविद्योय।  
(कपलरिद्वार० ३७२९)

विन्ध्यपर्वत (स० पु०) विन्ध्य नामक श्रेणिक। माधुनिक भूगोळमें (Vindhya Hills) नामसे परिचित है। यह आर्षाबरी या द्विस्तुस्थानको दक्षिणाल्पसे अलग करता है। विन्ध्यगिरि देखो।

विन्ध्यपाकिक (स० पु०) जातिविद्योय। (विन्ध्यपुराण)  
विन्ध्यपाकिक—विन्ध्यनामरूप देशमाग। यहाँ विन्ध्य यासिनी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

(मविन्ध्यप्रधान० ८१९ २४, ७२)

विन्ध्यपूकिक (स० पु०) जातिविद्योय।  
(अस्त्यनु० १११७८)

विन्ध्यमूकिक (स० पु०) जातिविद्योय। (विन्ध्यपुराण)  
विन्ध्यमौडिय (स० पु०) जातिविद्योय।

(मार्क०पु० ५७४७)

विन्ध्यवत् (स० पु०) एक ईत्यका नाम। इसको कन्या कस्तुराके पतिका नाम था पुष्करमालो। शुम्भने इनका बध किया था। (मार्क०पु० २११४)

विन्ध्यवर्म (स० पु०) मानवक परमारज शोण एक राजा। वे पिता अथववर्माको मृत्युके बाद सिंहासन पर बैठे।

विन्ध्यवासिन् (सं० पु०) विन्ध्ये वसतीति यसं विभिः।  
१. व्याङ्गि मुनिका एक नाम। २. एक वैषाकरज। राय मुकुन्द और करिकसिंहने इनका उल्लेख किया है। ३. एक वैद्यक ग्रंथके रचयिता। अहिप्रदीपमें इनका नामोद्धेख मिलता है। (त्रि०) ४. विन्ध्यपर्वत ववासी।



विन्ध्यवासिनी—विन्ध्याचलकी एक देवीमूर्त्तिका नाम । भगवती वाक्षायणीके दशालयमें देहत्याग करने पर महा-देव सती विरहसे व्यथित और उन्मत्त हो कर उन सती-की शवदेहको कन्धे पर रख सारी पृथ्वीमें घूमते फिरते थे । उम समय भगवान विष्णुने उनको जान्त और संसार-रक्षा करनेके लिये अपने चक्र द्वारा सती देह-को टुकड़े टुकड़े काट डाला । देवीको देहके ये टुकड़े जहाँ जहाँ गिरे, वहाँ वहाँ शक्तिका एक एक पीठ स्थापित हुआ । इस तरह जो टुकड़ा यहाँ गिरा था, उससे ही विन्ध्यवासिनी देवीकी उत्पत्ति है ।

वामनपुराणमें लिखा है, कि सहस्राक्षत भगवती दुर्गा देवीको विन्ध्यपर्वत पर ले जा कर स्थापित किया है और वहा देवताओं द्वारा पूजिता होने पर विन्ध्यवासिनी नामसे प्रसिद्ध हुई है ।

फिर देवीपुराणमें लिखा है, कि भगवती दुर्गाने विन्ध्यपर्वत पर देवताओंके लिये अवतीर्ण हो कर महा-योद्धा असुरोंको मारा था । उसी समयसे वहाँ वे अव-स्थान करती हैं ।

बहुत पुराने समयसे ही शक्ति मूर्त्तिका पूजा होनी आ रही है । कुछ लोग इस मूर्त्तिका वहाँकी शवर, कौल यादि असम्भ्यजातियोंकी उपास्य देवी कहा करने हैं ।

ईस्वी सन् ८वीं शताब्दीके मध्यभागमें सुप्रसिद्ध कवि वाक्पतिने अपने गौडवधकाव्यमें उस भीषणा विन्ध्य-वासिनी मूर्त्तिका वर्णन किया है । वाक्पतिके प्रतिपालक महाराज यजोवर्मादेवने देवीका दर्शन कर पर श्लोकमें उनका स्तव किया था । उन श्लोकोंसे मालूम होता है, कि देवीके सिंहदरवाजे पर सैकड़ों घण्टे झूलते थे । (मानो कैदी महिपासुरवंगके गलेसे घण्टे झोल कर यहाँ रखे गये हों) देवीके पदतलकी किरणसे महिपासुरका मस्तक सुप्राधवलित हो रहा है । (मानो हिमालयसुताके सन्तोषके लिये अपना एक तुपारखण्ड सेज दिया हो) मन्दिरके सुगन्धित चवुतरोंमें दलके दल भ्रमर शूज रहे हैं । (मानो जन्म-मरण रहित मानवदेवीका स्तव कर रहे हों) विन्ध्यादि धन्य हैं, क्योंकि उसकी एक कन्दारमें देवी अवस्थित है । मन्दिरके भीतर जाने पर देवीके चरण-किङ्किनी रोल पर मन आरुढ़ होता है । वह चरण

मानो नरकपालभूषित प्रमजानमें झपट करनेमें प्रिय है । उनके हाथकी प्राद्वण भूमि उत्कृष्ट जीणितमें सुसजित है । उनके मन्दिरके चारों ओर जो उद्यान है, उममें जहा देवो कुमारों प्रिय सैकड़ों मयूर नृम फिर रहे हैं । मन्दिरके भीतर कान्दिमाके अन्धकारसे आवृत है । फिर भी, उममें बीरोंके लिये खुली दुरिका, बहूनेरे घनुष और तन्दवारे जोमा पा रही हैं । मन्दिरके अति स्वच्छ प्रस्तरफलकों पर रक्तवर्ण पताकाश्रीका प्रतिचित्र प्रतिफलित होनेमें सैकड़ों गोदण्ड उसे रक्त प्रवाह समक कर चाटते रहने हैं । मन्दिरके भीतरी भागमें मन्द मन्द दीप जलता रहता है—मानो उत्कृष्ट शत शत नरसुण्डोंके घन कृष्णवेगराजिमें ही दीपकका प्रकाश तिम्बोज हो रहा है । कोलो जातिकी स्त्रियां नरवलिके भीषण दृश्य देखनेमें मानो अक्षम हो कर यहाँ नहीं जातीं । इसीसे वे देवीके चरणोंमें न दे कर दूरसे ही गंध पुष्पादि अर्पण कर चली जाती हैं । यहाँके रूझ भी मनुष्य मानके रक्तमें अतिरञ्जित है । इस निशीथ मन्दिरमें भी मामत्रिकयत्न महाकार्यकी सूचना मिल रही है । देवीकी महचरी रेवती भी देवीके पाददेशमें निपतित भीषण मनुष्यकी हड्डियोंका दर्शन कर मानो स्वभाषतः ही भीत हो रही है । हरिद्रापत्र-परिधान एक शवरने महाराज यजोवर्माके साथमें ले कर यथा-नियमसे देवीका दर्शन कराया था ।

वाक्पतिके गौडवधकाव्यमें देवीका जो चित्र और मन्दिरका जैसा वर्णन किया गया है, उमसे मालूम होता है, कि ये देवी 'कम तरह नरमांसातिलोलुपी थी' । वे असम्भ्य कोली और शवरजाति द्वारा पूजित हैं—शवर ही उनका पूजा करानेवाले पाण्डोंका भी काम करते थे । किन्तु बहुत दिनोंसे ये देवी अनाथ्य जाति-की उपास्य रहने पर भी ईसा मनकी ८वीं शताब्दीके पूर्वसे ही आर्यों द्वारा भी पूजित हो रही है । यह भी गौडवध काव्यमें महाराज यजोवर्मादेवके स्तोत्र पाठ करनेसे सहज ही मालूम होता है ।

राजतरङ्गिणीमें विन्ध्य शैलस्थ इन देवीको भ्रमर-वासिनी ही लिखा है । (राजत० ३:३६४)

आज भी हजारों यात्री देवीदर्शनके लिये विन्ध्या-चल जाते हैं । विन्ध्याचल देखो ।

विन्ध्यवासियोग ( स० पु० ) यक्षमारिगकी एक भोजन । इसके बनानेकी तरकीब—सो ठ, पीपल, मिर्चा शतसूत्री, आमलकी, इरीतकी, बीजब व, सफेद बीजब व प्रत्येकका पूर्ण एक तोला छे कर उमक साथ १ तोला शारित छोडा मिछा कर मल द्वारा अच्छी तरह घोंटे । पीछे २ रत्ती भरकी गोछा बनाये । इसका सेवन करनेसे उदाहृत, कपटरीग टामयक्ष्मा, बाहुस्वप्न आदि रोग प्रशामित होते हैं ।

विन्ध्यशुक ( स० स्त्री० ) १ एक धवन राजाका नाम । २ वाकाटक वंशीय एक राजाका नाम । ( विष्णुपुराण )  
 विन्ध्यसेन ( स० पु० ) राजसेन, विजिसारका एक नाम ।  
 विन्ध्यक्य ( स० पु० ) विन्ध्ये विन्ध्यपर्जाते तिष्ठतीति स्यात् । १ व्याघ्री मुनिका एक नाम । ( सि० )  
 २ विन्ध्यपर्जतस्थितमात्र ।

विन्ध्या ( स० स्त्री० ) पुराणानुसार एक नदीका नाम । ( भागवतपुराण )

विन्ध्याखण्ड—युद्धभेगके बनारस विभागके मिर्जापुर जिलेका एक ग्राम और प्राचीन तीर्थ । यह मिर्जापुर सहर से ० मील दक्षिण-पश्चिम गङ्गानदीके किनारे अवस्थित है । यह स्थान मिर्जापुर तहसीलके कश्चित् वरगनेके अन्तर्ग है । सुप्रसिद्ध विन्ध्यगिरिका जो अश मिर्जापुर जिलेमें आ पड़ेका है, उसी अशका नाम बिंध्या खण्ड है । यह ग्राम पर्यतगात्र पर अवस्थित है, इन्नीमिथे बिन्ध्याखण्डके नामसे यह ग्राम भी परिचित है ।

भारतकी सर्वप्रथमपूजित विन्ध्येश्वरी या विन्ध्यवासिनीदेवीके गुहामन्दिर इसी पर्यत पर अवस्थित रहने से यह जनसाधारणके निकट बहुत परिचित है और बहुत प्रसिद्ध है । पुराणोंमें बिन्ध्याखण्ड नगरीकी बर्णना है । इससे इस तीर्थके और देवीकी प्रतिमाके प्राचीनत्वका परिचय मिलता है । एक समय यह नगर प्राचीन पम्पापुरकी राजधानीके अन्तर्गत था । विन्ध्यमाझिनी देवी ।

पहले तीर्थवासियोंको मिर्जापुरमें बतर कर देवी दर्शनक निषेध वैदिक ज्ञान्य होता था । वासियोंको सुविधाके निचे इसदिहाय हैन कम्पनीने अब विन्ध्याखण्ड नामका एक छोटासा स्टेजान बना दिया है । इस स्टेजानमें यह बहुत ही निदर है अर्थात् स्टेजान पर लड़ा होनेसे बिन्ध्यावासिनी

देवीकी बलगताका दिक्कार देती है । मन्दिरमें किसी विशेष शिवरथातुर्प्यका परिचय नहीं मिलता । यह एक अनुसूक्तोय यह भी कहा जा सकता है । दो जगह देवीको दो प्रतिमाये प्रतिष्ठित हैं । पर्यतके निम्नस्तरमें एक मन्दिरमें देवीकी भोगमाया-प्रतिमा प्रतिष्ठित है और पर्यतके अष्टसुक्तशिखर पर स्थापित देवीमन्दिरकी मूर्ति भोगमायाक नामने प्रसिद्ध है ।

स्टेजानसे बतर कर रैसपथस जाते समय दक्षिण भाट जेतोंमें एक सुन्दर शिव मन्दिर दिखाई देता है । यह बुनारके पत्थरसे बना है । काशीम्बर महाराज इसक प्रतिष्ठाता हैं । इस मन्दिरको छोड़ कर कुछ और अग्रसर होने पर मिर्जापुरका सहर रास्ता मिलता है । इस रास्ते को पार कर छेने पर एक पहाड़ी तङ्ग रास्ता मिलता है । इस तङ्ग रास्तेमें देवी भोगमायाका मन्दिर और मन्दिरसे सटा बाजार और घाट है । देवीका मन्दिर पर्यतगात्र पर ही एक समतल स्थानमें बना है । यह देवनेमें काशी मिर्जापुर भादि स्थानोंके सामान्य मन्दिरकी तरह ही है । इसमें मन्त्रधामतुर्प्य विशेष नहीं । मन्दिरके गर्भ-गृहमें देवीको मूर्ति नहीं रहती । मन्दिरमें कुछनेके पथमें अग्रतरस्थ एक पर्वतसूत्राके गालके एक टाकेमें देवीका दर्शन मिलता है । प्राण्यके सिवा अन्य वाली देवीके सामने नहीं जा सकता । मन्थान्य छोटीको मन्दिर-प्राकारके एक दो फुटके चट्टोसे देवीका दर्शन करना पड़ता है । अतः दर्शकोंको तङ्ग चट्टोकेके कारण बड़ी मोड़ हो जाती है । देवीको प्रतिमा एक डेढ़ फुटके पत्थर पर बनी गई है और काशीकी अन्नपूर्णा और दुर्गादेवीकी तरह मुख आदि अवयव सब सेनके बनाये गये हैं । दुर्गामगलसे देवीको पूजा और अङ्गलि ही जाती है । इस भोगमायाक मन्दिरमें ही पूजा पाठ और तीर्थ कल्पना बड़ा आङ्गनर दिखाई देता है । मन्दिरके सम्मुख कीहसलाकाधित एक अष्टर पर पुणकाष्ठ और होम स्थान है । प्राण्य यहां बाएँ ओरमें बैठ कर हीम और अष्टकाका पाठ किया करते हैं । सभी अपने अपने सामने एक एक होमकुण्ड बना कर हीम करते हैं । यहां अब हीमकी ही अधिकता दिखाई देती है । भाग्य हीम भी प्रचलित है । अष्टरके दोष

में एक साधारण होमकुण्ड भी स्थापित होता है। पण्डा हो इसे प्रवृत्त करने हैं और ईनित्य लायी और देवी-दर्शनार्थी यात्री ब्राह्मण जो चबूतरे पर बैठ कर होम नहीं करते। वे देवीदर्शनके बाद तीन या पांच बार आहुति दे कर चले आते हैं। इस मन्दिरमें बलिदानकी व्यवस्था बड़ी लोमहर्षण है। परिणतवयस्क पशुकी ही बलि देनेकी शास्त्रमें व्यवस्था है, किन्तु यहां ६-८ दिनोंके बकरेका भी बलिदान दिया जाता है। बलिदानके पशुओं में ऐसे ही गिशु बकरेकी संख्या सैकड़ों पीछे ७५ है। दुर्गासप्तमके समय यहां नवरात्रि उरसव होता है। उस समय नौ दिन तक भोगमाया देवीकी प्रतिमा एक हलदीने रंगे हुए गमछेसे ढकी रहती है। इस भोगमायाके निकट ही नानकशाही एक आस्ताना है। सन्ध्या समय इस आस्तानामें ग्रन्थ साहबकी आरति और स्तोत्रपाठ होता है। यह स्तोत्रपाठ सुननेमें बड़ा मनोरम लगता है। भोगमाया के घाट पर खड़े हो कर बगलमें अत्युच्च विन्ध्यशैलश्रीत गंगाकी तरंगलीला और दूसरी ओरमें समतल फसलबाले खेतोंके ऊपरसे गंगाकी प्रमादलीला बहुत सुन्दर दिखाई देती है।

मिर्जापुरका रास्ता पकड़ कर एकासे जाने पर तीन घण्टामें विन्ध्याचलके मूलशिखरमालाके पाददेश तक पहुँचा जाता है। इस स्थानमें एक सुन्दर धर्मशाला है। यात्री यहां एक दिन एक रात रह सकते हैं। इस धर्मशालाके बगलसे योगमायाके मन्दिरके चूड़ा पर चढ़ना पड़ता है। यह चूड़ा यहां सबसे बड़ा ऊँचो है। पथ दुरारोह नहीं, किन्तु कहीं तो पर्वतगात्र पकड़ कर ही चढ़ना पड़त है या कहां कहीं सीढ़ियां भी बनी हैं। भोगमायाका मन्दिर जैसे जोड़ाईसे बना है वैसे योगमायाका मन्दिर नहीं बना है। योगमायाका मन्दिर एक पर्वतचूड़ाको चारों ओरसे छिल कर मदिराकृतिका तय्यार किया गया है। इसके भीतर एक गुहामें योगमाया अवस्थित है। इस गुहाका द्वार बहुत तंग है। कोई आदमी खड़े हो कर इसमें प्रवेश नहीं कर सकता—शिर झुका कर जाना होता है। मोटी देहवालोंको प्रवेश करनेका कोई उपाय नहीं। वे मन्दिरके एक छिद्रसे देवीका दर्शन करते हैं। मन्दिर-गुहामें ७८ आदमी बैठ सकते हैं। यहां भी एक दो फुट

ऊँचो ४५ फुट लम्बो कुलंगामें देवीप्रतिमा रखी हुई है यह भी एक पत्थरमें खुदी हुई है।

भोगमायाके मन्दिरमें फूल और जगन्नाथदि के पूजाकी व्यवस्था है। यहां केवल पुष्पाहुति देनी पड़ती है। यहां सब जातिके लोगोंका प्रवेशाधिकार है। यहां बलिदानके व्यक्ताएँ हैं, किन्तु बलिको बहुतदा नहीं। गुहाकी बगल इस मन्दिरमें एक जम्बूकापर्रं पथ है। उसमें दो करगभस्थानमें पहुँचने पर एक काली प्रतिमा दिखाई देती है। यह मूर्ति भी पत्थर पर खुदी हुई है। पण्डोंका कहना है, कि यह काली कम गजाकी इष्टदेवी थी। श्रीकृष्ण जब मथुरासे द्वारका चले गये, तब टाडुखीने मथुराको लूट लिया और उन्हीके द्वारा यह मूर्ति यहां लाई गई है।

योगमायाके मन्दिरके चबूतरे पर खड़े हो कर नीचे सूताकारमें गङ्गाका प्रवाह देखनेमें बड़ा सुन्दर लगता है। योगमायाके मन्दिरमें गाँचे जमीन पर रेल चलती हुई देखनेसे मालूम होता है, कि दियासलाईके डिव्केकी ट्रेन जा रही है।

योगमायाके मन्दिरको बगलमें सीताकुण्ड, अणस्त्य-कुण्ड और ब्रह्मकुण्ड नामके तीन तीर्थ हैं। ब्रह्मकुण्डकी चारों ओर देखने पर मालूम होता है, कि किसी समय यहां एक जलप्रपात था। यहां समतल भूमिमें खड़े हो कर ऊपरको देखनेसे सृष्ट-विस्मयसे एक अननुभूत तृप्ति उत्पन्न होती है। जलप्रपातजात पार्वतीय स्नानविषय द्वारा पर्वतशिखर अधिक ऊँचाई पर दिखाई देता है। नीचे समतल भूमि पर इस समय वर्षाका जलवाहित नाला गङ्गामें जा कर मिल गया है। दोनों बगलमें वृक्ष-राजिकी गमोर छायाकी वजहसे अन्यकार है। प्रपातके शार्पस्थानमें एक लम्बे सेमरका वृक्ष मानो चूड़ा रूपमें अवस्थित है। आधे पथमें एक पन्नवण और कुण्ड है। कुण्ड भी अति सामान्य है। पर्वतको दरारसे अनवरत बुन्द बुन्दसे जलकुण्डमें पड़ता है। यहां स्नानके सिवा अन्य कोई तीर्थकृत्य नहीं है। इससे कुछ दूर पर सीता-कुण्ड है। सीताकुण्डके निकट सीताजीकी रथन शाला है। यह केवल एक मकानका भग्नावशेष है। सीताकुण्डका जङ्गल बड़ा उपकारी है। ग्रामोंके अधिवास

इस कुण्डका अक्ष से आ कर पीते हैं । यह कुण्ड एक हाथ छम्बा बीड़ा और ३ इञ्च गहरा है । पर्याप्तगालस्थित एक पर्यारके कोनेसे इसमें समो समय पुन्वपुन्वसे अरु गिरता है । आश्चर्यको बात है, कि कितना ही अक्ष इसमें गिरे, किन्तु अरु उतना ही रहता है, बाहर नहीं गिरता; कितना ही अरु इससे निकाला जाये, कि तु इसका अरु जैसेके तैसा ही रहता है । न कम होता और न बढ़ावाही है, चाहे घड़े में अरु खे कर स्नान कीजिये फिर भी अरु इससे कम नहा होता ।

सोताकुण्डको बगलमें सेकड़ों सोड़ियों को पार कर पूर्वके ऊँचे स्थान पर पहुँचते हैं यहाँ पूर्वतक पीठका भन्नामा मिलता है । यह स्थान ऊँची पीठकी तरह है । यहाँ एक वृक्षके पत्तोंमें लाला रेश्याये होती है । यहाँके लोगोंका कहना है, कि इन पत्तों पर राम नाम लिखा है, पूर्वतक इस अशमें बीठा बाघका उन्पात होता रहता है । कहते हैं, कि उक्त वृक्षक पामनामलिखित पत्तोंको कान में रखनेसे बाघका डर भूट जाता है ।

विश्व्याचल तीर्थमें महाभायाको प्रसादां सागूराने को तरह भोनाका दाना मिलता है । जोर और वल्ल पासो यरनके साथ सप्रह कर नयने पर लाते हैं ।

योगमाथाके मन्दिरमें अबूतरेसे कई सीड़ियों को पार करने पर महाकाम शिवका मन्दिर मिलता है । मन्दिर में कुछ भी नहीं है । कितनी ही इटोकी तरह पत्थर की जुड़ाईपर ताल औरसे प्राचीर खड़ी है । महाकामका किङ्ग अथे तपत्थरका बना है । गौरीपट्ट भी है । यह मातूम नदी होत, कि उसका निम्नभाग भूमोपित है या नहीं । बगलमें छोटे बड़े कितने ही शिवकिङ्ग पड़े हैं ।

यहाँ बहुत दिनों से डाकुमो का उपद्रव चला आता है । सुनते हैं, कि डाकू यहाँ देवाको नरबलि चढ़ाया करत थे । अबूतरेजोके शासनसे यह प्रथा मिट गई सुहा, कि तु डाकजनोंको कमी नहीं हुई है । बहुतरे याकिवोंका यहाँ यथासम्भव भूट लिया जाता है । इनसे प्रति दिन सध्याको यहाँस पासो और लोगो को प्राचीमें पहुँचा दिये जाते हैं । बहुतरे मनुष्य लास्य्यरसाके क्रिये यहाँ आ कर बसे हुए हैं ।

विश्व्याचलक पूष एक प्राचीन दुर्गका अन्तसावरो

है । इस मल दुर्ग पर जाके हो कर पश्चिम दिशाको देखने पर बस अचिप्यका देशमें बहुत दूर तक असंख्य अस्तकीर्तिका निर्वाण पाया जाता है । इन सब दूटे पूटे पत्थर, ईंट और अण्डहरोंको देख कर अनुमान होता है, कि किसी समयमें यहाँ बहुतअनपूर्ण एक नगरी विद्यमान थी । यहाँके लोगोंका कहना है, कि इस अस्तनगरीमें किसी समय १५० मन्दिर थे । मुगल बादशाह औरकुशैवने इन्हींके यशीभूत हो कर इन मन्दिरोंको ढहवा दिया था । प्रकृतस्वविदू फुहारारका कहना है, कि यहाँकी किम्पल्पो भतिरिखित तो हो सकती है, कि तु यह बात मिश्रय है कि किसी समय यहाँ बहुतेरे मन्दिर विद्यमान थे ।

विश्व्याचल डेड पाव जमीनके वाद इतिहासपूर्वके कोने पर कण्ठित प्राग है । यहाँ एक प्राचीन मसजिद है । वर्तमान समयमें इसकी मरम्मत हो जानेसे यह नई मातूम हो रही है । सिवा इसके यहाँ एक पुराने किल्लोका अण्डहर पाया जाता है । बसको प्राचीन पम्पापुर राजघातोका दुर्ग होनेका अनुमान किया जाता है । इस समय इस दुर्गका कुछ भी शेष नहीं रह गया है । केवल मूर्तिका निर्मित पामूमि आई और कहीं कहीं पत्थो होवारका मग्नाशरोप विद्यमान है ।

उक्त कण्ठित प्रागके डेड मीळ पश्चिम शिवपुर नामक एक प्राचीन प्राग है । यहाँ पहले एक बहुत बड़ा शिवमन्दिर था । इसका अन्तसावरोप भाज भी वर्तमान रामेश्वरनाम मन्दिरके धारो और इधर उधर फैला दिखाई देता है, प्राचीन मन्दिरके कई बड़े बड़े स्तम्भ और उसका शीर्षस्थान वर्तमान रामेश्वरसे सदा हुआ है । यहाँके पत्थरको प्रतिमूर्त्तियोंमें सिंहासनाभिधृता और गोदमें पुत क्रिये हुए एक स्तम्भीकी मूर्त्ति विशेष आप्रहकी सामग्री है । यह मूर्त्ति ५ फीट २ इञ्च लम्बी और ३ फीट ८ इञ्च चौड़ी है । इसकी मोटाई १ फुट ८ इञ्च है । स्त्री-मूर्त्तिको मुजाहति नष्ट होने पर भी इसके गिरके बुझ या तोषा करकी मूर्त्ति नष्ट नहीं हुई है । इस मूर्त्तिका दाहना हाथ ऊँहुती तक टूट गई है और बायें हाथमें एक शस्त्रक है । इनका बायाँ पैर सिंहासनक नीचे तक खुकता है, इनक नायें सिंहाको मूर्त्ति है, इस मूर्त्तिके

पीछे पलपुष्पसमन्वित एक बड़ा वृक्ष है। सूर्यके दोनों ओर अनुचर हैं। इन अनुचरोंमें पांच लड़े और दो मानो हीड़ रहे हैं। यह स्त्रीमूर्ति इस समय सङ्कटादेवीके नामसे पूजित हो रही है। डाक्टर कनिङ्गहमका कहना है, कि यह पण्डो देवीकी प्रतिमूर्ति है, किन्तु प्रतन्तत्त्वविद् कुहरारका कहना है, कि यह सूर्य महावीर स्वामीकी माता त्रिशला देवीकी प्रतिमूर्ति है।

विन्ध्याट्टि (सं० पु०) विन्धवर्णात। (देवीभागवत)  
विन्ध्याधिवासिनी (सं० स्त्री०) विन्धवर्णातकी अधि-  
ष्ठात्री देवी, दुर्गा, विन्धवासिनी।

विन्ध्यवायिनी और विन्ध्याचल देखो।

विन्ध्यावली (सं० स्त्री०) दैत्यराज बलिकी स्त्री और वाण राजाकी माता। बलि धामनरूपी भगवान्को त्रिपाद्भूमि दे कर जब दक्षिणान्त न कर सके, तब भगवान्ने उन्हें बाध लिया। इस समय विन्ध्यावलीने हाथ जोड़ कर भगवान्को स्तुति की और कहा, "भगवन्! आप गर्वियोंके गर्वको चूर्ण किया करते हैं। इससे आपने जो कुछ किया वह ठीक ही है। जो जगत्पति हैं, ब्रह्माण्ड जिनका क्रीडास्थान है, उनको 'यह मेरी चीज है' कह कर किसी चीजका दान करना गर्वका चूर्णान्त परिचायक है। अतः आपने कर्त्तव्यकार्य ही किया है। किन्तु प्रभो! (महाराजके लिये नहीं) भविष्यमें आपको किसी तरह कलङ्क न लगे, इसके लिये स्त्रीबुद्धिसे डर कर प्रार्थना करती हूँ, कि महाराजको बधनमुक्त कीजिये। महाराज भी आपके भक्त हैं। उन्होंने केवल आपके पादयुगलोंको निरीक्षण कर दुस्तयज्य त्रैलोक्यराज्य और स्वपक्षदल अनायास ही त्याग किया है। और तो क्या, आपके लिये गुरु आश्रात्री भी अवमानना की है। इस पर गुरुने अभिशाप भी दे डाला है। अतएव भगवन्! इस क्षेत्रमें उनका मुक्त कर देनेसे हम लोग कृतार्थ हो सकते हैं।" विन्ध्यावलीके युक्तिपूर्ण वाक्य पर प्रसन्न हो कर भगवान्ने उसके पतिको बधनमुक्त किया। बलि देखो।

विन्ध्यावलीपुत्र (सं० पु०) विन्ध्यावत्याः पुत्रः। वाण-  
राज (त्रिका०)

विन्ध्यावलीसुत (सं० पु०) विन्ध्यावत्याः सुतः। वाण-  
राज। (जटाधर)

विन्धेश्वरी प्रसाद—एक प्रत्यकार। दण्डोने कथम्भूतिना नामक कुम्भारम्भगधकी टीका, प्रदम्परकी टीका, नर-  
क्षिणा नामकी नर्मप्रदटीका, न्यायसिद्धांत मुक्तामली-  
टीका और श्रावणक नामक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा।

विन्द (सं० त्रि०) विन्द क (तुदकि०)। १। १। २। ५। ६।

इति नन्व। १ विचारित। २ प्राप्त। ३ प्राप्त। ४ स्थित।

विन्दप (सं० पु०) काशीके एक गजाका नाम।

(राजत० ५।१२।६)

विन्दिमद्—नर्कपरिसापाटीकाके प्रणेता

विन्द्य (सं० पु०) वि नि-इ अण्। विनिगम, विनिगोम।

विन्द्यस्त (सं० त्रि०) वि-नि अन्-न्त्। १ म्थापित, रणा  
हुथा। २ यथा स्थान वैठाया हुआ, जडा हुआ। ३ शिम,  
डाला हुआ। ४ कर्मनेसे लगा हुआ।

विन्द्यम्य (सं० त्रि०) वि नम-यत्। विन्धानके योग्य,  
विन्धासके उपयुक्त।

विन्द्याक (सं० पु०) वि-नि-अक घञ्। विन्दक पक्ष,  
दरियाना नामका पौधा।

विन्द्यास्त (सं० पु०) वि नि-अस्-अञ्। १ म्थापन, रचना,  
घरना। २ यथा स्थान स्थापन, ठीक जगह पर कर्मनेसे  
रखना या बठाना, सजाना। ३ किसी स्थान पर डालना।  
४ जडना।

विपक्षिम (सं० त्रि०) विपाक्षेन निवृत्तः वि पक्ष-तिमक्।  
विपाक द्वारा निवृत्त, अनिजय परिपक्व।

विपक्ष (सं० त्रि०) वि पक्ष क। १ विशेषरूपसे  
परिपाकप्राप्त, रूब पका हुआ। २ पाकहीन, जो पका  
न हो, कच्चा। ३ पूर्ण अवस्थाको प्राप्त।

विपक्ष (सं० पु०) विरुद्धः पक्षो यस्य। १ जन्वुपक्ष, विरोध  
करनेवाला दल। २ भिन्नपक्षाश्रित, विरुद्ध पक्ष। ३ जन्वु  
या विरोधीका पार्श्व। ४ प्रतिवादी या जन्वु, विरुद्ध दल  
का मनुष्य। ५ व्याकरणमें किसी नियमके कुछ विरुद्ध  
व्यवस्था, बाधक नियम, अपवाद। ६ किसी बातके  
विरुद्धकी स्थापना, विरोध लडना। ७ न्यायमतसे साध्य-  
का अभावविशिष्ट पक्ष। न्यायमतसे किसी किसी विषय-  
को मीमासा करने पर हेतु, साध्य और पक्ष स्थिर कर  
करना होता है, साध्य अभावविशिष्ट ही विपक्ष कह  
लाता है।

( जि० ) विगता पक्षो यस्य । ८ विरह, विहाय, प्रतिकूल । १ पक्षहीन विना पर या डैनेका । १० विपरीत, उलटा । ११ जिसका पक्षमें कोई न हो, जिसका कोई तरफदार न हो ।

विपक्षता ( स० स्त्री० ) विपक्षस्य भावा तस्य-राप् । १ विपक्ष होनेका भाव विहाय होना । २ विरहपक्षका भव सम्बन्ध ।

विपक्षमाह ( स० पु० ) १ विपक्षता, मात्र ता । २ घृणा ।

विपक्षगूढ ( स० पु० ) साम्प्रदायिक नेता, हठका कर्ता ।

विपक्षस् ( स० जि० ) रथके दोनों बगलमें जोटा हुआ ।

विपक्षिन् ( स० जि० ) १ विरह पक्षका, दूसरी तरफ का । २ प्रतिहृदा, प्रतिवन्द, फटीकसानो । ३ पक्षहीन, विना पक्ष या डैनेका ।

विपक्षीय ( स० जि० ) विपक्ष-य । विपक्षसम्बन्धीय, शत्रुके पक्षका ।

विपक्षिण ( स० पु० ) वैवज, जो मानवजीवनकी घटनाबली कह देते हो ।

विपक्षिका ( स० स्त्री० ) वि-पक्षि विस्तारे ण्युक्त स्त्रियां राप् अत इत्वं । घोषा ।

विपक्षी ( स० स्त्री० ) वि पक्ष मच्च स्त्रियां-गीराहित्वात् ङीप् । १ एक प्रकारका वाजा जिसमें तार छगे रहते हैं, एक प्रकारकी घोषा । २ कवि, शीर्षा, श्लोक ।

विपण ( स० पु० ) वि-पण व्यबहारे मन्, संज्ञापूर्वकत्वात् न ह्रस्विः । १ विक्रय । जो मन् प्राण्य विपण अर्थात् विक्रय द्वारा अपना जोविका खलते हैं, हव्यकर्ममें उन का अधिकार नहीं है । २ विपण्यि ।

विपणि ( स० पु० स्त्री० ) विपणनेऽस्मिन्निति वि पण्य (वर्णनशून्य इत् । उच्य ५।११०) इति इत् । १ पण्य, विक्रय गाला, चिकनपण्य, कृष्णान् । २ हठ, हाट । पर्वण्य—पण्य बोधिका भाषण्य, पण्यबोधी, पण्य रमस, निवधा, वनिकृपय, विपण बोधो । ३ वाणिक्य ।

विपण्यिन् ( स० पु० ) विपण्य चिकित्सेऽस्वास्तीति विपण इति । वाणिक्य ।

विपणी ( स० स्त्री० ) विपण्यि वा ङीप् । हठ, हाट ।

विपणक ( स० जि० ) विपण्यका पताका परमात् । पताका शून्य विना पताका का ।

विपण्ति ( स० स्त्री० ) वि-पण् क्तिन् । १ विपण्य कष्ट, पुष्प या जोककी पीठि, मारो रंज या तकलीफकी भा पड़ना । २ ह्येय या जोकको स्थिति, रंज या तकलीफकी हालत । ३ कठिनाई अन्वय, बन्धेड़ा ।

विपरमस् ( सं० जि० ) विविधगमनयुक्त या विविधगमन युक्त ।

विपय ( सं० पु० ) विरहः पण्या ( मन्कृत्पूर्वा पधामा मन्से । पा ५।४।४७ ) इति समासात् अमस्यया । १ कुमार्ग, बुरा रास्ता । २ बगमका रास्ता । ३ मन्द् भाषण्य, बुरी भाषा । ४ एक प्रकारका रथ ।

विपद् ( स० स्त्री० ) वि-पद्-सम्प्रसारित्वात्-क्विप् । विपत्ति, आफत, संकट ।

विपदा ( सं० स्त्री० ) विपद् भाशुरित्ते-दृक्त्वान्तान् राप् । विपद्, विपत्ति, आफत ।

विपद्य ( सं० जि० ) वि पद्-क । १ विपद्-काम्त, जिस पर विपत्ति पड़ो हो, सुलोभकका मारा । २ दुःखी, बरार् । ३ कठिनाई या अन्वयमें पड़ा हुआ । ४ सूत । ५ मूला हुआ, सममें पड़ा हुआ ।

विपण्यता ( सं० स्त्री० ) विपण्यस्य भावा तस्य-राप् । विपण्य का भाव या धर्म, विपद् विपत्ति ।

विपण्यत् ( सं० स्त्री० ) विस्फुट्य अतिगय रूपेण । ( श्रक १०।४२।२ )

विपण्यु ( सं० जि० ) १ स्तुतिकारक । ( श्रक १०।२२।२१ ) २ स्तुतिकाम्य ( लृक्-५।११।१५ )

विपराक्रम ( स० जि० ) विगम्य पताक्रमो यस्य । विगत पताक्रम, पराक्रमरहित ।

विपरिणाम ( स० पु० ) वि परि-यम-घञ् । विशेषरूप परिणाम, विशिष्ट परिणाम । २ विपर्या, संपरिवर्तन ।

विपरिणामिन् ( स० जि० ) वि-परि-यम-घञिनि । १ परिणामविशिष्ट, परिणामयुक्त । यह आगतिक भाव विपरिणामीः है, अगलमें जो कुछ परिवृत्तमान होता है, सभी थोड़े समयके सिधे जो अपरिणत अकर होता है । २ वैपरीत्यविशिष्ट ।

विपरिणाम ( स० स्त्री० ) १ विहायकपसे परिणाम, अच्छा तरह पहनना । २ परिणामका अभाव ।

विपरिणत श ( स० पु० ) विपरिणाम्य, चिनाश ।

विपरिलोप ( सं० पु० ) विलोप, ध्वंस।

विपरिवत्सर ( सं० पु० ) परिवत्सर।

विपरिवर्त्तन ( सं० क्लो० ) वि-परि-वृत्-रुगुट्। विशेष रूपसे परिवर्त्तन, खूब घुमाना फिगाना।

विपरीत ( सं० द्वि० ) वि-परि-इ-क्त। १ विपर्यय, जो मेलमें या अनुरूप न हो, उल्टा, विरुद्ध, खिलाफ। पर्याय—प्रतिसव्य, प्रतिकूल, अवसव्य, अपण्डु, विलोमक, प्रसव्य, पराचोन, प्रतीप। ( शब्दरत्ना० ) २ किसीकी इच्छा या हितके विरुद्ध। जैसे—विपरीत आचरण। ३ अनिष्ट साधनमें तत्पर, रष्ट। ४ हितसाधनके अनुपयुक्त, दुःखद। ( पु० ) ५ केशवके अनुसार एक अर्धालङ्कार जिसमें कार्य-को सिद्धिमें स्वयं साधकका बाधक होना दिखाया जाता है। ६ सोलह प्रकारके रतिवर्धनोंमेंसे दशवां रतिवर्ध। इनका लक्षण—

“पादमेकमूरो कृत्वा द्वितीयं कटिलंस्थितम्।

नारोघु रमते कामी विपरीतस्तु वन्धकः ॥”

( रतिमञ्जरी )

विपरीतता ( सं० स्त्री० ) विपरीतस्य भावः तल्लु-टाप्। विपरीत होनेका भाव, प्रतिकूल, उल्टा।

विपरीतपद्या ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद।

विपरीतवत् ( सं० अव्य० ) विपरीत-इवार्थे-वति। १ विपरीतकी तरह। ( द्वि० ) विपरीत अस्त्यर्थे-मतुप्-मस्य व। २ विपरीतविशिष्ट।

विपरीतमल्लतैल ( सं० क्लो० ) वणरोगाधिकारोक तैलौषध-विशेष। प्रस्तुतप्रणाली—सरसोंका तेल ४ सेर, कव्काथं सिन्दूर, कुट, विप, हिङ्गु, लहसुन, चितामूल, ईशलाङ्गला प्रत्येक एक तोला, पाकका जल १६ सेर। तैलपाकके विधानानुसार यह तेल पकावे। इस तैलका व्यवहार करनेसे नाना प्रकारका क्षत सूख जाता है।

( मेषज्यरत्ना० त्रयशोथरोगाधि० )

विपरीतरति ( सं० स्त्री० ) साहित्यके अनुसार सम्भोगका एक प्रकार। इसमें पुरुष नीचेकी ओर चित लेटा रहता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर सम्भोग करती है। कामशास्त्रमें इसे पुरुषायितवध कहा है। इसके कई भेद कहे गये हैं।

विपरीता ( सं० स्त्री० ) विपरीत-टाप्। दुश्चरिता स्त्री।

विपरीताख्यानही ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद।

विपरीतादि ( सं० द्वि० ) वक्त्र छन्दः सम्बन्धीय।

विपरीतान्त ( सं० द्वि० ) प्रगाथ सम्बन्धीय छन्दः।

( ऋक्प्राति० १५।६ )

विपरीतार्थ ( सं० द्वि० ) जिसका अर्थ उल्टा हो।

विपरीति ( सं० स्त्री० ) विपरीत देखो।

विपरीतोत्तर ( सं० द्वि० ) विपरीतः उत्तरो यत्र। विपरीत उत्तरविशिष्ट, प्रतिकूल उत्तर, जिमका उत्तर उल्टा हो। २ प्रगाथ सम्बन्धीय छन्दः।

विपरीतोपमा ( सं० स्त्री० ) केशवके अनुसार एक अलं-कार जिसमें किसी भाग्यवान् ध्यतिकी हीनता वर्णन को जाय और वह अति हीन दशामें दिखाया जाय।

विपर्णक ( सं० पु० ) विशिष्टानि पर्णानि त्रयस्य। १ पलाशका पेड़, टेवू। ( द्वि० ) २ पर्णरहित, बिना पत्तोंका।

विपर्यच् ( सं० द्वि० ) वि परि-अञ्जति अञ्ज क्तिप्। विपरीत, प्रतिफल, उल्टा।

विपर्यय ( सं० पु० ) वि-परि इ 'परच' इत्यच्, १ न्यर्तिकम, जैसी चाहिये उससे विरुद्ध स्थिति, औरका और। पर्याय—ध्यत्यास, विपर्यास, व्यत्यय, विपर्याय। ( भारत ) २ पातञ्जल दर्शनोक्त चित्तवृत्तिभेद, “प्रमाण-विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः” ( पातञ्जलद० १।६ ) प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पांच चित्तकी वृत्तियां हैं। इसका लक्षण —

“विपर्ययो मिथ्या ज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठं।”

( पातञ्जलद० १।८ )

विपर्यय मिथ्याज्ञान है। जो ज्ञान विज्ञात विषयमें स्थिर नहीं रहता, परिणाममें वाधित होता है उसी मिथ्या-ज्ञानको विपर्यय अर्थात् भ्रम कहते हैं। एक वस्तुको अन्यरूपमें जाननेका नाम विपर्यय या भ्रमज्ञान है। जैसे रज्जुमें सर्पज्ञान, शुक्तिमें रजतज्ञान। पहले शुक्ति रजत आदि भ्रमज्ञान होता है, पीछे यह रजत नहीं, शुक्ति (सीप) है, इस प्रकार यथार्थ ज्ञान होनेसे पूर्वज्ञान वाधित होता है। पहले हुआ है, इस कारण पूर्वभ्रमज्ञान प्रबल तथा पीछे हुआ है, इस कारण उत्तर यथार्थ ज्ञान दुर्बल है। अतएव उत्तर ज्ञान द्वारा पूर्वज्ञान वाधित नहीं होगा,

पेसी भाङ्गाट्टा करना उचित नहीं। पूर्वापर होनेसे ज्ञानी के सख्य-सुर्मल भाव नहीं होता। जिस ज्ञानका विपर्यय बाधित है उसीको दुर्गन्ध और जिसका विपर्यय बाधित नहीं है उसे प्रबल कहते हैं। इसीलिये अबाधित विपर्यय उत्पन्न बाधित विपर्यय पूर्वाज्ञानसे प्रबल है। अर्थात् पूर्वाज्ञानकी अपेक्षा करके उत्तरज्ञान उत्पन्न होता है वह। पूर्वाज्ञानमें बाधा ज्ञानमें उत्पन्नज्ञानका सङ्कोच हो सकता है। यहाँ परकीर् मो किसीकी अपेक्षा नहीं करता। उत्पन्नज्ञानमें अपने अपने कारणसे दोनों ज्ञान उत्पन्न होत हैं, इसलिये उत्पन्नज्ञान प्रमत्तज्ञानमें बाधा है सकता है।

यह बही है या नहीं ? इत्यादि संशयज्ञान को विपर्यय के अन्तर्गत है। विपर्यय और सगममें प्रवेश इतना हा है, कि विपर्ययकी जगद् विचार करके पदार्थका अर्थयामात्र प्रतीत होता है, ज्ञानकात्मने ही पदार्थका अभिप्रेता प्रतीत होती है अर्थात् संशयस्वप्नमें सभी पदार्थ, यह ऐसा ही है। इसका निश्चय नहीं होता प्रमत्त स्वप्नमें विपर्यय रूपसे एक तन्त्र निश्चय हो जाता है। उत्पन्नज्ञानमें 'यह वैसा नहीं है' इस प्रकार बाधित होता है।

यह विपर्ययज्ञान प्रभावित क्यों नहीं होता ? यह विपर्ययज्ञान प्रमाण द्वारा बाधित होता है इसी कारण इसका प्रमाण नहीं होता। प्रमाणज्ञान मूलार्थ विपर्यय ही अर्थात् उसका विपर्यय क्यों भी बाधित नहीं होता। प्रमाण और अप्रमाण ज्ञानमेंसे अप्रमाणज्ञान प्रमाण ज्ञान द्वारा बाधित होता है। जैसे, अन्धमा एक है इस पदार्थज्ञान द्वारा अन्धमा को ही यह प्रमाणज्ञानबाधित होता है, निष्ठा समझा जाता है। प्रमत्तय यह अविद्या पञ्चम अर्थात् पञ्चप्रपञ्चोंमें विभक्त है, जैसे—अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अनिनिवेश। फिर ये पदार्थप्रमत्तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र नामसे प्रसिद्ध हैं।

( पातञ्जल २० )

विपर्यय पांच प्रकारका है, यथा—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अनिनिवेश। इनके भी फिर पांच नाम हैं तम, मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र।

( शांख्यकारिका १८ )

तम ८ प्रकार, मोह ८ प्रकार, महामोह १० प्रकार, तामिस्र और अन्धतामिस्र १० प्रकार, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रको आत्मा समझना, ऐसा जो ज्ञान है वही अविद्या है। इस अविद्याका प्रकृति अदि ८ प्रकारका है। विपर्यय होनेके कारण अविद्युपाको ८ प्रकारका कहा गया है। अस्मिता, अविद्या अत्रि आठ प्रकारके ऐश्वर्यविशिष्ट है। 'मैं अमर हूँ' इस प्रकार को प्रमत्त है वही अस्मिता है, इसको प्रमत्त क्यों कहा जाता है ? उसका कारण है, मैं अमर हूँ। अविद्या अत्रि ऐश्वर्य मेरे (पुरुष) धर्म नहीं, बुद्धिके धर्म हैं, फिर भी मैं (पुरुष) ऐश्वर्यविशिष्ट हूँ यह जो ज्ञान है वह प्रमत्तके सिवा और कुछ भी नहीं है। राग, इच्छा, अनुराग, शब्द स्पर्श रूप, रस और गन्ध यही अनुरागका विपर्यय है। स्पर्शादि स्वर्ग्य और अस्वर्ग्य मेइसे दो प्रकारका है। अतएव शब्दादि विपर्ययक दश मेइ हैं। ये दशों विपर्यय साक्षात् सम्बंधमें सुखसाधन हैं, इस कारण यह राग, अर्थात् अनुरागक विपर्यय है। रागक दश प्रकारके विपर्यय साक्षात् सुखसाधन होनेके कारण रागको भी दश प्रकार का कहा गया है। शब्दका अर्थ शब्दका साक्षात् अर्थ सुख और स्पर्शका अर्थ स्पर्शका साक्षात् अर्थ सुख है, इत्यादि। जब जो वस्तु विरक्तिकर है आठ प्रकारके ऐश्वर्यक फलसे क्षणकात्मके द्विप भी उसके उपस्थित होना उस समय ऐश्वर्यक प्रति भी द्वेष होता है और विरक्तिकर शब्दादि भी द्वेष होते हैं। आठ ऐश्वर्य और शब्दादि दश ये अठारह प्रकारके द्वेष्य हैं, इस कारण द्वेष के अठारह भेद कहे गये हैं। मरण भा इम अंगोंका आठ प्रकारके ऐश्वर्य और दश प्रकारके शब्दादि मोग्य विपर्ययसे वञ्चित कर सकता है, इस कारण यह जो अठारह प्रकारका कहा गया है। यह मरणमय इसविधोग्य समझना मान है। इसका तात्पर्य वैसा मालूम होता है, कि मयमात्र ही विपर्ययके अन्तर्गत है। ममो मय अनिष्ट समभावनामात्र है। परन्तु पातञ्जल दर्शनमें केवल मरण मयको ही विपर्यय कहा है। क्योंकि मरणमय हा सभी मयका शेष है, इस कारण मरणको मय कहनेसे सभीका बोध हो जायेगा। अनुभव और वैषम्यके भी विपर्यय



हैं। ( सांख्यकारिका ) विशेष विवरण अत्रिणादि शब्दमें देखो।

३ इधरका उधर, उलट पुलट। ४ भ्रम, भूल।

५ अथवस्था, गड़बड़। ६ नाश।

विपर्यस्त ( सं० लि० ) वि-परि-अस् क। १ जिनका विपर्यय हुआ हो, जो उलट पुलट गया हो। २ अस्तव्यस्त, गड़बड़, चौपट। ३ परावृत्त।

विपर्याण ( स० लि० ) विपर्याय, व्यक्तिक्रम।

विपर्याय ( स० पु० ) विगतः पर्यायो यस्य, वि-परि-इ घञ्। पर्यायका व्यतिक्रम, क्रमपरिवर्तन, नियमभंग।

विपर्यास ( सं० पु० ) वि-परि-अस घञ्। १ विपर्याय, उलट पुलट, इधरका उधर। ( अमर ) २ अप्रमात्मक बुद्धिभेद, मिथ्याज्ञान, औरका और समझना। जो यथार्थमें वह नहीं है, उसे वही जान कर जो अयथार्थ-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसका नाम विपर्यास है। जैसे—रज्जु सर्प नहीं है फिर भी अप्रमात्मक ज्ञानके कारण उसे सर्प समझते हैं। भाषापरिच्छेदमें लिखा है, कि जिस वस्तुमें जो नहीं है ( जैसे शङ्खमें कर्मा पीतवर्ण नहीं है ) उस वस्तुमें तत्प्रकारक जो बुद्धि है, उसे अप्रमा बुद्धि कहते हैं। यह अप्रमा बुद्धि अर्थात् भ्रमवहुल पदार्थमें विस्तृत होनेसे उसका नाम विपर्यास पड़ा है। जैसे देहमें आत्मबुद्धि आदि। सच पूछिये तो शरीरमें आत्माके गुणक्रियादि कुछ भी नहीं है, फिर भी अप्रमात्मक ज्ञानके कारण बहुतेरे शरीरको ही आत्मा मानते हैं।

३ पूर्वसे विरुद्ध स्थिति, एक वस्तुका दूसरे स्थान पर होना। ४ जैसा चाहिये उससे विरुद्ध स्थिति, औरका और।

विपर्य ( स० लि० ) विगतं पर्य सन्धिस्थानं यस्य। विच्छिन्नासन्धिक, जिसके शरीरका जोड़ विश्लेष हो गया हो।

विपल ( सं० क्ली० ) विभक्त पलं येन। समयका एक अत्यन्त छोटा विभाग, एक पलका साठवा भाग अर्थात् ६० विपलका एक पल, ६० पलका एक दण्ड, ६० दण्डका एक अहोरात्र।

विपलायिन् ( स० लि० ) पलायनकारा, भागनेवाला।

विपलाश ( सं० लि० ) पत्रहीन, विना पत्तिका।

विपचन ( सं० लि० ) वि-प-ल्युट्। १ विशेषरूपसे परिवर्तन करनेवाला। ( पु० ) २ विशुद्ध पत्रन, साफ हवा।

विपचना ( सं० स्त्री० ) विशुद्धः पवनो यस्या, स्त्रियां टाप्। जिसमें विशुद्ध वायु हो।

विपथ ( सं० लि० ) वि-पू-यन् ( अच्चा पठ्। १ श१।६७ )। शोधनीय, शोधन करनेके योग्य।

विपशिन् ( स० पु० ) पञ्च बुद्ध्या नाम। ( हेम० )

विपशु ( सं० लि० ) पशुरागत, पशुशून्य।

विपश्चि ( स० लि० ) विपश्चिन्, परिदत्त।

विपश्चिक ( स० पु० ) परिदत्त। ( दिव्या० १५।२२ )

विपश्चिन् ( सं० लि० ) वि-प्र-चिन्-क्विप्-विशेष-पश्यति विप्रसृष्टं चेतति चिनोति चिन्तयति वा प्रपोदरादित्वान् माधुः। सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी।

अर्थात् ज्ञानका यथार्थ अर्थ जिनकी नजरमें पड़े, जा उसमें जानी अर्थात् सम्यक् रूपसे तत्त्वज्ञ हो, जो उत्तमरूपसे चयन ( ज्ञानका ममार्थ संग्रह ) कर सकते हैं, जो उत्तम चिन्ताशाल हो, अर्थात् चिन्ता द्वारा प्रकृत-पदार्थका निर्णय करनेमें समर्थ हो, जा परिदत्त हो, जो विद्वान् हो, जो सर्वार्थतत्त्वदर्शी हो, वे ही विपश्चिन कहलाते हैं।

विपश्चित ( स० लि० ) परिदत्त। विपश्चित् देवो।

विपश्यन ( सं० क्ली० ) बौद्ध मतमें, प्रकृत ज्ञान, उद्यार्थ बोध

विपश्यता ( सं० स्त्री० ) सूक्ष्मदर्शिता, दिव्यबुद्धि, अन्तर्-यामित्व शक्ति।

विपशियन् ( सं० पु० ) बुद्धभेद।

विपस् ( सं० क्ली० ) १ मेघा, बुद्धि। २ ज्ञान, समझ।

विपाशुल ( स० लि० ) पाशुलरहित। ( भारत वनपर्णा )

विपाक ( सं० पु० ) वि-पच भावे कर्मणि वा घञ्। १ पचन, पाक। ( भागवत ५।१६।२० ) २ स्वेद, पसीना। ३ कर्मका फल। ( मेदिनी ) ४ फलमात्र। ५ चरमो-त्कर्ष।

६ कर्मफलपरिणाम, कर्मफलके परिणामका नाम विपाक है। एक कर्म करनेसे उसका जो फलभोग होता है, उसको ही विपाक कहते हैं। यह तीन तरहका होता है—जाति, आयु और भोग। पातञ्जलदर्शनमें

यह विषय बिद्योपपत्तसे वर्णित हुआ है । यहाँ बहुत स हीपमें उसकी मालोचना की जाती है ।

अविद्या भादि पञ्चक्लेश अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिविषेण ये पांच तरहके क्लेश रहने पर धर्मविधर्मरूप कर्माशयका विपाक प्राप्ति, भायु और भोग होता है । क्लेशरूप मूलका उच्छेद होने पर और नहीं होता । जिन पानमें जब तक क्लेशका मौजूद हो और उसकी बीजशक्ति बरब नही हो तब तक वह अशुद्धोत्पादनमें समर्थ होता है, किन्तु छिन्नका काठने या बीजशक्तिके नाश करनेसे वह समर्थ नहीं होता, जैसे ही क्लेश मिश्रित रह कर कर्माशय अदृष्ट फल जननमें समर्थ होता है बडेज अपनीत होने पर अथवा प्रसम्पान द्वारा अस्मिताका नाश करनेसे और नहीं होता । उक्त कर्मविपाक तीन प्रकार का है ज्ञाति मनुष्य भादि, जन्म भायु जीवनकाल, भोग और सुखदुःखका साहायकार । कर्मका विपाक ज्ञाति, भायु और भोग किस तरह होता है और किस तरहके कर्मके फलोंसे ये सब भोग करने होते हैं इनका विषय इस तरह लिखा है —

एक कर्मका क्या एक जन्मका कारण है? अथवा एक कर्म अनेक जन्म सम्पादन करता है या अनेक कर्म एक जन्मका कारण है? इसके विचारमें इस तरह लिखा है, कि एक कर्म एक जन्मका कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । क्योंकि अनादि कालसे सञ्चित जन्मान्तरीय अमंथ्य अथशिव कर्मक और वर्तमान जन्ममें जो कुछ कर्म बिधे गये हैं, उन सबोंके फलकर्मके अर्थात् फलोत्पत्तिका पीयापीयका नियमन रहनेसे जागोके परमाप्तुपानमें अविश्वास हो जाता है, वैसा होना संगत नहीं । यह भी नहीं कहा जा सकता, कि अस्मंथ्य कर्मोंमें यदि एक ही अनेक जन्मका कारण हो जाय, तब अवशिष्ट कर्माशयके विपाककाठका अक्षर ही नहीं जाता । यह भी नहीं कहा जा सकता कि अनेक कर्म अनेक जन्मका कारण है; क्योंकि ये अनेक जन्म एक समय नहीं हो सकते । अतएव कर्मजः होने हैं, ऐसा कहना होगा । हममें पूर्वोक्त शेष अर्थात् कर्माशय विपाकका समयाभाव समझा जाता है । अतएव जन्म

और मरणके मध्यबर्ती समयमें अनुष्ठित विविध कर्म प्रयाग और अग्रधान भाषने अवस्थित हो कर मरण द्वारा अनिश्चयक होते हैं अर्थात् फलजननमें अनिश्चयक हो जन्म धर्मूति कार्या एकत्र मिला कर एक ही जन्म सम्पादन करते हैं । मञ्जित कर्माशय अस्मिता द्वारा अनिश्चय रह कर मरण समयमें सज्जानीय अनेक कर्मोंके साथ मिला कर एक जन्म उत्पादन करता है । ऐसा होनास फिर पूर्वोक्त शेष रह नहीं जाता । क्योंकि जैसे एक एक जन्ममें अनेक कर्म उत्पाद होते हैं, इधर एक जन्म द्वारा भी अनेक कर्म का शेष हो कर साथ-साथ समान हो जाता है । उक्त जन्म उक्त कर्म अर्थात् उक्त जन्मका प्रयोजन कर्म द्वारा ही भायु छान करता है, अर्थात् जिस कर्माशयसे मनुष्य भादिका जन्म होता है उसीके द्वारा जीवन काल और सुखदुःखका भोग होता है ।

पूर्वोक्त प्रकारमें कर्माशय जन्म, भायु और भोगका कारण यह द्विविधोक्त अर्थात् उक्त जन्म भादि तीन प्रकारके विपाकोंका गिता कहा जाता है, इसको ही एक भविक अर्थात् एक जन्मका कारण कर्माशय कहा जाता है ।

दुष्टजन्म वेदनीय कर्माशय केवल भोगका हेतु होनेसे उसके पर विपाकारम्भक कहने हैं, जैसे मनुष्य दायाका भायु और भोग इन दोनोंका जन्म होनेसे द्विविधाकारम्भ होता है, जैसे नन्दीशवरका । ( नन्दीशवरको कपल नाथ अर्थात् भायु धी । शिवक वर-प्रदानसे अमरत्व और उसके उपयुक्त भोग मिलता है । )

गाँठ द्वारा सर्वावयवोंमें व्याप्त मस्त्वजाकका तरह जित्त अनादि कालसे बडेज, कर्म और विपाकके स्वरकार में परिच्छास हो कर विच्छिन्न हो गया है । उक्त वास नाथे अस्मंथ्य जन्ममें विच्छमूमिमें सञ्चित हुए हैं । जन्म हेतु एकभविक यह कर्माशय नियमविपाक और अनियतविपाक होता रहता है । अर्थात् कितने ही परिवर्तनों का समय अवस्थापित रहता है । कितनेका परिणाम किस तरहसे होगा, यह ठीक नहीं कहा जा सकता ।

दुष्ट जन्मवेदनीय नियतविपाक कर्माशयका ही ऐसा नियम हो सकता है, कि वह एकभविक होगा । अदृष्ट जन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माशयका वैसा नियम हो

नहीं' सकता, क्योंकि अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माग्यकी तीन गतियां हो जाती हैं। पहले तो विपाक उत्पन्न न हो कर ही कृतकर्माग्यका नाश हो सकता है। दूसरे प्रधान कर्मविपाक समयमें आवापगमन अर्थात् यागादि प्रधान कर्मके स्वर्गादिरूप विपाक होनेके समय हिंसाविकृत अधर्म भी कुछ दुःख पैदा करा सकता है। तीसरे नियत विपाकप्रधान कर्म द्वारा अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थित भी कर सकता है। विपाक उत्पादन न कर मन्त्रित कर्माग्यका नाश जैसे शुक्लकर्म अर्थात् तपस्याजनित धर्मका उदय होने पर इसी जन्ममें ही कृष्ण अर्थात् बंचल पाप अथवा पापपुण्यमिश्रित कर्माग्यका नाश होता है। इस विषयमें कहा गया है,—पापाचारी अनात्मन्न पुरुषकी असंख्य कर्मराशि दो प्रकारकी है, एक कृष्ण अर्थात् केवल अधर्म दूसरी, शुक्लकृष्ण अर्थात् पुण्य-पापमिश्रित। इन दो तरहके कर्मोंको पुण्य द्वारा गठित एक कर्मराशि नष्ट कर सकती है। अतएव सबको सुकृत शुक्लकर्मके अनुष्ठानमें तत्पर रहना उचित है।

प्रधान कर्म आवापगमन विषयमें कहा गया है, कि स्वल्पसङ्कर अर्थात् यथादि साध्यकर्मोंके स्वल्पका (योगानुकूल हिंसाजनित पापका) सङ्कर होता है, संमिश्रण भी होता है। सपरिहार अर्थात् हिंसाजनित यह अल्पमात्र अधर्म प्रायश्चित्तादि द्वारा उच्छेद कर दिया जाता है। सप्रत्यवमप अर्थात् यदि प्रमादवशतः प्रायश्चित्त नहीं किया जाय, तो प्रधान कर्मफलके उदयके समय यह अल्प मात्र अधर्म भी स्वकीय विपाक अर्थात् अन्तर्गत उत्पन्न करता है। फिर भी, इस सुखभोगके समय सामान्य दुःखवह्निक्वणिका सख्य की जाती है। कुण्डल अर्थात् पुण्य राशिके अपकर्ण करनेमें यह अल्पमात्र अधर्म समर्थ नहीं होता, क्योंकि उक्त सामान्य अधर्मकी अपेक्षा यागादि-कृत धर्मका परिमाण अधिक है जिससे यह क्षुद्र अधर्म अप्रधानभावसे रह कर स्वर्गभोगके समय अल्प परिमाणसे दुःख उत्पन्न करता है। तृतीय गति यथानियत विपाकमें ऐसे प्रधान कर्मसे अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थान करना है, क्योंकि अदृष्टजन्मवेदनीय नियत विपाक कर्मराशि ही मरण द्वारा अभिव्यक्त होती है, अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्मराशि वैसी मरणके समय अभिव्यक्त नहीं होती।

अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्मराशि नष्ट हो भी सकती है। प्रधान कर्मविपाक समयमें आवापगमन (सहायक भावसे अवस्थान) कर भी सकता है अथवा प्रधान कर्म द्वारा अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थिति कर सकता है, जब तक मन्त्रातीय कर्मान्तर अभिव्यक्त हो उसको फलाभिमुख न करे।

अदृष्टजन्मवेदनीय अनियत विपाक कर्मराशिकी ही देश, काल और निमित्तकी स्थिरता नहीं होती, इसीसे कर्मगतिशास्त्रमें विचित्र कही गई है और भी कहा गया है, कि जन्म, आयु और भोग इनके पुण्य द्वारा सम्पादित होने पर सुखका कारण और पाप द्वारा सम्पादित होने पर दुःखका कारण होता है।

“वे हादपरितानकलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।”

( पातञ्जल२० २।१४ )

‘जन्मायुर्भोगाः पुण्यहेतुकाः सुखफलाः अपुण्यहेतुकाः दुःखफला इति ।’ ( भाष्य )

पूर्वोक्त जाति, आयु और भोग पुण्य द्वारा माधित होने पर सुखका जनक तथा पाप द्वारा साधित होने पर दुःखका जनक होता है। सर्वजनप्रसिद्ध दुःखका जैसा प्रातिकूल स्वभाव है, वैसा ही वैषयिक सुखके समयमें भी योगियोंके दुःख हो अनुभव होता है, अतः वे विषयसुखका दुःख ही समझते हैं।

जन्म और आयु सुख तथा दुःखके कारण हो सकते हैं, किंतु भोग कैसे कारण हो सकता है ? वरं ऐसी आशका की जा सकती है, कि सुखदुःख ही विषयभावमें भोगका ( अनुभवका ) कारण है। इसका समाधान इस तरह—जैसे ओदनादिको भी कारक कहते हैं, फलतः यह क्रियाका परवर्ती है। सुखरां क्रियाजनक नहीं है। क्रियाके जनकको ही कारक कहते हैं। फिर भी, जिस उद्देश्यसे जो क्रिया होती है, उस उद्देश्यको भी कारण कहा जाता है। भोग ही पुरुषार्थ है, सुख दुःख नहीं। भोगके निमित्त ही सुखदुःखका आविर्भाव होता है, अतएव भोगको भी सुखदुःखका कारण कहा जा सकता है।

विवेकशाली योगीके लिये विषयमात्र ही दुःखकर है, क्योंकि भोगका परिणाम अच्छा नहीं, क्रमशः इससे तृष्णाकी वृद्धि होती है। भोगके समय विरोधीके प्रति

बिद्वेष होता है और ज्ञानशाही भोगसंस्कारकी पृथि होती रहती है। बिचकी सुख दुःख और मोहकूपो सब पृथियाँ भी परस्पर बिरोधा हैं, किसी तरहमें शांति नहीं होती है।

योगीके लिये सभी दुःख ही दुःख हैं, यह किस तरह प्रतिपन्न किया जाये ? इसी आशंकाको निराकरण करने के लिये कहा गया है, कि समीको राग- (आसक्ति-कामना)क साथ चेतन और अचेतन दोनों तरहके उपाय स सुखका अनुभव होता है। अतएव यह कहना होगा, कि कर्माशय रागद्वय ही वर्तमान है। सुखी दुःखका कारण द्वेष और मोह है और इन द्वेष और मोहके कारण ही कर्माशय होता है। यद्यपि एक साथ ही राग द्वेष और मोहके इन तीनोंका आविर्भाव नहीं होता तथापि एकके आविर्भावक समुप दूमरे विच्छिन्न हो जाते हैं। प्राणियोक्तु न कर उपभोग सम्भोग सम्भव नहीं। अतएव द्वि साकल और शरीर (शरीरसम्पाद्य) कर्माशय होता है। विषयसुख सविद्याशय होता है वृत्तिवशतः भोगविषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिक अभावको सुख कहते हैं।

बहुसंख्यवशात् इन्द्रियोंकी अशांतिकी दुःख करते हैं। भोगके अम्वास द्वारा इन्द्रियके वैतुष्य अर्थात् विषयवैषम्य नहीं होता, क्योंकि भोगाभ्यासक साथ ही नाश अनुपपन्न और इन्द्रियोंका कोशल बढ़ता रहता है। अतएव भोगाभ्यास सुखका कारण नहीं विरहके विषय से भय का कर सांपसे ज से ज्ञाने पर जैसे मनुष्योंको अविषकार दुःख अनुभव होता है, वैसे ही सुखकी कामना कर विषयसेवा कर अन्तमें महादुःखपुद्गमें डूबना पड़ता है। प्रतिबुद्धसमय इस परिचाम दुःख सुखमागक समयमें भी योगियोंको वज्रैश प्रदान करता है।

समीको द्वेषके साथ चेतन और अचेतन इन दोनों उपायो द्वारा दुःख अनुभूत होता है वहाँ द्वेषद्वय कर्माशय होता है। सुखको उपाय प्रार्थना कर शरीर, वाक् और चित्त द्वारा क्रिया करता रहता है। इससे दूमरेके प्रति अनुभव और निग्रह दोनों ही सम्भव है। इस पदानुभव और परपीडा द्वारा धर्म और अधर्मका सञ्चार होता है। यह कर्माशय मोह या मोहवशतः होता रहता है। इसका नाम तापदुःख है।

स स्कारदुःख क्या है ? सुखानुभवसे एक सुख या सुखका कारण ऐसा स स्कार होता है। इस तरहक दुःखानुभवसे ही स स्कार उत्पन्न होता है, इस तरह कर्माशय सुख या दुःखका अनुभव होनेसे सुखस स्कार पैदा होता है। स स्कारसे स्मृति, स्मृतिले राग और रागमें कायिक, वाचिक और मानसिक घटनाये होती हैं। उससे धर्म और अधर्मरूप कर्माशय, इस कर्माशयसे ज्ञाति, आयु और भोगरूप विपाक होता है। पुनर्धर स स्कार उत्पन्न होता है। इस तरह अनादि प्रबहमाण दुःख द्वारा प्रतिबुद्ध भावसे परिसंज्ञित हो कर योगियोंको उद्देश्य उत्पन्न होता है।

इसी लिये पहले कह भाये है, कि मूल अर्थात् कर्माशय रहनेसे ही ज्ञाति, आयु और भोग—यै तीन प्रकार का विपाक होता है। सम्बन्धान द्वारा कर्माशय विनष्ट होने पर फिर विपाक होगा ही नहीं ; अब तक कर्माशय विनष्ट न होगा तब तक जन्म, मृत्यु, भोगरूप विपाकके हाथसे रक्षा नहीं।

जीव अविद्यामिभूत हो कर बार बार जन्मग्रहण करता है और मृत्युमुक्तमें पतित होता है तथा जन्म से मृत्यु तक सुखदुःख भोग करता रहता है। कर्माशय के विनष्ट हो जाने पर इस तरहका विपाक नहीं होता। इसी लिये योगी अपनेका और अन्य साधारणको अनादि दुःखकोतमें रहता है कर सारे दुःखोंका क्षयकारण सम्बन्धपूर्ण अर्थात् आत्मज्ञानको हो रक्षक समर्थ कर उनका आश्रय ग्रहण करते हैं। ( पाठक ० )

● मुक्त द्रव्य परिपाक हो जाने पर मातृप्य भाद्र रसकी परिणति होती है। विपाकके सम्बन्धमें आयुर्वेद पाठमें कहा गया है कि रस अर्थात् द्रव्यके मालाह, कटु, (कड़वा)तिक या तीता कषाय, मधुर, अम्ल और अक्षय— इन ६ भागोंमें विभक्त होने पर मो इनके विपाक प्रायः ही स्वादु, अम्ल, और कटु इन तीन प्रकारके अर्थात् मुक्त द्रव्यमथ इन छः रसोंके अठरान्तिके सौभागसे पक्व होने पर ये प्रकृतिक नियमानुसार मो स्वादु, अम्ल और कटु कषय इन तीन रसोंमें परिणत हो जाते हैं, उसीको आयुर्वेदमें विपाक वा रसविपाक कहा है। विपाकका नियम यह है, कि लक्ष्य या मोठा द्रव्य मोहन करनेसे

जटराग्नि द्वारा पक हो कर उससे मधुररसको, भुक्त अमृद्व्य इस तरह पच्यमान होने पर उससे असुरसकी और कटु, तिक्त और कषायरससे उक्त रूपसे ही कटुरसकी उत्पत्ति होती है।

“जाडरेणामिना योगात् यदुदेति खान्तरम्।

रसानां परिष्णामति च विपाक इति स्मृतः॥” (सुश्रुत)

“विधा रसानां पाकः स्यात् स्वाद्मलकटुकात्मकः।

मिष्टः कटुश्च मधुरमम्लोऽम्ल पच्यते रसः।

कटुतिक्तकषायानां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः॥”

(वाग्भट)

‘प्रायःपदेन मीहिः स्यादरम्लविपाकः शिवा कषाया

मधुपाका शुपठी कटुका मधुपाकेऽत्पादि।’ (टीका)

किसी किसी स्थलमें पूर्वोक्त नियमका घृतिक्रम भी देखा जाता है। जैसे साठीधान्य खादुरसविशिष्ट होने पर भी इसका विपाक मधुर न हो कर अम्ल होता है; हरीतकी कषाय और सोंठ कटु (कड़वा) रसयुक्त होने पर भी इनका विपाक यथायथ नियमानुसार कटु न हो कर मधुर होता है। इसी कारणसे संप्रहकृत्तानि मूलमें ‘प्रायशः कटुः’ इस प्राय शब्दका व्यवहार किया है।

मधुरविपाक द्रव्य वायु और पित्तका दोष नष्ट करता है, किन्तु वह श्लेष्म (कफ)-वर्द्धक है। अम्लविपाकद्रव्य पित्तवर्द्धक और वातश्लेष्मरोगापहारक है, जो सब द्रव्य विपाकमें कटु हैं, वे पित्तवर्द्धक, पाचनशील अर्थात् व्रणादिके या जिस तरहसे हो पचन (पाक) कार्योंपयोगी और श्लेष्मनाशक हैं।

कुछ लोग अम्लविपाकको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि जटराग्निके मन्दत्वके कारण पित्त विदग्धपक हो कर अम्लता प्राप्त होता है। किन्तु यह समोचीन नहीं है। ऐसा होने पर लवणरस भी एक मिश्र विपाक कहा जा सकता है, क्योंकि पित्तकी तरह श्लेष्मा भी विदग्धपक होने पर लवणता प्राप्त होती है और इसी तरह प्रत्येक रसका हो एक एक पृथक विपाक स्वीकार करना पड़ता है। उसका दृष्टांत यह है,—जैने धान, यव, मूंग और क्षीर आदि मधुररसयुक्त द्रव्य स्थालीपक्व होने पर पीछे रसका किसी तरह से घृतिक्रम नहीं होता।

चिकित्सकको द्रव्यका रस, विपाक और वीर्य इन तीनों पर नियत लक्ष्य रख कर चिकित्सा करनी चाहिये। फिर इसमें कोई द्रव्यके रसका, कोई विपाकका और कोई वीर्यका प्राधान्य स्वीकार करते हैं। जिसके मतसे विपाक प्रधान है, वह देखाता है, कि सोंठ कटुरसात्मक है, किन्तु विपाकमें मधुर होनेसे कटुरसके प्रभावसे वातवर्द्धक न हो विपाकमें प्राधान्यवशतः वातघ्न ही होगा। कोई वीर्यको प्रधान होनेका दृष्टांत देता है, कि मधुमें मिष्टरस होने पर भी वह श्लेष्म-वर्द्धक न हो कर उष्णवीर्यत्वप्रयुक्त श्लेष्मघ्न ही होगा। जो हो, अर्थात् जो जोही कहे न क्यों यथार्थमें रस विपाक और वीर्य इन तीन गुणों पर लक्ष्य रख अवस्था नुसार द्रव्य व्यवहार करना चाहिये।

८ विशेषरूप आवर्चायुक्त। ६ दुर्गति। १० स्वाद, खादु।

विपाकसूत्र (सं० क्लो०) महावीरप्रोक्त जैनशास्त्रमेद। यह ११वां अङ्गनामसे कथित है। (वृ०हरि २।६४) विपाकिन् (सं० त्रि०) १ कर्मफलवाही। २ आवर्चान शील। (कख)

विपाट (सं० पु०) वि-पट-घञ्। शर, वाण।

विपाटक (सं० त्रि०) प्रकाशक, अभिव्यक्तिकारक।

विपाटन (सं० क्लो०) विदारण, उखाडना, खेदना।

विपाटल (सं० त्रि०) जिसका वर्ण थोडा लाल हो।

विपाटित (सं० त्रि०) विदारित, उखाडा हुआ।

विपाठ (सं० पु०) इष्टु, वाण, तार।

विपाठा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार दुर्गामराजकी भार्या। (मार्कण्डेयपु० ७५।४६)

विपाण्डव (सं० त्रि०) पाण्डवविरहित।

विपाण्डु (सं० त्रि०) १ पाण्डुवर्ण। (पु०) २ वनज कर्कटी, जङ्गली ककड़ी।

विपाण्डुता (सं० स्त्री०) पाण्डुवर्णत्व, पाण्डुवर्णप्राप्ति।

विपाण्डुक (सं० त्रि०) अतिशय पाण्डुवर्ण।

विपाण्डु (सं० त्रि०) अतिशय पाण्डुवर्ण।

विपाण्डुर (सं० स्त्री०) महामेदा।

विपात (सं० त्रि०) पातन, नाश।

विपातक (सं० त्रि०) नाशक, नाश करनेवाला।

विपाशन ( स० ह्री० ) १ द्रवमात्र, गलना । २ नाश करना ।

विपाशन ( स० ह्री० ) व्यापाशन हत्या, वध ।

विपाशिका ( सं० स्त्री० ) १ कुष्ठरोगका एक भेद, अपरस । यह पैरमें होता है। इससे उद्विग्नियोंके पाससे ऊपर तक धमड़ेमें बरारे पड़ जाते हैं और बड़ी दुःखका होती है। पादके कारण पैर नही रखा जाता। २ प्रदे शिका, पशुली ।

विपाशित ( सं० लि० ) बिनाशित, नाश किया हुआ ।

विपाश ( सं० ह्री० ) विवेचनापूर्वक पान ।

( शुक्लकण्डः १७१२ )

विपाय ( सं० लि० ) पावरहित, बिना पापका ।

विपाया ( सं० स्त्री० ) एक नदीका नाम ।

( मातृ मीम्पम् )

विपायम् ( सं० स्त्री० ) विपाय, पापशून्य ।

विपायर् ( सं० लि० ) पायर्देश ।

विपायं ( सं० लि० ) पायर्हित, जिनका पायं पाननेवाला या मासिक न हो ।

विपायू ( सं० स्त्री० ) विपाशा नदी । ( सूक् १।१।११ ) विपाया देखो ।

विपाशा ( सं० स्त्री० ) १ पाशरहित । २ पाशाधिगिह । ( पु० ) ३ बन्धन । ( इति व )

विपाशम ( सं० ह्री० ) पाशरहित । ( भिक्त ५१ )

विपाशा ( सं० स्त्री० ) पाशं विमोक्षयतीति ( ल्यापना-शेति । प ३।१।२५ ) इति विमोक्षने णिच् लताः पञ्चाशत् । १ नदीविशेष । पञ्जाबप्रदेशमें प्रवाहित पाँच नदियोंमें एक । मीक मीगोलिकेमें इसको Hypsas नामसे अनिहित किया है । यह तुषारमण्डित कुस्तुर पर्वतपङ्क्त (समुद्रसे १३३२६ फीट ऊँचा) से उद्भूत हो कर मन्वि राज्य परिसरम्यान्तर काङ्गड़े जिलेके पूर्व सीमास्थित सकुनेस नगरकी धामसे उक्त जिलेमें प्रवेश करती है । यह नदी अपने उद्विग्नस्थानसे एक लक्ष पर प्रति मील प्रायः १२६ फीट नीचे उतरती हुई प्रवाहित होती है । काङ्गड़ा जिलेमें इसका व्याभाविक प्रपतन प्रति मील केवल ० फीट है । मङ्गल नदीबलको ऊँचाई १८२० फीट है । इसके बाद मीरथमवाटक समीप जहाँ यह समतल

क्षेत्रमें पतित हुई है वहाँकी ऊँचाई प्रायः एक हजार फीट है । काँगड़े जिलेके ऐह ग्रामके समीप यह नदी तोम घाटाओंमें विभक्त हो कर कुछ दूरके बाद पुनः एक में मिल गई है ।

विपाशाके नीचे पायर्त्यागतिके अनेक स्थलोंमें हो पारापारका विशेष बन्धोपस्थत है । किसी किसी जगह तो बामुपूर्ण चर्मनिमित्त मगक 'बराई' प्रचलित है । होशियारपुर जिलेमें शिवात्मिक शैलक समीप या कर यह नदी उल्टाबाहिनो हो गई है । इस नदीने यहां होशि यारपुर और काँगड़ा जिलेको पृथक् कर रखा है । इसके बाद यह फिर चक्रगतिसे उक्त शिवात्मिक शैलक पाय सूक्ष्म पर्यटन करती दक्षिणबाहिनी हो होशियारपुर और मुद्दासपुरसे होती हुई आगे बढ गई है । इस स्थान तक इस नदीका किनारा रेतिले दृक्कसत बावुस पूर्ण है और यह भूमि नदीको बाङ्गसे ह्व जाता है । मूल नदीकी गतिकी स्थिरता न रहनेके कारण इसके बीचमें कबो कबो सुगमीर गडके हो गये और ऐत पड़ गये हैं । प्रोफेसकामें इस नदीकी पानीरता कथल पाँच फुट रहता है और बरसातमें अक प्रायः १५ फुट तक ऊँचा बढ जाता है । जलकी कमीके कारण यहाँका नाबोकी पेड़ो बोड़ी बनार् जाती है ।

आजपर जिलेमें प्रवेश कर विपाशा नदी भमृतसर और कपूरथला राज्यका सीमा रूपसे प्रवाहित हुई है । यहीर मोजाघाटक निकट इस नदीबल पर सिन्ध पञ्जाब और दिल्ली-रेलपथका एक पुल है । इसके बाद हो म एबद्रू टोडक सामने नौका निर्मित एक पुल है । बाङ्गके समय बाङ्गका कर यह जानेसे बर्षामें इस नदीकी पतिम बहुत परिवर्तन होत रहने है । प्रायः २१० मील भूमिमें परिसरमय करके बाद कपूरथला राज्यको दक्षिणी सीमा पर यह नदी शतद्रुम मिल गई है ।

मार्त्वाप्यैपपुराण (५७।१८)में लिखा है, कि यह नदी शिमबत् पायर्बिनायत है ।

श्वेत्वेदने विपाशा काशीकीया नामसे प्रसिद्ध है । उस समय उसका अवबाहिका प्रदेश मो हसी नामसे प्रसिद्ध था । ( सूक् १।१।११ )

महामातने इस नदीकी नामनिर्दिकके सम्बन्धमें

इस तरह लिखा है। जब विश्वामित्र और वशिष्ठ ने विवाह चला रहा था, तब विश्वामित्र ने राक्षसमूर्त्ति से वशिष्ठ के पकसी पुत्रोंको मार डाला। इस पर वशिष्ठ ने शोकाकुल हो कर प्राणपरित्याग करनेका वृद्ध सकल कर लिया। पर्वतसे क्रुद्ध पड़े; किन्तु उससे भी उनको मृत्यु न हुई। तब उन्होंने सामने त्रपाकालीन जल-परिपूर्णा एक नदीको देख विचार किया कि मैं इसी जलमें डूब कर मर जाऊँ। यह सोच कर वह अपने शरीरका रस्मीसे बाँध कर उस जलमें निमग्न हुए, किन्तु नदीने उनको वन्यन-मुक्त कर स्थलमें ला कर रख दिया। उस समय उन्होने पाशमुक्त हो कर इस नदीका नाम 'विपाशा' रखा।

इस नदीके जलका गुण—सुग्रीतल, लघु, स्वादु, सर्वा व्याधिविनाशक, निर्मूल, दीपन और पाचक, बुद्धि, मेधा और आयुवर्द्धक है (राजनिर्घण्ट)।

देवी भागवतमें लिखा है, कि विपाशा नदीके किनारे पर एक पोटस्थान है। यहाँ अमोघाक्षा देवी विराज रही हैं। (देवीमां ७।३०।६५)

नरसिंहपुराणके मतसे विपाशाके तट पर यज्ञम्कर नामकी विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

(त्रि०) विगतः पाशो यस्य । ३ वर्जित, पाशाख्य हीन।

विपाशा—मध्यप्रदेशके सागर जिलेकी दक्षिण पश्चिम सीमा हो कर प्रवाहित एक नदी। यह भोपाल राज्यके शिरमों विभागकी पर्वतमालासे निकली है। यह भी आज कल वियास नदी नामसे प्रसिद्ध है। मार्कण्डेय पुराणमें यह नदी विन्ध्यपादप्रसूता कह कर उक्त है।

(मार्कण्डेयपु० ५।७।२६)

फिर वामनपुराणके अनुसार यह नदी विन्ध्यपाद या दक्षसर्वतसे निकली है। (वामनपु० २३।२७)

सागर नगरसे उत्तर पूर्वकी ओर प्रायः दश मील पथ पर १८२२ ई०में फर्नेल प्रेस्रने एक सुन्दर लोहेका पुल बनवाया था। दानों जिलेके नरसिंहगढके पास यह नदी सोनार नदीसे आ मिली है।

विपाशिन (सं० त्रि०) पाशविमुक्त, पाशविमुक्त।

विपिन (सं० क्ली०) वेपन्ते जना यत्रेति इति हनन् ह्रस्वश्च । १ वन, कानन, जंगल । २ उपवन, चाटिका ।

(त्रि०) ३ यीतिप्रद, भयानक, डरावना ।

विपिनचर (सं० पु०) १ वनमें रहनेवाला, वनचर । २ जंगला आदमी । ३ पशु पक्षा आदि ।

विपिननिलक (सं० क्ली०) एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें नगण, सगण आर द्वा रगण होते हैं ।

विपिनपति (सं० पु०) वनका राजा, सिंहा ।

विपिनविहारा (सं० पु०) १ वनमें प्रियार्थ करनेवाला, वनचारी । २ कृष्णका एक नाम ।

विपीडम् (सं० अश्व०) विशेषरूपसे पीड़ा देना ।

विपुलक (सं० त्रि०) पुस्तकार्ढन, पुरुषत्वमें हीन ।

विपुली (सं० स्त्री०) यह रंग जिसका चेष्टा, स्वभाव या प्रकृति पुरुषाकी सी हो । (पाशकथन २।७०)

विपुत्र (सं० त्रि०) विगतः पुत्रा यय । पुत्रार्हित, जिसके कोई पुत्र न हो, पुत्रहीन ।

विपुत्रा (सं० स्त्री०) पुत्रहीना, वह स्त्री जिसके कोई पुत्र न हो ।

विपुरोप (सं० त्रि०) मलमूत्रविपुञ्जित ।

विपुल्य (सं० त्रि०) विगतः पुरुषो यस्य । पुरुष-रहित, पुरुषहीन ।

विपुल (सं० त्रि०) विशेषेण पालतीति वि पुल-मद्भवे क । १ पृष्ठत्, बड़ा । २ अगाध, बहुत गहरा । (पु०) वि पुल-क

३ मेरुक पश्चिम एक भूधर । यह पर्वत सुमेरुके विपुलत पर्वतका अन्यतम है । यह एक पोटस्थान है । यहाँ ।

विपुला देवी विराजित हैं । (देवीमां ७, ३०।६६) ४ हिमालय । ५ मगध देशकी प्राचीन राजधानी राजगृहके पासकी एक पहाड़ी । राजघर देखो । ६ रोहिणीसे उत्पन्न

वसुदेवके एक पुत्रका नाम । (भागवत ६।२।४।४) ७ सुमेरु ।

विपुलक (सं० त्रि०) १ पुलकहीन, जिसे रोमाञ्च न हो । बहुत चौड़ा ।

विपुलता (सं० स्त्री०) विपुलस्य भावः तल टोप् । विपुल का भाव या धर्म, बहुतायत, आधिक्य ।

विपुलपार्श्व (सं० पु०) एक पर्वतका नाम ।

विपुलमति (सं० पु०) १ एक वेधिसत्वका नाम । (त्रि०) विपुला मतिः बुद्धिर्मास्य । २ विपुलबुद्धि, बहुत बुद्धिमान ।

विद्युत्तरस (स० पु०) विद्युत्तरा रसो यश्च । १ इत्य ईश ।  
(सं०) २ विद्युत्तर रसविशेष, जिसमें लवण रस हो ।

विद्युत्तरकण्य (स० लि०) १ विद्युत्तरा यतन एकक्यत्रिंशद्वि  
जिसका कणवा बहुत खोटा हो । (पु०) २ कर्तुनका  
एक नाम ।

विद्युत्ता (स० लो०) वि-पुत्र क, ततस्त्रियां टाप् । १ पूज्यो  
बसुन्धरा । २ एक प्रकारका छत्र । इसका प्रत्येक चरण  
में मगध रण्य और दो छत्रु होठ हैं । ३ अर्वाछन्क  
तीन सेठोंमेंस एक मेद । इसके प्रथम चरणमें १८, दूसरे  
में १२, तीसरेमें १४ और चौथेमें १३ मांसाय होतो हैं ।  
विद्युत्त नामक पर्वतकी अघिप्राप्तो ज्यो । (१वीं भाग परत  
३।०।१६) ५ लक्षोमेद । ३ एक प्रसिद्ध सती जो बेहुलाक  
नामस प्रसिद्ध है । बहुधा देको ।

विद्युत्ताम्रका (स० लो०) विद्युत् रस मासकतीति मा सु  
अव-राप् । घृतकुमारो, धीकृपार । (राशमि०)

विद्युत्तानाम्बुदह (स० लि०) वायुका मय तर और पथ  
ही मित सचित् । (किराता० ५।१०)

विद्युत्त (सं० लि०) विद्योपक्षमे पुत्र या वर्यित ।

विद्युत्त (सं० लि०) विद्यत् पुष्यं यस्मात् । पुष्यहीन, जिना  
कृत्का ।

विद्युत्तित (सं० लि०) प्रकृष्टित, इषित ।  
(दिग्मा० ५८५।१०)

विद्युत्त (सं० पु०) विद्यु (विद्यु कितोपेति वा ३।१।११७)  
इति कर्मणि क्यप् । १ सुभ्रवण, सूत्र । २ बहु रूपता ।

विद्युत्तक (सं० लि०) पूषदाभ ।

विद्युत्तक (सं० लि०) सर्वत्र व्याप्त, सब ओर व्यापित ।  
(शुक् ५।३।१)

विद्युत्त (सं० लि०) विद्युत् । (मनु ८।४)

विद्युत्त (स० पु०) विद्युत् रसो ।

विद्युत्त (सं० पु०) १ वृत्तिराजके एक पुत्रका नाम ।  
(इति रा) २ पुरुराजके मार्ग । ३ सिलकके एक पुत्रका  
नाम ।

विद्योपा (सं० लि०) मेधाकोका धारक, मेधावो धारक  
करनेवाला । (शुक् १०।४।१५)

विम (सं० पु०) ब-ए (वृत्तेन्द्रागवज्रमिति निपाठनत्  
वक्ष्य । उच्य ३।८८) ब्राह्मण । (भय)

विद्योपेण प्राति पूर्यति परकर्मणि वि प्रा ङ । किम्वा  
उच्यते धर्माङ्गमस इति वयेनाम्नोति १ निपाठनात्  
इत्यम् । (भय)

जो विद्योपकेसे यजन, पाजन, अघ्ययन, अध्यायन,  
पान और प्रतिग्रह इन छः कर्मोंका आचरण करते हैं  
अर्थात् जो सर्वदा अपने धार यज्ञमालके यागादि कार्यों  
सम्पन्न करते हैं और स्वयं वेदादि अध्ययन करते हैं और  
दूसरेको ( छात्रोंको ) पढ़ाते हैं तथा सत्यानका  
दान हैते और सत्यानस दान लेते हैं अथवा जिनमें  
धर्मवीर्य पपन किया जाता है अर्थात् जो धर्मक श्रेष्ठ  
स्वरूप या धर्म जिनमें अ कुरित होता है, उन्हींका विम  
कहत हैं ।

महावान् मनुने कहा है कि प्राश्न्यकी उत्पत्ति हात  
ही उसे धर्मका अविनाशी करार सम्पन्नता, क्योंकि यह  
प्राश्न्य वैद धर्माधीत्यम् ( अर्थात् यह उपभयन प्राप्त  
नोहकत हो कर द्विजस्य प्राप्त ) होने पर धर्मानुपदीत  
भारतज्ञानक बससे प्राश्न्यस्वामिको उपयुक्त है ।

“उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य आचरती ।

व हि धर्मात् सुतपस्या ब्रह्मयाच कल्पत इ” (मनु १।८८)

प्रापश्चित्तविधेकमें ज्ञेयता है, कि प्राश्न्य अध्ययन  
विधामें पारदर्शिता क्षाम करने पर विप्रस्य और उपभयन  
आदि संस्कार द्वारा द्विजस्यक प्राप्त हाते है । फिर  
प्राश्न्यकर्ममें ब्रह्म छे कर द्विजस्य और विप्रस्य क्षाम  
करने पर वह धर्माचिय नामसे प्रसिद्ध होत है ।

“ब्रह्मना प्राश्न्या वैश्व संस्कारे द्विज उच्यते ।

विद्यया नाति विप्रतर्ष मिमिः भीतिवत्कृत्याम् इ”

( धार्कश्रवणीविशेष )

व्यस्यैवर्षपुराणमें विम-पादोदक आविष्का कक इस  
तरह लिखा है १—पूज्योमें जितने लोचों ही थे सागरसङ्गममें  
विद्यमान हैं सागरसंयमक सभी तीर्थों ही एक विमपादपत्र-  
में विराजित हैं । अतएव एकमात्र विमपादोदक पान  
करनेसे पूज्यको पाबतोय तीर्थकारि और यक्षीय शान्त्या  
एक पानक और उस जलमें स्नानका फल प्राप्त होता है ।  
पूज्यो जब तक विमपादोदकसे पियुं ता खती है, तब तक  
पियुंकोक पुण्यस्तीर्थका कष्टपान करते हैं । प्रकृमास  
पर्यन्त मकियुक्त हो कर विमपादोदक पान करनेसे छोग  
महाराजसे भी विमुक्त होत है ।



द्विज विद्वान् हों या नहीं, यदि सदा सन्ध्या पूजा-  
द्वारा पत्रिल हों और एकान्त चित्तसे हरिके चरणोंमें प्रीति  
रखते हों, तो उनको विष्णु सदृश जानना । क्योंकि, नियत  
सन्ध्या पूजादिका अनुष्ठान और हरिमें एकान्त भक्ति  
रहनेसे उनकी देह और मन इतना ऊँचा होता है, कि वे  
किसीके द्वारा हिंसित या अभिगप्त होने पर कभी भी  
प्रतिहिंसा या अभिगाप देनेमें उद्यत नहीं होते । हृग्भक्त  
ब्राह्मण एक ही गोती अपेक्षा पूज्यतम हैं । इनका पादोदक  
नैवेद्यस्वरूप है । नित्य इस नैवेद्यका भोजन करनेसे लोग  
राजस्य यम्यका फल पाने हैं । जो विप्र एकादशके दिन  
निर्वर्जल उपवास और सर्वदा विष्णुकी आराधना करते  
हैं, उनका पादोदक जहाँ पतित होता है, वहाँ एक तीर्थरूप  
ममभूता चाहिये । ( ब्रह्मवै० पु० १।२।२६-३३ )

ब्राह्मण देखो ।

( द्वि० ) २ मेधावी । ३ स्तोता, शुभकर्त्ता । “विप्रस्य

वा यजमानस्य वा गृहम्” ( ऋक् १०।४।१४ ) “विप्रस्य  
मेधाविनः स्तोतुर्वा” ( ऋण्य ) ( क्ली० ) ४ अश्वत्थ, पीपल ।  
५ जिरीव वृक्ष, सिरिसका पेड़ । ६ रेणुक, पापरका  
पीपल । ( त्रिका ) १७ जो विशेषरूपसे पूरण करते हैं ।

विप्रकर्ष ( सं० पु० ) १ विशेषरूपसे आकर्षण । २ विक  
र्षण, दूर खींच ले जाना ।

विप्रकर्षण ( सं० क्ली० ) १ विकर्षण, दूर खींच ले जाना ।  
कर्मकरणान्त, किमी कर्म या कृत्यका अंत ।

विप्रकर्षणशक्ति ( सं० स्त्री० ) वह शक्ति जिससे सभी  
परमाणु परस्पर दूरवर्त्ती होते हैं ।

विप्रकार ( सं० पु० ) वि-प्र-कृ घञ् । १ अपकार ।  
२ तिरस्कार, अनादर । ३ खलीकार । ( अथ्य० )  
४ विविध प्रकारसे ।

विप्रकाश ( सं० पु० ) वि-प्र-काश-अच् । प्रकाश, अमि-  
थ्यक्ति ।

विप्रकाष्ठ ( सं० क्ली० ) विप्रं पूरकं काष्ठं यस्य । तूल-  
वृक्ष, नरमा या कपासका पीपल । ( राजनि० )

विप्रकीर्ण ( सं० त्रि० ) वि-प्र-कृ क । १ इतस्ततः विक्षिप्त,  
धर उधर पड़ा हुआ, बिखरा हुआ । २ अव्यवस्थित,  
अस्त व्यस्त, गड़बड़ ।

विप्रकीर्णत्व ( सं० क्ली० ) विप्रकीर्णका भाव ।

विप्रकृत् ( सं० त्रि० ) अनिष्टकारी, विरुद्ध कार्यकरने-  
वाला ।

विप्रकृत ( सं० त्रि० ) वि-प्र-कृ क्त । अपकृत, निरमकृत ।

विप्रकृति ( सं० स्त्री० ) वि-प्र-कृ-क्तिन् । विप्रकार देखो ।

विप्रकृष्ट ( सं० त्रि० ) वि-प्र-कृ-ष्ट-क । १ दूरवर्त्ती, दूरग्य,  
जो दूरी पर हो । २ विप्रकर्णित, खींच कर दूर किया  
हुआ ।

विप्रकृष्टक ( सं० त्रि० ) विप्रकृष्ट एव स्वार्थे कन् । दूर-  
वर्त्ती, जो दूरी पर हो ।

विप्रकृष्टत्व ( सं० क्ली० ) दूरत्व, दूरी ।

विप्रकृति ( सं० स्त्री० ) १ विशेष संकल्प । २ अद्भुत  
प्रकृति ।

विप्रचरण ( सं० पु० ) भृगुमुनिकी लातका चिह्न जो विष्णु-  
के हृदय पर माना जाता है ।

विप्रचिन् ( सं० पु० ) दानवविशेष । इसकी पत्नीका  
नाम सिहिका था । इसके द्वारा इस सिहिकाके गर्भमें  
गहुकी उत्पत्ति हुई ।

विप्रचिन् ( सं० त्रि० ) १ विप्रवत् । ( पु० ) २ दानव-  
विशेष । वैप्रचित्त देखो ।

विप्रचित्त ( सं० पु० ) विप्रचित्ति देखो ।

विप्रचित्ति ( सं० पु० ) दनुके एक पुत्रका नाम । इसकी  
पत्नी सिहिकाके गर्भसे राहुकेतु आदि एक ही पुत्रोंकी  
उत्पत्ति हुई थी ।

विप्रजन ( सं० पु० ) १ उत्पत्ति । २ ब्राह्मण । ३ पुरोहित ।  
४ मौखिकविंशसे उत्पन्न ऋषिप्रियेय । ( कातक २७।५ )

विप्रजित्ति ( सं० पु० ) आचार्यभेद ।

( शतपथब्राह्मण १।४।५।२२ )

विप्रजुत ( सं० पु० ) विप्रो जुतः प्राप्तः । विप्र कर्त्तृक  
प्राप्त या प्रेरित । ( ऋक् १।३५ )

विप्रजृति ( सं० पु० ) वातराजनगोत्रसम्भूत ऋषिभेद ।  
आप एक वेदमन्त्रद्वारा ऋषि कह कर विद्ययात थे ।

विप्रजाज ( सं० पु० ) १ ब्राह्मणजाज । २ विशेषरूपसे  
ध्वंस ।

विप्रता ( सं० त्रि० ) ब्राह्मणत्व ।

विप्रतारक ( सं० पु० ) अतिशय प्रतारक, बहुत घोषा  
देनेवाला ।

विपत्तारित ( स० लि० ) यजित ।

विपत्तिपूज ( स० लि० ) निरुद्धाचार ।

विपत्तिपत्ति ( स० स्त्री० ) वि प्रति पद्म किन् । १ विरोध । २ संशयजनक वाक्य । "व्याहृतमेकाय दर्शनं विपत्तिपत्तिः" "व्याघातो विरोधोऽसहभाष इति । अस्वपारमेत्येकं दर्शनं नास्वपारमेत्यपरम् न च सद्गुणावासात्प्रायो साहयकम् सम्भवति, न च अन्वयतरसायको हेतुत्पन्नम्वते तन्नतरसाय धारणं संभव इति ।"

(गीताय ४० १।१।२१ वात्सल्यभाष्य )

त्रिम वाक्यमें दो पदार्थोंका विरोध, अस्तदभाष (अर्थात् एकत्र अन्वयानका अभाव ) दिखाई दे, वही संगयजनक वाक्य या विपत्तिपत्ति है । जैसे कोई कहता है, कि आत्मा ( परमात्मा या ईश्वर ) है, कोई कहता है, कि नहीं है । ऐसे स्थलोंमें देखा जाता है कि रहना या न रहना इन दो पदार्थोंका एक एक अन्वयान किसी तरह सम्भव नहीं । क्योंकि युक्तिक अनुसार निर्दिष्ट है, कि एक आवयतक्षेत्रमें एक समय उभय पदार्थोंकी अवस्थिति हो नहीं सकती अर्थात् वस्तुमानमें जहां एक घडा रखा है, वहां ही उसी समय दूसरा घडा नहीं रह सकता । या घड़ेका अभाव ( घड़ेका न रहना ) हो नही सकता । अतएव "आत्मा है और नहीं" ऐसा सुन्नैस आत्माका रहना या न रहना इन दोनोंका एकत्र अन्वयानका अभाव प्रयुक्त और उतका एकत्र अन्वयान एकत्र हो सकता या नहीं इन सब विषयोंमें अन्वयतर युक्ति निर्णय न कर सकने पर वह धोताके मगमें विपत्तिपत्ति या संशयजनक वाक्य कहना प्रतीत होगा ।

३ विपरोत प्रतिपत्ति, अथवाति । ४ निश्चित प्रतिपत्ति, अन्वयवाति, कुण्डल ।

"किंदिपत्तिपत्तिर्वाक्यस्य निरुद्धाचारः ।"

( गी० ४० १।१४० )

विपरीता कुरिकला वा प्रतिपत्तिर्वाक्यस्य । ( तन्मात्र )

५ अन्वयानमात्र । जैसे छायाविपत्तिपत्ति अभाव विपत्तिपत्ति है । "अर्थात् १३३ त्रिपत्तिविपत्तिपत्ति मन्वायं व्याख्यास्यामः " ( सुभ्रुत ४० १० अ० )

३ बिहनि । 'शब्दविपत्तिपत्ति । ( कल्याणी० ) प्रतिनिहित द्रव्येष्टतजम्बः योग्य । अतुद्रव्युप्यया प्रतिनिधयु

पादानात्शब्दात्प्रयोगे द्रव्यान्तरमन्वात् ।'

( एकत्रोत्पत्त्य )

प्रतिनिधि प्रभृति स्थलोंमें शब्दोंकी अविपत्तिपत्ति ( अविहति ) होगी । अर्थात् जो द्रव्य प्रतिनिधि होगा प्रयोगके समय उसका नाम उद्यतिल न होगा । जिसके अभावमें वह द्रव्य प्रयुक्त होगा उसीके नामकरणमें इन प्रतिनिधि द्रव्यका प्रयोग करना होगा । जैसे पूजाप्रम आदिमें देखा जाता है, कि किसी द्रव्यका अभाव होने पर उस स्थानमें अरवा वाक्य दिया जाता है । किन्तु कहनेके समय कहा जाता है—"यय धूप" यह धूप, "यय शीप" यह शीप "ययोऽर्घ्य" यह अर्घ्य देवताये नमः देवताके उद्देशसे में प्रणाम करता हूँ । फलना सब अगह ही धूप, शीप, अर्घ्य आदिक प्रतिनिधिलक्षण कबळ अरवा वाक्य दिया गया, किन्तु यह प्रतिनिधि द्रव्य ( अरवावाक्य ) प्रयोग करनेसे अतुद्रव्य ही ( धूप, शीप, अर्घ्य आदि ) बने हैं, इस बुद्धिसे देना होगा । ऐसा व्यवहार न कर यदि प्रयोगके समय इस अरवा वाक्यका हा नाम दिया जाये, तब शब्दान्तरक प्रयोगहेतु द्रव्यान्तर का ही प्रसङ्ग आ जाता है । यदि किसी स्थलमें घृतक बरसे लेक देना हो तो ऐसा ही सम्भवना होगा अर्थात् मन्त्रमें लेक न कह घृत ही कहना होगा ।

विपत्तिवाचयमान ( स० लि० ) पापकारो, पाप करनेवाला ।

विपत्तिपन्न ( सं० लि० ) विपत्ति पन्न-वत् । विपत्तिपत्ति युक्त, सम्बन्धयुक्त । २ अन्वयोक्त । ३ अतिर, जो मापित न हुआ हो ।

विपत्तिपिद्य ( स० लि० ) वि प्रति विप क्त । निपिद्य, जिसका निषेध किया गया हो । ( स्वरि ) २ विरुद्ध, बिसाय ।

३ निश्चारित वर्जित ।

विपत्तिपेय ( सं० पु० ) वि-प्रति विच घञ् । विरोध, मेल न बनेना । अन्वयार्थ हो प्रसङ्गोंकी अर्थात् दो विधियोंकी एक प्राति होनेसे उसका विपत्तिपेय कहते हैं । एक समय इन प्रकार समान बलकी दो विधियोंकी प्राति होनेसे परबत्ती विधिके अनुसार कार्य करना होता है ।

निधि देको ।

विपत्तिपन्न ( म० पु० ) वि-प्रति-सु-घञ् या दीर्घः । अनुनाय पछताया । - अन्वय, शीप ।

विप्रतीप ( सं० त्रि० ) प्रतिकूल, विपरीत ।  
 विप्रन्यय ( सं० पु० ) काठ्याकार्य शुभाशुभ और हिताहित  
 विषयमें विपरीत अभिनिवेश । ( चरक शो० ५ अ० )  
 विप्रन्व ( सं० क्ली० ) विप्रका भाव या धर्म ।  
 विप्रथित ( सं० त्रि० ) विख्यात, मशहूर ।  
 विप्रदह ( सं० पु० ) विशेषेण प्रकृष्टञ्च दहने इति उह व ।  
 फलमूलादि शुष्क द्रव्य । ( शब्दच० )  
 विप्रदुष्ट ( सं० त्रि० ) १ पापरत । २ कामुक, कामी ।  
 ३ मन्द, नष्ट ।  
 विप्रदेव ( सं० पु० ) भूदेव, ब्राह्मण ।  
 विप्रदावन ( सं० त्रि० ) इधर उधर पगलेकी तरह तेजीसे  
 चलना ।  
 विप्रशुक्र ( सं० त्रि० ) लाभकारी, हितकर ।  
 विप्रनष्ट ( सं० त्रि० ) विशेषरूपसे नष्ट ।  
 विप्रपद ( सं० पु० ) भृगुमुनिका लातका चिह्न जो विष्णुकें  
 वक्षःस्थल पर माना जाता है, विप्रचरण ।  
 विप्रपात ( सं० पु० ) १ विशेषरूपसे पतन, बिलकुल गिर  
 जाना । २ ब्रह्मपात । ३ ऊँचा ढालवाँ टोला । ४ खाई ।  
 विप्रपिय ( सं० पु० ) विप्राणा प्रियः ( यद्योपट्टमत्वान् ) ।  
 १ पलाश वृक्ष, ढाकका पेड़ । २ ब्राह्मणका प्रेम-भाजन ।  
 निप्रधन्वु ( सं० पु० ) १ गोपायन गोदाय मन्त्रद्रष्टा ऋषि-  
 मेव । २ वह ब्राह्मण जो अपने कर्मसे स्युत हो, नीच  
 ब्राह्मण ।  
 विप्रवृद्ध ( सं० त्रि० ) १ जागरित, जागा हुआ । २ ज्ञान-  
 प्राप्त ।  
 विप्रबोधिन ( सं० त्रि० ) १ जागरित, जागा हुआ । २ विशेष  
 रूपसे विख्यात, जो साफसाफ समझाया गया हो ।  
 विप्रमठ ( सं० पु० ) ब्राह्मणोंका मठ । ( कथासरित्सा० १८।१०५ )  
 विप्रमत्त ( सं० त्रि० ) अनिजय प्रमत्त ।  
 ( कथासरित्सा० ३४।२५५ )  
 विप्रमनस् ( सं० त्रि० ) अन्यमनस्क, अनमना ।  
 विप्रमन्मन ( सं० त्रि० ) मेधाविस्तोता, मेधावीगण जिनका  
 स्मरण करते हैं ।  
 विप्रमाथी ( सं० त्रि० ) मथनकारी, झूठ मथनेवाला । २  
 धर्म या नष्ट करनेवाला । ३ आकुल या क्षुब्ध करनेवाला ।  
 विप्रमाशु ( सं० त्रि० ) १ विप्रमत्त । २ बहुत नशाखोर ।  
 ३ अमनोयोगी ।

विप्रमांश ( सं० पु० ) विमुक्ति, विमोचन ।  
 विप्रमोक्षण ( सं० क्ली० ) विमोचन, विमुक्ति ।  
 विप्रमोचन ( सं० त्रि० ) विमोचनके योग्य ।  
 विप्रमोह ( सं० पु० ) १ विशेषरूपसे सुगंध होता । २ चम-  
 त्कार ।  
 विप्रमोहित ( सं० त्रि० ) १ विशेषरूपसे सुगंध । २ चमत्कृत ।  
 विप्रयाण ( सं० क्ली० ) पलायन, भागना ।  
 विप्रयुक्त ( सं० त्रि० ) वि-प्र-युक्त क । १ विश्लिष्ट, जो  
 मिला न हो । २ बिछुड़ा हुआ । ३ जिसका विभाग  
 हुआ हो ।  
 विप्रयोग ( सं० पु० ) विगतः प्रकृतो योगो यत्न । १ विप्र  
 लम्भ, वियोग, विरह । २ विसंवाद, बुरा समाचार ।  
 ३ विच्छेद, अलग होना । ( मनु ६।१ ) ४ सयोगका अभाव ।  
 विप्रयोगिन् ( सं० त्रि० ) १ विग्रही । २ विसंवाद ।  
 विप्रराज्य ( सं० क्ली० ) १ ब्रह्मणराज्य । २ विशेषरूपसे  
 राजत्व ।  
 विप्रराम ( सं० पु० ) परशुराम ।  
 विप्रपिय ( सं० पु० ) ब्रह्मणि । ( भारत ५ प० )  
 विप्रलपित ( सं० त्रि० ) १ विप्रलापयुक्त । २ आलोचित ।  
 विप्रलप्त ( सं० क्ली० ) १ कथोपकथन, वातचीत । २ पर-  
 स्पर वितण्डा, आपसमें तर्क वितर्क ।  
 विप्रलब्ध ( सं० त्रि० ) विप्र लभ-क । १ वञ्चिन, रहित ।  
 २ विरहित, शून्य । ३ विच्छिन्न, वियोग दशाप्राप्त ।  
 ४ प्रनारित, जो छल द्वारा किसी लाभसे वञ्चिन किया  
 गया हो ।  
 विप्रलब्धा ( सं० स्त्री० ) १ नायिकामेव, वह नायिका जो  
 मञ्जुतस्थानमें प्रियको न पा कर निराश या दुःखी हो ।  
 इनकी चेष्टा—निर्वद, निश्वास, सञ्जीवनत्याग, भय,  
 मूर्च्छा, चिन्ता और अश्रुपातादि । विप्रलब्धा फिर चार  
 प्रकारकी हैं,—मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्य-  
 विप्रलब्धा ।  
 विप्रलब्धु ( सं० त्रि० ) प्रपञ्चक, गड, धूर्त ।  
 विप्रलम्बक—विप्रलम्बक देवो-  
 विप्रलम्बी ( सं० पु० ) देवयदूर्क, किङ्किरात वृक्ष ।  
 विप्रलम्भ ( सं० पु० ) वि-प्र लभ-वञ्ज नुम् । १ विसं-  
 वाद, विरोध । २ वञ्चना, घौना, छल । ३ विप्रयोग,

विरह, हृदय। ४ विच्छेद, भङ्ग होना। ५ विरह कर्मा युक्त काम। ६ कलह, खगडा। ७ अमिन्न, पियोग। ८ अमिन्नपित वस्तुकी अपाति, खाही हुए वस्तुका न मिलना। ९ अङ्गाररसभेद। १० अङ्गारविशेष युक्तपुत्रवदोका विच्छेद् वा मिसल, जिस किसी अपस्था में अमोघ आन्त्रिकुलादिका अभाव रहने पर भी यदि दोनों आन्त्र प्रकट करे, तो उसे विप्रलम्भ कहते हैं। यह सम्भोगका अन्तिकाकारक है।

विप्रलम्भक (स० लि०) १ प्रतारक, धूर्त। २ विस्वादा। विप्रलम्भन (सं० ह्री०) १ अहृत्य आधरण विरह कर्मा। २ प्रतारण, छगला।

विप्रलम्भिन् (सं० लि०) १ शठताकारी, धूर्त। २ यज्ञना कार, घोषा देनेवाला।

विप्रलय (सं० पु०) सर्गार्णवस, विशेषरूप प्रलय।

विप्रलाप (स० पु०) वि प्र-ल-प-घम्। १ प्रलापवाक्य, व्यर्थ वकवाद्। २ कलह, खगडा। ३ बहना, घोका। ४ परस्परमें बिरोध, आपसमें युक्त लवन। जैसे एकमे मिठी बोलीमें कहा, क्या कल्याणो आई! दूसरीमें रुकी बोलीमें कहाव दिया नहीं। ऐसे बिरोधजनक आलापको विप्रलाप कहते हैं। ५ विरह प्रलाप।

विप्रलोम (सं० लि०) एतस्तथा विसिद्ध, चारों ओर विचारा हुआ।

विप्रलुप्त (सं० लि०) १ लुप्तिलन हुआ हुआ। २ अप-हृत, और चुराया हुआ। ३ जो गायब किया गया हो कदा दिया गया हो। ४ जिसका कार्ममें बिष्ण पहुँ चाया गया हो।

विप्रलुम्पक (सं० लि०) १ अतिभोमी, बड़ा छाछलो। २ हत्योक्क अपने सामने छिपे छे:गींको सतामेवाला। ३ अधिक कर देनेवाला।

विप्रलोच (सं० पु०) १ बिचकुल छेप। २ नाथ।

विप्रलोमी (स० लि०) १ अति छोसो, बड़ा छाछलो। २ यज्ञरु, टग, पूछे। (पु०) ३ किञ्चित् पुर।

विप्रवसित (सं० लि०) बिदेशगत, परदेश गया हुआ।

विप्रवाद् (स० पु०) १ विवाद् कलह, खगडा। २ बिरो धोकि, हुरे लवन।

विप्रवास (सं० पु०) १ बिदेशमें वास, परदेशमें रहना।

२ संन्यास आभ्रममें एक अपराध जो अपने कपड़े दूसरे को देनेसे होता है।

विप्रवासन (सं० ह्री०) बिदेशमें जा कर वास करना। विप्रवाहन (सं० ह्री०) १ विरष वाहन। २ लरलोत्, तख घार।

विप्रवाहस् (सं० लि०) मेघाधीकर्तृक वहभोय जो विद्वानो से होन जायक हो।

विप्रविय (सं० लि०) अमिहत।

विप्रवीर (सं० लि०) बिरोधरूप धीरशाळी, क्षुण परा क्मो।

विप्रव्रजो (सं० ली०) वह छा के हो पुत्रवोंसे संर्धक रहे।

विप्रवाशिन् (सं० लि०) बिरोधरूपसे गमनशील, लून धलनेवाला।

विप्रान्तक (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ उस देश का अधिवासी। (मार्क० पु० ५८।१४)

विप्रप्त (सं० पु०) उपोत्थिपोक प्रश्नाधिकार, वह प्रश्न जिसका उत्तर फलित उपोत्थिप द्वारा किया जाय।

विप्रशिनक (सं० पु०) वि-प्र-श-उन् (नत इति उन्)। पा ५।२।१। वैबद्ध, उपोत्थिपो।

विप्रशिनका (स० ली०) वैबद्ध, उपोत्थिपिनी। (अमर २।१।१)

विप्रध (स० पु०) एक वाक्यका नाम जो बहुरामतीका छोटा भाई कहता था।

विप्रसात् (सं० अन्व०) प्राञ्जलका आपत्त। (एपु ११।८५)

विप्रसारण्य (सं० ह्री०) बिस्तारकण, बिस्तार करना फैलाना।

विप्रदाण्य (सं० ह्री०) १ एपाग। २ मुक्ति।

विप्रानुमन्त्रित (सं० लि०) सङ्गीत द्वारा बतानसयुक्त, योत से प्रसन्न।

विप्रार्णय (सं० ह्री०) १ प्राप्ति, पाना। २ अन्तमसात करण, हृदयना।

विप्रार्णिक (सं० पु०) मन्त्रक जानैवाला।

विप्रिय (सं० ह्री०) विरह प्राण्यतीति बि मी क। १ अपराध, कसूर। पर्याय—अशु, अपलोक, भाग। (हेम) (लि०) २ अविप्र। ३ कटु। ४ अतिगय प्रिय। ५ पियोग।

विवाधवत् ( स० त्रि० ) वाघायुक्त ।

चिवाली ( स० त्रि० ) १ बालिरहित, बिना बालके ।

२ विशेषरूप बालिगुक्त, बलुई ।

चिवाहु ( स० त्रि० ) १ बाहुयुक्त । २ बाहुहीन ।

चिविल ( स० त्रि० ) १ बिलविशिष्ट, बिलवाला । २ आविल,  
बिना बिलका ।

चिवुद्र ( स० त्रि० ) १ जागृत, जगा हुआ । २ विक-  
सित, बिला हुआ । ३ ज्ञान-प्राप्त, सचेत ।

चिवुध ( स० पु० ) विशेषण बुध्यते इति वि बुध्-क ।

देव, देवता । २ पण्डित, बुद्धिमान् । ३ चन्द्रमा ।

वि विगतपण्डित, मूर्ख । ५ शिव । ६ एक राजाका नाम ।

वि जन्मप्रदोष नामक ग्रन्थके रचयिता ।

चिवुधगुरु ( स० पु० ) सुरगुरु, बृहस्पति ।

चिवुधतटिनो ( स० स्त्री० ) स्वर्गदा, सुरधुनी, आकाश  
गगा ।

चिवुधतरु ( स० पु० ) कल्पवृक्ष ।

चिवुधत्व ( स० क्ली० ) देवत्व ।

चिवुधधेनु ( स० स्त्री० ) कामधेनु ।

चिवुधपति ( स० पु० ) देवताओंका राजा, इन्द्र ।

चिवुधप्रिया ( स० स्त्री० ) देवी, भगवती ।

चिवुधवनिता ( स० स्त्री० ) अप्सरा ।

चिवुधराज ( स० पु० ) देवराज ।

चिवुधधिलासिनो ( स० स्त्री० ) १ देवाङ्गना, देवताकी स्त्री ।

२ अप्सरा, स्वर्गकी वेश्या ।

चिवुधबेलि ( स० स्त्री० ) कल्पलता ।

चिवुधवन ( स० पु० ) इन्द्रका उद्यान, नन्दनकानन ।

चिवुधवैद्य ( स० पु० ) देवताओंके वैद्य, अश्विनीकुमार ।

चिवुधाधिप ( स० पु० ) देवाधिपति, इन्द्र ।

चिवुधाधिपति ( स० पु० ) देवाधिपति, स्वर्गराज, इन्द्र ।

चिवुधान ( स० पु० ) वि-बुध-ज्ञानच् । १ आचार्य ।

२ पण्डित । ३ देव, देवता ।

चिवुधानगा ( स० स्त्री० ) देवताओंको नदा, आकाशगङ्गा ।

चिवुधावास ( स० पु० ) १ देवमन्दिर । २ देवताओंका  
निवासस्थान, स्वर्ग ।

चिवुधेतर ( स० पु० ) असुर, दैत्य ।

चिवुधेन्द्र आचार्य—पुरश्चरणचन्द्रिका नामक तन्त्र ग्रन्थके

प्रणेता देवेन्द्राश्रमके गुरु । आप विबुधेन्द्र आश्रम नामसे  
भी परिचित थे ।

चिवुभुया ( स० स्त्री० ) नाना प्रकारसे विस्तृतिकी इच्छा,  
अनेक प्रकारसे उत्पत्तिकी इच्छा अर्थात् स्थावरजङ्गमादि  
पदार्थोंमें विस्तृते या इसी प्रकार अनेक पदार्थरूपमें  
उत्पत्तिलामकी इच्छा ।

चिवुभूषु ( स० पु० ) नाना प्रकारसे उत्पत्तिलामेच्छु, वह  
जिसने नाना प्रकारसे उत्पत्तिलाम करनेकी इच्छा की है ।

चिवोध ( स० पु० ) विगतो वाधः । १ अन्वधानता ।

विशिष्टा वाधः । २ प्रबोध, अच्छा ज्ञान । ३ ध्वमि-

चारी भाषमेद् । ४ द्रोणपार्श्वक पुत्रका नाम । ५ ज्ञान,

सचेत होता । ६ विकास, प्रफुल्लता । ७ जागरण,

जागना ।

चिवोधन ( स० स्त्री० ) वि बुध ल्युट् । १ प्रबोधन,  
जगाना । २ जागरण । ३ ज्ञान कराना, आव खोलना ।

४ समझाना, बुझाना, ढारस देना । ( त्रि० ) वि बुध-  
ल्यु । ५ प्रातिबोधक । ( शृक् टा३-२ )

चिवोधित ( स० त्रि० ) १ जागरित, जगाया हुआ । २  
झापित, बतलाया हुआ । ३ विकासित, बिलाया या  
प्रफुल्लित किया हुआ ।

चिवुवत् ( स० त्रि० ) १ विरुज्वक्ता । २ मीनो ।

विभक्त ( स० त्रि० ) वि भ्रज-क । १ विभिन्न, पृथक् किया  
हुआ । २ विभाजित, बटा हुआ । ३ जो अपने पिताकी  
सम्पत्तिले अपना भाग पा चुका हो और अलग हो  
( क्ली० ) ४ विभाग । ( पु० ) ५ क्रांतिक्षेप ।

विभक्तकोष्ठी ( स० स्त्री० ) जोवमेद्, जिनके शरीरके मध्य  
भागमें ध्वजधान हो । ( Nautilidae )

विभक्तज ( स० पु० ) पैतृक धनविभागके बाद उत्पन्न-  
सन्तान ।

विभक्तता ( स० स्त्री ) पार्थक्य, पृथक्ता ।

विभक्ति ( स० स्त्री० ) विभजनमिति संख्याकर्माद्योह्यर्था-  
विभज्यन्ते आभिरनि वा वि-भज क्तिन् । १ विभाग,  
घांट । २ पार्थक्य, अलग होनेकी क्रिया या भाव । ३  
रचना । ४ भङ्गी । ५ शब्दके आगे लगा हुआ वह  
प्रत्यय या चिह्न जिससे यह पता लगता है, कि उस शब्द-  
का क्रिया-पदसे क्या सम्बन्ध है ।

संख्या और कर्माधिके परिचायक शक्तिविशिष्ट प्रत्यय को विभक्ति कहते हैं अर्थात् जिन सब प्रत्यय द्वारा लक्ष्या (पञ्चम) के कारक तथा अव्यय (अव्ययान्वयाना प्रकारमें) अर्थ का बोध होता है वही विभक्ति हैं। सुप् और लिट्के मेरमें यह दो प्रकारका है।

सुप्=सु भी ङस इत्यादि २१ हैं।

ये २१ प्रत्यय प्रत्येक भागमें तीन तीन करके ३ मतोंमें विभक्त हुए हैं। इन सातोंके नाम यथाक्रम प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति है। ये सातों विभक्तियां यथाक्रम अपिठंग व्याप्तियों कर्ता कर्मा कर्ण, सम्प्रदान, अवादान सम्बन्ध भार अधिहरणको परिचायक हैं। कारक उभ्र देखो।

सम्बन्ध व्याकरणमें जिसे विभक्ति कहती हैं यह यथादीर्घ शब्दका रूपान्तरित अङ्ग होता है। जैसे— रामेण, रामाय इत्यादि। भाङ्गक्रमकी प्रकृतित अङ्गों को नामें इन लट्प्रका विभक्तियों नदी हैं 'सिफ' कर्म और सम्प्रदान कारकक सर्वनामोंमें चित्तमान आते हैं। जैसे— मुझे तुम्हें इतने इत्यादि। अन्तर्गतमें विभक्तियों क रूप शब्दक अर्थ्य अन्तरक अनुसार मिश्र मिश्र होते हैं। लेकिन यह मेरे अङ्ग बोलीक कारकोंमें नही पाया जाता जिसमें शुद्ध विभक्तियोंका व्यवहार नही होता कारक बिहोला व्यवहार होता है।

दिसमें विभक्तियोंक सम्बन्धमें बड़ी गहबड़ी खण रही है। इन सब गहबड़ियोंको ईश्वर कर व्यंगीय पहिणन गोविन्द्वारायण मिश्रन "हितवासी" नामक स साहिक हिन्दी समाचारपत्रमें पारासाहिक रूपमें छेकमात्रा प्रकाशित कराया था। भागी चल कर उर्दी छियोंका व्यंगीय मिश्र जाने पुस्तकाकारमें छपाया था। पाठकोंक आनकारोक द्विपे हमका विस्तृत विवरण हिन्दी भाषा शब्दमें लिखा गया है। रिन्दीभाषा देखो।

विभक्त्यु (स० लि०) वि-अङ्ग-सुप्। विभागाकारा, बांटेने नामा।

विभाज (स० लि०) १ विभिन्न, भिन्न किया हुआ २ टूटा फूटा हुआ।

विभङ्ग (स० पु०) १ विघास, गठन या रचना। २ टूटना। ३ विभाग। ४ कम या परम्पराका टूटना।

५ धामना, रोकना, बाधा देना। ६ सूभङ्गी, सौंठी चेष्टा। ७ मुक्तका भाव वा चेष्टा।

विभङ्गिन् (स० लि०) तरक्यावित, देव जाया हुआ।

विभङ्ग (स० झो०) काष्परिनाम्भेत्।

विभङ्गलोप (स० लि०) १ विभागायोग्य, बांटेने लायक।

२ भङ्गनाह, भङ्गन करनेके लायक।

विभङ्ग्य (सं० लि०) १ विभागायोग्य। २ भङ्गनाह।

विभङ्गयथाहो (स० लि०) बौद्धसम्प्रदायमेत्।

विभङ्ग (स० झो०) १ टूटना फूटना। २ नाश, धर्मस।

विभङ्ग्यु (स० लि०) १ मङ्गलण। २ भङ्गनगाम।

विभङ्गक—प्रुयिमेत्। विभायकक दको।

विभय (स० झो०) १ निभय। २ रिशे मत्र।

विभरह—राङ्गमेत्। (तालाय)

विभरत—विभरह देखो।

विभब (स० पु०) १ धन, सपत्ति। (मनु ३।१४) २ मोक्ष,

जन्म मरणस सुदकार। ३ पेश्य, शक्ति। ४ साठ संव

हसतमेंसे छत्तासत्रा संवहसर। इन अर्थमें सुमिह क्षेत्र,

भारोग्य, समो व्याधिमुक्त मानवगण प्रशासक, वसुधवरा

बहुशान्प्रशासकी तथा सब कोह हृष्ट और सुष्ट होने हैं।

५ द्रव्य, विषय। ६ शोचार्थ्य। ७ स सासे विमुक्ति।

८ भाषिकव, बहुतायत। ९ सञ्चारविश्वमित वाक्पतिराज

के पुत्र। पाठे ये मा राजा हुए।

विभवमद् (सं० पु०) धनमद्, धनका बहुरूप।

विभवबद् (स० लि०) १ पेशवर्ष्यशालो, विभवबाला।

२ शक्तिशाली, बलवान्।

विभववान् (सं० लि०) विभवबद् देखो।

विभवशालो (सं० लि०) १ विभववाला। २ पेशवर्ष्यवाला

प्रतापवाला।

विभवस्थान (सं० लि०) मरुमहीन।

विभक्ति (दि० स्त्री०) १ मेद् किरण्य। (दि०) २ अनेक

प्रकारका। (अप्यय) ३ अनेक प्रकारसे।

विभा (सं० स्त्री०) वि भा विजप्। १ भासाक, पैशना।

२ प्रकाश, कान्ति, चमक। ३ किरण। ४ शोभा, सुन्द

रता। (लि०) ५ प्रकाशक।

विभाकर (स० पु०) वि भा-ह ट (विभवभिमिन्द्रोति)।

१। ३। ५। ११। १ सूर्य। २ अक्षरस, मदार। ३ बिलकहस्त

चीतेका पेड़ । ४ अग्नि । ५ राजा । (त्रि०) ६ प्रकाशशील, प्रकाशवाला ।

विभाकर आचार्य—प्रश्नकौमुदी नामक ज्योतिषग्रन्थके रत्न पिता ।

विभाकर वर्मन्—एक प्राचीन कवि ।

विभाकर शर्मन्—एक प्राचीन कवि ।

विभाग (स० पु०) वि भज घञ् । १ भाग, अंश, हिस्सा ।

२ दाय या पैतृक सम्पत्तिका अंश । विशेषरूपसे भाग या स्वत्वस्थापनको विभाग कहते हैं ।

भूहिरण्यादि अर्थान् भूमि और सीमा आदि स्थावर स्थावर सम्पत्तिमें उत्पन्न स्वत्वके किसी एक पक्षके हक पानेके विषयमें विनिगमना प्रमाणाभावसे अर्थान् परन्तर पक्षपाति-प्रमाणके अभावमें वैशेषिक नियमसे उक्त सम्पत्ति विभागके अनुपयुक्त होने और इसके सम्बन्धमें सिवा इसके (वैशेषिक मतके सिवा) दूसरे किसी तरहकी सुव्यवस्था आदि न रहनेसे गुटिकापातदि द्वारा जो स्वत्व निरूपण होता है, उन्नीका नाम विभाग है ।

अभिज्ञताके साथ विशेष विवेचनापूर्वक स्वत्वादिके अंश निरूपणको अथवा जिससे विशेषरूपसे स्वत्वादि परिज्ञात हो सके, उसको विभाग कहते हैं ।

देवर्षि नारदका कहना है—किसी सम्पत्तिसे पूर्व स्वामीका स्वत्व उपरत होने पर अर्थान् किमीकी त्याग्य सम्पत्तिमें उसके बहुत दूरके उत्तराधि नारियोंमें शास्त्र अथवा प्रमाणानुसार नैकृत्य सम्बन्धनिर्णयमें अस्मर्था होने पर देशप्रथानुयायी नियमसे गुडगौटो ( गुटिकापात) डाल कर इन मन्त्र सम्पत्तियोंका स्वत्व-निर्णय किया जाता है, उसको ही विभाग कहते हैं ।

धर्मशास्त्रनिबन्धमें सम्पत्ति-विभागके संबन्धमें यैमां व्यवस्था दिखाई देती है—

पिताकी अपनी कमाई धन सम्पत्तिमें जब उनकी इच्छा हो, तभी विभाग हो सकता है, किन्तु पितामहके धनमें माताकी रजोनिवृत्ति होने पर पिताकी जव इच्छा होगी, तभी उसका विभागकाल है ।

माताकी जगह यदा विमाताको भी समझना होगा । क्योंकि, विमाताके गर्भसे भी पिताका दूसरा पुत्र उत्पन्न हो सकता है । वस्तुतः माता और विमाताके रजोनि-

वृत्ति होने पर या उनकी रजोनिवृत्तिके पूर्व पिताकी रतिशक्ति निवृत्त होने पर यदि पिताकी इच्छा हो, तो वह सम्पत्तिका विभाग कर सकता है । पितृ द्वारा विभक्त मनुष्य विभागके बाद उत्पन्न भ्राताका भी भाग देगे ।

पिताके स्वोपार्जित धनमें वे अपना इच्छाके अनुसार धनका विभाग कर सकते हैं । स्वोपार्जित धनमें पिता मन्त्र तरहमें स्वतन्त्र हैं, किन्तु पितामहके उपार्जित धन में ऐसा नहीं हो सकता । स्वोपार्जित धनमें पिता किस पुत्रको गुणो जान कर समानार्थ अथवा अपेक्ष्य जान कर रूपामे किंवा भक्त जान कर भक्तवत्सलताके कारण अधिक दानेच्छु हो कर न्यूनाधिक विभाग करे तो धर्मसङ्गत हो होगा । किन्तु इस तरहके भक्तिय आदिका धर्म कारण न रहने पर यदि पिता धनके बँटवारेमें न्यूनाधिक करने हैं, तो वह धर्मसंगत नहीं कहा जा सकता । किन्तु पूर्वोक्त कारणोंसे उनका ऐसा करना धर्मसंगत हो है । अत्यन्त व्याधि और क्रोधादिके लिये आकुलचित्तताके कारण या काम आदिके विषयमें अत्यन्त आत्मिके कारण पिता यदि पुत्रको अधिक या कम भाग दे अथवा कुछ भी न दे तो उनका वह विभाग नहीं होता ।

पिता यदि पुत्रको भक्तिके कारण न्यूनाधिक भाग दे, तो वह विभाग शास्त्रनिष्ठ और धर्मसङ्गत है । पिता यदि गेगादिसे व्याकुल हो कर न्यूनाधिक विभाग करे या किसी पुत्रको कुछ न दे, तो वह विभाग अस्मिद है । किन्तु भक्तत्वादिके कारण विना और वगाध्यादिके कारण अस्तिरचित्तता विना केवल स्वेच्छापूर्वक न्यूनाधिक विभाग करे, तो वह धर्मसंगत नहीं, किन्तु सिद्ध है । यदि पुत्र एक समयमें विभागकी प्रार्थना करे, तो पिता भक्तत्वादिके कारण अत्मान भाग न करे ।

पुत्रोंको समान भाग देने पर पुत्रहीना पत्नियोंको भी समान भाग देना होना । भर्ता आदि स्त्रीधन न देने पर ( स्त्रियोंको ) समान अंश देना उचित है । जिनको स्त्रीधन दिया जा चुका है, उनके समान धन अपुत्रा पत्नियोंको पिता देगे । ऐसा स्त्रीधन न रहने पर उनकी पुत्र समभाग देना कर्तव्य है । परन्तु पुत्रोंको कम दे कर स्वयं अधिक लेने पर ( पुत्रहीना ) पत्नीको अपने अंशसे समभाग देना कर्तव्य है । यदि स्त्रीधन दिया गया

हो, तो इस द्विषतेका भाषा ही देनेसे काम चलायेगा।

मातृयां माताक पाये भागहो यदि भोग द्वारा व्यय कर जाये, तो स्त्री पतिसे फिर जोबिका निर्वाहक सिधे बन पानेकी दृक्द्वारा है। क्योंकि वह अथर्व योग्य है।

हां यदि उभयक भागमें कुछ धन बाकी बच गया हो फिर पतिके धनका अन्त हा गया हो, तो जैसे पुत्रोंसे वह छे सकने हैं तैसे स्त्रोमे भी फिर धन छे सकन हैं। क्योंकि कि दोनोंमें एक ही कारण है।

पत्नी विभागामात्र धन स्यादप्य कारयक विना दान या विक्रय नहो कर सकने है अथवा यन्त्रक मो नहा रन सकन। यह धन पाषण्डीयन भोग करते रहेंगे, इसक बाद पूर्वज्यामोक उत्तराधिकारी भोगाभिलाष धन पायेगे

जो धन पिता द्वारा उपार्जित होता है, वही अथवा प्रकृत स्वोपार्जित है। पितामहका हृतधन पुनरुत्थार करने पर भी वह उसे स्वोपार्जितवत् उपभोगमें ला सकते हैं। पूर्वहन मूमि एक आदमी परिधम कर यदि ख्यार करें, तो उसको धार अशका पर अश है कर वृत्ते अपने अपने भाग छे सें। पैतामह स्थावरसम्पत्ति रहने पर अस्थावर पैतामह धनमें स्वोपार्जितकी तरह पिता ही मालिक हैं। ये ही न्यूनाधिक विभाग कर सकते हैं।

पिता अपने पितासे मरदन्धत्रय जो मूमि निरन्धय और द्रव्य पाये हो वह व्यवहारमें पैतामह धनमें तिना जायेगा। क्योंकि उसमें स्वोपार्जित धनकी तरह पिता का प्रमुख नहीं है। वह धन क्रमागत पैतामह धनकी तरह व्यवहार करना चाहिये।

मातामह आदिके मरने पर जो धन सिधे उभयका व्यवहार स्वोपार्जितकी तरह किया जा सकता है।

पितामहके धनका अब पिता विभाग करें, तो इसका अर्थ हो अश छे कर पुत्रोंको एक एक अश देंगे। क्रमागत धनमें पिता ही भाग ग्रहण करें। इससे अधिककी मालम्ना करने पर भी वे न छे सकेंगे। पौराणिक गुणवत्त्व, दि कारवीं से और मूमिनिषण्य या द्विषद रूप पैतामह धनका न्यूनाधिक विभाग देनेकी क्षमता पिताकी नहीं।

पिता पुत्रको जैसे इससे योग्य अश है तैसे ही पितृहीन पौत्रको और पितृपितामहहीन प्रपौत्रको पितृ पितामह उनके पोष्य अश है।

पुत्रार्जित धनमें भी पिताका ही भाग है। पितृ द्रव्यके उपघातमें पुत्रक उपार्जित धनमें पिताको भाषा तर्जक पुत्रका ही अश और अन्य पुत्रोंको एक एक अश देना चाहिये। पितृद्रव्यक उपघात विना मस्ति त धनमें पिताको ही अश, अर्जकपुत्रको भी दो अश और अन्यपुत्रोंको कुछ भी अश नहीं देना चाहिये। अथवा विद्यादिगुणयुक्त पिता भाषा से। विद्याविहीन पिता कबल अतकका ईन्धियतते हो दो अश से।

यदि कोई पुत्र अपने पश्चिमसे भातृपणक उपघातसे उपार्जित करे, तो उभयमें पिताको दो अश और इन दोनों पुत्रोंको एक एक अश दे दे। यदि कोई मातृक धनसे तथा अथन परिधम और धनसे धन उपार्जन करे, तो तर्जकका दो अश पिताका दो अश और धनदानका एक अश होगा। दोनों अवस्थायों ही अन्यपुत्र द्वाराभीका कुछ भी अश नहीं है।

जिस पौत्रक पिता अपित है, तर्जित धन पिता मदन छे। किन्तु पिता छे।

मरजपानिष्य या उपरतस्मृदा द्वारा या गृहाध्यम स्थापन करनेसे पिताका स्वयं धन म हानि पर या स्वयं रहते हुए भी उनकी इच्छा होने पर (पितृधन) विभागमें पुत्रोंका अधिकार ही जाता है। अनप्य उस समयसे सानुविभागकाळ समन्वता चाहिये। फिर भी माताक अपित रहते भी विभाग करना धर्म नहीं अर्थात् धर्मता सिद्ध नहीं है; किन्तु व्यवहारमें सिद्ध है। पिता माताके अपित रहने पर पुत्रोंका एकत्र रहना ही उचित है। पिता माताके मर जाने पर धन रहने पर पृथक् होनेसे धर्म को दृष्टि होती है। (स्वयं) पितामाताके कर्तृधर्म गमन करने पर पुत्रोंको चाहिये आपसमें मित्र कर धनका भाग कर छे। किन्तु पिताके जीवित रहने पर पुत्र उस धनका माधिक नहीं है। (अनु) फिर भी, माताका अनुमति ग्रहण कर विभाग करने पर धर्मविद्वन् नहीं होता। बहुमोंका विवाह कर क्षता भाषयक होगा।

पिताके कर्मक्षम होने पर पुत्र विभाग करनेमें आक्षान है। क्योंकि हारीनका कहना है—'पिताके जीवित रहने पर धनग्रहण और व्यय तथा कर्णक विषयमें पुत्र आधीन नहीं है। किन्तु पिता अरुप्रकृत हो जाये या प्रबासी हो जाये या अन्त हो तो स्पष्ट पुत्र विषयकर्म



देखे।' ग्रंथलिखित सृष्ट्यकरूपसे कहा है—'पिताके अग्रज हो जाने पर ज्येष्ठ पुत्र विषयकार्य निर्वाह करने अथवा कार्यार्थगोल दूसरा भ्राता उनकी आशा ले कर उसका कार्य करे। किन्तु पिता वृद्ध, विपरीतचित्त अथवा दीर्घ रोगी होने पर भी उसकी इच्छा न होने पर विभाग नहीं हो सकता। ज्येष्ठ ही पिताका तरह अन्यान्य भ्राताओं की विषयवशा करे, ( क्योंकि ) परिवारका पालन धनमूलक है। पिताके रहते वे स्वाधीन नहीं हैं, माताके रहने भी नहीं।' इस वचनसे पिताका कर्माक्षम अथवा दीर्घरोगी होने पर भी विभाग निषिद्ध है। ज्येष्ठ पुत्र ही विषयकी विन्ता करे या उसका छोटा भाई यदि कार्यक्षम हो तो वही उसकी अनुमतिसे कार्य चलाये। अतएव पिताकी इच्छा न होने पर विभाग नहीं हो सकता, यह कह जातेसे पिताके कर्माक्षम होने पर जो धन विभाग होगा, वह भ्रान्ति धनतः लिखा गया है।

सवर्ण भ्राताओंका विभाग उद्धारपूर्वक या समान इन दोनों तरहसे कहा गया है।

मनुके मतमें 'विंशोद्धार और सब द्रव्योंमें जो श्रेष्ठ है, वह ज्येष्ठका है, उसका आधा मध्यमका, और तृतीयांश अर्थात् बसमी भागमें २ भाग कनिष्ठका है। ज्येष्ठ और कनिष्ठ कथितरूपसे ही विभाग ले। ज्येष्ठ और कनिष्ठके सिवा अन्यान्य भ्राता मध्यमरूप उद्धार पायेगे। सब तरहके धनमें जो श्रेष्ठ और जो सब उत्कृष्ट है, वे और गाय आदि दण पशुओंमें जो श्रेष्ठ है, वह ज्येष्ठ पुत्रको लेना चाहिये। जो भाई अपने कर्त्तव्यमें निपुण है उनमें दण वस्तुओंसे श्रेष्ठोद्धार नहीं, केवल मानवदणके लिये ज्येष्ठको किञ्चिन् अधिक देना होगा। यदि उद्धार उद्धृत न हो, तो इसी तरहसे उनके अंशकी कहाना करनी होगी। ज्येष्ठ पुत्रके दो भाग और उससे छोटेको ढेढ़ भाग देना चाहिये और उससे सभी छोटे भाई समान एक-एक अंश लें। यही धर्मशास्त्रकी व्यवस्था है। ज्येष्ठा स्त्रीके गर्भसे कनिष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे और कनिष्ठ स्त्रीके गर्भसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे किस प्रकार विभाग करना होगा ? इस तरहके संशय होने पर ज्येष्ठ एक वृषभका उद्धार कर ले, अपने अपने

मानुक्रमसे उससे छोटा भाग उससे छोटा वृषभ या बैल ले। ज्येष्ठा स्त्रीका गर्भज ज्येष्ठ पुत्र वृषभ और दण गाय ले। इसके बाद अन्यान्य पुत्र अपने अपने मातृ-क्रमसे लें।

मनु और वृहस्पतिका कहना है, कि द्विजातियोंके जो पुत्र सवर्णा स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए हों, उनमें अन्यान्य भाई ज्येष्ठको उद्धार दे कर अपने सम भाग ले।

वृहस्पतिका मत—दायादोंमें दो तरहका विभाग है। एक ज्येष्ठोद्धार क्रमसे और दूसरा समअंशकी कल्पना। जन्म, विद्या और गुणमें जो ज्येष्ठ हैं, वे दायरूप धनके दो अंश पायेगे और अन्यान्य भाई सम भागके भागीदार होंगे। ज्येष्ठ उनके पितृवृत्त हैं।

वशिष्ठका कहना है—'भाद्योंमें दायका दो अंश और प्रत्येक दण दण गाय और बैलोंमें एक एक ज्येष्ठ लें और बफरा मेड़ा और एक घर कनिष्ठ तथा कृष्णलौह और गृहके उपकरण या द्रव्यादि मध्यम लें।' गिष्णुके मतसे—'सवर्णा स्त्रीका गर्भज पुत्र समान भाग लें, किन्तु ज्येष्ठने श्रेष्ठ द्रव्य उद्धार कर दे।'

हारीतके मतसे—'गौ आदि पशुओंका भाग करनेका समय ज्येष्ठको एक वृषभ दे अथवा श्रेष्ठ धन दे और उन्हें विग्रह तथा पितृगृह दे कर अन्य भ्राता बाहर निकल कर गृहनिर्माण करें। एक गृह रहने पर उसका उत्तमांश ज्येष्ठको दे और अन्य भ्राता क्रमसे ( उत्तम अंश ) लें।'

आपस्तम्बने कहा है—'देशविशेषमें सुवर्ण, काली गाय, भूमिका कृष्ण शय्य और पिताके सभी पात ज्येष्ठके हैं।'

शुद्धलिखितके मतसे—'ज्येष्ठको एक वृषभ और कनिष्ठको पिताके अवस्थानके सिवा अन्य घर भी दिया जा सकता है।'

गौतमकी व्यवस्था है, कि '(दायका) बीस भाग, एक जोड़ा (गाय), दोनों जड़ोंमें दान हो ऐसे पशुओंमें जुना रथ और गुविंणी करनेके लिये रूप ज्येष्ठको और अन्या, बूढ़ा, सिंग दूदा, बण्डा पशु मध्यम भाईके। यदि ऐसे पशु बहुत हों तो वाघ, घान्य, लौह, गृह, गाड़ी और प्रत्येक चौपाईमें एक एक कनिष्ठोंको

और अचक्रिण धनमें सबका समभाग होगा । (सर्वर्ण कनिष्ठा श्लोक गर्भमे उत्पन्न) ज्येष्ठ पुत्र एक बैल अधिक पायगा, (सर्वर्ण) ज्येष्ठा श्लोका पुत्र १ बैल और १५ गावें छे । कनिष्ठाक गर्भमें पुत्रको आ उदार मिलेगा, उतना ही ज्येष्ठाक कनिष्ठा पुत्रको मिलना चाहिये । ज्येष्ठ इच्छानुसार पहले एक बौद्ध से और पशुभूमिमें दश छे ।'

"सबका अधिकोपकरणसे समान भाग दिया जाये अथवा ज्येष्ठ भ्रष्ट द्रव्य या दण्ड भागका एक भाग उदार कर से, दूसरे समान भाग से ।' यह श्रुति बौधायनक बसन्तमें ज्येष्ठका धष्ट द्रव्य और गाय आदि एक जातीय पशुभूमिमें दशमें एक दैनेको कहा गया है ।

बौधायनक मतसे—'यिनाक अर्चमान रहने पर चार वर्षोंक क्रमनुसार गौ अश्व, बकरा, मेढा बड़े मारिका मिलेगा ।"

गारुडका कहना है, कि 'ज्येष्ठका अधिक भाग वातव्य है और कनिष्ठको कम । अग्न्याग्न्य मात्र समान अशक भागीदार हैं और अविवाहिता बहन भी, ऐसी ही अशोकार है ।'

वेरसका कहना है, कि समान गुणयुक्त स्रताओंको मध्यम भाग प्राप्य है और ज्येष्ठ मात्रक ग्यायकारो होने पर उमकी दण्ड भाग देना हीगा ।'

इस तरह धर्मप्रणयकारोंने विविध रूपसे जो उदार विधान किया है, उसका समग्रपण ही पुनरुक्त है । जो हो, अक्षरकानिश्चयमें इन सबोंका एक तरहसे उदार दैनेका तात्पर्य मान्य ही साझ्या है, किन्तु यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है, कि गुणागित मात्र ही उसक उदाहरण है । दृढस्थितिमें वह स्पष्ट करते बहा है, कि कथित विधानके अनुसार सभी पुत्र ही वित्तपनहारी हैं । किन्तु उनमें आ विद्यावान् और धर्मकर्मगोल हैं, वह अधिक पानेक अधिकारी हैं । विद्या, विज्ञान, शौर्य, दान, दान और सत्कृत्या इन सब विषयोंमें बिसहो कारिा इस सीधमें प्रतिष्ठित हो, उसा पुत्रस विद्वेक पुत्ररत्न होता है । और येना अना नहो, कि निर्गुण बुद्धकर्मज्ञानी मारि कनक विज्ञोकार पानेक अयोग्य है । किन्तु दायापिहारी मो नहो यथा—निम्न निम्न प कियो विद्याभ्रङ्गार्णयसे हो जातो है—

जो ज्येष्ठ मात्र ज्येष्ठका आचरण करते हैं, यिना मो  
Vol XXI, 110

वही और माता मो वही हैं । ज्येष्ठका आचरण जो ज्येष्ठ नही करते हैं यह बन्धुको तरह मान्य है । फिर निर्गुण ज्येष्ठक ज्येष्ठत्वके सम्बन्धमें विज्ञोकारादि रूप अधिक भागकी प्राप्ति नियत है । इसक बाद कुर्भर कारी स्रतामान हो विषय धनमें भाग पानेका अधिकारी नही है । इन वाक्यसे ग्राह्य कर्मा करनेवाले ज्येष्ठ आदि सभी मात्र विषय पानेके अनधिकारी हैं और उदार प्राप्तिके लिये ज्येष्ठत्व और गुणबन्ध दोनों ही आवश्यक कहे गये हैं ।

इस समय यथार्थमें उदार दानरहित ही हो गया है । फिर उदारता स्रताके रहने पर मा स्रताओंक उदार न देने पर ये अनियोग खगा कर नहीं छे सकते ।

विद्याभ्रङ्गार्णयके रचयिताम कहा है, कि इस समय हमारे दणमें विशोकारादिका व्यवहार प्राप्य ही नही है । कथक कुछ द्रव्य ज्येष्ठको मान-रक्षाक लिये दिया जाता है । यथापि ज्येष्ठ पुनरुक्तविस्तारादि पिताक महोपकार करनेक कारण अग्न्याग्न्य स्रताओंस कुछ अधिक पानेक अधिकारी हैं, तथापि वह दान कनिष्ठोंको इच्छा पर ही निर्भर करता है । क्योंकि किसी श्रुतिमें ऐसा नही कहा है, कि कनिष्ठक न देनेस ज्येष्ठ दावा करक छे सके ।

'बहिय'र्णके बरिज्ञानुसार और वामकक अमरमनुसारा ज्येष्ठता निश्चय नही—(गीतम) बहिय'र्ण यथात् शूद्र । बहुपचनके कारण शूद्रधर्मप्राप्ता शंकरचरितमें यथात् सुशान्तामि ज्येष्ठता होता है । अतएव ये क्रम द्वारा ज्येष्ठ कह कर उदाहरण नही होते । वाक्यस्थितिका कहना है, कि शूद्रधर्मक लिये ज्येष्ठांशमाणा नही होते । मनु कहते हैं—'शूद्रकी सज्जानीया भावर्वा वैष है । उसक गर्भमें भी पुत्र क्रम लने पर भी वे सभी समान भाग पायेंगे । वहां समान अना कहनेस ज्येष्ठत्व प्रयुक्त उदार प्राप्य नही है यही दिखाया गया है । परि कहा जाय, इनमें विद्वान् और कर्मनाभी जो हैं ये अधिक पा सकेंगे तो वह दृढव्यप्युक्त उदार साधारण विषयक होने पर शूद्र भी गुण ज्ञानी होनेस बरा उदाहरण होता है । वैसा गुण शूद्रमें होता सम्भव नही । अतएव— शूद्रका जन्मी भी उदार प्राप्य नही ।"

बलिके सिद्धा अथ युगमें मातृगण यणके ज्येष्ठानु

सार ( विभिन्न वर्ण मातृज ) भाइयोंमें असमान विभाग होता है, किन्तु कलमें असवर्णा स्त्रिका विवाह निषेध होनेके कारण उसके द्वारा उत्पन्न पुत्रके दाय्याधिकार लोप होनेकी वजह आज कल वह विषम विभाग नहीं होता ।

“यदि एक व्यक्तिके स्वजातीय ( प्रत्येक पत्नीके गर्भसे ) समान सख्याक बहुतेसे पुत्र हों, तो इन वैभाल भाइयोंका विभाग धर्मतः मातृसंख्याके अनुसार किया जाना चाहिये” यही बृहस्पतिका मत है । व्यासका अभिप्राय है—“एक व्यक्तिकी भिन्न भिन्न पत्नियोंके गर्भमें जाति और सख्यामें जो समान पुत्र उत्पन्न होने हैं, उनको मातृसंख्याके अनुसार भाग देना उचित है ।” इन दानों धचनोंके अनुसार विभाग करनेमें भा विषम विभाग नहीं होता । क्योंकि प्रत्येक सवर्णा माताके गर्भज पुत्रको सख्या समान होने पर उसका विभाग कर देनेको कहा है । पीछे एक मातृज पुत्रोंमें परस्पर विभाग करनेमें अन्तमें समविभाग हा होता है । पुत्रको विषम सख्या होने पर भा यदि वैसे विभाग करनेकी आशा होता, तो विषम विभागकी आशङ्का रहती या सहा/किन्तु वह आशङ्का स्वयं बृहस्पतिने ही दूर की है, जैसे—सवर्णास्त्रियोंके गर्भज पुत्रोंमें असमान संख्या रहने पर पुरुषपत्न अर्थात् पुत्रको सख्याके अनुसार विभाग होगा ।

“जब मानाओंके समान सख्याक पुत्र हों, तब बहुततर भाग करनेमें प्रयास वाहुल्य होता है । अतएव प्रयास लाघव करनेके लिये मातृ द्वारा पुत्रोंको भाग करनेका आदेश है । ऐसी जगहमें पुनर् विभाग करने पर सबके ही समान अंश मिलता है । विभाग करनेकी इच्छा लाघव करनेके लिये ही बृहस्पतिने ऐसा आदेश किया है । फलतः विशेष नहीं ।” विश्वादेवभाष्यकारके कर्त्ताकी यह उक्ति युक्तियुक्त मालूम होती है । अतएव इस समय भाइयोंका भाग समान है ।

पिताका उल्लेख कर हारीत कहते हैं—“पिताके मरने पर श्रद्धा विभाग समान रूपमें होगा ।” उशनाका कहना है—“सवर्णास्त्रियोंके पुत्रोंमें समान विभाग होता है ।”

औरस भाष्यकारके अनुसार पुत्रोंके विभागस्थलमें औरसको दो अंश ( सवर्णास्त्रियोंके पुत्रोंके विभागमें ) और दत्तकको एक अंश है । पितृहीन पति और पितृपितृहीन पति के पुत्रोंमें प्रतीक कमसे स्व स्व पिताके

और पितामहके योग्य अंशके भागीदार होंगे । रय स्य संख्याके अनुसार नहीं ।

विभागके पहले पुत्रके मरने पर उसका पुत्र यदि अपने पितामहसे जीवनीपयुक्त विषय न पाये, तो वह धनमागी होगा । पितृष्य अथवा उसके पुत्रसे अपने पिताका अंश लेगा । इस तरहका ( परिमित ) अंश न्यायतः सय भाइयोंका ही होगा । उसका पुत्र भी अंश पायेगा । इसके बाद ( अर्थात् धनोक प्रतीकके बाद ) अधिकार निवृत्ति होगी । ( कात्यायन ) यदि मृतव्यक्तिके अनेक पुत्र हों, तो एक पितृयोग्यांश उनमें विभाग कर देना होगा । इस तरह धनीके पौत्रक स्वत्वका ध्वंस होने से उसका अंश मात्र पर प्रतीकका ही अधिकार है । फिर भी—यदि पितामहसे प्राप्त विभाग पौत्रके पास हो और उसके चाचा (पितृष्य) पिताके साथ सख्य रहता हो, तो यह लोग पुनर्विभाग करनेमें अंश नहीं पायेगा । परन्तु पितामहसम्पर्कयज्ञ जो धन है, उसका विभाग पौत्र ही पायेगा । भिन्न भिन्न पुत्रके पुत्रोंकी भागकल्पना पितानुसार होगी । ( याज्ञवल्क्य )

जो व्यक्ति अपनी योग्यता पर भरोसा करता है, वह पितृपितामहादि धनके अंशमें स्पृहा नहीं रखता । उसको एक मुट्ठी चावल भी दे कर पृथक् कर देना होगा । अधिकारी भाइयोंमें कोई प्रतीक तक न रख मरने पर उसके लिये जो उत्तराधिकारी हो, वह भी विभागमें तदु-योग्यांशका भागीदार होगा ।

साधारणके उपघात द्वारा अर्जित धनमें अर्जकका दो भाग और दूमरेका एक भाग है ।

साधारण धनका उपघात होने पर जिसका जो अंश या जितने ( कम या अधिक ) धनका उपघात होता है, उसके अनुसार उसकी भागकल्पना की जा सकती है ।

अविभक्त दाय्यादोंमें क्रिमिके श्रमसे साधारण धनवृद्धि हो, तो उसमें उसका दो अंश प्राप्य नहीं है । दाय्यादोंके मिश्रित धनमें श्रमसे कोई विषय उपार्जित होने पर यदि तत्सहच धनके और श्रमका परिमाण मालूम हो सके, तो वे उसके अनुसार भाग पायेंगे नतुवा समभागी होंगे ।

एक भाईके धनोपघातमें अन्य भाईके परिश्रमसे धन

उपाविर्जित होने पर वे दोनों ही सममार्गी हैं। किन्तु एकके धनमें दूसरैके धन और परिष्कृत उपाविर्जित धनमें माताका एक अंश और दूसरैका ही अंश है—दोनों धनरूपामें ही दूसरे भाग्योका अंश नहीं।

मनुष्य दायार्थोंको इच्छा होने पर ही विभाग होगा, ऐसा नहीं समझना चाहिये, बरं एक भाईको इच्छासे विभाग ही सकता है। किन्तु जनता या पितामहाकी इच्छासे विभाग न होगा।

यदि माताका अंश ही पुत्र विभाग करे, तो माताको भी अपने पुत्रका समान अंश देना पड़ेगा। यदि बसको जामाने खीचन न दिया हो, तो वह यह समझ पायेगी अधिकारिणा होगी किन्तु यदि जामाने खीचन दिया हो, तो उसका अर्द्ध अंश ही पायेगी।

यदि पुत्र माताको अंश न देना चाहे, तो माता बह पूर्वक छे सकती है। जिस स्थलमें एकपुत्रक व्यक्तिको भार्या हो, उस स्थलमें माता अंशका भागोदार नहीं हो सकती। माताच्छादन-मात्र पा सकती है।

सहोदर और बौमात्रेय स्राताओंमें विभाग होने पर मातायें अंश की भागीदार नहीं हैं। किन्तु उस समय या उनके बाद यदि सहोदर भाई आपसमें विभाग करे, तो उनकी माता भी भागीदार हो सकती है। ननुवा प्रामाच्छादन मात्र ही पा सकती है।

यदि पुत्रोंमें एक पुत्र अथवा काह (सून) पुत्रकी उत्तराधिकार और और सबसे पृथक् ही, भी भी माता पुत्रके तुल्य अंश पायेगी।

पैतृक धनके उपघातमें अज्ञित विधवाका अंश पानेमें जैसे स्राता अधिकारी हैं, वैसे ही माता भी अधिकारिणी है। माता यदि किसी मृत पुत्रकी उत्तराधिकारिणी हो तो उसके धन्य अंशको वह अधिकारिणी होगी। फिर भी, विभागके समय माताको हेतुपत्तसे (एक पुत्रके अंशके मुताबिक) वह दूमरा अंश भी पायेगी।

एक जननी भी पुत्रके अंश परिमित अंशभागिनी है, वह केवल स्वयं पुत्रोंके विभागमें ही नहीं, किन्तु पुत्रके और पुत्रोंके उत्तराधिकारियोंके विभागमें भी।

यदि एक स्राता या किसी स्राताका उत्तराधिकारी

रुधावर या अरुधावर विधवामें अपना अंश छे तो उसमें माता भी ऐसे धनमें अंश पानेकी अधिकारिणी है।

विभागमें माता को अंश पायेगा, वह केवल जीवन मर उपभोग कर सकेगी—इस धन पर माताकी ही समता है, वह पतिसंस्कारत धनाधिकारियों पत्नीको तरह है।

पितामहके धनका अंश पौत्र विभाग करे, तब पितामहा भी पौत्रके तुल्य अंशकी भागिनी है। पि। मही यदि किसी मृत पौत्रकी उत्तराधिकारिणी हो वा उत्तराधिकारिणी वह उसके योग्य अंश पायेगी, फिर भी, विभागमें अपना अंश भी पायेगी।

ऐसा नहीं, कि पीनेके स्वयं विभागमें ही विनामही भागदारिणी हैं, किन्तु पौत्र और मृत पौत्रके उत्तराधिकारियोंके विभागमें भी वह पौत्रके तुल्य अंशकी भागीदार होगी।

यदि पौत्रमें कोई अथवा किसी मृत पौत्रका दायार्थ (अपना) अंश छे तो पितामहो भी उस अंशकी अधिकारिणी होगी।

रुधावर और अरुधावरमें एक तरहसे धन विभक्त होने पर भी पितामहो ऐसे धनमें अपना अंश पायेगी। माता की तरह पितामहो मा शास्त्रीय कारण बिना विभागके प्राप्तधनसे दानादि नहीं कर सकती। पितामहके अज्ञित धनके विभागमें पितामहोका और पिताके अज्ञित धनके विभागमें माताको अंश देना होगा।

यदि कोई भाई किसी भाई पर अपने परिवारका रक्षणा भक्षणका भार दे कर ज्ञान अर्जन करने चला जाय, तो रक्षकस्वरूप वह भी उपासकका अंश पा सकता है। उही भागका परिमाण निर्दिष्ट नहीं होता, चहा समान भाग ही करार्य है।

पैतामह और पिताके अज्ञित तथा स्थापण धनके उपघातसे अज्ञित धन सती दायार्थोंकी विभाज्य है।

अन्य व्यापारसे अज्ञित धन उक्त व्यापारकाएक साथ हो केवल विभाज्य है। पुर्णहृत भूमि एक अपने धनसे उदार करे, तो उसका धार अंशका एक अंश है कर अन्य दायार्थ योग्यांशक अनुसार भाग कर छे।

१ अण्ड। २ अण्डनाथमें मन्नांशका भाग्य।

५ याग । ६ न्यायमतसे २४ गुणान्तर्गत गुणविशेष । यह एककर्मज, द्वयकर्मज और विभागजके भेदमें तीन प्रकारका है । विभागज विभाग फिर हेतुमात्र विभाग और और हेतवहेतुविभाग भेदसे दो प्रकारका है ।

क्रमशः लक्षण और उदाहरण—

एककर्मज—केवल एक पदार्थकी क्रियाके लिये जो विभाग या संयोगच्युति होती है, उसका एककर्मज विभाग कहते हैं । जैसे, श्येनशेनसंयोगका विभाग । इस विभागमें पर्वतकी कोई क्रिया नहीं देखी जाती । केवलमात्र श्येन पक्षीकी क्रिया ही दिखाई देती है । अतएव यह एक कर्मज विभाग है ।

द्वयकर्मज,—दो पदार्थोंकी क्रिया द्वारा उत्पन्न विभागका नाम द्वयकर्मज विभाग है । जैसे, दो भेदोंके युद्ध ( अर्थात् देवा लगने )के समय उनके देवोंकी क्रिया में परस्परके सौंनोंका संयोग होता है, जैसे हा युद्ध ( देवाके लगने ) अन्त होने पर फिर उन्हीं देवोंकी क्रिया के द्वारा उम संयोगका वियोग अर्थात् विभाग होता है । अतएव यह विभाग द्वयकर्मज है ।

हेतुमात्रविभागज—हेतु = कारण है । यह तीन तरहका है—समवायी, असमवायी और निमित्त । घटके कपाल और कपालिका-अर्थात् तला और गला समवायी कारणोंका और उनके ( इस तले और गलेश ) परस्पर संयोग असमवायी कारणोंके और सृत्तिका, सलिल ( जल ), सूत्र, दण्ड, चक्र और कुलाल ( कुम्भकार ) आदिके निमित्त कारणका उदाहरण है । इन कारणत्रय का वियोग या विभाग ही हेतुमात्र विभागज विभाग है ।

हेतवहेतुविभागज—हेतु = कारण = किसी कार्यके प्रति जो वस्तु अव्यवहित-नियत पूर्ववती अर्थात् किसी कार्यके आरम्भके प्राक्कालमें उम कार्यके प्रति जिम् वस्तुकी नितान्त आवश्यकता है या जो वस्तु न होनेसे वह काम नहीं चल सकता, उसीका नाम कारण है । जैसे घट प्रस्तुत करनेके आरम्भमें मिट्टी, जल, सूत्र, दण्ड, चक्र, कुलाल और कपाल कपालिका और उमका ( कपाल और कपालिकाके संयोग ) इनमें कोई एक न रहनेसे घट तय्यार नहीं हो सकता । अतः इसका सामान्याकारमें ये सभी हेतु या कारण है । फिर इनमें तीन प्रकारका भेद है जो

पहले कहा जा चुका है । इन तीन प्रकारोंमें कपाल और कपालिकाको जो समवायी कारण रह गया है, उममें साधारणतः द्रव्यके अवयवोंकी ही अवयवोंका कारण कहना समझना होगा । इस समय जहाँ इस हेतु और अहेतु—इन दोनोंका वियोग या विभाग दिखाई देगा, वहाँ हेतवहेतु विभागज विभाग कहना चाहिये । जैसे देहके ( मांसपत्रोंके ) कारण हस्त ( अवयव ) है; इस हाथ के साथ पूर्वोक्त स योजित तबका वियोग या विभागके समय तबसे हाथके साथ साथ अवयव देहका भी विभाग होता है । इससे स्पष्ट देखा जाता है, कि तबसे जो देहके विभागकी कल्पना की गई, वह देहका कारण ( हस्त ) और अकारण ( तब ) इन दोनोंके वियोग द्वारा ही सम्भव हो रही है । अतएव यहाँ हेतु और अहेतु इन दोनोंके विभागजन्य विभाग कल्पना करनेको हेतवहेतु-विभागज विभाग कहा जाता है ।

“द्रव्यणि नः” श्रिति, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन—ये नौ प्रकारके द्रव्य हैं । इन सब द्रव्योंमें जो द्रव्यत्वरूप धर्म हैं, वह सामान्य या व्यापक धर्म हैं और इनके प्रत्येकमें जो श्रितित्व जलत्त्व आदि धर्म हैं, वे विशेष या व्याप्य धर्म हैं । ये परस्पर विरुद्धधर्म हैं; क्योंकि श्रितित्व जलमें नहीं है तथा जलत्त्व श्रितिमें या तेज आदिमें नहीं है । किन्तु सामान्य धर्म ( द्रवत्व ) इन नवोंमें ही है । परस्पर विरुद्ध व्याप्यधर्मके प्रकारसे ही द्रव्यको नौ भागोंमें विभाग करना होता है । इनके द्वारा यहाँ फलतः यह उपलब्धि होगी कि द्रव्यत्त्व या सामान्य धर्मविशिष्ट श्रित्यादिका परस्पर विरुद्ध श्रितित्व जलत्वादि व्याप्य धर्म द्वारा ही प्रतिपादन किया जा रहा है, कि द्रव्यके विभाग नौ प्रकार हैं । अतएव सामान्यधर्मविशिष्ट वस्तुओंके परस्पर विरुद्ध तत्त्व-व्याप्य धर्म द्वारा उनका ( उन वस्तुओंका ) जो प्रतिपादन होता है, उसका नाम ही विभाग है ।

विभागरू ( सं० त्रि० ) विभागकारी, बाँटनेवाला ।

विभागभिरन ( सं० क्लृ० ) तक्र, मट्टा ।

विभागवत् ( सं० त्रि० ) १ भागविशिष्ट । २ विभाग तुल्य, विभागके समान ।

विभागज्ञस् ( सं० अव्य ) विभागके अनुसार ।

विभागात्मक नक्षत्र (स० पु०) रोहिणी चार्द्रां, पुनर्वसु, मघा चिन्ता, स्वाती, ज्येष्ठा और भरणी आदि भाट प्रकाशमय नक्षत्र ।

विभाषिक (सं० लि०) भाषिक ।

विभागिन् (सं० लि०) १ विभागकारी, विभाग करनेवाला ।  
२ विभाग या हिस्सा पानेवाला ।

विभागी (सं० लि०) निभागिन् देखो ।

विभाष्य (स० लि०) विभाष्य, बांटेने शायक ।

विभाज (स० लि०) १ विभक्त, बंटा हुआ । (ह्री०)  
२ पात्र, बरतन ।

विभाजक (स० लि०) १ विभागकर्ता, बांटेनेवाला ।  
२ यद्यित्तमें वह वस्तु जिससे किसी दूसरी वस्तुको माप है, माजक ।

विभाजन (स० ह्री०) १ विभागकरण, बांटेनेका काम ।  
२ पात्र, बरतन ।

विभाजित (स० लि०) जिसका विभाग किया गया हो, जो बांटा गया हो ।

विभाष्य (स० लि०) १ विमल्लताय विभाव करने योग्य ।  
२ विभागाई, जो धन पुर्लोक बीच बांटा जा सके ।

विभाष्य (सं० पु०) श्रुपिमैद् । (महामातृ) विभाष्यक देखो ।

विभाष्यक—१ एक श्रुपि जो श्रुप्यश्रुपिके पिता थे ।  
श्रुप्यश्रुक बेटे ।

२ सहाद्रि-वर्णित राजमैद् । ये भरद्वाज कुन्दीश्रुव और क्विताके भक्त थे । (ध्या० ३१३)

३ सहाद्रि-वर्णित कुन्दीश्रुवर्षक श्रुपिमैद् ।  
(लक्ष्मि० १५२०)

विभाषिक (स० ह्री०) भाष्यय वृक्ष ।

विभाषकी (स० ह्री०) १ भाषकेकी लता । २ नामा पराजिता विष्णुजन्मा लता ।

विभाष (स० लि०) १ प्रभावय । (पु०) २ प्रज्ञापतिमैद् ।

विभाष (स० ह्री०) वि-भा-क । प्रत्यूष, सबैरा ।

विभाषि (हि० पु०) शोभा, सुन्दरता ।

विभाषा (हि० लि०) १ चमकना लक्षकता । २ शोभा वाला शोभित होना ।

विभाषु (स० लि०) यिकाशक, प्रकाशक ।  
(शुक् ५।११२)

विभाव (स० लि०) वि-भावि भव् । १ विविध प्रकारमें प्रकाशवान् । (पु०) २ परित्यज । ३ रत्नके उद्घोषनादि ।

काव्य-नाटकदिमें ओ सामाजिक रति धादि भाषोंके उद्घोषकत्वमें सन्निवेशित होते हैं उन्हें विभाव कहते हैं । जैसे,—रामादि यत् रतिहामनादिको उद्घोषक मोतादि । यह विभाव बालम्बन भी उद्घोषके सेवसे हो प्रकारका है ।

बालम्बन,—नायक, नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका आदिको ही बालम्बन विभाव कहते हैं । क्योंकि इनका बालम्बन करके ही शृङ्गार, वीर, कठणादि रत्नोंका उद्गम होता है । जैसे यर्णतामें भोग कंसादिका साक्षात् वीररत्नका भाषय कह कर उद्घोषय होता है ।

उद्घोषनविभाव,—नायकनायिकोंकी चेष्टा अर्थात् हाथ भाव तथा रूपमूर्त्योदि द्वारा भयबा देश काळ स्त्रु, चम्पन, चन्द्र, कोटिकासाय, ध्रमर शृङ्गार आदिमें जिस शृङ्गारादि रत्नका उद्घोषन होता है, उसका नाम उद्घोषन विभाव है ।

"उद्घोषनविभावोत्ते रत्नोद्घोषयन्ति ये ।  
यत्कम्पन्य येष्ट्या येष्टकादावस्तथा ॥"

(वाग्निपर्व ३।१६० ११२)  
यहाँ जिस जिस रत्नका जो जो विभाव है, नीचे कमा अनुसार वयायव भाषमें उसका उल्लेख किया जाता है ।  
शृङ्गाररत्नमें—दक्षिण, अनुकूल, ध्रुव और गठ नायक तथा परकीया, मननुरागिणी और वैश्यासे भिन्न नायिका 'बालम्बन' है । फिर चन्द्र, चम्पन, ध्रमरशृङ्गार, कोटिकशृङ्गार आदि 'उद्घोषन' विभाव हैं ।

वीररत्नमें,—शक्र, 'बालम्बन' तथा उसका मुद्रियहार, मन्त्रप्रदानपूर्वक पतन, विहलछेदन, विदारण, युद्धमें ध्यप्रता आदि उद्घोषन विभाव हैं ।

वीररत्नमें—विजैतव्यादि बालम्बन तथा इनकी चेष्टा आदि उद्घोषन विभाव हैं ।

\* दानवीर, धर्मवीर, हवावीर और सुदवीरके सेवसे वीर चार प्रकारका है । इनमेंसे दानवीरका विजैतव्य वा बालम्बनविभाव उच्च दानवीर ब्रह्मण्य है अर्थात् जिनको दानदिका बायेगा तथा इन को तापुदा और मन्ववसावादि उद्घोषनविभाव है । धर्मवीरका,—

भयानकरसका,—जिससे भय उत्पन्न होता है, उसे 'आलम्बन' तथा उस मीतिप्रद पदार्थकी विभोपिकादि अर्थात् उसकी अतिभोपणा चेष्टाको ही 'उद्घोषन' विभाव कहने हैं।

बीभत्सरसका,—दुर्गन्धित, मांस, रुधिर, मिष्टा, आदि 'आलम्बन' तथा उन सब द्रव्योंमें किमि आदि होनेसे वह 'उद्घोषन' विभाव है।

अद्भुतरसका,—अलौकिक 'वस्तु' आलम्बन तथा उस वस्तुकी गुणमहिमादि 'उद्घोषन' विभाव है अर्थात् जहा साधारण मनुष्योंके अकृतसाध्य विस्मयकर कार्य दिखाई देगा वहा वह व्यापार आलम्बन तथा उसका गुणावली उद्घोषन विभाव होगी।

हास्यरसका,—जिन सब वस्तुओं वा व्यक्तियोंका अति कदर्यरूप, वाक्य और अद्भुत आदि देखा कर लोगोंको हँसी आती है, वे सब वस्तु वा व्यक्ति 'आलम्बन' तथा वे सब रूप और अद्भुतविकृत्यादि 'उद्घोषन' विभाव है।

करुणरसका,—शोकका विषयीभूत वस्तु अर्थात् जिसके लिये शोक मनाया जाता है, वह 'आलम्बन' है तथा उस शोच्य विषयकी दाहादिका (जैसे मृत आत्माय की मुसूपुं कालीन यन्त्रादि) अवस्था 'उद्घोषन' विभाव है।

शान्तरसका,—नश्यतरत्वप्रयुक्त इन्द्रियभोग्य वस्तुओंको निःसारता (सारराहित्य वा परमात्मस्वरूपत्व) 'आलम्बन' तथा पुण्याश्रम, हरिक्षेत्, नेमिपारण्य आदि रमणीय वन और महापुरुषकी सङ्गति ये सब 'उद्घोषन' विभाव हैं।

विभावक ( सं० त्रि० ) वि-भू ष्णुल् ( तमुनण्डुलो क्रियावां । पा ३।४।१० ) क्रियार्थमिति ष्णुल् । चिन्तक, चिन्ता करनेवाला ।

धर्म ही 'आलम्बन' है तथा धर्मशास्त्रादि उसका 'उद्घोषन' विभाव है। दयावीरका—अनुकम्पनीय अर्थात् दयाका पात्र, 'आलम्बन' तथा दीने अर्थात् दानिदि की कातरौकि आदि उद्घोषन विभाव है। युद्धवीरका—विजेतव्य अर्थात् पूर्वद्वन्द्वी व्यक्ति 'आलम्बन' तथा उसकी स्पर्धादि 'उद्घोषन' विभाव है।

विभावत्व ( सं० क्लो० ) विभावका भाव ।

विभावन ( सं० त्रि० ) प्रकाशक, विक्राशशील ।

विभावन ( सं० क्लो० ) वि भावि ल्युट् । १ विचिन्तन, विशेषरूपसे चिन्तन । विभावयति कारण विना कार्योत्पत्तिं चिन्तयति पण्डितमिति, वि भावि ल्यु युच् वा । २ अलङ्कारविशेष । विना कारणके जहां कार्योत्पत्ति होती है, वहां उसे विभावना बलद्वारा कहने हैं। यह उक्त और अनुक्तके भेदमें दो प्रकारका है । ३ पालन । विभावना ( सं० त्रि० ) वि भावि, युच् टाप् । अलङ्कारविशेष । इसमें कारणके विना कार्योकी उत्पत्ति या अपूर्ण कारणसे कार्योकी उत्पत्ति या प्रतिबन्ध होने हुए भी कार्योकी सिद्धि वा जित्म कार्योका कारण नहीं हुआ करता, उससे उस कार्योकी उत्पत्ति अथवा विरुद्ध कारणसे किसी कार्योकी उत्पत्ति या फायसे कारणको उत्पत्ति दिखाई जाती है।

विभावनीय ( सं० त्रि० ) भावना या चिन्ता करने योग्य ।  
 विभावरी ( सं० स्त्री० ) १ रात्रि, रात । २ हरिद्रा, हल्दी । ३ कुट्टनी, कुट्ट, दंतो । ४ चक्र स्त्री, टेढ़ी चालकी स्त्री । ५ मुखरा स्त्री, बहुत बड़बड़ करनेवाली स्त्री । ६ विवाद्-वस्त्रीमुण्डी । ७ मेदाशुभ्र । ८ यह रात जित्ममें तारे चमकने हों । ९ मन्दार नामक विद्याधरकी एक कन्या । ( मार्कण्डेयपु० ६।३।१४ ) १० प्रचेतसकी नगरीका नाम ।  
 विभाधरीयुग ( सं० क्लो० ) हरिद्रा और द्वाकहरिद्रा ।  
 विभाधरीश ( सं० पु० ) चन्द्रमा, निशापति ।  
 विभाधसु ( सं० त्रि० ) १ शिवा या ज्योतिःविशिष्ट, अधिक प्रभावाला । ( ऋक् ३।२।२ ) ( पु० ) विभा प्रभा एव वस्तुसंमृद्धिर्यस्य । २ सूय । ( भात १।७।८६ ) ३ अर्क-वृक्ष, आकका पौधा । ४ दन्ति, आग । ५ चित्रकवृक्ष, चीता । ६ चन्द्रमा । ७ एक प्रकारका हार । ८ वसुपुत्रभेद । ( भागवत ६।६।१० ) ९ सुरासुरपुत्र । ( भागवत १०।५।१।२२ ) १० दनुके पुत्र असुरभेद । ( भागवत ६।६।२० ) ११ नरक-पुत्रभेद । १२ ऋषिभेद । ( महाभारत ) १३ एक गन्धर्व जिसने गायत्रीसे वह सोम छीना था जिसे वह देवताओंके लिये ले जा रही थी । १४ गजपुरके एक राजा । ( कथावर्ति )  
 विभाघित ( सं० त्रि० ) १ दृष्ट, देखा हुआ । २ अनुभूत, अनुभव किया हुआ । ३ विचिन्तित विचारा हुआ ।

४ विधेयवत्, सोचा हुआ । ५ प्रसिद्ध, मशहूर, प्रतिष्ठित ।

विभाषिन् ( स० लि० ) १ चिन्तायुक्त । २ अनुभवकारी ।

विभाष्य (सं० लि०) १ विचिन्त्य । २ विदेष्य । ३ गम्भीर ।

४ विचारणोप ।

विभाषा (सं० स्त्री०) विचक्ष्यत्वेन भास्यते इति, वि भाष्य (पुरोश्च इङ्) । पा १।१।१०३ तत्तद्यत् । १ विकल्प्य ।

पाणिनिक मतसे विभाषाका लक्षण इस प्रकार है,—

“न वेति विभाषा” भेतिप्रतिषेधो वेति विकल्प्य पत तुमर्पं विभाषासंबं स्यात् ।” ( पा १।१।५४ )

“न वा शब्दस्य योऽयस्तस्य स हा भवतीति वक्तव्यम् ।” (महाभाष्य)

‘तत्र भोके क्रियापदसम्निधाने नवाशब्दयोर्विधेयोत्पत्त्यो विकल्प्यप्रतिषेधलक्षणः स संज्ञीत्यधः ।’

( इष्यत् )

अहाँ न (नियेध अर्थात् नहीं होगा) और वा ( विकल्प्य में अर्थात् एक बार होगा ) इन दोनों शब्दोंका अर्थ एक समय बोध होगा, वहीं पर विभाषा संज्ञा होगी । इस पर प्रश्न हो कर सञ्ज्ञा कि—अहाँ नियेध किया गया कि, ‘नहीं’ होगा वहाँ फिर किस प्रकारसे कहा जा सकता है, एक बार होगा । महर्षि पतञ्जलिने भी महाभाष्यमें इसको व्याख्याकी जगह इस साधर्म्यमें क्षर्पं प्रश्न कर इसको मोमांसा की है—

“किं कारणं प्रतिषेधसंज्ञाकरणत् । प्रतिषेधस्य इत्वं संज्ञा क्रियते । तत्र विभाषापदत्रेपु प्रतिषेधस्त्वय संश्रयवः स्यात् । निरुत्तु प्रसम्प्यप्रतिषेधात् । सिद्धमेतत् । अर्थ, प्रसम्प्यप्रतिषेधात् ।”

यदा नियेधको स हा करनेका प्रयोजन क्या है ? यदि नियेधकी स हा का ज्ञाप, तो विभाषापदत्रेपमें अर्थात् न और वा इन दोनोंके अयममादेशस्वरूपमें एकमात्र प्रतिषेधकी ही सम्प्राप्ति होती है ।

अगवान् पतञ्जलिने इस प्रकार प्रश्नको मञ्जून करके ‘सिद्ध तु’ ‘सिद्ध होता है’ ऐसा कह कर स्वर्ण मोमांसा की है कि “प्रसम्प्यप्रतिषेधात्” अर्थात् इस ‘न’ की नियेध शक्तिका प्राधान्य नहीं है, अतएव इस ‘न’ के द्वारा एकत्र नहीं होगा ऐसा अर्थ हो नहीं सकता अर्थात् किमा किसी

स्थानमें होनेसे भी क्षति नहीं होगी । इसलिये इस ‘न’के अर्थ द्वारा भी वहीं कहीं होनेकी विधि स्थिर हुई । अस्तु यह साबित हुआ, कि अहाँ एक बार विधि और एक बार नियेध समका ज्ञापेगा वही विभाषा संज्ञा होगी ।

व्याकरणके जिन सब सूत्रोंमें ‘वा’ निर्देश है वे विभाषा संज्ञक सूत्र ही अर्थात् उनका कार्य एक बार होगा और एक बार नहीं । इस विभाषाके सम्बन्धमें व्याकरणमें कुछ नियम लिखे हैं, संक्षेपमें उनका उल्लेख नाथे किया जाता है,—“प्रयोर्विभाषयोमध्ये विधिर्मिलत्वा” वो विभाषाके मध्य जो सब विधियाँ हैं वे मिले हों गी अर्थात् १ म और ५ म इन दो सूत्रोंमें यदि ‘व’ हाश्च व्यवहृत होता हो, तो २५ ३५ और ४५ सूत्रका कार्य निकल्पमें न हो कर नित्य ही होगा । ( व्याकरणक शासकानुसार इन योड़े सूत्रोंका कार्य भी विकल्पमें होनेका कारण था बड़ शक्ति मयस बनका विवरण नहीं दिया गया ) । या द्वय पदसर्व सन्धि यादि स्थानोंमें वो विकल्पसूत्रका प्राप्ति होनेस तान तान करके पद हागे । और एक सूत्रमें लिखा है,—

अरुणके पीछे रहनेसे जो सव्यक ‘भो’ कारका जगह विकल्पमें भव’ होगा । फिर एक सूत्रमें है,— ‘व’ कारक पाठे रहनेसे शोशब्दको सन्धि विकल्पमें होती है । अतएव गो + अम का जगह पूर्ण सूत्रानुसार गो + अम = + ग् अम + अम = गमाम । श्रेय सूत्रानुसार ‘सन्धि विकल्पमें होगी’ इस कारण विभाषाक मध्यमानुसार स्पष्ट जाना जाता है, कि एक जगह सन्धिके नियेध रहेगा अतएव वहाँ ‘गो अम’ ऐसा ही रहा । अतः यह विचारनेकी बात है, कि अस्तिम सूत्रके विकल्प पक्षका सन्धि पूर्वसूत्रानुसार ‘अम’ का आदेश का जा सकती है, किन्तु इस सूत्रमें जो फिर ‘वा’ का निर्देश करनेके कारण उनके प्रति पक्षमें एक और किसीकी व्यवस्था नहीं करनेस हम सूत्रका ‘वा’ निर्देश एकत्रम अर्थ होता है । अतएव ‘प’कार अथवा ‘भो’ कारके बाद ‘भो’कार रहनेसे उसका अर्थ होगा इस साधारण सूत्रक द्वारा ‘भो’कारक परस्थित अकारका भोप करके ‘भोऽम’ ऐसा एक पद बनेगा । अतएव सूत्रमें जो ‘वा’ रहनेस ३ पद हुए । दूसरो जगह जो इसी प्रकार जानना हागा । विभाषा जन्म हाग सन्धिसम्बन्धमें एक और नियम प्रबलित है ।



वह यह है, कि धातुके साथ उपसर्गका योग तथा समास एकपदस्थलमें नित्य इसके सिवा अन्यत्र विकल्पमें सन्धि होगी।

क्रमशः उदाहरण—

'प्र-अन्-अच् = प्राणः, नि-इ ( वा अय) -अञ् = नि-आय अञ् = न्यायः। 'ब्रह्मा च अच्युतश्च = ब्रह्माच्युता' 'ब्रह्मा तथा अच्युत = ब्रह्मा + अच्युतः = ब्रह्माच्युतः। अन्क्—क्त = अन् क् (इट्) क् = अङ्कित, दन्म-अच् = दन्म-अ = दन्मः। प्र-अन्, नि + आय (धातु और उपसर्गका योग), ब्रह्मा + अच्युत (समास) ; दन् + भ् अन् + क् ( एकपद अर्थात् एक दन्म और 'अन्क्' धातु ) इन सब स्थानोंमें नित्य ही सन्धि होगी। अर्थात् सन्धि न हो कर अविकल ऐसे भावमें कुछ नहीं रह सकता, परन्तु समास स्थलमें वक्ता इच्छा करके यदि समास न करे, तो 'ब्रह्मा अच्युतके साथ जाते हैं' ऐसे भावमें सन्निकर्ण होनेसे ही सन्धि होगी सो नहीं। घातूपसर्ग और प्रकृति प्रत्ययके सम्बन्धमें भी प्रायः एक ही तरह जानना होगा अर्थात् कर्ता यदि पद प्रस्तुत करनेके अभिप्रायसे उनका योग करे, तो नित्य सन्धि होगी। अन् + क् = अङ्क, दन्म + च = दन्म च इत्यादि स्थानोंमें प्रत्ययके साथ याग होनेके पहले ही एक पदमें नित्य सन्धि होती है।

२ संस्कृत नाटकमें व्यवहृत प्राकृत भाषा। जाकरी, चाण्डाली, शावरी, आभीरी, जाककी आदि विभाषा हैं।  
३ बौद्धशास्त्रग्रन्थभेद।

विभाम ( स० पु० ) तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार सप्त षिंयो' मसे एक। २ देवयानिभेद। ( मार्क० पु० ८०।७ ) ३ रागका भेद। यह सवेरेके समय गाया जाता है। इसे कुछ लोग मैख रागका ही भेद मानते हैं। ४ तेज, चमक।

विभासक ( स० त्रि० ) १ प्रकाशयुक्त, चमकनेवाला।  
२ प्रकाशित करनेवाला, जाहिर करनेवाला।

विभासिका ( स० त्रि० ) चमकनेवाली।

विभासित ( स० त्रि० ) १ प्रकाशित, चमकता हुआ।  
२ प्रकट, जाहिर।

विभास्कर ( स० त्रि० ) दीप्तिहीन, सूर्यालोकरहित।

विभास्वन् ( स० त्रि० ) अति उज्ज्वल।

विभित्ति ( स० स्त्री० ) वि-भिद्-क्तिन्। विभेद, विचाट।  
( काठक ११।५ )

विभिन्दु ( स० त्रि० ) १ विशेषरूपसे भेदक, सर्वभेदकारी।  
२ विम्यात। ( ऋक् ६।११।२० वायण ) ३ ऋग्वेदाक्त राज-भेद। ये राजा थे। ( ऋक् ८।१।५२ )

विभिन्दुक ( स० पु० ) असुरभेद।

( पञ्चविंशत्तम १।१।२०।१२ )

विभिन्न ( स० त्रि० ) १ कटा हुआ, काट कर अलग किया हुआ। २ पृथक्, जुदा। ३ अनेक प्रकारका, कई तरहका।  
४ निराग, इत्याग। ५ औरका और किया हुआ, उलटा।

विभिन्नता ( स० स्त्री० ) पार्श्वय, भेद।

विभिन्नदर्शी ( स० त्रि० ) भिन्नदर्शी, पृथक् पृथक् देखनेवाला। ( मार्क० पु० २३।३८ )

विभी ( स० त्रि० ) विगतभय, निर्भीक।

विभीत ( स० पु० ) १ विभीतक, वहेंडा। ( त्रि० )  
२ डरा हुआ।

विभीतक ( स० पु० ) विशेषण भीत इव-स्वार्थे पन्।  
वहेडेका वृक्ष। संस्कृत पर्याय—अक्ष, नूय, रूप फल, भूतवास, कलिद्रूम, कल्पवृक्ष, संवर्त्त, तैलफल, भूतावास, संवर्त्तक, वासन्त, कलिपृक्ष, वहेडक, हाय्या, विपन्न, अनिलप्र, कासप्र।

वैज्ञानिक नाम—Ferminalia balerica और अद्द-रेजी नाम—Belleric Myrobalan है। यह वृक्ष भारत-वर्षके प्रायः सर्वत्र समतल प्रान्तरोंमें और पहाडाइके पाठदेशमें उत्पन्न होता है। पश्चिमकी ऊसर भूमिमें यह वृक्ष अधिक नहीं होता। लट्ठा और मलका द्वीपों में भी इस जातिके वृक्ष पर्याप्त हैं। सिवा इमके मागगुरे, सिंहल, यवद्वीप और मलय द्वीपमें इसका दूसरी तरहका एक वृक्ष दिखाई देता है। इसके फलके तथा भारतके वहेडेमें केवल सामान्य प्रभेद है।

भारतके नाना स्थलोंमें विभीतक ( वहेडा ) विभिन्न नामोंसे परिचित है। हिन्दीमें—भैरा, वहेडा, वहेरा, मेरा, भैराह, सगोना, भर्ला, बुल्ला, बहुरा, वड्ढभाषामें—वहेडा, वहेरा, वहेरि, बहिरा, भैरा, बहुर, वेहेरा, बहुरा, वहोडा, वयडा ; कोल-बोलामें—लिहुद्द, लुपुद्द, सन्ताल-बोलो-में—लोपद्द, उडिया-भाषामें—भारा, वहोडा, वधघा ;

असामो—हुम्ल, बीरो, गारो—खिरोटी; खेप्वा—कालोम्,  
 मधमायामे—सधेङ्ग; मोल—वेहेङ्गा, मध्यप्रदेश—बहरा,  
 विहरा, मैरा, बहेङ्गा बहरा, डोयाएडी, गोएङ—तबक,  
 तबकबोर, युक्तप्रदेश—बहेङ्गा, बुइडा, बेहाडिया, पञ्जाब—  
 बहिङ्गा, बहेङ्गा, मोरहा बहेङ्गा, बयङ्गा, वेहेङ्गा; मारवाड—  
 बहेङ्गा; दैरावाद—बहेङ्गा, जेरा; सिन्धु—बयङ्गा; बाहि  
 पाएव—बहङ्गा, बहङ्गा बहरा, बतरा, बेर्या, बुल्ला,  
 मेरहा बेहला, बम्बई प्रांत—बहेङ्गा, बहङ्गा, बेहेङ्गा, बेहङ्गा,  
 मेर्या, बेहेरो, बहरा, मैरा, मेर्या; बङ्गाल—बेङ्ग, ईस,  
 गोतिङ्ग, पेङ्ग; महाराष्ट्र—मेर्या, वेहेङ्गा बटेरा, बेङ्गा,  
 गोतिङ्ग बेहाई, विहसा, सगवान, बेङ्गा, वेसा, बेर्या, वेहेस  
 बेहङ्गा; गुजरात प्रांत (गुजरात)—सान, बेहसा वेहेङ्गा  
 बेहेङ्गा; तामिळ—तनी, यनी, कट्टयलुपुव, तानकाय,  
 ताएङ, तोरहा, वेट्टुएङ्ग, तमकी, तानिकी, तानिकाएया,  
 कट्टु-एङ्ग, बहई-मर्द, तनिकोई, कट्टु एङ्गुपी; मेरुगु—  
 तनी लपडी, तोयाएडी, आनद्रा, आना, आनी, तबो, तोएङ  
 कट्टु, उरुपी, तान्द्राकाय, आनङ्गो, आएडी, वडमहा,  
 बहवा, बहङ्गा; कर्नाट—शान्ति, तारे, तनिकाएरो, तारि  
 कारी, मेर्या बेहेङ्गा तरो, मङ्गवाळम्—मनी, तानी;  
 मद्रास—पित्तिसिन्, टिछिसिन्, बनका, फानकासी,  
 फानांसे, फांगाह, पनगन्, क्कोर, सिंहली—बल्लु,  
 बुल्लुगाह; भरपो—बतिलङ्ग, बेडेयलुग, बलिङ्गाङ्ग  
 फारसो—बहेना, बेङ्गाबसेङ्ग, बहिङ्गाह।

इसका वृक्ष पश्चिमिमें भाप हो भाप उत्पन्न होता है। बाजियन्सके लिये फित्तै ही लोग इसकी खेती भी करते हैं। इसके पृष्ठीकी साधारण आकृति बड़ी सुन्दर है। यह मूलमें थोड़ी दूर तक सोपा भा कर पीछे शाखा प्रगाढाभोमें विभक्त होता है। देखनेसे मालूम होता है, यानो एक बड़ा छाता यहां छाया बिस्तार करनक लिये ही रखा गया है। शिवास्तिक शैल पर, पेगाबरमें, सिन्धुमण्डके किनारैकी भूमिमें, कोयम्बतूर और बलियाक मङ्गलमें बहुतक हो हजार फीट ऊंचे शैल स्तबकमें और ग्वासपाटा सुजलगर, गोरकपुर, धामतोला और मोरङ्ग शैलमालामें बहेङ्गेके वृक्ष बहुतायतसे देखे जाते हैं। इसके पत्ते फन काष्ठ (सकड़ी) और निर्वास मनुष्यके लिये विशेष उपकारा हैं।

इसका बहकम टपस देनेसे जो निर्वास निकलता है वह गौंव (Gum Arabic)की तरह गुणविशिष्ट होता है। यह सहजमें ही पानीमें घुल जाता है और इसमें अम्लिका संयोग कर देने पर यह प्रयोजित हो सकता है। किन्तु इसमें विशेष कई गुण नहीं निकलते हैं। फार्माकोप्राफिका इतिहासक रचयिताका कहना है, कि वसैरैके गौंवकी तरह ही यह है। अनेक समयमें यह वैरी गौंवकी तरह बिकता है। कोकशातिके कुछ भावभी इसे खाते भी हैं। यह सम्पूर्णरूपसे नहीं गलता और इसमें टाओलेटाइति Calcium Oxalateके दाने Sphaerocrystals और विभिन्न दानेश्वर न्यून पाये जाते हैं।

इरीतकी (इरें)की तरह इसका स्वाद भी कपाय है। इसलिये अधिक परिमाणसे इसकी टपसनी घृष्टीमें होती है। भारतमें भी बमङ्गा साफ करने और रंग गाढा करनेक लिये इसका बहुत प्रचार दिखाई देता है। यह बहेङ्गा साधारणता ही प्रकारका होता है—१ गीसा कार, ब्यास ३ या ४ इञ्च; २ अपेक्षाकृत बड़ा डिम्बा कार और सुइ पर कुछ चिपटा है। फल बिच्छकुल गोल होता है, किन्तु सूखने पर इसको पीठ पर सिङ्गुबन पड जाता है। इसका बीज या गुठली पञ्चकाभा होती है। इस गुठलीको फोड़नेसे जो गूँधी निकलती है, वह मोटा और तैलाक होती है। बमङ्गेके सिबा कपड़े रंगनेमें भी इसका खूब व्यवहार किया जाता है। इसारोबागम डैग जिस प्रथाकोसे बहेङ्ग स कपड़े रंगते हैं नीचे इस का उल्लेख किया जाता है—

एक गज कपड़ेके लिये १ पाव बहेङ्गा ला कर उस फाड़ डाले, उससे गुठली बादि निकाल कर उस घूना को एक सेर पानीमें भिगावे और उसमें १ तोला कन्द्यज सनारकी छाछ मिला कर एक रात तक इन्हीं इसी तरह सकमें छोड देने पर दूसरे दिन उसको उपयु परि तान बार भाब पर चढ़ा कर भीट द। उण्टे होने पर मोटे कपड़ेसे छान ले। इसके बाद जो कपडा र गना हो, उसको पहले सकमें कोब कर घुसा लेना चाहिये। कपडा जब कपसुखा हो जाये, तब उसे कन्द्य एक पावमें एक तोला फिरफिरा मिले हुए सकमें बुका

दे। पीछे कपड़े का जल निचोड़ कर फिर रंगवाले पात्र-में डाल देना चाहिये। यहाँ उसे अच्छी तरह भीजने देना चाहिये। जब खूब रंग लग जाये, तब उसको अच्छी तरह फीचना चाहिये जिससे रंग सर्वत्र समानरूपसे लग जाये। यदि रंग गाढ़ा हो, तो कपड़े को धूपमें सुखा लेना उचित है। कपड़े सूख जाने पर फिर उसे साफ जलमें दो या तीन धार फीच लेना चाहिये, जिससे उससे रंगकी दुर्गन्ध निकल जाये। उस कपड़े का रंग फीका हल्दीका (Snuffy yellow) होगा।

प्राचीन वैद्यक ग्रन्थमें वहेडे का भेषजगुण वर्णित है। हरीतकी (T. Chebula), आमलकी (Phyllanthus Emblica) और वहेडा (T. belerica) इन तीनोंसे त्रिफला तय्यार होता है। यह त्रिफला वायु, पित्त और कफदोषनाशक है। वहेडे का छिलका सङ्कोचक और भेदक है। यह सर्दी, खासी या खरभङ्ग और आँखके रोगमें विशेष उपकारी है।

बीजका गूदा मादक और रोधक है। जले हुए स्थान-में गूदा पीस कर लेप करनेसे बहुत उपकार होता है। हकीमी मतमें यह बलवर्द्धक, सङ्कोचक, पाचक, कोमल और मृदुविरचक है। आँखमें दाह या जलन पैदा होने पर विशेषतः चक्षु रोगमें मधुके साथ लगाने पर यह बहुत उपकार करता है। अरबों लोग भारत वासियोंसे इसका गुण सीख कर पश्चिम यूरोपमें इसका प्रयोग करते हैं। इसीलिये प्राचीन यूनानी और लैटिन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख दिखाई देता। पिछले चिकित्सक भी इसके गुणको भुला न सके हैं और इसका खूब व्यवहार किया।

वर्तमान समयमें देशी लोग इसके हकीमी या वैद्यक प्रयोगसे प्रायः ही अचगत हैं और आवश्यकताके अनुसार रोगविशेषमें त्रिफलाका प्रयोग कर बड़ा लाभ उठा रहे हैं। जलोदरी, अर्श, कुष्ठ और अजीर्ण रोगमें तथा उबरेमें यह फलदायक है। इसका कच्चा फल भेदक और पका फल रोधक है। इसका बीजतैल बालमें लगाने पर बहुत उपकार होता है। इसका गोद भेदक और स्निग्धकारक है। कौकणवासी पान और सुपारक साथ इसके बीजकी गूदी और भल्लातकका

कुछ अंश भी खाने हैं। इसमें अग्निमान्य दूर होता है।

कच्चा फल इकरी, भेडा, गाय, हरित और बन्दर आदि जानवर खाने दे। बीजके अन्दर जो वाटाम या गुठली रहती है, उसे लोग खाते हैं। बड़े बड़ेको गूदी अधिक परिमाणमें खाने पर नशा होता है। पर्याप्त इसमें मादकता भी है। मालव-भील-सेना दलके मरु पम्पिण्ट सर्जन मिष्टर राड्केने लिखा है, कि एक दिन तीन बालकोंने वहेडेके बाजका गूदा खाया, उन्में दो तो उन्ही दिन नशामें चुर हो कर झूमने और गिरकें दृष्टिसे छटपटाने लगे। पीछे के दोनेके बाद चित्तग्रान्त हुआ और पीडा दूर हुई। तीसरे बालकके पहले दिन कुछ पीडा न हुई, किन्तु दूसरे दिन वह हलचलन हो गया और उन्का शरीर उण्डा हो गया। उसी समय उन्को की बानेकी दवा और गर्म चाय पीनेकी दो गयी। तब क्रमशः आरोग्यके लक्षण दिखाई देने लगे और क्रमशः उसे चैतन्यता आने लगी। किन्तु उन् दिन नशेमें मत्त हो कर दिन भर मोता रखा और गिर दृष्टि शिकायत करता रहा। इसके दूसरे दिन भी उसको नाडीकी गति ठीक नहीं हुई। पीछे उसने आरोग्यलाभ किया। डाक्टर राड्केका कहना है, कि Stomach-pump व्यवहार न करनेसे विषके प्रयोगसे उन् बालककी मृत्यु हो जाती। डाक्टर चार्टन ब्राउनका कहना है, कि बाजका मद्य तय्यार करनेवाले हरितकी, आमलकी या वहेडा मद्यमें मिला कर बेचने हैं और कभी कभी इससे विशेष कुफल भी होता दिखाई देता है। डाइमक, हुपार और चार्टनने विशेष परीक्षा कर देखा है, कि बीजकी गूदीमें कोई मादक पदार्थ नहीं है। कागडा जिलेके अधिवासी इनके पत्ने गाय आदिके खिलाते हैं।

इसकी लकडाका रूद्र हरिटाभ धूमर और मजबूत होता है लेकिन अन्तःनारगुण्य है आर्कतमें कुछ अंशमें *Ougeima dalbergioides* वृक्षकी तरह ही है और प्रति घनफीटका वजन ३६से ४३ पाउण्ड है। यह काष्ठ बहुत दिन तक नहीं टिक सकता, इसमें बहुत जल्द ही कीड़े लग जाने हैं। इससे जनसमाजमें कोई इसका आदर नहीं करता। इसकी लकडा पाटातन करने, पैकिङ्ग वाकस करने या नौका बनानेके काममें आती है। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें

इसका लक्षणा जलमें बुका कर रखने हैं, एक ज्ञानेके बाद पीछे इससे दवाका भादि तप्यार करते हैं। मध्यप्रदेशमें अब योजगाल्य मरुद्वीका अभाव रहना है, तब वहाँके बायमा इसी मरुद्वीकम इस और जुमाडा तप्यार करते हैं। इतिहास भारतमें हममें पेकिङ्गु पक्कम, पाय वा कापोक पक्कम बेडा (Catamama) और मापवाक मैपार होते हैं।

बहुत दिनोंमें आर्प्समात्रमें बड़ेके प्रचलन है। वैदिक आधिगण इस मरुद्वीका बना पागा व्यवहार करते थे। मामूम होता है, कि इस मरुद्वीका बना पागा हाइक बन पारोमें रोसमें सुखान यइना था। ख्येइ महिनाके १० मरदलक ३३ सूतमें वृत्कार और अइका कणम है—

“भाय वा मां इहो मारुचनि प्रसक्तवा हरिरे वृत्तानाः ।

शामस्वेव मीश्वतस्व भक्तो विमोदको बाएरिमसमप्यन ॥”

(सूत्र १०।३।५।१)

‘युहो गहतो विमोतकस्य कमस्येन सम्मन्थिना प्रतातेत्रा प्रथेव इतो ज्ञाना इरिज मान्तारे ऋपुताता। प्रसक्तमाना प्रायेवाः प्रथेविजः क्यमनगोला अइता मा मां माइयन्ति हर्षवन्ति क्रिअ आगुविअं यपराअयपोहर्षं ओकाय्वां चित्तवानां प्रागण्यस्य कर्त्ता विमोदका विमो तर्कविकारोऽशो मरा मामप्यन माअइत् ।’ (शरथ्य)

इसक फलक रसमें कमीस वा हीरावस मिता हैमस जिअनेको मध्यो स्थाइो तप्यार हानी है। बीजका नेम कंजामुअका दृढ़ करता तथा बेडाका बढ़ाता है। चीनो मारु वरनेमें इसकी मरुद्वीकी रास माअवतपाइी जिअक सीग व्यवहार करते हैं। इसक पतक कायमें मसई (Rosnellia sermta) वृत्तक लक्षणा ५३ महोने मिआ कर रखनेस बह एना दृढ़ हो जाता है, कि बह शोअ अम वा कोअइमें अरत नहो होना। इस सबरसे रस बिछानेवाका ‘होवेर’ वा परदेका नाम मो इसम सिवा जाता है। इसके वृत्त एलेकी तरह छायाहार होमर्न रान्तकी दोनों बगरीमें मयाव जाने हैं। उत्तर भारतके साधारण हिन्दुओंका विश्वास है, कि यह इस मुनयोनिवा माशाम रुचन है। इनींसिदे ये रिक समय मो इसके नाये बेदेनेका माहम नहो करते। मध्य और इतिहास भारतके लोगोंका विश्वास है, कि यह

यूअ दुर्भाग्य बढ़ा कर देनेयस्ता है और जो आत्मी घरमें इसको लकड़ोकी क्रियाहो वा बिइकियां बनवा कर लगवाते हैं, इनके कुन आत्मानमें कोई बिराग बसो करनेवासा मो पही रह जाता।

कासिकसे यौव महोन तक इसका फल अच्छा तरह पक जाता है और बाजारमें बिकने लगता है। मामूम, इजातोबाग भादि पायैस्य प्रयेगोमें इसका मूल्य १) उपयै तथा यहमाम अइलमें ५) रुपये मन है। इतोतरीका मूल्य इसको अयेला दृढ़त अधिक है। रासायनिक पराअा द्वारा इस फल और इसके बीजके पारमाणयिक पदार्थ ममअिकी जो सूची निकली है, यह साधारणका ज्ञानकारोके लिये मोचे वा जाता है—

पदार्थ	पइलक	बीजकाय
अलोयोअ	८००	११३८
मसम	४२८	४३८
पेट्रोसियम इधर एकप्राकृ	१९	२६८२
इधर	४१	११
इसकोइसीय	६४९	११
अलोय	३८५६	२५२६

इक फलसबअुं अर्ण (Colouring matter), गोंइ (Resin), गार्सिक एमिअ और तेन मिनता है। इनके एकप्राकृतसे जो पेट्रोसियम इधर अयवम हाता है पद सइअ रंग मिले दूध पीजे तेमस सइअ हो अनुभूत होता है। एमकोइसीय एकप्राकृ इरिद्रायर्ण, मगूर, धारक और कणा अइमें द्रव होता है। असीय वा Aqueous Extract और अर्ण परिष्कार करनकी अलिक (Ladum) परि मसिन होता है। बीजकी गूनीमें जो तेल मिनता है उसमें माया ३० अअ अश रसवत् पदार्थ विद्यमान है। बह चिरेते पर ऊपरमें अरा सअअ रंगहा तेन और तईम बांदा तरह गादा सकेत् पदार्थ पाया जाता है। यह साधारणता बीजके रुपमें व्यवहृत होता है। बीजका तेन बायम तेनकी तरह पतका है। उसमें फाका पोले रंगका जो पेट्रोसियम इधर एकप्राकृत पाया जाता है यह सइअ हो नहो सूक्ष्ता वा एमकाइममें द्रव नहो होता। किन्तु एमकाइमिक एकप्राकृ अय अमम द्रव हो जाता है। इनमें अमको प्रतिक्रिया विद्यमान रहना है। सातुन-बोनी वा क्षारका विन्दुमाअ निर्द्रीन वा आवाइ नहो है।

गुण—फट्ट, तिक, कपाय, उष्ण, कफनाशक, आंखकी रोगजी बहानेवाला, पलितघ्न, विपाकमें मधुर। इसका मञ्जुन गुण—तृष्णा, सर्दी, कफ और वातनाशक, मधुर, मदकारक। इसके तेलका गुण—खाट्ट, शीतल, केश-वर्द्धक, गुरु, पित्त और वायुनाशक। ( राजनि० )

विभीतिक (स० पु०) विभीतक, बहेडा।

विभीषक (स० त्रि०) भयानक, डरानेवाला।

विभीषण (स० पु०) विभीषयतीति विभीषि (नन्दि ग्रहपचीति। पा ३।१।३४) इति ल्यु। १ नलतृण, नरमल-का पीधा। (त्रि०) २ भयानक, डरानेवाला। "इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणः" (ऋक् ५।३।४६) 'विभीषणः भयजनकः'। (षायण)

(पु०) ३ लङ्कापति रावणका कनिष्ठ भ्राता और भगवान् रामचन्द्रका परम मित्र, सुमाली राक्षसका दौहित्र। विश्रवा मुनिके औरस और कैकसी राक्षसीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था।

एक दिन सुमालीने पुष्पकरथ पर विराजमान कुवेर-को देख कर वैसा ही दौहित्रप्राप्तिकी आशासे गुणवती कन्या कैकसीको विश्रवाके पास भेज दिया। ध्यानस्थ विश्रवाने कैकसीको समीप आते देख उसका मनोगत भाव समझ कर कहा, "इम दारुण समयमें तुम आई हो, अतएव इस समय तुम्हारे गर्भसे दारुण राक्षस ही जन्म लेंगे।" उस समय कैकसीने सानुमय प्रार्थना की, 'प्रभो! मैं ऐसे पुत्र नहीं चाहती। मेरे प्रति आप प्रमन्न हों।' इस पर ऋषिने सन्तुष्ट हो कर कहा, 'मेरी बात अन्यथा होनेवाली नहीं। जो हो, तुम्हारे गर्भसे जो अन्तिम पुत्र होगा वह मेरे आशीर्वादसे मेरे वंशानुरूप और परम धार्मिक होगा।' ऋषिके आशीर्वादके फलस्वरूप विभीषण ही अन्तिम पुत्र हुए।

विभीषणने भी रावण और कुम्भकर्णके साथ एक सक्षय्यर्ष तपस्या की थी। ब्रह्मा जब वर देनेके लिये गये तब विभीषणने उनसे प्रार्थना की, "विपद्में भी मेरी धर्ममें मति हो। नित्य ब्रह्मचिन्ता हृदयमें स्फुरित हो।" ब्रह्माने वर दिये, "राक्षसयोनिमें जन्म लेने पर भी जब अधर्ममें तुम्हारी मति नहीं है तब मेरे वरसे तुम अमरत्व लाभ करोगे।" इस तरह ब्रह्माके वरसे विभीषण अमर हुए।

वरलाभके बाद रावणके साथ विभीषण भी लङ्का-पुरीमें आये। गन्धर्वाधिपति शौल्यकी कन्या सरमाके साथ उनका विवाह हुआ।

सीता हरण कर जब रावण लङ्कामें लौटा तब रावण-के-इस आचरणसे धार्मिक विभीषणका प्राण व्यथित हुआ। सती साध्वी सीताकी परिचर्याका भार प्रिय पत्नी सरमा पर उन्होंने दिया था। इसके बाद सीताकी खोजमें हनुमान् लङ्कामें उपस्थित हुए। हनुमान्क रावण-के प्रति निन्दावाद और रामचन्द्रकी बड़ाई सुन कर रावण-को बड़ा क्रोध आया। और तो क्या, उमने हनुमान्को मार डालनेकी आछा दे दी। इस समय विभीषणने ही नीतिविरुद्ध दूतवशको गद्दित कार्य बता कर रावणको शात किया। इसके बाद जब विभीषणने सुना कि भगवान् रामचन्द्र सैन्य ले कर आ रहे हैं, तब उन्होंने रावणसे सीताको पुनः रामचन्द्रकी पास लौटा देनेके लिये कई सौ वार अनुरोध किया, किन्तु रावणने उनकी एक भी न सुनी। उल्टे विभीषणकी पुनः पुनः हितकथासे विकल हो कर रावणने उनसे कहा था—'विभीषण! मेरा पेश्वर्य तथा यश तुमसे देना नहीं जाता। रे कुलकलङ्क! तुमको वार वार धिक्कार है।' इस तरह उसने तिरस्कार कर उनको अपने यहाँसे निकाल दिया।

विभीषण बहुत धीर, फिर भी परम धार्मिक थे। उन्होंने समझ लिया था कि रावण जिस तरह पाप कार्यमें लिप्त हो रहा है उससे उसकी वचनेकी आशा नहीं। उन्होंने इस तरह तिरस्कृत हो कर चार राक्षसोंके साथ राजधानी परित्याग की। धर्मरक्षाके लिये उन्होंने आत्मोप-स्वजनोके प्रति जरा दृष्टिपात भी नहीं किया। इस समय भगवान् रामचन्द्र समुद्रके उस पार वानर सैन्योके साथ उपस्थित थे। विभीषण अपने चारों अनु-चर राक्षसोंके साथ वहाँ आये जहाँ रामचन्द्रजी मौजूद थे। पहले सुग्रीव उनको शत्रुका दूत समझ कर मार डालने पर उद्यत हुए थे, किन्तु शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रने रोक दिया। फिर भी सुग्रीवने कहा था, 'विपद्के समय भाईको छोड़ जो विपक्षी पक्षका आश्रय लेता है उसका विश्वास नहीं करना चाहिये।' रामचन्द्र जीने विभीषणको मित्ररूपसे ग्रहण किया था। उनसे

रामचन्द्र रावणके बलाबलका हाव्य ज्ञाननेमें समर्थ हुए थे। इसके फलसे इनको भविष्यमें बड़ी सुविधा हुई थी।

इसके बाद रामचन्द्रन लङ्कामें आ कर पड़ाव डाला। विभीषण सदा उनके पार्श्वर हो कर रहे। लङ्कामें महा समर उपस्थित होने पर विभीषण एक मन्त्री, सेनापति और सन्धिप्रियहीका काम देखने लगे। जब लक्ष्मणको शक्ति छगा थी, उस समय विभीषणने ही सुपेज घेसका पता बतला औरपति कराई थी। इसके बाद मायामोताको विद्या इन्द्रजित्में जब कपिलसैन्धको मोहित किया था और रामचन्द्र सीताका मृत्यु-संवाद सुन कर बहुत कातर हो गये इन समय भी विभीषणने इन्द्रजित्का मायाभास बतला इनका सम निधारण किया था। फिर विभीषणक ही साहाय्यसे निकुंजिन्दा यज्ञधारमें इन्द्रजित्को मार डालनेमें लक्ष्मण समर्थ हुए थे। किन्तु महावार दशरथन रामचन्द्रक शरमातसे जब मृत्युवित्त हुआ तब विभीषण भ्रातृशोकमें विमोह हो उठा। धार्मिकमान श्रेष्ठ भाइका अघात सहन न सक। कविविदुष बाहमोक्ति विभीषणके इस समयका बिलाप पेसा सुन्दर चिह्नित किया है कि इनको पढ़ कर पावाणहृदय भी द्रवीमून हो जाता है। अन्तमें उषेष्ठ भ्राताक उपयुक्त प्रेरकत्व नमान कर रामचन्द्रकी आज्ञासे विभीषण हो लङ्कुक अधिपति हुए।

पदपुराणक मतसे—विभीषणकी माताका नाम निष्काप है। हावक वज्रवे कनिशासी रामायणमें विभीषणके तरुणीसन नामक एक पुत्रका नाम दिखाई देता है।

सैनिक पदपुराणमें विभीषणका अरिभ मित्रभावसे चिह्नित है। इसके अनुसार विभीषण एक प्रसिद्ध जिन मन्त्र, परमधार्मिक और संसारविरक्त पुण्य माने गये हैं।

पहले ही कह आये हैं, कि विभीषण अमर हैं। महाभारतसे ज्ञाना जाता है कि ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित थे। इत्कालके पुत्रपोषणके जनसाधारणका विश्वास है कि आज भी विभीषण गंभीर निशामें जगथाय महाभयुकी पूजा करनेके किये जाते हैं।

४ आञ्जनेव-स्तोत्रके रचयिता।

विभीषणा (सं० लि०) १ मयानक, डरावनी। (स्त्री०) २ एक मुद्राका नाम।

विभीषा (सं० स्त्री०) विभेनुमिच्छा मा सन्, विभीष म टाप। मय पानेकी इच्छा।

विभीषिका (सं० स्त्री०) विभीषा अर्थे कन् स्त्रियां टाप, अत इत्थञ्च। १ मयप्रदर्शन, डर दिनाता। २ मयदूर बात मयानक दूरप।

विभु (स० पु०) वि भू (विश्वप्रवर्ध्नाइ उवाच। पा ३।२।१८० इति इ। १ मयु आमी। २ शङ्क, महादेव। (मारत १३।१७।१६) ३ प्रज्ञ। (महिनी) ४ मृत्य, मौकर। (पिका ५ बिष्णु। (मारत १३।१४।१००) ५ जोवाटमा, आत्मा।

७ ईश्वर। (शुक् ४।६।१) (लि०) ८ स्वर्धव्यापक, जो सर्वत्र बरामान हो। जीवकी प्राप्त आदि चारों भयस्यामोक चार विभु माने गये हैं। ज्ञाप्रतका विभु विष्व स्वप्नका

विभु सुपुसिका प्राक् और तुरीयका प्रज्ञ कहा गया है। १ स्वर्ध गमनशोक, जो सब जगह जा सकता हो।

१० मित्य सब कालमें रहनेवाला। ११ मह, रात दिन। १२ अत्यन्त विस्तृत, बहुत बड़ा। १३ दुष्ट बिरसथा पो।

१४ महाभ, वैश्वर्धयुक्त।

विभुदनु (स० लि०) बज्रशाली, शङ्क की परास्त करने वाला।

विभुम् (सं० लि०) वि भुज-क। इयत् भन्, कुछ दृटा हुआ।

विभुत्र (स० लि०) १ विबाहु। २ एक। मूषविभुत्र देवो।

विभुता (स० स्त्री०) १ विभु होनेका भाव, सर्वव्यापकता। २ वैश्वर्ध, शक्ति। ३ मयुता, ईश्वरता। ४ अधिकातर।

विभुत् (स० स्त्री०) विभोर्भाव एव। विभुका भाव या धर्म, विभुका काय।

विभुत्त—गुप्तजंगीय महाराज हस्तिनाके सान्धिबिभ्र। इनके पिताका नाम स्वर्धक था।

विभुप्रमित (सं० लि०) विभुके समान।

विभुमत् (स० लि०) विभु-अल्लस्ये-मत्तप। विभुत्त युक्त, महत्त्वयुक्त। (शुक् ३।८।१६)

विभुवतो (स० स्त्री०) बिम्बम्। (अठक १।१।६) बिम्ब देवो।

१ शार्ङ्गकीय रामायणक मुद्रकायडने भी विभीषण निष्काप मन्दन रूपसे उल्लिखित किय गये हैं। (पु०का० ६२ व०)

विभुवर्म्मन्—राता अंशुवर्माके पुत्र । ये ६४६ ई०में विद्यमान थे ।

विभूतङ्गमा ( स० स्त्री० ) बहुसाध्यक ।

विभूतघ्न ( स० त्रि० ) प्रभूतयज्ञस्त्री वा प्रभूत अघ्न-विनिष्ट । ( ऋक् ११५६।१ )

विभूतमनस् ( स० वि० ) विमनस् उदार ।

( निष्क१०।२६ )

विभूतराति ( स० त्रि० ) रा-दाने रा-क्तिन् रातिः दान,

विभूता रातिं दानं यम्य । विभूतदान । ( ऋक् ५।१६।२ )

विभूति ( स० स्त्री० ) वि-भू-क्तिन् । १ दिव्य या अलौकिक शक्ति । इसके अन्तर्गत अणिमा, महिमा, गरिमा, लविमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं । पातञ्जलदर्शनरूप विभूतिपादमें योग द्वारा किम् प्रकार कौन कौन ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसका विशेष विवरण लिखा है ।

२ शिवघ्नभस्म, शिवके अङ्गमें चढ़ानेकी राग । देवाभागवतके ग्यारहवें स्कन्ध १४वें अध्यायमें विभूति-घारणमाहात्म्य तथा १५वें अध्यायमें त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्व-पुण्ड्रधारणविधि विस्तारसे वर्णित है ।

३ भगवान् विष्णुका वह ऐश्वर्य जो नित्य और स्थायी माना जाता है । ४ लक्ष्मी । ( ऋक् १।३०।५ ) ५ विभवहेतु । ( ऋक् ४६।६।१ ) 'विभूतिर्जगतो विभवहेतुः' ( सायण ) ६ विविध सृष्टि । ( भागवत ४।२।४३ ) ७ सम्पत्, धन ।

"अभिभूय विभूतिमार्त्वीं मधुगन्धातिशयेन धीन्धाम ।

( रघु० ५।३६ )

८ बहुतायत, बढती । ९ विभव, ऐश्वर्य । १० एक दिव्यास्त्र जो विश्वामित्रने रामको दिया था ।

विभूतिचन्द्र ( स० पु० ) बौद्धग्रन्थकारभेद । ( तारनाथ )

विभूतिद्वादशी ( स० स्त्री० ) विभूतिवर्द्धिका द्वादशी, एक व्रतका नाम । यह व्रत करनेसे विभूति यद्गता है, इसीलिये इसका नाम विभूतिद्वादशी पडा है । मत्स्य पुराणमें इसकी विधि लिखी हुई है । यह विष्णुका व्रत है । यह सब व्रतोंमें अधिक पापनाशक है । व्रतका विधान इस तरह है—'कार्तिक, अग्रहायण, फाल्गुन, वैशाख या आषाढ़ मास शुक्ल दशमीको रातको सयमसे रहना पड़ेगा, दूसरे दिन एकादशीका व्रत कर विष्णुकी

पूजा करनी पड़ती है । इस तरहका पूजा करके दूसरे दिन अर्थात् द्वादशीके दिन प्रातःकाल म्नानादि प्रातः-क्रियाको समाप्त कर शुक्लमास्य और अनुलेपनों द्वारा विष्णुपूजा कर निम्नोक्त रूपसे पूजा करनी चाहिये—

"विभूतिदाय नमः पादाग्रगोकय च जानुनी ।

नमः शिवायैत्यूर्ध्वं च विभुवर्त्तप नमः कटिम् ॥

कन्टर्पाय नमो मेढ्रमादित्वाय नमः कर्गै,

शामोदभायैत्युदरं शानुदेगय च स्तनी ॥

माधवायैति हृदयं कथयन्मुर्त्तपठते नमः ।

श्रीधराय सुय केशान् देगायैति नारद ॥

पृथं शार्ङ्गधरायैति भागी च मयम्ये ।

न्यनाम्ना शूचक्राति गदापरशुपाण्यः ।

सर्वात्मने निर्गोद्वान् नम इत्यभिपूजयेत् ॥"

( मत्स्यपु० ५३ अ० )

"पादों विभूतिदाय नमः" जानुनी अग्रगोकय नमः इत्यादि रूपसे पूजा करनी होती है । एकादशीको रात को एक घड़े में उत्पलके साथ यथासाध्य भगवान् विष्णुकी मत्स्यमूर्त्ति तय्यार कर कर स्थापन करना चाहिये और एक सितवस्त्र द्वारा वेष्टित निलयुक्त गुडका पात रखना होगा । इसी रातको भगवान् विष्णुके नाम और इतिहास सुन कर जागरण करनेकी विधि है । प्रातःकालमें एक उवकुम्भके साथ देवमूर्त्तिवहणको निम्नोक्त प्रार्थनापाठ कर टान करना होता है ।

'यथा न मुच्यते विष्णोः सदा सर्वविभूतिभिः ।

तथा मामुदराग्रेषुःखसंसारसागन्तु ॥"

इस तरह दान कर ब्राह्मण, आत्मीय कुटुम्बको भोजन करा कर स्वयं पारण करना । यह व्रत प्रतिमास करना होता है । पहले जो मास उल्लिखित है, उनमें किसी माससे आरम्भ कर एक वर्ष तक अर्थात् बारह मास तक की बारह द्वादशीके दिन इसी तरह नियमके साथ व्रतानुष्ठान करना होगा । एक वर्षके बाद एक छेदे नमकके पर्वतके साथ एक जयपादान देनी चाहिये । यथाशक्ति वह अन्नवस्त्र भी दान करे । यदि अतिदरिद्र व्यक्ति ऐसे दान करनेमें असमर्थ हो, तो वे देा वर्ष तक एकादशीके दिन उपवास, पूजा और द्वादशीके दिन पूजा पारण करे । ऐसा होने पर वे सब पातकोंसे मुक्त

कर विभूति काम करेगे। जो इस प्रलका अनु  
 छान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होना और उन्नत  
 पितृगणका उदार होना है। ज्ञानमहत्त्व बर्षा उनके शरीर  
 में कोई व्याधि न होगी और न शोक वारिद्र्य ही होगा।  
 बहुत दिनों तक यह स्वर्गसुख भोग करेगा।

( भाष्यपुराण )

विभूतिमत् ( सं० लि० ) १ चेष्टार्थयाम्, शक्तिस्वरूपम् ।  
 २ संवत्तिशाली धनवान् ।

विभूतिमाधव—एक प्राचीन कवि ।

विभूतिमान् ( सं० लि० ) विभूतिमत् देखो ।

विभूतवाच ( सं० लि० ) चेष्टयावाता ।

विभूतन् ( सं० लि० ) १ शक्तिशाली चेष्टार्थयान् । ( पु० )

विशिष्टी भूमा कर्माणां । २ श्रीकृष्ण ।

विभूमा—विभूत देखो ।

विभूरसि ( सं० पु० ) अग्निमूर्तिमेव । ( महाभारत वनप० )

विभूयस्तु ( सं० लि० ) वहु चेष्ट्यर्त्थे वा धनविशिष्ट ।

( शूक् १।८६।१० )

विभूयव ( सं० क्ली० ) विद्योपेय भूपत्यन्तेति विभूय

विष्-स्तुट् । १ आमरण, अलङ्कार, जेवर । २ अर्द्धहृत

करनेकी क्रिया, गहने आदिमें सज्जामेका काम । किसी

किसी शब्दके आगे लग कर यह शब्द अष्टोत्थायचक्र

हो जाता है । जैसे—रघुर्यंज विभूयव । ( पु० ) मन्त्र

भीहा एक नाम । ( तिका० १।१।२२ )

विभूयवत् ( सं० लि० ) भूयवके सदृश ।

( मृच्छकटिक १।१२ )

विभूयया ( सं० स्त्री० ) १ भूया अमङ्कार । २ शोभा ।

विभूया ( सं० स्त्री० ) विभूय इ च ( गुणोच्च इमाः । वा

३।१।१०२ ) मत्प्र्याप् । १ शोभा । २ आमरण, गहना ।

३ गहना आदिकी मूब सजावट ।

विभूयिनि ( सं० लि० ) विभूय-क्त, यद्वा विभूया संज्ञा-

ताम्प इति विभूया इत्यच् । १ अष्टकृत, गहनों आदिमें

सजावा हुआ । २ शोभित । ३ अर्थको वस्तु गुण

आदिमें पुनः ।

विभूयिन् ( सं० लि० ) विभूय विभूयिनि । १ विभूयवकारो ।

२ अर्द्धहृत, शोभित ।

विभूयु ( सं० लि० ) १ विभूयिण्युत् । ( पु० ) २ शिव ।

विभूय ( सं० लि० ) १ विभूयित करने योग्य, सज्जामे  
 लायक । २ जिसे गहनों आदिमें सज्जामा हो ।

विभूय ( सं० लि० ) विभूय क । घृत, पकड़ा हुआ । २ पुष्ट,  
 मोटा लाजा ।

विभूय ( सं० लि० ) १ नामा स्थानोंमें विहृत ( शूक् १।१२।२९ )  
 २ अग्निहासकर्मोंमें विहरणकारो ।

( शूक् १।१०।३ भाष्यमें उक्तम् )

विभूयवन् ( सं० पु० ) वह जो आरण्य या भरण्योपयोग करे  
 ( शूक् ३।२३।१२ )

विभेद्य ( सं० लि० ) भौतिके योग्य, बदले लायक ।

विभेत् ( सं० पु० ) १ विभेदकर्ता, विभेद करनेवाला ।

२ अर्द्धसकृत्, नाश करनेवाला ।

विभेद् ( सं० पु० ) १ विभिन्नता, अन्तर, फरक । २ अथ

गम विधाय । ३ विभाग, श्रेयो या कर्त्तव्यकोमें करना ।

४ मिश्रण, मिश्रण । ५ विक्रान्त । एक रूपतासे अनेक

रूपताकी प्राप्ति । ६ विप्लव, काटना तोटना या छेदना ।

७ विदारण फाड़ना । ८ छेद कर सुसजा, धँसना ।

१० छेद, वार ।

विभेदक ( सं० लि० ) १ भेदकारी हो वस्तुओंमें भेद

करके करनेवाला । २ सुसजेवाला, धँसनेवाला । ३ भेद

करनेवाला, काटने या छेदनेवाला । ( पु० ) ४ विमीलक,

पहिंदा ।

विभेदकारो ( सं० लि० ) १ छेदने या काटनेवाला । २ भेद

या फर्क करनेवाला ३ जो व्यक्तियों में विरैष्य करने

वाला फूट डालनेवाला ।

विभेदन ( सं० पु० ) १ मिश्रण करण, भेद या फर्क डालना

या तोटना । ३ छेद कर सुसजा, धँसना । ४ काट कर

या कर्त्तव्यकोमें करना । ५ पृथक्करण, अलग अलग

करना । ६ मिश्रण, मिश्रण ।

विभेदिन् ( सं० लि० ) १ विभेदकारी भेद या फर्क डालने

वाला । २ विच्छेदकार, वृद्धा करनेवाला । ३ पृथक्-

कारो अलग अलग करनेवाला ।

विभेदिनी ( सं० लि० ) १ छेदक या भेदक करनेवाली ।

२ छेद कर सुसजेवाली । ३ भेद या फर्क करनेवाली ।

विभेद्य ( सं० लि० ) विभेद्य देखो ।

विभेद्य ( सं० लि० ) भेदन या छेदनयोग्य ।



विभो ( सं० पु० ) विभुका सम्बोधनरूप, हे विभु !  
 विभ्रंश ( सं० पु० ) १ विनाश, ध्वंस । २ पतन, अवनति । ३ पर्वतका भृगु, पहाड़की चोटी परका चौरस मैदान । ४ ऊँचा कगार ।  
 विभ्रंशित ( सं० त्रि० ) १ विभ्रष्ट, पतित । २ विच्छिन्न । ३ विपथसे लाया हुआ । ४ विलुप्त ।  
 विभ्रंशितज्ञान ( सं० त्रि० ) २ ज्ञानशून्य, बेहोश । २ बुद्धिभ्रष्ट, जिसकी बुद्धि मारी गई हो ।  
 विभ्रंशित ( सं० त्रि० ) १ पतनशील । २ जिसका अधःपतन हुआ हो । ३ निःक्षेप । ४ निश्चिन्त ।  
 विभ्रट—पर्वतभेद । ( कालिकापु० ७८।३६ )  
 विभ्रत् ( सं० त्रि० ) विभृशतृ-विभर्त्सि यः । धारणपोषणकर्त्ता ।  
 विभ्रम ( सं० पु० ) वि-भ्रम घञ् । १ हावभेद । प्रियके मिलने पर स्त्रियां जो तरह तरहके प्रेमालाप करतीं, तरह तरहके शृङ्गारादि द्वारा अपने शरीरको सजाती उसीका नाम हावभाव या विभ्रम है । २ स्त्रियोंका एक भाव इसमें वे भ्रमसे उलटे पुलटे भूषण पहन लेती हैं, तथा रह रह कर मनवालेकी तरह कभी क्रोध कभी हर्ष आदि भाव प्रकट करती हैं । ३ प्रियका आगमन सांवाद पा कर अत्यन्त हर्ष और अनुरागवशतः बड़ी उतावलीसे स्त्रियोंका जहा तहा भूषणादिका विन्यास । जैसे तिलक पहननेकी जगह अर्थात् ललाटमें अञ्जन, अञ्जन पहननेकी जगह अलकक (महाचर) और अलकक पहननेकी जगह तिलक इत्यादि ।  
 ४ शृङ्गाररसोद्गममें चित्तवृत्तिका अनवस्थान ।  
 ५ स्त्रियोंका यौवनज विकारविशेष । ६ भ्रान्ति, भूल ।  
 ७ शोभा । ८ साशय, सन्देह । ९ भ्रमण, फेरा । १० अस्थिरता, घबराहट ।  
 विभ्रमा ( सं० स्त्री० ) वाङ्मय, बुढ़ापा ।  
 विभ्रमिन् ( सं० त्रि० ) विभ्रमयुक्त ।  
 विभ्रज ( सं० त्रि० ) विभ्राट् देखो ।  
 विभ्राज ( सं० पु० ) राजभ्रिमेद । (हरिवंश) वैभ्राज देखो ।  
 विभ्राट् ( सं० त्रि० ) विभ्रमिंशोपेण भ्राजते इति विभ्राज-क्विप् ( अन्वेष्यो पि ह्रियते ) ।  
 विभ्राजिष्णु । पर्याय—शुभ्राजिष्णु । २ शोभायमान । ३ दोसिमान् । ४ उपद्रव, घबराहट । ५ आपत्ति, संकट ।

विभ्रानव्य ( सं० स्त्री० ) वैभ्रालेय ।  
 विभ्रान्त ( सं० स्त्री० ) विभ्रम-क्त । १ विभ्रमयुक्त, भ्रममें पड़ा हुआ । २ चूमता हुआ, चक्कर खाता हुआ ।  
 विभ्रान्ति ( सं० स्त्री० ) वि-भ्रम क्तिन् । १ विभ्रम, भ्रम, सन्देह । २ फेरा, चक्कर । ३ हडबडी, घबराहट ।  
 विभ्राष्टि ( सं० स्त्री० ) १ दीप्ति, प्रभा । २ जोभा ।  
 विभ्रू ( सं० पु० ) वज्र, जव्दना प्रामादिक पाठ ।  
 ( भारत वनपर्य )

विभ्रोप ( सं० पु० ) विप्रमोह ।

( धारण-ली० १।१।१२ भाष्य )

विभ्रतष्ट ( सं० त्रि० ) विभु प्रह्ला कर्त्तृक जगत्के अधिपत्य पर स्थापित । ( ऋक् ३।४६।१ )  
 विभ्रन् ( सं० त्रि० ) १ घ्यात्, फैला हुआ । “प्रकेतो अजनिष्ट विभ्रा” ( ऋक् १।११३।१ ) “विभ्रवा विभुर्व्यामः, विप्रसम्भो दुःसाक्षायाविति भवतेर्दुःप्रत्ययः । सुपां सुलुगिन्यादिना सोराकारादेः, धौं सुपीति यणादेःगम्य न भू सुक्त्तोरिति प्रतिषेधे प्राप्ते छन्दस्युभयश्चेति यणादेः ( भाष्य ) ( पु० ) २ सुभ्रन्वाके पुत्र । ( ऋक् १०।७६।५ )  
 विम—सुमात्राके निकटवर्ती सुमशाया द्वापक अन्तर्गत एक छोटा राज्य । यह उक्त द्वीपके पूर्वमें अवस्थित है । मपि प्रणालीके मध्यस्थ कुछ द्वीप भी इस राज्यके अन्तर्भूत हैं । राज्यके अन्तर्गत गुनुङ्ग-अधि द्वीपमें एक ज्वालामुखी पहाड़ है । आज भी उस पहाड़से कभी कभी बाग निकल करती है । विम उपसागरमें प्रवेशपथसे कुछ ऊपर विम नामक छोटा नगर प्रतिष्ठित है । यहा ओलन्दाजोंका एक किला है । अक्षा० ८ २६' दक्षिण तथा देशा० ११८ ३८' पू०के मध्य उपसागरका प्रवेशद्वार है । यहाके अधिवासियोंकी भाषा एकदम नयी है । किन्तु वे लोग सिलेविस द्वीपवासीकी लिखित वर्णमालामें लिखते पढ़ते हैं । उनकी स्वजातिमें जो वर्णमाला प्रचलित थी, वह अभी विलकुल लोप हो गई है । स्वभाव और चाल ढालमें ये लोग सुसभ्य सिलेविस द्वीपवासी-सरीखे हैं । किन्तु उन लोगोंकी तरह विमवासी उद्यमी और कर्मठ नहीं हैं ।

इस राज्यके अधिवासीकी संख्या प्रायः २० हजार है । यहां चन्दनकाष्ठ, मोम और घोडे मिलते हैं । घोडे

कर्मों छोटे होते हैं सही, पर बोल बोलमें बड़े भच्छे हैं ।  
 गुल्लू भवि शीपके घोड़े सबमें सुन्दर होते हैं । वहाँक  
 भविबासी उन सब घोड़ोंको बचनेक लिये पपहोपमें  
 भेज देने हैं ।

विमञ्जान् ( स० लि० ) शरीर । ( मारत बनन )

विमण्डन ( स० पु० ) १ गहरी भाविम सजावा । २ अन्ध  
 झुण्ड, भूयण । ३ गहुरि करना, संभारना ।

विमण्डल ( स० लि० ) विगत मण्डल यस्मात् । मण्डल  
 रहित, परिवेष्टाशून्य ।

विमण्डित ( स० लि० ) १ अर्धहृत, सजा हुआ । २  
 सुशोभित । ३ युक्त, सहित ।

विमत ( स० लि० ) वि मन्-क । १ विच्छ्रमतिविशिष्ट,  
 बिच्छ्र मत्तबाळा । ( पु० ) २ गोमती-शीर पर अन्धन्धित  
 एक नगर । ( रामायण ४०३, १२ ) ३ विपरीत सिद्धांत,  
 बिच्छ्र मत ।

विमति ( ल० स्त्री० ) वि मन्-क । १ विच्छ्रमति, विच्छ्राफ  
 राय । २ अनिच्छा, असम्मति । ३ संग्रह संहिद ।  
 ( दिव्या० ३२५, १ ) ४ कुमति, दुर्बुद्धि ।

विमतिता ( सं० स्त्री० ) विमतेर्भाषा विमति तच्च शाप् ।  
 विमतिता भाषा वा कार्य ।

विमतिमत् ( ल० पु० ) विमन्भावा । ( बर्धद्वारिन्मः प्यम्भ ।  
 वा ११, १२३ ) इति इमन्निच् । विमतिता भाषा, विपरीत  
 बुद्धिका कार्य ।

विमतिविचोरण ( स० पु० ) १ असम्मतिप्रकाश, अनिच्छा  
 विवक्षाना । २ गद्य, समाधिके लिये ममील कोटना ।  
 ३ बीदकै मत्स समाधिमेद ।

विमतिस्समुदातिन् ( स० पु० ) बीदराजकुमारमेद ।

विमत्सर ( सं० लि० ) विगतो मत्सरो यस्य । १ मत्सर-  
 रहित, अहङ्कारशून्य । ( पु० ) २ अधिक अहङ्कार ।

विमयिन् ( स० लि० ) विमय नृच् । विशेषरूपमे  
 मयनेवाभा ।

विमयित ( ल० लि० ) वि मय क । विशेषरूपस मायित,  
 विनाशित ।

विमद् ( सं० लि० ) विगता मद्दो यस्य । १ मद्दरहित,  
 मारसप्यदोल आ मतवाला न हो । २ जिस हाथोंको  
 मद् न बढ़ना हो ।

विमध्य ( सं० स्त्री० ) विक्रममध्य, जिसका मध्य भाग  
 पूर्णावयव न हो ।

विमनस् ( स० लि० ) बिच्छ्र मनो यस्य । विमत्तादि  
 व्याकुलचित्त, अनजाना, उदात्त । पर्याय—दुर्गता,  
 भ्रन्तमैत्र्या, कुञ्जितमानस । ( शम्भरत्ना० )

विमनस्क ( स० लि० ) विनिपुद्दित मनो यस्य, बहु  
 मोहो कप् समासात्ताः । १ विमना अनजाना । २ उदात्त,  
 र गीता ।

विमनापमान ( सं० लि० ) विमनस्-कच्, विमनाय  
 शानच् । कुञ्जित, विषण्य ।

विमनिमन् ( स० पु० ) विमनसो भाव विमनस् ( बर्ध  
 द्वारिन्मः स्वन्च् । वा ११, १२३ ) इति इमन्निच् मन्त्  
 मध्यस्य ट्कार्षेः । विमनाका भाव ।

विमशु ( स० लि० ) विगता मशुः क्रोपो यस्य । क्रोम  
 रहित, रोगशून्य ।

विमशुक ( स० लि० ) विमशु स्वार्थे कच् । विमशु,  
 क्रोधरहित ।

विमय ( स० पु० ) वि मी 'यश्च' इत्यच् । विमिय,  
 वृद्धा ।

विमद् ( स० पु० ) विमुच्यतेऽस्ती इति वि-भृद् भञ् ।  
 १ कालदुल धृक् । २ विमद्भन, धर्षण । ३ वेपथ, पोसना ।  
 ४ मश्वन मयना । ५ सम्पर्क । ६ युद्ध । ७ क्रमद्  
 क्पादा । ८ परिमल शुशुब् । ९ विनाश । १० सम्बन्ध ।

विमद्क ( स० पु० ) विमद्भे एव कार्ये कच् । १ चक्रमद्भे  
 चक्षय च । ( लि० ) २ विमद्भे नकारो, मसक डाकमेवाळा ।  
 ३ मूट मूर करैवाळा । ४ मच्छ्रद करैवाळा ।

विमद्भन ( स० स्त्री० ) वि भृद्-भञ्मुद् । १ कुट्टुमादि  
 मद्भेन कुमकुम भाविका प्रकना । पर्याय—परिमल,  
 विमद्भे । ( शम्भरत्ना० ) २ विशेषरूपमे मय न, मच्छ्रो  
 तपद् मसना इयना । ३ कुचकना, पोस डालना । ४ चपल  
 करना बरवाद् करना । ५ मार डालना । ६ पीडित  
 करना । ७ मच्छ्रद, स्फुरण । ( लि० ) विशेषय मृदुना  
 तोति । वि-भृद्-भञ्मु । ८ मद्भेनकारा, पादा देनेवाळा ।

विमद्भेनीय ( स० लि० ) मद्भेन करल घोय ।

विमर्दित ( सं० लि० ) वि-भृद्-क । १ मृच्छ, उत्पन्न ।  
 २ विच्छ, पोसा हुआ । ३ इलिन कुचला हुआ । ४ मयिन,

मथा हुआ । ५ चूर्णित, चूर किया हुआ । ६ संघटित ।  
७ अपमानित ।

विमर्दिन् (स० त्रि०) वि-मृद इति । विमट नकारक,  
खूब मर्दन करनेवाला । २ कुचलनेवाला, पीसनेवाला ।  
३ नष्ट करनेवाला । ४ बध करनेवाला, मारनेवाला ।

विमर्द्दि (सं० त्रि०) विमर्दिन् देखो ।

विमर्द्दिथ (सं० पु०) विमर्द्दिच्छिप्रतीति उद्-स्था क  
वह सुगन्धि जो कुमकुम आदि मलनेमे उत्पन्न हो ।

विमर्श (सं० पु०) वि-मृश-घञ् । १ चित्तर्क, विचार-  
रत्ना । २ तथ्यानुसन्धान, किसी तथ्यका अनुसन्धान ।  
३ विवेचना, आलोचना । ४ युक्ति द्वारा परीक्षा करना ।  
५ असन्तोष । ६ अधैर्य, अधीरता ।

विमर्शन् (सं० क्ली०) वि-मृश-ल्युट् । १ परामर्श, चित्तर्क ।  
२ आलोचना, समीक्षा । ३ ज्ञान, सम्भव ।

विमर्शिन् (सं० त्रि०) वि-मृश-इन् । विमर्शकारक ।

विमर्ष (सं० पु०) वि-मृष-घञ् । विचारणा, विचार ।  
२ असहन । ३ असन्तोष । ४ आलोचना । ५ नाट्याङ्ग-  
भेद, नाटकका एक अङ्ग । अपवाद, सम्फेद, व्यवसाय,  
द्रव, घृति, शक्ति, प्रसङ्ग, खेद, प्रतिषेध, विरोधन, प्रो-  
चना, आदान, और छादन ये सब विमर्षके अङ्ग हैं ।

इनका लक्षण यथा—

दोषकथनको अपवाद, क्रोधसे भरी बातचीतको संफेद,  
कार्यो निर्देशके हेतुके उद्भवको व्यवसाय शोक आदिके  
वेगमें गुरुजनोंके आदर आदिका ध्यान न रखनेको द्रव,  
भय प्रदर्शन द्वारा उद्वेग उत्पन्न करनेके घृति, विरोधकी  
शान्तिको शक्ति, अत्यन्त गुणकीर्त्तन या दोष-दर्शनको  
प्रसङ्ग, शरीर या मनकी धकावटको खेद, अभिलषित  
विषयमें रुकावटको प्रतिषेध, कार्योच्छेदको विरोधन,  
प्रस्तावनाके समय नट, नटी, नाटक या नाटककार आदि  
की प्रशंसाको प्ररोचना, संहार विषयके प्रदर्शित होनेको  
आदान तथा कार्योद्धारके लिये अपमान आदि सह लेनेको  
छादन कहते हैं । (साहित्यद० ६।३७८-३८०)

साहित्यदर्पणमें इन सबके उदाहरण दिये गये हैं ।  
बढ़ जानेके भयसे यहा पर नहीं लिखा गया ।

नाटकमें विमर्षका वर्णन करनेमें इन सब अङ्गोंका  
वर्णन अवश्य करना होता है ।

विमल (सं० त्रि०) विगतो मलो यस्मात् । १ निर्मल,  
मलरहित, स्वच्छ, साफ । पर्याय—वीध, प्रयत । (शब्द-  
रत्ना०) २ चारु, सुन्दर । ३ शुभ्र, सफेद । ४ निष्कलङ्क,  
बिना ऐवका । (पु०) ५ तीर्थङ्करभेद, गत उत्सर्पिणीके  
५वें और वर्त्तमान अवसर्पिणीके १३वें अर्धत् या  
तीर्थङ्कर । जैन देखो । (हेम) ६ सुदुग्मके एक पुत्रका  
नाम । (भागवत ६।१।४१) (क्री०) ७ पद्मकाष्ठ । ८ रीप्य,  
चांदी । ९ सैन्धव लवण, सेंधा नमक । (वैद्यकनि०)  
१० उपधातुविशेष । पर्याय—निर्मल, स्वच्छ, अमल,  
स्वच्छधातुः । गुण—कटु, तिक्त, त्वग्दोष और व्रण-  
नाशक । (राजनि०)

रसेन्द्रमारसं ग्रहमें इस धातुशोधनका विषय इस  
प्रकार लिखा है,—ओलमें माक्षिक तथा विमलको रख  
कर मूत, काजी, तेल, गोंदुर्ध, कर्दलीरस कुलथी, कलाय  
का काढा, कोटो—धानका काढा इनके स्वेदसे क्षार, अम्ल-  
वर्ग और लवणपञ्चक, तैल और घृतके साथ तीन बार  
पुट देनेसे विमल शुद्ध होता है ।

जम्बीरी नीचूके रसमें स्वेद दे कर मेघशृङ्गी और  
कदली रसमें एक दिन पाक करनेसे विमल विशुद्ध होता  
है । (रसेन्द्रमारस० विमलशुद्धि)

इस उपरस विमलको बिना शोधन किये काममें नही  
लाना चाहिये । लानेसे नाना प्रकारकी पीडा उत्पन्न  
होती है ।

विमल—१ एक तार्किक आचार्य । शक्तिरत्नाकरमें इनका  
उल्लेख है । २ शङ्करके शिष्य पञ्चपादके पिता । ३ राग-  
चन्द्रोदय नामक सङ्गीत ग्रन्थके रचयिता । ४ तीर्थङ्कर-  
भेद । ५ सहायद्रिवर्णित दो राजाओंके नाम । (सङ्घ्या०  
३।२६, ३१) ६ एक दण्डनायक । इन्होंने अर्बुद पहाडके  
ऊपर एक मंदिर बनाया और ग्राम बसाया था । खरतर  
गन्धके अन्तर्गत प्रसिद्ध जैनसूरि घट्टमानने उस मंदिर-  
में देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी ।

विमलक (सं० पु०) १ मूल्यवान् प्रस्तरभेद, एक प्रकार-  
का नग या बहुमूल्य पत्थर । २ भोजके अन्तर्गत तीर्थ-  
भेद ।

विमलकीर्त्ति (सं० पु०) एक प्रसिद्ध तैत्तिरीयार्थी । इन्होंने  
कई सूक्तोंकी रचना की है और उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है ।

विमलवर्ग (स० पु०) १ राजपुत्रमेद । (वदन्मपुत्र०)  
२ बोधिसत्त्वमेद ।

विमलवधु (स० पु०) राजमेद । (वाराणस)

विमलता (स० स्त्री०) विमलस्य भाषा तद्ध-टाप् । १ पवि  
कता । २ विमलता, लक्ष्मता, सफाई । ३ धमणीयता ।  
४ मनोहरता ।

विमलत्व (स० स्त्री०) पवित्रता, निर्मलता ।

विमलवृत्ता (स० स्त्री०) राजमहिषीमेद । (लक्ष्मण पुत्र०)

विमलदान (स० स्त्री०) विमलं विभूय दान । वह दान  
जो नित्य नैमित्तिक और काम्यके अतिरिक्त हो और  
केवल ईश्वरको प्रीतिक सिधे किया जाय ।

यदश्चपुत्राणाम लिखा है, कि नित्य, नैमित्तिक, काम्य  
और विमलके चार प्रकारके दान हैं । अनुपकारो ब्राह्मण  
को प्रति दिन किसी फलको कामना न करके जो दान  
दिया जाता है तथा पापशान्तिके लिये विद्वान्को जो  
कुछ दान किया जाता है, उस महदनुदानको नैमित्तिक  
दान कहते हैं । पुत्र जय, ऐश्वर्य और स्वर्गकी कामनासे  
जो दान किया जाता है, उसीका नाम विमलदान है ।

विमलध्वनि (स० पु०) छः धरणोंका एक छन्द । यह एक  
बोहे और समान सधेसे सिद्ध कर बनता है ।

विमलनाथपुराण—जैनपुराणमेद । इसमें जैन तीर्थङ्कर  
विमलनाथका महात्म्य वर्णित है ।

पुत्राय कर्मन् विशेष विवरण देलो ।

विमलनिर्वास (स० स्त्री०) बौद्धशास्त्र कथित समाधि  
मेद ।

विमलमेघ (स० पु०) पुत्रमेद ।

विमलपिच्छक (स० पु०) नागमेद । (भारत नागिन)

विमलपुर (स० स्त्री०) नगरमेद ।

(कथाचरित्रा० ५।१।८६)

विमलपद्म (स० पु०) बौद्धशास्त्रीक समाधिमेद ।

विमलप्रम (स० पु०) १ पुत्रमेद । २ देवपुत्र शुभ्रा  
वासकायिक । ३ समाधिमेद ।

विमलप्रमा (स० स्त्री०) राजमहिषीमेद ।

(राजतर० १।३८४)

विमलप्रमासप्तोत्तोरारजमेद (स० पु०) बोधिसत्त्वमेद ।

विमलबुद्धि (स० पु०) बौद्धमेद ।

विमलबोध (स० पु०) बुद्धोपदेशज्ञानी नाम्नी महा  
भारतक एक टीकाकार । इन्होंने रामायणकी एक टीका  
रची थी । अष्टौन मिश्रमे इनका उल्लेख किया है । उन  
महाभारतकी टीकामें टीकाकारने वैशम्पायनटीका और  
देवसामीका मत उद्धृत किया है ।

विमलब्रह्मचर्या—सारमानन्दस्तोत्रके प्रणेता ।

विमलवधु (स० पु०) बाम्दमेद । (वाराणस)

विमलवास (स० पु०) समाधिमेद ।

विमलमधुर—साधनपञ्चकटीकाक रचयिता ।

विमलमणि (स० पु०) विमल लक्ष्मणे मणि । स्फटिक ।

विमलमणिहर (स० पु०) बौद्ध देशतामेद ।

(कारणक १।४०)

विमलमित्र (स० पु०) बौद्धयतिमेद । (वाराणस)

विमलवाहन (स० पु०) राजमेद । (शयम्भयमा० ३।५)

विमलवधोष्ठी (स० पु०) राजपुत्रमेद ।

विमलव्यूह (स० स्त्री०) उद्यानमेद । (सचिद्वि०)

विमलवर्णमेद (स० पु०) बोधिसत्त्वमेद ।

विमलश्रीम (स० पु०) पर्यतमेद, विमलाद्रि ।

विमलसरस्वती (स० पु०) एक मसिद्ध वैवाकरण ।

इन्होंने कणमासा नामक एक व्याकरण लिखा है ।

विमल सा—एक धनधान्य वणिक । इन्होंने १०३२ ई०में

भातु पर्यतके ऊपर अयन नाम पर एक मन्दिर बनवाया ।

वह मन्दिर आज भी विमलसाका मन्दिर कहलाता है ।

मन्दिर मिश्रमेपुत्रसे परिपूर्ण है । इसकी बनावद प्रशंसा

के योग्य है । मन्दिर दक्षिणेसे दो जैनध्यापयतपश्चिम्यका

निर्देशन-सा मालूम होता है । मन्दिरमें जो सब स्तम्भ

छरी हुए हैं, वे तथा उनको चिह्नवालो देखने लायक हैं ।

यहां पार्श्वनाथको मूर्ति बिराजमान है । इस मन्दिरका

मतिष्ठाकार्य बय नाम सूत्रने सम्पन्न किया था ।

विमल देलो ।

विमल सूत्र— जैनसूत्रमेद । इन्होंने प्रसोत्तररत्ननामा

नामक एक ग्रन्थ बनाया है । वह ग्रन्थ भार्या धर्ममे लिखा

है । कथन है, कि इन्होंने पद्मचरित्र नामक एक कुमार

ग्रन्थ भी बनाया था ।

विमलस्वभाव (स० पु०) विमलः स्वभावः । १ निर्वास

स्वभाव। २ पञ्चतमेद्। ( त्रि० ) ३ निर्मलस्वभाव-  
विशिष्ट, शुद्ध हृदयवाला।

विमलसेन—कान्यकुब्जपति धर्मका वंशधर। ये नायक  
और दलपाङ्गला उपाधिसे भूषित थे।

विमला ( सं० स्त्री० ) विमल-टाप्। १ सतला, सातला,  
कोची। २ भूमिभेद, एक प्रकारकी जमीन। ३ देवी-  
भेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि विमलादेवी वासु  
देवकी नायिका है।

तन्त्रसूडामणिमें लिखा है, कि उत्कल देशमें भगवती  
का नामिदेश गिरा था, इसीसे वह स्थान विरजाक्षेत्र  
कहलाता है। यहां देवीका नाम जगन्नाथ है।

देवी-भागवतके मतसे भी देवीका नाम विमला है।

“गयायां मङ्गला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे।”

( देवीमा० ७।३०।६४ )

देवीपुराणमें विमला देवीका विषय इस प्रकार  
लिखा है—

“यूयाख्य विमला कार्या शुद्धहरेन्दुवर्चसा।

मुण्डान्तस्रधारी च कमयडलुकरा वरा ॥

नावासनमारुढा श्वेतमाल्याम्बरप्रिया।

दधिकोरोदनाहारा कर्पूरमदचर्चिता।

सितपङ्कजहोमेन राष्ट्रायुर्त्तपवर्द्धिनी ॥” ( देवीपु० )

विमलाकर ( सं० पु० ) राजभेद। ( कथासरित् ७।१।६७ )

विमलाप्रनेल ( स० पु० ) बुद्धभेद।

विमलात्मक ( सं० त्रि० ) विमलः निर्मल आत्मा यस्य।  
निर्मल, शुद्ध स्वभाववाला।

विमलात्मन् ( सं० त्रि० ) विमलः आत्मा स्वभावो यस्य।  
१ निर्मल, शुद्ध हृदयवाला। ( पु० ) २ चन्द्रमा।

( रामायण० ३।३५।५२ )

विमलात्मा ( सं० त्रि० ) विमलात्मन् देखो।

विमलादित्य ( सं० पु० ) सूर्य।

विमलादित्य—चालुक्यवंशीय एक राजा, दानार्णवके पुत्र।  
इन्होंने सूर्यवंशीय राजराजकी कन्या और राजेन्द्रचोडकी  
छोटी बहन कुण्डवा देवीकी ब्याहा था। इनका शासन-  
काल ६३७ से ६४४ शक तक माना जाता है।

विमलाट्टि ( सं० पु० ) विमलः अट्टिः। शत्रु जयपर्वत।

मालूम होता है, कि तारनाथने इस विमलसम्भव और  
विमलस्वभाव कह कर उल्लेख किया है।

विमलार्थक ( सं० त्रि० ) विमल, स्वच्छ।

विमलानन्दनाथ—सप्तगणिकाधिपके रचयिता।

विमलानन्दयोगीन्द्र—खल्लन्त्रपद्धतिके प्रणेता, सच्चिदा-  
नन्दयोगीन्द्रके गुरु।

विमलाजोक ( सं० स्त्री० ) तार्थयात्रा या सन्यासों सम्प्रदाय-  
का एक भेद।

विमलाकरण ( सं० पु० ) १ विमल करनेका क्रिया, शुद्ध  
करनेका काम। २ मनमें विचार कर ज्योति मन्त्रसे तनों  
मलोंका नाश करना। ( सर्वदर्शनसंग्रह )

विमलेशगिरि—महोदयके दक्षिणसे ले कर सहायि प्रान्त  
पर्यन्त अवस्थित एक पर्वत। यहांका आमलको ग्राम एक  
तीर्थ समझा जाता है। ( वशावली )

विमलेश्वरतार्थ ( सं० पु० ) तीर्थभेद।

विमलेश्वरपुराकरिणी सगमनतार्थ—तीर्थभेद।

विमलोग्य ( सं० स्त्री० ) तन्त्रग्रन्थभेद।

विमलोदका ( सं० स्त्री० ) नदीभेद। यह विमलोटा नामसे  
भी प्रसिद्ध है।

विमस्तकित ( सं० त्रि० ) द्विषण्डित मस्तक, मस्तकहीन।

विमहत् ( सं० त्रि० ) सुमहत्, बहुत बड़ा।

विमहस् ( सं० त्रि० ) अतितेजस्वी, बहुत प्रतापी।

विमही ( सं० त्रि० ) विशेष रूपने महत्, बहुत बड़ा।

( ऋक् ८।६।५४ )

विमांस ( सं० स्त्री० ) विरुद्धं मांसं। अशुद्ध मांस,  
अपवित्र या न खाने योग्य मांस, जैसे कुत्ते आदिका।

विमाता ( सं० स्त्री० ) अपनी माताके अतिरिक्त पिताकी  
दूसरी विवाहिता स्त्री, सौतेली मां।

विमातृ ( सं० स्त्री० ) विमाता देखो।

विमातृज ( सं० पु० ) विमातृजायने इति विमातृ-जन ड।  
मातृसपत्नीपुत्र, सौतेला भाई।

विमाथ ( सं० पु० ) १ विशेष प्रकारसे मथन, अच्छी तरह  
मथना। २ दलन या दमन करना।

विमाथिन् ( सं० त्रि० ) भूमि पर निम्नित वा मर्दिन।

विमान ( सं० पु० स्त्री० ) विगतं मानमुपमा यस्य। १ दिव-  
रथ, आकाशमार्गसे गमनकरनेवाला रथ जो देवताओं

बादिके पाम होता है। वायुपान उडनलटोका।  
विमानगत देयो। संस्कृत पर्याय—धूमपान। (नगर)

"पुरातनोत्तर मीमांसा" स्वर्णिमर्नानुसूचये।

विमानोत्तरे विमानानो वदारावमगन्तु पर्यायम्।

(कुमारसं २१५)

२ इन्द्रके एक रथका नाम। ३ साधनीमण्डल सात  
मञ्जिनका घर।

"उर्वरतनमात्रीया" विमानय हयोमिताम् ॥"

(पामायण ११५१६)

"विमानोत्तरे हनयने कर्ममे प समिति।"

(पामायण १२५१६ उक्तावृत निपण्ट)

४ घोडक, घोडा। ५ पानमात्र रथ, गाड़ी। ६ परि  
कडेक। "सोमापूर्वा रथमा विमाने" (शुक् २।४०३)  
"विमान परिकडेक सर्वमानमितरथा" (शायण) ७ साधन,  
यज्ञादि कर्मासाधन।

"विमानमन्त्रिभूमिष्य धधिताम्" (शुक् ३।१४)

"विमानं विमोवसेऽनन फलमिति विमान यज्ञादि कर्मासाधनं  
(शायण) विगतः मानो यस्य। ८ अथकाल। (भागवत  
१।१३६०) ९ अस्मान्मान। १० परिमाण। ११ मरै ह्य  
एव मनुष्यको मरपी ओ मन्त्रपञ्चके माय निफालो  
जातो है।

१२ वास्तुशास्त्रार्थित वैधावननमेद्। जिन सब मन्त्रि  
के जिकर पर पोतामीडकी तरह चूडा रहती है प्राचीन  
वास्तुशास्त्रमें उनको विमान कहा है। मानसार नामक  
ग्रन्थमें वास्तुशास्त्रक १८वें से २८वें अध्यायमें तथा  
काश्यपके वास्तुशास्त्रमें विमान बनामका प्रणाली सवि  
स्वार दिखी है। मानसारक मतसे विमान एकसे बारह  
मजिखका तथा काश्यपके मतसे परसे १६ मजिखका  
तथा गोल, चौपटमा और अठपटकारो द्वाविड कहती है।  
वे सब विमान फिर शुद्ध, मिश्र और मन्त्रोर्ण, इन तीन  
भागोंमें विभक्त है। जो कथम एक प्रकारक मन्त्रो  
सर्धान् पन्पर वा इ ट त्स्वो एकम बनाया जाता है उस  
शुद्ध कहते हैं। यही विमान धेष्ट माना गया है। जो  
विमान दो मन्त्रक मन्त्रो सर्धान् ई ट और परपर  
अथवा परपर और वास्तुमें बनाया जाता है उन्म मिश्र तथा  
जो तीन वा तीनसे अधिक उपाशोम सर्धान् मन्त्रो

ई ट बादि वास्तुमोर्ण बनाया जाता है उस मन्त्रोर्ण कहते  
हैं। इसके सिवा स्थानक, वासन और शयन तीन  
प्रकारकी विशेषता है। विमानका ऊर्ध्वार्धक अनुसार  
स्थानक, विस्तारके अनुसार वासन और लम्बके अनु  
सार शयन कहा जाता है। इन तीन प्रकारके विमानोम  
से स्थानक-विमान पर दृष्टाव्यमान ईबमूर्ति, वासन  
विमान पर उपविष्ट ईबमूर्ति और शयन विमान पर  
शायित ईबमूर्ति प्रतिष्ठित करनी होगी।

विमानके आमतक अनुसार फिर शक्तिक, पीष्टिक,  
अथद्, मन्त्रुत और सर्वकाम ये पांच प्रकारक मन्त्र विचार  
देते हैं।

साधारणतः विमानमें गर्भगृह, अन्तराल और अर्ध  
मण्डप इन तीन अंशोंसे समस्त आमतक प्राचीर समेत  
साडे बार या छः अंशोंमें विभाग करना होता है।  
इसमेंसे गर्भगृह दो ढाई वा तीन भाग अन्तराल षेडू या  
दो भाग तथा अर्धमण्डप एक वा डेढ भाग होगा। बड़े  
विमानके सामने ३ या ४ मण्डप होते हैं। उनके नाम  
हैं अर्धमण्डप, मङ्गलमण्डप, स्थानमण्डप उत्तरीमण्डप।

विमानके स्तम्भोंकी ऊर्ध्वार्ध ८ वा १० समान भागों  
में विभक्त करना होगा। इसमेंसे ६, ८ वा ९ स्तम्भ द्वार  
देश पर देने होते हैं। उनकी चौड़ाई ऊर्ध्वार्धसे मापी  
होगी।

विमानक (सं० पु०) विमान-स्वाधे-कन्। विमान देयो।  
विमानता (स० स्त्री०) विमानरूप भावा। तत् टाप्।  
विमानका माव या धर्म अपमान।  
विमानरथ (स० स्त्री०) विमानता देतो।  
विमानत (स० स्त्री०) विमान-चतुष्टय। अपमान तिर  
रकार।  
विमानता (स० स्त्री०) विमानत टाप्। अपमान तिर  
रकार।  
विमानवास (स० पु०) अन्तरीक्षके पासतकर्ता देवदन्त।  
विमानपुर—प्राचीन नगरमेद्।  
विमानपोत (सं० स्त्री०) आकाशमार्गमें गमन करनेवाला  
यान इर्धार्ध अर्थात्।

जगदीश्वरने मानव ज्ञानिका ही सर्वधेष्ट श्रेय बना  
कर इस जगत्में भेजा है। जिना पञ्चममें अज्ञ मानव

पृथिवीके अन्यान्य सभी जीवोंमें श्रेष्ठ हैं। उसका मूल कारण है उनकी बुद्धिमत्ता। इसी बुद्धिमत्ताके बल आज वे अप्रतिहनभावमें पृथिवीके ऊपर आधिपत्यलाभ करनेमें समर्थ हुए हैं। इसी बुद्धिमत्ताके बल पर विज्ञानशास्त्रकी सृष्टि करके उन्होंने प्रकृतिके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी है। और इसी विज्ञानके चरम उत्कर्षसे विमानपोत वा आकाशयानकी सृष्टि हुई है। जब मानवजातिने देखा, कि पक्षीगण स्वच्छन्दतापूर्वक आकाशमें विचरण करते हैं, तब हम लोग—इस जगत्के श्रेष्ठ जीव, क्यों नहीं कर सकेंगे? तभीसे वे इस रहस्यके उद्घाटनमें प्रयत्न करने लगे। आखिर उन लोगोंने सफलता प्राप्त कर जगत्को दिखला दिया, कि मानवजातिके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है।

वर्तमान सभ्यताके युगमें विमानपोतकी सृष्टि और उसका क्रमविकाश किस प्रकार हुआ, नीचे उसी पर आलोचना की गई है।

सबसे पहले डैने तैयार करके उसीके द्वारा आकाशमें उड़ना अच्छा समझा गया। सुना जाता है, कि इसी उपायसे एक अंगरेज साधुने ११वीं सदीके मध्यभागमें स्पेनदेशके एक नगरसे प्रायः एक मीलका रास्ता तय किया था। इसके बाद १६वीं सदीके शुरूमें एक इटालियन ज्योतिषी स्काल्लैण्डक राजा चतुर्थ जेरसके विशेष अनुरोध पर एलि प्रासादमें फ्रान्सकी ओर शून्यमार्गसे उडे। किन्तु दुर्भाग्यवशतः कुछ समय उड़नेके बाद ही वे हठात् जमीन पर गिर पड़े जिमसे उनकी टांगें टूट गईं। ठीक इसी समय ल्युनाहोर्दा मिञ्चिने इस विषय पर यथेष्ट गवेषणा की। पीछे आलर्ड (Allard) और बेस्मिये (Besmer) नामक दो फ्रान्सियोंने यथाक्रम १६६० और १६७८ ई०में कुछ दूर उड़ कर सफलता प्राप्त की। इसके बाद भी बहुतोंने चेष्टा की, पर इस प्रकार पक्षसंयुक्त हो कर उड़ना विपन्नकर समझ इस ओरसे ध्यान बिलकुल खींच लिया अब उन लोगोंकी विज्ञान, दृष्टि दूसरी ओर दीड़ पड़ी। उन लोगोंने सोचा, कि अब एक ऐसा यन्त्र बनाया जाये, जो वायुमें हल्का हो और जिम पर चढ़ कर स्वच्छन्दतापूर्वक गगन विहार किया जाये। बहुत चेष्टा और गवेषणाके बाद आखिर एक

वैने ही यन्त्रका आविष्कार किया गया। इस नये यन्त्रका नाम हुआ 'वैलून'। यह ग्वर या कैम्बिसका बनाया हुआ एक बद्ध गोलाकार बाल जैसा यन्त्र है। इसके मध्य उदजन (Hydrogen) भरनेसे यह वायुकी अपेक्षा कहीं हल्का हो जाता है तथा उसमें बैठ कर मनुष्य आसानीसे आकाश-भ्रमण कर सकते हैं। फ्रान्स देशके Joseph Michel Montgolfier और Jaques Etienne Montgolfier नामक दो भाई इसके आविष्कर्ता माने जाते हैं। देखून देखो।

इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक गगन पर्यटनमें सक्षम हो सभी देशोंके वैज्ञानिकोंका मन इधर आकृष्ट हुआ। उन्हींके अटूट परिश्रम और असाधारण अध्यवसायसे इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो अन्तमें जेपेलिन नामक एक बृहत् विमानपोतकी सृष्टि हुई।

१८८७से१९०० ई०के मध्य जर्मन सैन्यदलके काउण्ट फार्दिनाण्डमान जेपेलिनने एक बड़े विमानपोतका निर्माण किया। इसमें पांच आदमीके बैठने लायक स्थान था और उसका समूचा भाग प्लुमिनियम धातुका बना हुआ था। १९०६ से १९२१ ई०के मध्य विमानपोतके सम्बन्धमें तरह तरहकी कल्पना चलती रही। उसके फलसे इस समय विभिन्न आकृति और शक्तिविशिष्ट विमानपोतोंकी सृष्टि हुई। उनमेंसे परोप्लेन (Arroplane) और समुद्रपोत (Seaplane) का नाम उल्लेखनीय है। विस्तृत विवरण हवाई जहाज शब्दमें देखो।

आजकल संसारके सभी सभ्य देशोंमें विशेषतः इङ्ग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और अमेरिका आदि स्थानोंमें दिनों दिन विमानपोतका बहुल प्रचार देखा जाता है। इसके बनाने और चलानेके लिये उक्त राज्योंमें करोड़ों रुपये खर्च हो रहे हैं। इस पोतके सम्बन्धमें बहुतेरोंका विश्वास है, कि यह अभी पाश्चात्यसभ्यताकी वैज्ञानिक उन्नतिका निदर्शन है। बहुतेरे बीस वर्ष पहले परोप्लेन, जेपेलिन आदि हवाई जहाजोंका कल्पना तक भी नहीं कर सकते थे।

प्राचीन भारतमें विमानपोतका परिचय।

हम लोगोंके रामायण और महाभारतमें विमानपोतका कई जगह उल्लेख आया है। कुछ दिन पहले बहुतेरे लोग

हल इर्षाई अहासीकी कथा कविकल्पना-सी समजते थे । किन्तु वर्तमान पाश्चात्य विज्ञानकी धरम उन्नति आकाशयानकी देख कर हम भोग उन पौराणिक कथाओं को कविकल्पना कह कर उबा नहीं सकते ।

गत महायुद्धमें क्षेपित और परोप्येनमे जैसा कमाख किया यह पाठकीसे छिपा नहीं है । सभी जनसाधारण का विश्वास हो गया है कि विमानपोतकी सहायतासे एक महादेशसे दूसरे महादेशमें जाला कोई बड़ी बात नहीं है । हमारे इस भारतवर्षमें कई हजार वर्ष पहले आर्य-समाजमें विमानपोत प्रचलित था । उसकी सहायतासे एक देशसे दूसरे देशमें आसानीसे और इच्छानुसार जहाँ तहाँ जा सकते थे । सभी जिस प्रकार विमानपोत जन साधारणका निर्यात नहीं है, गवजमेवटक कास विभागके अधीन है, पहले भारतवर्षमें भी उसी प्रकार यह जन साधारणकी सम्पत्ति नहीं, व्यक्तिविशेषका निर्यात वा वैयस्य समझा जाता था ।

पुष्करप ।

रामायण, महाभारत और पुराणोंसे हमें मालूम होता है कि देवगण विमान पर चढ़ कर स्रमण किया करते थे रामायणमें लिखा है, कि बहुतसुँख अश्वामे यज्ञराज कुशेत् पर प्रसन्न हो उन्हें पुष्करप दे दिया था । धर्मरही तरह यज्ञराज उस पुष्करप पर चढ़ कर जहाँ इच्छा होती थी जाती थे । ( रामायण उत्तरकाण्ड ३ काँ ) कुशेत्को पराम्भ कर अङ्गाधिपति राजधने यह पुष्करप ले लिया था । उन पुष्करपके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

“निर्गिह्वं चक्रेत्तत्तत्तं भद्रं इहममनसः ।  
 पुष्कं तल्पं चम्राह विमानं चक्रुःकथम् ॥  
 कञ्चनस्तम्भसंतीर्णं वैभुष्मंभविगोरणम् ।  
 पुष्कमासप्रविन्दुप्र कर्षकामकरुप्ररम् ॥  
 मनोज्ञं कामममं कामकर्म विशुद्धम् ।  
 मीयकाञ्चनज्वानं ततकाञ्चनमेरिक्म् ॥  
 बंभनान्दुर्बपञ्चं तदा दक्षिणामुल्लम् ॥  
 ब्रह्मन्वर्णं मक्षिधिनं कथय्या परिनिर्मितम् ॥  
 निर्मितं लक्षकमेस्तु यन्नाहरममुल्लम् ।  
 न तु शीघ्रं न कोप्युष्यं कर्मैतं पुष्करपमम् ॥

) रामायण काँ (५५-२५-३५)

वर्तमान इर्षाई अहाज या परोप्येन धर्ममें १०० या १५० मोठ तक जा सकता है । किन्तु उस पुष्करपकी गति इससे कहीं बढ़ कर थी । उत्तरकाण्डके ८३वें सर्गसे इसका प्रमाण मिलता है । आरामचन्द्र छद्मासे शीटते समय अगभ्याग्रम अर्थात् वायुवाह्यसे साध दिनमें पुष्करपसे अयोध्या आये थे ।

बहुत दूरसे जिस प्रकार परोप्येनके आने जानैका शब्द लोगोंको सुनाई देता है, पुष्करप भी उसी प्रकार धीरे शब्द करता हुआ बड़ी तेजीसे शून्यमार्गमें बढ़ता था

विमान ।

पुष्करपके अतिरिक्त विमानकी बात पहले ही लिखी जा चुकी है । संस्कृतकोषोंमें विमानका अर्थ 'वैद्ययान' लिखा है । किन्तु पुराणसे हमें मालूम होता है, कि पक्ष और गन्धर्व भी विमान पर चढ़ पुष्करपण किया करते थे । श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि गन्धर्वरमणियाँ विभिन्न अङ्गुली और परमूर्ध्वर्षोंसे विभूषित हो विमान पर चढ़ वक्ष्यक देवने गई थी । ( श्रीमद्भागवत ११/५५ )

भारतीय आर्यसमाजमें वेदिराज्यके प्रतिष्ठाता महा राज वसुमे हो सबसे पहले आकाशयानों स्फटिकविमान का व्यवहार किया था । महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है, कि पुटबंशीय वसुराजने इन्द्रके तपदेशसे वेदिराज्य प्रदण किया था । पहले उनकी कठोर तपस्या देख कर देवगण भी भयभीत हो गये थे । इन्द्रने उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये स्फटिकविमान और वैद्ययन्त्री माया दी थी । वेदिवंश वसु स्फटिकविमान पर चढ़ कर आकाशमें घूमा करते थे इस कारण वे 'अपरिच्छा वसु' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ।

वसुराजके बाद भी महाभारतमें शाकवराजका वैद्य यसयानका उल्लेख है । विम्बकर्मीय शिवसंहितामें लिखा है, कि शाकवराज मर्त्यधाममें कुछ म कामगामी यान प्राप्त कर धूमिलयंभके साध और साधनके लिये शारदा गये थे । वह यान इच्छानुसार भूमि, आकाश, गिरिपुङ्गव वा जलके बीच हो कर गया था ।

विम्बर्षई रचित एक शिल्पशास्त्रमें पुष्कर बनानेका ना प्रसङ्ग है । विम्बर्षर्षी वैदित्याकी यह पुष्कर यान



वायुके योगसे बनाया था। वह अत्रिच्छेदगतियुक्त, वायुवन् कामगामी और नाना उपकरणयुक्त था।

केवल पौराणिक कथाओं ही नहीं, भारतके ऐतिहासिक युगमें भी हम लोग आकाशगामी विमानका प्रसङ्ग पाते हैं। ऋषिसत्त्वावदानकल्पलतामें लिखा है, कि पुराकालमें श्रावस्ती नगरीके जेतवनविहारमें भगवान् बुद्ध रहते थे। उनकी अनुमतिसे अनाधरिण्डक की कन्या सुमागधाका विवाह पौण्ड्रवर्द्धनवामी सार्ध ताथके पुत्र वृषभद्रसे हुआ था। एक दिन सास और पतोहमें किसी कारण ऋगड़ा हुआ। सुमागधाने अति कातर और भक्तिभावसे बुद्धदेवका आह्वान किया। अन्तर्यामी भगवान् उसके आह्वानसे विचलित हो गये और आनन्दको बुठा कर कहा, 'कल मवेरे मुझे पौण्ड्रवर्द्धन नगर जाना है। सुमागधाने मेरो और सङ्घही पूजा करनेके श्रिये प्रार्थना की है। पौण्ड्रवर्द्धन यहाँसे छः सौ योजनसे भी दूर है, एक ही दिनमें वहाँ जाना हागा। जो सब प्रभावशाली भिक्षु आकाशमार्गसे जानेमें सक्षम हैं उन्हींको निमन्त्रणपत्र देना।' प्रातःकाल होने पर भिक्षुगण देवताओंका रूप धारण कर विमान पर चढ़ आकाशमार्गसे पौण्ड्रवर्द्धनमें आये। विमानविहारी उज्ज्वलमूर्ति भिक्षुकोंको देख पौण्ड्रवासो विस्मित हो गये थे।

जैनोंकी श्रेय श्रुतकेवली भद्रबाहुका चरित पढ़नेसे मालूम होता है, कि महादुर्भिक्षसे जिस समय समस्त आर्यावर्त्त प्रपीडित हो गया था उस समय मौर्यराज चन्द्रगुप्त को ले कर भद्रबाहुने विमान द्वारा दक्षिणको ओर यात्रा की थी।

हिन्दू, जैन और बौद्ध इन तीनों प्रधान सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें विमानपोत या आकाशयानका विवरण आया है। विमान पर चढ़ कर आरौही बहुदूरवर्त्ती स्थानोंको देख सकते थे, रामायण और महाभारतमें उसका भी उल्लेख है। जब राम-लक्ष्मण नागपाशसे भावद्ध हुए, तब सीताको पुष्पक पर चढ़ा कर आकाशमार्गसे मूर्धतित रामलक्ष्मणको दिखाया गया था। जब रामचन्द्र लङ्का से पुष्पक द्वारा यथोभ्या लॉटे, तब वे पुष्पक परसे सीता देवीको अनेक स्थान दिखाते हुए आये थे। अब प्रश्न

होता है, कि इतनी ऊँचाईसे विमान पर चढ़ भूतलस्थ नाना स्थानोंका दर्शन किस प्रकार सम्भव था? चर्मचक्षु द्वारा उतनी दूरसे देगना बिल्कुल असम्भव है। आज कल जिस प्रकार टेलीस्कोपकी सहायतासे सुन्दर आकाशमण्डलके नाना स्थान दिखाई देते हैं, पूर्वकालमें विमानयात्रियोंके साथ उसी प्रकारका कोई दूरदर्शन-यन्त्र रहता था।

भारतीय आर्यसमाजमें चेदिराज वसु ही सबसे पहले आकाशयानका व्यवहार करते थे। हम लोगोंका विश्वास है, कि वर्त्तमानकालमें जिस प्रकार आचार्य जगदीशचन्द्र वसु महाशयने वहुनों आविष्कार द्वारा वैज्ञानिक जगत्को विमुग्ध कर दिया है, उनके पूर्ववर्त्तों चेदिराज वसु भी उसी प्रकार कठोर तपस्या का असाधारण अध्यवसायके बलसे तात्कालिक मानव जगत्के असाध्य और अनधिगम्य स्फटिकविमानके आविष्कारमें समर्थ हुए थे।

विमानयितव्य ( स० त्रि० ) विमानितव्य । विमानताके योग्य, निरस्कार करने लायक।

विमानुष ( स० त्रि० ) विकृत मनुष्य, कुरूप आदमी।

विमान्य ( सं० त्रि० ) विमानित्य । विमानताके योग्य, अग्रमान करने लायक।

विमाय ( सं० त्रि० ) विगता माया यस्य । मायाहीन, मायाशून्य। ( शृक् १०।७३।७ )

विमार्ग ( सं० पु० ) मृज घञ् मार्गः विकृष्टो मार्गः । १ कदाचार, बुरी चाल। २ सम्मार्जनी, काङ्गू। ३ कुपथ, बुरा रास्ता।

विमित ( सं० त्रि० ) १ परिमित, जिसकी सोमा या हृद् हो। ( पु० ) २ वह चौकीर शाला या इमारत जो चार खंभों पर टिकी हो। ३ बड़ा कमरा या इमारत

विमिथुन ( सं० त्रि० ) विशिष्ट मिथुन, युगल।

( लघुजातक १।२० )

विमिश्र ( सं० त्रि० ) १ मिश्रित, मिला हुआ। २ जिसमें कई प्रकारकी वस्तुओंका मेल हो, मिलानुका।

विमिश्रक ( सं० त्रि० ) मिश्रणकारी, मिलानेवाला।

विमिश्रगणित ( सं० स्त्री० ) वह गणित जिससे पदार्थ सम्बन्धमें राशिका निरूपण किया जाय।

विमिधा ( स० स्त्री० ) मृगगिरा, भार्ग, मया भीरु भरखेपा  
नक्षत्रमें बुधघो गनिका नाम जो ३० दिनों तक रहती है ।

विमिधिन ( स० लि० ) मिधाया हुआ ।

विमिधित लिपि ( स० स्त्री० ) लिपिधिशेष ।

(सहितमिस्तार)

विमुक्त ( स० लि० ) वि-मुक्-त् । १ विशेषरूपसे मुक्त,  
जो बन्धनसे अलग हुआ हो । २ मोक्षप्राप्त, जिसे मोक्ष  
मिल गया हो । ३ स्वतन्त्र स्वच्छन्द । ४ जिस किसी  
प्रकारका प्रतिबंध या श्रमबन्धन रह गई हो । ५ हानि,  
बुद्धि धादिन बन्धा हुआ । ६ अलग किया हुआ, बरी ।  
७ परफुल्ले मूट कर बसा हुआ, छोड़ा हुआ । ( पु० )  
८ मापघो । क्रिया टाप् । विमुक्ता—मुक्ता ।

(६३ विमिधा ५५)

विमुक्त भावार्थ—इष्टसिद्धि प्रणेता ।

विमुक्तता ( स० स्त्री० ) विमुक्तत्व भावः तल्ल टाप् ।

विमुक्तता भाव या धर्म, विनाशन ।

विमुक्तसेन ( स० पु० ) वीरशास्यसेन । ( तात्याप )

विमुक्ति ( स० स्त्री० ) वि-मुक्-तिश्च । १ विमोचन मुट  
कार, विहाय । २ मोक्ष मुक्ति ।

विमुक्तिचन्द्र ( सं० पु० ) बोधिसत्त्वसेन ।

विमुक्त ( सं० लि० ) विमुक्त भगवतुहन् मुक्त्वमस्य । १ पराङ्क  
मुक्त, जिसने किसी बातसे मुक्त फेर लिया हो ।  
२ विरत, निवृत्त, अमत्यर । ३ अपसेन, जो किमोक्त हितके  
प्रतिकूल हो । ४ निगूटा जिसे किसी प्रकारका काम  
न हो । ५ निराश जिसको प्याह या माँग पूरी न हुई हो ।  
६ अज्ञासोक्तता, जिसने मन न छपाया हो । ७ मुन्यरहित,  
जिसके मुह न हो ।

विमुक्ता ( स० स्त्री० ) विमुक्तत्व भावः तल्ल टाप् । १  
विरति, अत्यपराता । २ परांगमुक्ता, अमसक्ता ।

विमुक्तीकृत ( स० लि० ) अविमुक्तं विमुक्तं कृतं अहमुक्त  
तल्लभाये चि । १ जो विमुक्त क्रिया गया हो ।

विमुक्तीमात्र ( स० पु० ) १ विरति । २ अमनुरक्ति ।

विमुक्तीम् ( स० पु० ) विमुक्तीमात्र सेता ।

विमुग्ध ( स० लि० ) १ अमरकृत । २ मोहित आसक्त ।  
३ झममें पडा हुआ । ४ धराराया हुआ, डरा हुआ । ५  
उन्मत्त, मतवाला । ६ पागल, बाबला । ७ बेतुप ।

विमुग्धक ( स० पु० ) १ मोहनीवाक्य । २ एक प्रकारका  
छोटा अमिमय वा नक्षत्र ।

विमुग्धकारी ( स० पु० ) १ मोहित करनेवाला, मोहने  
वाला । २ झममें डालनेवाला ।

विमुष् ( स० स्त्री० ) वि-मुष्-क्तिप् । १ विमोचनकारी  
विमोक्षा ।

विमुष् ( स० पु० ) अविमेष । ( मातृ भवन् )

विमुष् ( स० लि० ) विगमो मुष् यस्मात् । मुष्परहित ।

विमुष् ( स० स्त्री० ) १ स्वभावसे, एक बड़ो संबन्धका  
नाम । ( लि० ) २ अमन्यरहित, उवास ।

विमुष् ( स० लि० ) विगता मुष् मुष्ण भावो यस्य । १  
प्रमुष्ण, प्रसन्न ( हेम ) । २ मुष्परहित ।

विमुष्कृत ( स० स्त्री० ) वि-मुष्क-कृतम् । १ मुष्कृत । २  
सप्तस्वरको मुष्कृतना ।

विमुष् ( सं० लि० ) वि-मुष्-क । १ विमुष्, अत्यन्त मोहित ।

२ बहुत मूर्ख, अज्ञ बुद्धि । ३ मोह प्राण, झममें पडा हुआ ।  
४ बेतुप अथैत । ५ अमन्यरहित, जिसे समस्त न पडता  
हो । ( स्त्री० ) ६ एक प्रकारका सङ्कोच-कला ।

विमुष्कर्मा ( स० पु० ) वह कर्म जिसमें बन्धा मरा या  
बेदोश हो और प्रसवमें बड़ो कठिनता हो ।

विमुष्कृत ( स० लि० ) मुष्कृतप्राप्त । ( दिग्मा ४८५३ )

विमुष् ( सं० लि० ) वि-मुष्क-क । १ विरक्त मूर्च्छाविरहित ।  
२ मूर्च्छाविरहित ।

विमुष्कृत ( स० लि० ) मूर्च्छाकृतं प्राप्य जनक विगता  
मूष्कृतं यस्य । कशाहीन । ( महाश )

विमुष्कृत ( स० लि० ) १ मुष्कृत, बिना अङ्क । ( हरिश्च ७ )  
२ अविष्कृत मूष्कृतं रहित । ३ मध, बरवात् ।

विमुष्कृत ( स० स्त्री० ) १ अमृष्कृत, अङ्कसे उकाडना ।  
२ विनाश, ध्वंस ।

विमुष्कृत ( स० लि० ) अत्यन्तविष्कृत, अंगुष्ठी हरिचसे मर  
पूर । ( एमान्ध १७७५ )

विमुष्कृत ( स० लि० ) १ अमृष्कृतपोष पोषा करने योग्य ।  
२ अमृष्कृतपोष तलाश करने योग्य ।

विमुष्कृत ( स० लि० ) वि-मुष्क-कृतम् । परिष्कार, परि  
ष्कृत । अतिक्रान्ति विमुष्कृतो पद् वनता है ।

( अमर्ष १५१२६ )

विमृत्यु (सं० त्रि०) विगतो मृत्युः यस्य । १ मृत्यु-  
रहित । २ अमर ।

विमृध् (सं० त्रि०) १ सप्रामकारी, योद्धा । (ऋक्  
१०।१५२।२) २ जल, दुश्मन ।

विमृध (सं० त्रि०) विशेषरूपसे नाशकारी ।

विमृधतनु (सं० त्रि०) इन्द्र ।

विमृश (सं० पु०) वि मृश अच् । विमर्श, आलोचना ।

विमृश्य (सं० त्रि०) १ विमर्शनयोग्य, आलोचना या  
समीक्षाके योग्य । (भागवत १०।८५।३) २ तिरु पर  
विवेचना या विचार करना हो, जिसकी समीक्षा करनी  
हो ।

विमृष्ट (सं० त्रि०) वि मृज्-क्त । १ परिच्छन्न । (शतपथभा०  
१।५।१।६) २ जिसकी पूरी आलोचना या समीक्षा हुई  
हो । ३ जिस पर तर्क वितर्क या सम्यक् विचार हुआ  
हो ।

विमृष्टराग (सं० त्रि०) जिसका राग साफ किया  
गया हो ।

विमोक्त (सं० पु०) १ मुक्ति, छुटकारा, रिहाई । (शुक्  
५।४।१) २ मलरहित । ३ राग रहित, ऊपरी आवरण  
रहित । ४ स्पष्ट, साफ ।

विमोक्तम् (सं० अर्थ०) विमुक्ति, मुक्ति ।

विमोक्तव्य (सं० त्रि०) वि-मुच तव्य । मोचनार्ह, छोड़  
देने योग्य ।

विमोक्ता (सं० पु०) मुक्त करनेवाला, छुड़ानेवाला ।

विमोक्तृ (सं० पु०) वि-मुच-वृच् । विमोक्ता देखो ।

विमोक्ष (सं० पु०) वि-मोक्ष-अच् । १ विमोचन, बंधन या  
गाठ आदिका खुलना । २ विमुक्ति, छुटकारा, रिहाई ।  
३ निर्वाण, जन्म-मरणके बन्धनसे छूटना । ४ परित्याग,  
छोड़ना । ५ सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहणसे छूटना ।  
६ प्रक्षेपण, किसी वस्तुका पकड़से इस प्रकार छूटना कि  
वह दूर जा पड़े । ७ मेरुपर्वतका एक नाम ।

विमोक्षक (सं० त्रि०) वि-मोक्ष ण्वुल् । विमोचक,  
विमुक्तिदाता ।

विमोक्षण (सं० क्लो०) वि-मोक्ष-ल्युट् । १ विमोचन, मुक्त  
करना । २ परित्याग, छोड़ना । ३ बन्धन आदि खोलना ।

विमोक्षिन् (सं० त्रि०) वि-मोक्ष् णिनि । मुक्तिदाता,  
मोचनकारी ।

विमोच (सं० त्रि०) वि-मुह-ञ । समोच, धर्म न हाने-  
वाला, न चूकनेवाला ।

विमोचक (सं० त्रि०) वि-मुच् ण्वुल् । १ मोचनकारी,  
मुक्त करनेवाला । २ बन्धन खोलनेवाला । ३ गिराने-  
वाला, डोड़नेवाला ।

विमोचन (सं० क्लो०) वि-मुच्-ल्युट् । विमुक्ति, रिहा  
करना । २ बंधन गाठ आदिको खोलना । ३ गाड़ी  
आदिसे बँल आदिको खोलना । ४ दूरगमन, निका-  
लना, बाहर करना । ५ त्याग, इस प्रकार खलना  
करना, कि कोई वस्तु दूर जा पड़े । ६ गिराना,  
डालना । ७ तीर्थविशेष । (भारत ३।८३।५०) (पु०)  
८ महादेव । (भारत १३।१।५।६)

विमोचनीय (सं० त्रि०) वि मुच् अनीयर् । विमो-  
चनार्ह, छोड़ने योग्य, मुक्त करने लायक ।

विमोच्य (सं० त्रि०) विमोचनीय दन्ते ।

विमोह (सं० पु०) वि-मुह-वञ् । १ मोह, अज्ञान, भ्रम,  
भ्रान्ति । २ अचेत होना, बेसुध होना । ३ बहुत  
लुभाना या मोहित होना । ४ एक नरकका नाम ।

विमोहक (सं० पु०) १ मोहनेवाला, लुभायना ।  
२ मनमें लोभ उत्पन्न करनेवाला, ललचानेवाला । ३ ज्ञान  
या सुध हरनेवाला । ४ एक राग जो हिंडोल रागका  
पुत्र माना जाता है ।

विमोहन (सं० क्लो०) वि मुह-न्पुट् । १ वैचित्रीकरण,  
मन लुभाना । २ डूमरेका मन नशमें करना । ३ ऐसा  
प्रभाव डालना कि चित्त ठिकाने न रहे । ४ कामदेवके  
पांच वाणोंमेंसे एक । ५ एक नरकका नाम । (त्रि०)  
विमोहयतीति वि-मुह-णिच् ल्यु । ६ विमोहक, मन  
लुभानेवाला ।

विमोहनशील (सं० त्रि०) १ भ्रमकारी, धोखा देनेवाला ।  
२ मोहित करनेवाला, लुभानेवाला ।

विमोहना (हिं० क्लि०) १ मोहित करना, लुभाना ।  
२ ऐसा प्रभाव डालना कि तन मनकी सुध न रहे ।  
३ भ्रान्तिमें करना, धोखेमें डालना ।

विमोहा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका लज्ज । इसके प्रत्येक  
चरणमें दो रगण होते हैं । इसे 'जोहा' 'विजोहा' और  
'विजोहा' भी कहते हैं । विजोहा देखो ।

विमोहित ( सं० लि० ) वि-मुह विष्-क्त । मोहयुक्त, माहित ।

विमोहित् ( सं० लि० ) वि-मुह-विनि । विमोही द बो ।

विमोही ( सं० स्त्री० ) १ मोहित करनेवाला, या खुमाने वाला । २ सुघ बुध मुनामेवाला । ३ भ्रममें डालने वाला, ध्रान्त करनेवाला । ४ सृष्टिर्त वा वेदोश करने वाला । ५ जिसे मोह वा व्या न हो निन्दुर ।

विमीर ( हि० पु० ) दीमकोंका बड़ाया हुआ मिट्टीका दूह, बौबी ।

विमीन ( सं० लि० ) मुनैसाव मीन, बिगता मीन । मीनरहित ।

विमीली ( सं० लि० ) विरोधवा विरहित जिसे गिरकी भूषा न हो ।

विम्बापन ( सं० स्त्री० ) जिघ्रित करना ।

विम्ब ( सं० पु० स्त्री० ) बो ( उम्माह्वयश्च । अण् ४।१५ )

इति-बन् प्रत्ययेन साधुः । १ सूर्यबन्धुप्रमण्डल । ( अमर ) २ मण्डलमास, मण्डलकी तरह गोलाकार । ३ सृष्टि, प्रतिबिम्ब छाया । ( पु० ) ४ कृत्नास गिर गिर । ५ बिम्बिकाफल, कु वक नामक फल ।

विम्बक ( सं० स्त्री० ) विम्ब स्थाये क्व । १ सन्धसूर्य मण्डल । २ बिम्बिकाफल, कु वक । ३ मञ्जक, माँषा । ४ मुनाह्वतिविशेष । ( विम्ब १७२।१० )

विम्बजा ( सं० स्त्री० ) बिम्बफल ज्ञापनेऽस्यामिति जन ज । विम्बिका देखो ।

विम्बद ( सं० पु० ) सरप, सरसो ।

विम्बरान्न—सखाद्रि-वर्णित बो राजाबोके नाम । ( उषा- १।१८८ ३।१५८ )

विम्बा ( सं० स्त्री० ) विम्ब बिम्बकसमस्त्यस्यामिति बिम्ब अच् साप् । विम्बिका देखो ।

विम्बागत ( सं० लि० ) बिम्बेन भागता । विम्बगत, विम्बित ।

विम्बाहितैल ( सं० पु० ) अणुर् रोगका उपकारक सैलभीषण-विशेष । मस्तुत प्रणाली—हीरसका मूल कबरीमूल और निसोध द्वारा पाथिल तैलको सु धनो छेनेमे गरुडमात्रा दूर होती है ।

विम्बिका ( सं० स्त्री० ) १ बिम्ब । ( अमर ) २ अणु सूर्यमण्डल ।

विम्बित ( सं० लि० ) विम्ब इतथ । प्रतिबिम्बित, प्रति फलित ।

विम्बिसार—एक शाक राजा । ये महाराज अशोकक प्रपितामह और अजातशत्रुके पिता थे ।

विम्बितार उच्च देखो ।

विम्बो ( सं० स्त्री० ) विम्ब-गौराद्विधात् झोप् । विम्बिका ।

विम्बु ( सं० पु० ) शुभाक्ष सुपातो ।

विम्बोष्ठ ( सं० पु० ) बिम्बे इष भोष्ठो पत्य, 'भोत्वो षुपोः समासे वा' इति पाणिनाऽकारभोग । यह जिसक बोनो होत विम्बफलकी तरह छाल हो । विम्बोष्ठ सन्धिषक अनुसार अकार और ओकारमें सन्धि हो कर वृद्धि होती है तथा विम्बोष्ठ पद बनता है । किन्तु 'भोत्वोष्ठपो समासे वा' इस विशेष सूत्रक अनुसार एक अण्व अकारका भोग और एक अण्व वृद्धि हो कर विम्बोष्ठ और विम्बोष्ठ पेसा पद बनेगा ।

विम्बोष्ठ ( सं० पु० ) विम्बोष्ठ देखो ।  
विष्—ज्ञातिविशेष ।  
विष्कारिन् ( सं० पु० ) विपति आकाशे सरताति अर जिनि । आकाशधारा ।

विषत् ( सं० स्त्री० ) विष्पठति न विरमतीति वि-यम ( अण्यम्बोऽपि इत्येव । पा ३।३।१०८ ) इति क्विप् क्वी क मादानामिति वि-या-शतु विषत् प्रतेपे तुक् । १ आकाश । ( लि० ) २ गमनशील ।

विषत्पनाक ( हि० स्त्री० ) विषत्, विष्पत् ।  
विषत्पुत्र—अभ्यारणक अन्तर्गत तिलपर्जा नदीतारक्य एक नगरका नाम । ( मदिम्ब-मण्डल ४२।१५१ )

विषति ( सं० पु० ) मङ्गलक एक पुत्रका नाम । ( मण्डल ६।१८।१ )

विषद ( सं० लि० ) विषति आकाशे गच्छतीति यम-य । आकाशपानी ।

विषद्वृत्ति ( सं० स्त्री० ) विषतो वृत्ता । स्वर्गगगा, मन्धा विनी ।

विषद्वृत्ति ( सं० स्त्री० ) विषतीमृत्तिमस्मिन् । अन्धकार ।  
विषद्वृत्ति ( सं० पु० ) विषना मयि । सूर्य । ( इरावती )  
विषम ( सं० पु० ) वि-यम-बन्ध लुपनिभिनु च । पा ३।३।११ इत्यप् । १ संवम, इन्द्रियमम । २ शुष्क, अंश ।

वियव ( सं० पु० ) क्रमविशेष । ( सुश्रुत )  
 वियवन ( सं० क्ली० ) पृथक्कीकरण । ( निष्क ४१२१ )  
 वियात ( सं० त्रि० ) विरुद्धं निन्दां यातः प्रायः । १ निर्लज्ज,  
 वेहया । २ पथघ्न, राम्नेसे मटका हुआ । ३ गया,  
 घोता ।  
 वियातस् ( सं० क्ली० ) रथचक्रका ध्वंस, वधकर्म ।  
 वियातिमन् ( सं० पु० ) वियातस्य भावः वियात (यणोदटा-  
 दिम्बः व्यञ्च । पा ५।१।२२३ ) इति इमनिच् । वियातका  
 भाव, निर्लज्जता, निन्दा ।  
 वियाम ( सं० पु० ) वि-यम घञ् । समय, रन्ध्र-निग्रह ।  
 वियास ( सं० पु० ) देवताभेद । ( शुभश्रुतः ३।११ )  
 वियुक्त ( सं० त्रि० ) वि-युज्-घत । १ जो संयुक्त न हो,  
 जिसकी जुड़ाई हो गई हो । २ जुड़ा, अलग । ३ रहित,  
 हीन ।  
 वियुन ( सं० त्रि० ) १ वियुक्त, अलग । २ रहित, हीन ।  
 वियुनार्थक ( सं० त्रि० ) स्याहीन, ज्ञानशून्य ।  
 वियुय ( सं० त्रि० ) यूथघ्न, टलघ्न ।  
 वियोग ( सं० पु० ) वि-युज् घञ् । १ विच्छेद, संयोगका  
 अभाव, मिलापका न होना । पर्याय—विप्रलम्भ, विप्र-  
 योग, विरह, अभाव । ( हेम ) २ गणितमें राजिका व्यव-  
 कलन । ३ पृथक् होनेका भाव, अलगाव । ४ दो प्रेमियोंका  
 एक दूसरेसे अलग होना, विरह, जुड़ाई । साहित्यमें  
 शृङ्गाररस दो प्रकारका माना गया है, संयोगशृङ्गार  
 ( या सम्भोगशृङ्गार ) और वियोगशृङ्गार ( या विप्र-  
 लम्भशृङ्गार ) । वियोगको दशा तीन प्रकारकी होतीं  
 हैं, पूत्रराग, मान और प्रवास ।  
 वियोगता ( सं० स्त्री० ) वियोगस्य भावः तल टाप् ।  
 वियोगका भाव या धर्म ।  
 वियोगपुर ( सं० क्ली० ) पुरभेद । ( कथावर्तिषा० ४०।२७८ )  
 वियोगवत् ( सं० त्रि० ) वियोगः अन्यास्तोति मत्तुप् मस्य  
 च । वियोगविशिष्ट, वियुक्त ।  
 वियोगमाज् ( सं० त्रि० ) वियोगं भजते इति वियोग-भज-  
 ङीप् । विच्छेदयुक्त, विरही ।  
 वियोगान्त ( सं० त्रि० ) जिसकी कथाका अन्त दुःखपूर्ण  
 हो । आधुनिक नाटक दो प्रकारके माने जाते हैं, सुखान्त  
 और दुःखान्त । इन्हींको कुछ लोग संयोगान्त और

वियोगान्त भी कहते हैं । भारतवर्षमें संयोगान्त या  
 सुखान्त नाटकलिपतेको ही चाल पाई जाती है; दुःखान्त-  
 का निषेध हो मिलता है । परन्तु पूर्वकालमें दुःखान्त  
 नाटक भी लिखे जाते थे, इसका आगाम कालिदासके  
 पूर्ववर्ती महाकवि भासके नाटकोंमें मिलता है ।  
 वियोगिता ( सं० स्त्री० ) वियोगिनः भावः तल टाप् ।  
 वियोगका भाव या धर्म, विच्छेद ।  
 वियोगिन् ( सं० त्रि० ) वियोगः अगम्योति वियोग इति ।  
 १ वियोगयुक्त, विरहो जो प्रियतमासे विच्छुड़ा हुआ हो ।  
 ( पु० ) चक्रगाह, चक्रवा ।  
 वियोगिता ( सं० त्रि० ) जो अपने पति या प्रियमें वियुक्त  
 हो, जो अपने प्यारेमें विच्छुड़ी हुई था ।  
 वियोगो ( सं० त्रि० ) वियोगिन् दंते ।  
 वियोजक ( सं० पु० ) १ गणितका वह मन्थ्या जिस किसी  
 दूसरी बड़ी मन्थामें घटाना हो । २ दो मिलः हुईं  
 घन्तुओंको पृथक् करनेवाला, अलग करनेवाला ।  
 वियोजन ( सं० क्ली० ) वि-युज् णिच्-ल्युट् । १ वियोग,  
 जुड़ा करना । २ गणितका वह मन्थामें उममें कुछ  
 छोटी दूसरी सख्या निकालने या घटानेकी क्रिया, बाकी ।  
 वियोजनीय ( सं० त्रि० ) वि-युज्-णिच्-क्त । १ विरहित,  
 शून्य । २ पृथक्-रुत, अलग किया हुआ । ३ विच्छेद-  
 प्रापित, जो जुड़ा हो गया हो । ४ विशिष्ट, जिसका  
 विप्रलेपण हो चुका हो ।  
 वियोज्य ( सं० त्रि० ) १ वियोगयोग्य । २ पृथक् करने  
 योग्य ।  
 वियोट ( सं० त्रि० ) दुःखका अमिश्रयिता ।  
 ( मृक् ४।११।२० )  
 वियोध ( सं० त्रि० ) विगतः योधो यत् । योधरहित,  
 योधहीन ।  
 वियोनि ( सं० स्त्री० ) १ अथयोनि, निन्दितयोनि । २ अघात  
 कुला, हीनकुलकी ।  
 विरगक्रायुली ( फा० पु० ) वार्यविडंग, भागीरग ।  
 विरजफूट ( हिं० पु० ) एक प्रकारका धान या जड़हन ।  
 विरकत—उत्पल देशीय वैष्णव-नरप्रशयविशेष । जायद  
 संसारमें विरक्ति होनेके कारण इन लोगोंमें अपना नाम  
 विरक शब्दके अपभ्रंशसे विरकत रखा हो । उदासीन

वैजायमी और मठमें रह कर विग्रहमेव वि कार्यों में नियुक्त रहते हैं वे ही विरक्त कहलाते हैं । वे छोटा उद्यामीन हैं, परन्तु मठ बना कर वनमें रहते हैं और पुष्पादी द्वारा विग्रहों सेवा कराने हैं । दिनका ये लोग मन्दिरमें लक्ष्मण वधक सिधे मोक्ष मांगने जाते हैं किन्तु खाजल भादि कमी मो मोक्षमें नहीं लेते । रातको अपने मठमें फिर कर निरप वैमिसिद्ध कार्य करते हैं । अस्याइन मार निहङ्ग नामक वैष्णव मठवासी विरक्त अर्थात् उद्यामीन अणी मुक्त हैं । निरह देवे ।

विरक्त (स० त्रि०) वि रक्त क । १ विरागमुक्त, उद्यामीन और कुछ प्रयोजन न रहता हो । पर्याय—निम्पूद, मनुज, बिरत ; २ बिभुज मिमका औ इहा हो, जिने खाइ न हो ।

विरक्ता (सं० स्त्री०) १ अनुनामका अभाव विरक्त होने का भाव । २ उद्यामीनता ।

विरक्ता (स० स्त्री०) विरक्त-दाय । १ दुर्नगा । २ मनजु कृपा ।

विरक्ति (स० स्त्री०) वि र्म किन् । १ विराग मनु रागका अभाव । २ उद्यामीनता । ३ अग्रसभता, बिभ्रता ।

विरक्तिम् (स० त्रि०) विरक्ति अर्थो मनुष्य । विरक्ति विनिष्ट, विरागमुक्त । (भागवत १२६।११)

विरक्षन् (सं० स्त्री०) राक्षसहीन । (शतपथब्रा० ३।४३।८)

विरङ्ग (स० पु०) वि रङ्ग धम् । १ बिनाग । २ विषर्ण, फोका । ३ बर्ष वर्षीका, अमिक रगोंका ।

विरयन (स० स्त्री०) वि रय इयुत् । १ प्रणयन । २ निर्माय । ३ प्रयन ।

विरयना (सं० स्त्री०) वि रय युष् त्रियां टाप् । विरयना ।

विरयना (दि० क्रि०) विरक्त होता, उचरना ।

विरययिता (स० पु०) रक्षणेवाळा बनानेवाळा ।

विरययित (सं० त्रि०) वि रय युष् । १ निर्मित बनाना हुआ । २ रक्षित, रखा हुआ । ३ प्रययि गूया हुआ । ३ भूयि, सत्राया हुआ ।

विरय (स० त्रि०) १ उचरदित, त्रिम पर घूय या गर्न न हा । २ सुखयासना भाविम मुक्त, रजोगुणरहित । ३ निर्दोष वेदेव । ४ त्रिसका रजोगर्ण बन्ध हो गया हो ।

(पु०) ५ रवष्टाष् पुत्रमेव । (भागवत ५।१५।१३) ६ ईक्ष्मन्सया पुत्रिमाक पुत्रमेव । (भागवत १।१।१४)

७ आनुकर्णका गिष्यमेव । (भागवत १२।६।५८) ८ सावर्णोमन्वन्तरमे देवययमेव । (भागवत ८।१३।१२) ९ पद्य प्रम सुदका ऐश्वर्यमेव । (छन्दोगुपनीष) १० महामद्र सरोवरक उत्तरस्थ पर्यन्तमेव । (शिशुपु० ४।१५) ११ बिभ्यु । १२ शिव । १३ धृतराष्ट्रक पुत्रमेव ।

विरजमम (स० पु०) सुखमेव ।

विरजमएवञ्च (स० स्त्री०) विरजा क्षेत्रे । यह उड़ीस्ताक पाण्डुरके पास माता गया है । यहाँ देवाकी महाजया नामक मूर्ति है । (प्रभातक० ५६ अ०) बाबुर देवे ।

विरजस् (स० स्त्री०) १ विरज रत्नो । २ खास्य मन्वन्तरमें अविमेव । (मत्क यजेवपु० ४।५४) ३ सार्धार्ण मनु के पुत्रमेव । (मत्क यजेवपु० ८।११) ४ कश्चि पुत्रमेव । ५ अगिष्ठ पुत्रमेव । (भागवत १।१।११) ६ पौर्णमासक पुत्र मेव । ७ नागमेव । (मात १।३।१४)

विरजक (स० त्रि०) १ उत्तरदिश त्रिसका रजोगर्ण बन्ध हो गया हो । (पु०) २ सावर्णि मनुक पुत्रमेव । (भागवत ८।१।३१)

विरजस्तमस् (स० पु०) राजा और तमोगुणरहित सत्त्व गुणविनिष्ट, त्रिसका रज और तमोगुण चला गया हो, परमास लक्ष्यनिष्ट क्षीययुक्त पुरुष, जैसे व्यासादि । इन्हे ह्यपातिक कहते हैं ।

विरजा (सं० स्त्री०) १ कठिणानुयुक्त किरका पेड़ । २ यथातिथी माता । ३ भोरुम्बकी एक प्रेमिका सबी त्रिसके राधाके डरने नहाका कर धारण कर लिया था । प्रह्लादेवर्ष्यपुराणमें लिखा है,—

“एक दिन गौरीकर्म रासमण्डलमें श्रीहरि राधिकाक साथ विहार कर रहे थे । ऐसे समय भोरुति अकम्मात् राधाको न देख विरजा नामी एक गोपीके समाप गये । विरजाका पा कर मगबाह्य उमने भासक हुए । यह देख त्रिसो दूसरो सबीने इस बातकी सूचना भोरुताको दी । उस समय राधिका उध रत्न मण्डपमें अवस्थित हुए । यहाँ उधने धारणामका बड़ा देव कहा, ‘तू र हो अमरदा किन्तु तू र है । तुम्हारे स्वामी त्रिस लक्ष्मी भोगीकी रमणील भासक

हुए । इधर गोपियोंकी बात-चीत सुन श्रीहरि वहांसे अन्तर्हित हुए । विरजाने श्रीकृष्णका अन्तर्धान और सामने राघिकाकी देख भयसे प्राणत्याग किया । उस समय विरजाकी उस पवित्र वेदने सरित्स्वरूप धारण किया । गाथा विरजाका सरित्स्वरूप देव घर लाई गई । इधर श्रीकृष्ण आ कर विरजाकी यह गति देख रोने लगे— तुम्हारे विरहसे मैं कैसे जो सकूंगा, तुम एक बार सजीव हो कर मेरे पास आओ । श्रीहरिके इस तरह विलाप करने पर विरजा राघिकाकी तरह सुन्दर मूर्ति धारण कर श्रीकृष्णके पास जलते निकल आई । श्रीकृष्ण उसका पा कर परम सन्तुष्ट हुए और नाना प्रकारसे उन्होंने उसका सम्भोग किया । अन्तमें विरजाके श्रीकृष्णसे गर्भ रह गया । उस गर्भसे विरजाने सात पुत्र प्रसव किये । कुछ दिन बीतनेक बाद एक दिन विरजा सम्भोगकी आजामें श्रीकृष्णके साथ बैठी थी । येने समय विरजाका फनिष्ठ पुत्र अन्य भाइयोंसे नाडित हो जा कर माताकी गोदमें बैठ गया । विरजाने पुत्रकी परित्याग किया, किन्तु दयामय श्रीकृष्ण उसे गोदमें ले राघिकाके घर चले गये । इधर सम्भोगकतरा विरजा श्रीकृष्णकी विरह वेदनासे प्रपीडित हो विलाप करने लगी और उन्होंने पुत्रकी जाप दिया, कि तुम लवण समुद्र होवो । अन्यान्य पुत्र भी माताके कंपकी बात सुन पृथगमें आ कर मात द्वीपके सात समुद्र हुए । इन्हीं समुद्रोंमें पृथगें प्रसव्यालिनो होती है ।

(श्रीकृष्ण जन्मखण्ड)

४ उडामेका एक प्रधान तीर्थ । इस समय यह याजपुर और नामिगया नामसे परिचित है । याजपुर देखो ।

पकावन पाठामें विरजा भी एक प्रधान पाठ है ।

प्रायश्चित्तनक्षत्र स्वन्दपुराणके मतसे सभी तीर्थोंमें ही मुण्डन और उपवास करना होता है । किन्तु यहाँ आ कर चर्मा नहीं करना होगा ।

५ ब्रह्माका एक मानसपुत्र । ६ लोकाक्षिके जिन्य ।

(लिङ्गपु० २४।२३)

विरजाक्ष ( सं० पु० ) मार्कण्डेय पुराणके अनुसार एक पवन जो मेरुके उत्तर है ।

विरजाक्षेत्र—एक प्राचीन तीर्थ । इसका वर्तमान नाम याजपुर है ।

विरजानदी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके अन्तर्गत महिसुर जिलेकी एक कृत्रिम नदी । कावेरी नदीके दाहिने किनारे बालमुनि वंश द्वारा यह प्रायः ४० मील परिचालित हुई है । पलोद्दरुओ नगरमें जो सय चीनी और लोहेके कारखाने हैं वे इसा नहरकी श्रान्तशक्तिके चलाये जाते हैं ।

विरञ्च ( सं० पु० ) ब्रह्मा ।

विरञ्चन ( सं० पु० ) ब्रह्मन् ।

विरञ्चि ( सं० पु० ) ब्रह्मा, सृष्टि रचनेवाला, विधाता ।

विरञ्चिसुत ( सं० पु० ) ब्रह्माके पुत्र, नारद ।

विरञ्चय ( सं० पु० ) विरञ्चिका भाग, ब्रह्माका भोग ।

“आयुश्चिथं विमवमैन्द्रियमाविरिञ्चयात् ।”

( भाग० ७।१।२४ )

विरट ( सं० पु० ) १ स्कन्ध, कंधा । २ अग्रुच, अग्ररुक्ष ।

विरण ( सं० क्लो० ) वीरण तृण, वीरन नामकी घास ।

विरत ( सं० त्रि० ) विरम-क्त । १ निवृत्त, श्रान्त, उपरत ।

२ विभ्रान्त, विमुक्त । ३ वैराग्य, जिसने सासारिक विषयोंसे अपना मन हटा लिया हो । ४ विशेषरूपसे रत, बहुत लीन ।

विरति ( सं० स्त्री० ) विरम-क्तिन् । १ निवृत्ति । पर्याय—भारति, अवरति, उपराम, विराम । ( भारत ) २ उदासीनता, जीका उचटना । ३ वैराग्य, सांसारिक विषयोंसे जीका हटना ।

विरथ ( सं० त्रि० ) विगतो रथो यस्य । १ रथशून्य, बिना रथका । २ रथसे गिरा हुआ । ३ पैदल ।

विरथीकरण ( सं० क्लो० ) युद्धमें रथ नष्ट करके शत्रुको रथहीन करना ।

विरथीभूत ( सं० त्रि० ) विरथीकृत, जो रथशून्य किये गये हों ।

विरथ्य ( सं० त्रि० ) रथया य रथहीन ।

विरथ्या ( सं० स्त्री० ) १ विजिष्ट रथ्या । २ कुपथ ।

विरद ( सं० पु० ) १ बडा नाम, लंबा चौडा या सुन्दर नाम । २ स्वार्ति, प्रसिद्धि । ३ यश, कीर्ति । ( त्रि० ) ४ दन्तहीन, बिना टाँतका ।

विरदावली ( द्वि० स्त्री० ) यक्ष की कथा, प्रशंसाके गीत ।

विरप्स ( सं० त्रि० ) १ बहुविध उपचारवादी “पवाह्यस्य

सुश्रुता विरहो गोमती मही" ( मृक् १।८८ ) 'विरहो  
 बहुविधोपचारविधो" ( शष्य ) २ स्तुतिकारक ।

( मृक् १।५।१० )

विरपिण्ड ( सं० लि० ) विषयगर्भकारो, विप्रीतिविरप  
 जिना" ( मृक् १।५।११० ) 'विरप जिनाः विरिषं गर्भं रप  
 स्तीये विरप्याः सतीनाय न परस्यगति विरपिणाः  
 यद्वा विरिषं रपणं विरप्यं तदेवामस्तोति मरुतो हि  
 विरिषं गर्भं । कुर्वते ( शष्य )

विरम ( सं० पु० ) वि-रम भप् । नाश, अपगम ।

विरमण ( सं० क्लो० ) १ विराम ठहरना । २ सम्भोग,  
 विवास । ३ रम जाना मन लगाना । ४ अउसर  
 पड़ना सुहो जैना । ५ निरुत होना, बिरल होना ।

विरल ( सं० लि० ) १ अथकाज, औ घना न हो । जिसके  
 बीच बोको आका जगह हो । पर्याय—वेकव, तनु ।  
 २ दुर्लभ औ केशव कहीं कहीं पाया जाय । ३ निर्जन,  
 शून्य । ४ अदर, दोहा । ५ औ गान्ध न हो, पतला ।  
 ( क्लो० ) ६ अघि, पतला इहो ।

विरलानुस ( सं० लि० ) बिरलो जानुयंरप, समासे  
 वप् । बकहानुविगिण्ड, जिसका सुटना कुहा हुआ हो ।

विरलदेश—स्थानदेश । ( विरलव्यपचार ५२५।१ )

विरलद्रवा ( सं० क्लो० ) बिरलो निर्मलो द्रवो पस्याः ।  
 इवदन यशानु विरल द्रव पशानु ।

विरलिका ( सं० क्लो० ) वल्लविरीव, प्राचीनकामका एक  
 प्रकारका कोना या महीन पत्र ।

विरलित ( सं० वि० ) बिरलोऽरप जाता । विरल-तारकादि  
 रजादितम् । विरकमुक्त, अथकाजविगिण्ड ।

विरलीकृत्य ( सं० पु० ) सपनको बिरल करना ।

विरलीकृत ( सं० लि० ) अविरप्याः बिरला कृता । अमूल  
 तन्नाये वि । जो स्थान बिरल न या उस स्थानको  
 बिरल करना जहाँ अथकाज नहीं या इस स्थानको  
 अथकाज करना ।

विरलैतर ( सं० लि० ) विरलादिना । अविरल बिरलसे  
 भिन्न ।

विरव ( सं० पु० ) १ विविप शब्द अनेक प्रकारके शब्द ।  
 ( वि० ) २ अमरदित, मोरव ।

विरवा—बज्रहं प्रदेगके अन्तर्गत इन्द्रान प्राप्त या काठिया  
 वाङ् विभागके अयोध एक छोटा नामग्न राज्य  
 मूरत्तिमाण ६१ बगमीक है । विरवा प्राममें यहाँ  
 सहायविधकारोका पास है । यह सरदाके ऊपर राज्या  
 वलूप करनेका नगर है । राजस्वको भाय प्राय १०००  
 ५० है । जिसमेंसे अगरेख(राजा वा'पक १५०) क  
 और अनागदक नबाबको ४४) ४० कर देना पड़ता है ।

विरशिम ( सं० लि० ) शिगतो शिमियम्य । रश्मिरहित  
 बिना बिरपका ।

विरस ( सं० लि० ) शिगताः रसेऽपहय । १ रसहीन  
 फोका । २ विरक्तिग्रन्थ, औ अण्डक न बने । ३ अणु त  
 कर अग्रिप । ४ औ रसहीन हो गया हो । जिसमें रसक  
 निर्बाह न हो सका हो । ( पु० ) ५ काथमें रसम व  
 कजामे इसे अमरस' के पाँच में (में एक माना है ।

विरमता ( सं० क्लो० ) बिरमस्य भावः तल्ल टापू वा ल्य  
 १ बिरमका भाव या धर्म, फाकापन । २ रसम व  
 मङ्गा किरकिरा होना ।

विरसत्य ( सं० क्लो० ) बिरला देतो ।

विरसानगरव ( सं० क्लो० ) मुक्का बेटस्य अउरदि शैगके  
 समय मुक्कमें बिरल रसका अनुभाव ।

विरसाभ्यस्य ( सं० क्लो० ) मुक्का बेटस्य मुहका फोका  
 पन । ( याङ् कवः १।५।७० )

विरह ( सं० पु० ) वि र्ह एवागो भय । १ बिच्छेद सुहाई ।  
 गदप्राय—विप्रमम विप्रयाग, वियोग । ( देव ) २ अभाव ।  
 ३ शृङ्गाररसकी विप्रममालय अथस्या ।  
 अनुशास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंको पति रहित या  
 बिना पतिना रहना एक दौष है ।

मिप और मिपाके बीच परस्पर अर्थात्तसे एक दूसरे  
 के मनमें औ विपता और साथ भाङ्गी उपस्थित होता है  
 साधारणतः उसीने विरह कहते हैं । प्राचीन काव्य  
 और नाटक आदि ग्रन्थोंमें बिरहक बहुतेरे निदर्शन  
 पाये जाते हैं । उपरचरितमें सोताके विरहमें राम  
 बन्दू बालर हुए थे । फिर भूमिपान शकुन्तलामें दुष्यन्तके  
 निरहसे शकुन्तलामें मो क्लिप्रमता हो गईरिं दुर्वासको  
 अथका फो घो । नायक नायिकाक ऐसे विरहका स्थित  
 प्राणुप्य नहीं । यह विरह अथ पवित्र प्रेमके अर्थव्यापे



से परिणतिको प्राप्त होता है, तभी इसका प्रकृत माधुर्य उपलब्ध किया जाता है। महाकवि कालिदासने मेघ-दूत काव्यमें यज्ञके पत्नी-विरह-वर्णनस्थलमें लिखा है—

“कश्चित् कान्ताविरहविधुरः स्वाधिकारप्रसक्तः।”

इससे मालूम होता है, कि विरहि जन प्रियाके न देखनेसे विलकुल उन्मत्त हो जाते हैं। यह उन्मत्तता यदि देवभावमें प्रणोदित हो अर्थात् भगवान्में आत्मिक हेतु उनकी ही प्रेम-प्राप्तिको आशासे उन्हीके चरणोंकी ओर धावमान हो, तो वह विरह निःसन्देह सर्वोत्कृष्ट कहा जायेगा।

वृन्दावनमें श्रीराधाकृष्णकी प्रेमचैत्रितपूर्ण लीला कहानीमें श्रीकृष्णके अदर्शनसे श्रीराधाकी जो विरह अवस्था और उत्कण्ठा भाव उपस्थित होता है, वही विरहकी प्रकृति है और इसीलिसे वह प्रेमका एक भाव या अङ्ग कहा जाता है। विश्वामि, चण्डिदास, गोविन्ददास आदि वैष्णव कवियोंने उसी विरहको प्रेमनन्वका शोभा स्थान कहा है। क्योंकि विरह न होनेसे भगवान्का नाम निरन्तर हृदयमें जागरित नहीं होता या होता ही नहीं। अतः विरहभावको प्रेम (शृङ्गार) रसका उत्कृष्ट अङ्गलम्बन कहा जा सकता है।

प्रवाम या अन्तरालका अवस्थान ही अदर्शनका प्रधान आश्रय है। इसीलिसे यह विरहोद्रेकका प्रधान-तम कारण है। वैष्णवोंने विरहको भाषा, भजन और भूत नामसे तीन भागोंमें बांट दिया है। कुछ लोग तो प्रवाम को ही विरहका मूल उपादान कहे गये हैं। श्रीकृष्णके अकूरके साथ मथुरामें जाने पर वृन्दावणमें श्रीराधा और सखियोंको जो विरह उत्पन्न हुआ, वह वैष्णव प्रणयोंमें माधुर कह कर परिकीर्तित हुआ। इस समयसे प्रवाम यह तक राधाके हृदयमें दारुण विरहानल प्रज्वलित हुआ था। राधाका यह विरह पारिभाषिक है, इससे यह प्रेमात्मक है। श्रीकृष्णके मथुरागमन-विच्छेदमें नन्द यशोदाके मनमें श्रीकृष्णके अदर्शनसे जो दुःख हुआ, उसे वैष्णव कवियोंने विरह नहीं कहा है। क्योंकि नन्द यशोदाकी कृष्णानुरक्ति वाटसल्यभावपूर्ण और राधाकी कृष्णप्रीति प्रेमप्रसन्नवणप्रसूत है।

माधुर या प्रवास भूतविरहके अन्तर्गत है। इसमें भी और कई भेद हैं।

कविकल्पलतामें लिखा हुआ है, कि विरहका वर्णन करते समय कवियोंको नाप, निश्वास, चिन्तामौन, कृशाङ्गता, रातका वर्षा योत्र होना, जागरण और जीतलतामें उष्णताका योत्र आदिका वर्णन करना चाहिये।

विरहा (सं० पु०) एक प्रकारका गीत जिसे अशोर और गडेरिप गाने हैं। विरहा देखो।

विरहा—नदीभेद। तापीरक्षेत्रे विरहाका मङ्गल एक पुण्यतीर्थ माना जाता है। (तापीख० ३५१)

विरहिणी (सं० त्रि०) जिसे त्रिप या पतिका त्रियोग हो, जो पति या नायकमें अरुग होनेके कारण दुःखी हो।

विरहिन् (सं० द्वि०) विरहोऽस्यास्तीति विरह-इति। विरहयुक्त, वियोगी।

विरहित (सं० त्रि०) विरह-क्त। त्यक्त, विहिन, विना।

विरही (सं० द्वि०) जिससे प्रियाका त्रियोग हो, जो प्रिय-तमाने अलग होनेके कारण दुःखी हो।

विरहोत्कण्ठिता (सं० स्त्री०) नायिका भेदके अनुसार प्रियके न आनेसे दुःखी वह नायिका जिसके मनमें पूरा विश्वास हो, कि पति या नायक आवेगा, पर फिर भी हिन्नी कारणवश वह न आवे।

विराग (सं० पु०) विरन्त घञ्। १ अनुराग, राग शून्य, चाहका न होना। विषयके प्रति जो अतिशय राग होता है, उसे मानसिक मल कहते हैं तथा विषयके प्रति जो विराग वा अनुरागशून्यता है उसीको नैर्दलेय कहा है। विषयके प्रति विराग उपस्थित होने होने मानव प्रव्रज्याका अवलम्बन कर भगवान्में लीन हो जाते हैं। इसी कारण श्रुतिने कहा है,—“यद्दहरेऽविरज्येत तद्दहरेऽव प्रव्रज्येत” (श्रुति) विरागके उपस्थित होनेसे ही प्रव्रज्या का अवलम्बन कर्त्तव्य है। २ उदासीन भाव, जिसी वस्तुसे न विशेष प्रेम होना न द्वेष। ३ चोतराग, सासारिक सुखोंकी चाह न रहना, विषयभोग आदिसे निवृत्ति। ४ एकमें मिले हुए दो राग। एक रागमें जब दूसरा राग मिल जाता है तब उसे विराग कहते हैं। (त्रि०) ५ विविध रंगविशिष्ट, रंग विरंगका।

विरागता (सं० स्त्री०) विरागस्य भावः तल्-टाप्। विरागका भाव या धर्म।

विरागवत् ( स० लि० ) विरागा बिघनेऽल्प विराग-सङ्गु  
मस्य च । विरागबिगिष्ट, वैराग्यगुल ।

विरागाह ( सं० पु० ) विराग-महै तां नि महै भव । विराग  
योग । पर्याय-वैरङ्गिक ।

विरामित ( स० लि० ) विरागोऽत्र ज्ञातः विराग तारका  
दिश्वदिनश्च । विरागगुल विरागबिगिष्ट ।

विरागिना ( स० लृ० ) विरागिणो माशः विरागिन् तस्  
टाप् । विरागोका माय या धर्म विराग ।

विरागिन् ( सं० लि० ) विराग मस्यये इति । विराग  
बिगिष्ट, वैराग्यगुल ।

विरागु ( सं० पु० ) विराट् रेखा ।

विरागन् ( सं० ह० ) शोभिताया चमकद्मकवाला ।

विरागन ( सं० ह्यो० ) विराग इतुद् । १ शोभन, शोभित  
होना । २ पर्यमान होना, मीशुद् रहना । ३ वैठना ।

विरागना ( वि० क्रि० ) १ शोभित होना, प्रकाशित होना,  
साहना । २ पर्यमान होना, मीशुद् रहना । ३ वैठना ।

विरागमान ( सं० लि० ) १ प्रकाशमान चमकना हुआ ।  
२ बिद्यमान, उपस्थित ।

विरागित ( सं० लि० ) विराग-क । १ शोभित । २ प्रका  
शित । ३ उपस्थित, बिद्यमान ।

विरागिन् ( सं० लि० ) विरागित शोभकश्च विराग-पणि ।  
शक्तिबिगिष्ट प्रकाशशोभ विरागमान ।

विराग्य ( सं० ह्यो० ) १ शक्ति, समृद्धि । २ साक्षात्प्य ।

विराट् ( सं० पु० ) विराट् शीतं क्विप् । १ शक्तिप्य ।  
२ प्रकाशक बहु रूप्युत् सङ्कर जिसके मन्त्र अकिल बिम्ब  
है अर्थात् सम्पूर्ण बिम्ब जिनका शरीर है । अग्रवैवशा  
पुण्यके प्रकृतिपर्यट्टमें इस प्रकार लिखा है—

प्रकाणवससिद्धि ( क्षारसमुद्र , में प्रकाशनी भापु  
पर्यन्त एक दिग्ब बहुता था । पीछे इस दिग्बके कूट ज्ञाने  
पर इसमेंसे दातकाटि सूर्यकी तरह उदयवत् एक शिशु  
निष्कृता । शिशु रूपके छिपे कुछ समय रो डठा । तर्क  
पितामाता नहीं हैं, ज्ञानमें उनका पास है । जो प्रकाशक  
नाथ है वे अनाथवत् मरुद्दम जाने लगे । वे रूप्यके रूप्युत्  
तम हैं, महाविराट् नामक प्रसिद्ध हैं । वे दो असंख्य  
विश्वक आधारा प्रकृत मदादिष्यु हैं । उनक प्रति भोम  
कृपमें निकस विश्व व्यतिष्ठन है । अर्ध कृष्ण भी उनकी

सख्या नहीं कर सकते । प्रतिभोमकृष्णक विराममें प्रकाश,  
बिष्यु भीर शिवादि विरागमान हैं । पाताखसे प्रकाश  
कोक पर्यन्त प्रकाशक इसी शोभकृपमें विरागित है ।  
प्रकाशकके परिमाणमें ऊपरकी ओर वैकुण्ठ है । यहाँ  
सत्पत्सङ्कप नारायण बिद्यमान हैं । उसक ऊपर पाँच  
सौ कोटि योग्यकी कृती पर गोमोक है । यहाँ नित्य  
सत्पत्सङ्कप कृष्ण विरागमान हैं । इस प्रकार इस विराट्  
पुरुषक प्रति भोमकृपमें सप्तसागरसंज्ञता सप्तश्रीया वस्तु  
मना है । उसक ऊपर अर्णादि तथा नारायणक साध  
वैकुण्ठ और गोमोक बिद्यमान है । एक समय इन  
विराट्में ऊपरकी ओर देखा कि उस दिग्बमें कवक शूण्य  
है और कुछ भी नहीं है । मूलके मारे वे रोने लगी ।  
पाछे ज्ञानलाम करक इन्होंने परमपुण्य प्रकाशोत्सुकक  
कृष्णको देख पाया । तबान् अक्षरकी तरह उनका बर्ण  
रवाम है । सा मुझा है, पोतामकर पहले हैं, ह स रहे हैं,  
हायमें मुरली है आर वे मकानुमहकारक है । इस रूपमें  
मगवान् कृष्णने उस बालकको अपना दरीन है कर इससे  
हुए छद्म, मैं प्रसन्न हो कर तुम्हें बर देता हू कि तुम  
मो प्रकृत्य पदोन्त मेरे जैसे ज्ञानयुक्त, क्षुत्पिपासावर्जित  
और असंख्य प्रकाशक आधाय हो । इस प्रकार बर दे  
कर अगावान्ने बालकके कानोंमें परक्षर महामन्त्र पढ़ दिया ।  
वह विराट्करी बालक भगवान्का स्नन करने लगे ।  
भोद्वजने उत्तरम कहा, मैं जैसा हू, तुम मा वैसा हो  
हो असंख्य प्रकाशका पाठ होने पर भी तुम्हारा पाठ नहीं  
होगा । मेरे हो अज्ञस तुम प्रति प्रकाशकमें क्षुद् विराट्  
हो जा । तुम्हारे हा नामिपदस बिम्बप्रकाश प्रकाश उत्पन्न  
होगे, प्रकाशक ललाहसे शिबक भ ज्ञानमें सुदिसहारपाय  
पकावत् रूप होंगे, उनमें कालामिहद् एक बिम्बसंहार  
कारा होगा । बिम्बके पाता बिष्यु भी इस क्षुद् विराट्के  
अशमें भाविभूत होंगे । तुम प्यासमें मेरी बमनाय  
पूर्वसं सर्वज्ञ देख पाओगे ।' इतना कह धारण्य  
अपन छीकमें आ कर प्रकाशने बोले, 'महाविराट्क छेदम  
कृपमें क्षुद् विराट् बिद्यमान है, सुद्वि करनेक बिधे तुम  
अने नामिपदमें जा कर उत्पन्न हो । है महादेव ।  
तुम भी म हाकमें प्रकृतकवाटसे जन्म कै ।' अगन्नाथका  
इस प्रकार भाईश सुन कर प्रकाशमें शिबने प्रस्थान

क्रिया। महाविराट् के लोमकृगमे, ब्रह्माण्डमें, गोलोकमें और एकावर्षजलमें विराट् के अंशसे क्षुद्र विराट् आविर्भूत हुए थे। वे युवा, प्रथमवर्ण, पीताम्बरधारी, जलशायी, ईषत्हास्त्रयुक्त, प्रसन्नवदन, विश्वव्यापी जनार्दन हैं। उनके नामिपक्षमें ब्रह्मा आविर्भूत हुए। (प्रकृतिपण्ड ३ अ०)

पौराणिक और दार्शनिकगण ब्रह्मवैवर्त्तका विराट् उत्पत्तिका अनुसरण नहीं करते। इस सम्बन्धमें वे वेदके प्रमाण हीका मानते हैं। विराट्के उत्पत्तिसम्बन्धमें ऋक्संहितामें इन प्रकार लिखा है—

"सदस्यार्था पुरुष, सदस्राक्तः सदस्रनात् ।

स भूमि विश्वतो वृत्वात्पतिम्ब्रह्मागुप्तम् ॥

पुरुषास्वेद सर्व यद्मत् यच्च भव्य ।

उतामृतस्वस्येगानो यदन्नेनातिरोदति ॥

एत्रावनस्य महिमातो ज्यावांश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ॥

तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।

स जानो अत्यरिच्यत पञ्चाट्ट मिमथो पुरः ॥"

(ऋक् १०।६०।१-५)

पुरुषके सहस्र मन्तक, सहस्र चक्षु और सहस्र चरण हैं। वह पृथिवीमें सर्वत्र घ्याप्त रहने पर भी क्षण अगुल ऊपर अवस्थित है। पुरुष ही सब कुछ है, जो हुआ है और जो होगा। उनको इतना बड़ी महिमा है, पर वह हमसे कहीं बड़े है। सम्पूर्ण विषय और भूत एकापद् है, आकाशका अमर अंश त्रिपाद है। उसमें विराट् उत्पन्न हुआ और विराट्में अधिपुरुष। उन्हींने आविर्भूत हो कर सम्पूर्ण पृथिवीको आगे पीछे घेर लिया। भगवद्गीताके अनुसार भगवान्ने जो अपना विराट् स्वरूप दिखाया था। उसमें समस्त लोक, पर्वत, समुद्र, नद, नदी, देवता इत्यादि दिखाई पड़े थे। बलिको छलनेके लिये भगवान्ने जो त्रिविक्रम रूप धारण किया था उसे भी विराट् कहते हैं।

३ स्वायम्भुव मनु। (मत्स्यपु० ३ अ०)

विराट्—मत्स्य देश। यहाँ जो भारतीय व्यापार संघटित हुआ था, महामारुतके विराट्पर्वमें उसका वर्णन है। इस प्राचीन जनपदके विषयमें कई लोग किन्ने प्रकारको

घाते कहा करते हैं। किन्ती किन्तीका मत है, कि यह मथान राजपुत्रानेमे है, किन्नेके मतानुसार यह बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत है। किन्तीके मतमें उत्तरी बंगाल किन्तीके मतमें मेदनीपुर जिलेमें एव किसीके मतके यह मयूरभंजके पार्वत्य प्रदेशमें है।

सम्भवतो और दृयद्वी, इन दोनों देवनागियोंके मध्य देयनिर्मित एक देश है जो ब्रह्मावर्त्तके नामसे विख्यात है। कुम्भक्षेत्र एव मत्स्य, पञ्चाल तथा शूरमेनका देश ही ब्रह्मपे देश है, यह ब्रह्मावर्त्तने अलग है। मनुके कथनानुसार मालूम पड़ता है, कि उत्तर-पश्चिम भारतमें, कुम्भक्षेत्र वा थानेश्वरका निकटस्थनों प्रदेश, पञ्चाल वा कान्यकुब्ज वा अञ्जल, शूरमेन वा मथुरा प्रदेश, इन सब जनपदोंके समाप ही मत्स्यदेश था एवं यह महर्षिदेशर बीचमें पड़ता था।

महाभारतके भीष्मपर्वमें तीन मत्स्य देशोंका उल्लेख पाया जाता है—

१म—'मत्स्याः कुशरथाः सीठल्याः कुम्भयः कान्तिकोशलाः ।

२य—चेदिमत्स्यकरुणाश्च भोजजाः सिन्धुपुतिन्दकाः ॥

३य—दुर्गाताः प्रतिमत्स्यारच कुन्तला कोशलास्तथा ।"

(भीष्मपर्व १० अ०)

उक्त कथनानुसार एक मत्स्यदेश पश्चिममें कुशल्य, सुगल्य और कुन्तादेशके निकट, एक पूर्वमें चेदि (बुन्देलखंड) तथा करुय (जाहावाद जिले के वाद एवं तृतीय वा प्रतिमत्स्य दक्षिणमें दक्षिणकोशलके निकट था।

उपरोक्त तीन मत्स्य देशोंमें पहला ही मनुका कहा हुआ आदिमत्स्य था। दूसरा सम्भवतः उत्तर वगके दिनाजपुरका अचल एवं तीनरा मेदनीपुर और मयूरभंजके बीचका देश ही था।

उक्त तीन देशोंके मध्य पाण्डवोंका अज्ञातवासस्थल विराट् राजधानीसे भूषित मत्स्यदेश कहा है ?

यादि मत्स्य वा विराट्।

पाचो पाण्डव अज्ञातवासके समय जिस रास्तेसे विराट्को राजसभामें गये थे एव मत्स्यदेशवासी योद्धाओंकी शौरता तथा साहसिकताका परिचय जिस प्रकार सर्वत्र वर्णन किया गया है, उससे जान

पहना दें, कि धूम्रमेन मयुरा प्रवेशके निकटवर्ती कोई स्थान ही मनुका कहा हुआ मत्स्यदेश है।

वास्तविक मयुरा त्रिकेक परिधर्मांशमें एक ओर बिन्दुन भाग एक समव कुल्लेखके नामसे विद्यमान था उसके दक्षिण राजपुत्रांशके अन्तर्गत वर्त्तमान जयपुर राज्यक बोध बैराट और माच्छाड़ी नामक दो प्राचीन स्थान अभी भी विद्यमान हैं। ये दोनों स्थान प्राचीन बिराट राज्य और मत्स्य देशके नामोंकी रक्षा कर रहे हैं। बिराट शहर दिल्लीसे १०५ मील दक्षिण पश्चिममें एक जयपुर राजधानीसे ४१ मील उत्तर, रऊवना शैल परिवर्धन मोलाकार उपरपकाकाके बोधम सबस्थित है। यह बैराट उपरपका पूर्व-पश्चिममें ४ मी ५ मील अन्वो एक उत्तर दक्षिणमें ३ मी ४ मील चौड़ा है। इसके पूर्वांशक अन्वका अधिकांशतामि बिस्वलीनी रूप साक्ष्योके मध्य बैराट शहर है। शहरके विछले भागमें कीचक पहाड़ है। एक छोटी झोतलतीके निर्गारस उत्तर पश्चिममें जा कर उपरपकाका प्रधान प्रवेश पथ मिल्ता है। यह झोतलती बाणगंगाको एक शाखा है।

उक्त शहरकी ऊर्ध्वार्ध चौड़ाई बाघ मील एक घेरा प्रायः दार्द्री मील है। वर्त्तमान बैराट शहर उक्त भूभाग क तिरके एककतुर्थांश स्थानमें फैला हुआ है। इसका चारों ओर हर्षक्षेत्र है, उसके मध्य कई स्थानोंमें प्राचीन मृगमयपाक एक तपिही जानते हैं। पहले यहाँ जो ताँबा पाया जाता था, उसका वयेष्ट परिख्य मिश्रता है। प्राचीन बैराट नगर 'सैबको' वर्ष तक परित्यक्त रहा। तीन मी वर्ष हुए, यहाँ फिरसे लोगोंका वास हो गया है। एक समय यहाँक तपिही ज्ञान भारतमें प्रसिद्ध थी। इससे आर्यन इ अक्षरोंमें बिराटका नाम पाया जाता है।

प्राचीन बैराटका पूर्वांश 'मीमञ्जीका ग्राम' कहलाना है। इसका पाम ही मीमञ्जाका हींजर वा मीमञ्जीका गुफा नामक एक पहाड़ है। इसही बोटीक अधिवासा मीमपद्वी विचलते है।

बैराटसे ३२ मील पूर्व एक मयुरासे प्रायः ६४ मील पश्चिम माच्छाड़ी नामक एक प्राचीन ग्राम है। कुछ लोग अनुमान करते हैं, कि मत्स्यदेश ही अद्यतन में

माच्छाटीक नामसे विद्यमान हुआ है। यहाँ भी बहुतसा प्राचीन कीर्ति वीका निवृत्तान विद्यमान है। माच्छाटीसे बैराट नामके स्थानमें कुजलगाड़ पड़ता है। महामारतमें मत्स्यके समीप ही कुजल्व नामक जन पक्षका उल्लेख है। कुजल्व और कुजलगाड़के नाममें पर स्पर कीसा सम्बन्ध है ?

चीन परिभाषक यूएनचुप ग ईसाई ७वीं शताब्दीमें यहाँ प्राय थे। उन्होंने जो वे लि वे तो लि वा पारि याल नामक जनपक्षका उल्लेख किया है, इस ही वर्त्तमान परततत्स्यविद्भिं प्राचीन बिराट वा मत्स्यदेश स्थित किया है। चीन परिभाषकके समय बिराट वयेष्ट प्राचीन राजाक अधिकांशमें था। यदा-क सोमोंको बोरता तथा रज निपुणताका परिख्य चीन परिभाषक भी देखे हैं। मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि कुक्षेत्र मत्स्यविद् देशके लोग भा रणक्षेत्रमें अग्रगामी हो कर युद्ध करते थे।

चीन परिभाषकके आगमनकालमें यहाँ एक हज्जार पर प्राध्वजोंका वास था और १२ बैधमस्त्रि थे। इनके अतिरिक्त ८ बौद्ध संघाराम और प्रायः ५ हज्जार बौद्ध गुरुस्थोंका वास था। कनिंइम अनुमान करते हैं, कि चीन परिभाषकके समय यहाँ लगभग तीस हज्जार लोगोंका वास था।

मुसलमानोंक इतिहाससे भी ज्ञाना जाता है, कि ४०० हिजरो अर्थात् १००१ ई०में गजनीके सुल्तान मह सूल्ते बैराट पर आक्रमण किया था। यहाँक राजा उनकी अधीनता स्वीकार करनेका बाध्य हुए। फिर ४०४ हिजरो अर्थात् १०१४ ई०में नूसरी बार यहाँ महसूतका आगमन हुआ। हिन्दुओंके साथ उनकी घमसान मझाई हुई। आनुचिन्त किन्तु हैं, कि महसूतने उस नगरको विषयस कर डाला तथा यहाँक अधिवासी दूर दूरके देशोंमें भाग गये। फिरकिन्ताके मतानुसार ४१३ हिजरो वा १०२२ ई०में कैपट (बैराट) और नारद्विन (नारायण) नामक पार्श्वस्थ प्रदेशोंक अधिवासियोंको मूर्च्छापूत्रक ज्ञान कर उन पर शासन करने तथा उन्हें इस्लाम धर्म में दोलिन करनेक सिधे मुसलमान-सेनापति अमोर असी यहाँ प्राये। उन्होंने शहर पर अपना अधिकार जमाया

लिपि और वहाँके अधिवासियोंको धनसम्पत्ति लूट ली। उन्हें नारायणमें एक खोदी हुई लिपि मिली। उसमें लिखा था, कि नारायण मन्दिर वालोंस हजार वर्ष पहले बनाया गया था। इस समयके इतिहास लेखकोंने उक्त लिपि का उल्लेख किया है। वह प्राचीन खोदिन लिपि सम्राट् प्रियदर्शोको अनुशासन कह कर प्रमाणित हुई है। इस समय वह प्राचीन अनुशासनफलक कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीमें सुरक्षित है। उक्त लिपिसे जाना जाता है, कि सम्राट् प्रियदर्शोके समयमें भी वैराटनगर समृद्धि-शाली था। जो हो, राजपूतानेक वैराटको ही हम लोग आदिमत्स्य वा विराट देश स्वोकार कर सकते हैं।

पूर्व विराट् ।

महाभारतमें कारुषके बाद एक मत्स्यदेशका उल्लेख है। विहार और उड़ीसाके अन्तर्गत गाहावाद् जिला ही पहले कारुषदेशके नामसे प्रसिद्ध था। अतएव दूसरा मत्स्यदेश भा उक्त प्रेमिडेन्साके अन्तर्गत है।

१२५८ सालमें प्रकाशित कालोगर्मा-विरचित "वगुडा-का इतिहास वृत्तान्त" नामक छोटी पुस्तकके चतुर्थ अध्यायमें २५ मत्स्यदेशका वृत्तान्त इस तरह लिखा है—

"मत्स्यदेशका नाम परिवर्तन हो कर इस समय यहा जिला संस्थापित हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर रंगपुर जिला, दक्षिण पूर्व सोमा पर वगुडा जिला, दक्षिण-पश्चिम सीमा पर दिनाजपुर जिला है। वगुडासे १८ कासकी दूरी पर घोडाघाट थानासे ३ कास दक्षिण ४५ कास विस्तारार्थ अत्यन्त प्राचीन अरण्यवासीके बीच विराट राजाकी राजधानी थी। यहा विराटराजाके बेटे तथा पोतेके राज्य करनेके बाद कलिके ११५३ अब्द व्यतीत होने पर जो महा जलप्लावन हुआ था, उससे विराटके वंश और कीर्ति एकदम ही ध्वंस हो गई। पीछे धीरे धीरे यह स्थान सघन जंगलमें परिणत हो गया। केवल अति उच्च मृन्मय दुर्गका जीर्ण कलेसर इस समय भी छिन्न मिन्न हो कर वर्त्तमान है। कुछ लोगोंने मिट्टी खोदनेके समय गृह-सामग्रियां एवं सोना, चादी प्रभृति मूल्यवान् द्रव्य पाया है। जब इस देशके सभी लोग इस स्थानको विराटकी राजधानी कहते आ रहे हैं, जब कीचक और भीमकी कीर्ति इस स्थानके आस पास वर्त्तमान है, और

जब भारतवर्षमें इस स्थानके अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान मत्स्यदेश नहीं कहलाता है, तब यहा अवश्य ही विराटकी राजधानी थी, इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं।"

उक्त इतिहास लेखक पाण्डुओंके छत्रवेगमें विराट नगरमें आगमन, कीचक-यध, भीमकृत भीमकी शंघो प्रभृति कीर्त्ति कथाएँ स्थापनका वर्णन करते हुए कहते हैं, "यहाँ प्रति वर्ष वैशाखके महीनेमें मेला लगता था। जिस स्थान पर मेला लगता था, वह स्थान जंगलोंमें ढका था। प्रति वर्ष मेलेमें ३४ सहस्र यात्री इकट्ठे होते थे। प्रातःकालसे ले कर तृतीय प्रहर पर्यन्त मेला लगा रहता था। इस मेलेमें वाद्य सामग्रियां बराबर मिलती थी, केवल मत्स्य, घृत, हृग्द्रा और काष्ठ का क्रय विक्रय नहीं होता था। यहा लोगोंको भीड़ लगी रहती थी इसलिये घन्य ज तुओं का भय विरहूट हा नहीं रहता था। इस मेलेमें एक आश्चर्यजनक घटना घटती थी। यहाके यात्री भोजन करनेके बाद जो उच्छिष्ट पत्र या पाल फेक देने से, दूसरे दिग् उनका कोई चिह्न भी नहीं रहता; न जाने कौन समूचे मेलेको साफ सुथरा कर देता था।

लोग कहा करते हैं, कि देवता आ कर यह स्थान परिष्कार करते हैं। इस महारण्यके बीच रंगपुर, दिनाजपुर और वगुडा जिलेके साह्य लोग जिकार करने आते हैं। यहाँ जिस प्रकारका वाद्य है, वैसे वगालमें और कहीं देखा नहीं जाता। जलानेकी लकड़ी(ईंधन) प्रति वर्ष रङ्गपुर, दिनाजपुर और वगुडा जिलेमें एकत्र आती है। इस समय यहा कई स्थानांमें बहुतायतसे घान पैदा होता है।"

उक्त इतिहास लेखकने जनश्रुतिके प्रति विश्वास करते हुए जो सब अभिमत परिष्कृत किया है, उसके साथ ऐतिहासिक लोग एकता नहीं कर सकते। वरेन्द्रखण्डके अन्तर्वर्त्ती सभी जनपदोंको हमने देखा है। इस विराट नामक स्थानमें महाभारतके विराट राजाकी राजधानी न होने पर भी यह अति प्राचीन जनपदका भग्नावशेष चिह्नयुक्त स्थान है, इसमें सन्देह नहीं।

वरेन्द्रखण्डके मध्यस्थ उक्त विराट नामक प्राचीन जनपद वर्त्तमान रंगपुर जिलेके अन्तर्गत गोविन्द गंज नामक

पुमिश स्टेगनसे ५ मोठ दूर करतोया नदीक परिचम तट पर मबद्विषयत है ।

बिराटक परिचम-दक्षिणसे शैली हुई बगुङ्गा सिद्धेके हीतकाल वा क्षेत्रनाम्नाका सोम। मारम्भ होता है । उक्त विराट सरकार योङ्गाघाट और असीयाम परगनेक अन्तर्गत है । विराटसे कुछ दूर सरकार योङ्गाघाटके प्राधान अन्वयका मन्नाबगणबिबु शुक्र हो कर कमरा परिचम दक्षिणमें एक बहुत विस्तृत स्थानमें बर्णमान है ।

मुगल बादशाहको ममदखारोमें योङ्गाघाटमें फौजद्वारा कब्जहोयो । इस समय कटोवा नदी विस्तीर्ण प्रवाह शाब्दिको धो, इसलिये उसक तीर पर अनेकनगर बस गये थे । मुगलोंने समय बदलनकाठोक जमो दार इस अञ्चलके प्राधान जमोद्वार थे । मु शब्दकुम्भोक मासकाल में मो बदलनकोठोके जमीन्दारोंका प्रभाव फैल रहा था । मुगल राजस्वकालमें मो करतोया नदीके निचदनचौ समो अन्वय समुद्रिशास्त्रो थे । ऐसा ही विश्वास होता है । कृष्ण १०वीं शताब्दीमें झाका नगरोमें सूबाको राजधानी स्थापित होनेके बाद योङ्गाघाटकी अवनतिको सूत्रपात हुआ । इसक बाद करतोया नदीको धारा संशोर्ण हो जानेक कारण ये सब समुद्रजामो अन्वय धारि धीरे अंशमें वरिष्णत हो गये । इस समय विराट नामक स्थानम एक क्षमताशाको राजा या जमो दारका प्रासाद था । यहांके समी इकरत्नचौको क्षेत्रसे मनायास ही इसका अनुमान होता है । नगरमें कई छोटे बड़े अकाशय हैं । बगुङ्गाके इतिहास लेखमें इस स्थानको निचिङ्ग अरण्याको कह कर बर्णन किया है । द्रिष्टु आश्रयका विषय है, कि १६०६ ई०में इस विस्तीर्ण सूबाय क अन्वय रंगलका चिह्न मो बहो रहा । इस समय बहो अकाशक मो अभाब हो गया है, ऐसा कहनेमें भी कोई अस्मृति न होगी । १९८१ साब्दके प्रासिद्ध पुर्मिस्तक बाद कमरा इम प्रदेशमें बुन, संघाळ तथा गारो प्रवृत्ति अस्मर जातिचोन निवास करक अंगमके निर्मूक कर दिया है । ३० वर्ष पहले जिस स्थानमें बाघका शिकार किया जाता था, इम समय उक्त स्थानमें मनुष्योंको घबो आबादा दुष्टिगोबर होयी है ।

यहां अंगबाद् निर्मूक हो जानेक कारण कई बर्षों स

एक मेका लगता है । पहले जिस समय यह स्थान निचिङ्ग अ गणोंसे दबा था, उस समय यहा प्रति रधि वारको बहुतसे पातो मो इन्डु होते थे । इस समय मो र्धबवारको हो अचिङ्ग यान्त्रिको समापन होता है । वैशाख मासक रधिवारको विराटकी पुण्य भूमिमें इदि थायन प्रद्व्य करनेसे बड़ा पुण्य होता है ऐसा हो कोणों का विश्वास है ।

बगुङ्गा सिद्धेके शिवगङ्ग पुमिश स्टेगनक अन्तर्गत तथा विराटके दक्षिण कोषक नामस जा स्थान वर्णमान है, उसमें प्राधान कोई वस्तु इच्छेजनीय नहीं है । एक बाद कोषकके नामसे प्रसिद्ध है । दिनात्रपुर सिद्धेके अन्तर्गत रामोचकम पुजिस स्टेगन उचरगोचुद् एवं पावना सिद्धेके पुमिस स्टेगन रावगङ्गके अन्तर्गत नामगाडा नामक अन्वय दक्षिण गोचुद्क नामसे अन्वयारणमें प्रसिद्ध है । दिनात्रपुर सिद्धेमें अनेक बौद्ध-कीर्तियां हैं । जो उचर-गोचुद्क नामसे कथित हैं, यह सम्भवता परबर्षों बौद्धराजाओंको दूसरी कीर्तियां हैं । उक्त मोमगाछो नामक स्थानमें एक बहुत बड़ा अकाशय है । उक्तका नाम है अयसागर । इस स्थानको सिद्धेक गाबे जमो कसो अष्टात्रिकादिषा एक माघयेर दुष्टिगोबर होता है । एक मन्म मन्दिरके द्वार पर कई एक बड़े बड़े पत्थर पड़े हैं । यह स्थान प्राधान करतोया नदीके किनारे था । इष्ट इण्डिया कम्पनीके प्रथम समयमें मोमगाछोका अ नाम अस्मन्त प्रसिद्ध था । इस स्थानक पास हो कर ही राजसाही सिद्धेका बिष्णयत अलन-बिद्ध मारम्भ होता है । यहाँ गो बरानेको सुबिधा रहने पर मो महामारन बर्जित विराटका समस्तमविद्ध स्थान मालूम नहीं पड़ता । परन्तु भावि मरस्य वा विराटके हिसो राजर्षश धरने बहुत समय पहले यहाँ का कर भाषिपत्तव स्थापन तथा उसके साथ साथ महामारजोय भाषयादिषा समिनबद्ध करक इस स्थानके माहात्म्यको बढ़ानेको चेष्टा की होगी । यहाँ मिट्टी कोट्टेसे एक व्यक्तिको एक पाषाणमयो काळीमूर्ति और एक व्यक्तिको पीतमको वृथ भुङ्गामूर्ति प्राप्त हुई थी । इस स्थानक निकटवर्ती मघाई नगर नामक स्थानमें अस्मन्तसेनका दात्रगासन पाया गया है ।

वारेन्द्रखंडमें बौद्धके प्रभावकालकी कीर्तियाँ वर्त्तमान हैं। उसके बाद हिन्दूराजत्व-कालमें भी अनेक कीर्तियाँ स्थापित हुईं। उन सब कीर्तियोंका क्षीण स्मृतिके निकट महाभारतीय आख्यानमें जड़ित होना कोई विचित्रता नहीं। क्योंकि आधुनिक बौद्ध तथा हिन्दूराजाओंके इतिहास सुकलनको जैसी स्पृहा देखी जाती है, पहले वैसी नहीं थी, मुसलमानों जामनमें सभी अपना अपनी चिन्तामें व्यस्त थे। बौद्ध तथा हिन्दू राजाओंके किसी कीर्तिकलापका उल्लेख इस देशके जालोंमें नहीं किया गया था। सुतरां महाभारतादिका पाठ सुन कर परवर्त्तों समयमें जो कुछ ऐश्वर्यमूक थे, वे ही पौराणिक आख्यायिकामें जोड़ दिये जायेगे, यह विचित्र नहीं। जो प्रगस्त ऊंचा राजपथ भीमका बाध कह कर उल्लिखित है वह कैर्त्ताराज भीम द्वारा ही बनाया गया है, ऐसा अनुमान होता। इस प्रदेशमें गनी सत्यवती और रानी भवानीके दो बांध हैं। कोई कोई निम्नभूमि भरी जा कर तीन ऊंचे टीलोंमें परिणत हो गई है।

घाणशेघा नामक स्थान बगुडा शहरसे तीन कोस उत्तर है। यहाँ घाण राजाका राजमहल था एवं श्रीकृष्णने यहाँ हा उपाका हरण किया था, ऐसी किम्बदन्ती चली आती है। किन्तु यह स्थान वास्तवमें घाण राजाकी राजधानी नहीं है। ग्राममें गान्त दावों थी एवं स्थानीय भाषामें वावनको घाण उच्चारण करनेके कारण घाण-दिग्धा नामकी उत्पत्ति हुई है।

वारेन्द्रखंडमें विराटकी राजधानी थी तथा पाँचों पाण्डवोंने इस देशमें आ कर इसे पवित्र किया था, ऐसा कह कर वारेन्द्रवासी अपनेको धन्य मानते हैं। लघुभारत-कारने संस्कृत भाषामें स्थानीय 'किम्बदन्तीका अथलम्बन करके इस स्थानको विराटकी राजधानी रूपमें वर्णन किया है। किन्तु यह स्थान आदि विराट या पञ्च पांडव-को अज्ञातवासस्थान नहीं है, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

बगुडासे १२ कोस उत्तर-पश्चिम तथा विराट नगरसे ४ कोस पूर्व-दक्षिण पानीतल्ला बाजारसे एक मील उत्तर एक प्राचीन कूपाकार खन्दक है, लोग उसे भोगवती गंगा कहते हैं। कहा जाता है, कि जिस

समय पञ्चगडव अज्ञातवासके समय विराटके राज भवनमें वास करने थे, उसी समय महाबली अर्जुनने इस कूपाको-प्रतिष्ठा की थी। राजपूतानेके विराटके निकट भी घाणगंगा प्रवाहित है, सम्भवतः उसीकी स्मृति स्थिर रखनेके लिये भोगवती गंगाको सृष्टि हुई होगी। फलतः जीव और अमृत नामक कूर वारेन्द्रखंडके अनेक प्राचीन स्थानोंमें वर्त्तमान थे। दक्षिण गोप्रह प्रभृति स्थानोंमें अर्जुनके अस्त्र शस्त्र रखनेका स्थान शमोवृक्ष भी प्रदर्शित होता है। राजशाही विभागके जो सब स्थान वारेन्द्रके नामसे विख्यात हैं एवं जिन सब स्थानोंमें है। ईभन्तिक धानके सिवाय और किसी प्रकारका अनाज पैदा नहीं होता, उन सब स्थानोंके अधिवासो मकरसंक्रान्तिके बाद गेा जातिके गलेका बन्धन खोल देते हैं। विराट राज्यमें गेा बाधी नहीं जाती, ऐसी कहावत है।

मेदिनोपुर जिलेके गडवेता नामक स्थानमें भी वहाँ के अधिवासो विराटकी कीर्तियाँ दिखाते हैं। यहाँ एक किम्बदन्ती है, कि गडवेताके पास ही दक्षिण गोप्रह था। जिस स्थान पर कोचक मारा गया था, लोग वह स्थान भी दिखाते हैं।

#### दक्षिण विराट।

इनके अतिरिक्त उड़ोनाके अन्तर्गत मयूरभंज राज्यके कई स्थानोंमें विराट राजाओंको विराट कीर्तियोंके निदर्शन वर्त्तमान हैं। पूर्वमें कोईसारी गढ़, पश्चिममें पुडाडिहा, उत्तरमें तालडिहा एवं दक्षिणमें कपोतीयादा, इनके बीच प्रायः १२० वर्गमील विस्तृत भूमिखंडमें वैराट राजाओंकी कीर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं तथा नाना प्रकारकी किम्बदन्ती सुनी जाती है। यहाँ सक्षेपमें उसका वर्णन किया जाता है—

मयूरभंजकी राजधानी वारिपदासे प्रायः २८ मील दक्षिण पश्चिम कोईसारी ग्राम है। यह ग्राम एक समय विराटपुर कहलाता था। यहाँ एक समय वैराट राजाओंकी राजधानी थी। उक्त राजधानीका ध्वंसाव शेष इस समय 'कोईसारीगढ़' नामसे प्रसिद्ध है। इस गढ़के उत्तर तथा पूर्वमें देव नदी, दक्षिण-पूर्वमें शोण नदी, सामनेमें इन दोनों नदियोंका सङ्गम एवं पश्चिममें गढ़-

बाईं है। इस स्थानकी देखनेसे ही राजधानीका उच्युक्त स्थान मालूम पड़ेगा। उस पहाड़ गढ़क ऊर्ध्वसाधनेके मध्य कब्रहटो, राजमवन तथा गिब और कनकतुर्गाक मन्दिरका ऊर्ध्वसाधनेय इस समय भी स्थानकी विज्ञाया जाता है। राजा यजुनायम इसके समय कोईसारी गढ़क अधिपति सधेश्वर मान्यता मानाधिपते पराजित हुए थे एवं मन्नाधिपति के आक्रमणसे कोईसारी गढ़ विजयलत हुआ, उन्नी समयमें यहाँके प्राचीन राजवंश शाक कीर्त्त गोत्व बिलुप्त हो गया है। राजवंशियोंमें किसीने कोतोपादानमें तथा किसीने लोकागिरिमें आश्रय ग्रहण किया। इस समय बैराटराज्य शीघ्र ही बाबू भ्रानि कोईसारी गढ़में वास करने हैं। इन लोगोंका व्यवस्था बड़ो शोचनीय हो रही है। ये लोग अपनेको मुञ्ज ग क्षत्रिय बताते हैं।

कोईसारी प्रममें उक्त राज्य शीघ्र एक अरस्त वृत्त कुछ दिन हुए प्रोचित थे। इनक कहनेसे मालूम हुआ है कि श्रेते ननु शाहका वंश कोईसारीमें प्रकटिका वंश लोकागिरिमें एवं श्रेते कुलशाहका वंश कातोपादानमें राज्य करने थे। वस्तुतः बैराटक समय इस तरह राज्यका विभाग हुआ। वस्तुतः पहले कोईसारी का बैराटपुरसे के कर लोकागढ़ वर्तमान लोकागिरि वर्तमान बैरा एक बैराट श्रुतिके शासनानुसार था। वस्तुतः बैराट प्रतिष्ठित बुबाई कब्रहटोकी पाषाणयुगी मूर्त्ति लोकागिरि राज्यकी प्राचीन राजधानी सुञ्जनागढ़में आज भी वर्तमान है। कोईसारीकी कनकतुर्गा राजा यजुनायम इसके समय बरिषदानमें जाई गई। इस समय कोईसारीगढ़क ऊर्ध्वसाधनेके मध्य मन्न मायूरी मूर्त्ति विद्यमान है। उक्त मन्नमूर्त्तिमें कबल मायूरीदेवोंके दो पाँच एक उनके बाहन मायूरीका मुखाग्र द्विगोबर होता है। गढ़क बाहर प्रेमाधिगणत वनु मुञ्ज महादेव तथा वनुमुञ्ज गौरीकी सुपुरव प्रस्तर मूर्त्ति रकी है एवं उनके पासमें ही पृथक् लीचे एक वनुमुञ्ज आभूषणदेवोमूर्त्ति है। देवीका निम्नोक्त सर्पा

कृति एवं उपरोक्त नागकन्याक समान बहुरुग्नाखं कृता है। पहले देखनेसे ही यह नागकन्याकी मूर्त्ति मालूम पड़ती है किन्तु नागकन्या विमुञ्जा होती है और ये वनुमुञ्ज आ हैं। स्थानोप लोग इन्हे एक पाँचबाळा मैरब कहते हैं। किसी पूर्वमें इस देवीमूर्त्तिके महादेवका मैरब प्रमाणित करनेके लिये उसके दोनों स्तनोंका बहुत कुछ तराज कर समतल बना दिया है, किन्तु तो भी वस्तुका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सका। सुप्रसिद्ध प्राक ऐतिहासिक विरोधैरस्त इसी स्तन पाँच ली चर्च पहले लिख गये हैं, कि मध्य पश्चिमाके स्त्रीविषय लोग पञ्जा ( इडा ) नामक एक देवी मूर्त्तिकी पूजा करते हैं। इसी देवीका निम्नोक्त सर्पाकृति एवं उपरोक्त साधारण नारीके समान है। शाक लोगोंकी उपास्य बड़ो प्राचीन देवी क्या यहाँ एक पाद मैरब के नामसे विख्यात होती है? उक्त मुञ्ज व शीघ्र बूढेक मुक्तसे और भी सुना गया कि उक्त देवी देवीकी मूर्त्तियाँ कोईसारी गढ़ तैयार होनेके बहुत पहले की हैं। नमुगाहके व शहरमें जिस समय यहाँ आ कर पुर्ण तैयार करनेके लिये मिट्टी जोड़ी थी, उसी समय मिट्टाक लीचसे उक्त देवी मूर्त्तियाँ बाहर हुए थीं। सुनती ये देवी मूर्त्तियाँ सहस्रों वर्ष पहलेकी बनी मालूम पड़ती हैं। इसीसन्ध देवी ली चर्च पहलेके शाक लोगोंके समयकी बाहिरसर्पचित त्रिम प्रकारकी मूर्त्ति मधुरासे बाहिर्पटल हुई है, यहाँकी हरगीरी मूर्त्त भी वसा आकारकी एक बनी समयकी मालूम पड़ती है। उक्त देवी मूर्त्तियाँ शक शिपोंके शासनकालमें किसी शाक राजाके द्वारा बनाई गई होंगी। कोईसारीप्रामके बाहर एक बड़े पीपलवृक्षके नीचे एक प्राचीन कमालके पास जिस पर सर्पकन्यागोमिता एक द्विमुनी देवीकी मूर्त्ति है। ये अनसाधारण उन्हे 'बोटसनी' कहते हैं। ये मुञ्ज राज्य शशी अधिष्ठात्री देवी थीं। यहाँ देवीकी मूर्त्ति है, यहाँ पहले ईडिका बना एक मन्दिर था। इन समय हम के उक्त सावटोपकी ईट देवीके चारों ओर पड़ी देवी जाती है। शै स्थान एक समय बैराट व शकी राजधानी था, इस समय वहाँ स्थान निर्जन हो रहा है।

पूर्वोक्त कोईसारीसे प्रायः १२ मील पश्चिम दिक्कण ओर बरिषदानसे प्रायः ४० मील दक्षिण-पश्चिममें पाद

॥ इत वनुमुञ्जके दक्षिणार्ध-द्वारमें उक्त, उनके बाह पाष वामार्ध हाथमें बाळा, दोनों पारमें दो-छलियाँ, पाँचके-नाचे एक भार बड़ु नि ओर एक ओर अण्डक एवं अण्डकके पीछे कलश एक वण्ड मूर्त्ति है।



वह स्थान इस समय रारिकलिया नामसे प्रसिद्ध है। इस निम्न ज गलके मध्य प्राचीनकालमें व्यवहृत मिट्टाकी हंडीका टूटा फूटा कनख आदि पाये गये हैं, उसका काम घुरा नहा है।

पथुरियागढ़ और ईटागढ़में इस समय भी दलके दल जंगली हाथी आते हैं, उनके पदचिह्न कई स्थानोंमें परिलक्षित होते हैं। बाघ भालूका अभाव नहीं है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि मयूरमञ्जु राज्यके अन्तर्गत कोईसारी तथा कोतोपादा वा कपोतोपादामें और नीलगिरि राज्यमें इस समय भी वैराटराजके वंशधर विद्यमान हैं। वे भुजंग क्षत्रिय कहलाने हैं। नीलगिरिके राजे धार कपोतोपादाके प्राचीन राजवंशीय आज भी वंशपरम्परासे इन चार उपाधियोंका व्यवहार करते हैं, जैसे—१म विराट भुजंग मान्धाता, २य अभिनव भुजंग मान्धाता, ३य परोक्ष भुजंग मान्धाता और ४थ जय भुजंग मान्धाता।

उक्त राजवंशकी प्राचीन वंश-तालिकामें जयभुजंगके स्थानमें 'जनमेजय भुजंग' नाम परिदृष्ट होता है। मालूम पड़ता है, उक्त उपाधियोंके साथ कोई प्राचीन वंश-माहमा और अज्ञातपूर्व इतिहास निबद्ध है। किन्तु हम तथा उनके सहकारी करलाइलने राजपूतानेको वैराट-कीर्तिको देख कर विराटके पूर्वपुरुष वेणराज को शाकद्वोषय वा आदि शकवंशसम्भूत कह कर प्रकाश किया है\*। किन्तु हम लोग वेणनृपतिको

\* "With regard to Raja Vena I may perhaps be permitted here to mention that, for certain reasons which have recently developed themselves, there is some cause to suspect that the 'Raja Vena' whose name is preserved in so many of the traditions of North Western India, was an Indo Scythian, and in that case either he could not have been descended from Anu, or else the race of Anu himself must also have been Indo-scythic"

Cunningham's Archaeological Survey Reports, Vol. V, p. 85 See, also p. 92, 3

शकवंशसम्भूत कह कर स्वीकार न करने पर भी मयूर-भुजंगको वैराटकीर्तिके और वैराट भुजंगवंशका आचार-व्यवहार देख कर उन्हें शाकद्वोषीय वा शकवंशसम्भूत ही अनुमान करते हैं। मालूम होता है, कि वैराट राजवंशके मध्य जो चार प्रकारको वंशोपाधियां प्रचलित हैं, उनसे चार शाखाओंके भुजंग वा नागवंशीय क्षत्रियोंका आभास मिलता है। इन चार शाखाओंके मध्य वैराट भुजंग ही आदि शाखा है, उसके बाद अभिनव वा नवागत भुजंगवंश आ कर उनके साथ मिल गये। उसके पश्चात् राजा परोक्षिके समय भारतमें और भी एक दलका आगमन हुआ। दृढ़ प्रभुति कई एक ऐतिहासिकोंने स्थिर किया है, कि जिन तक्षकके हाथसे परोक्षिका नाश हुआ, वह शाक्य था। यह तक्षक नामक राजवंश एक समय भारतमें अत्यन्त प्रबल हो उठा था। परोक्षिके पुत्र राजा जनमेजयके मर्पयज्ञसे मालूम होता है, कि उन्होंने तक्षकवंशको पराजित किया तथा उस समय जिन जिन भुजंग वा नागवंशीय राजाओंने जनमेजयका आश्रय ग्रहण कर रक्षा पाई, वे ही सम्भवतः 'जनमेजय' वा 'जय' भुजंगके नामसे विख्यात हुए। जनमेजय वा उनके परपत्नी किसी राजाके पराक्रमसे भुजंगवंश उनका आदि स्थान विराटराज्य परित्याग करके मध्यप्रदेशके अन्तर्गत मान्धाता नामक स्थानमें आ कर बस गये।

ओकर मान्धाता देखो।

मान्धातामें नागवंशीय शाक राजाओंको बहुत-सी प्राचीन कीर्तियोंके निर्दर्शन विद्यमान हैं। पहले विराटमें उत्पन्न तथा मान्धातामें अन्तिम शास होनेके कारण वे लोग वैराट भुजंग मान्धाता इस उपाधि स्मृतिसवरूप व्यवहार करते आ रहे हैं। प्राचीनवंश मान्धातासे भगाये जा कर वे लोग पूर्वा और पश्चिम भारतमें फैल गये। उनको एक शाखा उत्तर चङ्ग, एक शाखा मेदिनीपुर और एक शाखा कर्णाटक अञ्चलमें आ गई। यह शाकवंश भुजंग वा नागपूजक होनेके कारण ही भुजंग क्षत्रिय कह कर अपना परिचय देते हैं। मयूरभुजंगके पुडाडिहाके ऊपर मुण्डो शैल-पर जिस प्रकार नागमूर्तिके और नागपूजाका निर्दर्शन देखा गया है, राजपूतानेके वैराटको, मोमगुफाके समीप डीरू-उसा तरह शैलके ऊपर नागपूजाका निर्दर्शन विद्यमान है।

मयूरमन्त्रकी उत्तर-पूर्व सीमा पर राक्षसियों का प्राचीन बिराट्टगढ़ वर्तमान है।

उक्त वैराट्टगढ़बुद्धबोधके परमसे ही समस्त पूर्व भारतमें भागपूजाक समय मनस देवोंका पूजा प्रचलित हुई। आज भी यह रीति भागपूजाक कहलाता है और कीर्त्तनारागणके कर्मसाधकसे इनका उद्धार-सर्पान्त्रुत्तरिता देवामूर्त्ति निकाला गया है। ईसासदक पहले ५वीं सदीमें बिराट्टारसे लिखा है—“शाक्यगण (Sakas or Scythians) का भारद्वाजस्थान माल्यमेके उदर है। यसा (Eula—इला) नामकी पृथिवीजाता एक कुमारीसे यह जाति उत्पन्न हुई है। इस कुमारीका आकर कटिले मूर्त्ति पर्यन्त नाटा जैसा और कटिले अधोभाग तक सर्प जैसा है। घोरिता (Jupiter)क ओरसे जोर इलाक गर्भस शाक (Scythes) नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

बिराट्टोसने जिस प्रकार इलादेवोका उद्वेग किया है, कटिलासोपदमें उसी प्रकार एक देवामूर्त्ति देवी गई है। शायद ये ही शाक्यशोध मुद्राशास्त्रका उपाख्य आदि माता है।

पवित्र बिराट्ट।

बाह्यिनासकके साक्षात् जिलेमें बाईं नगर क्यामीप कि बहन्तिक अनुसार बिराट्टनगरी नामस प्रसिद्ध है। यहाँ पाण्डुरोमी अज्ञातवास किया था, येसा खोपोंका विश्वास है। आज भी यहाँका शुद्धिमें अनेक कीर्त्तियों विद्यमान हैं। यहाँ एक प्राचीन पुरा है जिसे बिराट्टगढ़ कहते हैं।

पारषाड नगरसे ५० मील दूर बाङ्गल नामक एक नगर है। १२ वीं सदीमें शिवाबिपिमें यह क्यान बिराट्टभोट और बिराट्टनगरी नामसे प्रसिद्ध है।

बिराट्टकामा (सं० खो०) छन्दोमेद्। (शुक् भाषि० १७।१५)

बिराट्टक्षेत्र (सं० खो०) पवित्र तीर्थमेद्।  
बिराट्टपूर्व—महाभारतका इर्थ पूर्व। पार्षदकगण अज्ञात वासक समय बिराट्ट राजक यहाँ बहरे थे। यहाँ उवा क्यान १म पर्वमें वर्णित है।

बिराट्टपूर्वा (सं० खो०) छन्दोमेद्। (शुक् भाषि० १६।१४)

बिराट्टद्वय (सं० खो०) मगवान्की बिराट्टम् १, मयानक रूप।

बिराट्टसुखामहेय्य (सं० खो०) साममेद्।

बिराट्टस्वामा (सं० खो०) त्रिष्टुम् आकारका छन्दोमेद्। (शुक् भाषि० १६।१६)

बिराट्ट कटात्र (सं० पु०) एकारमेद्, एक इमम होनिवाका एक प्रकारका यज्ञ।

बिराट्टका (सं० खो०) त्रिष्टुम् आकारका छन्दोमेद्। (शुक् भाषि० १६।१५)

बिराट्टमन्त्र (सं० खो०) बिराट्ट राजका मन्त्र या मासाद्।

बिराट्टर्षण (सं० खि०) बिराट्ट। श्रियां यप्।

बिराट्टक (सं० पु०) १ राजपद, एक प्रकारका निम्न कीर्त्तिका द्वारा या नग जो बिराट्ट देशमें निकळता था। (खो०) २ पुत्रक।

बिराट्ट (सं० पु०) बिराट्टे जायते जन ५। बिराट्टदेशाय होरक। बिराट्ट देवो। बिराट्टदेशमें यह हीरा उत्पन्न होता है, इसीसे इसका बिराट्टक नाम पड़ा है। पर्वाय—राजपद, राजावर्त्त।

बिराजिन (सं० पु०) इल्नी, हाथी। (उध्दयका)

बिराजि—विद्ययिन देवो।  
बिराजक (सं० पु०) अर्द्धम दस। इसका वृत्त काय बिरा स्तर मो देवमें जाता है।

बिराज (सं० पु०) पवित्र, रातका आबिरो समय।

बिराघ (सं० पु०) बिराघपति साकान् पाङ्गपताति बि-राघ अच्। १ राजसमेद्। अग्निपुराणमें लिखा है, कि इस राजाके पिताका नाम सुपर्ण्य और माताका नाम शतद्रुता था। छरुण्यने इसको माता था। यह राजस पहले तुम्बुच नामक गण्यथा था, वैश्वदेवक शापसे राजस हो गया था। वैश्वदेव द्वारा अग्निगत शीमेके उद्धारक तुम्बुचने वैश्वदेवकी बड़ी स्तुति की। इस पर प्रसन्न हो वैश्वदेवने कहा था, कि मेरा अग्निशाप अन्वया होना जाता नहीं। मगवान् बिल्गु वृक्षके घट राम रूपमें मग ठार छेपे, इन्हींके द्वारा तुम्बुचारा यह जाय मायन होगा। बिराघ जब अरुणण द्वारा मारा गया तब शापमुक्त हुआ।

(अर्द्धतुल्य)

रामायणमें लिखा है, कि जब रामअरुणण साक्षा देवोंके साथ इन्द्रकारण्यमें लड़े थे, तब बिराघ नामक एक

राक्षस उनको आँवोंके सामने आया। यह राक्षस इन लोगोंको देख भाषण शब्द करने लगा और सीता देवी को उठा कर ले चला। कुछ दूर जा कर उसने कहा, कि तुम लोग कौन हो? देवता हूँ, तुम्हारे कन्धेमें घनुष लटक रहा हूँ। कमरमें तलवार चमक रही है, फिर भा तुम्हारे गिर पर जटा और शरीर पर बलकल है। जब तुम लोग दण्डकारण्यमें आ गये हो, तब तुम्हारी अथ रक्षा कहाँ? जीवनकी आशा कहाँ? दो तापसके एक स्त्राके साथ वास करना किस तरह हो सकता है? तुम लोग गितांत पापी और अधर्मचारी हो तुम लोगोंका यह मुनिहर और आचरण बाह्याङ्गवत् है। मैं विराध नामका राक्षस हूँ। इस अरण्यमें मुनियोंका मांस भक्षण कर आनन्दसे विचरण करता रहता हूँ। यह परमा सुन्दरो नारी मेरी भार्या बनेगी और तुम लोगोंका रक्त मैं पान करूँगा। विराधने और भी कहा, मैं जवनामक राक्षसका पुत्र हूँ। मेरी माताका नाम शतहृदा है। मैं तप द्वारा ब्रह्मासे अच्छे अमोघ अश्वय रहनेका तर पा चुका हूँ। अतः वृथा युद्धको चेष्टासे रहित हो। इस कामिनोको परित्याग कर प्रीति प्रीति यहाँसे तुम लोग भाग जाओ।

रामचन्द्र विराधकी यह बात सुन कर क्रोधसे उन्मत्त हो कर उसके प्रति भाषण शरशूट करने लगे। किन्तु वह भीषणाकार विराध कभी हँसता कभी जंभाई करता वहाँ खड़ा रहा। रामचन्द्रके बाण उसके शरीरसे बाहर निकल कर जमीन पर गिरने लगे। इस तरह घोरतर युद्ध होने लगा, किन्तु ब्रह्माके वरसे विराधको कुछ भी कष्ट न पहुँचा। वह धलपूर्वक लड़कोंकी-तरह रामलक्ष्मण दोनोंको उठा कर अपन कन्धे पर रख कर वन जाने लगा और सीतादेवीको छोड़ दिया।

जब विराध इन वानोंको हरण कर वनको ले चला तब सीतादेवी विलाप कर कहने लगी—हे विराध! तुम इन लोगोंको छोड़ दो। इनके बदलेमें मुझको ही हरण करे। मैं तुमको नमस्कार करती हूँ। सीताका यह विलाप सुन रामलक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ और वे विराधके मारनेमें सचेष्ट हुए। उस समय रामने जैतसे उस राक्षसकी दक्षिणः भुजा और लक्ष्मणने वाम भुजा तोड़ डाली। उस समय राक्षस अवसन्न हो मूर्च्छित हो

कर गिर पड़ा। रामलक्ष्मण उसको मार डालनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु वह किसी तरह न मरा।

तब रामने राक्षसका अवधर समझ लक्ष्मणसे कहा—इस राक्षसने ऐसा तपस्या की है जिससे यह युद्धमें न मारा जायगा। अतएव हम लोगसे जमीनमें गाड़ दें। मैं इसकी गरदन दवाता हूँ, तुम गड्ढा खोद करो। यह कह कर राम उसको गरदन पैसल दावे खड़े हुए और लक्ष्मण गड्ढा खोदने लगे।

विराध उस समय रामचन्द्रसे कहने लगा—पहले मैं आपका भक्षणवश पञ्चान न सका। अब मैं समझ गया, कि आप दशरथके पुत्र रामचन्द्र हैं। यह सौभाग्यवती कामिनी साता और यह लक्ष्मण है। अभिशापवश मैंने यह भयङ्कर राक्षसत्व पाई है। पहले मैं गन्धर्वा था। मेरा नाम तुम्बुहू है। कुचेरने मुझे शाप दिया था; किन्तु मैंने उनसे शापमोचनका प्रार्थना की। इस पर उन्होंने कहा, कि दशरथपुत्र रामचन्द्रक युद्धमें मारने पर तुम पुनः गन्धर्वका शरीर पाओगे और इस घाममें आओगे। रम्भाके प्रति आसक्त रह कर बहुत दिनों तक उनकी सेवामें न पहुँचना मेरा अपराध था। अब आपकी कृपासे इस अभिशापसे मुक्त हो कर मैं स्वदेश गमन करूँगा। आप मुझको गड्ढेमें फेंक कर मार डालिये। शत्रु द्वारा मेरी मृत्यु न होगी। आपका मङ्गल हो।

इसके बाद रामलक्ष्मणने बड़े आनन्दके साथ उसको उठा कर गड्ढेमें पटक दिया। गिरते ही भीषण ध्वनि कर विराधके प्राण निकल गये। मृत्युके बाद जमीनमें गाड़ा जना राक्षसोंका धर्म है। मृत्युके बाद जो राक्षस जमीनमें गाड़े जाते हैं, वे सनातनलोक पाते हैं। (रामायण, अरण्यकाण्ड, १५४०)

२ अपकार, पीड़ा, व्यथा, पीड़न।

विराधन (सं० क्लो०) विराध-लुपुट्। १ अपकार करना, हानि करना। २ पीड़ित करना, मताना।

विराधान (सं० क्लो०) पीड़ा।

विराम (सं० पु०) विरम घञ्। १ शेष, निवृत्ति। पर्याय—अवसान, साति, मध्य। २ किसी क्रियाका व्यापारका कुछ देरके लिये बंद होना, रुकना या थमना। ३ चलनेकी थकावट दूर करनेके लिये रास्तेमें ठहरना,

सुस्ताता । ४ बाकपके अन्तर्गत वह स्थान जहाँ बोलते समय उदरना पड़ता है । ४ छन्दक अरणमें वह स्थान जहाँ पढ़ने समय कुछ उदरना पड़े, यति । ५ व्याक रणक मतमें परचणनका अभाव । पाणिनिके मतमें विराम कइने पर परचणनका अभाव (अर्थात् पीछे कोई वर्ण नहीं है ऐसा) समन्वा जायेगा ।

विरामता ( स० झी० ) विरामत्व भाव, तऊ टापू । विरामका भाव या धर्म, विरति ।

विरामब्रह्म ( स० पु० ) सङ्गीतमें ब्रह्मतालके चार भेदोंमेंस एक भेद ।

विराल ( स० पु० ) विहास, बिहारी ।

विराव ( स० पु० ) वि रु-अम् । १ शब्द ककरव, पोसा । २ इन्द्रा गुहा शीरगुम । ( जि० ) विगता राधा वन्द्य । ३ रवदान, शब्दरहित ।

विराविणी ( स० जि० ) १ शब्द करनेवाली । २ शैलेवासी, विह्वानवाली । ( खा० ) ३ काङ् ।

विराविन्द ( स० जि० ) विरायो विपतेऽस्येति इम । १ शब्दकारी, बोलनेवाला । २ शब्दबिधि, शैलेबावा, बिह्वानवाला । ( पु० ) ३ भूतरापूके एक पुत्रका नाम । ( भारत वाचिप० )

विरापो ( स० जि० ) विरपिष येनो ।

विरापद् ( स० पु० ) यमकोक । ( अक्ष १११५६ )

विरापाद ( स० पु० ) यमकोक ।

विरिक ( स० जि० ) वि रिच-क । १ विरिचनबिगिद, जिसे विरिचन दिया गया हो । २ जिसका पेट छूटा हो, जिस वस्तु जाता हो ।

विरिञ्च ( सं० पु० ) १ ब्रह्मा । ( भागवत ८।१।१६ ) २ विष्णु । ३ जिव ।

विरिञ्चता ( स० झी० ) ब्रह्माद्य कार्प, ब्रह्मत्व ।

विरिञ्चन ( स० पु० ) ब्रह्मा । ( हेम )

विरिञ्चि ( सं० पु० ) १ ब्रह्मा । ( बभर ) २ विष्णु । ( शिव ४ ) ३ जिय । ( अक्षर० ) ४ एक प्राचीन धर्म ।

विरिञ्चिक ( स० झी० ) ज्योतिषोक्त चक्रभेद । फलित ज्योतिषमें इसका निदेश भी है—

विरिञ्चिक

अन्त	संयत्	विपद्	क्षेम	प्रत्यारि	मायक	वध	मित्र	अतिमित्र
कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	विशाखा	पूर्वाषाढा	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र
अश्लेषा	मृगशिरा	विशाखा	पूर्वाषाढा	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र
अश्लेषा	मृगशिरा	विशाखा	पूर्वाषाढा	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र

उक्त चक्रमें निदेश किया जाता है, कि कृत्तिका, अश्लेषा, मृगशिरा और अश्लेषा की अन्तर्गत शैलियो, इस्ता और अश्लेषाकी सम्पत्तु; मृगशिरा, विशाखा और अश्लेषाकी विपद्; भाद्रा, स्वाति, और शतभिषाकी क्षेम; पुनर्वसु, विशाखा और पूर्वाषाढाकी प्रत्यारि, पुष्या अश्लेषा की अश्लेषाकी साधक, अश्लेषा, ज्येष्ठा, और शतभिषाकी वध; मघा सूया और अश्लेषाकी मित्र; पूर्वाषाढा, मृगशिरा और अश्लेषाकी अतिमित्र संज्ञा होता है । इस अन्तर्गत अश्लेषाकी शनि, क्षेम संज्ञक अश्लेषाकी मङ्गल और राहु तथा मित्रातिमित्रपदकमें रवि अश्लेषाकी रदने पर औषका वध और अश्लेषा हो सकता है । यदि अश्लेषा मङ्गल तीन अश्लेषाकी अश्लेषा तथा क्षेम संज्ञक तीन अश्लेषाकी शुक और बुध तथा मित्र और अतिमित्र ये तीन और तीन छामे अश्लेषाकी रदने पर औषकी मर्वक काम तथा अश्लेषा और अश्लेषा होता है । यदि विपद् प्रत्यारि और वध इन तीन संज्ञाविशिष्ट ती अश्लेषा

रोग उत्पन्न होता है तथा ये नक्षत्र शनि, रवि, मङ्गल आदि क्रूर-ग्रह द्वारा विरुद्ध होते हैं। ऐसा होने पर प्राणी चिररोगी या मृत्युमुखमें पतित होगा। फिर अगर साधारणतः जन्म संज्ञक तीन नक्षत्रोंमें ये सब क्रूर ग्रह अवस्थित हों तो मृत्यु, शुभ-ग्रहोंके पडनेसे जयलाम होता तथा शुभ और क्रूर इन दोनों ग्रहोंके अवस्थानसे मिश्र अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों फल होते हैं।  
(नरपतिजयचर्चा)

विरिञ्चनाय—कुछ काव्य रचयिताके नाम।  
विरिञ्चिपादशुद्ध (सं० पु०) शङ्कराचार्यका एक ग्रन्थ।  
विरिञ्चिपुरम्—दक्षिण-भारतके अन्तर्गत एक नगर।  
विश्वेश्वर—शिवलिङ्गभेद।  
विरिञ्चय (सं० त्रि०) विरिञ्चि-यत्। १ ब्रह्मसम्पन्न (पु०) ब्रह्माका भोग। ३ ब्रह्मलोक।  
विरिञ्च (सं० पु०) स्वर।  
विरुक्मत् (सं० त्रि०) १ उज्ज्वल, दीप्तिविशिष्ट विरो

चारण्य रेलवेका एक स्टेशन है। इस नगरमें नरह तरह के द्रव्यका वाणिज्य चलता है।  
विरुदायी (सं० त्रि०) १ विरुदानामायलो। २ किस्मोंके गुणनाप पराक्रम आदिका सविस्तर इत्यन्त, यज्ञ-कीर्त्त प्रशंसा।  
विरु (सं० त्रि०) वि रुध क। १ विरोधविशिष्ट।

“विरुद्ध धर्मसमवाये भूयसा न्यात् सधर्मकृत्यं ॥”  
(जैमिनिगृह)

विरुद्ध धर्मका समवाय होने पर बाहुल्यका सधर्म-करव होता रहता है अर्थात् तिलराजिमें कुछ सरसों है, यहा तिल और सरसों विरुद्ध है और इनका समवाय भी हुआ है। किन्तु ऐसा होने पर भी बहु तिलोंके सधर्मकत्वसे यह तिलके नामसे ही अभिहित होता है। सरसों रहने पर भी उसका कुछ उल्लेख नहीं हुआ। इस तरह विरुद्ध धर्मके समवायसे बाहुल्यका ही प्राधान्य होता है, अल्पका नहीं।

२ दशम मनु ब्रह्मसावर्णिके समयका देवताभेद। (स्त्री०) ३ चरकके मतसे विचाराङ्गद्वेषिशेष। जो दृष्टान्त और सिद्धान्त द्वारा विरुद्ध-सा मालूम हो, उसका नाम विरुद्ध है।

४ विरोधयुक्त हेत्वाभासभेद। अनेकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित और कालात्ययोर्पादि ये पांच प्रकारके हेत्वाभास हैं। जो हेत्वाभास साध्यविशिष्टमें अवस्थित नहीं, उसको विरुद्ध कहते हैं।

५ देश, काल, प्रकृति और संयोग विपरीत है। जो द्रव्य, जिस देशके जिस समयके और जिस प्रकृतिकी विपरीत क्रिया करता है, अथवा जो दो वस्तुएं आपसमें मिल कर कोई एक विपरीत क्रिया करती हैं, आयुर्वेदविद्द द्वारा वह विरुद्ध नामसे अभिहित है। क्रमसे उदाहरण द्वारा विवृत किया जाता है—

देश विरुद्ध—जाङ्गल, अनूप और साधारण भेदसे देश तीन प्रकारका है। जाङ्गल (अल्प जलविशिष्ट वनपर्व-तादि पूर्ण) प्रदेश वातप्रधान, अनूप (प्रचुर वृक्षादिते परिपूर्ण, बहुदक और घानातप दुर्लभ) प्रदेश कफ-प्रधान और साधारण अर्थात् ये दोनों मिश्रित प्रदेश व तादिके समताकारक हैं।

चनवत्। (शृक् १०।२२।४ सायण)  
विरुज् (सं० स्त्री०) विशिष्ट रोग। (भाग. १।६।२६)  
विरुज् (सं० त्रि०) १ रोगशून्य। २ रोग  
विरुत् (सं० त्रि०) १ कृजित, रव युक्त, शब्दयुक्त। (स्त्री०) २ रव।  
विरुद (सं० स्त्री०) १ प्रणस्ति, यत्। विरुद दो प्रकारका है—वाशिक और कश्मिरी, वाचार्थ कह गये हैं, कि यहा भी संयुक्त नियम। विरुदमें आठ या सोलह कलिका रहती हैं। विरुदवर्णना-कालमें साधारणतः दशसे अधिक कलिका देनी नहीं होती। इसी प्रकार कलिकामें विरुदके अन्तमें गुणोत्कर्षादि वर्णनको विरुद के अन्तमें धीर और धीरादि शब्द रहेगे। प्रशसास्त्रक उपाधि जो राजा लोग प्राचीन कालमें धारण करते थे। जैसे—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। इस नाम है और विक्रमादित्य विरुद है। ३ यत्। ४ रघु-वृद्धत प्रन्थभेद।  
विरुद पति—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवल्लो अन्तर्गत सातुर तालुकका एक नगर। यह अक्षांश ३० तथा देशांश ७८ १' पू०के मध्य विस्तृत है। यह

यदि इस आङ्गुलवेगमें वायुनाशक स्थिप (पूत  
 वेतादि स्नेहाक बारनास) द्रव्यके और दिनका मिश्रति  
 क्रियाका व्यवहार किया जाये, तो तद्देशविन्दु होगा।  
 इस तरह अनुपमदेशोंमें यदि कटु, (कडवा, कस, स्नेह  
 हीन) और लघुद्रव्य तथा व्यायाम, लघु वन्यादि क्रियाय  
 देश विन्दु है और साधारण देशमें इनका संमिश्रण  
 क्रिया व्यवहृत होनेसे इसको भी यथापथ भाषसे तद्देश  
 विन्दु कहा जाता है। उसके द्वारा साधारणता बन्धी  
 तरह समन्ता वा सरुता है, कि उष्णप्रधान देशमें शैत्य  
 क्रिया और शीतल द्रव्यादि तथा शीतप्रधान देशमें उष्ण  
 द्रव्य और तत्क्रियादि तद्देशविन्दु हैं। अतएव इससे  
 साधारणता स्पष्ट मान्य हो रहा है, कि सब द्रव्य या  
 क्रियाओंके विपरीत है अर्थात् हस्ता या शोपनाशक  
 है (जैसे अग्नि जलका, शीत उष्णका, मित्रा मागुरयका  
 विपरीत है) वे ही इनके विन्दु हैं। यह विन्दु द्रव्य  
 और क्रिया द्वारा ही चिकित्सा-कार्यको बहुत सहायता  
 मिलती है। क्योंकि यहाँ वातपित्तादिकोप और द्रव्य  
 की अचिक्रता प्रयुक्त रोगको उत्पत्ति होती है, तत्सत्  
 स्थलमें इनके विन्दु द्रव्य और क्रियाओं द्वारा चिकित्सा  
 करनी चाहिये।

काम विन्दु,—काल शब्दसे यहाँ संबन्धरूप और  
 व्याधिकी क्रिया (चिकित्सा) कालादि समझने होंगे।  
 आयुर्धेइ विशारदने संबन्धरको भावान (उत्तरायण)  
 और बिसर्ग (दक्षिणायन) इन दो कालोंमें बिभक्त किया  
 है। उन्होंने माघ माससे आरम्भ कर प्रत्येक दो मास अष्ट  
 मान कर यथाक्रम मिशिर (शीत), वसन्त और प्रोष्ण  
 इन तीन ऋतुओंमें अर्थात् माघसे व्याषाढ तक उत्तरायण  
 या भाद्रपदकाल और इसी तरह द्वात्रिंशसे पीप तक बर्षा,  
 शरत् और हेमन्त इन तीन ऋतुओंमें दक्षिणायन या  
 बिसर्गकाल निर्दिष्ट किया है। नैसर्गिक नियमानुसार  
 आह्वानके समय शरीरक रमन्तय होनेमें जोब कुछ निस्नेह  
 और बिभर्गक समय इस रसक परिपूर्ण होनेसे इसकी  
 मयेना ब्रह्म सा नेत्र और सबन्धाविशेषमें इसकी अत्य  
 पिक पूरि होनेमें वे सब और आम्रनात आदि रोगोंसे  
 अक्रान्त होते हैं। इसलिये इन दो कामों में यथाक्रम  
 इनके विन्दु अर्थात् आह्वानकाक विन्दु मधुराभ्यरस

त्यक तर्पण पानकादि द्रव्य और विद्यामिश्रादि क्रियाये  
 तथा बिसर्गाकालके बिन्दु कटु, तिक्त और कषाय रसा  
 रमक द्रव्य तथा व्यायाम, लघुनादि क्रियाये व्यवहृत होती  
 हैं। मूल बात यह है कि शीतकालमें तात्कालिक उष्ण  
 और उष्णकालमें द्रव्य तथा उष्णक्रिया (अग्नितापादि)  
 तथा गर्मीके समयमें शीतलद्रव्य व्यवहार और शैत्य  
 क्रियाये की जाती हैं, ये कालविन्दु हैं।

प्रकृति विन्दु—वात, पित्त और कफमेंसे लोगो की  
 प्रकृति तीन तरहकी होती है अर्थात् वातप्रधान—वात  
 प्रकृति, पित्तप्रधान—पित्तप्रकृति, श्लेष्मप्रधान—श्लेष्म  
 प्रकृति। वात, पित्त और कफ ये परस्परविन्दु परार्ध  
 हैं, क्योंकि इनमें विचार हैता है, कि जो सब द्रव्य या  
 क्रियाये (सुक्ष्म-गुण-हेतुक) एकका (वायु वा पित्तका)  
 बर्धक है, वे (विपरीत गुणहेतुक) दूसरेका (श्लेष्माका)  
 ह्रासक होते हैं। जैसे वातबद्ध कटु, तिक्त और  
 कषायरसात्मक द्रव्य और लघुनादि क्रियाये कफको  
 विन्दु है। कफबद्ध क मधुराभ्यरसभरणरसात्मक द्रव्य  
 और विद्यामिश्रादि क्रियाये वायुको विन्दु है तथा पित्त  
 बर्धक अम्ल, कषायरसात्मक द्रव्य वायुको और कटुरसा  
 रमक द्रव्य तथा लघुनादि क्रियाये कफको विन्दु है।  
 श्लेष्मबर्धक मधुर और वातबर्धक तिक्तरसात्मक  
 द्रव्य पित्तके विन्दु हैं। अतएव तत्सत्प्रकृतिक लोगो के  
 सम्बन्धमें जो जो वे द्रव्य और क्रियाये परस्परविन्दु  
 हैं यह निरूपे प्रमाणित करना अनावश्यक है। कयो कि  
 वातप्रकृतिक या वातप्रधान लोगो की वायुके विन्दु  
 मधुराभ्यरसात्मक द्रव्य और विद्यामिश्रादि क्रियाको  
 व्यवस्था करनेसे ही उनकी प्रकृतिको ह्रासता या समता  
 होती है। सुतरां पित्त और श्लेष्मप्रकृतिक लिये भी इसी  
 तरह समन्ता चाहिये।

संयोगविन्दु—बद्ध, मधु द्रव्य वा घ्राण्यदि  
 अ कुरके साथ अनुपमास भोजन करनेसे संयोगविन्दु

० "इति तन्मैः तर्षेण विपरीते विपरेणः ॥"  
 'तर्षेण' शोषणप्रमत्तानां समानेन्द्रियद्रव्यैश्चकारिण्डिभिः  
 विपरीतेषु व्याधिभिर्षर्षेणो बुद्धिदेरीत्यं भवति।' - :  
 (काम्यद चक्रवर्ती ११, ५०)

णामके दो भेद कहे गये हैं,—स्वरूपपरिणाम और विरूप-परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृतिसे तरह तरहके पदार्थोंका विकास होता है और स्वरूप परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप नष्ट करने हुए प्रकृतिमें लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टिकी ओर अग्रसर होता है और दूसरा लयकी ओर।

विरूपशक्ति (सं० पु०) १ विद्याधरभेद। (कथावर्तिष्ठा० ४६।६८) २ प्रतिद्वन्द्वी शक्ति (Counteracting forces)। जैसे,—ताड़ितकी Negative शक्ति और Positive शक्ति। वे एक दूसरेके विरोधी हैं।

विरूपशर्मन् (सं० पु०) ब्राह्मणभेद।

(कथावर्तिष्ठा० ४०।२६)

भिरुपा (सं० त्रि०) विरूप टापू। १ डुरालभा, जवासा, धमासा। २ अतिविपा। ३ यमकी एक पत्नीका नाम। (त्रि०) ४ कुरूप, बदसूरत।

विरुपाक्ष (सं० पु०) विरूपे अक्षिणा यस्य सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् पच् इति पच् समासान्तः। १ शिव। २ रुद्र भेद। (जटापर) इनकी पुरी सुमेरुपर्जनके नैऋत कोणमें अवस्थित है।

“तथा चतुर्थे दिग्भागे नैऋताधिपतेः श्रुता।

नाम्ना ऋष्यावती नाम विरुपाक्षस्य धीमतः ॥”

(वराहपु० वदगीता)

३ रावणका एक सेनानायक जिसे हनुमानने प्रमोदवन उजड़ानेके समय मारा था। ४ एक राक्षसका नाम जिसे सुग्रीवने रामरावणयुद्धमें मारा था। ५ रावणका एक मन्त्री। ६ एक दिग्गजका नाम। ७ एक नागका नाम। (त्रि०) ८ विरूप, बदसूरत।

विरुपाक्ष—१ एक योगाचार्य। इन्होंने ऊर्ध्वध्वान्नायसे महाप्रोढान्यास नामक एक ग्रन्थ लिखा है। वृषदीपिकामे इनका नामोल्लेख है। २ विजयनगरके एक राजाका नाम।

विरुपाक्षदेव—शक्तिनात्यके एक हिन्दू-राजा।

विरुपाक्ष शर्मन्—तत्त्वदीपिका नाम्ना चण्डीश्लोकार्यप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता। १५३१ ई०में ग्रन्थकारने ग्रन्थ रचना समाप्त की। आप कविकण्ठाभरण आचार्य नामसे परिचित थे।

विस्वाश्व (सं० पु०) राजभेद। (भारत १३ पर्व)

विरूपिका (सं० त्रि०) विकृतं रूपं यस्याः कन् टापू अत इत्वं। कुरूपा स्त्री, बदसूरत औरत।

विरूपिन् (सं० त्रि०) विकृत रूपमस्यास्तीति विरूप-इनि। १ कुरूपविशिष्ट, बदसूरत। (पु०) २ जाहक जन्तु, गिर गिट।

विरू (सं० पु०) वि रिच्-घञ्। विरेचन, दस्तावर, दवा, जुलाब।

विरेचक (सं० त्रि०) मन्त्रमेटक, दमन लानेवाला।

विरेचन (सं० षष्ठी०) वि-रिच् ल्युट्। विरेक, जुलाब।

वैद्यकमें विरेचनके विषय पर अच्छी तरह विचार किया गया है; यहा पर बहुत संश्लेषमें लिखा जाता है। कुपित मल सभी रोगोंका निदान है। मल कुपित हो कर नाना प्रकारका रोग उत्पन्न करता है। अतएव जिससे मल न रुके, इस ओर ध्यान रखना एकान्त कर्त्तव्य है। मलके रुकनेसे विरेचन औषध द्वारा उसका निःसारण करना चाहिए।

भावप्रकाशमें विरेचनविधिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

स्नेहन और स्वेदक्रियाके बाद वमनविधि द्वारा वमन करा कर पीछे विरेचनका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। यदि पहले वमन न करा कर विरेचनका प्रयोग किया जाये, तो रूफ अघःपतित हो कर ग्रहणी नाडीको बाच्छादन कर शरीरकी गुरुता वा प्रवाहिका रोग उत्पादन करता है, इसलिये सबसे पहले वमन कराना उचित है। अथवा पाचक औषधका प्रयोग कर आमकफका परिपाक करके भी विरेचन दिया जा सकता है।

शरत् और वसन्तकालमें देहशोधनके लिये विरेचनका प्रयोग हितकर है। प्राणनाशको आशङ्का पर अन्य समय भी विरेचनका प्रयोग किया जा सकता है। पित्तके कुपित होनेसे तथा आमजनित रोगमें उदर और आश्रमान रोगमें कोष्ठशुद्धिके लिये विरेचन प्रयोग विशेष हितकर है। लङ्घन तथा पाचन द्वारा दोषके प्रशमित होनेसे वह पुनः प्रकुपित हो सकता है, किन्तु शोधन द्वारा दोष सदाके लिये दूर हो जाना है।

बालक, वृद्ध, अतिशय सिनाघ्न, क्षत वा क्षीणरोगग्रस्त,

मवारं ध्यात्, पिपाशां ह्युलकाय, गर्भघतो नारी, नववस्तुतामारी, मन्दाग्निमुक्त, मवात्पपाश्वात्, शक्य पीठित और दस इन सब व्यक्तियोंको बिरेचन देना उचित नहीं है। इन सब व्यक्तियोंको बिरेचन देनेसे दूसरे दूसरे उपद्रव होते हैं।

शीर्णश्चर, गरदौघ, वातरोग, मगन्ध, कर्द, पाण्डु, उदर, प्रणिव हृद्रोग मरुचि, योगिण्याण्ड, प्रमेह, गुन्म, मीषा, विप्रचि, वमि, बिस्फोट, विसृष्टिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासार्थोग, गिरार्थोग मुक्षरोग, गुच्छरोग, मोक्षरोग, श्लेष्म ज्वरोग, मेक्षरोग, हृमिरोग, अग्नि और क्षारकान्धरीडा, शूष और मूत्रापात इन सब रोगियोंके लिये बिरेचन बहुत फायदामें है।

चित्ताधिष्य व्यक्ति मूत्रकोष्ठ, बहुकफयुक्त व्यक्ति मध्यकण्ठ और वाताधिष्य, व्यक्ति कूरकोष्ठ कहलाता है। कूरकोष्ठमय्यन व्यक्ति दुर्विरेच्य है अर्थात् योड़े पक्षसे उनका बिरेचन नहीं होता। मूत्रकोष्ठ व्यक्तिके मूत्र बिरेचक द्रव्य अथवा मात्सामे, मध्यकण्ठ व्यक्तिके मध्य बिरेचक औषध मध्यमात्सामे तथा कूरकोष्ठ व्यक्तिके शोण्य बिरेचक द्रव्य अधिक मात्सामे प्रयोग करना होता है।

बिरेचक औषध ये सब हैं—दासक काड़े और रेड्डीके तैलसे मूत्रकोष्ठ व्यक्तिका बिरेचन होता है। निसाय, कुट्टर और अमलतास द्वारा मध्यकण्ठ व्यक्तिका तथा यूहरके दूध स्वर्णशीरा और जयपालसे कूरकोष्ठ व्यक्तिका बिरेचन होता है।

किम मात्सामे बिरेचनका सेवन करनेसे १० बार वस्तु उत्तरे, उसे पूर्णमात्रा कहते हैं। इसमें भाजिर बेग क साध कफ निकलता है। मध्यमात्सामे २० बार तथा होनमात्सामे १० बार मसमेद् हुआ करता है।

बिरेचक औषधका क्वाप पूर्णमात्सामे है। पक्ष, मध्य मात्सामे एक पक्ष और होनमात्सामे आध पक्ष प्रयोग्य है। बिरेचक कफक, मोक्षक और शूर्ण मधु तथा शोके साध गौड कर सेवन करना उचित है। इन तीनों प्रकारकी औषधकी पूर्णमात्रा एक पक्ष, मध्यमात्सामे आध पक्ष तथा होनमात्सामे १ तोला है। यह मात्रा शी कही गई है, वह रोगीके बलाबल, स्वाल्प्य, अवस्था आदिका भण्डो तरह

विचार कर देनी होती है। इतल मात्रामें प्रयोग करनेसे यदि अनिष्टकी सम्भावना रहे, तो मात्राको स्थिर करके उसका प्रयोग करना होगा। पित्तप्रकोपमें दासक काढ़ क साध निसोयका शूर्ण, कफप्रकोपमें क्षिफलाके क्वाप और गोमूत्रके साध शिक्कशूर्ण तथा वायुप्रकोपमें अमल-रस अथवा ज गन्धी ज्ञानयकरके मांसके जूसक साध निसोय, सेण्यव और सौंठके शूर्णका प्रयोग करे। रेड्डीके तैलसे घूने क्षिफलाक काड़े वा दुधक साध पान करनेसे शोय ही बिरेचन होता है।

वर्षाकालमें बिरेचनके लिये निसोय, इन्द्र जी, पीपल और सौंठ, इन सब द्रव्योंको दासकके काढ़ में मिला कर पान करे। शरत्कालमें निसोय, जयासा, मोषा, खानो भति यन्ना, रक्तचन्दन और मुसंडी इन्हे दासक काड़ेमें मिला कर सेवन करनेसे उत्तम बिरेचन होता है। हिमन्तकालमें निसोय, चितामूल, अकथन भाषि, मोषा, सरल काष्ठ, बथ और स्वर्णशीरो, इन सब द्रव्योंको शूर्ण कर उष्ण जलक साध सेवन करनेसे बिरेचन होता है। शिशिर और वसन्तकालमें पीपल, सौंठ, सेण्यव और श्यामाक्षता इन्हे शूर्ण कर निसोयके शूर्णमें मिलाये और मधु द्वारा संहन करे, तो बिरेचन होता है। शीष्य ऋतुमें निसोय और खानो समान परिमाणमें मिला कर सेवन करनेसे उत्तम बिरेचन होता है।

हरीतकी मिर्च सौंठ, विडङ्ग, भाषका, पापल पीपल मूल, दारुचीनी, तिब्रपल और मोषा इन सब द्रव्योंका समान भाग छे कर उसमें तीन भाग इन्धोमुन, आठ भाग निसोयका शूर्ण तथा छः भाग खीनी मिलावे, पांछे मधु द्वारा मोक्षक बनाये। यह मोक्षक ५ तोला प्रति दिन मन्नेरे सेवन कर शीतल अलका अनुपान करे। इस मोक्षकके सेवनसे यदि अधिक मसमेद् हो तो उष्ण क्रिया करनेसे यह बसी समय पंद हो जायेगा। इस मोक्षकके सेवनमें पान, माहार और बिहारक लिये कोई यत्नना भुगतनी महा पडतो तथा बिषय उदर आदिमें विरोध उपकार होता है। इसका नाम अमयदि मोक्षक है। इस का सेवन कर बसी दिन स्नेहमर्दन और श्लेष्म परिष्कार करना उचित है।

बिरेचक औषध पान करके दोनों नेत्रमें ज्ञानम जल



देना होता है। पीछे कोई सुगन्धित द्रव्य सूंघना तथा वायुरहित स्थानमें रह कर पान खाना उचित है। इसमें वेगधारण, जयन और शीतल जल स्पर्श न करे तथा लगातार उष्ण जल पीवे।

वायु जिस प्रकार वमनके बाद पित्त, कफ और औषध-के साथ मिलती है उसी प्रकार विरेचनके बाद भी मल, पित्त और औषधके साथ कफ मिल जाता है। जिनके अच्छी तरह विरेचन न हो, उनकी नाभिकी स्तब्धता, कोष्ठ-देशमें वेदना, मल और वायुका अपवर्त्तन, शरीरमें कण्डु और मण्डलाकृति चिह्नोत्पत्ति, देहकी गुरुता, विदाह, अरुचि, आधमान, भ्रम और वमि होती है। ऐसे अवस्था-पन्न चरुक्तिको गुणः सिन्धु अथवा पाचक औषध सेवन द्वारा दोषका परिपाक करके फिरसे विरेचन करावे। ऐसा करनेसे उक्त सभी उपद्रव दूर होते, अग्निको तेजी बढ़ती और शरीर लघु होता है।

अतिरिक्त विरेचन होनेसे मूर्च्छा, गुदभ्रंग और अत्यन्त कफस्राव होता है तथा मांसघात जल अथवा रक्तकी तरह वमि होती है। ऐसी अवस्थामें रोगी-के शरीरमें शीतल जल सेक करके शीतल तण्डुलक जलमें मधु मिला कर अल्प परिमाणमें चमन करावे। अथवा दधि या सौवीरके साथ आमका छिलका पीस कर नाभिदेशमें प्रलेप दे। इससे प्रदीप्त अतीसार भी प्रशमित होना है। भोजनके लिये छागदुग्ध और विष्किर पक्षी अथवा हरिण मांसके जूसको, जालिधान, साठी और मसूरके साथ नियमपूर्वक पाक करके प्रयोग करे। इस प्रकार शीतल और संग्राही द्रव्य द्वारा भेदको दूर करना होता है।

शरीरकी लघुता, मनस्तुष्टि और वायुका अनुलोम होनेसे जब अच्छी तरह विरेचन हुआ मालूम हो जाये, तब रातको पाचक औषधका सेवन करावे। विरेचक औषधके सेवनेसे बल और बुद्धिको प्रसन्नता, अग्निदीप्ति, धातुमें भी वयःक्रमकी स्थिरता होती है। विरेचनका सेवन करके अत्यन्त वायुसेवन, शीतल जल, स्नेहाभ्यङ्ग, अजीर्णकारक द्रव्य, व्यायाम और स्त्रीप्रसङ्गका परित्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है। विरेचनके बाद जालिधान, और मूंगसे यवागू तैयार कर अथवा हरिणादि पशु वा

विष्किर पक्षीके मासरमके साथ जालिधानका भात गिलावे। ( भावप्र० विरेचनावधि )

सुश्रुतमें विरेचनका विषय इस प्रकार लिखा है,— मूल, छाल, फल, नैल, खरस और क्षीर इन छः प्रकारके विरेचनका व्यवहार करना होता है। इनमें से मूल विरेचनमें लाल निसोथका मूल, त्वक्-विरेचनमें लोभ-की छाल, फल-विरेचनमें हरीतकी फल, नैल विरेचनमें रेडीका तैल, खरस-विरेचनमें करवल्लिका ( करैले ) का रस और क्षीर-विरेचनमें मनसावाजका क्षीर श्रेष्ठतम है।

विशुद्ध निसोथमूलचूर्ण विरेचन द्रव्यके रसमें भावना दे कर चूर्ण करे तथा सैन्धव लवण और सोंठका चूर्ण मिला कर प्रचुर अम्लरसके साथ मथ डाले। पीछे यह वातरोगीको विरेचनके लिये पान करानेसे उत्तम विरेचन होता है।

गुलञ्ज, नीमकी छाल और त्रिफलाके काढ़े में अथवा त्रिकटुके चूर्ण डाले हुए गोमूत्रमें निमोथका चूर्ण मिला कर कफज रोगमें पिलानेसे विरेचन होता है। निसोथ-के मूलकी चुकनी, श्लायचोकी चुकनी, तेजपत्रकी चुकनी, दारचोनीकी चुकनी, सोंठका चूर्ण, पीपलकी चुकनी और मरिचकी चुकनी इन्हें पुराने गुड़के साथ श्लेष्मरोगमें चाटनेसे उत्तम विरेचन घनता है। दो सेंर निसोथ-मूलका रस, आध सेंर निमोथ तथा सैन्धवलवण और २ तोला सोंठकी चुकनी इन्हें एक साथ पाक करे। जब वह पाक खूब घना हो जाये, तब उपयुक्त मात्रामें वातश्लेष्मरोगी-को विरेचनार्थ पिलाना होगा। अथवा निसोथका मूल तथा तमान भाग सोंठ और सैन्धवलवण पीस कर यदि गोमूत्रके साथ वातश्लेष्मरोगीको पिलाया जाये, तो उत्तम विरेचन होता है।

निसोथका मूल, सोंठ और हरीतकी, प्रत्येककी चुकनी २ भाग, पक सुपारीका फल, विडङ्गसार, मरिच, देव-दारु और सैन्धव प्रत्येककी चुकनी आध भाग ले कर मिलावे और गोमूत्रके साथ सेवन करे, तो विरेचन होता है।

गुडिका—निमोथ आदि विरेचन द्रव्यको चूर्ण कर विरेचक द्रव्यके रसमें घोंटे। पीछे विरेचन द्रव्योंके मूलके साथ उसका पाक करे तथा घृतके साथ मर्दन

कर गुट्टिका पका कर सेवन कराये। अथवा गुड़के साथ निसोचधूर्णका पाक कर सुर्गांधके लिये इसमें हसायबी, तैजपत्र और हारपीनोका क्षूर्ण मिलाये। उपयुक्त मात्रामें गोली तैयार कर सेवन करनेसे विरेचन होता है।

मोदक—एक भाग निसोच आदि विरेचन द्रव्योंकी चुकनो छे कर उससे खींगुने विरेचन द्रव्यके काढ़ेमें मिय करे। पीछे घना होने पर घोसे मछा दुग्धा गीहुका क्षूर्ण इसमें डाल दे। इसके बाद ठंडा होने पर मोदक तैयार कर विरेचनार्थ प्रयोग करे।

जूस—निमोच आदि विरेचक द्रव्योंके रसमें मूग, मसूर आदि शालकी भाषता से सैन्धवस्रवण और घृतक साथ एकत्र जूस पाक करके यदि पान कराये तो विरेचन बनता है।

पुटपाक—इसके एक इंचको दो कपड कर उसके साथ निसोच घोल कर इसके कपडमें उसका प्रसेव दे तथा गोमारोके पत्तोंसे ढक कर कुज्यादिकी डोतीसे इसको मसृत्तीसे बांध दे। अनन्तर पुटपाकके पिपा मानुसार उसका पाक करके पिण्तोगीकी सेवन कराये, तो विरेचन होता है।

सेह—इसकी खीनो, वनयमात्रा पंचमीषण मुर कुम्हड़ा और निमोच इन पांच द्रव्यों का क्षूर्ण समान मात्रामें छे कर बी और मधुके साथ इसको मिला कर चाटे, तो विरेचन होता है तथा सुष्वा हाइ और ज्वर जाता रहता है।

ईसकी खीनो, मधु और निसोचकी चुकनो प्रत्येक द्रव्यका समभाग तथा निसोच चुकनोका क्षतुर्पा श शक खीनो, तैजपत्र और मरिचक्षूर्ण मिला कर खोमसप्रहृति बांधे ब्यक्तियोंकी विरेचनार्थ सेवन करने से।

ईसकी खीनो ८ तोला, मधु ४ तोला और निमोचका क्षूर्ण १६ तोला, इन्हें बांधा पर बटा कर एकत्र पाक करे। अब यह सेहबन् हो जाये, तब उसे उगार कर सेवन कराये। इससे विरेचन हो कर पित्त दूर होता है।

निसोच, बिम्बाकूक, पत्रहाट, सांठ और पीपल इन्हें क्षूर्ण कर उपयुक्त मात्रामें मधुके साथ सेह प्रस्तुत करे। यह सेह पान करनेसे विरेचक हाता है।

हरीतकी, गोमार, आमलकी, अनार और बेर इन सब द्रव्योंके काढ़ेका रे शोक ठेसमें पका कर कड़े मोक्ष आदि

का रस इसमें डाल दे। पीछे पाक करते करते जब थक पन हो जाये, तो सुपल्पक लिये इसमें तैजपत्र हारखोमी और निसोचका क्षूर्ण डाल कर सवन कराये। इच्छेय प्रमाण घ्रातुविशिष्ट सुकुमार प्रकृतिवाले ब्यक्तियोंके लिये यह एक उत्कृष्ट विरेचन है।

निसोचका क्षूर्ण तीन भाग तथा हरीतकी, आमलकी, बहेडा, पत्रहाट, पीपल और बिबुङ्ग प्रत्येकका समान भाग से कर क्षूर्ण करे। पाछे उपयुक्त मात्रामें छे कर मधु और घृतक साथ सेहकी तरह बनाये अथवा गुड़के साथ मस कर गोला तय्यार करे। यह गोली सेह अथवा सयन करनेसे कफबाधत्र गुल्म, श्लेष्म आदि नासा प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं। इस विरेचनसे किंसा प्रहारका भविष्य नही होता।

विशठात्रक, निमोच, खोलाफल, कुट्टय, मोषा दुग्ध समा र्थ, तम्बूय, हरीतकी, आमलका और बहेडा, इन्हें क्षूर्ण कर घृत मसकं जूस या जलके साथ सेवन करनेसे यक्ष्म ब्यक्तियोंका विरेचन होता है।

रक्षपरिचन—सोपको छाळका बिचसा हिलसा छोड़ कर बाकीको क्षूर्ण करे तथा इस तीन भागोंमें चिमक कर दो भागका खेपकी छाळक काढ़ेमें गमा से। बाकी एक भागका उक काढ़ेसे पावना दे कर बिभकुळ सुखा जामे। सूतन पर इगमूक काढ़ेसे भावना दे कर निसोचकी तरह प्रयोग करे। यह रक्षक विरेचन सयन करनेसे उत्तम विरेचन होता है।

फल-विरेचन—दिना भाटोंके हरीतकी फल और निसोचका बिधानानुसार प्रयोग करनेसे मनो प्रकारक रोग दूर होती है। हरीतकी, चिबुङ्ग, सैन्धव स्रवण मीठ, निसोच और मिषा इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे विरेचन होता है। हरीतकी, दिपहाट कुन्द, सुपारी, सैन्धव स्रवण और सोंठ इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बद्धिया विरेचन होता है।

मेसोरजम सोंठ और हरीतकी इन तीन द्रव्योंका क्षूर्ण कर गुड़क साथ मिसा सेवन करे। पीछे उष्ण अन्नपान पिण्या आदि कड़ेमें हरीतकी पात कर सैन्धव स्रवण मिलाये। इसका सेवन करनेसे उत्तम समय विरेचन होता है। इसके गुट्ट मीठ वा सैन्धव

लवणके साथ हरीतकी सेवन करनेसे विरेचन हो अग्नि की वृद्धि होती है। यह विशेष उपकारी है।

पके अमलतासक फलको बालूके ढेरमें सात दिन रख कर धूपमें सुखा लेवे। पीछे उसकी मज्जाको जलमें सिद्ध कर अथवा तिलकी तरह पीस कर तेल निकाल ले। यह तेल बारह वर्षके बालकोंको विरेचनार्थ दिया जा सकता है।

एरण्डतैल—कुट, सोंठ, पीपल और मोर्चा इन्हें चूर्ण कर रेंडोंके तेलके साथ सेवन करे तथा पीछे गरम जल पिलावे। इससे उत्तम विरेचन हो कर वायु और कफ प्रशमित होता है। दूने त्रिफलाक काढ़ेके साथ अथवा दूध या मासके रसके साथ रेंडोंका तेल पान करनेसे सुचारु विरेचन होता है। यह विरेचन बालक, वृद्ध, क्षत, क्षोण और सुकुमार आदि व्यक्तियोंके लिये विशेष हितकर है।

क्षीरविरचन—तीक्ष्ण विरेचन द्रव्योंमें थूहरका दूध ही सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु अज्ञ चिकित्सक द्वारा यह दूध प्रयुक्त होनेसे वह विपकी तरह प्राणनाशक होता है। यदि यह अच्छे चिकित्सक द्वारा उपयुक्त समयमें प्रयुक्त हो, तो नाना प्रकारके दुःसाध्य रोग आरोग्य होते हैं।

महत पञ्चमूल, वृहती और कण्टकारी, इन सब द्रव्योंका पृथक् पृथक् काढा बना कर प्रतप्त अङ्गारके ऊपर एक एक काढ़ेमें थूहरका दूध शोधन करे। पीछे काजो, दहीके पानी और सुरादिके साथ सेवन करने दे। थूहरके दूधके साथ तण्डुल द्वारा यथागू प्रस्तुत कर अथवा थूहरके दूधमें गेहूँ की भावना दे लेहवत् बना कर सेवन करावे अथवा शहर, क्षीर, घृत और ईत्रकी चीनीके एकल चूर्ण कर लेहवत् सेवन करावे; अथवा पीपलचूर्ण, सैन्धी लवण, थूहरके दूधमें भावना दे। पीछे गोली बना कर सेवन करनेसे सम्यक् विरेचन घनता है। अमलतास, शङ्ख, दन्ता और निसोथको सात दिन तक थूहरके दूधमें चूर्ण कर रखे। इसके बाद यदि उसे चूर्ण कर माल्य वा वस्त्र पर बिछा कर उसका प्राण ले या वह चूर्ण भावित वस्त्र पहने तो मृदुप्रकृतिवाले व्यक्ति योंका यह सम्यक् विरेचन होता है। निसोथ, हरीतकी, आमलकी, बहड़ा, विडङ्ग, पीपल और यवक्षार प्रत्येक

द्रव्यका चूर्ण आध तोला मात्रामें ले उपयुक्त परिमाणमें घृत और मधुके साथ लेहन करने अथवा गुड़के साथ मोदक प्रस्तुत कर उसे सेवन करनेसे कौष्ठ परिष्कृत होता है। यह श्रेष्ठ विरेचक है। इसका सेवन करनेसे नाना प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं।

सुदृक्ष त्रिफित्सकोंको चाहिये, कि वे इन सब विरेचक औषधोंकी घृत, तैल, दुग्ध, मद्य, गोमूत्र और रसादि या अन्नादि भक्ष्यद्रव्यके साथ मिला कर अथवा उनका अवलेह तैयार कर रोगीको विरेचनार्थ प्रयोग करे। क्षीर, रस, कल्क, अथवा और चूर्ण ये सब उत्तरोत्तर लघु हैं।

(सुश्रुत सूत्र १०।)

चरक, वाभट आदि सभी वैद्यक ग्रन्थोंमें विरेचन-प्रणाली विशेषरूपसे वर्णित हुई है। विस्तार हो जाने के भयसे वह लिखा नहीं गया।

विरैच्य (स० त्रि०) विरिच-यत्। विरेचनके योग्य, जिससे विरेचन या जुलाब दिया जा सके। निम्नलिखित रोगी विरेचनके योग्य हैं,—जिनके गुल्म, अर्शा, विस्फोटक, व्यङ्ग, कामला, जार्णडवर, उदर, गर (शरीरप्रविष्ट दूषित विप आदि पडा विप), छर्दि (वमि), प्लीहा, हलामक, विट्पि, तिमिर और काच (चक्षुरोगद्वय), अभिष्यन्द (आँसूका आना), पाकाशयमें वेदना, योनि और शुकगत रोग, कोष्ठगत किमि, क्षतरोग, घात रक्त, ऊर्ध्वजक रक्तपित्त, मूत्राघात, कौष्ठयद्ध, कुष्ठ, मेह, अपचा, ग्रन्थि (गेठिया), श्लोषद (फालपाव), उन्माद, काश, श्वास, हृत्कास (उपस्थित चमनवोध वा त्रिविधिया), विमर्ष, स्तन्यदोष और ऊर्ध्वजक रोग अर्थात् जिनके कण्ठसे ले कर मस्तक तक रोग है, वे विरेच्य हैं। साधारणतः पित्त अथवा पित्तोत्पन्न दोषसे दूषित वृत्ति विरेचनीय हैं। इनके विरेचन प्रयोगकी प्रणाली,—कुरकोष्ठ रोगियोंको पहले यथायोग्यरूपमें स्नेह (चाहा और आभ्यन्तरिक) और स्वेद तथा कुष्ठ आदि (पूर्वक कुष्ठसे ले कर ऊर्ध्वजक पर्यन्त) रोगीको घमनका औषध प्रयोग करावे। पीछे उनका कोष्ठ मृदु अवस्थामें ला कर और अमाशय को शोधन कर उन्हें विरेचनका प्रयोग करना होगा। कोष्ठके बहुपित्त और मृदु होनेसे वह दुग्ध द्वारा विरेचित किया जाता है। वायुप्रधान कुरकोष्ठमें श्यामा त्रिधुत्

या कांको निसायका वायुहार करना होता है। कोष्ठमें पित्ताधिक्य विकार हैमिसे दुग्ध, नारियलके मूत्र, मिल्की क दूध आदिके साथ, कफाधिक्यमें अद्वक आदि कटु द्रव्यके साथ तथा घाताधिक्यमें रेंडाके मेल उष्ण ज्ञप और क्षैप्य वा पित्तप्रवणक साथ अथवा विरिचक द्रव्य के लक्षण कवाचके साथ रेंडोके तेल आदि स्नेह और उक्त लक्षणके साथ विरिचन देना होता है। विरिचकके अमृत होनेसे अर्थात् दस्त नहीं उत्पन्नसे गरम जल पिनाये तथा शैवीक पेठ पर पुराना घी या रेंडोके तेलकी माबिश कर किमी मरिहण्य वाकिके हाथकी मूत्र सलग्न कर उससे स्नेह दिसाये। विरिचक अमृत प्रवृत्त होनेसे उस दिन अग्ना हाट कर दूसरे दिन पुनः विरिचन पान करे। जिस वाकिके कफ कोष्ठ असम्बन्ध स्निग्ध है, वह दश दिनोंके बाद पुनः स्नेहस्नेहसे संस्कार शरीर है। अच्छी तरह सांच विचार कर यथोपयुक्त विरिचन सेवन करे। विरिचनका असम्बन्ध योग होनेसे हृदय और कुक्षिको अमृत्ति, श्लेष्म पित्तका उत्प्रेषण, कण्ठ विदाह, पीडा पीनस और वायुरोघ तथा विद्यारोघ होता है। इसका विपरीत हेतुस अर्थात् हृदय कुक्षि आदिको शुद्धिता रहनेसे उसे सम्बन्ध योग कहन है। अतिरिक्त हेतुसे बिष्ठा, पित्त, कफ और वायुके पचाक्रम निकलनेसे आक्षिप्त असन्धाव होता है। उन जलमें श्लेष्मा अथवा पित्त नहीं रहता। यह श्वेत कृष्ण वा पीतरक वर्ण अथवा मान्यरीत बल अथवा मेद (बर्षी) की तरह वर्ण युक्त होता है मलहार बाहर निकल आता है तथा सुष्मा श्रम नेत्रप्रवेशन देहकी क्षीणता वा दुर्बल बोध दाह, कष्टजोष और अल्पकारमें प्रविष्टता तद्व मालूम होता है। फिर इससे कठिन वायुरोघ उत्पन्न होते हैं। विरिचक औषधीका पेसी माहार्म सेवन करना होगा जिससे रोगीके अवस्थानुसार दश बीस या तीस दस्तने अधिक न होने और अस्तिम बारमें एक निश्चये। जिन्हे बमन क्रियाके बाद विरिचक प्रयोग करना होगा, उन्हें फिरसे स्नेह और स्नेहयुक्त कर स्नेधाका समय (पूर्वाह्न या पूर्वरात्रि) बीच जानै पर कोष्ठकी अवस्था समक कर तपयुक्त प्रकारसे सम्बन्ध विरिचन करे। जिस दुर्बल और अनेक दोषोंसे युक्त वाकिके दोषवाह होनेसे अर्ध विरिचन होता है, उनको

परबलक माग वा करेलेके पत्तोंके जूस आदि मलनिःसारक औषधके साथ विरिचन है। दुर्बल, वमनावि द्वारा शोथित, अल्पजोष, क्षय और अज्ञातकोष्ठ क्वाकिके मूत्र और अल्प औषध पान करे। वह औषध बार बार पीना अच्छा है क्योंकि अधिकमाहार्म लोहण औषध पीनेसे वह क्षति कर सकती है। यदि अल्प औषध पुनः पुनः प्रयोग की जाय, तो वह अग्राग्य दोषोंको घीरे घीरे निकाल देता है। दुर्बल वाकिके उन सब दोषों का सुदुहृदय द्वारा घीरे घीरे हटाना चाहिये। उन सब दोषों के नहीं निकलनेसे इसको हमेशा हेश रहना है। यहाँ तक कि, उसकी मृत्यु भी हो जाया करती है। मन्त्रागिनक रकाष्ठप्रवकिके पचाक्रम हार और लक्षण युक्त पूतक साथ दोषान्नि और कफवातहीन कर शोधन करना चाहिये। अस्त, अतिजोष वायुयुक्त, क्रूरकोष्ठ ध्यायामशील और दोषान्निघातके विरिचक औषधका प्रयोग कराने पर ये उसे परिपाक कर खालते हैं इस कारण उन्हें पहले अग्निप्रयोग करके पीछे स्निग्ध विरिचन (परएवतैमादि) देना उचित है। अथवा लोह्या फलवर्तिष्ठ द्वारा पहले कुछ मम निकाल कर पीछे स्निग्ध विरिचन देवे। क्योंकि वह (परएवतैमादि) प्रवृत्त मलको भासामोसे बाहर निकाल देता है। विचाल अभिघात (आघात गत) तथा पीडाका कुष्ठ, शोष, विमर्ष पाण्डु, वामला और प्रमिदपीडित वाकिकोंको कुछ स्निग्ध करके विरिचन देवे अर्थात् उन सब विषादि पीडितकोंको दस्त अवस्थाम स्नेहविरिचकके साथ औषध करे। फिर अति स्निग्धोंको अर्थात् जिन्हे अल्पत स्नेह प्रयोग किया गया है, उन्हें दक्षविरिचक (तेलाक पचाहीन विरिचक द्रव्य) द्वारा शोधन करे। क्षारादि द्वारा तद्वका मल

● निष्करी द्वारा मसहार हो कर तब विरिचकदि औषध प्रयोग करनेको वक्तिप्रयोग करते हैं। यहाँ पहले वक्तिप्रयोगका उत्पन्न वह है, कि वह पाकस्वस्तीकी पाककारिनेके साथ जब तक संकल नहीं होता, तब तक परिपाक नहीं हो लेगा।

८. बहस या अग्नाद्यके बीच आदि विरिचक काकोके अच्छी तरह पाठ कर बर्षीकी तरह बनना होता है वह बर्षी मसहूरम सुगन्धे बर्षी काउक मेल बहुत बल निकल पड़ता है।

निकल जाने पर वह जिस प्रकार परिशुद्ध होता है उसी प्रकार स्नेहस्येदके साथ विरेचनवमनादि पञ्चकर्म द्वारा देहका मल (वातपित्तादि दोष) उतिकृष्ट हो देहको शोधित करता है, इसी कारण उन्हें ( विरेचनादिके ) शोधन वा संशोधन कहते हैं। स्नेह और स्वेद विरेचनादि कार्यका सहाय है, उसका अभ्यास किये बिना यदि संशोधित द्रव्य सेवन किया जाय, तो संशोधन सेवी उसी प्रकार फट जाता है जिस प्रकार स्नेहके संयोगसे सूखी लकड़ी भुकानेके समय फट जाती है।

उक्त नियमानुसार सम्यक् विरिक्त होनेसे रोगो रक्त शाल्यादिकृत पेयादि निम्नोक्त क्रमके अनुसार भोजन करे। क्रम इस प्रकार है,—प्रधान मात्राके शोधनमें अर्थात् जिस विरेचकमें ३० वार दस्त आयेगा उसमें प्रथम दिन भोजन करते समय अर्थात् मध्याह्न और रात्रि इन दोनो समय दो वार और दूसरे दिन मध्याह्नमें एक वार, ये तीन वार पेया, द्वितीय दिन रातको और तृतीय दिन दो समय ये तीन वार विलेपी, इस क्रमसे अक्षतयूप ( स्नेह और लवणकटुवर्जित मूंग आदिका जूस ) तीन समय और क्षतयूप तीन समय तथा मांसयूप तीन समय कुल मिला कर १५ वार सेवन करके पौडजान्नशालमें अर्थात् अष्टम दिन रातको स्वाभाविक भोजन करे। इस प्रकार पेयादिक्रमका तात्पर्य यह है, कि लघु द्रव्यसे ले कर यथास्मिन् गुरुद्रव्यका व्यवहार करनेसे अणुमात्र (एक चिनगारी भी) अग्निमें जिस प्रकार सूखी घास डालने से वह धधकने लगती है और वन पर्वत आदिके दग्ध करनेमें समर्थ होता है, संशोधित वास्तविकी अन्तराग्नि भी पहले पेयादि लघुपथके साथ धीरे धीरे सन्धुक्षित हो कर आखिर उसी प्रकार पिष्टकादि गुरुपाक द्रव्य तर्पके परिपक्व कर सकती है। मध्यम ( २० वार ) और हीन ( १० वार ) मात्रामें जिन्हें दस्त हुआ है, वे पेया, विलेपी, अक्षतयूप, क्षतयूप और मांसरस यथाक्रम दो समय और एक समय की प्रकार क्रमानुसार सेवन कर मध्यम मात्रा सेवी छठे दिन मध्याह्नमें और हीनमात्रासेवी तोमरे दिन रातमें स्वाभाविक भोजन करे। मात्रामेदमें पृथक् व्यवस्थाका तात्पर्य यह है, कि विरेचक द्रव्यके यथाक्रम मात्रा धियव्यवहार करनेसे विरेचक परिमाणमें श्लेष्मण-हुई

है, उमें उमा परिमित मात्राक पेयादि लघुपथ्य पेना होता है। पेयादि संशोधन, रक्तमोक्षण, स्नेहयोग और लघुनव्यवहारः अग्निशोषणना श्लेष्मण पेयादि क्रम आणवणाय है।

विरेचक औषध व्यवहारमें यदि दस्त न उतरे वा औषध परिपाक होनेमें विलम्ब हो तो अश्लील वास्तिके। निरवच्छिन्न लघुन देना शोभा, पेयादिके पेना करनेमें पीनीपथ वास्तिके उत्प्लेज ( उपरिधन घनरोध ) के कारण तथा घर्म और विरेचन औषधकी गदताके कारण किसी तरहका कष्ट भुगनना तथा पड़ना। मद्यपायो तथा वातपित्ताधिपथ वास्तिके लिये पेयादियान दितकर नहीं है। उन्हें तर्पणादि क्रमका व्यवहार करना चाहिए। ( वाग्भट्टमू० १५० १८ अ० )

विरचन विवरण विंशत शब्दमें देनो।

विरेपम् ( स० वि० ) ममूदश्रतिननक। ( उज्ज्वल ४।८८६ )

विरेक ( स० वि० ) १ रेकशून्य। ( पु० ) २ गदमाव।

विरेमित ( स० वि० ) विरेम-क। प्रच्छित, ज्यद किया हुआ।

विरेक ( स० वि० ) वि-रुच-घञ्, कुत्वम्। १ छिद्र, छेद। ( पु० ) २ सूर्याकिरण। ३ क्षोति, चमक। ४ चन्द्रमा। ५ विष्णु। ( भारत )

विरोकिन् ( स० वि० ) किरणांवाग्रे।

विरोचन ( स० पु० ) विशेषेण रोचने इति वि-रुच्-गुच्। ( अनुदात्तेतरच एजादेः। पा ३।२।२४६ ) १ सूर्या। २ सूर्याकिरण। ३ अर्कशूक्ष्म, मदारका पीधा। ४ अग्नि, चाग। ५ चन्द्रमा। ६ विष्णु। ७ रोहितक पक्ष। ८ श्योनाकमेद। ९ घृतकरज। १० प्रहादका पुत्र, धलिका पिता। ( महा

\* तर्पण, मन्य प्रभृति। इनकी पस्तुत पृष्ठाश्री,—तर्पण, यारीक कपटमें छना हुआ आवेका चूर्ण ४ तोना, दाखका रस ४ तोला, जल ५२ सेर, ( १२८ तोला ) इसके शर्करा और मधुमें मिलानेसे तर्पण बनता है। उक्त आवेके चूर्णको घृताक करके शीतल जल द्वारा इस प्रकार द्रव करे, कि वह न तो बहुत पतला हो और न बहुत गाढ़ा ही। ऐसा होनेसे ही मन्य पस्तुत किया जायगा। इसमें खजूर और दाखका रस ढाल कर मधुर करना होता है। तर्पणसे मन्य गुरु है।

मात्र ११५११६) ११ वमकता, मकांशिन होता । ( जि० )

१२ क्षोभियुक्त, प्रकाशमान ।

विरोधनसूत्र ( स० पु० ) बभिराज ।

विरोधना ( स० स्त्री० ) विरोधन-टापु । १ स्कन्धमातृमेद ।

( मात्र ११५१० ) २ विरजको माता ।

विरोधिन्यु ( स० जि० ) परप्रकाशक ।

विरोधवत् ( स० जि० ) विरोधयोग्य ।

विरोध ( स० जि० ) १ विरुद्धकार्यकारी । ( पु० )

२ कपूर, कपूर ।

विरोध ( स० पु० ) विरुध घम । १ शत्रुता दुश्मनी ।

पर्याय—वैर, विद्वेष, द्वेष द्रोषण अनुशय, समुच्छ्राय,

पर्यवस्था, विरोधन । विरोध भाग्यशत्रु समी प्रकारके

उपद्रवोंका कारण है ।

२ विमतिपति । ( न्यायप्रथम भाष्यमें आत्प्राक् ) ३ दो बातों का एक साथ न हो सकना । ४ युद्धविग्रह । ५ बरसल प्राप्ति । ६ भविष्य, मतमेद । ७ बन्दी स्थिति सर्वथा दुर्मै प्रकारकी स्थिति । ८ नाश विपरीतभाव । ९ नाटक का एक अङ्क । इसमें किसी वस्तुका ब्यय न करतै समय विपरीतका भासास दिलाया जाता है । श्रुते—“मैने भवि मृश्यकारिताप्रयुक्त अण्डको तच्छ तिरश्च हो स्वसम्मत मतलमें पक्षेप किया है ।” ( चण्डकौटिक )

६ अक्षद्वारविरोध । आति—गोतब ब्राह्मणत्वादि, गुण—रुण्य, शुद्धादि । क्रिया—पाकादि । द्रव्य—पस्तु, आति ; आत्पादि ( आति, गुण क्रिया और द्रव्य )-आरोंके साथ, गुण गुणादि ( गुण, क्रिया और द्रव्य ) इन तीनोंके साथ, क्रिया क्रियादि ( क्रिया और द्रव्य ) शीर्षके साथ तथा द्रव्यद्रव्यके साथ, इन पञ्च प्रकारमें आपातता विरुद्धभाव दिखाई देनेसे इसको विरोधामङ्कार कहते हैं । यथान्त अहादर्य—“गुम्हारै विरहमें इसके ( सकोके ) समोप मङ्गयानिर्द्धं दावानल, अङ्गद्विरय अति अण्य अमरकङ्कार दावय इदयचिदादक तथा लज्जिनीय निदाय सूर्यको तच्छ मासूम होता है ।” यहाँ नित्यानेकसमवेतत्वं आतित्वं बहुतो का समवाय (सिमल) हो जानि है, क्या कि मन्वय पवन आदि बहुता का समवाय हुआ है । इनके फिर दावानल ( आति ), अण्य ( गुण ), इदयमेवम ( क्रिया )-तथा सूर्य ( द्रव्य ) इन चार प्रकारके साथ आपातता:

विरोधभाव दिखाई देता है अर्थात् समानसे भोग समझे, कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता क्योंकि ये विरुद्ध पदार्थ हैं । यह सत्य है नहीं, पर विरहिणीके सगोप उत

सब आतियोंकी गुणक्रियादि उसी आकारमें दिखाई देती हैं, इसी कारण इसका समाधान है । गुणके साथ गुणादि का,—“ह मङ्गापञ्च ! आप जैसे राजाके वदते सभैदा

मुयमने व्यवहारसे द्विप्रपञ्जियों के कठिन हाथ बोगम हो गये हैं ।” यहाँ राजाकी दानशक्तिके प्रति श्लेष करके कहा गया है, कि आपकी दानशक्तिके प्रभावसे ही ब्राह्मणोंको यह कष्टकरवृत्ति अबसम्भन करती पड़ी है । फिर यहाँ

वादिन्यगुणके साथ क्रोमछताका आपातता विरोध दिखाई देता है । किन्तु पालनीयके प्रति ऐसी दानशक्ति दिखानेसे वह समाहित हो सकता है ।—गुणके साथ

क्रियाका—“हे भगवान् ! आप भद्र ( जगमरहित ) हो कर जगम छेने हैं तथा निद्रिन ( निर्धैय ) हो कर जगकक हैं आपका यह पापाण्य कौन जान सकता है ?” इस वर्णनमें जगमरहितका जगमग्रहण और

निद्रितका जगमनत्व ही आपातता परस्पर अक्षत्वादिगुण क साथ जगमग्रहणादिक्रियाका विरोध है । परन्तु

भगवान्के प्रभावातिशयित्व द्वारा ही इसका समाधान है । गुणके साथ द्रव्यका—काल्पात्क अण्ड न विपही रहनेके कारण उस इरिजासीको पूर्ण निशाकर दारुण

विदग्धताका उत्पादक मासूम पड़ने छगा । यहाँ भोग ( शीतल ) गुणविशिष्ट द्रव्यवाकी अण्डको विपश्चताका

कः उत्पादकत्व आपातविरुद्ध है सही, पर विरहिणीका ठनी प्रकार मासूम पड़नेके कारण उमका समाधान है । क्रियाके साथ क्रियाका,—“इस महाविह्वलनयना कामिनी

का अतिवृत्तिकर, मनासकुम्भतातोत रूपमाधुरी देव कर मेरा इदय बहुत अण्डासित और मन्तापित होता है ।” यहाँ अण्डास और सन्ताप इन दोनों क्रियाओंका एकत्र

समावेश आपातता विरुद्ध मासूम होता है, किन्तु यथायें में—कामिनीके अवनान्त्वकर मन्तोद्वायक रूप देव कर अल्पमत प्राति तथा उमके ( इस जादोका ) न मिङ्गेका

मद्वन्ताप, ये दोनों क्रिया ही एक समय दिखाई देती हैं । विरोधक (सं० जि० ) १ विरोधघटे, शत्रु । ( पु० ) २ नाटक में वे विपय दिनका वर्णन निर्विह हो ।

विरोधकृत ( सं० त्रि० ) विरोधकारी । ( पु० ) २ मातृ  
सघटसरके अन्तर्गत ४४वां वर्ग ।

विरोधाक्रिया ( सं० स्त्री० ) शत्रुता ।

विरोधन ( सं० क्ली० ) वि-रुध ल्युट् । १ विरोध करना,  
घैर करना । २ नाश, वरवादी । ३ नाटकमें विमर्षका  
एक अङ्ग । यह उस समय होता है जब किसी कारणवश  
काव्येध्वंसका उपक्रम ( सामान ) होता है । जैसे—  
कुवश्लेखगुडके अन्त होनेके निकट, जब दुर्योधन बच रहा  
था, तब भीमका यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधनको  
न मारूंगा, तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा ।" सब वान  
धन जाने पर भी भीमका यह कहना युधिष्ठिर आदिके  
मनमें यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन मारा गया, तो  
हम लोग भी भीमके बिना कैसे रहेंगे । यहा पर यही  
कार्यध्वंसका उपक्रम वा विरोधन है ।

विरोधभाक् ( सं० त्रि० ) विरोधी ।

विरोधवत् ( सं० त्रि० ) विरोधशील, विरुद्ध ।

विरोधाचरण ( सं० क्ली० ) १ शत्रुताचरण, प्रतिकूल-  
चरण, खिलाफ कार्यवाई । २ शत्रुताका व्यवहार ।

विरोधाभास ( सं० पु० ) अलङ्कारभेद । इसमें जाति,  
गुण, क्रिया और द्रव्यका निरोध दिखाई पड़ता है ।  
विरोध देखो ।

विरोधित ( सं० त्रि० ) जिसका विरोध किया गया हो ।

विरोधिता ( सं० स्त्री० ) १ शत्रुता, घैर । २ नक्षत्रोंकी  
प्रतिकूल दृष्टि ।

विरोधित्व ( सं० क्ली० ) विरोधिता, शत्रुता ।

विरोधिन् ( सं० त्रि० ) वि-रुध-णिनि । १ विरोधकारी,  
शत्रु, विपक्षी । २ हिनके प्रतिकूल चलनेवाला, कार्य  
निष्ठिमें बाधा डालनेवाला । ( पु० ) ३ बाह्यस्वत्यके  
संवत्सरोंमेंसे पचीमवा संवत्सर ।

विरोधिनी ( सं० स्त्री० ) वि-रुध-णिनि-डोप् । १ विरोध-  
कारिका, घैरिन । २ विरोध करनेवाली, दो आदमियों  
में झगडा लगानेवाली । ३ दुःसहकी कन्या । ( माकं० पु०  
५११५ )

विरोधीश्लेष ( सं० पु० ) केशवके अनुसार श्लेष अल-  
ङ्कारका एक भेद । इसमें श्लेष शब्दों द्वारा दो पदार्थोंमें  
द, विरोध या शून्याधिकता दिखाई जाती है ।

विरोधीक्ति ( सं० स्त्री० ) परस्पर घननविरोधी घनन ।  
पर्याय—विप्रलाप, विरोधवाक, क्रोधोक्ति, प्रत्याप ।

विरोधीपमा ( सं० स्त्री० ) उपमालङ्कारभेद । इसमें  
किसी वस्तुको उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थोंमें दी  
जाती है । जैसे,—“तुम्हारा मुग आरदीप चन्द्रमा और  
कमलके समान है”, यहा कमल और चन्द्रमा इन दोनों  
उपमानोंमें विरोध है ।

विरोधीय ( सं० त्रि० ) विरोधियन् । १ विरोधके योग्य ।  
२ जिसका विरोध करना हो ।

विरोधिण ( सं० पु० ) १ लेपन, लोप करना । २ लोपना,  
पोतना । ३ जमानमें पाँचा लगाना, रोपना ।

विरोधिम ( सं० त्रि० ) रोमरहित, बिना रोपका ।

विरोधि ( सं० त्रि० ) १ रोपविनिष्ट, क्रोधो । घिगना रोपो  
गम्य घृष्टो० । २ रोपशून्य, जिसे क्रोध न हो । ३ कष्टक-  
रहित, बिना कष्टका ।

विरोधि ( सं० पु० ) १ लतादिका प्ररोह । २ एक स्थानसे  
दूसरे स्थानमें ले जा कर रोपना ।

विरोधिण ( सं० क्ली० ) विरोधिण, एक स्थानसे उखाड  
कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोधित ( सं० त्रि० ) १ रोहितविनिष्ट । ( पु० ) २  
ऋषिभेद ।

विरोधिन् ( सं० त्रि० ) १ रोपणकारो, रोपनेवाला, पाँचा  
लगानेवाला । २ रोपणशील रोपने वा लगाने लायक ।

विरोधी—विरोधिन् देखो ।

विरोधी ( हिं० स्त्री० ) बाजरा, महुआ कोदों घनीरहकी  
एक प्रकारकी जताई जो उनके पाँधे ऊँचे होने पर भी  
जाती जाती है ।

विल ( सं० क्ली० ) विलक । १ छिद्र, छेद । २ गुहा,  
कन्दर । ( पु० ) ३ उच्चै श्रवा घोडा । ४ येतसलता ।

विलकारिन् ( सं० पु० ) विल करोतीति कृ-णिनि । १  
मृपिक, चूहा । ( त्रि० ) २ गर्तकारो, कोडनेवाला ।

विलक्ष ( सं० त्रि० ) विशेषेण लक्षयतीति वि-लक्ष-पचाद्यच् ।  
१ विस्मयान्निधत, आश्चर्याम्बित, अचमेमें पड़ा हुआ । २  
लजित । ३ घास्त, घबराया हुआ ।

विलक्षण ( सं० क्ली० ) विगत लक्षणं आलोचनं यस्य । १  
हेतुशून्य आख्या । २ निश्चयोजन स्थिति । ( त्रि० )

विभिन्न लक्षणं यस्य । ३ साधारणसे मिल्न, भसाधारण,  
अपूर्व । विशिष्ट लक्षणं यस्याः । ४ विशेष लक्षणयुक्त,  
अनोधा अनूदा ।

विश्लक्ष्यता ( सं० स्त्री० ) १ विशेषत्व, अमीकापन । २  
विश्लक्षण शैलिका भाव, अपूर्वता ।

विश्लक्ष्यत्व ( स० स्त्री० ) विशेषत्व ।

विश्लक्ष्यता ( स० स्त्री० ) प्रादुर्भूत वी दानमेव ।

विश्लक्ष्य ( सं० स्त्री० ) विश्लक्ष । विश्लक्ष देवो ।

विश्लक्षना ( हि० स्त्री० ) कुशलो शैला ।

विश्लक्षणा ( हि० स्त्री० ) विश्लक्षणाका स्वरुमकरूप, विश्लक्ष  
करना ।

विश्लग ( हि० वि० ) पृथक्, अलग ।

विश्लगता ( हि० स्त्री० ) १ अलग शैला, पृथक् शैला । २  
पृथक् पृथक् विश्वास पङ्कत, विश्लग या अलग विश्वास  
वशा ।

विश्लग ( सं० स्त्री० ) विश्लग-भक्त । १ संश्लग । ( स्त्री० )  
२ मध्य शीष । ३ अगम्य । ४ मेधादि लक्षणमात्र ।

विश्लगाम—प्राचीन नगरमेव ।

विश्लगुन ( स० स्त्री० ) विश्लगुन ययुद् । १ अशुभ, कृत् या  
सांघ कृत् पार करनेकी क्रिया । २ अशुभ करना, शत न  
सुमता । ३ अपवास करना । ४ किसी वस्तुके भोगसे  
अपने भाषको टाक रचना, बञ्चित रहना ।

विश्लगुना ( सं० स्त्री० ) १ अण्डन, बाघा वृत् करना । २  
अशुभ, क्षायता ।

विश्लगुनीय ( स० स्त्री० ) १ पार करने योग्य, क्षायने  
क्षायक । २ परास्त करने योग्य, लोचा विश्वासे क्षायक ।

विश्लक्षित ( स० स्त्री० ) १ जो परास्त हुआ हो जिसने  
लोचा देखा हो । २ जो विफल हुआ हो ।

विश्लक्षित् ( स० स्त्री० ) टकनकुनकारी, नियमलक्षक  
करनेवाला ।

विश्लक्ष्य ( स० स्त्री० ) विश्लक्ष्य-यत् । १ अशुभ, जिस  
का अशुभ न क्रिया जाय । २ अशुभयोग्य, पार करने  
मायक । ३ परास्त होने योग्य, बर्षा में भागै क्षायक । ४  
करने योग्य, सहज ।

विश्लक्ष्यता ( स० स्त्री० ) विश्लक्ष्य मायः लक्ष्-टाप् ।  
अशुभको अयोग्यता ।

विश्लक्ष ( स० स्त्री० ) विश्लक्ष मय् । निर्वन्ध, नखा  
रहित, बेइया ।

विश्लपन ( स० स्त्री० ) विश्लप इयत् । १ विश्वास । २  
माझापन, बातचीत करना ।

विश्लप्य ( स० स्त्री० ) १ पाया हुआ किया हुआ । २  
अलग किया हुआ ।

विश्लप्यि ( स० स्त्री० ) विश्लप्यि-यत् । क्षान्तिमेव ।

विश्लप्य ( स० पु० ) विश्लप्य-यत् । १ गीण, क्षीरो  
क्षीर । २ लक्षण । ३ ममबादि साठ संवत्सरांमंसे  
३२वां वर्ष । ( स्त्री० ) बहुत काफ, क्षीर ।

विश्लप्यक ( स० पु० ) १ राजमेव । २ अजोर्षरोगमेव ।  
( स्त्री० ) विश्लप्य-व्यापे क्यत् । विश्लप्य, क्षीर ।

विश्लप्यन ( स० स्त्री० ) विश्लप्य-युत् । १ क्षीर करना,  
विश्लप्य करना । २ अदकन, टंगना । ३ सहारा पकड़ना ।

विश्लप्यना ( हि० स्त्री० ) १ क्षीर करना विश्लप्य करना । २  
अदकना । ३ सहारा लेना । ४ टंग जाना, मन समानेके  
कारण बस जाना ।

विश्लप्यलीपणं ( स० स्त्री० ) साममेव ।

विश्लप्यिका ( स० स्त्री० ) विश्लप्यिकारोगमेव । इस रोगमें  
कफ और वायु द्राव आया हुआ पदार्थ अत्यन्त वृद्धित  
हो कर भी परिष्कार नहा होता और न ऊपर या नीचेकी  
ओर हो बढा जाता है अर्थात् वमि या वृत्त ही कर  
नहो निकसता है । इस कारण पेट धीरे धीरे फूलने  
लगता है और आन्धोर रोगके प्राण बन्धे जाते हैं । इसी  
छिपे आयुर्वेदाचार्य ने इस रोगका चिकित्साका अनाद्य  
वा चिकित्सातोत कहा है ।

विश्लपित ( स० स्त्री० ) विश्लप्य क । १ अशोष जिसमें  
विश्लप्य वा क्षीर हुई हो । २ अदकता हुआ, मुमता हुआ ।  
( स्त्री० ) ३ अमृत्य, सुखी । ४ सुस्त बढनेवाला जान  
कर । जैसे—हाथो, गै दूध, मै स इत्यादि । सङ्कोचमें विश्ल  
पित अथवा प्रयोग है ।

विश्लपितगति ( स० स्त्री० ) लक्ष्मणेव । इसके प्रत्येक  
अक्षरमें १० अक्षर रहते हैं । उनमेंसे १, ३, ४, ५, ६, ७,  
१०, ११, १२ और १३वां गुण और बाकी छद्म होते हैं ।

विश्लपिता ( स० स्त्री० ) विश्लप्य क्त क्षिप्य-यत् । १  
सुरोर्षे ( स्त्री० ) । विश्लप्यविशिष्ट, क्षीरसे करनेवाला ।





विद्यापती छद्म दर (दि० पु०) एक प्रकारका छद्म दर। यह इग्लैण्डके पश्चिमी ओरके प्रदेशोंमें बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वीक नाथे सुरंगमें रहता है और प्रायः वृष पीठा है। इसे अंधार अधिक प्रिय होता है। इसके अगले पैर चौड़े और पड़ेदार तरिखे होते हैं। इसको आंटे छोटे, घुपना सवा और मोरदार, बाळ सवन और कोमल होते हैं। इसको अर्थव्ययिक बहुत तज होती है।  
विद्यापती मोळ (दि० पु०) एक विशेष प्रकारका मोळा रंग का चीनस भासा है।

विद्यापती पट्टमा (दि० पु०) छाळ पट्टमा छाळ सन।

विद्यापती पात (दि० पु०) रामभाँस, कृष्ण कतको।

विद्यापती प्याळ (दि० पु०) एक प्रकारका प्याळ। इसमें गाँठ बढ़ो होखी सिफ गूदेदार मड़ होती है।

विद्यापती बैंगन (दि० पु०) एक प्रकारका बैंगन या मंडा जो इस देशमें यूरोपसे आया है। यह सुप जातिकी वनस्पति है जो प्रति वर्ष बेई जाती है। इसका सुप दो इंच दाय ऊँचा होता है। इसको आभियाँ मूमिकी ओर झुकी अथवा मूमि पर पसरो रहती हैं। पत्ते आसूके पसोंक-से होते हैं। अंडियोंके बीच बीचसे सोंके निकलते हैं जिन पर गुच्छोंमें फूल भाँसे हैं। ये फूल साधारण बैंगनक फूलोंके समान पर उनसे छोटे होते हैं। इसका रंग पीला होता है। फल प्रायः दोसे चार इंच तकके गोळाकार और कुछ सिपटे नारंगी के समान होते हैं। कच्चे रहने पर ठण्डा रंग हरा और और पकने पर छाँम जसकीका हो जाता है। इसकी तरकारी, जदनी भाँदि बनती है। ज्ञातमें यह कुछ अक्षुपन छिपे होता है। रासायनिक बिरेखेजसे पता लगता है, कि इसमें २३ नैकडे सीदेका अंश होता है। अतः यह रक्तवद्धक है। अ गटेज लोग इसका अधिक अयहार करते हैं। इसे कुमिरो कहते हैं।

विद्यापती नरसुन (दि० पु०) एक प्रकारका नरसुन। यह मसासेके काममें जाता है।

विद्यापती सिरिस (दि० पु०) एक प्रकारका सिरिस जो बिदेशसे यहाँ आया है पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह मोळगिरि पर्यंत पर बहुतायतसे होता है। पंजावमें यह मिळता है। इसकी छाळ प्रायः अमड़ा सिभाँसेके काममें आती है।

विद्यापती मम (दि० स्त्री०) एक प्रकारकी मम। इसका कभिया साधारण समसे कुछ बड़ो होती है।

विद्यापन (सं० स्त्री०) १ गर्स, गड्डा। २ प्राचीनकाल का एक मन्त्र। कहते हैं, कि जब इस मन्त्रका उपयोग किया जाता था तब मनुकी सेना विधाम करने लगती थी।

विद्यारो—१ युक्तप्रदेशक मुण्डाबाद त्रिपालगौन एक तह सील। भू-परिमाण ३३३ वर्गमोळ है।

२ एक जिखेका एक नगर और विद्यारो तहसीलका बिचार सद्द। मुण्डाबाद नपसे यह ३ कोस दक्षिण पूर्व पड़ता है। यहाँ अयोध्या रोहिलखण्ड रैलवेका एक स्टेशन है। इसछिपे यह स्थान वाणिज्यके सिप बहुत सुविधात है। यहाँ एक दोबानी और दो फीसदारी अनामती हैं।

विद्यास (सं० पु०) वि-सय घम्। १ यन्त्र। (सम्बन्ध०) २ विद्यास बिली।

विद्यापत्नी (दि० स्त्री०) एक रागिनी जो हि शोच रागकी स्त्री माना जाती है।

विद्यापिन् (( म० त्रि०) वि-सय विनुण (पा ३।२।४४) विद्यासी, सुखभोगी।

विद्यास (म० पु०) बिलस घम्। १ मसक या प्रकु क्षिण करतीवानी किया। २ सुख-भोग आनन्दमय क्रीड़ा, मनोरञ्जन। ३ आनन्द, हय। ४ किसी बोझका दिखना डोकना। ५ भावामतसही अतिशय सुखभोग। ६ सत्त्वगुणत्रात पीथ्य (पुष्टवत्) मेर। विद्यासयुक्त पुरुषमें दृष्टिका गान्धोर्ष गतिका वैकिञ्ज (मनोहारिवत्) तथा चक्षनका हास्यमात्र विचार्य होता है। जैसे "अति उदत्त चेशमें समस्तं भाषे ह्ये इमको (कुशकी) ] दृष्टिसे दो मासूम होता है, कि उलमें भाषी सिद्धयत्के प्राभियोंका बळ मम्मिद्धित है और वह सिद्धयत्तो तुच्छ समझ रहा है। इसकी गतिकी घोळा और उदत्तमात्र देखनेसे मासूम होता है, कि वह मानो परित्रिकी विममित कर रहा है। फिर यह (कुश) देखनेमें तो चञ्चल सुकुमार है, पर गिरिबर सङ्घा जचक और अदळ मासूम होता है। अतएव यह अर्धं दर्प है या बीररस ] यहाँ गतिके अद्वैत्य और पीरवक युगपत् प्रतीयमानता हो उसका

वैचित्र्य तथा दृष्टिका तुच्छभाव प्रदर्शन ही उमका गाम्भीर्य है।

७ स्त्रियोंके यौवनमुलम हावभावादि अद्वाइम प्रकारके स्वाभाविक धर्मसे एक धर्म। प्रियको देख कर स्त्रियोंके गमनावस्थानोपवेशनादि तथा मुग्धनेवादिका जो अनिवर्तनीय भाव होता है, उमका नाम विलास है। जैसे माधवने सखीसे कहा,—“उस समय मालतीके क्या एक अनिवर्तनीय भावका उदय हुआ; उनका वह वाग्वैचित्र्य, गात्रस्तम्भ और स्वेदनिर्गमादि विकार तथा एकान्त धैर्याच्युति आदि भाव देख कर मालूम होने लगा मानो वे मन्मथसे प्रणोदित हो अपने कार्या-सम्पादनमें बड़े व्यग्र हो रहे हैं।”

८ स्फुरण। ९ प्रादुर्भाव। १० तदैकात्मरूपका अन्यतर। विलास और स्वाशकके भेदसे तदैकात्मरूप दो प्रकारका है। आकृतिगत विभिन्नता रहने हुए भी शक्तिसामर्थ्यामें अभेदका कल्पना करनेमें वहा तदैकात्मरूप कहा जाता है। किन्तु दोनोंकी शक्तिके न्यूनार्थक्य वशतः ही वह पूर्वोक्त दो भागोंमें विभक्त हुआ है। जहा दोनोंकी शक्तिकी समता मालूम होगी, वहा विलास होगा। जैसे,—हरि और हर। ये दोनों ही शक्ति-सामर्थ्यामें समान हैं। फिर कोई दो इन दो (हरि और हर)-के अशक्त रूपमें कल्पित तथा इनकी अपेक्षा न्यून और परस्पर शक्तिमें समान मालूम होनेसे वहां स्वांश करना होगा। जैसे,—सङ्घर्षणादि और मोनकूर्मादि।

११ नाटकोक्त प्रतिसुन्नका अङ्गभेद। सुरतसम्मोग विषयिणी अत्यधिका चेष्टा वा स्पृहाका नाम विलास है। जैसे,—

“देखा जाता है, कि प्रिय शकुन्तला सहजलभ्या नहीं है, परन्तु मनका भाव देखनेसे अर्थात् मेरे प्रति उसकी अनुगागव्यञ्जक विशेष चेष्टा देखनेसे बहुत कुछ आशा की जाती है, क्योंकि मनोभाव अरुणार्था होने पर भी स्त्री और पुरुषकी परस्परकी जो कामना है, उससे धीरे धीरे दोनोंमें अनुराग उत्पन्न होता है।” (शकुन्तला ३ अ०) यहा पर नायिकासम्मोगविषयिणी स्पृहा दिखलाई गई है, ऐसा मालूम होता है। जहां नायक और नायिकामेंसे किसी एक सम्मोगमें चेष्टा वा स्पृहा देखी जायेगा वहां ही विलास होगा।

विलास आचार्य—निम्नार्क नम्प्रदायके एक गुरु। ये पुरुषोत्तमाचार्यके शिष्य और न्वरुपाचार्यके गुरु थे।

विलासक (सं० वि०) १ ब्रमणशील, इधर उधर फिरने-वाला। २ विलास देवा।

विलासकानन (सं० क्लृ०) विलासोद्यान, केलिकानन, क्रीडा-उपवन।

विलासदोला (सं० स्त्री०) क्राडार्थ दोलाविशेष।

विलासन (सं० क्लृ०) विलास।

विलासरागण (सं० क्लृ०) गौकीन, हमेगा आमोद प्रमोदमें रत।

विलासपुर—मध्यप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २१° ३७' से ले कर २३° ७' ३० तथा रेखा० ८१° २२' से ले कर ८३° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ७६०२ वर्गमील है। इसके उत्तर छत्तासगढका नमनल भूभाग तथा महानदी, दक्षिण रायपुरका उन्मुक्त प्रन्तर पूर्व और दक्षिण पूर्व रायगढ तथा सारनगढ राज्य और पश्चिम मैकाला नाम्नी पहाडीकी निम्नभूमि है। विलासपुर नगर इस जिलेका विचारसदर है।

जिलेके चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है, चारों ओर ऊंचे ऊंचे पहाड़ खड़े हैं। दक्षिणमें भी पहाडियोंका अभाव नहीं। किन्तु रायपुरकी ओर कुछ खुला हुआ है। इसी कारण इस स्थानसे रायपुरका नमनल प्रान्तर सहजमें ही दृष्टिगोचर होता है। वास्तवमें विलासपुर जिला एक सुन्दर रत्नमञ्ज है। रायपुरकी ओरका खुला मैदान इसका प्रवेश-पथ है। यहाके पर्वतोंके प्रस्तरस्तर भूतत्त्वकी आलोचनाकी सामग्री हैं। जिलेके समग्र समतलक्षेत्रमें इसकी जाष्वा प्रजाखाये फैली हैं। बीच बीचमें एक एक शिखर इस गाम्भीर्यका भाव भङ्ग कर रहे हैं। किन्तु कहीं श्यामलजस्य पूर्ण मैदान, कहीं सुगभीर पहाडी खाद हैं, कहीं निविड वनमालाओंने उस पावत्य वक्षके स्थानोंको विशेष मनोरम बना रखा है। यहाका डाला नामक पहाड़का शिखर २६०० फीट ऊंचा है। विलासपुरके १५ माल पूर्व एक समतलक्षेत्रमें यह पहाड़ विराजित है। इससे इस पर खड़ा हो कर देखनेसे जिलेका बहुत अंश दिखाई देता है। इस पर्वत शिखरका उत्तरी अंश जङ्गलसे परिपूर्ण है और दक्षिणमें

समस्तक भूमि है। सूर्योत्थापमें प्रकाशित छोटे छोटे ताम्बा, ग्राम और आम, पीपल इमली आदि ऋषि वृक्षोंमें बालाके गिबर पर बहू हो कर समस्त क्षेत्र को ढकताका गङ्ग कर दिया है। यदि किसीको बिहासपुरक प्रकृत सौन्दर्यको देख कर अपने नेत्र परिलुप्त करने हो, तो उसे आदिपे कि समस्त क्षेत्रको छोड़ कर पहाड़ों पर बहू जाये। वहाँ तरह तरहके वृक्ष प्रकृति का साहाय्य गार रहे हैं। फिर शक्ति, बवादी, मारिण और उपरोद्धा आदि १५ पहाड़ों सामन्तराज्य तथा सरकारी पश्चिम ब्रमीन वर्हाक कुरक टाटा आबाद होनेसे बहाकी शोभा और भी बहू रही है। इन सब पहाड़ी ऋक्षोंमें हाथी पाये जाते हैं। कमी कमी कुरक कुरक हाथी वठर कर बहाकी क्षेत्रीवारोका गण कर दत हैं। हास्तु लको किलारैवाळे ऋक्षमें तथा पार्षतीय कर्तोंक निरुत प्रायः हाथी पकड़ होते हैं।

जिसे मरमें महानदी ही एक बड़ी नदी है। बर्षा पड़ है मोक्ष तक फेळ जाती है। किन्तु गर्मीक दिनेमि गङ्गाकी तरह सूख जाती है और इसका सूखा कलेबर कबळ बाहुकाम करक उपमें दिखाइ देता है। पूर्व परिणित पचतमाकाकी अविस्वकामूमिको अन्नबाईकासे हो कर नगदी और सोन नदी उद्भूत हुई हैं। महाराष्ट्र के अम्पुत्यानक परछे रत्नपुरके द्विदव श्रीय राजाभी द्वारा यह स्थान शासित होता था। इस प्राचीन राज व शका परिवेष बर्तानकी अकरत नदी अर्ध भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणधेशमि इस राजब जक राजा मधूरधनका उसमें भाये थे। ईश्वरान्न व देतो।

साधारणतः रत्नपुरक राजाओंने छत्तीसगढ़ों पर अधिकार जमाया था। इसीन इस राज्यका छत्तीसगढ़ नाम पड़ा था। शायद ७५० ई०में इस राजवंशके बापुर्ष राजा सुरदेवक सिंहासनाधिकारक बाद छत्तीसगढ़राज्य से मानीमि विभक्त हो गया। सुरदेव सुपुरमें रह कर समय उत्तर भागका शासन करत थे और भाई अष्टदेव रायपुरमें राज्य स्थापन कर समय दक्षिण भाग पर शासन करते थे। नी पुत्रके बाद अष्टदेवका वंश सोंप हुआ। येनै समय रत्नपुरके एक राजकुमारने आ कर रायपुरका राज्यभार ग्रहण किया। इनके पुत्र ६ अधिकारकालम,

महाराष्ट्र सनाने छत्तीसगढ़ राज्य पर आक्रमण किया अक छत्तीसों गढ़ बास्तवमें एक एक जमीन्दारी या सात सुकका सदर है। राजकाय्प सुभुङ्गापूर्वक अलासि खिपे वहाँ एक एक बुरा बनबाया गया था। एक दो सगुदरके अधीन ये सब स्थान 'नाम' या नामन्तराजक शर्श पर शासित होते थे। साधारणतः राजाके आश्री ही सरदार पद पर नियुक्त होते थे। राजा सुरदेव म शमें जो १८ गढ़ थे उनमें वर्तमान बिहासपुर जिसे ११ कालमा अधिकारमें और ७ जमीन्दारियोंको शर्शमें राजाधिकारमें थे। मन् १४८०ई०में सुरदेवक व शाप राजा दादुरावने देवा नरेशक हाथ भगनी कस्याका सम पंथ करनेक समय अपनी सम्पत्तिको १८वीं कर्कती (कर कारो) यौतुक या बपड़ीकन रूपसे दो यो। बिहामपुरक पश्चिम पाटवारिया और कर्वाडा नामक श्री सामन्त राज्य हैं, ये मएबला गेड़ु राजक शके अधिकारस विच्छि कर दिये गये। मन् १५२० ई०में सरदुमाराजक अघिहत कारवा प्रदेश और मन् १५०० ई०में महानदीके दक्षिणक जिम्माईरङ्क सामन्तराज और पूर्वमें सम्बल पुरक अघिहत किकाई नामक काबसा भूभाग बिलाम पुरक अन्तगत छिया गया।

सुरदेवके बाद उनके पुत्र वृषोदेवने राजसिंहासन पर अधिराज्य किया। मन्हर और ममरकरङ्कक शिमाफरक नाम जो उनको कीर्ति थेकी घोषणा कर रहे हैं। ये शकु मयोत्यावक भी प्रजाक बन्पु थे। वृषोदेवक बाद इस वंशके अनेक राजाओंने रत्नपुर सिंहासनको भळ हल किया था। स्थानीय मन्वर आदिमें वरकाणं जिजाफसकों पर इन राजाओंक कांति' कलाप यिधोपित हैं। मन् १५३३से १५३३ ई० तक राजा कस्याभशाहीका राज्यकाल था। उक्त राजा बिसकी क मुगल बादशाहका वधयता स्वीकार करने पर सन्नान् में उनकी बिदेय सम्मानसूचक उपाधि थी। इसके बाद रत्नपुरमें जिन सब राजाओंने स्थापिततापूर्वक राज्य शासन किया था उनमें राजा कस्याभशाहीकी नवी पोढ़ी भोबेके राजा राजसिंह अत्युन्नक हुए। अपने समयमें आश्रीय और विवाहप्रदाया सरदार सिंहाको राजसिंहासनका यथाय उचरापि कारो ज्ञान कर मो

राजा उनको राजसिंहामन देने पर राजी न हुए। ब्राह्मणमन्त्रीके परामर्शानुसार और शास्त्र-प्रमाणसे राजमहिषीके गर्भसे ब्राह्मण द्वारा पुत्रोत्पादनकी व्यवस्था हुई। यथासमय रानी पुत्रवती हुई। इस पुत्रका नाम विश्वनाथ सिंह हुआ।

राजा विश्वनाथसिंहने रेवा राजकन्याका पाणिग्रहण किया। विवाह हो जानेके बाद राजकुमार और राजकुमारी अट्टक्रीडामें रत थी। राजकुमार अपनी पत्नीकी प्रकृति जाननेके लिये कीशलसे जयलाभ कर रहे थे, यह देख राजकुमारीने उपहासच्छलसे कहा—“मैं तो हारूंगी ही, क्योंकि आप ब्राह्मण या राजपूत नहीं हैं।” रानीके इस वाक्यने राजाके हृदयमें भारी चोट पहुँचाई। वे पहलेसे अपने जन्मके सम्बन्धमें कुछ गडबड बातें सुन चुके थे। राजकुमारीके इस वाक्यने उनका रहा सहा परदा फाड़ डाला। फलतः राजाने उमो समय घरसे निकल कर अपने कलेजेमें छूरे भोंक कर आत्महत्या कर ली।

राजा राजसिंह पुत्रका आकस्मिक मृत्यु-संवाद सुन कर बड़े ही शोकातुर हुए; किन्तु उस ब्राह्मण मन्त्रीका परामर्श ही इस पुत्रशोकका कारण हुआ। यह भी वे अच्छी तरह समझ गये, कि इस ब्राह्मण-मन्त्रीके कुपरामर्शके कारण राजवशमें कलङ्ककी टोका लगाई। यह समझ कर, उन्होंने मन्त्रिवंशका ध्वंस करनेके लिये उम ब्राह्मण-मन्त्रीको ही नहीं उमके टोलेकी तोपसे उड़ा दिया। इस ब्राह्मण-मन्त्रीके साथ उस टोलेके कोई चार सौ नरनारियोंको जान गई। साथ ही राजवंशका यथार्थ ऐतिहासिक ग्रन्थ आदि भी विनष्ट हो गया।

इसके बाद रायपुर-राजवंशके मोहनसिंह नामक एक बलवीर्यशाली राजकुमारको राजा राजसिंहने अपना उत्तराधिकारी बनाया; किन्तु ब्रह्माका लिखा कौन मिटानकता है। मोहनसिंह शिकार खेलनेके लिये निकल चुके थे। इसी दिन राजा राजसिंह घोड़ेसे गिर कर मृत्युमुखमें पतित हुए। फलतः मृत्युकालमें मोहनको न पा कर उन्होंने पूर्वोक्त सरदार सिंहके शिर अपना मिरताज पहना कर इहलोक परित्याग किया। यह सन्

१७१० ई०की घटना है। राजाकी मृत्युके कई दिन बाद मोहनसिंह लौट आये। उन्होंने सिंहामन पर सरदार सिंहको बैठा देव अत्यन्त घाथ प्रकाश किया; किन्तु उपाय न देव वे राज्य छोड़ कर चले गये।

सरदार सिंहकी मृत्युके बाद सन् १७३० ई०में उनके ६० वर्षके लड़के भाई रघुनाथ सिंहने राजपद प्राप्त किया; किन्तु उन्होंने निर्विरोध राज्य नहीं कर पाया। आठ वर्षके बाद महाराष्ट्र सेनापति भास्करपरित्तने ४० हजार सेनाओंके साथ विलासपुर पर आक्रमण किया। इस समय रघुनाथसिंह पुत्र-शाकसे चिन्तित हो रहे थे। इस लिये वे वीरद्वयमें भास्करकी गनिकाँ रोक न सके। महाराष्ट्रसेनाने राजप्रामादके अश्विद्वेषका भी ध्वंस कर दिया। छतसे एक रानीने मन्त्रिसूचक पताका फेंकाई। मन्त्रि तो हुई; किन्तु साथ ही इस राज्यका राजवंशप्याति भी विलुप्त हो गई। महारुटे राजासे बहुत धन लूटपाट कर ले गये और राजाको भोंसले राजाके अधीन राजकार्य परिचालनका भार दिया।

इस समय प्रतिहिंसा पराधन पूर्वोक्त मोहनसिंह महाराष्ट्रदलमें शामिल थे। महाराष्ट्र रघुजी भोंसले उनके कार्यसे बड़े सन्तुष्ट हुए थे। इसलिये रघुनाथ सिंहकी मृत्युके बाद उन्होंने मोहनसिंहको राजापाधि दे कर विलासपुरकी राजगद्दी पर बैठाया। सन् १७५८ ई०में विन्वाजी भोंसले महाराष्ट्र नेतृपद पर प्रतिष्ठित हो रत्नपुरके राजसिंहासन पर बैठे।

प्रायः ३० वर्ष तक राज्य कर वे इहलोकसे चल बसे। उनकी विधवा पत्नी आनन्दो दाईने सन् १८०० ई० तक राज्यशासन किया।

इस समयसे सन् १८१८ ई०में थापा साहबकी राज्यच्युति तक कई सूवेदारोंने अति विश्रुद्धाके साथ विलासपुरका शासन किया। इस जिलेमें उस समय एक दल महाराष्ट्र सेना रहते, पिएडारी डाकुओंके उपद्रव और सूवेदारोंके अयथा करभारसे विलासपुर नष्ट होता देख अङ्ग्रेज कम्पनीने कर्नल पगन्यूकको वहाँका तत्वावधायक नियुक्त कर भेजा। सन् १८३० ई०में बालक रघुजी बालिग हुए। इन्होंने अपने जीवन भर राज्य किया। सन् १८५४ ई०में नागपुर अङ्गरेजोंके हाथ आया।

छत्तीसगढ़ राज्य पुष्पकभावसे एक डिपटी कमिश्नर द्वारा प्रामाण्य करनेका बन्धोबन्ध हुआ। उस समय रायपुर हो उसका सन्दर्भ माना गया था। किन्तु एक राजकीय खातीक इत्क कार्यपरिचालनसे असमर्थ होने पर सन् १८६१ ई०में बिज्ञासपुर एक स्वतन्त्र जिल्लेके रूपमें परिगणित हुआ। इसके साथ ही तत्क छत्तीसगढ़का कुछ अंश अन्तर्नि विष्ट हुआ था।

सुबिज्ञायान सन् १८५७के बन्दयेक समय सेनापानक सरदारके सिवा भीर कोर बिद्रोही न हुआ। सेनापान इतिव-पूर्व दिगामें एक सामन्तराम्य है। इसका राजा डाका डाक कर इत्यादीके अन्वयार्थमें एकद्वे भीर जैस मेजे गये थे। इस बन्दयेक समय जैससे छूट कर सेनापानक राजाने अपने पुत्रोंक किछेमें प्रवेश किया। कर्मस त्पुनी स्मिथने दलके साथ उनक कुर्ग पर आक्रमण किया भीर उनका गिरफ्तार कर उनके राजपका अङ्कुरेजी राजपमें मिला लिया।

बङ्गाल-भागपुर रैल-पथ इस राज्यक भीतरसे गया है। इसमें यहाँ प्यबसाय बाजियपकी बडो सुबिधा है। यहाँक पैदावारमें धान, ऊर, बोभो नेहू सरसों आदि प्रधान हैं। डोमी शैल और अमना शैल पर तथा सेनापानक बन्धयवेगमें प्रयुत परिमाणसे गालरूस पैदा होता है। बनमागमें तसर और छाह अधिक होता है। यहाँ शैली भीर सुनो कपडेका कारोबार बहुत दिर्बार होता है। सन् १८७० ई०में यहाँ प्रायः ३ हजार कर्चे चलने थे। सुकारोंके सिवा यहाँकी पण्या जाति भी कपड़ा पुनर्नेका काम करती है। जेतो-बारो पर भा इस जाति का पैसा ही हाथ है। जिल्लेक अधिकांश कपडे इसी जातिके लोगों द्वारा तैवार होते हैं। प्रायः १८६१—६२ ई०में इस पण्या जातिके अङ्कुर नामक एक प्यक्तिने प्रकाशित किया था कि इसक शरीरमें देहताका आविर्भाव हुआ है। यह स पार्थ कारों आर प्रचारित होने पर लोग इसको देखनेके लिये यहाँ आने लग। वह चुपचाप एक हीय अन्ना कर बैठ रहता और पूजा प्रदण किया करता था। जेतोका काम करनेका समय इत्यन्वित हुआ। येन समय अङ्कुरने कहा कि कोर जेतो न बाधे क्योंकि इवारे देहताका पर है, कि

इस साल जेतो भाप ही भाप होगी। इस बिश्वास पर समो किसान रह गये। जेतो घेई न गई। फलतः फसल नहीं हुई। अन्तमें मासुगुजारी बाकी पड़ गई। राजाको यह बात मासुम हुई। उन्होंने मङ्गलकी गिरफ्तार कर जेलमें बन्द कर दिया। यहाँकी भागा हिन्दू ही भीर कुछ इसमें पढासी असम्योकी भाषा भी शामिल है। यहाँकी जनसंख्या प्रायः १०१२६०२ है। यहाँ १ जो लैकड़े पचेसी हिन्दू बोली जाती है। यहाँ सनातन धर्मों भीर फकीरपधधी इन दोनोका आर है। इस स धर्मों प्रायः १२००० मुसलमान हैं।

२ इत्क जिल्लेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २१ ४३' से छे कर २३ ० उ० तथा देशा० ८१ १४'से मे कर ४२ ४०' पू०के बीच अवस्थित है। इसका मूपरिमाण ५०८० वर्गमील है। जनसंख्या ४०२६८२ है। यहाँ लोग याने और ० बौकिया हैं।

३ बिज्ञासपुर जिल्लेका प्रधान नगर। यह नगर अर्था ( सरपा या अयरा ) नदीक इतिग किनारे अवस्थित है। यह अक्षा० २२ ५ उ० और देशा० ४२ १० पूर्वाक मध्य अवस्थित है। यह शहर बङ्गालभागपुर रेलवेसे निकट है। यह बन्दरेसे ७३६ मील तथा बस कच से ४४५ मील पहता है। यहाँकी जनसंख्या १८६१० है। इस नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि एक मछवाड़ेकी विज्ञास नाम्नी एक परनेने इस नगरकी अपने नाम पर बसाया था। यह बन्दरे प्रायः सवा लोग ली वर्षकी घटना है। पहले यह मछवाड़ेका एक गाव था। एक ली वर्ष पहले एक महाद्युत् राजरार्ज्यामीने अपने राजकार्यपरिचालनकी सुबिधाके लिये यहना निरूपण कर यहाँ एक प्रासाद बनवाया। वद प्रासाद अर्था लुके किनारे बना था। इस प्रासादक साथ ही यहाँ एक अन्ना भी बनाया गया था। उस समयसे यह नगर क्रमसे समृद्धिपूर्ण होता आ रहा है। किन्तु पिछल समयम महाद्युत् जब राजपाद यहाँम उठा रहनपुर मे गये तब इनकी कुछ धी डगर गई थी। सन् १८६२ ई०में यह नगर अङ्कुरेजी द्वारा सहररूपमें मनोनीत होने पर फिर एक बार समृद्धिपूर्ण हो उठा। यहाँ बङ्गालभागपुररेलवेका एक स्टेशन है।

विलासपुर—युक्तप्रदेशके रामपुर रियासतकी एक तहसील। यह उक्त रियासतके उत्तर पश्चिम ओर अक्षा० २८° ४४' से ले कर २६° १' उ० तथा देशा० ७६° १०' से ले कर ७६° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। इसकी जनसंख्या ७३४५० है। इसका क्षेत्रफल २०४ वर्गमील है। यहां प्रतिवर्ष ३०८००० रुपया राजस्व बसूल होता है। यहां कई झरने और एक नहर है। ६६ वर्गमीलमें खेती होती है। इस तहसीलमें २२३ गांव और एक विलासपुर नगर है।

विलासपुर—पञ्जाबके पहाड़ी सामन्त राज्योंमें एक। इस समय इसका कहलूर नाम है। कहलूर शब्द वेबो। विलासपुर उक्त राज्यकी राजधानी है। राजधानीके नाम पर कुछ लोग इस सामन्तराज्यकी विलासपुरके नामसे पुकारते हैं। यह नगर शतद्रुके किनारे समुद्रकी ऊपरी सतहसे १४५५ फीट ऊंचा है। नगरसे एक कोस पर शतद्रुको पार करनेका घाट है। इसी स्थानके द्वारा यहांका पञ्जाबसे व्यवसाय चलता है। राजप्रासाद में वैसी कोई खूबी नहीं है। नगर और बाजारके रास्ते और इमारतें पत्थरकी बनी हैं। गोरखे डाकुओंके उपद्रवसे नगर कुछ श्रीहीन हो गया है।

विलासभवन ( सं० क्लो० ) क्रीडागृह, रङ्गालय, नाचघर।  
विलासमणिदर्पण ( सं० त्रि० ) श्रीकीनताका शीर्षस्थानीय मणिनिर्मित दर्पणके समान।

विलासमन्दिर ( सं० क्लो० ) विलासस्य मन्दिर। क्रीडागृह।

विलासमेखला ( सं० स्त्री० ) अलङ्कारभेद।

विलासवत् ( स० त्रि० ) विलासविशिष्ट, विलासी।

विलासवती ( सं० स्त्री० ) राजकुलललनाभेद।

( वासवदत्ता )

विलासवसति ( स० स्त्री० ) क्रीडागृह, प्रमोदभवन।

विलासविपिन ( सं० क्लो० ) विलासस्य विपिनं। क्रीडावन।

विलासविभवानस ( स० त्रि० ) लुब्ध, पाया हुआ।

( जटाधर )

विलासवेश्मन् ( सं० क्लो० ) विलासभवन, क्रीडागृह।

विलासशय्या ( सं० स्त्री० ) सुलशय्या।

विलासशील ( सं० त्रि० ) १ विडासा। ( पु० ) राजपुत्रभेद।

विलासस्वामी ( सं० पु० ) शिलालिपि वर्णित एक ब्रह्मचारी और पण्डित।

विलासिका ( सं० स्त्री० ) उपरूपक नाटिकाभेद। इस नाटिकाके एक अङ्गमें शृङ्गार रसकी बहुत अधिकता होगी और यह दश नृत्याङ्क द्वारा परिपूरित होगा। शृङ्गारसहाय चिद्रूपक और चिद तथा प्रायः नायकके समान पीठमर्द आदि भी रखना होगा, इससे गर्भ और निमर्ष ये दो सन्धियाँ तथा प्रधान कोई नायक नहीं रहेगा। इस नाटिकामें वृत्तके लन्दोवन्धकी अल्पता तथा अलङ्कार या वेशभूषा आदि बहुत रहता है। ( साहित्यद० ६।५५२ )

विलासिता ( सं० स्त्री० ) विलासीका भाव या धर्म।

विलासित्व ( सं० क्लो० ) विलासिता।

विलासिन् ( सं० पु० ) विलासोऽस्यास्तीति विलास-इति।

१ भोगी, सुख भोगमें अनुरक्त पुरुष, कामी। २ जिसे आमोद-प्रमोद पसंद हो, क्रीडाशील, हँसोड। ३ ऐश आराम पसंद, आराम तलब। ४ सर्प, साँप। ५ कृष्ण। ६ अग्नि। ७ चन्द्रमा। ८ स्मर, कामदेव। ९ हर, महादेव। १० वरुण वृद्ध, धरुन।

विलासिनिका ( सं० स्त्री० ) विलासिनी।

विलासिनी ( सं० स्त्री० ) १ सुन्दरी युवा स्त्री, कामिनी।

२ वेश्या, गणिका। ३ हरिद्रा, हल्दी। ( राजनि० )

४ शङ्खपुष्पी। ( वैद्यकनि० ) ५ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ज, र, ज, ग, ग होते हैं।

विलासी ( सं० पु० ) विलासिन वस्तु।

विलास्य ( सं० क्लो० ) प्राचीनकालका एक प्रकारका वाजा। इसमें वज्रानेके लिये तार लगे होते थे।

विलिखन ( सं० क्लो० ) विलिख ल्युट्। १ लिखना।

२ खनन करना, खोदना। ३ खरोचना।

विलिखा ( सं० स्त्री० ) मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।

( वैद्यक० नि० )

विलिखित ( सं० त्रि० ) १ लिखा हुआ। २ खुदा हुआ।

३ खरोचा हुआ।

विलिगी ( सं० स्त्री० ) नागभेद। ( अथर्व० ५।१३७ )

विलिङ्ग ( सं० क्लो० ) अन्य लिङ्ग। ( भारत समावर्ष )

बिभिन्नाध कवि—सद्वचनश्री नामक नाटकके प्रणेता ।  
 बिलित ( स० बि० ) मिपा हुआ, पुता हुआ ।  
 बिलिता ( सं० स्त्री० ) एक सेकड़का  $\frac{1}{3300}$  परिमाण  
 काम । ( गणित )  
 बिलितिका ( स० स्त्री० ) काकभेद । बिलिता देखो ।  
 बिन्मिा ( सं० स्त्री० ) ज्ञानभोपकी बचनपा ।  
 ( भयम् १२७५१ )  
 बिनिष्ट ( सं० लि० ) १ टूटा हुआ, उलझा हुआ । २ अल्प  
 ध्वन्त, जो ठोक भयवधामि न हो ।  
 बिनिष्ठीहा ( सं० स्त्री० ) दानवीभेद । ( काठक १३१५ )  
 विसीध ( हि० पु० ) अनुचित, नामुनासिध ।  
 बिनीड ( सं० स्त्री० ) बि-डिह् क्त । इहन्वस्त ।  
 ( भयम् ११८५४ )  
 बिनील ( सं० लि० ) बि-ली-क । १ सुन्द, जो बहुतव हो गया  
 हो । २ स्रवणात् नष्ट । ३ छिपा हुआ । ४ जो मिल गया  
 हो । जैसे—पानीमें नमक बिनील हो गया ।  
 विसीपन ( सं० स्त्री० ) गसना ।  
 ( भयम् ११८५४ )  
 बिसुगठन ( सं० स्त्री० ) बि-सुगठ क्युट् । विशेष रूपसे  
 सुगठन ।  
 बिसुगिठन ( स० स्त्री० ) भवसुगिठन ।  
 बिसुप्त ( स० लि० ) बि-सुप्त क्त । १ तिरोहित, जिसका  
 कोप हो गया हो, नष्ट । २ सुगिठन सृष्टा हुआ । ३ छिन्न ।  
 ४ आच्छास्त । ५ पुरोत ।  
 बिसुप्तयोनि ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका योनितोग । इस  
 रोगमें योनिमें हमेशा पीड़ा होती रहती है ।  
 बिसुप्त्य ( स० लि० ) बिसुप्तके योग्य ।  
 बिलुमित ( स० लि० ) पञ्चल ।  
 बिलुम्बक ( स० पु० ) बीर, बोर ।  
 बिलुम्बक ( स० लि० ) नाडा करनेवाला ।  
 बिमुकित ( स० लि० ) बि-लुम्ब क्त । १ पञ्चल, कर्मिण,  
 बोलुवमान । २ विमूर्ति ।  
 बिलुग ( स० लि० ) कटा हुआ, अलग किया हुआ ।  
 बिसैक ( स० पु० ) बि-सैक घम् । १ मड्डल ।  
 २ दरवाजा ।  
 बिलेवन ( सं० स्त्री० ) बि-सिक-स्युट् । १ जगन,

बोहना । २ विरोधना । ३ फाड़ना । ४ अड़ उखाड़ना ।  
 ५ झोतना । ६ बिभाग करना, बांटना ।  
 बिलेकिन ( स० लि० ) बिलेकिनकारा भेद करनेवाला ।  
 बिलेक् ( स० लि० ) बि-का-स्युप् । ( पा ११११२ )  
 १ बिष्पकारी, बिनाश करनेवाला । २ द्रवकारी ।  
 बिलेप ( स० पु० ) बि-लप घम् । १ जैसे शरीर बादि  
 पर चुपक कर लगानेकी चीज । २ पलस्तद, गारा ।  
 बिलेपन ( स० स्त्री० ) बिलिप्यतेऽङ्गुणयनेति बि लिप  
 स्युट् । १ छीप करने या लगानेकी छिपा, चम्पों तरह  
 सोपना, सगाना । २ लगाने या छेप करलका पद्धानी ।  
 जैसे—चम्पन कंसर बादि ।  
 बिलेपनिन् ( स० लि० ) बिलेपनमस्त्वश्च । बिलेपन  
 विशेष ।  
 बिलेपनी ( स० स्त्री० ) बि लिप-स्युट् कर्मणि करने वा ।  
 १ पवागू झोको कांजी । २ सुपेशा स्त्री ।  
 बिलेपिका ( स० स्त्री० ) बिलेपी ।  
 बिलेपिन् ( स० लि० ) बिलेपयति या बि लिप गिति ।  
 लेपनकर्त्ता, वेगनेवाला ।  
 बिलपी ( स० स्त्री० ) बिलिप्यतेऽस्ती इति बि लिप घम्,  
 ( कर्मणि ) लिपिर्वा ङीप् । पवागू ।  
 रोगोक पूर्वाम्बस्त आहार्यम् अन्नके अर्घान् रोग  
 होनेक पहले वैदिक हिसावसे कितना चावल खाया  
 जाता है उसका अनुपां न चाधक छ कर गिनादि पर  
 अच्छो तरह पौसे और बौगुने जलमें डमका पाक करे ।  
 पाक शय होने पर जब दूध भाग छट जाये, तब उसे  
 वतार डे । इस प्रकार जो भ्रम प्रस्तुत किया जाना है  
 उसे बिलेपी कहते हैं ।  
 बिलेपी छपु होती है । इसके जानेसे अग्नि प्रदोत  
 होती है । यह इहुरोग मण ( हत ) और अक्षिरोगमें  
 बपकारक, आमशुष्य, उवर और पृष्णानाशक है । इससे  
 मुलकी रूचि, शरीरकी पुष्टिना और शुक्ली इन्द्रि होता है ।  
 वैद्यकनिर्बद्धमें इसका प्रस्तुत प्रणाली और गुण इस  
 प्रकार लिखा है—  
 "कृता च वर गुणे रोमे बिलेपी भ्रम्यु पञ्चभूतेः ।  
 वा पानिकरीमो अम्बो हिवा मूर्च्छान्तरपथ ॥"  
 ( वैदिक )



कुछ भुने चावलको छः गुने जलमें पाक करनेसे विलेपी बनता है । यह विलेपी लघु, अग्निवृद्धिकर तथा ज्वरनाशक है ।

विलेप्य ( स० त्रि० ) वि-लिप-यत् । १ लेपनयोग्य, लेप देने लायक । ( पु० ) २ यवागू, जांकी कांजी ।

विलेवासिन् ( स० पु० ) विले गर्त्तं वसतीति विले-वस-णिनि शयवासेति सप्तम्या अलुक् । ( पा ६।३।१८ ) सर्प, सांप ।

विलेगय ( स० पु० ) विले शेते विले शा-अच् अधिकरणे शेतेः ( पा ३।२।१५ ) शयवासेत्यलुक् । १ सर्प, सांप । २ मूषिक, चूहा । ३ जो विल या दरारमें रहता हो । गोद, विच्छू, शशक आदि जन्तु विलमें रहते हैं, इसलिये उन्हें विलेशय कहते हैं । इनके मांस वायुनाशक, रस और पाकमें मधुर, मलमूलरोधक, उष्णवीर्य और वृहण होते हैं ।

राजनिघण्टुमें इनका मांस श्वास, वात और कास-नाशक तथा पित्त और दाहकारक माना गया है ।

कोकडनामक एक प्रकारका मृग होता है, वह भी विलेशय कहलाता है । उसका मांस अतोव गर्हित होता है, क्योंकि वह अत्यन्त दुर्ज्वर, गुरुपाक और अग्निमान्यकर होता है ।

( त्रि० ) ४ गर्त्तमें शायित, विलमें सोया हुआ ।

विलोक ( ( स० पु० ) १ वृष्टि । २ विजिष्ट लोक, बड़ा आदमी ।

विलोकन ( स० क्ली० ) वि लोक-ल्युट् । १ अवलोकन, आलोकन, देखना । २ नेत्र, जिससे देखा जाता है ।

विलोकना ( हि० क्रि० ) १ देखना । २ अवलोकन करना । विलोकना देखो ।

विलोकनि ( स० स्त्री० ) विलोकनि देखो ।

विलोकनीय ( स० त्रि० ) दर्शनीय देखने योग्य ।

विलोकित ( स० त्रि० ) वि-लोक-क्त । आलोकित, देखा हुआ ।

विलोकिन् ( स० त्रि० ) अवलोकनकारी, देखनेवाला ।

विलोका ( स० त्रि० ) विलोकिन् देखो ।

विलोक्य ( स० त्रि० ) वि-लोक-यत् । अवलोकन योग्य, देखने लायक । ( मार्कण्डेयपु० ४३।३६ )

विलोचन ( स० क्ली० ) विलोचयते दृश्यतेऽनेनेति वि-लोचि-ल्युट् । १ चक्षु, आँख । २ पुराणानुसार एक नरकका नाम । इसमें मनुष्य अन्या हो जाता है और न देखनेके कारण अनेक यातनाएं भोगता है । ३ लोचन-रहित करनेकी क्रिया, आँखे फोड़नेकी क्रिया । ( त्रि० ) ४ विरुत-तयनविशिष्ट ।

विलोचनपथ ( स० पु० ) नेत्रपथ, चक्षुगोचर ।

विलोटक ( स० पु० ) वि लुट्-ण्वुल् । एक प्रकारकी मछली, बेला मछली ।

विलोटन ( स० क्ली० ) वि लुट् ल्युट् । विलुण्ठन ।

पिलोड ( स० पु० ) आलोडन ।

विलाडन ( स० क्ली० ) वि लुड ल्युट् । १ मन्थन । २ आलोडन ।

विलोडना ( हि० क्रि० ) विलोडना देखो ।

विलोडयित् ( स० त्रि० ) आलोडन करनेवाला ।

विलोडित ( स० त्रि० ) वि-लुड-क्त । १ आलोडित, मथित । ( क्ली० ) २ तक्र, मट्टा ।

विलोना ( हि० क्रि० ) विलोना देखो ।

विलोप ( स० पु० ) वि-लुप-घञ् । १ लोप, विनाश । २ हानि, नुकसान । ३ विघ्न, बाधा । ४ आघात । ५ रुकावट । ६ किसी वस्तुको ले कर भाग जानेकी क्रिया ।

विलोपक ( स० त्रि० ) १ लोपकारी, नाश करनेवाला । २ दूर करनेवाला । ३ ले कर भागनेवाला ।

विलोपन ( स० क्ली० ) वि-लुप-ल्युट् । विलोप करनेकी क्रिया । विलोप देखो ।

विलोपना ( हि० क्रि० ) १ लोप करना, नाश करना । २ ले कर भागना । ३ विघ्न डालना, बाधा उपस्थित करना ।

विलोपिन् ( स० त्रि० ) वि-लुप्-णिनि । विलोपकारी, नाश करनेवाला ।

विलोप्त ( स० त्रि० ) वि-लुप्-त् । १ विलोपकर्त्ता । २ ध्वंसकर्त्ता ।

विलोप्य ( स० त्रि० ) विलोप करने या हानि करने योग्य ।

विलोम ( स० पु० ) वि-लुभ-घञ् । १ प्रलोभन । २ मोह । माया, भ्रम । ( त्रि० ) २ जिसके मनमें किसी प्रकारका लालच न हो, लोभरहित ।

विशोमन ( सं० झी० ) बि-लुम झुट् । १ शोम विशालको क्रिया । २ मोहित वा भाकर्षित करनेका व्यापार । ३ काँई सुप्त काँई करनेक तिपे किसीको सोम दिनानैका नाम, कलधामा ।

विशोम ( सं० जि० ) १ बिपरीत उब्जा । पर्याय—प्रति कून, भगमण्य, भवपुत्र धाम, प्रसम्य, विशोमक । २ शोमरहित । ( पु० ) ३ सर्प, साँप । ४ बचन । ५ कुञ्जूर, कुशा । ६ सङ्गीतमें ऋषे सरसे भीषे सरको और आना, सरका अथरौह, उठार । ७ ऊखेकी थोरसे गोखेकी और आना । ( झी० ) ८ अरपट्टक, पट्ट ।

विशोमक ( सं० जि० ) बि-शोम कार्चै-कम् । बिपरीत, प्रतिकूल ।

विशोमक्रिया ( सं० श्यो० ) यह क्रिया जो अन्तसे आदि की थोर जाय, उन्नी आरसे होमैवाजी क्रिया ।

विशोमज्ञ ( सं० जि० ) विशोम ज्ञान । विशोमज्ञात, प्रतिशोमज्ञ, अन्तर वर्णमें न उदपन्न हो कर बिपरीतमात्र में उदपन्न । जैसे,—शुद्धक औरससे प्राणजीकी गर्म ज्ञात सन्तान ।

विशोमज्ञात ( सं० जि० ) बिपरीत मात्रमें ज्ञात, विज्ञा मज्ञ ।

विशोमज्ञि ( सं० पु० ) इस्ती, हायो ।

विशोमज्ञैराशिक—बिपरीत मात्रमें किया हुआ जैराशिक ।

विशोमज्ञ ( सं० जि० ) १ विशोम, बिपरीत । २ शोम रहित केशहीन । ( पु० ) ३ यदुर्बलथोय एक राजाका नाम । ये कुङ्कुरके पुत्र थे । ( मत्स्य १२५भा११ )

विशोमपाठ ( सं० पु० ) उब्जा बिद् पाठ करना ।

विशोमचर्ष ( सं० जि० ) १ विशोमज्ञात । ( पु० ) २ वर्ण संकर जाति, दोगली जानि ।

विशोमाह्वरकाण्य—रामकृष्णकाण्य । इसका अन्तर योजन बिपरीतमात्रसे ही इसरूपे इसका बिशोमाह्वर काण्य नाम पड़ा है ।

विशोमित ( सं० जि० ) १ बिपरीत । २ बिशोय मात्रमें शोमयुक्त ।

विशोमी ( सं० श्यो० ) आमलकी भाँबका ।

विशोल ( सं० जि० ) विरोधेय शैला । १ पञ्चक, पल । २ मति शोमी, बड़ा मालची । ३ सुन्दर ।

विशोलन ( सं० श्यो० ) कम्पन, काँपना ।

विशोहित ( सं० जि० ) १ मतिशय मोहित, घोर झाल । ( पु० ) २ मर्षमेद्, एक प्रकारका साँप ।

वित्त ( सं० झी० ) १ दिव्य, होग । वित्त बेको । २ माल वाल ।

विष्णुला ( सं० श्यो० ) वाराहोक्तम् ।

विष्णु ( सं० श्यो० ) वरा पुत्रको माता बह श्यो जिसक वरा पुत्र हुए हों ।

विश्व ( सं० पु० ) विश्व मेरुनी का अन्तर्विषयेत ज्ञाणु । १ येन वृत्त, बेठका पेड़ । ( बलो० ) २ विश्वफल, वैम । विश्व बेको ।

विश्वज्ञा ( सं० श्यो० ) शास्त्रिधाम्यविशेष । इनक रूप गुणादि यथा—यद् धाम्य मागवी नामक शास्त्रिधाम्यके समान पोना और तद्गुणयुक्त अर्थात् ककत्राज तथा उच्च और बलकारक, मूलदोषप्र और अनापहारक होना है ।

विश्वरीठ ( सं० श्यो० ) कर्णोत्तोगाधिहारोक्त शैल्विरीय । प्रस्तुत प्रणाली—तिलरीय ४ सेर, बरुकीका दूध १३ सेर, गोमूत्रथिप बेकसोंट १ सेर, इन सब द्रव्योंका एकत्र पाक करके भीषे उठार ले, पोछे आधिर्ष और कर्णोत्तोगमें व्यवहार करे । वाबहार करनेके पहले पुटमें शुद्ध और सोंट जलको सु धनो के कर उसके बाद यह लेख कालमें बालना होता है ।

वृसरा तरीका—तिलरीय १ सेर, बरुकीका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ रुद्र, ककषा बेक या बेकसोंट १६ ताम्बा, इन्हें एकत्र करके जब सिर्फ लेख बच जाय अर्थात् दूध और गोमूत्र दूर हो जाय, तब इसे उठार कर लेख छान से । यह लेख कालमें देमैस वातशैथिक बिचरतामें बहा फायदा पहुँचता है ।

विश्ववत्त ( सं० श्यो० ) बेकका पत्ता जो शिव पर बड़ानेके काममें जाता है । बेखपत्त ।

विश्वयणी ( सं० श्यो० ) बालप्र पलशाकविशेष । ( एक लुप्त ल्या० २० अ० )

विश्वयोगिका ( सं० श्यो० ) शुद्धविश्वकण्यक बेकसोंट । यह कफ, वायु आमशून्य और प्रदुषीको शान्त करनेवासी मानो गई है । ( राजनि० )

विल्वमङ्गल ( सं० पु० ) अक्त और महाकवि सुरदासका  
अन्धे होनेसे पूर्वका नाम। विल्वमङ्गल टाकू देखो।

विल्वमध्य ( सं० क्लो० ) १ विल्वगरूप। २ बेल सोंठ।  
विल्व ( सं० स्त्री० ) हिंगुपत्नी।

विल्ववादिक्पाय ( सं० पु० ) वातज्वरनाशक फ्याय  
( पाचन )-विशेष। विल्वमूल, मोनापाठा, गभगारी,  
पारली, गनियारी, गुडूची, आमलकी और धनिया,  
इनमेंसे प्रत्येक चौअरनी भर ले कर आध मेर जलमें  
पाक करे। जब आध पाव अंदाज रह जाये, तब नीचे  
उतार कर महीन कपड़े से छान ले। उसके पीनेसे वात-  
ज्वर नष्ट होता है।

विल्वान्तर ( सं० पु० ) १ कण्टकिवृक्षविशेष। २ उशीर  
नामक घोरतरु, लस। तेलगू भाषामें इसे वेणुतुरुवेट्ट,  
कहते हैं। इसका फूल जानिकलके बराबर तथा सफेद,  
काला, लाल, वै गनी और हल्दी आदि रंगका होता है और  
इसके पत्ते शमिष्ठके पत्तेके समान होते हैं। इसका  
गुण—कटु, उष्ण, आग्नेय, वातरोग और मन्धिगूल  
नाशक। ( राजनि० )

भावप्रकाशमें इसका गुण इस प्रकार लिखा है—

विल्वान्तररसमें और पाकमें तिक्त, उष्णवीर्य, कफ,  
मूत्राघात और अशमरीरोगनाशक, संप्राही ( धारक ) तथा  
योनि, मूत्र और वायुरोगनाशक है। ३ जाङ्गलदेश। ४  
नर्मदातट। ५ चर्मण्वती नदीके समीप।

विवश ( सं० पु० ) १ विशिष्ट वंश। २ वंशरहित।

विव ( हिं० वि० ) १ दो। २ द्वितीय, दूसरा।

विवि देखो।

विवकृत ( सं० पु० ) १ बहुत बोलनेवाला, वाचाल। २  
स्पष्ट बोलनेवाला। ३ वक्ता, वाग्मी।

विवकृत ( सं० त्रि० ) १ विगिष्ट वक्ता, बहुत बोलनेवाला।  
२ किसी बातको प्रकट करनेवाला। ३ दुरुस्त करने या  
सुधारनेवाला, स शोधन करनेवाला।

विवकत्व ( सं० क्लो० ) विगिष्ट वक्ताका भाव वा धर्म।

विवषवस् ( सं० त्रि० ) विगिष्ट वक्ता, जो स्तुतिवाक्य  
कहनेमें निपुण हो।

विवक्षण ( सं० त्रि० ) वि वच् ( वा वह ) सन् ल्युट्। १ ब्राह्म  
नीय, कथनीय, स्तुत्य। जिसको कोई अभिप्रेत विषय

जनाया या कहा जा सके अथवा जिसकी विशेषरूपमें  
स्तुति की जाय, उसे विवक्षण कहते हैं।

२ प्राप्त्य, पाने लायक। ( शृक् ८।१।२५ ) ३ हवन-  
शील, आहुतिप्रदाता। ( शृक् ८।३।१२३ )

विवक्षा ( सं० स्त्री० ) वक्तुमिच्छा वि-वच्-सञ्-अच्-ग्नियां  
टाप्। १ कोई वात वादनेका इच्छा, बोलनेकी इच्छा।  
व्याकरणमें लिखा है कि, "विवक्षावशात् कारकाणि  
भवन्ति" विवक्षानुसार ही कारक होते हैं अर्थात् वक्ता  
जिस भावमें बोलना चाहे, उन्ही भावमें बोल सकते हैं।  
पोंछे उनके उन्ही प्रयोगानुसार कारकादिका निर्णय करना  
होता है। जैसे—"धनं यानने राजभ्यः" राजाओंसे धन-  
की जांचना करता है। "परशुश्छिनत्ति" परशु ( कुटार )  
( वृक्षको ) काट रहा है। प्रथम स्थलमें राजाओंकी अर्थात्  
'राजाओंसे' इस अर्थमें 'राजभ्यः ( चतुर्थी ) वा 'राजः'  
( द्वितीया ) इन दोनोंके प्रयोगमें वक्ता "विवक्षावशात्"  
"कारकाणि भवन्ति" इस प्राचीन अनुशासनानुसार  
उसकी ( उन दोनों पदोंकी ) जो इच्छा होती है, वे उन्हीका  
प्रयोग कर सकते हैं। द्वितीय स्थलमें भी प्रदर्शितरूपसे  
अर्थात् परशु ( स्वयं ) काट रहा है। इन दोनोंका जिस  
प्रकार चाहे वक्ता प्रयोग कर सकते हैं। अभी इनमेंसे  
कहाँ पर कैसी विवक्षा का गई, वही लिखा जाता है,—  
प्रथम स्थलमें राज शब्द 'याचते' यह याचार्थ द्विकर्मक  
'याच' धातुका गीणकर्म है, इस कारण इसके उत्तरमें  
द्वितीया विभक्तिका ही होना उचित है, किन्तु वहाँ पर  
यदि वक्ता इच्छा करके चतुर्थी विभक्ति करे, तो फलि-  
तार्थमें जानना होगा, कि वक्ताने कर्म या द्वितीयाको  
जगह चतुर्थी को है। द्वितीय स्थलमें भी इसी प्रकार  
जानना होगा, कि करण कारकका वक्तृत्व विवक्षा हुई  
है, क्योंकि कोई एक कर्ता नहीं रहनेसे अचेतन पदार्थ  
परशुको लय छेदन करनेकी शक्ति नहीं है। दूसरे दूसरे  
स्थानोंमें भी घटनानुसार विचार कर इसी प्रकार जान  
लेना होगा।

२ शक्ति। ( एकादशीतत्त्व )

विवक्षित ( सं० त्रि० ) वि वच् सन्-क्त। जिसकी आव-  
श्यकता या इच्छा हो, इच्छित, अपेक्षित। २ शक्यार्थ।

विद्युत् (स० लि०) 'मूषाः सन्नि वरुवादेशे (उनाव  
उमिष उः) इति उ प्रत्ययाः। बालनेका इच्छुक्।

विद्युत् (स० लि०) वि-वृत् स्फुट्। प्रवृत्त, कथम्।

विद्युत् (स० पु०) १ गीबटस, गायका बछड़ा। २ शिष्ट,  
बधा। (लि०) ३ बटसहीन, बिना इच्छेका।

(मामाव १११।१६)

विद्युत् (स० लि०) वि-वृत् स्फुट्। १ विद्या, कलह।  
२ बुद्धका उपदेश।

विद्युत्मान (स० लि०) वि-वृत् शानच्। विद्याकृत्ता,  
कलह करनेवाला।

विद्युत्विषय (स० लि०) विद्याकृत् योग्य।

विद्युत्विष्णु (स० लि०) विद्या करणने इच्छुक्।

विद्युत् (स० पु०) विविधो लघो इत्यन गमन या यत्।  
१ शीघ्र घान आवास भादि उना। २ राजमार्ग चौकी  
सङ्घ। ३ आदित्यादिका हृत्प, घान घास भादिका  
सुपता। ४ मार होनेकी लकड़ी बहगो। ५ मार,  
बोम्ब। ६ वह लकड़ी जो बैलोंक फंको पर इस समय  
रखनी जाती है जब ठण्डे कोरे वस्तु खोंच कर से जामो  
होती है। सुमाठा। ७ मूसे या मनायका राशि।

विद्युत्पिक (स० पु०) विद्युत्पेन हर्ततीति विद्युत्प टन्।  
(विभाष विद्युत्पिकत्। या ४१।१०) वैद्युत्पिक।

विद्युत्पिपु (स० लि०) वल्गुना कर्णने इच्छुक्।

विद्युत्पिक (स० पु०) १ टोकनेवाला। २ कोष्ठपदता  
कम्पित।

विद्युत्पान (स० पु०) रोक, बंधन।

विद्युत्पिक (स० लि०) १ विद्युत्पिपुत्। २ विद्युत्पिक।

विद्युत्पन (स० लि०) बधन बोना।

विद्युत् (स० लि०) वि-वृत् पकाद्यच्। १ छिद्र, बिल।  
२ रोप, देव। ३ अवकाश सुष्टो। ४ बिच्छेद सुष्टो।  
५ पूरक, मसग। ६ कालरात्र्यामेद्। ७ गर्त उत्तर।  
८ युक्त कम्पत्।

विद्युत्पण (स० लि०) वि-वृत् स्फुट्। १ व्याख्या, किसी  
वस्तुका स्पष्टरूपसे समझानेका क्रिया। २ घनत, वृत्तान्त  
३ माध्य टीका। ४ मधमकान्त। ५ प्रकाश।

विद्युत्पानिका (स० लि०) विद्युत्पुक् नासं धत्याग।  
१ विष्णु, बाल। २ बंधो बालुटी।

विद्युत्पिपु (स० लि०) प्रकाश करनेमें इच्छुक्।

विद्युत्पण (स० लि०) वरुणकार्य विशेष।

विद्युत्पण (स० लि०) दोसिद्धान, जिसमें अमक दमक  
न हो।

विद्युत्पण (स० लि०) परिष्कारकारी छोड़नेवाला।

विद्युत्पण (स० लि०) १ त्याग करनेकी क्रिया, परिष्कार।  
२ मनाइ, उपेक्षा।

विद्युत्पणोय (स० लि०) वि-वृत् मनीयर्। त्याग  
छोड़ने लायक।

विद्युत्पित (स० लि०) १ वृत्पित, मना किया हुआ। २  
उपेक्षित, मनाइरित। ३ वृत्पित, रहित।

विद्युत्पण (स० पु०) विद्युत्पेन वर्णाः। १ नीचजाति, होम  
वर्ण। २ साहित्यमें एक भावका नाम। इसमें मय  
मोह, क्रोध, कडा भाविके कारण नायक या नायिकाके  
मुखका रंग बहूत जाता है।

(लि०) ३ मोच, कमोना। ४ मोच जातिका। ५

नीच पेशा या बुरबस्ताय करनेवाला। ६ कुजाति। ७  
सिन्धुका रंग कटाव हो गया हो। ८ रंग बदलनेवाला।  
९ बर्कर, सुरे रंगका। १० जिसके चेहरेका रंग उलटा  
हूमा हो, कागितहीन।

विद्युत्पणता (स० स्त्री०) विद्युत्पण भाव या धर्म मानिष्य,  
दोसिद्धानता, कागितभूम्यता, निधमता।

विद्युत्पण्य (स० लि०) म्मानगाकता।

विद्युत्पणमोहता (स० लि०) मविद्युत्पणनः विद्युत्पणनः  
कृतं अमृततनुमाये चिन्। मछिनोहता, कुरूप किया  
हूमा।

विद्युत्पण (स० पु०) वि-वृत्-भन्म्। १ समुद्रप, समूह।  
२ अवधर्शन परिचर्शन। ३ मृत्यु। ४ प्रतिपत्त। ५  
परिष्कार समवायिकारणसे तद्दोष विसृष्ट (विभिन्न  
रूप) कार्पको उत्पत्ति। समवायिकारण—अधपव,  
कार्प—अधपको। इन मन्व कार्पोंसे जिन सब कार्पोंकी  
उत्पत्ति होती है वे प्रायः उन्हीं कार्पोंक विसृष्ट हैं  
अर्थात् आकृतिवहनिगत विभिन्नताप्राप्त हैं। जैसे,  
इत्यपरादि बहून्मन्व बहू भादिके मेसम उत्पन्न देहसमधि,  
पृथक्भावमें उनमेंसे प्रत्येकके साथ आकृतिगत विभिन्न  
है अर्थात् मन्वर्ण देह आ एक उगकी वा एक हापके

समान नहीं है वह स्पष्ट दिक्कह देता है। तरलशुक्र और शोणितक मेलसे जो कठिन देह बनो है, वह भी समवायि-कारणसे तदीय विसदृश ( भिन्नाकार ) कार्यकी उत्पत्ति है। साख्यतत्त्वकौमुदीमें इस विषयमें कुछ आभास मिलता है। वहाँ लिखा है,—'एकस्य सता विवर्त्तः कार्यजात नतु वस्तुमत्' कार्यजात (कार्यसमूह) अर्थात् जगत् एक नित्यपदार्थका विवर्त्तमात्र है, वस्तु (जनपदार्थ) अर्थात् वह जगत् सत् ( नित्य ) नहीं है।

६ भ्रान्ति, भ्रम । ७ आवर्त्त, भौरी । ८ विशेषरूपमें स्थिति । ९ आकाश ।

विवर्त्तकल्प ( स० पु० ) वह कल्प जिसमें लोक क्रमशः उन्नतिसे अवनतिको प्राप्त होता है।

विवर्त्तन ( स० क्लो० ) वि-वृत् ल्युट् । १ परिव्रमण, घूमना फिरना । २ पार्श्वपरिवर्त्तन, करवट लेना । ३ परिवर्त्तन, रुपान्तर । ४ नृत्य, नाच । ५ प्रत्यावर्त्तन, लौटना । ६ घूर्णन, घूमना । ७ कानोंसे मल या वायुको निकालनेके लिए कानके भीतरमें यन्त्रविशेषका घुमाना ।

( उभ्रुव स० ७ अ० )

विवर्त्तवाद ( स० पु० ) वेदान्तशास्त्र वा दर्शन । इत्के अनुसार ब्रह्माको सृष्टिका मुख्य उत्पत्तिस्थान और संसारको माया मानते हैं।

विवर्त्तस्थायी कल्प ( स० पु० ) वह समय जब लोष अवनतिको पराकाष्ठाको पहुँच कर शून्य दगामें रहता है, कल्पान्त, प्रलय ।

विवर्त्तित ( स० त्रि० ) १ परिवर्त्तन, बदला हुआ । २ भ्रमित, घूसा हुआ । ३ प्रत्यावर्त्तित, लौटा हुआ । ४ घूर्णित, चकर मारा हुआ । ५ अपनीत, उखड़ा हुआ, सरका हुआ । ६ अंग जिसमें मोच आ गई हो ।

विवर्त्तितज्ञ ( स० पु० ) अरुणशिक्षा, मुर्गा ।

विवर्त्तितसन्धि ( स० पु० ) सन्धियुक्त भग्नरोगभेद । आघात वा पतन आदिके कारण दृढ़रूपसे आहन होने पर यदि शरीरका कोई सन्धिस्थल वा पार्श्वदिका अपगम हो कर विषमाङ्गता और उस स्थानमें अत्यन्त वेदना हो, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं। अर्थात् किसी कारणसे आघात लगने पर शरीरका कोई सन्धिस्थान

वा पार्श्वदि यदि विवर्त्तित ( उलट पलट ) हो जाय, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं।

चिकित्सा ।—पहले घृतप्रक्षित पट्टवस्त्रसे भग्नसन्धि स्थानको लपेट दे। पीछे उस वस्त्र पर कुश अर्थात् वटवृक्षादिको छाल रख कर यथानियम बांध देना उचित है। बांधनेका नियम इस प्रकार है,—भग्नस्थानको शिथिलभावमें बांधनेसे सन्धिस्थल स्थिर नहीं रहता तथा दृढ़रूपमें बांधनेसे चमड़ा सूज जाता और वेदना होती है तथा वह स्थान पक जाता है। अतएव साधारणभावमें अर्थात् शिथिल भी नहीं और दृढ़ भी नहीं, ऐसे भावमें बांधना उचित है। स्याम्य ऋतुमें अर्थात् हेमन्त और शिशिरकालमें मात दिनके बाद साधारण अर्थात् वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें पाच दिनके बाद तथा आग्नेय ऋतुमें अर्थात् ग्रीष्मकालमें तीन दिनके बाद भग्नस्थानको बांधना होता है। परन्तु बन्धन स्थानमें यदि कोई दोष रहे, तो आवश्यकतानुसार खोल कर फिरसे बांध सकते हैं।

प्रलेप ।—मज्जिष्ठा, यष्टिमधु, रक्तचन्दन और शालि-तण्डुल इन्हें पीस कर घाँके साथ गतघाँत प्रलेप देना होता है।

परिपेक । - वट, गुलर, पीपल, पाकड़, मुलेठी, आमड़ा, अर्जुनवृक्ष, आम्र, कोयात्र ( केवडा ), चोरक ( गन्धद्रव्य विशेष ), तेजपत्र, जम्बूफल, वनजम्बु, पयार, महुआ, कदहल, वेत, कदम्ब, गांध, शालवृक्ष, लोघ, सावर लोघ, मिलावा, पलाश और नन्दोवृक्ष, इन सब द्रव्योंके शीतल काथ द्वारा भग्नस्थान परिपेचन करना होता है। उस स्थानमें यदि वेदना रहे, तो शालपर्णी, चक्रचंड, वृहती, कण्टकारी और गोकरु इन्हें दुग्ध द्वारा पाक कर कुछ गरम रहते वहाँ परिपेचन करे। काल और दोषका विचार कर दोषनाशक औषधके साथ शीतल परिवेक और प्रलेपका भग्नस्थलमें प्रयोग करे। प्रथम प्रसूता गायका दूध ३२ तोला, कंकोली, क्षौरकंकोली, जीवक, ऋषभक, मूँग, उड़द, मेद ( अभावमें असगंध ), महा-मेद ( अनन्तमूल ), गुलञ्ज, कर्कटशृङ्गी, वंगलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरी काष्ठ, ऋद्धि ( बिजवद ), वृद्धि ( गोरख-मुंडी ), दास, जीवन्ती और मुलेठी, कुल मिला कर २ तोला तथा जल आध पाव ले कर पाक करे। पाक शेष

होने पर अर्थात् इर हासा रद्द जाने पर प्रज्ञेय ज्ञान भग्न  
रोगीको प्रातःकालमें भेषज कराना होगा ।

शरारके चिन्मी स्थानमें भग्न हो कर अस्थि यदि  
मुक्त पद हो तो उसे चढ़ा करके अपने स्थान पर बांध  
देना चाहिये । भग्नस्थानको अस्थि यदि अपने स्थानसे  
हट गई हो, तो अग्निज भावमें नींच कर सन्धिस्थान  
को दो अस्थियोंके साथ मज्जतीसे बांध दे । किसी  
अस्थिक मोचे मुक्त जाने पर इस ऊपरकी मार नींच  
यथास्थानमें बांध देना उचित है । माघ्युत ( दीर्घ  
माघमें नींचना ), पीडन और मय्यक् प्रकारसे उपयुक्त  
स्थान सन्धिपेश और बन्धन इन सब उपायोंस बुद्धिमान्  
चिकित्सक शरीरकी सफाई और अच्छे सन्धिपोंका  
यथास्थानमें संस्थापित करते हैं ।

शरीरके भग्नसङ्गकी चिकित्सा, प्रथम और बन्धनादि  
इस प्रकार है—

नक्षसन्धि,—नक्षसन्धिसमूहियत् अर्थात् क्षुण्णित रक्त  
सञ्चित हानेसे शरीर नामक मस्क द्वारा उस स्थानको  
मच्छि कर वहाँका रक्त निकाल दे ।

पतलक भग्न,—पतलक भग्न होने पर वहाँ घी  
लगाने पर पूर्वोक्त बन्धन क्रियायुक्तार बांध दे । इस हानतमें  
क्यापि व्यायाम नदी करना चाहिये ।

अगुण्णितान्,—उपलोक टूटने अथवा उसके सन्धि  
विच्छिन्न होनेसे इस स्थानका समानमाघमें स्थापित  
कर धूम्रपत्रपट्टिका द्वारा बांध दे और उसके ऊपर घी  
लगा दे ।

अङ्गुलभग्न—अङ्गुल या उसके मध्य होने पर बड़ी  
साधनागोरी उसे शीर्षमाघमें नींच कर दोनों सन्धि  
स्थानका स्थापित करे । पीछे बट भादि सुशोको छान  
पट्टिका द्वारा वहाँ बांध दे । अङ्गदेशकी अस्थि निर्गत  
रुकुण्ठित वा विच्छिन्न होने पर बुद्धिमान् चिकित्सकको  
चाहिये, कि वे इन अस्थियोंके अकरील द्वारा अक्षित कर  
शीर्षमाघमें नींच पूर्वोक्त प्रकारसे बांध दे । उक्त दो  
स्थानमेंसे किसी एकके टूटने पर चिकित्सकको चाहिये  
कि वे पहले रोगीका शयन करावें, पीछे पांच स्थानोंका  
कामकाकारमें इन प्रकार बांध दें, कि वह स्थान दिखने  
जोलने न पावे । अर्थात् इन बन्धनका नियम यह है कि

सन्धिस्थानके दो ओर दो दो करके तथा ललाटेशमें एक  
धोणदेश ना पृष्ठपक्षमें अथवा अङ्गुलपक्षमें एक तथा  
दोनों अङ्गुलें ही बन्धनका प्रयोग करे । सब प्रकारके  
भग्न और सन्धिस्थानरोगमें पूर्वोक्त कपाट्यपत्तादि  
विशेष हितकर हैं ।

कटिमध्य,—कमरकी हड्डी टूटने पर कमरका ऊपर  
और नीचेकी ओर नींच सन्धिके लक्षणको अच्छी तरह  
संयोजित कर अस्तिक्रिया द्वारा चिकित्सा करे ।

पार्श्वस्थि भग्न,—पशुका अर्थात् पंजरकी हड्डी  
टूटने पर रोगीको चढ़ा करके घी लगाये तथा जिस ओर  
की हड्डी टूटी है, उसके बन्धनस्थानका मार्जित कर उसके  
ऊपर कवलिता ( पूर्वोक्त अश्लेष चरन्लादि ) का  
प्रयोग करे, पीछे बेस्त्रिक नामक बन्धन द्वारा बड़ी  
दोशियातोसे बांध दे ।

स्वल्पभग्न—स्वल्पसन्धिके विच्छिन्न हानसे रोगी  
को तैलपूर्ण कटाहमें या द्रोणीमें ( चहचहसे ) सुला कर  
मूसल द्वारा इसका अक्षेप उठा छे तथा उसमें एकध  
सन्धि संयोजित होनेसे इन स्थानको स्वस्तिक द्वारा  
बांध दे ।

क्षुण्णसन्धि भग्न—क्षुण्णसन्धि अर्थात् बहुजिक  
विच्छिन्न होनेसे इस स्थानको अङ्गुल द्वारा मार्जित कर  
पीछे वहाँ पीडन करे तथा उसे प्रसारित और आकुञ्चन  
कर यथास्थान पर बैठिये और उसके ऊपर पृतसिञ्चन  
करे । जानू, गुल्फ और माणबन्धनके टूटने पर इसा प्रकार  
चिकित्सा करना होती है ।

प्रोबाभग्न,—प्रोबादेश यदि एक हो जाये या नीचेका  
ओर बैठ जाये, तो अथट्ट अर्थात् प्रोबाके परबात् मागन्धा  
मध्यस्थक और दोनों हनु ( मुक्कसन्धि ) पकड़ कर उठाये  
तथा उसके चारों मार कुञ्ज अर्थात् पूर्वोक्त बटाहकी  
छाक रख कर कपड़ेसे बांध दे और रोगीको सात राति  
तक अच्छी तरह सुखाये रखे ।

हनुसन्धि भग्न,—हनुसन्धिके विच्छिन्न होनेसे इस  
की हड्डीको समानभावमें रख यथास्थान पर संयोजित  
करे और वहाँ स्वेद दे । पीछे यज्ञाङ्गी बन्धन द्वारा उसे  
बांध देना होगा । फिर वातघ्न मद्गदादीं वा पूर्वोक्त

काकोल्यादि मधुरगणोय द्रव्योंके काथ और कल्कके साथ घृतपाक कर रोगीके नम्यरूपमें प्रहण करने दे।

कपालभग्न,—कपालके भग्न होने पर यदि मज्जका जो बाहर न निकले, तो घृत और मधु प्रदानपूर्वक उसे बाध दे तथा सात दिन तक रोगीको घृत पान करावे।

हस्ततल भग्न,—दक्षिण हस्ततलके भग्न होने पर उसके साथ वामहस्ततल अथवा वाम हस्ततलके भग्न होने पर उसके साथ दक्षिण हस्ततल अथवा दोनोंके भग्न होने पर लकड़ीका हस्ततल बना कर उसके साथ खूब मज्ज-वृत्तसे बाध दे, पीछे उस पर आमतेल (कच्चा तेल) लगा दे। आरोग्य होने पर पहले गोबरका गुला, पीछे मिट्टीका गुला और हाथमें बल आने पर पत्थरका टुकड़ा उस हाथसे पकड़े।

अक्षक भग्न,—प्रोवादेशस्थ अक्षक नामक सन्धिके अधःप्रविष्ट होनेसे मूषल द्वारा उन्नत करके अथवा उन्नत होनेसे मूषल द्वारा अवनत करके खूब कस कर बाध दे। बहुसन्धि भग्न होनेसे पूर्ववत् ऊरु भग्नकी तरह चिकित्सा करनी होती है।

यद्यपि पतन या अभिघात द्वारा शरीरका कोई अङ्ग क्षत न हो कर केवल फूल उठे, तो शीतल प्रलेप और परिपेक द्वारा चिकित्सा करनी होती है। बहुत दिन पहले सन्धिके विप्रलेप होनेसे स्नेह प्रदानपूर्वक स्वेद प्रदान और मृदुक्रिया तथा युक्तिपूर्वक पूर्वोक्त सभी क्रियाओंका अच्छी तरह प्रयोग करे। काण्ड अर्थात् घृहत् अस्थि यदि टूट जाये और कुछ दिन बाद फिरसे समान भावसे संलग्न हो भर जाये, तो उसको फिरसे समान भावसे संलग्न कर भग्नकी तरह चिकित्सा करनी होगी। शरीरके ऊर्ध्वदेश अर्थात् मस्तकादिके भग्न होन पर साफ रुईकी बत्तीसे शिरोवस्ति या कर्णपूरणादिका प्रयोग करना होता है तथा बाहु, जङ्घा, जानु आदि अङ्ग का शास्त्रा प्रशास्त्राके टूटनेसे नस्य, घृतपान और वहि-प्रयोग करना होता है।

सन्धिसंस्थान यदि अनाविद्ध मालूम हो, अर्थात् हिलने डोलने लगे, कण्टकादि अथवा किसी दूसरो वस्तुके चुभने-सा मालूम न हो तथा वह स्थान अनुन्नत हो अर्थात् पार्श्वस्थ स्थानके साथ समता प्राप्त और अने-

नाङ्ग हो अर्थात् वहां जितने पदार्थ थे उनमेंसे कुलका सद्भाव हो तथा वे सब स्थान यदि अच्छी तरह आकुञ्चित और प्रसारित हो सके, तो जानना चाहिये, कि सन्धि सम्पूर्णरूपसे संश्लिष्ट हो गई है। (सुधुत चि० स्था०) विस्तृत विवरण भग्न शब्दमें देया।

विचर्त्तिन् (सं० त्रि०) १ विचर्त्तनशाल, भ्रमणशाल। २ परिवर्त्तनशाल।

विचत्मेन् (सं० क्ली०) १ विपथ। २ विशेषपथ।

विचर्त्तन (सं० क्ली०) वि-वृध्णिच्-त्युट्। १ बढ़ाने या वृद्धि करनेकी क्रिया। २ वृद्धि, बढ़ती। ३ छेदन। ४ खण्डन। ५ घृत। (त्रि०) ६ वृद्धिकारक।

विचर्त्तनोय (सं० त्रि०) वि-वृध्-णतीयर्। चर्त्तनयोय, बढ़ने लायक।

विचर्त्तयिषु (सं० त्रि०) विचर्त्तयितुमिच्छु वि-वृध्-णिच्-सन्-उ। विचर्त्तनेच्छु, जिसने बहुत बढ़ानेको इच्छा की हो।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ वृद्धि प्राप्त, बढ़ा हुआ। २ उन्नत, उन्नतिप्राप्त।

विचर्त्तिन् (सं० त्रि०) विचर्त्तितुं शीलं यस्य। १ चर्त्तन शील, बढ़ानेवाला। विचर्त्तयितुं शीलं यस्य। २ चर्त्तक, बढ़ानेवाला।

विचर्त्तण (सं० क्ली०) १ विशेषरूपसे वर्णन, खूब जोरसे बरसना। २ इष्टि न होना, वर्पाका अभाव।

विचर्त्तयिषु (सं० त्रि०) विचर्त्तयितुमिच्छुः वि-वर्ण-सन्-उ। वर्णन करनेमें इच्छुक।

विचल (सं० त्रि०) १ दुर्बल, कमजोर। २ विशेष बल-युक्त, बलवान्।

विचर्त्ति (सं० त्रि०) विगतज्वर, विगतताप, सन्ताप-रहित।

“वप्रस्थयन्त्ये मिथुना विचर्त्ती” (शुक् १०।६।१५)

विचश (सं० त्रि०) विरुद्ध वष्टोति वि-वश-अच्।

१ अवशीभूतात्मा, जिसकी आत्मा वशमें न हो। २ मृत्यु-लक्षणमें ब्रह्मबुद्धि, वह जिसको बुद्धि मृत्यु आने पर ब्रह्म हो गई हो। ३ अवाध्य, लाचार, बेवस। ४ अचेतन, निश्चेष्ट। ५ विह्वल, व्याकुल। ६ स्वाधीन, जो काबूमें न आवे। ७ मृत्युभीत। ८ मृत्युप्रार्थी। ९ असक्त,

त्रिसर्गैः कोर् शक्ति या बद्ध न हो । १० मृत्युकालमें  
निर्मीक, प्रमत्तचेता ।

विद्यशाना ( स० स्त्री० ) विद्यशका माय या धर्म ।

विद्यशीलता ( स० स्त्री० ) अविद्यशः विद्यशोऽन्ताः अमृततद्ग्राये  
चिन्ता । जिनमें विद्यश क्रिया गया हो, अमृतशोभत ।

विद्यस् ( स० स्त्री० ) विद्यस् विद्यम् । १ तैत्ति । २ घन ।  
( सूक् ११८७० )

विद्यसम ( स० स्त्री० ) वसन्तरहित, विद्यरु, मंगा ।

विद्यरु ( स० पुं० ) ब्रह्महीन, जिनके शरीर पर वस्त्र न  
हो, नग्न मंगा ।

विद्यश्रुता ( स० स्त्री० ) ब्रह्मश्रुत्याका माय या धर्म ।

विद्यस्वप् ( स० पुं० ) विद्योपेण वस्ते आच्छाद्यतीति वि  
द्यस्-विद्यम् । १ विद्यम् । विद्यस्तैः शिष्टैस्त्वाति  
वि बन्-महत्त्वं मस्य वस्यम् । २ सूर्य । ३ अर्कबुद्ध,  
अक्षरानका पीथा । ४ वेबता । ५ अक्षय । ६ वैद्य  
व्यत मनु । ( अथ ) । ७ मनुष्य । ( निषयु )  
( स्त्री० ) ८ परिचरथगोत्र ।

विद्यन्ता ( स० स्त्री० ) सूर्यनगरी । ( मेदिनी )

विद्यन्तम् ( स० स्त्री० ) विद्यो विविधयसर्गं धममुत्कर्मसर्गं  
वा तद्वात् सुपो लुक् मन्त्यलोपरछान्दसः । १ विधासन  
वाक् । २ विद्यन्तु परकाजवान् । ३ घनवान् ।

विद्यद् ( स० पुं० ) १ मात वायुर्मेसे एक । २ अग्निर्ही  
स त अर्धे अर्धात् शिखांसेस एक ।

विद्यार्क ( स० स्त्री० ) विद्येयताकर्त्ता विद्यार्क शो  
शाश्रापयै शैलीं पक्षीकं तर्कका देख कर म्याय करे ।

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) १ विद्यार्क्यं, विद्यारुते छापक ।  
२ वाक्यहीन । ( स्त्री० ) ३ वाक्य ।

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) १ कर्म, अगङ्गा । २ बितर्क ।  
३ विविध वाक्य । ( स्त्री० ) ४ विविध परस्पर आह्वान  
घननियुक्त । ( सूक् ११७८५ )

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) १ विविध आकाय, तरङ्ग तरङ्ग  
की वातघोष । २ विद्यार्क्य, अगङ्गा ।

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) विविध कथा या पाठयुक्त ।

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) १ विद्यार्क्योग्य । २ विद्यार्क्योग्य ।  
३ कथ्य ।

विद्यार्क्य ( स० स्त्री० ) वातरहित ।

विद्या ( स० पुं० ) विद्य वद् घञ्, विद्यो वाक् । १ कलह  
अगङ्गा । २ वितर्क, वाक्पुङ्गव । ३ धर्मशास्त्रोक्त धनवि  
मागादि विद्ययक्त न्यायादि, श्रुत्यादि न्याय । मनु  
संहितामें १८ प्रकारका विद्याव्यवहार कथा है जैम—  
१ श्रुतग्रहण २ निक्षेप ३ भस्माभिद्धत विद्यय  
४ सम्भूय समुत्प्राय, ५ दत्तका भनपकर्मा या श्रोधादि  
फिरस ग्रहण, ६ संविद्ध, ७ व्यतिक्रम ८ क्रयविक्रमा  
गुणयो, ९ न्यायिपाल और सामाविद्या १० वाक्  
पाठय्य, ११ वृण्डपाठय्य, १२ स्तन्य, १३ साहस १४ स्त्री  
संभ्रम, १५ पुत्रपता धर्म १६ पैतृक धनविभाग, १७ द्यूत  
और १८ पञ्च रत्न कर मेधादि पशुभोका लडागा ।  
व्यवहार देखो ।

४ मतमेद् । ५ मुक्कमेवाको, अक्षरतकी मुक्क ।

विद्याक ( स० पुं० ) विद्याक करनेवाला, अगङ्गा ।

विद्यादानुगत ( स० स्त्री० ) विद्याकर्त्ता, अगङ्गा करने  
वाला ।

विद्यादास्य ( स० स्त्री० ) जिस पर विद्या या अगङ्गा  
हो, विद्यायोग्य ।

विद्यादि ( स० स्त्री० ) विद्यादि गिति । विद्यो वयो ।

विद्यादी ( स० पुं० ) १ विद्या करनेवाला । २ मुक्कमा  
छडनेवालोंमेंसे कोई एक पक्ष, मुद्द और मुद्दाले । ३  
सङ्कोतमें यह स्वर जिसका किसी रागमें बहुत कम ध्व  
वार हो ।

विद्याधिक ( स० पुं० ) १ औ कये पर जोड़े हो कर ले  
जाय । २ धूम कर जोड़ें बेचनेवाला, फेरीवाला ।

विद्याग ( स० पुं० ) १ विद्य । २ ऐश्वर्यकार्य काटनका  
काम । ३ सूधीकाय, सूरीका काम ।

विद्यार ( स० पुं० ) १ स्वरमेद् । २ विद्यारण्य ।

विद्यारण्य ( स० स्त्री० ) विद्यारणेन्नु, जो वाचा सेना  
वाहता हो ।

विद्यास ( स० पुं० ) १ निर्वासन । २ प्रयास । ३ वास ।  
४ उच्छ्र, मंगा ।

विद्यासन ( स० स्त्री० ) १ निर्वासन । २ वास करना ।  
विद्यासनवत् ( स० स्त्री० ) निर्वासनविशिष्ट, जिसमें निधा  
सन किया गया हो ।



विवासयित् ( स० त्रि० ) निर्वासनकारयिता, जो निर्वासन कराते हैं।

विवामस् ( स० त्रि० ) विवसन, विवस्त्र, उलङ्ग, नंगा।

विवासित ( स० त्रि० ) १ निर्वासित। २ जिसे उलङ्ग किया गया हो।

विवास्य ( स० त्रि० ) विवासनयोग्य, जिसे निर्वासित किया जा सके।

विवाह ( स० पु० ) विजिष्ट वहनम् वि-वह-घञ्। उद्वाह, दारपरिग्रह, शादी, ध्याह। पर्याय—उपयम, परिणय, उर्याम, पाणिपीडन, दारकर्म, करग्रह, पाणिग्रहण, निवेश, पाणिकरण। उद्वाह तथा पाणिग्रहणमें पार्यायण है। इस विषय पर पूर्णरूपसे विचार आगे किया गया है।

सृष्टिप्रवाहका संरक्षण करना प्रकृतिका प्रधानतम नियम है। जड़ और चेतन इन दोनों पदार्थोंसे ही वंशविस्तारका विशाल प्रयास बहुत दिनोंसे परिलक्षित होता आ रहा है। रुद्रशक्तिसे सृष्ट पदार्थोंका संहार होता है, फिर ब्राह्मी शक्ति सहस्र सहस्र सृष्टिका विस्तार करती है। विष्णुशक्तिके पांशुन-पोषण करनेवाली क्रियासे सृष्ट पदार्थ पुष्ट होता और विशाल विश्वप्रज्ञाण्डमें फैलता है। उत्पत्ति और विस्तृति ब्राह्मी और वैष्णवी शक्तिकी सनातनी क्रिया है। यहा हम सृष्ट पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहतिके सम्बन्धमें कोई बात नहीं कहेंगे। केवल इसकी विस्तृतिके सम्बन्धमें एक प्रधान विधान तथा उपायके विषय पर आलोचना करेंगे।

बीज और जात्रा आदि जमीनमें रोपनेसे ही उद्भिद्-वंशकी वृद्धि होती है। इस बातकी प्रायः सभी जानते और अनुभव करते हैं। "पुरुषुजादि" एक प्रकारका उद्भिद् है। यह अपने शरीरको विभक्त करके ही अपने वंशका विस्तार करता है। जीवाणुओंमें भी ऐसी ही वंशवृद्धिकी प्रक्रिया दिखाई देती है। प्रोटोजोया (Protozoa) नामक बहुत छोटे जीवाणु हमारी आँखोंसे दिखाई नहीं देते, किन्तु अणुवीक्षणयन्त्रसे यह स्पष्ट दिखाई देते हैं। अपने शरीरको विभक्त कर इस जातिके जीवाणु अपने वंशकी वृद्धि किया करते हैं। इन सब जीवाणुओंको इसके लिये अपना शरीर छोड़ देना पड़ता है। इसके सिवा इनकी वंशवृद्धिका कोई दूसरा उपाय नहीं। इनकी

अपेक्षा ऊँचे दर्जेके जीवाणुओंमें या जीवोंमें इस तरहके बहुतेरे नियम दिखाई देते हैं। इनके वंश-विस्तारके लिये प्रकृतिने स्त्रीसंयोगका विधान नहीं किया है। जीव जब सृष्टिके ऊँचेसे ऊँचे स्तोपान पर चढ़ जाता है, तब इनमें स्त्री पुरुषका प्रमेद् दिखाई देता है। इसी अवस्थामें स्त्री पुरुष संयोगमें वंशविस्तार प्रक्रिया साधित होती है।

जीवके हृदयमें ब्राह्मी शक्ति और वैष्णवी शक्तिने इसी कारण अत्यन्त बलवती प्रवृत्ति देखी है। ऊँचे दर्जेके प्राणिमात्रमें ही स्त्री-पुरुष संयोगवामना दिखाई देती है। और तो क्या—पशुपक्षियोंमें भी स्त्री-पुरुष संयोगकी बलवती स्पृहा और दोनोंका आत्मिक तथा प्रीति यथेष्ट-रूपसे दिखाई पड़ती है। जीव जितने ही सृष्टिके ऊँचे स्तोपान पर चढ़ जाते हैं, उतने ही पुरुषोंमें स्त्रीग्रहणकी वासना बलवती हो जाती है। पशुपक्षियोंमें भी स्त्री-ग्रहण करनेके निमित्त विविध चेष्टाये दिखाई देती हैं। पशु भी स्त्रीप्राप्तिके लिये आपसमें भयङ्कर द्वन्द्व मचा देते हैं। एक मिहनीके लिये दो सिंह प्राणान्तक युद्ध करते हैं। इस युद्धके अन्तमें जो सिंह विजय प्राप्त करता है, उसी सिंहका मिहनी अनुसरण करती है और बड़े उत्साहके साथ।

असम्य समाजकी प्राथमिक विवाह-पद्धति।

मानव समाजकी आदिम अवस्थामें भी इस तरह वीरविक्रमसे ही स्त्रीग्रहण करनेकी प्रथा दिखाई देती है। चिपेवायान (Chippewayan) जातिके लोग स्त्रीप्राप्तिके लिये भीषण युद्धमें प्रवृत्त होते हैं। युद्धमें जो जीतता है, उसी वीरवरको स्त्री मिलती है। टास्की (Tasli) जातिके लोगोंमें भी युद्ध करके ही स्त्रीग्रहण करनेकी प्रथा है। बुश्मेन (Bushmen) जातिके लोग बलपूर्वक दूसरी स्त्रीको ला कर उसके साथ विवाह कर लेते हैं। अष्ट्रेलियाके अन्तर्गत कुइन्सलैण्डप्रवासी माले वरल्लेके साथ युद्ध कर स्त्रीप्राप्ति करते हैं।

कुइन्सलैण्डके अष्ट्रेलियामें इस तरहका भी काण्ड देखा जाता है, कि एक स्त्रीके लिये चार पाच आदिमियोंमें भगडा खडा होता है और वह स्त्री अलग खडा रहती है और यह कौतुक देखा करती है। ऐसे भगडेमें प्रनुष्य अद्गु भद्गु हो जाते तथा कभी कभी रक्तस्रोत भी

प्रभावित हो जाता है। अन्तमें जो जीतता है, उसीको वह स्त्री बध्मान्य पहनाती और बन्दीका अनुगमन करती है।

असम्य समाजक भावित्त्व अवस्थामें सर्वत्र ही इसी तरह स्त्री पुरुषों में स योग होता था, इसमें जरा भी सम्बेद नहीं। इस समय भी इस समाजमें यह प्रथा विद्यमान है। किन्तु इस अवस्थामें नरनारियों का समाज बन्धन अममम है। वे जुड़क जुड़क पक्षियोंकी तरह समाजमें एक बांध कर रखते हैं, फिर भी इन सब दुखोंमें आज भी सामाजिक नियम और शृङ्खला भावि दिखार नहीं देते। मनुष्य मनुष्योंमें कोई भी सम्बन्ध-बन्धन नहीं होता, नरनारियोंमें भी किसी तरहका सम्बन्ध नहीं होता। सामयिक उदात्तना या सामयिक मोति द्वारा ही इस श्रेणीक असम्य मानवद्वन्द्वक स्त्री-पुरुषोंके संसर्ग से सम्मानोत्पत्ति हुआ करती है। फलता इन तरहकी प्रथा हमारे शास्त्रों द्वारा प्रवर्तित किसी तरहके विवाहक अन्तर्मुक्त नहीं है।

बुसमेन लोग जब कोई स्त्री प्रहण करने लगते हैं, तब वे बन्धन रज्ज्याकी अनुमति हो खेत हैं। सिबा इसके इनमें विवाहकी वृत्ति कोई प्रथा नहीं है। विविवायनों में अब तक विवाह प्रचलित हो नहीं हुआ। एस्कुइमो जातिकी लोगोंमें समाजबन्धन भी नहीं और न विवाह प्रथा ही है।

असेइट जातिकी लोग पशुपक्षियोंकी तरह रजा जातिमें उपगत हो कर बंधका विस्तार करते हैं, इनमें भी विवाह-बन्धन नहीं। अरेके समजपृच्छात्ममें लिखा है कि आरावाक (Arwak) जातिमें स्त्री-पुरुषका मिश्रण सामयिक मात्र है। इनमें विवाहबन्धन दिखाई नहीं होता। वेदा और निम्न कार्लिकोर्गियावासियोंमें विवाहबन्धन तो वृक्षी बात है, इनका भाषामें विवाहका अर्थवाचक कोई शब्द ही नहीं मिलता। बनवासी पशु पक्षियोंकी तरह ये पक्षियोंके संसर्गस मन्तमोत्पादन किया करते हैं।

किन्तो किसी असम्य जातिमें स्त्री-प्रहण करनेको जो प्रथा दिखाई देता है, यह भी विवाह-उद्देश्यको पूरी करने वाला नहीं, कबल सामयिक क्षणम्याको नियम मात्र है। किन्तो स्थानक असम्योंमें भाप जसा उसकी बगलमें बैठ भागक सामने स्त्री विवाहकी सम्मति प्रकाश करती

है। यह प्रथा हमारे वैवाहिक यज्ञकी अस्पष्ट शीघ्र स्मृति मासूम होता है। टोडा जब स्त्री प्रहण करते हैं, तब कन्या पर आते ही किष्किन्नाक गाहेस्वय कर्मका सम्पादन करता है, वस यहो उनके विवाहकी एकमात्र क्रिया है।

म्युगिनोदेशक अधिवासियोंमें स्त्री प्रहणकी पद्धति अतीव सहज है। कन्या स्वयं घरका मयने हाथसे पान तम्बाकू देती है और पर इसक हाथसे उपहारकी इन चीजों का ले लेता है। यहो उनके विवाहका नियम है, वृत्तरा कुछ नहीं। नावागो (Navago) जातिकी लोगोंकी विवाहपद्धति बहुत साधी है। इनकी रीति यह है, कि फल से मरा हुआ एक 'पीटा' या पात्र रज्ज वर और कन्याको भामने सामने बैठाते हैं और उस पात्रमें रचे फलका एक साप आते हैं। इसी घटनास से विवाह-सूत्रमें भावक हा आते हैं। प्राचीन रोममें भी वर कन्या एक साथ पीठा खा कर विवाह-बन्धनमें बंध आती थी।

ये सब पद्धतियां ही विवाह-पद्धतियोंकी भावित्त्व प्रथा हैं। स्त्री-पुरुषोंके एकत्र रह कर घरका काम भावि करना ही तो श्रेणीका एकत्र हा श्रेणीका विर कर घरका काम करना होता है। इन सब पद्धतियोंक मूलमें अन्तर्कृत और प्रच्छन्न रूपसे यह मनुसमय समाजहितकर उद्देश्य छिपा था तथा अधिवर्धित भावसे असम्य समाजमें आज भी ये सब प्रथाये बली जाती हैं।

इस श्रेणीके असम्योंमें जैसा विवाह-बन्धन बोला है, पक्षित्याग मो वैसा ही सहज है। विविवायन बात की बातमें स्त्रीको मार कर घरसे निकाल देते हैं। निम्न कार्लिकोर्गियाके पस्कुइ (Percue) कर् लिखा रखते हैं ये इनस खैंडो बांधियोंका तरह काम सेते हैं और जब कभी इनमें किसीसे बटपट हुई तो भैंटा परकू कर निकाल बाहर कर देते हैं।

टुपिस (Tupis) जातिकी लोगोंमें श्रेणियागकी पद्धति मो यैसी ही दिखाई देती है। ये भी बहुतेरे लिखा रखते हैं और सामान्य कारणों पर ही एकको निकाल वृत्तीको रज्ज छेने हैं। तासमेनियावासियों में भी यैसी रीति प्रचलित है। कोमियोंमें आज भी विवाह-पद्धति दिखाई नहीं देती। मलय-पश्चिमिया (Malayo Polynesian) द्वीपके रहनेवाले असम्य

होने पर भी कुछ समुन्नत हैं। फिर भी, इनमें विवाह वन्धनकी अच्छी प्रथा दिखाई नहीं देती।

ताहेता (Taheti) आदि जातियोंमें भी इस धर्मीत प्रयोजनीय सामाजिक कार्योंकी कोई अच्छी प्रथा नहीं है।

किसी किसी असभ्य जातिके लोगोंमें स्त्री प्रहणका विषय पशुओंकी अपेक्षा भी घृणित है। इनमें पात-पात्रियोंका कुछ भी विचार नहीं है। ये समाजकी प्रथाके अनुसार अपनी बहन तथा बेटियोंके साथ भी सम्भोग-क्रिया सम्पादन कर सकते हैं। इस विषयमें त्रिपिवायन लोग उदाहरणीय हैं। कादियास (Kadiak) जातिके लोगों में भा इस तरहकी प्रथा देखी जाती है। करेन जातिके लोगोंमें पिता पुत्रीमें, भ्राता-भगिनीमें भी स्त्रा-पुरुष का सम्बन्ध होते देखा जाता है। बास्टियान (Bastian) ने लिखा है, कि अफरिकाक गनजलभस और गावूत अन्तरोपके राजे अपने वंशकी शुद्धताकी रक्षा करनेके लिये अपनी कन्याको रानी बना लेने हे। उधर रानिया पतिके मरने पर अपने ज्येष्ठ पुत्रको पतिका आसन दे देती हैं।

भाई बहनमें विवाह।

असभ्य जातियोंमें पात्रापात्रका विचार करनेका पद्धति है ही नहीं। पहले ही कहा जा चुका है, कि त्रिपिवायनोंमें अपनी कन्यासे विवाह कर लेनेकी प्रथा प्रचलित थी। क्लाविजेरा (Clavigero) कहते हैं, कि पानुचिज (Panuchese) जातिके लोगोंमें भाई बहनमें भी विवाह-बन्धनकी प्रथा प्रचलित है। काली (Cah) जातिमें मतीजी, भांजीके साथ भी विवाह प्रचलित है। इस जातिमें जो सबसे प्रधान और बड़े सम्प्रान्त कहे जाते हैं, वे वैरोकटोक अपनी बहनके साथ विवाह सम्बन्ध कर लेते हैं। टरकुईमिडाने न्यू स्पेनमें भाई-बहनमें इस तरहके ३४ विवाहोंकी बात लिखा है। पेरु प्रदेशमें इट्टु जातिके लोगोंने प्रधान सामाजिक नियमानुसार सहोदरा जेठी बहनका पाणिप्रहण कर लेते हैं। पलिनेसियामें भी ऐसा ही नियम है। साण्डु-इच द्वीपके अधिवासियोंमें राजवंशके लोग भी सहो-दरा बहनके साथ विवाह किया करते हैं। डुरोने लिखा है, कि मालागासी (Malagasy) जातियोंमें सहोदरा

बहनके साथ विवाह कर नहीं सकते; किन्तु सौतेली बहनके साथ विवाह करनेमें इनका कुछ भी बाधा नहीं।

प्रतीच्य जगत्में भी भाई बहनके विवाहकी प्रथाका विलकुल धमप्राय नहीं। इजिप्टकी टोलेमी (Ptolemy) वंशमें भाई-बहनके विवाहके बहुतरे प्रमाण हैं। स्कन्द नाममें भाई-बहनके विवाह काता है। हिमस्ट्राला सागा (Himstrala saga) में लिखा है, कि राजा निरोद (Nirod)ने अपनी बहनके साथ विवाह किया था। यह विवाह कानून द्वारा जायज था।

चचेरी बहनके विवाह वन्धनका उदाहरण तो बहुत अधिक दिखाई देता है। पत्राहमने सागाके साथ विवाह किया था। कानानाइट (Cananites), अरबों, इजि-पीय, आसीगय और फारमवालोंमें इस तरहका विवाह प्रचलित था। स्थान उद्येयमें अब भी प्रचलित है। वेदाओंकी सामाजिक रीत्यनुसार अपनी जेठा बहन और कुशा, भांजी आदिके साथ विवाह नहीं कर सकते, किन्तु छोटी बहनके साथ वे कर लेते हैं। इसके सिवा इनमें विवाह पाण्डनका विधान नहीं है। वे लोग कहते हैं, कि पत्न्य मृत्यु ही एकमात्र विवाह-बन्धन तोड़नेमें समर्थ हो सकती है। किन्तु इसके पड़ोसी फाण्डोय लोग विविध प्रकारमें इनकी अपेक्षा उन्नत हैं, फिर भी, विवाह-बन्धनके सम्बन्धमें इनकी ऐसा दृढ़ धारणा नहीं है।

स्त्रीपुरुषोंका पटुविवाह।

पयूजियन आदि कई असभ्य जातियोंके लोगोंमें कई पुरुष मिल कर एक रमणीके साथ विवाह करनेकी प्रथा है। किन्तु यह प्रथा उन्हां लोगोंमें ही नहीं, बरं सि हल, मलवार और तिब्बतकी उच्च श्रेणोंके लोगोंमें भी यह प्रथा देखी जाती है। दूसरी ओर बहुपत्नीका प्रहण सभी देशोंमें सब समय दिखाई देता है। बहुत ऊंचे दरजेके लोगोंमें भी यह प्रथा जारी है। सुविषयात् प्रन्ध-रचयिता मनिथिका विश्वास है, कि यौन दुर्नीतसे नमाजमें नित्य ही अशान्ति मचनी रहती है। किन्तु यह बात इतिहासके सिद्धान्तसे सम्मन नहीं। पलिउटिन (Aleutin) द्वीपके अधिवासी स्त्री-पुरुषोंमें नैतिक भाव

बहुत कम है; किन्तु इनमें कसूह बहुत कम हो दिखाई देता है। मिटर कूकका कहना है, कि "मैंने बार तक यिन हैनोंका समझ किया है उनके समान शान्ति प्रिय और निर्द्वेषाद् भावनों में बहुत कम ध्ये हैं। यदि अतिथी बुद्धताका अन्वेषण करना हो, तो मैं स्वर्ण के साथ कह सकता हूँ, कि वे इस सम्बन्धमें सम्प्रगण्य के भावशैल्यरूप हैं।"

परिन्तु और धामार्थिक शान्ति ।

हर्षटस्पेन्सरका कहना है—"यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती कि पति पत्नीमें प्रेम रहनेसे ही दूसरी किसी तरहकी मर्यादा न मधीगी। थेलिन्कट (Thelinket) शान्तिके योग परमा और पूर्वीको बड़ी स्त्री प्रमताकी दृष्टिसे देखते हैं। इनकी स्त्रियोंमें भी विशेष लज्जा, भ्रमना और सतीत्य दिखाई देता है, किन्तु इनका समाज अत्यन्त अप्रम्य है। ये बड़े भूठे, भार और निर्दयी होत हैं। ये वास वासियोंको तथा क्विथोंका भातकी भातमें मार शान्ति है। बेबुजाना (Bebuana) शान्तिके जागोंका म्भाब भी ऐसा ही है। ये बालू, भूठे और भर भातक होते हैं, किन्तु इनकी श्रियां अज्ञावती और मता साध्या हैं। दूसरी और ताहिति (Tahitians) शान्तिके लोग शिखादिशान्तियोंमें तथा सामाजिक श्रुतियोंमें बहुत उन्नत हैं, किन्तु इनमें परदाग सहवास मभाय रूपसे प्रचलित है। श्रियोंमें पराये पुरुषके साथ सहवास करनेमें काह रुकावद नहीं। फिजियन लोग मयभूर विन्ध्यसपातक और निर्देषा होते हैं, इनकी यदि गर दासस हा कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं हो सकती। किन्तु इनकी श्रियां सतीत्य स रक्षुणमें जरा भी कसर नहीं उठा रकतो। कहीं ता कह सकते हैं कि अधिपति अत्यन्त समाजमें श्रियोंका धर्म उत्तमताके साथ संरक्षित रहता है।

कौमार श्रमिन्धार ।

कनियागा शान्तिमें जब तक मङ्कियोंका विवाह नहीं हो जाता, तब तक वे बैरकदोक धपने इच्छासुसार पर पुरुषोंके साथ मीत्र उठा सकती हैं। किन्तु विवाह हो जाने पर उनको सना बनना हा होगा। परदाटक हेरेताने

दिखा है कि कुमाना शान्तिकी कुमारियां विवाहके पुर दित तक बहुतेरे पुरुषोंकी उपयोग्या होने पर, मी के समाज में शैयो नहीं गिनी जाती। किन्तु विवाहके बाद ही पर पुरुषका सहवास शेषावह गिना जाता है। पेरुवियोंके सम्बन्धमें पो० पिञ्चरैण जिन्हा है, कि इनकी श्रियां हर तरहसे पत्नीको अनुषरिणी ही। पतिके सैका इनका नरिज और किसी दूसरे पुरुषके साथ दूषित नहीं होता। किन्तु विवाहके पहले इनकी कन्याये मी जिस किसीक साथ संसर्ग कर सकती हैं। इसमें कोई बाधा नहीं हो जाती और इनका येमा कम शेषावह भी नहीं माना जाता। श्रियका शान्तिके लोगोंने मी लोक येनी ही प्रया प्रचलित है। विवाहके पहले इनकी मी लङ्कियां सैकड़ों पुरुषोंका उपयोग्या होने पर भी लोग उनक पाणिग्रहण करनेमें तनिक भी नहीं हिचकत; किन्तु विवाहके बाद यदि स्त्री परपुरुषक प्रति कुहुरिसे देखे, तो वह समाई नहीं होता।

असंगत धार संगत विवाह ।

इन सब प्रमाणोंसे माहूम होता है, कि सामाजिक श्रुतुताकी क्रोमार्गतक साथ पतिपत्ताक सम्बन्धका क्रोमार्गता कुछ मो सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इन कई प्रमाणों पर किमी तरहका मिश्रान्त किया जा नहीं सकता। हम लोग समाजतत्त्वकी आलोचना कर रूप्य शैलमें हैं कि जो पुरुषका सम्बन्ध यदि सुदृढ़ न हो तो सामाजिक-बन्धन किसी तरहस टूट नहीं हो सकता। म्ना-पुरुषका सम्बन्ध श्रितना ही टूट होता है, उतना ही समाज उन्नत होता है। शै बार असम्य समाजक उदाहरण्य कमी प्रमाण गदा मामे जा सकत। अमन्क समस मानर समाजकी क्रोमार्गतक इतिहासक साथ विवाह-बन्धन-सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। प्रत्येक सम्भ समाजमें हो पारिवारिक दृढ़ बन्धनक साथ साथ सामाजिक श्रुतुताकी क्रोमार्गति कच्छी तरह दिखाई देती है। पारशर्य समाजतत्त्वविद् पत्रिष्ठोंने असंगत और संगत विवाहके सम्बन्धमें बड़ा आलोचना की है। हम यहाँ इसके सम्बन्धमें दो बार बात कहेंगे। हम इन शैली वैदेशिक भाषोंका मनु संहितामें जिये "असंगत" और "संगत"क मध्ये प्रतिनिधि नहीं मानते। फिर यथोचित शब्दक अभाव

में हम Exogamy शब्दको असंगत विवाह और Endogamy शब्दको संगत विवाह मान लेते हैं।

पश्चात्य पण्डितोंमें मिष्टर योहान एफ मेकलेनेनने आदिम समाजकी विवाह प्रथा नामकी एक उपादेय पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकमें उन्होंने एक दोनों तरहके विवाहोंकी आलोचना की है। उनका कहना है, कि आदिम समाजमें दोनों तरहकी स्त्रीग्रहण-प्रथा दिखाई देती है। जैसे—एक श्रेणीके लोग अपनी जातिसे विवाहके लिये कन्याग्रहण नहीं करते। इसीका नाम है—Exogamy या असंगत विवाह और दूसरी एक श्रेणीके लोग अपनी जातिसे विवाहार्थ कन्याग्रहण किया करते हैं, इसके कहते हैं संगत या Endogamy। अपहरण करके भी स्त्रीग्रहण प्रथाकी आलोचना हम ग्रन्थमें की गई है। पण्डित-प्रवर हर्वाट स्पेन्सरने मेकलेनेनके आदिम समाज का विवाह सम्बन्धीय सिद्धान्तोंका खण्डन किया है।

मेकलेनेनका यह एक सिद्धान्त है, कि आदिम समाजमें सदा सर्वादा ही लड़ाई भगडा और फलह हुआ करता था। इस अवस्थामें वीरोंको या योद्धाओंको ही अधिकार मिलते थे। इसलिये वे उत्पन्न पुत्रियोंको मार डालते तथा पुत्रोंको बड़े यत्नसे पालनपोषण करते थे। इस अवस्थामें समाजमें कन्याओंका बड़ा अभाव हुआ। इससे एकड़ एकड़ कर विवाह कर लेनेकी प्रथा प्रचलित हुई। और इसीलिये Exogamy या असंगत विवाहकी प्रथा पहले प्रचलित हुई थी तथा यह विवाह बहुत दिनों तक स्थायिरूपसे समाजमें टिक गया। अन्तमें अपने वंशका कन्याविवाह सामाजिक नियमोंमें बिलकुल ही दोषावह हो उठा। अपनी जातिके लोगोंमें कन्याओंके अभाव होनेसे जिस प्रथाकी प्रथम उत्पत्ति हुई थी, समय पा कर वही सामाजिक विधिमें परिणत हो कर संगत कन्या-विवाह धर्मविरुद्ध गिना जाने लगा। यही मिष्टर मेकलेनेनका एक सिद्धान्त है। उनका और भी कहना है, कि कन्याके अभावके कारण कई मर्त्तार करनेकी प्रथाकी भी उत्पत्ति हुई है।

कन्या अपहरण कर विवाह करनेकी प्रथा इस समय भी अनेक स्थानोंमें दिखाई देती है। जिन समाजोंसे यह

प्रथा दूर हो गई है, उन समाजोंमें इस प्रथाका आभाव और पद्धति वैवाहिक घटनाओंमें बहुत आनुसङ्गिक कार्योंमें दिखाई देती है। मिष्टर मेकलेनेनके बहुत सिद्धान्तोंमें पण्डित-प्रवर हर्वाट स्पेन्सरने यथेष्ट अमङ्गति प्रदर्शन की है। लेनेनका कहना है, कि सभ्य समाजमें असंगत विवाह प्रथाका लोप हुआ है। स्पेन्सरने लेनेनकी युक्ति और उदाहरणोंको उद्धृत कर हम सिद्धान्तका खण्डन किया है। अति सुसम्बन्ध भारतीय ब्राह्मण-सम्प्रदाय असंगत विवाहने ही पक्षपाती है।

लेनेनका कहना है, कि अमभ्य समाजमें कन्याको मार डालनेकी प्रथा प्रचलित थी। इसीलिये कन्याओंका अभाव हो जाने पर कन्यापहरण किया जाता था। हर्वाट स्पेन्सरने इन दोनों सिद्धान्तोंका खण्डन किया है। उनका कहना है, कि अमभ्य समाजमें जैसे कन्यायें मार डाली जाती थीं, वैसे ही लड़ाई भगडेमें कितने ही पुरुष भी मारे जाते थे। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि केवल कन्याओंकी ही संख्या कम होती थी। जिस समाजमें कन्याओंकी संख्या कम होती है, उस समाजमें बहुविवाह-प्रथा अममभव हो जाती है। लेनेनने स्वयं ही लिखा है, कि फ्युमियानगण कन्यापहरण कर विवाह किया करते हैं और उनमें बहुविवाह-प्रथा प्रचलित है। बहुविवाह कन्याओंका कमोका घातक नहीं। नासमेंदियामें बहुविवाहका यथेष्ट प्रचलन है। लायड (Lloyd)ने लिखा है उनमें अपहृता कन्याओंका विवाह ही अधिक दिखाई देता है। आदिम अधिवासियोंमें अफ्रीलियाके अधिकांश लोगोंके पास दो स्त्रियां हैं। कुइन्सलेण्डकी मेकाडामा जातिके लोगोंमें स्त्रियोंकी संख्या अत्यधिक है। किन्तु वहाँका प्रत्येक व्यक्ति दोसे पांच तक स्त्रियां रखता है। दक्षिण-अमेरिकाकी माकोटा जातिके लोगोंमें बहुविवाह और स्त्रीहरणकी प्रथा मौजूद है। दक्षिण अमेरिकाके ब्रेजिलियनोमें भी ये दोनों प्रथायें अक्षुण्ण दिखाई पड़ती हैं। फिर कारिबोंमें भी ये दोनों प्रथायें जोती जागती दिखाई देती हैं। हम्बोल्ट (Humboldt)ने इसके सम्बन्धमें बहुतेरे उदाहरण दिखाये हैं। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि कन्याओंके अभावके कारण ही स्त्री अपहरण करके विवाह करनेकी प्रथा प्रचलित हुई थी।

मेकडेनेनका दूमरा एक यह सिद्धांत है कि कन्या  
 हत्याप्रथा प्रचलित रहनेसे ही कन्याओं की कमी हुई।  
 इसी कारण भाद्रिम समाजमें स्त्रीहरण और बहुमर्तार  
 ( Polyandry ) कलकत्ता प्रथा प्रवर्तित हुआ करती है।  
 यह सिद्धांत भा युक्तिम गत नहीं। क्योंकि वासमेनियन  
 मन्ट्रे कियन इकीटा और द्वा द्विमिदनेमि आज भी बहु  
 मर्तृकता विवाह नहीं देती। वसुधुसो जातिक  
 लोगोंने यह प्रथा प्रचलित है। किन्तु ये अब तक नहीं  
 जानते कि स्त्रीहरण किस विधिवाका नाम है। टोहाओ  
 म बहुमर्तारकी प्रथा प्रचलित है मदी, किन्तु इनमें अ  
 हरणपूर्वक पाणिप्रदणप्रथा विच्युज्य ही विवाह नहीं देती।  
 कोमादा न्यूजोसोहर, सेपका और कालिकासिंधी  
 के अधिवासियोंमें सगोत्र और असगोत्र दोनों तरहकी  
 प्रथाके अनुसार विवाह प्रचलित है। पयुजियन कारिब,  
 परुडुसो बारण, हटेनट्ट और प्राचोन मिडेनेमि बहु  
 विवाह और बहुमर्तार करनेवाली प्रथा विवाह देती है।  
 होकोहम और कियोवा जातिके लोगोंने अब तक 'अ  
 हरण' नामा विवाहप्रथा नहीं है।

स्वैरसत्ता कहना है, कि कन्याओं का अपहरण कर  
 स्त्रीहरण करनेका प्रथा कन्याक मार डालनेके कारण  
 कन्याओं क अमाय होनेके फलसे प्रचलित नहीं हुई थी।  
 भाद्रिम समाजमें स्त्रीहरण मा अन्धकार सम्पत्तिमें  
 सम्मिलित था। इस तरह समाजमें युद्धविग्रहके फलमें  
 अन्नलैशामे हानेवासीका समी घनरत्नों क साथ साथ  
 स्त्रीहरण मा अपहरण कर लेते थे। जियां वामी रूपमें  
 अपरती रूप मा स्त्रीरूपमें अग्रहण होती था।  
 समस्य समाजमें इस तरहकी लारीहरणप्रथाका अमाय  
 नहीं था। उत्तरमें सिन्हा है—सामायानमें विजयो  
 पस मापसमें उग्र लुई हुए मणालिका बंदकार करता  
 था, तब त्रिवेदीका भी बंदपारा होता था। इतिवाह पद्धतिमें  
 मादुम होता है, कि प्राचीन नृमानियोंमें पवित्र इक्षियन  
 नगरका मूट कर आ जियां प्राप्त की थी इन्होंने अापसमें  
 रवका भी विभाग किया था। आधुनिक इतिहासम भी  
 इस तरहकी घटनाका अभाव महा। इसी प्रमाणित  
 होता है कि युद्धविग्रहक साथ साथ स्त्रीहरणका कारण  
 सिद्धकी घटना थी।

भाग खड कर इस तरहका स्त्रीहरण योरत्वगौरव  
 परिचायक है। उदा। समाजमें स्त्री अपहरण करनेवाले  
 विशेषरूपसे सम्मानित थे। इस तरह असंगोत्र विवाह  
 समाजमें आदृत हो गया। अन्तमें साधारण विवाहमें भी  
 इस समय यह समरसत्ता और दूमधाम गौरवजनक  
 समर्थो ज्ञान लगी। इसीसे आज भी हम इस देशके  
 मनेक स्थानोंमें ही विवाहमें एक तरहसे समराहम्यर  
 देखते हैं। महाभारतमें कन्यापहरणपूर्वक विवाहका  
 उदाहरण पाया जाता है। मनुसंहितामें जिन आठ तरह  
 के विवाहोंका उल्लेख है, उनमें राक्षस और पिशाच  
 विवाह भाद्रिम अवस्थाके विवाहकी ही ऐतिहासिक  
 स्मृति है। राक्षस विवाहके सम्बन्धमें मनुने किया है—

"इत्या दित्वा च भित्वा च क्रोडन्ती पदम्।  
 प्रथम कन्याहरण राज्या विपिकम्भवे ॥" (मनु ३।१३)

मेधातिथिका कहना है कि कन्यापक्षसे बसपूर्वक  
 कन्याहरण करके विवाह करना राक्षस विवाह कहा जाता  
 है। इस अवस्थामें कन्याप्रदानमें कोई अक्षयन उप  
 स्थित हो तो बरपक्षकी खादिये, कि वे सारी भाद्रिस  
 मारपोट कर उदाहरवावारा भाद्रिसे सुरक्षित दुर्ग (किले)  
 की नष्ट छूट करके कन्यापहरण कर लें। अनाया कन्या  
 यह कह कर रोती च कि तुम लोग मेरी रक्षा करा,  
 मुझे हरण कर ल जाता है, यही राक्षस विवाह है।

दूसरे एक विवाहका नाम पैशाच विवाह है। मनु  
 कहते हैं—

"पुत्रा मतां प्रमतां वा रतां पत्नीपगच्छति।  
 व पापिषो विवाहनां पैशाचक्याश्माडमः ॥" (मनु ३।१४)

तुमा, मत्ता या प्रमत्ता कन्याका छिप कर अग्निमर्षण  
 करना हा पैशाच विवाह है। मित्रिता अर्थात् स्त्रीई हुई  
 या प्रपणके लक्षमें मत्त या और किसी तरहकी मत्ताका  
 वस्तुओं द्वारा भेतनार्थहित कन्याका अग्निमर्षण कर  
 इसकी स्त्रीक रूपमें परिणत करना अपरलत अग्रयण काण्य  
 कहा गया है। मनुके मतसे क्षत्रिय राजस विवाह कर  
 भवते हैं। किन्तु ब्राह्मणोंक लिये वृक्षम और पैशाच  
 ये दोमो तरहके विवाह ही निम्नोप है। राक्षस और  
 पैशाच विवाहमें कन्या और कन्याके अग्निमायककी  
 अनिच्छा हो रहता है। राक्षस विवाह इन प्राधान्यमय,

पैजाच विवाह वञ्चनामय है। ये सब विवाह पाणि-  
ग्रहण संस्कारसे पृथक् हैं। क्योंकि, इन सब विवाहोंके  
पूर्व ही कन्याका कन्यात्व नष्ट हो जाता है। मेधातिथिने  
इसके सम्बन्धमें बहुत सूक्ष्म विचार किया है।

जा हो, असम्भ्य समाजोंमें पैजाचविवाहकी प्रथा देखी  
नहीं जाती। इनमें राक्षस विवाहकी प्रथा ही प्रचलित  
दिखाई देती है और पिछले समयमें भी इस तरहका  
विवाह गौरवजनक समझा गया है।

विवाह और वीरत्व।

समाजकी आदिम अवस्थामें अनेक जगह ही रमणी वीर  
भोग्या कही जाती थी। किन्ती समय वीरत्व ही वीरत्वके  
रूपमें परिणत होता था। हमारे देशमें सोताकी चम्परीक्षा  
में इसी तरह वीरत्वकी परीक्षा हुई थी, औपदीके पाणि  
ग्रहणके समय लक्ष्यभेदकी परीक्षामें वरनिर्वाचित हुआ था।  
इस तरहके उदाहरण रामायण महाभाग्न आदि ग्रन्थोंमें  
जो जनेने और भी मिल सकते हैं। असम्भ्यसमाजमें भी  
वीरत्व ही वीरत्वका गुणपरिचायक था। हेरनडन (Ha-  
randon) का कहना है, कि माहुई (Mahuc) जातिके  
लोगोंमें जो व्यक्ति अत्यन्त कष्टसहिष्णु न हो, तो उसको  
टामाद कोई भी नहीं बना सकता था। अमेरिकाके  
उत्तर-आमाजन नगरमें प्राचीन कालमें जो युद्धमें परा-  
क्रम नहीं दिया सकता था, उसको कोई अपना कन्या  
देना नहीं चाहता था। झाँक जातिके लोग जो समाज  
के सामने शत्रु का कटा शिर न दिया सकते थे, उनका  
विवाह ही नहीं होता था।

आपाचा (Apache) नामक असम्भ्य जातिकी स्त्रियोंकी  
वीरत्वप्रियता आदि अद्भुत है। इनमें यदि स्वामी रणक्षेत्र-  
से हार कर वर लौट आवे, तो उनको घृणाके साथ  
छोड़ करके चली जाती है। वे भीरु या डरपोक कह कर  
निन्दित होते थे। स्त्रियाँ स्पष्ट रूपसे ही कहती हैं—  
‘जो युद्धमें हार जाते और पीठ दिखा कर युद्धसे भाग  
आते हैं, ऐसे भीरु या डरपोकको स्त्रीकी क्या जरूरत  
है?’

किन्तु समाजमें सर्वा समय वीरविक्रम-प्रदर्शनकी  
सुविधा सबके लिये नहीं मिलती। इसीलिये कन्या-  
ग्रहण कर राक्षस विवाह असम्भ्य समाजमें विशेष गौरव  
जनक समझा जाता था। मनुका कहना है—

“पृथग् पृथग् वा मिथौ वा विवाहौ पूर्णोदितौ।  
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्मो द्वायय ती स्मृती ॥”

( मनु ३२६ )

इसके द्वारा मालूम होता है, कि धर्मिय गान्धर्व और  
राक्षस-विवाह कर सकते हैं। भारतवर्षमें प्राचीन समय-  
में गान्धर्व और राक्षस मिश्रित एक प्रकारकी विवाह  
पद्धति प्रचलित थी। उक्त श्लोकानके भाष्यमें मेधातिथि-  
ने लिखा है—

“यदा पितृगृहे कन्या तत्रस्थेन कुमारेण कथञ्चिन् दृष्टि-  
गोचरापन्नेन दृतीस्मृतेन इतयापि तथैव पर्यती न  
च सायेयां लभते तदा वरेण सा वड हत्वा नय मामितां  
येन केनचिदुपायेनेत्यात्मनसाप्यति सच शक्याति-  
जयान् हत्वा छित्वा चेत्येव हरति। तदा इच्छयान्योन्य-  
सयोग इत्येतदप्यस्ति गान्धर्व रूपं, हत्वाछित्तेति च  
राक्षसरूपम् ॥”

अर्थात् युवती कन्या किन्ती कुमारको देख कर उम-  
से विवाह करनेको इच्छा प्रकट करे और किन्ती तरहसे  
दूत या दूतों द्वारा अपने लक्ष्मिप्रायके वरसे जना दे, तो  
वरका यह काम होगा, कि उस कार्यमें अड़ंगा खड़ा  
करनेवालेका मार का उस कन्यासे यह विवाह कर ले।  
इसी तरहका विवाह राक्षस-गान्धर्व मिश्रित विवाह कह-  
लाता है। श्रीकृष्ण रुक्मिणीका विवाह ऐसा ही है।  
अर्जुन-सुभद्राका विवाह भी इसी तरहका था। और तो  
और भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजसे सयौ  
गिताका विवाह भी इसी तरह हुआ।

कन्या या कन्या-पक्षका प्रातिकूल।

असम्भ्य समाजके विवाह-ध्यापानमें कन्या और कन्या-  
पक्षसे एक तरहका कष्ट प्रातिकूल्य प्रदर्शित हुआ करता  
है। क्राण्टज् (Grantz) कहते हैं, कि एन्कुइमो जातिकी  
कन्यायें लज्जाशीलताकी अनीव पक्षपातिनी हैं। विवाह-  
की बात कहते ही वे शिर नीचा कर लज्जा प्रकाश करती  
हैं। विवाहके समय यह कष्ट लज्जा प्रकाश कष्टकोधा-  
मिनयमें परिणत हो जाता है। विवाहके समय कन्या  
वरको देखते ही शेरसे डरी हरिणीकी भाँति चौंक कर  
दीडती है, क्रोधसे अपने शिरके बाल गोल लेती है।  
इसमें जातिकी कन्याओंका भी ऐसा ही स्वभाव है।

नुसनेनको कन्याओंका अधिक उन्नत विवाह होता है। फिर भी वह यह कपट सजा और क्रोध प्रकाश करती है। और तो क्या यदि उसका कौमार्य युक्त हो वर क्यों न हो, किन्तु भारतीय सभ्यताके सामने कपट सजा तथा अनिच्छा बिना प्रकट किये नहीं मानती।

सिमाईवासो बरोंकी छियाँ और भी बड़ी दूर हैं। इनकी कन्यायें अधिक उन्नत प्याही जाती हैं। और तो क्या—विवाहके पहले ही किसी किसीका 'कौमार्य' हो आया करना है। धर्ममें बड़ी कौमार्य वर बन जाती है। किन्तु इसके भाग भी विवाहका प्रस्ताव इतने ही कन्या कपट क्रोध प्रकट करने लगती है। इन्से प्रायस वह अपने प्रस्तावित पतिको प्यार करती है, किन्तु कुटुम्बके लोगोंके सामने उसको मारती है, उसका ठाक कर डेलेसे मारती है, इससे उसको देहमें शोध भी लग जाती है। और तो क्या—उसको वह दाँतोंस काटती, आत भी बला देती है और श्लेषित हो कर डरावनी आवाज़में बिल्लाती भी रहती है। ये युवती इस तरहका कपटभाव अधिक मात्रामें दिखाती है, बहो समाजमें छद्मावतों बहकी गिनी जाती है। पतिके घर जाते समय यह गला फाड़ फाड़ कर कुटरी की तरह देती है।

'मुझे (Muzo) आति' नामके भी कुछ लोग इस धरती पर हैं। इनमें विवाहका प्रस्ताव हो जाने पर वर कन्याको देखनेके लिये जाता है। तीन दिन तक उसे कन्याको समुद्र करना पड़ता है। इस समय कन्या वरको मुक्क, पूस और तमाबोस खूब खबर देती है। तीन दिनोंके बाद वरका आँखोंस मुद्र हा कर वरका भोजन बना कर खिलाती और नामा प्रकारकी सेवायें किया करती है। यह प्रतिफूलावार कही कही तो कपटताका अभिनयमात्र है और कही कही पर्याय ही आभन कमाव-सुलभ सजाशौलता-सूचक है।

कही कही तो कन्यापक्षको छियाँ भी बरके प्रति माना तरहसे विद्वान्कारण किया करती है। बहुत जगहों में ही ऐसा प्रतिफूलता कपट प्रातिफूलमात्र है। सुमाना द्वीपको महदिकी विवाहके समय बरको नामा प्रकारसे कपटता-पूर्वक बाधा उपस्थित करता है। कन्याये भी इनके साथ सहयोग प्रदान करती है।

कार्केनियनोंको विवाह सामने रमणियोंकी जानी रणरुपनी बन जाती है। वरकी वक्ष रमणियाँ तब्यार ले कर युवसजासे सुमन्वित हो कन्याको रसामें प्रपूत होती हैं। विवाहके समय ये हावमें गद्दा और मिट्टीका डेसा ले कर विवाह-मण्डपमें फाड़ो रहती हैं। वरका कपटता-पूर्वक बाधा देना हा इस जातिके लोगोंकी विवाह प्रथाका एक प्रधान अङ्ग है।

कामरुकाट्काकी विवाह-प्रथासीको देखा कर विदेशी किसी भी देशतवालेके पहले बड़ा भय होता है। कन्या के प्रायकी बहुतेरी छियाँ एकत्र हो कर कन्याके सर शुकके लिये जाती हैं। ये माना प्रकारके अलगलोगोंका हाथमें से पीटाकुना-वेशमें विवाहमण्डपका मीषण बण्डकी रणरुपनीमें परिवर्त कर देता है। वस्तुतः बहो कोइ खुनचाराभी नहा इंगी; किन्तु कन्याका व इस तरह भेरे रहता है, कि कम दिन बरक लिये कन्याका एकाल मिलना या कम सन्धियोंके साथ मिलना कठिन हो जाता है।

मनुस वितामे रासस-विवाहका जैसा बखोब है, असम्भ जातिके अनेक लोगोंमें जैसा हो प्रथा देखो जाती है। इससे पहले इसके लिये अनेक उपाहरण लिये गये। कार्केनियन, गोबट, गण्डोर (Gandor) और मापुछा (Mapucha) आदि जातियोंमें यह प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है। बहुदेशक वाग्नी तथा लेपका आदि जातियोंमें भी इस लुप्त प्रथाकी शिथिलताती हुई ज्योति दिखाई देती है।

बहु मर्चार करनेकी प्रथा (Polyandry) समाजके आदिम समयमें बहु मर्चार करनेवाली प्रथा प्रचलित था। महाभारतके पद्यमें मालुम होता है, कि यह प्रथा वैद्यक बिच्छद है। वैद्य कर्मों भी इस प्रथाका समर्थन नहीं करता। पाँचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदीके विवाहके समय द्रुपद राजाने अनेक वैद्य शास्त्रके प्रमावों और डोगाचारको पुर्हार दे कर बड़ी आपत्ति की थी। महुँतने अह्वयधेय करके द्रौपदीका जोता था। वय द्रौपदीके विवाहका प्रस्ताव डठा। सुपिष्ठिरेने कहा—"बनवासके समय माताजाने कहा था कि वनमें जो वस्तु तुम जोगों का मित्रे, उसको पाँचों भाई बाँट कर खाना या बसका



उपभोग करता। हमलोग भी माताके निकट पेन्नी ही प्रतिष्ठामें आवड हूप है। इस प्रतिष्ठाके अनुसार द्रौपदी हम लोगोंकी रानी बनेगी।" इनको आनुपूर्विक नियमानुसार पांचो भाइयोंका पाणिप्रहण करना होगा। युधिष्ठिरकी यह बात सुन कर द्रुपदने विस्मित हो कर कहा था—

"हे कुरुनन्दन! शास्त्रमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियोंके विवाह करनेका विधान दिखाई देता है, किन्तु एक स्त्रीके कई भर्तारकी बात कही सुनाई नहीं देती। युधिष्ठिर, तुम पवित्र और धार्मिक हो। तुमको यह लोक-विरुद्ध वेद-विरुद्ध कार्य शोभा नहीं देगा। तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हुई?" इसके उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा, "क्या करूँ? माताकी आज्ञाकी अवहेलना हमसे न की जायगी। विशेष तौर में पहले ही कह चुका हूँ, कि एक समय एक स्त्रीका एक साथ पांच स्वामियोंकी सेवा करना शास्त्रविरुद्ध बात हो सकती है, किन्तु आनुपूर्विक नियम तथा समयके भेदसे द्रौपदी हमारे सभी भाइयोंकी मद्रिपो बन सकती है। ऐसा करनेमें शास्त्रकी कोई निषेधाज्ञा नहीं दिखाई देती। धर्मकी गति बहुत सूक्ष्म है। हम इसका मर्म अच्छी तरह नहीं समझते। किन्तु माताकी आज्ञाका उल्लंघन भी नहीं कर सकते। द्रौपदी हमारे पांचो भाइयोंको सम्भोग्या होगी।"

( भारत १।१६१।२७।२८ )

द्रुपद राजा युधिष्ठिरको तर्कयुक्तसे विस्मित हुए सहो, किन्तु उनके चित्तको सन्तोष न हुआ। उन्होंने व्यासदेवसे इस प्रश्नको पूछा—एक पत्नीका बहुत पति रहना वेद-विरुद्ध तथा लोकाचार-विरुद्ध है। ऐसा कार्य पहले कभी नहीं हुआ है और न किसी महात्माने ऐसे कार्योंका अनुष्ठान कराया है। मुझे इस विषयमें नितान्त सन्देह हुआ है, कि ऐसा कार्य धर्म-संगत है या नहीं?

धृष्टद्युम्नने द्रुपदके अभिप्रायका समर्थन किया। युधिष्ठिरने उसका प्रतिवाद कर कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, वह झूठ नहीं, अधर्मजनक भी नहीं। विशेषतः अधार्मिक कार्योंमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। पुराणोंसे जाना जाता है, कि गौतमवंशीया जटिलानाम्नी कन्याका सात ऋषियों

ने पाणिप्रहण किया था। वे ब्रह्म न थीं। धार्मिक व्यक्ति उनका भ्रष्टा करने थे। ब्राह्मी नाम्ना मुनिकन्याने प्रचेता आदि दश भाइयोंका पाणिप्रहण किया था। अतः ऐसा विवाह वेद या लोकविरुद्ध नहीं कहा जा सकता। सत्रामे बहुपतिव्रता निषेध शास्त्रमें विहित है। समय भेदसे निषिद्ध नहीं है। विशेषतः माताको आज्ञा अत्यन्त बलवती है और यह हमारे लिये पश्चान्त पालनोप है।" इसके बाद व्यासदेव युधिष्ठिरकी बातोंका समर्थन कर द्रौपदीके पूर्वजन्मकी बात कहने लगे। द्रौपदीने देव देव महादेवसे पांच बार गुणवाद पति पानेकी प्रार्थना की थी। दयामय आशुतोष प्रदूरने द्रौपदीके प्रत्येक बारकी प्रार्थनाको पूर्ण कर उनके पांच पति पानेका वर प्रदान किया। पांच पतिकी प्राप्ति करकी बात सुन कर द्रौपदीने कहा, "प्रभो! मैंने पांच पतिकी कामना कभी नहीं की। मैंने गुणवान् एक ही पतिकी प्रार्थना की थी।" महादेवने कहा, कि तुमने पांच बार वरकी प्रार्थना की है, अतः मैं एक बार भी तुम्हारा प्रार्थनाको निष्फल न करूंगा। तुम गुणवान् पांच पति प्राप्त करोगी।

सर्वांग व्यासदेवने इस तरह द्रुपदके सन्देहात्मक प्रश्नको समाप्ता कर दी। इसमें साफ प्रकट होता है, कि किसी समय भारतके आर्योंमें भी बहु-भर्तृकताकी प्रथा प्रचलित थी। किन्तु महाभारतके बहुत पहले ही इस प्रथाका अन्त हो गया था। इसका भी स्पष्ट प्रमाण द्रुपदके इस प्रश्नसे ही मिल जाता है। किन्तु दक्षिणमें कहीं कहीं अब भी यह प्रथा प्रचलित है।

विवाहोद्देशके दक्षिण अञ्चलके वैद्य और हजाम अम्बष्ठम् या अम्पट्टन नामसे प्रसिद्ध है। इन्हीं अम्बष्ठ जातिके लोगोंमें आज भी बहुभर्तृकता प्रचलित है। इनमें एक भाईकी स्त्री अन्यान्य भाइयोंकी भी स्त्री कहलाती है। इस प्रदेशके बढई आदि कारीगरोंमें भी एक भाईकी स्त्री अन्यान्य भाइयोंकी स्त्री कही जाती है। जेडाई छोटाईके हिसाबसे सन्तानका बंटवारा हो जाता है अर्थात् जेडा सन्तान जेठे भाईका, इसके बादका यानी इससे छोटा सन्तान उस जेठे भाईसे छोटे भाईका कहलायेगा। इसा

तरह से मन्थानका बटवारा कर छेते हैं। दरिद्रों में हो येना विवाह अधिक दिखाई देता है। एक घरमें सात सहोदर बर्त्सामान है। सात आदिमियों की सात स्त्रियोंका पावन पोषण इच्छिता सेबोके सामने अतोय कठिन कार्य है, ऐसे ही स्थलमें एक ही स्त्री सातीं माद्योंकी परलो रूपसे व्यवहृत होती है। इस भेषोके लोग जिवाङ्गुड़ "कमानार" अर्थात् काशर नामसे पुकारे जाते हैं। मन्थारक निकट कित्ती समय बहुमत्तु कता प्रयाका बहुत ज़ोर था। किन्तु इस समय इसका वह ज़ोर जाता रहा अथवा यों कहिये कि इस प्रथाकी अब प्रथाः स्मृति मात्र ही रह गई है। अब जो घर तक यह प्रथा दिखाई देती है, वह आदिम असम्प सम्राजकी बहुमत्तु कता प्रथाकी तरह इन्द्रियवृत्तिसे लिये नहीं चलाई गई। इनमें तो इनके लिये कभी वाद् विवाह भी नहीं होत सुना गया है।

मन्थारकी "नायर" जातिके लोगोंमें किमो समय इस प्रथाका विशेष प्रचलन था, किन्तु इस समय इस का प्रायः शेष हो रहा है। रण तुम्हें नायर जातिके लोगोंके लिये प्रत्येकका विवाह करना कठिन था और प्रत्येकके विवाह कर लेने पर पुरसंसारमें वड़े बन्ने डे उठ कड़े होते थे। सम्राज्य इषकियोंके सम्बन्धमें इस तरहका विवाह सुविधाप्रदान नहीं समझा जाता। नायर सेनिक हैं। धूर्तोंमें भी विवाहियोंके विवाहका महत्त्व नहीं देखा जाता। मन्थारक नायर सदा युद्धमें फसे रहते थे। मना इनमें प्रत्येकके विवाहका प्रयोजन नहीं समझा जाता। जबकि एक ज्ञाताक विवाह हो जाने पर बड़ा स्त्री समो माद्योंके पक्षोका काम देता था। इसमें किसीकी भी संसार बन्धनम बंधे रहनेको आशा नहीं हातो था। इसी कारणसे मन्थारक नायरमें बहुमत्तु कता प्रथा प्रचलित हुई था। जिवाङ्गुड़का निम्न धेजाकी अनेक जातियोंमें यह प्रथा अब भी बर्त्सामान है। किन्तु युद्ध का तख कमा अब इस प्रथाका उत्तम ज़ोर नहीं दिखाई देता। भारतवर्षके अन्त्याय स्थानोंमें भी बहुमत्तु कता का ब्यादरण मात्र भी दिखाई देता है। तिबतमें इस प्रथाका पदक वड़ा ज़ोर था बड़ा अब भी यह मौजूद है।

टोटा जातिके लोगोंमें यह प्रथा दिखाई देता है। इनमें

चार पाँच या इससे भी अधिक सहोदर होने पर अष्ट माई हो अपना विवाह करता है। अन्त्याय माई अब अकाम होती है, तब से भी कमरा; उसी स्त्रीको पक्षोकेपमें मानते हैं। सेठे माईकी परलोको बहने मा इसके देपरीं के साथ प्याही जा सकती है। अबहाधिराजमें देा देा माद्योंमें एक या बहु स्त्री प्रदत्त करनेको प्रथा अबक भित है। इनमें स्त्रीपुत्रक दोगीका बहुविवाह दिखाई देता है। पपूर्वियन र्माणियों मो सामाजिक प्रथाके अनु सार बहुत पुत्रोंको अपभोग्या होतो हैं। ताक्षितोय लोगों में स्त्रियां मो बहुत मर्त्तार और पुत्र भी बहुविवाह कर सकते हैं।

युद्धमत्तु कता रमणियों अधिकांश स्थानमें सहोदर माद्योंकी पक्षियां होतो हैं। किन्तु निःसम्पके स्थलमें भी इस तरहका पक्षिरव दिखाई देता है। करिव पस्कु इसी और कासेकी रमणियां बहुमत्तार प्रदत्त करती हैं। एकिटिबान द्वीपके अधिवासियोंमें तथा कनाडीद्वीपके अधिवासियोंमें भी यह प्रथा प्रचलित है। काननिराटर की रहनेवाली स्त्रियां मो बहुत मर्त्तार करती हैं। किन्तु इनको निर्दिष्ट समय तक एक एक लामोके साथ सह वास करना पड़ता है। एक एक पक्ष तक यानी १५ दिन तक, इनका एक एक पक्षके साथ सहवास कर तिका निर्मितन समय होता है। काशिया तथा स्यौरियन कलासोंमें मो बहुमत्तु कता प्रथा मौजूद है। सिंहासक घना धीरे उच्च धेपाके सम्प्रात वयक्तियोंमें एक पित्र माइयों में एक साधारण पक्षा दिखाई देता है। माद्योंमा हा साधारणता यहो नियम है।

अमेरिकामें आमाद और सेपेशर जातिकी रमणियां बहुत मर्त्तारका परलो बन्त हैं। काशीर आरु कुन बार, ह्यलबार, मन्थार और गिरसूरमें यह प्रथा प्रचलित है। अब और प्राचीन प्रदेशोंमा यह प्रथा प्रचलित थी।

तिबतमें बाब भी यह प्रथा अधिकतासे प्रचलित है। फलतः तिबतको तख ऊपर मूमिमें अर्द्ध विवाह द्वारा जन संख्या बढ़ाई जाये, ता अजातानाबस देशमें मोषय धर्मानि मय जा सघना है। इस प्रथाके जाते रहनेसे तिबतका मज्जक हो हुमा है। वाजिक्य और युद्ध-कार्यों में अर्द्ध

जिन लोगोंके स्त्री-पुर्तोंको छोड़ कर विदेशमें भ्रमण करना पड़ता है, वहाँ इस तरहकी प्रथा समाजके लिये हितकारी ही समझी जायेगी।

हिन्दू विवाह।

इसका निर्णय करना बहुत कठिन है, कि हिन्दू-समाज में कब विवाह-संस्कार प्रवर्त्तित हुआ। वंशप्रवाह सरक्षणके लिये स्त्रापुरुषका संयोग स्वाभाविक घटना है। किंतु वेदादि ग्रंथोंमें प्रजासृष्टिका अन्यान्य धार्मिक प्रक्रियायें भी दिखाई देती हैं। मानस सृष्टि आदि अयोनिसम्भव सृष्टि इसके उदाहरण हैं। मन्त्रब्राह्मण में नारीके उपस्थदेशको प्रजापतिकी दूसरा मुख कहा गया है।

ऋग्वेद जगत्का आदि ग्रन्थ कहा जाता है। इस ऋग्वेदके समय हिन्दू-समाजमें विवाहकी प्रथायें दिखाई देती हैं। वे सुसंस्कृत सभ्य समाजका विवाह प्रथाके रूपमें समाहृत होने योग्य हैं। यह कहा जा नहीं सकता, कि वैदिक कालके पहले हिन्दुओं में विवाह धन्यन कैसा सृष्ट था।

महाभारत पढ़नेसे ज्ञात होता है, अत्यन्त प्राचीन समयमें व्यभिचार द्रोपरूपमें नहीं गिना जाता था। हमने आदिम जातिके लोगोंके विवाह-वर्णनमें इन सब बातोंका उल्लेख किया है। महाभारतके १।१२।२।२५, २६ श्लोकमें लिखा है—पाण्डु कुन्तीसे कह रहे हैं, कि हे पातघ्न राजपुत्रि! धर्मज्ञ यही धर्म जानते हैं, कि ऋतु समय स्त्री स्वामीको अतिक्रम न करे, अवशिष्ट अन्यान्य समयमें स्त्री स्वच्छन्दचारिणी हो सकती है। साधु लोग इसे प्राचीन धर्मका कीर्त्तन कहा करते हैं।

इससे मालूम होता है, कि स्त्रियाँ ऋतुकालमें स्वामीके सिवा अन्य पुरुषसे सहवास नहीं करती थीं, ऋतु कालके सिवा अन्य समयमें अन्य पुरुषसे सहवास कर सकती थीं। महाभारतके प्रागुक्त अध्यायके प्रारम्भमें पाण्डुने कुन्तीसे जो कहा था, वह महाभारतके आदि पंचके १२३ अध्याय ३-७ श्लोकमें देखिये। वहा हम उसका भावार्थ देते हैं—

‘स्त्रियां पहले घरमें बन्द नहीं रखी जाती थीं। ये सबके साथ मिल-जुल सकती थीं। सभी उनको देख

सकता था। स्त्रियाँ स्वतन्त्र थीं, आजाद थीं। ये रति-सुखके लिये स्वच्छन्दतापूर्वक जिन किसी पुरुषसे सहवास कर सकती थीं, जिन किसी पुरुषसे यहा आ जा सकती थीं। ये कौमार अवस्थासे ही व्यभिचारिणी होती थीं। उस समयके पति उनके इस कार्यमें बाधा नहीं देते थे। उस समय यह अघर्म भी गिना नहीं जाता था वरं यह उस समय घममें ही कहा जाता था; महाभारतके समय उत्तर-कुण्डप्रदेशमें यह प्रथा प्रचलित था। पाण्डुने स्वयं भी उन्में स्पष्टरूपसे कहा है। पाण्डुने यह भी बताया है, कि किस तरह यह प्रथा रोक गई। आदिपर्व १२३ अध्याय ६ २० श्लोक दृश्य।

उन्होंने कहा है—मैंने सुना है, कि उद्दालक नामक एक महर्षि थे। उनके पुत्रका नाम था श्वेतकेतु। इसी श्वेतकेतुने ही पहले पहल स्त्रियोंकी स्वच्छन्दविहारप्रथा रोक राका था। क्रात्रिन ही श्वेतकेतुने ऐसा क्यों किया, उसका विवरण सुनो। एक समय उद्दालक, श्वेतकेतु और उनकी माता एकत्र बैठे हुए थीं; ऐसे समय एक ब्राह्मणने आ कर श्वेतकेतुको मानाका लाभ पकड़ कर कहा, थाओ चले। यह कह कर वह ब्राह्मण उन्में पक्षान्तमें ले गया। ऋदिपुत्र श्वेतकेतु इस घटनासे बड़े अमन्तुष्ट और क्रोधित हुए। उद्दालकने उन्हे बहुत तरहसे नमस्कारा। उद्दालकने यह स्पष्ट कहा—पुत्र, तुम क्रोधित न हो, यह मनातन धर्म है। इस जगतकी सभा स्त्रियां अरक्षिता हैं। नार्योंको तरह मनुष्य भी अपनी अपनी जानिमें स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हैं। इस तरह ऋषिक समझाने पर भी श्वेतकेतुके चित्तको सन्तोष नहा हुआ। उन्होंने स्त्री पुरुषके इस व्यभिचारको दूर करनेके लिये नियम बनाया। उस समयसे मानव-समाजमें यह प्रथा प्रचलित है, किन्तु अन्यान्य जन्तुओंमें वही प्राचीन धर्म अब तक बलवान है। श्वेतकेतुने यह नियम बनाया, कि आजसे जो स्त्री किसी समयमें पतिव्रता करेगी, वह ब्रूणहत्याकी तरह महा अमङ्गलजनक पापकी भागिनी बनेगी। फिर जो पुरुष बालकालमें साधुगोला पतिव्रता पत्नी पर अत्याचार करेगा, उसको भी इसी पापका भागी बनना

पढ़ेगा और जो स्त्री पति द्वारा पुनर्वासि मिथुका हो कर पतिको ब्रह्माका पावन नही करेगा उसको भी यही पाप लगेगा। हे भयशांति! खेतकेसुमि बन्धुपूर्वक प्राचीन समयमें इस धर्मयुक्त नियमको बनाया था।

महाभारतके पढ़नेसे और भी मालूम होता है, कि उन्मथ्य श्रुतिके पुत्र दीर्घतमाने भी जियोंकी स्वच्छन्द बिहाप्रथाका बन्द किया था।

महामातमें यह विवरण इस तरह लिखा है :—  
दीर्घतमाकी पत्नी पुत्र उत्पन्न हो जाने पर पतिको मृत्युष्ट नही कर सकती थी। दीर्घतमाने कहा—तुम मुझमें दोष क्यों करती हो? इसके उत्तरमें उनकी पत्नी प्रश्न बोले कहा—स्वामी स्त्रीका मरण पोषण करता है, इसीसे उनका 'पति' नाम हुआ; किन्तु तुम अमान्य हो। मैं तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रोंका मरण पोषण करनेमें कठिन श्रम अनुभव कर रही हूँ। अब मुझसे तुम मैगोंका पावन पोषण हो न सकेगा। श्रुतिपुत्री यह बाल सुन कर श्रुतिने क्षोभान्वित हो अपने पत्नीसे कहा—'मुझको राजाके यहां से कक्षे बहास चलना होगा।' इस पर पत्नी प्रश्न बोले कहा, "मैं तुम्हारे द्वारा उपासित तपनका नहीं चाहती। तुमको भी इच्छा हो करे। मैं पढ़ेकी तरह तुम्हारा मरण पोषण नही कर सकूंगी।" इस पर कृप्य हो कर दीर्घतमाने कहा—मात्रस में यह नियम बनाता हूँ, कि केवल यति ही स्त्रियोंके परम्याल चिरजीवनके आश्रय होंगे। स्वामीके मरने पर या स्वामीके अहित रहने पर छोटी भग्य पुरुषसे सग नही कर सकोगी। यदि वह ऐसा करेगा तो वह पतिता समझे जायेगी। चाइसे जो स्त्रियां पतिको त्याग कर दूसरे पुरुषसे सहवास करेगी उनको पाप लगीगा। सब तरहका धन मौजूद रहते हुए भी वे इन सब धनका भोग न कर सकेंगी और नित्य ही भयपत्रा शपवादी पत्नी बनेगी।

महाभारतके प्रमाणोंसे मालूम होता है, कि भारत वर्षमें पहले हिन्दुसमाजमें भी विवाह बन्धन बर्तमान समयकी तरह सुदृढ़ नही था। स्त्रियां क्षीमार काहम हो इच्छा पूर्वक पर पुरुषसे सहवास कर सकती थीं। उसक इस कालमें कां यकाबत नही थी। साधुसमाजमें भी यह ब्यभिचारधर्ममें गिना नही जाता था।

श्रुतिसेसंहिताके पढ़नेसे मालूम होता है, कि राज कन्या श्रुतिपूर्वसे ब्याही जाती थी। श्रुतिमें पत्नी मण्डलक ११ वे सूक्तमें जिन श्याबाश्रव श्रुतिका उल्लेख है, रचवीति राजाको कन्यास उनका विवाह हुआ था। इसके सबबधमें सायजने एक अनुभुन प्रस्तावकी वर्णना की है। र्मके पुत्र राजा रचवीतिने मन्त्रिचारीय अर्चनाना का होशुकाधर्म वरण किया था। अर्चनानाने पिताके समीप राजपुत्रीको देन अपने पुत्र श्याबाश्रव साय इसका विवाह कर देनेके छिपे राजास प्रार्थना की। राजाने रानीसे यह प्रस्ताव किया। इस पर रानीने आपत्ति कर कहा 'हमारे वंशको सभी कन्याओंका बिवाह श्रुतिपूर्वके माघ हुआ है। श्याबाश्रव श्रुति नहीं। उनक साय राजकन्याका विवाह नही हो सकता।' रानीक इस तरह आपत्ति करने पर बिवाहप्रस्तावका लच्छन हो गया। श्याबाश्रव यह सुन कर श्रुतिपद प्राप्त करलैक जिये कठोर तपश्चर्याम प्ररुष हुए। पर्यटनके समय श्याबाश्रवकी मरुदुगणसे भेट हो गई। मरुदुगणने उनको श्रुतिवपद प्रदान किया। इसके बाद श्याबाश्रव श्रुतिके साय उस राजकन्याका विवाह हुआ। शर्याति राजा को कन्यासे ब्यवन श्रुतिका बिवाह हुआ था। (१म मण्डल १८ सूक्त श्रुतिसेसंहिता १६०।) इस तरह मन वर्णा विवाहके कितने ही उदाहरण हैं। फिर, श्री मन्नाबतमें भी देखा जाता है, अर्थात् शुद्धकी कन्या श्रुतिपूर्वका बिवाह शक्यशु नहुपुत्र यथातिका हुआ था। फलतः इसका इतम लम्बा नही मिलता कि मति पा चीन समयमें स्वर्णा सगोला असगोला भादि बिचार पूर्वक बिवाह पत्रवि भारतवर्षमें प्रचलित थी या नही। निष्पत्ते समयमें सबका गोजा और असपिबडा कन्याक पाणिप्रदणको प्रया प्रवर्तित हुई।

अनुलोम आबमें असवर्णा विवाहका विधान मगधादि धर्मशास्त्रोंमें कूट कूट कर मरा है। किन्तु कल्हियुगमें इसकी मनाही कर दी गई है। स्वर्णा आप्णके सिवा बन्ध्याय स्त्रियां कामपत्नी हैं। ब्यास, वशिष्ठ, मीतम, यम बिष्णु, हारोण भापस्तम्ब, पैटोमसि शूद्र और जाता तप आदि संहिताके बनानैवासेमें इस शक्यका साम र्थन किया है। सगोला कन्याका विवाह इस देशक

ब्राह्मणादि उच्च वर्णों में नहीं चलता। संहिताकार अम-  
गोत्र विवाहके अप्रतिष्ठापित पक्षपाती हैं। मानव-  
एडम्बरं नमस्वरयं कुछ गा मतभेद नहीं। किन्तु स्मृतियोंके  
गिननेमें अष्टम मतभेद है। इससे बाद उसकी आलो-  
चना ही जयेगी। अमगोत्रा कन्याका विवाह वैदिक  
और मानसिक उपरतिके लिये शुभजनक नहीं। आधु-  
निक विज्ञान द्वारा भी यह सिद्धान्त स्थापित हुआ है।

युवती कन्याका विवाह।

वैदिक मंत्रादिमें पढ़नेमें मालम होता है,  
कि वैदिक कालमें कभी भी बाल्यविवाह प्रचलित नहीं  
था। सूक्त मंत्रादिमें बच्चोंके लिये जितने शब्द व्यवहृत  
हूए हैं, उनमें युवतीके विवाह और कोई युक्ति बालिकाके  
लिये नहीं कही गई है। फिर विवाहलक्षणयुक्ता न  
होनेमें कन्याओंका विवाह नहीं होता था। ऋग्वेद  
संहितामें ऐसी भी ऋक् दिवाई देती है, कि कन्या  
“नितम्भवती” होनेसे विवाहलक्षणयुक्ता समझी जाती  
थी। जैसे—

“उदीष्यातः पतिवती हेया विश्वावसुं नमसा गोभिरीच्छे ।  
कन्यामिच्छ पितृपद व्यक्तां श्वे भागं जनुया तस्य सिद्धि ॥”

( ऋक् १०, ५१, २१ )

अर्थात् हे विश्वावसु ! यहाँसे उठो। क्योंकि इस  
कन्याका विवाह हो गया है। ( विश्वावसु विवाहके  
अग्निष्ठावी देवता हैं विवाह हो जाने पर उनका अग्नि  
प्राप्तत्व नहीं रह जाता ) नमस्कार और स्तवसे विश्वा-  
वसुकी स्तुति की जाती है, और कहा जाता है—पितृ-  
गृहमें जो कन्या विवाहलक्षणयुक्ता हुई है, उसके यहा  
जाओ, इत्यादि।

इसके बादकी ऋक्में भी इस विषयका प्रमाण मिलता  
है। जैसे—

“उदीष्यातो विश्वावसो नमस्येच्छा महे त्वा ।

अन्यामिच्छ प्रफर्भ्यं सं जायां पत्या मृज ॥”

( ऋक् १०, ५१, २२ )

अर्थात् हे विश्वावसु ! यहाँसे उठो। नमस्कार द्वारा  
तुम्हारी पूजा करूँ। नितम्भवती किसी दूसरी स्त्रीके  
घर जाओ और उसकी पत्नी बना उसके स्वामीकी सगिनी  
बना दो।

और भी एक उदाहरणका उल्लेख किया जाता है।  
एक कन्या बहुत दिनोंसे कुष्ठ रोगमें पीड़िता थी। अश्विनो  
कुमारद्वयके जगदम्बका चिकित्सा की, तब ये रोगनकालको  
पार कर चुकी थी। इसके बाद उसका विवाह हुआ  
था। यह भी ऋग्वेदकी ही कहानी है। इसमें यह  
स्पष्ट चिह्नित होता है, कि युवती कन्याका विवाह वैदिक  
युगमें ही प्रचलित था। मनुने यद्यपि कन्याओंके विवाह-  
का समय १२ वर्ष निर्धारित किया है, किन्तु उपयुक्त  
पात न मिलने तक कन्या ऋतुमतो और बड़ा हो कर मर  
ना जाये, पर उम्र बढ़ जानेमें कैना ह वरके साथ उसका  
विवाह कर दिया जाये, इस प्रथाके मूठमें उन्होंने कुठारा-  
घात भी किया है। समूचा महाभारत युवती कन्या  
विवाहका ही प्रमाण ग्रन्थ है। अङ्गिराका वचन आज  
कल ही प्रचलित है। किन्तु इस समय “दशमं कन्याका  
प्रोक्ता अतः उद्दुर्ध्वं रजम्बला” अङ्गिराके इस वचन पर अब  
हिन्दू समाजके अधिकांश लोग धरदा नहीं रखते। किन्तु  
भारतवर्षके कई स्थानोंमें तो कुछ लोग “अष्ट वर्षा भवेत्  
गौरा” आदि मनुस्मृतिका प्रमाण दे कर महा अनर्थ कर  
देते हैं। दो चार वर्षकी बालिकाओंका विवाह भी  
हो जाता है। कहीं कहीं तो छः छः महीनेके शिशु सन्तान  
की शादी हो जाता है। कुछ निम्नश्रेणीके हिन्दुओंमें  
तो गर्भस्थ बालकोंके विवाहका ही पैगाम हो जाता है।  
श्वर कई वर्षोंसे देशके शुभचिन्तक इसके रोकनेकी चेष्टा  
कर रहे थे, किन्तु उन्हें इस काममें सफलता नहीं मिली।  
अन्तमें श्रायुक रायसाहब हरविलाम सारदा महोदयने  
बालविवाहके रोकनेके लिये कॉमिलमें एक बिल पेश  
किया। इस बिलका मर्म इस तरह है—१४ वर्षसे कम  
उम्रकी बालिकाओंका और १८ वर्षसे कम उम्रके  
बालकोंका विवाह करनेवाला पिता माता या स्वामिवाक  
दोषी समझा जायेगा। यदि यह साबित हो जाये,  
कि असुकने १३ ही वर्षमें किसी कन्याका और १७ ही  
वर्षमें किसी बालकका विवाह कर दिया है, तो उसको  
१ महीनेकी सादी जेलकी सजा और १००० रुपये तक  
जुर्माना किया जा सकता है। यदि साबित न होगा, तो  
उन्हे (जिसने दरखास्त दे मामला चलाया था) १०० रुपये  
तक जुर्माना होगा। सारदा महोदयके इस बिल

पर दो बर्ष तक बड़ा वादानुयाय हुआ। अन्तमें इस विमर्शका उपपेगिता देण कर सेगोने इसका मायमौमिक रूप क्रिया। यह यह कानून कबल हिन्दुसो के हो लिये नहीं, परं भारतमें जसनेवाको समो ज्ञानिको के लिये लागू होगा। बहुत वादानुयाय होनेक बाद यह कानून सन् १९२६ ई०की अक्टोबर काममें लाया जायेगा। इस तरह भारतमें धर्मविवाहका अन्त हो गया। अधिकांश हिन्दुसो में यहकी होसे १९३३ बर्ष को कल्याणो का विवाह होता था। यहाँका आदिम ज्ञानियेमें सो पूर्ण पौवन प्राप्त न होम पर कल्याणका विवाह होता ही न था।

चिरकुमारी।

श्रद्धेयमें देला मो प्रमाण मिलता है, कि प्राचीन कालमें इन देशमें कुछ कल्याण चिरकुमारी भावमें पिता समयमें रह जातो थो और पिताक धनको अधिकाधिको होतो थो। श्रद्धेयमें इसका प्रमाण भी मिल्ल है जैसे—

"भगवतरे कियो: तथा तयो समानादावदवरागिभिये भय"।

हृषि प्रकेभुर मात्वा मर एधि मागं कनोडेन मामह ॥"

( १ मपदस १७ सू० ० सू० )

सायणभाष्यके अनुसारो इसका अनुवाद इन तरह है—

हे कनू ! पतिअभिमानो हो जाबछाँबन पिता माताक साथ इनको शुधुधामें रह रहतो हुए बुद्धिता जेने पिता पुरक धनको प्रार्थना करतो है, वैसे हो में मा तुमने धनको प्रार्थना करता हू। इस धनको तुम सबके सामने प्रकट करो इनका परिमाण बताओ और उसका सम्पादन करो। इस धनसे तुम स्वतोताओंको सम्मानित करो।

धर्मिचारिणी।

श्रद्धेयक समयमें श्रियो को स्वच्छन्द विहार बन्द हुआ था। कुमारी और विधवा अवस्थामें गुप्तकारसे गर्भ सञ्चार होमै पर धर्मिचारिणी श्रियो गुप्तकारसे गर्भ गिरा देती थो। श्रद्धेयमें इसका भी प्रमाण मिलता है। जैसे—

"शुच्यता मारित्या ह्येता यो मत्कृत् रहस्यविगा।

शुपकतो यो वध्य मित देवा मन्त्रेण विद्वान् भस्ते हुये का ॥"

( १ म० २६-शु० १ सू० )

अर्थात् हे मत्कारी जीव गमनशील सबके प्रार्थनीय आदित्यगण 'रहस्य' अर्थात् गुप्तगर्भकी तरह मुझे बूसे बुरे बुरे देशमें फेक दो। हे मित और वरुण तुम श्रियोका मङ्गल काट्येँ समक कर में रहना करनेके लिये तुम श्रियोको बुधता हू। तम भोग हमारी म्भुति सुनो।

"रहस्यरिब" यह मूलमें है। सायणने इसको व्यक्त रूपमें लिखा है—"एवमि ज्ञेयकालपदेशो सूयते इति रहस्यु धर्मिचारिणो मा यथा गर्भं पातयित्वा बुरदेशो परित्यजति तद्वत् ।"

इससे मालूम होता है, कि अब यह श्रद्धेयक बसो थो तब इन देशमें कुमारी अवस्थामें ही सम्भवतः किसी किसी कल्याणोका गर्भ रह जाता था अथवा उस समय समाजमें विधवा-विवाह चारो तरफ फैला न था। धर्मिचारिणो श्रियोका गुप्त गर्भ इस पुराने युगमें निश्चित समझा जाता था। एक श्रेणीको आदिम अमन्य प्रातिक श्रियोमें यह कार्ये अपराधमें नहीं गिना जाता। किन्तु सुसभ्य हिन्दुसमाजमें श्रद्धेयक इन पुराने समयसे हो येना धर्मिचार चूनाकी दुष्टसे देखा जाना है। आज मा यह उचक्य क.प्या ठीक ठस पुराने युगकी तरह होता है नहीं, किन्तु आज मो यह जनसमाजमें निश्चित समझा जाता है।

विवाहमेरु।

श्रद्धेयकहितामें कई तरहके विवाहकी प्रथा दिवाई गैतो है। पिछले मन्वादि स्मार्तों लोगो मा प्राण्य दैव अर्था प्राजापत्य, मासुर, गान्धर्व, दास्य और पैशाच — इन आठ तरहके विवाहो का उल्लेख किया है। मुद्रित श्रद्धेयकहितामें दास्य और पैशाच विवाहका उदाहरण नहीं मिलता। प्राण्य दैव अर्था, प्राजापत्य और गान्धर्व विवाहो का आभास बहुत दिवार उता है।

मन्वाविवाहमें परको धरमें बुला करकल्याणो सजा कर पूजाके साथ विवाह कर दिया जाता है। श्रद्धेयक समय मो बरको कल्याणक धर बुधामेकी रीति था। विवाहके समय धर और कल्याणको अङ्कित करनेका प्रमाण श्रद्धेयक बहुत मिलता है। यहाँ एक प्रमाण उल्लेख कर दिया जाता है। जैसे—

“पतं वा स्तोममश्विनावकर्म्मार्तक्षाम मृगवा न रथ ।

न्यमृक्षाम वपद्यां न मध्ये नित्य न सुनुं तनय दधानाः ।”

(ऋक् १०।३६।१५)

जैसे दामादको कन्यादान करने समय वस्त्रभूषणसे सुसज्जित कर कन्यादान किया जाता है, वैसे ही मैंने स्तवको अलंकृत किया जिससे नित्य हमारे पुत्र पीत्र कायम रहें ।

कन्या और वरको वस्त्रभूषणसे सुसज्जित कर कन्या-के पिताके घर घ्याह करनेकी प्रथा बहुत पुराने समयसे ही उत्तम मानी जा रही है ।

देव-विवाहमें भी अलंकृत कन्यादानकी प्रथा प्रचलित थी । ( मनु ३ अ० २८ श्लो० )

न्ययन्वर और गान्धर्व विवाह ।

इस समय आसुर-विवाहमें भी वर कन्यादान करनेकी प्रथा है ।

ऋग्वेदमें स्वयवर तथा गान्धर्व-विवाहका भी उल्लेख पाया जाता है । ( १० म० २७ सू० १२ ऋक् )

ऐसी कितनी ही स्त्रियां हैं जो अर्थाकी प्रीतिके कारण कामुक पुरुषके प्रति अनुरक्त होनी हैं । जो स्त्रिया उत्तम हैं, जिनके शरीर सुगठित है, वे बहुत लोगोंमेंसे अपने मनके अनुरूप प्रियपात्र चुन लेती हैं ।

सुविख्यात सायणाचार्योंने इस ऋक्के भाग्यमें लिखा है—

“अपि च यदुया वधुर्मता ( कल्याणी ) सुपेशा ।  
( गोभनरूपा ) च भवति, सा द्रौपदीदमयन्त्यादिका  
वधुः स्वमात्मनैव जने चिज्जनमध्येऽवस्थितामिति मित  
प्रियमञ्जुननलादिक पति वनुते ( याचते स्वयवरधर्मेण  
प्रार्थयते ) ।”

कन्या और वरकी परस्पर इच्छा द्वारा जो सयोग होता है, वेही गान्धर्व-विवाह नामसे प्रसिद्ध है ।

ऋग्वेदमें और भी लिखा है, कि स्त्री अपनी आकांक्षा के अनुसार भी पति चुन लेती है ।

( १ म० ६२ सूत्र ११ ऋक् )

अर्थात् हे दर्शनीय इन्द्र, तुम मन्त्र और नमस्कार द्वारा स्तुत हो । जो मेरावो पुरुष सनातन कर्म या धन की कामना करता है, वह बहुत प्रयास करनेके बाद तुमके

पाता है । हे बलवान इन्द्र ! जिस तरह कामयमाना पत्नी कामयमान पतिको पाती है, वैसे ही मेधाविषीको मनुनिया तुमको स्पर्श करे ।

यह प्रमाण भी प्रागुक्त मनुवचननिर्दिष्ट गान्धर्व विवाह का वैदिक प्रमाण है ।

देवरके साथ विधवा विवाह ।

स्वामीके मर जाने पर देवरके साथ विधवा विवाह प्रथा भी ऋग्वेदके समयमें प्रचलित थी ।

“कृष्णिहोया कृष्ण वस्त्रोऽग्निना कृष्णमिपित्यं कृतः  
कृहोवतुः । को वा जयुया विषयेव देवं मर्त्या न योषा कृष्णुवे  
सधस्य वा ॥” ( १० मण्डल ५० सूक्ता २ ऋक् )

इसका अर्थ यह है, कि हे अश्विद्वय ! तुम लोग दिन या रातमें कहाँ जाते हो या कहाँ तुम समय बिताते हो ? विधवा जिस तरह सोनेके समय देवरका समावर करना है अथवा कामिनी अपने कातका समावर करती है, यथा-आह नस्थलमें कौन तुमको वैसे ही आदरके साथ सुलाता है ?

मनुमहितके नवें अध्यायके ६६वें श्लोककी टीका में मेधापतिने इस ऋक्को उद्धृत किया है ।

विधवाओंके सम्बन्धमें और भी एक ऋक् दिशाई देती है ।

“उद्दीर्घ्वं नाप्यभि जीवप्रोक्तं गतासुमेतनुव श्रेय ग्रहे ।

इस्तमामस्य दिधिपोस्तवेद पत्युर नित्यमभि स वभूय ॥”

( १० म० १८ सू० १८ ऋक् )

अर्थात् हे मृतको पति ! जीवलोकमें लौट चला । यहाँसे उठो । तू म जिसके साथ सोने जा रही हो, वह मर चुका है । अतः लौट आओ । जिसने तुमसे विवाह कर गमाधान किया था, उस पतिका जाय-द्व गत हो गया है । अतः सहमरणकी आवश्यकता नहीं ।

इस ऋक्के पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋग्वेदके समय भी कहीं कहीं सतीदाहकी प्रथा प्रचलित थी । किन्तु सूक्तकारने पुत्रपीत्रयुक्ता विधवाको सहमरणसे रोकनेके लिये ही इस सूक्तकी रचना की है । सायणने ‘जीवलोक’ पदकी व्याख्यामें लिखा है, “जायाना पुत्र-पीत्रादिनां लोकं स्थानं गृहम्” । ‘जायात्व गत हो गया ।’ इस पदके मूलमें भी वैसे ही भावकी बात है । यह ऋक्

विधवा विवाह या विधवाके किसी दूसरेके साथ पाणि-  
प्रदान करनेके पद्धतें नहीं हैं। यह सहस्रगणोत्सुख रम-  
णियोंको सास्त्रनामात्मक है। आश्वयत्नपूर्वजन्ममें  
मोक्षद्वार आदि द्वारा श्मशानपातिना विधवाके प्रति  
इसी तरहका उपदेश दिया जाता है। जैसे—

“ता सुत्यापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽनवासी अथ  
हासो बोधोऽथ माय्मिञ्जीवलोकाय् ॥”

( आश्वयत्नपूर्वजन्म ३१२८ )

दो श्रद्धाके साथ मनुस्मृतिका मिश्रण करनेसे यह  
मात्स्य होता है कि पुत्रके द्विजे वैदिक कालसे मनुके  
समय या उसके बादके समय तक मा विधवाको प्रथा  
प्रचलित थी। यह विधवा कर्ण्य देवर द्वारा हा सम्पन्न  
होता था। देवर हा मीमांसके गर्भसे सन्तान उत्पन्न  
करता था। समय आने पर मीमांस देवरके साथ व्याहा  
श्रांति मगो।

देवर द्वारा पुत्रोत्पत्ति ऐसी गई है सही, किन्तु  
इस समय भी कई जगहों में विधवा मीमांस देवरको पति  
बना लेती है। यह नियम कई देशों में देखा जाता है।  
भाद्रिम समाजकी विवाह प्रथाको आलोचनानमें मा इसके  
सम्बन्धमें कई दृष्टांत दिये गये हैं।

बहुपत्नी प्रथा (Polygamy)।

भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे बहुपत्नीकी प्रथा चली आती  
है। श्राविकके सूत्रकार शीघ्रतया श्रद्धिक पुत्र कसौवान्  
अपना अश्वयत्न समाप्त कर ज्ञात समय पथके किलारे  
सो गये। इन्हा पथमें भीखोरे क साथ राजा जा रहे  
थ। राजा कसौवान्को देख कर बहुत स गुण हुए और  
उन्हे अपनी मन्त्रिणी ब्रह्मा ले गये। बर्दा उन्हेमि अपनी  
दश कन्याओंके साथ कसौवान्का विवाह कर दिया।  
पदेबर्दा उन्हेमि १०० निष्क सुवर्ण, १०० घोड़े १०० बैल  
और १०० गाड़ी और ११ रथ दिये। यही कसौवान् अब  
पुत्र हा गये तब इनको इन्द्रने वृषा नामकी युवती पत्नी  
का दिया। इस तरह बहुपत्नीप्रथाके और भी उदाहरण  
दिये जा सकते हैं।

वैदिक मिथ्या है—“वैदिकस्मिन् धूपे द्वे राज्ञे परिष्यपनि  
नन्मादेको ज्ञापे सिन्दुम् ॥”

अर्थात् जैन पञ्चक्राममें एक यूपमें दो रश्मियां बाँधी

जानी हैं उसी तरह एक यूपव दो रश्मियोंके साथ विवाह  
कर सकता है।

इसके सम्बन्धमें एक और श्रुतिका प्रमाण है—  
“तस्मादेकस्य वदो जाया भवन्ति ॥”

महाभारतमें राजा द्रुपद युधिष्ठिरसे कहते हैं—  
“यस्य वद्वो विद्विता मदिष्या कुलनन्त ॥”

( भाद्रिपर्व १६५ अर्थात् २० श्लोक )

श्रुत्येवमद्विताके इशारे मन्त्रक १५५ सूक्त पढ़ने  
से मात्स्य होता है, प्राचीन समयमें सौत अपनी अपनी  
प्रतियोगिनी सौतों पर रोष प्रामाणिक सिधे मन्त्रीपथिका  
प्रयोग करते थे।

‘यह जो तीमशकियुका मना है, वह भीपथि है, इस  
का लोह कर में उदाहृत रहा है। इससे भीतका कष्ट  
पहुँचाया जाता है। स्वामिका प्रेमकांसमें बाँधा भी  
जा सकता है।’

मन्वादि संहिताकारोंके साथ शास्त्रमें भी बहुपत्नी  
प्रथाकी आलोचना बहुत दिखाई देती है।

द्विजातियोंके द्विजे पहले मन्वर्षा विवाह ही बहित  
है। किन्तु जो रतिकामवास विवाह करता आदने हैं, वे  
मनुकेम क्रमसे विवाह कर सकते हैं।

शुद्ध और वैधम आदि स्मृतिकांतोंके द्विजोंमें बहु  
विवाहके प्रयोजनानुसार बहुविधान दिखाई देता है।  
पुराणोंमें इसके वृक्षान्तका उल्लेख नहीं। श्रीहृष्यकी बहु  
पत्नी राजिया थीं। वसुदेवकी भी बहुपत्नियां थीं। श्री  
मद्रुमागयत्नमें इसके प्रमाण हैं।

सत्य युगमें चर्मात्मक नामके एक ऐश्वर्यशाली  
व्यक्तिके बहुविवाह किया था। अमिहान शकुन्तलमें  
इसका वर्णन है।

पौराणिक और आज कलके राजाओं के बहुविवाहकी  
बात तो किसोमें छिपी नहीं है। पचास वर्ष पहले  
बङ्गालके राष्ट्रीय मुस्लीमोंमें मौसे अर्धिक विवाह होत  
था। कहे कह सकते हैं, कि भारतमें जितना इस प्रथा  
का प्रभाव और पर था, उतना हीर किसी भी देशमें  
नहीं। फिर भी वैदेशिक मुसलमानोंके यहाँ बहुविवाह  
की कमा नहीं।



बहुपत्नित्व (Polyandry)।

बहुपत्नीके अनेक उदाहरण हैं, किंतु बहुभारतकी प्रथा बहुत कम है। वेदमें इस प्रथाका उदाहरण या उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेदमें भी एक स्त्रियोंके बहुपत्निका उल्लेख दिखाई नहीं देता। श्रुतिमें स्पष्ट ही लिखा है—

१। "नैकस्याः बहवः सह पत्यः"

अर्थात् एक स्त्रियोंके बहुतेरे पति नहीं होने चाहिये।

२। "यन्नेका रजना द्योयूष्याः परिर्यवन्ति।

तस्माद्धोको द्वो पती विन्देत।"

अर्थात् जैसे एक रस्सो दो युगोंमें नहीं बांधी जाती है, वैसे एक स्त्री दो पति नहीं कर सकती।

प्रथम श्रुति इस विषयमें उतनी दृढ़तर नियम वाचक नहीं। क्योकि "सह पत्यः" शब्दका अर्थ यह है, कि एक स्त्रियोंके युगपत् अर्थात् एक साथ कई पति नहीं रह सकते। किन्तु भिन्न भिन्न समयमें पति रह सकते हैं। द्रौपदीके पत्रपाण्डवोंके विवाहके समय आपत्ति कर द्रुपद राजाने कहा था—स्त्रियोंके लिये बहुपत्नित्व वेदविरुद्ध है। इस पर राजा युधिष्ठिरने उक्त श्रुतिकी व्याख्या अच्छा तरहसे समझा दी थी। फिर युधिष्ठिरने इसके सम्बन्धमें गीतम-वंशाया जटिलाके बहुभारतकी वानका प्रमाण दे कर इसका समर्थन किया था। उन्होंने यह भी कहा था, कि वाक्पा नामकी कन्याका साथ ऋषियोंके साथ विवाह हुआ था। मारिया नामकी कन्याका विवाह 'प्रचेता' दश भाइयोंके साथ हुआ था।

फलतः ऋग्वेदमें हमने ऐसा एक भी उदाहरण नहीं पाया। हिन्दू-समाजकी सभ्यताके विकासके साथ साथ बहुपत्नित्वका विधान लुप्त हो गया। महाभारतमें दीर्घतमाप्रवर्तित जिम मर्यादाके स्थापनका उल्लेख है, वही स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिग्रहणका सनातन नियम है। यह नियम सब समाजमें एक समान आदृत हो रहा है। महाभारतके दीर्घतमाप्रवर्तित मर्यादा-स्थापन प्रसङ्गमें टीकाकार नीलकण्ठने इस विषयमें अन्तिम मोमासा लिखित की है। यथा—

"ननु यदेकस्मिन् यूषे द्वे रजने परिर्यवति तस्मादेको द्वे जाये विन्दान्ते। यन्नेका रजनां द्वयो यूषयोः परि-

व्यवति, तस्मान्नेका द्वौ पती विन्देत" इत्यर्थावादि-  
निषेधाधिरेकस्याः पतिग्रहणम्याप्राप्तवान् कथमिय  
दीर्घतमसा मर्यादा क्रियत इति चेन्नवाह मृते इति।  
तस्मादेकस्य द्वया जाया भवति नैकस्यै बहवः सह  
पत्यः इति श्रुत्यातरे सह जग्दान् पत्येषिण अनेकपत्नित्व-  
प्रसङ्गनात् रागतः प्राप्तत्वात्तत्राशोपपत्तः 'सह' शब्दो-  
ऽपि रागतः प्राप्तानुमाद् एव न विधायक, अन्यथा विहित-  
पत्निसिद्धत्वात् अनेकपत्नित्वे वि द्याः स्यात्। कथं  
तहि द्रौपद्याः पञ्चपाण्डवा मागपाञ्च दश प्रचेतनः ?  
इतानन्वनाना नायानाञ्च द्वितीयादयः पतया दृश्यन्ते  
इति चेन्न। "न देवचरितं चरेत्" इतिन्यायेन देवता  
कक्षेषु पत्यनुयायागामान्; नीचाना पशुप्रायाणाञ्च  
चाग्न्याप्रमाणाञ्च; अथकाराषपत्रचराञ्च नियाम-  
स्येत दिक्॥" ( आदिपर्व १०४ ३, ३६ )

नीलकण्ठके निदान्तका मंत्र यह है, कि द्रौपदी और  
मारियाके बहुपति थे और इस समय नाच जानियोंमें  
स्त्रियोंके बहुत पति देने जाने हैं। उन मध्य उदाहरणोंमें  
बहुभारतका सभ्य समाजकी विहित नियम नहीं हो  
सकती। जाग्रकारोंका कहना है, कि "न देवचरितं  
चरेत्" अर्थात् देवताओंके आचरणक अनुसार आचरण  
नहीं करना चाहिये। द्रौपदी आदि देवता गिना जानी  
हैं। जनसमाजके लिये उनका आचार व्यवहारित  
नहीं हो सकता। दूसरी ओर पशुप्रायः नाच जातिके  
लोगोंका व्यवहार भी शिष्ट समाजके लोगोंके लिये  
प्रामाणिक माना नहीं जा सकता। और अधिक भी भेद-  
से नियोग व्यवस्थित है। यह प्रथा समाजमें अबाधरूप  
चलाई नहीं जा सकती। अतः इस समय बहुभारतका  
प्रथा शास्त्रसम्मत नहीं हो सकती। भारतवर्गक दक्षिण  
प्रान्तोंके सिवा यह प्रथा कहीं भी प्रचलित नहीं।

विधवा पत्नी।

हिन्दू समाजमें विधवा पत्नीरूपसे ग्रहण की जाती  
थी। इस बातका प्रमाण और उदाहरण शास्त्रोंमें बहुत  
कम नहीं। फिर जिस उत्सव तथा धूमधामसे बाराही  
बालिकाका विवाह होता है, उस तरह विधवाओंका विवाह  
सर्वसम्मत नहीं तथा धूमधामके साथ कभी हुआ है,  
या नहीं, यह विषय विचारणीय है। हिन्दू समाजमें—

धीरे तो क्या—हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदक पढ़ने से मालूम होता है, कि कुछ द्विर्वा पतिके मर जाने पर साते समय देवरका समाहर करती थी भयबा देवरके साथ सोती था । जैसा कि ऋग्वेदक १० मण्डल ४० सूक्त २ में लिखा है । इसका प्रमाण हम पहले दे खुके हैं । इसमें स्पष्ट मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें कुछ विधवाये कामसे पोकृत हो कर या प्रेममें फस कर देवर के साथ रतिसम्भोग करती थी । इसका कुछ पता नही ज्ञात कि यह प्रथा उच्च हिन्दुओं में थी या निम्नमें भयबा यह समाजमें ब्रह्मचरसे प्रचलित थी या नही । यह भी हो सकता है, कि सगतामरहित विधवाये ऋगु काममें पतिके रूपमें देवरसे सम्भोग किया करती थी । इसके बाद कामपोकृत तथा प्रेममें पकड़ कर देवरको पति का स्थान दे लेनी था । फिर यह भी हो सकता है, कि सूक्तकारके वासस्थानक जाते और यह प्रथा इनर भूमिमें प्रचलित थी या इस समय उच्च वर्गके हिन्दुओं में भी यह प्रचलित भा मसम्भव नही है । ऋगुके अनेक स्थलोंमें यह प्रथा भाष्य भी देको ज्ञाती है । भारतमें भी मोक्षप्रदानके लोगोंमें भी जाईको पत्नी करके रक्षनेकी प्रथा बली जाती है । किन्तु हमारे मनुसंहाराज इस प्रथाके बहुर विरोधी थे । मनु का कहना है—

“श्वेदो पत्नीवतो मर्त्या बरीषान् वाप्रवक्ष्याम ।  
 पत्नी मयतो गन्धर्वस्युक्ताऽप्यनारि ॥” “५८”  
 ( मनु ६ अध्याय )

विधवा-रमणीका देवरक साथ संसर्ग शायद थाया वह समझा नही जाना था ।

किन्तु इससे कुछ भी पता नही चलना कि देवरके साथ विधवाका विवाह होता था या नही, बिनाहके जितने मरते थे सब उच्यवर्तित होते थे या नही ।

१० में मण्डलके १८वे सूक्तका एक ऋक् उद्धृत करते हैं—

“इया नारीविधवाः सुपत्नी भन्वनेन तर्पिता रंभिशन्तु ।  
 भन्मभशान्पत्नीया सुपत्ना वापेरत्तु जनयो योनिममे ॥”  
 ( १० १८३ )

साधयने इसका जो माय्य किया है, वह इस तरह है—

‘भविष्यथा । धवाः पतिता । अविगतपतिष्वा जोबन्मन्तु’ का इत्यर्थः । सुपत्नी शोमनरतिका इया नारी मार्यं अन्वनेन सर्वतोऽङ्गनसाधनेन सर्पिषा पूताक मैत्राः सरथा संविशन्तु । तयानभ्रषोऽभ्रवर्जिता अर इत्योऽनमोवाः । इत्यर्थः अनीच रोगः । नद्वर्षिताः मानस दुःखवर्षिता सुगताः शोमनपत्नसदिता अनयाः जन यत्यपत्यमिति जनयो मार्याः । ता अमे सर्वेषां प्रथमताः पप योनि पुष्टमारोहन्तु । आगच्छन्तु ।’

हम इसका अर्थ ऐसा समझते हैं, कि पहले समक में मृत व्यक्तिको लोके साथ साथ भविष्यथा (सधवा) शोमनपतिका, शोमनपत्नरत्नयुक्ता छिवा भी श्रमशानमें जाती थी । ये विधवाओंके दुःखमें सहानुभूति देना कर रोती और मानसिक दुःख प्रकाश करती थी । उनके प्रति यह भविष्यत प्रकट किया जाता है कि ये येशोंमें सम्यक रूपसे अङ्गन लगा पूजाक नेहसे मोक्षपु भीर विच्छेदश परित्याग कर सबसे पहले घरमें प्रवेश करें ।

इसके बादके ऋक्में हो मृत व्यक्तिको पत्नीको पति को श्रमशानशठ्वाणे घर लौटानेके निवे देवर भादि उपदेश कर रहे हैं । यथा सायणाः—

‘शैबरादिका प्रोतपत्नीमुशोर्षं नारीत्यनवा मर्तु सफाजानुस्थापयेत् । स्मृतं च—तामुत्थापयैद्देवरा पतिस्थानीयोऽन्तेवासी अरहासो बोदोर्षं नार्यमि जाव मोऽम्” ( मन्व ० धर ० ५११, १८ )

देवर भादि स्वजन क्या कह कर मृत पत्नीको उठा कर स्थानीके समीप घर लौटाने थे, सूक्तकार यही कह रहे हैं, यथा—

“उदीर्षी नार्यमि कोरकोक” गतामुनेतुया शेष एहि ।  
 इत्त प्रमस्य रिबिधायु नेर फत्तुगीभित्तममि सं बभूय ॥”  
 ( १० मं १८ सू ८ सू ५ )

इसका पति ! तुम इस स्थानसे उठ कर पुन पौतादिक वासस्थान पुष्टिसंसारको छोड़ लो । तुम जिसके साथ साने जा रहे हो, वह तुम्हारा पति मर चुका है । जिसने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था जिसने तुम्हारे गर्भसे पुत्र उत्पन्न किया था, इसका साथ तुम्हारा जो कर्त्तव्य था उसका भूल हो गया । इसका अनुमरण करनेको अब बहुर नही । धर चलो ।

इन दोनों ऋक्में विधवा विवाह तथा विधवा-मरण

के संबंधमें कुछ भी आशय नहीं मिलता। फिर उभे ऋक्से यह मालूम होता है, कि मृत्यु अतिक्रम विधवा पत्नीके साथ यहूनेरी सधवाये' भी श्मशान-भूमिमें जाती थीं। उसके साथ वे होती थी। उपस्थित व्यक्ति उन सर्वोंको जोकाश्रु ब्रह्मणे तथा अश्वन और घृताक नेत्र हो कर सबसे पहले घामें प्रवेग करनेको कहते थे। नेत्रमें अश्वन तथा घृताक नेत्र हानेका तात्पर्य अन्धो तरहसे समझमें नहा आता। मालूम होता है, कि सधवाओंके प्रति उपदेश दिया जाता था।

आठवें ऋक्को पठनेसे मालूम होता है, कि पुत्रवन्तो विधवाओंके सहमरणको प्रथा न थी। जीवलेकमें या मन्मार्में रह कर मन्तान आदिका पालन पेषण करना ही उनका कर्त्तव्य और धर्म माना जाता था।

फलतः ऋग्वेदसहितानि विधवाविवाहका कोई उदाहरण नहीं मिलता। दृमरी और श्रुतिमें नारियोंके लिये बहु भर्त्ताका प्रतिषेध दिखाई देता है। विवाह के वैदिक मन्त्रोंमें विधवाविवाहका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

इसमें मनुने लिखा है—

“नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्तये क्वचित्।

न विवाहविधायुक्तं विधवावेदन पुनः ॥” ( ६.६५ )

इसकी टीकामें कुल्लूकने कहा है, कि “न विवाह विधायकग्राम्ने अन्येन पुरुषेण सह पुनर्वावाह उक्तः।” अर्थात् विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाहका दूसरे पुरुषके साथ फिरसे विवाह करनेका नियम नहीं। इससे स्पष्टरूपसे मालूम होता है, कि आगे चल कर श्रातृनियोगको कोई विधवाविवाह न समझ ले, इस शंकाको निवारण करनेके लिये मनुने साफ कह दिया है, कि विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाहका कुछ भा उल्लेख नहीं।

मनुसंहितामें विधवाविवाहका विधान न रहने पर अवस्थाविशेषमें विधवाके उपपत्तिका विधान दिखाई देता है। ( मनु ६.१७५-१७६ )

स्त्रिया पुरुषों द्वारा पारित्यक्त हो अथवा विधवा हो कर पर पुरुषोंके साथ पुत्रोत्पादन करे, तो उस पुत्रका नाम पौनर्भव होगा। यह विधवा यदि

अश्वनयोनि हो या अपने कौमार पत्निका तथा कर दूसरे पुरुषके साथ रह चुकी हो और फिर अपने पत्निके साथ पुनः मिलना चाहे, तो पुनः संस्कार कर उसे ले लेना चाहिये।

अब बात यह रह गई, कि ‘पुनःसंस्कार’ क्या है? कुल्लूकका कहना है—“पुनर्विवाहाद्यर्थं संस्कारमर्हति।” इसका अर्थ यह है, कि “विवाह आशया जिमका ऐसा संस्कार है” वही विवाहाद्य संस्कार है।

मनु करते हैं, कि पुनः संस्कार करना कर्त्तव्य है। मनु पुनर्विवाहका बात नहीं करते। विवाह विधिमें स्त्रियाके विवाहमें जो सब अनुष्ठान विहित है, यदि वे ही सब अनुष्ठान अश्वत योनि विधवा अथवा आई गई हुई स्त्रियोंके पतिग्रहण करनेमें अनुष्ठान होने तो मनु अवश्य ही विधवाविवाह शास्त्रसिद्ध कहते। किन्तु मनु महा राजने ऐसा शास्त्र प्रमाण या आचरण न देख कर ही कहा कि विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाका पुनर्विवाह नहीं लिखा है। कुल्लूकने मनुके उक्त श्लोकको टीकामें भी स्पष्टरूपसे कहा है। यदा कुल्लूकने जो “विवाहाद्य संस्कार” कहा है, यह यदि विवाहका ही अर्थ मान लिया जाय, तो कुल्लूकका एक उक्तिसे दूसरी उक्ति टकरा जाती है और दोनों उक्तियां अव्यवस्थादोषग्रस्त हो जाती हैं। अतः विवाहाद्य संस्कार कहनेसे विवाह समझमें नहीं आता, यही कुल्लूकका यथार्थ अभिप्राय है। अतएव कुल्लूकको ग्रन्थामें भी विधवाविवाहका समर्थक प्रमाण नहीं मिलता।

यह संस्कार किस तरहका है और किस तरह विधवा या दूसरेके घर गई हुई स्त्री पत्नीवन् हो पौनर्भव भर्त्ताको गृहिणी बनती थी, इसका उल्लेख कहीं कुछ नहीं मिलता। यह संस्कार चाहे जैसा ही क्यों न हो, किन्तु यह बात अवश्य ही मानने लायक है, कि सधवाओंकी तरह उनका आदर मान नहीं होता था। इनके पति समाज में वैध कर भोजन नहीं कर सकते थे। ( मनु ३.१६६-१६७ )

भेडा और भँसके व्यापारों, परपूरापति, भववाहक

प्राद्यप्य, विगर्हित आचारवासा, अपाङ्गकेय और द्वित्रा यम—एक स्वयं भाग्य शुभ प्राद्यप्य एक पंक्तिमें भोजन न करे। देवकार्यमें यज्ञ या पितृकार्यमें यदि प्राद्यप्यों को आमन्त्रित करना हो तो इन सबको आमन्त्रित नहीं करता आदिदे।

परपूर्वावति शब्दका अर्थ—वीनम'पमर्त्ता' है। इनको पूरी आशुता मनुष्य जनोंमें ऊपर ही गई है। मेधातिथिमें भी लिखा है—'परः पूर्वो यस्याः तस्याः पतिम'ता या अय्येनै वता अय्येन वा ऊहा तां पुनर्यः संस्कारोति पुनम'वति मर्त्ता वीनम'वो नरो मर्त्ताभाविति शास्त्रेण ।'

कुन्डून्म मो कदा है—'परपूर्वां पुनम'स्तस्याः पतिः ।' विधवाका संस्कार कर सुदिनों बना देने पर भी मर्त्ताको अपाङ्गकेय या निःशुभोप हो कर समाजमें रहना पड़ता है। यही मनुष्य अभिप्राय है। मर्त्ता को यह ऋतुमें मेधातिथिमें कदा है—

"अपार्लोवाः प ल नाइ न्ति । मर्त्ताये ङ्क कर्त्तव्यः । अनह'स्वमेव पकोभवमं प्रतीयते । अयैः प्राद्यप्यैः सह भोजनं नाह'मित । अतपय पीतदुग्धा उच्यन्त । तैः सदोवचिदा अय्येऽपि वृ पता मवगित ।'

अर्थात् अपार्ल व प्राद्यप्य अय्य प्राद्यप्यों के साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन कर नही सकते। ये पंक्तिबूचक हैं। इनके साथ बैठ कर भोजन करनेसे दूसरे भी निम्न भोग हो जाते हैं।

इससे साफ साफ़ मालूम होता है कि विधवाको से जो मनुष्य घृण-संसारका काम चलाते थे समाजमें से अनाशुत और निम्नभोग होत थे। उनका साथ काइ बैठ कर भोजन नही करता था। असल बात यह है, कि ये जातिबुजुन हो जाते थे। कमला मनुष्यद्वाराजने स्पष्ट ही कदा है—

"न श्रौतव्यं शास्त्रीनां वचिद्विद्वतोर्विद्वतये ।"

( मनु ५।१।१२ )

किन्तु विधवाको कामचोरों या रथेतिहारी तरह रथेता तथा इनके गर्भसे सन्तान उत्पन्न करना इस समय जैसा दिखाई देता है, वैसा ही पहले भी दिखाई देता था। नागराज देवायनका पुनर्क सुपण द्वारा मारी जाते पर इनकी पुत्रवधु या पत्नी उत्पन्न शोकाकुल हो उठे। नागराज देवायनने उन विधवा कामाचारों मनुष्य-

को मनुष्यके हाथ समर्पण किया। मनुष्यने इनको आर्प्या बनाया और इनके गर्भसे मनुष्य द्वारा इरावाम नामक एक लड़का पैदा हुआ।

येना वज्रद्वार सब देवों में सब समय ही प्रचलित दिखाई देता है। यह कवल अविचार है। इससे विधवाविवाहका समर्थन नहीं होता और इससे यह भी प्रमाणित नहीं होता था कि महाभारतक समय विधवा विवाह प्रचलित था।

मनु भगवान्में विधवाको संस्कृत कर उसे एक गृह संसारका कार्य चलायिका एक विधान बना दिया है। फिर मां येने विवाह करनेवाले निम्नित गिने जाते थे और प्राद्यप्य उनका साथ बैठ कर भा गी नहीं सकन थे किन्तु उनका द्वारा उनका गम से उत्पन्न सन्तान भाग कलक रक्षणो किये हुए विवाह या निकाहकी तरह अपने पिताक पिण्डदान तथा पैतृकसम्पत्तिक अधिकारो हा सकते थे। इसका कुछ दिनोंके बाद व्यवस्थापक धामि कौन इसका एकत्र हो गला घो ट दिया है।

( इन्द्रमरतीव )

इसो तरहके और भी अल्पप्रमाणोंसे कलिमें पुनर्भू संस्कारकी गताही कर ही गई है। पुनर्भूके गर्भम उत्पन्न सन्तानो को इस समय पिण्डदानका भा अधिकार नहीं। इससे ये सर्वाधिक भी मारिह नहीं हो सकने।

और एक बात है कि कुमारी कन्याका विवाह हा यथार्थ विवाह कदा जात है। पारस्कर पाण्डित्य, इयास, गीतम, यजुष आदि शास्त्रकारोंने एक स्वरसे उसी विधानको घोषणा की है।

एक सब प्रमाणों द्वारा दिखाई देता है, कि विधवा विवाहके लिये शास्त्रकारोंने कोई भी विधान नहीं बना रखा है। मनु भगवान्में पुनर्भूको संस्कार कर उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको जो कुछ अधिकार दिया था, उसको भी निष्ठसे शास्त्रकारोंने छान लिया है।

कुछ लोग पराशरक एक श्लोकका उल्लेख कर उन विधवा विवाहका समर्थन बतलाते हैं। ( पराशर ) पराशरका विधान ही कठिनायके लिये विहित माना जाता है। इस विधानमें विधवा विवाहक समर्थक

कोई प्रमाण है या नहीं, यही बात विचारणीय है। हम पराशरके तीनों श्लोकोंमें मनुकी पुनरुक्ति ही देखने हैं। उक्त तीनों श्लोकोंके अर्थ इस तरह हैं—

स्वामीके कही चले जाने, मर जाने, क्रोध होने, संसार त्याग करने, अथवा पतिन हो जाने पर—स्त्रियोंको दुन्दुवा पति करना धर्मसंगत है। स्वामीकी मृत्युके बाद जो स्त्री ब्रह्मचर्याका अवलम्बन करती है, वह देवान्में ब्रह्मचारियोंकी तरह स्वर्ग पानी है। जो स्त्री पतिके साथ सती हो जाती है, वह मनुष्य शरीरके साढ़े तीन करोड़ गोमोके संख्यानुसार उतने वर्ष तक स्वर्ग-सुख पाती है।

पराशरके तीनों वचनोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने नाराके आपत्कालका ही धर्म लिखा है। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—“पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरण्यो विधीयते।”

शास्त्रविहित पतिका अभाव ही हिन्दू-नारिके लिये आपत्स्वरूप है अतएव पाणिग्रहण करनेवाले पतिके अभावमें किसी भरणपोषण करनेवाले पालककी जरूरत होती है। इस पति शब्दका अर्थ पाणिग्रहणकारी पति नहीं, वरं इसका अर्थ अन्य पति अर्थात् पालक है। महाभारतमें लिखा है—

‘पातनाच्चः पतिः स्मृतः।’

अन्य पालक या श्लोक ही अन्य पतिके इस पदकी वाच्य हो सकता है।

महामहोपाध्याय मैत्रानियने मनुसंहिताके नवम अध्यायके श्लोकको व्याख्यामें पराशरके उक्त श्लोकका उद्धृत किया है। इन्होंने लिखा है :—

“पतिशब्दा हि पालनक्रियानिमित्तको ग्रामपतिः सेना यः पतिरिति। अनश्वास्माद्वोऽनेया मनुपरतन्त्रा स्यात्। अपि तु आत्मनो जावनार्थं सैरन्धीकरणादिकर्म इत्यन्यमाश्रयेत्।”

कुछ लोगोंका राय है, कि वाग्दत्ता कन्याके सम्बन्धमें ही पराशरकथित व्यवस्था ठाक है।

कन्याका व्यभिचार।

व्यभिचारको बन्द करनेके लिये शास्त्रकारोंने उप-देग चाक्योंकी भरमार कर दी है। फिर भी, समाजमें

कई तरहसे व्यभिचार होता ही आता है। भारतवर्षके हिन्दू समाजने जब अनौच विवाहका धारण किया था, तब उस हिन्दू समाजके जो विविध आचरण अनुष्ठान होते थे, सहिताओंके पढ़नेसे उनका कुछ आभास मिलता है। हम इससे पहले अमध्य समाजके वैवाहिक इतिहासकी आलोचनामें दिखला चुके हैं, कि विवाहके पहले भी बहुतेरे देशोंमें कन्या इच्छानुसार व्यभिचार करती हैं। किन्तु उनका यह व्यभिचार उनके समाजमें निन्दनीय नहीं समझा जाता। हिन्दू-समाजमें भी किसी समय अवस्थाविशेषमें व्यभिचार दिखाई दिया था और वह घटना क्षमाकी दृष्टिसे परिगृहीत हुई थी। कानौन पुत्रत्व स्याकार ही उमका अकाट्य-प्रमाण है। मनु कहते हैं—

“पितृवैरमनि कन्य तु यं पुत्रं जनयेद्ब्रह्मः।

तं कानौनं वदेन्नाम्ना वेदः; कन्याः समुद्रवम् ॥”

( मनु २। १७२ )

अर्थात् पिताके घरमें विवाहके पहले कन्या गुप्त-भावसे जो सन्तान पैदा करती है, उस-सन्तानके विवाह हो जाने पर वह पुत्र उस पतिका ‘कानौन’ पुत्र कह-लाता है।

केवल घटनाको देव कर ही किसी कानूनकी सृष्टि नहीं होती। कभी कभी समाजमें कानौन पुत्र देखे जाते थे। महाभारतमें सब विषयोंका उदाहरण मिल जाता है। कर्ण महाशय इसी तरह पाण्डु राजाके कानौन पुत्र थे। इस समय ऐसे कानौन पुत्रोंका हिन्दू समाजमें लेप सा हो गया है। इस तरहका व्यभिचार भी इस समय देशमें दिखाई नहीं देता।

फिर ऐसी भी घटना देखी गई है, कि दूसरेसे पिताके घरमें कन्या गर्भिणी होती थी। गर्भावस्थामें ही कन्या का विवाह होता था। विवाह होनेके बाद सन्तान पैदा होती थी। अब इस सन्तान पर किसका अधिकार होना चाहिये, इसके पालन पोषणका भार किस पर अर्पित होगा, शास्त्रकारोंने इसी प्रश्नकी सीमांसा की है। मनु महाशयने इसका सीमांसा कर लिखा है—

कन्याका गर्भ जाना हुआ हो या अनजान हो, गर्भिणी कन्याका विवाह करनेवाला ही गर्भज लडकेका पालन-पोषण करेगा और उसका इस पर अधिकार

रहीषा । ऐसा मङ्गल "सङ्गेह" नामसे प्रसिद्ध होगा ।

भक्तिका विवाह ।

कानोन और मङ्गेह पुन विवाहके पूर्णके अतिथार के माहौलरूप समाजमें विद्यमान रहते थे । इन अवस्थामें भी अतिथारिणियों का विवाह होता था । इसमें यह भी मान्य होता है कि कन्यायें बहुत दिनों तक अविवाहिन अस्थायमें पिताके घर रहती थीं अर्थात् अधिक उम्रमें विवाह होता था तथा कुछ समाजमें अनाधीनताका भी ये श्रेय किया करती थी । मान्य होता है कि कानोन और सङ्गेह पुस्तोपादनकी दृष्टि देख विष्टने शास्त्रकारोंने बाह्यविवाहका आदेश प्रचार किया था । (भङ्ग)

श्रीः कन्या अविवाहित करके पिताक घरमें रहती है, उसके पिताको अग्रहृत्पादा पाप लगता है । येन स्थल में कन्याको स्वयं पर दृढ़ कर विवाह कर लेनी चाहिये अङ्गिरसे और भा कहा है—

"मात्रेण ददरो बने बदा कन्या न दीयते ।

तदा तस्वालु कन्याया विवा विरिषि योष्यिन्म् ॥"

राजमार्चण्डमें भी इसी तरहका विधान निर्दिष्ट हुआ है । अन्ति और कन्यामें तो रजस्यला कन्याको विवाह करने पर भी पिताको अशोक य बन कर समाजमें अनाद्यन रहनेका विधान बताया है ।

कन्याके विवाहकालक सत्यस्थमें श्री निर्णय अङ्गिरा ने किया था, महाभारतमें उनका अतिथार देखा जाता है । महाभारतमें लिखा है—

"विष्टः ॥ दोङ्गमन्दा माम् ॥ विन्वेताग्निनाम् ।

मदा मृदा रश्वि कम् । दद्यात् पिता त्वत् ॥"

गर्भान्ताम स्वर्षका युयुह ये हजबर्षीया अरजस्यका कन्याया पाणिप्रणय करे । इससे मान्य होता है, कि महाभारतके समय कन्याये साकह वर्णमें पहली साधारणतः रजस्यला नहीं हाती थीं । विष्टु अङ्गिरा और यम के वर्णोंकी देह कर मान्य होता है कि किसी प्राम्त विष्टय या अङ्गिराके शास्त्रकारोंको अवस्थायी परवर्षिता बना कर इन्होंने येनी अथबन्धा की थी । पङ्कप्रदेगमें तो ११ वर्ष तककी कन्याका अनुमतो देती देखा जा रहा है ।

विधवा विवाह मन्त्रादि किता मजसे भी अनुमोदित नहीं था । परागर्भे मो तो "नपे मूने प्रमङ्गन" धर्मोंकी सुष्ट महों की है, यह उक्त श्लोकके पङ्क शास्त्राश्रयण साथ एक शास्त्ररूपसे अर्थात् समकनकी चेष्टा करने पर मङ्गल दो समकने जा जाता है ।

उद्धृत १५७ श्लोककी टीका में मेधातिथिने लिखा है,—

"यत् तु गष्टे मूने प्रमङ्गिते श्रुति अ पतिते पत्नी । गञ्ज स्थापयसु मानोर्णा पनिरुषो विधोयत । इति—तत्र पात्र गाम् पतिमप्यमाद्ययत सैरुप्रस्मादिनरामरुपर्य नभमे अ निपुण निर्णयते प्रोशितमत्तृकापाश्च न विधिः ॥"

इसका माधार्थी यहा है, कि 'नपे मूठ' श्लोकमें श्री पति अश्वका प्रयोग है, इससे अर्थात् मृत्योपरान्त पाल मार्थ अथ पति हो समझा जायेगा ।

अर्थात् पाणिप्राहो पतिकी मृत्युके बाद नारियोंके शीबन विवाहका कुछ उपाय नहीं रह जाता बहो ही उनका भापरकाळ उपस्थित हो जाता है । भापरकाळ उपस्थित होने पर इस समय अणुदृष्टि अथमअथन कर अविवा कन्याती पड़ती है । ऐसी ही अवस्थामें पुत्रिनी श्रियों के अथ पात्रन योग्य करनेवालेकी शरण लेनी पड़ती है । अविवाकामात्रक निये हो श्री विधवायें दुन्दरे अति मावकक अरजापरन शिषा, ऐसी बात नहीं है । विधवाओंके अरक्षिता होने पर उनका विधे चर्मास्था करता भी कठिन है । इसान्धिये मनुन कहा है—

"विधा रण त बीमारे मर्त्या रणि वीरने ।

रणित स्थाने पुत्रा न श्री लाअभ्यवर्षि ॥"

श्लोक ।

महाभारतके समय "पुत्रार्थे विन्वेतामर्त्या" इसी कालिका यथय प्रादुर्भाव था ऐला मान्य होता है । विवाह करनेके बड़ उद्देश्य है, अतमें पुत्रोत्पत्तिका उद्देश्य प्रधानतम कहा जाता था । पतिके किसी प्रकारकी अस्त मर्षताके कारण श्लोक मन्त्रानोत्पादनमें कीह बाधा उत्पन्न होने या मन्त्रानोदन पतिक मर जाने पर विधोग द्वारा देवर या अविष्ट उपकितने मन्त्रानोत्पादनका विधान था । ऐस पुत्रकी "श्रेष्ठम" पुन नाम रखा जाता था ।

महाभारतमें क्षेत्रज पुत्रोंके बहुतेरे उदाहरण दिये हैं। महाभारतके प्रधान प्रधान कई नायक क्षेत्रज पुत्र हो कर भी जगत्में बड़े ही आदर हुए हैं। समय पा कर यह प्रथा हिन्दू समाजमें विदा हो गई। बाटके स्मृतिकारारोंने क्षेत्रज पुत्रोंके अङ्गप्रभावको खर्च करनेकी बड़ी चेष्टा की है। फलतः इस समय अब क्षेत्रज पुत्रों त्पादनकी प्रथा दिखाई नहीं देती।

पुनर्भू ।

पौनर्भव पुत्रका विषय विधवाके प्रसङ्गमें आलोचन हुआ है सही; किन्तु यहाँ उसके सम्बन्धमें कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। हम पुनर्भूको व्यभिचारिणी ही समझेंगे और उन्हें व्यभिचारिणियोंकी श्रेणीमें गिनेंगे। क्योंकि मनुने कहा है—

“या पत्या वा परित्यक्ता विधवायास्वदेच्छया ।

उत्पादेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥”

इस समय सामाजिक रतिके अनुसार पुनर्भू स्त्रीको प्रश्न करनेकी प्रथा नहीं रह गई। यदि कोई पुरुष स्वामात्यका या विधवाके साथ सहवास करे, तो वह समाजमें निन्दनीय गिना जाता है या व्यभिचारी कहा जाता है।

“आचौन हिन्दू समाजमें इस तरह कई काये व्यभिचार जान कर भी समाजमें इन सब प्रथाओंको दूर करनेका विशिष्ट उपाय प्रकटित नहीं हुआ था। जो सब दोष मानवचरित्रके स्वभावनिष्ठ हैं, समाजसे बिलकुल जड़ उखाड़ फेंकनेमें कठिनता अनुभव कर शास्त्रकारोंने इन सब व्यभिचारोंको उच्छुद्ध करना या विशुद्धतामें परिणत न होने दे कर कुछ अग्रमें नियमित करनेकी चेष्टा की थी। इसीलिये मनुने अक्षतयोनि विधवा परित्यक्ता या पतित्यागिनो व्यभिचारिणियोंको दूसरे पुरुषके ग्रहण करनेके समय संस्कारका विधान किया। उद्देश्य यह था, कि इस तरहके संस्कारके फलसे भ्रूणहत्यादि निवारित होंगी तथा व्यभिचारके विरोध प्रसारमें बाधा पड़ेगी। मनु भगवान्ने केवल अक्षतयोनि कन्याओंके सम्बन्धमें इस तरहकी विधि कही थी। जैसे—

“वा चेदक्षतयोनिः स्याद्वत्प्रत्यागतापि वा ।

येषां वा मां वा पु।उ क म इति ॥” ( १।१७६ )

किन्तु यात्रवल्क्य ऋषिने और अगे बढ़ कर यह व्यवस्था दी—

“अक्षता वा क्षता वापि पुनर्भूः सच्छता पुनः ।”

इसमें पुनर्भू नारियोंका प्रसार और भी बढ़ गया। अक्षता ही क्षता ही हो—फिरने संस्कार होने पर वह पुनर्भू कही जायेगी। इस संस्कारके फलसे कामनियोंके व्यभिचारमें बहुत रूकावट हुई थी; भ्रूणहत्या भी कम हो गई थी। किन्तु पौनर्भव भर्तार और पुनर्भू नारियोंके समाजमें निन्दनीय होनेसे लोग इस पथको अकष्टक या प्रसरतर पथ किम्बो सप्रथमें नहीं समझते थे। इसके बाद शास्त्रकारोंने समाजमें पुनर्भू या पौनर्भव पतियोंकी संख्या कमगः क्षीण देत्र कर इस विधिकी समूल नष्ट कर दिया। सम्भवतः उनके चिन्तमें ऐसी धारणा उत्पन्न होनी सम्भव नहीं, कि इस विधानमें विधवा रमणियोंके ब्रह्मवर्षके पुण्यतम पथ की बगलमें व्यभिचारका प्रलोभन रखा गया है। अतएव उन्होंने इसका जड़ उखाड़ना ही कर्तव्य समझ लिया था। चाहे जिन तरह हो। इस समय समाजमें पुनर्भू प्रथाका अस्तित्व नहीं दिखाई देता।

असवर्ण विवाहनिषेध ।

इसका भी प्रमाण मिलता है, कि ब्राह्मण शूद्रा स्त्रियोंसे भी कामतः सन्तान उत्पन्न करने थे और वह सन्तान पारस कहे जाते थे। ब्राह्मणोंका यह दुष्कर्म गुप्तरूपसे चलना था, फिर भी उनके द्वारा उत्पन्न पारशव सन्तान इस समय उस पापका साक्षी बन समाजके सामने नहीं दिख ई देते। मन्वादि ऋषियोंके समयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी कन्याओंसे भी विवाह कर लेते थे। किन्तु इस समय वह भी विधिविधान रह कर दिया गया है। मादित्यपुराण और वृश्नारदीय पुराणकी दुहाई दे कर आज कलके स्मार्त्त ले.गोंने अन्यान्य युगोंमें जो सब प्रथाये प्रचलित थीं, उन सबमें कई प्रथाये' नोड दी हैं, उनमें असवर्ण कन्या विवाह भी एक है। फलतः बाटके शास्त्रकार कनशः एक पत्नी व्रत ( Monogamy )के पक्षपाती बन गये थे तथा कौल व्यभिचारको बन्द करनेमें बद्धपरिकर हुए थे। यह इनके व्यवस्थित विवाह विधानकी आलोचना करनेसे स्पष्ट

प्रमाणित होता है। मनुष्योंके इष्टयमे काममात्र द्वारा कर धर्मादि कर कारियोको बिबाह-व्यवस्था मनुष्य करनेके लिये परम कारुणिक समाज हितोके अर्थि है। सब नियम प्रबोद और प्रतिष्ठित कर गये हैं उन सबको एकत्र चित्तसे समीक्षण करने पर यथायमे विन्मित होना पड़ता है। विवाहके मन्त्रोंको पढ़नेसे यह सहज ही मान्य होता है, कि विवाह बहुत पवित्र सामाजिक व्यवस्था है और यह प्रथा गार्हस्थ्यम और पारमाधिक धर्मोका परम सहायक है। इसके बाद हम विषयको यथास्थान आलोचना को जायगे।

रिष्यपति।

अभिचारका और एक कर्ता—द्विपितृति है। नियोग विधिसे बाध्य हो कर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये देवदत्ता नियोग करना शास्त्रसम्मत विधि है। इस नियोगका एकमात्र उद्देश्य पुत्रोत्पादन है। किन्तु नियोग काम या प्रेम विवशित है। अतएव यह व्यभिचार नहीं कहा जाता। द्विपितृति बाभिमानी है। मनु कहने हैं—

“मनुष्यैवैव भार्यायां कोऽनुत्प्रेत वमयाः।

वर्षेणापि नियुक्तानां न उचो द्विपितृतिः ॥”

अर्थात् पुत्र उत्प्रेत स्त्रानाको नियोगवन्मित्री भार्याके साथ जो पतिक कामक वजाभूत हो कर रमण करता है, वह उसका नाम द्विपितृति होता है। मनुषी समयमें इस श्रेणीक प्रवृत्तय इत्य इत्य आदि कारणोंसे आमजनके अयोग्य हैं। परपुत्रवतिका मो कुछ क्वचित्कारणै द्विपितृति ही कहा है।

कृष्य और गोष्ठक पुत्र।

कुरुक और गोष्ठकपुत्र व्यभिचारके फल हैं। मनु कहते हैं—

‘परतोप जाते ही पुत्रो कृष्यगोष्ठकी।

पत्नी जीवति कृष्यः स्वान्मुत्रे मरति गोष्ठका ॥”

अर्थात् पराई स्त्रास दो तरहक पुत्र उत्पन्न होते हैं। सपत्नी यमोसे जात द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होता है, वह कृष्य कहलाता और विधवाक गर्भसे उत्पन्न सन्तान गोष्ठक कहा जाता है। इस तरहके दोनों सन्तान अभाक्छेप हैं। इन सबोका धार्यादिमें कुछ अधिकार

नहीं, फलतः पैतृकसम्पत्तिके मो ये अधिकारी नहीं। विधवा यदि पुनः संतुष्टा हो कर सन्तान उत्पन्न करे तो वह सन्तान पौत्रमैव कहा जाता है। पौत्रमैव सन्तान यदि अभाहक्येप हैं, तो मो वह संतानके अधिकारसे श्रद्धित नहीं है।

पुत्रप्रोत्थि।

मनुसंहिताके समय प्राण्य अग्याग्य तीन वर्णोंकी कथासो सब विवाह कर सकते थे। किन्तु शास्त्र ही यह माहा जो, कि प्राण्य पहले सरणा कथासे विवाह करे। गार्हस्थ्य धर्मके लिये सरणाका वायिप्रवृत्त प्रथमतः कर्त्तव्य कहा जाता था; किन्तु कामुक व्यक्तिके इर समय सब समाजोंमें कानून ही माहा मान कर नहीं चलते थे क्लैच्छःघारक बजाबती हो कर काम फल है। मनुष्यदित्तके समय जो व्यक्ति विवाहके इस मनातन नियमको अपेक्षा कर पहले दो एक शूद्रामे विवाह कर बैठते थे वे पुत्रजापनि कहलाते थे। प्राण्य समाज उनक साथ एक पक्षमें बैठ कर मोक्ष नहीं करता था। मनुसंहिताके तोमरे अष्टाग्यक १३वे श्लोक स १६ श्लोक तक इस सम्बन्धमें नियेव वापवोंको पूर्ण रूपसे देखा चाहिये।

परिवेला।

हिन्दू समाजमें अविवाहित और विवाहके उपयुक्त उपेक्ष भाईके मौजूद रहते छोटे भाईका विवाह निषिद्ध है। जो इस नियेव वापवको अपेक्षा कर विवाह कर लेते थे, वह परिवेला कहलाते थे। परिवेला अभाक्छेप होते थे और समाजमें निन्वित समझे जाते थे।

क्यालय।

हिन्दू-समाजमें और एक बहुत बड़े दोषके दूर करने के लिये शास्त्रकारोंने बड़ी चेष्टा की था। इस दोषका नाम क्यालय है। हम बहुत तरहमें इस प्रथाके अस्तित्व और इसका मुकोकउत्र करनीकी चेष्टा देखते हैं। मनुसंहितामें शिव अश्राव्य तरहके विवाहोंका उल्लेख है, उनमें आधुनिक विवाहमें क्याय शुभकको बात सबसे पहले ही विचारै देता है, जैसे—

“अतिमो हविष्य इतरा क्याये को व्रथितः।

क्यायदानं स्वाध्वन्त्याशुपे कर्मै व उच्यते ॥”

(मनु० ३।१२)



अर्थात् कन्याके पिता आदिको या कन्याको शास्त्र नियमसे अधिक धन दे कर विवाह करना ही आसुर-विवाह है।

इस तरह धनदान करनेकी प्रवृत्ति वरपक्षसे होता है। वर या वरपक्ष कन्याको या कन्याके पिता आदिको धन दे कर सुन्दरा कन्या या अपने इच्छानुसार कन्या विवाह करना आसुरविवाहका प्रमाण है। ऐसा विवाह-शास्त्रकारों के विधानमें उचित नहीं बतलाया गया था। इसीसे इस विवाहका नाम आसुर रखा था। और भी एक तरहक कन्यापणती प्रथा दिखाई देता है। इस तरह के कन्यापणमें पिता हा इच्छापूर्वक कन्या बेच कर धन कमाता है। शास्त्रकारगण इसका घोर विरोधी थे। उन्होंने इसके रोकनेके लिये इसको बड़ी निन्दा की है।

विक्रयदोषक कन्याके पिता कभी विक्रय कर दाम लेनेमें वह अत्यधिकारके पातकी होत है। मनुसंहिताके नवें अध्यायमें लिखा है:—

"नानुशुभं जातेवत् पूर्वेष्वपि हि जन्मसु।

शुल्कस जैन मूच्येत छिन्नं दुःशतविक्रयम् ॥"

( मनु ६।१०० )

इस श्लोकमें प्रमाणित होता है, कि प्राचीन हिन्दू-समाजमें भी कन्याका शुल्क लेना अत्यन्त निन्दनीय था। असभ्य समाजमें कन्या-विक्रयका प्रथा प्रचलित थी। सभ्यताके विनाशके साथ साथ कन्या-विक्रयको प्रथा निन्दनीय समझी जाने लगी। किन्तु लोगों पिता उस समय भी अपने लोभके रोक नहीं सकते थे। वे प्रकृष्टरूपसे कन्या-विक्रय न कर अन्तमें कन्याके निमित्त कुछ रुपये ले कर कन्या बेचने लगे। सुश्रमदगों शास्त्रकारोंकी दृष्टि इस नई प्रथा पर भी पड़ी। उन्होंने नियम किया, कि कन्याके देनेके लिये शास्त्रानुसार किञ्चिन्मात्र शुल्क प्रदानकी व्यवस्था है। स्थलविशेषमें यह शुल्क-कन्याकर्त्ता कन्याके नाममें ले कर स्वयं ही हड़प जाते थे। शास्त्रकार इसको ही "छन्न कन्याविक्रय" कह गये हैं अन्यान्य शास्त्रकारोंने भी कन्याविक्रयके अत्यन्त दोष-युक्त कहा है।

( अविषहिता )

कन्याका कन्या विवाह करनेसे पत्नी नामसे नहीं कहा जाती। और तो क्या, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र

भी पिण्डदानका अधिकारी नहीं होता। दत्तक-मीमांसामें लिखा है—

'सरीसो दुई विवाहिता नारी पत्नी नहीं कही जाती। वह पितृ कार्य तथा देव-कार्योंमें पतिको सहधर्मिणी नहीं बन सकती। पण्डित लोग इसे दासी कहा करते हैं।'

उदाहनत्त्वोद्भूत कश्यप-वचनोंमें भी कन्याका अपवाद दिखाई देता है।

जो लोभवशतः पण ( धन ) ले कर कन्यादान करने हैं, वह आत्मविक्रयी पापात्मा महापापकारी घोर नरक-में जाते हैं और अपने ऊपरके सात पुत्रको भी नरकमें फेंकते हैं। ( उदाहृतत्त्व ) क्रियायोगस्तरमें लिखा है, कि वैकुण्ठवासी हरिश्चर्याक प्रति ब्रह्माने कहा है—

'हे द्विज ! जो मूढ़ लोभवश कन्या विक्रय करता है, वह पुरोपहृद् नामक वार नरकमें जाता है। बेचो हुई कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह चाण्डाल होता है, उसको धर्ममें कोई अधिकार नहीं।'

( क्रियायोगधारे १२वां अध्याय )

इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट विदित होता है, कि शास्त्र-कार कन्या-विक्रयका अतीव दूरित कार्य समझते थे। ऐसी छोटी पत्नी तथा इसके गर्भसे उत्पन्न लड़कको पुत्र नहीं कहा जाता था। ऐसी स्त्रिया दासी तथा उनके गर्भसे जन्मे हुए पुत्र चाण्डाल कहे जाते थे। ऐसी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न सन्तान पिताके पिण्डदानका भी अधिकारी नहीं। जो व्यक्ति अर्थलोभसे कन्या बेचता है, वह सदा नरकमें वास करना है और अपने इस कार्यके फलसे अपने माता-पिताको और ऊपरकी सात पीढ़ियोंको भी नरकमें फेंकता है।

किन्तु परितापका विषय यह है, कि हिन्दुओंके प्राथमिक सुसंस्कृत समाजमें जिस क्रमकाके विरुद्ध शास्त्रकारोंने अस्त्र उठाया था, जिस क्रमकाको समाजसे दूर भगानेके लिये भीषण नारकीय चिह्नको लोगोंके सामने चित्रित किया था, जिसके बीजको उन्नाड़ फेंकनेके लिये एक स्वरसे अकाशय निषेधाज्ञाका प्रचार किया था, आज भी वह पापकृपिणी प्रथा समाजमें मुंह फैलाये खड़ी है। यह दोष यदि समाजके निम्नतरमें प्रभावित रह कर आदिम असभ्य समाजकी प्राचीन स्मृतिका साक्ष्य

प्रदान करता, तो हम इतने विस्मित नहीं होते। किन्तु पुनर्जायकी बात है कि समाजिक मुख्य विशेषता श्रौतिय ब्राह्मण इस सविणी प्रथाक शिफार हो रहे हैं अर्थात् अपनी बुद्धिताको बेचा करते हैं। हमसे भी ये लोग यह क्याम नहीं करते, कि कन्याओं का अत्यधिकव शास्त्रमें विचक्षण वर्जित है। समाजिक नेता ब्राह्मण ऐसे मोक्ष कर्मियोंको शास्त्रानुसार शासनकी भी व्यवस्था नहीं करते। किन्तु हर्ष है, कि इस समय (कन्याविक्रय) कमना कम हो गया है।

पुत्र-विक्रय ।

हिन्दु धर्मका और बहूय ब्राह्मण और कायस्थ समाज में विवाहक विवे पुत्रविक्रयप्रथा द्वितीय दिन बढ़ रही है। प्रायिक ब्राह्मणोंमें जिस काम पर कन्यायें विक्रयी थीं, उससे कहा अधिक काम पर इस समय ब्राह्मणोंमें तथा कायस्थोंमें पुत्र विक्रय रह है। इन्हीं ही जातियों में कयो—प्राया सभी जातियोंमें पुत्र विक्रयकी प्रथा प्रचलित है। इतर जातियोंकी अपेक्षा यह प्रथा कायस्थकुलकी अधिक धपना शिफार बना रही है। इसकी यह हान्यत देण कर यह मान्य होता है, कि थोड़े ही दिनोंमें कायस्थ कन्याओं का विवाह असम्भव हो जायेगा।

विवाह और अविवाहा कन्या ।

जिस ब्राह्मणका कन्याका विवाह करना होता है और जिस ब्राह्मणकी कन्याका विवाह नहीं सम्भाव्य गालोंमें उसका विशेषकरसे वर्णन मिलता है। उसकी संक्षिप्तकरसे आलोचना कर देना प्राय। गुदकी आह्वान प्रतस्मान करके बाद द्विज लक्षणा श्रिता सवर्णों कोका विवाह करे। निम्नलिखित ब्राह्मण युक्त स्त्रियों विवाह करने योग्य हैं—जो कुमारी माता को असविष्टा है अर्थात् जो या सातवें पुत्र तक माता महादि पंगजात नहीं और जो मातामहाक और पुत्र तक सगीता नहीं और जो पिताका सगीता या सविष्टा नहीं है अर्थात् पिताकाहि सन्तति स्वभूमना नहीं है ऐसा ही जो विवाहयोग्य है और समाज करने लायक है। (सात पुत्र तक सविष्टा रहना है)

यौ, कथक मेड और धन धानादि द्वारा अति समृद्ध महार्थक होने पर या जो-प्रदणक सम्पत्तयमें निम्नलिखित

वश कुछ विशेषकरस निम्नित हैं, जैसे—हीनक्रिया अर्थात् आतर्क्य भादि संस्कार जिस वंशमें रहित, जिस प गमें गर्भाधान भादि दश प्रकारक संस्कार न हों, उस वंशकी कन्या कन्यो प्रहण न करना चाहिये। जिस कुलमें पुत्र उत्पन्न नहीं होता केवल कन्या जन्मती है, निरुत्पन्न अर्थात् जिस वंशमें ब्रह्मचर्यवग तथा परिहृत नहीं होते, या जो अल्पवयन नहीं करते, जो रोमय है अर्थात् जिस वंशके लोग अधिक पैमयुक्त होते हैं और जिस कुलमें अर्ध, रात्रयक्ष्मा, अयस्माद, श्विन्न और कुट्टरोग हो इन दश कुलमेंकी कन्यायें कन्यो प्रहण करनी न चाहिये। ये विशेष करस नियेय हैं।

जिस कन्याक शिरक बास विहृत या एक वर्ण हो जिसक अङ्ग बढ़े हों अर्थात् पैर या हाथको उगलिया अधिक हों, या सदा रोगिणी रहती हो, जिसके शरीरमें रोग नही हो, अल्पवयन हो, या अत्यधिक लोचन हो जिसके नेत्र विहृत वर्णक हों ऐसी कन्यायें विवाह करने योग्य नहीं। महान पक्ष, नदो, श्लेष्म, पयल, पक्षी, अर्ध, और सबक या दासादिके नाममें जिस कन्याका नाम हो, और जो कन्या भवानक नामवाली हो, ऐसी कन्यायें विवाहयोग्य नहीं। अर्थात् इन सब कन्याओंका विवाह न करना चाहिये। नाम यथा—धाममकी, नर्मदा, वष से विष्णु, सारिका मुद्गू, कटा हाकिनी इत्यादि नामविशिष्ट कन्या विवाहयोग्य नहीं। जिन कन्याक माई नहीं है, अथवा जिसके पिताका पृसागत विशेषकरस मान्य न हो, पांड पुत्रव देसा कन्याको अरुण्यके उरस विवाह न करे। जिन कन्याका भङ्ग विहृत नहीं हो जिसका नाम सुकसे उक्थारण किया जा सके, ईस या गजका तरह जिसका गति मलाहर हो जिसके काम, कण और दांत बहुत मोटे न हों ऐसी ही कोमलाङ्गी कन्या विवाहके विवे योग्य है। द्विजांकी चाहिये कि ऐसी कन्याओंसे ही विवाह करे।

पांडवस्यवर्तहिनामं सिखा है, कि द्विज नपु मक र्वादि दोषपूर्ण अन्तर्पूर्वा (पहले कितना नृसैक साथ विवाहकी बातचात भी न कही हो और दूसरेकी उपयुक्त नहीं हो, इनकोका नाम अन्तर्पूर्वा है।), काश्चित्ता, असविष्टा (पितृव्युसे नोकेक सात पुत्र

तक और मातृशुभ्रुने नीचेके पांच पुशत तक सपिण्ड ( कहलाता है। इसके सिवा ), छोटा उग्रकी, नोरोगी, भातृयुक्ता असमान प्रवरा, असगोदा तथा मातृपक्षसे पाच पुशत तथा पितृ पक्षसे सात पीढा परवर्त्तानो सुलक्षणा कन्याये' ही विवाह विषयमें उपयुक्त है। जिन वंशमें कोढ़ आदि भयङ्कर रोग हैं, और जो वंश संस्कार विहीन हैं, उस वंशकी कन्याको ग्रहण न करना चाहिये।

गुणवान् दीपविवर्जित, सवर्ण अर्थात् ब्राह्मणोंमें ब्राह्मण, क्षत्रियोंमें क्षत्रिय आदि, चिह्नान्, अस्थविर, पुस्त्वविषयमें परोक्षित और जनप्रिय व्यक्ति ही वर होनेके उपयुक्त है। इस तरह वर स्थिर कर उसके साथ कन्याका विवाह कर देना उचित है।

( याज्ञवल्क्य १४ अ० )

विवाहके पहले ही कन्याके लक्षण आदिके विषयमें अच्छी तरह जान पडताल कर लेनी चाहिये। ज्योतिन्त रव और बृहत्संहितामें इसके सम्बन्धमें लिखा है—

श्यामा, सुन्दर केशवाली स्त्री, जिसके वदन में रोप' कम हों, सुन्दर और सुगोला हो, चालमें अच्छी हो अर्थात् हरितगामिनी हो, जिसका कटिदेश वेदोकी तरह हो, जिसको आखे कमलकी तरह लाठ देा—ऐसा लक्षणयुक्ता कन्या यदि हीनकुलमें भी हो, तो उसे ग्रहण करनेमें उग्र नहीं करना चाहिये। शास्त्रमें अच्छे कुलकी कन्याके ग्रहण करनेकी आज्ञा है, कि तु ऐसी लक्षणवाली कन्या यदि हीनकुलमें भी हो, तो उपरोक्त प्रमाणसे ग्रहण की जा सकता है।

जो नारी धृष्टा, बुरे दाँतवाली, पिङ्गलाक्षी ( भूरी आंखवाली ) हो, जिसके सारे शरीरमें रोप' हों और जिसका मध्यदेश मोटा हो यानी जिसकी कमर मोटी हो, ऐसी कन्या यदि राजकुल अथवा उच्चकुलकी भी हो, तो विवाह न करना चाहिये।

जिनके नेत्र पिङ्गल वर्णके हों अथवा रक्तशून्य और चञ्चल हों, जो दुःशीला, सम्मनयोनि, सन्दिग्ध चित्ता हो और जिसके कपोल कूप'की तरह गहरे हों, उसको बन्धकी नारी कहते हैं। ऐसी स्त्रीसे विवाह न करना चाहिये। ( ज्योतिस्तत्त्वधृत कृत्यचिन्तामणि )

पहले मनुके वाक्योंमें कहा जा चुका है, कि नक्षत्र,

वृक्ष, नदी, पर्वत, पक्षी, सर्प आदि नामवाली कन्यायें विवाह करने योग्य नहीं। किन्तु मत्स्यसूक्तमें लिखा है—ऐसा समझना भूल है, कि कंधल नक्षत्रोंके नामकी कन्या होनेसे विवाह करने योग्य नहीं हो सकती। वर' उसमें एक विशेषता है—

पुत्रोका नदीवाचक नाम रखना नहीं चाहिये। किन्तु नदियोंमें गङ्गा, यमुना, गोमती आर सरस्वती; वृक्षोंमें मालती और तुलसी तथा नक्षत्रोंमें रेवती, अश्विनी और रोहिणी नाम शुभ हैं। इन सब नामवाली कन्याओंके साथ विवाह करनेसे हानि नहीं वर' शुभ हा होता है।

बृहत्संहितामें लिखा है कि मानव यदि पृथ्वीके अधिपतित्वको इच्छा करे, तो वह ऐसी स्त्रीसे विवाह करे जो सुन्दर हो, जिसके पैरके नख मुलायम, उन्नताग्र, सूक्ष्म और रक्तवर्ण हों, जिसके चरणतल या पैरके तलवे कमलके रंगका तरह मुलायम हो और दोनों पैर उसक समानरूपमें उपचित, सुन्दर अथच निगूढगुल्फविशिष्ट तथा मत्स्य (मछली), गङ्गा, गङ्गा, यध, वज्र, हनु और तलवार चिह्नयुक्त और नम्र हों, जिसके दोनों जेबे हाथीकी सूँडकी तरह, शिराहीन और रोमरहित हों, जिसके घुटने समान अथच सन्धिस्थल सुन्दर हो, जिसके ऊरुद्वय रोमशून्य हो, जिसका नितम्ब विपुल, फिर भी पापलके पत्तके आकारका हो, जिसकी श्रोणी और ललाट चौड़ा अथच कूर्मपृष्ठकी तरह उन्नत हो, जिसकी मणि अत्यन्त निगूढ हो और जो अत्यन्त रूपवती हो, ऐसी स्त्री विवाहके लिये ठीक है। ऐसी स्त्रीसे विवाह करनेसे सुखमौभाग्यकी वृद्धि होती है।

( बृहत्स० ७०।१ )

जिस स्त्रीका नितम्ब चौड़ा, मांसापचित और गुरु हो, जिसकी नाभि गहरी और दक्षिणावर्त्त हो, जिसकी कमर पतली और रोमरहित हो, जिसके पयोधर (स्तन) गोल, घन, नतोन्नत, फिर भी कठिन ( कड़े ), जिसकी छाती रोमशून्य, फिर भी कोमल और जिसकी गरदनमें शङ्कुकी तरह तीन रेखाएँ हों,—इस तरहकी लक्षण समन्विता नारी विवाहके लिये उत्तम है। जिसके अधर ( होंठ ) बन्धुजीव फूलकी तरह तथा शिम्बफलकी तरह हों, कुन्दकुसुमकी कलियोंकी तरह जिसकी दस्ता-

धनी शुद्धवर्ण और समान हो, जिसके वाक्प मरत्यताम परिपूर्ण हो, और स्त्री समभाव ह न या कारिकलको तरह भाषण करनेवाली और कातरताहोन हो, जिसकी नामिका समान समछिद्रयुक्त और मनोहर तथा लोल पत्रको तरह होममान हो जिसके धूयुग्म भाषणमें सटे हों, मोटे न हो न मन्त्रे हो वर धम्बाकार हो — ऐसे रमणी विवाहके लिये उपयुक्त हैं। जिस कामिनी का सलाह अर्द्धचन्द्राकार, नीच ऊँच न हो और जिस पर शैल न हो जिसके कान शैली समान और कोमल हो जिसके केश विकले और मोर काँडे रंगके हों तथा जिसका मस्तक समभाषण सबस्थित हो — ऐसी लक्षणयुक्ता रमणी विवाहके लिये अच्छी है और विवाह करनेसे सुख-समृद्धि बढ़ती है।

जिस स्त्रीके हाथ अथवा पाँवमें भृङ्गार, भासन, हन्टी, रथ धोरुस (बेल), धूरा वाण भाठा, कुन्तल, चामर, अक्षय पत्र, शैल च्चक्र, तोरय मस्त्य, स्वस्तिक, वेदिका ताम्बूल, गङ्गा छत्र पत्र आदि बिलोमें एक भा बिह्व अङ्कित हो तो वह सौभाग्यवती है, असा ऐसी हो कुमारियाँ विवाहके लिये उत्तम हैं।

जिस कुमारीके हाथका मणिबन्ध कुछ मिगुड जिसके हाथमें तरण कमलक हीनका भाग अङ्कित हो जिसके हाथका उ गलियों के पर्ण सूक्ष्म और जिसका हाथ न बहुत गहरा और न बहुत ऊँचा हो, फिर भी उत्कृष्ट रत्नायुक्त हो ऐसी रमणी ही उत्तम और विवाहा है।

जिन स्त्रीके हाथमें मणिबन्धमें निकली एक लम्बी (ऊर्ध्व) रत्ना मन्थना उ गलीक मूल तक गई हो या जिसके चरणमें ही ऊर्ध्व रत्ना हो, या वह कन्या मरणवाण होगी। अ गुणके मूलमें जितनी रत्नाये रहती हैं उतनी ही मस्तान होत हैं। इतम शै मोठी रत्ना दे, वह पुत्रकी, और पतली रत्ना है, वह पुत्रकी है। फिर शै रत्ना हीन नहीं हुई है, वह सन्तान हार्थजाको तथा अष्टरत्नाका सन्तान अक्षयायु देता है। इन सब लक्षणोंका देख कर कन्या विवाहके लिये निश्चित करना चाहिये।

मणिबन्ध मन्थी।

अब दुर्लक्षणा लिये की आशाचना की जाय। जिन स्त्रीक लक्षणके समय इसक पैरकी चानो और उसको

गासकी उ गली जमीनस छू न जाये, यह लो दुर्लक्षणा कही जाती है। जिस स्त्रीके पैरक अगूठेकी बगलकी उ गली अगूठेस बड़ी हो वह लो दुर्लक्षणसम्पन्ना है और इसके साथ विवाह करनेसे मनुष्यके फिर शुभका ठिकाना नही रहता।

जिस स्त्रीके घुटनेका निचला भाग उद्व्य, दोनो अङ्गुलि मिराये तथा शैलसे भरे हों और बहुत मांस विनिष्ट हो, जिसका मितम्ब चामावत मोचा और छोटा हो, तथा जिसका उर्ध्व कुम्भ (घट) क समान हो— ऐसी कुमारियाँ दुर्लक्षणसम्पन्ना हैं। यह विवाह क लिये अयोग्य है। जिस स्त्रीकी गर्दन छोटा हो वह दरिद्रा, लम्बी हो, नो कुमक्षणा और मोटा हो तो प्रचण्डा होती है। जिस स्त्रीके नेत्र विपुलवर्ण फिर लो अक्षय है और मुसकामे पर ना जिसका गाल गहरा हो जाता है, वह दुर्लक्षणसम्पन्ना है।

सलाह अम्बा हानिसे देवरका भाग, उर्ध्व अम्बा हानि से श्वशुरका भाग और शूल उम्बा हीनसे स्वामीका विभाग होता है। अतः ये लो दुर्लक्षणा हैं। शै रमणी बहुत अम्बा और जिसका अधोक्ष्म शैलसे भरा हो जिसके स्तन रैमयुक्त, मंडित और तोहण ही और जिसके शैलें चाम विपम हो, जिसके शैल मोटे ही मयङ्कर और काँडे मांसयुक्त हीं शै अथ स्त्री ठाक नहीं अर्थात् इससे विवाह करना न चाहिये। हाथ राक्षसीको तरह अथवा सुषे हीं या तिसके हाथम दूक काक कङ्कु मय और उद्व्य+ चिन्न अङ्कित हो जिसका होठ मोटा हो और केशाण कटे हो, वह लो दुर्लक्षणसम्पन्ना है।

स्त्रियोंके शुभागुणका विचार करनेमें निम्नलिखित स्थानोंका ध्यान रखना चाहिये। १ शैली चरण और गुल्फ, २ अङ्गुलि और घुटने, ३ गुह्य स्थान ४ नाभि और कमर, ५ उर्ध्व, ६ उदय और स्तन, ७ अम्बा और मस्तु ८ होठ और गद्वन, ९ शैली नेत्र और धू तथा १० शिरोवेग। इन स्थानोंका शुभागुण विशेष रूपसे निर्य कर लेना चाहिये। (वृहत्संहिता ७ न०)

जिस अम्बाका पैर अड़ाऊ का तरह हो, शक्ति नशुआका तरह और नेत्र विप्रे ही तरह हो, तो उस स्त्रीसे लो विवाह न करना चाहिये। यह अलिप्त पत्रक है।

सगोत्रादि कन्या-विवाहका प्रायश्चित्त ।

सगोत्रादि अविवाह्य कन्याओंकी बात कही गई है । इस तरहकी अविवाह्य कन्याके साथ विवाह कर लेनेमें घरकी प्रायश्चित्त करना होता है । शास्त्रमें बंधायन वचनमें लिखा है, कि यदि अज्ञान या मोहवश सगोत्रा कन्याका पाणिग्रहण कर लिया जाये, तो उसको माता का तरह पोषण करना चाहिये । कुफेरी, मौसैरा और ममेरो वहन, मातामह-सगोत्रा तथा समानप्रवरा कन्याका विवाह कर लेने पर ब्राह्मणको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और परिणीता कन्याको स्वतन्त्रभावमें रख कर उसका भरण पोषण करना उचित है । यदि कोई समान-गोत्रा और समानप्रवरा कन्यासे विवाह कर उसके गभसे संतान उत्पन्न करे, तो वह स तान चाण्डाल सदृश और विवाहकता ब्राह्मणत्वहोन होता है ।

प्रायश्चित्तके विवेचन करनेवालोंने श्रुतिमें दोषकी मीमासा का है । जैसे—

पहले जो अविवाह्य कन्याओंकी बात शास्त्रमें कही गई है, उनसे विवाह करनेवालेको चान्द्रायणव्रत करना होता है । इसा व्रत द्वारा इस पापका नाश होगा । चान्द्रायण व्रत करके विवाहिता कन्याको स्वतन्त्र भावमें रख कर उसका भरण पोषण करना होगा ।

मातृनाम्नी कन्यासे विवाह नहीं किया जाता । यदि किसी कन्याका नाम माताकी राजि या पुकारके नामसे मिलता जुगता हो, तो उस कन्याको मातृकन्या कहते हैं । प्रमादवश ऐसा कन्यासे विवाह करने पर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है । ऐसा करके ही उसके कर्त्तव्यकी इतिथी नहीं हो जाती, वर इस कन्याको परित्याग करना होता है । उसके साथ कोई भी दम्पति योग्य व्यवहार नहीं करना चाहिये ।

विवाहमें परिवेदनदोष ।—जेठे भाईका अविवाहित छोड कर यदि छोटे भाईका विवाह हो, तो परिवेदनदोष हो जाता है । यह छोटा भाई परिवेत्ता, जेठ भाई परिविन्न और परिणीता कन्या परिवेदनाया कही जाती है । सिवा इसके कन्यादान करनेवाला परिदायी और पुरोहित परिकर्त्ता कहा जाता है । ये सभी शास्त्रके अनुसार पतित होते हैं ।

शास्त्रमें परिवेदनदोषके प्रतिप्रसव भी दिये हैं देना है । जेठ भाई यदि किसी दूसरे देशमें हों, छोड्य, एकदृषण, मांतेला हो, वैश्यामक, पतित, शूद्रतुल्य, बहुत रोगी, जड, मूक, बंधा, बहुरा, कुबरा, धामन, खालसा, बहुत वृद्ध, बालब्रह्मचारी, स्त्रीके काममें संलग्न, राजसेवक, कुसीदादि द्वारा धन वडनमें तत्पर, यथेच्छाचारी, किसी को दत्तक दिया गया हो तथा उन्मत्त और चौर हो, तो छोटेके विवाह कर लेने पर भी परिवेदनदोष नहीं लगता । इनमें धन बढ़ानेमें तत्पर, राजसेवक, ठपक और प्रवामी ये चार तरहके जेठ भाइयोके लिये छोटेके तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करना चाहिये । यदि परदेशमें रहनेवाला जेठ भाईका एक वर्ष तक कोई समाचार न मिले, तो छोटे भाईका चाहिये, कि वह इस समयके बाद विवाह कर ले । किंतु विवाहके बाद यदि बड़ा भाई लौट आवे, तो छोटा भाई अपने किये दोषकी शुद्धिके लिये परिवेदन-दोषके निर्दरित प्रायश्चित्तके पादमातृका धाचरण करे ।

धर्म या अर्थ उपाजन करनेके लिये दूसरे देशमें गये हुए जेठ भाईका नियमित रूपसे समाचार मिला करे, तो उसके लिये बारह वर्ष तक समयकी प्रतीक्षा करना उचित है, किंतु उसके उन्मत्त, पतित और राजपद्मा रोगयुक्त होने पर प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं । कुछ लोगोकी रायमें ६ वर्ष तक प्रतीक्षा करनेके बाद छोटे भाईका विवाह कर लेना विधेय है । प्रायश्चित्त बतानेवालेने मीमासा की है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण विद्या और अर्धोपाजनके लिये विदेशगत जेठ भाईके उद्देशसे १२।१०।८ और ६ वर्ष यथाक्रम प्रतीक्षा कर विवाह करे । प्रतीक्षाकाल,— ब्राह्मणका १२ और क्षत्रियका १० वर्ष इत्यादि क्रमसे समझ लेना होगा ।

किंतु जेठ भाई जीवित रह कर यदि स्वेच्छाक्रमसे अग्न्याधानादि न करे तो उसकी अनुमति ले कर छोटा भाई सब काम कर सकेगा । फलतः जेठ भाई यदि शादी न करे और छोटे भाईको खुशीसे शादी करनेकी आज्ञा दे दे, तो यह विवाह दोषावह नहीं होगा । किंतु ये जेठ

माई यदि छोटे भार्गवके विवाह हो जानेके बाद अपना विवाह कर ले, तो शोषाबह होगा।

प्रायश्चित्त निर्दिष्ट करनेवालोंके मतसे—श्रेष्ठ माईका आहा छे कर छोटा यदि विवाह कर ले तो भी बह शोषा होगा। बह कहते हैं—जब अग्रज अर्थात् बड़े भाईको आहासे कनिष्ठके विधे कवस मणिहोत प्रणहा हो विधान है, तब छोटा अग्निहोत मान हो करे, किन्तु विवाह न करे। यदि करेगा तो बह शोषी है।

श्रेष्ठ श्रेष्ठ माईके विवाह न होने पर छोटे माईका विवाह निषिद्ध है, जैसे हा जेडा बहनकी मायो जब तक न हो, छोटी बहनका शादी नहीं हो सकती। कुछ लोग कहते हैं कि बहसूत जेडा बहनके छाटी रहने पर माँ छोटीका विवाह कर दर्सेसे शोष नहीं होता। किन्तु यह युक्तिसंगत नहीं मान्य होता। विवाहक इस निषेध बाधके प्रसङ्गप्रतिषेध कहा नहीं जा सकता क्योंकि अग्रजसङ्गिका हो निषेध होनेसे यह सम्पूर्ण रूपसे अर्थात्क हुआ है। अतएव यह निषेध पशुवास होगा। हमने येमा तात्पर्यमें विवाह देता है, कि जेडा बहन यदि बहसूत न हो तो उसके विवाहक पहले छोटी बहनका विवाह होने पर शोष होगा।

किन्तु शास्त्रकारक अभिप्रायक अनुसार विचार करने पर समझमें आता है कि यह कर्ण्यम् सम्पूर्णरूपसे शोषजनक होगा। क्योंकि, बड़ी बहनक अविवाहिता अवस्थामें रख कर छोटी बहनका यदि विवाह किया जाये तो इस कर्ण्यको अग्रदिविधु और उसी तरहको जेडा बहनको द्विविधु कहते हैं। अग्रदिविधुका जो पाणिप्रदह करेगा, उसे १२ रात हृच्छ पराक्रमत भावरण करक दूसरी एक कर्ण्यम् विवाह करना होगा और जब अग्रदिविधुको जेडा बहनके घरके हाथ सौंभ देना होगा। फिर द्विविधु पाणिप्रदहफारोका जो कृच्छ्र और अति हृच्छ ये दो प्रायश्चित्त कर जेडाका छोटीके घरक हाथ सौंभ देना होगा और फिर वह दूसरा एक विवाह करेगा।

छोटी कर्ण्यका बड़ी कर्ण्यक और बड़ी कर्ण्यके छोटी कर्ण्यक घरक हाथ सौंभ देनेकी बात जो कही गई बह शेषम शास्त्रको मर््यात्। रत्नाके निषे हो है, उग

भोगार्थ नहीं। इन कर्ण्यको कोई उपभोग नहीं कर सकता। इनको स्वतन्त्ररूपसे रख कर अन्नबस्त्रादि द्वारा भरण-पोषण करना चाहिये, यही शास्त्रका अभिप्राय है। अतएव बड़ी बहन बहसूत हो या बहसूत उसका विवाह न होनेसे छोटी बहनका कभी विवाह न होगा।

बड़ेका विवाह न होने तक छोटेका विवाह नहीं हो सकता। यमज सम्भानम छोटे बड़ेका विचार इस तरह किया जाता है, कि जो पहले पैदा हुआ हो, वह बड़ा है। यमज सम्भानोक पैदा होनेका यदि यह शोक न मान्य हो सक, कि कौन पहले पैदा हुआ है कौन पीछे, तो माता जिनको पहले देखे, उसीको बड़ा माने।

एक दिन दो सहोदर या दो सहोदराका विवाह कर्ण्य नहीं। शास्त्रानुसार यह निम्नोप और पाप जनक है।

‘एक दिन सहोदरमें दोका विवाह और दो सहोदरक्याका दान भी अर्जतोप है। बहुदेशीय पण्डितोंने ‘वासर’ पत्रके स्थानमें ‘वत्सर’ पत्रका निर्देश किया है। इसके अनुसार एक वर्गमें दो सहोदरोंका विवाह होगा निषिद्ध है और इसी तरहका बड़ा काम भी होता है। कर्ण्यम् नियम विवाहविधि कर्ममें देखो।

प्राचीनी लाज।

प्राचीनकालमें हिन्दू कबल लाजकी ही आज नहीं करते थे, पर इनको विवाहकी उपयुक्त सुमहाभा प्राचीनी लाज भी करनी पड़ती थी। पथमें कोई विषय न हो और शीघ्र विवाहके निषे सुप्राप्ती मिल जाये, इससे विधे वैवाहाकीसे ये प्रार्थना करते थे। जैहूँ

‘अनुसरा लाजः समु पथा येस्मिन्मम नहीं पन्ति नो वरैय । समर्प्यमा संस्मृद्मि ममय क्ये जायत्यय सुखममस्तु टेबाः ॥’

(श्रुतेरु ६ प्रायश्चित्तमे हा निजा

अर्थात् जिन मम पथोगाः मायवाता शुभलम

निषे कर्ण्य हुदुन जाये, जो जिनका बहसूत रूप का कर बह हो। अर्थात् और मग हृच्छ प्रमाय निषया है। बह वैवाहय । पतिपत्नीका उद्देश ही काम न था।

समये सम्प्रदानशालायां उत्तरतः स्त्रागवीं वदुधवा विष्ट-  
रादिकं सज्जोक्त्य पश्चिमाभिमुखे उपविष्टग्निभेत् ॥”

अर्थात् कन्यादाता दिनमें नान्द'मुखश्राद्ध कर शुभ  
लग्नके समय कन्या-सम्प्रदान-शालामें एक गाय बाँध  
रखे और विष्टर आदि सजा कर पश्चिमकी ओर सुँह  
कर बैठे। इसके बाद वरका वरण तथा पूजा हो जाने  
पर उमें भीतर घरमें भेजे' जिससे स्त्रिया मङ्गलान्तरण  
कर सकें। आपसमें मुखचन्द्रिकाका देखा देखो होनेके  
बाद वर सम्प्रदानशालामें आये। इसके बाद कन्या-  
दाता कृताञ्जलि भावसे वरको लक्ष्य कर गवोपस्थापन  
का निर्गलित्वित मन्त्र पाठ करे—

“प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप् छन्दोऽर्हणीया गोर्देवता  
गवोपरधने विनियोगः। ॐ अर्हणा पुत्रवामसा  
धेनुर्भवद् यमे सा नः पयसती दुडामुत्तरामुत्तरां  
समाम् ॥”

अर्थात् हे पुत्रकी तरह आदरणीय अचिरप्रसूता  
सवत्सा उत्तरोत्तर वर्षमें भी दूध देनेमें समथे ( वत्स  
रहित बूडा या गेहियां नहीं ) यह गाय तुम्हारी पूताके  
लिये वस्त्रके साथ खड़ी हुई है। यमदेवताके कार्या-  
क्षेत्रमें उपस्थित होनेके लिये अर्थात् जन्मान्तर परिग्रहण-  
के लिये प्रस्तुत है।

गुणाविष्णुक भाष्यमें यगरि किसी किसी शब्दका  
अन्यरूप अर्थ दिखाई देता है, किन्तु मूत्र विषयमें जरा  
भी फर्क नहीं अर्थात् इसमें जरा भी सन्देह नहीं,  
कि गाय वरके श्री तभाजनके उद्देश्यसे बध करनेके लिये  
खड़ी की जाती थी। गोमलगृह्यसूत्रमें (४।१०.३)  
दिखाई देता है, कि आचार्या, ऋत्विक्, स्नातक,  
राजा, विवाह्य वर और प्रिय अतिथियोंके आने पर उनके  
भोजनके लिये उनक सामने वरकी सुलक्षणा दुग्धवती  
सवत्सा गाय मारी जाती थी। कन्यादानके पहले ही  
कन्याकर्त्ता विवाह्य वरके नेत्रोंके सामने इस तरहका  
सुलक्षणा गाय खड़ी कर उसकी जीवमें लोभ पैदा कर  
अपना निष्ठावार दिखलाता था। यजुर्वेदीय विवाह-  
पद्धतिमें दिखाई देता है, कि कन्यादान करनेवाला केवल  
मौखिक भद्रतासे ही संतुष्ट नहीं होता था, वरं गाय  
मारनेके लिये हाथमें तलवार ले कर खड़ा हो जाता था।

सामवेदीय विवाहमण्डपमें घैसे भीयण दृष्यका  
विधान दिखाई नहीं देता। कन्यादान हो जाने पर  
नाई "गौगी" ध्वनि कर दामादकी गौकी दात स्मरण  
करा देता था; किन्तु सुगीठ और सुबोध बालक  
दामाद गम्भीर भावसे कहता था—

“सुञ्ज गां वरुणयाज्ञात् द्विपन्त मेऽमघेदि । तं जये-  
ऽसुग्, चोभयोक्तसृज, गामन्, नृणादि, विवृत्तम् ॥”

अर्थात् हे नाई! वरुण देवताके पासने गायको  
विमुक्त करे और ऐसी कहाना करे, कि उसी पाजमें  
मेरे प्रति विद्वेष्टा व्यक्तिके बांधा जा रहा है। ऐसी  
कहाना करे, कि पाजमें दूधे मेरे उम जलूको और  
यजमानके जलूको मार रहे हों, गायको छोड़ दे, वह  
तृणमक्षण करे और जल पीये। इस आदेश पर नाई  
गायको छोड़ देता था। उस समय सुपण्डितकी तरह  
दामाद कहता था—

‘जो गोजाति रुद्रोंकी जननी, वसुओंकी  
दुहिता, आदित्योंकी बहन और अमृतकपो सर्वोत्तम  
दूधकी खान है, तुम लोग ऐसी निरपराधा अग्रध्या  
गायका मद मारना।’

दामादके पण्डितजनोचित्त माधु वाक्यसे विवाह  
सभामें गोत्वप्रजनित भोवण दृश्य उरस्थित नहीं होता  
था। निरपराधा गाय प्राण ले कर वहाँसे चली जाती  
थी।

जब आचार्या ऋत्विक्, प्रिय अतिथि और विवाह्य  
वरकी अम्पर्यनाके लिये अपनी गोजालाकी प्रधान गौ  
मारनेकी अमभ्य रीते प्रचलित थी, तब विवाहपद्धतिमें  
इस तरहका पाठ रहना स्वाभाविक ही है। किन्तु जब  
अम्पर्यनाकी वह दूषण रीति दिल्कुल भीरण पाप होने-  
से उठा दी गई है, तब इस मन्त्रका विवाहपद्धतिमें रखने  
की क्या आवश्यकता है? जब विवाहमण्डपमें गाय ले  
आनेकी प्रथा नहीं, गाय बाँधनेका नियम नहीं, तब  
“तापनेन गौर्गोः” क्यों मरा पड़ा है? इस तरहका  
प्रयोजन और निरर्थक प्राचीन प्रथाका प्रवाद-संरक्षण  
प्रयास ऋग्वेदमें भी दिखाई देता है। हम अबसे पहले  
विवाहार्थ प्रस्तुता कन्याके पहननेके निमित्त मैले शिप  
आदि युक्त निखाण्ड फटे बस्त्रोंकी दातका उल्लेख कर

जुके हैं। यह प्रथा इस समय तोड़ दी गई है। किंतु सुपौरिक समाज इस बहुत प्राचीन प्रथाको छोड़ नहीं सका है। केवल ही प्रथा अब किसी भी समाजमें अब पकड़ लेती है, तब इसका उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है। विवाहकी कई प्राचीन प्रथाओंकी भांति बना करने पर यह स्पष्ट ही चिह्नित होता है।

**कन्यादान।**

द्विद्विवाहप्रवृत्तिका प्रधान काम कन्यादान है। शास्त्रमें कन्यादानकी मूर्ति मूर्ति प्रशंसा की गई है।

शास्त्रीय षड्वेत्तिसे कन्यादानका प्रमुख महत्त्व दिखाई देता है। इन सब षड्वेत्तिमें प्रथम विवाहकी प्रधानता दिखाई गई है। घरका सुख कर धरतीति उसकी पूजा कर कन्यादान करना प्रथमविवाहका महत्त्व है। विवाह प्रवृत्तिमें इस महत्त्वके अनुसार ही कन्यादानका विधान किया है। कन्यादानका पहला अङ्ग वरार्थन है। कन्यादान करनेवाळें पाचवस्थादि द्वारा वरकी पूजा किया करते हैं। इस समय पतिपुत्रवती गारो वरके बाहने हाथके ऊपर कन्याका बाहना हाथ रख कर मङ्गलान्तरके साथ दोगैक हाथ कुण्डले बांध देती थी। इस समय मां हाथ बांधनेकी प्रथा ही महो किंतु इस देशमें पतिपुत्रवती गारो द्वारा यह कार्य नहीं होता। पुरे दित ही दोगी हाथोंका बांध देते हैं। यह कार्य एक सुन्दर मंत्र पढ़ कर किया जाता है—

“मो गणा विष्णुस्य स्यन्व कन्यादीधिविभुमी।

० मवात्रन्विजयं वरता वाधयोः उमा ॥”

सामवेदान्तरांत कुशुमा शाखाक मन्त्रमुक्त ब्राह्मणों के विवाहमें ही यह लक्षण पढ़नाय है।

इसके बाद देवों को भोरने गोक धार होता है। इस के बाद वरक प्रतिनामह, पितामह पिता और उसका नाम और बूसरो धार कन्याक प्रतिनामह पितामह, पिता और कन्याका नाम के कर यह कार्य किया जाता है। तीन बार नामोंका उद्देशक किया जाता है। वर स्वस्ति कह कर कन्याको ग्रहण करता है। यही कन्यादानकी विधि है।

कन्यादानकी विधि तीनों वेदमें एक तरहकी हीने पर मो कायप्रवृत्तिमें बहुत महत्त्व है। श्रद्धेयों में

कन्यादानके पूर्ण शक्ती पूजा करनेका विधान है। मनु पर्वके बाद ही श्रद्धेय विवाहप्रवृत्तिमें कन्यादान करने का नियम दिखाई देता है। किंतु श्रद्धेय विवाहप्रवृत्ति का एक विशेष नियम यह है, कि कन्यादानक पूर्णपूजामें हवनका अनुष्ठान किया जाता है। इसका सङ्कल्प यह है—

“यस्यैवा तन्मन्त्रयं पापिप्रहयं किये ॥”

यह कह कर वर सङ्कल्प कर हवनके विधि अग्नि स्थापन करता है। पछे वर कन्याका हाथ बांध कर पुर्वके विधिसे कन्यादान किया जाता है।

यज्ञबन्धकी विवाह प्रवृत्तिमें कुशा द्वारा हाथ बांधने का नियम महो। किंतु दानके पूर्वसूक्तमें होमाग्नि संस्थापनका विधान है। वैदिक मन्त्रमें कन्याको वस्त्र पहनानेका नियम है। इसके बाद घर कन्यामें अब परस्पर मुन्न देखा देकी होती है, उस समय एक बळोक पढ़ना पड़ता है। यह यह है—

“ॐ तमन्नु विरने देवा उमरो इरकमि नो।

तन्वादीशना उन्वाता उमुद्र इ दचन्नु नो ॥”

(१० मं ५५ छं ४०)

इसका अर्थ यह है कि सब देवता हम दोनों के हृदयको मिला है बायु पाता बायेंग हम दोनोंको मिला है। इसके बाद हा वर कन्याका राठिबन्धन होता है। तदनन्तर वर और कन्याकी मोरस गोला धर होमे लगता है। कामस्तुति पढ़नेके बाद जोर ब्राह्मण घरके हाथ पर कन्याका हाथ धर कर गायत्रीका पाठ करता है। इसके बाद कुशुमा देवोंका हाथ बांध दिया जाता है। पीछे बस्त्रियाका बाधनाधारण होता है। यह कार्य दो आम पर वर-कन्याका बांधा हाथ जोड़ दिया जाता है। हाथ पर हाथ रख कन्या दानकी ओ पदति है वह बहुत ही उत्तम है। इसीकी बाह धरना या ‘कणियत्न्य’ कहते हैं। यही विवाह की पहली विधि है।

सामवेदो और श्रद्धेयो विवाहप्रवृत्तिमें इन्तर्धन के परसे ही कामस्तुति पढ़ी जाती है। इसका मन्त्र यह है—

“ॐ क इदं तस्मा वदात् कामा कामापाहात् कामो



दाता कामः प्रतिप्राहोता कामः समुद्रमाविशत् । कामेन त्वं प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते ॥”

यह कामस्तुति त्रिवेदीय विवाह-पद्धतिमें ही दिखाई देती है ।

गांडवधन ।

कन्यादानका दूसरा कार्य गांडवधन है । साम-वेदीय विवाहमें भी वर और कन्याका गांडवधन होता है । इसको प्रथम धन या गांडवधन कहते हैं । यजुर्वेदीय गांडवधनका मंत्र पहले ही लिखा जा चुका है ।

पतिके प्रति नवोद्वाका अनुगम दृढ़ करनेके लिये इन मंत्रोंका पाठ किया जाता था । इन मंत्रोंमें कन्याके प्रति उपदेश दिये गये हैं । इस उपदेशमें जिन सव पतिव्रता सुवर्णियोंका नामोल्लेख किया गया है, उन्हीं सव प्रतिव्रता देवियोंका नामोच्चारण मङ्गलजनक समझा जाता था । इस तरह कन्यादानकी विधि कर पाणिग्रहण संस्कार किया जाता था ।

विवाह और पाणिग्रहण ।

पाणिग्रहणसंस्कार होमसूत्रक है । वैदिक मन्त्रमें होम करके पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होता है । पाणिग्रहण मंत्र जब तक पढ़ा नहीं जाता, तब तक विवाह अशुभ नहीं है तो । हम इस समय विवाह, उद्वाह और पाणिग्रहण शब्दको एक पर्यायके अंतर्गत मान कर व्यवहार करते हैं । वस्तुतः विवाह या उद्वाह और पाणिग्रहण पर्यायबोधक नहीं । रघुनन्दनके उद्वाह-तत्त्वमें लिखा है—

“भाष्यार्थसम्पाद-ग्रहणम्-विवाहः ॥”

अर्थात् ऋषि आदिके वचनानुसार भाष्यार्थ सम्पादक प्रणवा विवाह कहते हैं । विवाहकर्त्ताके जो छान होनेसे कन्याका पत्नीत्व तिथ्यत्र होता है, वह छान ही विवाह है । इसके सम्प्रथमें स्मार्त्त रघुनन्दनने और भी सूक्ष्म विचार कर अंतमें कहा है, कि छान विशेष ही विवाह है । किंतु भाष्यार्थ सम्पादक पद केवल इस छानके विनिष्ट परिचलक मात्र है । कुछ लोग कहते हैं, कि कन्यादान ही विवाह है ।

मनु याज्ञवल्क्यने ब्राह्म-विवाहका जो लक्षण कहे हैं, उनमें दान ही विवाह मालूम होता है । किंतु इस

दानपदमें ही ग्रहण भी समझना चाहिये । अतएव भाष्यार्थ-सम्पादक ग्रहण ही विवाह है । कन्यादान जो कन्यादान करने है और वर जब कन्याको भाष्यार्थ रूपमें ग्रहण करता है, तभी विवाह सम्पन्न हो जाता है । किंतु तब भी जायात्व मित्र नहीं होता और न पाणि-ग्रहण ही मित्र होता है । हरिचंद्रने त्रिगद्गु उपाख्यानमें लिखा है—

‘उम मूर्धनें दुम्बरेकी विवाहिता भाष्यार्थको अपहरण कर पाणिग्रहणके मंत्रोंको पढ़नेमें मित्र उपस्थित किया है ।’ इस वाक्यमें पाणिग्रहणके मंत्र पढ़नेके पहले अपहृता कन्याको “कृत्वाद्वादा” अर्थात् विवाहिता कहा गया है । मनुका कहना है—

“पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपश्रियते ।

असवर्णां न्ययं द्वेयो विप्रदत्ताहर्मण ॥”

अर्थात् यह पाणिग्रहणसंस्कार बचल सवर्णा कन्याके लिये कहा गया है असवर्णाके साथ विवाह हो सकता है, किंतु उसके साथ पाणिग्रहणकी वाध्यवली नहीं हो सकती ।

पाणिग्रहण मन्त्र ।

रत्नाकरका कहना है, कि पाणिग्रहण विवाहका अर्द्धभूत संस्कारावशेष है और पाणिग्रहणक मंत्र विवाह कर्माद्भूत हैं । पाणिग्रहण का बहुत पुरानी है । ऋग्वेदक समय भी पाणिग्रहण प्रथा प्रचलित थी । पाणिग्रहणके जो मंत्र ऋग्वेदीय मन्त्र ह्यणमें और साववैरीय विवाह पद्धतिमें लिखे हैं, वे ऋग्वेदने ही लिये गये हैं । वर अपने बाये हाथसे थपूका हाथ और उसकी उंगलिया दाहने हाथसे पकड़ कर निम्नलिखित मंत्र पढ़ने ह—

(१) “ओम् गृह्णामि ते सोमगत्वाय हस्त

मया पत्या जरद प्रथंजामः ।

मगो अयमा सविता पुरन्धीर्भूत्वा

त्वाद्गुर्गाहपत्याप देवाः ॥”

(१० म० ८५ सू० ३६)

अर्थात् हे कन्ये ! अयंमा मग सविता और पुरन्धीने तुम्हें गार्हस्थ्यजीवनके वाध्योंका सम्पादन करनेके लिये मुझको समर्पण किया है । तुम मेरे साथ

भावीपन रह कर ग्राहस्य धर्मका पालन करे। मैं इसी स्तीमागम्यके लिये तुम्हारा पाणिग्रहण कर रहा हूँ।

(९) "मीं अघोरवस्तु रतिध्वेषि  
शिक्षा पशुभ्याः सुमनाः सुवर्षाः।  
धीरसुदो बकाया स्थेनाः शं  
ना मभ द्विपदे शं चतुस्पदे ॥"

( १० म० ८५ सु० ५४ )

अर्थात् हे बधू ! अश्वोपनेत्रा और अगतिध्वेषी बनो, पशुभोंकी हितकारिणी सहृदया बुद्धिमती बनो, तुम बौध्यसवित्री ( भौट जीवित पुत्रप्रसविनी ) बनो, बलकामा हो, मेरे भौट मेरे बन्धुओं तथा पशुभोंकी कल्याणकारिणी बनो ॥

(१) "मीं मा ना प्रजां जगत्प्रजापति  
राजस्वमाय समनकर्मयमा।  
अनुर्महूनी पतिमोक्तमाविश  
दा मो मभ द्विपदे शं चतुस्पदे ॥"  
( श्रुक १० ८५।४३ )

हे बन्धे ! प्रजापति अर्थात् प्रजा हम लोगोंको पुत्र पौत्रादि प्रदान करे, जीवन भर हम लोगोंका मेवसे रहे। हे बधू ! तुम उत्तम कल्याणकारिणी बन कर मेरे धर्ममें प्रवेश करो। मेरे आरामीयो तथा पशुभों के प्रति मङ्गलकारिणी बनो।

(४) "मीं इमां एवमिन्द्र मीदृन् सुपुत्रां सुमगां ह्यु।  
वशास्वां पुत्राणां येहि पातमेकादश कृषि ॥"  
( १०।८५।४५ )

हे इन्द्र ! तुम हम बधूओ पुत्रवधुी और सोभाय बनो बनानो। हमके गर्भसे दश पुत्र दो। इस तरह दश पुत्र भर एक में कुछ ग्यायह इसका रक्षक होऊँ।

(५) "मीं सन्नको अशुरे मय सन्नको अश्वप्रत्नां मय।  
ननात्परि सन्नका मय मन्नका अश्वि वरुण ॥"  
( १०।८५।४६ )

\* सामवेदीय 'मन्त्रग्रन्थ'में और विवाहपद्धतिमें परा "वीरता" नामका और भी एक कथितरिक्त पर दिखाई देता है। यदुर्वेदीय विवाह-मन्त्रमें 'वीरता' उल्लेख नहीं है।

हे बधू ! तुम इवशुरकी, सासकी, ननवकी और वेपारिकी निकटवर्तिनी बनो।

(६) "मीं मम जते ते हृदयं दधातु मम विस्रमनुचित्तमेऽस्तु।  
मम वाका मेकमनाः क्षुपन्व पृहस्यतिरवा नियतवतु महाम् ॥"  
( मन्त्रग्रन्थ )

हे बन्धे ! अपना हृदय मेरे कर्ममें अर्पण करो। तुम्हारा विस्र मेरे विस्रके समान हो जाये अर्थात् हम सोधोंका हृदय एक हो। तुम मनस्वमना हो कर मेरो भावाभीका पालन करी। ईशताओंके शुक पृहस्यति तुम्हारे विस्रकी मेरे प्रति विशेषरूपम नियुक्त करें।

अग्नेदेवके द्वागमपृहकके ८५ सूक्तकी अन्तिम श्लोक का मा ठीक ऐसा ही अर्थ होता है। यह श्लोक यदुर्वेदीय विवाहकी गांठ बन्धन प्रक्रियामें उल्लेख हुई है।

समञ्जतु विश्वदेवा इत्यादि ४० सशक श्लोक देखो। उत्तपदी गम्य।

अग्नेदेवीय और यदुर्वेदीय विवाहपद्धतिमें सो पाणि ग्रहणकालमें और उसका लिये मन्त्र गो हैं। किन्तु सामवेदीय विवाहपद्धतिमें अतिमै मन्त्र हैं, इतनी मन्त्रोंका उल्लेख नहीं है। पाणिग्रहणम सका पहला मन्त्र अर्थात् 'युन्मामि ते स्तीमगत्वाय हस्तम्' यह मन्त्र प्रत्येक वेदीय विवाह-पद्धतिमें दिखाई देता है। अग्नेद और यदुर्वेदक पाणिग्रहणमन्त्रोंमें बचन इस मन्त्रका छोड़ कर सामवेदीय पाणिग्रहणका और एक भी मन्त्र दिखाई नहीं देता। किन्तु पाणिग्रहणक मन्त्र पहनेसे भी विवाह अन्तम नहीं होता। सप्तपद्गमनान्तर ही विवाह सिद्ध होता है।

मनुमें लिखा है—पाणिग्रहणके समी मन्त्र दारत्वक अर्थात्पारि विहङ्गकर हैं। विद्वानोंका समझना चाहिये कि सात पैर चलनेमें सातवें पैरके बाद ही इन मन्त्रोंक लिखा होरुपापित हो गई। अर्थात् सात पैर चलनेके बाद ही विवाह सिद्ध हो जाता है।

अशुहारीतमें लिखा है—पाणिग्रहणकाल्य समाप्त हो जानेसे ही आवाह्य सिद्ध नहीं हो जाता, सात पैर चलनेके बाद ही आवाह्य सिद्ध होता है। आवा हो यास्त्वधर्म धर्मपक्षों है।

मनुमें लिखा है—पति ही वीर्यरूपमें पत्नीके गर्भमें प्रवेश कर गर्भरूपमें अवस्थापन करता है और फिर

जन्मग्रहण करना है। इसीलिये पत्नी जाया कही जाती है।

श्रुतिका भी यह वचन है—“आत्मा वै पुत्रवन्मामि” अतएव जायात्वमिन्द्रि हो विवाहका मुख्य अङ्ग है। सात पैर न चलने तक जायात्वमिन्द्रि नहीं होता।

विवाह-पद्धतिमें होमके समय सप्तपदीगमनका जो कार्यानुष्ठान होता है, मन्त्रोंके साथ उसका वर्णन किया गया है। वह इस तरह है—

घरके बायें सामने पश्चिममें पूर्वकी ओर छोटे छोटे सात मण्डल अङ्कित किये जाते हैं। उन्हीं मण्डलों पर वर सात बार मन्त्र पढ़ कर बधूका पैर रखवाता है।

मन्त्र यह है—

(१) “ओं एकमिषेविष्णुस्त्वा नयतु।”

अर्थात् हे कन्ये! अर्थलाभके लिये विष्णु तुम्हारा एक पैर उठावे।

(२) “ओं द्वे उर्जेविष्णुस्त्वा नयतु।”

धनलाभके लिये विष्णु तुम्हारा दूसरा पैर उठावे।

(३) “ओं त्रिणि व्रताय विष्णुस्त्वा नयतु।”

कर्म यज्ञके निमित्त तुम्हारा तीसरा पैर उठावे।

(४) “ओं चत्वारिमासो भवाय विष्णुस्त्वा नयतु।”

सौख्य प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा चौथा पैर उठावे।

(५) “ओं पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।”

पशु-प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा पाचवा पैर उठावे।

(६) “ओं यन्नाय रूपेयाय विष्णुस्त्वा नयतु।”

धन प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा छठा पैर उठावे।

(७) “ओं सम सप्तभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।”

ऋत्विक् प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा सातवा पैर उठावे।

इसके बाद वर कन्याको सम्बोधन कर कहता है—

“ॐ सखा सप्तदा भव सख्यन्ते गमेयं सख्यन्ते मा योषा सख्यन्ते मायोष्वयः।”

अर्थात् हे कन्ये! तुम मेरी सहचारिणी बनो, मैं तुम्हारा सखा हुआ। इसका ध्यान रखना, कि मेरे साथ तुम्हारा जो सौख्य स्थापित हुआ, वह कोई खो तोड़ न

सके। मुख्याग्निी त्रियोंके साथ तुम्हारा सख्य स्थापित हो।

यजुर्वेदाहमें सप्तपदीगमनमें केवल यह अन्तिम प्रार्थना दिखाई नहीं देती। सिवा इसके सप्तपद गमनमन्त्रोंमें कोई भी पार्थक्य नहीं दिखाई पड़ता। ऋग्वेदीय विवाहमें भी उक्त प्रार्थनामन्त्र दिखाई नहीं देता। किन्तु सप्तपद गमनमन्त्रमें पार्थक्य है। यथा—

(१) “ॐ इय एकपदी भव, मा मामनुव्रता भव, पुत्रान् विन्द्यावई बहुंसनेःमन्तु जग्दृष्टयः।”

(२) “ॐ ऊर्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रत भव” इत्यादि।

मन्त्रमें पार्थक्य रहने पर भी जिस उद्देश्यसे सप्तपदी गमन किया जाता है, उनके मूल उद्देश्यमें कोई भी पार्थक्य नहीं है। ऋग्वेदीय सप्तपदीगमनमें भी उन्हीं अर्थलाभ, धनलाभ आदि उद्देश्यसे ही सप्तपद गमन करनेका विधान है। किन्तु इसके साथके प्रत्येक पदमें ही बधूका पतिकी अनुमति होनेका और पुत्रादि लाभका उपदेश है। और एक पार्थक्य है, कि ऋग्वेदीय विवाहमें सप्तपदी गमनके लिये सामवेदीय और यजुर्वेदीय प्रथाको तरह छोटी मण्डलका अङ्कित नहीं की जानी। सात मूठ चावल रख कर उस पर बधूका पैर क्रमशः परिचारित कर उक्त मन्त्रसे सप्तपदीगमन व्यापार सम्पन्न होता है। यह कहना बाह्य है, कि हिन्दूविवाहमें यह सप्तपदी गमन विवाहका अति मुख्य अङ्ग है। वह कार्या जब तक सम्पन्न नहीं होता, तब तक विवाह सिद्ध नहीं होता।

पितृगोत्रनिवृत्ति।

सप्तपदी गमनके बाद ही कन्याकी पितृगोत्रनिवृत्ति होती है और स्वामिगोत्रका प्राप्ति होती है।

लघुगोत्रोत्तममें लिखा है—सप्तपदीगमनके बाद ही पितृगोत्रसे अष्ट होती है। इसके बाद उसकी सरिण्डनादिक्रिया पितृगोत्रमें भी जायेगी।

वृद्धस्पति का कहना है—पाणिग्रहणके समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे मन्त्र पितृगोत्रको अपहरण करनेवाले हैं। इसकी वजहसे पतिके गोत्रका उल्लेख करके पिण्डदान आदि क्रिया करनी होगी।

गोभिलका कहना है, कि वैवाहिक मन्त्र-संस्कृता-छो

अपने गौलका इन्तरे कर पतिके अमियादन करेगी।  
 गामिसके इस बाबकी व्याख्या कर अट्टनारायणने  
 लिखा है—सप्तपत्नीगमनके बाद नववाङ्का पत्नी  
 पतिका सब अमियादन करेगी, जब पतिके गौलका  
 इन्तरे कर अमियादन करेगी। पतिके अमियादनसे  
 सामयेकीय विवाहकी परिमामति होती है।

बपूका परिधर्म मरेज।

सामयेकीय विवाह पद्धतिमें लिखा है—

“उठो दिनान्तो रयाकडां बपू कल्पा बरा लयह मयेद ता”  
 विवाहके दिनके धूमरे दिन पति बपूको रथ पर  
 बढा कर अपने घर ले जाये।

इसका मंत्र यह है—

“ॐ मत्रापनिर्द्धां पिस्त्रिःपुष्यः कन्या देवता  
 फरारीहये विनिषाया। ॐ सुषिःशुक शम्बरलिं विम्ब  
 रूप शिष्यपण सुवर्त सुवक। भा रेश सूर्ये अमृतस्य  
 होक स्थीर्न परये कपुत्र।” (अष्ट १०५५ २०)

सायणके भाष्यानुसार इसका अर्थ यह है, कि ‘ह  
 सूर्ये (यहां बहो कि है बपू), तुम्हारे पतिके घर जाये-  
 का रथ सुन्दर पम्बस तथा शायनको (साखू) वृद्धकी  
 ककडियोका बना है। इसको मूँचि बहुत बसम और  
 सुवर्णको तरह प्रमाचिशिय और बसम रूपसे घिरा है।  
 इसको स्त्री बहुत सुन्दरी है, यह शैलीका नामरुवान है।  
 इस समय तुम पतिके घर उष्युक्त उपद्वी ल ले जाओ।

इस अङ्कगठने मालूम होता है, कि बहुत पुराने  
 समयसे हो इस रीतिमें रथका व्यवहार होता था रहा है।  
 बपू जिस रथ पर जातो वो बह रथ जबड़ी तरह बका  
 हुमा होता था। उद्देश्य यह था कि बपूको कोई  
 शैल नहीं ले या पत्नीकी पूंक्ति बपू पर न पड़ सक। पिता  
 क घरसे पतिके घर जाते समय बपूको उपद्वीकन से  
 जाँके मया बहुत दिनकी है अर्थात् ध्यायेकालम  
 बको मातो है। इस समय भी यह प्रथा दिखाई देतो  
 है। ध्यायेकके दशमं संख्यके ८५वे सूकमें और मो  
 कितनी अक्षुमें बपूके पतिपुत्रमें जाते समय रथ और  
 उपद्वीकनका उद्देश्य है।

राहमें किनो तरहका विष्म उपलियन न होनेके लिये  
 मो टिठने हो मरक दिखाई देते हैं। जैसे—

“ॐ मा गिद्द परिपिधतो य आसीदिति दम्पनो  
 सुगेभिर्दुर्गैवतोतामप द्राम्बरातप।” (अष्ट १०१८ ३२)  
 गुणविष्णुक भाष्यानुसार इसका अनुवाद इस  
 तरह है—

अर्थात् जो खोर झाकु भादि रास्तेमें पथिकोंको लूटा  
 पाटा या बटपारा क्रिया करते हैं ये इस दम्पतीको देख  
 न सके। यह दम्पती मङ्गलमनक पथमें रथ होक कर  
 दुगम पथको पार करे, यान् डुर हों। इसके पहलेकी  
 अङ्कका भी ऐसा हो अर्थ है। इन दो अक्षु मन्त्रों द्वारा  
 प्राचीन कालमें पथमें खोर झाकुनों द्वारा होनेवाले अप  
 द्रवों तथा पथकी कठिनाइयोंका परिचय मिळता है।

साययेकीय विवाह पद्धतिमें रथारोहणका जो मन्त्र है,  
 यह इस तरह है—

“ओ पूरा रथेतो नयतु इस्तपुष्टान्जित्त तथा प्रावहतां रथेन।  
 पुशमगच्छ पूरपत्ता पयासो वातिनां त्य विवयमा बवासि।”  
 (१० मण्डल ८५ सूक २६ अक्षु.)

अर्थात् पूरा तुम्हारा हाथ पकड़ कर वहाँसे ले जाये  
 अश्वद्वय रथ चला कर तुमको ले जाये घरमें  
 जा कर तुम पूरिणो बनो। समाजकी उच्च श्रेणियोंके  
 मन्त्रालय लोगो में विवाहमें जो रानि प्रबलित थी, वैदिक  
 मन्त्रमें बसोका आमास मिळता है।

इसके बाद जो मन्त्र पढ़ कर बपूको घरमें प्रवेश  
 कराना होता है, यह बहुत मारगर्म है—

“ओ इर प्रियं प्रजायेत समृद्धं तामस्मिन्तु धुरे गार्हप  
 त्प्याय ज्ञापूहि। एना परया तन्वं सं वृशकाया विदधमा  
 बहाया”। (१० मण्डल ८५ सूक २० अक्षु.)

इसका अर्थ यह है, कि इस स्थानमें तुम्हारे सम्मान  
 सम्पत्ति पैदा हो और इनमें तुम्हारी प्रीति हो। इस  
 गृहमें रह कर तुम सावधानीसे धुर-कार्योका सम्पदन  
 करो। पतिके साथ अपनी शैल और मनको मिखा कर  
 मरणपर्यन्त गार्हस्थ्य धर्मका पालन करो।

जैसे बपू को सुपूरिणामें परिणत करकेके लिये विवाह  
 के वैदिक मन्त्रों में इस तरहके बहुतैरे उपदेश दिये गये  
 हैं। हिन्दू पत्नी वासी नहीं दे, वह कबल विमासकी  
 सामया नहीं, वह है सद्दर्शमणी और सपको पूरुष्या

वाहके स्मृतिकारों तथा गौराणिकों ने स्त्रीचर्मवर्णनमें पतिव्रता पतियों के लिये बहुतेरे उपदेन दिये हैं।

वधू प्रदर्शन।

जब नई वधू घर्ममें जाती, तब उसके मुख दिखाने के लिये टोट पड़ोमका स्त्रिया बुझाई जाती है। वे आकर वधूको देखतीं और दम्बताको आजावाद् देतीं। ये सब सदाचार और शिष्टाचार अब भी विवाहपद्धति तथा सामाजिक व्यवहारमें दिखाई देते हैं। इस सम्बन्धमें वैदिक मंत्र यह है—

“ॐ सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।

सौभाग्यमस्त्यै वृत्ता यायास्त्वं विररंत न ॥”

हे पड़ोमियों! आप लोग एकत्र हो कर आये और इस नई सुमङ्गली वधूको देखें, आजावाद् दें और सौभाग्य प्रदान कर अपने अपने घर पधारें।

वधूका मुँह देखनेकी और आजावाद् देनेकी पुरानी प्रथा अब भी समाजमें प्रायः उसी तरहसे प्रचलित है, किन्तु इसके लिये बुझानेकी जरूरत नहीं होती। पड़ोमोंकी वृद्धा और युवती स्त्रियाँ या बालिकायें स्वतः जाँकने देखनेके लिये आती हैं।

देह संस्कार।

वधूको घर लाने पर भी सात्त्विक अनुष्ठानकी निगूत्ति नहीं होती थी। इसके बाद देह-संस्कारके लिये हवन करना पड़ता था। इस प्रायश्चित्त होम द्वारा वधूके देहके पाप या पापजनित अमङ्गलसूचक रेखा और चिह्नादिको अशुभजनकता दूर करनेके लिये यज्ञ किया जाता था। यह यज्ञ आज भी किया जाता है। इसका मन्त्र यह है—

(१) “ओं रेवासन्ध्रियु पद्मस्त्रावर्त्तेषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि जमयाम्यहम् ॥”

हे वधू! तुम्हारा रेखाङ्कित ललाट हाथ आदि और चक्षुः इन्द्रिय परिरक्षक सभी पद्म और नामिकूप आदि स्थानोंमें लिपटे हुए पापों या अमङ्गल चिह्नोंको मैं इस पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(२) “अशेषु पथ पापकमीक्षिते रुदिने च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि जमयाम्यहम् ॥”

मैं तुम्हारे बालोंके समीप अशुभ चिह्नों, तुम्हारे

आँसोंको पाप और रेतके पापोंको पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(३) “जालेषु यच्च पापक मापिते हविते च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि जमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे आँसुके अन्तर्गत और भाया (येला) या हंसोंमें यदि कोई पाप लिपटा हो, तो हमारी इस पूर्णाहुतिसे नष्ट हो जाये।

(४) “आगेत्रेषु च त्रण्डेषु हस्तयोः पाद्गोश्व यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि जमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे मसूडोंमें, श्रोतों, हाथों तथा पावोंमें जो पाप लिपटे हुए हैं, उनका इस पूर्णाहुतिसे नाश हो जाये।

(५) “उर्वोरुपम्ये जट्टेषोः सन्धानेषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि जमयाम्यहम् ॥”

हे कन्ये! तुम्हारे उरुद्वय, योनि (जननेन्द्रिय), जघे और गुटने आदि सन्धिस्थानोंमें मटे हुए पापोंका सर्वनाश मैंने इस पूर्णाहुतिसे कर दिया है।

इस तरह सब तरहके पापोंको दूर कर पत्नीकी देह और चित्तको विशुद्ध कर हिंदूपति उमें गृहिणी और सद्घर्मिणी बना कर इन सब मंत्रोंके पढ़नेसे हिंदू-विवाहका गभीरतम सूक्ष्म अभिप्राय लोगोकी धारणामें आ सकता है।

हिन्दू विवाहका उद्देश्य।

हिंदूविवाह एक महायज्ञ है। स्वार्थ इसकी आहुति तथा निष्काम धर्मलाभ इस यज्ञका महाफल है। पवित्रतम मंत्रमय यज्ञ ही हिंदू विवाहका एकमात्र पद्धति है। यज्ञके अनन्तसे इस विवाहका प्रारम्भ होता है। किंतु श्रमज्ञानकी चिताग्नि भी इस विवाह बंधनको तोड़ नहीं सकती। क्योंकि शास्त्रकी आह्ला है, कि स्वामीकी मृत्यु होनेसे साध्यो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण कर पतिलोक पानेकी चेष्टामें दिन बितायेगी। विवाहके दिनसे ही नारियोका ब्रह्मवर्चस्वत आरम्भ होता है। पतिके सुखमय मिलनके तीन दिन पहले भी कुसुमकोमला दिदूवालाको ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता है। फिर यदि भाग्यदोषसे सती साध्यो स्त्री जब श्रमज्ञानके यज्ञानन्दमें पतिकी प्रेममयो देह डाल कर शून्य हाथ और शून्य चित्तसे श्रमज्ञान-

से गृह-व्यवसायमें धीरेधीरे है, उस समय भी वही प्रथा वर्णोंको व्यवस्था यह जाती है। अनप्य हि दूबिवाहमें स्त्री पुरुष संयोगको एक सामाजिक रीति नहीं, इन्द्रियबिन्नास का सामाजिक बिबिनिद्रिष्ट निर्णय उपाय नहीं अथवा गार्हस्थ्यधर्मके निमित्त स्त्री-पुरुष एक सामाजिक व्यवसाय या Contract नहीं, यह एक क्लोर एक और हिन्दू शोचनका एक महाप्रत है।

सामाजिक जीवनके यह एक महाप्रत समझ कर संनाराधनमें विवाह अग्रव्यवस्था है। इसीसे शास्त्रकारोंने एक वाक्यसे इसका विधान किया है। मित्ताहृत के आचाराध्यायमें विवाहका निरूपण स्तोत्रतु हुआ है :—“रतिपुत्रधर्मत्वेन विवाहस्त्रिबिधः तत्र पुत्रार्थं द्विबिधा नित्या काम्यश्च।”

अर्थात् रति, पुत्र और धर्म इन तीनों के लिये ही विवाह होता है। इनमें पुत्रार्थ विवाह दो प्रकार है,—नित्य और काम्य। इसके द्वारा विवाहका निरूपण स्तोत्रतु हुआ है। गृहस्थाध्यायके द्विधे पुत्रार्थ विवाह निरूपण है उस न कल्पसे प्रत्येक होता है। अतएव अविगण सामाजिक द्विधमाधन और गार्हस्थ्य धर्म प्रतिपादनक द्विधे विवाहका अग्रव्यवस्थाका विधान कर गये हैं। सब हिन्दू आश्रमोंमें ही विवाहके निरूपण प्रति पादनके लिये बहुतेरे शास्त्राय प्रमाण दिखाए शत हैं।

“न गृह्य गृह्यः स्वस्वाम्यं वा कल्पते गृहो।  
न माप्यां यद् एन माप्यांहेन यद् नन्यम्॥”  
(गृह्यसूत्रसंहिता ५।१००)

केवल गृहस्थासते ही गृह्य नहीं होता माप्यांके साथ गृहमें बान करमेसे ही गृह्य होता है। जहाँ माप्यां है, वहाँ ही गृह, माप्यांहीन गृह नन्य है।

(गृह्यसूत्रसंहिता ५।१००)

मरत्यपुत्रक त नमें छिन्ना है,—  
मार्धाहीन अर्थिकी गति नहीं है, इसकी सब क्रियायें निष्फलय हैं, उमें देवपूजा और महापूजा अचिकार नहीं। एक परिवेके रथ और एक व बाबाके पक्षीको तरह मार्धाहीन अर्थिक समी कार्यमें अयोग्य है। मार्धाहीन अर्थिकका सुख नहीं मिश्रता और न उसका घर-आर हो रहता है। अनप्य हे देवेशि ! सर्वस्वाप्य होने पर भी तुम विवाह करना।

पृथिवी और लक्ष्मिणी।

शास्त्रीय पद्धतियोंके प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है, कि हिन्दुओंका विवाह-संस्कार गार्हस्थ्यधर्मका धर्मसाधन मूलक है।

स्त्रीधर्म निरूपणमें भी स्त्रियोंके गार्हस्थ्य धर्मके प्रति वृद्धि आरुह्य करनेके बहुतेरे प्रमाण दिये गये हैं। पति पक्षमें प्रगाढ़ प्रेम, पतिके प्रति और पतिकी गार्हस्थ्य कार्यान्वयके प्रति पत्नी या तोमरना संयोग आर्थिक निमित्त बहुतेरे उपदेश शास्त्रमें दिखाए शत हैं।

आर्य कर्त्तव्यपत्रिधर्मोप कोर्गोंमें बहुतेरोंका विवरण है, कि भारतीय क्षत्रिय अपने पतिव्रतोंका दासी या छोटी समझते हैं। आर्य कर्म स्त्रियोंके प्रति उच्चतर सम्मान हिन्दुधर्ममें दिखाया नहीं जाता। श्री हिन्दुधर्मशास्त्रांक मर्मज्ञ हैं वे जानते हैं, कि हिन्दू शास्त्रकारोंने नारियोंके प्रति कैसा उच्चतर सम्मान दिखाया है सिवा इसके मनुसंहितामें स्पष्ट रूपसे स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखाने का उपदेश दिखाए शत है। मनु कहते हैं—

पुत्र प्रधान करती हैं, इससे वे महाभाग, पूजनीय और गृहकी शोभास्वरूपा हैं। गृहस्थोंके धर्ममें गृहिनियों और गृहस्थस्त्रीमें कुछ भी प्रमेद नहीं। वे अत्येता स्थापन करती हैं अत्यन्त संतापका पावन करती हैं और नित्य स्मरणार्थको निदानस्वरूप हैं। ये ही गृह कार्योंका सूचकार हैं। अयात्पोत्पादन धर्मकार्य, शुभ्रया पचिन रति, आराम और विस्तृणागक स्वर्ग आवि श्चोक अधीन हैं। ( मनु एवां अध्याय )

मनुमें कहा है—कृत्वाप्यकामो गृहस्थ नारियोंको हर तरहसे बहुत सम्मान करे। ( मनु १।१५६ )

पार्वत्याय सप्ताश्रतकविदु कोमटी (Gomte) आदि पंडित इसकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखानेका कोई उच्चत उपदेश नहीं दे सकें हैं। कनका हिन्दू पृथिवीको साक्षात् गृहस्थस्त्री और धर्मका परम साधन समझ कर आर्य करनेकी शिक्षा दे गये हैं। पत्नी जिसने सु गृहिणी हो कर पतिव्रता बने, इसके लिये विवाहके दिन ही वैश्व म शोपदेश दिये जाते हैं।

“ध्रुवा दी ध्रुवा पृथ्वी ध्रुव बिम्बमिदं जगत्।  
ध्रुवा सपञ्चला इमे ध्रुवा स्त्री पतिव्रते इत्यम्॥”

(विवाह मन्त्र)

'हे प्रार्थ्यमान देव ! जिस तरह यह ध्रुवलोक चिरस्थायी है, यह पृथ्वी चिरस्थायिनी है, यह परितृप्त्यमान सारा चराचर चिरस्थायी है, ये अचलराजि भी चिरस्थायी हैं—यह स्त्री भी पतिके घरमें उसी तरह चिरस्थायिनी बनें ।'

"इह धृतिरिह स्वधृतिरिह रतिरिह रमस्य ।

मयि धृतिमयि स्वधृतिर्मयि रमे मयि रमस्य ॥"

हे वधु ! इस घरमें तुम्हारी मति स्थिर हो । इस घरमें तुम सानन्द दिन बिताओ । मुझमें तुम्हारी मतिस्थिर हो, आत्मीयोंके साथ तुम्हारा मिलन हो, मुझमें तुम्हारी आसक्ति हो, मेरे साथ तुम सानन्द दिन बिताओ ।'

प्रायः सभी स्मृति और पुराणादिमें स्त्रियोंके इसी गार्हस्थ्य और पतिव्रत्यधर्मपालनके लिये बहुनेरे उपदेश दिये गये हैं । ये सभी उपदेश वेदमें विवाह समयमें वधुओंके प्रति जो सब उपदेश दिये गये हैं, उन्हे उपदेशोंके आधार पर वादके स्मृतिकारोंने स्त्री धर्मका वर्णन किया है । पाणिग्रहणके मंत्र ऋग्वेदके समयमें चले आते हैं । उसी पुराने समयमें भी इस देशका पाणिग्रहण कार्य फ़ैसा उत्तम था, उसका प्रमाण इन मंत्रोंसे मिलता है । पाणिग्रहणके पहले मंत्रमें जो स्त्रियोंको यह उपदेश दिया जाता था जिससे उनकी गार्हस्थ्यधर्म अच्छी तरहसे प्रतिपालित और पाणिग्रहण करनेवाले शक्तिके संसारको सुखसीमाय बढ़ावे । दूसरे मंत्रमें यह उपदेश दिया गया है, जिससे पतिके घर जा कर स्त्री अपने क्रोधकी जलाञ्जलि दे दे, जिस क्रोधदृष्टिसे पतिके प्रात या पतिके आत्मीय स्वजनोंके प्रात न देखे, वे पतिकी प्रतिकूलचारिणी न बनें, जिससे वे पतिके पशु आदिकी मङ्गलकारिणी बनें, जिससे गौ भैंस आदिकी सेवापरिचर्यामें उनका लक्ष हो, क्योंकि ये सब पशु गृहस्थके घरके सीमायवर्द्धकके कारणस्वरूप मरने जाते थे अर्थात् मर्त्तारि, आत्मीय स्वजन और पशुओंके प्रात नबाढाका वास्तविक प्रेम बना रहे । तीसरे मंत्रमें दूसरे मंत्रको आंशिक पुनरुक्ति ही दिखाई देती है । चौथा मंत्र गमाधानके विषयमें है । यह सन्तान कामनामूलक है । पाचवें मंत्रका उद्देश्य

महान् है । पहले जमानेमें भारतवर्षमें जो एकान्तवर्तिता प्रथा प्रचलित थी और उसका उस समय बड़ा आडर होता था, यह पांचवां मंत्र उसका प्रमाण है । सिवा इसके पांचवें मंत्रमें जो गूढ गभीर उद्देश्य है, जगन्के और किसी देशमें वैसा भाज दियाई नहीं देता । हिन्दुओंका पाणिग्रहण आत्मसुखसम्मोहके लिये ही नहीं, वरं पारिवारिक सुखसमुद्धिका उद्देश्यमूलक है । इस मंत्रमें उसका उच्चतम प्रमाण मिलता है । इसमें स्वामी नबोढा पत्नीको विवाहसंस्कारके समय अग्निदेव आदि देवताओंके सामने प्रसन्न गभीरनितादसे कह देने थे— 'प्रियतमे ! तुमको केवल अपने सुख और सेवाके लिये मैं ग्रहण नहीं कर रहा हूँ । तुम मेरे पिताकी सेवा करना, मेरी माता, बहन और माइयोंकी सेवा करना ।' हिन्दुविवाहके जैसा उच्चतर लक्ष्य और किसी समाजमें दिखाई नहीं देता । यों तो हिन्दुओंके प्रत्येक कार्यमें स्वार्थविमर्जनका पवित्रचित्त देदीप्यमान रहता है, किन्तु विवाहका यह पुण्यतम चित्र बहुत अधिक उज्ज्वल दिखाई देता है ।

छठा मंत्र पतिपत्नीके एकाम्रचित्त होनेका महा-मन्त्र है । जब विधानके विधानमें दो भिन्न भिन्न हृदय एक मूलमें वंचता है, तब इसके तुल्य और क्या हो सकता—'मेरा जीवनव्रत तुम्हारा जीवनव्रत बने, तुम्हारा चित्त मेरे चित्तका अनुयायी हो, तुम अनन्यमन्य हो कर मेरे वाक्योंका प्रतिपालन करो । विश्वदेवगण हम दोनोंके हृदयको मिला दे । वायु, घाता और वाग्देवी हम लोगोंको जोड़ दे ।' इत्यादि । केवल यही नहीं, इसके लिये एक और सुमन्त्र है ।

"अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृथिनता ।

वधनामि सत्यप्रथिना मनश्च हृदयञ्च ते ॥"

अर्थात् 'हे वधु ! तुम्हारा मन और हृदय अन्नदान रूप मणितुल्य पाशमें तथा प्राणरूप स्तनसूत्रमें और सत्यस्वरूप गांठमें मैं बाधता हूँ ; हिन्दुव्रति विवाहक पवित्र हंगमानलको साक्षी रख, देवता ब्राह्मणको साक्षी रख अपनी सहधर्मिणी पत्नीसे कहता है—

"यदेतद्दृश्ये तव तदस्तु हृदय मम ।

यदिदद्दृश्ये मम तदस्तु हृदय तव ॥"

हे ईवि ! आजसे तुम्हारा हृदय मेरा हो और मेरा हृदय तुम्हारा हो ।' हिन्दू दम्पतीका बंधन इस पाश्चात्य समाजका Marriage contract नहीं है यद् विर जीवनका अभिप्रेत ही दुर्दुर्लभ वस्तु है । इसका मूल ही प्रमाण है ।

विवाहना ( वि० स्त्री० ) व्याहण देखो ।

विवाहपर्यह ( सं० पु० ) विवाहका बाध व्याहके समयका बाधा ।

विवाह-विधि ( सं० स्त्री० ) विवाहस्य विधिः । विवाह की विधि विवाहका विधान । शास्त्रोंमें विवाहकी विधि निर्दिष्ट है । तदनुसार विवाहया या अविवाहया कन्या स्थिर कर ज्योतिषोक्त शुभाशुभ दिन चैत्र कर विवाहका दिन स्थिर करना चाहिये ।

मनुके मतानुसार—

“वधव्यां स्नेहगोरी मनवर्षा तु रोहिणी ।

इत्ये कन्यका प्रोक्ता यत् ऊर्ध्वं रवस्तथा ॥

वस्यन्तु संवत्सरे पूरे इत्ये कन्यका तुषेः ।

प्रदायक्या मन्त्रेन स बोधः कार्कशोपमः ॥”

आठ वर्षकी कन्याका नाम गोरी और नौ वर्षकी कन्या रोहिणी कहलाती है । दश वर्षकी लड़की होनेसे इसे कन्यका कहते हैं । इसके बादसे बाळिकाये राजा जन्मा गिनी जाती है । अतएव इससे पहले ही बाळिका का विवाह कर देना चाहिये । दश वर्षसे अधिक उम्र की कन्याका विवाह करने पर कार्कशोपादिका विचार नहीं किया जाता । दश वर्षके बाद कन्याओं की श्रुतुओं भागदूत कर शास्त्रकारोंने कार्कशोपादिमें भी विवाहकी व्यवस्था ही है ।

विवाहकालादीय होनेसे दोष ।

दश वर्षके मोक्षर हा कन्याको वल्लभपूर्वक वान दे देना चाहिये । मरुमास भादि कार्कशोप ठममें प्रति बन्धक महा होते । यम स्मृतिमें लिखा है, कि यदि कन्या बाह्य वर्ष तक अविवाहित अवस्थामें पितृक घर में रह जाये तो उसके पिता ब्रह्महत्याक पापक भागी होते हैं । येस स्थानम यह कन्या अर्धवर दण्ड कर अपना विवाह कर सचती है । अङ्गिरसे कहा है, कि बाह्य वर्षकी हो जाने पर भी कन्याका विवाह जो

पिता नहीं करता, यह रजोवर्धन शोभित पान करता है । राजमार्तण्डने कहा है, कि विवाहक पूर्व कन्याके रजोवर्धन हो जाने पर पिता बड़े छाता और माता तीनों नरकमें जाते हैं और उस कन्याका रजोवर्धक पोते हैं । जो ब्राह्मण मद्रमत्त हो कर ऐसी कन्याका विवाह करता है, उसके साथ बैठ कर भोगन करना तथा ठमस बोझना भी उचित नहीं । उसको वृषभोपति समझना चाहिये । इन वचनों द्वारा मालूम होता है, कि कन्याका रजोवर्धना हो जाने पर विवाह करने से पिता भादि पापक भागी होने हैं । अतः रजोवर्धन से पहले ही कन्याका विवाह कर देना चाहिये ।

यम—“कन्या ब्राह्मणपूर्विके वापश्चात् पूरे वदेत् ।

ब्रह्महत्या विगृह्यन्वाः सा कन्या वरयेत् स्वयम् ॥

अङ्गिरा—मते तु ब्राह्मणे वनें वदा कन्या न वीरयेत् ।

उदा वस्यन्तु कन्यायाः पिता विवधि शोभितम् ॥

राजमार्तण्ड—कन्यां ब्राह्मणे वनें कन्या जो न प्रयच्छति ।

मासि मरिचि रजस्तत्वाः पिता विवधि शोभितम् ॥

मत्ता येन पिता वधे स्नेहभ्राता वधेन च ।

नरस्ते मरुक्तं मानि उच्यते कन्या रजस्तत्वा ॥

यस्तु तां विवहेत् कन्यां ब्राह्मण्यो मयमोहितः ।

अधम्यान्वो ब्राह्मणकृतयः स ज्ञेयो वृषभोपतिः ॥

अग्नि और कश्यप कहते हैं—

जितुं हे व वा कन्या राजपरस्त्वर्त्तकृता ।

भूष्यन्वा विगृह्यन्वा वा कन्या वृषभो वृष्युः ॥

यस्तु तां वरयेत् कन्यां ब्राह्मण्यो उन्मुक्तुर्वजः ।

अध्वर्यवमपार्वतेर्वं व विवाहं वृषभोपतिम् ॥”

इन सब वचनोंसे मालूम होता है, कि श्रुतुमती कन्याका विवाह पापजनक है, अतः श्रुतु होनेसे पहले ही विवाह कर देना चाहिये । हा मनुस्मृतिवर्ष यह बात दिखा देती है, कि यद्यपि श्रुतुमती होनेसे मरण तक बचारी ही पिताके घर पड़ी रह; कि तु अवाहकी कन्या न देनी चाहिये ।

“कामयामरप्यदीपदेद् गूदे कन्वत् मन्त्रयि ।

मन्वेवेनां प्रयच्छेत् गुणदीनाव कीरिष्यि ॥”

विवाहका प्रशस्त काल—स्मृतिस्थार नामक ग्रन्थमें



लिखा है, कि सव वर्णों के लिये सात वर्षके उपरान्त कन्याओं का विवाहकाल प्रशस्त है और भी लिखा है, कि अयुग्म वर्णमें विवाह करनेसे कन्या दुर्भगा और युग्म वर्णमें विवाह करनेमें विधवा होती है, अतएव कन्याके गर्भाश्वित युग्म वर्णमें विवाह कर देनेसे कन्याके पतिव्रता होनी है । जन्ममामसे तीन मामके ऊपर होनेसे अयुग्म वर्ण और भीतर होनेसे गर्भसे युग्म वर्ण होता है । चात्स्य आदि मुनियोंने ज्योतिःशास्त्रमें जन्मप्रास ले कर तीन माम तक जो गर्भाश्वित युग्म वर्ण होता है, उसीको कन्याओंके विवाहके लिये शुभ दिन स्थिर किया है । यह युग्म और अयुग्मकी गणना भूमिष्ठ और गर्भाधानसे करना चाहिये अर्थात् भूमिष्ठ होनेके बादसे गणनासे अयुग्म वर्ण शुद्धकाल और गर्भाधानके बादसे गणनासे युग्म वर्ण शुद्धकाल है ।

विवाहमें अकाल आदिका दोषभाव—कन्याके दश वर्ण बीत जाने पर उसके विवाहमें अकाल आदि दोष नहीं लगता । शास्त्रमें लिखा है—गुरु शुक्रके वाद्य, वृद्ध और अस्तजनित जो अकाल आदि होने हैं, उस समय कन्याका विवाह नहीं होना चाहिये । किंतु कन्याकाल अर्थात् दश वर्ण काल बीत गया हो, तो उस कन्याके विवाहमें अकाल आदि दोष नहीं देखे जाते । पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य, मातामह और मातायें सभीको कन्यादान करनेका अधिकार है ।

पिताको स्वयं कन्यादान देना कर्त्तव्य है । स्वयं असमर्थ होने पर वह अपने ज्येष्ठ लड़केको आज्ञा दे, कि वह अपनी बहनका दान करे । इन दोनोंके बाद मातामह, मामा, सकुल्य और वाधव यथाक्रम कन्यादानके अधिकारी हैं । इन सबोंके अभावमें माता ही अधिकारिणी होती है । किंतु ये सभी प्रकृतिस्थ होने चाहिये ।

विवाहके बाद कन्या पर उसके स्वामीका पूर्ण स्वामित्व हो जाता है और पिताका स्वामित्व खत्म हो जाता है, सुनरा कन्याके विवाहके बाद पतिके गोत्रानुसार उसके सब कार्य होंगे । उसकी मृत्यु हो जानेके बाद ही उसके पतिके गोत्रानुसार ही पिण्डोदकादि क्रियायें होंगी ।

“स्वगोत्राद्भ्रमरयते नारी विवाहात् मसमे पदे ।  
पतिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रियाः ॥”

( उद्गाहत्त्व )

विवाहादि संस्कार कार्य नान्दीमुखश्राद्ध करके करना होगा । विवाहके दिन प्रातःकाल आम्बुद्वयिक श्राद्ध कर रातको कन्यादान करना होता है । विवाहके आरम्भके बाद यदि अशौच हो जायें, तो उसमें कोई प्रतिवन्धक नहीं होता । विवाहके आरम्भ शब्दसे वृद्धि श्राद्ध समझना होगा । वृद्धिश्राद्ध करनेमें प्रवृत्त होने पर यदि सुनाई दे, कि जन्म या मरण आदि किसी तरहका अशौच हुआ है, तो यह विवाह कर डालना चाहिये । इसमें कोई दोष नहीं होता । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चना और जप इन सब कर्मोंका आरम्भ हो जानेके बाद यदि अशौच हो, तो यह अशौच आरम्भ कर्मका बाधक न होगा । किन्तु आरम्भके पहले अशौच होने पर यह व्याघ्रानक होगा । वृद्धिश्राद्ध ही विवाहका आरम्भ समझना चाहिये ।

नान्दीमुख श्राद्धका कर्त्तव्य निरूपण—विवाहादि कार्यमें नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये । इस विषयमें शास्त्र-विधि इस तरह है—पुत्रके प्रथम विवाहमें ही पिताको नान्दीमुख श्राद्ध करना कर्त्तव्य है । पुत्रका यदि दूसरा विवाह हो, तो पुत्र स्वयं ही श्राद्धका अधिकारी होगा, पिता नहीं । अतएव इस नान्दीमुख श्राद्धमें पिताके मातामह आदिका उल्लेख न कर उनके अपने मातामहका उल्लेख करना होगा । अर्थात् जो श्राद्ध कार्य करेगा, उसीके नाना अर्थात् मातामहका उल्लेख होगा ।

पुत्रके विवाहमें पिताके न रहने पर वह स्वयं श्राद्धका अधिकारी है । अतः उसके मातामहादिका श्राद्ध होगा । कन्याके विवाहमें पिता ही श्राद्धका अधिकारी होता है ।

विवाहमें ज्ञान्तिकर्म—विवाहके भावो अनर्था प्रतिकारके लिये सुवर्णदान और प्रहोको ज्ञान्तिके लिये होम करनेकी विधि है । कारण, शास्त्रमें है, कि कोई इच्छा करे या न करे, अवश्यम्भावी घटना आप ही आप घट जाती है । इसीलिये अवश्यम्भावी शुभाशुभके विषयमें प्रहादि दोषको ज्ञान्तिके निमित्त विवाहके पूर्व प्रहोम और सुवर्ण आदि दान करने चाहिये ।

विवाहमें शुभाशुभ दिन—विवाहमें ज्योतिषोक्त शुभ दिन ईश्वर उक्तो दिनको विवाह निर्विघ्न करना चाहिये। अशुभ दिनको विवाह नहीं करना चाहिये।

विवाहोक्त मान्य—मार्गशीर्ष, माघ फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, इन्हो कई महोत्सवमें विवाह करना चाहिये। सिवा इनके अन्य महोत्सवमें विवाह होने पर यह कन्या धनधान्य और भाग्यरहिता होती है। भावण महोत्सवमें विवाह होनेसे कन्याये सन्तानहीना मात्रमासमें वैश्या, कार्तिक में शैशिवो, पौषमासमें विधवा और बन्धुबिपुत्रा तथा वैश्रमासमें विवाह करनेसे मन्मथमादिनी होती है। इनके सिवा अन्य महोत्सवमें विवाह करनेसे कन्याये पुत्रवती और समृद्धशास्त्रिनी होती है।

जिन निषिद्ध मासके सम्बन्धमें अगो कहा गया उनके प्रति प्रत्यक्ष श्रेया विचार्य देता है। जैसे—किसी दूम्बरे वृक्षाके शाखा द्वारा अपना देश आक्रमण होने पर अथवा देशमें युद्ध उपस्थित होने पर या पिता माताके प्राण संशयमें पड़नेसे कन्याके विवाहके समयसे अधिक समय बोल जानेसे विवाह विहित मास आदिको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। कन्याकी उम्र यदि इस तरहसे बढ़ गई हो तबसे कुछ और धर्मके धर्मिण होनेकी सम्भावना हो, ऐसी अवस्थामें कथल चन्द्र और छानका बड़ बूँद कर निषिद्ध काम आदिमें भी कन्याका विवाह कर दिया जा सकता है।

कन्याके जन्मसे दश वर्षसे पहले ही महोत्सवों शुद्धि ताराशुद्धि, वर्षशुद्धि अर्थात् पुत्रप्राप्त्यनन्तर विवाह, मान्य शुद्धि, आषाढ भाद्रि निषिद्ध मानोका परिस्वाग, अथवा शुद्धि इतिहासपरिस्वाग, श्रुतशुद्धि, शरत् भाद्रि ओ श्रुतशुद्धि, विमशुद्धि, शनि और मंगलधार वर्जित इत्यादि विषयोंका अवलोकन नहीं किया जाता। पौष और शीत इन दो मानोंके सिवा अन्य दश मांसोंमें (यदि कोई मास मकरमास हो तो उस मासमें विवाह नहीं किया जा सकता) विवाह किया जा सकता है। यद्यत् ज्ञानका अतिप्राय है। ज्येष्ठ पुत्र और कन्याके सम्बन्धमें एक विशेषता है, कि अग्रहायणमासमें उपेष्टका विवाह किसी तरह नहीं हो सकता, किन्तु ज्येष्ठ मासके सम्बन्धमें कहा गया है, कि मासका प्रथम दश दिन छोड़ कर विवाह हो सकता है।

कन्याके जन्म मासमें विवाह प्रशस्त है। कन्याके जन्म मासमें विवाह होनेसे वह पुत्रवती, जन्ममासमें दूम्बरे मासमें विवाह करनेसे धनसमृद्धिशालिनी तथा जन्म नक्षत्रमें भीरु जन्मराशिमें विवाह करनेसे सन्तति युक्त होती है।

पुत्रवत्के लिये जन्म मासमें विवाह निषिद्ध है। किन्तु इसमें प्रतिप्रत्यक्ष इस तरह है—गर्गके मतमें जन्म मासके पहले भाद्र दिन छोड़ कर विवाह किया जा सकता है। यवनके मतसे दश दिन और वशिष्ठके मतसे केवल जन्मका दिन बाद वे कर बाधकका विवाह किया जा सकता है।

विवाहके उपयुक्त बार—बृहस्पति शुक्र बुध और सोमवार विवाहके लिये उपयुक्त दिन हैं। इन सब शुभ दिनमें विवाह करनेसे कन्या सौभाग्यवती होती है और रवि, शनि और मङ्गलवारका विवाह करनेसे कन्या कुम्भरा होती है। भरतृजो अशुभके लिये रवि, शनि और मङ्गलवारको भी विवाह करना शोपाय नहीं। क्योंकि विवाह रातको होता है। अतएव विवाहमें बारदोष नहीं होता। किन्तु सब कन्या भरतृजाया नहीं हो तो बारदोषका विचार करना ही होगा।

विवाहतिथिनिषिद्ध—भ्रमापस्या और अतर्था नवमी और अतर्था तिथिमें और विषुवकरणमें विवाह विशेषरूपसे निषिद्ध है। किन्तु जनिवारको यदि अतर्था नवमी और अतर्था दशमी हो, तो यह विवाह विशेषरूपसे प्रशस्त है। इसके सिवा अन्य तिथियां प्रशस्त हैं। किन्तु अतर्था मासरथा आदि सब तिथियोंमें समो काम वर्जित हैं; अतएव विवाह मा निषिद्ध समझना।

विवाहमें निषिद्ध योग—अयोपातयोगमें विवाह होने पर कुलोच्छेद, परिश्रयोगमें लामि-नाश वैधृति योगमें विधवा, अतिगण्डमें विधवा व्याधालयोगमें व्याधि, हर्षणयोगमें शोक, शूद्रयोगमें अथशूद्र गण्डमें शोकमय, विकृन्ममें सपत्न्य और वक्ष्यायोगमें मरण होता है। सुतर्था विवाहमें ये दश योग विशेष वर्जित हैं।

विवाहमें विहित शुभ नक्षत्र—रेवता उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, अश्लेषा, मूला,

अनुराधा, मघा, हस्ता और स्वाति ये सभी नक्षत्र विवाहके लिये शुभ हैं। किन्तु चित्रा, श्रवणा, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्र आषट्कालमें या यजुर्वेदीय विवाहमें समझना होगा। मघा, मूला और रेवती नक्षत्रमें एक विशेषता है, कि मघा और मूला नक्षत्रका आद्यपाद और रेवती नक्षत्रका चतुर्थपाद अवश्य छोड़ देना चाहिये। कारण इस मुहूर्त्तमें विवाह करनेमें प्राणनाश होता है।

सिवा इसके यामित्युतवेध, यामित्वेध, दशयोगभङ्ग और सप्तशलाकामे विवाह न करना चाहिये।

यामित्युतवेध—चन्द्र पापग्रहके सप्तमस्थित होनेमें यामित्वेध और पापयुक्त होनेमें युतवेध होता है अर्थात् कर्मकालोन राशिके मानवे यदि रवि, शनि और मङ्गल हों, तो यह यामित्वेध होता है।

युतयामित्वमें प्रनिप्रसव भी देखा जाता है—चन्द्र यदि बुध राशिके हों, अपने घरमें या पूर्ण हों अथवा मितगृह और शुभग्रहके गृहमें हों या शुभग्रह द्वारा देखे जाते हो, तो यामित्वेधका दोष नहीं होता।

दशयोगभङ्ग—कर्मकालमें सूर्ययुक्त नक्षत्र और कर्म योग्य नक्षत्र एकत्र कर यदि २७से अधिक हो, तो उनमें २७ छोड़ कर जो बाकी बचे, उनमें यदि १५, ६, ४, १, १०, १६, १८ या २० संख्या हो, तो दशयोगभङ्ग होता है। यह दशयोगभङ्ग विवाहके लिये विशेष निषिद्ध है।

सप्तशलाका—उत्तर दक्षिण सात रेखायें और पूर्व-पश्चिम सात रेखायें खींचीनी होंगी। पीछे उत्तर और-की प्रथम रेखासे कृत्तिकादि करके अभिजित ले कर २८ रेखायें होंगी। जिस नक्षत्रमें विवाह होगा, उसमें अथवा उम रेखाके सामनेवाले नक्षत्रमें चन्द्रके सिवा अन्य कोई भी नक्षत्र रहे, तो सप्तशलाकावेध होता है। उत्तराषाढाका अन्त १५ दण्ड और श्रवणाका पहला ४ दण्ड अभिजित, अभिजितके साथ रोहिणीका, कृत्तिकाके साथ श्रवणाका और मृगशिराके साथ उत्तराषाढाका वेध होता है; इत्यादिक्रमसे वेध स्थिर कर लेना चाहिये। इस सप्तशलाकामें विवाह सम्पूर्णरूपसे वर्जित है। इसमें विवाह होने पर विवाहिना स्त्री विवाहके रंगीन वस्त्रसे ही पतिके मुखमें अनन्त स्पर्श कराती है। अर्थात् नृत स्वामीको मृत्यु हो जाती है।

विवाहके लिये विहित लग्न—कन्या, तुला, मिथुन और धनुका पूर्वार्द्धकाल विवाहमें प्रशस्त है। धनुलग्नका अपरार्द्ध निन्दित है। नित्य लग्नका द्विपटाश अर्थात् कन्या, तुला और मिथुनका नवाश विवाहके लिये प्रशस्त है। विवाहमें जो लग्न हो, उस लग्नके मानवे, आठवे और दशवे स्थानमें यदि शुभग्रह न हो, दूसरे, तीसरे और ग्यारहवे स्थानमें चन्द्र हों और तीसरे, ग्यारहवे, छठवे और आठवे स्थानमें पापग्रह हो, शुक्र छठवे और मङ्गल आठवेमें न हों, तो वह लग्न शुभ और प्रशस्त है। चन्द्र पापमध्यगत और रवि, मङ्गल, शनि शुक्रयुत होने पर उम लग्नका परित्याग कर देना चाहिये।

लग्नके इस दोषके परिहार करनेके लिये सुतद्वियुक्त योगका विधान है। सुतद्वियुक्त योग होने पर लग्नके ये दोष सभी विनष्ट हो जाते हैं। जिस लग्नमें विवाह होता है, उस समय यदि लग्नमें चौथे स्थानमें, पाचवे और नवेमें वृहस्पति या शुक्र हो, तो सुतद्वियुक्त योग होता है। इस योगमें विवाह होने पर सभी दोष नष्ट होते और सुखवृद्धि होती है।

यदि उत्तम लग्न आदि नहीं मिले, तो शास्त्रमें गोधूलिका विधान है। किन्तु विहित लग्न रहनेसे कभी भी गोधूलिके विवाह करना न चाहिये। जिस समय पश्चिमीय दिशा जरा लाल होती है, आकाशमें जो एक तारे दिखलाई देने लगते हैं, उसी समयका 'गोधूलि-वेला' कहते हैं। विवाहमें गोधूलि तीन तरहसे निर्दिष्ट हुई है। जैसे—हेमन्त और शिशिरकालमें सूर्य मन्द किरण हो गोलाकृति और चक्षु गोचर होनेसे, वसन्त और ग्रीष्मकालमें अर्द्ध अस्तमित होने पर और वर्षा तथा गरत् ऋतुमें सूर्यके अस्त होने पर गोधूलि होता है। जिस समय विशुद्ध लग्न न मिले, उस समय गोधूलि शुभ और अन्यथा अशुभ समझना।

गोधूलिके और भी एक विशेषता यह है, कि अग्रहायण और माघ महीनेमें गोधूलिके विवाह होने पर वैधव्य, किन्तु फाल्गुन, वैशाख, ज्यैष्ठ और आषाढ महीनेमें जो विवाह होता है, वे सब शुभ हैं। शनि और वृहस्पतिवारके दिवादण्डमें गोधूलि निषिद्ध है।

इसी प्रकार प्रणामोसे दिन और छान स्थिर कर विवाह-कार्य करना उचित है। पुर्विन तथा कुसम्भमें विवाह कराया नहीं देना चाहिये।

विवाहके समय सौरमासका उल्लेख कर कन्यादान करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि विवाहदि स रकार कार्यक सङ्ख्य वाच्योमे सौरमासका हो उल्लेख करता होगा।

उदाहरणमें लिखा है, कि दिनको विवाह नहीं करना चाहिये। क्योंकि दिनका विवाह करनेस कन्यायें पुनर्बर्जिता होती हैं। दिनका दान साधारण विधि है, किन्तु विवाहमें जो दान किया जाये वह रातको ही करनेकी विधि है।

विवाहक इस दानके सम्बन्धमें एक विशेषता है। मन अग्रह दानमात्रमें ही राता पूर्वकी ओर सु ह कर दान और पूहीता उत्तरमुखो हो कर ग्रहण करते हैं, कि तु विवाहमें इसका व्यतिरिक्त विचार देता है। व्यतिक्रम शब्द का अर्थ—राता पश्चिममुखो हो कर कन्यादान करे और पूहीता पूर्वकी ओर सु ह कर कन्या ग्रहण करे।

दान करने समय हाता पहले चरक मपिठामहसे घर तक नाम, गोक और प्रवरका उल्लेख किया जाना चाहिये। इसके बाद कन्या दान की जाये।

विवाहमें घर और कन्याके परस्पर रागि, लण प्रह और गहक आदिका एक कुसरीसे मेल है या नहीं उसका भी अच्छी तरह विचार करने हो कन्या निरूपण करना चाहिये। इन तरहक निरूपणसे विवाह शुभप्र होता है। अरिपद्मक, मिरुपद्मक, अरिद्रिशादृश, मिरुद्रिशादृश आदि देव कर राजघोटक मेलक होसैस विवाह प्रशस्त है। इव मेलकका निम्न योक्त शब्दमें देको।

विवाहके समय कन्याके माऊ पर तिळक काढ़ना होता है। यह तिळक गोतचना, गोमूत्र, सूखे गोबर क्षपि और चन्दन मिसा कर काढ़ना उचित है। इससे कन्या सौभाग्यवती और आरोग्य होती है। तिळक आर्द्र द्वारा कन्याको अच्छी तरह सजिगत कर घर और घरकी समुक्त कराये।

विवाहक दिन प्रातःकाल सप्रदाता पट्टी मारुण्डेव आदिकी पूजा, अघिवास बहुपारा और नाम्नीमुख-आद्य

कर रातको विहित छानमें बाघादि नाना उत्सवोंके साथ अग्नि, ब्राह्मण और आत्मोप लक्षणके सम्मुख कन्या सम्प्रदान करना चाहिये। सम्प्रदानके बाद कुशष्टिका और आमहोम आदि करने होते हैं। यदि विवाहको रातिका ये कार्यों न हो सक, तो विवाहके बाद जो दिन उत्तम दिवस है, उसो दिनको करने चाहिये।

साम, शुक और यजुर्वेदोप विवाह पद्धतियाँ समग अलग है। इनके दाम आदि कार्यों भी मित्त प्रकारके हैं।

विवाहित ( सं० लि० ) हतविवाह, जिसका विवाह हो गया हो।

विवाहिता ( सं० लि० ) जितका पाणिग्रहण हो चुका हो, ब्याही हुई।

विवाहो ( सं० लि० ) १ विवाहकारी, ब्याह करनेवाला। २ जिसका विवाह हो चुका हो, ब्याही हुई। ३ विनाय रूपसे बहनकारा, ब्यु बोक होमेबाला।

विवाहा ( सं० लि० ) १ विशेषरूपसे बहन करनेके योग्य, जिसका अच्छे तरह बहन किया जा सक। २ पाणि ग्रहण करने योग्य, ब्याहने कायक। (पु०) ३ कामाता।

विर्विश ( सं० पु० ) सुपराकाक पीत। विर्वीराककन्या मन्दिनी इनकी माता थी। ( मार्कण्डेयपु० १२०।१४ )

विबि गति ( सं० पु० ) विद्यक शसम्भूत भूपतिविधेय। ( माणवत १।५।२४ )

विबि ( द्वि० वि० ) १ दो। २ दूसरा।

विचिक ( सं० लि० ) वि विच-क। १ पक्षि। २ निजल, पित्तल। ३ पूषक कृपा हुआ। ४ बिभरा हुआ। ५ त्यक्त। ६ विधेकी, बाली। ७ विधेकक, बिभारसेबाला। ८ शुभ। ९ प्रकार। (पु०) १० विष्णु। (भारत १३।१४।५१) ११ स्व्यासी, त्यागा।

विचिकचरित ( सं० लि० ) जिनका भाषण बहुत अच्छा और पवित्र हो शुद्धचरितकामा।

विचिकता ( सं० स्त्री० ) विचिकता माव या धर्म, विबे किता, घेराय।

विचिकरव ( सं० स्त्री० ) विचिकता।

विचिकनाम ( सं० पु० ) १ पुराणानुसार हिरण्यरथाक साठ पुत्रोंमेंसे एक। २ इसक द्वारा शासित बयका नाम।

विविक्ता ( स० स्त्री० ) वि-विच् क् स्त्रिया टाप् ।  
दुर्भंगा ।

विविक्ति ( स० स्त्री० ) वि-विच्-क्तिन् । १ विभाग । २  
विच्छेद । ३ उपयुक्त सम्मान, पार्थक्यनिर्णय ।

विविक्तस् ( स० त्रि० ) वि विच् क्तु । विवेकवान्,  
ज्ञाना ।

विविक्तु ( स० त्रि० ) शरणेच्छु, आश्रयेच्छु ।  
( भाग० पु० ६।५।४० )

विविचार ( स० त्रि० ) १ विभागरहित, विवेकशून्य ।  
२ आचाररहित ।

विविचारी ( स० पु० ) १ अविवेकी, मूर्ख, वेचकृफ । २  
दुश्चरित्र, दुराचारा ।

विविचि ( स० त्रि० ) पृथक्कृत, अलग किया हुआ ।

विवित्ति ( स० स्त्री० ) विगेष लाभ ।

विवित्मा ( स० स्त्री० ) १ आत्मतत्त्व जाननेका इच्छा,  
वात्प्रविचार । ( भाग ११।७।१७ ) २ जाननेकी इच्छा ।

विवित्सु ( स० त्रि० ) १ जाननेमें इच्छुक । ( भाग० ३।८।३ )  
( पु० ) २ घृतराष्ट्र के एक पुत्रका नाम । ( भारत १।१।७४ )

विविडिया ( स० स्त्री० ) विवित्सा, जाननेकी इच्छा ।

विविदिषु ( स० त्रि० ) विवित्सु, जाननेका इच्छुक ।

विविद्युत् ( स० त्रि० ) १ विद्युत्हीन । २ विद्युद्-  
विशिष्ट ।

विविध ( स० त्रि० ) १ बहुत प्रकारका, अनेक तरहका ।

( पु० ) २ एकाहमेद । ( शाट्स्नायनश्रौतसू० १४।२।६३ )

विविन्ध्य ( स० पु० ) ज्ञानवमेद । ( भारत )

विधीत ( स० पु० ) १ वह स्थान जो चारों ओरसे घिरा  
हो । २ प्रचुर तृणकाष्ठमे पूर्ण राजरक्षित भू-प्रदेश ।

यह स्थान ऊंट भैंस आदि द्वारा विध्वस्त होने पर राजा  
उनके पालकोंको दण्ड देगे ।

विधीतभर्तृ ( स० पु० ) विधीतभूमिका स्वामी ।

विविक्ता ( स० स्त्री० ) वि वृज्-क्, स्त्रियां टाप् । दुर्भंगा ।

विबुध ( स० पु० ) १ देवता । २ पण्डित, ज्ञानी ।

विबुधपुर ( स० पु० ) देवताओंका देश, स्वर्ग ।

विबुधप्रिया ( स० स्त्री० ) एक प्रकारका वृत्त । इसके  
प्रत्येक चरणमें ८, ९, १० और ११ गण होते हैं । 'चंचरी'

'चंचली' और 'चर्चरी' भी कहते हैं ।

विबुधयन ( स० पु० ) देवताओंका प्रमोद यन, नन्दनकानन ।  
विबुधवैद्य ( स० पु० ) देवताओंके चिकित्सक, अश्वना-  
कृमाग ।

विबुधेग ( स० पु० ) देवताओंका राजा, इन्द्र ।

विबुत् ( स० स्त्री० ) अन्न ।

विबृत ( स० त्रि० ) वि-वृ-क्त । १ विस्तृत, फला हुआ ।  
( गाङ्गुत्तर १।मा० क् ) = गुला हुआ । ( पु० ) ३ ऊपर  
स्वर्गक उच्चारण करनेका प्रयत्न । स्पृष्ट, स्पृष्टस्पृष्ट, विबृत  
और ववृत ये चार प्रयत्न हैं । इनमेंसे ऊपरवर्ण और

स्वरके प्रयोग कालमें, प्रक्रियादशामें विबृत होता है ।

विबृता ( स० स्त्री० ) पैत्तिक क्षुद्ररोगमेद । इसमें मुँहमें  
गूलरके फलके सदृश मडलाकार कुमियां होती हैं  
तथा मुँह सूज जाता है । पैत्तिक विसर्पका तरह इसकी  
चिकित्सा करनी होती है । ( भावप्र० )

विबृताक्ष ( स० पु० ) विबृते अक्षिणो धरत्य । १ कुपट्ट,   
मुर्गा । ( त्रि० ) २ विस्तृत अक्षिविग्रिथ, बड़ी बड़ी आँसों-  
वाला ।

विब्रति ( स० स्त्री० ) वि-वृ-क्ति । व्याख्या, टाका ।

विबृतोक्ति ( स० स्त्री० ) एक अलङ्कार । इसमें श्लेषसं-  
छिपाया हुआ अर्था कवि स्वयं अपने शब्दों द्वारा प्रकट  
कर देता है ।

विबृत्त ( स० त्रि० ) वि-वृत्-त् । चक्रवृत्त चलित, चक्र-  
की तरह घुमा हुआ ।

विबृत्ति ( स० स्त्री० ) वि वृत्-क्ति । १ चक्रवृत्तप्रमण, चक्र-  
के समान घूमनेकी क्रिया । २ घूर्णन, घूमना । ३ विविध  
वृत्तिलाभ ।

विबृद्धि ( स० स्त्री० ) विशेषरूपसे वृद्धि ।

विबृह ( स० पु० ) आपे आप खुल जाना ।

विबृहत ( स० पु० ) काश्यपके पुत्रमेद । ये ऋग्वेदके १०म  
मण्डलके १६३ संख्यक सूक्तद्रष्टा ऋषि हैं ।

विवेक ( स० पु० ) वि-विच् घञ् । १ परस्पर व्यावृत्ति  
अर्थात् वाद विचार द्वारा वस्तुका स्वरूपनिश्चय । वस्तुतः  
किसी प्रकारका कुनर्क न करके केवल परस्पर यथार्थ  
तर्क द्वारा प्रकृत निर्णय करनेका नाम ही विवेक है ।

२ प्रकृति और पुरुषको विभिन्नताका ज्ञान । पर्याय—  
पृथगात्मता, विवेचन, पृथग्भाव । ( मनु १।२६ ) ३ जल-

द्रोणी पामी रक्षिका एक प्रकारका बरतन । ४ विचार, बुद्धि, समझ । ५ मनकी वह शक्ति जिससे मझे बुरेका ज्ञान होता है, मझे और बुरेको पहचाननेकी शक्ति । ६ ज्ञान । ७ वैराग्य, संसारके प्रति विराग या बिरह-भाव । ८ स्नानागार, चण्डिका । ९ मेढ़ । १० विचारक, मझे बुरेका विचार करनेवाला ।

विद्येश्वर ( सं० वि० ) विद्येक ज्ञानाति विद्येश्वर-क । जिससे मझे बुरे पहचाननेका ज्ञान हो ।

विद्येश्वरान ( सं० श्लो० ) विद्येश्वरानि ज्ञान विद्येश्वर पद ज्ञान वा । तत्त्वज्ञान सत्त्वज्ञान ।

विद्येकता ( सं० श्लो० ) १ विद्येकका भाव ज्ञान । २ मत् और असत्का विचार ।

विद्येश्वरानन्द ( सं० श्लो० ) विद्येश्वरानन्द विद्येश्वर-गुण कनिष्ठा । विद्येश्वरानि, तत्त्वज्ञानी, विनेकी ।

विद्येश्वरान् ( सं० श्लो० ) विद्येश्वरान्स्तीति विद्येश्वरान् मन्थ बन्धम् । विद्येश्वरानि, वैराग्ययुक्त ।

विद्येश्वरान् ( सं० पु० ) १ यह जिते सत् और असत्का ज्ञान हो मझे बुरेको पहचाननेवाला । २ बुद्धिभाव, मज्जमन् ।

विद्येश्वरान् ( सं० पु० ) एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ ।

विद्येश्वरानन्द—१६वीं सदीके शेर भागमें जो सब महा पुरुष बहुरेश और बहुराजकी शिरोमणिकरमें प्रतिष्ठा प्राप्त करके पृथ्वी-पुरुष हो गये हैं, स्वामी विद्येश्वरानन्द इनमेंसे प्रधान हैं । कलकत्ते के सिमुलिया नामक स्थान में स्वामी विद्येश्वरानन्दने १२६१ मासकी २३वीं कल्पा सप्तमी तिथि उत्तरायण संक्रांतिके दिन ( सन् १८६३ ई० में १२वीं जनवरीको ) जन्मग्रहण किया था । उनका पिताका नाम था चिम्बनाथदास । वे बाल्यका हीकोटके पढ़ाई में थे । चिम्बनाथदास तीन पुत्र थे । सबसे बड़े का नाम नरेन्द्र मन्मथेका नरेन्द्र और छोटेका नाम मूषेन्द्र था । ज्येष्ठ पुत्र नरेन्द्र ही स्वामी विद्येश्वरानन्द नामसे विख्यात हुए ।

नरेन्द्र बचपनमें बड़े जिज्ञासु थे परन्तु कुछ नहीं थे । बचपनमें ही स्मरण शक्तिकी अविद्यता परन्तु स्वप्नमस्तिष्क, सरल हृदयता आदिको देख लोग विस्मित हो जाया करते थे । नरेन्द्रको यह बात मातृम नदी

थी कि कुटिलता और स्वार्थपरता आदि किमका नाम है । अपने बन्धु बन्धव अथवा किसी पशुपरीक किमी कष्टको देख कर शीघ्र ही उसको बचसे उबारनेका प्रयत्न करते लग जाते थे ।

पचापि नरेन्द्र शेष तमाशा परोपकार आदि कार्योंमें लगे रहते थे, तथापि इससे वे अपना काम कभी भूलते नहीं थे । बीस वर्षकी उमरमें वे पद्म, प, की परीक्षामें उत्तीर्ण हो बी० ए० में पढ़ने लगे । इसी समय उनकी कितवृत्ति धर्मको ओर आकर्षित हुई । धर्म किसी कहेने है और कौन धर्म सत्य है, इस बातका अध्ययन करनेके लिये उनका हृदय व्याकुल हो उठा । हेस्टि साहब नामक एक पादर हो । वे उनका पसन्दकी कविशके अध्यापक थे । नरेन्द्र उन्होंने निकट प्रति दिन प्रती बैठ कर धर्म सम्बन्धी कथोपकथन किया करते थे । परन्तु इससे इनका संदेह दूर न हुआ । चारों ओर धर्मियोंकी बलशक्तता देख कर वे नितास्त संशयात्मा हो गये । अन्तमें हृदयका संशय दूर कर वे साधारण ब्राह्मणमात्रमें प्रविष्ट हुए । जिस समय नरेन्द्र धर्मानुसन्धानके लक्ष्यमें पढ़ कर उधर उधर मटकते फिरते थे, उसी समय रामकृष्णध्व परमहंसक उन्हे दर्शन हुआ । नरेन्द्रके एक मित्र परमहंस देवक शिष्य थे । वे ही नरेन्द्रको एक दिन वृत्तियेम्बरको कालीबाड़ीमें परमहंस देवके मनोप ले गये और परिचय करा कर बोले, 'प्रभो ! यह खड़का नास्तिक होता आ रहा है ।'

परमहंस देव श्यामाविषयक और देहतरण सम्बन्धी गीत बड़े श्रेयसे सुनते थे । कुछ देर तक कथोपकथन होनेके बाद गुरुकी आज्ञासे नरेन्द्रके मित्रने उन्हें गीत गानेके लिये कहा । नरेन्द्रका कण्ठ खर बड़ा ही मधुर और हृदयप्रायो था । वे अपनी निष्कल कहनेसे परमहंस देवके सामने गाने लगे । नरेन्द्रका गाना सुन कर परमहंस देव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने नरेन्द्रके कहा 'नरेन्द्र ! तुम यहाँ राज आया करो । परमहंस देवके आज्ञानुसार प्रायः ही नरेन्द्र उनके यहाँ आते जाते और परमहंस देव से शब्द समाधान करते थे । परमहंस देव भी कहते थे, नरेन्द्र उसका युक्तियोंसे अर्थजन कर दिया करते थे । एक दिन परमहंस देवने नरेन्द्रसे कहा था, 'नरेन्द्र ! यदि

तुम हमारी बातें मानते ही नहीं हो, तो फिर हमारे यहाँ आते क्यों हो ?' नरेन्द्रने उत्तर दिया, 'मैं आपके दर्शन करने आता हूँ, न कि आपकी बातें सुनने।'।

परमहंस देवके पास जाने जानेमे नरेन्द्रका संदेह कुछ कुछ दूर होने लगा। इसी समय यी० ए० परीक्षा पास करके वे कानून पढ़ने लगे। कुछ दिनोंके बाद नरेन्द्रके पिताका देहान्त हो गया। पिताकी मृत्युके बाद नरेन्द्र का स्वभाव एकदम पलट गया। वे परमहंस देवके पास जा कर बोले, 'महाराज ! मुझे योग सिखाये। मैं समाधिस्थ हो कर रहना चाहता हूँ। आप मुझे उसकी शिक्षा दें।' परमहंस देवने कहा, "नरेन्द्र ! इसके लिये चिन्ता क्या है ? साधु, वेदान्त, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थोंको पढ़ो, आप ही सब योग जानोगे। तुम तो बुद्धिमान हो। तुम्हारे जैसे बुद्धिमानोंसे धर्मसमाजका बड़ा उपकार हो सकता है।" उसी दिनसे परमहंस देवके कथनानुसार नरेन्द्र धर्मग्रन्थ पढ़ने और योग सीखने लगे।

नरेन्द्रकी माता अपने पुत्रको उदास देख उनकी विवाह कर देना चाहती थी, परन्तु नरेन्द्रने विवाह करनेसे दिलकुल इन्कार कर दिया। कहते हैं, कि परमहंसदेवने नरेन्द्रके विवाहकी बात सुन कर कालोजीसे कहा था, 'मा ! इन उपद्रवोंको दूर करो, नरेन्द्रको बचाओ।'।

परमहंस देवकी कृपासे नरेन्द्र महाझानी सन्यासी हो गये। परमहंस देवके परलोकधासी होने पर गुरुकी आज्ञासे नरेन्द्रने अपना नाम विवेकानन्द स्वामी रखा।

परमहंस देवके शरीरत्याग करनेके बाद विवेकानन्द स्वामी हिमालयके मायावती प्रदेशमें जा कर योगसाधन करने लगे। दो वर्षके बाद तिब्बत और हिमालयके अनेक प्रदेशोंमें वे घूमे। वहाँसे पुनः स्वामीजी राजपूतानेके आबू पर्वत पर आये। वहाँ खेतड़ी महाराजके मन्त्री मुन्शी जगमोहनलाल स्वामीजीके किसी भक्तके साथ उनके दर्शनके लिये आये। मुन्शीजीने जा कर खेतड़ी महाराजसे स्वामीजीकी विद्या बुद्धि आदिभी प्रशंसा की। स्वामीजीकी प्रशंसा सुन कर खेतड़ीके महाराजने स्वामीजीका दर्शन करना चाहा। महाराजके

सम्मानकी रक्षा करनेके लिये स्वयं स्वामीजी खेतड़ी पधारे। स्वामीजीमें साक्षात् होने पर महाराजने स्वामीजीमें पूजा, 'स्वामीजी ! जीवन क्या है ?' स्वामीजीने उत्तर दिया, 'मानव अपना स्वरूप प्रकाशित करना चाहता है और कुछ शक्तियाँ उसके इतानेको चेष्टा कर रही हैं : इन प्रतिद्वन्दी शक्तियोंको परास्त करनेके लिये प्रयत्न करना ही जीवन है।' महाराजने स्वामीजीमें इसी प्रकार अनेक प्रश्न किये और स्वामीजीने यथार्थ उत्तर वा कर फूटे न समाये। स्वामीजीके वैश्टर भक्त हो गये। महाराजके कोई पुत्र नहीं था। उसी समय महाराजके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ, कि यदि स्वामीजी महाराज आजीर्वाट दें, तो अश्रय ही वे पुत्रवान होंगे। गद्दी धिन्कार कर स्वामीजीके जानेके समय महाराजने बड़े धिनयमें कहा, 'स्वामीजी ! यदि आप आजीर्वाट दें, तो मुझे एक पुत्र हो।' स्वामीजीने अन्तःकरणसे आजीर्वाट दिया। इसके दो वर्ष बाद स्वामीजीके आजीर्वाटमें महाराजके एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।

महाराज चाहते थे, कि स्वामीजीके आजीर्वाटमें पुत्रने जन्मग्रहण किया है, इसलिये स्वामीजी ही आ कर उसका जन्मोत्सव करें। उस समय स्वामीजी मन्त्राजमें थे। मुन्शी जगमोहनलाल उनका खोज करने करते वहाँ पहुँचे और उन्होंने खेतड़ी महाराजका अमिलाप स्वामीजीसे कह सुनाया। उस समय १८६३ ई०की अमेरिकामें एक महाधर्म सम्मेलन होनेवाला था। उस समामें सासार-भरके धर्मके प्रतिनिधि निमन्त्रित किये गये थे, परन्तु हिन्दू धर्मका कोई प्रतिनिधि उस समयमें नहीं बुलाया गया था। उस समामें यह उद्देश था, कि सासारके धर्मों से तुलना करके ईसाई धर्मको श्रेष्ठता स्थिर की जाय। उस समामें समापति थे रेवरण्ड व्यारो। व्यारो साहबने प्रायः समझा था, कि हिन्दू मूर्ख होते हैं, उनके निमन्वण देना व्यर्थ है। इस अपमानको न सह कर कतिपय भारत सन्तानोंने स्वामी विवेकानन्दका वहाँ भेजना स्थिर किया।

मुन्शी जगमोहनलालके विशेष अनुरोध करने पर स्वामीजी खेतड़ी आये। खेतड़ीके महाराजने स्वामीजीका

बड़ा आदर सत्कार किया। कुछ दिनों तक जेतनीमें रह कर स्वामीजी अमेरिका जानेके लिये प्रस्तुत हुए। महाराजने उनके अमेरिका जानेका आश्चर्य प्रकट कर दिये। महा राजका आश्रममें मुझे अगमोद्गममालती बर्बाद तक स्वामीजीके पक्ष जानेके लिये गये वरि स्वामीजीका मन्त्र प्रकट करनेके आग्रह हुआ।

बर्बाद का कर मुझे अगमोद्गममालने भन्नी साम प्रियोका प्रकट करके स्वामीजीको अज्ञान पर धैर्य दिया। स्वामीजीको विश्वास करनेके लिये जो लोग जहाज पर गये थे वे खौट बाधे।

स्वामी विश्वविद्यालय शिक्षापीठो परमसामने दिव्यधर्म के प्रतिनिधि बन कर गये सदी, परन्तु इन्हे उस समय निमग्न नही मिला था। अमेरिकामें इनका कोई परिचित भी नहीं था अर्थात् का कर स्वामी जी ठहरने तथापि स्वामीजीमें अमेरिकाके लिये प्रस्थान कर दिया।

पचासवय आग्रह होता हुआ आशा अमेरिकाके बन्दरमें पहुँचा। अन्त्यात्म यात्रियोंके समान स्वामीजी भी अज्ञानसे अज्ञान कर बिनागो शहरकी ओर चले। स्वामीजीका बेशुभ्या देख कर वहाँके वासियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े कौतूहलसे लोग स्वामीजीकी ओर देखने लगे और उनका परिचय पूछने लगे। स्वामीजीने भी अपने भावैका पूरा पूरा प्रकट करनेके लिये प्रस्ताव दिया। उन पूछनेवालोंमें समो बरोही ही नही थे कतिपय गण्य मान्य व्यक्तिवोंने स्वामीजीकी विद्वत्ता और गुणोंसे आश्चर्य हो कर उन्हें अपने वहाँ ठहराया और धर्मसामने स्वामीजीको भी निमग्न करनेके लिये एक समारोह समारोह ब्यारो उद्घाटनमें अनुरोध किया। पहले तो ब्यारो साहब होजा इवाजा करने लगे परन्तु पीछेसे उन लोगोंके विशेष प्रार्थना आने पर ब्यारो साहबने स्वामीजीको निमग्न किया।

परमसामने अविवेशनका समय उपस्थित हुआ। इन्कीपण और अमेरिकाक प्रसिद्ध परिचित धार्मिक और धर्मव्यक्तियोंके उस समारोहमें अपने धर्मकी महिमा गाया। ब्रह्मात्मके आशासनात्मके प्रसिद्ध प्रचारक प्रताप चन्द्र महाम वरि इस समारोहमें निमग्नित ही कर गये थे। उन्होंने भी इस समारोहमें व्याख्यान दिया।

आशासनात्मके वक्तव्य समारोह होते ही स्वामी विश्वविद्यालय व्याख्यान मञ्च पर चढ़े हुए। एक अपरिचित अज्ञान-नामा संस्थानो इस समारोहमें दिव्यधर्मकी विशेष पता बतलानेके लिये बड़ा हुआ है—यह देख कर अन्त्यात्म विद्वान् चकित हो गये। दूसरोंका बात क्या कहो जाय, स्वयं प्रतापचन्द्र महामहारा भी इससे आश्चर्यग्नित हो गये।

स्वामीजीमें धीरे धीरे व्याख्यान देना प्रारम्भ किया और दिव्यधर्मकी विशेषता लोगोंको समझा दो। उन कष्ट सुखकोओ प्राण्य शोष ही बचक गर्व जो दिव्यधर्मको बर्बर धर्म और पीछलिक धर्म समझे हुए थे।

स्वामीजीका वक्तव्यशक्ति, शास्त्रज्ञान अकाठ्ययुक्ति और तर्काप्रणालीका देख कर विद्वन्महत्तम और साधु समाजको चकित होना पडा था। चारों ओरसे धर्म धर्मको बौद्धार माने लगे। समस्त अमेरिकामें स्वामी जीका वक्तव्यका प्रशंसा होने लगी। सब लोगोंने ज्ञान लिया कि स्वामीजी सत्य मत्त्व ज्ञानो पुष्ट हैं। अमेरिकाके सभी पत्रोंमें स्वामीजीकी प्रशंसा की।

स्वामीजीकी कारिण चारों ओर फैल गये। अमेरिकाके अन्त्यात्म स्थानोंसे वक्तव्य देनेके लिये स्वामी जोक पास निमग्न आने लगे प्रायः दो वर्ष अमेरिकाके अनेक स्थानोंमें व्याख्यान दे कर और धर्मकी साबंज्ञानता समझा कर "दिव्यधर्म ही भावि और सत्य है" यह बात अमेरिकावालोंके हृदयमें दृढ़रूपसे अंकित कर अमेरिकावासी स्त्रीपुरुषोंको अज्ञानमें अन्धकारन द्वारा वेदात्म शिक्षा दे कर और उनका धर्म-अज्ञान कार्यमें निरुक्त कर स्वामीजी अमेरिकासे इन्कीपण गये।

स्वामीजीने अमेरिका आ कर पहले दो वर्ष अमेरिका नामा मैडम खुरस और मिस्टर सैण्डेस वर्गका अज्ञान धर्म प्रकट करा कर वेदात्मकी शिक्षा की। इस समय वे स्वामी अग्रयानन्द और स्वामी कृपानन्द नाम धारण कर अमेरिका और यूरोपमें वेदात्मका प्रचार करते थे।

स्वामी विश्वविद्यालय अपने कतिपय यूरोपीय शिष्योंके साथ १८६६ ई०में इन्कीपणसे भारतवर्ष आनेके लिये रवाना हुए। भारत आते समय सि इक्ष्वाकियोंको ओरसे उन्हें कोल्कतामें आनेके लिये निमग्नपत्र मिला।



अतएव स्वामीजीने सिंहालकी ओर प्रस्थान कर दिया।

सिंहालकी राजधानीका नाम कोलम्बो है। स्वामी विवेकानन्दजी कोलम्बो जा कर उपस्थित हुए। उस देशके बड़े बड़े विद्वान् और धर्मियोंने स्वामीजीका अभिवादन किया। सभी लोग स्वामीजीकी वक्तृता सुननेके लिये लालायित हो रहे थे। कोलम्बोमें वक्तृता दे कर स्वामीजी कान्दी नामक स्थानमें गये। कान्दी निवासियोंने स्वामीजीको एक अभिनन्दनपत्र दिया, स्वामीजीने भी उसका उचित उत्तर दिया। तदनन्तर वहाके दर्शनार्थ स्थानोंका दर्शन कर स्वामीजी दाम्बूल नामक स्थानमें पधारे। इसी प्रकार सिंहालके अनेक स्थानोंमें जा कर स्वामीजीने ध्याख्यान दिया। वहांमें स्वामीजी मन्त्राज संतुषन्ध रामेश्वर होते हुए कलकत्ते आये। कलकत्तेमें उनकी अभ्यर्चनाके लिये बड़ा सभा हुई। कलकत्तेमें कुछ दिन रह कर वे ढाका, चट्टग्राम और कामरूप गये।

सन् १९०० ई०में स्वामीजी पेरिस धर्म समासे निमन्त्रित हो कर वहां गये। तीन महीने रह कर वहांसे जापान होते हुए स्वामीजी कलकत्ते लौट आये। इसी समयसे इनका रोगस्थि विगडने लगा। इस समय इनकी उमर सिर्फ ३६ वर्षका थी। इसी अल्पावस्थामें १३०६ सालकी २०वीं आप.ढ कृष्ण चातुर्दशी तिथि साढ़े नौ बजे रातको (सन् १९०२ ई०की ४थी जुलाई) गङ्गाके किनारे स्वीय प्रतिष्ठित बेलूड मठमें स्वामीजीने नश्वर शरीरका त्याग किया।

विवेकिता (सं० स्त्री०) १ विवेकीका भाव या धर्म।  
२ विवेचकका कर्म।

विवेकित्व (सं० क्ल०) विवेकित्ता, ज्ञान।

विवेकिन् (सं० पु०) विवेकोऽस्त्यस्येति विवेक-इति।

१ विवेक्युक्त, भले बुरे का ज्ञान रखनेवाला। न्यायमत्तमें विवेकीका लक्षण इस प्रकार है,—

‘द्वदहनदह्यमानदारुद्रघनधूर्णायमाणधूणसांघातव-  
दिह जगति जो भ्रमते जावी स विवेकीति।’

इस जगतमें द्वदहनफालीन दह्यमान काष्ठोदरस्थ कीटका तरह भ्राम्यमाण जीव ही (मनुष्यका जीवात्मा ही) विवेकी कहलाता है। अर्थात् टाषानल प्रज्वलित

हो कर जब इनके दृष्टादिको दग्ध करने लगता है, तब उन वृक्ष-कोटरके फोट जिम् प्रकार किंकर्त्यगिमूढ हो अत्यन्त यत्नणाके साथ कभी वृक्षके ऊपर और कभी नीचे जाते हैं, दूसरा कोई उपाय उन्हें सूझ नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीवात्मा बार बार संसारमें आ कर विषम दुःख भोगता है; आखिर संसारकी असीन यत्नणा न सह कर जब वह कीटकी तरह अवस्थापन्न हो जाता है, तब उसे विवेकी कहते हैं।\*

२ विचारकर्त्ता, न्यायाधीश, वह जो अभियोगों आदि-  
का न्याय करता हो। ३ विचारधान, बुद्धिमान्। ४ ज्ञानी।  
५ न्यायशील। ६ भैरववंशोत्पन्न देवसेन राजपुत्र।  
इसकी माताका नाम केजिनी था। (फादिकापु० ६० अ०)  
७ वैराग्यविशिष्ट, वैरागो।

विवेकी (सं० पु०) विवेकिन देखो।

विवेकव्य (सं० त्रि०) वि-विच्-त्वय्। विवेचनाके योग्य।

विवेकृ (सं० त्रि०) वि-विच्-त्त्च्। १ विवेचक। २ विचारक।

विवेक्य (सं० त्रि०) वि-विच्-यत्। विवेक्य, विवेचनाके योग्य।

विवेचक (सं० त्रि०) वि-विच्-ण्युल्। १ विवेचनकारी, विवेकी। २ विचारक, न्यायाधीश।

विवेचन (सं० क्ली०) वि-विच्-ण्युट्। १ विवेक, ज्ञान।  
२ किसो वस्तुकी भली भांति परीक्षा करना, जाँचना।

३ यह देखना कि कौन-सी बात ठीक है और कौन नहीं, निर्णय। ४ व्याख्या, तर्कवितर्क। ५ अनुमन्यमान।

६ परीक्षा। ७ सत् अमत्का विचार। ८ मामांसा।

विवेचना (सं० स्त्री०) विवेचन देखो।

\* हमसे मालूम होता है, कि वैसी अवस्थाको माने विवेक तथा उस अवस्थापन्नको विवेकी कहा गया। यथार्थमें उस अवस्थाके आने पर ही विवेक वा तत्त्वज्ञान होता है सो नहीं, परन्तु जबके उस अवस्थापन्न होनेसे उसी अवस्थाके मध्य उसकी मुक्ति वा आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिकी क्षिपसा हती है। पीछे इसके साथ साथ ही तत्त्वज्ञान उपस्थित होता है। इस कारण वही अवस्था विवेक कहलाती है।

विशेषणोप (स० लि०) विशेषण करने योग्य, विचार करने  
 साध्य ।

विशेषित (स० लि०) १ विशारित, जिसको विशेषण की  
 गयी हो । २ मित्र मित्रित्व से किया हुआ ।

विशेषण (सं० लि०) विशेषणक योग्य ।

विशेषणियु (सं० लि०) विशिष्ट णिच् सम् । विशेष  
 रूपसे जानानेमें इच्छुक, जिसमें क्षीण विशेषण बतानेको  
 इच्छा की हो ।

विशेष (सं० लि०) विशिष्ट-सुच् । १ वर, पति ।  
 २ पदार्थकर्ता, होनेवाला ।

विश्यापित् । सं० लि०) विशेषण व्यापित्त शीघ्र वरूप  
 विश्यापिणि । १ उच्छेदनकारो । २ वरघनगोल,  
 बिरु करनेवाला ।

विमत (सं० लि०) विशिष्ट कर्मागोल, नाना कार्योंमें उपस्थ ।

विमृष्ट (सं० लि०) विमृ-शब्द । विमृष्ट यथा विमृष्टाक  
 बोधनेवाला ।

विम्वोक (स० पु०) स्त्रियोंकी शृङ्गात्मावयव क्रियाविधोप ।

वे अशुद्धत्वगता मिय वस्तुमें जो अनादर दिखमाती हैं,  
 उनीका नाम विम्वोक है । जैसे कोई मिला उपहासकी  
 तीर पर अपने मिलाको आशीर्वाद देता है, "मिल ! तुम  
 मनुष्यानुसरणशील हो, तुम्हें जो सर्वदा बोयी बनाती है,  
 तुम उन्को जगत्के अधुनाम पदार्थ प्राण्य तक भी  
 स्वीकार कर देते हो फिर भी वह तुम्हें प्रेमकी दृष्टिमें  
 नहीं देखती तथा जो कार्य निमित्त नहीं है अथवा तुम्हारा  
 अर्थन मित्र है, ऐसा कार्य करनेमें जो तुम्हें सर्वदा  
 बाधा डालती है, वह अज्ञानवद्विस्मयकर प्रकृतिशास्त्रिणी  
 नामा लम् पर प्रसन्न हों ।" यहाँ पर प्रस्तापित्त शीघ्र  
 गर्वातिशय सम्बन्धमें फिरसे साक्षात्बना करना अनाद्य  
 रूपक है । अतएव यहाँ गर्वातिशयके कारण मिय वस्तु  
 में अथवा यद्यपि अनादर दिखमानेके कारण उनीका  
 विम्वोकमात्र प्रकट होता है ।

"विम्वोकरवद्विस्मय वरदुमीर्षेऽप्यन्यथा ।"

(छां० लि० १।११०)

विश (सं० स्त्री०) विशिष्ट शिष्य । १ प्रजा, ज्ञातक । (पु०)

२ वैश्य, कृषि भीर पाण्डित्यव्ययनायो आतिविशय ।

३ कन्या । ४ मनुष्य । (लि०) ५ व्यापक ।

विश (स० स्त्री०) विशिष्ट । १ मृणाल, कमलकी इठी ।  
 (पद्मसुन्दर)

"वपनात् मृणालं स्वप्नं तन्मा विशिष्टं स्मृतम् ।"

(भाष्यकाण्ड)

२ रौप्य चाँदी । (पु०) ३ मनुष्य, आदमी ।

(स्त्री०) ४ कन्या । (लि०) ५ प्रयोगकर्ता पुस्तकाला ।

६ व्यापक, फैला हुआ ।

विशिरा (स० स्त्री०) विशिष्ट मनुष्य गृणोतीति विशिष्ट  
 मन्त्र शिष्यां शब्द अनिधानात् द्वितीयाया मलुक् ।  
 पत्नी बड़ा प्राम ।

विशकण्ठा (स० स्त्री०) विशिष्ट मृणालमिष कण्ठो यस्या ।  
 बलाका, बगला ।

विशङ्कु (स० लि०) विशिष्टा शङ्का यस्य । शङ्कारदित,  
 जिस किन्को प्रकारकी शंका या भय न हो ।

विशङ्क (स० लि०) विशिष्ट शङ्क शब्द (पा १।२१८)

१ विशाल, बहुत बड़ा या बिस्तृत । २ ममानक डरा  
 पना ।

विशङ्कनीय (स० लि०) जिस किसी प्रकारकी शङ्का  
 हो इतने साध्य ।

विशङ्कमान (स० लि०) विशिष्ट शान्त । आशङ्का  
 कारी, शंका या भय करनेवाला ।

विशङ्का (स० स्त्री०) १ आशङ्का भय । २ शङ्काका  
 अभाव । ३ अविश्वास ।

विशङ्का (स० लि०) जिस किसी प्रकारकी आशङ्का या  
 भय हो ।

विशङ्क्य (स० लि०) १ आशङ्कक योग्य । २ अवि  
 श्वास्य । ३ निर्ममक योग्य ।

विशद (स० लि०) विशिष्ट ज्ञेय । १ विमल, सफ़्त ।  
 २ स्पष्ट, साफ़ । ३ व्यक्त, जो दिखाई पड़ता हो । ४

शुद्ध सफ़ेद । ५ विशिष्टावयव । ६ प्रसन्न, खुश ।  
 ७ अनुकूल । ८ सुदृष्ट, मनोहर । ९ उज्ज्वल । (पु०)

१० श्वेतवर्ण, सफ़ेद रंग । ११ भागवतके अनुसार  
 अथर्वणके एक पुत्रका नाम । १२ कसौस । १३ पृथ्वी  
 बड़ी कठोर ।

विशान (स० स्त्री०) प्रवेशन, भागमन ।

विशानगर - अर्थात् प्रदेशक बड़ीका राज्यके अन्तर्गत एक

महकमा तथा उस महकमेका प्रधान नगर। विशानगर विशालनगरका अपभ्रंश है। म्यान्मार् इतिहासके अनुसार विशालदेव नामक एक चीहान राजपूत यहाँ १०४६ ई०में राज्य करते थे। किसीका कहना है, कि इस नाममें वधेल वंशीय एक राजाने १२४३में १२६१ ई० तक राज्य किया। पहले यहाँ विशानगर नामक नगर ब्राह्मणकी एक श्रेणी रहती थी। उन्हींके नामानुसार इस महकमेका नामकरण हुआ होगा। इस श्रेणीके ब्राह्मण अधिकांश श्रीनारायण स्वामीके मनावलम्बी हैं। विशानगर शहरमें प्रायः २३ हजार लोगोंका वास है।

विशफ (सं० त्रि०) अफरहित, विना खुरका।

"कर्णकल्प विशफल्प द्वौः पिता पृथ्वीमान्।"

(अथर्ष ३।८०।१)

विशष्ट (सं० त्रि०) १ निःशब्द, शब्दरहित। २ शब्द विशिष्ट।

विशब्दन (सं० त्रि०) शब्दका उच्चारण।

विशगप (सं० त्रि०) १ लोगोंसे रक्षित। (पुं०) २ लोक-भेद। यह पाणिनिके अश्वविगणमें लिखा गया है। वैशम्पायन देखो।

विशय (सं० पुं०) वि-शी-अच्। १ संज्ञय, संदेह। २ आश्रय, सहारा।

विशयवत् (सं० त्रि०) १ संज्ञययुक्त। २ आश्रयविशिष्ट।

विशयो (सं० त्रि०) विशयोऽस्त्यस्येति इति। संज्ञयो, संज्ञययुक्त।

विशर (सं० पुं०) वि-शृ-हिसाया अप्। १ बध, मार डालना। २ शरोर-विशरण। (त्रि०) ३ शररहित। ४ शरयुक्त। ५ विशीर्ण।

विशरण (सं० त्रि०) १ मारण, मार डालना। २ पातन, गिराना।

विशरद (सं० त्रि०) विशारद।

विशराह (सं० त्रि०) विस्तर।

विशरीक (सं० त्रि०) पातनशील, गिरानेवाला।

विशर्दन (सं० त्रि०) गुह्यदेशमें कुत्सित शब्द, वायुत्याग, पातन।

विशालगढ़—१ बरहई प्रदेशकी कोल्हापुर पोलिटिकल एजेन्सि-के अधीन एक छोटा सामन्तराज्य। इस राज्यका केंद्र

अक्षा० १६' ५२' ३० और देशा० ७३' ५०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका भूपरिमाण २३५ वर्गमील है। जनसंख्या प्रायः ३५ हजार है। यह महााट्टि शैलमालाके पूर्व ढालू अंगमें अवस्थित है। इस राज्यके उत्पन्न द्रव्योंमें थोड़ी जलानेकी लकड़ी और गृहकार्यमें आनेवाली कड़ी लकड़ी प्रस्तुत होती है। यहांके सामन्तकी उपाधि प्रतिनिधि है। वे कोल्हापुरके राजाको (५६८०) रुपया सालाना कर दिया करते हैं। वर्तमान सामन्तके पूर्व पुरुष—परशुराम द्विष्वक विशालगढ़के दुर्गाध्यक्ष थे। छत्रपति जिवाजीके कनिष्ठ पुत्र १म राजारामने १६६३ ई०में परशुरामको महाराष्ट्र राज्यके सर्वोच्च प्रतिनिधि (Pecroy) पद प्रदान किया। सतारा और कोल्हा-पुरधामी जिवाजीके वंशधरोंमें राजादके लिये (१७००-१७३१ ई०) जत्र भगडा हुआ, तत्र परशुरामने सताराके पक्षमें और उनके पुत्रने कोल्हापुरके पक्षमें योगदान किया। पिता और पुत्र विभिन्न दलके प्रतिनिधित्व कर रहे थे। प्रतिनिधिके वंशधर भगवन्तराव आवाजीके साथ वृष्टि सरकारका साक्षात् सम्बन्ध हुआ। सन् १८१६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इसके बाद क्रमान्वयसे तीन दसक राज्याधिकारी बने। अन्तिम सामन्तने सन् १८७१ ई०में एक जिशु रख कर इहलोक परित्याग किया। इस जिशुका नाम आवाजी कृष्णपंथ प्रतिनिधि था। पोलिटिकल एजेण्टके तत्त्वावधानमें इन्होंने अच्छी तरह सुशिक्षित हो कर यथासमय राज्यभार ग्रहण किया। इस प्रतिनिधिवंशमें ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकार पाता है। राज्यभरमें इस समय छः विद्यालय हैं। इस राज्यकी मालकापुरमें राजधानी है।

२ उक्त राज्यके अंतर्गत एक प्राचीन नगर और गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १६' ५४' ३० और देशा० ७३' ४७' पू०के मध्य अवस्थित है।

विशाल्य (सं०-त्रि०) विगतं शल्यं यस्मात्। १ शल्य-रहित। २ शैलहीन। ३ शैलव्ययाशून्य। ४ घातना-शून्य। ५-चिन्ताशून्य।

विशाल्यकरण (सं० त्रि०) १ जिससे शैल या शल्य निकलता है। (त्रि०) २ शल्यरहित।

विश्वस्यकरणी ( सं० लि० ) विश्वस्यः क्रियते अन्वयेन, विश्वस्य-रु-कपुर कोप् । औपचिचियेत्, निर्भिषो । रामा यणमें मिष्ठा है, कि शम्भामान पराजने दक्षिण शिखर पर यह इत्यर्थ है । यह महीपथि औपकी औपनोशक्ति बढ़ाती है टूटे अगली ओढ़ती है तथा सवर्णोंकरण अर्थात् धातु आदिके मूल्यमें यह स्थान जो वर्ण हो जाता है उसे भाग करती है । इसके विश्वस्यकरणी नाम का तात्पर्य यह है, कि शब्द वा अक्षरप्रत्ययमें विश्व अक्षर, शब्द, मीह और ओम् या पापापादिका अक्षर करनीको इसमें अक्षरगत शक्ति है । एतद्मे सब कारणात्म शक्तियोग विद्य मुमुक्षुशब्दप्रत्ययके शरीरसे शब्द निकालने, औपनो शक्ति बढ़ाने तथा क्षत सन्धानक निये क्षोरामचन्द्रने महाबीर हनुमान्कः एक पर्वतमें औपच माने मेला था । हनुमानको मारि हुई उस औपपसे ही सत्यप्रत्ययके मूच्छो पौषान्, शल्योदरवा औपनोशक्ति वृद्धि तथा क्षतस्थान मन्धान हुआ था ।

“दक्षिणे विश्वे अता महीचिचिभिराम् ।

विश्वस्यकरणी नाम्ना शब्दपर्यं करणी तथा ।

शब्दपर्यं करणी वीर इन्वानीन्व महीचिचिम् ।”

( रामायण ६।१०१ ) निर्दिष्टी देखो ।

विश्वस्यकरणी ( सं० लि० ) १ विश्वस्यकरणी । ( पु० ) २ पलासी अता । ३ बिजामीनुस, आस्केला या हरपरबामी नामकी अता । पर्याय—अक्षोडक, सुकक, भूगसाग आस्केति, आशरत्प्रिय ।

विश्वस्य ( सं० स्त्री० ) १ शुद्धी शुद्ध । २ मग्निगिता पुस । ३ अगोवृत्त । ४ नामदग्नी । ५ गामदग्नीवृत्त, एक प्रकारकी तुलसी । ६ र्पसङ्गता । ७ वनवमानी । ८ विश्वद्वय । ९ अुपाताशाक । १० निसोप । ११ पादना । १२ निपुण, येनारी । १३ महोचियेत् । १४ अक्षयण को स्त्री ।

विश्वस्य ( सं० पु० ) १ अथ इत्या, मार आसना । २ अक्षय ।

विश्वस्य ( सं० स्त्री० ) अस द्विसार्थं विश्वस्य इत्युत् ।

१ मारण, मार आसना । २ नरकविशेष । ३ अक्षय ।

( लि० ) ४ विश्वस्यकरणी, इत्या करनेवाला ।

विश्वसित ( सं० लि० ) विश्वस्य-क । मारित, जो मार

आता गया हो ।

विश्वसित ( सं० लि० ) विश्वस्य-क । मारक, बिना शक इत्यार ।

विश्वस्य ( सं० लि० ) १ मारित जो मार आता गया हो ।

२ कश्चिन् काय हुआ । ३ सुसम्प । ४ अमोठ किसी

किसी प्रकारका मय न हो । ५ अचिनोठ धूप ।

विश्वस्य ( सं० स्त्री० ) विश्वस्य कित् । अथ, इत्या ।

विश्वस्य ( सं० लि० ) विश्वस्य देको ।

विश्वस्य ( सं० लि० ) विश्वस्य-क ( मग्निः ) । १ द्विसा

कारक, मार आसनेवाला । ( पु० ) २ अक्षय ।

( ७ कश्चित्तम )

विश्वस्य ( सं० लि० ) शब्दरहित, अक्षयम् ।

विश्वस्यपति ( सं० पु० ) राजा ।

विश्वस्यपति ( सं० पु० ) विश्वो मनुष्याणां पतिः, पृथ्वा

अनुक् । नरपति राजा । “वैश्वान विश्वस्यपतिः ।” ( रघु )

विश्वस्य ( सं० पु० ) विश्वस्य देको ।

विश्वस्य ( सं० पु० ) विश्वस्यः विश्वस्यका सन् राजते

विश्वस्य राज् उ शाकम्पूरवात् तत्पत्नम् । १ मद्रथुक्,

उ कासीक । इसमें शाक अर्थात् पत्तादि न रहनेक

कारण ऐसा नाम पड़ा है । २ इत्यवन्तो । ३ श्वपोयु शी ।

४ पादर या पादनाका वृक्ष ।

विश्वस्य ( सं० पु० ) १ कारिणक्य । २ अनुप अनामिके

समय एक पैर अग और एक असे कुछ पोछे रखना ।

३ याचक, मांगनेवाला । ४ पुनन वा, गृहदूरना ।

५ सुप्रभुत्वं अनुसार वह अक्षयमार रोग जो एकम् नामक

प्रहले प्रकोपसे हो । ६ पुण्य अनुसार एक वैद्यता । इनका

अर्थ कारिणक्यक ब्रह्म चकारासै हुआ था । उस समय

ये कुण्डलपारा सुवर्णवर्णसन्निभ शक्तिधर पुष्या पुष्य

थे । ब्रह्मप्रहारसे उत्पन्न होनेक कारण इनका विश्वस्य

नाम पड़ा ।

● एकम् या कारिणक्यता छोटा मारि । ( मार

मारि ६६ म० ) ८ शिव । ( मार मारि १७ म० )

( लि० ) ९ शाकाविहीन, जिसमें शाकासे न हो ।

( शिर्ष्य ५५५१ )

विश्वस्य ( सं० पु० ) विश्व-वृत्त, वेजका पेड़ ।

विश्वस्य ( सं० पु० ) नागरक वृक्ष, नादुकीका पेड़ ।

विशाखायां जातः। ( त्रि० ) २ विशाखजात, जो विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ हो।

विशाखदत्त ( सं० पु० ) प्रसिद्ध मुद्राराक्षमके रचयिता। इनके पिताका नाम पृथु और पितामहका नाम वटेश्वर दत्त था। सद्बुक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है। १०वीं शतकमें ये विद्यमान थे।

विशाखदेव ( सं० पु० ) ११वीं शतकके पूर्ववर्तों एक प्राचीन सास्कृत कवि।

विशाखपत्तन—मन्डाज प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १७°१५' से २०° ७' ३० तथा देशा० ८१° २४' से ६४°३' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३० लाख और भू परिमाण १७२२२ वर्गमील है। भू विस्तृति और जनसंख्याके आधिक्यमें यह जिला मन्डाज प्रेसिडेन्सीमें प्रधान गिना जाता है। विशाखपत्तन, उत्तर गञ्जाम जिला, पूर्व बङ्गोपसागर, दक्षिण बङ्गोपसागर और पश्चिम मध्यप्रदेश द्वारा घिरा हुआ है। यह जिला चौदह जमीन्दारियां, ३७ भूसम्पत्ति और तीन सरकारी तालुकके समाप्तसमवायसे गठित हुआ है। इस जिलेमें १२ शहर और १२०३२ ग्राम लगते हैं। विशाखपत्तन मन्डाजके उत्तर सामुद्रिक प्रदेशका एकांग है। इतिहासमें यह उत्तर सरकारके नामसे प्रसिद्ध है। यह स्थान अत्यन्त पर्वत संकुल और स्मरणीय है, किन्तु बहुत ही अस्वास्थ्यकर है। पूर्वघाट नामकी शैलश्रेणीका एक अंश इस नगरको विभाग कर बक्राभावसे इसके उत्तर पूर्वांश से दक्षिण-पश्चिमांश तक फैला हुआ है। विभक्त भूमिका पश्चिम पर्वतमय और दूसरा अंश सु-समतल है। शैलश्रेणीका सर्वोच्च शृङ्ग प्रायः ५००० फीट ऊंचा है। पर्वतके ढालुप अंशमें तरह तरहके पौधे और बड़े बड़े वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं। उपत्यका भूमिमें बहुतेरे सुन्दर वास दिवाई देने हैं। कितने ही जलप्रवाह नालाकी तरह परिभ्रमण कर बङ्गोपसागरमें मिल गये हैं और कई जल-प्रवाह शाखा नदीके रूपसे गोदावरी और महानदीका कलेवर पुष्ट कर रहे हैं।

पूर्वघाट शैलश्रेणीके पश्चिमांशमें जयपुर-जमीन्दारीका अधिकांश विस्तृत है। यह साधारणतः पर्वत संकुल और जङ्गलमय है। इस जिलेके उत्तर और

उत्तर पश्चिमांशमें कन्ध और शवर जातिकी बस्ती है। उत्तर प्रातमें नीलगिरि पर्वतश्रेणी अवस्थित है। नीलगिरिमें दक्षिण पूर्वांशमें जो श्रोतम्बती प्रवाहित होती है, उर्मने श्राकाकोल और कलिङ्गपत्तन नामक स्थानोंमें नदीका आकार धारण किया है।

विमलीपत्तन और कलिङ्गपत्तन नगर शरणाव-धाणिज्यमें क्रमशः उन्नत हो रहे हैं। म्मुट्टके तीरस्थित समतलभूमि अविभाज ही पर्वतमय है। म्मुट्टकी प्रायः भूमि और विशाखपत्तन बन्दरका प्रवेशपथ बड़ा ही सम-णीय है। यहा सरकारके कई वनविभाग हैं। सिवा इसके अन्यःन्य स्थान जमींदारी सम्पत्ति है। जयपुर राज्यके अधिकांश स्थलमें जङ्गल है। पालकुण्डा वनमें और गोलकुण्डा तालुकके वनविभागमें बहुतेरे बाँस और वृक्ष दिये जाने हैं। सर्वमिद्धि तालुकमें बहुत जमीन परती पड़ी हुई है। पार्श्वतीपुर इलाकमें बहुतेरे शालवृक्ष मिलते हैं। विजयापट्टम् और विजयनगरम् शब्दोंमें विस्तृत विवरण द्रष्टव्य।

विशाखपत्तन शहरके बाहर स्वास्थ्यकर स्थानविशेष-में जेलखाना स्थापित है। इस जेलमें १७२ आदमी रह सकते हैं। जो कैदी अधिक दिनके लिये सजा पाते हैं, वे राजमहेन्द्रोंके सदर जेलमें रखे जाते हैं। पहाड़ी जानियोंके लिये पार्श्वतीपुरमें एक नया जेलखाना बना है। इसमें १००से अधिक कैदी नहीं रखे जा सकते। कैदीकी अवस्थामें इस जातिकी मृत्यु संस्था अत्यधिक बढ़ जाती है।

कई वर्ष पहले विशाखपत्तनमें शिक्षाका नामोनिर्ना भी न था। विजयनगरम् नगरमें महाराजके द्वारा प्रतिष्ठित एक पहली श्रेणीका कालेज है। यहा बी, ए, तककी पढाई होती है। विशाखपत्तनमें एक अर्द्ध-सरकारी दूररे दर्जका कालेज है। सिवा इसके यहां और भी तीन ऊंचे अङ्गरेजी, ११ मध्य अङ्गरेजी और ८१२ प्राय मरी स्कूल हैं। विशाखपत्तन, पालकुण्डा और इला मञ्जिली नामके तीन स्थानोंमें एक एक नार्मल स्कूल हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानोंमें ६ बालिका-विद्यालय और विशाखपत्तनमें कई युवकों द्वारा स्थापित और परिपोषित रूपक सन्तानोंके लिये एक अवैतनिक

रहित-पाठशाळा मी है। पीरे पीरे पहाँके बाळक नीर  
बाळिकायें शिक्षामें उन्नत हो रही है। यह बात मनुष्य-  
गणनासे स्पष्ट है।

विद्यालयपत्रन मयट, विमलीपत्रन, विज्ञयनगम्यु नीर  
अन्योपन्यो शिक्षामें आर अर्थात् एक ग्युनिसपत्र-कार्या  
लय है। विद्यालयपत्रन शहरक अर्धकएठमें प्रसिद्ध बाळि  
पर (वेळठठ) नामक स्थान है। यह स्थान प्रभावता  
इवेताशुकी अधिकायें है। इस स्थानको चौडार्ई तीन  
मील है। इस स्थानका अठबायु बहुत हो अच्छा है।  
विद्यालयपत्रन नगरमें ग्युनिसपत्रिटीका एक बहुत बड़ा  
आफिस है। इसके अधीन एक पुस्तकालय, पाठागार  
नीर स्थानीय समितिका कार्यालय मी प्रतिष्ठित है।  
यहां एक बड़ा अस्पताल नीर डाकूखाना है। इसकी  
उन्नतिक लिये विज्ञयनगम्यु महाराजका ओरसे बहुत  
अर्थ व्यय किया जाता है। अस्पतालक निरुद्ध हो एक  
अनाथाश्रम नीर इसके समीप हा सरकारो पागलोंकी  
गारद है। स्वबसाय बाण्डियमें विमलीपत्रन विशेष  
बिबवात है। यहां अङ्गरेज नीर फ्रांसीसियोंके कई  
कारखाने हैं नीर कलकत्तेसे अङ्गरेज तक ओ छोमर  
सोडता रहता है, उसका एक स्टेशन है। विमलीपत्रनमें  
एक अस्पताल, एक गिरजा एक विद्यालय नीर एक  
पाठागार है नीर इनके सिवा विज्ञयनगम्यु जिम्माकी  
बंगीय पैदल सेनाओंके रहमेके लिये एक गड्डु है।

अठबायु—स्थानकी विमलताके अनुसार सर्वत्र  
एक तरहका स्वास्थ्य नहीं। समुद्रके किनारेक स्थानों  
का स्वास्थ्य साधारणता मुद्रुमयुर नीर य्थानिहारक  
है। कुछ दूर प्रामके भीतर जाने पर बहुत गर्मी महसूस  
होने लगता है। पूर्वघाट पर्वतमालाक निरुद्ध स्थान  
बहुत हो ठंडे हैं नीर मटेरिया प्रवाण है। शहरमें  
मसूरिया उबरका प्राणुमाँव अधिक है। पहाड़ों  
प्रदेशोंमें अङ्गुली उबर या आबतामपित उबरका प्रकोप  
अत्यधिक है। इसक सिवा हैजा नीर खेबकका मा  
कमी कमा प्राणुमाँव हावा रहता है। नमठम, विशेषतः  
सैतसैत स्थानोंमें धारवटि नामक एक प्रकारका राण  
भी हाता है। इसक निरुद्ध प्रदेशमें श्वेतलोग, फीर  
पाष नीर मसूरुदना प्रभाव मा कम नहीं। ओ हो,  
सर्वाँपर विद्यालयपत्रका स्वास्थ्य उरठष्ट है।

२ मद्राज प्रेसिडेन्सीके अन्नार्गन विद्यालयपत्रन  
महकमेका एक तालुक। मूपरिमाण १४२ बर्गमील है।

३ मद्राज प्रेसिडेन्सीके अर्धीन विद्यालयपत्रन जिले  
का प्रधान शहर। यह अक्षा० १६ ४१'५०"३० तथा  
दिशा० ८३ २०'१०"५०में अवस्थित है। यह ग्युनिस  
पत्रिटीके अधीन एक प्रसिद्ध बन्दर है। यहां एक प्रधान  
सनानिवासका कार्यालय, अठ साईब मसिष्ट्रेट नीर  
सब मसिष्ट्रेटकी कब्जदरिया, जेलखाना, पुलिस क्वार,  
पोष्ट, नीर टेलेग्राफ आफिस गिरजा, स्कूल अस्पताल,  
अनाथाश्रम, पागळ-गारद इत्यादि बहुतेरी इमारतें  
माँसुद हैं।

विद्यालयपत्रन शहर अठबायुसागरक किनारे स्थापित  
है। एक नदी शहरसे होती हुई सागरकी ओर गइ है।  
यह शहर पुर्णकी तरह है। स भारतमें इसको  
विद्यालयपत्रन-मुयु भी कहते हैं। यहां बहुत व्ययक पूरो  
पीय पैदल सैन्य है।

ग्युनिसपत्रिटीकी श्रेया नीर अर्थके साहाय्यसे यहां  
का स्वास्थ्य नीर रास्ता, घाट आदिकी पधेष्ट उन्नति  
हुई है। निचा इसक ग्युनिसपत्रिटीके साहाय्यसे एक  
पाठागार, पुस्तकालय नीर कई स्कूल तथा पाठशाळायें  
स्थापित हैं। शहरकी उन्नतिके लिये विज्ञयनगम्यु  
महाराज अकाउंटमावसे अर्थ-व्यय करते हैं।

प्रवाद है, कि चौदहवीं शताब्दीक मध्यभागमें अन्ध  
राजमें इस नगरको मिस्रि डाळो थी। मुसलमानोंकी  
विजयके समय कलिङ्ग प्रदेशका अर्धशिष्ट भाग छे कर  
यह नगर भी मुसलमानोंक अधिकारमें आया। १७वीं  
शताब्दीके मध्यभागमें इष्ट-दरिद्रया कम्पनाने यहां एक  
कोठी निर्माण की। सन् १८६३ ई०में इस कारखाने पर  
आक्रमण कर मुसलमानोंने यहांके कर्मचारियोंको मार  
डाळा। इसक दूसरे वर्ष अङ्गरेजोंने इस पर पुनः अधि  
कार कर लिया नीर यहां छोद्य ही एक किमा बनवाया।  
१८वीं शताब्दीमें आकर अली या उसका मराठा दल  
विमलीपत्रन नीर उसक आते ओरके स्थानोंको लूट  
पाट करक मा विद्यालयपत्रनका विशेष अन्विष्ट नहीं कर  
सका थी।

इसके बाद संतापति युगीने कुछ दिनोंक लिये इस

नगर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद विजय-नगरके राजाने फ्रान्सीसियोंको मार भगाया और इस नगरको अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। यह सन् १७५८ ई०की घटना है। सन् १७८० ई०में सिपाही-विद्रोहके सिवा इतिहास प्रसिद्ध और कोई घटना यहाँ नहीं हुई।

पहले ही कहा जा चुका है, कि विशाखपत्तन एक प्रसिद्ध बन्दर है। सुतरा वाणिज्य व्यवसायमें यह स्थान उत्तरोत्तर उन्नत हो रहा है। आमदनी द्रव्योंमें विदेश जात छोटा छोटा चीजे और इङ्गलैण्डकी धातु है और रफ्तानीमें अन्न और गुड़का व्यवसाय ही उल्लेखनीय है। यहाँ बहुत तरहके देशी कपड़े, कारुकार्यमय द्रव्यसम्मार, चन्दनकाष्ठ और रुपेकी नामग्री तय्यार होती हैं। इसके सिवा वस्त्र, डेक्स, पाशाका कोट आदि चीजे तैयार होती हैं।

विशाखपत्र ( स० पु० ) बालरोगमेद, बालकीका एक प्रकारका रोग।

विशाखयुव ( स० पु० ) १ एक प्राचीन राजा। २ नृसिंह-पुगाणोक प्राचीन जनपदमेद। कोई कोई इसीको विशाखपत्तन मानते हैं। विशाखपत्तन देखो।

विशाखल ( स० स्त्री० ) युद्धकालमें अधिक व्यवधानमें रखा हुआ दोनों पौरका विन्यास।

विशाखा ( स० स्त्री० ) १ कटिलक, करेला। ( भेदिनी ) २ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें १६वाँ नक्षत्र। इसका पर्याय—राधा। इस नक्षत्रका रूप तोरणाकार और उसमें चार तारे हैं। ( मुहूर्त्तचिन्तामणि ) यह नक्षत्र दो भागों में बँटा है, इसलिये इसके दो देवता इन्द्र और अग्नि हैं। यह नक्षत्र मित्रोंके अन्तर्गत है। (शोतिसत्त्व) इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे जातयालक सर्वदा नाना कार्योंमें अनुरक्त रहता है तथा केवल स्वर्णकारके साथ उसकी मित्रता होती है और किसीके भी साथ नहीं। ( कोष्ठीप्रदीप )

३ श्वेतरक्त पुनर्नवा, सफेद गदहपुरना। ( वयकनि० )

४ कृष्णा अपराजिता, काली अपराजिता। ५ कटिलक वृक्ष, करेलेकी लता।

विशाखा—प्राचीन जनपदमेद। चीनपरिवाजक यूपन-चुयंगने "पि मो-फिया" नाममें इस जनपदका उल्लेख किया है। चीन-परिवाजकके वर्णनसे यह मालूम होता है, कि वे क्रीशाग्नी दर्शन कर वहाँसे १७० या १८० ली। प्रायः २५।३० मील ) उत्तर आ कर विशाखा राज्यमें पहुँचे। इस राज्यका परिमाण प्रायः ४००० ली और राजधानी प्रायः १६ ली थी। यहाँ तरह तरहके अन्न और यथेष्ट फलमूल उत्पन्न होते हैं। यहाँके अधिवासी शिष्टज्ञान, सभी अध्ययनमें निरत और मोक्षकामी हैं। चीन परिवाजकके समय यहाँ २० संघाराम था और उसमें हीनयान सम्प्रदायके प्रायः ३००० भ्रमण रहते थे। सिवा इसके यहाँ उन्होंने ५० देवमन्दिर और उसमें बहुतेरे देव भक्त दम्पे थे।

राजधानीके उत्तर राजपथके चामपार्श्वमें एक बड़ा संघाराम था। यहाँ रह कर पहले अर्हत् वैश्वशर्मनि 'विज्ञानशास्त्र' लिख कर भात्मघादका खण्डन किया। यहाँ ही धर्मपाल बोधिसत्त्वने ७ दिनसे गताधिक हीनयानो आचार्योंको पराम्त किया था। इसी संघारामके निकट बुद्धदेवके निर्माल्य-परित्यक्त पुष्पनीजोत्पन्न एक वृक्ष विद्यमान था। बहुत दूर देशसे बौद्धयात्री इस बोधितरुको देखने आते थे। कितनी ही बार ब्राह्मणोंने इस पेड़को काट डाला। फिर भी, चीनपरिवाजकके आनेके समय तक वह वृक्ष मौजूद था। इसके निकट ही चीन-परिवाजक गत ४ बुद्धोंकी स्मृतिथा देख गये हैं। प्रत्नतस्वविद्व कानिहमने साकेत या चर्चमान अयोध्याको ही चीन-परिवाजकका विशाखाराज्य स्थिर किया।

विशाखिका ( स० स्त्री० ) विशाखा देखो।

विशाखिल ( स० पु० ) एक कलाशास्त्र रचयिता।

विशादन ( स० लि० ) विशाल-शिखर-स्थु। मोचनकर्ता, लुडानेवाला।

विशाप ( स० लि० ) १ शापान्त, शापरहित। ( पु० ) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम।

विशाम्पति ( स० पु० ) विशा प्रजाना पतिः। राजा।

विशाय ( स० पु० ) वि-शी-घञ्। ( श्युपयोः शैवे पयि। पा

१।१।१।१६) प्रहरोगणको पर्यायक्रमसे शयन, पहरेदारोंका भारी बाटोसे सोना ।

विज्ञापक ( स० पु० ) अत्रामेद् । विराकार देवो ।

विज्ञापिन् ( स० स्त्री० ) वि-शी यिनि । १ शयनकारो, सोनेबाडा । २ जो नहीं सोता है या जाग कर पहरा देता है ।

विज्ञारण ( स० स्त्री० ) वि-श्च निष्-स्मुद् । मारण, मारना ।

विज्ञारण ( स० स्त्री० ) विशाख-दा क ; रसयोरन्तेः इति अस्य गः । १ विज्ञान् । ( मनु ७।६३ ) २ प्रसिद्ध, मश हूर । ३ प्रामाण्य । ४ घेष्ट, बलम । ५ बल, निपुण्य । ६ अपनो क्षमता पर विश्वासभाव, जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा हो । ७ विद्वान् । ८ गर्वित, घमंडो ; ( पु० ) १ बकुल, मोलसिरी ।

विज्ञारवा ( स० स्त्री० ) १ सुद्र दुराळमा, घमासा । २ क्रीकच, कर्वाँस ।

विज्ञारविमन् ( सं० पु० ) वैशारथ्य, नैपुण्य, निपुण्यता ।

विशाख ( सं० स्त्री० ) वि-शाख् । ( नेः ङङ्ङात्प्रत्ययौ । पा ५।५।२८ ) यद्वा विश-प्रवेशने काखन् ( तमिषिभिरिङ्गीति । ङप् १।११७ ) १ बृहत्, बड़ा । बिगताः शाखाः स्तम्भा यस्य । २ स्तम्भरहित । ३ विस्तृत, चौड़ा । ४ विख्यात, मशहूर । ५ बिस्तीर्ण, फैला हुआ । ६ जो वैकल्पमें सुन्दर और मध्य हो । ( पु० ) ७ सुशमेद् । ८ प्रसिद्ध । ९ पूर्यमेद् । १० एक पुराण-प्रसिद्ध राजा, इस्वाकुके पुत्र । इहोति ही विशाखा नगरी स्थापित की थी । ( यमजप्य )

११ पद्ममेद् । ( काल्याणश्रीतपू० २७।१।१६ ) १२ तुल्य विभक्तुका पुत्रमेद् । ( विष्णुपुराण ) विशाखदेश देवो । १३ वैदिश वा विदिशा नगरात् एक राजाका नाम । मार्कण्डेयपु० ७।१८ १४ वर्षतमेद् । ( मार्कण्डेयपु० ४४।१२ )

विशाखक ( सं० पु० ) १ कवित्व, कौशल । २ गणक । ३ यशमेद् ।

विशाखग्राम ( सं० पु० ) पुराणोक्त ग्राममेद् । ( मार्कण्डेयपु० )

विज्ञानमता ( सं० स्त्री० ) विशाख तद्वाप् । १ विस्तार । २ पुरुष, प्रकाशता । ३ पार्श्वविस्तार ।

विशाखवैद्यगर्भ ( सं० पु० ) अष्टोत्पुष्ट ।

विशाखत्वक् ( सं० पु० ) सप्तपणादृश, छतिवन ।

विशाखदा ( सं० स्त्री० ) अत्रामेद् ( Athagi Manrarum ) । विशाखदेश—विशाखराज-प्रतिष्ठित एक प्राचीन जनपद । अविष्य-ब्रह्मण्यएवम् इतका विवरण हम तख देख पड़ता है—

“गङ्गा और गण्डकी नदीक बीचक भूमि पर विशाखराजका शासनाधिकार था । इस देशके वायु कोष्पमें वेतिया ( वैदिय ), पूर्ण और मधुपुर, दक्षिणमें मागी रथी और उत्तरमें शैकम या नन्दाप्रपुर था । इस प्रदेशका सीमाविस्तार २० योजन था । विशाखदेशके अधिवासी अधिकांश ही धार्मिक थे । इस देशमें और भी तीन छोटे छोटे देश शामिल थे । उनमें एकका नाम कम्पारण, दूसरेका शाकीमय, तीसरेका दीर्घद्वार था । यह शैव्योक्त देश अयोध्याएव छाया होने पर भी विशाख-देशको समूचा घटनाये इसीक नाम पर बिभूत हैं । यहाँ एक प्रसिद्ध स्थान है, जिसका नाम कसमर है ।

दीर्घद्वारदेशका संक्षिप्त विवरण—दीर्घद्वारके सभी अधिवासी धर्मिष्ठ, परदारोसी सदा विमुक्त रहनेवासे और कृषिकाव्यमें तत्पर रहते थे । यहाँक प्रजाप शास्त्रनिष्ठ और धार्मिक होते थे । अधिवासियोंके हृदयमें धर्मकर्माका प्रबल अनुताग मया रहता था । इनमें परस्पर अगड़ा बिबाध नही होता था । यहाँक लोग काँडे और गण्डमाळा तथा बल्लणएव लोगक दोगी थे । ये गण्डकी नदीमें स्नान करते थे नहीं, फिर भी कठिक प्रभावसे इनका दोग शोक अनिर्वाय था । शस्यके मोतर यहाँ प्रचुर परिमाणसे प्राप्त पैदा होता । यहाँ तीन जातियोंका वास था—कायस्थ ब्राह्मण और कुरमो । कन्निके प्रारम्भमें दीर्घद्वारमें अजातार सार राजाओंक राजत्वकालका उल्लेख है ।

दीर्घद्वारके सर्वबोजन पर महाद्वयो अम्बिकाका अधिष्ठान था । राजा विशाख इन द्धीक प्रतिष्ठाता थे । दीर्घद्वारके अधिवासी इनका पूजामें तत्पर रहते थे ।

विशाखदेशके द्विजातीय धेनु-कन्याओंमें सगो रहते थे । ज्ञानमें उपनयन, धनमें, शोष्यमें, सगामने ये विशाल नामक योग्य थे । दीर्घद्वारके अधिवासी कन्निके प्रारम्भमें वज्रक, धनदान स्नान और माता, पिता श्रान्ति, माई और सुहृन्, सखन, भादिका धन हरण कर भारत



दोर्घाद्वार प्रदेशमें जिन बड़े बड़े ग्रामोंका उल्लेख किया गया है, वे ग्राम आज भी इस दीघवारा ग्रामके ईर्द गिर्द ही अपने प्राचीन नामसे वर्त्तमान हैं। जैसे—आमो, गङ्गाजल, परशा, हरिहरक्षेत्र, दुग्धल (दुधैला) गोविन्दचक, मकोर, कश्मर, (अथ यह कोई खास ग्राम नहीं, वरं इसी नामका यहा एक प्रगना है)। विलयहर, वसन्तपुर आदि। दोर्घाद्वार या दीघवारेमें वी० पन० डबल्यु रेलका स्टेशन भी है। इसके निकट ही कुछ मीलकी दूरी पर दक्षिण ओर रटामर स्टेशन भी मौजूद है। यहा दो स्टेशनोके रहनेसे यहाकी उत्पन्न चीजोंकी रफ्तनी तथा बाहरकी वस्तुओंकी आमदनी होती रहती है। अतः यह ग्राम आज भा व्यवसाय वाणिज्यमें बढा चढा है। इसके निकट ही और भी कई ऐतिहासिक ग्राम भी हैं। शिल्हारी, पकरो, शीतलपुर आदि। शिल्हारीके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि यहा शीलनीधि-राजा एक समय राज्य करते थे या उन्हींके द्वारा यह ग्राम बसाया हुआ था। इसीसे इन्हां शीलनीधि राजाके नाम पर इस ग्रामका नाम शिल्हारी हुआ। यहां उक्त राजा द्वारा प्रतिष्ठित एक शिवलिङ्ग आज भी मौजूद है। यहा हर शिवरात्रिको दूर दूरसे यात्री शिवजीको जल चढानेके लिये आया करते हैं। खासकर फाल्गुन और वैशाखकी शिवरात्रिको तो यहा मेला लग जाता है। गाय बैल और अन्यान्य चीजें भी विकती हैं। इसके निकट एक पकरो ग्राम है। इस पकरो ग्रामके निकट ही उक्त शीलनीधि राजाका महल था। जिसका ध्वंसावशेष आज भी मौजूद है। यह धोघेमें फैला हुआ था, किन्तु किसानोंने चारों तरफसे बांट कर खेत बना लिया है। आज भी यह एक धोघेमें फैला हुआ है। इस पर धरसातके दिनोंमें कभी कभी प्राचीन सिक्के (मुद्रा) पाये जाते हैं। पकरोके सम्बन्धमें कहा जाता है, कि पहले यहाँ कोई घर न था। एक पाकरका बहुत बडा वृक्ष था। शीलनीधि राजाका आवास होनेसे यहा भी एक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई थी। राजा स्वयं यहां उपस्थित हो कर उक्त शिवलिङ्गकी पूजा किया करते थे, किन्तु कालक्रमसे अगववारसे कुछ सरद्वान गौतीय द्विवेदी (दूधे) उपाधिधारी ब्राह्मणोंने आ कर इसे

आबाद किया। ये बड़े ही कर्मनिष्ठ और स्वधर्मान्वित हैं। निकट ही पूर्वोक्त शीतलपुर ग्राम है। यहां एक-सारमें आ कर पराशर गौतीय ब्राह्मणोंका आवास है। मटौरा नाम भी इस समय बहुत ही उन्नत ग्राम है। यहा अंग्रेजोंका एक चीनीका कारखाना है। चीनीके व्यवसायमें यह ग्राम बहुत ही उन्नति कर रहा है।

विशालनगर ( स० खो० ) विशालराजनिर्मित नगर।  
विनालदेन देवी।

विशालनेत्र ( स० त्रि० ) १ बृहत् चक्षुःविशिष्ट, बड़ी बड़ी आँखोंवाला। ( पु० ) २ बाधिसस्वमेष्ट।

विशालपत्र ( स० पु० ) विशालानि पत्राणि यस्य।  
१ शीतालपत्र। २ द्विताल। ३ मानकच्यू, मानकधू।

विशालपुरी ( स० खो० ) नगरमेष्ट।

विशालफालिका ( स० खो० ) विशाल फलं यस्याः ततः  
स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। निपाटा, धरमेमा।

विशाला ( स० खो० ) विशाल टापू। १ इन्द्रवारुणो नामक लता, इन्द्रायन। २ उज्जयनी। ( मेदिनी ) ३ ठपां-  
दको, पोइका साग। ३ महेंद्रवारुणो। ( राजनि० )  
४ तोर्धविशेष। शाखानुसार समी तोर्धामि मुण्डन और  
उपवासका विधान है, परन्तु गया, गङ्गा, विशाला और  
विरजातीर्थमें मुण्डन तथा उपवास निषिद्ध बताया गया  
है। ५ वक्षकी कन्या। ६ मुरामांसां, एकाङ्गो। ७ कलगा  
नामक घास। ८ गोरक्षकर्कटी, ग्वालककडो।

विशालाक्ष ( स० पु० ) विशाले अधिष्ठां यस्य समासे  
पञ्च। १ हर, महाक्षिब। ( भारत १२।१५।८० ) २ गरुड।  
३ गरुडवंशधर। ४ विष्णु। ५ घृतराष्ट्रके एक पुत्रका  
नाम। ( भारत १।१०।१।६ ) ( त्रि० ) ६ सुनेत्र, विशालचक्षुः,  
जिसकी आँखें बड़ी और सुन्दर हों।

विशालाक्षी ( स० खो० ) विशालाक्ष टीप्। १ उत्तमा  
नारी। ( विश्व ) २ नागदन्ती। ( राजनि० ) ३ पार्वती,  
दुर्गादेवी।

तन्त्रसारमें विशालाक्षी देवीकी पूजा तथा मन्त्रादिके  
विषयमें चेसा लिखा है—

"ॐ ह्रीं विशालाक्ष्यै नमः" यही विशालाक्षी  
देवीका अष्टाक्षर मन्त्र है। यह मन्त्र आठ तरहकी सिद्धि  
प्रदान करता है। इस मन्त्रके ऋषि सदाशिव, पंक्ति

छन्दा, देवता बिजालाही, बोज्र को शक्ति ही, यह धर्म अर्प, काम नीर मोह धारो बगके कामक क्रिये प्रयुक्त होता है।

ध्यान इस तरह है—

“आपेद्वी बिजालाहीं उतबान्दमप्रमाम् ।  
 त्रिमुत्रांशिकां बरही कङ्कयैककारिणीम् ॥  
 नन्वर्षं कसद्रुममां रकाम्बररां शुभाम् ।  
 तदा नाड्यवर्षां प्रकलास्यां शिषोचनम् ॥  
 मुपहमाशाहकोभ्यां पनीधतभ्योचराम् ।  
 शोपरि महादेसीं कथमुकुटप्रविष्टाम् ॥  
 शन्नुचनप्रां रेवीं तापशमोच्यदधिकाम् ।  
 सर्वधीमावबन्नीं महात्म्यवदां तस्मै ॥”

येमा ही देवीका ध्यान, अर्घ्यस्वाधान और पीठ देवता आदिको पूजा कर फिर ध्यानपूर्वक यथाशक्ति उपचार द्वारा पूजा करे। सामान्य पूजाप्रदधिके नियमांनुसार पूजा की जाती है। इस देवीकी मन्त्रसिद्धि करलैके क्रिये पुरश्चरण करना होता है। उक्त मन्त्रका आठ साक्ष रूप करलैसे पुरश्चरण होता है।

विशामासो तंबीका यन्त्र—पहले त्रिकोण और उसके बाहरमें अष्टद्वन्द्वपत्र, हस्त, बीकोन और चतुर्भ्रार भङ्गन कर यन्त्र निर्माण करे। इसी यन्त्रमें सर्वे श्रीमाम्यदाही विशाममुक्ती बिजालाहादेवीको यथा विधान आवाहन कर पूजा करे। त्रिकोणमें महादेवीका अर्चना कर आह्वान प्रभृति अष्टमातृकाको पूजा करनी होगी। पीछे 'ओं पह्लमत्रास्यै नमः, ओं बिदपास्यै नमः, ओं बक्रास्यै नमः, ओं सुम्बोचनायै नमः, ओं एकनत्रायै नमः, ओं द्विनेत्रायै नमः, ओं कोटटास्यै नमः, ओं त्रिलोचनायै नमः' इन सब देवताओंकी पूजा पश्चात्तमें पश्चिमादिक्षम से अष्टसिद्धिकृपिणी अष्टयोगिनीको पूजा करे। बीकोनमें इन्द्रादि शोकपालकी अर्चना कर उसके बाहर अस्त्र आदिको पूजा करनी चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति धूम मन्त्रका रूप कर विसर्जनान्तका कर्म करे।

३ चतुर्भ्रारि योगिनीके अन्तर्गत योगिनीविशेष । दुर्गापूजाके समय इनका पूजा करनी होती है।

(दुर्गात्मपदादि)

विशामिक (सं० पु०) अनुकम्पितो बिजालक्ष्मा विशाम-

वस-वृक्ष (पा १।१।८४) । बिजालक्ष्मा नामक अनुकम्पा युक्त कोई अर्थिक । इस अर्थमें विशामिय बीर बिजालिगन पर होने हैं ।

बिजाली (सं० स्त्री०) ? अन्नमोदा । (राजनि०) २ पमाहा । कला ।

बिजालीय (सं० लि०) बिजालसम्बन्धीय ।

बिशिका (सं० स्त्री०) बाह्य रैन ।

बिशिक्षु (सं० लि०) बि शिक्षु-ऋ । विशेष प्रकारके शिक्षावाता या साधनकर्ता । (शुद्ध २।१।२ तामय)

बिशिक (सं० पु०) बिसिद्धा शिक्षा यस्य । १ शरत्स्य रामसर या सत्रमुक्त नामको भास । (राजनि०) २ बाण । ३ तोमर, मानिको तट्टका एक इधियार । (मेथिनी)

४ आनुरागार वह स्थान जिसमें रोपी रखी हो । ५ बरकाका टुकड़ा । (लि०) विगता जिजा यस्य । ३ शिखारहित विच्छिन्नकण, मुद्रितकण । धर्मशास्त्रके मतसे शिखाशून्य हो कर कोई धर्मकर्म करना निषिद्ध है ।

बिशिक्युक्ता (सं० स्त्री०) लरपुङ्गा ।

बिशिका (सं० स्त्री०) १ अमिता, कला । २ रथ्या, रथीका समूह । (भाष १।१।२०) ३ नासिका । ४ अत्यल्प मार्ग । ५ कर्मांमार्ग । ६ नापितकी स्त्री नाश ।

बिशिप (सं० स्त्री०) बिजालपक्षत विज (विटपिबन बिलोसपा । उच्च १।१।५) इति कप्रत्ययैव निपातनात् साधु । मन्त्रि ।

बिशिमिय (सं० लि०) शिमयो, इन्वोर्नासिकायोर्धा कर्मा । वि शिम शिप । जिसमें हनु या नासिकाको क्रिया नहीं है, हनु या नासिकाकायन क्रियाबिहीन कर्म ।

(शुद्ध ३।१।५ महीवर)

बिशिरस् (सं० लि०) १ मस्तकहान, बिना निरका । २ शूबाविहोम, बिना बोधोका । ३ मूर्ख बिद्याभुदि शुभ्य ।

बिशिरस्क (सं० लि०) विगतं जितो यस्य समाम कप् । शिरोशोभ, बिना सिरका । (पु०) २ मेयके पास एक पत्रका नाम । (बिहयु० १६।५६)

बिशिगासिपु (सं० लि०) हननोदत, मारनेका शीघर । (देहेयव० ५।१० माप्य)

विशिष्टिम ( स० लि० ) १ विगत हनू, बिना दाढ़ीका ।

( पु० ) २ दैन्यविशेष । ( ऋक् १।४।६ सायण )

विशिष्टिन्य ( स० लि० ) जिग्नरहित, जिसके अंडकोप न हो ।

विशिष्टमिषु ( स० लि० ) १ विश्राम करनेमें इच्छुक, नाराम तलवी । ( छंदो ) २ किमी पदार्थके ऊपर विशेष लक्ष्य रखता ।

विशिष्ट ( स० लि० ) वि-शि-क्त, वा शास्-क्त । १ युक्त, मिला हुआ । २ विलक्षण, अद्भुत । ३ भिन्न । ४ विशेष पतायुक्त, जिसमें किसी प्रकारकी विशेषता हो । ५ अति-शिष्ट, जो बहुत अधिक शिष्ट हो । ६ विषयात, मगहूर । ७ यशस्वी, कीर्तिशाली । ८ सिद्ध । ( पु० ) ९ सीसा नामक धातु । १० विष्णु ।

विशिष्टचारित्र्य ( स० पु० ) बोधिसत्त्वभेद ।

विशिष्टचारो ( स० पु० ) बोधिसत्त्वभेद ।

विशिष्टता ( स० स्त्री० ) १ विशिष्टका भाव या धर्म । २ विशेषता ।

विशिष्टपत्र ( स० पु० ) प्रणियपणों, गतिचक्र ।

विशिष्टवस्त्र ( स० लि० ) पूर्णवस्त्र, भरी जवानी ।

( दिव्या २३६।४ )

विशिष्टाद्वैतवाद ( स० पु० ) विशिष्टरूप अद्वैतवाद । द्वैतवाद, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद ये तीनों ही मत देखनेमें आते हैं । प्रकृति और पुरुष भिन्न होने पर भी दोनों मिलनरूप ब्रह्मवाद हैं । "पुरुष स्तदतिरिक्ता प्रकृतिः किम्भूमयमिलितां ब्रह्मचणकद्विदल वत्, इत्थं ब्रह्मणः एकत्वं व्यवस्थितम् ।" ( माध्वमाध्य ) अर्थात् पुरुष और प्रकृति भिन्न भिन्न हैं । किंतु दोनों मिल कर ब्रह्म हैं । जिस प्रकार चनेमें दो दल अलग हैं और दोनोंके मिलनेसे चना कहलाता है उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष परस्पर भिन्न हैं, पर दोनों मिल कर ब्रह्म हैं ।

वैदान्तिक आचार्योंके साधारणतः अद्वैतवादी होने पर भी उनके मध्य प्रकारान्तरमें द्वैतवादका नितान्त असम्भाव नहीं देखा जाता । वैष्णव आचार्य प्रायः सभी विशिष्टाद्वैतवादी हैं । उनका मत यह है, कि ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तियुक्त तथा निखिल कल्याणगुणके

आश्रय हैं । सभी जीवात्मा ब्रह्मके अंश परस्पर भिन्न हैं तथा ब्रह्मके डाल हैं । जगत् ब्रह्मकी शक्तिका विकास वा परिणाम है, अतएव वह सत्य है । सगञ्जत्वादि गुणविशिष्ट ब्रह्म, सत्यत्वादि गुणविशिष्ट जगत् तथा विश्विज ह्रत्व और धर्माधर्मादिगुणविशिष्ट जीवात्मा अभिन्न हैं अर्थात् जीवात्मा और जगत् ब्रह्ममें भिन्न हो कर भी भिन्न नहीं है । जीव भी ब्रह्मकी तरह अभिन्न नहीं है, परन्तु आदित्यके प्रभावकी तरह जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, किन्तु ब्रह्म जीवसे अधिक है । जिस प्रकार प्रभासे आदित्य अधिक है, उसी प्रकार जीवमें ईश्वर अधिक है । ईश्वर सर्वशक्तिमान्, समस्त कल्याण-गुणके धारक, धर्माधर्मादिशून्य हैं ; जीव उसका विपरीत है ।

भेदाभेदवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा अनेकान्तवाद विशिष्टाद्वैतवादका नामांतर मात्र हैं । इस मतका स्थूल तात्पर्य यह कि, ब्रह्म एक भी और अनेक भी हैं । वृक्ष जिस प्रकार अनेक शाखायुक्त होता है, ब्रह्म भी उसी प्रकार अनेक शक्तिके कारण विविध कार्य सृष्टियुक्त है । अतएव ब्रह्मका एकत्व और नानात्व दोनों ही सत्य हैं । वृक्ष जिस प्रकार वृक्षरूपमें एक है, शाखारूपमें अनेक है, समुद्र जिस प्रकार समुद्ररूपमें एक और फेनतरङ्गादिरूपमें अनेक है, मिट्टी जिस प्रकार मिट्टीके रूपमें एक और घट गंगावादि रूपमें अनेक है, ब्रह्म भी उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूप एक और जगद्रूपमें अनेक है । जीवब्रह्मसे अत्यन्त भिन्न होने पर भी ब्रह्मभाव नहीं हो सकता । किन्तु उपनिषदोंमें जीवको ब्रह्मभाव कहा है । फिर जीवके भी ब्रह्मका अत्यन्त अभेद होनेसे लौकिक और शास्त्रीय सभी व्यवहार विलुप्त होते हैं । क्योंकि, सभी व्यवहार भेदसापेक्ष हैं । लौकिक प्रत्यक्षादि व्यवहार, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानसाधनसे भिन्न नहीं हो सकते । धर्मानुष्ठानरूप शास्त्रीय व्यवहार और स्वर्गादि फल, कर्म, कर्त्ता, कर्मसाधन तथा कर्ममें अर्चनीय देवता ये सब भेदको अपेक्षा करने हैं । भेद बुद्धि भिन्न ये सब व्यवहार नहीं हो सकते । फिर इन सब व्यवहारोंका अपलाप भी नहीं किया जा सकता । अतएव जीव, जगत् और ब्रह्मा न अत्यन्त

मिग्न है और न अमिग्न, कुछ मिग्न और कुछ अमिग्न है। इस कारण प्रथम एक और अनेक दोनों हैं। उनमेंसे जब एकदोशका ज्ञान होता है, तब मोक्ष काश्चर्य और जब मेद्दोशका ज्ञान होता है, तब लौकिक और वैदिक पात्रधार सिद्ध होता है।

शैवाचार्यों तथा अद्वैतवादिपों का कहना है, कि विशिष्टाद्वैतमत को कदा गया यह नितांत असम्भूत है। क्योंकि, दो वस्तु एक हो समय परस्पर मिग्न और अमिग्न नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह है, कि मेद् और अमेद् परस्पर विरोधी हैं। अमेद् मेद्का अभाव है। मेद् और अमेद्के अभावका एक समय एक वस्तुमें रहना असम्भव है। फिर कार्य कारण यदि अमिग्न हो, तो जगत् प्रथम अमिग्न ही सकता है। किंतु कार्य और कारणक अमिग्नमे द्विम प्रकार मूलिकाकारमें घट शरा बादिका तथा सुवर्णकारमें कुण्डल मुकुटादिका एकत्र कहा जाता है इनमें प्रकार घट शरावादि और कुण्डल मुकुटादिकारमें तो एकत्र बने नही कहा जाता। अर्थात् घट शराबादि और कुण्डल मुकुटादिके अमिग्न होनेसे मूलिका सुवर्णादिका घर्म परत घट शराबादि और कुण्डल मुकुटादिमें तथा घटशरावादि और कुण्डल मुकुटादिका घर्म नागारव मृत्सुवर्णादिमें अक्षय है, इसे अभावकार नहीं कर सकते। क्योंकि कार्य और कारण अब एक है, तब एकत्र और नागारवघर्म में अक्षय कार्य और कारणगत होगा। इस स्वतासिद्ध विषयमें और अधिक कहना अनावश्यक है।

किन्तो किन्तो आचार्यने इस दोषको दूरानेके लिये अन्य प्रकारका सिद्धांत किया है। उनका कहना है, कि मेद् और अमेद् अवस्थाभेदमें अक्षयण हैं। अर्थात् अवस्थाभेदमें एकत्र और नागारव दोनों ही सत्य हैं। स मारावस्थायमें नागारव तथा मोक्षावस्थायमें एकत्र ही। अर्थात् स मारावस्थायमें जीव और ब्रह्म मिग्न है तथा लौकिक और गायत्र्य व्यवहार सत्य है। मोक्षावस्थायमें ज्ञाव और ब्रह्म अमिग्न है तथा इस समय लौकिक और

शास्त्रीय सभी व्यवहार निवृत्त होते हैं। उन लोगोंका यह सिद्धांत भी सम्भूत नहीं है, क्योंकि ब्रह्मात्मभाव बोधक भूतिमें अवस्थाविरोधका उल्लेख नहीं है। ज्ञावका अस सारि प्रथमेश सनातन है अर्थात् सर्वदा विद्यमान है, यद्यो भूतिसे मातृम होता है। भूतिमें यह सिद्धकी तरह निर्दिष्ट हुआ है। भूतिबाधक अवस्था विरोध अमिभावका कल्पना करना निषेधयोग्य है। 'तत्र मसि' इस भूतिबोधित बोधका ब्रह्मभाव कितनी प्रकार प्रत्यक्ष या वेष्टासाध्यकार्यमें निर्दिष्ट नहीं होगा। 'मसि' इस पद द्वारा केवल स्वतासिद्ध अर्थात्का प्रजापन किया गया है।

अतएव जो कहते हैं, कि जीवका ब्रह्मभाव ज्ञान कर्मसमुच्चयसाध्य है उनका सिद्धांत भी सम्भूत नहीं। क्योंकि, उन्मोच्य उपनिषद्में मिला है, कि कोई भावमो अब वेदक सन्नेह पर राजपुत्र्य द्वारा पकड़ा जाता है और अब वह वेदोक्तो दैव लोकार नहीं करता, तब शास्त्रानुसार तप्त परशु द्वारा उसके परोक्ष की जाती है। यथायं वेद होन पर हमका शरीर हमने मगत है और राजपुत्र्य इसे पकड़ लेता है। क्योंकि हमने असत्य कहा है। चारों करके जो हमने कहा है, कि मैं बोर नहीं। यह अनुमानित स्व हो उसके कथनका हेतु है।

फिर चोरी नहीं करनेसे तप्त परशु द्वारा वह नहीं उठना और राजपुत्र्य इसे छोड़ देता है। क्योंकि वह सत्यानिष्ठ है अर्थात् उसने सत्य कथन कहा है। सत्यामिसिद्धि ही उसकी मुक्तिका कारण है। उसी प्रकार नागारवमृत्ता अनुभूमिमग्य ज्ञानके कारण बध तथा एकत्रवर्गी सत्यामिमग्य होनेके कारण मुक्त होता है। इससे स्पष्ट मातृम होता है, कि एकत्र्य सत्य ही नागारव मिथ्या है। क्योंकि एकत्र्य तथा नागारव यदि होता हा सत्य हों, तो नागारवर्जों अनुभूमिमग्य नहीं हो सकता।

फिर एकत्र्य और नागारव दोनोंक सत्य होने पर एकत्र्य ज्ञान द्वारा नागारव निवर्तित नहीं हो सकता। क्योंकि यथायं ज्ञान अथवायं ज्ञानका तथा इस कार्यका निवर्तक हो सकता है, यथायं वा सत्य परशुका

निवर्त्तक नहीं हो सकता। रज्जु ज्ञान परिकल्पित सर्पका निवर्त्तक होता है, सुवर्णज्ञान कुण्डलादिका निवर्त्तक नहीं होता। एतद्वत् ज्ञान द्वारा नानात्व निवर्त्तित नहीं होनेसे मोक्षवस्थामें भी वन्धनावस्थाकी तरह नानात्व रहेगा। अतएव मुक्ति भी नहीं हो सकती।

वैष्णवाचार्यागण जिम प्रकार विशिष्टाद्वैतवादी है उसी प्रकार शैवाचार्यागण विशिष्ट शिवाद्वैतवादी हैं। उनका मन यह है, कि चित् और अचित् अर्थात् जीव और जडरूप प्रपञ्चविशिष्ट आत्मा शिव अर्द्धि ताव है। वे ही कारण हैं और फिर वही कार्य हैं, इसीका नाम विशिष्टशिवाद्वैत है। चिद्चिद् सभी प्रपञ्च जिवनामक ब्रह्माका शरीर है। वे जीवकी तरह शरीर होते हुए भी जीवकी तरह दुःखमोक्षा नहीं है। अनिष्ट-भागके प्रति शरीरसम्बन्ध कारण नहीं है। अर्थात् शरीरी हानेसे ही जो अनिष्ट भोग करता होगा, इसका कोई कारण नहीं है। परार्थीनता अनिष्टभोगका कारण है। राजपुरुष राजपराधीन है। वे राजाकी आज्ञाका पालन नहीं करनेसे अनिष्ट भोग करते हैं। राजा परार्थीन नहीं है, स्वाधीन है। वे शरीर होते हुए अपनी अपनी अज्ञ क वचुघर्त्तानके लिये अनिष्ट भोग नहीं करते। जीव ईश्वरपरवश है। ईश्वरकी आज्ञाका पालन नहीं करनेसे उन्हें अनिष्ट भोगना पड़ता है। ईश्वर स्वाधीन है, इस कारण उनका अनिष्ट भोग नहीं है। शरीर और शरीरकी तरह गुण और गुणकी तरह विशिष्टाद्वैतवाद शैवाचार्योंका अनुमत है।

मृत्तिका और घटकी तरह, कार्यकारणरूपमें तथा गुण और गुणकी तरह विशेषण विशेष्यरूपमें विनाभावराहित्य ही प्रपञ्च और ब्रह्मका अनन्तत्व है। जिस प्रकार उपादान कारणके विना कार्यका भाव अर्थात् सत्ता नहीं रहती, मृत्तिकाके विना घट नहीं रहता, सुवर्णके विना कुण्डल नहीं रहता, गुणोंके विना गुण नहीं रहता, उसी प्रकार ब्रह्मके विना प्रपञ्च शक्ति नहीं रहती। उष्णताके विना जिस प्रकार वहि जाननेका कोई उपाय नहीं उसी प्रकार शक्तिके विना ब्रह्मको जानना असम्भव है। जिसके विना जो नहीं जाया जाता वह तद्विशिष्ट है। गुणके विना गुणी नहीं जाना जाता इसलिये गुणी गुणविशिष्ट है।

प्रपञ्चशक्तिके विना ब्रह्मको नहीं जाना जा सकता। इस कारण ब्रह्म प्रपञ्चशक्तिविशिष्ट है। यह उनका स्वभाव है। प्रपञ्च और ब्रह्मका भेद स्वाभाविक है। देवता तथा योगिगण जिस प्रकार कारणान्तरनिरपेक्ष हो कर भी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे अनेक प्रकारकी सृष्टि कर सकते हैं। ब्रह्म भी उसी प्रकार अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे नाना रूपोंमें परिणत हो सकते हैं। नाना रूपोंमें परिणत होने पर भी उनका एकत्व विलुप्त वा विकारित्व नहीं होता। अचिन्त्य अनन्त विचित्र शक्ति ब्रह्मने अवस्थित है। सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके लिये कुछ भा असंख्य और असंभव नहीं। अतएव यह सम्भव है और यह असंभव, ऐसा बिचार परमेश्वरके विषयमें हो नहीं सकता। लौकिक प्रमाण द्वारा जो सब वस्तु जानी जाती हैं, परमेश्वर उन सब वस्तुओंसे विजातीय हैं। वे केवलमात्र शास्त्रगम्य हैं। शास्त्रमें वे जिस प्रकार उपदिष्ट हुए हैं, वे उसी प्रकार हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। लौकिक दृष्टान्तानुसार उस विषयमें विरोधशुद्धा करना कर्त्तव्य नहीं। क्योंकि, वे लोकातीत वा अलौकिक हैं।

अलौकिक परमेश्वरके विषयमें लौकिक दृष्टान्त कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। यह सहजमें जाना जाता है। परमेश्वरकी मायाशक्ति अचिन्त्य अनन्त विचित्रशक्तियुक्त है। उस प्रकारके शक्तियुक्त मायाशक्ति-विशिष्ट परमेश्वर अपनी शक्तिके अंश द्वारा प्रपञ्चाकारमें परिणत तथा स्वतः वा स्वयं प्रपञ्चातीत हैं।

ब्रह्म प्रपञ्चाकारमें परिणत होते हैं, इस विषयमें प्रश्न हो सकता है, कि कृत्स्न अर्थात् समस्त ब्रह्म प्रपञ्चाकारमें परिणत होते हैं या ब्रह्मका एकदेश वा एकांश? इसके उत्तरमें यदि कहा जाये, कि कृत्स्न ब्रह्म जगदाकारमें अर्थात् कार्याकारमें परिणत होते हैं, तो मूलोच्छेद ही जाता है तथा ब्रह्मका द्रष्टव्यत्व उपदेश और उसके उपायरूपमें श्रवणमननादि तथा शमदमादिका उपदेश अनर्थक होता है। क्योंकि, कृत्स्न परिणामके पक्षमें कार्यातिरिक्त ब्रह्म नहीं है। कार्य अयत्नद्रष्ट है, उनके दर्शनका उपदेश अनावश्यक है। इस कारण श्रवणमननादि वा शमदमादि भी अनावश्यक है। वरन् समस्त कार्य देखनेके लिये पदार्थतत्त्वकी आलोचना

तथा वेदान्तमन्त्रादि कर्तव्य हो सकता है। इन्द्रि साधन सम्पत्ति इसकी बित्तोत्पत्ति होती है। ब्रह्म यदि मूर्धादि की तरह सावयव होते, तो इनका एकदेश कार्याकारमें और एकदेश यथावयवस्थित होता, येसो कल्पना की जा सकती थी। येसा होनेसे द्रव्यमन्त्रादिका उपदेश नार्थक होता। क्योंकि कार्याकारमें परिणत ब्रह्मदेशके अयत्नमूढ होने पर भी अपरिणत ब्रह्मांश अयत्नमूढ नहीं। किन्तु ब्रह्मका अवयव स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि ब्रह्म निरवयव है, यह श्रुतिसिद्ध है। ब्रह्मका अवयव स्वीकार करनेसे वस भ्रुतिक विरोध उपस्थित होता है।

इसके उत्तरमें शैवाचार्योंमें कहा है कि ब्रह्म आत्मीक समाधिगम्य है, प्रमाणात्तरगम्य नहीं। शास्त्रमें कहा है, कि ब्रह्मका कार्याकारमें परिणाम और निरवयवत्व है तथा बिना कार्यके ब्रह्मका अक्षरूपान है, अतएव उक्त व्यापत्ति हो ही नहीं सकती।

पह विशिष्टाद्वैतवाद्दिको का मत सक्षेपमें कहा गया किन्तु भगवान् शङ्कराचार्य इस विशिष्टाद्वैतवादको स्वीकार नहीं करते। वे निरिच्छिपाद्वैतवादी हैं। उन्होने कई तरहसे भाषा प्रकारको भ्रुति भादि "मात्रो द्वारा इस मतका अपह्नन कर अपना मत स कथापन किया है।

बहुन सक्षेपमें इनका मत नीचे लिखा जाता है। वे कहते हैं, कि परिणामवाद् किसी भी मतसे सङ्गत नहीं हो सकता। क्योंकि, कार्याकारमें परिणाम तथा अपरिणत ब्रह्मका अक्षरूपान वे दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। एक समय एक वस्तुका परिणाम और अपरिणाम हो नहीं सकता। इसी प्रकार सावयवत्व और निरवयवत्व परस्पर विरुद्ध है। एक पक्ष एक समय सावयव और निरवयव होगा यह विरुद्ध अस्मभव है। अत एव और विरुद्धका अर्थ अति भी प्रतिपादन न कर सक हैं। योग्यता-अभ्युद्योको अभ्युद्योत कारण है। अतएव अर्थ अयोग्य अर्थ प्रतिपादन करनेमें अक्षम है। 'मावाजा प्लवकते अक्षयतया सन्नमासत' परएव असमें तीरता है, इसीमें व्यक्त किया या इत्यादि असम्भावित अर्थके बोधक अर्थवाद् वाक्यका जिस प्रकार बयाछत अर्थसे तात्पर्य नहीं है, दूसरे अर्थसे है, - इसी

प्रकार परिणामबोधक वाक्यका भी अर्थविशेषमें तात्पर्य कहना होगा।

ब्रह्म एक अ शून्यं परिणत तथा दूसरे अ शून्यं परिणत है, यह कल्पना भी असोधीन नहीं है। असो प्रश्न हो सकता है, कि कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मसे मिलन है वा अमिन्न ? यदि मिन्न है, तो ब्रह्मको कार्याकारमें परिणत नहीं हुए। क्योंकि, कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश ब्रह्म नहीं, ब्रह्मसे मिन्न है। दूसरेके परिणाममें दूसरे का परिणाम नहीं कहा जा सकता। श्रुतिको परिणाममें सुवर्णका परिणाम नहीं होता। फिर कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश यदि ब्रह्मप मिन्न न हो अर्थात् अमिन्न हो तो मूकाच्छेदकी व्यापत्ति उपस्थित होती है। परिणत अश ब्रह्मसे अमिन्न होने पर परिणत अश तथा ब्रह्म एक वस्तु होता है। अतएव सम्पूर्ण ब्रह्मका परिणाम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि कहा जाय कि परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मसे मिन्नामिन्न है अर्थात् ब्रह्मसे मिन्न भी है और अमिन्न भी। परिणत ब्रह्मांश कारणरूपमें ब्रह्मसे अमिन्न है तथा कार्यरूपमें ब्रह्मसे मिन्न है। दूसरे दुहास्तमें कहा जा सकता है, कि कटकमुकुटादि सुवर्णरूपमें अमिन्न और कटकमुकुटादिरूपमें मिन्न है। इस सम्बन्धमें भी पहले ही ठिका जा चुका है।

भेद और अमेद परस्पर विरुद्ध पदार्थ है। वह एक समय एक वस्तुपै नहीं रह सकता। कार्याकारमें परिणत अश होता है, ब्रह्मसे मिन्न होगा या नहीं तो अमिन्न होगा। मिन्न भी होगा और अमिन्न भी होगा, येसा हो नहीं सकता। फिर यह भी विचारनेकी बात है, कि ब्रह्म स्वभावतः अमून है, कि परिणामरूपसे मरुप्यता को प्राप्त होगी, यह हो नहीं सकता। फिर मरुप्यतीव अमून ब्रह्म होगा, यह भी नहीं हो सकता। अमून मरुप्य नहा होता औरतन मरुप्य ही अमून होता है। किसी भी वस्तुसे लभावको अम्यथा नहीं हो सकता। जो कहने हैं, कि शास्त्रानुसार कर्म और ज्ञान इन दोनोंके अनुष्ठान द्वारा मरुप्यतीवका अमूनत्व होगा, इनका भी मत असङ्गत है। क्योंकि, लभावतः अमून ब्रह्मको भी यदि मरुप्यता हो तो मरुप्यतीवका कर्मज्ञान अनुष्ठानसाध्य अमूनमात्र होगा

अर्थात् मोक्षवस्था स्थायी होगी, यह दुराशामात्र है।

भगवान् शङ्कराचार्यने इत्यादिकारणसे द्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद आदिको निराकरण करके ब्रह्मविशेषवाद स्थापन किया है। उनके मतसे ब्रह्म शुद्ध या निर्विशेष है, प्रपञ्च सत्य नहीं है, रज्जुमर्षादिको तरह मिथ्या है। अतएव ब्रह्मने कोई विशेष वा धर्म नहीं है। निर्विशेष ब्रह्म अद्वितीय है। प्रपञ्च जब मिथ्या ब्रह्मको अतिरिक्त वस्तु है, इसाश्रिये सत्य नहीं है, तब ब्रह्म अद्वितीय है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। जीव ब्रह्म-भिन्न नहीं है। कहा गया है कि—

"श्लोकाद्धनं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मन्यकोटिभिः।

ब्रह्मस्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम् ॥"

कौण्टिन्यमें जो लिखा है, कि मैं श्लोकाद्ध द्वारा उसे कहूंगा। वह इस प्रकार है,—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है। यह शुद्धाद्वैतवाद या निर्विशेषाद्वैतवाद भगवान् शङ्कराचार्यका अभिमत है।

श्रुतमें लिखा है, कि "सदैव सौम्येदमप्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" (भृति) यह जगत् सृष्टिके पहले सन्मात्र था, नाम रूप कुछ भी न था, समस्त एकमात्र तथा अद्वितीय था। एक, एव, अद्वितीय इन तीन पदों द्वारा सद्बस्तुमें तीनों भेद निवारित हुए हैं। अनात्मा वा जगत् में तान प्रकारक भेद देखनेमें आते हैं, स्वगतभेद, सजातीयभेद और विजातीयभेद। अवयवके साथ अवयवको भेद स्वगतभेद है, पत्र, पुष्प और फलादिके साथ वृक्षका जो भेद है उसे भी स्वगतभेद कहते हैं। यहा यह माना गया, कि पुष्प और फलादि भी वृक्षका अवयवविशेष हैं। एक वृक्षका दूसरे वृक्षसे भेद अवश्य है। इस भेदका नाम है सजातीयभेद। क्योंकि, उस भेदके प्रतियोगी और अनुयोगी दोनों ही वृक्ष जातिके हैं। शिलादिसे वृक्षका भेद विजातीयभेद है।

अनात्म वस्तुकी तरह आत्मवस्तुमें भी इन तीनों भेदोंकी आशङ्का हो सकती है। इस आशङ्काको दूर करनेके लिये 'एकमेवाद्वितीयं' कहा गया है। 'एक' इस पद द्वारा स्वगतभेद, 'एव' पद द्वारा सजातीयभेद तथा 'अद्वितीयं' इस पद द्वारा विजातीयभेद निराकृत हुआ है।

जो एक है अर्थात् निरंतर या निरवयव है, उसका स्वगत

भेद नहीं हो सकता। क्योंकि, अंश वा अवयव द्वारा ही स्वगतभेद हुआ करता है। सद्बस्तुके अवयव नहीं है, क्योंकि जो सावयव है, उसकी उत्पत्ति अवश्य होगी। सभी अवयवोंके परस्पर संयोग वा मन्निवेशके पहले सावयव वस्तुकी उत्पत्ति होती है, यह कहना पड़ेगा। अतएव सावयव वस्तुकी उत्पत्ति है। जिसकी उत्पत्ति है वह जगत्का आदिकारण नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी उत्पत्ति कारणान्तरसापेक्ष है। अब यह सिद्ध हुआ कि आदिकारण वा सद्बस्तुके अवयव नहीं है। जिसके अवयव नहीं, उसका स्वगतभेद असम्भव है।

नाम और रूप भी सद्बस्तुके अवयवरूपमें कल्पित नहीं हो सकता। नाम या घटशरावादि सद्भा, रूप या घटशरावादिका आकर, नाम और रूपके उद्भवका नाम सृष्टि है। सृष्टिके पहले नाम और रूपका उद्भव नहीं होता। अतएव नाम और रूपकी अंशरूपमें कल्पना करके उससे सद्बस्तुका स्वगतभेद समर्थन नहीं किया जा सकता।

सद्बस्तुका सजातीयभेद भी असम्भव है। क्योंकि सद्बस्तुकी सजातीय वस्तु सत्स्वरूप होगी। सत्पदार्थ एकमात्र है, कारण सत्, सत्, इस प्रकार एक आकारमें प्रतीयमान वस्तु एक ही होगी, नाना नहीं हो सकती। दो सत्पदार्थ माननेसे उनका परस्पर वैलक्षण्य मानना होता है। सत्पदार्थके स्वाभाविक वैलक्षण्य नहीं है। अतएव अन्य सत्पदार्थकी कल्पनाका कोई प्रमाण नहीं है। सत्पदार्थके एकमात्र होनेसे, अतएव दूसरे सत्पदार्थके नहीं रहनेसे सत्पदार्थका सजातीयभेद रहना त्रिकुल असम्भव है।

स्वगतभेद तथा सजातीयभेदकी तरह सत्पदार्थका विजातीयभेद भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो सत् का विजातीय है, वह सत् नहीं असत् है, जो असत् है, उसका अस्तित्व नहीं है, वह भेदका प्रतियोगी नहीं हो सकता। जो विद्यमान है, वह दूसरी वस्तुसे भिन्न है तथा दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं हो सकती। जिसका अस्तित्व है, वह कुछ भी नहीं है। उस भेदका प्रतियोगी वा अनुयोगी कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव सत्पदार्थका विजातीयभेद अज्ञात पुत्रके नामकरणकी तरह अलीक है।

कमल। सृष्टिक पूर्वाका अद्वैतपर बोध भी सम्बोधित नहीं कर सकता। जो वस्तुगतपर अद्वैत है, वह किसी भी काळमें द्वैत नहीं हो सकता। वस्तुतः अल्पया मात्र असम्भव है। आलोचक अभी अल्पकार नहीं होता, अल्पकार कभी आलोचक नहीं होता। वास्तविकभेद और अभेद दोनों परस्पर विरोधी होनेसे ये सत्य नहीं हो सकते। इसका एक सत्य और एक मिथ्या कल्पित होगा। सूरमङ्गलमें विचार करने पर मालूम होगा, कि अभेद सत्य, भेद मिथ्या अभेद या एकत्व और भेद नाभास्व है। पञ्चांगिक वस्तु छे कर मानाएकता व्यवहार होता है। उनमेंसे प्रत्येक वस्तु एक है, अतएव एकत्व व्यवहार अल्प निरपेक्ष और मानास्व व्यवहार एकत्व सापेक्ष है। भेद अभेदसे दुर्बल है। अतएव अभेद सत्य, भेद मिथ्या आदि अनेक प्रकारकी युक्तियों द्वारा द्वैत और त्रिशिष्टाष्टैतवादि मिताङ्गन हुआ है। (ब्रह्मसूत्र०) वेदान्त सभमें विशेष विवरण देखो।

त्रिशिष्टाष्टैतवादिम् (सं० लि०) विच्छिन्न युक्त मिमित्त अद्वैत बर्तमानि वदं पिति। ओ त्रिशिष्टाष्टैतवादि अकार करत ह्ये। रामानुज भादि त्रिशिष्टाष्टैतवादि।

विमिष्टो (सं० स्त्री०) शङ्कराचार्यकी माता।  
विमोर्षा (सं० लि०) वि-उट ल। १ शुष्क, सूया। २ कृया, पुत्रका-पतन। ३ बहुत पुण्यतन, आर्षो। ४ विशिष्ट, विघटित, पतित।

विमोर्षावर्ण (सं० पु०) विमोर्षावि वर्णानि यस्य। निम्बरुद्र, भोमका पैड़।

विमोर्षद् (सं० लि०) मस्तकविद्यान, बिना सिरका।  
(उत्पत्तिका० भा१।१।१५)

विमोक्ष (सं० लि०) १ मुक्ति, जिसका शोक या चारत भ्रष्टा नहीं। २ शुद्ध, पाओ।

विमुक्त (सं० पु०) इवेताक, सफेद भ्रष्टवन।

विमुक्ति (सं० पु०) कल्पयक एक पुत्रका नाम।

विमुक्त (सं० लि०) विशेषण मुक्त, वि शुष्क-ल। १ शुक्ति पवित्र निर्मल, निर्दोष, जिसमें किसी प्रकारकी मिथ्या बह न हो। पर्याय—उत्पन्न, विमल विशुद्ध, धीय, अशुद्ध, अनाधिक, शुक्ति। (राम) २ निमृत्। ३ सत्य सत्ता। (अथर्वण) (पु०) ४ तन्मके अनुसार शरीर

के अन्दरके छः चक्षुमेंसे पाँचवा चक्षु। यह गलेमें भव स्थित है। यह अकारादि पाँचश अक्षयुक्त और धूलवर्ण का होता है। इसमें सातह पक्ष्मल दात हैं। इन १६ चक्षुमें अकारादि १६ स्वरवर्ण हैं। इस चक्षुमें शिव तथा आकाश निवास करते हैं। (कन्दर्प)

विशुद्धगणित—(Pure Mathematics) यह गणित जिससे पदार्थक साध को सम्बन्ध न रख कर अपस राशिका निरूपण किया जाता है।

विशुद्धचारित। (सं० पु०) १ बोधिसत्त्वभेद। (लि०) २ जिसका चरित बहुत शुद्ध हो।

विशुद्धाचारिन् (सं० लि०) विशुद्ध चरति चर पिति। विशुद्ध भावमें विचरत्यकारो शुद्धाचारो, जिसका चरित बहुत शुद्ध हो

विशुद्धता (सं० स्त्री०) विशुद्धत्व भावा तस्म्यै ताप्। विशुद्ध होनेका भाव या धर्म, पवित्रता, शुचिता, उच्चता, चिष्टता, विशुद्धि।

विशुद्धत्व (सं० लि०) विशुद्धता देखो।

विशुद्धासंह—बौद्धमद्।

विशुद्धि (सं० स्त्री०) वि शुष्क-क्तिम्। पवित्रता, शोचन। मनु भादि शास्त्रोंमें इसका पूरा विवरण है, कि कार पदार्थ किसी तरह अपवित्र हो जाने पर उसको शुद्ध किस तरह होगा। यहाँ इसकी सक्षिप्त आलोचना की जाती है।

मानसिक वस्तुओंकी शोध्यवण्यात्री—बाँदी सोना आदि धातु द्रव्य, मरुतत आदि मनिमय पदार्थ और समा पाषाणक पदार्थ मरुत और जल अर्थात् मिट्टी या जल द्वारा शुद्ध होते हैं। मनु मुक्ता आदि पदार्थ उत्पन्न, पाषाणमय पत्त और तीक्ष्णपत्त पदार्थ रेखापुष्क न हैं तो जल द्वारा जो देनेमें शुद्ध हो जाते हैं। जल और अम्लिक से वागस सोना चाँदीको उत्पन्न हुई है। इसी कारणसे सोना और चाँदी अमल उत्पन्नपाषाण जलसे शुद्ध हो जाते हैं।

ताँबा लौहा काँसा पीतल, रौंया और सीसाके पत्त मरुत, जहाँ और जलसे शुद्ध होते रहते हैं। अर्थात् छोटा जल द्वारा, काँसा अमल द्वारा, ताँबा और पीतल जलसे शुद्ध होता है। धूल वीर द्रव्य पदार्थ यदि काँ



कीट आदि द्वारा अशुद्ध हो गये हो, तो प्रादेशप्रमाण कुशापत्त द्वारा ढिला देने पर विशुद्ध हो जाते हैं। शष्पादि की तरह सूत संयुक्त मांसद्रव्य जलके छोटिसे और काष्ठ-मय द्रव्य अत्यन्त उपहत हो जाने पर ऊपरसे उसको तरास देनेसे शुद्ध हो जाते हैं। गणीय चमस अर्थात् जलपात्रग्रह ( सोमलताका पात्र ) और अन्यान्य पात्रों को पहले हाथसे माज कर पोछे घेा देने पर विशुद्ध हो जाते हैं। चरुस्थाली, स्रुफ, स्रुव, स्पय, ( राड्गाकार काष्ठ ) शूर्प, शकट, मृगल, ओम्बल आदि यणीय द्रव्य घृततैल आदिसे रनेहाक कर गर्म जलमें घेा डालने पर शुद्ध हो जाते हैं।

धान्य भाण्डार या वस्त्र-भाण्डार हिमो तरह अशुद्ध हो जाने पर जलका छोटा मात्रामें उनको शुद्ध हो जाती है। किन्तु यदि वे बला मात्रामें हो, तो उनको जलसे घेा देनेसे ही शुद्ध होगा। पाटु ना ( जूते ) आदि स्पृश्य पशुचर्म और येत वांसके बने आसन आदिकी शुद्धि वस्त्रको तरह ही होगी। फिर शाक मूल और फल ये धान्यकी तरह शुद्ध करने हेतु। कौपेय अर्थात् रेशमी कपडे, आर्विक अर्थात् पशुजामनिर्मित कम्बल आदि क्षार और मिट्टी द्वारा शुद्ध हेतु हैं। कुनप अर्थात् नेपाल देशका कम्बल आदि नीमफलके चूर्णसे, अंगुपट्ट ( वल्कलविशेष हा वस्त्र घेाके गूरेसे और क्षोम अर्थात् अतसो ( नीमो )-के पीधेके छिलकेसे बने वस्त्र सफेद सरसोंके चूर्णसे विशुद्ध होना है। तृण, रंधनकी लकड़ी, पलाल ये सब जलसे छोटा मात्रनेसे साफ और विशुद्ध हो जाते हैं। मार्जन और गोमयादि लेपन द्वारा गृहशुद्धि और मृण्मयपात्र पुनर्धार पाक द्वारा विशुद्ध होते हैं। सन्मार्जन, गोमय आदि द्वारा विलेपन, गोमूलादि सिञ्चन, उल्लेखन ( छिछोर कर फेंकना ) और एक दिन रात गाभीरवास इन पांच प्रकारसे भूमिकी शुद्धि होती है।

पक्षी द्वारा उच्छिष्ट, गो द्वारा आघ्रात, वस्त्राञ्जल या पैर द्वारा स्पृष्ट, अवक्षुत अर्थात् जिसके ऊपर थूक आदि पडा हो और जो बाल कीडे जू आदि द्वारा दूषित हुआ हो, ऐसा खाद्य द्रव्य मिट्टीके प्रक्षेपसे शुद्ध हो जाता है।

विष्टा और मूत्र द्वारा लिप्त द्रव्यमें मिट्टीसे अच्छी

तरह माज लेनेसे शुद्ध हो जाता है। पटले तो अदृष्ट अर्थात् जिस द्रव्यका उपघ्रात या संस्पर्श दोष मालूम नहीं होता, दूसरे जो जल द्वारा प्रक्षालित हुआ है और तीसरा जिष्ट व्यक्ति जिसे पवित्र कहते हैं, वह विशुद्ध जानना होगा।

ज्ञान, तपस्या, आन, आहार, मिट्टी, मल, जल, उपा-जन अर्थात् गोमय आदि अनुलेपन, वायु, कर्म, सूर्य और काल ये ही सब वैश्वानरियोंकी विशुद्धिके कारण हैं। वैश्वानर आदि शुद्धिकर समुदाय पशुओंके मानव अर्थशुद्धि अर्थात् अर्थात्जन विषयमें अन्याय या स्वधर्म पारट्याग न करनेको प्राप्तकारोंने परम विशुद्धि कह कर निर्देश किया है। जो अर्थात्जन विषयमें विशुद्ध हैं, वे ही यथार्थमें विशुद्ध नामसे अभिहित होने योग्य हैं। मिट्टा या जल द्वारा वैश्वानर शुद्ध करनेको यथार्थ शुद्धि नहीं कहा जाता।

विद्वान् व्यक्ति क्षमा द्वारा, अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्न पापी उप द्वारा और वैश्वानर ब्राह्मणगण तपस्या द्वारा विशुद्धि लाभ करते हैं। शोचनाय याग द्रव्य अर्थात् यह वैश्वानर और जल आदि द्वारा शुद्ध होता है। मल-घटा नदी स्नातयेगसे शुद्ध होती है। मनोदुष्टा अर्थात् परपुरुषमें मैथुनसङ्कचके दोषमें दूषितमना रमणी रजसला होने पर शुद्ध होती है और त्याग द्वारा या प्रयज्या द्वारा द्विजोत्तम विशुद्ध होते हैं। जलके द्वारा वैश्वानर शुद्धि, सत्यसे मनको पृद्धि, विद्या और तपस्याके बलसे जीवात्मा शुद्ध होती है तथा ज्ञान द्वारा बुद्धिकी पृद्धि होती है।

जातिका या गैर जातिके किसी भी रघोके साथ श्मशानमें जाने पर वस्त्र समेत स्नान करने तथा अग्नि स्पर्श कर घृत भोजन करनेसे शुद्ध होता है। जो चीज बाजारमें बेचनेके लिये फैलाई गई है, वह तरह-तरहके आदमियोंके दू जाने पर भी विशुद्ध है। मल्लचारी जो भिक्षा लाभ करते हैं, वह परम पवित्र हैं। ( मनु ५ अ० )

विष्णुसंहितामें द्रव्यादिकी शुद्धिका इस तरह विधान है—

अत्यन्तोपहत सब धातुमात ही अग्निमें प्रक्षिप्त होने पर विशुद्ध होता है। मणिमय, प्रस्तरमय और शङ्ख मय पात्र ३ दिन भूमिमें निष्कात होनेसे विशुद्ध होता

है। शुकुमय बन्धनमय और बन्धिमय पात्र तक्षण द्वारा शुद्ध होता है और वाक्मय तथा मृगमय पात्र परित्यज्य है अर्थात् इनको विशुद्ध नहीं होता। किसी तरहसे कृपित होनेसे पात्र के क देने चाहिये। सुवर्णमय रजतमय, अङ्गुमय, मण्यमय और प्रस्तरमय पात्र तथा कमस इन सब पानीमें निर्देव होने पर अर्थात् इनमें मल न होने रहने पर जब द्वारा शुद्ध होते हैं। श्याम्य, चर्म रस्मी, तम्बुनिर्मित बरत व्यञ्जनादि वैश्य सूत्र, कृगाम और बरत—ये सब ब्रह्म अधिक होनेसे प्रोक्षण द्वारा शुद्ध होते हैं। शाक, मूत्र, फल और पुण्य लुण और काष्ठ प्रयुक्त भी इसी नियमसे विशुद्ध होते हैं। ये श्रेय यदि कम हों, तो इनको थोड़ा करनेसे यह शुद्ध हो जाते हैं। काष्ठ निर्मित पात्र तक्षण द्वारा, पीतम्, तबि, रत्नी सीमेक पात्र बर्तार द्वारा साफ होते हैं। काले और छाहरेक पात्र मरुत द्वारा साफ होते हैं। श्वप्रतिमा किमी कारणवश यदि कृपित हो, तो जिन चीजके द्वारा यह निर्मित हुई हो उस श्रेय ही शुद्धिके नियमके अनुसार उसी विशुद्धि कर पुनः प्रतिष्ठा करनेसे उसको शुद्ध होती है।

कीयेव वरत, कम्बल या पत्रामिने कपडू राज सिद्धिके संयोगसे पहारो ५ करैक लेप से बने कम्बल भरिए द्वारा, बरधमनगु निर्मित अ शुभट्ट बिन्दनकय द्वारा, सीमधन गीरमपर ( मफेद सरमा ) द्वारा, मृगलोमजान राहु-कादि बरत पद्यवीर्य द्वारा विशुद्ध होते हैं।

शुद्धि माहके वायव्योके साथ मिस कर मधु पातघारी बालि स्नान करनेसे विशुद्ध होते हैं। इहुी पकड़ करनेसे पहले जो बरत पहन कर इहुी पकड़ की जाय, उस बरतके साथ स्नान करनेसे यह व्यक्ति विशुद्ध होता है। द्विज शूद्रजपके साथ अनुगमन करने पर नक्षत्रों जा कर गोला सगा कर तीन बार अथमर्षण रूप करनेके बाद ऊपर उठ कर अष्टोत्तर सहस्र गायत्री जप करनेसे और द्विजक शयक साथ अनुगमन करने पर स्नान कर अष्टोत्तर शत गायत्री जप करनेसे विशुद्ध होते हैं। इन्द्र शयानुगमन करे, तो केवल स्नानसे विशुद्ध हो सकता है। बितापूय सेवन करनेसे सब वर्णोंको स्नान करना चाहिये, सभी वे विशुद्ध होगे। मैपुन

करने, दुःखलक्ष देखने, कण्ठसे एक निःस्रमे, बामन, रेवम हजामत ( क्षौरकम ) बनाने, शकस्पर्श, रजस्वलास्पर्श, ऋण्डालस्पर्श, सुपोरसर्गोव मूरस्पर्श महारुग्निम पञ्चनक्षक शयस्पर्श, वसा और मेघारिपुक्त अग्निधस्पर्श करनेके बाद स्नान करनेसे विशुद्धि प्राप्त होती है। पहले हुए बरतके साथ स्नान करन पर विशुद्धि होती है। बरत त्याग कर स्नान करनेसे विशुद्धि नहीं होती। रजःशुका नाशो भीये दिन स्नान करनेसे विशुद्ध होती है।

श्वथ (छोक), निद्रा, बरतपनारम्भ, मोक्षनारम्भ पात्र स्नान, निद्रोत्थन, बरतपरिधान अरुबसस्त्रय, मूलप्राय, पञ्चनक्षक अस्त्रैह अस्त्रिस्पर्श, ऋण्डाल वा मुच्छीक साथ सम्भाषण इन सब कामोंक करनेक बाद भाषामन करना चाहिये। इससे दो ढींग विशुद्ध होती हैं।

(निष्प ७० १२ ५०) शीघ्र चरत देखो।

- विशुद्धिचक्र ( स० इ० ) धारणीमेद ।
- विशुद्धेम्बर ( स० इ० ) तन्त्रमेद ।
- विशुद्ध ( स० सि० ) बिरविज शुभकः । १ विशेषरूपसे शुद्ध बहुत सूखा । २ नीरस । ३ स्नान ।
- विशुद्धिका ( स० लो० ) शिविका टोग । विरुद्धिका देखा ।
- विशुद्ध ( स० सि० ) विशेषरुग्नि शुभ ।
- विशुद्ध ( स० सि० ) १ शुभनाशक । २ अन्नविबर्जित ।
- शिशुद्ध ( स० सि० ) बिगता शुकुना पम्प । १ शुकुना रहित जिससे शुकुना न हो या न रह गइ हो । २ अबाधय जो किसी प्रगट दबाया या राका न जा सके । ३ सुर्गल । ४ अबाध, शुकुमृगुग्ण ।
- विशुद्धना ( स० लो० ) शिविक देखा ।
- विशुद्ध ( स० सि० ) जिसे शुकु न हो, शुकुरहित ।
- विशय ( स० पु० ) बि शिप धम् । १ प्रमेद, वैमस्तण्य । २ प्रकार, किम्भ । (अथाप) ३ नियम कायदा । ४ वैशिक । ५ व्यक्तिक । ६ सार । ७ प्रकार । ८ तागत्य म्युनाधिकय । ९ भाषिकय । १० अबाधय । ११ प्रथमशुभ्य । १२ तिम्भ । ( इव ) १३ कर्णाशोक मम पदार्थोंक अन्तर्गत पदार्थ विशेष ।

श्रेय, शुभ काम, सामान्य, विशेष समभाव और अबाधय यही मात पदार्थ हैं। बिशय पदार्थोंको सामोचना रहनेसे ही अबाधय दर्शनाका नाम वैशेषिक है।

गुण कर्मभिन्न एकमात्र समवेत पदार्थका नाम विशेष है। जल्रीय परमाणुके रूप आदि गुण और कर्म एकमात्र समवेत होने पर भी गुण कर्मभिन्न नहीं, सामान्य पदार्थ गुणकर्मभिन्न है, अथवा समवेत होने पर भी एकमात्र समवेत नहीं। कोई अभाव, गुणकर्म भिन्न और एकमात्र वृत्ति होने पर भी समवेत नहीं। इसीलिये इनको विशेष पदार्थ कहा नहीं जाता। विशेष पदार्थ स्वीकार करनेका युक्ति यह है, कि द्रव्यकुलसे आरम्भ करके अन्त्य अवयवी अर्थान् घटादि तक, समस्त सावयव द्रव्यके तत्तन् परमाणुद्रव्यके परस्पर भेद भी अवश्य ही किसी धर्म द्वारा सम्पन्न होगा। मूंग और उड़द यथाक्रम आरम्भक मूंगके परमाणु और उड़दके परमाणु अवश्य ही भिन्न भिन्न हैं। यहां परस्परभेदका प्रसं क्या है? इस प्रश्नके उत्तरमें कहना पडता है, कि मूंगका आरम्भक परमाणु और उड़दका आरम्भक परमाणु समानरूपके होने पर भी दोनों परमाणुओंमें भिन्न भिन्न अमाधारण धर्म हैं। इसके द्वारा दोनों परमाणु परस्पर भिन्न होते हैं। ये भिन्न भिन्न अमाधारण धर्म ही विशेष पदार्थ कहे गये हैं। विशेष पदार्थ सावयव द्रव्यवृत्त नहीं है, निरवयव द्रव्यमात्र वृत्ति है। कई परमाणु मूंग मात्रके आरम्भक होनेसे उड़दमें नहीं रहते। कई परमाणु उड़द मात्रके आरम्भक होनेसे मूंगमें नहीं रहते और कई परमाणु मूंग और उड़द दोनोंमें ही रहते हैं। इसीलिये मूंग और उड़द परस्पर भिन्न होने पर भी अधिकतर सामान्य आकारके हैं।

१४ अर्थालंकारविशेष ।

यदि आधेय आधारभूत हो या एक वस्तु अनेक आधेयोंका दिवाह दे, अथवा समर्थ हो किसी एक काम करनेमें देवान् यदि उसका वह काम हो जाये, तभी विशेष अलंकार होता है। तीन कारणोंसे विशेष अलंकार भी तीन तरहके हैं। (साहित्यद० १०।३२३)

१५ पृथवा । (मागवत २।१२६) (त्रि०) १६ अति-  
प्रय, बहुत ।

विशेषक (स० पु० क्लो०) विशेष एव स्वार्थे कन् । १  
कन् तिलक, माथे पर लगाया जानेवाला तिलक, टोका ।

(माघ ३।३) (पु०) २ तिलकगृध्र, तिलपुंगी । ३  
चित्रक । ४ तमालपत्र । (क्लो०) ५, पथविशेष । जहां  
नील श्लोकांका एकत्र अन्य होता है वहा उसे विशेषक  
कहते हैं। नील श्लोकांके मध्य एक क्रिया रहेगा, उसी  
क्रिया द्वारा श्लोकाका अन्वर होगा। (त्रि०) ६ विशेष-  
यिना, विशेषरूप देनेवाला ।

विशेषज्ञ (स० त्रि०) विशेष जानाति ज-क् । जिसे  
किसी विषयका विशेष ज्ञान हो, किसी विषयका  
पारदर्शी ।

विशेषकृष्टेय (स० क्लो०) विशेषकैः कृष्टेयं । चींमट  
कलाओंमेंसे छोटी कला ।

विशेषगुण (सं० पु०) विशेषो गुणः । बुद्धि आदि छः  
विशेष गुण । वैशेषिक दर्शनके मतमें गुण २४ प्रकार-  
का है। जैसे,—रस, रस, गंध, स्पर्श, म्लया, परिमाण,  
गृह्यत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख,  
दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुह्यत्व, द्रव्यत्व, स्नेह, संस्कार,  
धर्म, अधर्म और शब्द। इनके मध्य बुद्धिसे छः  
अर्थान् बुद्धि, सुख, दुःख, एतत् द्वेष और यत्न विशेष  
गुण कहलाने हैं। (भाषा, ०)

विशेषण (सं० क्लो०) विशिष्यतेऽनेमिति विशिष्य ल्युट् ।

१ विशेषधर्म, प्रमेदकारक गुरा, वह जो किसी प्रकारकी  
विशेषता उत्पन्न करता या वञ्चता हो। २ व्याकरण-  
में वह विकारा शब्द जिसमें किसी म जाकी कोई विशेष-  
पता सूचित होता है अथवा उसको ध्यान मर्थादिन होती  
है अर्थात् जिसके विशेषका गुण वा धर्म प्रकट हो, उसे  
विशेषण कहते हैं। यह विशेषण तीन प्रकारका है,—  
विशेषका विशेषण, विशेषणका विशेषण और क्रिया-  
विशेषण। जहा विशेषका गुण वा धर्म प्रकट हो, वहां  
विशेष्य विशेषण और जहा विशेषणका गुण वा धर्म प्रकट  
हो वहां विशेषणका विशेषण और जहा क्रियाका गुण वा  
धर्म प्रकट हो, वहां क्रियाविशेषण होता है।

इस विशेषणके भी फिर तीन भेद हैं,—व्यावर्त्तक,  
विधेय और हेतुगर्भ। यथा—नील शब्द, यहां पर घट  
नीला है, यह व्यावर्त्तक विशेषण हुआ। बर्द्धमान्  
पर्वत, यहां बर्द्धमान् यह विधेयका विशेषण है। सुरा-  
पायी पतित होता है, यहां सुरापायी हेतुगर्भ विशेषण है

३ चिह्न । ४ अतिशय कारण ।

विशेषता ( स० खी० ) विशेषस्य भावः लघु-टाप् । विशेष का भाव या धर्म, आसपन ।

विशेषत्व ( स० झी० ) विशेषता रेणो ।

विशेषमति ( स० पु० ) बोधिसत्त्वमेव ।

विशेषमित्र ( स० पु० ) बोध यतिमेव ।

विशेषवत् ( स० लि० ) विशेष अस्त्वर्थे मनुष्य मय्य व ।

१ विशेषयुक्त, विशेषविशिष्ट । २ विशेषकी तरह ।

विशेषविधि ( स० पु० ) विशेषोविधि । अन्वयविषयकविधि

जिसके विषय अनेक हैं, उसका नाम सामान्यविधि और जिसके विषय कम हैं उसका नाम विशेषविधि है ।

सामान्यविधिसे विशेषविधि ब्रह्मत्वान् ।

विशेषव्यति ( स० खी० ) विशेषो असाधारण्य व्यति ।

व्यतिमेव । ( चिन्तामण्ये ) व्यति शब्द रेणो ।

विशेषाधिगम ( स० पु० ) विशिष्ट ज्ञान ।

विशेषित ( स० लि० ) विशि-णित्-क । १ मित्र,

प्यबच्छिन्न, जो आस वीर पर अलग किया गया हो ।

२ विशेषण द्वारा निर्णीत । ३ जिसमें विशेषण लगा हो ।

विशेषित ( स० लि० ) विशेष अस्त्वर्थे इति । १ विशेषता

युक्त, जिसमें कोई विशेष बात हो । २ अन्वयविषय

परिभाषादि अनेक मेवयुक्त ।

विशेषी ( स० लि० ) विशेषिन् रेणो ।

विशेषोक्ति ( स० खी० ) विशेषोक्ति । १ कार्यका अर्था

लङ्कारमेव । जिसमें पूर्ण कारणके रहते हुए भी कार्यक

न होनेका वर्णन रहता है । ( लघु-टाप् १०१० )

जो धर्मो हो कर भी निरुत्पाद अर्थान् महद्वाच्यम्

है, जो पुत्रा हो कर भी अनलस है, प्रभु हो कर भी

विभूतकारी है, वे ही महामहिमशासो हैं । यहाँ

कारण है, पर कार्यका अभाव है । क्योंकि धन रहनेसे

ही भोग प्राया अहङ्कारो होते हैं, यहाँ अहङ्कारका कारण

धन रहने हुए भी कार्य जो अहङ्कार है सो नहीं, अतएव

यहाँ कारणक रहने हुए भी कार्यका अभाव हुआ है, इस

कारण विशेषोक्ति हुई ।

२ विशेषकरत कथन, असाधारण्य अथवादिबर्णन ।

विशेष्य ( स० लि० ) विशिष्ये गुणादिभिरिति-वि

शिष्य पठन् । १ गुणादि द्वारा भेद्य, व्यवच्छेद्य । २ प्रधान

भेद्य । ३ भाविय, भाविकारण । ( पु० ) ४ यथाकरणे

यह संबन्ध जिसके सोच कई विशयण लगा होता है ।

जैसे—मोटा भावना या कामका कुत्तामें 'भावना' और

'कुत्ता' विशयण हैं ।

विशेष्यासिद्ध ( पु० ) विशेष्येण अतिशय । यह देवनाभास

जिसके द्वारा स्वरूपकी अतिशय हो । देवनाभस रेणो ।

विशोक ( स० पु० ) विगतः शोको यस्मात् । १ अशोक

पक्ष । २ शोकाभाय, शोकका अभाव । ( भागवत १।१०।१० )

३ मुषिष्ठिका मनुचरविशेष । ( भागवत १।११।१० ) ४ ब्रह्मा

का मानसपुत्रमेव ( चिह्नपु० १२ म० ) ( लि० ) ५ शोक

रहित, मित्र शोक न हो ।

विशोकता ( स० खी० ) विशोकस्य भावः लघु-टाप् ।

विशोकका भाव या धर्म ।

विशोकदेश ( स० पु० ) राजमेव ।

विशोकब्राह्मणो ( स० खी० ) विशोका ब्राह्मणो । ब्राह्मण

तिथिमेव, शोकरहिता ब्राह्मणी ।

विशोकवर्षन ( स० खी० ) महाभारतके अनुशासन पर्वके

अन्तर्गत पर्वविशेष ।

विशोकपद्म ( स० खी० ) विशोका पद्मो । पद्मोतिथि

मेव, अशोकपद्मो । वैश्वामासकी शुद्धापद्मोका नाम

अशोकपद्म है । इस तिथिमें पद्मोत्त करना होता है ।

इस व्रतके प्रभावसे शोक नहीं होता, इस कारण तिथि

का नाम अशोकपद्म पड़ा है । इस तिथिमें अशोक

पुष्पकलिका पान करनेका व्यवहार है । यह व्रत स्त्रियां

हो किया करती हैं ।

विशोकमसमी ( स० खी० ) विशोका सप्तमी । सप्तमी

तिथिमत् ।

विशोका ( सं० खी० ) पातङ्गवद्वीनके अनुसार बहूचित

पृथि जो स प्रकृत समाधिसे पहले होता है । इस ज्योति

धर्मो मो कहते हैं । ( पातङ्गवद० १।१६ )

विशोच ( स० लि० ) विशुद्ध करने योग्य, साफ करने

छायक ।

विशोचन ( स० खी० ) विशुद्ध-कृत । १ संशोधन,

अच्छी तरह साफ करना । २ पवित्रकरण पवित्र करना ।

( पु० ) ३ विशुद्ध । ( भागवत १।११।५६ ८१ )

विशोचनः ( स० खी० ) विशुद्धयनेऽनपदि विशुद्ध कृत

डीप् । १ नागदन्ती, ह्यथीसूट । २ ब्रह्मापुरीका नाम । ३ नाली नामक पौधा । ४ ताम्बूल, पान ।  
विशोधिन ( सं० त्रि० ) वि शुभ णच्-णनि । शोधन कारक, विष्कूल शुद्ध करनेवाला ।

विशोधना ( सं० स्त्री० ) १ नागदन्ती लता । २ नाली वृक्ष । ( वैद्यकनि० ) ३ दन्ती वृक्ष ।

विशोधनावोज ( सं० क्ली० ) जयपाल, जमालगोटा ।

विशोधय ( सं० त्रि० ) वि शुभ-यत् । विशोधनीय, शोधन करने लायक ।

विशोधयय ( सं० क्ली० ) सामभेद ।

विशोष ( सं० पु० ) वि-शुष घञ् । शुष्कता, नीरसता, रूखापन ।

विशोषण ( सं० त्रि० ) वि-शुष च्युट् । १ विशेषरूपसे शोषणकारक, अच्छे तरह सोखनेवाला । ( क्ली० ) २ शुष्क भाव, नीरसता, रूखापन ।

विशोषिण ( सं० त्रि० ) वि शुष णिनि । विशोषणकारक, सोखनेवाला । ( रघुवंश १।६२ )

विशोजस ( सं० त्रि० ) प्रजाके ऊपर शासन फैलानेवाला ।  
( शुक्लयजुः १०।२८ महीषर )

विश्वक्रद्राकर्ण ( सं० पु० ) कुषकुरशास्ता, वह जो कुत्ते-को शिक्षा देता और उसको रक्षा करता है ।

विश्ल ( सं० पु० ) विश्ल-दीप्ती ( यजयाचयतविच्छेति । पा ३।३।६० ) इति नङ् । १ दीप्ति । २ गति ।

विश्वपति ( सं० पु० ) विश्वां पतिः । १ प्रजापालक, पृथिवीपति । ( ऋक् १।३७।८ ) २ वैश्वोका पति, वैश्व-जातिका अधिपति, मुखिया या पञ्च ।

( भागवत १०।२०।२४ )

विश्वपत्नी ( सं० स्त्री० ) घणिकोंका पालन करनेवाली ।  
( ऋक् २।३२।७ )

विश्वपला ( सं० स्त्री० ) अगस्त्यपुरोहित खेल राजाकी स्त्री । ( ऋक् १।१६।१५ )

विश्वपलाघस्तु ( सं० त्रि० ) प्रजाओंके पालयिता तथा धन । ( ऋक् १।१८।२१ )

विश्वय ( सं० त्रि० ) प्रजाभव, जो प्रजासे हो ।

( ऋक् १।१२।६५ )

विश्वयापर्ण ( सं० पु० ) विश्वस्तर नामक किसी एक राजासे

अनुष्ठित यज्ञविशेष । श्वयापर्ण नामक ब्राह्मणोंको आर्त्विज कर्ममें मनो न करके अर्थात् उम्हे निराकरण पूर्वाक इस यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है, इस कारण इसका नाम विश्वयापर्ण ( श्वयापर्ण विरहित ) यज्ञ पड़ा है ।

विश्रानन ( सं० क्ली० ) दान, वितरण ।

विश्रब्ध ( सं० त्रि० ) विश्रब्ध क । १ अनुदुःख, गाम्भ ।

२ विश्रवस्त, जिसका विश्रवाम किया जाये । ३ आसन्न ।

( हेम ) ४ गाढा, घना । ( मेदिनी ) ५ निर्वाग्बद्ध, निःशङ्क,

निर्मय, निष्पर ।

विश्रब्धनघोटा ( सं० स्त्री० ) साहित्यमें नवोद्गा नायिका-

का एक भेद, वह नवोद्गा नायिका जिसका अपने पति पर

कुछ कुछ अनुराग और कुछ कुछ विश्रवास होने लगा

हो । मुग्धा नायिकाको रति लज्जा और भय पराधीन

है, किन्तु पीछे यह मुग्धा प्रथम वा कर विश्रब्धनघोटा

होती है । इसको चेष्टा और क्रिया मनोहारिणी है ।

इसका कोप मृदु है तथा इसको तवभूषण पर प्रबल

इच्छा रहती है ।

विश्रम ( सं० पु० ) विश्रम घञ् । वृद्धभाव, विश्राम ।

( काव्य कल्प ३१ )

विश्रम्भ ( सं० पु० ) विश्रम्भ, शम्भ । १ विश्र्वास, पत

शर । ( अमर ) २ केवल लक्ष्म, प्रेमी और प्रेमिकामे

रतिके समय होनेवाला ऋणात् ३ प्रेम, मुग्धत्व ।

४ हत्या, मार डालना । ५ लच्छन्विहार, स्वच्छन्दता-

पूर्वाक घूमना फिरना ।

विश्रम्भण ( सं० क्ली० ) विश्र्वासजनक, पतवार करने

लायक ।

विश्रम्भणाय ( सं० त्रि० ) विश्र्वासनीय, पतवार करने

लायक ।

विश्रम्भता ( सं० स्त्री० ) विश्र्वासत्व, प्रणयत्वादि ।

विश्रम्भिन ( सं० त्रि० ) विश्र्वासशील ।

विश्रयिन् ( सं० त्रि० ) विश्रयितुं शीलं यस्य विश्रयि-इनि

( पा ३।२।१५७ ) १ सेवाशील, विशेष प्रकारसे सेवा-

परायण । २ आश्रयकान् ।

विश्रयण ( सं० पु० ) ऋषिभेद ।

विश्रवा ( सं० पु० ) पुलस्त्यमुनिका पुत्र, दूसरे जन्ममें

जाह्नवनिर्वापे प्रसिद्ध भगवत्य । ये पुत्रस्त्य-वन्नी  
इविभ्रुके गर्भमे उत्पन्न इव ये ।

भरद्वाजको कन्या इहविष्वाके गर्भे और विधवाके  
भीरुसे जनपति कुशेरका वध हुमा था । महाभारतमें  
लिखा है, कि विधवा प्रजापति पुत्रस्त्यके साक्षात् भर्ता  
स्वरूप है । कुशेरके प्रति प्रजाकी काटु उक्ति पर क्रुद्ध हो  
पुत्रस्त्यने अपने भर्तासे विधवाको चुड़ि को । कुशेरने  
उन्में प्रसन्न करनेके लिये तीन रातको दामी प्रदान की  
यीं । इन तीनोंमें पुष्योत्कटाके गर्भसे रावण और  
कुम्भकर्ण, मालिनिके गर्भसे बिभीषण तथा राकाके गर्भसे  
बर भीम सूर्यनबाकी उत्पत्ति हुई । क्रिष्ण रामायणके  
महसे विधवाके भीरुस और सुमासिकन्या निरुपा वा  
केकेलीक गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण, बिभीषण और  
सूर्यनबाकी उत्पत्ति हुई । विष्णुपुराणके महसे रावणकी  
माताका नाम केमिनो था ।

विधायन ( स० ह्रा० ) वि-अन जिच् इणुट् । दान,  
वितरण ।

विभाषित ( स० जि० ) इत्, वितरण किया हुआ ।

विभाषित ( स० जि० ) इत्, जो दान किया हुआ हो ।

विधायन ( स० जि० ) १ धाम्निपुत्र, यकामादि । २ विगत  
धन, जो यकावट अतार चुका हो । ३ अनियत ।  
४ वित्त, क्षात्र ।

विधाम्नि ( स० खी० ) १ विधाम, आराम । २ भ्रमप  
नवन आराम करना । २ तीर्थापदीय । यहाँ निःशुद्ध  
अगत्यात स्वयं वासुदेव वा कर विधाम करते हैं, उस  
कारण यह तीर्थ विभंति नामसे प्रामय्य है ।

विधाम्नि बर्भद—एक प्राचान कवि ।

विधाम ( स० पु० ) वि धम-धाम् । १ अचिक समय  
तक कोई काम या पारधम करनेके कारण थक जाने पर  
रहना या ठहरना यकावट नूर करना । गुण्य—परिभ्रमक  
वाद् विधाम करनेसे यकावट नूर होगी और पसाना  
जाहा रहना है । निपमित परिभ्रमके वाद् यथासमय  
जो विधाम किया जाता है, वह सभी लोगोंके लिये बल  
शुद्धिपर स्वास्थ्यप्रद और शुभजनक है । ( रामस्वधम )  
२ ठहरनेका स्थान । ३ आराम वैन सुख ।

विधामगद्—शक्तिवत्यके अद् म्बुवगर द्विद्वान्त्पत्त एक

बड़ा ग्राम । यह पहले पट्टन नामसे परिचित था । ११७६  
ई०में मुगलसेनासे जड़े जा कर शियाजीने यहाँ  
निरापवसे विधाम किया था, इसी कारण उन्होंने इस  
स्थानका नाम विधामगद् रखा ।

विधामत्र—अनुपानमद्धो नामक वैद्यकग्रन्थक रचयिता ।  
विधामशुद्ध—अनियतिरूपके प्रमेता । इनके पिता  
शिवरामने इत्यविस्तामवि नामक एक स्मृतिग्रन्थकी  
रचना की थी ।

विधामात्मज—प्रह्लविनोद् नामक ज्योतिषग्रन्थक रच  
यिता ।

विधाम्योतोपनिषद्—उपनिषद्ग्रन्थके प्रमेता । यह वैशाखसार विभा  
मोपनिषद् नामसे भी परिचित है ।

विधाय ( स० पु० ) वि ध्नु धम् ( या ३।१।२५ ) १ अति  
प्रसिद्धि, शोहरत । २ धननि । ३ इत्यर्थ, बढ़ना या  
रखना । ४ ज्योत, भरना ।

विभि ( स० खी० ) धृत्यु, मौत । ( तंफित्तार उष्वा )

विभी ( स० जि० ) विगता धीर्यस्य । १ शोहीन, शोमा  
हीन । २ क्रूरित्त, महा ।

विधृत ( स० जि० ) वि ध्नु-क्त । १ विष्पात, मरहूर ।  
( अमर ) २ हात, जो खाना या सुना हुआ हो । ३ सङ्घ,  
जो अति प्रसन्न हुआ हो । ४ धनित, शय्य किया  
हुमा ।

विधृतश्च ( स० पु० ) राजगुमेद् । ( तात्पत्र )

विधृतवत् ( स० ख० ) वि ध्नु-क्तवत् । १ विधृत  
कान्तवत् । ( अथ० ) विधृत इव विधृत वत् इति ।  
२ विधृतकी तरह, प्रसन्नकी भाँति । ( पु० ) ३ राजगुण  
मव पृथक्कका भाँति । ( हरिवर )

विधृतारमा ( स० पु० ) विष्णु । ( महाभारत ३।१८३।३५ )

विधृति ( स० खी० ) वि ध्नु-क्तन् । १ विष्पात,  
शोहरत । २ इत्यर्थ बढ़ना या रखना । ३ ज्योत भरना ।  
४ नामा यकावटका स्वरुप ।

विधृत्त ( स० जि० ) शिवाय, यका हुआ ।

( यदु रा ३ प३ )

विश्विष्ट ( लं० जि० ) वि-विश्व ल । १ विष्णुम्, जो अरुण  
हो गया हो । २ विशाल, बिना हुआ । ३ प्रकाशित,

जो प्रकट है। ४ जिथिल, थका हुआ। ५ विमुक्त, जो खुला हुआ है।

विश्लिष्टसन्धि ( सं० खी० ) १ अन्धिमङ्गविशेष, शरीर-के अङ्गोंकी किसी संघिका चोट आदिके कारण टूटना। २ सन्धिमुक्त भग्नरोगविशेष। लक्षण- चोट आदिके कारण किसी सन्धिके टूटनेसे यदि वहा सूजन पड जाय, हमेशा दर्द होता है तथा सन्धिको क्रिया विकृति हो जाये, तो उसे विश्लिष्टसन्धि कहते हैं। इसकी चिकित्सा आदिका विषय भग्न शब्दमें लिखा जा चुका है। भग्न वेदां।

विश्लेष ( सं० पु० ) विश्लेष-घञ् । १ विधुर, अलग होना। २ अयोग। ३ वियोग, विच्छेद। ४ शैथिल्य, थकावट। ५ विराग, किसीके ओरसे मन हट जाना। ६ विकाराश, प्रकाश।

विश्लेषण ( सं० क्ली० ) १ वायु जन्य व्रणवेदनाविशेष, वायुके प्रकोपसे फोड़े या घावमें होनेवाली एक प्रकारकी वेदना। २ पृथक्करण, किसी पदार्थके संयोजक द्रव्योंका अलग अलग करना।

विश्लेषिन् ( सं० त्रि० ) विश्लेषोऽस्यास्तीति विश्लेष-इनि। विच्छेदवान्, विधेःगी।

विश्लोक ( सं० त्रि० ) १ स्तुतिके योग्य, स्तवनीय। ( पु० ) २ छन्दोमेद।

विश्व ( सं० क्ली० ) विगति स्वकारणं इति विग प्रवेगने विग क्वन् ( अश्रुमुपित्तिक्वोति क्वन्। उण् १।१५१ ) १ जगत्, संसार, चराचर। ( मेदिनी )

आद्यन्तशून्य स्ततःप्रवृत्त कालने जगत्के उपादान ( निमित्त ) विश्वरूपी आत्माकी सृष्टि की। अर्थात् कालके साथ साथ आत्माका प्रादुर्भाव होता है, क्योंकि आत्माके सिवा सृष्टि असम्भव है। इसके उपरान्त अथकमूर्त्ति ईश्वरने विष्णुमायापरिच्छन्न ब्रह्मनन्मात्रा-विशिष्ट विश्वको ( इस विश्वरूपी आत्माको ) कालमें स्थूलरूप और पृथग्भावसे प्रकाशित किया। प्रकृत और वैकृतभावसे साधारणतः विश्व नौ तरहसे सृष्ट है। उनमें प्राकृत छः प्रकार और वैकृत तीन प्रकार हैं। प्राकृत छः प्रकार यह हैं—

(१) महत् ( महत्तर ) ; यह आत्माके गुणसे वैषम्य-मात्र है।

(२) अहम् ( अहङ्कार ) ; इससे द्रव्य, ज्ञान और क्रियाकी उत्पत्ति होता है।

(३) तन्मात्र ( पञ्चतन्मात्र ) ; ये सूक्ष्म पञ्चभूत हैं, इससे ही फिर स्थूलपञ्चभूतोंकी ( ध्रुति, जल, तेजः, वायु और आकाशकी ) सृष्टि होता है।

(४) इन्द्रिय ; यह ज्ञान और कर्मभेदसे दो प्रकारका है। उनमें नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये कई ज्ञानेन्द्रिय हैं और मुख, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ ये कर्मेन्द्रिय हैं। ये इन्द्रियां ही जीवके जीवनोपाय और गति-मुक्ति हैं ; क्योंकि इनके परिचालन द्वारा विश्व संसारमें जीवका धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, सुख, दुःख, वन्द्य, मुक्ति प्रभृतिका प्रवर्तन होता है। अर्थात् ज्ञानोदित स्वप्र-क्रियाने इन्द्रिय परिचालन, धर्म, पुण्य, सुख, मुक्ति आदिके और शास्त्रविगर्हित कार्योंमें इन्द्रियपरिचालन अधर्म, पाप, दुःख और वन्द्य प्रभृतिके कारण हैं।

(५) वैकारिक ( इन्द्रियाधिष्ठाता देवगण और मन आदि ) पदार्थकी दृष्टि है।

(६) तमोगुण ( पञ्चपर्वा अधिष्ठा ) ; यह बुद्धिके आवरण ( प्रतिभानिर्वर्तक ) और विज्ञेयजनक ( व्याकुलताकारक ) हैं।

तीन तरहके पैकृत ये हैं, यथा—

(१) वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ये छः प्रकारके स्थावर हैं। इनमें जो पुष्पके दिना फल लगता है, वे वनस्पति; फल पकने पर जो मर जाते हैं, वह ओषधि, जो मज्जाविहीन हैं अर्थात् जिसके त्वक्में ही सारजन्मता है ( जैसे बाँस आदि ) वे त्वक्सार हैं। वीरुध प्रायः लताकी तरह ही है, किन्तु लताकी अपेक्षा इसमें कठिन्य है। जिसके पुष्पसे फल उत्पन्न होता है, उसका नाम द्रुम है। ये सब स्थावर तमःप्राय ( अथक चैतन्य ) हैं अर्थात् ये चैतन्य रह कर भी अथक हैं और ये अन्तःस्पर्शी ( अन्तरमें इनको स्पर्शका ज्ञान है ; किन्तु बाहर नहीं ) हैं। अपने आहार-द्रव्यको ( रस ) मूलसे ऊर्ध्वदेशमें आकर्षित करनेकी इनमें शक्ति है। इससे ये ऊर्ध्वस्रोताः कहलाते हैं।

(२) तिर्यक्प्राणी ( पशु, पक्षी, व्यालादि ) हैं। ये अविद ( स्मृतिहीन अतीत घटनादि ) विषयोंमें ज्ञानशून्य )

हैं मूर्तिमा। (देवल माहापात्रिमें निद्रावात्) है, प्राणक ( ग घ प्रहणके ही प्रयोजनीय विषयोंमें ज्ञानशास्त्री ) हैं और अघेहो ( मनोभाव ज्ञापन करनेमें असमर्थ या शोर्माजुसम्पन्नानुत्पन्न ) है । इसके सम्बन्धमें श्रुतिमें भी उल्लेख हैं ; यथा—“अघेतरेयो पशूनामशानापिपासे यवामिहान न विद्यात वदन्ति न विद्यात पश्यन्ति न विद्युः श्वस्तन न ओकासोकाविति ।”

उक्त तिर्यक् भाति एकधाक ( मोड़ा घुर ) विशोष वर्धन शब्द, अश्वतर (शुद्धाश्व) ये तीन तथा गौर शरभ और भ्रमरी ( मृग जातीय ) ये तीन कुल छः सरहकी गो बहरी, मैस, गुरक गवय (भोमगाय या धन्यगाय) हन्य, कद (ये दो मृगजातीय), मैङ्गे और कूट, ये विशाक ( विक्रिद्वत घुर )-विशिष्ट भी प्रकार और कुले, स्वार, हुंकार, ब्याम, बिलो, बाराशे, शब्दाद, सि ह, वानर इस्ती कूर्म और गोघा—ये द्वादश प्रकार पञ्चनकी ( पञ्च नकाविशिष्ट ) शत्रु और मकर कुम्भीर आदि अकञ्जतु तथा कङ्क युग्मादि सेवह—ये दोनों तरहक शत्रुको मान लैनेसे सब २८ प्रकारक शत्रु निश्चिंष्ट हुए हैं ।

(३) नरवैह रजोगुणाधिक्य है, कर्मात्पर नुक में सो सुजासिमात्रो और सर्वाकशोता; अर्थात् इनक माहाप्य द्रव्य (अन्नादि) ऊर्ध्व्य (मुक्त) से अघा (निम्न कोष्ठादिमें) सञ्चारणपूर्वक शरीर पोषण करते हैं ।

सिखा इनक देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, रक्षः, भूत प्रेत, पिशाच सिद्ध, विद्यापर, किन्नर आदि नैषधीनिप्रात और सनतकुम्भारादि उभयात्मक ( देवत्व और मनुष्यत्व अर्थात् उभय लोकार्गत ) कितने ही मोह मो इस विश्वप्रसारमें खूबमान हैं । संक्षेपता इनकी भी सृष्टिका क्रम नीचे दिया जाता है ।

प्रज्ञापति प्रज्ञाने सहस्रार्णवृत्ति, प्रज्ञाएवमाएडोदर नारायणके नामिकममसे मनुभूत हो कर उर्दोंके आदेश से अपनी प्रमाप्रतिपोगिनी छाया द्वारा तामिक, भग्य तामिक, तमः मोह और महातमः ये पञ्चवर्णकी अविद्या की सृष्टि की । इस प्रज्ञापूर्वकी सृष्टि होमेसे अणु निबिड अणुकारणय अस्तव्या समुत्पादन र विक्रयमें परिवत हुआ और ये ( प्रज्ञा ) भी उर्दके माघ विक्रये अर्थात्

‘मादस्य तनुपसीत् तानुपाहरत् सा तमिप्रामवत्’ (भृति), इनका शरीर भी घोर तमसे आच्छन्न हुआ । इसके बाद उमेसे उत्पन्न यक्ष, यक्षा आदि इत्त सृष्टव्या समुत्पादक राजिको प्राप्त होमेसे ये अति शुधात्प्लासे काठर हुए और अन्य कोर आहाप्यं द्रव्य न पा कर किकर्षाभ्यविमुदाहरणमें आहारान्येययमें प्रज्ञाको पा कर इनको मक्षण करनेके मानससे इनके प्रति दीङ्गे और कहने लगे, कि “मा रस्तैर्न असृष्य” तुम लोग इसको छोड़ना नहीं जा श्या । प्रज्ञापति स्वयं यह बात सुन कर विछामे लगे, कि “मा मा असृत रक्षत अहो मे यक्ष रक्षसि । प्रज्ञा यूप वसूषिष” हे पक्षरक्षण । तुम लोग मेरे सम्मान हो, मुझसे ही उत्पन्न हुए हो, अतएव मुझ को मक्षण मत करो, यक्षा करो । इस समयसे जिन्होंने “मा रक्षत” छोड़ना नहीं, यह बात कही थी, वे उलस और जिन्होंने “वसूष्य” या डाको कदा था, वे पक्ष कद सामे लगे । ये वैभवोनि प्राप्त होने पर भी तमोबहुधाकरणमे उत्पन्न होमेसे तिर्यगादि तामस सृष्टिके अस्तमूत माने जाते हैं ।

इसके बाद सत्यगुणबहुधाकरणमे चोतमान (मारियक भावायण) हो जो उत्पन्न हुए, इन्होंने अपनी भयाने प्रमासे सृष्टिमान होमेके कारण अणुसे वैभता नामस प्रसिद्ध हो सर्वाँय पक्षी प्राप्त की । इस समय प्रज्ञाकी शो आभा फौजी थी, उससे दिनकी उत्पत्ति होमेसे वैभतागण उसमें बैठ कोड़ाकीतुक करने लगे ।

इसके बाद “स अमनावसुरानसृजत” (धृति) प्रज्ञा पतिन अपने अघेसे अतिकोछुप अँसम्प्ट असुरोंकी सृष्टि की । ये अत्यन्त मैथुनलुभ्य हो आत्मसुखचरि धार्त्य करनेके दूसरे उपाय न पानेके कारण उन पर ही उसक विषे दीङ्गे । यह वैभ प्रजा मन ही मन इ समे लगे । किन्तु निर्लेस असुरोंके भावको अन्धा न वैभ कूट और भयभीत हो कर बहाने से भागे और विष्णुक पास जा कर उन्हेमि सारा युक्तागत यथाप्य भाष्य कहा । विष्णुने सब बातें ज्ञान कर आदेश दिया, कि तुम मावाण्दमें अरहयान करो । इसके अनुसार (“साशरीरकयोः सन्धिरनुवत्” (धृति) “सा तेन विद्युध तनुः साङ्गता सप्या वसूष”) प्रज्ञाक शरीर प्रि-



वर्षान द्वारा। देव्यरूपिणी सायन्तनी मन्ध्यामूर्ति धारण करने पर कामविह्वल असुर अशेष लावण्यमयी विलासै-कनिलया स्त्रीमूर्तिके भ्रममें विभ्रमोन्मत्त हो उसके प्रति आलिङ्गन करनेके लिये दौड़ने पर उद्यत हुए और घस्तु-गत्या किसी पदार्थकी उपलब्धि न कर सकनेसे हत बुद्धिकी तरह इधर उधर घूमने लगे।

इसके बाद स्वयम्भुने अपनी लावण्यमयी कान्तिसे गन्धर्व, अप्सर और सर्गलोकप्रिय कान्तिमती ज्योत्स्नाकी सृष्टि की। इस तरह सर्गलोकपितामह ब्रह्माने अपने आलस्यके द्वारा तन्द्रा, जृम्भा, निद्रा और उन्माद हेतुभूत प्रेत पिशाच आदिकी सृष्टि की है। इसके बाद साध्य और पितृगणकी सृष्टि हुई, इन साध्य और पितृ-गणको लोग आज भी श्राद्धादि द्वारा अपने अपने पिताकी तरह ह्य कथ्य प्रदान करते हैं। अन्तर्धान शक्ति द्वारा सिद्ध और विद्याधरोंकी सृष्टि हुई। इसी कारणसे ही उनकी आत्मामें एक अत्यद्भुत अन्तर्धान-शक्ति उत्पन्न होती है अर्थात् ये इच्छा करनेसे किसी समयमें भी अन्तर्हित और प्रादुर्भूत हो सकती हैं। इसके बाद उन्होंने अपने प्रतिविम्ब (अपनी देहकान्ति)के अवलम्बनसे किन्नर किन्नरोंकी सृष्टि की। पोछे सृष्टिकी और विधृष्टि न देख भगवान्ने क्रोधरेगाद्रियुक्त भागदेह परित्याग कर दी। इन देहसे जितने बाल जमीन पर पातत हुए, उनसे मर्षों की उत्पत्ति हुई।

इन सबकी सृष्टि हो जानेके बाद स्वयम्भु स्वयं आत्माको मन्यमान समझने लगे। उस समय अपनी देह और पुरुषकार अर्पणमें मनके द्वारा मनुओंकी सृष्टि की। इससे देवगण ब्रह्माकी भूयशी प्रशंसा करने लगे; क्योंकि उन्होंने सोचा, मनुष्यों द्वारा अग्निहोत्रादि अनुष्ठित होने पर वे हविर्मागादि भक्षण कर सकते हैं। इसके बाद तपा, उपासना, योग और वैराग्यैश्वर्ययुक्त समाधि-सम्पन्न ऋषियोंकी सृष्टि हुई। इनमें प्रत्येकको भी भगवान्ने अपनी देहका अंश दिया। विस्तृत विश्वरथ जगत् और पृथ्वी ऋद्धमें देखो।

२ सौंड। पर्याय—महोपध, सौंड, नागर, विश्व मेपज। (रत्नमाळा) शृङ्गवेर, कट्टुमड, उपण। (भावप्र०) ३ बोल, गन्धबोल, निशादल। (पु०) ४ गणदेवताविश्व।

इसु, सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुस, पुरुरवा, माद्रवा, ये दश हैं। इनमें इष्टिशास्त्रमें क्रतु और दक्ष; नान्दीमुखमें (आम्बुयुषिक) श्राद्धमें सत्य और घसु, नैमित्तिक क्रियामें काल और काम; काम्यकर्ममें धृति और कुस और पार्वण श्राद्धमें पुरुरवा और माद्रवाका उल्लेख करना होता है। ये धर्म द्वारा दक्षकन्या विश्वाके गर्भसे उत्पन्न हुए। (मत्स्यपुराण ५ अ०) ५ नागर, सौंड। (विश्व) ६ विष्णु। ७ देह। ८ शिव। (भात १३।१७।१४५) (स्त्री०) ६ परिमाणविशेष, २६ रत्नी=एक तोला। १० तोला=एक पल, २० पल=विश्व। (ज्योतिष्मती) ११ स्थूल जरीरख्यापी चैतन्य, प्रत्येक जरीरावच्छिन्न जीयात्मा। (वेदान्तसार) १२ दक्षकन्यामेद, विश्वदेवोंकी माता। (मत्स्यपु०) १३ अनिचिया। १४ जनावरी, जतमूल। (त्रि०) १५ सकल, सय, समन्। १६ बहु, घहुन, अनेक। (निघण्टु)

विश्वक (सं० त्रि०) विश्व कन्। निचिल, समस्त।

विश्वकथा (सं० स्त्री०) १ जगत्सम्बन्धीय कथा। २ सभी शक्तें।

विश्वकर्तृ (सं० पु०) १ मृगयाकुशल कुषकुस, शिकारी कुष्ठा। २ शब्द, उर्गान। (वि०) ३ खल, दुष्ट।

विश्वकर्तृ (सं० त्रि०) १ जगत्स्रष्टा, जगत्पति, जगदाश्वर। (भागवत १।१०।४८) (पु०) २ बाँधायन-सूत्रानुयायि-पद्धतिके प्रणेता। संस्कार-कीमुदीमें इसका उल्लेख है।

विश्वकर्म (सं० त्रि०) सर्वकर्मक्षम, जो सब प्रकारके कार्य करनेमें चतुर हो। (शृक् १०।१६।४)

विश्वकर्मजा (सं० स्त्री०) विश्वकर्मणः जायते विश्वकर्मन्-जन-ड। सूर्यकी पत्नी, सखा।

विश्वकर्मसुता (सं० स्त्री०) विश्वकर्मणः सुता। सूर्यपत्नी, रंज्ञा। (शब्दरत्ना०)

विश्वकर्मन् (सं० पु०) विश्वेषु कर्म यस्य। १ सूर्य। २ देवशिल्पी, एक प्रसिद्ध आचार्य्य अथवा देवता जो सब प्रकारके शिल्प-शास्त्रके आविष्कर्ता और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। पर्याय—स्वप्ता विश्वकृत, देववदंकि। (हेम)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्मा प्रभासके

पुत्र थे। ये प्रासाद, मन्दिर, उद्यान आदि विषयोंमें  
मिथ्या प्रज्ञापति थे। (मन्वन्तु १००)

विष्णुपुराणमें मिथ्या है, कि ये आठ वस्तुओंमेंसे  
प्रमास नामक वस्तुक भोरस दृश्यत्वकी प्रज्ञाधारिणी  
बहलके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये मिथ्योंक कर्ता तथा  
देवताओंक यज्ञिक थे। इन्होंने ही देवताओंक विना  
नाशिका बनाया था। मनुष्य इत्यादि का शिष्य भी कर  
आविष्कार निर्वाह करते हैं।

वेदादिमें विष्णुधर्मोत्तर (बृहद् ८, १०, १२), सूर्य  
(मन्वन्तु १००, १००, ११), प्रज्ञापति (मनु, बृहद् १, १०, ११)  
विष्णु (भारत भीष्म), शिव (शिवपुराण) आदि शक्ति  
मान् देवताओंक नामरूपमें वर्णनकृत हुए हैं। पीछे  
उनका विश्वरूप स्वरूपके नामसे आया है। इन  
पर्यायमें विश्वकर्मा विश्वप्रज्ञास्वरूपके अद्वितीय शिष्यो माने  
गये हैं। अथर्ववेद १०, ८१-८२ सूक्तमें लिखा है, कि 'ये  
सर्वेर्वा मगवान् हैं, इनके नाम, बहल वाहु और पद्  
बाही और पीछे हुए हैं। वाहु और दोनों पैरकी सहा  
यनासे ये सर्वा और मर्त्याका निर्माण करते हैं। ये पिता,  
सर्वमय, सर्वनिपत्या हैं। ये विश्वरूप हैं, प्रत्येक देवता  
वधायोग्य नाम रखते हैं तथा सर्वर प्राणीके ध्यानातीत  
पुरुष हैं। इन श्लोकोंमें यह मा मिथ्या है, कि ये प्रारम्भ  
दान करते हैं अपना ध्य हो सब मूर्तोंका बहिष्कार कर्ते  
हैं। इस बहिष्क मन्वन्तुमें निरुक्तमें इस प्रकार लिखा  
है,—'भुवनके पुत्र विश्वकर्माने सर्वमय द्वारा जगत्की  
सृष्टि धार म की तथा आरम्भ-बहिष्कार कर निर्माणकार्य  
शेष किया। श्वरेद १०, ८१-८२ सूक्तमें विष्णु भिष्य वेदो।

पुराणकारोंका कहना है, कि ये वैदिक-रूपका कार्य  
करते हैं तथा इस कार्यमें उन्हें विशेष क्षमता है। इस  
कारण ये स्वरा नामसे मा प्रसिद्ध हैं। केवल भ्रष्ट  
शिष्यी करनेसे ही इनका परिचय शेष नहीं होता, पर  
ये देवताओंक शिष्यकार हैं तथा उनके अत्यादि शिष्य  
कर देते हैं। आनेवाले नामक भीषण युद्धाल इन्हीं  
का बनाया हुआ निराविश्व है। इन्होंने ही अयन्  
में स्थापत्य शिष्य का शिष्यविज्ञान प्रथम अतिशयक दिया  
था।

महाभारतमें मिथ्या है, कि 'ये शिष्यसमूहके भ्रष्ट

तम कर्ता हैं सहस्र शिष्यके आशेषकारक शिष्यसमूहके  
मिथ्या हैं, सभी प्रकारके कावहायिक निर्माता हैं शिष्य  
कुलक अग्रतम पुत्र हैं। इन्होंने ही देवताओंका  
स्वर्गोप रथ प्रस्तुत कर दिया है। इन्होंने ही निपुणता  
पर सभी लोग आश्रित निर्वाह करते हैं, ये महत्  
भोर अमर देवता/भयते हैं। इनको सभी आश-पूजा  
करते हैं।

रामायणमें मिथ्या है, कि रामसेठके शिष्य इत्यादि  
सङ्कापुरी बनाई थी। सेतुबन्ध शिष्य करकेके शिष्य रामके  
साक्षात्प्राप्त इन्होंने नम आनन्दको सृष्टि की था।

महाभारतक आदिपर्यन्त तथा कसो कसो पुराणमें  
देखा जाता है, कि अष्टवस्तुओंमेंसे एक वस्तु प्रमासक  
भोरससे और इनको पञ्चा आश्रयमय सती योगसिद्धाके  
गर्भसे विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माने अपना  
कन्या संकाका विवाह सूर्यक साथ कर दिया हुआ  
सूर्यका प्रभार थाप सह न सक्तो थी, इस कारण विश्व  
कर्माने सूर्यको शान्तक पर बढ़ा कर इनको उज्ज्वलता  
का अग्रभाग काय बनाया। कन्या हुआ म ज जो पृथिवी  
पर गिरा था उससे इन्होंने विष्णुका सुदर्शनचक्र,  
शिखका शिशुक्र, कुम्भेका अक्ष, कार्तिकेयका वस्त्र तथा  
अन्यान् देवताओंक अत्यादि निर्माण किये थे। कहते  
हैं, कि प्रसिद्ध जगन्नाथ मूर्ति विश्वकर्माकी ही बनाई  
हूरी है।

सृष्टिकारक रूपमें विश्वकर्मा कसो कसो प्रज्ञापति  
नामसे पुकारे जाते हैं। ये कार, तक्षक, शिव यज्ञिक,  
सुप्रभन् आदि नामों से भी प्रसिद्ध हैं।

विश्वकर्मा शिष्यसमूहके कर्ता शैलेके कारण शिष्य  
शिष्यी कहलाते हैं। शिष्य शिष्यी शिष्यकर्माकी उन्नति  
के शिष्य प्रति बर्ण मात्र मानको संकाशित विधिसे विश्व  
कर्माकी पूजा करते हैं। उस दिन वे लोग कसो मा  
शिष्य यन्त्राधिको काममें नहीं करते। वे सब यन्त्रादि  
अपणा तरह परिष्कार कर पूजाके स्थानमें रखे जाते हैं।  
निम्नभणोके दिव्य रूपक भी इन्, कुशास आदिको पूजा  
करते हैं।

विश्वकर्माकी पूजा इस प्रकार है,—प्रातःकालमें  
नित्य शिष्यादि समाप्त करके शुद्धासन पर बैठ

पहले स्त्रास्तिवाचनादि और पीछे सङ्कल्प करना होता है।

इसके बाद मन्दूक्य सूक्तादिका पाठ कर सामान्यार्घ्य, आमनशुद्धि, भूतशुद्धि और घटस्थापनादि करके सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे गणेशादि देवताकी पूजा करनी होगी। अनन्तर 'चां हृदयाय नमः, वीं गिरसे स्वाहा' कह कर अङ्ग और करन्यास तथा निम्नोक्त रूपसे ध्यान करना होगा।

ध्यानमन्त्र इम प्रकार है—

"ओं दंशपाल महावीर सुमित्र कर्मकारक।

विश्वकृत् विश्वकृत् च त्वं 'वासनामानदयद्वयकृत् ॥"

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारसे पूजा और विशेषार्घ्य स्थापन कर फिरसे ध्यान पाठ करनेके बाद आवाहन करे।

वङ्गके अनेक स्थानोंमें भाद्रसंक्रान्तिको विश्वकर्माके पूजोपलक्षमें एक उत्सव होते देखा जाता है। यह उत्सव निम्नश्रेणीके लोगोंमें ही सीमाबद्ध है। अधिकांश स्थलमें नमःशूद्रगण ही इस उत्सवके नेता हैं। पूजाके दिन सभी लोग बहुत सवेरे स्नान करते हैं। नरनारीमें भारी चहल-पहल दिखाई देती है। जो धनी है वे आत्मोय वन्द्युवाचवोंको अपने यहां निमन्त्रण करते हैं। पूजाके बाद सभी एक साथ बैठ कर खाते हैं। इस दिन ये लोग क्रम स्त्रांमें एक प्रकारका पिण्डाकार पिष्टक तैयार कर लेते हैं। इस पिष्टकका नाम महुआ है। चावलका चूर और मोठा दे कर महुआ तैयार किया जाता है जिससे बड़े घावसे खाते हैं। इसके बाद वाइच खेल शुरु होता है। ग्रामके धनी व्यक्ति इस खेलका स्त्रां देते हैं। उन्हींके उत्साह और नेतृत्वमें दूसरे दूसरे लोग आनन्दमें विमोह रहते हैं। छोटी लम्बी नावे सजाई जाती हैं। नावका अगला और पिछला भाग गाढ़े सिन्दूरसे लिपा तथा पुष्पमालासे सजाया रहता है। जो धनी व्यक्ति हैं वे नया कपड़ा पहन कर नावके बीचमें छड़े रहते और चालकोंको जल्दीसे चलानेके लिये उत्साह देते हैं।

इस उत्सवमें केवल निम्नश्रेणीके हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी महुआ खा कर बड़े हर्षसे इसमें साथ

देते हैं। वाइच खेलनेके लिये ये लोग भी सुसज्जित नाव को ले कर धनी नेताके अधीन खेलमें जमा होनेकी चेष्टा करते हैं। यह खेल प्रधानतः नदीमें या विस्तारण खालमें होता है। उत्सव-दिनके पहले ही खेल कहां होगा, इसकी सूचना दे दी जाती है। जो नाव सबसे पहले निकलती है, उसकी जयजयकार होती है। जिस समय नावे बड़ी तेजसे चलती हैं, उस समयका दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है। इस खेलमें लोगोकी बड़ी भीड़ लग जाती है। कभी कभी तो प्रतिद्वन्द्विताके फलसे हिन्दू हिन्दूमें, मुसलमान मुसलमानमें तथा हिन्दू-मुसलमानमें दंगा हो जाया करता है। जिसकी जीत होती है, धनी व्यक्ति उसे इनाम देते हैं। इसके बाद घर जा कर सभी महुआ खाते हैं। ये सब नावे खेनेके लिये एक सांसे तीन सां आदमियोंको जरूरत होती है।

विजयाके दिन प्रतिभा-विसर्जनके समय भी पूर्व वङ्गमें इसी प्रकारका खेल होता है।

३ शिवके हजार नामोंमेंसे एक नाम। ( लिङ्गपु० ६५।११८ ) ४ चेतना, धातु। चरकके विमान स्थानमें लिखा है, कि जीवकी चेतना धातुका नाम विश्वकर्मा है। चरक मुनिने चेतनाधातुके कर्त्ता, मन्ता, वेदिता, प्रहा, विश्वकर्मादि नाम रखे हैं। ( चरक विमानस्था० ४ अ० ) ५ सर्वव्यापारहेतु। ( ऋक् १०।१७०।४ ) ६ बड़ई। ७ राज, मेमार। ८ लोहार। ९ इलोराके अन्तर्गत खनाम प्रसिद्ध गुहामन्दिर। इलोरा देखो।

विश्वकर्मान्—१ वास्तुप्रकाश, वास्तुविधि, वास्तुशास्त्र, वास्तुसमुच्चय, अपराजितावास्तुशास्त्र, आयतस्व, विश्व कर्मीय आदि प्रयोगके प्रणेता।

२ मोमांसाकारके रचयिता। ३ सहाद्रि वर्णित राजभेद। यह राजवंश पद्मावतीके मत्त और सौनल-मुनिकुलोद्भव थे। ( सखा० ३१।३० )

विश्वकर्मपुराण—उपपुराणभेद।

विश्वकर्गम् शास्त्रो—सत्प्रक्रियाव्याकृति नाम्नी प्रक्रिया-कौमुदीदोकाके प्रणेता।

विश्वकर्मा—विश्वकर्मान् देखो।

विश्वकर्मेश ( स० क्ली० ) शिवलिङ्गभेद।

विश्वकर्मेश्वरलिङ्ग ( स० क्ली० ) लिङ्गभेद। कहते हैं,

कि विश्वकर्माने वहाँ किङ्ग स्थापित किया था ।  
(स्कन्दपुराण)

विश्वका (स० स्त्री०) गङ्गासिन्धु, वाँपबोझ ।

विश्वकाय (स० पु०) विश्व (ही) जिसका काय अर्थात्  
भारत है, विश्व ।

‘४ विश्वकायः पुरातन ईयाः कल्पाः सर्वे ज्योतिरवः पुराण्यः ।’  
(भागवत ८।१।१३)

विश्वकाया (म० स्त्री०) राज्ञायणी दुर्गा ।

विश्वकारक (स० पु०) विश्वरूप कारकः । विश्वका कर्ता,  
शिव । (शिवपु०)

विश्वकाठ (म० पु०) विश्वकर्मा ।

विश्वकार्ण (स० पु०) सूर्यकी सात प्रथम उद्योतियों  
का मेरु ।

विश्वकूट—हिमालयकी एक चोटीका नाम ।

(हिमाल० ५।२०२)

विश्वकृत् (स० पु०) विश्व कर्तासिद्धि कृत् कृत्पुत्रकृत् ।  
१ विश्वकर्मा । २ ब्रह्मा । (भागवत ४।१८।८)

विश्वकृष्टि (स० स्त्री०) जो सब छोर्गोंके अपने सगे  
सम्बन्धीके समान समन्वता हो ।

विश्वकृतु (स० पु०) विश्वमेव कर्तुः विश्ववर्षाणी वा  
कैलर्षस्य । १ अनिरुद्ध । (अमर) २ पर्यन्तमेव ।

(हिमाल० ५।१०६)

विश्वकेश (स० पु०) विश्व प्रख्यापक वाचस्पत्यार्च्यः  
काय भाचार्यस्य । १ विश्वरूपकार, वह काल वा भस्कार  
जिसमें संसार भरके सब पदार्थ क्षण संपुटीत हैं ।  
२ विश्वप्रकाश नामक धर्मिष्ठान, वह प्रथम जितने संसार  
भरके सब प्रकारके विषयों कायिका विस्तृत विवेचन या  
वर्णन हो ।

विश्वकोप—विश्वकोट्ट देवो ।

विश्वकूप (स० पु०) विश्वविनाश, प्रलयकालमें ब्रह्माण्डका  
ध्वंस । (पञ्चरत्न २।१२६)

विश्वकृति (स० स्त्री०) विश्वकृष्टि, जो सब छोर्गोंका  
अपने सगे सम्बन्धीके समान समन्वता हो ।

विश्वकृतोत (स० पु०) १ विश्व । २ तैरहसे मनु ।  
(मत्स्यपु० ६ व०) ३ काशिकापुराणके अनुसार एक  
चतुस्रुज देवता जो जल, अन्न, गन्ध और पद्म धारण

किये रहते हैं और जो विश्वका निर्माण धारण करने  
वाले माने जाते हैं । ये वाघेरमभू अटाघारी और  
रक्तपिङ्गल वर्ण हैं तथा श्वेतप-के ऊपर बैठे हैं ।

(काशिकापु० ५२ व०)

कहा कही विश्वकृष्ण इस ताळम्यशकारको अग्रद  
इत्यसकार इत्यनेम जाता है ।

विश्वकृष्णा (स० स्त्री०) मयगुरुत, कर्माती । यह  
शब्द भी ताळम्यशकारको अग्रद इत्यसकार किष्णा है ।

विश्वग (स० पु०) विश्व गण्यतात गम इ । १ ब्रह्मा ।  
२ पूर्णमाका पुत्र, मर्त्याका सङ्का ।

(भागवत ४।१।१३ १४)

विश्वगङ्गा—मध्यभारतके धीतर राजपर्वे प्रवाहित एक  
छोटी नदी । यह अक्षा० २० २४ ड० तथा देशा० ७६ १६

पू०के मध्य विस्तृत है । सुन्दराना जिलेके सुन्दराना  
नगरके समाप निकल कर नल्लगङ्गाके समाप्तदासमें

बहता हुई पूर्णनदामें मिलता है । इस पहाड़ा नदीमें  
समा समय अल नहीं रहता, किन्तु वर्षोंके समय इस

नदासे अणुपुर, बन्नेटा और श्यांपुर नगर तक गमना  
गमन होता है ।

विश्वगत (स० स्त्री०) विश्व गता । विश्वगामी, विश्व-  
भ्यास ।

विश्वगण्य (स० स्त्री०) विश्वे सबस्थाने गण्यो यस्य ।  
१ बोल नामक गण्यस्य । (पु०) २ पञ्चाण्डु, व्यास ।

विश्वगण्धा (सं० स्त्री०) विश्वेषु समस्तपदार्थेषु मध्ये  
गन्धा गन्धविशिष्ट, हस्तामल गन्ध इति न्यायात्स्थालत

धात्व । पुमिवा ।

विश्वगण्य (स० पु०) पुरश्चपुत्र, पूयुता मन्वता ।  
विश्वगर्मे (स० पु०) विश्व गर्मे यस्य । १ विश्व ।  
२ जिव । ३ रैवतका पुत्रमेव । (इतिवृत्)

विश्वगुह (स० पु०) विश्वरूप गुहः । हरि विश्व ।  
(भागवत १।२।२६)

विश्वगूर्त (स० स्त्री०) १ समी कार्योते समर्प ।  
२ इत्यतसर्गोद्य, जिसके समी भाष्य उद्यन ।

(शुक् १।६।६)

विश्वगूर्ति (स० स्त्री०) सर्वोत्तम स्तुत्यः, सभी छोर्गोंके  
स्तुतिदाय । (शुक् १।६।६)

विश्वगोत्र ( सं० त्रि० ) विश्वगोत्रसम्बन्धीय ।

( शतपथब्रा० ३।५।३।५ )

विश्वगोत्र्य ( सं० त्रि० ) १ विश्वगोत्रसश्लिष्ट ।

२ वाद्ययुक्त । ( अथर्व ५।२।३ )

विश्वगोत्रा—विश्वगोप्त्र देखो ।

विश्वगोप्त्र ( सं० पु० ) विश्वस्य गोत्रा रक्षयिता । १

विष्णु । २ इन्द्र । ( त्रि० ) ३ विश्वपालक, समस्त विश्वका पालन करनेवाला ।

विश्वप्रन्थि ( सं० स्त्री० ) १ हंसपदी लता । २ रक्त-लज्जालुता, लाल लज्जातृ ।

विश्ववात ( सं० पु० ) विश्ववायु देखो ।

विश्ववायु ( सं० पु० ) विश्वगुगुता वायुः । सवता-गामा वायु, वह वायु जो सध जगह समानरूपसे चलती है । यह वायु अनायुष्य ( आयुष्कर नहीं ) दीप-वर्द्धक और नाना प्रकारका उत्पात उत्पन्न करनेवाली माना जाती है । सभी ऋतुओंमें यह वायु वह सकती है ।

विश्वच् ( सं० त्रि० ) विश्वमञ्जति अञ्च-क्विप् । सर्वात्-गामी, सध जगह जानेवाला ।

विश्वङ्कर ( सं० पु० ) विश्वं सर्वं करोतीति प्रकाशयतीति कृ-वाहुलकात् ट, द्वितीयाया अलुक् । चक्षु, नेत्र ।

विश्वचक्र ( सं० क्लो० ) विश्वतः सर्वात् चक्र यस्य । महादानविशेष, बारह प्रकारके महादानोंमेंसे एक प्रकारका महादान । इसमें एक हजार पलका सोनेका एक एक चक्र या पहिया बनवाया जाता है जिसमें सोलह आरे हाने हैं और तब यह चक्र कुछ विशिष्ट विधानोंके अनुसार दान किया जाता है ।

विश्वचक्रात्मा ( सं० पु० ) विश्वचक्रं ब्रह्माण्डमेव आत्मा स्वरूपं यस्य । विष्णु, नारायण । ( मत्स्यपु० २३६ अ० )

विश्वचक्षुष ( सं० त्रि० ) विश्वचक्षुस् देखो ।

विश्वचक्षुस् ( सं० त्रि० ) सर्वविश्वके प्रकाशक, जो समस्त जगत्को प्रकाश करते हैं ।

विश्वचक्षुस् ( सं० त्रि० ) सर्वदर्शी, ईश्वर ।

विश्वचक्षुषि ( सं० त्रि० ) सर्वमनुष्ययुक्त, सभी यजमानोंसे पूज्य । ( ऋक् १।६।३ )

विश्वजन ( सं० पु० ) सर्वजन, सभी मनुष्य ।

विश्वजनीन ( सं० त्रि० ) विश्वजनाय हितं ( आत्मन् विश्व-जनभोगोत्तरपदात् खः । १। ५।१।६ ) इति-ख । विश्वजनका हितकर, सभी लोगोंका हितजनक ।

विश्वजनाय ( सं० त्रि० ) विश्वजनका हितकर, सभी लोगोंकी भलाई करनेवाला ।

विश्वजन्मन् ( सं० त्रि० ) विश्वत्स्मिन् जन्म यस्य । १ विश्व-जात । २ विभिन्न प्रकार ।

विश्वजन्य ( सं० त्रि० ) विश्वजनाय हितं हितार्थं यत् । विश्वजनका हितजनक, सबोंकी भलाई करनेवाला ।

विश्वजापिन् ( सं० त्रि० ) विश्वं जयति जि-णिनि । विश्व-जेता, विश्वको जीतनेवाला

विश्वजा ( सं० स्त्री० ) शुण्ठि, सोंठ ।

विश्वजिच्छिद्य ( सं० पु० ) एकाहभेद ।

( पञ्चविंशत् १६।१५।१ )

विश्वजित् ( सं० पु० ) विश्वं जयति जि-क्विप्, तुक्च ।

१ यक्षभेद, सर्वस्वदक्षिण यक्ष । इस यक्षमें कुल धन दक्षिणामें दे देना होता है । २ न्यायविशेष । यह न्याय इस प्रकार है—विश्वजित्के द्वारा यह करे अर्थात् विश्वजित् यक्ष करे जहा फलकी किसी प्रकार श्रुति अभिहित न होनेसे नित्यत्व कल्पित हुआ है तथा फलाभिधान न रहनेसे भी पीछे यक्षफल स्वर्गादि कल्पित होता है, वहाँ यह न्याय होगा, विश्वजित् यक्ष करे, इस उक्तिमें स्वर्गादिके सम्बन्धमें कोई बात न रहने पर भी यक्षानुष्ठानके बाद यक्षफल स्वर्ग आपे आप होता है, इस कारण यह न्याय हुआ ।

३ वरुणका पाश । ४ अग्निविशेष । ( भारत ३।११८।१६ )

५ दानविशेष । ( भारत १२।२२७।५१ ) ६ सत्य-

जित्के पुत्र । ( ३।२०।१६ ) ७ विश्वजयी, विश्वजेता ।

८ सहायविशेषित राजभेद । ( ब्रह्म० ३।३।४६ ) ९

वह जिसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त का हो ।

विश्वजिन्व ( सं० त्रि० ) १ सर्वागामी, सर्वजेता ।

विश्वजीव ( सं० त्रि० ) १ सर्वान्तर्यामी । २ विश्वस्थित जीवमात्र ।

विश्वजू ( सं० त्रि० ) विश्वके प्रेरयिता । ( ऋक् ४।३।१८ )

विश्वज्योतिष ( सं० पु० ) गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिभेद ।

विश्वज्योतिस् ( सं० त्रि० ) १ जगज्ज्योतिः । २ एकाह-

मेद् । ( कल्याणभी २२।५।८ ) ३ अग्निमेव । ४ इष्टामेद् ।  
( मत्पथान् १।१।३।१६ ) ५ साममेद् ।

विश्वानु ( म० पु० ) विश्वं तनुयैस्य । मगधान् विष्णु  
यद् विश्व ही जिनका शरीर है ।

विश्वतश्चक्षुम ( म० लि० ) स्वसोऽप्याप्तचक्षुः । जिनक  
नेत्र चारों ओर परिव्याप्त हो जपात् की सर्वद्रष्टा हो ।  
( शुक १०।८।१३ )

विश्वानसु ( म० भव्य० ) विश्व मत्सम्यये तसिसु ।  
१ मयत्, चारों ओर । २ समी प्रकारका, तरह तरहका ।  
"सर्वे मन्त्राणां कार्यावदमनादिना रक्षिता ।"  
( सामो )

विश्वतस्यापि ( स० लि० ) परमेश्वर, सर्वत्र पापियुक्त,  
चारों ओर जिसके हाथ हैं ।

विश्वतस्यापु ( स० लि० ) परमेश्वर, चारों ओर पाव  
युक्त ।

विश्वतस्पृच ( स० लि० ) विश्वतस्पाव, परमेश्वर ।  
( मयत् ११।१।२२ )

विश्वानुर् ( म० लि० ) सर्वैस्तनुहि साकारो ।  
( शुक १।७।१६ )

विश्वानुराव ( स० लि० ) विश्वानु देवो ।

विश्वानुवसो ( स० स्त्री० ) तुलसीरुक्षमेव, वनतुलसी,  
बसुरं तुलसी । गुण—भीम शीतल ; काय मेघ, रक्ता  
तिमार और बदरामयनाशक ; पत्तका रस हृदिमन् और  
सर्वैर्जगमे हितकर । ( Ocimum sanctum ) ।

विश्वानुत ( स० लि० ) विश्वेन वृतः । विष्णु परमेश्वर ।  
विश्वानुर्ति ( न० स्त्री० ) समस्त विषयगतवाक्य ।  
( शुक १।१।८ )

विश्वतोऽघार ( स० लि० ) विश्वतश्चक्षुर्द्विंशु घारा यस्य ।  
चारों ओर घारायुक्त जगत्का धारविता ।

विश्वतोयो ( स० लि० ) समस्त जगत्का धारक ।  
विश्वतावाह ( सं० पु० ) विश्वतावाहुर्यस्य । परमेश्वर विष्णु ।  
विश्वतोयुक् ( सं० पु० ) विश्वतो मुक्तं यस्य । परमेश्वर ।  
विश्वतोय ( स० लि० ) विश्वव्याप्त जनराशि ।  
विश्वतोया ( म० स्त्री० ) विश्वप्रियः तोयो जलं यस्याः ।  
गङ्गा विश्वप्रियतोया । इसका जल विश्वके समी  
सोर्गोंका मिय है । इसीस रसको विश्वतोया कहते हैं ।

विश्वतोयोद्वं ( सं० लि० ) १ सर्वकारात्म, समी विषयों  
में पारदर्शी । २ समी कार्योंमें शक्तिसम्पन्न ।

विश्वत ( सं० लि० ) विश्व सप्तम्यये ङ । सर्वात्र, समस्त  
विश्वमें । ( शुक १०।६।१।१५ )

विश्वतश्चक्षुसा ( स० पु० ) दृष्टंकी सप्तर्षिप्रमेद् ।  
विश्वता ( सं० भव्य० ) विश्व प्रकटारणं वासु । ( प्रकारचने  
वासु । पा ५।३।२३ ) सर्वथा सब प्रकारसे, समी तरहसे ।

विश्वतेश्च ( सं० पु० ) अनुत्तमेद् । ( माल शान्तिवर्ष )  
विश्वदर्शात् ( न० लि० ) सर्वोके दर्शानोय । ( शुक १।२५ १८ )  
विश्वदानि ( सं० पु० ) जनसाधारणका व्यवहारोपयोगी  
दृष्ट वा स्थान । ( वैपि० वा० ३।३।३।१० )

विश्वदानोम् ( सं० भव्य० ) विश्वकाश्च, सर्वदा, सब  
समय ।

विश्वदाय ( सं० लि० ) सर्वं ददवकाटी, विश्वाम्नि ।  
( वैपि० ७।० ३।३।८।२ )

विश्वदायम् ( म० लि० ) सर्वफलदाता ।  
( मयत् ३।२।२६ भाष्य )

विश्वदाय्य ( स० लि० ) विश्वदायसम्बन्धी, दावानि ।  
( मयत् ३।२।२६ भाष्य )

विश्वदासा ( स० स्त्री० ) अग्निकी सातों जिह्वाओंका एक  
नाम ।

विश्वदूम् ( म० लि० ) विश्व इव दूश्यनेऽनौ । विश्वद्रष्टा,  
जो सारा संसार देखने में । ( भागवत ४।२०।३९ )

विश्वदृष्ट ( स० लि० ) जिह्वोने समस्त विश्वका दर्शन  
क्रिया है । ( १।२।१।१५ )

विश्वद्रेव ( स० पु० ) विश्वेरीयनीति द्विच भव । १ वायु  
देवताविश्वेव । नाम्नीमुन्नाय और पार्ष्णिभासमें  
रहती पूजा करने इत्यादि । ( लि० ) २ विश्वका  
वैदतात्पर्य महापुरुष ।

विश्वद्रेव—१ मधुसूदन सरलनोक् पत्तम गुठ । इनका  
बनाया हुआ विश्वदेवराक्षितोय नामक एक प्रथ  
मिलना है । २ विश्ववनायके एक राजा ।

विश्वद्रेव देवो ।

विश्वद्रेवा ( म० स्त्री० ) १ इत्यनेयुक्ता, गोपधत्वा ।  
२ भागवका, गंगाल । ३ काश्च वंशोत्पत्तः । ( रत्नमात्रा )

विश्वद्रेवता ( स० स्त्री० ) विश्वदेवा । विश्वदेवा देवो ।

विश्वदेवनेत्र ( मं० त्रि० ) विश्वदेवा जिनके नेता हैं।  
( शुक्लयजु० ६।३५ वेददीय )

विश्वदेववत् ( सं० त्रि० ) विश्वदेववत् ।  
( अथर्व १६।१८।२० )

विश्वदेवस्तुत् ( सं० पु० ) पकाहभेद ।  
( आश्व० श्री० ६।८।७ )

विश्वदेव्य ( सं० त्रि० ) १ सभी देवताओंका उपयुक्त क्रियाके साथ। ( ऋक् १।१४८१ ) यह अग्निका विशेषण है।  
२ सभी देवताओंका समूह ।  
( शुक्लयजुः १।१।६ )

विश्वदेव्यावत् ( सं० त्रि० ) समस्त देवतायुक्त, समस्त देवविशिष्ट, सभी देवताओंके साथ ।

विश्वदैव ( सं० अत्र्य० ) विश्वदेवाके सदृश ।

विश्वदैव ( सं० क्ली० ) नक्षत्रभेद, उत्तराषाढा नक्षत्र ।  
विश्वदेव इसके अधिष्ठातो देवता हैं इसीसे इन नक्षत्रका नाम विश्वदेव पडा है । ( बृहत्सं० ७।२ )

विश्वदैवत ( सं० क्ली० ) विश्वदेवता अधिष्ठातो देवताऽयम् ।  
उत्तराषाढानक्षत्र । ( बृहत्संहिता ७।१।११ )

विश्वदोहस् ( सं० त्रि० ) समस्त विश्वका दोहनकारी ।  
( ऋक् ६।४८।२३ )

विश्वद्वत् ( सं० त्रि० ) विश्वक् समन्तात् अज्ञात गच्छति इति ।  
सर्वत्र यमन कर्त्ता, जो तमाम जानेमें समर्था हो ।

विश्वव ( सं० अत्र्य० ) सर्वतः, सर्वत्र, चारों ओर ।  
( ऋक् १६।३।८ )

विश्वधर ( सं० पु० ) विश्वधारणकारी, विष्णु ।

विश्वधरण ( सं० क्ली० ) सनस्त जगत्को धारण ।  
( राजतर० १।१३६ )

विश्वधा ( सं० त्रि० ) विश्वधारणकारी, विष्णु ।  
( शुक्लयजु० १।२ )

विश्वधात् ( सं० त्रि० ) विश्वस्य धाता । विश्वधारणकारी, विष्णु ।

विश्वधा ( सं० क्ली० ) १ विश्वका आश्रमस्थान, ईश्वर ।  
२ सभी देवोंके रहनेका स्थान । ३ स्वदेश ।  
( श्वेताश्वतर उप० ६।६ )

विश्वधावत् ( सं० त्रि० ) समस्त जगत् का धारणकर्त्ता,

मारा मासार जो धारण करते हैं । ( ऋक् १।७।३ )  
विश्वधार ( सं० पु० ) प्रथमतः मेधातिथिके पुत्रभेद, शाकद्वीपके राजा मेधातिथिके पुत्रभेद ।  
( मागवत ५।२०।२५ )

विश्वधारा—हिमवत्पादमे निकली हुई एक नदी ।  
( हिम० ख० ४६ ७६ )

विश्वधारिणी ( सं० स्त्री० ) विश्वं सर्वं धरतीति धृ-  
णिनि टोप् । पृथिवी ।

विश्वधावीर्य ( सं० त्रि० ) १ सर्वशक्तिशाली । २ जग-  
ज्जारणोपयोगी वीर्यशाली । ( अथर्व ५।२।३ )

विश्वधृक् ( सं० त्रि० ) जगद्धारणकारी, विष्णु ।

विश्वधृत् ( सं० त्रि० ) विश्व धरति धृ-क्विप् तुक्त्वं । विश्व-  
धर्त्ता, विश्वधारणकारी ।

विश्वधेन ( सं० त्रि० ) विश्वप्रीणनकारी, विश्वको संतोष  
करनेवाला । ( ऋक् ४।१६।२ )

विश्वधेनु ( सं० पु० ) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

विश्वन्दतेरु—तेलोपधिशोप । ( चिकित्सासार )

विश्वनर ( सं० त्रि० ) विश्वे सर्वे नरा यस्य । समस्त  
मनुष्य ही जिनका है । संज्ञाका बोध होनेसे 'विश्वानर'  
ऐसा पद होगा । 'नरे सदाया' ( पा ६।।।१२६ )  
इस सूत्रानुसार दादा होता है ।

विश्वनाथ ( सं० पु० ) विश्वस्य नाथः । १ शिव, महादेव ।  
२ वाशीष्मिथः शवालङ्ग । ३ साहित्यदर्पणके प्रणेता  
एक पाण्डित । इनके पिताका नाम श्रीचन्द्रशेखर महा-  
कविचन्द्र था । ४ भूपापरिच्छेद और उसकी टीका  
मिडान्मसुकावलीके प्रणेता एक पाण्डित । ये विद्या-  
निवास मठ्याचार्यके पुत्र थे । पञ्चानन इनकी उपाधि  
थी । विश्वनाथ कविराज और विश्वनाथ पञ्चानन शब्द देखो ।

विश्वनाथ—१ शास्त्रदीपिकाके प्रणेता प्रभाकरके गुरु ।  
२ उपदेशमारके रचयिता । ३ कोमलाटीकाके प्रणेता ।  
४ जातिविवेकके प्रणेता । ५ दुण्डिप्रतापके रचयिता ।  
इन्होंने अपने प्रतिपालक दुण्डिमहाराजके आदेशसे उक्त  
ग्रन्थकी रचना की थी । ६ तत्त्वचिन्तामणि-शब्दखण्ड  
टीकाके रचयिता । ७ तर्कसंग्रहटीकाके प्रणेता ।  
८ दुर्वोधमञ्जिका नाम्नी मेघदूतटीका और राघवपाण्ड-  
वोद्यटीकाके कर्त्ता । ९ प्रेमरसायनके प्रणेता । १० मुक्ति-

बाद्रीका और ह्युत्पत्तिबाद्रीकाके रचयिता । ११ काव्यादर्शको रसिहरद्विने नाम्नी टोकाके प्रणयनकर्ता । १२ रूपप्रदतिके रचयिता । १३ बाबमोचिताएवमंतरण नाम्नी वामायण-टोकाकार । १४ विदोपवर्णनार्थके प्रणेता । १५ श्रौतप्रयोगके प्रणेता । १६ सङ्गोत्तरपु नाम्नके रचयिता । १७ सारस मद्र नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता । १८ प्रतप्रकाश या प्रतराज नामक ग्रन्थके प्रणेता । इन्होंने १७३१ ई०को काशीमें बैठ कर एक ग्रन्थ समाप्त किया । इनके पिताका नाम था गोपाल । ये सङ्ग मेम्बर नामसे भी परिचित थे । ११ अल्पेष्टिपद्यनि, सत्येष्टिपद्ययोग, अशोकलि मण्ड्य खोजीटीका, श्रीगुरुर्षा वैदिक कबरबन्ना, श्रीगुरुर्षावैदिकपद्यति और क्लियापद्यति प्र यत्र रचयिता । २० वृत्तकीतुकके प्रणेता, वस्तुसुन्दके पुत्र । २१ कोपकसरतठ नामक अभिधान और अणवत् प्रकाशनाम्य तथा श्लुशम्यपरितकाव्यके प्रणेता । श्रीममहादाराजधिराम शम्भु शम्भुकी ओवनो पर २२ सर्ग में शोषक प्र य तथा मैत्रिनीकोपके आधार पर इन्होंने कोपकसरतठको रचना की । ये नारायणक पुत्र थे । २२ एक प्रसिद्ध पांडित्य, पुरुषोत्तमक पुत्र । इन्होंने १५४४ ई०में विश्वनाथरायदत्त प्रणयन की थी । २३ वर चक्रविद्विटीका नामक एक तार्किक ग्रन्थके प्रणेता । २४ अमृतकहरोकाव्यके रचयिता कुरुराजकार और उनको टाकाके प्रणेता ।

विश्वनाथ भावार्थ—काशीमोक्षनिर्णयक प्रणेता । विश्वनाथ उपध्याय—वृत्त रत्नजय वने रचयिता । विश्वनाथ कवि—प्रमानाम्नी वृत्तरत्नाकरदाकाके प्रणेता । विश्वनाथ कविपत्र—एक अद्वितीय भास्कररिक्त । बंगालक परिचरिता विश्वास है, कि विश्वनाथ बङ्गाली तथा वैद्यबंशोद्भूत थे, किन्तु यद्यार्थमें ये हम देशक नहीं थे । ये इतरत्तवासी और इतरकाल्योके ब्राह्मण थे । १२वीं सङ्गमें उरुद्वक सुप्रसिद्ध गङ्गबंशीय राजा मानु देवका समामें ये तथा इनके पिता अमृतशेखर विद्यमान थे । बरकल राजसमामें अलापारज बवित्पशाकके प्रभावसे इन्होंने 'कविराज' की उपाधि पाई थी । आप कुबलपार्श्वपरित अमृतकला, प्रभावता-परिचय प्रशस्ति रत्नाचमो रायब्रिडास और साहित्यवर्षण भादि ग्रन्थ निज गये हैं । यद्यप्यनीमें इनका उल्लेख है ।

विश्वनाथ चक्रवर्ती—इन्द्रबलनीचमणिकरज, गौराङ्ग-ममलैकाङ्गक, मलिकसामुगविष्णु, भागवतपुराण टीका राधामाधवकव्यविस्तारमणि, साधवसाधनकीमुद्दी, स्मरण क्रममाका, इ सङ्गदीका आदिके रचयिता । कोङ्कनके श्रीवर्धन नामक स्वामिमें इनका एक मठ विद्यमान है । विश्वनाथ चित्तपावन—प्रतराज नामक ग्रन्थके प्रणेता । ये १७३१ ई०में विद्यमान थे । इनके पिताका नाम गोपाल था । विश्वनाथ बीजे—भागवतपुराणसारार्थद्विनीके प्रणेता । विश्वनाथ गोर्धे—सिद्धान्तदेशशंखग्रहव्याख्याके कर्ता । विश्वनाथ दीक्षित मङ्ग—प्रतिष्ठादर्श नामक वाचिकके प्रणेता । विश्वनाथ देव—१ मृगाङ्गुलेनमरकके प्रणेता । २ कुण्ड मण्डपकीमुद्दी, कुण्डविधान गोनप्रवरनिर्णय भादि ग्रन्थों के रचयिता । विश्वनाथ देवद—एक विख्यात ज्योतिर्विदु विवाकर देवदके पञ्चम पुत्र । आप १६१२ १६३२ ई० के मध्य इष्टशोधन, देशव्यवहारकपद्यमुद्राहरण, केशकी-लम्बी टीका, मद्रकीगुरुहोवाहरण प्रह्लादाधविकरण प्रह्लाध वैद्यहरण, अमृतमन्त्रमटीका, ताम्रिकपद्यतिटीका (तद्य विश्वनामणि व्याहरण, नीलकण्ठीटीका, यातसारणी टीका, वृत्तखलकटीका, वृत्तसंहिताटीका, अमृतपुत्रसिद्धिटीका अमृतपुत्रोवाहरण करणकुल्लहन, मिताङ्ग मुद्रमणि, रामबिनोदोवाहरण वर्णतन्त्रप्रकाशिका, बर्णपद्यतिटीका, बसिष्ठसंहिताटीका, विष्णु कल्पोवाहरण, श्रीपट्टयुवाहरण, पोडशपैगाध्याय म ज्ञानमन्त्रप्रकाशिका सिद्धान्तशिरा मणि उवाहरण महानार्थप्रकाशिकाताम्नी सूर्यसिद्धांत टीका, सूर्यसिद्धांतोवाहरण मोमसिद्धांतटीका होत प्रकाशोवाहरण भादि सिध्य गये हैं । विश्वनाथ मगरी (स० श्री०) विश्वनाथदेव मगरी विश्व नाथकी पुत्री, काशी । विश्वनाथ महादेवने इस पुत्रीका निर्माण किया, इसीसे इसको विश्वनाथमगरी कहते हैं । काशी वा काठ्यपी टोली । विश्वनाथ नारायण—शिबकस्तुतिटीकाके प्रणेता । विश्वनाथ ग्याबाङ्गकार—धातुविस्तारमणिके प्रणेता । विश्वनाथ पञ्चानन महाकाव्य—बङ्गालके एक अद्वितीय



नैयायिक। ये १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें विद्यमान थे। इन्होंने छन्दोसूत्रकी पिङ्गलप्रकाशिका नाम्नी टीकामें

“विद्यानिवासूनोः कृतिरेषा विश्वनाथस्य”

अर्थात् विद्यानिवासका पुत्र कह कर अपना परिचय दिया है। राठीपत्राह्वणकुलग्रन्थसे जाना जाता है, कि सुप्रसिद्ध आम्बेडकरवंशमें विश्वनाथका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम काशीनाथ विद्यानिवास तथा पितामहका नाम रत्नाकर विद्यावाचस्पति था। ये विद्यावाचस्पति सुविख्यात वासुदेव मानंभौमके छोटे भाई थे। रुद्रवाचस्पति और नारायण नामक विश्वनाथके दो बड़े सहोदरका नाम मिलता है। भाषापरिच्छेदका कारिकावली तथा न्यायसिद्धान्तमुक्तावली नामकी टीका, न्यायतत्त्वबोधिनी वा न्यायबोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वावली, पिङ्गलमतप्रकाश, सुवर्णतत्त्वावली, तर्कभाषा आदि ग्रन्थ इनके बनाये मिलते हैं। ‘न्याय-शब्द’ में इनके अन्यान्य ग्रन्थोंका परिचय दिया गया है। न्याय शब्द देखो।

विश्वनाथ परिद्धत—वीरसिंहोदयजातकके रचयिता।

विश्वनाथ वाजपेयी—तुरगसिद्धिके प्रणेता।

विश्वनाथभट्ट—१ गणेशकृत तत्त्वबोधिनीकी न्याय विलासनाम्नी टीकाके प्रणेता। २ शृङ्गारवापिका नाम्नी नाटिकाके रचयिता। ३ औदुर्ध्वदेहिकाक्रिया वा श्राद्ध-पद्धतिके प्रणेता। ४ श्रीतप्रायश्चित्तचण्डिकाके रचयिता। ५ तर्कतरङ्गिणीनाम्नी तर्कामृतटीकाके प्रणेता।

विश्वनाथ मिश्र—मेघदूतार्थमुक्तावलीके प्रणेता।

विश्वनाथ रामानुजदास—रहस्यतयविधिके रचयिता।

विश्वनाथ सिंहदेव—रामगीताटीका, रामचन्द्राह्निक और उसकी टीका, राममन्तार्थनिर्णय, वेदान्तसूत्रभाष्य, सर्वसिद्धान्त आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। आप प्रियदासके जिय्य और राजा श्रीसोतारामचन्द्र धहादुरके मन्त्री थे। कोई कोई ग्रन्थकारको राजकुमार कहते हैं।

विश्वनाथ सूरि—आर्यविहसिका रामार्यविहसि काव्यके प्रणेता।

विश्वनाथमेन—पथ्यापथ्यविनिश्चय नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने महाराज प्रतापसद्व गजपतिके राजवैद्य

रूपमें नियुक्त रह कर उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम नरसिंह सेन और पितामहका नाम तपन था।

विश्वनाथाश्रम—तर्कटीपिकाके प्रणेता, महादेवाश्रमके जिय्य।

विश्वनाथान् (सं० त्रि०) विश्वनाथसम्बन्धीय, विश्वनाथ शोक या तल्लिखित।

विश्वनाभ (सं० पु०) विश्व नाभी यस्य। विष्णु, परमेश्वर।

विश्वनामि (सं० स्त्री०) विश्वस्य नामिः। विश्वका नामिम्बरूप, सूर्यादिका आश्रयभूत, विशुका चक्र। इसी चक्रका आश्रय कर सूर्यादि ग्रह अवस्थित हैं।

(भागवत २।२।२५)

विश्वनामन् (सं० पु०) १ ईश्वर। २ जगत्, संसार। विश्वन्तर (सं० पु०) १ बुद्ध। २ सांपदमनका गोत्रज राजपुत्रमेद। (पैतरेयब्रा० ७।१७)

विश्वपक्ष (सं० पु०) तान्त्रिक वाचायमेद।

(शक्तिरत्नाकर०)

विश्वपति (सं० पु०) विश्वस्य पतिः। विश्वका पति, विश्वपालक, महापुरुष, कृष्ण।

विश्वपति—१ वेदाङ्गतीर्थकृत माधवविजयटीकाकी पदार्थदोषिका नाम्नी टीकाकार। २ प्रयोगजिह्वामणिके प्रणेता। इनके पिताका नाम केनव था।

विश्वपट्ट (सं० त्रि०) विश्वपाता, जगदीश्वर।

(हरिवंश २५६ अ०)

विश्वपणो (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भूईंमाँवला।

(राजनि०)

विश्वपा (सं० पु०) विश्वं पातीति पा-विच्। विश्वपालक, परमेश्वर।

विश्वपाचक (सं० पु०) विश्वं पाचयति पच-णिच्-ण्डुल्।—भगवान् विष्णु, परमेश्वर।

(मार्क० पु० ६।१।४६)

विश्वपाणि (सं० पु०) श्र्यानिबोधिसत्त्वमेद।

विश्वपातृ (सं० त्रि०) विश्वस्य पाता। १ विश्वके पालनकर्ता, परमेश्वर। (पु०) २ वितृगणमेद। वर,

घोष्य सत्त्वं पुष्टि, सुष्टि, विरचपाता और चाता  
वित्तुपुष्टक बहो ० गण है ।

विरचपाद् ( स० लि० ) विरचद् ईको ।

विरचपाद्गिरोमीव ( स० लि० ) विरचमेव पाद्गिरोमीव  
वस्य । मगबाद् विष्णु परमेस्वर । ( मर्षा० पु० ३५२ )

विरचपाल ( म० पु० ) विरचपालति विरच-पा-निष्क-  
मन् । विरचपालक, विरचका पालन करनेवाला ।

विरचपालक—सहाद्रिबर्जित एक राजा । ( लृ० ३३१३ )

विरचपालन—सहाद्रिबर्जित राजमेद् । ( लृ० ३३१५ )

विश्वपालन ( म० लि० ) विश्वं पाचयतीति विश्व पू जिष्-  
न्मु । १ विरचको पबिन्न करनेवाला । ( भागवत ८।२०।१८ )

( लृ० ) २ तुम्सी ।

विरचपिण ( म० लि० ) व्याप्तदीप्ति, व्याप्त माघमें प्रकाश  
मान, जिम्को होमि फेस गद् हो । ( श्रृ० ३५३ )

विरचपुष् ( स० लि० ) विरचं पुष्पातीति विश्व पुष् विष् ।

विरचपोषक, स सारका पालन करनेवाला ।

विरचपूजित ( स० लि० ) विरचैः सर्वैः पूजितः । सर्व  
पूजित अणत् पूजित ।

विरचपूजिता ( लं० लृ० ) तुळसी ।

विरचवेगस् ( म० लि० ) बहुविध रूपयुक्त, बहुरुपा ।  
( श्रृ० १।१८।१३ )

विश्वप्रकाशक ( म० पु० ) १ सूर्य । २ आत्मिक ।

विरचप्रकाशित् ( म० लि० ) विरचं प्रकाशयतीति प्र-काश  
जिति । विरचप्रकाशक, विरचप्रकाशकारी ।

विरचप्रबोध ( म० पु० ) मगबाद् विष्णु ।  
( भागवत ५।२३।५ )

विरचर्षी ( म० लि० ) ऐदमोद्यत काटनैक विषे लप्यार ।  
( वैश्वोपनि० ३।१।३१ )

विरचरम्भ ( म० पु० ) विरच प्मातीति प्मा भस्मने  
( लृ० उक्तं रूपं प्मादीनि । उक्त् १।३।५८ ) इति नामन्  
प्रत्ययेन साधु । १ अग्नि । २ अग्र्या । ३ देवता ।

३ विश्वरूपी । ५ सूर्य । ( श्रृ० ३।३१ )

विश्वरूपी ( लं० लृ० ) अग्नि ।

विश्वरूप्य ( लं० लि० ) बहुविध रूप, अनेक प्रकारकी  
रूप ।

विश्वरूप्य ( लं० लि० ) प्रकृत्य घन । ( श्रृ० ३।३१ )

विश्वरूप्य ( लं० पु० ) विश्वस्य रूप्युः । विश्वका रूप्यु  
महादेव, शिव ।

विश्वरूप्य ( लं० पु० ) १ विष्णु । २ महादेव ।

विरचबीज ( लं० लृ० ) विरचस्य बीजम् । विश्वका  
बीजस्वरूप, विरचका आविष्कारण, मूलमहति, माया ।

विरचबीज ( लं० पु० ) विश्वस्य बीजो वस्य । बुद्ध ।  
( लिका० )

विरचमद् ( लं० पु० ) सर्वनामद् ।

विरचमरस ( लं० लि० ) विरचपोषक, विश्वका पालन  
करनेवाला । ( श्रृ० ४।१।३३ )

विरचमर्षु ( लं० पु० ) विरचस्य मर्षा । विरच। मरण  
कारी, विरचपालक ।

विरचमय ( लं० लि० ) विश्वस्य मय उत्पाद्यमान्मात् ।  
जिम्से विरचकी उत्पात्ति हुए हो, प्रकाश ।

विरचमानु ( लं० लि० ) सर्वनाम्नान्मैत्रक, पारों और  
जिम्का मैत्र फेला हुआ हो । ( श्रृ० ४।१।३ )

विश्वमात्र ( लं० लि० ) विरचमानन, परमेस्वर ।  
( भागवत १०।१।१० )

विरचमायन ( लं० पु० ) परमेस्वर ।

विष्णुमुञ्ज ( लं० लि० ) विरचं मुनक्ति मुञ्ज किप् । १ विरच  
मोगकारी ( पु० ) २ महापुष्टय । ३ इन्द्र ।

विष्णुमुञ्जा ( लं० पु० ) देवामेद् । ( लृ० ५।० )

विश्वम् ( लं० पु० ) बुद्धमेद् । ( हेम )

विश्वम्भ ( लं० लि० ) परमम्भर । ( हरिव ८ ३५६ म० )

विश्वम्भूत् ( लं० लि० ) विश्वं विमसि विश्व-भू किप् ।  
अग्रप्रदान द्वारा पालनकर्ता ।

विश्वमेवत् ( लं० लृ० ) विश्वैर्वा मेवत्तम् । शुष्ठी  
सौं ।

विश्वमेवत्ती ( लं० लृ० ) समस्त भाष्ययुक्त ।  
( श्रृ० १।२।३० )

विरचमार्ग्य ( लं० पु० ) विश्व मुञ्ज मसि । १ सर्वामुञ्ज,  
अग्नि । ( लि० ) २ विश्वरूपक । ( श्रृ० ५।३।३ )

विष्णुमया ( लं० लृ० ) अग्निजिह्वा अग्निकी मातृ  
जिह्वाकीमैमे एक जिह्वाका नाम ।

विश्वमनस् ( लं० लि० ) विश्व व्याप्त मनो वस्य ।

१ ध्यातमनाः, अत्यन्त मनस्वी । २ सभी चराचर पदार्थोंमें एकाग्रमनाः ।

विश्वमनुस् ( सं० पु० ) सभी मनुष्य ( ऋक् ६।४६।१७ )

विश्वमय ( सं० त्रि० ) विश्वं स्वरूपार्थे मयट्, विश्व-  
स्वरूप, सर्गमय, सर्वस्वरूप ।

विश्वमल्ल—बबेला वंशीय एक राजपूत सरदार, घोर धवल-  
कं पुत्र ।

विश्वमहस् ( सं० त्रि० ) विश्वं ध्यातं महस्तेजो यस्य ।  
ध्यातनेजस्क, जिसका नेत्र चारों ओर फैला हो ।

( ऋक् १०।६३।२ )

विश्वमहेश्वर ( सं० पु० ) शिव, महादेव ।

विश्वमातृ ( सं० स्त्री० ) विश्वस्य माता । विश्वकी  
माता, विश्वजननी, दुर्गा ।

विश्वमानुष ( सं० पु० ) विश्वं सर्गः मानुषः । सभी मनुष्य ।  
( ऋक् ८।४६।४२ )

विश्वमित्त ( सं० पु० ) माणवक । ( पा ६।३।१३० )

विश्वमिन्द्र ( सं० त्रि० ) विश्वव्यापक । ( ऋक् १।६१।४ )

विश्वमुखी ( सं० स्त्री० ) दाशायणी ।

विश्वमूर्त्ति ( सं० पु० ) विश्वमेव मूर्त्तियांस्य । विश्व-  
रूप, भगवान् विष्णु ।

विश्वमेजय ( सं० पु० ) विश्वके सभी शत्रुओंसे कम्प-  
यिता । ( ऋक् १।३५।२ )

विश्वमोहन ( सं० त्रि० ) विश्वं मोहयताति विश्व-मुह-  
णिच्छु । विश्वमोहनकारी, विष्णु ।

विश्वम्बर ( सं० पु० ) विश्वं विभक्तोति म् ( संशयो भृह-  
वृतीति । पा ३।२।४६ ) इति मुमु, ( अवर्द्धिषदिति । पा  
६।४।६७ ) इति मुमु । विष्णु, परमेश्वर । विष्णु समस्त  
विश्व-का भरण करते हैं, इसासे वे विश्वम्बर कहलाते हैं ।

विश्वम्बर—१ राजमेद । ( ऐतरेयब्रा० ७।२६ ) २ आनन्द-  
लहरीटाकाके प्रणेता ।

३ गरुडपुराणवर्णित वैश्वमेद । देवद्विजके प्रति  
इतकी बड़ी भक्ति रहती थी । एक दिन यमदण्डके  
मयमे ये अपनी स्त्री सत्यमेधाको ले कर तोषायात्राकी  
निकले । राहमें लोमश ऋषिसे इनकी भेंट हो गई ।  
लोमशने इनसे कहा, 'तुम जितने पुण्यकर्मा कर चुके हो,  
वे सभी एक श्रुतेसर्गके बिना निष्फल हैं ; अतएव

तुम पुनरतीर्षामे जा कर श्रुतेसर्ग करके अपने घर  
लौटो । इसमे तुम्हारे सभी दुष्टान नष्ट होंगे और  
महापुण्यका उदय होगा ।' तदनुसार विश्वम्बरने कार्तिक  
मासमें पुनर जा कर लोमशवर्णित विधिवत् यज्ञ समाप्त  
किया । इससे वाद् इन्होंने लोमशके साथ नाना तीर्थों मे  
परिव्रमण किया और अग्रेय पुण्य मन्त्रय दर सुत्रमें  
जोधन दिनाया था । इस पुण्यके फलमें दूसरे जन्ममें  
इनका योग्येन राजकुटुम्बे जन्म हुआ और ये श्रीपद्मा  
नन नामसे प्रसिद्ध हुए । ( गरुड उतर० ७।४८-२२५ )

विश्वम्बरक ( सं० पु० ) विश्वम्बर स्वार्थे क्त् । विश्वम्बर ।  
विश्वम्बरपुर—भोजराजका एक नगर ।

( भविष्यपु० २०।८६ )

विश्वम्बर मैंगिलोपाल्याय—एक कवि । कयोन्द्र चन्द्रो-  
दयमें इनके रचित श्लोकादिका परिचय है ।

विश्वम्बरा ( सं० स्त्री० ) विश्वम्बर-टाप् । पृथिवी,  
विश्वम्बरणके कारण पृथिवीका नाम विश्वम्बरा  
हुया है ।

विश्वम्बराभुज् ( सं० पु० ) विश्वम्बरां पृथिवी भुनक्ति  
भुज् क्षिप् । पृथिवीभोगकारी, पृथिवीपति, राजा ।

( रावतरत्रियां ८।२।६२ )

विश्वम्बरेश्वर—हिमालयस्थ शिवा देवमेद ।

( हिमवत् ५।१०६ )

विश्वम्बरपतिपद्—उपनिषद्मेद ।

विश्ववजस् ( सं० पु० ) ऋषिमेद । ( पा ६।२।१०६ )

विश्वयु ( सं० पु० ) वायु । ( मन्त्रार्थां० )

विश्वयोनि ( सं० पु० स्त्री० ) विश्वस्य योनि । १ विश्वकी  
योनि अर्थात् कारण, वह जिसने समस्त विश्व उत्पन्न  
हुया है । २ ब्रह्मा ।

विश्वरथ ( सं० पु० ) १ गाधिराजके पुत्रमेद । ( हरिवंश )  
२ सत्याद्विर्वाणित एक राजा ।

विश्वरद ( सं० पु० ) मग वा भोजक ब्राह्मणोंका एक वेद-  
शास्त्र । इसे वे लोग अपना वेद मानते थे । यह  
भारतीय आर्योंके वेदोंका विराधी था ( Visperad ) ।

विश्वराज ( सं० पु० ) सर्वाधिपति । विश्वराज देखो ।

विश्वराघस् ( सं० त्रि० ) १ सर्वेश्वर्यासम्पन्न, प्रभूत  
धनशील । ( अथर्व ७।१।७३ शायण )

विश्वरूपि ( स० पु० ) १ वैश्वोमिन्द्र । ( भारत श्रेयस्वर्ष )  
 २ वानवमेन्द्र । ( कृष्णगीत ० )  
 विश्वरूपो ( स० श्लो० ) १ अग्निमीमांसा जिह्वामीमंसे  
 एक जिह्वाका नाम । ( मुण्डकोपनि० १२।४ ) ( पु० )  
 २ महाभारतके अनुसार एक प्रकारको वैश्वोमि । ३ एक  
 वानवका नाम ।

विश्वरूप ( स० श्लो० ) १ बहुविधरूप, लाना रूप । ( गुह्य  
 पत्रः १६।२५ ) राजा कार्यसिद्धिके लिये लाना प्रकारक  
 रूप स्वीकार करते हैं । विश्वरूपेवरूपं यम्य । २ बिष्णु ।  
 ( देव ) ३ महादेव । ( भारत ७।२००।१२५ ) ४ त्यम्बुपुत्र ।  
 ( विष्णु १।१५।१२२ ) ५ मयवान् भोक्तव्यका बहु स्वरूप  
 जो उद्देहि गोताका उपदेश करने समय अशुभको  
 निवृत्तियाया था । भूमिभूगवगुह्यगोताक आधारके अन्वयार्थमें  
 यह इस प्रकार बयित है—

“अनेकबाहुरवकृतेषु पर्यामि त्वां लभतोऽन्तर्यम् ।  
 मर्त्यं न मम न पुनस्तर्षविर पश्यामि विरमेन्बर विश्वरूपं ॥  
 क्रितीर्त्तं गदितं चक्रिन्मन्त्र तत्रोपासितं लगीवीर्यसिन्धु ।  
 पर्यामि त्वां भूमिं पीठं तन्मन्त्रं वीरान्तर्यामिं यतिममेवम् ॥”  
 ( गीता ११ म० )

अर्जुनने भगवान्की यह अद्भुतपूर्व दिव्य कर मय  
 व्याकुल चित्तमें कहा था, ‘मगधन् । मैं आपका विश्व  
 रूप देख कर डर गया हूँ । समी आप अपना पूर्ण देवरूप  
 दिखाइये और प्रसन्न होइये ।

“अदूर्ध्वं हृषिनोऽस्मि हृष्टवा मनेन च प्रकृतिपतं मना मे ।  
 नरेव मे वर्गं देवकाम् प्रगीद रेवेन वगर्षिवाव ॥”  
 ( गीता ११।४५ )

मयवान् ध्राष्टव्यने अर्जुनका निवृत्तियाया था, बि  
 हम विश्वरूप कम्पुर्, मर्त्य, मज्जत आदि उपासित  
 गल तथा प्रयोवि देवगण जा कुछ दर्शनमें आत हैं ये  
 समी मेरे स्वरूप हैं ।

१ अशुभमेन्द्र । ( भारत वमार्त ) ७ सर्वाम्भक ।  
 ( मूक १-११०।०४ )

विश्वरूप—१ एक मिथुवरूप । ये अगस्त्य मिथक पुत्र  
 और महाभूमि भोक्षेण्यक अग्रज थे । वैदिककाल में वे  
 २ एक धार्मिक । महाभारत में मद्रिकाकरी इतका  
 कन्ठके दिया है । ३ एक अरवकावस्व । ईमाद्रिजन

परिचयलक्षणमें इनका परिचय है । बहुनेरे अनुमान करते  
 हैं कि इन्होंने ही याज्ञवल्क्यसमुत्पत्ती टीका लिखी थी ।  
 विश्वरूपने उम टोकाका बचन उद्धृत किया है ।  
 विश्वरूप आचार्य—शङ्कराचार्यक एक शिष्य । इनका पूष  
 नाम था सर्वेश्वर ।

विश्वरूपक ( सं० श्लो० ) १ हृत्पागुह का नाम अगार ।  
 २ राजावन्तरूप, बिभलोका पेश ।

विश्वरूप केजय—भागवतस्वसातस प्रह नामक तन्त्रग्रन्थके  
 रचयिता । तुहमन्त्र लक्ष्मी किरारे इनका नाम था ।  
 कोइ कोइ इन्हे केशवविश्वरूप नामसे पुकारते हैं ।

विश्वरूप गणक—गणेशलयागुह्यलक्ष्मी टीका, निष्  
 शार्पकृती नामकी लीलावतीटीका, सिद्धांतशिरोमणि  
 मरीचि मित्रांतसार्वभौम आदि ग्रन्थोंके प्रणेता । ये  
 रङ्गनाथके पुत्र और बन्नाल देवदके पीत थे । मुनीश्वर  
 उपाधिसे ये सर्वत परिचिन थे ।

विश्वरूपतीर्थ—इतलरवकासुक्तीके प्रणेता सुन्दरदेवक गुह्य ।  
 विश्वरूपतीर्थ ( सं० श्लो० ) तीर्थमेन्द्र ।

विश्वरूपदेव—त्रिकैमार्शगड नामक उदोतिःप्रथक प्रणेता  
 शतगुणाचार्यक पुत्र ।

विश्वरूपभारतीन्वामी—एक प्रसिद्ध योगी ।  
 विश्वरूपवत् ( सं० श्लो० ) विश्वरूप अन्वयमें मनुष्य ममय  
 प । विश्वरूपयुक्त विश्वरूपबिगिण, विष्णु ।  
 ( धर्मावध ७।२३।१ )

विश्वरूपि ( सं० श्लो० ) विश्वरूप अन्वयमें इति । विश्वरूप  
 बिगिण भगवान् विष्णु ।

विश्वरूप ( सं० पु० ) विगे रितः गर्तव्यम् । १ प्रया ।  
 ( देव ) २ बिष्णु ।

विश्वरूपक ( सं० पु० ) विश्वरूप रोषयतीति उन्व ङ्यु ।  
 १ नाद्रोम शाक मारीच नामका साग । २ कपूर या  
 वैशुक नामक साग ।

विश्वरूपान ( सं० श्लो० ) विश्वरूप अन्वय । १ विश्व  
 कम्पु विश्वरूपान । ( पु० ) २ सूर्वा और चन्द्रमा ।

विश्वरूप ( सं० पु० ) रूपमेन्द्र । ( तैत्तिरीय ३।३।१२ )  
 विश्वरूपि ( सं० श्लो० ) सर्वामीश्वरक ( नाम ) तैत्ति  
 रीय ३।३।१२ )

विश्वरूप ( सं० श्लो० ) १ बिष्णुगुह्य । २ बिष्णु है  
 ब्रह्मस ।

विश्वयसु ( स० पु० ) ऋषिमेद । ( तैत्तिरीयस० ६।६।८।४ )

विश्ववर्मन्—कुमारगुप्तके अधीन मालवके एक सामन्त ।

४८० ई०की गान्धारराज्यमें उत्कीर्ण इनकी जिलालिपि मिलती है ।

विश्ववर्णा ( स० स्त्री० ) भूम्यामलकी । भुईं आँवला ।

विश्ववलिन ( स० त्रि० ) सब प्रकारके विषय जाननेमें समर्था ।

विश्ववह्नु ( स० त्रि० ) १ विश्ववहनकारी । परमेश्वर ।

विश्ववाच् ( स० स्त्री० ) ईश्वर । ( हरिवंश २६६ अ० )

विश्ववाजिन ( स० पु० ) यज्ञाश्व, यज्ञका घोडा ।

( हरिवंश १६४ अ० )

विश्ववार ( स० त्रि० ) १ विश्ववारक, संसारनिवर्त्तक ।

२ सभा व्यक्तियोंका पूजनीय । ( ऋक् १।४८।१३ ) स्त्रियां टाप् । ( पु० ) ३ यक्षीयमोमका संस्कारविशेष ।

( शुक्लयजुः ७।१४ वेददीप )

विश्ववारा ( स० स्त्री० ) अग्निगोत्रकी स्त्री । ये ऋग्वेदके

५म मण्डल-२८ वें सूक्तकी १मसे ६६ ऋक्की ऋषि थीं । इन ऋकोंमें इनका विषय यों लिखा है,—

“आग्नि प्रज्वलित हो कर आकाशमें दीप्ति फैलाती है और ऊपाके सामने विस्तृतभावमें प्रदीप्त होती है, विश्ववारा पूर्वाभिमुखी हो कर देवताओंका स्तव करतीं और हृद्यपात्र ले कर ( अग्निकी ओर ) जाता है । हे अग्नि ! तुम सम्भक्करूपसे प्रज्वलित हो कर अमृतके ऊपर आधिपत्य करो, तुम हृद्यदाताका कल्याण करनेके लिये उनके समीप उपस्थित रहो ; तुम यजमानके पास वर्त्तमान हो, उन्हें प्रचुर धनलाभ हो और तुम्हारे सामने वे अतिधिषोम्य हृद्य प्रदान करें । हे आग्नि ! हम लोगोंके विपुत्र पेशर्याके लिये शत्रुओंका दमन करो । तुम्हारी दीप्ति उत्कर्ण लाभ करे, तुम दाम्पत्य सम्बन्ध सुशृङ्खलायद्ध करो और शत्रुओंके पराक्रमको खर्च कर डालो ।”

विश्ववार्या ( स० त्रि० ) विश्वकार । ( ऋक् ८।१६।११ )

विश्ववाम ( स० पु० ) १ सर्वालाककी आवामभूमि । २ जगत्, संसार ।

विश्ववाह्नु ( स० पु० ) १ महादेव । ( भा० १।३।१७।५ )

२ विष्णु । ( भा० १।३।४।४० )

विश्वविख्यात ( स० त्रि० ) जगद्विख्यात, सर्वात् प्रसिद्ध ।

विश्वविजयी ( स० त्रि० ) सर्वात् जयशील ।

विश्वविदु ( स० त्रि० ) १ सर्वज्ञता लाभ करनेमें समर्था ।

( ऋक् १।१६।४।१० सायण ) २ सर्वज्ञ । ३ सर्वधिषयके क्षापक, जो विश्वकी सय बातें जानता हो, बहुत बडा परिद्धत । ( ऋक् ६।७०।६ सायण ) ४ ईश्वर ।

विश्वविद्यालय—जिस विद्यालयमें बहुत दूरसे छात्र आ कर ऊंची श्रेणीकी विद्याशिक्षा प्राप्त करने हैं, उसीको विश्वविद्यालय कहते हैं । यह “विश्वविद्यालय” शब्द इस समयकी रचना है । सच पूछिये, तो यह अंगरेजी University-का ठीक अनुवाद है । क्योंकि १०।६० वर्ष पहले भारतवर्षमें यह शब्द प्रचलित नहीं था । बहुत दिनोंसे भारतवर्षमें “परिषद्” (Council of education) नामक एक स्वतन्त्र पदार्थ था, उससे ही वर्त्तमान विश्वविद्यालयका कार्य परिचालित होता था । उपनिषद्में हम ऐसे परिषदोंका उल्लेख देखते हैं । भारतवर्षके अन्तर्गत काश्मीर देशमें सर्वाप्रथम परिषद् या वेदाध्यापनाकी ऊंची सभा प्रतिष्ठित हुई थी । शाङ्खायनब्राह्मणमें इसका आभास इस तरह पाया जाता है,—

“पथ्यास्वस्तिरुदीचां दिश प्राजानात् । वाग्वै पथ्यास्वस्तिः । तस्मादुदीच्या दिशि प्रजाततरा वागुद्यते । उदञ्चे उ एव यान्तिष्वाचं शिक्षितुं । यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्ते इति रमाह । एषा हि वाचो दिक्प्रजाता ।” ( शाङ्ख० ब्रा० ७.६ )

भाष्यकार विनायक भट्टने लिखा है—“प्रजाततरा वागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कोर्यन्ते । वदरिकाश्रमे वेदघापः श्रूयते । वाचं शिक्षितुं सरस्वती प्रासादार्थमुदञ्चे ।”

सुतरां भाष्यानुसार उक्त ब्राह्मणाणका इस तरह अनुवाद किया जा सकता है—“पथ्यास्वस्ति उत्तर दिशा अर्थात् काश्मीर देश जाना जाता है । पथ्यास्वरित ही वाक् अर्थात् सरस्वती है । काश्मीर ही सारस्वत स्थान कहा जाता है । लोग भाँ इसीलिये काश्मीरमें विद्याशिक्षा करने जाते हैं । प्रवाद है, कि जो लोग उस दिशासे आते हैं, सभी “चे कहते हैं” यह कह कर उनके ( उपदेश ) सुननेकी इच्छा करते हैं । क्योंकि वहा ही विद्याका स्थान है, ऐसा प्रसिद्ध है ।

इस समय जिस तरह आचमणकोई, मिष्टिक आदि यूरोपीय विरश्चविद्यालयोंसे उत्पीर्ण छात्र वा मर्यादाको की बात यूरोपीय मान्न हो आर और यत्के माध सुनते हैं, मात्र ओ काजो वा नवद्वीप ( नदिया )-से शिक्षित और उच्च उपाधिप्राप्त परिदृष्टतमएकजो भारतमें सर्वत्र जिस तरह आर पातो है, बौद्धप्राधान्यकालमें जिस तरह नालन्दाको परिपुसं इक्षोर्ण और सम्मान प्राप्त आचार्य गण बौद्धतगत्क सब स्थानोंमें सम्मानलाम करते और उनक उच्यैग वेक्ष्वाक्यवत् बौद्धममात्र प्राप्रहक माध सुनता था, वैदिक समयमें अर्थात् धा५ हजार वर्ष पहले भारतवासी उनी तरह काश्मारक आचार्योंकी बात मानते थे। इसीछिये मोल्दुम होता है कि काश्मीर विद्याका आदिस्थान वा इन्का नाम इसासिये शारदा पीठ है।

इस समय जिस तरह उच्च शिक्षाक सिधे बिभिन्न शहरों वा राजधानियोंमें विश्वविद्यालयोंको प्रतिष्ठा हैकी जाता है, प्राचीन कालमें ऐसे जनबहुल स्थानों वा राजधानियोंमें उस तरहकी उच्च शिक्षाका व्यवस्था न थी। उपवनक बाद ही द्विजातिको निरखन अरण्य वेदिन गुदक आधममें जा इक्ष्वाप्य<sup>१</sup> बधसम्बन्धपूर्वक सबस्थान करना पड़ता था। जो सब उच्च-विद्यामें पाठित्यसाम करनैक अमिसायां होते, धे ३५ वर्ष तक गुदगृहमें रहते थे। उच्च शिक्षाक शिक्षार्थीका आधम स्थान प्रथम काश्मीरमें शारदापाठ इसके बाद बर्तिका धम और पौराणिक युगमें भीमपारण्य निधि<sup>२</sup> था। उक्त तीनों स्थानोंसे ही भारतवर्षीय सहस्र सहस्र आचार्योंका अम्पुस्य हुआ था।

इस समय जैसे एक एक विश्वविद्यालयक एक एक अध्यक्ष या प्रिंसिपल (Principal) हैने जाले है, पहले समयमें भा वैदिक और वीराणिक युगमें वैदिक ही अध्यक्षता होना प्रमाणित होना है। ऐसे अध्यक्षों वा कुम्पति नाम था। यूरोपीय वा यहांके प्रिंसिपल बेलन से कर उच्च-शिक्षा हैने है; टिन्नु भारतक पूरुतन

कुम्पति बेलन लेना तो दूर रहा एक एक कुम्पति १० हजार शिक्षको कवक्ष बिध दान महा छात्रको शिक्षाको समाप्ति वा समाप्शन तक अन्नदानादि द्वारा भरण पोषण करते थे। १।

“युनीना दक्षतरस बोद्धदानारिपोषयात् ।  
अध्यापयति विप्रिखी कुम्पति स्मृताः ॥”

यहां भारत पुराणादिसे अज्ञि गौतक, उमयथा आदि मुनिको हम कुम्पति आख्यासे अमिहल हैने है ।

वैदिक और पौराणिक युगमें जिस तरह उच्चशिक्षाके सिधे निरखन आधम निर्दिष्ट था, आदिबीद्युगमें भी पहले वैसा ही व्यवहार किनाई होता। पोछे बौद्धयुगमें भारतक पश्चिम प्रान्तमें गम्पार और उपातनं तथा पूर्व-भारतमें विहारक अतगत नालन्दामें बौद्ध विश्वविद्यालय प्रातिष्ठित हुए थे। उक्त दो स्थानोंमें जितने विहार और विद्याविहार स्थान थे, सबों पर कस्तुल करनेको भार एक कुम्पति पर निर्दिष्ट था १।

चीनपरिभाषक यूनलुचङ्गु ७वीं शताब्दीमें नालन्दा में आ कर यहां कुछ दिनों तक ठहरे थे। यहां उन्होंने बहुत बौद्धशास्त्रोंका अध्ययन किया था। उस समय जो नालन्दामें ५० हजार शिक्षार्थी उपरिष्ठत थे। चीन परिभाषकोंके बिवरणसे मालूम होता है कि कबख भारत वा चीन ही नहीं, सुदूर कोरिया और भारतमहा सागरक द्वीपयुञ्जस बहुतेरे छात्र यहां उच्च शिक्षालाम करनेके सिधे जाते थ। इस नालन्दाका विश्वविद्यालय वैकनैके सिधे आ कर कोरियाक सुप्रसिद्ध अमण धाय बर्म (A-di-y po-mono) और होइ ये (Ho-en-ye) जे प्रायः ६४० ई०में यहां ही प्राण बिमर्जन किया था १।

१ नीचरूपमें महाभारतकी टीकामें मिलता है—“एक्ये एव नरक्षायि बोञ्जराप्रदिना भवेत् । ए वे कुम्पतिरिति”

( १११११ )

+ “एतु दृषिष्यां तव” निरिरेतु बुलगाविरयं भित्ता ॥” मुच्य कर्दिक मातकको इत उच्यने अन्ती एव मामूम होता है कि ई० उन्की १वीं शताब्दीमें भी कुम्पतिकी मया कितुन मरी हुई थी

१ “एद्विंशराष्टिक वर्षे पुती वैदिक अतु ॥”

चीनपरिव्राजक यूएनचुयङ्ग नालन्दा में जब आये थे, तब शीलभद्र यहाँके कुलपति थे।

वैदिक या पौराणिक युगके विश्वविद्यालय निर्जन-वन प्रदेशमें पर्णकुटिरमें स्थापित थे। वीद्योंके प्राधान्य-कालके विश्वविद्यालय वैसे नहीं थे। वीद्वराजाओंके यत्नसे प्रस्तरमय सुवृहत् अट्टालिका या विहारमें विश्वविद्यालयका कार्य्य सम्पन्न होता था। चान परिव्राजक ७वीं शताब्दीमें गान्धार और उद्यानमें ऐसे निश्वविद्यालयोंका ध्वसावशेष देख गये हैं। किन्तु उम समय नालन्दाका सुवृहत् विश्वविद्यालय ध्वसमुग्रमें पतित नहीं हुआ था। उम समय भी इन्में १० हजार छात्र एक साथ बैठ कर अध्यापककी उपदेश भरी बातें सुनते थे। प्रस्तरमयी अट्टालिकामें ऐसे सुवृहत् प्रस्तर वेदिका विद्यमान थी। ८वीं शताब्दीसे ही नालन्दाका विश्वविद्यालय परित्यक्त हुआ और ९वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें नालन्दाके (वर्त्तमान वराणासके) निकटवर्ती विक्रमशिलामें (वर्त्तमान जिलाउ ग्राममें, गौडाधिप धर्मपालके यत्नसे अभिनव तान्त्रिक वीद्योंके लिये नये विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई। १म महापालके समयमें और उनके यत्नसे विक्रमशिलाकी स्थाति दिगन्त-विश्रुत हुई थी। इस गौडाधिपने दीपङ्कर श्रीशानको विक्रमशिलाके प्रधान आचार्य्यपद पर अभिषिक्त किया था। इस समय इस स्थानमें ५० प्रधान आचार्य्य थे। मुसलमानोंके आक्रमणसे वहाँकी वह प्राचीन वीद्वकीर्त्ति विध्वस्त हुई।

वीद्वयुगमें वीद्योंके आदर्श पर हिन्दू और जैनोंके बीचमें भा विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रधान प्रधान मठ उन सम्प्रदायोंके आलोच्य शास्त्रग्रन्थ पढनेके छोटे विश्वविद्यालयके रूपमें गिने जाने लगे। अत प्राचीनकालमें आर्य्य हिन्दूसमाजमें जैसे आश्रमवासी शिक्षार्थियोंमें ब्रह्मचर्यादि पालन और पाठनियम प्रवर्त्तित थे, बौद्ध-विहार या विद्यालयोंमें भी अधिकांश वे ही नियम प्रचलित हुए। परवर्त्ती हिन्दू और जैन मठोंमें भी उन्हीं नियमोंकी सामान्य रूपसे परिवर्त्तन और समयोपयोगी बनाकर चलाया गया। शङ्कर और रामानुज सम्प्रदायके मठों और गिरनार, अहमदाबाद आदि स्थानोंका

मठ भारताय छांटो विश्वविद्यालय माना जा सकता है। बहुत दृग्में विद्यार्थी आ कर वहाँ ग्रामाच्छादन और उपयुक्त विद्याशिक्षा पाते रहे।

वीद्व-प्रभावके अचमान और वैदिक धर्मके अभ्युदय-कालमें कान्यकुब्ज और काशीमें ही वैदिक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुए थे। मुसलमान आक्रमणमें कन्नौज विद्यालयके लुप्त होने पर काशी आज भी हिन्दू समाजमें प्रधान शास्त्रवर्त्ता और शास्त्रशिक्षाका स्थान कदा जाता है। १६वीं शताब्दीसे नवद्वीप न्यायवर्त्तामें सर्वप्रधान शिक्षापरिपट्ट कदा जाता है। आज भी नवद्वीपका वह प्राधान्य अक्षुण्ण है। यदा आज तक काशी, काञ्ची, द्राविड और ता कया उत्तरके काश्मीर और दक्षिणके मुद्दूर सेतुबन्ध रामेश्वरसे छात्र न्यायशिक्षाके लिये आते हैं।

यूरोपीय विश्वविद्यालय।

प्राचीन भारतमें आर्य्यऋषिगण शास्त्रीय या धर्म तत्त्वादि उर्चाशिक्षा प्रदानके लिये परिपट्ट स्थापन कर साधारणको शिक्षा प्रदान करते थे। उसके वादके समयमें अर्थात् वीद्वयुगमें सभ्यताके प्राक्वर्ष्यके साथ साथ मठादिमें भी उसी भावसे उर्चाशिक्षा प्रदानकी व्यवस्था हुई थी।

विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिये ही विश्वविद्यालयोंकी प्रतिष्ठा होती है, यह बात यूरोपीय परिदृष्टिों मुक्तकण्ठसे स्वाकार करते हैं। इतिहासकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि ६ठी शताब्दीसे १२वीं शताब्दी तक रोमक साम्राज्यके अधीनस्थ विद्यालयोंमें देवपूजकोंकी शिक्षाप्रणाली बलवती थी। वर्वर्त्ती द्वारा रोमसाम्राज्य आलोडित होने पर यह शिक्षा केवल किम्बदन्तियोंमें परिणत हो गई। शेषोक्त शताब्दीमें धर्ममन्दिरसंश्रिष्ट विद्यालय और मठ प्रतिष्ठित हुए और जनसमाजमें इन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

उपरोक्त कथिङ्गल स्कूलमें केवलमात्र धर्मयाज्ञकोंको उपयोगी शिक्षा दी जाता था और मठमें सन्व्यासी और श्रमण सम्प्रदायके उद्देगानु-रूप शिक्षाकी व्यवस्था हुई थी। उक्त दो तरहके विद्यालयोंके साथ राजविद्यालयोंमें शिक्षाप्रणालीका यथेष्ट

वैयक्तिक विचारों सेना था। क्योंकि इन शैक्षिक विद्यालयों में शैक्षिकों की प्रतापशाली शिक्षा दी जाती थी। इनके निवा राजविद्यालयों में कृष्ण धर्मनस्वकी शिक्षा भी प्रचलित थी। क्योंकि उस समय प्राचीन धर्मग्रन्थोंके सिवा अन्य पुस्तकोंका अधिक प्रचलन न था और शिक्षा विस्तारके लिये उस समयके शिक्षक इन सब पुस्तकोंका परिष्कार कर नहीं सकते थे। कभी कभी अरिष्टम परकायरी, मार्टिवात्म कर्मका और विद्यालयके सेक्रेटरीप्रभृत तर्कोंकी कुछ अर्थमें शिक्षा दी जाती थी।

परोमिन्त्रियन् राजवंशके राजत्वकालमें फ्रांसीसी राज्यमें विद्याशिक्षाका आंगिक विद्यय सापित हुआ। इसके बाद पियोडोरस, बिडे और आलफुनोके यत्नमें विद्याशिक्षाकी उन्नतिके विषयमें पुनरायोजन हुआ। 17वीं शताब्दी और 18वीं शताब्दीमें सन्मार् "चार्ल्स दी ग्रेट" के आकाशुसार और आलफुनोके यत्नसे फ्रांस्-केरिबक शिक्षाविभागमें महान् संस्कार हुआ और एक ही Monastic और Cathedral school में शिक्षा देनेकी व्यवस्था बिबिध हुई। इस समय राजद्वारकी मधीनतामें जो Palace school परिचालित होता था, वह ठका शिक्षा प्रदानका एक प्रधान केन्द्र हो गया। पियोडोरस आंगिकी चर्चार् पद्धतिका अनुसरण कर धर्मार्थाध्य विगरी की प्रेठने इङ्ग्लैण्डमें भी शिक्षा प्रयागीकी सुव्यवस्था की थी।

18वीं शताब्दीमें रोमाधीनस्थ कृष्ण जगत्में (Latin Christendom) घोरतर राजविप्लव उपस्थित होनेके साथ साथ विद्याशिक्षा विस्तारमें भी मयानक मन्वराय उपस्थित हुआ। इसके बाद फ्रांसकी राजधानी पारी नगरमें विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा होनेके समयसे पारकाल-यगतमें शिक्षा विस्तारका प्रचार फिर बढ़ गया। कि तु वर्तन समयमें वर्षात् 18वींसे 19वीं शताब्दीके प्रारम्भ काल तक फ्रान्च स्थानमें लक्ष्यप्रतिष्ठ शब्दायक साधा रणकी शिक्षा देनेमें परबशील थे।

पूर्वोक्त आलफुनो सार्देन जर्द दुम् (Tour) नगरके सेण्ट मार्टिन मठके (The Great Abbey of St. Martin) विद्यालयके प्रधान आचार्य पद पर अधिष्ठित रह कर

शिक्षा विस्तारमें कटिबद्ध हुए। सब पृष्ठिये, तो उनके ही यत्नसे एक मठ विद्यालयके आवर्ती पर ही विश्व विद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई। उन्होंने नये नये विषयोंकी शिक्षाका प्रचारी बन उस समयके साहित्यकी नये माध में स सृष्ट कर लिया था और नर प्रयागीसे शिक्षा देने की विधिका प्रवर्तन किया।

पहले ही कहा गया है, कि 18वीं सदीमें पारी युनि वर्सिटीके स स्कारके साथ यथार्थमें विश्वविद्यालय की मित्तिका स्थापन, गठन और उन्नतिसाधन हुआ। 18वीं शताब्दीके पहले भी यहाँ न्यायशास्त्र (Logic)का आढोचना होती थी। 18वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहाँ चम्पोवासी बिलियम नामक एक अध्यापकने न्यायशास्त्र का एक विद्यालय स्थापित किया। इसमें मौलिक स्थाप-शास्त्रीय तर्कोंकी मीमांसा होती थी। अध्याप्य अर्था पकोंकी अपेक्षा विक्रियमके शिक्षाकीशालसे पारी विद्या लयकी सुख्याति चाते मोर विस्तृत हो गई। विस्ति यमके शिष्य सुविख्यात आबिडार्ड और उनके शिष्य Sentences नामक ग्रन्थके स प्रहकर्ता सुप्रसिद्ध विशाप पिटर क्रोमवाड (1142 ई०में न्यायशास्त्रकी अध्यापनामें पारी विश्वविद्यालयकी स्वीर्षस्थानमें पहुँचा दिया था।

इससे पहले इटली राज्यके साबोर्नो नगरमें एक आधुर्बेद विद्यालय प्रतिष्ठित था। कुछ क्रोमोका अनु मान है, कि 17वीं शताब्दीमें सरासेनेक यत्नसे यह स्थापित हुआ था। किन्तु De Renzi, Paccanotti आदि ऐतिहासिकोंने विशेष अनुसन्धानके बाद स्थिर किया है, कि इस विद्यालयके साथ सरासेनेका कोई सम्बन्ध न था। क्योंकि Crivitas Hippocrates की प्रतिष्ठामें बिबिध न होने तक भारतीय मेघवतस्थादि पारकाल्य जगत्में लिये न गये।

रोमकेने युवानियोंकी प्राचीन शिक्षापद्धतिका अनु सरण कर ही आधुर्बेदविद्याली शिक्षा प्रचार की। 18वीं शताब्दीमें दक्षिण इटलीमें युवानो मायाका आर्ध था, येसा अनुमान होता है। आर्कथ्यका विषय है, कि सामार्नो और इन आधुर्बेद विद्यालयसे उत्तरी वहुतेरी डाक्टर ही लिया गी। इसक बाद पारिया नगरके क्रोमार्ड सा स्कूल (Schools)



of Lombard Law) और रोमनाके रोमन ला स्कूल उल्लेखनीय हैं। १००० ई०में बोलोगनाका साधारण विद्यालय प्रसिद्धि लाभ कर रहा था। सन् १३१३ ई०के लगभग किसी समयमें सुप्रसिद्ध व्यवस्थातत्त्वज्ञ इरनेरियस (११००-११३० ई०) यहां दीवानी कार्य-विधिकी अध्यापना कराते थे। उनसे भी पहले प्रायः १०७६ ई०में किसी समय पिपो नामके एक अध्यापक "Digest" शिक्षा देने थे। Schulte के मतसे सन् ११४७ ई०के समकालीन प्रेसियानकं डिक्रिटम और इसके बाद Corpus Juris Civilis नामक व्यवस्थाग्रन्थ संगृहीत हुए।

इस तरह रोमन विधिका प्रबल प्रचार होने पर भी सच पूछिये, तो ११५८ ई० तक विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। १३वीं शताब्दीके मध्यभागमें व्यवस्थातत्त्वज्ञानके विभिन्न केन्द्र एकत्र हो कर Ultramontani और Citramontani नामक दोनों Universitates के अन्तर्भूक्त कर दिये गये। इस समय Johannes de Varanis प्रथमोक्त और Pantaleon de Pcnetus श्रेयोक्त प्राचाके रेक्टर थे। सन् १२५३ ई०में ४वां हनोसैण्टने इस विश्वविद्यालयकी नई प्रशस्ति पदानके समय इनके संगठनके सम्बन्धमें कहा था, "rectores et universitas scholarium Bononiensium" १६वीं शताब्दीमें ये दो प्राचाएं एक रेक्टरकी अधीनतामें परिरक्षित हुईं।

बालको'की आइन शिक्षाके लिये उपयुक्त विभिन्न शिक्षा-समितियोंके सिवा बोलोगनामें चिकित्सा और साधारण शिक्षा दानके लिये तुरिष्ट रेक्टरोंकी अधीनतामें एक रेक्टर नियुक्त था। सन् १३०६ ई०में वे सम्पूर्ण स्वाधीनभावसे विश्वविद्यालय चलानेके अधिकारी हुए। यूनिवर्सिटीरिसके सिवा उस समय वहां College of Doctors of Civil Law, College of Doctors of Canon Law, College of Doctors in Medicine and Arts और १३५२ ई०में College of Doctors in theology प्रतिष्ठित हुए।

ऊपर कहा गया है, कि पारीनगरीमें विश्वविद्यालयकी यथार्थ उन्नति हुई थी। यहां उच्चशिक्षाके सम्बन्ध-

में घर्गतत्त्व, व्यवस्थातत्त्व और चिकित्सा तथा निम्न-शिक्षाके सम्बन्धमें फ्रांस, इंग्लैण्ड पोछे जर्मनी, पिकाडी और नर्मैण्डोकी साधारण शिक्षा दी जाता थी। सन् १२५७ ई०में रावर्ट डो० मोरवोन द्वारा पारीनगरीके सुविख्यात सोरबोन कालेज प्रतिष्ठित हुआ। उस समय विश्वविद्यालय और नाभारके कालेजमें घर्गतत्त्व शिक्षाने विशेष ग्याति लाभ की। सन् १२६२ ई०में पारी और बोलोगनाके प्राचीनतम विश्वविद्यालय ४वां निकोलसके आदेशपत्र लेनेमें बहुत ममुत्सुक हुए थे।

सन् ११६७ ६८ ई०में इंग्लैण्डके अक्सफोर्डनगरका साधारण विद्यालय studium generaleमें परिणत हुआ। इससमय पारीसे अंग्रेजजात धाध्य होकर इंग्लैण्डमें लौटे और अपने अध्ययनमायसे शिक्षार्थीकार्योंके लिये उन्होंने अक्सफोर्ड नगरके विद्यालयकी उन्नति की। क्योंकि टामास बेकेटके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजा २रे हेनरीने एक आज्ञा प्रचारित कर इंग्लैण्डके सब लोगोको फ्रान्सोसी राज्यमें इंग्लैण्डमें लौटे आनेको कहा और इसकी भी मनाही कर दी, कि कोई भी इंग्लिश चैनेल पार कर फ्रांस न जाने पाये। सुसम्य फ्रान्सिसियोंने भी बेकेटके साथ राजाके कलहका खयाल कर वैदेशिक छात्रोंको निकाल दिया।

सन् १६३१ ई०में आर्क बिनाप लाडने शिक्षाविभागके नेता हो कर एक अनुशासनके बल पर Hebdomadal Board अमिधेय समितिके हाथमें युनिवर्सिटीका कार्य भार सौंप दिया। १६वीं शताब्दीके मध्यभाग तक वेही परिचालक रहे। केंब्रिजनगरमें उस समय Caput Senatus नामकी एक छोटी समिति थी।

सन् १८६३ ई०का राजसनदके बलसे वेल्स प्रदेशके पवारिष्टोबाइथ, कार्डिफ और वाट्नोर, कालेजको एकत्र कर वेल्सका युनिवर्सिटी स्थापित हुई। सन् १६०० ई०में पार्लियामेण्टकी कार्यविधिके अनुसार और राजसनदके बल पर पूर्वतन मेसन कालेज वर्मिंडाम युनिवर्सिटी रूपमें परिवर्तित हुआ। सन् १८६८ ई०के युनिवर्सिटी आक्ट लण्डन एक्टके अनुसार और १६०० ई०में कमिश्नरो'के अनुशासनके बल पर लण्डनकी युनिवर्सिटी कायम हुई।

साधारण और उच्चतम शिक्षाके सिवा यूरोप महा-  
देशमें बाणिज्य और शिक्षणविषयक शिक्षादानका बहुत  
समाहर देना जाता है। मन् १८१२ ई०में एण्डरवर्ष  
नगरमें Institut Supérieur de Commerce सब १८८१  
ई०म वारी राजधानीमें Ecole des Hautes Etudes  
Commerciales और बोर्दों, डामार, लिम्स लिउवस,  
मासायम, डिब्रों, मास्टपोलियर, स्थास्टस नाक्स और  
राउपल नगरमें बाणिज्य और शिक्षणविद्याकी उच्च श्रेणी  
के विद्यालय प्रतिष्ठित हुए। ऊपर कथित बाणिज्य  
विद्यालयोंके सिवा पारीसगरीमें Institut Commer-

cial और Ecoles Supérieures de commerce नामक  
और मो बो इसी श्रेणीक उच्च विद्यालय देके जाते हैं।  
जर्मन साम्राज्यके श्लोपज़िक्, कोलन, ब्राफेल्स, इतोरम  
और फ्राङ्कोर्ट ( माइन नदीके किनारे ) नगरमें  
Handelhochschulen नामक विद्यागार स्थापित हैं।  
राजधान्यहसि ये सब विश्वविद्यालय अपने छात्रोंको पार  
दृष्टिाके अनुरूप उपाधि देनेमें समर्थ हैं, किन्तु  
फ्रांसीसी या बेल्जियम् विद्यालयोंको इस तरहका  
अधिकार नहीं।

तोये विश्वविद्यालयों और नगरके नाम और प्रतिष्ठा  
काम लिखिये हुए।

स्थानोंके नाम	ई०सन्	स्थानोंके नाम	ई०सन्	स्थानोंके नाम	ई०सन्
आवाडिन	१४१४	बोन्नोगना	११५८	काराकास	
माबो	१५४०	बर्मर्	१८५०	कटानिया	१४४४
माडोलेइ (१)	१८४२	बोल्न	१८१८	काबोबा ( मार्सेइलिया )	
माडोलेइ (२)	१८४४	बोर्दों	१४४१	काहोर	१३३२
माप्रास	१८५१	बुर्जेन्	१४५५	कलकत्ता	१८५०
मलक्यास्का	१४३३	ब्रेसन्यो	१४०२	कजरोज	१२वीं सदी
माब्रहर्ष	१५४८	ब्रुसेलस	१८३४	कुशियाना	१८११
मासस टूर्डम	१८४०	बुदापेष्ट	१५१५	कोरन्ना	१३०३
मामस्टर्डम फो०	१८८०	वैसानसोन ( डोम नगरमें स्थापान्तरित )	१४२२	कलम्बिया कालेज ( U.S. )	१४४५
माजिपार	१३०५	व्यूलस परिस	१४४०	कोलोन	१३८८
मबाहाबाद्	१८८०	बुरैषाक	१८५४	कोर्णैथ	१८५५
पयेरस	१८३०	कापल	१४३०	कोपेन हेगेन	१४४३
मारैड्या	१२१५	केडिज (Medical Faculty of Seville)	१४४८	कजको	१३३४
मामिगानोम	१३०३	कीगमियरी	१५३५ पुना प्रतिष्ठित १४२० और १४३४	किप्रोन	१४२२
मामबर्ग	१६४८	कामैरिनो	१४२० प्रतिष्ठा १८६०से यह फो दुनिवर्सिटी हो गया।	डेमेक्सिक् कालेज	१५३१
मामेस	१४५३	कोनिगसबर्ग	१५४४	डोरपाट	१३३२
मार्डिन	१८०३	सिप्टिमिक	१४०३	डारहम	१८३२
मार्स	१८३४	मैमबार्क	१४८४	एपस-यन् प्राविन्स	१४०३
मार्सिंझोना	१४५०	डैरिड्या	१३००	एडिनबर्ग	१५८२
मरफगट	१३४५	डिडिन	१५४५	आक्सफोर्ड	१२वीं सदी
मर्काज़िन	१४४३	मिमा	१५५१ और १५६१	पादना	१३४३
मैलाप	१३३१			पाडुया	१२२२
मन्नीरैस	१३२०			प्याबेन्मिया	१५१४
मन्स	१४१४			पाठाम्बो	१४४३
मन्नीकार	१५८५			पाटी	१२वीं सदी

स्थानोंके नाम	ई०सन्	स्थानोंके नाम	ई०सन्	स्थानोंके नाम	ई०सन्
फ्राङ्कफोर्ट (ओडरके किनारे)	१५०६	लिज्	१८१६	पार्मा १४२२, संस्कार	१८५५
फ्रि बार्ग	१४५५	लएडन	१८२६	पामिया	१३६१
फ्रि बार्ग ( स्वीटजरलैण्ड )	१८८६	लीभेन	१४२६	पेन्सिल भ्यानिया	१७५१
फुन्फकार्केन	१३६७	लीसाना १५३७ प्रतिष्ठा, १०६०	विश्वविद्या	पारपिगनान	१३७६
जेनिवा	१८७६	लाएड	१६६८	पेरुजिया	१३०८
जाणोंविट्ज	१८७५	मांगोल ( कनाडा )	१८२१	पियासेनजा	१२४८
जेन्ट	१८१६	मेसिना	१८३८	पोड्टियर्ग	१४३१
गिसेन	११६०७	मान्द्राज	१८५७	प्रेसवर्ग १४६५, पीछे व न्धओ	
ग्लासगो	१४५३	माड्रिड	१८३७	१८७५ से व्यवस्थाशास्त्र अद्ययन	
गोथेन वर्ग १८४१ ( यहा केवल		मासरेटो	१५४०	के लिये रक्षित ।	
दार्शनिक शास्त्रोंकी थालो-		मेनज	१४७६	प्रेग	१३४७
चना और उपाधि दी जाती है । )		मान्बर्ग	१५२७	प्रिन्सटोन	१७४६
गोट्टिङ्गेन	१७३६	मेलबोर्ग	१८५३	पंजाव (लाहौर)	१८८२
ग्राज	१५८६	मोदेना १२वींसदी, घाट १६८३	किन्स युनिवर्सिटी	आयरलैण्ड	१८५०
ग्रिफसवाल्ड	१४५६	मन्टपेलियार	१२८६	किन्म युनिवर्सिटी	किन्सटोन १८४०
ग्रानाडा	१५३१	मल्टिल	१८२१	कुञ्चेक	१८५२
ग्रेनोबल	१३३६	मल्टिभिडो	१८७६	रेजिओ	१२वां शताब्द
ग्रोणिनजेन	१६१४	मस्काउ	१७२५	रिन्टेन	१६२१
हाले ( Halle )	१६६३	मान्सटार १६२६ पोपेकी आज्ञामें प्राप्त,	रेकजाविक		१६०१
हार्डरविजक	१६००	१७७१-७३में प्रतिष्ठा, १८१८	रोम		१३०३
हार्मार्ड कालेज	१६३८	ई०से इस विश्वविद्यालयमें	रष्ट्रक		१४१६
हावाना	१७२१	देवदत्त और दर्शन शास्त्रीय	रायल युनिवर्सिटी	आयरलैण्ड	१८८०
हिडेलबर्ग	१३८५	उपाधि दानकी व्यवस्था हुई।	मेन्ट टामस (मानिला)		१६०५
हेल्मस्टाट्	१५७५	म्युनिक	१८२६	सेण्ट एन्ड्रुज	१४११
हेल्सिफोर्मा	१६४०	न्यान्टिस	१४६३	सेण्ट डेमिडस	
हुयेस्का	१३५४	नेपोलस	१२२५	कालेज, ल्याम्पिटार	१८२२
इन्डोलस्टाड	१४५६	न्यूजिलेण्ड*	१८७०	सेण्टपिटार्सवर्ग	१८१६
इन्मब्राक	१६६२	ओडेसा	१८६५	मालामास्का	१२४३
जेना	१५५८	ओमियेडो	१५७४	सासारि	१५५६
जन्महपकिन्स	१८६७	ओफेन	१३८६	सालेर्नो	६वां शताब्द
काजान	१८०४	ओल्मुटज	१५८१	सारागोसा	१४७४
कारकोफ	१८०४	अरेञ्ज	१३३५	साल्ज वर्ग	१६२३
कायेफ	१८०३	* १८७७ ई०में यहाँका आकलेयड,		साण्टियागो ( स्पेन )	१५०४
किओटा ( जापान )	१८६९	केयटार वरीदानेहिन और वेखिंगटन		,, (दक्षिण अमेरिका)	१७४३
कायल	१६६५	काटरमें कालेज स्थापित किया ।		सेमील	१२५४ व १५०२

स्थानिक नाम	ई०सन्	स्थानिक नाम	ई०सन्	स्थानिक नाम	ई०सन्
क्रीसलबर्ग	१८०२	बोर्नोव्स	१३वां शताब्द	सियेना	१३५०
कोकोनमार	१८०२	बोरोगो	१८३६	प्लासबर्ग	१३५१
मिबनी	१८५१	बाससाका	१४००	विक्टोरिया (कनाडा)	१८३६
डुव्लिन	१४१२	ब्रुकेट	१६३४	भियेना	१३६४
हररोटो	१८२०	उर्बिनो १६०१, पीछे फी युनिवर्सिटी		मिलाना	१८०३
रीडुज	१९३३	उत्तमाशा मंत्रीय	१८०३	ओपार्स १८१६, १८३९ वर्ष	
ट्रिमीज	१४५०	मासेगस	१४५२	पीछे १८३६ पुनःप्रतिष्ठा	
ट्रेमिन्डो	१३१८	मासेगिसया	१५०१	बुसबर्ग १४०२, पीछे १५८२	
ट्रिनिटी काउंज (इबमिन)	१५६१	मामाबोडिड	१३३६	बिरोनबर्ग	१५०२
ट्रिनिटी काउंज (उररोटो)	१८५१	मासेकि	१४२८	पेड कासेज	१००१
डोमस्क	१८८८	मिने जा	१२०४	आप्राब	१८६१
डुविन्जेन्	१४३५	विक्टोरिया (मंबेहर)	१८८०	डुव्लिन	१८३२
टोकियो (जापान)	१८५८				

एक बात ठोक लीसे कही नहीं जा सकती, कि ऊपर गिन सब विश्वविद्यालयोंकी सूची प्रकाशित की गई, वे सब आज भी युनिवर्सिटी रूपमें हैं। कितने या तो बन्द हो गये हैं या कितने ही युनिवर्सिटीकी मर्यादा को कर काउंज या स्कूलके रूपमें परिणत हो गिस्तादानमें सहयोगिता कर रहे हैं। १६वीं और १७वीं शताब्दीमें स्पेन और अग्याग्य स्थानों के सेलुइट काउंज युनिवर्सिटी रूपमें परिणत हुए थे सही, किन्तु वे अधिक शिरो नक अपनी मर्यादा रख न सके। १८वीं और १९वीं शताब्दीमें इनमें कितने ही ने अपनी मर्यादा को ही और कितने ही सामान्य स्कूलों में परिणत हुए।

स्पेन राज्यके इस समय *Instituto* नामक स्कूल में B. A. उपाधि पानेको व्यवस्था है। किन्तु M. A. उपाधि केबल युनिवर्सिटीसे ही मिलती है। स्पेन राजधानी मेंड्रिड नगरका युनिवर्सिटी *Universidad Central* नामको युनिवर्सिटीके सिवा स्पेनके किसी दूसरे काउंजमें *Doctor* उपाधि देनेको विधि नहीं।

सम्पत्ता और कामागोकी बलबली आकाङ्क्षाके कारण उत्तर-अमेरिकाके युद्धराज्यमें विश्वविद्यालयका प्रसार कमशा बढता रहा और उसी अभावको पूर करनेके लिये वहाँके हाकिम वहाँके विभिन्न प्रदेशों में काउंज या युनिवर्सिटीको प्रतिष्ठा कर उच्च शिक्षा देनेमें यत्नवात्

हुए। सन् १८८३ ८४ ई०में गिस्ता विभागीय विवरणोंमें प्रकाशित त्रिपुर्वीसे माख्य होता है, कि युद्धराज्यमें कुल ३०० विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित थे। इनमें कितने ही सगमदायबिहरणके धम्मताकोबलानके भीर कितने ही एक विषयके भीर कितने ही नामा विषयोंको शिक्षाके कामोत्कर्ष साधनार्थ प्रतिष्ठित थे। इन सब विश्वविद्यालयोंसे मामोचित विषयोंमें उच्चोपे छात्रोंको उपाधियां दी जाती हैं। साधारणको मानकारीके लिये जोसे युद्धराज्यके राज्यभाग और जनपदके नाम तथा वहाँके विश्वविद्यालयोंकी सूची दी जाती है।—

विभागोंके नाम	काउंजोंकी संख्या	विभागोंके नाम	काउंजोंकी संख्या
कनाडा	४	आर्कांसस	५
कालिफोर्निया	११	कोलोराडो	३
कनेक्टिकट	३	डेलावोयार	१
फ्लोरिडा	१	इजिप्ता	३
इजिप्ता	२६	इजिप्ता	१५
आरयोवा	१३	कन्सस	८
कन्ट्रकी	१५	लुइसियाना	१०
मेइन्	३	मेरीलैण्ड	१०
मासाचुसेटस	०	मिचिगन्	३
मिनेसोटा	५	मिसिसिपी	३

मिसौरी	२०	नेब्रास्का	५
न्यूहम्पसायर	१	न्यूजर्सी	४
न्यूयार्क	२६	नार्थ कारोलिना	६
ओहियो	३३	ओरेगन	६
पेन्सिलभानिया	२६	रोड आइलैण्ड	१
साउथ कारोलिना	६	टेनेसी	२०
टेक्सास	११	भार्मोंण्ट	२
मर्जिनिया	७	वेष्ट मर्जिनिया	२
वोइस् कोन्सिन्	४	डाकोटा	२
कालिफ़ोर्निया डिप्रिक्ट	५	उटा	१
वासिङ्गटन	१		

युकराज्यके विभिन्न केन्द्रोंमें इससे अधिक संख्यक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित रहनेसे विद्यादान विषयमें अनेक सुविधा हुई है। और तो क्या, सालाना केवल ३० डालर खर्च करनेसे ओहियो जिलेके विश्वविद्यालयमें एक वर्ष तक शिक्षा दी जा सकती है।

सन् १८८६ ई०में जान्स हपकिन्स युनिवर्सिटीके प्रेसिडेंट हार्मोडेने वक्तृता देने समय विश्वविद्यालयको चार विभागोंमें बांट देनेका प्रस्ताव किया। इसके अनुसार विश्वविद्यालय (१) आदि ऐतिहासिक कालेज, (२) राजकीय विद्यालय, (३) धर्माध्यक्षों द्वारा परिचालित कालेज और (४) साधारणके चन्देसे या व्यक्ति विशेषके दानसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय, ये इसी तरह बांट दिये गये। उनसे एक सूत्री तय्यार होने पर विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठाके इतिहास संग्रहकी विशेष सुविधाकी सम्भावना है।

सन् १७५१ ई०में वेजामिन फ्राङ्कलिनको प्रणोदित प्रथासे टेमास और रिचार्ड पेनपेनपेन्ने सिल्भानियामें जो विश्वविद्यालय स्थापित किया, उससे परोक्षोत्तीर्ण छात्र Ph D उपाधि पाते हैं। उच्च शिक्षाको आशासे विभिन्न देशसे बहुतेरे शिक्षार्थी इस देशमें आने हैं। हामरफोर्ड और लफायेट कालेजोंमें और लेहार्ड युनिवर्सिटीमें कालेजशिक्षाके निर्धारित प्रश्नोंके अतिरिक्त उच्चतम विद्यानुशोलनके लिये उन्नत उपाधियां दी जाती हैं। सन् १८६७ ई०में वाल्टिमोर नगरमें जान्स हर्षार्कन्स युनिवर्सिटी प्रतिष्ठित हुई। उस समयसे ही इस

विश्वविद्यालयने शिक्षा विषयमें सुस्पष्टता लाने की। अन्यान्य विषयोंमें शिक्षा देनेके सिवा यहां अध्यापकके कर्तव्योपयोगी विषय और विशिष्ट विषयमें शिक्षा दी जाती है। न्यूयार्क शहरके कोलम्बिया कालेज, कर्नाल युनिवर्सिटी प्रमिडेन्सकी ब्राउन्स युनिवर्सिटी और मिन्सटन, मिचिगन, मर्जिनिया और कालिफ़ोर्नियाकी युनिवर्सिटी इस विषयमें बहुत कुछ अग्रसर हैं। अमेरिकाके अधिकांश विश्वविद्यालयोंमें ही Graduate और Under graduate को पृथक् रखनेके लिये A B S, B Ph. B. आदि Baccalaureate उपाधि सृष्टि हुई है।

भारतवर्षमें भी पाश्चात्य विश्वविद्यालयके अनुकरण पर सन् १८५७ ई०में कलकत्तेमें, १८वीं जुलाईको बम्बई और ५वां सितम्बरको मन्ट्राज नगरमें युनिवर्सिटीया प्रतिष्ठित हुईं। किंतु अंगरेजी भाषाके विस्तारके व्यतीत इनके द्वारा और अन्य भाषाकी शिक्षोन्नति साधित नहीं हुई। भारतके छोटे लाट मर रिचार्ड-टेम्पलने लिखा है, कि "भारतीय युनिवर्सिटीयोंमें परोक्षार्थियोंका परोक्षा ले कर उनका उपाधि वितरण, पाठ्यपुस्तक अवधारण और शिक्षा-विषयक विधि निर्देशादि कार्योंके सिवा यहां कोई शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं। कितने ही देशीय और यूरोपीय सुशिक्षित व्यक्तियोंके तत्त्वावधानमें यह परिचालित होती हैं। इन सब युनिवर्सिटीयोंमें केवल साधारण शिक्षा, दर्शन, व्यवस्था, डाक्टरी, स्थापत्यविद्या और पदार्थविद्या विषयोंमें उपाधियां दी जाती हैं।"

सन् १८८२-८३ ई०में लाहोर नगरमें पञ्जाब युनिवर्सिटी कालेज प्रतिष्ठित हुआ। उक्त वर्षसे पहले यहा उत्तीर्ण छात्रोंको केवल राइटेल दिया जाता था, डिग्री देनेकी व्यवस्था न थी। इस युनिवर्सिटीमें प्राच्य भाषाका अधिक समादर है और छात्र यूरोपियोंके गर्वपणा-मूलक वैज्ञानिक विषयोंको स्वदेशी भाषा द्वारा जान सकते हैं। इसीलिये बहुत दिनोंसे यहां B O. L (Bachelor of Oriental Literature) उपाधिकी सृष्टि हुई थी। इसके बाद सन् १८८७ ई०में भारतके उत्तर-पश्चिम (युकप्रदेश) प्रदेशके इलाहाबाद नगरमें और एक युनिवर्सिटी स्थापित हुई। इन सब विश्व-

विद्वान्मयोके पुस्तक निर्माण और शिक्षाप्रणाली कुछ अंश में इन्डो-एशियाई भाषासंशोध, कोमिन्स और स्कॉट जैसेके पब्लिशरकी सुनिवसि'टियोंके अनुरूप है।

सन् १९०६-७ ई०में भारतके राजप्रतिनिधि नाथ कर्जनने भारताव शिक्षाविभागके स स्कारके लिये नई विधि प्रवर्तन कर विश्वविद्यालयके इतिहासमें नये युगकी अवधारणा की है। शिक्षाविभागकी सम्पत्तिका साधन ही इस विधिका मूल उद्देश है। किंतु इसकी मिस्रि बड़ी ही अग्रज्जपूर्ण है। पहले किम तरह कम कर्जमें विश्वविद्यालयका काम्य सम्पादित होता था, अब इस तरह कम कर्जमें कांटेन्टोके परिचायकका उपाय नही रहा। प्रति कांटेन्टोमें एक बहुत बड़ा Laboratory रजमा और बच मान प्रणालीके अनुरूप बहुत ठेके व्यवस्थाकी विपुक्ति बहुत ही व्ययसाध्य है।

भारतकी उक्त सुनिवसि'टियोंके सिवा कुछ दिनोंके मातर और कितनी ही सुनिवसि'टियाँ स्थापित हुईं हैं। उक्त—बङ्गालके ढाका नगरमें एक विश्वविद्यालय, पहलेमें परमा विश्वविद्यालय युक्तप्रदेशमें हिन्दू सुनिवसि'टी, अलीगढ़में मुसलिम सुनिवसि'टी, आमा सुनिवसि'टी, कलकत्ता सुनिवसि'टी मैसूर सुनिवसि'टी, हैदराबादमें इस्लामिया सुनिवसि'टी, नागपुर सुनिवसि'टी, इनमें हिन्दू विश्वविद्यालयका नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इतना विशेष विवरण हिन्दू विश्वविद्यालयमें देको।

विश्वविद्वत् (स० पु०) सर्वज्ञ, ईश्वर।

विश्वविद्यालय (स० लि०) विश्वज्ञाना सुधिकर्ता।

विश्वविद्यायिक (स० पु०) विश्वविद्यालय।

विश्वविद्यालय (स० पु०) १ विश्वविद्यालय, संसारका प्रतिपादन। (मानव ४८२।२०) २ विश्वविद्यालय, जगत क पिता। ३ एष्यकल्पजात प्रज्ञाके एक मानस पुत्रका नाम। (विद्वत् २२।१)

विश्वविभूत (स० लि०) जगद्विख्यात।

विश्वविद्व (स० लि०) विष्णुका नामांतर।

विश्वविसारिन् (स० लि०) विश्वव्याप्त, जगत्पसारि।

विश्ववीश्व (स० झी०) विश्वका अक्षर स्वरूप ईश्वर।

विश्ववृत्त (स० पु०) विष्णुका नामांतर।

विश्ववृत्ति (स० स्त्री०) साधारण ज्ञान, वैयक्तिक ज्ञान।

विश्ववेद्य (स० पु०) व्यापार्यमेद्य।

विश्ववेद्य—ब्रह्मसूत्रभाष्यकी व्याख्या और सिद्धांतहीय नामक स हीयशारीरकव्याख्याके प्रणेता। ये आत्मवेद्यके शिष्य थे।

विश्ववेद्यम् (स० लि०) विश्व वेदित विश्व-विद्व-मसुत्। १ सर्वज्ञ। २ इन्द्रादि देवता। ३ सर्वधन, सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न। (श्लोक १।१३।१)

विश्ववेदिन् (स० लि०) १ सर्वज्ञ। (पु०) २ अनित राजक मन्त्री।

विश्वव्यवसत् (स० लि०) १ विश्वव्याप्त, सर्वव्यापी। २ सर्वज्ञ सर्वांगामी। (युक्त्वन्त १८।४१ महीम्) (पु०) ३ सुप्ते। (युक्त्वन्त १३।५६ मही०)

विश्वव्यापी (स० पु०) १ ईश्वर। (लि०) २ जो सारे विश्वमें व्याप्त हो।

विश्वव्याम् (स० लि०) विश्वका मङ्गलविधायाक, संसारकी मलाई करनेवाला।

विश्वव्याम्मुनि—एषाहरनाममासिका नाम्नी एक सुप्रसिद्धाणके प्रणेता। अमिघानविष्णुतामणिमें इनका उल्लेख है।

विश्वशब्दस् (स० लि०) १ व्यासबद्ध, विद्विततेजा। २ ब्रह्माह्वयुक्त, उत्साही।

विश्वशर्मन्—पदोपकल्पिका नामक व्याकरणके प्रणेता।

विश्वशारद (स० लि०) प्रति शरदकाल विहित।

विश्वशुष् (स० लि०) विश्वदायक, स सारोद्दोषक।

(श्लोक ७।१३।१)

विश्वशुष् (स० लि०) विश्वका आह्लादाहसनक, जिसस समीको हर्ष हो। (श्लोक ३।३।१६)

विश्वश्रद्धाज्ञानबद्ध (स० झी०) बुद्धकी दश शक्तियामें स एक शक्ति।

विश्वश्रद्धा (स० पु०) एक मुनि जो बुद्धके और राजण व्यादिके पिता थे।

विश्वस वनन (स० झी०) ऐन्द्रशालिक शक्तिक बलस मोदासिमृत करना।

विश्वसत् (स० पु०) विश्वीय मन्त्र। जगद्वत्सु, जगतका सत्ता विश्वका दितकारी।

विश्वसत्तम ( स० त्रि० ) विश्वेयामयमतिगयेन साधुः, इति विश्व-सत् तम । १ नंसार या स्वर्गके मध्य अत्यन्त साधु । ( पु० ) २ श्रीकृष्ण । ( महाभारत )

विश्वसन ( स० क्ली० ) १ विश्वास, एतवार । २ मुनियोंको विश्रामभूमि, वह स्थान जहाँ ऋषि मुनि विश्राम करते हैं ।

विश्वसनीय ( स० त्रि० ) विश्वमित्य, विश्वाभ्य, विश्वास करनेके योग्य, जिसका एतवार किया जा सके ।

विश्वसम्भव ( स० त्रि० ) विश्वस्य सम्भव उत्पत्तियं स्मात् । ईश्वर, महापुरुष । ( हरिवंश )

विश्वसह ( स० पु० ) १ सूर्यावंगीव राजा ऐहविडके पुत्र । २ व्युपिताश्वका एक पुत्र । ( खु १८१२४ )

विश्वसहा ( स० स्त्री० ) अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक जिह्वाका नाम । ( नटाधर )

विश्वसहाय ( स० त्रि० ) विश्वदेवा ।

विश्वसाक्षी ( स० त्रि० ) सर्वदर्शी, ईश्वर ।

विश्वसामन् ( स० पु० ) १ एक वैदिक ऋषिका नाम जो आत्रेय गोत्रके थे और जो ५१२२१ वैदिक मंत्रोंके द्रष्टा थे । २ समस्त सामरूप । ( शुक्लयजुः १८३६ वेददीप )

विश्वसार ( स० पु० ) विश्वेयों सारम् । १ तंत्रमेद । २ क्षत्रीजसके पुत्रमेद ।

विश्वसारक ( स० क्ली० ) विद्र वृक्ष, कंकानी वृक्ष ।

विश्वसारतन्त्र—एक प्राचीन तन्त्र । तंत्रसार और शक्तिरत्नाकरमें इनका उल्लेख है ।

विश्वसाह ( स० पु० ) महस्वतके एक पुत्र का नाम । ( भागवत १।१२।७ )

विश्वसिंह ( स० पु० ) राजपुत्रमेद ।

विश्वसिंह—कुचविहारराजके एक प्रसिद्ध राजा । इन्होंने आसाम देशमें कुछ निष्ठावान् ब्राह्मणोंको ले जा कर बसाया था तथा उन्हें यथोपयुक्त भूमि दी थी ।  
कामरूप देखो ।

विश्वसित ( स० त्रि० ) विश्वस क । विश्वस्त, विश्वास करनेके योग्य । ( नैषध १।१३१ )

विश्वमित्य ( स० त्रि० ) विश्वसनीय, विश्वास करनेके योग्य ।

विश्वमुचिष्ट ( स० त्रि० ) सर्व ऐश्वर्याविशिष्ट, खूब धनवान् ।

विश्वसू ( स० त्रि० ) विश्वप्रसू, ईश्वर ।

विश्वसूत्रशृक् ( स० पु० ) विश्वसूत्र ।

विश्वसू ( स० पु० ) ईश्वर ।

विश्वसृज् ( स० पु० ) विश्वं सृजतीति विश्व-सृज-कृप् । १ ब्रह्मा । ( त्रि० ) २ विश्वम्रष्टा, जगदीश्वर ।

विश्वसृष्टि ( स० स्त्री० ) जगदुत्पत्ति, संसारको सृष्टि ।

विश्वसेन ( स० पु० ) अष्टादश सुहृत्संमेद ।

विश्वसेनराज ( स० पु० ) अवसरिणी ग्राह्याके १६वें अर्हत्के पिता । ( देम )

विश्वसौभग ( स० त्रि० ) सर्व ऐश्वर्याशाली, सौभाग्य-सम्पन्न । ( ऋक् १।४२।६ )

विश्वस्त ( स० त्रि० ) विश्वस क । जातविश्वाम, जिसका विश्वास किया जाय ।

विश्वस्ता ( स० स्त्री० ) विश्वा । ( धर )

विश्वस्था ( स० स्त्री० ) विश्वतः सर्वतस्तिष्ठतीति विश्व-स्था क स्त्रियां टाप् । शतावरी, शतावर ।

विश्वस्वप्न ( स० पु० ) ईश्वर, महापुरुष । ( हरिवंश )

विश्वस्फटिक ( स० पु० ) मगधराजके पुत्रमेद । ( विश्वसू० )

विश्वस्फाटि—विश्वस्फटिकका नामान्तर । ( विश्वपुराण )

विश्वस्फाणि—विश्वस्फाटि देखो ।

विश्वस्फाणि—विश्वस्फटिक देवो ।

विश्वस्फुजि ( स० पु० ) स्वनामधेयत मगधराज । इन्होंने पीछे पुरजय नामसे प्रसिद्ध हो ब्राह्मणादि जातियोंको म्लेच्छ बनलाया था, जिससे वे पुलिन्द, मद्रक आदि हीन जातियोंमें गिने गये थे । ( भागवत १२।१।३४ ) शायद ये ही विश्वसूगण वर्णित विश्वस्फटिक वा विश्वस्फूर्ति आदि नामधेय राजा हैं ।

विश्वस्वामी—आपस्तम्बादि कथितसूत्रके एक भाष्यकार । पुरुषोत्तमने स्वकृत गोत्रप्रवरमञ्जरी ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत किया है ।

विश्वह ( स० अथ० ) प्रत्यह, रोज रोज । ( ऋक् १।११।३ )

विश्वहा ( स० अथ० ) विश्वह देखो ।

विश्वानु (स० लि०) १ सर्मलदापहारो । (पु०) २ शिप ।

विश्वहेतु (स० पु०) १ जगत् कारण, जगत्का निदान या भाङ्कारण । २ समो विषयोके निमित्त या हेतु । ३ विष्णु ।

विश्वा (स० स्त्री०) विश्व-व्युत् क्रियां टाप् । १ अतिविषा, अयोस । २ ज्ञातावरो, ज्ञातावर । ३ पिपुस्य पीपय । ४ शुफ्ले, सोढ । ५ शङ्खिनो, खोरुपुष्पो । ६ बस्की एक कम्बा जो घर्मको ध्याही धी और जिससे बसु, सत्य, ऋतु आदि वम पुत्र उत्पन्न हुए थे । (महाभारत १६५।१२)  
● एकमान जो २० परका होता है ।

विश्वान (स० लि०) महापुरुष, ईश्वर ।

विश्वानु (स० लि०) सर्वाङ्ग, सम्पूर्णानु ।  
(अथर्व० १२।३।१०)

विश्वानु (स० लि०) सर्वाङ्गसम्बन्धी । (अथर्व० १।८।४)

विश्वानुसार्ध—विश्वानुसार्ध सग्रदायके द्वितीय गुण, धीनिवा आचार्यके शिष्य और पुरुषोत्तमआचार्यके गुण ।

विश्वानुषो (स० स्त्री०) विश्वव्युत्तित् जगत् क्विप् क्रियां टोप् । १ अम्पराविरोध । (शुक्लब्रह्मः १५।१८) बहिपुण्य गणमेद नामाभ्याय २ बाहुरोग विरोध । इसमें बायुके विगडनेसे बाहुक ऊपर उगलियो तक सारा हाथ न तो फेजाया जा सकता और न सिकोडा जा सकता है ।

विश्वानुस—यहसे पयोक्त विद्यानसे शिराभ्याय कर पीछे वातव्याधि विहित भौषधादिका प्रयोग करना होता है । विश्वानुस सोमाछाक, गाम्मारो, पडार, गनियारी, शाकपान, पिठवन, पुरती, बटकारा, गोसुर होत्रय इ और इड्य, इन सब द्रव्यों क क्वायका (सार्ध काष्ठमें मोहनके बाद) नस्य लेनेसे विश्वानुषो और अथ बाहुक रोग प्राप्ता रहता है । (लि०) ३ सार्धव्यापिनो । (श्रुक् १०।१३।१२) ४ सार्धजगामी । (श्रुक् ७।३।३)

विश्वामित्र (स० पु०) श्रुतिमेद । (पा ३।२।१०६ कार्त्तिक)

विश्वानुस (स० लि०) विश्वक अतोत् ईश्वर ।

विश्वानुस (स० लि०) विश्वस्वकप, विश्वमय ।

विश्वानुस (स० पु०) विश्वमेद आरामा यस्य विश्वम्य आरामा या । १ विश्वु । २ महादेव । ३ ब्रह्मा ।

विश्वानु (स० लि०) विश्व सर्व अतोति विश्व-अनु क्विप् । सचमुक् अग्नि । (श्रुक् १०।१३।६)

विश्वानु (स० पु०) कृपाविरोध । सौंड, सुर्गभवाला, शैलपर्वटी, वोरणमूल, मोषा और रक्तचन्दन [कुष्ठ मिमा कर २ तोला, इसे शिला पर पीसे और ५२ सेर अक्षमें सिद्ध करे । अब ५१ सेर अल रूब आप तब उतार डे । ठंडा होने पर बारीक कपड़ेमें छान डाले । तुष्या, दाह और बमि-संयुक्त स्वरमें अलकी तीर पर थोड़ा थोड़ा कर पीनेसे तुष्यादिको निवृत्ति हो स्वर उतर जाता है । इस कायका नाम है विश्वानु पाञ्चन या कयाय ।

विश्वानुस (स० पु०) विश्व कृपाति पाञ्चयति या जिच्-असुन् पूर्वोदीर्घा । ऐशता । (शिवाम्बरी०)

विश्वानुस (स० पु०) जगदाधार, ब्रह्माण्ड, अष्टा विधाता ।

विश्वानुस (स० पु०) जगत्पति, विश्वपति, परमेश्वर ।  
(श्वेताम्बरी० १।४)

विश्वानुसिद्धा—अक्षर्योपनिषद्माम्बक प्रजेता ।

विश्वानुसुनाथ—कौमर्दान और कौसाचारके रचयिता ।

विश्वानुस—वहसमाचार्यका नामान्तर ।

विश्वानुस (स० पु०) १ अग्निजनक विप्रमेद । वैश्वानर उक्त रहेको । २ सर्वाङ्क प्रेता । (श्रुक् ७।३।१)

विश्वानुस (स० पु०) राजमेद ।  
(कनारु-पा ११।३।६)

विश्वानुस (स० लि०) विश्वयोषका धन ।  
(श्रुक् १।१३।२२)

विश्वानुसु (स० लि०) ऐशतामोक आह्वानकारो, नामा रूपी अग्नि । पार्थिव, वैद्युत, आठरादिके मेहसे अग्नि के अनेक रूप हैं । (श्रुक् १।१४।१)

विश्वानुस (स० पु०) सबके भावयिता इन्द्र ।

विश्वामित्र (स० पु०) विश्वमेव मित्रमभ्य । (मिष क्यो । पा १।१।१०) इति विश्वस्याकारस्य हीर्षोः । एक ब्रह्मर्षि । पथ्याय—गाविज, मित्रा कुयात्रो, गाधेय कौशिक, गाविम् । (श्वेताम्बरी०)

विश्वामित्रने क्षत्रियवंशमें जन्मग्रहण कर अपने योगबलसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था । पीछे वे सत्त ब्रह्म महर्षियोंमें अन्यतम गिने जाने लगे । श्राप्यके तीसरे महर्षत्वके समूचे सुकोंक मन्त्रोंके अमिष्यक महर्षि



विश्वामित्र या नट्टंगीय ऋषिगण । उक्त मण्डलांको विशेष रूपसे पट्टाविश्रण करनेसे मालूम होता है, कि वे इषीरखके अपत्य कुशिकवंगीय ( ऋक् ३१ ) थे । राजा कुशिक कुशके अपत्य और उन्हीं राजा कुशिकके तनय गाधि ( गाधि ) ऋषि थे । ( ऋक् ३१६-२२ सूक्त ) महाराज गाधि पुरुवंशाय और कान्यकुब्जके नरपति कहे गये हैं । इसी कारणसे हरिवंश आदि विभिन्न पुराणा-ख्यानोमें विश्वामित्र पौरव, काँशिक, गाधिज और गाधि-नन्दन आदि नामसे अभिहित किये जाते हैं ।

ऋक्संहिताके ३५३ सूक्तमें सुदास राजाके यज्ञकी बात है । वहा विश्वामित्र महान् और ऋषि हैं, वे देव-जार और देवजूत तथा नेतृगणके उपदेशक हैं । वे जल-विजिष्ट सिन्धुके वेग अर्थात् विपाट् और गतद्रु नदीके संयोगस्थलको रोकनेमें समर्थ हुए थे । ( ऋक् ३३३६ भाग्य ) उन्होंने जब सुदास राजाके यज्ञमें पौरो-हित्य किया था, तब इन्द्रने कुशिकवंशियोंके साथ प्रिय व्यवहार किया था । ( ३५३६ ) भोजनों तथा चिरूप अङ्गिराको अपेक्षा असुर आकाशके वीर पुत्रोंने विश्वामित्रको सहस्र सुयज्ञमें ( अश्वमेधमें ) धन दे कर उनका जीवन वर्द्धित किया । ( ३५३७ ) कहा गया है, कि सुदास यज्ञमें वसिष्ठके पुत्र शक्तिने विश्वामित्रके वल और वाक्य हरण कर लिये । जमदग्निगणने सूर्याहुहिता वाग्देवताको बुला कर विश्वामित्रको प्रदान किया । सुदास राजाका यज्ञ समाप्त कर जब विश्वामित्र घरकी लॉटे तब उन्होंने सब रथाद्वोंको स्तव किया था ।

सिवा इसके उक्त संहितामें १०१६७१४ मन्त्रमें विश्वामित्र और जमदग्नि द्वारा इन्द्रकी स्तुति करनेका भी उल्लेख है । वहां इन्द्र दोनों ऋषियोंका सम्बोधन कर

\* मूलमें "इमे भोजाः आङ्गिरसः विल्माः दिव पुशासः असुरस्य वीराः ।" यह सब पाठ है । सायणने भोजाः अर्थात् 'सौदावाः क्षत्रियाः' किया है ।

† ऋक् ३५३१५ मन्त्रमें विश्वामित्रके वाग्देवता प्राप्तिकी बात लिखी है । इसके साथ हरिश्चन्द्रापाल्यानोक्त विश्वामित्रकी विद्यासाधनाका सम्बन्ध है क्या ?

‡ ऋक् ३५३७

कहते हैं,—“हे विश्वामित्र और जमदग्नि ! तुम लोगोंके सोम प्रस्तुत करने पर जध मैं तुम लोगोंके घर जाऊंगा तब तुम लोग मेरी खूब स्तुति करना ।” उक्त दो ऋकोंसे स्पष्ट समझा जाता है, कि विश्वामित्र और जमदग्नि आपसमें नैकट्य सम्बन्धसूत्रमें आवद्ध थे ।

अथर्ववेद ४२६५ और १८३१५ मन्त्रोंमें ऋषयानि विश्वामित्रकी रक्षाके लिये स्तुति की है । इससे उनको ऋषियोंके भी स्तवनीय कहा गया है । ऐनरेय-ब्राह्मण ६।१८ और ६।२० मन्त्रोंमें विश्वके मित्र विश्वामित्र-दृष्ट सूक्तोंके वामदेव ऋषि द्वारा पढ़नेकी बात है । शतपथब्राह्मण १४।५।६, तैत्तिरायसंहिता ३।१।७।३ और ५।२।३।४, पंचविंशब्रा० १४।३।१२, शाख्यायनश्रौतसूत्र १५।२।११, आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।२ आदि वैदिक-ग्रन्थोंमें विश्वामित्रका विवरण प्रकटित है ।

विश्वामित्रके जन्मके सम्बन्धमें वर्णित है, कि महा राज गाधिके सत्यवती नामकी एक कन्या थी । गाधिने भृगुवंशीय ऋचीक नामक एक वृद्ध ऋषिके साथ उस कन्याका विवाह कर दिया । इस क्षत्रिया पत्नीके गर्भसे ब्राह्मण्यगुणशाला पुत्रप्राप्तिकी वासनासे ऋचीकने उसके लिये एक चरु तप्यार कर सत्यवतीको खानेकी दिया । इस चरुके साथ क्षत्रिय गुणशाली पुत्र गर्भमें धारण करनेके लिये उन्होंने अपनी पत्नीकी माताको भापेसा ही और एक पात चरु प्रदान किया । माताकी प्ररोचनासे बाध्य हो कर सत्यवतीने माताके चरुसे अपना चरु बदल कर भक्षण किया और उसके अनुसार माता ब्राह्मण्यगुणप्रधान विश्वामित्रको और कन्या जमदग्निकी गर्भमें धारण किया । इस जमदग्निके औरससे समय आने पर क्षत्रगुणप्रधान परशुरामका जन्म हुआ ।

परशुराम देखो ।

महाभारतमें अनुशासनपर्वाके चौथे अध्यायमें जो विश्वामित्रकी उत्पत्ति होनेका विवरण लिखा है, उसके साथ हरिवंशका वर्णन बहुत मिलता जुलता है ।

हरिवंशमें लिखा है, कि महाराज कुशके कुशिक और कुशनाम आदि चार पुत्र हुए । कुशिकने इन्द्रसदृश पुत्रकी कामनासे हजार वर्ष फडोर तपस्या की । इन्द्रने इस तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर अंशरूपसे कुशिकपत्नी

पीरकृत्योंके गर्भसे जन्मग्रहण किया । इस पुत्रका नाम गाधि हुआ । गाधिके सत्यवता नामकी एक परम रूपवती कन्या हुए । गाधिने इस सुग्रीवा कन्याको भृगुपुत्र श्वशुरकी सम्प्रदान किया ।

श्वशुरकी माध्याके प्रति प्रसन्न हो कर अपने और महाराज गाधिके पुत्रको कामनासे बच प्रस्तुत किया और अपनी पत्नी सत्यवतीको सम्बोधन कर कहा—कन्याणि । ये हो मांग बच मैंने तप्यार किये हैं । इसमें यह बच तुम भोजन करो, दूसरा बच अपनी माताको दे देना । इस बचको भोजन करनेसे तुम्हारी माताको क्षत्रियपमान एक तेजस्वी पुत्र होगा । यह पुत्र सारी अग्निपद्वलको परामृत करनेमें समर्थ होगा । तुम्हारे गर्भमें मी क्षिप्रभेष्ट धैर्यशाली एक महातपः पुत्र जन्मग्रहण करेगा ।

भृगुनन्दन श्वशुर माध्यासे यह बात कह कर नित्य तपकथाई अरुण्यमें चले गये । इसी समयमें गाधि भी तोर्णव्रत प्रसङ्गमें कन्याको देवनेक लिये श्वशुरकाधर्ममें अर्पित्य हुए । एकर सत्यवतीने श्रुतिग्रहण बचको से यत्नपूर्वक माताक हाथमें दे दिया । देवयोगसे माता ने बच भोजन करनेमें गड़बड़ो कर दी । पुत्रोका बच स्वयं भोजन कर लिया और अपनी बच पुत्रो को दे दिया ।

इसक बाद सत्यवतीने क्षत्रियान्तकर गर्भधारण किया । श्वशुरकी योगबलसे यह बात जान ली और पत्नीस कहा 'मद्रं । बचका विपर्यय हुआ है । तुम अपनी माता द्वारा बद्धिता हुई हो । तुम्हारे गर्भमें अति दुर्दान्त दिव्यप्रकृति एक पुत्र पैदा होगा । और जो तुम्हारा माह तुम्हारी माताके गर्भमें जन्म लेगा, वह प्रयापरायण तपस्यागुरुक होगा । क्योंकि उसमें मैंने समस्त वेद निहित किया है ।' सत्यवतीने यह बात सुन कर निनामत् व्यपित हो कर अनेक अनुजय चिन्तय कर स्वामी से कहा, 'मगबन् । आप यदि इच्छा करे, तो लिङ्गोको सृष्टि कर सकते हैं आप ऐसा उपाय करें जिससे मेरे गर्भसे वैसा दुर्दान्त सन्तान पैदा न हो । इस पर श्वशुर ने कहा, कि ऐसा असम्भव है । यह सुन कर सत्यवती ने कहा 'यदि आप अन्त्या न करना चाहें, तो इतना महत्त्व कीजिये, कि मेरा पुत्र न हो कर मेरा पीत हो

वैसा गुणशाली हो । देवोके वाक्य पर प्रसन्न हो कर श्रुतिने कहा—मेरे लिये पुत्र और पीतमें कोई विभे पता नहीं । मता जो तुमने कहा है, वही होगा । पीछे समय जाने पर उस गर्भसे जन्मवन्तिका जन्म हुआ । इन जन्मवन्तिके पुत्र ही क्षत्रियकुवास्तकारी परशुराम हैं । इसके बाद सत्यवती महानदी रूपमें परिणत हो कर जगन्में कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुए ।

एकर कुशिकनन्दन गाधिक विश्वामित्र नामके एक पुत्र हुआ । विश्वामित्र तपस्या, विद्वया और श्रमगुण द्वारा ब्रह्मर्षिकी समता प्राप्त कर अन्तमें सप्तर्षियोगि गिर्न गये । विश्वामित्रका और एक नाम विश्वरूप है । महर्षि विश्वामित्रके देवराज, देवमन्त्रा, कति हिरण्यवाह, सांस्कृति, गालव मुद्रुपल, मयुञ्जन्त्रा, जय, देवज, अष्टक कच्छप, हारीत आदि का पुत्र उत्पन्न हुए । इन पुत्रों द्वारा ही महारामा कुशिकका वंश विद्यपक्षसे विद्यपत हुआ । सिवा इनक विश्वामित्रके नारायण और नर नामके दो और पुत्र थे । इस वंशने बहुतेरे श्रुतियोगि जन्मग्रहण किये थे ।—पुत्रवंशीय महारामाओंक साथ कुशिक वनीय ब्रह्मर्षियोंका वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था । इनलिये दोनो वंशसे ब्राह्मणोंक साथ क्षत्रियोंका सम्बन्ध चिरप्रसिद्ध हो रहा है ।

विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनम्याक सबसे बड़े हैं । ये शुना शोक मार्गब होने पर भी कौशिकरूप प्राप्त हुए थे । ये राजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशुकूपसे नियोजित हुए थे । किन्तु देवताओंने फिर विश्वामित्रक हाथ अर्पण किया । इसीलिये इनका नाम देवराज हुआ । ( हरि० १० म० )

कश्चिकपुत्राजमें महर्षि विश्वामित्रका उत्पत्ति विश्वरूप माया ऐसा हो बर्णित हुआ है । कुछ विरोधता है तो यह है कि महर्षि भृगुने पुत्र-बचको बर ग्रहण करनेके लिये कहा । इस पर स्त्रुया सत्यवतीने वैद्वेदास्तपाराग पुत्रकी प्रार्थना की । इस पर महर्षिने निश्वास परित्याग किया । इस निश्वाससे वायुके साथ हो तत्पक्ष बच उत्पन्न हुए । इन बचनोंमें सत्यवतीका एक और दूसरा उसकी माताको से छेनेकी बात कही । पीछे टेकजस बचक विपर्यय होने से पुत्रोंमें भी विपर्यय हुआ ।

महर्षि विश्वामित्रने क्षत्रिय हो कर जिन तरह ऋषित्व और ब्राह्मणत्व लाभ किया था, उसका विषय रामायणमें ऐसा लिखा है,—कुश नामक एक सार्वभौम राजा थे, उनके पुत्र कुशनाभ हुए। कुशनाभके गाधि नामक एक पुत्र उत्पन्न हुए। वे बहुत विख्यात हुए। विश्वामित्र उन्हींके पुत्र हैं। वे गौर्य और चोर्ष्यामें सब राजाओंमें अग्र थे और कई महान् चर्ण तक पृथ्वीका पालन करते रहे।

एक बार विश्वामित्र बहुत सैन्य सामन्त ले कर पृथ्वी पर्याटन करनेमें प्रवृत्त हुए और घूमते-घामते बहुतेरे नगर, ग्राम, राष्ट्र, सरित्, महागिरि आदि भ्रमण कर कालक्रमसे वसिष्ठाश्रम पहुंचे। यह आश्रम दूसरे ब्रह्मलोकके समान और इस आश्रमके सभी लोग समगुणाश्रित थे। मानो तपस्या मूर्त्तिमती हो कर इस आश्रमके चारों ओर विराज रही थी। विश्वामित्र इस आश्रमको देख कर बड़े प्रसन्न हुए और वसिष्ठके समीप जा कर प्रणाम किया। वसिष्ठने भी उनकी यथायोग्य सम्बद्धना कर कहा, 'राजन्! मैं चाहता हूँ, कि आपका इन सैन्यसामन्तोंके साथ यथाविधि अतिथि-सत्कार करूँ। आप स्वीकार करें, क्योंकि आप अतिशिश्रेष्ठ हैं, इसलिये आप पूजनीय हैं।'

वसिष्ठकी बात सुन कर विश्वामित्रने कहा,—भगवन्! आपके सत्कारानुकूल वाक्यसे ही मैं विशेष सन्तुष्ट हो गया। आप प्रसन्न हों, अब मैं जाऊँ। विश्वामित्रके इस प्रकार कहने पर वसिष्ठजीने किर वारंवार निमन्त्रण स्वीकार कर लेनेका अनुरोध किया। अन्तमें विश्वामित्रने उनके विशेष आग्रह करने पर 'तथास्तु' कह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

वसिष्ठने तब राजाके प्रति प्रसन्न हो चित्रवर्णा होमधेनु शबलाको सम्बोधन कर कहा,—शबले! राजा विश्वामित्र ससैन्य मेरे अतिथि हुए हैं। तुम आज मेरे लिये उनके सैन्योंमें छः तरहके रसोंमें जो जिस रसके इच्छुक हों, उनके लिये उसी रसकी सृष्टि करो।

शबलाने वसिष्ठके आज्ञानुसार सबके इच्छानुरूप कमनीय भोजन सामग्री तय्यार कर दी। उसने बहुतेरे इप, मधु, लाज, मरिय मद्य तथा अन्यान्य उत्तम मद्य और

नाना प्रकारके उत्तम गायकी सृष्टि की। ये सब मद्य-वस्तुएं चांदीके पात्रमें सबके सामने रखी गईं। इससे विश्वामित्र तथा उनके सैनिक परम सन्तुष्ट हुए।

वसिष्ठके इस राजदुर्लभ सत्कारमें प्रसन्न हो कर विश्वामित्रने उनसे कहा,—ब्रह्मण! मैं आपमें अनुरोध करता हूँ, आप मेरे इस अनुरोधस्वीकार करें। मैं आपको एक लाख गाय देता हूँ, आप उन गायोंके परिचर्त्तनमें मुझे शबलाको प्रदान करें। शबला रत्नरूपा है, राजा भी रत्नके अधिकारी हैं। अतएव न्यायानुसार यह गाय मुझे ही प्राप्त होनी चाहिये। अतः आप मुझे इसे प्रदान करें।

विश्वामित्रकी बात सुन कर वसिष्ठने कहा, 'राजन्! एक अरब गाय अथवा चांदीका पहाड़ देने पर भी शबलाको मैं दे न सकूँगा। क्योंकि यह शबला आत्मवान् व्यक्तिकी कीर्तिकी तरह मेरी सटचरी है। अतः इसका परित्याग करना मेरे लिये उचित नहीं। विशेषतः दृश्य, कथ्य, जोचन, त्रिभिहोत्र, बलि, होम और विविध विद्या मेरे जो कुछ हैं, इस शबलाके अधीन ही हैं और तो क्या, मैं अपराध त्वाकर कहता हूँ, कि यह शबला ही मेरी सर्वस्व है और सबै श्रमोंकी विज्ञान है। अतएव राजन्! मैं किसी तरह तुम्हें शबला प्रदान न करूँगा।'

विश्वामित्रने जब देखा, कि वसिष्ठने किसी तरह शबलाको नहीं दिया, तब बलपूर्वक नौकरीसे पकड़वाना चाहा। इस समय शबलाने अत्यन्त शोक सन्तप्त हृदयसे वसिष्ठके पास जा कर कहा—भगवन्! मैंने कौन-सा अपराध किया है, कि आप मुझ त्याग रहे हैं। आप अत्यन्त भक्तिपरायण समझ कर भी परित्याग करने पर उद्यत हुए? वसिष्ठने शबलाको यह बात सुन कर दुःखिता कन्याकी तरह शोक-सन्तप्तहृदया शबलासे कहा,—शबले! तुमने मेरा कुछ भी अपराध नहीं किया और न मैं तुमको त्याग ही रहा हूँ। राजा बलवान् है, वह बलपूर्वक तुमको ले जाना चाहता है।

शबलाने वसिष्ठकी बात सुन कर कहा,—ब्रह्मण! मनीषियोंका कहना है, कि ब्राह्मणोंसे क्षत्रियोंकी शक्ति कम है। ब्राह्मण ही धलवान् हैं। ब्राह्मणोंका दिव्य-

बहु क्षत्रिय बलकी प्रपेक्षा अत्यन्त अधिक है। सुनरां माय अग्रमेव बलसम्पन्न हैं। मायके बलको कीर्ति भी महान् है। सामर्थ्य नहीं हो सकता। माय मुक्तको निपुण कोत्रिये, मैं भी इस वृत्तात्मा विभ्रामिन्नका रूप कृष्ण करती हूँ। पसिच्छने शबलाकी इस ज्ञानगम मरी बानों को सुन कर आम्बस्त इक्षयने उमसे कहा 'तुमपर सैश्वर्यविनाशक सैश्वर्यको सृष्टि करो।' शबला इनकी यह बात सुन कर हम्बा हम्बा रब करने लगी। उसके इस रवसे सैकड़ों पद्म सैश्वर्यको सृष्टि हुई। उन सैश्वर्यको विभ्रामिन्नके साथ युद्धमें पराजित होने पर शबलामें हुङ्काररवसे कम्बोध, स्तनद्वैशसे बँदर, योनि देशसे यवन और रोम कूपो से हारोत और किरात भादि अश्रेष्ठो की सृष्टि थी। इन्होंने घोड़े ही समयमें विभ्रामिन्नके हाथो, घोड़े रथ और वैद्य सैश्वर्यका विनाश कर डाला। बसिष्ठ द्वारा बहुतेरे सैश्वर्यो का विनाश होता है। विभ्रामिन्न एक ही पुत्रोंके साथ तरह तरहके अन्न शस्त्र से बसिष्ठके प्रति दीड़े। यह है शबलामें एक ही हुङ्कारमें उनको इक्षय कर डाला।

इस तरह विभ्रामिन्नके सैश्वर्य भादि विनष्ट हो जाने पर उन्होंने इतबल और हतोरसाह ही कर समय धनुष वृक्ष साम करनेके लिये हिमालयके पार्श्वदेशमें जा महा देवकी कठोर तपस्या करने लगे। महादेवने उनको तपस्यासे सन्तुष्ट हो उनको समय मंत्र और तदस्वक साथ सङ्गोपाङ्ग धनुष वृक्ष प्रदान किया।

विभ्रामिन्न महादेवसे समय धनुष वृक्ष साम कर मति शय वर्धित हो कर बसिष्ठके आश्रममें जा उन पर वह तरहक अन्न छोड़ने लगे। इन अन्नोसे तपोबल मानो इक्षय होने लगा और आश्रमके समो चारों ओर मागने पर उभयन हुए। इस समय बसिष्ठन काकवृक्षकी तरह प्रक्षयित हो कर कहा, 'हे क्षत्रियायम विरवामिन्न। नू क्षत्रिय-बलसे प्रक्षयसके पराजित करनेका भगिमायी हुआ है। किन्तु नू है। इस एक प्रक्षयससे तेरा सारा क्षत्रियधम नाश होगा।' इसक बाद बसिष्ठके प्रक्षयवृक्षके प्रभावसे विभ्रामिन्नक महापौर अन्न, जलद्वारा अन्नकी प्रशान्तिकी तरह क्षयममें ही सम्पूर्णता निराहण हुए।

इस तरह निपुण ही विरवामिन्नके बसिष्ठसे कहा

या—“पिक्वल्म क्षत्रियधमम्, प्रक्षयतेऽो यमो बलम् पक्वम् प्रक्षययन्ते” क्षत्रिय बलको विनाश ही। प्रक्षयित ही यथार्थ बल ही। जिस तपसे यह प्रक्षयल साम किया जाता है, मैं वही तपस्या करूँगा। यह स्थिर कर विरवामिन्न परमोके साथ दक्षिणकी ओर जा कर कठोर तपस्या करममें प्रवृत्त हुए। इसी समय उनके तीन पुत्र साम हुए—इक्षिप्यम् मधुम् द और हुङ्गमेत।

इस तरह घोर तपस्यामें निरत रह कर अब उन्होंने एक हजार वष बिता दिया, तब सर्वालोक्षयितामह प्रज्ञान उनके समीप आ कर कहा,—विरवामिन्न! तुमने जैसी कठोर तपस्या की है, इसमें तुम मेरे तरसे राजर्षि पर साम करोगे। यह कह कर प्रज्ञा अपने लोभको धरने गये। विरवामिन्न प्रज्ञाका यह वर सुन कर विशेष मर्माहत हुए और सोचने लगे, कि मैं इस तपोऽनुष्ठानसे कुछ भी फल नहीं हुआ। अब मैं जिससे प्राज्ञणत्न काम कर सकूँ ऐसी सुखर तपस्या करूँगा। मन ही मन यह स्थिर कर फिर पत्नके साथ तपस्या करनेमें लग गये।

इसी समय इक्ष्वाकुर्वंशोष राजा जिगङ्कु समरोर सर्ग जानेकी कामनाम वक्ष करनेके लिये बसिष्ठकी शरण में आये। बसिष्ठन उनकी प्रत्यावधान किया। पोछे जिगङ्कु उनके पुत्रोंक शरणार्थी हुए, किन्तु उन्होंने भी उनका प्रत्यावधान किया। वर उन्होंने जिगङ्कुको वाएडासप्रसिका शाय वे दिया। उनक शायसे जिगङ्कु वाएडासके प्राप्त कर विभ्रामिन्नके पास गये।

विभ्रामिन्नने उनको ऐसी वशामें देक कहा—‘राजन्। मैं इक्षयवृक्ष है। कि माय अयोध्याके राजा जिगङ्कु हैं। माय शायवश वाएडास हुए हैं। माय अपनी अमिसाया प्रकट कोत्रिये। मैं मायका अक्षयसाधन करूँगा।’ उस समय वाएडासकरो जिगङ्कुने हाथ जोट कर कहा—‘मरी अमिसाया है कि मैं ऐसा यह कर जिससे सशरीर वर्ण गमन कर सकूँ। सुवद्वैब बसिष्ठ और उनके पुत्रोंक पास गया था, किन्तु अशान्त मेरा प्रत्यावधान किया और अमिशाय दिया है, उसीके फलसे आज मैं इस अवस्थामें परिणत हुआ हूँ। अब मैं मायकी शरणमें आया हूँ। माय मेरी अमिसाया पूर्ण कोत्रिये।’

विश्वामित्रने जब त्रिशट् कुके लिये यज्ञानुष्ठान किया, तब वसिष्ठके पुत्रोंने उन पर दोषारोप किया। पोछे जब यह बात विश्वामित्रको मालूम हुई, तब उन्हों ने वसिष्ठके पुत्रोंको यह शाप दिया, कि जब बिना दोषके मुझ पर उन्होंने दोषारोप किया है, तब योड़े ही दिनमें वे सब मृत्युमुत्रमें पतित हों और परजन्ममें कुत्तेका मांस खानेवाले तथा मुर्देके वस्त्र आहरण करनेवाले चाण्डाल (डोम) हो। विश्वामित्रके इस शापसे वसिष्ठके पुत्रोंने उक्त प्रकारकी दुर्गति पाई।

इधर राजा त्रिशट् कुने विश्वामित्रके यज्ञफलसे स्वर्गारोहण किया। किन्तु इन्द्रने, स्वर्गसे उनको गिरा दिया। इस पर क्रोधने वे अघोर हो उठे और विश्वामित्रने दूसरे स्वर्गकी सृष्टिकी अभिलाषा कर दूसरे मतर्गि मण्डल, मत्स्यनक्षत्र आदिकी सृष्टि की। त्रिशट् कु उसी स्थानमें आज तक चाम करते हैं\*।

त्रिशङ्कु शब्दमें विशेष विवरण द्यो।

पोछे विश्वामित्रने देखा कि, इच्छानुसार तपोऽनुष्ठान ही नहीं रहा है और तपमें विघ्न हो रहा है, तो दक्षिणसे चले आये। इसके बाद पश्चिमकी ओर पुष्कर तोरवत्ता विशाल तपोवनमें जा शीघ्र ही ब्राह्मणत्व प्राप्त के लिये विश्वामित्र दुश्चर तपस्या करने लगे।

\* मनु १०।१०८ विश्वामित्र द्वारा चाण्डालके हाथसे कुत्तेकी जंघा भक्षणका प्रस्ताव दिखाई देता है। महाभारतके शान्ति पर्वमें भी इस घटनाका उल्लेख दिखाई देता है। किन्तु विष्णुपुराण ४।३।१३-१४से मालूम किया जा सकता है, कि द्वादश वर्षीय अनादृष्टिमें विश्वामित्र कुक्कुर भक्षण करेगे। इस आशङ्काले चाण्डालरूपी त्रिशङ्कुने उनके और उनके परिवारोंके लिये गङ्गातीरके न्यत्राघ वृक्षकी शालामें मृग मांस लटका रखा। उसी मांससे परितृप्त हो कर विश्वामित्रने राजाको स्वर्गमें स्थापित किया था। देवीभागवत ७।१३ अध्यायके अनुसार विश्वामित्र दुर्भिक्षके समय जब चाण्डालके घर श्वमांस भक्षणके लिये गये, तब उनकी पत्नी और पुत्रोंने राजर्षि सत्यमत रक्षित मृग वराह आदिका मांस भक्षण कर जीवहरण की थी। उसी कृतकृत्यसे विश्वामित्रने राजाके उद्धारका उपाय किया था।

इस समय राजा अश्वरीपने एक यज्ञ अनुष्ठान किया। इन्द्रने यज्ञके पशुका अपहरण कर लिया। यज्ञपशु अपहृत होने पर अश्वरीपने पशुके बदले नर-बलि देना निश्चय कर जब ऋचीकके पुत्र शुनःशेफके खरीद कर ले आये, तब इस पर चढ़ विश्वामित्रकी शरणमें गया। विश्वामित्रने इसकी प्राण रक्षाके लिये मनुचन्द्रा प्रभृति अपने पुत्रोंसे कहा, कि तुम लोग सभी धर्मपरायण हो। यह मुनि-पुत्र मेरी शरणमें आया है, अतः तुम लोग इसके प्राण बचा कर मेरा प्रिय कार्य करो। तुममें कोई स्वयं इस नर-बलिके लिये तैय्यार हो जाओ जिमसे उसका यह पूरा हो और इस मुनिदालककी प्राणरक्षा हो।

पुत्रोंने पिताको ऐसा बात मुन कर कहा, कि अपने पुत्रोंको परित्याग कर परायेकी रक्षा करनेमें प्रसूत हुए हैं, यह अत्यन्त अन्याय और विगर्हित कार्य है। विश्वामित्र ने पुत्रोंकी ऐसी बात मुन क्रोधित हो शाप दिया, कि तुम लोग भी वसिष्ठपुत्रोंकी तरह डोम हो।

ऐतरेयब्राह्मणने मालूम होता है, कि विश्वामित्रके एक ही पुत्र थे। उन्होंने अपने भाजा शुनःशेफको ज्येष्ठ पुत्रका स्थान देनेकी गर्जसे अपने सब पुत्रोंकी अभिमति मांगी। इस पर छोट्टे पचाम पुत्रोंने उनके अनुकूल सम्मति दी। इस पर प्रमत्त हो कर उन्होंने उन पुत्रोंको वर दिया कि "तुम गाय और संतान सन्ततिमें मेरे पूरे रहो।" किन्तु अन्तिम ५० पुत्रोंकी अनुकूल सम्मति न पानेसे क्रुद्ध हो शाप दिया, कि "तुम लोगोंका वंश पृथ्वीके वक्षिणांगमें जा कर बसे। इसके अनुसार उनके सन्तान अन्त्यज और डाकूके रूपमें गिने गये। वे ही अन्ध, पुण्ड, शबर, पुलिन्द और मूतिव कहलाते हैं। ( ऐतरेयब्रा० ७।१८ )

इसके बाद शरणागत शुनःशेफसे विश्वामित्रने कहा, कि अश्वरीपके यज्ञमें बलि देनेके लिये जब तुम्हारे गलेमें रक्तमाल पहनाया जाये और तुम्हारी देह रक्तानुलेपित कर वैष्णव-यूपमें पाशबन्धन कर दी जाय, तब तुम अपने य मन्त्रसे अग्निका स्तव तथा यह दिव्यगाथा गान करना। इससे तुम्हें सिद्धि मिलेगी। शुनःशेफने यथासमय वैसा ही अनुष्ठान किया। अग्निके प्रसादसे उनकी दीर्घायुप्राप्ति और राजाकी भी यज्ञसमाप्ति हुई।

इधर विश्वामित्रने फिर तपस्यामें एक सहस्र वर्ष बिताया। ब्रह्माने देवों के साथ इनके यहां आ कर उन से कहा—“तुमने स्वयं अस्त्र तपोबलसे आज अस्त्रित्व प्राप्त किया।” विश्वामित्रको यह शर प्रदान कर ब्रह्मा अपने छोड़के बसे गये। विश्वामित्रन सोचा, कि मैं अब तक भी ब्राह्मण्यत्व प्राप्त नहीं कर सका। बिना मनसे फिर कठोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए।

रामायण और महाभारतमें मेनकाके साथ विश्वामित्रके रति करनेकी बात लिखी है। विश्वामित्रके इस योगसाधना ऐक श्रुता अत्यन्त मयमीत हुए और इन्द्रने उनका योग भङ्ग करनेके लिये मेनका अक्सराको उनके निकट भेजा। अक्सरा विश्वामित्रके योग भङ्ग कर अपने हाव भावमें उनकी रित्नामें समर्पण हुईं। मेनकाके साथ विश्वामित्रन दश वर्ष तक सुखसे बिता दिया और उसीके परिणामसे मेनकाके गर्भसे शकुन्तलाका जन्म हुआ। अपने इस चित्तलाञ्छत्यके लिये विश्वामित्र पीछे अत्यन्त क्रम हुए, और घोरता पूर्णक मेनकाको विहा कर उत्तर दिशाकी हिमगिरिके मूकपर्वगमें चले गये। यहाँ रह कर उन्होंने एक हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की।

पीछे विश्वामित्र यह स्थान तपोविष्णकर समग्र हिमालय पर्वत पर कौशिकाने नदीके किनारे जा काम क्रयके लिये अस्त्र कठोर तपस्य में प्रवृत्त हुए। इस तरह इनके सहस्र सहस्र वर्ष बीत गये। उन समय अश्विपिों और देवताओंको मय हुआ। अतः वे ब्रह्माके पास गये। उन्होंने आ कर ब्रह्माने कहा, कि विश्वामित्रको तपस्यासे हम लोगो को बड़ा मय हुआ है। आप उसको शीघ्र शर दे कर हमें मयय कोजिये। देवताओं की बात सुन कर ब्रह्माने तुरन्त विश्वामित्रके पास जा कर कहा कि “वत्स! तुम्हारे तपस में बहुत संतुष्ट हुआ हूँ। अतएव तुमका मैं अश्विसुख्यत्व प्रदान करता हूँ।”

इस तरह शर प्राप्त कर विश्वामित्र सोचन लगे, कि मैं इस बार भी ब्राह्मण्यत्व प्राप्त न कर सका। अतः उन्होंने पितृगणसे कहा—“भायने अब मुझको शुभकर्मात्मक प्रार्थना कर सम्बोधन नहीं किया, तब मैंने मन्त्रक लिये, कि आज भी मैं त्रितन्द्रिय हो न सका हूँ। अतः

एव ब्राह्मण्यत्वप्राप्तका भी अधिकारी नहीं।” ब्रह्माने कहा तुम अब भी त्रितन्द्रिय नहीं हो सके हो, त्रितन्द्रिय बनने की चेष्टा करो। यह कह ब्रह्मा अपने धामको चले गये। पीछे विश्वामित्र अकृष्ययाहू निरावमग्नन जीर पापुमुचक हा कर तपस्या करने लगे।

विश्वामित्रकी इस तरह कठोर तपस्या ऐक इन्द्रको बड़ा मय हुआ। उन्होंने देवताओं से परामर्श कर इस बार तपस्या भङ्ग करनेके लिये रम्भा नाम्नी अक्सराको भेजा। रम्भाने आ कर उनके तपस्याभङ्गके लिये बहुत तरे पल लिये, किन्तु किसी तरह उसने विश्वामित्रके मनमें विकार उत्पन्न न कर पाया।

विश्वामित्रने रम्भाका अनिप्राय मन्त्रक कर कोषित हो अनिप्राय दिया “तुम सहस्र वर्ष तक पापापमयी हो कर रहोगे।” इसी कोषसे विश्वामित्रकी तपस्या बिन्दव हुई। अब उन्होंने मन हो मन स्थिर किया, कि मैं कभी क्रुद्ध न होऊँगा और किसी तरह जिन्नाकी भी श्राप न दूँगा। मैं तेजकों वर्ष तक स्वामन्त्र कर तपस्करण करूँगा। जितन दिनों तक मैं ब्राह्मण्य प्राप्त न कर सकूँ ततने दिन तपस्या द्वारा शरीर पात करूँगा।

विश्वामित्रने इस स्थानका तपोविष्णकर समग्र परित्याग कर पूर्ण दिशाकी गमन किया और वहाँ सहस्र वर्षायापी अस्त्युत्तम मौनप्रत प्रहण कर पुरुष तपस्यामें निरत हुए। दस सहस्र वर्ष बिताने पर अब विश्वामित्र मन्त्र मौनन करनेको उद्यत हुए, तब इन्द्रने ब्राह्मण्यरूप धारण कर उस अन्नको पाने की प्रायता की। विश्वामित्र मौनी थे; इससे उन्होंने वाक्यका प्रयोग न कर अन्नको उन ब्राह्मण्यरूपधारी इन्द्र को दे दिया।

विश्वामित्र फिर मौनावस्थामें ही निश्वासका रोच कर तपस्यामें निरत हुए। इससे उनके मस्तकसे धूप के साथ अग्नि निकलने लगी और इसके साथ त्रिभुवन अग्निमस्तककी तरह झिपे हो उठा। मारा उगत् उनकी तपस्यासे अस्थिर हो उठा। देव या अश्वि सभीने अस्थिर हो ब्रह्माके पास जा कर कहा, “सगवन्! विश्वामित्रके तपस्यासे निवृत्त न होने पर शीघ्र ही संसार

विनष्ट होगा। आप उनको उनके अभिलषित ब्राह्मणत्व वर प्रदान कर जगत्का मङ्गल कीजिये।”

ब्रह्माने फिर विश्वामित्रके यहां जा कर उनसे कहा,—“विश्वामित्र ! तुमने आज तपोबलसे ब्राह्मणत्व लाभ किया, अब तुम्हारा मङ्गल हो।” इसके बाद चिराभिलषित वर पा कर विश्वामित्र परम प्रसन्न हो कर ब्रह्मासे कहने लगे, “भगवन् ! यदि आज मैं ब्राह्मण्य और दीर्घायु लाभ करनेमें समर्था हुआ, तो चतुर्वेद, ओङ्कार और वषट्कारमें ब्राह्मणकी तरह मेरा अधिकार हो तथा ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ मुझको ब्रह्मर्षि स्वीकार करें।”

विश्वामित्रके अन्तिम प्रस्तावकी मीमांसाके लिये देवताओंने वसिष्ठके पास जा कर उन्हें सन्तुष्ट किया। देवताओंके अनुरोधसे प्रसन्न हो वसिष्ठने विश्वामित्रके साथ मित्रता स्थापित की और उनको ब्रह्मर्षि कह कर ब्राह्मणत्व स्वीकार किया। दूसरी ओर विश्वामित्रने भी ब्राह्मण्यविभव प्राप्त कर वसिष्ठका यथोचित सम्मान किया। ( रामायण १।५०-७० सर्ग )

इसके सिवा महाभारतमें दूसरी जगह लिखा है, कि विश्वामित्रने सरस्वती नदीके आधा दी, कि नुम वसिष्ठका मेरे यहां ला दे, मैं उसके मार डालूंगा। सरस्वती विश्वामित्रकी अवहेलना कर अन्य पथसे प्रवाहित होने लगी। यह देख विश्वामित्रने सरस्वतीके जलको रक्तवर्ण बना दिया। सरस्वती वसिष्ठको विश्वामित्रके निकटसे दूर ले गई।

महर्षि विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि वसिष्ठमें बहुत दिनों तक जो प्रतियोगिता चल रही थी, वह क्षत्रिय-जीवनमें ब्रह्मण्यविरोधका श्रेष्ठतम परिचय है। इस घटनाका बहुतेरे अपने अपने समाजके श्रेष्ठ प्रति-पादनार्थ ब्राह्मण और क्षत्रियका विरोध अनुमान करते हैं। ऋग्वेदमें भी इसका वारम्बार उल्लेख है। ऋग्वेदमें देवो ऋषियों का ही श्रेष्ठत्व निरूपित हुआ है। विश्वामित्र तृतीय मण्डलके नायकीयुक्त मन्त्रोंके द्रष्टा और वसिष्ठ सप्तममण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहे जाते हैं।

ये दोनों ही विभिन्न समयमें महाराज सुदासके कुल पुरोहित थे। यह पौरोहित्य पद उस समयके राजा और ऋषि-समाजमें विशेष गौरव-जनक और शक्ति-साधक था। इसमें जरा भी मन्देह नहीं।

समय आने पर यह परस्परमें आन्तरिक विद्वेषके कारण परस्परके अभिशाप दे कर दोनों आपसमें शत्रुता करने लगे। वसिष्ठने निश्याम त्याग कर विश्वामित्रके सौ पुत्रोंको मार डाला। बदलेमें वसिष्ठके सौ पुत्रोंका विश्वामित्रने भी शाप दे कर मस्त्रीभूत कर दिया। पुराणोंमें यह घटना दूसरी तरहसे वर्णित की गई है। विश्वामित्रने योगबलसे एक नरघातक राक्षस को राजा बलनायपादकी द्रष्टेमें प्रवेश करा कर उसके द्वारा वसिष्ठके सौ पुत्रोंको मक्षण करा दिया। विश्वामित्रके शापमें ये सौ पुत्र क्रमान्वसे मान सौ जन्म पतित ब्राह्मण बनें जन्मते रहे।

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है, कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा हरिश्चन्द्रने अपुत्रककी अवस्थामें एक बार प्रतिज्ञा की थी, कि जब मेरे पुत्र होगा, तो मैं वरुणदेवताको बलि-प्रदान करूंगा। समय आने पर राजा माहृशके एक पुत्ररत्न लाभ हुआ। राजाने उसका रोहित नाम रखा। कुमार दिनों दिन चन्द्रकलाकी तरह बढ़ने लगा। कई तरहके छलसे राजा बहुत दिनों तक प्रतिज्ञा रक्षामें निश्चेष्ट रहे। इधर रोहित पितृप्रतिज्ञा रक्षासे आत्म बलिदान करना अस्वीकार कर छः वर्ष तक जंगल जंगल घूमता रहा। कालक्रमसे अजीर्त्ता नामक एक ऋषिसे उनकी भेंट हो गई। उन्होंने १०० गो दे कर उनके बदलेमें ऋषिके मध्यम पुत्र शुनःशेफको खरीद लिया। रोहितने शुनःशेफको पिताके-सम्मुख खड़ा कर दिया। वरुणदेवने रोहितके बदलेमें शुनःशेफको ग्रहण करनेको स्वीकार कर लिया। ऋषितनय वेदमन्त्रोंसे स्तुति कर देवोंको सन्तुष्ट कर आत्मरक्षा करनेमें कृतकार्य हुए और विश्वामित्रने उसको ग्रहण किया। हरिश्चन्द्रके इस यज्ञमें विश्वामित्र ऋषि पुरोहित थे।

ऐतरेयब्राह्मणके ७।१६ मन्त्रको पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञकालमें विश्वामित्रने स्वयं होताका कार्य किया था,—“तस्य ह

\* महाभारत आदिपर्व १७५ अ० और १८६ अ०में विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर विरोधकी बात है।

विश्वामित्रो हातासोऽग्रमन्त्रिः चरव्युर्वसिष्ठो ब्रह्मा  
उपास्य ब्रह्मा तस्मा उपाहृताय नियोकार न विविशुः ।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि विद्यासिद्धिक लिये विश्वामित्रने तपस्या आरम्भ की; विद्यायें श्रुतिक योग बलसे भाव्य हो मयहूत चोत्कार करने लगी। इसी समय हरिश्चन्द्र शिष्यकार करनेके लिये बगम घूम रहे थे। जवानक कोकण-से राक्षस्यनि मुक्त कर वे वहाँ पहुँचे। इससे विश्वामित्रकी तपस्या मज्जु हो गई। शपर विद्यायें मो मांग गई। इस पर विश्वामित्रको राजा पर बड़ा क्रोध हुआ।

विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा "तुमने राजसूय यज्ञ किया है। मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे क्षत्रिया हा।" उत्तरमें राजाने कहा, "मेरी स्त्री बह पुत्र, श्रावण, राश्य, पन, इनमें भाव जो चाह, से सज्जते हैं और मैं देने पर तय्यार हूँ।" उस समय विश्वामित्रने राजा का राजसूय, यतविसय समो से लिया। ये सब लेने पर इस क्षत्रिको क्षत्रिया विश्वामित्रने राजासे मांगी। उनक पास सब क्या था, वे इस क्षत्रिणामें अपनेको बेतने पर ब्राह्म्य हुए। विश्वामित्रक सक्षमें पड़ कर नाना कष्टो को सहने हुए अन्तमें शमशानमें अपनी परमी और पुत्रक साथ मिले। राजा हरिश्चन्द्रने इस तरह मीरज श्रावण परीक्षामें उत्तीर्ण हो देवों और विश्वामित्रक भाशावाँहसे जग छाम किया। (मार्कण्डेयपुरा १७६ और देवीमायव ७१२ २७ अ०)

हरिश्चन्द्र अन्तमें विसुप्त विरचय देको।

इस यज्ञमें विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको भस्मानाहुन कर दिया था पुराणोंमें उसका पूरा पूरा उल्लेख है। इस प्रसङ्गमें वसिष्ठ और विश्वामित्रन परस्परको प्रति प्राण प्रदान किया और वे अन्तक अनुसार दोनों हो पक्षोका आकार धारण कर धारतर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। प्रथमे मध्यस्थ हो कर उनका अग्रश मित्रया था और उनका पूर्वाकार प्रशानपूर्वक दोनोंमें मेल कर दिया था।

मगयात्र रामचन्द्रके साथ विश्वामित्रके मगधके कारेमें राजावचन बहुनेरा बात लिखा है। रायण और अन्तक अघान्ध राक्षसोंक उल्लासोम ब्राह्मणोंको रहोक

न वे विश्वामित्र इगधसे मांग कर राम सत्पणको से गये। उन्होंने रामके गुहका कार्य किया था और रामको से कर अयोध्या लीटे। अन्तकालमें भा कर रामने सीताका पाणिग्रहण किया।

महाभारत उद्योगपर्व १०५ ११८ अध्यायमें विश्वामित्र की ब्राह्मणत्वप्राप्तिकी बात दूसरो तरहसे लिखी है। एक मन्थका पदुमें मालूम होता है, कि धर्मराजमें विश्वामित्रके योगबलसे सन्तुष्ट हो कर उनका ब्राह्मणत्व स्वीकार किया था।

किर युधिष्ठिरक प्रश्न करने पर पितामह मीपक्षेयने अनुशासनपर्वमें कहा था,—महर्षि ब्रह्मकोमने ही विश्वामित्रक अन्तरमें ब्राह्मणत्व निषिक्त किया था।

युधिष्ठिरने मोपपितामहसे पूछा, "देवन्दर्यनाताक रूप व मण्डोऽमवत्" अर्थात् क्या विश्वामित्रने उमो देहसे या दूसरे ब्राह्मणत्वनाम किया था? इस पर उन्होंने उत्तरमें कहा था—

"शुभेः प्रशादत् राजेऽऽ मसिपि ब्रह्मविन्दम् ।

एषो भाषय्या वावो विश्वामिभो महात्पण ।

कथियाः कोऽप्यत्र तथा ब्रह्मवैवल्थ करकः ॥"

इसी बातकी प्रतिध्वनि निम्नोक्त मनुटीकामें कुलुर्कने ममिम्यक किया है।

मनुसंहिताक ७७२ श्लोकमें विश्वामित्रकी ब्राह्मण्य प्राप्तिका उल्लेख है। उक्त श्लोकक भाष्यमें शुम्भूकने लिखा है—

"भाषिपुत्रो विश्वामित्रस्य क्षत्रियाः मन् ते मीबर्देन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् । राज्यसाम्राज्यसरे ब्राह्मण्यप्राप्तिर प्रस्तुताऽपि विनयोः कर्णाधमुका । इन्द्रोऽपि शास्त्रानुष्ठाननियमवर्जनकरापिनयोऽप्येव क्षत्रियोऽपि बुधस्य प्रादव्यसेमि ॥ (मनु अ० ५२ टीका)

ब्रह्मसंहिताक ७७ प्रथमक मन्त्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठ श्रात हुए हैं। वे राजा सुरास और उनक यशय मीदास या कन्मापवाक्य पुरोहित थे। ७१८२२ २५ मन्त्रोंमें उन्होंने सुरास राजाक यज्ञकी शान स्तुति क है। इन्हीं सुरासक यज्ञमें वसिष्ठ और विश्वामित्र क्षत्रिको जो बिरोध हुआ था, उनका विषयण ३ मण्डलक मन्त्रसे मो कुछ बदलता है।



महाभारत आदिपर्व १७६ अध्यायसे हम जान सकते हैं, कि विश्वामित्रने इक्ष्वाकुवंशीय राजा कनमापपादके पीरोहित्यमें ब्रतो होनेकी इच्छा की; किन्तु राजाने वसिष्ठको मनोनीत किया था। इस पर विश्वामित्र क्रोधित हो कर वसिष्ठके घोर शत्रु हो उठे। एक बार राजाज्ञा अवहेलनाके लिये वसिष्ठपुत्र शक्तिश्रुतिको मारा। इस पर ऋषिपुत्रने अभिजाप दिया, "राजा राक्षस होगा।" विश्वामित्र इस अवसर पर राजाके शरीरमें एक राक्षस प्रवेश करा कर सिद्ध उद्देश्य सिद्ध कर उस स्थानसे चले गये। पहले ही शक्ति राजा द्वारा भुक्त हुए। इस तरहसे वसिष्ठके सभी पुत्र विश्वामित्रकी आक्षासे मक्षित हुए थे।

पुराणमें विश्वामित्रके योगबलका यथेष्ट परिचय मिलता है। और तो क्या उन्होंने ब्रह्माकी तरह द्वितीय स्वर्गकी सृष्टि कर स्वयं महत्त्व प्रचार किया है। किंवदन्ती है, कि नारियल, सहि जन आदि कई वृक्षकी सृष्टि विश्वामित्र द्वारा हुई थी। महर्षि विश्वामित्रका अध्यवसाय चर्मनिर्दग्धन है। वसिष्ठ शब्द देखो।

२ आयुर्वेद पारदर्शी सुश्रुतके पिता।

"वयं ज्ञानदत्ता विश्वामित्र प्रभृतयोऽविद्वन् ।

अथ धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजोऽय मुच्यते ॥

विश्वामित्रो मुनिस्त्वेषु पुत्रं सुश्रुतमुक्त्वान् ।

वत्स ! वाराणसी गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्गुमाम् ॥"

( भाषप्र० )

विश्वस्मिन् नाम्नि मित्रं यस्मान् । ३ परममित्र,  
नारे विश्वमे सर्वोपरि मित्र ।

"जनने नामिरामाय ददौ राज्यमकपटकम् ।

विश्वामित्रं पुरस्हत्य वनवासं ततो ययी ॥" ( उच्छ्रट )

विश्वामित्र—राहुचार नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता ।

विश्वामित्रनदी ( स० स्त्री० ) विश्वामित्रा नामकी नदी ।

( भारत मीम्स० )

विश्वामित्रकपाल ( सं० स्त्री० ) नारिकेलका शर्करा, नारियलका श्लोषडा । ( ग्नेन्द्रशा० ७० )

विश्वामित्रप्रिय ( सं० पु० ) विश्वामित्रस्य प्रियः ।

१ नारिकेलरूत, नारियलका पेड़ । ( नन्दरत्ना० )

२ कार्नाक ।

विश्वामृत ( सं० लि० ) विश्वममृतयामि जीषयामि ।

विश्वका जीवनकारि ।

विश्वायन ( सं० लि० ) १ सर्वाश्र, जो विश्वकी सब वार्ते

जानता हो । २ सर्वांतगामी, सर्वांत विचरण करनेवाला ।

३ विश्वात्मन्, ब्रह्म ।

विश्वायु ( स० लि० ) सर्वाधिपति, सर्वोके मालिक, सभी

मनुष्योंके ऊपर जिसका आधिपत्य है । ( ऋक् ४।४२।१ )

विश्वायुषोपम ( स० लि० ) जीवनकाल पर्यन्त देहादि-

का पोषक, यावज्जीवन उपभोग्य । ( ऋक् १।३६।६ )

विश्वायुषेपम ( सं० लि० ) सर्वांगनवल, सर्वांत बलीयान् ।

'अग्नि विश्वायुषेपमं नर्प्यं न वाजिनं हितं ।'

( ऋक् ८।४३।२५ )

'विश्वायुषेपमं सर्वांगतवलमग्निं' ( सायण )

विश्वायुस् ( सं० लि० ) शण्गती विश्व-इ-उम् भावे णिष्वा

( उष् २।११६ ) इति उस् । १ श्यामगन्धर्वाणाम्, सर्वांतगामी ।

'पाहिस्मदमिद्विश्वायुः' ( ऋक् १।२७।३ )

'हे अग्ने विश्वायुर्ग्रामगमनः न त्व' । ( सायण )

२ सर्वांगक्षक ।

'विश्वायुर्गने गुहा गुहं गाः ।' ( ऋक् १।६।७।६ )

'हे अग्ने विश्वायुः विश्वं सर्वमायुर्गन् यस्य स त्वम् ।'

( सायण )

विश्वाराज् ( सं० लि० ) विश्वेषु राजने यः विश्वेया राट्

राजा इति वा । ( वोपदेव ) विश्व-राज-क्षिप् विश्वस्य

वसुराटोः इति व्रीध ( पा ६।३।२२८ ) हलादावेवात्त्वमन्यत्र

विश्वराजादित्यादि । १ सर्वग्रामयिता, सबके ऊपर

ग्रासन करनेवाला । ( वैचि० ७० १।३।२।१ ) विश्वराज देखो ।

३ परमेश्वर ।

विश्वामर्त्त ( स० पु० ) एक विश्वस्व राजानुचर ।

( राजतर० ७।६।१८ )

विश्वामर्त्त—प्रनोरथका पुत्र । शृङ्गार, भृङ्ग, अलङ्कार

और मङ्ग नामक इनके चार विद्वान् पुत्र थे ।

\* कौपीतकीब्राह्मणके ४थे अध्यायमें वसिष्ठने "हतपुत्रोकी पुनः प्राप्तिकी कामना" कर वसिष्ठ यज्ञ किया। पञ्चविंशब्राह्मणमें भी वसिष्ठ 'पुत्रहृतः' कहे गये हैं ।

विरवाहसु (सं० पु०) विश्वं वसु यस्य, विश्वेषां वसु यस्मात्। शीर्षं (पा ३।३।१२८) १ अमरावतीवासी गन्धर्वमित्र् । २ बिष्णु । (महाभारत ६।६।४५) ३ वल्सर बिरोध एक संवत्सरका नाम । इस समय कपास मँड़मी बिकतो है । (खी०) ४ राजि, रात । (मेरिनी)

विरवाहसु कापाहिक—मोडप्रबन्धोद्भूत एक कवि ।

विरवाहास (सं० पु०) १ सबोको भावासमुमि, समी सोगो का वासस्थान । २ विरवाहय, सबो का भाग्य स्थान ।

विरवास (सं० पु०) वि रवस प्रम् । १ अज्ञा । २ प्रथम, किस्की गुणी आदिहा विश्वय होमे पर इनक प्रति उत्पन्न होनेवासा मनका माह पतबाद, यकीन । संस्कृत पर्याय—विधम्म आरवास भाग्यम । ३ मनको बह धारणा सो विषय या सिद्धान्त आदिकी सत्यताका पूरा पूरा प्रमाण न मिलने पर सो ठसकी सत्यताके सम्बन्धमें होतो है ठ केवक अनुमानके आधार पर होनेवासा मनका ठूढ़ विश्वय

विरवासकारक (सं० लि०) १ विरवास करनेवासा । २ मनमें विरवास उत्पन्न करनेवासा जिससे विरवास उत्पन्न हो ।

विरवासघात (सं० पु०) किस्को विरवासके विरुद्ध की हुई क्रिया, अपने पर विरवास करनेवासीके साथ येसा कार्य जो इनक विरवासक विरुद्ध विपरीत हो ।

विज्ञासपानक (सं० लि०) विश्वास इन्ति या विश्वास इन् स्तुम् । विरवासनशक घोटेबाज । पर्याय—अप्रत्यय कारी, विश्वासहन्ता, अविश्वासी, प्रतारक, यज्ञक ।

विश्वासदेवी (सं० स्त्री०) मिथिलाराज्यकोदेव् । बाप विद्यापतिकी प्रतिपादिका थीं । विद्यति रेलो ।

विश्वास राय—महाराष्ट्र-रीकाकार अर्द्धम मिश्रक प्रति पालक । ये किस्को गीर्णेश्वरके मन्त्री थे ।

विरवासन (सं० स्त्री०) विश्वस् विष्वस्-स्तुट । विरवास, पतबाद, यकीन ।

विरवासपान (सं० पु०) जिस पर अरोसा किया जाय विश्वास करनेके योग्य ।

विद्वान्मस्थान (सं० स्त्री०) विरवान्मात्रन, बह जिसका विश्वास किया जाय ।

विरवासह (सं० लि०) सर्वाभिमन्त्रकारो, शत्रुमोका दमन करनेवासा । "विन्वाहादमन्ते" (श्रुक ३।४।१५)

विश्वासाह (सं० पु०) विश्वासाह रेलो ।

विश्वासिक (सं० लि०) विश्वासक पाल जिसका विश्वास किया जाय ।

विश्वासिन् (सं० लि०) विश्वासोऽभ्यास्तीति विश्वास इति । १ प्रत्ययशील, जिसे विश्वास करना हो । २ जिस का विश्वास किया जाय ।

विश्वास्य (सं० लि०) विश्वासके योग्य, जिस पर विश्वास किया जा सके ।

विश्वाहा (सं० अश्व०) प्रतिदिन, रोज रोज । (श्रुक १।२।५।२)

विश्वाहा (सं० स्त्री०) १ शुद्धी, सोंठ । २ बाहुशाल शुद्ध ।

विश्वेदेव (सं० पु०) १ अग्नि । २ भ्रातृद्वय । (यजुष्य पठ० उष्या०) ३ गणदेवताविश्वेय ।

विश्वेदेव नामों की देवताओंकी एक साथ 'विश्वेदेवा' कहा है । ये देवगण इन्द्र, अग्नि आदिस निम्न श्रेणीक हैं और समी मानवके रक्षक तथा सत्कर्मके पुरस्कार बाता है । श्रुकसंहिताके ३।५।१० मन्त्रमें विश्वेदेवोको विश्वक अथिपति तथा जिसस शत्रु गण अपने अपने शरीरक ऊपर अनिष्ट उत्पादन करते हैं उसके प्रवर्धक कहा है । उक्त मन्त्रके १०।१२५।१ मन्त्रमें तावत् देवताको ही 'विश्वेदेवा' बताया है । श्रुक १०।१२५ और १०।१२८ सूक्तमें विश्वेदेवाकी स्तुति की गई है । शुक्लयजुः २।२२ मन्त्रमें ये गणदेवतारूपम माने गये हैं । परवर्ती पीरा णिकपुराणमें इन देवताओंको मौडुध्वेदेविक क्रियाका उरम गाँदि पाल किया जाता है । अग्निपुराणमें इनका संख्या दश बताई गई है यथा—इन्द्र, वसु, अशु, सत्य, काम, काम, यजनि, रोषक, भाद्रय और पुकरवा ।

४ एक असुरका नाम ।

विश्वेदेव (सं० पु०) मर्गाकुट । (शुद्धार्थिक०)

विश्वेमोजस् (सं० पु०) विश्वे मुज अग्नि सतम्भा अनुकु । (उष्या २।२३०) इन्द्र ।

विश्वेदेवस् (सं० पु०) विश्वे विदु अग्नि ( विदुमुजिम्बो ) विश्वे । उण् ४।२३० अग्नि ।

विश्वेश ( स० पु० ) विश्वस्य ईशः । १ शिव, महादेव ।  
२ विष्णु । विश्वं ईश्वरोऽधिपतिर्यस्य । ३ उत्तरापठान्नक्षत्र । इमन्नक्षत्रके अधिपतिका नाम विश्व है ।

विश्वेशिनृ ( स० पु० ) विश्वका ईश्वर, सर्वेश्वर्यका कर्ता ।

विश्वेश्वर ( स० पु० ) विश्वस्य ईश्वरः । १ काशीस्थ महादेव । ये काशीधाममें अविमुक्तेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं । क्योंकि अपनी दुष्कृतिके कारण जिन्हें कभी भी मुक्तिलाभकी आशा नहीं, वे भी यदि कायकलेगमे उक्त धाममें देहत्याग करें, तो वे आसानीसे उन्हें मुक्तिदान देते हैं । इसी कारण वह धाम भी अविमुक्तक्षेत्र नामसे जगत्में प्रसिद्ध है । विशेष विवरण काशी और वाराणसी शब्दमें देखो ।

विश्वेश्वर—१ तत्त्वार्णव ग्रन्थके प्रणेता राघवानन्द सरतस्वतीके परम गुरु और अद्वयानन्दके गुरु । २ प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता कमलाकरके गुरु । ३ मीमांसा कौतूहलवृत्तिके रचयिता, वासुदेव अध्वरीके गुरु । ४ एक कवि । ५ अलङ्कारकुलप्रदीप और अलङ्कारमुक्तावलीके प्रणेता । ६ अध्यात्मप्रदीप नामक अष्टावक्रगीता-टीका और नेपालतापनीकी टीकाके रचयिता । ७ गर्गमनोरमा टीका नाम्नी ज्योतिर्वेत्ता और पञ्चस्वरटीकाके प्रणेता । ८ गृहपति-धर्म नामक एक ग्रन्थके रचयिता । ९ तर्क-कुतूहल नामक एक पुस्तक-रचयिता । १० दृग्दृग्प्रविचक नामक वेदान्त ग्रन्थप्रणेता । ११ निर्णयकौस्तुभ नामक ग्रन्थ रचयिता । १२ न्यायप्रकरण नामक ग्रन्थके प्रणेता । १३ भगवद्गीता-भाष्यकार । १४ मनोरमा-खण्ड नामक व्याकरण रचयिता । ५ रसचन्द्रिका नाम्नी अलङ्कार-ग्रन्थके प्रणेता । १६ रोमावलीशतकके प्रणेता । १७ लीलावत्युदाहरणके रचयिता । १८ विश्वेश्वरपद्धति नामक ग्रन्थ प्रणेता । १९ वेद-पादस्तव प्रणेता । २० शार्दार्णवसुधा-निधि नाम्नी एक व्याकरणके रचयिता । २१ श्रुतिरञ्जिनी नाम्नी गीतगोविन्दके टीकाकार । २२ सप्तशती-काव्यके कवि । २३ साहित्य-सारकाव्यके प्रणेता । २४ सिद्धान्तशिखामणि नाम्नी तन्त्रग्रन्थके रचयिता । २५ सन्यासपद्धति और विश्वेश्वर-पद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता । इस ग्रन्थकी आनन्दतीर्था और आनन्दाश्रम रचित टीका भी मिलती है ।

विश्वेश्वर आचार्य—१ काशीमठके प्रणेता । २ पद-वाक्यार्थ पत्रिका नाम्ना नैपथ्य टोकाकर्ता । ये मल्लिनाथके पहले विद्यमान थे ।

विश्वेश्वर काली—अमृतकार्त्तान्द्रिका काव्यके रचयिता ।  
विश्वेश्वर तन्त्र—तन्त्रमेढ ।

विश्वेश्वर तीर्था—१ सिद्धान्तकौमुदी-टीकाकर्ता । २ धेनुर्योपनिषद्भाष्यविरण नामक आनन्दतीर्थाकृत भाष्यकी टीका प्रणेता ।

विश्वेश्वर दत्त—रामनाममाहात्म्यके प्रणेता ।

विश्वेश्वरदत्त मिश्र—भारतस्तोत्र, योगनरुद्र और सागर-तरु आदि ग्रन्थोंके प्रणेता । ये विद्यारण्यतीर्थके शिष्य थे । संन्यासग्रहण कर उन्होंने वेदान्तार्थ स्वामीका नाम धारण किया । १८५२ ई०का काशीधाममें इनका देहान्त हुआ ।

विश्वेश्वर देवज्ञ—ज्योति सारसमुद्रयन्त्रे रचयिता ।

विश्वेश्वर नाथ—दुर्जनमुखचर्पटिका और भागवतपुराण-प्रामाण्य नामक दो ग्रन्थोंके प्रणेता ।

विश्वेश्वर पण्डित—१ वाक्यवृत्तिप्रकाशिका, वाक्यसुधा टीका और वाक्यश्रुति-अपरोक्षानुभूति नामक तीन ग्रन्थोंके प्रणेता । ये माधवप्राज्ञके शिष्य थे । २ अलङ्कारकौस्तुभ और उमकी टीका तथा ध्वजार्थकौमुदी नाम्नी रसमञ्जरी टीकाके प्रणेता ।

विश्वेश्वरपूज्यपट—वेदान्तचिन्तामणिके रचयिता शुद्ध-मिक्षके गुरु ।

विश्वेश्वरमठ—१ कुण्डमिदिके प्रणेता । २ सुखबोधिनी नामक एक व्याकरणके रचयिता । ३ मदनपारिजात, महादानपद्धति, महार्णव-कर्मविपाक, विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षराके व्यवहाराध्यायके सुबोधिनी नामक सार-सङ्कलन और स्मृतिकौमुदी आदिग्रन्थोंके रचयिता । मदनपारिजातादि शैोक ग्रन्थ विश्वेश्वरस्मृति नामसे प्रसिद्ध है । ये पेड्डि ( पेडि ) भट्टके पुत्र और राजा मदनपालके आश्रित थे । ४ अर्शाचदीपिका, पिण्डपितृ-यज्ञप्रयोग, प्रयोगसार, मर्त्तचिन्तामणि नामक जैमिनिसूत्र-टीका मीमांसाकुसुमाञ्जलि, राकागम नामक चन्द्रालोक-टीका, शिवाकौन्द्य नामक श्लोकवार्त्तिकटीका, निरुद्ध-पशुबन्ध प्रयोग तथा सुज्ञानदुर्गाद्य आदि ग्रन्थोंके प्रणेता ।

इसके सिवा बह्मदान बर्माक भाईशासे इन्होंने कायस्थ धर्म-दीप या कायस्थ-धर्मप्रकाश या कायस्थपद्धति नामक एक ग्रन्थ लिखा था। इनका बनाया हुआ जातिविशेषक नामक एक दूसरा ग्रन्थ कायस्थपद्धतिका प्रथम भाग है। इनके पिताका नाम दिनकर और पितामहका नाम रामप्रिय था। पिता दिनकरमें अपने नाम पर दिनकरौ घोत ग्रन्थ लिखता आरंभ किया परन्तु ये अपने जीवन कालमें इसे समाप्त न कर सके, येवाङ्क विश्वेश्वरने समाप्त किया था। निकट-वशुबन्धप्रयोगमें इन्होंने बहुत भावस्थग्रन्थतिका इवलेख किया है। ये गागा महु नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके मतीजेका नाम कमलाकर था।

विश्वेश्वर महु मीनिन्—एक क्षयि। कपीन्द्रचन्द्रोदयमें इनकी रचनाका उल्लेख है।

विश्वेश्वर निम्न—एक सुपरिचित। विरुदायमोके प्रणेता ह्युदेशक पिता।

विश्वेश्वर सरस्वती—१ प्रपञ्चमार-स महुके प्रणेता गोर्वा मेन्द्र सरस्वतीके गुरु और अमरेश्वर सरस्वतीक शिष्य। २ कलिधर्मसारसंग्रह परमहंसपरिभाषाक धर्म-म प्रह, यतिधर्मप्रकाश, पतिधर्मसमुच्चय, परवाधारम प्रहोय पतिधर्मकार प्रयोग भाङ्गि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये सर्वत्र विश्वेश्वरके गिण्य और गोविन्दसरस्वतीके प्रगिण्य तथा मयुर्वरुन सरस्वती और माधव सरस्वतीके गुरु थे। इनका दूसरा नाम विश्वेश्वरानन्द सरस्वती भी था। ३ महिमस्तबटोकाक प्रणेता।

विश्वेश्वर सूनू—उद्भक्तवतदनिश्चयके रचयिता।

विश्वेश्वरराम ( स० इ० ) विश्वेश्वररथ रथानाम्। विश्वेश्वरका स्वाम, काशीधाम। स्वयं विश्वेश्वर इन स्थानमें विराजमान हैं, इस कारण काशीधामका नाम विश्वेश्वरस्थान पड़ा।

विश्वेश्वरानन्द सरस्वती—विश्वेश्वर कालको देला।

विश्वेश्वरराम मुनि—सुदीपिका नामकी मारक्यनरीका ( अन्तराय ) क प्रणेता। प प्रथमागणक गिण्य थे।

विश्वेश्वरधाम—सर्कचन्द्रिका रचयिता। काइ काइ तक शक्तिवर्क प्रणेता विश्वनाथाधमके तथा इष्ट एक ही अग्नि समकते हैं।

विश्वेश्वर ( स० इ० ) काश्माक एक पवित्र तीर्थ क्षेत्रका नाम। ( एकर ५५४ )।

विश्वेश्वर ( स० इ० ) व्यासबन्ध। ( शुक १ १५५८ णव्य )

विश्वेश्वर ( स० इ० ) विश्वेश्वरधामम्। शुपठी मोठ। ( राजनि० )

विश्वेश्वर स० इ० ) सर्गल, सब जगह। ( शुक २५११ )

विष ( स० इ० ) विषक। १ जल ( अमर ) २ पञ्चकेजर ( अमरटाकामें रायमुकुन्द ) ३ मृषाम् ४ आमकी कोड़ा। ५ वरसनायविष। ( पु० इ० ) ६ म्नाम्य विष। ( राजनि० ) पर्व्याय—क्ष्वेद, गरल आदि अमृत गरल, कामकूट, कलाकृत्य हारिद्र रक्तशुक्र, नील, गद, धार, हाहाहल, इनाहल शुकुन्द, भृगु, साङ्ग, तीक्ष्ण रस रसायन, गरजकूट, जगुस काकोल वरसनाम प्रदीपन शोकि क्व प्रह्युक्त। ( रत्नमाहा )

अमरकोषके पातानबर्गमें विष विषयमें भी प्रकारके मेरु निर्विष रूप हैं—

“पुति बकोन व काकोसकभृदरकारसा।  
 सेरपटीका शोभिकेको ब्रह्मपुनः प्ररिम्ना ॥  
 बारदो बल्लामरव निम्मेदा बमी मग ॥” ( अमर )

इसक सिवा हेमचन्द्रमें भी विष विषयमें बहुतेरे मेरु दिकाइ हैते हैं। मोषे विषके नाम, छरण और गुणा गुणके विषयमें संक्षिप्त ब्याख्यना की जाती है।

विषके नाम और अर्थ।

माधवप्रकाशक पूर्वकथमें लिखा है, कि विषके पर्व्याय दो हैं—गरल और क्ष्वेद। इसक भी महु है, जैसे—परमनाम, हारिद्र, शकुक, प्रदीपन, सीरपिद्रक, शुकुन्द, कामकूट, इनाहल और प्रह्युक्त। जिन विषरसका पत्ता निशान्याके पत्तेकी तरह है, आहृति—बरमको नामि को महुग है और जिसक निरुदयकी अन्त्याय वृसननादि निम्नेज हो पयोचित बुद्धि प्राप्त हो नहीं सकते इसको बरमनाम कहा जाता है। हारिद्र—रस विषरसका मूक हरिद्रा ( इन्द्रो ) क मूककी तरह होता है। शकुक—यह विषरसको गाँठिका बिलग माग शकुक वा मजूको तरह पूर्णपक्षार्थोंस मरा रहता है। प्रदीपन—यह विष काम

रङ्गका होता है। यह दीप्तिशील और अग्निकी तरह प्रमाशाली है। इसके सेवनसे अत्यन्त दाह उत्पन्न होता है। सौराष्ट्रिक—सुराष्ट्रदेशके उत्पन्न सभी तरहके विष। शृङ्गकविष—इस विषको गायके सांगमें बाँध देने पर गोकु दूध लाल रंगका हो जाता है। कालकूट—प्राचीन समयमें देवासुर युद्धमें पृथुमाली नामक एक दैत्य देवके हाथसे मारा गया। उसका रक्त पृथ्वीमें जब पड़ा, तब उससे पीपल वृक्षको तरह एक विषवृक्ष उत्पन्न हुआ। उसी वृक्षके निर्यासको मुनिगण कालकूट कहते हैं। यह वृक्ष शृङ्गघेर और कौंकणप्रदेशोंके खेतोंमें उत्पन्न होता है। हालाहल—इस विषवृक्षके फल अंगूरकी तरह एक ही गुच्छेमें कितने ही फलते हैं। इनका पत्ता ताड़के पत्तेशी तरह होता है और इसके तेजसे निकटके वृक्ष जल जाते हैं। किष्किन्ध्या, हिमालय, दक्षिणसमुद्रके किनारेकी भूमि और कौंकण देशमें इस हालाहल विषका वृक्ष उत्पन्न होता है। ब्रह्मपुत्र—यह विष कपिलवर्ण और सारारक्तक है। यह मलयपर्वत पर उत्पन्न होता है।

ब्राह्मण, श्रुत्रिय, वैश्य, शूद्रके भेदसे यह विष भी चार तरहका होता है। उनमें पाण्डुरवर्णका विष ब्राह्मण, रक्तवर्ण विष क्षत्रिय, पीतवर्ण विष वैश्य और कृष्णवर्ण विष शूद्रजातीय है। ब्राह्मण जातीय विष रसायन कार्या में, क्षत्रियजातीय विष पुष्टि विषयमें और वैश्यजातीय कुछ निवारणके लिये प्रयुक्त है। शूद्रजातीय विष विनाशक है।

विषका गुणगुण्य ।

साधारणतः विषका गुण—प्राणनाशक और श्वश्यायी अर्थात् पहले विषका गुण सारे जरीरमें व्यक्त हो कर पोछे परिपाक होता है। विकाशी अर्थात् इसके द्वारा सहसा ओजोघातुका शोषण और सन्धिवन्धन सब ढीले हो जाते हैं। यह अग्निवर्द्धक, वातघ्न और कफ नाशक है। योगवाही अर्थात् जिस द्रव्यमें यह मिलाया जाता है, उसके गुणका प्राद्वक और मत्तताजनक अर्थात् तमोगुणाधिक्यके कारण बुद्धिबिनाशक है। यह विष विवेचनाके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन किया जाये, तो यह प्राणरक्षक, रसायन, योगवाही, त्रिदोषनाशक

शरीरके उपनायक और वीर्यवर्द्धक होता है। अग्निशुद्ध विष अहितकर है—इस विषके जो सब अग्निष्ट-जनक तीव्रतर गुण वर्णन किये गये हैं, शुद्ध करनेसे वे होनशील हो जाते हैं। सुतरां विषप्रयोग करनेसे पहले उसको शुद्ध कर लेना चाहिये।

विषका शोधन—विष ( टुकड़ा टुकड़ा काट कर ) तीन दिनों तक गोमूत्रमें रग छाड़ना होगा, पाछे उनका छिलका निकाल कर फाँक देना चाहिये, पाछे शुष्क करने-क बाद लाल सरसोंके तेलमें निगे कपड़ेमें बाँध कर तीन दिन तक रखनेसे विष शुद्ध हो जाता है।

विषके सिवा कई उपविषोंका भी उल्लेख है। थूहरका दूध, मनसाका दूध, इपलागला, करवीर, कुँच, अफाम, धतूरा और जयपालघाज—ये मात्र उपविष हैं।

इन्के गुणगुण्य इन्के नामका विवरणमें देखो।

वैद्यक ग्रन्थाधिके विषाधिकारमें स्यावर और जङ्गम-भेदसे विष दो तरहका है। उनमें स्यावर विषके आश्रय-स्थान दृश है और जङ्गमके सोलह हैं।

स्यावर विषके स्वरूप यथा स्यात् इस तरह हैं—मूल, पत्र, फल, पुष्प, न्वक्, शीर, सार, निर्यास, धातु और कन्द। वृक्षक इन दृश अंगोंका आश्रय कर स्यावर विष विद्यमान रहता है ; उनमें मूल-विष करवीरादि ; पत्र-विष विषपत्तिकादि, फलविष कर्कोटिकादि, पुष्प विष चेत्यादि, त्वक्, सार और निर्यास विष करण्डादि, शीर-विष मनसासिज आदि, धातुविष हरनाल आदि और कन्दविष वरसनाभादि हैं।

जङ्गम विषके १६ आश्रयस्थान इस तरह हैं—दृष्टि, निश्वास, दाद्रा, नय, मूत्र, पुरीष, शुक, लाला, आर्चाव, स्पर्श, सन्दर्ग, अचञ्चित ( वातकर्म ), गुह्य, अस्थि, पित्त और शूक। दिव्य सर्पको दृष्टि और निश्वासमें, व्याघ्र आदिके कांठने और नखोंमें, छिपकली आदिके मूत्र और पुरीषमें, चूहे आदिके शुक-में, उच्चटिकादिके लालामें, चित्तशीर्षादिके लाला, स्पर्श, मूत्र, पुरीष, आर्चाव, शुक, मुखसंदाद्रा नातकर्म और गुह्यमें, सर्पादिकी हड्डोंमें, जङ्गल मत्स्य आदिके पित्तमें और प्रमर आदिके शूकमें विष रहता है।

स्वावर विषका कार्य ।

जब स्वावरविषके साधारण कार्योंके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है। मूत्रविषका कार्य—यह विष शरीरमें प्रविष्ट होने पर इच्छेसे मर्जन करनेकी तरहकी वेदना, मोह और प्रलाप होता है। पल विषका कार्य—जुम्मा (प्रभाई), कम्प और श्वान (शमभूलना)। फलविष का कार्य—अण्डकोषमें शोध सर्वात् बैसिका फूल जाना, शह और अन्नमक्षजमें मनिच्छा होना। पुष्पविषका कार्य—उलटी होना, उत्राधमान और मूच्छा। त्वक् सार और निष्वास विषका कार्य—मुखमें दुर्गन्ध वेदनें कर्कशता, शिरमें पीड़ा और कफलाव होना। क्षीरविषका कार्य—मुखमें फेन आना, मलमेश और सिद्धाका गुदस्थ। धातुविषका कार्य—इत्यमें वेदना और तादृमें शह-। उष्णवित्त नो स्वावर विषोंसे प्रायः ही कामान्तरमें प्राण विमल होता है। स्वावर विषोंमें इशवा कम्प विष है—यह उपशोषसम्पन्न है। यह विष तेरह तरहका होता है। इन सब विषों को पीछे कहे गये दश गुणाश्रित समन्वना होगा। विष स्वावर, अङ्गम या कृमिम खादि किन्ती तरहका मर्जन हो वह दशगुणान्वित होनेसे शोष ही प्राण नाश करता है। इन दशोंक गुण इस तरह हैं—यस उष्ण, तोकण, घृत्न भाशुकारी, श्वयायी, बिकानी, बिशद, लघु और भपाकी।

उक्त दशगुण युक्त विष इस गुणमें वायु और उष्ण गुणमें विष और रक्तकं प्रकृतिन करता है। तोकण गुणमें बुद्धिदश और मर्गबन्धन छेदन करता है। घृत्न गुणमें शरीरक मरदवमें प्रविष्ट हो कर उम विह्वल कर देता है। भाशुकारी गुण होनेसे यह मर कार्य शोष सुममग्न होता है। श्वयायी गुणमें प्रकृति और विकानी गुणमें शोष, धातु और मर विमल करता है। बिशद गुणमें मनिगय विरेचन हृदयन करता है। मगाकी गुणमें अशोष होता है और लघुगुण गुणमें यह बुद्धि विरम्य हो जाता है।

वृष्य विषके प्रत्यक्ष ।

पहले स्वावर विषके साधारण कार्योंका उल्लेख किया गया है। जब अङ्गम विषके साधारण कार्योंका

उल्लेख किया जाता है। मित्रा तंद्रा, ह्यग्नित, दाह, पाक रोमाञ्च जोष और अतिसार ये कई अङ्गम विषके साधारण कार्य हैं। इन सब अङ्गम विषोंमें सर्प विष ही तीक्ष्णतर है। इससे पहले सर्पविषका उल्लेख किया जाता है। सर्प ज्ञाति चार भागोंमें विभक्त है। यथा—मेगा मण्डली रात्रिका और इन्द्ररूपी। मेगी अर्धसे फल्ययुक्त, मण्डली सर्प मण्डलाकार चक्रात्मी, रात्रिका श्रेणीके सर्पका गाल लम्बी रेशाओंसे घिरा रहता है और इन्द्ररूपी सर्प मिश्रित रूपधारा होते हैं। ये सब क्रमम धातारमक पिच्छारमक, कफरमक और त्रिदोषारमक हैं। फल्ययुक्त सर्प बोस तरहका होता है। मण्डली सर्प नाना रङ्गोंसे चिह्नित मोटे और पीरगामी होते हैं। ये छः प्रकारके होते हैं। मनि और धूपक उतापसे इस का विष वेगबाध होता है। रात्रिका सर्प स्निग्ध तिष्ठन् गामी और नाना रङ्गकी रेशाओंसे रेशाग्वित है। ये भा छः प्रकारके हैं। इतके सम्बन्धमें 'छर्पविष' इन्द्र लेले।

उर्ध्वके काम हुए स्वानका कण्ठ्य ।

मेगी ज्ञातीय सर्पोंके काटनेसे काटा हुआ स्थान कासा हो जाता है और रोगी सब तरहसे घात बिकार विशिष्ट हो जाता है। मण्डली सर्पके काटनेका या डसनेका स्थान पीछा, शीघयुक्त और मृदु होता है और रोगी पित्तबिकारग्रस्त रेशा जाता है। रात्रिका ज्ञातीय सर्पके वंशमक्ष इष्टस्थान शिघ्र, शीघयुक्त, पिच्छक, पाण्डुवर्ण, स्निग्ध और अतिशय गाढ़ रक्तयुक्त होता है तथा रोगी मर तरहसे कफविकारग्रस्त होता है।

विश्रम्यत रक्षापातके मक्षय ।

शत्रु द्वारा विषयित शत्रुसे आपात पामे पर मनुष्यका यह क्षणस्थान शोष ही पक जाता है। इस स्थानसे रक्तलाव होता है और सड़ा मांस गिर पड़ता है। इस स्थान चारंबार पकता है और बाला तथा कजेद्युक्त होता है। फिर रोगीका विवास मन्साई, पदिराई और मूर्च्छा होती है। अन्य प्रकारसे उपर क्षण स्थान में विषय होत पर भी ये मर मक्षय दिखाई देते हैं।

रात्रा मण्डलात्माओंके पद पद पर शत्रु होता है। शत्रु प्रायः हो इनके मोक्षमें गुल रूपमें विष मिला देनेको चेष्टा करते हैं। बुद्धिमान, शक्तिशाली विचिरसक

वाक्य, चेष्टा और मुखकी विवर्णता आदि लक्षण देख कर विषदाना शत्रु को पहचान ले ।

देस, कान्न और पात्रमेदमे सर्पविषका असाध्यत्व ।

पोषल-वृक्षके नीचे, श्मशान, चरमीकके ऊपर और चतुःपथ—इन सब स्थानोंमें, प्रभातमें और संध्या समय, भरणी और मघा नक्षत्रमें तथा शरीरके चर्मस्थानमें टंजन करनेसे वह विष असाध्य होता है । दर्वीकर नामक एक जातिके सर्प होते हैं, ये सर्प चक्रूलांगुल, फणधारी और जीवनामी हैं । इनके विषसे जीव ही प्राण विनष्ट होता है । ये मेघ, वायु और उष्णताक संयोगसे द्विगुण तेजोयुक्त होते हैं ।

ऊपर जो कहे गये, उनको खोड और भी कई प्रकारके असाध्य विष हैं । उन सब तरहके विषोंसे प्राण संहार अनिवार्य है । अजीर्ण-प्रस्त, पित्तात्मक, रौट्र-पीडित, बालक, वृद्ध, क्षुब्धित, क्षीण, क्षनामियुक्त, मेह और कुष्ठरोगाक्रांत, रुक्ष और दुर्बल व्यक्ति या गर्भिणी इनके शरीरमें विष प्रवेश करने पर किसी तरह प्रशमित नहीं होता ।

अचिकित्स्य विष-पीडितके लक्षण ।

गन्ध द्वारा क्षत होने पर भी जिसकी देहसे रक्तक्षरण नहीं होता, लता द्वारा मारने पर भी जिसकी देहमें लताक, चिह्न निकल नहीं जाता या शीतल जलसे स्नान कराने पर जिसके शरीरके रोगटे खड़े नहीं हो जाते, ऐसे विष-पीडित व्यक्तिको चिकित्सक त्याग कर दें । जिस विषपीडित व्यक्तिका मुख स्तब्ध, केश शातन, नासिका बक, श्रोत्रा ( गरदन ) धारणशक्तिहीन, दृष्ट स्थानकी मूजन रक्तमिश्रित और काली तथा दोना घुटने सटे हों वह रोगी भी परित्याज्य है । जिस विषपीडित रोगी के मुखसे गाढ़ी राल, मुख, नासिका, लिङ्ग और गुह्यद्वार आदिसे गून गिरता हो और सर्पने जिसे चार दिनोंसे काटा हो, ऐसे व्यक्तिको चिकित्सा निष्फल है । जो विष पीडित, व्यक्ति उन्मादकी तरह बोलता हो, ज्वर और आत-मार आदिके उपद्रवमें जिसका देह आक्रांत हो, जो वात नहीं कर सकता हो, जिसका शरीर काला हो गया हो और जिसके नासाभङ्ग आदि अरिष्ट लक्षण सम्यक् रूपसे परिष्कृत हो चुके हों, ऐसा रोगी भी चिकित्साके योग्य नहीं ।

दूषीविष ।

स्थायर और जड़म ये दोनों तरहके विष जीर्णत्व आदिके कारण दूषीविष कहलाते हैं । जो विष अत्यन्त पुराना है, विषय औषध द्वारा भी वीर्य हीन या दावाग्नि वायु और धूप आदिके शोषणसे निर्वीर्य, अथवा जो स्वभावतः ही दश गुणोंमें एक, दो, तीन गुणहीन है, उसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष अल्पवार्ज्य है, इससे यह प्राण नष्ट नहीं करता, किन्तु कफा-नुबन्ध हो कर बहुत दिनों तक शरीरमें अवस्थान करता है । दूषीविष-प्रस्त मानवके मलमेद, भ्रम, गदगद वाक्य, कौ और विरुद्ध चेष्टाके कारण नाना तरहके क्लेश होते हैं । शरीरके किसी स्थानमें इस दूषीविषके रहनेसे शरीरमें विभिन्न प्रकारके रोग और उपद्रव होते हैं । शीत-में और वातवर्षासंकुल दिनको दूषीविष प्रकुपित होता है । दूषीविष प्रकोपसे पहले निद्राधिक्य, देहकी गुरुता और शिथिलता, जंभाई, रोमहर्ण तथा शरीरमें वेदना उत्पन्न होती है । दूषीविष प्रकुपित होने पर अन्न भोजन करनेमें मत्तता, अपाक, अर्चि, गालमें मण्डला-कृति कोढ़की उत्पत्ति, मांसक्षय, हाथ और पैरमें सूजन के, अतिसार, श्वास, पिपासा, ज्वर तथा उदरी या उदररोग बढ़ता है ।

कृत्रिमविष ।

गर और दूषीविषमेदसे कृत्रिम विष दो तरहका है । उनमें दूषीविषमें विष संयुक्त रहता है । किन्तु गरविषमें वह संयुक्त नहीं रहता । स्त्रियाँ अपने मतलब गांठनेके लिये पुरुषोंको स्वेद, रजः या अन्यान्य असङ्गत मल, अन्न आदिके साथ गरविष खिला देती हैं और शत्रु द्वारा भी ऐसा विष खिलाया जाता है । गरविष देहमें प्रवेश करने पर देह पाण्डुवर्ण और कृण्ण हो जाती है । परन्तु मन्दाग्नि, उदर, प्रहणी, यक्ष्मा, गुल्म, घातुक्षय, ज्वर और इस तरह कई प्रकारके रोग क्रमसे उपस्थित होते हैं ।

विषचिकित्सा ।

इस समय सक्षेपमें विषकी चिकित्साका विषय-वर्णित किया गया । सबसे पहले स्थावर विषकी चिकित्साके विषय पर कुछ लिखा जाता है ।

स्थावर विषसे आक्रामक रोगोंके विषे की ही प्रधान चिकित्सा है। अतः इस विषसे पीड़ित रोगीको पत्तके साथ की बरा देना चाहिये। विष अत्यन्त तीक्ष्ण और उष्ण है। इससे मूत्र तरलके विषरोगमें जीवनपरिचर दितकर है। उष्णगुण और ताप्य गुणमें विष अत्यधिक परिमाणमें पिचका वृद्धि करता है। इसविषे की बरानेके बाद शीतल जलसे स्नान कराना उचित है। विषपीडित व्यक्तिका शीघ्र पूत और मधु द्वारा विषघ्न क्षीय लिलानी चाहिये। भोजनार्थ बड़ा पदार्थ तथा घषपदार्थ कामी मिर्च देनी चाहिये। जिस दोषक मज्जा मधिक विकार दे उसी दोषकी क्षीय द्वारा विपरीत किया करनी चाहिये। विषाक रोगीके भोजनके छिपे जालि, पण्डिक, केपेई और क गनीक आयसका भात देना चाहिये तथा की और दस्त द्वारा अनुष्वांया शोधन करना चाहिये। मितोपका मूल, छाल, पत्र पुत्र और चोत्रको पत्रक गामूल द्वारा पीस कर प्रलेप करनेसे विष शांत होता है। दूरीविषसे पीडित व्यक्ति यदि मित्प, की और दस्तावर चोत्र ल्याये, तो विष जल दूर होता है। विषको, शैदियण, बरामांसी, शीघ्र इलायचा लालि काहार, मिर्च वासा, इलायची और सुवर्ण गीरक इनके साथ मधु मिला कर पाल करने से दूरीविष विनष्ट होता है।

क गम विषकी चिकित्सा।

पी ४ मीर, बरुचार्थ इरानकी (छाटा हरे) गोरीबना, कुद, आकम्बका पत्ता, मोषेालक, मन्मूल, धेतमूल गरव, तुलसा, इन्पव म जोठ भनत्तमुम, शतमूली मि पादा, मज्जासु और पत्रकेगार ये सब समभागमें मिला कर १ मीर, दूध मोनह सर। यह पूत पाक कर ठका होने पर उसमें ४ मर मधु मिला है। माताक अनुसार पान मज्जा अथवा कर्मिप्रयोग (निककारी) से सुखेय विष, गरदोप दोत्रकविष तमकश्वास कण्ठ, मांसपाद और अधि तनता नष्ट होती है। इसके हरशोभात्रसे माता विष विनष्ट और गरहन विहनर्षा प्रहनण्य हो जाता है। इसका नाम मृत्युपादम्पेदितृण।

पूरुवेको जड़ या अनुष्ठेद पृथक जड़ या बॉम  
१०६, १११ ११५

की जड़को दूध द्वारा पीस कर पी जानेसे कुसेका विष दूर हो जाता है। इरिता (हमवो) बाकरिद्रा एकचपन, म जोठ और भागकेगार, ये मष शीतल जलमें पीस कर इसका प्रलेप करनेसे शीघ्र छताविष दूर होता है। बारीक पीसा हुआ जीरा, धी और सैन्धव नमकमें मिला कर बरा गर्म करे। इसमें मधु १ कर मच्छो तरल घोट बाने और काटे हुए म्याल पर लगाये तो विषका विष हतर जायेगा। सुर्वावर्षा (शुल्फा) पृथका पत्ता मय कर इसका सु धनेसे विषका विष दूर हो जाता है। नरमूलसे ह करवाणको पी देनीय या ठनी पर पेगाव कर देनेसे यह शीघ्र शराम होता है। इसकी जमन या हई दूर हो जाता है। यह दबा बहुत फायदा मफ है।

विषविपरीते कषण।

विषपीडित व्यक्तिके आरोग्यलाभ करने पर बातादि दोष नष्ट होता, धातुकी आमाविक अवस्था आ जाता, धानेमें कश्चिकर और मज्जमूलका मो पधापधमावसे निक रना शारी हो जाता है। इसक सिवा रोगीका धर्ममस स्मता, इन्द्रियपट्टना और मनकी प्रफुल्लता होता तथा यह कम कमसे घेरासत होता है।

( भावप्रमथ विषविपकार )

मिवा इसक घरक, सुभ्रुत भादि चिकित्सा-प्र धों से मी विषविचिन्माकी कई प्रणालियां विविध हैं। विषव बढ़ जानेक मपसे यहाँ से नहीं वा गर।

परिपायिक विष।

पूर्वपुराणमें लिखा है कि जिवाविष हा कबल विष नहीं। परन्तु प्रसल और शैवको मी विष कहते हैं। सुतरां ये दो मी सर्वसोमावस पत्तक साथ परि त्याग करने चाहिये।

"न विष विषविषादुर्बल विषमुष्ण।

देवस्तत्रापि अनेन तथा परितोराना ॥"

( शुभ्रु० उणि १५ म )

भौतियाग्नकाः सायकनेसे मी कई विषवीको विष कहा है। इनक मतमें पुरधोण विद्या, अक्षीण अवस्था से भोजन, इरिठक बहुत परिजन पृथकी मुक्ता म्भा, राजिकासका समण, राजाका अनुकृतता, अथ्यामका



खी और अदृष्ट व्याधि ये सब ही विष अर्थात् विष-तुल्य हैं।

“दुग्धीता विषं विद्या धनीयं भोजनं विषं।

विषं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तस्यो विषम् ॥

विष चटकमण्यं रात्रौ विष रात्रौऽनुकूलता।

विषं स्त्रियोऽप्यन्यद्द्वयो विषं व्याधिरधीकृतः ॥”

( चाणक्य )

पाश्चात्य मतने विषके लक्षण ।

विष किमको कहते हैं, इस प्रश्नकी मीमांसाके सम्बन्धमें वैज्ञानिक परिणतोंकी बहुनेरी आलोचनायें दिखाई देती हैं। किसीका कहना है, कि जो देहसंसृष्ट होने पर अथवा किसी तरह देहमें प्रवृष्ट होने पर स्वास्थ्यकी हानि या जीवन नष्ट हो सके, उसीकी विष-संज्ञा होती है। साधारण लोगका कहना है, कि अति अल्प मात्रामें जो पदार्थ शरीरमें प्रवेश कर जीवनका नाश करता है, वही विष है। फलतः विषकी ऐसी संज्ञा रखना उचित नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे वह अतिव्याप्त या अव्याप्तिदोषदुष्ट होता है। अति-अल्प मात्रामें काचका चूर्ण पेटमें पहुँचने पर प्राणनाश कर सकता है। किन्तु इतने उसे विषकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। जो अन्न हमारे देहके लिये अत्यन्त प्रयोजनीय है, दैहिक अवस्थाविशेषमें या परि-माणाधिक्यमें वह भी विषकी तरह कार्य कर सकता है। और तो क्या—जिम वायुके बिना हम लोग एक क्षण भी नहीं जी सकते, समय विशेषमें और देहकी किसी अवस्थामें वही वायु देहको हानि पहुँचाती है। सुतरा विषकी यथायथ संज्ञा निर्धारण करना सहज काम नहीं है।

किन्तु हमारी भाषामें व्यवहारिक प्रयोजनके लिये अनेक पदार्थ विषसंज्ञासे अभिहित होते आ रहे हैं। उन सब पदार्थों के सम्बन्धमें हम यहाँ पर आलोचना करेंगे। पाश्चात्य प्रदेशोंमें भी विषके सम्बन्धमें वैज्ञानिक आलोचना दिखाई देती है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानमें विषविज्ञान “टॉक्सोलॉजी” (Toxicology) नामसे अभिहित होता है। मेडिकल जुरिस्प्रुडेन्स नामक चिकित्सा-विज्ञानमें विषविज्ञान एक प्रधान अङ्ग है। चिकित्सा

व्यवसायीमात्रको यह जाननेकी वृद्धि जरूरत है, कि विषक्रियाके क्या लक्षण हैं? और उन दुर्लक्षणोंकी शान्तिकी क्या व्यवस्था है?

विषकी क्रिया ।

पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञानको पढ़नेसे मालूम होता है, कि विषकी कई क्रियायें हैं। ये क्रियायें स्थानीय और दूरव्यापित्त हैं। विषकी स्थानीय क्रियामें किसी स्थानका चर्म विदीर्ण होता है, कहीं प्रदाह हा होता है अथवा क्षानजनक या गतिजनक (Sensory or motor) स्यायुके ऊपर क्रिया प्रकाश पाती है। दूरव्यापित्त क्रिया दूसरी तरहकी है। सृष्ट स्थानमें उसकी क्रिया प्रकाशित हो सकता या नहीं भी हो सकता है; किन्तु दूरवर्त्ती यन्त्रके ऊपर उसको सविशेष क्रिया प्रकाश पाती है। इस अवस्थामें रोगके लक्षणका तरह विषक्रियाके लक्षण दिखाई देते हैं। जब दूरव्यापित्त क्रिया प्रकाशित होती है, तब समझना चाहिये, कि विषपदार्थ शरीरमें शोषित हुआ है। सुतरा दूरवर्त्ती क्रिया प्रकाशकी प्रधानतम साधन—देहमें विषशोषण है।

विषक्रियाका न्यूनाधिक ।

सब अवस्थाओंमें विषकी क्रिया एक तरहकी नहीं दिखाई देती। विषका मात्राधिक्य, देहमें उसका क्रमोपचय और दैहिक पदार्थके साथ समिश्रण और विषाक्त व्यक्तिकी शारीरिक अवस्थाके अनुसार विषकी क्रियाका तारतम्य होता रहता है।

विषका श्रेणीविभाग ।

आयुर्वेदमें विषका जिस तरह श्रेणीविभाग किया गया है, उस तरह पाश्चात्य विज्ञानमें नहीं हुआ है। पाश्चात्य विज्ञानविद्दु पण्डितोंका कहना है, कि विषका श्रेणीविभाग करना सहज घटना नहीं। पाश्चात्य विज्ञानमें निखिल विषोंको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है। जैसे—

- (१) करासिवम या देहतन्तुका अपचायक।
- (२) इरिटेंटस् या उग्रताकारक।
- (३) न्यूरेकस वा स्नायवीय विहृतिवर्द्धक।
- (४) गैसियस वा वायवीय विष।

द्वैतमयुक्त अणुचय कर विष समूह ।

इस श्रेणीके सब विषोंमें पाच ( पाच ) पचिद द्रव्य ही सबसे पहले झलकेजनीय हैं । इसके सिवा सल क्यूरिक एसिड, नारदिक एसिड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, भाक्रेमिक एसिड, कार्बनिक एसिड, पोटाश, सोडा, एमोनिया, वाइसकफेड बाब पोटास, फटकारो, एडमनो नाइट्रेट बाब सिलवर और क्षार पदार्थके बिबिध कार्बनेट समूह भी इस श्रेणीके अन्तर्गत हैं ।

इन विषों द्वारा वेद दियाष्ट होने पर निम्नलिखित मस्य विचार्यै देते हैं । किसी पदार्थके गलेके नीचे जाते हो मुखमें, मुखगहरके नीचे तालुमें, और आमाशय में अल्पतः अकन पैदा होती हैं । कभीसे यह अकन सारी अ सक्रियोंमें फैल जाती हैं । इसके बाद दुर्गंधार्थ वमन का उपद्रव विचार्यै देता है । कनिष्ठ एसिड अथवा भाक्रेमिक एसिड सेवन करनेसे जो है होती है, उनी है-से निकले पदार्थ पका पकने मतह पर पड़नेसे उससे एसिडकी क्रिया तुरन्त विचार्यै देती है । अर्थात् इन स्थान परमें बुद्धबुदा उठता रहता है । इस वमनमें जो किमी तरह शान्तिबोध नहीं होता । है-के साथ एक कण भी विचार्यै देती ह और तो क्या अणुवाहानकीका गाह इस विषमें अणुचय हो कर उसको निद्रिणों तक विनिसर और बिच्छुत होता है और वास्तु पदार्थके साथ मिक जाता है । आयुमें बदराध्यान होता है । बदरक ऊपर हाथ फेरना भी रोगीको असह्य हो उठता है । अणुकर उबर होता है । मुकके मांस आदिमें अनेक स्थलमें स्पष्टता हत विचार्यै देते हैं । विषका परिमाण अधिक रहनेसे थोड़ी ही देरमें रोगीकी मृत्यु हो जाती है । अल्प मृत्यु न होने पर भी मुखमें और अ सक्रियोंमें इन ही निराश्चय पाठनाका जो हा मोग उठत करते अन्तर्गत ही रोगीक बुद्धमय अीबनका अन्त होता है ।

बिचिष्टा ।

इन सब विषयोंद्विष्ट रोगीको चिकित्सामें सबसे पहले अणुवाहान और आमाशयका धो डालनेको बड़ी जरूरत है । इसीविषय पाश्चात्य चिकित्सकगण सुके मम म्नाफेन नामिक य अक द्वारा आमाशय धो डालने की व्यवस्था करते हैं । विषको क्लियासे आमाशयको

अहारवाहारी बहुत कमशोर हो जाती है । अतः यह "शामकपम्प" व्यवहार करना युक्तिसंगत नहा । सिन्ध कारक पानीप, पालोंका अक और अफोम अरिठ औपधों का प्रयोग करना कर्त्तव्य है । मिम्न मिम्न विषमें मिम्न मिम्न प्रकारका द्रव्य विषबिक्रिस्तामें व्यवहृत होता है । यद्यपि इस श्रेणीके सभी विषों में हो प्रायः एक समान क्लृप्त विचार्यै देते हैं तथापि विष द्रव्य विशेषमें बिक्रिस्ताक प्रव्यादि और प्रयोग प्रकार सततत वर्णित हुए हैं । नीचे कर प्रधान और प्रचारित विष द्रव्योंका बिक्रिस्ता प्रयासोका झलके किया जाता है—

( १ ) क्टोसिड सबलीमेट—इसकी संस्कृत और हिन्दीमें रसकपूर कह सकन है । किन्तु रसकपूर बिशुद्ध क्टोसिड सनलीमेट नहीं है । इसमें बहुत परिणाममें काकोमेन मिका रहता है । आयुर्धेवीय किसी किसी औपधमें रसकपूरका प्रयोग क्या जाता है । शकारके रसकपूरमें काकोमेन और क्टोसिड सबलीमेटक परिणामको स्थिरता नही है । किन्तु इसमें अब क्टोसिड सबलीमेटका परिणाम अधिक रहता है, तब इस पदार्थका अणुवाहानमें व्यवहार करने पर भी अणुचय विषयज्ञान विचार्यै देता है । पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रमें जो क्टोसिड सबलीमेट बिबिध रोगोंमें हाइड्राज पाचकोराइड नामसे व्यवहृत होता है । इसकी मात्रा एक ग्रामके ३२ भागसे १३ भाग तक है । किन्तु रसकपूर ८ ग्राम मात्रा तक व्यवहृत होता है । रसकपूरमें हाइड्राज पाचकोराइडका भाग अणुवाहान हत अनेक कम रहनेसे रतनो मात्रामें व्यवहृत हो सकता है । एक ग्राम क्टोसिड सबलीमेट सेवन करनेसे मनुष्य की मृत्यु होती दिया जाता है । इसकी प्रतिपेधक औपध जिम्ब या अणुके रास-पदार्थ है । जिम्बकी रास-अणुमें घोस कर तुरन्त सेवन करानेसे विष शोषित नही हो सकता । प्रभुर परिणामसे पुना पुना जिम्बकी रास सेवन कटा कर वमनकारक औपधों द्वारा वमन कराना उचित है ।

( २ ) कनिष्ठ एसिड—सालप्यूरिक, नारदिक, हाइड्रोक्लोरिक, आदि पचिद एसिडों द्वारा विषाक होने पर क्षार, कार्बनेट और लकू आदि द्रव्य सेवन करना

उचित है। इन सब प्रक्रियाओं द्वारा एमिडकी क्रिया विनष्ट होती है।

(३) अकृजालिक एसिड—यह भयङ्कर विष है। इससे १५ या ३० मिनटमें ही आदमी मर जा सकता है। अकृजालिक एसिड खनिज नहीं, उद्भिज्ज है। माघारणतः हृत्पिण्ड पर इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। इस विषके सेवन करते ही रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है और सहसा मूर्च्छित हो कर प्राणत्याग करता है। इसके द्वारा विषार्च होने पर सब तरहकी घमनकारक औषध सेवन करना कर्त्तव्य है। इसके बाद फूलप्रवांका व्यवहार करनेसे अकृजालिक एसिडकी विषक्रिया नष्ट होती है।

(४) श्वारद्रव्य—पोटास, सोडा और इनके कार्बनेट और सल्फाइड सेवनसे भी खनिज एमिडकी तरह विषक्रिया प्रकाशित होती है। अधिष्णु, इन सब द्वारा देहमें विषलक्षण विगई देने पर उसके साथ अतिसार भी उमका एक आनुमाङ्गिक लक्षण रूपसे दिखाने लगता है। अम्लद्रव्य सेवनसे इस अवस्थाका प्रतिकार करना चाहिये।

(५) कार्शोनिक एमिड—यह भी एक भयङ्कर विष है। यह विष देहमें जो स्थान-स्पर्श करता है, वह स्थान देखने देखने श्वेत वर्ण धारण करता है, डेहतरु संकुचित हो जाते हैं। स्नायुकेंद्रमें विषकी क्रिया शीघ्र ही प्रकाशित होती है। इसलिये रोगी सहसा अचेतन हो जाता है। इसका विशेष लक्षण यह है, कि इस विषके सेवनके बाद पेशाब हरे रंगका हो जाता है। इसका प्रतिकार—चूनेके जलमें चीनी मिला गरवत बना कर रोगीको खूब पिलाना चाहिये। सालफेट आव सोडा जलमें घोल कर सेवन करनेसे भी विशेष फल होता है।

उप्रनाजनक विष।

उप्रनाजनक विष उत्पत्ति स्थानसे दोन तरहके होते हैं। घातव, जङ्गम और उद्भिज्ज। इस श्रेणीके विष सेवन या ग्राहमें स्पर्श करानेसे स्पृष्टस्थानमें जलन पैदा होती है अर्थात् स्पृष्टस्थल रकरसादि द्वारा स्फोट (मोटा) और वेदनायुक्त हो जाता है। घातव उप्रनाजनक विषमें सबसे पहले आर्सेनिकका नाम लेना चाहिये।

संस्कृत भाषामें यह विष गद्गविषके नामसे परिचित है। हिन्दीमें इसे "सन्धिया" कहते हैं।

सन्धिया विष, रग्नाञ्जन, सीमा, लौवा, रग्ना और क्रोमयम आदि भी घातव विषके अग्रभूक है। उप्रनाजनक उद्भिज्ज विषोंमें स्ट्रेटेरियम, गाम्बोज, सुमध्वर, फ्लोसिनथ और जयपालके नाम विशेष भावने उत्पन्न नीय है। जङ्गम या जैय उप्रविष पदार्थोंमें कान्धारिज ही प्रधानतम है।

उद्भिद् और जाल्ज उप्रनाजनक विष मात्र उग्रमें मा उत्पन्न हो सकता है। फिर वेकटेरिया (जीवाणु-विशेष) द्वारा भी देहमें विष सञ्चारित होता है। करो मिव या ट्रेडिक उपादान-विशेषोंमें विषका अपेक्षा उप्रनाजनक विष बहुत धीरे धीरे क्रिया प्रकाशित करता है। इस जातिका विष नलेके नाचे उग्रने पर मुखमें और उग्रने जलन पैदा करना है। पेट हाथ छुने पर भी रोगीको विशेष दुःखोच होता है। वमन, विषमिया और पासा उपास्थित होती है। कैंके बाट ही रग्ना आने लगते हैं। उमने भी विष न निकल सकने पर प्राणहक उग्र दिना देना है। इस उग्रमें अर्चन-न्यावर्णामें रोगीको मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणीके विषकी क्रियाके साथ कई रोगोंका यथेष्ट साह्य है। जैसे अमाशयका प्रदाह (Gastritis), आमाशयिक क्षत, शूल (Colic), उग्र और अंतर्द्विषांमें प्रदाह और हेजा होता है।

१—इस सबसे पहले सन्धिया विषकी बात कहते हैं। जिन सब विषोंसे मनुष्योंके आमाशय और अंतर्द्विषांमें उग्रना उत्पन्न होता है, उनमें सन्धिया ही प्रधान है। सन्धिया विष नाना तरहमें तय्यार किया जाता है। जिस नामसे चाहे जिस प्रणालीसे वह तय्यार फ्योंन हो, उसकी अल्प मात्रा भी मनुष्योंके लिये निदारुण हो उठती है। इसका एक प्रेनकी मात्रामें मनुष्योंकी मृत्यु हो सकती है। देह बहुत दुर्बल हो जाता है। मूर्च्छाकी तरह मान्द होने लगती है। इसके बाद जलन पैदा होता है। वमन आरम्भ होता है, जो कुछ मुखसे निकलाया जाता है, वह भी वमनके साथ बाहर निकल आता है, पेटमें ठहरने नहीं पाता। इस वमनसे भी

आमाशयको पीड़ा या मारिटिव बोध तिरैरहित नहीं होता। इस्त होता है और उसके साथ खून निकलता है। पस्तोगा निकलता है तथा व्यास लगती है। नाड़ीकी गतिमें कमजोरी तथा भ्रमिपमित माध विचार होता है। अङ्गारदले बहस्र बण्डे तकमें रोगीकी मृत्यु हो सकती है। संक्षिया विपकी क्रिया तथा हौजेका क्रिया प्रायः एक समान है। संक्षियाकी विपक्रियाक लक्षणोंमें उन्मिन्नित मसृण हो विधीय हो प्रयोजनीय है।

संक्षिया विपक रूप और सूक्ष्मेसे भी विपक्रिया उत्पन्न हो सकती है। फलतः मेरु और अ तडियोकी मलन और उनसे होनेवाली अङ्गरामय भाद्रि पीडाये विचार होती है। संक्षिया विपका सेवन करनेसे अन्त्या नित शोध भा देने जाते हैं। ये अन्निक मात्राओं में स विद्या विप पान कर अमलीका क्रमसे उसे पचा डाकन है। अमताजनक विधोमें संक्षिया विपको क्रिया सयानक है।

२। सोसा—औषधैर्हमें सोसाका विप बहुत धीरे धीरे काम करता है। इसके फलसे लकवा या पक्षाघात और शूल रोग उत्पन्न होते हैं। बिबकर और ग्लान्धर आदिका सोसेके विपसे पीड़ित हुआ जाता है। सोस शुद्ध एक बहुत कष्टदायक पदार्थ है। इससे तामिकी बगलमें प्रवृत्त दिहना होता है। पुर्नितार्थ कष्टप्रवृत्त रोगमें रोगी यातना पाता है। माडीक कितारे काले काले हाग विचार देते हैं। रेणक औषध, अकोम और आइडाइक भाव पोटासियम आदि द्वारा सोसा विपका प्रतिहार किया जाता है।

सोसा विपका धीरे एक लक्षण यह है, कि इसल हाप कांपता है और हाप अवन हो जाता है तथा बाहु खून आती है। तडिन्युव कके संयोगस इसका प्रतिहार किया जाता है। पोटासियम आइडाइड् सेवन कराना भावश्यक है। इन सब प्रक्रियाओंके प्रतिहार न होनेसे दीहिक पक्षाघात धीरे धीरे विकृत हो कर रोगीका अमेयन भए होता है।

३। तांवा—तांवा भी एक मयानक विप है। तबिन हो तृत्तियाको उत्पत्ति होती है। तृत्तियाके पेटमें पडू अने पर बमनका हरिदप्यम मारम्भ होता है। एक भाका तृत्तियासे भी विपकी क्रिया होता है। कधीक

मिपे तो इसकी घोड़ी मात्रा में अहितकर है। वमन हो तृत्तियाका प्रभाव लक्षण है। अमसे निकला हुआ पदार्थ तृत्तिया रङ्गका होता है। गिरका बर्द, पेटमें अन्धा, अङ्गरामय भाद्रि तृत्तिया विपक लक्षण हैं। तृत्तियासे शूलकी तरह अन्धा में होती है। तृत्तिया विपसे पतुर्देकारका लक्षण विचार होता है। बिबि रसक बमन करामेके उद्देश्यसे शोध प्रेन तृत्तियाका अन्धाकार करते हैं। बमनके साथ तृत्तिया विप भी शरीरमें बहार निकल आता है। यदि कुछ रह जाये तो मृदाकण्य द्वारा आमाशय साफ कर म्निग्य प्रवृत्त आनेका देना चाहिये।

४।—अङ्गु और बेरियम आदि भी उपविपकी तरह क्रिया प्रकाश करते हैं। इसक द्वारा बमन और अङ्गरामय आदि विप लक्षण प्रकामित होते हैं।

५।—पारकोमेड भाव पटास—मयानक विप है। यह साधारणतः अन्धाकार नहीं होता और मध जगह यह मिलता मो नहीं। इस विपम में अन्धप्रदाहजनित अङ्गरामय और आमाशय प्रदाहजनित वमनका उपद्रव होता प्यता है।

६।—फसफरस मो विपकेकोके अस्त्युक्त है। इसको वषेष्ट दाहकता शक्ति है। शरीरके बाहर या ऊपर हः इसकी विपक्रिया प्रकाशित होती है। इसक अदरुध होनेसे आमाशयमें और अ तडियोंमें अमन पैदा होती है। साथ ही पैदा भी अनुभूत होने लगती है। वमन और इस्तके लक्षण विचार देने लगने हैं। फस फरस द्वारा ये सब तुर्लक्षणोंके परनेको परोक्षा अन्ध कार गुहमें पमन किये हुए पदार्थोंके दिखनेसे होती है। पमनके साथ ओ फमफरस बाहर निकलता है, अन्ध कारमें यह वज्रजल विचार होता है।

फमफरसके विपमें पट्टु काराव हो जाता है। इससे काममारोग उत्पन्न होता है। ठारपीनका लेर इसक प्रतिहारक जिये उत्तम कहा गया है। ३० बूट् मो मेरु अङ्गारदले क्रिया जा सकता है। गिगु या छोटे छोटे बण्डे दो तृत्तियासलाईको काठीका मेरु पर अने फसफरसके अदरुध कर लेन है।

७।—अवपालका मेरु और इन्डेटेरियम आदि द्वारा भी इन्डिकी तरह लक्षण विचार देता है।

८।—जान्तव विषोंमें केन्येरिज विशेष कष्टदायक है। इससे चमन होता है, पेशाव करनेमें जलन होती और ह्रेश अनुभव होता है। कभी कभी तो पेशाव होता ही नहीं। केन्येरिज उदरस्थ होनेसे स्वतः ही चमन होता है। स्निग्ध पानोपपान इस अवस्थामें उपादेय है। अफीम इसके प्रतिकारके लिये एक महीष्य है। अधोदेशमें अफीमका सार ( मर्फिया ) पिचकारीको सहायतासे प्रविष्ट करा कर मूत्रनालीका उपद्रव शान्त हो जाता है।

स्नायुविकारी विष।

इस श्रेणीके विष स्नायु विकार हैं। जिन सब विषको इसी श्रेणीमें भुक्त किया गया है, उन सब विषोंकी क्रियाये आपसमें इतना पार्याय्य हैं, कि उनके बहुत उपविभागमें विभक्त कर भिन्न भिन्न नामसे अभिहित किये जा सकते हैं। यहा इन सब विषोंका श्रेणीविभाग न कर उनमें कई प्रधान द्रव्योंका नामाल्लेख और विष लक्षण आदि विरुक्त किये जाते हैं।

१।—प्रासिक या हाइड्रोसियानिक एसिड—हाइड्रोसियानिक एसिड बहुत भयङ्कर विष है। घिजली जैसे गोघ्न हो प्राण ले लेती है, यह विष भी ठीक वैसा ही है। औषधकी दूकानों पर जो हाइड्रोसियानिक खरीदनेसे मिलता है, वह विमिश्रित अवस्थामें रहता है और उसमें साधारणतः सेक्डे २ भाग शुद्ध हाइड्रोसियानिक एसिड है। इसी परिमाणसे हाइड्रोसियानिक एसिड ही औषध के लिये व्यवहृत होता है। इसकी मात्रा पांच मिनिमसे अधिक नहीं। एक ड्रामसे कम मात्रा सेवनसे भी मृत्यु हो सकती है। एक सेकेण्ड समयमें समग्र देहमें इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। मुहूर्त्तमाल श्वासकष्ट अनुभूत होनेके बाद ही हृत्पिण्डकी क्रियाका ह्रास हो जाता है। नेत्रोंको मणि प्रसारित देहके अंग प्रत्यंग भयानक रूपसे आक्षिप्त और श्वासकी गति अनियमितरूपसे प्रवाहित होती है, धदनमण्डल नीलाभ रङ्ग धारण करता है। मांसपेशियोंके असाङ्ग होनेसे विष पीडित व्यक्ति और मुहूर्त्त भर भी अपने घुगमें नहीं रह सकता। इसके बाद प्रचल श्वासकष्ट, नाड़ी लोप और देहकी सब तरहकी क्रियायें रुक जाती हैं।

इस अवस्थामें ग्रीघ्र ही मृत्यु होती है। हाइड्रोसियानिक एसिडकी वृ मृत व्यक्तिके मुह तथा देहसे निकलतो है।

प्रतिकारकी व्यवस्था—उग्र एमोनिया सूँघना और पर्यायक्रमसे ग्रीतल तथा कुछ गर्म जल पानेको देना, अङ्ग प्रत्यङ्गों पर हाथ फेर रक्तका सञ्चालन करना तथा कृत्रिम श्वास-प्रश्वासके परिचालन करना ही इसका प्रतिकार है। चर्मके नीचे पट्टोपीनकी पिचकारीसे भा हृत्पिण्डकी क्रियाको उत्तेजित किया जा सकता है तथा उससे उपकार भी होता है।

२—अफीम—अफीम इस देशमें आत्महत्याका एक साधन है। औषधोंमें भी अफीम मिलाई जाती है। उसमें मर्फिया ही प्रधान है। मर्फिया अफीमका सार है। अफीमसे हा एपोमरफाइन, कोडिन, एपोकाडिन, नारमिन, नारकोटिन आदि विविध प्रकार विषजनक सार प्राप्त होता है। इससे ही एम्फेटाम अपियाई, एकप्रूक्ट अपियाई, एकप्रूक्ट अपियाई लिक्विडम, अपियाई आदि प्रस्तुत होते हैं। सिवा इनके डावर्स पाउडर आदि और भा बहुविध औषधके साथ संमिश्रित अफीमजान औषध चिकित्सामें व्यवहृत होती हैं।

मर्फियासे भी कई तरहकी औषध तय्यार होती है। उनमें विलियम मर्फिया, मर्फिनो एसिटास, लाइकर मर्फिया एसिटेटिस, मर्फिनो हाइड्रोक्लोमाइडम, मर्फिया हाइड्रोक्लोराइड, लाइकर मर्फिया हाइड्रोक्लोराइड, लिंटास मर्फिनो, ट्रेसिमाई मर्फिनो, मर्फिनो मिक्कोनस, लाइकर मर्फिनो, वाइमेकोनेटिस मर्फिनो सालफास, लाइकर मर्फिनो सालफेटिस, मर्फिया टारट्रास, लाइकर मर्फिया टारट्रास आदिके नाम उल्लेखयोग्य हैं। सिवा इनके इस समय मर्फियासे डाइओनिन, हिरोइन और पेराइन आदि और भी कई औषध तय्यार हो कर व्यवहृत हो रही हैं।

अफीम पूर्ण चयस्कके लिये भी दो घ्रेनसे अधिक मात्रामें व्यवहार करनेकी विधि नहीं। मर्फियाकी मात्रा भी साधारणतः एकवृत्तोयाज घ्रेन है। हिरोइन आदि और भी कम मात्रामें व्यवहृत होते हैं।

अभ्यासके फलसे अफीम और मर्फिया कुछ लोग

पुत्र अधिक मात्रामें व्यवहृत किया करते हैं। बालकों के लिये अफीम मयाजक बिच है। बहुत कम मात्रासे भी वे अन्त हो जाते हैं। छोटे छोटे बच्चोंके लिये यह बिचकुल अत्यवहार्य है। अफीमके विपसे पहले मस्तिष्कमें रक्तसंचय होता है, मुकमबद्धक लेखाम हो जाता है, रक्त सञ्चयनमें बाधा उपस्थित होनेके कारण ही मुक भीक्षाम होता है। आँसुकी पुनर्मी संकुचित हो जाती है। दिवका कमड़ा सूख जाता और नरम हो जाता है। श्वास मन्द पड़ जाता तथा माराकान्त हो जाता है। श्वेत गत्या विलुप्त होने लगती है। इन अवस्थाओं शिर पकड़ कर दिखाने तथा कानमें डब डब करनेसे चेतना आती है। इस अवस्थामें भी यदि बिचकी क्रिया बिनप न हो तो पाँचवर तन्ना उपस्थित होती है। उम समय किसी तरह चेतनता हाई नही हो सकती। पत्नीना निकलता रहना है। श्वास गतिमें वैषम्य उपस्थित होता, नाड़ीकी द्रुतगति हो जाती है, अन्तमें बिचकुल हो विलुप्त हो जाता है। इसी तरह कमसे मृत्यु हो जाता है।

प्रतिकारकी व्यवस्था—इसकी पहली चिकित्सा वमन कराना है। "एमाकपम्प" द्वारा यह कार्य सुधाव रूपस सम्पादित होता है। विपपीड़ित रोगीको उदर सते रहना चाहिये जिससे वह सोने न पाये। छाती पर पम्पाबिन्दुस गरम और शीतक अन्नका 'हूँस' प्रयोग करना चाहिये। कानक निरुद सदा उष्ण शब्द करत रहना चाहिये। इससे स्नायुमबद्धही उत्तेजित होतो है। मिगे गमछेसे हाथ और पैरों आघात करना चाहिये। टाँहन प्रयाद प्रयोगमें मो उपकार होता है। दिवमें हाथका सञ्चारण कर रक्त सञ्चयनका संरक्षण करना उचित है। पयोमिया और अन्नकोहस पयोय रूपस व्यवहार करना चाहिये। काफोका अन्न मा उपकारक है। श्वास गतिमें वैषम्य उपस्थित होने पर कृत्रिम श्वास प्रश्वास आठानिका उपाय करना चाहिये। पट्रोपिया पूर्ण मात्रासे एक्के नीचे प्रक्षेप करनेसे बहुत उपकार होता है। धूकनिया मो अफीम बिचका प्रति रोधक है।

३। धूकनारन—यह उन्नित बिच है। विविध

उन्नितोंसे धूक नियम विपकी उत्पत्ति होती है। कुष्किया में यथेष्ट परिमाणसे धूकनिया है। धनुषद्वारमें आ कक्षाय दिखाई देने हैं, धूकनिया बिचके भी बही सब लक्षण हैं। इससे उन्नको गुरुक, उवर, इवप, बस और पका आकृष्ट होनेसे रोगोकी द्रुति स्तम्भित हो जाती है हनुरोप भी होता है, पछेका पिछका भाग कठिन हो जाता है, रोगो धनुषको तरह टंडा हो कर आश्रित हो जाता है। कुछ देर तक विराम क बाद फिर यह लक्षण दिखाई देता है। उरा सञ्चा खनसे वा सूतरेक स्पर्शाने तुरन्त उक लक्षण दिखाई देता है। अन्तमें स्नायुमबद्धको अवसन्न हो कर पम्पावि क्रिया विलुप्त होती है। इसक बाद रोगोका शीघ्र हो मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—हाइडेट माघ ह्योरस और ह्योरिफार्मके प्रयोग द्वारा इस बिचकी चिकित्सा करना चाहिये।

४। एकानाद—यह मो उन्नित बिच है। एकानाद बहुत मयदुर बिच है। इसक एक प्रलेके १६ भागक एक भागस मृत्यु हो सकती है। इसस शरीरमें अन्न, श्मि श्मिना ( विद्वन्को ), मयाजक वमन, स्नायु मबद्धको गति और शानक्रियाका निरुद हाता है। इद्रुपिपुड अन्नसन्न हो जाता, मूर्च्छावस्थामें रोगोकी मृत्यु हो जाती है। किन्तु कमा मो जानका वैषम्य नही होता है।

प्रतिकार—डिजिटैलिस एकानादकी विपक्रियाका विनाशक है। सुतरां डिजिटैलिस नामक बोर्न कामके नीचे प्रक्षेप कर ( Injection ) इसकी चिकित्सा करना चाहिये।

५। बेसेडोना—धतुरा जातिका एक उन्नित बिच है। इससे आँसुकी पुनर्मियां फैल जाती, नाड़ीकी गति तेज हो जाती, धमड़ा उच्चोन्नित और गर्म हो जाता, किसी बीजक गनेसे घोटने पर महाह्र न हाता अन्वचिक पिपासा और प्रकाय उपस्थित होता है। इसक बोर्नका नाम—पटोपिन है।

प्रतिकार—एमाक पम्प द्वारा विप बाहर करना चाहिये। मर्निवा इनका प्रतिरोधक है, अत्यवहारमें

सर्पियाका प्रक्षेप ( Hypodermic injection ) द्वारा इसमें विशेष उपकार होता है।

वायवीय विष।

१। क्लोरिन और ब्रोमिन—यह दोनों वायवीय विष भयानक उपद्राजनक हैं। निःश्वसकें साथ ये दोनों कण्टके नीचे पहुँचने पर कण्टनालीमें भयानक आक्षेप उपस्थित होता है। श्वासयन्त्रकी श्लेष्मिक झिल्लीमें प्रदाह उत्पन्न होता है। इससे ग्रीध ही मृत्यु होती है।

प्रतिकार—एमोनियाका वाष्प सूँघना बड़ा उपकारक है।

२। हाइड्रोक्लोरिक एसिड-गैस—हाइड्रोक्लोरिक और हाइड्रोक्लोरिक एसिड इन दोनों पदार्थों के गैस हो उपद्राजनक और सांघातिक हैं। शिष्टादिके कारखानों-में कभी कभी इस विषसे विपाक हो कर कितने ही लोग मर जाते हैं। इसकी प्रतिक्रिया भी पूर्ववत् है।

३। सल्फरस एसिड गैस—गन्धक जलानेसे यह गैस उत्पन्न होता है। यह उपद्राजनक और श्वासरोधक है। इसमें भी कण्टनाली आक्षिप्त होती है। एमोनियाका वाष्प सूँघनेसे इसका प्रतिकार होता है।

४। नाइट्राम वेपर (Vapour)—गैलमेनिक वेस्टरी-से यह गैस उत्पन्न होता है। यह वाष्प फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर उसमें प्रदाह उत्पन्न होता है और ग्रीध ही मृत्यु हो जाती है।

५। कार्बनिक एसिड गैस—यह वायुकी अपेक्षा बहुत भारी है और वायुके साथ फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर प्राणसघातक होता है। लकड़ी आदिके जलाने समय भी यह विष पदार्थ उत्पन्न होता है। यह भीषण विषवायु शरीरमें स्पर्श होते ही मनुष्य मृत्युसुखमें पतित होता है। पुराने कूप या बन्द मोरियोंमें यह विष सञ्चित रहता है। ऐसे स्थलमें घुसा हुआ व्यक्ति तुरन्त मर जाता है। घरमें किरासन तेल जला घरका दरवाजा बन्द कर देनेसे जो आदमी उस घरमें रहते हैं, उनकी देहमें उसका धूँआँ घुस जाता है, इससे उनकी ग्रीध ही मृत्यु होती है। यहुधा देखनेमें आता है, कि बहुतेरे व्यक्ति किरासन तेल जला कर उस कमरेका दरवाजा बन्द कर लेते हैं और इस विषके शिकार होते

हैं। कुछ लोगोका कहना है, कि लालटेनमें किरासन तेल जलानेसे ऐसा नहीं होता; किन्तु यह उनकी भूल है। चाहे किसी तरह ही किरासन तेल जलाया जाय, उसका धूँआँ निकलेगा ही। इस पर यदि उसके वाहर निकलनेका पथ रुक कर दिया जाये, तो यह अवश्य है, कि उससे प्ररोरकी भीषण क्षति होती तथा कभी कभी तो उससे मृत्यु तक हो जाती है। इसका धूँआँ श्वासके साथ साथ शरीरके भीतर पहुँच कई तरहका रोग उत्पन्न करता है। यदि दरवाजा बन्द भी न किया जाये, तो भी इसका धूँआँ नासिका या मुँहमें श्वासके साथ प्रवेश कर जाता है।

प्रतिकार—चक्षुमें पर्यायकमसे गौतल और गरम जलका प्रयोग है। देहिक रक्त सञ्चालनके लिये हाथसे देह मलना और श्लेष्म श्वासका उपयोग साधन करना प्रधान कर्त्तव्य है।

६। कार्बनिक अपसाइट गैस—इसमें विशुद्ध कार्बनिक एसिड रहनेसे ही इससे विषलक्षण उपस्थित होता रहता है। कार्बनिक अपसाइट रक्तके हिमग्लोबिनके साथ दृढ़ रूपसे विमिश्रित होता रहता है। इससे मरे आदमीके रक्तका रङ्ग अधिकतर समुज्ज्वल दिखाई देता है। इसकी प्रतिक्रिया पूर्ववत् है। कार्बनमनक-साइट मिश्रित वायुके आघाणसे तुरन्त ही मृत्यु हो जाती है।

७। फोयलेका गैस—इसके द्वारा श्वासरोध और ज्ञान विलुप्त होता है। इसकी चिकित्सा कार्बनिक एसिडके विषकी चिकित्साकी तरह है।

८। सल्फरेटेड हाइड्रोजन गैस—यह भयङ्कर वायवीय विष है। यह विषवायु घनाभूतमात्रामें देहमें प्रविष्ट होने पर तुरन्त मृत्यु होता है, श्वासरोध इसका प्रधान लक्षण है। वायुके साथ विमिश्रित हो देहमें प्रविष्ट होने पर भी इसके द्वारा शूल, विषमिषा, चमन और तन्द्रा उपस्थित होती है। श्वासमन्दता और पसीना निकलना आदि दुर्लक्षण क्रमशः दिखाई देते हैं। रक्तकी लाल कणिका विश्लिष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्थामें हाथसे देह मलने, उष्णताका प्रयोग और उच्चैःजक औषधादि व्यवहार्य हैं। कुछ लोग समझते हैं, कि क्लोरिन गैस जब रासा-

यनिक हिंसाबसे सखफारेटेड हाइड्रोजन गैसका प्रति द्रव्यी है, तब इन क्लोरिन गैसके व्यापारणसे इसकी विपक्षिया नष्ट वी जा सकती है। किन्तु क्लोरिन गैस प्रयोगके समय यह भी मतमें रखना चाहिये कि क्लोरिन गैस अपने भी मयानक विष है। सुतरां किसी तरह जमकी अधिक मात्रामें तथा बसाबघानोके साथ इसका व्यवहार न होने पाये।

१। नाइटस अक्साइड और क्लोरोफार्म बहुत प्रथम स्वर्गो और वीतन्यावहारक हैं तथा इसी बद्धजसे इनका व्यवहार भी होता है। ग्वास्तेरीय संगठन करना ही इन सब विषोंका कार्य है।

प्रतिकार—कृत्रिम श्वास प्रश्वास और ताकितप्रवाह द्वारा इस अवस्थाका प्रतिकार होता है।

१०। हाइड्रोकार्बो कीका वाष्प—वेनडीजिन पिद्रा क्षियम आदिसे आ वायवीय पदार्थ निकलता है उसके द्वारा भी विपक्षिया संगठित होती है। इन सब वायवीय विषोंसे श्वास नष्ट हो क मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—कृत्रिम श्वास-धणामी आकम्पन और ताकितप्रवाहसे इस अवस्थाका प्रतिकार होता है।

वैदिक विष।

जीववैदिके अन्त्यतर ही बहुत विषपत्राच विद्यमान है। सुनिपुणा वैद-प्रकृति अपने सुन्दर विधानके लिये प्रतिनिधनके सब विष वैदसे अपसारित कर जीवोंका मृत्युमुक्तसे रक्षा करतो है।

कार्बोनिक् एसिड।

इन सब विषोंमें हम कार्बोनिक् एसिडको बात इनमें परहे ही कह चुके हैं। वह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि वैदिक कार्बोनिक् एसिड बहुत स घातक पदार्थ है। कुम्फूस और कार्पायमे कार्बोनिक् एसिड अधिक परिमाणमें बाहर निकलता है, इससे हमारा स्वास्थ्य और जीवन सम्प्राप्त रहता है। किसी कारणसे कार्बोनिक् एसिडका निकलना बन्द हो जाये, तो तुरन्त वैद-नाशमें भीषण विषयुक्तता उपस्थित हो जाती है और सहसा मृत्युका सम्भन विचार होता है।

मुदिवा।

दूसरा विष-पदार्थ मुदिवा है। कुछ नामक सू

कारक मन्त्रद्वय अधिरत वैदसे मूत्रपथसे यह विष शरीर से अपसारित किये गैते हैं। यदि किसी कारणवश वैदिक रक्तके साथ यह पदार्थ अधिक परिमाणसे विमिश्रित हो जाता है, तो रोगो अन्वेषण और योरतर तन्त्रमें अमिमूल हो जाता है और इसमें प्रायः ही मृत्यु हो जाती है।

पित्त।

दूसरा विष पित्त है। वैदक रक्तके साथ पित्त विमिश्रित होनेसे कामला आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अनायवीय रक्त बिलुप्त हो जाते हैं मानसिक शक्ति विनष्ट हो जाती है। रोगो अन्वेषणमें मृदु मृदु प्रत्याप करते करते बिलकुल अन्वेष हो जाता है।

इस तरह विविध रोगोत्पत्त्यादक वैदिक उत्पादन द्वारा भी कई तरहसे वैद विषाक्त हो जाता है। प्राच्य और प्रगोच्य चिकित्सकोंका सिद्धान्त है, कि वैदिक पदार्थमें ही बहुविध रोगोंका कारण निहित है और ता क्या—वैदिक शर्करा आदि अतिरिक्त मात्र में रक्तमें विमिश्रित होने पर भी वैदका स्वास्थ्य विनष्ट कर सर्वाधिक रोगो सुधि करते हैं।

विषाणु।

इन समय वैक्सीरिओलोजी नामके जीवाणु और इन्फिन्जाणुत्पत्तिका आ अमिनव वैज्ञानिक आन्वेषण चल रहा है उसमें कई जीवाणु और इन्फिन्जाणु मानववैदके लिये मयानक विष प्रमाणित हुए हैं। उक्त वैज्ञानिकोंकी गवेषणासे स्थिर हुआ है, कि हैजा, प्लेग, टाइफाइड फोवर ( तपेदिक स्वर ), घनुचङ्कार, चेन्थक आदि संघातक रोग इन सब जीवाणु और इन्फिन्जाणु विषक ही क्रिया मान हैं।

ये सब रोगवीजाणु आहारार्थ, पानोय वा वायुके साथ वैदके मीठय प्रयोग करने मयवा वैदम स्पर्ष होने पर इन सब रोगोंके अक्षण प्रकाशित होते हैं और ये क्रमसे ही भीषणतर हो रोगाका जीवन नश करत हैं। इस समय अन्विकारा व्यापिर्णा हो रोगवीजाणुक वैदप्रवैर विषमय फल अवधारित हुई हैं।

इन सब संघातक विषोंके कार्बोनिक् एसिड, क्लोरिन आद्युनिक वैज्ञानिक प्रक्रियास फलतो रक्त्सित सिराम



नामके कई तरहके विषय द्रव्य तय्यार हो रहे हैं। ये सब "मिरम" पदार्थ हो इस समय उक्त संचातक रोगोंकी वैज्ञानिक विषय औषध स्थिर हुई है।

भारतमें उत्पन्न होनेवाले उद्भिज विषकी फिहरिरत।

१।—काष्ठविष—यह पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञानमें एकोनाइट नामसे प्रसिद्ध है। इस देशमें कई तरहके काष्ठविष दिखाई देते हैं। पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञान-विद् एण्डितोंने इस देशमें एकोनाइटम् फेरक्स, एको नाइटम नेपीलस, एकोनाइटम पामेटम, एकोनाइटम हिटारोफाइलाम आदि बहूनेरे वृक्षोंमें काष्ठविष या एकोनाइटका प्रभाव देख पाया है। इस विषका विवरण इससे पहले लिखा गया है।

२। दादमारी या वनमिर्चा—इस वृक्षके पत्र दाहक-विष है। इसके पतने फोड़ा पड़ जाता है।

३। काकमारी—काकमारी अल्पमात्रमें विषलक्षण प्रकाश न करने पर भी इसकी अधिक मात्राके सेवनसे इससे विषके लक्षण प्रकट होते हैं। इसके बीजमें विष रहता है। इसके बीजमें जो विष रहता है, उसका नाम पाइको-टेक्सिन है।

४। कुकनी—यह उद्भिद् विष पञ्जाव प्रान्तमें उत्पन्न होता है। यह पशुके मारनेमें काम आता है। ग्रामाण चमार इमी विषको खिला कर गाय आदि पशुओंको मार डालते हैं।

५। किरानु—पञ्जाव-प्रदेशमें यह उद्भिद् विष दिखाई देता है। इसका मूल ही विषमय है।

६। जेववज, हिन्दीमें इसे लक्षणा कहते हैं—इसमें धतूरेका बीज है, इसीलिये इसमें विषक्रिया प्रकाशित होती है।

७। कुलधुद या वन खै—यह उद्भिद् शिमला शैल पर, बङ्गालमें और दार्श्रिणात्यमें पैदा होता है।

८। दन्ती—दन्तीका बीज उपजाजनक है। यह सेवन करनेसे जयपालके बीजकी तरह वमन होता है। इसका दूसरा नाम तामालगोटो या जमालगोटा है। इसका तेल वातरोगमें व्यवहृत होता है।

९। चिकरा—यह एक तरहका विष क्रियाजनक उद्भिद् है। हिमालय प्रदेशमें यह उद्भिद् पैदा होता है।

१०। अलर्न—यह भयानक विष है। इससे दुग्धको तरल जो पदार्थ निकलता है, उसने भ्रूणहत्या की जाती है। इसका एक ड्राम गिरलानेमें १५ मिनटमें एक कुत्ता मर सकता।

११। गाँजा—इसमें उन्मत्तता उत्पन्न होती है। गाँजेके बीजका नाम चेंनाविन है। इससे मूर्च्छा और मृत्यु होती है।

१२। टाकुर—इससे वमन और मेट होता है और इसकी अधिकता होनेमें मृत्यु तक हो जाती है।

१३। माकेला—यह उद्भिद् मणिपुर, ब्रह्म और भूटानमें उत्पन्न होता है। यह देशमें 'प्रविष्ट हो जाने पर धनुष्टकारके विष लक्षण दिखाई देते हैं'।

१४। जयपाल—जयपाल भयङ्कर मेदघमनकारक है। इसका वर्णन पहले यत्न किया जा चुका है।

१५। धनूरा—धतूरेके विषमें मोह आर उन्मत्तता उत्पन्न होती है। पश्चिम और उत्तर भारतमें इस विषका प्रयोग विधि दिखाई देती है। यह दो तरहका है—*Datura Fastuosa* और *Datura Stramonium* आयुर्वेदमें भी इसके दो मेद देने जाते हैं,—जैसे सादा सादा धनूरा और काला धनूरा।

१६। वनगाव—बङ्गालके जङ्गलोंमें भी यह उद्भिद् प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होता है। इसका फल विषमय है।

१७। वासिङ्ग—यह कुमायू जिलेमें अधिक पैदा होता है। इसका संस्कृत नाम मालूम नहीं। पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञानमें इसका नाम *Exatcaria Agallocha* है। यह भयानक विष है। कुमायू में कुछ नेगियोंकी विक्रित्साके लिये व्यवहृत होता है।

१८। जघाणो—यह उद्भिद् भूटानमें होता है। इसका वल्कल अतीव विषमय है। इसका संस्कृत नाम मालूम नहीं।

१९। कालीकारी—इसका दूसरा संस्कृत नाम गर्भघातिनी है। भारतवर्षके जङ्गलोंमें यह उद्भिद् दिखाई देता है। इसका भारतीय कोई नाम मालूम नहीं। इसके द्वारा जयपालका तरह दस्त और के होती है।

२०। दुरा—भारतवर्षक मङ्गलसोमं वह उज्ज्वल देखा जाता है। इसका भारतीय नाम सुता लही जाता; इसमें जयपादको तरह दन्त भीर की होती है।

२१। पारासिक्व—इसका विपक्रिया स्नायवीय पक्ष पर प्रतिफलित हो मीह भाङ्गि इत्यादि करती है।

२२। पारायन आयुष्या रतन ज्ञान—इसके बोधम है शिको तरह दन्त भीर की होती है।

हिन्दू शास्त्रमें (चेतैवब्राह्मणमें) विषकी उत्पत्तिक सम्बन्धमें लिखा है, कि मगधनारायणम कूर्मावतारमें पीठ पर मन्त्ररूपमें धारण कर धरतीका मङ्गल साधन किया था। इन्को भीर मनुदेने हो दक्षिण विमल ही उक्त पर्वतका मन्वन्तवृद्ध भीर धासुकी (नाग)-का रक्तो बना कर मनुदेका मरण किया था। इसक फल में मद्योपमें विष उत्पन्न हुआ। त्रिताप हर महाद्व उभ गणका पाल कर ही नीलकण्ठ हुए हैं।

उग्रमन्त्र भीर इहाह० इन्द्र रक्तो।

शुभेक्षेय युगमें भाष्य श्रु पगज सपविष भीर अस्वाभ्य विपिका जानन ये भीर उदे इनका व्यपहार मो मालूम था। उक्त संहिताक ७।५ सूक्तक पदमेंसे मासूम होता है कि वसिष्ठ श्रांय मित्रावरुण, जनि भीर वैश्वानरकी स्तुति करते समय उदते हैं—“कुम्भाय पातो भीर मर्षदा बह मान विष हमारै सामने न भाये। अत्रका नामक शैषविशिष्ट बुद्धि शन विष बिनय हो। छद्मगामी सर्व शब्द द्वारा हमका न जान सक। जो पन्धन नामक विष जाना जगमें पुरातनिक ऊपर खजूत होता है, वह विष पुटला भीर गुहक रूपात करता है। दोग्रामना भूमिदेव वह विष दूराधुत करें।

(शुक ७।१२३)

११२१२३२०१८०१८ और २३ मन्त्रकी पदमेंसे मालूम होता है, कि ये सब विष हाइड्रारक और प्राण नाशक होता है।

अपवर्णदेवक ३।३।२ मन्त्रमें कर्मसूक्तवि विषको प्रकरणाका उल्लेख है। ५।१।१० और ३।३।०२ मन्त्रोंक पदमेंसे मालूम होता है, कि यह मनुषीके विष विशेष व्यपकारक है। जयपथमा० २।५।३।२, ३।१।१०। पञ्चवि श्राह्मण ३।३।६ और सैन्धुरीय

ब्राह्मण २।१।१ भाङ्गि स्थानोंमें विषकी नामकल्प शक्तिका उल्लेख है। मगवान् मनुदे मिखा है, कि स्वाधर मङ्गल नामक छत्तिम या अछत्तिम गरदि विष कमा मो जलमें न फेरना चाहिये। (मनु ३।५६) विष देवनेका मनाहा है। जो विष बेधता है, वह पातत भीर गिरवगामा हाता है। (मनु १०।१८)

विषकुर्यासिका (स० खो०) सुसुविद्यैव विषककोल।

विषकुर्यासिका (स० खो०) विषकंकाळ।

विषकस्य (स० पु०) इङ्ग वो पुस। (उज्जो०)

विषकस्य (स० पु०) दुरासमा जाबा, यमासा।

विषकस्य (स० खो०) बन्धाककोरिका, बाभ ककडो।

पयांय—बन्धाककोरिका, देवा, कन्या, योगेश्वरा

नागार्दि, नागधूमनो। गुण—समु, मयशोधक, ताहण तथा

कप, सपेक्ष, बिसर्प और विपनाशक। (भाष्यमन्त्र)

विषकस्यिका (स० खो०) एक प्रसिद्ध पुस।

विषकण्ठ (स० पु०) नाळकण्ठ, शिव।

विषकाण्ठका (स० खो०) बकपसा, बगडा।

विषकण्ठ (स० पु०) १ मक्षिकण्ठ, मंसा कण्ठ। २ नोळ

कण्ठ। ३ इ सुदोपुस, हि गोद।

विषकन्या (स० खो०) वह कन्या या खो जिसक शरीर में इस भाठवसे कुछ विष प्रविष्ट कर दिये गये हों, कि जा उसक साथ संभोग करे, वह मर जाय।

प्राचीन कालमें राजासोक यही बखलसे हो कुछ कन्यायोंक शरीरमें अनेक प्रकारसे विष प्रविष्ट करा दिया जाते थे। इस विषक कारण इनक शरीरमें ऐसा गमाव भा जाता था कि जा उसक साथ विषय करता या वह मर जाता था। जब राजाको अपने किसी शत्रुको गुप्त रूपसे मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकारकी विषकन्या उसक पास भेज देता था। जिसक साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

मुद्राराक्षस (३।१।३) और कथासत्विस्तागर (१।५।८) में विषपाण द्वारा तैवारकी यह सुन्दरी छद्मना का उल्लेख मिलता है। वह कन्या प्रति दिन छोड़ा विष बिखा कर पाना गर थी। जा व्यक्ति इस कन्याक साथ संभोग करता उसका घृष्टु मवश्यमानो था। मन्त्री

राक्षसने जो विषकल्या प्रस्तुत की, चाणक्यने उससे पर्वतका संहार किया था।

विषकृत (सं० त्रि०) १ विष संयोगसे प्रस्तुत। २ विष-मिश्रित। ३ विषसंसृष्ट।

विषकृमि (सं० पु०) विषजात कृमि, वह कीड़ा जो काटके बीचमें उत्पन्न होता है।

विषक (सं० स्त्री०) वि-सन्ज-क। आमक, मालगु।

विषगन्धक (सं० पु०) ह्रस्व सुगन्ध तृणविशेष, एक प्रकारकी घास जिसमें भीनी भीनी गंध होती है।

विषगन्धा (सं० स्त्री०) कृष्णगोकर्णों, काली अपराजिता।

विषगिरि (सं० पु०) विष-पर्वत। इस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हैं।

(अथर्व ४।६।७ सायण)

विषप्रस्थि (सं० पु०) मृणालपर्व, कमलकी नालकी गांठ।

विषघ (सं० त्रि०) विषनाशक, विषका नाश करनेवाला।

विषघा (सं० स्त्री०) गुल्म, गुडूच।

विषघात (सं० पु०) विष-हन-घञ्। विषनाशक।

विषघातक (सं० त्रि०) विषनाशक, जिससे विषका प्रभाव दूर होता हो।

विषघाती (सं० त्रि०) विष-हन-णिनि। विषनाशक, विषका प्रभाव दूर करनेवाला। (पु०) २ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़।

विषघ्न (सं० पु०) विषं हन्तीति विष हन-टक्। १ शिरीष-वृक्ष, सिरिसका पेड़। २ दुरालभाविशेष, जवासा। ३ विभीतक, वहेडा। ४ चम्पकवृक्ष। ५ भूकदम्ब। ६ गन्धतुलसी। ७ तण्डुलोय शाक (त्रि०) ८ विषनाशक।

मनुसंहितामें लिखा है, कि विषघ्न रत्नीषघादि हमेशा धारण करना उचित है; क्योंकि देवचण अथवा शत्रु द्वारा यदि विष शरीरमें प्रविष्ट हो जाये, तो इसके रहनेसे कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। (मनु ७।२१८)

मत्स्यपुराणमें विषघ्नरत्नादि धारण तथा औषधादि व्यवहारका विषय इस प्रकार लिखा है—जतुका, मरकत आदि मणि अथवा जीवसे उत्पन्न कोई भी मणि तथा सभी प्रकारके रत्नादिको हाथमें धारण करनेसे विष नष्ट होता है। रेणुका, जटामांसी, मञ्जिष्ठा, हरिद्रा, मुलेठी,

मधु, बहेडेकी छाल, तुलसी, लाक्षारस तथा कुत्ते और बिल्ला नायका पित्त इन्हें एक साथ पास कर वाद्ययन्त्र और पनाकादिमें लेप देना जाता है। इसके दर्शन, ध्रुवण, आघ्राणादि द्वारा विष नष्ट हो सकता है अर्थात् विषघ्न औषधादिको जैसे स्थानमें रखना होगा जिसमें उस पर दृष्टि हमेशा पड़नी रहे या उसका आघ्राण मिलना रहे अथवा तनूगामृष्ट जादू सुनाई दे, इसमें विषका प्रभाव बहुत दूर हो सकता है। (मत्स्यपु० १६२ अ०)

विषघ्ना (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीम।

विषघ्निका (सं० स्त्री०) श्वेतकिणिकीवृक्ष, सफेद अप-माग या चिचडा।

विषघ्नी (सं० स्त्री०) १ हिलमोचिका या हिलच नामक माग। २ इन्द्रवारुणी, गोपालककटी। ३ चतुर्वर्-रिका, वनतुलसी। ४ हवृषानेद। ५ भूम्यामलकी, भुरें आवला। ६ रक्तपुनर्नवा, लाल गडदपूरना। ७ हरिद्रा, हर्दी। ८ वशिष्कालता। ९ महाकरञ्ज।

१० पोतवर्ण देवदाली, पानचोपा नामकी लता। ११ काष्ठरुद्री, कठकंला। १२ श्वेतशपामार्ग, सफेद चिचडा। १३ कटकी। १४ रातना। १५ देवदाली।

विषघ्न (सं० पु०) वि-सन्ज-घञ्। मालिन्, लगा हुआ।

विषघ्नन् (सं० त्रि०) प्रलिप्त, लोपा पोना हुआ।

विषचक्र (सं० पु०) चक्रोर पक्षी।

विषचक्रक (सं० पु०) विषचक्र।

विषजल (सं० स्त्री०) विषभय उल, विषैला पानी।

विषजिह्व (सं० पु०) देवतः उवृक्ष।

विषजुष्ट (सं० त्रि०) विषामश्रित, जह्नू मिली हुआ।

विषज्वर (सं० पु०) १ ज्वरविशेष। विषके संसर्गसे उत्पन्न होनेके कारण इसको वागुन्तक ज्वर कहते हैं। इस ज्वरमें दाह होता है, भोजनकी ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती और रोगी मूर्च्छित हो जाता है। विषवत् प्राणनाशका ज्वरो यस्य। २ मैसा।

विषणि (सं० पु०) सर्पभेद, एक प्रकारका साँप।

विषण्ड (सं० स्त्री०) मृणाल, कमलकी नाल।

विषण्ण (सं० त्रि०) वि-सङ्-क। विषादप्राप्त, दुःखित, घिन्न, जिसे शोक या रंज हो।

विषयगता (स० स्त्री०) १ विषयगता भाष या पर्ग।  
 २ अङ्गता, वैशङ्कनी। पयांय—आख्य, मौर्क्य, विषाद,  
 मन्साद, साह। ( हेम )  
 विषयगताङ्क (स० पु०) गिष। ( मारु ११।१।१२५ )  
 विषयगता (सं० ह्यो०) वैशङ्कक अनुसार वह प्रक्रिया जिसके  
 द्वारा मर्ष आदिका विष दूर किया जाता है।  
 विषयगह (स० पु०) कुषेलक दृष्ट, कुषला।  
 विषयता (स० स्त्री०) विषयका भाष या पर्ग, इहोहासापन।  
 विषयतिग्दु (स० पु०) १ विषयदुःख, कुचाल, विषयतेद।  
 २ काररुकर दृष्ट। ( रजनि० ) ३ कुपीडु। ( भावप्रकाय )  
 विषयतिग्दुःक (स० पु०) विषयतिन्दु रको।  
 विषयतिग्दुःख (स० ह्यो०) १ मधुर तिग्दुःक फल। २ कार  
 रुकर फल, कुषिका फल।  
 विषयतिग्दुकर्तव्य—वातरकाधिकारोक्त तैसापघविशेष।  
 प्रस्तुतप्रमाणा—तिसरीक ४ सर। काङ्क क मिय कुट्टा हुमा  
 कु। बलावीक ४ सर, पानो ३२ सेर, शेष ८ सेर, सहि  
 जनेकी मूलकी छास २ सर, जल १६ सर, शेष ४ सर,  
 मलेका मूल २ सर, जल १६ सेर, शेष ४ सर; काका  
 घृत २ सर, जल १६ सर श ४ सर; बयजछास  
 २ सर, जल १६ सर, श ४ सर। चितामूल २ सर,  
 जल १६ सर, श ४ सर। सम्भ्राहूपनका रस ४ सर  
 ( रसके अमाशमें काड़ा ), यूहरका पतिवाका रस ४  
 सर (अमाशमें बवाय), असर्गधका काड़ा ४ सर, अण्ठा  
 पनका रस ४ सर ( रसक अमाशमें काड़ा ), क्वकार्य  
 अहस्तन, सरलकास, मुकैठा, कुट्ट, सैन्यय, बिद, चिता  
 मूल, हाँदा, पीपद, प्रत्येक १ पल। इस लककी  
 मांशिश करनेमें प्रवळ वातव्याधि, कुष्ठ, वातरज, बिब  
 यंठा भीर त्वग्दोष दूर होत है।  
 विषयतिग्दु—कुष्ठरोगाधिकारोक्त लैकीपघविशेष। प्रस्तुत  
 प्रमाणा—कुष्ठरीक ४ सर, गोमूल ४१ सेर। क्वरुद्रव्य -  
 इहरकरुद्रबीज हरिद्रा बाधहरिद्रा, अक्षयनका मूल,  
 तगरपाकुका, करवीमूल, बन्ध, कुट्ट, हाकरमासा, रज  
 यन्धन, मांशपान, सम्भ्राहूपन, मज्जेद, उतिबनमूलको  
 घालन प्रत्येक ४ तोला, विष १६ तासा। इस लकका  
 मांशिश करनेमें अनेक प्रकारक कुष्ठ भार जण नष्ट  
 दामे है।

विषय श (स० पु०) मात्रार, विषयो।  
 विषय शक (स० पु०) निरर य देको।  
 विषय श्वा (स० स्त्री०) विषयुक्ता श्वा। १ सपयश्व,  
 सर्पके बौत। २ सर्पकुम्भिका श्वा। ३ भागदमनो।  
 विषय (स० ह्यो०) वि-सद्-अच्। १ पुष्पकागीश  
 होराक्रमोस। शिवां यप्। २ अतिविषा, अमीस। विष  
 इदातोतिविष-श-क। ( पु० ) ३ मेघ, बादल। ४ शुक्ल  
 बर्ण, सफेद रंग। ( शि० ) ५ शुक्लवर्ण बिगिध,  
 सफेद रंगका। ६ निर्मल स्वच्छ। विषदाता, विष  
 देनेवाला।  
 विषयश (स० पु०) बिडाल बिकनो। ( वैद्यकमिष० )  
 विषयशक (स० पु०) विष दन्ते यस्य कम्। सर्प,  
 साय।  
 विषयशुका (स० स्त्री०) माकनो नामक पीपा जिसके  
 पत्तोंका साग होता है।  
 विषयशंभुस्युक्त (स० पु०) विषस्य इशंभिन मृतपुरस्य  
 कम्। अकोर पत्तो।  
 विषय (स० स्त्री०) अतिविषा, अमीस।  
 विषयशा (स० शि०) निषापातु देको।  
 विषयशातु (स० शि०) विषययोक्ता यह जो किसोको  
 मार बानने या विहोश करनेक अमिप्रायसे जहर दे।  
 निम्नोक्त मन्त्रानुसार विषदाताको जाना या सकता  
 है। जो विष देता है उसे यदि इस विषयमें कुछ पूछा  
 जाय तो वह कुछ बोखता नहीं है बोखनेमें मीढ़ भा जाता  
 है। मूढ़की तरह यदि दे। बाते बोखता मी है, तो  
 इनका बोध अर्थ नहीं निकलता। यह कबल काड़ा  
 रहता और हाथकी उगल्लो मडकाता है तथा पैरकी  
 उगल्लोसे धीरे धीरे जमोन काड़ता है अथवा अकस्मात्  
 बैठ जाता है। यह हमेशा कांपता रहता है और अण  
 मीठ हो अणियन अण्डियों का एक टुकस देखता है।  
 यह शोष और ठसका मुक बिर्ण हो जाता है। वह  
 किसी एक वस्तुका नातूनसे काठता है तथा दोन भागसे  
 बार बार मस्तकक बालेका न्यर्ण करता है। यह  
 कुपयस भागनेको खेदा करता है तथा बार बार आँसू  
 धीरे लाकता है। यह कमी कमी जियैतन और पिप  
 रीत स्वभावका हो जाता है। विशेष अमिहता नहीं

रहनेसे पर केवल यही सब लक्षण देव विषदाताको पहचाना नहीं जा सकता। क्योंकि अनेक समय ऐसा भी देखा गया है, कि नितान्त सम्भ्रान्त व्यक्ति भी राजाक भयसे या राजाज्ञासे विभ्रान्त हो इस प्रकार अमृतकी तरह चेष्टायं दिखलाता है।

विषदायक (सं० पु०) विषदाता।

विषदूषण (सं० त्रि०) १ विषनिवारक। "विषदूषण विश्वस्य स्थावरजङ्गमोद्भवस्य दूषकं निवर्त्तकम् (अथर्व० ६।१००।१ सायण) २ विषदुष्ट।

विषदुष्ट (सं० त्रि०) १ विषको द्वारा दूषित। २ विषमिश्रित।

विषद्रूम (सं० पु०) कारस्कर वृक्ष, कुन्ला। (राजनि०)

विषघर (सं० पु०) विष धरति धृ-अच्। १ सर्प, नाप। स्त्रियां ङीप्। २ विषघरी।

विषघर्मा (सं० स्त्री०) शूकशिम्यी, केवाँच।

विषघाती (सं० स्त्री०) विषाणा विषघरस्पर्षाणा धात्री मातेव। जरत्कारुमुनिकी स्त्री, मनसादेवी।

(शब्दमाला)

विषघान (सं० पु०) विषस्थान। (अथर्व २।३२।६ सायण)

विषध्वसिन् (सं० पु०) नागरमोथा। (वैद्य०निघ०)

विषनाडी (सं० स्त्री०) विषतुल्य क्षतिकर समय।

विषनाशन (सं० पु०) विषं नाशयति नश ल्यु। १ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। २ माणक, मानकचू। (त्रि०) ३ विषनाशक, जो विषको दूर करता हो।

विषनाशिनी (सं० स्त्री०) विष नाशयितुं ग्रील यस्याः विष नश-षिनि स्त्रियां ङीप्। १ सर्पकङ्काली। २ चन्ध्या कर्कटिका, वाक्क ककड़ी। ३ गन्धनाकुली।

विषनुद् (सं० त्रि०) विषं नुदति दूरीकरोति नुद् क्विप्। श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा।

विषपत्रिका (सं० त्रि०) १ पत्रविषमेद, कोई जहरीला पत्ता। २ जमालगोटा आदि किसी जहरीले बीजका छिलका।

विषपन्नग (सं० पु०) विषयुक्तः पन्नगः। सविष सर्प, जहरीला साप।

विषपर्वन् (सं० पु०) दैत्यमेद।

(कथासरित्सा० ४।३७६)

विषपादप (सं० पु०) विषवृक्ष, विषद्रूम, कुन्ला।

विषपुच्छ (सं० त्रि०) जिसको पुच्छमें विष हो, जिसको पूँछ जहरीली हो।

विषपुच्छी (सं० पु०) अश्विन्द, विन्डू।

विषपुट (सं० पु०) ऋषिमेद। बहुवचनमें उक्त ऋषि वंशधरोका श्रेय होता है। (पा २।४।६३)

विषपुष्प (सं० स्त्री०) १ नीलयज्ञ, नीला कमल। २ विष युक्त पुष्प, जहरीला फूल। ३ अतमीपुष्प, अतमीका फूल। (पु०) ४ मदनवृक्ष, मैनाफलका पेड़।

विषपुष्पक (सं० पु०) विषयुक्त पुष्प यस्य कन्। १ मदनवृक्ष, मैनाफल। २ विषपुष्पक भक्षणसे होनेवाला रोग। "विषपुष्पैर्जनितः विषपुष्पका उवराः" (पा ५।२।८६)

विषप्रमर्ता (सं० स्त्री०) चन्ध्याकर्कोटनी वाक्क ककड़ी।

(वैद्यकनि०)

विषप्रन्ध (सं० पु०) पर्वतमेद। (महाभारत वनपर्व)

विषवञ्जिका (सं० स्त्री०) विच्छा नामकी लता। यह लता लक्षी हाती और घाम-पातके ऊपर चढती है। शरीरके जिस अंगमें यह छू जाती है, वहाँ खुजली होती है। इसके पत्ते डेढ़ उंगली लंबे तथा पुष्प और फल छोटे होते हैं। फल देखनेमें आँवला जैसा मालूम होता है।

विषमट्टा (सं० स्त्री०) वृहदन्ती, बड़ी दंती।

विषमट्टिका (सं० स्त्री०) चतुर्दन्ता, छाती दंती।

विषमिषज् (सं० पु०) विषस्य विषचिकित्सको वा भिषक्। विषवैद्य, संपरिया।

विषभुजङ्ग (सं० पु०) विषघरसर्प, जहरीला साँप।

विषम (सं० त्रि०) १ असमान, जो बराबर न हो। २ भीषण विकट। ३ बहुत नीच, बहुत नेज। ४ जिसको मीमासा सहजमें न हो सके।

(स्त्री०) ५ सङ्कट, विपत्ति। ६ पद्यके तीन

प्रकारके वृत्तोंमेंसे एक वृत्त। यह पद्य चतुष्पदी अर्थात् चार चरणयुक्त होता है। यह वृत्त और जातिके भेदसे दो प्रकारका है। जो पद्य अक्षर संख्यामें निर्णय है, उसका नाम वृत्त है, इस वृत्तके भी फिर तीन भेद हैं, सम, अद्ध और विषम। जिसके चारों चरणोंमें समान अक्षर रहते हैं, उसका नाम समवृत्त है। प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणमें समान

समान अक्षर रहनेसे अक्षर तथा चारों अक्षरोंमें समान अक्षर नहीं रहनेसे वह विषयमयुक्त कहलाता है।

(सूत्रो० १म सूत्रक)

६ अणुमूलाक अनुष्मरेका । ० अर्थात्कारविशेष । प्रत्येक कार्य किसी न किसी एक कारणसे उत्पन्न होता है तथा प्रायः एकत्रमें उस कारणका धर्म (गुणक्रियादि०) कार्यमें परिचय होता है। जहाँ कारणका गुण या क्रिया विरुद्धमाबले कार्यमें दिखाई देती है तथा जहाँ कारणका कार्य निष्फल होता है, फिरसे इससे यदि किसी अनिष्ट सप्रतलको सम्भावना रहती है और जहाँ विरुद्ध पदार्थका सम्मिलन देखा जाता है, वहाँ विषयमा अक्षर हुआ करता है।

(पु०) ८ राशिका नाममेद्, अनुष्मराशि। मेघ, मियुन मि इ, शुभ्र, धनु और कुम्भ इन सब राशियोंको अनुष्म वा विषय राशि कहते हैं। (ज्योतिषशास्त्र) १ बहुव्य नामक तालके अन्तर्गत एक प्रकारका ताल। बहुव्य नामक ताल पूर्ण अष्ट, सम और विषयके मेद्से चार प्रकारका है। इनमेंसे विषय ताल तग्य द्वारा निर्दिष्ट होता है। २ अठरागिनिशेष। मन्द्, दीर्घ विषय और समके मेद्से अठरागि चार प्रकारकी है। उनमेंम मन्द् दीर्घ और विषयगानि यथाक्रम रूप, पिच और बायुको अधिकतासे उत्पन्न होती है तथा इन तीनों अर्थात् रूप, पिच और बायुकी समता अवस्थाओंमें समा गिकी उत्पत्ति होती है। जिसको अठरागि विषयत्व का मान होता है, उसका जाया हुआ अन्त कमी तो अच्छी तरह पच जाता और कमी बिजकुल नहीं पकता। ऐसे व्यक्तिको बाठरोग उत्पन्न होता है।

विषयक (स० शि०) असमान, जो बराबर न हो।

(सूत्रो० ८११६)

विषयकर्ण (स० पु०) चारों समकोणों वाले षट्भुज में किसी दो बराबरके कोणोंके सम्मेलन देखा (Dragon)।

विषयकर्ण (स० शि०) १ शीतगणितोक्त बहुभुजाको मेद्। असमान प्रक्रिया द्वारा राशि निरूपणका नाम। राशियोंका बर्णक विधेयफल तथा मूलराशियोंका योग का विधेयफल रहने पर प्रक्रियासे राशियाँ निकाली

जाती हैं उनका नाम विषय कर्ण है। २ असदृश कार्य। विषयकोण (स० शि०) वह कोण जो सम न हो, सम कोणसे भिन्न और कोई कोण। (Angles other than right angles)

विषयकात (स० शि०) १ गर्भ, जिसका चारों किनारा असमान हो। २ वाजगणितोक्त बहुभुजोप। (Irregular solid)

विषयप्राहि (स० शि०) एकदेश प्राहि।

विषयचक्रवाक (स० शि०) वृत्त मास (Bilipac)।

विषयचतुरस्र (स० पु०) असमान बाहु का कोणविगिष्ट चतुष्कोण क्षेत्र (Trapez)।

विषयचतुष्कोण (स० पु०) वह चौकोन क्षेत्र जिसके चारों कोण समान न हो विषयकोणवत्ता चतुष्कोण क्षेत्र।

विषयच्छद् (स० पु०) विषयः अनुष्मः छन्दो यस्य। सप्त छन्दश्च, छत्रिचनका येद्।

विषयम्बर (स० पु०) विषय उभो उचर। उचरीगमेद्। जिस उचरके समयमें (प्रत्याहिक उचरागम समयमें), शीतमें (उचरागमन कामोन शैत्य प्रयुक्त कथन भादिमें), इष्ममें गान्धताय भादिमें) और वेगम (घमना या नाद्योकी गतिमें) विषयत्व न्यूनाधिक्य दिखाई देता अर्थात् जिस उचरमें पूर्वदिन उचर आनेके समयकी अपेक्षा दूसरे दिन कुछ पहले या पीछे भाधे और जिसमें पूर्वदिनकी अपेक्षा दूसरे दिन शीतका अथ शरीरक तापादिका माग कुछ कम या ज्यादा हो और गर्मीका गतिमें भी ऐसे ही न्यूनाधिक्य अनुभव हो उसी उचरका विषयम्बर कहते हैं।

बातिहादि उचरक निर्दिष्ट विच्छेद् समयमें अर्थात् ३१०१२ या १३१०१२४ दिनका यथाक्रम बातिक, वैशिक और क्रैष्णिक उचर विच्छेद् होने पर जो बातादि शेषक सम्पूर्ण छाप्रय होत न होते ही यदि अहित आहार आभारारिक क्रिये जाये तो ये बातादि शेष का प्रयुक्त हो कर रसरकादि धातुमें किसी एक धातुका अवलम्बन कर विषयम्बर उत्पादन करते। रसधातुका अथ अवलम्बन कर जो विषयम्बर होता है उसका नाम समतत है, रक्तक आश्रयस जो विषयम्बर होता है, उसका

नाम सतत और मांसाश्रित विषमज्वरको अन्येद्युक्त कहते हैं। नृतीयक नामक विषमज्वरमें दो धातुको और चातुर्थक ज्वर अस्थि तथा मज्जा धातुका आश्रय ले कर उत्पन्न होता है। यह चातुर्थक ज्वर मारात्मक है और छीहा, यष्टुन् आदि बहुतरे रोग उत्पन्न करता है।

जो ज्वर समाह, दशाह, या द्वादशाह काल तक एकादि क्रमसे एक रूपमें अविच्छेदी अवस्थामें रह कर अन्तमें विच्छेद हो जाता है, उसका नाम मन्तत विषमज्वर है। जो दिनरातमें दो बार अर्थात् दिनमें एक बार और रातमें एक बार आता है, उसको सततक या सतत ज्वर कहते हैं। दोलचालमें इसका नाम द्वौकालीन ज्वर है। अन्येद्युक्त ज्वर दिनरातमें एक बार मात्र होता है। नृतीयक ज्वर तीन दिनोंके बाद और चातुर्थक ज्वर चार दिनोंके बाद एक बार होता है।

उक्त नृतीयक ज्वर वातश्लैष्मिक, वातपैत्तिक तथा कफ पैत्तिक भेदसे तीन प्रकारका होता है। ज्वर आनेके समय पीठमें वेदना अनुभव होनेसे समझना होगा, कि वह वातश्लैष्मेजन्य नृतीयक ज्वर है। त्रिकस्थानमें (कमर, जठ् मूल आदि तीन सन्धिस्थलमें) वेदनाके साथ जो नृतीयक ज्वर होता है, वह कफपित्तजनित है। फिर जिस नृतीयकमें पहले गिरमें दर्द उत्पन्न होता है, वह वातपित्तज है। इसी तरह चातुर्थकज्वर भी वातिक और श्लैष्मिक भेदसे दो प्रकारका है। गिरमें वेदनायुक्त वातिक और जैत्राह्वयमें वेदना उत्पन्न कर श्लैष्मिक चातुर्थकज्वरका उद्भव होता है।

सिवा सततक, इसके अन्येद्युक्त, नृतीयक और चातुर्थकविषयों और वातबलात्मक, प्रलेपक, दाहशीतादि कई विषमज्वरका उल्लेख है। नीचे क्रमशः उनके लक्षण आदि वर्णित हैं। सततकविषय—दिनरातमें केवल दो बार विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वरभोग करता है। अन्येद्युक्तविषय—दिनरात भरमें एक बारमात्र विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वर भोग करता है। नृतीयक विषय—यह ज्वर आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्थामें रहता है, बीचमें केवल एक दिन दिखाई देता है। चातुर्थक-विषय—यह आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्था-

में रहता और बीचमें दो दिन सम्पूर्णरूपसे ज्वर रहता है। वातबलात्मक—यह ज्वर शीघ्ररोगाक्रान्त व्यक्तिके उपद्रवस्वरूप निरूप मन्त मन्त होता है। इसमें रोगी रुधिर और स्तब्धता होता है अर्थात् उसको बहुतहीनिय रोग उत्पन्न होता है। प्रलेपक—यह ज्वर निरूप मान्य अवस्थामें होता है। यह पर्वाना और शरीरके भागोंपतके कारण उत्पन्न; शरीरके वाचमें मानों प्रलिप्त अर्थात् निघट होता है। इसमें रोगी जीत अनुभव करता है। यक्ष्माके रोगियोंको ही यह ज्वर होता है।

विदाश्रयण अन्त रममें अर्थात् प्रदुष्ट आहाररममें प्रदुषित पित्त और कफ शरीरमें व्यस्थित भावसे रह कर एक तरहके विषमज्वरको उत्पन्न करता है। इस ज्वरमें व्यस्थित भावसे पित्त और कफका अवस्थानहेतु अर्द्धशरीरप्रसकार या नरसिंहाकार रोगोंको देहका अर्द्धशरीर तथा दृग्ग अर्द्धशरीर शीतल रहता है। इसका कारण यह है, कि जिस अर्द्धशरीर पित्तका प्रादुर्भाव है, वही गरम तथा जिस अर्द्धशरीर श्लेष्माका प्रादुर्भाव है, वही शीतल का अनुभव होता है। दूसरे एक विषमज्वरमें पित्त और कफ पूर्वोक्त रूपसे शरीरके विभिन्न स्थानमें अवस्थान पूर्वक दाह जीत आदि उत्पन्न करना है अर्थात् जब पित्त कोष्ठाश्रित रहता है तो श्लेष्मा हाथ पैरमें रहती है। इस तरह उदाहरण है, वैश्वी रहता है, तब श्लेष्मा कण्ठमें अवस्थान करता है। सुतगं पूर्वोक्त नियमानुसार जब जहा श्लेष्मा रहती है, तब वहा (बादमें या हाथ पैर आदिमें) शीतल और जब पित्त इन स्थानोंमें रहता है, तब उन स्थानोंमें उष्णता विद्यमान रहती है।

इस ज्वरमें जब त्वक्स्थित वायु और श्लेष्मा दोनों पहले जीत उत्पन्न कर ज्वर प्रकाशित करता है और इनके वेगका किञ्चित् उपशम होनेके बाद पित्त द्वारा दाह उपस्थित होता है, तब 'शीतादि' और जब इस तरह त्वक्स्थित पित्त पहले उत्पन्न दाह उत्पन्न कर ज्वरको अभिषेक करता है और पीछे इस पित्तके किञ्चित् प्रगमिण होनेसे वायु और श्लेष्मा दोनोंसे जीतका उद्भव होता है, तब इसको 'दाहादि विषमज्वर' कहते हैं। इन दाहादि और शीतादि ज्वरमें दाहपूर्व ज्वर ही विषम क्लेशदायक और क्लेशसाध्यतम है।

पहले कहा जा चुका है कि रसच्छादि धातुके अन्त्यम धातुका आश्रय कर विषमस्वरकी उत्पत्ति होती है। अब जिस धातुका आश्रय करनेमें रोगीके जो जो अक्षय दिखाई देने हैं, उसका वर्णन करते हैं। रसधातुके आश्रय कर जो स्वर होता है, उसमें रोगी के बदलमें भारीपन, हृद्योत्कलेज ( उपस्थित-वमन बोध ), अवसन्नता, वमन, अरुचि और दैव्य उपस्थित होता है। उच्चरकधातुका आश्रय करनेसे रोगी रक्त निक्षेपण करना है अर्थात् रक्त के कठे के कठे रक्त में आने लगता है। साथ ही साथ इसके दाह, मोह (मूर्च्छामिह), वमन, भ्रमि (शरीर घूमना) प्रमाप पोहका (स्फेटरकादि) और तुष्या आदि उपमर्मा आ कर उपस्थित होते हैं। उच्चर मांसधातुगत होनेसे रोगीके तन्त्रुके मांसपिण्डमें बृहत्से मारनेकी सी विद्वान् मालूम होता है और इसकी तुष्या, मलमूर्च्छामिसरण, वहिस्ताप, अन्तर्हृदि विक्षेप ( हाथ पैरका परकना ) और शरीरकी प्कानि प्रभृति अक्षय होने आते हैं। मेरुस्थ स्वरमें रोगी के अत्यन्त क्वे ( पसीना ), तुष्या, मूर्च्छा, प्रमाप, वमन, क्षीणगन्ध, अरौचक, शारीरिक प्कानि और असहिष्णुता आदि अक्षय उपस्थित होते हैं। अस्थिगत स्वरमें अस्थिमें मेरुवत् पीड़ा, कुञ्जन (गलेमें कों कों शब्द), श्वास (बमो), बिरोचन वमन और गालविक्षेप करना अथवा हाथ पैरका परकना आदि अक्षय दिखाई देने हैं। मरुस्मात् अन्धकारम प्रवेग करनेकी तरह वीध होना, दिक्की, घामी, खाहा लगना, अन्तर्हृद, महाश्वास और मरुमिह ( हृद्य, यस्ति आदि मर्मोत्थायनेमें मंत्रवत् पीड़ा ), ये ही मरुत्प्रमाण स्वरको अक्षय है। अब उच्चर शुक्रधातुगत दाता है तब किङ्कतो अल्पना शुक्रका अधिक प्रसेक होता है। इससे महत्ता रोगीकी धृत्यो हो जाती है।

पूर्वोक्त तृतीयक धातुर्पाकादि स्वरको कोर कोर भूनामिसन्तुष्टेय विषमस्वर कहा करते हैं। और रोग प्रमाणमात्र इसका वैयक्य ( बलि होम आदि ) तथा दोषोचित कुक्य ( कृपाव पाणनादि ) कियोद्यकी पात्रव्या क्रिया करते हैं।

त्रिभुकी दिहमें वायु और कफकी समता और पित्त की क्षोणता हो, इसको विषमस्वर रातको और इस

तरह जिसको कफको क्षोणता और वातपित्तकी समता दिखाई दे, उसको प्रायः दिनमें उच्चर आता है।

उच्चर यदि उपस्थितके साथ हो विषमत्व प्राप्त हो, तो यह श्रुति हो रोगीका नाश करता है।

बिच्छिस्ता—प्रायः सभी विषमस्वरोंमें ही विक्षेप का ( वात पित्त, कफ ) अनुबन्ध है। परन्तु प्रत्येक विषमस्वरमें ही वायुका एतना आवश्यक ज्ञानना होगा। बात यह है, कि इसमें भी वायुके प्रति ही प्रधान अक्षय एतना होगा। किन्तु इनमें अब जिस दोषका प्रादुर्भाव समझा जाये तब उसके प्रति बराबर धेड़ा करनी चाहिये। क्योंकि सब दोषोंमें अल्पण ( अति प्रबल) दोषकी ही पहिले बिच्छिस्ता करनी चाहिये। विषमस्वरमें उच्चरार्था शोषण ( वमन विरक्षण ) कार्यय है। समस्त स्वरमें—रन्ध्रयव, परबलकी पत्ती और कटकी, इग्दी तीन चोर्जा, सतत स्वरमें—परबलकी पत्ती, अमन्तमूल, मोषा, आकनादि और कटकी इन पाँचों ; अन्धेचुष्कमें—नीमकी छाल, परबलकी पत्ती, माँवना हरीतकी, बह्दा किसमिस, मोषा और रन्ध्रयव या कुञ्जकी छाल इन आठों ; तृतीयकस्वरमें बिरायता, गुह्वी, रक्त चन्द और सोढ इन चारोंका काप बना कर संवन करनेसे चारोगलाम होता है। रोगवर्तीका सूख और सोढका बहाय पान करनेसे है। या तीन दिनोंमें शीत कप और दाहयुक्त विषमस्वर दूर होता है। वातप्रसेप्य प्रधान तथा श्वास, कास ( कान्सी ) अरुचि और पाण्य वेदनायुक्त विषमस्वरमें कश्चिकारो, गुह्वी, सोढ और कुञ्ज इन कश्चि प्रयोगका बहाय उपयोगी है। इससे विक्षेप स्वरमें भी उपकार होता है। मोषा भाषना, गुह्वी, सोढ और कश्चिकारिका इनके बहायके साथ पीपलचूर्ण और मधु मिश्रित कर संवन करनेसे विषमस्वर भूट होता है। प्रातःकाल या आहार करनेमें पहिले जिस समय हो तिम रीनके साथ सहस्रान् अक्षी तरह पीस कर भक्षण करनेसे विषम स्वर दूर होता है। व्याघ्रीका चर्बी ( वना ), उतमी ही ही ग और लेंचा नमक साथ अथवा सिंहकी चर्बी पुराना घृत और लेंचा नमकके साथ मिसा कर नस्य मेंसेसे बड़ा उपकार होता है।

लेंचा नमक, पापलचूर्ण और मन्नाशिला विषमस्वर



में तिलतैलके साथ उत्तमरूपसे पीस कर अञ्जनरूपसे ध्ववहार करनेसे भी विषमज्वर दूर होता है। गुग्गुलु, नीमका पत्ता, वज्र, कुट, हरीतकी, सर्पप, यव और घृत ये कई द्रव्य एकत्र कर उसके वाष्प ग्रहण करनेसे विषमज्वर विनष्ट होता है।

ज्वर रसघानुस्य होनेसे वमन और उपवास करना चाहिये। लेक (ज्वरघ्न पदार्थों का कषाय द्वारा अवसंचन), प्रदह (ज्वरनाशक द्रव्योंका उत्तम रूपसे पीस कर उसका प्रलेप) और संग्रामत (दोषप्रशमक द्रव्यका कषाय चूर्ण आदि) रक्तस्य ज्वरके लिये हितकर है। रक्तमोक्षणसे भी रक्तगत ज्वरमें उपकार होता है। मांस और मेदस्थित ज्वरमें विरेचन और उपवास प्रशस्त है। अस्थि और मज्जागत ज्वरमें निरूहण (कषाय द्रव्योंकी वस्ति या पिचकारी) और अनुवासन (स्नेह-वस्ति) प्रयोग करना कर्त्तव्य है। मेदस्थ ज्वरमें मेदोघ्न क्रिया भी कर्त्तव्य है। अस्थिगत ज्वरमें वातविनाशक क्रिया भी विशेष है। शुक्रस्थानगत ज्वरमें "मरण प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगतं ज्वरं" ज्वर शुक्रस्थानगत होनेसे बलरक्षक श्रेष्ठतम घातुके अतिशय निर्गम होनेसे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

जीतदाहादि ज्वरमें जीतार्चाकी जीतनाशक और दाहार्चाकी दाहनाशकक्रिया द्वारा चिकित्सा करना कर्त्तव्य है। जीतादिज्वराकात व्यक्तिको अत्यन्त जीत उपस्थित होनेसे तोजक या टोलाई या रेजाई या कम्बल ओढा कर उसका जीत निवारण करना चाहिये। इन सब क्रियाओंसे भी यदि जीत दूर न हो, तो एक प्रशस्त नितम्बिनी सुन्दर युवती स्त्रीको बगल में सुला देना चाहिये। रमणीके स्पर्शसे स्वभावतः ही रोगीका रक्त गरम हो जायेगा और जीतका उपशम होगा। किंतु इस प्रक्रियासे जीत निवारण होनेके बाद रोगीको जब कामोद्रेक हो, तो स्त्रीको वहांसे हटा देना चाहिये। इस जीतापगमसे जब दाह उपस्थित होगा, तब परण्डपत्र या जीतल द्रव्यादि (जीतल कासेका बरतन) शरीरमें धारण कर दाह निवारण करना होगा। लिप्त (गोबर और जल द्वारा लिपि) जमीनमें परण्डपत्र फैला कर उस पर दाहात्तरोगीको सुलानेसे ज्वरके

साथ दाह प्रशमित होगा। पहले दाह हो कर यदि पीछे देहमें शीतलता उपस्थित हो, तो रोगीका उच्चापगमके लिये फिर उसके सुगन्धि चन्दन कर्पूर आदि द्वारा दिग्नेपिततन्वा यौवनधनी इतिहा द्वारा घेष्टन करना होगा। दाहके उपशम होनेके बाद यदि रोगीको कामोद्रेक हो, तो पूर्ववत् युवतीको हटा देना चाहिये।

गुग्गु (गुडची), मोथा, चिरेता, आंवला, कण्टकारी, सोंठ, विल्वमूलकी छाल, सोनाछाल, गाम्भारीकी छाल, गनियारीकी छाल, कटकी, इन्द्रिय, दुरालभा, इन सबको मिला कर इमसे दो तोले ले ३२ तोले जल-र्म मिला कर काढा तय्यार करे और जब आठ तोले जल शेष रहे, तो उतार लेना चाहिये। इसे छान कर २ मासा पीपल चूर्ण और दो मासा मधु या गृहद मिला कर नित्य सेवन करना चाहिये। इमसे चातिक, पैत्तिक, ग्लैमिक, हन्डन और चिरोत्पन्न रानका ज्वर निवारित होता है। हिंशु, गन्धक, पारद—प्रत्येक एक तोला ले पीपलके पेड़की छाल, धतूरेकी जड़, कण्टकारीका मूल और काकमाची—इनके प्रत्येकके रसमें तीन तीन दिन अलग अलग भावना दे कर दो या तीन रचीके प्रमाणकी गोली तैयार करे। इस गोलीको दूधके साथ सेवन करनेसे शीघ्र ही रात्रिज्वर विनष्ट होगा।

पवित्र हो नन्दी आदि अनुचर और मातृकाओंके साथ शिवदुर्गाकी अर्चना करनेसे शीघ्र ही सब तरहका विषमज्वर दूर होता है और सहस्रमूर्द्धा जगतपति विष्णुके सहस्रनाम उच्चारण कर स्नान करनेसे भी सब तरहके ज्वर विनष्ट होते हैं। (महाभारत आदि ग्रन्थोंमें विष्णुके सहस्रनाम लिखे हैं)

ब्रह्मा, अश्विनीकुमारद्वय, इन्द्र, हुताशन, हिमाचल, गङ्गा और मरुद्वणकी यथाविधि पूजा करनेसे विषमज्वरकी शान्ति होती है। भक्तिके साथ पिता माता और गुरुजनोंकी पूजा और ब्रह्मचर्य, तपः, सत्य, व्रतनियमादि, जप, होम, वेदपाठ या ध्वज, साधु-सन्दर्शन आदि कार्य कायमनोवाक्यसे प्रतिपालन करनेसे शीघ्र ही ज्वरादिसे मनुष्य छुटकारा पा जाता है।

विषमज्वरसे आक्रान्त रोगी अपने हाथसे नौ

मुझे बाधल द्वारा एक पुनर्जी तत्पार करे और उसको हस्तिक रङ्गमें रंग दे पांछे चार इन्सा रङ्गकी पताकाये और पीपलकी पत्तीक बने देनि हरिद्रा उससे मर कर उसके चारो और व्यापन करे। उक्त पुनर्जीको बोरज वासिका ( वेनाकी पत्तोसे बने पांच या आमत विशेष) पर "विष्णुर्गमोऽथ" इत्यादि मन्त्रांसे मन्त्रण कर निम्न मन्त्रका ध्यान और मन्त्रपाठ करना चाहिये,—

“अभिचार क्रियाः पद् मुञ्जे नसोचनः ।  
मन्त्रप्रदयो खः काश्रन्तकनोपमः ।”

पीछे नी कीटो दे गन्ध पुप, घृण भादि करोदे। तद्भार इनस पूजा कर मन्त्र्या सत्य निम्नांक मन्त्र पाठ कर उचर जगि रूप धातिको निर्मोचन करना होगा। ( तीन दिन तक वेना हो करनेका विधान है ) मन्त्रः—

“छी नमो भगवते गण्डासनाय मन्त्रकाय स्वस्वस्तु वस्तुतः आहा छी कं ट प श येनतेपाय नमः ओं ह्रीं छः क्षेपसासाय नमः ओं ह्रीं ठ ठ मो मो उचर श्चु श्चु इन इन गज गज वैकाहिक ज्वाहिकं ज्वाहिकं चातु र्कं सासाहिकं अर्थ मानिकं मासिकं नैमिषिकं माहूर्तिक फट फट ह फट इन इन इन मुख मुख भूर्गा गच्छ आहा” यह मन्त्र पाठ समाप्त कर किसी वृक्षमें इमगान में या अतुष्यधमें उक्त पुतलीको बिसर्जन देना चाहिये और इन पूजाकी वास्तुको दक्षिण तरफ पवित्र न्यान पर रण देनेकी विधि है।

मिया इमक सूर्यास्तान, सूर्याका स्तव, बटुक मैत्रव स्तव माईश्वरकचम भादि पाठ और प्रक्रियादि द्वारा मो विषमज्वरका अपनोदन किया जाता है। विषय बढ़ जानेके कारण उसका विवरण यहाँ दिया न गया।

पार्श्वगतसे विषमज्वर—पार्श्वगत विविक्षक गज विषमज्वरको मछेरिया उचर कहते हैं।

विषमज्वररूपेण शमी ( स० झी० ) विषमज्वरकी एक एक औषधि। प्रस्तुतप्रणाली—रक्तचन्दन, सुयम्भवाणा, आकनादि, बोरजमूत्र, पीपल, इरोतकी, सोंठ, गुग्गि अर्चना चिकन, मोषा और पिङ्गु, मत्स्येकका पूर्ण १ तोला, आरित मीहचूर्ण १२ तोला, इन्द्र एक माघ

मिसा कर जल द्वारा मर्दन करे। २ एलोकी गोमी बना कर सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है।

विषमज्वरान्तकर्म ( स० पु० ) विषमज्वरकी एक औषधि। प्रस्तुत प्रणाली—हिंगुलोत्थ पाटा और गन्धक, बराबर माग से कर मच्छी तरह पीसे। बाईमें कड़ली बना कर पर्योषत् पाक करे। यह पर्योष तथा पारेका खोषाद भाग खर्ण, मुष्ठा तथा शङ्खु और सोपकी मसम तथा मीह ताज मस्र मत्स्येक पारेका दूना; रांगा मूगा, मत्स्येक पारेका भाषा इन्हे एक साथ से कर घृतकुमारीके रसमें मर्दन करे। बाईमें हो सोपमें इसे मर कर करियागि ( वनगोईडेकी भाग )में पुट्टाक विधिक अनुसार पाक करे और पांछे २ एलाकी गोमी बनाये। इसका सेवन करनेसे विषमज्वर प्थीहर, पक्षु, भादि नाना प्रकारके रोगोंका प्रतिकार होता है। इसका अनुपान पीपलचूर्ण, हींग और सैन्धव भक्ष्य है।

विषमता ( स० खी ) १ विषम होनेका माघ, असमानता। २ घेर, विरोध, द्वोह।

विषमत्रिभुज ( स० पु० ) यह त्रिभुज जिसके तीनों भुज छोटे बड़े हों, असमान हो। ( Scalena triangle )

विषमस्त्र ( स० झी० ) विषमका माघ या धर्म, विषमता।

विषमदलक ( स० पु० ) बह सोप जिसके दानों दल असमान हो, डैन आरुचर सोप ( Outer )।

विषमनयन ( स० पु० ) विषमगणि मयुगमनि ( लोपि ) नयननि गन्ध। १ गिप महादेव। ( जि० ) २ तिनन विशिष्ट, तीन आँखोंवाला।

विषमनेत्र ( स० पु० ) शिब महादेव।

विषमभक्त ( स० पु० ) विषमिबस को मन्त्रो पत्त। सर्प आरक, सयेरा। पर्याय—आहूमी। ( अक्षर )

विषमपद् ( स० जि० ) १ असमान पदविधिविशिष्ट। द्विर्था टापू। २ असमान चरजपुक।

( शृङ्गादि० १६१६ )

विषमपलाश ( स० पु० ) सतपमाग छतियनका पृष्ठ।

विषमपाह ( स० जि० ) असमान चरजपुक। द्विर्था टापू।

विषमवायु ( स० पु० ) पक्षवायु, कामदेव।

विपमय ( स० लि० ) विपयुक्त, जहरीला ।  
 विपमराशि ( स० स्त्री० ) अयुग्मराशि, मेघ, मिथुन, सिंह,  
 तुला, धनुः और कुम्भ ।  
 विपमरूप्य ( स० लि० ) विपमादागतं । विपम रूप्य  
 ( सिद्धान्तकौ० ) । जो विपमसे आया हो ।  
 विपमर्हानिका ( स० स्त्री० ) विपं मृधनेऽनया मृद-ल्युट्  
 स्याथे कन् । गन्धनाकुली ।  
 विपमर्हानी ( स० स्त्री० ) गन्धनाकुली, गन्धरास्ना ।  
 विपमवलकल ( स० पु० ) करुण निम्बुक, नारंगी ।  
 विपमभान ( स० पु० ) असमान अश ।  
 विपमविशिख ( स० पु० ) विपमा विशिखा वाणानि  
 ( पञ्च ) यस्य । पञ्चवाण, कामदेव ।  
 विपमवृत्त ( स० स्त्री० ) वह वृत्त या छन्द जिसके चरण  
 या पद समान न हो, असमान पदोंवाला वृत्त ।  
 विपमवेग ( स० पु० ) न्यूनाधिक वेग, वेगकी कमी वेशी ।  
 ( माधवनि० )  
 विपमशिष्ट ( स० पु० ) अनुचिंतानुशासन, प्रायश्चित्त  
 आदिके लिये व्यवस्थाका एक दोष । जान बूझ कर  
 अर्थात् इच्छानुसार भारी पाप करने पर तत्कच्छ  
 तथा अनिच्छासे अर्थात् अनजानमें भारी पाप करने  
 पर चाण्डायणव्रतकी व्यवस्था शास्त्रमें बताई है ।  
 यहाँ पर यदि विपरीत भावमें अर्थात् कामाचारीके  
 प्रति चान्द्रायण तथा अज्ञानरुत पापोंके सम्बन्धमें तत्त-  
 कच्छव्रतकी व्यवस्था दी जाय, तो वह व्यवस्था विपम  
 शिष्ट दोषसे दूषित होता है ।  
 विपमशील ( स० लि० ) असरलप्रकृति, उद्धत ।  
 विपमसाहस ( स० लि० ) अत्यधिक साहसयुक्त, बहुत  
 साहसी ।  
 विपमसिद्धि—पूर्व चालुक्यवंशीय राजा कुञ्जविष्णु-  
 वर्द्धनका एक नाम, काँत्तिवर्मके पुत्र ।  
 चालुक्यवंश देखो ।  
 विपमस्थ ( स० लि० ) विपमे उन्नतानते सङ्कटे वा तिष्ठ-  
 तीति विपम-स्था क । १ उन्नतानत प्रदेशका । २ सङ्क-  
 टस्थ, आपद्कालका । ३ उपप्लव, ( उपद्रव प्राप्त )  
 देशस्थ ।  
 विपमा ( स० स्त्री० ) १ सौवीरवद्ध, भरवेरी । २ एक  
 प्रकारका बछनाग ।

विपमाक्ष ( स० पु० ) १ विपम नयन । २ शिव, महादेव ।  
 ( त्रिकायदर्शण )  
 विपमग्नि ( स० पु० ) जठराग्निविशेष । कहते हैं, कि  
 यह अग्नि कमी तो खाए हुए पदार्थोंको अच्छी तरह  
 पचा देती है और कमी विरुक्कुल नहीं पचाती ।  
 विपमादित्य एक प्राचीन कवि ।  
 विपमाशन ( सं० स्त्री० ) वैद्यकके अनुसार ठीक समय  
 पर भोजन न करके समयके पहले या पीछे अथवा थोड़ा  
 या अधिक भोजन करना । अधिक भोजन करनेसे  
 अगलस्य, गालगुरुता, पेटके भीतर गुडगुड़ाहट शब्द तथा  
 अल्प भोजन करनेसे शरीरकी कृशता और बलका क्षय  
 होता है । ( भावप्र० )  
 विपमाशुकर ( स० पु० ) ग्रन्थिपर्णमूल, गंडिवन ।  
 विपमित ( सं० लि० ) १ प्रतिकूलताप्राप्त । २ कुटिलीकृत ।  
 विपमीय ( सं० लि० ) विपमादागतम् विपम-छः ( गहा-  
 दिभ्यश्छः । पा ४।२।१३८ ) विपमसे प्राप्त, सङ्कटापन्न ।  
 विपमुच् ( स० लि० ) विपं मुञ्चतीति विपमुच्-क्विप् ।  
 विपोद्धारणशाल, जहर उगलनेवाला ।  
 विपमुष्कक ( स० पु० ) मदनवृक्ष, मैनफल । ( वैद्यकनिधं )  
 विपमुष्टि ( सं० पु० ) १ क्षुपविशेष, वकायन । पर्याय—  
 कंशमुष्टि, सुमुष्टि, रणमुष्टि, क्षुपडोड़मुष्टि । गुण—कटु,  
 तिक्त, दोषन, रोचक तथा कफ, वात, कण्ठरोग और  
 रक्तपित्तादिका दाहनाशक । ( राजनि० ) २ महानिम्ब,  
 थोड़ा नीम । ३ कुचला । ४ जीवन्ती । ६ कलिहारी ।  
 ७ मदनवृक्ष ।  
 विपमुष्टिक ( सं० पु० ) १ विपमुष्टि, वकायन । २ बृहत्  
 अलम्बुपा, गोरक्षमुडा । ३ फाँटा, वनतरौई ।  
 विश्वमुष्टिका ( सं० स्त्री० ) विपमुष्टिक देखो ।  
 विपमूला ( सं० स्त्री० ) शिरामलक, शिरसाँवला ।  
 विपमृत्यु ( सं० पु० ) विपेण विपदर्शनमात्रेण मृत्युरस्य ।  
 जोधञ्जीवपक्षी, चकोर पक्षी ।  
 विपमेक्षण ( सं० पु० ) १ विपमनयन । २ शिव ।  
 विपमेषु ( सं० पु० ) विपमा अयुग्मानि इपवो वाणा,  
 ( पञ्च ) यस्य । पञ्चवाण । कामदेव ।  
 विपमोन्नत ( स० लि० ) १ क्रमोच्च निम्न, ढालवाँ ।  
 २ स्थपुट ।

विषमोमयकण्टक (स० पु०) घटावदर ।

विषय (स० पु०) विषियवर्गित स्वारमकतया विषयिण निरूपयन्ति स चरनन्ति वा वि-नियि जघ् । १ मधुरादि इन्द्रियप्राप्त वस्तुजात । शब्द स्वर्ग्य रूप, रस गन्ध आदि । पर्याय—मोक्षर इन्द्रियार्थ । इन्द्रियुक्त (मिश्रित हो परमाणु) से आरम्भ करके नव नवा समुद्र पवत तथा प्राणसे लगण्यत महाबायु तक समस्त प्रक्षाल्य अर्थात् शोषका मोगमाचन प्रागनिक पञ्चार्थमात्र हो विषय शब्द बाध्य है । यह मोग कहते तो साक्षात् सम्भव में और कहते परमत्ता सम्भवमें हुआ करता है । जयता बिना किसी न किसी प्रयोजनक सिवा किसी पदार्थका उत्पत्ति नहीं होती । अतएव इन्द्रियुक्तसे प्रक्षाल्य पर्यन्त सभी विषय अर्थात् इन्द्रियप्राप्त (इन्द्रियप्राप्त) कहजात है ।

द्रव्याधिग्न शुद्धरूप आदि रूप अक्षरके विषय हैं अर्थात् अक्षप्राप्त हैं । इसी प्रकार मधुरादि छान प्रकार क रस (मधुर, अम्य लवण, कटु, तिक्त और कषाय) रसनाप्राप्त अर्थात् जिह्वाके विषय हैं, द्रव्यमिष्ट सुगन्ध और सुगन्ध प्राणोन्द्रियका विषय है ; दृग्निन्द्रिय द्वारा द्रव्यके गोल अणु और ग्रीतोप्य वा नातिशीतलप्य इन तीन प्रकारके गुणोंका अनुभव होता, इस कारण ये तानों प्रकारके स्पर्शशुभ दृग्निन्द्रियके विषय हैं । फिर आकाशमिष्ट शब्दगुण श्रोत्रनिन्द्रियका तथा आरमनिष्ठ सुप्, दुःख, इच्छा, द्रव, यत्न आदि मन अर्थात् घन्त रिन्द्रियका विषय है ।

साव्यकारने विषय शब्दकी निश्चित इन प्रकार की है,—“विषियवर्गित विषयिण चरनन्ति श्लेष रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्तीनि विषयाः पृथिव्याद्या सुखादपरम् । अमनसादीनां भविष्यद्वाच्य तन्मात्रवस्तुणाः योगीनां ऊह्यन् श्लेष्माद्य विषयाः ।” (वाल्मीकीय )

जो सब पदार्थ शोषका संसारमें आबद्ध करते हैं ओ इन्द्रिय (अक्षुः श्रोत्रादि) द्वारा पृथीत हैं; कर अपनी प्रकृतिकी अमिष्यकितने विषयो (मोगा व्यक्तिवों) का निर्णय करते हैं, उनका नाम विषय है । जैसे स्थिति आदि और लुब्ध आदि, क्योंकि इन स्थिति आदि द्रव्योंक रूपरसादि गुणों पर विमुण्य है । औष संसारमें आबद्ध होते हैं तथा

उन द्रव्याभित रूपरसादिक प्रति उनको, मोगाश्लेसा दिनां दिन बढ़ते जाती हैं । अतएव ये सब द्रव्य (स्थिति आदि) तथाभित रूपरसादिस तथा उनके माधुर्य अनुभवक कारण असमं अत्यन्त सुखादि द्वारा हो विषयो (अपवाच्य या संसारवद शोष) का आसानीसे निर्णय किया जा सकता है । अतएव ये सब (स्थिति आदि) विषय हैं ।

यह प्रायः सभी अनुभव कर सकते हैं, कि ऊह्यन् श्लेष्माः योगिण्य विषयी नहीं हैं, क्योंकि साधारण रूप रसादिक प्रति उनको जरा भी मोगाश्लेसा नहीं हैं । परंतु हम श्लेष्माके इन्द्रियातीत (इन्द्रिय द्वारा महावासमर्ष) तन्मात्रादि (रूपरसमात्र रसतन्मात्र आदि विषयो) का उपलब्धि द्वारा वे श्लेष्मा लुब्धका अनुभव करते हैं, इस कारण यदि सुखविचारने श्लेष्मा जाय, तो वे श्लेष्मा मो विषयो रुदे जा सकते हैं ।

२ नित्यसंबिध, जिसका प्रतिदिन सेवा किया गया हो । ३ अल्पक न प्रकट हो । (पु०) ४ शुक्ल, धर्म रस । ५ जनपद । ६ कागतादि । ७ निवा मक । ८ सारोपा आरोवाधय । सारोपा अशुभा इस प्रकार है—जहां आरोप्यमाण गवादि और आरोपके विषय बाह्योकादिके गोलबाह्योत्पत्त्यादि प्रकाशमान वैधर्म रहते हुए मो श्लेष्मां समाधिचरुण्य (समान-विभक्ति कृत्य) देखा जाना है, जहां सारोपाश्लेष्मा होती है । उक्त रूपकमें आरोप्यमाण (शकटमें नियौक्यमान) गी तथा आरोपका विषय (आधय) बाह्योका (शकट), इन दोनोंके यथाक्रम गोल और बाह्योत्पत्त्य विभिन्नधर्मा प्राप्त होने पर मो श्लेष्माके उत्तर एक ही प्रथमा विभक्ति निर्देश की गई जिससे ‘सारोपाश्लेष्मा’ हुए तथा उसी (मारोपा श्लेष्मा)के द्वारा ही इनका (गोर्बाह्योका इस प्रयोगका) पूर्वोक्त प्रकार (गोबाह्य शकट)का अर्थ प्रकाशित होता है ।

१ विचारयोग्य बाध्य अधिकरजावयवमेव । विषय (विशार्यविषय), विजय (स शय सन्वेद), पूर्ववत् (प्रस), उत्तर और निजय (निज्यात्) आश्लेष्म इन पाँच अर्थोंको व्यपिचर्य कहते हैं । १० श्लेष्म । ११ भाग्य । १२ व्याकरणात्क मतानुसार सामीप्य पदङ्ग विषय और

व्याप्ति हन चार प्रकारके आधारके अन्तर्गत एक । १३ श्रेय पदार्थ, जानने योग्य वस्तु । १४ भोग्यवस्तु, भोगसाधन द्रव्य । १५ सम्पत्ति, धन । १६ वर्णनीय पदार्थ । १७ भूत । १८ गृह, आवास । १९ विशेष प्रदेशजात धन्तु । २० धर्मनीति । २१ स्वर्गमा, प्रिय । २३ मुञ्जतृण, मूँज तृण, मूँज नामकी घास ।

विषयक ( स० द्वि० ) विषय-क्रन् स्वार्थे । विषय देखो ।

विषयकर्मा ( सं० क्ली० ) मानारिक कार्य ।

विषयग्राम ( सं० पु० ) विषयसमूह । ( रूपरसगन्धादि )

विषयता ( सं० स्त्री० ) विषयका भाव या धर्म ।

विषयपति ( सं० पु० ) किसी जनपद या छोटे प्रान्तका राजा या शासक ।

विषयपुर ( सं० क्ली० ) नगरभेद । ( दिग्वि० प्र० ५५६।४ )

विषयत्व ( सं० क्ली० ) विषयका भाव या धर्म ।

विषयवत् ( सं० त्रि० ) विषयो विद्यनेऽस्य विषय-मतुप्

मस्य वत्वम् । विषयविशिष्ट, विषयो ।

विषयवर्तिन् ( सं० त्रि० ) विषयान्तर्भूत, विषयके मध्य ।

विषयवासी ( सं० त्रि० ) जनपदवासी ।

विषयसप्तमी ( सं० स्त्री० ) वह सप्तमी विभक्ति जो विष याधिकरणमें होती है । जैसे, धर्ममें मति हो ।

विषयाज्ञान ( सं० त्रि० ) विषयाणा न ज्ञानं यत् । तन्द्रा ।

विषयात्मक ( सं० त्रि० ) विषयः आत्मा यस्य कप् । १

विषयस्वरूप । २ विषयाधिगत प्राण, अत्यन्त विषयासक्त ।

विषयाधिकृत ( सं० पु० ) जनपदका शासनकर्त्ता ।

विषयाधिप ( सं० पु० ) भूम्याधिकारी, राजा, शासन कर्त्ता ।

विषयान्तर ( सं० त्रि० ) विषयके बाद, एक प्रस्तावके ठीक बाद ।

विषयान्त ( सं० पु० ) राज्यका प्रान्त वा सीमा ।

विषयामिमुखीकृत ( सं० स्त्री० ) १ चक्षुः श्रोत्रादि इन्द्रि-  
योंका अपने अपने विषयके प्रति जाना । २ विषयप्रसक्ति ।

विषयायिन् ( सं० पु० ) विषयान् अयते प्राप्नोतीति  
अय णिनि । १ राजा । २ वैषयिक जन, कामी पुरुष ।

३ इन्द्रिय । ४ कामदेव । ५ विषयासक्त पुरुष,  
विलासी आदमी । ( मेदिनी )

विषयिक ( सं० स्त्री० ) विषयोभूत ।

विषयित्व ( सं० क्ली० ) विषयीका भाव या धर्म ।

विषयिन् ( सं० क्ली० ) विषयोऽस्त्यस्येति विषय इति ।

१ ज्ञानविशेष । २ इन्द्रिय । ३ नृपति, राजा । ४

कामदेव । ५ ध्वनि, शब्द । ६ धनी, अमीर । ७ आरोप्य

माण । ( त्रि० ) ८ विषयामक्त, विलासी, कामी ।

विषयीकरण ( सं० क्ली० ) गोचरोकरण, लोगोंके दिखला  
देना ।

विषयीभाव ( सं० पु० ) गोचरोभाव, स्पष्ट करनेका धर्म ।

विषयीय ( सं० पु० ) विषय । ( कुमुदाञ्जलि १५।२ )

विषयेन्द्रिय ( सं० क्ली० ) शब्दादिप्राहक इन्द्रिय ।

विपरस ( सं० पु० ) विषस्य रस आस्वादः । विषाम्बा-  
दन ।

विपरूपा ( सं० स्त्री० ) विष मृषिकाविषं रूपयति अनि-  
क्रामति रूप-क । स्त्रिंश टाप् । १ अनिविदा, अतीम ।

२ महानिम्बूक, घोडा नोम । ३ अलम्बुपा । ४ कर्कोटी,  
खेकसा ।

विपरोग ( सं० पु० ) विषजस्य रोग ।

विपल ( सं० क्ली० ) विष, जहर ।

विपलता ( सं० स्त्री० ) १ इन्द्रवारुणीलता, ग्वालककडी ।

२ विषप्रधान लतासमूह, जहरोली लताएँ । ३ मृणाल,  
कमलनाल ।

विपलाङ्गल ( सं० क्ली० ) क्षुभेद, कलिहारी ।

विपलाटा ( सं० स्त्री० ) नगरभेद । ( राजतर० ८।१७८ )

विपलितक ( सं० क्ली० ) विषमञ्जरण विष लगा हुआ ।

विषवत् ( सं० त्रि० ) विषमस्त्यस्येति विष-मतुप्-

मस्य वत्वम् । १ विषविशिष्ट, विषैला । विषमिव विष-

इवाथ-वत् । २ विषतुल्य, विषके समान ।

विषवज्रपात ( सं० पु० ) रम ।

विषवल्लरी ( सं० स्त्री० ) विपलता ।

विषवल्ली ( सं० स्त्री० ) विपलता, इन्द्रवारुणी नामकी  
लता ।

विषविटपिन् ( सं० पु० ) विषवृक्ष ।

विषविद्या ( सं० स्त्री० ) विषाय तन्निवृत्तये विद्या ।

१ विषघ्न मन्त्र आदिकी सहायतासे भाइ फूँक कर विष

उतारनेकी विद्या । २ विषचिकित्साशास्त्र ।

विषयविधि ( स० खो० ) प्राचीन व्यवहारशास्त्रक अनुसार एक प्रकारकी परीक्षा या विषय जिससे यह ज्ञाना जाता था, कि अमुक व्यक्ति अपराधी है या नहीं।

विषय शब्द देखो।

विषयवृत्त ( स० पु० ) अनुसूचक, गुरुकरका वेद।

"विषयवृत्तिं संवदन्त्यै स्वयं श्लेषु प्रवाम्यात्मम्।"

( कुमार २ म० )

विषयवैद्य ( स० पु० ) विषयमन्त्राभिज्ञ चिकित्सक, वह जो मन्त्र तन्त्र आदिकी सहायतासे विषय इतारता है सोन्हा।  
पर्याय—सांगुमिक, जाङ्गमिक नरेश्च, कौशिक, कथा प्रसङ्ग चक्राड, व्यासप्रादी, अगुलि जाङ्गमि, यादित्तुपिञ्जक, व्यासप्राह गार्हपिक। ( शम्भुलना० )

विषयवैरिणी ( स० खो० ) निर्विषी घास, मिषिया।

विषयमालुङ्क ( स० पु० ) पत्राकम्प्य मसौड। गुण—शुक्ल, विद्यमान और शीतल। ( एजम्बलम् )

विषयगूक ( स० पु० ) विषय गूक वस्त्र। भूङ्गरोम मीम रोल नामका कीड़ा।

विषयगूह्वि ( स० पु० ) विषय गूह्विमास्तवस्थेति विषय-गूह्वि इति। भूङ्गरोम मीमरोल नामका कीड़ा।

विषयगोकार्पाह ( स० पु० ) तण्डुलोय रूप।

विषययोग ( स० पु० ) सिम्पूर, संडुर।

विषयवृक्ष ( स० पु० ) विषय वृक्षपति विषयवृक्षान्नादि इत्येते वृक्षः सन् ज्ञापयतीति सूत्र-विषय-वृक्ष। लकोर पत्ती।

विषयवृक्ष ( स० पु० ) विषय वृक्षमि यस्य। भूङ्गरोल, माभरोल नामका काड़ा।

विषयस्फोट ( स० पु० ) स्फोटकमेद।

विषय ( स० खो० ) विषय हल ह। १ विषयज, विषय जागक। निम्नवां डाप्। २ देवदाहो। ३ निर्विषया।

विषयहृत् ( स० पु० ) १ शिरोपहृत्, सिरिमिका वेड़। २ विषयशाक।

विषयहस्ता ( स० खो० ) १ अपराजिता। २ निर्विषया। ३ श्वेत अपराजिता।

विषयहर ( स० खो० ) हरीति ह-मन्त्र-विषयस्य हरः। १ विषय भीषय मन्त्रादि, वह भोषय या मन्त्र आदि जिससे विषयका प्रभाव दूर होता हो। गडङ्गपुराजमे

लिखा है "मो ह अ" यह मन्त्र पढ़नेसे सभी प्रकारके विषयका विषय विनष्ट होता है। पीपम, मन्त्रम, सौंड या अम्बरक, सेन्धव निर्वा, इषि, कुट इन सब द्रव्योंका चूर्ण एक साथ मिला कर तस्य वा पान करनेसे विषय जाता रहता है। भाबिला हरीतकी, बईहद, सोहागोका छाया, कुट और रक्तचन्दन इनके चूर्णका घोंमें मिला कर पान करने तथा विषयक स्थानमें छिपने से विषय इतना समय इतर जाता है। कबूतरकी भाब हरीतक और मैतसिल इनका व्यवहार करनेसे गडङ्गक सर्पविनाशको तरह विषय नष्ट होता है। सौंड, पीपर, निर्वा सेन्धव इषि मधु और घृत इन्हे एक साथ मिला कर विषयके काटे हुए स्थान पर लगानेसे विषय इतनी समय जाता रहता है। ( गङ्गपुराण १८२ म० )

( पु० ) २ प्रविषयपीपेद्, अडेहर, चारक। ३ चूड़के एक पुष्पका नाम। ( हरिच ४ ) ४ हिमालय पर्वतश्रेणीके परिषय भागका एक वृक्ष। पर्वतभाग प्रयागतः दामे वार पत्थरोस मरा पहा है। यमुनोत्तरोक उष्य शिखर देशसे जगावत मातुलके इक्षिप्य शतद्रु, नदी तक प्रायः ६० मील विस्तृत है। विषय पर्वतक शिखर १६८२से २०२१ फीट ऊँच है। उसकी सर्वोच्च शिखर हो यमुनोत्तरो है। इस पर्वत पृष्ठमें १४८३१ से २६०३५ फीटक मध्य बहुतेसे गिरिपथ हैं। वहाँक वाशिष्ठी हिन्दू बोमते हैं। आरक देखो।

विषयहर ( स० खो० ) १ विषयानी क्ता, बंधाम। २ निर्विषया। ३ मनसाईका।

"ब्रह्मकाश्मिमात्सर्वाक्रमया विषयैरिषि च।"

( वैषीमाग० ६।४७।५२ )

विषयहरिचिकि ( स० खो० ) मातृप्रापातादि विकारमें अथ हार्प्य अङ्गनर्वाचिबिद्येय। प्रस्तुतप्रणाडी—अथवाल ( जमानगोडा ) बाजकी मझाको गोचूक रसमें इकीसवार अच्छी तरह पीस कर बत्ताका तरह बनाव। पोछे मनुष्यकी रालसे इसको घिस कर अङ्गनकी तरह मैजमें व्यवहार करनेमें साधुप्रातःविकारादिमें उपकार होता है। ( वैश्वक्याता० )

विषयहर ( स० खो० ) १ मनसाईयो। विषय हारमें धृष्ट हानिक कारण इनका नाम विषयहरी हुआ है।

“विषं संरुत्मीषा या तस्माद्विषहरी स्मृता ।”

( देवीभागवत ६।४७।४७ ) मन्सा देखो ।

विषहा ( स० स्त्री० ) विषं हन्ति हन-उ-स्त्रियां टाप् । १ देव-  
दाली लता यदाल । २ निर्विषीघास ।

विषहारक ( म० पु० ) भृकटम्व ।

विषहारिणी ( स० स्त्री० ) निर्विषा, निर्विषी नामक  
वास ।

विषहृदय ( म० त्रि० ) विष हृदये यस्य । जिसका अन्तः-  
करण विषमय हो ।

विषह्य ( स० त्रि० ) वि सह-यन् । विशेष प्रकारसे सह-  
नीय, म् । सहने योग्य ।

विषा ( स० स्त्री० ) १ अतिविषा, अतीस । पर्याय—  
काशमारा, अनिविषा, श्वेता, श्यामा, गुञ्जा, अरुणाल ।  
( रत्नमाला ) विश्वा, शृङ्गी, प्रतिविषा, शुक्लकन्दा,  
उपविषा, मङ्गला घुणवहलमा । गुण—उष्णवीर्य,  
कटु, तिक्त, पाचनी, दीपनी तथा कफ, पित्त, अनिमार,  
आम, विष, कास, वमि और क्रिमिनाशक । ( भाष्य० )  
२ लाङ्गलिका, कलिहारी । ( वैद्यक निष० ) ३ कटु  
तुण्डो, कडवा कन्दूरी । ४ कटुतुम्बी, कडवी तरौई ।  
५ काकोली । ६ बुद्धि, अकृ ।

विषाक्त ( स० त्रि० ) विषमिश्रित, विषयुक्त, जिसमें विष  
मिला हो, जहरीला ।

विषाकृषा ( स० स्त्री० ) शुक्लकन्दातिविषा, सफेद अतीस ।

विषाप्रज्ञ ( स० पु० ) तलवार ।

विषाङ्कुर ( स० पु० ) शल्याख, तीर । ( त्रिकायकौण )

विषाङ्गता ( स० स्त्री० ) विषनारी । विषकन्या देखो ।

विषाण ( स० त्रि० ) १ विशेष प्रकारसे मददाता । ( ऋक्  
५।४।११ ) ( पु० ) २ कुट या कुड नामक औषध ।

३ पशुशृङ्गा, पशुका साग । ४ हस्तिदन्त, हाथीदांत ।  
( गिणुपालवच १।६० ) २ वराहदन्त, सूअरका दांत ।

६ मेपशृङ्गी, मेढासिंगी । इसका फल मींगके जैसा होता  
है । ७ औषधकी लता । ८ वृश्चिकालो, विच्छू नाम-  
का लता । ९ क्षीरकफोली । १० वाराहोकरन्द, गेठी ।

११ त्रिन्तिडी, इमली ।

विषाणक ( म० पु० ) विषाण सार्थे कन् । विषाण देखो ।

विषाणका ( स० स्त्री० ) वह जिससे रोग अच्छी तरह  
पहचाना जाय । ( अथर्वा ६।४।३ )

विषाणवत् ( स० त्रि० ) शृङ्गी, मींगवाला ।

विषाणान्त ( स० पु० ) गणेशके दांत ।

विषाणिका ( स० स्त्री० ) १ मेपशृङ्गी, मेढासिंगी ।  
( रत्नमाला ) २ कर्कशशृङ्गी, काकडासींगी । पर्याय—शृङ्गी,  
कर्कशशृङ्गी, कुलीर, अजशृङ्गी, रक्ता, ककटासया ।

( भाष्य० ) ३ सानला नामका शृहर । ४ आवत्तको  
भगवतघल्ला नामकी लता । ५ ऋषभक नामक

ओषध । ६ शृङ्गाटक, सिंघाटा । ७ काकोली ।

विषाणिन् ( म० त्रि० ) विषाणमस्त्यस्येति विषाण इति ।

१ शृङ्गा, मींगवाला । ( पु० ) २ हस्ती, हाथी । ३ शृङ्गाटक,  
सिंघाटा । ४ ऋषभक नामकी ओषधि । ( राजनि० ) ५  
शूकर, सूअर । ६ शृप, सांड ।

विषाणा ( स० स्त्री० ) १ क्षीरकाकोली । ( मेदिनी ) २  
वृश्चिकाली, विछातो । ३ त्रिन्तिडी, इमली ।

( शब्दच० ) । ५ आवत्तकी लता, भगवतघल्ली नामकी  
लता । ६ चर्मकपा, चमरखा । ७ कडलीवृक्ष, कैलेका

पेड । ८ शृङ्गारक, सिंघाटा । ९ विष, जहर ।

विषातकी ( स० स्त्री० ) विषकी संयोजनाकारिणी ।

( अथर्वा ७।१२।२ )

विषाट्ट ( स० त्रि० ) विषं अक्षीति विष अट्ट विषप् । १  
विषमश्रक, जहर खानेवाला, ( पु० ) २ शिव, महादेव ।

विषाट ( स० पु० ) वि-सट्ट घञ् । १ खेद, दुःख, रंज । २  
जड़ता, जड या निश्चेष्ट होनेका भाव । ३ कार्यमें अनु-

त्माह या अनिच्छा, काम करनेके विलकुल जी न  
चाहना । ४ भूखता, वेवकफी ।

विषादन ( स० स्त्री० ) विषाद, दुःख, रंज ।

विषादना ( स० स्त्री० ) विषाय तन्निवृत्तये अद्यतेऽसौ  
अट्ट-ल्युट् स्त्रियां टाप् । १ पलाशी नामकी लता । २ इन्द्र-  
वारुणी ।

विषादवत् ( स० त्रि० ) विषादयुक्त, विषादित ।

विषादिता ( स० स्त्री० ) १ विषादयुक्ता । २ विषादका  
धर्म या भाव ।

विषादित्व ( म० स्त्री० ) विषण्णता, विषादयुक्तका  
भाव या धर्म ।

विषादिन् ( स० त्रि० ) विषादो विद्यतेऽस्य इति विषाद-  
इति । विषादयुक्त, विषण्ण ।

विपादिनी (स० स्त्री०) १ पलाश नामकी लता । २ इन्द्र  
पादपी ।

विपानन (स० पु०) विपमानने पम्ब । मय, मांष ।  
( शब्दमाला )

विपानक (स० पु०) विपस्याक इव । १ गिप ।  
( हेम ) ( लि० ) २ विपनाशक, जिससे विपका नाश हो ।

विपान (स० स्त्री०) विपयुक्तमन्त्रम् । १ विपयुक्त  
बाध ग्रहरोमा भोग्न । २ सर्पादि ।

विपापवादिम् (स० लि०) विपत्युक् मिन्द्रावाक्य प्रयोग  
कारो लगती हुई बातोंका प्रयोग करनेवाला ।

विपापह (स० पु०) विपं सपहतीति अप हस ड । १ छाप  
मुक्क वृक्ष, काला मीमा नामक वृक्ष । ( लि० ) २ विप  
नाशक जिससे विपका नाश हो ।

विपापहरण (स० स्त्री०) १ विपनागम । २ विपाप  
मोचन, विप भूत करना ।

विपापहा (स० स्त्री०) १ इन्द्रवाटणी । २ विविंवा  
घास । ३ नागवृक्षी । ४ अर्कपत्रो इस्तीर ।  
पर्याय—अर्कपत्रा, सुनन्दा, अर्कमुला । ५ सर्पकृ  
शिका कता । ( रत्नमाला ) ६ लिपनी नामक महाकण्ड ।  
( रात्रि० )

विपापवा (स० स्त्री०) विपस्याभायो यपा । निर्विधा,  
निर्विधो घाम ।

विपापुन (स० स्त्री०) गरुड और अमृत ।

विपापुनमय (स० लि०) गरुड और अमृतयुक्त । कथा  
सरित्सागरमें विपापुनमयो कथ्याका उत्पद्य है ।  
( कथाकविता ) ३२१८० )

विपापका (स० स्त्री०) निर्विधो ।

विपापिन् (स० लि०) विन्ना पिन् ( पा ३।१।२१४ ) ।  
माह्व त्रिज ।

विपापुष (स० पु०) विपप्रवासुष यत्प । १ मय,  
मांष । २ विपयुक्त अय, यह दियवार जो ग्रहरम बुध्याया  
गया हो । ( लि० ) ३ गरुड विपदाता ।

विपापुषाय (स० लि०) १ सर्प-सम्बन्धाय । २  
विपहातय सम्बन्धाय । ३ विपदाता सम्बन्धाय ।  
( हरद्व १० ५१४० )

विपाप (स० पु०) विपं गच्छति विप-ञ्ज अण । सर्प  
मांष ।

विपापति (स० पु०) विपस्यापतिः नाशकः । १  
हृष्य पुम्बूर, काला घट्ट । २ विपनाशक ।

विपारि (स० पु०) विपस्याति । १ महाकण्डुनाश,  
बैल नामक साग । २ पुकरंज, चोकरंज । ( लि० )  
३ विपनाशक, जिससे विपका नाश होता हो ।

विपाका (स० स्त्री०) मरुत्यविरैय, एक प्रकारकी  
मछली जिसका मांस बायु और कफको बढ़ानेवाला  
माना जाता है ।

विपालु (स० लि०) विपयुक्त, विपैला ग्रहरीमा ।

विपासदि (स० लि०) विद्येरूपस अभिमवकारो ।

विपास्य (स० पु०) विपमास्ये यस्य । १ सर्प, मांष ।  
( लि० ) २ विपयुक्त मुल ।

विपास्या (स० स्त्री०) भन्नातक, मिमावा ।  
मन्नातक देखो ।

विपास्य (स० पु०) विपमेवास्यं यस्य । १ सर्प  
मांष । ( स्त्री० ) २ विपयुक्त अर्क, ग्रहरम बुध्याया  
हुवा इधिवार । ३ गरुड, विपदाता ।

विपित (स० पु०) १ महद, विगिह । २ विषय  
सम्बन्ध । ३ प्रक्षित विक्षित ।

विपितस्तुक (स० लि०) १ विगिह कजासमूह । २ प्रकीर्ण  
कजासमूह विक्षित कजाकसाय ।

विपितस्तुप (स० लि०) सम्बन्धमायमें उच्छ्राययुक्त ।

विपिद (स० लि०) विपमस्त्वन्धीति इति । विपविगिह,  
ग्रहरीमा ।

विपी (स० पु०) १ विपपूर्ण यन्तु ग्रहरीमा पीज ।  
१ विपयत सय, ग्रहरीमा मांष । ( लि० ) ३ विपिन बैला ।

विपीभूत (स० लि०) अविर्पं विपं भूतं । विपापुन  
ग्रहरोमा हुना ।

विपु (स० अर्थ०) १ साम्य । ( मत ) २ नामाक्य  
तद्व तद्वका । ( रामायण )

विपुल (स० पु०) विपु साम्यप्रतिपानन्नाति ( दोषा  
दोषि । पा १।१।२०० ) विपु म परबद्ध । १ विपुल ।  
२ नामाक्य । ( वृ ३ ५४८ ) ३ सर्वग्य सर्वज्ञात्मी ।  
४ विपनीर्ण सर्वज्ञात । ( वृ ५।१।२१५ ) ५ पराङ्मुक्त  
विमुक्त । ( वृ ५।१।४६ )

विपुलक (स० अर्थ०) १ विविध, नामा पवार ।



२ सकल, सभी । "घनोरधि विषुण-घने ग्यायन् ।"

( ऋक् १।३३।४ )

विषुव द्व ( स० त्रि० ) विषु विश्वान् सकलान् गतून्  
द्रुहति हिनस्ति इति विषु द्व द्व क । गर, चाण, तीर ।

"विषुव द्वेव यक्षसूहथुर्गिरा" ( ऋक् ८।२६।१५ )

विषुप ( स० क्ली० ) विषुच ।

विषुरूप ( स० त्रि० ) १ नाना रूप, अनेक प्रकारका ।

( ऋक् १।२२।७ ) २ विषमरूपका । ( ऋक् ६।५५।२ )

३ नानावर्ण, अनेक रंगका । ( ऋक् ६।७०।३ )

विषुव ( स० क्ली० ) १ समरात्रिन्ध्रिच फाल, वह समय  
जब कि सूर्य विषुवरेखा पर पहुँचता है और दिन तथा  
रात दोनों बराबर होते हैं । चैत्रमासके अन्तिम दिनमें  
जब सूर्य मीनराशिको पार कर मेषराशिमें तथा उमा  
प्रकार आश्विनमासके अन्तिम दिनमें जब ये कन्यराशि  
को अतिक्रम कर तुलाराशिमें जाते हैं, उसी समयका  
नाम 'विषुव' है; क्योंकि इस दिन दिन और रातका  
मान समान रहता है । इस उक्तिसे यह विश्वास हा  
सकता है, कि आजकल पञ्चकामे दिवारात्रिका समान  
मान ६वीं चैत्र और ६वीं आश्विनको लिखा रहता है,  
तब क्या उसी तारीखमें विषुवसंक्रान्ति होगी ? अर्थात्  
सूर्य उक्त मितिको ही मीनसे मेषमें तथा कन्यासे तुलामें  
जायगे । किन्तु यथार्थमें वह नहीं है । क्योंकि; मीन  
राशिमें संक्रमणसे सूर्यको राशिभोगकालके नियमा  
नुसार वहा ( उस मीनराशिमें ) एक मास तक  
रहना पड़ता है । अतएव सहजगतिमें ६ दिनके बाद  
उनका दूसरी राशिमें जाना असम्भव है । अतएव  
इसकी ठीक ठीक मीमांसा विस्तृतरूपसे नीचे की  
गई है ।

विषुवारम्भका नियम,—सूर्यको मेषराशि संक्रमणके  
पूर्व और पश्चात्, प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा  
२७ दिनके मध्य विषुव आरम्भ होता है । जिस जिस  
दिन विषुव आरम्भ होता है अर्थात् सूर्य विषुवरेखाके  
पूर्व पश्चिम स्पर्शबिन्दुके मध्यगत होने हैं, उसी उसी  
दिन पृथिव्याके जिन सब स्थानोंमें सूर्यका नित्य दर्शन  
होता है, वहाँ दिन और रात्रिका-परिमाण समान रहता  
है । विषुव दो है, अश्विनी नक्षत्रके प्रारम्भमें मेष-

राशिमें जो विषुव आरम्भ होता है, उसका नाम 'महा-  
विषुव' है और चित्रा नक्षत्रके शेषार्द्धमें तुलाराशिके  
प्रारम्भमें जो विषुवरेखा स्पर्श होती है उसे 'अल्पविषुव'  
कहते हैं ।

प्रतिलोम और अनुलोमका नियम—जिस शक्राक्षमें  
सूर्यको मेषराशि संक्रामके दिन जब विषुव आरम्भ होता  
है, तब उस शक्रका ३०वाँ चैत्र और ३०वाँ आश्विनको  
दिन और रात्रिका मान समान रहता है । ६६ वर्ष  
८ मास तक यही नियम चलता है । प्रतिलोम गतिको  
जगह सूर्यके मेष और तुला संक्रमणके एक एक दिन  
पहले विषुव आरम्भ होता है, अतएव इस ( प्रतिलोम )  
गतिमें प्रत्येक ६६ वर्ष ८ मासके बाद मेष और तुला  
संक्रमणके एक एक दिन पहले विषुव आरम्भ होनेके  
कारण उन दो मामोंके ( चैत्र और आश्विन ) एक एक  
दिन पहले अर्थात् १म ६६ वर्ष ८ मास तक ३०वीं की  
२य ६६ वर्ष ८ मास २६वींको ३य ६६ वर्ष ८ मास  
२८वींको ४थी ६६ वर्ष ८ मास २७ वींको इत्यादि  
प्रकारसे दिन और रात्रिका मान समान होता है, बीस  
६६ वर्ष ८ मासके बाद या इफ़ास ६६ वर्ष ८ मासके  
भीतर विषुव आरम्भ हो कर वर्त्तमान ( १८५१ शक्राब्द )  
८वीं चैत्र और ६वाँ आश्विनको दिन और रात्रिका  
मान समान भावमें चला आता है । फिर अनुलोम  
गतिस्थलमें भी मेष और तुला संक्रमणके दिन विषुव  
आरम्भके बाद ऊपर कहे गयेके अनुसार ६६ वर्ष ८ मास  
के अन्तर पर एक एक दिन पोछे विषुव आरम्भ होता  
है । अर्थात् १म ६६ वर्ष ८ मास ३०वीं चैत्र और ३०वीं  
आश्विनको २य ६६ वर्ष ८ मास, १ली वैशाख और १ली  
कार्तिकको, ३य ६६ वर्ष ८ मास २री वैशाख और २री  
कार्तिकको, इत्यादि नियमसे दिन और रात्रिका मान  
समान होता है ।

सूर्यको मेषराशि संक्रमणके पूर्व और पश्चात्,  
प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा २७ दिनके  
मध्य विषुव आरम्भण होता है । इसका स्फुटाद्ये यह  
है, कि सूर्यको मेषराशि संक्रमण ( ३० वीं चैत्र )  
दिनसे ले कर पूर्ववर्ती २७ दिन ( ४थी चैत्र )  
तक प्रतिलोम गतिसे तथा उस दिन ( ३० वीं चैत्र )-

ये परवर्षी (सम्भ्रमवर्षी) २७ दिन (१ जीसे २७वीं वैशाख) तक अनुक्रमेण गतिते बिपुब आरम्भ होता है। अर्थात् इन (२७-२७) ५४ दिनोंमेंसे जिस किन्मी दिन एकाधिकमसे ३६ वर्ष ८ मास तक सूर्य एक बार कर्क बिपुबरेखा पर पहुँचते हैं और इस दिन द्विबारात्मिका मान समान रहता है। इससे यह भी समझा जायेगा, कि ४थो आग्निघनसे २७वीं कार्तिक तक ५४ दिनोंमेंसे जिस किन्मी दिन सूर्य एकाधिकमसे ३६ वर्ष ८ मास तक एक बार कर्क बिपुबरेखा पर उपस्थित होते हैं तथा उम दिन द्विबारात्मिका मान समान रहेगा। इसीप्रिये वर्षमें दो दिन करके दिवा और रात्रिका मान समान देखा जाता है। फिर यह भी जानना होगा, कि ३०वीं वैशख पढ़के वा पीछे जिस तारीखको सूर्य बिपुबरेखा पर आने है ३०थो आग्निघनके पढ़के और पीछे भी उीक उमो तारीखको एक बार और बिपुबरेखा पर आयेगी।

उक्त प्रतिभोम और अनुभोम गतिको कारण यह है,—सूर्यके आरम्भकालमें जहाँ धर्मिनी नक्षत्रके प्रारम्भ से राशिचक्र सग्नितेगित हुआ था, वहाँसे यह राशिचक्र सम्भ्रम और परबाहुभागमें अर्थात् उत्तरमें एक एक २७ अयनांश (Degree) तथा दक्षिणमें भी वही प्रकार २७ अंश इत जाता है। यह अयनगति ७२०० वर्षमें सम्पूर्ण होती है; क्योंकि प्रथमतः ३०वीं वैशखसे ४थो वैशख तक प्रतिभोम गतिते २७ अंश जानेमें (३६।८ × २७) १८०० वर्ष लगता है; पीछे ३०वीं वैशख तक छौट जानेमें भी १८०० वर्ष। इस प्रकार अनुक्रमेण गतिते भी ११वीं वैशाख से २७ वैशाख तक २७ अंश जा कर छौट जानेमें बतना ही समय अर्थात् (१८०० × २) ३६०० वर्ष लगता है, अतएव प्रतिभोम और अनुभोम गतिते जानेमें (२७-२) ५४ अंश अथवा जाने और जानेमें अर्थात् (५४ × २) १०८ अंश तक जाने और जानेमें (३६ × १०८) ७२०० वर्ष लगता है।

राशिचक्रकी इस अयनगतिवशात् सूर्यकी गतिक अनुसार दिन रात्रिकी कमावैशो हुआ करतो है तथा ३६ वर्ष ८ मासके बाद अयनांश परिवर्तित होनेसे शेषादि बारह नक्षत्रके मानका भी इस प्रकार हो कर परिवर्तन होता है। एक वर्षका अयनांश मात्र ५४ बिजका है। एक मासमें ४।३० साठे बार बिजका तथा एक दिनमें

सिर्फ ६ अनुकमा होती है। नीचे अयनांश निकल्पका नियम लिखा जाता है।

४२२ शकाब्दसे से कर जिन किसी शकाब्दका अयनांश निकालना हो, उस अनुमें ४२२ विधाय करे। विधायकफळ जो होगा उसे दो बंधामेंसे एक एकको १० से भाग दे। भागफल जो होगा उसको दूसरेसे घटाये। इसके बाद अवशिष्ट अनुको ६०से भाग देने पर भागफल और भागशेष, अयनांश और कमा निकलादि रूपमें निकलित होगा। उस इस शकाब्दक आरम्भकालका अर्थात् ११वीं वैशाखके पूरुषणका अयनांश जानना होगा।

उदाहरण— १८२६ शकाब्दक आरम्भमें अयनांश जो था, वह इस प्रकार है— १८२६-४२२= १४०८। १४०८ + १०= १४०८८। १४०८-१४०८८= १२६। १२; (१२६।१२)+६०= २१।७।१२ अर्थात् १८२६ शकसे ४२२ निकाल देने पर १४०८ हुआ। १४०८ म १० भाग देनेसे भागफल १४०।४८ होता है। इस लघु फळसे फिर १४०८ निकाल देने पर अवशिष्ट १२६।७ कमा और १२ बिजका रहा। उसमें ६० भाग दे कर अंश जानेसे २१ अंश भागफल हुआ तथा ७ कला और १२ बिजका अवशिष्ट रहा। अतएव ज्ञाता गया, कि १८२६ शक (सन् १३१४ साल)क आरम्भमें अयनांश २१।७।१२ बिजका निकलित हुआ।

४२२ शकक आरम्भमें मेष संवत्तिक दिन ही विपुब आरम्भ हुआ था। उस शकमें अयनांश शून्य होता है। इसके बाद ४२२ तक पूर्ण हो कर ४२२ शकक आरम्भमें अर्थात् महाबिपुबसंवत्तिक दिन अयनांश ५४ बिजका हुआ था। उक्त ४२२ शकसे प्रति वर्ष अयनांश ५४ बिजका बढ़ा कर १८२६ शक (सन् १३१४ साल) क आरम्भमें २१।७।१२ (इससे अंश ७ कमा और १२ बिजका) अयनांशादि पूर्ण हुआ है, अर्थात् २१वां अयनांश वही पूर्ण हो कर २२थे अयनांशका ७ कमा और १२ बिजका हुआ है। आगामी १८८८ शक (सन् १९७६ साल) के अग्रहण मासमें ७ वाईसवां अयनांश

७ प्रति वर्ष ५४ बिजका बढ़नेसे ७।२२ बिजका जानेमें ८ वर्ष लगता है, अतएव (१८९६-८) १८९२ शकमें नक्षत्र

पूर्ण हो कर तेईसवा अयनांश आरम्भ होगा तथा उस शकके चैत्र मासको ८वीं तारीखको विपुव आरम्भ हो कर उम दिन दिवा और रात्रिका मान समान देखा जायेगा। अर्थात् उम समय वही काल 'विपुव' निर्दिष्ट होगा।

विपुवरेखा (सं० स्त्री०) विपुवं समरान्निन्दिव कालो यस्या रेखाया सा। ज्योतिषके कार्याके लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके ठीक मध्य भागमें बड़े बलमें या पूर्व-पश्चिम पृथ्वीके चारों ओर मानी जाती है। यह रेखा दोनों मेरुओंके ठीक मध्यमें और दोनोंसे समान अन्तर पर है। इस रेखाके उत्तर मेघ, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह और कन्या ये छ राशि तथा दक्षिण ओर तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये छ राशि तिर्यक्भावसे वृत्ताकारमें राशिचक्रके ऊपर अवस्थित हैं। राशिचक्र देखो।

“प्राक् पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्।

उन्मण्डलञ्च विपुवन्मण्डलं परिकीर्त्तितम् ॥”

(सिद्धांतशिरो०)

पाश्चात्यमतसे पृथ्वीके मध्यस्थलमें पूर्व-पश्चिमकी ओर विस्तृत जो कल्पित रेखा है, वही विपुव रेखा है। इसका दूसरा नाम निरक्षवृत्त है अर्थात् इसकी डिग्रीका चिह्न है :। नमोदेशमें इस प्रकार कल्पित वृत्तके ऊपरसे तिर्यक्भावमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर सूर्यकी प्रत्यक्षगतिपथ वा रविमार्ग (line of the alyptic) अवधारित है। सूर्य देखो।

१३०६ सालके आरम्भमें अर्थात् १३०५ सालकी ३० वीं चैत्र महाविपुवसंक्रातिके दिन वार्षिक अयनांश आरम्भ हुआ है। इसीलिये अभी देखा जाता है, कि उक्त १८२१ शककी १७वीं वैशालमें जब तक ६६ वर्ष ८ मास पूरा न होगा, तब तक वार्षिक अयनांश रहेगा। इस कारण (१८२१ + ६६।८मास) १८८७ शक उत्तीर्य हो कर १८८८ शकके ८ मास अर्थात् अग्रहायण पर्यन्त वार्षिक अयनकी अवस्थिति होगी। (यह ३६० दिनका वर्ष मान कर यह गणना की गई, ३६५ दिनका वर्ष माननेसे और भी २।१ मास तक वह अयनांश ठहर सकता है।)

इस ज्योतिषकपथमें पृथ्वीके एक घूमनेमें ३६५ दिन लगना है। वही वार्षिक गति है, इस कारण इसको एक वर्ष कहते हैं। वर्षके भीतर उत्तरायण और दक्षिणायण समयक्रमसे इस विपुवरेखाके उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तरकी ओर पृथ्वीकी गति बदलती रहती है, जिससे ससारमें छः ऋतुओंका आविर्भाव होता है। इसी कारण इस कल्पित रेखाके २३° ४६' डिग्री उत्तर तथा २३° ४६' डिग्री दक्षिण और भा दो छोटे वृत्त कल्पित हुए हैं। उनमेंसे उत्तरी वृत्तका नाम कर्कटकान्ति (Tropic of cancer) है। सूर्यदेव कभी भी उत्तरमें कर्कटकान्ति और दक्षिणमें मकरकान्तिका सीमा पार नहीं करते। जब सूर्य विपुवरेखाके उत्तर कर्कटकान्तिकी ओर रहते हैं, तब विपुवरेखाके उत्तर दिन बड़ा और रात छोटी होती है। फिर जब सूर्य विपुवरेखाके दक्षिण जाने हैं, तब उत्तरी देशोंमें दिन छोटा और रात बड़ी होता है। इस दक्षिण भागमें उसका ठीक विपरीत भाव ही दिखाई देता है। जब सूर्यकिरण विपुवरेखाके उत्तर लम्ब भावमें पड़ना है तब दिन और रात्रिका मान समान होता है तथा सूर्यकिरण बहुत प्रखर रहती हैं। इसी कारण उस समय उत्तर और दक्षिणक्रान्तिके मध्यवर्ती देशवर्मा शीत और ग्रीष्मकी समता अनुभव करने हैं। सूर्यदेव विपुवरेखाको अतिक्रम कर कर्कटकान्तिकी ओर ज्यों ही जाते हैं, त्यों ही उत्तरी दिशामें ग्रीष्मका प्रादुर्भाव होता है तथा उसके विपरीत विपुवके दक्षिणस्थ मकरकान्ति सन्निहित देशोंमें शीतका प्रकोप बढ़ता है।

सूर्यदेव जब विपुवरेखासे उत्तर या दक्षिण ६०° में आते हैं, तब यथाक्रम हम लोगोंके देशमें ग्रीष्म और शीत की तथा दिवा और रात्रिकी वृद्धि वा ह्रास होती है। उन दोनों स्थानोंको Summer Solstice और Winter Solstice कहते हैं। जब सूर्य उत्तर ६०° से धीरे धीरे १८०° में फिरसे विपुवरेखाके समसूत्रपातमें अर्थात् विपुवरेखाके ऊपर रहते हैं, तब शारदाय समदिवाराति (autumnal equinox) तथा वहांसे दक्षिण २७°

† ३६५ दिन ६ घंटा।

अतिशय कर जब फिरसे विद्युत्-रेखा पर पडते हैं, तब वास्तविक समतलराशि (Vernal equinox) होती है।

सूर्य प्रायः २२वीं दिसम्बरके दक्षिणमें मकरक्रान्तिसे २३ ४५ अयनांश घड़ी घड़ी उत्तरकी ओर बढ़ते जाते हैं तथा प्रायः २१वीं मार्चका विद्युत्-रेखा पर पडते हैं। इस दिन पृथिवीके अक्षमण्डलमें तमाम दिनरातका मान बराबर रहता है। इस दिनका वास्तविक वा महा विद्युत्-संक्रान्ति कहते हैं। इसके दून्धरे दिनस सूर्य क्रमशः विद्युत्-रेखासे उत्तरकी ओर जाने लगन है तथा २२वीं जूनको २३ ४५ अंश तक वास्तविक कर्कटक्रान्तिमें आ कर फिरसे दक्षिण विद्युत्-रेखाकी ओर अग्रसर होते हैं। इसके बाद वे २२वीं सितम्बरको विद्युत्-रेखा पर पडते हैं। इस दिनको शरद वा अलविद्युत्-संक्रान्ति कहते हैं। अनन्तर सूर्य दक्षिणकी ओर २२वीं दिसम्बरको मकर क्रान्ति सीमा पर आते हैं। इस प्रकार सूर्य विद्युत्-रेखा के ऊपर उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तर अयनमें परिघ्रमण करते हैं। ब्रह्मालमें साधारणतः २३वीं शैत २३वीं भाद्रपद, आश्विन और २३वीं पौषके देसा हुआ करता है। पृथिवीके कक्षित मेरुपट्ट (Axis)का अक्षविन्दु और विद्युत्-रेखाका अक्षविन्दु यदि एक सरल रेखासे मिला दिया जाये, तो वे दोनों रेखाएँ एक दूसरे पर लम्बकृपमें पडेंगी।

विद्युत्-रेखा और मेरुपट्ट रेखाके संयोजक विन्दुसे उत्तर और दक्षिणमें कर्कटक्रान्ति तथा मकरक्रान्ति तक जो बड़ा निष्कर्ष-बृत्त कक्षित होता है, उसका टिजमार्ग कहते हैं। इस रेखाके किसी न किसी स्थान पर सूर्य ग्रहण वा आग्नेयग्रहणक समय सूर्य आग्नेय और पृथिवी के समो समसूत्रमात्रमें रहन है। पृथिवीके अयन मेरुपट्ट (Axis)के धारों और परिघ्रमण पूर्वकी ओर घूमतो है। इससे तमोमण्डलका पूर्वसे पश्चिमकी ओर धारचर्चित होना दिखाई देता है।

सूर्य जब विद्युत्-रेखाके ऊपर आते हैं, तब पूर्वकी ओरसे दिन राशिका परिमाण समान (Equal) रहता है। इस कारण इस रेखाको विद्युत्-रेखा वा निरक्षरेखा (Equator) कहते हैं। भौगोलिक दिशाबन्धे स्थानको दूरी निर्णय करनेमें विद्युत्-रेखाके बाद उत्तर और दक्षिण समान

राजभाषमें मसूरैना और द्राघिमाकी माप प्रथमना होती है। प्रत्येक द्राघिमा रेखा उत्तर दक्षिण अक्षमात्रमें विद्युत् रेखाके ऊपर गिरी है। इसको माध्यमिण रेखा भी कहते हैं। प्रत्येक मसूरैना भी माध्यमिण रेखास जहाँ अक्ष भाषमें एक दूसरेमें मिलती है, वहाँ ३६० डिग्री अथवा चार समकोनोंकी उत्पत्ति हुए है।

विद्युत् विरल्य विद्युत् और पृथिवी शब्दमें रेखा।

विद्युत् (स० ह्री०) १ विद्युत् । विद्यावत् ।  
(शुक्र १८८१२०)

विद्युत् (स० लि०) विद्युत्-विद्युत्, जो दो केंद्रोंमें विद्युत्-रोग । (भाष० भी० १११२२)

विद्युत् (स० पु०) विद्युत्-रोग, विद्युत्-रोग नामक रोग । विद्युत्-रोग ।

विद्युत् (स० ह्री०) विद्युत्-रोग ।  
(भाष० ४१२१२६)

विद्युत् (स० स्त्री०) विद्युत्-रोग ।  
विद्युत्-रोग ।

विद्युत् (स० स्त्री०) १ इत्यर्थमें सर्वत्र गमनशील, इस संसारमें तमाम जानेवाला । (शुक्र ११२६११८)  
२ अद्यतप्रसूत तमाम पैला हुआ ।

विद्युत् (स० लि०) अक्षमण्डलमें परिघ्रमण, सभी अक्ष भीद्युत् ।

विद्युत् (स० लि०) वि-मद्युत् । अक्षमण्डल, अक्षमण्डल कारी ।

विद्युत् (स० स्त्री०) विद्युत्-रोग । भाष० ।  
(अ-मण्डल)

विद्युत् (स० पु०) विद्युत्-रोग । विद्युत्-रोग ।  
(भाष० ११२६११८)

विद्युत् (स० ह्री०) गतिविद्युत्-रोग । विद्युत्-रोग ।  
(भाष० ११२६११८)

विद्युत् (स० स्त्री०) विद्युत्-रोग, विद्युत्-रोग ।  
(भाष० ११२६११८)

विद्युत् (स० पु०) १ कक्षित-स्थितिक अक्षुत्सार सत्ता ।  
इस धारोंमेंस पहला योग । यह आरम्भक पाँच गृहों को छोड़ कर शुभकार्यक विद्युत् बहुत अक्षमण्डल समान आता है। इस धारमें अक्षमण्डलके मनुष्य सब

घातोंमें स्वर्धोन, घर आवि बनानेमें पट्ट और माई-पशु, स्त्री पुत्र आदिसे सदा सुखी रहता है।

२ विस्तार । ३ प्रतिबन्ध, बाधा । ४ रूपकाङ्ग भेद, नाटकका अङ्कविशेष ।

नाटककाङ्कके प्रथम अर्थात् प्रस्तावना कालमें जो जो विषय कहा जाता है, उसे मंक्षिमभावमें पृथक् रूपमें दिखलानेका नाम विष्कम्म है । यह शुक और मङ्गीर्ण-के भेदमें दो प्रकार है । जहां एक या दो मध्यम पात्र द्वारा कार्य सम्पन्न होता है वहां शुद्ध ; जैसे मालतो माधवमें—श्मशानमें कपालकुण्डला । फिर जहां नीच और मध्यम पात्र द्वारा क्रिया कल्पित होती है, वहां सङ्कीर्ण अर्थात् विमिश्र होता है, जैसे रामाभिनन्दनमें—श्रपणक और कापालिक । कहनेका तात्पर्य यह कि प्रस्तावित बाहुल्य विषयके मध्यसे बसावर्ग गर्भ और नीरस अर्थात् रसात्मक नहीं रहें, ऐसी अतिविक्रम घन्तुका परित्याग कर सिर्फ मूल प्रस्तावके अपेक्षित पदार्थ दिखाना ही नाटकमें विष्कम्मका कार्य है ।

( साहित्यद० ६ अ० )

५ योगियोंका एक प्रकारका बन्ध । ६ वृक्ष पेड़ । ७ अर्गला, ध्योडा । ( भरत ) ८ पर्वतभेद । वराह-पुराण ८० अध्याय तथा लिङ्गपुराण ६१।२८ श्लोकमें इसके परिभाषादिका विवरण है ।

विष्कम्मक ( सं० पु० ) विष्कम्म-स्वार्थे कन् ।

विष्कम्म देखो ।

विष्कम्मिन ( सं० पु० ) विष्कम्नाति रुणद्धीति वि ष्कम्म-णिनि । १ अर्गल, ध्योडा । २ शिव, महादेव ।

( भारत )

विष्कर ( सं० पु० ) वि-कृ अप् ल्युट् च । १ अर्गल, ध्योडा । २ पक्षी, चिडिया । ३ दानवभेद ।

( भारत भीष्म )

विष्कल ( सं० पु० ) विष्णं विष्टां कलयति मध्यतीति कल अच् । प्राप्यशूकर, पालतू सूअर ।

विष्किर ( सं० पु० ) विकिरन्तीति वि-कृ-विक्षेपे इगुप धेति-क, ( विष्किरः शकुनिर्विक्रिगे वा । पा ६।१।१५० ) इति सुट्, परिनिविभ्यइति पठत्वं । १ पक्षिभेद, वे पक्षी जो अन्नको इधर उधर छितरा कर नखोंसे कुरेद कर खाते

है । जैसे, बवृत्तर, मुरगा, तीतर, बटेर, लाधा आदि । इनका मांस मधुरः कषाय रसात्मक, बलकारक, शुक-वर्द्धक, त्रिदोषनाशक, सुपथ्य और लघु होता है ।

( भावम० पूर्वख० )

सुश्रुतमें विष्किर पक्षाका विषय १२ प्रकार लिखा है—लाव, तीतर, कपिज्वर, चर्त्तर, घसिका, धर्त्तक, तमृका, यानीक, चर्त्तर, बलघिद्ध, मयूर, कृकर, उपचक्र, कुक्कुट, मारङ्ग, शतपत्रक, कुनित्तिरि, कुटवाहुक और यवलक आदि पक्षी विष्किर जानिके हैं । इनके मांसका गुण—लघु, शीतल, मधुर, कषाय और दोषनाशक है । ( सुश्रुत यन्त्रा० )

२ दर्वीकर नामक जानिके अन्नगंत एक प्रकारका साँप । ( सुश्रुत सप्तस्था० ४ अ० )

विष्कुम्भ ( सं० पु० ) विष्कम्म देखो ।

विष्ट ( सं० त्रि० ) विष्ट क्त । १ प्रविष्ट । २ आविष्ट । ३ आविष्टित ।

विष्टकण ( सं० त्रि० ) विष्टः कर्णं यन्म्य । प्रविष्टकणं, जिसके कानोंमें घुस गया हो ।

विष्टप् ( सं० स्त्री० ) स्वर्गलोक । ( शृक् १।५६।३ )

विष्टप ( सं० स्त्री० ) जगत्, भुवन ।

विष्टपुर ( सं० पु० ) सृष्टिभेद । ( पा ४।१।२३ )

विष्टघ्न ( सं० त्रि० ) वि-स्तम्भ-क्त । १ प्रतिबन्ध, बाधा युक्त । २ रुद्ध, रुका हुआ ।

विष्टघि ( सं० स्त्री० ) वि-स्तम्भ-किन् । विष्टम्भ ।

विष्टम्भ ( सं० पु० ) वि-स्तम्भ-घञ । १ प्रतिबन्ध, रुकावट । २ आक्रमण, चढ़ाई । ३ एक प्रकारका रोग ।

इसमें मल रुकनेके कारण रोगीका पेट फूल जाता है । विशेष विवरण अनाह और विषन्ध शब्दमें देखो ।

( त्रि० ) ४ विशेषरूपसे स्तम्भयिता, विशेषरूपमें स्तम्भकारक ।

( शृक् ६।१६।३५ )

विष्टम्भकर ( सं० त्रि० ) विष्टम्भं करोति कृ अप्, यद्वा-करोतीति कर, विष्टम्भस्य करः । विष्टम्भजनक, आध्यात्म कारक ।

विष्टम्भन ( सं० पु० ) १ रोकने या संकुचित करनेकी क्रिया । २ वही जो रोकता वा संकुचित करता हो ।

( शुक्लयजुः ६।४।५ )

विष्यम्भविपु (स० लि०) स स्तम्भविपु स्तम्भन करणमें  
व्यस्तुक ।

विष्टम्भी (स० लि०) विष्टम्भातोति वि-स्तम्भ-विनि ।  
१ विष्टम्भरोगजनक, जिसस पेटका मूक ठक । विष्टम्भो  
ऽप्यास्तीति विष्टम्भ-विनि । २ विष्टम्भरोगविशिष्ट, जिस  
विष्टम्भरोग हुआ हो ।

विष्टर (स० पु०) विस्तीर्यति इति वि-न्नु भप् । (इषात्  
भ्येतिभ्यत् । पा ८।१।६१) इति निपातनात् पत्व ।  
१ विष्टर, पृष्ट । २ पीडावि स्थान । (भक्) ३ कुजा  
सन कुजाका बना हुआ भासन ।

विष्टाहकालमें मग्नहाता जामाताको विष्टरासन  
हैते हैं । इसका अक्षय—साष्टद्विषय वामावर्त्तावस्थित  
भधोमुख असंप्रयात दर्भोमुष्टि सर्पोत् एक मुष्ठा मासकुशा  
को उमक अग्रभागमें वामावर्त्तसे ढाई पै च ढे कर उसक  
अगले मागको मोथेको ओर रक हेनेसे विष्टर बनता है ।  
हामकाममें कुजा द्वारा औ श्रद्धाका प्रस्तुत कर पहिल्या  
पल करना होता है वह श्रद्धा भी इसी प्रकार बनाया  
जाता है । किन्तु उमका अग्रभाग ऊपरकी ओर रहता  
और उसमें दक्षिणावर्त्तसे ढाई पै च बैला होता है । विष्टर  
और श्रद्धामें सिकर्ण इतना ही प्रमेई है । मग्नरूपमेंही  
बढ़ा है, कि पचास अग्रकुशसे श्रद्धा और पचोस सास  
कुजासे विष्टर बनाया चाहिये । किन्तु रघुनन्दन संस्कार  
तत्त्वमें इस संस्थाका विषय तथा विष्टरदान-कालमें वा  
हाथसे पकड़वा हेनेका विषय लोकार नहीं करते ।

भरी ५ वा ७ मासकुजासे विष्टर बनाते हुए देखा  
जाता है । अब इसकी काह निर्दिष्ट संस्थाका विषय  
नहीं है तब इसीका आश्रयसङ्गत समझना होगा ।

विष्टरास (स० लि०) प्रासासन, जिससे आसन मिना  
है ।

विष्टरास (स० पु०) विष्टरासिब अरुसी पत्थ वा विष्टरे  
अम्भ्यपृष्टसे भूयत निर्दमं तन्न वसतीति । (उप्यु ५।२।२१)  
मग्नान् विष्णु, कृष्ण ।

विष्टरप (स० लि०) आसन पर बैठा या सोया हुआ ।

विष्टर (स० द्या०) शुद्धासिनो नामकी पास ।

विष्टरास (स० पु०) रोप, चांदी ।

विष्टरास (स० पु०) पुबुक वर पुत्रका नाम । (हरिवंश)

विष्टर (स० द्या०) अर्ण्यतकी, पोछो केतको । कर्षी  
कहीं विष्टरवद, ऐसा भी पाठ देवममें जाता है ।

विष्टरोत्तर (स० लि०) कुजाच्छादित, कुजासे मढ़ा हुआ ।  
विष्टरास (स० लि०) व्यासायसान, जिसका मग्नसासन हुआ  
हो । (अष्ट १०।६।१२१)

विष्टार (स० पु०) १ कर्मविक्षेप, पक्षि छन्द । (उप्यो  
नामि च पा ३।१।१५) 'विस्तीर्यगौऽस्मिन्नसराणोति  
विष्टारं पक्षिछन्दः' कर्मका बोध होमसे विस्तु  
आतुका पम्ब हो र विष्टार पत्र बनता है । २ विस्तृत ।  
विष्टार शब्दका विस्तृत अर्थ बेईमें प्रयुक्त हुआ है ।  
कौटिलिक प्रयोगमें छत्रा यही अर्थ होगा ।

विष्टारपक्षि (स० द्या०) पक्षिछन्दोमेद् । इसक प्रथम  
बीर शेष अरुणमें ८ तथा द्वितीय बीर तृतीय अरुणमें  
१२ पत्र रहते हैं । (शुक्रवस्तु १५।५)

विष्टारवृहता (स० द्या०) वैदिक छन्द । इसक प्रथम बीर  
शेष अरुणमें ८ तथा द्वितीय अरु तृतीय अरुणमें १० पत्र  
रहते हैं । (शुक्रवस्तु १६।१)

विष्टारिन् (स० लि०) वि-न्नु विनि । विस्तीर्यमाण  
अवयव जिसका आकार बढ़ा हो । (अथर्व ५।२।५१)

विष्टारका (स० द्या०) विष्टरवद, अर्ण्यकैतकी, पोछो  
कलकी । (राजनि०)

विष्टार (स० पु०) १ स्तामपाठके समपका विभागमेद् ।  
२ विद्युत्तिका प्रकार । (अथर्व २।१।६)

विष्टि (स० द्या०) विप-क्तिन् १ वह काम जो दिना  
कुछ पुरस्कार दिये कराया जाय, बेगार । २ बेतन, तन  
स्वाद । ३ काम । ४ वर्ण्य, वषा । ५ प्रेषण,  
मेघना । ६ विष्टिमद्रा । ७ फलितज्योतिषक ग्यारह  
करवोंमेंसे मातर्वा करण । पञ्चिधामें यह करण शूण्यार्क  
द्वारा अनिहित होता है ।

विष्टिमद्राका निरूपण—विष्टिकरणको ही विष्टिमद्रा  
कहन है । इसके अन्तर्वा तिपविशेषमें विष्टिमद्रा  
होतो है । किस किस तिपविक किस किस आशने विष्टि  
मद्रा होती है उमका विषय मोथे सिखा जाता है ।  
शुक्रवस्तुकी पकावशा और अनुधीके शैवाद्यमें, अष्टमी और  
पूर्णिमाके पूर्वाह्नमें अम्भ्यपृष्टकी तृतीया और वृश्चि  
क श्याद्यमें तथा मत्तमी और अनुषंगाके पूर्वाह्नमें विष्टि

मद्रा हाता है। यह विष्टिभद्रा सभी प्रकारके शुभ कार्यामें वर्जनीय है अर्थात् इसमें यात्रा, संस्कारादि कार्यां या देवकर्म नहीं करना चाहिये, किन्तु इसके पुच्छमें सभी कार्योंका मङ्गल होता है। (विष्टिभद्राके जेय तीन दण्डका नाम 'पुच्छ' है।)

विष्टिभद्रास्थिति—मेघ, गृध्र, मिथुन और वृश्चिक लग्नमें यदि विष्टिभद्रा हो, तो वह विष्टिभद्रा स्वर्गलोकमें वास करती है। कुम्भ, सिंह, मीन और कर्कटराजिमें पृथिवी पर तथा धनुः, मकर, तुला और कन्याराजिमें पातालमें वास करती है। विष्टिभद्रा जब जहा रहती है, तब वही पर स्वभावसिद्ध अशुभ फल देती है। जाम्बमे यह भी लिखा है, कि जिन राशियोंमें विष्टिभद्रा पृथिवी पर वास करती है, उस विष्टिभद्रामें शुभकार्यादि करना मना है। इसके सिवा जिन सब राशियोंमें स्वर्ग और पातालमें वास करती है, उस विष्टिभद्रामें सभी कार्यां किये जा सकते हैं।

विष्टिकर ( म० पु० ) १ पीडनकारी, अत्याचारी।  
२ प्राचीन कालके राज्यका वह बडा सैनिक कर्मचारी जिसे अपनी सेना रखनेके लिये राज्यकी ओरसे जागार मिला करनी थी।

विष्टिकृत् ( स० पु० ) अनिष्टकारक, विष्टिकर।  
विष्टिरू ( स० स्त्री० ) विस्तारण। ( ऋक् २।३।१० )  
विष्टिव्रत ( स० स्त्री० ) व्रतविशेष। ( भविष्यपु० )  
विष्टीमिन् ( स० स्त्री० ) क्लेशशुक्ल, क्लेशविशिष्ट।

(शुक्लयजु० २।३।२६)

विष्टुति ( म० स्त्री० ) विविध प्रकारसे स्तुति, नाना प्रकारका स्तव। ( शुक्लयजु० १।६।२८ )

विष्टल ( स० स्त्री० ) विदूर स्थल ( विक्रमिपरिभ्याः स्थालस्य।  
पा ८।३।६६ ) इति पत्वं। विदूरस्थल, दूरवर्ती स्थान।

विष्टा ( स० स्त्री० ) विविधप्रकारेण विष्टिति उदरे इति वि-  
स्था क, उगसर्गादिति पत्वं। पुरीय, मैला, गुह, पाखाना  
विविध प्रकारसे यह उदरमें रहती है, इसीसे इसका नाम  
विष्टा हुआ है। पर्याय—उच्चार, अवस्कर, शमल, शकृत्,  
गृध्र, पुरीय, वर्च्छास्क, विट्, वर्च्छाः, अमेध्य, दूर्या, कल,  
मल, किट्ट, पूतिक। ( राजनि० )

"ब्राह्मे मुहूर्त्त उद्याय मृतपुरीपात्मर्गं कुर्यान्,  
दक्षिणा मुखो रात्रौ दिवा चादृष्टमुपः मन्धयाश्च।"

( विष्णुसंहिता ६० )

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि ब्राह्ममुहूर्त्त ( रात्रिके  
पिछले पहरके अन्तिम दो दण्ड ) में उठ कर रातका  
दक्षिणमुख, दिन तथा प्रातः और साय दिनरात्रिके  
दोनों मन्त्रिफालमें उत्तरमुख हो कर विष्टाका त्याग  
करना होता है। ब्राह्मसे ढको जमीनमें, जोंतें हुए खेत-  
में, यज्ञीय वृक्षछावामें, पारो जमीनमें, ग्राहलस्थानमें,  
प्राणियुक्त स्थानमें, गर्त्तमें, वृत्तकर्म, पथमें, रथ पर,  
दूररेकी विष्टाके ऊपर, उद्यानमें, उद्यान वा जलाशयके  
किनारे विष्टात्याग निषिद्ध है।

बद्गार, मस्म, गोमय, गोष्ट, ( गाय चरनेका स्थान )  
आकाश और जल आदि स्थानोंमें तथा वायु, अग्नि,  
चन्द्र, सूर्य, स्त्री, गुरु तथा ब्राह्मणके सामने अन्वगुण्डित  
मस्तकसे विष्टात्याग न करे। विष्टात्यागके बाद देखे  
वा इंटसे मलको मार्जन कर लिङ्ग पकटने हुए उठे।  
पीछे उद्भूत जल और मिट्टीसे गन्धलेपक्षयकर जाँच  
करे। इसक बाद मिट्टीको पेजावके द्वारमें एक बार, मल  
द्वारमें तीन बार तथा बाप हाथमें दण्ड बार, दोनों हाथमें  
सात बार और दोनों तलवेमें तीन तान बार लगावे।  
यह नियम गृहस्थके लिये है। यति वा ब्रह्मचारीके  
लिये इसका दूना धतःया गया है। गन्ध नहीं रहे, यही  
जाँचका उद्देश्य है, किन्तु जलादि द्वारा गन्ध जाने पर  
भा उक्त प्रकारसे सृत्तिकाजाँच अवश्य करना होगा।

( विष्णुसंहिता ६० अ० )

आह्निकनस्वमें लिखा है, कि उद्यान स्थानसे नीर  
के कने पर वह तीर जहा जा कर गिरे, उनना स्थान बाद  
दे कर विष्टात्याग करना चाहिये। आवादी जगहके  
समीप विष्टामृत्याग करना उचित नहीं। विष्टा और  
मृतका वेग रोकना न चाहिये। रोकनेसे नाना प्रकारके  
रोग उत्पन्न होते हैं। विष्टा और मृत्यागके समय  
यक्षोपचोतको दाहिने कान पर रखना चाहिये। मालाकी  
तरह गलेमें लटकानेका भी विधान है। जूता और  
बड़ाऊँ पहन कर विष्टा और मृत्याग करना मना है।

विष्टा और मृत्यागके समय जिस जलसे जाँच

किया जाता है, उस जलको छूना नही चाहिये। मूत्रम बह जल मुक्तके समान ही जाता है। वह जल पीनेस साम्राज्य करनेकी व्यवस्था है। ( भाष्यकठक )

मलमूत्रत्यागके बाद जल और मिट्टास शीघ्र कर पोछे जलपात्रको गोमय वा मृत्तिका द्वारा मार्जन और प्रक्षालन करे। इसक बाद तक स्वयं कर अथवा स्वयं वा अग्निदहन करना होता है। अहां असावि शोध होता है, वहां पबित असादि द्वारा पराष्कार कर देना होता है। नही तो उसका शोध मित्र नही होता।

भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि मानवगण व्याख्यारक्षाके क्रिये प्राज्ञ मुहुर्त्तमे उठे और मगधमाम स्मरण कर ऊपा कासमें ही विद्या और मूत्रत्याग करें। इस नियमका प्रतिपादन करनेस भस्मकृषन अर्थात् पेटका बोलना, भाष्यमान और उदरका गुदका उपस्थित नही हो सकती। मलमूत्रका योग होनेसे कमी भी इसको रोकना नही चाहिये रोकनेसे पेट गुड गुड करता तरह तरह की धरना होना, गुहारेनामें असल हैता मल एक जाता, ऊर्ध्ववात दाता तथा मुक्क द्वारा मल निकलता है। मनाइका योग म्रिम प्रकार रोकना उचित नही उसी प्रकार योग नही माने पर हमपूर्वक अनालकुम्भम द्वारा निम्तारण करनेका चेष्टा करना मा अनुचित है।

मलमूत्रादि विमल तक बाद गुह्य भादि मलपचीका असल वा डालना चाहिये। इससे शरीरकी काशित बढ़ना, भ्रमनाजा होना, गठोरकी पुष्टि होता और अक्षु की स्वाति बढ़ती है। ( भाष्य ० पूर ५० )

भूमिकी उबरता बढ़ता है, इस कारण बहुतेरे लोग खेत वा उद्यानमें विद्या और गोबरका सड़ा कर पाइक रूपमें देते हैं। इत्येविधा हेतो।

विद्यामुक्त ( सं० पु० ) शुद्ध, सुभर ।

विद्यामुता ( सं० पु० ) शुद्ध, सुभर ।

विद्याम् ( सं० पु० ) विद्यायां मबनीति भू-पिवत् । विद्या ज्ञान इति बह कोका जा पैकातेन पैरा होता है।

विद्यामासिन् ( सं० लि० ) विद्यायां प्रप्रति विद्या मत्र (वनि । विद्यामें प्रमयफारी, मलमें रहनेवाका ।

( कठपत्रा० १५/११२२ )

विष्णापु ( सं० पु० ) विष्णुक अर्थिक पुत्र ।

( एक ११२१/१२१ )

विष्णु ( सं० पु० ) १ मनि । २ गुड । ३ अथुदेवता । ४ बारह भादित्योमेंस एक । ( महाभारत १/५/१६ ) ५ धर्म शास्त्रक प्रणेता मुनिविशेष ।

१ द्विमुक्तो एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो मृत्तिका भरव-पोषण और पालन करनेवाके तथा प्रज्ञा का एक विशेषरूप मान जाते हैं। "पृथ्व्याद्विष्णु" ( महाभारत ५/०/११ )

विष्णुपुराणमें विष्णु शब्दका व्युत्पत्ति और भी विस्तृत देखी जाती है।

"वस्वाहितमि उर्ध्वं तस्य वसत्वा वरात्मनः ।

तस्या देवोव्यदे विष्णुर्मिषाणतोऽमेठवत् ॥"

( विष्णुपु० )

संस्कृत साहित्यमें "विष्णु" शब्दका बहुत प्रचार देखा जाता है। वेद और उपनिषदमें इतिहास और पुराणमें साहित्य और काव्यमें समी अगह विष्णु शब्द का विपुल व्यवहार देखनेमें आता है। परन्तु हम यहा सिर्फ वेदमें व्यवहृत "विष्णु" शब्दको धारोचना करन है—

१। यतो देय मवन्तु ना यतो विष्णुर्विचक्रम पृथिव्याः सप्तधामिभिः । १म २० सू १६ श्रुक् ।

सामधैरुर्महितामे २/१०/२४ मन्त्रमें यह श्रुक् देखा जाती है। विष्णु सामधैरुमें जो पाठ है, उसमें कुछ पृथक्ता है। वहां "पृथिव्याः सप्तधामिभिः" की अगह "पृथिव्या अधिमानिभिः" पाठ देखा जाता है।

२। इत् विष्णुर्विचक्रमे ज्ञेया नि इधे पश्म् ।

समूहमस्य पार्शुरै । ( रामचर १८ म० )

अधधैरुर्मि ३/२६/५ मन्त्रमें भा यह साम धर्ममें आता है।

३। सावित्रा विचक्रमे विष्णुर्गोपा महाम्यः ।

वर । धर्मानि धारयन् । ( वाकतम १/५/११ )

अधधैरुर्मि ३/२६/५ मन्त्रमें भी यह सामधैरुःक मन्त्र उद्धृत हुआ है।

४। विष्णोः कर्मानि पश्यन् यतो मतानि पश्यो । इत्यस्य युज्याः सत्वा । ( अथर्ववेद ३/२६/१६ )

५। ननु विष्णोः परमं वदं महा वश्रपतिं सूर्या ।

द्विधाव अक्षुःराततम् ।



यह मन्त्र सामवेदकी २।१०२३ सख्यागं, वाजसनेय संहिताकी ६।५ संख्यामें तथा अथर्ववेदसंहिताकी ७।२६७ सख्यामें देखा जाता है।

६। तद्द्विप्रासो विपण्यवो जागृवा ँसः समिन्धते ।

विष्णोऽर्थन् परमं पदम् ।

यह मन्त्र सामवेदकी २।१०२३ तथा वाजसनेय-संहिताकी ३।४।४४ संख्यामें लिखा है।

नीचे उक्त ऋकोका अनुवाद किया गया है।

१। जिस स्थानमें भगवान्ने पृथ्वीके सप्तधाममें विचरण किया था, उस स्थानमें देवगण हमारी रक्षा करे ।\*

किन्तु सामवेदका "पृथिव्या अभिसानभिः" पाठ ले कर अर्था करनेसे "पृथिवीके सप्तदेशमें" इस प्रकार अनुवादके पहले "पृथिवीके ऊपर" ऐसा अनुवाद होगा।

२। भगवान्ने इस विश्वका विचक्रमण किया था, उन्होंने तीन जगह पैर रखा था। विश्व उनके परिभ्रमणसे उठा हुई धूलरागिसे समाच्छन्न हुआ था।

३। अजेय भगवान्ने त्रिपाद गमन किया था तथा उससे सभी धर्मों को धारण किया था।

४। इन्द्रके उपयुक्त सखा भगवान्के कार्यकलापको देखो। इन सब कार्यों में उन्होंने ब्रतोंको थावद्ध किया है।

५। आकाशस्थित सूर्यको तरह सुरगण उस भगवान्के परमपदका सर्वदा दर्शन करे।

६। अप्रमत्त निष्काम विप्रगण उस भगवान्के परम-पदकी उपासना करते हैं।

पूर्वाधृत "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इत्यादि मन्त्र

\* विष्णुके इस विचक्रमणव्यापारका महाभारतमें भी उल्लेख है, यथा—

"क्रमणाच्छ्राव्यहम् पार्थ विष्णु रित्यमिसंज्ञितः"

(शान्तिपर्व १३।१७१)

यह च क्रमणव्यापार ले कर ही वेदमें विष्णु देवका उल्लेख करनेमें आता है।

निरुक्तग्रन्थमें उद्धृत हुए हैं। ग्रन्थकारने उक्तको निम्न-ल्लिखित प्रकारसे व्याख्या की है—

"यद्विदम् किञ्च तद्विक्रमते विष्णुः । त्रिधा निदधे पदम् । त्रेधा भावय "पृथिव्याम् अन्तरीक्षे दिवि" इति शाकपुनिः "समारोहणे विष्णुपदे गयाशिरसि" इति आर्णवाभः । समूढमस्य पांशुरे । प्यायऽनेऽन्तरीक्षे पदं न दृश्यते । अपात्र उपमार्थः स्यात् । नमूढमस्य पांशुल इव पदं न दृश्यते इत्यादि ।

अर्थात् इस विश्वमें जो कुछ है, उस पर विष्णु विच-क्रमण करते हैं। पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्ग इन तीनों स्थानोंमें वे पदधारण करते हैं। यहाँ व्याख्याकार शाक-पुनिका अभिप्राय है। दूसरे व्याख्याकारने इस त्रिपद सम्बन्धमें लिखा है, कि समारोहण, विष्णुपद और गया शिर यहाँ त्रिपदका अर्थ है। अन्तरीक्षमें उनका पद नहीं देखा जाता।

दुर्गाचार्यने इस निरुक्तको निम्नलिखित व्याख्या की है, यथा—

"विष्णुरादित्यः । ऋथमिति यत आह "त्रेधा निदधे पदम्" निदधे पदम् निधानम् पदैः क्व तत्तावत् पृथि व्यामन्तरीक्षे दिवीनि शाकपुनिः । पाथिवोग्निरभूत्वा यत् पृथिव्यां यत् किञ्चिदस्ति तद्विक्रमते तदधितिप्रति । अन्तरीक्षे वैद्युत्मना दिवि सूर्यात्मना यदुक्तम् । तम् अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम् । ( ऋक्. १०।५८.१० ) इति । "समारोहणे" उदयगिरवे उदयन् पदमेक निधत्ते । "विष्णुपदे" मध्यन्दिनेऽन्तरीक्षे, "गयाशिरसि" अन्तगिराविति आर्णवाभ आचार्यो मन्यते ।"

अर्थात् विष्णु आदित्य है। विष्णुको क्यो आदित्य कहा जाता ? इसका कारण यह है, कि ये तीन स्थानोंमें पादधारणा करने हैं, यह मन्त्र द्वारा जाना जाता है। कहा कहा ? पृथिवी पर, अन्तरीक्षमें और धूलोकमें, यही व्याख्याकार शाकपुनिका अभिप्राय है। ये पृथिवी पर सभी पदार्थोंमें अनिरूपमें, अन्तरीक्षमें विद्य त् रूपमें तथा धूलोकमें सूर्यरूपमें अवस्थान करते हैं। ऋग्वेदमें भी इनके त्रिविध भावकी कथा लिखी है। आर्णवाभ आचार्यका कहना है, कि इनका एक पद समारोहण पर ( उदयगिरि पर ), दूसरा पद विष्णुपद पर ( मध्य गगन

में) तथा तीसरा यह गयाशिर पर (अस्तावक पर) पड़ा था।

पारकके रूपानुसार मालूम होता है, कि इन्होंने जिन दो प्राचीन प्रामाणिक ब्राह्मणकारोंका अभिप्राय इष्टतम किया है, वे दोनों प्रामाणिक ग्रन्थकार "विष्णुपर्व" के सम्बन्धमें है। अतएव सिद्धांतों पर पहुँचे हैं।

प्रथम शाकपुत्रिकी ब्राह्मणका मर्म यह है, कि विष्णु देव त्रिविक्रमावर्गमें प्रकाश पाते हैं—वे पार्थिव पदार्थों के मध्य अन्नरूपमें, आकाशमें विद्युत् रूपमें तथा घुन्नोर्कमें सूर्यरूपमें प्रकाश पाते हैं। निरुक्तमें इसका प्रमाण इस प्रकार है—

"अग्नि एव देवता इति निरुक्तं अग्निः पृथिवीसु गतो वायुर्वाइन्द्रो वास्तरोहस्तात्मा सूर्यो घृस्थानात्। ताम्ना महामाग्न्यात् पक्षीरुस्याणि बहुनि नामयेपानि मन्वन्त्यपि वा कर्मापुत्रवत्वाद् यथा होनाप्यव्युत्स्रंष्ट्वा इह गता इत्यप्येकस्य सता अथ वा पुण्योव स्तुः। पृथग्नि स्तुतयो मन्वन्ति तथाविधानामित्यादि ॥"

अर्थात् निरुक्तके मतमें देवता तीन प्रकारके हैं, अग्नि वायु और सूर्य। अग्नि पार्थिव पदार्थों में वायु या इन्द्र अस्तरोहमें तथा सूर्य घुन्नोर्क में अवस्थान करते हैं। गूणवर्मादिके अनुसार वा महामाग्न्यानुसार वे तीनों त्रिविध नामोंसे पुकारे जाते हैं। जिन प्रकार एक ही व्यक्तिके नामा प्रकारके कार्यानुसार वे कर्मो होता कमी मध्यव्युत्स्रंष्ट्वा कमी आग्नेय और कमी उद्गाता कहलाते हैं उसी प्रकार विष्णु एक होने पर भी कार्यके भेदसे अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

अतएव शाकपुत्रिका सिद्धांत यह है, कि एक ही विष्णु पृथिवी पर, अस्तरोहमें तथा घुन्नोर्कमें अलग अलग नामोंसे पुकारे जाते हैं।

दूसरा सिद्धान्त श्रीर्षावामका। श्रीर्षावाम कहते हैं कि विष्णुक जिस त्रिपार्श्वक्रमणको बात कही गई है, उस त्रिपार्श्व स क्रमणका एक स्थान इद्वयगिरि, दूसरा स्थान मध्यव्युत्स्रंष्ट्वा तीसरा स्थान अस्तगिरि है।

सायणने श्रावैहमावर्गमें विष्णुके त्रिपार्श्वक्रमणक सम्बन्धमें वागम अथवात्स्य त्रिपार्श्वक्रमण सम्बन्धोप वीराजिको आख्यायिका अवलम्बन कर शक्यको व्याख्या की है।

हमारा उद्भूत दूसरा वैदिकमन्त्र वागमनेय संहिताके ५।१५ स्थानमें भी देखा जाता है। यही पर भाष्यकार महीधरने लिखा है—

"विष्णुत्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदं त्रिवर्षं त्रिविक्रमो विमज्ज क्रमते स्म। तद्देवाइ शेषा पर निर्ये मूलाधिक पद्ममस्तरोहो द्वितीयं त्रिं च तृतावमिति क्रमाद्गमि वायु सूर्यव्येक्येत्पर्यं।"

अर्थात् विष्णुने त्रिविक्रमावतार ग्रहण कर त्रिपार्श्व में सारे विश्वका परिभ्रमण किया था। उसके एक पक्षमें पृथिवी पर, द्वितीय पक्षमें अस्तरोहमें और तृतीय पक्षमें घुन्नोर्कमें पद्याक्रम अग्नि, वायु और सूर्यरूपमें प्रकाश पाया था।

श्रावैहर्गमें कई जगह 'विष्णु'का उल्लेख है। बिस्तार हो जानेके मयस यहाँ पर उसका उल्लेख नहीं किया गया।

बहुतोंका विश्वास है, कि श्रावैहर्गमें इन्द्रका हो विष्णु कहा है। श्रीर्षावाम आदि भाष्यकारोंमेंसे किमी किसो विष्णुका सूर्य बताया है। किन्तु श्रावैहर्ग पक्षमें मालूम होता है, कि विष्णु इन्द्र और आदित्य ये सब पृथक् पृथक् देवता हैं। यहाँ पर हम श्रावैहर्गक प्रथम मण्डलके १५५ सूक्तमें कुछ श्रुतिका उद्धृत कर प्रमाणित कर देते हैं, कि विष्णु इन्द्र आदि देवताओंसे पृथक् हैं। यह इस प्रकार है—

१। "त्येवामित्या स्मरणं शिमीषतोरिन्द्रविष्णु सुतया वायुदध्याति।

या मरुत्ययि प्रतिधीयमानमिदुक्षानोरस्तुरमनासुह प्याय ॥"

\* सूर्यमण्डलके मध्य अग्निगण्य भगवान्का प्रकाश देव कर जो ध्यान किये गये हैं, वह इस प्रकार है—

"अथैवः तदा सभितृमवब्रह्ममव्यवर्त्तौ नरावप्यः सतिनाहनननिनिधः केरुवान् कनकं यज्जवान् किन्दी ही हीरव्यववपु र्वैवाद्भुक्ता।"

आज भी इसी ध्याने पर अरु नाप्यवकी पूजा होती है। श्रुतिमें फिर भी कहा है, "आतिरज्जन्ते स्म त्रिभुव इवम सुन्दरम्।"

हे इन्द्र और विष्णु ! तुम दोनों इष्टप्रव हो, अनपव हुतावशिष्ट सोमपायी यजमान तुम्हारे दीमिपूर्ण आगमन-की प्रशंसा करता है। तुम लोग मत्स्यीक लिये शत्रुविमर्क अग्निसे प्रदेय अन्न निरन्तर भेजो।

२। "तत्तद्विदनस्य पौंस्यं गृणोमसीस्य तानुरचुकस्य विड् ह्यः।

यः पार्थिवानि त्रिमिरिद्धिगामभिरु क्रमिष्टोरुगागाय जीवसे।"

हम लोग सबोके स्वामी, पालनकर्ता, शत्रुहिन और सेचनसमर्थ ( अर्थात् तरुण ) भगवान् के पौरुषकी स्तुति करते हैं। वे प्रशंसनीय हैं, लोकरक्षाके लिये उन्होंने त्रिपदविशेष द्वारा त्रिभुवनका परिक्रम किया था।

३। "ता ईं चङ्गन्ति महास्य पौंस्यं नि मानरा नयति रेतसंभुजे।

दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोचने दिवः।"

समस्त आहुतियां प्रसिद्ध इन्द्रका पौरुष बढ़ाती है। इन्द्र सबोके नातृस्थानीय रेतः हैं तथा उपभोगके लिये वही सामर्थ्य प्रदान करते हैं। उनके पुत्रका नाम निकृष्ट और पिताका नाम उत्कृष्ट है। तीसरा (नाम) द्युलोकके दीप्तिमान् प्रदेशमें है।

प्रथम मण्डलके १५६ सूक्तमें भी वेदेक भगवान् के गुणक्रियादि सम्बन्धमें बहुत-सी बातें लिखी हैं। जैसे,—

१। तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः। दाधार दक्षमुत्तममहर्षिन्दं व्रजञ्च विष्णुः सखिर्वा अपोर्णते।

राजा वरुण और दोनों अश्वि मरुत्मान् विधाताके उस यज्ञमें शामिल होवें। दोनों अश्वि तथा भगवान् एक साथ मिल कर उत्तम महर्षिन्द रसधारण और मेवका आघरण उन्मोचन करें।

२। आ यो विवार सन्धाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः। वेधा अजिन्वत्रियघस्य आर्घामृतस्य भागे यजमानमाभजत्।

जो स्वर्गीय अतिशय जोभनकर्मा भगवान् इन्द्रके साथ मिले हुए हैं, उन्हीं मेधावीने त्रिजगत् विक्रमी आर्घको प्रसन्न किया है तथा यजमानको यज्ञका भाग प्रदान किया है।

विष्णुपुराण और भागवतादि पुराणोंमें इन ऋक्-मंत्रोंकी प्रतिध्वनि गूँध सुनार्दे देता है। भगवान् जो देवताओंके मध्य शुद्धसत्त्वगुणोंकी चिन्तासभूमि हैं, वेदमें उमका जो सूत्र देवनेते आता है। यथा, ऋग्वेद प्रथम मण्डलके १८६ सूक्तकी १०वीं ऋक् में लिखा है,—

"प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वम् प्र पूर्णं न्यतयामो हि मान्ति। अह्वेयो विष्णुवान् विभुक्षा अच्छा सुत्ताय चचृतोय देवान्।"

हे ऋषियक्ष्ण ! हम लोगोंकी रक्षाके लिये अश्विहव और पूषाकी स्तुति करो। हे परदिन भगवान् वायु और ऋभुक्षा नामक म्याघान बलविशिष्ट देवताओंका स्तव करो। मैं सुगाने तिमिन्न समस्त देवताओंकी लाऊंगा।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके प्रारम्भमें ही अग्निका स्तव किया गया है। उममें अग्निका सा इन्द्र और भगवान् कहा गया है। यथा—

"त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सताममि त्वा विष्णुरुगागागे नमस्यः।

त्वां ब्रह्मा रयिषिदुग्रहणपते त्वा विभर्ताः सचमे पुण्ड्या।" (२५ म० १ सू० ३ ऋक्)

अर्थात् हे अग्नि ! तुम मत्लोकके अर्भाष्टवर्षा हो, इसलिये तुम इन्द्र हो। तुम भगवान् हो, क्योंकि तुम उरुगाय हो अर्थात् समस्त लोकोंके स्तुत्य हो। ( उरुगाय शब्दका अर्थ सायणने इस प्रकार लिखा है, "बहुभिर्गीयमानो नमस्यः नमस्कारार्थेन भवसि।" )। तुम ब्राह्मणस्पति हो, तुम ब्रह्मा हो, तुम अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करते हो तथा अनेक प्रकारके पदार्थोंमें विराज करते हो।

पुराणमें विष्णुको उपेन्द्र कहा है। ऋग्वेदमें लिखा है, कि विष्णु इन्द्रके निकट आत्मीय हैं, दोनों एकव सोमपान करते हैं।

वेदके प्रत्येक मण्डलमें विष्णुका माहात्म्य और गुण कार्यादि कीर्त्तित हुआ है। भाष्यकारगण और टीकाकारगण कई तरहका अर्थ लगा कर उन सब स्थलोंके अर्थाधीनके सम्यग्धमें भिन्न भिन्न सिद्धान्त पर पहुँचे

हैं। हम यहां पर तुलाय मण्डलमें हा जो एक श्लोक उद्धृत करत हैं। यथा—

“विष्णु स्तोत्रात्मः पुरुषस्वामिका मगस्येव कारिणी यामिनि गन्तु।

उक्तमा कश्चो पश्य पूर्वोर्त्तं मर्त्तमि युवतयो जनित्रोः (३ म० ५५ वृ० १४ श्लोक)

यनके कारणस्वरूप यह स्तोत्र और अर्थात्तय मन्त्र इस पद्यमें मगवान्के पास जाये। मगवान् उक्तमो हैं। पूर्वकालीना युवती मातास्वरूप विद्याए उन्को सहज नही करती।

सायणने यहाँ उक्तम अर्थात् अर्थ ऐसा किया है—“उक्तं वाच्यं कमः पार्श्वितोपो पश्य सः। त्रिणि क्मावतार एकत्रैव पार्श्व मर्त्तं जगदात्म्य तिष्ठति।”

वेद्व्याम आदिने मो उक्तम शब्दका ऐसा ही अर्थ महाभारत और पुराणमें किया है।

मगवान् अति पराक्रमशील हैं, वह वेदमें कई जगह देखा जाता है। महाभारत और पुराणादिमें अनेक प्रकारसे मगवान्को इस पराक्रमशीलताका उदाहरण दिया गया है। महर्षि वेद्व्याम वेदक विभागकर्ता हैं उन्होंने महाभारत और पुराणादिमें वेदका सविस्तार अर्थ किया है। सायणने अपने भाष्यमें व्यामादिवा हो सम्मत समिप्राय किया है।

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, मगवान् पावनकर्ता और यद्र संहारकर्ता हैं, यह पौराणिक सिद्धांत इस देशक साधारण पृथ्वनिता समीको मान्य है। मगवान् आ रक्षाकर्ता हैं अर्थात्तमें कई जगह उमका उल्लेख देवतेने जाता है। त्रैल—

“विष्णुर्गोपा परम पाति पायाः  
दिया पासायमृताह पायाः।  
अग्निपा विम्बा मुषभानि वेद  
महेद्देवानामसुरत्वमेकम्।”

(३ म० ५५ वृ० ११ श्लोक)  
अर्थात् मगवान् स्वयंस्त जगत्क रक्षक हैं। वे विप नम अक्षयधाम धारण करते हैं तथा परमरुपावती रक्षी करत है। इत्यादि। अर्थात्तमें मगवान्का “गोपा” यह विशेषण अनेक जगहमें देखा जाता है। उनका नाममें

ओ श्रद्धाविशिष्ट गामोगण रहती हैं, यह भी पहले सिखा जा चुका है। उनका नाम ओ मापुर्पंजा उस्तव है यह मो पहले एक श्लोक प्रस्तावित किया जा चुका है इन सब श्लोकोंने हम लोग आहुत्यावन उनविद्वारा आहुत्याका मो भाषास पा सकने हैं। नित्य मत्स्य और पूर्ण पश्चात् वैदिक श्रवितोके तथा परवर्ती मदर्षियोंक योग देखते क्रमोत्तरनेक नियमानुसार बिस्फुरित हुए य नही वह भी विशेष और बिस्तयिनव्य है।

मगवान्को मर्त्तलोकोर्त्तं लानेक सिधे अविगण अग्निसे प्रार्थना करत थे—

“अर्थात्तमं बर्धनं मित्रमेवाग्निमुक्त्वाग्निमुमक तो अभिनीत।  
अथो धामे सुरयाः सुधाया पशु वह सुहृदिये जनाय।”  
(४ म० २ वृ० ५ श्लोक)

अर्थात्त हे भनी। तुम्हारा अन्न उत्तम है रथ उत्तम है तथा यम उत्तम है। तुम इन यज्ञमानोंमेंसे जिसके सिधे उत्तम हो उसक उद्देश्यसे भनीया यद्यपि मित्र इन्द्र मगवान् और मरुत्याणको लाभा।

मगवान् जो वैदिक देवताके मध्य बहुस्तुत बहु कीर्ति है, वैदिक श्रवितोके उद्युपयित श्लोकमन्त्रमें हमें वे सब स्तोत्रशास्त्राए सुननेमें आती है। अर्थात्तके मनुष्यपरब्रह्मक तुताय सुक्तकी ७३ श्लोकमें भी “विष्णव उरगायाय” कहा गया है। सायणने उमका अर्थ किया है “ममूनकीराये विष्णवे।”

मगवान्का पराक्रम जो देवोंका बहु स्तुत है उस समा श्लोकार करते हैं। इन्ने पृत्तासुरका वध करनैक सिधे मगवान्से सहायता आ थी। यथा—

“उन माता महिपमन्वधेनदमी त्या अहनि पुत्रदेवाः।  
मया प्रथोद्भूतमिन्द्रो इनिष्पन्न सन्ने विष्णो वितर्त्त  
नि क्मन्व्य।” (४ म० १८ वृ० ११ श्लोक)  
इन्द्रका माता महान्ने इन्द्रस पूठा है पुत्र। देव ताभोने तथा तुम्ह छोड़ दिया है। इस पर इन्द्रने मग वान्को और देव कर कहा, सन्ने विष्णो! यदि पृत्तका मारना चाहते हो तो विद्वममान करो।

मगवान्क पराक्रम ही इन्द्रका शत्रु पूर्य मारा गया था। पुत्राणमें इन्द्रका बिल्वुन विवरण आया है।

पूर्वाद्ब्रूयत ऋक् का भाव निम्नलिखित ऋकोंमें भी पुनरुक्त हुआ है। यथा—

"समे विष्णो वितरं विक्रमम् शौर्द्धिलोकं वज्राय विक्रमै हनाववृत्रं रिणचाव सिंधून् इन्द्रस्य यंतु प्रसवे विष्णुः ।"

यहां भी इन्द्रने विष्णुको सप्ता कह कर सम्बोधन किया है तथा वृत्तासुरको वध करनेके लिये विष्णुका सहायता ली है। भगवान् जो इन्द्रादिके भी स पुरुष वस्तु है, इन सब ऋकोंमें हम उसका प्रमाण पाते हैं। इससे हमें यह भी मालूम होता है, कि भगवान् इन्द्रके सखा हैं। ऋग्वेदमें इन्द्र और विष्णुका मन्त्र अनेक स्थलोंमें हा एकत्र निबद्ध हुआ है।

भगवान् जो सभी जीवोंके सुखसमृद्धि देनेमें सय देवताओंमें अधिक शक्तिशाली हैं, द्रष्ट मण्डलके ४८ सूक्तकी १४वीं ऋक्में हम उसका प्रमाण पाते हैं यथा—

हे पूषन् ! मैं तुम्हारा स्तव करना हूँ, तुम इन्द्रको तरह दयालु हो, वरुणकी तरह अद्भुत शक्तिशाली हो अर्थमा की तरह धानी हो तथा भगवान्की तरह सब प्रकारकी भोगसम्पत्तिके दाता हो। इत्यादि।

ऋग्वेदके पद्यमण्डलके ५० सूक्तकी १२वीं ऋक्में रुद्र सरस्वती आदि देवताओंके साथ भगवान्के समाप प्रार्थनासूचक स्तव है। यथा—

"ते नो रुद्रः सरस्वतो सजोषा मिडुहूमत्तो विष्णु-  
मृडन्तु वायुः। रिभुक्षा वाजो देव्यो विधाता पर्जन्या  
चाता विष्यतामिया नः ।"

अर्थात् रुद्र सरस्वती भगवान् और वायु ये सभी सुखदाता हैं। ये हम लोगो पर कृपा दरसावे। रिभुक्षा वाज, पर्जन्य और चात हम लोगो की शक्ति बढ़ावे।

सप्तम मण्डलके ३५ सूक्तकी ६वीं ऋक्में, ३६ सूक्तकी ६ ऋक्में, ३६ सूक्तकी ५ ऋक्में, ४० सूक्तकी ५ ऋक्में, ४४ सूक्तकी १ ऋक्में तथा ६३ सूक्तकी ८वां ऋक्में अन्यान्य देवताओंके साथ विष्णुका उल्लेख है।

सप्तममण्डलके ६६ सूक्तका प्रथमसे सात ऋकोंमें विष्णुका यथेष्ट माहात्म्य कीर्तित हुआ है।

इस सूक्तकी प्रथम ऋक्की व्याख्यामें सायणने अपने

भाष्यमें विष्णुके त्रिविक्रम अवतारको माहात्म्यविषयक कथाका उल्लेख किया है। विष्णुका परम माहात्म्य भी इस ऋक्में गया है।

द्वितीय ऋक्में लिखा है, कि विष्णुकी महिमाका अन्त नहीं है। इनकी महिमा अनन्त है। विष्णुका माहात्म्य सभीको विदित होना अस्मभव है। भगवान्ने पृथ्वीको ऊपर उठाये रखा है। विष्णुकी शक्तिसे ही पृथ्वी ऊपरसे नहीं गिर सकता। पृथिव्यादि भी भगवान् कर्त्तृक विद्युत है। इसके द्वारा भगवान् शक्तिके बहुल कार्यवाग्विभव सम्पन्नमें एक आभास पाया जा सकता है।

काँइ काँइ समझते हैं, कि भगवान् सूर्यके ही दूसरे नामसे ऋग्वेदमें परिचित हैं। यह बात अर्थान्तिक और अप्रामाणिक है। भगवान्ने अनेक कार्य सूर्यके सदृश हैं। किन्तु वे स्वयं सूर्य नहीं हैं, पर एा सूर्यमें अनुभविए अवश्य रहे हैं। भगवान्के ध्यानमें भी उन्हें "सावित्रीमण्डलमध्यवर्ती" कहा गया है। सूर्य उन्हांकी शक्तिके शक्तिमान हैं इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है। उद्धृत ७ मण्डलके ६६ सूक्तकी चौथी ऋक् पढ़नेमें मालूम होता है, कि "इन्द्र और भगवान् इन्होंने सूर्य, अग्नि और ऊषाको उत्पादन का यजमानके लिये विस्तीर्ण लोक निर्माण कर रखा है।"

उद्धृत पञ्चम ऋक्में इन्द्र और भगवान्ने मिल कर असुरका संहार किया है इसका उदाहरण दिया गया है। भगवान् द्वारा जम्बर आदिकी पुत-विनाशका विवरण ऋग्वेदमें सूक्ताकारमें वर्णित है। पुराणमें इसका विशेष विवरण देखनेमें आता है। वचिर्व नामक असुरको दलयलके साथ संहार करनेका विवरण भी इस सूक्तमें दिखाई देता है।

अधिकांश स्थलोंमें "उरगाय" शब्द भगवान्के विशेषणरूपमें व्यवहृत हुआ है। श्रीमन्नागवतपुराणमें भा इस शब्दका बहुत प्रचार दिखाई देता है। उरगाय शब्दका अर्थ है बहुजन द्वारा गीयमान। विष्णु जो वैदिक देवताओंमें प्रधानतम देवता तथा सूर्य आदिके उत्पादक हैं, यह भी ऋग्वेदमें लिखा है। श्रीभागवतमें जो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, छार्दन

सौम्य, दास्य और आत्मनिवेदन इन ती मन्त्रियोंका उल्लेख है, हम इस १०० सूक्तमें इनका भी सम्मान पाते हैं।

विष्णु क्लृप्तने 'मगधाने देवता है, सूक्तका ३ व श्रृङ्गम इनका प्रमाण मिलता है। वैदिक समयसे ही इनका जो मान्य होता था वही है, हम श्रृङ्गमें इसका भी सम्मयक प्रमाण है। विष्णुका रूप किरणविशिष्ट है। जो "सावित्रीमण्डलमध्यवर्ती" है वे किरणमय नहीं हैं, तो क्या है ?

"विचक्ष्मं पृथिवीमपि पत्नी होत्राय ऽप्यनुपे द्वास्वयम् ।  
 प्रुत्वासो भव्य कीरयो जनाम इदमस्तिष्ठिं सुतमिमा चरात् ॥  
 इन मगधाने मनुष्यक बसनेके छिये उक्त पृथिवी त्रमेकी इच्छा करके यहाँ पादक्षेप किया था। इन विष्णु का स्तोत्रा निश्चय होयें। सुश्रमा विष्णुने निवासस्थान निर्माण किया है।

विष्णु जो कबल विम्बद्वाराएक कारणकर्ता और वाचनकर्ता हैं सो नहीं। उन्होंने ही हम पृथिवीको मनुष्यके रहने योग्य बना दिया है। अतएव विम्बनिर्माण वा मगधाना हाय है।

"किमिष विष्णो परिचक्ष्यं मूल्य यद्वक्षसे जिविविष्टो भस्मि । मा तयो अस्मत्प गूह पतद्यव्यकपाः समिधे वभूय ।"

हे विष्णो ! मैं 'जिविविष्ट' नामस तुम्हारा स्तव करता हूँ। इसे प्रकषायन करता क्या तुम्हें उचित है। तुमने स भ्राममें अन्व रूप धारण किया है। हम लोगोंने तुम अपना शरीर न छिपाओ।

सावय 'जिविविष्ट' शब्दका अर्थ किरणविशिष्ट भगाने हैं। सावयक माध्यमें लिखा है, कि पुराकासमें मगधाने अपना रूप त्याग कर अन्व रूप धारण किया था और स भ्राममें बसिष्ठकी सहायता पशु चार्थ था। बसिष्ठने उन्हें पहचान कर इस श्रृङ्गस इनका स्तव किया। निश्चयकारक कहना है कि विष्णुका दूसरा नाम "जिविविष्ट" है। फिर उपमण्यु कहते हैं, कि "जिविविष्ट" नाम मगधाना कुलित नाम है। उपमण्युका यह अर्थ सुसङ्गत नहीं। कुलित नाम याद होगा तो बसिष्ठ हम नामसे उनका स्तव नहीं करते। पर हाँ उन्होंने स भ्राम

में जो दूसरा रूप धारण किया था, उसमें अपना रूप छिपा कर केवल किरण द्वारा चारों ओर समाच्छम कर दिया था। इसी कारण उन्हें "जिविविष्ट" कहा गया है।

अष्टम मण्डलक निम्नलिखित रूपमें मगधाना नामोद्धेख है—  
 १ सू—१२, १० सू—२, १२ सू—१६, १५ सू—८, २५ सू—११ और २७ सू—८, २१ सू—७ ३१ सू—१०, ३५ सू—१ और १४ २६ सू—१० तथा ७२ सू—७ श्रृङ्गमें।

इन सब श्रृङ्गमें ६६ सूक्तों १०वीं श्रृङ्गका भाव कुछ अनुमान है। यहाँ श्रृङ्ग पहलेसे मातृम होता है कि मगधाना इन्द्र कर्तृ क प्रार्थित हो कर इनके छिये एक सौ महिष और एक मयङ्कर शूकर स प्रह कर ले गये थे। हमें इसका अर्थ समझमें न आया। फलतः वेदमन्त्र स प्रह और वेदार्थस प्रह जो बहुत बड़ेर काम है, यह वेदमन्त्र पहलेसे सहजमें अनुमान किया जा सकता है।

नवम मण्डलके भी कनेक स्थानोंमें विष्णुका उल्लेख देखनेमें आता है। जैसे—  
 ३३ सू—३, ३४ सू—२, ५६ सू—४, ६३ सू—३, ६५ सू—२० १० सू—५, १६ स—५ तथा १०० सू—६।

दशम मण्डलके द्विन सब स्थानोंमें मगधानाका उल्लेख है, नीचे इनकी तालिका दी गई है—

१ सू—३, ६५ सू—, ६६ सू—४ तथा ५, १६ सू—११ ११३ सू—१ १२८ सू—२, १४१ सू—३, १८१ सू—१ २ और ३ तथा १८४ सूक्तकी प्रथम श्रृङ्गमें मगधानाका उल्लेख देखनेमें आता है।

आधुनिक प्रतोभ्य परिचित हम लोगोंक वेदादि मन्थों में देवताओंका व्यक्तिगत स्तोत्रपाठ सुन कर कहा कही बड़े ही झगमें पड़ गये हैं। इन सब परिदृश्योंमें मुरर साहब एक हैं। मुररने जगह जगह इन्द्रका माहात्म्या पियत्र स्तोत्र पाठ कर यह मन्त्र लिखा है, कि श्रृङ्गवेदमें मगधानाको अथेष्टा इन्द्रका ही मान्य बयिक है। इस प्रकार माहात्म्यकार्त्तिसूक्त बनाकर सभी देवताओंका देखा जाता है। एक सागाव्य पदार्थक स्तोत्रमें भी म्ण्यमान पदार्थको सर्वापेक्षा प्रमाण कहा है। स्तोत्रादि में इस प्रकार पृथक पृथक वर्णन द्वारा भावसकी

भेदु मया कृतं श्री नारायण्य नारां प्रना । वेदव्यास  
 कालि देवतात्तु मर्तिभ्यो मे भगवान्को प्रनामना मो ही  
 नर इत्येव कोर्त्तन क्रिया है । वेदाद्यो विनाममे उन  
 कोना ही उक्ति ही दृश्यवतो है । सुधा आदि मादुको की  
 को नदारी प्रमापिक नहीं समझे जा सकतो ।  
 कोर्त्त विनाम प्रपत्ती देखनेसे अच्छी तरह मान्म होना  
 है, कि यह विविध दोरदुष्ट है तथा उन्होंने कई जगद  
 मय विष्णुत्व समझा है: नहीं है ।

इसके सिवा जनपदशास्त्रणमे (१२५५(१)१४१२५२)  
 मेरुकाय नारायणमे (५५५१-६) , पञ्चविंश ब्राह्मणमे  
 ५५५१; तथा रामायण, महाभारत और विभिन्न  
 पुराणदिने नारायणका माहात्म्य और दशान्तारविषयक  
 विविध भाषायां वर्णित है । दशान्तार देखा ।

पुराणके लिखा है, भगवान विष्णु युग युगमें निर  
 निरन कामें उक्त लेते हैं । पृथिवीका भार लायव करने  
 के लिये, उगवमे जालि स्थापनके लिये, साधुओंको  
 मया दग्धके लिये वे अपने हाथके धर्मदोषी पापी  
 मानवीका संहार करते हैं । तीनों युगमें इनकी षडय  
 मरगा तनेक हैं त्रिनमेसे मधु, धेनुक, चाणूर पूतना,  
 गमनाकुंठ, कालनेमि, द्यप्रोव, जफट, अरिष्ट, कैटभ  
 गम, केजी, मुर, प्राण्य, सैत्र, द्विपिड, राट, हिरण्य  
 रजिपु, गाल, कात्याय, नरक, बलि और जिशुगाल आदि  
 के नाम उल्लेखनीय हैं । इनके वाहनका नाम घैन्तैय है ।  
 मधु - वाज्रदन्ध है, निट - ध्रौकन्ध है और भासिका नाम  
 लक्ष्मी है । ये ताने शायमे कौमोडका नामकी गदा,  
 शार्ङ्ग पशु सुदशन कज और ध्यमन्कमणि धारण  
 करते हैं । मुजामे कौमुमु है । ( देवन्द )

पादसंस्कृत १४१ अरण्यमे भगवान्के सी नामोका  
 तम महाभारतमे जालिपर्वके १४४वे अध्यायमे दशान  
 त्तोका उल्लेख है । यह लोक मयसे उनके नाम यहाँ  
 पर मया दिये गये ।

वेदव्यास श्रुत्या ।

सायनपुराणके प्रथमे महाप्रकरणके बाद मया सनार  
 कोर अध्यायमे दृष्टा ग, समी निरवतव अर्थात् मानो  
 मरिदु है मया पर मयरा मया नमन्त रणम् मयिजेव  
 द्य । इस मयव क्रियाकी श्रुति ना देखने समझते या

मोननेको जलिन थो । इसके बाद स्वयम्भु फिरसे  
 जगत्की श्रुत करनेके लिये उद्यत हुए । इसात् तमोनुदु-  
 का आविर्भाव हुआ, जो अतोन्द्रिय है, जो परमपुरुष  
 मनादन है, पदो नारायण उस समय स्वयं सम्भूत हुए ।  
 इस बार उन्होंने ध्यानगोसे अपनी देहसे नाना जगत्की  
 सृष्टि करनेकी इच्छामे पहले जलका और पीछे उममें बीज  
 की सृष्टि की । यह बीज तब हेमरुध्यमय एक बृहत् दण्ड  
 मे परिणत हुआ । हजारों वर्ष बीत गये । अयुत सूर्यकी  
 तरह उमकी द्योति फैल गई । स्वयम्भुने स्वय उममें  
 प्रवेश किया । प्रभाव और व्यातिके हेतु वे विष्णुत्वको  
 प्राप्त हुए । ( मत्त्वपु० २ अ० )

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि विष्णुका एक रजोगुणमय  
 रूप है । उनका नाम है भगवान् चतुर्मुख । जगत्के  
 सृष्टिकार्यमें जो वे प्रवृत्त रहते हैं । भगवान् स्वय  
 विष्टरात्मरूपमे सत्वगुणका आश्रय ले कर सृष्ट वस्तुकी  
 रक्षा करते हैं पीछे तमोगुणका आश्रय ले कर रुद्ररूपमें  
 पुनः उन सब सृष्ट वस्तुओंका संहार करते हैं । वे  
 निशुण, निरञ्जन और परमात् होने हुए भी सृष्टि, स्थिति  
 और लय करनेके लिये तीन प्रकारके रूपोंमें अवस्थित  
 हैं । वे एक ही मही, पर स्वेच्छाले द्विधा, त्रिधा और  
 यद्वात्मपोसे उनका अवस्थान है । इस त्रिलोकके मध्य  
 वे सृष्टि, रक्षा और नाश इन तीनों कामोंमें त्रिधा रूपमें  
 विराजमान हैं । वे एक, अज, महादेव, प्रजापति, पर  
 मेधर, सर्वगत, स्वयम्भु, हरि, हर, नारायण हैं, और  
 तथा यह समस्त जगत् ही विष्णुमय है । ( कूर्म ४ अ० )

अग्निपुराणमे भी यह मन देखा जाता है । घराह  
 पुराणमे लिखा है, कि एक समय परात्पर नारायणकी  
 सृष्टिविषयमे चिन्ता हुई । उन्होंने सोचा, कि किस  
 प्रकार यह महासृष्टि हुई है उसी प्रकार इसका पालन  
 भी मुझको करना होगा । किन्तु अमूर्त अवस्थामे  
 कर्मे करना असम्भव है, अतएव अभी मैं एक ऐसी मूर्ति  
 की सृष्टि करूँगा जो इस महासृष्टिका पालन कर सके ।  
 यह सर्वकल्याणकार्यके रूपमें परिणत हुआ । चिन्ता करने  
 करने मन्त्रध्यानमे सहसा एक मूर्तिका आविर्भाव  
 हुआ । पीछे घरेरे उन मूर्तिके नजदाक आने पर नारा-  
 यणदेवने देखा, कि त्रिभुवन ही उनके शरीरमें प्रविष्ट





शां नारायणाय कान्त्यै नमः, दक्षनेत्रमे ईं माधवाय तुष्ट्यै नमः, वामनेत्रमे ईं शोचिन्दाय पुष्ट्यै नमः, इम प्रकार क्रमिक नानुस्वार वर्णका उच्चारण करके निम्नोक्त प्रकार-से यथायथ स्थानमें न्यास करना होगा । सत्रके अन्तमें नमः पठ्य प्रयोज्य है । जैसे—दक्षकर्णारे 'विष्णवे धृत्यै' वामकर्णामे 'मधुसूदनाह शान्त्यै' दक्षिण नासापुटमें 'त्रिविक्रमाय क्रियायै', वामनासापुटमें 'वामनाय दयायै' दक्षिण गण्डमें 'श्रीधराय मेधायै' वामगण्डमें 'हृषीके जाय हर्षायै' ओष्ठमें 'पद्मनाभाय श्रद्धायै' अधरमें 'दामो द्वाय लज्जायै', ऊर्ध्वदन्तपक्तिमें 'वासुदेवाय लभ्यै' निम्नदन्तपक्तिमें 'सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै' मस्तकमें 'प्रगु-ग्नाय प्रोत्यै' मुखे 'अः अनिरुद्धाय रत्ने' दक्षिणकरचूल, सन्धिस्थान और अप्रभागादिमें 'कं चक्रिणे जयार्यै' 'रा गदिने दुर्गायै' क्रमजः 'गार्दिणे प्रभायै' 'वडि गने सत्यायै' शङ्खिने चण्डायै' इसी प्रकार वामकरमूलसन्धि और अप्रभागादिमें 'हलिने वाण्यै', 'मुपलिने विलासिन्यै' शूलिन विजयायै' 'पाजिने विरजायै' अं कुजिने विश्वायै' दक्षिणपादमूलसन्धि और अप्रभागादिमें 'मुकुन्दाय विनशायै, नन्दजाय सुतन्दायै, नन्दिने स्मृत्यै, नराय ऋद्धये नरकजिते समृद्धे' । वामपादमूल सन्धि और अप्रभाग आदिमें 'हरये शुद्धये' कृष्णाय बुद्धये, सत्याय मृत्यै, मात्वताय मत्यै, सौराय प्रमायै' । दक्षिणपादमें 'शूराय रमायै', वामपादमें 'जनाहं नाय' पृष्ठमें 'भूधराय क्लेदिन्यै' नाभिमें 'विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै' उदरे 'वैकुण्ठाय सुदैव्यै' हृदयमें 'त्वागात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधरायै' दक्षिणासमे 'असृगात्मने' 'वलिने परायै', ककुद्-मे 'मासात्मने धलानुजाय परायणायै' वाम अंगमें 'मैद् आत्मने वलाय सुत्मायै', हृदादि दक्षिणकरमें अस्वगात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै' हृदादि वामकरमें 'मज्जात्मने वृषाय प्रक्षायै' हृदादि दक्षिणपादमें 'शुक्रात्मने हिसाय प्रमायै' हृदादि वामपादमें 'प्राणात्मने वराहाय निजायै' हृदादि उदरमें 'जीवात्मने विमलाय अमोघायै' हृदादि मुखमें 'क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्वेषुतायै' । इस प्रकार न्यास करे ।

अगस्त्यसंहितामें लिखा है, कि यदि भुक्ति-भुक्तिकी कामना कर पूजा की जाय, तो उक्त न्यास करने-

के समय आदिमें श्रो-वीज जोड़ दे । यथा—'श्रो अ कंशवाय कीर्त्यै नमः' इत्यादि ।

अन्तर नश्यन्यास, ऋत्वादिन्यास और विष्णुपञ्च-रादिन्यास करना होगा । विरताम हो जानेके भयमें इन सब न्यासोंका विवरण नहीं दिया गया । उक्त पूजा पद्धतिकी महायानमें ये सब न्यास कर पीछे पुनः ध्यान करे । ध्यानमन्त्र इस प्रकार है -

"उगतकोटिदिशकराभगानगं शंभुं गदां पद्मं

चक्रं विभूतमिन्दिरा वसुपती मैगोभि पाभ्यं इयम् ।

कोटिगद्गद्दहारतुपटलपरं पीताम्बर फीस्तुभो-

द्वीत विश्वधर स्वयंदास हयच्छ्रीवस्ठनिहं मजे ॥"

इस प्रकार ध्यान करनेके बाद मानसोपचारमें पूजा कर गृह स्थापन करे ।

गौतमीय तन्त्रके मतमें ताम्रपात्र, गृह मृत्पात्र, श्वर्षा वा रजतपात्र, ये पञ्चपात्र विष्णुके भक्ति प्रिय हैं । उक्त विशुद्ध पञ्चपात्रको छोड़ कर और कोई भी पात्र विष्णु पूजामें काम नहीं जाना\* ।

गृहस्थापनके बाद साः ष पाठपूजा, पीछे विमला दि शक्तिके साथ पाठमन्त्र पर्वान्त पूजा करके पुनर्ध्यान और मूलमन्त्रमें कल्पित विष्णुमूर्त्तिके प्रति आघातनादि पञ्चपुष्पाङ्गलि प्रदान करे । अन्तर आचरण पूजा करने होगा । यथा—"ओं कृद्धालकाय हृदयाय नमः" इत्यादि मन्त्रोंमें अन्यादि चतुष्कोणमें तथा चारों दिशाओंमें पूजा करे । अन्तर केजरसमूहमें पूर्वादि क्रमसे "ओं नमः, नं नमः, मेा नमः, ना नमः, रा नमः, य नमः, णां नमः, य नमः ।" दलसमूहमें पूर्वादिकी ओर 'ओं वासुदेवाय नमः' इस प्रकार पूजा करनेके बाद चतुर्धो विभक्ति जोड़ कर प्रणवादि नमःके बाद मङ्गलार्ण, प्रथम, अनिरुद्ध अन्यादि कोणमें, दलसमूहमें जान्ति श्रो, सर-

\* "ताम्रपात्रं तु राजपै विष्णोरतिप्रियं मतम् ।

तथैव सर्वपात्राणां मुख्यं गृह्यं प्रकीर्तितम् ॥

मृत्पात्रञ्च तथा प्रोक्तं स्वर्षां वा रजत तथा ।

पञ्चपात्रं हरेः शुद्धं नान्यत्तत्र नियोजयेत् ॥"

स्वामी और रति । पद्माप्रमसूदमें पुरात्रिकमम अक्ष गङ्ग  
गङ्गा पद्मम कौस्तुभ मूलक अक्ष य वनमाळा, उमक  
बाहर धममागमें गदह दक्षिणमें शकुनिधि, वाममें  
पद्मनिधि पश्चिममें उच्च मन्त्रिकोणमें विष्णु शैश्व त  
में आर्या वायुकोणमें दुर्गा तथा ईशानमें सेनापति इन  
मन्त्रका पूजा करके उमक बाहर इन्द्रादि और वज्रादिकी  
पूजा करे । अनन्तर पूष भीर दीप शानक बाद यथाशक्ति  
नैवेद्य धन्तु निवेदन करनी होती है ।

विष्णुपूजामें नैवेद्य वानमें कुछ विशेषता है । गीत  
गीत तन्त्रक मतसे स्वर्ण, ताम्र या दीप्य पात्रमें अथवा  
पद्मपत्र पर विष्णुको नैवेद्य चढ़ाये । आशामकथयुग्ममें  
लिखा है कि राजत, कांस्य, ताम्र वा मिट्टीका बरतन  
अथवा पलाशपत्र विष्णुको नैवेद्य चढ़ानेके लिये  
इत्तम है ।

जो हा, ऊपर कहे गये किसी एक पात्रमें विष्णुका  
नैवेद्य प्रस्तुत कर देबोहेगसे पात्र, अर्घ्य और आश  
मनीय दानके बाद 'फट' इस मूलमन्त्रमें डमे प्रोक्षण  
अक्षमुद्रामें अमिरक्षण, 'यं मन्त्रम शैवोना मजोचन  
' मन्त्रमें शैवदेहन तथा 'यं गङ्गामे अमृतोक्षक कर  
आठ बार मूत्र मंत्र जा कर । पीछे 'यं' इस येनुमुद्रामें  
अमृतोक्षण कर गण्यपुत्र द्वारा पूजा करनेके बाद उना  
ह्वनि हो करिसे प्रार्थना करे । अनन्तर "मन्त्र मुक्तो  
महा प्रमथेत्" इस प्रकार भावना करके स्थावा भीर  
मूषमत्त उच्चारण करते हुए नैवेद्यम उलदान करे ।  
इसके बाद मूत्र मंत्रका उच्चारण कर तथा "पतंगीशैव  
अमुद्वेकतायै नमः" इस मंत्रमें शैवो हाथीमें नैवेद्य  
गदह "ॐ नैवेद्ययामि मयते ज्ञुपायेद् इबिहैर ।"  
इस मन्त्रमें नैवेद्युप अर्पण करे । अनन्तर 'अमुना पन्तरण  
ममि' इस मंत्रसे अन्न देनेके बाद यामहन्मन प्राप्तमुद्रा  
द्विजा दक्षिण इत्त श्राग प्रणवादि सभी मुद्राय विधाध  
यथा "ॐ प्राजाय स्वाहा" यह कद कर मङ्गलुष्ट  
द्वारा कनिष्ठा और अनामिका, "ॐ इशानाय स्वाहा"  
इस मंत्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा मध्यमा और अनामा "ॐ  
वज्राय स्वाहा" इस मन्त्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा उर्ध्वको,  
मध्यमा और अनामा तथा 'श्री समानाय स्वाहा' कद कर  
अङ्गुष्ठ द्वारा सर्वाङ्गुलि स्पष्ट करे । अनन्तर शान्ति

अङ्गुष्ठ श्राग अनामिकाका मध्यमाग स्पर्श कर श्री  
नमा पराय अन्तःकरणे अनिरुद्धाय नैवेद्य कल्पयामि'  
कद कर नैवेद्युप मुद्रा द्विजाये तथा मूषमत्तका उच्चा  
रण कर 'अमुद्वेकता तर्पयामि' इस मन्त्रसे उ वार  
म तपण करे । बादमें 'अमुद्वेकतायै पतञ्जलममुता  
पिषाममसि इम म हसे अन्नदान करनेके बाद आशम  
नीय आदि देने होगे ।

विष्णुका नैवेद्युपक बाद नाभारण पूजा गद्वनिक  
अनुसार विमञ्जम कर सभी कार्य समाप्त करे । सोलह  
काक श्रप करनेसे विष्णुमत्तका पुरश्चरण होता है ।

"विष्णुसङ्घं प्रबन्धेन्मनुनेन उपाधिषा ।  
वर्षाणां वरिष्ठैर्भुवन्मभुवत्पुत्राः ॥" ( उन्वणर )  
अमुतिप्रण्यादिमें जो विष्णु पूजाका विवरण दिया  
गया है, विस्तार हो ज्ञानेक मयस वहाँ उमका उन्वेक  
नहीं किया गया । आङ्घ्रिकतत्त्व आदि मथीमें उमका  
सबिन्तर विवरण थाया है ।

शिवपूजामें शिवको अष्टमूर्ति की पूजा कर्तक पाछे  
विष्णुकी अष्टमूर्ति का पूजा करनी होती है । विष्णुकी  
अष्टमूर्ति के नाम ये हैं—उग्र, महाविष्णु, उबल त सम्य  
तापन श्रुति इ, मीयथ, मीम और सूरपुङ्गव । इन  
सब नामोंमें अतुर्षी विमक्ति जोड़ कर आदिमें प्रत्येक  
तथा अतमें 'विष्णवे नमः' कद कर पूजा करे । विष्णु  
की इस अष्टमूर्ति का पूजन शिवसिद्धिक सममुत्पादि कर्म  
म करना होगा । (सिद्धार्थाने उन्व ७७०)

गदहपुराणक २३२ २३४ अध्यायमें विष्णुमत्तिक  
विष्णुका नमस्कार, पूजा, स्तुति और उपासक मन्त्र धम  
विष्णुन साक्षाधना की गद है । विस्तार हो ज्ञानेक  
मयस वहाँ उमका उन्वेक नहीं किया गया ।

विष्णु नामकी व्युत्पत्ति ।  
मत्स्यपुराणमें पृथिवीक मुक्तमें अथवात्क कुछ नामों  
की व्युत्पत्ति इस प्रकार देखनेमें आती है । देहिपोक  
मध्य सिर्य अगवान् हो अथयेन हैं इसा कारण इनका  
नाम शैव हुआ है । प्रजादि रूपनामाका अर्थम है कि तु  
मगवात्का अर्थम नहीं है । ये अर्थम इगानम सदिव्युत्त  
है इसी कारण इनका नाम अक्युत्त है । प्रया और इन्द्रादि

देवताओंका वे ही निगृहीत करके हरण करते हैं, इस कारण उनका नाम हरि पडा है। देव, यज्ञ और श्री द्वारा वे भूतोंका सनातन कालमें सम्मति करते हैं, इस कारण वे सनातन हैं। ब्रह्मासे आरम्भ करके कोई भी उनका अंत नहीं पाता, इस कारण वे अनंत हैं। कोटि कोटि कल्पमें भी उनका क्षय नहीं है, वे अक्षय और अव्यय हैं, इसी कारण उन्हें भगवान् कहा गया है। नाराका अर्था जल है, उसमें उन्हेने अयत वा वायु किया था, इस कारण उनका नाम नागायण है। प्रति युगमें पृथिवीके प्रणष्ट होनेसे वे ही फिर उसको लाभ करते, इस कारण वे गोविन्द कहलाते हैं। हृषीकेश अर्था इन्द्रिय है, वे उनके अत्रिपति हैं, इसीसे उनका हृषीकेश नाम पडा है। युगात्कालमें ब्रह्मासे आरम्भ करके सभी भूतवृन्द उनमें अधवा वे ही भूतवृन्दमें वाम करते हैं, इस कारण उनका नाम वासुदेव हुआ है। प्रति कल्पमें वे भूतोंको वाग वाग सङ्कर्षण वा संहरण करते हैं, इस कारण वे सङ्कर्षण नामसे प्रसिद्ध हैं। देव, असुर अधवा रक्षः कोई भी प्रतिपक्ष हो कर ठहर नहीं सकता, सभी घर्मोंके वे प्रतिद्वयु वा पाता हैं, इसी कारण उनका नाम प्रद्वयुस्र हुआ है। भूतवृन्दके मध्य उनका कोई भी निरोध नहीं है, इस कारण उनका दूसरा नाम अनिरुद्ध है। ( मत्स्यपु० २२२ अ० )

विष्णुलोक लाभ ।

सकाम व्यक्ति कर्मभोग करता है, परन्तु निष्काम व्यक्ति देहत्यागके बाद निरुपद्रवसे निरामय विष्णुपद पाते हैं। निष्कामियोंको फिरसे इस संसारमें आना नहीं होता। जो द्विभुज कृष्णको आराधना करते हैं, उनकी गति वैकुण्ठमें तथा त्रुभुंज नारायणके भक्त सेवकोंके स्थान गोलोकमें होती है। सकाम वैष्णवोंको वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है सही, पर उन्हे फिरसे भारतमें आ कर द्विजातिकुलमें जन्म लेना पड़ता है। पीछे कालक्रमसे वे भी निष्काम साधक होते हैं।

( ब्रह्मवै प्रकृतिल० २४ अ० )

विष्णु—कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंके नाम—१ सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् गोपीराजके शिष्य। ये भी एक ज्योतिर्विद् कह कर मार्चण्डवल्गुभमें वर्णित हुए हैं। २ आश्वलायन-

गृथकारिका वर्णित एक ग्रन्थकर्ता। ३ आश्वलायन प्रयोग वृत्तिके रचयिता। इन्होंने देवस्यार्मी, नागायण आदिका पदानुस्मरण किया है। ४ कात्ययणके रचयिता। ५ कुण्ड मरीचिमालाके प्रणेता। ६ विद्यापराधप्रायश्चित्तके रचयिता। ७ त्रिवर्महितम्नोतके प्रणेता। ८ पद प्राचीन धर्मशास्त्रकार।

विष्णुउपाध्याय—विष्णुगृह वा विष्णुगृहार्थ नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

विष्णुऋद्ध ( म० स्त्री० ) विष्णुध्विदेवनाथः ऋद्धम् । श्रवणा नक्षत्र ।

विष्णुकन्द ( म० पु० ) विष्णुप्रियः कन्दः । मूलविशेष । यही क्रोड्ढणपं प्रसिद्ध स्वनामधेयत महाकन्द है। पगाय—विष्णुगुप्त, सुपुत्र, बटुसम्पुत्र, जल्वाम, गृहसूकन्द, दीर्घ पद, हरिप्रिय । गुण—मधुर, मीनल, रुच्य, मन्तर्पण कारी तथा पित्त, दाह और ज्ञाननाशक । ( राजनि० )

विष्णुकवच ( म० स्त्री० ) धारणीमेश । अग्निपुराणमें विष्णुका माहात्म्यमन्त्रक यद् कवच लिखा है।

विष्णुकवि ( म० पु० ) १ भोजप्रबन्धभूत एक कवि । २ क्रतुरत्नमाला नामक एक प्राङ्गानसूत्रपद्धतिके रचयिता, श्रीपतिके पुत्र और जगन्नाथ द्विवेदीके पौत्र ।

विष्णुकाक ( म० पु० ) नीला अपराजिता, नीला कोयल लता ।

विष्णुकाञ्ची ( म० स्त्री० ) दक्षिणात्यका एक प्राचीन नगर और पवित्र तीर्थक्षेत्र । जङ्गुराचार्यने इस नगरकी प्रतिष्ठाकी। काञ्ची देखो।

विष्णुकान्ता ( सं० स्त्री० ) नीली अपराजिता, नीली कोयल लता ।

विष्णुकान्ती ( सं० स्त्री० ) नीर्यमेश ।

विष्णुकुण्ड—प्राचीन प्राग्ज्योतिषके अन्तर्गत लोहित्य नदीके दक्षिणस्थ एक प्राचीन तीर्थ । ( योगिनोत्तर ४७२ ) हिमवत्स्रण्डमें भी इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है।

विष्णुकुम्भ ( सं० पु० ) विष्णो कुम्भः । विष्णुका पादन्वयास । ( तैत्तिरीयसं० ५।२।१।१ )

विष्णुकान्त ( सं० पु० ) १ सङ्कोतका तालमेद । रथकान्त देखो। २ इक पेचा नामक लता या उसका फूल ।

विष्णुकान्ता ( सं० स्त्री० ) विष्णु स्तम्भर्णाः कान्तो वा याव

विष्णुगुणवर्णनार्थं विष्णुपरिवर्णनार्थं अथवा। तथा  
एवम् । १ नीली अपराजिता या कोयल नामका लता ।  
पर्याय—इन्द्रिकास्ता, नीलपुष्पा, अपराजिता, नीलकास्ता,  
सुनीला विक्रान्ता, छद्दि का । गुण कटु, तिक्त, वात  
श्लेष्मरोग और विषशोधनाशक मेघाबद्धक, पवित्रता  
कारक और शुभाद् तथा क्रिमि, ज्वर और कफरोगमें  
हितकर ।

२ वाराहोक्तम्, वे ही । ( वैषकनि० ) ३ ज्योति  
पोक्त स कल्पितविधेर । ४ नीले फूलवासी गङ्गाधुमी ।  
विष्णुशक्ति ( स० स्त्री० ) विष्णुशक्ति देवी ।  
विष्णुश्रेष्ठ ( सं० स्त्री० ) तीर्थनेत्र ।  
विष्णुगङ्गा ( स० स्त्री० ) नदीनेत्र ।  
विष्णुगङ्गा—गया जिलेके मस्तगत एक प्राचीन ग्राम ।

( भविष्य ब्रह्मवद् १६/१५ )

विष्णुगणक—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विदुः । ये ज्योतिर्विदुः  
प्रधान विचारकर पुत्र तथा कंशक और विष्णुनाथक  
माई थे ।

विष्णुमण्ड ( स० स्त्री० ) शाक फूलका मङ्गलदुग्धा ।  
विष्णुगाथा ( स० स्त्री० ) विष्णुकथा विष्णुमन्त्रगाथा  
आश्राय या आलोचना ।

विष्णुगुप्त ( स० पु० ) विष्णुना गुप्त रक्षितः । १ कौण्डिन्य  
नामने परिचित एक क्षत्रिय और विख्यात वैद्यकरण ।  
इन्होंने शिवशेखर कोपालमें पड़ कर आत्मरक्षाक छिपे  
विष्णुको शरण ली थीं । विष्णुने इन्हें शिवशेखर कोप  
वहिनसे बचाया था । इसी कारण ये पाछे विष्णुगुप्त  
नामने प्रसिद्ध हुए थे ।

२ पृष्ठपोषकारा सुपण्डित और राजभोतिष्ठ आचक्षय  
का असमो नाम । ये मौर्यवंशक ब्रह्मगुप्तक भ्राता  
और पृष्ठपोषक थे । मुद्राराक्षस नाटकमें विष्णुगुप्त  
चरित्रमें इनका चरित्र चित्रित होनेके बाद ये भी विष्णु  
गुप्त नामसे प्रसिद्ध हुए । ३ वात्स्यायन मुनि । पर्याय—  
कौण्डिन्य आचक्षय, द्रमिष्य, अशुभ, वात्स्यायन मन्त्र  
नाग, पक्षि ज्ञानी । ( विक्रमच्योत्र )

४ महासूक्तक, बडो सूक्त । ५ विष्णुकव्य । ६ पचावि ।  
( स्त्री० ) ७ आचक्षयसूक्त ।

विष्णुगुण—१ एक सुभाषीन ज्योतिर्विदुः । विष्णुगुण

मिथ्यामन क्या इन्होंने बनाया ? बराहमिहिर, इत्यत्र  
हेमाद्रि आदिने इनका उल्लेख किया है । २ शाकुराचायक  
एक शिष्य ।

विष्णुगुणक ( स० स्त्री० ) आचक्षयसूक्तक, बडा सूक्त ।  
विष्णुगुणदेव—१ मगधक गुप्तवंश का एक सम्राट्, उक्त  
गुप्तवंशक पुत्र । परममहारिका राममहिषी इच्छादेवीक  
पति स इनक ज्ञातित गुप्तवंश ( २५ ) नामक एक पुत्र  
उत्पन्न हुआ था ।

२ राजा विष्णुगुणक पुत्र । राजाने एक जलनामी  
स स्वरक सिधे सामन्त के प्रथमाको जो भादृशगल  
दिया युवराज विष्णुगुण इसीके वृत्तक थे । ये लगभग  
१५३ ई०में विद्यमान थे ।

विष्णुगुहस्वामी—आश्वलायनश्रौतसूत्रभाष्य और आश्व  
लायन परिशिष्टभाष्यक प्रणेता । इसक मिका उक्त  
प्रयोग और इशाराप्रयोग नामक इनक सिक्त दो कण्ठ  
ग्रन्थ सो मिलत हैं ।

विष्णुगुह ( स० स्त्री० ) विष्णुके प्रतिष्ठित गुहम् । १ विष्णु  
मन्दिर । जो व्यक्ति लकड़ो, मिट्टो या ईंट किली सो  
उदाहरणसे हरिमन्दिर बना देता है, वह इहलोकमें सुख  
भोग कर परलोकमें स्वर्ग पाता है । बहिष्कारार्थं विष्णु  
गुह प्रतिष्ठातका फल इस प्रकार लिखा है ।

विष्णुमन्दिरका निर्माण कर उसका प्रतिष्ठा करनेको  
बात तो दूर रहे जो कायमनोबाक्षयस मन्दिरनिर्माणकी  
आत्यन्तिक इच्छा रखन हैं अथवा इमेशा उनको चिन्तना  
करनी है या जो किसीक मन्दिरनिर्माणविषयक अमि  
माय प्रवृत्त करनी पर उसे सम्पत्क रूपसे अनुमोहन करन  
हैं वे सो सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुमाकको ज्ञाते हैं ।  
फिर जो इनको प्रतिष्ठा करते हैं व इजारे बर्ष तक  
स्वर्गभोग करेगे । इसक सिवा जो हरिमन्दिरका  
फिरसे स स्वर कर देते हैं वे भी पूर्ववत् फलके  
अधिकारी होते हैं । ( गोपेन पु० ) २ ताम्रलिप्त नगर ।  
३ स्तम्भपुर नामक नगर ।

विष्णुगोप—१ वाग्निपातक काश्चिपुरक एक राजा ।  
सम्राट् समुद्रगुप्तने इन्हें परास्त किया था । ये वैशराज  
नामसे प्रसिद्ध थे ।

विष्णुमण्ड ( स० स्त्री० ) भोगप्रकरणोक्त घटावस्वामिनेद्र ।  
( इक्ष्वाकुरिणा )

विष्णुचक्र ( सं० क्ली० ) विष्णोश्चक्रमिव । १ हस्तमध्य रेखामय चक्रविशेष । यह चक्र जिसके हाथमें रहता है, वह व्यक्ति राजभक्तवर्ती अर्थात् सर्वभूमीश्वर होता है तथा उसका प्रभाव अव्याहृत और स्वर्गी पदान्त विस्तृत हो जाता है । ( विष्णु पुराण १।१३ )

२ सुदर्शनचक्र ।

विष्णुचन्द्र—१ भूपसमुद्ययतन्त्र और सवेसागतन्त्र नामक दो तन्त्रोंके रचयिता । इन दोनों तन्त्रोंमें पुराण और तन्त्रसमूहसे शाक्त और शैव सम्प्रदायकी उपास्य विभिन्न देव देवियोंकी पद्धति और मन्त्रादि लिपिवद्ध हैं । ग्रन्थ की श्लोकसंख्या ५३ हजार है ।

२ वसिष्ठमिद्वान्तके प्रणेता । ब्रह्मगुप्त और मट्टोत्पलने इनका वचन उद्धृत किया है ।

विष्णुचिन्तित्—कल्पसूत्रव्याख्या, प्रमेयसंग्रह, विष्णुपुराण-टीका और मन्यासविधि नामक ग्रन्थोंके प्रणेता । विष्णुचिन्तिका कल्पसूत्रव्याख्या तथा रामाण्डार या रामान्तिचित् कृत आपस्तम्बश्रौतसूत्रभाष्यका पर्यालोचना करनेमें मालूम होता है, कि दोनों ही परम्पर संश्लिष्ट हैं । किन्तु दोनों एक व्यक्ति हैं वा नहीं कह नहीं सकते ।

विष्णुज ( सं० त्रि० ) विष्णुजात, विष्णुसे उत्पन्न ।

(वराहसं० ४६।११)

विष्णुतत्त्व ( सं० क्ली० ) विष्णोस्तत्त्वम् । विष्णुका माहात्म्य, वह ग्रन्थ जिसमें विष्णुकी मौलिकता आलोचनित हुई है ।

विष्णुतर्पण ( सं० क्ली० ) विष्णुके उद्देश्यसे तर्पण ।

विष्णुतिथि ( सं० पुं० स्त्री० ) हरिचामर शुक्ला पद्मादशी और द्वादशी तिथिभेद ।

विष्णुतीर्थ ( सं० क्ली० ) १ मन्यासविधिक प्रणेता । स्मृत्यर्थमागारमे इनके रचित कुछ ग्रन्थोंका वचन उद्धृत है । २ स्कन्दपुराणोक्त तीर्थभेद ।

विष्णुतैल ( सं० क्ली० ) चानध्याघिरोगोक्त तैलोपश्रयिशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—तिलतैल ४ सेर तथा गाय और भैंस का दूध १६ सेर ले कर उममें गिला पर पिमा हुआ गालपान, पिठवन, विजयंत, गोपवह्ना रेडीका मूल, बुद्धी, कण्टिकारी, नाटाकरञ्जका मूल, शतमूली, नील-

भिन्दीका मूल, प्रत्येक आठ तोला ले कर मिलावे । पीठे लोहे या मिट्टीके बरतनमें ६४ सेर पानीके साथ पाक करे । पाक शय होने पर अर्थात् मिर्चा तैलके रह जाने पर उसे उतार कर छान ले । चानध्याघि अथवा जिस किमी चायुकी विद्वानि अवस्थामें इसका व्यवहार करने से बहुत उपकार होता है ।

विष्णुत्व ( सं० क्ली० ) विष्णुका भाव या धर्म ।

विष्णुत्वात—आचार्यभेद । आप योगशास्त्रमें सुपरिद्धत थे ।

विष्णुदत्त ( सं० त्रि० ) विष्णुता दत्तं । विष्णुप्रदत्त, विष्णुका दिया हुआ । ( भागवत ५।१७।४ )

विष्णुदत्त अग्निहोत्री—श्राद्धाधिकारके रचयिता ।

विष्णुदाम १ एक सामन्त महाराज । ये परमभद्रारक महाराजाधिगज २य चन्द्रगुप्तके अग्रज थे । २ एक वेषणव माधु । ( भविष्यभक्ति० )

विष्णुदाम (श्रीशक्ति)—एक राजा (१६०० ०) । ये ताजिकस्मारके प्रणेता सामन्तके प्रतिपालक थे ।

विष्णुद्वय—१ मन्त्रदेवताप्रकाशकार प्रणेता । ये लक्ष्मणके पुत्र और परमाराध्यके वीर थे । २ एक वेदपाग्य ब्राह्मण । गुप्तराज हस्तिनले इन्हें भूमि दी थी ।

विष्णुदेवदत्त—एक उद्योतिर्निर्दृष्ट । इन्होंने रुद्रचिन्तामणि टीका, विष्णुकरणोदाहरण और सूर्योपश्रयण नामक तीन ग्रन्थ लिखे ।

विष्णुदेवत ( सं० त्रि० ) विष्णु देवता वा यस्य । १ विष्णुदेवताका उच्यते, जिस उच्यके अधिष्ठात्री देवता विष्णु है । ( क्ली० ) २ श्रवणानक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता विष्णु । ( ज्योतिस्तत्त्व )

विष्णुदेवत्य—विष्णु देवत देवो ।

विष्णुदेवत्या ( सं० स्त्री० ) विष्णुदेवत्यमभ्याः । एका दशो और द्वादशो तिथि । इन दोनों तिथियोंके अधिष्ठात्री देवता विष्णु हैं ।

विष्णुद्विप् ( सं० पुं० ) विष्णुं द्वेष्टि इति विष्णु द्विप् द्विप् । १ असुर, दैत्य, दानव इत्यादि । २ एक जैन ।

विष्णुद्वीप ( सं० पुं० ) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम ।

विष्णुधर्म ( सं० पुं० ) विष्णुप्रधानो धर्मोऽस्मिन् । १ भक्ति

प्रथमविशेष। इस ग्रन्थमें विष्णुविषयक धर्मोंका उल्लेख दिया गया है। २ विष्णुकी उपासनाका योग्य धर्म यह धर्म जिसके अन्तर्गत पर विष्णुकी उपासना करनी होती है। ३ वेष्णुधर्म। ४ विद्याविशेष। यथाविधान इस विद्याकी उपासना करनेसे इन्द्रत्व प्राप्त होता है।

( गङ्गपुराण २०१ म० )

विष्णुधर्मोत्तर ( स० स्त्री० ) पुराणसंहिताविशेष। इस संहिताके प्रथमकर्ण अथवा प्रथमके पुत्र तथा यथा शौन कादि श्रुति ये। इसमें प्राय एक सौ बृहत्तम वर्णित हैं। यह विष्णुपुराणका एकान्त है। कोई कोई इसे एक उपपुराण मानते हैं। ब्रह्मसंस्ताने अष्टतम दान सागरमें तथा इन्द्रायुधके प्राङ्गणसंरक्षकमें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

विष्णुधारा ( स० स्त्री० ) १ तीर्थमेव। २ हिमवत्पर्वत से निकली हुई एक नदी। ( दिन० क० ३२, २६ )

विष्णुनदी ( स० स्त्री० ) १ नदीमेव। २ विष्णुपदी अथ नदी।

विष्णुनदी—एक ब्राह्मण। गुप्तसम्राट् महाशय मय नामके इन्हीं भूमि का यो।

विष्णुपत्र ( स० पु० ) पुराणानुसार विष्णुका एक कवच। कहते हैं, कि यह कवच धारण करनेसे सब प्रकारक मय दूर हो जाते हैं।

विष्णुपश्चित्त—१ गणितसारक रचयिता, दिवाकरके पुत्र और गोबन्धनके पुत्र। इनके बड़े भाई गङ्गाधरने १३२९ ई०में खोजावतीखोका मित्रो। ५ तात्पर्यदीपिका नामक अन्तर्गतपद्योकाके प्रणेता। ये शिशुपालकवच टीकाके प्रणेता चन्द्रशेखरक पिता और एकमहक पुत्र थे। ३ गोक्षेत्रदीपक प्रणेता।

विष्णुपति—तत्पर्यन्तमणि शब्दपर्यन्तदीपक रचयिता। इनके पिताका नाम रामपति था।

विष्णुपत्नी ( स० स्त्री० ) १ विष्णुकी पत्नी, अर्जुनी। २ मर्दति। ( शुक्लब्रह्म २३१६० )

विष्णुपद् ( स० स्त्री० ) विष्णोपद्। १ आकाश। ( अमर ) २ क्षीरसमुद्र। ( मरिची ) ३ पद्म, कमल। ( हेम ) ४ तीर्थविशेष। इस तीर्थमें स्नान कर बामन देवकी पूजा करनेसे सभी पाप दूर होते हैं तथा विष्णु

कोकमें गति होती है। ५ कौशास्यपर्वतका स्थान विशेष। ( भारत ५, १११, १२ ) ६ पर्वतविशेष। ( हरि व ग ११, १२ ) ७ विष्णुका स्थान। ( विष्णुपुराण २५ म० ) ८ शुभमय्य। आसन्नमृत्यु व्यक्ति यह स्थान देख नहीं सकता। ( काशीक ० ४२, १६ १४ )

६ विष्णुपद्। भारतक जिन सब स्थानोंमें पद्म बिन्दु विद्यमान है, वे सब स्थान एक एक शोधशेखरमें गिने जाते हैं। गयाक्षेत्रमें विष्णुपद् विराजित देखा जाता है। बृहन्नीलतन्त्रमें मो एक विष्णुपद्का उल्लेख है। इसके समीप गुप्ताक्षिणीर्ष्य है।

( इक्ष्मीक २१-२२ म० )

विष्णुपदा ( स० स्त्री० ) विष्णुः पद स्थानं मर्यादा गौरादित्यात् कोप्। १ गङ्गा। गङ्गा विष्णुपदसे निकला है इस कारण इस विष्णुपदी कहते हैं। २ संक्रान्तिविशेष। एष पृथिव्य कुम्भ और सिंहराशिमें सूर्यसंक्रमण होनेसे इसे विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं। यर्थात् जिस जिस संक्रान्तिमें सूर्य मेघराशिसे द्रुपमे, ककटसे सिंहमें, तुलासे वृश्चिकमें तथा मकरसे कुम्भ राशिमें जाते हैं, उन्हे विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं। अथवा वैशाखक बाद स्यैष्ठ्यासक मारगमें तथा धायणक बाद भाद्र कार्तिकके बाद अग्रहायण और माघक अस्तमें तथा फाल्गुन मासक मारगमें जो संक्रान्ति होती ४ वह विष्णुपदीसंक्रान्ति कहालाती है। यह विष्णुपदी संक्रान्ति अतिशय पुण्यवत्ता है। इसमें पुण्यविधिको स्नानदानादि करनेसे प्रायः शुभ फल होता है। ( विहितत्व )

विष्णुपदाच्छक ( स० स्त्री० ) विष्णुपदाः संक्रान्त्याश्च । स्यैष्ठ्य, अग्रहायण भाद्र और फाल्गुन मासकी संक्रान्ति में शुभाशुभहायक चक्र। काष्ठपुठके अङ्गमें नमी महतीको विन्यास कर यह चक्र निरूपण करना होता है। इस विष्णुपदासंक्रान्तिमें जिस महत्तको सूर्य संक्रामण होता है, वह महत्त शुभम तथा इससे बहिनवाहुमें चार, दोनों पैरों तान तीन, बामबाहुमें चार, दायमें पांच दोनों चहलूम दो दा, मस्तक पर दो तथा गुटामें एक, इस प्रकार समी महत्तको विन्यास कर फल निरूपण

करना होता है। फल यथाक्रम रोग, भोग, यान, वन्दन, लाभ, ऐश्वर्य, राजपूजा और अपमृत्यु आदि होंगे।

विष्णुपरायण ( स० स्त्री० ) विष्णुभक्त, वैष्णव।

विष्णुपर्णिका ( स० स्त्री० ) पृथिवर्णी, पिठवन।

विष्णुपर्णी ( स० स्त्री० ) भूमग्रामलकी, भुईंआवला।

( वैद्यकनिघ० )

विष्णुपाद ( स० स्त्री० ) १ विष्णुका पदचिह्न। २ एक गण्डशैल। वैष्णवचूड़ामणि राजा चन्द्रने विष्णुके उद्देशसे इसके ऊपर एक ध्वज (स्तम्भ) निर्माण करा दिया है। शिलालिपि सम्बलित वह ध्वज अभी दिल्ली के निकटवर्ती एक देशमें संरक्षित है। प्रकृत विष्णुपाद शैलका अवस्थान पुष्कर शैलके निकट है।

विष्णुपादुका—भागलपुर जिलेके अन्तर्गत चम्पानगरके समीप वीरपुरमें अवस्थित एक सुप्रसिद्ध जैनमन्दिर। कहते हैं, कि उस मन्दिरमें विष्णुपद विराजित है, इसमें निकटवर्ती ग्रामवासियों उसके प्रति विशेष भक्तिश्रद्धा दिखलाते हैं। जैन लोग जैनसम्प्रदायके उपास्य चौबीसवें देवताके पदचिह्न समझ कर उसकी पूजा करते हैं।

विष्णुपीठ ( स० पु० ) योगिनी-तन्त्रोक्त पीठभेद।

( योगिनीतन्त्र १७ )

विष्णुपुत्र ( स० पु० ) विष्णुके पुत्रः। विष्णुके तनय।

विष्णुपुर—१ बङ्गदेशके अन्तर्गत बाकुडा जिलेका एक उप विभाग। यह १८७२ ई०में विष्णुपुर, कोटालपुर, इन्दास और सोनामोखी ले कर संगठित हुआ है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत बाकुडा जिलेका प्राचीन नगर। यह अक्षा० २७° २४' ३० तथा देशा० ७७ ५७ पू०के मध्य द्वारिकेश्वर नदीसे कुछ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां प्रायः २०००० लोगोंका वास है। यह नगर प्राचीन और समृद्धिशाली है तथा बाकुडा जिलेका वाणिज्य प्रधान स्थान है। यहांसे चावल, नैल, शस्य, लाल, रुई, रेशम आदिकी रफतनी तथा नाना प्रकारके विलायता द्रव्य, लवण, तमाकू, मसाले, मटर, उड़द आदि द्रव्योंकी आमदनी होती है। इस नगरमें बहुतसे जुलाहोंका वास है। यहां जगह जगह हाट बाजार लगता है। यह स्थान उत्तम रेशमी वस्त्रके लिये प्रसिद्ध है। यहां साधारण विचारालयादिको छोड़ विद्यालय,

हिन्दूमन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिद आदि भी हैं। एक प्रसिद्ध प्राचीन उच्च राजपथ कलकत्तेसे इस नगर जाता हुआ उत्तर पश्चिमको चला गया है। यहांसे एक दूसरा महक दक्षिण मैदिनापुरकी ओर दौड़ गई है। प्रवाद है, कि प्राचीन विष्णुपुर स्वर्गके "इन्द्रभवन"के समान मनोरम था। इस प्राचीन नगरमें जगह जगह ऊंचा अट्टालिका घाई और भित्तिनिर्माण प्रभृतिके सम्बन्धमें बहुतसा अलौकिक किम्वदंतिया सुनी जाती हैं। यह नगर प्राचीन कालमें बहुसंख्यक मीथावली और परिष्वा द्वारा सुदृढ़ था। उसकी लम्बाई ७ मील तक था, बीच बीचमें पुल बने हुए थे। दुर्गप्रकारके मध्य ही राजप्रासाद वर्तमान था। अभी जो मन्नावशेष दिखाई देता है, वह बड़ा ही कानूहलीहोपर और मनोहर है। नगरके मध्य जो मन्दिर है, उनके मन्नावशेषसे प्राचीन हिन्दू स्थापत्यका काफी प्रमाण मिलता है। नगरके दक्षिणो दरवाजेके समीप विशाल शम्भागारका मन्नावशेष है। दुर्गके भीतर जो अभी जंगलसे ढक गया है, सदा दश फुटकी एक बड़ी लोहेकी कमान है। कहते हैं, कि यहांके राजाओंमेंसे एकने देवप्रासाद रूपमें इस कमानको पाया था। इष्ट द्रष्टव्य कम्पनीकी फिदरिश्त देखनेसे मालूम होता इन्हीं 'ह विष्णुपुरराजवश क समय बङ्गाल भरमें प्रसिद्ध था। आर्थि रेनेलके History of the East and West Indies नामक ग्रंथके मानचित्रमें (London edition 1776) विशेनपुर (विष्णुपुर) और कलकत्ता इन दोनों नगरोंके नाम बङ्गदेशीय लेफ्टिनाण्ट गवर्नरके अधिकृत स्थानोंके मध्य बड़े अक्षरोंमें अङ्कित है। विष्णुपुर राज्य स्थापनके दिनसे ही यहां उस राजवंशका महोद्द प्रचलित देखा जाता है। प्रवाद है, कि जयपुरके एक राजा देशपरिभ्रमण की इच्छासे खोंके साथ घरसे निकले। पुरुषोत्तमका और जाननेमें उन्हें विष्णुपुर मिला। यहां वे एक निविड अरण्यके किसी पान्थनिवासमें ठहर गये। इसी समय उनकी पत्नीने एक पुत्ररत्न प्रसव किया। राजाने सद्यःप्रसवा रानीको साथ ले जाना अच्छा नहीं समझा और पुत्रके साथ उसको वहीं पर छोड़ आपने प्रस्थान कर दिया। कहते हैं, कि तीर्थयाता कालमें माता भी

नयनात् गिगुको वही छोड़ प्यामोकी अनुगामिनो हुई । इस घटनाक बाद धोकाशमितिवा नामक वाग्दो जाति का एक लकड़हारा उस वध को अपने वहाँ उठा ले गया और मात वर्ष तक उसका आसन-पासन किया । एक दिन जिसा ब्राह्मणको उस गिगु पर नजर पड़ गई । उसको सौन्दर्य पर विमुग्ध हो तथा उसे राजोचित सज्जनाभ्यस्त देख के उसको अपने वहाँ उठा ले गये । वह ब्राह्मण वारिद्र्यवशातः उस बाइकका गाय बनाने तथा भरण पोषणके लिये गृहकार्यमें नियुक्त करनेका वाच्य हुए थे । बाग द्वितीये उनका नाम रघुनाथ रखा था । एक दिन रघुनाथका एक गाय अपने दस्तक चढ़ी निकल गई । रघुनाथने ब्रह्मके उस तमास हुआ, पर वह गाय नही मिली । आकर मूक प्याससे कातर हो वह बसी निकल बनमें एक वृक्षकी नीचे सा रहा । जब वह वृष गाड़ी मीरुम सो रहा था, तब एक मयकुर गोकुला सायि पातयन्ता गुल्ममतास निकल कर वाइकक पास भाया और उसक ऊपर अपना रजित फल फेंका कर स्वर्ण किरणको टोकने लगा था ।

एक दिन तन्नेमें स्नान करत समय रघुनाथने सोने का एक गोरु पाया और उसे अपने माइकको दे दिया । माइकने इसे दामकक मविष्य शक्तिविबुधस्वरूप समझ बड़े हर्षसे रक किया । इसक कुछ समय बाद वहाँक मङ्गली राजाकी मृत्यु हुई । अन्त्येष्टिकियाकी लैवारी बडी धूमधामस हुई । समा शैलोक श्रेण निमग्नित हुए । वरिद्र ब्राह्मणन भी पुत्र रघुको ले दूसरे दूसरे ब्राह्मणोंक साथ राजपुरीमें प्रवेश किया । जब ब्राह्मण मोक्षण हो रहा था, बसी समय स्वर्गीय राजाका स्वारी हाथी मूड़ बढाना हुआ भाया और रघुनाथको अपनी पीठ पर बैठा कर गृध्रासिनिस दामनकी ओर भ्रमसर हुआ । वह लड्डुन घटना देख परहे तो समी भोग बसाइतकी तरह पड़े रह, बाधुमें इले द्विचक घटना समझ उन भोगीने आनन्दकोबाइतमें विहमण्डमकी गुञ्जा दिया । राजम कीने दामकका राजमुकुट पहनाया और उन राजपद पर अविषिक किया । इस समय गायक, वाइक, बन्धी और धर्मोपात्रकगण पूजे न समारि और समा अपना अपना कर्त्तव्य वासन करन लगे ।

प्रवाद है कि रघुनाथ ही विष्णुपुरके प्रथम मल्ल राजा थे । इस राजव शनि प्रायः ११०० वर्ष राज्य किया राजा रघुनाथ वा आदिमल्लने बड़े यत्नसे समुद्रिशाली विष्णुपुर नगरका बसाया था । बहुत समय तक विष्णुपुर राज्य मल्लभूमि और ब्रह्मल महास कह कर प्रसिद्ध रहा अभी क सब स्थान बर्द्धमान, बांक्रुडा और पोर भूम सिद्धेक अन्तर्गत हो गया है ।

विष्णुपुरके राजा अधीनस्थ वाग्दोबोटीकी सहायता न महाराष्ट्राय विभूषकालमें मुनि वावाइके नबावको आसो मवद पडुआई थी । विष्णुपुर राजाकी सहायतासे मराठोंका वसन हुआ था । विष्णुपुरके राजा मुनि वावाइ नबावक करद राजाओंमें बहुत प्रसिद्ध थे ।

विष्णुपुर राजगन महाशाय धंशोय सन्निध है अचक्रुदेव और पुरादेवाक सबक और राजगण साम वैशीय कुमुमोशाकाक है । इनके श्रियि विष्णामिक हैं । आज भा इन्ह यकोपबीठ धारणके समय पवित्र 'गाया' मल दिया जाता है । विष्णुपुरके ५६ राजाओंमें कुठका पिवरण मोषे दिया जाता है ।

आदिपौने राजवामिकेकालमें १म रघुनाथसिंहको आदिमल्लकी बर्थाय ही । आदिमल्लने ७१५ ई०में जन्म महण किया । थे १ मल्लभूमि वहाँक राजा हुए तथा ३३ वर्ष तक उन्होंने राज्य किया । उनकी राजी चन्द्र कुमारी परिवाम प्रवेशस्थ स्वर्वभाय राजा इन्द्रसिंहकी कन्या थी । उन्होंने पाथोभरोक नामस एक मन्विर बनवाया था । छैवामाममें उनकी राजधाना थी ।

२य राजा जयमल्ल बाइने विष्णुपुरके राजा हुए । ७३६ ई०में उनका जन्म हुआ तथा ३३ मल्लभूमि ये राजा हुए । ३० वर्ष राज्य करक ३३ मल्लभूमि उनका शैतल हुआ । उनका राजी दानुसिंह नामक पश्चिम प्रदेशीय स्वर्पशाथ राजाकी कन्या थी । राजा जयमल्लन माल अरविहातोदेवक नाम पर एक मन्विर बनवाया । व क्षमताशाही राजा थे । इनके समय विष्णुपुरका लैय बल बहुत बढ़ गया था ।

३य राजा (पैनुमल्ल)-का जन्म ७३९ ई०में हुआ । उन्होंने ३३ मल्लभूमि राजा हा कर ३०६ व० तक राज्य किया । मनिवर निह नामक पारवस्थ स्वर्पशाथ



राजकुमारी काञ्चनमणि उनकी पत्नी थीं। इनके पाँच पुत्र थे। ज्येष्ठपुत्र ही राज्याधिकारी हुए। किन्तु अभा उनका वंश लोप हो गया है।

१६ वें राजा जगत्मल्लने २७५ मल्लाब्द (६६० ई०) में जन्मग्रहण किया। ३१८ मल्लशकमें (१०३३ ई०में) वे राजा हुए और ३३६ मल्लशक (१०५१ ई०में) उनका देहान्त हुआ। उन्होंने गोलकसिंहका कन्या चन्द्रावती का पाणिग्रहण किया था। इस समय विष्णुपुर एक जगद्विख्यात नगर था, यहाँ तक कि स्वर्गके इन्द्रभवनसे भी वह मनारम समझा जाता था। उस समय विष्णुपुरका सौधराजि श्वेतमर्मर पत्थरका बना हुआ था। पुरीमें नाट्यमञ्च, तोपखाना, वासगृह, और परिच्छदानगर विराजमान था। हस्तिशाला, सैन्यशाला, अश्वशाला, शस्यानगर, अस्त्रागार, कोपागार और देवमन्दिर विष्णुपुरकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा जगत्मल्लके समय बहुत दूर दूर देशके वणिकोंने विष्णुपुरमें आ कर आदृत खोला था।

१३३वें राजा रायमल्ल ५६४ मल्लाब्द (१२७७ ई०) में सिंहासन पर बैठे और ५८७ म० अ० (१३०० ई०में) स्वर्गका सिंघारे। उन्होंने २३ वर्ष तक राज्य किया था। उनका पत्नी वन्दलालसिंहकी कन्या सुकुमारा वार्ध थीं। उनके समय दुर्गका भी बड़ी उन्नति हुई थी। इस समय अनेक प्रकारके आग्नेय अस्त्र दुर्गमें लाये और रखे गये थे। सेनाओंको सुन्दर परिच्छेदसे सजानेकी व्यवस्था थी। उनका सेनाओंके आक्रमणसे कोई भी उस समय विष्णुपुर पर आक्रमण करनेका साहस नहीं करता था।

४८वें राजा वीर हम्बीरने ८६८ मल्लाब्दमें जन्म लिया। वे ८८१ म० अ० (१५६६ ई०) में राजा हुए। उन्होंने २६ वर्ष राज्य किया। उनके चार स्त्री और २५ पुत्र थे। वृन्दावनसे श्रीनिवासाचार्य जो लाखसे अधिक वीणव ग्रन्थ साथमें लाये थे, वे इन्हींके कौशलसे लूटे गये। आखिर वे श्रीनिवासाचार्यके निकट वैष्णव धर्ममें दीक्षित हुए। तभीसे मल्लराजवंश श्रीनिवासाचार्यके वंशधरोंके मन्त्रशिष्य हैं। वीर हम्बीरके समय तीन देवमन्दिर बनाये गये, दुर्ग परिक्षाशोभित

तथा उसके प्राचोरगात्रमें कमान खड़ी की गई। उन्होंने मुर्शिदाबादके नवाबके विरुद्ध सेना भेजी थी। अन्तमें उन्हें राजरूपमें स्वीकार कर १६७०० मुद्रा राजकर देनेके बाद वे अपने राज्य लौट आये। वीर हम्बीर देखो।

५५वें राजा गोपालसिंहका जन्म ६७२ म० अ० में और देहान्त १०५५ मल्लाब्द (१७०८ ई०) में हुआ। वे ३८ वर्ष तक राज्य कर गये। उन्होंने तुङ्गभूमिक राजा रघुनाथ तुङ्गको कन्यासे विवाह किया। उनके राजत्वकालमें पांच देवमन्दिर बनाये गये। उनके राज्यकालमें भास्कर पण्डितका अधिनायकतामें परिचालित महाराष्ट्रीय सेनादलने विष्णुपुर दुर्गके दक्षिण तोरण पर आक्रमण किया। राजा सेनाओंके साथ स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित थे, किन्तु उनका अदृष्टदेवी शत्रुके पक्षमें थी, इस कारण उनकी हार हुई। अन्तमें मदनमोहन देवकी कृपासे उन्होंने पुनः शत्रुओंको परास्त किया। कहते हैं, कि मदनमोहनकी कृपासे गोपालसिंहके आग्नेयस्त्रने स्वयं ही विपक्षोदल पर अग्नि उद्गारण की थी।

किसी दूसरेका कहना है, कि राजाने इस युद्धमें अच्छा पराक्रम दिखाया तथा असाधारण शिक्षा और शक्तिवलसे अनेक विपक्षी सेनाओंको यमपुर भेज दिया था, किन्तु जब उन्होंने देखा, कि वे रणक्षेत्रमें प्रधान सेनापतिको मार नहीं सकते तथा मराठोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेको उनमें शक्ति न रह गई, तब उन्होंने दुर्गमें आश्रय लिया। इसी समय मराठादलने असीम साहससे राजदुर्ग पर चढ़ाई कर दी, किन्तु राजाका सुशिक्षित कमानवाही सेनादलकी लगातार अग्निवृष्टिसे तंग आ कर वे लौट जानेको बाध्य हुए। युद्धमें महाराष्ट्र सेनापति पञ्चत्वको प्राप्त हुए, विष्णुपुरकी सेना विपक्षके द्रव्यादि लूट कर दुर्गमें वापिस आई। उन्हींके शासनकालमें वर्द्धमानके राजा कीर्ति चन्द्र बहादुरने विष्णुपुर पर आक्रमण कर राजाको परास्त किया। इसके कुछ समय बाद ही फिरसे दोनोंने मिल कर मराठोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था।

राजाके बड़े लडके विष्णुपुरके सिंहासन पर बैठे तथा छोटेको जागीरस्वरूप जामकुण्डो देश मिला।

आज भी छोटेके व शहर इस सम्पत्तिका भोग करने हैं।

बिष्णुपुर-राज्य शके इतिहासमें राजाओं द्वारा देव मूर्ति स्थापन या पुनरुत्थानि जनन कीर्तिका परिचय ही विशेषरूपसे दिया गया है। कोर कोर राजा बाणिस्य की बुद्धि द्वारा कोर मुखविग्रहादि और युगनिर्माण द्वारा तथा कोर राजधानीमें मित्र स्थापन नैतिका स्नान दान द्वारा राज्यकी पथेष्ट उन्नति कर गये हैं। राजा सिद्धासन पर कब्र बड़े बड़े ही बैसन थे। राजाक जन्माय पुत्र राजसम्पत्तिसे मरणोपपथोपयो धारिण्ड वृत्ति या जमीन पाते थे। बहुमानक मुसलमान राजा या शासनकर्त्ताओंके इमानेका इतिहास पढ़नेसे मालूम जाता है, कि यह राज्य श कमी मित्ररूपमें, कमी शत्रु रूपमें कमी करव राजारूपमें मुसलमान नवाबके माथ ममकहतासे राज्यशासन कर गये हैं। पद्यार्थमें मुर्शिदाबादके नवाब दरबारमें इन्ने कमी भावा पड़ता था। वे अफ़्ग़ान कम्पनीकी तरह नवाब-दरबारमें प्रतिनिधि द्वारा कमी कार्य कराया करते थे।

इस राज्य शके पञ्चासवे राजासे १६३७ ई०में ( १२२ मज्जाय्में ) व शगत 'मदध' की उपाधि परिस्वाग कर क्षत्रिय राजाओंको चिरपरिचित मि ह उपाधि प्रदय का नया परचक्रों राजगज उनी मि ह उपाधिसे सर्वशान्वित होते थे। १८वें सशोमें इन राज व शघणोंको उभरात्तर अवनति होमे लगी। मराठेनि लगतार बिष्णुपुरराज्यका लूट कर राजाओंको नि सहाय कर दिया। इसक बाद १७३० ई०में यहाँ कुर्मिद्र उपास्थन हुआ जिसम अधिवासिगण बिष्णुपुरराज्य को छोड़ अन्वत्र लसे गये। इस प्रकार बार बार सङ्घट मा पदमें प्राचीन और ससुष्ट बिष्णुपुरराज्य धीहीन हो गया। आदिर अफ़्ग़ानशासनका कडोस्ताम अण्य भारद्वाज और नाता बिपञ्जाकमें विरहित अयन्तन राज्य शघण उतोशरीको एकदम अथापतन हो गया। पद्यार्थमें अमा अफ़्ग़ानप्रथमें बहा करव राज्य शघण सामान्य उतोशरीकमें ही विद्यमान हैं।

राजा आदिमकके व शघण राजा पार्थम हने (१६५० ई०में) अनेक न कार्य और हानके कारणसे क्यानिवाम

की थी। बहुसंख्यक उन्नाशय और बिष्णुपुरके अनेक वांघ तथा किलने मन्दिर उन्ही की कोरिभिपत्ता करते हैं।

इस राज्य शके धैतम्यसि ह नामक एक राजा १८वें सशोमें जीवित थे। राजकार्यमें उनकी मन्त्रो प्रसिद्धि थी। उन्हींम इष्ट इण्डिया कम्पनीसे बाँकुडा जिलेके अरोप महदखेका दगशाळा बनोवन्न किया था। अमा इनके छद्मकीकी अमितभयपिताक कारण यह सम्पत्ति लष्ट हो गई ह, यहाँ तक कि बाकी राज्यसम सरकारने इसका अधिकांश अष्ट कर लिया।

प्रवाद है, कि राजा दामोदर मन्हेन अर्थात्नाथमपुत्र मदनमोहन बिपहको कलकत्तानिवासी गाकुमचन्द्र मित्रके यहाँ एक छाक रूपमें बन्धक रखा था। सुप्रसिद्ध मदनमोहन मूर्तिके इस प्रकार दूसरो शगद भाने पर लगर क्लमः भोहीव होता गया तथा राजाका भी आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। इसके कुछ दिन बाद हतभाग्य राजासे बड़े कष्टसे अर्थमंद्रद करक बिपहमुक्तिको आशासे अपने मन्त्रीको क्लकत्ता भेजा। मित्र महाशयने बपये तो ले लिये पर राजाको बिपह लौटा नहीं दिया। सुप्रिमकोरमें इनका विचार हुआ। राजाको उच बिपहको पुनर्वासिका अधिकार मिका। गोकुमचन्द्रने ठोक येसी हा एक दूसरो मूर्त्त बना कर राजाको ही और मूलमूर्त्ति अपने घर रखा। लोगोंका विश्वास है, कि कलकत्ता बागबाजारमें जो मदनमोहनकी मूर्त्ति है वही बिष्णुपुरको प्रसिद्ध मदनमोहन ह।

प्राचीन कीर्ति।

बिष्णुपुर के <sup>१०</sup>शोन नगर है। बहुतस मन्दि और प्राचीन भग्नावशेष उमका प्रमाण है। ये सब मन्दि सरधारजत। निम्नवङ्गमें प्रचलित गम्बूजाकृति लक्ष्मणसे प्रचित हैं। ऊपरी भागमें उतना काठकार्पांड लहो है, केवल गजमें ई ट और टाकीके ऊपर हा खादितशिल्प का निर्माण मिलता है। अनेक काठकार्पा सुन्दर हैं और आज तक नष्ट नही हुए हैं। दोवारके काठकार्पा रामायण और मात्तय सुद्धावचरणको आख्यायिकाक आधार पर चित्रित हैं। अधिकांश मन्दि कुण्य या हृत्पविद्याक नाम पर उरमग किये गये हैं। आनन्दकार्पा देकनेसे उतना सुर्वाचसङ्गन मालूम नहीं होता। इस

नगरमें मुसलमानी अमलके पहले रचित एक अति प्राचीन पृथक् तोरणद्वार है। इसके सिवा एक दूसरे वहिर्द्वारका भी भग्नावशेष दिखाई देता है। उममें मुसलमानों समयकी निर्माणप्रणाली और स्थापत्य शिल्पका निदर्शन मिलता है।

प्रत्नतत्त्वविदोंने इस स्थानके भग्नावशेष और मन्दिरादिका उत्कीर्ण लिपियां देख कर अनुमान किया है, कि वे सब कीर्तियां १६वीं सदीकी बनी हैं। जीर्ण और अल्पष्ट जिलालख खूब हृदयग्राही है। प्रधान प्रधान मन्दिर और श्रोत्रित लिपिका नीचे उल्लेख किया गया है—

प्राचीन शैवकीर्तियोंमें मल्लेश्वर शिवमन्दिर उल्लेखनीय है। इस मन्दिरमें उत्कीर्ण जिलालिपिसे मालूम होता है, कि ६२८ मल्लशकमें (१६७३ ई०में) श्रीवीर सिंहने यह मन्दिर बनाया। वार हम्बोरके वैष्णव दोआ लेनेके बादसे बहुतेरे विष्णुमन्दिर बनाये गये। उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध मन्दिर और उत्कीर्ण जिलालिपिके निर्माण कालका उल्लेख नीचे किया गया है—

(१) राजा रघुनाथ सिंहकर्क, क ६४६ मल्लशकमें प्रतिष्ठित राधाश्यामका नवरत्नमन्दिर। (२) ६६१ मल्लशकमें प्रतिष्ठित कृष्णरायका मन्दिर। (३) ६६२ मल्लशकमें प्रतिष्ठित कालाचन्द्रका मन्दिर। (४) ६६६ मल्लशकमें प्रतिष्ठित गिरिधर लालका नवरत्न। (५) ६७१ मल्लशकमें राजा दुर्जन सिंहको प्रधान महिषो द्वारा प्रतिष्ठित मुरलीमोहनका मन्दिर। (६) ६७६ मल्लशकमें राजा चौरसिंह प्रतिष्ठित लालजीका मन्दिर। (७) ६७६ मल्लशकमें राजा चौरसिंह प्रतिष्ठित मदनगोपाल मन्दिर। (८) ६८६ मल्लशकमें चौरसिंह प्रतिष्ठित राधा कृष्णका शैलमन्दिर। (९) १००० मल्लशकमें राजा दुर्जनसिंह प्रतिष्ठित मदनमोहनका मन्दिर। (१०) १०३२ मल्लशकमें राजा गोपालसिंहके समय स्थापित राधागोविन्दका सौधरत्न। (११) १०४० मल्लशकमें राजा गोपालसिंहका स्थापित महाप्रभु चैतन्यदेवका मन्दिर। (१२) १०४३ मल्लशकमें राजा श्रीकृष्णसिंहको महिषी द्वारा प्रतिष्ठित राधामाधवका मन्दिर। (१३) १०६४ मल्लशकमें राजा चैतन्यसिंहका प्रतिष्ठित राधाश्यामका मन्दिर।

इसके सिवा विष्णुपुरके प्राचीन भग्नावशेषके मध्य सूच्यप्रागमञ्च अति प्रसिद्ध है और इसका गठनप्रणाली अति आश्चर्यजनक है।

विष्णुपुराण ( मं० कृ० ) व्यासप्रणीत महापुराणमें है। यह पुराण अठारह पुगणोंमें एक है। एतद्य देखे।

विष्णुपुरी ( सं० खी० ) १ वैकुण्ठधाम। ( पु० ) २ प्रथम कर्त्ताभेद। ये वैकुण्ठपुरी नामस भा प्रसिद्ध हैं। तीर्थभुक्तिमें इनका घर था तथा मदनगोपालके ये शिष्य थे। भगवद्भक्ति रत्नावली, भागवतामृत, वाषपविधरण और हरिमक्ति कल्पलता नामक चार ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं।

विष्णुपुरी गोम्बामी—विष्णुभक्तिरत्नावली नामक वैष्णव ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रायः काशीमें रहा करते थे, इस कारण पुरुषोत्तमने स्वयं जगन्नाथदेवने उन्हें प्रलेप कर एक द्रुतके हाथ कहला मेजा था, 'पुरी! मैंने समझ लिया, कि भुक्तिभुक्तिकी आशासे काशीमें ही आपने डेरा डाला। मैं अर्थवित्तहीन वनचारी हूँ, मेरा इच्छा है, कि एक वार आपके दर्शन करूँ।' भक्तवत्सल भगवान्का यह वातमत्पूर्या आदेश सुन कर पुगने बड़े हर्षसे उत्तर दिया, "मैं भुक्ति, मुक्ति, गया काशी, मथुरा, वृन्दावन कुछ भी नहीं समझता। आप भी कौन हैं और आपका तत्त्व क्या है, यह भी मुझे मालूम नहीं, परन्तु जिस दिनसे 'जगन्नाथ कृष्ण' यह नाम मेरे कानोंमें सुसा है, तभीसे उस नामकी भाषाके हृदयमें धारण कर लिया है। अभी स्वयं प्रभुने जब मुझे अपनी शरणमें बुलाया है, तब एक वार श्रांचरणके दर्शन अवश्य कर आऊंगा।" इस घटनाके बाद विष्णुपुरी स्वप्रणीतविष्णुभक्तिरत्नावली' ग्रन्थको साथ ले पुरुषोत्तम गये तथा जगन्नाथदेवके दर्शन कर उन्होंने उनके पादपद्ममें वह ग्रन्थ समर्पण कर दिया। ( भक्तमाल )

विष्णुप्रिया ( सं० खी० ) विष्णोः प्रिया। १ विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी। २ तुलसीवृक्ष। ३ चैतन्यदेवकी स्त्री।

विष्णुप्रतिष्ठा ( सं० खी० ) विष्णुमूर्त्तिस्थापन। गोभिल्लाचार्य्यकृत विष्णुपूजन और श्रीघाटन-रचित विष्णु प्रतिष्ठा नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ इनके बनाये मिलते हैं।

विष्णुभक्त ( सं० खी० ) विष्णोर्भक्तः। विष्णुका भक्त, वैष्णव।

विष्णुमूर्ति ( सं० स्त्री० ) विष्णी भक्ति। भगवद्भक्ति, भगवत्सेवा।

विष्णुमठ—राजा विष्णुपद नक पांडित एक प्राहाय।

विष्णुमठ—कुछ प्राचोत्तमप्रवक्तारोंके नाम। १ निबन्ध चन्द्रोदयके प्रणेता, रामकृष्णसूरि मठकेइक पुत्र। २ स्मृतिरत्नाकरके रचयिता। विदुरनगर इनका जन्म स्थान था। गिबसह इनके पिता थे। ३ पुत्रपार्श्विन्ता मन्थिक रचयिता।

विष्णुमत् ( सं० लि० ) विष्णुपुत्र ( गायत्री )।

( पंचनिबन्धा १३१११ )

विष्णुमती ( सं० स्त्री० ) राजकन्यामेह। ( कपातरित ६० )

विष्णुमती—नैरमुक्कनके अन्तर्गत लहोमेह।

( मविष्णु ० अ० ४८।२६ )

विष्णुमन्त्र ( सं० पु० ) विष्णुपूजाविषयक मन्त्र।

विष्णुमन्दिर ( सं० स्त्री० ) विष्णुपूजा, बह मन्दिर जिसमें विष्णुमूर्ति स्थापित हो।

विष्णुमय ( सं० लि० ) विष्णुस्वरूप, विष्णुसे अमेह।

विष्णुमाया ( सं० स्त्री० ) विष्णुमाया। परमेश्वरकी अचटनअचटनरूपसे अविद्याशक्ति विशेष अथवा तद् विद्याका देवो गुण। ( श्वेतसूत्रपु० म० अ० ५४ म० )

विष्णुमित्र कुमार—भद्रकृपातिशाक्यमायाके प्रणेता। उपरने इहे उक्त मयाका भात्रि रचयिता बनाया है। इनक पिताका नाम देवमित्र था।

विष्णुमित्र—सुपुत्रमकर व नामक पुत्रमनाम इच्छता सु पुत्रमयाकरणकी होका श्रीर कनारायपरमित सुपुत्रमम मामसमग्रहोकाके प्रणेता।

विष्णुयोत्तम—गुरुपरम्परा और पुत्रयोत्तमचरित्रके प्रणेता। विष्णुयामम् ( सं० पु० ) विष्णु र्वायक यशो यस्य नारायणस्य गिरुत्वादेवाक्य तथात्तम् यज्ञा विष्णुना प्रहीतम्यत्र मना यशो यस्य। १ प्रज्ञापशाक पुत्र, माथी भवनार कविकर्तृवके पिता। ( कर्कपु० ३० म० ) २ एक परिव्रत। ये पुत्र सुत्रमायक प्रणेता जज्ञातशकुके गिरा थे।

विष्णुवामन—रुद्रवामनोक एक तन्त्रग्रन्थ।

विष्णुव्य ( सं० पु० ) विष्णु रथा। १ विष्णुका स्थान्द। २ विष्णुका बाहन, गवह।

विष्णुवदन्य ( सं० स्त्री० ) १ एक प्राचीन पौराजिक

ग्रन्थ। हेमाद्रिरचित प्रतयण्डमें इसका उल्लेख है। २ तन्त्रमेह।

विष्णुवात्र ( सं० पु० ) राजपुत्रमेह। ( वातात्र )

विष्णुव्रात ( सं० पु० ) विष्णुना रातः रक्षितः। राजा पराङ्गनका एक नाम। कहते हैं, कि प्रोजपुत्र भय ल्यामाने इहे गम में ही मार डाला था पर भूमिष्ठ होने पर भगवान् विष्णुने इहे फिरम जिंदा दिया, इसीसे इनका नाम विष्णुव्रात हुआ है। ( मत्त भा० ० ७० म० )

विष्णुराम—परिभाषामकाशके प्रणेता।

विष्णुगम सिद्धांतवागाश—मार्वादिनक्तनरवाश्री और भाइतरवाश्रीके रचयिता। ये अथर्व वेद विद्यावागाशक पुत्र और कविचन्द्र महाभार्यके पीत थे।

विष्णुकुण्डे ( सं० स्त्री० ) बलि का पत्नी, बटेर।

विष्णुमोक ( सं० पु० ) विष्णुपुत्र, बैकुण्ठपुरी।

विष्णुवत् ( सं० लि० ) विष्णुना सह विद्यमानः। विष्णुक सायं विद्यमान। ( मृक् ८।११।१५ )

विष्णुबल्लभा ( सं० स्त्री० ) विष्णुवैल्लभा। १ तुमसी। २ अग्निशिखापुत्र, कसिहारो।

विष्णुबाहन ( सं० स्त्री० ) विष्णु बाहयति स्थानांतर नयति विष्णु यिच ह्यु। यवह।

विष्णुबाहा ( सं० पु० ) विष्णुर्वाद्योऽन्य। गवह।

विष्णुव्य ( सं० पु० ) गोत्रमवलक प्राचान् श्रुतिमेह। बहुबचनमें उनके बगयरका बोध होता है।

( भा० ० भी० ११।१५१ )

विष्णुशक्ति ( सं० स्त्री० ) विष्णोः शक्तिः। १ सद्मती। ( अन्नत० १।१११ ) २ राजपुत्रमेह। ( कपातरित )

विष्णुशार्ङ्ग ( सं० पु० ) १ ताम्बिक आर्षार्थमेह। शक्ति रक्षाकरमें इनका उल्लेख है। २ पञ्चतन्त्र नामक प्रसिद्ध स रूक्त उपाख्यान ग्रन्थके रचयिता। ये ५ वीं सदीमें विद्यमान थे तथा अपने प्रतिपालक किसी हिन्दू राजाके पुत्रके नातिरुपका उपदेश देनेको कामनासे पण्डित करने यह ग्रन्थ सङ्गुवन किया था। इती सदीमें इनका पहली भाषामें अनुवाद हुआ। पाँछे उनीं ग्रन्थके भाषार पर ८वीं सदीका अथर्वस्था बिम्बैःकाबगने भरवो भाषामें तथा १७वीं सदीके उदिकीन पाटलो भाषामें लिखा। उदिकीने ग्रन्थानुवादक पारिभ्रमिकरूप ८०

हजार डिरहम सिक्का पाया था। इसके बाद ग्रीक, हिब्रू  
आदि पाश्चात्य भाषामें इसका अनुवाद हुआ था।

पञ्चतन्त्र देखो।

३ वनोत्सर्गके प्रणेता। ४ एक हिन्दू दार्शनिक।  
पद्मपुराणमें इनका प्रसङ्ग है। उड़ीसाके एकाग्रकाननमें  
इन्होंने जन्म लिया था। पीछे कामगिरिमें जा कर ये  
व्रम गये। इनका धर्ममत व्यासदेवके मत जैसा है।  
इनके रचित एक स्मृति और पुष्कराविषयक ग्रन्थ मिलते  
हैं। यह स्मृतिग्रन्थ तथा प्रसिद्ध विष्णुस्मृतिग्रन्थ  
एक हैं वा नहीं, कह नहीं सकते।

विष्णुशर्मन् दीक्षित—संस्कारप्रदीपिकाके रचयिता।

विष्णुशर्मन् मिश्र—कर्मकांमुदी और महारुद्रपद्धतिके रच-  
यिता।

विष्णुशास्त्रिन्—१ कण्वसंहिता होम नामक ग्रन्थके प्रणेता।  
२ एक प्रसिद्ध संन्यासी। संन्यासाश्रम अवलम्बनके बाद  
ये 'माधवतीर्थ' नामसे परिचित हुए। ये आनन्दतीर्थके  
अनुशिष्य थे अर्थात् शिष्यानुक्रमसे इनका स्थान तीसरा  
था। ये १२३१ ई०में जीवित थे।

विष्णुशिला (सं० स्त्री०) विष्णुना अधिष्ठाता शिला। शाल-  
ग्राम शिला। ये कलि अवदके दश हजार वर्ष तक पृथिवी  
पर रह कर पीछे अन्तर्हित होंगे। (मेरुतन्त्र ५म प्रकाश)

विष्णुशृङ्खल (सं० पु०) योगविशेष, श्रवणाद्वादशी।  
श्रवणा नक्षत्रसंयुक्त द्वादशी यदि एकादशीके साथ संपृष्ट  
हो, तो वैष्णवमनसे उसे विष्णुशृङ्खलयोग कहते हैं।  
इस योगमें यथाविधान उपवासादि करनेसे विष्णुसा-  
युज्यकी प्राप्ति होती है अर्थात् उस जावको फिर जन्म नहीं  
पडता। (मत्स्यपु०)

विष्णुश्रुत (सं० त्रि०) विष्णुरेन श्रूयात्। १ एक प्रकार-  
का आशीर्वाद-वचन, जिसका अभिप्राय है, कि यह सुन  
कर विष्णु तुम्हारा मंगल करें। २ श्रुतिभेद।

(पा ६।२।१४८)

विष्णुसंहिता—एक प्रसिद्ध स्मृतिसंहिताका नाम।

विष्णुसरस (सं० स्त्री०) तीर्थभेद। (वराहपु०)

विष्णुसर्वज्ञ (सं० पु०) आचार्यभेद। (सर्वदर्शन-सं०) ये  
सर्वज्ञविष्णु नामसे भी परिचित हैं। ये सायणके गुरु  
हैं।

विष्णुसहस्रनामन् (सं० स्त्री०) १ विष्णुका सहस्र नाम।  
(पद्मपुराण) २ उस नामका एक ग्रंथ।

विष्णुसूक्त (सं० स्त्री०) ऋग्वेदीय सूक्तग्रन्थभेद।

विष्णुसूत्र (सं० स्त्री०) विष्णु कथित एक सूत्रग्रंथ।

विष्णुस्मृति—एक प्राचीन स्मृतिग्रंथ। यह ब्रह्मवल्कप,  
पेटोनसि आदिने इस ग्रंथका उल्लेख किया है। १३२२  
ई०में नन्टपरिडतोंने केशववैजयन्ती नामसे इसकी एक  
टोका लिखी है। वर्तमान कालमें गद्यविष्णुस्मृति,  
वृद्धविष्णुस्मृति, लघुविष्णुस्मृति और वृद्धविष्णुस्मृति  
नामक चार ग्रन्थ देखे जाते हैं।

विष्णुस्वामिन् (सं० पु०) १ वैष्णवधर्मप्रवर्तक आचार्य-  
भेद। २ सर्वदर्शनसंग्रहके रसेश्वरदर्शनोक्त एक  
आचार्य। ३ भागवतपुराणटीकाके रचयिता। ४ काश्मी-  
रस्थ विष्णुमूर्त्तिभेद। (राजतर० ५।६६)

विष्णुहिता (सं० स्त्री०) १ तुलसीपृष्ठ। २ मरुचक,  
मरुथा।

विष्णुहरि—एक प्राचीन कवि।

विष्णुरसव (सं० पु०) विष्णुका उत्सव।

विष्णुवङ्गिरस—समरकामदीपिकाके प्रणेता।

विष्णुची (सं० पु०) पत्नी, चिडिया।

विष्णुधर्मस् (सं० त्रि०) स्पर्धा सङ्घर्षे वि-स्पर्धा मसुन्।  
१ स्वर्ग। (शुक्लयजु० १५।५ महीधर) २ निर्मात्सर,  
मात्सर्याहीन, जिसे किसी प्रकारका मत्सर न हो।  
(श्रुक् ८।२३।२) ३ विविध स्पर्धा। (श्रुक् ५।८।७।४  
सायण) ४ स्पर्धाविहीन, प्रगल्भरहित। (श्रुक् १।१७।३।६)

विष्णुश् (सं० पु०) वि स्पश् क्तिप्। विशेष प्रकारसे  
बाधाजनक, अच्छी तरह रोकनेवाला। (श्रुक् १।१८।६।६)

विष्पित (सं० स्त्री०) व्यापित, व्याप्तविशिष्ट, बहुत दूर  
तक फैला हुआ। (श्रुक् ७।६।७)

विष्पुलिङ्ग (सं० त्रि०) १ विष्पुलिङ्ग, अतिक्रमा।  
२ सूक्ष्म चटकिका। यह विषप्रतिषेधक हीठा है।

विष्फार (सं० पु०) वि-स्फुर गिच् अच्, अच् आत्  
पत्वम्। धनुर्गुणाकर्षण शब्द, धनुषको टंकार।

विष्फुलिङ्ग (सं० पु०) स्फुलिङ्ग, अतिक्रमा।

(भागवत ३।२।४०)

विष्य (सं० त्रि०) विषेण वध्यः विष यत् (नीवयोधमेति।

पा ४ ३३१) १ विष्य द्वारा बघोपयुक्त, जो विष्य वे कर मार बाकने योग्य हो । (नमर) विरोध क्रीडा विषय इति इति वा (उपकारिणो वत् । पा ५११२) २ विष्य द्वारा कतेव, जो विष्य वे कर करीया गया हो । ३ विष्यके लिये द्विच विष्यके पक्षमें मङ्गलवाचक ।

विष्यम् (सं० पु०) सारण्य बहना ।

विष्यन्द् (सं० पु०) १ विष्यन्दकारो, सारण्यकारक । २ जनपदमेव ।

विष्यन्त (सं० स्त्री०) सारण्य, कर्तुम् ।

विष्यन्ति (सं० स्त्री०) सारण्यलाल ।

विष्य (सं० स्त्री०) द्विच, जीकफाक ।

विष्यद् (सं० स्त्री०) विषु मञ्जनीति विषु मन्व-विष् । १ इतस्ततः विचरन्शीघ्र, इधर उधर घूमनेवाला । (स्त्री०) २ विषुव । विष्य व दोलो ।

विष्यकृपणा (सं० स्त्री०) भूयामलकी, मुं भौकका ।

विष्यकृत (सं० पु०) १ विष्यु । (नमर) २ विष्युका निर्माह्यपारो । ये वस्तुर्जुन हैं, हाथमें शङ्ख बन्द, गया और पत्र शोभता है । इनका वर्ण रक्तविकृत है बड़ा बाकी सूत है और मस्तक पर मया विराजित है । ये श्वेत पद्म पर बैठे हैं । अमृविष्णुयुक्त स्वरागत पवर्गसुतोय वर्णात् 'भ' इस बोधमन्त्रसे पूजा करनी होती है । (कांडिकापु० पृ ३०) ३ जयोद्ग मनु । (मत्स्यपु० १३)

विष्यपुराणके मतसे ये १४वें मनु हैं । ४ मदादेव । (मा १११७५४) ५ अर्पिते । [६ राजमेव । ७ अष्टावक्र पुत्रमेव । (मत्स्य प २११३५) ८ शम्भरके पुत्रमेव । (हरिवंश)

विष्यकृमिकान्ता (सं० स्त्री०) विष्यकृमिकल्प कान्ता त्रिया । १ बस्मी । (मैदिने) २ बाराहीकृन् । ३ ज्ञाय माया क्ता ।

विष्यकृमेमा (सं० स्त्री०) विष्य घृ, कर्मिनी ।

विष्यकृन् (सं० स्त्री०) विष्युका अग्रजं । इतन्मता अग्रज शोककी गति इधर उधर घूमनेको क्रिया ।

विष्यकृत् (सं० पु०) युक्तं पुत्रमेव । (भारत कारिण )

विष्यीद् (सं० स्त्री०) साममेव । (पक्षिगण्य १०११११)

विष्यकृत्योतिस (सं० पु०) शतजित्क पुत्रमेव ।

विष्यकृत् (सं० स्त्री०) विष्यकृत्-पुत्र-विष् । इतस्ततः गमनशीलके साथ युक्त ।

विष्यकृत् (सं० पु०) १ सर्वसाम् । (माक १५६५२५ नीचकपठ) (स्त्री०) २ सर्वथा बायां प्रास ।

विष्यकृत् (सं० पु०) सर्वगामी बायु । (शैलरीय व० ५११३१२)

विष्यकृत् (सं० पु०) विरगन्मयु देवी ।

विष्यकृत् (सं० स्त्री०) १ सर्वव्यापी, तमाम घूमनेवाला । (शुक ५३३१२) २ सर्वप्रकाशक सर्वथा विद्युत् करने वाला । (शुक १११३१२)

विष्यण (सं० क्ली०) १ भोजन । (बदापर) २ शब्द करना । (बोलेव)

विष्यण (सं० क्ली०) विष्यण देवी ।

विष्योद्योत (सं० स्त्री०) सर्पदा गमनशील, हमेशा बसने वाला ।

विष्यद्राज (सं० स्त्री०) विष्वगज्जतीति विष्वक्-अज्ज क्रिय । सर्वज्ञगामी । (शुक ५३३१२)

विष्यात् (सं० स्त्री०) १ विष्वगति युक्ति, विविध बाक बाका । (पु०) २ असुरमेव । (शुक १११७१६)

विष्याण (सं० पु०) मक्षय, खाना । (हेम)

विस (सं० क्ली०) मृत्वाक, कमलकी नाल । (नमर)

विस (सं० स्त्री०) स हारहित, बेहोश ।

विस कागति (सं० स्त्री०) अत्युद्यगति, अपरिमेयगति । (शक्तिविस्तर)

विस द्विन (सं० स्त्री०) स हारहित, बेहोश ।

विस वाद् (सं० पु०) वि स-वद् घञ् । १ विप्रसम् । (नमर) २ विरोध । ३ येमक्षय्य वेमि । ४ प्रतारणा, डाँट खपट । (स्त्री०) ५ विमसल, अशुभ ।

विस वाद्क (सं० स्त्री०) १ प्रतिवक्ष्यक, विरोधक । २ प्रतारक ।

विस वादन (सं० क्ली०) विस वाद् ।

विस वादिता (सं० स्त्री०) विस वाद्कारोक्त भाव या धर्म ।

विस वादिन् (सं० स्त्री०) विस वाद्कोऽस्त्यस्येति विस-वाद्-नि । निरुपार्थिक देवी ।

विस शय (सं० स्त्री०) स शयप्रदित निःस शय ।

विस घृत् (सं० स्त्री०) विष्णुत्क, अक्षयसिपत ।

विसंस्पर्पिन ( सं० त्रि० ) सम्यक् विस्तृत, चारों ओर  
जातेवाला ।

विसंस्थित ( सं० त्रि० ) असमाप्त, अमग्नपूर्ण ।

( काव्यायनभी० ११, १।२७ )

विमस्यूट ( सं० त्रि० ) विसंभूत देखो ।

विमकण्डिका ( सं० स्त्री० ) विमसट्टणः शुभ्रः कण्डो  
यस्या इति बहुव्रीहौ कन् टापि अत इत्त्वम् । झुट्ट-

जातीय वक्रपत्रो, एक प्रकारका छोटा बगला । ( धर )

विमकुसुम ( सं० क्ली० ) विमस्य कुसुमम् । कमल,  
पत्र ।

विमप्रस्थि ( सं० पु० ) पट्टमका मूल, मसौड़ ।

विमड्डट ( सं० पु० ) विगिष्टः सद्बुद्धो यन्मान् । १ सिंह ।

२ इगुदीवृक्ष या हिंगोट नामक वृक्ष । ( त्रि० )

३ विशाल, वृक्ष ।

विसङ्कुल ( सं० त्रि० ) जटिल, बहुत कठिन ।

विसज ( सं० क्ली० ) विसं मृणालं तस्माज्जायते इति  
जन ड । पट्टम, कमल ।

विसञ्चान्नि ( सं० त्रि० ) विषय सञ्चरणशील, विषय  
भोगी ।

विमट्टण ( सं० त्रि० ) विपाक, कर्मका विपरीत फल ।

विमट्टण ( सं० त्रि० ) १ विपरीत, विरुद्ध । २ विल  
क्षण, विभिन्न रूप । ( शुक १।११३।६ )

विमनामि ( सं० स्त्री० ) विमं नामिस्त्वपत्तिस्थान  
यस्याः । १ पद्मिनी, कमलिनी । २ पट्टमको नाल ।  
३ पट्टमसमूह । ( पिता० )

विमन्धि ( सं० पु० ) १ मन्धिरहित, दा या अनेक पदों-  
का मिलनाभाव । २ विशिष्ट सन्धि, शरीरके सन्धि-  
स्थानका विशेष ।

विमन्धिक ( सं० त्रि० ) जिसकी सन्धि नहीं होती,  
जिन दोनोंका मिलन नहीं होता ।

( काव्यादर्ग ३।१२५-१२६ )

विमन्नाह ( सं० त्रि० ) मन्तदनशून्य, कवच आदि  
युद्धसज्जासे रहित । ( मनु ७।६१ )

विमर्षाग्राम—मिथिलाका एक छोटा गाव । यहा कवि  
विद्यापतिका जन्म हुआ था । विद्यापति देखो ।

विसप्रसून ( सं० क्ली० ) पट्टम, कमल ।

( शिष्टपात्रवच १।२८ )

विसम ( सं० त्रि० ) असमान । वि सम देखो ।

विममता ( सं० स्त्री० ) असमानता । विममता देखो ।

विसमानि ( सं० स्त्री० ) वि-सम्-आप कि । असमान,  
अमग्नपूर्ण ।

विमर ( सं० पु० ) विसरतीति वि-सृ-अच् पचाद्विन्वान् ।  
१ समृद्ध । ( अमर ) २ प्रसर, विस्तार ।

विमरण ( सं० क्ली० ) विमार, फैलाव ।

विसर्ग ( सं० पु० ) वि-सृज घञ् । १ दान । ( रघु ४।८६ )

२ त्याग । ( महाभा० १।२७।३ ) ३ मलनिर्गम, मलका  
त्याग करना । ४ सूर्यका एक अयन । ५ मोक्ष ।

( शतायुध ) ६ विशेष । सृष्टि । ७ प्रयोग । ८ प्रलय ।

९ वियोग, विछोड़ । १० शक्ति, चमक । ११ परि-  
त्यक्त वस्तु । १२ व्याकरणके अनुसार एक वर्षा जिनमें

ऊपर नीचे दो बिन्दु ( : ) होने हैं और जिनका उच्चारण  
प्रायः अर्द्ध ह के समान होता है । १३ वर्षा, गरम और

हेमन्त ये दोनों ऋतुण । ( त्रि० ) १४ विसर्जनाय ।  
१५ विसृष्ट ।

विमर्गचुम्बन ( सं० क्ली० ) नायकका घट चुम्बन जब  
वह रात्रिके शेषमें प्रियामें वियोग होता है ।

विमर्गिक ( सं० त्रि० ) आकर्षणकारी, स्त्रीचने  
वाला ।

विमर्गिन् ( सं० त्रि० ) १ उत्सर्गकारी, दान करनेवाला ।  
२ आकर्षणकारी, स्त्रीचनेवाला । ( भारत गान्तिपर्व )

विसर्वांत ( सं० क्ली० ) वि-सृज ल्युट् । १ दान ।  
२ परित्याग, छोड़ना । ३ संप्रपण, किसीको यह कह

कर भेजना कि 'तुम जा कर असुक कार्य करो ।' ४ विदा  
होना, चला जाना । ५ पौडगोपचार पूजनमें अन्तिम

उपचार, अर्थात् आवाहन किए गये देवतासे पुनः स्व-  
स्थान गमनकी प्रार्थना करना, देव प्रतिमा मसाला ।

६ समाप्ति, अन्त । ( पु० ) ७ यदुर्वंशियोंसे एक ।  
( त्रि० ) विदोषेण सृज्यते इति कर्मणि ल्युट् । ८-उत्पा-  
दित ।

विसर्जनीय ( सं० त्रि० ) वि-सृज-अतोयर् । १ दानीय,  
दान करने योग्य । २ परित्यज्य, छोड़ने लायक ।

३ विसर्ग अर्थान् ( : ) ऐसा चिह्न ।

विसर्जयितव्य ( सं० त्रि० ) विसर्जन करने योग्य, छोड़ने  
लायक ।

बिमर्ग्ये ( सं० लि० ) वि सूत्र-यत् । विसर्जनीय विसर्जन करने योग्य ।

विसर्प ( सं० पु० ) वि सूत्र घञ् । रोगविशेष । पर्याय—बिमर्षि, सक्किमय । ( एतन्नि० ) धरकर्म इस रोगका विषय को लिखा है—अग्निवैशिके पृष्ठे पर भास्त्रेयने कहा था कि यह रोग मानवशरीरमें विविध प्रकारसे सर्पण करता है, इस कारण इसका नाम विसर्प हुआ है । अथवा परि अर्थात् सर्जित सर्पण करनेके कारण इसे परिसर्प मो कहत हैं ।

कुचित वातादिदोषमे यह रोग सात प्रकारसे उत्पन्न होता है । रक्त, असीका, त्वक्, भीर मांस ये चार दूष्य हैं तथा बायु विसर्प और षट्क ये तीन दुष्क मिला कर मान घातु विसर्प रोगको उत्पादन सामग्री है । रक्त ममोकादि चार घातु भीर वातादि तीन दोषोंमे यह रोग उत्पन्न होता है इस कारण इसको मत्तघातुक मो कहने हैं ।

निदान—सपण, अग्न, षट्क भीर उष्णबीज रस अग्नि मात्रामे सेवन, अग्न इषि भीर इषिक उमस प्रस्तुत शुक् सुरा सौवीर, बिहल भीर बहुपरिमित मद्य, शारु, आद्रुकादि द्रव्य, बिहादिद्रव्य, इषिकूर्बिका, तक्षुर्बिका भीर इषिका अथ सेवन, इषिहृत् अग्निरिणी सेवनक बाद निपटालुअदि सेवन, तिन्, उद्व कुसुमो, मीन विष्टक तथा प्राय भीर आनूपमांस सेवन, माषिक मोज्जन् दिवानिद्रा, अथकद्रव्यमोज्जन्, अर्यशान हनहरण प्रयत्न रौद्राग्नि आदिका अतिसवन इन सब कारणोंसे वातादिदोषप्रय दूषित हो कर यह रोग उत्पन्न करने है ।

अहिनाशा अतिके उक्त प्रकारसे दूषित वातादि रसरकादि पदार्थोंसे दूषित कर शरीरमें विसर्पित होता है । विसर्प शरीरका अहिन्द्रेण, अतन्द्राशु भीर बहिरन्ता, इन दोनों प्रदेशोंका आश्रय कर उत्पन्न होता है । ये यथाक्रम बन्धान् हैं अर्थात् बहिर्भित विसर्प का अवेसा अन्तर्भित तथा उमम बहिरन्ता दोनों प्रदेशाभित विसर्प मण्डूर होता है । बहिर्मागाभित विसर्प साप्य, अन्तर्मागाभित कृष्णसाप्य तथा उमया भिन विसर्पशेण असाप्य होता है ।

वातादिदोषव मानरसे प्रकृषिण हो कर अर्थात्सप, 101 XXI 176

बहिर्मागमें प्रकृषित हो कर बहिर्विसर्प तथा बहिरन्ता शैली स्थानमें प्रकृषित हो कर बहिरन्तर्बिसर्प रोग उत्पादन करता है ।

पक्षेमागका उपपात मल, मूल भीर भ्यास, प्रभ्या सादिका मार्गसंशोध अथवा उतका विषहृत्, तुष्णाका अतियोग, मलमूत्रादिका बेग-यौषाव तथा अग्निबलका आशुस्य, इन सब लक्षणों द्वारा अन्तर्विसर्प सिद्ध करना होता है ।

इसके विपरीत लक्षण प्राप्त अर्थात् पक्षेमागका अनुपपात मलमूत्रादिमार्गका असंशोध भीर अविषहृत्, तुष्णाका अतियोग मलमूत्रादियोगको अथवावत्प्रवृत्ति तथा अग्निबलका अस ह्यय ये सब बहिर्विसर्पके लक्षण हैं । उक्त सभी प्रकारके लक्षण तथा निम्नांक असाप्य लक्षण दिव्याई क्षेत्रसे इसको अन्तर्विसर्प कहने हैं । अिसका निदान बलपान् है तथा उपद्रव अति कष्टमर् है भीर जो विसर्प ममागत है वह रोगीक प्राय लेते हैं ।

वाताविसर्पका लक्षण—उष्ण भीर इत्यसे अथवा यक्ष भीर उष्ण बस्तु अषिक परिमाणमें जानेसे बायु सञ्चित भीर प्रकृष हो रसरकादि द्रव्य पदार्थोंको दूषित कर यह रोग उत्पादन करते हैं । उस समय घ्न, उप नाय, विषामा सूषोषेपवत् भीर श्रुयानिगतवत् वेदना, अङ्गुहृत् उद्व एत कम्प, उवर, तमक, कास अग्नि मङ्गवत् भीर स चिमङ्गवत् यक्षणा विषर्णता, अमन, अदधि, अपरिपाक, शोनी मैत्रका आकृषत भीर सञ्जमत्य तथा गारुमें पिपीलिका-सञ्जमत्य प्रतीत होता है । शरीरक अिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, पर अगान वाया वा स्यात् हो जाता है, वहां सूत्रन पड़ता है तथा अत्य त वेदना होता है । इससे मिया उस स्थानको धाति, सद्गुह हर्षे स्फुरण ये सब लक्षण दिव्याई क्षेत्र हैं । इससे रोगी अत्यन्त गारित हो जाता है । यदि बिष्टिम्मा न को ज्ञाय तो वहाँका कर्मज्ञ पचना हो जाता है भीर कास या काली पुंसियां निकल जाता है । ये सब पुं मिर्षी उद्वहा फट जाता है तथा उमम पचना विषम हाटण भीर अत्यन्त निवृत्ता है । रोगीका मलमूल भीर अयोषायु क्त जाता है ।

विसर्प विसर्पका लक्षण—उष्ण कृष्णके मल तथा



विदाही और अम्लद्रव्यादि भोजन द्वारा पित्तमद्धित और प्रकृषित हो कर रक्तादि दोषोंको दूषित और घमनियोंके पूर्ण कर देता है तथा पीछे पित्तजनित विमर्ष रोग उत्पादन करता है। उस समय ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वार्मि, अरुचि, अङ्गमेद, स्वेद, अंतर्दाह, प्रलाप, शिरो वेदना, दोनों नखकी आकुलता, अनिद्रा, अरति, स्रम, शीतल वायु और शीतल जलमें अत्यभिलाष, मलमूल हारद्रार्धण और शीतदर्शन ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। शरीरक जिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, वह स्थान पीला, नीला, काला वा लाल हो जाता है। यहाँ सूजन पड़ता है और काली वा लाल कुर्मियां निकलती हैं। ये सब कुर्मियां जल्द पक जाती हैं। उनसे पित्ता-नुरूप वर्णका स्राव होता है तथा यहाँ जलन देती है।

कफज विसर्प लक्षण—स्वादु, अम्ल, लवण, स्निग्ध और गुरुपाक अन्नभोजन तथा दिवानिद्रा द्वारा कफ सद्धित और प्रकृषित हो कर रक्तादि दूष्यचतुष्टय-को दूषित तथा समस्त अङ्गोंमें विसर्पण कर यह रोग उत्पादन करता है। उस समय शीतज्वर, गात्रगुरुता, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि, अपरिपाक, मुखमें मधुर रसका अनुभव, मुखस्त्राव, वार्मि, आलस्य, स्तैमित्य, अग्निमाद्य और दीर्घत्व उपस्थित होता है। शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, वह स्थान स्फीत, पाण्डु या अनतिरिक्त वर्णका, चिकना, स्पर्शशक्तिहीन, स्तम्भ, गुरु और अल्पवेदनायुक्त होता है। वे फोड़े कृच्छ्र-पाक, निरकारो, घनत्वक् और उपलेपविशिष्ट होते हैं और फूट जाने पर उनसे सफेद पिच्छिल तंतुविशिष्ट दुर्गन्ध गाढा स्राव हमेशा निकलता रहता है। उन फोड़ोंके ऊपर सख्त कुर्मियां निकलती हैं। इस विमर्ष रोगमें रोगीका त्वक्, नख, नयन, वदन, मूत्र और मल श्वेतवर्णका हो जाता है।

धातुपैक्षिक आग्नेयविसर्प—अपने अपने कारणसे वायु और पित्त अत्यंत कृषित तथा बलवान् हो कर शरीरमें शीघ्र ही आग्नेय विसर्प रोग उत्पादन करता है। इस रोगमें रोगी अपने सारे शरीरको मानो ध्वीप्यमान अङ्गाराग्नि द्वारा अ. हार्ण करभता है तथा वार्मि, अति-

सार, मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमक, अरुचि, अस्थिमैद, मंथिमैद, तृष्णा, अपरिपाक और अङ्गमेदादि उपद्रवमें अभिभूत होता है। यह विमर्ष जिस जिस स्थानमें विसर्पण करता है, वह स्थान युष्मी हुई आगके अंगारकी तरह काला अथवा अम्यग् लाल हो जाता है। यहा जलन होती है और फोड़े निकल आते हैं। जल्द फैल जानेके कारण यह विमर्ष मर्मस्थान (हृदय) में अनुसरण करता है। इसने मर्म जब उप-तप्त होता, तब वायु अति बलवान् हो समो अंगोंको मद्धन् पीडासे अत्यंत पीडित कर डालती है, उस समय ध्यान नहीं रहता, दिक्का, भ्वास और निद्रानाश होता है, रोगी यंत्रणक मारे छटपटाना है। पीछे अति क्लिष्ट हो कर स्या जाता है। कोई कोई बड़ी मुश्किलसे हीगमें आता है और प्राण स्या बैठता है। यह विसर्प असाध्य है।

कर्ममाद्य विसर्प—अपने अपने प्रकापनके कारण कफ और पित्त प्रकृषित और बलवान् हो कर शरीरके किसी एक स्थानमें कर्ममाद्य विसर्प रोग उत्पादित करता है। इस विसर्पमें शानज्वर, शिरापीडा, स्तैमित्य, अङ्गावसाद, निद्रा, तन्द्रा, अशब्देय, प्रलाप, अग्निमाद्य, दीर्घत्व, अस्थिमैद, मूर्च्छा, पिपासा, श्रोतासमूहकी लिप्तता, इन्द्रियोंकी जडता, अपषव मलमेद, अङ्गविक्षेप, अङ्गमर्द, अरति, और अंतनुष्य ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। यह विसर्प प्रायः आमाशयसे उत्पन्न होता है, किन्तु आलस्य हो कर आमाशयके किसी एक स्थल में ठहरता है। वह स्थान लाल, पीला वा पाण्डुवर्णका, पाडकाकांर्ण, मेघ्रकाम (कृष्णवर्ण), मलिन, स्निग्ध, बहुउष्णान्वित, गुरु, स्तिमितवेदन, शोथविशिष्ट, गम्भीर पाक, स्नावरहित और शीघ्र छेदयुक्त होता है। उस स्थानका मांस धीरे धीरे स्थिन्न, क्लिन्न और पूतियुक्त होता है। इस विमर्षमें वेदना कम होती है, किन्तु इससे संज्ञा और स्मृति जाती रहती है। विसर्पाकाल स्थान रगडनेसे अवकीर्ण होता है, दवानेसे कीबडकी तरह बैठ जाता है, उस स्थानसे मांस सड कर गिरता है। शिरा और स्नायु बाहर निकल आती हैं तथा क्षत स्थानसे मुर्देकी-सी गंध निकलती है। यह विसर्प रोग भी असाध्य है।

प्रण्वित्सर्प—स्त्रिय, शुद्ध काठन मधुर, शीतल, स्निग्ध भास्व अमिष्यत्वो मज्जपातका संबल और भ्रमराहित्य भास्वि कार्जोसे इस्तेषा और वायु कुपित होती है। यह प्रकुपित और प्रबुद्ध बलवान् इस्तेषा और वायुरकारि कृष्ण चतुष्टयका कुपित कर प्रण्वित्सर्प उत्पादन करती है। प्रबुद्ध कफसे जब वायुका वास्ता बन्द हो जाता है, तब यह वायु इस अवरोधक कफको हो भ्रंश मार्गोंमें विमज्ज कर कफाशयमें धीरे धीरे प्रविष्टमात्रा उत्पादन करती है। यह प्र विमाम्ना कृष्ण पाक है अर्थात् प्रायः नहो पकती और कृष्णसाध्य हा जाती है।

इस प्रकार कुपित वायु रक्तबहुल अक्षिक रक्तका कुपित कर यदि शिरा, स्नायु मांस और त्वक्में प्रण्वि धाम्ना उत्पादन करे तथा यह प्रविष्टमात्रा तोम वैद्यनाम्बित कृष्ण, सूक्ष्म वा वृक्षाकार और रक्तवर्ण हो, तो ठनक उपतापसे उन्नर, अनिस्तार, विक्रम, आंस, कास, शोथ, मोह, वैषम्य, अरुचि, अपरिपाक मरोक, बमि, मूर्च्छा, अङ्गमङ्ग, मित्रा, भरति और अन्नमात्र भास्वि उपद्रव उप स्थित होती है। यह विसर्परीग भी असाध्य है।

साञ्जिपातिकविमर्ष— शै मन्व निदानममृत, सर्श अक्षययुक्त तथा सम्पूर्ण शरीर व्याप्त, सर्शपातुगल, भायुकारी और महारिपञ्चनक होता है वही साञ्जि पातिक विसर्प है। यह भी असाध्य है।

बातम पिच्छ और रक्तज विमर्ष साध्य है। यथा विद्यान इनको चिह्नित्सा करनेसे उपकार होता है। अग्निविमर्ष और कठमाक्य विमर्ष पहले असाध्य कद कर इच्छिजित हुआ है, किन्तु इन दोनों विसर्पोंमें यदि उन्नरति उपद्रवहित बहोमर्म अनुपहत, गिरा, स्नायु और मांस ह्यिममात्र शै अर्थात् मांस सङ्क कर न गिरे तथा इस सबबन्ध गिरा और स्नायु न विकर्षे शैतो हो, तो इसमें यथाविद्यान अस्त्ययनादि वैष चिह्नित्सा और उपयुक्त औषधादि द्वारा साधारण चिह्नित्सा करनेसे आगम भी हो सकता है। प्रण्वित्सर्प में यदि उन्नरति मारादि उपद्रवहित हो, तो इसकी भी चिह्नित्सा का जा सकता है।

चिह्नित्सा—आमश्याम्बित विसर्पके कठश्यामग।

होनेसे अङ्गन, वमन विकृत्युष्ण सीबन तथा रुद्ध और शीतल प्रक्षेपन प्रशस्त है। आमश्याम्बित विसर्प पित्त स्थानगत होनेसे भी इसी प्रकार चिह्नित्सा करनी होगी उसमें विरेचन और रक्तमोक्षण विशेष हितकर है। आम श्याम्बित विसर्प पक्वमात्रयसम्भूत है। उसमें रक्त और शैथ रहनेसे पहले विषसत्य क्रिया करार्य है। क्योंकि, आमशैथ रहनेसे इसमें स्नेहलक्रिया हितजनक नहो है। चातोक्षण और पित्तोक्षण विसर्ग यदि कञ्चु शोथ हो, तो तिक्तकृष्ट हितकर है, किन्तु यदि पैलिक विसर्प महाश्याम्बित हो, तो इसमें विरेचन प्रशस्त है। विसर्प रोगका शोषसञ्चय अधिक परिमाणमें रहनेसे पूनप्रयोग कर्त्तव्य नहो है, वहाँ विरेचन कराना भावश्यक है। क्योंकि पूनपानसे वै सञ्चितशोष उपस्थित हो त्वक्, मांस और रक्तको सहा देत है। अतएव बहु दोषाकान्त विसर्परीगमें विरेचन और रक्तमोक्षण विशेष प्रशस्त है। कारण, रक्त ही विसर्पका आश्रयस्थान है। कफज, पित्तज और कफपित्तज विसर्परीगमें मुझेडो नोम और इन्द्रजोके कषायमें मैनाफलका कल्क मिला कर और पोछे उसे पिन्ना कर बमन करावे। परबलके पत्ते और नीमके काढ़े या पीपलके काढ़े मथवा इन्द्रजोके काढ़ में मैनाफलका गूर मिला कर उसके गान द्वारा बमन करान से भी उपकार होता है। मदनक्यकारियोग भी इन रोगोंमें विशेष उपकारी है।

हाथ और पाँवका रक्तन बराब होनेसे पहले रक्तन निकाला जाये। रक्त यदि आतान्वित हो तो शुद्धहाथ, पित्तान्वित हो, तो शैथ द्वारा और यदि कफान्वित हो, तो अम्लाहू द्वारा रक्तमोक्षण करे। शरीरक क्रिस स्थानमें विसर्प होता है, उस स्थानकी मज्जकोक्याओ मिराओका मरु जेय कर शास्त्रा चारिये। क्योंकि यदि रक्तन नहो निकाला जायेगा, तो रक्तज्ज बसे त्वक्, मांस और स्नायुका भी ज्ज्ज् उत्पादन होगा। कोष्ठादिशोष उन्नर प्रकारसे हटा दिये जाने पर भी यदि त्वक्, और मांसका आश्रय कर कुछ शोष रह जाये, तो वह अन्नश्याम्बित विसर्प निरामोक्त चाञ्जिक्रिया द्वारा प्रजमित होगा।

गुच्छरकी छाक, मुसेडो, पशुमकेशर, नाशैत्यक नागेश्वर और म्रियंशु इन्हें एक साथ पोस पूनपुस्त कर

प्रलेप दे। चटवृक्षकी नई जड़, केटे-शम्भका मूत्र और कमल नाल इन्हें एकत्र पौम शतघात घृताप्युक्त कर प्रलेप दे। पीतचन्दन, मुलेठी नागकेश्वर पुष्प, केवर्त्त-मुस्तक, चन्दन, पद्मकाष्ठ, तेजपत्र, लसकी जड़ और प्रियट् गु इनका प्रलेप भी घृतयुक्त कर देनेसे लाभ पहुँचता है। अनन्तमूल, पद्मकेशर, लसकी जड़, नीली त्वल, मज्जीठ, चन्दन, लोष और हरीतकी इनका भी प्रलेप हितकर है। लसकी जड़, रेणुक, लोष, मुलेठी, नालोत्वल, दुर्वा और धूना इन्हें घृताक्त कर उमथा भी प्रलेप देनेसे विशेष उपकार होता है।

द्वार्क रसमें घृतपाक कर उसे विसर्पके ऊपर लगानेसे विसर्पक्षत सूख जाता है। दासहरिद्राका रस, मुलेठी, लोष और नागेश्वर इनके चूर्णका प्रयोग करनेसे विसर्प-क्षत सूख जाता है।

परवल्का पत्ता नीम, त्रिफला, मुलेठी और नीली-त्वल इनके काढ़ेकी सेंक देने अथवा इनके काढ़े वा चूरेके साथ घृतपाक कर उसे क्षतस्थानमें लगानेसे यह शीघ्र ही सूख जाता है। विसर्पके क्षतकी जगह जब कोई काथादि सिञ्चन करना होता है, तब प्रलेपकी हटा देना आवश्यक है। यदि घों डालने पर भी प्रलेप अच्छो तरह न उठे, तो बार बार बहुत पतला प्रलेप देना उचित है। किन्तु कफज विसर्पमें घना प्रलेप देना होगा। प्रलेप अंगुष्ठके तिहाई भागके समान मोटा रहेगा। यह अति स्निग्ध वा अतिरुक्ष, अत्यन्त गाढा वा अत्यन्त पतला न हो, समभावमें उसका रहना उचित है। वासी प्रलेप भूल कर भी नहीं देना चाहिये। जो प्रलेप एक बार दिया जा चुका है, उसका फिरसे प्रयोग करनेसे विसर्पका फलेद और शुलुनि उपस्थित होता है। वस्त्रक्षपणमें प्रलेप द्रव्यका चूर्ण रख कर पुलटिगकी तरह प्रलेप देनेसे विसर्पक्षत विन्न होता है तथा उसमें स्वेद जन्य पीडका और कण्डु उत्पन्न होता है। वस्त्रक्षपणके ऊपर प्रलेप देनेसे जो दोष होता है, प्रलेपके ऊपर प्रलेप देनेसे भी वही दोष होता है। यदि अति स्निग्ध वा अतिद्रव प्रलेप प्रयुक्त हो, तो उस प्रलेपके चमड़ेमें अच्छो तरह सशिलए न होनेके कारण उससे . . . सम्पक् शान्ति नहीं होती। यदि अत्यन्त

पतला प्रलेप दिया जाय, तो घद सूखने पर फट जाता है और औषधके रसका असर करने न करने घद सूख जाता है। अत्यन्त पतला प्रलेप देनेसे जो सद दोष होते हैं निश्चिन्त प्रलेपमें भा गही दोष प्रकट भावमें दिखाई देने हैं। क्योंकि, निश्चिन्त प्रलेप सूख कर व्याघ्रिकी पीडित करता है।

लक्षित विसर्परोगीको चीनी और मधुसंयुक्त रस, मन्थ अथवा मधु द्रव्यमें प्रसृत रस, सतार और आंघले आदिके रसमें घोड़ा गट्टा डाल उस मन्थकी पाने दे। सिद्धजलमें मसूकी घोल कर यह मन्थ फालसे, किर्वागिज और लज्जके साथ पिगानेमें भा लाभ पहुँचता है। लक्षित विसर्परोगीको जी और नातका तर्पण तद्व्यार कर उसे घृतादि स्नेहके साथ पाने तथा उसके परिपाक होने पर मूँग आदि जूसमें साथ पुराने चावल का भात पानेकी देना चाहिये।

इस रोगमें परिपाक पुगानत रक्तजालि, श्वेतजालि, महाजालि और पृथिक तण्डुल (साठोघानका भात) विशेष लाभदायक है। जी, गेहूँ, चावल इनमेंसे जो जिसके लिये अल्पस्त है उसके लिये वही उपकारी है। विदाहजनक अन्नपान, शीतमन्थ्यादि विरुद्ध भोजन, दिधानिद्रा, क्रोध, व्यायाम, सूर्य, अग्निमन्ताप तथा १२३ वायुसेवन से सब इस रोगमें विशेष उपकार है।

उक्त प्रकारकी चिकित्सामें शीतघण्टुल चिकित्सा पैत्तिक विसर्पमें, यक्षप्रहुल चिकित्सा श्लैष्मिक विसर्पमें, स्नेहिक चिकित्सा वातिक विसर्पमें, घामपित्तप्रगमन चिकित्सा अग्निविसर्पमें तथा कफपित्तप्रगमन चिकित्सा कर्दमक विसर्पमें प्रगस्त है।

रक्तपित्तोत्थण प्रन्थिविसर्पमें प्रथमतः रुक्षण, लक्ष्ण, पञ्चवल्कलका परिपेक और प्रलेप, जलीका द्वारा रक्त-मोक्षण, कषाय और तिक द्रव्यके काय प्रयोगमें वमन और विरेचनका व्यवहार करे। वमन और विरेचन द्वारा ऊर्ध्व और अधर संशुद्ध होता है तथा जलीका द्वारा रक्त अवसेचित होनेसे जब रक्त और पित्तकी प्रगान्ति होती है, तब यातश्लेष्महर योगीका प्रयोग करना उचित है।

ग्रन्थ विसर्पमें शूलघत् वेदना रहनेसे उष्ण उत्कारिक

( श्री गुरु भाविको जलमें वाह कर मेह आता जो पद र्श को बनता है उसका नाम उदकारिका है ) घृणादि स्नेह योगसे विनाश कर उसके द्वारा वा घृणकरादि द्वारा प्रलेप है । इशामूलक काढ़े और कदरुका तैलमें पाक कर उष्णा मन्ध्यामें वह तप्य होता हागा । असर्गप्रका कदरु, सूखी मूत्रोका कदरु, बहकररुका छात्रका कदरु या बदेकेका कदरु इन्हें कुछ गरम करके मण्डितसर्पमें प्रलेप है । एतौमूलको छात्र, बिनामूलकी छात्र, घृहरका घृष, अक बनका घृष, गुड़, मिठायेका रस और होराकसीम, रमक काधका कृष्ण रूप करक प्रसप हैनेसे उपकार हागा है ।

पूर्वक भीषण द्वारा यदि मण्डितसर्प प्रशमित न हो, तो क्षार द्वारा तसशर या तससीह द्वारा दाह करे । मधवा प्रणयोपोल प्रणका पकानेबामो भीषणसे उस उदरदिन करना हागा । इसर बाह वद्विर्गमनोमुख रकका पका कर पुना पुना मोहाय करे । रकक अपहृत होने पर वातरुष्यमाशक त्रिपैपिरीयन घूमप्रयोग और परिमद न करना हागा ।- इस पर भी यदि शैष हा प्रशम न हो तो मण्डीपोल पाषन भीषणका व्यवस्था करे । दाह मीर पाक द्वारा मण्डिक प्रक्षिप्त होमसे बाह्य और अन्वन्तर शोषन तथा शोषण भीषणके प्रयोग द्वारा मण्डीपोल चिकित्सा करने होगी । कमलानीम्, बिड़ङ्ग और दावहराका छिलका, रमके कदक द्वारा भीगुने असमै तैल पाक कर मण्डिक पर प्रयोग करे । अमिहित योगों तथा रक्तमोक्षक प्रति विशेष दुष्टि रक कर काम करना हागा । बिशय बिशय शोष और कपद्रव बिभाई होने पर त्रिमम उनको शान्ति हो मर्कदा उनको घेडा करने काहिये । ( धारकविद्या विधिचिन्तामण्य )

मायप्रकाशमें लिखा है, कि कुछ और अन्याय्य प्रण शैर्मीमें जो सब घृण और भीषणदि करे गय हैं विसर्प शैर्मीमें उनका प्रयोग भी विशेष उपकारी है । विसर्पके पचन पर शल्य द्वारा वीषका निकाल कर मण्डीपोल चिकित्सा करने हातो है ।

विसर्पउत्तर ( स० पु० ) विसर्पदोषग्रय उपर, वह उपर जो विसर्पदोषकी शैर्मीमें हातो है । विषय द्धर देना । विसर्पण ( म० ह्री० ) विन्धुव वपुर् । १ प्रनरत्न फेनना । २ लकोटकादिका अस्सक, पाङ्ग मादिका पृथना । ३ निक्षेप, फेनना डालना ।

विमर्षि ( म० पु० ) विमर्ष, विमर्षरोग । ( रात्रि० ) विमर्षाहा ( स० स्त्री० ) रोगमेह, विसर्पे । ( धरुवृह विद्या ३१।२५ )

विमर्षिणी ( म० स्त्री० ) श्वनमुहासता शकनी, पबनिका ।

विमर्षिन् ( स० लि० ) विन्धुव पिनि । १ विमरण गोक फेननेबाका । २ विसर्पदोषयुक्त ।

विसर्मन् ( म० लि० ) विसरणगील फेननेबाका । ( शूक् ५।१२।६ )

विमल ( स० ह्र० ) विसं छातीतिमा क । पल्लव, वृक्षका मया पत्ता ।

विमदा ( स० पु० ) विसर्पक दोग । ( पचन १।१२०।१ तापय )

विमदाह ( स० पु० ) विरुध रेको ।

विमरमन् ( स० ह्रो० ) वरमपन नेत्ररोगमेह । लक्षण— त्रिम नेत्ररोगमें लिशैषक प्रकापक कारण बरम क बाहर ( पलकों पर ) शोष उत्पन्न होता है, मीठरमें बहुत सा छौटा छौटा कुत्तियां होता हैं और उन कुत्तियोसे मनकी तरह क्षाय निकलता है उसे विसरम कहते हैं । ( लघुव उपरतन्म ३ म० )

विसरामह ( स० पु० ) जाबली ।

विसराला ( स० स्त्री० ) जाबिला ।

विसरालुक ( स० पु० ) कमलकम्प मसोह ।

विसरामी ( स० स्त्री० ) कारणमाष ।

विसार ( म० पु० ) विशेषण सखीति सु-गती ( अर्थवि- मत्त्वपलेपिनि बद्यर्थ । पा ३।३।१७ ) इत्यस्य चासि काकत्या घम् । १ मरुत्य, मछली । २ निर्गम, निकलना । ( शूक् १।७।१ ) ३ विस्तार, फैलाव । ४ प्रवाह बहाव । ५ इत्यसि, पैदाग ।

विसारवि ( म० लि० ) विगत सारविष्येस्मात् । सारविषुष्य, बिना सारविषका ।

विसारिणी ( स० स्त्री० ) विसारिन्-शेष । १ मायप्रका मण्डीपोल । २ प्रसरणगामा पैसागेवाला ।

विसारिण ( म० लि० ) विन्धुव पिन्धु । प्रसारित, पैना हुआ ।

विनारिन् ( म० लि० ) विन्धुव पिनि । प्रसारणगस्त,

कैलनेवाला । पर्याय—विस्त्वर, विस्त्रमय, प्रसारी ।

( अमर )

विसिनी ( सं० स्त्री० ) विसमस्त्यस्याः इति विस् पुष्कं राट्भ्यश्च इति इति, डोप् । १ पद्मिनी, कमलिनी ।  
२ मृणाल, कमलकी नाल ।

विसिर ( सं० त्रि० ) विशिर, शिरारहित ।

विसिस्मापयियु ( सं० त्रि० ) विस्मापयितुमिच्छुः विस्मि णिच्-सन् उ । विस्मय करनेमें इच्छुक ।

विस्त्रकल्प ( सं० पु० ) राजपुत्रभेद । ( तारनाय )

विस्त्रकृत् ( सं० त्रि० ) मन्दकारी, अनिष्ट करनेवाला ।

विस्त्रकृत ( सं० त्रि० ) अधर्म, पाप ।

विस्त्र ( सं० त्रि० ) विगतं सुखं यस्य । सुखरहित ।

विस्त्रुत ( सं० त्रि० ) विगतपुत्र, सुतरहित ।

विस्त्रुद्द ( सं० त्रि० ) सुहृदिहीन, वन्धुरहित ।

विस्त्रिका ( सं० स्त्री० ) विशेषेण सूचयति मृत्युमिति वि सूच अच् स्त्रिया डोप् विस्त्रि स्वार्थे कन् टाप् रोगभेद, अजीर्ण रोग, ईजेके बीमारी ।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि अजीर्णके कारण किसीके पेटमें यदि सूईके झुमनेकी तरह वेदना होने लगे, तो ऐसी अवस्थाको लोग विस्त्रिका कहते हैं । जो व्यक्ति आयुर्वेदशास्त्रमें व्युत्पन्न और परिमित आहार करते हैं, वे कभी विस्त्रिका रोगसे पीड़ित नहीं होते । मद्यमिश्रण के सम्बन्धमें अनभिन्न व्यक्ति, इन्द्रियपरवश और पशुकी तरह अपरिमितभोजी, ये सब व्यक्ति ही उक्त रोगसे आक्रान्त देखे जाते हैं ।

आमाजोर्ण आदि रोग अतिशय बढ जाने पर उसीसे विस्त्रिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं । अर्थात् आमाजोर्णसे विस्त्रिका, विदग्धाजीर्णसे अलसक और विदग्धाजोर्णसे विलम्बिका रोग होता है ।

अत्यन्त जलपान, विषमाशन, क्षुधा और मलमूत्रादिका वेगधारण, दिनमें सोना और रातका जागना इन सब कारणोंसे मानवोंका नियमित, लघु, अथवा यथाकालभुक्त आहार भी परिपक्व नहीं होता ; पिपासा, भय और क्राधपीडित, लुब्धरोगी, दैन्यप्रस्त और श्लेष्मिकादि इन लोगोंका भी भुक्त अन्न सम्यकरूपसे परिपाक नहीं होता ; किन्तु उपर्युक्त कारणोंमेंसे अतिमात्तमें

भोजन करना ही अजीर्ण रोगका मूल कारण है । पशु को तरह अपरिमित भोजन कर अनभिन्न व्यक्ति विस्त्रिका आदि रोगोंके मूलीभूत अजीर्ण रोग द्वारा आक्रान्त होते हैं । अजीर्णसे विस्त्रिका रोग होता है । आमाजोर्ण रोगोंके शरीर और उदर गुच्छ, विषमिपा, कपेल और चक्षु गोलकमें शोथ और उदुगारदाहृत्य हांता है । किन्तु मधुर आदि जो कुछ द्रव्य आहार किया जाये, उसमें कुछ भी अम्ल नहीं उत्पन्न होता ।

लक्षण—विस्त्रिका रोगमें मूर्च्छा, अतिशय मलमेद, चमन, पिपासा, शूल, भ्रम, हाथ और पैरमें क्लिन्नक्लिनी और जंभाई, दाह, शरीरको विचर्णना, कम्प, हृदयमें वेदना और शिरमें ददं होता है ।

उपद्रव अनिद्रा, म्लानि, कम्प, मूर्च्छा और अज्ञानता ये पांच विस्त्रिकाके प्रधान उपद्रव हैं । इन सब उपद्रवोंके होनेसे समझना चाहिये, कि रोगीके जीवनको आशा बहुत कम है ।

अष्टलक्षण—इस रोगमें यदि दान, ओष्ठ और नख काले हो जाये, आंख नीचे घस जाये और मोह, चमन, शीणउदर हो और सन्धिया शिथिल हो जाये, तो समझना चाहिये, कि रोगीके बचनेकी आशा कम है । ( भावप्रकाश अजीर्णरोगाधिकार )

आयुर्वेदशास्त्रमें यह रोग अजीर्ण रोगके अन्तर्भूक्त माना गया है । यह अग्नि भङ्गुर और आशुप्राणनाशक और संक्रामक है । अतिवृष्टि, वायुकी आर्द्रता या स्थिरता, अतिशय उष्णवायु, अपरिष्कृत जलवायु, अतिरिक्त परिश्रम, आहारका अनियम, भय, शोक या दुःख आदि मानसिक यंत्रणा, अधिक जनपूर्ण स्थानोंमें रहना, रातका जागना, शारीरिक दुर्बलता आदि इस रोगके निदान कहे जा सकते हैं । उदरामय नहीं हो कर भी जिन सब व्यक्तियोंके विस्त्रिका रोग हो जाता है, उनमें पहले शारीरिक दुर्बलता, अङ्गमें कम्पन, मुखश्रीकी विचर्णता, उदरके ऊर्ध्वभागमें वेदना, कानमें तरह तरहका शब्द श्रवण, शिरःपीडा और शिरका घुमना आदि पूर्वरूप प्रकाशित होते देखे जाते हैं ।

इसका साधारण लक्षण युगपद् भेद और चमन है । इसीसे इसको भेदचमन भी कहते हैं । पहले दो एक

बार उदरामयकी तरह मयमेद और मुख त्रयका बमन हो कर पीछे यह या बावमके बहाथकी तरह मयया सङ्गे कुम्हङ्गेके बमनो तरह जलवत् मय और ब्रम बमन होता रहता है। कया कमी एतवर्षका मेद होता देखा जाता है। उदरमे वेदना होती है। मयको बू सडा मखलोकी बू की तरह होती है और मुखैय हो जाता है। मयगः नीचे मोचेको घस जाती है होठ मोसे, नाक ऊ की हाथ पैरमें किलकिमी और ये मोतम और मकुम्बत ब गळोका मयमाग गहवा जरोर का एतवर्षका हो जाना और धर्मयुक्त, नाङ्गोहीय, मोतम, फिर भी वेगयुक्त तथा मय मयस सुप्त द्विचको बावण पिपासा, मेद मय मयाव अवर, मयवर्द्ध करमङ्ग अन्धियता, अनिद्रा, गिरीपूर्णन, शिरमे ह्वं कानोंमें बिबिध शब्दोंका सुनाई देना, आँकोंसे बिबिध प्रकारक मियपाकवर्षम त्रिद्धा और निम्बासको मोतमना और दोतोका बाहर निकलना आदि मयस विकार देते हैं।

बिचिस्टसा—इस रोगके होन ही इसकी बिचिस्टसा हानी चाहिए। बिम्बु इस रोगमें पहले बमबान धारक भाषय सेवन करना उचित नहीं। उससे भापाततः मेद निवारित होने पर भी वमनयुधि और उदरधमान आदि उपसगे उत्पन्न हो सकते हैं। और भी कुछ क्षणक मिये भी मेद निवारित हो कर पीछे और अधिक परि मयसे मेद होनेका भावङ्ग है। इसोमिये पहली अवस्थामें धारक औषध मति मय मयानामें बार बार प्रयोग करना उचित है। अक्षोर्णनाक कारण यह रोग उत्पन्न होनेम पहले पाचक और मयधारक औषधका प्रयोग करना आवश्यक है। मयबमम आदि नीरय अक्षोर्णजिनबिस्बिकामें बहुत उपकारक हैं।

मुरो बिचिस्टसामें पहले धारकोना पीम तोडा क कुम पीम तोडा सवङ्ग १५ भागे मर, छोटी इमायपीक रागे १) आगे मर मयग मयग उत्तम कयमे मयूर्ण कर २५ मोने ईअकी थोलीमें अछो तरह मिला दे। सब मिला कर जिनना वमन होगा, उसक तीन मागोंका एक माग फुलवरो मयूर्ण मिला कर रोग और रोगीके बळके मनु सार १०मे ३० रको तक मात्रामें बार बार सेवन कराना चाहिए। २० वर्षके मुवकसे ५० वर्ष तकके वृद्ध रोगी

को २० रती इस मयूर्णके साथ भाष रती अफीम मिला कर सेवन कराना जा सकता है। इसके कम उत्रके रोगीको अफीम न दे कर केवल मयूर्ण ही दिया जाना चाहिए। रोगीके उत्र और रोगक प्रावणके अनुसार औषधकी भाषो चौपाई मात्रा हो जा सकती है। अफीम भाषो रती, मरियमयूर्ण चौपाई रती, होग चौपाई रती और कपूर १ रती एकत्र मिला कर एक एक मात्रा एक बार मेद या वस्तके भाव किलाना चाहिए। वस्त बन्ध हो जान पर हो तीन दिन तक सुबेरे शाम तक तीन मात्रा सेवन कराना चाहिए। अफीमका भासब भी इस रोगका प्रशस्त औषध है। इसे १० मयूर्ण तक मात्रामें बिबिधता कर मोतम अरुके साथ प्रयोग करना चाहिए। मुस्ताय बयो, कपूररस, मयूर्णकवाटल आदि और मतोसार और मयूर्णो रोयोक प्रबळ मतोसारनाशक औषध भी इस रोगमें प्रयुक्त होती है। इन सब औषधों के व्यवहारक समय थोडा मात्रामें मूतसञ्जीवनी मुरा अममें मिला कर सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। बिम्बु वमन वेग या द्विचकी रहनेसे मुरा न है सीधु पाण करायें। इससे द्विचकी, वमन, पिपासा और उदरधमान निवारित होते हैं। एक छत्रक मयूर्णक एक सेर अममें सिद्ध कर जब एक पाय रह जाय, तो डतार छे। इसका एक तोसा भाष चण्डे पर सेवन कराना चाहिए, इससे भी विशेष उपकार होता है।

अपाङ्गका मूक अणके साथ पीस कर सेवन करनेसे बिस्बिका रोगकी शान्ति होती है। करेके पहले क मयूर्ण पीवळकूर्ण डाक कर सेवन करनेसे बिस्बिका रोग आरोप हाता है और अठरानि उदीपित होती है। भेमसाठ, सौंड इन को बीजोंका कषाय या एक साथ बडफसका कषाय मिला कर सेवन करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

ई रोषमें तथा पेजाव करानेका उपाय—अवगत के होते रहने पर एक पसर धानका भावा एक ठोसा लीत्रमें मिला कर डेढ पाव अममें मिया दे। कुछ दरक बाह छान छे और इसके अममें कसकी जह मूक १ मात्रा छेयो इसायथी भाष तोडा और सौंफ भाष ठोसा पीम हर और सादा मयूर्ण पिसा हुआ १ मात्रा मिला देना

चाहिये। इस जलकी आध नोला मात्रा आध घण्टे पर पान करनेसे वमन बन्द हो जाता है। सरसों पीस कर पेट पर लेप देनेसे कै बन्द हो जाती है। श्रीग वमन रोगमें जो औषध बताई गई है, उनका भी प्रयोग किया जा सकता है। पेणाव करानेके लिये पथरकुच्चा, हिमसागर या लोहान्चूर नामक पत्तेका रस एक नोला मात्रासे सेवन कराना चाहिये। पथरकुच्चाका पत्ता और मोरा एकत्र पीस कर वस्तिप्रदेशमें भी प्रलेप करने से पेणा उतरता है। हाथ पैरमें भिन्नभिन्नके निवारणके लिये तारपीनका तेल और सुरा एकत्र मिला कर अथवा सरसोंके तेलके साथ कर्पूर मिला कर मलना चाहिये। केवल सोंठका चूर्ण मलनेसे भी उपकार होता है। कुट, नमक, फांजी और तिल तैल एकत्र पीस कर जग गरम कर लगानेसे भिन्नभिनी छूट जाती है।

हिक्का या हिचकी निवारणके लिये सन्निपात उच्चोक्त हिक्कानागक यागोका व्यवहार करना चाहिये। अथवा कदलीके मूलके रसका नम्य लेना या सरसों पीस कर मेरुदण्डमें प्रलेप देना अथवा तारपीन तेरु उदरमें लगाना चाहिये।

रोगी जब पिपासासे कातर हो, तब कर्पूर मिश्रित जल अथवा बरफका जल पान कराना चाहिये। अन्तिम कालकी हिमाङ्ग अवस्थामें सूचिकाभरण देनेके पहले मृगनाभि (कस्तूरी) और मकरध्वज प्रयोग करनेसे भी विशेष उपकार होगा।

इस रोगकी चिकित्साके विषयमें सर्वदा सतक रहना आवश्यक है। क्योंकि इसमें कब किस समय कौन अनिष्ट होगा उसका अनुमान किया जा नहीं सकता। रोगीका घर, ग्रय्या और पहने हुए वस्त्र आदि साफ रहने चाहिये। घरमें कर्पूर, धूप और गन्धकका धूँआ करते रहने चाहिये। रोगीका मल मूत्र बहुत दूर पर फेंकना चाहिये। (सुश्रुत)

पथ्यापथ्य—रोगकी प्रथम अवस्थामें उपवासके सिवा और कुछ भी पथ्य नहीं। पीडाका हान्न होने पर रोगीको भूख लगने पर सिघाडाका आटा, अरारुट या सागूदाना जलमें पका कर देना उचित है। अतीसार रोगोक्त यवांगू भी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है।

इन सब पथ्योंमें कागजी निवृत्ता रस दिया जा सकता है। पीडा सम्पूर्णरूपसे निवारित हो अधिक क्षुधा होनेसे पुराने चावलका भात, मछलीका शोरवा और लघुपात्र द्रव्य सेवन करना चाहिये।

निषिद्धकर्म—सम्पूर्णरूपसे व्यामथ्य लाभ न होने तक किसी तरहका गुरुपाक द्रव्य, घृत या घृतपक्व भोजन, मैथून, अग्नि शीर धूप, ध्यायाम या अन्यान्य श्रमजनक कार्य न करने चाहिये। पहले ही कहा गया है, कि बजीर्ण ही इस रोगका मूल कारण है। अतएव जिन सब ब्रजोंके भोजन करनेसे बजीर्ण रोग हो सकता है, उनका परित्याग करना चाहिये।

एतोपैथिक मतसे इसे कालेरा मर्वाम कालेरा स्प्याज मोडिका, पसियाटिक कालेरा, मेलिगनेएट कालेरा या एपिडेमिक कालेरा कहते हैं।

यह अत्यन्त संक्रामक और मांघातिक पीडा है। कभी कभी एक स्थानमें आगम हो बहुतेरे स्थानोंमें फैल जाता है और कभी कभी सम्यक् रूपसे प्रादुर्भूत होते देखा जाता है। वमन और जलघत् प्रलत्यागके साथ शरीरका ठण्ड हो जाना ही इसका प्रधान लक्षण है। पहले यह रोग मध्य एशियामें प्रादुर्भूत हुआ। इसी लिये इसका एक नाम एशियाटिक कालेरा है। यह सुश्रुतकी विस्त्रुचिकामे पृथक् है। भारतमहामागरके द्रोपपुत्रमें भी यह महामारीके रूपमें कई जताब्दियोंसे दिखाई देना आ रहा है। ईस्वीसन् १७वीं जताब्दीके शेष भागमें यह पहले भारतमें प्रकट हुआ। इसके बाद क्रमशः नाना देशोंमें फैल गया, किन्तु अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा एकमात्र निम्न चङ्ग ही इस रोगकी लोलास्थान कहनेसे कोई अत्युक्ति न होगी। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष महीनेसे चैत तक यहांके लक्ष लक्ष अधिवासी इस विस्त्रुचिका रोगसे प्राण रो वैठने हैं।

सन् १७७० ई०में पहले चिकित्सक इस रोगके नामसे अनभिज्ञ थे। यह पहले भारतवर्षमें प्रकाशित हुआ। इसके बाद सारे भूमण्डलमें फैला है। सन् १७८१ ई०में भारतवर्षीय सेनाध्यक्ष सर आथरकूटकी सेनामें यह रोग फैला था। इसके बाद सन् १८१७ ई०में चट्टग्राम, मैमनसिंह और यशोहर जिलेमें यह रोग





परिवर्तनके कारण अकस्मात् अदृश्य होने दिखाई देती हैं।

विशेषभावसे पाठ्यवेक्षण करनेमें मालम होता है, कि इस रोगके निम्नलिखित कारण हैं—(१) अति वृष्टि, (२) वायुकी आद्रता या स्थिरता, (३) अत्युष्ण वायु, (४) अपरिष्कृत जल और वायु, (५) अतिशक्ति परिश्रम विशेषतः अधिक दूर जाने पर क्लान्ति, आहारका अनियम, मनकष्ट शोक, दग्धता, जनता और रात्रि जागृण आदि, (६) अधिक उम्र या शारीरिक दुबलता, (७) पीड़ित व्यक्तिसे समीप रहना, या उधरसे मनुष्योका आना जाना, (८) नवागन्तुक व्यक्तिका शीघ्र आक्रान्त होना। फुस्फुस और अतड्डियो द्वारा यह विषाक्त पदार्थ देहमें प्रवेश और पूर्ण विकाराण पाते हैं।

रोगको अवस्थाके अनुसार रोगीके शरीरिक परिवर्तन होते हैं। शरीर ठण्डा हो जानेसे मृत्यु होने पर चमड़ा नीलाम और निर्भाज कुछ लाल रङ्गका तथा हाथ पैरका चर्म मंफुचिन हो जाता है। मृत देह शीघ्र ही कड़ी और विकृत हो जाती है। मृत्युके बाद शीघ्र ही उत्ताप कुछ बढ़ जाता है और मृतदेह कुछ देर तक गरम रहती है।

रोगक्रमणके बाद रक्तसञ्चालनकी क्रियामें विकृति हो जाती है। हृत्पिण्डका वाया केटर, धमनी और चर्मकी कैणिका और दक्षिण केटर, पालमोनरी गिराये और पालमोनरी कैणिकाये रक्तशून्य हो जाती हैं।

२ से ५ दिनों तक और कभी कभी १८ दिनों तक रोग गुत्तावस्थामें रहता है। इस अवस्थामें कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं देता। उक्त अवस्थाके सिवा इस रोगमें निम्नोक्त और भी चार अवस्थाये प्रकट होती हैं।

(१) आक्रमणावस्था या इनमेसन् प्रेज—किसी जगह कालेरा या हंजा होने पर वहाँ बहुत आद्रमियोका उद्रामय उपस्थित होता है। उनमें कई आद्रमियोका उद्रामय हंजेका रूप ग्रहण करता है। उद्रामय न होनेसे रोगके पूर्वका पित्त अन्यान्य लक्षणोंमें दुर्बलता, अङ्कम्पन, मुत्रश्रो विवर्ण उद्रोदुर्ध्व देशमें वेदना, कानके भीतर नाता शब्दोंका होना, गिरापीडा, शिरका घुमना

आदि कुछ दिनोंके लिये चनें मान रह सकते हैं।

(२) प्रकाश या दग्ध और फीकी अवस्था—अङ्कुरेजीमें इनके गथाक्रम ड्रेवलपमेण्ट अथवा इवाप्तयुपेगन प्रेज कहते हैं। यह पीडा प्रायः प्रातःकाल प्रकट होता है। पहले अत्रिक परिमाणसे दग्ध आने हैं और उममें मल और पित्त देखे जाते हैं। इसके साथ या एक घण्टेके बाद उममें अधिक जलवत् मलत्याग होता रहता है। २३ बार दग्ध होनेके बाद इसका रङ्ग बदल जाता है। देखनेमें जलवत् और जरा सादा होता। अङ्कुरेजीमें जिमके राइस वाटर फ्लुल कहते हैं। कभी मल रक्त वर्णका हो जाता है। मलका आपेक्षिक गुरुत्व १००५ में १०१० तक और इसके अघःशेषमें निम्नलिखित चीजें दिखाई देती हैं। जैसे—पोटाण और लघण और थोडा एलबुमेन। एक पाइण्ड मलमें ४ प्रेज गाट अंज रहता है। अणुशीक्षण द्वारा जम्पवन् पदार्थ एपिथिलियल कांथ और कभी कभी एक तरहका सूक्ष्म उद्भिज देखा जाता है। इस तरह वायु शीघ्र शीघ्र और वायुमार होता है। किन्तु मलत्यागमें सामान्य वेदना रहती है। कभी कभी रोगीके उद्रोदुर्ध्वदेशमें कुछ जलन मालूम होती है। ७८ बार दग्ध होनेके बाद वमन आरम्भ होने देखा जाता है। पहले पाकाशयसे भक्षित द्रव्य बाहर निकलता है और उममें पित्त मिला रहता है। क्रमशः जलवत् अथवा पीताम तरल पदार्थ और मृकाम पदार्थ निकलता है। किसी चीजके अक्षण तथा आपत्रके सेवन करनेके बाद वमनका वेग बढ़ता है। रोगीके अधिक निर्बलता बोध होने लगती है और वह शार्ण हो जाता है। जलवत् मलत्यागके समय रोगीके क्रमशः हाथ पैरको उंगलियोंमें, उरु देशमें, और पैरके पश्चात्भागमें ऐंठन (Cramps) होने लगती है। कभी कभी उद्रकी पेगी तक यह फैल जाती है। रोगीका मुखमण्डल चिंगना रङ्गका या सांसेके रङ्गका हो जाता है। उत्ताप स्वाभाविकसे कम हो जाता, नाडा अत्यन्त शीण, अन्यान्य लक्षणोंमें पिपासाधिक्य और अस्थिरता रहता है। भेद और प्रव्ररताके अनुसार जीघ या कुछ देरसे तृतीय अवस्था उत्पन्न होती है।

(३) हिमाङ्गोवस्था या कोलाप्स प्रेज इस—ममय

मी बहुत और की कुछ न जाने होने रहते हैं। मूक मण्डल अत्यन्त स कुचित और आहोन दिखाई देता है। दोनों होंठ नीचे बर्ण, आंखें मातरमें घसी और मधु-सूक्ष्मी, नाक ऊंची और सर्वाङ्गमें पसीमा निकलता रहता है। हाथ पैर स कुचित और रक्त-शून्य अर्थात् धोखीके हाथकी तरह दिखाई देता है। उष्ण बहुत कम हो जाता अर्थात् ९०से ९० डिग्री तक हो जाता है। नाडी अत्यन्त क्षीण और किसी किसी स्थानमें माहूम भी नहीं होती। रक्तसञ्चालन प्रायः बन्द हो कर आसहृद्य उपस्थित होता है। किसी जिराके काटने पर के सामान्य रक्त दिखाई देता है, वह भी पहले चाँडे मलकटरीकी तरह गाढ़ा दिखाई देता है, पीछे वायुस्पर्शसे उज्ज्वलवर्ण धारण करता है। प्रभासबाधु शीतल और उसमें कार्बोनिक् गैसका माग बहुत कम रहता है। कमी कमी आसहृद्य रहता है और रोगी शीतल वायु ग्रहण करनेका आग्रह प्रकाशित करता है। ज्वरपङ्क अस्थिरता, अनिद्रा, शिरका घमना, जिरमें बू कार्बोनिक् तरह तरहके शर्बुका हांगा, द्रुधिपथमें नागा वस्तुओंका दर्शन और कमी कमी कम्प उपस्थित होता है। इस अवस्थामें ज्ञाना और पाकरस आदिका हास्त दिखाई देता है। जिह्वा शीतल, रोगी आमहृद्यैक शीतल जलका पान करने तथा बदनके वस्त्रों को उतार के कमीकी इच्छा प्रकाश करता है। न ग स्पर्श करने पर मुतबहकी तरह शीतल माहूम होती है। मलका परिमाण अल्प और इसकी बू मन्की मल्लकीका तरह होती है। मूक रुक जाता है। ज्ञान प्रायः बर्धमान रहता है। किन्तु मूरयुके अत्यवदित पहले अचेतनादि दिखाई देती है। सामाविक श्रोत्रमें स्पर्श द्वारा के प्रत्याबर्धनिक क्रिया उत्पन्न होती है, उसका कमी होती है। ये सब लक्षण प्रकर होनेसे रोग प्रायः आरोग्य नहीं होगा। आसहृद्य, रक्तसञ्चालनक्रिया शेष घघवा अचेतन अवस्थामें मूरयु हो सकती है।

(४) प्रतिक्रियाकी अवस्था या रियाञ्जन प्येज—इसमें रोगीकी मुखधो और बर्ण कमशः सामाविक अवस्थामें परिवर्तित होते देखा जाता है। नाडी और इत्युपिस्त्रको क्रिया मबल और शीतल उन्नत होने मगता है। प्रति

क्रियाकी प्रथमावस्थामें स्पर्श करनेसे कमड़ा गम्य माहूम होता है। किन्तु उस समय भीतरक सब न शोक शीतल रहनेसे धर्ममिटरमें उष्णपकी माता अधिक दिखाई नहीं देती। निम्बास प्रभास नियमित और सरल तथा पेक्षाव निःसात्ति और पुनरुत्पादित होता है। अस्थिरता बमन और तुष्णाका हास इष्टा है। सामान्य परिमाणसे रक्त होते रहते हैं तथा मलमें पित्त दिखाई देता है। रोगीको कमी कमी निद्रा घर बचाती है। पेशाबमें मरकता होती है। किन्तु सखा पेसी सुविधा नहीं रहती। अत्यन्त दिक्की, पुरिमिया, मूदुम्बर, कमी कमी पुनरापमवे, वमन, उवामय आमाशय, कर्णमूल और कार्णयातमें हृद इत्यादि नागा प्रकारके उपस्पर्श दिखाई देते हैं। इनमें प्रधान उपसर्ग पुरिमिया है। अतपव इसका सामान्य बर्णन करना उचित है। पुरिमिया होने पर बमन फिर बढ़ने मगता है तथा मल मन्त्र रंगका हो जाता है। आंखें छाळ छाळ हो जाती हैं प्रकाय कमरमें बू, अर्धैतम्य और आक्षेप आदि बरी मान रहता है। २३ दिनों तक पेशाब न होने पर रोगी कारकवसमें या दाइफायेड अवस्थामे आ जाता है। पुरिमियाका उष्ण सामाविकका कम हो जाता है। किन्तु न्युमोनिवा, द्युरिसि, उवर आदि उपसर्ग उपस्थित होने पर उष्णपकी घूमि होती है।

प्रकारम्—(१) गुप्तप्रकार—कमी कमी सामान्य मूद और बमन होनेक बाद सहसा हिमाङ्गनपस्था पास हा रोगीकी मूरयु हो जाता है। (२) काँटेराइनिन जाये रिया या कलेरिन—इससे रोगी २४ दिनों तक बार बार अधिक पतिमावसे तरल और पाण्डुवर्णका मलत्पाव करता है। सामान्य वमन और क्लाम्य बर्धमान रहता है। रोगी इस अवस्थासे आरोग्यकाम कर सकता है। या एक तरहक उबरने आक्रान्त हो मूरयुमकमें पतित हो सकता है। कमी कमी यह यथार्थ हैजेका रूप धारण कर लेता है। (३) ममर जायेरिया या इनिस् काँटेरा—इसमें काँटेराके सब लक्षण दिखाई देते हैं। किन्तु इसकी तरह मुकतर नहीं होता। मल और वमनमें पित्त दिखाई देता और उदर अत्यन्त पीटना रहता है। सामान्य परिमाणसे मूलत्पाव हाता है। आहारक

अनियमसे यह पीडा होता है। मृत्युमर्त्या अल्प है।

निर्णयतत्त्व—यह प्रायः अन्य पांडाके साथ क्रम नहीं होता। कभी कभी विषयानजनित रोगके साथ क्रम हो सकता है। किन्तु ऐसा अवस्थामें मलमें पित्त रहता है और सामान्य परिमाणमें पेजाव हाता है। कभी कभी घमनमें आर्सानक घूषण पाया जाता है।

भोगकाल—२३ घण्टेमें २४ दिन कभी कभी एक सप्ताह तक।

अविष्यफल—सर्वदा गुरुतर, भेदधमनेच्छासे नाडा विलुप्त होन पर और सुप्तमण्डलके कि १ विशेष परि वर्तन न होनेसे आरोग्य होनेकी सम्भावना है। कालाप्स पेटमें रेंडिजल यात्र कियल घमना सामान्य भावसे स्पर्शान्दत होनेसे और निःश्वास प्रश्वाममें अधिक कष्ट न रहने पर आरोग्य होनेकी आशा को जाना है। किन्तु नाडाका सम्पूर्ण लोप, अत्यन्त पसीना, साइयनगमिस, अर्चनन्य और निःश्वास-प्रश्वाम बहुत आद लक्षण गुरुतर माने जाते हैं। वृद्धवयस, अमिता-चार, दुर्बलता या मूलकी कोई पांडा रहनेसे व्याधि गुरुतर हो जाती है। रियाकसनपेटमें २४ या २६ घण्टेमें मूत्रत्याग, कभी कभी निद्रा और बाहार्य या पानोय द्रव्यका पाकाशयमें अवस्थान शुभ लक्षण है। सूतावरोध, नेत्राका लाल होना और अर्चनन्य आदि शङ्काइड लक्षणोका अशुभ मानते हैं। गुलाबा या लोहित वर्ण तरल मल और पाकाशयसे रक्तस्राव आदि लक्षण साघातक माने जाते हैं। अताडयोका अव-धाताके लिये कभी कभी सहसा कोष्ठवद्ध हाता है यह अशुभ है।

मृत्युसप्त्या—इस रोगमें सैकड़ें २०, ३०, ४० या ६० मनुष्य भी मरते हैं। कालेरा फिमिडेमिकके प्रथम कई दिन मृत्युका संख्या अधिक हाता है, किन्तु इसका क्रमशः ह्रास होने लगता है।

चिकित्सा—(१) इथ्याव्यूरेसन एज—डाकूर जन सनका कहना है, कि इस पांडाके विषाक पदार्थक लिये पहले फाएर आयल (रेडीका तेल) देना होगा, किन्तु यह उचित नहीं। इसा समय टिं ओपियाई, लाइकर ओपियाई सिडेडिक्स, ओपियसपिल और

अन्यान्य सट्टोचक सध औषध जैसे—फ्लम्याई एमिटेस, चकमिकश्चर और क्लोरोडाइन इत्यादि व्यवहार्य हैं। घमन रोकनेके लिये इपिगीट्रायमें मण्डे प्लाएर क्रिया कोल्ड कम्प्रेस मालान तथा आम्ब्यनरिक फेलेरोफार्मा, विषमथ और बरफ आदि व्यवस्थेय है। काम्पके लिये हाथ पाँवमें मांडका चूर्ण, क्लोरोफरम् त्रिनिमेण्ट अथवा गरम तापीन तेलकी मालिश करनी चाहिये। उष्ण जल परिपूर्ण बोतल हाथ पैर पर करनेसे उपकार होना है। नाडी दुर्बल रहनेमें स्वल्प परिमाणमें ब्राण्डो और बलकर औषध देना उचित है।

(२) हिमाङ्गावस्था—इस अवस्थाम अफीमघटित औषध निषिद्ध है। हाकूर निमेवार उष्ण काफो दनको कहते हैं। वहुनेरे डिफिउजिनेट टिमिउलेण्ट यथा—स्पिट एमन परोमेट या कार्बनेट आव एमोनिया और क्लारिक वा सलफ्यूरिक इधर व्यवहार करनेका उपदेश देते हैं। सिनेमन, काजुपटो और पिपरमेण्ट आदि औषधोका जलके साथ व्यवहार करनेसे अधिक उपकार हाता है। बरफके साथ सामान्य मात्रामें ब्राण्डो देना कर्त्तव्य है। यदि इसके द्वारा नाडी उत्तेजित न हो सके, तो इसे बार बार देना चाहिये। अधिक परि-माणसे ब्राण्डो उग्रस्थ होने पर कभी कभी रियाकसन लक्षण गुरुतर हो उठते हैं। अन्यान्य शरावोमें साम्येन विशेष उपकारी है। अत्यन्त पसीना होने पर उसे पपड़े से पोछ देना चाहिये। पिपासा शान्त करनेके लिये बरफ, सोडावाटर, लेमनेड, या क्लोरेट आव पोटास जलमें मिला कर देना चाहिये। सलफ्यूरिक इधरका इजेक्ट करनेसे फल हाता है।

(३) रियाकसन पेटेज—रियाकसन आरम्भ होने पर भोजनके लिये तरल और लघुपाक वस्तु देनी चाहिये। इस अवस्थामें प्रचुर परिमाणसे जलका क्लोरेट आव पोटास या कार्बनेट आव सोडा सोलिउसन पानार्थ देना चाहिये। इससे रक्तम फिड लवणका मञ्जार हाता है। रियाकसन सुचारु रूपसे न होने पर युरि-मिया उपास्थित होते देखा जाता है। इस समय रक्तमें यथेष्ट युरिया दिजाई देता है। यद्यपि युरिया मूल कारक कहा जाता है, तथापि इससे मूलकी क्रिया सुचारु

काम सम्पन्न मदी होती। मूल उत्पादन करनेके लिये पोटासी नाइट्रेस, इथर, एडुलक, टि केम्याराइडिस और जिन सुत भादि मूलकारक औषध व्यवहारात्में हैं। मूलकारक औषध व्यवहार करनेके समय बोध बोधोमें द्विकि उच्चैके प्रोम उमेवट देना आवश्यक है। सम्पूर्णरूपमें काष्ठरुद्ध करना उचित नहा। क्योंकि मल द्वारा कुछ परिमाणसे सुरिया परित्यक्त होता है।  
स्थानिक—रुडिईशमें कोमेण्टेयण मापाईं ग्राएर नंलग्न और शुष्क या आद्र कर्षि करना उचित है।

कमा कमी मूलस्वायण करते समय मा अन्वयत यमन और ह्यका होता है। इसक निवारणक लिये नेकया विममय और पाहरकृषिक लिये भादि दिया जाता है। स्थानिक औषधमें इपिगिट्रियम, थियर और रम पर भाया प्रेन मर्षिया लेयन आर मार्बाकल वारिमाक ऊपर थियर हैनेस कमी कमा उपकार होता है। सुरि मिवाक लिये जिद्राधेग रहने पर गरवूनमें थियर देना उचित है। टाफाईडका छन्नय रहनेसे सेपिडमन्के कार्यनासकी व्यवस्था है।

विशेष बिबिस्ता और औषध—कामाप्स मबस्थामें गिरामें लवणजनका इन्जेक्शन करनेके रोगीता मुक मरुटम इउमम दिवाई देना है और मन्वाम्य छन्नयोका मायब होता है। किन्तु यह उपकार लणस्थाया है। अत्यन्त क्दाप्य रहनेसे १०० मिनिम मात्रामें नाइट्रो थियरिन दिया जाता है। मयबा ५ प्रेन मात्रामें कबोराक हाइड्रास कमडेमें इडेकृ करना चाहिये।

प्रतिषेधक चिन्दिमा—अर्धा कालरा या इडेा हुआ हो, बर्हाक अधिबासिपोको नित्य दो बार १०।१५ मिनिम मात्रामें सन्वपूरिक एसिड डिन ड्ळमें मिभा कर सयनार्थ देना चाहिये। सुस्फानु भाय द्रव्य निय मितरूपसे आहार करना चाहिये। यहाँका अस या रूप क्वापि पाना न चाहिये। मळ और मूतदेहमें कार्बोनिक् एसिड छिडकना चाहिये। घरमें सूना पोत कर उसमें बिसुल्फेक्युटेरेटोका छोरना चाहिये।

पद्य—यहमें नागूराना मरुकर, बाबई, बिकटो चिकन् मधु भादि तत्क भाय देना उचित है। कमनिवारण होमें पर रूप दिया जा सकता है। इस्त रुकने पर

बिकटा और प्रास्कोका पानिमा ५। टाफाईडक लक्षण उपस्थित होन पर बिकटो जगसुप और पोटी इत्यादि बलकारक आहार देना उचित है।

बिसूचो (स० खो०) विशेषण सुखपति मृत्युमिति बि सथ मञ्छिप्रिया जीव। अशीर्षागबिरोय।

वित्तुविका द को।

विसूत (स० लि०) ससार्थि सारधियुक्त।

विसल (स० लि०) विष्ट कल, मृ कसार्हित।

(राजवर० ५।७७४)

विसुन्न (स० खी०) छन्नमङ्ग

विसुन्नता (स० खो०) विष्ट कसता।

(राजवरणी १।३६१)

विसुत्त (स० लि०) विष्टकूलयुक्त मृदुमारहित।

विसृण (स० खो०) १ शोक कुञ्ज। २ चिन्ता फिक। ३ विरक्ति, वैराग्य।

विसृति (स० खी०) अनुताप, कुञ्ज।

विसृतिता (स० खो०) विसृतितावर।

विसूर्य (स० लि०) सूर्जरहित। (हरिव ४)

विसुम्य (स० लि०) सृष्टि करने योग्य।

(मानव ७।३२२)

विसुन् (म० लि०) बिन्धु बिधु। प्रसरणशोक, कैलातेवासा।

विसुन (स० खी०) १ बिस्तृत, बीड़ा। २ निर्गत, बिकारों हुआ। ३ कथित कहा हुआ।

विसुनवर (स० लि०) विन्धु-करण (इयनशभि ठरिन्धः करण। पा ३।३।१६१) इत्यस्येति तुक् प्रसरणशोक, कैलाते वासा।

विसुप (स० लि०) विन्धु-विणय। विसर्पणशाम।

विसुप्ति (स० खी०) वि सुप्-क्ति। विसरण, प्रसरण फेलाय।

विसुमर (स० लि०) विशेषण मरति तच्छीला बिन्धु कमरन् (एण्वरा कमर। पा ३।२।१६०) प्रसरणशोक, कैलातेवासा। (अमर)

विसुप (स० लि०) बि सुप-क। १ विसित, फ का हुआ। २ विशेष प्रकारसे सृष्ट, जिसकी सृष्टि या रचना विशेष प्रकारसे हुई हो। ३ परित्यक्त छोड़ा

हुआ। ४ प्रेषित, भेजा हुआ। (पु०) ५ विसर्ग,  
(ः) इस प्रकार हो विन्दु। "र सकारयोर्विस्मृष्टः"

(कातन्त्र)

विस्मृष्टेन (सं० त्रि०) विस्मृष्टजिह्व अर्थान् मध्यमन्वरत्नं  
उच्चार्यमाण, गणयादि (शुक् ७।२४।२)

विस्मृष्टराति (सं० स्त्री०) रा-क्ति (कर्मणि) विस्मृष्टा  
प्रदत्ता राति धनं येन। वह जो प्रार्थियोंको अर्थान् यज्ञ  
करनेवालोंको धन देता हो।

विस्मृष्टवाच (सं० त्रि०) वि-स्मृष्टा वाक् येन। मीना-  
चलम्बी।

विस्मृष्टि (सं० स्त्री०) विविध प्रकारकी स्मृष्टि।  
(शुक् १।१२६।६)

विस्मोटा (हिं० पु०) अडूसा।

विस्मोम (सं० त्रि०) १ सोमरहित। (शतपथब्रा० १।१।२८)  
२ चन्द्रदान्य।

विस्मोद्य (सं० स्त्री०) सुखरहितका भाव, दुःख, कष्ट।

विस्मोरम (सं० त्रि०) १ निर्गन्ध, गन्धरहित। २ दुर्गन्ध।

विस्करम्म (सं० पु०) विष्करम्म देखो।

विस्मन् (सं० पु० स्त्री०) विस उदसर्गे विस-क्त। १ कर्ण  
अर्थात् दो तोला मोना। २ अज्ञोतिरक्तिका परिमित  
स्वर्ण, ८० रत्नी सोना।

विस्तर (सं० पु०) वि-स्तृ-अप् (प्रथमे वाक्यभेदे। पा  
३।३।३३ इति घञः प्रतिषेध 'भृदोरप्' इति अप्)

१ शब्दका विस्तार या विस्तृति, विशेष वर्णन। (भाग  
वत ३।३।१) वेदाङ्ग। भाग० (३।३।१) ३ विस्तार, फैलाव।

(गीता ७।१६) ४ प्रणय, प्रेम। (मेदिनी) ५ पीठ।  
६ समूह। ७ आसन, शय्या। ८ संख्या। १० आधार।  
११ शिव। (भा० १।३।१।३६)

(त्रि०) १२ प्रचुर, बहुत, अधिक।

विस्तारक (सं० पु०) विस्तार देखो।

विस्तारणी (सं० स्त्री०) ब्राह्मण पत्नीभेद।  
(मार्क०पु० ६।१।६५)

विस्तारता (सं० स्त्री०) विस्तारत्व, बहुत या अधिक  
होनेका भाव।

विस्तारशस (सं० अन्त्य०) विस्तर-वशस वीप्सायं।  
अनेकानेक, बहुतों।

विस्तार (सं० पु०) वि स्तृ-घञ् (प्रथमे वाक्यभेदे। पा ३।३।३३)  
१ विटप, पेड़की शाखा। २ विस्तीर्णता, लंबे या चौड़े  
होनेका भाव। पर्याय—विग्रह, व्यास। (अमर) ३

मनस्य, गुच्छा। (मेदिनी) ४ समाम वाक्य। ५ विजालता।  
६ पदममूह। ७ शिव। (भा० १।३।१।२५) ८ विष्णु।

(भा० १।३।१।५६)

विस्तारता (सं० स्त्री०) विस्तारका भाव, फैलाव।

विस्तारति (सं० त्रि०) प्रसारति, फैला हुआ।

विस्तारो (सं० त्रि०) विस्तारोऽस्त्यप्येति विस्तार-इति।  
१ विस्तृत, जिसका विस्तार अधिक हा। (पु०) २ वट-  
वृक्ष, बरगदका पेड़। (बैचकनिब०)

विस्तीर्ण (सं० त्रि०) वि स्तृ-क्त। (रदाम्यामिति नः।  
पा ८।२।४२) १ विपुल, बहुत अधिक। २ विस्तृत,  
बहुत दूर तक फैला हुआ। ३ विजाल, बहुत बड़ा।

विस्तीर्णकर्ण (सं० पु०) हस्तो, हाथो।

विस्तीर्णता (सं० स्त्री०) विस्तीर्ण होनेका भाव, विस्तार,  
फैलाव।

विस्तीर्णपण (सं० स्त्री०) विस्तीर्ण पण पत्रमस्य।  
माणक, मानकंद।

विस्तीर्णभेद (सं० पु०) बुद्धभेद (द्विद्विस्तर)

विस्तीर्णवती (सं० स्त्री०) जगद्धेद। (त्रि०) २

विस्तीर्ण विशिष्ट, जो खूब लंबा चौड़ा हो।

विस्तृत (सं० त्रि०) वि स्तृ-क्त। १ विस्तारमुक्त, जो  
अधिक दूर तक फैला हुआ हो। २ विजाल, बहुत बड़ा।

३ लम्बा। ४ चौड़ा। ५ व्याप्त, फैला हुआ। ६ यथेष्ट-  
विवरणवाला, जिसके सब अंग या सब दाते बतलाई  
गई हों।

विस्तृति (सं० स्त्री०) वि स्तृ-क्तिन्। १ विस्तार, फैलाव।  
२ व्याप्ति। ३ लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई या गहराई।  
४ वृत्तका व्यास।

विस्थान (सं० त्रि०) स्थानच्युत।

विस्पन्द (सं० पु०) विस्पन्द देखो।

विस्पन्दन (सं० स्त्री०) प्रस्पन्दन, विकम्पन।

विस्पर्धा (सं० स्त्री०) विशेष प्रकारसे स्पर्धा या  
प्रगल्भता।

बिस्परिभिन ( सं० लि० ) १ स्पर्दायुक्त, वृत्तरेखो परास्त करनेकी इच्छा करनेवाला । २ साठ्ठस्ययुक्त, सठ्ठस, सामान ।

बिस्परध ( सं० लि० ) ध्यक्त, स्फुट, प्रकाशित, सुस्पष्ट ।

बिस्फुक्त ( सं० लि० ) भासात् ।

बिस्फार ( सं० पु० ) बिस्फुर धम् । ( स्फुटस्फुटस्फोर्येभ्य इत्यादिभ्यम् । पा ८।३।७६ )

१ स्फुरात्स्वनि, कमानका शब्द । २ स्फूर्ति सेवी । ३ क्या, धनुषकी डोरी । ४ कम्प, कांपना, बार बार हिलना । ५ विस्तार फैलाना । ३ विकारा ।

बिस्फारक ( सं० पु० ) वातप्रधान सन्निपात स्वरका एक भेद । यह स्वर बहुत मयङ्कर होता है । इसमें रोमोका नासी, मूच्छा, मोह प्रकाय, कम्प, पाण्डेयना और अ माईं होती है तथा रोगा मुचने कपाय रसका अनुमय करता है । ( मानस० )

बिस्फारित ( सं० लि० ) १ कम्पित, कपा हुआ, खटा हुआ । २ स्फूर्तियुक्त तैज । ३ विस्तारित, फैला हुआ । ४ प्रकाशित । २ अर्णित जम्ब किया हुआ ।

बिस्फारम ( सं० पु० ) बिस्फुल धम् । ( पा १।१।४० और ८।३।७६ ) बिस्फार देखो ।

बिस्फुट ( सं० लि० ) विशेष प्रकारस ध्यक्त वा प्रकाशित, प्रस्फुट ।

बिस्फुर ( सं० लि० ) बिस्फार देखो ।

बिस्फुरक ( सं० पु० ) बिस्फारक देखो ।

बिस्फुरणो ( सं० ह्रा० ) तिलुकवृत्त, तैजूका पेठ ।

बिस्फुरित ( सं० लि० ) बिस्फुट-जन । १ स्फूर्तिबिगिष्ट, तम । २ अक्षय, अस्थिर । ( ह्यो० ) ३ मन्मरोगविशेष ।

बिस्फुम्बिक ( सं० पु० ) बिस्फुरित बिस्फुट कु बिस्फु, तादृशं चिह्नमस्य । १ मालिका भागकी बिनगारी । २ एक प्रकारका विष ।

बिस्फुम्ब ( सं० पु० ) बिस्फुम्बु देखो ।

बिस्फुम्बु ( सं० पु० ) १ वस्त्रनिर्माण, बस्त्रका शब्द । २ वस्त्रेक वस्त्रि बहती ।

बिस्फुम्बन ( सं० ह्रा० ) किसी पदार्थका फैलना या बढ़ना बिकाम ।

बिस्फुम्बनी ( सं० ह्रा० ) तिलुकवृत्त, तैजूका पेठ ।

बिस्फुम्बित ( सं० लि० ) १ बस्त्रनिर्माहित । ( पु० ) २ नाग भेद ।

बिस्फाट ( सं० पु० ) बिस्फोटीति पि स्फुट-अच् । विकट स्फोटक, बिस्फोटा, दुष्ट स्फोटक । पर्याय—विदक, पिटका, विटक, विटका स्फोटक, स्फोट । ( उच्यते० )

कटु, अमृ, तीक्ष्ण, उष्ण, बिवाही, कस, हार और अजीर्णकारक द्रव्योंके मक्षण, अक्षयण, रौद्रसहन और शत्रुपरिवर्तनक कारण पाठादि दोषरूप कुपित हो चर्मका भाग्य छे कर स्वक् रक्त, मांस और अस्थि-को दूषित और कमड़े पर घोरतर बिस्फोटक रोग उत्पादन करता है । इस रोगके पहले स्वर होता है । जिस रोगमें रक्तपित्तक प्रकोपजनित पीठका स्वरके साथ शरीरके किसी एक स्थानमें या सारी देहमें मर्मि-रूप स्फोटककी तरह उत्पन्न होते हैं, उसको बिस्फो-टक कहते हैं । सब तरहके बिस्फोटमें ही रक्तपित्तका प्राधान्य रहता है । इसक सम्बन्धमें भोजनका कहना है, कि वायुके साथ कुपित रक्तपित्त सब स्वकृत् होता है, तभी यह सारी देहमें अग्निद्रव्यका तरह स्फोटक उत्पादन करता है ।

वातिक बिस्फोट—वातजन्य बिस्फोटमें शिरा दुग्ध, अल्पत सूक्ष्मवैधनवत् वैदना, स्वर, विपासा, पर्वभेद और स्फोटक काठे हो जाते हैं ।

पैतिक बिस्फोट—पित्तजनित बिस्फोटमें रोगी का स्वर, दाह और विपासा होता है तथा स्फोटक पीठ रक्त वर्णक और इनमें वैदना होता है । ये शीघ्र ही एक जाते तथा उनस प्रकाश भादि माने लगता है ।

श्लैष्मिक बिस्फोट—कफज बिस्फोटमें रोगीका बमन मरुचि और ईदकी अड़ता होती है । स्फोटक पाचद्रव्यमें कठिन गुञ्जकाहर और अल्पवैदनायुक्त हो कर देस पकता है ।

वातश्लैष्मिक—वातश्लैष्मिक बिस्फोटमें जुम्का हट, शरीर मारो और भाद्र बलाबगुण्डिका तरह मालुम होता है ।

पित्तश्लैष्मिक—कफपित्तजनित बिस्फोटमें गुञ्ज काहर, दाह स्वर और पमन होता है ।

वातपित्तिक—वात पित्तजनित विस्फोटमें बड़ी घटना होती है।

सान्निपातिक—वैदिक विस्फोटमें स्फोटकोंके मध्यभागमें नीचा, अन्तमें उन्नत, रक्तवर्ण, कठिन और अल्पपाकयुक्त होता है और रोगोंको दाह, पिपासा, मोह, वमन, इन्द्रियमोह, ज्वर, प्रलाप, कम्प और नन्दा उपस्थित होता है। यह असाध्य है।

रक्तज विस्फोट—रक्तजनित विस्फोट पित्तजके विस्फोट निदानमें उत्पन्न गुग्गा फलकी तरह रक्तवर्णका होता है। यह रोग सैकड़ों सिद्धयोगोंसे भी आगम नहीं होता।

इन आठ प्रकारके बाहरी विस्फोटोंकी बात कहा गई। इनके सिवा भीतर भी विस्फोट उत्पन्न होते हैं। आन्तरिक विस्फोट शरीरके बहिर्भागमें निकल कर प्रकाशित होने पर रोगी सुस्थलाभ करता है। किन्तु यह वायुके प्रकोपमें उत्पन्न होने पर बाहर नहीं निकलता। ऐसी अवस्थामें वातिक विस्फोटकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

उपद्रव—पिपासा, श्वास, मांससंकोच, दाह, हिचकी, मत्तता, ज्वर, विसर्प और मर्मथथा ये सब विस्फोट रोगके उपद्रव हैं।

साध्यासाध्य—विस्फोट एक दोषोद्भव होने पर साध्य, द्विदोषज होने पर कष्टसाध्य और वैदिक और सारे उपद्रवयुक्त होनेसे असाध्य हो जाता है।

चिकित्सा—विस्फोटरोगमें दोषके बलाबलकी विवेचना कर यथोपयुक्त लघन, वमन, पथ्यभोजन या विरेचनका प्रयोग करना चाहिये। विस्फोटमें पुराना चावल, जी, मूंग, मसूर और अरहर ये कई अन्न विशेष हिनकर हैं।

दशमूली, रासना, दासहरिद्रा, खमखसकी जड़, दुरालभा, गुडची, घनिया, मोथा—इन सबोंका क्वाथ पान करनेसे वातजनित विस्फोट दूर होता है। द्राक्षा, गाम्भीरी, खजूर, परबलकी पत्ती, नीम, वासक, कट्ठा, लई और दुरालभा इनके काथमें चीनी डाल कर पान करनेसे पित्तजनित विस्फोट नष्ट होता है। चिरैता, वच, अडूस, विफला, इन्द्रियव, कूटज, नीम और परबलकी पत्ती, इनके

क्वाथमें मधु डाल कर पीनेसे सब तरहके विस्फोट नष्ट होते हैं। चिरैता, नीम, मुलेठी, मोथा, अडूस, परबलकी पत्ती, पित्तपापड़, खसपसकी जड़, विफला और इन्द्रियव इन सब द्रव्योंका क्वाथ पान करनेसे सब तरहके विस्फोटक जल्द आराम होते हैं।

चावल घेये हुए जलके साथ इन्द्रियव पीस कर प्रलेप करनेसे विस्फोटक नष्ट होता है। गुलज, परबलकी पत्ती, अडूस, नीम, पित्तपापड़, खैरकी लकड़ी और मोथा इन सबका क्वाथ पीनेसे विस्फोटक आराम होता तथा उससे होनेवाला ज्वर भी नष्ट हो जाता है। चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, मारसा साग, सिरिसकी छाल, जातोफूल इन सबका समभाग ले पीस कर प्रलेप देनेसे विस्फोटकी जलन दूर होती है। नीलकमल, चन्दन, लोधा, घसखसकी जड़, अनन्तमूल, श्यामालता इन सबका समभाग ले जलसे पीम कर प्रलेप देनेसे विस्फोट और उससे होनेवाली जलनकी निवृत्ति होती है।

( भावप्रकाश विस्फोटरोगाधिका० )

विस्फोटक ( स० पु० ) १ विस्फोट, फोड़ा, विशेषतः जहरीला फोड़ा। २ वह पदार्थ जो गर्मी या आघातके कारण भभक उठे, भभकनेवाला पदार्थ। ३ शीतलाका रोग, चेचक।

विस्फोटज्वर ( स० पु० ) १ ज्वर जो जहरीले फोड़ेके कारण होता हो।

विस्फोटन ( स० क्त्वा० ) १ नाद, जोरका शब्द। २ किसी पदार्थका उवाल आदिके कारण फूट बहना।

विस्मय ( स० पु० ) धि स्मि-अच्। १ आश्चर्य, अद्भुत, ताज्जुब। पर्याय—अहो, हो। ( अमर ) २ साहित्यमें अद्भुत रसका एक स्थायी भाव। यह अनेक प्रकारके अलौकिक या चिलक्षण पदार्थोंके वर्णनके कारण मनमें उत्पन्न होता है।

३ दर्प, अभिमान, शेखी। ४ सन्देह, सप्रय, शक। विगतः समयो गर्वो यस्येति। ( लि० ) ५ नष्टगर्व, जिसका गर्व नष्ट या चूर्ण हो गया हो।

विस्मयद्वार ( स० लि० ) विस्मयं कराति विस्मय-क खश्। विस्मयकारी, आश्चर्य पैदा करनेवाला।

विस्मयङ्गम (स० लि०) विस्मय गच्छति विस्मय-गम  
कण्ठ् । विस्मयगामी, आश्चर्यान्वित ।

विस्मयण (स० क्ली०) वि-स्मि-ङ्युट् । विस्मय रेसो ।

विस्मयणीय (स० लि०) वि-स्मि-ङनीयर् । विस्मयके  
योग्य, आश्चर्यना विषय ।

विस्मयविषयवत् (स० लि०) विस्मय और विषयवत् ।

विस्मयान्वित (स० लि०) विस्मयण अन्वितः युक्तः ।

विस्मययुक्त, आश्चर्यान्वित । पर्याय—विस्मय (धमर)

विस्मरण (स० क्ली०) वि-स्मृ-ङ्युट् । विस्मृति, भूख  
ज्ञाना ।

विस्मर्यस्य (स० लि०) वि-स्मृ-ङ्युट् । विस्मरणक  
योग्य, भूकने स्थायक ।

विस्मयापक (स० लि०) विस्मयकारक, आश्चर्य पैदा  
करनेवाला ।

विस्मापण (स० लि०) वि-स्मि-ङ्यिष्-ङ्युट्-इकारस्था  
कण्ठम् । १ विस्मयजनक, जिससे हैस कर विस्मय हो ।

"नेन मेऽप्रदृष्टं तत्रो देवविस्मानं महत् ।" (भाग० १।१५।५)

(पु०) २ गन्धर्वनगर । ३ कामदेव । ४ कुम्भक, माया ।

५ विस्मयप्रवर्धन ।

विस्मापणीय (स० लि०) विस्मय इत्यन्त करनेके योग्य,  
जिस हैस कर आश्चर्य हो सके ।

विस्मापणीय (स० लि०) विस्मापणीय विस्मापणक  
धाम्य ।

विस्मापण (स० क्ली०) विस्मापणार्थक ।

विस्मारक (स० लि०) विस्मृतिजनक, मुला देनेवाला ।

विस्मारण (स० पु०) विज्ञान, छीन हो जाना, नष्ट हो  
जाना

विस्मित (स० लि०) वि-स्मि-ङ्क । १ विस्मयापणम्,  
अकित । (पु०) २ प्राकृत छन्दोम् । इसका दूसरा  
नाम मेघविस्फुजि त भी है ।

विस्मिन् (स० स्त्री०) वि-स्मि-ङ्कम् । विस्मरण सम्  
रण, याश् न रहना भूख ज्ञाना ।

विस्मृत (स० लि०) वि-स्मृ-ङ्क । विस्मरणयुक्त ।

विस्मृति (स० स्त्री०) वि-स्मृ-ङ्कम् । विस्मरण भूल  
जाना ।

विन्मेर (स० लि०) विस्मयकर, आश्चर्यजनक ।

विस्मय (स० पु०) विस्मय रेसो ।

विष्ण (स० क्ली०) वि-स-ङ्कम् । १ आमगंध, शमशान  
आदिमें मुर्दा जलनकी गंध । कोई कोई भयक मांसकी

गंधका भी विष्ण कहते हैं । (मरत) २ बाणक्यमूलक,  
बड़ी मूर्खी । (लि०) २ आमगंधविशिष्ट, मुर्देकी सा  
गंध ।

विष्ण स (स० पु०) वि-स-ङ्कम् । १ पतन, गिरना ।  
२ क्षरण, बहना ।

विष्ण मन (स० क्ली०) वि-स-ङ्कम् । विष्ण स,  
पतन ।

विष्ण सिका (स० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका  
उपकरण जिसमें घड़में भावुति हो जाती थी ।

विष्ण सिक (स० लि०) वि-स-ङ्कम् शोलाये जिनि । १ पतन  
शोल, गिरने लायक । २ क्षरणशील बहने लायक ।

विष्णक (स० लि०) विष्ण-सार्थ-कम् । विष्ण, मुर्देकी सो  
गन्ध ।

विष्णगन्ध (स० लि०) विष्णस्य गन्ध इव गन्धो यस्य । १  
विष्णकी तरह गन्धविशिष्ट, मुर्देके जलनकी-सी गन्धवाला

(पु०) २ पलायु, व्याज । ३ गोशक्ती, हस्ताक ।

विष्णगन्धा (स० स्त्री०) विष्ण गंधो यस्याः । हनुप,  
हाड बेर ।

विष्णगन्धि (स० पु०) विष्णामय गंधो यस्य । गोहस्त,  
हस्ताक ।

विष्णता (स० स्त्री०) विष्णस्य भाव तच्छ्रुत्वा । विष्णत्व,  
विष्णका भाव या धर्म ।

विष्णध (स० लि०) वि-स-ङ्कम् । विष्णध, विष्णस्त  
नियाम् ।

विष्णम (स० पु०) वि-स-ङ्कम् धम् । १ विष्णास, यकीन ।  
२ प्रणय, प्रेम । (ध-मन्त्रा) ३ कलिकछद्म कालिके  
समय सा और पुरुषमें हार्मिवाला जगदा । ४ बध,  
हत्या ।

विष्णमम (स० लि०) विष्णमते विष्णमितोति वि-स-ङ्कम्  
प्रिणुत् (वी-कन्धप्रत्ययसम्भ । पा।३।२।५३) १ विष्णास ।  
२ प्रणय ।

विष्णव (स० पु०) वि-स-ङ्कम् । क्षरण गिरना ।

विष्णव्य (स० क्ली०) वि-स-ङ्कम् । १ विष्णव, बहना ।  
२ क्षरण, रसन ।



विहस-विहरण

४ चन्द्रमा । ५ सूर्य । ६ नागविशेष ।

( भारत १५७।११ )

विहस ( म० लो० ) विहसस् क्रिप् । नष्टकारी, ध्वंस

क्रामे ।

विहस ( म० लो० ) जरा, बुढापा ।

विहस ( म० लो० ) विहसस् क । पतित, गिरा हुआ ।

विहस ( म० लो० ) प्रविहसन्धीय ।

( तैत्तिरीयस० ६।२।६।४ )

विहस ( स० लो० ) विहसं गंधोऽस्त्यस्या इति अच्, तन

प्राप् । १ दृष्टया, हाऊवेग । २ चर्चा ।

विहस ( स० पु० ) अन्नमण्ड, भातका नाँड ।

विहसावण ( सं० क्री० ) विहस-णिच् ल्युट् । १ क्षरण, गिरना ।

२ निकले हुए फोड़े का दर्द दूर करने तथा उसे पकने न

दनेके लिये प्रक्रमविशेष । ( सुभ्रुव )

विहसाव्य ( सं० लि० ) विहस-णिच् यत् । विहसावणयोग्य ।

गिराने लायक ।

विहस ( स० पु० ) ऋषिभेद ।

विहस ( म० लि० ) विहस-क । १ विहसृत, भूला हुआ ।

२ अधावित, ढोंडा हुआ । ३ क्षरित, गिरा हुआ ।

विहस ( स० लो० ) विहस-कित्त । क्षरण, रसना,

गना ।

विहस ( स० लो० ) १ नदी । ( श्रुक् ६।७।६ ) २ औषध,

दवा । ( श्रुक् १।४।३ )

विहसातन् ( म० क्री० ) उच्च संख्याभेद ।

विहसन ( म० पु० ) विहसन-अप् । शब्द, ध्वनि ।

विहसन ( म० पु० ) १ विहसतस्वर । ( लि० ) २ विहस-

ध्वन्युक्त ।

विहस ( म० पु० ) विहायसा गच्छतीति विहायस् गम-इ ।

( विहस-इति । पा ३।२।३८ ) इत्यत्र 'इ च विहायसो

यम् शब्दस्य विहायसः । १ पक्षी, चिडिया । २ वाण,

नोर । ३ सूर्य । ४ चन्द्र । ५ प्रह ।

विहसालय ( म० पु० ) विहसस्य आलयः । विहसोका

आलय, नोमला ।

विहस ( म० पु० ) विहायसा गच्छतीति विहस-गम-

ल्युट् । ( पा ३।२।३८ ) इत्यत्र 'गमेः सृज्' । अच्

विहसस्य विहायसः । 'अच्' इति कर्त्तव्यम् । १ विहस

१ पक्षी, चिडिया । २ वाण, नोर । ३ सूर्य, वादल ।

विहसक ( सं० पु० ) विहसः स्वार्थं कन् । पक्षी, चिडिया ।

विहसम् ( सं० पु० ) विहायसो गच्छतीति विहायस्-गम-

ल्युट् ( पा ३।२।३८ ) इत्यत्र 'अच्' प्रकरणे सुप्युपसभ्या-

नम्' इति काशिकोक्त्या अच्, विहायसो विहायसः ।

१ विहस, पक्षी । २ सूर्य ।

विहसमा ( सं० लो० ) १ पक्षिणी, मादा पक्षी । २ सूर्य-

को एक प्रकारकी किरण । ३ ग्यारहवें मनन्वन्तरकं

देवताओंका एक गण । ४ भारयष्टि, वह गीमेंको लकड़ा

जिसके दोनो सिरो पर दोस लटकाया जाता है ।

विहसमिका ( सं० लो० ) भारयष्टि, वह गी ।

विहसराज ( सं० पु० ) विहसना राजा राजाह इति टच्

समासान्तः । गच्छ ।

विहसहन ( सं० पु० ) विहस हन्-क्विप् । व्राध, बहे-

लिया ।

विहसराति ( सं० पु० ) १ व्राध, बहेलिया । विहस

एव अरातिः । २ पक्षीरूप 'हु, गच्छादि ।

विहसिका ( सं० लो० ) भारयष्टि, वह गी । ( अमर )

विहस ( सं० लो० ) गर्भोपघातिनो गर्भी ।

विहस ( सं० लि० ) विहस क । विहस, व्याहत, विफल,

भग्न ।

विहसि ( सं० लो० ) विहस-क्विप् । विहसन, विनाश,

वरधादी ।

विहसन ( सं० क्री० ) विहस ल्युट् । १ विहस, व्याघात ।

२ मद्ग । ३ हत्या । ४ हिंसा । ५ तूलपिञ्जल,

कईकी वस्ती ।

विहसन्त ( सं० लि० ) विहस-न्तच् । विहसनप्रारो,

नाश करनेवाला ।

विहसन्तव्य ( सं० लि० ) विहसनयोग्य, नाशकं उपयुक्त ।

विहस ( सं० पु० ) विहस-अप् । १ वियोग, विच्छेद ।

२ विहार ।

विहसण ( म० क्री० ) विहस ल्युट् । १ विहार, क्रीडा ।

२ भ्रमण, घूमना । ३ वियोग, विच्छेद । ४ प्रमारण,

क्रीडना । ( पा २।३।२० ) ५ आहरण, लेना ।

( मार्कण्डेयपुराण १।६।३७ )

विहर्ष (स० लि०) विह-वृच् । बिहर्षणकारी बिना शक । (मत्स० ५२६)

विहर्ष (स० लि०) बिगतो हर्षो यस्य । हर्षबिहिनो, अशस । (भारत ३।२३।२५)

विहर्षह (स० पु०) मर्षप्रसाकके पिता विहर्ष ।

विहव (स० पु०) १ यव । २ युव, छहर्ष ।

विहवीय (सं० लि०) यवीय । (कल्पवृक्षटीका २५।१।१८)

विह्वय (स० लि०) १ विविध कार्पमे भावत ।

(शुक्लब्रह्मः ८३६ मदीवर) २ यवीय, यव सम्बन्धीय ।

(नर्प २५।१५) (पु०) ३ भाङ्गिरस गोलोय श्रद्धामन्त्र

द्रष्टा श्रुतिमेह । (सूक्त १०।१२८ सूक्त) ४ यवर्षमे पुत्रमेह ।

(मातृ २३ परं)

विहवा (स० स्त्री०) १ रघुका मेह, एक प्रकारकी ईंट ।

(वैतिलीक ० ५३।१।३) २ पत्नीय मन्त्रमेह ।

(वैतिलीक ० ३।१।३)

विह्विनित (स० स्त्री०) विह्वस-क्त । मध्यम हान्य यह

हासा शो न बहुत उष्ण हो, न बहुत शयुर । (भारत)

विह्वल (स० लि०) १ ब्राह्मण घरवाया हुआ । २ इन्त

दीन, बिना हाथका हुआ हो । ३ मति ब्राह्मण बहुत

दूर तक फैला हुआ । (पु०) ४ पवित्रत, विद्वान् ।

५ पण्ड नपुंसक, विद्वान् ।

विह्वलता (स० स्त्री०) विह्वलत्व भाषा धर्मो वा तत्त्

वाप् । विह्वलका भाव वा धर्म ।

विह्वलित (स० लि०) ब्राह्मणित घरवाया हुआ ।

विहा (स० अन्त्य०) धो हाक् त्वागि (विपाविहा । उष्

५।३।१) इति निपातनात् सा । स्त्री ।

विहावित (स० स्त्री०) विहा विच्-क्त, पु भागमश्च ।

हाव ।

विहावस (स० पु० स्त्री०) १ आकाश । (अमर)

(पु०) २ पत्नी, बिह्विया । (लि०) ३ महान्, बड़ा ।

विहावस (स० स्त्री०) १ आकाश । (भारत १।२३।१५)

(पु०) २ पत्नी । (अमरटीका भरत) ३ हाव ।

विहावसा (स० स्त्री०) आकाश । (अमरटीका मनुष्ये)

विहार (स० पु०) विह-घम । १ प्रथम मन बहवानेक

लिये धीरे धीरे चलन, रहसना । २ परिक्रम, घूमना ।

३ स्वप्न कथा । ४ झोला । ५ धुस्तोलाय, बाँझम

मेह । चहाराय देको । ६ बिसेप । ७ कीहारायान रतिस्त्रीका करमेकी जगह । ८ रतिक्रीडा मंभोग । ९ विन्दुरैवक पत्नी । १० वैजयन्त । (शब्दमाळा)

विहार—छिपटनावट गवर्नरके शासनाधीन एक प्रदेश । यह पहले बङ्गालमें शामिल था । सन् १९१२ ई०में बङ्गविच्छेदक समय इससे बङ्गालसे पृथक हो कर स्वतन्त्र होनेका स्वीकार्य प्राप्त किया । उस समयसे इन प्रदेशमें उद्योसा भी जोड़ दिया गया । इससे इस संयुक्तप्रदेशका नाम विहार और उद्योसा प्रदेश हुआ है । यह किसी समय प्रदेशसे भावतनमें कम नहीं । इसकी जनसंख्या ३३६,००,००० और भू-परिमाण ८३,००० वर्गमील है । विहार बौद्धधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र कहा जाता है । यह बौद्धधर्मक योगीको बसिब विहारप्रभूमि है । इस प्रदेशमें बौद्धोंक असंख्य विहारोंको देस मात्रमें होता है, कि इन विहारोंके कारण ही इसका नाम विहार पड़ा है । उद्योसाक सिवा कञ्चल विहारमें पहले दो विभाग थे पटना और मागधपुर । किन्तु इस समय इसमें एक विभाग और भी मिला दिया गया है, उसका नाम छोटा नामपुर है । पटना विभागमें गया, शाहाबाद् (भारा), मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सारन, चम्पारन पटना आदि जिले हैं । मागधपुर विभागमें मागधपुर, मुङ्गेर पूर्णिया सग्याम परगना और दुमका जिले हैं । अथे छोटानागपुर विभागमें राँची, हजारीबाग पन्नाम् सिहभूम, मागभूम आदि जिले हैं । पटना इस प्रदेशको राजधानी है । यहाँकी जनसंख्या २३,६०,००० हैं । व्यवसाय कापिम्पकी सुबिधाक कारण यह स्थान बिरोप समृद्धिवासी हो गया है । राँची शहरमें गवर्नरका घोष्यावास और हावापुरमें सेना निवास है । गया हिन्दुओं तथा बौद्धों का एक प्रधान तीर्थक्षेत्र है ।

प्राकृतिक अवस्था—विहारकी भूमि सग्यारणातः समतल है । किन्तु मुँगेर, राजमहन मध्यनमें और सग्याम परगना तथा मागधपुरमें पहाड हैं । गयाका मोहुर पहाड १,६२० फीट ऊँचा है । सग्याम-परगना में जितन पहाड हैं, उनमें जो सबसे बड़ा है, यह १,६०० फीट ऊँचा है । हजारीबाग जिलेका पाच्छाग्य पहाड



विहृति (स० स्त्री०) वि-हृ-क्तिन् । १ विहृत्पक्षसे हरण वा यस्मात्कार, प्रवरद्वसो वा वक्षपूर्वकं कुष्ठ से सेना वा कोर्हि काम करना । २ विहाद, मोड़ा । ३ उदाटन कोमला । ४ विहृति, कैलास ।

विहृत् (स० स्त्री०) १ हृदयहीन, साहसशून्य, कायर ।  
(मयम् १५११२)

विहृत् (स० पु०) वि-हृ-क्तिन् । विहृत्तन द्विसा ।

विहृत् (स० स्त्री०) वि-हृ-क्तिन् । १ वि-हृ-क्तिन्, द्विसा करमेवाका । २ मेदक, दसन करनेवाका ।

विहृत् (स० स्त्री०) वि-हृ-क्तिन् । १ द्विसा । २ मठन । ३ विहृत्तन । ४ पातना, पुन ।

विहृत् (स० स्त्री०) १ क्षति मुक्तस्तान । २ दोष । ३ मालहानि ।

विहृत् (स० स्त्री०) अग्रतिहत सोव ।

विहृत् (स० स्त्री०) क्रिमिमेद, एक प्रकारका मोड़ा ।  
(शुक्लशब्दा २५०)

विहृत् (स० स्त्री०) वि-हृ-क्तिन् । मयादि द्वारा अभिमूत, मय या इसी प्रकारके और किसी मगोवेषक कारण द्विसका चित्त तिकानै न हो, धरवाया हुआ । पर्याय—  
जिह्व विचरा, मयेतन, प्रयोमूत ।

विहृत् (स० स्त्री०) व्याकुलता, घबराहट ।

विहृत् (स० स्त्री०) जो बहुत घबरा गया हो ।

बी—१ कान्ति । २ यति । ३ ध्याति । ४ क्षेप । ५ प्रजनना ।

बी (स० पु०) वयनचिति बी-गती श्वद्व्यवित्त्वात् भावे द्विप्, अमिधानात् पुस्त्व । वयन, अन्तना ।  
(एकाकारकोप)

बी (स० पु०) अग्रतीति अग्र-क्तिन् (मणि उपसृष्टिम्भा हीव च । उच्य ३।४७) अग्रिर्बीमावा । १ बायु । २ पक्षी । ३ मल । (सीप्रसन्न उवाचि)

बीकान (स० पु०) विकारानमिति वि-कश-घञ्, (इकः करो । ग ३।३।१३) इति विकल्पसर्गस्य बीकः । १ निघृत्, एकान्त स्थान । २ प्रकाश, रोशना । (ममर)

बीक (स० पु० स्त्री०) वि-ई-क्तिन् । द्विप् ।

बीक (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन् । बीकैयकपसे ईसय वहीन, निरोक्षण, देखनेकी क्रिया ।

बीकपीप (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन् । बीकपीपयोग्य, देखने कायक ।

बीक (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन्-भङ्-टाप् । वहीन बीकण देखनेकी क्रिया ।

बीकपत्र (स० स्त्री०) बीकामात्रकः । विस्मयापन्न, अक्रिन् ।

बीकित (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन्-क्त । विशेषरूपसे ईसित अन्धी तरह देखा हुआ ।

बीकितव्य (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन्-क्त । वहीनोय, जो देखने योग्य हो ।

बीकित (स० स्त्री०) वि-ई-क्तिन्-क्त । बीकणकारा, देखने-वाका ।

बीक्य (स० स्त्री०) बीक्यते इति वि-ई-क्तिन्-क्त । १ विस्मय, आश्चर्य । २ दृश्य, वह जो कुछ देखा जाय । ३ अन्तक, वह जो नाशता हो । ४ घोटक, मोड़ा । (स्त्री०)

५ वहीनोय, देखने योग्य ।

बीक (स० स्त्री०) बीक देको ।

बीक (स० स्त्री०) साममेद । (शब्दार्थ १।५।१३)

बीक (स० स्त्री०) बीकनमिति वि-ई-क्तिन् । गुरीरक इसा इति अ-टाप् । १ शूकरिभ्यो, कर्पाक । २ पतिमेद एक प्रकारकी वाह । ३ वत्त न, नाच । ४ अन्तकति मेद, मोड़ेकी एक वाह । ५ सन्धि, मेल ।

(अभ्युत्पत्त्या)

बीक (स० पु० स्त्री०) बहति मल तदे बह्यपतीति वे-ई-क्तिन् । (वेमा विष्णु । उच्य १।४२) १ तरङ्ग, छहर । २ अय काय, बीककी काशी जगह । ३ सुक । (मैदिनी) ४ क्षोति, अन्तक । ५ अन्त, मोड़ा ।

बीकमाकी (स० पु०) समुद्र ।

बीको (स० स्त्री०) बीक कृदिकारादिति स्त्री । १ कान्ति, छहर ।

बीकीकाक (स० पु०) अन्त-काक अन्तकीका । मार्केण्डेय पुराणमें लिखा है कि जो लक्षण सुराता है वह वाकी काक अर्थात् अन्तकाक होता है ।

बीकोतरङ्ग (स० पु०) व्यापमेद बीकोतरङ्गव्याप ।

म्यान इव देको ।

बीज ( मं० क्ली० ) विशेषेण कार्यरूपेण जायते अपत्य-  
तया च जायते इति, वि जन 'उपसर्ग' च संज्ञायां इति उ  
अन्येषामपीति, उपसर्गस्य दीर्घः, यद्वा विशेषेण ईजते  
कुक्षि गच्छति शरीरं वा ईज-गतिकुत्सनयोः पचाद्यच्  
वा बीजते गच्छति गर्भाशयमिति बीज-अच् । १ मूल  
कारण । ( गीता ७।१० ) २ शुक्र, वीर्य ।

मनुष्यशरीरके शक्तिरूप इस शुक्र या तत्प्रवर्चित  
ओजो धातु ही वीर्य नामसे पुकारा जाता है । इसी वीर्य  
से जावोत्पत्तिक्रिया परिचालित हुआ करती है । विना  
बीजनिष्पत्तिके सन्तानोत्पत्ति नहीं होती ।

( शुक्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

३ तेज । ४ शस्यका बीज, बीजा । ५ अंकुर । ६  
शस्यविको फल । ७ आधार । ८ निधि । ९ तत्त्व । १०  
मूल । ११ तत्त्वावधान । ( मेदिनी ) १२ मज्जा । ( राजनि० )  
१३ मन्त । ( तन्त्रसार )

देव पूजाके निमित्त विहित मन्त्रादिके मूलतत्त्व  
रूप जो संक्षिप्त मन्त्रवचन है, वही उस देवताका बीज  
कहा जाता है । प्रत्येक देवताका ही एक एक बीजमन्त्र  
है । उसी बीजमन्त्रसे उनकी पूजा होती है । तन्त्रोक्त  
दीक्षाग्रहणके समय जिस कुलके जो देवता हैं, उसी  
देवताका बीज दीक्षाग्रहणकारोके नाम राशि अक्षर  
आदि चक्रानुसार स्थिर कर देना होता है । दीक्षित व्यक्त  
उसी बीजमन्त्रके साथ देवताकी आराधना कर सिद्धि  
लाभ कर सकते हैं । पुरश्चरण आदिमें भी इस मन्त्रकी  
जप करना होता है । तन्त्रसारमें भिन्न भिन्न देवताका  
बीज इस तरह लिखा है—

भुवनेश्वरीका बीज—ह्रीं । अन्नपूर्णाका बीज—ह्रीं  
नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा । त्रिपुरादेवीका  
बीज—श्रीं ह्रीं क्लीं । त्वरिता बीज—ॐ ह्रीं हुं खे  
च ले क्ष खी हुं क्षे ह्रीं फट् । नित्या बीज—ऐं क्लीं नित्य  
क्लिन्ने मद्भवे स्वाहा । अन्नप्रस्तारिणी—ऐं ह्रीं नित्य-  
क्लिन्ने मद्भवे स्वाहा । दुर्गाबीज—ॐ ह्रीं दुर्गायै नमः ।  
महिषमर्दिनीबीज—ॐ महिषमर्दिनी स्वाहा । जय-  
दुर्गाबीज—ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा । शूलिनीबीज—  
ज्वल ज्वल शूलिनी दुष्टप्रह हु फट् स्वाहा ।  
वागीश्वरीबीज—वद् वद् वाग्वादिनी स्वाहा ।

पारिजातमरुत्वती बीज—ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं मरुत्वती  
नमः । गणेशबीज—गं । हरिभ्यबीज—ओं गूं नमः ।  
हरिद्रा गणेशबीज—गं । लक्ष्मीबीज—श्रीं । महालक्ष्मी-  
बीज—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं जगतप्रसूत्यै नमः । सूर्य  
बीज—ओं घृणिसूर्य आदित्य । श्रीरामबीज—रा रामायै  
नमः । जानकीवल्लभाय हुं ग्यादा । विष्णुबीज—ओं नमो  
नारायणाय । श्रीकृष्णबीज—गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।  
वासुदेवबीज—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । वाल-  
गोपालबीज—ओं क्लीं कृष्णाय । लक्ष्मी वासुदेव  
ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मी वासुदेवाय नमः ।  
दधियामनबीज—ॐ नमो विष्णवे सुरपतये  
महाबलाय स्वाहा । इयप्रोवबीज—

ॐ उद्गिरत प्रणवोद्गोथ सर्वधामोश्वरेश्वर ।

"सर्वदेवमयान्तिन्त्य सर्वं वोच्य बोधय ॥

नृसिंहबीज—उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्यजन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यऽम् ॥"

नरहरिबीज—आं ह्रीं क्षीं हुं फट् । हरिहरबीज—  
ओं ह्रीं ह्रीं शङ्करनारायणाय नमः ह्रीं ह्रीं ऊं । नराह-  
बीज—ऊं नमो भगवते वरःशरुपाय भूभुवः पतये भूपति-  
स्वमे देहि देवाय स्वाहा । तिषबीज—ह्रीं । मृत्यु  
जय—ओं जूं सः । दक्षिणा भूक्ति—ओं नमो भगवते  
दक्षिणामूर्त्यै महा मेत्रां प्रयच्छ स्वाहा । त्रिन्नामणि—  
रक्ष मरय ऊं भ्रं । नीलकण्ठ—ओं नीं ठः नमः  
शिवाय । चण्ड—रुद्र फट् । क्षेत्रपाल—ओं क्षीं क्षेत्रपा  
लाय नमः । बटुकभैरव—ओं ह्रीं बटुकाय आपदुद्धरणाय  
कुर्व कुर्व बटुकाय ह्रीं । त्रिपुरा—हसरैं । हसकलरा  
हसरौं । सम्पदप्रदभैरवी—हसरैं । हसकलरो हसरौं ।  
कैलेशभैरवा—सहरैं । सह कलरौं । महरों । सकल  
सिद्धिदाभैरवा सहैं । सहकलरो सहौं । चैतन्य  
भैरवो—सहैं । सकल ह्रीं । सहरों । कामेश्वरीभैरवी—  
सहैं । सकल हां । नित्यक्लिन्ने मद्भवे सहरों । पट-  
कूटा भैरवो—हरल कसहौं । नित्यभैरवा—हस कलरडौं ।  
रुद्रभैरवी—हसकलरौं । हसकलरो । हसौं । भुवनेश्वरी  
भैरवो हसैं । हसकल ह्रीं । हसौं । सकलेश्वरी—सहैं ।  
स ल ह्रीं । सहौं । त्रिपुरावाला—ऐं ह्रीं सौं ।  
नवकुटा वाला—ऐं ह्रीं सौं । हसैं । हसकलरो । हसौं ।

हमरे इसकमरो इसरो:। कन्नपूर्णा मेरवी—भों हा  
भों हों नमो भगवति माह इवी कन्नपूर्णं स्वाहा।  
श्रीविद्या—कर्पासहा। मरुत हव हों। सकळ ही  
छिन्नमस्ता—भो हों हू ये प्रम बैरोकनाये हू हू फट  
स्वाहा।

श्यामा—कीं कीं कीं हू हू ही श्री दक्षिणेकालिक  
का कर्प की हू हू हू। श्री स्वाहा। गुहाकालिका—भो  
भो का हू हू हू ही गुहाकालिक कीं कीं कीं हू हू  
ह। ही स्वाहा। मद्रकामो—ह्रीं ह्रीं ह्रीं हू हू ही श्री  
स्वाहा। महाकामो—कीं कीं कीं हू हू ही ही महाकालि  
कीं कीं हू हू ही ही स्वाहा। प्रमशानकाळी—कीं कीं हू हू  
हों स्वाहा। तारा हीं कीं हू फट्। अष्टामुखपाणि—  
भो हीं हू गिवाय फट्। मातङ्गिनी—भो ह्रीं ह्रीं हू  
मगतङ्गिनी फट् स्वाहा। अष्टिष्ठवारकामिनो—सुमुप देवा  
महापिशाचिनी हीं हा हा हा। धूमवती—पू पू स्वाहा।  
मद्रकामो—ह्रीं कालि महाकालि किलि किलि फट  
स्वाहा। अष्टिष्ठगणेश भो हस्ति पिशाच शिखे स्वाहा।  
पद्मदा—प ह्रीं श्री देवि रतिमिये स्वाहा। प्रमशान  
कालिका—यें ह्रीं धो ह्रीं। कालिके—यें ह्रीं कीं  
ह्रीं। वगमा—भो हीं वगमासुखि सब बुधानी बाब  
सुखं लम्पय जिहवां कीस्य कीस्य बुयि भाग्य  
दम्नो भो स्वाहा। कर्पापिशाचो—भो कर्पापिशाचि  
वशानोताभागत शम्भु ह्रीं स्वाहा। मङ्गुधोप—कीं  
हो भो। तारिणी—को ह्रीं कृष्णदेवि ह्रीं ह्रीं ये।  
मरुतती—यें। कात्यायनी—यें ह्रीं श्रीं श्रीं अविष्ट  
काये नमः। दुर्गा—हू। विशालाक्षी—भो ह्रीं ह्रीं बिजा  
भाह्रीं नमः। गौरी—ह्रीं गौरी यद्रुचिये योगेश्वरि हू  
फट् स्वाहा। ब्रह्मभो—हो नमो ब्रह्मभो राविते रात्र  
पूजिते श्रेये विजये गौरि गान्धरि त्रिमुक्ताशङ्करि मय  
लोककञ्जदुरि सर्वलोपकणशङ्करि सुसुदुर्घोरेराये ह्रीं  
स्वाहा। इन्द्र—इ इन्द्राय नमः। गङ्गाक्षिप भो स्वाहा।  
विष्वक्कालि—का। हनुमान—इ हनुमते श्वात्मकाय  
हू फट्। श्रीरक्षाधन—हू पद्मनभक्त्याय स्वाहा।  
प्रमशानमेरवी—प्रमशानमेरवि नरदधिरास्थियमासुखि  
निद्रिमि देवि मम मनोरथ्याय पूर्य हू फट् स्वाहा।  
श्यामासायिका—भो नमो भगवति स्वाहा। मामिनो

शुभ्रगणपरिचय हुं फट् स्वाहा। महाकामो—भो कीं  
कीं कीं कीं पद्म, शुभ्राय हू फट् स्वाहा। (कन्नवार)  
इत सब बायमन्त्रों में एक देवताओं को पूजा करना  
होती है। पूजा-प्रणामों तन्त्रसारमें विशेषरूपसे वर्णित  
हैं। तत्रत् देवनाम शब्दोंमें विराय विवरण दे लो।  
श्रीशामिघानतन्त्रमें बीजके ये सब नाम निदिष्ट हैं,  
जैसे—माया, मन्त्रा पर, सचिद, त्रिगुणा मुबनेश्वरी,  
हृदयेका शम्भु बनिता गण्डीयो, ईश्वरी, शिवा, महा  
माया पार्वती, स स्थानकृतकपियत्री, परमेश्वरी, मुबना,  
पासी श्रीबनमध्यया इत्यादि।  
तन्त्रसारमें लिखे धीजमन्त्रादिकी भी साङ्केतिक  
सहाये वर्णित हैं। पया—श्री—कृष्णबीज, पु—  
मायाबीज, ही—कामबीज ह्री—शुद्धबीज, ली—  
बायोज, डि—विम्बबीज। इन तरह विभिन्न बायु  
बीज, इन्द्रबीज शिवबीज शक्तिबीज रमाय ह, रति  
बीज नाविका भी तन्त्रके देखा जाता है। ये सब धीज  
मूत्रतन्त्रके सांख्यकार हैं। फिर भी प्रत्येक बीजस  
एक एक स्वतन्त्र अर्थ संग्रह हो जाता है। सब धीजोंका  
अर्थ बहुत शुभ है। इनविषये ताम्रिक भाषाओंमें साया  
रथक मिये से सब विशदरूपसे व्यक्त नहीं किये हैं।  
धीश्रापवतिके नियमक्रममें सायक सांभास्याध्य व्याप  
गादि आत्मनोपदेशन तक यावतीय पूजाक्रम समापन कर  
ममगंज उच्चारण कर देवताको नमस्कार करें। इसके बाद  
‘फट्’ इस मन्त्रसे गन्धपुत्र द्वारा करघोषन और कन्धुर्ष  
ताम्रजय स्थानन कर छोटिकासुष्ठामे वशी दिशा धीको बांध  
कर रं मन्त्रन अक्षरात् द्वारा देशन कर भयनो देहको वधि  
प्रकारकी किल्ला कर मूत्रशुद्धि करें। मूत्रशुद्धि समय पर  
धकनेहू दो प्रचान धङ्ग है। पहले अपने मङ्गुमें दोनों हाथ  
इतानमात्रसे स्थापन कर ‘सोऽहं’ इस मन्त्रस इत्य  
मध्यस्थित महीय कलिकावृत्ति शोकारमाकी मूमाधारस्थित  
कुलकुण्डलिनिकी साथ युक्त कर सुसुम्ना पथमें मूमा  
धार अघिष्ठान मणिपुत्र, चनाहत, विशुद और आङ्गाभ्य  
पदधकनेहू कर शिरास्थित मधीमुक्त सदृक्त्त कमलक  
कर्णिकामन्त्रेण परम शिवमें संयोगित कर उसमें धृयि  
व्याधि चतुर्विंशति लक्षविकीन हुआ है, मत ही मम  
इस प्रकार लिखा कर ‘धे’ इस बायुधीजकी नाम माहा

पुटमें चिन्ता और इस बीज द्वारा सोलह बार जप कर देह पूर्ण करणान्तर दोनों नासापुट धारण करे। इस बीजको ६४ बार जपनेके बाद कुम्भक कर वाम कुक्षिस्थित काले पापपुरुषके साथ देह शोषण कर लें और अत्तोस बार इस बीजको जप कर वायु शुद्ध करें। इसके बाद दक्षिण नासिकामें रक्तवर्ण "र" इस बहिनबीजको चित्ता कर यह बीज सोलह बार जप कर वायु द्वारा देह पूरण करें और दोनों नासिकाको पकड़ कर इस बीजको ६४ बार जप द्वारा कुम्भक कर काले पापपुरुषके साथ देहको मूलाधारस्थित अग्नि द्वारा बहनपूर्वक फिर इस बीजको बत्तीस बार जप द्वारा वामनासिका द्वारा वायुरेचन करें। इसके बाद शुक्ल वर्ण "उ" इस चन्द्रबीजको वाम नासिकामें ध्यान कर इस बीजको सोलह बार जप द्वारा ललाट देशमें चन्द्रको ला कर उभय नासिकाको पकड़ कर "र" इस वरुण बीजको ६४ बार जप कर मातृकावर्णमय ललाटस्थ यंत्र से गलित अमृत द्वारा सारी देह रचना कर "लं" इस पृथ्वीबीजको ३२ बार जप द्वारा देहको सुदृढ चिन्ता कर दक्षिण नासिकासे वायु रेचन करें।

इस तरह मातृकान्यास, कराङ्गन्यास, पीठन्यास, ऋष्यादि न्यास आदिमें भी शरीरके यथास्थानमें बीजका आधार कल्पना कर उन स्थानोंको स्पर्श करनेके समय उस उस बीजसंज्ञाकी चिन्ता करें। देवताविशेषमें करुणादिन्यास और बीजमन्त्रके विभिन्नत्व लिपिवद्ध हुआ है। विन्तारके भयसे उन सर्वोका उल्लेख यहां नहीं किया गया। प्रत्येक देवताके नाम शब्दमें ये सब संक्षेप में दिये गये हैं। विशेष विवरण न्याय और षट्चक्रमें देखो।

बीजक ( म० पु० ) १ मातुलुङ्गवृक्ष, विजयसार या पियासाल नामक वृक्ष। पर्याय—पीतसार, पीतजालक, वग्धकपुप, प्रियक, सर्जक, आसन। गुण—कृष्ट, विसर्प, गेह, कृमि, श्लेष्मा और पित्तनाशक केशवृद्धिकर तथा रसायन। ( भावप्र० ) ( क्ली० ) बीज-स्वार्थे ऋन् । २ त्रिजौरा गोधू । ३ सफेद सहिजन । ४ बीज, बोधा । बीज देखो । बीजकर ( स० पु० ) उड़दकी दाल जो बहुत पुष्टिकर मानी जाती है।

बीजकर्कटिका ( म० खो० ) धीर्घकर्कटिका, बड़ी ककड़ी।

बीजकमार ( म० पु० ) १ विजयमालके बीज । २ मातुलुङ्गमार, त्रिजौरा गोधूका सार या सक्त।

बीजका ( म० खो० ) नापलद्राक्षा, मुनका।

बीजकाय ( स० खो० ) बीजगरीर, आदिदेह।

बीजकाह ( स० पु० ) मातुलुङ्गवृक्ष, त्रिजौरा गोधूका पेट।

बीजकान् ( म० खो० ) बीज वाप्यं करोति घट्ट यतीति क्विप् तुक्च । १ वह औषध जिसके खानेसे घीयं बढ़ना हो, वोष्यं बढ़ानेवाली दवा । १ घोर्यकारक, वाप्यं बढ़ानेवाला।

बीजकोश ( म० पु० ) बीजाना कोशः आधार इव । १ पत्र बीजाधारचक्रिका, क्रमचक्रिका । पर्याय—उराटक, कर्णिका, वारिकुञ्ज । २ शृङ्गाटक, सिघाडः । ३ फल जिसमें बीज रहते हैं।

बीजकोशक ( स० खो० ) वृषण, अंडकाश।

( वैद्यकी० )

बीजगणित ( सं० खो० ) अङ्कशिल्पविशेष । ( Algebra ) जिस शास्त्रमें वर्णमालाके अक्षरोंको सव्याम्यरूप मान कर और कठे साङ्केतिक चिह्नोंको व्यवहार कर राशि विषयके सिद्धान्तोंको युक्तिके साथ संस्थापित किया जाता है, उसका नाम बीजगणित है।

बीजगणित अङ्कशास्त्रकी एक शाखा है। इसका द्वारा पाटागणितमें प्रचलित नियमावलीसे विभिन्न और अचिन्त्यपूर्व अङ्कसाधन शिक्षा प्रणाली सांख्यी जा सकती है। क्रमोत्कर्षके स्तव-विचारसे इस शास्त्रके साथ पाटागणितका चाहे जिस तरहका पार्थक्य दिखाई क्यों न दे, किन्तु पाटागणित शास्त्रसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त पर पहुंच कर सर आइजक न्यूटनने बीजगणितका 'सांचेजनों गणितविद्या' ( Universal arithmetic ) नामसे अभिहित किया है। यद्यपि इस नामसे इसका अर्थ परिस्फुट नहीं होता, तथापि इससे इन शास्त्रको अभिव्यक्ति बढ़ाई गई है। न्यूटनके पिछले समयके सर्वप्रधान अङ्कविदु पण्डित सर विलियम रोयान हेमिल्टन बीजगणितको "विशुद्ध कालविज्ञान" ( Science of Pure Time ) कहते हैं। डी मार्गनेने इस संज्ञाको परिस्फुट करनेके लिये "क्रम गणना" नाम रखा है।

हेयोक्त इन मामोसे न्यूनत ही दो संका साधारण पाठ कांके मनमें सरण मान्य होगे, ऐसा भाषा है।

पाटीगणितसे किस तरह योजगणितका सूत्रगत और इसका कमबिकारत हुआ, इसका संक्षेप रूपसे वर्णन करना सद्भव बात नहीं। पाटीगणित और योजगणितकी प्रक्रियाके बीचमें स्पष्टतः जो पार्थक्य दिखाई देता है वह यह है कि पाटीगणितकी प्रक्रियाये साक्षान् भावसे व्याख्यात होते हैं। किन्तु योजगणितकी प्रक्रियाएँ जनीक बार बेव्यव तुलना द्वारा व्याख्यात होती हैं। उदाहरणरूप मन्नाजके गुणनका विषय हो लिया जाये। इतमीक सूत्रसूत्री भागों और इन्नेरक रावड' रेहोड' भावि परिष्करीमें मन्नाजके गुणनको साधारण गुणनके समित्व प्रयोगका सिद्धान्त किया है। साधारण गुणन जैम योगका सद्भव उपाय है, इच्छिमात्र ही इनको वैसा समझ नहीं सकता। गुणनकी प्रारम्भ कर उसके माध मन्नाजकी संकाके संयोग करनेसे दो मन्नाज गुणनकी व्याख्या हो जायेगी। दूसरी ओर चौथी मन्नाजकी प्रसिद्ध पाठशास्त्र परिष्कृत वैशोकान्तसर्ग विनोगच्छिद व्यवहारके मूलमें योजगणितकी मिति देखा यो। इन्होंने अपने लिये एक प्रथमके प्रारम्भ ही विनोगच्छिदकी यह विचार संका क्रियेयक की है, विनोगच्छिदसम्बन्धित राशिकी विनोगसम्बन्धित राशि द्वारा गुणा करनेसे गुणनफल योगच्छिदविशिष्ट होगा। मूक चिह्नकी तरह इस चिह्नके अन्वय व्यवहारकी कोई मौखिक क्रिया प्रयोजनी नहीं है। यह पाटीगणितकी नियमप्रणालीके अनुसार गठित होने पर इसका व्यवहार निश्चय ही समशील्य ही जायेगा। गणितशास्त्रकी मौखिक नियमावलीके साथ ठक नियमके अन्वय प्रयोग द्वारा योजगणितकी सीमा संक्षेप को गई है। विषयात गणितचिह्न पुद्भिह भी स्वयं इन सीमासे दूर बढ़ जाता समझ पर नहीं समझ।

व्यवहार प्रणालीके किसी बिधिवत् नियमके अन्वय में गणितशास्त्रके नियमके पार्श्वमें विनोगच्छिद संस्था पन करनेसे इसका फल नियमविषय ही जाता था। यह बात हमारे शैक्षणिकविषय नहीं। पचास वर्ष पहलेके योजगणितमें है। या, इस समय मर विनियम

शैवानी हैमिन्दनने इसका साथ कुछ अज्ञात उर बीज गणितका उत्कर्ष साधन किया है। इस अज्ञात हेमिन्दनने "बतुपक" नामसे अमिहित किया है। इन भावि क्रियाकी प्रतिष्ठा होनेसे किसी भी नियमसे अज्ञात व्यवहार निष्पन्न किया जा सकता है। गणितशास्त्रके बहुत पुराने इन स्वतः सिद्धान्तका विनोय हुआ है।

इतिहात।

पहले समयकी उपायमतिके पढ़नेसे विश्वास होता है, कि यह प्राचीन अज्ञात पद्धतों परिकारत अज्ञात शास्त्रसे सारांग और विद्युत् उपायमतिके ही अनुकूल है। प्रयुक्त, वर्तमान समयमें प्रचलित योजगणितके माध इनका बहुत पार्थक्य दिखाई देता है।

पूर्वकालके उपायमिति शास्त्रकारोंने योजगणितके सारांशसे तर्कादि प्रत्यक्षपूर्वक अपने आधिकारका पुष्टिसाधन किया है, इन विषयमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। किन्तु किञ्चित् पत्रपत्रों समयक प्राय यासियोंने इस विषयमें जो किञ्चित् व्युत्पत्तिसाम किया था वह इतिहासकी पृष्ठीकी बना करनेमें सद्भव ही इत्यं कुम होता है।

चौथी सदीके मध्यभागमें अज्ञातविद्याकी सूत्र अन्वयति हुई थी। इस समयके अज्ञातविद्योके किसी तरह मौखिक मय निश्चयका प्रयास न था पूर्ववत् खेबकीके लिये प्रथम माध्यमयनमें ध्यान दिया था। इनसे पूर्व समयके अज्ञातशास्त्रका सूत्र उत्कर्ष साधित हुआ।

प्रसिद्ध परिष्कृत दिशोकान्तसर्ग गणितशास्त्रके मध्य स्वयं कद प्रयोकी रचनाएँ कीं। इनका मूल प्रथम तेरह भागोंमें विभक्त हुआ था। इनमें पहले छः भाग और बहु अज्ञातविशिष्ट अज्ञातके सम्बन्धमें असम्पूर्ण अन्तिम प्रथम इन समय मिलता है। हेयोक्त प्रथम ही १३वाँ स्थानीय कद कर गुहात हुआ है।

उत्कृष्टित प्रथम योजगणितविषयके सम्पूर्ण मध्य नहीं मान्य होता। किन्तु इससे जो इस शास्त्रके मूलविषय सम्बन्धमें प्रकृत ज्ञानसाम किया जा सकता है। म पकाने पहले तो अज्ञान प्रणालीके अनुसार साधारण और विषयकर्ताका या वर्गीय समाकरणका (यथा—हेयो दो राशिगाँ निकाल लो, जिनका योगफल या विनोगच्छिद



प्रदत्त हैं) नियम दिखा कर नई प्रथामे विशेष श्रेणीके कई अङ्क निष्पादन किये हैं। इस समय इसीको ही अनिर्धारित विभाग कहते हैं।

सम्भवतः दिओफन्तास ही यूनानदेशके बीजगणितके मूलग्रन्थकार हैं। किन्तु ऐसा मालूम नहीं होता, कि उससे पूर्वा उम देशके अधिवासी इस शास्त्रमें अनभिज्ञ थे। यही सम्भव है, कि मूल विषयोंका अध्ययन कर अपने बुद्धिबलसे इन्होंने इसका उत्कर्ष साधन किया है। दिओफन्तासके रचित समीकरणोंकी सहज पद्धति देय मालूम होता है, कि वे इस विषयमें पहलेसे ही पारदर्शी थे और द्वितीय पद्यायके निर्दिष्ट समीकरणोंका सम्पादन कर सकने थे। सम्भवतः उम समय यूनानमें इस शास्त्रका उत्कर्ष यहाँ तक हो हुआ था। इटलीके शिशा संस्कार-युगमें इसने मध्यक उत्कर्षलाभ किया। किन्तु उममें पहले पाश्चात्य शिक्षित जगत्के सब स्थानोंमें ही यूनानकी अपेक्षा प्रकृष्टरूपसे बीजगणितकी प्रसारवृद्धि नहीं हुई।

थिओनकी कन्या प्रसिद्धा हाइपेसियाने दिओफन्तासके लिखे ग्रन्थका एक भाग्य बनाया था। इसके सिवा इसने एपोलोनियासके सूत्रीच्छेदविषयक गणितशास्त्रकी भी एक टीका की थी। दुःखका विषय है, कि इन दोनों ग्रन्थोंमें इस समय एक भी नहीं मिलता।

१६ वी शताब्दीके मध्यभागमें प्रीक्भापामें लिखी पूर्वोक्त दिओफन्तासकी ग्रन्थावली रोमके भाटिक्न पुस्तकालयमें मिली थी। सम्भवतः तुर्कोंने जब कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार किया, तब यह ग्रन्थावली यूनानसे यहाँ लाई गई। सन् १५७५ ई०में जाइलण्डरने लैटिन भाषामें अनुवादित इसका एक संस्करण प्रकाशित किया था। सन् १६६१ ई०में वेकेट डी मेजेरियाक् नामक फ्रेञ्च एकाडमीके एक सदस्यने इस ग्रन्थके मटीक संपूर्ण अनुवाद प्रकाशित किया। वेकेट अपने "अनिर्दिष्ट विभाग" विषयक अङ्कमें विशेष परिणित था। सुतरां उपयुक्त पाठ द्वारा ही उपयुक्त कार्य निर्वाहित हुआ था। दिओफन्तास कृत मूल ग्रन्थका प्रायः अज ही इस तरहने नष्ट हो गया था, कि वेकेटको अनेक स्थानोंमें ग्रन्थकारका भाव ले कर या पाद पूरण कर ग्रन्थको संपूर्ण

करना पड़ा था। इसके कई वर्ष बाद फ्रांस देशके प्रसिद्ध गणितविदु फार्माटने वेकेटके संस्करणके साथ यूनानी बीजगणितकारोंके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें स्पष्टन टीका सत्रि वेज कर वेकेटका नया संस्करण प्रकाशित किया। फार्माट स्वयं परिणित था। सुतरां इस संस्करणका सर्वोत्तम व्याख्यान किया था। यह संस्करण प्रचलित संस्करणोंमें अत्युत्कृष्ट है। यह सन् १६७० ई०में पहले पहल प्रकाशित रखा था।

दिओफन्तासकृत ग्रन्थावलीका उद्धार होनेसे अङ्क शास्त्रमें युगान्तर उत्पन्न हुआ था सही, किन्तु यह बात कोई स्वीकार न करेगा, कि इस ग्रन्थावलीमें ही यूरोप समाजमें बीजगणित विद्याका प्रचार हुआ है। यूरोप वासियोंने अरबोंने हा यह विद्या तथा संख्या गणना और दार्शनिक अद्वैतवादीकी शिक्षा प्राप्त की थी। विश्वेश्वर और बुद्धिमान् अरबवासी इस बीज विद्या शास्त्रके मर्मको समझ कर चारचार आलोचना द्वारा जगत्में इसका ज्योतिर्विकारण करने रहे। उम समय भी समग्र यूरोपखण्ड अज्ञान तिमिरमें डूब रहा था। अरबोंने विशेष अध्यायमायसे यूनानी अङ्क विदोंकी ग्रन्थावलीका संग्रह कर मातृभाषामें उनका अनुवाद कर नानारूप भाष्यादिके साथ प्रकाशित किया था। अरबी भाषामें लिखा ग्रन्थावलीसे यूरोप-वासियोंने ज्यामितिका उपकरण प्राप्त किया। एपोलोनियासका मूल ग्रन्थ आज कल और नहीं मिलता। ग्रन्थका कुछ अंश भी अरबी भाषासे अनुदित हो कर रखा जा रहा है।

अरबोंका कहना है, कि उनके देशमें मुहम्मद विदु मूसाने सबसे पहले बीजगणितका आविष्कार किया। ये बुजियानावासी मुहम्मदके नामसे भी परिचित थे। पाश्चात्य जगत्में इन्होंने Mose नामसे प्रतिष्ठा पाई थी। ये खलीफा अल म्मानुनके राजत्वकालमें अर्थात् नवौं शताब्दीमें वसतेमान थे।

इन्हीं मूसाने बीजगणितके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ लिखा था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इटली भाषामें अनुवादित इनका रचित एक खण्ड यूरोपखण्डमें एक समय प्रचलित था। दुर्भाग्यक्रमसे यह ग्रन्थ विलुप्त हुआ

इस समय वह नहीं मिलना । सीमावका विषय है, कि अरबी मापमें जिन्ना इसका एक मूल ग्रन्थ भाष्यम फोर्डके पत्रलिपियान पुस्तकालयमें रखा है । इस ग्रन्थ ११ रचनाकाल १३४२ ई०के लगभग हो सकता है । ग्रन्थका आवरण पृष्ठ देखनेसे मालूम होता है, कि ग्रन्थकार प्राचीन समयक भावनी है । पुस्तकके पार्श्वभागमें जिन्नी टिप्पणियोंके देखनेसे ग्रन्थ अपेक्षाकृत प्राचीन साबित होता है । इस ग्रन्थको देखनेसे मालूम होता है, बीजगणित शास्त्रका यद्यो प्रथम प्राचीन ग्रन्थ है । ग्रन्थकी भूमिकामें ग्रन्थकारका परिचय लिखा है । फिर इससे यह भी ज्ञाना जाता है, कि अन्तर्मासुम द्वारा बीजगणितानुसार अङ्कगणनाक सारग्रन्थमें एक स लिपि ग्रन्थ जिन्नीके विषे आदिष्ट और उल्लेखित किये गये थे । इसीके फलस्वरूप इन्होंने यह ग्रन्थ बनाया था । पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि मुना प्रणोत यह ग्रन्थ बीजगणितके सम्बन्धमें अरबवासियोंका प्रथम सङ्ग्रहण है । सुतरां इसका उपादान मी किसो अन्य भाषामें लिखित पुस्तकादिसे मयूरीत हुआ है । यह बात सत्य ही उपमन्य की जाती है । इस ग्रन्थमें इसका मी पयेष्ट प्रमाण मिलना है, कि ये ग्रन्थकार हिन्दू ज्योतिषशास्त्रके मी जाता थे । सुतरां यह कहना युक्तिस त्त न होगा, कि ये हिन्दुओं से ही बीजगणितका उपादान संग्रह कर से गये थे । बीजगणित शास्त्रमें अनिर्दिष्ट सम्पाद्य समाधानमें हिन्दुओंका अयेष्ट पाण्डित्य था । यह विषय भारतीय बीजगणितके सारग्रन्थमें नीचे बिदुत हुआ है । इसमें हम निम्नलिखितप्रमाण सङ्गट्टे हैं कि अरबोंने भारतीयोंसे बीजगणितको शिक्षा पाह थी ।

बीजगणितके मूलतत्त्वका परिचय या कर अरबोंने अपने अनेक प्रधादि लिख इस शास्त्रकी अगणुष्टि की थी । महम्मद अयुय ओमाफा नामक दूसरे एक अरबो पण्डितने बीजगणितशास्त्रका एक विस्तृत भाष्य प्रणयन किया था । उसमें उसने अपने पूर्वजको बीजगणितके सैयदको प्रतामनका बिचार कर विशद व्याख्या की है । सिया हमरं दिमोफलात्मदृष्ट प्रथम भी इसमें अनुवाद किया था । यह अनुब आमाफा १३५० जना अरबके जालिय जालाम अरबोंमें बिद्यमान था ।

अरबवासो अत्यन्त आग्रहके साथ और कड़ेर परिधमने बहुत किमो तक इस विद्याका अनुशीलन करलें थे पर उनके हाथ इस विद्याको इतनी उन्नति नही हो सकी । हिमोफलासके प्रधादि पद्य कर ये अपने प्रथम बीजगणित ग्रन्थ धीय अनेक अमिनव विषय सम्मिलित कर रहे होंगे, येसो भाशा है । किन्तु यह भागा काय रूपमें परिणत नही हुई । अरबदेशीय पूर्वतन जोसगणित विज्ञानमें आरम्भ कर अन्तित प्रथकार वैदिकीय तक पूर्व गणितके अनुसार (अकोरके फकोर) एक ही प्रणाली पर प्रथम लिख गये हैं । पूर्वजको अनेकाने अनुसरण का सोइ मौलिक कोर विषय इन्होंने सम्मिलित नहीं किया है । वैदिकीय मन् १५३—१०३१के मध्य जीवन था ।

इस विषयमें अनेक अङ्गुल्लेखिदांकी प्रमन्यवला है कि जिस समय और किस रीतिसे यूरोपमें बीजगणित शास्त्रका प्रचलन हुआ ।

जियोनार्डो हाप यूरोपमें बीजगणितका प्रचलन ।

हालमें बहुत खोज प्रसक्तके बाद यह स्थिर किया गया है, कि विसावामी जियोनार्डो नामक एक इजिप्टी सबसे पहले इरबोमें बीजगणित-बिज्ञानका प्रचार किया । बुखियाय जियोनार्डो कायकपत्तमें बावपारो राज्यमें काम करत थे । यहाँ रह कर उन्होंने भारतीय प्रणालीके अनुसार नी संख्या द्वारा गणनाप्रणाली शिक्षाप्रदान किया । बावियवके उर्दोमै इनको प्रायजा हा मिस्र, मितिया, यूनान सिसली प्रदेशमें भाग्य ज्ञाना पढ़ना था । मालूम होता है, कि इन सब जगहोंमें उन्होंने स कथासम्बन्धी शिक्षणीय विषयोंको भावत किया था । भारतीय गणना-प्रणाली ही इनकी सर्वोत्कृष्ट होतिके कारण उन्होंने यत्नके साथ इसे सीखा था । इसा समय उन्होंने भारतीय गणना प्रणालीके साथ युद्धिको ज्यामितिक मूलसूत्रके कुछ कुछ अङ्गुल्लेख स बीजगणित कर और इनके साथ अपने प्रतिमाके बरस बीजगणित सम्बन्धाय और मी कई अमिनवतरव आदिष्ट कर उक्त मीमो मरौक बावपार पर एक ग्रन्थकी रचना की । इस समय सेग बीजगणितको शाखाविशेष सम्बन्धे थे । यथार्थमें यह गणितका सारंग है । इसी शेष धारणाके

वशवर्त्ती हो लिओनाडोंने अपने प्रथम उभय शास्त्रके सम्बन्धमें विभिन्न भावसे विशद आलोचना की है। सन् १२०२ ई०में लिओनाडोंने यह ग्रंथ प्रणयन किया, पीछे फिर १२२८ ई०में उन्होंने यह सशोधनपूर्वक प्रकाश किया था। मुद्रायंत्र (प्रेस) के आविष्कार होनेसे २०० वर्ष पहले यह ग्रंथ लिखा गया था। मानव जाति उस समय इस विद्याके अनुशीलनमें आप्रधान्वित न होनेकी वजह यह जनसमाजमें अविदित रह सकता है, इसमें आश्चर्य ही क्या है। जो ही, ग्रंथकारकी अन्यान्य पुस्तकोंकी तरह यह ग्रंथ भी हस्तलिखित पोथीके आकारमें रखी रहती थी। पहले किसानों भी इस मूल्यवान् ग्रंथकी खोज नहीं की; सीमाव्यक्रमसे १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें फ्लोरेंसके मेरिलियावेफियान लाइब्रेरीसे यह ग्रंथ आविष्कृत हुआ।

अरबदेशीय ग्रंथकारोंकी तरह लिओनाडोंने भी अङ्कशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की थी। ये प्रथम और द्वितीय पर्यायका समोक्षण कर सकते थे। दिओ फन्तास द्वारा आविष्कृत विभागप्रणालीमें भी इनका प्रगाढ़ परिचय था। ज्यामितिमें इनका विशेष व्युत्पत्ति थी। इन्होंने इसी ज्यामितिके नियमानुसार बीजगणितकी नियमपद्धति सामञ्जस्य कर ली थी। अरब देशीय ग्रंथकारोंकी तरह ये भी विशदभावसे अपने सिद्धांत प्रकाशित कर गये हैं। किन्तु इस पथने अङ्कशास्त्रकी विशेष उन्नति नहीं हुई है। साङ्केतिक चिह्नाटिका व्यवहार और थोड़ी बातमें मर्म समझानेकी पद्धति इसके बहुत दिनोंके बाद आविष्कृत हुई है।

लिओनाडोंके बाद और मुद्रायंत्रके आविष्कृत होनेके पहले बीजगणितके अनुशीलनमें विशेष आग्रह दिग्वाइ देता है। इस बीजगणित विद्योकी अव्यापको द्वारा प्रकाशरूपसे शिक्षा दी जाती थी। इस समय इस शास्त्रके सम्बन्धमें अनेक ग्रंथ आदि रचे गये। अधिकतर अरबी भाषामें लिखे दो प्राचीन मूलग्रंथ इटली भाषामें अनुवादित हुए। इनमें एकका नाम 'बीजगणितका नियम' और दूसरा 'खुरासानके महम्मद विम मूसा प्रणीत अति प्राचीन ग्रंथका अनुवाद है।

शेपोक ग्रंथ अरबी भाषामें लिखा सर्वप्रथम गणित ग्रंथ है।

लुकास डीवागों ।

बीजगणित विषयक सर्वप्रथम मुद्रित प्रथका नाम— Summa de Arithmetica, Geometria, Proportioni et Proportionalita लुकास पेलिओनास उर्फ डी वागों नामक एक संन्यासी इसके रचयिता हैं। सन् १४६४ ई०में यह ग्रंथ प्रचलित था। उन सर्वोंमें यह सर्वाङ्ग सुन्दर और सम्पूर्ण ग्रंथ कहा जाना है।

ग्रंथकारने लिओनाडोंके प्रदर्शित पन्थानुसरण कर उर्दीके आदर्श पर इस ग्रन्थकी रचना की थी। इनके ग्रंथसे ही बादके समयमें लिओनाडोंके लुत ग्रन्थको कुछ अंश उद्धृत कर जनसमाजमें प्रचारित हुआ।

सन् १५०० ई०में यूरोपमें बीजगणितकी जितनी उन्नति हुई थी, लुकास डी वागोंने उन सब विषयोंको अपने ग्रंथमें सन्निवेशित कर इस ग्रन्थको तीष्ठवता सम्पादन की थी। सम्भवतः इस समय अरब और अफ्रिका प्रदेशमें भी बीजगणितकी अवस्था वैसी ही थी। आवश्यकीय फललाभके उपायस्वरूप बीजगणितमें जो शक्ति निहित है, वह अङ्कपात द्वारा सहज ही उपलब्ध होती है। इस अङ्कपात-प्रणालीके बलसे ही आलोच्य सत्यायें सर्वदा दृष्टिपथमें रखी जा सकती हैं। किन्तु लुकास डी वागोंके समय बीजगणितमें आलोच्य विषयके संक्षेपसे अङ्कप्रतिपादनकल्पमें सहज-साध्य और सम्पूर्णान्ग कोई नियम प्रचलित न था। गणनाके लिये उस समय कई वाक्योंके या नामोंके परिचर्चनमें संक्षिप्त वाक्यावली प्रयोग की जाती थी। वही आलोच्य समयमें साङ्केतिक चिह्नरूपसे व्यवहृत था। यह केवल एक तरहकी संक्षेप लिपि (Short hand)का अनुकरण है। इस समय जिन अङ्कपातों द्वारा बातें समझाई जाती हैं, उस समयके अङ्कपातोंमें इन बातोंका प्रकाश करना सम्भवपर नहीं होता। उस समयके बीजगणितके प्रथानुसार अङ्क सम्पादन विशेषरूपसे सीमावद्ध था। कितने ही अनावश्यक संख्याविषयक प्रश्नोंके समाधान ध्यतित उस समय बीजगणितके साहाय्यसे विशेष कोई

तत्त्व निष्पादित नहीं होता था। प्रत्युत इन प्रश्नोंसे विज्ञानक इतरबर्णनापक तथा गणितशास्त्रका सम्पन्न भी नहीं देखा जाता था। वर्तमान समयमें इन शास्त्रके साहाय्यसे प्रतिपाद्य विषयोंके क्षेत्रमें जितना प्रसार हुआ है, उस समयक लोगोंकी बननी घाटपा करनेकी भी क्षमता न थी।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि यूरोपमें पहले पहल इटली देशमें बीजगणितका प्रकल्प हुआ था। सन् १५०५ ई०में बोलोनियाक सगुगात्रक एक अध्यापक सिवियो फेरिराम तृतीय पर्यायक समीकरण सम्पादन कृत्योंमें सक्षम हुए। इस आधिपकारके होनेक बाद ही लोगोंका मन बीजगणितक प्रति विशेषमाहसे आकृष्ट हुआ। तब तक बहुतेरोंका यह क्याम था, कि बीजगणितक तृतीय पर्यायका समीकरण बड़ा कठिन है। किन्तु अब इस कठिन साध्यका समीकरण हो गया तब इन विभागके परिष्कार और भी कुछ नये आधिपकार करनेमें पहलजोर हुए।

टारटालिया।

सन् १५३५ ई०में मेजिस नगरमें वासस्थान स्थापन कर फ्लोरिडोने इन स्थानसे प्रेसिपाबानी टारटालिया नामक एक परिष्कृतको बीजगणितके नियमानुसार कई सम्पादकोंका समीकरण स्मार करनेके लिये बुलाया। इन विद्यायुद्धमें फ्लोरिडोने इन तत्त्वक क्लिन हो प्रश्नोंके तैयार किया था कि फेरियासकी आधिपत्य प्रणाभीक सिवा किमी दूसरे उपायसे इनकी मासोमा हो नहीं सकती थी। टारटालिया इन घटनाक पाँच वर्ष पहले बीजगणितक आधिपकारपथमें फेरियामके साथ बहुत दूर जागे बढ़ गये। सुतरां उनकी सुदृष्टि फ्लोरिडोको अपेक्षा बनेकर्ममें उत्कृष्ट प्राप्त हुई थी यह महत्त्व हो अनुमेय है। इस प्रतिपादितताके मैदानमें टारटालियापक फ्लोरिडोका विपक्षपक्ष लोकार कर लिया और परस्परमें तोम प्रश्न पूछनेक लिये एक दिन निश्चित हुआ। इन निर्दिष्ट समयमें पहले ही टारटालियाने अनुर्ध पर्यायक समाकरणकी बर्णना दे दी और पूर्वनिर्दिष्ट की नियमोंक निष्पादन लिये दो प्रतिज्ञा सम्पादनकालमें वे और एक नव प्रणाभीकको आधिपकार करनेमें सक्षम हुए। और ही,

निर्दिष्ट दिनको प्रतिव्योगिताके मैदानमें उपस्थित हो कर दोनों परिष्कृत आपसमें प्रश्न पूछनेमें प्रवृत्त हुए। फ्लोरिडोने येसे प्रश्न पूछे, कि फेरियासकी एक ही प्रणासो जानने से इनका उत्तर दिया जा सकता है। दूसरा और टारटालियाके प्रश्न प्रश्नोंका उत्तर केवल उनके अपने बड़ा वित्त लोन नियमोंमें किसी एक नियम द्वारा दिया जा सकता है। इसके सिवा अन्य नियमोंसे यह सम्पन्न करना सम्भवपर नहीं है। फ्लोरिडोको जो नियम प्राप्त था, उनके द्वारा इन प्रश्नों का वे होक ठीक जबाब दे न सक। सुतरां इस विद्यायुद्धमें उनकी ही पराजय हुई। टारटालियाने जो प्रण्टेमें ही उनके सब प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर दे सका।

विष्पात परिष्कृत कार्डन टारटालियाक समसमय पिक थे। वे सिमान नगरके गणितशास्त्रक अध्यापक थे और वहाँ वे चिकित्सा भी करते थे। इन्हीं विदेश स्थान वे कर बीजगणितकी बर्णना छेड़ दी। टारटालिया क आधिपत्य विषयोंका सम्पादन कर काइ नम अपनी ज्ञानावगोशकिके बलसे इससे कई नये तर्कोंका आधिपकार किया। बीच पर्यायका समीकरण करनेके लिये टारटालियाने जिन नियमोंका आधिपकार किया था सच पूछिये, तो वे नियम सर्वथा ठीक न थे। कार्डनके इनके द्वारा बनाई प्रणाभीकोंकी आसोबनासो की पढ़ते पढ़ते उससे एक ऐसा नियम आधिपकार किया, कि उन नियमसे लीये पर्यायका कोई भी समीकरण सहज ही निष्पादित हो सकता था। इसके बाद उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर सन् १५४५ ई०में अपनी आधिपत्य प्रणाभीकोंको प्रकाशित किया। इसके छ वर्ष पहले गारीगणित और बीजगणितक सम्बन्धमें इन्होंने जो एक दूसरी पुष्पक प्रकाशित की थी, वह उन्नीका परिशिष्ट था। बीजगणित विषयक मुद्रित प्राचीन प्रणाभीकियोंमें यह दूसरी है। इसके एक वर्ष बाद टारटालियोंने इङ्ग्लैण्डक राजा आठवें इनकी नामस इतराग कर एक बीजगणित प्रकाशित किया। दुःखका विषय है कि जो प्रथम आधिपकारक है, इन प्रण्टेमें इनकी कर्पात प्रायः नहीं सुना जागे। पर जिन स्वकीयने इनके विवाजिता कर उन्नीसे परिष्कारित

आकारमें प्रचारित किया, उन्हींकी प्रशंसाध्वनि सूची दिशाओंमें सुधारित हो रही है। चौथे पर्यायके समीकरण करनेवाले टारटालियाके भागमें किमी तरहकी प्रशंसा वही न थी। इस समय ये सब नियम कार्डेनके नामसे परिचित हो "कार्डेनके नियम" कहे जाते हैं।

कालक्रमसे चौथे पर्यायके समीकरण आविष्कृत हो जानेसे बीजगणितकी उन्नति बढ़ने लगी। इसी समय इटलीवासी एक बीजगणितविद्वाने विद्वत्समाजमें ऐसा एक प्रश्न उठाया जिससे समाधान कालमें द्विघातीय समीकरणके पर्यायमें परिणत होना पड़ता है। इसी लिये यह प्रचलित नियमानुसार निष्पन्न करना सम्भव पर नहीं। इन प्रश्नोंको देखा कितने ही लोगोंने सोचा, कि इसका समाधान बिलकुल ही असम्भव है। किन्तु कार्डेन इस विषयमें किसी तरह निगम नहीं हुए। उन्होंने लिउस फेरारी नामक एक बीजगणित अल्पवयस्क छात्र पर इस प्रश्नके समीकरणका भार दिया। कम उम्र होने पर भी फेरारी अत्यन्त बुद्धिमान् था। विशेषतः बीजगणित शास्त्रमें उसको प्रगाढ़ ध्युत्पत्ति थी। फेरारीने अपनी चेष्टासे एक अंक सहज ही निष्पन्न कर लिया और उसके सम्पादन कालमें उसने तृतीय पर्यायके समीकरण समाधानके लिये एक अभिनव नियमका आविष्कार किया।

इस समय इटलीदेशवासी वमवेली नामक दूसरे एक गणित विद्वाने बीजगणितकी उन्नतिकी चेष्टा की थी। सन् १५७२ ई०में इसने एक बीजगणित प्रकाशित किया। जिस चतुर्थ पर्यायके समीकरण करनेमें कार्डेन अक्षम हुए थे, उसकी व्याख्या इस पुस्तकमें बह लिख गया है। उस समयसे पहले जिन समीकरणोंको लोग असाध्य समझते थे, उसने अपनी प्रणालीके अनुसार उनकी समाधानसाध्यताका प्रमाण उपस्थित कर दिया है।

कार्डेन और टारटालियाके समयमें जर्मनीमें दो गणितज्ञ विद्यमान थे। १६वीं शताब्दीके मध्यभागमें इनकी प्योफेलियस और श्युवेलियस नामक प्रणीत ग्रन्थावली प्रकाशित हुई। इटली देशमें बीजगणितकी कितनी उन्नति हुई थी, उस समय तक वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। बीजगणितके सम्बन्धमें मर्यादा

पात विषयमें ही ये अधिकतर मनोयोगी हुए। योग और विद्योगके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब साकेतिक प्रणालियोंकी आवश्यकता थी, प्योफेलियस उनके आविष्कारकर्ता हैं।

केंसिप्रज विध्वविद्यालयके गणितके अध्यापक और पदाध्ययिज्ञानविद्वान् राबर्ट रेकर्डने अंगरेजी भाषामें सबसे पहले बीजगणित लिपिबद्ध किया। उस समय चिकित्सकोंके लिये गणित, कलित उद्योग, रसायनादि विद्या जानना आवश्यक होता था। यूरोपमें सबसे पहले इस प्रथाको चलाया। वे निश्चितता और गणितशास्त्रमें पारदर्शी थे। स्पेनदेशमें बहुत दिनोंमें बीजगणितका प्रचलन था और वे चिकित्सक और बीजगणितविद्वानोंके ही पर्यायके अन्तर्गत सम्भलते थे।

सिधा इसके देखे एक यादोगणित और एक बीजगणित लिख गये हैं। गणित इन्फ्रेडके राजा छठे एडवर्डके नामसे उत्सर्ग किया गया था। बीजगणित 'हायट प्लोन थाय विट्' नामसे परिचित है। इसी ग्रन्थमें ही उन्होंने सबसे पहले समतायोधिक सिद्धोंका व्यवहार किया था।

लिओनार्डो द्वारा मिलि स्थापित होनेके बाद विभिन्न गणितज्ञोंके हाथ पड़ कर बीजगणित धीरेधीरे फैल कर उन्नतिकी सीढ़ियों पर भागे बढ़ रहा था। ऐसे समय मिघेटा नामक एक गणितज्ञका अभ्युदय हुआ। ये गणित सिद्धा और अत्यान्व शास्त्रोंको बहुत उन्नति कर गये हैं। बीजगणितमें इनका ज्ञान इतना प्रचुर था, कि इन्होंने जिन सब विषयोंको उस समय अपरिस्फुट भावसे आविष्कार किया था, उनमें ही वर्तमान समयके गणितशास्त्रके उत्कर्षका मूल निहित है। यणमाला द्वारा श्यक और अव्यक्त राशि लिखनेका पद्धति इन्होंने ही पहले पहल आविष्कार की थी। इस पद्धतिके गुणत्वके समी समझ न सकेंगे सही, किन्तु यह कहना उचित है, कि इसीसे ही बीजगणितके चरमोत्कर्षका सूत्रपात हुआ। बीजगणितके साहाय्यसे ज्यामितिके उत्कर्षनाशनपथके ये ही आदि पथप्रदर्शक हैं।

ज्यामितिमें बीजगणितके नियम प्रचलित होनेसे

अनुशासकी वषेय उन्नति हुई। इसके ही साहाय्यके वलसे मियेटा कोणफ्लेड्विषयक नियमावली भाषिणकार करनेमें सक्षम हुए। इन नियमोंसे ही अजुना शिन विषयक गणिताङ्क वा त्रिकोणमिथिका उद्भव हुआ है। मियेटा ने बीजगणितक समोकरणांशकी भी काफी उन्नति की थी। १५४०—१६०३ ई० तक ये कीर्तित थे।

मियेटाके बाद गणितज्ञ मलबर्द खिराडके अभ्युदय हुआ। इन्होंने भी मियेटाकी प्रपञ्चित प्रथासे सभी करणांशकी कई पद्धतियोंका भाषिणकार किया था। किन्तु पुनःकी बात है, कि इन पद्धतियोंका ये लोगोंके सामान प्रकट नहीं करते थे। ज्यामिथिक सम्पादकों समाधानक विषये अभावसूचक चिह्न और कल्पित संख्याक ये ही सुपिण्ठ हैं। अनुमान द्वारा ये हा पहले इस सिद्धांत पर पहुँचे, कि जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य सख्याका प्रसार समान्ता ज्ञापेण प्रत्येक समोकरण ही उतने मूल आकार करते हैं। सन् १६२३ ई०में इनका बनाया बीजगणित प्रकाशित हुआ।

खिराडके बाद टामस हेरियट नामक एक अग्रज बीजगणितकी उन्नतिकी प्रयासी हुआ। अग्रज इसको बीजगणितके अग्रतम प्रधान भाषिणकारक कह कर गर्व करते हैं। किन्तु फ्रांस देशके अङ्कविदोंका कहना है, कि मियेटा जो भाषिणकार कर गये हैं लोग उसीको हेरियटके नामसे जानना चाहते हैं। यह भी हो सकता है, कि दोनों गणितपरिचित ही परस्परकी विद्याका परिचय न पा कर मिस्र मिश्र भावने एक ही भाषिणकार कर गये हों। हेरियटका प्रधान भाषिणकार बीजगणितमें श्रेष्ठ साधन पानेक योग्य है। जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य संख्याका प्रसार समान्ता जाता है, उतने साधारण समोकरणोंका गुणनफल एक समोकरणाके समान है—हेरियटने इन उत्कृष्ट नियमका भाषिणकार किया था।

अर्दोर् नामक धीरे एक अग्रजने मा बीजगणित का चर्चा का थी। वह हेरियटके माघ सामयिक होने पर भी उन्नको मृत्युके बहुत दिन बाद तक कीर्तित था। इसक रचित बीजगणितविषयक ग्रन्थ बहुत जिनो तक विश्वाविद्यालयों में पाठ्य रूपमें गण्य था।

ज्यामिथिक साध बीजगणितका सगर्क निष्पन्न कर

मियेटाके बीजगणितकी प्रयोग प्रसारताके सारबन्धमें लेख प्रकाशित किया। गवैपणा और विरीय अनुसन्धान रूपसे विज्ञानकी ज्ञानसे उन्नतोंके कोणफ्लेड्विषयकी जो मसूह्य मयिका भाषिणकृत किया था, उसके प्रति लोगों का ध्यान विरीयरूपमें आह्वय हुआ। किन्तु मियेटा एक तत्त्वके भाषण भाषिणकार करनेमें समर्थ नहीं हुए। इसी समय प्रसिद्ध गणिततत्त्वविद् डेकार्टे उनक उत्तराधिकारी रूपसे विज्ञानक्षेत्रमें समुचित हुए। उन्नतोंमें अपना तीक्ष्ण बुद्धि और सूक्ष्म ज्ञान द्वारा बीजगणितकी एक मौलिक विज्ञानरूपमें प्रकाशित किया था। वस्तुतः बीजगणितक इन नियमावलीको ज्यामितिमें प्रयोग कर उन्नतोंने एक महान भाषिणकार किया है। इस समयसे गणिताध्यापक इस विषयकी आलोचनामें प्रवृत्त हैं। बिगत दो शताब्दोंसे गणितविज्ञानके सम्बन्धमें क्रमोन्नतिकी इतिहास साधारणमें अनिश्चयक होता जाता है।

एक बीजगणितमें बीजगणितके नियम भाषिका प्रयोग और समाधान-योग्यता प्रदर्शन कर डेकार्टेने और भी एक प्रधानतम भाषिणकार किया है। भूगोलकी आलोचनाके समय निरक्षरता और मध्यदेशके साथ तुलना कर हम जैसे पूर्वोक्त स्थानोंका निर्देश करने हैं, वैसे ही उन्नतोंने भी निर्दिष्ट सरल रेखाविशेषक साथ तुलना कर किसी एकदेशके प्रत्येक स्थान पर विन्दु निर्देश किया है।

सन् १६३७ ई०में डेकार्टेको ज्यामिति प्रकाशित हुई। एक ज्यामिति ग्रन्थमें बीजगणित सर्वतोभावेन प्रयुक्त हुआ था। इसके छा वर्ण पहले हेरियट अपना प्रथम प्रसार कर गये हैं। डेकार्टे हेरियटके ग्रन्थसे अनेक बातें अपने नामसे निविबद्ध कर गये हैं। इसीजिये डाक्टर पालिस अपने बीजगणित ग्रन्थमें फ्रांस देशीय बीजगणितज्ञोंको सम्मिलित कर गये हैं। उच्च फरासीसी भा इसक प्रतिबाध करनेसे बाध नहीं आये। गणितक इतिहासका रचयिता मण्टूकना डेकार्टेका मत समर्थन कर गया है और हेरियटसे ऊँचा स्थान इसको दे गया है।

ज्यामिथिक साध बीजगणितका सम्बन्ध प्रकाशित होनेके बाद गणितविषयक बहुतेरे नये तत्त्व भाषिणकार

होने लगे। इसके बाद ही केप्लरके वक्र क्षेत्रके आवर्तित मग्पातमें वनज्जेतके उत्पादनतत्त्व, केवेलेरियस अधि भाज्य विषयक ज्यामिति, वालिज अनन्तवज्जापक्रमणित, न्यूटनकी सूक्ष्मराशिकी गणनाप्रणाली और लिबनिट्ज का अर्थात् सूत्रमात्र और अखण्डाशयदित गणिततत्त्व आधि-कृत हुए। इसी समय वारें, जेम्स, प्रेगरी, रैन, कोट्स, टेलर, हेली, डी, मयडार, मेक्रीरोन, प्रार्लो, रोवार भाल, फामर्नट, हाययेन्स, चानौलिसद्वय और पामकाल, आदि बहुनेरे गणितज्ञ व्यक्तियोंने इसकी आलोचना आरम्भ कर परस्परको पुनः पुनः तत्त्वतरङ्गमें आलोचन किया था।

लाग्रेंज ।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें बीजगणितके सम्बन्धमें उल्लेखनीय कोई आविष्कार हो नहीं हुआ है। नये आविष्कारमें मनोयोगी न हों, सभी इस समय न्यूटन, लिबनीज और देकार्टके आविष्कृत विषयोंकी आलोचनामें प्रवृत्त थे। इस शताब्दीके शेषांशमें लाग्रेंज नामक एक गणितविदु विशेषभावसे गणितचर्चामें प्रवृत्त हुए। इन्होंने *Fraite de le Resolution des Equations Numeriques* ग्रन्थमें जिस तत्त्वकी आलोचना की थी, उसीका अनुसरण कर कुदान, फुरियार, एम और अन्याय अङ्कविदु न्यूटन कृत युनिभर्शल एरिथमेटिकके आदर्श पर अपने अपने ग्रन्थ रच गये हैं। लाग्रेंजने *Theorie des fonctions analytiques* और *Calcul des fonctions* नामक ग्रन्थद्वयमें न्यूटनके सूक्ष्मशयदित गणितविद्याको बीजगणितका अंगीभूत करनेकी चेष्टा की थी और इसमें उनको नफलता भी मिली। इस समय गणितशास्त्रमें लम्बप्रतिष्ठ युलर नामक एक मनुष्य लाग्रेंजके सहकारी रूपमें काम करने थे। गणितके सम्बन्धमें इन्होंने कई बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। इनके लिखे *Novi Commentarii* ग्रन्थके १६वें भागमें बीजगणितके द्विपद उपपायके सम्बन्धमें कई नये तत्त्वोंका परिचय मिलता है।

१९वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक बीजगणितकी उन्नतिकी सीमा यहां तक ही हृद हो गई। यहां तक बीजगणितने जितना उत्कर्ष प्राप्त किया, उससे ही सभी बीजगणितकी एक मोटी धारणा कर सकते हैं। वस्तुतः मूल अव-

स्थाके साथ तुलना कर देखनेसे बीजगणित अज्य समय में बहुत दूर तक पहुंच चुका है, यह बात मुककगटसे स्वीकार करनी पडती है।

प्राचीन बीजगणितके रचयितोंसे ले कर लाग्रेंज तक ममाने एक स्वरसे स्वीकार किया है, कि प्रत्येक संख्या-वदित समीकरणका ही एक मूल है अर्थात् प्रकृत ही हो या कल्पित ही हो जिस किसी संख्यावदित राशि द्वारा समीकरणकी अज्ञातराशि निर्देश की जायेगी और यह समीकरण मर्यासूत्रक हो उडेगा। लाग्रेंज, गौस और आइमरने गणितके सम्बन्धमें जो उपपत्तियां आविष्कार की है, उन्हींको अवलम्बन कर गणितविदु कौचो *Journal de l'Ecole Polytechnique* और पाछे *Cours d'Analyse Uelgrique* नामक पुस्तिकाद्वयमें विशेष भावसे आलोचना कर गये हैं।

कौचोने जिन उपपत्तियोंकी आलोचना की, उमम पहले आर्गाण्ड नामक एक गणितविदु अपने रचने *Gergonne's Annales des Mathematiques* नामक ग्रन्थके पाचवें भागमें उमका त्यागस दे गये हैं। कौचोका कहना है, कि जिस राशिको शून्यके समतुल्य परिमाणमें परिवर्तित किया जा सकता है, वह ही उत्पादककी गुणनफलमें उत्पन्न है, इन तद्द दिग्वाया जा सकता है। उक्त उत्पादकमें एक राशि नैम्न मर्याममें परिणत हो नहीं सकती अर्थात् डुमरी वानमें कहा जा सकता है, कि उक्त राशिमैं जो निर्दिष्ट संख्या प्रदत्त है, उससे भी कम मर्या हो सकती है। सुतरा अङ्ककी प्रणालीके अनुसार उमको शून्यको तुल्य संख्या दी जा सकती है। कौचोकी उपपत्ति विलकुल विशुद्ध न होने पर भी अन्यान्य उपपत्तियोंसे यह अनेकाशमें उत्कृष्ट है।

सन् १८११ ई०में होयनी डी रणस्की नामक एक गणितविदुने विभिन्न पर्यायको समीकरण उपपत्तिके सिवा संज्ञा द्वारा समाधानके लिये एक साधारण नियम आविष्कार कर उसे प्रकाशित किया। उन्हेने १८१७ ई०में लिखनकी एकाडमी आव सायन्समें एक घोषणा प्रकाशित की, कि जो रणस्कीकी निरूपित संज्ञाओंकी उपपत्ति स्थिर कर सकेंगे, उनको पुरस्कार दिया जायेगा।

उपरिवातो नामक एक गणितविद्वाने इसका शेष कटवण कर इसके दूसरे वर्षमें पुनरुत्कार पाया था।

यूट्रिआ एसोसियेशनको रियोर्टके पांचवें भागमें सर डब्ल्यू नाथ हेमिन्टनने विषयमासित करण प्रणालीके सम्बन्धमें एक गणितपूर्ण सङ्ग्रह लिखा है। उक्त पर्याय के समीकरणको लघुत्वं पर्यायमें परिणत करनेमें यह सम्पूर्ण अक्षम है। ओ हो, पहले ऋटोक रहते हुए मा नामा तदर्थसे यह प्रणाली मूल्यवान् है।

गहने तो विशय विशय आकारमें परिणत कर उक्त पर्यायके समीकरणोंका समाधान हा सकता है। डोमय मानने सन् १७३७ ई०में 'किलोसफिकेस द्राङ्गाफसन' नामक पत्रिकामें एक तरहके समीकरणको समाधानप्रणाली सिद्धिपत्र को है। गणितज्ञ गस ड्रिप्ट समीकरणकी इत्यति कर गये हैं। माएडारमोण्डेने इस विषयमें जितनी बलति की थी, इन्होंने इसकी अपेक्षा बहुत अधिक आधिकार किया है। इनके रचे *Disquisitiones Arithmeticae* नामक ग्रन्थमें इस विषयका प्रमाण मिलता है। यह ग्रन्थ सन् १८०१ ई० में पहले पहल प्रकाशित हुआ। इनके बाद बरतैक रहनेवासी आबेल नामक एक गणितविद्वाने यहाँ आरम्भ कर ही और गसने जो आधिकार किया था, इसीका वे इत्थर्व साधन कर गये हैं। सन् १८३३ ई०में लूटि याना शहरमें आबेलकी माटी पुस्तक एकत्र प्रकाशित की गई। इस ग्रन्थमें ड्रिप्ट समीकरण और अन्वय गणितोंके सम्बन्ध आदि इकनेकी मिलने हैं।

किस समीकरणके समाधानके लिये जो वर्तमान शताब्दीमें बीजगणितके सूत्रोंकी पुष्टि हुई है, वेना नहीं कहा जा सकता। समाकरणोंका समाधान करने में पहले एक मूल किस तरह विभक्त किया जा सकता है, इस विषयमें इसा समयसे खोग पक्षबाज होने लगे। इस विषयमें जिन्होंने पहले ग्रन्थ लिख लखोंको प्रकाशित किया, उनका नाम बुबन है। सन् १८०३ ई०में इन्होंने *Nouvelle methode pour la resolution des equation numeriques* नामक एक पुस्तक प्रकाशित कर उक्त विषयको जय

समायके सामने रखा। उनके पूर्व भी फुरियार नामक एक गणितविद्वाने इस विषयमें भाषण किया था। उस समय उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। इससे बुबन ही प्रणालीके आदि रचयिता कहे जाते हैं। किन्तु सब बात तो यह है, कि इनके लिये फुरियार ही सर्वोप भासन पामे योग्य हैं। क्योंकि सन् १८३१ ई०में मेसियारने *Analyse des equations determinees* नाम रख कर फुरियारके बड़े ग्रन्थका प्रचार किया। समीकरणके सूत्र निर्धारण सम्बन्धमें अति संक्षिप्तमें फुरियारने जो हो उपपाद्य सिद्धिपत्र किये हैं, उनमें एकको फुरियारका उपपाद्य कहते हैं। इसके सिवा उन्होंने मन्वएडोकरण नामक और एक उपपाद्यका आविष्कार किया। यह उपाद्य ग्रन्थकारके *Theorie de la Chaleur* नामक उत्कृष्ट ग्रन्थमें यथावधानावसे सम्प्रेषित हुआ है। बुबान और फुरियारको प्रचायकी प्रकाशित होनेके मध्यकालमें सन् १८११ ई०में 'किलोसफिकेस द्राङ्गाफसन नाथ दो रायल सोमाट्टी' नामक पत्रिकामें इस विषयमें एक प्रथम प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थके लेखक डब्ल्यू ओ डनार हैं। उन्होंने इस ग्रन्थमें गणितविषयके समीकरणका एक अनिमन प्रणालीकी आविष्कारना की है। क्रमसे लेग डनारकी इस प्रणाली पर अदागिनत है। उडे और किमो किस्ती विषयमें यह फुरियारकी प्रणालीके पाया समतुल्य और उत्कृष्ट समझी गई। सन् १८३८ ई०में *Memoires des savans etrangers* नामक पत्रिकामें एक नई प्रणाली प्रकाशित हुई। सरलता सम्पूर्णता और सब विषयोंमें प्रयोगयोग्यताके सम्बन्धमें आलोचना कर ईकनेस यह श्रेयोक्त प्रणाली ही समीकरणके मूल अन्वयकरणमें सर्वोत्कृष्ट समझी गई। एम डार्म नामक एक फ्रांसोसी परिचित उक्त ग्रन्थके लेखक हैं जिनका नगरमें इनका जन्म हुआ था। इनके आविष्कृत उपपाद्यने बीजगणितमें उक्त स्थान अधिकार किया है। सन् १८२३ ई०में डार्मने उक्त ग्रन्थ "एकाडमी"में उपस्थापित किया था।

निर्दारण-प्रणाली।

प्रथम पर्यायके समसामयिक समीकरणकी समाधानप्रणाली वेस बर्ग भणालीके आकारमें रखी जा



सकती है, जिसके लव और हर समीकरणकी अज्ञात राशियोंकी प्रकृतिके गुणफलसे उत्पन्न होती है। यह गुणफल साधारणतः रैजालटेण्डस् नामसे परिचित है। लाङ्गोसने पहले पहल इस नामको स्थिर क्रिया और सन् १८४१ ई०में भी कौची अपने लिखे Exercices d'analyse et de physique mathematique नामक ग्रंथोंके २५ खण्डके १६१ पृष्ठमें भी यही नाम लिख गये हैं। इस समय उसको डेटर्मिनेट्स् या निर्धारण प्रणाली नामसे प्रवर्तित किया गया है। अध्यापक गौसने प्रथमतः इस प्रवर्तित नामका व्यवहार किया। Cours d'analyse algebrique नामक ग्रन्थमें कौचीने इसके alternate functions या परस्पर क्रिया नाम से व्यवहार किया।

निर्धारण-प्रणालीके सम्बन्धमें लिचनिट्ज अपने ग्रन्थमें कुछ कुछ आभास दे गये हैं। उनके बाद प्रायः एक सौ वर्ष तक और किमीने इस विषय पर कोई आलोचना नहीं की। पीछे एतमार नामक एक पण्डितने इसका परिचय पा कर अपने लिखे Analyse de lignes courbes algebriques नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया। यह ग्रन्थ सन् १७५० ई०में जेनोवा शहरमें प्रकाशित हुआ था। गुणके नियमानुसार गुणफल योगच्छिद्विशिष्ट या वियोगच्छिद्विशिष्ट होगा, इस ग्रन्थमें एतमारने उसका नियम लिपिवद्ध किया है। विगत जताब्दमें विहीट्, लाप्लेस, लाग्रेंज और भाण्डामण्डे आदि बहुतोंने एतमारके ग्रन्थका अनुसरण कर प्रथम लिखे हैं। सन् १८०१ ई०में गौम प्रणीत Desquisitiones Arithmeticae प्रकाशित हुआ। एम्, पुले-डेलिसले नामक एक व्यक्तिने सन् १८०७ ई०में यह ग्रन्थ फ्रान्सीसी भाषामें अनुवाद कर प्रकाशित किया।

जाकोबी ।

द्वितीय और तृतीय पद्यार्थके वे डिटर्मिनेट्स् या निर्धारणका गुणफल और डिटर्मिनेट्स् वा निर्धारण श्रेणीयुक्त—गौसने इस उत्कृष्ट उपपत्तिकी आविष्कार किया। इसके बाद विनेट् कौची और अन्यान्य बीजगणितज्ञोंके यत्नसे उक्त तत्त्व विशेषरूपसे आलोचित हुआ और वे इस गुणफलको ज्यामितिके सम्बन्धमें

परिणत करनेमें प्रयासी हुए। सन् १८२६ ई०में जेकोचीने क्रैस जरनलमें इसके सम्बन्धमें कई प्रबंध प्रकाशित किये। बीस वर्ष तक विशेष आलोचनाके साथ प्रकाशित किया। इस प्रसङ्गमें जेकोची और भा कई नये तत्त्वों पर पहुँचे हैं। वे आलोच्य विषयकी विशदभावसे व्याख्या कर कृतकार्यों को गणितविदोंमें प्रतिष्ठा लाभ कर गये हैं।

मिलेवेट्टर और जेकोची ।

जाकोचीके दृष्टान्तोंका अवलम्बन कर अन्यान्य बहुतोंने गणितविद् भी कार्योंक्षेत्रमें आगे बढ़े। इनमें मिलेवेट्टर और कोलीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये वृत्तवासी थे। इन दो गणितविदोंने गवेषणापूर्ण प्रयासों द्वारा ट्रेजाफमन साथ दो रायल सोसाइटी, क्रैस जरनल, डी कंमिज्ज एण्ड डवलिन मेथेमेटिकल जरनल, कार्टली जरनल आब मेथेमेटिक्स आदि गणित-विषयक पत्रिकाओंके अनेकों पुष्टि की हैं। साथ ही ये अपने अपने नाम भी गणितविद्समाजमें चिरस्मरणीय रख गये हैं। वेल्डजर-प्रणीत Theorie und Anwendung der Determinanten और अलमनकून Higher Algebra नामक बीजगणित ग्रन्थमें यह विषय सुन्दर और सरल भावसे और संक्षिप्त आकारमें आलोचित हुआ है। सिवा इसके इस सम्बन्धमें स्पेडिशुडने सन् १८५१ ई०में, ग्रिओस्कीने सन् १८५८ ई०में, टण्टोरने सन् १८६१ ई०में कई मूल ग्रंथोंकी रचना की।

भारतीय बीजगणित ।

पाश्चात्य जगत्में इस विद्याका विशेषभावमें पुष्टि-साधन होने पर भी यथार्थमें यह ज्ञात्र बहुत पहले भारतवर्षमें प्रचलित था तथा भारतवासी आर्याभूषि और पण्डितोंने जो इसकी आलोचना की थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। बीजगणितकी उत्पत्तिका इति-हान आलोचना करते समय मि० स्वेन यारोने कुछ प्राचीन ग्रंथोंके निर्दर्शनको यूरोपवासीके निकट उपस्थित किया, इस कारण यूरोपवासीमात्र ही कृतज्ञताके साथ उनका नाम स्मरण करेंगे। उन्होंने प्राच्य-देशसे कुछ हस्तलिखित पोथियोंको संग्रह किया। उनमेंसे बहुतेरी पुस्तक पारसी भाषामें लिखी हुई थी। इन्होंने इसका थोड़ा बहुत अनुवाद कर मूलसहित

इसलेखनेको अपने मित्र राधेय मिलिटरी, काठिग्रने भ्रम्यापक मि० डाम्बकीक हाथ समर्पण किया। डालकीने कतीब १८०० ई०में इन्हें गणितशास्त्रमाही व्यक्तियों क निकट प्रकाशित किया।

१८१३ ई०में संस्कृत बीजगणित प्रथके गारलो अनुवादसे मि० एडवार्ड प्लाचीने 'बीजगणित' नामसे यूरोपमें इसका स गरीबीमें अनुवाद कर प्रकाशित किया। १८१६ ई०में डा० ज्ञान देवरने मूल्संस्कृत भाषामें 'बीजगणित'का अनुवाद कर बम्बई नगरमें उस प्रकाश किया था।

इस 'मोहावती' प्रथ गणित और ज्यामितिविषयक है। उसक तथा बीजगणित नामक प्रथक मूल प्रथ कारभारने सुपरिविध गणितविद् भ्रातृकाराचार्य' है। १८१७ ई०में महामति हैनरी टामस कोलब्रूकने "Algebra, Arithmetic and Mensuration from the Sanskrit of Brahmagupte and Bhāscara" नामक प्रथ प्रकाशित किया। इस प्रथमें संस्कृत कविनामं विहित भास्कराचार्यका बीजगणित और बीजगणित तथा ब्रह्मगुप्तका गणितशास्त्र और कुट्टक श्याय अनुदित हो कर विशेषमासे सामोचित हुआ है। इक प्रथम हो प्रथ भास्कर रचित सिद्धान्तशिरोमणि नामक उपोतिशास्त्रके प्रथमांश और ब्रह्मशिखाई ब्रह्मसिद्धान्त नामक उपोतिषयिषयक एक दूसरे प्रथक बारहसे और सदारहसे भ्रम्यायसे स पुरीत है।

भास्करके सैकसे ज्ञाना जाता है, कि प्रायः १०३२ शक या ११५० ई०में भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणि प्रथ समाप्त किया था। भास्करने अपने बीजगणितक अन्तमें लिखा है, कि इन्होंने अपने पूर्ववती प्रथ, भोघर और पद्मनाम विरचित द्विसुन बीजगणितसे अपना प्रथ बहुत संक्षेपमें सङ्गृह्यन किया है। सूर्यदास और रङ्गनाथ आदि सिद्धान्तशिरोमणिके भाष्यकारोंने आर्यभट और बभ्रुवैद पृथुवृक श्यामी आदि प्राखान दाकाकारकीने से अपने पूर्ववती' बताया है।

प्रथगुप्तने ५५० शकमें ब्राह्मरपुटसिद्धान्तको रचना की। ज्ञाना प्रकारके प्रमायादिका उल्लेख कर मि० कोल ब्रूकने दिकताया है, कि आर्योंक मध्य गणितद्विया

प्रबलक बहुत पहले ब्रह्मगुप्तका अग्रम हुआ था। अतएव आर्योंक बहुत पहले हिन्दू लोग बीजगणितक तत्त्वम सवगत थे इसमें शरा भी संदेह नहीं।

ब्रह्मगुप्तका रचित प्रथ हा बीजगणितके सङ्गृह्यमं द्विगुप्तोका आदि पुस्तक है परना भी नहीं कह सकन। विख्यात उपोतिवी और गणितविद् तथा भास्करके प्रधान भाष्यकार गणेशने आर्यभटक पुस्तकमें एकीश उद्धृत कर दिखाया है, कि बीजगणित पहले 'वीत नामसे पुकारा जाता था। इसके प्रथमें प्रथम पर्यायकी अनि द्वि प्रथमाद्य समाधामोपयोगी कुट्टक नामक अति प्राचीन प्रमातीका भी उल्लेख है। यह कुट्टक प्रणामो आर्य द्विगुप्तोकी अति प्राचीन प्रणामो है।

सूर्यदास नामक भास्करक दूसरे भाष्यकारने भा आर्यभटको पुराखासीय बीजगणित लेखनेमें ऊचा स्थान दिया है। द्विगुण वर्गपर्यक नियमापुस्तार वर्गीय समीकरण (Quadratic equations) का समाधान कर सकने थे। मि० कोलब्रूकका कहना है, कि आर्यभट पुस्तकमें निर्दिष्ट पर्यायका वर्गीय समीकरण भी अनिर्दिष्ट विभागका प्रथम है। यही तत्, कि द्वितीय पर्यायके समीकरणका भी नियम रहना सङ्गभर प्रमाका जाता है।

आर्यभट किस समय बर्तमान थे, उसका निर्णय करना कठिन है। मि० कोल ब्रूक अनुमान करते हैं कि कतीब ५वीं सदीमें वा उसके पूर्ववतीं समयमें द्विगुप्तो क थे आदि बीजगणितविद् पत्त मान थे। कास ब्रूकक मतसे आर्यभट प्रोक्तगणितविद् शैब्य तासक समयसाभियक व्यक्ति थ। शैब्य तसान मन्नाइ सुमियनक शासनकालमें प्रायः ३६० ई०को अग्रमदह्य किया था।

आर्यभट देना।

भारताय बीजगणितविद् आर्यभट और गोसक शैब्य तासक साथ तुलना कर मि० कोलब्रूकने नाबित किया है, कि समस्त बीजगणितशास्त्रक उत्पन्न विषयमें आर्यभट प्राक्परिचित शैब्यतासक कहा उपासन पानेक योग्य है। इन्दीने यह भी कहा है कि द्विगुप्तोने algorithm का अर्थ और सङ्ग्र उपाय मानिष्कार कर सोकी पर भी प्रतिष्ठामास किया है। इसक सिद्धा

निम्नोक्त नियमोंकी यदि अच्छी तरह आलोचना की जाय तो मालूम होगा, कि बीजगणित विषयमें हिंदुओंका ही श्रेष्ठत्व है।

( १ ) एकाधिक अज्ञातराजिबिधिष्ट समीकरणका समाधान।

( २ ) उच्च पर्यायके समीकरणका समाधान। इस विषयमें हिंदूबीजगणितज्ञगण यद्यपि सम्पूर्ण नियमोंका प्रतिपालन करनेमें कृतकार्य न हुए, तो भी उन्होंने जो इस विषयमें यथेष्ट चेष्टा और बुद्धिमत्ताका परिचय दिया है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वर्त्तमानकालमें प्रचलित द्विवर्गीय समीकरण ( biquadratics ) के समाधान सम्बन्धमें आर्यहिन्दूगण पाश्चात्य जगद्वासी प्राधान बीजगणितविदोंके बहुत पहले जगत्में इस तत्त्वका आभास कलका गये हैं।

( ३ ) प्रथम और द्वितीय पर्यायका अनिर्दिष्ट सम्पाद्य (Indeterminate problems of the first and second degree ) समाधान। इस विषयमें हिन्दुओं ने देवफन्ताससे कहीं अधिक आविष्कार किया था तथा आजकल बीजगणितमें प्रचलित तत्त्वसम्बन्धमें अपनी धारणाको उन्होंने स्पष्टभावमें प्रकाशित करनेकी चेष्टा की।

( ४ ) ज्योतिषशास्त्र और ज्यामितिसम्बन्धीय विषयादिमें बीजगणितका नियम प्रयोग।

अभी इस विषयमें बीजगणितके जो सब तत्त्व आविष्कृत हुए हैं, हिन्दूबीजगणितज्ञ अति प्राचीनकालमें भी उन सब तत्त्वोंका मूल उद्घाटन कर गये हैं।

अरबोंने बड़ी विचक्षणतासे विद्वानालोचनामें ख्याति लाभ की है सही, परन्तु सब पूछिये तो उन लोगोंक द्वारा बीजगणित-सम्बन्धमें कुछ भी उन्नति न हुई। जिस अवस्थामें थीर जिस समय यह शास्त्र यूरोपमें लाया गया उस समयसे बीजगणितकी पूर्ण परिपुष्टि होनेमें कई सदी बीत गई थी, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु पाश्चात्य जगत्में बीजगणितकी प्रवेश-प्रतिष्ठा और पूर्णपुष्टिकी बातको छोड़ कर हमें बीजगणितके प्राचीन इतिहास-सम्बन्धमें मालूम होता है, कि आर्य्यभट्टके बहुत पहलेसे हा भारतमें यह विद्या किसी न किसी तरह प्रचलित थी। यदि वास्तविक ज्योतिषतत्त्वकं

साथ इस शास्त्रके नैकट्य सम्बन्धके विषयमें आलोचना की जाय, तो हम निःसन्देह कह सकते हैं, कि कई सदी पहलेसे ज्योतिषके साथ ही साथ इस विद्याका भी उद्भव हुआ था। Astronomic Indicans के प्रणेता वेल्कीके मतानुसारण पर अध्यापक प्लेफेयरने स्वकृत Memoir on the Astronomy of the Brahmims ग्रन्थमें लिखा है, कि हिन्दूज्योतिषशास्त्र अति प्राचीनकालसे विद्यमान है। ईसा जन्मसे ३००० हजारमें या बहुत पहले इस शास्त्रका आविष्कार-काल माना जाता है। उक्त तत्त्वके सम्बन्धमें संशय करके लाप्लेस, डिलात्रे आदि यूरोपीय पण्डितोंने बहुत-सा बातें कही हैं। अध्यापक लेसलोंने अपने Philosophy of Arithmetic ग्रन्थमें लायायतोंके सम्बन्धमें लिखा है, कि उक्त ग्रन्थ कुछ अपरिस्फुट कविता लिखित नियमोंका समावेशमात्र है।

एडिनबरा यूनिवर्सिटीके गणिताध्यक्ष मि० फिलिप केलाण्ड और यूरोपीय किसी किसी पण्डितने लेसलोकें मतानुसार लीलायताको अल्प और अकिञ्चित समझा है सही, पर हम उसे माननेको तैयार नहीं। लीलायती जनसाधारणके लिये दुष्कर और दुर्बोध्य है। मान लिया वह बीजगणितविषयक प्रकृत, ग्रन्थ नहीं है, तो भी उसमें जो वर्त्तमान बीजगणितके मौलिक गुणत्व और बीजगणित-प्राक्रयान्ति निष्पाद्य विभिन्न प्रकारके कितने विषय लिपिबद्ध हैं, उमें कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते। वर्त्तमान आलोचनामें वे सब गुणतत्त्व उद्घाटित हुए हैं।

गणितज्ञ केलाण्ड, अध्यापक प्लेफेयरके मतानुवर्त्ती हो हिन्दूबीजगणितके प्राचीनत्वको अस्वीकार नहीं कर सकते। अध्यापक प्लेफेयरने कई सदी तक हिन्दूगणितकी अनुत्कर्षावस्था ही बातोंका उल्लेख कर निम्नोक्त भाषामें उसकी पूर्णाङ्गताका परिचय दिया है—

‘ In India, everything ( as well as algebra ) seems equally insurmountable and truth and error are equally assured of permanence in the stations they have once occupied. ’

भारतीय ज्योतिष और बीजगणितकी प्राचीनता जो अविस्मर्यादित है, उसे वर्त्तमान प्रतनतत्त्वविदोंने एक

स्वरसम्बन्धीकार किया है। सुपाधीन वैदिक युगके अथोतिस्वरबन्धी आलोचनासे भी यह प्रमाणित होता है।

प्राचीन भारतमें एक समय जैा राजनीति, व्यवस्था शास्त्र, धर्मविज्ञान और आचार्यप्रवृत्तिका यथेष्ट प्रचार था, उसके भी काफी प्रमाण हैं। प्राचीन कालसे इन सब विषयोंको आलोचना और राजनैतिके साहाय्यमायमें आज तक यह एक ही तरह चला जाता है। जिस णिकके बलसे भारतमें एक समय इन सब विषयोंमें सफलता प्राप्त की थी उसकी गतिमें किसी प्रकारकी बुनियादी बाधा उपस्थित होनेसे ही भारतको भवनाथि हुई है, इसमें संदेह नहीं। अथवा यह भीकार करना होगा कि सभी विश्वभूत भ्रमानुपिक धीप्रतिकसम्पन्न आध्यात्मविषय भारतमें अपूर्ण बिधाका आविष्कार कर गये उे इसके बाद जैसे व्यक्तिका फिर इस देशमें जगम गइल नहीं हुआ, इसी कारण भारतको आज यह युवशा है।

अ क्याय और प्रथम उत्पत्ति।

(१) पाटोगणितमें दश सख्या है, बिरोध नियमानुसार इन सख्याओंके ताना प्रकारक संयोगसे किसी एक अङ्कको राशि समझा जायेगी। किन्तु गणितविषयक दुकड़ तत्परनिर्णयमें अनेक समय इन अङ्को द्वारा कार्य नहीं होता। इस कारण अङ्कराशिके सम्बन्धनिर्णयके बिधे अङ्कपातके एक साधारण नियम आविष्कार करनेकी आवश्यकता होती है। उसीसे बीजगणितकी उत्पत्ति है।

बीजगणितमें कोई भा राशि मात्रात्मिक सवा प्रायः महत्वमें समझी जा सकती है। साधारणतः वर्णमाला द्वारा ही एक राशिका बोध होता है। पाटोगणित-विषयक सम्पादका समाधान करनेके लिये कुछ राशि निर्दिष्ट हैं तथा उसीक निर्धारणके लिये अन्य बहुत से अज्ञातसख्या निर्दिष्ट हुई हैं। वर्णमालाके भावि अक्षर क, ख, ग इत्यादि ज्ञात सख्याके बन्धमें व्यवहार लिये आते हैं तथा अज्ञात अक्षरमात्रा स, ग, ह इत्यादि द्वारा अज्ञात अनुसन्धानोप राशि लिखा जाता है।

बिन्दुभी यथा।

(२) गणितमें + (योग) का बिन्दु व्यवहृत होनेसे

समझा जायगा, कि जिस राशिके पहले यह बिन्दु रहता है, उसके साथ कोई एक राशि जोड़नी होगी। जैसे, ५, ५ इससे क और ५ की एकत्र समष्टि समझी जाती है। ३+५, इससे ३ और ५को समष्टि अर्थात् ८ का बोध होता है।

—( वियोग ) बिन्दु व्यवहृत होनेसे भ्राम्यम पड़ता है, कि जिस राशिके पहले यह बिन्दु बैठा है, उसे किसी दूसरी राशिसे घटाना होगा। जैसे, ५—५ अत्र बिन्दुसे समझा जायगा, कि क से कको घटाना होगा। ३-२ अत्रनेका मतलब यह है कि, कि ३से २ वियोग करना होगा अर्थात् अक्षरिष्ट ४ राशि रखनी होगी।

जिन सब राशिपिके पहले + बिन्दु रहता है, उस माकारमक (positive) और जिसके पहले—बिन्दु रहता है, उसे अकारमक (negative) राशि कहते हैं।

किसी राशिके पहले यदि काह बिन्दु न रहे, तो + (जोड़) बिन्दु मानना होगा।

जिन सब राशियोंके पहले + अथवा—बिन्दु दिखाए देता है उन्हें समबिधबिधिशिष्ट राशि कहते हैं। जैसे + क और + ख यह दो सख्या समबिधबिधिशिष्ट हैं। फिर + क और + ग यह दोनों सख्या अममबिधबिधिशिष्ट हैं।

(३) जिस राशिमें सिर्फ एक संख्या रहती है। उसे अविभिन्न राशि कहते हैं। फिर यदि कोई राशि योग वा वियोग बिधबिधिशिष्ट अनेक संख्याओंकी समष्टिभूत हो तो उसे मिश्रराशि (Compound) कहते हैं। + क और - ग ये अविभिन्नराशि हैं, किन्तु क+ग अथवा क+ख+ग ये मिश्रराशि हैं।

(४) संख्याका गुणनफल निहालमें साधारणतः उन संख्याको सटा कर रक्कना होता है। अथवा × बिन्दु बोधमें एक ठगड़े संयुक्त करना होता है, अथवा दोनों क बीजम × या बिन्दु दिया जाता है। जैसे—क क या क×क, या क-क। प्रत्येकस गुणाका बोध होता है। फिर क क ग वा क×क×ग या क क ग इत्सस भी क, क और गकी गुणसमष्टिका बोध हुआ। यदि गुणनोप राशि मिश्र पर्यायकी हो, तो उन सब राशिपिके ऊपर एक रेखा (—) और मध्यम × बिन्दु दिया जाता है। उस राशिके ऊपर जो रेखा की

जाती हैं, उनमें ( Vinculum ) कहते हैं। जैसे  $k \times g + \text{घ} \times \text{ङ}$ —च, इससे मालूम होता है, कि क अकेली एक राशि है।  $g + \text{घ}$  का योगफल द्वितीय राशि है। तथा  $\text{ङ}$ —चके वियोगफलसे जो राशि निकलती है, वह तृतीय राशि है। इन तीनों राशियों को एक साथ गुणा करना होगा। ऊपरवाली रेखा द्वारा चिह्नित न करके उन सब राशियों को बन्धनीमें भी रखा जा सकता है, जैसे,  $k (g + \text{घ}) (\text{ङ} )$  अथवा  $k \times (g + \text{घ}) \times (\text{ङ} - \text{च})$ ।

बीजगणितमें प्रयुज्य इस प्रकारकी वर्णमालाके पहले यदि कोई सख्या व्यवहृत हो, तो उस सख्याको अङ्क-घटित प्रकृति कहते हैं। अङ्क कितनी बार लिया जाये, इससे वही बोध होता है। जैसे, ३ क इस राशि द्वारा बोध होता है, कि 'क' को ३ बार लेना होगा।

(५) एक राशिको दूसरी राशिसे भाग देने पर भागफल जो निकलेगा, वह एक रेखाके ऊपर विभाज्य राशि रख उसके नीचे भाजक रखनेसे समझा जाता है जैसे,  $\frac{१२}{३}$  इस राशि द्वारा यही समझा जाता है, कि विभाज्य १२में भाजक ३का भाग देनेसे ही भागफल ४ निकलेगा, अथवा  $\frac{४}{३}$  इससे समझा जाता है, कि विभाज्य 'ख' को 'क' से विभाग करनेसे ही भागफल निकल आयेगा।

(६) किसी दो सख्याकी समानता मालूम होनेसे उनके बीच = (समान चिह्न) दिया जाता है। जैसे,  $k + \text{घ} = g - \text{च}$  इससे यही समझा जाता है, कि क और खका योगफल ग और घके वियोगफलके समान है।

(७) अविमिश्र राशि और मिश्रराशिकी सख्यामें एक ही वर्णमाला या वर्णमालाके समष्टोवद्ध होनेसे उनको समश्रेणादिभुकराशि कहा जाता है। जैसे + क ख और -५ कख ये दो राशियाँ समपर्यायकी हैं। किन्तु + क ख और + क ख ख, ये समपर्यायकी नहीं हैं।

गणितमें अन्यान्य कई विषयोंके बदले दूसरे प्रकारके चिह्नादि भी व्यवहृत होते हैं। जैसे > यह चिह्न अधिक सख्याकापक, < इससे न्यून सख्याका अर्था समझा जाता है और °° इस चिह्नसे "इसलिये" का अर्थ सूचित होता है।

(८) बीजगणितमें राशियोंके गणितको सोमा वार करने पर भी उनमें निबद्ध वर्णमालासख्यामें मूल राशिकी शक्ति सीमावद्ध नहीं रहती। राशि संख्या जिस तरहसे पहले अभिव्यक्त होती है, क्रमसे यह सिद्ध साक्षात्प्राप्त होती है। जैसे + क यदि क्रमों - क लार्माग समझा जाये, तो - क उसी योगफलकी क्षतिका भग समझा जायेगा। इस तरह यदि + क क्रमों 'क' साक्षक कोटमाणकी अप्रगति समझा जाये, तो - क उक्त सख्यामानकी पश्चाद्गति समझी जायेगी। इससे स्पष्ट ही समझा जाता है, कि + और - चिह्नद्वय परस्परकी विपरीत क्रियाके समष्टिवद्ध हैं। इस तरह अनुशीलनका पक्षपाती हो  $\text{दम} \times \text{धौर} - \text{दोनों चिह्नोंका राशिघरण सहाके परस्परका विपर्यायबोधक मान सकते हैं।}$  बीजगणितमें राशिकी क्रियाके समाधानके लिये उक्त चार चिह्नोंके जो कार्य हैं वे निम्नोक्त दृष्टांतमें स्पष्टभावसे दिताये जा सकते हैं। जैसे + क - क = + ० या - ० ; जहाँ + ० रहता है, वहाँ यह ० द्वारा घटि-प्राप्त और - ० की जगह ० द्वारा लब्धोक्त समझा जायेगा। इसी तरह  $\times \text{क} - \text{क} = \times १$  या  $+ १$ ,  $\times १$  कहनेसे १ द्वारा गुणित और  $+ १$  कहनेसे १ द्वारा विभक्त करना होगा।

(९) संख्यागणितमें जिस प्रणालीसे चिह्न राशिकी संयोग करता है, बीजगणितमें उसका व्यतिक्रम दिखाई नहीं देता। किन्तु साधारणकी सुविधाके लिये निम्न-लिखित ३ नियम विवृत किये जाते हैं—

१म। + या - चिह्न द्वारा राशिया परस्परका सम्बन्ध और भावान्तर प्राप्त होने पर भी कभी भी संयुक्त राशियों द्वारा परिचालित नहीं होता।

२म। जिस किसी संख्यामें जिस किसी सख्याका योग या वियोग किया जा सके, उसको Distributive law कहते हैं।

३म। गुणन या भाग भी इसी तरह दोनों राशियोंमें किया जाता है। इसको Commutative law कहा जाता है।

सब विषयोंमें बीजगणितका प्रयोग सहजसाध्य होगा, ऐसी चिन्ता कर उपर्युक्त साधारण नियम बीज-

गजितमें सन्निवेशित किया जाता है। किन्तु इरे नियम का निबन्धन रहनेसे यह चतुष्टयके विद्यानमें परिणत हुआ है। इस तरह सीमाधीन बीजविद्यानके नियमानुसार "क ल" या परु वस्तु हो नहीं सकती।

बीजगर्भ ( स० पु० ) बीजानि गर्भे अभ्यन्तरे यस्य । पटोल, परबल ।

बीजगुप्ति ( स० स्त्री० ) बीजानां गुप्तिर्भावः । मिम्बी, सेम ।

बीजद्रुम ( स० पु० ) अम्लरवृक्ष, यिजयसार या अम्लन नामक वृक्ष ।

बीजप्राण्य ( स० स्त्री० ) बीजप्रधानं धाम्य । १ धात्यक, धनियाँ । २ बीजके लिये रखा हुआ धान ।

बीजन ( स० स्त्री० ) बीज्यतेऽनेनेति वि ईज् करने से व्युत् । १ अग्रज, पंजा अकता । २ सञ्चालन । ३ अग्रज साधन पंजा, खार आदि । ४ सञ्चालनवस्तु । ( पु० ) ५ चक्रवाक, चकोट पत्ता । ६ बीजद्वीप पक्षी । ( धारण्य ) ७ पीतलोघ ।

बीजपात्र ( स० पु० ) १ असनवृक्ष, विवासास, विजय सार । २ मल्लिकातक वृक्ष सिद्धार्थी ।

बीजपुत्र ( स० पु० ) आरिपुत्र, बगका प्रधान पुत्र । जिससे बगको प्रथम गणना की जाय अर्थात् जिससे यह बग बना हो उसे बीजपुत्र कहते हैं ।

बीजपुष्य ( स० पु० स्त्री० ) बीजप्रधान पुष्य यस्य । १ मरुचक्र वृक्ष, मरुमा । २ मन्त्रपुस्त, मैतक । ३ नाक वृक्ष, उवार । ( उन्नति )

बीजपुष्पक ( सं० पु० ) बीजपुष्य देशे ।

बीजपूर ( सं० पु० ) वाजानांपूर समूहो यत् । १ फलपूर, बित्रीय, नीबू । पर्याय—बीजपूर्णं पूर्णबीज, सुकशर बीजक, कजरासु मानुसुसु सुपूरक दन्तक, वृत्रकमक, मन्त्रम, इन्दुरव्यङ्ग पूरक, रोचनकक । इसके फलका गुण—असु कटु, उष्ण, श्वासकास धीर पामुनाजक, कण्ठ शोषनकर, मधु, हृद्य, क्षीपन शक्तिकारक पाचन, लाघ्याय, गुल्म, हृद्रोग प्रहृता और उदावर्तनाजक । विषम्य शिक्षा, गुम और छर्दिशामें यह बिर्येय उपकारा है । ( उन्नति० ) २ मनुककंठी अकातरा, गण्डग ।

इमका गुण—आरिष्ट, दन्तिष्ट, शीतल गुठ रक्तविष, अय, श्वासकास शिक्षा और घ्नमनाजक ।

बीजपूरवन—वेदके निष्कटवर्ती स्थानमेव ।

( चिह्नपु० ४१६३ )

बीजपूराघपूत ( सं० स्त्री० ) शुद्धरीतौक पूतीपचिरीये । प्रकृतप्रयाली—पी ४ सेर, काटोके लिये बीजपूत अर्थात् चकोतरा नीबूका मूत्र, रेंडीका मूत्र, रास्ता, गोखर, विजवद प्रत्येक ५ यत्, मूसा रदित औ २ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । जल ३४ सेर, शेष १६ सेर, धनियाँ, इरीतकी, निरुद्ध, द्विज्ज सचळ, बिट्, सेन्धव, पबझार, श्वेतपूना अम्लवैतस कुट्टक, अगार, बृहामु, खीरा, मंग रैसा, प्रत्येक २ तोला । खीका पानी ८ सेर । घीमी जाँकेमें घषाधिधान पाक करना होगा । यह पूत अम्बिके बलानुसार उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे निषेधद्रव्य वातद्रव्य, यक्ष्मद्रव्य आदि नष्ट होते हैं ।

( मेकपलना० शूकधि० )

बीजपूर्ण ( सं० पु० ) १ बीजपूर, बित्रीय नीबू । २ मधु बीजपूर, शरवती नीबू । ( पु० ) ३ बीज द्वारा पूण ।

बीजपेशिका ( सं० स्त्री० ) बीजस्य शुक्रम्य पेशिकेय । अरुडकोप ।

बीजपत्रक ( सं० पु० ) बीजप्रधानं फलं यस्य कम् । बीज पूर बित्रीय नीबू ।

बीजमातृका ( सं० स्त्री० ) पद्मबीज, कमलगाहा ।

बीजमार्गी ( सं० पु० ) वैष्णव सम्प्रदाय बिरीय । परिषम मारतके स्थान स्थानमें इनका वास है । ये अपनेकी निर्गुणका उपासक बतलाते हैं । ये कन्नी भी किसी देव मूर्ति को उपासना नहीं करते और न अपने मन्मनास्यमें म किसी देवताका प्रतिष्ठा ही करते हैं । नामक, हावु, कबीर, आदि जो सब प धी है ये भी इसी तरहक पच प या समको ज्ञाते हैं । रामात् निमात् आदि वैष्णव सम्प्रदाय इनका पाकबडा कह कर इनसे पूजा करते हैं । ये इनक साथ बैठना ता वूर रहा इनस अङ्गस्पर्श कर ज्ञान पर भी अपनेको अपवित्र समझते हैं । उनको समझमें ये जहाँ जा कर बैठ जाते हैं, वह स्थान भी अपवित्र हो जाता है ।

ये शुक्रको ही परम्य कहते हैं । क्योंकि शुक्रस ही सारे जीवोको उत्पत्ति दासी है । शुक्रका नाम बीज है इसीसे इनका नाम बीजमार्गी हुआ है । इनका

भजन-सभाका नाम समाज और भजनालयका नाम समाज-गृह है। गोरवनाथ आदि विरचित भजनों को ये गाया करते हैं।

शैव शाक्त आदिकी तरह इनका भी एक तरहका चक्र होता है और उससे अतीव गुह्य व्यापार मंत्र-दिन होता है। शुकपक्षीय १४ को इस चक्रका अनुष्ठान होता है। कोई भी बीजमार्गी अपने घरकी किसी स्त्रीको क्रिमो साधु अर्थात् उदासी विशेषके साथ सहवास करा कर उसका वाज निकाल लेता है।\* उम्मी बीजको शीशीमें बन्द कर रखने और चक्रके दिन यह बीज समाजगृहमें ला कर एक बेटी पर पुष्पगण्डयाके बीच एक पात्रमें रखते हैं।† इसके बाद उसमें दुग्ध, मधु, घृत और दधि मिला कर पञ्चामृत तैयार कर पुष्प और मिष्ठान मिला कर उसका भोग लगाते हैं। भोग लगानेके बाद समाजके सबका यह परिवेशन किया जाता है। ये चक्रस्थलमें जाति पातिका विचार न करके सबका बनाया समी क्राते हैं।

गिरनारके अञ्चलमें काठियावाड़में भी इनकी वस्ती है। ये अपनी मत प्रणालीके विस्तारमें कहते हैं। इनके महन्त गृहस्थ हैं। सुना जाता है, कि परमार्थ-माधनाके उद्देश्यसे एक बीजमार्गी अन्य बीजमार्गीको भार्यासे सहवास करता है। किसीका विवाह होनेसे उसकी भार्याको महन्तके साथ तीन दिनों तक रहना पड़ता है। महन्त उस स्त्रीसे सम्भोग करते और उसे मन्त्रोपदेश देते हैं।

ये ऐसे अभिचारी हो कर भी सर्वथा स्वेच्छाचारी नही हैं। शुद्धाचाराभिमानो अन्यान्य वैष्णवोंको तरह

\* इनके घर किसी साधुके आने पर अपनी स्त्री अथवा कन्याको उसकी सेवामें नियुक्त करते हैं, उसके साथ सहवास करा कर साधुका बीज अर्थात् शुक-ग्रहण कर एक शीशीमें रक्ख लेते हैं।

† और भी सुना गया है, कि महन्तके पास अपनी स्त्रीको मेल कर दोनोंके परस्पर सहवास करा कर बीज बाहर करा लेते हैं और यह बीज तथा पायस्थ बीज एकत्र मिला कर उसकी पूजा करते हैं।

गलेमें तुलसीकी माला पहनने हैं और मद्य मांसके व्यवहारमें भी दूर रहते हैं। ये अपनेको निर्गुण उपासक कहा करते हैं। फिर भी राम और कृष्णके गुण भी गान करते हैं, किन्तु राम और कृष्णको विष्णुका अवतार नहीं मानते। परब्रह्मका नाम ही राम और कृष्ण है। ये देहको काँगल्या, दश इन्द्रियको दश रथ, कुमति या डोपके कैकेयी, उदरको भरत और मन्त्रगुणको शत्रुघ्न कहते हैं। देहके अन्तर्गतस्थित रामरम नामक पदार्थ विशेषको राम और लाहा नामक स्थान विशेषको लक्ष्मण कहते हैं।

इस सम्प्रदायकी अनुष्ठित परक्रिया आदि पल्लुदासी सत्नामो आदिकी तरह है। पल्लुदासी देखो।

बीजरत्न (सं० पु०) बीज रत्नमिव यस्य। माप क्लाय, उदरको दाल।

बीजरुह (सं० पु०) बीजात् रोहताति रुह इगुपधात् क। जालिधान्यादि।

बीजरेचक (सं० पु०) जयपाल, जमालगोटा।

बीजरेचन (सं० क्ली०) बीज रेचनं रेचकं यस्य। जयपाल, जमालगोटा।

बीजवपन (सं० क्ली०) बीजाना वपनं। क्षेत्रमें बीज डालना, जमीनमें बीज बोना।

शास्त्रमें बीजवपनका नियम इस तरह लिखा है:— पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, चित्रा, आर्द्रा और अश्लेषा भिन्न नक्षत्रोंमें, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या भिन्न तिथियोंमें; मिथुन, कन्या, धनुः, मीन, वृश्चिक और वृषलग्नेमें गनि और मङ्गल भिन्न चारको शुभयोग और शुभकरणमें गृही अपनी चन्द्रशुद्धि अवस्थामें पवित्र देह तथा हृष्ट चित्तसे उरसाहके साथ नाचने नाचते पूर्वामिसुखी हो जलमें भरे घड़े और सुवर्ण जलनिपिक्त बीजको तीन मुट्ठी ले। पीछे मन ही मन इन्द्रदेवका स्मरण कर यह बीज प्राजापत्यतीर्थ\* द्वारा क्रमसे भूमिमें गिरावे और निम्न लिम्बन मन्त्रका पाठ करे। बीज वपनके बाद उस दिन

\* कनिष्ठा अंगुलिके निम्नभागका नाम प्राजापत्यतीर्थ है।

वहाँ हा जगमे बन्धुबान्धवोंके साथ भोजनतादि करना  
उचित है। मन्त्र यह है—

“त्वं वै बभ्रुवरे सीत बभ्रुपुत्रप्रसवदे ।  
नमस्ते मे शुभ नित्यं कृषि मेवां शुभे कुरु ॥  
येत्यु उर्ध्वस्थानि काले दवा प्रवर्त्तु ।  
कर्मास्तु मन्त्रवचः॥ पाम्येन च बनेन च स्वाहा ॥”

(रीषिका)

उपोतिस्तस्वमें त्रिका है—बीजान् महातेजो हा बीज  
बपन करना सबसेसा उत्तम है। उपोत्प्रासमें त्रिम  
ममय सूर्य शैदिपो नक्षत्रमें भवस्थान करते हैं। इस  
समय बीज बपन मध्यम है। इसक सिवा अन्य महीने-  
में बीजबपन करना अयम है। कि तु ध्यावय महातेजो  
बीजबपन करनेसे अशुभ ही होता है। नक्षत्रों में पूष  
माद्रव्य मूका, शैदिपो उत्तरफल्गुनी, बिशाखा और  
जतमिया भादि ये चह नक्षत्र बीजबपनके लिये उत्तम  
हैं।

स्थानमेइसे बीजबपन भादिका निषेध—इल्तो  
भीर नोसका बीज घरमें येनेसे गृहीको धनपुनसे हाय  
घोबा पड़ता है। किन्तु जब यह स्वय उत्पन्न हो,  
ता इसके प्रतिपालनमें किसी तरहका दोष नहीं होता।  
यदि मोहबश सरसोंका बीज गृह उपवनमें रोपण किया  
जाये, तो सैतीके शत्रु से परामभ, और याबतीय साधन  
और जनसूय होता है। नोक, पलाश इमको, श्वेत अय  
राजिता और काञ्चन, इनका बीज कहीं भी रोपण नहीं  
करना चाहिये, करनेसे निगाम्त अमङ्गल होता है।

धाम्यादिक बीजबपनकी तरह नृहादि बीज रोपण  
कालमें भी पूर्ण मोरको मुह कर उत्त पूर्ण चक्रा और  
सुवण शकन पुच्छ बीज प्रहण कर, पीछे स्थान और  
शुधि हो कर “वसुधैति कुशोतेति पुष्येति धरेतिच ।  
नमस्ते शुभमे नित्यं द्रुमोऽयं बह्यंतामिति ।” यह मन्त्र  
पढ़ कर बीज रोपण करना होता है।

बाजवर (स० पु०) बड़क कड़ाय ।

बीजबाह्वन (स० पु०) महादेव । (मन्त्र० १३।१५१०)

बीजवृक्ष (स० पु०) बीजादेव वृक्षो यस्य बाजसघानो  
वृक्षो वा । १ अधान, विद्यासार । २ अज्ञातक मिळाना ।

बाजसंज्ञय (स० पु०) बीजानां बपनयोग्याध्यादीनां

संज्ञय संग्रहः सन्त्रि-अन्व । बपनयोग धाम्यादिबाज  
का संग्रह, धानका बोझा रचना ।

बीजबपनकी तरह धान भादिका बोझा भी शुभ  
दिन और क्षण देख कर करना होता है। इत्या, चिवा  
पुनवसु, न्वाती रैवती, भवणा और भनिष्ठा इन सब  
नक्षत्रोंमें, मेष, कर्कट, तुला और मकर मन्त्रमें, शुभ पृह  
स्वति और शुक्रवारमें, माघ अथवा फाल्गुन मासमें समी  
प्रकारका बीज संग्रह कर रचना कल्य है।

बीजसंग्रहका नियम—धान भादिके पक्षमें परशुम  
दिन क्षण देख तर्हे काटे और तुरत पीर कर तप्यार  
करे। इसक बाद धूपमें सुखा कर उसे किसी पेल  
उप स्थान पर रखे जिससे मूमिही भाद्रताका सञ्चय न  
हो। क्योंकि यह बीज यदि किसी कारणवशतः  
भाद्रताको प्राप्त हो जाय, तो इसमें पेली गयी धुस जाता  
है, कि मोतरके अक्षर बिच्छुकुस तृह हो जाते हैं। शास्त्र  
में भी इसका आमास मिलता है—

“वीजनिना च संसृष्ट गृह्णा भोसहस्रम् ।

बन्नेन तथा बीजम् स्नात् फीजमन्त्रितं ॥”

प्रतीप्तानि स संसृष्ट अर्थात् पृथवादादिक समय या  
किसी दूसरे कारणस देख तुबर, वृद्धिसे उपहत या नष्ट  
अर्थात् सड़ा हुआ तथा कीड़ेका खाया हुआ बीज बत  
नोय है।

गनाका कहना है, कि सुगणिरा, पुनर्बसु, मघा, स्वेष्टा,  
उत्तरफल्गुनी, उत्तरपादा और उत्तरभाद्रपद इन सब  
नक्षत्रोंमें, मीनमन्त्रमें तथा नियम और पापग्रह शक्ति  
अष्टमें अर्थात् सिद्ध दिन अन्त्र किसी प्रकार पापग्रह  
युक्त या नियमसंज्ञक न हों, उस दिन धान भादिक  
बीजका एक प्रकोष्ठमें रख बहाँ निम्नोक मन्त्र किसी  
पञ्चाङ्गमें लिख लिप्यस्त कर देना होगा। मन्त्र इस  
प्रकार है—

“अमराज उर्ध्वोऽर्द्धितान देहि मे धान्म स्वाहा ।

नम ईशये ईशेदेवि उर्ध्वोऽर्द्धितानिभि-

कामस्येपि चान्त्रे हि स्वाहा ॥” (ज्योतिस्तत्त्व )

उपोतिस्तस्वमें इस सम्बन्धमें और भी कहा है, कि  
मृषिकादिको निवृत्तिक लिये पत्र अर्थात् बीजबपन भादि  
में मन्त्र लिख कर उत्तरफल्गुनी, उत्तरपादा, उत्तर



भाद्रपद, रेवती, धनिष्ठा और शलभिया नक्षत्रमें उम्मे धाम्यराशिके मध्य रखना होगा। विघ्नपुरुषको चाहिये, कि वे किसी प्रकार शस्यफलका व्यय तथा अभिनवा खोसे संभोग और दक्षिणदिशाकी यात्रा न करे।

बीजसार (सं० पु०) वायधिड्डू।

बीजसू (सं० स्त्री०) बीजानि सूते इति सू-क्षिप्रप्। पृथ्वी।

बीजस्थापन (सं० स्त्री०) बीजस्य स्थापनं। बीज संग्रह। बीजसम्य देखो।

बीजस्नेह (सं० पु०) पलाशवृक्ष, ढाक।

बीजा—पञ्जाब गवर्नमेण्टकी राजकीय देखरेखमें परिरक्षित सिमला शैल पर अवस्थित एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० ३० ५६' ३" ३० तथा देशा० ७७' २' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४ वर्गमील है। यहांके ठाकुर उपाधिधारी सरदार राजपूतवर्गीय है। उस वंशके ठाकुर उभयचाद १८८५ ई०में विद्यमान थे। उन्होंने कसौलीमें अंग्रेजी सेनाके बसनेके लिये कुछ जमीन दी थी। उसके बदलेमें आज भी उनके वंशधर अंगरेज गवर्नमेण्टसे वार्षिक १००) रु० पाने हैं। उनका राजस्य एक हजार रु० है जिनमेंसे १८०) रु० टूटिश-सरकारको करमें देना पड़ता है।

यहांके ठाकुर जिस सनदके बल भूमि पर अधिकार करते हैं उससे वे अंगरेजराजकी स्वार्थरक्षा और पार्वतीय पथघाट आदि की रक्षा तथा प्रजाके हितकर कार्योंकी उन्नति करनेके लिये बाध्य हैं।

बीजाकृत (सं० स्त्री०) बीजेन सह कृतं कृष्टमिति बीज-डाच् (कृष्णो द्वितीयतृतीयशम्भवीजात् कृषी। पा १।४।५८) उत्सुकृष्टम्। जो बीजके साथ क्षैत्रमें रोपे जा कर पीछे वहां प्रविष्ट हो।

बीजाख्य (सं० पु०) १ जयपाल वृक्ष, जमालगोटिका पौधा।  
२ जमालगोटा।

बीजाङ्कुरन्याय (सं० पु०) न्यायमेव। पहले बीज या पहले अंकुर अथवा बीजसे अंकुर हुआ है या अंकुरसे बीज हुआ है, इस प्रकार सदेहस्थलमें यह न्याय होता है। न्याय शब्द देखो।

बीजानयन—फलित ज्योतिषोक्त प्रहभुक्तिकालनिर्णयकी प्रक्रियाविशेष। इसमें पहले कल्पवृक्षको तीन हजार-

में भाग देना होता है। भागफल जो निकलता है वह भागादि बीज कहलाता है। इसका दूसरा नाम बीजांग है। उम बीजांगको चन्द्रचन्द्रमें जोडना होगा। शनिकी मध्यभुक्तिकी तीनसे तथा शुक्रकी शीघ्रभुक्तिकी चार से गुना कर उममें बीजांग जोड दे। उक्त बीजांगको दूना करके बृहस्पतिकी मध्यभुक्तिमें तथा त्रिगुणित बीजांगको शुक्रकी शीघ्र भुक्तिमें घटानेसे उनके मध्य और शीघ्रको बीजशुद्ध जानना होगा।

बीजापुर—दक्षिणात्यका सुसंरक्षित-शामित एक देश। इसका नाम विजयपुर है।

विशेष विवरण विजयपुर कश्चमें देखो।

बीजाम्ल (सं० स्त्री०) बीजे अम्लोऽम्लरसो यस्य। वृक्षाम्ल, महादा।

बीजाधिक (सं० पु०) उग्र, ऊँट।

बीजिन (सं० पु०) बीजमस्त्यम्येति बीज-इति। १ पिता। (हंम) २ वह जिसमें बीज हों। ३ चोलाईका माग।

बीजोदक (सं० स्त्री०) बीजमिव कटिनमुदकं, नम्य कटिन त्वात्तथात्वं। करका, आकाशसे गिरनेवाला ओला।

बीजोत्सिचक (सं० स्त्री०) बीजानामुत्तये शुभाशुभसूचकं-चक्र। बीजवपनमें शुभ अशुभ जाननेके लिये सर्पाकार-चक्र। बीज वपन करनेसे शुभ होगा या अशुभ, यह चक्र द्वारा जाना जाता है। इस चक्रका विषय ज्योतिषतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—एक सर्पको अङ्कित कर उसमें निम्नोक्त रूपसे नक्षत्रविन्यास करना होगा,—सूर्य जिस नक्षत्रमें हों उस नक्षत्रसे आरम्भ कर सर्पके मुखमें ३, गलेमें ३, उदरमें १२, पुच्छमें ४ तथा बाहरमें ५ नक्षत्र रखने होते हैं अर्थात् सूर्य यदि अश्विनी नक्षत्रमें हों, तो सर्पके मुखमें अश्विनी, भरणा, कृत्तिका-गलेमें रोहिणीसे आद्रा, उदरमें पुनर्वसुसे ज्येष्ठा, पुच्छमें मूलासे ध्रुवणा तथा बाहरमें धनिष्ठासे रेवती नक्षत्र लिखना होता है। दिनका शुभाशुभ उस दिनके नक्षत्र द्वारा ही स्थिर करना होता है। सर्पके वदनमें जो नक्षत्र रहता है, उस नक्षत्रमें बीज वपन करनेसे चोलक (शस्यनाश), गलेमें करनेसे अङ्गार, उदरमें धान्यकी वृद्धि, पुच्छमें धान्यक्षय तथा बाहरमें इति और रोगभय होता है। अतएव उक्त चक्रानुसार निषिद्ध नक्षत्रमें बीजवपन न करना चाहिये।

वीज्य ( सं० लि० ) बिरोपेय इत्यः पूज्यः वा वीज्याय द्विजः ।  
 ( उगपारिम्बो । वा ५।१।२ ) इति यत् । १ कुजोत्पन्न  
 ओ मच्छे कुजमे उत्पन्न दुष्मा है । पर्याय—कुजसमव,  
 बीज्य, कीलकय, कुलस, कुपीन, कुनय, कुनमव । ( बयप )  
 २ वीज्यनाय ओ वैज्यक योग्य है ।

वीट ( सं० स्त्री० ) खरडा । ( विद्यामन्दीपुरा )

वीटा ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका खेल ओ हाथ भर लम्बे  
 लीके आकारके काठके टुकड़ से बनेका जाता है । 'गुली  
 इएडा' खेलमें जैसे गोलेका बराबर होता है, यह भी  
 ठोक बैसा ही है । बालक एक बड़े इण्डेसे इसे मारने  
 हुए एक स्थानसे दूसरे स्थानमें छे जा कर खेलते हैं ।  
 यह खेल बहुत कुछ अङ्ग्रेजी hocker खेलक जैसा है ।  
 महाभारतके टीकाकार मोनकबठका मत है, कि वीटा  
 घातुका बना हुआ एक घोडा है । ( भाव बाधिपर्य )

वीटि ( सं० स्त्री० ) बिरोपेय पट्टि छायापिन्ध्यात पट्टादि  
 वेष्टयित्वा प्रवृत्ते बि इट ( इत्यादाय क्त् । उष्य ५।११६ )  
 इति इत्, सच क्त् । १ ताम्बूलबन्धा, भगाया हुआ  
 पानका बोड़ा ।

वीटिका ( सं० स्त्री० ) वीटिरेव कार्ये कन् क्रियां टाप् ।  
 ताम्बूलबन्धा, भगाया हुआ पानका बोड़ा । ( राजतरंगिणी  
 ४।३३० )

वीटी ( सं० स्त्री० ) वीटि वा डीप् । वीटि, पानका  
 बोड़ा ।

वीट्ट ( सं० लि० ) इट्ट, मञ्जत । ( शुक १।३।५३ )

वीट्टम्म ( सं० लि० ) इतिर्मस्यार्थं इति। कानेक छिपे ।  
 ( शुक ३।२।१३ )

वीट्टुपेस ( सं० लि० ) प्रबद्धरससादिका श्रेयकारो ।  
 ( शुक २।२।४३ )

वीट्टुपत्तम् ( सं० लि० ) वयवदुत्पत्तम् । ( शुक १।११।१२ )

वीट्टुपति ( सं० लि० ) इट्टपत्तमि रथका मञ्जवृत् पूरा ।

वीट्टुपाणि ( सं० लि० ) इट्टुपाणि, मञ्जवृत् हाथ ।  
 ( शुक १।३।८१ )

वीट्टुहरस ( सं० लि० ) मन्तनेजक बहुत नेत्रस्त्री ।  
 ( शुक १।१०।११ )

विट्टवृत् ( सं० लि० ) इट्टवृत् मञ्जवृत् मञ्ज ।  
 ( शुक १।११।८ )

वीज्य—बहुलके अन्तगत प्राममत् । ( मरिच्यत्र० सं० १५।४५ )  
 वीजा ( सं० स्त्री० ) वेति वृद्धिमात्मवपगच्छतीति वी गती ।  
 ( रत्नानुसन्नास्यूपीयाः । उष्य ३।१५ ) इति न निपा  
 तनाद्गुण्याभावात् परत्वञ्च । १ विद्युन्, विज्ञानो ।  
 ( मेदिनी )

२ स्वनामक्यात वाच्यपञ्च, प्राचीनकालका एक  
 प्रसिद्ध राजा, जिसका प्रचार भव तक मारतक पुराने  
 ङ गक गवैषीमें है । पर्याय—बल्लको, बिपञ्जा, परि  
 बार्दिनी, ध्वनिमाका, बङ्गमङ्को, बिपञ्जिका, घोषवती,  
 कण्ठकृणिका ।

इस यज्ञमें बाधमें एक लम्बा पोसा इण्ड होता है ।  
 दोनों सिरे पर दो बड़े बड़े तूबे मरी होत हैं । एक  
 तूबेसे दूसरे तूबे तक बोलक इण्ड परसे होत हुए, खोद  
 के तीन बीर पीतलक चार तार जरो रहते हैं । कोहेक  
 तार पहले बीर पीतलक कच्चे कहलते हैं । इन मातों  
 तारोंको कसने या झिंझा करनेके छिपे सात मूर्दियां  
 रहती हैं । इन्हीं तारोंको बन्दकार कर स्वर इत्यत्र किये  
 जात हैं ।

प्राचीन मारतक तत जातिके बाजोंमें वीजा सबसे  
 पुण्यकी और अच्छी मानी जाती है । अनेक इयताजोक  
 हाथमें यही वीजा रहती है । मिश्र मिश्र देवताओं आदिक  
 हाथमें रहनेवाला वीजाओंके नाम पूषक, पूषक, हैं ।  
 जैसे,—महादेवके हाथकी वीजा छत्रो, मरुत्तोके हाथ  
 की कच्छपो, नारदके हाथकी महती और तु बरके हाथकी  
 कसावतो कहलाती है । इसके सिवाय घोणाक और  
 मी कई मेद् हैं । जैसे—जितग्ला द्विधरो बिपञ्जो,  
 रञ्जनो, शारवी यद् और नादेश्वर आदि । इन सबकी  
 आकृति आदिमें भी छोडा बहुत अन्तर रहता है ।

विरोध विषय वाच्यक शब्दमें वेणो ।

वीषाकर्ण ( सं० पु० ) द्वितोपदेशवर्णित व्यक्तियेद् ।

वीषागणगिन् ( सं० पु० ) वीषाबादक, पीना बजाने  
 वाला । ( उपरञ्जा० १।१।१।१ )

वीषागाधिन् ( सं० पु० ) वीषाबादक ।  
 ( वैत्तिरीयना० ३।१।१।१ )

वीषातन्त्र ( सं० स्त्री० ) तन्त्रप्रथमेद् ।

वीषादण्ड ( सं० पु० ) वीषाया इण्डा । वीषास्थित

अलावूपरि काष्ठदण्डः । वाणामैका लम्बा दण्ड या तुंवीका बना हुआ वह अग्र जो मध्यमे होता है । इन्मे प्रवाल भी कहते हैं ।

वीणादत्त ( स० पु० ) गन्धर्वमेद ।

( कथावर्तिसा० १७६।१ )

वीणानुबन्ध ( म० पु० ) वीणायाः अनुबन्धः । उपनाह, मितारकी खूंटी जिसमें तार बंधे रहते हैं ।

वीणापाणि ( स० स्त्री० ) वीणा पाणी यस्य । सरस्वती । वीणा सरस्वती देवीके अतिप्रिय प्रिय है, इसीसे वे सर्वदा अपने हाथोंमें वीणा धारण करती हैं ।

सरस्वती वेतो ।

वीणाप्रसेव ( स० पु० ) वीणाच्छादन पूर्वक रक्षाकारी, वह गिलाफ जो वीणा पर उसकी रक्षाके लिये चढ़ाया जाता है ।

वीणामिदृ ( स० पु० ) वीणायन्त्रमेद ।

वीणारव ( स० पु० ) १ वीणाका शब्द । ( त्रि० ) २ वीणा-संहति ।

वीणारवा ( स० स्त्री० ) मक्षिकामेद, एक प्रकारकी मक्खी ।

वीणाल ( स० त्रि० ) श्लुट्ट वीणाविजिष्ट ।

( पा १।२।६१ )

वीणावत्सराज ( स० पु० ) राजपुत्रमेद । ( पञ्चतन्त्र )

वीणावत् ( स० त्रि० ) वीणा अस्त्यर्थे मत्तुप् मस्य व । वीणायुक्त, वीणाविजिष्ट ।

वाणावती ( म० स्त्री० ) १ सरस्वती । २ एक अपमराका नाम ।

वीणावाद् ( स० त्रि० ) वीणा वादयतीति वद् णिच्-अण् । वीणावादक, वीणकार । पर्याय—वैणिक । ( अमर )

वीणावादक ( स० पु० ) वीणाया वादकः । वीणावाद्यकर्त्ता, वीणकार ।

वीणावादन ( स० स्त्री० ) वीणाया वादन । वीणाका वाद्य, वीणाका शब्द ।

वीणावाद्य ( स० स्त्री० ) वीणाया वाद्य । वीणाका वाद्य, वीणकी आवाज ।

वीणाशिल्प ( स० स्त्री० ) वीणावादनविषयक कला-चिह्नान ।

वाणास्य ( स० पु० ) वीणा आर्वामिध आस्यमस्य, तथैव स्फुटगानकरणात् । नारद । ( जटापर )

वीणाहरत ( म० त्रि० ) वीणा हर्तते यस्य । १ जिसके हाथमें वीणा हा । ( पु० ) २ निव, महादेव ।

वीण ( ग० त्रि० ) वीणायुक्त ।

वातंम ( म० पु० ) विजयेण वहिरेव तक्षयते भुष्यते इति वि तन्म् घञ् उरमर्गस्य घञ् मनुष्ये षटुलम् इति दोषः ( पा ६।३।१२२ ) । वह जाळ, फटा या इसी प्रकारकी और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि फंसाए जाते हैं । वात ( स० स्त्री० ) वेति स्म वा अजति स्म, अज गत्यर्थेति क । १ असारहस्ता और अक्ष, घे हाथों, घोंडे और नैनिक आदि जा युद्ध करनेके योग्य न रह गये हों ।

२ अ कुजकर्म, अ कुजक द्वारा मारना । ( भाष १।४७ )

३ साध्योक्त अनुमान विशेष । साध्यदर्शनके मतसे पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट ये तीन प्रकारके अनुमान हैं । यह भी दो प्रकार हैं—वात और अवात, इनमें वात फिर दो प्रकारका है—पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट और अवात शेषवत् कहा गया है । अनुमान बुद्धिशक्तिविशेष है, किन्तु तरहकी बुद्धिशक्तिको अनुमान कहा जाता है, उसका विवरण इस तरह है—व्याप्यवशापक भाव और पक्षधर्मताज्ञानसे जो बुद्धिशक्ति होता है, वही अनुमान कहा जाता है । पूर्व शब्द का अर्थ कारण है, जहाँ कारण द्वारा कार्यका अनुमान हो, वह पूर्ववत् है । जो साध्य है, ठीक वैसे ही वस्तु यदि दूसरी जगह दोष पड़े तो उस साध्यानुमानको पूर्ववत् कहते हैं । "पर्यतो वहिन्मान् धूमात्" यह जो अनुमान है, उसका नाम पूर्ववत् है । उक्त स्थलमें वहिन्साध्य है, पर्यंत पक्ष है । पर्यंत पर वहि दृष्टिगोचर न होने पर भी पाकशाला आदिमें वहि दिखाने देतो है । अथच साध्यवह्नि और पाकशालाकी वह्नि दोनों एक रूप हैं । वहित्व नामक ऐसा एक असाधारण धर्म दोनोंमें ही वर्तमान है, जो कहीं अनुमानके साथ और कहीं प्रत्यक्षके साथ विजडित है । किन्तु जो अतीन्द्रिय है, प्रत्यक्षके अगोचर है, वैसे साध्यका अनुमान पूर्ववत् नहीं हो सकता । वह शेषवत् होता है, नहीं तो सामान्यतोदृष्ट अनुमान होगा ।

द्वैतवत् अनुमानक कारण साध्यक ध्यायव्यापक भावज्ञान नहीं। साध्यभाव और हेत्वभावको ध्याय व्यापक-भावज्ञान भावव्यपक है। उसके फलसे साध्य मानका निषेध होता है सुतरां साध्यज्ञान ही उच्यता है।

सामान्यतोग्रह अनुमान पूर्ववत्क विपरित है। जिन साध्यके अनुमानमें प्रवृत्त हो रहा है, उसका या हीन वसो भाकारकी और बस्तुका प्रत्यक्ष कदापि नहीं होगा; किन्तु उसकी तुलना प्राप्त विविध प्रकार ज्ञान पद्यागत याचनीय वस्तुके व्यापकव्यापकभावज्ञान और प्रकृत हेतुमें वक्ष्य धर्मता ज्ञान होनेसे आ बुद्धिहृति हेतु है, वह सामान्यतोग्रह है। जैसे—इन्द्रियानुमान इन्द्रिय प्रत्यक्ष वीच्य नहीं। इन्द्रियां कभी भी किसीको भी दिखाई नहीं देती इन इन्द्रियोंका जो ज्ञान है वह सामान्यतोग्रह है।

इस अनुमानकी प्रणामी इस तरह "रूपान्निर्वाणं सचरत्यक क्रियात्वात् छिदादिवत्" रूपादि प्रत्यक्षके मो कारण हैं; क्योंकि रूपादिका प्रत्यक्ष क्षिपा है, यथा—छेदन इत्यादि। छेदनका कारण कुटार है। रूप-प्रत्यक्षका कारण किमको कहोगे, देह वर्य नहीं क्योंकि धनेका देह है, किन्तु रूप उसके प्रत्यक्षके बाहरकी वीच्य है। देहके कारण कहनेसे सम्येता रूप प्रत्यक्ष होता। जिसका कारण करना बाह्य हो वही इन्द्रिय है। कोई कारण या कारणत्व प्रत्यक्षग्रह होनेसे भी इन्द्रियक भाकारका कारण विरुद्ध समान्द्रिय है।

जो जो क्रियाये उन सबोंकी वर्य है। इस तरहके ज्ञानके बाह्य ज्ञानपद्यागत क्रियायोंमें ही करणके सम्बन्धमें ज्ञान होनेसे और रूपादि प्रत्यक्ष क्षिपा है, ऐसा व्यग्रण्य होनेमें जो चित्तहृति होती है, यही सामान्यतोग्रह अनुमान है। इस अनुमानसे इन्द्रियका अस्तित्व निर्णय होता है, इसमें कथम इन्द्रियका अस्तित्व नहीं है, अपत्यक्ष धर्मक बस्तुका अस्तित्वसिद्धि इस अनुमानसे होती है। यहा बात अनुमान है। (तात्पर्य०)

(जि०) ४ परित्यक्त, जिसका परित्याग कर दिया गया हो। ५ मुक्त, जो छूट गया है। ६ विगत, जो वीत गया हो। ७ निरुक्त, जो किसी बातसे रहित हो। ८ वमनीय, सुगन्ध। (शु० भा०) १ वीतक (स० पु०) वीत देने।

वीतवृत्त (स० जि०) वीतसत्यको हमने वेग मा। निरुक्तगुण, जिसमें रम या अह कारणका परित्याग कर दिया हो। पर्याय—अवदरुत्।

वीतन (स० पु०) गमेका दोनों पार्श्व। हेमचन्द्रने स्कन्धके मध्य भागको हृक और उस हृकके दोनों पार्श्वको वीतन कहा है। मतपत्र इसके अनुसार भी दोनों स्कन्धका ठीक मध्यभाग अर्थात् गमदैश हृक तथा उसका दोनों पार्श्व वीतन कहाते हैं। (हेमचन्द्र)

वीतपृष्ठ (स० जि०) वीत काष्ठ पृष्ठ पर्यायुभागां पर्य। १ जिसका पृष्ठ वा पर्यायुभाग देखनेमें अति सुन्दर और कमनीय हो। (शु० १।१५७) २ बिस्ती पारिमाण चौड़ाईका ऊपरी हिस्सा। (अर्थ ६।१५९ वाक्य)

वीतमय (स० पु०) बातें मयं वर्य यस्माद्वा। १ विष्णु। (मात ११।१४१) (जि०) २ मयवदित, जिसका मय छूट गया है।

वीतमीत (स० जि०) १ मयमुक्त, जिसका मय छूट गया हो। (पु०) २ असुरनेत्र।

वीतमस (स० जि०) १ निष्पाप, जिसे कोई पाप न हो। २ निष्कलुष जिसमें किसी प्रकारका कलुष या मल भादि न हो, बिमल।

वीतराग (स० जि०) वीतो रागो विषयवासना पर्य। १ बिगतराग, जिसमें राग या आसक्ति आदिका परित्याग कर दिया हो। (पु०) २ बुद्धका पर्यायनाम। ३ जैनोंके प्रधान देवताका नाम।

वातरागस्तुति (स० स्त्री०) जिनका एक स्तुति।

वीतवत् (स० जि०) सूत्रमुक्त। (भाष० भी० १।८।४)

वीतपापात् (स० जि०) १ क्लान्तवज्र, जिसमें बल पाया हो।

वीतशोक (स० जि०) १ बिगतराग जिसमें शोक आदिका परित्याग कर दिया हो।

वीतशोको यस्मात्, अथाकारण्यं तत्पानन शोक भावत्वात्पर्य तथात्वात्। (पु०) २ अथाकलुष। वासन्ती अर्थात् वीतमानको शुद्धाद्यमोको इसका पुत्र्य मयमें रख उस प्रकृतो निम्नात् मयत्त वद कर पाल करनेसे समो शोक ताप दूर होते हैं इसी कारण इसका वीतशोक नाम पड़ा है। मन्त्र इस प्रकार है—

'त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।

पिवामि शोकसन्ततो मामशोकं सदा कुरु ॥' (तिथितन्त्र)

वीतसूत्र ( स० क्लो ) यक्षोपवीत, जनेऊ ।

वीतहव्य ( स० पु० ) श्वनामप्रसिद्ध अद्भिरसवंगोदुभव ऋषिभेद, एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऋषि जो अंगिराके वज्रमें थे । ( अथर्व ६।१३७१ ) २ शुनकके पुत्रका नाम । ३ एक राजाका नाम । ( त्रि० ) ४ दत्तहविष्क, यज्ञमें आहुति देनेवाला ।

वीतहोत्र ( स० पु० ) वीतिहोत्र देखो ।

वीताशोक ( स० पु० ) अशोकवृक्षभेद ।

वीति ( स० स्त्री० ) वो-क्तिन् । १ गति, चाल । २ दीप्ति, चमक । ३ प्रजन, गर्भ धारण करनेकी क्रिया । ४ धसन, खाना । ५ याचन, दौडना । ६ पान, पीना । ७ प्राप्ति । ८ यज्ञ । घोटक, घोड़ा ।

वीतिका ( स० स्त्री० ) यष्टिमधु, मुलेठी । २ नीलिका, नीली निर्गुडी । ( वैद्यक त्रि० )

वीतिन् ( स० पु० ) ऋषिभेद । बहुवचनमें उनके वंशधरका शोध होता है ।

वानिराधस ( स० त्रि० ) दत्तधन, धन देनेवाला ।

( मृक् ६।६२।२६ षायण )

वातिहोत्र ( स० पु० ) वी गतिकान्त्यसनखादनेषु वी क्तिन् गतिः पुरोडाशादिः ह्यतेऽस्मिन्निति । हुयामा-श्रु-भसिभ्यस्स्वन् इति-एन ( उष्ण० ४।१२७ ) अथवा वीतये पानाय होतं ह्ययं यस्य । १ अग्नि । २ सूर्य ।

३ प्रियव्रत राजाके एक पुत्रका नाम । ( भागवत

१।१।२५ ) ४ एक राजाका नाम । ( महाभारत ७।६।१० )

५ हृदयवंशीय एक राजाका नाम । ( हरिवंश ३३।५० )

६ कान्तयज्ञ । ( ऋक् २।३८।१ ) ( त्रि० ) ७ प्राप्तयज्ञ, जो यज्ञ करता हो ।

वीती—वीतिन् देखो ।

वीतीनाश्रयवन्ध ( स० त्रि० ) उन्मुक्तप्रस्थि ।

( किरात ८।५१ )

वांतोत्तर ( ( स० त्रि० ) उत्तर देनेमें अनिच्छु ५ ।

वीत्त ( स० त्रि० ) वि दा-क्त । वित्त, धन ।

वीथि ( स० स्त्री० ) विथ्यतेऽनया विथ-इन् इगुपघात् किरितान् बाहुलकात् । १ पंक्ति, श्रेणी । २ गृहाङ्ग । ३ वर्ण, राजपथ ।

वीथिका ( स० स्त्री० ) वीथिरेव स्याद्ये क्व ततष्टाप् ।

वीथ देखो ;

वीथी ( स० स्त्री० ) विथि टाप् वा । १ राजपथ, बड़ा राजमार्ग, मडक । २ नाटकानुभेद, दृश्य काय या रूप-के २७ भेदोंमेंसे एक भेद । यह एक ही अङ्कका होता है और उत्तम, मध्यम वा अचम जिस किसी प्रकारका हो, एक ही नायक कल्पित होता है । इसमें आकाशभाषित और शृङ्गाररसकी अधिकता रहती है । अन्यान्य रस बहुत थोड़े रहते हैं । किंतु सुखादि पञ्चान्न सन्धि सार्थकताके साथ सम्पूर्णभावमें विद्यमान रहती है ।

मनीषियोंने वीथीके निम्नलिखित नैरह अंग निर्देश किये हैं, यथा—उद्घात्यक, अवलगित, प्रपञ्च, विगत, छल, वाक्केलि, अधिगाण्ड, गण्ड, अयस्यन्वित, नालिका, अमत्प्रलाप, व्यवहार और मृद्व । उनके लक्षणदि साहित्य दर्पणमें इन प्रकार लिखे हैं—

उद्घात्यक—दूसरेके वाक्यका प्रकृत भाव सहजमें समझमें न आयेगा, इन कारण हार्थ वटिन शब्द द्वारा कोई वाक्य प्रयुक्त होनेसे यदि कोई उसका प्रकृत अर्थ समझ कर दूसरे पर द्वारा उसी समय उसका यथार्थ भाव वाक्य कर दे, तो उसे उद्घात्यक कहते हैं । जैसे, "ये सब मर्केतु क्रूरग्रह सम्पूर्णमण्डल चंद्रको धल पूर्णक अभिभव या परास्त करनेकी इच्छा करते हैं" मुद्राराक्षसके सूत्रधारकी इस गूढार्थ-वाक्यक उक्तिके बाद ही नेपथ्यमें कहा गया कि, "मेरे जाने जो कौन चन्द्रगुप्त ही अभिभव या परास्त कर सकता है?" जिस उद्देश्यमें वाक्यका प्रयोग किया गया था, दूसरे वाक्यमें ठीक वही भाव व्यक्त होनेके कारण यहाँ उद्घात्यकाङ्क वीथी हुई ।

अवलगित—जहाँ एकत्र समावेश होनेके कारण एक कार्यके बाद दूसरे कार्यकी सूचना होनी वहा अवलगिताङ्क वीथि होती है । जैसे, शकुन्तलामें नटीके प्रति सूत्रधारकी उक्तिके बाद ही राजाका प्रवेश वर्णित हुआ है ।

प्रपञ्च—परस्पर मिथ्याभूत हास्यजनक वाक्यका व्यवहार करनेसे उसको प्रपञ्च कहते हैं । जैसे, विक्रमोर्वशीमें बडभोस्थ विद्वक और चेटीका परस्पर कथोपकथन ।

ज्ञात—जहाँ ध्वनिकी समता प्रयुक्त अनेक अर्थों का कल्पना की जाती है वहाँ जितनातक बोधो होती है। जैसे, "हे पर्यतधेष्ट ! क्या तुमने सर्वाङ्गसुन्दरो अर्धशो देखी गई है ?" अर्धशो विरहित पुरुषको कर्तृक पद्यतके निकट इस प्रकार प्रश्न होने पर प्रतिबन्धनिर्गमि भी वे सब शब्द श्रुतिगोचर होनेक कारण देको गई है" यह अन्तिम शब्द मानो उस प्रश्नक उत्तरमें परिणत हुआ, अतएव यहाँ 'देखी गई है' इस शब्दक प्रयोगकाक्रममें तथा इसकी प्रतिबन्धनिर्गमि एक ही रूपसे ध्वनित है। एक बार प्रश्न और दूसरी बार उत्सोका उत्तर कथित हुआ है, इस कारण अनेकार्थी ध्वननाके कारण जितनातक प्रयोगी हुई।

छन्द—प्रियसङ्ग अग्रिय वाक्य द्वारा छेदम दिखाने कर प्रसारणा करनेका नाम छल है। जैसे,—वेना संहारमें मीम और अर्द्धन भूषणोंस कह रहे हैं, "यून कदा और अर्द्धप्राद्वका प्रवर्धक, अर्द्धराज कर्णका मिक, पुत्रात्मनादिवा बड़ा मारि, प्रीपत्रोके केशाकर्षणका प्रयोगक और पाण्डवोंका प्रभु, यह अति अमिमानी राजा बुर्धनपन अयो कहाँ है ? तुम सेना बह कहते हो, हम अन्ध्यागत नहीं, केवल उसक साथ मिलने आये हैं।" यहाँ प्रियमात्रमें पश्य वाक्य कहनेके कारण छल समझा गया।

बाह्य मि—यै वा शो से अधिक प्रत्युक्ति द्वारा दाम्यारसको उत्पत्ति होनेसे उसका वाङ्मोक्ष कहते हैं। जैसे, 'हे मिश्रक ! क्या तुम मीम आते हो ? बिना मद्यक पर मीस नुयो है शुभ क्या मद्य पमन्वु करते हो ? मद्य पान वाराहुणाओंके साथ हो सुमङ्गल है, किन्तु वे क्षेपण से निताम्ब अर्धप्रिय हैं। तुम्हारे मन कहाँ ? बेरो या उकीतासे हा मन मिश्र मङ्गल है। तुम क्या बेरो या उकीतो करना जानते हो ? अमाव होने पर ही सब कुछ किया जाता है। यहाँ अत्येक प्रश्नकी प्रत्युक्तिप्राप्त दाम्यारसोद्दीपक होनेके कारण वाङ्मोक्षि हुई।

अधिवस—परस्पर स्वर्दात्मक वाक्यप्रयोगको अधिवसता दिखानेसे अधिवसताङ्क बोधी होता है। जैसे, पमावतो नाडकके बसनामकी 'आज तुममें किताका न मान कर इस गद्दा द्वारा धोके ही समयके प्रथ

प्रयुक्तका वक्ष और तो क्या सर्ग और मर्त्या तक भी उत्पाटित करूंगा" इस स्वर्दात्मक उक्तिक वाक् प्रयुक्तमें भी वैसा ही बड़ा "हे मधुरापम ! अधिक बड़बड़ मत कर। मेरे इस मुञ्जवृद्धिदिन कोअपने निच्छेद हुए शरीरसे निहत दीपकूम शोषितसे आप्नुता पृथ्वी जिसने एक मीसलोसुग राक्षसीको हर्षबद्धि" भी हो आज निरवय हो में वैसा ही करूंगा।" यहाँ दोनोंमें ही समान स्वर्दात्मक वाक्योका प्रयोग किया गया है, इस कारण अधिवस बोधी हुई।

गण्ड—यका जिस उद्देशसे एक विषय कहते हैं उस समय यदि कोई उसको छोड़ किसी दूसरे उद्देशस सहसा कोई वाक्यप्रयोग करे तथा वह वाक्य पूर्वोक्त वाक्यक साथ अर्थसङ्गत हो तो वहाँ गण्डबोधी होगी। जैसे, वेणोसंहारमें पुर्णोपनयन 'अपि ! मानुमति ! सदाक जिये ही तुम्हारे जांचक ऊपर मीमर अर्थात् मेरा उव" इतना कहते न कहते कम्पुकी अवरया हुआ आया और सहसा बोस उठा, "मन्न मन्न" यहाँ पर पुर्णोपनयनका "ममोह पिन्पस्त शैगा" यहाँ तक करनेका उद्देश्य था तथा कम्पुकी करने पर था, "देव ! ग्यकेतन मन्न हुआ है" किन्तु समयके गुणसे 'ममीव' शब्दके हीक वाक् ही 'मन्न मन्न' शब्दके क साथ ध्वनित होनेके कारण तथा ईश्वरेच्छाक फलसे भी बही होनेक कारण दोनों शब्द विभिन्न उद्देशसे प्रयुक्त होने पर भी उनका अर्थ सुसङ्गत हुआ है अतएव यहाँ गण्डबोधी हुई।

अवस्थान्त—जहाँ दूसरे वाक्य द्वारा समाधिक वाक्यका लोप अर्थप्रकाश न करा कर यदि अन्वयाभावमें अर्थात् दूसरे अर्थमें उसकी व्याख्या की जाय तो वहाँ अवस्थान्त बोधी कही जाती है। जैसे "माता ! रघुपति क्या हमलोगोंक पिता है ?" लक्ष्मण इस प्रश्न पर सीताने उत्तर दिया, "इस विषयमें कोई सङ्का न करे केवय तुम्हारे नहीं मारी पूर्वजोंके पिता है।" यहाँ पर सीताने पितृशब्दसे वाङ्मोक्षार्थ अर्थका आभास दिया है, इस कारण वह अवस्थान्त बोधी व्याख्यात होनेसे अवस्थान्तबोधी हुई।

नाडिका—दाम्यारसयुक्त प्रवेक्षिका नाम नाडिका

है। संवरणकारी उत्तरको प्रहेलिका कहते हैं, अतएव जहा क्रममें क्रम किसी प्रकार असङ्गत भाव दिखाई देता है तथा पीछे प्रत्युत्तर द्वारा किसी कौशलसे यदि उसका फिर संवरण किया जाय, तो वहां नालिका वीथी होती है। जैसे रत्नावलीमें सागरिकाके प्रति सुसङ्गता की उक्ति है—“सखि ! तुम जिसके लिये आई हो, वह यहीं पर है” इस पर सागरिकाने कहा, “मैं किसके लिये आई हूँ ?” इस वाक्यमें सागरिकाके भावका वैपरीत्य समझ कर सुसङ्गताने मरल भावमें फिरसे कहा, “क्यों चित्तफलकके लिये नहीं” इस भावसंवरणसे यहा नालिकावाची हुई।

असत्प्रलाप—प्रश्न या उत्तरकी जगह यदि असम्बन्ध अर्थात् पूर्वापर सम्बन्धरहित वाक्यका व्यवहार हो अथवा किसी जगह अवाध्य मूर्खके अकारण हितभाष्य कह कर उपदेश दिया गया हो, तो वहां असत् प्रलाप होता है। जैसे, प्रभावती नाटिकामें प्रचुरन सहकार लताके लक्ष्य कर कहता है, “अहो ! अलिकुलगुञ्जित निविडकेगा गन्धवती रसाला किशलयकोमलपाणि कोकिलमायिणी मेरी वह तरङ्गी प्रियतमा यहां क्यों !” यहां पूर्वापर विशेषणोंमें गन्धवती और रसाला शब्दों का मनुष्योंके विशेषण है तथा प्रधानतः लताको मनुष्य जान कर उसका वर्णन किया गया है, इससे यह असत्प्रलाप हुआ। चणोहाहारनाटकके तृतीय अङ्कमें गुरुवाक्यके उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधननाटिके प्रतिगान्धारिकी उक्तियाँ भी असत्प्रलाप हैं।

व्याहार—दूसरेके लिये हास्य वा लोभजनक जिस वाक्यका प्रयोग किया जाता है उसका नाम व्याहार है। जैसे मालविकाग्निमित्रमें मालविकाकी उक्तिमें नायकका हास और लोभका उद्बुध हुआ है, इस कारण वहां व्याहार वीथी हुई।

मृदव—जहां दोषोंके गुण और गुणोंके दोष समझा जाता है वहा मृदववीथी होती है। जैसे, “है प्रिय ! निष्कृता, निःस्नेहता और कृत्वन्ता आदि मेरी देहमें तुम्हारे विशदसे दोषमें तथा तुम्हें देख कर गुणमें परिणत होती है।” अर्थात् तुम्हारे विरहसे मैं उनको दोष और तुम्हारे देखनेसे गुण समझता हूँ।” यहा रूप और रीति

पड़ले गुण और पीछे दोष समझा गया, इस कारण दोनों ही जगह मृदववीथी हुई।

४ रविमार्ग, सूर्यका गमनपथ। ५ आकाशमें नक्षत्रोंके रहनेके स्थानोंके कुछ विशिष्ट भाग जो वीथी या सड़कके रूपमें माने गये हैं। आकाशमें उत्तर, मध्य और दक्षिणमें क्रमशः पौरावत, जरद्वगध और वैश्वानर नामक तीन स्थान हैं। इनमेंसे प्रत्येक स्थानमें तीन तीन वीथियाँ हैं। प्रत्येकका विवरण नीचे दिया जाता है।

अश्विनी, भरणी और कृत्तिका इन तीन नक्षत्रोंमें नाग-वीथी, रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्रमें गजवीथी, पुनर्वसु, पुष्या और अश्लेषा नक्षत्रोंमें पैगवती-वीथी है, ये तीनों वीथियाँ उत्तरांगकी अन्तर्गत हैं। मघा, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनीमें आर्णवीथी; इस्ता, चित्रा और स्वाति नक्षत्रोंमें गोवीथी; विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठामें जारद्वी है, ये तीनों वीथियाँ मध्यमार्गमें हैं। मूला, पूर्वाषाढा, और उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें ओज-वीथी, श्रवणा, धनिष्ठा और जलमिषा नक्षत्रोंमें मृगवीथी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती नक्षत्रोंमें वैश्वानरी है, ये तीन वीथियाँ दक्षिणपथकी अन्तर्भूक्त हैं। वीध्यङ्ग ( सं० स्त्री० ) वीष्या अङ्गमिवाङ्गं यस्य । नाटकमेद । वीथी शब्द देखो।

वीध्र ( सं० स्त्री० ) विशेषेण इन्धते दीप्यते इति वि-इन्ध ( वाचिन्धेः ) उण् २।१६ इति क्रुन् । १ नम, आकाश । २ वायु, हवा । ३ अग्नि, आग । ( त्रि० ) ४ विमल, निर्मल ।

वीध्य ( सं० त्रि० ) वीध्र-यत् । शरत्कालके निमलमेघसे उत्पन्न । ( शुक्लपत्र० १६।२५ )

वीनाह ( सं० पु० ) विशेषेण नहाने इति वि-नह-प्रञ् उपसर्गस्य दीर्घः । कूपका मुखवन्धन, वह जंगला या ढकना जो कूपके ऊपर लगाया जाता है।

वीनाहिन् ( सं० पु० ) कूप ।

वीन्द्रक ( सं० त्रि० ) सूर्य और चन्द्रयुक्त ।

( अङ्गुजातक )

वीपा ( सं० स्त्री० ) विद्युत्, बिजली ।

वीप्सा ( सं० स्त्री० ) वि-अपि सन् अस्-टाप । क्रिया-

गुण द्रव्यद्वारा युगपत् स्थापनेच्छा, सहाके लिये रहस्यैका  
साह ।

बीर ( न० श्लो० ) मन्त्र ( एवाचितस्त्रियज्ञादि उष् १।१३ )  
इति एक अत्रैहीमावाः बीर भष्वा । १ शृङ्गा, मि गिया  
नामक विष । २ मङ्ग, नरकर । ३ काका मिषा । ४ पुष्कर  
मूल । ५ काञ्चिक, काञ्चो । ६ शशोर, कस । ७ आरुक्,  
धाम्बुञ्जारा । ८ मिश्रुत । ९ मीद, सोहा ।  
१० गाम्बर्षी ।

( पु० ) बीर्यमोनि बीर विक्रान्ती वक्राद्यथ, यदा  
विशेषेण ईरपनि वृत्तादौति शम्भू च ईर श्रुपचात् क ।  
अपवा अत्रति स्त्रियति शम्भू अत्र-रक् अत्रैही मावा ।  
११ शीर्षविशिष्ट, यह शो माहमी बीर बक्रवान् हो ।  
पर्याय—दुर, विक्रान्त, गम्भीर, तपस्वी । ( जयानर )  
१२ पुत्र महका । ( बृक १।२०।४ ) १३ पति मार  
पुत्र । मयोरा, पतिपुत्रहीना मारोका मयोरा कहते  
हैं । १४ वनायु ईल्पुत्र । ( मात १।१।१३ ) १५  
त्रिभ । १६ नट ( हेम ) १७, विष्णु । ( विष्णुवर्णनम् )  
१८ शृङ्गारादि भाठ प्रकारक हनके अर्थात् एक रत्न ।

रत्न रत्नमें नायक उत्तम प्रकृति उत्साह, स्वायिमात्र  
है । इसका अविद्यात्-ईयता महेन्द्र हैं, लुपर्ण बर्ण, चिञ्जित  
व्यादि आत्मजन विमात्र, विज्ञप्तिदि वेष्टा इहोपन विमात्र,  
सहायकवेष्यादि अनुमात्र, धृति, मति, गर्व स्मृति,  
नर् बीर वैमात्र ये मन्त्र सञ्चारिमात्र हैं । दान धर्म,  
युद्ध बीर इया आदिके भेदसे ये चार प्रकार हैं अर्थात्  
दानबीर धर्मवीर, युद्धबीर बीर व्यापार ।

बीररत्न वर्णन करनेमें नायक धनि उत्तम स्वभावका  
होगा । इसके दान, युद्ध, दया या धर्ममें उत्साह यह  
स्वायिमात्र सबदां रहेगा । विज्ञितव्यादि आत्मजन  
विमात्र बीर बनने वेष्टा इहोपन विमात्र तथा उनक  
निमित्त सहायकिका अन्वेषण अर्थात् युद्धमें सौधसंग्रह  
दान बीर धर्ममें उन श्रेष्ठोंका संग्रह बीर इयामे स्वाम  
मात्रता आदि विद्यमान रहेंगे ।

दानबीर वर्युराम —

मन्त्रसमुद्देशेण पृच्छाके अक्षपट माबने दान नक

मर्थात् वर्युरामने सारी पुष्टिबीक अक्षपट भातन दान  
दिया था । यहाँ इनक स्वाममें उत्साह स्थायी भाव  
बीर ब्राह्मणके मन्त्रदान भाकभवनविमात्र बीर सञ्चारि  
इहोपन विमात्र हैं । सर्वस्वत्यागादि दान अनुमा  
यित बीर धर्मपुति आदि मन्त्रारित भाव द्वारा पुष्टिप्राप्त  
हो कर दानबीररत्नका प्राप्त हुए थे ।

धर्मवीर युधिष्ठिर—

'राज्य धन, ईश भाव्या, ज्ञाता तथा पुत्र बीर ६६  
मेरुमें शो कुछ मिरा भावत है, ध सर्वदा धर्मक निमित्त  
निरूपित है । यही युधिष्ठिरक धर्ममें उत्साह बीर उस  
के लिये इनके त्यागादि आत्मजन विमात्रादि द्वारा  
धर्मवीररत्न स्थित हुआ है ।

युद्धबीर भगवान् रामचन्द्र—

'मो छद्मेश्वर, उनकजा मीताका तुम मीठा हो, मैं  
व्यव धर्मना कर रहा हू । क्योंकि, तुम्हारी मति मारी  
गई, तुम नीतिका स्मरण करी, इस समय मैंने कुछ मो  
नहो किया, तुम यदि नीतिका मीठा न हो, ना जर  
सुख आदिक कष्टकरक द्वारा पशुिम ये मेरे शर तुम्ह  
महा नहीं करेगे अर्थात् युद्धमें तुमका मार डालेंगे ।'

यहाँ जो रामके युद्धमें उत्साह बीर मीति प्रदर्शन  
आदि वाचक आत्मजन विमात्रादि द्वारा युद्धबीररत्न  
स्थित हुआ है ।

दयाबीर श्रीमूतवाहन—

'ये गदगद ! अब मी गिराभीक मुछसे लून टपक  
रहा है । मीरो ईशमें अब भी मोस है, तब मी तुम्हारा  
भक्षणजनित परितोष ईश नहा रहा हू । क्योंकि तुम  
महत्यस बिरत हो रहे हो ? यहाँ अपना चेसो बुद्धिशा  
होने पर भी परदुःखहरणक लिये उत्साह पूर्णमात्राते  
विद्यमान है । यह उत्साह ही स्वायिमात्र है, पूर्णक  
बचसे आत्मजन आदिमात्र स्थिर करन गेनि ।

अपानक बीर ज्ञानरत्नक भाव बीररत्नका विशेष है,  
अपानक बीर ज्ञानरत्नक वर्णनप्रसङ्गमें बीररत्नका  
वर्णन नहीं करना चाहिये । ऐसा होनेम इसका विशेष  
होता है ।



१६ तान्त्रिकभावविशेष । तन्त्रमतमें दिव्य, वीर और पशु ये तीन भाव हैं । साधक इनमेंसे किसी एक भावकी साधना करे ।

“भावस्तु त्रिविधः प्राक्ता दिव्यवीरपशुक्रमात् ।  
गुरवस्तु त्रिधा चात्र तत्रैव मन्त्रदेवता ॥”

( रुद्रयामल ११ पटल )

रुद्रयामलतन्त्रमें लिखा है, कि प्रथम पशुभाव, इसके बाद वीर और इसके उपरान्त दिव्य इसी तरह तीन भाव स्थिर करने होंगे । दिन आदिमें पहले दश दण्ड पशुभाव, बीचके दश दण्ड, वीरभाव और शेषके दश दिव्यभाव हैं । जो जिस भावके साधक हैं, वे उसी भावके समयानुसार कार्य्य करेंगे ।

वामकेश्वरतन्त्रमें लिखा है, कि जन्मसे ले कर १६ वर्ष तक पशु, १६ से ५० वर्ष तक वीर और इसके बाद दिव्यभाव होता है, इस तरह तीन भाव स्थिर करने होंगे ।

२० वीराचारविशिष्ट, जो साधक वीराचारके मतसे साधना करने हैं, उसको वीर कहते हैं । वीराचारी सर्वदा कुलाचार और कुलसङ्गा वने । सब समय सविदु पान करे । वे सर्वदा उद्धृतमना होंगे और उनकी चेष्टा सदा उन्नतकी तरह होगी, उनका अङ्ग भस्म द्वारा धूसरवर्ण तथा वह सदा मद्यपानरत और वलिपूजा-परायण रहेंगे और अपने इष्ट देवताकी नर, वकरा, मेंडा, भैंस आदि वलिद्वारा पूजा करेंगे । इस तरह पूजा करनेसे शीघ्र उनका मंत्र सिद्ध होगा । केवल मद्यपान करनेसे ही वीर नहीं होता, बरं वीराचारीका भी मद्यपानमें निषेध है । कलिकालमें इस भारतवर्षमें घर घर मद्यपान करनेसे वर्णभ्रष्ट होता है, अतएव मद्यपान निन्दित है ।

महानिर्वाणतन्त्रमें विशेषरूपसे लिखा है, कि कलिकालमें वीर और दिव्यभाव निषिद्ध है । अर्थात् साधक इन दो भावोंकी साधना नहीं करे, केवल पशुभाव द्वारा ही साधना करे, इसीसे उनका मन्त्र सिद्ध होगा । इस वचनके अनुसार कलिकालमें दिव्य और वीरभाव बिल कुल निषिद्ध है ।

“दिव्यवीरमयोभावः कश्चि नास्ति कदाचन ।

केवलं पशुभावेन मन्त्रविदिर्भवेन्नृत्तयाम् ॥”

( महानिर्वाणतन्त्र ) वीराचार शब्द देखो ।

२१ तण्डुलीय, चीलाईको साग । २२ वराहकन्द, गेंडा । २३ लताकरञ्ज । २४ करवीर, कनेर । २५ अर्जुन वृक्ष । ( राजनि० ) २६ यज्ञाग्नि । ( भरत ) २७ उत्तर । २८ सुभद्र, हृजियार । २९ प्रेरणाकारी, वह जो भेजता हो । ३० मल्लातक वृक्ष, भिलावा । ३१ शुक्रदेव, कुश । ३२ पीतकिण्टा, पीला कटसरैया । ३३ ऋषभक नामक औषधि । ३४ काकोली । ३५ तोरई । ( त्रि० ) ३६ श्रेष्ठ । ३७ फर्मडा, कर्मग्रील ।

वीर आचार्य—गणितशास्त्र और गणितसारसमूह नामक दो पुस्तकोंके प्रणेता । आप एक जैन आचार्य्य थे ।

वारक ( स० पु० ) वीर पत्र स्वार्थे कन् । १ श्वेत करवीर, सफेद कनेर । २ विक्रान्त, शूरवीर । ( शृक् ८।८०।२ ) ३ अपकृष्ट देशविशेषवासी, वह जो किसी निन्दित देशका निवासी हो । ऐसे व्यक्तिके साथ किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं रखना चाहिये । ( भागवत ८।४।४२ )

४ चाक्षुष मन्वन्तराय मुनिविशेष । ( भागवत ८।५।८ )  
५ वीर देखो ।

वीरकरा ( स० स्त्री० ) पुराणानुसार एक नदीका नाम । इसका दूसरा नाम वीरकरा भी है ।

वीरकर्मा ( स० पु० ) १ रेत, चीर्य । २ वह जो बोरोंकी भांति काम करता हो, वीरोचित कार्य्य करनेवाला । ३ वीरोक्ता कार्य्य ।

वीरकाटी ( स० स्त्री० ) नदिया जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम ।

वीरकाम ( स० त्रि० ) पुत्रकामना, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला ।

वीरकुक्षि ( स० स्त्री० ) वह स्त्री जो वीरपुत्र प्रसव करती हो ।

वीरकेतु ( स० पु० ) पाञ्चाल राजपुत्रभेद ।

( महामा० द्रोणपर्व )

वीरकेशरी ( सं० पु० ) वीरः केशरीव । १ वीरश्रेष्ठ, जो वीरोंमें श्रेष्ठ हो । २ राजपुत्रभेद ।

हिन्दी  
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषक मन्पादक  
श्रीनगीन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाशयः,  
विद्याल-वर्षिणि, बलरवाधर, तन्त्रविभाषण, बंग, पार, ४, एच,  
तथा विन्वीक विद्यालय द्वारा मङ्गमित ।

एकविंश भाग  
[ वसुम-पीठवृष्टि ]

THE  
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XXI

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

MAHENDRANATH VASU *Prachya-vidyāmahārāja*

*Siddhānta-vāridhī* Śabda-ratnākara *Tattva-chintāmaṇi* M. A.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of *Bangya Sāhitya Pariksha* &

and *Khyatika Pariksha*; author of *Castes & Sects of Bengal, Mayura-*

*Wazya* Archaeological Survey Reports and *Modern Buddhism*;

Hon'ble Archaeological Secretary Indian Research Society

Associate Member of the Asiatic

Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. C. Sen, at the Visvakosha Press.

Published by

Maṅgandranath Vasu and Visvanath Vasu

J. Visvakosha Ltd. Bagbazar Calcutta

1930



बोरफुरिका (स० स्त्री०) सुटिकाबिद्योप, पत्रकारकी सुटी ।

बीरगति (स० स्त्री०) बीरस्य गतिः । १ सर २ बह इत्थम गति जो बीरोंको रणक्षेत्रमें मरनेसे प्राप्ती होती है । कहते हैं, कि युद्धक्षेत्रमें बीरतापूर्वक लड़कर मरने वाले लोग सोधे लार्की जाते हैं ।

बीरगोत्र (स० स्त्री०) बीरस्य गोत्र । रका गोत्र, बीरका पशु । (भाष्यपत्रेषु० १२५।७)

बीरदानी (स० स्त्री०) बीरदानी । योगदाने ।  
(मं० ७।१३।१२)

बीरद्वारा (स० स्त्री०) नदीमेद । (विपुलाय)

बीरदण्डोत्थर (स० पु०) विष्णु । अरत्न

बीरदण्डसप्तम्य (स० स्त्री०) विष्णु  
(लघु ७।१३।१२)

बीरपरिह (स० पु०) बीरकी शोचनी

बीरधर्म्य (स० पु०) दण्डपुत्रमेद । (नाम)

बीरधर्म्य (स० स्त्री०) बीरका कार्य ।  
(कणादशा० ८।१।१०)

बीरद्वयमिता (स० स्त्री०) बीरतापान्तिरूप । युद्ध रूपमें बीरोंका मृत्यु ।

बीरजात (स० स्त्री०) १ बीरसमूह २ अपत्यजात ।  
इत् १०।२३।११)

बीरजित् (स० पु०) व्यक्तिये । (कपालतिका०  
५।१।८३)

बीरस्य (स० स्त्री०) १ उग्रोर लृण कर पर्याय—कटा यन, बीरतर, बीरमत् । गुण—प्राज्ञ शीतल स्तम्भम, मधु, तिलक मधु, ज्वर, बमल बीरमेदनाशक कफ और पिच्छामक, तुष्या, भय, अथ, बिसर्प बीर कृष्णशहपुष्प कषयनाशक ।

२ कुशादि लृणमण, कुशा वस, ११ बीर वृष भादि को ज्ञातिक लृण । (भईवि०) पु०) ३ मन्नापति दिनेर बीरण मन्नापति । (अरत्न ३।१८।५१) इन को कणशाका नाम अल्लिका था । ३ मन्नापतिने स्वयं मृगुदे कहनेसे इससे वशाद द्विय । इन कणशाके

गर्मसे पांच हजार बीर पुत्र उत्पन्न हुए थे । इन सब पुत्रोंसे सृष्टि बढ़ी थी । (हरिवंश ३।५०) ४ एक श्रिय, बीरयोके पिता । ५ यजुर्वेदामिह एक जाबार्ज्य ।

बीरणक (स० पु०) नागमेद । (भारत नागरिपर्व) वाटणाराधय—घोडरैणुकासम्बावके प्रपिता ।

बीरजित् (स० पु०) एक मुनि । ये वैदिक आप्तार्ज्य माने जाते थे ।

बीरतन्त्र (स० स्त्री०) तन्त्र बिद्योप ।

बीरतम (स० स्त्री०) अपमेषामतिशयेन बीर । बीर प्रश स्तुत्यार्थ—तमपू । अत्यन्त बीर ।

बीरतर (स० स्त्री०) १ बीरस्य, उगीर कस । २ शर, तोर । (मि०) ३ सामर्थ्यविशिष्ट, शक्तिमान् । ४ शै में श्रेष्ठ ।

बीरतरासन (स० स्त्री०) बीरतराणां साधकभेदान्तं भासनम् । भासनविद्योप, यह भासन द्विस पर बैठ कर भेद्युक्त साधना करते हैं ।

युद्ध क्रोमल, स प्राममें या किंसा जीव जन्तु द्वारा मृत नररूप भासनको बीरतरासन कहते हैं । गर्भज्युत शय या नारियोंका योनिज त्वक अथवा युपतिपोंका त्वकरूप भासन, यह भी बीरतरासन है । ये सब भासन सिद्धिद तथा भक्ति समृद्धिदायक हैं । इस भासन पर बैठ कर साधन करनेसे चौद्वे ही दिनोंमें सिद्धिलान होता है ।

बीरतर (स० पु०) बीरतन्त्रानामाख्यातस्तदक । १ मद्युन वृत्त । २ कोकिलास वृत्त, ताळमयाना । ३ विद्यवा न्वरत्तस । ४ भङ्गावक, मिलावा । ५ जारवृण गर नामक धास । ६ प्रियाम वृत्त प्रियासार नामक वृत्त ।  
(रैपकर्मि०)

बीरता (स० स्त्री०) बीरस्य भाषा तल टापू । बीर होनेका भाव, शूरता, बहादुरी ।

बीरताविष्णुपुपतिपयु—इपनिवदुमेद ।

बीरतन्त्र (स० पु०) एक प्राचीन श्रियि ।

बीरदामन (स० पु०) शकलरूप दण्डपुत्रमेद ।

बीरदेव (स० पु०) एक कवि । श्रेयस्त्रने सुदुर्लभिकरमे इनका उल्लेख किया है ।

वीरद्रु (सं० पु०) अर्जुन वृक्षः

वीरद्युम्न (सं० पु०) राजपुत्रभेद । (भारत ज्ञान्तिपर्व)

वीरधन्वन् (सं० पु०) कामदेव ।

वीरनगर—बङ्गालके नदिया जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह उला नामसे प्रसिद्ध है । एक समय यह स्थान घनजनसे पूर्ण था । कालके कवलमें पड़ कर दारुण महामारीसे यह नगर जनशून्य और श्राहीन हो गया है । प्राचीन समृद्धिके निदर्शन आज भी नाना स्थानोंमें देखे जाते हैं । उला देखो ।

वीरनाथ (सं० त्रि०) १ वीरश्रेष्ठ । (पु०) २ काशमीरके ध्यात्मभेद । (राजतरङ्गिणी ६।११०)

वीरनायक (सं० पु०) १ वीरसाधक । २ उगीर, जम् । (वैद्यकनि०)

वीरनारायण (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद । २ एक कवि इनके वनाथे कई काव्योंका उल्लेख मिलता है । ३ साहित्य-चिन्तामणि नामक अलङ्कार ग्रन्थके प्रणेता ।

वीरन्धर (सं० पु०) १ मयूर, मोर । २ वन्यपशुके साथ युद्ध, जंगली पशुओंके साथ होनेवाला युद्ध । ३ एक प्राचीन नदीका नाम ।

वीरपट्ट (सं० पु०) युद्धकालका परिच्छिन्न विशेष, वह पहनावा जो युद्धके समय पहना जाता है ।

वीरपत्नी (सं० स्त्री०) १ वैदिक कालकी एक नदीका नाम । २ वह जो किसी वीरकी पत्नी हो ।

वीरपत्नी (सं० स्त्री०) वीरप्रियाणि पत्नीणि यस्याः । विजया, भंग । यह वीरोंको बहुत प्रिय है, इसीसे इसका यह नाम पड़ा है । २ धारणी नामक महाकव्य ।

वीरपर्ण (सं० स्त्री०) सुरपर्णमिथ सुगन्ध पत्र, माची-पत्नी ।

वीरपस्त्य (सं० त्रि०) पुत्रादियुक्त गृहप्रद ।

(श्रुक् ६।५।४)

वीरपान (सं० पु०) वीराणां पानं । वीरोंके श्रमनाशके लिये पान, वह पान जो वीर लोग युद्धका श्रम मिटानेके लिये करते हैं ।

(वामान-  
सुमार  
वीरपाण

वीरपाण्ड्य-  
वीरपाल (सं०

वीरपुर (सं०  
लय शिपर प

वीरपुर (सं० पु०)  
शूरावीर ।

वीरपुत्रो (सं० स्त्री०)  
२ मिनटूरपुत्री, लकन ।

वीरपेजन् (सं० स्त्री०)  
(श्रुक ४।१।३ स

वीरप्रजापिनी (सं० स्त्री०)

वीरप्रजावती (सं० स्त्री०)  
मस्य व, स्त्रिया ङी

वीरप्रम (सं० पु०)  
किभेद । (कथावर्तिषा ५६।२५)

वीरप्रमोक्ष (सं० स्त्री०)  
तीर्थभेद । (भारत वनप०)

वीरप्रमवा (सं० स्त्री०)  
स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो ।

वीरप्रसू (सं० स्त्री०)  
वीरान् प्रसूते प्र-सू क्तिप् । वीर-  
प्रसविनी स्त्री, वह जो वीर संतान उत्पन्न करती  
हो ।

वीरवाहु (सं० पु०)  
१ विष्णु । २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम (भारत  
१।६।१०३) ३ राजाके एक पुत्रका नाम । ४ एक  
प्रकारका बन्दर । (सामायण ६।१७।१५)

वीरभट (सं० पु०)

यन्तु यत्पानं वृत्ते भाविनि वा रय्ये ।' (अमर )  
योः । पा ८।४।१० ) पाणिनिके इस सूत्रा-  
शब्दका न पठि विकारमें गत्व हो, तो  
'वीरपान' ये दो पद बनेगे ।

पाण्ड्य वंशीय राजभेद ।

पु०) काशमीरके सामन्तभेद ।

(राजतर० ८।२।१५३)

पु०) १ कान्यकुब्जराजधानी । २ हिमा-  
लय शिपर पर अवस्थित एक नगरका नाम ।

(कथावर्तिषा ५२।१६६)

पु०) वीरः पुत्रयः । वीर्यविशिष्ट पुरुष,  
शूरावीर ।

पु०) वाट्यालकभेद, महर्षे ।  
२ मिनटूरपुत्री, लकन ।

पु०) १ बलिष्ठ देहयुक्त, बलशाली ।  
(श्रुक ४।१।३ स

पु०) वीरप्रसविनी, वीरमाता ।

पु०) वीरप्रजा विद्यनेऽन्याः मतुप्  
वीरसन्ततियुक्ता, जिनके पुत्र

पु०) १ कथावर्तिषा ५६।२५)

पु०) तीर्थभेद । (भारत वनप०)

पु०) वीरपुत्रप्रसवकारिणी । वह  
स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो ।

पु०) वीरान् प्रसूते प्र-सू क्तिप् । वीर-  
प्रसविनी स्त्री, वह जो वीर संतान उत्पन्न करती  
हो ।

पु०) वीराः समर्थाः वाहवो यस्या  
१ विष्णु । २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम (भारत  
१।६।१०३) ३ राजाके एक पुत्रका नाम । ४ एक  
प्रकारका बन्दर । (सामायण ६।१७।१५)

पु०) वीरान् प्रसूते प्र-सू क्तिप् । वीर-  
प्रसविनी स्त्री, वह जो वीर संतान उत्पन्न करती  
हो ।

पु०) वीरान् प्रसूते प्र-सू क्तिप् । वीर-  
प्रसविनी स्त्री, वह जो वीर संतान उत्पन्न करती  
हो ।

(कथावर्तिषा ५४।४२)

धीरमद्र (स० पु०) धीरार्णव मद्र है। १ अश्वमेध यज्ञका योद्धा। २ धीरश्रेष्ठ, गुणवीर। ३ धीरगण, अस्त। ४ शिवाङ्किकुशियोग। ये शिवके पुत्र हैं। अश्वतार भागै जाने हैं। महाभारतमें इनकी उत्पत्तिज विवरण इस प्रकार लिखा है। जब दक्षमहाप्रतिने महाब्रह्म अथमान करनेके लिये शिवविहीन यज्ञका अनुष्ठान किया, तब देवी भगवती यह संवाद पा कर बड़ी दुःखित हुई। उन्होंने बड़े श्लेषक साथ शिवजीसे कहा, 'भगवन्, मैं कैसा दान वा तप करूँ जिससे मेरे पतिको यज्ञका भाग्य या तिहाई भाग मिले। महाप्रपार्षतोको यह जेदोचित सुन कर बोले, 'मैं समी यद्यपि ईश्वर हूँ, मेरे बिना यज्ञ पूरा हो ही नहीं सकता।' 'हो, तुम्हें मेरे प्रति कैसा वाक्य प्रयोग करना चाहिये यह तुम्हें मादूम नहीं। आज तुम्हारे मोहवश इन्द्रादि देवता और त्रिसोडशासी प्राणी मृग्य हुए हैं। सभी तुम्ह मसम करनेके लिये मैं एक महावीरको सृष्टि करता हूँ।' अनन्तर महादेवने अपने मुखसे एक भयङ्कर पुत्रपदो सृष्टि की। उस महापुत्रके सृष्टि होते ही महादेवने उमका धीरमद्र नाम रख कर कहा, 'धीरमद्र। तुम अन्न दक्ष-यज्ञमें जाओ धीर पार्षतोका श्रेष्ठ प्राप्त करनेके लिये यज्ञको नष्ट कर डालो।' धीरमद्र तैवार हो गये धीर देवीक श्लेषमे उत्पन्न महाकाकी भी इनकी अनुगामिनी हुई।

उस समय धीरमद्रक कापस त्रिभुवन काँप उठा। पीछे धीरमद्रने अपने श्लेषमूर्त्तोंसे अश्वमेध यज्ञकी सृष्टि की। ये सब यज्ञ भयानक शब्द करते हुए यज्ञस्थलमें जा घमक और सभोंमें मिस कर यज्ञको विनष्ट कर डाला। श्राद्धकर्मण्य इन सभोंके भयङ्कर कर्ण श्लेष कर यज्ञस्थलमें भागने लगे। स्वर्ग्य सुरासल यज्ञश्लेष भी धूमरूप धारण कर भाग रहे थे इसी समय धीरमद्रने कापके आश्रममें मूर्त्तोंको सहायतासे उन्मत्त, गिर काट डाला और प्रयुक्त मनसे यह धीर कर देने लगी। इस नि दनापसे सभी धर्ता ठके। धीर कर देने लगी।

इसक बाद प्रजापति शिवतामै प्रजापति शिवतामै धीरमद्रके समाप जा कर बहा। धीर। भाप कीन

है।' धीरमद्रने बड़े गर्वसे उच्चर दिया, 'मैं यज्ञ पा देवो पार्षता नहीं हूँ। मैं इस यज्ञमें मोक्षम या कीर्त्या परतन्त्र हो ब्राह्मणोंके दर्शन करने नहीं आया हूँ। देवी पार्षतीके दुःखित होने पर भगवान् यज्ञ बड़े क्रुद्ध हुए हैं। मैं यज्ञीके आदेशसे तुम्हारे इस यज्ञको नष्ट करने आया हूँ। मेरा नाम है धीरमद्र। यज्ञश्लेषक श्रेष्ठानससे मैं धीर देवा पार्षतोके श्लेषसे यह धीरमद्रो उत्पन्न हुई हैं। इनका नाम मद्रकासी है। इस समय यदि तुम अपना कर्मपाप चाहते हो, तो महादेवकी शरण लो, तुम्हारी रक्षा ही भी सकती है।' इस पर वृक्षने मयमोत हो महादेवक अष्टोत्तरसहस्रनाम कीर्तन कर इनका स्तन किया। उनक स्तयसे मायुनोपना श्लेष शास्त हुआ।

(महाभारत शर्मिष्ठावर्ण भाष्यक० ८५ म०)

काशीकरवर्मने लिखा है, कि दक्षकन्या पापतीमें जब पिताक यज्ञका विषय नारदके मुखसे सुना, तब ये विना बुझाये पिताक घर गईं। वहाँ पतिकी निम्ना सुन कर उन्होंने यज्ञस्थलमें प्राणत्याग कर दिया। नारदने यह कबर महादेवका दी। महादेवने श्लेषसे अघोर हो यज्ञ मूर्त्तोंको धारण किया। उस समय उनक श्रेष्ठानससे धीरमद्र उत्पन्न हुए। पीछे धीरमद्रने दक्षयज्ञको नष्ट कर दिया। (कामील० ८८, १० म०)

वायुपुराणक मतसे दक्षयज्ञका विनाश करनेक लिये शिवके मुकुटेशसे धीरमद्र आधिभूत हुए। इनके हजार मन्त्रक, दो हजार भैर और दो हजार पद हैं। इनका परिपुत्र क्याप्रमदर रक्षिभण्डित है। हाथमें कुठार और प्रहील धनुष है। दूसरे पुराणमें शम्भे शिवके यमोनेसे उत्पन्न बतलाया है। महाराष्ट्र देशमें शिवकी इस मूर्त्तोंको उपासना प्रचलित है। तन्कादिमें धीर मद्रक पूजाप्रस्तादि लिखे हैं। दक्ष शरण देला।

धीरमद्र—१ एक हिन्दू राजा। इनके पिताका नाम मद्रेश्वर था। इनकी स्वामिने तबप्रश्लेषक प्रमेता कीर्तनमद्र विद्यमान थे। २ तन्मत्तारपुत्र एक प्रमदकार। ३ एक प्राचान कवि। ४ एक ज्योतिर्विद्विहू। उत्पन्नहून पृथक् स दिताराकायै इनका बन्देक है। ५ एक वैद्यकग्रन्थक प्रमेता। ६ भोक्तव्यस्तोत्रक रचयिता।

वीरभद्रक ( स'० ह्नां० ) धीरभद्रमेव स्वार्थ-कन । १ वीरभद्र देखो ।  
वीरण, खस । २ वीरभद्र देखो ।

वीरभद्रकालिकाकवच—महोपध धारणीमेद् । इसे धारण करनेसे रोग, मय आदि दूर होते हैं । वीरभद्रतन्त्रमें इस मन्त्रात्मक कवचका उल्लेख है ।

वीरभद्रदेव—त्रयेल वंशोय एक हिन्दू राजा । इन्होंने १५७७ ई०में कन्दर्पचूडामणि नामक कामसूतकी टाका प्रणयन की । प्रत्यकारने प्रत्यमें अपना वंशपरिचय इस प्रकार दिया है,—गालिवाहनक पुत्र वीरसिंह, वीरसिंहके पुत्र वीरभानु, वीरभानुके पुत्र रामचन्द्र और इन्हीं रामचन्द्रके पुत्र कुमार वीरभद्रदेव थे । चन्द्रालोक-टीकाके प्रणेता प्रद्योतन भट्ट इनके आश्रित और समा-पाण्डित थे ।

वीरभद्रस्व ( पु० ) सन्निपातज्वराक रसायन-विशेष ।

वीरभघन् ( स'० श्री० ) वीर देखो । यह प्रयोग द्वितीय पुरुष-में हुआ है । ( कथासरित्सा० १०।४४ )

वीरभानु ( स'० ० ) राजपुत्रमेद् ।

वीरभार्या ( स'० श्री० ) वीरस्य भार्या । वीरकी स्त्री ।

वीरभुक्ति—जनपमेद्, धारभूम ।

वीरभुज ( स'० ० ) राजमेद् । ( कथासरित्सा ३६।३ )

वीरभूपति ( स'० पु० ) विजयनगरके एक राजा । इन्होंने १४१८से १४३४ तक राज्य किया था । ये युवबुद्धके पुत्र थे । प्रयोग-तन्त्रमालाके प्रणेता श्रीएडपगाचार्य इनके आश्रित थे ।

